पुस्तक संख्या 6 खण्ड IX (क) -30 जुलाई,1949 से 31 अगस्त,1949

खण्ड IX (क) पुस्तक संख्या-6 दिनांक 30.7.1949 से 31.08.1949

भारतीय संविधान सभा
(भारतीय विधान परिषद)
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

खण्ड IX (क)
पुस्तक सं. 6

30.07.1949
से
31.08.1949

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष

माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष

डा. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार

श्री बी.एन.राव, *सी.आई.ई.*

सचिव

श्री एच.वी.आर. आयंगरए *सी.आई.ई., आई.सी.एस.*

संयुक्त सचिव

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव

श्री जुगल किशोर खन्ना

मार्शल

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 3. IX-1.49
320

अंक 9
संख्या 1

शनिवार
30 जुलाई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 1–2

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*
[नवीन अनुच्छेद 79-क, अनुच्छेद 104, नवीन अनुच्छेद 148-क, अनुच्छेद 150,
नवीन अनुच्छेद 163-क तथा अनुच्छेद 175 पर विचार] 2–66

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 30 जुलाई, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्न सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

मौलाना मुहम्मद हिफजुर रहमान (संयुक्तप्रांतः मुस्लिम)

सेठ गोविन्द दासः (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): सभापति जी, इसके पहले कि हम आगे बढ़ें, मैं एक बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। जब से हम लोग यहां आये हैं तब से राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें सुन रहे हैं। कहा यह जा रहा है कि राष्ट्रभाषा का सवाल पार्लियामेंट के ऊपर छोड़ दिया जायेगा। आपने बार-बार इस बात को कहा था कि हम केवल राष्ट्रभाषा का प्रश्न ही यहां हल न करेंगे, बल्कि हम अपना विधान भी अपनी भाषा में बनायेंगे। अब यह अन्तिम अधिवेशन है और मुझे इस बात का पता लगा है कि जो कमेटी आपने विधान के अनुवाद के संबंध में नियुक्त की थी, उसने उन धाराओं का हमारी भाषा में अनुवाद कर लिया है, जो हम यहां पास कर चुके हैं। मैं चाहता हूं कि आप इन अफवाहों का खंडन कर यह निश्चय कर दें कि राष्ट्रभाषा का सवाल हम अपनी पार्लियामेंट पर न छोड़कर इस विधान-परिषद् में निश्चय करेंगें क्योंकि उसके बिना मेरा अपना मत है कि सारा विधान ही अधूरा रहता है। इसी के साथ मैं यह चाहता हूं कि आप तीन विषयों के लिये कि हमारी राष्ट्रभाषा कौन सी होगी, हमारा राष्ट्रीय गीत क्या होगा और हमारे देश का क्या नाम होगा, निर्णय करने की तारीख मुकर्रर कर दीजिये, जिससे लोगों को मालूम हो जाये कि अमुक तारीखों पर यह सवाल लिये जायेंगे।

***डा. बी. पट्टाभि सीतारमय्या** (मद्रासः जनरल): मैं समझता था कि यह बात मान ली गई है कि जब कोई सदस्य ऐसा प्रश्न उठाना चाहता है जो कार्यक्रम में नहीं है तो उसे अध्यक्ष से उसके कमरे में जाकर कहना चाहिये। क्या मैं यह जान सकता हूं कि इस प्रक्रिया का इस विषय में पालन किया गया है या नहीं?

***अध्यक्षः** नहीं।

***डा. बी. पट्टाभि सीतारमय्याः** यकायक ऐसे विषय को श्रोतागणों के सामने रखना और लम्बे भाषण देना समस्त आदेश तथा प्रक्रिया के विरुद्ध है।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः** (संयुक्तप्रांतः जनरल): वाह, वाह।

***अध्यक्षः** यह प्रश्न, कि क्या भाषा के प्रश्न को संसद् पर छोड़ा जाये, पूर्णतया इस सदन के विनिश्चय पर निर्भर है। इस सदन को ही इस प्रश्न पर विचार करना है और जैसा चाहे वैसा विनिश्चय करना है। मैं नहीं समझता हूं कि आगे और कोई प्रश्न उठता है और जब वह अनुच्छेद आयेगा और उस पर विचार हो जायेगा तो उसके अनुसार हम कार्यवाही करेंगे।

***सेठ गोविन्द दासः** सभापति जी, मेरा दूसरा सवाल रह गया कि उसके लिए तारीख मुकर्रर हो जानी चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपका ध्यान सभा के कर्मचारियों की एक अनियमित कार्यवाही की ओर आकर्षित कर सकता हूं? श्रीमान्, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या आपने कर्मचारियों में से किसी को इस संविधान-सभा के सदस्यों पर अनुशासनीय अधिकार रखने के लिए कह दिया है जिसके कारण वे उनको उस बात का दंड दे सकें जिसे वे अपनी प्रार्थना की अस्वीकृति के रूप में समझें? एक कर्मचारी ने मुझे यह लिखा है कि मुझे किसी खास सप्ताह की पेट्रोल की पर्चिया नहीं मिलेंगी क्योंकि कोई ऐसी कार्यवाही थी जिसे मैंने पहले कभी पूरा नहीं किया। मैं नहीं समझता हूं कि उसे ऐसा करने का हक्क है और न आपने ऐसा करने के लिए प्राधिकार दिया होगा और मैं समझता हूं कि ये सारी कार्यवाही पूर्णतया अनियमित है।

***अध्यक्षः** यह स्पष्ट है कि किसी भी कर्मचारी को ऐसा कोई प्राधिकार मैं तो दे ही नहीं सकता; फिर भी मैं इस विषय में देखभाल करूंगा।

अब हम अनुच्छेद 79-क को लेंगे।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

नया अनुच्छेद 79-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

Secretariat of Parliament "79-A. (1) Each House of Parliament shall have a separate Secretarial Staff:

Provided that nothing in this clause shall be construed as preventing the creation of posts common to both Houses of Parliament.

(2) Parliament may by law regulate the recruitment, and the conditions of service of persons appointed, to the secretarial staff of either House of Parliament.

(3) Until provision is made by Parliament under clause (2) of this article, the President may, after consultation with the Speaker of the House of the People or the Chairman of the Council of States, as the case may be, make rules regulating the recruitment and the conditions of service of persons appointed to the secretarial staff of the House of the People or the Council of States, and any rules so made shall have effect subject to the provisions of any law made under the said clause."

[79-क संसद् का सचिवालय

(1) संसद् के प्रत्येक सदन का अपना पृथक साचविक कर्मचारी वृन्द होगाः

परन्तु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा कि वह संसद् के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को रोकती है।

(2) संसद्, विधि द्वारा, संसद् के प्रत्येक सदन के साचविक कर्मचारी वृन्द में भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगी।

(3) खंड (2) के अधीन जब तक संसद् उपबन्ध नहीं करती तब तक राष्ट्रपति यथास्थिति, लोक सभा के अध्यक्ष से, या राज्य परिषद् के सभापति से परामर्श करके लोक सभा के या राज्य परिषद् के साचविक कर्मचारी वृन्द में भर्ती के, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के, विनियमन के लिए नियमों को बना सकेगा तथा इस प्रकार बने कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे।]

सदन ने यह देखा होगा कि यह एक नया अनुच्छेद है जिसके पुनःस्थापन करने का इस संविधान में प्रयत्न किया जा रहा है। मसौदा समिति ने इस प्रकार के अनुच्छेद का पुरःस्थापन करना आवश्यक क्यों समझा इसका कारण अभी हाल में हुआ वह सम्मेलन है जिसको विभिन्न प्रांतों के अध्यक्षों ने किया था और जिसमें यह कहा गया था कि इस प्रकार का उपबन्ध संविधान में होना चाहिये।

कदाचित इस सदन के प्रत्येक व्यक्ति को यह विदित है कि कार्यपालिका सरकार और सभापति में यह झगड़े का विषय तभी से चल रहा है जबकि स्वर्गीय श्री विट्ठल भाई पटेल को सभा में सभापति का आसन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया गया था। कार्यपालिका सरकार और सभा के सभापति में झगड़ा

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

चल रहा था। सभापति का विचार था कि सभा का कर्मचारीवृन्द कार्यपालिका सरकार से स्वतंत्र रहना चाहिये। इसके विपरीत उस समय की कार्यपालिका सरकार का यह विचार था कि सभापति की इच्छाओं तथा नियंत्रण पर ध्यान न देते हुए विधान सभा के प्रयोजनों की पूर्ति के लिए अपेक्षित कर्मचारीवृन्द तथा व्यक्तियों के मनोनयन का अधिकार कार्यपालिका को है। अन्त में सन् 1928 या सन् 1929 में कार्यपालिका सरकार मान गई और उस समय के सभापति की बात स्वीकार कर ली और सभा के लिए एक स्वतंत्र कर्मचारीवृन्द का सृजन किया। अतः जहां तक केन्द्रीय सभा का सम्बन्ध है इस नये अनुच्छेद 79-क से वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं होता क्योंकि अनुच्छेद 79-क के खंड (1) में जो कुछ उपबंधित किया गया है वह वास्तव में है।

परन्तु यह बताया गया था कि इतने दीर्घकाल से अर्थात् सन् 1928 या सन् 1929 से जिस प्रक्रिया को केन्द्रीय विधान-मंडल ने अंगीकार किया था उसको विभिन्न प्रांतीय विधान-मंडलों ने नहीं अपनाया है। कुछ प्रांतों में यह प्रथा अब तक प्रचलित है कि किसी पदाधिकारी को जो विधान विभाग के अनुशासनीय क्षेत्राधिकार के अधीन है विधान सभा के सचिव के रूप में नियुक्त किया जाता है जिसका फल यह होता है कि वह पदाधिकारी एक प्रकार के दोहरे नियंत्रण में रहता है—एक उस विभाग द्वारा प्रयुक्त नियंत्रण जिसका वह पदाधिकारी है और दूसरा सभापति द्वारा नियंत्रण जिसके अधीन वह उस समय सेवा कर रहा है। यह विचार किया गया है कि इससे अध्यक्ष के गौरव तथा विधान सभा की स्वतंत्रता में बट्टा लगता है।

अध्यक्षों के सम्मेलन में कई संकल्प पारित हुये इस बात का आग्रह करते हुए कि संविधान में इस उपबन्ध के रखने के साथ-साथ और भी कई उपबन्ध रखे जायें जिससे कि सेवा को संख्या, नियुक्ति और शर्त तथा अन्य बातों का विनियमन हो सके। अध्यक्ष के सम्मेलन द्वारा उठाये गये अन्य विचारों को स्वीकार करने के लिए मसौदा समिति तैयार न थी। उसने सोचा कि यदि संविधान में इस बात का कि संसद् का एक पृथक कर्मचारीवृन्द होगा एक सीधा सादा सा खंड रख दिया जाये तो वह पर्याप्त होगा और शेष विषय को संसद् के विनियमन पर छोड़ दिया जाये। खंड (3) में यह व्यवस्था की गई है कि जब तक संसद् द्वारा उपबन्ध नहीं बनाया जाता तब तक के लिये राष्ट्रपति लोक सभा के अध्यक्ष से या राज्य-परिषद् के सभापति से परामर्श कर भर्ती और सेवा की शर्तों के लिए नियमों को बना सकेगा। जब संसद् विधि बना लेगी तो वह विधि लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श कर राष्ट्रपति द्वारा अस्थायी रूप में बनाये गये नियमों के स्थान में आ जायेगी। मैं समझता हूं कि जो उपबन्ध हमने बनाया है वह अध्यक्ष सम्मेलन द्वारा बताई गई मुख्य कठिनाई को दूर करने के लिए काफी है। मैं आशा करता हूं कि इस नये अनुच्छेद को स्वीकार करने में इस सदन को कोई कठिनाई नहीं होगी।

सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन 43 और 44 पेश नहीं किये गये।]

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं अपने नाम के सब संशोधनों को पेश कर दूं या मुझे प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के पश्चात् अवसर मिलेगा?

***अध्यक्षः** सब एक साथ पेश कर दीजिये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (1) के परन्तुक में 'shall be construed as preventing' शब्दों के स्थान में 'shall prevent' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (2) में 'recruitment, and the conditions of service of persons appointed, to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में पंक्ति 4 में आने वाले 'or' शब्द के स्थान में 'and' शब्द रखा जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची-2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में से 'as the case may be' शब्द को अपमार्जित किया जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances, and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में 'the House of the People or the Council of State' शब्दों के स्थान में 'each House of Parliament.' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में से 'Council of States' शब्दों के, पश्चात् के जहां कि वे दूसरी बार आते हैं, समस्त शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

***अध्यक्षः** क्या ये सब संशोधन न्यूनाधिक रूप में शाब्दिक नहीं हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** जी नहीं, फिर भी मैं अपेक्षाकृत अधिक सारवत संशोधनों पर बोलूंगा। यदि आप उचित समझें तो कृपा कर यह बता दीजिये कि कौन-कौन शाब्दिक हैं और मैं आपके आदेश का पालन करूंगा।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 72 शाब्दिक है।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या 72 और 73 दोनों एक साथ है। संशोधन संख्या 69 को लीजिये, इस संशोधन का उद्देश्य अनावश्यक शब्दाडम्बर को हटाना है। हम इस सदन में 150 से अधिक अनुच्छेद ऐसे स्वीकार कर चुके हैं जिनमें परन्तुक पेश किये गये हैं और स्वीकार किये गये हैं। मैंने अनुच्छेदों के कई उन परन्तुकों का खूब परीक्षण किया है जो पहले स्वीकार किये जा चुके हैं और खंड (1) के इस परन्तुक में जो शब्द आये हैं उनके समान शब्द मुझे अन्य किसी परन्तुक में नहीं मिले जिसे हम पहले स्वीकार कर चुके हैं। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 22 की ओर आकर्षित करूंगा। खंड (1) के परन्तुक में कहा गया है:

"परन्तु इस खंड की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी इत्यादि, इत्यादि।" उसमें यह नहीं कहा गया है:

"परन्तु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा इत्यादि-इत्यादि।"

यह तो अनावश्यक रूप से व्यर्थ निरर्थक और बेकार के शब्दाडंबर से इस संविधान को लादना हुआ।

अत: मैं समझता हूं कि केवल यह कहकर कि इस खंड की कोई बात संसद् के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को नहीं रोकेगी इस परन्तुक के अर्थ को पर्याप्त रूप में व्यक्त किया जा सकता था। यदि सदन इसी प्रकार के अन्य अनुच्छेदों के उल्लेख के लिए उत्सुक है तो मैं अनुच्छेद 42 के खंड (3) के उपखंड (ख) की ओर उसका ध्यान आकर्षित करूंगा। उसमें भी यह कहा गया है:

"राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य प्राधिकारियों को विधि द्वारा कृत्य देने में संसद् को बाधा न होगी।"

मेरे विचार में प्रस्थापित अनुच्छेद 79-क की बड़ी भद्दी रचना है और 'shall be construed as preventing' शब्दों के रखने से कोई लाभ नहीं होगा।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि केवल यह कहने से कि:

"इस खंड की कोई बात संसद् के दोनों सदनों के लिये सम्मिलित पदों के सृजन को नहीं रोकेगी" हमारे उद्देश्य की पर्याप्त रूप में पूर्ति हो जायेगी।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 71 पर आता हूं जो साचविक कर्मचारीवृन्द अथवा दोनों सदनों में से किसी के पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में है।

***अध्यक्षः** क्या आप इस शब्दावली को मसौदा समिति पर नहीं छोड़ेंगे? मुझे विश्वास है कि मसौदा इन पर अवश्य विचार करेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे निर्णयानुसार वह न्यूनाधिक रूप में सारवत है और मैं आपसे विनम्र निवेदन करूंगा कि आप मुझे बोल लेने दें।

***अध्यक्षः** यदि उस पर सदन का मत लिया जायेगा तो वह गिर जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** वह मेरे भाषण के पश्चात् होगा। उस बात को मैं पूर्णतया सदन के निर्णय पर छोड़ता हूं और जिसमें मैं कोई रुकावट नहीं डालना चाहता हूं। मैं केवल अपने विचार इस सदन के सामने रखना चाहता हूं और सदन को यह अधिकार है कि वह उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार। मैं निवेदन करता हूं कि इसका प्रभाव इस समय मेरे संशोधनों के पेश करने पर नहीं पड़ना चाहिये।

संशोधन संख्या 71। इस नये अनुच्छेद का यह खंड (2) भर्ती और सेवा की शर्तों के सम्बन्ध का है। किसी कर्मचारीवृन्द के लिए चाहे वह साचविक हो या अन्य प्रकार का अथवा लोक सेवकों के किसी निकाय के लिए अनेक प्रश्न उठते हैं। सबसे पहला प्रश्न भर्ती का है जिसके बिना लोग सेवकों का निकाय हो ही नहीं सकता। इसके बाद सेवा की शर्तों का प्रश्न उठता है। पर मेरे विचार से सेवा की शर्तों के अंतर्गत उन सेवकों को जो वेतन, उपलब्धियां तथा अन्य भत्ते दिये जायेंगे वे नहीं आते हैं। मुझे वह शर्तनामा याद है जिस पर अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों के हस्ताक्षर होते थे। इन शर्तनामों में सेवा की उन अनेक शर्तों को दिया जाता था जो अखिल भारतीय सेवा के पदाधिकारियों और राज्य सचिव में होती थीं। विशेषकर मुझे स्वयं भारतीय असैनिक सेवा की याद है। उसके लिए कई सेवा की शर्तें रखी जाती थी परन्तु उस श्रेणी के सेवकों के वेतन और उपलब्धियों का उसमें कोई उल्लेख न था। मुझे विश्वास है कि अन्य प्रत्येक विभाग में, सेवा के प्रत्येक अन्य क्षेत्र में, चाहे वह सरकारी हो या अन्य प्रकार का, इसी नियम का पालन होता होगा जो यह है कि वेतन और उपलब्धियां सेवा की शर्तों से पृथक विषय हैं। इस बात में मुझे कोई संदेह नहीं है और मुझे यह विदित नहीं है कि सदन के यही विचार होंगे या नहीं, पर इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि वेतन और उपलब्धियां सेवा की शर्तों से बिल्कुल पृथक ही हैं। परन्तु मुझे विश्वास है कि जहां तक इस नये अनुच्छेद का सम्बन्ध है यह सदन यह इच्छा प्रकट करेगा कि संसद् केवल भर्ती और सेवा की शर्तों का ही विनियमन न करे परन्तु उपलब्धियों के प्रश्न को भी ले जो कि हमारी भावी संसद् के साचविक कर्मचारीवृन्द को दी जायेंगी।

अतः मेरे विचार से यह बहुत ही आवश्यक है कि इस अनुच्छेद द्वारा यह स्पष्ट कर दिया जाये कि संसद् केवल भर्ती कर्मचारी वृन्द की श्रेणी और संख्या और सेवा की शर्तों का ही विनियमन न करेगी वरन् इससे संबंधित विषय वेतन और उपलब्धियों का भी विनियमन करेगी जो कर्मचारीवृन्द में के सदस्यों को दिये जायेंगे। हम ऐसे कई अनुच्छेद पारित कर चुके हैं, विशेषकर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष संबंधी अनुच्छेद तथा ऐसे ही अन्य अनुच्छेद जिनमें हमने जो वेतन और

[श्री एच.वी. कामत]

भत्ते संसद् के उन भिन्न-भिन्न पदाधिकारियों को दिये जायेंगे। उसका निश्चित तथा स्पष्ट रूप में उल्लेख किया है। अत: मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इस बात को बिल्कुल स्पष्ट करने के लिए कि वेतन और उपलब्धियों का भी विनियमन संसद् करे, इन शब्दों को भी प्रविष्ट करना चाहिये।

इसके पश्चात् संशोधन संख्या 72 और 73 को लेते हुए, इनके बारे में मुझे केवल एक शब्द कहना है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन में हम यह कह चुके थे जो परन्तुक में कहा गया है कि "इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जायगा कि वह संसद् के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को रोकती है" अत: ऐसा हो सकता है तथा ऐसा होने की संभावना है कि कुछ पद लोक सभा और राज्य परिषद् के लिए सम्मिलित हों। यदि ऐसा होगा तो संसद के दोनों सदनों के लिए कुछ सम्मिलित पदों के सृजन करने की संभावना ही नहीं बल्कि वांछनीयता अवश्य होगी। यह आकस्मिकता अनिवार्य होगी कि राष्ट्रपति को अध्यक्ष या सभापति दोनों में से एक ही से परामर्श नहीं करना होगा वरन् उसे दोनों से परामर्श करना होगा। दोनों के लिए सम्मिलित पद सृजन करने के लिए उसे लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य परिषद् के सभापति दोनों से परामर्श करना होगा और दोनों के विचार जानने होंगे कि दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पद रखना आवश्यक है या नहीं या उनको वैसे ही रहने दिया जाये। यदि हम परन्तुक को स्वीकार कर लेते हैं तो राष्ट्रपति को दोनों अध्यक्ष और सभापति से परामर्श करने की आकस्मिकता उत्पन्न होगी जिसका मैंने उल्लेख किया है।

यदि मेरे इस संशोधन को सदन स्वीकार कर लेता है तो पूर्व में आने वाला शब्द "यथा स्थिति" अपने आप अपमार्जित हो जायेगा क्योंकि जब आप "अध्यक्ष और सभापति" कहेंगे तो 'यथा स्थिति' शब्द को रखने के पक्ष में कोई मान्य तर्क नहीं है। अत: संशोधन संख्या 72 और 73 दोनों साथ-साथ हैं।

संशोधन संख्या 74 संशोधन संख्या 71 के समान है मैंने संशोधन संख्या 71 पेश करने के कारण बता ही दिये हैं अत: मैं संशोधन संख्या 74 पर भाषण देने का विचार नहीं करता हूं।

संशोधन संख्या 75, वह खंड (3) के सम्बन्ध में है, अर्थात् प्रस्थापित नये अनुच्छेद के खंड के समानुरूप बनाने या उसके आधार पर लाने के विचार से खंड (1) संसद् के प्रत्येक सदन के सम्बन्ध का है। मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद का उसी प्रकार से अन्त किया जाये जिस प्रकार से आरम्भ हुआ है अर्थात् जिस प्रकार से इसका आरम्भ किया गया है उसी प्रकार से इसका अन्त होना चाहिये। इसका आरम्भ "संसद् के प्रत्येक सदन" से हुआ है और इसके पक्ष में कोई तर्क नहीं है कि "लोक-सभा या राज्य परिषद्" शब्दों को दुहराने की अपेक्षा इस अनुच्छेद अथवा इस खंड के अर्थ से दूर हुये बिना अन्त में हम "संसद के प्रत्येक सदन" ही क्यों न कहें। संशोधन संख्या 72 और 73 में मैं कह चुका हूं कि राष्ट्रपति संसद् के दोनों सदनों से परामर्श करेगा न कि केवल सभापति अथवा अध्यक्ष से। अत: यह बिल्कुल स्पष्ट अर्थ तर्कसम्मत है कि 'लोक सभा या राज्य परिषद्" शब्दों को न दुहरा कर यदि हम केवल "संसद् के प्रत्येक सदन" कहें तो वह पर्याप्त होगा।

इसके बाद अन्तिम संशोधन आता है अर्थात् संशोधन संख्या 79। यह शाब्दिक से कुछ अधिक है और इसमें सारवत प्रश्न यह है। वह संसद् के प्राधिकार और उसकी शक्ति को स्पर्श करता है साथ ही साथ राष्ट्रपति की नियम बनाने की शक्ति को भी। अनुच्छेद में यह दिया हुआ है 'इस प्रकार बने कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे'।

यदि इस खंड का सावधानी से अध्ययन किया जाये तो यह अनुभव किया जायेगा कि यह शक्ति राष्ट्रपति को तभी तक दी जाती है जब तक संसद् उस विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए समवेत न हो और जब तक इस संबंध के उपबन्ध संसद् न बनाये। कहने का अभिप्राय यह है कि वे परस्पर आच्छादित नहीं होते हैं। किसी बात में भी संसद् और राष्ट्रपति के प्राधिकारों में परस्पर कोई आच्छादन नहीं होता है। जब तक नई संसद् समवेत होकर इन विषयों पर विचार-विमर्श नहीं करती है तब तक यह स्पष्ट है कि संसद् इस संबंध में कोई नियम, कोई उपबन्ध नहीं बना सकती है। अत: इस अन्तर्वर्ती काल के लिए इस विषय में राष्ट्रपति को शक्ति दी गई है। एक बार संसद् समवेत होकर विचार-विमर्श कर इन विभिन्न विषयों के लिए उपबन्ध बना देती है तो राष्ट्रपति के प्राधिकार का लोप हो जाता है। इस संबंध में एक बार संसद् के उपबन्ध बना देने पर राष्ट्रपति के बनाये हुए नियमों में शक्ति अथवा बल नहीं रहता है। अत: मेरे विचार से यह कहना कि 'इस प्रकार बने हुए कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे पूर्णतया व्यर्थ तथा निरर्थक है और मैं नहीं जानता कि इस प्रकार के खंड को, इस प्रकार के उपबन्ध को इस अनुच्छेद में स्थान किस प्रकार मिल गया। मुझे आश्चर्य है कि मसौदा समिति के सदस्यों तथा अन्य विद्वान मनुष्यों तथा अन्य विशेषज्ञों से, जो इसके लिए इकट्ठे किये गये थे, यह भूल क्यों हो गई। मेरे विचार से यह अनुच्छेद इस बात को स्पष्ट करता है कि संसद् उपबन्ध बनायेगी, और जब तक वह नहीं बनाती तब तक के लिए राष्ट्रपति नियम बनायेगा। तो फिर यह कहने में क्या सार है कि ये नियम उक्त खंड के अधीन बनी विधि के अधीन होंगे। इस संबंध में एक बार जब संसद् ने उपबन्ध बना दिये तो अन्य नियमों का कोई प्राधिकार नहीं रहता, उसके बाद वे निष्प्राण हो जाते हैं और किसी प्रकार से भी साचविक कर्मचारी वृन्द की भर्ती, सेवा की शर्तें तथा संसद् के साचविक कर्मचारी वृन्द संबंधी अन्य विषयों पर शासन नहीं करेंगे। परन्तु अब से लेकर संसद् के सत्र तक के काल के लिए राष्ट्रपति को नियम बनाने की शक्ति होगी, परन्तु एक बार जब संसद् समवेत होकर उपबन्ध बना देती है तो मेरे विचार से इस विषय में फिर राष्ट्रपति का कोई अधिकार नहीं रहता। अत: यह कहना कि संसद् के समवेत होने के पश्चात् भी राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये उपबन्ध अमुक बात के अधीन प्रभावी होंगे पूर्णतया निराधार तथा निष्प्रयोजन है और संसद् के गौरव और प्राधिकार को बट्टा भी लगाता है।

यदि खंड (2) को खंड (3) के साथ पढ़ा जाये और गौर से ध्यान दिया जाये तो माननीय सदस्यों को यह बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा कि खंड (3) के अन्तिम भाग "तथा इस प्रकार बने कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे" का अपमार्जन होना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): माननीय सदस्य के तर्कों से अब हमें आवश्यकता से अधिक विश्वास हो गया है ये शब्द आवश्यक नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** यदि मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी को विश्वास हो गया है तो मैं बहुत प्रसन्न हूं। मुझे इतना विश्वास नहीं है कि मेरे अन्य साथियों को उतना ही विश्वास हुआ है, परन्तु मैं वास्तव में श्री त्यागी से यह जानकर बहुत ही प्रसन्न हूं कि उनको मेरे तर्कों से विश्वास हो गया है और मुझे खुशी है कि यदि अधिक नहीं तो कम से कम सदन का एक सदस्य तो मेरे साथ है।

अत: मैं इन विभिन्न संशोधनों को पेश करता हूं और सदन के विचारार्थ मैं इनको प्रस्तुत करता हूं।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (2) और (3) में 'recruitment' शब्द के पश्चात् 'strength' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये।"

मैंने 'strength' शब्द जोड़ दिया है क्योंकि वर्तमान अनुच्छेद में यह नहीं दिया हुआ है। यदि आप इस शब्द को बढ़ा दें तो एक कमी दूर हो जायेगी। जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है मैं समझता हूं कि एक बार हमारे माननीय नेता स्वर्गीय श्री विट्ठलभाई पटेल को तत्कालीन शिष्ट-जन शासन से उस समय की केन्द्रीय विधान-सभा की स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़नी पड़ी थी और आज का दिन हर्ष का दिन है कि हम अपने साचविक कर्मचारीवृन्द की स्वतंत्रता का सुनिश्चयन करने के लिए उस सिद्धांत को इस संविधान में रख रहे हैं।

मैं डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन का समर्थन करता हूं और मैं आशा करता हूं कि 'strength' शब्द के प्रविष्ट करने से आप उस कमी को दूर कर देंगे जो मेरे विचार से इस अनुच्छेद में है।

***अध्यक्ष:** अब सब संशोधन पेश हो चुके हैं। क्या कोई सदस्य बोलना चाहता है?

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान् मैं इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं। अध्यक्ष का सचिवालय कार्यपालिका से बिल्कुल अलग होना चाहिये, यह सर्वत्र अभिज्ञात तथ्य है। परन्तु, श्रीमान्, मैंने देखा है कि सद्भावना उक्त व्यक्ति भी जब शक्ति प्राप्त कर लेते हैं तो वे उस शक्ति से पृथक् नहीं होना चाहते जो उनके लिये नहीं है। अत: पहले बहुत से मनुष्यों को इस अधिकार के लिए लड़ना पड़ा। श्रीमान् मैं आपको दृष्टांत दे सकता हूं कि नगर पालिका नियमों में भी सचिवालय विभाग अब भी कार्यपालिका से मिला दिया जाता है। जब मैं करांची में मेयर था तो सचिवालय कर्मचारीवृन्द से मुझे बड़ा झगड़ा करना पड़ा और सचिवालय का कार्यपालक विभाग टस से मस नहीं होना चाहता था और किसी शक्ति को देना नहीं चाहता था। अन्त में उन्हें मानना पड़ा और आज बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हुए अखिल भारतीय बर्मा और लंका

के मेयरों द्वारा पारित संकल्पों के आधार पर मेयरों के लिए पृथक सचिवालय हैं। अत: यह ठीक है कि प्रांतों के अध्यक्षों ने, जो अभी उस दिन संसद् के अध्यक्ष के सभापतित्व में एकत्रित हुये थे, यह विनिश्चय किया कि उनके लिये पृथक सचिवालय होना चाहिये। श्रीमान् मैं आपको एक दृष्टांत दे सकता हूं कि जब अध्यक्ष के सचिवालय ने कार्यपालिका के सदस्यों के लिए पैंसिल मांगी तो उन्होंने न दी। एक प्रांत के बारे में मुझे विदित है कि सदस्यों ने यह शिकायत की कि संकेत लिपि लेखक कार्यवाही को ठीक-ठाक नहीं लिखते हैं अत: यह आवश्यक था कि एक अतिरिक्त संकेत लिपि लेखक बढ़ाया जाये परन्तु सदन के कहने पर तथा उसकी सम्मति होने पर भी कार्यपालिका ने अतिरिक्त संकेत लिपि लेखक की मंजूरी नहीं दी। यह हालत आज भी वर्तमान है और मुझे खुशी है कि यह अनुच्छेद प्रस्तुत किया गया है और संविधान में रखा जा रहा है। यदि हमारे कार्यपालिक, मेरा आशय मंत्रियों से है। युक्तिपूर्ण होते तो इस अनुच्छेद को संविधान में नहीं रखा जाता और संसद् अवश्य इसका ध्यान रखती। परन्तु जब यह देखा गया कि लोकप्रिय मंत्री भी उस शक्ति से अलग होने के लिए उद्यत नहीं हैं तो अन्य कोई विकल्प नहीं है सिवा इसके कि ऐसे अनुच्छेद को संविधान में रखा जाये।

कर्मचारीवृन्द पर आइये। माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा उस समय प्रस्थापित किये गये सूची के पृष्ठ के मूल अनुच्छेद से यह भाषा बिल्कुल भिन्न है। उन्होंने कुछ सुधार किये हैं जो मुझे पसन्द हैं। परन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि सचिवालय का कर्मचारीवृन्द कार्यपालिका के कर्मचारीवृन्द से बिल्कुल भिन्न प्रकार का होना चाहिये। अध्यक्ष का कर्मचारीवृन्द को, मेरा आशय विधान-मंडल से है, उन लोगों में से छांटना चाहिये जो सदस्यों के लिए उपयोगी तथा सहायक हों, विनम्र मिलनसार और सुशील हों, न कि उस प्रकार के कर्मचारीवृन्द जो सचिवालय में हैं। मैं जानता हूं कि आजकल हमारी संसद् में ऐसा कर्मचारीवृन्द है जो सहायता देने वाला तथा सुशील है और विधेयक, संकल्प तथा प्रश्नों की तैयारी करने जैसे विषयों में सदैव सदस्यों को सहायता देने के लिए तत्पर रहता है। हाउस आफ कामन्स में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। परन्तु यदि आप केन्द्रीय सचिवालय में जायें तो वहां आपको एक और ही प्रकार का कर्मचारीवृन्द मिलेगा। हाउस आफ कामन्स में यह प्रथा है कि किसी व्यक्ति को तब तक भर्ती न होने दिया जायेगा जब तक कि सदन का लिपिक—जिसका पद संसद् के सचिव के बराबर है—यह प्रमाणित न करे कि वह लोक सेवा योग में भेजे जाने लायक है। इसके बाद ही उसे लोक सेवायोग की परीक्षा में बैठने दिया जायेगा। सदन का लिपिक उस व्यक्ति को जो सचिवालय में पद प्राप्त करने की आकांक्षा करता है दो माह के लिए रखता है और यह देखता है कि जिन अर्हताओं का मैंने उल्लेख किया है वे उस उसमें हैं या नहीं। मैं अपने निजी अनुभव से आपको यह कह सकता हूं कि हाउस आफ कामन्स का लिपिक इस बात में बड़ा सावधान रहता है कि चाहे कोई अतिरिक्त मंत्री अथवा उपमंत्री अथवा सहायक लिपिक अंग्रेजी भाषा में बहुत योग्य हो परन्तु यदि वह सहायता देने वाला, विनम्र और विनीत प्रकृति का नहीं है तो उसे नहीं रखा जायगा। अत: मंत्रिमंडलों के द्वारा अथवा अन्य विभागों के द्वारा लोक सेवा योग में किसी की पहुंच नहीं हो सकती है जब तक कि सदन का लिपिक प्रमाणित न करे कि वह व्यक्ति लोक सेवा योग

[श्री आर. के. सिधवा]

की परीक्षाओं में बैठे। इस संबंध में डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये मूल अनुच्छेद को अधिमान दूंगा। रूप भेद के लिए मैंने एक संशोधन पेश किया है। मुझे प्रसन्नता होगी कि आगे आने वाली संसद् के पदार्पण करने से पूर्व इस खंड को संविधान में रख दिया जाये क्योंकि मैं नहीं चाहता हूं कि कर्मचारीवृन्द को कोई छिन्न-भिन्न करे।

हाउस आफ कामन्स में सब कर्मचारीवृन्द को सदन के लिपिक द्वारा नियुक्त किया जाता है, अध्यक्ष द्वारा भी नहीं। केवल शिष्टता के नाते हाउस आफ कामन्स का लिपिक अध्यक्ष को यह सूचना दे देता है कि उसने अमुक-अमुक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया है और अध्यक्ष कह देता है कि ठीक है। वहां यह प्रथा है की पार्लियामेंट्री प्रोक्टिस में आप देखेंगे कि उसमें यह साफ दिया गया है कि हाउस आफ कामन्स के सारे कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति लिपिक करता है। अत: मैं आशा करता हूं कि इस प्रभाव का ऐसा ही उपबन्ध संसद द्वारा बनाया जायेगा। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब हम यह नहीं चाहते कि कार्यपालिका विधान-मंडल के कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति में हस्तक्षेप करे तो इससे यह नहीं समझना चाहिये कि यह शक्ति संसद को हो जायेगी। यदि संसद अपने ऊपर नियुक्त करने का काम ले लेती है तब तो यह इस संशोधन के मुख्य उद्देश्य से विमुख होना होगा। अनुशासन के हित में यदि एक बार कोई योग्य सचिव नियुक्त कर दिया जाता है तो हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वही अन्य नियुक्तियां करे हां, वे नियुक्तियां अध्यक्ष की स्वीकृति के अधीन अवश्य होंगी। अध्यक्ष को अधिकार होना चाहिये क्योंकि हम प्रारम्भिक दशा में हैं अत: मैं चाहता हूं कि हाउस आफ कामन्स से भिन्न रूप में आरम्भ में कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति में अध्यक्ष को अधिकार हो। जैसाकि मैं कह चुका हूं मेरी यह धारणा है कि जब तक हमारे पास, जैसा कि मैंने कहा है, वैसा कर्मचारीवृन्द नहीं होगा तब तक हम संसद के साथ न्याय नहीं कर सकते हैं और अनुच्छेद के उस प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी जिसके लिए हम इसे संविधान में रख रहे हैं। इन शब्दों के साथ में हृदय से इस पेश किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मसौदा समिति के सभापति द्वारा पेश किये गये नये अनुच्छेद 79-क का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा होता हूं। संसद् के लिए पृथक कर्मचारीवृन्द की आवश्यकता को मैं समझता हूं पर एक ऐसी बात है जिसके करने का विचार प्रस्थापित किया गया है पर जिसे मैं नहीं चाहता हूं। नियुक्ति, पदवृद्धि और सेवा की अन्य शर्तों के प्रश्नों का विनिश्चय करना संसद् पर छोड़ दिया गया है। जिस संशोधनों को मैं पेश करना चाहता था पर किया नहीं उसमें यह सुझाव दिया गया था कि संविधान में यह स्पष्ट निर्धारित कर देना चाहिये कि नियुक्ति संबंधी सभी प्रश्न और वास्तव में सारी की सारी नियुक्तियां संघीय लोक सेवा योग द्वारा की जानी चाहिये न कि अध्यक्ष उत्तर आगार के सभापति द्वारा। अपने राजनैतिक जीवन के तथ्यों का उचित ध्यान रखते हुए, जबकि प्रांतों में ऐसा कोई मंत्रिमंडल नहीं है जिसकी अनुचित पक्षपात के लिए प्रांतीयता के लिए निन्दा न की गई हो, इस शक्ति को सौंपना अथवा इसे अनिश्चित दशा में छोड़ना या संसद् से इन बातों के विनियमन के लिए कहना

सुरक्षित नहीं है। इस क्षेत्र में संसद् की शक्ति की सीमा निर्धारित करनी चाहिये और यदि हम यह चाहते हैं कि अध्यक्ष की स्थिति शंका से परे हो तो यह आवश्यक है कि उसके हाथ में पक्षपात करना न सौंपा जाये। केवल गौरव के लिए ही हम पृथक कर्मचारीवृन्द नहीं चाहते हैं: केवल इसीलिए नहीं कि चूंकि अन्य मंत्रियों का अपना-अपना पृथक सचिवालय है इस कारण अध्यक्ष का भी एक सचिवालय होना चाहिये जिससे कि उसका गौरव और स्थिति अन्य मंत्रियों के समान हो जाये। वरन् हम इसे इस कारण चाहते हैं कि यह आवश्यक है, पर इसके पक्ष में कोई तर्क नहीं है कि नियुक्ति, पदवृद्धि तथा सेवा संबंधी अनुशासनीय विषयों की शक्ति को हम संसद् के हाथों में क्यों छोड़ दें जो इस शक्ति को अध्यक्ष के हाथों में सौंप देगी। श्रीमान् इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।

***डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से जो कुछ कहा गया है उसमें से किसी बात का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची-2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (1) के परन्तुक में 'shall be construed as preventing' शब्दों के स्थान में 'shall prevent' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन संख्या 42 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (2) और (3) में 'recruitment' शब्द के पश्चात् 'strength' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (2) में 'recruitment' and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to the salaries and allowances and the conditions of service of ' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में पंक्ति 4 में आने वाले 'or' शब्द के स्थान में 'and' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में से 'as the case may be' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances, and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में 'the House of the People or the Council of States' शब्दों के स्थान में 'each House of Parliament' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के खंड (3) में से 'Council of States' शब्दों के पश्चात् के, जहां कि वे दूसरी बार आते हैं, समस्त शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 79-क के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'79-A. (1) Each House of Parliament shall have a separate secretarial staff:

Secretaiat of Parliament.

Provided that nothing in this clause shall be construed as preventing the creation of posts common to both Houses of Parliament.

(2) Parliament may by law regulate the recruitment and the conditions of service of persons appointed, to the secretarial staff of either House of Parliament.

(3) Until provision is made by Parliament under clause (2) of this article, the President may, after consultation with the Speaker of the House of the People or the Chairman of the Council of States, as the case may be, make rule regulating the recruitment and the conditions of service of persons appointed to the secretarial staff of the House of the People or the Council of States, and any rules so made shall have effect subject to the provisions of any law made under the said clause.' "

[(1) संसद् के प्रत्येक सदन का अपना पृथक साचविक कर्मचारीवृन्द होगा:

परन्तु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा कि वह संसद् संसद का सचिवालय, के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को रोकती है।

(2) संसद्, विधि द्वारा, संसद् के प्रत्येक सदन के साचविक कर्मचारीवृन्द में भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगी।

(3) खंड (2) के अधीन तब तक संसद् उपबन्ध नहीं करती तब तक राष्ट्रपति, यथास्थिति, लोकसभा के अध्यक्ष से, या राज्य परिषद् के सभापति से परामर्श करके लोक सभा के या राज्य परिषद् के साचविक कर्मचारीवृन्द में भर्ती के, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों विनियमन के लिए नियमों को बना सकेगा तथा इस प्रकार बने कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

नया अनुच्छेद 79-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 104

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 104 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

Salaries etc. of Judges. '104. (1) There shall be paid to the judges of the Supreme Court such salaries as are specified in the Second Schedule.

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) Every judge shall be entitled to such privileges and allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by or under law made by Parliament and until so determined, to such previleges, allowances and rights as are specified in the Second Schedule:

Provided that neither the privileges nor the allowances of a judge nor his rights in respect of leave of absence or pension, shall be varied to his disadvantage after his appointment.' "

[104. न्यायाधीशों के वेतन, आदि

(1) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसा कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है।

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे विशेषाधिकारों और भत्तों का, तथा अनुपस्थिति छुटी और निवृत्ति वेतन के बारे में ऐसे अधिकारों का, जैसे कि संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें, तथा जब तक इस प्रकार निर्धारित न हों, तब तक ऐसे विशेषाधिकारों, भत्तों और अधिकारों का, जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं, हक होगा:

परन्तु किसी न्यायाधीश के न तो विशेषाधिकारों में और न भत्तों में और न अनुपस्थिति छुट्टी या निवृत्ति वेतन विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।]

श्रीमान्, जो कुछ मुझे कहना है कि वह वर्तमान अनुच्छेद वही है जोकि मूल अनुच्छेद था सिवा इसके कि "विशेषाधिकारों" शब्द का पुर:स्थापन कर दिया गया है। जो मूल पाठ में नहीं था। ये विशेषाधिकार क्या हैं इसकी मैं इस समय चर्चा नहीं करूंगा। जब हम द्वितीय अनुसूची पर आयेंगे उस समय इनकी चर्चा करेंगे क्योंकि द्वितीय अनुसूची में कुछ विशेषाधिकारों का विशेष रूप से उल्लेख होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान् मैं अपने नाम के तीनों संशोधनों में से एक भी पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा के संशोधन संख्या 79 के संबंध में—संख्या 2 के निर्देश से था, परन्तु चूंकि डॉ. अम्बेडकर ने संशोधन संख्या 77 को पेश किया है जिसमें से वे शब्द जिनको श्री सिधवा निकालना चाहते थे, निकाल दिये गये हैं अत: उनके संशोधन की अब आवश्यकता नहीं है।

[सूची 3 (प्रथम सप्ताह) का संशोधन संख्या 80 पेश नहीं किया गया।]

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 104 के खंड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

Provided that no law made under this article by Parliament shall provide that the pension allowable to the Judge of the Supreme Court under the law shall be less than that which would have been admissible to him if he had been governed by the provisions which immediately before the commencement of this Constitution were applicable to the judges of the Federal Court.' "

(परन्तु संसद् द्वारा इस अनुच्छेद के अधीन निर्मित कोई विधि यह उपबन्ध न करेगी कि उस विधि के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को दिया जाने वाला निवृत्ति वेतन उससे कम होगा जो उसे उस समय ग्राह्य होता जबकि उस पर उन उपबन्धों को लागू किया जाता जो संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए इस संविधान के प्रारम्भ के सद्यपूर्वप्रयोज्य थे।)

श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन यह उपबंधित करता है कि न्यायाधीश के निवृत्ति वेतन विषयक अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। अत: मैं इस बात की व्याख्या करना चाहूंगा कि मैंने अपने संशोधन को पेश करना क्यों आवश्यक समझा। यह सत्य है कि जहां तक वर्तमान पदधारियों का संबंध है यदि अनुच्छेद 104 को डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित रूप में पारित कर दिया जाता है तो उनकी निवृत्ति वेतन में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु हमें भविष्य के लिए भी व्यवस्था करनी है। डॉ. अम्बेडकर प्रस्थापित करते हैं कि अनुपस्थिति छुट्टी, भत्ते और निवृत्ति वेतन के प्रश्न को इस सभा द्वारा इस संविधान के पारित होने के पश्चात् संसद् विधि द्वारा संव्यवहृत करे। इस संबंध में इतने अधिक विषयों पर विचार करना है कि इस संविधान में उन सबको उपबंधित करना संभव नहीं है। उनकी या तो एक समुचित अनुसूची में या सांसदिक विधि में व्यवस्था की जा सकती है। और स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने यह प्रस्थापित किया है कि न्यायाधीशों के वेतन को संसद् के विनिश्चय पर नहीं छोड़ना चाहिये उसको विधान द्वारा नियत कर देना चाहिये। उनके लिए एक अनुसूची में उपबंधित वेतन वर्तमान वेतन से कम होगा और यह इसलिए किया गया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए अनुच्छेद 308 के अधीन यह विकल्प है कि इस अनुच्छेद में सुझाये गये वेतन और सेवा की शर्तें उनको स्वीकार्य नहीं हैं तो वे पद त्याग कर दें। जिस समय वह अनुसूची इस सदन के समक्ष प्रस्तुत होगी उस समय में इस विषय की चर्चा करूंगा। हां, इतना तो मैं कहूंगा कि उच्चतम न्यायालय को जो वेतन दिया गया है वह जितना होना चाहिये उससे कम है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि हम अपने उच्चतम न्यायालय में विधि संबंधी कार्यों में सर्वश्रेष्ठ कुशल व्यक्तियों को आकर्षित करें।

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

अत: सेवा की शर्तें ऐसी होनी चाहिये कि सर्वोच्च अर्हता वाले लोग जिनका वकालत में यश सर्वोच्च शिखर पर है उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को स्वीकार करने के लिए प्रलोभित हों। यह विषय ऐसा नहीं है कि उसके किसी विवरण में मैं इस समय जा सकता हूं परन्तु मेरा संशोधन यह प्रस्थापित करता है कि भविष्य में चाहे जो कुछ परिवर्तन हो उसका प्रभाव उन निवृत्ति वेतनों पर नहीं पड़ना चाहिये जिनके प्राप्त करने का हक इस समय न्यायाधीशों को है। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का अंतिम परन्तुक केवल इस समय पद धारण करने वाले न्यायाधीशों की रक्षा करता है। परन्तु जहां तक भविष्य का संबंध है संसद् को निवृत्ति वेतन कम करने की शक्ति होगी। वर्तमान आर्थिक परिस्थिति का विचार करते हुए तथा इस तथ्य पर भी कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को देश में से किसी न्यायालय में वकालत करने का कार्य करने की आज्ञा न होगी मैं समझता हूं कि न्यूनातिन्यून जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है कि यह व्यवस्था कर दें कि उनको जितना निवृत्ति वेतन मिलने का हक अब है उससे कम न दिया जाये। सिद्धांत के रूप में यह वांछनीय हो सकता है कि इस संबंध की सारी बातें संसद् पर छोड़ दी जायें, पर मैं समझता हूं कि निवृत्ति वेतन का प्रश्न उतना ही महत्वपूर्ण है जितना वेतन का। यदि आप उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को सेवानिवृत्ति के पश्चात भारत में से किसी न्यायालय में वकालत नहीं करने देंगे तो मैं समझता हूं कि उचित यही है कि वर्तमान निवृत्ति वेतन को कम न किया जाये। अब भी वह कोई बहुत अधिक नहीं है उन लोगों के लिए वह कोई बहुत आकर्षक नहीं है जिनकी अच्छी वकालत चल रही है। परन्तु यदि उसको और भी कम कर दिया जाता है तो इस बात का संकट है कि देश के विधि संबंधी कार्य में सुदक्ष व्यक्तियों के लिए न्यायाधीशता अनाकर्षक बन जायेगी।

श्रीमान्, जो संशोधन मैंने पेश किया है उसके यही कारण हैं। यदि वह स्वीकार होता है तो उसका यह प्रभाव होगा कि वह उच्चतम न्यायालय के केवल वर्तमान न्यायाधीशों की ही नहीं वरन् भावी न्यायाधीशों के निवृत्ति वेतन की उसी प्रकार से रक्षा करेगा जिस प्रकार से उनके वेतनों की रक्षा होगी।

(इस समय अध्यक्ष ने आसन रिक्त किया और उसके पश्चात् उपाध्यक्ष श्री वी.टी. कृष्णामाचारी ने आसन ग्रहण किया।)

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, माननीय अध्यक्ष ने मेरा ध्यान आकर्षित किया था कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन संख्या 77 के अनुसार मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया है जिसको उन्होंने सूची 1 में के अपने मूल संशोधन संख्या 2 के स्थान में पेश किया है। यहां तक तो ठीक है; परन्तु खंड (2) से मुझे विदित होता है कि प्रत्येक न्यायाधीश के भत्ते, विशेषाधिकार और अधिकार का प्रश्न संसद को निर्दिष्ट किया जायगा। मैं यह चाहता हूं कि इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाये कि जैसा माननीय प्रस्तावक के द्वारा मेरे संशोधन की स्वीकृत्ति से प्रकट होता है यदि यह सदन इस पक्ष से नहीं है तो भी क्या मुख्य न्यायाधिपति को सुसज्जित घर देने का संसद् को अधिकार होगा। क्या मैं यह जान सकता हूं कि इस सदन के विनिश्चय के विरुद्ध जबकि

हम भत्ते के अन्य विषयों का निर्देश संसद् को करते हैं तो क्या कोई इस प्रकार की विधि पारित करना नियमानुसार होगा जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को सुसज्जित घर दिया जाये? और भी, यदि आप अनुसूची 2 के भाग 4 के खंड (11) को देखें जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के उपबन्धों के संबंध में है तो वहां यह दिया हुआ है:

"अपने कर्तव्यों के संबंध में भारत राज्य-क्षेत्र में यात्रा करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का अथवा अन्य किसी न्यायाधीश का तथा भारत राज्य-क्षेत्र में, उन राज्यों को छोड़कर जो प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित हों, स्थित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का अथवा व्यय लगे उसकी पूर्ति के लिए वे युक्ति-युक्त भत्ते दिये जायेंगे इत्यादि, इत्यादि"

संशोधित संकल्प को विचार में रखते हुए जब तक आप इस अनुसूची की भाषा में परिवर्तन नहीं करते हैं तब तक मैं समझता हूं कि शायद यह अनुच्छेद गड़बड़ी की सी दशा में रहेगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के इस अनुच्छेद के संशोधन के पश्चात् क्या-क्या उलझनें होंगी? मैं देखता हूं कि उन्होंने इस अनुसूची की ओर निर्देश नहीं किया है और मुझे यह नहीं मालूम है कि आगे वे इस अनुसूची की ओर निर्देश करेंगे भी या नहीं, और यदि इस विषय को संसद् पर छोड़ दिया जाता है तो प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी क्योंकि वह इस सदन की इच्छा के विपरीत यह आदेश पारित कर सकती है कि मुख्य न्यायाधीश को सुसज्जित घर दिया जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि अपने माननीय मित्र श्री कंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं, और मैं समझता हूं कि दो मान्य आपत्तियां हैं जो उनके संशोधन की अस्वीकृति में इस सदन के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती हैं। सर्वप्रथम उस सिद्धांत के संबंध में जिसके लिए वे लड़ रहे हैं, अर्थात यह कि न्यायाधीश के एक बार नियुक्त हो जाने पर उसके वेतन और निवृत्ति वेतन के अधिकार उसे प्राप्त हो जाते हैं और संसद की किसी विधि द्वारा, जिसे संसद् इस विशिष्ट विषय के संबंध में बनाये, उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता, मैं समझता हूं कि जहां तक मेरे नये अनुच्छेद का संबंध है मैंने उस विषय को संसद के क्षेत्राधिकार के बाहर रख दिया है। भत्ते, निवृत्ति वेतन इत्यादि में परिवर्तन करने के लिए समय-समय पर विधि बनाने की शक्ति निस्संदेह संसद् को दी गई है परन्तु अनुच्छेद में यह भी उपबंधित किया गया है कि वह नये न्यायाधीशों पर ही लागू होगी और उसका प्रभाव पुराने न्यायाधीश पर नहीं पड़ेगा यदि वह उन अधिकारों के विपरीत है जो प्राप्त हो चुके हैं। अतः जहां तक उस सिद्धांत का संबंध है जिसके लिए वे लड़े रहे हैं, वह सिद्धांत इस अनुच्छेद में निहित कर दिया गया है।

अन्य दृष्टिकोण से भी उनका संशोधन बिल्कुल आपत्तिजनक है और उसका यह कारण है। जैसाकि प्रत्येक व्यक्ति को विदित है निवृत्ति वेतन का वेतन और जितने वर्ष न्यायाधीश ने सेवा की है उससे निश्चित संबंध है। जैसाकि मेरे माननीय मित्र पं. कुंजरू सुझाव रखते हैं उसके अनुसार यह कहने में, कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उस निवृत्ति वेतन से कम निवृत्ति वेतन नहीं मिलना चाहिये

[डा. बी.आर. अम्बेडकर]

जितने का उनमें से प्रत्येक को उन नियमों के अनुसार, जो संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए प्रयुक्त थे, मिलने का हक था, यह बात मान ली गई प्रतीत होती है कि संघीय न्यायालय के न्यायाधीश को यदि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है तो उसे वही वेतन मिलता रहेगा जो मिल रहा है। अन्यथा इससे तो यह सिद्धांत भंग हो जायेगा कि निवृत्ति वेतन का विनियमन वेतन और जितने वर्ष कोई व्यक्ति सेवा करता है उसके द्वारा किया जायेगा। अभी हम इस विषय में किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं कि क्या संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को वही वेतन मिलता रहना चाहिये जो उनको जब से वे उच्चतम न्यायालय में नियुक्त हुये हैं मिलता चला आ रहा है। जैसाकि मैंने कहा है इस विषय का विनिश्चय नहीं किया है और मुझे बहुत कुछ संदेह है (भविष्य में यह आशा करते हुये मैं कह सकूंगा) कि क्या मसौदा समिति के लिए यह सम्भाव्य होगा कि वह वर्तमान न्यायाधीशों और नये न्यायाधीशों के वेतनों में किसी ऐसे अन्तर का समर्थन कर सके। अत: यह संशोधन समय से पूर्व प्रस्तुत किया गया है। यदि सदन इस प्रस्तावना को स्वीकार कर लेता है जिसके लिए मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू लड़ रहे हैं कि संघीय न्यायाधीशों को वही वेतन मिलता रहे तब तो शायद जैसा संशोधन उन्होंने पेश किया है उसके सुझाव करने के लिए कुछ कारण हो सकता था। मैं निवेदन करता हूं कि इस समय तो यह बिल्कुल अनावश्यक है और उसको स्वीकार करना असम्भव है क्योंकि यह इस आधार पर निवृत्ति वेतन की स्थापना करने का प्रयत्न करता है कि वर्तमान वेतन बने रहेंगे जो एक ऐसी प्रस्थापना है जिसको इस सदन ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** माननीय डॉ. अम्बेडकर ने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया है कि मुख्य न्यायाधीश को सुसज्जित घर देने के लिए संसद् किस प्रकार सक्षम है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम उसे अस्वीकार नहीं कर रहे हैं। सुसज्जित घर के लिए कुछ भी नहीं कहा गया है। हम उसकी चर्चा करेंगे।

***उपाध्यक्ष (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी):** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 104 के खंड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no law made under this article by Parliament shall provide that the pension allowable to the Judge of the Supreme Court under the law shall be less than that which would have been admissible to him if he had been governed by the provisions which immediately before the commencement of this Constitution were applicable to the judges of the Federal Court.' "

(परन्तु संसद् द्वारा इस अनुच्छेद के अधीन निर्मित कोई विधि यह उपबन्ध न करेगी कि उस विधि के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को दिया जाने वाला निवृत्ति वेतन उससे कम होगा जो उस समय ग्राह्य होता जबकि उस पर उन उपबन्धों को लागू किया जाता जो संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए इस संविधान के प्रारम्भ के सद्य पूर्व प्रयोज्य थे।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 104 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:–

Salaries etc. of Judges

"(1) There shall be paid to the judges of the Supreme Court such salaries as are specified in the Second Schedule.

(2) Every judge shall be entitled to such privileges and allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by or under law made by Parliament and until so determined to such privileges, allowances and rights as are specified in the Second Schedule:

Provided that neither the privileges nor the allowances of a judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment."

न्यायधीशों के वेतन, आदि

[(1) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे विशेषाधिकारों और भत्तों का, तथा अनुपस्थिति छुट्टी और निवृत्ति वेतन के बारे में ऐसे अधिकारों का जैसे कि संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें, तथा जब तक इस प्रकार निर्धारित न हों, तब तक ऐसे विशेषाधिकारों, भत्तों और अधिकारों का, जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं, हक होगा:

परन्तु किसी न्यायाधीश के न तो विशेषाधिकारों में और न भत्तों में और न अनुपस्थिति छुट्टी या निवृत्ति वेतन विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।]

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 104 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 148-क

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 148 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:–

'148A. (1) Notwithstanding anything contained in article 148 of this Constitution, Parliament may by law provide for the abolition of Legislative Council of a State having such a Council or for the creation of such a Council in a State having no such Council, if the Legislative Assembly of the State passes a resolution to that effect by a majority of the total membersip of the Assembly and by a majority of not less than two thirds of the members of the Assembly present and voting.

Abolition or creation of Legislative Councils in States.

(2) Any law referred to in clause (1) of this article shall contain such provisions for the amendment of this Constitution as may be necessary to give effect to the provisions of the law and may also contain such incidental and consequential provisions as Parliament may deem necessary.

(3) No such law as aforesaid shall be deemed to be an amendment of this Constitution for the purpose of article 304 thereof.' "

[148.क (1) इस संविधान के अनुच्छेद 148 में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा किसी विधान-परिषद् वाले राज्य में विधान-परिषद् के उत्सादन के लिए अथवा वैसी परिषद् से रहित राज्य में वैसी परिषद् के सृजन के लिए उपबन्ध कर सकेगी यदि राज्य की विधान सभा ने इस उद्देश्य का संकल्प सभा की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से पारित कर दिया हो।

राज्यों में विधान-परिषद् का उत्सादन या सृजन

(2) खंड (1) में निर्दिष्ट किसी विधि में इस संविधान के संशोधन के लिए ऐसे उपबन्ध भी अन्तर्विष्ट होंगे जो उस विधि के उपबन्धों को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हों तथा ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध भी हो सकेंगे जिन्हें संसद् आवश्यक समझे।

(3) पूर्वोक्त प्रकार की ऐसी कोई विधि अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।]

जैसाकि माननीय सदस्यों ने देखा होगा, यह नया अनुच्छेद 148-क दो आकस्मिकताओं के लिये उपबन्ध करता है, (1) उन प्रांतों में जिनमें इस संविधान के प्रारम्भ में दूसरा सदन है, उनमें दूसरे सदन का उत्सादन; (2) इस संविधान के प्रारम्भ में जिस प्रांत ने विधान-परिषद् न रखने का विनिश्चय किया है परन्तु बाद में विधान परिषद् रखने के लिए विनिश्चय करे, उस प्रांत में विधान-परिषद् का सृजन।

इस अनुच्छेद के उपबन्ध भारतीय सरकार के अधिनियम में विधान-परिषद् के सृजन के लिये धारा 60 और उत्सादन के लिए धारा 308 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के बहुत कुछ समान हैं।

सृजन और उत्सादन के लिए जो प्रक्रिया यहां अंगीकार की गई है वह यह है कि इस विषय को प्रथम सदन पर छोड़ दिया गया है, जो संकल्प द्वारा दोनों मार्गों में से किसी एक मार्ग की सिफारिश कर सकता है जिसके लिए वह विनिश्चय करे। दूसरे आगार के सृजन या उत्सादन में सुविधा देने के लिये यह उपबन्ध कर दिया गया है कि इस प्रकार की विधि संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी, जिससे कि संविधान के संशोधन के लिए संविधान के मसौदे में जिस कठिन प्रक्रिया का उपबन्ध किया गया है वह स्पष्ट हो जाये।

मैं इस अनुच्छेद को सदन के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (1) में-

(1) 'Notwithstanding anything contained in article 148 of this Constitution' (इस संविधान के अनुच्छेद 148 में किसी बात के होते हुये भी) शब्द अपमार्जित किये जायें।

(2) खंड (1) में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:"

'Provided that no such resolution shall be considered by the Legislative Assembly in any State nor a corresponding Bill shall be discussed in Parliament unless at least 14 days' notice of the same has been given.' "

(परन्तु किसी राज्य की विधान-सभा द्वारा ऐसे किसी संकल्प पर विचार नहीं किया जायेगा और न संसद् में तत्स्थानी विधेयक पर वाद-विवाद किया जायेगा, जब तक कि न्यूनातिन्यून 14 दिन की सूचना उसके बारे में न दी गई हो।)

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

श्रीमान्, मैं उनमें से हूं जो उत्तर आगार के निर्माण के पूर्णतया विरोध में थे। परन्तु जब सदन ने अनुच्छेद 148 पारित कर दिया तो उस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया और कुछ प्रांतों—मद्रास, पश्चिमी बंगाल इत्यादि इत्यादि—में हमने दूसरे आगारों के लिए व्यवस्था कर दी है। अत: मैं इस उपबन्ध का स्वागत करता हूं जो सभाओं को इन सदनों के उत्सादन करने का अधिकार देता है। अपने संशोधन में मैंने केवल यह उपबंधित किया है कि जब इस अनुच्छेद के अधीन सभाओं के समक्ष संकल्प प्रस्तुत किया जाये तो उसकी उचित सूचना दी जानी चाहिये। इसी कारण मैंने यह कहा कि किसी राज्य की विधान-सभा द्वारा ऐसे किसी संकल्प पर विचार नहीं किया जायेगा और न संसद में तत्स्थानी विधेयक पर वाद-विवाद किया जायेगा, जब तक कि न्यूनातिन्यून 14 दिन की सूचना उसके बारे में न दी गई हो। यह हो सकता है कि समुचित सूचना दिये बिना कोई संकल्प पारित कर लिया जाये। सदस्यों को यह विदित होगा कि संसद् में कभी-कभी कार्यावली केवल एक दिन पूर्व मिलती है और यह सहज सम्भाव्य है कि यदि ऐसे मुख्य संशोधन की 14 दिन की सूचना न दी जायेगी, तो कुछ सदस्य सूचना के अभाव के कारण उस पर विचार-विमर्श के समय अनुपस्थित रह सकते हैं। अत: मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाये, इसके द्वारा कोई हानि नहीं होगी। वास्तव में मैं तो यह चाहता था कि हम द्वितीय सदन के लिए कोई उपबन्ध न बनाते और पूर्णतया सभाओं के विनिश्चय पर छोड़ देते कि वे चाहती हैं या नहीं। परन्तु हमने यह किया है कि हमने द्वितीय सदन के सृजन के लिए तथा उत्सादन के भी लिये उपबन्ध कर दिया है।

सदन की स्वीकृति के लिए मैं अपने संशोधन को प्रस्तुत करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (1) में से 'or for the creation of such a Council in a State having no such Council' (अथवा वैसी परिषद् से रहित राज्य में वैसी परिषद् के सृजन के लिए) शब्द अपमार्जित किये जायें।"

श्रीमान्, नया अनुच्छेद जो संशोधन के द्वारा डॉ. अम्बेडकर ने अभी सदन के समक्ष प्रस्तुत किया है वह द्वितीय सदनों के दु:खदायी प्रश्न के संबंध में है। वह यह उपबन्ध करता है कि भावी संसद् विधि द्वारा जिन राज्यों में परिषद् है उनमें उन परिषदों के उत्सादन के लिए और जिन राज्यों में नहीं है उनमें द्वितीय सदन के सृजन के लिए उपबन्ध कर सकती है।

सभा को स्मरण होगा कि हम अनुच्छेद 148 स्वीकार कर चुके हैं। मैं समझता हूं कि गत वर्ष सभा के नवम्बर या जनवरी के सत्र में किसी समय, और सदन द्वारा इस अनुच्छेद के स्वीकार कर लेने के पश्चात् विभिन्न प्रांतों के प्रतिनिधियों को पृथक-पृथक सेमवेत होने के लिए कहा गया और यह विनिश्चय करने के लिए कहा गया कि वे अपने-अपने प्रांतों में द्वितीय सदन चाहते हैं या नहीं। इस समय मैं इस सदन के समक्ष एक उस प्रांत के प्रतिनिधि के रूप में खड़ा हूं, जिस प्रांत ने सौभाग्यवश द्वितीय सदन के विरुद्ध मत दिया।

(इस समय अध्यक्ष ने पुन: आसन ग्रहण किया।)

मुझे विश्वास है कि हमारे देश के सब प्रांतों में से केवल मध्यप्रांत और बरार, आसाम और उड़ीसा तीन प्रांतों ने अपने यहां द्वितीय सदन के सृजन के विरुद्ध मत दिया है। अन्य प्रांतों ने मेरे विचार से द्वितीय सदन की मांग की है। अब इस अनुच्छेद में, जिसको डॉ. अम्बेडकर ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जहां द्वितीय सदन नहीं है वहां उनके सृजन के लिए उपबन्ध करने का प्रयास किया गया है, यदि उस राज्य की सभा इसके लिए विनिश्चय करे। मैं स्वयं यह अनुभव करता हूं कि इस सीमा तक यह अनुच्छेद प्रतिक्रियात्मक है और प्रतिगामी है। जहां द्वितीय सदन नहीं हैं वहां उसके सृजन के लिए उपबन्ध करना मुझे तो किसी प्रकार से भी उन्नतिशील साधन नहीं प्रतीत होता है। हम यह कहने में गौरवान्वित होते हैं कि हमारा लोकतन्त्रात्मक प्रगतिशील राज्य है। हम बीसवीं शताब्दि में रह रहे हैं जिस काल में जहां से द्वितीय सदन का पूर्णतया उत्पादन नहीं हो पाया है, वहां पर उसकी शक्तियों को बहुत ही कम कर दिया गया है। इंग्लैंड में भी, जिसके संविधान से हमने बहुत कुछ लिया है, लार्ड सदन की बहुत कुछ शक्ति कम कर दी गई है और आज का लार्ड सदन वह नहीं है तो बीस या तीस वर्ष पूर्व था। यहां डॉ. अम्बेडकर चाहते हैं कि यहा सभा इस अनुच्छेद को पारित करे जो यह उपबन्ध करता है कि भावी संसद्, जहां द्वितीय सदन नहीं है वहां उसके सृजन की व्यवस्था करे। मैं उनसे यहां तक तो सहमत हूं कि जहां द्वितीय सदन है वहां उसके उत्पादन की शक्ति संसद् को दी जाये, परन्तु मैं उनकी इस प्रस्थापना का समर्थन नहीं कर सकता हूं कि जहां द्वितीय सदन नहीं है वहां आप उसका सृजन भी करें।

द्वितीय सदन के सृजन के लिए आखिरकार क्या तर्क है? द्वितीय सदन के समर्थनों ने तीन या चार मुख्य कारण बताये हैं। पहला यह है कि कुछ देशों में इसकी परम्परा है। सौभाग्यवश हमारे देश में हमारे यहां कोई ऐसी परम्परा नहीं है। शायद अपनी निजी सुविधा के लिए ब्रिटिश ने द्वितीय सदनों की इस पद्धति का पुरस्थापन किया था और मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश के चले जाने के साथ-साथ यह पद्धति भी हमारे देश से चली जायगी। जहां तक हमारे देश का संबंध है ऐसी कोई परम्परा नहीं है। एक और कारण दिया जाता है वह यह है कि उन हितों का पर्याप्त प्रतिनिधान करने के लिये, जिनका प्रतिनिधान यथेष्ठ रूप से प्रथम सदन में नहीं हो पाता। इस संविधान में हमने प्रथम सदन में किसी भी विशेष प्रतिनिधान को पहले ही नहीं रखा है, जो भारतीय सरकार के अधिनियम तथा अन्य अधिनियमों में था। हमने प्रतिनिधान की समानुरूप प्रणाली की व्यवस्था की है और इस नये दृष्टिकोण से द्वितीय सदन के सृजन के लिये कोई भी कारण नहीं प्रतीत होता है। एक और कारण यह दिया गया है कि जल्दबाजी के विधान के लिए वह एक अवरोध है। क्या आजकल वास्तव में हम कोई अवरोध चाहते हैं? आखिर हम सब भली प्रकार जानते हैं कि आधुनिक संसार में विधान-निर्माण बहुत ही कठिन तथा विस्तृत कार्य है—मेरा आशय लोकतंत्रात्मक संसार से है—और कभी-कभी तो वह बड़ी ही सुस्त रीति से होता है। हर एक विधेयक को भिन्न-भिन्न स्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है—पुरस्थापन करने की स्थिति प्रवर समिति की स्थिति, द्वितीय पठन, तृतीय पठन, इत्यादि इत्यादि और कितने ही माह लग जाते हैं। इस सभा के संसद् के रूप में बैठने का हमें अनुभव है कि कुछ विधेयकों

[श्री एच.वी. कामत]

को अधिनियम बनाने में एक वर्ष से भी अधिक समय लग गया है और इस समय में, जो लगभग एक वर्ष तक खिंच जाता है, केवल सदन को ही नहीं वरन् जनता को भी सुविधापूर्वक विधेयक पर विचार व्यक्त करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। अत: जल्दी में निर्मित विधान के लिये किसी अवरोध की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जनतंत्र विधान पर सदैव भली प्रकार विचार-विमर्श हो जाता है और विधेयक के विधि बनने से पूर्व की दशा में उसे अनेक स्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है। इसके बाद एक चौथा तर्क भी है कि रूढ़िगत हितों के लिए वह एक प्रकार का रक्षा कवच है। हम कभी भी रूढ़िगत हितों का प्रभाव अपनी आर्थिक व्यवस्था पर नहीं पड़ने देंगे और इस सीमा तक तो मैं समझता हूं कि द्वितीय सदन का सृजन एक प्रतिगामी प्रस्थापना है। संक्षेप में मैं समझता हूं कि द्वितीय सदन या तो व्यर्थ है और या हानिकारक है जैसा कि अब्बे सईस फ्रांसीसी राजनैतिक विचारक ने एक बार कहा था—"यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से सहमत हो जाता है तब तो वह व्यर्थ है और यदि वह सहमत नहीं होता है तो वह हानिकारक है"। दोनों दशाओं में मेरे विचार से द्वितीय आगार के सृजन के पक्ष में कोई बात नहीं है, अत: मैं इस सभा से निवेदन करता हूं कि प्रस्थापित अनुच्छेद 148-क के इस भाग को, जो जिस राज्य में द्वितीय सदन नहीं है उसमें उसके सृजन के लिए उपबन्ध करता है, अपमार्जित किया जाये और इस अनुच्छेद को बिना उस भाग के स्वीकार किया जाये। अत: मैं सूची 3 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 86 को पेश करता हूं और मैं आशा करता हूं कि सभा इसको स्वीकार करने के मार्ग को अपनायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम का संशोधन इस प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (1) में से 'of the total membership of the Assembly and by a majority of not less than two-thirds' ('सभा की समस्त संख्या के बहुमत से' और 'की संख्या के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से') शब्द अपमार्जित किये जायें।"

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि मूल अनुच्छेद में से जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्थापित किया है 'सभा की समस्त संख्या के बहुमत से' और 'की संख्या के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से' शब्दों को अपमार्जित किया जाये। मेरा संशोधन इस बात का प्रयास करता है कि यदि केवल बहुमत यह कह देता है कि द्वितीय आगार नहीं होना चाहिये, तो उसे स्वीकार किया जायेगा। जब हमने इस अनुच्छेद 148 को पारित किया था तो कुछ एक अजीब तरीके से विनिश्चय किया गया था। वह समूह अथवा प्रत्येक प्रांत के विनिश्चय पर छोड़ दिया गया था। सभा ने एक रूप होकर प्रत्येक प्रांत के लिए विनिश्चय नहीं किया था, पर चाहे जो कुछ भी हुआ हो विनिश्चय कर लिया गया है और इसलिये मुझे खुशी है कि इस उद्देश्य का एक नया अनुच्छेद जोड़ दिया गया है कि यदि संसद् यह विनिश्चय करती है कि द्वितीय सदन की आवश्यकता नहीं है तो उन्हें अनुच्छेद 148 को प्रवर्तन में लाने की आवश्यकता नहीं हैं, जिसको हम पारित कर चुके हैं।

देश का मत यह है कि प्रांतों में द्वितीय सदन हों और मुझे बहुत खुशी है कि मसौदा-समिति ने इस बात पर ध्यान दिया है, परन्तु मुझे दु:ख भी है कि उनको अनुच्छेद 148 को रद्द करने का साहस न हुआ। यदि वे ऐसा कर देते तो सब की इच्छायें पूरी हो जाती। द्वितीय सदन हमारे वित्त पर एक बड़ा भार है और वर्तमान दशा में हमारे ऐसे वित्त पर भार रखना हमारे देश के हित में नहीं है जो आजकल एक विचित्र दशा में है—मैं किसी अन्य शब्द का प्रयोग नहीं करता हूं। अत: इस संशोधन का स्वागत करते हुए मैं संसद् में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई अथवा समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा शृंखलाबद्ध नहीं करना चाहता हूं। यदि सभा में उपस्थित सदस्य केवल बहुमत से ही द्वितीय सदन के विरुद्ध हैं तो सभा की समस्त सदस्य संख्या द्वारा उसको रद्द कर दिया जायगा। अत: मैं आग्रह करता हूं कि यदि यही इच्छा है—और इस अपर अनुच्छेद से जिसको मसौदा-समिति ने प्रस्तुत किया है यह बिलकुल स्पष्ट विदित होता है कि उनके स्वयं विचार बदल गये हैं क्योंकि वे भी असमंजस में पड़े गये हैं कि द्वितीय आगार की क्या रचना हो और वे किसी विनिश्चय तक न पहुंच सके। अत: उन्होंने यह समझा कि "इसे संसद् पर पटक दें और उसे जैसा वह चाहे विनिश्चय करने दें।" ठीक है, दोनों बुराइयों में से यह कम बुराई है। मैं इसे स्वीकार करने के लिए उद्यत हूं, क्योंकि सभा ने अनुच्छेद 148 पारित कर लिया है और सभा द्वारा पारित किये हुए अनुच्छेद में हम परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं। यह एक बुरा उदाहरण होगा। परन्तु संसद् को शृंखलाबद्ध करना मैं नहीं चाहता हूं। यदि सभा इस कार्य में रुचि रखेगी तो छ: सौ सदस्य उपस्थित होंगे, उन्हे विनिश्चय करने दीजिये। समस्त सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत पर क्यों आग्रह करें? यह बिलकुल स्पष्ट है कि द्वितीय सदन के पक्ष में आप जितना पहले शक्तिशाली थे उतने अब नहीं हैं। केन्द्र के लिए द्वितीय सदन की बात मैं समझ सकता हूं। मैं इसके पक्ष में हूं क्योंकि अखिल भारतीय विधेयक पारित किये जायेंगे और द्वितीय सदन की आवश्यकता है; परन्तु प्रांतों में यह पुरानी चीज है जो समयोचित नहीं और मैं समझता हूं कि वह नहीं रहनी चाहिये और इसी कारण मेरे संशोधन में यह प्रयास किया गया है कि केवल बहुमत से यदि सभा यह चाहती है कि द्वितीय सदन न हों तो वह नहीं रहना चाहिये, और वह समस्त सदस्यों को दो-तिहाई बहुमत से नहीं होना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को पेश करता हूं।

***सरकार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क का खंड (3) अपमार्जित कर दिया जाये।"

श्रीमान्, मैं यह नहीं समझ सका कि यह खंड क्यों जोड़ा जा रहा है। जो व्याख्या इस समय दी गई है कि वह उस प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए, जो द्वितीय सदनों के सृजन और उत्सादन के लिए अपेक्षित होगी, वह मुझे खंड की उपयोगिता में विश्वास नहीं करा पाई। अनुच्छेद 304 के खंड (2) में यह उपबन्ध कर ही दिया गया है कि:

"अंतिम पूर्ववर्ती खंड में किसी बात के होते हुये भी, राज्यपाल को चुनने की पद्धति संबंधी या प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित

[सरदार हुकम सिंह]

रहे किसी राज्य के विधान-मंडल के सदनों की संख्या संबंधी इस संविधान के उपबन्धों में कोई परिवर्तन चाहने वाले संशोधन का सूत्रपात तदर्थ विधेयक पुर:स्थापित करके किया जा सकेगा।" इत्यादि इत्यादि।

सर्वप्रथम मैं अनुच्छेद 304 के खंड (2) और इस समय प्रस्थापित किये गये खंड में बहुत अधिक अन्तर नहीं देख पाता हूं, सिवाय इसके कि अनुच्छेद 304 में राज्य के विधान-मंडल द्वारा विधेयक का सूत्रपात किया गया है और उसके बाद समस्त सदस्य संख्या का बहुमत अपेक्षित था और उसके बाद समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा संसद् के अनुसमर्थन की आवश्यकता थी। अब यह चाहा गया है कि राज्य के विधान-मंडल द्वारा विधेयक के स्थान में एक संकल्प पारित करना होगा और उसको समस्त सदस्य संख्या का बहुमत प्राप्त होना चाहिये और फिर इसके बाद "समस्त सदस्य संख्या के अनुसमर्थन" के स्थान में केवल बहुमत द्वारा "संसद् की विधि।" अब इस अंतर को पुर:स्थापित करना चाहा गया है।

मैं यह कहूंगा कि इस खंड से हम संसद् के लिए अथवा शक्ति प्राप्त दल के लिये इस प्रक्रिया का जिस समय वह चाहे उस समय अपनी इच्छा से प्रयोग करने के लिए महान् स्वविवेक के मार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। पक्ष की सनक और इच्छा पर इस बात को क्यों छोड़ा जाये जिससे कि जब कभी वह यह देखे कि विधान-सभा में इसके लिए उपयुक्त अवसर है, तो वह द्वितीय आगार को हटा दे या उसका उत्सादन कर दे और जब वह यह देखे कि वह वांछनीय नहीं है अथवा जब वह यह देखे कि विधान-सभा उससे सहयोग करने के लिए तैयार नहीं है, तो फिर वह बड़ी सरलता से द्वितीय सदन का सृजन कर सके जैसाकि केवल बहुमत से ऐसा करना अब सोचा जा रहा है? जो प्रक्रिया इस नये अनुच्छेद 148-क में निर्धारित की गई है, यदि उसको भी लिया जाता है कि वह विधेयक केवल बहुमत द्वारा पारित किया जाये तो भी वह अनुच्छेद 304 के खंड (2) के समान हो जायेगा और इस खंड (3) के रखने की कोई आवश्यकता नहीं होगी कि उसको संविधान का संशोधन नहीं समझा जायेगा। मेरी सम्मति से हम इन परिवर्तनों को इतनी आसानी से न होने दें। यदि एक बार द्वितीय सदन का सृजन हो जाता है तो उसका आसानी से उत्सादन नहीं करना चाहिये। अत: सभा के समक्ष मेरा संशोधन यह है कि इस अनुच्छेद के खंड (3) को निकाल दिया जाये और संविधान के इस भाग की पूर्ति करना, कि संसद् किसी समय भी जब चाहे उसका सृजन करे अथवा उत्सादन करे, संसद की इच्छा और स्वविवेक पर न छोड़ा जाये।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस दृष्टिकोण का समर्थन करता हूं जिस पर मेरे सामने अनेक सदस्यों ने जोर दिया है कि राज्यों में द्वितीय सदन का उपबन्ध पूर्णतया असामयिक तथा कालविरुद्ध है। फिर भी हमें इस तथ्य पर ध्यान देना पड़ेगा कि कुछ राज्यों के लिए द्वितीय सदन की व्यवस्था कर दी गई है। अब प्रश्न यह है कि शेष राज्यों में द्वितीय सदन के उत्सादन अथवा सृजन अथवा पुर:स्थापन के लिये हम विधान बनाकर इस संविधान में रखे या नहीं। जैसा कि अभी सरदार हुकुमसिंह ने बताया था कि मसौदे में, अनुच्छेद 304 के खंड (2) में एक उपबन्ध पर विचार किया जा चुका है, जिसके द्वारा इस प्रश्न पर बाद में दोनों राज्यों की विधान सभाओं

और संसद् द्वारा विचार किया जाना संभव था, पहले विधान सभाएं विचार करें और उसके बाद संसद् के समक्ष सिफारिश प्रस्तुत की जायेंगी। मेरे मित्र श्री कामत, श्री सिधवा और सरदार हुकुमसिंह द्वारा जो अनेक तर्क प्रस्तुत किये जा चुके हैं उनके साथ में मैं केवल यह कहना चाहूंगा कि इस बात के लिए कुछ और भी कारण हैं कि वर्तमान संविधान में इस अनुच्छेद को क्योंकर न रखा जाये, और एक मुख्य कारण जिसको मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं वह यह है कि आखिरकार द्वितीय सदन के उपबन्ध का उद्देश्य का रूढ़िगत हितों की रक्षा करना। परन्तु यहां जबकि इस संविधान को रूपरेखा दी जा रही है, हम चुपचाप नहीं बैठे हुये हैं। सरकार के रूप में हम अनेक प्रकार से नीतियों का पालन कर रहे हैं और अपने उद्देश्यों को प्रभाववर्ती बना रहे हैं। भारतीय राज्यों के शासकों को हटा दिया गया है, जमीदारी और जागीरदारी विघटन की ओर अग्रसर हैं और अन्य रूढ़ागत हितों का भी शीघ्रता से नाश किया जा रहा हैं द्वितीय सदन समाज में कुछ ऐसे ही तत्कथित स्थायी तत्वों—कुछ रूढिगत हितों के लिए बनाये गये थे जिनके बारे में यह समझा जाता था कि वे सरकार अथवा राज्य की नीतियों में उन उग्र परिवर्तनों के विरुद्ध कल्याणकारी अवरोध के रूप में कार्य करेंगे, जो समस्त राज्य के लिये अधिक हानिकारक तथा कम लाभदायक होंगे। पर मेरा विचार यह है कि अब ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो पर्याप्त रूप से इस कट्टर या समाज में तत्कथित स्थायी तत्वों, इन रूढ़िगत हितों का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधान करे जो कि राज्य के स्थायित्व में सहायक हों। ऐसा होने के कारण यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि जब हमने यह चर्चा की कि द्वितीय सदन में कौन होंगे, इन द्वितीय सदनों में प्रतिनिधि के रूप में कौन बैठेंगे, तो हम बगलें झांकने लगे और केवल यही सोच सके कि अनेक स्थानीय निकायों और सभाओं द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को द्वितीय सदन में स्थान दिये जायेंगे। यह प्रस्थापित किया गया कि नगरपालिकायें, स्थानीय मंडल, ग्राम-पंचायत इत्यादि अपनी ओर से कुछ प्रतिनिधि चुनें और यह सोचा गया कि द्वितीय सदन के लिए ये ठीक सदस्य होंगे। जहां-जहां द्वितीय सदन ठीक और वांछनीय समझे जायेंगे वहां वास्तव में उन द्वितीय सदनों में इन विशेष हितों को न तो रहने दिया है और न रहने देंगे। ऐसा होने के कारण मैं समझता हूं कि इस संबंध में वर्तमान संविधान के उपबन्धों और जिस नीति का हम पालन कर रहे हैं उन पर कुछ अधिक सावधानी से विचार किया जाये और मैं समझता हूं कि इस विचार से सदन इस निर्णय को पहुंचेगा कि द्वितीय सदन की कहीं भी गुंजाइश नहीं है। यदि यह स्वीकार्य नहीं है तो मैं एक दूसरा सुझाव रखूंगा और वह यह है कि इस बुराई को जहां तक है वहीं तक रहने दें एवं उसको और न बढ़ने दें और इस दृष्टिकोण से मैं श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं कि जहां द्वितीय सदन इस समय स्थित नहीं हैं वहां उसके सृजन का कोई उपबन्ध न हो। द्वितीय सदनों के उत्सादन के लिये उपबन्ध हो पर उनके सृजन के लिए कोई उपबन्ध न हो। मैं आशा करता हूं कि यह दृष्टिकोण स्वीकार्य होगा अन्यथा शायद हम पर यह दोषारोपण किया जाये कि जनता को जिस शक्ति को हम एक हाथ से देने के लिए उत्सुक हैं उसी को दूसरे हाथ से छीनते हैं। यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि अब तक लोक-उन्नति के लिए द्वितीय सदन अहितकारी सिद्ध नहीं हुये हैं और चूंकि हमें द्वितीय सदनों का गत बारह वर्ष का अनुभव है किसी ने इनके विरुद्ध कड़ी शिकायत नहीं की है। परन्तु मैं नहीं समझता हूं कि जब हम इस नये संविधान को क्रियान्वित करते हैं तो यह स्थिति होगी। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक बार उनका ऐसे विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जायेगा जो राष्ट्र की उन्नति

[डा. पी.एस. देशमुख]

में रुकावट डालेगा। एक तथ्य जिससे ऐसा अन्तर आयेगा वह यह है कि हम वयस्क मताधिकार का पुर:स्थापन कर रहे हैं। अब से आगे हमारे प्रथम सदन की रचना जैसी कि आजकल है उससे पूर्णतया और सर्वथा भिन्न प्रकार की होगी और विधान-सभा में बैठे हुये इन प्रतिनिधियों द्वारा पालन की गई नीति कुछ व्यक्ति समूह द्वारा हानिकारण समझी जायेगी। यदि यही व्यक्ति समूह द्वितीय आगार में आता है तो बहुत रुकावटें होंगी तथा व्यापक रूप में जनता के हितों में बहुत हानि होगी। अत: मैं आशा करता हूं कि किसी प्रकार से भी इस बुराई को न बढ़ने दिया जायेगा और जिन द्वितीय सदनों के लिए व्यवस्था कर दी गई है उनके उत्सादन करने तक ही इस उपबन्ध को सीमित रखा जाये।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 148-क के ग्रहण करने के पक्ष का मैं समर्थन करना चाहूंगा। मैंने सोचा था कि इस अनुच्छेद की स्वीकृति हम में से उन लोगों को संतुष्ट करने में बहुत अधिक प्रभावकारी होगी जो प्रांतीय विधान-मंडलों में उत्तर सदन के पुर:स्थापन के विरोधी थे। पर आज मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारे वे मित्र इस अनुच्छेद के स्वीकार किये जाने के विरोध में हैं। अनुच्छेद 148 को हम स्वीकार कर चुके हैं जिसमें यह दिया हुआ है कि उन प्रांतों में, जिनका उसमें उल्लेख किया गया है, द्वितीय सदन होंगे। अनुच्छेद 148-क इन प्रांतों को भी बाद में इन सदनों के उत्सादन करने की स्वतंत्रता देता है यदि वे कुछ काल के पश्चात् प्राप्त किये गये अनुभव के आधार पर ऐसा करना आवश्यक तथा वांछनीय समझें। अत: मेरे उन मित्रों को, जो अनुच्छेद 148 में उल्लिखित प्रान्तों में उत्तर सदन के पुर:स्थापन के विरोधी थे, इस अनुच्छेद का स्वागत करना चाहिये जो उनको तत्संबंधी विधान-सभा में उसके उत्सादन करने के लिए प्रस्ताव करने का एक और अवसर देता है। यह अनुच्छेद उन प्रांतों के लिए भी लाभदायक और कल्याणकारी है जिन्होंने अभी तक उत्तर सदन रखने का विनिश्चय नहीं किया है। यदि बाद में अनुभव प्राप्त करने पर यदि वे अपने प्रांत के लिए द्वितीय सदन रखना आवश्यक तथा उपयोगी समझते हैं तो यह अनुच्छेद उनको उत्तर सदन बनाने और उन प्रांतों के समकक्ष होने का हक देगा, जिन्होंने उत्तर सदन रखने का विनिश्चय किया है। अत: प्रत्येक दृष्टिकोण से इस अनुच्छेद का रखना लाभदायक है। पर मैं यह अवश्य चाहता हूं कि माननीय डॉ. अम्बेडकर मेरे मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा पेश किये गये संशोधन के कम से कम एक भाग को स्वीकार कर लें। अपने संशोधन संख्या 85 के भाग 2 में वे चाहते हैं कि इस अनुच्छेद के साथ एक परन्तुक जोड़ दिया जाये जो इस प्रकार है:

"परन्तु किसी राज्य की विधान-सभा द्वारा ऐसे किसी संकल्प पर विचार नहीं किया जायेगा और न संसद् में तत्स्थानी विधेयक पर वाद-विवाद किया जायेगा जब तक कि न्यूनातिन्यून 14 दिन की सूचना उसके बारे में न दी गई हो।"

श्री शिब्बनलाल सक्सेना जो कुछ सुझाव रखते हैं वह कोई अनोखा सुझाव नहीं है। उनके संशोधन के इस भाग में जो प्रक्रिया सुझाई गई है उसको हम

पूर्ववर्ती अनेक अनुच्छेदों पर विचार करते समय स्वीकार कर चुके हैं। किसी विशिष्ट प्रांत में उत्तर सदन के उत्सादन तथा सृजन संबंधी संकल्प स्पष्टतया एक असाधारण सा संकल्प है और इसलिये यह आवश्यक है कि विधान मंडल में रखने के पूर्व ऐसे संकल्प की समुचित सूचना दी जाये। इस संबंध में मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर का ध्यान अनुच्छेद 50 की ओर आकर्षित करना चाहूंगा, जिसको हम स्वीकार कर चुके हैं और जो राष्ट्रपति के महाभियोग के संबंध का है। उसके संबंध में हमने यह निर्धारित किया है कि जिस संकल्प द्वारा राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जाये उस संकल्प की सूचना उस तिथि से कम से कम 14 दिन पूर्व दी जानी चाहिये, जिस तिथि को उस संकल्प पर संसद् में वाद-विवाद हो। अनुच्छेद 50(2) में यह कहा गया है:

> "ऐसा कोई दोषारोप तब तक नहीं किया जायेगा जब तक कि ऐसे दोषारोप करने की प्रस्थापना किसी संकल्प में न हो, जो कम से कम 14 दिन की ऐसी लिखित सूचना के दिये जाने के पश्चात् प्रस्तुत किया गया है, इत्यादि इत्यादि।"

इसी प्रकार अनुच्छेद 74 में राज्य-परिषद के उपसभापति के हटाने संबंधी संकल्प को पेश करने के संबंध में हमने ऐसी ही शर्त रखी है। और भी, अनुच्छेद 77 के अधीन जो लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के हटाने के संबंध का है, यह निर्धारित किया गया है कि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के हटाने की मांग करने वाले संकल्प की सूचना उस दिन से कम से कम 14 दिन पहले दी जानी चाहिये जिस दिन उस संकल्प पर वाद-विवाद हो। संविधान में ऐसे और भी उपबन्ध हैं जिनको हम स्वीकार कर चुके हैं और जिनमें हमने श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 85 के भाग में अंतर्विष्ट प्रक्रिया को अंगीकार किया है। यह कहा जा सकता है कि इस अनुच्छेद में ऐसे रक्षाकवच के लिए उपबन्ध करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यदि इस उद्देश्य का संकल्प राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित कर लिया जाता है तो भी जब तक संसद् द्वारा इस उद्देश्य का विधान अधिनियमित नहीं किया जाता तब तक उसका कोई भी प्रभाव नहीं होगा। वास्तव में स्थिति ऐसी ही है। तो फिर हम इस प्रकार की गुंजाइश क्यों रखें? किसी राज्य की सभा की कार्यवाही का संचालन करने वाली साधारण प्रक्रिया के अधीन एक साधारण संकल्प के अनुसार केवल दो या तीन दिन की सूचना एक ऐसे संकल्प पर देकर, जिसका संबंध एक ऐसे विषय से है जिस पर काफी मतभेद है, यदि उसको प्रस्तुत किया जाता है और ऐसे समय में बहुत ही थोड़े बहुमत से पारित कर दिया जाता है, जबकि सभा में बहुत कम उपस्थिति है तो क्या उस विधान-मंडल के सदस्यों में इसके कारण बहुत वैमनस्य नहीं होगा? हारने वाले पक्ष के लिए केवल यही उपाय होगा कि वह संसद् की शरण ले और यह कहे कि सभा की सिफारिश को न स्वीकार किया जाये और संसद् में उस उद्देश्य के किसी विधेयक को न बढ़ाया जाये। श्रीमान् हमें ऐसी गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये। हमें एक ऐसा उपबन्ध करने से नहीं चूकना चाहिये जिसका सुझाव श्री शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा दिया गया है, वरना हम किसी विशिष्ट विधान-सभा के सदस्यों में वैमनस्य और झगड़ों के लिए आधार खड़ा कर देंगे।

इसमें ऐसा कोई सिद्धांत का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है जिस पर मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर आपत्ति करें। मैं समझता हूं कि यह आवश्यक तथा वांछनीय है कि श्री शिब्बनलाल सक्सेना के भाग 2 में अन्तर्विष्ट सुझाव को स्वीकार किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, जिस रूप में डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 148-क पेश किया है उस रूप में उसे स्वीकार करने के लिए मैं खड़ा होता हूं। पर मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि जहां विधान-परिषद् है वहां उसके उत्सादन के लिए संसद् विधि द्वारा उपबन्ध बनाये। यह ठीक है कि जहां ऐसी परिषद् नहीं है वहां उसके सृजन करने की शक्ति उसे सौंपी जाये। मैं नहीं समझता हूं कि द्वितीय सदन की स्थापना अनिवार्यत: एक प्रतिगामी कार्य है। यह सब इस बात पर निर्भर है कि आप इस निकाय को किस प्रकार की शक्तियां दे रहे हैं। श्रीमान्, मेरा निजी विचार यह है कि अपने जीवन के राजनैतिक तथ्यों पर उचित ध्यान देते हुए, इस बात को पूर्ण रूप से समझते हुए, कि अपने राजनैतिक इतिहास में हम पहली बार वयस्क मताधिकार रख रहे हैं जिसके भविष्य परिणाम को हम नहीं जानते है और जिसे मैं समझता हूं कि वह भारतीय जीवन में जो कुछ नेकी और भलाई हैं उसका मूलोच्छेदक है और जिसे मैं राज्य के स्थायित्व के लिए संकटदायक समझता हूं, मैं समझता हूं कि समस्त प्रयोजनार्थ द्वितीय सदन की स्थापना वांछनीय तथा लाभदायक है।

श्रीमान् यह कहना कि यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से सहमत हो जाता है तो वह व्यर्थ है और यदि नहीं होता तो वह दु:खदायी है, राजनीति को बहुत सरल बनाना है। इन दो शब्दों "व्यर्थ" और "दु:खदायी" में ही राजनीति का समस्त वाद-विवाद समाप्त नहीं हो जाता है। और भी विचारधारायें हैं जिनको ध्यान में रखना चाहिये।

श्रीमान्, जब मैं अनुच्छेद 150 पर आऊंगा उस समय और भाषण दूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता हूं कि कोई उत्तर चाहा गया है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। सर्वप्रथम मैं प्रो. सक्सेना के संशोधन को लूंगा और उसे दो भागों में रखूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (1) में—

(1) 'Notwithstanding anything contained in aricle 148 of this Constitution' (इस संविधान के अनुच्छेद 148 में किसी बात के होते हुए भी) शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"खंड (1) में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no such resolution shall be considered by the Legislative Assembly in any State nor a corresponding Bill shall be discussed in

Parliament unless at least 14 days' notice of the same has been given.' "

[परन्तु किसी राज्य की विधान-सभा द्वारा ऐसे किसी संकल्प पर विचार नहीं किया जायेगा और न संसद में तत्स्थानी विधेयक पर वाद-विवाद किया जायेगा जब तक कि न्यूनातिन्यून 14 दिन की सूचना उसके बारे में न दी गई हो।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (1) में से 'or for the creation of such a Council in a State having no such Council' (अथवा वैसी परिषद् से रहित राज्य में वैसी परिषद् के सृजन के लिये) शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को वापस लेने के अनुमति मांगता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 148-क के खंड (3) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि नये अनुच्छेद 148-क को स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

नया अनुच्छेद 148-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 150

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 150 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'150. (1) The total number of members in the Legislative Council of a State having such a Council shall not exceed twenty-five per cent. of the total number of members in the Assembly of that State:

Composition of the Legislative Councils.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Provided that the total number of members in the Legislative Council of a State shall in no case be less than forty.

(2) The allocation of seats in the Legislative Council of a State, the manner of choosing person to fill those seats, the qualifications to be possessed for being so chosen and the qualifications entitling persons to vote in the choice of any such persons shall be such as Parliament may by law prescribe.' "

[150. (1) विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक चौथाई से अधिक न होगी।

विधान-परिषदों की रचना।

परन्तु किसी अवस्था में भी किसी राज्य की विधान-परिषद के सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम न होगी।

(2) किसी राज्य की विधान-परिषद् में स्थानों का बंटवारा, इन स्थानों की पूर्ति के लिए व्यक्तियों का चुनना, इस प्रकार चुने जाने के लिए अर्ह होना और इन व्यक्तियों के चुनाव में मत देने का हक रखने के लिए व्यक्तियों का अर्ह होना वैसा ही होगा जैसे संसद् विधि द्वारा विनिहित करे।]

मूल अनुच्छेद का कुछ भाग मसौदा-समिति के पहले मसौदे के अनुच्छेद 60 के अनुसार बनाया गया था। सभा को यह स्मरण होगा कि मूल मसौदे का अनुच्छेद 60 केन्द्र के उत्तर सदन की रचना के संबंध का था। कुछ कारणवश जिनमें मुझे इस समय पड़ने की आवश्यकता नहीं है पुराने अनुच्छेद 60 में निहित सिद्धांत को इस सभा ने स्वीकार नहीं किया था। ऐसा होने से मसौदा-समिति ने सोचा कि जिस सिद्धांत का प्रांतों के लिए उत्तर-सदन की रचना में परित्याग कर दिया है उस सिद्धांत का पालन करना सुसंगत नहीं होगा। इस परिणामस्वरूप स्थिति के होने के कारण मसौदा-समिति के सामने एक विकल्प का सुझाव रखने की समस्या प्रस्तुत हुई। इस समय मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि उत्तर-सदन की रचना के बारे में मसौदा-समिति कि निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंची है। अत: उन्होंने इस विषय को संसद् पर छोड़ देने का विनिश्चय किया—आप यह कहेंगे कि उन्होंने केवल कठिनाई को स्थगित करने का विनिश्चय किया। मैं नहीं समझता हूं कि इस समय मसौदा समिति इस सभा की स्वीकृति के लिए किसी निश्चित प्रस्थापना का सुझाव कर सकती थी और इसी कारण उसने अनुच्छेद 150 के उपखंड (2) की प्रस्थापना करने में उस प्रणाली को अंगीकार किया है, जो कम से कम विरोधात्मक कही जा सकती है। जैसाकि मैंने कहा था इसमें भी एक नियम विरुद्ध बात उत्पन्न होती है, वह यह है कि जैसा अनुच्छेद 148-क में दिया हुआ है,

संविधान यह विनिहित करता है कि कुछ प्रांतों में द्वितीय सदन होंगे, पर द्वितीय सदन की रचना के विनिश्चय करने के विषय को संसद् पर छोड़ देता है।

ये वास्तव में नियम विरोधी बातें हैं। परन्तु इस समय इन नियम विरोधी बातों को सुलझाने की कोई रीति नहीं है। अतः मैं सभा से निवेदन करता हूं कि अभी वह इस अनुच्छेद 150 में निहित मसौदा-समिति की प्रस्थापनाओं को स्वीकार करे जिसको मैंने पेश किया है।

[सूची 3 (प्रथम सप्ताह) का संशोधन संख्या 90 पेश नहीं किया गया।]

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 5 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (2) में 'the qualifications to be possessed for being so chosen' (इस प्रकार चुने जाने के लिये अर्ह होना) शब्दों के स्थान में 'qualifications and disqualifications for membership of the Council' (परिषद् की सदस्यता के लिए अर्हतायें और अनर्हतायें) शब्द रखे जाये।"

सभा यह देखेगी कि राज्य के विधान-मंडलों के सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में पहले अवसर पर उसने सुसंगत भागों में कई अनुच्छेद स्वीकार किये थे। उदाहरण के रूप में मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 167 की ओर आकर्षित करूंगा जिसमें उन अर्हताओं के साथ-साथ, जो पहले दी जा चुकी हैं, राज्य-सभा की सदस्यता के लिए अनर्हताओं को भी दिया गया है। उत्तर-सदन में प्रतिनिधान करने के लिए और इस परिषद् के लिए सदस्यों का निर्वाचन करने के लिए उपबन्ध करते हुये मैं नहीं समझ पाता हूं कि समान मान्यता, समान कारण और समान बल के साथ उत्तर-सदन में चुने जाने वाले सदस्यों की केवल अर्हताओं ही को क्यों निर्धारित किया जाता है और उनकी क्या अनर्हतायें होनी चाहिये, इसको क्यों नहीं निर्धारित किया जाता। अनुच्छेद 167 में दिया गया है कि विभिन्न परिस्थितियों के अधीन किसी सदस्य को किस प्रकार राज्य-परिषद् या सभा का सदस्य होने या निर्वाचित होने के लिये अनर्ह किया जाता है। इसलिये मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद 150 में उसी बात को स्पष्ट क्यों न कहा जाये।

इस अनुच्छेद के बारे में एक बात और है और वह यह है। नया संशोधन यह निर्धारित करता है कि परिषद् में प्रथम सदन के समस्त सदस्यों के एक चौथाई या 25 प्रतिशत से अधिक सदस्य नहीं होंगे। एक परन्तुक में आगे यह और भी निर्धारित किया गया है कि "परन्तु किसी अवस्था में भी किसी राज्य की विधान-परिषद के सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम न होगी"। यह मेरी समझ में नहीं आता है कि खास दशाओं में ये दोनों बातें किस प्रकार एक साथ होंगी। उदाहरणार्थ, हमने अनुच्छेद 148 स्वीकार कर लिया–

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं माननीय सदस्य से निवेदन करूंगा कि वे फिर अनुच्छेद 167 को पढ़ें।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं दूसरी बात का जिक्र कर रहा हूं।

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:__ पहली बात के बारे में आपके क्या विचार हैं? क्या आप उसके पक्ष में हैं?

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि अनुच्छेद 167 अनर्हताओं को निर्धारित करता है.....।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ दोनों सभा और राज्य-परिषद् के लिये।

*__श्री एच.वी. कामत:__ इस खास अनुच्छेद में, जिसे आज डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किया है, उन्होंने केवल अर्हताओं का उल्लेख करना ठीक समझा। इसको ही क्यों दुहराया जाता है और दूसरी बात को क्यों नहीं दुहराया जाता? उनके तर्क पर मुझे तो कुछ भी विश्वास नहीं है। यदि डॉ. अम्बेडकर यह मानते हैं कि इस अनुच्छेद में केवल अर्हतायें हैं तो फिर अनर्हताओं का भी उल्लेख क्यों नहीं किया जाता? जो प्रश्न मैंने पहले उठाया था वह समाप्त हुआ।

दूसरे प्रश्न के संबंध में मैं केवल यह कहूंगा कि एक चौथाई सदस्य और चालीस से कम न हों संबंधी उपबन्ध कुछ विशिष्ट दशाओं में शायद कठिनाई उत्पन्न कर दे। आज हम अनुच्छेद 148 पारित कर चुके हैं जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि कुछ प्रांतों में जिनमें द्वितीय सदन नहीं हैं उनमें यदि वहां की सभा राज्य-परिषद् रखना चाहती है तो द्वितीय सदन रख सकते हैं। आसाम और उड़ीसा ऐसे प्रांत हैं जिनकी जनसंख्या दस करोड़ से कम है, अत: प्रथम सदन में सौ सदस्यों से कम सदस्य होंगे। इस अनुच्छेद के अनुसार जिसे डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किया है, उत्तर-सदन में सदस्यों की संख्या एक चौथाई से अधिक और चालीस से कम नहीं होनी चाहिये। मुझे आश्चर्य है कि मसौदा-समिति के विद्वान सदस्यों द्वारा इन दोनों में कैसे सामंजस्य स्थापित किया जायेगा। मूल मसौदे में अनुच्छेद 150 जिस रूप में था, वह इससे कहीं अधिक अच्छा था। उसमें केवल यह कहा गया था कि उसमें राज्य-सभा के समस्त सदस्यों की संख्या के एक चौथाई या 25 प्रतिशत से अधिक सदस्य नहीं होंगे और यह नहीं दिया गया था कि न्यूनातिन्यून् क्या संख्या होगी। जैसाकि मैंने कहा है आसाम और उड़ीसा जैसे प्रांत हैं और मैसूर तथा अन्य राज्यों जैसे राज्य हैं, जो भारतीय संघ में प्रवेश कर चुके हैं और भारत का अंग बन चुके हैं, जिनकी समस्त जनसंख्या दस करोड़ से कम है। इन राज्यों की सभा में 100 से कम सदस्य होंगे। यदि आप प्रथम सदन के 25 प्रतिशत से अनधिक का और 40 से अन्यून का द्वितीय सदन चाहते हैं, तो यह हिसाब तो मेरी समझ में नहीं आता है। यह वह गणित तो नहीं है जिसको मैंने पाठशाला या विद्यालय में पढ़ा था—हम एक नई प्रकार का गणित बना रहे हैं—उच्च या न्यून कोटि का गणित बना रहे हैं। मैं आशा करता हूं कि जब यह कठिनाई उत्पन्न होगी, उस समय मसौदा-समिति इसको भली प्रकार हल करेगी और इस कठिनाई से मुक्त होने के लिए कोई उपयुक्त साधन खोजा जायेगा। यदि इसका आशय यह है—यद्यपि मैं नहीं जानता हूं कि आशय है क्या—कि प्रथम सदन में चाहे जितने सदस्य हों उत्तर-सदन में 40 से कम नहीं होंगे, तब तो उसका कुछ अर्थ निकल आयेगा। इस सूरत में मैं यह तर्क प्रस्तुत करना चाहूंगा कि उड़ीसा, आसाम या मैसूर में जिनमें कि प्रथम सदन सौ से कम का होगा (कदाचित् अस्सी या नब्बे का) मैं नहीं समझता हूं कि उत्तर सदन की आवश्यकता है। प्रथम सदन स्वयं सत्तर या अस्सी का है और मैं नहीं समझता हूं कि हम 40 सदस्यों का उत्तर सदन रखें। अत: मेरे विचार से यह अनुच्छेद आवश्यक नहीं

है और मूल मसौदे में अनुच्छेद 150 जिस रूप में था वह कहीं अधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण उपबन्ध था और मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि मूल अनुच्छेद 150 पर विचार किया जाये और इस नये अनुच्छेद को सभा अस्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** मूल अनुच्छेद 150 पर हमारे पास कई संशोधन आये थे। क्या कोई सदस्य उन संशोधनों को पेश करना चाहता है जो इस अपर सूची में छपे हुये हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मुझे डॉ. अम्बेडकर का भाषण सुनकर आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस संशोधन के पेश करने में एक नियम विरुद्ध बात है। राज्यों में द्वितीय सदन के लिए हमने उपबन्ध कर दिया है फिर भी द्वितीय सदन की रचना को हम संसद् के विनिश्चय पर छोड़ रहे हैं। सर्वप्रथम तो मैं इसी सिद्धांत पर आपत्ति करता हूं कि संसद इस संविधान के किसी भाग को बनाये। जब हम संविधान बना रहे हैं तो हमें उसके प्रत्येक भाग को समाप्त करना चाहिये। हमने यह निर्धारित कर दिया है कि दो-तिहाई बहुमत के द्वारा ही उसका परिवर्तन किया जा सकता है। यदि संसद् कोई विधि बनाती है तो वह सदैव बहुमत द्वारा परिवर्तनशील रहेगी और इसका कभी कोई अन्त नहीं होगा। अत: मैं समझता हूं कि संविधान के बारे में कोई बात संसद् पर छोड़ना एक बहुत ही गलत प्रक्रिया है। और फिर ऐसी कोई बात नहीं है कि उत्तर-सदन के इस प्रश्न पर हम किसी समझौते को क्यों नहीं कर सकते हैं। एक बार जब हमने यह प्रतिगामी कार्य स्वीकार कर लिया तो संविधान में इन सदनों के बनाने के उपबन्ध हम रखें जो जहां वे प्रथम सदनों के कार्य का पुनर्विलोकन कर सकते हैं और जहां वे ये बता सकते हैं कि प्रथम सदन ने क्या-क्या त्रुटियां की, वहां वास्तव में पुनरीक्षण करने वाले सदनों के रूप में कार्य करें। मैं समझता हूं कि मूल अनुच्छेद 150 के भाग (2) का ही संशोधन होना चाहिए। मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत से इस बात में सहमत हूं कि उत्तर-सदन में सदस्यों की संख्या प्रथम सदन के सदस्यों की संख्या के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। जहां प्रथम सदन में केवल 60 या 80 सदस्य है वहां उत्तर-सदन में 40 सदस्य रखना मेरे विचार से एक बहुत ही गलत सिद्धांत है। अनुच्छेद 150 के खंड (1) में कहा गया है:

"विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक चौथाई से अधिक न होगी।"

मैं समझता हूं कि यह रहना चाहिये और न्यूनातिन्यून 40 या 50 की सीमा नियत करना और भी अधिक प्रतिगामी कदम होगा। अनुच्छेद 150 के खंड (2) के स्थान में मैं चाहता हूं कि मेरे संशोधन संख्या 138 को रखा जाये जो इस प्रकार है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2268, 2270, 2271, 2272 और 2273 के निर्देश सहित अनुच्छेद 150 के खंड (2), (3), (4) और (5) के स्थान में निम्न रखा जाये:-

'(2) Of the total number of members in the Legislative Council of a State:—

(a) 15 per cent. shall be elected by an electoral college comprising all the members of the District Boards in the State;

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(b) 15 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the members of the learned professions and specialists in any branch of learning;

(c) 10 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the persons holding the Bachelor's degree of any university in the State or holding a degree recognized by the Government of the State to be equivalent thereto;

(d) 5 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the members of the Senates or the Courts of the various universities in the State;

(e) 5 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the members of the Municipal Boards in the State;

(f) 5 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the members of the trade Unions in the State registered with the Government;

(g) 5 per cent. shall be elected by an electoral college consisting of all the members of the various Chambers of Commerce recognised by the Government of the State;

(h) 30 per cent. shall be elected by the members of the Legislative Assembly of the State; and

(i) the remainder 10 per cent. shall be nominated by the Governor.

(3) All elections in clause (2) of the this article shall be in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(4) The qualifications of voters and other details necessary for the formation of the electoral colleges for the elections mentioned in clause (2) of this article shall be defined by an Act of Parliament.' "

[(2) किसी राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या का—

(क) 15 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें राज्य के जिला-मंडलों के समस्त सदस्य होंगे;

(ख) 15 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें शिक्षा-वृत्ति के समस्त सदस्य और शिक्षा की किसी शाखा के विशेषज्ञ होंगे;

(ग) 10 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें राज्य की किसी विश्वविद्यालय की बी.ए. की उपाधि धारण करने वाला अथवा उस राज्य की सरकार द्वारा बी.ए. के समान अभिज्ञात उपाधि धारण करने वाले समस्त व्यक्ति होंगे;

(घ) 5 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें राज्य की विभिन्न विश्वविद्यालयों की व्यवस्थापिकाओं या परिषदों के समस्त सदस्य होंगे;

(ङ) 5 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें राज्य के नगरपालिका-मंडल के समस्त सदस्य होंगे;

(च) 5 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें सरकार में पंजीबद्ध राज्य के कार्मिक संघों के सब सदस्य होंगे;

(छ) 5 प्रतिशत उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किया जायेगा, जिसमें राज्य की सरकार द्वारा अभिज्ञात विभिन्न वाणिज्य मंडलों के सब सदस्य होंगे;

(ज) 30 प्रतिशत राज्य की विधान-सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जायेगा; और

(झ) शेष 10 प्रतिशत राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद के खंड (2) के समस्त निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान के अनुसार किये जायेंगे।

(4) इस अनुच्छेद के खंड (2) में उल्लिखित निर्वाचनों के लिये निर्वाचक निकाय बनाने के लिए अन्य आवश्यक विवरण और मतदाताओं की अर्हतायें संसद के अधिनियम द्वारा परिभाषित की जायेंगी।]

इस सभा के समक्ष मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अब जबकि हमने द्वितीय सदन के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, द्वितीय सदन का समुचित प्रकार्य केवल यही हो सकता है कि वह जो कुछ प्रथम सदन करे उसका पुनरीक्षण करे और जिन समस्याओं के लिए वे विधान बनाये उनके प्रति उनको कुशल मंत्रणा दें। इसलिए, श्रीमान, मैं सोचता हूं कि उत्तर-सदन में प्रांत के कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्ति होने चाहियें। और इन बुद्धिमानों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी सार्वजनिक हो; इसी कारण मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध किया है कि 15 प्रतिशत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

सदस्य उस निर्वाचक निकाय द्वारा निर्वाचित किये जायें जिसमें राज्य के जिला-मंडलों के सदस्य हों। श्रीमान्, प्रत्येक जिले में एक जिला-मंडल है जिनमें अब वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन होगा और इस जिला-मंडलों में हमारे जिले के देहाती भाग के बुद्धिमान व्यक्तियों को हम रखेंगे और यदि उनको सदस्यों के 15 प्रतिशत का निर्वाचन करने दिया जाता है तो वे अपने काम में और भी अधिक रुचि रखेंगे और विधान-मंडलों में उनका समुचित प्रतिनिधान भी हो जायेगा। यह सत्य है कि भावी स्वराज्य सरकार में स्थानीय निकायों का जबरदस्त हाथ होगा और इस कारण मैं समझता हूं कि इन समस्त स्थानीय निकायों को उस विधान में हाथ बंटाने दिया जाये जिसके द्वारा प्रांतों पर शासन किया जायेगा। अत: मेरा विचार है कि जिला-मंडलों का प्रतिनिधान बहुत महत्वपूर्ण है और इसके लिए उपबन्ध किया जाना चाहिये। इसके पश्चात् शिक्षा-वृत्ति वाले और शिक्षा की किसी शाखा में से विशेषज्ञ आते हैं और इनके लिए मेरे संशोधन में 15 प्रतिशत प्रतिनिधान है, इसका अर्थ यह है कि प्रोफेसर, डाक्टर, इंजीनियर, वकील तथा अन्य वृत्तियां जिनमें विद्वान मनुष्य हों जो यह सोच सकते हैं कि कोई विशिष्ट साधन किस प्रकार राज्य के हितों पर प्रभाव डालेगा, उनका उत्तर-सदन में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधान होगा। ये विद्वान व्यक्ति अपनी कुशल तथा विद्वतापूर्ण मंत्रणा दे सकेंगे जो प्रथम सदन द्वारा पारित किये गये विधान के पुनरीक्षण में सहायक होगी। इसके पश्चात्, विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों को 10 प्रतिशत स्थान दिये गये हैं। मैं समझता हूं कि हम सब यह अनुभव करते हैं कि आज देश के कई विद्वान व्यक्ति इस बात से असंतुष्ट है कि इस वर्ग से साधारणतया विधान-मंडलों में प्रतिनिधि नहीं आते हैं और यह महत्वपूर्ण बात है कि हमें उनके सहयोग से वंचित नहीं रहना चाहिये। अत: श्रीमान्, मैं समझता हूं कि कम से कम उत्तर-सदन में उनके लिए उपबन्ध किया जाये जिससे कि प्रथम सदन द्वारा पारित किये गये अधिनियम के पुनरीक्षण में अपने ज्ञान से वे हमारी सहायता करें। इसके पश्चात्, श्रीमान्, व्यवस्थापिकाओं और परिषदों को भी 5 प्रतिशत स्थान दिये गये हैं। हम यह चाहते हैं कि हमारे भावी विधान में विश्वविद्यालय सहायता करें और इसीलिये उनके लिए स्थान रखे गये हैं। इसके पश्चात्, श्रीमान्, राज्य के नगरपालिका-मंडलों के लिए 5 प्रतिशत स्थान दिये गये हैं। इस प्रकार प्रांत की नगरपालिकाओं का राज्य के विधान-मंडल में हाथ होगा और वे अपनी मांग तथा आवश्यकतायें रख सकेंगी। इसके पश्चात्, श्रीमान्, 5 प्रतिशत कार्मिक संघों को दिया गया है। यहां मैं यह कहूंगा कि हमारे संविधान में हमने श्रमिकों के लिए कोई विशेष प्रतिनिधान नहीं दिया है। हम जानते हैं कि भारत में वे इस प्रकार सार्वजनिक प्रतिनिधान प्राप्त नहीं कर सकते हैं; क्योंकि किसी भी राज्य में कार्मिक संघों की संख्या किसी विशिष्ट क्षेत्र में केन्द्रित नहीं है। इसी कारण हम प्रथम सदन में कार्मिक संघों के सदस्यों को कोई प्रतिनिधान नहीं दे रहे हैं। कदाचित, सिवाय बम्बई, कलकत्ता और ऐसे ही कुछ बड़े केन्दों के निर्वाचन में श्रमिकों का कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए मैं सोचता हूं कि उत्तर-सदन में श्रमिकों का कुछ प्रतिनिधान हो। मैंने वाणिज्य मंडलों को भी यही प्रतिनिधान दिया है जिससे कि कोई यह शिकायत न कर सके कि हमने पक्षपात किया और उनको प्रतिनिधान नहीं मिला। मेरे संशोधन के अधीन राज्य की सभाओं को 30 प्रतिशत प्रतिनिधान दिया गया है और शेष 10 प्रतिशत सदस्यों

को राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जायेगा जिससे कि प्रथम सदनों द्वारा पारित किये गये विधान के पुनरीक्षण में परिषद् को सहायता देने में जो लोग विशेष प्रकार से योग्य हैं, वे सब वहां आ जायें। कभी-कभी प्रथम सदन में जल्दबाजी से विधान पारित कर दिया जाता है और उसका पुनरीक्षण आवश्यक हो जाता है। यदि राज्य के समस्त वर्गों से उत्तर सदन में लोग लिये जाते हैं तो अपनी बुद्धिमत्ता से वे अपने कर्त्तव्यों का संतोषजनक रीति से निर्वहन कर सकेंगे। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि संविधान में उत्तर-सदन की रचना का उपबन्ध न करने वाली कमी को बनी रहने देने के स्थान में—जिस कमी को डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है—उत्तर-सदन के रचना संबंधी इन उपबन्धों को संविधान में रखा जाये। मैं आशा करता हूं कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा।

***अध्यक्षः** क्या आप अपने नाम के अन्य किसी संशोधन को पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** जी नहीं।

***अध्यक्षः** मैं समझ लेता हूं कि कोई संशोधन पेश नहीं किया जा रहा है। संशोधनों और अनुच्छेद पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, मुझे अनुच्छेद 150 पर एक छोटी सी टीका करनी है। मैं एक ऐसी प्रवृत्ति देख रहा हूं जो कुछ बुरी सी है। मैंने देखा है कि सदस्यों में जब मतभेद तीव्र हो जाता है तो सभा की प्रवृत्ति संसद् के उत्तरदायित्व पर विषयों को छोड़ देने की ओर हो जाती है। मेरी भावना यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस रूप में इस समय इस खंड को प्रस्थापित किया है, उसको उसी रूप में पारित करके संविधान-सभा वास्तव में अपने उस उत्तरदायित्व से विमुख होगी जो यथार्थ में उसी का निजी उत्तरदायित्व है।

राज्य के उत्तर-सदन की रूपरेखा की परिभाषा किये बिना संविधान पूर्णतया अपूर्ण रहेगा। यदि हम इस वादहेतु का अंतिम विनिश्चय नहीं कर सकते हैं कि राज्यों में उत्तर-सदन की रचना किस प्रकार की होगी और किस रीति से तथा किन तत्वों से, किन समूहों से और लोगों के किस वर्ग से सदस्य लिये जायेंगे, तो हमें जो काम सौंपा गया है उसके करने में असफल होंगे। ऐसी अन्य अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं जिनको हम स्थगित कर चुके हैं। प्रवृत्ति यह रही है कि उन सब प्रश्नों के विनिश्चयों को स्थगित करते चले आये हैं जिनके लिए बुद्धिमता और विचार अपेक्षित है। जो कुछ विवादास्पद है उस पर अन्तिम विनिश्चय इस महान् सभा द्वारा किया जाना चाहिये, अन्यथा इस संविधान-सभा के कुछ भी अर्थ न होगा। संविधान का अर्थ यह है कि विवादास्पद विषयों पर वह सदैव के लिए अंतिम विनिश्चय करे ओर उससे समस्त विवाद का अंत हो जाता है। जितना अधिक विवादास्पद विषय होता है उसके विनिश्चय करने का उतना ही अधिक कर्त्तव्यभार हम पर आता है। संविधान-सभा प्रत्येक वर्ष नहीं बैठ सकती है। संसद् पर इस उत्तरदायित्व को डालकर हम अपने उत्तरदायित्व से विमुख हो रहे हैं और अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर रहे हैं। जिस रूप में अनुच्छेद है उसमें कहा गया है-"किसी राज्य की विधान-परिषद् में स्थानों का बटवारा, इन स्थानों की पूर्ति के लिए व्यक्तियों का चुनना, इस प्रकार चुने जाने के लिए अर्ह होना और इन व्यक्तियों के चुनाव में मत देने का हक रखने के लिए व्यक्तियों का अर्ह होना वैसे ही होगा जैसे संसद् विधि द्वारा विनिहित करे"। संसद् प्रत्येक विषय के लिए विनिहित कर सकती

[श्री महावीर त्यागी]

थी। प्रत्येक विवादास्पद विषय को राष्ट्र क्षेमपूर्वक संसद् को सौंप सकता था। आखिरकार संसद् भी तो एक उत्तरदायित्वपूर्ण निर्वाचित निकाय होगा। परन्तु फिर भी उसने संविधान-सभा पर यह काम छोड़ दिया है। वेतन और भत्ते, घर तथा अन्य अनेक प्रकीर्ण विषयों के तुच्छ तथा व्यर्थ के विवरण तक में हम चले गये हैं। जिसके लिए अन्य कोई संविधान व्यवस्था नहीं करता है। वास्तव में हमारा ही एक अनोखा संविधान है, जिसमें इन सब बातों का विवरण है जैसे कि हम किसी दंड संहिता या व्यवहार संहिता के अधिनियम बना रहे हों। परन्तु संविधान के इस मूलभूत प्रश्न पर कि किस प्रकार से राज्यों में उत्तर-सदन की रचना हो, हम विनिश्चय करने से हट रहे हैं। इससे यह समझा जायेगा कि संविधान-सभा की बुद्धि रिक्त थी। उत्तर-सदन की स्थिति का विनिधान करने के पश्चात् क्या हमारा यह कार्य नहीं है कि हम उसके उद्देश्य की व्याख्या करें? हमें राष्ट्र के सामने एक ऐसा विचार, एक ऐसा तर्क रखना चाहिये कि राज्यों में हमने उत्तर-सदन की रचना क्यों मंजूर की। हमको यह कहना चाहिये कि उत्तर-सदन के सदस्य अमुक-अमुक वर्गों में से होंगे और उसके द्वारा हमें यह विचार प्रकट कर देना चाहिये कि जब इस अधिनियम को पारित किया था, संविधान-सभा का यह विचार था कि इन सदनों में अमुक-अमुक वर्ग के प्रतिनिधि होने चाहिये, जिससे कि उनके प्रतिनिधान से पूर्ण लाभ उठाया जा सके। इस विवरण के अभाव में मैं नहीं समझ पाता हूं कि उत्तर-सदन के लिये सुझाव ही क्यों रखा गया है। मूल मसौदे को मैं समझ सकता था; वह आयरलैंड के संविधान के अनुसार था, उसका कुछ आशय था। उसमें कुछ वर्ग दिये हुए थे जिनकी तालिकाओं में से उत्तर-सदन के लिए निर्वाचन होता। हम कह सकते थे कि हमने विभिन्न प्रांतों में उत्तर-सदन का सृजन उन लोगों के लाने के लिए किया जो अन्यथा राजनैतिक युद्ध के अखाड़े में प्रवेश नहीं करते हैं। क्योंकि कभी-कभी राजनैतिक पक्ष या गुटबन्दी में इतना पतन हो जाता है कि सज्जन मनुष्य, अधिकतर विद्वान मनुष्य जो विवेकशील होते हैं वे राजनीति के गंदे गर्त में नहीं गिरना चाहते हैं। यदि हम उत्तर-सदनों की रचना संबंधी विवरण का विनिधान करना चाहते तो हम कह सकते थे कि वे समाज के उन तत्वों के लाने के लिए हैं, जो वास्तव में बुद्धिमान तथा विवेकशील व्यक्ति हैं और जो अन्य प्रकार से चुनाव में खड़े नहीं होंगे। उनको लाने के लिए और उनके ज्ञान, अनुभव और विवेक से लाभ उठाने के लिए हमें कोई मार्ग रखना चाहिये। ऐसे तत्वों को लाने के लिए और जबकि भावी राज्य अपना विधान बनाते हैं तो उनकी मंत्रणा से लाभ उठाने के लिए मैं उत्तर-सदन के सृजन की बात समझ सकता हूं। परन्तु भावी संतानों को हम कोई ऐसा संकेत करने में असफल हुये हैं कि विभिन्न राज्यों में द्वितीय सदन के सृजन करने में हमारा क्या उद्देश्य था। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि वे कृपा कर इस बात पर कुछ रोशनी डालें कि उन्होंने इसे असंदिग्ध दशा में क्यों छोड़ दिया और उन्होंने इसको क्यों टाला। हम लोगों में सबसे महान् साहसिक व्यक्ति डॉ. अम्बेडकर हैं, वे सब विवादों का सामना करते हैं; वे कुशल तर्कवेत्ता है और साथ ही साथ एक सफल तार्किक भी हैं। वे इस छोटे से विषय को क्यों टाल रहे हैं? मैं चाहता हूं कि इस उत्तरदायित्व के टालने में जो वास्तविक विचार उनके हैं, उन्हें वे स्पष्ट रखें और बतायें कि उत्तर-सदन की समस्त रचना विभिन्न प्रांतों पर क्यों छोड़ दी गई है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (1) के परन्तुक का मैं विरोध करना चाहता हूं। यह बहुत ही नियम-विरुद्ध परन्तुक है और लगभग समूचे के समूचे खंड (1) का विरोध करता है। इस अनुच्छेद की प्रगति के इतिहास से उद्‌भूत एक बहुत ही नियम विरोधी परिस्थिति का वह एक आश्चर्यजनक अवशेष है। संविधान के मूल मसौदे में यह अनुच्छेद जिस रूप में था उस रूप में यह अच्छा था, परन्तु मसौदा-समिति ने इसे और भी अच्छा बनाना चाहा और फिर छ: महीने तक कार्यावली में उसने एक संशोधन को रखा जिसके बारे में इससे अधिक क्या कहा जाये कि वह एक बहुत ही बड़ी गणित संबंधी मूर्खता थी। कल तक जिस रूप में वह संशोधन था वह बड़ा ही मूर्खतापूर्ण था। कल किसी समय ही मसौदा-समिति अथवा कोई जागरुक मसौदा लेखक छ: महीने की घोर नींद से जागा और तब मालूम किया कि उसमें कोई बड़ा गंभीर विरोध है और फिर उस त्रुटि को ठीक करने का आखिरी समय में प्रयत्न किया गया और यह वर्तमान अनुच्छेद उसी के फलस्वरूप है, जो कि अब भी गणित संबंधी मूर्खता से परिपूर्ण है और बहुत ही नियम-विरुद्ध है। संविधान के मसौदे में कल यह संशोधन जिस रूप में था उसमें खंड (1) इस प्रकार था:

> "विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक-चौथाई से अधिक या चालीस से कम नहीं होगी।"

यह खंड बहुत ही सादा तथा अनाक्रमणकारी प्रतीत होता था और उसका प्रभाव यह था कि विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्या 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं एक औचित्य प्रश्न रखने के लिए खड़ा होता हूं। मेरे मित्र एक ऐसे मसौदे की आलोचना कर रहे हैं, जो सभा के समक्ष नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा हूं कि आज के संशोधन में यह असंतोषजनक स्थिति किस प्रकार उत्पन्न हुई।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह सदस्यों के समक्ष नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मसौदे में यह उपबन्ध किया गया था कि विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्या एक चौथाई से अधिक कभी नहीं होगी और 40 से कम कभी नहीं होगी। विरोधी बात यह थी कि अनुच्छेद 149 जिसे हम पारित कर चुके हैं, उसके खंड (3) के परन्तुक में हमने यह उपबन्ध किया है कि राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या 500 से कभी अधिक नहीं होगी और 60 से कभी कम न होगी। न्यूनातिन्यून संख्या 60 को लीजिये। यदि किसी राज्य में न्यूनातिन्यून संख्या 60 है, एक चौथाई नियम का यह आशय होगा कि परिषद् के सदस्यों की संख्या 15 से अधिक न होगी परन्तु प्रसंगान्तर्गत संशोधन के खंड (1) का पिछला भाग यह है कि वह एक चौथाई से कभी अधिक न हो अर्थात् वह 15 से कभी अधिक न होगी और 40 से कभी कम नहीं। अधिकतम संख्या 15 है और न्यूनतम संख्या 40। वास्तव में कल तक यह खंड इसी प्रकार था कि न्यूनतम अधिकतम से कहीं अधिक था।

*__अध्यक्षः__ क्या किसी ऐसे खंड पर विचार करने से कोई लाभ है जो कल था और आज नहीं है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान्, मैं अपने विषय पर एक दम आ रहा हूं। इस त्रुटि को ठीक करने के लिए अन्तिम समय में प्रयास किया गया और मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह इस बात पर विचार करे कि अब विषय स्थिति क्या है। आज जिस रूप में खंड (1) है, सामान्यतया परिषद् के सदस्यों की संख्या एक चौथाई से अधिक नहीं होगी। अपने ध्यान को 60 सदस्यों की सभा की ओर केन्द्रित करते हुए, वर्तमान खंड के अनुसार संख्या एक चौथाई अर्थात् 15 से अधिक नहीं होनी चाहिये। इसके पश्चात् परन्तुक में कहा गया है कि वह 40 से कम नहीं होगी। परन्तुक की न्यूनतम संख्या खंड के कलेवर की अधिकतम संख्या से लगभग तिगुनी है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह इस विरोधी बात पर विचार करे। यद्यपि गणित सम्बन्धी मूर्खता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी व्यावहारिक मूर्खता बनी रही। होगा यह कि जिस राज्य की विधान-सभा में 60 सदस्य होंगे इस परन्तुक के कारण उसकी परिषद् के सदस्यों की संख्या कम से कम 40 होगी। प्रथम सदन की सदस्य संख्या 60 होगी और उत्तर-सदन की सदस्य संख्या 40। इस प्रकार विधान-सभा और विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्याओं में पूर्ण अनानुपात होगा। वास्तव में वर्तमान अनुच्छेद 150 के खंड (1) का महान आशय परिषद् के सदस्यों की संख्या घटाने का है। संख्या के घटाने में एक महान प्रश्न यह था कि उत्तर-सदन एक छोटा सदन होना चाहिये, जिससे वह एक प्रभावशाली रूप में पुनरीक्षण करने वाला सदन हो, पर उस राज्य की स्थिति की जिसकी सभा में 60 सदस्य हैं, तुलना करते हुए परिषद् में सदस्यों की अधिकतम संख्या बहुत अधिक हो जायेगी। सभा में संख्या 60 होगी और परिषद् में 40। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि इस अनानुपात का संयुक्त बैठक पर जो प्रभाव पड़ेगा उस पर वह विचार करे। यदि दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है तो उत्तर-सदन आसानी से सभा की सम्मति को पलट सकता है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि या तो परन्तुक में न्यूनतम संख्या को घटा दिया जाये और या वह विधान-सभा के सदस्यों की संख्या से किसी प्रकार का अनुपात रखे। क्योंकि वर्तमान रूप में तो वह तर्कहीन विगत काल का अवशेष मात्र है। कई दशाओं के लिए 40 कदाचित् बहुत अधिक है और केवल वहीं जहां कि प्रथम सदन में 160 सदस्य है न्यूनतम 40 ठीक होगा, परन्तु यदि वह 160 से कम है तब तो परन्तुक में दिया हुआ न्यूनतम बहुत अधिक हो जायेगा। इसी कारण मैं इस असंगत बात का इतिहास बताने का प्रयत्न कर रहा था। मैं निवेदन करता हूं कि या तो न्यूनतम संख्या को कम कर दिया जाये और या उसको बिलकुल ही न रखा जाये।

*__श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, जो संशोधन विशेषज्ञ समिति द्वारा इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न निकाय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, यद्यपि मैं साधारणतया उससे सहमत हूं, परन्तु अल्पसंख्यक वर्ग के कुछ प्रतिनिधान के सम्बन्ध में इन संशोधनों के निर्माताओं का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मूल मसौदा जो हमारे सामने रखा गया था, उसमें उन सम्प्रदायों के लिए बहुत उपबन्ध अन्तर्विष्ट थे, जो साधारण निर्वाचन में स्थान प्राप्त नहीं कर सकते

थे और यहां तक कि राज्यपाल को मनोनयन की शक्ति दी गई थी। वयस्क मताधिकार और इस सभा द्वारा स्वीकृत रक्षण से यह स्वाभाविक है कि अनुसूचित जातियों का कुछ अनुपात सभा में होगा और एकल संक्रमणीय मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के लिये उपबन्ध करने से यह संभव है कि अनुसूचित जातियां राज्य-परिषद् में प्रति निधान का कुछ अनुपात प्राप्त कर लें। पर इस संशोधन में, मैं यह कहूंगा कि चुनने की शक्ति और अर्हतायें नियत करने की शक्ति संसद को है जिसकी रचना हम जानते ही हैं और परिषद् में जहां तक अनुसूचित जाति के प्रतिनिधान का सम्बन्ध है वह नगण्य है। अतः मसौदा-समिति के सदस्यों से मैं यह जानना चाहूंगा अथवा मैं उस निकाय से यह आश्वासन चाहूंगा कि इस संशोधन की स्वीकृति से अनुसूचित जातियों के हित में क्षति न हो क्योंकि रूप केवल यही भय है कि जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है जिस रक्षण को मूलभूत मुझ में इस सभा ने स्वीकार कर लिया है उसको एक अवसर देना चाहिये और राज्य-परिषद् की सेवा करने का अवसर इन जातियों को देना चाहिये। मुझे विश्वास है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर इस प्रश्न को स्पष्ट करेंगे और मुझे यह आश्वासन देंगे कि भावी राज्य-परिषद् में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधान की समुचित रक्षा की जायेगी।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति अथवा उसके सभापति को द्वितीय सदनों के उपबन्ध सम्बन्धी उनके इस अंतिम कार्य पर बधाई देना मेरे लिये कठिन हो जाता है। सभा को यह विदित है कि इस विशेष विषय पर विभिन्न प्रान्तों को यह विनिश्चय करने के लिए कहा गया था कि वे अपने-अपने प्रान्तों में द्वितीय सदन रखना चाहते हैं या नहीं। प्रत्येक प्रान्त पृथक-पृथक समवेत हुए। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए संविधान-सभा के सदस्य पृथक-पृथक समवेत हुये और कुछ विनिश्चय किया। मैं समझता हूं कि नौ प्रांतों में से छह ने यह विनिश्चय किया कि द्वितीय सदन होना चाहिये। वे छह प्रान्त बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, मद्रास, बम्बई और पूर्वी पंजाब हैं। यह बात विनिश्चित कर ली गई। पर सारी मुसीबत तो इन द्वितीय सदनों की रचना पर खड़ी हुई जिनकी स्थापना इन प्रांतों में प्रस्थापित की गई थी। श्रीमान्, यह बड़े दुःख की बात है कि कई बार यहां तथा अन्यत्र प्रयत्न करने पर भी इस विषय पर कोई विनिश्चय नहीं हो पाया। थोड़े से मतभेद के कारण सारी बात हटा दी गई। और आज हम क्या देखते हैं? मसौदा-समिति ने अपनी समस्त योग्यता से इस संकट से निकल भागने का मार्ग खोज निकाला और वह यह है कि वह देश की संसद् से निवेदन कर रही है अथवा संसद् को प्राधिकार दे रही है कि वह इन सदनों की रचना निश्चित करे। डॉ. अम्बेडकर क्या मैं ठीक कह रहा हूं?

(माननीय डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकृति का संकेत किया।)

श्रीमान्, मैं इस स्थिति को नहीं समझ पाता हूं। मसौदा-समिति कहती है कि उसने न्यूनतम विरोध का मार्ग ग्रहण किया है। अवश्य, उन्होंने ऐसा ही किया है। पर आप यह न भूलें कि आपका देश संविधान बना रहा है और ऐसा कौन सा संविधान है जिसमें परिषद् अथवा विधान-मंडल के सदन की रचना न हो। हमारा संविधान का मसौदा एक बहुत बड़ी प्रति होती जा रही है जिसमें सब प्रकार के उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं, सचिवालय, महालेखा-परीक्षक, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन के उपबन्ध और ऐसी-ऐसी बातें जो मेरी तुच्छ मति के अनुसार इस

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

संविधान में नहीं होनी चाहिये थी, पर विधान-मंडल की रचना के विषय में जो प्रत्येक संविधान का मेरूदंड है—यह सत्य है कि देश की सरकार विधान-मंडलों द्वारा ही प्रकार्य करती है—यह होने पर भी कि कुछ प्रान्तों ने यह विनिश्चय किया है कि वे द्वितीय सदन रखना चाहते हैं। हम किसी हल की व्यवस्था नहीं कर सकते। यह बात वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम इस समय उसके लिए कोई उपबन्ध नहीं कर सकते हैं तो संसद् में आगामी तीन माह में उसके करने के लिए क्या आसार हैं? क्योंकि संविधान के प्रवर्तन में आने से पूर्व आपको कुछ न कुछ विनिश्चय करना ही है कि आप इन परिषदों की रचना को कोई रूप देना चाहते हैं या नहीं। यदि सभा का विचार द्वितीय सदन रखने का न था तो उस स्थिति का उसे साहसपूर्वक उचित रूप से सामना करना चाहिये था और कहना चहिये था कि "द्वितीय सदन नहीं होंगे"। कोई व्यक्ति कम से कम उस स्थिति को समझ तो सकता था। जबकि भारत के अधिकांश प्रान्तों ने द्वितीय सदन के लिये विनिश्चय कर लिया है तो उसकी रचना का विनिश्चय करना आपको इतना कठिन प्रतीत क्यों होता है और निराश होकर संविधान में उसकी रचना के प्रावधान करने के विचार का आप परित्याग क्यों करते हैं? मैं इस बात को नहीं समझ सकता हूं। इस अनुच्छेद से मुझे कुछ भी हर्ष नहीं हुआ है। आप केवल कुसमय का स्थान कर रहे हैं। इस समय आप केवल यही लाभ उठा रहे हैं। पर याद रखिये संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व आपको इस पर विनिश्चय करना होगा, और निःसंदेह संविधान-सभा को ही विधान-मंडल की रचना विनिश्चित करने का सर्वोत्तम प्राधिकार हो सकता है न कि संसद् को। इसीलिये मैं कहता हूं कि यह कोई आनन्ददायक कार्य नहीं है। मसौदा समिति को कोई मार्ग खोज निकालना चाहिये क्योंकि यह केवल असंगत प्रश्न ही नहीं है परन्तु इससे एक कमी उत्पन्न हो गई है, कुछ भी हो, यह एक अयुक्तियुक्त तथा अशोभनीय कार्य है।

***प्रो. एन.जी. रंगा:** (मद्रासः जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि मेरे मित्र श्री एल.के. मैत्र ने जो स्थिति ग्रहण की है मैं उससे सहमत नहीं हो सकता हूं। मैं समझता हूं कि मसौदा-समिति ने यह एक बुद्धिमतापूर्ण सुझाव दिया है कि हमें अभी यहां इन सब बातों के विवरण में नहीं जाना चाहिये कि इस एक चौथाई अंश में किस-किस का प्रतिनिधान हो और कितना-कितना इत्यादि, इत्यादि। श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि मैं द्वितीय सदनों के पक्ष में बिलकुल नहीं हूं। परन्तु अब सभा ने द्वितीय सदनों का रखना विनिश्चित कर लिया है और वह इस बात के भी पक्ष में है कि इन द्वितीय आगारों में अपनी समाज के कुछ वर्ग के लोगों को अथवा जन समूह को अथवा लोगों की श्रेणियों को विशेष प्रतिनिधान दिया जाये तो यह अधिक अच्छा है कि इनके विवरण को और इस प्रश्न के विवरणपूर्ण निश्चय को संसद् पर छोड़ दिया जाये जहां हमारे पास बहुत ही अवकाशपूर्ण प्रक्रिया होती है जिससे कि सदस्य अपने सुझाव रख सकें और उनके सुझावों पर संसद् द्वारा समुचित विचार हो सके।

दूसरी बात यह है कि लोगों के लिये यह कहना बहुत ही सरल है कि विद्वान तथा नागरिक वर्गों के इन-इन समूहों का प्रतिनिधान उत्तर सदन में होना चाहिये

और इतना ही सरल उनके लिये यह है कि वे अन्य भिन्न देशों से अनेक उदाहरण उद्धृत कर दें। पर यह देखना आवश्यक है कि द्वितीय सदनों में किसी एक वर्ग के लोगों को बहुत अधिक पासंग न दे दिया जाये। यह एक अपयशपूर्ण तथ्य प्रचलित है कि समस्त संसार में द्वितीय सदनों ने प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के रूप में कार्य किया है और प्रगतिमूलक विधान को उचित समय में पारित करने के कार्य में रुकावट डाली है। अतः यह देखने में हम बहुत अधिक सावधान नहीं रह सकते हैं कि द्वितीय सदन में वे लोग न भर जायें जो विशेषकर जो जैसी स्थिति है उसे वैसी ही रहने देने में रुचि रखते हों अथवा जो किसी प्रकार के भी प्रगतिमूलक विधान में रुकावट डालने में रुचि रखते हों अथवा प्रगतिमूलक प्रशासन की उन्नति और स्थापना में रुकावट डालने के इच्छुक हों। इसी कारण हम सूची 3 के पृष्ठ 4 पर के विवरण के पक्ष में थे जिसमें हमारी समाज की कुछ श्रेणियां प्रगणित की गई हैं।

मेरा ख्याल है कि अन्यत्र किसी अन्य अवसर पर इस विशिष्ट विषय पर हमने विवरण पूर्ण वाद-विवाद किया था और हममें से बहुत से इस प्रस्थापना से सहमत हो चुके थे कि (क) साहित्य, कला, विज्ञान, औषधि विज्ञान; (ख) कृषि, मत्स्य पालन, सहकारी घरेलू उद्योग धन्धे और तत्सम्बन्धी विषय (ग) यन्त्र शास्त्र, वास्तुशास्त्र और निर्माण कला; (घ) सामाजिक सेवायें और सम्पादन कला इन सबों को उत्तर सदन में विशेष प्रकार का प्रतिनिधान देना चाहिये। पर बाद में विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचे कि यह अच्छा है कि इस विषय को संसद् के बाद में विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। मेरे माननीय मित्र पंडित मैत्र को शायद यह शंका है कि यदि हम इसे संसद् पर छोड़ देंगे तो वह इन द्वितीय सदनों की स्थिति में देर करेगी। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार की कोई देर होगी। अब से लेकर साधारण निर्वाचन तक जो आगे होने वाले हैं और समस्त प्रान्तों में प्रथम सदनों के बनने के पश्चात् भी काफी समय है जिसमें संसद् इस विषय को गंभीरतापूर्वक ले सकती है और इन सब विवरणों का निश्चय कर सकती है, यद्यपि ये ऐसे विवरण नहीं हैं जिनको इस सभा में इतनी शीघ्रता से निपटाया जा सके जितनी शीघ्रता से इस बैठक में निपटाया जा सकता है। इसी कारण मैं अपने माननीय मित्र पंडित मैत्र से निवेदन करता हूं कि वे अपनी निजी आपत्तियों पर विशेष ध्यान न दें और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करने में हमसे सहमत होकर उदार बने।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर द्वारा इस विशिष्ट अनुच्छेद पर पेश किये गये संशोधन पर वाद-विवाद ने मसौदा-समिति की इस बात पर आलोचना का रूप ग्रहण कर लिया है कि उसने प्रान्तों के उत्तर सदनों के प्रतिनिधान की समस्या पर कोई तैयार किया हुआ हल उपबंधित नहीं किया वरन इस वाद हेतु को संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया। मैं समझता हूं कि जो हल इस संशोधित अनुच्छेद में अन्तर्विष्ट है, जो सभा के समक्ष प्रस्तुत है, उसके अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ण हल के न रखने पर मसौदा समिति को क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में यह हो सकता है कि इस प्रकार की दशा में बाद के विचार ही सर्वोत्तम होते हैं और अनुच्छेद 150 पर असंख्य संशोधनों के प्रस्तुत होने से इस सभा के सदस्यों की सम्मति का जैसा संकेत मिला उस पर विचार करने के पश्चात् मसौदा-समिति ने सोचा कि जो स्थिति उसने मूल मसौदे में ग्रहण

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

की थी उसका वह पुनर्विलोकन करे। यह सत्य है कि मूल मसौदे में जो योजना सोची गई थी उसमें एक आधारभूत बात तालिकाओं द्वारा उत्तर सदन के लिए उम्मीदवार चुनने का प्रश्न था जो प्रणाली आयरलैंड के उदाहरण से ली गई थी। पर अपने संवैधानिक सलाहकार के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर जो आयरलैंड गये थे और जो साहित्य हमें प्राप्त हो सका उसके आधार पर बाद में हम यह सोचने के लिए विवश हुये कि तालिकायें बनाना और उनमें से उन सदस्यों का निर्वाचन करना जो देश का उत्तर सदन में प्रतिनिधान करें–यह आयरलैंड की प्रणाली वहां इतनी सफल सिद्ध नहीं हुई जितनी कि सोची गई थी। श्रीमान्, मैं इस सभा के सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि वे अनुच्छेद 150 पर उन विभिन्न संशोधन को देखें जो संशोधनों की विभिन्न सूचियों में दिये हुए हैं। इस सभा के सदस्य जिस रीति से उम्मीदवारों का निर्वाचन करना चाहते हैं उसके लिए किसी मतैक्य का क्या उनमें कोई संकेत है या वे निर्वाचक समूह का सृजन करना चाहते हैं? मैं समझता हूं कि विभिन्न सुझावों के आश्चर्यजनक प्रकार ने और इस तथ्य ने, कि एक सदस्य द्वारा किये गये किसी सुझाव में इस सभा के किसी और सदस्य द्वारा किये गये किसी सुझाव से कोई विशिष्ट गुण नहीं था, हमको यह सोचने के लिए विवश किया कि बिना और अधिक गंभीर अनुसंधान किये क्या सभा से किसी ऐसी प्रस्थापना स्वीकार करने के लिए कहना उचित होगा जिस पर सरसरी तौर से विनिश्चय किया गया है और जो वास्तव में पूर्ववर्ती अनुच्छेद में प्रगणित विभिन्न राज्यों के लिए उत्तर सदन के सृजन करने के प्रयोजन का अन्त करे।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:__ पर राज्य-परिषद् के प्रश्न को आप किस प्रकार हल कर सकते हैं?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ अपने माननीय मित्र पंडित लक्ष्मी कान्त मैत्र के निर्णय का मैं सर्वोच्च सम्मान करता हूं जिनके साथ अनेक वर्ष विधान-मंडल में काम करने का मुझे सौभाग्य तथा विशेषाधिकार प्राप्त हुआ था। पर मैं यह अवश्य कहूंगा कि इस उदाहरण में उन्होंने अपनी उत्तेजना को अपने विवेक से आगे बढ़ जाने दिया है। मैं यहां इस बात की व्याख्या कर दूं कि संसद के उत्तर सदन का निर्वाचन राज्य के प्रतिनिधान के आधार पर किया जायेगा और प्रथम सदन का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। प्रान्तीय विधान-मंडलों के प्रथम सदन का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। एक विनिश्चय के लिए सिद्धान्त के विनिश्चय के अतिरिक्त किसी अनुसंधान या महान विचार की आवश्यकता नहीं है। केवल इस बात की और आवश्यकता है कि निर्वाचन क्षेत्रों का किस प्रकार सीमांकन हो।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:__ यदि आप सोचते तो आप उसे कर सकते थे, पर आपने सोचा ही नहीं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ हम अन्त तक सोचते रहे कि हमें केवल राज्य के लिए प्रतिनिधान का उपबन्ध करना है: यह उस प्रकार का प्रतिनिधान है जिसका उपबन्ध उत्तर सदन के लिये सब संघीय संविधानों में हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** आपकी यह प्रथा रही है कि जब कोई कठिनाई हुई तो आपने उसे भावी संसद् पर पटक दिया। आप उसका कोई हल प्रस्तुत नहीं करते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं इस दोषारोपण का अपराधी नहीं मानता हूं क्योंकि मैं समझता हूं कि मसौदा समिति की कठिनाइयों का विचार ही नहीं किया है विशेषकर जबकि जो बातें प्राप्त हुई थीं उनकी जांच असंतोषजनक थी अथवा जो बातें हमारे सामने थीं वे हमारे निश्चय करने के लिए अपर्याप्त थीं। मैं अपने मित्र को, जो इस वादहेतु के इस रीति से विनिश्चय करने पर आपत्ति करते हैं, यह बताऊँ कि जब सन् 1935 का अधिनियम पारित हुआ था उस समय क्या हुआ था। एक मताधिकार समिति थी—और मेरा विश्वास है कि वह लोथियन समिति थी और बाद में हैमन्ड समिति आई—दोनों ने सारे देश का भ्रमण किया वे प्रत्येक प्रान्त में गई और दूसरी समिति ने तो सदस्य वरण किये उन्होंने पूरी-पूरी जांच की, केवल इसलिए कि प्रथम सदन के लिए भी मताधिकार का विनिश्चय करना था और उसी प्रकार उत्तर सदन के लिए भी करना था। इस विशेष उदाहरण में जो हमारे सामने है विभिन्न परिस्थितियों के कारण, जिनके प्रति न तो वे नेता जो हमारा पथ प्रदर्शन करते थे और न मसौदा समिति ही उत्तरदायी है, हमें राज्य के उत्तर-सदन के लिए निर्वाचक समूह की प्रस्थापना बनाने के लिए अपने सीमित साधनों पर निर्भर होना पड़ा। और यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण है। मैं समझता हूं कि साधारणतया स्वीकृत विचार यह है कि उत्तर सदन होना चाहिये जो केवल पुरनीक्षण निकाय के रूप में कार्य करे। कठिन विषयों पर विचार निश्चित करने के लिए प्रथम सदन को सहायता करे और इसमें उतनी देर लग जायेगी जो लोगों के लिए अपने विचार निश्चित करने के लिए अथवा किसी विषय का पुनरीक्षण करने के लिए, जिस पर वे अपने विचार निश्चित कर चुके हैं, आवश्यक है। यदि ठीक प्रकार की विधान-परिषद् रखने का उद्देश्य है तो उसका सृजन तो केवल तथ्यों को ठीक-ठीक जांच के पश्चात ही हो सकेगा; और अपराधी की बिना किसी भावना के अथवा क्षमा याचना का प्रयत्न करते हुए मैं यह कह सकता हूं कि मसौदा समिति अथवा जो लोग संविधान निर्माण से सम्बन्ध रखते हैं, उनके सामने वे पूरी बातें न थीं जो उत्तर सदन के लिए एक उपयुक्त निर्वाचक समूह की व्यवस्था करने के लिए आवश्यक हैं और जो विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का सामंजस्य करने के लिए आवश्यक हैं। यह हो सकता है कि संयुक्त प्रान्त में स्थानीय निकायों, विश्वविद्यालयों और शायद वाणिज्य-मंडलों का प्रतिनिधान आवश्यक समझा जाये, जबकि ऐसी परिस्थितियां कदाचित मद्रास जैसे प्रान्त में न हों जहां कि स्थानीय निकायों की स्थिति बदल रही है और हम नहीं जानते कि उनका अंतिम स्वरूप क्या होगा। यह भी हो सकता है कि यदि हम उत्तर सदन के सदस्यों के निर्वाचन के लिए विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्रों का उपबन्ध करते हैं तो कुछ वर्ष के बाद उन निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या यही न रहे। अत: यह बहुत आवश्यक है कि संविधान में उपबन्ध करके हम इस तंत्र को सदैव के लिए बन्धन न बनायें, वरन् उन परिवर्तनों के लिए उपबन्ध करें जो उत्तर सदन के निर्वाचक समूह के विषय में या अभ्यर्थियों की अर्हताओं के विषय में समय-समय पर आवश्यक हों और उन परिवर्तनों को संविधान में संशोधन करने की विस्तृत तथा कठिन रीति के बिना किया जा सके, बल्कि उन निबन्धनों में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

परिवर्तन करना संसद पर छोड़ दिया जाये जो जब आवश्यक समझे तब सांसदिक अधिनियम द्वारा कर ले। यह पूछा गया है कि यदि यह किया जायेगा तो इन उत्तर सदनों का निर्वाचन किस प्रकार हो सकता है? मैं समझता हूं कि इस बात का सोचना बहुत ही सरल है कि इस संविधान के प्रख्यापन में और निर्वाचन होने में कुछ अन्तर्वर्ती समय होगा। यह अन्तर्वर्ती समय कुछ माह हो सकता है या कुछ वर्ष। इस काल में संसद, जो चाहे, यह सभा हो या इसकी उत्तराधिकारिणी हो, वह उत्तर-सदनों के लिए उचित प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र, निर्वाचकों तथा निर्वाचितों की अर्हतायें तथा वह सब जो डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में दिया गया है उसको उपबंधित करने के तथ्य पर ध्यान देगी। और संसद् का अधिनियम निस्सन्देह, मेरे मित्र पंडित मैत्र को कहीं अधिक संतोष देगा अपेक्षाकृत अपने पक्ष के हित में निर्वाचन क्षेत्र निर्माण की किसी योजना के जिसको हम इस समय उनके समक्ष रख देते। इसी कारण हम आज उनके सामने पूरी योजना नहीं रख रहे हैं।

अत: मैं समझता हूं कि क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं है। समय आने पर संसद् प्रान्तीय सरकारों से अपनी प्रस्थापनायें रखने के लिए कहेगी। संसद के समक्ष विधेयक का मसौदा रखे जाने के पूर्व उस समय की सरकार प्रान्तों के सुझावों की जांच करने के लिए शायद एक समिति नियुक्त करे। मैं समझता हूं कि मसौदा लेखक जिसे विधेयक का मसौदा बनाना होगा उसके पास यदि आवश्यक हुआ तो जो प्रान्त उत्तर सदन चाहते हैं उनमें से प्रत्येक के लिए उपबन्धित प्रतिनिधान के निबन्धनों और शर्तो में परिवर्तन के साधन तथा उपक्रम होंगे। यह सब अवकाश में तथा पूरी जांच के बाद और उससे अधिक सावधानी और ध्यान देने से जितना हम अब दे सकते हैं हो सकेगा। इस सभा को स्वयं किसी ऐसे कार्य करने के लिए वचनबद्ध न करते हुए, जो ठीक नहीं होगा अथवा जो जल्दबाजी में अव्यवस्थित रीति से विनिश्चित किया हुआ होगा, जो प्रस्थापना डॉ. अम्बेडकर ने रखी है वही केवल ठीक, युक्तियुक्त और न्यायपूर्ण प्रस्थापना है जो इस समय सभा के समक्ष रखी जा सकती है।

और श्री शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन क्या है जिसके लिए उन्होंने सभा से विचार करने का आग्रह किया? पांच प्रतिशत इस व्यक्ति समूह के लिए और पांच प्रतिशत किसी और के लिए इत्यादि, इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ इधर से कुछ उधर से और कुछ और कहीं से मिलाकर वे कुल संख्या को शत प्रतिशत बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यह मानते हुए भी कि जिस योजना का उन्होंने सुझाव दिया है वह जहां तक संयुक्त प्रान्त का सम्बन्ध है ठीक है, पर मुझे यह प्रतीत होता है कि जिस प्रान्त का मुझे ज्ञान है उसके लिए वह पूर्णतया अपर्याप्त है। अत: बिना किसी क्षमा याचना के मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करे जिसका स्वीकार करना ही मैं समझता हूं कि इन परिस्थितियों में ठीक है।

उत्तर सदन रखने या न रखने का दृश्य इस समय उपस्थित नहीं होता है। उस बात को तो हम स्वीकार कर ही चुके हैं। इस बात के स्वीकार करने से जो कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं उनके हल के लिए हम उपबन्ध कर रहे हैं वे

कठिनाइयां ये हैं कि प्रान्तों के विभिन्न विधान मंडल यदि चाहते हैं तो उत्तर सदनों को मेट सकते है, और दोनों सदनों में परस्पर संघर्ष का संकल्प इत्यादि, इत्यादि। जिन राज्यों में उत्तर सदन नहीं है उनमें प्रथम सदन द्वारा उत्तर सदन के सृजन के संकल्प को स्वीकार करने की शक्ति संसद को देकर मैं समझता हूं कि केवल यही ठीक है कि हम आरम्भिक स्थिति में इन सदनों की रचना विनिश्चित करने और उस रचना में परिवर्तन करने की समस्त शक्ति संसद् को दे दें। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं स्वीकार करती हूं कि उत्तर सदन संबंधी इन अनुच्छेदों पर विचार करते हुए यह न जान कर कि इन सदनों की रचना क्या होगी हम कुछ कठिनाई में पड़ जाते हैं। हमने अनुच्छेद 148 पारित किया क्योंकि बहुत से प्रान्त सदन के आकार-प्रकार पर विशेषकर निर्भर होते हुए उत्तर सदन के सृजन से सहमत हुए और हम इस धारणा से सहमत हुए कि उत्तर सदन कुछ इस प्रकार का होगा जो आयरलैंड के आदर्श पर आधृत होगा, एक वह आदर्श जो हमें संविधान सभा के सचिवालय द्वारा दिया गया था। हमारी सदैव यही सम्मति रही कि पुनरीक्षक निकाय होने के कारण उत्तर सदन बहुत अच्छा तथा लाभदायक प्रकार्य कर सकेगा, और यह कि जब उसके विचारों को माना जायेगा न कि उसके मतों को; तो वह रूढ़िगत स्वार्थों का सदन नहीं होना चाहिये। यह सोचा गया था कि जो लोग सक्रिय राजनीति के ऊंचे-नीचे क्षेत्र में पर्दापण नहीं कर सकते हैं वे अपने नेक पदों द्वारा प्रथम सदन को मंत्रणा दे सकेंगे। ऐसे मनुष्यों को प्रथम सदन के विधानों के पुनरीक्षण या संशोधन करने का अवसर मिल सकता था और इस प्रकार वे लाभदायक प्रकार्य कर सकते थे। परन्तु अब इन अनुच्छेदों द्वारा जबकि हम उनकी पूर्ण रचना को भावी संसद पर छोड़ते हैं और फिर भी उत्तर सदन के पक्ष में मत देते हैं तो हम वास्तव में अंधेरे में बहक रहे हैं। मैं अपने मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद से सहमत नहीं हूं कि चूंकि हम वयस्क मताधिकार से भयभीत हैं जिसको हम एक अनिश्चित कदम समझते हैं इसलिए हम उत्तर सदन के लिए उपबन्ध कर रहे हैं। विधान सभाओं में हमें यह अनुभव हुआ था कि वे व्यक्ति, जो देश के लिए उपयोगी कार्य कर रहे हैं जो सामाजिक सेवा कर रहे हैं, हमारी सरकारी कार्यवाहियों तथा हमारी विधान सम्बंधी कार्यवाहियों के सम्पर्क में आयें तो वह लाभदायक होगा, ऐसे लोग जिन्होंने हरिजनों या पिछड़े हुए वर्गों में काम किया है, कुछ श्रमिकों के प्रतिनिधि जो संगठित नहीं हैं अथवा जिनकी इतनी अधिक संख्या नहीं है कि वे एक निर्वाचन क्षेत्र बना सकें, अथवा सहकारी संस्थाओं के सदस्य, विद्वान मनुष्य अथवा वे मनुष्य जिनकी मंत्रणा लाभदायक होगी, जो किसी ऐसे विधान के रोकने में किसी उद्देश्य से प्रेरित नहीं होंगे जो विधान राष्ट्र के लिए कल्याण प्रद हैं, वरन जिनकी राय का हमारे ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा—ऐसे उत्तर सदन के पक्ष के पक्ष में हमने मत दिया था न कि एक ऐसे उत्तर सदन के लिए जिसका आकार-प्रकार हम नहीं जानते हैं। हम जानते हैं कि विभिन्न विधान-मंडलों में इस समय उत्तर सदन रूढ़िगत स्वार्थों के सदन हैं क्योंकि जिन लोगों के पास कुछ सम्पत्ति संबंधी अर्हता है अथवा जिनके नाम से बैंक में एक बड़ी धनराशि जमा है उनका ही उत्तर सदन में निर्वाचन होता है। अब जबकि हमने समस्त अर्हताओं को भावी संसद पर छोड़ दिया है तो जबकि इस संविधान निर्माणक निकाय से इन अनुच्छेदों पर मत देने के लिए कहा जाता है तो हमें कुछ कठिनाई होती है। मैं नहीं जानती हूं कि क्या डॉ. अम्बेडकर हमें कोई आश्वासन दे सकते

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

है—और उनके आश्वासन का मूल्य क्या होगा–कि वह रूढ़िगत हितों का या बहुत सम्पत्ति वाले लोगों का सदन नहीं होगा जो देश के हित के लिये किसी आवश्यक विधान को रोके रखेगा। इन शब्दों के द्वारा मैं आशा करती हूं कि इस सदन में व्यक्त हमारे विचारों पर भावी संसद विचार करेगी और एक ऐसा उत्तर सदन बनायेगी जो केवल पुनरीक्षण करने वाला होगा और जो न दुखदाई होगा और न व्यर्थ होगा और बहुत सम्पत्ति पर अधिकार रखने वाले व्यक्तियों को उत्तर सदन की सदस्यता के लिए अर्ह न समझा जायेगा।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं पूर्ण विरोध करता हूं। प्रो. रंगा डॉ. अम्बेडकर की इस प्रस्थापना को बहुत ही बुद्धिमतापूर्ण बताते हैं। यह बहुत अच्छा होता यदि हम भारत के भावी संविधान के निर्माण कार्य को भारत की भावी संसद् पर छोड़ देते। वह सबसे अधिक बुद्धिमतापूर्ण कार्य होता। मैं आशा करता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात को मानेगा कि यही उपयुक्त स्थान है क्योंकि इस सभा को भारतीय संविधान निर्माण करने के लिए बनाया गया है। विधान-मंडल से राज्य के किसी महत्वपूर्ण अंग पर संविधान बनाने के लिए कहना एक त्रुटि है।

मैं संशोधन संख्या 89 में निहित प्रस्थापना पर आ रहा हूं। उसमें कहा गया है:

"विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक-चौथाई से अधिक न होगी।"

मुझे कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता है कि विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्या क्यों घटाई जाये। मैं समझता हूं कि सदस्यों की समस्त संख्या प्रथम सदन के सदस्यों की संख्या के बराबर होनी चाहिये। यदि भावी संसद पर स्थानों के बटवारे का, व्यक्तियों के निर्वाचन करने की रीति का और उनकी अर्हताओं का कार्य सौंपा जा रहा है तो सदस्यों की समस्त संख्या निश्चय करने का कार्य भी संसद् पर क्यों नहीं सौंपा जाता है? इस विषय में संसद् के स्वविवेक को क्यों शृंखलाबद्ध किया जाता है। मेरा निजी मत यह है कि सदस्य संख्या प्रथम सदन की सदस्य संख्या के बराबर हो, विधान-परिषद मनोनीति निकाय हो जिसको राष्ट्रपति या राज्यपाल अपने स्वविवेक से मनोनीत करे। मैं इस विषय को प्रान्तीय मंत्रियों के हाथों में देना नहीं चाहता हूं। मैं अपनी बहन श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी से सहमत हूं कि वह एक ऐसा सदन न हो जो रूढ़िगत हित से परिपूर्ण हो। मैं नहीं चाहता हूं कि पूंजीवादी वर्ग, जमीदारों या मंत्रियों के पिट्ठुओं में से सदस्य हों। मैं सोचता हूं कि वह एक ऐसा निकाय होना चाहिये जिसमें प्रान्त के बुद्धिमान व्यक्ति हों। हमारे विधिदाता, विधिनिर्माता अथवा संसदीय कार्य में दक्ष अथवा लोकतंत्रवादी नहीं थे। वे विद्वान व्यक्ति थे। वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रकार के मनुष्य मिलने दुर्लभ हैं जो 'प्लेटो के गणराज्य' में बताये गये हैं। पर हम उस विचार के निकट तक पहुंच सकते हैं। संविधान में यह स्पष्ट रख सकते है कि केवल वे मनुष्य जो

ग्रेजुएट हैं इस परिषद के सदस्य हो सकते हैं और सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक से निश्चित की जायेगी। उनको जीवन पर्यन्त तक मनोनीत किया जायेगा। वह एक ऐसा निकाय नहीं होगा जिसकी रचना में प्रत्येक तीन या पांच वर्ष के पश्चात् परिवर्तन हुआ करे। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अपने जीवन के राजनैतिक तथ्यों पर समुचित ध्यान देते हुए, राज्य के सामने जो संकट है उनसे तथा अस्थिरता उत्पन्न करने वाले तत्व जिनकी देश में वृद्धि हो रही है उनसे भली प्रकार परिचित होते हुए हमने जिस साधन को स्वीकार किया है उसमें एक रक्षात्मक आधार ग्रहण कर अच्छा कार्य किया है वह यह कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नामोद्दिष्ट व्यक्ति होगा। मैं सोचता हूं कि विधान-परिषद् भी नामोद्दिष्ट निकाय होना चाहिये। यह दूसरा रक्षात्मक आधार होगा। श्रीमान्, मैं सोचता हूं कि कुछ समय के लिये इस अनुच्छेद पर विचार स्थगित किया जाये और हमारे स्थगन से पूर्व इसी सभा में उत्तर सदन के लिए एक समुचित रचना विनिश्चित की जाये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इस सभा के कई माननीय सदस्य यह तर्क प्रस्तुत कर चुके हैं कि राज्यों के उत्तर सदन की रचना जैसे महत्वपूर्ण पद को संसद् पर छोड़ दिया जाये यह ठीक नहीं है। मैं भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए खड़ा होता हूं। चूंकि हमारा संविधान एक लिखित संविधान है, वह स्वयं एक पूर्ण संविधान होना चाहिये और समय-समय पर अधूरे विधान की शरण लेना आवश्यक नहीं होना चाहिये जो कि जिस संविधान को हम पारित कर रहे हैं उसके लिए एक अनुपूरक सा हो। मैं इस बात से भी सशंकित हूं कि इस उपाय की अधिकाधिक शरण ली जा रही है। जहां कहीं हम यह देखते हैं कि मतैक्य नहीं है अथवा जहां कुछ उलझन पैदा हुई हम उस भार को संसद पर डालने का प्रयास करते हैं और जिस विशिष्ट पद को हम यहां नहीं लेना चाहते हैं उस पर संसद् को बाद में विधान पारित करना होगा। यह न उस गौरव और न उस सम्मान के हित में है, जिस गौरव तथा सम्मान की भावना इस संविधान के प्रति लोगों में होनी चाहिये तथा जिस गौरव तथा सम्मान की भावना इस संविधान द्वारा लोगों में जाग्रत होनी चाहिये, कि भावी विधान पर ऐसे महत्वपूर्ण विषयों को छोड़ा जाये।

जहां तक इस पद का संबन्ध है—यह तो अन्ततः इन्हीं माननीय सदस्यों के समक्ष आयेगा जबकि ये विधिनिर्माता के रूप में बैठेंगे क्योंकि जब तक द्वितीय सदनों का संघठन पूरा नहीं होता तब तक मैं नहीं समझता हूं कि यह संविधान प्रवर्तन में आ जाये अथवा वास्तविक रूप में प्रभाववर्ती हो जाये। ऐसा होने के कारण, इस बात पर विचार करने और अन्त में किसी ऐसे प्रबन्ध को स्वीकार करने में समय बढ़ा रहे हैं। जिसके द्वारा इन द्वितीय सदनों का संघठन होगा। सदस्यता, रचना, विभिन्न सदस्यों की अर्हतायें इत्यादि के बारे में संसद् द्वारा विनिश्चय करने का यदि हम उपबन्ध बनाते हैं तो केवल कुछ महीनों का ही अन्तर पड़ेगा। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह नहीं होने देना चाहिये। मैं समझता हूं कि जिस रीति से हम उस संविधान के गौरव और स्थिति को, जिसे कि हम बनाने बैठे हैं; वास्तव में जर्जरित करने का प्रयास कर रहे हैं उस रीति के प्रति अपना असंतोष व्यक्त कर दूं। वास्तव में श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपनी सारी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

स्थिति प्रकट कर दी जब उन्होंने यह कहा कि उन्हें पता नहीं कि किस प्रकार द्वितीय सदनों की रचना हो। और जबकि मसौदा समिति के सदस्यों के दिमागों की यह हालत है तो ईमानदारी का सौदा यह होगा कि द्वितीय सदनों को बिल्कुल मेट दिया जाये। यदि मसौदा समिति के सदस्य स्वयं यह नहीं जानते हैं कि इन सदनों में किन-किन हितों का प्रतिनिधान हो और यदि ढ़ाई साल तक विचार-विमर्श करने पर भी वे यह निश्चित नहीं कर सके कि वे कौन से हित हैं जिनका रक्षण अपेक्षित है, वे कौन से प्रतिनिधि हैं जो भावी संविधान में सरकार को दृढ़ बनायेंगे तो अब भी समय है कि द्वितीय सदनों के समूचे विचार का परित्याग किया जाये।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि यह विषय स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है कि हम द्वितीय सदन रखने की बातें तो करें पर यह न जाने उनकी कैसे रचना होगी। दूसरी ओर हम कुछ धुंधली सी यह आशा रखें कि दो माह के पश्चात् हमारे मस्तिष्क में कुछ लहर दौड़ेगी जिससे हम यह जान जायेंगे कि द्वितीय सदनों में बैठने वाले सदस्यों की अर्हताओं के बारे में क्या किया जाये। मैं नहीं समझता हूं कि यह इस सदन के गौरव के अनुकूल है और न यह उस संविधान के अनुकूल है जिसे हम बना रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, टिप्पणी में केवल दो बातें हैं जिनका उत्तर देना मैं आवश्यक समझता हूं। एक बात वह है जिसको श्री कामत तथा मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने उठाया है कि इस समय सभा के समक्ष जो प्रस्थापना रखी गई है उसके अनुसार कुछ प्रांतों में प्रथम सदन की सदस्य संख्या और उत्तर सदन की सदस्य संख्या में कुछ विषमानुपात है। उन्होंने उदाहरण भी दिया था। यदि मैंने ठीक-ठीक सुना था तो मैं समझता हूं कि उन्होंने यह कहा था कि उड़ीसा प्रान्त में उस सिद्धान्त के अनुसार जिसको हमने इस संविधान के अनुच्छेद 149 में निर्धारित किया है प्रथम सदन की सदस्य संख्या लगभग 60 होगी। अत: यदि उत्तर सदन के लिए न्यूनतम सदस्य संख्या 40 है तो उत्तर सदन और प्रथम सदन की सदस्य संख्या में विषमानुपात होगा। मैं समझता हूं कि इस अन्तर्वर्ती काल में जो परिस्थितियां हो चुकी हैं उन पर मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने विचार नहीं किया है। उदाहरणार्थ वे शायद यह बिल्कुल ही भूल गये हैं कि अनेक राज्यों के प्रवेश के कारण उड़ीसा अब एक बहुत बड़ा प्रान्त है, और मैं समझता हूं कि राज्यों के क्षेत्रफल और जनसंख्या को लेते हुए जो कि अब उड़ीसा की सीमाओं में आ जायेंगे प्रथम सदन संभवत: 150 सदस्यों का होगा। अत: जिस विषमानुपात का उन्होंने संकेत किया है उसकी कोई संभावना नहीं है। इस समय मैं यह भी कहूंगा कि यदि सभा जैसा कि अनुच्छेद 172 में प्रस्थापित किया गया है यदि उसको पारित कर देती है जो उत्तर सदन और प्रथम सदन में मतभेद के प्रश्न को विनियमित करता है तो प्रथम सदन ओर उत्तर सदन में सिद्धांतों में मतभेद होने के प्रश्न का कोई महत्व ही नहीं रहता है क्योंकि अनुच्छेद 172 के अधीन हम उस प्रक्रिया को अंगीकार करने की प्रस्थापना नहीं कर रहे हैं जिसको दो सदनों के सम्बन्ध में केन्द्र के लिए अंगीकार किया गया था अर्थात् संयुक्त सत्र। हम यह प्रस्थापना कर रहे हैं कि कुछ परिस्थितियों में उत्तर सदन के विचारों से प्रथम सदन के विचार प्रबल रहें। अत:

इस भिन्न राजनैतिक पेच के कारण उत्तर सदन द्वारा प्रथम सदन के अधिक बहुमत या बहुमत से किये गये विनिश्चय के पलटे जाने की संभावना नहीं है। मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा उठाई पहली बात का यह पूर्णतया समाधान कर देता है।

अब मैं दूसरे प्रश्न पर आता हूं जिसको मेरे माननीय मित्र श्री लक्ष्मीकान्त मैत्र द्वारा बड़ी जोर से उठाया गया था। उनका तर्क यह था कि आप इसे संसद पर क्यों छोडें? यह संसद पर कैसे छोड़ा जा सकता है? मैं समझता हूं कि जो उत्तर में उन्हें दे सकता हूं वह, जहां तक मेरा संबन्ध है, बिल्कुल संतोषजनक है। सर्वप्रथम मैं उनको यह संकेत करना चाहूंगा कि यह नहीं मान लेना चाहिये कि मसौदा समिति ने स्वयं संविधान में उत्तर सदन की रचना के लिये कभी कोई सक्रिय प्रस्थापना नहीं रखी। मेरे माननीय मित्र को याद होगा कि मेरे तथा मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से संशोधनों पर संशोधनों की संचित सूची में संशोधन संख्या 139 था जो घुमाया जा चुका था इसमें वे देखेंगे कि उत्तर सदन की रचना का सक्रिय सुझाव हमने रखा था। दुर्भाग्य से एक अन्य स्थल पर उसे स्वीकार नहीं किया गया, अतः हमने यह उचित नहीं समझा कि उसी संशोधन पर जोर देते रहें। अतः वे देखेंगे कि मसौदा समिति पर इस बात के कारण, कि उसने इस कठिनाई का हल करने का कोई प्रयास नहीं किया, जो कुछ लांछन आता है उस सबसे वह मुक्त कर देनी चाहिये—उसने प्रयास किया पर—वह सफल न हुई। मेरे माननीय मित्र यह अनुभव करेंगे कि मसौदा समिति के पास इस विषय पर कुल 28 संशोधन भेजे गये थे। वे यहां इस सूची में संख्या 123 से 148 तक हैं। यदि वे इन सब संशोधनों को पूर्ण विवरण सहित सावधानी से पढ़ें तो वे आश्चर्यचकित करने वाले सुझावों की बहुलता, विरोधी विचार और कई प्रस्तावकों की अपनी स्थिति से हटकर किसी परिणाम पर पहुंचने की स्थिति के प्रति अनिच्छा पायेंगे। इस कठिन परिस्थिति के कारण मसौदा समिति ने सोचा कि किसी ऐसे सुझाव के रखने की अपेक्षा जिसको सभा का बहुमत स्वीकार न करे, वह इसे संसद् पर छोड़ देगी।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या डॉ. अम्बेडकर को विश्वास है कि संसद के समक्ष कम कठिनाइयां होंगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि मेरे माननीय मित्र मुझे समय दें तो मैं इस बात का भी उत्तर दूंगा।

मेरे माननीय मित्र श्री मैत्र ने कहा था कि यह किस प्रकार विचार में आ सकता है कि उत्तर सदन जैसी संस्था का इतना महत्वपूर्ण संविधान का भाग संसद के विनिश्चय करने के लिए छोड़ा जा सकता है और इस संविधान में उसे उपबंधित न किया जाये? मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री मैत्र यह अनुभव करेंगे और मैं उनको निश्चित रूप में यह बता दूं कि हम दोनों प्रांतों अथवा राज्यों और केन्द्र के प्रथम सदनों के बारे में क्या कर रहे हैं। यदि वे अनुच्छेद 149 की ओर निर्देश करें जिसको हम पारित कर चुके हैं उसमें हमने यह किया है कि हमने केवल यह कह दिया है कि निर्वाचन क्षेत्रों के सीमांकन के लिए कुछ सिद्धांत होंगे, एक निर्वाचन क्षेत्र में इससे कम और इससे अधिक मतदाता नहीं

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

होंगे, परन्तु निर्वाचन-क्षेत्रों के वास्तविक सीमांकन का कार्य स्वयं संसद पर छोड़ दिया गया है और जब तक संसद केन्द्र के प्रथम सदन के लिए विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के सीमांकन की विधि पारित नहीं करेगी, प्रथम सदन का संगठन न हो सकेगा।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** यह तो अनिवार्य है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** एक और दृष्टांत लीजिये, अर्थात स्थानों का बटवारा। वास्तविक बटवारा संसद की विधि द्वारा किया जायेगा। अत: जबकि ऐसे महत्वपूर्ण विवरण के विषय संसद के विधि द्वारा विनिश्चय पर छोड़े जा सकते हैं, तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि उत्तर सदन की रचना के विषय को संसद पर छोड़ने के विषय पर क्या घोर आपत्ति हो सकती है। मुझे तो कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती है। दूसरे मैं स्वयं यह सोचता हूं कि उन विरोधी विचारों का ध्यान रखते हुए, जो उन 28 संशोधनों में प्रस्तुत किये गये हैं, जो सभा के समक्ष हैं, मैंने सोचा कि यह बहुत अच्छा होगा कि संसद इस उत्तरदायित्व को ले ले, क्योंकि संसद के पास अवश्य ही मसौदा समिति से अधिक समय होगा और संसद के पास इस प्रस्थापना पर विचार करने के लिए अधिक संसूचनायें होगी क्योंकि उस समय संसद् विभिन्न प्रान्तीय सरकारों की कठिनाइयां मालूम करने, उनके विचार मालूम करने, उनकी प्रस्थापनायें प्राप्त करने तथा किसी सामान्य समझौते पर पहुंचने के लिए, जिसको विधि का रूप दिया जा सके, विभिन्न प्रान्तीय सरकारों से पत्र व्यवहार कर सकेगी। अत: इस प्रस्थापना के प्रस्तुत करने में मैं समझता हूं कि हम उन सिद्धांतों से बहुत अलग नहीं हो रहे हैं, जिनको हम स्वीकार कर चुके हैं और जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा था, इन सब बातों पर विचार करते हुए मसौदा समिति के लिए सिवाय इसके कि सभा में इस प्रस्थापना की सिफारिश करे, क्षमा याचना की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** मुझे एक निराशा की भावना स्वीकार करनी पड़ती है कि मसौदा-समिति इस प्रश्न का कोई हल न खोज सकी (कुछ माननीय सदस्य, वाह वाह)। संविधान का यह एक महत्वपूर्ण विषय है कि विधान-मंडल के सदनों की रचना का वह निश्चित रूप से निर्धारण करे और मैंने सोचा था कि किसी ऐसे परिणाम पर पहुंचना सम्भव हो सकेगा जो समूची सभा को स्वीकार्य हो, पर दुर्भाग्यवश ऐसा न हो सका। इसके लिये मैं मसौदा-समिति को दोष नहीं देता हूं। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने बताया है, इतने संशोधनों का सुझाव दिया गया था। इतने विचार प्रस्तुत किये गये थे कि उन सब में सामंजस्य स्थापित करना उनके लिये कठिन था और इसका निवारण करने के लिए उन्होंने निम्नतम अवरोध का मार्ग ग्रहण किया, जब तक कि विधान-सभा समवेत हो और इस प्रश्न पर विनिश्चय करे। यदि यह संभव है तो इस स्थिति में भी मैं यह सुझाव रखूंगा कि इस प्रश्न को फिर मसौदा-समिति के पास भेजा जाये (कुछ माननीय सदस्य, वाह वाह)। मसौदा-समिति इस प्रश्न को हल करने का एक और प्रयत्न करे और इस समस्या पर संकल्प इस सभा के समक्ष रखे। पर वास्तव में यह बात सभा विनिश्चित कर सकती है। सभा के विनिश्चय पर मैं इस बात को छोड़ता हूं।

***पं. गोविन्द मालवीय** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि इस अनुच्छेद पर विचार स्थगित किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं इस प्रस्थापना का समर्थन करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हम एक बार और प्रयास करेंगे।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं यह समझ लेता हूं कि सदस्य इस बात से सहमत हैं कि इस अनुच्छेद को स्थगित किया जाये।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

नवीन अनुच्छेद 163-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'163-A. (1) The House or each House of the Legislature of a State shall have a secretarial staff of State Legislatures seprarate secretarial staff:

Provided that nothing in this clause shall in the case of the Legislature of a State having a Legislative Council, be construed as preventing the creation of posts common to both Houses of such Legislature.

(2) The Legislature of a State may by law regulate the recruitment and the conditions of service of persons appointed to the secretarial staff of the House or Houses of the Legislature of the State.

(3) Until provision is made by the Legislature of the State under clause (2) of this article, the Governor may after consultation with the Speaker of the Legislative Assembly or the Chairman of the Legislative Council, as the case may be, make rules regulating the recruitment and the conditions of service of persons appointed to the secretarial staff of the Assembly or the Council, and any rules so made shall have effect subject to the provisions of any law made under the said clause.' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[163-क (1) राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन का पृथक साचविक कर्मचारीवृन्द होगा:

परन्तु विधान-परिषद् वाले राज्य के विधान-मंडल के बारे में इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा कि वह ऐसे विधान-मंडल के दोनों सदनों के लिए सम्मिलित पदों के सृजन को रोकती है।

(2) राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा राज्य के विधान-मंडल के सदन या सदनों के साचविक कर्मचारीवृन्द में भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगा।

(3) खंड (2) के अधीन जब तक राज्य का विधान-मंडल उपबन्ध नहीं करता, तब तक राज्यपाल यथास्थिति विधान-सभा के अध्यक्ष से, या विधान-परिषद् के सभापति से, परामर्श करके सभा या परिषद् के साचविक कर्मचारीवृन्द में भर्ती के, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के, विनियमन के लिए नियमों को बना सकेगा तथा इस प्रकार बने कोई नियम उक्त खंड के अधीन बनी किसी विधि के उपबन्ध के अधीन रहकर ही प्रभावी होंगे।]

यह अनुच्छेद 79-क अनुच्छेद के बहुत कुछ समान ही है, जिस पर हम आज प्रात:काल विचार कर चुके हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि अपने नाम के किसी भी संशोधन को पेश कर सकूं।

*__श्री एच.वी. कामत:__ श्रीमान्, जिन संशोधनों को मैं औपचारिक रूप से इस सभा के समक्ष पेश कर रहा हूं, उन पर मैं बोलना नहीं चाहता हूं। सरसरी तौर से मैं एक बात कहना चाहूंगा जिस पर मैंने आज ध्यान दिया है, वह है डॉ. अम्बेडकर की वाद विवाद में प्रस्तुत की गई सारवत बातों का उत्तर न देने की दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति। यह सत्य है कि वे जैसा चाहें उस प्रकार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं। उन सदस्यों के साथ न्यायोचित व्यवहार होने के लिए जो सारवत प्रश्न उठाते हैं मैं केवल उनसे यह प्रार्थना करूंगा कि वे कम से कम उनका उत्तर देने का प्रयास तो किया करें। वे उनको सन्तोषप्रद अथवा विश्वासप्रद उत्तर दें या नहीं, यह दूसरी बात है, पर सभा का उन पर इतना हक तो है। जो माननीय सदस्य सारवत प्रश्न उठाते हैं उनको कम से कम मसौदा-समिति के विचार तो मालूम हो जायें। अनुच्छेद 79-क और 148-क पर मेरे और मेरे माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल द्वारा अनेक संशोधनों में सारवत प्रश्न उठाये गये थे। पर जब उनकी बारी आई तो डॉ. अम्बेडकर ने बड़े अच्छे रूप में बुद्धिमानी से यह कह दिया कि वे कुछ भी नहीं कहना चाहते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैंने यह कहा था कि किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं है।

*__श्री एच.वी. कामत:__ यह उनके निर्णय पर छोड़ दिया गया है। पर जब कोई सारवत प्रश्न उठाये जाते हैं, तो उनके लिए कुछ उत्तर आवश्यक होता

है। इस तथ्य के पूर्वज्ञान से उन्हें वास्तव में सहारा मिलता है, वे सुरक्षित हो जाते हैं कि जब वे 'हां' कहेगे तो सारी सभा उनका साथ देगी। यह उनके ही विनिश्चय करने की बात है कि वे किस बात का उत्तर देंगे और किसका नहीं। पर सभा को उनके विचार सुनने का हक है। यदि वे बहुत थके मांदे हैं, तो वे अपने किसी बुद्धिमान साथी से........।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह कौन विनिश्चत करे कि प्रश्न सारवत हैं या नहीं? यदि अध्यक्ष यह निर्देश करें कि प्रश्न सारवत हैं तो मैं अवश्य उत्तर दूंगा। इस विषय को मैं केवल श्री कामत के विनिश्चय पर नहीं छोड़ सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, आप अपने निर्धारित किये हुए बुद्धिमत्तापूर्ण नियम का पालन कर रहे हैं कि जिन संशोधनों में सारवत प्रश्न नहीं है उनको आप पेश न करने देंगे।

***अध्यक्षः** क्या आप संशोधन पेश कर रहे हैं? इस समय आप किस विषय की चर्चा कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उन्हें पेश कर रहा हूं। पेश करने के पूर्व मैं यह कहना चाहूंगा कि जब आप किसी संशोधन को पेश होने देते हैं, तो जो नियम हमने अभी बनाये हैं उनके अधीन उसका यह आशय होता है कि उसमें सारवत प्रश्न है। खैर, मैं सूची 3 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 92, 94, 96, 97, 98, 99 और 100 को पेश करता हूं। मैं नहीं समझता हूं कि संशोधनों के पढ़ने में मैं सभा का समय लूं। यदि आप चाहें तो मैं उन्हें पढ़ सकता हूं।

***अध्यक्षः** कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** वे लगभग वैसे ही हैं जैसे कि आज पहले किसी समय मैंने पेश किये थे। औपचारिक रूप में मैं उन्हें पेश करता हूं और सावधानी से विचार करने के लिए उन्हें सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (1) के परन्तुक में 'be construed as preventing' शब्दों के स्थान में 'prevent' शब्द रखा जाये।

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (2) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances, and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।

[श्री एच.वी. कामत]

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) की पंक्ति में आने वाले 'or' शब्द के स्थान में 'and, where necessary' शब्द रखे जायें।

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में से 'as the case may be' शब्द अपमार्जित किये जायें।

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances, and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क खंड (3) में 'the Assembly or the Council' शब्दों के स्थान में 'the House or each House of the Legislature of the State' शब्द रखे जायें।

कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में से 'or the Council' शब्दों के पश्चात् आने वाले समस्त शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू__ (उड़ीसा : जनरल) अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की तारीख 10.07.49 की छपी हुई संचित सूची के संशोधन संख्या 149 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (2) के साथ निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that the Governor may in consultation with the Speaker or the Chairman, as the case may be, by rule require that in such cases as may be specified in the rule no person not already attached to the House or to either House of the Legislature shall be appointed to any office connected with the House, or any of the Houses of Legislature, save after consultation with the State Public Service Commission.' "

(परन्तु राज्यपाल यथास्थिति अध्यक्ष अथवा सभापति से परामर्श कर नियम द्वारा इस बात की अपेक्षा करेगा कि उन स्थितियों में, जिनका उल्लेख नियमों में किया जायेगा, कोई व्यक्ति जो विधान-मंडल के सदन से या किसी सदन से

अब तक संबंधित नहीं है, विधान-मंडल के सदन के या किसी सदन के किसी कार्यालय में बिना उस राज्य के सेवायोग के परामर्श के नियुक्त नहीं किया जायेगा।)

***अध्यक्ष:** जिस रूप में अनुच्छेद इस समय पेश किया गया है, उसमें यह संशोधन किस प्रकार बैठेगा?

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** प्रस्थापित अनुच्छेद 163-क के खंड (2) के साथ में निम्न परन्तुक जोड़ना चाहता हूं। खंड (2) में कहा गया है "राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा राज्य के विधान-मंडल के सदन या सदनों के साचविक कर्मचारीवृन्द में भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगा।"

मैं चाहता हूं कि निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

"परन्तु राज्यपाल यथास्थिति अध्यक्ष अथवा सभापति से परामर्श कर नियम द्वारा इस बात की अपेक्षा करेगा कि उन स्थितियों में, जिनका उल्लेख नियमों में किया जायेगा, कोई व्यक्ति जो विधान के सदन से या किसी सदन से अब तक सम्बंधित नहीं है, विधान-मंडल के सदन के या किसी सदन के किसी कार्यालय में बिना उस राज्य के सेवायोग के परामर्श के नियुक्त नहीं किया जायेगा।"

सभापति जी, इसमें एक बात मैं कहना चाहता हूं कि हम लोगों ने पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया है इस वजह से कि वहां पर सर्विस में ठीक तौर से विचार होगा। हम लोगों को पब्लिक सर्विस कमीशन में सब सर्विसों के लिये विचार करने के लिए जाना चाहिये। दूसरे आदमियों को यह कार्य सौंपना ठीक नहीं होगा। पब्लिक सर्विस कमीशन ने हमारे देश में अभी वह स्थान प्राप्त नहीं किया है, जो स्थान दूसरे जगहों में जहां-जहां डेमोक्रेटिक इन्स्टीट्यूशन उनको मिला है। डोमेनियन पार्लियामेंट में अभी हम लोग पब्लिक सर्विस कमीशन की बात इतनी नहीं मानते हैं। वह तो सिर्फ रिकमैन्डेशन करती हैं कि उसको हम ले सकेंगे या नहीं ले सकेंगे। लेकिन दुनियां में जहां डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट चलती हैं जैसे कि कनैडा में, साउथ अफ्रीका में, सब जगह पब्लिक सर्विस कमीशन को बहुत ताकत देती है। इसलिए मैं चाहता हूं कि जो कुछ इस बारे में किया जाये वह भी पब्लिक सर्विस कमीशन की रिकमन्डेशन पर होना चाहिये। उनको कन्सल्ट करके तब कुछ एपौइन्टमेंट करना चाहिये। जब तक हम यह साफ तौर से नहीं करेंगे तब तक बराबर यह शक रहेगा कि एपौइन्टमेंट में कुछ गलती है। यह बात चारों तरफ से सुनी जाती है कि जब पब्लिक सर्विस कमीशन कोई रिकमन्डेशन करता है तो उसको हटाकर भी दूसरे एपौइन्टमेंट किये जाते हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह हैल्दी प्रोवाइजो जब रहेगा तब तो अच्छा होगा। मैं इस बारे में ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं, सिर्फ मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि यह जो प्रोवाइजो मैं यहां रखना चाहता हूं, वह प्रोवाइजो आगे था जो प्रिंटेड लिस्ट है, वह नम्बर 149 में था, उसमें से उसको उठाकर मैंने यहां दे दिया है।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य कुछ कहना चाहता है?

[अध्यक्ष]

(कोई भी सदस्य भाषण देने के लिए खड़ा नहीं हुआ।)

क्या डॉ. अम्बेडकर कुछ कहना चाहेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** तो मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (1) के परन्तुक में 'be construed as preventing' शब्दों के स्थान में 'prevent' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (2) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to, शब्दों के स्थान में 'recruitment to the salaries and allowances and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की तारीख 10.7.49 की छपी हुई संचित सूची के संशोधन संख्या 149 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (2) के साथ निम्न परन्तुक जोड़ जाये:–

'Provided that the Governor may, in consultation with the Speaker or the Chairman, as the case be, by rule require that in such cases as may be specified in the rule no person not already attached to the House or to either House of the Legislature shall be appointed to any office connected with the House, or any of the Houses of Legislature, save after consultation with the State Public Service Commission.' "

(परन्तु राज्यपाल यथास्थिति अध्यक्ष अथवा सभापति से परामर्श कर नियम द्वारा इस बात की अपेक्षा कि उन स्थितियों में, जिनका उल्लेख नियमों में किया

जायेगा, कोई व्यक्ति जो विधान-मंडल के सदन से या किसी सदन से अब तक संबंधित नहीं है, विधान-मंडल के सदन के या किसी सदन के किसी कार्यालय में बिना उस राज्य के सेवायोग के परामर्श के नियुक्त नहीं किया जायेगा।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) की पंक्ति 4 में आने वाले 'or' शब्द के स्थान में 'and, where necessary' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में से 'as the case may be' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में 'recruitment and the conditions of service of persons appointed to' शब्दों के स्थान में 'recruitment to, the salaries and allowances, and the conditions of service of' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में 'the Assembly or the Council' शब्दों के स्थान में 'the House or each House of the Legislature of the State' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 48 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 163-क के खंड (3) में से 'or the Council' शब्दों के पश्चात् आने वाले समस्त शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में अनुच्छेद 163-क पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि नया अनुच्छेद 163-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

नये अनुच्छेद 163-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 175

***अध्यक्षः** क्या अब हम अनुच्छेद 172 को लें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अभी हम उसे स्थगित रखेंगे।

***अध्यक्षः** क्या हम अनुच्छेद 175 को लें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 127-क का क्या हुआ?

***अध्यक्षः** वह अनुच्छेद 210 के साथ आयेगा।

अब हम अनुच्छेद 175 को लेंगे। उस पर कुछ संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 16 और 17 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 175 के परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:-

'Provided that the Governor may, as soon as possible after the presentation to him of the Bill for assent, return the Bill if it is not a money Bill together with a message requesting that the House or Houses will reconsider the Bill or any specified provisions thereof and, in particular, will consider the desirability of introducing any such amendments as he may recommend in his message, and when a Bill is so returned, the House or Houses shall reconsider the Bill accordingly, and if the Bill is passed again by the House or Houses with or without amendment and presented to the Governor for assent the Governor shall not withhold assent therefrom.' "

[परन्तु राज्यपाल अनुमति के लिये अपने समक्ष विधेयक रखे जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस विधेयक को, यदि वह धन-विधेयक नहीं है तो, सदन या सदनों को ऐसे संदेश के साथ लौटा सकेगा कि सदन या दोनों सदन विधेयक पर अथवा उसके किन्हीं उल्लिखित उपबन्धों पर पुनर्विचार करें तथा विशेषत: किन्हीं ऐसे संशोधनों के पुर:स्थापन की वांछनीयता पर विचार करें जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की हो तथा जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया गया हो, तब सदन या दोनों सदन विधेयक पर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे तथा यदि विधेयक सदन या सदनों द्वारा संशोधन सहित या रहित पुन: पारित हो जाता है, तथा राज्यपाल के समक्ष अनुमति के लिए रखा जाता है तो राज्यपाल उस पर अनुमति न रोकेगा।]

श्रीमान्, यह पुराने परन्तुक के स्थान में रखने के लिये है। पुराने परन्तुक में तीन महत्वपूर्ण उपबन्ध थे। पहला यह था कि वह अनुमति से पूर्व किसी विधेयक को विधानमंडल को लौटा देने और विचार के लिए कुछ विशिष्ट बातों की सिफारिश करने की शक्ति राज्यपाल को देता था। जिस रूप में वह परन्तुक था वह विधेयक को लौटाने के विषय को स्वयं उसके स्वविवेक पर छोड़ता था। दूसरा उपबन्ध यह था कि सिफारिश के साथ विधेयक को लौटाने का अधिकार धन-विधेयकों सहित सब विधेयकों के लिये प्रयुक्त था। तीसरा उपबन्ध यह था कि केवल उन दशाओं में राज्यपाल को विधेयक के लौटाने का अधिकार दिया गया था।, जबकि प्रांत के विधानमंडल में एक ही सदन हो। बाद में यह सोचा गया कि उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार में स्वविवेक के आधार पर कार्यवाही करने की राज्यपाल के लिए गुंजाइश नहीं है। इसलिये नये परन्तुक में 'अपने स्वविवेक से' शब्दों को अपमार्जित कर दिया गया है। इसी प्रकार यह सोचा गया कि विधेयक के लौटाने के इस अधिकार का विस्तार धन-विधेयक तक न किया जाये—अत: 'यदि वह धन-विधेयक नहीं है तो' शब्द प्रविष्ट कर दिये गये हैं। यह भी सोचा गया कि विधान-मंडल को विधेयक लौटा देने के इस अधिकार को केवल उन दशाओं तक ही सीमित न रखा जाये, जहां कि प्रांत के विधानमंडल में एक ही सदन हो। यह कल्याणप्रद उपबन्ध है और सब दशाओं में इसका उपयोग होना चाहिये, वहां पर भी जहां कि प्रांत के विधानमंडल में दो सदन हों।

इन तीन परिवर्तनों का उपबन्ध करने के लिए पुराने परन्तुक के स्थान में इस नये परन्तुक के रखने का प्रयास किया गया है और मैं आशा करता हूं कि सभा इसको स्वीकार करेगी।

***अध्यक्ष:** मेरे पास कुछ संशोधनों की सूचना है, जो अनुपूरक सूची में छपे हुए हैं। क्या कोई सदस्य उनमें से किसी संशोधन को पेश करना चाहता है?

वे संशोधन श्री सतीशचन्द्र, श्री बी.एम. गुप्ते और प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से हैं।

(संशोधन पेश नहीं किये गये।)

क्या कोई सदस्य इस विषय पर बोलना चाहता है?

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***अध्यक्षः** तो फिर हम इस विषय पर वाद-विवाद करेंगे, पर कोई संशोधन नहीं होगा।

***श्री सतीश चन्द्र** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर मैं अपना संशोधन पेश करूं या नहीं, यह अनुच्छेद 172 के उस रूप पर निर्भर है जो इस सभा द्वारा उसको दिया जायेगा। परन्तु अभी तो अनुच्छेद 172 स्थगित कर दिया गया है। इस अनुच्छेद की प्रथम कंडिका पर कोई संशोधन नहीं है और परन्तुक पर डॉ. अम्बेडकर ने केवल एक संशोधन पेश किया है। इसलिए अनुच्छेद 172 के अनुरूप इस अनुच्छेद की भाषा की रचना करने के लिए शायद मुझे अपना संशोधन पेश करना पड़े या इस प्रश्न पर मसौदा-समिति विचार कर ले।

***अध्यक्षः** इस विषय पर हम आगामी सोमवार को विचार करेंगे। सभा सोमवार के 9 बजे तक के लिए स्थगित होती है। सोमवार से हम प्रात: 8 बजे से दोपहर के 12 बजे तक की बजाय प्रात: 9 बजे से दोपहर के 1 बजे तक समवेत होंगे।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, तारीख 1 अगस्त सन् 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

पुस्तक संख्या 6 खण्ड IX (क) -30 जुलाई,1949 से 31 अगस्त,1949

खण्ड IX (क) पुस्तक संख्या-6 दिनांक 01.8.1949 से 31.08.1949

भारतीय संविधान सभा
(भारतीय विधान परिषद)
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

Con. 3. IX-2.49
320

अंक 9
संख्या 2

सोमवार,
1 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 175, 172, 176, 83, 127, 210, 211, 197,
212, 214 और 213 पर विचार] 67–126

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 1 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप *(जारी)*

अनुच्छेद 175-*(जारी)*

*__अध्यक्षः__ परसों सभा स्थगित होने के पूर्व हम अनुच्छेद 175 पर विचार कर रहे थे। आज हम अनुच्छेद 175 पर विचार-विमर्श जारी रखेंगे। श्री सतीशचन्द्र ने यह प्रश्न उठाया था कि उन्हें अनुच्छेद 172 के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित करना है किन्तु जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि अनुच्छेद 172 की रूप-रेखा क्या होगी वे यह निश्चय करने में असमर्थ हैं कि वे अनुच्छेद 175 के सम्बन्ध में अपने संशोधन को उपस्थित करें या न करें। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वे इस पर जोर देना चाहते हैं?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रासः जनरल)ः श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उस अनुच्छेद का अनुच्छेद 172 से बहुत कम सम्बन्ध है। अनुच्छेद 172 का विषय यह है कि दो सदनों में मतभेद होने पर उसका निराकरण किस प्रकार किया जाये किन्तु अनुच्छेद 175 इस सम्बन्ध में है कि विधान-मण्डल द्वारा विधेयक पारित होने पर राज्यपाल उनके लिये अनुमति दे और किस दशा में किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए विधान-मण्डल के पास वापस भेजे। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 175 के सम्बन्ध में जो संशोधन है उससे स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और संदेह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि अनुच्छेद 175 पर उसे अनुच्छेद 172 से पृथक करके विचार किया जाये।

*__अध्यक्षः__ क्या यह ठीक नहीं होगा कि हम पहले अनुच्छेद 172 पर विचार कर लें?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ यह बिल्कुल आपके स्वविवेक पर निर्भर है। पहले हम अनुच्छेद 172 को उठा सकते हैं और उसके पश्चात् अनुच्छेद 175 पर मत लिया जा सकता है।

*__अध्यक्षः__ क्या आपको कोई आपत्ति है?

*__माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः__ (बम्बई : जनरल)ः श्रीमान्, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आपके निर्णय से ही मेरा पथप्रदर्शन होगा।

*__अध्यक्षः__ तब हम पहले अनुच्छेद 172 पर विचार करेंगे और उसके पश्चात् अनुच्छेद 175 को उठायेंगे।

अनुच्छेद 172

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं

"कि अनुच्छेद 172 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये।

'172 (1). If after a Bill has been passed by the Legislative Assembly of a State having a Legislative Council and transmitted to the Legislative Council—

Restriction of powers of Legislative Council as to Bills other than Money Bills.

(a) the Bill is rejected by the Council; or

(b) more than two months elapse from the date on which the Bill is laid before the Council without the Bill being passed by it; or

(c) the Bill is passed by the Council with amendments to which the Legislative Assembly does not agree, the Legislative Assembly may again pass the Bill in the same or in any subsequent session with or without any amendments which have been made, suggested or agreed to by the Legislative Council and then transmit the Bill as so passed to the Legislative Council.

(2) If after a Bill has been so passed for the second time by the Legislative Assembly and transmitted to the Legislative Council–

(a) the Bill is rejected by the Council; or

(b) more than one month elapses from the date on which the Bill is laid before the Council without the Bill being passed by it; or

(c) the Bill is passed by the Council with amendments to which the Legislative Assembly does not agree,

the Bill shall be deemed to have been passed by the Houses of the Legislature of the State in the form in which it was passed by the Legislative Assembly with such amendments if any, as have been agreed to by the Legislative Assembly.

(3) Nothing in this article shall apply to a Money Bill.'"

[172 (1). यदि विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-सभा किसी विधेयक के पारित हो जाने तथा विधान-परिषद् को पहुंचाये जाने के पश्चात्—

धन विधेयकों से अन्य विधेयकों के बारे में विधान परिषद् की शक्तियों का निर्बन्धन।

(क) परिषद् द्वारा विधेयक अस्वीकार कर दिया जाता है; अथवा

(ख) परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से, उससे

विधेयक पारित हुये बिना दो मास से अधिक समय व्यतीत हो जाता है; अथवा

(ग) परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पारित होता है जिनसे सभा सहमत नहीं होती;

तो विधान-सभा विधेयक को, उसी या किसी आगे आने वाले सत्र में ऐसे किन्हीं संशोधनों सहित या बिना, यदि कोई हों, जो विधान-परिषद् ने किये हैं या स्वीकार किये हैं, पुनः पारित कर सकेगी तथा तब इस प्रकार पारित विधेयक को विधान-परिषद् को पहुंचा सकेगी।

(2) यदि विधान-सभा द्वारा विधेयक के इस प्रकार दोबारा पारित हो जाने तथा विधान परिषद् को पहुंचाये जाने के पश्चात-

(क) परिषद् द्वारा विधेयक अस्वीकार कर दिया जाता है; अथवा

(ख) परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से, उससे विधेयक पारित हुये बिना एक मास से अधिक समय व्यतीत हो जाता है; अथवा

(ग) परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पारित होता है जिन्हें सभा स्वीकार नहीं करती;

तो विधेयक राज्य के विधान-मण्डल के सदनों द्वारा उस रूप में पारित समझा जायेगा जिसमें कि वह विधान-सभा द्वारा ऐसे संशोधनों सहित, यदि कोई हों, जो उसने स्वीकार कर लिये हों, पारित किया गया था।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी धन-विधेयक को लागू नहीं होगी।]

सभा को स्मरण होगा कि जब हमने राज्य-परिषद् और लोक सभा के मतभेदों के निराकरण के प्रश्न पर विचार-विमर्श किया था तो हमने उन विभिन्न उपायों पर भी विचार किया था जिनसे ये मतभेद मिटाये जा सकते हैं और हम उस निर्णय पर पहुंचे थे कि केन्द्रीय विधान-मण्डल की संघीय रूप-रेखा को ध्यान में रखते हुए उचित यही होगा कि दोनों सदनों के आपस के मतभेदों को उनके एक ऐसे संयुक्त सत्र में मिटाया जाये जिसका इस उद्देश्य से राष्ट्रपति आह्वान करे। उस समय यह सुझाव रखा गया था कि संयुक्त सत्र की प्रक्रिया को स्वीकार करने के स्थान पर हमें 1911 के संसद्-अधिनियम में सन्निहित प्रक्रिया को स्वीकार करना चाहिये जिसके अधीन धन-विधेयक के अतिरिक्त अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में, यदि लार्ड्स सभा, कामन्स-सभा के प्रस्तावित किये हुए किसी संशोधन से सहमत न हो सकी हो, अथवा उसने सहमत होना उचित न समझा हो, तो कुछ समय के पश्चात् अन्तिम बार विचार-विमर्श हो जाने पर कामन्स-सभा का विनिश्चय प्रभावी होता है। इस विषय पर विचार करने के पश्चात् यह समझा गया कि विधान-मण्डल के सदनों के आपस के मतभेद को मिटाने के लिए संसद अधिनियम में जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है वह प्रान्तों के सदनों के लिए उपयुक्त है। बाद में मूल अनुच्छेद के स्थान में हमने इस आशय का एक अनुच्छेद रखा कि दो सदनों के बीच किसी ऐसे मतभेद के होने पर जिसे वे आपस के समझौते

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

से न मिटा सके हों, लोकप्रिय सदन का विनिश्चय ही प्रभावी होना चाहिये क्योंकि वही सदन लोक-समुदाय का प्रतिनिधित्व करेगा। श्रीमान्, मैं उपरोक्त प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन पर संशोधनों की सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 के सम्बन्ध में प्रस्तावित अनुच्छेद 172 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में 'two months' (दो मास) शब्दों के स्थान पर 'three months' (तीन मास) शब्द रखे जाये।"

मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूं कि यह क्यों आवश्यक है। डॉ. अम्बेडकर ने संशोधन संख्या 172 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया है वह सूची 1 के संशोधन संख्या 10 का रूपान्तर है। यदि माननीय सदस्य संशोधन संख्या 10 को परीक्षा करें तो वे देखेंगे कि खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में और खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में यह उल्लिखित है कि विधान-सभा को विधेयक के वापस भेजे जाने के पश्चात् क्रमश: तीन मास और एक मास की अवधि व्यपगत हो सकती है किन्तु वह अवधि उत्तर सदन में विधेयक के प्राप्त होने की तिथि से आरम्भ होगी और संशोधन संख्या 10 में प्रस्तावित अनुच्छेद 172 के खण्ड (3) में बताया गया है कि तीन मास की अवधि किस प्रकार निश्चित की जायेगी और उसमें यह भी कहा गया है कि यदि उत्तर सदन सत्रावसित हुआ तो तीन मास की गणना में सत्रावसान की अवधि नहीं सम्मिलित की जायेगी। वास्तव में, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर कह चुके हैं, इस संशोधन में बहुत कुछ 1911 के संसद अधिनियम की शब्दावली ही प्रयुक्त है। कुछ अन्तर अवश्य है और वह यह देखकर किया गया है कि इंग्लिस्तान की संसद में किस प्रकार का अनुसरण किया जाता है और हमारे यहां किस प्रथा के अपनाये जाने की सम्भावना है। यद्यपि इंग्लिस्तान की संसद के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सत्रावसान के समय को सम्मिलित करके इतना निश्चित समय लगेगा किन्तु हमारे यहां के उत्तर सदनों के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि जहां इंग्लिस्तान की सदन के अधिवेशन साल भर दिन-प्रतिदिन होते रहते हैं वहां हमारे प्रान्तीय विधान-मण्डलों के उत्तर सदनों के अधिवेशन कुछ ही दिनों के लिए होते हैं। एक वर्ष में उन के अधिवेशनों का कुछ समय दो मास से भी अधिक न होगा। इसे ध्यान में रखते हुए हमारे एक प्रमुख प्रान्त के प्रधान मंत्री ने यह कहा कि इसके कारण बहुत देर हो जायेगी। एक वर्ष या इससे भी अधिक समय की देर हो सकती है क्योंकि उत्तर सदन किसी समय भी लगातार तीन मास के लिए सत्रस्थ न होगा और वास्तव में सारे वर्ष में भी तीन मास के लिए सत्रस्थ न होगा। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुये डॉ. अम्बेडकर ने अपना संशोधन उपस्थित किया है और संशोधन संख्या 10 का खण्ड (3) छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त एक अन्तर और किया गया है और वह यह है कि समय की गणना उस तिथि से होगी जब विधेयक उत्तर सदन के सामने रखा जायेगा। इसलिए विधेयक के प्राप्त होने की तिथि का प्रश्न ही नहीं रहता। उस समय यह विचार किया गया था कि दो मास की अवधि पर्याप्त होगी। चूंकि खण्ड (3) निकाल दिया गया है, जिसके फलस्वरूप जितना समय व्यपगत होगा उसमें सभा के सत्रावसान के समय की

गणना नहीं होगी, इसलिए हमने इस प्रश्न पर फिर विचार किया और हम इस निर्णय पर पहुंचे कि दो मास का समय अपर्याप्त है और तीन मास का समय अधिक युक्तियुक्त है। जिस तिथि को कोई विधेयक उत्तर-सदन के सम्मुख रखा जायेगा तब से अवर सदन को वापस भेजने का कुल समय तीन मास होगा। मेरे विचार से तथा मसौदा-समिति के मेरे सहकारियों के विचार से यह व्यवस्था युक्तियुक्त है। इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। इससे यह समय केवल एक मास और बढ़ जाता है और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

[सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 11 और 12 उपस्थित नहीं किये गये।]

***अध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर तथा संशोधनों पर वादानुवाद हो सकता है। मैं समझता हूं कि जिन संशोधनों की सूचना दी गई थी वे मूल अनुच्छेद के सम्बन्ध में थे और इसलिए अब उनका प्रश्न नहीं उठता।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल) : मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान केवल मसौदे की एक दो साधारण त्रुटियों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। खण्ड (ख) इस प्रकार होना चाहिये:

> "परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से, उससे विधेयक उसी रूप में पारित हुये बिना, जिस रूप में वह विधान-सभा में स्वीकार किया गया था, दो मास से अधिक समय व्यतीत हो जाता है।"

क्योंकि वह यह तो उसी रूप में पारित होगा या संशोधनों के साथ। खण्ड (ग) में संशोधनों का उल्लेख किया गया है किन्तु अच्छा यही होगा कि इसे खण्ड (ख) में भी स्पष्ट कर दिया जाये।

इसके अतिरिक्त खण्ड (ग) में कहा गया है, "परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पारित होता है जिनसे सभा सहमत नहीं होती",—यह बाद की कार्यवाही है क्योंकि जब परिषद् किसी विधेयक को पारित करेगी तो उसे यह ज्ञात न होगा कि विधान-सभा सहमत होगी या असहमत। जब कभी परिषद् किसी संशोधन को पारित करेगी वह इसी आशा से पारित करेगी कि विधान-सभा उसे स्वीकार कर लेगी। यदि वह स्वीकार नहीं करती है तो आगे की कार्यवाही होती है। इसलिए खण्ड (ग) में ये शब्द होने चाहियें-"परिषद् द्वारा विधेयक संशोधनों सहित पारित होता", और अन्य शब्दों को निकाल देना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 172 को उपस्थित किया है उसका मैं विरोध करता हूं। पुराने मसौदे में संयुक्त अधिवेशन के लिए जो उपबन्ध था वह एक उपयुक्त उपबन्ध था। यह मेरी समझ में नहीं आता कि वह अब क्यों निकाला जा रहा है। हमें पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हमें उत्तर-सदन की आवश्यकता है या नहीं। यदि हमें उतर-सदन की आवश्यकता है तो उसे कुछ शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें। विधि-निर्माण में उसे भी योग देना है। जब वयस्क मताधिकार पर आधृत एक नवीन संविधान प्रवत्तन में आयेगा तो अवर सदन को ही सब शक्तियां दे देने

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

से संकट उपस्थित हो सकता है। अवर-सदन के सम्पूर्ण प्रभुत्व के प्रति मेरी निष्ठा नहीं है। मेरी यह धारणा है कि शक्ति उन लोगों को प्रदान की जानी चाहिये जो साक्षर हों और केवल साक्षर ही नहीं बल्कि बुद्धिमान भी हों। मेरी यह धारणा भी है कि उन लोगों को ही शक्ति प्रदान की जाये जो न केवल बुद्धिमान हों बल्कि न्याय करने की क्षमता भी रखते हों। मुझे विश्वास नहीं है कि वयस्क मताधिकार की आधारशिला पर निर्मित अवर-सदन किसी के प्रति न्याय कर सकेगा। भारत के लोग निरक्षर ही नहीं हैं बल्कि संकुचित विचार भी रखते हैं और धर्मान्धता तथा अन्ध विश्वास में डूबे हुये हैं। इसलिए मैं इस अनुच्छेद के पुराने मसौदे के पक्ष में हूं जिसमें संयुक्त अधिवेशन के सम्बन्ध में उपबन्ध था। अपने देश के राजनैतिक जीवन को देखते हुए मेरा अपना यह विचार था कि उत्तर सदन को अवर सदन के समान ही शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें किन्तु फिर विचार करने से मैंने इस मध्य मार्ग का अनुसरण करना उचित समझा कि संयुक्त अधिवेशन के लिए एक उपबन्ध होना चाहिये। किन्तु सत्र के अन्त में अब इस अवसर पर हमारे सामने एक नवीन अनुच्छेद रखा गया है। मैं इस पूरे अनुच्छेद का विरोध करता हूं।

दूसरी बात यह है कि उत्तर सदन को विधि के पारित होने में देर करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है। पुराने अनुच्छेद में छह मास की अवधि निर्धारित की गई थी। अब उस अवधि को कम करके एक, दो अथवा तीन मास का समय रखा गया है। मैं कह नहीं सकता कि इनमें से किस अवधि को सभा स्वीकार करेगी। मेरा अपना यह विचार है कि यह अवधि एक वर्ष की होनी चाहिये। इस बीच अन्तर्दृष्ट होकर सावधानी से विचार करने का अवसर मिलेगा ताकि यदि कोई विधेयक किसी समय विद्वेष तथा उद्विग्नता से पारित किया गया हो तो उत्तेजना के शान्त होने पर उसका पुनर्विलोकन हो सकेगा और कुछ समय बीत जाने के कारण लोग निरूद्विग्न होकर प्रत्येक प्रश्न पर यथोचित रूप से विचार कर सकेंगे। लोकतंत्र तथा संसदीय प्रणाली को स्थापित करने के लिए तथा अवर-सदन को सभी शक्तियां प्रदान करने के लिए बिना समझे-बूझे कदम उठाने से देश संकट में पड़ जायगा। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि महाभारत के युद्ध में जितने लोग मारे गये थे उन्होंने कांग्रेसजनों के रूप में जन्म लिया है। उन्होंने देश का विभाजन ही नहीं किया है बल्कि वे अब देश के उस भाग के हितों के लिए भी संकट उपस्थित कर रहे हैं जो उनके संरक्षण में है। संसदीय प्रणाली और लोकतंत्र को स्थापित करने के प्रयास में सब कुछ विनष्ट हो जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान्, यह एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है और मसौदा-समिति ने जो नवीन संशोधन उपस्थित किया है उसके लिए मैं उसे बधाई देता हूं। मैं नहीं समझता था कि मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद इसका इस प्रकार विरोध करेंगे। उन्हें इस पर संदेह है कि वयस्क मताधिकार पर आधृत अवर-सदन उतरदायित्व को वहन कर सकेगा या नहीं और उनकी यह धारणा है कि उत्तर-सदन को ही वास्तविक शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। मुझे स्मरण नहीं है कि जब वयस्क मताधिकार सम्बन्धी उपबन्ध पारित किया गया था तो उन्होंने उसका विरोध किया था या नहीं। किन्तु मेरा अपना यह विचार है कि यदि संविधान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कोई उपबन्ध है तो वह वयस्क-मताधिकार सम्बन्धी उपबन्ध है। उसके अधीन देश का प्रत्येक वयस्क अपने मत का प्रयोग कर सकेगा

और देश के भाग्य का निर्णय कर सकेगा। हम आरम्भ से ही इसी के लिए लड़ते रहे हैं और मुझे यह सुनकर वास्तव में आश्चर्य हुआ है कि अवर सदन एक अनुत्तरदायी सभा है और उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का बहुत उपयुक्त मसौदा तैयार किया गया है। इसमें उसी प्रथा को स्वीकार किया गया है जो इंग्लिस्तान में प्रचलित है। प्रत्येक देश में उत्तर-सदन पुनर्विलोकन करने वाली सभा है और जब कभी किसी बात के सम्बन्ध में सन्देह होता है अथवा कोई उपबन्ध शीघ्रता से पारित हो जाता है तो वह उस पर विचार करती है। उत्तर सदन के सुझाव पर अवर सदन विचार कर सकता है और यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसे दूर कर सकता है। इसलिए मेरे विचार से डॉ. अम्बेडकर का संशोधन एक उपयुक्त संशोधन है और मैं उसका समर्थन करता हूं। किन्तु मैं एक बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं। अनुच्छेद 172 में परिषद् के आह्वान के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। सम्भव है कि दो मास तक परिषद् का आह्वान ही न हो। किसी पर इसका दायित्व होना चाहिये कि वह परिषद का आह्वान करे ताकि विचाराधीन विषय का निर्णय दो मास में हो सके। मेरे विचार से यदि मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद गम्भीरता से विचार करेंगे तो उन्हें फिर कोई आपत्ति न होगी और वे अवर-सदन से भय न करेंगे।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका आशय यह है कि यदि किसी राज्य का अवर-सदन किसी विधेयक को पारित करता है और वह उत्तर-सदन के सम्मुख रखा जाता है और वह उसे अस्वीकार कर देता है, अथवा संशोधित कर देता है, अथवा दो मास तक कुछ नहीं करता है, तो अवर-सदन उसे संशोधन सहित अथवा संशोधन रहित पारित कर सकता है। वह फिर उत्तर-सदन में जायेगा। यदि परिषद् उसे अस्वीकार करती है, अथवा संशोधित करती है, अथवा दो मास तक कुछ नहीं करती है, तो वह विधेयक स्वत: विधि हो जायेगा और सहमति के लिए राज्यपाल के सामने रखा जायेगा। मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद को इस पर आपत्ति है। मेरे विचार से राज्य में अवर-सदन का ही अधिक महत्व होगा क्योंकि वह सभी लोगों की प्रतिनिधि सभा होगी। इंग्लिस्तान में भी इसी प्रकार की प्रथा प्रचलित है। निस्संदेह, यह प्रथा धन-विधेयकों पर लागू नहीं होती है। महत्वपूर्ण बात यह है, और इसी पर विचार भी करना चाहिये, कि उत्तर सदन का स्वरूप कैसा है। उसमें नामनिर्देशित लोग होंगे और वे कुछ हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे, परन्तु अवर सदन लोगों का प्रतिनिधित्व करेगा। जिस शक्ति के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया गया है, यदि वह अवर सदन को नहीं दी जाती है तो इसका अर्थ यह होगा कि कुछ लोगों को राज्य के अन्य लोगों के मत को उलट देने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। लोकतंत्र में लोकमत का ही महत्व है और उसका प्रतिनिधित्व अवर सदन में ही होता है। श्रीमान् मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं विरोध करता हूं। इस संशोधन के लिए मैं उन्हें दोष नहीं देता हूं। किन्तु इस सभा के बाहर के लोगों का जो मत है उसका भी उन्हें आदर करना चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन से दूसरे सदन को स्थापित करने का उद्देश्य ही निष्फल हो जायेगा। दूसरे सदन का उद्देश्य ही यही है कि वह पुनर्विलोकन का कार्य करे और विधि-निर्माण में

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विलम्ब करे। यदि लोकप्रिय सभा में बहुत सदस्य हों तो इस व्यवस्था की प्रायः आवश्यकता पड़ती है। यदि किसी सभा के सदस्यों को कुछ भी अनुभव न हो तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि उत्तर सदन में उसके कार्य का पुनर्विलोकन हो तथा उस पर पुनर्विचार किया जाये। उत्तर-सदन का यही कर्त्तव्य है कि वह विधेयकों पर गम्भीरता से दूसरी बार विचार करे। यथोचित रूप से विचार करने के पश्चात् वह संशोधनों का सुझाव रखता है जो अवर-सदन में प्रायः स्वीकार कर लिये जाते हैं। मुझे उत्तर सदन के कार्य का कुछ अनुभव है। मैंने यह देखा है कि आरम्भ में अवर-सदन उत्तर-सदन से कुछ चिढ़ा सा रहता है और यह समझ में भी आता है। अवर-सदन के सदस्य यह समझते हैं कि उत्तर-सदन अनधिकृत रूप से स्थापित हो गया है और उसका उद्देश्य अवर-सभा के कार्य को निष्फल कर देना ही है। परन्तु बात यह नहीं है। बंगाल में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि दूसरे सदन की आवश्यकता है और चाहे अवर-सदन उसकी कितनी ही आलोचना क्यों न करता रहा हो किन्तु अन्त में उसकी उपयोगिता उसने भी स्वीकार की है। श्रीमान्, यदि उत्तर-सदन को कार्य करना ही है तो उसे अपने कर्त्तव्य के निर्वहन के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिये। खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में यह उपबन्धित है कि यदि अवर-सदन द्वारा पारित कोई विधेयक परिषद के सम्मुख रखे जाने की तिथि से दो मास के अन्दर उसके द्वारा पारित नहीं होता है तो वह पुनर्विचार के लिए अवर-सदन के सामने रखा जायेगा। मेरा यह निवेदन है कि यदि हम दो मास की कड़ी शर्त रखते हैं तो सम्भावना इसकी भी है कि उत्तर-सदन कई मामलों के सम्बन्ध में कुछ कार्य ही न कर सकेगा। मैं एक उदाहरण देता हूं। यदि किसी विधेयक को अवर-सदन पारित कर देता है और वह सत्र के अंत में उत्तर-सदन के सामने रखा जाता है और वह सदन दीर्घकाल के लिए स्थगित हो जाता है और दो मास तक समवेत नहीं होता तो इस स्थिति में उत्तर-सदन उस मामले पर ही विचार कर सकेगा और उस सदन के सदस्य तथा कर्मचारियों के पास कुछ भी काम न रहेगा। यदि उत्तर सभा को कार्य करना है तो उसे विधेयकों पर यथाचित रूप से विचार करने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिये। इसलिए मेरा यह निवेदन है कि दो मास की शर्त एक कड़ी शर्त है और उससे दूसरे सदन का उद्देश्य निष्फल हो जायेगा तथा उसका सब व्यय और श्रम भी निरर्थक सिद्ध होगा।

इसके अतिरिक्त संशोधन के खण्ड (2) में यह उपबंधित है कि यदि उत्तर-सदन किसी विधेयक को दो मास के अन्दर पारित न कर सके तो अवर-सदन उस पर फिर विचार करेगा और उसे संशोधनों सहित अथवा संशोधनों रहित पारित करेगा और इसके पश्चात् वह उत्तर-सदन के सम्मुख फिर रखा जायेगा । इस खण्ड में यह उपबंधित है कि यदि कोई विधेयक उत्तर-सदन के सामने रखा गया और यदि वह इस तिथि से एक मास के अन्दर पारित नहीं हुआ तो अवर सभा ने जिस रूप में उस विधेयक को पारित किया था उसी रूप में वह दोनों सभाओं द्वारा पारित समझा जायेगा। श्रीमान्, इस उदाहरण द्वारा मैंने यह दिखाया है कि एक अवस्था में उत्तर-सदन को विधेयक पर विचार करने का अवसर ही न मिलेगा और एक अवस्था में वह उस पर पर्याप्त विचार न कर सकेगा। वह एक मास

में अपने कार्य को पूरा नहीं कर सकता और किसी अवस्था में उसे किसी भी विधेयक पर विचार करने का अवसर नहीं मिलेगा। कोई विधेयक पेचीदा हो सकता है, कठिन हो सकता है और विवादग्रस्त भी हो सकता है। उसे प्रवर समिति के सामने रखने अथवा मत-संग्रह के लिए घुमाने की आवश्यकता हो सकती है। वास्तव में हम कह नहीं सकते कि किस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हम थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि अवर-सदन और उत्तर-सदन दोनों ईमानदारी से काम करेंगे, और मुझे विश्वास है कि वे ईमानदारी से काम करेंगे ही। उत्तर-सदन यह निर्णय कर सकता है कि विधेयक पर एक प्रवर-समिति विचार करे अथवा विशेषज्ञ उसकी परीक्षा करें। दूसरी अवस्था में हमने एक मास की शर्त रख दी है। मेरा यह निवेदन है कि इन सख्त शर्तों से दूसरे सदन का उद्देश्य ही निष्फल हो जायेगा। इसलिए मेरा यह निवेदन है कि संविधान के प्रारम्भिक मसौदे में इस अनुच्छेद का रूप उपयुक्त था। मसौदा-समिति के पास अत्यधिक कार्य होने से वह निराश हो गई और किसी भी सुझाव अथवा संशोधित प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गई। मेरा यह निवेदन है कि ये महत्वपूर्ण विषय हैं और इन पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। एक मास अथवा दो मास की सख्त शर्तें अव्यावहारिक सिद्ध होंगी और उनके कारण सुचारू रूप से कार्य न हो सकेगा। यह प्रश्न सद्भावना से हल होना चाहिये और इसी प्रकार इसे हल करने की व्यवस्था करनी चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि यह एक महत्वपूर्ण आपत्ति है क्योंकि इस व्यवस्था से उत्तर-सदन का उद्देश्य ही निष्फल हो जाता है और वह सदन निरर्थक हो जाता है। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

सरदार हुकम सिंह (पूर्वी पंजाब : सिख) : अध्यक्ष महोदय, संशोधनों की सूची में मेरे नाम से एक संशोधन था किन्तु एक नियम-सम्बन्धी कारण से वह उपस्थित नहीं किया जा सका। मेरा यह निवेदन है कि अन्त में यह अनुच्छेद जिस रूप में प्रस्तावित किया गया है उस रूप में वह स्पष्ट नहीं है। जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है उसका अनुसरण करना इतना कठिन हो जायेगा कि साधारण विधि-निर्माण में भी अत्यधिक देर हो जायेगी। मैं चाहता हूं कि एक दो बातें स्पष्ट कर दी जायें। जहां तक उपखण्ड (ख) का सम्बन्ध है, उसमें यह निर्धारित किया गया है कि जब से कोई विधेयक उत्तर-सदन के सामने रखा जाये तब से उसके पारित होने तक दो मास से अधिक समय न बीतना चाहिये। इसके अतिरिक्त खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) में कहा गया है, "परिषद द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पारित होता है जिनसे सभा सहमत नहीं होती", यह बहुत अस्पष्ट है। जब परिषद् किसी विधेयक को संशोधनों सहित स्वीकार कर लेती है तो वह विधान-सभा के पास वापस भेजा जाता है। इसका अर्थ यह है कि चाहे विधान-सभा सहमत हो या असहमत उसे एक दूसरा अधिवेशन करना ही होगा और विधेयक को दुबारा पारित करना ही होगा। इसके अतिरिक्त खण्ड (2) (ग) के अधीन यदि परिषद् किसी विधेयक को ऐसे संशोधनों के साथ पारित करती है जिनसे विधान-सभा सहमत नहीं होती, तो विधान-सभा को उस पर तीसरी बार विचार करना होगा, क्योंकि बिना ऐसा किये हुये यह ज्ञात नहीं हो सकेगा कि विधान-परिषद द्वारा प्रस्तावित संशोधनों से विधान-सभा सहमत है या नहीं। इस प्रकार विधान-सभा में तीन बार और विधान-परिषद् में दो बार विचार होने से किसी ऐसी विधि के निर्माण में विलम्ब हो सकता है जिसे शीघ्रता से पारित करने की आवश्यकता हो।

[सरदार हुकम सिंह]

परिषद् का कर्त्तव्य यह है कि वह अनावश्यक शीघ्रता से विधि-निर्माण न होने दे किन्तु इसकी भी एक सीमा है। यह न होना चाहिये कि बिना किसी आवश्यकता के विलम्ब हो और किसी विधि का उद्देश्य ही निष्फल हो जाये। यदि इस प्रकार की व्यवस्था की गई तो इससे परिषद को बहुत सी ऐसी शक्तियां प्राप्त हो जायेगी जो उसे प्रदान करना अनावश्यक है। मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का इस प्रकार के लोकतन्त्र में विश्वास नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मेरा लोकतन्त्र में पूरा विश्वास है किन्तु संसदीय प्रणाली में मेरा विश्वास नहीं है। इन दोनों में बहुत अन्तर है।

***सरदार हुकम सिंह:** मैंने कहा था 'इस प्रकार का लोकतंत्र' जो इस उपबन्ध में निर्धारित है। वे शायद 'इस प्रकार' शब्दों को नहीं सुन पाये। उनका यह कहना है कि अवर-सदन को साधारण शक्तियां नहीं प्रदान की जानी चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि यदि हम इस व्यवस्था को प्रयोग में लाना चाहते हैं तो हम सच्चे हृदय से उसे प्रयोग में लायें और कोई बात उठा न रखे। इसलिए लोक-प्रतिनिधियों को पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिये ताकि जब कभी वे यह समझे कि कोई विधि लोक-हित साधन के लिए आवश्यक है तो वे उसे पारित कर सकें। यदि कभी अनावश्यक शीघ्रता दिखाई गई हो और उसे रोकना हो तो उसे रोकने के लिए पर्याप्त व्यवस्था है क्योंकि जब कभी विधान-परिषद् किसी विधेयक को अस्वीकार करेगी, अथवा कुछ संशोधनों के साथ उसे विधान-सभा के पास वापस भेजेगी, तो विधान-सभा को उस पर विचार करना ही होगा। इसके अतिरिक्त यदि उसे दोनों सदन भी पारित कर दें तो उसे अनुमति के लिए राज्यपाल के पास भेजना ही होगा और इस अनुच्छेद के परन्तुक के अधीन राज्यपाल उसे सुझावों तथा संशोधनों के साथ पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। मेरा यह प्रस्ताव था कि जब विधान-सभा किसी विधेयक को दूसरी बार पारित कर ले तो उसे फिर परिषद के पास वापस भेजने की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तावित प्रक्रिया बहु-श्रम-साध्य और बहु-व्यय-साध्य होगी और इससे विधि-निर्माण में भी विलम्ब होगा। मेरे विचार से वह अनावश्यक है। इसके अतिरिक्त उपखण्ड (ग) के पश्चात् यह निर्धारित किया गया है कि "विधान-सभा विधेयक को, उसी या किसी आगे आने वाले सत्र में ऐसे किन्हीं संशोधनों सहित या बिना, जो विधान-परिषद् ने किये हैं या स्वीकार किये हैं, पुन: पारित कर सकेगी...." यह मेरी समझ में नहीं आता कि विधान-परिषद् इन संशोधनों को करने, स्वीकार करने अथवा इनका सुझाव करने के लिए सक्षम है या नहीं। निस्संदेह, वह एक परामर्शदातृ सभा है और वह सुझाव रख सकती है और संशोधनों के साथ विधेयक को भी वापस लौटा सकती है किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इन तीन शब्दों के भिन्न अर्थ हैं अथवा ये एक ही बात पर जोर देने के लिए प्रयोग किये गये हैं। मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे इसे भी स्पष्ट करें।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ में मैं इस अनुच्छेद के वर्तमान मसौदे का विरोध करता हूं।

डॉ. पी.एस. देशमुख (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह उत्तरोत्तर अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि राज्यों में दूसरे सदन के सम्बन्ध में जो उपबन्ध है उसकी इस कारण आवश्यकता है कि वयस्क मताधिकार पर विश्वास नहीं रखा जा सकता और श्री ब्रजेश्वर प्रसाद से अधिक स्पष्टता से इस धारणा को किसी अन्य सदस्य महोदय ने व्यक्त नहीं किया है। उनका यह विचार है कि यदि दूसरे सदन के लिए उपबन्ध नहीं रखा गया और उसे अधिक शक्तियां प्रदान न की गई तो देश विनष्ट हो जायेगा। मैं इस अवसर पर इसी कारण बोलने आया हूं कि इस समय हम जिस उपबन्ध पर विचार कर रहे हैं उससे यह प्रकट होता है कि दूसरे सदन का उद्देश्य केवल विधि-निर्माण में विलम्ब करना है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह ठीक ही कहा है कि हमने इस सदन को कोई भी प्रभावपूर्ण शक्तियां प्रदान नहीं की हैं। प्रश्न यह है कि क्या केवल विधि-निर्माण में विलम्ब करने के लिए दूसरे सदन के लिए इतना प्रबन्ध करने तथा उसमें प्रतिनिधित्व आदि की कठिनाइयों को हल करने और उसमें प्रतिनिधित्व करने के लिए यथोचित हितों को क्या ढूंढ निकालने की आवश्यकता है? दूसरे शब्दों में केवल इस उद्देश्य से दूसरे सदन को स्थापित करने की क्या आवश्यकता है? अब अनुच्छेद 172 में जो उपबन्ध रखे गये हैं उनके अधीन विलम्ब भी बहुत कम हो सकेगा। अधिक से अधिक छह मास का विलम्ब होगा। दूसरे सदन को धन-विधेयकों को लाने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए वह केवल किसी ऐसे विधेयक के पारित होने में देर कर सकता है जिसे विधान-सभा ने स्वीकार किया हो और जिससे वह असहमत हो। श्रीमान्, मेरे विचार से जिन साधारण कार्यों को वह करेगा उनका महत्व, जो श्रम और धन व्यय होगा उसकी तुलना में कुछ भी न होगा। चूंकि अभी हमने दूसरे सदन की रचना, उसमें प्रतिनिधित्व तथा उसकी सदस्यता के सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया है इसलिए मेरा यह अनुरोध है कि इस सुझाव पर विचार किया जाये कि क्या राज्यों के लिए दूसरे सदन की व्यवस्था बिल्कुल ही न करना सम्भव नहीं है।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, हमने यह देखा है कि प्रान्तों में दूसरे सदनों की स्थापना का बहुत विरोध किया गया है और इस कारण मैं संशोधन का समर्थन करता हूं। वे नहीं चाहते कि उनके यहां दूसरे सदन स्थापित किये जायें और इसलिये यह प्रांतों पर ही छोड़ दिया गया है कि वे दूसरे सदन स्थापित करें अथवा न करें। जिन प्रांतों में दूसरे सदन स्थापित भी हों उनको भी इसकी स्वतन्त्रता दी गई है कि वे यदि चाहें तो यह निश्चय कर सकते हैं कि दूसरे सदनों का विघटन कर दिया जाये। यदि किसी प्रान्त ने दूसरा सदन स्थापित न किया हो तो उसे भी इसकी स्वतंत्रता है कि यदि वह चाहे तो दूसरे सदन को स्थापित कर ले। जब दूसरे सदन की स्थापना के सम्बन्ध में इतना मतभेद है और दूसरे सदन का उद्देश्य यही है कि वह विधि-निर्माण में विलम्ब करे और यदि कोई त्रुटियां रह गई हों तो उन्हें दूर करे तो क्या यह उचित है कि उसे विधि-निर्माण की शक्ति प्रदान की जाये? यदि उसे परामर्शदातृ सभा का ही कार्य करना होगा तो सम्भवत: प्रत्येक प्रान्त दूसरे सदन को स्थापित करना चाहेगा क्योंकि अवर सदन कोई त्रुटियां कर बैठेगा तो उन्हें उत्तर-सदन ठीक कर देगा। इसके अतिरिक्त उत्तर-सदन के मत का अधिक महत्व होगा और जब कभी बहुत मतभेद होगा तो चूंकि किसी राज्य के उत्तर-सदन में अवर-सदन के

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सदस्यों के पच्चीस प्रतिशत सदस्य ही होंगे, इसलिए वही सदन इसका निर्णय करेगा कि किसी विधेयक के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया जाये। संयुक्त अधिवेशन का अर्थ यह है कि किसी विधेयक के सम्बन्ध में उत्तर-सदन के कुछ सदस्य ही निर्णय करेंगे और फिर अभी हमने उत्तर-सदन की रचना के सम्बन्ध में भी कोई निश्चय नहीं किया है। मुझे इसका विश्वास है कि चाहे उसकी रचना के सम्बन्ध में संविधान में उललेख किया जाये अथवा विधान-मण्डल के किसी अधिनियम में उसका वर्णन हो, किन्तु उस सदन में कुछ सदस्य ऐसे अवश्य होंगे जिन्हें राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल नाम निर्देशित करेगा और वे कला, शिक्षा आदि का प्रतिनिधित्व करेंगे। यह भी हो सकता है कि यही नामनिर्देशित सदस्य किसी सामाजिक अथवा अन्य प्रकार की विधि के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करें। इसलिए यदि हम दूसरे सदनों को अत्यधिक शक्ति दे देंगे तो कई प्रान्त और देशी राज्य दूसरे सदनों की स्थापना का आरम्भ से ही विरोध करने लगेंगे। ये बातें तभी दूर हो सकती हैं जब यह प्रान्तों पर छोड़ दिया जाये कि वे कुछ समय के पश्चात् इस विषय के सम्बन्ध में निर्णय करें। यह अवश्य होना चाहिये कि अवर-सदन जो भी निर्णय करे वह विधि का रूप धारण कर ले। कामन्स-सभा की प्रथा को देखकर ही यह अनुच्छेद बनाया गया है। मैं कह नहीं सकता कि अमरीका में अथवा आस्ट्रेलिया के विभिन्न प्रांतों में क्या प्रथा है। आस्ट्रेलिया के संघीय संविधान तथा अमरीका के संघीय संविधान की ही रूप-रेखा प्राप्य है।

आस्ट्रेलिया में संयुक्त अधिवेशन के सम्बन्ध में उपबन्ध है। केन्द्र की बात दूसरी है। अवर-सदन और उत्तर-सदन के मतभेदों को मिटाने के लिए हमने केन्द्र के सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया से संविधान के आधार पर संयुक्त अधिवेशन-विषयक उपबन्ध रखे हैं। जहां तक प्रांतों का सम्बन्ध है हमने उनके विषय में आस्ट्रेलिया के राज्यों के संविधान का अनुसरण नहीं किया है। उनके सम्बन्ध में हमें इन संविधानों का अनुसरण न करना चाहिये। मैं उस संशोधन से सहमत हूं जिसका आशय यह है कि हमें इस आभार को स्वीकार न करना चाहिये कि परिषद् को नये अधिकार दिये जायें क्योंकि विधान-परिषद् को कोई भी स्थापित नहीं करना चाहता। लगभग प्रत्येक प्रान्त एक पृथक परिषद् की स्थापना का विरोध कर रहा है। इस स्थिति में हमें परिषद् को अत्यधिक शक्तियां प्रदान न करनी चाहिये अन्यथा उसी का मत निर्णयकारी होगा और वह अवर-सदन के विचारपूर्ण निर्णयों का शून्यन कर देगी।

माननीय सदस्य महोदय एक अन्य प्रश्न पर भी विचार करें। अवर-सदन के प्रति मंत्रि-मण्डल उत्तरदायी होगा और उसी को धन-विधेयकों को लाने का प्राधिकार भी है। जहां तक धन-विधेयकों का सम्बन्ध है उत्तर-सदन को उन पर थोड़ा बहुत विचार-विमर्श करने के अतिरिक्त उनके बारे में और कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। जहां तक अन्य विधेयकों का सम्बन्ध है उनमें कोई सारवान प्रश्न भी अन्तर्ग्रस्त हो सकता है और उनके सम्बन्ध में मंत्रि-मण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पारित हो सकता है जिसके फलस्वरूप मंत्रि-मण्डल को पद-त्याग करना पड़े। कई पेचीदगियां पैदा हो सकती हैं। इस स्थिति में सबसे अच्छी प्रणाली यही होगी कि एक अथवा दो सत्रों के पश्चात् यदि अवर-सदन किसी विधेयक को पारित ही करना चाहे किन्तु उत्तर-सदन इसके लिए सहमत न हो तो अवर-सदन द्वारा

पारित विधेयक स्वतः विधि का रूप धारण कर लेगा। इससे उत्तर-सदन का अवर-सदन से कलह न होगा और राज्यों को भी दूसरे सदन को स्थापित करने तथा उनसे परामर्श करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं और जिन माननीय सदस्यों ने संयुक्त अधिवेशन के सम्बन्ध में इस संशोधन पर संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे उन पर मतदान के लिए जोर न दें।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर के भाषण को स्पष्टतया नहीं सुन सका। इसलिये मैं कह नहीं सकता कि उन्होंने यह बताया है की नहीं कि अनुच्छेद 172 के सम्बन्ध में उन्होंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसकी क्यों आवश्यकता है।

सभा को इस सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार है कि दूसरा सदन स्थापित किया जाये या नहीं। पहले एक दिन माननीय सदस्यों में इस विषय पर मतभेद था कि विधान-परिषदों की रचना के सम्बन्ध में संविधान में उपबन्ध रखने चाहिये अथवा संसद को उनके सम्बन्ध में उपबन्ध रखने की स्वतंत्रता देनी चाहिये। श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि विधान-परिषदों को चाहे जिस प्रकार स्थापित किया जाये किन्तु वे सरकार अथवा अवर-सदन के इशारों पर ही नाचेंगी। उनकी स्थिति ऐसी न होगी कि वे स्वतन्त्र रूप से अपना मत प्रकट कर सकें। विधान-परिषद् साधारणतया अवर-सदन के अधिकांश सदस्यों का जो मत होगा उसी को व्यक्त करेगा। इस स्थिति में मुझे यह दिखाई देता है कि उत्तर-सदनों को स्थापित करने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। किन्तु यदि सभा की यह इच्छा हो कि उत्तर-सदन स्थापित किया जाये तो मेरा यह सुझाव है कि उसकी शक्तियां इतनी कम न करनी चाहियें कि वह अवर-सदन द्वारा उसके पास भेजे हुये विधेयकों पर सावधानी से विचार ही न कर सके।

संविधान के मसौदे में यह प्रस्तावित किया गया था कि:

"विधान-परिषद् वाले किसी राज्य की विधान-सभा द्वारा, किसी विधेयक के पारित होने और विधान-परिषद् को पहुंचाये जाने के पश्चात् विधान-परिषद् द्वारा विधेयक की प्राप्ति तिथि से, दोनों सदनों द्वारा विधेयक को पारित किये बिना, यदि छह से अधिक मास बीत जायें तो, विधान-सभा के विघटन होने के कारण यदि विधेयक व्यपगत नहीं हो गया है तो, विधेयक पर विचार करने और मत देने के प्रयोजनार्थ, राज्यपाल सदनों को संयुक्त अधिवेशन के लिए बुला सकेगा:"

यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह धन-विधेयकों पर लागू न होगा। इसके अतिरिक्त जिस अनुच्छेद को मैंने पढ़कर सुनाया है उसके खण्ड (2) में उपबंधित है कि:

"ऐसे छह मास की अवधि की संगणना में, जो कि इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में निर्दिष्ट है, किसी ऐसी अवधि को सम्मिलित न किया जायेगा जिसमें

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

दोनों सदनों का सत्रावसान अथवा चार से अधिक दिनों के लिए स्थगन हुआ है।"

संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 172 जिस रूप में रखा गया है, उसकी दो बातों के सम्बन्ध में आपत्ति की जा सकती है। एक यह है कि अवर-सदन द्वारा पारित किसी विधेयक पर विचार करने के लिए विधान-परिषद् के असहमत होने से ही राज्यपाल को यह विचार करना पड़ेगा कि दोनों सदनों का संयुक्त सत्र किया जाये ताकि यह जाना जा सके कि विचाराधीन विधेयक के लिये विधान-मण्डल सहमत है या नहीं। दूसरी बात जिस पर आपत्ति की जा सकती है यह है कि यदि उपरोक्त खण्ड में वर्णित रीति से छह मास की संगणना की गई तो अवर-सदन द्वारा पारित किसी विधेयक के सम्बन्ध में क्या निर्णय हुआ है यह एक वर्ष या इससे भी अधिक समय तक भी निश्चित रूप से न जाना जा सकेगा। दो-तीन दिन पहले मसौदा-समिति ने इसके सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था जिससे छह मास की अवधि तीन मास की रह गई। परन्तु इसके अतिरिक्त उससे संविधान के मसौदे के उपबन्धों में और कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मसौदा-समिति ने अन्त में जो संशोधन उपस्थित किया है उससे यह अवधि दो मास की रह गई है और उस रीति में भी परिवर्तन हो गया है जिसके अनुसार दो मास की संगणना की जायेगी। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने, जो मसौदा-समिति के सदस्य हैं, अब यह संशोधन उपस्थित किया है कि विधान-परिषद् को विचार के लिये जो समय दिया जाये वह दो मास का न हो बल्कि तीन मास का हो। इससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस विषय के सम्बन्ध में मसौदा-समिति भी कोई निश्चित विचार नहीं रखती।

समिति के सुयोग्य सदस्यों के विचार भी अनिश्चित ही हैं। इसलिए सभा को यह जानने का अधिकार है कि समय-समय पर ऐसे परिवर्तनों का सुझाव क्यों रखा जा रहा है जिनके सम्बन्ध में मसौदा-समिति भी इतने समय तक कोई निश्चय नहीं कर सकी है।

श्रीमान्, मुझे इसका कोई खेद नहीं है कि जिस अवधि की मैंने कई बार चर्चा की है उसकी संगणना के सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखा गया था उसे निकाल दिया गया है किन्तु यदि दूसरे सदन को स्थापित करना ही है तो हमें इस पर विचार करना चाहिये कि अवर-सदन द्वारा भेजे हुये विधेयकों पर विचार करने के लिए उत्तर-सदन को कितना युक्तियुक्त समय दिया जाना चाहिये। क्या संविधान के मसौदे में जो छह मास का समय निश्चित किया गया है वह अत्यधिक है, अथवा क्या प्रान्तों की इस समय की विधान-परिषदें विधेयकों को केवल इस कारण रोकने की प्रवृत्ति दिखा रही हैं कि उनके पारित होने में देर हो जाये अथवा उन पर विचार ही न हो सके? जहां तक मुझे स्मरण है ऐसा कोई उदाहरण उपस्थित नहीं हुआ है। मेरे प्रान्त, अर्थात् संयुक्त प्रान्त में, उत्तर-सदन ने बहुत विवाद-ग्रस्त विषयों पर विचार किया है परन्तु जहां तक मुझे विदित है ऐसी कोई आपत्ति नहीं की गई है कि उसने महत्वपूर्ण विधेयकों को अकारण रोकने के लिए अपनी स्थिति का उपयोग किया जिससे लोक-प्रतिनिधि ऐसी विधियों को पारित न कर सके जिनसे लोगों का हित-साधन होता था। मैं कह नहीं सकता कि किसी अन्य विधान मंडल में भी ऐसे विवाद-ग्रस्त विधेयक उपस्थित किये जा सकते हैं जैसे संयुक्त प्रान्त के विधान-मण्डल में उपस्थित किये गये हैं। यदि व्यवहार से यह सिद्ध नहीं होता

कि वर्तमान प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है तो इसका दायित्व मसौदा-समिति पर है कि वह सिद्ध करे कि मसौदे में अवधि-सम्बन्धी उपबन्ध में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। मसौदा-समिति ने समय-समय पर जो परिवर्तन किये हैं उन्हें देखते हुए, मेरे विचार से, वह किसी सिद्धान्त का अनुसरण नहीं कर रही है। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि एक उपयुक्त सिद्धांत का अनुसरण किया जा रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह कहता हूं कि किसी सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया जा रहा है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र ने इसे स्वीकार किया है कि जिस संशोधन को उन्होंने सभा के सम्मुख रखा है उसमें कोई सिद्धान्त सन्निहित नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह कार्यसाधन और व्यवहार का विषय है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** वे इसे स्वीकार करते हैं कि यह कार्यसाधन और व्यवहार का विषय है। मेरा सभा से यह अनुरोध है कि वह इस पर विचार करे कि यदि दूसरे सदन को स्थापित किया गया हो तो क्या किसी महत्वपूर्ण और लम्बे विधेयक पर भी विचार करने के मिले उसे दो या तीन महीने से अधिक समय न देना चाहिये? यदि यह उपबन्ध पारित हो जाता है तो किसी ऐसे विधेयक के प्राप्त होने पर भी, जिसमें तीन सौ से अधिक खण्ड हों, उत्तर-सदन का यह कर्तव्य हो जायेगा कि वह उसे तीन मास तक पारित कर दे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** केवल दूसरे अवसर पर।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मेरे माननीय मित्र संशोधन को अधिक सावधानी से पढ़ें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** जिस समय अवर-सदन कार्य करता है उत्तर-सदन सोता रहता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मेरे माननीय मित्र ही सोये हुये दिखाई देते हैं। जब अवर-सदन आराम से यह विचार करेगा कि कौन से विधेयक उत्तर-सदन के सम्मुख रखे जायें उत्तर-सदन सोता नहीं रहेगा। सम्भव है उसका अधिवेशन न हो रहा हो। जिस दिन उत्तर-सदन को किसी विधेयक के पारित होने की सूचना प्राप्त होगी उससे कम से कम तीन सप्ताह पश्चात् वह समवेत होगा। इसलिये किसी विधेयक पर विचार करने के लिये उसे दो मास से अधिक समय न मिलेगा। इस प्रश्न के सभी अंगों पर तथा उत्तर-सदन को स्थापित करने के कारण पर विचार करने के पश्चात् मैं यह सुझाव रखता हूं कि यदि सभा यह निश्चय करे कि उत्तर-सदन की स्थापना आवश्यक है तो अवर-सदन द्वारा पारित विधेयकों पर सावधानी से विचार करने के लिए उसे पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये। यदि उत्तर-सदन पर इतनी कृपा भी नहीं की जाती तो उसे अस्तित्व में लाना ही निरर्थक है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मेरा अपना यह विचार है कि वर्तमान परिस्थिति

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

में उत्तर-सदनों की आवश्यकता नहीं है और यदि उन्हें स्थापित किया गया तो वे न तो कोई उपयोगी कार्य कर सकेंगे और न किसी विषय के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से निर्णय कर सकेंगे। किन्तु यदि सभा उत्तर-सदनों को स्थापित करने के पक्ष में निर्णय करती है तो मेरा यह सुझाव है कि विधेयकों पर सावधानी से विचार करने के लिए उन्हें इतना कम समय न देना चाहिये कि वे निरर्थक सिद्ध हों।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के दूसरे अंश को स्वीकार करने से मेरे इस विचार की पुष्टि होती है कि प्रान्तों में उत्तर-सदनों को अस्तित्व में लाना निरर्थक होगा। यह संशोधन इस उद्देश्य से उपस्थित किया गया है कि विधान-सभायें जिन विधेयकों को शीघ्रता से पारित करें उन पर उत्तर-सभा सावधानी से विचार करे और उनके सम्बन्ध में निर्णय करे। यह भी समझा गया है कि इस संशोधन के फलस्वरूप दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन न हो सकेगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि हम संशोधन के दूसरे अंश को स्वीकार करते हैं तो कुछ वर्गों और समुदायों के हित संकट में पड़ जायेंगे। विधान-सभा में किसी विधि के पारित होने पर लोकमत उसके विरुद्ध हो सकता है। ऐसी दशा में केवल परिषद् ही से रक्षा की आशा की जा सकती है। यदि परिषद् किसी विधेयक को दूसरी बार अस्वीकार कर देगी तो उसका अर्थ यह होगा कि उसमें कुछ दोष हैं और किसी हित का संरक्षण नहीं हुआ है। इसलिये यह आवश्यक है कि विधेयकों के पारण में परिषद् का भी हाथ हो। यह हमें विदित है कि इस देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कई प्रान्तों की विधान-सभाओं में बहुत से विधयेक प्रस्तुत किये गये हैं और वहां की परिषदें उनके लिये सहमत हुई हैं। संविधान के पारित होने पर और भी अधिक विधेयक प्रान्तों की विधान-सभाओं में प्रस्तुत किये जायेंगे जिनका सम्बन्ध समुदायों के हितों तथा उन्हें संरक्षण प्रदान करने से होगा। यदि इस संशोधन के फलस्वरूप विधेयक बिना विचार अस्वीकार कर दिये गये तो कई समुदायों और वर्गों के हितों की बहुत हानि होगी। इसलिये मेरे विचार से कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिसके अधीन दूसरे सदन के किसी विधेयक को अस्वीकार करने पर भी पूर्वोक्त समुदायों के हितों का संरक्षण हो सके। मुझे आशा है कि विशेषज्ञों की समिति इस ओर ध्यान देगी और इन हितों को संकट में न पड़ने देगी।

प्रो. एन.जी. रंगा: (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं कुछ तर्कयुक्त कारणों के आधार पर समर्थन करता हूं। मैं अपने मित्र पंडित कुंजरू के इस कथन से सहमत नहीं हूं कि या तो उत्तर-सदन स्थापित ही न किये जाये किन्तु यदि उन्हें स्थापित किया जाता है तो उन्हें बहुत शक्तिशाली बनाना चाहिये। जैसाकि मैं पहले एक अवसर पर कह चुका हूं, मैं उत्तर-सदनों को स्थापित करने के पक्ष में नहीं हूं। मेरी यह इच्छा है कि सभा यह निर्णय करती कि प्रांतों में एक ही सदन हो। किन्तु सभा में कुछ प्रांतों के लिए दो सदनों की व्यवस्था की है। यदि उत्तर-सदनों को स्थापित करना ही है तो प्रश्न यह उठता है कि वे किस प्रकार के हों? क्या उन्हें इसकी शक्ति देनी चाहिये कि वे अवर-सदन के विधेयकों के पारण में देर ही न कर

सकें बल्कि निष्फल भी बना सकें? मुझे विश्वास है कि सभा इस सम्बन्ध में एकमत है कि उत्तर-सदन से केवल परामर्श देने, नरम करने और देर करने की आशा की जा सकती है। हमारे मतानुसार यह उचित नहीं है। किन्तु यदि हम इस रियाअत के लिये तैयार भी हो जायें तो फिर भी यह उचित न होगा कि उत्तर-सदन को इतनी शक्ति दी जाये कि वह अवर-सदन द्वारा पारित विधेयकों का शून्यन कर सके अथवा उन्हें निरर्थक बना सके। छह मास की क्या आवश्यकता है? यदि समय की आवश्यकता ही है तो तीन मास से आप को संतोष क्यों नहीं हो जाता? मेरे माननीय मित्र पण्डित कुंजरू का यह कहना है कि उत्तर-सदन तीन मास में किसी विधेयक के विभिन्न खण्डों अथवा उसमें अन्तर्ग्रस्त प्रश्नों पर विचार न कर सकेगा। अच्छी बात है। वास्तव में स्थिति क्या है? अवर-सदन विधेयक पर गम्भीरता से विचार कर लेगा और तब उसे उत्तर-सदन के पास भेजेगा। वह उसके प्रत्येक खण्ड पर और प्रत्येक अंश पर गम्भीरता से विचार कर लेगा। वह उसमें अन्तर्ग्रस्त सिद्धान्त को भी स्वीकार कर चुका होगा। वास्तव में अवर-सदन ही लोगों के प्रति उत्तरदायी होगा और किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध में उसे ही पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये। उत्तर-सदन केवल इस पर विचार करेगा कि इस सिद्धान्त को पूरे विवरण के साथ किस प्रकार विधि रूप दिया जाये। इस स्थिति में उत्तर-सदन को तीन मास से अधिक समय देने की क्या आवश्यकता है? व्यावहारिकता की दृष्टि से भी तीन मास से अधिक समय देने की आवश्यकता नहीं है। हमें यह भी समझना चाहिये कि कभी तीन मास का समय देना भी संकटपूर्ण सिद्ध हो सकता है। वर्तमान समय में अथवा आगे चलकर विधि-निर्माण का कार्य सावधानी से करने की आवश्यकता होगी ताकि संकटपूर्ण सामाजिक आन्दोलन न हों और जनता कुछ ऐसे लोगों के भड़काने से अकारण ही उत्तेजित न हो जिनका उद्देश्य केवल यह है कि सभी देशों की सामाजिक व्यवस्था उलट जाये। इसलिये, श्रीमान्, मेरा इस सभा से यह अनुरोध है कि वह मसौदा-समिति के इस प्रस्ताव का समर्थन करे कि वह अवधि तीन मास के अधिक न हो।

इसके अतिरिक्त कई मित्रों ने, जिनमें मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले भी हैं, यह सुझाव उपस्थित किया है कि दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन हों। किन्तु इनकी क्या आवश्यकता है? उनका यह कहना है कि संयुक्त अधिवेशनों की इसलिये आवश्यकता है कि उनमें अधिक समझदारी से काम हो सकेगा।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** मैंने कहा था कि उसकी आवश्यकता नहीं है?

***प्रो. एन.जी. रंगा:** संयुक्त अधिवेशन इस कारण निरर्थक होगा कि उत्तर-सदन के एक-तिहाई अथवा एक-चौथाई सदस्य सम्भवत: नामनिर्देशित होंगे।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): आप यह कैसे कहते हैं? हमने अभी इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया है।

***प्रो. एन.जी. रंगा:** हम यह कह चुके हैं और हम यही निश्चय करने जा रहे हैं। मेरे विचार से हम यह निश्चय करने जा रहे हैं कि कुछ सदस्यों का नाम निर्देशन होगा। इस दशा में अवर-सदन जिस विधि को पारित करेगा उसके सम्बन्ध में निर्णय करने का अथवा उसे रोक कर देर करने की इन लोगों को अत्यधिक शक्ति प्राप्त हो जायेगी। इसके अतिरिक्त उत्तर-सदन के दो-तिहाई अथवा

[प्रो. एन.जी. रंगा]

तीन-चौथाई सदस्यों को अवर-सदन ही निश्चित करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि अवर-सदन को वही लोग यथोचित शीघ्रता से कार्य न करने देंगे जिन्हें वह स्वयं निर्वाचित करेगा।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ परन्तु आप यह क्यों मान लेते हैं कि उत्तर-सदन हमेशा अवर-सदन के काम को रोककर उसमें देर कर देगा?

*__प्रो. एन.जी. रंगा:__ सम्भव है मेरे मित्र यह भूल गये हैं कि इस सभा के ही हमारे मित्र किस उद्देश्य से उत्तर-सदनों को स्थापित करना चाहते हैं। उनमें से अधिकांश लोग जो इसके पक्ष में बोले थे कि....

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ यह भूल जाइये कि वह उस प्रकार के उत्तर-सदन होंगे जो भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में वर्णित हैं।

*__प्रो. एन.जी. रंगा:__ मेरे वे मित्र जो इस सभा में तथा अन्यत्र बोले हैं इसके लिये इच्छुक थे कि उत्तर-सदन विधेयकों को नरम करने तथा उनके पारित होने में देर करने का काम करें। यह एक बात है। दूसरी बात यह है कि यदि हम यह मान भी लें कि आगे के उत्तर-सदनों का निर्माण भिन्न प्रकार से होगा और वे पहले के उत्तर-सदनों के समान न होंगे तो फिर भी हमें यह न भूलना चाहिये कि संसार भर में जहां कहीं उत्तर-सदन है उनका काम विधिनिर्माण में देर करना ही है। वे प्रतिक्रिया के केन्द्र रहे हैं। इस देश में भी उद्देश्य यह है कि उत्तर-सदन प्रतिक्रिया, कट्टरपन्थी और सनातनता के गढ़ हों। मैं इन कट्टरपन्थी का, इस प्रतिक्रिया का और इस सनातनता का विरोध करता हूं और यह समझता हूं कि इन उत्तर-सदनों की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं केवल इस सीमा तक समझौता कर सकता हूं कि तीन मास से एक दिन अधिक की अवधि न रखी जाये।

*__श्री श्यामानन्दन सहाय__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को कई बार पढ़ा किन्तु मैं यह समझ न पाया कि वह किस उद्देश्य से अथवा किसके उद्देश्य साधन के लिए उपस्थित किया गया है। उन्होंने अभी कहा है कि इस संशोधन में कोई सिद्धान्त अन्तर्ग्रस्त नहीं है किन्तु यह केवल कार्यसाधन और व्यावहारिकता की दृष्टि से उपस्थित किया गया है। मैं समझ नहीं पाया कि उससे किस प्रकार कार्य-साधन होगा। हम इस समय संविधान-निर्माण के पवित्र कार्य को कर रहे हैं। इसलिए एक सदन से अधिक सदनों के लिए उपबन्ध रखने से कोई लाभ न होगा। यदि उत्तर-सदनों को शक्तियां प्रदान करने पर भी अन्त में हम यह देखें कि उन्हें बनाये रखने में कोई लाभ नहीं है तो उन पर व्यर्थ में इतना लोक राजस्व व्यय क्यों किया जाये? श्रीमान्, जहां तक मैं समझ पाया हूं, इस संशोधन के समर्थकों को यह भय है कि उत्तर-सदन केवल देर करने का काम करेंगे। पहले इस भय के लिये कुछ आधार हो सकता था किन्तु हम जिस मसौदे पर विचार कर रहे हैं उसमें उत्तर सदन का जो स्वरूप निश्चित किया गया है उसे ध्यान में रखते हुये इस भय का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उत्तर-सदन विधेयकों के पारित होने में देर करने के अतिरिक्त

और कुछ कार्य न करेंगे। वास्तव में अपने प्रान्त के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं, और मुझे विश्वास है कि कोई भी मेरे इस कथन का खण्डन न करेगा कि वहां उत्तर-सदन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। मेरे विचार से यह गलत नहीं है कि बिहार की विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत सभी संशोधन वहां की विधान-सभा द्वारा स्वीकार कर लिये गये। इससे यह सिद्ध होता है कि उत्तर-सदन एक उपयोगी सभा है और यदि वह सचेष्ट हो तो उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

यदि हम इस मसौदे के पृष्ठ 67 को देखें तो हमें उसमें उत्तर-सदन की रचना का वर्णन मिलेगा और उसे पढ़ने पर हमें यह समझने में कठिनाई न होगी कि उत्तर-सदन में ऐसे लोग न होंगे जिनकी प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति होगी। आधे सदस्य उन नामावलियों में से चुने जायेंगे जो इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के अधीन तैयार की जायेंगी।

*__अध्यक्षः__ क्या मैं यह बता सकता हूं कि वह अनुच्छेद अभी स्वीकार नहीं किया गया है?

*__श्री श्यामानन्दन सहायः__ श्रीमान्, यह सच है किन्तु हमें आज यह मानकर आगे चलना है कि यह डॉ. अम्बेडकर का प्रस्ताव है। निस्संदेह सभा उसे अस्वीकार भी कर सकती है। आज हम डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर विचार कर रहे हैं। इसलिये मैं यह मानकर अपना तर्क उपस्थित कर रहा हूं कि यदि उत्तर-सदन की रचना के सम्बन्ध में उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो उनके वर्तमान संशोधन की कोई भी आवश्यकता नहीं रहती। मैं इसी को स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं।

श्रीमान्, यदि हम उत्तर-सदन की रचना के वर्णन को देखें तो हमें पता लगता है कि नामावलियों में वे लोग होंगे जिन्हें इन बातों का विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव होगा—

(क) साहित्य, कला और विज्ञान;

(ख) कृषि, मत्स्य-पालन और तत्सम्बद्ध विषय;

(ग) इंजीनियरी और वास्तु-शास्त्र;

(घ) लोक-प्रशासन और सामाजिक सेवायें।

उसमें जमींदार के लिए कोई स्थान नहीं है। दूसरा समूह, अर्थात् एक-तिहाई सदस्य विधान-सभा द्वारा ही निर्वाचित होंगे और अवशिष्ट सदस्य राज्यपाल द्वारा नामनिर्देशित होंगे।

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य महोदय यह किसी कारण भी नहीं समझ सकते कि केवल जमींदार ही प्रतिक्रियावादी हो सकते हैं।

*__श्री श्यामानन्दन सहायः__ श्रीमान्, चाहे जैसे भी हो लोगों की यही धारणा बन गई है, किन्तु मेरा भी यही विचार है कि यह धारणा गलत है।

श्रीमान्, यद्यपि सभा उत्तर सदन की रचना सम्बन्धी उपबन्धों में संशोधन कर सकती है किन्तु उनके आधार पर निर्मित सभा से किसी प्रकार का भय रखने

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

के लिए मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता। अन्य बातों की ओर ध्यान न देते हुये मैं प्रोफेसर रंगा के कम से कम इस कथन को पसन्द करता हूं कि उनका उत्तर-सदन में विश्वास नहीं है। यह एक स्पष्ट बात है किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि हम उत्तर-सदन को स्थापित तो करें किन्तु उसे शक्तियां कुछ भी न दें। इस संशोधन के अनुसार तीन मास में अथवा दो मास में उत्तर-सदन किसी विधेयक को या तो स्वीकार करेगा या अस्वीकार कर देगा। इस प्रकार के उत्तर-सदन को स्थापित करने से क्या लाभ होगा? विधान-सभा की सदस्य-संख्या भी विधान-परिषद् की सदस्य-संख्या से कहीं अधिक होगी। इसलिए संयुक्त अधिवेशन में भी अवर सदन के मत के प्रभावी न होने की कोई आशंका नहीं है। वास्तव में उसमें प्रशासन का तथा अन्य बातों का अनुभव रखने वाले लोगों को विधान-सभा को अपना परामर्श देने तथा अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का अवसर मिलेगा। लोक-तंत्रात्मक व्यवस्था में प्रशासन तर्क तथा सद्भावना पर ही आधृत रहता है। प्रारम्भिक मसौदे के संयुक्त-अधिवेशन-विषयक उपबन्ध का यही उद्देश्य था। इसलिए मेरी यह धारणा है कि हमारे सामने संविधान का जो मसौदा रखा गया है उसकी शब्दावली प्रस्तावित संशोधन की शब्दावली से कहीं अच्छी है और इसलिए मेरा यह सुझाव है कि वह संशोधन अस्वीकार कर दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** श्रीमती रेणुका राय।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, अब मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं एक सदस्य को बुला चुका हूं। उनके भाषण के पश्चात्, हम संवरण के प्रस्ताव पर विचार करेंगे।

***श्रीमती रेणुका राय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस संशोधन का समर्थन करती हूं मेरे विचार से यह बहुत ही उपयुक्त संशोधन है। कुछ अन्य लोगों के समान मेरा भी यह विश्वास था कि उत्तर-सदन की आवश्यकता नहीं है और वास्तव में कई छोटे प्रान्तों में उन पर व्यर्थ में धन व्यय होगा। किन्तु संविधान में उसे इस उद्देश्य से स्थान दिया गया है कि पुनर्विलोकन के लिए उत्तर-सदन की आवश्यकता है। यह बताया गया है कि अवर-सदन किन्हीं विधेयकों के सम्बन्ध में भूल-चूक कर सकता है किन्तु उन्हें पारित करने पर वह त्रुटियों को ठीक न कर सकेगा और इसलिये पुनर्विलोकन के लिए उत्तर-सदन की आवश्यकता है। इसी कारण अधिकांश सदस्यों ने उत्तर-सदन की सार्थकता को स्वीकार किया है। किन्तु अब कुछ सदस्य यह चाहते हैं कि उसे विधेयकों के पारित होने में देर करने का अधिकार प्राप्त हो। यदि हम छः मास का समय दें और संयुक्त अधिवेशनों की भी व्यवस्था करें तो उसका अर्थ यह होगा कि उत्तर-सदन को ऐसे दोषपूर्ण विधेयकों के पुनर्विलोकन का अधिकार तो होगा ही जिनका विधान-सभा भी पुनर्विलोकन कराना चाहती हो बल्कि साथ ही उसे उनके पारित होने में व्यर्थ में देर करने का भी अधिकार प्राप्त हो जायेगा। यह एक बहुत ही प्रतिक्रियावादी व्यवस्था होगी। कुछ प्रान्तों में उत्तर-सदन स्थापित करने के लिए सहमत होने का अर्थ यह नहीं है कि हम उन्हें अधिक शक्ति भी प्रदान

करें और संविधान में ऐसे सदनों को स्थान दें जिनका काम केवल विलम्ब करना होगा। मेरा अपना विचार यह है कि पुनर्विलोकन के लिए भी उत्तर-सदन की व्यवस्था अनावश्यक है क्योंकि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल को किसी विधेयक को विधान-सभा के विचारार्थ वापस भेजने की शक्ति प्राप्त है और इस प्रक्रिया से त्रुटियों का शोधन हो सकता है। किन्तु अधिकांश सदस्यों का विचार दूसरा था और इसीलिये संविधान में उत्तर-सदनों को स्थान दिया गया है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें अधिक शक्ति भी प्रदान की जाये जिसके फलस्वरूप ऐसे विधेयकों के पारित होने में देर हो जाये जिन्हें तुरन्त ही प्रवर्तित करना आवश्यक हो। विलम्ब करने की शक्ति प्रदान करने से देश को हानि पहुंचेगी। संविधान में इस विषय के उपबन्ध बहुत प्रतिक्रियावादी समझे जायेंगे। मेरे विचार से जो लोग मुझसे पहले बोल चुके हैं उनमें से कुछ का उद्देश्य यह है कि पहले जैसे उत्तर-सदन थे उन्हीं के समान उत्तर-सदनों को अस्तित्व में लाया जाये। हम यह कहते हैं कि इन उत्तर-सदनों का स्वरूप बिल्कुल भिन्न होगा। यदि वह भिन्न भी होगा तो जो लोग उत्तर-सदन और अवर-सदन के राजनैतिक जीवन में भाग लेंगे, भले ही वे वैज्ञानिक अथवा डॉक्टर हों, किन्तु उन्हें राजनीति और दलबन्दी के क्षेत्र में प्रवेश करना ही होगा। किसी ने यह भी कहा है कि उत्तर-सदनों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कोटि के लोग आयेंगे। इसकी बिल्कुल सम्भावना नहीं है कि उच्च कोटि के वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक किसी मूल्य पर भी दलबन्दी के क्षेत्र में प्रवेश करके उत्तर-सदनों में आयेंगे। यदि उनके मत की आवश्यकता होगी तो उसे विधान-मण्डल के बाहर प्राप्त करना होगा। इसलिये मेरा यह अनुरोध है कि यद्यपि सभा उत्तर-सदनों को स्थापित करने के लिए सहमत हो गई है किन्तु वह उसे अधिक शक्ति प्रदान न करे और इस संशोधन को स्वीकार कर ले, जिससे उसे केवल पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त हो।

***अध्यक्षः** संवरण प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है। प्रस्ताव यह है किः

"अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो वादानुवाद हुआ है उसमें भाग लेने वाले वक्ताओं ने कई प्रश्न उठाये हैं। मेरे मित्र श्री सन्तानम् ने एक प्रश्न उठाया है। अन्य प्रश्नों को उठाने के पूर्व मैं उस प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूं। श्री सन्तानम् ने यह कहा है कि अनुच्छेद के खण्ड (1) में उस स्थिति के सम्बन्ध में एक उपबन्ध होना चाहिये, जबकि उत्तर-सदन ने किसी विधेयक को उस रूप में पारित न किया हो, जिस रूप में विधान-सभा ने उसे स्वीकार किया हो। यदि वे विचारपूर्वक ध्यान दें तो वे देखेंगे कि उनका सुझाव उपखण्ड (ग) में सन्निहित है, यद्यपि उस खण्ड की शब्दावली भिन्न है। वास्तव में हमने तीन ऐसी स्थितियों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं जबकि अवर-सदन अपने ही क्षेत्राधिकार के अधीन कार्य कर सकेगा। ये तीन स्थितियां इस प्रकार हैं: जबकि विधेयक पर विचार हो जायेगा, किन्तु वह पूर्णतया, अस्वीकार कर दिया जायेगा, जबकि उत्तर-सदन विधेयक को रोके हुये हो और कोई कार्यवाही न कर रहा हो अथवा उसने कार्यवाही तो की हो, किन्तु विधेयक पर विचार करने के लिए उसे जितना समय दिया गया हो उससे अधिक समय उसने लगा दिया हो, और जब उत्तर-सदन विधेयक को उसी रूप में पारित करने के लिये सहमत न हो जिस रूप में विधान-सभा ने उसे स्वीकार किया हो। अन्त में बताई हुई

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्थिति बहुत कुछ वही है जिसका सुझाव श्री सन्तानम् ने रखा है। इसलिये मेरे विचार से अनुच्छेद के इस भाग में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। आनुषंगिक रूप से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस तीन स्थितियों के सम्बन्ध में जबकि अवर-सदन अपनी ही शक्ति से कार्य कर सकेगा जो शब्द प्रयुक्त हैं, वे बहुत कुछ आस्ट्रेलिया के संविधान के अनुच्छेद 57 से लिये गये हैं।

अब मैं जो सामान्य प्रश्न उठाये गये हैं उनका उत्तर दूंगा। मेरे विचार से इस विषय के सम्बन्ध में तीन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है। पहला प्रश्न यह है कि अवर-सदन की इच्छा प्रभावी होने के पूर्व कोई विधेयक कितनी यात्रायें करे? क्या वह एक यात्रा करे, दो यात्रायें करे अथवा दो से अधिक यात्रायें करे? एक प्रश्न यह है। दूसरा प्रश्न यह है कि प्रत्येक यात्रा के लिए अर्थात् किसी विधेयक की प्राप्ति से लेकर उसे वापस भेजने तक के लिए उत्तर-सदन को कितना समय दिया जाये? तीसरा प्रश्न यह है कि परिषद् में जो समय लगेगा उसकी संगणना किस प्रकार की जाये? जो लोग परिसीमन-विधि से परिचित हैं उनकी भाषा को प्रयोग करते हुये, प्रारम्भ कहां से माना जाये? जहां तक वर्तमान संशोधन का सम्बन्ध है, प्रस्ताव यह है कि विधेयक दो यात्रायें करे। वह पहली बार भेजा जायेगा, वापस आयेगा और फिर भेजा जायेगा। यह कहा जा सकता है कि दो से अधिक यात्रायें होनी चाहिये और इसके पक्ष में तर्क उपस्थित किया जा सकता है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, यह व्यवहारिकता का प्रश्न है। हमें कोई ऐसी स्थिति अथवा अंतिम स्थिति लानी ही चाहिये जबकि अवर-सदन का प्राधिकार सर्वमान्य हो जायेगा। मसौदा-समिति ने यह विचार किया कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अर्थात् उत्तर-सदन को पुनर्विलोकन के लिए समय देने के लिए दो यात्रायें पर्याप्त हैं।

जहां तक इसका सम्बन्ध है कि इन यात्राओं में विधेयक पर विचार करने के लिए उत्तर-सदन को कितना समय दिया जाये, मसौदा-समिति ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि दो मास का समय दिया जाये। चूंकि मैं अपने मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का संशोधन स्वीकार करने जा रहा हूं, इसलिए पहली बार यह समय तीन मास का होगा और दूसरी बार एक मास का होगा।

मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने यह कहा है कि मसौदा-समिति का कोई निश्चित मत नहीं है और वह समय-समय पर अपना मत बदलती रही है। उन्होंने संविधान के मसौदे में अंकित इस अनुच्छेद के मूल मसौदे की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया, जिसमें छह मास की अवधि निर्धारित की गई है। इसके सम्बन्ध में भी मैं उनसे यह कहना चाहता हूं कि प्रत्येक सभा को जो समय दिया गया है उसमें कोई सिद्धान्त सन्निहित नहीं है। इस सम्बन्ध में केवल व्यवहारिकता का ध्यान रखा गया और मसौदा-समिति ने यह निर्णय किया कि छह मास का समय बहुत अधिक समय है। वास्तव में उसने यह अनुभव किया कि तीन मास का समय भी बहुत अधिक समय है। यह समझ में आने वाली बात है कि जमींदारी विधेयक जैसे

किसी विधेयक में बहुत से खण्ड हो सकते हैं और वह अवर-सदन द्वारा पारित होने पर अवश्य ही उत्तर-सदन के सामने रखा जायेगा। किन्तु मेरे विचार से मेरे मित्र इससे सहमत होंगे कि इन अपवादों के अतिरिक्त अन्य विधेयक इतने बड़े अथवा इतने सारवान न होंगे। इसलिये हमने यह विचार किया कि पहली यात्रा में विधेयक पर विचार करने के लिए उत्तर-सदन के लिए तीन मास का समय पर्याप्त है, क्योंकि आखिर उत्तर-सदन करेगा क्या? उत्तर-सदन केवल उस विधेयक पर विचार करेगा जिसे अवर-सदन उसके पास भेजेगा और वह सारे विधेयक का मसौदा फिर से तैयार न करेगा और न प्रत्येक खण्ड में ही परिवर्तन करेगा। वह केवल कुछ ऐसे खण्डों पर विचार करना चाहेगा जिनका लोक-महत्व होगा। इस प्रकार की सीमित विधायिनी कार्यवाही के लिए आरम्भ में तीन मास का समय पर्याप्त है और इससे उत्तर-सदन की यथोचित विधायिनी कार्यवाही किसी प्रकार निर्बन्धित नहीं होती। विधेयक के दूसरी बार भेजे जाने पर जब अवर-सदन यह सूचित करेगा कि उत्तर-सदन ने जिन संशोधनों का सुझाव रखा है, उन्हें स्वीकार करने के लिए वह कहां तक तैयार है, हमने यह अनुभव किया कि इस दूसरी यात्रा के लिये भी एक मास का समय पर्याप्त है। इसलिये, जैसाकि मैं कह चुका हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में किसी सिद्धान्त का नहीं, बल्कि केवल व्यवहारिकता का ध्यान रखते हुये हमने यह विचार किया कि प्रथम बार तीन मास का और फिर एक मास का समय पर्याप्त है।

अब मैं अंतिम प्रश्न को उठाता हूं अर्थात् इस प्रश्न को कि तीन मास अथवा एक मास की संगणना के लिए आरम्भ कहां से माना जाये। मैं समझता हूं कि श्री कुंजरू मेरे इस कथन के लिये मुझे क्षमा करेंगे कि मसौदा-समिति ने जो परिवर्तन किये हैं उनके महत्व को वे नहीं समझ पाये हैं। यदि मसौदे के अनुच्छेद 172 में यह उपबन्ध न होता तो मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है और मसौदा-समिति को भी कोई सन्देह न था कि उत्तर-सदन की शक्तियों का शून्यन हो जाता। मैं इसे स्पष्ट करूंगा, परन्तु इसके पूर्व मैं यह बताना चाहता हूं कि परिसीमन का आरम्भ कहां से माना जा सकता था। यह कहा जा सकता था कि उत्तर-सदन को विधेयक को अवर-सदन में पारित होने के पश्चात् एक निश्चित समय में पारित कर देना चाहिये। यह भी कहा जा सकता था कि उत्तर-सदन में विधेयक के पहुंचने के पश्चात् उस सदन को उसे निश्चित समय में पारित कर देना चाहिये। इन दोनों बातों में से यदि हम किसी का भी उल्लेख करते तो उत्तर-सदन को बहुत ही संकटपूर्ण परिणाम का सामना करना पड़ता। आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि उत्तर-सदन का आह्वान कार्यपालिका की स्वेच्छा पर निर्भर है। वह जब चाहे उसका आह्वान कर सकती है और जब न चाहे तो उसका आह्वान नहीं भी कर सकती है। इसलिये इस प्रकार के उपबन्ध को रखने से कोई बेईमान कार्यपालिका इससे लाभ उठाकर उत्तर-सदन को किसी अधिवेशन में समवेत होने के लिए कभी भी आहूत न कर सकती थी। यदि हम विधेयक के उत्तर-सदन में पहुंचने को भी इस समय का आरम्भ मानते तो कार्यपालिका विधेयक को कभी भी कार्यावली में स्थान न देकर उत्तर-सदन को धोखा दे सकती, जिससे उसे विधेयक पर विचार करने का अवसर ही न मिलता। हमने यह विचार किया कि इस प्रकार की प्रक्रिया गलत है क्योंकि इससे उत्तर-सदन का कोई दोष न होते हुये भी उसे दण्डित होना पड़ेगा। यदि इस सदन का आह्वान ही न किया गया तो वह विधेयक पर आखिर कैसे विचार करेगा? इस प्रकार के विधेयक के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तर-सदन ने उस पर विचार कर

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

लिया है। इसलिये उत्तर-सदन के अधिकारी की रक्षा के हेतु मसौदा-समिति ने अवधि के आरम्भ को निश्चित करने के इन दोनों उपायों को, अर्थात् विधेयक के पारित होने से अथवा उसके सदन में पहुंचने के समय से अवधि की संगणना की प्रणालियों को अस्वीकार कर दिया, यद्यपि मूल मसौदे में उसने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा था। नये अनुच्छेद में जो उपबन्ध हैं उन्हें उसने जान-बूझकर स्वीकार किया। उनके अनुसार जब कोई विधेयक उत्तर-सदन के विचारार्थ कार्यावली में दर्ज हो जायेगा, तो इस खण्ड में जो अवधि निश्चित की गई है यदि उसके अन्दर उत्तर-सदन उस पर विचार नहीं कर लेता, तो उसी की लापरवाही से वह उस पर विचार करने के अपने अधिकार को खो बैठेगा। इस सम्बन्ध में कोई भी शिकायत न कर सकेगा और उत्तर-सदन को कोई भी शिकायत न कर सकेगा। इसलिए मेरे मित्र श्री कुंजरू की समझ में यह आ जाना चाहिये कि नये प्रस्ताव से उत्तर-सदन के अधिकार भी प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें कार्यपालिका नहीं छीन सकती।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या इस प्रकार की बच्चों की सी बातों से माननीय सदस्य महोदय को स्वयं संतोष हो जाता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे माननीय मित्र इन्हें बच्चों की सी बातें कह सकते हैं, किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है कि नवीन खण्ड मूल खण्ड से कहीं अच्छा है। यदि उससे पंडित कुंजरू को संतोष नहीं हो पाया है, तो मुझे खेद है, किन्तु उन्होंने कोई ऐसा प्रश्न नहीं उठाया है जिसका मैंने उत्तर नहीं दिया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 172 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में 'two months' (दो मास) शब्दों के स्थान पर 'three months' (तीन मास) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 172, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रस्तावित अनुच्छेद 172, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 175—*(जारी)*

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 175 का पूरे हृदय से समर्थन नहीं कर सकता। इस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल को स्वविवेक से किसी विधेयक को अस्वीकार करने की शक्ति प्रदान नहीं है। वह केवल मंत्रिमंडल के परामर्श से ही ऐसा कर सकता है। मैं इस उपबन्ध के पक्ष में नहीं हूं। इसके अतिरिक्त वह किसी ऐसे विधेयक को भी अस्वीकार नहीं कर सकता, जिसे विधान-सभा ने दो बार पारित किया हो। मुझे यह भी मान्य नहीं है। उसे किसी विधेयक को

स्वविवेक से अस्वीकार करने अथवा राष्ट्रपति के विचारार्थ रोकने की शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसे विधेयक, जो राष्ट्रपति के विचारार्थ रोके जा सकते है, दो वर्गों के विभाजित किये जा सकते है, अर्थात् वे विधेयक जो संविधान के कुछ अनुच्छेदों के अधीन रोके जा सकते है, और वे विधेयक, जिन्हें राज्यपाल अपने मंत्रिमण्डल के परामर्श से रोक सकता है। मैं यह चाहता हूं कि राज्यपाल को किसी विधेयक को स्वविवेक से अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये, चाहे विधान-मण्डल ने उसे एक बार पारित किया हो या दो बार। इसके अतिरिक्त मैं यह भी चाहता हूं कि किसी विधेयक पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति को उसे अपने विवेक से तथा अपने प्राधिकार से रोकने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। उसे राज्यपाल को यह आदेश देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि अमुक विधेयक पर वह विचार करना चाहता है, इसलिये वह रोक दिया जाये अथवा यह आदेश देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि अमुक विधेयक को पारित करने की आज्ञा नहीं दी जाती चाहे राज्यपाल उसे रोके या न रोके। मैं यह जानता हूं कि यह प्रस्ताव इस युग की लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों से असंगत है। लोगों का यह विश्वास है कि वे लोकतन्त्र के युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, किन्तु मेरी यह धारणा है कि हमारा युग निरंकुश सत्ताधारियों का युग है। मैं यह चाहता हूं कि राज्यपाल को अन्यायपूर्ण और अनुचित विधेयकों को अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। कनाडा के संघ के संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध है। अपने देश के राजनैतिक जीवन को देखते हुये मैं यह चाहता हूं कि हमारे संविधान में भी इस प्रकार का उपबन्ध होना चाहिये। इसके अतिरिक्त मेरा यह भी विश्वास है कि यदि राष्ट्रपति और राज्यपाल को किसी विधेयक को अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त होगी तो विघटनकारी विधेयक पारित न हो सकेंगे।

इस देश में विघटनकारी विधेयकों के पारित होने की बहुत आशंका है। जिन लोगों ने इस देश के प्रान्तीय विधान-मण्डलों द्वारा पारित विधियों के उपबन्धों की सावधानी से परीक्षा की है, वे मेरे इस विचार से सहमत होंगे कि यह आशंका काल्पनिक नहीं है बल्कि वास्तविक है। श्रीमान्, सभा के सम्मुख मैंने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है वह इस देश की अब तक की केन्द्रीभूत शासन-परम्परा के अनुरूप है। यह प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार का देशी राज्यों पर जो प्रभुत्व था उसके अनुरूप भी है। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति और राज्यपाल को विधेयकों को अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये, क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूं कि संसदीयता के नवीन प्रयोग में कुछ नरमी लाने की तथा उसका नियमन करने की आवश्यकता है। मेरे विचार से इस प्रकार वह हमारे जीवन के अनुरूप हो जायेगी। श्रीमान्, मैं यह भी चाहता हूं कि राज्यपाल इस अस्वीकार करने की शक्ति का प्राय: प्रयोग करे। प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजना राज्य के प्रमुख की प्रतिष्ठा के अनुरूप न होगा। मैं यह चाहता हूं कि प्रान्तों में विधेयकों के पारित होने में राज्यपाल स्वविवेक से विलम्ब करे। प्रांतीय मंत्रियों पर मेरा विश्वास नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता। अनुच्छेद 175 का मूल उपबन्ध इस प्रकार था:

"परन्तु जहां विधान-मण्डल का केवल एक सदन है और विधेयक को उस सदन ने पारित कर दिया है, तो राज्यपाल स्वविवेक से विधेयक को संदेश

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

के साथ लौटा सकेगा और इस संदेश में प्रार्थना कर सकेगा कि सदन इस विधेयक पर अथवा इसके किन्हीं उल्लिखित उपबन्धों पर पुनर्विचार करे और विशेषत: उन संशोधनों के पुर:स्थापन की वांछनीयता पर पुनर्विचार करे, जिनकी उसके अपने संदेश में सिफारिश की हो, और जब विधेयक इस प्रकार लौटाया जाये तब सदन उस पर तदनुसार विचार करेगा और यदि सदन विधेयक को संशोधन के साथ अथवा संशोधन के बिना पुन:पारण करे और राज्यपाल के समक्ष अनुमति के लिए उपस्थित करे तो राज्यपाल उस पर अनुमति न रोकेगा।"

इस प्रकार मूल परन्तुक के अधीन राज्यपाल किसी विधेयक को संदेश के साथ तभी लौटा सकता था जबकि विधान-मण्डल का एक ही सदन हो, किन्तु नवीन परन्तुक के अधीन किसी राज्य में दो सदन अर्थात् विधान-सभा और विधान-परिषद् के होते हुये भी राज्यपाल को किसी विधेयक को अपने संदेश के साथ लौटाने की शक्ति दी गई है। हम कुछ समय पूर्व विधान-परिषद् की शक्तियों के सम्बन्ध में बहुत वादानुवाद कर चुके हैं। नवीन परन्तुक के अधीन इस प्रकार कार्य होगा। मान लीजिये कि विधान-सभा किसी विधेयक को पारित करती है। वह उत्तर-सदन के पास भेजा जायेगा। उसे उत्तर-सदन के पास भेजने में कुछ समय लगेगा और फिर उत्तर-सदन में लगभग दो मास लगेंगे। विधेयक वहां संशोधित भी किया जा सकता है। उसके पश्चात् संशोधित विधेयक विधान-सभा के सामने आता है। विधान-सभा उस पर विचार-विमर्श करेगी। इसमें एक मास लग सकता है। इसके पश्चात् वह फिर विधान-परिषद् को लौटाया जायेगा और वहां लगभग एक मास तक उस पर विचार-विमर्श होगा। इस प्रकार उसके विधि के रूप में प्रयोग में आने तक लगभग छह मास का समय लग जायेगा। इसके अतिरिक्त राज्यपाल को विधेयक को संदेश के साथ लौटाने की शक्ति दी गई है। इसके लिए कोई काल-सीमा निश्चित नहीं की गई है और इसका उल्लेख नहीं है कि वह विधेयक को लौटाने में कितना समय लेगा। इसलिये इस उपबन्ध को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि विवादग्रस्त विधेयक बार-बार विधान-सभा और विधान-परिषद् को लौटाये जायेंगे और इस प्रकार की कार्यवाही में लगभग छह मास का समय लग जायेगा और जब तक राज्यपाल सहायता न करेगा, विधेयक के पारित होने में विलम्ब हो जायेगा। मेरे विचार से मूल परन्तुक इससे कहीं अच्छा है। जिन प्रांतों में केवल एक ही सदन हो और उत्तर-सदन नियंत्रण नहीं रख सकता है, वहां हम राज्यपाल को विधेयकों को लौटाने की शक्ति दे सकते हैं। किन्तु जहां विधान-परिषद् हो और विधेयक के प्रत्येक अंग पर पूर्ण रूप से पुनर्विचार हो चुका हो, वहां राज्यपाल को विधेयकों को लौटाने की शक्ति नहीं प्राप्त होनी चाहिये। मेरे विचार से यह प्रथा प्रतिक्रियावादी है और इस परन्तुक के अधीन कोई भी विधेयक तुरन्त पारित न हो सकेगा। इसलिये मेरे विचार से अनुच्छेद 175 का मूल परन्तुक प्रस्तावित परन्तुक से कहीं अच्छा है। मैं अपने मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के विचारों से बिल्कुल असहमत हूं। वे उन सभी बातों का समर्थन करते हैं जिनमें राज्यपाल अथवा विधान-परिषद् को शक्ति प्राप्त होती है। वे यह चाहते हैं कि राज्यपाल को किसी विधेयक को रोक सकने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरे विचार से वह प्रथा गलत है। राज्यपाल कोई बाहर का आदमी न होगा। वह भारत-सरकार का प्रतिनिधि होगा। उसकी सम्पति अवर-सदन की सम्मति से अथवा प्रान्त के किसी अन्य प्राधिकारी की सम्मति से श्रेष्ठ समझी जानी चाहिये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं यह जानता हूं कि वह राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित व्यक्ति होगा, किन्तु यह हो सकता है कि किसी प्रान्त में जो दल पदारूढ़ हो, वह केन्द्र में पदारुढ़ दल से भिन्न हो और राष्ट्रपति उस दल का व्यक्ति न हो। इसलिये मेरे विचार से यह एक बहुत ही गलत सिद्धान्त है कि राज्यपाल को विधान-सभा की और विधान-परिषद् की इच्छा के विरुद्ध कदम उठाने दिया जाये। मेरे विचार से मूल परन्तुक को रहने देना चाहिये और केवल उन प्रान्तों में राज्यपाल को विधेयकों को लौटाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये जहां उत्तर सदन न हो।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैंने यह विचार किया था कि सूची 1 के संशोधन संख्या 17 पर विचार-विमर्श हो जाने के पश्चात् इस अनुच्छेद के परन्तुक को संशोधित करने के सम्बन्ध में किसी व्याख्या की आवश्यकता न होगी। मेरे मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने इसका गलत अर्थ लगाया है। अगर उनका आशय यह है कि यह संशोधन अनुच्छेद के मूल मसौदे के परन्तुक से खराब है और उससे प्रान्तों के अथवा राज्यों के विधान-मण्डलों की कार्यवाही में अधिक विलम्ब हो जायेगा, तो मैं उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं, जिसकी ओर डॉ. अम्बेडकर भी ध्यान दिला चुके हैं, कि राज्यपाल किसी विधेयक को संदेश के साथ सदन को स्वविवेक से नहीं लौटायेगा। वह उपबन्ध अब नहीं रह गया है। अब राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति नहीं प्राप्त है। यदि संशोधन संख्या 17 के अधीन राज्यपाल किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए लौटायेगा तो वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से ही लौटायेगा। यह उपबन्ध केवल उस अवसर के लिए रखा गया है जबकि पारित अनुच्छेद 172 की रस्में पूरी न हुई हों और मंत्रिमंडल उत्तर-सदन द्वारा स्वीकृत विधेयक के किसी अंश में परिवर्तन करना चाहता हो। उसी दशा में इस प्रक्रिया का अवलम्बन किया जायेगा। वह राज्यपाल से कहेगा कि आगे की कार्यवाही रोक दी जाये और विधेयक को अवर-सदन के पास संदेश के साथ भेजा जाये।

यदि मेरे माननीय मित्र यह समझ जायें कि राज्यपाल स्वविवेक से कार्य नहीं कर सकता बल्कि मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही कार्य करेगा तो वे पूरे चित्र को स्पष्टतया समझ जायेंगे। यह भी हो सकता है कि अनुच्छेद 172 में वर्णित प्रक्रिया सम्पूर्ण हो जाये, किन्तु फिर भी इस परन्तुक के अधीन किसी कार्यवाही को करने की आवश्यकता हो, किन्तु इसकी अधिक सम्भावना नहीं है। यह एक व्यावृत्ति खण्ड है और इससे मंत्रि मण्डल को किसी ऐसी त्रुटि को ठीक करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जो जल्दी में हो गई हो, अथवा किसी ऐसे कार्य को करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जो सभा के बाहर किसी भी प्रकार व्यक्त किये हुए लोक-मत का आदर करने के लिए आवश्यक हो। यह नवीन परन्तुक इसी उद्देश्य से प्रविष्ट किया गया है। इससे उत्तरदायी मंत्रिमण्डल की शक्ति किसी प्रकार कम नहीं होती और इसलिये इससे जिस अवर सदन के प्रति मंत्रिमण्डल उत्तरदायी होगा उसकी भी शक्ति कम नहीं होती। न इससे राज्यपाल को ही अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत मूल परन्तुक में राज्यपाल को जो शक्ति प्रदान की

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

गई थी उसकी तुलना में इससे उसकी शक्ति कम हो जाती है। मुझे आशा है कि इस व्याख्या को ध्यान में रखते हुए सभा बिना आगे विचार-विमर्श किये हुये प्रस्तावित संशोधनों से सहमत हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 175 के परन्तुक के स्थान में निम्नांकित परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the Governor may, as soon as possible after the presentation to him of the Bill for assent, return the Bill if it is not a Money Bill together with a message requesting that the House or Houses will reconsider the Bill or any specified provisions, thereof and, in particular, will consider the desirability of introducing any such amendments as he may recommend in his message, and when a Bill is so returned, the House or Houses shall reconsider the Bill accordingly, and if the Bill is passed again by the House or Houses with or without amendment and presented to the Governor for assent, the Governor shall not withhold assent therefrom.' "

(परन्तु राज्यपाल अनुमति के लिए अपने समक्ष विधेयक रखे जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस विधेयक को यदि वह धन-विधेयक नहीं है तो, सदन या सदनों को ऐसे संदेश के साथ लौटा सकेगा कि सदन या दोनों सदन विधेयक पर अथवा उसके किन्ही उल्लिखित उपबन्धों पर पुनर्विचार करें तथा विशेषत: किन्हीं ऐसे संशोधनों के पुर:स्थापन की वांछनीयता पर विचार करें जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की हो तथा जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया गया हो तब सदन या दोनों सदन विधेयक पर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे तथा यदि विधेयक सदन या सदनों द्वारा संशोधन सहित या रहित पुन:पारित हो जाता है तथा राज्यपाल के समक्ष अनुमति के लिए रखा जाता है, तो राज्यपाल उस पर अनुमति न रोकेगा।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 175, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 175, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 176

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 176 को उठाते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह सुझाव है कि अच्छा यह होगा कि हम पहले अनुच्छेद 83-क को उठायें और उसे निबटा दें।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अनुच्छेद 176 में कोई ऐसी बात नहीं है जिसमें अधिक देर लगे। हम उसे इस समय भी उठा सकते हैं। उसके सम्बन्ध में शायद ही कोई संशोधन है। मैं देखता हूं कि कुछ संशोधनों की सूचना दी गई है और वे पहले अंक के पृष्ठ 251 पर छपे हुये हैं। क्या कोई सदस्य महोदय इन संशोधनों में से किसी संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं?

(संशोधन संख्या 2482 से लेकर 2485 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

अनुपूरक सूची में एक संशोधन और दिया हुआ है, परन्तु उसका प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वह संशोधन पर संशोधन है।

अब इस अनुच्छेद 176 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं रह गया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 176 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 176 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 83-क

***अध्यक्ष:** क्या अब हम अनुच्छेद 83 को उठायें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 83 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'83-A (1) If any question arises as to whether a member of either House of Parliament has been subject to any of the disqualification mentioned in clause (1) of the last preceding article, the question shall be referred for the decision of the President and his decision shall be final.

Decision on questions as to disqualifications of members.

(2) Before giving any decision on any such question, the President shall obtain the opinion of the Election Commission and shall act according to such opinion.' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[83-क (1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि संसद के किसी सदन का सदस्य अंतिम पूर्वगामी अनुच्छेद में वर्णित अनर्हताओं का भागी हो गया है नहीं या तो वो प्रश्न राष्ट्रपति के विनिश्चय के लिए सौंपा जायेगा तथा उसका विनिश्चय अंतिम होगा।

सदस्यों की अनर्हताओं विषयक प्रश्नों पर विनिश्चयन

(2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चय देने से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।]

यह अनुच्छेद सभा द्वारा स्वीकृत अनुच्छेद 167-क के समान ही है, जो प्रांतों के इसी विषय से संबंधित मामलों के बारे में है। इसलिये मेरे विचार से इसके सम्बन्ध में अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 83 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'84-A (1) If any question arises as to whether a member of either House of Parliament has been subject to any of the disqualification mentioned in clause (1) of the last preceding article, the question shall be referred for the decision of the President and his decision shall be final.

Decision on questions as to disqualifications of members.

(2) Before giving any decision on any such question, the President shall obtain the opinion of the Election Commission and shall act according to such opinion.'"

[83-क (1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि संसद के किसी सदन का सदस्य अंतिम पूर्वगामी अनुच्छेद में वर्णित अनर्हताओं का भागी हो गया है नहीं या तो वह प्रश्न राष्ट्रपति के विनिश्चय के लिए सौंपा जायेगा तथा उसका विनिश्चय अंतिम होगा।

सदस्यों की अनर्हताओं विषयक प्रश्नों पर विनिश्चयन

(2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चय देने से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।]

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 83-क संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 127-क

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अब हमें अनुच्छेद 210 तथा अनुच्छेद 211 को उठाना चाहिये। उसके पश्चात् हम अनुच्छेद 127-क को उठायेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि यदि यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 210 तथा 211 स्वत: गिर जाते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 127 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

127-A. Audit reports relating to accounts of State. The reports of the Comptroller and Auditor General of India relating to the accounts of a State shall be submitted to the Governor or Ruler of the State, who shall cause them to be laid before the Legislature of the State.' "

(127-क. राज्य के लेखा-सम्बन्धी लेखा परीक्षा-प्रतिवेदन भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के राज्य के लेखा सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राज्यपाल या राजप्रमुख के समक्ष उपस्थित किया जायेगा, जो उनको उस राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।)

सभा को स्मरण होगा कि उसने इस आशय के अनुच्छेद स्वीकार किये हैं कि लेखा रखना और लेखा-परीक्षा एक ही जगह होंगे अर्थात् वे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्राधिकार के अधीन होंगे। इस कारण यह आवश्यक है कि हमें इस आशय का एक उपबन्ध रखना चाहिये कि किसी राज्य के लेखा-सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राज्यपाल अथवा राजप्रमुख विधान-मण्डल के विचारार्थ उसके समक्ष रखवायेगा। इस अनुच्छेद में यही उपबंधित है।

***अध्यक्ष:** क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सदस्य महोदय कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय सदस्य:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

*अनुच्छेद 127 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

127-A. Audit reports relating to accounts of State. The reports of the Comptroller and Auditor General of India relating to the accounts of a State shall be submitted to the Governor or Ruler of the State, who shall cause them to be laid before the Legislature of the State.'"

(127-क. राज्य के लेखा-सम्बन्धी लेखा परीक्षा-प्रतिवेदन भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के राज्य के लेखा सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राज्यपाल या राजप्रमुख के समक्ष उपस्थित किया जायेगा, जो उनको उस राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 127-क संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 210 और 211

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 210 और 211 को उठा सकते हैं। प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 210 निकाल दिया जाये। क्या कोई सज्जन इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं?

(कोई सदस्य महोदय बोलने के लिए नहीं उठे।)

मैं इस प्रस्ताव पर मत लेता हूं कि अनुच्छेद 210 निकाल दिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 210 निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 210 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 211 के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रस्ताव है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 211 निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 211 संविधान से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 197

***अध्यक्ष:** क्या अब हम अनुच्छेद 212 को उठायें?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** पहले अनुच्छेद 188 उठाया जाये। उसे निकालने का प्रस्ताव है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह सुझाव प्रस्तुत करने जा रहा था कि अनुच्छेद 188 और अनुच्छेद 278 एक साथ उठाये जायें। अच्छा यह होगा कि सभी बातों की एक साथ व्याख्या कर दी जाये।

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 197 को उठाते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 197 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'197. (1) There shall be paid to the Judges of each High Court such salaries as are specified in the Second Schedule.

Salaries, etc. of Judges.

(2) Every Judge shall be entitled to such allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as

may from time to time be determined by or under law made by Parliament, and until so determined, to such allowances and rights as are specified in the Second Schedule:

Provided that neither the allowances of a Judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment.' "

[197 (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।

न्यायाधीशों के वेतन, आदि

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे भत्तों का तथा अनुपस्थिति-छुट्टी के और निवृत्ति-वेतन के बारे में ऐसे अधिकारों का, जैसे कि संसद्-निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें तथा जब तक इस प्रकार निर्धारित न हों तब तक ऐसे भत्तों और अधिकारों का, जैसे द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है, हक होगा:

परन्तु किसी न्यायाधीश के न तो भत्ते और न उसकी अनुपस्थिति छुट्टी या निवृत्ति-वेतन विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।]

यह अनुच्छेद उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में जो अनुच्छेद है उसके अनुरूप ही है।

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में पण्डित कुंजरू का एक संशोधन है।

[सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 20, 21 और 22 उपस्थित नहीं किये गये।]

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया गया है। अब मैं डॉ. अम्बेडकर के आज उपस्थित किये हुये अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 197 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'197. (1) There shall be paid to the Judges of each High Court such salaries as are specified in the Second Schedule.

Salaries, etc. of Judges.

(2) Every Judge shall be entitled to such allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by or under law made by Parliament, and until so determined, to such allowances and rights as are specified in the Second Schedule:

[अध्यक्ष]

Provided that neither the allowances of a Judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment.' "

[197 न्यायाधीशों के वेतन, आदि

(1) प्रत्येक उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे भत्तों का तथा अनुपस्थिति-छुट्टी के और निवृत्ति वेतन के बारे में ऐसे अधिकारों का, जैसे कि संसद-निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें तथा जब तक इस प्रकार निर्धारित न हों तब तक ऐसे भत्तों और अधिकारों का, जैसे द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं, हक होगा:

परन्तु किसी न्यायाधीश के न तो भत्ते और न उसकी अनुपस्थिति-छुट्टी या निवृत्ति-वेतन विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायगा।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 197, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 212 से 214 तक

***अध्यक्ष:** क्या अब हम अनुच्छेद 212 को उठायें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि 212 से लेकर 214 तक के अनुच्छेदों को स्थगित रखा जाये। मेरे विचार से अनुच्छेद 275 को उठाया जा सकता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल) : श्रीमान्, 212 से लेकर 214 तक के अनुच्छेदों को स्थगित रखने का प्रस्ताव है। मेरे विचार से सभा इसका स्पष्टीकरण चाहेगी कि उन्हें क्यों स्थगित रखा जा रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** स्पष्टीकरण इस प्रकार है: इसकी सम्भावना है कि चन्द्रनगर तथा कुछ अन्य स्थान भारत में समाविष्ट हो जायेंगे। हमें उनके सम्बन्ध में कोई उपबन्ध रखना है। इसी स्थल पर उनके लिए उपबन्ध रखना उचित होगा। अभी यह सुझाव प्रस्तुत किया गया था कि इनके सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे जायें वे अथोचित स्थल पर रखे जायें। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें कुछ समय की आवश्यकता है। सम्भव है, हम इन अनुच्छेदों को आज भी उठा सकें।

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 188 को तथा उसके साथ आयात-सम्बन्धी अन्य उपबन्धों को उठा सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम अनुच्छेद 275 को भी उठा सकते हैं, क्योंकि वह भी आयात-विषयक उपबन्ध है।

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 275 को उठायें।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः श्रीमान्, क्या मैं एक औचित्य प्रश्न उठा सकता हूं?

सभा में जो प्रक्रिया अपनाई जा रही है उसका अनुसरण करना कुछ सदस्यों के लिए बहुत असुविधाजनक हो रहा है। आज की कार्यावली में कुछ अनुच्छेद सिलसिले से अंकित हैं। पिछले एक अवसर पर ये स्पष्ट किया गया था कि अनुच्छेद उसी क्रम से उठाये जायेंगे जिस क्रम से वे कार्यावली में अंकित होंगे। मैं इस विषय में कोई नियम-सम्बंधी आपत्ति नहीं करता, किन्तु कठिनाई यह है कि सदस्यों को कुछ तैयारी करके आना होता है ताकि वे वादानुवाद में बुद्धिमता से भाग ले सकें। विश्रान्ति काल के पश्चात् भी किसी नियमित प्रक्रिया का अनुसरण करने के स्थान पर सभा में सम्मुख कभी एक अनुच्छेद रखा जाता है, तो कभी कई अनुच्छेदों को छोड़कर दूसरा अनुच्छेद। मेरा यह निवेदन है कि इससे कुछ असुविधा हो रही है और मैं यह चाहता हूं कि सभा में क्रमबद्ध रीति से कार्य किया जाये। अन्यथा वादानुवाद में बुद्धिमत्ता का अभाव ही होगा।

*अध्यक्षः मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के इस विचार से सहमत हूं कि सदस्यों के लिए अनुच्छेद 211 के पश्चात् अनुच्छेद 275 उठाना असुविधाजनक होगा।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं पहले अनुच्छेद 212 को और उसके पश्चात् अन्य अनुच्छेदों को उठाने के लिये तैयार हूं।

*अध्यक्षः मेरे विचार से यही ठीक होगा। यदि चन्द्रनगर के सम्बन्ध में कोई घटना घटी, तो हम उसके सम्बन्ध में बाद को उपबन्ध रख सकते हैं। हम अनुच्छेद 212 को उठायें।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 2713 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 212 का खण्ड (2) निकाल दिया जाये।"

इस संशोधन को उपस्थित करने का कारण यह है कि भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में सभी उपबन्ध एक पृथक अनुसूची में रखे जा रहे हैं। इसलिए इस स्थल पर खण्ड (2) को रखना अनावश्यक है।

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 212 के खण्ड (1) में तथा खण्ड (1) के परन्तुक में 'Governor or Ruler' (राज्यपाल अथवा राजप्रमुख) शब्दों के स्थान में 'Government' (सरकार) शब्द रखा जाये।"

*अध्यक्षः इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कई संशोधन की सूचना दी गई है। मैं उन्हें एक-एक करके उठाऊंगा।

(संशोधन संख्या 2709 से 2711 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

*श्री टी.टी. कृष्णामाचारीः क्या मैं आपकी अनुमति से संशोधन संख्या 2712 उपस्थित कर सकता हूं?

*अध्यक्षः जी हां।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं संशोधनों की छपी हुई सूची के अंक 2 के संशोधन संख्या 2712 को उपस्थित करता हूं। यह संशोधन माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम से है और इसके द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि:

"अनुच्छेद 212 के खण्ड (1) के परन्तुक के खण्ड (ख) में 'wishes' (ईच्छाओं) शब्द के स्थान पर 'views' (विचारों) शब्द रखा जाये और अन्त में निम्नलिखित नवीन खण्ड (3) प्रविष्ट किया जाये:

(3) इस अनुच्छेद में राज्य के प्रति निर्देशों के अंतर्गत राज्य के भाग के निर्देश भी हैं।"

मेरे विचार से यह आवश्यक नहीं हैं कि मैं इस संशोधन के शब्दों की व्याख्या करूं, क्योंकि वे स्वयं सुस्पष्ट हैं।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर! संशोधन संख्या 2713।

(छपी हुई अनुपूरक सूची के संशोधन संख्या 2713, 2715, 2716, 2717, 2718 और 190 तथा सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 27, 28 से 33 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद में हम प्रथम अनुसूची के भाग 2 के राज्यों की सरकारों के लिए उपबन्ध रख रहे हैं। इस अनुसूची में दिल्ली तथा अजमेर-मेरवाड़ा उल्लिखित हैं और पंथ-पिल्लोदा और कुर्ग भी सम्मिलित हैं। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर कह चुके हैं, इसमें सम्भवत: चन्द्रनगर और कुछ अन्य स्थान भी सम्मिलित किये जायेंगे, जिनका शासन केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के रूप में होगा। मैं कह नहीं सकता कि इस अनुच्छेद को पारित करने का अर्थ यह है कि हम इस अनुसूची का भी अनुमोदन करते हैं, किन्तु मैं यह निवेदन करता हूं कि इन स्थानों के शासन के प्रश्न पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। मेरा अपना मत यह है कि इस अनुच्छेद को स्थगित रखना चाहिये। इस समय इन क्षेत्रों का शासन जैसे हम चाहते हैं वैसा नहीं है। हम सब यह अनुभव करते हैं कि कुर्ग, अजमेर-मेरवाड़ा और पंथ-पिप्लोदा जैसे राज्य बड़े क्षेत्रों के अंग हो जाने चाहियें और निकटवर्ती प्रांतों और राज्य-संघों में समाविष्ट हो जाने चाहियें। मेरे विचार से तब तक किसी विधि का निर्माण करना उचित नहीं है, जब तक हम यह विनिश्चय न कर लें कि हम अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग के सम्बन्ध में क्या करने जा रहे हैं। मेरे विचार से इन प्रदेशों के लोग यह अनुभव करते हैं कि चूंकि संसद् को उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने का समय नहीं मिलता और उनके यहां का शासन जिलाधीशों और आयुक्तों के ही हाथ में है, इसलिये अपने यहां के प्रशासन में उनका कोई हाथ नहीं है। दिल्ली की समस्या एक अलग समस्या है। कुर्ग के सम्बन्ध में मुझे अपने मित्र श्री पूनाचा से विदित हुआ कि वहां की परिषद एक अनूठी चीज है और जिलाधीश ही परिषद् का अध्यक्ष है तथा न्यायाधीश ही न्याय मंत्री है, इत्यादि। इसलिए हमें कुर्ग में इस प्रकार के प्रशासन को बनाये न रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त हम इस अनुच्छेद में मुख्य आयुक्तों के प्रांतों की सरकारों के सम्बन्ध में बिना यह जाने हुये उपबन्ध रख रहे हैं कि हमें किन प्रान्तों के लिए विधि-निर्माण करना

होगा। मुझे ज्ञात हुआ है कि कुर्ग या तो मैसूर में या मद्रास में समाविष्ट कर दिया जायेगा। इसी प्रकार अजमेर-मेरवाड़ा राजस्थान-संघ में सम्मिलित हो सकता है। केवल दिल्ली ही रह जायेगा। मेरे विचार से इस अनुच्छेद में दिल्ली के लिये उपबन्ध रखना उचित न होगा। उसके सम्बन्ध में एक पृथक खण्ड की आवश्यकता होगी। मेरे विचार से हम इस समय इस अनुच्छेद में केवल चन्द्रनगर और पांडुचेरी जैसे फ्रांस द्वारा पोषित अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में ही उपबन्ध रखें। इसलिए मैं यह अनुभव करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने इन अनुच्छेदों को स्थगित रखने के बारे में जो प्रस्ताव आरम्भ में किया था वह ठीक था, क्योंकि यदि हम इस अनुच्छेद को इस समय बिना यह जाने हुए पारित करते है कि हम किन क्षेत्रों के सम्बन्ध में इसे बना रहे हैं, तो यह अनुचित ही होगा। इसलिए इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। जहां तक दिल्ली की समस्या का सम्बन्ध है, मैं उसके बारे में अपनी सम्मति बाद में प्रकट करूंगा। मेरी अपनी धारणा यह है कि उचित यही होगा कि इस अनुच्छेद को उस समय तक स्थगित रखा जाये, जब तक जिन नवीन क्षेत्रों को हम समाविष्ट करने जा रहे हैं, उनका चित्र स्पष्ट न हो जाये। बिना यह जाने हुये कि भारत के कौन से भू-भाग इस संविधान को अंगीकार करेंगे, इस अनुच्छेद को स्वीकार करना उचित न होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, संविधान के भाग 7 के उपबंधों का मैं हृदय से समर्थन करता हूं। यह भाग भारत सरकार की भविष्य की रूपरेखा के सम्बन्ध में है। किसी न किसी समय सभी राज्यों को संविधान के भाग 7 में सम्मिलित करना होगा। मेरी यह धारणा है कि चूंकि हमने अभी तक इस सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं किया गया है कि संविधान के भाग 7 में कौन से राज्य सम्मिलित किये जाये, इसलिये मैं यह सुझाव प्रस्तुत कर सकता हूं कि कुछ बड़े प्रान्त भी संविधान के भाग 7 में रखे जाये। यह भारतीय राज्य के मान और प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है कि भारत सरकार को केवल दिल्ली, कुर्ग अजमेर, मेरवाड़ा और पंथ पिप्लोदा जैसे छोटे-छोटे प्रदेश सौंपे जायें। यदि भारत सरकार को ही देश के कुछ क्षेत्रों का सीधे-सीधे प्रशासन करना है तो उसे कुछ बड़े प्रान्तों के प्रशासन का भार भी सौंपा जाना चाहिये। मैं एक और कारण से भी इस सुझाव को प्रस्तुत कर रहा हूं। मेरे विचार से सीमावर्ती राज्य अर्थात् वे प्रान्त, जो विदेशी राज्यों की सीमा पर स्थित हैं, सैनिक सुव्यवस्था की दृष्टि से प्रान्तीय मंत्रियों के हाथ में न रहने चाहियें। पूर्वी पंजाब, बंगाल जैसे प्रान्त अथवा बिहार और आसाम, जो पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर स्थित हैं, प्रान्तीय मंत्रियों के शासन के अधीन न रहने चाहिये और वह इस कारण कि भारत की स्थिति संकटापन्न हो गई है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य विचाराधीन अनुच्छेद की परिधि से बहुत आगे बढ़ गये हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं यह कह रहा था कि अभी तक इस सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं किया गया है कि इस संविधान के भाग 7 में कौन से राज्य सम्मिलित किये जायेंगे। इसलिये क्या मैं यह सुझाव प्रस्तुत नहीं कर सकता कि अमुक-अमुक राज्य सम्मिलित किया जाये और अमुक-अमुक राज्य सम्मिलित न किया जाये?

***अध्यक्षः** जब अनुसूची पर विचार किया जायेगा तब आप यह कह सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** तब इसके लिये बहुत देर हो जायेगी। किन्तु यदि अनुसूची पर विचार होते समय बोलने दिया जायेगा तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्षः** अनुसूची पर जिस समय विचार किया जायेगा, उस समय आप जो चाहे कह सकते हैं, किन्तु इस समय आप इन बातों को नहीं कह सकते क्योंकि यह अनुच्छेद उन विशेष राज्यों के सम्बन्ध में है जो उल्लिखित हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं आगे बढ़ता हूं। मेरे विचार से इस समय मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों में बहुत उपयुक्त ढंग से प्रशासन हो रहा है और उसे बनाये रखना चाहिये। पंथपिप्लोदा अथवा दिल्ली जैसे मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों के सम्बन्ध में प्रान्तीय स्वायत-शासन की चर्चा करना निरर्थक है। राज्यपालों के प्रान्तों के किसी जिले और परगने की तुलना में ये क्षेत्र आधे भी नहीं हैं और इनकी जनसंख्या भी मुश्किल से उनकी आधी होगी। यह आरोप लगाया गया है कि इन क्षेत्रों का प्रशासन अब सुयोग्य ढंग से नहीं होता। जो लोग यह आरोप लगाते हैं, उनसे मेरा यह कहना कि वे राज्यपालों के प्रान्तों का दौरा करें और देखें कि वहां की प्रशासन-योग्यता पहले की तुलना में गिर गई है या नहीं गिरी है। श्रीमान्, इस पर जोर दिया गया है कि लोगों को स्वायत-शासन प्राप्त होना चाहिये। यह भी कहा गया है कि क्या यह उचित और न्यायपूर्ण है कि जब सारे में स्वायत-शासन है, तो मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों के निवासी इससे वंचित क्यों रखे जायें? किन्तु मेरे विचार से इस तर्क में कोई सार नहीं है, क्योंकि मैं यह देखता हूं कि लोग स्वायत-शासन के इच्छुक नहीं हैं। उनकी राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है। इस समय हमारे सामने खाद्य-समस्या ही सबसे बड़ी समस्या है। हमें इसी समस्या को हल करना है। लोगों की खाद्य समस्या में दिलचस्पी है। चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओं में उनकी दिलचस्पी है। अपनी सन्तानों के निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने में उनकी दिलचस्पी है। उन्हें खाना चाहिये, उन्हें शरण चाहिये। राजनैतिक प्रश्नों में जनसाधारण की दिलचस्पी नहीं है। वे इसी समस्या में उलझे हुये हैं कि अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार करें। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय स्वायत-शासन सर्वत्र निष्फल प्रमाणित हो चुका है। यदि यह ठीक है तो मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों में भी वही त्रुटियां क्यों की जायें जो अन्यत्र की गई हैं? यदि प्रांतीय स्वायत-शासन निष्फल प्रमाणित हो चुका है तो किसी भी मुख्य आयुक्त के प्रान्त में प्रान्तीय स्वायत-शासन नहीं स्थापित किया जाना चाहिये। इसलिये श्रीमान्, मैं जिस तर्क को भी उठाता हूं उससे यही प्रमाणित होता है कि केन्द्र द्वारा प्रशासित इन प्रान्तों की राजनैतिक स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी यह धारणा है कि भारत में एक सरकार के अतिरिक्त अन्य किसी सरकार के लिए स्थान नहीं है और इसलिए अधिक सरकारों को स्थापित करना एक प्रतिगामी कदम होगा। मैं वर्तमान प्रान्तीय सरकारों के भी पक्ष में नहीं हूं। अधिक प्रान्तों को स्थापित करने के प्रयास से हम इस देश के लोगों के प्रति शत्रुवत् व्यवहार तो करेंगे ही, किन्तु आत्मघात की ओर भी बढ़ेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, जब पिछली बार हमने उत्तर-सदन सम्बंधी उपबन्ध के कारण का विरोध किया था, तो आप सभा के सहायतार्थ आगे

बढ़े थे और आपने मसौदा-समिति के सदस्यों को इसके लिए राजी कर लिया था कि वे उस अनुच्छेद को स्थगित रखे और सभा के सामने कोई निश्चित योजना रखें। क्या मैं श्रीमान् से इस अवसर पर फिर अनुरोध कर सकता हूं कि इस भाग पर भी, इसे पारित करने के पूर्व, बहुत सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है? इस समय हमारे सामने एक अजीब उपबन्ध है। यदि किसी प्रसंग में संसद् को विधि-निर्माण की शक्ति प्रदान करने की आवश्यकता थी तो वह इस प्रसंग में थी। यह उपबन्ध आसानी से रखा जा सकता था कि इन तीन क्षेत्रों का शासन एक अधिनियम के अधीन होगा, जिसे संसद् जब भी चाहेगी पारित करेगी। इससे किसी भी व्यक्ति को असुविधा न होगी और पूरे प्रधान पर विचार करने के लिए भी हमें अधिक समय मिल जाता। हम यह जान सकते कि इन प्रदेशों के निवासियों की क्या इच्छा है और हम उनकी मांगों पर भी, चाहे वे जो कुछ भी होती विचार कर सकते। किन्तु हम इस समय जो कार्यवाही करने जा रहे हैं, वह विधान के अन्य उपबन्धों से असंगत है। सभी स्थानों में हमने लोगों को वयस्क मताधिकार प्रदान किया है। हमने विधान-मण्डल की न केवल एक सभा के लिए बल्कि दो सभाओं के लिये भी व्यवस्था की है, किन्तु इस प्रसंग में हम यह देखते हैं कि हम एक परामर्शदातृ परिषद् के लिए भी उपबन्ध नहीं रख रहे हैं। यदि यह अनुच्छेद वर्तमान रूप में ही पारित किया जाता है, तो मेरे विचार से इस प्रकार की परिषद् की स्थापना राष्ट्रपति की स्वेच्छा पर ही निर्भर होगी। संविधान में भी इस आशय का कोई उपबन्ध नहीं है कि इन क्षेत्रों के निवासियों से किस प्रकार परामर्श किया जायेगा। इस प्रकार हम उन्हें वैसे ही 'अपवर्जित क्षेत्रों' में परिणत कर रहे हैं, जैसे कि 1935 के अधिनियम के अधीन जनजातियों के क्षेत्र थे, जहां लोगों को न तो प्रतिनिधित्व का और न मतदान का अधिकार प्राप्त था। इससे सम्भवत: सारे भारत के संविधान के निर्मित होने और प्रवर्तन में आने पर दिल्ली के, अजमेर-मेरवाड़ा के और कुर्ग के निवासी पहाड़ी जनजातियों के लोगों और आदिवासियों के समान हो जायेंगे। इस कारण, श्रीमान्, मेरे विचार से किसी भी क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति को सौंप देना उचित नहीं है। राष्ट्रपति भी इस सम्बन्ध में स्वतन्त्रता से कार्य नहीं करेगा। निकटवर्ती प्रान्त का राज्यपाल उसकी ओर से कार्य करेगा और इस राज्यपाल की ओर से भी उपराज्यपाल कार्य करेगा। यदि हम इस विषय को इसी प्रकार छोड़ दें तो मेरे विचार से हमारे लिये यह प्रशंसनीय न होगा। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इस पूरे प्रश्न पर तथा तत्सम्बन्धी अनुच्छेदों के मसौदों पर फिर से विचार किया जाये।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है कि क्या यह सम्भव नहीं है कि इन क्षेत्रों को अन्य क्षेत्रों के साथ इस प्रकार जोड़ दिया जाये कि सम्मिलित होने वाले अन्य क्षेत्रों के समान ही वे भी उत्तरदायित्व को वहन करें और उन्हीं के समान लोकतंत्रात्मक व्यवस्था को अपने यहां भी स्थापित करें? सम्भावना इसकी है कि बड़े-बड़े क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के साथ मिला दिये जायेंगे। हमने देखा कि एक राज्य के बाद दूसरे राज्य ने आपस में मिलकर संघ बनाने की ओर कदम उठाया और बड़ौदा जैसा विशाल राज्य, जिसकी जनसंख्या तीस लाख है और लगभग आयरलैण्ड जैसे देश की जनसंख्या के बराबर ही है, क्षण भर में ही एक प्रान्त में समाविष्ट कर दिया गया। इन क्षेत्रों के निवासी अलग नहीं रहना चाहते हैं। जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का सम्बन्ध है मुझे बताया गया है कि

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

वहां के लोगों की उत्कट इच्छा यही है कि उनका प्रदेश राजस्थान में समाविष्ट हो जाये। किन्तु लोगों की इच्छाओं के विपरीत हम छोटे-छोटे द्वीप-रूप क्षेत्रों को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। जिनका प्रशासन अन्य प्रदेशों के संविधान में उपबन्धित प्रशासन से बिल्कुल भिन्न है। मेरा यह निवेदन है कि इससे न तो इन क्षेत्रों के निवासियों के प्रति न्याय हो सकेगा और न यह उस योजना के अनुरूप ही होगा, जिसे विकसित करने का हम प्रयास कर रहे हैं। हम अपने संविधान में छोटे-छोटे द्वीप-रूप प्रदेशों को कोई स्थान न देने का प्रयास कर रहे हैं और इसी उद्देश्य से हमने नरेशों को हटा दिया है और संघों और प्रान्तों को स्थापित करके पुरानी सीमाओं को समाप्त कर दिया है। कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा जैसे छोटे प्रदेशों के सम्बन्ध में भी हम इसी योजना का अनुसरण क्यों नहीं करते? ये बहुत छोटे-छोटे प्रदेश है और उन्हें पृथक रूप से जीवित न रखना चाहिये। यदि उन्हें पृथक रूप से जीवित रखना ही है, तो वहां के निवासियों के लिए कम से कम उसी प्रकार की लोकतंत्रात्मक संस्थाएं स्थापित की जानी चाहियें, जैसीकि भारत के अन्य भागों में हैं। प्रस्तावित उपबन्ध किसी योजना पर आधृत नहीं है और श्रीमान् मुझे आशा है कि आप मसौदा-समिति के सदस्यों को इसके लिए राजी कर लेंगे कि वे इस अवसर पर और इस प्रकार इन अनुच्छेदों को सभा में पारित कराने के लिए जोर न दें।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): माननीय सदस्यों को यह विदित है कि छोटे प्रशासनों के प्रश्न पर विचार करने के लिए हमने एक समिति स्थापित की थी। इस समिति के सभापति हमारे आदरणीय मित्र तथा कांग्रेस के राष्ट्रपति डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या थे। दुर्भाग्य से समिति का प्रतिवेदन इस सभा के माननीय सदस्यों को प्राप्त न हो सका और इसलिये उस सभा में विचार-विमर्श न हो सका। इसका परिणाम यह हुआ कि मसौदा-समिति ने छोटे प्रशासनों के सम्बन्ध में अपने ही अधिकार से संविधान में उपबन्ध रख दिये। इसलिए श्रीमान्, मुझे आशा है, आप कृपा करके इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सदस्यों को कुछ ढील देंगे क्योंकि सभा को प्रतिवेदन पर अपना मत प्रकट करने का कोई अवसर ही नहीं मिला। इसलिये श्रीमान्, इन अनुच्छेदों पर अर्थात् अनुच्छेद 212, 213 और 214 पर विचार करने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि.....

***अध्यक्षः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि उस उपसमिति का प्रतिवेदन सदस्यों को तो दिया गया था, किन्तु सभा ने उस पर विचार नहीं किया?

***श्री विश्वनाथ दासः** मैं यही कह रहा था, इससे अधिक मैंने और कुछ नहीं कहा।

***अध्यक्षः** मैंने यह समझा कि आप यह शिकायत कर रहे हैं कि प्रतिवेदन सदस्यों को प्राप्त नहीं हुआ।

***श्री विश्वनाथ दासः** मैंने यह कहा और मैं इसे दुहराता हूं कि सभा को इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर नहीं मिला। मैंने यही कहा और मैं इसे ठीक समझता हूं।

श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि यह प्रतिवेदन सर्वसम्मति से स्वीकृत नहीं हुआ और मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि इस प्रतिवेदन में माननीय श्री मुकुट

बिहारी लाल भार्गव ने, जो इन क्षेत्रों का अर्थात् अजमेर-मेरवाड़ा का प्रतिनिधित्व करते थे, अपना मतभेद व्यक्त किया है। उनके मतभेद के लेख का अंतिम वाक्य मैं पढ़कर सुनाता हूं। वे कहते हैं "इसलिये मैं संविधान-सभा से अनुरोध करता हूं कि संविधान के इस अध्याय में एक उपयुक्त उपबन्ध प्रविष्ट करना आवश्यक है ताकि इन क्षेत्रों में से प्रत्येक के लिए यह सम्भव हो सके कि वह एक सुसंगठित संघ में सम्मिलित हो सके।"

इस क्षेत्र के प्रतिनिधि के विचारों से इस सभा को परिचित कराने के पश्चात् मैं समिति को, उसके प्रतिवेदन में जो कार्यवाही की है उसके लिए बधाई नहीं दे सकता। वह कार्यवाही क्या है? वह कार्यवाही यह है कि समिति ने प्रान्तों में प्रशासित छोटे राज्यों के लिए पुराने 1935 के अधिनियम के आधार पर उत्तरदायी शासन की सिफारिश की है, जिसमें राज्यपाल के स्थान पर उपराज्यपाल की सिफारिश की गई है और एक परिषद् की भी सिफारिश की गई है जिसका गठन आप के बनाये हुये संविधान के आधार पर नहीं बल्कि एक भिन्न आधार पर है। उसका वर्णन प्रतिवेदन के पृष्ठ 3 पर है। प्रतिनिधित्व का आधार यह है कि कुर्ग के 5,000 लोगों का एक प्रतिनिधि होगा और वहां अधिक से अधिक 33 प्रतिनिधि होंगे और अजमेर मेरवाड़ा के 15,000 लोगों का एक प्रतिनिधि होगा और वहां अधिक से अधिक 40 प्रतिनिधि होंगे। उसके प्रस्तावानुसार परिषद् अथवा सभा का गठन इस आधार पर होगा और साथ ही 1935 के अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार वहां प्रधान मंत्री, मन्त्री तथा अन्य सभी प्रकार के लोग भी होंगे।

1935 के अधिनियम की दुष्टतापूर्ण पदावली को प्रयोग करने के लिए भी मैं इस समिति के सदस्यों का आभारी हूं। इस प्रतिवेदन के विरुद्ध मुझे इस सभा में अपना घोर मतभेद प्रकट करना है क्योंकि इसमें छोटे प्रशासित क्षेत्रों को इस निन्दनीय अधिनियम के अधीन रखकर अन्याय किया गया है। मेरे मतभेद के कारण ये हैं:

पहला कारण यह है कि इस प्रतिवेदन में जो प्रशासन-प्रणाली प्रस्तावित है वह इस संविधान में सन्निहित प्रान्तीय प्रशासन-प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है। क्या मुझे यह भी कहने की आवश्यकता है कि स्वतन्त्र भारत के भविष्य को ध्यान में रखते हुए यह एक बहुत ही प्रतिगामी प्रतिवेदन है।

दूसरा कारण यह है कि इस प्रतिवेदन के निर्माताओं ने इस संविधान में एक ऐसी प्रशासन-प्रणाली को प्रविष्ट करने तथा उसका पोषण करने का प्रस्ताव किया है जिसका इस देश के सभी विचार-धाराओं के लोग परित्याग कर चुके हैं।

तीसरा कारण यह है कि वे प्रशासन पर एक अनावश्यक और खर्चीले संगठन का भार डालना चाहते हैं और लोगों को इस भ्रम में डालना चाहते हैं कि ये छोटे-छोटे प्रशासन प्रान्तों के रूप में बने रहेंगे। यदि यही विचार है तो उन छोटे-छोटे राज्यों को क्यों समाप्त किया जा रहा है जिन्होंने अपने यहां उत्तरदायी शासन स्थापित करने का निश्चय कर लिया था। यह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता।

इस प्रकार किसी भी दृष्टि से इस समिति का प्रतिवेदन इतना उत्कृष्ट नहीं कि वह 1949 ई. में इस सभा के माननीय सदस्यों को स्वीकार्य हो।

[श्री विश्वनाथ दास]

इस सम्बन्ध में मैं साइमन आयोग के प्रतिवेदन की भी चर्चा करना चाहता हूं जिसमें इस प्रश्न का विस्तृत रूप से उल्लेख है। उसमें यह सिफारिश की गई है कि अब इसके लिए समय आ गया है कि ये छोटे-छोटे प्रशासन निकटवर्ती प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये जायें। उसमें इस प्रस्ताव की पुष्टि दो कारणों के आधार पर की गई है। पहला कारण यह है कि खर्च में कमी होगी और दूसरा यह है कि प्रशासन सुयोग्य ढंग से होने लगेगा। उसमें सुयोग्य प्रशासन पर अधिक जोर दिया गया है और यह कहा गया है कि इन छोटे-छोटे क्षेत्रों का प्रशासन भारत सरकार के जिन कर्मचारियों के हाथ में रहा है उन्हें प्रान्तों के प्रशासन का अनुभव न था और इस कारण इनका प्रशासन सुयोग्य ढंग से न हो सका। क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही आप अधिक धन लगा रहे हैं और एक ऐसे प्रशासन को बनाये रखना चाहते हैं जिसकी निन्दा न केवल भारत के विभिन्न विचाराधाराओं के लोगों ने की है बल्कि साइमन आयोग के सदस्यों के समान अत्यन्त प्रतिक्रियावादी लोगों ने भी की है। यह हद से आगे बढ़ जाता है। इस स्थिति में इस समिति ने जो कार्य किया है उसकी मैं प्रशंसा नहीं कर सकता।

आप कुर्ग जैसे प्रान्त को बनाये रखना क्यों चाहते हैं? यह लगभग 1600 वर्ग मील का प्रान्त है और मद्रास तथा मैसूर के पड़ोस में है। मद्रास हमारा ही एक प्रान्त है और मैसूर में भी मद्रास के ही समान उत्तरदायी शासन है। साथ ही कन्नड़ लोग एक-भाषी प्रान्तों के आधार पर इस क्षेत्र पर अपना अधिकार चाहते हैं। सम्भव है कि आपको शीघ्र ही एक-भाषी प्रान्त स्थापित करने पड़ें और एक पृथक कन्नड़ प्रान्त भी स्थापित करना पड़े। यदि वह स्थापित हुआ तो कुर्ग उसमें समाविष्ट हो जायेगा। इसलिये क्या वर्तमान स्थिति को बनाये रखकर अपनी आर्थिक कठिनाइयों को तथा सुयोग्य प्रशासन-व्यय को बढ़ाना उचित है? मेरा यह निवेदन है कि इससे न तो देश के प्रति न्याय हो सकेगा और न इस सभा के माननीय सदस्यों के प्रति।

इसके अतिरिक्त अजमेर-मेरवाड़ा के सम्बन्ध में वहां के माननीय प्रतिनिधि ने अपना मत व्यक्त किया है। मुझे उससे अधिक और कुछ नहीं कहना है और केवल यह सिफारिश करनी है कि माननीय श्री मुकुट बिहारीलाल भार्गव ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसे स्वीकार किया जाये।

पंथ-पिप्लोदा में केवल साढ़े दस गांव हैं जो किसी भी अन्य प्रदेश में समाविष्ट किये जा सकते हैं।

जहां तक दिल्ली के प्रान्त का सम्बन्ध है यह समझ में नहीं आता कि दिल्ली के प्रशासन के अधीन एक पूरे प्रान्त को क्यों रखा जाये। उसे पूर्वी पंजाब में अथवा संयुक्त प्रान्त में समाविष्ट किया जा सकता है।

अब केवल दो क्षेत्र रह जाते हैं अर्थात् दिल्ली का नगर और निकोबार और अण्डमान द्वीप। जहां तक दिल्ली नगर का सम्बन्ध है आप उसके लिए एक निगम की व्यवस्था उसी प्रकार कर सकते हैं जैसे इंग्लिस्तान के संविधान में लंदन के नगर के लिए की गई है अथवा आप उस निगम का निर्माण अमेरिका की प्रणाली के आधार पर कर सकते हैं। जैसा भी उचित और आवश्यक समझा जाये किया

जा सकता है। इस स्थिति में यह मेरी समझ में नहीं आता कि दिल्ली को केवल प्रान्त का नाम देने के लिए आप उसके साथ एक छोटे से क्षेत्र को क्यों जोड़ना चाहते हैं और उसका अपना एक संगठन जिसमें विधान-सभा, प्रधान मंत्री, मन्त्री आदि सभी प्रकार के लोग होंगे, क्यों स्थापित करना चाहते हैं? इस स्थिति में मैं इस समिति के अपने माननीय मित्रों के विचारों से सहमत नहीं हूं।

अब केवल अण्डमान का क्षेत्र रह जाता है। इसका सैनिक महत्व है.....

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ अण्डमान द्वीपों का संविधान के भाग 7 में उल्लेख नहीं है।

*__श्री विश्वनाथ दासः__ आप उसे गृह मंत्रालय अथवा प्रतिरक्षा मंत्रालय के अधीन रख सकते हैं। इसलिये संविधान में इन उपबंधों को प्रविष्ट करके उसे बोझल बनाने की क्या आवश्यकता है? मेरे विचार से अनुच्छेद 212 का भाग (1) और अनुच्छेद 213 तथा 214 अनावश्यक, निरर्थक और अनुचित हैं और यह व्यवस्था बहुत खर्चीली है। इस स्थिति में मैं इन उपबंधों को प्रविष्ट करने के विरोध में हूं क्योंकि मेरे विचार से संविधान को बोझल बनाने के अतिरिक्त उनकी और कोई उपयोगिता नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान को बोझल बनाने और खर्च को बढ़ाने की ख्याति हमने प्राप्त कर ही ली है। यह काल संकट का काल है। युद्ध के पूर्व हमारे असैनिक विभागों का जो आकार था उससे अब उनका आकार तिगुना अथवा चौगुना हो गया है जो कुछ खर्च हो रहा है उसे भी अत्यधिक बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? इसलिये इन अनुच्छेदों का, विशेषतः अनुच्छेद 212 का विरोध करने के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई चारा नहीं है।

श्रीमान्, आपने शनिवार को इस सभा से इन अनुच्छेदों पर फिर से विचार करने की प्रार्थना करके बहुत साहसपूर्ण कदम उठाया। क्या मैं आपसे अनुरोध कर सकता हूं कि विचाराधीन अनुच्छेदों पर अवश्य ही पुनर्विचार किया जाना चाहिये तथा जो निर्णय किया गया है उसका पुनर्विलोकन किया जाना चाहिये?

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मैं इस धारा का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं। लेकिन समर्थन करते हुये मैं यह कहे बगर नहीं रह सकता कि इन छोटे-छोटे टुकड़ों को अलहदा सूबों की शक्ल में रखना देश के लाभ में नहीं है। सिवाय न्यू देहली और पांडीचेरी और चन्द्रनगर के, मेरे ख्याल में, देश के लाभ में नहीं है कि किसी दूसरे छोटे टुकड़ों को सूबे की शक्ल में रखा जाये। मिसाल के तौर पर दिल्ली को लीजिये। नई दिल्ली का, इसमें कोई शक नहीं, कि एक अलग प्रश्न है। इसको हमें एक अलग प्रान्त के तौर पर रखना ही होगा क्योंकि यह सैण्ट्रल गवर्नमेंट की सीट है। परन्तु ओल्ड देहली और देहली के देहात, जो मुश्किल से 300 हैं, उनको एक सूबे की शक्ल में रखना और इतना टाप हवी एडमिनिस्ट्रेशन रखना देश के लाभ में नहीं हो सकता है।

अभी चन्द दिनों का जिक्र है कि अजमेर और दिल्ली के लिये रुपये के लेन-देन को रेगुलट करने के लिए एक बिल का कंसीडरेशन हमारी स्टेण्डिग कमेटी के सामने आया। उसमें जो उन्होंने अफसरों के स्केल्स रखने तजवीज़ किये थे वह किसी बड़े से बड़े सूबे का मुकाबला करते थे। इस तरह से और महकमों

[चौधरी रणवीर सिंह]

की हालत है हालांकि दिल्ली में मुश्किल से 300 गांव हैं और वह एक जिले की तहसील के बराबर भी नहीं। अगर हम इसे अलहदा रखेंगे तो हमें मजबूर होना पड़ेगा कि इतना टाप हेवी एकमिनिस्ट्रेशन रखें। इसलिये मैं इसका समर्थन करते हुये यह जरूर उम्मीद करता हूं और कहना चाहता हूं कि नई दिल्ली को छोड़कर बाकी दिल्ली का देहात और शहर पंजाब के अन्दर मिला दिया जायेगा।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): इसको यू.पी. में क्यों न मिला दिया जाये?

चौधरी रणवीर सिंह: मेरे त्यागी भाई यू.पी. से मिलाने की बात कहते हैं। यू.पी. से देहली को मिलाने के लिए एक नैचुरल बाउण्डरी यानी जमुना को पार करके मिलाना होगा। पंजाब से अगर वह मिला दिया जाये तो उसमें पंजाब की नैचुरल बाउण्डरी हो जायगी।

आज पंजाब के चने को बन्द किया जाता है। उसको उबूर करने के लिए कोई यमुना नहीं पड़ती है। कुछ गांव तो ऐसे हैं जिनके बहुत सारे आदमियों के खेत पंजाब में हैं और दूसरे दिल्ली में। इसलिये यह एक बड़ी प्राबलेम बन जाती हैं लेकिन अगर नई दिल्ली को छोड़कर बाकी इलाके को पंजाब में मिला दिया गया तो आसानी हो जायेगी। और यू.पी. में मिलाने का जो ख्याल है वह वैसे भी गलत है क्योंकि यू.पी. बहुत बड़ा सूबा है। पहले ही वह इतना भारी है कि उसको एक यूनिट के तौर पर संभालना आसान नहीं है। पंजाब, जो एक बहुत छोटा सूबा है उसकी दस लाख के करीब और संख्या बढ़ जायेगी। दूसरे एक माकूल बाउण्डरी हो जायेगी। तो मैं इसका समर्थन करते हुये इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि पुरानी दिल्ली और दिल्ली का जो देहात है वह पंजाब के साथ मिलाया जाना चाहिये और इसका फैसला विधान-सभा द्वारा ही कर देना चाहिये।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जैसे लोगों का विरोध नहीं करना चाहता, जिनकी यह धारणा है कि निरंकुश शासक, न कि मंत्री, भारत के सभी प्रान्तों का शासन करें। किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि मेरे वे मित्र, जो हमेशा से सभी स्थानों में लोक-शासन का समर्थन करते रहे हैं, दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के लोगों को इस अधिकार से क्यों वंचित रखना चाहते हैं और इसके समर्थन में उन्होंने किस प्रकार तर्क उपस्थित किये हैं। अब मैं इन दो प्रान्तों के प्रश्न को उठाता हूं। इनको प्रान्त कहा ही जा सकता है। मैं जानबूझकर कुर्ग की चर्चा नहीं कर रहा हूं क्योंकि वह इतना छोटा प्रदेश है कि वहां कोई विधान-सभा स्थापित नहीं की जा सकती। किन्तु साथ ही मैं यह अवश्य चाहता हूं कि उसका प्रशासन उस ढंग से न होना चाहिये जैसे कि आज हो रहा है। उसे किसी निकटवर्ती प्रान्त में समाविष्ट कर देना चाहिये। इस प्रकार केवल दो बड़े प्रान्त, अर्थात, दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा, रह जाते है? इन दोनों में से प्रत्येक की जनसंख्या लगभग पच्चीस लाख है। इतने अधिक लोगों के स्वशासन के अधिकार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मेरी समझ में नहीं आता कि जब अपने संविधान के अधीन हमने पिछड़े हुये वर्गों को एक स्वशासन का अधिकार दिया है तो हम इन दो प्रान्तों

के बुद्धिमान लोगों से यह कैसे कह सकते हैं कि वे लोकप्रिय शासन स्थापित नहीं कर सकते। यदि उद्देश्य यह है कि अजमेर-मेरवाड़ा को किसी निकटवर्ती प्रान्त में समाविष्ट किया जाये तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है किन्तु मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा को मिला दिया जाये और उस प्रदेश में अन्य प्रान्तों के समान एक समुचित विधान-मण्डल स्थापित किया जाये।

यह तर्क उपस्थित किया गया है कि राजधानी में हम किसी प्रान्तीय सरकार को स्थापित नहीं कर सकते। सम्भव है कि यह तर्क भावनावश ही उपस्थित किया गया हो क्योंकि मुझे उसमें कोई सार नहीं दिखाई देता। क्या कलकत्ते में, जो पहले भारत की राजधानी था, एक उप-राज्यपाल के अधीन दो सरकारें नहीं थी? क्या कलकत्ते में उसी आधार पर दो सरकारें कार्य न करती थीं, जिसका कि मैं समर्थन कर रहा हूं? उसमें त्रुटि क्या थी? यदि प्रतिष्ठा और भावना-वश यह विचार किया जाये कि राजधानी दिल्ली में न होनी चाहिये तो अजमेर को राजधानी बना दीजिये। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु जब हम इस देश के सभी लोगों के लिये एक संविधान बना रहे हैं तो इन लोगों को इस अधिकार से वंचित करना एक अजीब प्रयास है। इसलिये मेरी यह प्रबल धारणा है कि बिना इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किये हुये कि दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के प्रशासन का भविष्य क्या होगा हमें संविधान को पारित न करना चाहिये।

जहां तक स्थानीय स्वशासी संगठन का सम्बन्ध है, जरा दिल्ली की आज की स्थिति की कल्पना तो कीजिये। दिल्ली के नगर में इस समय चार नगर-पालिकायें है। प्रत्येक तीन मील पर एक अलग छोटी सी नगर-पालिका है। उसका नाम 'नगर पालिका' भी नहीं रखा गया है। राजधानी के स्थानीय स्वशासी निकाय को 'नगर-समिति' का दो कौड़ी का नाम दिया गया है। किन्तु फिर भी भावनावश यह कहा जाता है कि दिल्ली मुख्य आयुक्त के अधीन रहनी चाहिये। पुरानी दिल्ली में एक नगर-समिति है। तीन मील की दूरी पर नई दिल्ली में एक दूसरी नगर-समिति है। आगे तीन मील पर सिविल लाइन्स में एक नगर-क्षेत्र समिति है। शाहदरा में भी इसी प्रकार की एक समिति है। मैंने अभी तक किसी ऐसे नगर का नाम नहीं सुना जहां आठ मील की दूरी पर एक दूसरी नगरपालिका हो। बम्बई को देखिये। बम्बई की अठारह मील की परिधि है और वहां कई पार्श्वर्वर्ती नगर हैं किन्तु वहां यह बात नहीं है कि एक ही नगर में छोटे-छोटे स्थानीय निकाय हों। मैं यह चाहता हूं कि दिल्ली में एक नगर-निगम हो। जब संक्रान्तिकालीन सरकार के स्थापित होने पर दिल्ली के लिये छोटी-छोटी नगरपालिकाओं को मिलाकर एक निगम की स्थापना पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई तो मुझे प्रसन्नता हुई। इस समिति ने एक बहुत ही सुन्दर प्रतिवेदन उपस्थित किया है। जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया है कि सारी दिल्ली के लिये एक नगर-निगम स्थापित किया जाये और छोटी-छोटी नगरपालिकायें उसमें समाविष्ट कर दी जायें। मेरे विचार से उस प्रतिवेदन को ताक पर रख दिया गया है। दो वर्ष पूर्व वह प्रतिवेदन उपस्थित किया गया था। आप दिल्ली के लोगों को स्थानीय स्वायत-शासन प्रदान करने के लिए तैयार नहीं हैं। मैं कह नहीं सकता कि इसका कारण क्या है। तीन-तीन मील की दूरी पर नगरपालिकाओं को बनाये रखने के बजाय दिल्ली के लिए एक ही

[श्री आर.के. सिधवा]

नगर-निगम क्यों न हो? आप उन्हें नगर-सम्बन्धी अधिकार भी देने के लिए तैयार नहीं हैं। मेरी यह इच्छा है कि इस राजधानी का सुनाम बनाये रखने के लिए आप इन दो प्रान्तों के लोगों को इन शक्तियों को प्रदान करने के लिए तुरन्त कदम उठायें।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 212 के खण्ड (1) में तथा खण्ड (1) के परन्तुक में 'Governor or Ruler' (राज्यपाल अथवा राजप्रमुख) शब्दों के स्थान में 'Government' (सरकार) शब्द रखा जाय।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 212 के खण्ड (1) के परन्तुक के खण्ड (ख) में 'wishes' (इच्छाओं) शब्द के स्थान पर 'views' (विचारों) शब्द रखा जाये और अन्त में निम्नलिखित नवीन खण्ड (3) प्रविष्ट किया जाये:-

'(3) इस अनुच्छेद में राज्य के प्रति निर्देशों के अन्तर्गत राज्य के भाग के निर्देश भी हैं।' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2713 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 212 का खण्ड (2) निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 212, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 212, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 213

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2722 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 213 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'213 (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution Parliament may by law create or continue for any State for the time being specified in Part II of the First Schedule and administered through a Chief Commissioner or Lieutenant Governor—

Creation or continuance of local Legislatures or Council of Advisers or Ministers.

(a) a body, whether nominated, elected or partly nominated and partly elected, to function as a Legislature for the State; or

(b) a council of advisers or ministers or both with such constitution, power and functions, in each case, as may be specified in the law.

(2) Any law referred to in clause (1) of this article shall not be deemed to be an amendment of this Constitution for the purposes of article 304 thereof notwithstanding that it contains any provision which amends or has the effect of amending the Constitution.'

[213 (1) इस संविधान में अन्यथा उपबन्ध होते हुये भी प्रथम अनुसूची के भाग 2 में इस समय उल्लिखित तथा मुख्य आयुक्त या उप-राज्यपाल द्वारा प्रशासित किसी राज्य के लिये संसद् विधि द्वारा—

स्थानीय विधान मण्डलों अथवा मंत्रणा-दाताओं या मंत्रियों की परिषद् का सृजन करना या बनाये रखना

(क) राज्य के विधान-मण्डल के रूप में कृत्य करने के लिए नाम-निर्देशित या निर्वाचित अथवा अंशतः नाम-निर्देशित और अंशतः निर्वाचित निकाय को अथवा

(ख) मंत्रणा-दाताओं की, या मन्त्रियों की, परिषद् को या दोनों को ऐसे गठन, शक्तियों तथा कृत्यों सहित, जो कि प्रत्येक के बारे में विधि द्वारा उल्लिखित की जाये, सृजित कर सकेगी या बनाये रख सकेगी।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में निर्दिष्ट कोई विधि अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी चाहे फिर उसमें कोई ऐसा उपबन्ध अन्तर्विष्ट क्यों न

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हो, जो इस संविधान का संशोधन करता है या संशोधन करने का प्रभाव रखता है।]

श्रीमान् इस संशोधन द्वारा जो मुख्य परिवर्तन किया जा रहा है वह यह है। मूल मसौदे में किसी नाम-निर्देशित अथवा निर्वाचित प्रतिनिधि-निकाय को और मन्त्रणा-दाताओं अथवा मंत्रियों की परिषद् को स्थापित करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी गई थी। नये मसौदे में यह शक्ति संसद् को दी गई है न कि राष्ट्रपति को। इस नवीन अनुच्छेद द्वारा यही सारवान परिवर्तन किया गया है। अन्यथा यह उपबन्ध पहले उपबन्ध के समान ही है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं पहले सप्ताह की सूची के अपने संशोधन संख्या 47 को उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 45 में प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) में से 'Notwithstanding anything contained in this Constitution' (इस संविधान में अन्यथा उपबन्ध होते हुये भी) शब्द निकाल दिये जायें।"

मेरी यह धारणा है कि यह अनुच्छेद सम्पूर्ण ही है और इसमें 'इस संविधान में अन्यथा उपबन्ध होते हुये भी' शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में वास्तव में अनुसूची 1 के भाग 2 के राज्यों के लिए एक संविधान की व्यवस्था की गई है जिनमें दिल्ली कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा सम्मिलित हैं। मैं अपने मित्र श्री पूनाचा और पण्डित एम.बी.एल. भार्गव की इस सिफारिश से सहमत हूं कि कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा निकटवर्ती प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये जायें। मेरा यह भी विचार है कि दिल्ली के लिए एक अलग संविधान होना चाहिये। मेरे विचार से यह अनुच्छेद केवल चन्द्रनगर आदि के लिये प्रयुक्त होना चाहिये। दिल्ली के लिये एक अलग उपबन्ध होना चाहिये जो अनुच्छेद 213 के उपबन्धों से भिन्न होना चाहिये क्योंकि उसमें कहा गया है कि राज्य के विधान-मण्डल के रूप में कृत्य करने के लिए नामनिर्देशित या निर्वाचित अथवा अंशतः नाम-निर्देशित और अंशतः निर्वाचित निकाय होगा अथवा मंत्रणा-दाताओं या मंत्रियों की एक परिषद होगी। मेरे विचार से दिल्ली के लिए एक विशेष उपबन्ध रखना चाहिये और वह उन उपबन्धों के समान न होना चाहिये जो केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के बारे में हैं। दिल्ली एक प्रान्त ही होना चाहिये और इसके लिये एक पृथक उपबन्ध होना चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यह अनुच्छेद दिल्ली के सम्बन्ध में प्रयुक्त न हो।

हमने हाल में श्री के.एम. मुन्शी का घुमाया हुआ एक लेख देखा जिसमें उन्होंने बताया है कि दिल्ली की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुये तथा इसे भी ध्यान में रखते हुये कि वह भारत की राजधानी है, यह कहा जा सकता है कि वह बहुत कुछ बम्बई नगर के समान है। राजधानी की आवश्यकताओं को पूरा करने

के लिए उसके नागरिकों को बम्बई के समान स्वायत-शासन प्राप्त होना चाहिये। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि इस आशय का एक उपबन्ध संविधान में प्रविष्ट किया जाये।

मैं संसद् को दिल्ली के लिए एक संविधान निर्माण करने की शक्ति प्रदान करने के विरोध में हूं। उसके लिए एक पृथक अनुच्छेद में व्यवस्था की जानी चाहिये और उसमें वही उपबन्ध होने चाहिये जो श्री के.एम. मुन्शी के लेख में प्रस्तावित हैं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यह अनुच्छेद दिल्ली के सम्बन्ध में प्रयुक्त न हो। चूंकि दिल्ली के सम्बन्ध में मैं इसी अवसर पर बोल सकता हूं इसलिये मैं वह सुझाव उपस्थित करता हूं कि नई दिल्ली अवश्य केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में हो किन्तु अवशिष्ट क्षेत्र को स्वायत शासन प्रदान किया जाये और उसमें एक पृथक विधान मण्डल आदि स्थापित किया जाये। वास्तव में समिति ने जो प्रतिवेदन स्थापित किया था उसमें दिल्ली के प्रान्त को पूर्ण स्वायत शासन प्रदान करने की सिफारिश की गई है। मैं उससे केवल नई दिल्ली को अलग कर रहा हूं। वहां 80 प्रतिशत इमारतें सरकारी इमारतें हैं इसलिये नई दिल्ली केन्द्रीय सरकार के ही नियंत्रण में रहे किन्तु अवशिष्ट क्षेत्र को पूर्ण स्वायत शासन प्रदान किया जाये। किन्तु इस प्रश्न की परीक्षा की जाये कि क्या अवशिष्ट क्षेत्र पूर्वी पंजाब अथवा संयुक्तप्रान्त में मिलाया जा सकता है या नहीं। यदि वह किसी प्रान्त का अंग हो जायेगा तो इससे बहुत सुविधा हो जायेगी क्योंकि यह सम्भव है कि एक बड़े प्रान्त को जिन साधनों की आवश्यकता होती है वे दिल्ली को उपलब्ध न हों। मेरी अपनी यह धारणा है कि चूंकि दिल्ली प्राकृतिक दृष्टि से पूर्वी पंजाब का केन्द्र है इसलिये इसे पूर्वी पंजाब के प्रान्त का अंग बना देना चाहिये। इस तरह वह पूर्वी पंजाब का उसी प्रकार केन्द्र हो जायेगा जैसे कलकत्ता पश्चिमी बंगाल का केन्द्र है। इसलिये मेरे विचार से दिल्ली के सम्बन्ध में एक पृथक उपबन्ध होना चाहिये। यदि हमारा यह विचार हो कि वह पूर्वी पंजाब का अंग बना दिया जाये तो हमें इस आशय का एक समुचित उपबन्ध रखना चाहिये। किन्तु मैं भविष्य की संसद् को उसके लिए संविधान बनाने की शक्ति प्रदान करने के विरोध में हूं। चूंकि नवीन संविधान 26 जनवरी, 1950 को प्रवर्तन में आने वाला है इसलिये सम्भवत: हम विधान-निर्माण का कार्य लगभग नवम्बर के अंत तक समाप्त कर देंगे। इसलिये दिल्ली के लिए संविधान का सृजन करने के लिए कुछ भी समय न रह जायेगा। उसे बहुत शीघ्रता से तैयार करना होगा। मेरे विचार से इस प्रश्न को इसी समय हल कर देना चाहिये। हमें इसी समय इस सम्बन्ध में विनिश्चय कर लेना चाहिये कि दिल्ली को किसी अन्य प्रान्त का अंग बनाया जाये अथवा उसे पूर्ण स्वायत्त-शासन प्रदान किया जाये। यह अनुच्छेद चन्द्रनगर पांडुचेरी अथवा उन अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हो सकता है जो भारत में समाविष्ट किये जाये। वे क्षेत्र बहुत काल से फ्रांस के आधिपत्य में रहे हैं। कुछ समय के पश्चात् ही वे हमारे देश के स्तर पर आ सकेंगे। इस कारण कुछ समय तक केन्द्र ही उनका प्रशासन कर सकता है। अन्ततोगत्वा कोई भी क्षेत्र सीधे-सीधे केन्द्र के नियंत्रण में नहीं रह जायेगा। प्रत्येक प्रदेश या तो स्वायत्तशासी हो जाना चाहिये या किसी स्वायत्तशासी प्रान्त का अंग हो जाना चाहिये।

*__श्री देशबन्धु गुप्त__ (दिल्ली): श्रीमान्, अनुच्छेद 212 और 213 के सम्बन्ध में मेरे नाम से एक संशोधन है जो उस तदर्थ समिति की सर्वसम्मति से स्वीकृत

[श्री देशबन्धु गुप्त]

सिफारिशों पर आधृत है जिसे कि इस सभा ने नियुक्त किया था। यद्यपि मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहता किन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 213 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किय है उसे देखकर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। वास्तव में दिल्ली के सभी निवासियों को उसे देखकर असन्तोष हुआ और उनका यह समझना स्वाभाविक ही है कि पहले जो विनिश्चय किये गये थे उनका अब परित्याग किया जा रहा है।

दिल्ली के तथा केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों के निवासियों की यह प्रबल धारणा है कि उनके साथ विमाता का सा व्यवहार किया गया है। यह स्पष्ट है कि आरम्भ से ही उनकी उपेक्षा की गई है। पहले जब सभा ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय संविधानों के सिद्धान्तों को निश्चित करने के लिए समितियां नियुक्त की तो केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के प्रश्न पर विचार करने के लिए उसने कोई समिति नियुक्त नहीं की।

पहले जो संविधान का मसौदा प्रकाशित हुआ था उसमें यद्यपि राष्ट्रपति को दिल्ली और केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति दी गई थी किन्तु उसमें स्थानीय विधान-मण्डल के सम्बन्ध में भी उपबन्ध था। किन्तु नवीन संशोधन में उस उपबन्ध को स्थान नहीं दिया गया है। जब केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने बहुत प्रयास किया और इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि जब सारे देश के लिए एक संविधान का निर्माण हो रहा है तो अभी तक केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र स्वायत-शासन से वंचित रहे हैं उनकी आखिर किस कारण उपेक्षा की जा रही है, तभी उनके भविष्य के संविधान के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई। उस समिति के सभापति डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या थे और उसमें अन्य लोगों के साथ श्री गोपालास्वामी आयंगर जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे। समिति ने एक मत से यह सिफारिश की कि दिल्ली तथा केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों के भविष्य के संविधान के लिए एक निश्चित योजना तैयार की जाये।

***अध्यक्षः** क्या आप कृपा करके अपना संशोधन पढ़ेंगे?

***श्री देशबन्धु गुप्तः** मेरे नाम से जो संशोधन है और जिसका मैंने निर्देश किया है वह संशोधन संख्या 2706 है। वह इस प्रकार हैः

"वर्तमान अनुच्छेद 212 और 213 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः

'212 (1) The territories immediately before the commencement of the Constitution known as the Chief Commissioner's Province of Delhi shall be administered by a Lieutenant Governor with a Council of Ministers and a Legislature of the State.

(2) the Lieutenant Governor shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal and the Legislature of the State shall consist of the Lieutenant Governor and one House to be known as the Legislative Assembly.....' "

[212 (1) संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व जो क्षेत्र दिल्ली के मुख्य आयुक्त के प्रान्त के नाम से कहे जाते थे उनका प्रशासन एक उपराज्यपाल, एक मंत्रिपरिषद तथा राज्य के एक विधान-मण्डल द्वारा होगा।

(2) उपराज्यपाल को राष्ट्रपति स्वहस्ताक्षर तथा मुद्रासहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और राज्य का विधान मण्डल उपराज्यपाल तथा एक सदन से मिलकर बनेगा जो विधान-सभा कहा जायेगा....]

***अध्यक्ष:** आप संशोधन संख्या 2706 को पढ़ रहे हैं। क्या आप उस संशोधन को उपस्थित कर रहे हैं?

***श्री देशबन्धु गुप्त:** मैं केवल उस संशोधन का निर्देश कर रहा था।

***अध्यक्ष:** आप जिस संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं उसे पढ़ें।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** जिस संशोधन को मैं उपस्थित करना चाहता हूं वह इस प्रकार है:

"संशोधन पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 45 में प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्नलिखित नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** हमारे पास इस संशोधन की प्रति नहीं है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:**

'(1-a) Any law as aforesaid may contain directions as to the representation of such State in the House of the People on a scale different from that provided in clause (5) of article 67 of this Constitution and may also vary the allocation of seats to representatives of such State in the Council of States as provided in Schedule III-B.'

[(1-क) उपरोक्त विधि में ऐसे राज्य के लोक सभा में प्रतिनिधित्व के बारे में निदेश होंगे और वह प्रतिनिधित्व इस संविधान के अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) में उपबंधित पैमाने से भिन्न पैमाने पर होगा तथा उसके द्वारा राज्यपरिषद् में ऐसे राज्य के प्रतिनिधियों की जगहों के बटवारे में भी अनुसूची 3-ख के उपबन्धों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।]

श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उस पर मैं इस संशोधन को रखना चाहता हूं और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह सभा उसे स्वीकार कर लेगी। यह मैं इस कारण कह रहा हूं। हमने केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों को स्वायत्त-शासन प्रदान नहीं किया है। इन क्षेत्रों में दिल्ली भी सम्मिलित है यद्यपि वह उनसे कुछ भिन्न हैं क्योंकि वह भारत की राजधानी है और उसकी जनसंख्या आज बीस लाख है जो कुछ ही वर्षों में तीस लाख तक

[श्री देशबन्धु गुप्त]

हो जायेगी। हम अनुच्छेद 67 को पारित कर चुके हैं। हमने केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों को कोई निश्चित लोकतंत्रात्मक संविधान तो प्रदान नहीं किया है किन्तु साथ ही हमने इस प्रश्न पर भी विचार नहीं किया है कि केन्द्रीय विधान-मण्डल में इन क्षेत्रों को कुछ अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये या नहीं। अभी तक केन्द्रीय विधान-मण्डल ही इन क्षेत्रों के लिए संसद् के रूप में कार्य करता रहा है। इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में सभी विधियों को इसी सभा ने पारित करना होता है। इसलिये यदि दिल्ली को और केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों को कुछ अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने के सम्बन्ध में यदि कोई उपबन्ध रखा जाता तो उचित ही होता। मेरे विचार से सभा को यह समझाने के लिये किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता है और मुझे आशा है कि सभा मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी और थोड़ी अधिक जगहों के प्रस्ताव का विरोध नहीं करेगी।

इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि दिल्ली तथा केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों के प्रति यह सभा तथा इस समय के पदारूढ़ लोग न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करते आये हैं। मसौदा-समिति का रुख तथा उन लोगों का रुख, जिन्होंने केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों से विशेषत: दिल्ली से, सम्बन्धित उपबन्धों का मसौदा तैयार किया है, बहुत कुछ निराशाजनक ही रहा है। जब कभी हमने इन उपबन्धों को अधिक उदार बनाने तथा इन क्षेत्रों के लोगों को कुछ स्वायत-शासन प्रदान करने की मांग की और मसौदा-समिति से भी यह प्रार्थना की तो मसौदे में और भी अधिक निर्बन्धन रख दिये गये। मैं एक उदाहरण दूंगा। मूल मसौदे के अनुच्छेद 213 में दिल्ली तथा केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों के लिये एक 'स्थानीय विधान-मण्डल' के सम्बन्ध में स्पष्ट उपबन्ध था। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने अब जिस संशोधन को उपस्थित किया है उसमें इस आशय की एक नई पदावली का प्रयोग किया गया है कि वह एक ऐसा निकाय होगा जिसके सब अथवा कुछ सदस्य नाम-निर्देशित होंगे और वह विधान-मण्डल के रूप में कार्य करेगा। इस संशोधन में कई अन्य विशेषणों का भी पहली बार प्रयोग किया गया है। मैं एक दूसरा उदाहरण भी दूंगा। डॉ. अम्बेडकर ने पहले एक अवसर पर संशोधन संख्या 2722 की सूचना दी थी जिसमें यहां उपबन्ध था:

"राज्य के प्रशासन में मुख्य आयुक्त अथवा उप-राज्यपाल की सहायता करने तथा उसे मंत्रणा देने के लिए मंत्रणा-दाताओं अथवा मंत्रियों की एक परिषद् होगी।"

मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदा-समिति अब इस उपबन्ध को भी निकालने का प्रयास क्यों कर रही है। यद्यपि आरम्भ में उसी ने इसका मसौदा तैयार किया था। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में एक यही गुण है और यही गुण बताया भी जा रहा है कि वह एक व्यापक संशोधन है और वह पथ-पिप्लोदा और दिल्ली के सम्बन्ध में समान रूप से प्रयोग में आ सकता है। उचित तो यह होता कि संविधान का मसौदा तैयार करते समय मसौदा-समिति दिल्ली को एक पृथक प्रदेश समझती। सम्भावना इसी की है कि केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्र किसी न किसी समय निकटवर्ती प्रान्तों में समाविष्ट हो जायेंगे, किन्तु दिल्ली के सम्बन्ध में यह

बात न होगी और भविष्य में उनकी स्थिति में कोई अन्दर न आयेगा, भले ही उसकी जनसंख्या बढ़ जाये, और वह अवश्य ही बढ़ेगी। इसका कोई भी संकेत नहीं है कि दिल्ली किसी निकटवर्ती प्रान्त में समाविष्ट किया जायेगा। अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, पंथ-पिप्लोदा और केन्द्र द्वारा प्रशासित अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में, जो हाल ही में अस्तित्व में आये हैं, यह स्पष्ट संकेत है कि ये क्षेत्र कभी न कभी निकटवर्ती प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये जायेंगे। इसलिये मसौदा-समिति ने तदर्थ समिति के सुझावों के अनुसार दिल्ली के संविधान का मसौदा तैयार करना चाहिये था। दिल्ली की इस समय की भी जनसंख्या लगभग बीस लाख है और यह कुछ ही वर्षों में बढ़ जायेगी। इसलिए इस क्षेत्र पर पृथक रूप से विचार करने के लिए यथेष्ट कारण है किन्तु मसौदा-समिति के मेरे मित्रों ने अपनी बुद्धिमत्ता से पंथ पिप्लोदा और दिल्ली को समान श्रेणी में रखा है और इन दोनों के लिए एक ही खण्ड में उपबन्ध रखे हैं। इसलिए अवश्य ही कुछ कठिनाई होगी मैं इससे सहमत हूं कि यदि उद्देश्य यह था कि एक व्यापक खण्ड का मसौदा तैयार किया जाये, जिसके अंतर्गत ये सभी क्षेत्र आ जायें, तो मसौदा-समिति इससे अच्छा उपबन्ध प्रस्तुत नहीं कर सकती थी। किन्तु मेरा यह विचार है कि यह उद्देश्य गलत था और मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि वह मेरे तर्क को समझे और इसका निर्णय करे कि क्या दिल्ली के सम्बन्ध में भिन्न व्यवहार करने की आवश्यकता है या नहीं। दिल्ली भारत की राजधानी है। उसके सम्बन्ध में यह तर्क उपस्थित किया जा रहा है कि चूंकि वाशिंगटन और केनबरा को स्वायत-शासन प्राप्त नहीं है इसलिए दिल्ली को भी किसी मात्रा में स्वायत-शासन प्रदान नहीं किया जा सकता। किन्तु श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि दिल्ली की वाशिंगटन और केनबरा से तुलना करना अनुचित है। वह इस कारण कि दिल्ली का अपना अलग इतिहास है और अपनी अलग सभ्यता है। वह एक वाणिज्यिक तथा औद्योगिक नगर है किन्तु वाशिंगटन का राजधानी के लिये ही निर्माण किया गया। उस नगर के सम्बन्ध में लोगों को इसकी स्वतन्त्रता थी कि वे वहां जाकर बसे या न बसें और जो लोग वाशिंगटन के नागरिक होना चाहते थे वे उस नगर में जाकर बस गये। किन्तु इस देश में राजधानी दिल्ली में बनाई गई न कि दिल्ली का राजधानी के लिये निर्माण किया गया। इसलिये आप दिल्ली के निवासियों की यथोचित आकांक्षाओं तथा मांगों की किस प्रकार उपेक्षा कर सकते हैं? इस कारण मैं यह चाहता हूं कि दिल्ली के प्रश्न पर भिन्न प्रकार से विचार होना चाहिये। वाशिंगटन का उदाहरण कुछ अंश में नई दिल्ली के लिये प्रयुक्त हो सकता है। मेरा अपना विचार यह है कि वह नई दिल्ली के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि नई दिल्ली पुरानी दिल्ली से पृथक नगर नहीं है। दोनों नगरों की आबादी मिली-जुली है। दोनों नगरों की, पानी, बिजली की जैसी जीवनोपयोगी सेवायें एक ही हैं और आबादी भी एक ही है। कई लोग पुरानी दिल्ली में कारोबार करते हैं किन्तु रहते हैं नई दिल्ली में। कई लोग नई दिल्ली में कारोबार करते है किन्तु रहते हैं पुरानी दिल्ली में। इसलिये यह कहना उचित नहीं है कि नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली दो पृथक नगर हैं और न नई दिल्ली की वाशिंगटन अथवा केनबरा से तुलना करना ही उचित है। मैं इस विषय पर इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता।

हमारे प्रतिष्ठित तथा आदरणीय नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली के निवासियों से सार्वजनिक सभा में कहा है कि उन्हें उनकी मांगों से सहानुभूति है और संसद् में दिल्ली के संविधान के सम्बन्ध में एक विधेयक उपस्थित किया

[श्री देशबन्धु गुप्त]

जायेगा जिससे दिल्ली निवासियों को जितना अधिक उत्तरदायित्व सम्भव होगा प्राप्त हो जायेगा। श्रीमान्, मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं कि यह आश्वासन पूरा किया जायेगा और जब तक नवीन संविधान के अधीन भारत के अन्य भागों का शासन होने लगेगा तब तक संसद् दिल्ली के लिये भी एक संविधान का निर्माण कर लेगी।

श्रीमान्, मैंने कुछ लोगों को यह कहते हुये सुना है कि दिल्ली एक बहुत छोटी जगह है और उसके लिए स्वायत-शासन की मांग कुछ स्थानीय नेताओं की आकांक्षा-पूर्ति के लिये ही की जा रही है। मैं यह कहूंगा कि यह बहुत ही सामान्य आलोचना है और इस पर गम्भीरता से विचार नहीं किया जा सकता। अधिक विस्तृत क्षेत्र के लिए स्वाशासन अथवा स्वतन्त्रता की मांग के सम्बन्ध में भी यह तर्क उपस्थित किया जा सकता था। मैं सभा को विश्वास दिलाता हूं कि दिल्ली निवासी स्वायत-शासन अथवा कुछ अंश में स्वशासन अथवा अपने प्रशासन में अपने मत को प्रभावी करने की मांग सौख्य साधनों को प्राप्त करने के लिए नहीं कर रहे है। उनकी कठिनाइयां वास्तविक हैं। सम्भवत: इस सभा के बहुत कम सदस्य यह जानते हैं कि दिल्ली-निवासियों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। मैं उनकी कुछ कठिनाइयों को बताऊंगा। कुछ समय पूर्व ही पुरानी दिल्ली की जैसी प्रमुख नगरपालिका का सरकारी अध्यक्ष होता था और अभी भी उसके एक-तिहाई सदस्य नामनिर्देशित सदस्य होते हैं। नई दिल्ली की नगर-समिति पूर्णतया नामनिर्देशित निकाय हैं और उसका सभापति अब भी एक सरकारी आदमी होता हैं स्वायत-शासन के क्षेत्र में दिल्ली के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त कई तदर्थ निकाय स्थापित किये गये हैं जैसे सुधार प्रन्यास (इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट), पानी और मोरी की संयुक्त मण्डली (ज्वाइण्ट वाटर और स्यूवेज बोर्ड), दिल्ली का केन्द्रीय विद्युत शक्ति प्राधिकार (दिल्ली सेन्ट्रल इलेक्ट्रिकल पावर आथॉरिटी) जिनमें सरकारी लोगों का ही बहुमत है और दिल्ली निवासियों को कोई प्रभावी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। वे दिल्ली के लिए योजनायें बनाते हैं और बड़े-बड़े निर्णय करते हैं किन्तु इन निकायों के प्रशासन में दिल्ली निवासियों का मत प्रभावी नहीं है।

श्रीमान्, इससे भी अधिक खेदजनक बात यह है कि दिल्ली को पूर्वी पंजाब के साथ जोड़ दिया गया है। हमारी सेवाओं के लिए सभी लोग अर्थात् दण्डाधिकारी, आरक्षक आदि वहीं से आते हैं किन्तु उनके चुनाव के सम्बन्ध में हमारा मत नहीं लिया जाता। यहां का उच्च-न्यायालय भी पूर्वी पंजाब का ही उच्च-न्यायालय है। दिल्ली निवासी पिछले कई वर्षों से एक गश्ती उच्च-न्यायालय की मांग करते आये हैं किन्तु उनका प्रयास निष्फल ही रहा है। मुझे यह बताया गया है, और कई कारणों से मुझे विश्वास है कि यह ठीक है कि दिल्ली से पूर्वी पंजाब के उच्च-न्यायालय के सामने लगभग 65 प्रतिशत व्यवहार-सम्बन्धी अपीलें जाती हैं और वह उच्च न्यायालय जिन व्यवहार-वादों पर विचार करता है उनमें से 35 प्रतिशत दिल्ली के होते हैं। यह सब होते हुये भी दिल्ली के नागरिक पिछले कई वर्षों से गश्ती उच्च-न्यायालय की जो मांग करते आये हैं उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई है। दिल्ली निवासी जो मांग भी करते है उसकी पूर्वी पंजाब की सरकार उपेक्षा ही करती है। दिल्ली निवासियों की कठिनाइयों और शिकायतों की ओर कोई भी व्यक्ति ध्यान नहीं देता।

जहां तक सेवाओं का सम्बन्ध है, इसे शायद ही कोई समझते हैं कि यद्यपि दिल्ली की जनसंख्या बीस लाख है कि किन्तु सरकारी सेवाओं में नियुक्त होने के लिये यहां के निवासियों को कोई भी अवसर नहीं मिलता। प्रान्तीय असैनिक सेवाओं के उदाहरण को ही लीजिये, दिल्ली निवासी न संयुक्त प्रान्त में नियुक्त हो सकते हैं और न पूर्वी पंजाब में और दिल्ली की अपनी कोई सेवा है ही नहीं। दिल्ली निवासी केवल यह जानते हैं कि संयुक्तप्रान्त अथवा पूर्वी पंजाब के अधिकारी उन पर शासन करते हैं। क्या ये कठिनाइयां वास्तविक कठिनाइयां नहीं हैं? कुछ लोगों का यह विश्वास है कि दिल्ली में भारत की राजधानी होने से उस नगर को लाभ हुआ है। सभा इस कथन की भी परीक्षा करे। प्रत्येक बड़ी नगर-पालिका को बिजली, यातायात, पानी की कल आदि जीवनोपयोगी सेवाओं के स्वामित्व का तथा उन पर नियंत्रण रखने और उन्हें चलाने का अधिकार प्राप्त होता है और उनसे उसे बहुत आय प्राप्त होती है। क्या आप जानते हैं कि ये दिल्ली की नगर-पालिका को कभी भी नहीं सौंपे गये? वास्तव में पुरानी दिल्ली को नई दिल्ली की राजधानी की परिचारिका बनाया गया है। मैं यह कह सकता हूं कि नई दिल्ली राजधानी होने से पुरानी दिल्ली को उतना लाभ नहीं हुआ है जितना लोगों को बताया जाता है। उसकी सड़कों पर यातायात बढ़ गया है और उसकी सफाई भी इतनी बिगड़ गई है कि सारी पुरानी दिल्ली एक बड़ी गंदी बस्ती हो गई है, किन्तु फिर भी पुरानी दिल्ली के गरीब लोगों की कोई चिंता नहीं करता। कुछ कृपालु मित्रों ने अपने भाषणों में यह मत प्रकट किया है कि दिल्ली को पूर्वी पंजाब के साथ मिला देना चाहिये। श्रीमान्, पूर्वी पंजाब की सरकार दिल्ली के साथ अभी तक इतना बुरा व्यवहार करती रही है कि दिल्ली निवासी इस मत को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हो सकते। उसका कैसा कठोर व्यवहार रहा है उसे बताने के लिए मैं एक उदाहरण देता हूं। पूर्वी पंजाब और संयुक्त प्रान्त की सीमाओं पर स्थित दिल्ली के 300 से अधिक गांव हैं। यदि आप आज इन सीमावर्ती गांवों में जायें तो आप देखेंगे कि यद्यपि पूर्वी पंजाब के गांवों में, जो सीमा से केवल एक मील की दूरी पर है, चना 7 रुपये मन बिक रहा है किन्तु दिल्ली और उसके गांवों के निवासियों को वह 9 रुपये से लेकर 12 रुपये मन तक मिल रहा है। चारे का भी यही हाल है। गुड़गांव और रोहतक में चारे का भाव 4 रुपये मन है किन्तु दिल्ली में वह 9 रुपये मन बिक रहा है। इस विभेद को तथा इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए बराबर यह मांग की जाती रही है कि राशन के उद्देश्य के लिए दिल्ली पूर्वी पंजाब के साथ मिला दिया जाना चाहिये किन्तु उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। वे उच्च-न्यायालय के उद्देश्य के लिए तो दिल्ली को पूर्वी पंजाब में मिलाना चाहते हैं किन्तु राशन के सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब को जो सुविधायें प्राप्त हैं उनमें दिल्ली से हिस्सा बंटाना नहीं चाहते। उस ओर से इसका हमेशा विरोध हुआ है। इसके अतिरिक्त श्रीमान् इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि उत्तर भारत में दिल्ली कपड़े के व्यापार की सबसे बड़ी मण्डी रही है किन्तु पिछले चार या पांच वर्षों में दिल्ली का यह व्यापार नष्ट हो गया। पुरानी सरकार दिल्ली प्रान्त को कपड़ा देते समय इसका ध्यान रखती थी कि दिल्ली पश्चिमी संयुक्त प्रान्त और पूर्वी पंजाब के लिए वितरण का केन्द्र है किन्तु मुझे खेद है कि नये शासन के अधीन दिल्ली इस सुविधा से भी वंचित हो गया है। इस समय दिल्ली को जो कपड़ा दिया जाता है उससे उसी के निवासियों की आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं। इस कारण दिल्ली अब कपड़े का वितरण केन्द्र नहीं रह गया है और यह व्यापार अब नष्ट हो गया है। एक उदाहरण नहीं

[श्री देशबन्धु गुप्त]

बल्कि कई उदाहरण मैं यह दिखाने के लिए दे सकता हूं कि पिछले कई वर्षों से दिल्ली निवासी किन कठिनाइयों को झेलते आये हैं। वे चुपचाप तथा धैर्यपूर्वक इन कष्टों को सहन करते रहे और यही आश लगाये रहे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सब कुछ ठीक हो जायेगा। कोई यह नहीं कह सकता कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए देश ने जो बलिदान किया उसमें दिल्ली पीछे रहा। दिल्ली स्वर्गीय हकीम अजमल खां, डॉ. अन्सारी, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे लोगों का स्मरण गर्व से करती है। इन महानुभावों का उसके राजनैतिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसने लाला हरदयाल जैसे महान लोगों को जन्म दिया जिन्होंने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में अपना पूरा योग दिया। मेरा यह दावा है कि जहां तक स्वतन्त्रता-संग्राम में योग देने का सम्बन्ध है, उसमें, दिल्ली किसी से पीछे नहीं रहा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये यह क्यों समझा जाता है कि यदि दिल्ली को स्वायत-शासन प्रदान किया गया तो दिल्ली निवासी अनुचित व्यवहार करेंगे जिससे केन्द्र कठिनाई में पड़ जायेगा? मेरा यह निवेदन है कि देश के बड़े हितों की रक्षा के लिए एक दिल्ली को ही नहीं बल्कि सैंकड़ों दिल्लियों को बलिदान की वेदी पर बढ़ाया जा सकता है। दिल्ली का प्रतिनिधि होने के नाते मैं सभा को यह आश्वासन देता हूं कि यदि यह समझा जाये कि दिल्ली को थोड़ा भी स्वायत्त-शासन देने से देश के हितों को हानि पहुंचेगी तो मैं सबसे पहले यह कहूंगा कि "हमें स्वायत-शासन न दीजिये, हम पहले के समान शासित रहने में ही संतुष्ट हैं"। किन्तु इस प्रकार के भय का कोई कारण नहीं है। यदि केन्द्रीय सरकार दिल्ली के समान एक छोटे से प्रान्त की देख-रेख नहीं कर सकती और साथ ही यह समझती है कि राजधानी के लोग उसका साथ देंगे, तो मेरे विचार से वह देश पर शासन करने के अधिकार को भी खो बैठेगी।

इस स्थिति में मैं सभा से यह निवेदन करना चाहता हूं कि यद्यपि मैं अपने मूल संशोधन को उपस्थित नहीं कर रहा हूं किन्तु मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन में जो वचन दिया गया है वह केवल धोखे की टट्टी प्रमाणित न होगा। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का कुछ भी निर्वचन किया जा सकता है। वह एक व्यापक संशोधन है और उसके अधीन दिल्ली को एक विधान-मण्डल तथा उत्तरदायी शासन भी प्राप्त हो सकता है और कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता है। उसकी शब्दावली ही इस प्रकार है। इसलिये मुझे पण्डित जी के उस आश्वासन का अधिक भरोसा है जो उन्होंने हाल में दिल्ली के राजनैतिक सम्मेलन में दिया था और उसके सम्बन्ध में कहा था कि दिल्ली निवासियों को कुछ अंश में स्वायत्त शासन प्राप्त हो जायगा।

मैं इस अवसर पर दिल्ली के प्रशासन की आलोचना नहीं करना चाहता। अन्यथा मैं यह प्रमाणित करने के लिए कई उदाहरण दे सकता हूं कि दिल्ली का प्रशासन कितना गिर गया है और इस कारण दिल्ली निवासियों की कठिनाइयां कितनी बढ़ गई हैं। सम्भवत: केवल दिल्ली के नगर ने ही शरणार्थी भाइयों का खुले दिल से स्वागत किया। संयुक्त प्रान्त के मेरे मित्र हमेशा नये क्षेत्रों की मांग तो करते रहते हैं और नई विजयें प्राप्त करते रहते हैं किन्तु जब शरणार्थियों को स्वीकार करने का प्रश्न उनके सामने आया तो उन्होंने उनके संयुक्त प्रान्त में बसने के मार्ग में कई बाधायें डाल दीं। अन्य प्रान्तों ने भी यही चीख पुकार की कि उनके यहां शरणार्थी एक निश्चित संख्या में जाने चाहिये। किन्तु दिल्ली की जनसंख्या

दूनी हो गई। इस समय दिल्ली में पांच लाख से कम शरणार्थी नहीं हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि पिछले दो वर्षों में दिल्ली वालों ने किसी समय शरणार्थियों के विरुद्ध आवाज उठाई। यह एक ध्यान देने की बात है कि भले ही दिल्ली के लोगों के आर्थिक हितों को हानि पहुंची हो, किन्तु वे शान्त रहे। इस स्थिति में मैं यह कहूंगा कि दिल्ली के नागरिकों के आचरण को दृष्टि में रखते हुए उनके सम्बन्ध में अधिक उदारता से विचार करने की आवश्यकता है।

मैं इस सुझाव पर अपने विचार प्रकट कर चुका हूं कि दिल्ली पूर्वी पंजाब में समाविष्ट कर देनी चाहिये। मैं इसे दुहराना चाहता हूं कि मैं इस प्रस्ताव के बिल्कुल विरुद्ध हूं। श्रीमान्, 1927 में दिल्ली के निवासियों ने दिल्ली को अधिक विस्तृत बनाने के लिए एक योजना तैयार की थी जिसमें यह आयोजन था कि दिल्ली के साथ संयुक्तप्रान्त के मेरठ और आगरा के प्रदेश और पूर्वी पंजाब का अम्बाला का प्रदेश मिला दिये जाये। गोल-मेज सभा में भी इस प्रश्न को उठाया गया था और महात्मा जी तथा अन्य लोगों ने इस आयोजन का समर्थन किया था। किन्तु दुर्भाग्य से वह योजना स्वीकार नहीं की गई। मेरी आज भी यह धारणा है कि यदि उस समय यह योजना स्वीकार कर ली गई होती तो सम्भवत: देश को विभाजन की पीड़ा न सहन करनी पड़ती। किन्तु उस समय इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि यह सभा और हमारे नेता दिल्ली निवासियों को जितना भी उतरदायी शासन प्रदान करेंगे उससे वे संतोष कर लेंगे। मैं उन्हें यह विश्वास दिलाता हूं कि यह भय निराधार है कि चूंकि दिल्ली राजधानी है इसलिये कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी।

इस प्रश्न का एक अन्य अंग भी है। ये पांच लाख शरणार्थी जो दिल्ली में आकर रहने लगे हैं, एक स्वायत-शासी प्रदेश से आये हैं। क्या यह ठीक है कि इन लोगों को, जिनके लिये दिल्ली में आकर बसने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था, प्रशासन में अपना मत प्रभावी करने के अधिकार से वंचित किया जाये? यदि दिल्ली में उत्तरदायी शासन स्थापित नहीं होता है तो इसका अर्थ यही होगा कि इन सब लोगों का उसके प्रशासन में कोई हाथ न होगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि ये दिल्ली वाले चिल्लाते क्यों हैं? उनके यहां तो मंत्रणा-परिषद् है ही श्रीमान् में यह कहना चाहता हूं कि यदि यह देखा जाये कि पिछले दो वर्षों में इस मंत्रणा-परिषद ने क्या कार्य किया है, तो उससे बहुत असंतोष होगा। यह मंत्रणा परिषद दिल्ली के लिये बहुत बड़ी धोखें की टट्टी है। श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि मेरी समझ से यह परिषद् जिन प्रस्तावों को स्वीकार करती है उन्हें सम्बन्धित मंत्रणालय पढ़ते तक नहीं। उनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। इस परिषद के सामने ठीक समय पर आय व्ययक भी नहीं रखा जाता ताकि वह उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट कर सके। इस मंत्रणा-परिषद् के सदस्य इस परिषद् में अपना समय नष्ट ही करते हैं क्योंकि उनके स्वीकार किये हुये प्रस्तावों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। प्रान्त के प्रतिदिन के प्रशासन में इस समय हमारा कोई हाथ नहीं है। यदि हमारे नेता कुछ अंश में स्वायत-शासन प्रदान करना चाहते थे तो उन्हें यह प्रथा स्थापित कर देनी चाहिये थी कि प्रतिदिन के प्रशासन के सम्बन्ध में मंत्रणा-परिषद् के प्रतिनिधियों से परामर्श किया जायेगा। महत्वपूर्ण अवसरों पर भी उनकी राय नहीं ली जाती। मुझे खेद है कि ऐसे मामलों के सम्बन्ध में मंत्रणा-परिषद् की अभी तक जान-बूझकर उपेक्षा की गई है।

[श्री देशबन्धु गुप्त]

इस स्थिति में दिल्ली के लोगों की यह धारणा निराधार नहीं है कि प्राधिकारी उनकी कठिनाइयों को न समझते हैं और न उनके सम्बन्ध में सहानुभूति ही दिखाते हैं और वे उन्हें उस स्वायत-शासन को भी प्रदान नहीं करना चाहते जिसका उन्हें अधिकार है। मुझे आशा है कि यह धारणा निराधार प्रमाणित की जायेगी और जैसाकि प्रधान-मंत्री महोदय कई बार कह चुके हैं, दिल्ली को यथेष्ट संविधान प्रदान करने के लिए शीघ्र कार्यवाही की जायेगी।

समाप्त करने के पूर्व मैं माननीय प्रधान-मंत्री के एक कथन का उद्धरण देना चाहता हूं। पहले एक अवसर पर उन्होंने कहा था कि:

"यदि किसी संविधान का लोगों के जीवन उनके उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं से कोई सम्बन्ध न हो तो वह खोखला हो जाता है। यदि उससे लोगों के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती तो वह उनके पतन का कारण होता है।"

पिछले सत्र में एक अन्य प्रसंग में हमारे प्रधान-मंत्री ने इस सभा में ये शब्द कहे थे। मुझे आशा है कि इन शब्दों को स्मरण रखा जायेगा और दिल्ली निवासियों को जो उत्तरदायी शासन प्रदान किया जायेगा वह केवल खिलौने के समान अथवा धोखे की टट्टी न होगा।

समाप्त करने के पूर्व मैं एक बात और कहना चाहता हूं। मेरी यह प्रबल धारणा है कि चाहे दिल्ली के लोगों को किसी प्रकार का संविधान प्रदान किया जाये, किन्तु उसे संसद् में तथा उत्तर-सदन में कुछ विशेष प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये वह इस कारण कि यदि उसे सीमित स्वायत्त-शासन मिल भी गया तब भी उसके सम्बन्ध में अधिकांश विधियों को लोक सभा ही पारित करेगी। इस समय केन्द्रीय विधान-सभा में दिल्ली का तथा उसके लगभग बीस लाख लोगों का केवल एक ही प्रतिनिधि है। नये संविधान के अनुच्छेद 67 के अधीन सम्भवत: दिल्ली के तीन प्रतिनिधि होंगे। मेरा यह कहना है कि इस सम्बन्ध में दिल्ली का विशेष अधिकार है और उसे केन्द्रीय विधान-मण्डल में अर्थात् राज्य-परिषद और लोक सभा दोनों में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये। मैंने जिस संशोधन को उपस्थित किया है उसके अधीन संसद् इस प्रकार का अतिरिक्त प्रतिनिधत्व प्रदान कर सकती है और मुझे आशा है कि सभा में कोई भी सदस्य उसका विरोध न करेगा। मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। यद्यपि मसौदा-समिति ने तदर्थ-समिति की सिफारिशों की उपेक्षा की है किन्तु मुझे आशा है कि जब संसद के सामने दिल्ली के भविष्य के संविधान के विषय में एक विधेयक आयेगा तो उन सिफारिशों को ध्यान में रखा जायेगा। इस सम्बन्ध में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि 1935 के अधिनियम में दिल्ली के संविधान को संशोधित करने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है किन्तु मुझे आशा है कि विधि के पण्डित इस कठिनाई को दूर कर देंगे और जिस संविधान के भी सम्बन्ध में निश्चय किया जाये, वह दिल्ली को उसी समय प्रदान किया जायेगा जिस समय देश के अन्य भागों को उनके संविधान प्रदान किये जायेंगे। मुझे आशा है कि संविधानिक वकीलों के लिए संविधान में इस विषय का एक उपबन्ध रखने में कोई कठिनाई न होगी ताकि अगले सत्र में संसद् विधेयक पर विचार कर सके।

समाप्त करने के पूर्व मैं प्रधान-मंत्री महोदय तथा अन्य मित्रों को फिर यह आश्वासन देना चाहता हूं कि जहां तक दिल्ली के लोगों का सम्बन्ध है उनसे किसी प्रकार का भय न होना चाहिये। उनका व्यवहार पहले से ही सद्व्यवहार रहा है और आगे भी किसी भी स्थिति में उनकी ओर से सद्व्यवहार ही रहेगा चाहे आप उन्हें स्वायत्त-शासन प्रदान करें या न करें। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं कुछ वाक्य कहकर यह बता सकता हूं कि इस महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में सरकार का क्या दृष्टिकोण है? यह स्पष्ट है कि दिल्ली के प्रश्न को एक महत्वपूर्ण प्रश्न समझकर सभा ने उस पर विचार करना है। इसी कारण इस सभा ने दो वर्ष पूर्व इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी और सामान्यत: उसकी सिफारिशें सारवान समझी जायेंगी और सम्भवत: प्रयोग में लाई जायेंगी। किन्तु जब वह समिति नियुक्त की गई थी तब से दुनिया बदल गई है। भारत बदल गया है और दिल्ली भी बहुत बदल गई है। इसलिये दिल्ली में जो बड़े-बड़े परिवर्त्तन हुये हैं उनकी उपेक्षा करके यदि उस समिति की सिफारिशों पर विचार किया जाये तो हम वास्तविकता से बहुत दूर चले जायेंगे। किन्तु साथ ही यह बात भी है कि इस प्रश्न पर विचार करना है और वास्तव में हम सबकी, अथवा लगभग सभी की, दिल्ली के उन नागरिकों तथा प्रतिनिधियों से बहुत सहानुभूति है जिनकी यह धारणा है कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर दिल्ली का प्राचीन और महान् नगर उसके प्रभाव से वंचित न रहे। इसलिये हमें इस प्रश्न पर विचार करना है। उस पर विचार करते समय हमारे सामने पहली बात यह आती है कि दिल्ली की स्थिति गतिशून्य स्थिति नहीं है। वह परिवर्तनशील है और इसलिये यदि हम संविधान में उसके सम्बन्ध में किसी खण्ड को स्थान देंगे तो हम उसकी स्थिति को गतिशून्य बना देंगे। उसके सम्बन्ध में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि आगे चलकर उसमें परिवर्तन किया जा सके अर्थात् हमें संसद के अधिनियम द्वारा न कि संविधान में निश्चित उपबन्ध रखकर यह व्यवस्था करनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त ये उपबन्ध केवल दिल्ली के सम्बन्ध में नहीं हैं। ये उन अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी हैं जो केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र अथवा इसी के समान किसी नाम से कहे जाते हैं। यह हो सकता है आगे चलकर अन्य क्षेत्रों को भी समाविष्ट करना पड़े। इसलिये संविधान में हम जो भी उपबन्ध रखें वे सभी के सम्बन्ध में समान रूप से प्रयुक्त होने चाहियें। इसमें कठिनाई है क्योंकि ये क्षेत्र विभिन्न प्रकार के हैं। चाहे कुर्ग हो या अजमेर-मेरवाड़ा अथवा पंथ-पिप्लोदा हो या दिल्ली, ये क्षेत्र एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं और उनके लिये समान व्यवस्था करना बहुत कठिन है। इन कारणों से यह अनुचित है कि संविधान में इस प्रश्न के सम्बन्ध में एक ही दृष्टिकोण अपनाया जाये। उसमें केवल इतना संकेत कर देना चाहिये कि कुछ व्यवस्था करने की आवश्यकता है और संसद को इस सम्बन्ध में स्वतन्त्रता दे देनी चाहिये।

श्री देशबन्धु गुप्त ने दो संशोधन उपस्थित किये हैं। मैं कह नहीं सकता कि उन्होंने उनको नियमित रूप से उपस्थित किया है या नहीं किन्तु वे उनके सम्बन्ध में बोले अवश्य हैं। एक तो उन्होंने उपस्थित संशोधन का विरोध किया है और वह किसी विशेष कारण से नहीं बल्कि इसलिये कि उनका यह विचार है कि

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह पहले के मसौदे से बिल्कुल भिन्न है। इसके सम्बन्ध में मुझे केवल यह कहना है कि डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उससे उद्देश्य की बहुत कुछ पूर्ति हो जाती है। सभा उसे दिल्ली से सम्बन्ध में किसी भी प्रकार प्रयोग कर सकती है। किन्तु केवल दिल्ली का ही ध्यान रखकर उसमें परिवर्तन न किया जाना चाहिये क्योंकि अन्यथा कुछ अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में उसे प्रयोग करने में कई कठिनाइयां पैदा हो जायेंगी। यह एक बात है।

दूसरी बात यह है कि वे डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में एक और खण्ड जोड़ना चाहते हैं। जहां तक उस खण्ड में सन्निहित सिद्धान्त का सम्बन्ध है मुझे उससे कोई आपत्ति नहीं है। केवल मैं किसी उपबन्ध के मसौदे पर बिना सावधानी से विचार किये हुये उसे जल्दी में प्रविष्ट नहीं करना चाहता। किन्तु जहां तक मेरा सम्बन्ध है, और मैं समझता हूं कि मैं मसौदा-समिति के अधिकांश सदस्यों का मत प्रकट कर रहा हूं, मेरे विचार से मसौदा-समिति के सदस्य इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और वे आगे चलकर किसी समय संविधान में उसका सन्निवेश करना चाहते हैं। वह सिद्धान्त यह है कि केन्द्रीय-मण्डल में इन क्षेत्रों को किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये। इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है और संविधान के किसी स्थान पर इसका सन्निवेश किया जायेगा।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारा उद्देश्य यह है, अर्थात् सरकार का उद्देश्य यह है, कि वह इस वर्ष दिल्ली के सम्बन्ध में ससद् में एक विधेयक लायेगी। जहां तक मैं संविधान को समझ पाया हूं मेरे विचार से हम उसके अधीन यह तब तक नहीं कर सकते जब तक संविधान पारित न हो जाये अथवा यह सभा हमें इसकी अनुमति न दे। इसलिये किसी भी दशा में हमें सम्भवत: अक्टूबर अथवा नवम्बर तक प्रतीक्षा करनी पड़े किन्तु हमारा इरादा यही है कि इस प्रश्न को उठाया जायेगा। इस बीच हम इस पर विचार करेगें और बाद को जब दिल्ली के सम्बन्ध में विचार किया जायेगा, उस समय इसे उठायेंगे।

*__अध्यक्ष:__ पण्डित ठाकुरदास भार्गव। क्या आप अधिक समय लेंगे?

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाब: जनरल): अधिक समय न लूंगा, लगभग बीस मिनट।

*__अध्यक्ष:__ अच्छा यह होगा कि हम इस पर कल विचार करें। अब सभा कल प्रात: नौ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 2 अगस्त सन् 1949 के नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-3.49
320

अंक 9
संख्या 3

मंगलवार,
2 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर.. 127

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*
[अनुच्छेद 213, 213-क, 214 और 275 पर विचार] 127-191

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 2 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया।

श्री शान्तिलाल एच. शाह (बम्बई : जनरल)

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 213—*(जारी)*

***अध्यक्ष:** जिस अनुच्छेद पर हम कल विचार कर रहे थे उस पर अब बहस जारी करते हैं। पण्डित ठाकुरदास भार्गव!

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब प्रेसीडेण्ट साहब, हाउस के सामने जो मौजूदा दफा 213 मौजूद है वह उस तजवीज से जोकि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन में थी बड़ी हद तक मुख्तलिफ है। यह तजवीज जो कि अब हाउस के सामने है उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि यह पहले के मुकाबले में बड़ी रिट्रोगेट है, बड़ी रिएक्शनरी है क्योंकि पहले जो तजवीज थी उसमें यह दुरुस्त है कि अख्तियार प्रेसीडेण्ट साहब को दिया गया था, लेकिन प्रेसीडेण्ट साहब अगर 213 दफा के अपने अख्तियारात को इस्तेमाल करते तो उनको अख्तियार था कि एक लोकल लेजिस्लेचर बना दें, या एक काउंसिल ऑफ एडवाइजर्स बना दे या दोनों बना दें। लेकिन यह अख्तियार न था कि 213 पर वह अमल करें और लोकल लेजिस्लेचर न बनाये; अख्तियार न था कि वह एक ऐसी चीज बना दें जिसके वास्ते यह तो कहा जा सके कि बाड़ी एक लेजिस्लेचर की तरह काम कर सकता है लेकिन फिलवाकै वह लेजिस्लेचर न हो। आज के दिन लेजिस्लेचर से जो मुराद समझा जाता है वह यह है कि उसके अन्दर मिनिस्टर हों, उसको काफी अख्तियार हों और उसके अन्दर ज्यादातर इलेक्टेड एलीमेण्ट हों। लेकिन अब जो अमेण्डमेण्ट पेश किया जाता है वह यह है कि प्रेसीडेण्ट साहब जी नहीं बल्कि पार्लियामेंट को यह अख्तियार है। जहां तक यह तब्दीली है वहां तक तो यह दुरुस्त है और इसको मैं अच्छा समझता हूं कि पार्लियामेंट को अख्तियार दिया गया है। लेकिन जो इस तजवीज का अगला हिस्सा है जिसमें कि यह लिखा है: 'a body, whether nominated, elected or partly nominated and partly elected,

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

to function as a Legislature for the State.' और दूसरी चीज जो रखी है वह है काउंसिल आफ एडवाइजर्स और मिनिस्टर्स, इसके मुताल्लिक मैं हाउस के सामने यह अर्ज करना चाहता हूं कि हाउस को इस तबदीली को, कि लैजिस्लेचर के बजाय बाडी हो जाये मंजूर नहीं करना चाहिये। इस जमाने में हम यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान का कोई भी इलाका हो उसमें स्वराज की सारी बरकतें यकसां तरीके पर हों। ऐसा न हो कि कोई इलाका ऐसा बन जाये जिसके अन्दर एक बाडी हो और उस इलाके के रहने वालों को अपने एडमिनिस्ट्रेशन में कोई राइट न हो और उन्हें अपने मामलों को सुलझाने का कोई मौका न मिले। ऐसा बाड़ी हम नहीं चाहते। सच तो यह है कि इस सेक्शन में ऐसे इलाके भी शामिल है जो कि कम डेवलप हुये हैं। इसके अन्दर उनके लिये ऐसा प्रावीजन किया गया है जिससे मैं समझता हूं कि कांस्टीट्यूशन यह फैसला करना चाहता है कि दिल्ली कुर्ग, अजमेर-मेरवाड़ा का क्या कांस्टीट्यूशन हो यह अख्तियार पार्लियामेंट को सौंप दिया जाये। जो कि हालात आज हैं उनमें यह बात एक हद तक दुरुस्त है। मैं नहीं समझता कि हालात में इसके सिवा कांस्टीट्यूएंट असेम्बली कर भी क्या सकती थी। आज अजमेर-मेरवाड़ा की तरह के छोटे-छोटे इलाकों को किस्मतें फ्लूइड स्टेट में हैं।

अजमेर-मेरवाड़ा के बारे में यह कहा जाता है कि उसे राजस्थान का हिस्सा बना दिया जाये, कुर्ग के बारे में कहा जाता है कि उसे माइसोर का हिस्सा बना दिया जाये या मद्रास का हिस्सा बना दिया जाये और पन्थ पिपलौदा के बारे में भी इसी तरह की बातें कही जाती हैं। कच्छ और हिमाचल प्रदेश जैसे इलाकों की पोजीशन भी फ्लूइड स्टेट में है। ऐसी हालत में कांस्टीट्यूएंट असेम्बली के वास्ते यह मुश्किल था कि वह हर एक इलाके के बारे में अलग फैसला कर ले। यह ठीक न होगा कि जब तक हालात इजाजत न दें तब तक ऐसी पक्की चीज बना दी जाये जो चाहे दुरुस्त भी न हो। इस वास्ते यह फैसला एक तरह से बिल्कुल जायज और वक्त के मुताबिक है गो मैं यह नहीं चाहता कि कोई इलाका ऐसा रखा जाये कि जहां लोकल लेजिस्लेचर न हो और जहां के लोगों को अपने मामलात को संभालने का अख्तियार न दिया जाये। इसके अन्दर रखा है कि "whether nominated, elected or partly elected and partly nominated" अगर सारा बाडी नामीनेटेड हो तो मैं नहीं समझता कि वह कौन सा इलाका ऐसा पसमांदा होगा कि जिसको किसी किस्म का हक चुनाव न दिया जाये। कुर्ग में असेम्बली मौजूद है। छह रोज के वास्ते एक साल में वह असेम्बली बैठती है। वहां का चीफ कमिश्नर ही उसका प्रेसीडेंट है, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट होम मेम्बर है और डिस्ट्रिक्ट जज ला मेम्बर है। आज के जमाने में जबकि छोटे-छोटे सूबों में लेजिस्लेचर का ढकोसला बना हुआ है वह एक बेमाइनी की चीज है। लेकिन यह मामला हर एक इलाके के हालात के मुताबिक तय किया जाना चाहिये। जहां तक हिमाचल प्रदेश का ताल्लुक है यह एक ऐसा इलाका है जो नया बना है। इसमें कुछ नया हिस्सा है कुछ पुराना हिस्सा ईस्ट पंजाब का है। अच्छा होता कि इस सारे को ईस्ट पंजाब के साथ मिला दिया जाता। जमाना बतलायेगा कि गवर्नमेंट की यह छोटे-छोटे सूबे बनाने की और इलाकों को सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया में शामिल

करने की पालिसी कहां तक वाजिब है। सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया की यह तारीफ की जाती है कि वहां के रहने वाले उसका इन्तिजाम न करें और सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट उनका इन्तिजाम करे। अगर आप सैक्शन 278 को पास कर देंगे तो आप इस बारे में और भी इजाफा कर देंगे जो कि मैं समझता हूं अच्छा न होगा। इसके मुताबिक जिस इलाके का इन्तिजाम अच्छा न होगा उसको सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया में शामिल कर लिया जायेगा। यह चीज दिल्ली के लिये भी लागू हो सकती है जैसा कि श्री देशबन्धु गुप्ता ने कहा था और जिसकी कि मैं ताईद करता हूं। आज जो इन्तिजाम दिल्ली में है वह शायद ऐसा अच्छा नहीं है जैसाकि सूबों में बतलाया जाता है। सन् 1911 से दिल्ली ने ईस्ट पंजाब से अलग होकर अलहदा सूबे की सूरत अख्तियार की। सन् 1946, 1947 में मैंने पार्लियामेंट में दिल्ली के बारे में कुछ सवालात किये थे जिनसे पता लगता है कि दिल्ली में ईस्ट पंजाब की बनिस्बत से अस्पताल कम हैं और स्कूल भी कम हैं और दिल्ली में तरह-तरह की दिक्कतें हैं। जिस वक्त कलकत्ते से दारुलखिलाफा दिल्ली लाया गया था उस वक्त यह कहा गया था कि अगर किसी जगह दो सूबों की राजधानी हो तो उसके इन्तिजाम में दिक्कत होती है। दिल्ली के बारे में यह कहा गया था कि इसको हिन्दुस्तान की राजधानी इसलिये बनाया जाता है कि यह किसी सूबे की राजधानी नहीं है। यहां किसी का इन्फलूएन्स नहीं होगा; मैं नहीं जानता कि यह बात कहां तक जायज है क्योंकि दुनिया में बहुत सी ऐसी राजधानियां हैं जो सूबों की भी राजधानियां हैं और सेण्ट्रल गवर्नमेंट की भी राजधानियां हैं। लेकिन इस मामले को छोड़कर आज के अमेंडमेंट से दिल्ली के मुताल्लिक जो सवाल पैदा होता है उसके दो पहलू हैं। एक तो यह कि दिल्ली मौजूदा शक्ल में रहे तो उसके क्या अख्तियारात हों और दूसरा सवाल यह है कि आया दिल्ली के साथ वही सलूक किया जाये जो कि और छोटे-छोटे इलाकों के साथ किया जा सकता है। और मैं आपकी इजाजत से इन दोनों बातों पर अर्ज करना चाहता हूं और प्रेसीडेंट साहब से और हाउस के इण्डलजेन्स चाहता हूं। इस मसले में हरियाना प्रान्त के लोग बहुत ज्यादा इंटरेस्ट रखते हैं। यह 353 गांवों का बना हुआ एक छोटा सा सूबा है। यह हमेशा से, सदियों से हरियाना प्रान्त का हिस्सा रहा है। पानीपत की तीन लड़ाइयां इस हरियाना प्रान्त पर गलबा पाने के लिए लड़ी गईं थीं।

गदर के जमाने में जब लोगों ने बगावत की तब भी, उस जमाने में भी यह इलाका दिल्ली के ही साथ रहा। सन् 1957 ई. में जब अंग्रेजों के खिलाफ यहां पर गदर हुआ तो सजा के तौर पर यह दिल्ली का इलाका, हरियाना प्रान्त जिसके अन्दर हिसार, रोहतक, गुड़गांवा और करनाल यह चार और पांच जिले शामिल हैं उन्हें सजा के तौर पर पंजाब में शामिल कर दिया। नतीजा यह हुआ कि हमारा इलाका पंजाब का इलाका बन गया और हमारे साथ दलितों वाला सलूक किया गया, हमारे इलाके को कोई हक नहीं दिया गया, अगर नहरें बनाई तो मगरबी हिस्से में; हमें हर तरह से महरुम रखा गया। हमें पानी नहीं दिया गया, हमें एजुकेशन नहीं दी गई और हम पर वह ज्यादती की गई जिसकी कि आज हिस्ट्री बन गई है। मैं इतना अर्ज करना चाहता हूं कि इस इलाके के लोग बहुत समय से यह आशा लगाये बैठे थे कि जब स्वराज्य होगा तो उनकी तकलीफें जितनी भी हैं वह सब दूर हो जायेंगी।

सन् 1909 ई. में हमने एक मूवमेंट शुरू किया जिसमें यह मांग रखी कि हमारा इलाका पंजाब से अलग कर दिया जाये। सन् 1919 ई. और सन् 1928 ई.

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

में इस मूवमेंट ने काफी जोर पकड़ा। आनरेबिल हिज एक्सीलैन्सी मि. आसफअली और लाला देशबन्धु जो कि अब ईस्ट पंजाब से इधर पानीपत दिल्ली भाग आये हैं उसके नेता थे। हम लोग जो कि छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता थे उन्होंने इस मूवमेंट में उनका साथ दिया और काफी इस इलाके के लिए लड़े। सन् 1928 ई. में जब महात्मा गांधी और मिस्टर जिन्ना दोनों ने इस बात को कबूल किया कि अम्बाला डिवीजन, आगरा और मेरठ डिवीजन का एक सूबा बना दिया जाये, एक स्कीम भी इसके लिये मि. कौरबेट ने बनाई थी जिसको कौरबेट स्कीम कहते हैं। लेकिन उस वक्त हमारी मांग पूरी नहीं हो सकी और राउण्ड टेबिल कांफ्रेस ने हमारी मांग के खिलाफ फैसला कर दिया। अगर उस समय यह बात हो जाती तो हमारे देश का इतिहास ही बदला हुआ होता।

इसके बाद जब कैबिनेट मिशन आया तो उस समय भी हमने अपनी यह आवाज उठाई कैबिनेट मिशन हमारे इस इलाके को पाकिस्तान के एरिया में शामिल करना चाहता था। हमने इसके खिलाफ उस समय काफी आवाज उठाई। हम नहीं चाहते थे कि हमारा वह इलाका जिसने हमेशा से तकलीफें उठाई हैं फिर हमेशा के लिए ऐसे इलाके में शामिल किया जा रहा था जहां से वह फिर कभी भी नहीं उठ सकता था। और उन उसके फौलादी पंजे से हम छूट सकते थे। मगर ईश्वर की कृपा हुई कि हमारी कौम के लीडरों ने बिल्कुल ठीक फैसला किया और जिसकी वजह से ऐसा पार्टीशन कबूल किया कि ईस्ट पंजाब अब एक तरह से उस पंजे से बिल्कुल छूट गया।

हमने अर्से तक इस बात की कोशिश की कि दिल्ली का प्रान्त और ईस्ट पंजाब के कुछ जिले जो कि पहले दिल्ली के ही जिले थे उनमें कुछ यू.पी. के जिले मिला करके एक छोटा सा सूबा बना दिया जाये क्योंकि इन इलाकों का रहन सहन और बोल चाल एक तरह की थी। लेकिन पहले तो यह बन न सकी और अब यह Practical Politics के दायरे के बाहर हो गई। मैं हरगिज नहीं चाहता कि हमारे देश के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायें जिससे कि हमें जो नई आजादी मिली है हम उसको न सम्भाल सकें और हम आपस में ही इन छोटी-छोटी बातों में फंस जायें। मैं अर्ज करना चाहता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की आजादी कायम रखने के लिये अगर कोई चीज खराब है तो वह प्राविंसलिज्म है। मैं चाहता हूं कि यह प्राविंसलिज्म का भूत हमारे देश से बिल्कुल निकाल दिया जाये। अगर यह चीज हमेशा के वास्ते नहीं निकाली जाती तो इससे हमारी आपस में फूट पैदा हो जायेगी और हिन्दुस्तान के अन्दर एक तरह से सिविल वार जैसी स्थिति हो जायेगी।

मेरी तजवीज यह है कि दिल्ली का और नई दिल्ली का जो हल है वह यह है कि नई दिल्ली को तो दिल्ली से अलग कर दिया जाये और उसका जिस तरह से भी शासन प्रबन्ध बनाया जाये वह किया जाये। मगर दिल्ली के वास्ते जो बिल्कुल ठीक सोल्यूशन है वह यह है कि पुरानी दिल्ली व दिल्ली के 353 गांवों को, हरियाना को ईस्ट पंजाब में शामिल कर दिया जाये। और ईस्ट पंजाब के साथ हिमाचल प्रदेश को भी शामिल कर दिया जाये। जो हमारे साथ मिला दिये जायेंगे हम उन लोगों के साथ अच्छी तरह से मिल-जुलकर रहेंगे और जो कुछ भी तकलीफ हमारी और उनकी है वह दूर की जायेंगी। हरियाने के प्रान्त वाले जिनका दिल्ली भी एक हिस्सा है, यह चाहते हैं कि दिल्ली ईस्ट पंजाब में शामिल होनी चाहिये।

इसके अलावा मैं अर्ज करना चाहता हूं कि यू.पी. का बहुत बड़ा सूबा है और उसकी आबादी करीब 5 करोड़ से भी ज्यादा है। जैसाकि कल गुप्ता जी ने कहा था कि अगर इसमें से कुछ हिस्सा दिल्ली प्रान्त में मिला दिया जाता तो बहुत अच्छा होता। मगर मैं अदब से अर्ज करूंगा कि हमारे यू.पी. के भाई हम लोगों से कहते हैं कि तुम हमारे नजदीक मत आओ। मेरठ का डिवीजन जो कि हिसार से बिल्कुल मिला-जुला है और जहां के रहन-सहन और बोल-चाल में बिल्कुल भी फर्क नहीं है। अगर आगरा और मेरठ डिवीजन के एक करोड़ आदमी उन सबको-मिलाकर ईस्ट पंजाब में मिलाकर जिसमें पेपसु व हिमाचल प्रदेश व दिल्ली भी शामिल है एक तीन करोड़ का सूबा बना दिया जाता तो मुनासिब है आयन्दा आने वाले जमाने में छोटे सूबों के लिये कोई जगह नहीं है और उनका सेण्टर व फीडिनेशन में कोई रसूक व जोर नहीं होगा इसलिये हम सबको मिल जाना चाहिये।

जैसाकि कल गुप्ता जी ने फरमाया कि ईस्ट पंजाब के लोग हमको छोड़ना चाहते हैं, चाहे उन्होंने यह बात गलत तौर पर या सही तौर पर अपने ख्याल से कही हो, मगर मैं उनको यह बात बतलाना चाहता हूं कि उनका यह ख्याल बिल्कुल गलत है। कल ही, आपको मालूम होना चाहिये, इस दिल्ली के शहर में ईस्ट पंजाब के व्यापारियों की एक कांफ्रेन्स हुई थी जिसमें यह मांग की गई थी कि गल्ले के मामले में ईस्ट पंजाब और दिल्ली को एक ही समझा जाये और दिल्ली को खुराक के मामले में ईस्ट पंजाब के साथ शामिल कर दिया जाये। अगर हमारे दिलों में इस तरह का ख्याल होता तो हम कल की कांफ्रेन्स में इस तरह की मांग पेश नहीं करते। मैं दावे के साथ कहता हूं कि गुप्ता जी ने जो बात फरमाई है वह बिल्कुल गलत है। मैंने प्राइम मिनिस्टर साहब से सितम्बर 1947 में कहा कि आप ईस्ट पंजाब दारूलखिलाफा दिल्ली को बना दीजिये। नई दिल्ली को आप उससे अलग कर दीजिये और उसको आप जिस तरह से भी चाहें बनाइये। चाहे आप उसको वाशिंगटन की तरह बनायें, उसके लिए हम लोगों को कोई भी एतराज नहीं होगा। शिकायत की गई है कि हाईकोर्ट बहुत दूर है। तो मैं अदब से अर्ज़ करना चाहता हूं कि क्या यू.पी. में मेरठ से लोग 300 मील का सफर करके इलाहाबाद नहीं जाते हैं? क्या हिसार के लोग और रोहतक के लोग शिमला नहीं जाते हैं? हाईकोर्ट भी अगर बनानी चाहिये तो वह भी दिल्ली में ही बनानी चाहिये और इसका कारण यह होगा कि जब ईस्ट पंजाब की राजधानी दिल्ली होगी तो हाईकोर्ट भी वहां पर ही होना चाहिये।

श्री देशबन्धु गुप्तः (देहली) तब फिर आपके इस स्कीम में सबको गुरुमुखी भी सीखनी लाजमी होगी।

पं. ठाकुरदास भार्गवः मैं अदब के साथ अर्ज करता हूं कि अगर आप किसी स्टेट के मेम्बर होंगे तो उसकी भाषा भी सीखनी जरूरी होगी। सवाल यह है कि क्या एक छोटी सी बात के लिये बड़े सवाल का फैसला रोका जा सकता है। अगर दिल्ली का कोई भी ठीक सोल्यूशन है वह यह है कि आप नई दिल्ली को तो दिल्ली से अलग करके जिस तरह से भी आप उसका प्रबन्ध करना चाहते हैं बनाइये। मगर बाकी दिल्ली को आप ईस्ट पंजाब में मिला दीजिये। मैं पहले भी कह चुका हूं कि हम नहीं चाहते कि हमारे देश के टुकड़े हों और वह

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अलग-अलग सूबों में बांट दिया जाये। इससे हमारे देश में बहुत गड़बड़ी फैल जायेगी और हम अपनी आजादी को कायम नहीं रख सकेंगे। जहां तक इस सवाल के मसले को तय करने का सवाल है वहां सिर्फ एक ही सोल्यूशन हमारे सामने है और वह यह है कि दिल्ली के 353 गांवों को ईस्ट पंजाब में मिला दिया जाये। अगर आप यह नहीं चाहते हैं तो यह गवर्नमेंट के अख्तियार में है। मैं यह बात अपनी ओर से ही नहीं कह रहा हूं बल्कि जहां से आया हूं वहां के लोगों की राय कह रहा हूं। मैं उन लोगों से मिला हूं और उन लोगों की जो राय है वह आपके सामने रख रहा हूं। मैं श्री देशबन्धु से कहूंगा कि वह आंखें केनोटप्लेस व गवर्नमेंट हाउस पर न रखें बल्कि सारे दिल्ली के सूबे के असली इन्टेरेस्ट को देखें।

लेकिन अगर गनर्नमेंट की राय यह है कि दफा 67 के अन्दर जो हकूक दिये गये हैं उससे कहीं ज्यादा रिप्रेजेंटेशन दिल्ली वालों को दे दें तो अच्छा है। अगर दिल्ली के लिये लेजिस्लेचर रखा गया जिसमें चन्द अख्तियारात दिये जायें तो उसके लिए मेरी राय है कि उसको वही अख्तियारात दिये जायें जो कि सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रर्ड एरिया वाले दूसरे इलाकों को दिये गये हैं। उसको और दूसरे ऐसे सूबों को ज्यादा रिप्रेजेन्टेशन दिया जाये। यह निहायत वाजिब तजवीज होगी। मैं अदब के साथ अर्ज करना चाहता हूं कि इस समय दिल्ली की आबादी करीब 20 लाख के है। 5 लाख तो यहां पर शरणार्थी हैं और 10 और 15 लाख यहां पर और लोग हैं जो हरियाना प्रान्त के ही हिस्से में से हैं।

देहली की पापुलेशन सारी हरियाने की पापुलेशन है, इसमें कोई फर्क नहीं है। दिल्ली की पापुलेशन में सब पंजाब के रहने वाले लोगों का मिक्सचर है और सब एक चूं चूं का मुरब्बा बना हुआ है। मैं तो देशबन्धु जी को, जैसे उन्होंने रिफ्यूजीज को वेलकम किया, भाई समझता हूं। पंजाब के पिछड़े हुये लोग यहां आये और उन्होंने उनको यहां रखा। मैं तो यह अर्ज करूंगा कि दिल्ली वाले चाहे पंजाब के साथ रहें या अलग रहें लेकिन उनका उतना ही हक है जितना कि और सूबों के रहने वालों का है कि वह सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन में पूरे अख्तियारात पावें। सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन में हमारा फर्ज है कि उनको वही हक दें जो और सूबे वालों को मिले हैं चाहे वह पंथ पिपलौदा के हों चाहे और कहीं के हों। जो आजादी उन्होंने सारे देश के वास्ते हासिल की है तो जहां तक हो सके लेजिस्लेचर में उनके पूरे से पूरे अख्तियारात सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन को डीसेण्ट्रेलाइज करके दिये जायें जिससे उनके जो जायज एस्पिरेशन्स हैं जो पूरे हो सकें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्ता ने कल यहां जो कुछ कहा था श्रीमान्, उसके अधिकांश से मैं सहमत हूं। मैं समझता हूं कि इस महिमा शालिनी सभा के लिए यह कभी उचित न होगा कि गुलामी के इन छोटे-छोटे भूभागों को वह उसी तरह सर्वथा स्वातन्त्र्यशून्य बना रहने दे जैसे कि ये पहले थे। अब जब देश को स्वराज्य मिल गया है और प्रत्येक प्रान्त को स्वशासन का अधिकार मिल गया है तो देश के इन छोटे-छोटे भागों को अभी भी अधिकतर मुल्की अफसरों के शासनाधीन रखना क्या एक दयनीय

बात न होगी? मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि केन्द्रीय सरकार का कोई भी मंत्री स्थानीय प्रशासन की विस्तार की बातों को ध्यान से देख सकेगा। ये लोग तो केन्द्रीय काम में ही सदा व्यस्त रहेंगे। इसलिये मेरा कहना यह है कि जब तक आप इन भूभागों को केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में रखेंगे यहां के निवासियों को कभी भी राजनैतिक अधिकार न प्राप्त हो सकेंगे और स्वराज्य से वह वंचित ही रह जायेंगे। मैं नहीं समझता कि पण्डित नेहरू की इस दलील में, कि चूंकि समूची नई दिल्ली भारत सरकार की सम्पत्ति है इसके लिये कोई स्वतंत्र पृथक शासन व्यवस्था रखना आवश्यक नहीं है, कुछ भी तर्क है। आपकी इस दलील को समझने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं। अगर दिल्ली को लंदन या न्यूयार्क की तरह रखना चाहते हैं तो वैसा आप कर सकते हैं। यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। पर लंदन में भी स्थानीय प्राधिकारी हैं और वहां के प्रशासन में जनता का हाथ रहता है पर दिल्ली के साथ तो यह बात नहीं है। इसके प्रशासन में यहां के निवासियों की कोई भी आवाज नहीं है। बजाय इसके कि इन छोटे-छोटे भू-भागों को आप लेफ्टिनेण्ट गवर्नर वाले प्रान्त या चीफ कमिश्नर वाले राज्यों के रूप में रखें, बेहतर यह होगा कि आप इन्हें पड़ौस के राज्यों में मिला दें। कुर्ग को इसके पड़ौसी राज्य में मिलाया जा सकता है। विवादग्रस्त होने के कारण अगर आप इस प्रश्न पर निर्णय नहीं करना चाहते हैं तो मैं पूछता हूं आप निर्णय ही फिर किस बात का करेंगे? यह ऐसा विषय है जिसका फैसला इस गौरवान्वित सभा को ही करना चाहिये क्योंकि संसद् या विधानसभा को यह सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकती है जो कि इस संविधान-सभा को प्राप्त है। संसद् के निर्णयों में, तो प्रायः एक दल विशेष का ही हाथ रहता है। संसद् के निर्णयों को वही बल एवं प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकती है जो इस सर्वदलीय महतीसभा के निर्णयों को प्राप्त हो सकती है क्योंकि संसद् में वही निर्णय होता है जिसे वहां का बहुमत प्राप्त दल तय करता है। वहां एक दल का प्राधान्य रहता है जिसका वहां एक नेता होता है, एक ह्विप होता है। आज भी अगर मुझे संसद् में बैठना हो तो वहां मैं अपने मताधिकार का प्रयोग उस स्वच्छन्दता से नहीं कर सकता जिससे कि यहां कर सकता हूं क्योंकि यहां संविधान-सभा में तो पार्टी के निर्णय की अवहेलना की जा सकती है। इस संविधान-सभा में तो पार्टी के जो सदस्य हैं वह तो केवल पार्टी की सुविधा-प्रदान करने के लिए हैं ताकि किसी निर्णय पर पहुंचने में पार्टी को उनसे मदद और सुविधा मिल सके। पार्टी के ह्विप द्वारा निकाले गये आदेशों को मैं ऐसा नहीं समझता कि मानना ही होगा और जब तक इस बात का विश्वास नहीं हो जाता कि उसका आदेश सही है मैं उसे नहीं मानता। इस संविधान-सभा में पार्टी की आवाज को उतना महत्व नहीं प्राप्त है जितना कि व्यक्ति की आवाज को क्योंकि यहां प्रत्येक व्यक्ति समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है और समूचे राष्ट्र के हित के लिए जो ठीक समझता है वहीं कहता है। किन्तु संसद् में यह बात नहीं होती। वहां सदस्यों को पार्टी के आदेशों को मानना ही होगा और इसलिये संसद् का जो निर्णय होता है वह बहुमत प्राप्त दल का ही निर्णय होता है; इसलिये संसद के निर्णयों को वह प्रतिष्ठा और महिमा नहीं प्राप्त रहती है जो संविधान-सभा के निर्णयों को प्राप्त होती है।

सवाल यहां यह है कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों के निवासियों को राजनैतिक अधिकार दिये जायें। यह उनका दुर्भाग्य ही था कि अतीत में उनको कोई प्रतिनिधान

[श्री महावीर त्यागी]

नहीं प्राप्त था और वहां की शासन व्यवस्था में उनका कोई दखल न था। किन्तु अब भी, जबकि देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है उनको आप प्रतिनिधान का अधिकार नहीं दे रहे हैं। उनके एक या दो प्रतिनिधि संसद् में आकर आखिर यहां क्या असर पैदा कर सकेंगे? एक संशोधन भी इस आशय का यहां आया था कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों को और अधिक प्रतिनिधान देने की बात पर विचार किया जाये। यदि उनके दस प्रतिनिधि भी आप यहां संसद् में ले लेंगे तो वह वहां के शासन की रोजमर्रा की बातों में वह असर नहीं पैदा कर सकते हैं जो हम अपने-अपने प्रान्तों में कर पाते हैं। उनका संविधान किस तरह का हो और उसका नाम क्या हो इसकी मुझे कोई फिक्र नहीं है। अगर अपनी भावी व्यवस्था के अधीन उन्हें अपने प्रदेश के सम्बन्ध में स्वायत-शासन का अधिकार प्राप्त हो जाता है और स्थानीय प्रशासन में उनको पर्याप्त प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है तो उससे ही हम लोगों को सन्तोष हो जायेगा। यदि आप उनके लिए उतना नहीं करते हैं तो मैं कहूंगा कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों के प्रति हम न्याय नहीं कर रहे हैं। जहां तक दिल्ली का सम्बन्ध है, इसकी वही स्थिति है जो महाभारत की द्रौपदी की थी। चूंकि केन्द्रीय सरकार ने इसे अपने अधीन कर लिया है, इस बिना पर आप इसके साथ अन्याय न कीजिये। माननीय सदस्यों से मैं अपील करूंगा कि दिल्ली के प्रश्न पर वह ईमानदारी के साथ औचित्य के साथ विचार करें। दिल्ली ने बड़ी कुर्बानियां की हैं। दिल्ली के प्रश्न पर तो आप नये सिरे से विचार करें और अन्य छोटे-छोटे केन्द्र प्रशासित भूभागों को उनके पड़ौस के राज्यों में मिला दें। दिल्ली के सम्बन्ध में मेरी यह मांग रही है कि उसे संयुक्तप्राप्त में मिलाना चाहिये। पर अगर उपरोक्त बात मान ली जाती है तो मैं इस मांग को छोड़ दूंगा। दिल्ली को पंजाब के साथ मिल जाने दीजिये। प्राकृतिक दृष्टि से दिल्ली पंजाब का ही भाग है। इसकी वर्तमान सभ्यता पंजाब की है और इसमें पूर्वी एवं पश्चिमी पंजाब दोनों की सभ्यताओं का सम्मिश्रण है। पश्चिमी पंजाब से बहुसंख्यक नर-नारी अब दिल्ली आ गये हैं। इसलिये यह अब उनका हो गया है। पंजाब सरकार के अधीन वह ज्यादा सुखी होंगे और वहां के मंत्रियों को पुनः अपना दोस्त बना लेंगे। इसलिये दिल्ली को अपने परिवारी प्रदेश के साथ मिल जाने दीजिये। दिल्ली अब उनको जो लोग यहां आकर पुनः बस गये हैं। इस सम्बन्ध में हमें यही फैसला करना चाहिये। यदि दिल्ली और कुर्ग के प्रश्न पर हम कोई निर्णय नहीं कर पाते हैं तो फिर संसद् इस पर कैसे निर्णय पर सकती है? ऐसे मामलों के फैसला करने का संसद् को हक नहीं है। इस प्रश्न का फैसला तो यह सभा ही कर सकती है। आखिर अपना अधिकार हम संसद् को क्यों सौंपे? अगर श्री देशबन्धु गुप्त एवं अन्य मित्र इससे सहमत हों तो बजाय उसके कि इस प्रश्न का फैसला हम संसद् पर छोड़े हमीं यह फैसला कर दें कि दिल्ली को पंजाब में मिला दिया जाये और कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा को उनके पड़ौसी राज्यों के साथ कर दिया जाये। ऐसा करने में पैसे की बचत भी होगी। मेरा तो यही प्रस्ताव है।

***श्री जयनारायण व्यास** (जोधपुर राज्य) क्या आप यह चाहते हैं कि नई दिल्ली भी पंजाब में मिला दी जाये?

***श्री महावीर त्यागी:** नई दिल्ली चाहे जहां जाये।

श्री मोहनलाल गौतम (यू.पी. : जनरल): सभापति महोदय, जो यह दिल्ली का प्रश्न है उस पर जरा गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है। यहां कान्स्टीट्यूटएन्ट असेम्बली में कोई साहब ऐसे नहीं होंगे जो मुल्क के किसी हिस्से को कम अधिकार देना चाहते हों और दूसरे हिस्सों को ज्यादा अधिकार देना चाहते हो। इसलिये हम में से कोई भी नहीं चाहेगा कि किसी भी हिस्से में चीफ कमिश्नरशिप रहे। मुल्क के किसी भी हिस्से में चीफ कमिश्नर की हुकूमत का रहना वहां के लोगों के अधिकारों को कम करना है। इसलिये कहीं भी चीफ कमिश्नरशिप नहीं रहनी चाहिये। इससे हम सब एकमत हैं। जो चीफ कमिशनरशिप इस वक्त हैं वह एक के बाद दूसरी कहीं न कहीं मिला दी जावेंगी, इसमें मुझे कोई भी शक नहीं मालूम होता। लेकिन दिल्ली का और खास कर नयी दिल्ली का सवाल कुछ मुखतलिफ है। इसलिये मेरी पहली प्रार्थना तो यह है कि दिल्ली के सवाल पर जब हम विचार करें उस वक्त दिल्ली के गांव और नयी दिल्ली के शहर को बिल्कुल अलग कर देना चाहिये।

इसमें दो रायें नहीं हो सकती कि नयी दिल्ली को, जहां कि तीन चौथाई प्रापर्टी गवर्नमेंट आफ इण्डिया की है जहां कि फारेन एम्बेसीज की जगहें हैं, जो कि गवर्नमेंट आफ इंडिया की सीट है, वह किसी भी छोटे से लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्राविंस को दी जाये। यह कम से कम मैं नहीं चाहता। इसलिये जब आप इस सवाल पर गौर करें तो नयी दिल्ली को अलग कर दीजिये। उसके बाद इस सवाल पर गौर करने में आसानी होगी। इसलिये मेरी राय यह है कि नयी दिल्ली को बिल्कुल अलग करके उसके गवर्नमेंट आफ इंडिया के एडमिनिस्ट्रेशन में देना चाहिये, उसमें किसी का कोई दखल न होना चाहिये।

अब सवाल रह जाता है बाकी हिस्से है। बाकी हिस्से को अगर आप अच्छी तरह डेवलप करना चाहें तो क्या आपका ख्याल है कि लेफ्टिनेण्ट गवर्नर का प्राविंस काफी होगा, उन लोगों को उतने अधिकार देने के लिए जितने कि दूसरे गवर्नर के प्राविंस वालों को अधिकार हैं? जब लेफ्टिनेंट गवर्नर की हुकूमत हो या आधे अधिकार गवर्नमेंट आफ इंडिया के हों और आधे हाउस के लोगों के हाथ में हों तो इस तरह की हुकुमत में जनता के लोगों को उतने अधिकार नहीं होगें जो कि बराबर के सूबे यू.पी. और पंजाब के लोगों के होंगे।

दूसरा सवाल सोचने का यह है कि क्या 200, 300 गांव और एक छोटा सा शहर एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के तमाम अखराजात को बरदाश्त करने के लिए काफी है? यह हरगिज काफी नहीं है। इसलिये यहां की हुकूमत अच्छी तरह नहीं चल सकती। इतनी सी छोटी यूनिट को लेकर आप अच्छी तरह नहीं चला सकते। इस तरह यह छोटा सा यूनिट अलग नहीं रह सकता। तो अब सवाल यह है कि इसको बराबर के सूबे में जरूर मिला देना चाहिये। जहां तक यू.पी. का ताल्लुक है देशबन्धु जी ने यू.पी. की इम्पीरियलिज्म का जिक्र किया था कि वह एक हिस्से के बाद दूसरे हिस्से को जीतता चला जाता है। मैं उनको साफ बतलाना चाहता हूं कि यू.पी. की कोई ख्वाहिश नहीं है कि कोई हिस्सा उनके साथ मिले। अगर तीन रियासतें छोटी-छोटी मिली हैं तो इस वजह से कि वह कहीं और नहीं मिल सकती थीं। वह यू.पी. के अन्दर तीन आइलैण्ड हैं। जब धौलपुर और भरतपुर का सवाल आया था तो हमारी प्राविंशियल कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेण्ट ने साफ

[श्री मोहनलाल गौतम]

कहा था कि तुम्हें राजस्थान के साथ जाना चाहिये। इसलिये यू.पी. तो उस वक्त गौर कर सकता है जबकि कोई मर्ज लाइलाज हो। जब कोई डॉक्टर इसका इलाज नहीं कर सकता तब यू.पी. इसका इलाज कर सकता है। उसके पहले यू.पी. गौर करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिये यू.पी. का सवाल आप छोड़ दीजिये। अगर इम्पीरियलिज्म के मामले को देशबन्धु जी दूर रखें तो अच्छा है। हमारा यू.पी. कोई इम्पीरियलिज्म नहीं लादना चाहता।

अब सवाल नयी दिल्ली को छोड़कर बाकी हिस्से का है और दूसरा सूबा रह जाता है पंजाब। पंडित ठाकुरदास जी भार्गव ने तमाम तवारीखी और तमाम जजबाती दलीलें दीं कि मेण्टल और हिस्टारिकल प्वाइण्ट आफ व्यू से दिल्ली को ईस्ट पंजाब के हरियाने से मिल जाना चाहिये। लेकिन मेरी दलीलें कुछ उससे अलग भी हैं। मैं यह कहता हूं कि ईस्ट पंजाब जो सबसे ज्यादा तबाह हुआ है, जो पिछले दो साल से अब तक रीहैबिलिटेट नहीं हो सका है उसको रीहैबिलिटेट करना है या नहीं। वह आपका फ्रण्टियर प्राविंस है। उसको हमें मजबूत करना है। अगर वह कमजोर रहेगा तो आपका सारा मुल्क कमजोर रहेगा। तो उसको रीहैबिलिटेंट करने के लिए क्या जरूरत है? सबसे पहले तो आप उसको एक केपिटल दीजिये, एक जगह दीजिये जहां उसकी हुकूमत बन सके, जो सीट आफ गवर्नमेंट बन सके। आज हालत यह है कि शिमला गवर्नमेंट आफ पंजाब का केपिटल है, मिनिस्टर जालंधर में रहते हैं, यूनिवर्सिटी अम्बाला में है और कालेज लुधियाना में है। इस तरह की हालत पंजाब में कब तक चल सकेगी? अगर आप उसको रीहैबिलटेट करना चाहते है तो पंजाब को एक केपिटल की सबसे पहले जरूरत है और अगर आप केपिटल नहीं दे सकते तो आप पंजाब की रीहैबिलिटेट नहीं कर सकते हैं और उसमें देर लगेगी और जितनी देर लगेगी उस वक्त तक तमाम यूनियन का डिफेंस कमजोर रहेगा। इसलिये सबसे पहली जरूरत यह है कि ईस्ट पंजाब की एक केपिटल हो जहां उसके मिनिस्टर्स रह सकें, जहां उसकी हुकूमत हो, जहां उसकी यूनिवर्सिटी हो, जहां उसकी तमाम चीजों का एक सेन्टर हो। पहले वह सेन्टर लाहौर में था और वह आपसे छिन गया और पंजाब में कोई और डवेलप्ड सिटी नहीं थी जहां वह अपना फौरन दूसरा कैपिटल बना लेता। अगर यू.पी. की यह हालत होती तो, यू.पी. की पोलिटिकल लाइफ एक केन्द्र में केन्द्रित नहीं है। लखनऊ है तो कानपुर भी, बनारस है तो इलाहाबाद भी है। अगर एक शहर उससे हट जाता तो दूसरे शहर में वह अपना केपिटल ट्रान्सफर कर सकता था। लेकिन पंजाब में यह बात नहीं थी। पंजाब में सारी पोलीटिकल लाइफ लाहौर में सेन्टर्ड थी। इसलिये लाहौर के छिन जाने के बाद वह तबाह हो गया है। इसलिये मेरी तजवीज है कि नयी दिल्ली को निकाल कर पुरानी दिल्ली, सिविल लाइन्स और जितने गांव में उन सबको ईस्ट पंजाब से मिला दिया जाये और उसके साथ-साथ उसका एक दूसरा जुज यह भी है कि उसका केपिटल यहां आ जाये। मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि शायद देशबन्धु जी को यह पसन्द हो कि ईस्ट पंजाब को दिल्ली के साथ मिला दिया जाये। आप ईस्ट पंजाब को दिल्ली में मर्ज कर दीजिये और उसका कैपिटल सिविल लाइन्स दिल्ली में, जहां कि पुराना सेक्रेटरियट था, जहां पुराने गवर्नर-जनरल का मकान था जहां काफी

बिल्डिंग्ज आप इस वक्त दे सकते हैं वहां उसका केपिटल कर दिया जाये। और अगर यह केपिटल बन जाये तो मैं समझता हूं कि ईस्ट पंजाब का रीहैबिलिटेशन शुरू हो जायगा।

श्री देशबन्धु गुप्तः मेरी समझ में यू.पी., दिल्ली और पंजाब को एक साथ मिला दिया जाये?

श्री मोहनलाल गौतमः अगर देशबन्धु जी को यह पसन्द हो तो मुझे कोई ऐतराज नहीं है और लोगों को यह पसन्द हो तो मुझे इसमें कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन शायद देशबन्धु जी ही इसको पसन्द नहीं करेंगे, इसलिये कि मैं इस नयी फर्म में उनको सीनियर पार्टनर बना रहा हूं। यू.पी. को भी मिला दिया जाये तो वह जूनियर पार्टनर हो जायेंगे जिसमें शायद वह ऐतराज करेंगे। इसलिये उनको अगर यह मंजूर हो तो मुझको कोई ऐतराज नहीं है। अगर मुल्क का हित इसमें है कि यू.पी. में मिला दिया जाये और अगर आप तैयार हों तो मैं इसके लिये तैयार हूं। इसलिये इसकी एक और वजह है। मैं जो यह कहना चाहता हूं कि दिल्ली पंजाब की राजधानी हो उसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि जब पंजाब का बंटवारा हुआ तो लाहौर से जो लोग भाग कर आये वह सबके सब दिल्ली में ही आये। इस वक्त अगर ईस्ट पंजाब में कहीं भी लीडरशिप है, चाहे आप उसको तालीम के सिलसिले में देखें, चाहे आप इण्डस्ट्री में देखें चाहे बैंकिंग में देखें, किसी भी चीज में देख ले इस वक्त दिल्ली में मौजूद हैं। आपको ईस्ट पंजाब के दूसरे किसी हिस्से में जिस तरह का दिल्ली में है, नहीं मिलेगा। जितने भी बड़े-बड़े बैंक है वह सब दिल्ली में आ गये हैं और वह ईस्ट पंजाब में अपनी शाखा नहीं खोलना चाहते हैं। जितने भी बड़े-बड़े व्यापारी थे वह भी दिल्ली में ही आ गये हैं और यह अब इस शहर को छोड़ना नहीं चाहते हैं। अगर दिल्ली को ईस्ट पंजाब से हटा दिया जाये तो जो ईस्ट पंजाब की लीडरशिप है वह उससे महरूम रह जायेगा।

इसलिये मेरी राय यह है कि इस सवाल को पार्लियामेंट के लिये नहीं छोड़ना चाहिये बल्कि यहां पर इस सवाल को तय कर लेना चाहिये। नई दिल्ली के हिस्से को बिल्कुल अलग करके बाकी हिस्से को ईस्ट पंजाब में मिला देना चाहिये और दिल्ली को ईस्ट पंजाब की राजधानी बना देना चाहिये।

चौधरी रणवीर सिंह (ईस्ट पंजाब : जनरल)**:** सभापति जी, इस सवाल का हल पार्लियामेंट के ऊपर छोड़ने से कोई फायदा नहीं रहेगा। अगर यह फैसला कर दिया जाये कि दिल्ली का फैसला क्या होगा, पुरानी दिल्ली और इसके देहात को पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये और हिमाचल प्रदेश को भी पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये और दूसरे छोटे-छोटे जितने इलाके हैं उनके बारे में भी कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली फैसला कर दे तो मैं यह समझता हूं कि आसानी से, जो सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेटिव एरिया हैं, उनका कान्स्टीट्यूशन बनाया जा सकता है और इस सवाल को पार्लियामेंट पर छोड़ने के लिए कोई जरूरत नहीं है।

गुप्ता जी जिस ध्येय के लिये लड़ रहे हैं वह हमारा भी था उसकी प्राप्ति के लिये वे हमारे नेता हैं। हम चाहते हैं कि दिल्ली का एक अलग सूबा बने। लेकिन आज हालत दरअसल यह है कि दिल्ली का अलग सूबा बन नहीं सकता है। मैं तो गुप्ता जी से यह प्रार्थना करता हूं कि जिस तरह से वह आज तक इस आशा में बैठे रहे कि एक दिन आयेगा जब उनकी मांग पूरी होगी वह कुछ

[चौधरी रणवीर सिंह]

दिन और अपने स्वप्नों को पूरा करने में ठहर जायें तो वह अभिलाषा अवश्य पूरी हो जायेगी।

यू.पी. एक बहुत बड़ा प्रान्त है और मेरा तो यह ख्याल है कि इतने बड़े प्रान्त का राज्य वह आसानी से नहीं चला सकेगा। एक न एक दिन उनको उसका दो हिस्सा करना ही होगा। और अगर ऐसा हुआ तो वह हमारे साथ अवश्य जोड़ा जायेगा। आगे चलकर यदि पंजाब के सूबे के भी दो हिस्सा हुए तो जो हिन्दी बोलने वाला हिस्सा है वह हिस्सा यू.पी. वाले हिस्से में मिल जायेगा। तो इस तरह से एक पंजाबी बोलने वाला हिस्सा हो जायेगा और एक हिन्दी बोलने वाला हिस्सा हो जायगा। गुप्ता जी ने जिस तरह से कल मांग की है वह मांग और उनका वह स्वप्न इस तरह से ही पूरा हो सकता है। अगर गुप्ता जी ने यह मेरा सुझाव न माना और चाहा कि उनका स्वाधीन अलग सूबा बन जाये तो उनका यह स्वप्न धरा का धरा रह जायेगा। अगर उनकी यह बात चली तो हम हिन्दी बोलने वाले पंजाब के अन्दर एक माइनौरटी में ही रह जायेंगे।

इसलिये मैं समझता हूं कि गुप्ता जी का जो ख्याल है उसको पूरा करने के लिए गुप्ता जी को यह मांग करनी चाहिये कि दिल्ली का जो रूरल एरिया और पुराना दिल्ली शहर है इसको पंजाब में मिला दिया जाये और ऐसा होने के बाद गुप्ता जी को अपने स्वप्नों को पूरा करने के लिए, अपने अखबार के जरिये अपनी आवाज को उठाना चाहिये। मुझे पूरी आशा है कि वह इस काम को अपने हाथ में लेंगे और कामयाबी का मुंह देखेंगे।

दूसरी बात जो गुप्ता जी ने कही है और जिसको मैं दोहराना नहीं चाहता वह यह है कि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली का सारा सडमिनिस्ट्रेशन पंजाब से ही आता रहा है। दिल्ली ने सिविल और एक्जिक्यूटिव सर्विसेज तो हमेशा से ही पंजाब से उधार ली हैं। आज भी दिल्ली का जो हाईकोर्ट है वह भी पंजाब ही में है। और यहां से लोगों को अपना काम कराने के लिए शिमला जाना पड़ता है। इस चीज की हमको भी तकलीफ है। परन्तु हाईकोर्ट को दूसरी जगह रखा गया तो दूसरे दूर वाले जिलों को तकलीफ हो जायेगी।

एक और चीज कल गुप्ता जी ने कही है वह और मैं उसके लिये उनको चैलेन्ज करना चाहता हूं। नई दिल्ली को छोड़कर दिल्ली के लोगों से अगर पूछा जाय तो मैं यह दावा करता कि वहां के 60 और 70 प्रतिशत आदमी इस बात के हक में जरूर होंगे और मुझे तो यह भी उम्मीद है और मुझे यकीन है कि शायद 80 और 90 प्रतिशत लोग ऐसे निकलेंगे जो यह चाहेंगे कि उनको ईस्ट पंजाब के साथ मिला दिया जाये। रूरल एरिया के बारे में, मैं पुख्ता तौर से यह कह सकता हूं कि वह लोग दिल्ली के देहात को रोहतक, गुड़गांव और करनाल से मिलाना पसन्द करेंगे और इस बात में जरा भी शक नहीं कि देहात में कम से कम ऐसे 11 प्रतिशत हैं। लेकिन जहां तक दिल्ली वालों का सवाल है कल ही एक कांफ्रेंस पं. ठाकुरदास भार्गव की प्रधानता में हुई और उसमें खास तौर से यह मांग की गई कि दिल्ली को अनाज के राशन के लिये कम से कम पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये। मैं भी उस कांफ्रेंस में गया था वहां पर भी

मैंने यह मांग की थी कि हरियाना का प्रान्त और दिल्ली एक कर दिया जाये। अगर यह किसी तरह से नहीं किया जा सकता है तो वह उसको पंजाब में मिलाने के लिए पूरी मांग करते हैं।

देहात का जहां तक वास्ता है, मैं देहात के बारे में दावे से यह कहता हूं कि 99 प्रतिशत देहात इस बात को पसन्द करेंगें कि वह दिल्ली से मिल जायें।

मैं हाउस का ज्यादा समय न लेते हुये आखिर में यह अर्ज करना चाहता हूं कि अगर दिल्ली का प्रश्न हल हो जाये तो यह जो हम समझते हैं कि इसे पार्लियामेंट के ऊपर छोड़ दिया जाये, उसको पार्लियामेंट पर छोड़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि नई दिल्ली का जहां तक वास्ता है वह तो अलग ही उससे रहेगा। उसके लिए रास्ता खुल जायेगा और जो हिचकिचाहट है वह नहीं रहेगी। पांडीचेरी के बारे में जैसा भी हम कान्स्टीट्यूशन बनाना चाहते हैं वह बना सकते हैं। इस प्रश्न को हमें बहुत ज्यादा होल्ड ओवर करने की भी आवश्यकता नहीं है। मेरा ख्याल है कि आठ दस दिन के अन्दर जब तक इस असेम्बली के चलने की उम्मीद है, इसका फैसला हो सकता है और मैं भी गुप्ता जी के इस कथन का समर्थन करता हूं कि इस प्रश्न का हल जो हो वह कान्सटीट्युएंट असेम्बली ही करे तो ज्यादा अच्छा है।

मौलवी हफीज उल रहमान (यू.पी.: मुस्लिम): सदर साहब, जनाब वाला, सूबा देहली के मुताल्लिक डॉक्टर अम्बेडकर का अमेंडमेंट बहुत ज्यादा काबिले गौर है। इस वक्त तक जो तकारीर हाउस में हुई हैं उनसे मैं और भी ज्यादा इसकी अहमियत को महसूस करता हूं।

देहली वह बदनसीब सूबा है जो आजादी हासिल करने से पहले भी और आज भी डेमोक्रेसी और जमहूरित के उन उसूलों से महरूम है जो उसको मिलने चाहिये थे। और आज मुल्क के आजाद होने के बाद तो एक मिनट के लिए भी हम इस बदकिस्मती और बदनसीबी को तस्लीम करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि देहली अपनी तवारीख और ऐतिहासिक हैसियत से और दूसरी पोलिटिकल हैसियत से भी इस बात की मुश्तहक है कि इसको मुस्तकिल सूबा बनाया जाये। इसके बारे में जो दिक्कतें बयान की जाती हैं मैं उन दिक्कतों को कुछ ज्यादा अहमियत नहीं देता। बार-बार इस वक्त देहली की तवारीख को दुहराते हुये मिस्टर भार्गव ने और गौतम साहब ने भी इसको पंजाब में शामिल करने के लिए तकरीरें फरमाई। मैं नहीं समझता कि वह कौन सी तवारीख हैं जिसके ऐतबार से देहली को पंजाब का जुज्व कभी समझा गया है। हरियाना को देहली प्राविंस का एक जुज्व ख्याल किया जाता है लेकिन पंजाब की तवारीख में देहली को कभी भी इसका जुज्व नहीं समझा जाता था। मैं तो यह समझता हूं कि देहली अपनी तवारीख में एक मुस्तकिल हैसियत रखती है और आज भी इसकी हैसियत बुलन्द है। यह सवाल छोटे-छोटे सूबे बनाने का नहीं है और यह भी बात नहीं है कि देहली की हैसियत अजमेर-मेरवाड़ा जैसी ही है। जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का ताल्लुक है और वहां तक कुर्ग का ताल्लुक है वह बिल्कुल एक जुदा हैसियत रखते हैं। देहली मर्दुमशुमारी की हैसियत से और अपनी अहमियत के ऐतबार से भी इन सूबों से जुदा है जो आज चीफ

[मौलवी हफीज उल रहमान]

कमिश्नर के सूबे बने हुये हैं। और देहली का चीफ कमिश्नर का सूबा बने रहना नाकाबिले बर्दास्त चीज है।

एडवाइजरी कमेटी का जो भी हमें अन्दाजा है वह खिलौने और तमाशे से ज्यादा अहमियत नहीं रखता है लेकिन इसके यह माने नहीं हैं कि जहां देहली को एक आजाद सूबा बनाने का सवाल है, बहुत खुबसूरत अलफ़ाज में कह दिया जाये कि देहली को नहीं बल्कि ईस्ट पंजाब को देहली में ज़ज़्ब कर दिया जाये। और इसको इसका एक जुज़ समझा जाये। इसलिये कि इन खूबसूरत अलफ़ाज से मसला की हकीकत नहीं बदल जाती है।

जनाब वाला मैं यह गुजारिश करूंगा कि देहली की यह अहमियत है कि ईस्ट पंजाब इस बात की कोशिश कर रहा है कि देहली हमारा कैपिटल बन जाये और वह ईस्ट पंजाब में मर्ज हो जाये यू.पी. का यह कहना कि वह उसके लिये तैयार नहीं है। इस इन्कार में भी इकरार का पहलू नजर आता है और उनके दलीलों से भी यह महसूस होता है कि देहली को एक सूबे की पोजीशन मिलनी चाहिये। इस ऐतबार से मैं यह गुजारिश करूंगा कि देहली ही की यह खसूसियत है कि उसमें और गुंजाइश है कि आज उसने लाहौर और वेस्ट पंजाब के रिफ्यूजिज को अपने अन्दर जगह दी और वह यू.पी. के मुसीबतजदा लोगों को भी अपने अन्दर समा लेता है।

यह देहली की तवारीख है कि वह हिन्द यूनियन के दो प्राविंसेज को अपने अन्दर ज़ज़्ब करती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि देहली पंजाब का जुज़ है या यू.पी. का जुज़ है। देहली दूसरे प्रोविंसेज़ की तरह अपनी मुस्तकिल हैसियत रखती है। जहां तक मैं समझता हूं हर एक यही चाहता है कि देहली को अलग कर दिया जाये और उसको मुख्तलिफ सूबों का जुज़ न कहा जाये।

हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब बहादुर ने जो स्टेटमेंट कल दिया है वह एक हद तक तसल्लीबख्श है। लेकिन मैं यह जरूरी नहीं समझता हूं कि नई देहली को पुरानी देहली से जुदाकर दिया जाय। देहली की अपनी हिस्ट्री है और हम भी कैपिटल होने की हैसियत से उसकी मुश्किलात को समझते हैं। मैं यह नहीं कहता कि मुश्किलात को अबूर करने के लिए कुछ तहफ्फुजात न हों। मैं यह कहता हूं कि आप यहां तहफ्फुजात का भी इन्तजाम रखें। लेकिन नई देहली और पुरानी देहली को जिसमें केवल दो सौ या तीन सौ गांव हैं, एक पूरे प्राविंस की हैसियत में होना चाहिये और एक आजाद प्राविंस होना चाहिये। इसको वही हक मिलने चाहियें जो कि दूसरे सूबों को मिले हैं।

जहां तक कि लीडरशिप का ताल्लुक है यह कहना कि देहली में ईस्ट पंजाब के बड़े काबिल लीडर मौजूद हैं, कोई खास दलील नहीं है। मैं यह कहूंगा कि देहली में एक पंजाब क्या यहां तो हिन्द यूनियन के तमाम सूबों के लीडर मौजूद हैं।

और यहां पर तमाम लीडरशिप जमा होती है। अगर पंजाब के लीडर यहां पर रहते हैं तो उसका मतलब यह नहीं है कि देहली को पंजाब का कैपिटल बनाया जायेगा। देहली की खूद अपनी तवारीख है और उसके खिलाफ कुछ नहीं कहा जा सकता है। आप वाशिंगटन की मिशाल को ही लीजिये। अगर वह एक राजधानी है फिर भी वह हर एक ऐसी आजादी रखता है जो कि उस मुल्क की दीगर जगहों में है और अगर वाशिंगटन में ऐसी सूरत न हो तब भी दूसरे ऐसे मुमालिक मौजूद हैं जिनके कैपिटल आज़ाद सूबों की हैसियत रखते हैं। देहली भी इसी को अख्तियार करना चाहती है और एक एडवाइज़री कमेटी के मातहत नहीं रहना चाहती है। वह मौजूदा तरीका इन्तखाब को मंजूर नहीं कर सकती है। उसको भी इसी तरह से इन्तखाब का हक मिलना चाहिये जिस तरह से कि दूसरे सूबों को मिला है। उसको भी ऐसी ही आजादी मिलनी चाहिये जिस तरह कि दूसरे सूबों को मिली हुई है।

जिस तरह से कि पंजाब और यू.पी. को हर एक आजादी दी गई है और हाईकोर्ट दिया गया है उसी तरह से देहली को भी मिलना चाहिये। देहली को हर एक आजादी मिलनी चाहिये और डैमोक्रैमिटक राइट्स मिलने चाहियें। देहली को ईस्ट पंजाब और यू.पी. का एक जुज़ बताना बर्दास्त नहीं किया जा सकता है जैसा कि मैंने अर्ज़ किया है देहली की अपनी मुस्तकिल हैसियत है और देहली को वैसी ही आजादी मिलनी चाहिये जैसी कि दीगर सूबों को मिली है। यह जो कहा जाता है कि देहली ईस्ट पंजाब का एक जुज़ है और उसकी ईस्ट पंजाब में मर्ज किया जाना चाहिये, ठीक नहीं है। इसलिये मैं यह गुज़ारिश करूंगा कि देहली के बारे में इस मामले को यहां पर ही साफ करना चाहिये।

जो कुछ लाला देशबन्धु साहब ने कहा है वह उन्होंने एक नुमाइन्दा की हैसियत से कहा है, उनको देहली की नुमाइन्दगी हासिल है और उन्होंने जो कुछ भी कल कहा है वह देहली की तमाम पब्लिक की तरफ से कहा है वह देहली की जनता की आवाज है और देहली के तमाम बाशिन्दों की राय है। इसलिये मैं यह गुजारिश करूंगा कि यह जो बहस उठाई जा रही है, मुनासिब नहीं है और यह कहना चाहता हूं कि देहली के हालात को देख कर और देहली की तवारीख को देखकर और देहली की तमाम जनता की राय को देखकर आपको चाहिये कि आप देहली को एक आजाद सूबे की हैसियत दें और उसको जमहूरियत का पूरा-पूरा फायदा उठाने दें और उसको ईस्ट पंजाब का जुज़ तसव्वुर न करें और न उसको एक एडवाइजरी कमेटी के मातहत रखें। और इस बात का यहीं पर ही फैसला करें। जो स्पेशल कमेटी बनी थी उसमें इतफाक राय से यही फैसला हुआ है कि देहली को एक अलग सूबे की हैसियत दी जाये और उसको ऐसी ही आजादी दी जाये जैसीकि दूसरे सूबों को मिली हुई है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस बात को क्यों नजरअंदाज किया गया है और ड्राफ्टिंग कमेटी ने भी इस बात को क्यों नजरअंदाज किया है। अगर आप अब भी इस स्पेशल कमेटी के फैसले पर अमल करना चाहते हैं तो अभी भी कुछ देर नहीं हुई है। सुबह का भूला हुआ अगर शाम को घर वापस आ जाये तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता है।

अगर इस मामले को पार्लियामेंट में ले जाना हो तो उसको वहां ले जाकर फैसला करना चाहिये और इस मामले को साफ करना चाहिये और इसके मुताल्लिक एक खाका बनाना चाहिये जिसमें यह दर्ज हो कि किस किस्म की आजादी उसको मिलेगी। देहली के मामले में बहस करने के बारे में यह कहना कि उसमें किसी सख्श को अपनी मिनिस्ट्री की दिलचस्पी है एक ऐसी चीज है जो कि मेरे नुक्ते

[मौलवी हफीज उल रहमान]

ख्याल से बिल्कुल बेकार है। आजकल डैमोक्रेसी के जमाने में हर एक सूबा चाहे वह बड़ा हो या छोटा अपनी आजादी चाहता है और उसको हासिल करने के लिये कोशिश में रहता है। इसलिये अगर कोई अपनी आजादी चाहता हो तो उसको यह कहा जाये कि वह अपनी मिनिस्ट्री के लिए ऐसा करता है, यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। और अगर कोई ऐसे मामलों में दिलचस्पी लेता है तो उसका मतलब यह नहीं है कि वह मिनिस्ट्री का ख्वाह है। अगर ब्रिटिश राज्य में किसी को इस तरीके से बांधा गया हो और उसकी आजादी सेन्ट्रल गवर्नमेंट के हाथों में चली गई हो तो अब आजाद हिन्द में इस बात को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है और न ही यह कोई सचाई की बात है। आपको चाहिये कि इस बारे में एक खाका मर्तब करें और अगर जरूरी हो तो इस बात पर पार्लियामेंट में बहस करें। लेकिन मैं यह अर्ज़ करूंगा कि इस बात का हल यहां पर ही होना चाहिये और इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि देहली ईस्ट पंजाब या यू.पी. का एक जुज़ नहीं है। मैं फिर भी आप से यह गुज़ारिश करूंगा कि देहली की अपनी तवारीख है और देहली अपनी मुस्तकिल हैसियत रखती है और उसकी आजादी उसको वापस मिलनी चाहिये। जो हक देहली का राजों और बादशाहों के वक्त से रुका हुआ है वह उसको वापस मिलना चाहिये, ऐसा करने से आप अपनी मौजूदा डैमोक्रेसी को बरकरार रख सकते हैं और जिस तरह से आजकल दूसरे सूबे मसलन पंजाब, यू.पी. और मद्रास अपनी पूरी आजादी हासिल किये हुये हैं और चीफ कमिशनर के हाथों में खिलौने की तरह नहीं हैं; इसी तरह से देहली को भी अपना हक मिलना चाहिये।

जहां तक सिविल सर्विस का ताल्लुक है आप जानते हैं कि उसमें दो हिस्से किये गये हैं, निस्व आदमी पंजाब से लिये जाते हैं और निस्व यू.पी. से। अगर यहां पर कैपिटल सिटी है तो ऐसा नहीं होना चाहिये और यहां पर मुख्तलिफ सिविल सर्विसेज से आदमी लेने चाहियें ताकि वह अपने एडमिनिस्ट्रेशन को चला सकें। अगर आप उस वक्त निस्व पंजाब और निस्व यू.पी. से लेते हैं तो क्या उसका मतलब यह है कि देहली के आदमी एडमिनिस्ट्रेशन को नहीं चला सकते हैं। अगर आप यह तस्लीम इसलिये करते हैं कि इन सूबेजात से जो आदमी लाये जाते हैं वह बेहतरीन खिदमात इन्ताज दे सकते हैं। तो इसका मतलब यह है कि पंजाब और यू.पी. के अलावा और कोई भी उसको नहीं कर सकता है, तो मैं अर्ज़ करूंगा कि देहली इस चीज़ को बर्दाश्त नहीं कर सकती है। इसलिये मैं यह गुजारिश करूंगा कि आप देहली को भी दूसरे सूबों की तरह एक अलग सूबा बनायें और इसको भी ऐसे ही हकूक दें जो कि दूसरे सूबों को हासिल हैं। देहली कम अज़ कम 300 गांवों पर मुशतमल है और दोनों नई और पुरानी देहली इसमें शामिल हैं, इसलिये आप इसको एक अलग सूबा बनाकर उसको पूरी आज़ादी दें।

***अध्यक्षः** बाबू रामनारायण सिंह।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम) : मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि अब इस प्रश्न पर मत ले लिया जाये। इस पर हम काफी बहस कर चुके हैं।

***अध्यक्षः** पर एक माननीय सदस्य को बोलने के लिये मैं पुकार चुका हूं।

*__श्री रामनारायण सिंह__ (बिहार : जनरल): सभापति जी, भाई तजम्मुल हुसैन का कहना है कि रामनारायण सिंह को दिल्ली से क्या मतलब और दिल्ली के सम्बन्ध में वह क्या कहेंगे। बात यह है कि दिल्ली सारे भारतवर्ष की राजधानी है और यहां पर सारे देश के प्रतिनिधि आये हुए हैं। यदि दिल्ली के पैसे और अन्न नहीं तो कम से कम यहां की हवा और पानी तो हम लोग काम में लाते ही हैं। इसलिये सभी सभासदों का यह कर्त्तव्य है और धर्म है कि दिल्ली के लिये उनसे कोई विशेष कार्य न हो सके तो कम से कम यह तो करें कि दिल्ली के साथ न्याय अवश्य हो। और इसके साथ-साथ एक बात और यह है कि सारे भारत वर्ष की राजधानी होने से दिल्ली में सब जगह के लोग आते जाते रहते हैं। इसलिये हम यहां एक ऐसे शासन का बन्दोबस्त करें कि जिसका असर सारे हिन्दुस्तान में पहुंचे। इसलिये यह सबका काम है कि यहां के शासन के प्रबन्ध के लिए एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था सोच विचार कर लावें कि जो देश में और दुनिया में एक नमूना हो जाये। मुझे यह सुनकर दु:ख मालूम होता है कि ईस्ट पंजाब के लोग आते हैं और कहते हैं कि दिल्ली पंजाब को मिले, यू.पी. के लोग कहते हैं कि नहीं यू.पी. को मिले। केन्द्रीय सरकार की तरफ से यह बात आती है कि नहीं दिल्ली को केन्द्रीय सरकार के अधीन रहना चाहिये। साहब यह तो मेरी समझ में नहीं आता कि यह दिल्ली की जमीन के बारे में बात है, यहां के ईंट पत्थर की बात है या कि दिल्ली के आदमियों की भी बात है। यदि हम न्याय करते हैं, यदि हम प्रजातन्त्र की बात करते हैं तो यह नहीं होना चाहिये कि पंजाब के लोगों के कहने के मुताबिक दिल्ली पंजाबियों को मिल जाये या यू.पी. के रहने वालों के कहने के मुताबिक यू.पी. को मिल जाये; यह भी नहीं होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार के अधीन रहे। अधीन रहना कैसी बात है? यहां तो स्वराज्य की बात है। हमें यह देखना चाहिये कि दिल्ली के लोग क्या चाहते हैं। हमें इस पर विचार करना है। यहां पर श्री देशबन्धु गुप्ता दिल्ली के प्रतिनिधि हैं। दिल्ली की आवाज उनके जरिये उठ सकती है। लेकिन यदि उनकी भी बात न मानी जाये तो हमें कोई उज्र नहीं है। दिल्ली में कोई सभा करके या प्लेबीसाइट करके दिल्ली वालों की राय लेकर दिल्ली का प्रबन्ध करना चाहिये। और यहां मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि किसी बड़े या किसी छोटे या किसी बड़ी जमात की राय से भी यह काम नहीं होना चाहिये। यह न्याय का तकाजा है कि दिल्ली वालों की राय से ही दिल्ली में पंचायती राज कायम होना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

*__अध्यक्ष:__ श्री बी. दास।

*__श्री के.एम. मुन्शी__ (बम्बई : जनरल): प्रश्न क्या है इसे सभा ने शायद समझा ही नहीं श्रीमान्। इस तरह कई सदस्य यह कह रहे हैं कि उन्होंने सवाल को सुना ही नहीं।

*__अध्यक्ष:__ आप फिर से इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री बी.दास** (उड़ीसा : जनरल): डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन तथा श्री देशबन्धु गुप्त और पण्डित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का विरोध करता हूं श्रीमान्। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन मैं केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से करता हूं किन्तु इस समय मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि कौन-कौन से प्रान्त ऐसे होंगे जो केन्द्र प्रशासित रहेंगे। इसका फैसला यह सभा आगे चलकर करे। मुझे आश्चर्य है कि पण्डित ठाकुर दास और श्री देशबन्धु जैसे दक्ष वकील ने ऐसा संशोधन यहां उपस्थित किया है और वह यह चाहते हैं कि दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और पन्थ पिप्लोदा जैसे छोटे-छोटे प्रदेशों को राज्य परिषद् में और केन्द्रीय संसद में, संरक्षण के रूप में, विशेषाधिकार के रूप में सुरक्षित स्थान दिये जायें। उनकी यह मांग लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है और पण्डित भार्गव जैसे व्यक्ति से तो इसकी आशा ही नहीं की जा सकती है।

अस्तु, अगर इस प्रश्न पर मुझे अपनी राय देनी हो कि कौन-कौन प्रदेश केन्द्र प्रशासनाधीन रखे जायें तो मेरी समझ से तो केवल अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह को ही, भारत की सुरक्षा के ख्याल से और इसलिये भी कि यहां पूर्वी बंगाल के लोगों को बसाया जा रहा है, केन्द्र प्रशासित प्रदेश के रूप में रखना ठीक है। दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग आदि प्रदेशों को तो विदेशी शासकों ने समय की गति के खिलाफ केन्द्र प्रशासनाधीन रखा था केवल इसलिये भारत में उनका शासन बना रहे और उनकी शान शौकत बनी रहे। मैं दिल्ली को आज तीस वर्षों से जानता हूं और पुरानी दिल्ली से मैं खूब परिचित हूं।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** पुरानी दिल्ली को अब आप भूल गये हैं।

***श्री बी. दास:** उस समय तो आप दिल्ली में थे भी नहीं। नई दिल्ली एवं पुरानी दिल्ली में रहने वाले विदेशी शासकों को सम्मान देने के लिये, उनको पार्टी देने के लिए ही पुरानी दिल्ली की परवरिश की जाती थी। क्या माननीय मित्र यह चाहते हैं कि दिल्ली का सरकारी अफसरों के प्रति जो दास्यभाव था वह सदा के लिए बना रहे? दिल्ली को अलग प्रान्त बनाने की मांग आप क्यों करते हैं? संयुक्तप्रान्त का एक अंग है। यहां की सभ्यता, विचारधारा वही है जो लखनऊ या इलाहाबाद की है। इसे हरियाणा का प्रान्त का अंग न बनाना चाहिये। दिल्ली पर पूर्वी पंजाब ही क्यों अपना दावा पेश करे? दिल्ली की सभ्यता और संस्कृति उनकी सभ्यता एवं संस्कृति से कहां मिलती है? यहां की संस्कृति एवं सभ्यता तो वहीं संयुक्तप्रान्त की है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** यों कहिये कि संयुक्त प्रान्त की संस्कृति वही है जो दिल्ली की है।

***श्री बी. दास:** तब आप यू.पी. जाइये। कल शाम "इवनिंग न्यूज़" में राइट-एंगिल की इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे बड़ी ही खुशी हुई थी:

> "नई दिल्ली, अब भी बढ़ती हुई गन्दी बस्तियों के प्रवाह से बचाई जा सकती है। यह घोषणा करते हुये कि नई दिल्ली सर्वथा केन्द्रीय सरकार के अधीन रहेगी, प्रधान मंत्री ने इसे बचाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।"

आगे चलकर वह कहता है:–

"चांदनी चौक के स्तर वाले म्युनिसिपल कमिश्नरों को इसके काम में दखल देने का मौका न दिया जायेगा। हां, यह भले ही हो कि उनमें से कोई साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर के रूप में या कुछ लोग मंत्री नहीं तो सलाहकार के रूप में ही सही शान दिखाकर अपना शौक पूरा कर लें।"

अधिकारियों के अधीन यहां के म्युनिसिपल शासन का यही स्तर है जिसे मैं आज प्राय: 32 वर्षों से देखता आ रहा हूं और मैं इस बात का सदा लज्जाबोध करता रहा हूं कि दिल्ली की मनोदशा इस तरह दास्यपूर्ण है। मेरा विचार तो यही है कि पुरानी दिल्ली को नई दिल्ली से अलग करके उसे संयुक्तप्रान्त में मिला देना चाहिये।

पूर्वी पंजाब को चाहिये कि वह अपनी सभ्यता एवं परम्परा का निर्माण करे। ये लोग डरते हैं और व्यर्थ ही यह मांग कर रहे हैं। ये लोग सुचित्त होकर न अपना न्यायालय बना रहे हैं और न अपनी राजधानी के लिये एक नगरी का ही निर्माण कर रहे हैं। इनके मंत्री अपने प्रदेश से दूर सदा शिमला में विराजमान रहते हैं। क्यों नहीं वहां से उतरकर ये लोग चन्डीगढ़ में अपनी राजधानी बनाते हैं और क्यों नहीं ये लोग अपनी एक सभ्यता का और जीवनस्तर का निर्माण करते हैं? आखिर ये लोग इस बात की आशा तो नहीं कर सकते हैं कि दिल्ली उनको दे दी जायेगी ताकि बिना प्रयास उनको एक चीज यों ही बे मतलब मिल जायेगी। आज दो वर्ष बीत चुके पर इन लोगों ने अपनी राजधानी बनाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया। इसके लिए इनकी तथा इनके मंत्रियों की मैं अवश्य ही निन्दा करूंगा।

जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का सम्बन्ध है, इसका सधारण तो इसलिये किया जाता था कि राजस्थान के शक्तिशाली राजाओं पर रोबताब बना रहे और वह डरते रहें। राजस्थानी रियासतों को एक संघ के रूप में रखने के निश्चय के साथ ही हम अजमेर-मेरवाड़ा और पन्थ पिपलोदा को राजस्थान संघ में मिला देना चाहिये था और अजमेर को हमेशा के लिये या आंशिक रूप में उसकी राजधानी बना देना था। पर ऐसा न करके हम वही पुरानी असामयिक व्यवस्था अभी भी चलने दे रहे हैं।

जहां तक कुर्ग का सम्बन्ध है, यहां के 40 हजार निवासी समस्त भारत पर शासन कर रहे हैं। मैसूर और कुर्ग के लोग मद्रास सरकार में भी ऊंचे से ऊंचे पदों पर हैं। हमारी सेना के अधिकांश जनरल हमें कुर्ग से मिलते हैं। सेना के सभी कैरियप्पा, थिम्माया और अन्य हाकिम हमें कुर्ग से ही मिलते हैं। चाय बगान के युरोपियन साहिबों के लिए कुर्ग को एक अलग युनिट (इकाई) के रूप में रखा गया था। किन्तु लोकतन्त्र की हामी यह सभा भी क्या उसी व्यवस्था को बनाये रखना चाहती है? कुर्ग को मैसूर में मिला देना चाहिये क्योंकि सांस्कृतिक एवं नैतिक दृष्टि से यह मैसूर का ही एक अंग है। समय आ गया है कि कुर्ग को आप मैसूर के साथ मिला दें।

हां, कुर्ग के बचाव में एक बात मैं जरूर कहूंगा। वह केन्द्र से कोई रकम दान में नहीं लेता है। दिल्ली-जिसकी आबादी 1936 में 6 लाख थी–पर कल

[श्री बी. दास]

श्री देशबन्धु गुप्ता ने बताया कि इसकी आबादी अब 20 लाख है क्योंकि सीमाप्रान्त, पश्चिमी और पूर्वी पंजाब के उजड़े हुये वे घरबार के लोग, अब यहां आकर रहने लगे हैं—केवल सात सौ गांव है और केन्द्र से प्रति वर्ष उसे डेढ़ करोड़ की आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। हमें यहां की उस आबादी से कोई मतलब नहीं है जो बेघरबार होकर चन्द दिनों के लिए यहां आ गई है। माननीय मित्र देशबन्धु गुप्त मेरी इस बात से सहमत होंगे कि डेढ़ करोड़ की आर्थिक सहायता दिल्ली को केन्द्र से मिलता है इसमें यह रकम शामिल नहीं है जो सहायता के रूप में यहां के विभिन्न शरणार्थी शिविरों को दी जाती है। फिर इसके अलावा भी दिल्ली को सहायता के रूप में साढ़े तीन करोड़ रुपये एक मुश्त मिल चुके हैं। जब केन्द्र और किसी भी प्रदेश को कोई आर्थिक साहाय्य नहीं देता है तो दिल्ली को ही वह इतनी बड़ी रकमें मदद में क्यों देगा? और फिर बीस लाख की आबादी एक पृथक प्रान्त की मांग ही क्योंकर कर सकती है? दिल्ली के लोग अगर अपनी संस्कृति चाहते हैं तो उन्हें संयुक्त प्रान्त में मिल जाना चाहिये। उनके प्रतिनिधि लाला देशबन्धु गुप्त तो जन्मना पंजाबी हैं और शायद अब अलग अपना हरियाणा प्रान्त बनाना चाहते हैं। हरियाना की गायों की बाबत तो मैं सुन चुका था पर हरियाना प्रान्त की चर्चा मुझे पहली बार सुनाई पड़ी थी गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान में जहां पंजाब के कई पुराने लोग यह चाहते थे कि संयुक्त प्रान्त के कुछ इलाकों को हरियाना प्रदेश में मिलाकर उसे एक अलग प्रान्त बना दिया जाये और पश्चिमी पंजाब से इस तरह उसे पृथक कर दिया जाये। पर अब तो दैवादुर्विपाक से जो देश का विभाजन हुआ है उससे यह समस्या स्वत: हल हो गई है। अब तो हरियाना प्रान्त बनाने का कोई सवाल ही नहीं रह गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से दिल्ली संयुक्त प्रांत का अंग है। कल हमारे प्रधान मंत्री ने यहां एक वक्तव्य देकर सभा को तथा माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्ता को इस बात का स्मरण दिलाया है कि अब कई परिवर्तन हो गये हैं। फिर दिल्ली को अलग एक लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त बनाने की बात श्री गुप्त अब किस कारण के आधार पर कर रहे हैं? संरक्षित स्थानों की और विशेषाधिकारों की व्यवस्था को आपने अब समाप्त कर दिया है। फिर दिल्ली को पृथक प्रान्त बनाने की मांग क्यों?

***श्री देशबन्धु गुप्त:** इसलिये कि आप दिल्ली वालों को सामान्य अधिकारों से वंचित रख रहे हैं।

***श्री बी. दास:** नहीं ऐसी बात नहीं है। उनके पुराने शासकों ने जरूर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा था। आज तो प्रश्न यह है कि हम सबको बराबर अधिकार प्राप्त होने चाहियें। दिल्ली के लिये उचित यह होगा कि वह संयुक्तप्रान्त में मिल जाये। सवाल सिर्फ यह नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन किया जाये। इससे होता यह है कि कम आय वाले प्रदेशों को आर्थिक साहाय्य प्रदान के लिए यह सभा वचनबद्ध हो जाती है और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों को हमें एक समुन्नत शासन स्तर पर रखना होगा। किन्तु जैसा मैंने पहले कहा है अब केवल अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह ही केन्द्र प्रशासित प्रदेश रह जायेंगे और संसद् के दोनों सदनों में उनका प्रतिनिधि रहेगा केन्द्रीय गृह मंत्री जिसके अधीन वह प्रदेश.....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** (बिहार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। हम यहां संविधान के भाग सात पर विचार कर रहे हैं और न कि अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह के सम्बन्ध में।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य वस्तुतः अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह के बारे में नहीं बोल रहे हैं बल्कि वह दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा तथा अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में ही विचार व्यक्त कर रहे हैं।

***श्री बी. दासः** माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद यह देखेंगे कि एक साल के अन्दर, इन द्वीपसमूहों को छोड़कर जिनका कि मैंने यहां उल्लेख किया है और अन्य कोई भी ऐसा प्रदेश न रह जायेगा जो केन्द्र प्रशासित हो। इन केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की संवैधानिक स्थिति पर हम यहां विचार कर रहे हैं और आशा है सभा बुद्धि से काम लेगी और अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूहों को छोड़कर अन्य कोई केन्द्र प्रशासित प्रदेश यहां न रहने देगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इस एक छोटे से प्रश्न ने यहां सभा में वस्तुतः एक तूफान खड़ा कर दिया है। हमें इस प्रश्न पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना होगा। सभा के सामने दो परस्पर विरोधी सुझाव रखे गये हैं। एक सुझाव यह है कि दिल्ली को केन्द्र प्रशासन से हटाकर पंजाब में मिला देना चाहिये। उसके प्रतिकूल दूसरा सुझाव यह है कि पंजाब को ही दिल्ली में मिला दिया जाये। मेरा कहना यह है कि वस्तुतः दोनों ही बातें एक हैं और इसलिये इस पर ऐसा विवाद उठना ही नहीं चाहिये था। मैं समझता हूं कि यह दोनों ही सुझाव एक हैं। आप यह कहिये कि पति पत्नी से विवाह करे या कहिये पत्नी पति से विवाह करे, बात एक ही है। मेरी समझ से हमें इस प्रश्न को ज्यों का त्यों छोड़ देना चाहिये।

मेरा कहना यह है कि इस प्रश्न पर हमें व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। पुरानी या नई दिल्ली के पीछे हजारों वर्ष का इतिहास है। यह भारत सरकार की राजधानी है। यहां बहु-संख्यक राजदूतों और विदेशी प्रतिनिधियों के दफ्तर हैं। यहीं अपने लोकतंत्र के विधान-मण्डल की, संसद् के दोनों सदनों की बैठक हुआ करेगी और संसद् के सदस्य यहीं ठहरेंगे। इस दोनों नगरों को यानी नई और पुरानी दिल्ली को अगर किसी पड़ौसी प्रान्त के साथ कर दिया जाता है तो कठिनाई यह होगी कि केन्द्रीय सरकार को, यहां रहने वाले उच्च-पदस्थ विदेशीय तथा स्थानीय प्राधिकारियों को हर बात के लिय प्रान्तीय सरकार को कहना पड़ेगा जिसकी राजधानी अन्यत्र कहीं दूर होगी और इन लोगों के लिये यह एक बड़ी ही असुविधा की स्थिति रहेगी। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि दिल्ली प्रान्त को तीन भागों में बांट दिया जाये। जमुना के पूर्ववर्ती गांवों को संयुक्त प्रान्त को दे दिया जाये। भौगोलिक दृष्टि से यह काम उत्तम होगा। उस हालत में दिल्ली की सीमा होगी यमुना जो एक प्राकृतिक सीमा होगी। जहां तक दिल्ली के आस-पास के अन्य गांवों का सम्बन्ध है उन्हें पूर्वी पंजाब में मिला देना चाहिये। किन्तु पुरानी और नई दिल्ली दोनों को मिलाकर एक नगर बना देना चाहिये जिसकी व्यवस्था एक कारपोरेशन करे। यत्र तत्र नगरपालिका निकायों के छोटे-छोटे घटक रखे जा सकते हैं पर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

समूची दिल्ली कारपोरेशन के अधीन ही रहनी चाहिये। नई और पुरानी दिल्ली को प्रान्तीय क्षेत्र का अंग न रख उसे सर्वथा पृथक स्वतंत्र नगर के रूप में रखना चाहिये।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ (मद्रास: जनरल): अब इस प्रश्न पर मत लेना चहिये। श्रीमान्।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब राय ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं संशोधनों पर राय लेता हूं। पहला संशोधन है नं. 46 का जिसे प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है।

प्रस्ताव यह है:

"ऊपर के संशोधन नं. 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) में, 'Notwithstanding anything contained in this Constitution' " (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

*__श्री देशबन्धु गुप्त:__ पहले इसके कि संशोधनों पर राय ली जाये, मैं अनुरोध करूंगा कि डॉ. अम्बेडकर को, बहस का जवाब देने की कृपया अनुमति प्रदान की जाये।

*__अध्यक्ष:__ मुझे खेद है, डॉ. अम्बेडकर से यह कहना ही भूल गया है कि बहस का वह जवाब दें। यदि डॉ. अम्बेडकर कुछ कहना चाहते हों तो सहर्ष वह कह सकते हैं। संशोधन पर फिर एक बार मैं राय ले लूंगा।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ सच तो यह है कि कल प्रधान मंत्री ने बहस का जवाब प्राय: दे दिया है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्त के संशोधन के सम्बंध में मुझे यह कहना है कि मैं अच्छी तरह जानता हूं यह स्थल ऐसा नहीं उनका संशोधन समुचित रूप से पेश किया जा सकता हो। इस संशोधन में एक सिद्धान्त का प्रश्न उठता है और वह यह है कि कतिपय क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व में इससे वजन यानी पासंघ मिल जाता है। सभा को याद होगा कि एक समय यहां सभा में प्रतिनिधित्व में पासंघ देने के सवाल पर काफी बहस हुई थी और सभा ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था कि किसी को भी प्रतिनिधित्व में पासंघ न दिया जायेगा। किन्तु मैं यह कहूंगा कि अनुच्छेद 67 के आधार पर जिसमें कि प्रतिनिधान के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त रखे गये हैं, ऐसे प्रदेशों के लिये जिन्हें इन नियमों के कारण, एक भी स्थान

न मिल पाता हो, कुछ न कुछ विशेष प्रावधान रखना हमारे लिये सम्भवतः आवश्यक होगा। आखिर किसी भी प्रदेश को आप प्रतिनिधित्व से इसलिये वंचित रख सकते हैं कि गणित के नियम के हिसाब से उसे स्थान नहीं मिल पाता है। उस प्रसंग में इस प्रश्न पर हमें विचार करना होगा और उस समय मैं यह कह सकता हूं कि जब ऐसा कोई प्रदेश अस्तित्व में आयेगा और मसौदा-समिति को उसके प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में प्रावधान बनाने के लिए कहा जायेगा तो इस सम्पूर्ण प्रश्न पर हमें विचार करना होगा और सम्भवतः एक नया अनुच्छेद 67-क संविधान में हम रख लें। इससे अधिक इस सम्बन्ध में इस समय मैं कुछ नहीं कह सकता।

*__अध्यक्षः__ अब मैं संशोधन पर राय लेता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मैं पुनः मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) में, 'Notwithstanding anything contained in this Constitution (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

मेरा ख्याल है कि विरोधी पक्ष वाले जीत गये।

*__श्री महावीर त्यागीः__ ऐसा मालूम होता है कि इस सम्बन्ध में कुछ गलतफहमी हो गई है श्रीमान्। प्रस्ताव पर कृपया फिर मत लीजिये।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है:-

"कि ऊपर के संशोधन नं 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद के खण्ड (1) में, Notwithstanding anything contained in this Constitution (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

मेरा ख्याल है कि समर्थकों की जीत हुई।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

*__अध्यक्षः__ अब श्री देशबन्धु गुप्त के संशोधन पर मैं राय लूंगा।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ माननीय प्रधान मंत्री के कल के वक्तव्य को और डॉ. अम्बेडकर के आज के वक्तव्य को देखते हुये इस समय मैं अपने संशोधन पर जोर देना नहीं चाहता। आशा करता हूं कि समुचित मौके पर जब अनुच्छेद 67 पर पुनरीक्षण किया जायेगा, इस सम्बन्ध में एक समुचित प्रावधान अवश्य रख दिया जायेगा।

*__अध्यक्षः__ क्या सभा माननीय सदस्य को संशोधन वापस लेने की अनुमति देती है?

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन द्वारा संशोधित अनुच्छेद 213 पर अब मैं मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 213 को संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 213, संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 213-क

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 213-क को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 213 के आगे निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'213 High Courts for States in Part II of the First Schedule.

(1) Parliament may by law constitute a High Court for a State for the time being specified in Part II of the First Schedule or declare any Court in any such State to be a High Court for the purposes of this Constitution.

(2) The provisions of Chapter VII of Part VI of this Constitution shall apply in relation to every High Court referred to in clause (1) of this article as they apply in relation to a High Court referred to in article 191 of this Consitution subject to such modifications or exceptions as Parliament may by law provide.

(3) Subject to the provisions of this Constitution and to any provisions of any law of the appropriate Legislature made by virtue of the powers conferred on that Legislature by or under this Constitution, every High Court exercising jurisdiction immediately before the commencement of this Constitution in relation to any State for the time being specified in Part II of the First Schedule or any area included therein shall continue to exercise such jurisdiction in relation to that State or area after such commencement.

(4) Nothing in this article derogates from the power of Parliament to extend or exclude the jurisdiction of a

High Court in any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule to, or from, any State for the time being specified in Part II of that Schedule or any area included within that State.' "

[213 (1) संसद्, विधि द्वारा प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य के लिये उच्च-न्यायालय गठित कर सकेगी अथवा ऐसे किसी राज्य में के किसी न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उच्च न्यायालय घोषित कर सकेगी।

प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों के उच्च-न्यायालय

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च-न्यायालय के सम्बन्ध में, इस संविधान के भाग 6 के अध्याय 7 के उपबन्ध, ऐसे रूपभेदों और अपवादों के अधीन रहकर, जैसे कि संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे इस संविधान के अनुच्छेद 191 में निर्दिष्ट किसी उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

(3) इस संविधान के उपबन्धों के, तथा इस संविधान के द्वारा या अधीन समुचित विधान-मण्डल की दी हुई शक्तियों के आधार पर उस विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के, अधीन रहते हुये प्रत्येक उच्च-न्यायालय जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य के या उसके अंतर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था वह न्यायालय ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् उस राज्य या क्षेत्र के सम्बन्ध में वैसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता रहेगा।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात प्रथम अनुसूची के भाग 1 या 3 में उल्लिखित किसी राज्य में के किसी उच्च-न्यायालय के क्षेत्राधिकार को उस अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य पर अथवा उस राज्य के अंतर्गत किसी क्षेत्र पर विस्तृत करने की, या उससे अपवर्जित करने की संसद् की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करती।

यह बात याद होगी श्रीमान्, कि जब इस सभा ने भाग 1 के राज्यों के संविधान के सम्बन्ध में विचार किया था तो उस समय यह तय हुआ था कि प्रत्येक राज्य का एक उच्च-न्यायालय होगा। भाग 2 में जो राज्य हैं वह भी राज्य ही हैं इसलिये भाग 1 के राज्यों के लिये जो प्रावधान लागू होता है, यानी यह प्रावधान कि हर राज्य का अपना उच्च-न्यायालय होगा, वह भाग 2 के राज्यों के लिये भी जरूर लागू होगा। दुर्भाग्य से यह प्रावधान संविधान के प्रस्तुत मसौदे में नहीं रखा गया है। इसलिये यह जरूरी हो गया है कि अनुच्छेद 213-क को यहां रखा जाये ताकि भाग 2 में दिये गये राज्यों के लिये उच्च-न्यायालय का प्रावधान हो सके या अगर उस राज्य में कोई उच्च-न्यायालय है तो उसे उच्च-न्यायालय माना जा सके। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि अगर भाग 2 में के राज्य के किसी विशेष क्षेत्र में कोई उच्च-न्यायालय नहीं वर्तमान है या वहां

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

उच्च-न्यायालय का निर्माण करना सम्भव नहीं है तो संसद को यह घोषित करने का अधिकार हो कि किसी पार्श्ववर्ती प्रदेश के किसी अन्य न्यायालय को ही उस विशेष क्षेत्र के प्रयोजनों के लिए उच्च-न्यायालय समझा जायेगा इस अनुच्छेद का यही अभिप्राय है।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर और कोई संशोधन नहीं है। कोई सदस्य इसके सम्बन्ध में कुछ बोलना चाहता हूं? तो अब मैं इस पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है

"कि नवीन अनुच्छेद 213-क को संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नवीन अनुच्छेद 213-क को संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 214

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 214 को अब लिया जाता है। इस पर एक संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का आया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अपने संशोधनों को नहीं पेश कर रहा हूं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** तो अब हम संशोधन नं. 52 को लेते हैं जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2728 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 214 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'214. (1) Until Parliament by law otherwise provides, the constitution, powers and functions of the Coorg Legislative Council shall be the same as they were immediately before the commencement of this Constitution.

(2) The arrangements with respect to revenues collected in Coorg and expenses in respect of Coorg shall, until other provision is made in this behalf by the President by order, continue unchanged.' "

[214. (1) जब तक कि संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध नहीं करती तब तक कुर्ग की विधान-परिषद् का गठन, शक्तियां और कृत्य वैसे ही होंगे जैसे कि वे इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले थे।

(2) कुर्ग में संगृहीत राजस्व के, तथा कुर्ग के सम्बन्ध में व्ययों के, विषय में प्रबन्ध तब तक अपरिवर्तित रहेंगे जब तक कि इस बारे में राष्ट्रपति आदेश द्वारा, अन्य उपबन्ध नहीं करता।]

इस अनुच्छेद में सिवाय इसके और कोई नई बात नहीं है कि दोनों हिस्सों को इसमें अलग-अलग रखा गया है जबकि मूल अनुच्छेद में दोनों को एक साथ मिलाकर रखा गया था।

***अध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 142 जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** अब आते हैं संशोधन नं. 181 और 190 जो प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है। वह सभा में उपस्थित नहीं है।

अनुच्छेद 214 पर और कोई संशोधन अब नहीं रह जाता है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सदस्य कुछ बोलना चाहते हैं?

अब मैं अनुच्छेद पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 214 को संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 214 को संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 275

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 275 पर आते हैं। संशोधन नं. 111 को डॉ. अम्बेडकर अब पेश करेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 275 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

"That for article 275, the following article be substituted:–

'275. (1) If the President is satisfied that a grave emergency exists whereby the security of India or of any part of the territory thereof is threatened, whether by war or external aggression or internal disturbance, he may, by Proclamation make a declaration to that effect.

Proclamation of Emergency

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) A Proclamation issued under clause (1) of this article (in this Constitution referred to as 'a Proclamation of Emergency')—

(a) may be revoked by a subsequent Proclamation;

(b) shall be laid before each House of Parliament;

(c) shall cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament.

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in sub-clause (c) of this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(3) A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by war or by external aggression or by internal disturbance may be made before the actual occurrence of war or of any such aggression or disturbance if the President is satisfied that there is immiment danger thereof.

आयात की उद्घोषणा

[275. (1) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा (जो इस संविधान में आयात उद्घोषणा के नाम से निर्दिष्ट की गई है:

(क) उत्तरवर्ती उदघोषणा द्वारा विसंहत की जा सकेगी;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी;

(ग) दो माह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह उस अवधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये;

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक सभा का विघटन इस खण्ड के उपखण्ड (ग) में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उस कालावधि की समाप्ति के पहिले लोक सभा द्वारा पारित एक संकल्प के द्वारा उस उद्घोषणा का अनुमोदन नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम पर बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उस तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला एक संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता है।

(3) यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति का संकट सन्निकट है तो युद्ध अथवा ऐसा कोई आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है की जा सकेगी।]

यह अनुच्छेद मसौदे के अनुच्छेद 275 से बिल्कुल मिलता हुआ है। इस संशोधन द्वारा जो परिवर्तन इसमें किये जा रहे हैं वह बहुत ही थोड़े हैं। पहला परिवर्तन किया गया है इसके खण्ड (1) में। मूल अनुच्छेद में "युद्ध या आन्तरिक हिंसा" शब्द रखे गये थे और यहां इनकी जगह "युद्ध, या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्द रखे गये हैं। सोचा यह गया है कि 'आन्तरिक हिंसा' के स्थान पर इन शब्दों को रखना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि आन्तरिक हिंसा में बाह्य आक्रमण नहीं शामिल किया जा सकता है और बाह्य आक्रमण को युद्ध भी नहीं कहा जा सकता है।

दूसरा परिवर्तन जो किया गया है वह है खण्ड (2) के उपखण्ड (ग) में। मूल अनुच्छेद में यह कहा गया था कि 6 मास की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। पर यहां यह कहा गया है कि दो मास की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। 6 मास की अवधि यहां बहुत लम्बी समझी गई।

संशोधन के द्वारा जो परन्तुक यहां रखा जा रहा है वह सर्वथा एक नई बात है। मूल अनुच्छेद में यह नहीं थी। इस परन्तुक द्वारा प्रावधान यह किया गया है कि यदि लोक सभा का विघटन हो चुकने पर उद्घोषणा निकाली गई है या पुरानी सभा के विघटन और नये विधानमण्डल के निर्वाचन के मध्यवर्ती काल में अगर उद्घोषणा निकाली गई है तो नया विधान-मण्डल तीस दिन की अवधि के अन्दर उस उद्घोषणा का अनुमोदन कर सकता है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अनुच्छेद का अंतिम खण्ड स्वत: स्पष्ट है और इसके सम्बन्ध में कुछ समझाने की जरूरत नहीं है। खण्ड (1) का जो मूल अभिप्राय है उसी की पूर्ति का प्रावधान अन्तिम खण्ड द्वारा किया गया है। आपात विद्यमान न हो तो भी राष्ट्रपति को अगर वह समाधान हो जाये कि आपात का संकट सन्निकट है तो वह आपात की उद्घोषणा इस खण्ड के अधीन कर सकेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मेरे नाम से जो संशोधन आये हैं उनमें से किसी को भी मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): मेरे नाम से जो संशोधन हैं उन्हें अगर अनुमति हो तो एक साथ ही पेश कर दूं। इस छपी सूची में भी मेरे कई संशोधन दिये हुये हैं।

***अध्यक्ष:** उनको अभी पेश करना जरूरी है क्या?

***श्री एच.वी. कामत** कुछ अंशों को छोड़कर यह नया अनुच्छेद पुराने अनुच्छेद से बिल्कुल मिलता हुआ है सुतरां मेरे कई संशोधन जो सूची में है। वह बिल्कुल प्रासंगिक हो जाते हैं।

***अध्यक्ष:** नं. 2989 में केवल शाब्दिक परिवर्तन की बात है। यही बात 2990 के साथ है। नं. 2994 का यहां सवाल ही नहीं उठता है।

***श्री एच.वी. कामत:** नं. 2994 और 2995 को तो मैं पेश ही नहीं करना चाहता हूं।

मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'may be revoked' (प्रतिसंहत की जा सकेगी) शब्दों के आगे 'or varied' (या परिवर्तित की जा सकेगी) शब्द रखे जाये।"

अब मैं लेता हूं दूसरे सप्ताह की सूची 2 के संशोधनों को।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (1) में 'President' शब्द के आगे 'acting upon the advice of his Council of Ministers' शब्द रखे जायें।' अब मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) में 'by war or by external aggression or' (युद्ध या बाह्य आक्रमण) शब्दों को हटा दिया जाये"।

इसके बाद मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) 'occurrence of war or of any such aggression or disturbances' शब्दों की जगह 'occurrence of such disturbance' शब्द रखे जायें।"

इन संशोधनों पर कुछ कहने से पहले आपकी अनुमति हो श्रीमान्, तो इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद 275 के सम्बन्ध में ही आम तौर पर चन्द बातें कहूंगा। दुनियां के प्रायः सभी लोकतन्त्रीय व्यवस्था वाले देशों के राजतंत्रीय एवं गणतंत्रीय दोनों ही संविधानों को मैंने छान डाला है पर किसी भी लोकतन्त्रीय देश के संविधान में मुझे ऐसे आपात प्रावधान नहीं मिले जैसे कि इस अध्याय में यहां रखे गये हैं।

जहां तक मैं याद कर पाता हूं इसके अधिक से अधिक सन्निकट पहुंचने वाले प्रावधान तीसरी रीख (जर्मन पार्लियामेंट) के वाइमार संविधान में ही पाये जाते हैं जिसे हिटलर ने इन्हीं प्रावधानों से लाभ उठाकर समाप्त कर दिया था। अब वाइमार संविधान अस्तित्व में नहीं रह गया है और उसकी जगह बान संविधान ने ले ली है। पर वाइमार संविधान में जो प्रावधान थे वह अपने संविधान में रखे गये इन आपात प्रावधानों की तुलना में कुछ भी नहीं थे। इसलिये सभा से आग्रह करूंगा कि वह इस अध्याय पर विचार करने में पूरा ध्यान दे और अपने पक्व अनुमान और समस्त बुद्धिमत्ता के साथ इस पर विचार करे। इस अध्याय के प्रावधानों द्वारा उत्तरोत्तर अधिकारों का इस तरह अपहरण होता गया है कि अध्याय समाप्त होते। संविधान के भाग तीन द्वारा प्रदत्त प्रायः सभी मूल अधिकारों का भी अभिशून्यन हो जाता है। आगे चलकर जबकि सम्बंधित अनुच्छेद आयेगा मैं इस बात पर प्रकाश डालूंगा। फिलहाल तो अनुच्छेद 265 से ही हमारा मतलब है।

जैसाकि डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, सभा के समक्ष जो संशोधित मसौदा रखा गया है उसमें दो या तीन ही बातें ऐसी हैं जो मूल मसौदे से भिन्न हैं। कहने का मतलब यह है कि मूल मसौदे में केवल दो या तीन परिवर्तन किये गये हैं। पहला परिवर्तन यह है कि "युद्ध" शब्द के साथ "बाह्य आक्रमण" शब्द भी जोड़ दिया गया है। आजकल जबकि बिना युद्ध की घोषणा के ही तोपें चल पड़ती हैं, सम्भव है कि बिना युद्ध की घोषणा के भी बाह्य आक्रमण कहीं से हो जाये। दूसरा विश्व युद्ध इसी तरह शुरू हुआ था। हिटलर ने पोलैण्ड के साथ युद्ध शुरू होने की भी घोषणा नहीं की थी किन्तु आगे चलकर चेम्बरलेन ने जर्मनी के साथ युद्ध प्रारम्भ होने की घोषणा की।

चीन के साथ जापान ने जो युद्ध 1931 से चलाया वह भी बिना घोषणा के ही चलता रहा। इसलिये प्रस्तावित परिवर्तन सर्वथा आवश्यक है और आज की दुनिया का जो रवैया है उसको देखते हुये यह उचित भी है क्योंकि आज का युद्ध बाह्य आक्रमण से भिन्न हो सकता है। इसलिये मेरी समझ से यह परिवर्तन आवश्यक है।

[श्री एच.वी. कामत]

दूसरा परिवर्तन जो किया है वह है अवधि के सम्बन्ध में। मूल अनुच्छेद 265 में आपात उद्घोषणा के प्रवर्तन की अवधि 6 माह की रखी गई थी किन्तु इसे हटाकर यहां दो माह कर दिया गया है। इसको देखते हुये मैंने अपना संशोधन पेश किया जिसमें 6 सप्ताह की अवधि रखी गई थी।

और दूसरे जो परिवर्तन हैं वह मामूली किस्म के हैं मसलन "आंतरिक अशान्ति" के स्थान पर "आन्तरिक हिंसा" शब्द रखे गये हैं।

नये मसौदे के प्रावधानों पर मैंने जो संशोधन रखे हैं उन्हें अब मैं एक-एक करके लेता हूं। मेरा पहला संशोधन इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के सम्बन्ध में जिसमें उद्घोषणा के केवल प्रतिसंहरण की बात कही गई है। सम्भव है परिस्थितियां इस तरह बदल जायें कि उद्घोषणा को पूर्णतः प्रतिसंहत न करके उसमें कुछ परिवर्तन मात्र कर दिया जाये इसलिए मेरी समझ से तो उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के साथ-साथ उसमें परिवर्तन करने की बात का रख देना यहां अधिक उपयुक्त होगा।

मेरा दूसरा संशोधन नं. 147 एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात के सम्बन्ध में है और मैं चाहूंगा कि सभा इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। मसौदे में यह कहा गया है कि अगर राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि आपात विद्यमान है तो वह उसकी उद्घोषणा निकाल सकता है। जब सभा अनुच्छेद 102 पर विचार कर रही थी श्रीमान् जिसमें राष्ट्रपति के अध्यादेश सम्बन्धी शक्तियों का उल्लेख है तो आपने खुद यह महत्वपूर्ण प्रश्न यहां उठाया था कि आया इस संविधान के अधीन राष्ट्रपति अपने मंत्रिपरिषद् की राय मानने के लिए बाध्य है या नहीं राष्ट्रपति के प्रकार्यों के पालन में उसे सहायता और परामर्श देने के लिए उसके लिये एक मंत्रि परिषद् की व्यवस्था संविधान में की गई है। पर राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक नहीं बताया गया है कि वह मंत्रिपरिषद की राय के अनुसार ही चलेगा। उस प्रश्न के उत्तर में डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि मसौदा-समिति उस प्रश्न पर विचार करेगी और उस सम्बन्ध में यहां आवश्यक संशोधन उपस्थित करेगी। किन्तु जहां तक मैं जानता हूं सभा में इस दिशा में कोई भी संशोधन अभी तक मसौदा-समिति की ओर से नहीं आया है। इसलिये यह कमी ज्यों की त्यों अभी भी बनी हुई है। आज जिस अनुच्छेद पर हम यहां विचार कर रहे हैं उसमें राष्ट्रपति को ऐसी असाधारण शक्तियां दी गई हैं कि वैसी शक्तियां, जैसा कि मैंने कहा है, दुनिया के किसी भी लोकतंत्रीय देश में—चाहे वहां राजतंत्रात्मक व्यवस्था हो या गणतंत्रात्मक—किसी भी अधिशासी प्रमुख को, चाहे वह नाममात्र के लिए प्रमुख हो या केवल दिखावे के लिए प्रमुख हो या अन्य किसी तरह का प्रमुख हो, नहीं दी गई हैं। इसलिए संरक्षण के लिए इस प्रावधान का रखना जिसका कि मैंने सुझाव दिया है बहुत जरूरी है। राष्ट्रपति को अपनी ही मरजी से काम न करना चाहिये बल्कि उसके लिए लाजिमी होना चाहिये कि मंत्रिपरिषद् की राय के अनुसार ही वह चले। अगर मंत्रिवर्ग उसे यह राय देते हैं कि गम्भीर आपात विद्यमान है तभी संविधान के अधीन उस आशय की उद्घोषणा निकालने की शक्ति उसे रहनी चाहिये। उसमें यह अधिकार हमें न निहित करना चाहिये कि केवल

इस आधार पर उसको समाधान हो गये हैं, वह आयात की उद्घोषणा कर सकता है। यह न केवल बहस-मुबाहिसे की बात है बल्कि यह एक गम्भीर बात है। ईश्वर न करे ऐसा हो, पर यह सम्भव है कि बहुत से मामलों में राष्ट्रपति एवं मंत्रिपरिषद् में मतैक्य न हो। उन दोनों में मतभेद और कलह खड़ा हो सकता है और आपात की स्थिति आने पर सम्भव है, राष्ट्रपति मंत्रियों से परामर्श लिये बिना ही उद्घोषणा निकाल दे। अगर ऐसा होता है तो देश पर क्या विपत्ति आ सकती है, इसे सोचकर ही मैं कांप उठता हूं। यदि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की अवहेलना करके स्वेच्छा से काम करता है तो इससे पहली बात तो यह होगी कि तानाशाही का पथ प्रशस्त हो जायेगा और फिर क्रांति, विद्रोह जैसी भयंकर और भी कई बातें हो सकती हैं। राजनीति के विद्यार्थी इसे मंजूर करते है कि तीसरी जर्मन रीख के वाइमार संविधान के प्रावधान, जिनके द्वारा अधिशासी प्रमुख को व्यापक शक्तियां दी गई थीं, तथा विघटन सम्बन्धी शक्ति के प्रयोग ही हिटलर के उत्थान में सहायक हुये थे और उसके लिए तानाशाही का पथ प्रशस्त किया था, जिसका परिणाम हम सबको विदित है। वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 की तुलना में अध्याय 11 के हमारे ये प्रावधान कहीं अधिक भयानक हैं। इसलिए मैं अपील करूंगा कि इस अध्याय को हमें जल्दी में न पास करना चाहिये। इसमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि न केवल व्यक्ति को स्वतन्त्रता ही बल्कि संघबद्ध इकाइयों की स्वतंत्रता और शक्तियां भी सुरक्षित रहें और उन पर अनावश्यक दबाव न पड़े। अध्याय में हमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि इस संविधान द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रतायें वास्तविक रहें न कि केवल दिखावे के लिये।

अब इस सिलसिले में एक बात कहना चाहता हूं श्रीमान्। संविधान में हम राष्ट्रपति के अध्यादेश निर्माण सम्बन्धी अधिकार का प्रावधान पहले ही कर चुके हैं। संसद् जब सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि परिस्थिति ऐसी है कि उसमें अध्यादेश निकालना जरूरी है तो वह ऐसा कर सकता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि ऐसे अधिकारों का दुरुपयोग किस तरह किया जा सकता है। हम तो इस विश्वास पर ऐसे अनुच्छेदों को पास कर देते हैं कि इनका ठीक ही उपयोग किया जायेगा। किन्तु अध्यादेश सम्बन्धी शक्ति के सम्बन्ध में अभी दो दिन पहले एक ऐसी बात हुई है जो अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम के प्रावधानों का जो मेरा थोड़ा बहुत ज्ञान है उसके अनुसार गवर्नर जनरल में निहित अध्यादेश विषयक शक्ति का दुरुपयोग ही है। इस अध्यादेश विशेष के गुणदोष को मैं चर्चा नहीं कर रहा हूं। दो दिन पहले रविवार को अपहृत व्यक्तियों को वापस करने का एक अध्यादेश निकाला गया है। इस सम्बन्ध में मैं आपका ध्यान, 1947 के भारत-आदेश द्वारा अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। अध्यादेश निकालने के बारे में जो धारा है उसमें ऐसी व्यवस्था नहीं है कि अध्यादेश की अवधि की समाप्ति के पूर्व वह पुनः जारी किया जा सकता हो। उक्त अध्यादेश की अवधि समाप्त होती थी गत रविवार को, किन्तु उससे एक दिन पहले ही यानी शनिवार को ही इस आशय को एक विज्ञप्ति निकाल दी गई कि अध्यादेश रविवार से आगे की प्रवर्तन में रहेगा और यह भी किया गया कि उस समय जबकि संविधान-सभा सत्र में थी, जहां तक कि इस संविधान-सभा का सम्बन्ध है, वह चाहे संविधान-सभा के रूप में समवेत हो या विधान-मण्डल के रूप से समवेत हों, भारत-अधिनियम से उसमें कोई अन्तर नहीं

[श्री एच.वी. कामत]

आता है: इसलिये उचित यह था कि अध्यादेश विधान-मण्डल के रूप में एक दिन के लिए समवेत इस सभा के समक्ष रखा जाता ताकि वह उस पर विचार करती। ऐसा करना अध्यादेश को पुन: जारी करने से कहीं अच्छा होता। यह उन घटनाओं में से एक है जिनसे यह प्रकट होता है कि अध्यादेश-शक्ति का किस तरह दुरुपयोग किया जा सकता है, किया गया है और आगे किया जायेगा। शासन या संस्थायें शक्ति का दुरुपयोग न कर पायें इसके लिए हमें कोई संरक्षण-मूलक व्यवस्था जरूर रखनी चाहिये।

अब मैं लेता हूं अपने दूसरे संशोधन को, यानी दूसरे सप्ताह की दूसरी सूची के संशोधन नं. 154 को। यह अनुच्छेद 275 और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन नं. 111 के सम्बन्ध में है। इस संशोधन को हमें संशोधन नं. 156 के साथ मिलाकर पढ़ना होगा। अगर ये दोनों संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं तो खण्ड (3) का रूप यह होगा:

"A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by internal disturbance may be made before the actual occurrence of such disturbance if the President is satisfied that there is imminent danger thereof."

(यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है, तो ऐसी अशान्ति के होने से पहिले भी, ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी।)

इन दोनों संशोधनों का अर्थात् संशोधन नं 154 और 156 का उद्देश्य यह है कि युद्ध और बाह्य आक्रमण तथा आभ्यन्तरिक अशान्ति में विभेद कर दिया जाये। अगर यह अनुच्छेद खण्ड (3) के साथ उसी रूप में रखा जाता है, जिसमें कि डॉ. अम्बेडकर ने उसे पेश किया है, तो राष्ट्रपति संविधान के अधीन रहकर भी उस सूरत में भी आपात की उद्घोषणा कर सकेगा जबकि वस्तुत: युद्ध न हो रहा हो और युद्ध की तैयारी या उसकी अफवाह मात्र चल रही हो। इस शताब्दि के आधुनिक युद्धों में युद्ध सम्बन्धी तैयारियों की चर्चा सदा चलती रहती है। आज भी आप यह कह सकते हैं कि युद्ध सन्निकट है। कौन व्यक्ति यह कहने का साहस कर सकता है कि युद्ध नहीं शुरू हो सकता है? युद्ध तो किसी भी समय शुरू हो सकता है। यूरोप और अमेरिका में जिस तरह बातें हो रही हैं उसको देखते हुये तो यही प्रतीत होता है कि समय बीतने के साथ-साथ उसी अनुपात से युद्ध की आशंका भी बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में अब मान लीजिये कि राष्ट्रपति पद पर एक ऐसा व्यक्ति विराजमान हो जाता है तो अधिकार की प्रबल चाह रखता है, जो राज्य या जनता के हित की बिना परवाह किये प्राप्त शक्तियों का ही प्रयोग चाहता है, तो क्या होगा? प्रस्तुत संविधान में हमने संरक्षण के रूप में ऐसा कोई प्रावधान रखा ही है कि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की राय के अनुसार चलने के लिए बाध्य है। यह सच है कि उनकी सहायता के लिए मन्त्रिपरिषद होगी, पर हमने यह बात कहीं भी नहीं कही है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद्

की राय के अनुसार ही चलेगा। अगर हम ऐसा संरक्षण नहीं रखते हैं तो राष्ट्रपति सारी शक्ति अपने हाथ में ले सकता है और यह कह सकता है—"मुझे यह अधिकार प्राप्त है, कौन मुझे बाधा पहुंचा सकता है?" फिर उस पर क्या हमारा अंकुश रह जायेगा? आज अगर एक राह चलता आदमी भी कहता है कि युद्ध शुरू होने वाला ही है तो कौन इस बात को काटेगा? इसलिये यदि यह अनुच्छेद इसी रूप में पास हो जाता है तो राष्ट्रपति इसका लाभ, अनुचित उठा सकता है और उसमें जो शक्तियां निहित की गई हैं उनका दुरुपयोग करके वह आपात की उद्‌घोषणा उस समय भी कर सकता है, जबकि वस्तुतः युद्ध हो ही न रहा हो। वह ऐसा केवल इसलिये करेगा कि वह राज्य के संविधान को नष्ट करना चाहता है, उसे व्यर्थ करना चाहता है। एक लोकतन्त्रीय देश के प्रतिनिधि रूप में यहां बैठकर क्या हम ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हैं, जबकि राष्ट्रपति ऐसी स्थिति में हो कि वह संविधान को ही उलट देना चाहता हो? हम यहां तोड़फोड़ करने वाले लोगों की बात कर रहे हैं पर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि न केवल आन्दोलनकारी, विद्रोही और क्रांतिकारी लोग ही संविधान को उलट सकते हैं बल्कि पदारूढ़ लोग और आधिकारारूढ़ व्यक्ति भी संविधान को उलट सकते हैं। इसलिये मेरे संशोधन, श्रीमान्, ऐसे हैं कि उन पर विचार करना आवश्यक है। मेरे तीनों संशोधनों पर—नं. 147, 154 और 156 पर विचार होना चाहिये। पहले संशोधन के द्वारा यह कोशिश की गई है कि राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की राय के अनुसार चलना आवश्यक होगा। अन्य दो संशोधनों के द्वारा यह किया गया है कि जब तक कि वस्तुतः युद्ध या बाह्य आक्रमण की स्थिति अस्तित्व में न आ जाये, राष्ट्रपति को आपात की उद्‌घोषणा करने की शक्ति न रहेगी। राष्ट्रपति तो यह कह सकता है कि "सुदूरपूर्व में या यूरोप अथवा अमेरिका में युद्ध शुरू हो जाने की अब पूर्ण सम्भावना पैदा हो गई है। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं आपात विद्यमान है। हमारी सीमा से अनतिदूर कुछ लोग युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं।" यह सच है कि हम किसी भी राज्य को अपना शत्रु नहीं समझते हैं पर अन्य राज्य हमें अपना शत्रु समझ सकते हैं। जब हम इस शताब्दि के द्वितीयार्ध में प्रवेश करेंगे उस समय तक विश्व की स्थिति और भी खराब हो सकती है और जहां तक कि युद्ध का सम्बन्ध है, विश्व की स्थिति और भी आशंका जनक हो सकती है। हम जो संविधान बना रहे हैं, वह इस शताब्दि के प्रथमार्ध के अंतिम वर्ष में प्रख्यापित होगा और हम एक लोकतन्त्र के रूप में अपना जीवन शुरू करेंगे; इस शताब्दि के द्वितीयार्ध में प्रवेश करने पर और यह काल मेरी समझ से ऐसा होगा जो सभी सम्भावनाओं एवं संकटों से तो पूर्ण रहेगा ही, पर साथ ही आशा और विश्वास से पूर्ण रहेगा। इसलिये राह में आने वाले खतरों से हमें सावधान रहना चाहिये, श्रीमान्। हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि हमारा यह संविधान, जिसकी हम रचना कर रहे हैं, वह समाहृत रहे और लोग उसका पालन करें और ऐसा न होने पाये कि वह कहीं उलट दिया जाये, न केवल आन्दोलनकारियों द्वारा, विद्रोहियों और क्रांतिकारियों द्वारा बल्कि उन लोगों के द्वारा भी जो अधिकारारूढ़ हैं, पदारूढ़ हैं।

अब मुझे केवल एक ही बात कहनी है, श्रीमान्, और वह है अंतिम दो संशोधनों—नं. 154 और 156 के सम्बन्ध में। जैसाकि मैंने कहा है, राष्ट्रपति के लिये, ऐसे राष्ट्रपति के लिये जो कि एक मनुष्यमात्र होगा, जिसे मानव बुद्धि के

[श्री एच.वी. कामत]

द्वारा ही पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा, यह बहुत ही कठिन होगा कि वह अकेले इस बात का निर्णय कर सके कि आई ऐसी आन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है या नहीं, जिसमें आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो। क्या हमने राज्य में पर्याप्त शक्तियां नहीं निहित कर रखी हैं जिनसे वह आन्तरिक अशान्ति के संकट से बच सकें। हमारे पास पर्याप्त पुलिस बल है। हमने सदा चिल्ला चिल्ला कर यह कहा है कि आन्तरिक अशान्ति के दमन के लिए सैन्यबल न कभी प्रयुक्त किया जायेगा। अगर यही बात है तो आप यहां इस खण्ड में यह प्रावधान क्यों रख रहे हैं कि अशान्ति का संकट सन्निकट होने पर राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा केवल इस आधार पर निकाल सकेगा कि उसका समाधान हो गया है कि अशान्ति का संकट सन्निकट है। हां, अशान्ति प्रारम्भ हो जाती है और चारों ओर फैलने लगती है तो उस सूरत में तो यह बात समझ में आती है कि देश की शांति-सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। पर अगर किसी एक छोटे से राज्य में कहीं-दंगा हो जाता है तो राष्ट्रपति क्यों आपात की उद्घोषणा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, जबकि संविधान में यह नहीं कहा गया है कि मंत्री-परिषद् की राय के अनुसार ही वह चलेगा? (3) मेरा ख्याल है कि इन मामलों में जो शक्तियां गवर्नर, मंत्रिमण्डल और इकाइयों में निहित की गई हैं वह पर्याप्त हैं। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि कुल मिलाकर यह खण्ड ऐसा प्रावधान है जिसे हम बुद्धि-संगत नहीं कह सकते हैं और मुझे बड़ी खुशी होगी अगर यह हटा दिया जाये। ऐसा नहीं हो सकता हैं तो मैं सभा का बड़ा कृतज्ञ होऊंगा, यदि समुचित रूप से विचार कर लेने के बाद वह मेरी इस बात से राजी हो जाये कि राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा जारी करने की शक्ति तभी होगी, जबकि आन्तरिक अशान्ति का संकट उत्पन्न हो न कि उस समय जबकि आन्तरिक अशान्ति के प्रारम्भ होने की आशंका सन्निकट हो, क्योंकि वह तो एक ऐसी स्थिति है जिसका सही अनुमान कोई भी नहीं कर सकता है। जिसका कोई निश्चित आभास मानव चातुर्य को मिल नहीं सकता है। हो सकता है कि युद्ध की तैयारियां चल रही हों पर उस सूरत में भी यह नहीं कहा जा सकता है कि युद्ध का संकट सन्निकट आ ही गया है। हम बादलों का गर्जन सुन सकते हैं, बिजली की चमक देख सकते हैं, पर यह जरूरी नहीं है कि गर्जन और चमक के बाद पानी बरसे ही। संस्कृत में एक श्लोक है, जिसमें यह भाव बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है।

श्लोक यह है:-

अम्भोधा बहवो वसन्ति गगने, सर्वेऽपि नैतादृशाः
केचिद् दृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणी, गर्जन्ति केचिद् वृथा।।

यह तो हो सकता है कि राजनीतिज्ञों की और अन्य लोगों की गरम-गरम जोशीली वक्तृतायें सुनने में आयें, जिनमें लड़ाई का राग अलापा गया हो पर उसे हम युद्ध का प्रारम्भ थोड़े ही कह सकते हैं। ऐसी हालत में यह बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल होगा, संविधान की भावना के प्रतिकूल होगा, अगर हम राष्ट्रपति को ऐसे अनियंत्रित अधिकार दे देते हैं। मेरी समझ से दुनिया के अन्य किसी भी लोकतन्त्रीय देश के संविधान में आपको ऐसे अधिकार की मिसाल न मिलेगी। मैं सभा से सिफारिश करूंगा कि वह मेरे विभिन्न संशोधनों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर और अन्य कई संशोधन भी हैं। संशोधन नं. 2996 पंडित हृदयनाथ कुंजरू के नाम में है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): संशोधित मसौदे को देखते हुये मैं अपना यह संशोधन नहीं पेश करना चाहता हूं।

(संशोधन नं. 2997, 3000 और 3004 नहीं पेश किये गये।)

***अध्यक्षः** सभी संशोधन पेश हो चुके हैं। अब मूल अनुच्छेद और संशोधनों पर विचार किया जा सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, राष्ट्रपति की आपात-शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद के बारे में जो वक्तृता यहां माननीय मित्र श्री कामत ने दी है वह मैंने बड़े ध्यान से सुनी है। वस्तुतः यह अनुच्छेद बड़ा भयावह दिखाई देता है और ऐसा मालूम होता है, मानों इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति तो सर्वथा स्वेच्छाचारी ही हो सकता है। पर अनुच्छेद 276 और 277 के प्रावधानों को देखने पर, मैं नहीं समझता कि ऐसी आशंका की कोई गुंजाइश रह जाती है। अनुच्छेद 276 में यह प्रावधान है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने पर संघ की कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिकाओं को निदेश देने का अधिकार रहेगा तथा यह कि संघ-संसद् को उन विषयों के सम्बन्ध में भी विधि-निर्माण की शक्ति प्राप्त रहेगी जो विषय केवल राज्य या प्रान्तों के ही अधिकार के अन्दर हैं। अनुच्छेद 277 के द्वारा राष्ट्रपति एवं कार्यपालिका को यह शक्ति दी गई है कि अनुच्छेद 249 और 259 में प्रावहित आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में वह सभी अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं। अगर इस अनुच्छेद में यह कहा गया होता, जैसा कि अनुच्छेद 276 में कहा गया है कि संविधान के सभी प्रावधानों का प्रवर्तन निलम्बित रहेगा और राज्य के कार्यपालिका की सारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित रहेंगी, तो अवश्य इस अनुच्छेद के विरोध का कुछ कारण ही समझ में आता। मेरा ख्याल है कि गत महायुद्ध के सम्बन्ध में अपने लोगों का अनुभव यही रहा है कि युद्ध कभी भी जारी न रखा जा सकता था अगर प्रान्तों को अपने स्तर पर लाने की शक्ति केन्द्र को न प्राप्त रहती। इतना बड़ा अकाल बंगाल में इसलिये पड़ सका कि केन्द्र को प्रान्त के खाद्य सम्बंधी प्रवेध में पर्याप्त शक्ति नहीं थी। इसलिये मैं यह समझता हूं कि खास कर के आज के दिनों में जबकि हमारा लोकतन्त्र एक नवजात लोकतन्त्र है, आपात की विद्यमानता में हमें केन्द्र को कम से कम यह सीमित शक्तियां तो अवश्य ही देनी चाहियें। व्यक्तिगत रूप से मैं यह अनुभव करता हूं कि यह अनुच्छेद पहले से ही काफी नरम है, तथा संघ-कार्यपालिका एवं संसद् की शक्तियां प्रायः वैसी हैं जैसी कि राज्यों के विधान-मण्डलों की हैं और युद्ध अथवा आभ्यन्तरिक विद्रोह या अन्य ऐसी किसी बात के पैदा होने पर ही केन्द्र को राज्यों से अधिक शक्तियां प्राप्त रहेंगी। हम लोग सदा से ही एक शक्तिशाली केन्द्र के लिए लड़ते आ रहे हैं। मेरा ख्याल है कि इस अनुच्छेद के द्वारा हमें वह बात मिल जाती है जो अब तक हम चाहते रहे हैं। अब हमारा केन्द्रीय शासन बड़ा दृढ़ रहेगा और आपात की स्थिति आने पर राज्य की भलाई और सुरक्षा के लिये हम आपात की उद्घोषणा कर सकेंगे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं नहीं समझता कि कोई भी व्यक्ति देश की वर्तमान स्थिति का ख्याल रखते हुये इस अनुच्छेद का विरोध कर सकेगा। अनुच्छेद 278 के बारे में, जिसके द्वारा प्रचुर शक्तियां राष्ट्रपति को प्रदत्त की गई हैं, मुझे सन्देह अवश्य है पर अनुच्छेद 275, 276 और 277 के सम्बन्ध में तो मुझे विश्वास है कि किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि उनकी रचना बड़ी ही सावधानी से की गई है और उनमें अब कोई भी परिवर्तन आवश्यक नहीं है। माननीय मित्र श्री कामत ने यहां जर्मनी के संविधान का हवाला दिया है, तीसरी रीख का हवाला दिया है, पर शायद यह हवाला वह अनुच्छेद 278 के सम्बन्ध में दे सकते थे, न कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में। इस अनुच्छेद के द्वारा केन्द्र को वैसी शक्तियां नहीं प्राप्त होती हैं जैसी कि वाइमर संविधान द्वारा वहां के केन्द्रीय शासन को प्राप्त होती थीं। इसके द्वारा तो केवल उतनी ही शक्ति दी गई है, जो युद्ध स्थिति में अथवा आन्तरिक अशान्ति की दशा में शासन चलाने के लिए अपेक्षित हो सकती हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी केन्द्रीय शासन प्रशासन का काम चल सकता है और देश की रक्षा कर सकता है, अगर उसे कम से कम उतने अधिकारों से लैस नहीं रखा जाता है। इसलिये मेरा ख्याल है कि केवल इस अनुच्छेद के आधार पर यदि हम अपने संविधान की तुलना वाइमर संविधान से करते हैं तो यह अनुचित होगा। हम जानते हैं कि अभी गत युद्ध में, जिससे हम अभी बाहर निकले हैं, अमेरिका में भी राज्यों की शक्तियां नहीं छीनी गई थीं। पर हमें यह याद रखना चाहिये कि अमेरिका में प्रेसिडेण्ट ही कार्यपालिका का प्रमुख रहता है और उसे इतनी शक्तियां प्राप्त हैं जो दुनिया के अन्य किसी भी पदाधिकारी को नहीं प्राप्त हैं और हमारे राष्ट्रपति को तो यह शक्तियां नहीं ही प्राप्त रहेंगी। श्री कामत की इस बात से मुझे आश्चर्य हुआ कि आपात की उद्घोषणा निकालने में राष्ट्रपति को अपने मंत्रि-परिषद् की राय के अनुसार ही चलना चाहिये। ऐसा तो वह हमेशा करेगा ही। संविधान में यह बात भले ही लिपिबद्ध न की जाये, पर मैं समझता हूं कि बहुत सी बातें तो रूढ़ियों के आधार पर ही की जायेंगी। मैं नहीं समझता कि कोई भी राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की राय के विरुद्ध कुछ भी कर सकेगा ओर फिर उद्घोषणा तो मुझे विश्वास है कि वह कभी भी न निकालेगा, यदि मन्त्री उसके विरुद्ध हैं। मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रस्तुत अनुच्छेद बहुत आवश्यक है। अब उद्घोषणा के प्रवर्त्तन की अवधि घटाकर 6 महीने से 2 महीना कर दी गई है और इससे अनुच्छेद में बहुत बड़ा सुधार हो गया है। इस अवधि के अन्दर संसद् के दोनों सदनों द्वारा कानून पास हो जाना चाहिये।

खण्ड (3) में यह कहा गया है:-"यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांन्ति का संकट सन्निकट है तो युद्ध या ऐसा आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी, ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी"। मैं नहीं समझता कि यह खण्ड अनावश्यक है या इसके द्वारा बहुत ज्यादा शक्ति राष्ट्रपति को दे दी जाती है। यदि हमें युद्ध का सामना करना है, जिसे हम पहले से ही देख रहे हैं और फिर भी उसके लिये पहिले से ही तैयार नहीं रहते हैं, तो यह हमारी अबुद्धिमत्ता होगी। वस्तुत: अमेरिका युद्ध शुरू होने के अरसा बाद युद्ध में शामिल हुआ था। पर उधार पट्टा की नीति अख्तियार करके वह पहले से ही युद्ध के

लिये तैयार हो गया था। जापान ने जब हमला किया था उस समय वह युद्ध के लिए बिलकुल तैयार हो चुका था। इसलिये सवाल यह उठता है कि अगर भारत वर्ष विश्व युद्ध में पड़ जाता है तो मेरी समझ से उचित यही होगा कि राष्ट्रपति को इसकी शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये कि वह आपात की उद्घोषणा कर सके और केन्द्रीय राज्यपालिका-प्रमुख को निर्देश भेजने का केन्द्रीय सरकार को अधिकार दे सके तथा संसद् को उन विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की क्षमता दे सके जो अभी राज्यों के क्षेत्राधिकार के अधीन है। मेरी समझ से यह अनुच्छेद बहुत आवश्यक अनुच्छेद है और इसका कोई भी अंश ऐसा नहीं है जिस पर कोई आपत्ति की जा सकती हो। आशा है इसे सभा का समर्थन प्राप्त होगा।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के प्रावधानों में जो सिद्धान्त अन्तर्ग्रस्त हैं उनसे मैं सर्वथा सहमत हूं। इस देश की जनता के हित में इस अनुच्छेद को मैं बहुत ही आवश्यक समझता हूं किन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि इसके प्रावधान बहुत ही अन्तर्ग्रस्त हैं ओर इनसे हमारी सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। जहां तक कि अनुच्छेद के खण्ड (1) का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि उसमें संशोधन होना चाहिये। सभा को चाहिये कि इस खण्ड (1) में ऐसा संशोधन कर दे कि वह हमारी वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप जो जाये। मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति से" शब्दों के आगे कुछ और अन्य शब्द भी हमें रख देना चाहिये। मैं इस पक्ष में हूं कि इन शब्दों के बाद "आर्थिक या राजद्रोह का आन्दोलन" शब्द यहां जोड़ देने चाहियें। अगर यह शब्द यहां रख दिये जाते हैं तो राष्ट्रपति को आवश्यक कार्रवाई करने में कुछ सुविधा मिल जायेगी और व्यापक परिधि उसे प्राप्त हो जायेगी। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि इन दोनों ही शब्दों को रखना सभा को अगर मंजूर न हो तो कम से कम उनमें से एक शब्द तो रख ही लिया जाये और उससे भी आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। मैं समझता हूं कि "आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों के आगे "या कोई स्थिति पैदा होने पर" शब्द रख देने चाहियें। यह भी हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त होगा।

*__अध्यक्ष:__ पर माननीय सदस्य ने इसके लिए कोई संशोधन तो रखा नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं केवल सभा को सुझाव दे रहा हूं।

*__अध्यक्ष:__ पर सभा इस सुझाव को स्वीकार कैसे कर सकती है जब तक कि कोई संशोधन न हो?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ ऐसा करने का एक रास्ता है और वह यह कि इस खण्ड (1) पर पुनर्विचार का प्रस्ताव रखा जाये। सभा के लिये यह रास्ता खुला है। इस खण्ड (1) में संशोधन करने का एक और भी उपाय है। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान् कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों को हटा ही देना चाहिये। इनके हटा देने पर खण्ड का यह रूप होगा: "यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा उस आशय की धारण कर सकेगा"

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

आखिर भारत की सुरक्षा का प्रश्न ही तो हमारे लिए सर्वाधिक महत्व रखता है। हम यह नहीं जानते हैं कि वह सुरक्षा कैसे संकट में पड़ने वाली है। क्या हमारा अभिप्राय यह है कि जिन संकटों का यहां उल्लेख किया है उनके अलावा और किसी संकट के द्वारा अगर देश की सुरक्षा खतरे में पड़ती है तो उससे उसकी हम रक्षा न करेंगे? मैं ऐसा नहीं समझता हूं कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों के अन्दर संकट की सभी कल्पनायें आ जाती हैं। इनके अलावा और भी ऐसी सम्भावनायें हो सकती हैं जिनसे हमारी सुरक्षा संकट में पड़ सकती है। मेरी इस बात के जवाब में शायद यह दलील पेश की जाये कि अगर अन्य किसी प्रकार से भारत की सुरक्षा संकट में पड़ती है तो उसके परिणामस्वरूप आभ्यन्तरिक अशान्ति अवश्य उत्पन्न होगी, सुतरां 'आभ्यन्तरिक अशान्ति' शब्द यहा पर्याप्त रूप से व्यापक शब्द है। मैं इस विचार को नहीं मानता। इसका मतलब केवल यही होगा कि राष्ट्रपति को देश की द्रुतगति से बिगड़ने वाली परिस्थिति को नीरव होकर देखते रहना होगा और कार्रवाई वह तभी कर सकेगा जबकि आभ्यन्तरिक अशान्ति बहुत बड़े पैमाने पर भयानक रूप में देशभर में फैल जाये। राष्ट्रपति में यह शक्ति और अनियन्त्रित शक्ति निहित ही रहनी चाहिये कि अगर वह यह महसूस करता है कि देश में आपात विद्यमान है तो वह उसके सम्बन्ध में कार्रवाई कर सकता हैं आभ्यन्तरिक अशान्ति तो शुरू होगी तब जब कि आपात का संकट चरम सीमा पर पहुंच जायगा। क्या आप यह चाहते हैं कि जब तक एक संकट चरम सीमा पर पहुंच जाये देश की उससे रक्षा ही न की जाये? मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति उसी समय कार्रवाई करे जब वह यह महसूस करने लगे कि राजद्रोही आन्दोलन इस सीमा तक पहुंच गये हैं कि आपात का संकट विद्यमान हो गया है, भले ही उस समय आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट न पैदा हुआ हो। दुष्टता का दमन तुरन्त होना चाहिये। पैदा होते ही उसे कुचल देना चाहिये। यह नीति बहुत ही गलत होगी कि बुराई जब तक फैल न जाये हम कोई कार्रवाई ही न करें और बैठे रहें। उस हालत में तो यह हो सकता है कि जब आप कार्रवाई करें उस समय तक काफी देर हो चुकी हो और स्थिति काबू से बाहर चली जाये। चीन पर नजर डालिये। वहां जो कुछ हो रहा है उससे तो हमारी आंखे खुल जानी चाहिये। मैं तो यह महसूस करता हूं कि हम वस्तुत: आपात के काल से इस समय गुजर रहे हैं। आखिर बंगाल में आज क्या हो रहा है? आज जो बंगाल में हो रहा है वही कम या बेशी अन्य प्रान्तों में भी हो रहा है। इसलिये मैं इस पक्ष में हूं कि इन शब्दों को हटा देना चाहिये। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि जो शब्द हमने सुझाये हैं उनको यहां जोड़ देना चाहिये। कुछ सदस्यों ने एक संशोधन के रूप में इन शब्दों को जोड़ने का सुझाव मसौदा-समिति के सामने रखा भी था। वह संशोधन, संशोधन सूची में आया था। पर इनको न रखने के पीछे शायद यह कारण है कि वे लोग, जो इसके हामी हैं कि राज्यों को यानी इकाइयों को स्वातंत्र्य प्राप्त रहना चाहिये, ऐसा महसूस करते हैं कि अगर ये शब्द यहां रख दिये गये तो स्वायत शासन की उनकी जो कल्पना है वह केवल एक दिखावटी और अवास्तविक कल्पना ही रह जायेगी, क्योंकि आर्थिक संकट के नाम पर या राजद्रोही आन्दोलन को दबाने के नाम पर राष्ट्रपति जो चाहे कर सकेगा। किन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि, श्रीमान् कि, भारत की सुरक्षा का प्रश्न प्रान्तीय स्वराज्य के प्रश्न से कहीं ज्यादा महत्व रखता है।

अब मैं खण्ड (2) को लेता हूं। इसमें कहा गया है कि:—"खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी"। मैं पूछता हूं कि उसे संसद् के समक्ष क्यों रखा जाये? क्या इसलिये कि हमारे दिमाग में यह आशंका लटक रही है कि राष्ट्रपति कहीं तानाशाह न बन जाये? क्या इसी तानाशाही के डर के कारण ही संविधान में हम यह प्रावधान रख रहे हैं? अगर आप इसी कारण से यह प्रावधान रख रहे हैं तो मैं कहूंगा कि संरक्षण के लिये जो व्यवस्था आप कर रहे हैं वह सर्वथा अवास्तविक है। संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा आप तानाशाही के खतरे को नहीं दूर कर सकते हैं। बल्कि उलटे मैं तो यह महसूस करता हूं कि राष्ट्रपति की शक्तियों पर प्रतिबन्ध रखकर, उसकी कार्रवाई की परिधि को सीमित रखकर हम कार्यपालिका के हाथों को दुर्बल बना रहे हैं और देश में तानाशाही की स्थापना का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

मैं इसके भी खिलाफ हूं, श्रीमान्, कि इस प्रश्न पर संसद् की जो राय हो उसके अनुसार चला जाये, क्योंकि मुझे यह डर है कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर जो विधान-मण्डल चुना जायेगा उसमें अधिकांश अनपढ़ और अपरिपक्व लोग ही रहेंगे। क्या यह वांछनीय होगा कि देश की सुरक्षा के प्रश्न पर ऐसे अपरिपक्व सदस्यों की सभा से फैसला लिया जाये? मैं यह उन सदस्यों से जानना चाहता हूं जो इस प्रश्न पर मुझसे असहमत हैं। मान लीजिये, संसद् यह कहती है कि भारत की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं है तो क्या आप देश की सुरक्षा को केवल इसलिये संकट में पड़ने देंगे कि संसद् के सदस्यों की राय में कोई खतरा नहीं है? मैं समझता हूं, संकट है या नहीं, उसे सदस्यों से ज्यादा अच्छी तरह राष्ट्रपति ही समझ सकेगा। परिस्थिति के सम्बन्ध में सदस्यों से अच्छा निर्णायक राष्ट्रपति होगा।

एक और बात है जिसका मैं यहां जिक्र करना चाहूंगा। इसे कहूं या न कहूं, इसको लेकर मैं द्विविधा में पड़ गया था पर मैं यह अनुभव करता हूं कि अपनी बात को साफ-साफ कह देना ही ज्यादा अच्छा है। मैं संसद् के विरुद्ध हूं क्योंकि मैं ऐसा महसूस करता हूं कि संसद् के सदस्यों का भरोसा नहीं किया जा सकता है। आप फ्रांस को देखिये, इतिहास पर दृष्टिपात कीजिये वहां राज्य के सभी अंगों में नाजी प्रवेश कर गये थे। मन्त्रियों में, विधायकों में, सेना के अफसरों में, राज्य के सभी कर्मचारियों में नाजीवाद का विषय प्रविष्ट हो गया था और उन्हीं लोगों के कारण राज्य का पतन हुआ। आखिर वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गयी संसद् भारतीय सुरक्षा के प्रश्न पर कैसे निर्णायक बन सकती है? ये लोग पंचमार्गा बन सकते हैं विदेशी शक्ति के ऐजेंट बन सकते हैं। विप्लव के आन्दोलनों का जो आप विकास देख रहे हैं वह वास्तविक है। मुझे कार्यपालिका में जितना विश्वास है उतना विधि बनाने वालों में नहीं। इसलिये इस सुझाव के साथ इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं कि जो शब्द मैंने सुझाये हैं उनको यहां रखना चाहिये और उद्घोषणा को संसद् के समक्ष रखने की जो बात अनुच्छेद में कही गई है उसे निकाल देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य की वक्तृता में हस्तक्षेप करना मैंने पसन्द नहीं किया है। वह बोल रहे थे एक संशोधन पर, जिसकी सूचना उन्होंने दी थी पर उसे पेश करने से आपने इरादतन इंकार कर दिया।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ इस बात के सम्बन्ध में मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं

*__अध्यक्षः__ कोई भी स्पष्टीकरण यहां अपेक्षित नहीं है। हम सभी इसे समझते हैं। आपने एक संशोधन की सूचना दी थी जिसमें यह कहा गया था कि आप के सुझाये शब्द अनुच्छेद में लिपिबद्ध किये जाने चाहिये। आपने उस संशोधन को जानबूझकर पेश करने से इनकार किया और फिर यहां आकर एक लम्बी वक्तृता दे डाली कि मसौदा-समिति को चाहिये कि आपके शब्दों को अनुच्छेद में रख ले। मैं नहीं समझता कि आपका यह कार्य ठीक था।

*__प्रो. के.टी. शाह__ (बिहारः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदे भर में यही प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है कि केन्द्रीय शासन को अधिक से अधिक शक्तियां दी जायें और मैं इस प्रवृत्ति को बड़े सन्देह से देखता आ रहा हूं। मूल अनुच्छेद की तुलना में, जिस पर कि यह संशोधन पेश किया गया है, इस अनुच्छेद विशेष में केन्द्र को और भी प्रबल शक्तियां दे दी गई हैं, उसे और भी मजबूत बना दिया गया है। कई बातों के सम्बन्ध में मेरी समझ से इस अनुच्छेद द्वारा न केवल बिल्कुल नवीन प्रावधान ही रखे गये हैं बल्कि राष्ट्रपति में ऐसे अधिकार और शक्तियों को निहित करने का प्रयास किया गया है, जो लोकतन्त्रीय उत्तरदायी शासन के उस स्वरूप के सर्वथा अनुरूप है जिसे मानने की शिक्षा हमें दी गई है।

पहली बात तो यह है, श्रीमान्, कि 'आन्तरिक हिंसा' के स्थान पर यहां जो 'आन्तरिक अशान्ति' शब्द रखे गये हैं उससे मैं बड़ी चिन्ता और सन्देह में पड़ गया हूं। ये ऐसे शब्द हैं जिनकी परिभाषा देनी कठिन है। इस परिवर्तन का जो भी प्रभाव होता हो पर इन दोनों शब्दों में जो विभेद है उससे मुझे यही प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन से लोकतन्त्रीय स्वातन्त्र्य पर अनुचित आघात पहुंच सकता है। राज्य के या उसके किसी भाग के आन्तरिक प्रबन्ध में किंचितमात्र भी अशान्ति हुई या अशान्ति का रंचमात्र भय भी पैदा हुआ तो राष्ट्रपति को आपात की स्थिति घोषित करने का एवं उद्घोषणा निकालने का अधिकार हो जायेगा।

संशोधन के तीसरे भाग में, मेरे ख्याल से, यही बात और गम्भीर रूप में और अधिक स्पष्टता के साथ दिखाई देती है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि आभ्यन्तरिक अशान्ति के उत्पन्न होने पर नहीं बल्कि उसके उत्पन्न होने की सम्भावना भी यदि दिखाई देती हो तो राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा निकाल सकेगा। कार्यपालिका के दिमाग में अशान्ति उत्पन्न होने का भय भी यदि हो तो इसे आधार पर इस तरह की उद्घोषणा निकाली जा सकेगी। मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रस्तुत प्रावधान उस प्रावधान से किसी भी तरह भिन्न नहीं है जिसके अधीन 1942 में अनेक आर्डिनेंस निकाले गये थे जिनमें न केवल कार्य का किया जाना ही दण्डनीय बताया गया था बल्कि यह कहा गया था कि कार्य किये जाने की सम्भावना होने पर भी आर्डिनेंस के अधीन व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है। अपनी यह हुकूमत जिसको हम बनाने जा रहे हैं अपना राज्य जिसका कि हम निर्माण करने जा रहे हैं वह यदि उदारता, सहिष्णुता, विचार एवं अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विचार से सब तरह पूर्वगामी शासन से ही मिलता-जुलता है और अन्तर इन

दोनों में अगर केवल काले और गोरे का ही है, तो मैं कहूंगा कि हमने अपने देशवासियों के सामने जो यह प्रतिज्ञा की है कि हमारा स्वराज्य वास्तविक रूप में राम राज्य होगा, वह सर्वथा झूठी है।

मैं अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि यही प्रवृत्ति हमें इस संशोधन के अन्य भाग में भी दिखाई देती है जिसमें यह कहा गया है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की अवधि आगे भी बढ़ाई जा सकती है, अगर संसद् के दोनों सदन उसके अनुमोदन का एक प्रस्ताव पास कर दें। जहां तक मैं देखता हूं मुझे ऐसा कोई प्रावधान यहां नहीं दिखाई देता है जिसके अधीन सदन उद्घोषणा को अस्वीकार या रद्द कर सकते हों, यह घोषित कर सकते हों कि ऐसी उद्घोषणा निकालने का कोई कारण नहीं इसलिये उद्घोषणा रद्द की जाती है और अब वह प्रवर्तन में न रहेगी। यह बिल्कुल सम्भव है कि किसी मौके पर राष्ट्रपति, जिसके लिये यह लाज़िमी नहीं होगा कि मंत्रियों की राय के अनुसार ही चले, अपनी ही मरजी पर चले और आपात की उद्घोषणा निकाल दें। ऐसी बात उस समय खासतौर पर हो सकती है जबकि संसद् का विघटन होने वाला हो और दलबन्दी की तनातनी जोरों पर हो, जब दूसरे ऐसे मंत्रियों के या दल के अधिकारारूढ़ होने की सम्भावना हो जो पूर्वगामी अधिकारारूढ़ दल के कार्यक्रम को और उद्घोषणा को न जारी रखने के ही इरादे से आते हों। ऐसे मौके पर यदि इस तरह के प्रावधान का लाभ उठाया जाता है और इस आधार पर कि देश में या उसके किसी भाग में अशान्ति उत्पन्न होने की आशंका है, राष्ट्रपति अपनी मरजी से या अपने आक्रमणशील मंत्रियों की राय से आपात की उद्घोषणा निकालता है तो क्या होगा? हो सकता है नया विधान-मण्डल उद्घोषणा को जारी न रखना चाहता हो। हो सकता है वह उसे नापसन्द करता हो। इस संविधान में निचले सदन के लिये निष्ठा तो बहुत दिखाई गई है पर इसमें ऐसी अवस्थाओं के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं रखा गया है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित उद्घोषणा को विधान-मण्डल रद्द कर सकता है। और न निचले सदन को यही कहने का अधिकार दिया गया है कि अशान्ति की आशंका का कोई कारण नहीं है और इसलिये ऐसी उद्घोषणा की कोई आवश्यकता नहीं है।

मसौदा बनाने वालों की नीयत को ठीक मानते हुये भी—और उस प्रावधान के लिए मुझे उसकी नीयत पर रंचमात्र भी शक नहीं है—मैं यह कहूंगा कि मेरी समझ से उपरोक्त आशय के प्रावधान का संविधान में न होना एक बहुत बड़ी कमी है। मेरी समझ से इस आशय के एक विपरीत प्रावधान का यहां न होना, कि सदनों को अधिकार होगा कि राष्ट्रपति की उद्घोषणा को रद्द या अस्वीकार कर दे, इस आशंका के लिये एक गम्भीर कारण बन जाता है कि सारी शक्तियां कार्यपालिका को दी जा रही हैं और संसद् को केवल एक तरह के मुहर देने वाले कार्यालय के रूप में रखा जा रहा है जिसे कार्यपालिका के सभी कार्यों पर अपनी स्वीकृति की मुहर भर दे देनी होगी। मैं नहीं समझता कि यह व्यवस्था अपने उन आदर्शों और अभिलाषाओं के अनुरूप है जिनके आधार पर देश में हम लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना करने जा रहे हैं। यह व्यवस्था तो उन आर्डिनेन्सों के किसी तरह भी भिन्न नहीं है जिनके अधीन पहले हमें रहना पड़ा था और जिनके अधीन शायद हमें आगे और रहना पड़ेगा, अगर इस तरह की व्यवस्था की हम उपेक्षा कर देते हैं।

[प्रो. के.टी. शाह]

"आन्तरिक हिंसा" के स्थान पर यहां "आन्तरिक अशान्ति" शब्द रखने में एक बड़ा जबरदस्त खतरा है। अशान्ति की परिभाषा तो समय और स्थिति के अनुसार की जायेगी। खास करके जब चुनाव सन्निकट होगा तो तनातनी जोरों पर रहेगी और जनता का जोश भी चरम-सीमा पर पहुंचा रहेगा। ऐसे समय अशान्ति कहीं भी पैदा हो जा सकती है। पर अपने इस स्वतन्त्र संविधान में ऐसी अशान्ति को आपात न मानना चाहिये जिसमें कार्यपालिका प्रमुख हो उद्घोषणा निकालने का और संविधान को निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। अनुगामी अनुच्छेदों को ध्यान में रखते हुये तथा उद्घोषणा के प्रभाव को ध्यान रखते हुये यदि आप इस प्रावधान पर विचार करें तो आप देखेंगे कि वस्तुत: इस प्रावधान से तो व्यक्ति या प्रदेश के स्वशासन के अधिकार से ही वंचित हो जाता है। इसलिये मेरे ख्याल से यह प्रावधान ऐसा है कि इसका जितना भी विरोध किया जाये कम है। आशा करता हूं कि सभा इस पर फिर से विचार करने पर राजी होगी और यह कोशिश करेगी कि मैंने जिन बातों को यहां रखने का आग्रह किया है उनमें कम से कम कुछ बातें, मसलन यह बात कि सदनों को उद्घोषणा को नामंजूर करने का अधिकार होना चाहिये, तो अवश्य ही इस अनुच्छेद में स्थान पा जायें और राज्य की सुरक्षा के बहाने, जैसाकि मुझे यहां प्रतीत होता है, कार्यपालिका-प्रमुख को अत्यधिक अधिकार न दे दिये जायें।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर अब तक जो बहस हुई है उसे सुन लेने के बाद माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के उस अंश का, जिसमें मन्त्रिपरिषद् की राय के अनुसार चलने की बात कही गई है, समर्थन करने ही का मैं प्रबल आग्रह बोध कर रहा हूं। प्रस्तुत अनुच्छेद संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों में से एक है। एक विशेष व्यक्ति को हम अत्यधिक शक्तियां दे रहे हैं और आपात सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग वह अपने निजी विवेक से कर सकेगा। प्रस्तुत अनुच्छेद में ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें यह प्रकट होता हो कि उद्घोषणा निकालने से पूर्व राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक होगा कि वह मंत्रियों से परामर्श ले या आपात के लिए कोई सिद्धान्त निर्धारित करे कि ऐसी हालत को आपात समझा जायेगा। यह बात बिलकुल उसके निजी विवेक पर छोड़ दी गई है और हम अच्छी तरह जानते हैं कि व्यक्तिगत विवेक या निर्णय प्राय: भूल ही कर सकते हैं। यही कारण है जो मैं यह समझता हूं कि उद्षोघणा निकालने से पहले राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि वह अपने मंत्रियों से परामर्श ले ले।

*__पंडित ठाकुरदास भार्गव:__ यह मतलब तो अनुच्छेद से निकलता ही है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मैं पहले से ही यह समझे बैठा था। मैं जानता था कि यह दलील रखी जायेगी कि राष्ट्रपति अपने मंत्रिपरिषद् से बिना परामर्श लिये स्वत: जो ठीक समझेगा करेगा, यह बात तो कल्पना से भी परे है। फिर भी खण्ड का जो रूप है वह ऐसा है कि नियमादि को बारीकी से मानने वाला राष्ट्रपति संविधान के शब्दों के अनुसार मंत्रिपरिषद् के प्रतिकूल राय देने पर भी आपात की उद्घोषणा स्वविवेक से कर सकता है। अगर ऐसी स्थिति पैदा होती है तो मैं नहीं समझता क्या होगा। मैं जो इस बात पर जोर दे रहा हूं कि संविधान में

स्पष्ट रूप से यह प्रावधान लिपिबद्ध कर देना चाहिये कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही चलेगा; उसका कारण यह है, जैसाकि अभी प्रो. शाह ने कहा है, कि हम उत्तरदायी शासन की स्थापना करने जा रहे हैं। हमारी शासन-व्यवस्था इंग्लैण्ड के समानान्तर होगी न कि अमेरिका के। भले ही हम इसकी कल्पना न कर सकते हों कि राष्ट्रपति ऐसा गैर-जिम्मेदार होगा कि बिना मंत्रिपरिषद की राय के भी आपात की उद्घोषणा निकालेगा, किन्तु यह बात भी सर्वथा असम्भव नहीं है कि स्थिति विशेष में वह उसी निष्कर्ष पर पहुंचे, भले ही मंत्रिपरिषद् की अन्यथा राय हो, कि आपात विद्यमान है। मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेकर भी अगर वह आपात की उद्घोषणा करता है तो उस हालत में हो सकता है, स्थिति बुरी हो जाये। यह सम्भव है, जैसा कि प्रो. शाह ने फरमाया है, राष्ट्रपति में निहित शक्तियों का मंत्री लोग खुद निर्वाचन प्रयोजनों के लिए उपयोग करना चाहें और निर्वाचन के पहले आपात की उद्घोषणा निकलवा कर विरोधी पार्टी का मुंह सी दें और राष्ट्रपति को दी हुई शक्तियों का उपयोग अपने दल के स्वार्थ के लिए करें। पर अगर राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श की उपेक्षा कर अपनी मरजी से चलता है तो देश में क्या स्थिति होगी? यदि माननीय सदस्यों को यही विश्वास है कि संविधान में इसकी पर्याप्त व्यवस्था है कि राष्ट्रपति हर मौके पर मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेगा ही और हर मौके पर उसमें और मंत्रिवर्ग में मतैक्य रहेगा ही, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर मेरी समझ में यह बात नहीं आती है और न आ सकती है। यदि आप लोग राष्ट्रपति के सद्भाव पर ही भरोसा करके ऐसा प्रावधान रख रहे हैं तो मैं आपसे सहमत नहीं हूं। ऐसे महत्वपूर्ण प्रावधान को, जो भारत के भविष्य और भाग्य पर प्रभाव डाल सकता हो, केवल भाग्य या दैव के भरोसे पर यहां हम स्थान दे दें इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। इसलिये मैं प्रबल आग्रह करूंगा कि ऐसी बात को आप एक व्यक्ति के निर्णय पर न छोड़ें। आखिर सबकी अपनी-अपनी अलग मनोवृत्ति होती है। हो सकता है कोई राष्ट्रपति कमजोर दिल का और जरा सी बात में घबरा जाने वाला व्यक्ति हो और केवल इसलिये कि कोई सभा मजिस्ट्रेट की आज्ञा पर उठा न दी गई या कहीं एकाध मारपीट की घटना हो गई, वह यह समझ बैठे कि आपात की उद्घोषणा का पर्याप्त कारण पैदा हो गया है। जैसाकि हम सभी जानते हैं, ऐसे घबरालू स्वभाव के लोग सभी जगह हैं। और ऐसे भी दिलेर लोग हैं जो भयानक से भयानक विपत्तियों का सामना करने का पर्याप्त साहस रखते हैं। इसलिये यह ठीक नहीं होगा कि हम कोई जोखिम उठावें और किसी व्यक्ति के स्वभाव पर भरोसा करके यहां संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान न करें। खासकर के मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि हम उत्तरदायी शासन की व्यवस्था करने जा रहे हैं। हमें यहां यह कह देना चाहिये कि उस सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की राय के अनुसार ही चलेगा। माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह फरमाया है कि राष्ट्रपति को स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये। पर मान लीजिये, मंत्रिपरिषद् से यह मतैक्य नहीं रखता है और आपात की उद्घोषणा निकाल देता है। उसकी शक्तियां क्या हैं और वह काम कैसे करेगा? यदि मंत्रिपरिषद् उससे सहमत नहीं है तो स्थिति क्या होगी? हो सकता है देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाये और यह भी सम्भव है कि सेना में बगावत हो जाये और देश में गृहयुद्ध शुरू हो जाये। भगवान् ही जानता है कि ऐसी स्थिति में देश की क्या गति होगी। इसलिये मैं नहीं समझता कि संविधान में यह प्रावधान रखना किसी तरह भी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

अवांछनीय हो सकता है कि आपात की उद्घोषणा निकालने से पहले राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से जरूर परामर्श ले ले। इसमें प्रतिष्ठा-हानि की कोई बात नहीं है। आखिर आपात की उद्घोषणा के बाद भी यदि राष्ट्रपति स्थिति को काबू में लाना चाहता है तो उसे कार्यपालिका और मंत्रिपरिषद् की सहायता लेनी ही होगी। एक व्यक्ति के विवेक पर उसे छोड़ने में या भाग्य पर भरोसा करने में कोई लाभ नहीं है। मैं प्रबल आग्रह करूंगा कि प्रस्तावित संशोधन को अनुच्छेद में अवश्य स्थान दिया जाये।

*__काजी सैयद करीमुद्दीन__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरी समझ से डॉ. अम्बेडकर के संशोधन की परिधि आवश्यकता से अधिक व्यापक है। कम से कम मुझे तो इस तरह का प्रावधान दुनिया के और किसी भी संविधान में देखने को नहीं मिला। अमेरिका और इंग्लैण्ड के संविधानों में तो आपात-विधि सम्बन्धी कोई प्रावधान हैं ही नहीं। जो भी हो, मैं ऐसा समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर सम्भवत: पश्चिमी बंगाल की स्थिति को लेकर ज्यादा घबरा गये हैं। हम प्रस्तुत प्रावधान ऐसे मौके पर बनाने जा रहे हैं जब देश ऐसी स्थिति में पहुंच गया है जिसमें हम यह आशंका अनुभव करने लगे हैं कि प्रान्तों में कहीं ऐसी स्थिति न पैदा हो जाये जो केन्द्र को मंजूर न हो। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद तो यहां तक कह रहे हैं कि संसद् के सदस्यों पर वह भरोसा नहीं कर सकते हैं और उद्घोषणा को संसद् के समक्ष रखा ही न जाये। यह एक ऐसा बेमिसाल विचार है जिसे सम्भवत: बहुत से लोग स्वीकार न करेंगे। मेरा अपना ख्याल यह है कि उनका यह कथन लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों से सर्वथा असंगत है। पहली संसद् की रचना के बाद या किसी भी संसद् के निर्माण के बाद जो भी कार्यपालिका गठित की जायेगी वह संसद् की राय के अनुसार ही बनाई जायेगी और अगर किसी कार्यपालिका को सदन का विश्वास नहीं प्राप्त है तो वह अधिकारारूढ़ ही नहीं रह सकती है, वह हटा दी जायेगी। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के खण्ड (3) में यह कहा गया है कि अगर आभ्यन्तरिक अशान्ति का, आतंक का, राजद्रोह के आन्दोलनों का और हत्या के अपराधों का खतरा पैदा हो गया हो तो राष्ट्रपति किसी प्रान्त के संविधान को निलम्बित कर सकता है। मेरा ख्याल है कि संविधान के निलम्बन के लिए खण्ड (3) में जो आधार रखे गये हैं वह बहुत ही लचर हैं। आभ्यन्तरिक अशान्ति तो दो दलों में भी पैदा हो सकती है। चुनाव के समय किसी प्रान्त में कहीं झगड़ा खड़ा हो सकता है। जैसा प्रो. शाह ने कहा है, चुनाव के समय हो सकता है तनातनी जोरों पर रहे और लोग लड़ाई और झगड़ा कर बैठें। यह आभ्यन्तरिक अशान्ति ही कही जायेगी किन्तु निश्चय ही ऐसी आभ्यन्तरिक अशान्ति के आधार पर संविधान का निलम्बन न होना चहिये। अब लीजिये "हिंसा के अपराध" की बात को। डकैती भी हिंसा सम्बन्धी अपराध कही जा सकती है। हमें यह बात साफ-साफ बतानी होगी कि संविधान के निलम्बन के लिए क्या-क्या बातें पर्याप्त समझी जायेंगी। केवल यह कह देना ही काफी नहीं है कि हत्या सम्बन्धी अपराधों को भी संविधान के निलम्बन के लिए एक कारण समझा जायगा। दुनिया के हर संविधान में, जहां ऐसे प्रावधान रखे गये हैं 'युद्ध या बगावत होने पर या युद्ध और बगावत की आशंका होने पर' शब्द रखे गये हैं। इसलिये

संविधान के निलम्बन के लिये जो आधार यहां रखे गये हैं, वह मेरी समझ से श्रीमान्, ऐसे नहीं है कि सिर्फ उनके आधार पर हम संविधान को निलम्बित होने दें। वस्तुत यह दुर्भाग्य की बात है कि संशोधन में, मंत्रिमण्डल के सदस्यों से या प्रान्तीय कार्यपालिका से परामर्श लेने का प्रावधान नहीं रखा गया है। अगर यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो प्रान्तीय स्वराज्य केवल दिखावे की चीज रह जायेगी। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि पश्चिमी बंगाल में वह पार्टी अधिकारारूढ़ हो जाती तो केन्द्रस्थ पार्टी-विरोधी है उस हालत में होगा यह कि भले ही पश्चिमी बंगाल की हुकूमत यह समझती हो कि वहां आभ्यन्तरिक अशान्ति ऐसी नहीं है कि उसके लिये वहां के संविधान को निलम्बन किया जाये, फिर भी केन्द्र की इच्छा और उसकी विचारधारा जबरदस्ती बंगाल पर लाद दी जायेगी। इसका मतलब, दूसरे शब्दों में यह हुआ कि कोई भी पार्टी जो केन्द्र के अधिकारारूढ़ दल के विरुद्ध होगी उसे प्रान्त में शासन न करने दिया जायेगा। ऐसी स्थिति का होना अवश्यम्भावी है। पश्चिमी बंगाल में आभ्यन्तरिक अशान्ति इस समय भी है, हत्या के अपराध और राजद्रोह के काम अब भी हो रहे हैं, पर वहां संविधान इसलिये निलम्बित नहीं किया गया है कि वहां कांग्रेस पार्टी की हुकूमत है जो केन्द्रस्थ पार्टी की विचाराधारा से सहमत है। पर मान लीजिये वहां या अन्य किसी प्रान्त में कोई दूसरा दल अधिकारारूढ़ हो जाता है तो उस हालत में क्या होगा? परिणाम यह होगा कि ज्यों ही वहां की हुकूमत का केन्द्र से मतभेद होता है और वहां आन्तरिक अशान्ति पैदा होती है, राष्ट्रपति, जो कि केन्द्र में बहुमत प्राप्त दल द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होगा, प्रान्त में आयात की स्थिति पैदा हो जाने की उद्घोषणा कर देगा। इसका मतलब यह होगा कि लोकतंत्रीय सिद्धान्तों पर हम चलेंगे नहीं। इसलिये खण्ड (3) में उल्लिखित कारणों के आधार पर संविधान को निलम्बित करना औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता है। इसका मतलब तो यह होगा कि खण्ड (3) को रखकर हम कोई लोकतन्त्रीय सिद्धान्त नहीं रख रहे हैं। हम लोगों के दिमाग में यह बेचैनी पैदा हो गई है कि अगर कोई प्रान्त केन्द्र के विरुद्ध जाता है तो यह प्रावधान इतना निरंकुश है, इतना बेमिसाल है कि प्रान्त में किसी विपक्षी दल को शासनारूढ़ ही न रहने दिया जायेगा और आन्तरिक अशान्ति, हत्या या राजद्रोह की कार्रवाइयों का रंचमात्र भी बहाना मिलने पर वहां का संविधान ही निलम्बित कर दिया जायेगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि घबराहट में इस तरह का कोई भी प्रावधान हमें संविधान में न रखना चाहिये। मेरी समझ से श्री कामत का संशोधन सर्वथा उचित है और मैं उसका समर्थन करता हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 275 का खण्ड (1) जिस संशोधित रूप में कि अब यह यहां पेश किया गया है, वह मेरी समझ से समूचे संविधान में एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रावधान है। कई सदस्यों ने यह आशंका व्यक्त की है कि हो सकता है इसका उपयोग जनता की समुचित भावनाओं को दबाने के लिए, लोकतन्त्रीय व्यवस्था को कुचलने के लिए किया जाये। पर मेरा कहना यह है कि इस खण्ड द्वारा तो राष्ट्रपति को केवल आपात की उद्घोषणा निकालने की शक्ति मात्र प्राप्त होती है। यह राष्ट्रपति को उसके लिए बाध्य अथवा प्रोत्साहित नहीं करता है कि वह बिना गम्भीरतापूर्वक विचार किये हुये ही उद्घोषणा निकाल दे। इस सम्बन्ध में यहां दूसरे देशों की मिसाल भी पेश की गई है। पर मैं यह कहूंगा कि अन्य देशों में जो लोकतन्त्रीय व्यवस्था है वह इस प्रकार सुप्रतिष्ठित हो चुकी है और वहां के लोग कानून का इतना आदर करने वाले हो गये हैं कि

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वहां आभ्यन्तरिक अशान्ति का वैसा खतरा है नहीं जैसाकि हमारे देश में है। मैं कहूंगा कि हमें वस्तुस्थिति पर सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। मेरा कहना यह है कि हमारे देश में, बाह्य आक्रमण को तो जाने दीजिये, आन्तरिक अशान्ति के कई खतरे हैं और वह वास्तविक हैं। युद्ध का जो संकट है वह आज केवल अनुमान की बात नहीं रह गया है। आज मामूली से मामूली बहाने पर दुनिया के किसी भी भाग में युद्ध शुरू हो सकता है और दुनिया के किसी भाग में युद्ध की एक चिनगारी भी चमकी नहीं कि समूचा पृथ्वीमण्डल युद्ध की ज्वालाओं से घिर जायेगा और जरूरी है कि भारत भी बहुत कुछ अपनी इच्छा के प्रतिकूल उसमें फंस जायेगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि जहां तक कि युद्ध और बाह्य आक्रमण का सम्बन्ध है, ऐसी शक्ति राष्ट्रपति को अवश्य ही प्राप्त रहनी चाहिये। अब रह जाता है आभ्यन्तरिक अशान्ति का प्रश्न और इस पर हमें खूब सावधानी से विचार करना चाहिये। इस देश में लोकतन्त्रीय व्यवस्था के संस्थापन और संधारण में कई खतरे रुकावट डालेंगे। यहां लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था की स्थापना के लिए अपना यह प्रस्तावित संविधान एक बिल्कुल नया प्रयोग होगा। अशान्ति और विघटन पैदा करने वाली शक्तियां देश में सर्वत्र आज भी दिखाई दे रही हैं। भ्रष्टाचार, पक्षपात, अयोग्यता का प्राबल्य आपको आज भारत के प्राय: सभी भागों में मिलेगा। इन बुराइयों के कारण पहले छोटी-छोटी अशान्ति पैदा हो सकती है और उससे फिर शनै:शनै: शासन में अव्यवस्था और देश में गम्भीर अशान्ति पैदा हो सकती है। इसलिये इस तरह की अशान्ति के संकट से बचने के लिए व्यवस्था करना जरूरी है। एक सदस्य ने इस सम्बन्ध में यहां कलकत्ते की अशान्ति का भी जिक्र किया है। किन्तु उसको लेकर आपात की उद्घोषणा इसलिये नहीं की गई है कि वहां की अशान्ति को प्रान्तीय सरकार दूर कर सकती है। अगर शान्ति बढ़ती है और इतनी व्यापक हो जाती है कि स्थानीय अधिकारी उसे काबू में नहीं कर पाते हैं और सैन्यबल की सहायता पर भी वह अशान्ति को दबाने में सफल नहीं होते हैं तो मेरी समझ से, बावजूद इस बात के कि वहां कांग्रेस दल शासनारूढ़ है, आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो जायेगा। अशान्ति पैदा करने वाली शक्तियां आज देश में सर्वत्र दिखाई दे रही हैं। कई माननीय मित्रों से मुझे यह मालूम हुआ है कि पूर्वी पंजाब के कई क्षेत्रों में आज जीवन बड़ा अरक्षित हो गया है। आम रास्तों पर वहां डकैतियां हो रही हैं और लुटेरे निर्भय होकर अपना कारोबार चला रहे हैं। अभी उस दिन की बात है, आगरे में एक अमीर आदमी के 6 वर्ष के बच्चे को रात के वक्त कोई उड़ा ले भागा। बाद में यह मालूम हुआ कि बच्चे को गायब कर दिया गया है। कितने ही आदमी, जिसमें कुछ पुलिस के लोग भी थे, बच्चे को ढूंढने के लिए निकले और दल बांध कर भिन्न दिशाओं में उन्होंने बच्चे की खोज की पर वह कहीं न मिला। बाद में बाप को सूचना मिली कि बच्चा डाकुओं के एक दल के हाथ में है जो घने जंगल में एक सुरक्षित स्थान में डेरा डाले हुये हैं और अगर बाप 60 हजार रुपया दे तो लड़का उसको वापस दे दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में बातचीत चली जिसमें पुलिस भी शामिल थी, और अन्ततोगत्वा 30 हजार रुपये पर समझौता हुआ। पुलिस की स्वीकृति से एक उभय परिचित व्यक्ति के मार्फत, जिसे डकैतों के पास जाकर अकेले रुपया देने को कहा गया था, रुपया दे दिया गया और उस तरह बच्चा वापस मिला। अवश्य ही और ऐसी घटना नहीं है जिस पर आपात

की उद्घोषणा निकाली जाये, पर उससे यह जरूर जाहिर होता है कि ऐसी घटनाओं के फलस्वरूप आगे चलकर आम अशान्ति पैदा हो सकती है। जिसके लिये आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो सकता है। अपने लोकतन्त्र के शैशव काल में इस तरह की शक्ति का प्रावधान करना सैद्धान्तिक दृष्टि से जरूरी है। मैं भी यही चाहता हूं, जैसाकि अन्य माननीय सदस्य चाहते हैं, कि आपात की स्थिति कभी न पैदा हो और न उद्घोषणा ही निकाली जाये। पर आपात विषयक ऐसे अधिकार को प्रावहित करना आवश्यक है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। मैं कहूंगा कि यह शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त रहनी चाहिये।

फिर एक सवाल यह उठाया गया है कि क्या यह अनिवार्य होना चाहिये कि कार्रवाई करने के पहले राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से राय ले ही ले। मैं तो कहूंगा कि यह प्रश्न केवल एक वाद-विवाद की बात है। जहां तक कि अध्यादेश का सम्बन्ध है उसमें सद्य:स्कृत्यता की वैसी बात नहीं है और मन्त्रियों की राय उसके लिए अवश्य ले ली जायेगी। किन्तु आपात की उद्घोषणा में तो सद्य:स्कृत्यता का प्रश्न निहित है। हो सकता है उद्घोषणा बहुत ही अल्पकालिक सूचना के साथ करनी पड़े। हो सकता है राष्ट्रपति कहीं दौरे पर हो और उसे यह परामर्श मिले कि गम्भीर आपात उपस्थित हो रहा है और उसे तत्क्षण कार्रवाई करनी पड़े। इसलिये बिना मंत्रियों की राय के भी उद्घोषणा निकालने की शक्ति उसे प्राप्त रहनी चाहिये। पर मेरी समझ से ऐसी स्थिति शायद ही कभी उत्पन्न हो। मेरा ख्याल है कि जब राष्ट्रपति को कोई जबरदस्त शक्ति प्राप्त रहती है तो वह हर मामले में खूब विवेक के साथ उस शक्ति का प्रयोग मंत्रियों की राय लेकर ही करेगा ताकि उसके हाथ मजबूत रहें। इसमें शक नहीं है कि उद्घोषणा के लिये वह मंत्रियों की राय लेगा ही, पर मैं समझता हूं कि इसे लाजिमी बना देना कि राय लेकर ही वह उद्घोषणा निकाले, ठीक न होगा।

फिर प्रश्न उठते हैं उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के सम्बन्ध में। स्पष्ट रूप से संविधान में यह प्रावहित किया गया है कि आपात की उद्घोषणा राष्ट्रपति द्वारा प्रतिसंहत की जा सकेगी। माननीय मित्र श्री कामत ने यह बताया है कि उद्घोषणा में परिवर्तन करने की शक्ति के लिये कोई प्रावधान नहीं किया गया है। किन्तु मेरी समझ से इसकी कोई जरूरत नहीं है। राष्ट्रपति उद्घोषणा को प्रतिसंहत करके फिर एक नई उद्घोषणा परिवर्तित रूप में निकाल सकता है। इस रूप में उद्घोषणा में परिवर्तन किया जा सकता है और इसलिये मेरा कहना यह है कि उद्घोषणा में परिवर्तन करने के लिए अनुच्छेद में एक व्यवस्था वर्तमान है।

फिर इस बात को आवश्यक कर दिया गया है कि उद्घोषणा विधान-मंडल के समक्ष रखी जाये और इसके सम्बन्ध में भी यहां कुछ सदस्यों को आपत्ति है। मेरा कहना यह है कि इस प्रावधान में ऐसी कोई बात ही नहीं है जिससे राष्ट्रपति की प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचता हो। यह प्रावधान तो सर्वथा आवश्यक है क्योंकि मेरी समझ से यदि आपात की उद्घोषणा निकाली जाती है और फिर विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित की जाती है, तो वस्तुत: सम्भावना इसी बात की है, यदि परिस्थिति गम्भीर है कि विधान-मण्डल उसका समर्थन करेगा। यह व्यवस्था इसलिये की जा रही है कि उद्घोषणा को सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो जाये जिन्हें जनता की ओर से बोलने का अधिकार प्राप्त है। और अगर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विधान-मण्डल उसका समर्थन नहीं करता है तो विधान-मण्डल के समवेत होने से तीन दिन के अंदर वह उद्घोषणा स्वत: समाप्त हो जायेगी और प्रवर्तन में न रह जायेगी। इस अनुच्छेद में कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है और जिस रूप में यह यहां पेश किया गया है उसी रूप में हमें इसे स्वीकार करना चाहिये।

*__श्री तजम्मुल हुसैन__: अध्यक्ष महोदय, मेरी समझ से यह मसला बड़ा गम्भीर और महत्वपूर्ण है। इसमें शक नहीं कि आपात की स्थिति के लिये जबकि समस्त देश में या उसके किसी विशेष भाग में कोई संकट उपस्थित हो गया हो, राष्ट्रपति को बड़ी व्यापक शक्तियां प्राप्त रहनी चाहिएं। पर यह स्वीकार करते हुये भी कि देश की रक्षा के लिये राष्ट्रपति को व्यापक अधिकार प्राप्त रहने चाहिये, मैं यह कहूंगा कि उसके साथ ही जनता को भी राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्तियों के मुकाबिले में कुछ न कुछ संरक्षण प्राप्त होने चाहिये। माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को मैंने पढ़ा है जिसमें कहा गया है कि जब तक कि वस्तुत: युद्ध शुरू न हो जाये या आभ्यंतरिक अशान्ति उत्पन्न न हो जाये, आपात की उद्घोषणा न निकाली जायेगी। मैं उनके मन्तव्य को अच्छी तरह समझ रहा हूं। देश में संकट आने की आशंका मात्र पर अगर उद्घोषणा निकाली जाती है तो इसमें खतरा है। मैं तो कहूंगा कि देश को इस समय भी आप संकट में समझ सकते हैं। कोई विदेशी शक्ति, हो सकता है इस पर आक्रमण कर दे। हम यह सुन ही रहे हैं कि देश में आन्तरिक अशान्ति का डर है। किन्तु केवल इस आधार पर कि देश संकटग्रस्त प्रतीत होता है और राष्ट्रपति को उसका समाधान हो जाता है कि देश पर संकट आने की आशंका है, आपात की उद्घोषणा का निकाला जाना ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसलिये मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद में कुछ न कुछ संरक्षण मूलक व्यवस्था अवश्य रखी जानी चाहिये और इस अनुच्छेद पर हमें सावधानी के साथ पुनर्विचार करना चाहिये। अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है इसमें मुझे आशंका है कि जनता को स्वतन्त्रता सम्भवत: राष्ट्रपति के हाथों सुरक्षित न रह पाये। इसलिये मैं माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन का—संशोधन नं. 154 का—समर्थन करता हूं। राष्ट्रपति को यह असाधारण अधिकार देने के तो मैं इतना पक्ष में हूं कि मैं यहां तक तैयार हूं कि अगर विधान-मण्डल सत्र में हो तो भी राष्ट्रपति को उद्घोषणा निकालने की शक्ति होनी चाहिये। मान लीजिये, देश पर किसी विदेशी शक्ति का आक्रमण हो जाता है और विधान-मण्डल सत्र में है। विधान-मण्डल का कोई कानून बनाने में और पास करने में कुछ न कुछ समय लगेगा पर राष्ट्रपति तो फौरन उद्घोषणा निकाल सकता है, उसे विलम्ब न लगेगा। इसलिये विधान-मण्डल के सत्र में होने पर भी राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। वास्तविक संकट की अवस्था में यही एकमात्र हमारे उपाय हैं। और दूसरा रास्ता नहीं है। आखिर कुछ न कुछ व्यवस्था संकट के समय करनी ही पड़ेगी। अगर यह शक्ति राष्ट्रपति को नहीं प्राप्त रहती है तो संकट के समय देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। हां, यह जरूर है कि विधान-सभा के सत्र में रहने पर यदि उद्घोषणा निकाली जाती है तो वह विधान-सभा के समक्ष जरूर रखी जायेगी और फौरन रखी जायेगी ताकि यह मालूम हो जाये कि विधान सभा उससे सहमत है या नहीं। किन्तु यदि विधान-मण्डल की बैठक न हो रही हो तो उस समय मैं यह कहूंगा कि फौरन उसकी बैठक बुलाई जानी चाहिये

और इसमें विलम्ब न लगना चाहिये। मैं नहीं चाहता कि उद्घोषणा दो, तीन या चार महीनों तक प्रवर्तन में रहे।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ एक जानकारी चाहता हूं, श्रीमान्। मान लीजिये कि देश की राजधानी पर किसी विदेशी शक्ति का कब्जा हो जाता है। उस सूरत में विधान मण्डल को कैसे और कहां आहूत किया जायेगा?

*__श्री तजम्मुल हुसैनः__ अगर दुर्भाग्य से इस राजधानी पर ही किसी बाहरी शक्ति का अधिकार हो जाता है तो उस सूरत में शायद राष्ट्रपति ही न रह जायेगा। फिर विधान-मण्डल के लिए तो आपका पूछना ही बेकार है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ राष्ट्रपति किसी अन्य स्थान पर चला जायेगा और वहां कार्य चलायेगा। द्वितीय विश्व-युद्ध में ऐसा कई देशों में हुआ है।

*__श्री तजम्मुल हुसैनः__ अस्तु, मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रपति भाग सकता है और जैसाकि द्वितीय विश्व-युद्ध में हुआ जब रूस की राजधानी मास्को से और फ्रांस की राजधानी पैरिस से अन्यत्र हटाई गई, यहां भी वही किया जा सकता है। माननीय मित्र से मैं यह कह सकता हूं कि राष्ट्रपति की तरह विधान-मण्डल भी वहीं चला जायेगा जहां राष्ट्रपति गया है। अगर राष्ट्रपति भाग सकता है तो उसके पीछे-पीछे हम लोग भाग सकते हैं। हम उसको अकेला नहीं छोड़ेंगे। आखिर लोक सभा में जनता के प्रतिनिधि होंगे और यदि वही यह चाहते हैं कि देश रसातल को चला जाये तो ठीक है इसे रसातल को ही जाने दीजिये। आखिर जनता ही तो सर्वेसर्वा है।

आशा है माननीय मित्र को यह समाधान हो गया होगा कि जनता के हित में यह आवश्यक है कि उद्घोषणा के निकाले जाते ही फौरन विधान-मण्डल को आहूत किया जाये।

अब श्रीमान्, माननीय मित्र श्री कामत के दूसरे संशोधन को—संशोधन नं. 147 को—लेता हूं जिसमें यह कहा गया है, उद्घोषणा मंत्रियों की राय पर ही निकाली जाये। मैं यही मानता हूं कि राष्ट्रपति सदा मंत्रियों की राय के अनुसार ही चलेगा और कभी भी उनकी राय के खिलाफ न जायेगा। पर मैं नहीं समझता कि उसका स्पष्ट उल्लेख संविधान में हो जाना चाहिये कि राष्ट्रपति मंत्रियों की राय मानने के लिए बाध्य है। अवश्य ही राष्ट्रपति को जनता ही मनोनीत करेगी पर मंत्रिपरिषद् में वह व्यक्ति होंगे जो जनता के वास्तविक प्रतिनिधि होंगे। अगर मंत्रिपरिषद् के सदस्य राष्ट्रपति को कोई काम करने की मंत्रणा देते हैं तो उनकी मंत्रणा पर चलना उसके लिये अनिवार्य होगा। इसलिये इस तरह के मामले में, जो मेरी समझ से बहुत ही गम्भीर और महत्वपूर्ण मामला है, संविधान में यह व्यवस्था लिपिबद्ध रहनी चाहिये कि उद्घोषणा निकालने से पहले राष्ट्रपति, प्रधान-मंत्री और उसके मंत्रिमण्डल से जरूर राय ले लेगा।

अब सवाल यह आता है कि अगर देश के किसी भाग में आन्तरिक अशान्ति या बाह्य आक्रमण होता है तो उस सूरत में क्या होगा? मैं सदा ही इस पक्ष

[श्री तजम्मुल हुसैन]

में रहा हूं कि केन्द्र खूब सुदृढ़ होना चाहिये और सभी इकाइयों पर उसका पूरा नियंत्रण रहना चाहिये। अगर किसी इकाई में आन्तरिक अशान्ति पैदा हो जाती है तो वह केन्द्र से सहायता लेने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति उद्‌घोषणा निकालेगा किसी इकाई के सम्बन्ध में। मैं इसे मानता हूं जैसाकि अभी श्री करीमुद्दीन ने कहा है कि संकटग्रस्त किसी इकाई के सम्बन्ध में आपात की उद्‌घोषणा निकालने में कुछ खतरा जरूर है। उन्होंने उदाहरण के लिए बंगाल का उल्लेख किया है। मैं भी बंगाल या अन्य किसी इकाई का उदाहरण के लिए उल्लेख कर सकता हूं। इस समय सभी प्रान्तों में वही दल शासनारूढ़ है जो केन्द्र में अधिकारारूढ़ है। दूसरे दल भी हैं जो अधिकारारूढ़ होने की कोशिश कर रहे हैं। कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियां इसके लिए कोशिश कर रही हैं। चाहे जो दल अधिकारारूढ़ हो इससे प्रस्तुत मसले का कोई सम्बन्ध नहीं है। एक समय आयेगा जब कम्युनिस्ट शासनारूढ़ हो जायेंगे। आखिर कांग्रेस सदा ही अधिकारारूढ़ तो न रह पायेगी। कोई भी राजनैतिक दल सदा अधिकार में नहीं बना रहता है। यहां भी वैसा ही होगा जैसाकि इंग्लैण्ड में हुआ जहां अनुदार दल, उदार दल और श्रमिक दल का समय-समय पर शासन रहा। मान लीजिये, भारत में कम्युनिस्ट पार्टी शासनारूढ़ है और कांग्रेस दल पुन: शासन में आने का प्रयास करता है और वह किसी भी प्रान्त या राज्य में कहीं अधिकार में नहीं है, कम्युनिस्ट पार्टी विरोधी दल को कुचल डालना चाहती है। वह राष्ट्रपति से कह सकती है कि उनके प्रदेश में संकट की कहीं आशंका है और उसको सहायता करनी होगी। इसलिये मैं कहता हूं कि संरक्षण के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था हमें अवश्य रखनी चाहिये। इस प्रावधान के रखने में यही एक खतरा है। बंगाल में ही देख लीजिये, आज क्या हो रहा है। जो भी दल कहीं हो उसे आपको पूरी स्वतन्त्रता देनी होगी। आगामी चुनाव के मौके पर विरोधी पक्ष को, उसके एजेण्टों को तथा अन्य लोगों को भी जो कांग्रेस शासन की आलोचना करते हैं हमें पूरी स्वतन्त्रता देनी होगी। जब तक कि ऐसा नहीं होता है उस देश को स्वतन्त्र नहीं समझा जा सकता है। मैं इसे मंजूर करता हूं, जैसा कि मैंने पहले कहा है कि राष्ट्रपति को शक्ति अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये, पर मैं यह चाहता हूं कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस मसले पर उन बातों को ध्यान में रखते हुये पुनर्विचार करें जोकि मैंने यहां सुझाई हैं, और यह देखें कि जनता के हित संरक्षित रहें। उनको यह देखना चाहिये कि उद्‌घोषणा अधिकार में आने के लिए प्रयास करने वाली पार्टी को कुचलने के लिए न निकाली जाये।

*__श्री महावीर त्यागी:__ अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। मेरा समर्थन कुछ कमजोर जरूर होगा क्योंकि मेरी राय में खुद संशोधन ही कमजोर है। मैं चाहता हूं कि जैसे भी हो केन्द्र सब तरह से मजबूत हो। यह एक खण्ड है जो केन्द्र और विभिन्न इकाइयों को एक स्थायी सूत्र में बांधे रहेगा। एकमात्र दूसरी व्यवस्था जो इस सम्बन्ध को कायम रखेगी, वह है वह व्यवस्था जिसके अधीन इकाइयों से कर संग्रहीत किये जाते हैं या उन्हें अनुदान दिये जाते हैं। और दूसरी कोई प्रसंविदा या समझौता तो केन्द्र और इकाइयों के बीच है नहीं, जिस पर उनका सम्बन्ध बना रहे। लोकतन्त्र के सम्बन्ध में हमारी जो कल्पना है वह पाश्चात्य कल्पना से सर्वथा भिन्न है। लोकतन्त्र का एक कोई खास ढांचा हमारे लिये फिर नहीं हो सकता है। जिस तरह कि मिस्टर एटली का टोप हमारे प्रधानमंत्री के सर पर

फिट नहीं बैठ सकता है और न हमारी गांधी टोपी मिस्टर एटली के सर पर ठीक बैठ सकती है, उसी तरह लोकतन्त्र का कोई बाहर का खास ढांचा हमारे लिये फिट नहीं हो सकता है और न हमारा ढांचा पाश्चात्य देशों को फिट हो सकता है। लोकतन्त्र तो कल्पना रूपी एक पौधा है जिसे हम बाहर कहीं से लाकर यहां अपने देश में न लगा सकते हैं और न वह पल्लवित है पुष्पित ही हो सकता है। हमारा जो भूगोल है, इतिहास है और हमारी जो मनोदशा है, इन सभी के अनुरूप हमारा लोकतन्त्र होना चाहिये। अपने देश, अपनी जनता, अपने अर्थशास्त्री, अपनी सेना, अपनी भौगोलिक, सामरिक स्थिति तथा अन्य इसी तरह की बातों को ध्यान में रखते हुये ही हमें अपने लोकतन्त्र की रचना करनी होगी और उसे इन सबके अनुरूप रखना होगा। हां, लोकतन्त्र में ऐसी एक बात जरूर है जो सभी देशों के लिये समान रूप से लागू होती है और वह यह है कि प्रशासन जनता की इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। जनता की इच्छा सर्वोपरि रहनी चाहिये और जब तक जनता की इच्छा के अनुसार प्रशासन-व्यवस्था चलाई जायेगी, लोकतन्त्र ठीक से चलेगा, उसकी गति में कोई बाधा न पहुंचेगी। प्रस्तुत प्रसंग में यदि अशान्ति को यों ही रहने दिया जाता है और केन्द्र को उसमें हस्तक्षेप की शक्ति नहीं दी जाती है तो उसका परिणाम यह होगा कि लोगों में विघटन की प्रवृत्ति पैदा हो जायेगी। अगर ऐसी कोई पार्टी है जो हिंसा का सिद्धान्त मानती है और केन्द्र के विरुद्ध किसी इकाई में विद्रोह खड़ा हो जाता है तो उस अवस्था में राष्ट्रपति की यह आपात शक्ति उपयोगी सिद्ध होगी। युद्ध न होने पर शान्ति की अवस्था में भी अगर किसी इकाई की हुकूमत केन्द्र के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर देती है तो मेरी समझ से ऐसी स्थिति के निराकरण के लिये यहां कुछ न कुछ प्रावधान अवश्य होना चाहिये। अगर किसी राज्य की सरकार केन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती है और संघ से बाहर हो जाना चाहती है या किसी पड़ौसी प्रान्त या किसी बाहरी देश से मिलकर केन्द्र के विरुद्ध कुछ करती है तो आपात-शक्तियों का प्रयोग करना ही होगा। पर मुझे खेद है कि डॉ. अम्बेडकर ने, या तो यहां के उग्रपंथी दोस्तों के डर से या मंत्रिमंडल के अपने कुछ साथियों के डर से, इस प्रावधान को कुछ ऐसा बना दिया है जो उपरोक्त दृष्टिकोण से लचर प्रतीत होता है।

अनुच्छेद के जो शब्द हैं, उनमें एक कानूनी बात दिखाई पड़ती है और आशा है पण्डित पंत जैसे धुरन्धर वकील जो यहां मौजूद हैं, इस पर गौर करेंगे और यह देखेंगे कि इनमें मेरी इच्छाओं की पूर्ति की भी गुंजाइश निकलती है या नहीं। अनुच्छेद की भाषा यह है:

> "यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है, जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।"

युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति केवल इन तीन का जो यहां उल्लेख किया गया है वह केवल समझाने के लिए। इसका मतलब यह नहीं है कि यदि और किसी बात के कारण देश की सुरक्षा संकट में होती है तो इस अनुच्छेद का प्रयोग ही न किया जायेगा। अनुच्छेद की मुख्य शर्त यह है कि राष्ट्रपति को समाधान हो जाना चाहिये कि गम्भीर आपात विद्यमान है और ज्यों ही राष्ट्रपति

[श्री महावीर त्यागी]

को इसका समाधान हो जाता है यह अनुच्छेद प्रयोग में ला दिया जायेगा। सुरक्षा सम्बन्धी संकट के बारे में जिन तीन बातों का यहां उल्लेख किया गया है केवल उन्हीं तक अनुच्छेद का प्रयोग सीमित नहीं रहेगा और अगर केवल इन्हीं तीन बातों को लेकर संकट पैदा होने में ही अनुच्छेद लागू होता है तो डॉ. अम्बेडकर को यह बात यहां साफ-साफ बता देनी चाहिये कि उन्हीं तीन आपात की अवस्थाओं में अनुच्छेद लागू होगा। आपात के तो और भी कारण हो सकते हैं। मसलन किसी राज्य में विद्रोह का होना भी आपात है। मैं तो यही आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद में अन्य आपातों को भी शामिल करने की गुंजाइश है। यह बात यहां साफ हो जानी चाहिये और मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इसका स्पष्टीकरण कर दें। मैं यह चाहता हूं कि वह यहां यह स्पष्ट कर दें कि केवल उन्हीं तीन आपातों तक ही अनुच्छेद सीमित न रहेगा बल्कि अन्य आपात की दशा में भी यह लागू होगा। आखिर अन्य आपात क्यों नहीं इसमें शामिल समझे जा सकते हैं? इस अनुच्छेद के विरुद्ध हमें कोई आपत्ति ही न होनी चाहिये क्योंकि इससे जनता के लोकतन्त्रीय अधिकारों की रक्षा होती है न कि उनका अपहरण होता है। इससे जनता को कोई क्षति नहीं पहुंचती है। राष्ट्रपति अगर इस अनुच्छेद के अधीन कोई कार्रवाई करता है तो राज्य की सुरक्षा के लिये ही करेगा। आखिर राज्य क्या चीज है? जनता के लोकतन्त्रीय अधिकारों के समवाय को ही राज्य कहते हैं और इन्हीं के लिए राज्य का अस्तित्व होता है। फिर जब राज्य, का अस्तित्व ही यदि संकट में पड़ जाता है तो केन्द्र का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि राज्य, जो कि उसके अधीनस्थ प्रत्येक नागरिक के लोकतन्त्रीय अधिकारों की प्रत्याभूति का एक प्रतीक है, सुरक्षित रहे। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय शासन अगर हस्तक्षेप करता है तो ऐसा वह केवल इसीलिये करता है कि व्यक्ति के ये अधिकार सुरक्षित रहें।

फिर राष्ट्रपति एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसे समस्त भारत चुनेगा। वह जनता के अधिकारों का तथा उनके स्वातन्त्र्य का एकमात्र रक्षक होगा। वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसमें समस्त देश का विश्वास निहित रहेगा। इसलिये राष्ट्रपति जो आपात की उद्घोषणा करेगा वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जो हमारे लोकतन्त्र का प्रधानतम प्रतीक होगा। ऐसी अवस्था में हम यह आशंका कैसे करते हैं कि हमारा लोकतन्त्र खतरे में पड़ जायेगा? मेरी समझ में तो यह बात नहीं आती है। जहां कहीं भी राष्ट्रपति उल्लेख है उससे केन्द्रीय शासन ही अभिप्रेत है। यहां राष्ट्रपति शब्द में यह बात भी शामिल है कि केन्द्रीय शासन की राय जरूर ले ली जायेगी। इसलिये वस्तुतः यह केन्द्रीय शासन ही होगा जो आपात की उद्घोषणा करेगा। और फिर प्रशासन सम्बन्धी ये शक्तियां हम गवर्नर-जनरल, गवर्नर या भारतमंत्री अथवा उसके द्वारा मनोनीत प्राधिकारी जैसे पुराने जमाने के किसी डिक्टेटर में नहीं निहित कर रहे हैं। राष्ट्रपति का पद तो ऐसा पद है जिस पर कोई निर्वाचित व्यक्ति ही बिठाया जायेगा। राष्ट्रपति में उच्चतम लोकतंत्रीय प्रतिष्ठा एवं सम्मान निहित रहेगा और वह जो उद्घोषणा करेगा वह उसकी और मंत्रिमण्डल दोनों की उद्घोषणा समझी जायेगी। इसलिये केन्द्रीय शासन को आपात-शक्तियों से सुसज्जित करने पर अगर हम नहीं राजी होते हैं तो मुझे यह आशंका है कि अपने देश को जिसकी

प्रतिष्ठा अभी तक बहुत ऊंची नहीं उठ पाई है, जिसकी शक्ति अभी प्रबल नहीं है और जिसके दोनों तरफ के पड़ौसी राष्ट्र शत्रु हैं, शीघ्र ही इसके लिये पछताना पड़ सकता है। हमें यह देखना होगा कि सारा राष्ट्र अपनी समस्याओं का सामना एक होकर करे। यही एक अनुच्छेद है जो समस्त देश को एक सूत्र में बांधता है और वस्तुत: हम जो अपने संघ का निर्माण कर रहे हैं उसके पीछे इसी अनुच्छेद का बल है। आखिर संघ और विभिन्न इकाइयों में किसी प्रसंविदा के आधार पर कोई समझौता तो हुआ नहीं है। यह अनुच्छेद एक ऐसी चीज है तो सब इकाइयों को एक सूत्र में बांधता है और किसी भी इकाई को इससे रोकता है कि उसके नागरिक ऐसा कोई काम न करें जो समस्त देश के हित के प्रतिकूल जाता हो। अगर ऐसा काम करने की प्रवृत्ति कहीं पैदा होती है तो उसे दबाना होगा। लोकतन्त्र में तो हमें एक साथ रहना होगा और एक साथ चलना होगा। अगर शरीर की एक अंगुली भी काटी जाती है तो सारे शरीर को वेदना पहुंचती है। इसी तरह अपना लोकतन्त्रीय राज्य भी एक शरीर के ही रूप में है। मैं भारत को एक इकाई मानता हूं और अगर उसके किसी भी भाग में कहीं कोई बखेड़ा पैदा होता है, तो उसके कारण समस्त देश को कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिये केन्द्र का यह देखना कर्तव्य है कि देश में सर्वत्र शान्ति रहे। यदि कहीं भी शान्ति खतरे में पड़ती हो तो केन्द्र को फौरन कार्रवाई करनी चाहिये। अनुच्छेद का खण्ड (3) जिसका कि यहां कई मित्रों ने विरोध किया है, वह भी एक महत्वपूर्ण खण्ड हैं, श्रीमान्। अशान्ति उत्पन्न हो जाने पर आदेश निकालने में कोई लाभ नहीं है। आपात के प्रारम्भ के पहले ही आपात-शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिये। इसलिये अनुच्छेद का खण्ड (3) भी एक बहुत आवश्यक खण्ड है, क्योंकि इससे यह शक्ति प्राप्त होती है कि संकट आने से बहुत पहले ही हम कोई कार्रवाई कर सकते हैं। इसलिये मैं इस खण्ड का हार्दिक समर्थन करता हूं। मेरे मित्र तो यह समझते हैं कि यह खण्ड एक बड़ा ही प्रतिक्रियावादी प्रावधान है, पर मैं उनसे सहमत नहीं हूं। हम सबको इसका समर्थन करना चाहिये। मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि अनुच्छेद में आपात के बारे में जो तीन बातों का उल्लेख किया गया है उनके साथ और भी कई तरह के आपात वहां लिपिबद्ध कर दिये जायें। जिन आपातों के लिये यहां व्यवस्था की गई है उनके अलावा और अन्य आपात भी हो सकते हैं। इन शब्दों के साथ में अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन को अपना हार्दिक समर्थन देने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं, श्रीमान्। मैं समझता हूं कि इस बात से सभी सहमत होंगे कि आपात-शक्ति के सम्बन्ध में जो यह प्रावधान रखा जा रहा है वह बड़ा ही आवश्यक है। जो लोग देश की स्थिति को देखते आ रहे हैं और खास करके स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद आज जो देश में स्थिति है उसको जो ध्यान से देख रहे हैं, वह अवश्य ही इससे सहमत होंगे कि हमारे देश में आपात-शक्तियों की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी पहले कभी भी नहीं थी। कई मित्रों ने इस अनुच्छेद की तुलना भारत-शासन-अधिनियम की धारा 98 से की है: इस प्रावधान की तुलना धारा 98 से कभी नहीं की जा सकती है। धारा 98 की रचना की थी एक विदेशी हुकूमत ने और इसलिये कि जो भी थोड़ा बहुत अधिकार हमें प्राप्त था वह छिन जाये। और प्रस्तुत प्रावधान की व्यवस्था हम इसलिये कर रहे हैं कि राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त रहे कि राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य को वह सुरक्षित रख सके। जो स्वतंत्रता हमने

[श्री जगत नारायण लाल]

प्राप्त की है उसकी रक्षा करना बड़ा जरूरी है। माननीय मित्र श्री त्यागी ने, जिन्होंने कि इस अनुच्छेद का समर्थन किया है, अनुच्छेद के प्रस्तावक का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया है कि संकट के बारे में जिन तीन बातों का उल्लेख किया गया है उतना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अगर अन्य किसी बात के कारण संकट की आशंका हो तो वहां भी यह अनुच्छेद लागू होना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि यहां जिन तीन बातों का उल्लेख किया गया है वह बहुत ही व्यापक है और उनके अन्दर सभी तरह के आपात आ जाते हैं। युद्ध के कारण अगर देश की सुरक्षा संकट में पड़ती है तो आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। और अगर बाह्य आक्रमण की वजह से देश की सुरक्षा को खतरा है तो भी आयात की उद्घोषणा की जा सकेगी और फिर आभ्यन्तरिक अशान्ति के कारण यदि देश की सुरक्षा खतरे में पड़ती है तो भी आपात की उद्घोषणा की जा सकेगी। बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति ये दोनों ही इतने व्यापक शब्द हैं कि उनके अन्दर और सभी कल्पनीय आपात शामिल किये जो सकते हैं। इसलिये मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि आपात सम्बन्धी अन्य और कई बातें यहां लिपिबद्ध की जायें। मसौदा-समिति...

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ इसे निकाल ही क्यों न दिया जाये?

*__श्री जगत नारायण लाल:__ निकाल देने से तो अनुच्छेद की परिधि और भी विस्तृत हो जायेगी। मैं नहीं चाहता कि इससे अधिक शक्ति प्रदत्त की जाये। मसौदा-समिति ने इस प्रावधान द्वारा मूल अनुच्छेद में काफी सुधार कर दिया है। उद्घोषणा को 6 महीने तक प्रवर्तन में रखने के बजाय अब उन्होंने उसके प्रवर्तन की अवधि केवल दो माह कर दी है। मसौदा-समिति ने यहां एक यह प्रावधान और भी बढ़ा दिया है कि लोक सभा का यदि विघटन हो चुका है तो उस समय जबकि वह पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, उससे तीन दिन की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि इस अवधि के अन्दर विधान-मण्डल उसका अनुमोदन न कर दे। मेरी समझ से ये प्रावधान पर्याप्त हैं। यदि इन प्रावधानों के अधीन भी राष्ट्रपति को हम आपात-शक्ति देने पर तैयार नहीं हैं तो फिर उसे कोई भी आपात-शक्ति देने की आवश्यकता ही क्या है? जैसाकि एक पूर्ववक्ता ने कहा है, सर्वथा सम्भावना उसी बात की है कि उद्घोषणा मंत्रि-मण्डल की राय से ही निकाली जायेगी। ऐसी स्थिति के लिए मैं तो यहां तक प्रस्तुत हूं कि अगर मंत्रि-मण्डल भी आपात की विद्यमानता को नहीं मानता है और स्थिति के अनुरूप काम नहीं करता है तो राष्ट्रपति को ही, जिसमें समस्त राष्ट्र का विश्वास निहित है, यह शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये।

जो कुछ कह चुका हूं उससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को मैं हार्दिक समर्थन देता हूं। आशा है, सभा इसे सर्वसम्मति से स्वीकार करेगी।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ अध्यक्ष महोदय, इस मौके पर जो मैं बहस-मुबाहिसे में हस्तक्षेप करने के लिए खड़ा हो रहा हूं वह केवल इस कारण से कि मैं नहीं चाहता कि देश-वासियों की यह धारणा हो कि हम लोग संविधान में कुछ

ऐसी बात रख रहे हैं जो असंवैधानिक है, या कुछ ऐसी बात रख रहे हैं जो संविधान को ही तोड़ने के साधन के लिये रखी जा रही है या कुछ ऐसी बातें रख रहे हैं जिनसे संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों का अभिशून्यन हो जाता है, या यह कि केन्द्रीय कार्यपालिका के हाथ में ही हम सारी शक्तियां दे रहे हैं जो अन्ततोगत्वा इस देश में डिक्टेटर का रूप धारण कर लेगी।

मैं उन आदमियों में हूं, श्रीमान् जिनका यह विश्वास है कि अगर ऐसा संविधान बनाया जा सके जिसमें कार्यपालिका के लिए कोई भी ऐसी शक्ति प्रवाहित न की गई हो, जिसके द्वारा वह कभी भी नागरिकों के अधिकारों का न्यूनन कर सके या ऐसी कोई बात कर सके जो असांवैधानिक अथवा अति सांवैधानिक हो तो बहुत उत्तम है। माननीय मित्र श्री कामत की प्रवाहपूर्ण वक्तृता को मैंने बड़े ध्यान से सुना है जिसमें उन्होंने समूचे भाग 11 के सम्बन्ध में आपत्ति व्यक्त की है और यह पूछा है कि क्या दुनिया के और किसी भी संविधान में ऐसे प्रावधान कहीं रखे गये हैं? अवश्य ही उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी की, जो वाइमर संविधान को एक अपवाद बतलाया जिसके अनुच्छेद 48 में कुछ ऐसे ही प्रावधान हैं, जैसे कि प्रस्तुत अनुच्छेद में रखे गये हैं। अवश्य ही आज के जमाने में जिन्हें संविधान बनाना है वे अगर संविधान की रचना में उन कठिनाइयों का ख्याल नहीं रखते जिनका आज प्रत्येक देश में बाहुल्य है तो मैं कहूंगा कि वे अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं। आज न केवल युद्ध की, अघोषित युद्ध की और आन्तरिक अशान्ति की ही आशंका है बल्कि और भी अन्य दूसरी बात बहुत सी विपत्तियां हैं जो बहुत सम्भव है उठ खड़ी हों; कुछ तो उस कारण से कि सभी देशों में एक शोभनीय आर्थिक अवस्था वर्तमान है, सर्वत्र आर्थिक कुव्यवस्था फैली हुई है और कुछ इस कारण से कि आज विश्व में कुछ ऐसी शक्तियां वर्तमान हैं जो इस आर्थिक कुव्यवस्था को अपनी विनाशकारी राजनीतिक कार्रवाइयों का आधार बनाना चाहती हैं जिसका फल यह होगा कि सर्वत्र आर्थिक अवस्था आज से भी खराब हो जायेगी। इसलिये संविधान के रचयिता यदि संरक्षणों की व्यवस्था नहीं करते हैं, ताकि आपात की स्थिति आने पर संविधान की रक्षा की जा सके, तो मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि वे गम्भीर कर्तव्यच्युति के दोषी होंगे। यही कारण है, श्रीमान्, जिसके लिये हम लोगों ने संविधान में 'आपात-प्रावधान' शीर्षक भाग 11 को स्थान दिया है। यह बात नहीं है कि मसौदा-समिति ने केवल इतना ही किया है कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 102 और 126क के शब्दों को उठाकर यहां इस अनुच्छेद में रख भर दिया है। मसौदा-समिति ने खूब सावधानी के साथ गम्भीरतापूर्वक सोच विचार कर इस बात की कोशिश की है कि शासन को इसके लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त रहे कि वह आपात-स्थिति का सामना कर सके और ऐसी आपात स्थिति का सामना कर सके, जिससे इस संविधान के ही समाप्त होने का संकट पैदा हो जाये और देश ऐसे शासन के अधीन आ जाये जो सर्वथा असांवैधानिक हो। पर साथ ही उन्होंने इस बात के लिये पर्याप्त संरक्षण रखे हैं कि जनमत की सुनवाई हो और मैं कहूंगा कि जनमत को प्राधान्य अवश्य प्राप्त रहेगा चाहे इन आपात प्रावधानों के अधीन हम कैसी भी अवस्था में होकर क्यों न अपने प्रकार्य सम्पादित करें।

इस मसले का और एक पहलू भी है जिसको संविधान के आलोचकों को ध्यान में रखना चाहिये। यह एक लिपिबद्ध संविधान है, इसलिये ऐसे संविधान में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जो दोष होते हैं वह इसमें भी हैं। यदि हम इस सम्भावना की कल्पना नहीं करते हैं कि आगे चलकर कभी अशान्ति उत्पन्न हो सकती है जिससे संविधान के ही भंग हो जाने का खतरा हो सकता है और ऐसी सम्भाव्य स्थिति से बचने के लिए व्यवस्था नहीं करते हैं, तो उसका परिणाम यह होगा कि आगे चलकर जो शक्ति भी शासनारूढ़ रहेगी वह आपात की स्थिति में कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पायेगी, क्योंकि आपात के निराकरण के लिये उसे कोई अधिकार तो प्राप्त न रहेंगे। माननीय मित्र श्री कामत और प्रो. शाह दोनों से मैं आग्रह करूंगा कि वे अमेरिकन संविधान के इतिहास का अवलोकन करें और उसके उस अंश पर कुछ समय खर्च करके गौर से विचार करें जिसके द्वारा प्रेसिडेंट को सर्वोच्च सैनिक अधिकारी यानी कमाण्डर-इन-चीफ की शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। मैं इन लोगों से उसका भी अनुरोध करूंगा कि वह 1861 से आगे के वहां के इतिहास को पढ़ें जबकि उनका समस्त देश और सारा संविधान—जिसने कि हमारे लिये एक आदर्श का काम दिया है—वह उसी कारण से सुरक्षित रह सका कि प्रेसिडेंट को कमाण्डर इन चीफ की शक्तियों के प्राप्त हो जाने के कारण जो कर्तव्य, दायित्व और अधिकार प्राप्त होते थे उनका बड़ा ही व्यापक अर्थ लगाया जा सकता था। इस खण्ड विशेष पर, जिसके द्वारा प्रेसिडेंट को सर्वोच्च सैनिक अधिकारी की शक्तियां प्रदत्त की गई थीं ताकि वह विधि और व्यवस्था को बनाये रख सके, आक्रमण का सामना कर सके और युद्ध के समय देश का नेतृत्व कर सके, एक विस्तृत साहित्य का निर्माण हो चुका है। दरअसल बाद के एक मौके पर, जबकि अमेरिका प्रथम विश्व युद्ध में शामिल हुआ था, राष्ट्रपति विलसन, देश की समूची अर्थव्यवस्था को युद्ध सम्बन्धी साधनों की ओर लगाने में जो समर्थ हो सके थे, वह केवल इन्हीं शक्तियों के कारण, यद्यपि इनका प्रयोग एक भिन्न ढंग से किया गया था और जो प्रणाली अपनाई गई थी वह भी भिन्न ही थी। फिर मैं पूछता हूं कि इतना अनुभव सामने रहने पर भी हम क्यों न स्पष्ट शब्दों में संविधान में ऐसे संरक्षण लिपिबद्ध कर दें जिनसे गम्भीर संकट के समय संविधान की रक्षा की जा सके? क्या यह बुद्धिमत्ता की बात है कि यहां खड़े होकर हम ओजस्वी वस्तृता द्वारा शौर्य प्रदर्शन करें और यह कहें:–

"संविधान में ऐसें प्रावधानों को रखने का प्रयास किया जा रहा है कि उनके फलस्वरूप असांवैधानिक कार्रवाइयों को सांवैधानिक बताया जा सके। इनसे राष्ट्रपति एक केन्द्रीय कार्य-पालिका को इतनी असीम शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वे सर्वथा निरंकुश बन जायेंगे"। संविधान की रचना करने वालों को, ऐसे व्यक्तियों को शक्ति प्रदान करने में जो आगे चलकर कभी कुछ वर्षों बाद या दशाब्दियों के बाद पदारूढ़ होंगे और जिनके साथ उनका कोई भी सम्बन्ध न होगा, आखिर क्या प्रसन्नता मिल सकती है? उनको ऐसी असाधारण शक्तियों को प्रदत्त करने में संविधान रचयिताओं को क्या प्रयोजन हो सकता है? ऐसा तो वे केवल इसी विचार से कर रहे हैं कि अपना यह संविधान जिसकी हम रचना कर रहे हैं हर स्थिति में सदा सुरक्षित रहे। हो सकता है कि भाग 9 के प्रावधानों के अधीन प्रकार्य करते हुये राष्ट्रपति अथवा कार्यपालिका एक तरह की सांवैधानिक तानाशाही का—यह पद संहिता आजकल बहुत प्रचलित हो चली है—प्रयोग करें। किन्तु जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, संविधान की रक्षा के लिये ऐसी तानाशाही बड़ी आवश्यक है और यह एक

कठोर सत्य है जिससे हम भाग नहीं सकते हैं; जब तक कि दुनिया का स्वरूप वह रहता है जो कि आज है। आज सर्वत्र युद्ध की, आक्रमण की और आन्तरिक अशांति की आशंका वर्तमान है और इनके पैदा होने के कई कारण हैं और प्रधान कारण है आर्थिक, जैसाकि मैं समझ पाता हूं। जो मित्र यहां इन प्रावधानों की आलोचना कर रहे हैं, जो यहां यह कह रहे हैं कि संविधान के रचयिताओं का तो अभिप्राय यह है कि देश को इस संविधान द्वारा, जिसमें कार्यपालिका को इतनी प्रचुर शक्ति दी गई है कि वह तानाशाही का रूप ग्रहण कर सकती है, सर्वथा जकड़ दिया जाये और जो अपनी इन वक्तृताओं से बाहर के लोगों को यह जताना चाहते हैं कि वे ही जनता की स्वतन्त्रता के सबसे बड़े हिमायती हैं, उनसे मैं यह कहूंगा कि वह इस बात पर विचार करें कि आखिर और अन्य संविधानों में, खास तौर पर फ्रांस के संविधान में सन् 1813 से लेकर 1853 तक क्यों ऐसे प्रावधान रखे गये हैं, जिनके द्वारा पूर्ण राज्याधिकार (State of seize) की उद्‌घोषणा का अधिकार दिया गया है? पूर्ण राज्याधिकार की घोषणा का प्रावधान शायद वैसा ही प्रावधान है जैसाकि वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 में सांवैधानिक तानाशाही का प्रावधान है। इंग्लैंड जैसा देश भी ऐसी आपात-शक्तियों के प्रयोग से सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इंग्लैंड ने Emergency Act of 1920 पास किया था जिसके द्वारा कार्यपालिका को इसकी पूर्ण शक्ति दे दी गई थी कि वह स्थिति का सामना जिस तरह चाहे कर सकती है तथा संसदीय स्वीकृति के तथा एक सीमित कालावधि के अधीन आपात की उद्‌घोषणा कर सकती है। दर-असल उक्त आपात-अधिनियम (Emergency Act) किसी बाहरी शत्रु का सामना करने के लिये नहीं बनाया गया था और न ऐसी शक्तियों का सामना करने के लिए बनाया गया था, जिससे संविधान के समाप्त होने या उलटने की आशंका हो, बल्कि उन गम्भीर आर्थिक परिणामों के निराकरण के लिए बनाया गया था जो शासन की निष्क्रियता से पैदा हो सकती थीं। इसी औचित्य के आधार पर इंग्लैण्ड जैसे देश ने Emergency Act of 1920 जैसे अधिनियम को पास किया था जो परिधि एवं व्यापकता की दृष्टि से ऐसे किसी भी अधिनियम से आगे था, जिसे यहां ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी अमलदारी में पास किया हो। जो मित्र यहां इस प्रावधान को संविधान में स्थान देने के लिए हमारी आलोचना कर रहे हैं, उनसे मैं यह कहूंगा कि वे इतिहास पर दृष्टिपात करें। क्या सचमुच वे यही चाहते हैं कि हम संविधान में ऐसी व्यवस्था न करें जिससे वह रक्षित रह सके? प्रस्तुत आपात प्रावधान केवल इस उद्देश्य से रखा जा रहा है कि हमने संविधान-निर्माण में जो अपना इतना समय लगाया है और इतना जो श्रम किया है वह सब व्यर्थ न जाये और भविष्य में जो भी अधिकारारूढ़ रहें उनकी संविधान के रक्षा की पर्याप्त शक्ति प्राप्त रहे। जो अनुच्छेद इस समय विचाराधीन है उसकी भाषा के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि यह एक ऐसा मूलभूत प्रावधान है जिससे न केवल अनुच्छेद 276, 277, 279 और 280 के ही प्रावधान शासित होते हैं, बल्कि इससे कई दूसरे प्रावधान भी शासित होते हैं। इन अनुच्छेदों की रचना में इस बात का ख्याल रखा गया है कि जहां तक शक्य हो सके, शीघ्र संसद् को आहूत किया जाये और उसका अनुमोदन प्राप्त किया जाये। अनुच्छेद 276, 277, 278 और 280 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि कार्यपालिका द्वारा की गई आरम्भिक कार्रवाई को संसद् की एक तरह से स्वीकृति न मिल जाये। आखिर इन प्रावधानों के द्वारा हम संसद् की बैठकों को

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

तो निलम्बित नहीं कर रहे हैं। संसद् को संविधान पर जो शक्तियां प्राप्त हैं उन्हें हम इन प्रावधानों के द्वारा नहीं निलम्बित कर रहे हैं। संसद् को सदा इसका अधिकार है कि वह कार्यपालिका को नियमानुसार चलने को कहे। यदि संसद् यह देखती है कि आपातविधियों के अधीन बनाये गये किसी भी प्रावधान के प्रवर्तन के सम्बन्ध में कार्यपालिका अपने अधिकार से आगे बढ़ गई है तो वह उसकी खबर ले सकती है। वह मंत्रिमण्डल को बरखास्त कर सकती है और उसके स्थान पर दूसरा मंत्रिमण्डल बिठा सकती है। इन प्रावधानों पर यदि आप गौर करें तो देखेंगे कि मसौदा-समिति ने इसका पूरा ख्याल रखा है कि संसद् की शक्ति अक्षुण्ण बनी रहे और जहां तक सम्भव हो बिना किसी विलम्ब के वह आहूत की जाये। वस्तुत: सदस्यों में इस बात को लेकर परस्पर तर्क-वितर्क हो सकता है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की जो दो महीने की अवधि रखी गई वह ज्यादा है। एक ऐसे देश के लिए जहां एक प्रदेश दूसरे से बहुत दूर है और आने जाने में काफी समय लग जाता है, जब उद्घोषणा के सम्बन्ध में कोई इस आशय का प्रावधान हम संविधान में रख रहे हैं कि अमुक अवधि के बाद वह प्रवर्तन में रहेगी, तो ऐसे प्रावधान को तंग रखने में कोई फायदा नहीं है क्योंकि एक माह से कम की अवधि में संसद् का आहूत किया जाना असम्भव सा ही है और फिर आपात की उद्घोषणा के फलस्वरूप जिन कतिपय व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी उन पर विचार करने में भी तो उसे एक महीना लग जायेगा। जब तक संरक्षणमूलक यह प्रावधान वर्तमान है कि इन सभी मामलों में संसद् के निर्णय के अनुसार ही कार्यपालिका चलेगी, ये सभी प्रावधान ठीक-ठीक हैं और इनमें आपत्ति की कोई बात नहीं है।

एक बात श्री कामत ने कही थी जिसका जवाब दूसरे सदस्यों ने दे दिया है। उनका कहना यह था कि संविधान के इस भाग में हमें एक प्रावधान इस आशय का भी रखना चाहिये कि बिना मंत्रियों की राय लिये राष्ट्रपति कुछ न करेगा। संविधान की सारी योजना ही इस बुनियाद पर रखी गई है कि राष्ट्रपति संविधानिक प्रमुख रहेगा; यद्यपि यह बात कहीं लिपिबद्ध नहीं की गई है और कुछ दिन पहले किसी ने ठीक ही इस सम्बन्ध में प्रश्न किया था। पर यह एक ध्रुव सत्य है कि राष्ट्रपति केवल एक संविधानिक प्रमुख है और उससे अधिक कुछ नहीं है। वह अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रियों की राय से ही कर सकता है। यदि हम इस भाग में ऐसा प्रावधान रख देते जिसमें स्पष्ट रूप से यह बात कही गई हो तो इससे यह अर्थ लगाया जायेगा कि संविधान के अन्य प्रावधानों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग अपनी ही मरजी से कर सकता है। यह अर्थ केवल इस आधार पर लगाया जा सकेगा कि इस भाग में एक प्रावधान इस आशय का वर्तमान रहेगा कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की राय से ही इस भाग द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। जब तक कि सभी स्थलों पर यह बात न रख दें, केवल यहां इस तरह का प्रावधान रखना ठीक न होगा। फिर तो जिस उद्देश्य की हम सिद्धि चाहते हैं वही पर्याप्त रूप से सिद्ध न हो सकेगा क्योंकि एक स्थल विशेष पर यह उल्लेख रहेगा कि वह मंत्रियों की राय से ही अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा। वस्तुत: राष्ट्रपति बिना मंत्रियों की राय के कुछ कर ही नहीं सकता और अगर वह ऐसा करता है और स्वेच्छा से अपनी शक्तियों का प्रयोग करने लगता है, तो अनुच्छेद 50 के तथा उसके अनुवर्ती अनुच्छेदों

के प्रावधान उस पर लागू किये जा सकते हैं और उसे प्राभियुक्त करके पद से निष्कासित कर दिया जा सकता है।

इस भाग के अगले अनुच्छेद पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। आपात-प्रावधानों को हम दो हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं। एक वह हिस्सा जिसमें राष्ट्रपति को संविधान की रक्षार्थ कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है उस स्थिति के लिये जबकि किसी गम्भीर आपात की विद्यमानता से समूचे देश पर संकट की आशंका हो। दूसरा हिस्सा वह है—और इसे प्रस्तुत भाग का भाग (ख) कहना चाहिये—जिसमें राष्ट्रपति को हस्तक्षेप का अधिकार दिया गया है किसी ऐसी स्थिति के लिये, जबकि किसी आपात से किसी राज्य का शासन संविधान के अनुसार न चलाया जा सकता हो। उस अनुच्छेद पर डॉ. अम्बेडकर एक संशोधन यथासमय उपस्थित करेंगे और उस समय हम लोगों को उस पर अपना विचार व्यक्त करने का मौका मिलेगा। फिलहाल हमारा प्रयोजन केवल अनुच्छेद 275 से है और इस पर विचार करते समय हमें यह नहीं सोचना है कि अपने संघ के किसी राज्य के प्रदेश में अगर कोई आपात विद्यमान होता है जिससे इस राज्य का प्रशासन संविधानानुसार न चल पाये, तो उसके लिये क्या व्यवस्था हो। वह तो एक भिन्न ही मसला है और जैसाकि मैं कह चुका हूं राज्यों के सम्बन्ध में भी मसौदा-समिति ने सदा इस बात का ख्याल रखा है कि संसद् की शक्तियों का किसी तरह न्यूनन न होने पाये। अगर कुछ लोग यहां यह आलोचना करते हैं कि ये प्रावधान तो ऐसे हैं कि इनसे मूल अधिकारों पर आक्रमण होता है, नागरिकों के विशेषाधिकारों का अल्पीकरण होता है, तो उनसे मैं पूछता हूं कि नागरिकों के जो प्रतिनिधि संसद् में रहेंगे, वह किस लिये रहेंगे? नागरिक स्वातन्त्र्य के-यह शब्द आजकल बहुत चल गया है पर इसका वास्तविक अर्थ क्या है इसे भगवान् ही जाने—स्वच्छंद उपयोग पर अगर कोई अल्पकालिक प्रतिबन्ध ही लगाया जाता है तो इस पर माननीय मित्र श्री तजम्मुल हुसैन को क्यों आपत्ति हो रही है? आखिर जनता के 750 प्रतिनिधि संसद् में रहेंगे ही, जो सदा इसकी सावधानी रखेंगे कि नागरिक स्वातंत्र्य पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगे। इतने जन प्रतिनिधियों के रहते उन्हें क्यों इस पर आपत्ति हो रही है? मुझे इसमें संदेह नहीं कि मि. तजम्मुल हुसैन खुद इससे सहमत होंगे कि कतिपय आकस्मिक स्थितियों में नागरिक स्वातन्त्र्य पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक होगा। उदाहरण के लिये, वर्तमान राशनिंग या खाद्य-नियंत्रण को ही लीजिये। इससे भी तो नागरिक स्वातन्त्र्य का न्यूनन ही होता है। आप कहीं से भी एक मन चावल या गेहूं नहीं ले सकते हैं। पर आप इसे बरदाश्त करते हैं। आपात की स्थिति में राज्य की मदद के लिए और संविधान की रक्षा के लिए तो शायद आपको इससे भी अधिक नियंत्रण बरदाश्त करने होंगे। और अगर नागरिक स्वातन्त्र्य पर अनावश्यक प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो उसकी जिम्मेदारी होगी संसद् के सदस्यों पर, जो कि जनता के सही शासक हैं न कि कार्यपालिका पर। अगर कार्यपालिका जनप्रतिनिधियों के कहने के अनुसार नहीं चलती है तो उसे अपनी जगह से हट जाना पड़ेगा। पर यह तभी होगा जबकि जनता के प्रतिनिधि दृढ़ता से काम लें। इसलिये मैं तो यह महसूस करता हूं कि ये जो शोर मचाया जा रहा है कि इन प्रावधानों से नागरिक स्वातंत्र्य का अनुचित न्यूनन होता है वह सही नहीं है। आखिर संसद् को तो यह शक्ति प्रदत्त ही है कि वह इस बात का ख्याल रखे कि शासन जनता को उतना नागरिक स्वातन्त्र्य अवश्य प्रदान करे कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जितना कि राज्य एवं संविधान की रक्षा को ध्यान में रखते हुये संगत हो। जब तक संसद् की इस शक्ति का अल्पीकरण नहीं किया जाता है लोगों का ऐसा शोर मचाना बिल्कुल गलत है। इसलिये मेरा कहना यह है कि इन प्रावधानों के विरुद्ध जो बातें कही गई हैं उनमें अधिकांश ऐसी हैं जो बेमतलब हैं क्योंकि संसद् की शक्ति अक्षुण्ण रखी गई है। बहस-मुबाहिसे में हस्तक्षेप करके मैं सभा को इतना ही बताना चाहता था कि संविधान में इन प्रावधानों को रखने में किसी को भी कोई खुशी नहीं हो सकती है, पर साथ ही यह भी बात है कि अगर हम संविधान में ऐसे प्रावधान नहीं रखते हैं जिनसे उन लोगों को जिन्हें कि भविष्य में देश के भाग्य को सम्भालना है, संविधान की रक्षा की क्षमता प्राप्त होती है, तो हम अपने कर्तव्य-पालन में चूकते हैं। और सभा को मैं यह बात इसलिये बताना चाहता था कि उसके सभी सदस्य और बाहर के लोग भी यह समझ जायें कि इन आपात-प्रावधानों को हमें यह समझकर बरदाश्त करना पड़ेगा कि बुरे होने पर भी ये हमारे लिये आवश्यक हैं। बिना इन प्रावधानों के बहुत सम्भव है कि संविधान-निर्माण का हमारा सारा प्रयास व्यर्थ चला जाये और संविधान संकट में पड़ जाये, क्योंकि संविधान की रक्षा के लिए जब तक कार्यपालिका को पर्याप्त शक्ति न प्राप्त रहेगी यह आशंका रहेगी ही। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

श्री एच.वी. कामतः माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को मैं यह बताना चाहूंगा कि वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 का हवाला देकर मैं यह बताना चाहता था कि हिटलर ने अपनी तानाशाही की स्थापना के लिए इन्हीं प्रावधानों का प्रयोग किया था।

अध्यक्षः अब शायद डॉ. अम्बेडकर बोलना चाहें।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं नहीं समझ पाता हूं कि बोलूं या न बोलूं। बहस-मुबाहिसे में बहुत सी बातें कही गई हैं। वाद-विवाद में भाग लेने वाले सदस्यों की अगर यही इच्छा हो कि मैं कुछ कहूं, तो मैं बड़ी खुशी से ऐसा करूंगा पर आज नहीं कल।

अध्यक्षः मैं समझता हूं कि जितने भी प्रश्न उठाये गये थे उन सबका जवाब श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने दे दिया है। अब आपको उनका जवाब देने की जरूरत शायद नहीं है।

पं. ठाकुर दास भार्गवः अब हमें और किसी जवाब की अपेक्षा नहीं है।

अध्यक्षः मैं नहीं समझता कि आपका उत्तर में न बोलना उन सदस्यों के प्रति अपमान होगा जिन्होंने कि वाद-विवाद में भाग लिया है। पर अगर आप जवाब में बोलना चाहते हैं, तो अवश्य ही आपको ऐसा करने से मैं नहीं रोकूंगा। जवाब के लिए क्या आप अधिक समय लेंगे?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः जवाब देने में तो कुछ समय लगेगा। पर मैं यह समझता था कि अब जवाब देने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी सभी बातों का जवाब दे चुके हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** उनकी बात हम कल सुनें। पर हम उनको सुनना अवश्य चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं केवल समय का ही नहीं ख्याल कर रहा हूं। पर मैं नहीं समझता हूं कि जवाब की कोई आवश्यकता है। अस्तु, अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'may be revoked' (प्रतिसंहत की जा सकेगी) शब्दों के आगे 'or varied' (या परिवर्तित की जा सकेगी) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 में खण्ड (1) में 'President' शब्द के आगे 'Acting upon the advice of this Council of Ministers' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) में 'by war or by external aggression or' (युद्ध या बाह्य आक्रमण) शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 में खण्ड (3) में 'occurrence of war or of any such aggression or disturbance' शब्दों की जगह 'occurrence of such disturbance' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'275. (1) If the President is satisfied that a grave emergency exists whereby the security of India or of any part of the territory thereof is threatened, whether by war or external aggression

Proclamation of Emergency.

[अध्यक्ष]

or internal disturbance, he may, by Proclamation, make a declaration to that effect.

(2) A Proclamation issued under clause (1) of this article (in this Constitution referred to as "a Proclamation of Emergency"—

(a) may be revoked by a subsequent Proclamation;

(b) shall be laid before each House of Parliament;

(c) shall cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in sub-clause (c) of this clause and the Procaimation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolution approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(3) A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by war or by external aggression or by internal disturbance may be made before the actual occurrence of war or of any such aggression or disturbance if the President is satisfied that there is imminent danger thereof.' "

[275. (1) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है, जिससे कि युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति से भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा (जो इस संविधान में आपात-उद्घोषणा के नाम से निर्दिष्ट की गई है)—

(क) उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहत की जा सकेगी।

(ख) संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जा सकेगी।

(ग) दो माह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी, जब तक कि संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा इस अवधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये:

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है, जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक सभा का विघटन इस खण्ड के उपखण्ड (ग) में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उस कालावधि की समाप्ति के पहले लोक सभा द्वारा पारित एक संकल्प के द्वारा उस उद्घोषणा का अनुमोदन नहीं हुआ है, तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला एक संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता है।

(3) यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है, तो युद्ध अथवा ऐसी कोई आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा, कि भारत की अथवा भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 को, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 275 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 3 अगस्त सन् 1950 के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-4.49
320

अंक 9
संख्या 4

बुधवार
3 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 276, 188, 277-क, 278 और 278-क पर विचार] 193–245

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 3 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 276

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 276 को लेंगे। इस पर कुछ संशोधन हैं जिनकी सूचना दे दी गई है और जो छपी सूची के भाग 2 में दिये हुये हैं।

(संशोधन संख्या 3002 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम) : क्या मैं संकेत करूं कि संशोधन संख्या 3003 मसौदा सम्बन्धी संशोधन है? उसमें कुछ शब्दों को केवल इधर से उधर किया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि ऐसी बात है तो मैं उससे सहमत हूं।

(संशोधन संख्या 3004 और 3005 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्यचा 3006 ठीक मसौदा सम्बन्धी जैसा नहीं है। संशोधन संख्या 3006 संशोधन संख्या 3003 का आनुषंगिक है। अत: दोनों को पेश करिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 276 में 'then' शब्द के बाद के 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को अपमार्जित किया जाये और 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को इसी अनुच्छेद के खंड (क) के आरम्भ में प्रविष्ट किया जाये।"

मैं यह संशोधन भी पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 276 के खंड (ख) के अन्त में 'notwithstanding that it is one which is not enumerated in the Union List' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

(अनुपूरक सूची का संशोधन संख्या 119 पेश नहीं किया गया।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***अध्यक्ष:** और कोई संशोधन नहीं है। क्या कोई व्यक्ति बोलना चाहता है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** अध्यक्ष महोदय, मैं निवेदन करता हूं कि खंड (ख) के अन्त में कुछ शब्द जोड़ने का संशोधन संख्या 3006 इस अनुच्छेद के शुरू के भाग में आ ही जाता है। जिन शब्दों के जोड़ने की प्रस्थापना की गई है वे ये हैं:

"इस बात के होते हुये भी कि वह संघ सूची में प्रगणित नहीं है।"

इस बात के होते हुये भी कि जो विषय संव्यवहृत है वह संघसूची में प्रगणित नहीं है आपात की उद्घोषणा से उद्भूत उस विषय सम्बन्धी कुछ शक्तियां राष्ट्रपति को दी जा रही हैं। राष्ट्रपति को वह प्रान्तीय सूची के विषयों पर कार्यवाही करने की शक्ति देता है। परन्तु यह रक्षाकवच तो वहां अनुच्छेद 276 के आरम्भ में ही है। डॉ. अम्बेडकर इन शब्दों को खंड (क) के अंत में रखने की प्रस्थापना करते हैं। परन्तु भाव वही रहता है क्योंकि अनुच्छेद का आरम्भ इन शब्दों से होता है। "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी" जिसमें यह शर्त आ जाती है कि "इस बात के होते हुये भी कि वह संघ सूची में नहीं है"। अत: अन्त में इन शब्दों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इन शब्दों का भाव इस साधारण शर्त द्वारा आ जाता है "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी" जो अनुच्छेद के आरम्भ में है। साधारण शब्दों के होते हुए भी यदि हमें इस प्रकार की विशिष्ट बात का उल्लेख करना है तो उन बातों को बिल्कुल स्पष्ट रखना पड़ेगा, पर इस बात का किसी को विश्वास नहीं हो सकता है कि आगे कोई और भी अपवाद होंगे जिनका विशिष्ट उल्लेख आवश्यक होगा। यह संशोधन अनावश्यक है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यदि मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद भारतीय सरकार के अधिनियम की 126-क धारा को देखें तो उनको विदित हो जायेगा कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन क्यों आवश्यक है, क्योंकि जब आपात घोषित कर दिया जाता है तो आपातकाल में अनुच्छेद 276(ख) संघ को व्यापक शक्ति प्रदान करता है और इस अर्थ को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए ये शब्द आवश्यक हैं। भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 126-क में प्रयुक्त भाषा के अनुसार विषय को स्पष्ट कर दिया गया है। यदि वे एक बार फिर उस धारा को पढ़ें तो उनको यह विदित हो जायेगा कि इस अनुच्छेद में इन शब्दों के रखने पर कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं मेरे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** तब तो मैं संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 276 में 'then' शब्द के बाद 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को अपमार्जित किया जाये और

'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को इसी अनुच्छेद के खंड (क) के आरम्भ में प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 276 के खंड (ख) के अन्त में 'notwithstanding that it is one which is not enumerated in the Union List' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 276 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 276 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 188, 277-क, 278 और 278-क

***अध्यक्षः** इसके बाद हम अनुच्छेद 277 पर आते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह चाहूंगा कि अभी अनुच्छेद 277 को रोक लिया जाये।

***अध्यक्षः** तो क्या हम अनुच्छेद 277-क को लें? अभी अनुच्छेद 277 को रोक लिया गया है और इस समय हम अनुच्छेद 277-क को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इन तीनों संशोधनों को एक साथ ले लिया जाये—अनुच्छेद 188 के हटाने का संशोधन, नवीन अनुच्छेद 277-क का पुरःस्थापना करना और पुराने अनुच्छेद 278 के स्थान में नवीन अनुच्छेद 278 और 278-क का रखना—क्योंकि इनके विषय परस्पर सम्बंधित हैं। मतदान के प्रयोजनार्थ इनको पृथक-पृथक रखा जा सकता है। पर वाद-विवाद के हेतु, मैं समझता हूं, कि इनको साथ-साथ लिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 188, 278 और 278-क को एक साथ लिया जायेगा क्योंकि उनका विषय परस्पर सम्बन्धित है और यह अच्छा होगा कि इन सब अनुच्छेदों की चर्चा एक साथ की जाये यद्यपि हम इन पर पृथक-पृथक मत लेंगे।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 188 अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 277 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'277-A. Duty of the Union to protect States against external aggression and internal disturbance.

It shall be the duty of the Union to protect every State against external aggression and internal disturbance and to ensure that the government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution.' "

[277(क). बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से राज्य का संरक्षण करने का संघ का कर्तव्य।

बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।]

और फिर इसके बाद, श्रीमान्, मैं सूची 2 के संशोधन 160 को पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 278 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखे जायें:

278. (1) Provisions in case of Failure of Constitutional machinery in States.

If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of a State or otherwise, is satisfied that the Government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, the President may by proclamation—

(a) assume to himself all or any of the functions of the Government of the State and all or any of the powers vested in or exercisable by the Governor or Ruler, as the case may be, or anybody or authority in the State other than the Legislature of the State;

(b) declare that the powers of the Legislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament;

(c) make such incidental and consequential provisions as appear to the President to be necessary or desirable for giving effect to the objects of the proclamation, including provisions for suspending in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to any body or authority in the State:

Provided that nothing in this clause shall authorise the President to assume to himself any of the powers vested in or exercisable by a High Court or to suspend in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to High Courts.

(2) Any such 'Proclamation may be revoked or varied by a subsequent proclamation.

(3) Every Proclamation under this article shall be laid before each House of Parliament and shall, except where it is a proclamation revoking a previous Proclamation, cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People is dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the people first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(4) A Proclamation so approved shall, unless revoked, cease to operate on the expiration of a period of six months from the date of the passing of the second of the resolutions approving the Proclamation under clause (3) of this article:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of such a Proclamation is passed by both Houses of Parliament, the Proclamation shall, unless revoked, continue in force for a further period of six months from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to operate, but no such Proclamation shall in any case remain in force for more than three years.

Provided further that if the dissolution of the House of the People takes place during any such period of six months and a resolution approving the continuance in force of such Proclamation has not been passed by the House of the People during the said period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the proclamation have been passed by both Houses of Parliament.'

"278-A. (1) Where by a Proclamation issued under clause (1) of article 278 of this Constitution it has been declared that the powers of the Legislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament, it shall be competent.—

Constitutions exercisable.

(a) for Parliament to delegate the power to make laws for the State to the President or any other authority specified by him in that behalf;

(b) for Parliament or for the President or other authority to whom the power to make laws is delegated under sub-clause (a) of this cause to make laws conferring powers and imposing duties or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities or the Government of India;

(c) for the President to authorise when the House of the people is not in session expenditure from the Consolidated Fund of the State pending the sanction of such expenditure by Parliament;

(d) for the President to promulgate Ordinances under article 102 of this Constitution except when both Houses of Parliament are in session.

(2) Any law made by or under the authority of Parliament which Parliament or the President or other authority referred to in sub-clause (a) of clause (1) of this article would not, but for the issue of a Proclamation under article 278 of this Constitution, have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of one year after the Proclamation has ceased to operate except as respects things done or omitted to be done before the expiration of the said period unless the provisions which shall so cease to have effect are sooner repealed or re-enacted with or without modification by an Act of the Legislature of the State."

राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की अवस्था में उपबन्ध

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उपबन्धों के उद्घोषणा द्वारा:

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा यथास्थिति राज्यपाल या शासक में, अथवा राज्य के विधान मंडल को छोड़कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित, या तदद्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ग) राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसे कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें:

परन्तु इस खंड की किसी बात में राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बद्ध किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित कर दे।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी, तथा जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो महीने की समाप्ति पर, यदि उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो, प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु यदि कोई ऐसी उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक-सभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोक सभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले कोई संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से, जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहृत नहीं हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तारीख से छह महीने की कालावधि की समाप्ति पर वह प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत रखने के लिये अनुमोदन करने वाला संकल्प, यदि और जितनी बार, संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार, वह उद्घोषणा, जब तक कि प्रतिसंहृत न हो जाये, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अथवा प्रवर्तन में नहीं रहती, छह महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किन्तु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था में भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी:

परन्तु यह और भी कि यदि लोक सभा का विघटन छह मास की किसी ऐसी कालावधि के भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त कालावधि में पारित नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगा जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को प्रवर्तन में बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता।

278क. (1) जहां इस संविधान के अनुच्छेद 278 के खंड (1) के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां—

(क) राष्ट्रपति को अथवा राष्ट्रपति द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी अन्य प्राधिकारी को राज्य के लिये विधि बनाने की शक्ति देने की संसद् को,

(ख) भारतीय सरकार अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्तव्य आरोपित करने के लिए अथवा शक्तियों का दिया जाना या कर्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये, विधि बनाने की संसद् की अथवा राष्ट्रपति की या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य प्राधिकारी में उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिए संसद् की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की,

(घ) जब संसद् के दोनों सदन सत्र में न हों उस समय इस संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति की, सक्षमता होगी।

(2) राज्य के विधान-मण्डल की शक्ति के प्रयोग में संसद् द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे (इस संविधान के) अनुच्छेद 278 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद् या राष्ट्रपति या ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिए सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई थीं जब तक कि वे उपबन्ध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, समुचित राज्य के विधान-मंडल के अधिनियमन द्वारा उससे पहले ही या तो निरसित और या रूपभेदों के सहित या बिना पुनः अधिनियमित न कर दिये गये हों।]

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) : अनुच्छेद 188 भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं कह चुका हूं कि अनुच्छेद 188 अपमार्जित किया जायेगा। उसके लिये यह वास्तव में आवश्यक नहीं है कि संशोधन पेश किया जाये। पूरे चित्र का सदन को अनुमान कराने के लिए मैंने कहा है कि हम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने की प्रस्थापना करते हैं।

श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि संभवत: इस अनुच्छेद पर पूरी-पूरी बहस होगी और जो आलोचनात्मक प्रश्न उठाये जायेंगे उनकी व्याख्या करने के लिए शायद मुझे किसी समय बुलाया जाये, अत: मैं समझता हूं कि यह ठीक होगा कि इस नयी योजना से उद्भूत अनेक प्रश्नों को बहुत व्यापक रूप में लेने के क्षेत्र में मैं प्रवेश न करूं। अनुच्छेद 188 को हटाकर अनुच्छेद 277-क को जोड़कर और पुराने अनुच्छेद 278 के स्थान में दो नवीन अनुच्छेद 278 और 278-क रखकर जिस वस्तु विन्यास का हम उपबन्ध करते हैं उसकी आरम्भ में मैं केवल रूप रेखा ही देना चाहता हूं।

मैं समझता हूं कि मैं लोक सभा को यह स्मरण कराकर भली प्रकार से आरम्भ कर सकता हूं कि जब हम संविधान के साधारण सिद्धान्तों पर विचार कर रहे थे उस समय सभा द्वारा यह मान लिया गया था कि संविधान के निलम्बित करने के लिए संविधान में किसी तंत्र का उपबन्ध होना चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कि इस संविधान में कुछ ऐसे उपबन्धों का पुन:स्थापन करना चाहिये जो भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 93 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के कुछ-कुछ समान हों। जिस समय सभा द्वारा यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया था उस समय यह प्रस्थापित किया गया था कि यदि प्रान्त का राज्यपाल यह अनुभव करता है कि प्रान्त के विषयों के प्रशासन के लिये जो तंत्र नियत किया गया था वह विफल हो जाता है तो उद्घोषणा द्वारा एक पक्ष के लिये उस प्रान्त के प्रशासन को स्वयं अपने ऊपर ले लेने के शक्ति राज्यपाल को होनी चाहिये और उसके बाद इस विषय की सूचना वह संघ के राष्ट्रपति को दे कि तंत्र विफल हो गया है, उसने उद्घोषणा जारी कर दी है और प्रशासन अपने ऊपर ले लिया है, और इस प्रकार मूल अनुच्छेद 188 के अधीन राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन करने पर राष्ट्रपति अनुच्छेद 278 के अधीन कार्यवाही कर सकता था। यह मूल योजना थी।

अब यह सोचा गया है कि यदि आपात वास्तविक है जिसके कारण राष्ट्रपति के लिये कार्यवाही करना अपेक्षित है तो सर्वप्रथम केवल एक पक्ष के लिये संविधान निलम्बित करने की शक्ति राज्यपाल को देने से प्रयोजन की लाभदायक रूप में पूर्ति नहीं हो सकेगी। यदि इस संविधान में निहित विधान को निलम्बित करने के लिए राष्ट्रपति को अन्त में प्रान्तीय क्षेत्र में प्रवेश करने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करना ही है तो यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि राष्ट्रपति आरम्भ से ही उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाये। इस आधार पर कि इस परिस्थिति के लिए यही सही हल है कि यदि राष्ट्रपति का ही उत्तरदायित्व है तो वह आरम्भ से ही इस क्षेत्र में आ जाये तब तो यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 188 व्यर्थ है और उसकी आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि मैंने इस अनुच्छेद 188 के अपमार्जन की प्रस्थापना की है।

अब मैं अनुच्छेद 277-क पर आता हूं। कुछ लोग यह सोचेंगे कि अनुच्छेद 277-क केवल एक पवित्र घोषणा है और उसको वहां नहीं रखना चाहिये। मसौदा

समिति ने कुछ और ही विचार किया है, अतः मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मसौदा समिति ने यह क्यों सोचा कि अनुच्छेद 277-क यहां होना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस संविधान में ऐसे बहुत से उपबन्धों के होते हुए भी कि जिनके द्वारा केन्द्र को प्रान्तों के अधिकार हथियाने की शक्ति दी गई है यह मान लिया गया है कि वह फेडरल है—इससे यह आशय है कि अपने क्षेत्र में प्रान्त उतने ही सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं जितना कि केन्द्र अपने उस क्षेत्र में है जो उसे सौंपा गया है। दूसरे शब्दों में उन उपबन्धों को छोड़कर जो केन्द्र को प्रान्त द्वारा पारित किसी विधान को रद्द करने की अनुज्ञा देते हैं, प्रान्त को अपनी शान्ति, व्यवस्था और सुशासन के लिये कोई भी विधि बनाने का पूरा प्राधिकार है। अब जबकि संविधान एक बार प्रान्तों को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न बना देता है और अपनी शांति, व्यवस्था और सुशासन के लिये कोई भी विधि बनाने की पूरी-पूरी शक्तियां दे देता है तो वास्तव में केन्द्र अथवा किसी अन्य प्राधिकार द्वारा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये क्योंकि यह प्रान्त के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्राधिकार पर आक्रमण होगा। यह एक मूल प्रस्थापना है जिसे मैं समझता हूं कि हमें इस तथ्य के आधार पर स्वीकार कर लेना चाहिये कि हमारा संविधान फेडरल है। ऐसा होने के कारण यदि प्रान्तीय विषयों के प्रशासन में केन्द्र को हस्तक्षेप करना है—जिसके लिए अनुच्छेद 278 और 278-क के द्वारा हम केन्द्र को प्राधिकृत करने की प्रस्थापना रख रहे हैं—तो वह किसी आभार द्वारा तथा उस आभार के अधीन होना चाहिये जिसे संविधान केन्द्र पर आरोपित करे। ऐसा आक्रमण नहीं होना चाहिये जो स्वेच्छाचारी, मनमाना और विधि द्वारा अप्राधिकृत हो। अतः यह बिलकुल स्पष्ट करने के लिए कि अनुच्छेद 278 और 278-क को केन्द्र द्वारा प्रान्तों के प्राधिकार पर मनमाने आक्रमण के रूप में न समझा जाये, हम अनुच्छेद 277-क के पुरःस्थापन करने की प्रस्थापना करते हैं। सदस्यों को यह विदित होगा कि अनुच्छेद 277-क में यह कहा गया है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह प्रत्येक एकक का रक्षण करे और संविधान का पोषण भी करे। जहां तक इस आभार का सम्बन्ध है यह देखा गया है कि हमारा संविधान ही ऐसा नहीं है जो इस कर्त्तव्य और इस आभार का सृजन कर रहा हो। ऐसे खंड अमरीका के संविधान में हैं। आस्ट्रेलिया के संविधान में भी वे हैं जहां कि संविधान में स्पष्ट निबन्धन द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि एककों अथवा राज्यों का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करे। हम केवल उस सिद्धान्त में एक और खंड जोड़ने की प्रस्थापना करते हैं जो अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में दिया गया है और वह यह कि प्रान्तों के इस विधि द्वारा अधिनियमित रूप में संविधान का पोषण करना संघ का कर्त्तव्य होगा। इसमें कोई नई बात नहीं है और जैसा कि मैंने कहा था कि इस तथ्य के कारण कि प्रान्तों को पूरी शक्तियां दे रहे हैं और उनके क्षेत्रों में उनको संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न बना रहे हैं। अतः यह उपबन्ध करना आवश्यक है कि यदि केन्द्र द्वारा प्रान्तीय क्षेत्र पर कोई आक्रमण किया जाता है तो वह इस आभार के कारण है। वह कार्य इस आभार तथा इस कर्त्तव्य की पूर्त्ति के लिए किया जायेगा और जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है उसे एक स्वेच्छाचारी, मनमाने और अप्राधिकृत कार्य के रूप में नहीं समझा जा सकता है। इस हेतु हमने अनुच्छेद 277-क का पुनःस्थापन किया है।

अनुच्छेद 278 और 278-क यद्यपि वे दो पृथक खंड प्रतीत होते हैं पर वे हैं मूल अनुच्छेद 278 के भाग मात्र। अनुच्छेद 278 में लगभग सात खंड हैं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रथम चार खंड नये अनुच्छेद 278 में रख दिये गये हैं। खंड (4) से आगे के खंड अनुच्छेद 278-क में हैं। इस विभाजन का कारण यह है कि यदि यह न किया जाता तो अनुच्छेद 278 इतना बड़ा हो जाता कि सदस्यों के लिए उसमें अन्तर्विष्ट अनेक उपबन्धों का समझना कठिन हो जाता। उसको सरल करने के लिए यह विभाजन किया गया है।

अनुच्छेद 278 में पहला परिवर्तन जिस पर ध्यान देना चाहिये यह है कि राष्ट्रपति को राज्यपाल के अथवा अन्यथा प्रतिवेदन पर कार्यवाही करनी है। मूल अनुच्छेद 188 में केवल यह उपबन्ध दिया गया था कि राज्यपाल के प्रतिवेदन करने पर राष्ट्रपति को कार्यवाही करनी है। 'अन्यथा' शब्द वहां नहीं था। अब यह अनुभव किया गया कि इस तथ्य के कारण कि अनुच्छेद 278 का पूर्ववर्ती अनुच्छेद 277-क केन्द्र पर कर्तव्य तथा आभार आरोपित निकरता है तो राष्ट्रपति की कार्यवाही को प्रान्त के राज्यपाल के प्रतिवेदन तक सीमित तथा निर्बन्धित करना ठीक नहीं है—वह कार्यवाही जो अनिवार्य रूप से कर्तव्य पालन के लिए करनी होगी। यह भी हो सकता है कि राज्यपाल प्रतिवेदन ही न करे। फिर भी तथ्य कुछ ऐसे हों कि राष्ट्रपति यह समझें कि उसका हस्तक्षेप आवश्यक तथा अनिवार्य है। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 277-क के पुरःस्थापन के अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप हमें राष्ट्रपति को उस समय भी कार्यवाही करने की स्वतंत्रता देनी चाहिये जबकि राज्यपाल द्वारा कोई प्रतिवेदन न हो और राष्ट्रपति की जानकारी में जब कुछ तथ्य ऐसे आ गये हों जिनके आधार पर वह यह समझे कि अपने कर्तव्य पालन के लिए उसे कार्यवाही करनी चाहिये।

दूसरा परिवर्तन जो अनुच्छेद 278 द्वारा किया गया है वह यह है कि पहिले, विधान-मंडल के प्राधिकार और शक्तियां केवल संसद् द्वारा प्रयोज्य थीं, अब यह उपबन्ध किया गया है कि यह प्राधिकार किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है जिसे संसद् अपना प्राधिकार दे दे। संसद् पर यह एक बड़ा भार हो जायेगा कि वह यथार्थ रूप में उन प्रान्तीय विधान मंडलों की विधायी शक्तियों को स्ववश में रखे जिनको निलम्बित किया जायेगा क्योंकि संसद के पास पहले ही इतना अधिक कार्य होगा कि उसके लिए उस विधान को संव्यवहृत करना संभव नहीं होगा जो उन प्रान्तों के लिए आवश्यक है जिनके विधान-मंडल उद्घोषणा के अधीन निलम्बित कर दिये गये हैं। अतः विधान कार्य में सुविधा के लिए अब यह उपबन्ध कर दिया गया है कि या तो संसद स्वयं इस कार्य को करे या कुछ शर्त और निबन्धन तथा प्रतिबन्ध के अधीन विधान कार्य के संचालन के लिए किसी अन्य प्राधिकारी को प्राधिकृत करे।

दूसरा बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया गया है कि यदि दो माह की समाप्ति के पूर्व संसद संकल्प द्वारा उस उद्घोषणा को आगे और समय के लिए जारी रखने की स्वीकृति नहीं देती है तो दो महीने के पश्चात् यह उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। पहले यह उपबन्ध था कि यदि संसद् उसका विस्तार नहीं करती है तो वह छह महीने तक प्रवृत रहेगी। वर्तमान मसौदे में यह काल केवल दो माह कर दिया गया है। इसके बाद यदि उद्घोषणा को जारी रखना है तो संसद् के संकल्प द्वारा उसका अनुसमर्थन होना चाहिये।

दूसरा परिवर्तन यह किया गया है कि मूल अनुच्छेद में यदि संसद् ने एक बार उस उद्घोषणा का अनुसमर्थन कर दिया तो आगे बिना और अनुसमर्थन के वह उद्घोषणा बारह महीने तक चल सकती थी। इस स्थिति में भी परिवर्तन कर दिया गया है। बारह महीनों को अब दो भागों में बांट दिया गया है, प्रत्येक भाग 6 महीने का है और प्रथम अनुसमर्थन के पश्चात् उद्घोषणा 6 महीने तक चल सकती है और उसके बाद संसद् द्वारा उसका अनुसमर्थन होगा। संसद् के अनुसमर्थन के पश्चात् वह फिर केवल 6 माह तक चलेगी। संसद् के द्वारा और भी अनुसमर्थन हो सकेगा और इस प्रकार संसद् द्वारा अनुसमर्थित होने के पश्चात् उद्घोषणा को छः महीने की अवधि दी गई है। आगे और जारी रखने के लिये और अनुसमर्थन अपेक्षित है और हमने अधिकतम सीमा तीन वर्ष की रखी है। तीन वर्ष के पश्चात् प्रान्त में उस स्थिति की सत्ता को न तो संसद् और न राष्ट्रपति बनाये रख सकता है जिसके अधीन उद्घोषणा प्रभावी हुई है।

इसके पश्चात् मैं अनुच्छेद 278-क पर आता हूं। उपखंड (क) जो यह उपबन्ध करता है कि संसद् राज्य के लिए विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को अथवा उसके द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी व्यक्ति को दे दे। यह एक नया उपखंड है।

इस अनुच्छेद के उपखंड (ख) में आनुषंगिक परिवर्तन है, अनुच्छेद 278-क के खंड (1) के उपखंड (क) का आनुषंगिक। उसमें कहा गया है कि किसी ऐसी विधि को प्रभाववर्ती रखने के लिए, जो संसद् द्वारा अथवा संसद् द्वारा तदर्थ नियुक्त किसी अभिकरण द्वारा बनाई गई हो, किसी व्यक्ति को प्राधिकार दिया जा सकता है चाहे वह भारतीय सरकार का पदाधिकारी हो या चाहे वह प्रान्तीय सरकारों का ही पदाधिकारी हो।

अनुच्छेद 278-क के खंड (1) का उपखंड (ग) एक नया खंड है। वह बजट की मंजूरी के लिए उपबन्ध करता है। अनुच्छेद 278 के मूल मसौदे में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं किया गया था कि जिस प्रान्त का विधान-मंडल निलम्बित कर दिया गया है उसके बजट को तैयार और मंजूर किस प्रकार किया जाये। इस विषय को अब अनुच्छेद 278-क के खंड (1) के उपखंड (ग) के पुरःस्थापन से स्पष्ट कर दिया गया है, जिसमें यह स्पष्ट उपबन्ध किया गया है कि जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिए संसद् की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को राष्ट्रपति प्राधिकृत कर सकता है।

उपखंड (घ) इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है जो शायद अनुच्छेद में पहले अस्पष्ट थी कि किसी उस विशिष्ट प्रान्त के शासन संचालन के सम्बन्ध में अध्यादेश देने की अनुच्छेद 102 द्वारा दी हुई अपनी शक्तियों का राष्ट्रपति प्रयोग कर सकता है जिस प्रान्त को उस समय ले लिया गया है जबकि दोनों सदन सत्र में न हों। मूल अनुच्छेद 102 केन्द्रीय सरकार के लिये अध्यादेश देने तक सीमित था। अब हम उपखंड (घ) के द्वारा यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस शक्ति का राष्ट्रपति द्वारा उन अध्यादेशों के लिए भी प्रयोग किया जायेगा जिनका पारित करना उस प्रान्त के शासन संचालन के लिए आवश्यक हो जो ले लिया गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल) : श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 158 और 159 (सूची 2 द्वितीय सप्ताह) पेश नहीं कर रहा हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं संशोधन संख्या 202 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं आरम्भ में आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि आप सभा को यह बता दें कि आप किस रीति या प्रणाली का हमसे पालन कराना चाहते हैं—क्या हम प्रत्येक अनुच्छेद पर पृथक-पृथक संशोधन पेश करे या चारों अनुच्छेदों पर एक साथ संशोधन पेश करें?

***अध्यक्षः** मैं यह चाहूंगा कि सब अनुच्छेदों पर एक साथ संशोधन पेश किये जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, अनुच्छेद 278 पर (सूची 2 द्वितीय सप्ताह) संशोधन संख्या 161 और 162 को मैं पेश करना नहीं चाहता हूं। सर्वप्रथम मैं अनुच्छेद 277 को लूंगा और उससे सुसंगत समस्त संशोधनों को पेश करूंगा। मैं सभा का ध्यान द्वितीय सप्ताह की सूची 4 के संशोधन संख्या 220, 221 और 223 की ओर आकर्षित करता हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में 'Union' शब्द के स्थान में 'Union Government' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में पहली बार आने वाले 'and' शब्द के स्थान में 'or' शब्द रखा जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में 'internal disturbance' शब्दों के स्थान में 'internal insurrection or chaos' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 278 पर उसी सूची के निम्न संशोधनों को आपकी अनुमति से पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में से 'or otherwise' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'is satisfied that' शब्दों के पश्चात् a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that' शब्द जोड़े जायें।"

श्रीमान्, क्या आप मुझे आज्ञा देंगे कि इन संशोधनों के महत्व को स्पष्ट करने के लिए मैं सभा को अनुच्छेदों के उन रूपों को पढ़कर सुनाऊं जो सभा द्वारा इन संशोधनों के स्वीकार कर लेने पर हो जायेगा? यदि सभा द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 277-क इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"277-A. It shall be the duty of the Union Government to protect every State against external aggression or internal insurrection or choas and to ensure that the Government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution."

[277-क. बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक विद्रोह तथा अराजकता से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्तव्य होगा।]

यदि सभा द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 278(1) इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"278. (1) If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of a State, is satisfied that a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that the Government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, he may, etc., etc."

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जो राज्य की शान्ति और क्षेम के लिए संकट जनक है और राज्य का शासन इस संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा, इत्यादि, इत्यादि।]

इतना तो संशोधनों के औपचारिक पठन के सम्बन्ध में है।

सभा के समक्ष आज चार अनुच्छेद हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या मैं यह सुझाव रखूं कि सर्वप्रथम इस अनुच्छेद पर सब संशोधनों को पेश कर दिया जाये और फिर बाद में साधारण चर्चा हो?

***अध्यक्ष:** बहुत अच्छा, तो अब प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना अपने संशोधन पेश कर सकते है। श्री कामत का भाषण बाद में होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'Ruler' शब्द के स्थान में 'Rajpramukh' शब्द रखा जाये।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (4) के प्रथम परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

"Provided that the President may if he so thinks fit order at any time during this period a dissolution of the State legislature followed by a fresh general election, and the Proclamation shall cease to have effect from the day on which the newly elected legislature meets in session."

(परन्तु यदि राष्ट्रपति ठीक समझे तो इस कालावधि में विधान-मंडल के विघटन और उसके बाद नये साधारण निर्वाचन के लिए आदेश दे सकेगा और उद्घोषणा उस दिन से प्रभाव शून्य हो जायेगी जिस दिन नये निर्वाचित विधान-मंडल का सत्रारम्भ होता है।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन संख्या 122, 123, 124 और 125 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपने संशोधन संख्या 161 और 162 पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** ये ही सब संशोधन हैं जिनकी सूचना आ चुकी है। अब श्री कामत भाषण दे सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने जो विषय आज सभा के समक्ष प्रस्तुत किया है उस पर बोलने का आपने यह अवसर मुझे दिया। इन अनुच्छेदों के तीन उद्देश्य हैं यद्यपि ये उद्देश्य परस्पर सम्बंधित हैं। सर्वप्रथम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने का प्रयास किया गया है और दो नये अनुच्छेदों अर्थात् 277-क और 278-क को रखने का प्रयास किया गया है और कुछ अंशों में अनुच्छेद 278 के प्राचीन मसौदे में रूपभेद करने की प्रस्थापना की गई है।

अनुच्छेद 188 का अपमार्जन करने वाले प्रस्ताव को लेते हुये मैं सभा का तथा डॉ. अम्बेडकर का ध्यान उन कुछ बातों की ओर आकर्षित करूंगा जो राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियों सम्बन्धी उपबन्ध के अपमार्जन करने के सम्बन्ध में अनुच्छेद 143 पर वाद-विवाद करते समय कहीं थीं। उस अवसर पर मसौदा समिति की ओर से वाद-विवाद का उत्तर देते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि सिद्धान्तरूप से तो वे अनुच्छेद का स्वागत करते हैं परन्तु संविधान में इस संशोधन के समावेश करने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयां हैं। उस समय उन्होंने कहा था कि जब तक अनुच्छेद 188 और 175 पर अन्तिम विचार नही होता है तब तक उनके अथवा सभा के लिये मेरे द्वारा पेश किये गये उन संशोधनों पर निश्चित करना कठिन होगा जिनमें राज्यपाल को संविधान के मसौदे द्वारा दी गई स्वविवेक शक्तियों

से वंचित करने का प्रयास हैं। जो कुछ उस अवसर पर उन्होंने कहा था क्या मैं उनको उसकी याद दिला सकता हूं? मैं सभा की सरकारी रिपोर्ट से उद्धृत कर रहा हूं। उन्होंने कहा था कि अनुच्छेद 143 का पठन उन अन्य अनुच्छेदों के साथ-साथ किया जायेगा जो विशेष रूप से राज्यपाल की शक्ति का रक्षण करते हैं। आगे चल कर उन्होंने यह कहा था:

> "मुझे ऐसा प्रतीत होता हैं कि तीन प्रकार हैं जिनके अनुसार स्वविवेक शक्तियों के विषय को निश्चित किया जा सकता है। एक प्रकार वह है कि जिसका सुझाव पंडित कुंजरू तथा अन्य सदस्यों ने रखा है कि अनुच्छेद 143 में से कुछ शब्दों को निकालकर 188 अथवा 175 जैसे अनुच्छेद अथवा अन्य वे उपबन्ध जोड़ दिये जायें जिनका सभा राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियां सौंपते हुए यह कहकर कि अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुये भी राज्यपाल को यह शक्ति होगी। वह शक्ति होगी पुर:स्थापन कर सके।"

डॉ. अम्बेडकर ने कहा "दूसरा प्रकार यह होगा कि अनुच्छेद 143 में यह कहा जाये कि अनुच्छेद अमुक अमुक में अनुच्छेद 175 और 188 का विशेष रूप से उल्लेख करते हुये जो उपबन्ध किये गये हैं उनको छोड़कर। यदि मुझे इस समय यह विदित हो जाये कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्तियां देने के लिये संविधान सभा और कौन-कौन से उपबन्धों की प्रस्थापना करना चाहती है तो मैं अनुच्छेद 143 के अंतिम भाग का संशोधन करने के लिए उद्यत हूं। मेरे लिये कठिनाई यह है कि अभी हम अनुच्छेद 278 और 188 पर नहीं आ पाये हैं और न हमने राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियां देने की समस्त सम्भावनाओं का ही अन्त कर दिया है"। उन्होंने कहा था "यदि मुझे यह मालूम हो जाये तो मैं अनुच्छेद 143 संशोधन से सहमत हो जाऊंगा, पर यह अब नहीं हो सकता है"।

पहले अवसर के निर्देश का प्रश्न यह था: मैंने एक संशोधन में वह प्रश्न उठाया था जिस पर सभा में गरमागरम बहस हुई थी और डॉ. अम्बेडकर ने सभा द्वारा अनुच्छेद 175 और 188 पर विचार हो जाने के बाद इस विषय पर पुनर्विचार करने का वायदा किया था। अब वह समय आ गया है कि वे इस विषय पर पुनर्विचार करें। हमने अनुच्छेद 175 (2) पर विचार समाप्त कर लिया है जो विधान सम्बन्धी स्वविवेक शक्तियां राज्यपाल को देता है और हम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें राज्यपाल को विशेष स्वविवेक शक्तियां देने का प्रयास किया गया है। सभा के लिए अब यह उपयुक्त समय है कि उस अवसर पर डॉ. अम्बेडकर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी दोनों ने जो कुछ कहा था उस पर विचार करे। उन्होंने कहा था कि जब हम इस अनुच्छेद पर विचार समाप्त कर लेंगे उसके पश्चात् हम ठीक प्रकार से अनुच्छेद 143 पर वापस आ सकेंगे और उसमें संशोधन कर सकेंगे।

अत: श्रीमान्, अनुच्छेद 143 का आनुषंगिक संशोधन आवश्यक है और मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस बात का ध्यान रखेंगे और जब उन्हें समय मिले तब वे इस अनुच्छेद में ठीक-ठीक संशोधन करेंगे। डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 188 के अपमार्जन करने के लिए जो संशोधन रखा है उस पर इस प्रकार विचार समाप्त होता है। मैं उसका इस परन्तुक के साथ समर्थन करता हूं कि अनुच्छेद 143 का संशोधन ठीक-ठीक किया जाये।

[श्री एच.वी. कामत]

अब आइये अनुच्छेद 277-क पर। इस अनुच्छेद के अनुसार हमने कुछ कर्तव्य संघ सरकार के लिये निर्धारित किये हैं। सर्वप्रथम यह कि किसी बाह्य आक्रमण से वह प्रत्येक संविधानिक एकक का रक्षण करे। दूसरे यह कि आभ्यन्तरिक अशान्ति से राज्य का संरक्षण करे—मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर और मसौदा समिति का इससे यह आशय है कि राज्य में किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति की उत्पति को संघ सरकार रोके। अंतिम यह कि संघ सरकार पर यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह यह देखे कि प्रत्येक राज्य की सरकार का संचालन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार हो रहा है। अंतिम उपबन्ध से तो मैं पूर्णतया सहमत हूं कि संघ सरकार यह नियम बना ले कि वह यह देखती रहे कि प्रत्येक राज्य संविधान के अर्थ और भाव का भी पालन तथा सम्मान करता है। प्रत्येक संविधानिक एकक की बाह्य आक्रमण से रक्षण सम्बन्धी उपबन्ध से भी मेरा कोई झगड़ा नहीं है। मेरी तुच्छ राय में तो शायद आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करने वाले बीच के उपबन्ध पर मतभेद होने की सम्भावना है।

(इस समय अध्यक्ष महोदय ने आसन रिक्त किया और उस पर उसके पश्चात् उपाध्यक्ष महोदय श्री टी.टी. कृष्णमाचारी आसीन हुये।)

इस सम्बन्ध में मेरे विचार से निर्णायक प्रश्न यह है कि आभ्यान्तरिक अशान्ति क्या और क्या नहीं है। क्या किसी राज्य में किसी छोटे से उत्पात या साधारण दंगे या गड़बड़ी से उस राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में राष्ट्रपति अथवा संघ सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जायेगा? यदि माननीय सदस्य सप्तम अनुसूची की सूची 2 को देखें तो उन्हें विदित होगा कि पद 1 द्वारा लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से राज्य के कंधों पर रखा गया है (पर उसमें असैनिक शक्ति की सहायतार्थ नौ सेना, सेना और विमान-बल का समावेश नहीं किया है।) यह सब राज्य के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत होगा। वह समवर्ती सूची में भी नहीं है। लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से राज्य सरकार पर रखा गया है। अब मूल बात यह है: आप कहते हैं कि राज्य लोक-व्यवस्था बनाये रखे। परन्तु एक नये अनुच्छेद 277-क के द्वारा आप यह कहते हैं कि आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का रक्षण संघ सरकार करेगी। जो कुछ हम व्यवस्था कर रहे हैं उसके प्रति हम सच्चे हो। इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर मन में कोई बात छिपा कर रखने से कोई लाभ नहीं है। यदि हम प्रान्तीय स्वायत्तता को कम करने जा रहे हैं तो हमें संविधान में ऐसा कम देना चाहिये। इस बात में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिये। यह हमारी ओर से बेईमानी है कि एक अनुच्छेद में यह कहें कि लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व राज्य पर होगा ओर उसके बाद दूसरे अनुच्छेद में किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति के छोटे से बहाने पर राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्तियां संघ सरकार को दे दें। अत: इस कठिनाई को दूर करने के लिए मैंने सूची 4 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 222 को पेश किया है। उसमें 'आभ्यन्तरिक अशान्ति' के स्थान में 'आभ्यन्तरिक विद्रोह तथा अराजकता' रखने का प्रयास किया गया है। 'अशान्ति' बहुत ही व्यापक तथा लचीला शब्द है। मानव शरीर की अशान्ति अंगुली में थोड़े से दर्द से लेकर तेज बुखार और अचेतन अवस्था तक हो सकती है। इसी प्रकार राज्य में अशान्ति दो आदमियों

में मारपीट से लेकर उस एक पूरे विद्रोह तक हो सकती है जिसके कारण शायद अराजकता हो जाये। हमारा लक्ष्य क्या है? क्या हम संघ सरकार को यह देखने की शक्ति देना चाहते हैं कि राज्य की शान्ति, व्यवस्था और प्रशान्ति संकट में न पड़े या हम संघ सरकार को राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति दे रहे हैं? मैं नहीं समझता हूं कि पिछला उद्देश्य हमारा है। प्रस्तावना में कहा गया है कि हम भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बना रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अभी यह कहा था कि फेडरल योजना में प्रत्येक राज्य की उस क्षेत्र में संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का विचार निहित है जो उसके बांट में आ गया है। सातवीं अनुसूची की सूची 2 लोक व्यवस्था को राज्य के बांट में देता है। और यह अनुच्छेद थोड़े या बहुत रूप में राज्य की सरकारों को सातवीं अनुसूची द्वारा प्रदत्त शक्तियों से वंचित करने का प्रयास करता है। यदि सभा द्वारा बिना अधिक विचार किये यह अनुच्छेद 277-क स्वीकृत हो जाता है तो आभ्यान्तरिक अशान्ति को मिटाने या दबाने के बहाने से संघ सरकार द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता का भविष्य में दबाया जाना या नष्ट होना मुझे दिखाई देता है। यदि हमारा यही उद्देश्य है तो हम ऐसा कहें और उसके पश्चात् इस अनुच्छेद को पारित करें। यदि हम ऐसा नहीं कर रहे हैं, यदि हमारा उद्देश्य यह है कि प्रान्तीय स्वायत्तता को उन्नत बनायें–इसमें संदेह नहीं कि यह उन्नति धीरे-धीरें ही होगी—तो हम इस बात को साफ-साफ कहें और एक अन्तर्वर्ती साधन के रूप में, इस अन्तर्वर्ती काल के लिये एक उपबन्ध के रूप में, जिसमें होकर हम गुजर रहे हैं—इस संकट काल के लिए जिसमें हम जीवनयापन कर रहे हैं यह उपबन्ध करें और यह कह कर इस अनुच्छेद का संशोधन करें कि केवल विद्रोह या अराजकता होने पर ही संघ सरकार को राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी न कि राज्य में किसी अशान्ति के उत्पन्न होने पर। इसके लिये तो राज्य के पास यथेष्ट शक्तियां हैं, आरक्षक बल, रक्षा दल तथा अन्य अनेक प्रकार के सहायक बल। क्या हम राज्य सरकार पर स्वयं अपनी लोक शांति तथा व्यवस्था की देख भाल करने में और अपने राज्यक्षेत्र की सीमा में प्रशान्ति बनाये रखने में विश्वास नहीं कर सकते हैं? मैं तो यह समझता हूं कि जिस संविधान पर हम सभा में विचार कर रहे हैं उसकी यही भावना है और इसी भावना को अपने मन में रखकर इस तथ्य से अथवा आकस्मिकताओं से अथवा भविष्य में किसी परिस्थिति के उत्पन्न होने की सम्भावना से राष्ट्रपति तथा संघ सरकार के लिए जितनी शक्तियां अपेक्षित हैं उससे अधिक शक्तियां हम उनको न दें।

इस विषय के सम्बन्ध मे मैंने तीन संशोधन पेश किये हैं 220, 221 और 222। पहला केवल शाब्दिक है। चूंकि अनुच्छेद 1 'संघ' की परिभाषा करता है, मैंने सोचा कि 'संघ' शब्द के स्थान में 'संघ सरकार' शब्द अधिक उपयुक्त होगा। अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि भारत राज्यों का संघ होगा। अगर हम 'संघ' कहते हैं तो यह शब्द अस्पष्ट रहेगा और उसका आशय संघ के विभिन्न प्राधिकारियों से हो सकता है। राज्य में आभ्यन्तरिक अशान्ति या बाह्य आक्रमण होने पर क्या राज्य के विषयों में हस्तक्षेप करने और दखल देने के लिए अथवा यह देखने के लिए कि राज्य की सरकार का संचालन संविधान के उपबन्धों के अनुसार हो रहा है उनकी आवश्यकता है? यदि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस संशोधन को समझ सकते हैं तो मैं उनसे 'संघ' शब्द के स्थान में 'संघ सरकार' रखने के लिए

[श्री एच.वी. कामत]

निवेदन करूंगा। यह केवल शाब्दिक संशोधन है और इसे मैं उनकी सामूहिक बुद्धि पर छोड़ता हूं जो मुझे विश्वास है कि मेरी बुद्धि से उच्च है।

इसके बाद संशोधन 221 है जो यद्यपि शाब्दिक है पर उसमें कुछ सार है। जिस रूप में आज सभा के समक्ष डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को प्रस्तुत किया है उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि संघ सरकार प्रत्येक राज्य का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करेगी। विधि सम्बन्धी पदावली तथा संविधानिक वार्ता के अनुसार मैं समझता हूं कि कदाचित् यह सही नहीं है। इसका यह भी आशय हो सकता है कि जब ये दोनों बातें हों तभी संघ हस्तक्षेप कर सकता है। मेरे वकील मित्र "और" और "अथवा" शब्द में जो अन्तर है उसे समझ गये होंगे और जिस रूप में अनुच्छेद 277-क आज वर्तमान है उस रूप में उसका यह अर्थ होगा कि जब तक दोनों बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति राज्य में न हो तब तक उस राज्य के विषयों में संघ सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती। पर यदि आप "अथवा" शब्द कहें तो उसका अर्थ यह होगा कि इनमें से किसी आकस्मिकता पर चाहे वह बाह्य आक्रमण हो या आभ्यन्तरिक विद्रोह या अराजकता संघ सरकार को हस्तक्षेप करने की सक्षमता होगी।

संशोधन संख्या 221 के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कह चुका हूं कि वह क्यों आवश्यक है और इस संविधान में जो योजना रखी गई है उससे आपका जो कुछ आशय है उसके प्रति ईमानदार रहने के विचार से-संपूर्ण प्रभुत्व संपत्त लोकतंत्रात्मक गणराज्य की वह योजना जिसमें केवल प्रान्तीय स्वायत्तता को उन्नत करने ही का प्रयास नहीं किया गया है बल्कि ग्राम पंचायतों के विकास का भी प्रयास है-ग्राम पंचायत से लेकर ऊपर प्रान्तीय स्वायत्तता की चोटी तक। अत: राष्ट्रपति अथवा संघ सरकार को किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति में हस्तक्षेप करने के अधिकार को देना पूरे संविधान की भावना के विरुद्ध होगा। केवल विद्रोह या अराजकता होने पर ही संघ के राष्ट्रपति को राज्य के विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति दी जाये।

अब अनुच्छेद 278 को लेते हुए मैं सभा से निवेदन करूंगा कि यदि उनकी ऐसी इच्छा है तो वे ध्यानपूर्वक सावधानी से सुनें। यह अनुच्छेद, 278 भाग 11 में जो अनुच्छेद पहले आ चुके हैं और आज जो अनुच्छेद डॉ. अम्बेडकर पेश कर चुके हैं उनके समान ही हैं। और जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने अभी थोड़ी देर पहिले संशोधनों को पेश करते समय कहा था इन सब पर साथ-साथ विचार करना चाहिये। आज सभा के समक्ष जो नया मसौदा रखा गया है उसमें कुछ परिवर्तन हैं—वे परिवर्तन जो अनुच्छेद 278 के उस रूप से मिलान करने पर, जो संविधान के मसौदे में था, पाये जाते हैं। सभा के समक्ष वर्तमान अनुच्छेद 278 में राष्ट्रपति को संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 278 में दी गई शक्तियों से अधिक शक्तियां देने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम तो राष्ट्रपति को केवल राष्ट्रपाल या राज्य के शासक से प्रतिवेदन मिलने पर ही अनुच्छेद 278 के अधीन कार्यवाही करने की शक्ति नहीं मिलती है वरन अन्यथा भी। यह 'अन्यथा' क्या है, केवल ईश्वर ही जानता है। कल से इन सब अनुच्छेदों और आज पेश किये गये संशोधनों को पढ़ने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि हम इस कार्यवाही को सच्चाई के साथ नहीं कर रहे हैं। हम यहां लोकतन्त्र के प्रतिनिधि, अभी हाल में विदेशी दास्ता

से छुटकारा पाकर अपनी मातृभूमि का संविधान बनाने के लिए गंभीर होकर गौरवपूर्वक बैठे हुए कुछ उपबन्धों के कुछ अनुच्छेदों को, जिन्हें हम पारित कर चुके हैं, रद्द करने तथा निष्फल करने के लिए बहाने स्वीकार कर रहे हैं। मेरे विचार से इस कार्यवाही को करने का यह प्रकार नहीं है। यदि हम यह कहें "यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल या राज्य के शासक से प्रतिवेदन प्राप्त होता है" तो बहुत ही अच्छा हो। आखिर हम यह तो विनिश्चित कर ही चुके है कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति होगा। यदि ऐसा है तो क्या राष्ट्रपति अपने स्वयं मनोनीत किये गये व्यक्ति में विश्वास नहीं कर सकता है? यदि अपने मनोनीत किये गये व्यक्ति में वह विश्वास नहीं कर सकता है तो हम अपनी सरकार को समाप्त करें और अपने-अपने घर जायें—हम इस सभा को बन्द करें और अपने-अपने घर जायें। हमारे लिये यह स्थान नहीं है—बाजार में घूमें या गलियों में घूमें—जहां चाहें वहां जायें पर इस सभा में न आयें। ऐसी दशा में सरकार को समाप्त कर देना चाहिये और उसे कार्य प्रकार्य करने का कोई अधिकार नहीं होगा। मैं कड़े शब्दों का, कटु शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं पर मुझे विश्वास है कि ऐसे अवसर पर कटु शब्द बहुत आवश्यक हैं। कभी-कभी निर्दय होना भी आवश्यक हो जाता है और यदि आज मुझमें कुछ कटुता आ गई हो तो सभा मुझे क्षमा करेगी। अतः श्रीमान् "अथवा अन्यथा" शब्दों के अपमार्जन का प्रयास करते हुये मैंने संशोधन संख्या 224 को पेश किया है। मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को तभी कार्यवाही करने की शक्ति दी जानी चाहिये जबकि राज्यपाल या राज्य का शासक उसको यह सूचना दे कि आपात उत्पन्न हो गया है अथवा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है इत्यादि इत्यादि—पर अन्यथा नहीं। यह "अन्यथा" क्या बला है? क्या आपका यह कहने का आशय है कि यह मंजूर करते हुये भी कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रि परिषद् की मंत्रणा पर कार्यवाही करेगा क्या वह अपने निर्णय के आधार पर ही हस्तक्षेप कर सकता है—एक ऐसा निर्णय जिसे शायद उसके मंत्रि परिषद् की मंत्रणा द्वारा दृढ़ता प्राप्त हो चुकी हो पर जिसके लिये राज्य के राज्यपाल या शासक का प्रतिवेदन न हो। यह निन्दनीय कार्य है जो उस सीमित प्रान्तीय स्वायत्तता को भी निष्फल कर देता है जिसका उपबन्ध हमने इस संविधान में किया है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा कि वह इस कार्य की मूर्खता, दृष्टता और आपराधिकता को समझने की यथेष्ट सद्बुद्धि इस सभा को दे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल) : आपराधिकता, इसमें क्या अपराध है?

***श्री एच.वी. कामतः** राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल अथवा शासक के प्रतिवेदन पर ही नहीं वरन अन्यथा हस्तक्षेप करने की शक्ति देना एक संविधानिक अपराध है। "अन्यथा" दुष्टतापूर्ण शब्द है। इस प्रसंग में यह शब्द शरारत से भरा हुआ है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि यह शब्द इस अनुच्छेद से निकाल दिया जाये। यदि ईश्वर आज हस्तक्षेप नहीं करता है तो मुझे विश्वास है कि निकट भविष्य में ही वह उस समय हस्तक्षेप करेगा जबकि वस्तु-स्थिति और भी अधिक भयंकर हो जायेगी और हम सब की आंखें जितनी आज खुली हुई हैं उससे अधिक खुलेंगी।

मैं यह कह रहा था कि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर ही कार्यवाही करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी जाये। यहां मैं यह कहूंगा कि

[श्री एच.वी. कामत]

अनुच्छेद 188 के सम्बन्ध में जिस प्रकार की भाषा थी उसको हमने जानबूझ कर बदला है और अधिक लचीली बना दी है। अनुच्छेद 278 के मूल मसौदे में कहा गया था कि अनुच्छेद 188 के अधीन राज्य के राज्यपाल द्वारा निकाली हुई उद्घोषणा को प्राप्त कर यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है इत्यादि इत्यादि। हम अनुच्छेद 188 को देखें कि उसमें क्या कहा गया है। उसको अब अपमार्जित करने का प्रयास किया गया है और मुझे आशा है कि उसको अपमार्जित कर दिया जायेगा–इसके प्रति कोई झगड़ा नहीं है। यदि सभा अनुच्छेद 188 को देखने का धैर्य रख सकती है तो उस अनुच्छेदों में कहा गया था कि राज्य के राज्यपाल को यह समाधान हो जाना चाहिये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जिससे राज्य की शान्ति और प्रशान्ति शंकास्पद हो गई है और इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन चलाना सम्भव नहीं रहा। अनुच्छेद 188 में इस योजना को रखा गया था और अनुच्छेद 278, अनुच्छेद 188 के परिणामस्वरूप था। मेरी बुद्धि के अनुसार, विधि अथवा संविधान के क्षेत्र में मेरी अप्रशिक्षित बुद्धि के अनुसार अनुच्छेद 278 में अनुच्छेद 188 का पूर्ण अर्थ नहीं आता है। प्रस्थापित अनुच्छेद में यह निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। "यदि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है। जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान में उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता"। राज्य की शांति और प्रशान्ति के संकट में पड़ने की ओर निर्देश नहीं किया गया है। अत: इस सम्बन्ध में सूची 4 (द्वितीय सप्ताह) का मेरा संशोधन संख्या 225 है जिसमें इन शब्दों के समावेश कराने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रपति का समाधान हो जाना चाहिये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जिसमें राज्य की शांति और प्रशान्ति शंकास्पद हो गई है और न कि "अथवा" इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन नहीं चलाया जा सकता। आज जो अनुच्छेद हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है उसमें घोर संकट छिपे हुये हैं। संकट ये हैं कि मंत्रिमंडल को संकटावस्था को सुलझाने के बहाने अथवा किसी राज्य में प्रचलित कुशासन में सुधार करने या ठीक करने के बहाने राष्ट्रपति इस अनुच्छेद 278 की शरण ले सकेगा। मुझे विश्वास है कि किसी खास राज्य में पैदा हुई मंत्रिमंडल की संकटस्थिति को सुलझाने के लिए यह अनुच्छेद नहीं है। इसका उपचार तो अन्यत्र है, इसका उपचार तो राज्यपाल द्वारा विधानमंडल के विघटन में तथा निर्वाचकगण के निर्देश में है। अनुच्छेद 153 द्वारा विधान-मंडल के विघटन करने और नये निर्वाचनों के लिए आदेश देने की शक्ति राज्यपाल को दे दी गई है। केवल संकटस्थिति या विधानमंडल द्वारा मंत्रिमंडल में अविश्वास का प्रस्ताव—यहां तक कि प्रस्ताव की पुनरावृत्ति भी संघ सरकार के राष्ट्रपति को हस्तक्षेप करने या आपात की उद्घोषणा करने की शक्ति नहीं देते हैं। संसार में कहीं भी ऐसा नहीं होता है। यदि आप नया उदाहरण स्थापित करना चाहते हैं तो ऐसा करने के लिए आपका स्वागत है परन्तु कार्यपालिका को अनावश्यक, अनचाही बर्बरतापूर्ण और तानाशाही शक्तियों से सुसज्जित करने से जो दुर्घटनायें होती हैं उनसे हम सतर्क रहें। उन देशों का क्या अनुभव है जहां कार्यपालिका को ये शक्तियां दे दी गई हैं? कल मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह कहा था कि ये आपात के उपबन्ध

बीमार संविधान के अनुच्छेद 48 के कुछ-कुछ समान हैं पर वे उस बात को छोड़ गये जो मैंने कही है। मैने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि जर्मनी के तीसरे रीश के बेमार संविधान के उसी अनुच्छेद 48 का प्रयोग हरी हिटलर ने जर्मनी में लोकतन्त्र का नाश करने और अपनी तानाशाही स्थापित करने में किया था। ठीक है, यदि हमारा लक्ष्य इस उद्देश्य की ओर है, यदि हम इस देश में तानाशाही चाहते हैं तो इनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। सब तरह से उसे रखिये और वैसा ही कहिये, बनिये, सीधे आइये, छल न करिये, अपनी कार्यवाहियों में कपट न करिये। यह हमें शोभा नहीं देता है—यह हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है कि एक अनुच्छेद में एक बात कहें और दूसरे अनुच्छेद में बिलकुल ही भिन्न बात कहकर पहली बात को रद्द करने का प्रयास करें। इस कारण मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 278 का यह खंड (1) जिस रूप में है उस रूप में न रहे। मैं आशा करता हूं कि सभा इस अनुच्छेद पर सच्चाई के साथ विचार करेगी—बहुत गंभीर विचार करेगी ओर अनुच्छेद 278 के खंड (1) के उपबन्धों पर पक्का फैसला कर उसका ठीक-ठीक संशोधन करेगी। अन्यथा इन भविष्य में घोर कष्टों में प्रवेश कर रहे हैं। हम अपने मार्ग में स्वयं कपट जाल बिछा रहे हैं जिसमें हम फंस जायेंगे और कहीं शरण नहीं मिलेगी। यदि इस अनुच्छेदों को जैसे वे हैं वैसे ही स्वीकार कर लिया जाता है तो सारा का सारा संविधान संकट में पड़ जायेगा उनके कारण इतना नहीं जो गलियों में आन्दोलन कर रहे हैं जितना कि उनके कारण जिनके हाथ में शक्ति है। यदि सभा चाहती है कि ऐसा हो तो वह इस बात को कहे। प्रस्तावना में हम इस बात को न कहें कि हमारा लोकतंत्रात्मक गणराज्य होगा। यहां तो हम लोकतंत्र की जड़ खोदने का प्रयास कर रहे हैं। 278-क पर मेरा ऐसा कोई संशोधन नहीं है पर मैं यह कहूंगा कि केवल बड़े अवसरों पर ही अनुच्छेद 278 के अधीन उद्घोषणा निकाली जाया करे अर्थात् जबकि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर राष्ट्रपति का समाधान हो जाये। "अथवा अन्यथा" नहीं रहना चाहिये। शासक अथवा राज्यपाल से अन्यथा तो केवल एक हंसी मजाक सा होगा। दूसरी बात यह है कि प्रतिवेदन से राष्ट्रपति का केवल यही समाधान न हो कि इस संविधान के प्रावधानों के अनुसार राज्य की सरकार नहीं चलाई जा सकती है वरन यह भी हो कि राज्य की शांति और प्रशान्ति घोर संकट में है। केवल इसी अवस्था में राष्ट्रपति को किसी संविधानिक एकक के विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति देनी चाहिये अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 278-क उन विभिन्न विषयों का साधक अनुच्छेद है जो अनुच्छेद 278 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा करने के पश्चात् उत्पन्न होंगे, अतः जो शर्तें मैंने रखी हैं यदि उनका समाधान हो जाता है तो अनुच्छेद 278-क से मेरा कोई झगड़ा नहीं है जो केवल परिस्थितियों को स्पष्ट करने और अनुच्छेद 278 के उपबन्धों को और अधिक विस्तृत करने का प्रयास करता है।

संक्षेप में, अनुच्छेद 143 के सम्बन्ध में राज्यपाल की स्वविवेक शक्ति नहीं रहनी चाहिये, चूंकि हम अनुच्छेद 175 और 188 अब समाप्त कर चुके हैं। शायद सभा यह भूल गई है कि डॉ. अम्बेडकर ने यह आश्वासन दिया था कि अनुच्छेद 175 और 188 के पश्चात् इस विषय को लिया जायेगा। सभा का आह्वान करने और विघटन करने की स्वविवेक शक्ति के अपमार्जन के लिए हम अनुच्छेद 153

[श्री एच.वी. कामत]

पारित कर ही चुके हैं। अन्य जो अनुच्छेद रह गये थे वे 175 और 188 थे। 188 को हम अपमार्जित कर चुके हैं। और 175 में हम राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियों से वंचित कर चुके हैं। अतः अनुच्छेद 143 का संशोधन होना चाहिये। उस समय मैंने एक संशोधन पेश किया था जिसको अब पूर्ण बल प्राप्त है जो अब लिया जा सकता है और मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति द्वारा उस अनुच्छेद का ठीक रूप से समावेश कर लिया जायेगा।

अनुच्छेद 277-क और 278 के सम्बन्ध में सभा को एक गंभीर स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह अनुच्छेद 277-क और 278 के उपबन्धों पर शांति, सच्चाई, गहनता और निष्पक्षता से विचार-विमर्श करे और इनका इस प्रकार संशोधन करे कि जिस संविधान को हम बना रहे हैं उसका श्रेय हम पर रहे और जिस घोषणा पत्र को पंडित नेहरू ने दिसम्बर 1946 में पेश किया था उसमें दिये हुये उच्च सिद्धान्तों से संविधान च्युत न हो और उन आदर्शों की पवित्रता से, उन उच्च सिद्धान्तों से जो घोषणा पत्र में निर्धारित किये गये थे वह पृथक न हो। सबसे बड़ी बात यह है कि वह संविधान, जिसे हम इस शताब्दि के प्रथम अर्द्ध भाग की अंतिम वर्ष में लागू कर रहे हैं—अर्थात् आगामी वर्ष में, वह हमारे लाखों देश भक्तों के श्रम और कष्टों की प्रतिष्ठा का मुकुट होगा और एक उस सच्चे लोकतंत्र की आधारशिला होगा जो दूसरे देशों के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, हम तीन अनुच्छेदों पर एक साथ विचार कर रहे हैं 188, 277-क और 278 और मैं समझता हूं कि इस संविधान में ये अनुच्छेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। मैं स्वयं प्रसन्न हूं कि अनुच्छेद 188 का अपमार्जन किया जा रहा है। यह सत्य है कि मैंने एक संशोधन रखा था जो छपी सूची में संख्या 160 पर है जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि राज्यपाल को उद्घोषणा निकालने की शक्ति नहीं दी जानी चाहिये केवल राष्ट्रपति ही ऐसा व्यक्ति हो जिसे यह प्राधिकार हो। अतः मैं इस अपमार्जन से सहमत हूं, पर इस अपमार्जन के साथ-साथ अनुच्छेद 278 और अधिक व्यापक बना दिया गया है। अनुच्छेद 188 में यह कहा गया था कि किसी समय किसी राज्य के राज्यपाल का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जो राज्य की शांति और प्रशान्ति को शंकास्पद कर देता है तभी उसको उद्घोषणा निकालने की शक्ति हो और अनुच्छेद 278 उस घोषणा की एकरूपता के लिये था। पर यह नया मसौदा इस बात पर विचार नहीं करता है। उसमें यह कहा गया है "राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर अथवा अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये" तो इस अनुच्छेद के अधीन वह कार्यवाही कर सकता है। यह राष्ट्रपति को बहुत व्यापक अधिकार देता है। किसी गंभीर आपात का होना आवश्यक नहीं है। यदि राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाये कि इस संविधान के अनुसार सरकार नहीं चलाई जा सकती है तो वह अनुच्छेद 278 के अधीन उद्घोषणा निकाल सकता है। संघ के प्रत्येक एकक का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करने के उत्तरदायित्व को अनुच्छेद 277-क संघ पर डालता है और यहां भी केवल बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति ही है—और फिर आभ्यन्तरिक अशान्ति बहुत

ही व्यापक शब्द है। अनुच्छेद में अराजकता और यहां तक कि आपात भी नहीं कहा गया है। मैं स्वयं यह अनुभव करता हूं कि अनुच्छेद 278 में दी हुई शक्तियां बहुत अधिक व्यापक हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि अन्तिम प्राधिकार संसद् में निहित है और इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि यह अनुच्छेद राज्य की पूर्ण स्वायत्तता को रद्द करता है। यह वास्तव में एक बड़ा महत्वपूर्ण रक्षा कवच है क्योंकि सब कुछ होने के बाद भी प्रान्त के प्रशासन का अन्तिम उत्तरदायित्व संसद् पर ही है और वहीं अन्त में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न बना रहा। उस विषय को संसद् के समक्ष रखे बिना राष्ट्रपति भी कुछ नहीं कर सकता है यद्यपि दो महीने तक वह जो चाहे सो कर सकता है। अत: मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद की मैं इतनी कटु निन्दा नहीं कर सकता हूं जितनी मेरे मित्र श्री कामत ने की है। पर मैं यह समझता हूं कि इन अनुच्छेदों से हम राज्यों की स्वायत्तता को एक तमाशा बना रहे हैं। ये अनुच्छेद राज्यों की सरकार को केन्द्रीय सरकार की दासता में ला पटकेंगे। उनको कोई भी स्वतंत्रता न रहेगी। मैं यह नहीं चाहता हूं कि राज्य एक ओर तने रहें ओर केन्द्र दूसरी ओर; राज्यों के लिये कुछ न कुछ स्वायत्तता तो होनी ही चाहिये और मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 277-क और 278 इस स्वायत्तता को छीन लेते हैं। मेरे विचार से यदि इन अनुच्छेदों को न भी रखा जाये तो भी अनुच्छेद 275 और 276 हैं जो कार्यपालिका को आपात से निपटने के लिए आवश्यक शक्तियां देते हैं। यदि आपात पैदा हो जाता है तो अनुच्छेद 275 के अधीन आप उद्घोषणा निकाल सकते हैं और अनुच्छेद 276 द्वारा आप प्रान्त सम्बंधी विषयों पर विधान बना सकते हैं। अत: अनुच्छेद 275 और 276 पूर्ण रूप से पर्याप्त हैं। अनुच्छेद 277-क और 278 का पुर:स्थापन करना वांछनीय नहीं है और वास्तव में ये अनुच्छेद हमारे ऊपर इस दोष के आरोपण का कारण हैं कि हम प्रान्तीय स्वायत्तता को एक तमाशा बना रहे हैं। अनुच्छेद 278 में आखिर क्या कहा गया है? यदि आप सन् 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम को देखें तो आपको विदित हो जायेगा कि यह अनुच्छेद उस अधिनियम की धारा 93 की लगभग अक्षरश: प्रति है सिवा इसके कि इंग्लैंड की संसद के स्थान में आपने भारतीय संसद् के दोनों सदन रख दिया है और छ: महीने की कालावधि के स्थान में आपने दो महीने की कालावधि रख दी है। शेष बिल्कुल वहीं है। और इससे भी ज्यादा मजे की बात यह है कि संशोधित रूप में भारतीय सरकार के वर्तमान अधिनियम में इस विशिष्ट अनुच्छेद को निकाल दिया गया है। अत: एक प्रकार से वर्तमान भारतीय सरकार का अधिनियम जिसके अनुसार इस समय हम पर शासन हो रहा है वह इस अनुच्छेद से जिसे हम अब पारित कर रहे हैं अधिक उन्नतिशील है, क्योंकि भारतीय सरकार के वर्तमान अधिनियम में धारा 93 नहीं है और अपने नये संविधान में हम उसका फिर पुन:स्थापन कर रहे हैं। मेरा यह निश्चित विचार है कि यह एक प्रतिगामी कदम है। मैं बहुत खुश होता यदि ये विशिष्ट अनुच्छेद यहां नहीं होते। यदि आप इन दो अनुच्छेदों को रखना ही चाहते हैं तो मैं प्रार्थना करूंगा कि कम से कम "अन्यथा" शब्द को तो निकाल ही दिया जाये। राज्य विषय में राष्ट्रपति द्वारा हस्तक्षेप किसी प्रकार से भी न्यायपूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि कम से कम राज्यपाल उससे प्रतिवेदन न करे जो स्वयं उसका ही नामनिर्देशित व्यक्ति है। पर यहां अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप करने की उसे शक्ति है चाहे राज्यपाल की ऐसी सम्मति न हो और प्रान्तीय मंत्री उससे असहमत हों।

**श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:* श्रीमान्, एक बात का मैं स्पष्टीकरण चाहूंगा। यदि कुछ लोग राज्यपाल को बलपूर्वक बन्दी बना लेते हैं तो केन्द्र को वह कैसे सूचना दे सकता है?

***एक माननीय सदस्य:** राज्यपाल बन्दी नहीं किया जा सकता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, 'बन्दी' शब्द पर मुझे खेद है। उसका अपहरण किया जा सकता है तो फिर क्या होगा?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यदि ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है तो अनुच्छेद 275 है जिसके अधीन उद्घोषणा निकाली जा सकती है। पर यहां तो राज्यपाल से परामर्श तक नहीं है। आप उसके प्रतिवेदन पर आगे नहीं बढ़ते हैं परन्तु राष्ट्रपति अपनी स्वयं की इच्छा से आगे बढ़ता है। मैं यह भी समझता हूं कि विधि पुस्तक में चाहे आप इन दो अनुच्छेदों को रख दें पर कोई भी राष्ट्रपति इन पर चलने का साहस नहीं करेगा क्योंकि इससे अराजकता हो जायेगी। लोग भड़क उठेंगे और पूछेंगे "आप क्यों हस्तक्षेप करते हैं जबकि स्वयं राज्यपाल तक यह नहीं समझता कि यह आवश्यक है?" अत: इस अनुच्छेद के अनुसार वह कार्यवाही नहीं कर सकता। अत: मैं मसौदा-समिति से निवेदन करता हूं कि "अन्यथा" शब्द को निकाल दिया जाये। राष्ट्रपति राज्यपाल के प्रतिवेदन पर आगे बढ़े जो उसी का मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है। विधानमंडल द्वारा राज्यपाल वहां नहीं बिठाया गया है। वह स्वयं राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह राज्यपाल को हटा सकता है और उसके स्थान में अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। कम से कम स्वायत्तता और लोकतंत्र का कुछ चिन्ह तो रहने दीजिये। यदि राज्यपाल विरोध करने लगता है तो उसे हटा दीजिये और उसके स्थान में दूसरा रख दीजिये। पर आप आपात की उद्घोषणा करें इससे पूर्व उसे प्रतिवेदन तो कर लेने दीजिये। राष्ट्रपति यह तो कह सके कि राज्यपाल के प्रतिवेदन पर वह आगे बढ़ा है। अत: "अन्यथा" शब्द को निकाल देना चाहिये और ऐसा करने से कम से कम राज्यपाल को हस्तक्षेप के लिये कुछ न कुछ बहाना तो मिल जायेगा।

इसके बाद श्रीमान्, यह अनुच्छेद विधान-मंडल और मंत्रिमंडल तथा राज्यपाल तक की भी अवहेलना करता है और राष्ट्रपति तथा संसद् प्रान्त के शासक बन जाते हैं। यदि आप स्पष्ट यह कह देते "हम एकात्मक संविधान बना रहे हैं" तो मुझे कोई ख्याल नहीं होता। वह कहीं अच्छा होता। आप देश में 250 जिले बना सकते थे और केवल एक केन्द्रीय संसद्।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** खूब, खूब।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** पर ऐसे सूत्र को हम अस्वीकार कर चुके हैं और स्वायत्तशासी राज्यों के सहित हम इस फेडरल संविधान को स्वीकार कर चुके हैं। इसलिये राज्यों के साथ आपको कम से कम कुछ सम्मानपूर्वक बर्ताव तो करना चाहिये। अत: मैं आपके सामने सुझाव रखूंगा कि आप इस अनुच्छेद 278 में रूपभेद करें। इसके अधीन आपने यह शक्ति दे दी है कि प्रत्येक छह महीने के पश्चात संसद् उद्घोषणा की पुष्टि कर सकती है और इस प्रकार तीन वर्ष तक उद्घोषणा

बनी रह सकती है। इन तीन वर्षों में क्या होगा? उदाहरणार्थ मेरे संयुक्तप्रान्त को ही लीजिये। यह मैं नहीं कह सकता कि किस आधार द्वारा, पर हो सकता है कि गुप्तचर विभाग की सूचना पर राष्ट्रपति ने आपात स्थिति की उद्घोषणा करने का विनिश्चय किया, मंत्रिमंडल, राज्यपाल और विधानमंडल को समस्त शक्तियों से वंचित कर दिया और सारी शक्तियां अपने और संसद् पर ले लीं तो वह अपने किसी मनोनीत व्यक्ति को उस प्रान्त पर शासन करने के लिए रख सकता है। तीन वर्ष तक वह इस प्रकार चला सकता है और प्रत्येक छः माह के पश्चात् वह उस उद्घोषणा को पारित करा सकता है। पर तीन वर्ष के पश्चात् क्या होगा। तीन वर्ष के पश्चात् जब उसकी शक्तियां समाप्त हो जायेंगी तो क्या वही विधानमंडल और वही मंत्रिमंडल फिर आयेगा? मान लीजिये विधान-मंडल के प्रारम्भ के छह महीने के बाद आप इस तरीके को शुरू करते हैं और तीन साल तक आप उसे चलाते हैं। तो इस प्रकार साढ़े तीन वर्ष बीते। और फिर डेढ़ साल रहा जिसके बाद फिर वही राज्यपाल होगा और वही मंत्रिमंडल बनेगा। तीन साल तक शक्ति से वंचित रहकर क्या वे अधिक योग्य और बुद्धिमान बन गये? मेरे विचार से इस संविधान में यह एक बड़ी भारी कमी है। बंगाल में हम कष्ट देख ही रहे हैं: हम यह आशा कर रहे हैं कि वहां नये चुनाव होंगे और नया मंत्रिमंडल बनेगा। अतः मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को विधानमंडल के विघटन करने का प्राधिकार दिया जाये, वहां नये निर्वाचन करने और नया मंत्रिमंडल बनाने का प्राधिकार दिया जाये जिससे कि आठ महीने के पश्चात् उस प्रान्त में अच्छा और नया मंत्रिमंडल बन सके। वही विधानमंडल और वही मंत्रिमंडल जिसे तीन वर्ष तक अक्षम समझा गया, जिसकी शक्तियां राष्ट्रपति द्वारा ले ली गई हैं क्या वह एक दिन के लिये भी शासन कर सकेगा? यदि ऐसा नहीं है तो मंत्रिमंडल के विघटन करने अथवा दूसरा मंत्रिमंडल बनाने की शक्ति कहां है? ऐसी कोई शक्ति नहीं है। इस अनुच्छेद में यह एक बड़ी भारी भूल है और इसको ठीक कर देना चाहिये। अतः खंड (4) में एक परन्तुक जोड़कर मैं एक संशोधन का सुझाव करता हूं जिसमें यह कहा गया है:

(परन्तु यदि राष्ट्रपति ठीक समझे तो इस कालावधि में विधानमंडल के विघटन और उसके बाद नये साधारण निर्वाचन के लिये आदेश दे सकेगा और उद्घोषणा उस दिन से प्रभावशून्य हो जायेगी जिस दिन नये निर्वाचित विधानमंडल का समारम्भ होता है।)

जो कुछ होता है वह यह है। राष्ट्रपति ने प्राधिकार स्वयं अपने ऊपर ले लिया क्योंकि या तो उसने यह देखा कि राज्य में गंभीर आपात है अथवा कोई ऐसी अशान्ति है जिसे मंत्रिमंडल नहीं दबा सकता है और इस कारण उसका हस्तक्षेप आवश्यक है। यदि वह मंत्रिमंडल सक्षम है तो आपात के पश्चात वह उसको फिर शक्तियां दे देता है, परन्तु यदि वह यह समझता है कि वह मंत्रिमंडल सक्षम नहीं है तो वह यह करता है कि विधानमंडल के विघटन का आदेश दे देता है और नये निर्वाचन करता है। शायद यही हम पश्चिमी बंगाल में कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि इससे हमें शिक्षा लेनी चाहिये। अतः मैं समझता हूं कि चाहे हम इन शक्तियों को ले लें पर प्रान्तों को हमें कुछ लोकतंत्र देना चाहिये। अतः ईश्वर के लिए खंड (4) के इस परन्तुक को हटा दीजिये जो राष्ट्रपति को लगातार तीन वर्ष के लिये प्रान्त को स्वायत्तता से वंचित करने की शक्ति देता है बिना किसी ऐसे उपबन्ध के बनाये कि इसके पश्चात् क्या होगा। मसौदा-समिति इस प्रश्न पर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

सावधानी से विचार करे। मैं ही केवल एक ऐसा व्यक्ति नहीं हूं तथा मेरे मित्र श्री कामत ही एक ऐसे व्यक्ति नहीं हैं, वरन इस सभा में हमारे बहुत से नेता भी इसी विचार के है। मैं देखता हूं कि पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त जैसे व्यक्तियों ने इस अनुच्छेद पर संशोधन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार डॉ. एच.एन. कुंजरू ने भी। ये व्यक्ति भी इस अनुच्छेद के अपमार्जन के पक्ष में हैं। मैं आशा करता हूं कि उन्होंने अपने बदले नहीं होंगे और इस विषय में वे मेरा समर्थन करेंगे।

***कर्नल बी.एच. जैदी** (रामपुर-बनारस-राज्य): अध्यक्ष महोदय, इन अनुच्छेदों के उपबन्धों पर किसी विवरणपूर्ण वाद-विवाद में पड़ने के लिए मैं यहां नहीं आया हूं। केवल एक बात है जिसे मैं संक्षेप में कहना चाहूंगा और वह यह है। संसार के इतिहास में एक बहुत ही बड़ी दु:खपूर्ण दुर्घटना के अवसर पर यह बताया जाता है कि जार्ज बर्नाडे शा ने यह कहा था कि बहुत नेक होना भी संकटजनक है। नेक होना बुरी बात नहीं है पर शा के विचार से बहुत नेक होना संकटजनक है। इसी प्रकार मैं समझता हूं कि बहुत अधिक लोकतंत्रात्मक होना भी हमारे देश के लिए संकटजनक हो सकता है। अपने वाद-विवाद में तथा अपने संविधान निर्माण कार्य में हम कुछ यथार्थवाद को भी स्थान दें। हम केवल एक वकील या अधिवक्ता के दृष्टिकोण से ही बातों की कतरव्यौंत और विश्लेषण करते चले जा रहे हैं। हमारे स्वभाव में बाल की खाल खींचना तो है ही, पर इस बाल की खाल खींचने और बहुत अधिक विधिवत् होने की प्रवृत्ति को प्रशासन की यथार्थताओं और राजनैतिक दुर्व्यवस्था का प्रबन्ध करने में तिलांजलि दे देनी चाहिये। अतीत काल में हमारे देश में क्या संकट था? क्या घातक प्रवृत्तियों से हमें क्षति हुई है या नहीं? क्या केन्द्र से बार-बार विभिन्न एककों ने पृथक होने का प्रयत्न नहीं किया? जैसा कि भविष्य में मुझे कुछ धुंधला सा दिखाई दे रहा है सबसे बड़ा संकट यह नहीं है कि केन्द्र बहुत अधिक हस्तक्षेप करेगा वरन यह है कि एकक केन्द्र के मार्गप्रदर्शन का विरोध करेंगे। इन दो बातों में से मैं इस बात में विश्वास नहीं करता हूं कि राष्ट्रपति राज्यपाल को हटाने के लिए उत्सुक होगा वरन इसमें विश्वास करता हूं कि प्रान्तों में बहुत काल तक कुशासन रहेगा और केन्द्र से रोकथाम न होने पर प्रान्त को इसका दु:ख होगा। अन्तिम वक्ता ने कहा था कि मान लीजिये गुप्तचर के प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रपति यह विनिश्चय करता है कि विधि और व्यवस्था भंग हो चुकी है और किसी प्रान्त में गंभीर आपात है तो वह उस राज्य के शासन को अपने हाथ में ले सकता है और उस प्रान्त का निरपेक्ष रूप से शासक हो सकता है। श्रीमान्, यदि मेरे देश में यह हो सकता है तो हम लोकतंत्र के लायक नहीं हैं। एक पूर्ण मानव शरीर को लीजिये जिसके सब अंग प्रत्यंग हों और सब बातें पूर्णरूप से ठीक दिखाई देती हों, पर यदि उस शरीर में से प्राण पखेरू उड़ गये हों तो वह ठीक नहीं है, हाथ काम नहीं कर सकते, पैर चल नहीं सकते, जीभ बोल नहीं सकती क्योंकि आत्मा निकल चुकी है। यदि संसार का सर्वोत्तम संविधान हमारे यहां है परन्तु यदि देश में लोकतंत्रात्मक भावना नहीं है तो वह संविधान अवश्य भंग होगा। यह कहने से हमारा क्या आशय है कि राष्ट्रपति अपने हाथों में शक्तियां ले लेगा और तानाशाह बन जायेगा? और ये तीस करोड़ भारतीय क्या चुपचाप हाथ पर

हाथ रखे बैठे रहेंगे? यदि वे चुपचाप बैठे रहेंगे तो फिर वे ऐसा करेंगे ही चाहे आप कैसा ही संविधान बनायें। हम यह समझते हैं कि हमारा राजनैतिक कल्याण केवल विधि में ही निहित हैं, लोकमत में नहीं जो बहुत जागरूक, सु-अभिज्ञ तथा सतर्क है। मैं समझता हूं कि यदि हम अपना विश्वास केवल लिखित संविधान में ही अटल समझते हैं बिना इसके कि अपने नये स्वामियों–भारत की जनता को शिक्षित बनाये तब तो हम इसमें भूल कर रहे हैं। किसी भी संविधान से जो केवल कागज पर ही स्थित है किसी देश का कल्याण नहीं हो सकता है। समुचित लोकतंत्रात्मक भावना के लिए तथा इस अनुभूति के लिये यह देखने का उत्तरदायित्व हम में से प्रत्येक पर है कि देश का शासन ठीक प्रकार से विचारपूर्ण, उन्नतशील लोकतंत्रात्मक आधारों पर चल रहा है हम सबको चेष्टा करनी चाहिये। यदि यह भावना और अपने देश के शासन पर सतर्क दृष्टि नहीं है तो संसार का कोई भी संविधान, चाहे वह स्वयं देवदूत जिब्राइल द्वारा ही बना हुआ क्यों न हो, सफल नहीं हो सकता है। अत: मैं समझता हूं कि आवश्यकता से अधिक आलोचना करने और अपने भावी राष्ट्रपति पर बहुत ही अनावश्यक शंका करने की अपेक्षा हमें अपने देश की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों पर विचार करना चाहिये और यह देखना चाहिये कि भविष्य में क्या होने वाला है और फिर यथार्थ रूप में—एक रूप में जिसमें राजनैतिक चातुर्थ, बुद्धिमानी और विचार संतुलन हो हमें संविधान बनाने के कार्य में अग्रसर होना चाहिये। इंग्लैंड को ही लीजिये, श्रीमान्। क्या इंग्लैंड अपने लिखित संविधान में ही पूर्णतया विश्वास करता है? लिखित संविधान से अधिक वह अभिसमयों का प्रयोग करता है। पर हम यह भूल जाते हैं कि अभिसमय अथवा लोकमत नाम की भी कोई वस्तु है और हम भविष्य के बड़े ही आश्चर्यजनक तथा अनोखे स्वप्न की कल्पना करते हुए विधि सम्बन्धी अंतिम सीमा तक पहुंच जाते हैं और जो कुछ हम कल्पना कर सकते हैं उसके लिए उपबन्ध करने का प्रयत्न करते हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह प्रावधान हमारे ऐतिहासिक अतीत के विचार से और उन प्रवृतियों के विचार से जो स्पष्ट दिखाई दे रही है पुष्ट, कल्याणकर और आवश्यक है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मुझे खुशी है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने इस महत्वपूर्ण उपबन्ध पर सभा में एक बड़ा वाद-विवाद होने की आशा प्रकट की थी। सभा यह तो देख ही चुकी है कि पहले मसौदे और इस प्रस्थापना में एक बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन है और वह मुख्य तथा मूलभूत परिवर्तन यह है कि आपात में कार्यवाही करने के लिए राज्यपाल को हमने कोई शक्ति नहीं दी है। हमने सब आपात सम्बन्धी शक्तियों को राष्ट्रपति और भारतीय संसद् के हाथों में दे दिया है और जहां तक आपात और उद्घोषणा का सम्बन्ध है हमने राज्यपाल को केवल प्रतिवेदन करने वाला प्राधिकारी बना दिया है। यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यह एक बड़ा ही उग्र परिवर्तन है और एक ऐसा परिवर्तन है जो न तो फेडरेशन के समानुरूप है और न इससे प्रशासन में कुछ लाभ होगा अथवा व्यवहार्य भी नहीं है। कम से कम दो तर्क ऐसे हैं, जिनका सुझाव माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषण में दिया है और जो मेरे इस विचार का समर्थन करते हैं। उनमें से एक यह है कि इस परिवर्तन का भाव फेडरेशन के विचार के विरुद्ध है और दूसरा यह कि संसद् में हम उन उत्तरदायित्व के भार से दब जायेंगे जो स्वभावत: किसी अन्य प्राधिकारी को सौंपा जाना चाहिये। मेरे कुछ मित्र शायद यह कहें कि जब मैं एकात्मक शासन पद्धति के पक्ष में

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

हूं तो मैं राष्ट्रपति अथवा संसद् को अधिकाधिक शक्तियों पर अधिकार रखने को क्यों नहीं चाहता हूं। मेरा उत्तर यह है कि यह न तो तीतर है और न बटेर, यह न तो एकात्मक शासन पद्धति है और न फेडरल शासन पद्धति। यदि आप फेडरेशन का किंचित् चिह्न मात्र रहने देना चाहते हैं तो ऐसे विषयों में आपको राज्य के मुखिया को सारे प्राधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिये। जैसा कि दो पूर्व वक्ताओं द्वारा बताया जा चुका है आप केवल राज्यपाल के स्वविवेक अथवा शक्तियों को ही नहीं हथिया रहे हैं जो स्वयं आप ही के द्वारा मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है वरन आप मंत्री, राज्य के मंत्रिपरिषद और विधानमंडलों तक को भी बेकार कर रहे हैं।

*श्री **महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): परन्तु क्या माननीय सदस्य इस बात को भी सोचते हैं कि राज्यपाल निर्वाचित पदाधिकारी नहीं है? वह मनोनीत किया गया व्यक्ति होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख**: यही तो कारण है कि राज्यपाल में राष्ट्रपति को तथा संसद् को भी और अधिक विश्वास करना चाहिये क्योंकि वह प्रान्त के निर्वाचकों की सनक पर निर्वाचित नहीं हुआ है वरन् एक ऐसा व्यक्ति है जिसको राष्ट्रपति ने अपने स्वविवेक द्वारा ठीक, सक्षम तथा योग्य समझा है और ऐसा होने पर यह और भी अधिक तर्कयुक्त हो जाता है कि उसकी निपुणता और योग्यता के समाप्त हो जाने के पूर्व राष्ट्रपति कार्यवाही न करे। राज्यपाल द्वारा प्रयोग में ली जाने वाली जो शक्तियां मूलरूप में विचारी गई थीं यदि वे भी एक पक्ष के लिये रहती, और यह आवश्यक भी था, तो उसका यह आशय होता कि जो व्यक्ति उस स्थान पर है उसको उस परिस्थिति को भरसक रूप से सुधारने का एक अवसर दिया गया है जिसका उसे राष्ट्रपति अथवा संसद् से कहीं अधिक अच्छा ज्ञान है।

इसके बाद, श्रीमान्, इस सुझाव के व्यवहारिक रूप को लेते हुए हम देखते हैं कि प्रान्त के समुचित प्रशासन में अपार कठिनाइयों की संभावना है। यदि राज्यपाल को ये आपात सम्बन्धी शक्तियां नहीं दी जाती हैं तो वह केवल यही करेगा कि राष्ट्रपति को प्रतिवेदन कर देगा कि आपात पैदा हो गया है और उद्घोषणा निकाल देनी चाहिये। इसके पश्चात् उत्तरदायित्व केवल राष्ट्रपति पर ही नहीं आता है वरन् संसद् पर भी आता है और जैसे ही कि एक ऐसी संसद् कार्यारम्भ करती है जिसमें सौ सदस्य हैं तो उसका जो कुछ परिणाम होता है उसकी प्रत्येक व्यक्ति कल्पना कर सकता है। अत: मैं समझता हूं कि यह बहुत ही निर्बुद्धिमत्तापूर्ण है। मेरे मित्र श्री कामत ने कटु भाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनका भाषण यद्यपि प्रवाह में बहुत शिथिल था परन्तु उसमें विषय सम्बन्धी तर्क थे और मैं आशा करता हूं कि न तो उनकी भाषा की कटुता और न उनकी अंगचेष्टाओं का अधिक्य ही उनके भाषण की गंभीरता को कम करेगा। जो कुछ उन्होंने कहा है उससे मुझे बड़ी सहानुभूति है और मैं उनके भाषण के एक बड़े सारवत् भाग से सहमत हूं। मैं समझता हूं कि राज्यपाल अथवा प्रान्तीय सरकार अथवा मंत्रियों के साथ यह न्याय नहीं किया जाता है कि प्रान्त में जो बुद्धि तथा योग्यता राज्यपाल अथवा उसके मंत्रियों में है उनको समाप्त किये बिना ही राष्ट्रपति कूद पड़े।

इसके बाद मैं अनुच्छेद 277-क पर आना चाहूंगा। अनुच्छेद 277-क यह उपबन्ध करता है "बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का

संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।" यह बड़े उलझन का उपबन्ध है। हम आपात शक्तियों पर विचार कर रहे है। मैं नहीं देख पाता हूं कि जो चर्चा हम कर रहे हैं उसमें इस अनुच्छेद का तर्कसम्मत क्या स्थान हो सकता है। परन्तु यह केवल इसलिये आवश्यक है कि हमारे सामने एक संशोधित मसौदा अनुच्छेद 278 का है जिसके खंड (1) के भाग (ख) में यह कहा गया है "घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी" और आगे उपखंड (ग) में कहा गया है "राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसेकि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें।" 277-क के इस पवित्र उपबन्ध से किसी आपात का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वह तो संघ सरकार की ओर से एक पवित्र अभिव्यक्ति है कि वह संविधान की प्रतिष्ठा बनाये रखने और जो विधान इस अधिनियम में निर्धारित किया गया है उसमें अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे। यदि हम यह उपबंध न करते कि राष्ट्रपति को उस विधान तक को रद्द करने की शक्ति होगी जिसके द्वारा एकक अथवा राज्य की स्थिति और उनको बनाये रखने की प्रत्याभूति की गई है तो मैं समझता हूं कि इस प्रकार के आश्वासन देने की कोई भी आवश्यकता न थी।

अत: श्रीमान्, यह अनुच्छेद केवल इसलिये रखा गया कि हम राष्ट्रपति को उसकी मर्जी के अनुसार स्वयं इस संविधान के उपबन्धों को रद्द करने की शक्ति दे रहे हैं। यदि राष्ट्रपति को ये शक्तियां देना आवश्यक न होता और यदि हम उन शक्तियों को बनाये रखने से संतुष्ट रहते जिनका राज्यपाल 1935 के अधिनियम की धारा 93 के कारण उपभोग करना चला आ रह है तो इस परिवर्तन करने और अनुच्छेद 278 को लाने की आवश्यकता ही न होती। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि यह अच्छा है कि हम राज्यपाल की शक्तियों को बनाये रखें और उसको वहीं शक्तियां दें जिनको हम आवश्यक समझें और जो कि 1935 के भारतीय अधिनियम की 93वीं धारा में दी गई थीं यद्यपि जिस अनुकूलन द्वारा हम पर शासन हो रहा है उसमें से यह धारा अपमार्जित कर दी गई है। मैं समझता हूं कि यह नितांत आवश्यक है कि राष्ट्रपति अथवा संसद् पर हम यह भार आरोपित न करें और इन विषयों का प्रबन्ध करना उनके लिये कठिन बना दें। मान लीजिये कि एक से अधिक राज्य की ऐसी दशा हो जाती है, मान लीजिये आधे दर्जन से अधिक राज्यों की ऐसी दशा हो जाती है तो राष्ट्रपति और संसद् क्या करेंगे? क्या वे अपने सामान्य कर्तव्य का पालन करेंगे या इन राज्यों का प्रबन्ध करंगे? मैं नहीं समझता हूं कि यह व्यावहारिक राजनीति है और न इससे परिस्थिति की वास्तविकताओं का ही हमें परिचय मिलता है। जैसाकि मेरे मित्र श्री जैदी ने कहा था कि हमें अधिक यथार्थवादी होना चाहिये और ऐसी परिस्थितियों की कल्पना नहीं करनी चाहिये जो कभी पैदा ही न हों। श्रीमान्, आखिर विगत इतने वर्षों तक धारा 93 ठीक-ठीक क्रियान्वित होती रही और इस तथ्य के होते हुए भी कि हम एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ चुके हैं पर केन्द्रीय सरकार अथवा गवर्नर-जनरल के लिये यह आवश्यक नहीं समझा गया कि वे हस्तक्षेप करें। यदि

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

धारा 93 के बल पर हम जीते रहे हैं और ऐसे संकटकाल में से गुजर चुके हैं जो पिछले बीस वर्ष तक रहा तो मैं नहीं समझता हूं कि किसी ऐसे आपात के पैदा होने की संभावना है जिसके लिये संसद का हस्तक्षेप आवश्यक हो। अत: मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस पूरे के पूरे विषय पर फिर से विचार हो और आपात में कार्यवाही करने की समस्त शक्तियां सर्वप्रथम राज्यपाल पर छोड़ी जायें। यदि स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है और राष्ट्रपति अथवा संसद् के लिए हस्तक्षेप करने के अलावा और कोई चारा नहीं रहता है तो केन्द्र हस्तक्षेप करे। इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था।

मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 278 के समर्थन में अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों को उद्धृत किया है। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से आस्ट्रेलिया या अमरीका के दोनों में से किसी के संविधान में आपात का कोई भी उल्लेख नहीं है। कदाचित उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए उनको उद्धृत किया होगा कि जहां तक एककों का सम्बन्ध है किसी प्रकार का भी शक्ति अपहरण केन्द्र द्वारा नहीं किया जायेगा। संविधान की प्रत्येक धारा का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि उससे एककों की स्वायत्तता का सम्मान हो। यदि हम ऐसे संविधान को क्रियान्वित करना चाहते हैं तो केन्द्र को प्रान्तों की स्वायत्तता का सम्मान करना पड़ेगा चाहे हम यह विशिष्ट रूप से कहें या न कहें। यदि हम केन्द्र में ही संविधान के उपबन्धों का सम्मान नहीं करेंगे तो फिर उसके सम्मान की किसी और से किस प्रकार आशा रखेंगे? अत: विदेशी संविधानों से समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न में माननीय डाक्टर के कथन में कोई सार न था। यदि इस समय प्रथम बार प्रकट की गई इस पूरी योजना के समान किसी समुचित योजना को वे उद्धृत करते तब तो कुछ संतोषजनक बात होती। पर वे ऐसा न कर सके यहां तो हम प्रान्तीय राज्यपालों और प्रान्तीय शासन विभागों से समस्त शक्तियां छीन रहे हैं। श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि यह बुद्धिमता पूर्ण है अथवा इसके भली प्रकार क्रियान्वित होने की ही संभावना है अथवा यह दृढ़ तथा लाभदायक शासन के हित में है।

*__श्री राजबहादुर__ (संयुक्त राज्य मत्स्य): अध्यक्ष महोदय, इस महान् सभा के अमूल्य समय के कुछ अंश को बरबाद करने का कारण यह उत्तेजना है जो मेरे माननीय मित्र श्री कामत के मुख से निकली हुई कुछ बातों के कारण पैदा हुई है। उन्होंने अपनी वाग्धारा को अपनी ही कुछ प्रिय पदावलियों से चिकना चुपड़ा बना लिया है-और मेरे विचार से यही कुल पूंजी है जिसको लेकर वे चलते हैं। अनुच्छेद 277—क पर जो उन्होंने संशोधन प्रस्थापित किये हैं उनके विश्लेषण से मैं भाषण आम्भ करूंगा। सर्वप्रथम वे चाहते हैं कि हम "राज्यपाल" शब्द के पश्चात् "संघ" शब्द जोड़ दें। यह एक सत्य है और अनुच्छेद 277-क को सरसरी तौर से पढ़ने पर भी यह विदित होगा कि उसमें केवल एक सिद्धान्त दिया हुआ है और अनुच्छेद 278 उस सिद्धान्त को प्रवर्तन में लाने के लिए एक तंत्र की व्यवस्था करता है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना केवल सरकार का ही नहीं वरन् समस्त संघ का समस्त राष्ट्र का प्रकार्य है। अत: "सरकार" शब्द निरर्थक होगा।

दूसरी बात वे ये कहते हैं कि प्रस्थापित अनुच्छेद 277-क की द्वितीय पंक्ति में "और" शब्द के स्थान में "अथवा" शब्द रखा जाये। मैं उनको यह विश्वास दिला सकता हूं कि यह कोई प्रश्न-पत्र नहीं है जिसमें परिक्षार्थियों को एक प्रश्न अथवा उसके स्थान में किसी अन्य प्रश्न का उत्तर देने का विकल्प दिया जाये। वास्तव में दोनों आपातों में चाहे वह बाह्य आक्रमण हो या आभ्यन्तरिक अशान्ति संघ और राष्ट्र का यह कर्तव्य तथा प्रकार्य है कि वह प्रत्येक राज्य की रक्षा करे।

अंत में वे चाहते हैं कि हम "अशान्ति" शब्द के स्थान में "उपद्रव और अराजकता" शब्द रखें। मैं नहीं समझता हूं कि "अशान्ति" और "उपद्रव और अराजकता" में विधेयक-सूक्ष्म विवेचना सरलता से हो सकती है। "उपद्रव और अराजकता" केवल अशान्ति का ही परिणाम है। वास्तव में जहां कहीं भी संकट हो वहीं हमें शीघ्रता से उचित कार्यवाही करनी चाहिये....।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मेरे मित्र केवल खांसी जुकाम के लिए चीरा लगाना विनिहित करेंगे।

***श्री राजबहादुरः** मैं खुश होता यदि श्री कामत कोई सक्रिय सुझाव देते। मैं समझता हूं कि सभा में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपात की दशा में प्रयुक्त होने के लिए कुछ रक्षा कवचों को इस संविधान में रखने की बुद्धिमता को अस्वीकार करे। केवल अशान्ति अथवा अराजकता के कारण ही नहीं बल्कि अन्य कारणवश भी हम व्यवस्था भंग होने की संभावना का सरलता से अनुमान कर सकते हैं। थोड़ी देर के लिए फ्रांस की दशा पर विचार करिये जहां कि लगभग हर दूसरे दिन सरकार बदलती है। ऐसी परिस्थिति में यह लाभदायक होगा कि राष्ट्रपति से यह कहा जाये कि जब तक निर्वाचन न हों वे अपने हाथ में शक्तियां ले लें। इसी प्रकार हम किसी प्रान्त या राज्य में वित्तीय व्यवस्था के भंग होने का भी अनुमान कर सकते हैं। न्यू फाउन्डलेंड के उपनिवेश का उदाहरण हमारे सामने है। वित्तीय व्यवस्था भंग हो जाने के कारण न्यू फाउन्डलेंड ने शासन चलाना कठिन समझा और इसका फल यह हुआ कि उसे इंग्लैंड की संसद् से यह निवेदन करना पड़ा कि वह उसकी आर्थिक सहायता करे और उसे अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बना दे। संसद् ने हस्तक्षेप किया और अंतिम परिणाम यह हुआ कि अपनी मर्जी से न्यू फाउन्डलेंड अब कनाडा का एक प्रान्त हो गया है, हमारे देश में भी ऐसे आपात पैदा हो सकते हैं। और फिर मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है जिसके कारण से हम अपने राष्ट्रपति का अविश्वास करें जो अभी तक बना ही नहीं है। आखिर राष्ट्रपति होगा कौन? राष्ट्रपति हमारा ही देशवासी होगा। उसका हम निर्वाचन करेंगे—वह हमारी लोकतंत्रात्मक आत्मा का रक्षक होगा। वह हमारी स्वतंत्रता और आजादी का संरक्षक होगा। वह देश का प्रथम नागरिक होगा। मैं नहीं समझ पाता हूं कि श्री कामत उसके प्रति इतनी शंका क्यों करते हैं। अब वह समय आ गया है कि हमें अपनी शंकाओं और अन्धविश्वासों का परित्याग कर देना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि हम 1947 के पूर्व कालीन युग में नहीं रह रहे हैं। हम क्रांतिकारी भावनाओं और क्रांतिकारी विचारों की बात करते हैं। पर प्रतीत ऐसा होता है कि अभी तक जो परिवर्तन देश में हुआ है हम उसके

[श्री राजबहादुर]

अनुकूल नहीं बन पाये हैं। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हम अब अपने घर के स्वामी हैं? राष्ट्रपति का निर्वाचन हमारे द्वारा होगा और हमें उस पर अविश्वास नहीं करना चाहिये। आपात की दशा में केवल दो महीने के लिए क्या हम उस पर विश्वास नहीं कर सकते हैं? अपने विचार की पुष्टि में कोई तर्क प्रस्तुत किये बिना मेरे मित्र यहां तक कह गये कि यह अनुच्छेद "लोकतंत्रात्मक स्वतंत्रता को रद्द करने के लिए केवल एक बहाना है"। मैं कहता हूं कि यह ठीक इसके विपरीत है और जो कुछ उन्होंने कहा है उसका विरोधी सिद्धान्त है। यह स्वतंत्रता और आजादी की रक्षा करने के लिए है कि कुछ आपात का सामना करने के लिए ऐसा उपबन्ध किया गया है। उन्होंने प्रस्थापित अनुच्छेद में "अन्यथा" शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की है। प्रस्थापित अनुच्छेद इस प्रकार है:

'यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये.....तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा.....।"

मैं श्री कामत से यह जानना चाहूंगा कि क्या वे केवल उस दशा तक ही इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियों को निर्बन्धित करना चाहते हैं जिसमें उसे राज्यपाल से प्रतिवेदन मिले और किसी अन्य आकस्मिकता के लिए नहीं। और आकस्मिकतायें भी पैदा हो सकती हैं। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत उन दशाओं में भी राष्ट्रपति को कार्यवाही करने की शक्ति होनी चाहिये जिनकी सूचना उसे अन्य साधनों से मिलती है। उसे अवश्य ही अपने मंत्रिमंडल अथवा सरकार से मंत्रणा मिलने पर कार्यवाही करने देना चाहिये। मैं नहीं समझता हूं कि "अथवा अन्यथा" शब्दों के निकालने का प्रयास करते हुये वे इस उपबन्ध में कोई ठीक संशोधन करेंगे।

अपने भाषण में श्री कामत ने ईश्वर से यह दया करने की प्रार्थना की कि वह सभा को यह जानने की सद्बुद्धि दे कि इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति को शक्ति देना, उनके ही शब्दों में, "मूर्खता, अज्ञानता तथा अपराध है"। मैं अपनी ओर से यह प्रार्थना करूंगा कि हे ईश्वर हमें सद्बुद्धि दे कि हम इन सब बातों को ठीक-ठीक जान जायें। वह हमें इतना सामान्य ज्ञान और सद्बुद्धि दे कि हम केवल आलोचना के लिए आलोचना न करें। हमें यह देखना चाहिये कि इस संविधान में हम कुछ ऐसे उपबन्ध बनायें जो हमारे देश में अप्रत्याशित अथवा भद्दी परिस्थितियों के पैदा होने पर हमारी अच्छी सहायता कर सकें। मेरे माननीय मित्र शायद यह विचार रखते हैं कि हम कोरी बातों और थोथी निन्दाओं में पड़कर अपने देश का शासन चला सकते हैं और अपनी स्वतंत्रता और आजादी की रक्षा कर सकते हैं। सभा इस बात को जानती है कि कोई भी ऐसा नहीं कर सकता, अत: मैं माननीय सदस्यों से इस बात पर ध्यान रखने के लिए निवेदन करूंगा कि मेरे मित्र द्वारा पेश किये गये संशोधन अस्वीकार किये जायें। श्रीमान्, मैं भाषण समाप्त करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): दोनों अनुच्छेदों पर डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

सर्वप्रथम मैं इस कारण की व्यवस्था करूंगा कि यह अनुच्छेद क्यों रखा गया है जिसमें "संविधान का पालन करना" संघ का कर्त्तव्य बना दिया गया है। राष्ट्र और संघ सरकार के संबंध में सबसे पहली बात "संविधान का पालन करना है"। यदि इस पद का अर्थ पूर्ण रूप से समझ लिया गया है तो यह अनुभव किया जायेगा कि प्रांतीय संविधान में हस्तक्षेप करने का कोई उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि प्रांतीय संविधान संघ संविधान का एक भाग है। अतः संघ सरकार का यह कर्त्तव्य है कि बाह्य आक्रमण आभ्यन्तरिक अशांति और आन्तरिक अव्यवस्था से रक्षण करे और यह देखें कि दोनों राज्यों और संघ में संविधान समुचित रूप में क्रियान्वित हो रहा है। यदि प्रांतों अथवा राज्यों में संविधान ठीक रूप से क्रियान्वित हो रहा है अर्थात् यदि संविधान द्वारा प्रतिपादित रूप में उत्तरदायित्व पूर्ण सरकार ठीक-ठाक प्रकार्य करती है तो संघ न हस्तक्षेप कर सकता है और न करेगा। प्रांत अथवा राज्य की स्वायत्तता के प्रवर्त्तक यह अनुभव करेंगे कि प्रांत अथवा राज्य की कल्याणकारी स्वायत्तता की उन्नति में एक रुकावट होने की अपेक्षा यह उपबन्ध प्रांत अथवा राज्य की स्वायत्तता का रक्षक है क्योंकि यह देखने का मुख्य आभार कि संविधान का पालन हो रहा है संघ पर डाला गया है। यह उपबन्ध किसी प्रकार से भी एक अनूठा उपबन्ध नहीं है। संयुक्त राज्य के अनुकरणीय फेडरल संविधान में, जहां कि राज्य की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता अन्य किसी फेडरल शासन व्यवस्था की अपेक्षा अधिक मानी जाती है, आपको इस उद्देश्य का उपबन्ध मिलेगा कि संघ अथवा केन्द्रीय सरकार का कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि राज्य की रक्षा आन्तरिक क्रांति और बाह्य आक्रमण दोनों से की जाती है। इस अनुच्छेद के रखने में हम अमरीका के श्रेष्ठ अथवा अनुकरणीय फेडरल शासन व्यवस्था के उदाहरण का पालन कर रहे हैं। और भी, आस्ट्रेलिया के संयुक्त मंडल के संविधान की धारा 60 में भी एक इसी प्रकार का उपबन्ध है कि कार्यपालिका सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे। ये बातें प्रथम अनुच्छेद के निर्देश में है जिसको मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है।

इसके बाद मैं आनुषंगिक उपबन्ध पर आता हूं जो संघ सरकार पर यह प्रमुख कर्त्तव्य डाला गया है कि वह यह देखे कि भारत के विभिन्न भागों में संविधान क्रियान्वित हो और उसका ठीक-ठीक पालन हो। यदि संविधान के ठीक-ठीक क्रियान्वित करने में किसी एकक में कोई कठिनाई होती है तो संघ सरकार का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वह हस्तक्षेप करे और व्यवस्था ठीक करे। केवल संवैधानिक तंत्र के विफल होने अथवा भंग होने पर ही संघ सरकार हस्तक्षेप करेगी।

इस उपबन्ध की खास बातें ये हैं कि उद्घोषणा के होते ही कार्यपालक प्रकार्य राष्ट्रपति द्वारा ले लिये जाते हैं। इसका वास्तविक अर्थ क्या है? इस बात की सदस्यों को बार-बार याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि "राष्ट्रपति" का अर्थ केन्द्रीय मंत्रि-मंडल हैं जो समस्त संसद् के प्रति उत्तरदायी है जिसमें उन विभिन्न एककों के प्रतिनिधि होते है जो फेडरल सरकार के अंगभूत भाग हैं। इसलिये प्रांतीय यंत्र के विफल होने पर प्रांतीय मंत्रि-मंडल की अपेक्षा केन्द्रीय मंत्रि-मंडल उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। यह पहली बात है।

इसके बाद जहां तक कार्यपालिका सरकार का संबंध है प्रांत में ठीक प्रकार से शासन चलाने के लिए वह संघ संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी। इस अनुच्छेद के प्रथम भाग का यह प्रभाव होगा।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

इसके बाद यह प्रश्न है कि विधान किस प्रकार संचालित किया जायेगा। विधायी विषय संबंधी मुख्य प्राधिकार संसद् को सौंपा जाता है। पर इसके साथ-साथ विभिन्न कार्यों का ध्यान रखते हुए जिनमें संसद् व्यस्त है और भारतीय परिस्थितियों की आकस्मिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए विधान के दैनिक कार्य का करना संसद् के लिये असंभव हो जायेगा यद्यपि अंतिम उत्तरदायित्व संसद् पर ही रहेगा। अत: अपनी एक अथवा समस्त शक्तियों को देकर यह उपबन्ध संसद् को विधान के प्रमुख कर्तव्य के निर्वहन करने में समर्थ करता है।

शक्ति देने का यह अधिकार संसद् में सौंपी हुई सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता की संपूर्ण शक्ति का प्रासंगिक है। पर फेडरल न्यायालय के एक हाल के विनिश्चय में जो कुछ शंका पैदा की गई है उसको विचार में रखते हुये यह स्पष्ट करना आवश्यक समझा गया कि परिस्थिति की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए संसद् अपने प्रकार्य को अन्य निकाय या निकायों को दे सकती है। उद्घोषणा के होते ही राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसे सभा के समक्ष प्रस्तुत करे। यह केवल एक अस्थायी काल के लिये होगा। इसके बाद संसद् देश के उस विशिष्ट भाग की परिस्थिति पर विचार कर सकेगी। संसद् उस मंत्रि-मंडल पर अपना नियंत्रण तथा निरीक्षण कर सकती है जिसने उस राज्य के कार्यपालिका प्रकार्यों का उत्तरदायित्व ले लिया है। संसद् में सब एककों के प्रतिनिधि हैं। पुरानी धारा 93 और इस अनुच्छेद में सिवा कुछ भागों में भाषा के और कोई भी समानता नहीं है। धारा 93 के क्रियान्वित करने का अन्तिम उत्तरदायित्व धारा 93 के अधीन ग्रेट ब्रिटेन की संसद् पर था जिसमें निस्संदेह भारतीय जनता के प्रतिनिधि नहीं थे, और वर्तमान अनुच्छेद के अधीन उत्तरदायित्व भारतीय संसद् पर है जिसका निर्वाचन समान मताधिकार के आधार पर होता है और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस समय के प्रतिनिधियों के अन्त:करण में ही नहीं वरन् अन्य एककों के प्रतिनिधियों के अन्त:करण में भी जागृति पैदा हो जायगी और वे इस बात पर ध्यान देंगे कि उपबन्ध का ठीक-ठीक प्रयोग हो रहा है। इन परिस्थितियों के अधीन सिवा इस भावनामूलक आपत्ति के कि यह पुरानी धारा 93 की पुनरावृत्ति है इस अनुच्छेद में निहित मुख्य सिद्धांत पर आपत्ति करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह काल बड़ा गंभीर और कठिन है। एक पृथक-पृथक माप के हैं और कुछ एककों में बहुत काल से उत्तरदायित्व पूर्ण शासन प्रयोग में नहीं लाया गया है। कुछ राज्यों में तो मताधिकार तक एक नई वस्तु है और हमने राज्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का पुर:स्थापन कर दिया है यद्यपि वे सब उन उन्नत एककों के समान नहीं हैं जिनको प्राचीन ब्रिटिश भारत के प्रांत कहा जा सकता है। इन परिस्थितियों के अधीन इस संविधान के पुष्ट तथा कल्याणकर क्रियाकरण के हित में यह आवश्यक है कि केन्द्र की ओर से कुछ नियंत्रण हो जिससे कि लोग अपने उत्तरदायित्व को समझ और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन को ठीक-ठीक चलायें। इन परिस्थितियों में ऐसी कोई बात नहीं है। जिसके कारण इस वर्तमान अनुच्छेद में निहित सिद्धांत पर कोई आपत्ति की जाये। यह भली प्रकार से सोच विचार कर रखा गया है और मेरे मित्र ने इस विषय के सभी पहलुओं पर विचार कर लिया है। उसमें कार्यपालिका और विधायी प्रकार्यों तक में अन्तर कर दिया है। विधायी पक्ष में सम्पूर्ण शक्ति संसद को दे दी गई है। साथ ही साथ उसमें प्रशासन

संबंधी सुविधा भी है। ऐसी कोई बात नहीं है जो मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखने में संसद् को रोके, जबकि मंत्रिमंडल किसी विशिष्ट एकक अथवा राज्य की शासन व्यवस्था के लेने में दुर्व्यवहार करे। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन का समर्थन करने में मुझे बड़ी खुशी है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल) : श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 278 के संबंध में मैं श्री कामत के संशोधन संख्या 225 का समर्थन करता हूं। मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का भी समर्थन करता, यदि वह आवश्यक होता तो। पर मेरी राय से प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राष्ट्रपति का यही विचार होगा, तो सामान्य निर्वाचन के लिए आदेश देने में कोई रुकावट नहीं है और ऐसी दशा में राष्ट्रपति स्वयं उद्घोषणा को रद्द कर देगा। मैं यह अवश्य आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद के अधीन कड़ी कार्यवाही करने के पूर्व स्थिति सुधारने का अवसर निर्वाचक-मंडल को दिया जायेगा और इस कारण मेरी राय में प्रो. सक्सेना का संशोधन आवश्यक नहीं है।

जहां तक श्री कामत के संशोधन का संबंध है यद्यपि मैं उससे सहानुभूति रखता हूं, पर बाद में मैं यह बताऊंगा कि वर्तमान परिस्थितियों में उस पर क्योंकर जोर नहीं दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने हेतु मेरा समर्थन शायद यह उन लोगों को कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हो, जिनको यह याद है कि मैं इस संशोधन का, जो अनुच्छेद 188 का निर्माण करता है, लेखक था। पर मुझे विश्वास है कि उन लोगों को आश्चर्य नहीं होगा, जिन्हें मेरा वह भाषण याद है, जो मैंने इस संशोधन को पेश करते समय दिया था। उस समय मेरा तर्क यह था कि राज्य में ऐसा आपात है जो राज्य की शांति और प्रशांति को संकास्पद बना देता है। और ऐसे समय वही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसका निर्वाचन यथा संभव व्यापक मताधिकार द्वारा हुआ है और इसलिये उसे जनता का पूर्ण विश्वास प्राप्त है। इस कारण मैंने कहा था कि ऐसे व्यक्ति को आपात शक्तियां क्यों नहीं दी जाती हैं, जब तक कि केन्द्र उस परिस्थिति पर काबू करे। मेरा यह तर्क था और उस समय सभा ने उसे स्वीकार कर लिया था। पर अब निर्वाचित राज्यपाल के स्थान में मनोनीत राज्यपाल कर दिया गया है, अत: मेरा तर्क आधारशून्य हो गया। इसलिये अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करने में मुझे कोई संकोच नहीं है।

यद्यपि मैं अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करता हूं, पर मैं नये अनुच्छेद 278 से बहुत खुश नहीं हूं। मैं इसलिये खुश नहीं हूं कि नये अनुच्छेद का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक है। अनुच्छेद 188 केवल तभी प्रवर्तन में आ सकता था, जबकि राज्य की शांति और प्रशांति शंकास्पद हो जाती थी, पर इस अनुच्छेद 278 का प्रवर्तन तो विधि तथा आदेश संबंधी आपात के न होने पर भी वरन् केवल संविधानिक तंत्र के विफल होने पर ही हो जाता है। कठोर शक्ति देने की बात तब तो मैं समझ सकता हूं, जबकि राज्य की स्थिति ही शंकास्पद हो जाये। पर केवल संविधानिक विफलता अथवा संविधानिक दोष के लिए असामान्य शक्तियां

[श्री बी.एम. गुप्ते]

देना मैं पसन्द नहीं करता हूं। यह बहुत कम गंभीर तथा अनावश्यक सा विषय है और ऐसे विषय के लिए मैं नहीं चाहता हूं कि असामान्य शक्ति दी जायें। हां, आलोचक यह कहेंगे और यह कहा गया है कि हम उसी घृणित धारा 93 की केवल पुनरावृत्ति कर रहे हैं, पर मैं इस आलोचना से सहमत नहीं हूं, क्योंकि इन दोनों में बहुत अधिक अन्तर है। कल एक माननीय सदस्य ने यह कहा था कि अनुच्छेद 275 धारा 93 की पुनरावृत्ति है। मुझे इन दोनों में कोई संबंध नहीं दिखाई देता है, क्योंकि अनुच्छेद 275 और 188 शांति और प्रशांति की ओर निर्देश करता है। धारा 93 में संविधानिक विफलता की ओर निर्देश है। अनुच्छेद 278 पुरानी धारा 93 के सन्निकट है; यद्यपि फिर भी अन्तर बहुत अधिक है। एक स्पष्ट अन्तर तो यह है कि उत्तरदायित्व विहीन राज्यपाल और मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) के स्थान में उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वाचित सरकार हो गई है, पर मेरी राय में अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकप्रिय विधान मंडल का परिस्थिति पर प्रभावी नियंत्रण होगा। दो महीने में संसद् से परामर्श होगा और इसके बाद संसद् ही उस परिस्थिति का प्रबन्ध करेगी। धारा 93 और वर्तमान अनुच्छेद 278 में यह बड़ा भारी अन्तर है। इस अन्तर के होते हुए भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि हो सके तो हमें अपने संविधान को ऐसे उपबन्ध से कुरूप नहीं बनाना चाहिये। यह हमारी इच्छा थी, पर अपनी इच्छा के अनुसार हम चल तो नहीं सकते। दुर्भाग्यवश देश में परिस्थितियां ही ऐसी हैं: हम एक ऐसे काल में रह रहे हैं जो शायद हमारे लोकतंत्र रूपी शिशु के लिए संकटजनक सिद्ध हो। फ्रांस में कभी-कभी दो दिन में तीन सरकार विफल हो जाती हैं। एक परिपक्व तथा पुराने लोकतंत्र में इस वैभव को प्राप्त किया जा सकता है; पर हमारा लोकतंत्र तो अभी शिशु अवस्था में है। और यद्यपि हम इसे नहीं चाहते हैं, पर हमें कुछ ऐसी बातें सहन करनी पड़ेगी जिनको सामान्य काल में हम अस्वीकार कर सकते थे। यद्यपि मैंने इस अनुच्छेद का समर्थन किया है, फिर भी मैं केवल यही आशा करता हूं कि यह निष्प्राण रहे और इन असामान्य शक्तियों के प्रयोग करने का कोई अवसर न आये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल) : अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 278 और 278-क कुछ रूपों में इस संविधान के बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं। इसमें कोई शक नहीं कि प्रथम दृष्टि डालने पर तो वे कदाचित भद्दे और बुरे से दिखाई देते हैं, क्योंकि वे पुरानी घृणित धारा 93 की पुनर्प्रविष्टि से प्रतीत होते हैं। मेरे माननीय मित्र सर्वश्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और गुप्ते ने समझा दिया है कि इनका रूप चाहे जैसा हो, पर इनका सार धारा 93(क) से बिल्कुल भिन्न है। श्रीमान्, मैं उनके तर्कों को दुहराऊंगा नहीं, पर मैं यह बताना चाहूंगा कि धारा 93 में तीन मुख्य बातें थीं। पहली राज्यपाल द्वारा स्वविवेकानुसार शक्तियों का प्रयोग होगा। दूसरी जब राज्यपाल अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही करता है, तो वह उस प्रांत के किसी प्राधिकारी, किसी पक्ष अथवा किसी प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदायी नहीं है। तीसरी वह भारत के किसी भी प्राधिकारी के प्रति उत्तरदायी अथवा उसको हिसाब देने वाला नहीं है। अत: यदि धारा 93 से हम इसे मिलाते हैं, तो इन तीन कसौटियों पर हमें इसे कसना चाहिये। क्या कोई ऐसा प्राधिकारी

है, जिसे अपने स्वविवेक से प्रांतीय संविधान को रद्द करने का अधिकार हो? अनुच्छेद 188 के पुराने मसौद में दो सप्ताह के लिए राज्यपाल को अपने स्वविवेकानुसार उसे रद्द करने की शक्ति दी गई थी। मैं समझता हूं कि वह बहुत ही गलत उपबन्ध था और यह बड़े सौभाग्य की बात है कि पुराने अनुच्छेद 188 का अपमार्जन किया जा रहा है। अन्यथा कोई भ्रांत राज्यपाल, जिसे परिणामों की चिंता नहीं है, प्रांत की जनता और भारत की संसद् के रक्षार्थ प्रस्तुत होने के पूर्व ही संविधान को उलट देगा। देश में दुष्टों की कमी नहीं है और यह कोई अनहोनी बात नहीं है, ऐसा कोई दुष्ट व्यक्ति राज्यपाल की गद्दी पर जा पहुंचे और गड़बड़ी कर दे। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने यह बता दिया है कि "राष्ट्रपति" शब्द का संविधानिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही नहीं कर सकता है। वह केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलेगा। अतः न अनुच्छेद 278 में और न अनुच्छेद 278-क में लोकतंत्र को किसी रूप में भी दलित किया गया है। शक्ति का प्रयोग स्थानीय विधान-मंडल द्वारा हो या संसद द्वारा, यह सुविधा का विषय है और इसमें लोकतंत्र का वास्तविक तत्व अथवा सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त नहीं है। साधारणतया कुछ शक्तियों तथा प्रकार्यों का प्रयोग प्रांतीय विधान-मंडलों द्वारा किया जाता है, परन्तु जब प्रांतीय संविधान भंग हो जाता है तो ये शक्तियां और प्रकार्य केन्द्रीय कार्यपालिका और केन्द्रीय विधान मंडल पर आ जाते हैं, जो उतने ही लोकप्रिय तथा उतने ही लोकतंत्रात्मक हैं, जितने राज्य सरकारें और विधान-मंडल। यह भी नहीं भुला देना चाहिये कि केन्द्रीय संसद् में उस राज्य के प्रतिनिधि होंगे, जिसके शासनाधिकार ले लिये जाते हैं। यदि संसद् के दोनों सदन संकल्प द्वारा अनुमोदन नहीं करते हैं, तो दो महीने के पश्चात् प्रत्येक उद्घोषणा रद्द हो जायेगी। उत्तर सदन में स्थानीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित सदस्य होंगे और प्रथम सदन में सम्बद्ध राज्यों के निर्वाचन-क्षेत्रों से वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। अतः सम्बद्ध राज्य के प्रतिनिधियों से भी राज्य का शासन नहीं छीना जाता है। केवल यह होता है कि सम्बद्ध राज्य के प्रतिनिधि भारत के अन्य भागों के प्रतिनिधियों के सहयोग से राज्य पर शासन करेंगे। केवल यही परिसीमा है और यह परिसीमा आवश्यक है, क्योंकि उस राज्य में संविधान भंग हो चुका है। अतः यह लोकतंत्र के सिद्धांतों की अवज्ञा के रूप में नहीं है, जिसकी इस अनुच्छेद पर आपत्ति की जा सकती है। कदाचित इस अनुच्छेद के क्षेत्र के आधार पर उन सिद्धांतों की ठीक जांच करनी होगी क्योंकि अनुच्छेद 278 और 278-क तभी प्रवृत्त होते हैं, जब कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।

अब हम उन परिस्थितियों का व्यापक रूप से विश्लेषण करें जिनके अन्तर्गत ये अनुच्छेद प्रवृत्त हो सकते हैं। राज्य में शासन प्राकृतिक रूप में भंग हो सकता है, उदाहरणार्थ, जबकि सर्वत्र अभ्यांतरिक अशांति अथवा बाह्य आक्रमण हो अथवा किसी अन्य कारण से विधि तथा व्यवस्था का पोषण न हो सके। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि कोई प्रांतीय प्राधिकारी प्रकार्य नहीं कर सकता है और जो प्राधिकारी प्रकार्य कर सकता है, वह है केन्द्रीय सरकार और ऐसी आकस्मिकता में ये अनुच्छेद केवल अविरोधनीय ही नहीं वरन् परम आवश्यक हैं और इनके न होने से बड़ी अव्यवस्था हो जायेगी। राजनैतिक अव्यवस्था भी हो सकती है। यह एक ऐसा प्रश्न

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है जिसका सावधानीपूर्ण विश्लेषण अपेक्षित है। राजनैतिक अव्यवस्था तभी हो सकती है, जबकि मंत्रिमंडल न बनाया जा सके या जो मंत्रिमंडल बनाये जायें वे इतने अस्थायी हों कि वास्तव में शासन चल ही न सके। संविधान के अनुसार सामान्यता जब मंत्रिमंडल में बहुत अस्थायित्व हो तो ठीक प्रक्रिया यह है कि प्रथम सदन भंग कर दिया जाये और उसका फिर से निर्माण हो। यदि भंग करने के पश्चात् भी वही झगड़े स्थानीय विधान-मंडल में फिर से होने लगें और उन मंत्रिमंडल का चलना असंभव हो जाये, तो उस समय अनुच्छेद 278 और 278-क के अनुसार केन्द्र का हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इसके लिये समुचित अभिसमयों का विकास आवश्यक है। उदाहरणार्थ, इस अभिसमय का विकसित होना आवश्यक है कि राजनैतिक अव्यवस्था के कारण इन अनुच्छेदों की शरण लेने के पूर्व राज्य विधान-मंडल के प्रथम सदन का विघटन हो जाना चाहिये। विघटन के अभाव में केन्द्र को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और यह एक ऐसा अभिसमय है, जिसे हमें विकसित करना होगा; पर अनुच्छेद में इसका रखना बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि ऐसी असामान्य परिस्थितियां हो सकती हैं, जबकि स्थानीय निर्वाचन भी केन्द्र द्वारा करना पड़े और अस्थायी रूप से केन्द्र को यह प्रभार ग्रहण करना पड़े।

इसके पश्चात् तीसरी आकस्मिकता आर्थिक अव्यवस्था की है। मान लीजिये कि किसी राज्य में मंत्रिमण्डल ठीक है, पर समस्त करों को कम करके या हटाकर वह लोकप्रिय होना चाहती है और दिवाले पर अपना प्रशासन चलाना चाहती है। मान लीजिये सरकारी सेवकों को वेतन नहीं दिया जाता है और आभारों की पूर्ति नहीं की जाती है और राज्य अपने घाटे को बढ़ाता जाता है। यह वास्तव में एक कठिन स्थिति है। केन्द्र को बहुत सावधान तथा सतर्क रहना पड़ेगा, उसको जितनी अधिक हो सकती है उतनी ढील करनी होगी, पर कभी न कभी तो आर्थिक अव्यवस्था की दशा में भी केन्द्र को हस्तक्षेप करना होगा, क्योंकि अन्ततोगत्वा समस्त देश की वित्तीय जिम्मेदारी का उत्तरदायित्व उसी पर है और यदि संयुक्त प्रांत जैसा एक बड़ा प्रांत दिवालिया हो जाता है, तो इसका यह अर्थ होगा कि समस्त देश दिवालिया हो गया। अत: अनुच्छेद 278 और 278-क के अधीन इस आकस्मिकता को भी संव्यवहार करना होगा ओर इस विषय में भी हमें अभिसमय विकसित करना होगा कि घाटे की वह कितनी धनराशि हो, जो इन अनुच्छेद 278 और 278-क को काम में लाये बिना प्रत्येक राज्य को उतनी राशि तक का घाटा करने दिया जाये। अत: अनुच्छेद 278 और 278-क पर आपत्ति वास्तव में ठीक-ठीक अभिसमयों के विकसित न होने की संभावना से संबंध रखती है। ये धारायें स्वयं तो अविरोधनीय हैं तथा आवश्यक हैं। परन्तु हां यदि केन्द्र इस विधि के शब्दार्थ का कठोर पालन करता है, तब तो किसी बात को भी संविधान का उल्लंघन समझा जा सकता है ओर यह हो सकता है, कि केन्द्र का हस्तक्षेप बहुधा हो तथा आपत्तिजनक हो। आखिर जब हम संसद् का निर्माण उस आधार पर कर रहे हैं, जिन पर कि उसका निर्माण हो रहा है, तो हम वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित लोक-सदन और विधान-मंडलों द्वारा भेजे हुये सदस्यों के द्वितीय सदन पर यह विश्वास कर सकते हैं कि वे यह देखें कि राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं हो रहा है। हां, कठिन स्थिति तो तब होगी, जबकि कुछ राज्यों में उन राजनैतिक पक्षों द्वारा शासन चलाया जाता है, जो उस राजनैतिक पक्ष से भिन्न हैं, जो केन्द्र और अन्य अधिकांश राज्यों पर शासन कर रहा है। उस समय यह संभव हो सकता

है कि राजनैतिक विरोध के कारण अनुच्छेद 278 और 278-क के अधीन कोई अनावश्यक अथवा असह्य कार्यवाही की जाये। इसका उपचार केवल कल्याणकारी अभिसमयों के विकास में है। यदि देश में शांति है और लोकतंत्र को उन्नत होने दिया जाता है, तो इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि इन अभिसमयों का विकास होगा और इन सब अनुच्छेदों का उन उचित प्रयोजनों के लिए उपयोग होगा, जिनके लिये ये बनाये गये हैं।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू__ (संयुक्त प्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे वास्तव में बड़ी खुशी है कि संविधान के निर्माताओं ने इस विचार को स्वीकार कर ही लिया कि अपने संविधान में अनुच्छेद 188 को न रखा जाये। प्रांतों में उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना और राज्यपाल की नई स्थिति से वह अनुच्छेद असंगत था। यह संतोषजनक है कि आखिरकार यह बात मान ली गई और राज्यपाल को वह शक्ति नहीं दी जा रही है, जो अनुच्छेद 188 द्वारा उसे दी जा रही थी। अब अनुच्छेद 188 और पुराने अनुच्छेद 278 के प्रयोजन की पूर्ति अनुच्छेद 278 के पुनरीक्षण द्वारा प्रस्थापित की गई है। आज हमें अपना ध्यान केवल अनुच्छेद 278 और 278-क पर ही नहीं रखना है, वरन् अनुच्छेद 277-क पर भी रखना है। यह अनुच्छेद निर्धारित करता है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस बात का सुनिश्चय न करे कि प्रत्येक राजा का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जा रहा है। यह केन्द्रीय सरकार को बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशांति से राज्य के रक्षण का ही प्राधिकार नहीं देता है, वरन् वह इससे और भी आगे बढ़ जाता है और उस पर यह देखने का कर्त्तव्य भी डाल देता है कि प्रांत का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जा रहा है। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है? इसकी स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये क्योंकि प्रांतीय संविधान समुचित रूप से क्रियान्वित हो रहा है। यह सुनिश्चय न करने की शक्ति से उन शक्तियों का यथेष्ट परिवर्द्धन हो जाता है, जिनका केन्द्रीय सरकार बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशांति से राज्य का रक्षण करने हेतु उपभोग करेगी। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि इस संबंध में अनुच्छेद 275 और 276 पर विचार करना वांछनीय होगा, क्योंकि उनके उपबन्धों का इन अनुच्छेदों से घनिष्ट संबंध है, जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं। अनुच्छेद 275 में कहा गया है कि जब राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात वर्तमान है, जिससे भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उस आशय की उद्घोषणा कर सकेगा। यह उद्घोषणा दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी, जब तक कि संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये। यदि इसको इस प्रकार अनुमोदित किया जाता है तब तो आपात की उद्घोषणा असीम काल तक के लिए प्रवर्तन में रह सकेगी, अर्थात् जितने समय के लिए कार्यपालिका उसे प्रवर्तन में रहना चाहे अथवा जब तक संसद् उसे प्रवर्तन में रहने दे। जब तक उद्घोषणा प्रवर्तन में रहती है, अनुच्छेद 276 के अधीन किसी प्रांत की सरकार को उस रीति के संबंध में निर्देश देने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को होगी, जिसके अनुसार उस प्रांत के कार्यपालिका प्राधिकार का प्रयोग किया जाये और केन्द्रीय संसद को किसी विषय संबंधी विधि बनाने की शक्ति होगी, चाहे वह विषय संघ-सूची में न हो। इस प्रकार उसे राज्य-सूची में दिये हुए विषयों पर विधि पारित करने की शक्ति होगी। और यह भी कि केन्द्रीय विधानमंडल किसी उस विषय के संबंध में, जिसके

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

लिए विधान पारित करने में वह सक्षम है, भारतीय सरकार के पदाधिकारियों तथा प्राधिकारियों को शक्ति दे और उन पर कर्त्तव्य आरोपित कर सके। इन दोनों अनुच्छेदों का प्रभाव यह है कि जब बाह्य अथवा आभ्यन्तरिक कारणों से भारत अथवा उसके किसी भाग को शांति और, प्रशांति संकट में है, तो वे केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार देते हैं। और यह भी यदि प्रांत में कुशासन द्वारा इतना असंतोष पैदा हो जाता है कि लोक-शांति संकट में पड़ जाती है, तो उस परिस्थिति में कार्यवाही करने की पर्याप्त शक्ति इन अनुच्छेदों के अधीन भारतीय सरकार को होगी। केन्द्रीय सरकार को यह देखने के लिए कि प्रांत का शासन ठीक रीति से चल रहा है और किस बात की जरूरत है? यह स्पष्ट है कि संविधान के निर्माता देश की शांति और प्रशांति की विधि और व्यवस्था बनाये रखने का विचार नहीं कर रहे हैं।, वरन् प्रांतों में अच्छे शासन का विचार कर रहे हैं। प्रांतों की बाह्य आक्रमण तथा आभ्यन्तरिक अशांति से रक्षा करने के लिए ही वे हस्तक्षेप नहीं करेंगे, वरन् अपनी सामर्थ्यानुसार अच्छे शासन का सुनिश्चयन करने के लिए भी दूसरे शब्दों में केन्द्रीय सरकार को निर्वाचकों की स्वयं उन्हीं से रक्षा करने के लिए हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी। यदि प्रांत में कुप्रबन्ध, कार्य-कौशल का अभाव अथवा भ्रष्टाचार है, तब तो मैं मानता हूं कि इन सब अनुच्छेद 277, 278 और 278-क के अधीन केन्द्रीय सरकार को उस प्रांत का शासन अपने हाथ में लेने की शक्ति होगी-मैं 'राष्ट्रपति' शब्द का प्रयोग नहीं करता हूं, क्योंकि उसे अपने मंत्रियों की मंत्रणा द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने यह सिद्ध करने के लिए कुछ उदाहरण दिये थे कि प्रांत में अव्यवस्था किस प्रकार हो सकती है जबकि कोई बाह्य आक्रमण युद्ध और आभ्यन्तरिक अशांति न हो। अपने प्रश्न की व्याख्या में उन्होंने एक बहुत ही भद्दा तथा बुरा दृष्टांत दिया था। उन्होंने हमसे यह मान लेने के लिए कहा कि प्रांत में ऐसे कई पक्ष वर्तमान हैं, जो उस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार उस प्रांत का शासन चलाने में रुकावट डालें—अर्थात् मैं समझता हूं कि निपुणता से शासन चलाने में रुकावट डालें। उन्होंने अपने विचार हमारे सामने रखे थे कि ऐसी दशा में प्रांतीय विधान-मंडल का विघटन हो, जिससे यह विदित हो जाये कि क्या निर्वाचक इस परिस्थिति में ठीक-ठीक उपचार करने के योग्य है या नहीं। यदि नये विधान-मंडल में पुराने पक्ष—मेरे विचार से उनका faction शब्द से आशय पक्ष का ही था—फिर आ जाते हैं, तो उनकी राय से केन्द्रीय सरकार उस प्रांत का प्रशासन अपने हाथ में ले ले यह न्यायसंगत है। श्रीमान्, यदि किसी प्रांत में पक्षों की बहुलता है, तो हम इसका स्वागत तो नहीं कर सकते हैं, परन्तु क्या स्वयं यही तथ्य इस बात के लिए पर्याप्त है कि केन्द्रीय सरकार प्रांतीय शासन में हस्तक्षेप करे? कुछ देशों में ऐसे अनेक पक्ष हैं जो मंत्रिमंडलों को अस्थायी बनाते रहते हैं। फिर भी उन देशों का शासन उनकी सुरक्षा और स्थिति में बिना किसी प्रकार के संकट के चलाया जाता है। यदि प्रांत में बहुत अधिक पक्ष वर्तमान है और वे सब मिलकर काम नहीं कर सकते अथवा अपने प्रांत के हित में महत्वपूर्ण विषयों पर एक करार नहीं कर पाते, तो यह दु:ख का विषय हो सकता है; परन्तु वह चाहे कितने ही दु:ख की बात क्यों न हो, पर मेरी राय में इसके कारण यह न्यायसंगत नहीं होगा कि केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप करे और संसद् से संयुक्त होकर सम्बद्ध राज्य के शासन का उत्तरदायित्व ग्रहण कर ले। जैसाकि मैं

कह चुका हूं, यदि प्रांत में इतना कुप्रबंध हो जाता है कि जिसके कारण भारत या उसके किसी भाग में गंभीर स्थिति पैदा हो जाती, तब तो अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा? क्या इससे आगे बढ़ना ठीक है? आजकल हम कई प्रांतों की सरकारों के खिलाफ बड़ी बड़ी शिकायतें सुनते हैं, पर अभी तक यह सुझाव नहीं किया गया है कि यह देश अथवा सम्बद्ध प्रांत के हित की बात होगी कि केन्द्रीय सरकार प्रांतीय सरकारों को अलग फैंक दे और सम्बद्ध प्रांतों का लगभग वैसा ही प्रशासन करें, जैसा कि केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों का होता है। श्रीमान्, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय मे प्रांतीय सरकारों को हस्तक्षेप करने का अधिकार है, जबकि नगरपालिका या जिला-मंडल घोर तथा लगातार कुप्रशासन का अपराधी हो, पर नगरपालिका या जिला-मंडल किसी भी रूप में प्रांत की तुलना में बहुत ही न्यून है। प्रांत का परिमाण और उसमें निर्वाचकों की संख्या ही उसे अपने आधार पर खड़ा रखती है। यदि उत्तरदायित्वपूर्ण शासन को बनाये रखना है, तो निर्वाचकों में यह विचार उत्पन्न करना चाहिये कि जब कुशासन होता है, तो उचित उपचार को प्रयोग करने की शक्ति उनके हाथों में है। उनको यह जानना चाहिये कि ऐसे नये प्रतिनिधि चुनना, जो उनके सर्वोत्तम हितों के अनुसार कार्य करने में अधिक समर्थ हों, उनकी इच्छा पर निर्भर है। यदि केन्द्रीय सरकार और संसद् को वह शक्ति दी जाती है, जिसका देना इन सब 277, 278 और 278-क में प्रस्थापित किया गया है, तो एक घोर संकट यह है कि प्रांत में प्रांतीय सरकार से जब कभी असंतोष होगा, तो सहायता करने के लिए केन्द्र से निवेदन किये जायेंगे। प्रांतीय निर्वाचकगण अपने उत्तरदायित्व को केन्द्रीय सरकार के कंधे पर डाल सकेंगे। क्या यह ठीक है कि ऐसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाये? उत्तरदायित्वपूर्ण शासन एक बहुत ही कठिन प्रकार का शासन है। इसके लिए धैर्य अपेक्षित है, और उसके लिये संकट का सामना करने के लिए साहस अपेक्षित है। यदि हम में न तो धैर्य है और न साहस, जिनकी आवश्यकता है, तो हमारा संविधान एक मृतप्राय: नवजात शिशु के समान ही होगा। अत: श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जिन अनुच्छेदों पर हम वाद-विवाद कर रहे है, उनकी आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 275 और 276 केन्द्रीय कार्यपालिका और संसद् को वे सब शक्तियां देता है, जो उनको यह देखने के लिए युक्तियुक्त रूप से दी जा सकती है कि देश में विधि और व्यवस्था भंग न हो अथवा भारत के किसी भाग में इतना कुशासन न होने पाये कि जिससे विधि और व्यवस्था का निर्वाह संकट में पड़ जाये। इससे आगे बढ़ना आवश्यक नहीं है। संविधान के निर्माता इतनी अधिक सावधानी बरतने के लिए इच्छुक प्रतीत होते हैं कि मेरी राय में वह इस संविधान की भावना से असंगत होगी ओर प्रांतीय निर्वाचकों में उत्तरदायित्व की भावना की उन्नति के लिए बहुत अहितकारी होगी।

समाप्त करने से पूर्व, श्रीमान् मैं सभा का ध्यान भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम के उस रूप की ओर आकर्षित करना चाहूंगा, जिसको भारत ने अस्थायी संविधानिक आदेश सन् 1947 के रूप में अनुकूलित किया है। 1947 के अनुकूलित अधिनियम में धारा 93 को, जो उस अधिनियम का महत्वपूर्ण भाग थी, नहीं रखा है और मैं समझता हूं कि उसको इसलिये छोड़ दिया गया कि नई व्यवस्था के लिए उसको असंगत समझा गया। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने कहा था कि सन् 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम में राज्यपाल, जिसे अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही करने दिया जाता था, वह किसी प्राधिकारी के प्रति

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

उत्तरदायी न होता था। मैं समझता हूं यह गलत है। मैं यह बता सकता हूं कि राज्यपाल अपनी उन समस्त शक्तियों के लिए, जिनका प्रयोग वह अपने स्वविवेकानुसार कर सकता था, मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) के प्राधिकार के अधीन था और मुख्य राज्यपाल के द्वारा ब्रिटिश संसद् के भारत राज्यमंत्री के अधीन था। अब केवल यह अन्तर है कि हमारी कार्यपालिका 5000 मील की दूरी पर निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होने के स्थान में भारतीय निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होगी। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसे स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये, पर मैं नहीं समझता हूं कि भारतीय सरकार के सन् 1935 के अनुकूलित अधिनियम का दो वर्ष तक प्रवर्तन में रहना इन अनुच्छेदों की स्वीकृति को आवश्यक बनाता है जो हमारे सामने हैं। धारा 93 का आशय राजनैतिक था। उसका उद्देश्य यह था कि संविधान का इस प्रकार से प्रयोग न किया जाये कि ब्रिटिश सरकार जितनी शक्ति भारतीय जनता को देना चाहती थी, उससे अधिक शक्ति उसे देनी पड़े। भविष्य में भारत की जनता और सरकार में ऐसा कोई विरोध नहीं हो सकता है। जो कुछ मतभेद होगा वह प्रशासनीय अथवा वित्तीय अथवा आर्थिक प्रश्नों के संबंध में पैदा होगा। मान लीजिये, आर्थिक समस्याओं के प्रति कोई प्रांत जितना भारतीय सरकार अनुमोदन करे उससे कहीं अधिक उग्र प्रणाली ग्रहण करता है। मैं समझता हूं कि इसमें भारतीय सरकार के हस्तक्षेप करने की कोई बात नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल) : जब प्रान्तीय सरकार जान-बूझकर इस संविधान के उपबन्धों का पालन करने से मना कर दे और अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यवाही करने में रुकावट डाले, तो क्या होता है?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** कोई भी प्रान्त ऐसा नहीं कर सकता है। वह ऐसा इस कारण नहीं कर सकता कि वह कार्यवाही सर्वथा अवैध होगी। परन्तु यदि ऐसी स्थिति हो भी जाये, तो अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार को तुरन्त हस्तक्षेप करने की पर्याप्त शक्ति होगी। जैसी वह चाहे वैसी कार्यवाही करने की उसे यथेष्ट शक्ति होगी। वह अपने पदाधिकारियों से कुछ कार्यभार अपने ऊपर ले लेने के लिए कह सकती है और यदि इन पदाधिकारियों के कर्त्तव्यों के निर्वहन में कोई रुकावट डाली जाती है—अथवा यदि उनके विरुद्ध बल प्रयोग किया जाता है, इससे और अधिक तो कुछ हो भी नहीं सकता है—तो इस समय हमारे समक्ष जो ये अनुच्छेद हैं इनके अभाव में भी केन्द्रीय सरकार ऐसी चुनौती का सफलरूप से सामना कर सकेगा। मैं यह चाहूंगा कि सभा मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी द्वारा उठाये गये प्रश्न पर बड़ी सावधानी से विचार करे। मैंने कई बार इस परिस्थिति पर अपने मन में विचार किया है और प्रत्येक बार मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि इतनी बड़ी जिद का ऐसी विद्रोही प्रवृत्ति का, जिसका अनुमान श्री कृष्णमाचारी ने किया है, सफलतापूर्वक सामना भारतीय सरकार अनुच्छेद 275 और 276 द्वारा कर सकेगी। ऐसी गंभीर परिस्थिति में भारतीय सरकार को अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन सफल कार्यवाही करने की शक्ति होगी। तो फिर जो अनुच्छेद हमारे सामने रखे गये हैं, उनकी क्या आवश्यकता है?

श्रीमान्, एक वक्ता ने कहा था कि हमें विधि नहीं बघारनी चाहिये। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर किसी ने भी विधि सम्बन्धी

वाद-विवाद नहीं किया है। मैंने उस पर एक संकीर्ण विधि सम्बन्धी रूप में कदापि वाद-विवाद नहीं किया है। मैं एक व्यापक राजनैतिक दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार कर रहा हूं—देश के सर्वोत्तम हित के दृष्टिकोण से और प्रान्तीय निर्वाचक के इस महत्वपूर्ण तथ्य की अनुभूति पर कि अपने प्रान्त के शासन का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं पर है। उनको यह समझ लेना चाहिये कि यह विनिश्चय उनके ही द्वारा किया जायेगा कि शासन किस प्रकार चलाया जाये।

श्रीमान्, जो तर्क मैने प्रस्तुत किये है उनसे यदि संविधान के निर्माताओं का समाधान नहीं होता है और वे यह चाहते हैं कि अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन दी हुई शक्ति से केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्ति मिले, तो मैं उनसे जरा ठहरने और इस बात पर विचार करने के लिए कहूंगा कि तत्समय इस प्रश्न को हल करने का क्या कोई दूसरा अच्छा तरीका नहीं है। इस सभा में तथा इससे बाहर जो कुछ चर्चा हुई है, उसको विचार में रखते हुये मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संविधान को कठोर न बनाने के पक्ष में एक बड़ा भाग है, जो यह चाहता है कि कुछ समय तक संविधान में संशोधन उसी प्रकार से होने देना चाहिये, जिस प्रकार से साधारण विधियों में हुआ करता है। मैं समझता हूं कि कुछ महीने पहले प्रधान मंत्री ने जो भाषण दिया था, उसमें इसी विचार को प्रकट किया था। यदि सभा द्वारा यह विचार मान लिया जाता है—यदि मान लीजिये पांच वर्ष तक संविधान सामान्य विधि के अनुसार संशोधित किया जा सकता है, तो हमें यह देखने के लिए काफी समय मिल जायेगा कि प्रान्त किस प्रकार प्रगति करते हैं और उनका शासन किस प्रकार चलाया जाता है। यदि अनुभव द्वारा यह सिद्ध होता है कि स्थिति ऐसी बुरी है कि उसके लिए यह अपेक्षित है कि केन्द्रीय सरकार स्वयं अपने ऊपर केवल प्रत्येक प्रान्त की सुरक्षा का ही नहीं वरन सुशासन का भी उत्तरदायित्व ले तो आप न्यायपूर्वक संविधान का संशोधन करने के लिए आगे आ सकते हैं। पर मैं नहीं समझता हूं कि ऐसी कोई भी बात है कि जिसके कारण सभा आज डॉ. अम्बेडकर द्वारा हमारे समक्ष रखे गये अनुच्छेदों को स्वीकार करे।

श्रीमान्, मैं इन अनुच्छेदों का विरोध करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, सभा के समक्ष एक विचार रखने के लिए कर्तव्य ज्ञान ने मुझे प्रेरित किया है, अन्यथा मैं ध्वनि विस्तारक यंत्र के सन्मुख उपस्थित नहीं होता। मैं एक संक्षिप्त भाषण की आवश्यकता समझता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेदों का मैं संपूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं, परन्तु अनुच्छेद 188 के अपमार्जन करने की मसौदा समिति की बुद्धिमता पर मुझे कुछ भी विश्वास नहीं हुआ है। इसी विचार पर मैं जोर देना चाहता हूं।

श्रीमान्, उस अनुच्छेद के पीछे एक इतिहास है। पूरे दो दिन तक खूब वाद-विवाद हुआ था, जिसमें प्रमुख प्रधान मंत्रियों ने भाग लिया था। हमें यह समझ लेना चाहिये कि अनुच्छेद 188 किसलिये था। वह सामान्य परिस्थितियों के लिये नहीं था। गंभीर आपात होने पर ही इस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल को कुछ शक्तियां दी गई थीं। मैं सभा को उस वाद-विवाद की याद दिलाऊंगा, जिसके अंत में श्री मुंशी का संशोधन अनुच्छेद 188 का एक अंग बनाया गया था। संशोधन पेश करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि राज्यपाल को संविधान का निलम्बन

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

करने देने से किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी और यह भी कहा था कि राष्ट्रपति इससे पूर्व कार्यवाही करे। अनुच्छेद 188 ऐसी संभावना के लिए उपबन्ध करता है। उसमें केवल यह कहा गया है कि जब राज्यपाल का समाधान हो जाये कि शांति और प्रशान्ति के लिए ऐसा गंभीर संकट है, तो वह संविधान को निलम्बित कर दे। यह कल्पना सर्वथा गलत है कि उसे दो सप्ताह तक संविधान निलम्बित करने की शक्ति दी गई थी। खंड (3) उपबन्ध करता है कि अपनी उद्घोषणा को तुरन्त राष्ट्रपति के पास भेजना उसका कर्तव्य है और अनुच्छेद 188 के अधीन विषय से राष्ट्रपति परिचित हो जायेगा। यह एक महत्वपूर्ण विषय है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय पर गौर नहीं किया गया है। राज्यपाल को अपनी उद्घोषणा तुरन्त ही भेजनी पड़ेगी। यह अनुच्छेद इसलिये आवश्यक समझा गया था कि कुछ प्रधान मंत्रियों ने विश्वासपूर्वक इसको प्रस्तुत किया था। ऐसा हो सकता है कि राष्ट्रपति से सम्पर्क में आना बिल्कुल संभव न हो। केन्द्रीय सरकार से सम्पर्क में न आ सकने की स्थिति की क्या आप संभावना नहीं करते हैं? इस विषय में समय बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जब तक आप सम्पर्क में आयें और अनुज्ञा प्राप्त करें, तब तक बहुत सी बातें हो जायेंगी और यह विलम्ब हमारे प्रयोजन को सिद्ध नहीं होने देगा। माननीय श्री खरे ने कहा था कि इस अनुच्छेद का रखना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हमारे पास हर प्रकार के संचार साधन हैं। बम्बई में मैं ऐसे दृष्टान्तों से परिचित हूं, जिनमें हम राज्यपाल से चौबीस घंटों तक संपर्क में न आ सकें। अनुच्छेद 278 के अधीन क्या उपबन्ध है? मद्रास का राज्यपाल कहता है कि शांति और प्रशान्ति संकट में है। थोड़ी देर के लिए यह मानते हुए भी कि संचार-साधन ठीक हों, फिर भी राष्ट्रपति कार्यवाही न कर सके। उसे मंत्रिमंडल बुलाना पड़ेगा; मंत्रिमंडल के सदस्य तुरन्त न आ सकें और जब तक वह मंत्रिमंडल की बैठक करे और उनकी अनुमति प्राप्त करे, तब तक उस अनुच्छेद के प्रयोजन की पराजय हो जायेगी। अत: ऐसी आकस्मिकता पर, जबकि राज्यपाल को यह विदित हो जाये कि विलम्ब से मूल उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, ध्यान देने के विचार से अनुच्छेद 188 उपबंधित किया गया था। मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि मसौदा समिति ने क्योंकर ऐसी संभावना की कल्पना निराधार समझी। यह सत्य है कि यह अनुच्छेद दो वर्ष पूर्व बनाया गया था, पर इन दो वर्षों में ऐसी बहुत सी बातें हो गई हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि घटनास्थल पर उपस्थित व्यक्ति के लिए तुरन्त विनिश्चय करना और कार्यवाही करना बहुत ही आवश्यक है, जिससे कि दुर्घटना रोकी जा सके। आज सर्वत्र खुले रूप में प्राधिकारियों का विरोध किया जाता है और यह विरोध सुसंगठित है। कार्यवाही करने के पूर्व वे टेलीफोन के तारों को काट देते हैं, जैसेकि उन्होंनें कलकता एक्सप्रेस की दुर्घटना में किया था। देश के कई भागों में यही हो रहा है। अत: जब क्रांति हो रही है तो यह संभव हो सकता है कि वे संचार-साधनों को काट दें और कठिनाई पैदा हो जाये। इस आकस्मिकता की व्यवस्था करने के लिए राज्यपाल को ये शक्तियां दी गई हैं। मैं नहीं समझता हूं कि ऐसा भी कोई मूर्ख राज्यपाल होगा जो समय मिलने पर भी राष्ट्रपति को सूचना न दे। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहूंगा कि ऐसे सरल प्रबन्ध में क्यों परिवर्तन किया गया, जिसे एक मूर्ख भी समझ सकता है और हमें यह संदेह क्यों हुआ कि कोई राज्यपाल गलत रीति से कार्यवाही करेगा। उपबन्ध के अनुसार उसे तुरन्त ही राष्ट्रपति को

सूचना देनी होगी और राष्ट्रपति यह कह सकता है कि "मुझे विश्वास नहीं हुआ है; उद्घोषणा रद्द कर दो"। आपको यह विचार करना चाहिये कि बुद्धिमतापूर्ण कार्यवाही करने और प्रान्त को संकट से बचाने का उत्तरदायित्व राज्यपाल पर होगा। राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से इस चित्र में अंकित हो जाता है, क्योंकि अनुच्छेद 188 के खंड (3) के अनुसार राज्यपाल को तुरन्त ही उस विषय की सूचना देनी होगी। जैसाकि श्री प्रकाशम् ने कहा था कि यह एक साधारण ज्ञान की बात है कि घटनास्थल पर उपस्थित व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति दी जाये, जिससे कि वह परिस्थिति बिगड़े नहीं। जिस उपबन्ध को अब प्रस्थापित किया गया है, वह इतना सरल नहीं है जितना कि होना चाहिये।

इसके साथ-साथ मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहूंगा कि मसौदा-समिति उस उपबन्ध को अपमार्जन करने के अनियमित कार्य को क्यों कर बैठती है, जिस पर पहिले सभा विचार कर चुकी है और जिसे स्वीकार कर चुकी है। मेरे विचार से यह अनुचित है, क्योंकि सभा उसको निश्चय कर चुकी है। यदि हम मसौदा-समिति नियुक्त करते हैं, तो हम उसे यह निर्देश देते हैं कि जो कुछ हम विनिश्चय करते हैं उसके आधार पर मसौदा बनाये। क्या यही रीति है जिसके अनुसार वह मसौदा बनाती है? उसका काम यह है कि जो विनिश्चय किये जा चुके हैं, उनकी जांच करे और उसके बाद उनके आधार पर मसौदा बनाये। अत: मैं इस बात को स्पष्ट कराना चाहूंगा—और एक विश्वासप्रद स्पष्टीकरण चाहूंगा कि इन दो वर्षों में ऐसा क्या हो गया, जिसके कारण मसौदा-समिति के सदस्यों ने इस कल्याणकारी, अच्छे तथा उपयोगी उपबन्ध का अपमार्जन किया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संविधान में आश्चर्यजनक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन करते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि अपने ही विनिश्चयों से हम बहुत दूर हो गये हैं। संविधान के सिद्धान्तों पर हमने महत्वपूर्ण विनिश्चय किये थे और हमने कुछ निश्चित सिद्धान्त और संकल्प स्वीकार किए थे और उनके अनुसार संविधान का मसौदा बनाया गया था। अब हर एक बात को छोड़ना पड़ेगा। केवल संविधान के मसौदे का ही परित्याग नहीं किया गया है, वरन् उन सरकारी संशोधनों तक का भी परित्याग कर दिया गया है, जो विनिहित कालावधि के अंतर्गत सभा के सदस्यों द्वारा पेश किये गये थे और जो सरकारी नीली पुस्तक में छपे हुए हैं। पिछले अवकाश में उन संशोधनों पर कुछ और संशोधन छापे गये थे और उनको भी घुमाया गया था। उनका भी परित्याग कर दिया गया। मैं यह संकेत करना चाहता हूं कि समस्त संशोधन और संशोधनों पर संशोधन जो आज पेश किये गये हैं, वे आज पहली बार ही संशोधनों की सूची में देखे गये हैं, जो आज से एक या दो दिन के भीतर ही घुमाई गई है। ऐसे गंभीर और उग्र परिवर्तनों को इस अंतिम समय में पुर:स्थापित नहीं करना चाहिये, जबकि हमारे जैसे सुस्त मनुष्यों के पास इतना समय नहीं है कि वे ये देखें कि क्या हो रहा है और क्या ये परिवर्तन हमारे मूल विनिश्चयों के और संविधान के अन्य भागों के अनुरूप हैं या नहीं। मैं निवेदन करता हूं कि मसौदा-समिति हमारे मूल विनिश्चयों से संविधान के मसौदे से और हमारे मूल अनुच्छेदों से दूर होती चली जा रही है। मसौदा-समिति को 'डांवाडोल समिति' कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त होगा। मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 188 का अपमार्जन करना उन सिद्धांतों की एक बड़े महत्वपूर्ण और गंभीर रूप

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

से विमुखता है, जिसको सभा गंभीरतापूर्वक पहले स्वीकार कर चुकी है। कुछ माननीय सदस्य जो सदैव इस सभा की कार्यवाही को गंभीर रूप में स्वीकार करते हैं, उन्होंने इस आधार पर इन परिवर्तनों के समर्थन करने का प्रयत्न किया है कि कुछ आपात शक्तियों की बहुत आवश्यकता है। मैं उनसे सहमत हूं कि आपात शक्तियों की बहुत आवश्यकता है और मैं यह भी मानता हूं कि देश में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाली बड़ी-बड़ी शक्तियां सुसंगठित रूप में कार्य कर रही हैं। और कठोर शक्तियां आवश्यक हैं। पर मैं राज्यपाल अथवा शासक की हस्तक्षेप करने और आपात आदेश पारित करने की समान्य शक्ति को छीनने के प्रयत्न को नहीं समझ पाता हूं। यह एक ऐसा परिवर्तन है जो बहुत ही गंभीर है। पहले राज्यपाल प्रान्त में वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित होने वाला था, पर अब हम उससे बहुत दूर हो गये हैं और अब राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल नियुक्त किया जायेगा। प्रान्तीय स्वायत्तता में यह पहला धक्का है। इसके बाद राज्यों के उत्तर सदनों को हमने वास्तविक शक्ति से वंचित कर दिया है; हमने प्रान्तों के उत्तर सदनों से समस्त प्रभावी शक्तियों को ही नहीं छीना है, वरन उनका समुचित तथा प्रभावी रूप में प्रकार्य करना असंभव कर दिया है। और अब हम राज्य के मंत्रियों के और विधान-मंडलों के सदस्यों के और विशेषकर जनता के स्वयं अपनी समस्याओं के हल करने के अधिकार को छीन रहे हैं। जैसे ही हम राज्यपाल अथवा शासक को गंभीर आपात में हस्तक्षेप करने के उसके अधिकार से वंचित करते हैं, वैसे ही तुरन्त हम निर्वाचित प्रतिनिधियों और मंत्रियों को इस विषय में कुछ कहने के अधिकार से वंचित कर देते हैं। जैसे ही आपात साधनों के उपक्रमण का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जाता है, उसी समय से आप स्थानीय विधानमंडलों के मंत्रियों और सदस्यों को हर एक उत्तरदायित्व से पूर्णतया मुक्त कर देते हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि उनकी नैतिक शक्ति और उनका नैतिक उत्तरदायित्व बहुत ही जर्जरित हो जायेगा। इस प्रश्न के इस रूप पर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय के इस रूप पर सभा में यथेष्ट अथवा पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया गया है। यदि किसी राज्य में गड़बड़ होती है तो उसको दबाने की आरम्भिक जिम्मेवारी मंत्रियों पर होनी चाहिये। यदि वे असफल हो जाते हैं, तो आपात साधनों के उपक्रमण का अधिकार सर्वप्रथम राज्यपाल अथवा शासक को होना चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं होने देते, तो परिणाम यह होगा कि स्थानीय विधानमंडलों तथा मंत्रियों पर बिना किसी शक्तियों के विधि और व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व होगा। इससे सरलता और अनिवार्य रूप से एक प्रकार का अनुत्तरदायित्व बढ़ेगा। एक अच्छे शासन का आश्वासन देते हुये भी किसी राज्य के अधिकारी में हस्तक्षेप करने से न केवल मंत्रियों और सदस्यों से असहानुभूति ही प्राप्त होगी, बल्कि राष्ट्रपति की कार्यवाही का उस राज्य की जनता, विधान-मंडल के सदस्य और स्वयं मंत्रियों द्वारा मजाक उड़ाया जायेगा, उसमें रुकावट डाली जायेगी ओर उसका बहिष्कार किया जायेगा।

कुछ काल पूर्व ठीक यही भारतवर्ष में हुआ था। सन् 1921 से 1930 तक दुराज काल में मंत्रियों पर बिना किसी शक्ति के उत्तरदायित्व लादे गये थे। शक्ति ब्रिटिश सरकार ने रखी और स्थानान्तरित विषयों का उत्तरदायित्व जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों को दिया गया था। फल यह हुआ कि वे अनुत्तरदायी हो गये। यह योग्य ब्रिटिश विचारकों का कथन है। कलकत्ते की घटनाओं को केन्द्र के हाथ मजबूत करने के लिए तर्क के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मैं समझता हूं कि कलकत्ता के बारे में किसी बाहर के आदमी से कुछ अधिक जानने का मैं दावा कर सकता हूं। कलकत्ते में परिस्थिति ठीक वैसी ही नहीं है, जैसी कि समझी जाती है। अधिकतर नागरिकों की यह इच्छा नहीं है कि एक सुसंगठित रूप में अवैध कार्यवाहियों अथवा विधि के भंग करने का समर्थन किया जाये। स्पष्ट बात तो यह है कि कांग्रेस के अभ्यर्थी का दोष सरकार की लोक अप्रियता के कारण था। इसके साथ-साथ अन्य अनेकों क्षुद्र कारणों और परिस्थितियों के संयोग का वह परिणाम था। जिसका जिक्र करना मेरे लिये यहां आवश्यक नहीं है। पश्चिमी बंगाल के अधिकांश व्यक्ति यह चाहते हैं कि सरकार दृढ़ तथा कुशल हो। मैं देखता हूं कि नये निर्वाचन करने का कांग्रेस हाई कमांड का विनिश्चय यहां बहुत ही लोकप्रिय हुआ है और यही विनिश्चय बुद्धिमतापूर्ण है जो कि हो सकता है। इस विनिश्चय ने प्रान्त में विधि और व्यवस्था बनाये रखने को सुनिश्चित करने की परिस्थितियां पैदा करने का पूर्ण उत्तरदायित्व तुरन्त ही निर्वाचकों के कंधे पर डाल दिया है। यदि मंत्री गलती करते हैं तो लोगों को उस विषय पर प्रभावपूर्ण रूप में कहने का अवसर मिलेगा। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि यदि कांग्रेस सक्षम अभ्यर्थी भेजे तो उसकी सफलता सुनिश्चित है। वास्तव में कांग्रेस सरकार के विरुद्ध कोई बात नहीं है पर लोग योग्य और अनुभवी व्यक्ति चाहते है, जो ऐसे हों कि प्राधिकार का प्रयोग कर सकें। अत: कलकत्ता अथवा पूर्वी पंजाब अथवा दक्षिणी भारत की घटनाओं को इस सामान्य तथा कल्याणकारी सिद्धान्त से विलग होने के लिए, कि सर्वप्रथम विधि और व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रान्तीय अथवा राज्य के मंत्रियों पर होना चाहिये और प्रभावी रूप से प्रकार्य करने के लिए मंत्रिमंडल के हाथ में यथेष्ट शक्ति और उत्तरदायित्व होने चाहिये, न्याययुक्त नहीं मानना चाहिये। राज्यों को पूर्ण शक्तियां दिये बिना विधि और व्यवस्था का पूर्ण उत्तरदायित्व देने से गड़बड़ी हो जायेगी और राज्यों में बहुत असंतोष हो जायेगा और मैं यह कहे देता हूं कि यदि साम्यवादी और अन्य विधि भंग करने वाले इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो यह सभा उनके हाथ का खिलौना हो जायेगी। मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति को अधिकार छीनने की शक्ति न हो, पर उसे इस बात की अन्य शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह उपक्रमण करे और अनावश्यक लोक अप्रियता प्राप्त करे और इस रीति में दोष निकाले। यद्यपि आपातकाल में हस्तक्षेप करने की शक्ति केन्द्र को अवश्य होनी चाहिये, पर उसे इस विषय का सूत्रपात नहीं करना चाहिये। घोषणा करने के लिए मंत्रियों से परामर्श कर राज्यपाल अधिक उपयुक्त व्यक्ति होगा। इस घोषणा का जिस रूप में राष्ट्रपति ठीक समझता है, उस रूप में अनुसमर्थन अथवा परिवर्तन हो सकता है। इससे राष्ट्रपति की अधिकार छीनने की शक्ति का ह्रास नहीं होता है। एक और बात यह है कि स्थानीय प्रशासन पर उतरदायित्व रखने से इस विषय को मुखिया के समक्ष प्रस्तुत करना होगा।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

रोग स्वयं अपनी दबा बता देगा। यदि वे अपने प्रकार्यों का निर्वहन ठीक रूप से नहीं कर सकेंगे, तो सभा के विघटन करने और नये निर्वाचनों का आदेश देने के लिए वह एक अच्छा कारण हो जायेगा।

*पं. **ठाकुरदास भार्गवः** मैं समझता हूं कि साधारणतया संविधानिक तंत्र तब तक विफल नहीं समझा जा सकता, जब तक धारा 153 के अधीन राज्यपाल द्वारा विघटन शक्तियों का प्रयोग न हो।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं अपने माननीय मित्र की आशंका को भली प्रकार समझ सकता हूं मैं मसौदे से खुश नहीं हूं। दो या तीन दिन में इन दोषों को देखना असंभव है। मैं इस बात से संतुष्ट नहीं हूं कि राज्यपाल की आपात उद्घोषणा के आधार पर ही राष्ट्रपति कार्यवाही आरम्भ कर दे। यह शीघ्रता में बनाये दोषपूर्ण मसौदे के कारण है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 188 का पूर्ण रूपेण अपमार्जन न किया जाये। किसी आपात साधन का उपक्रमण करने की राज्यपाल की शक्ति रहनी चाहिये, इससे मंत्री और विधान-मंडल अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे और साथ-साथ ही उत्तरदायित्व के होने से अपने आप उपचार हो जायेगा। यदि आपात में कार्यवाही करने के राज्य के मुख्य अधिकार में हम हस्तक्षेप करेंगे, तो इससे प्रान्तीय स्वायत्तता एक तमाशा बन जायेगी। मैं समझता हूं कि प्रान्तीय अधिकारों को काफी हड़प लिया गया है। प्रान्तीय सूचियों में बहुत से अधिकार हड़प लिये गये हैं। मैं समझता हूं कि शायद हम अनजाने में तानाशाही की ओर प्रवाहित हो रहे हैं। लोकतंत्र केवल एक लोकतंत्रात्मक वातावरण में तथा लोकतंत्रात्मक परिस्थितियों के अधीन ही समुन्नत होगा। लोगों को त्रुटियां करने दो और अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने दो। अनुभव एक महान् शिक्षक है। इसके विपरीत जो तर्क हमने आज सुने हैं, वे ब्रिटिश नौकरशाही के पुराने रद्दी तर्क हैं। अंग्रेज कहते थे कि उनको अधिकार छीनने की शक्ति होनी चाहिये, हम अपने विषयों का प्रबन्ध नहीं कर सकते और हमारे विषयों का प्रबन्ध करना केवल वे ही जानते थे। वे यह भी कहते थे कि यदि हमने कुछ गड़बड़ी की तो वे संविधान को रद्द कर देंगे और जो कुछ उचित समझेंगे, करेंगे। इस पर हमारा क्या उत्तर होता था? वह उत्तर यह था "यदि आप हमें अपनी कार्यवाहियों के प्रति उत्तरदायी नहीं बनायेंगे, तो हम शासन-कार्य को नहीं सीख सकंगे। यदि हम इस महान् संविधानिक तंत्र का कुसंचालन करते हैं तो अपने कार्य के लिये हम जिम्मेवार होने चाहियें। त्रुटियों को दूर करने को हमें अवसर मिलना चाहिये"। हमारा यह तर्क भुला दिया गया है। अंग्रेजों का पुराना तर्क कि छोटे-छोटे प्रान्तीय विषयों में हस्तक्षेप करना चाहिये, फिर से प्रस्तुत किया जा रहा है और जो लोग इस तर्क के विरोधी थे वे ही उसे अब स्वीकार कर रहे हैं। इस सदन के बड़े आदरणीय सदस्य अनजान में ब्रिटिश सरकार के पुराने तर्कों को स्वीकार कर रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि जिन अंग्रेजों से हम घृणा करते थे वे भी वहां तक नहीं पहुंचे थे जहां हम पहुंच रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि इसका उत्तर वहीं होगा, जो हमारे आदरणीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार को दिया था। अतः मैं निवेदन करता हूं कि केन्द्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप से राज्यों में बुरी प्रतिक्रिया होगी। यदि आप प्रान्तीय स्वयत्तता को पूर्णतया

मिटा देते हैं, तब तो वह न्यायसंगत होगा। पर उनको शक्तिहीन बनाते हुये उन पर उत्तरदायित्व रखना ठीक कार्य नहीं होगा।

श्रीमान्, माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 277-क की एक ऐसे रूप में व्याख्या की है कि उसमें पवित्र इच्छा नहीं है। मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर उस सुझाव का निराकरण कर रहे थे, जो स्वत: ही उनके मन में उत्पन्न हो गया था। मैं विश्वास करता हूं कि अनुच्छेद 277-क पवित्र इच्छाओं का अभिलेख है। उसमें स्पष्टता का अभाव है। उसमें कुछ भी नहीं कहा गया है और उसमें सब कुछ कहा गया है। जरा से बहाने पर वह केन्द्र को हस्तक्षेप करने का हक देता है और वह गंभीर से गंभीर परिस्थिति में हस्तक्षेप करने से मना करने का हक भी केन्द्र को दे सकता है। उसमें अस्पष्टता इतनी सावधानी से सुरक्षित है, उसका मसौदा इतने धोखे से परिपूर्ण है कि इस अनुच्छेद की अस्पष्टता और टालमटोल के लिये मसौदा-समिति की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते हैं। अनुच्छेद में यह कहा गया है:

"बाह्य आक्रमण से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना संघ का कर्तव्य होगा।"

वास्तव में ऐसा ही है। पर वह एक पवित्र रूप में अभिव्यक्त किया गया है। उसमें कहा गया है: "बाह्य आक्रमण से......।" इसके स्थान में हम किसी तंत्र की व्यवस्था की तथा उन अवसरों की स्पष्ट अभिव्यक्ति की, जिनमें उस तंत्र का प्रवर्तन किया जा सकता था, आशा करते थे। इसके बाद उन्होंने इस अनुच्छेद में कहा है "तथा यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये"। यह भी उतना ही अस्पष्ट है। मैं समझता हूं कि यदि इस उद्देश्य का कोई अनुच्छेद "कि यह देखने के लिए कि प्रान्तों में शासन ठीक चल रहा है संघ सरकार को उनके दिन7प्रति-दिन के प्रशासन में हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी" प्रविष्ट कर दिया जाता तो और अधिक अच्छा होता। मैं समझता हूं कि यदि कोई इस उद्देश्य का अनुच्छेद अधिनियमित किया जाता कि यह देखने को शक्ति कि प्रत्येक परिवार की निजी आर्थिक व्यवस्था कुछ सिद्धान्तों के अनुसार चलाई जाती है संघ सरकार को होनी चाहिये, तो वह भी उतना ही अच्छा होता। यह अनुच्छेद 277-क बहुत ही अस्पष्ट है और मैं निवेदन करता हूं कि इसमें स्पष्टता का अभाव है अथवा कदाचित प्रान्त और राज्यों के विषयों में हस्तक्षेप करने का बहाना ढूंढने के लिये स्पष्टता को जान बूझकर दूर रखा गया है। इससे भी विरोध और असंतोष होगा और एक दीर्घकालीन त्याग और बलिदान से संघ-सरकार की जो लोकप्रियता स्थापित की गई है, उसमें बहुत कुछ हानि होगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि प्रान्तों के निजी प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने के लिए भाषा की अस्पष्टता के द्वारा बहानों का उपबन्ध जानबूझकर नहीं होना चाहिये। यदि किसी आधार पर हस्तक्षेप करने की इच्छा है, तो उन आधारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देना चाहिये और उन शक्तियों के प्रयोग करने के अवसरों की स्पष्ट व्याख्या कर देनी चाहिये और उनको स्पष्ट रूप में निर्धारित कर देना चाहिये न कि उन्हें अस्पष्ट छोड़ दिया जाये। जैसा मैंने इस अनुच्छेद को समझा है, उसके अनुसार उसका प्रयोग केन्द्रीय सरकार के बैरियों द्वारा केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए किया जायेगा। केन्द्रीय सरकार के अहित के लिए केन्द्रीय सरकार के बैरियों अर्थात साम्यवादियों के कहने पर इस अनुच्छेद का पुर:स्थापन किया जाना चाहिये था। यह अधिक अच्छा होता। केन्द्रीय सरकार के लिए भाषा की अस्पष्टता की शरण लेना, जबकि स्पष्टता सम्भाव्य है, बहुत

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ही संकटजनक है। इसके बाद में अनुच्छेद 178 पर आता हूं। इस अनुच्छेद में 'अन्यथा' शब्द पर आपत्ति की गई है। मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने अनुच्छेद 278(1) के जैसे किसी उपबन्ध के अनुसार कार्यवाही करने की सही कठिनाई बताई है, जिसमें यह कहा गया है कि राष्ट्रपति प्रतिवेदन मिलने पर अथवा अन्यथा कार्यवाही कर सकता है। मैं निवेदन करता हूं कि यह समूची बात गलत है। उसे केवल सूचना मिलने पर ही नहीं वरन आपात की उद्‌घोषणा होने पर भी कार्यवाही करनी चाहिये। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद की शब्दावली से किसी वक्ता को, जो उस पर आपत्ति करता है, जिच करने का लाभ नहीं उठाना चाहिये। मैं इस अनुच्छेद की शब्दावली और विचारधारा का विरोध करता हूं। मैं कहता हूं कि प्रसंग में 'अन्यथा' शब्द इस अनुच्छेद को बहुत ही अस्पष्ट बना देगा। संघ सरकार के अधिनियम को लोक अप्रिय बनाने के लिए छोटे से छोटे बहाने का उपयोग किया जायेगा। यदि यही उद्देश्य है तब तो ठीक है। पर इस पदावली के कारण, जिसमें इस विचार को बांधा गया है, इस अनुच्छेद पर आपत्ति की जायेगी।

इसके बाद मैं अनुच्छेद 278 के खंड (1) के परन्तुक पर आता हूं। उच्च न्यायालयों के विशेष क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विषयों पर विचार करने के अधिकारों की यह रक्षा करता है। आपात की उद्‌घोषणा उच्च न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार से वंचित नहीं करेगी। इस परन्तुक का यह प्रभाव है। पर उच्चतम न्यायालय की स्थिति को इस परन्तुक में बड़ी आसानी से भुला दिया गया है। यद्यपि इस अनुच्छेद में उद्‌घोषणा से उच्च न्यायालयों के अधिकारों की प्रत्याभूति करने की सावधानी तो की गई है, पर उच्चतम न्यायालय के अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं की गई है। मैं केवल यही आशा प्रकट करता हूं कि इस परन्तुक में उच्चतम न्यायालय के किसी उल्लेख का अभाव उस न्यायालय की शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह आवश्यक नहीं है, क्योंकि केन्द्रीय सरकार सब अवस्थाओं में उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जैसा कि माननीय सदस्य ने स्वयं पहिले किसी अवसर पर कहा था, यह संविधान अधिवक्ताओं के लिए स्वर्ग तुल्य होगा। मैं अपने अनुभव द्वारा यह समझता हूं कि इस परन्तुक से बड़ी मुकदमेबाजी होगी और केवल अधिवक्ताओं को ही लाभ होगा। मैं चाहता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तुत किया गया निर्वचन ठीक हो, पर मुझे ऐसा दिखाई देता है। जब हम अनुच्छेद 278 के खंड (2) पर आते हैं, तो उसमें यह कहा गया है कि ऐसी किसी उद्‌घोषणा को किसी अनुवर्ती उद्‌घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित किया जा सकेगा।

***एक माननीय सदस्य:** एक बज चुका।

***अध्यक्षः** आप अनुमानतः कितनी मिनट और लेंगे?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** लगभग दस मिनट और।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपना भाषण कल जारी कर सकेंगे। सभा कल प्रातःकाल के नौ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार ता. 4 अगस्त सन् 1949 के प्रातःकाल के नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-5.49
320

अंक 9
संख्या 5

बृहस्पतिवार
4 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 188, नवीन अनुच्छेद 277-क, अनुच्छेद 278, 279, 280, 247, 248, 248-ख तथा 249 पर विचार] 247–311

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 4 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय, (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में हुई।

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 188, 277-क और 278—*(जारी)*

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (2) पर अपना मत प्रकट कर रहा था। उसमें ये शब्द हैं—"ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी"। श्री कामत ने इसी के समान एक प्रसंग में "परिवर्तित की जा सकेगी" शब्द प्रविष्ट करने के उद्देश्य से एक संशोधन उपस्थित किया था। किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया गया था। नवीन अनुच्छेद 275 के खंड 2 (क) में ये शब्द हैं—"किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत की जा सकेगी"। इस सप्ताह की सूची एक के संशोधन संख्या 111 द्वारा श्री कामत इन शब्दों को प्रविष्ट करके उसे संशोधित करना चाहते थे—"किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित की जा सकेगी"। वर्तमान अनुच्छेद में इन्हीं शब्दों को अर्थात् "किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित की जा सकेगी" शब्दों को अधिकृत रूप से स्वीकार किया गया है। मेरे विचार से समानता इसलिये नहीं आ सकी है कि मसौदा-समिति को शीघ्रता से कार्य करना होता है और विभिन्न निदेशों का अनुसरण करना होता है।

जहां तक प्रस्तावित अनुच्छेद 278 (क) का संबंध है, इसमें खंड (1) के उपखंड (क) और (ख) नवीन हैं। खंड (क) एक नवीन खंड है और खंड (ख) उसका आनुषंगिक खंड हैं। जिस नवीन व्यवस्था को स्थान दिया गया है वह भी क्रांतिकारी है। आपात-संबंधी विधि-निर्माण में प्रांतीय विधान-मंडलों को भी कुछ अधिकार प्रदान करके प्रांतीय-विधान-सभाओं को, मंत्रियों अथवा अन्य लोगों के दोषी होने अथवा निर्दोष होने की परीक्षा करने तथा अपना निर्णय देने का अवसर प्रदान करने के स्थान पर संसद् को उत्तरदायित्व सौंपा गया है। जैसाकि मैंने कल निवेदन किया था, इससे भी केन्द्रीय सरकार तथा संसद् संबंधित राज्य में बदनाम हो जायेंगे। यह हो सकता है कि किसी प्रांत में मंत्री अथवा अन्य लोग कुप्रबन्ध अथवा कुशासन के लिए दोषी हों, किन्तु यदि हम प्रांतीय विधान-सभाओं को उनके संबंध में निर्णय करने का अधिकार नहीं देते हैं तो उस प्रांत के दोषी और निर्दोष, विधि-ध्वंसक और विधि पोषक, सदाचारी तथा दुराचारी सब मिलकर एक हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि जिन लोगों के दुराचारों के निराकरण के लिए आपात-संबंधी शक्तियों की आवश्यकता है वे जननायक हो जायेंगे, लोग उनकी

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वीरता की प्रशंसा करेंगे और उनको सबक सिखाने का उद्देश्य निष्फल हो जायेगा। केन्द्र को यह कुख्याति प्राप्त होगी कि वह बिना किसी आवश्यकता के दृष्टतावश उनके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद 278 (क) के खंड (1) के उपखंड (ग) के अधीन राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह संसद् के प्रमुख के नाते आयव्ययक को अधिकृत रूप देगा और उसके लिए मंजूरी देगा। यह प्रांतों और देशी रियासतों के घरेलू आयव्ययकों में हस्तक्षेप करना ही होगा। इसे बहुत नापसन्द किया जायेगा। अच्छा तो यह होता कि राज्यपाल को अथवा राजप्रमुख को कार्य करने दिया जाता तथा अपने आयव्ययकों की व्यवस्था अपनी इच्छानुसार करने की स्वतंत्रता दी जाती। आर्थिक सहायता तो दी जा सकती है किन्तु व्यय की व्यवस्था राष्ट्रपति को सीधे-सीधे न करनी चाहिये।

अब मैं खंड (घ) को उठाता हूं। अनुच्छेद 102 में ये शब्द प्रयुक्त हैं– "उस समय को छोड़कर जबकि संसद् के दोनों सदन सत्र में हैं........राष्ट्रपति अध्यादेशों का प्रख्यापन कर सकेगा"। विचाराधीन अनुच्छेद का उपखंड अप्रासंगिक है। उसे उस स्थल पर स्थान देना चाहिये जहां अध्यादेशों का वर्णन है। उपखंड (घ) को उस अनुच्छेद समूह में किसी स्थल पर प्रविष्ट करना चाहिये जो अध्यादेशों के संबंध में है और उसे यहां स्थान न देना चाहिये। यह भी जल्दी में मसौदा तैयार करने का परिणाम है।

जो कठिनाइयां पैदा कर दी गई हैं उनमें से कुछ ये हैं। इस समय उनका विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का सबसे गंभीर परिणाम यह होगा कि हम साम्यवादियों की चालों में हाथ बटायेंगे। उनकी चाल यह है कि किसी प्रांत अथवा देशी राज्य में संकटापन्न स्थिति उत्पन्न करके वहां के प्रशासन को अंशत: पंगु कर दें और अधिकारियों को आपात-शक्तियों को प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दें। इसके पश्चात् वे इन उग्र शक्तियों के विरुद्ध फैलाने का प्रयास करेंगे और साथ ही दोषी मंत्रियों तथा अधिकारियों को जननायक सिद्ध करेंगे। मैं निवेदन कर चुका हूं कि राज्य का विधान मंडल विचार-विमर्श करने के अधिकार से वंचित हो जायेगा। यदि राष्ट्रपति आपात-शक्तियों के उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेगा तो मेरे विचार से उसके कार्य के संबंध में राज्यों के विधान-मंडलों में विचार-विमर्श नहीं हो सकता। जब प्रांतों और राज्यों को दोषी लोगों का पता लगाने तथा उन्हें निन्दनीय ठहराने का अधिकार दिया जायेगा तभी वे अपनी आपत्तियों को प्रकट कर सकेंगे किन्तु इस दशा में यह न हो सकेगा। इसका प्रभाव यह होगा कि सभी प्रकार के लोगों का एक ही समुदाय हो जायेगा, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, चाहे वे विधि-ध्वंसक हों अथवा विधि-पोषक, केन्द्र बदनाम हो जायेगा और दोषी राज्य शहीद गिने जाने लगेंगे। केन्द्र की उपेक्षा की जायेगी और वह अधिकाधिक आपात शक्तियों को प्रयोग करने के लिए विवश होगा और एक अकाट्य दूषित चक्र में फंस जायेगा। इससे राज्यों में असंतोष बढ़ने लगेगा और उनकी विघटनकारी प्रवृत्तियां प्रबल होने लगेंगी और केन्द्र की लोक सभा के सामान्य निर्वाचनों में उनकी छाया पड़ेगी। इसका

परिणाम यह होगा कि जो उग्र शक्तियां केन्द्र को सशक्त बनाने के लिए उसे प्रदान की जा रही हैं वे ही कुछ समय पश्चात् उसे अशक्त बना देंगी। मुझे यह डर है, और मैं यह काफी विचार करने के बाद कह रहा हूं, कि हम धीरे-धीरे, सम्भवत: अनजाने, स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं। यह एक अजीब बात है कि यद्यपि स्वेच्छाचारी शासक हमेशा कुख्यात रहे हैं और अंत में विध्वंसकारी ही सिद्ध हुये हैं किन्तु आधुनिक काल में भी वे समुन्नत होते ही हैं। सुव्यवस्थित लोकतंत्र में ही उनका जन्म होता है। देखा जाये तो शीघ्र प्रभावी संविधानिक उपचारों से विधि-विहीनता को ईमानदारी से समाप्त करने की इच्छा के फलस्वरूप ही उनका जन्म होता है। इन आपात-शक्तियों के संकेन्द्रण के पीछे साम्यवादियों का भय ही है। हिटलर ने भी इसी कारण स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया था। वास्तव में वह जर्मनी से साम्यवादियों को निकाल बाहर करना चाहता था। विधान-मंडल का तथा लोकमत का सफलतापूर्वक दमन करने के पश्चात् हिटलर ने युद्ध के लिये एक बहुत बड़ा संगठन तैयार किया और उसके पश्चात् अपने राज्यक्षेत्र का प्रसार करने की ठानी। इससे पिछला युद्ध हुआ और हिटलर का पतन हो गया मसोलिनी ने भी इसी प्रकार स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया और उसकी भी वही गति हुई मुझे आशा है कि हम उस लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ रहे हैं। किन्तु मुझे यह संदेह है कि आधुनिक काल में स्वेच्छाचारी शासकों ने अपने देशों के हित साधन के लिए, सम्भवत: अनजाने, जो कदम उठाये हैं उनका हम भी अनजाने में अनुसरण कर रहे हैं और स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं। सभा में कुछ लोगों की विशेषतया युवा सदस्यों की, यह धारणा है कि भारत में किसी न किसी प्रकार के स्वेच्छाचारी शासन की बहुत आवश्यकता है। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रकार की धारणा का होना स्वाभाविक ही है किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि स्वेच्छाचारी शासन निष्फल ही होते हैं और उनकी एक ही गति होती है। वास्तव में वे एक दूषित चक्र में फंस जाते हैं। स्वेच्छाचारी शासन की आवश्यकता होती है। गुप्त रूप से विरोध बढ़ता रहता है और अन्त में इतना प्रबल हो जाता है कि जिस शक्ति ने उसे जन्म दिया था उसे ही समाप्त कर देता है। सुव्यवस्था लोकतंत्रात्मक शक्तियों के विकसित होने पर ही स्थापित हो सकती है। यह सभी को विदित है, और सभा में भी सभी जानते हैं, कि समाचार पत्रों को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है और पत्रकारों की यह धारणा है कि वे ऐसे तथ्यों को स्वतंत्रता से नहीं प्रकाशित कर सकते जिनसे सरकार के दृष्टिकोण का खंडन होता हो, अथवा सरकार लोगों की नजर में गिर जाती हो मेरे विचार से ये अच्छे लक्षण नहीं हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि इस अनुच्छेद माला से हानिकारी विरोध की वृद्धि होगी। मुझे आशा है कि प्रत्येक विधि पोषक नागरिक तथा संविधान में तथा लोकतन्त्र प्रणाली में निष्ठा रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस प्रवृत्ति का विरोध करने के लिए आगे बढ़ेगा। वास्तव में शक्ति की अवाप्ति तथा उसका संकेन्द्रण एक गहरी बीमारी के द्योतक हैं। मैं निवेदन कर चुका हूं कि इसका प्रतिफल उन्हीं लोगों को भोगना पड़ेगा जो स्वेच्छाचारी शासन के इच्छुक हैं। लोकमत की स्वतंत्र अभिव्यंजना से ही सभी का हित साधन हो सकता है। इस समय की स्थिति इसी का परिणाम है कि देश में, अर्थात् राज्यों में तथा प्रांतों में और केन्द्र में एक नियमित और सुसंगठित विपक्षी दल का अभाव है। देश में अनियमित तथा असंगठित रूप से विरोध होता है और उसे प्रकट होने के यथोचित साधन प्राप्त

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

न होने से वह बृहत् पैमाने में असंतोष तथा विधि-खंडन की प्रवृत्ति के रूप में अभिव्यक्त होता है। वास्तव में दमन के कारण बराबर विधि का खंडन करने वालों तथा ईमानदार नागरिकों का एक ही समूह हो जाता है। यदि मेरी चेतावनी निराधार प्रमाणित हुई तो मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को न होगी। किन्तु मुझे यह भय है कि हम स्वेच्छाचारी शासन की ओर बढ़ रहे हैं और हमारी भी वही गति होने की संभावना है जो पहले दो स्वेच्छाचारी शासनों की हो चुकी है।

*__अध्यक्ष:__ पंडित ठाकुरदास भार्गव: मुझे आशा है कि सदस्य घड़ी को देखते रहेंगे। हम इस अनुच्छेद पर चार घंटे पच्चीस मिनट विचार कर चुके हैं।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाब : जनरल) : श्रीमान्, संविधान में आपात शक्तियों के संबंध में जो उपबन्ध हैं वे वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण हैं और मैं सभा का कुछ समय केवल इस कारण लेना चाहता हूं कि इस प्रश्न को बड़ी योग्यता से तथा कुशलता से हल करने के लिए मसौदा-समिति को बधाई देने की आवश्यकता है। श्रीमान्, मसौदा-समिति के प्रस्तावों की आलोचना करना बहुत सरल है। यदि मसौदा-समिति अनुच्छेद 188 को पहले के ही रूप में रहने देती तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि जो लोग इस समय आलोचना कर रहे हैं वे उसे उस रूप में रहने की भी कड़ी भाषा में आलोचना करते। हमें केवल यह देखना है कि लाभों और अलाभों को ध्यान में रखते हुए इस समय की स्थिति पहले से अच्छी है या नहीं। इस दृष्टि से मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि हम अनुच्छेद 188 को बनाये रखते तो हम बहुत बड़ी गलती करते। अनुच्छेद 188 को निकालने और उसके स्थान में अनुच्छेद 278 और 277 (क) को रखने का अर्थ यह होगा कि राज्यपाल को कोई भी आपात-शक्तियां प्राप्त न होंगी। अब एक व्यक्ति, अर्थात् राज्यपाल, स्वविवेक से कार्य करके राज्य के भाग्य का निर्णय नहीं करेगा। यह अधिकार पूरे मंत्रिमंडल को दिया गया है और अब इसका भय नहीं रह गया है कि केवल भयग्रस्त होने के कारण अथवा किसी मंत्रिमंडल से अथवा अन्य लोगों से व्यक्तिगत विद्वेष होने के कारण आपात-शक्तियों का प्रयोग न किया जायेगा। इसके विपरीत, हमें विश्वास है कि राष्ट्रपति पूरे मंत्रिमंडल की सहायता तथा मंत्रणा से कठिन से कठिन प्रश्नों को हल कर लेगा।

इसके अतिरिक्त मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अनुच्छेद 277 (क) को संविधान में स्थान दिया जा रहा है। इसके न रहने से संविधान में एक बहुत बड़ी कमी रह जाती। यह मेरी समझ में नहीं आता कि केन्द्र की शक्तियों से कोई भी संबंध न रखकर प्रांतीय स्वायत्त-शासन को किस प्रकार एक पृथक श्रेणी में रखा जा सकता है। हम मूलाधिकारों तथा उच्चतम-न्यायालय की शक्तियों के संबंध में उपबन्ध रख चुके हैं। हम यह जानते हैं कि सेना तथा नौसेना केन्द्र के अधिकार में हैं। इस दशा में प्रांतीय स्वायत-शासन असम्बद्ध कैसे रह सकता है और राज्यों को स्वतंत्र अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते हैं? यदि थोड़ी देर के लिए हम यह मानें कि कभी संविधान अप्रभावी भी हो सकता है तो उस दशा में कोई राज्य लोगों को मूलाधिकारों के प्रयोग के संबंध में प्रत्याभूमि कैसे देगा? उसके लिये यह एक असंभव बात होगी। यह तर्क स्वखंडनकारी है। जब देश को सेना और अन्य शक्तियों की आवश्यकता होगी तो कोई प्रांत स्थिति को अकेले कैसे सम्हालेगा? इसलिये प्रांतीय स्वायत्त-शासन के संबंध में भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि

उसके प्रति केन्द्र को एक बहुत बड़े कर्त्तव्य का निर्वहन करना है। मेरी केवल एक शिकायत है और वह यह है कि अनुच्छेद 277(क) को स्थान देकर हम केवल अपनी सम्भावना को व्यक्त कर रहे हैं। मेरी यह इच्छा थी और मैंने इस उद्देश्य से एक संशोधन भी उपस्थित किया था कि तर्कसंगत बात यही है कि हम इस आशय के एक उपबन्ध को स्थान दें कि अनुच्छेद 277(क) से उद्भूत कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिये जो प्रकार्य आवश्यक हों उन्हें पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार जो कदम उठाना चाहे उठाये। ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर भी, जब संविधान अप्रभावी न हुआ हो किन्तु उसके अप्रभावी होने की आशंका हो, केन्द्र को अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करना होगा और इसलिये उसे यथेष्ट शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें। केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि यह केन्द्र का कर्त्तव्य है कि वह संविधान को प्रयोग में लाये। जब केन्द्र को किसी कर्त्तव्य का पालन करना है तो स्थिति के अनुसार उसके पालन के लिए उसे पर्याप्त साधन भी प्राप्त होने चाहियें। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि संविधान भले ही अप्रभावी न हुआ हो किन्तु फिर भी केन्द्र को यथेष्ट शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि अनुच्छेद 278 और 277 (क) के संबंध में कुछ आलोचना की गई है। पहली आलोचना, जिसके संबंध में मैं बोलना चाहता हूं, "अन्यथा" शब्द के बारे में है। जब यह घोषित किया गया था कि राज्यपालों का निर्वाचन न होगा और वे केन्द्र द्वारा नियुक्त होंगे तो इस संबंध में आपत्ति की गई थी। यह आपत्ति की गई थी कि यह एक प्रतिगामी कदम है। अब जो लोग इस अनुच्छेद का विरोध कर रहे हैं, वे यह कहते हैं कि केवल राज्यपाल के प्रतिवेदन पर ही विचार किया जाना चाहिये, यदि राज्यपाल स्वतंत्र न होगा, और केन्द्रीय सरकार की ओर से ही कार्य करेगा, तो उसके प्रतिवेदन का मूल्य ही क्या होगा? जब आप इसे स्वीकार करते हैं कि राज्यपाल की केवल व्यक्तिगत हैसियत है और वह प्रांत के लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो आप उसके प्रतिवेदन का विश्वास कैसे कर सकते हैं? "प्रतिवेदन पर अथवा यदि" शब्दों से यही प्रकट होता है कि या तो राज्यपाल अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है या उसने गलत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है। यदि राज्यपाल और मंत्रियों के बीच कलह हुआ और मंत्रियों ने तथा सदनों ने यह संकल्प पारित किया कि एक षड्यंत्र रचा जा रहा है और राज्य में कलह है तथा केन्द्र को हस्तक्षेप करना चाहिये, तो क्या होगा? इस स्थिति में यह उचित है कि "अथवा यदि" शब्द रहने दिये जायें। उसने इस प्रकार की आकस्मिकताओं के लिए व्यवस्था हो जाती है। आखिर केन्द्र को अथवा राष्ट्रपति को स्थिति का निराकरण करना ही होगा और संविधान के अप्रभावी होने पर स्थिति को इतनी न बिगड़ने देना होगा कि अराजकता फैल जाये। यदि यह तर्क ठीक है तो चाहे राष्ट्रपति को अथवा केन्द्र को जैसे भी सूचना प्राप्त हो, केन्द्र का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हस्तक्षेप करे। इसलिये "अथवा यदि" शब्दों का यह अर्थ नहीं है, जैसाकि मेरे एक मित्र ने कहा था, कि गुप्तचर विभाग की सूचना पर्याप्त समझी जायेगी। यह और भी गम्भीर बात होगी। राष्ट्रपति अथवा मंत्रिमंडल इतने अनुत्तरदायी और मनमाने ढंग से कैसे कदम उठायेंगे? उन मित्रों की आपत्ति मेरी समझ में आती है। जिन्होंने कहा है कि अनुच्छेद 278 के ये शब्द बहुत व्यापक हैं। वे अवश्य व्यापक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कोई अनुत्तरदायी राष्ट्रपति अथवा मंत्रिमंडल मनमाने ढंग से कार्य कर सकते हैं। संगठन कैसे असफल हो जायेगा यही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। यदि संविधानिक तंत्र सुचारू

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

रूप से कार्य नहीं करता है, अर्थात् केवल 2 प्रतिशत सुचारू रूप से कार्य करता है और 98 प्रतिशत दूषित रूप से कार्य करता हैं, अथवा 98 प्रतिशत सुचारू रूप से कार्य करता है और 2 प्रतिशत दूषित रूप से कार्य करता है, तो प्रश्न यह है कि यदि थोड़े से अंश के संबंध में गतिरोध हो जाये तो क्या यह कहा जा सकता है कि संविधान उस प्रकार प्रयोग में नहीं आ रहा है जैसे उसे आना चाहिये? किन्तु मेरे विचार से कोई व्यक्ति यह न कहेगा कि ऐसी स्थिति में केन्द्र उत्तरदायित्व का स्वयं निर्वहन करे क्योंकि इस स्थिति में उत्तरदायित्व का निर्वहन करना बहुत कठिन होगा। आखिर कोई भी केन्द्रीय सरकार यह न चाहेगी कि केन्द्र और किसी राज्य के बीच कलह हो। हम यह क्यों मान लें कि मंत्रिमंडल मनमाने ढंग से गलत कार्यवाही करेगा? मेरे विचार से कोई भी उपबन्ध ऐसा नहीं हो सकता जिसमें दोष नहीं निकाला जा सकता। स्थिति तभी बिगड़ेगी तब संविधान को ईमानदारी तथा सद्भावना से प्रयोग में न लाया जायेगा। अन्यथा किसी भी संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसका दुरुपयोग नहीं हो सकता। हम यह क्यों मान लें कि इसका दुरुपयोग होगा? आखिर इसमें अन्तर ही क्या है? यदि केन्द्र को भी कार्य करना होगा तो आखिर वह कैसे कार्य करेगा? क्या इसका अर्थ यह है कि अव्यवस्था हो जायेगी? यह बात नहीं होगी। यदि किसी प्रांत के प्रशासन की केन्द्र भी अपने हाथ में ले लेगा तो वहां का शासन तंत्र बेकार न हो जायेगा। केन्द्र वहां पहिले से भिन्न प्रशासन के उद्देश्य से हजारों लोगों को नहीं भेजेगा। हम इसकी कल्पना कर सकते हैं कि इस प्रकार की स्थिति में क्या होगा। भारत में कई प्रांतों में बहुत काल से लोक-तंत्रात्मक शासन व्यवस्था रही है। कई राज्यों में अब लोकतंत्रात्मक संस्थाएं स्थापित की जा रही हैं। शताब्दियों से वहां सामान्तवादी प्रणाली प्रयोग में रही है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जब तक आप इस प्रकार के उपबन्ध को स्थान न देंगे, केन्द्र अपने कर्तव्य के पालन में समर्थ न होगा। केन्द्र का यह कर्त्तव्य है कि वह इसकी चिंता करे कि संविधान यथोचित रूप से प्रवर्तन में आये।

मुझे यह विदित है कि यह आलोचना की गई है कि अनुच्छेद 277(क) और 278 से राज्यों की शक्तियों का अपहरण होता है और उन्हें अधीनता स्वीकार करनी होती है। कुछ आलोचकों ने तो वास्तव में यह कहा है कि प्रांतीय स्वायत्त शासन हास्यास्पद ही प्रमाणित होगा और इस प्रकार की परिस्थिति में प्रांतीय राज्यपाल जो कार्यवाही कर सकता उसे केन्द्रीय सरकार न कर सकेगी। किन्तु बात यह नहीं है। यह दिखाई देता है कि ये आलोचक यह नहीं समझ पाये हैं कि कोई भी संविधान तब तक अप्रभावी नहीं कहा जा सकता जब तक कि राज्य संबंधी सभी उपबन्ध निष्फल न हो गये हों। मेरी राय में ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर राज्यपाल अपने कर्त्तव्यपालन के हेतु सबसे पहले विधान-मंडल का विघटन कर देगा। जब तक कि सभी प्रकार के प्रयत्न न किये जा चुके हों, और जब तक कि राज्यपाल को यह विश्वास न हो जाये कि लोग साधारण स्वतंत्राओं का भी उपभोग नहीं कर सकते हैं, तब तक वह यह निर्णय न करेगा कि संविधान अप्रभावी हो चुका है। मैं ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें राज्यपाल विधि द्वारा प्रदत्त अपनी शक्तियों को इस प्रकार प्रयोग न करेगा जिससे संविधान प्रवर्तनशील रहे। जब पूरा संविधान ही अप्रभावी हो जायेगा तो अराजकता ही फैल जायेगी। ऐसी

स्थिति में क्या किया जाना चाहिये? मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने कहा है कि ऐसी स्थिति में पूरे प्रशासन की बागडोर केन्द्र के अपने हाथ में ले लेने से ही अराजकता फैल जायेगी। किन्तु मैं यह कहता हूं कि अराजकता को रोकने के लिए ही केन्द्र प्रशासन को अपने हाथ में लेगा। क्या संविधानिक तंत्र के गतिशून्य हो जाने पर जो अराजकता फैल जायेगी उसे हम जारी रहने देंगे? मुझे विश्वास है कि इसे हर कोई स्वीकार करेगा कि अच्छा यही होगा कि केन्द्र हस्तक्षेप करे और प्रशासन को अपने हाथ में ले ले।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक सूचना प्राप्त करनी है। क्या मैं माननीय सदस्य महोदय से पूछ सकता हूं कि जिन अनुच्छेदों को हम स्वीकार कर चुके हैं उनमें आपस की स्थिति में राज्यपाल द्वारा विधान-मंडल के विघटन के संबंध में किस स्थल पर उपबन्ध है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या मैं अपने माननीय मित्र से यह प्रति प्रश्न पूछ सकता हूं कि इस संबंध में किस स्थल पर उपबन्ध है कि राज्यपाल अनुच्छेद 153 के अधीन कार्य न करेगा? मैं यह समझता हूं कि संविधान का आशय यह है कि राज्यपाल ऐसी स्थिति में स्वविवेक से कार्य करेगा और जब वह यह समझेगा कि स्थिति ऐसी हो गई है कि विधान-मंडल का विघटन आवश्यक हो गया है तो वह अपने कर्त्तव्य के पालन के हेतु इस कदम को उठायेगा। केन्द्रीय सरकार भी स्थिति पर विचार करेगी और राज्य के प्रशासन को जल्दी अपने हाथ में न ले लेगी क्योंकि उसे चलाना बहुत कठिन होगा। आप यह क्यों सोचते हैं कि राज्यपाल कार्य नहीं करेगा? मुझसे प्रश्न पूछने के पूर्व मेरे मित्र को इस प्रश्न का उत्तर देना है।

अब हम इस प्रकार की स्थिति पर विचार करें। यदि किसी राज्य में संविधानिक तंत्र केवल दो मास के लिए गतिशून्य हो जाये तो मंत्रिमंडल को पूरे प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने का अधिकार होगा। इन दो मास में केन्द्र को क्या लाभ होगा? संसद् इसका निर्णय करेगी कि मंत्रीमंडल ने यथोचित कार्य किया है या नहीं? यदि संसद उस कार्य का समर्थन करती है तो उसका यह अर्थ होगा कि उस राज्य के प्रतिनिधियों ने तथा अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने मंत्रिमंडल के कार्य का समर्थन किया है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस पर क्या आपत्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त बहुत से रक्षाकवच भी हैं। पहले तो दो मास का प्रश्न है और फिर यह प्रश्न है कि मंत्रि-मंडल उस स्थिति के संबंध में क्या निर्णय करता है। इसके अतिरिक्त 6 मास की अवधि के संबंध में भी उपबन्ध है। ये सब निस्संदेह बहुत सुन्दर रक्षा-कवच हैं ओर मेरी समक्ष में नहीं आता कि आलोचक इस अनुच्छेद के संबंध में बेईमानी और अपराध का पोषक आदि शब्दावली के प्रयोग कैसे कर रहे हैं। मेरा यह नम्र निवेदन है कि भारत की वर्तमान विकासपूर्ण स्थिति में जब देश में इतनी विघटनकारी प्रवृतियां दिखाई दे रही हैं, मसौदा-समिति ने इस उपबन्ध को स्थान देकर एक उपयुक्त कदम उठाया है। इससे देश की एकता सुदृढ़ हो सकेगी। इससे केन्द्र का यह दायित्व हो जाता है कि वह इसकी देख रेख करे कि प्रांत अपने प्रशासन को कुशलता से तथा संविधान के अनुसार चला रहे हैं या नहीं।

यह तर्क उपस्थित किया गया है कि अनुच्छेद 275 से हमारा उद्देश्य पूरा हो जाता है और अनुच्छेद 278 जैसे उपबन्ध को स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं है

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि अनुच्छेद 278 के अधीन शांति, प्रशांति तथा आभ्यन्तरिक अशांति का कोई प्रश्न नहीं उठता। क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह स्थिति ऐसी है जब पूरा तंत्र गतिशून्य हो जायेगा और साधारण लोगों की सामान्य स्वतंत्रताओं का अपहरण हो जायेगा? आभ्यन्तरिक अशांति आदि की स्थिति इसके अन्तर्गत आ जाती है। यह भी हो सकता है कि आभ्यन्तरिक अशांति न हो किन्तु शांति तथा प्रशांति के लोगों द्वारा भंग होने का भय उपस्थित हो। इस स्थिति में मेरे विचार से राज्य यह नहीं कह सकता है कि विद्रोह तथा आभ्यन्तरिक अशांति नहीं है। विद्रोह हो जाने के पश्चात् उसका दमन करने से पहले ही उसकी रोकथाम करना कहीं अच्छा होगा। इन कारणों से, मेरे विचार से अनुच्छेद 277(क) और अनुच्छेद 278 को अवश्य स्थान दिया जाना चाहिये। मेरी केवल यह इच्छा है कि अनुच्छेद 277(क) से जो तर्क संगत परिणाम निकलता है उसे भी संविधान में स्थान दिया जाना चाहिये अर्थात् संविधानिक तंत्र के गतिशून्य होने के पूर्व ही उसे इस स्थिति से बचाने के हेतु केन्द्र को अपने कर्त्तव्य-पालन में समर्थ बनाने के लिए अधिक शक्ति प्रदान की जानी चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 278 को जिस रूप में उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करता हूं। किन्तु इस अनुच्छेद के कुछ उपबन्धों के संबंध में मुझे कुछ आपत्ति है और मैं उसे प्रकट करूंगा। मैं इस उपबन्ध के पक्ष में नहीं हूं कि संसद् के सहमत होने पर ही राष्ट्रपति होने पर ही राष्ट्रपति राज्य की ओर से विधायिनी शक्तियों का प्रयोग करे। मैं दो कारणों से इससे असहमत हूं। पहले तो इससे बिलम्ब होगा। यदि राष्ट्रपति किसी विधि को तुरन्त पारित कराना चाहेगा तो यह उपबन्ध उसके मार्ग में बाधक सिद्ध होगा क्योंकि संसद् में उस विधि के पारित होने में समय लगेगा। विचाराधीन स्थिति में समय का ही सबसे अधिक महत्व रहेगा। आपात की दशा में राष्ट्रपति को तेजी से कार्य करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। यदि उसकी विधायिनी शक्ति के मार्ग में इस प्रकार बाधा डाल दी गई तो इससे कठिनाई ही उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त मैं एक और कारण से भी इसके विरुद्ध हूं। उस स्थिति की कल्पना कीजिये जब संसद् मंजूरी न दे। यदि उस स्थिति में राष्ट्रपति किसी विधि की आवश्यकता समझे, और संसद् उसे पारित न करे, तो क्या होगा? कठिनाई उठ खड़ी होगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति को पूर्ण विधायिनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। यदि कोई गंभीर आपात उपस्थित हो गया हो, और किसी प्रांत में विधि और व्यवस्था का तंत्र नष्ट हो गया हो, तो उस दशा में राष्ट्रपति को पूर्ण विधायिनी शक्ति प्राप्त हो जानी चाहिये। उसे कार्यपालिका शक्ति इस समय भी प्राप्त है। मेरे विचार से यदि थोड़े काल के लिए राष्ट्रपति को विधायिनी शक्ति भी प्रदान कर दी जाये तो इससे देश को अथवा संविधान को कोई हानि न होगी।

श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद के इस उपबंध के भी विरूद्ध हूं कि आपात-काल में उच्च-न्यायालय की शक्तियां तथा उसके प्रकार्य निराकृत न होंगे। मैं इसका कारण जानना चाहता हूं। क्या आप अपने राष्ट्रपति का विश्वास नहीं करते हैं? क्या आप यह समझते हैं कि कुछ राजनैतिक विचारों से बदला चुकाने के लिए यह अत्याचार करेगा? आपात-काल में राष्ट्रपति की पूरी शक्ति तथा सरकार व मंत्रि-परिषद् का

ध्यान, इसी लक्ष्य पर संकेन्द्रित रहेगा कि विधि और व्यवस्था की रक्षा किस प्रकार की जाये और देश के आपद्‌ग्रस्त भागों में किस प्रकार शांति स्थापित की जाये। श्रीमान्, कुछ मास पूर्व सभा में इस प्रश्न पर गरम बहस हुई थी कि संविधान में 'यथोचित विधिप्रक्रिया' शब्द समाविष्ट होने चाहियें या नहीं। हमने यह अनुभव किया कि इन शब्दों से कार्यपालिका के हाथ बंध जायेंगे और इसलिये हमने इन शब्दों को अस्वीकार कर दिया। देश में गम्भीर आपात उपस्थित होने का भय केवल काल्पनिक नहीं, वास्तविक है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या राष्ट्रपति, यह अनुभव करने पर कि नागरिकों के कुछ मूलाधिकारों के निराकरण की आवश्यकता है, बिना उनका निराकरण किये हुए संकट के निवारण के हेतु अपने प्रकार्यों का पालन कर सकता है? हम थोड़े ही काल के लिए इन शक्तियों को राष्ट्रपति को प्रदान करना चाहते हैं। यह उपबन्ध हमेशा प्रवर्तन में नहीं रहेगा। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि राष्ट्रपति इसकी आवश्यकता समझे तो उच्च-न्यायालय की शक्तियों का निराकरण हो जाना चाहिये। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जैसे की अनुच्छेद 278 प्रयोग में आयेगा, उच्च-न्यायालय की सभी शक्तियों का निराकरण हो जायेगा। मैं केवल यह चाहता हूं कि यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि बिना नागरिकों के कुछ मूलाधिकारों का निराकरण किये हुये संकट से मुक्ति नहीं मिल सकती है तो उसे इसके लिये शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस प्रकार का उपबन्ध तर्कसंगत होगा। मैं यह अनुभव करता हूं कि यदि राज्य की सुरक्षा और किसी व्यक्ति के स्वीय स्वातंत्र्य में विरोध हो तो, मेरी यह इच्छा है कि राज्य की सुरक्षा की ही सुनिश्चित करना चाहिये और उसी पर जोर देना चाहिये। घटनाओं से परिपूर्ण भारत के इतिहास में हम पहली बार अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर सके हैं। क्या हम उसे कुछ ऐसी नवीन विचार धाराओं के पोषण के हेतु खो देना चाहते हैं जो अपने उदृव-स्थानों में ही खंडित हो चुकी हैं? निस्संदेह सबसे अच्छी बात तो यह है कि राज्य की सुरक्षा भी बनी रहे और लोगों का स्वीय स्वातंत्र्य भी। किन्तु आदर्श तक पहुंचना हमेशा संभव नहीं होता है और इसलिये यदि कभी इन दोनों में विरोध हो तो मेरे मित्रों को किसी एक को श्रेष्ठ समझना होगा। मैं राज्य की सुरक्षा को श्रेष्ठ समझता हूं।

अनुच्छेद 278 से यह आशय भी प्रकट होता है कि दुराचार का सदाचार से और विधि विहीनता का विधि से निराकरण किया जाना चाहिये। देश में लोकतंत्र विरुद्ध शक्तियों का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को लोकतंत्र की शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। यह इस कथन के समान है कि दुराचार की शक्तियों का निराकरण अहिंसा तथा सदाचार से होना चाहिये। किन्तु व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ तथा विधि-निर्माता इस सिद्धांत को आसानी से स्वीकार न करेंगे।

मैं उस उपबन्ध के पक्ष में भी नहीं हूं जिसका आशय यह है कि आपात की अवधि तीन वर्ष से अधिक न होगी। यह कथन सम्राट कैन्यूट के लहरों से यह कहने के समान है कि ऐलहरो राज पदों का स्पर्शमत करो। आप यह पहले ही से कैसे कह सकते हैं कि आपात की अवधि तीन वर्ष से अधिक न होगी? देश में अशांति और विधि विहीनता की शक्तियां प्रबल हो रही हैं और तेजी से प्रभावी ही रही हैं। हम यह नहीं चाहते कि इस उपबन्ध की आड़ में तमाम तरह के काम होते रहें। मैं अपने माननीय मित्रों से यह अनुरोध करता हूं कि जिस संकट की ओर श्री कामत ने ध्यान दिलाया है उस पर वे ठंडे दिल से विचार करें। वह यह है कि देश में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित होने का संकट। मेरा यह

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

कहना है कि जिस संविधान का हम निर्माण कर रहे हैं उस पर देश के लोकतंत्र की सफलता निर्भर नहीं है उसका संबंध आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था से है। जब तक हम अपनी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में सुधार न करेंगे तब तक केवल लोकतंत्रात्क संविधान से हमारी रक्षा नहीं हो सकती।

श्रीमान्, हमें यह बताया गया है कि बीमार का संविधान अपने कुछ उपबन्धों के कारण ही नष्ट हो गया है। मैं यह नहीं मानता। यह एक आश्चर्य की बात है कि श्री कामत जैसे विद्वान पुरुष ने ऐसा थोथा तर्क उपस्थित किया। हिटलरवाद किसी अनुच्छेद के कारण प्रबल नहीं हुआ। चाहे कोई अनुच्छेद रहता या न रहता, उसे प्रबल होना ही था। जर्मनी की प्रथम महायुद्ध में हार होने के कारण ही हिटलरवाद का उदय हुआ। मुझे इस संबंध में संदेह है कि जर्मनी में लोकतंत्र सफल हो सकता है या नहीं। प्रण की युद्ध तथा विजय परम्परा जर्मनी की भूमि में ऐसी जड़ पकड़े हुए है कि वह किसी लोकतंत्रात्मक संविधान को पनपने ही नहीं देती।

श्रीमान्, मुझ पर यह आरोप लगाया गया है कि मुझे संविधानिक औचित्य का कोई ध्यान नहीं रहता। राजनैतिक विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मुझे इस देश के कुछ सुयोग्य अध्यापकों से संसार के सभी संविधानों को पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि राजनीति में कोई ऐसे आधारभूत नियम अथवा सनातन सिद्धांत नहीं हैं जो सभी लोगों के लिये सभी कालों में प्रयुक्त हो सकते हैं। यदि कनाडा के लिए कोई उपबन्ध उपयुक्त हो सकता है तो वह हमारे देश के लिए भयस्पद हो सकता है क्योंकि किन्हीं दो देशों का विकास समान रूप से नहीं हुआ है। कनाडा में जो कुछ हो रहा है, अथवा जो हुआ है, वह संभव है हमारे देश में न हो। इसलिये मैं इसे निरर्थक ही समझता हूं कि केवल संविधानिक औचित्य के उद्देश्य से हम कई ऐसी संस्थाओं को स्थापित कर दें, जो एक दूसरे के विरुद्ध हों।

मैं एक बात और कहूंगा। मुझे ऐसी बातें कहने में कोई प्रसन्नता नहीं होती जो देवताओं को नापसन्द हों। किन्तु मुझे एक कर्त्तव्य का पालन करना है। मुझे इस देश से प्रेम है और मैं किसी भी विचारधारा की वेदी पर उसके हितों का बलिदान नहीं करना चाहता। मैं साम्यवाद को, अथवा समाजवाद को अथवा किसी भी अन्य वाद को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं किन्तु शर्त यह है कि मुझे यह विश्वास हो जाये कि उससे राज्य की नींव पक्की होगी। यदि उसकी नीव सुदृढ़ करने में समर्थ न हों तो मैं उसका केवल इस कारण समर्थन न करूंगा कि लोकतंत्र की प्रशंसा करने की प्रथा चल पड़ी है। मैं सच्चे हृदय से लोकतंत्र से प्रेम करता हूं, किन्तु मेरी यह धारणा है कि अनियंत्रित तथा अनियमित लोकतंत्र से इस समय देश विपत्ति में पड़ जायेगा। मुझे किसी के विरोध में कुछ नहीं कहना है। सदस्यों को अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता है किंतु जिस प्रकार मैं इस संबंध में चर्चा करता रहा हूं उससे मेरे संकट में पड़ने की आशंका है।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): सभापति जी, जिन धाराओं पर इस समय विवाद चल रहा है, मुझे उसके संबंध में यह निवेदन करना है कि मूल धारायें जैसी प्रस्तावित विधान में हैं, अर्थात् द्वारा 188 जो विधान के चौथे भाग में आती हैं और 275 जो ग्यारहवें भाग में आती है, वह इसी तरह से रहनी चाहियें, उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इसलिए कि धारा 188 ऐसी विकट परिस्थिति के साथ संबंधित है जिसमें प्रादेशिक शासकों को, प्रांत के गवर्नर और स्टेट के शासकों को विशेष परिस्थिति में विकट एवं संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो जाने की घोषणा करने का अधिकार है। उदाहरणार्थ, जैसे कि आज बंगाल में या मद्रास में कुछ कठिनाइयां हैं। कल्पना कीजिये कि यदि ये कठिनाइयां उग्र रूप धारण कर लें, तो ऐसी आवश्यकता पड़ सकती है कि वहां पर गवर्नर भीषण और विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाने की घोषणा करे।

धारा 275 ऐसी जगह आती है, जहां पर भारतीय संघ के अध्यक्ष को विकट परिस्थिति की घोषणा करने का अधिकार है। दोनों परिस्थितियां दो प्रकार की हो सकती हैं। एक वह परिस्थिति है, जिसमें जैसाकि पिछले महायुद्ध में जर्मनी के पोलैंड के ऊपर आक्रमण किया और उससे संसार में एक व्यापक युद्ध छिड़ गया। उस व्यापक युद्ध के छिड़ने से भारत वर्ष में उस समय जो तत्कालीन हुकूमत थी, जो शासन था उसको आवश्यकता पड़ी कि यहां पर एक घोषणा की जाये। वह एक परिस्थिति है, जो संसारव्यापी समस्या से पैदा होती है। इसके कारण सारे राष्ट्र पर एक विपत्ति के बादल छा सकते हैं। इन परिस्थितियों में जो संघ का अध्यक्ष है उसको स्वयं अपने ज्ञान से और बुद्धि से इस प्रकार की घोषणा करनी पड़ती है। किन्तु इसके अतिरिक्त जो प्रादेशिक शासक हैं उनके सामने उनकी अपनी समस्यायें हो सकती हैं और उन समस्याओं के अनुरूप अपनी बुद्धि का सहारा लेकर स्वयं घोषणा करनी पड़ेगी। हमको वह अधिकार उनको देना होगा।

सैक्शन 93, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 की जो बातें हैं और जिनके आधार पर केन्द्र ने जो अधिकार अपने लिये सुरक्षित रखे थे, उन अधिकारों को दो-तीन धाराओं में बांटकर इस तरह से अब रखने की चेष्टा की गई है। इस देश से अंग्रेज तो चले गये मगर अंग्रेजियत नहीं गई, वह अविश्वास नहीं गया। अंग्रेज हमें एक हाथ से तो एक चीज देते थे मगर दूसरे हाथ से उसको छीन लेने की कोशिश करते थे। अंग्रेज शासक दिल्ली में बैठकर शासन चलाते थे। विवश होकर, आन्दोलन से परेशान होकर उन्होंने यहां की जनता को संतुष्ट करने के लिए कुछ अधिकार दिये। प्रादेशिक स्वतन्त्रता, प्रावेन्शियल आटोनौमी जिसे कहते हैं, उसे देने के बाद भी उन्हें यह विश्वास नहीं था कि यदि कोई परिस्थिति ऐसी पैदा हो जाये जिसमें अंग्रेजी हुकूमत का साथ देना सूबों के लिए आवश्यक हो, वहां पर भी सूबे काम में आयेंगे तो इन परिस्थितियों में सूबों की हुकूमत को अपने हाथ में कर लेने की उनकी स्वाभाविक इच्छा थी। वह ईमानदारी से हमारे हाथों में शासन छोड़ना नहीं चाहते थे। हम लोगों ने सन् 1939 ई. में युद्ध छिड़ने के बाद उसका विरोध किया और सूबों की हुकूमतों ने उसके विरुद्ध असेम्बलियों में प्रस्ताव पास किये। बात यह थी कि जो विदेशी हुकूमत उस समय यहां पर जनता की इच्छा के विरुद्ध राज्य चला रही थी, हम उसके साथ नहीं थे। वह चाहती थी कि यहां के लोग और हमारा देश युद्ध में भाग ले मगर हमारी जनता इस बात के विरुद्ध थी। महात्मा गांधी जी ने भी राष्ट्र को यह राय दी थी कि

[श्री अलगूराय शास्त्री]

युद्ध में भाग लेना हराम है। उस समय दो प्रकार के विचार चल रहे थे। केन्द्रीय शासन हमें भाग लेने के लिये मजबूर कर रहा था और देश की आजादी चाहने वाली संस्थायें, स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली संस्थायें, उसका विरोध करना चाहती थीं और उसको हराना चाहती थी। उस युद्ध में भाग लेने के लिए क्या कारण हैं, यह वह सरकार से पूछना चाहती थीं और इसी कारण आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की मीटिंग भी हुई थी। इसके कारण लड़ाई छिड़ गई और सन् 1942 ई. का भीषण आन्दोलन शुरू हुआ। इसी युद्ध का यह फल था। तो जो सन् 1935 का गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट है, उसको हम बाइबिल मानकर, उसका अनुवाद बनाकर उस पर हम चलें यह उचित नहीं है। परन्तु हो ऐसा ही रहा है। "श्रुत्या एक वाक्यत्वात्, आनर्थक्यम् तदार्थनाम्"। जो बात श्रुति के वाक्यों के अनुसार हो वहीं प्रमाण—इसी प्रकार जो 1935 एक्ट के अनुसार है वही ठीक है यह मानकर ड्राफ्टिंग कमेटी 1935 की धाराओं को इस विधान में रखती जा रही है।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935 के आधार पर जो विदेशी हुकूमत यहां चल रही थी उसने अपने देश की कम्पनियों की रक्षा के लिए उस एक्ट की धारा 299 में बिना पर्याप्त मुआवजा दिये किसी सम्पत्ति को न लेने का विधान किया। उसे भय था कि स्वतंत्र भारत में ये जायदादें छिन जायेगी। उसी का अनुकरण हम आज इस विधान की धारा 24 में कर रहे हैं। इस वक्त धारा 93 हमारे सामने आई तो वह इस रूप में खड़ी है। सैक्शन 93 को देखकर हमको प्रसन्नता होती है जैसा कि वह ओरिजिनल ड्राफ्ट में हैं। मूल विधान की धारा में 188, 275, 276, 277 तथा 278, एक्ट 1935 की धारा 93 के ही रूप हैं। ये आवश्यक और अनिवार्य हैं। धारा 188 में इस बात का ख्याल करके कि हुकूमतों के भीतरी संघर्ष का सामना करना पड़ेगा प्रादेशिक शासक को विशेष अधिकार दिया गया है। यह एक सही बात है।

जब स्वतंत्रता आती है तो उसके साथ ही साथ बहुत सी आपत्तियों का भी सामना करना पड़ता है। आज बंगाल के एन्टी सोशियल एलीमेंट बहुत जोरों पर है। वहां पर वह हुकूमत को तबाह करना चाहता है। मद्रास में भी हम यही बात देख रहे हैं। हमने हैदराबाद में भी इस दृश्य को देखा। परन्तु आज जो भी झगड़े हम देख रहे हैं वह वहां के स्थानिक झगड़े हैं। इन कलहों के कारण ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती हैं कि तत्काल हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो। वह तत्कालीन हस्तक्षेप कौन करे, किसको करना चाहिये "दि मैन एट दि स्पौट मस्ट बी ट्रस्टेड।" स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने बड़ी सुन्दरता से इस वाक्य का उल्लेख किया है। "दि मैन एट दि स्पौट मस्ट बी ट्रस्टेड"। अविश्वास से अविश्वास पैदा होता है। और विश्वास से विश्वास पैदा होता है। स्थानिक अधिकारी पर विश्वास करना ही चाहिये। हम एक गवर्नर नियुक्त करते हैं और उसको बहुत बड़ी और लम्बी तनख्वाह देते हैं। बहुत सुख-सम्पन्न बनाकर उसे हम रख देते हैं मगर उससे कहते हैं कि किसी चीज को हाथ न लगाना। नाम गवर्नर होगा किन्तु काम कुछ नहीं। तो यह तो गवर्नर शब्द के उच्चारण में थोड़ा भेद कर दें तो वास्तव में वह "गोबरनर" रह जायेगा। भरत ने खड़ाऊ रखकर राज्य किया था। वह राम की उस खड़ाऊं की पूजा किया करते थे। आपके ये गवर्नर तो सिर्फ गोबरनर ही रह जायेंगे,

गवर्नर नहीं। एक आदमी को इस तरह से तबाह कर देना कहां की बुद्धिमता है? फिर इतनी बड़ी तनख्वाह उसे देने की क्या आवश्यकता है? ऐसी दशा में तो जो खर्चा इन गवर्नरों पर होगा अगर उसको बचा दिया जाये और गरीबों के काम में लगा दिया जाये तो बहुत बड़ा काम होगा और इतना ज्यादा पैसा हमारी गरीब जनता का बच जायेगा। गवर्नर है, प्रादेशिक शासक है, मगर उस गरीब को इतना अधिकार नहीं है कि वह भीषण परिस्थिति के वक्त यह निर्णय कर ले कि इस समय भीषण परिस्थिति की घोषणा करनी है। धारा 188 के आधार पर वह भीषण परिस्थिति की घोषणा तो कर सकता है, जैसा कि वह विधान में उल्लेख है। उसके ऐसा करने के बाद उसके ऊपर वह दायित्व लगा हुआ है कि वह तत्काल सरकार को सूचित कर दे, केन्द्रीय सरकार के अध्यक्ष को इस बात की सूचना दे दे कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है। जब ऐसी परिस्थिति का अनुशीलन करना, मनन करना-अध्ययन करना अध्यक्ष के लिए रह जाता है। वह विचार-विमर्श कर सकता है और अगर वह चाहे तो इस घोषणा को वापस भी ले सकता है, बढ़ा सकता है। जो कुछ भी वह करना चाहे कर सकता है। ऐसा वह धारा 278 के अनुसार करेगा।

डाक्टर अम्बेडकर का यह ख्याल है कि उनके ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि ड्राफ्टिंग कमेटी अपने विचार में स्थिर नहीं है। डॉक्टर अम्बेडकर के लिये मेरे मन में बड़ा आदर है। ड्राफ्टिंग कमेटी की जो बुद्धिमता है हम लोग उसकी सराहना करते हैं। यह धारायें ड्राफ्टिंग कमेटी ने बनाई हैं। उसमें हमारा हाथ नहीं है। हम उनके सामने धारा 188 तथा 278 उपस्थित करते हैं। यह धारायें पर्याप्त और सम्पूर्ण हैं। 277(अ) धारा से यह अभिप्राय है कि केन्द्र के शासन के ऊपर जो दायित्व है वह उसको बता दिया जाये अर्थात यह कि प्रादेशिक शासन व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेदारी उसके ऊपर है। यह तो स्वयं स्पष्ट है। "अनुक्तमपि उक्तं भवति," बिना बताये भी बताया हुआ है। प्रादेशिक शासक यह घोषणा कर सकता है कि विकट परिस्थिति पैदा हो गई है। यह धारा 188 में लिखा हुआ है। वह ऐसी घोषणा करने के बाद इस बात के लिये मजबूर है कि वह केन्द्रीय गवर्नमेंट को सूचना दे दे।

सूचना इसलिये दी जाती है कि इस सूचना के बाद जो कुछ कार्रवाइयां आवश्यक हों वह कार्रवाइयां की जायें। प्रादेशिक शांति और सुव्यवस्था को कायम रखने के लिए कदम उठाये जायें। इसके लिये धारा 278 को धारा 188 के साथ पढ़े जाने के बाद केन्द्र का जो कर्त्तव्य प्रादेशिक व्यवस्था के लिये है वह पूरा हो जाता है। 277(ए) तथा 278 (ए) रिडैंडैट हैं, अनावश्यक हैं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह जो नये संशोधन दिन प्रतिदिन आते रहते हैं, यदि बहुत विचारपूर्वक आवें तो जो नये-नये संशोधन कामत साहब और शिब्बनलाल जी सक्सेना आदि की तरफ से आ जाते हैं वह भी अनावश्यक हो जाये और हम ड्राफ्ट को आसानी के साथ पास करके दूसरे उपयोगी कार्यों में लगें।

मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूं। पिछली अंग्रेजी हुकूमत ने 1939 ई. के बाद तरह-तरह के आर्डिनेंस निकाले। एक मामूली कांस्टेबिल को अधिकार था कि वह 15 दिन के लिये किसी को जेल में बन्द कर सकता था। फिर बाद में यह अवधि 6 महीने तक बढ़ाई जा सकती थी। तो उस समय एक कांस्टेबिल को 15 दिन के लिए डिटेन करने का अधिकार था। हम यह अधिकार भी गवर्नर

[श्री अलगूराय शास्त्री]

को देने को तैयार नहीं हैं। इस तरह केन्द्रीकरण का जो यह भूत सवार हो गया है कि जो कुछ करे वह केन्द्र ही करे और प्रादेशिक शासन स्वतंत्र न रहे इससे हम अविश्वास को जन्म दे रहे हैं। इस प्रकार अविश्वास को जन्म देने से अविश्वास ही बढ़ेगा और उसी की सन्तति और सन्तान में वृद्धि होगी। इसके अलावा लोकल इनीशियेटिव भी मारा जायेगा। स्वयं अपनी बुद्धि से कार्य करने की क्षमता नष्ट हो जायेगी।

मैं डाक्टर अम्बेडकर को इस बात के लिए बधाई देना चाहता हूं कि वह उस अशांति की कल्पना कर रहे हैं कि हमारा जो बार्डर प्राविंस ईस्ट पंजाब है वहां का पूरा मंत्रिमंडल और गवर्नर एक क्लीक बनाकर मुमकिन है कि पाकिस्तान से मिल जायें या मुमकिन है कि और किसी से मिल जाये।

आसाम कहीं बरमा से मिल जाये और इस तरह अजीब किस्म की बातें पैदा हो जायें। राजा को संशक होना चाहिये क्योंकि लिखा है कि राजा को अपनी स्त्री और पुत्र से भी आशंका रखनी चाहिये। उस आशंका के आधार पर इस प्रकार केन्द्र को सुदृढ़ बनाये रखने की भावना पैदा हो सकती है और जो ये नये-नये संशोधन पेश किये गये हैं उनका मूल्य अपने स्थान पर इस दृष्टि से हो सकता है। किन्तु दूसरे पक्ष को भी हमें देखना चाहिये। ये जो गवर्नर हैं वे भी केन्द्र के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। उनके ऊपर अविश्वास रखना उचित नहीं है। इसलिये मैं कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैं इन संशोधनों का कोई तीव्र विरोध करने के लिये नहीं खड़ा हुआ हूं, क्योंकि मैं नहीं समझता कि मेरी बुद्धिमता डॉक्टर अम्बेडकर की बुद्धिमता और ड्राफ्टिंग कमेटी की बुद्धिमता से ज्यादा है, किन्तु मैं नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर तथा ड्राफ्टिंग कमेटी इस बात पर गंभीरता के साथ विचार करे कि क्या हमारे मौलिक ड्राफ्ट से काम नहीं चलाया जा सकता, जिससे कि आप अपने नये संशोधनों को वापस ले लें और दूसरे सदस्य भी अपने संशोधनों को वापस ले लें। इतने ही शब्दों के साथ मैं यह निवेदन करना चाहता था।

***अध्यक्षः** मैं यह देखता हूं कि इस विषय पर कई अन्य सदस्य भी बोलना चाहते हैं किन्तु सभा इस पर पांच घंटे से अधिक समय तक विचार कर चुकी है। मेरे विचार से अब हमें बहस समाप्त कर देनी चाहिये क्योंकि मैं समझता हूं कि अब कोई नये तर्क उपस्थित नहीं किये जायेंगे। यदि माननीय सदस्य अभी तक जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें सुनने के पश्चात् भी कोई निश्चय नहीं कर सके हैं तो कुछ और भाषण सुनकर भी वे कोई निश्चय न कर सकेंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या सभा बहस समाप्त करना चाहती है?

***कई माननीय सदस्यः** अब मत लिया जाये, अब मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, यद्यपि इन अनुच्छेदों पर पांच घंटे तक बहस हो चुकी है किन्तु मेरे विचार से इस बहस में कोई भी ऐसी बात नहीं कही गई जो मुझे इन अनुच्छेदों में सन्निहित सिद्धांतों को बदलने के लिए प्रेरित करे। इसलिए मैं लम्बा उत्तर देकर सभा का समय नष्ट न करूंगा।

मैं पहले एक मिनट के लिये उस संशोधन को उठाऊंगा जो मेरे मित्र श्री कामत ने अनुच्छेद 277 (क) के संबंध में प्रस्तुत किया है। उनके संशोधन का आशय यह था कि 'और' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखा जाये। मेरे विचार से इस संशोधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस प्रसंग मे "और" शब्द संबंध-बोधक भी है और संबंध विच्छेदक भी और उसे प्रसंगानुसार "और" या "अथवा" के अर्थ में पढ़ा जा सकता है। इसलिये मेरे विचार से इस संशोधन को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, यद्यपि मैं इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय के उद्देश्य की प्रशंसा करता हूं।

दूसरा संशोधन, जिसकी मैं चर्चा करना चाहता हूं मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन है जिसके द्वारा उन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा से विधान-मंडल का विघटन करने की भी शक्ति प्राप्त हो। मैं इससे सहमत हूं कि इसके बारे में भी उपबन्ध होना चाहिये, क्योंकि विधान-मंडल की ओर संकेत करके ही प्रांत के लोगों को सुव्यवस्था स्थापित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। किन्तु मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 278 के खंड (1) के उपखंड (क) से यह उद्देश्य पूरा हो जाता है क्योंकि उपखंड (क) द्वारा यह प्रस्तावित किया गया है कि राज्यपाल अथवा राजप्रमुख जिन शक्तियों को प्रयोग करता है उन्हें राष्ट्रपति अपने हाथ में ले सकता है। राज्यपाल को विधान-सभा को विघटित करने की भी शक्ति प्रदान की गई है और वह उसे प्रयोग कर सकता है। इसलिये जब राष्ट्रपति उद्घोषणा निकालेगा और उपखंड (क) के अधीन वर्णित शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा तो विधान-मंडल को विघटित करने तथा नवीन निर्वाचन करने की शक्ति भी उसे स्वत: प्राप्त हो जायेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की मंत्रणा से इस शक्ति को प्रयोग करेगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने जिस सिद्धांत का निरूपण किया है वह उपखंड (क) में सन्निहित है और इस कारण उसके विषय में किसी पृथक् उपबन्ध को रखने की आवश्यकता नहीं है।

अब मैं पंडित कुंजरू ने जो कुछ कहा है उसके संबंध में बोलूंगा। पहली बात, यदि मुझे ठीक स्मरण है, उन्होंनें यह कही थी कि संविधानिक तंत्र के गतिशून्य होने पर प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने की शक्ति एक नवीन शक्ति है और उसका उदाहरण किसी भी संविधान में नहीं मिलता। मेरा उनसे इस संबंध में मतभेद है और मैं उनका ध्यान अमेरिका के संविधान के उस अनुच्छेद की ओर आकृष्ट करता हूं जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का यह कर्त्तव्य है कि वह गणराज्य के संविधान की रक्षा करे। जब हम यह कहते हैं कि इस संविधान का संधारण इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही होना चाहिये तो इसका अर्थ वहीं है जो अमेरिका के संविधान की शब्दावली का है, अर्थात् हमारा आशय यह है कि इस संविधान में जिस संविधान की रूप-रेखा निश्चित की गई है उसका संधारण होना चाहिये। इसलिये जहां तक इस प्रश्न का संबंध है, मेरे विचार से, मसौदा-समिति ने एक सुनिश्चित सिद्धांत का परित्याग नहीं किया है।

एक आलोचना यह भी की गई है कि संविधान के अनुच्छेद 275 और 276 को देखते हुए अनुच्छेद 278 और 278(क) की आवश्यकता नहीं है। मैं आदरपूर्वक

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यह निवेदन करना चाहता हूं कि पंडित कुंजरू अनुच्छेद 275 और वर्तमान अनुच्छेद 278 के उद्देश्यों को बिल्कुल गलत समझे हैं। उनका तर्क यह था कि आखिर उद्देश्य यही है कि प्रांतीय विषयों के संबंध में विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाये। यह अधिकार अनुच्छेद 276 के अधीन ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि उद्घोषणा के निकाले जाने के पश्चात् सूची 2 में वर्णित सभी विषयों के संबंध में विधि-निर्माण का अधिकार इस अनुच्छेद के अधीन केन्द्र को प्राप्त हो जाता है। मेरे विचार से वे अनुच्छेद 275 और 276 तथा अनुच्छेद 278 और 278(क) का सीमित अर्थ ही समझ पाये हैं।

मैं सबसे पहले सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि ये दो अनुच्छेद-मालायें भिन्न अवसरों पर प्रयोग में आयेंगी। अनुच्छेद 275 के अधीन केन्द्र तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब युद्ध छिड़ गया हो अथवा अन्दर से या बाहर से आक्रमण हुआ हो। अनुच्छेद 278 में युद्ध अथवा आक्रमण के अतिरिक्त अन्य कारणों से शासन-तंत्र के विफल हो जाने का उल्लेख है। इसलिये, जैसाकि मैं कह चुका हूं, कार्यसाधक खंड भिन्न हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 275 के अधीन यदि युद्ध की घोषणा की गई हो तो उससे प्रांतीय संविधान को निलम्बित करने का प्राधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। प्रांतीय संविधान प्रवर्तन में रहेगा। विधान-मंडल कार्य करता रहेगा और उसे संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियां प्राप्त रहेंगी। कार्यपालिका को कार्यपालिका-शक्ति प्राप्त रहेगी और वह प्रांत की विधियों के अनुसार प्रांत का प्रशासन करती रहेगी। अनुच्छेद 276 के अधीन केन्द्र को केवल विधि-निर्माण की तथा प्रशासन की समवर्ती शक्ति प्राप्त हो जायेगी। अनुच्छेद 276 से केवल इतना ही होगा। किन्तु अनुच्छेद 278 के प्रवर्तन में आने पर स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जायेगी। प्रांतों में विधान-मंडल न रह जायेंगे क्योंकि विधान-मंडल निलम्बित कर दिये जायेंगे। जब तक कि राष्ट्रपति अथवा संसद्, अथवा राज्यपाल उद्घोषणा में किसी प्रकार की कार्यपालिका शक्ति का उल्लेख न करे, वहां कुछ भी कार्यपालिका-शक्ति न रह जायेगी। ये दो स्थितियां बिल्कुल भिन्न हैं। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 275 और अनुच्छेद 278 में इस आशय के शब्द रखकर हम इस विभेद को बनाये रखें। मेरे विचार से इन दो स्थितियों में अन्तर न रखने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो जायेगा।

पं. हृदयनाथ कुंजरूः (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र एक बात को स्पष्ट करें? क्या अनुच्छेद 278 और अनुच्छेद 278 (क) का उद्देश्य यह है कि प्रांतों में सुशासन स्थापित करने के लिए केन्द्रीय सरकार प्रांतीय मामलों में हस्तक्षेप करे?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः जी नहीं। केन्द्र को यह प्राधिकार नहीं प्रदान किया गया है।

पं. हृदयनाथ कुंजरूः अथवा क्या वह तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब प्रांत का कुशासन होने से लोक-शांति संकट में पड़ गई हो?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब वहां का शासन प्रांतों के लिए निर्धारित संविधानिक शासन-संबंधी उपबन्धों के अनुरूप न हो रहा हो। इसका निर्णय केन्द्र करेगा कि किसी प्रांत में सुशासन है या नहीं। इस संबंध में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** "संविधान के उपबन्ध" पदावली का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? सभा को माननीय सदस्य महोदय से इसकी जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है कि "संविधान के उपबन्धों के अनुसार" पदावली का क्या अर्थ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** सारे विषय की परीक्षा करने में तथा प्रत्येक अनुच्छेद का उल्लेख करके यह बताने में कि अमुक अनुच्छेद में अमुक सिद्धांत सन्निहित है और यह कि किसी प्रांतीय सरकार अथवा विधान-मंडल के कौन से कार्यों से संविधानिक तंत्र विफल हो जायेगा, मुझे बहुत देर लगेगी। "संविधानिक तंत्र का विफल हो जाना" पदावली भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में प्रयुक्त है। इसलिये यह सभी को विदित होगा कि उसका व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक अर्थ क्या है। मेरे विचार से इसकी अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): प्रोफेसर सक्सेना ने और मैंने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनका क्या होगा? क्या डॉ. अम्बेडकर उनका उत्तर देने नहीं जा रहे हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उन्हें स्वीकार नहीं करता हूं। मैं केवल उन संशोधनों की चर्चा कर रहा था अथवा उनका उत्तर दे रहा था जिनमें, मेरे विचार से, कुछ सार था। मैं प्रत्येक प्रस्तुत संशोधन की चर्चा नहीं कर सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** डॉ. अम्बेडकर प्रस्तुत संशोधनों में से केवल शाब्दिक संशोधनों का उत्तर दे रहे हैं। क्या उन्हें अन्य संशोधनों का उत्तर न देना चाहिये?

***अध्यक्ष:** मैं डॉ. अम्बेडकर को किसी विशेष रूप में उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकता। उन्हें अपने ढंग से उत्तर देने का अधिकार है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बडेकर:** सामान्य बहस में यह बताया गया था कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग होने की संभावना है। इस संबंध में मैं यह नहीं कहता कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग नहीं हो सकता अथवा इनका राजनैतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। किन्तु संविधान के जिस भाग में भी केन्द्र को प्रातों के अधिकार को अपने हाथ में ले लेने की शक्ति दी गई है, उसके संबंध में यह आपत्ति की जा सकती है। वास्तव में अपने माननीय मित्र श्री गुप्ते के समान मेरी भी यही भावना है कि हमें यही आशा करनी चाहिये कि ये अनुच्छेद कभी भी प्रवर्तन में न लाये जायेंगे और उनका केवल उल्लेखमात्र ही रहेगा। यदि उन्हें कभी प्रवर्तन में लाया भी गया तो मुझे आशा है कि राष्ट्रपति, जिसे ये शक्तियां प्रदान की गई हैं, प्रांतों का प्रशासन पूर्णतया निलम्बित करने के पूर्व यथोचित सतर्कता बरत लेगा। मुझे आशा है कि पहले वह यह कदम उठायेगा कि जो प्रांत दोषी होगा उसे वह चेतावनी देगा कि वह संविधान के आशय के अनुसार कार्य नहीं

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कर रहा है। यदि उस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ तो वह निर्वाचन के लिए आदेश देगा जिससे प्रांत के लोग अपने मामले स्वयं निबटा सकेंगे। इन दो उपचारों के विफल होने पर ही वह इस अनुच्छेद का आश्रय लेगा। इस प्रकार की स्थिति में ही वह इस अनुच्छेद के अधीन कार्यवाही करेगा। इस स्थिति में हम यह न कह सकेंगे कि ये अनुच्छेद निष्प्रयोजन ही प्रविष्ट किये गये हैं अथवा यह कि राष्ट्रपति ने मनमाने ढंग से काम किया है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या डॉ. अम्बेडकर अब सभा को यह आश्वासन दे सकते हैं कि अनुच्छेद 143 में यथोचित संशोधन किया जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह कह चुका हूं और इसे फिर दुहराता हूं कि जब मसौदा-समिति दूसरे पठन के पश्चात् फिर समवेत होगी, उस समय वह सभी उपबन्धों पर विचार करेगी और आश्वयकता हुई तो अनुच्छेद 143 में यथोचित संशोधन करेगी।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 188 निकाल दिया जाये"।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 188 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 277-क को उठाता हूं।

प्रस्ताव यह है किः

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 277(क) में 'Union' (संघ) शब्द के स्थान पर 'Union Government' (संघीय सरकार) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 221 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है किः

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 277(क) में 'and' (और) शब्द के स्थान पर, जहां वह पहली बार आया है, 'or' (अथवा) शब्द रखा जाये।"

सशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में 'internal disturbance' (आभ्यंतरिक अशांति) शब्दों के स्थान में 'internal insurrection and chaos' (आभ्यंतरिक विद्रोह अथवा अराजकता) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 277 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'277-A. It shall be the duty of the Union to protect every State against external aggression and internal disturbance and to ensure that the government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution.' "

Duty of the Union to protect States against external aggression and internal disturbance.

(277-क. बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशांति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार का संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।)

बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशांति से राज्यों का संरक्षण करने का संघ का कर्त्तव्य

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 277 (क) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 277 (क) संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'Ruler' (शासक) शब्द के स्थान पर 'Rajpramukh' (राजप्रमुख) शब्द रखा जाये।

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) से 'or otherwise' (अथवा यदि) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची-2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'is satisfied that' (समाधान हो जाये कि) शब्दों के पश्चात् 'a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that' (गंभीर आपात उपस्थित हो गया है जिससे राज्य की शांति तथा प्रशांति संकट में पड़ गई है और यह कि) शब्द जोड़ दिये जाये।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्तावित अनुच्छेद 278 के खंड (4) के पहले परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

Provided that the President may if he so thinks fit order at any time during this period a dissolution of the State Legislature followed by a fresh general election, and the Proclamation shall cease to have effect from the day on which the newly elected legislature meets in session.

(परन्तु राष्ट्रपति, यदि वह उचित समझे तो, राज्य के विधान-मंडल के विघटन के लिये तथा उसके पश्चात् सामान्य निर्वाचन करने के लिए, आदेश दे सकता है और उद्घोषणा उस दिन से प्रभावशून्य हो जायेगी जब से नव-निर्वाचित विधान-मंडल सत्रस्थ होगा।)"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 278 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायें:

'278. (1) If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of 'a State or otherwise is satisfied that the government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constituion, the President may by Proclamation—

Provisions in case of failure of constitutional machinery in States.

(a) assume to himself all or any of the functions of the Government of the State and all or any of the powers vested in or exercisable by the Governor or Ruler, as the case may be, or any body or authority in the State other than the Legislature of the State;

(b) declare that the powers of the Lagislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament;

(c) make such incidental and consequential provisions as appear to the President to be necessary or desirable for giving effect to the objects of the Proclamation, including provisions for suspending in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to any body or authority in the State:

Provided that nothing in this clause shall authorise the President to assume to himself any of the powers vested in or exercisable by a High Court or to suspend in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to High Courts.

(2) Any such Proclamation may be revoked or varied by a subsequent Proclamation.

(3) Every Proclamation under this article shall be laid before each House of Parliament and shall, except where it is a Proclamation revoking a previous Proclamation, cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

[अध्यक्ष]

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People is dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(4) A Proclamation so approved shall unless revoked, cease to operate on the expiration of a period of six months from the date of the passing of the second of the resolution approving the Proclamation under clause (3) of this article:

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of such a Proclamation is passed by both Houses of Parliament, the Proclamation shall, unless revoked, continue in force for a further period of six months from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to operate, but no such Proclamation shall in any case remain in force for more than three years:

Provided further that if the dissolution of the House of the People takes place during any such period of six months and a resolution approving the continuance in force of such Proclamation has not been passed by the House of the People during the said period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

278-A. (1) Where by a Proclamation issued under clause (1) of article 278 of this Constitution it has been declared that the powers of the Legislature of the State shall be exerciseable by or under the authority of Parliament, it shall be competent—

Exercise of legislative powers under Proclamation issued under aritcle 278.

(a) for Parliament to delegate the power to make laws for the State to the President or any other authority specified by him in that behalf;

(b) for Parliament or for the President or other authority to whom the power to make laws is delegated under sub-clause (a) of this clause to make laws conferring powers and imposing duties or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities of the Government of India;

(c) for the President of authorise when the House of the People is not in session expenditure from the Consolidated Fund of the State pending the sanction of such expenditure by Parliament;

(d) for the President to promulgate Ordinances under article 102 of this Constitution except when both Houses of Parliament are in session.

(2) Any law made by or under the authority of Parliament which Parliament or the President or other authority referred to in sub-clause (a) of clause (1) of this article would not, but for the issue of a Proclamation under article 278 of this Constitution, have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of one year after the Proclamation has ceased to operate except as respects things done or omitted to be done before the expiration of

[अध्यक्ष]

the said period unless the provisions which shall so cease to have effect are sooner repealed or re-enacted with or without modification by an Act of the Legislature of the State.' "

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा:

राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की अवस्था में उपबन्ध

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा यथास्थिति राज्यपाल, या शासक में, अथवा राज्य के विधान-मंडल को छोड़कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में, निहित, या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

(ग) राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसा कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दे:

परन्तु इस खंड की किसी बात से राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि वह उच्च-न्यायालय में निहित या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बद्ध किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित कर दे।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी तथा जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो महीने की समाप्ति पर, यदि उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद् के दोनों सदनों के सकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो, प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक-सभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि ऐसी उद्घोषणा के विषय

में लोक सभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले को संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले सकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाते।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहृत नहीं हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तारीख से छ: महीने की कालावधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रखने के लिए अनुमोदन करने वाला संकल्प, यदि और जितनी बार, संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार, वह उद्घोषणा, जब तक कि प्रतिसंहृत न हो जाये, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छ: महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किंतु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था में भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी:

परन्तु यह और भी कि यदि लोक सभा का विघटन छ: मास की किसी ऐसी कालावधि भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त कालावधि में पारित नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगा जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को प्रवर्तन में बनाये रखने का अनुमोदन करने वाले संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाते।

278. (क) अनुच्छेद 278 के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के अधीन विधायिनी शक्तियां।

(1) जहां इस संविधान के अनुच्छेद 278 के खंड (1) के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां—

(क) राष्ट्रपति को अथवा राष्ट्रपति द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी अन्य प्राधिकारी को राज्य के लिये विधि बनाने की शक्ति देने की संसद् को,

(ख) भारतीय सरकार अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्त्तव्य आरोपित करने के लिए, अथवा शक्तियों का दिया जाना कर्त्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये, विधि बनाने की संसद् की अथवा राष्ट्रपति की या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य आधिकारी में उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिये संसद की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की,

[अध्यक्ष]

(घ) जब संसद के दोनों सदन सत्र में न हों उस समय इस संविधान के अनुच्छेद् 102 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति को,

सक्षमता होगी।

(2) राज्य के विधान-मंडल की शक्ति के प्रयोग में संसद द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि जिसे इस संविधान के अनुच्छेद 278 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद् या राष्ट्रपति या ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिए सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई थीं जब तक कि वे उपबन्ध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, राज्य के विधान-मंडल के अधिनियम द्वारा उससे पहिले ही या तो निरसित और या रूपभेदों के सहित या बिना पुनः अधिनियमित न कर दिये गये हों।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 278 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 278 संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 278(क) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 278(क) संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 279

(संशोधन संख्या 3026 और 3027 उपस्थित नहीं किये गये)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपात उपस्थित होने पर इस अनुच्छेद के अधीन अनुच्छेद 13 में वर्णित मूलाधिकारों का अपहरण हो जायेगा। यदि इन अधिकारों को निराकृत ही करने का उद्देश्य है तो आपात-काल में ये संसद की विधि द्वारा निराकृत होने चाहियें और केवल कार्यपालिका को यह शक्ति प्राप्त न होनी चाहिये। ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जब युद्ध छिड़ जायेगा और बहुत काल तक रहेगा। पिछला महायुद्ध

छः वर्ष तक रहा। किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि अनुच्छेद 13 के अधीन प्रदत्त मूलाधिकार छः वर्ष तक सारे देश में क्यों निलम्बित रहें। यह एक बहुत ही असाधारण बात होगी ओर वास्तव में मुझे तो ज्ञात नहीं है कि संसार के किसी भी संविधान के अधीन मूलाधिकार छह वर्ष तक निलम्बित रह सकते हैं।

इसलिए मैं इन संशोधनों को उपस्थित करता हूं:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में 'the State as defined in that Part' (उस भाग में परिभाषित राज्य) शब्दों के स्थान में 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में 'State' (राज्य) शब्द जहां दूसरी बार आया है वहां उसके स्थान पर 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के संबंध में, अनुच्छेद 279 में अन्त में आये हुए शब्द 'or to take any executive action' (अथवा कोई कार्यपालिका कार्य करने) तथा 'or to take' (अथवा करने) शब्द निकाल दिये जायें।"

इन संशोधनों के फलस्वरूप अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, इस संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 13 की किसी बात से संसद् की कोई ऐसी विधि बनाने की शक्ति, जिसे बनाने में वह अन्यथा सक्षम होती, निर्बन्धित न होगी।"

मेरे संशोधनों का आशय यह है कि आपात-काल में केवल संसद् को ही अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त होगी। अन्यथा यदि ये अधिकार स्वतः निलम्बित हो जायेंगे और इस संबंध में कार्यपालिका मनमाने ढंग से कार्य कर सकेगी तो एक असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह एक आधारभूत प्रश्न है और मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इस पर गंभीरता से विचार करें। क्या अनुच्छेद 13 के अधीन हम ऐसे अधिकार देने जा रहे हैं जिनसे आपात-काल में राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ जायेगी? मैं यह नहीं मानता। अनुच्छेद 13 में ही इसकी चिंता की गई है कि आपात की अवस्था में इन अधिकारों को इस प्रकार प्रयोग किया जायेगा कि राज्य की सुरक्षा संकट में न पड़े। इस अनुच्छेद के अधीन सात मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है। पहला मूलाधिकार यह है कि सभी नागरिकों को वाक्स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्राप्त होगा। यह मूलाधिकार अखंडनीय नहीं है। खंड (2) में कहा गया है कि–

"खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय-अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाले अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा संबंध रखने वाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिए रुकावट न डालेगी।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इसलिये इस अंतिम खंड की शर्तों के अधीन ही वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य प्रयोग में आ सकता है। इसका अर्थ यह है कि राज्य कोई भी ऐसी विधि बना सकता है जिससे वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य इस प्रकार निर्बन्धित हो जाये कि राज्य की सुरक्षा के दुर्बल होने अथवा राज्य के उलटने की आशंका न रहे। इस मूलाधिकार की शब्दावली में ही आपात-काल के लिये इस अधिकार का परिसीमन सन्निहित है। इसलिये अनुच्छेद 13 के उपबन्धों को निलम्बित करने के लिए अनुच्छेद 279 की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह आपात-काल में राज्य को वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने का अधिकार है क्योंकि उस अधिकार की शब्दावली में ही यह उल्लेख है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये कि राज्य की सुरक्षा दुर्बल होने की आशंका हो तो राज्य के लिये इसे रोकने के उद्देश्य से विधि बनाने में किसी बात से रुकावट न होगी। इसलिये यह मेरी समझ में नहीं आता कि वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का मूलाधिकार युद्धकाल में अनिश्चित समय के लिए किस कारण लम्बित किया जा रहा है जबकि मूलाधिकार में ही यह कह दिया गया है कि राज्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पड़ने पर राज्य को इस स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने का प्राधिकार प्राप्त होगा। दूसरा मूलाधिकार यह है कि नागरिकों को शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार होगा। यह अधिकार भी अखंडनीय नहीं है। खंड (3) में कहा गया है कि, "उक्त खंड के उपखंड (ख) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर सार्वजनिक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन, जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसलिये सार्वजनिक व्यवस्था के हित में राज्य के लिये किसी भी विधि के बनाने में रुकावट न होगी। श्रीमान्, जब आपात उपस्थित होगा तो राज्य के लिये किसी विधि के बनाने में रुकावट न होगी क्योंकि उस समय राज्य की सुरक्षा को बनाये रखना आवश्यक होगा। इसलिये, मेरे विचार से, शांतिपूर्वक तथा निरायुध सम्मेलन के इस अधिकार को किसी अनिश्चित काल के लिए अथवा युद्ध-काल के लिए केवल इस कारण निलम्बित न रखना चाहिये कि आपात उपस्थित है। मेरे विचार से यह अधिकार पहले से ही परिसीमित है और आवश्यकता पड़ने पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में राज्य कोई भी विधि बना सकता है। इसलिये, श्रीमान्, इस अधिकार की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये और इसे युद्ध काल में प्रतिसंहृत अथवा निलम्बित न करना चाहिये।

तीसरा स्वातंत्र्य सन्था या संघ बनाने का स्वातंत्र्य है। यह परन्तुक (4) से परिसीमित है जिसमें कहा गया है, "उक्त खंड के उपखंड (ग) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर जनसाधारण के हितों में जहां तक कोई वर्तमान विधि निर्बन्धन लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसके अधीन भी संस्था और संघ बनाने के अधिकार पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। इसलिये दीर्घकाल तक अर्थात् छः, सात या आठ वर्ष के युद्ध-काल तक इस अधिकार को निलम्बित रखने की क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, उपखंड (घ), (ङ), (च), (छ) में वर्णित भारत राज्य-क्षेत्र में अबाध संचरण का अधिकार, भारत

राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार और सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार है किन्तु ये तीनों अधिकार खंड (5) से निर्बन्धित हैं जिसमें कहा गया है, "उक्त खंड के उपखंड (घ), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों के अथवा किसी अनुसूचित आदिमजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी"। इसके अधीन भी जन साधारण के हित में राज्य इस अधिकारों का खंडन करने वाली कोई विधि बना सकता है। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से, मूलाधिकारों से ही हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और उन्हें आपात काल में प्रतिसंहृत करने की आवश्यकता नहीं है। इस अनुच्छेद को पारित करने का प्रभाव यह होगा: लोगों के मूलाधिकार निलम्बित हो जायेंगे। युद्ध-काल की कोई सीमा नहीं है और यह पांच या छ: या दस वर्ष तक रह सकता है और इस काल में सारे देश के लोग मूलाधिकारों से वंचित रहेंगे। मैं यह समझता हूं कि यह एक संकटपूर्ण स्थिति है और मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि वे इस खंड पर गंभीरता से तथा यथोचित रूप से विचार करें। यदि आप इस खंड को निकालना उचित नहीं समझते हैं तो कम से कम मेरे संशोधन को स्वीकार कर लीजिये। मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति संसद को प्रदान की जाये और आवश्यकता पड़ने पर वही उसे प्रयोग करे। यदि मूलाधिकारों के परिसीमन पर्याप्त न हों तो संसद् विधि द्वारा आपात-काल के लिए निर्बन्धनों को बढ़ा सकती है। मैं आशा करता हूं कि मेरे संशोधन पर कोई आपत्ति न की जायेगी क्योंकि उसके अधीन आपात के लिए भी व्यवस्था हो जाती है और लोगों को संविधान द्वारा प्रदत्त स्वातंत्र्य भी सुरक्षित रहते हैं। अन्यथा लोग हमारे संविधान पर हंसेंगे और कहेंगे कि एक हाथ से मूलाधिकारों द्वारा लोगों को स्वातंत्र्य दिया गया है और दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। क्या हम अपनी संसद् का भी विश्वास नहीं करते? यदि आपात-काल में संसद् का विश्वास न किया गया तो और किसका किया जायेगा? इसलिये, मेरे विचार से, यदि इस अनुच्छेद को निकाल नहीं सकते हैं तो कम से कम इसे संशोधित अवश्य कर दें। मूलाधिकारों में हस्तक्षेप करने की शक्ति केवल संसद् को ही दी जानी चाहिये, अन्य किसी प्राधिकारी को न दी जानी चाहिये।

श्री एच.वी. कामत: अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने अभी इस आशय का जो संशोधन उपस्थित किया है कि आपात की उद्घोषणा के निकाले जाने के पश्चात्, संविधान के अनुच्छेद 13 में प्रत्याभूत मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति केवल संसद् को प्राप्त होनी चाहिये और राष्ट्रपति को प्राप्त न होनी चाहिये, उसका मैं सामान्यत: हृदय से समर्थन तो करता ही हूं किन्तु साथ ही सभा से अनुरोध करता हूं कि अनुच्छेद 280 के नवीन मसौदे को ध्यान में रखते हुए, जो थोड़े समय पश्चात् सभा के सम्मुख रखा जायेगा, अनुच्छेद 279 को रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि सभा धैर्यपूर्वक अनुच्छेद 280 के मूल मसौदे की तुलना उसके वर्तमान मसौदे से करे तो वह यह देखेगी कि नये मसौदे में संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त सभी अधिकारों को निलम्बित करने का उल्लेख है। मेरे विचार से अनुच्छेद 279 को किसी कारण भी रहने देने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मतानुसार आगे के अनुच्छेद 280 को

[श्री एच.वी. कामत]

देखते हुए संविधान में अब अनुच्छेद 279 को रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।

जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री सक्सेना ने कहा है, आयात की उद्घोषणा निकलने पर अनुच्छेद 275 अथवा 278 के अधीन किसी राज्य की सरकार के सभी अथवा कोई प्रकार्य राष्ट्रपति अपने हाथ में ले लेगा और उस राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की भी सभी शक्तियां उसे प्राप्त हो जायेंगी और वह यह भी घोषित कर सकेगा कि उस राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् प्रयोग करेगी अथवा संसद् के प्राधिकार के अधीन प्रयोग में आयेंगी। इसलिये यदि सभा अनुच्छेद 279 को वर्तमान रूप में स्वीकार करने जा रही है तो यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि इस अनुच्छेद में "राज्य" शब्द का क्या अर्थ है। डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 279 को उपस्थित किया है उसमें यह उपबंधित है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने तक संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 13 की किसी बात से उस भाग में परिभाषित राज्य की विधि-निर्माण आदि की शक्ति निर्बन्धित न होगी। यदि हम भाग 3 को देखें तो हमें उसके आरम्भ में "राज्य" शब्द की यह परिभाषा मिलेगी: "'राज्य' के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद्, तभा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान-मंडल, तथा भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं"। जो बात स्पष्ट है उसकी मैं व्याख्या नहीं करना चाहता। हमने कुछ ऐसे अनुच्छेद स्वीकार किये हैं जिनमें यह उपबंधित है कि आपात की उद्घोषणा के निकलने पर राज्यों के विधान मंडल तथा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख बहुत कुछ सरकारी कर्मचारियों के ढंग से कार्य करेंगे। राष्ट्रपति सभी शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है। मेरे विचार से अनुच्छेद 13 के अधीन प्रदत्त अधिकारों को निर्बन्धित करने अथवा शून्यन करने के लिये जिस कार्यवाही की आवश्यकता होगी उसे करने के लिए राजप्रमुख अथवा राज्यपाल अथवा राज्य का संविधान-मंडल सक्षम न होगा। संसद् अथवा राष्ट्रपति ही उस कार्यवाही को कर सकेगा। मैं समझता हूं कि अच्छा यही होगा कि संसद यह कार्यवाही करे। समझदारी इसी में है कि इस आशय के उपबन्ध को स्थान दिया जाये। यदि हम समझदार हैं तो हम उसे स्थान देंगे। यदि हम समझदार नहीं हैं तो हम उसे स्थान न देगें। किसी भी दशा में, इसे ध्यान में रखते हुए कि भाग 3 के अनुच्छेद 7 में 'राज्य' की यह परिभाषा की गई है कि उसके अतर्गत भारत राज्यक्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं, मेरे विचार से समझदारी इसी में है कि इस स्थल पर 'राज्य' शब्द की परिभाषा कर दी जाये ताकि किसी प्रकार का संदेह अथवा कठिनाइयां उत्पन्न न हों। मेरे विचार से इससे भी अधिक समझदारी यह उपबंधित करने में है कि इस सम्बन्ध में संसद् ही विधि बना सकती है न कि राष्ट्रपति।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है। क्या वास्तव में भाग 3 में अनुच्छेद 13 से संबंधित इस अनुच्छेद को स्थान देने की आवश्यकता है? मैं अपने माननीय मित्रों से अनुरोध करता हूं कि वे अनुच्छेद 13 को ध्यानपूर्वक

पढ़ें। अनुच्छेद 13 में पांच परन्तुकों को स्थान दिया गया है। इन परन्तुकों में से प्रत्येक में यह उपबंधित है कि चाहे आकस्मिकता की स्थिति उत्पन्न हो या आपात की स्थिति, किसी भी दशा में राज्य की सुरक्षा अथवा सार्वजनिक व्यवस्था संकट में न पड़ने दी जायेगी। जैसाकि इस अनुच्छेद पर बहस होते समय सभा में कहा गया था, इस अनुच्छेद में एक ओर अधिकार प्रदान किये गये हैं और दूसरी ओर उनका निराकरण नहीं तो लघुकरण किया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए कि हम जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसमें राज्य की सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवस्था के हित में रक्षा कवच हैं और खंड (1) के उपखंड (क) से लेकर उपखंड (छ) तक में वर्णित मूलाधिकार इन रक्षा-कवचों के अधीन प्रयोग नहीं किये जा सकते, मेरे विचार से, संविधान में अनुच्छेद 279 को समाविष्ट करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 279 का संबंध उस स्थिति से है जबकि राज्य की सुरक्षा, देश की अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में पड़ जायेगी। किन्तु हम इस संबंध में अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के परन्तुकों में उपबन्ध रख चुके हैं। यद्यपि इन सब परन्तुकों की शब्दावली भिन्न है किन्तु इनका अर्थ और आशय एक ही है और वह यह है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत मूलाधिकारों के प्रयोग में सार्वजनिक व्यवस्था तथा शांति और राज्य की सुरक्षा संकट में न पड़ने दी जायेगी। यदि वह संकट में पड़ी तो उस दशा के लिये इस अनुच्छेद में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि उसकी किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन में कोई प्रभाव न पड़ेगा अथवा—(यह विचाराधीन अनुच्छेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है) अनुच्छेद में वर्णित विभिन्न मूलाधिकारों के संबंध में विधि बनाने में राज्य के लिये कोई रुकावट न होगी, इत्यादि। हम अनुच्छेद 279 में क्या देखते हैं? "किसी बात से राज्य की कोई विधि बनाने की अथवा कोई कार्यपालिका कार्यवाही करने की उस भाग में परिभाषित शक्ति, जिसे वह अन्यथा बनने अथवा करने के लिए सक्षम होता, निर्बन्धित नहीं होगी।" अनुच्छेद 13 में इस प्रकार का उपबन्ध है और इसे दुहराना आवश्यक ही नहीं बल्कि बेकार भी है।

मैं यह कहता हूं कि अनुच्छेद 279 को निकाल देना चाहिये। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है बल्कि इसलिये कि चूंकि सभा अनुच्छेद 13 को स्वीकार कर चुकी है इस कारण इसकी आवश्यकता नहीं रह गई है। किन्तु यदि सभा को यह सुझाव मान्य न हो तो मेरे माननीय मित्र प्रोफ़ेसर शिब्बनलाल सक्सेना का वह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये जिसका आशय यह है कि इस संबंध में संसद को, न कि राष्ट्रपति की, शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से अनुच्छेद 279 के उपबन्ध कई कारणों से अनावश्यक हैं। मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हमें किन्हीं ऐसे उपबन्धों को स्थान न देना चाहिये जिनसे हमारे मूलाधिकार किसी अंश में आधारभूत न रह जायें। यदि आपात-काल में भी किसी मूलाधिकार को निलम्बित करने की आवश्यकता पड़े तो जिस अनुच्छेद को हम पारित कर चुके हैं उसमें इसके लिए पर्याप्त उपबन्ध हैं और इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि इसमें केवल यही कहा गया है कि चाहे किन्हीं विधियों से भाग 3 के अनुच्छेद 13 में उपबंधित मूलाधिकारों का खंडन अथवा प्रतिसंहार होता हो किन्तु वे प्रवर्त्तन में लाई जायेगी। मैं अनुच्छेद 13 की ओर

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

संकेत करके बताना चाहता हूं कि वर्तमान अनुच्छेद 279 को पारित करने से कितने महत्वपूर्ण अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा। प्रश्न केवल यह नहीं है कि लोगों को सम्मिलन से रोका जाये अथवा उन्हें अन्य लोगों को हिंसा के लिए प्रेरित करने से रोका जाये अथवा वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अधिकार को प्रयोग करने से रोका जाये। उस अनुच्छेद में भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, भूमि के अर्जन और सम्पत्ति के व्ययन का और किसी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का भी उल्लेख है। इसलिये इन अधिकारों को किसी प्रकार अपहरण करने का अर्थ सैनिक विधि के प्रवर्तन की घोषणा करना ही है। वास्तव में इसकी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 13 के उपखंड (2) के अधीन राष्ट्रपति तथा संसद् को हस्तक्षेप करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जाती है। श्री कामत इसकी चर्चा कर चुके हैं। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 13 (2) में यह कहा गया है।

"खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा संबंध रखने वाली किसी विधि को बचाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।

इस प्रकार यह उपबन्ध पर्याप्त है और अनुच्छेद 279 में जिस आपात का वर्णन है उसके उपस्थित होने पर इसका आश्रय लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि हम उस नवीन अनुच्छेद पर दृष्टि डालें, जिसे हमने अभी पारित किया है, अर्थात यदि हम अनुच्छेद 279 पर दृष्टि डालें तो, जैसा कि मैं कल बता चुका हूं, हम देखेंगे कि उसमें भी संविधान के उपबन्धों को अलग रखने के लिए एक विस्तृत उपबन्ध है। मेरे विचार से यह किसी बात से नहीं झलकता कि मूलाधिकारों से संबंध रखने वाले इस अनुच्छेद का आशय उन उपबंधों से पूरा नहीं हो जाता। अनुच्छेद 279 (1) (ग) में कहा गया है कि:–

"राज्य में ......ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसाकि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें।"

इन उपबन्धों को दृष्टि में रखते हुए मेरे विचार से अनुच्छेद 279 को समाविष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि स्थिति पर फिर विचार किया जाये और यदि संभव हो तो इस अनुच्छेद को बिल्कुल निकाल दिया जाये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपात-संबंधी अनुच्छेदों के अधीन यह एक सीधा-सादा अनुच्छेद है। जैसा कि मेरे मित्रों ने अभी बताया है, यह सच है कि अनुच्छेद 13 के अधीन अधिनियमों को बनाने के संबंध में उपबन्ध हैं किंतु मेरे विचार से यह न समझना चाहिये

कि आपात-काल में पूरा शासन-तंत्र विफल हो जायेगा और इसलिये इस अनुच्छेद में यह विशेष रूप से उपबंधित किया गया है कि आपात के उपस्थित होने पर भी राज्य के लिए अनुच्छेद 13 के अधीन किसी विधि को बनाने में कोई रुकावट न होगी। यह एक आशाप्रद उपबन्ध है और यह न बेकार है न निरर्थक। मेरे विचार से मसौदा-समिति से सतर्क होकर ये शब्द रखे हैं कि आपातकाल में भी राज्य यदि चाहें तो अनुच्छेद 13 के अधीन विधियों को प्रवर्तन में लाकर अपने कृत्यों का निर्वहन करते रहेंगे और विधियों को बनाने में उनके लिये किसी बात से रुकावट न होगी। यह एक आशाप्रद अनुच्छेद है क्योंकि अन्यथा आपात-काल में लोग साधारणतया यही समझेंगे कि सभी साधारण विधियां विफल हो जायेंगी और कोई भी विधि न बनाई जायेगी। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि आपात के उपस्थित होने पर भी यदि कोई राज्य चाहे तो अनुच्छेद 13 के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। इस स्थिति में मेरे विचार से यह अनुच्छेद बहुत आशाप्रद तथा आवश्यक है और राज्यों में आपात के उपस्थित होने पर इसकी सार्थकता सिद्ध हो जायेगी। इस स्थिति में मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस बहस में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु मेरे मित्र श्री सिधवा ने मुझे इसके लिए विवश कर दिया, मुझे यह कहने के लिए क्षमा किया जाये कि वे इस अनुच्छेद के आशय को नहीं समझ पाये हैं। उसका आशय यह है कि आपातकाल में अनुच्छेद 13 के उपबन्ध निलम्बित हो जायेंगे। इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि इस अनुच्छेद से राज्यों को अनुच्छेद 13 के उपबन्धों के अनुसार शक्ति प्रयोग का अधिकार प्राप्त होता है। उसका यह आशय है कि वाक-स्वातंत्र्य और सम्मिलन-स्वातंत्र्य निलम्बित हो सकते हैं। यदि संविधान में अनुच्छेद 13 न होता तो राज्य वाक-स्वातंत्र्य और अन्य स्वातंत्र्यों को निर्बन्धित करने के लिए शक्ति-प्रयोग कर सकते। इसलिये अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्यों के विधान मंडल लोगों के स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। अनुच्छेद 279 का यही अर्थ है।

***श्री आर.के. सिधवा:** जी नहीं।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: मैं कह नहीं सकता। मसौदा-समिति अनुच्छेद 279 के उपबन्धों की व्याख्या करे, किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 279 का यह अर्थ है कि आपात-काल में अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्यों के विधान मंडल वाक-स्वातंत्र्य को निर्बन्धित करने के लिए विधि बना सकते हैं। मेरा यह निर्वचन है। मैं कह नहीं सकता कि यह ठीक है या नहीं। यदि हम कोई राजनैतिक कार्य करते हैं तो उसके दो प्रभाव होंगे। उससे या तो मनुष्य का स्वातन्त्र्य विस्तृत होगा या निर्बन्धित होगा। इसके अतिरिक्त और किसी बात की संभावना नहीं है। मेरी यह धारणा है कि आपात काल में कार्यपालिका और विधान मंडल को मनुष्य के स्वातन्त्र्य को निर्बन्धित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से केवल दो प्रश्न ऐसे उठाये गये हैं जिनका उत्तर देने की आवश्यकता है। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका आशय यह है कि आपात काल

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में संसद ही मूलाधिकारों में परिवर्तन करे, न कि राज्य। यदि मेरे मित्र अनुच्छेद 13 पर दृष्टि डालें तो वे देखेंगे कि हमने यह उपबन्ध रखा है कि केन्द्र और प्रान्त दोनों मूलाधिकारों में परिवर्तन कर सकते हैं मगर शर्त यह है कि वे परिवर्तन तर्कसंगत हों। इसलिये साधारण काल में मूलाधिकारों के सम्बन्ध में विधि बनाने का प्राधिकार दोनों को प्राप्त है और कोई कारण नहीं है कि आपात-काल में राज्य इस प्राधिकार से वंचित किये जायें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** किन्तु वे आपात-काल में निलम्बित हो जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** निलम्बन का उल्लेख दूसरे अनुच्छेद में है। इस अनुच्छेद में केवल यह कहा गया है कि अनुच्छेद 13 के होते हुए भी राज्य शक्ति प्रयोग कर सकता है जिसमें संसद् तथा प्रान्त दोनों सन्निहित हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** आपात-काल में भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां। वह एक साधारण शक्ति है और अन्य मामलों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त हो सकती है। अब आपात उपस्थित न हो तो इस विषय के सम्बन्ध में दोनों विधि बना सकते हैं। इसलिए मेरे विचार से इसके लिये कोई कारण नहीं है कि आपात काल में यह शक्ति उनसे ले ली जाये। इसके विपरीत मेरी यह धारणा है कि आपात के कारण भी इस प्रकार की शक्ति राज्य को दी जानी चाहिये।

जहां तक मेरे मित्र श्री कामत की इस आलोचना का सम्बन्ध है कि इस उद्देश्य के लिए आगे का अनुच्छेद 280 पर्याप्त है, मेरे विचार से यह सारी स्थिति का मिथ्या बोध है क्योंकि जब तक रूपभेद करने की शक्ति न दी जायेगी तब तक निलम्बन करने की शक्ति का कोई महत्व न होगा। अनुच्छेद 280 एक बिल्कुल भिन्न विषय के बारे में है और उसका इस अनुच्छेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अनुच्छेद जिस रूप में उपस्थित किया गया है उसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। संशोधन संख्या 235, जिसे प्रोफ़ेसर सक्सेना ने उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में 'the State as defined in that Part' (उस भाग में परिभाषित राज्य) शब्दों के स्थान में 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में 'State' (राज्य) शब्द जहां दूसरी बार आया है वहां उसके स्थान पर 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3027 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 279 में अन्त में आये हुए शब्द 'or to take any executive action' (अथवा कोई कार्यपालिका कार्य करने) तथा 'or to take' (अथवा करने) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 279 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 279 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 279 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 280

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 280 उठाते हैं।

संशोधन संख्या 3028—डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"वर्तमान अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये।

'280. Where a Proclamation of Emergency is in operation, the President may by order declare that the right to move any court for the enforcement of the rights concerned by Part III of this Constitution and all proceedings pending in any court for the enforcement of any right so conferred shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in operation or for such shorter period as may be specified in the order.

(जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये आधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा किसी न्यायालय

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में इस प्रकार दिये गये किसी अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिये लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिए, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।)

सभा यह देखेगी कि अनुच्छेद 280 की यह शब्दावली मूल अनुच्छेद की शब्दावली से अच्छी है। अनुच्छेद 280 के मूल मसौदे में यह उपबंधित था कि उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने पर अनुच्छेद 25 को निलम्बित करने वाला राष्ट्रपति का आदेश छह मास तक प्रवर्तन में रहे। अर्थात् निलम्बन की आवश्यकता न रहने पर भी बन्दिप्रत्यक्षीकरण आदि लेखों की प्रत्याभूति निलम्बित रहेगी। यह समझा गया है कि आवश्यकता न रहने पर यह प्रत्याभूति निलम्बित न रहनी चाहिये। वास्तव में स्थिति में ऐसा सुधार हो सकता है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने पर भी प्रत्याभूति प्रभावी हो सकती है। इसलिये यह उपबंधित करने के लिये कि उद्घोषणा के अप्रवर्तित होने पर अथवा उसके अप्रवर्तित होने के पूर्व ही निलम्बन का आदेश अप्रभावी हो जायेगा, यह नया मसौदा सभा के सामने रखा जा रहा है और मुझे आशा है कि सभा उसे स्वीकार करने में किसी कठिनाई का अनुभव न करेगी।

***अध्यक्षः** श्री कामत, क्या आप संशोधन संख्या 3030 उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 3030 का विकल्प उपस्थित करूंगा। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 280 में 'by order' (आदेश द्वारा) शब्दों के बाद 'and subject to the approval of a majority of the total membership of each House of Parliament' (संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत के अनुमोदन के अधीन) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

क्या मैं अपने अन्य संशोधनों को भी अभी उपस्थित कर दूं और उन पर बाद में बोलूं? प्रोफेसर सक्सेना का भी एक संशोधन है।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, आप की अनुमति से मैं अपने अन्य तीन संशोधनों को भी उपस्थित करता हूं। पहला इस प्रकार हैः

"संशोधनों को सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'enforcement of the rights conferred by Part III of this Constitution' (इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने) शब्दों के स्थान में 'enforcement of such of the rights conferred by Part III of

this Constitution as may be specified in that order' (इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों) शब्द रखे जायें।"

दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'any right' (किसी अधिकार) शब्दों के स्थान पर 'any such right' (किसी ऐसे अधिकार) शब्द रखे जायें।"

अन्तिम संशोधन इस प्रकार है:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में अन्त में आये हुए 'the order' (आदेश) शब्दों के स्थान पर 'that order' (उस आदेश) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि सभा इन संशोधनों को स्वीकार कर लेगी तो प्रस्तावित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:–

"जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा संसद् के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत के अनुमोदन के अधीन, घोषित करेगा कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार दिये गये किसी ऐसे अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है, अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिए, जैसी कि उस आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।"

श्रीमान्, क्या मैं बाद को उस समय बोलूंगा जब प्रोफेसर सक्सेना अपना संशोधन उपस्थित कर चुकेंगे?

***अध्यक्ष:** आप अभी बोल सकते हैं। प्रोफेसर सक्सेना को केवल एक संशोधन उपस्थित करना है। आप पहले अपना भाषण समाप्त कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अच्छी बात है, श्रीमान् मैं आपको धन्यवाद देता हूं। इस अनुच्छेद पर सभा को कई दृष्टिकोण से विचार करना है। सबसे आधारभूत प्रश्न तथा इस विषय का मूल प्रश्न यही है कि संविधान के भाग 3 में जिन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है वे निलम्बित हो जायेंगे। भाग 3 में किन मूलाधिकारों का वर्णन है? जहां तक मैं समझ पाता हूं ये अधिकार किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के सम्बंध में अथवा राज्य के सम्बन्ध में अधिकार हैं। क्या यह उचित है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में आने पर ये मूलाधिकार निलम्बित हो जायें? मैंने संसार के प्रमुख संविधानों का अध्ययन किया है, यद्यपि सम्भव है उतना सावधानी से न किया हो जितनी सावधानी से डॉ. अम्बेडकर ने किया है, किन्तु किसी भी संविधान में मुझे इतना व्यापक और प्रभावशाली उपबन्ध नहीं दिखाई दिया। मैं इंग्लिस्तान के संविधान की ओर संकेत करता हूं, यद्यपि अलिखित

[श्री एच.वी. कामत]

संविधान होने के कारण उसके सम्बन्ध में बहुत नहीं कहा जा सकता है। पिछले एक अवसर पर डॉ. अम्बेडकर ने अथवा श्री कृष्णमाचारी ने 'साम्राज्य प्रतिरक्षा-अधिनियम' की चर्चा की, जिसे इंग्लिस्तान की संसद् ने 1919 अथवा 1920 में पारित किया था। यह सच है कि इस अधिनियम के अधीन वैयक्तिक स्वातंत्र्य के कुछ अधिकार निलम्बित किये गये थे किन्तु कार्यपालिका को अपनी शक्ति के दुरुपयोग से रोकने के लिए इस अधिनियम में एक बहुत ही सुन्दर उपबन्ध रख गया था। इंग्लिस्तान में 1920 के आपातशक्ति विधेयक की यह कहकर निन्दा की गई थी कि वह कांसलरी के काल के बाद पहला दमन सम्बन्धी विधेयक है। उस समय यद्यपि उसे काला विधेयक कहा गया था किन्तु उसमें भी कई ऐसे रक्षा कवच थे जिनसे अधिनियम के प्रवर्तन से अन्यथा जो कठोरता तथा अत्याचार होते उनकी सम्भावना कम हो गई। मैं इन रक्षा-कवचों में से कुछ को पढ़कर सुनाऊंगा:

"जब सम्राट आपात की उद्घोषणा करेगा तो इसकी सूचना संसद् को तुरन्त ही दी जायेगी कि वह किस कारण निकाली गई है और यदि उस समय संसद् पांच दिन से अधिक समय के लिए स्थगित या सत्रावसित हुई हो तो संसद के पांच दिन के अन्दर समवेत होने के सम्बन्ध में उद्घोषणा निकाली जायेगी और तदनुसार संसद उस उद्घोषणा में निश्चित तिथि को समवेत होगी और उसी प्रकार समवेत रहेगी तथा कार्य करती रहेगी जैसे वह उसी दिन के लिए स्थगित अथवा सत्रावसित हुई हो।

* * * * * * *

इस प्रकार जो भी विनियम बनाये जायें वे यथा सम्भव शीघ्र संसद के सामने रखे जायेंगे और इस प्रकार रखे जाने के पश्चात् सात दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेंगे जब तक कि उनको जारी रखने के सम्बन्ध में दोनों सदन किसी संकल्प को पारित न कर लें।"

यह इंग्लिस्तान का उदाहरण है। संयुक्त राज्य अमरीका में, जहां से हमने बहुत कुछ लिया है, केवल एक मूलाधिकार निलम्बित किया जा सकता है, यह मूलाधिकार बन्दिप्रत्यक्षीकरण का अधिकार है और एक महत्वपूर्ण अधिकार है। अमरीका के संविधान में यह उपबंधित है कि जब तक बलवा या आक्रमण न हो और सार्वजनिक सुरक्षा के हित में यह आवश्यक न हो, तब तक इस अधिकार को निलिम्बत न किया जायेगा। किन्तु इस सम्बन्ध में भी पर्याप्त रक्षा-कवच है, अर्थात इस अधिकार के निलम्बन को आज्ञा केवल कांग्रेस दे सकती है, अर्थात सीनेट और हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्स मिलकर ही इसकी आज्ञा दे सकते हैं। किन्तु उच्चतम न्यायालय ही यह कह सकता है कि इस अधिकार को जिस स्थिति में निलम्बित किया जा सकता है वह स्थिति उत्पन्न हो गई है या नहीं। गिलिगत के प्रख्यात मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि केवल आक्रमण की आशंका से सैनिक विधि प्रवर्तन में नहीं आ सकती है, उसकी वास्तव में आवश्यकता होनी चाहिये और आक्रमण वास्तविक होना चाहिये। कल मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक विद्रोह की केवल आशंका मात्र

न होनी चाहिये। अमरीका के संविधान में यह उपबंधित है। इसके अतिरिक्त अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि जो कुछ आक्रमण के लिए कहा जा सकता है वह बलवे के लिए भी कहा जा सकता है। उसने यह कहा कि संविधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बन्दिप्रत्यक्षीकरण का अधिकार तब तक निलम्बित न किया जायेगा जब तक कि बलवे अथवा आक्रमण की दशा में राज्य की सुरक्षा के हित में इसकी वास्तव में आवश्यकता न हो। वह केवल विधान-मंडल की घोषणा से सुव्यवस्था के उद्देश्य से निलम्बित न किया जायेगा और इसका निर्णय न्यायालय करेगा कि वह कब निलम्बित किया जाये। मुझे खेद है कि यद्यपि डॉ. अम्बेडकर और उनकी विचारधारा के अन्य लोग गर्व से यह कहते हैं कि उन्होंने इंग्लिस्तान और अमरीका के संविधानों से अमुक-अमुक बातें ली हैं, किन्तु उन्होंने हमारे संविधान में वहां के कुछ रक्षा कवचों को स्थान देने का प्रयास नहीं किया। यदि अब देर नहीं हो गई है तो मैं डॉ. अम्बडेकर तथा उनके बुद्धिमान सहकारियों की टोली से पूछता हूं कि वे इस विषय की सावधानी से परीक्षा करें और इस पर विचार करें कि अनुच्छेद 280 के अधीन कार्यपालिका को जो शक्ति प्रदान की गई है उसके दुरुपयोग को रोकने के लिए क्या कुछ रक्षा कवच उपबंधित नहीं किये जा सकते हैं।

श्रीमान्, जहां तक इस अनुच्छेद के विवरण का सम्बन्ध है, इस अनुच्छेद में अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत मूलाधिकारों का निर्देश है। सभा इस ओर ध्यान देगी कि भाग 3 में कई प्रकार के मूलाधिकारों का वर्णन है। वे एक समान नहीं हैं। उनका रूप तथा उनका विषय भिन्न है और वे जिन विषयों के बारे में हैं उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 11 में.....

*__अध्यक्ष:__ क्या माननीय सदस्य महोदय इस भाग के प्रत्येक खण्ड और उपखण्ड की चर्चा करना चाहते हैं?

*__श्री एच.वी. कामत:__ जी नहीं, केवल उतनी ही चर्चा करना चाहता हूं जितनी मेरे तर्क के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक है।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से सदस्य मूलाधिकारों से परिचित हैं और माननीय सदस्य महोदय सामान्यत जो बातें कहना चाहे उनमें मूलाधिकारों का विवरण न दें।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं आपके निर्णय का अनुकरण करूंगा। मैं केवल उन अनुच्छेदों की चर्चा कर रहा हूं जो मेरे संशोधनों से सम्बंधित हैं। आज जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह संशोधन संख्या 1 है। वह एक नवीन संशोधन है और उसमें मैंने यह कहा है कि 'अधिकारों को प्रवर्तित कराने' शब्दों के स्थान पर 'इस संविधान के भाग 2 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिए जैसे कि इस आदेश में वर्णित हो' शब्द रखे जायें।

मैंने यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 13 द्वारा कुछ ऐसे अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है जो किसी भी दशा में, गम्भीर आपात की

[श्री एच.वी. कामत]

दशा में भी, प्रतिसंहृत नहीं हो सकते है। अनुच्छेद 13 द्वारा कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनका न निराकरण हो सकता है न न्यूनन अथवा शून्यन ही, जैसे कि अनुच्छेद 11, जिसके द्वारा अस्पृश्यता का शून्यन किया गया है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण अधिकार है। क्या इसका अर्थ यह है कि आपात उपस्थित होने पर हम प्रचलित निषेधों की आज्ञा दे देंगे और चाहे जो भी व्यक्ति जिस रूप में भी अस्पृश्यता को लागू करे हम उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करेंगे? इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार भी हैं, किन्तु जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मैं विवरण देकर आप के निर्णय का उल्लंघन नहीं करना चाहता। मैं केवल अस्पृश्यता सम्बन्धी, शिक्षा-सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक अधिकारों की चर्चा करूंगा। यदि सभा के सदस्य उनका ध्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे और डॉ. अम्बेडकर इस विषय पर विचार करेंगे तो उन्हें विदित जायेगा कि कुछ अधिकार ऐसे हैं जो किसी भी दशा में निलम्बित नहीं किये जा सकते, चाहे कितना ही गंभीर आपात क्यों न उपस्थित हो जाये। इसलिये मैंने इस अनुच्छेद को इस प्रकार संशोधित करने का प्रयास किया है कि आदेश में उन अधिकारों का उल्लेख रहे जिनका निराकरण, न्यूनन अथवा निलम्बन करने की आवश्यकता हो।

अन्य दो संशोधन केवल शाब्दिक संशोधन हैं और मैं उनके बारे में नहीं बोलना चाहता। मैं यह चाहता हूं कि मसौदा-समिति उन पर बुद्धिमता से विचार करे क्योंकि मैं समझता हूं कि मैं सम्भवत: उतना बुद्धिमान नहीं हूं जितने कि उसके सदस्य।

संशोधनों को छपी हुई सूची का संशोधन संख्या 3030 एक सारवान संशोधन है और उसका आशय यह है कि सभी मूलाधिकारों को, अथवा उनमें से किसी को निलम्बित करने वाले राष्ट्रपति का आदेश का अनुमोदन संसद करे। हम इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 275 और 278 में उपबन्ध रख चुके हैं। अनुच्छेद 278 में यह निर्धारित किया गया है कि जो भी उद्घोषणा की जायेगी, वह अनुमोदन के लिए संसद् के सामने रखी जायेगी। अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) (ख) और (ग) में यह स्पष्ट शब्दों में निर्धारित है कि उद्घोषणा अनुमोदन के लिये संसद् के सामने रखी जायेगी। क्या इसका अर्थ यह है कि उद्घोषणा के संसद् द्वारा अनुमोदित होने पर राष्ट्रपति आदेश निकाल कर जो चाहे कर सकता है? यदि यह बात है तो यह बहुत ही दूषित अनुच्छेद है। मूलाधिकारों का निलम्बित होना कोई साधारण बात नहीं है। वह एक गम्भीर बात है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि राज्य में जो गम्भीर से गम्भीर आपात उपस्थित हो उससे भी उसकी गम्भीरता अधिक है। क्या उस स्थिति के लिए राष्ट्रपति को हमने यह शक्ति दी है कि वह आदेश निकालकर घोषित करे कि अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार निलम्बित किये जाते हैं? मुझे आशा है कि यह बात नहीं है। मुझे आशा है कि सभा का उद्देश्य यह नहीं है। चाहे यह अनुच्छेद आज सभा के सामने जिस रूप में भी रखा गया हो परन्तु मुझे आशा है कि वह उसे जल्दी में स्वीकार न करेगी, बल्कि इसके विपरीत उस पर गम्भीरता से विचार करेगी। मुझे आशा है कि सभा इस अनुच्छेद पर अधिक विस्तृत रूप में विचार करेगी और उसमें कुछ अधिक रक्षा-कवच प्रविष्ट करने के हेतु उसे संशोधित कर लेगी। मैंने केवल इस उद्देश्य से अपना संशोधन उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में, अर्थात मूलाधिकारों को निलम्बित करने के सम्बन्ध में, जो भी आदेश निकाले वह आपात की उद्घोषणा के समान

संसद् के सामने रखा जाये। यदि संसद् उसका अनुमोदन करे तो ठीक है, किन्तु यदि वह उसका अनुमोदन न करे तो वह प्रवर्तन में न आना चाहिये। यद्यपि हम यह आशा करते हैं, और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हमारा राष्ट्रपति बुद्धिमान हो किन्तु, जैसाकि मैं कह चुका हूं, हमारे संविधान में इसकी प्रत्याभूति नहीं है कि राज्य के सर्वोच्च पद पर मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की कल्पना का कोई दार्शनिक सम्राट निर्वाचित होकर आसीन होगा। मनुष्य की जो कमजोरियां हैं वे रहेंगी ही। यदि राष्ट्रपति यह आदेश निकाल देगा कि सभी मूलाधिकार निलम्बित किये जाते हैं तो प्रस्तावित अनुच्छेद में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन संसद इस विषय पर विचार कर सके। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने इससे कुछ अधिक कठोर संशोधन की सूचना दी है। मुझे केवल इससे संतोष हो जायेगा कि यदि संसद् के समवेत होने के पूर्व राष्ट्रपति कोई आदेश निकाले तो वह संसद के सामने रखा जाना चाहिये ताकि वह उस पर विचार-विमर्श कर सके और उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सके। श्रीमान्, हम हमेशा यही कहते रहते हैं कि संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित है। इटली की संविधान-सभा के सम्मुख भी, जो दो वर्ष पूर्व द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् समवेत हुई थी, इससे कम संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित न थी। राज्य में बलवा होने की आशंका थी और साम्यवादी राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हो रहे थे। इटली रूसी गुट और पश्चिमी गुट के बीच में एक सीमावर्ती राज्य था और इसलिये उसे बहुत दबाव सहन करना पड़ता था। इस पर भी इटली की संविधान-सभा, जिसने 1947 में अपना संविधान अंगीकार किया, इतने आगे नहीं बढ़ी जितने आगे हम आज बढ़ रहे हैं। उसने क्या किया? उसको एक बहुत ही संकटपूर्ण स्थिति का सामना करना था—पड़ौस में साम्यवादी थे और राज्य में बलवे का डर था। हमने हाल ही में समाचार पत्रों में पढ़ा था कि जब अटलांटिक संधि का अनुसमर्थन हुआ था तो इटली की विधान-सभा में अर्थात् चैम्बर आफ डिपुटीज में झगड़ा-फसाद हो गया। राज्य में गंभीर संकट उपस्थित होने पर उसका सामना करने के लिए वहां की संविधान सभा ने एक अनुच्छेद तो स्वीकार किया किन्तु उसमें यथोचित रक्षा-कवच रख दिये। वहां के संविधान का वह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "जब असाधारण स्थिति उपस्थित होने पर सरकार को इसकी आवश्यकता पड़े कि वह अपने दायित्व से ऐसी कार्यवाही करे जिसका विधि का प्रभाव हो तो सरकार को उसी दिन (इंग्लिस्तान के अधिनियम में यह उपबन्ध है कि संसद् का पांच दिन के अन्दर आह्वान किया जाना चाहिये) उसे विधि का रूप देने के लिए चैम्बर के सामने रखना चाहिये। किन्तु यदि वह विघटित हो गया हो तो इस उद्देश्य से उसका आह्वान किया जाना चाहिये और उसे पांच दिन के अन्दर समवेत होना चाहिये। इन आदेशों को यदि, प्रकाशित होने के 60 दिन के अन्दर, विधि का रूप नहीं दिया गया हो तो ये जारी होने के दिन से ही अप्रभावी हो जायेंगे। किन्तु चैम्बर ऐसे आदेशों से उद्भूत राजनैतिक सम्बन्धों का विनियमन कर सकते हैं, जिनको विधि का रूप न दिया गया हो।"

यहां भी चैम्बर को ही शक्ति प्रदान की गई है।

[श्री एच.वी. कामत]

मैं सभा के सामने इंग्लिस्तान, अमरीका और इटली के संविधानों के उदाहरण रख चुका हूं। मैं अन्य संविधानों के उदाहरण भी दे सकता हूं किन्तु अब मैं अधिक उदाहरण न दूंगा। मुझे किसी भी संविधान में इतना व्यापक उपबन्ध नहीं दिखाई दिया जितना कि इस अध्याय का विचाराधीन उपबन्ध है।

मुझे एक बात और कहनी है और वह यह है। हम अनुच्छेद 278 में उपबंधित कर चुके हैं कि राज्यपाल से प्रतिवेदन न मिलने पर भी राष्ट्रपति उद्घोषणा जारी कर सकता है। मेरे विचार से अनुच्छेद 275 के अधीन यदि सारे भारत पर अथवा उसके किसी भाग पर बाहर से आक्रमण होने की अथवा वहां आभ्यन्तरिक अशांति की आशंका हो तो राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा कर सकता है। यदि बिना राज्यपाल से प्रतिवेदन प्राप्त हुए ही राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा करता है और उसके पश्चात् आवश्यक कार्यवाही करके मूलाधिकारों को निलम्बित कर देता है तो एक गम्भीर संकट उपस्थित हो सकता है। किसी राज्य का राज्यपाल अथवा राज्य प्रमुख अथवा वहां के अन्य अधिकारी यह समझेंगे कि उनसे कुछ नहीं पूछा गया है और उनकी उपेक्षा की गई है, जिसके फलस्वरूप बहुत कलह उत्पन्न हो सकता है। ईश्वर न करे कि ऐसा हो, किन्तु राज्य के अधिकारी राजप्रमुख, राज्यपाल, उसके मंत्री अथवा अन्य प्रशासन केन्द्रीय सरकार अथवा राष्ट्रपति से असहयोग करने लगेंगे और आपात की उद्घोषणा के अधीन जो आदेश निकाले गये हों उन्हें स्वीकार न करेंगे और प्रवर्तन में नहीं लायेंगे। मुझे विश्वास है कि हममें से कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो। इसलिये इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये, तथा इन सम्भावनाओं और संकटों पर गम्भीरता से विचार करने के पश्चात्, मैंने यह अनुभव किया कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 के रूप में जो अनुच्छेद उपस्थित किया गया है (यद्यपि दुर्भाग्य से उसकी भाषा दूषित है), अर्थात् अनुच्छेद 280 के परिणामस्वरूप मेरे विचार से लोगों के स्वातंत्र्य ही गम्भीर संकट में न पड़ जायेंगे बल्कि संघागों की शक्तियां भी संकट में पड़ जायेंगी। मैं विनम्रता से तथा पूरे जोर से फिर यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस सभा को इस अनुच्छेद पर ठंडे दिल से विचार करना चाहिये और इसमें ऐसे रक्षा-कवचों को उपबंधित कर देना चाहिये जिनसे कार्यपालिका की शक्ति का दुरुपयोग न हो सके क्योंकि मुझे विश्वास है कि यदि यह अनुच्छेद उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया जिस रूप में यह सभा के सामने उपस्थित किया गया है तो कार्यपालिका की शक्ति का अवश्य ही दुरुपयोग होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 में 'the President may by order declare' (राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा) शब्दों के स्थान पर 'the Parliament may by law provide' (संसद विधि द्वारा उपबन्धित कर सकेगी) शब्द रखे जायें और अन्त में आये हुए शब्द 'the Order' (आदेश) के स्थान पर 'that law' (उस विधि) शब्द रखे जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां संसद् विधि द्वारा उपबंधित कर सकेगी कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार, तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार दिये गये अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां, उस कालावधि के लिए जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है, अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि उस विधि में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेंगी।"

मेरी यह प्रबल इच्छा है कि यह अनुच्छेद ही निकाल दिया जाये क्योंकि इससे पहले के जिस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं अपना विरोध प्रकट कर चुका हूं उससे भी यह अनुच्छेद अधिक व्यापक है। उस अनुच्छेद से अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं का अपहरण नहीं होता। यह अनुच्छेद उससे कहीं आगे बढ़ गया है। वास्तव में संविधान में नागरिकों की जो संविधानिक स्वतंत्रतायें उपबन्धित हैं उनका इससे निराकरण हो जाता है। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 25 की ओर दिलाता हूं जिसमें कहा गया है कि:

"इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।"

जब कभी इन अधिकारों में हस्तक्षेप हो, उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उस मामले को रखा जा सकता है। इसका दूसरा खण्ड इससे भी महत्वपूर्ण है, उसमें कहा गया है कि:

"इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश या आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दिप्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।"

खण्ड (3) में कहा गया है:

"संसद् विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (2) के अधीन प्रयोग की जाने वाली सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।"

खण्ड (4) में कहा गया है:

"इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित अवस्था को छोड़कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायेगा।"

इस अनुच्छेद द्वारा हम नागरिकों की स्वतंत्रताओं के बारे में उच्चतम न्यायालय की शक्तियों पर आघात कर रहे हैं। हमने केवल अनुच्छेद 13 द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं के सम्बन्ध में बल्कि सभी अधिकारों के सम्बन्ध में और साथ ही नागरिकों के बन्दिप्रत्यक्षीकरण का लेख प्राप्त करने के अधिकार के सम्बन्ध में

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

भी उसकी शक्ति पर आघात कर रहे हैं। जब मैंने यह अनुच्छेद पढ़ा तो मुझे 1942 की महान क्रांति स्मरण हो आई, जब भारत ने स्वातंत्र्य संग्राम छेड़ा था और हम केवल ऐसे काल्पनिक आरोपों के आधार पर काल-कोठरियों में बन्द कर दिये गये थे जैसे सम्राट के विरुद्ध संग्राम करना, इत्यादि। उस समय भी ब्रिटिश सरकार ने दंड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 491 में प्रत्याभूत उच्च-न्यायालयों की बन्दिप्रत्यक्षीकरण के लेखों को निकालने की शक्ति को निलम्बित नहीं किया। मुझे स्मरण है कि कई बन्दियों ने बन्दिप्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी धारा के अधीन आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये और वे उच्च-न्यायालय के सामने उपस्थित हुए तथा उनके मामलों की सुनवाई हुई। किन्तु स्वतन्त्र भारत में हम इस आधारभूत अनुच्छेद के निलम्बन के लिए उपबन्ध रख रहे हैं। यदि यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया गया तो दंड प्रक्रिया-संहिता की धारा 491 अप्रभावी हो जायगी। यदि कोई युद्ध दस वर्ष तक रहा तो क्या उस बीच किसी व्यक्ति को बन्दिप्रत्यक्षीकरण के लेख के लिए उच्चतम-न्यायालय के सामने आवेदन-पत्र रखने का अधिकार न होगा? इससे नौकरशाही को किसी भी व्यक्ति को अकारण गिरफ्तार करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। कोई व्यक्ति न्याय के लिये उच्चतम न्यायालय के सामने न जा सकेगा। मेरे विचार से किसी भी आपात के उपस्थित होने पर उच्चतम न्यायालय को न्याय करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिये। आखिर इस संविधान के अधीन जिस उच्चतम न्यायालय का गठन किया जायेगा, उसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश करेगा और मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रपति कार्यपालिका के परामर्श से नियुक्त करेगा। इसके अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश भी प्रख्यात व्यक्ति होंगे और बहुत कुछ इसी प्रकार नियुक्त किये जायेंगे। क्या आपात के समय इस प्रकार के सज्जनों का विश्वास नहीं किया जा सकता? यह मेरी समझ में नहीं आता कि हम कार्यपालिका का कैसे विश्वास कर सकते हैं क्योंकि वह तो नागरिकों के स्वातंत्र्य को भी कुचल सकती है। यह मेरी समझ में आता है कि आपातकाल के लिये रक्षा-कवच रखे जाने चाहियें किन्तु यह समझ में नहीं आता कि नागरिकों की स्वतंत्रता का पूर्णतया अपहरण क्यों किया जाये। संसार के किसी भी संविधान में मुझे ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। इसलिये मैं यह आग्रह करता हूं कि इस अनुच्छेद को संविधान से निकाल देना चाहिये किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो मेरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, जिसके अधीन संसद् किसी भी ऐसी विधि को बना सकती है जो आपात के लिये आवश्यक हो। राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि उद्घोषणा निकाली जाये और इसके पश्चात् संसद् कार्यपालिका का समर्थन कर सकती है। मेरी समझ में नहीं आता कि संसद् को आपात सम्बन्धी विधियों का अधिकार प्रदान करने में क्या हानि है। केवल राष्ट्रपति को ही यह शक्ति क्यों प्राप्त हो जबकि इसका अर्थ यह है कि यह शक्ति कार्यपालिका को प्राप्त होगी? संसद् को यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि आपात-काल में किस प्रकार की कार्यवाही की जाये। मेरे विचार से इस अनुच्छेद की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि इसकी आवश्यकता समझी गई तो मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाना चाहिये और संसद को आपात-काल में भी हमारे स्वातंत्र्य को सुरक्षित करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। हमें किसी के लिये यह कहने की गुंजाइश न रखनी चाहिये कि हमने अपनी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद का अविश्वास किया और एक व्यक्ति को शक्ति प्रदान कर दी।

मेरे मित्र श्री कामत ने यह दिखाने के लिए कई अनुच्छेदों के उद्धरण सुनाये कि तेरहवें अध्याय को पूर्णतया निलम्बित करने में कितनी मूर्खता है। मुझे देख कर यह आश्चर्य हुआ कि मसौदा-समिति इसे आवश्यक समझती है। इस अध्याय में कुछ ऐसे अनुच्छेद हैं जिनका आपात से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हें निलम्बित क्यों किया जाये? यदि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में आया तो विभेद भी बरता जा सकता हैं इससे हमने नागरिकों को जो मूलाधिकार प्रदान किये हैं उनमें सन्निहित सिद्धांत का ही खण्डन हो जायेगा। हमने नागरिकों के बीच भेदभाव को निषिद्ध ठहराया है और अस्पृश्यता आदि के सम्बन्ध में भी सम्बन्ध रखे हैं। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का मसौदा बनाने में स्थिति पर यथोचित विचार नहीं किया गया और वह सावधानी से तैयार नहीं किया गया। मैं कह नहीं सकता कि डॉ. अम्बेडकर इस उपबन्ध का समर्थन किस तर्क से कर सकते हैं। पिछले अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन उपस्थित किया था उसके बारे में उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि सभी राज्यों के विधान-मंडलों को अनुच्छेद 13 का खण्डन करने वाली विधियों को बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। यह समझ में आ सकता है। मैं यह चाहता था कि यह शक्ति संसद् को प्रदान की जाये। उन्होंने कहा कि यह शक्ति राज्यों को भी प्राप्त होनी चाहिये। किन्तु इस अनुच्छेद में यह शक्ति, अर्थात् आदेश देने की शक्ति, केवल राष्ट्रपति को दी गई है और राज्यों का प्रश्न ही नहीं उठाया गया है। मैं केवल यह चाहता हूं कि यह कार्य संसद विधि द्वारा करे। आप राष्ट्रपति को एक स्वेच्छाचारी शासक क्यों बनाना चाहते हैं? यदि मेरा सीधा-सादा संशोधन स्वीकार न किया गया और लोगों के मूलाधिकार सुरक्षित न किये गये तो उनके हृदय में संविधान सभा के प्रति तथा उसके बनाये हुए संविधान के प्रति, अधिक आदर-भाव न रह जायेगा क्योंकि इस अनुच्छेद से हमारे स्वातंत्र्य के मूल पर ही कुठाराघात होता है। इसलिये इसे हमारे संविधान में स्थान न देना चाहिये अथवा कम से कम मेरे प्रस्तावनानुसार संशोधित कर देना चाहिये।

*__अध्यक्षः__ पंडित कुंजरू ने अनुच्छेद 280 के सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना दी है। वह छपी हुई अनुपूरक सूची का संशोधन संख्या 211 है।

*__श्री तजम्मुल हुसैन__ (बिहार: मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा भी एक संशोधन है।

*__अध्यक्षः__ वह काहे के बारे में है?

*__श्री तजम्मुल हुसैनः__ वह अनुच्छेद को निकालने के सम्बन्ध में है।

*__अध्यक्षः__ वह निराकरण मूलक है। आप प्रस्ताव के विरुद्ध मत दे सकते हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, कल आपने एक ऐसे प्रस्ताव को उपस्थित करने की आज्ञा दी थी जिससे एक अनुच्छेद का निराकरण होता था।

*__अध्यक्षः__ वह इसलिये दी थी कि मसौदा-समिति ने ही उसे उपस्थित किया था।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मेरे विचार से नियमों का सब पर समान प्रभाव होना चाहिये।

***अध्यक्षः** मसौदा-समिति को किसी अनुच्छेद को निकालने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार है। सदस्य इस प्रकार के प्रस्ताव को संशोधन के रूप में उपस्थित नहीं कर सकते।

डॉ. कुंजरू, क्या आप अपना संशोधन उपस्थित करना चाहते हैं?

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** जी हां, श्रीमान्। मैं प्रस्ताव यह उपस्थित करता हूं किः

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3028 में प्रस्तावित अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः–

'280. Suspension of the enforcement of certain fundamental rights during Emergencies.

Where a Proclamation of Emergency is in operation the President may, by order, declare that the right to move any court for the enforcement of any of the rights conferred by articles 13, 14, 15, 16 and 24 of this Constitution and all proceedings pending in any court for the enforcement of any such rights shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in operation or for such period as may be specified in the order."

(जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 13, 14, 15, 16 और 24 द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए किसी न्यायालय के प्रचलन का अधिकार तथा किसी न्यायालय में इस प्रकार के किन्हीं अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिए, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेंगी।)

इस संशोधन का उद्देश्य बहुत सीधा-सादा है। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह सभी मूलाधिकारों के बारे में है। मैं यह चाहता हूं कि अनुच्छेद 280 का प्रवर्तन कुछ ही अधिकारों तक सीमित रहे। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति के आपात की उद्घोषणा निकालने के पश्चात् सभी मूलाधिकार निलम्बित कर दिये जायें। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति के चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो, किसी होटल में टिकने अथवा भोजनालय में जाने अथवा सार्वजनिक कुंवे से पानी निकालने के अधिकार को लीजिये। क्या जब तक आपात की घोषणा प्रवर्तन में रहेगी, यह अधिकार निलम्बित रहेगा? उद्देश्य केवल यह है कि जहां तक वाद्स्वातंत्र्य के अधिकार अथवा संस्था बनाने के अधिकार अथवा शांतिपूर्वक सम्मिलन के अधिकार का सम्बन्ध है वह जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्त में रहे तब तक देश के न्यायालयों द्वारा प्रयोग में न आना चाहिये। इस विषय के सम्बन्ध में मैं डॉ. अम्बेडकर के मत से पूर्णतया सहमत नहीं हूं। मैं उनके आलोचकों के कई विचारों से सहमत हूं, किन्तु मैं यह समझता हूं कि उनका

उद्देश्य यह है कि गम्भीर संकट उपस्थित होने पर सुव्यवस्था स्थापित करने में राज्य के मार्ग में रस्मी बातों से रुकावट न पैदा होनी चाहिये। किन्तु देश में अशान्ति समाप्त करने के लिए अथवा बाह्य आक्रमण का सामना करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि लोगों के सभी मूलाधिकारों का अपहरण किया जाये। केवल यह आवश्यक है कि संविधान में अधिकारों की प्रत्याभूति होते हुए भी उनमें से ऐसे अधिकार विधि द्वारा प्रयोग में न आने चाहियें जिनके अबाध-प्रयोग से शांति की पुनर्स्थापना के मार्ग में कठिनाइयां उठ खड़ी हों। मेरे विचार से यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो इस सीमित उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी। मेरी समझ से इसकी आवश्यकता नहीं है कि इस अनुच्छेद की परिधि इससे अधिक विस्तृत की जाये। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो कितनी ही गम्भीर स्थिति क्यों न उत्पन्न हो जाये, राज्य को उस पर काबू पाने के लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी। किसी भी स्थिति में सभी मूलाधिकारों को निलम्बित करने की न तो आवश्यकता ही है और न उन्हें निलम्बित करना उचित ही है। यदि यह किया गया तो यह एक खेदजनक बात होगी। मेरे संशोधन से कार्यपालिका को संकट-काल के प्रयोजनों के लिए सभी आवश्यक शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं, और इसलिये मुझे आशा है कि सभा उसे स्वीकार करेगी।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्तः जनरल): श्रीमान्, इसे दृष्टि में रखते हुए कि मसौदा-समिति की इच्छानुसार सभा अनुच्छेद 279 को स्वीकार कर चुकी है, मेरे विचार से अनुच्छेद 280 को पारित करने से एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। सभा भविष्य की सरकारों को आपात के उपस्थित होने पर यह महत्वपूर्ण मूलाधिकारों के उल्लंघन का अधिकार दे चुकी है। यदि अब राज्यों को उच्चतम न्यायालय की शक्ति का भी उल्लंघन करने का अधिकार दिया गया तो, मेरे विचार से, हम बहुत आगे बढ़ जायेंगे। मेरे मित्र श्री शिब्बनलाल और श्री कामत में भावी सरकारों को यह शक्ति प्रदान करने का विरोध किया है और मैं उनके विचारों से सहमत हूं। आपात की उद्घोषणा तभी करनी होगी, जब देश की शान्ति अथवा सरकार का अस्तित्व संकट में पड़ जाये। हमें यह समझना चाहिये कि शासकों की प्रवृत्ति शासितों के विरुद्ध ही रहती है। इसलिये अपने देश का संविधान बनाते समय में यह न भूलना चाहिये कि लोगों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का भी राज्य के प्राधिकार से विरोध रहता है और हमें परस्पर विरोध में असंतुलन न आने देना चाहिये। राजनैतिक अधिकार प्रदान करते समय हमें शासकों और शक्तियों के अधिकारों में सामंजस्य पैदा करना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकतंत्रात्मक राज्य में लोगों की इच्छानुसार ही सरकार का संगठन होता है, किन्तु फिर भी जब एक बार राज्य सुसंगठित रूप धारण कर लेता है तो लोग सक्रिय नहीं रह जाते। राज्य ही लोगों पर शासन करता है। अपना ही उदाहरण लीजिये। आज संविधान सभा के सदस्य ही शासक हैं। वास्तव में भारतीय राज्य का पूर्ण प्राधिकार संविधान सभा (विधायी) के हाथ में है। हम शक्ति का प्रयोग करते हैं। हम किस पर यह शक्ति प्रयोग करते हैं? हम यह शक्ति प्रयोग उन लोगों पर करते हैं जिनके प्रतिनिधित्व का हम दावा करते हैं। क्या प्रशासन में हमारे निर्वाचकों का कोई हाथ है? क्या उसके संचालन में उनके मत को कोई प्रभाव होता है? जी नहीं। हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हम हमेशा इसी प्रकार बने रहेंगे। यह हमेशा होता है कि जब कोई व्यक्ति किसी दायित्वपूर्ण पद पर आरूढ़ होता

[श्री महावीर त्यागी]

है तो वह यह समझता है कि वह पद प्रभाव-पूर्ण होना चहिये और उसे अधिकाधिक शक्तियां प्राप्त होनी चाहिये। यह वह इसलिये समझता है कि उसे आत्मविश्वास होता है। वह यही धारणा बना लेता है कि किसी पद के साथ जो शक्तियां प्राप्त होती हैं उनका दुरुपयोग हो ही नहीं सकता। किन्तु उसे यह भी समझना चाहिये कि किसी पद पर एक ही व्यक्ति हमेशा आसीन नहीं रहता। आगे चलकर कोई दूसरा व्यक्ति भी उस पर आसीन हो सकता है। इसलिये राज्य को अधिक शक्ति देते हुए हमें, लोक-प्रतिनिधि होने के नाते तथा लोगों के अधिकारों के निर्णायक होने के नाते भी, इसे ध्यान में रखना चाहिये कि राज्य भी दूसरों के हाथ में जा सकता है। यह भी हो सकता है कि भविष्य की सरकारों को लोगों के अधिकारों को इतनी चिन्ता न हो और वे इन शक्तियों का दुरुपयोग भी करें। लोग राज्य की धांधली का निराकरण न्यायालय में ही करा सकते हैं। इसलिये यदि हम प्रोत्साहन पाकर राज्य की न्यायपालिका से भी आगे बढ़ने अथवा उसका उल्लंघन करने की शक्ति प्रदान कर देते हैं तो जंगलीपन ही जंगलीपन रह जायेगा। सरकार पर, अथवा लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ न रह जायेगा। श्रीमान्, मुझे केवल भारत का ही अनुभव है किन्तु मेरे कई माननीय मित्रों ने, जिन्होंने विदेशों के बारे में पुस्तकें पढ़ी हैं और वहां की राजनीति को भी देखा है, एक भिन्न प्रकार के लोकतंत्र की कल्पना कर रखी है। मैं उनके अनुभव और ज्ञान के महत्व को मानता हूं किन्तु मुझे यह दिखाई देता है कि उनके विचार बाहर से ग्रहण किये हुए हैं। मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे भारतीय लोकतंत्र के विकास का अध्ययन करें। जिस प्रकार यहां लोकतंत्र प्रयोग में लाया जा रहा है क्या वे उससे संतुष्ट हैं? श्रीमान्, मैंने जो कुछ अपनी आंखों देखा है उसी पर मेरे विचार आधृत हैं। यहां की सरकार तथा विभिन्न प्रान्तों की सरकारें कह तो सकती हैं कि वे लोगों की सरकारें हैं। आज लोगों की इस प्रकार की सरकारें सारे भारत भर में हैं और ऐसे क्षेत्रों में भी हैं जो पहले देशी राज्य कहे जाते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शासन लोगों का ही है किन्तु फिर भी यह बात रह ही जाती है कि व्यवहार में शासन की प्रवृत्ति लोगों के विरुद्ध होती है मेरे विचार से केवल मतों से कोई सरकार लोगों की सरकार नहीं हो जाती। निसन्देह तर्क से तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि चूंकि लोगों ने सरकार के पक्ष में मत दिये हैं इसलिये सरकार लोगों की सरकार है और वह सरकार यह भी कह सकती है कि वास्तव में लोग ही शासन कर रहे हैं। किन्तु यह सच नहीं है। लोगों ने केवल एक बार मत दिया। निर्वाचन के पश्चात् वे राजनीति से अलग हो गये और फिर उनका सरकार पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया। दूसरे निर्वाचन तक अथवा ऐसे समय तक जब उन्हें मत देने का अवसर प्राप्त होगा, वे लोकतंत्र के सुसुप्त साझीदार बने रहेंगे। हमें सरकार को पदच्युत करने का अधिकार नहीं है। एक बार सरकार के पक्ष में मत देने के पश्चात् लोगों को सरकार को पदच्युत करने अथवा उसकी आलोचना करने का अधिकार नहीं रह जाता, जब तक कि नया निर्वाचन न हो। इसलिये राज्य को, अथवा सरकार को, हम जो कोई अधिकार चाहे दें किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उनका प्रयोग लोकहित में ही होगा। इस समय भारत में जिस प्रकार का लोकतंत्र है, उसके प्रति लोगों के हृदय में कुछ भी महत्व नहीं है, उन्हें केवल यह अधिकार प्राप्त है कि वे न्यायपालिका के सामने स्वतंत्रता से उपस्थित हो सकते हैं। जो लोग यह समझे कि उनके मूलाधिकारों अथवा अन्य

अधिकारों का खण्डन हुआ है, वे न्यायालय के सामने अपने मामले को रख सकते हैं। केवल इस प्रत्याभूति से और भी इसी सुरक्षा से लोगों को संतोष हो सकता है। यदि लोगों से यह कहा गया कि भारत में राज्य ही सर्वसत्ताधारी है और वह उच्चतम न्यायालय का भी उल्लंघन कर सकता है, तो उन्हें अपनी सुरक्षा और अपने अस्तित्व पर विश्वास न रह जायेगा। स्वाधीन न्यायपालिका से सुरक्षा का, तथा राज्य के अत्याचार से मुक्ति का आश्वासन केवल जनसाधारण को ही नहीं मिलता है किन्तु जब कभी समाज के उत्पीड़न से किसी व्यक्ति के अधिकारों और विशेषाधिकारों का हनन होता है तो उस समय वह अपना आत्मविश्वास खो नहीं बैठता। यदि समाज किसी एक व्यक्ति के प्रति भी कठोर होता है तो उस व्यक्ति को भी सुरक्षा तथा यह प्रत्याभूति प्राप्त होनी चाहिये कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है और अकेले भी जीवन-निर्वाह कर सकता है। उसे यह प्रत्याभूति भी प्राप्त होनी चाहिये कि उसे अन्याय सहन नहीं करना पड़ेगा और उसके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार किया जायेगा। यह प्रत्याभूति उसे तभी मिल सकती है जब उसे यह विश्वास हो कि न्यायालय की सत्ता सर्वोच्च है। यदि सारा समाज भी उसके विरुद्ध हो जाये तो उसे भारत का नागरिक होने के नाते यह प्रत्याभूति प्राप्त रहेगी कि वह रक्षा और सहायता के लिए उच्चतम न्यायालय के सामने जा सकता है। इसलिये, मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद की भयंकर प्रतिक्रिया होगी। इससे किसी व्यक्ति को यह विश्वास न रह जायेगा कि विधि का न्यायपूर्ण प्रवर्तन होगा। इसी विश्वास पर लोग समाज से नाता जोड़े हुए रहते हैं। इस सुरक्षा के अभाव में समाज विघटित हो जायेगा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में जो सिद्धान्त सन्निहित है वह बहुत निन्दनीय है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं इसके पक्ष में मत नहीं दे सकता। यदि सारी सभा भी सरकार को ये शक्तियां प्रदान करने के पक्ष में है, चाहे वे आपातकाल के मिले ही क्यों न हो, मैं यह चाहता हूं कि इसका उल्लेख रहे कि मैं इसके विरुद्ध हूं और हमेशा इसके विरुद्ध रहूंगा (वाह, वाह)। मेरे विचार से किसी भी परिस्थिति में किसी व्यक्ति को न्यायापालिका को परिचालित कराने के अधिकार से वंचित न करना चाहिये। श्रीमान्, जो मसौदा हमारे सामने रखा गया है उसे यदि हम स्वीकार करेंगे तो, यद्यपि मैं कह नहीं सकता कि यह तर्कयुक्त है या नहीं, क्योंकि वकील ही इसका निर्णय कर सकते हैं, किन्तु मेरी यह धारणा है कि कोई भी मूलाधिकार सुरक्षित नहीं रहेगा और जीवन और सम्पत्ति की तथा राजनैतिक स्वातंत्र्य तथा राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा का भी आश्वासन न रहेगा। इसे दृष्टि में रखते हुए कि राजनैतिक दल लोकतंत्रात्मक व्यवहार से सुपरिचित नहीं हैं, हमें भविष्य में यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिये कि लोगों को केवल ऐसे साधारण कारणों के आधार पर फांसी पर लटकाने का आदेश दे दिया गया कि उनका पदारूढ़ लोगों से मतैक्य नहीं है। यह सब कुछ आपात के नाम पर किया जायेगा। सम्भव है कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर फांसी पर चढ़ने वाले लोगों को किसी प्रकार न्यायालय में उपस्थित करा सकें, किन्तु मेरे विचार से इसके लिए कोई अवसर न मिलेगा, क्योंकि सभी मूलाधिकार अथवा बन्दिप्रत्यक्षीकरण के अधिकार पूर्णतया निलम्बित कर दिये जायेंगे। पिछले दो वर्षों के लोक-शासन के संचालन के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि हमारे प्रतिनिधियों को अभी यह जानने में बहुत देर लगेगी कि लोक-हित में प्रशासन को किसी प्रकार चलाया

[श्री महावीर त्यागी]

जा सकता है। यह गलत है कि हमारी सरकार भी, चाहे वह कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हो, लोगों की सरकार है। न उनके संचालन में लोगों का हाथ है और न हम उसकी इच्छाओं को कार्यान्वित कर सकते हैं। हम बहुत समय पूर्व अंग्रेजों से लड़ने के लिए निर्वाचित किये गये थे और व्यवहित निर्वाचन के आधार पर अब यहां आये हैं। लोगों ने हमें उनके लिए संविधान बनाने का अधिकार नहीं दिया है। अंग्रेजों ने हमें यह अधिकार दिया और विदेशियों के दिये हुए इस अधिकार से हम लोगों के लिए संविधान बना रहे हैं। यह संविधान बिना लोगों की सहमति के और बिना किसी विधि की मंजूरी के लोगों पर लादा जा रहा है। इसलिए लोगों के अधिकारों की उपेक्षा करके विधि बनाना अथवा संविधान बनाना न्यायोचित न होगा और विधि और संविधान की दृष्टि से गलत होगा। इस कारण, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मसौदा-समिति अपनी सम्मति पर फिर विचार करे और इस पर भी विचार करे कि क्या इस अनुच्छेद में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है जिससे न्यायपालिका की सर्वोच्च सत्ता पर इस ढंग से हस्तक्षेप न हो सके, जिसका कि इस अनुच्छेद में प्रस्ताव किया गया है। श्रीमान्, लोगों की सरकार स्थापित होने में अभी देर लगेगी और केवल मत देने से वह स्थापित भी नहीं की जा सकती, हमारी मनोवृत्ति से तथा प्रशासन-प्रणाली से और हमारे व्यवहार से हम सरकार को सच्चे अर्थ में लोगों की सरकार बना सकते हैं। केवल मंत्री ही लोगों के न होने चाहियें, सरकार भी लोगों की होनी चाहिये। सरकार को नीति लोगों की नीति होनी चाहिये। तभी कोई सरकार लोगों की सरकार हो सकती है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि लोगों को अभी शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। जब तक लोगों को इतने अधिकार नहीं मिल जाते कि वे सरकार को अपनी नीति स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकें, तब तक कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही लोक-प्रिय क्यों न हो, लोगों की सरकार नहीं कही जा सकती। यदि इतनी तेजी से परिवर्तन होते रहे, जितनी तेजी से इस समय हो रहे हैं, और सरकार अपनी हठधर्मी पर अड़ी रही तो वह लोगों पर अत्याचार करने लगेगी और एक समय वह भी आयेगा जब लोग अपनी सरकार को स्थापित करेंगे, क्योंकि आखिर देश की व्यवस्था है तो लोकतंत्रात्मक ही। लोगों की आवाज बहुत काल तक नहीं दबाई जा सकती और अन्त में वही प्रभावी होती है। जिस दिन वे अपने अधिकारों को प्रयोग करने लगते हैं और स्वतंत्रता से कार्य करने लगते हैं, उस दिन उनकी सरकार स्थापित हो जाती है और साथ ही एक विरोधी दल भी उठ खड़ा होता है। किन्तु अभी हम लोकतंत्र से सुपरिचित नहीं हुए हैं। इस सभा में भी किसी विरोधी दल के प्रति उतनी उदारता से व्यवहार नहीं किया जाता, जितनी उदारता से विदेशों में व्यवहार किया जाता है। मेरा यह निवेदन है कि भारत में अभी उदारता, बौद्धिक सच्चाई और आत्मविश्वास का प्रादुर्भाव होना शेष है। जब तक हम अपने विरोधियों से आदर तथा सम्मानपूर्ण व्यवहार करना न सीखेंगे और जब तक देश में राजनैतिक दलों की आपस की कटुता बनी रहेगी तब तक इस अनुच्छेद के संविधान में प्रविष्ट होने से कई विद्वान और देशभक्त लोगों का बहुमूल्य जीवन संकट में रहेगा, क्योंकि जैसे ही युद्ध छिड़ेगा पदारूढ़ दल अपने विरोधियों को समाप्त करने का प्रयास करने लगेगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यह शताब्दी आपातों की ही शताब्दी है। घर में और सारे संसार भर

में आपात उपस्थित रहेगा और आपातों का कोई अन्त भी न होगा। यह भी हो सकता है कि वे बार-बार उपस्थित हों और अधिकांश देशों की भावी सरकारें आपातों की उद्घोषणाओं के अधीन ही कार्य करें। यदि वास्तव में इतना संकटपूर्ण काल रहा तो देश में अधिक समय तक आपात की उद्घोषणायें ही प्रवर्तन में रहेंगी और सरकार अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर लेने तथा दूसरे निर्वाचन के भय से मुक्त होने के कारण अत्याचारपूर्ण तथा पाशविक व्यवहार करने की ही प्रवृत्ति रखने लगेगी। विरोधी दल के लिए कुछ भी सुरक्षा न रहेगी। इसलिये ईश्वर के लिए, लोगों को तथा अपने विरोधियों को अपने जीवन, सम्मान तथा स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय के सामने उपस्थित होने के आधारभूत अधिकार से वंचित न कीजिये। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह अनुच्छेद स्वीकार न किया जाना चाहिये और मसौदा-समिति को, लोकतंत्र को तथा हमारे भावी स्वातंत्र्य को ध्यान में रखते हुए कृपा करके इस पर फिर विचार करना चाहिये और इसे इस प्रकार संशोधित कर देना चाहिये कि भविष्य की सरकारें उसका किसी प्रकार भी दुरुपयोग न कर सकें।

इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का विरोध करता हूं।

*__प्रो. के.टी. शाह__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रतिक्रियामूलक तथा प्रतिगामी अध्याय के महिमामंडित उपसंहार तक पहुंचने पर, मेरे विचार से, सभी को यह दृष्टिगोचर हो गया होगा कि इस अध्याय के सभी उपबन्ध दो विचारधाराओं से प्रभावित तथा अनुप्राणित हैं। मुझे यह दिखाई देता है कि आभ्यंतरिक अशांति, बाह्य आक्रमण अथवा स्थानीय अशांति की आशंका की सम्भावना का भय दिखाकर यह इच्छा प्रकट की गई है कि कार्यपालिका को, केन्द्र को और सरकार को विधान-मंडलों, एककों और लोगों के विरुद्ध भी कार्यवाही करने के लिए सशक्त बनाया जाये। श्रीमान्, इस अध्याय के सभी उपबन्धों को ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात्, और प्रत्येक अनुच्छेद में जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उनकी परीक्षा करने के पश्चात्, मुझे यह दिखाई देता है कि इस संविधान में लोकतंत्र तथा स्वातंत्र्य का केवल उल्लेखमात्र रह जायेगा। मेरे विचार से इन अनुच्छेदों में से प्रत्येक अनुच्छेद से और अन्त में विशेषत: इस अनुच्छेद से, जिसके अधीन मूलाधिकार तथा मूलाधिकारों को प्रवर्तन में लाने के लिए उच्चतम-न्यायालय के सामने उपस्थित होने का अधिकार केवल इस कारण निलम्बित किया जा सकता है कि राज्य के प्रभुत्व ने आपात की घोषणा कर रखी है, मेरे विचार से स्वातंत्र्य के अधिकार का तथा पिछले अध्यायों द्वारा प्रदत्त हर प्रकार के नागरिक स्वातंत्र्य के अधिकार का अपहरण हो जाता है।

मुझे यह भी दिखाई देता है कि यह अनुच्छेद पहले पारित किये हुए अनुच्छेदों की शब्दावली तथा भावना से भी असंगत है, क्योंकि उनके अधीन यद्यपि राष्ट्रपति अन्य सभी शक्तियों तथा कृत्यों को अपने हाथ में ले सकता है अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को सौंप सकता है किन्तु वह उच्च न्यायालयों की शक्ति तथा प्राधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इन अनुच्छेद में यद्यपि प्रत्यक्षत: उच्च-न्यायालयों की, अथवा उच्चतम न्यायालय की, अथवा किसी भी न्यायालय की शक्ति में हस्तक्षेप नहीं किया गया है, किन्तु चूंकि अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत उच्चतम-न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार इस अनुच्छेद के अधीन निलम्बित किया जा सकता है इसलिये यदि स्वीकार किया गया तो उच्च-न्यायालयों की, उच्चतम

[प्रो. के.टी. शाह]

न्यायालय की, अथवा किसी भी न्यायालय की शक्तियां निलम्बित की जा सकती हैं। न्यायालय कार्यपालिका के कार्यों से पीड़ित लोगों से यह नहीं कह सकते— "आप अपने कष्ट को हमें बताइये, हम उसका निवारण करेंगे"। न्यायालय तभी कार्यवाही कर सकते हैं जब कोई पीड़ित व्यक्ति उनके सामने आपने मामले को रखे अथवा संविधान में वर्णित मूलाधिकारों का प्रश्न उठाये। यदि यह नहीं किया जा सकेगा, जैसा कि इस अनुच्छेद का उद्देश्य है, तो न्यायालयों का अधिकार तथा शक्ति भी निलम्बित हो जायेगी।

उद्देश्य यह न होना चाहिये था और संविधान के इस प्रकार के किसी उपबन्ध का आशय भी यह न होना चाहिये था। जिस समय आप संविधान में इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देंगे उसी समय आप यह भी उपबंधित कर देंगे कि पिछले एक अनुच्छेद द्वारा उच्चतम न्यायालय को परिचालित कराने के जिस अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है, वह राष्ट्रपति के आदेश से, कार्यपालिका के आदेश से, निलम्बित हो सकता है और उसी समय आप यह भी घोषित कर देंगे कि आपके सारे संविधान का कोई प्रभाव नहीं रह गया है।

डॉ. अम्बेडकर यह समझते हैं, और मेरे विचार से वे ठीक ही समझते हैं, कि उन्होंने बड़ी योग्यता से 'छह' शब्द को बदलकर उसके स्थान में 'आधे दर्जन' शब्द रख दिये हैं अर्थात् यह कहने के स्थान पर कि उद्घोषणा के लागू रहने तक और कुछ समय बाद तक अधिकार निलम्बित रहेंगे, उन्होंने अब यह कहा है कि उद्घोषणा के लागू रहने तक अथवा उससे छोटी कालावधि के लिए, अधिकार निलम्बित रहेंगे। इस सीमा तक उनके संशोधन की प्रशंसा की जा सकती है। किन्तु उसका आशय वही रहता है, अर्थात् संविधान द्वारा पीड़ित नागरिकों को न्यायालयों को परिचालित करने के अधिकार की जो एकमात्र प्रत्याभूति दी गई है, वह भी निलम्बित हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप उनके मूलाधिकारों का अपहरण हो जायेगा। यदि डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तावानुसार कालावधि कम भी कर दी जाये तो इस पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

इसलिये जब तक यह उपबन्ध उसी रूप में रहने दिया जाता है, जिस रूप में यह प्रस्तावित किया गया है, और जब तक कार्यपालिका ही इस प्रकार का आदेश दे सकती है और मूलाधिकारों को निलम्बित कर सकती है, तब तक यह उपबन्ध आपत्तिजनक रहेगा और इस पर आपत्ति की ही जानी चाहिये।

जैसाकि एक संशोधन द्वारा प्रस्तावित किया गया है, यदि आपकी वास्तव में यह धारणा हो कि जब कभी ऐसा गम्भीर आपात उपस्थित हो कि आप इसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते कि सामान्य लोगों के अधिकार प्रयोग में आये और प्रक्रिया विध्यनुसार प्रयोग में आये और आप यह समझते हों कि किसी असाधारण कार्यवाही को करने की आवश्यकता है, तो अवश्य ऐसी कार्यवाही कीजिये, किन्तु इसके लिये विधान-मंडल का विश्वास प्राप्त कर लीजिये और उससे इसके लिए आवश्यक विधि बनाने के लिए कहिये। आप यह क्यों मान लेते हैं कि विधान-मंडल इतना प्रतिक्रियाशून्य होगा, इतना कठोर हृदय होगा, इतना उदासीन तथा देश की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होगा कि वह किसी ऐसी विधि को बनाने के लिए तैयार न होगा, जिसकी देश में शांति बनाये रखने अथवा बाह्य आक्रमण का सामना करने

के लिए आवश्यकता हो? आखिर आपके सामने इंग्लिस्तान का उदाहरण है जिसने इसी शताब्दी में दो महायुद्ध किये हैं। उस समय भी साम्राज्य प्रतिरक्षा-अधिनियमों के अधीन कुछ अधिकारों का, जिन्हें हम मूलाधिकार कहते हैं, निलम्बन किया गया था, अथवा अपहरण किया गया था और किसी व्यक्ति ने भी तद्‌विषयक विधि के पारित होने का विरोध नहीं किया था। यह आप क्यों माने लेते हैं कि भारत के विधान-मंडल, भारत के लोगों के निर्वाचित किये हुए प्रतिनिधि देश की आवश्यकताओं की इतनी भी चिंता न करेंगे? यह आप क्यों समझते हैं कि संसद् स्थिति से अनभिज्ञ होगी, अथवा आवश्यक विधि को पारित करने के लिए तैयार न होगी, और इसलिये कार्यपालिका को सशक्त बनाने, राष्ट्रपति को कार्यपालिका आदेश द्वारा इस प्रकार के अधिनियम को बनाने का प्राधिकार देने, और यहां तक कि न्यायालयों द्वारा न्याय कराने के जिस एक मात्र मूलाधिकार की प्रत्याभूति दी गई है, उसका भी निलम्बन करने अथवा अपहरण करने की आवश्यकता है?

मेरे विचार से इसका अर्थ राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्ति देना ही है और मैं समझता हूं कि मसौदाकारों को प्रतिक्रिया के इस आधिक्य के विरुद्ध जोरदार शब्दों में तथा बार-बार चेतावनी देने की आवश्यकता न होनी चाहिये। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि यदि इस खण्ड की आवश्यकता ही है—यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है—तो इसे विधानमंडल की शक्ति-सम्बन्धी भाग में स्थान देना चाहिये। यदि आप यह समझते हैं कि संसद् का अथवा लोगों की बुद्धि का विश्वास नहीं किया जा सकता, तो संविधान में इस आशय का कोई उपबन्ध न होने पर भी कार्यपालिका कार्यवाही करे और उसका जो कुछ भी परिणाम हो उसका सामना करे। अच्छा तो यह होगा कि आप विधान मंडल से कोई ऐसी विधि बनाने के लिए कहें, जिसके किसी विशिष्ट उपबन्ध द्वारा ये शक्तियां प्रदान की जायें।

यह स्पष्ट है कि इस संशोधन में कार्यपालिका के जिस आदेश की कल्पना की गई है उसमें तथा संसद के अधिनियम में क्या अन्तर है। जहां कार्यपालिका के आदेश के सम्बन्ध में केवल राष्ट्रपति ही कार्यवाही करेगा, अथवा उसके एक या दो मंत्री उसे मंत्रणा देंगे और वह उनकी मंत्रणा के आधार पर बिना आगे विचार-विमर्श हुए कार्यवाही करेगा, वहां संसद् के आदेश के सम्बन्ध में प्रत्येक उपबन्ध पर तथा उपबन्धों के प्रत्येक शब्द पर पूरा प्रकाश डाला जायेगा। इस प्रकार के विशिष्ट उपबन्धों की आवश्यकता को ही पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया जायेगा, बल्कि कार्यपालिका की इस प्रकार की कार्यवाही को विशेष दशाओं में प्रभाव में लाने के पूर्व यह भी स्पष्ट किया जायेगा कि संसद् को किन परिसीमाओं तथा प्रतिबन्धों को आरोपित करना चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि सब शक्ति, प्राधिकार तथा प्रभाव से कार्यपालिका को सम्पन्न बनाने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि कम से कम देश की केन्द्रीय संसद् को—मैं स्थानीय विधान-मंडलों का सुझाव नहीं रख रहा हूं—इन विषयों पर विचार-विमर्श करने तथा आवश्यक विधि को पारित करने का अधिकार प्रदान किया जाये। यदि आप कार्यपालिका की बुद्धिमत्ता से लोगों के सभी प्रतिनिधियों की बुद्धिमत्ता पर अधिक विश्वास करते हैं, तो मेरे विचार से जिस संशोधन द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि यह शक्ति संसद् के अधिनियम द्वारा न कि राष्ट्रपति के कार्यपालिका-आदेश द्वारा प्रदान की जाये, उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं? चूंकि यह प्रश्न उठाया गया है कि कार्यवाहियां राष्ट्रपति के आदेश से, अर्थात् कार्यपालिका की मंत्रणा से, अर्थात् विधान-मंडल का विश्वास-प्राप्त कार्यपालिका की मंत्रणा से, निलम्बित हों अथवा संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा निलम्बित हों और इस सम्बन्ध में मतभेद है कि यह निलम्बन कार्य पालिका की कार्यवाही से हो या संसद् की विधि से हो, इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह अनुच्छेद कुछ समय के लिये स्थगित रखा जाये, ताकि मसौदा-समिति को इस पर विचार करने का अवसर मिल सके। इस समय हम अन्य अनुच्छेदों पर विचार कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जाये। अब हम अनुच्छेद 247 को उठाते हैं।

अनुच्छेद 247

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> अनुच्छेद 247 से आरम्भ होने वाले अनुच्छेदों के शीर्षक के स्थान पर निम्नलिखित शीर्षक रखा जायेः–
>
> 'General' (सामान्य)''

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस पर अधिक विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। प्रस्ताव यह है कि :

> "अनुच्छेद 247 से आरम्भ होने वाले अनुच्छेदों के शीर्षक के स्थान पर निम्नलिखित शीर्षक रखा जायेः–
>
> 'General' (सामान्य)''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2832।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं किः

> "अनुच्छेद 247 में से 'unless the context otherwise requires' (जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

मेरा यह निवेदन है कि ये शब्द अनावश्यक ही नहीं हैं बल्कि बहुत कुछ भ्रामक भी हैं। अनुच्छेद 247 में कुछ महत्वपूर्ण खण्ड हैं। खण्ड (क) में 'वित्त-आयोग' की परिभाषा की गई है। मेरा यह निवेदन है कि वित्त योजना सुस्पष्ट पदावलि है। उसका एक ही अर्थ है और वह सारे संविधान में एक ही स्पष्ट अर्थ में प्रयुक्त है। खण्ड (ख) में 'राज्य' की यह स्पष्ट परिभाषा की गई है कि उसके अन्तर्गत इस समय प्रथम अनुसूची में भाग (2) में उल्लिखित कोई

राज्य नहीं है। विभिन्न स्थलों में 'राज्य' की स्पष्ट परिभाषा की गई है और भाग (2) में उल्लिखित राज्य की भी स्पष्ट परिभाषा की गई है और उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। इसलिये यहां 'राज्य' शब्द का जो अर्थ है वह स्पष्ट है। खण्ड (ग) में कहा गया है कि "इस समय प्रथम अनुसूची में भाग (2) में उल्लिखित राज्यों के निर्देशों के अंतर्गत प्रथम अनुसूची के भाग (4) में उल्लिखित किसी राज्य-क्षेत्र के, तथा किसी ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र के, जो भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट तो हो, किन्तु उस अनुसूची में उल्लिखित न हो, निर्देश भी होंगे।" मेरा यह निवेदन है कि प्रथम अनुसूची का भाग (2) और भाग (4) स्पष्ट है और इसलिये खण्ड (क), (ख) और (ग) की ये व्याख्यायें भी बिल्कुल स्पष्ट हैं और किसी प्रसंग में भी इनके सम्बन्ध में भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। इसलिये 'जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं। मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे बतायें कि किस स्थल पर प्रसंग से 'अन्यथा अपेक्षित' हो सकता है। दंड-संहिता में परिभाषायें स्पष्ट होती हैं और इसलिये 'जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो' पदावली भ्रामक और बिल्कुल अनावश्यक हैं। इस पदावली को रखने से पाठक को तथा संविधान-वेत्ता को इन शब्दों का जो निश्चय अर्थ बताया गया है, उसे समझने के लिए बहुत सोचना पड़ेगा। पाठक के मस्तिष्क में किसी प्रकार की अनिश्चितता अथवा संदेह न रहने देने के लिए इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है।

(संशोधन संख्या 2833 से लेकर 2836 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य महोदय बोलना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है कि ये शब्द 'पर्याप्त सावधानी' के लिए समाविष्ट किये गये हैं। हो सकता है कि ये अनावश्यक हों, किन्तु यह भी हो सकता है कि इनकी आवश्यकता पड़े। हम इन शब्दों को रहने देना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 247 में से 'Unless the Context otherwise requires' (जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 247 संविधान का अंग बना लिया जाय।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 247 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 248

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 248 को उठाते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 248 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायें:–

'248. Taxes to be imposed save by authority of Law. — No tax shall be levied or collected except by authority of Law.'

'248-A (1) Consolidated Fund — Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues or public moneys raised or recieved by the Government of India shall form one Consolidated Fund to be entitled "the Consolidated Fund of India", and shall revenues or public moneys raised or received by the Government of a State shall from one Consolidated Fund to be entitled. "The Consolidated Fund of the State".

(2) No moneys out of the Consolidated Fund of India or of a State shall be appropriated except in accordance with Law and for the purposes and in the manner provided in this Constitution.' "

248. विधि-प्राधिकार के सिवाय करों का आरोपण न होगा। — विधि के प्राधिकार के सिवाय कोई कर न तो आरोपित और न संगृहीत किया जायेगा।

248-क (1) संचित निधि — कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णत: या अंशत: सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारत सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त सब राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी, जो "भारत की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य का सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी, जो "राज्य की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

(2) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन विधि की अनुकूलता से, तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों के और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जायेंगे।

हम पहले जो कुछ स्वीकार कर चुके हैं उसी के परिणामस्वरूप इन संशोधानों की भी आवश्यकता है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 196?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल) : संशोधन संख्या 196 की सूचना पंडित कुंजरू ने दी है, किन्तु वे इस समय सभा में उपस्थित नहीं हैं। मसौदा-समिति की यह धारणा है कि एक अन्य संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 196 भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उस संशोधन को स्वीकार करने के लिए संशोधन संख्या 196 को पहले उपस्थित करने तथा स्वीकार करने की आवश्यकता है। यदि मुझे आज्ञा दी जाये तो इसे मैं उपस्थिति कर दूं।

***अध्यक्षः** आप उपस्थित करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं छपी हुई अनुपूरक सूची के संशोधन संख्या 196 को उपस्थित करता हूं, जो पंडित हृदयनाथ कुंजरू के नाम से हैः

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में 'Subject to the provisions of' (के उपबन्धों के) शब्दों के बाद (हिन्दी में आगे) 'article 248-B of this Constitution and to the provisions of' [इस संविधान के अनुच्छेद 248-(ख)] शब्द तथा अंक प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मैं यह कह चुका हूं कि पंडित कुंजरू के नाम से एक अन्य संशोधन भी है और मसौदा-समिति की यह धारणा है कि वह स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। मैं बाद में यह भी बताऊंगा कि वह क्यों स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उस संशोधन को स्वीकार करने के लिए इस संशोधन को स्वीकार करना आवश्यक है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 197, जो प्रोफेसर सक्सेना के नाम से है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में से 'Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States' (कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशतः सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए) शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान् पहले एक अवसर पर मैंने वित्तीय उपबन्धों की उस नवीन योजना का हृदय से समर्थन किया था, जिसमें संचित-निधि आदि की व्यवस्था की गई थी। अपने इस संशोधन में मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 248 (क) का प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसमें से 'कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशत सौंपे जाने के बारे में,

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए' शब्दों को निकाल दिया जाये। इसका क्या प्रभाव होगा? इस समय विचार यह है कि कई कर राज्यों को सीधे-सीधे दिये जायें, भले ही वे भारत सरकार द्वारा बनाई हुई विधियों के अधीन संगृहीत क्यों न किये गये हों। मैं यह चाहता हूं कि भारत सरकार की बनाई हुई विधियों के अधीन देश के लोगों से वसूल किये हुए कर अथवा शुल्क अथवा अन्य कोई धन पहले भारत सरकार के कोष में आना चाहिये; उसके पश्चात् उस धन-राशि से लेकर धन सौंपा जाना चाहिये। किसी राज्य के लिये यह वैध न होना चाहिये कि वह भारत सरकार द्वारा पारित विधियों के प्राधिकार से संगृहीत राजस्व को स्वयं ले ले। बिना पहले केन्द्रीय सरकार के कोष में आये हुए धन राज्यों के कोषों में जमा न होना चाहियें। मैं यह चाहता हूं कि सब धन एक स्थान पर इकट्ठा होना चाहिये और फिर वहां से वितरित होना चाहिये। इससे केन्द्र यह जान सकेगा कि कुल कितना धन संगृहीत हुआ और किस प्रकार वह वितरित किया गया। अन्यथा सम्भव है कि उसे यह ज्ञात न हो सके कि किसी कर से कितना धन संग्रह हुआ है। मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है, यद्यपि उसके द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि प्रक्रिया को बदला जाये। मेरे विचार से इससे सभी सहमत होंगे कि सभी धन पहले केन्द्र में इकट्ठा किया जाना चाहिये और उसके पश्चात् उसका वितरण होना चाहिये। मुझे आशा है कि यह सभा इस सीधे-सादे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन संशोधनों पर अथवा मूल अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं?

(कोई सदस्य नहीं उठे।)

तब मैं पहले संशोधन पर मत लूंगा। पहला संशोधन पंडित कुंजरू के नाम से है।

प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248 (क) के खण्ड (1) में 'Subject to the provisions of' (के उपबन्धों के) शब्दों के बाद (हिन्दी में आगे) 'article 248-B of this Constitution and to the provisions of' [इस संविधान के अनुच्छेद 248 (ख)] शब्द तथा अंक प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 195 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248(क) के खण्ड (1) में से 'Subject to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States' (कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णत: या अंशत: सौंपे जाने के बारे में इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुए संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 248 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायेः–

'248. Taxes not to be imposed save by authority of Law. No Tax shall levied or collected except by authority of Law.'

'248-A. (1) Consolidated Funds. Subject to the provisions of article 248-B of this Constitution and to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues or public moneys raised or received by the Government of India shall form one Consolidated Fund to be entitled "The Consolidated Fund of India", and all revenues of public moneys raised or received by the Government of a State shall form one Consolidated Fund to be entitled "The Consolidated Fund of the State."

(2) No moneys out of the Consolidated Fund of India or of a State shall be appropriated except in accordance with law and for the purposes and in the manner provided in this Constitution.' "

248. विधि प्राधिकार के सिवाय करों का आरोपण न होगा। विधि के प्राधिकार के सिवाय कोई कर न तो आरोपित और न संगृहीत किया जायेगा।

248(क)(1). संचित निधि इस संविधान के अनुच्छेद 248 (ख) के उपबन्धों के, तथा कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम के राज्यों को पूर्णतः या अंशतः सौंपे जाने के बारे में, इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, भारत सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त सब राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी जो "भारत की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य की सरकार द्वारा लिये हुए या प्राप्त राजस्व अथवा सार्वजनिक धन की एक संचित निधि बनेगी जो "राज्य की संचित-निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

(2) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन विधि की अनुकूलता से, तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जायेंगे।]

संशोधन संख्या 196 द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद पर अब मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 248 और 248 (क) संशोधित रूप में संविधान के अंग बना लिये गये।

अनुच्छेद 248 (ख)

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 248 (ख) को उठाते हैं। संशोधन संख्या 198, जो पंडित कुंजरू के नाम से है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 248(क) के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 248 (ख) रखा जाये:–

'248-B. (1) Parliament may by law establish a Contingency Fund in the nature of an imprest to be entitled "The Contingency Fund of India" into which shall be paid from time to time such sums as may be determined by such law, and the said Fund shall be placed at the disposal of the President to be advanced by him for the purpose of meeting unforeseen expenditure which has not been authorised by Parliament pending authorisation of such expenditure by Parliament by Law under article 95 or article 96 of the Constitution.

Constingency Fund.

(2) The Legislature of a State may by law establish a Contingency Fund in the nature of an imprest to be entitled the Contingency Fund of the State into which shall be paid from time to time such sums as may be determined by such law and the said Fund shall be placed at the disposal of the Governor to be advanced by him for the purpose of meeting unforeseen expenditure which has not been authorised by the Legislature of the State pending authorisation of such expenditure by the Legislature of a State under article 180 or article 181 of this Constitution.'

[248(ख)(1) संसद्, विधि द्वारा, अग्रदाय के रूप में "भारत की आकस्मिक निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता-निधि की स्थापना कर सकेगी जिसमें ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी तथा अनवेक्षित व्यय का, संविधान के अनुच्छेद 95 या अनुच्छेद 96 के अधीन संसद् द्वारा, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसी व्यय की पूर्ति के लिये अग्रिम धन देने के लिए उक्त निधि राष्ट्रपति के हाथ में रखी जायेगी।

आकस्मिकता निधि

(2) राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अग्रदाय के रूप में "राज्य की आकस्मिकता निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता निधि की स्थापना कर सकेगा, जिसमें कि ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित व्यय का संविधान के अनुच्छेद 180 या अनुच्छेद 181 के अधीन राज्य के विधान-मंडल द्वारा, विधि द्वारा प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अग्रिम धन देने के लिए ऐसी निधि राज्य के राज्यपाल के हाथ में रखी जायेगी।]

अनुच्छेद 248 (क) में यह अपेक्षित है कि भारत सरकार के लिये प्राप्त सभी धन एक निधि में डाला जायेगा, जो भारत की संचित-निधि के नाम से ज्ञात होगी और बिना संसद् द्वारा स्पष्ट शब्दों में प्राधिकार दिये हुए संचित-निधि में से कोई धन-राशि नहीं निकाली जायेगी। समय-समय पर यह देखा गया है कि किसी विभाग के लिये संसद् द्वारा स्वीकृत धन अपर्याप्त है और किसी न किसी कारण से उससे अधिक व्यय करने की आवश्यकता पड़ी है। यदि बिना संसद् के प्राधिकार के धन व्यय किया गया तो यह एक अवैध बात होगी। किन्तु यदि धन व्यय करने से लिये कार्यपालिका विधान-मंडल की स्वीकृति की प्रतीक्षा करती रहे तो सम्बंधित विभाग को बहुत असुविधा का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उस धन की तुरंत आवश्यकता हो सकती है और सरकार के प्रबन्ध न कर सकने के कारण लोक-हित को हानि हो सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ निकाला जाये जिससे सरकार बिना संसद् के प्राधिकार के अनवेक्षित व्यय को पूरा कर सके। इस उद्देश्य से मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि एक आकस्मिकता-निधि स्थापित की जाये जो "भारत की आकस्मिकता निधि" कही जाये। संसद् आकस्मिकता-निधि की धन-राशि निश्चित कर सकती है किन्तु जब इस निधि में धन डाल दिया जायेगा तो कार्यपालिका उसमें से ऐसे आवश्यक व्यय को पूरा करने के लिए धन निकाल सकती है, जिसके लिये संसद् ने प्राधिकार प्रदान न किया हो। किन्तु इस आकस्मिकता-निधि का यह अर्थ नहीं है कि कार्यपालिका सभा के ध्यान में अतिरिक्त व्यय को लाने तथा उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के कर्तव्य से मुक्त हो जायेगी। यह एक सीमित निधि होगी और इसका धन व्यय हो जाने पर इसमें अधिक धन डालने की स्वीकृति के लिए कार्यपालिका को विधान-मंडल से प्रार्थना करनी होगी। इसलिये व्यय पर संसद् का पूरा नियंत्रण रहेगा। इस समय यह नियंत्रण नहीं है। हमें यह विदित है कि 1948-49 में, बिना विधान-मंडल से स्वीकृति लिये हुए, कई करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। धन व्यय हो जाने के बहुत समय बाद हमें यह पता चला कि विधान-मंडल ने जिस धन के लिये स्वीकृति दी थी उससे कहीं अधिक धन व्यय किया गया है। यह धन इतना अधिक था कि सभा का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट हुआ और कई सदस्य इस विषय की ओर कार्यपालिका और विधान मंडल का ध्यान आकृष्ट करने के लिए बाध्य हुए। भविष्य में इस प्रकार की अनियमित बातों को न होने देने के लिये यह आवश्यक है कि जिस निधि का प्रस्ताव मैंने रखा है उसे स्थापित किया जाये। इंग्लिस्तान में इस प्रकार की निधि है। समझदारी इसी में है कि अनवेक्षित व्यय के लिए व्यवस्था करने के हेतु हम उसके उदाहरण का अनुसरण करें। अनुच्छेद 248 (क) और 248 (ख) का उद्देश्य यह है कि बिना संसद्

की स्वीकृति के एक पैसा भी व्यय न किया जाये। मुझे आशा है कि मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई न होगी।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) में जहां कहीं 'Such Law' (ऐसी विधि) और 'advanced by him' (अग्रिम धन देने के लिए) शब्द आये हों उनके स्थान पर क्रमशः 'Law' (विधि) और 'used by him for advancing money' (अग्रिम धन देने के लिए उस के व्यय के हेतु) शब्द रखे जायें।"

'ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां' पदावली का कोई अर्थ नहीं है। हमें 'विधि द्वारा' ही कहना चाहिये। मेरा यह भी सुझाव है कि 'अग्रिम धन देने के लिए शब्दों के स्थान पर, 'अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु' शब्द रखे जायें। इसके अतिरिक्त, श्रीमान् खण्ड (2) में कहा गया है कि:—

"राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अग्रदाय के रूप में राज्य की आकस्मिकता-निधि के नाम से ज्ञात आकस्मिकता-निधि की स्थापना कर सकेगा, जिसमें ऐसी विधि (यहां केवल 'विधि' शब्द होना चाहिये और 'ऐसी विधि' शब्द न होने चाहियें) द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित व्यय का संविधान के अनुच्छेद 180 या अनुच्छेद 181 के अधीन राज्य के विधान मंडल द्वारा, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अंग्रिम धन देने के लिए (मेरा यह कहना है कि इस प्रकार के शब्द साधारणतया संविधानों में नहीं प्रयुक्त होते हैं और मेरा यह सुझाव है कि, 'अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु' शब्द रखे जायें) ऐसी निधि राज्य के राज्यपाल के हाथ में रखी जायेगी।"

यद्यपि ये संशोधन शाब्दिक हैं, किन्तु मेरे विचार से ये देश के वित्त-सम्बन्ध खण्ड के लिये महत्वपूर्ण हैं। मूल संशोधन में जो बातें कहीं गई है उनसे मैं सहमत हूं। मेरे विचार से आकस्मिकता-निधि की आवश्यकता है और बिना इस निधि के हमारे देश के वित्त-सम्बन्धी उपबन्ध अपूर्ण ही रहेंगे। इसलिये यह अनुच्छेद पारित होना चाहिये और मेरे संशोधन द्वारा संशोधित भी कर दिया जाना चाहिये। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति इस पर विचार करेगी और इस अनुच्छेद के शोधन का भी प्रयास करेगी।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ मसौदा-समिति इसे स्वीकार कर रही है।

*__अध्यक्षः__ प्रोफेसर सक्सेना का भी एक संशोधन है।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ हम इस खण्ड को उस रूप में स्वीकार कर रहे हैं, जिस रूप में पंडित कुंजरू ने उसे उपस्थित किया है।

*__अध्यक्षः__ तब मैं पहले प्रोफेसर सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 198 में प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) में जहां कहीं 'Such Law' (ऐसी विधि और 'advanced by him' (अग्रिम धन देने के लिए) शब्द आये हों उनके स्थान पर क्रमश: 'Law' (विधि) और 'used by him from advancing money' (अग्रिम धन देने के लिए उसके व्यय के हेतु) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 248 (ख) संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 248 (ख) संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 249

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 249 को उठाते हैं। किन्तु इसके पूर्व हमें शीर्षक के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 200 पर विचार करना है।

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and States' (संघ और राज्यों के बीच राजस्व का विवरण)।'

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इसके बारे में कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** किसके बारे में?

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 200 के बारे में, अर्थात् इसके बारे में कि–

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and State'

(संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण)"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अनुच्छेद 249 के बारे में बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद पर विचार नहीं कर रहे हैं, केवल शीर्षक पर विचार कर रहे हैं। मैं यह मान लेता हूं कि वह स्वीकार कर लिया गया है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 249 के ऊपर निम्नलिखित उपशीर्षक प्रविष्ट किया जाये:–

'Distribution of Revenues between Union and States'

(संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण)।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 249 को उठाते हैं। इसके सम्बन्ध में कुछ संशोधनों की सूचना दी गई है। वे संशोधनों की सूची के दूसरे अंक के पृष्ठ 296 में देखे जा सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2837 से लेकर 2840 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (2) में से 'in that year' (उस वर्ष) शब्द निकाल दिये जायें।"

क्या मैं संशोधन संख्या 69 और संशोधन संख्या 70 को भी उपस्थित कर सकता हूं?

***अध्यक्षः** जी हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (1) में 'Such stamp duties' (ऐसे मुद्रांक शुल्क) शब्दों के बाद 'as are imposed under any Law made by Parliament' (जो संसद् निर्मित विधि द्वारा आरोपित किये जायें) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 249 के खण्ड (2) में 'Revenues of India' (भारत राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित-निधि) शब्द रखे जायें।"

(संशोधन संख्या 68 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद तथा संशोधनों पर अब बहस हो सकती है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** क्या इस अनुच्छेद पर इसी समय बहस होगी?

***अध्यक्षः** पांच मिनट और हैं और इस बीच आज एक भाषण समाप्त हो सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, अनुच्छेद 249 में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं मैं उनके विरुद्ध हूं। संघ और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण की जो प्रणाली इस समय प्रयुक्त है, अथवा जो प्रणाली प्रस्तावित की गई है, उसके पक्ष में मैं नहीं हूं। मैं दो प्रस्तावों के पक्ष में हूं और मैं उन्हें सभा के सामने रखना चाहता हूं। पहला प्रस्ताव यह है कि सभी शुल्क और करों का उद्ग्रहण तथा संग्रह भारत सरकार ही करे और वही उनका विनियोग भी करे। इस क्षेत्र में वित्तीय स्वशासन

न होना चाहिये। इसका एक बहुत सारवान राजनैतिक कारण है, जिसे मैं बाद को बताऊंगा।

दूसरा सिद्धान्त, जिसे मैं सभा के सामने रखना चाहता हूं, यह है कि प्रत्येक प्रान्त की आवश्यकताओं को देखकर विभिन्न प्रान्तों के बीच धन वितरित करने के लिए केन्द्र में एक स्वतंत्रकारी होना चाहिये। श्रीमान्, वह स्वतंत्र प्राधिकारी या तो राष्ट्रपति हो, या संसद् या वित्त आयोग। श्रीमान् मैं वर्तमान प्रणाली के पक्ष में इस कारण नहीं हूं कि वह राष्ट्रीयता के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध है। श्रीमान्, राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि राज्य-क्षेत्र का प्रत्येक भाग जितना मेरा है उतना आपका भी है।

राष्ट्रीयता का दूसरा अर्थ यह है कि देश की सम्पत्ति पर प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार है। राजस्व वितरण की वर्तमान प्रणाली से मुनष्यों के बीच तथा प्रान्तों के बीच असमानता उत्पन्न होती है। इसी कारण मैं राजस्व वितरण की वर्तमान प्रणाली के विरुद्ध हूं। मैं चाहता हूं कि इसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये।

अपने देश के राजनैतिक जीवन को देखते हुए मेरा यह सुझाव है कि धन राष्ट्रपति वितरित करे। मैं चाहता हूं कि एक दिन ऐसा आये जब धन के वितरण का प्रश्न ही न रहे और प्रान्तों का अस्तित्व न रह जाये। वित्तीय स्वशासन एक संकटपूर्ण व्यवस्था है, क्योंकि इससे स्वाधीन राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होता है। यह ऊंट की कमर तोड़ने के लिये उस पर आखिरी तिनका रखने के समान है। प्रान्तों को पर्याप्त शक्तियां दी जा चुकी हैं। केवल इस प्रणाली में ही हम प्रांतों को भारत सरकार के आधीन तथा उसके निदेशन तथा नियंत्रण में रख सकते हैं। यदि बम्बई अथवा मद्रास जैसे बड़े प्रान्तों को, (मैं यह खेद के साथ कहता हूं), वित्तीय स्वशासन प्रदान किया गया, तो उसका परिणाम क्या होगा? भविष्य में किसी राजनैतिक आन्दोलन के प्रभाव से ये दो प्रान्त घोषित कर सकते हैं कि वे स्वाधीन हो गये हैं। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि प्रान्तीय मंत्री भारत सरकार के पास आयें और धन-वितरण के सम्बन्ध में अपने यहां की स्थिति को उसके सामने रखें, ताकि वे भारत सरकार के नियंत्रण में रहें।

***अध्यक्षः** यह सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि हम सोमवार को समवेत न हों, क्योंकि उस दिन श्रावण पूर्णिमा है। हम पूरा एक दिन नहीं गंवा सकते। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि उस दिन अपराह्न में तीन बजे से सात बजे तक समवेत हो।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 5 अगस्त, 1949, के नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-6-49
320

अंक 9
संख्या 6

शुक्रवार
5 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—(जारी)

[अनुच्छेद 294 से 253 पर विचार 313–366

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 5 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में हुई।

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 249—*(जारी)*

*__अध्यक्ष:__ अब हम अनुच्छेद 249 पर बहस जारी करते हैं जिस पर कल यहां विचार किया जा रहा था।

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): सभा इस समय विचार कर रही है, श्रीमान्, भाग 10 के अध्याय 1 पर जिसमें संघ तथा राज्यों के बीच राजस्व विभाजन की व्यवस्था दी हुई है। 249 से 260 तक के अनुच्छेदों में संघ तथा प्रान्तों द्वारा करों के संग्रहीत किये जाने और संघ तथा प्रान्तों को सौंपे जाने की व्यवस्था दी हुई हैं। अनुच्छेद 255 में सहायक अनुदानों के सम्बन्ध में अव्यवस्था है जिन्हें संघ राज्यों को देगा तथा अनुच्छेद 260 में वित्तयोग की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है, ताकि केन्द्रीय शासन के वित्त विभाग के बिना किसी हस्तक्षेप के प्रान्तों को स्वतंत्र रूप से अनुदान दिये जा सकें।

सभा को, श्रीमान् पहले कभी इस विषय पर विचार करने का अवसर नहीं मिला था और यह विषय ऐसा है जिसका समस्त भारत की जनता के सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध है। सन् 1947 की जुलाई में संघ-संविधान-समिति (Union Constitution Committee) के अध्यक्ष से पं. जवाहरलाल नेहरू ने वित्तों और उधार ग्रहण सम्बन्धी शक्तियों पर प्रतिवेदन के रूप में एक छोटा सा अध्याय (भाग 7) पेश किया था, जिसपर बाद में सभा ने विचार किया था और प्रतिवेदन में उसे शामिल किया था। सन् 1947 के जुलाई-अगस्त वाले अधिवेशन में इस प्रश्न पर पूर्णत: विचार नहीं हुआ और मामला अस्पष्ट ही छोड़ दिया गया। किन्तु आपने, श्रीमान्, इस सम्बन्ध में कम से कम इतना अवश्य किया कि संघ-संविधान के वित्तीय प्रावधानों के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त कर दी। उस समिति ने सन् 1948 के आरम्भिक काल में अपनी रिपोर्ट पेश की। पर इस सर्वसत्ताधारी सभा ने उस समिति की रिपोर्ट पर यहां कभी भी विचार नहीं किया। मसौदा-समिति ने अवश्य ही उसकी रिपोर्ट पर विचार किया होगा और तदनुसार विचाराधीन अनुच्छेदों में उसने संशोधन भी किया होगा। मैं यह जरूर कहूंगा, श्रीमान् कि प्रस्तुत अनुच्छेद मुझे भारत-शासन-अधिनियम 1935 की उन कतिपय धाराओं का स्मरण दिला देते हैं, जो बिल्कुल इसी तरह की है। इन अनुच्छेदों से यह नहीं प्रकट होता है कि केन्द्रीय शासन का वित्त-विभाग, उन साधनों को

---

*इस संकेत का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री बी. दास]

जिन पर कि उसने मनमाने ढंग पर अधिकार कर रखा है, किसी भी तरह प्रान्तों को देने के लिये तैयार है, ताकि वे सुख और समृद्धि का जीवन बिता सकें और अपने अधीनस्थ निवासियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का समुचित रूप से पालन कर सकें। उक्त विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 27 और 28 में प्रान्तों तथा केन्द्र की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। उसने कहा है:—

"उसके प्रतिकूल प्रान्तों की आवश्यकताओं और विशेषकर के कल्याणसाधक सेवाओं तथा सर्वांगीण विकास से सम्बन्ध वाली आवश्यकतायें असीम हैं। मानव कल्याण की समुन्नति तथा देश की उत्पादन शक्ति की वृद्धि बहुत कुछ इन्हीं सेवाओं पर निर्भर करती है। अगर इन सेवाओं को एक समुचित योजना के आधार पर चलाना है तो इसके लिये आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों की मरजी पर एक पर्याप्त धनराशि रख दी जाये, जिसे वह अपना समझ सके ताकि उन्हें केन्द्र की अनिश्चित दानशीलता और समृद्धि पर न निर्भर करना पड़े।"

मैं सन् 1925 से ही भारत सरकार के वित्त विभाग की गतिविधि को देखता आ रहा हूं। इसने सदा अपना यही रुख रखा है मानो प्रान्तों को वह दान के रूप में कुछ दे रहा हो। इनका ख्याल यह है कि भारत की रक्षा ही उनकी प्रमुख जिम्मेदारी है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी यहां के असंख्य नर नारियों के प्रति आर्थिक एवं सामाजिक न्याय हो, इसे वह अपनी जिम्मेदारी नहीं समझते हैं। उक्त विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति, श्रीमान्, आपने सभा की इच्छा के अनुसार ही की थी, ताकि उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित किया जा सके। पर अपने वर्तमान विभाग का रुख क्या आप देख रहे हैं? वह आज भी अपने पुराने औपनिवेशिक ढंग के व्ययों को स्वच्छन्दतापूर्वक चला रहा है और वह इसका भी अनुभव नहीं करता है कि भारतीय जनता के प्रति उसके प्रारम्भिक कर्तव्य क्या हैं। वह भारत के राजस्व में से कोई अंश प्रान्तों को नहीं देता है जिसे पाकर वह देशवासियों के सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण की अभिवृद्धि कर सके मुझे प्रसन्नता होती, श्रीमान्, अगर मसौदा-समिति ने 249 से 260 तक के अनुच्छेदों में उक्त विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को भी स्थान दिया होता। मैं देख रहा हूं, श्रीमान्, कि भारत सरकार के वित्त-विभाग का सन् 1925 से बराबर यही रुख रहा है। आखिर यह वित्त-विभाग इतना हृदय शून्य क्यों है? हम भले ही यह समझते हों कि अब देश स्वतन्त्र हो गया है और अब हम एक स्वाधीन राष्ट्र हैं पर भारत सरकार का वित्त विभाग अब भी वहीं है जहां 1925 और 1935 में था। आज तो शायद यह विभाग विदेशी शासन के जमाने से भी ज्यादा अपने को अधिकार सम्पन्न समझता है और देश के असंख्य निवासियों के प्रति जिस कर्त्तव्य का इसे पालन करना है उसको सोचता भी नहीं है। अपने संविधान की प्रस्तावना में हम यह कह रहे हैं। कि देशवासियों को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्त करावेंगे। देशवासियों को राजनैतिक न्याय प्राप्त हो इसके बारे में तो सभा ने यहां हजारों वक्तृतायें सुनी हैं पर गत ढाई वर्ष की अवधि में देश के असंख्य निवासियों को, जो कि विभिन्न प्रान्तों में रहते हैं आर्थिक न्याय प्राप्त कराने के बारे में भी सभा ने कभी कोई बात यहां सुनी है। सभा ने तो एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की, श्रीमान्, पर आखिर यह बात क्यों है कि भारत सरकार ने एक भी ऐसा

प्रस्ताव नहीं रखा जिसके द्वारा प्रान्तों को देश के राजस्व में से कुछ अंश मिल सके, जिसे वह जनता, की अनुन्नत अवस्था को समुन्नत करने में और उनकी सामाजिक भलाई में खर्च कर सकते? विधेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ 13 तथा 14 पर सिफारिश की है कि राजस्व के आगमों को प्रान्तों में विभाजित कर दिया जाये। पर सर आटो नेमर के निर्णय के पीछे जो सिद्धान्त था उसी को अब भी जारी रखने का प्रयास किया जा रहा है। सर आटो नेमर तो यहां इसलिये आये थे कि अंग्रेजों का शासन यहां स्थायी रूप से बना रहे। यह देखना कि प्रान्त समुन्नत हों और वहां के लोग खुशहाल और सन्तुष्ट रहें, न सर ओटो नेमर का कर्त्तव्य था और उनके लिये यह जरूरी ही था। किन्तु आश्चर्य है कि भारत सरकार आज स्वराज्य प्राप्ति के दो वर्ष बाद भी यही कोशिश कर रही है कि सर ओटो नेमर के निर्णय के आधार पर ही व्यवस्था चालू रहे हैं। मुझे खुशी होती अगर विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के पैरा 50 और 58 में दी हुई सिफारिशों को किंचित संशोधन के साथ संविधान में लिपिबद्ध कर दिया जाता। अर्थ-मन्त्री को इस समय मैं यहां उपस्थित नहीं पा रहा हूं। माननीय मित्र डॉ. जान मथाई इस सभा के एक सदस्य हैं। उनकी यह जिम्मेदारी है, उनका यह कर्तव्य है कि यहां आकर यह बतावें कि क्यों उनकी सरकार गत दो वर्षों से प्रान्तों को कोई साहाय्य नहीं प्रदान कर रही है। माननीय अर्थ-मंत्री यहां उपस्थित नहीं हैं पर आशा करता हूं कि भारत सरकार का दूसरा कोई सदस्य जो इस सभा का भी सदस्य होगा, यहां आकर यह बतायेगा कि भारत सरकार का वित्त-विभाग यह आनाकानी और द्वविधा की नीति क्यों बरत रहा है। आपके द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति ने—श्रीमान्, जो सिफारिशें की हैं वह एकमत से की हैं और उनकी सिफारिश एक हैं। भारत सरकार ने उसकी कोई सिफारिश नहीं मंजूर की है और न उसके किसी वक्ता ने यहां यही बतलाया है कि क्यों भारत सरकार उसकी सिफारिशों के प्रति इतना उपेक्षा भाव रखती है। आखिर उस विशेषज्ञ समिति को आपने नियुक्त किया था और इस सभा की राय से नियुक्त किया था। इस समिति की रिपोर्ट के पैरा 71 में यह कहा गया है:-

> "समय को बचाने के लिये हम एक और सिफारिश करेंगे कि संविधान के प्रयोग में आने से पहले वित्तायोग स्थापित कर दिया जाये और संविधान के प्रवर्त्तन में आ जाने के बाद और इसकी स्थिति नियमनानुसार निश्चित कर दी जाये।"

अनुच्छेद 260 में यह कहा गया है कि:-

> "इस संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर अथवा ऐसे अन्य समय पर, जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, वह आदेश द्वारा एक वित्तायोग संघटित करेगा जिसका.....इत्यादि इत्यादि"

मैं पूछता हूं कि इस वित्तायोग की और इस संविधान की उपयोगिता ही क्या है, जब भारत सरकार का वित्त-विभाग अपनी वही पूर्व की स्वेच्छाचारिता बरतता

[श्री बी. दास]

है और भारत के राजस्व का अधिकांश भाग तथाकथित भारतीय रक्षा के प्रश्न पर और भारत सरकार के भीमसंख्यक कर्मचारी वर्ग पर व्यय कर डालता है? भारत सरकार के कर्मचारी वर्ग की संख्या घटाकर आधी या आधी से भी कम की जा सकती है। भारत सरकार की आज आर्थिक अवस्था क्या है? आमदनी से ज्यादा उसका खर्च है। फिर भी वित्त-विभाग जैसे चाहता है स्वच्छन्दता से राजस्व का व्यय करता है और संविधान द्वारा शासन पर यह जो दायित्व आरोपित किया गया है कि वह जनता के प्रति सामाजिक एवं आर्थिक न्याय करेगा, उसका उसे रंचमात्र भी ख्याल नहीं है। भारत सरकार पर यह एक दोषारोप है, श्रीमान्, और उसे यहां सभा-भवन में यह बताकर कि क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी इन दो वर्षों के अन्दर उसने जनता के प्रति सामाजिक एवं आर्थिक न्याय नहीं किया, अपनी स्थिति को साफ कर देना चाहिये। यह कहना बेकार है कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा 26 जनवरी 1950 को और उसके बाद वित्त-विभाग उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई योजना तैयार करके उसे इस सभा के समक्ष रखेगा। वित्त-विभाग का यह रुख सही नहीं है। वित्त-विभाग आवश्यकता से अधिक शक्ति सम्पन्न हो गया है। पहले कुल 6 या 7 विभाग थे, पर आज हुकूमत में 19 मंत्री हैं और प्रत्येक मिनिस्ट्री एक स्वतन्त्र निकाय बन गया है और हर मिनिस्ट्री जैसे चाहती है प्रकार्य करती है और खर्च करती है। आखिर ये वित्त-प्राधिकारी कौन लोग हैं? ये वही लोग हैं जो 1925 में सर बेसिल ब्लैबिट के मातहत कार्य करते थे और 1936-1937 में सर जेम्स क्रेस के मातहत काम करते थे जिनकी परम्परागत मनोवृत्ति यही रही है कि अपनी स्थिति किसी तरह समुक्त हो। ऐसे ही तो लोग हैं जो आज भारत सरकार के वित्तीय मामलों का संचालन कर रहे हैं। ये लोग कट्टर निरंकुश और नौकरशाही प्रणाली के कट्टर भक्त हैं। इनमें से कोई भी अगर लोकतंत्रीय भावना वाला व्यक्ति हो तो मैं उनके आगे सर झुकाऊंगा। मैं जानता हूं लोकतन्त्रीय भावना इनमें किसी में भी नहीं है। अगर इनमें लोकतंत्रीय भावना होती, तो इन दो वर्षों में इन्होंने अपने कार्यों द्वारा इसे व्यक्त कर दिया होता। मैं तो यह कहूंगा, श्रीमान्, कि उन्होंने संविधान की अवहेलना की है। अपने स्वतंत्र संविधान के पीछे जो भावना है, उसे ये समझ नहीं पाये हैं और ये लोक इसी तरह निरंकुश रूप में चलते रहेंगे जब तक कि हम बिल्कुल गिर न जायें।

अध्यक्षः माननीय सदस्य की वक्तृता में मैं बाधा पहुंचाना नहीं चाहता। पर मेरा कहना यह है कि यहां हम संविधान के एक विशेष अनुच्छेद पर विचार कर रहे हैं।

श्री बी. दासः हां, श्रीमान्।

अध्यक्षः इस अनुच्छेद में उन शुल्कों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है जिनको आरोपित करेगा संघ, पर जिनका संग्रह और समायोजन राज्यों द्वारा किया जायेगा। मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद पर विचार करने में सरकार की नीति की आलोचना कैसे प्रासंगिक हो सकती है। इसलिये मेरा कहना यह है कि माननीय सदस्य को यहां इस अनुच्छेद के गुण-दोष तक ही अपना भाषण सीमित रखना

चाहिये। भारत सरकार की नीति की आलोचना करने की यहां गुंजाइश नहीं है। उसके लिये तो अन्यत्र स्थान है जहां वे अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं।

***श्री बी. दास:** आपके निर्णय को नतमस्तक होकर स्वीकार करता हूं, श्रीमान्। इस संविधान के मुख्य तीन पहलू हैं जिनको ध्यान में रखकर उसकी रचना की गई है। एक तो राजनीतिक, दूसरा सामाजिक और तीसरा आर्थिक पहलू। आर्थिक न्याय की आधारशिला ही इस बात पर निर्भर करती है कि संघ तथा प्रान्तों के बीच वित्त का समुचित विभाजन किया जाये। हमें इस विषय पर कल ही जब कि यहां अनुच्छेद 247 पर विचार शुरू किया था बहस शुरू करनी थी। पर अनुच्छेद 247 पर मैं इसलिये बोलना नहीं चाहता था कि उसमें 'वित्तायोग' तथा ऐसी ही अन्य पद संहतियों के निर्वचन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। मैं आपके निर्णय के आगे सर झुकाता हूं, श्रीमान्, पर मेरा कहना यह हैं कि 247 में और तदनुवर्ती अनुच्छेदों में इस बात की व्यवस्था दी हुई है कि राजस्व तथा करों का संग्रह एवं विभाजन प्रान्तों और संघ द्वारा किस तरह किया जायेगा। अनुच्छेद 249 में संघ सरकार द्वारा आद्योपित पर राज्यों द्वारा संग्रहीत एवं नियोजित करों के ही सम्बन्ध में व्यवस्था दी हुई है। इसमें विशेषज्ञ समिति की सिफारिश के केवल एक अंश को स्थान दिया गया है। समिति की तो सिफारिश यह भी थी कि प्रान्तों तथा संघ के बीच कर-साधनों का विभाजन भी अतिशीघ्र कर दिया जाये। ऐसी हालत में, श्रीमान्, क्या मेरा पूछना जायज़ नहीं है कि समिति की इन सिफारिशों को संविधान में क्यों नहीं स्थान दिया गया है और क्यों भारत सरकार का एक प्रतिनिधि यहां सामने आकर हमें नहीं बतलाता है। विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के उन अंशों को जिनका कि मैंने यहां उल्लेख किया है सरकार ने स्वीकार किया है या नहीं और प्रान्तों को सरकार क्या सहायता देना चाहती है? भारत सरकार के अर्थ-विभाग के सम्बन्ध में मैंने कुछ कड़ी बात जरूर कही हैं पर वह इसीलिये कि मैं भारत के आर्थिक ढांचे की खराबियों को जानता हूं।

आशा करता हूं, श्रीमान्, कि भारत सरकार का वित्त विभाग प्रान्तों के साथ भिखमंगों का सा बर्ताव न करेगा। कुछ ऐसा हो गया है कि प्रान्तों को अपना भिक्षा पात्र लेकर वित्त विभाग के पास पहुंचना पड़ता है। चाहे खाद्य आयोग के सम्बन्ध से हो या बंगाल के 1946 के दुर्भिक्ष का ही मसला क्यों न हो, कोई भी भीख के रूप में कुछ नहीं लेना चाहता है। जनता की जो वाजिब मांग है उसे हम केन्द्र के आगे रख रहे हैं। अब तक तो केन्द्रीय शासन एक स्वेच्छाचारी शासन था और ब्रिटिश अमलदारी को बनाये रखने के लिये ही वह अस्तित्व में था, पर उसे अब अतीतकालीन मनोवृत्ति का परित्याग करके प्रान्तों को वह आय-साधन दे देने चाहिये जो कि वस्तुत: उनके हैं। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं मांगता हूं। विशेषज्ञ समिति की सिफारिशें आपके सामने हैं। भारत सरकार के प्रवक्ता को यहां आकर यह अब कह देना चाहिये कि उसने इन सिफारिशों को पूर्णत: या कुछ संशोधन के साथ मंजूर कर लिया है। ऐसा होने से प्रान्तों को कुछ साहाय्य मिल जायेगा। हम इस बात की ओर आशा लगाये बैठे हैं कि प्रान्तों की समुन्नति होगी, जनता के स्वास्थ्य का स्तर और ऊंचा उठेगा। मैंने समाचार पत्रों मे पढ़ा है कि हमारे स्वास्थ्य मंत्री के पास कुछ लोग पहुंचे थे और मंत्री ने अपनी यह इच्छा व्यक्त की है कि दिल्ली में बने बनाये मकानों के कुछ अस्पताल स्थापित किये जायें। प्रान्तों के पास अपने अस्पताल बनाने के लिए एक लाख की भी रकम नहीं है। उड़ीसा, आसाम जैसे अनुनत्त प्रान्तों में—मैं बिहार को भी यहां शामिल

[श्री बी. दास]

करूंगा—अस्पतालों में बहुत ही कम रोगियों के रखने का सामान है। पर केन्द्र अपने लिये मनमाना जो चाहता है करता है। दिल्ली के लिये बने बनाये मकानों के अस्पताल स्थापित करने की बातें वह कर रहा है जिसमें करोड़ों का खर्च होगा। मैं पूछता हूं क्या इसी तरह प्रान्तों को समुन्नत बनाया जायेगा?

आगे चलकर मैं बहस-मुबाहिसे में फिर भाग लूंगा जब सभा में अनुच्छेद 254 पर विचार किया जायेगा जिसमें पटसन पर करारोपण की व्यवस्था है और जब यहां अनुच्छेद 260 पर विचार किया जायेगा जिसके अनुसार संविधान के प्रारम्भण के पांच के बाद वित्तायोग की नियुक्ति होगी। प्रस्तुत अनुच्छेदों का मसौदा बड़ी ही हृदयहीनता के साथ तैयार किया गया है। इसमें रचयिताओं ने ईमानदारी का परिचय नहीं दिया है। क्या वित्त विभाग अपनी सरकार की यही लोकतन्त्रीय भावना रखता है जो वह कदम-कदम पर प्रान्तों की समुन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाता है और देश के वित्त पर अपना ही कब्जा जमाये रहना चाहता है ताकि वह जिस तरह चाहें उसे खर्च करें।? इस बात को व्यक्त करके मैं किसी रहस्य पर नहीं प्रकाश डाल रहा हूं कि 1946 में भारत सरकार ने यह निर्णय किया था कि सैन्य व्यय को घटाकर एक सौ करोड़ कर दिया जाये। हम जानते हैं कि आज देश का विभाजन हो जाने के बाद भी हमारा सैन्य व्यय 150 करोड़ है। मैं कोई कारण नहीं देखता कि क्यों भारत सरकार प्रान्तों की सम्पत्ति को छीन कर मनमानें ढंग से उसे खर्च करे? इस स्वतन्त्र संविधान की रचना करने वाली यह सर्वसत्ताधारी सभा भारत सरकार के अर्थ विभाग को कदापि यह न करने देगी कि देश के आय साधनों के साथ वह जिस तरह चाहे खिलवाड़ करे और प्रान्तों को भूखा मारे। प्रान्तों की ओर से और खासकर के बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा की ओर से इस महिमाशालिनी सभा के समक्ष में इसका आग्रह करूंगा कि अनुन्नत प्रान्तों के प्रति वह न्याय करे, मैं इस बात का आग्रह करता हूं कि वित्त विभाग का जो यह रुख है कि जल्दीबाजी में द्रुतगति से हमें कोई कार्रवाई न करनी चाहिये, उसकी यहां तीव्र निन्दा होनी चाहिये और इस सभा को विशेषज्ञ-समिति की सिफारिशों को स्वीकार करना चाहिये जिसमें सदस्य थे श्री नलिनीनंजन सरकार, श्री बी.एस. सुन्दरम् और श्री एम.वी. रंगाचारी जैसे कुशल अर्थविद् लोग। श्री एम. वी. रंगाचारी आज भी भारत सरकार के वित्त विभाग में डिप्टी सेक्रेटरी के पद पर पर हैं। फिर इस विभाग ने उक्त समिति की सिफारिशों का कैसे अतिक्रमण किया? मैं सभा से इस बात का आग्रह करूंगा कि भारत के असंख्य नर-नारियों के प्रति वह न्याय करे, असहाय प्रान्तों के साथ वह न्याय करे और उनको जो समुचित रूप से मिलना चाहिये वह उन्हें दे।

*__अध्यक्षः__ और कोई भी बोलना चाहता है? *(कोई सदस्य नहीं उठा)* आप कुछ कहना चाहते हैं, डॉ. अम्बेडकर?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ (बम्बई : जनरल): कोई ऐसी बात नहीं है की कही जाये।

*__अध्यक्षः__ अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:–

"कि अनुच्छेद 249 के खण्ड (3) को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:–

"कि अनुच्छेद 249 के खण्ड (1) में 'such stamp duties' शब्दों के आगे 'as are imposed under any law made by Parliament' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:–

"कि अनुच्छेद 249 के खण्ड (2) में 'revenues of India' शब्दों के आगे 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:–

"कि अनुच्छेद 249 को, उसके संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 249 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 250

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है: "कि अनुच्छेद 250 संविधान का अंग माना जाये।"

(संशोधन नं. 2842 से 2850 पेश नहीं किये गये।)

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 250 के अन्त में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जायें:

'The net proceeds of said distribution shall be assigned by the States to the local authorities in the jurisdiction.' "

(उक्त विभाजन की कुल रकम, राज्यों द्वारा तत्क्षेत्रान्तवर्ती स्थानीय प्राधिकारियों को सौंप दी जायेगी।)

इस संशोधन पर मेरा दूसरा संशोधन भी है जिसका नं. है 201। मैं इसे भी पेश करूंगा, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** पर उसका भी तो वही प्रभाव होगा जो पहले संशोधन का है।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं दूसरे हिस्से को पेश करना चाहता हूं। वह यों है:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2841 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 250 में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided that the proceeds collected by the Government of India under clause (c) shall be assigned to local authorities in the jurisdiction of the States.' "

[पर खण्ड (ग) के अधीन भारत शासन द्वारा संग्रहीत आय, राज्यों के क्षेत्रान्तर्वर्ती स्थानीय प्राधिकारियों को सौंप दी जायेगी।]

यह अनुच्छेद, श्रीमान्, कमोबेशी भारत-शासन-अधिनियम की धारा 137 से लिया गया है। अनुच्छेद में चार तरह के करों के संग्रह का उल्लेख किया गया है। एक तो वह जो सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर आरोपित किया जायेगा। दूसरा भूसम्पत्ति-कर, तीसरा सीमा-कर और चौथा रेल द्वारा वाहित मनुष्यों तथा वस्तुओं के भाड़े पर कर। मेरा संशोधन यह है कि खण्ड (ग) के अधीन भारत सरकार द्वारा संग्रहीत कर राज्यों के क्षेत्रान्तर्वर्ती स्थानीय प्राधिकारियों को सौंप दिये जायें।

इस संशोधन को रखने में मेरा उद्देश्य यह है। स्थानीय निकायों के राजस्व सम्बन्धी आय के प्रधान साधन हैं मार्ग-कर, चुंगी-कर तथा सीमा-कर। भारत-शासन-अधिनियम 1935 के प्रवर्त्तन में आने के पहले ये सीमा-कर प्रान्तों के अधिकार में थे। पर उक्त अधिनियम 1935 में उन्हें केन्द्रीय सूची में रख दिया गया। जब तक केन्द्र सीमा-कर आरोपित करने पर राजी न हो, प्रान्तीय सरकार और किसी मद पर सीमा-कर नहीं लगा सकती है जिससे स्थानीय निकाय बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं। इस सम्बन्ध में भारत सरकार से कई बार कहा जा चुका है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे बहुत खेद है, श्रीमान्। शुरू में ही मुझे इस अनुच्छेद को स्थगित रखने का अनुरोध करना चाहिये था।

***अध्यक्षः** यह सुझाव दिया गया है कि इस अनुच्छेद पर विचार अभी स्थगित रखा जाये।

***श्री आर. के. सिधवाः** उस हालत में मैं यह अनुरोध करूंगा कि, श्रीमान् मेरा संशोधन भी स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्षः** अगर अनुच्छेद पर ही विचार स्थगित रखा जाता है तो आपका संशोधन भी स्थगित ही रहेगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** तो ठीक है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 251 को लेते हैं।

(नं. 2852 से 2857 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (2) में 'such percentage' (वह प्रतिशत भाग) शब्दों के आगे 'not being less than sixty percentage' (जो साठ प्रतिशत से कम न होगा) शब्द रखे जायें तथा 'or the taxes payable in respect of union emoluments' (अथवा संघ-परिलाभों के सम्बन्ध में देय कर न हों) शब्द हटा दिये जायें और इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये–

'Provided that for a period of five years from the commencement of this Constitution, of the net proceeds assigned to the States, thirty-three and one-third per cent.,' shall be distributed among the States on the basis of population, fifty-eight and one- third per cent. on the basis of collection and the remaining eight and one-third per cent. shall be distributed in such manner as may be prescribed'"

(पर संविधान के प्रारम्भण से पांच वर्ष की अवधि तक राज्यों को सौंपे गये कुल आय में से $33^1/_3$ प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और $58^1/_3$ प्रतिशत संग्रह के आधार पर तथा शेष $8^1/_3$ प्रतिशत, उस रीति से जो कि एतदर्थ निर्धारित की जाये, राज्यों में वितरित कर दिया जायेगा।)

मेरे संशोधन में मुख्यत: तीन बातें कही गई हैं। पहली बात यह है कि राज्यों को वितरित किये जाने वाले आय-कर में केन्द्रीय परिलाभ भी शामिल समझे जायेंगे। आय-कर द्वारा केन्द्र को एक विशाल रकम मिलेगी इसलिये उचित यही है कि खण्ड (4) के उपखण्ड (ग) में वर्णित संघ-परिलाभ भी इस वितरण में शामिल किये जायें।

दूसरी बात जो संशोधन में कही गई है वह यह है कि इसके लिए एक न्यूनतम प्रतिशत नियत कर दिया जाये और संविधान में ही यह बात रख दी जाये। यह सच है कि पांच वर्ष के बाद एक आयोग नियुक्त किया जायेगा, जो इस वितरण के सम्बन्ध में उन सभी स्थितियों पर विचार करेगा जिनमें कि एक प्रान्त को संविधानानुसार चलना है। कहने का मतलब यह है कि प्रान्त की क्या आवश्यकतायें हैं, उसने क्या वचन दे रखे हैं और भविष्य में वह किस हद तक समुन्नत कर सकता है—इन सभी बातों पर आयोग विचार करेगा। पर इस मध्यवर्ती पांच साल की अवधि के लिए संविधान में इसके लिये कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है कि इस आय का वितरण किस तरह किया जायेगा। मुझे मालूम हुआ है कि भारत सरकार का वित्त विभाग इसके लिए एक समिति नियुक्त करने जा रहा है जो इस अन्तवर्ती काल के लिये कुछ अवस्था निर्धारित करेगी। किन्तु इस सम्बन्ध

[श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन]

में इस समिति के सामने भी वही कठिनाइयां आयेंगी जो पांच साल बाद आयोग के सामने आयेंगी। यह एक बड़ा विवादग्रस्त विषय है और जो उप-समिति अभी नियुक्त की जायेगी उसके सामने प्रान्त अपने अलग दावे पेश करेंगे और उसे कई बातों का ख्याल रखना पड़ेगा जिससे वह बड़ी कठिनाई में पड़ जायेगी। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के दावों के अनुसार कोई भी व्यवस्था निर्धारित करना उनके लिये बड़ा कठिन होगा। वित्त-आयोग नियुक्त होगा पांच साल के बाद और तब कहीं वह आय-कर वितरण के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त निर्धारित करेगा। पर इस अन्तर्वर्ती अवधि में भिन्न-भिन्न प्रान्तों को कई काम करने होंगे और उन्हें विकास विषयक कितने ही कार्यों को शुरू कर देना होगा। अगर उन्हें इस बात का कोई आभास नहीं रहता है कि वितरण में उन्हें क्या रकम मिल सकती है तो उनके लिए प्रतिवर्ष अपने बजट को ठीक करना बड़ा कठिन होगा। अगर वितरित किये जाने वाले इस कर के बारे में अभी ही से यह निर्धारित कर दिया जाये कि इसमें से अमुक न्यूनतम रकम प्रान्तों को दी जायेगी, तो इससे यह होगा कि प्रान्तों को यह पता रहेगा कि इस कर से क्या रकम उनको उस वर्ष मिल सकती है, क्योंकि पहले के अनुभव के आधार पर हर प्रान्त को यह मालूम ही हो जायेगा कि प्रान्त में इस मद में कितनी रकम इकट्ठी हो जायेगी, इस तरह उनको मोटा-मोटी एक अन्दाजा मिल जायगा कि आय-कर से क्या रकम उनको मिल सकती है। अगर कोई न्यूनतम प्रतिशत आप इसके लिए निर्धारित नहीं कर देते हैं और इसे समिति पर छोड़ देते हैं तो प्रान्तों को बड़ी कठिनाई होगी और वह विकास विषयक किसी भी स्थायी योजना को हाथ में नहीं ले सकते हैं। यही कारण है कि हमें एक न्यूनतम प्रतिशत इसके लिये निर्धारित ही कर देना चाहिये। मेरा प्रस्ताव यह है कि कम से कम इस आय का 60 प्रतिशत प्रान्तों और राज्यों को दिया जाये और मेरा मुख्य तर्क यह है कि एक न्यूनतम रकम उसके लिए निर्धारित कर दी जाये।

वितरण के सम्बन्ध में मैंने यह कहा है कि यहां एक न एक व्यवस्था निश्चित हो जानी चाहिये जिसके आधार पर इस अन्तर्वर्ती काल में प्रान्तों के दावों को तय किया जा सके। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो समिति के सामने भिन्न-भिन्न प्रान्त अपने अलग-अलग दावे पेश करेंगे और वह बड़ी मुसीबत में पड़ जायेगी। कुछ प्रान्त, जिनकी आबादी अधिक होगी यह कहेंगे कि आबादी के हिसाब से यह आय वितरित की जाये और कुछ प्रान्त यह कहेंगे कि संग्रह के हिसाब से वितरित की जाये। कुछ ऐसे भी प्रान्त होंगे जो कहेंगे कि न आबादी के हिसाब से और न संग्रह के आधार पर बल्कि और अन्य ही किसी आधार पर यह रकम वितरति की जाये। समिति के सामने तरह-तरह के दावे आयेंगे और वह कठिनाई में पड़ जायेगी। इसलिये अगर वितरण के लिये हम कोई प्रतिशत यही निर्धारित कर देते हैं और विवाद को यहीं समाप्त कर देते हैं तो समिति को बड़ी सहूलियत हो जायेगी। मेरा यह कहना है कि प्रान्तों को न्यूनतम प्रतिशत निश्चित कर दिया जाये ताकि वह अपने बजट को ठीक कर सके और विकास विषयक योजनाओं को हाथ में ले सके जो कई वर्षों में कहीं पूरी होंगी।

अवश्य ही केन्द्र को आय की और भी ज्यादा जरूरत है पर मेरा कहना यह है कि केन्द्र के पास तो आय के कितने ही साधन हैं जिनसे वह बड़ी रकम इकट्ठी कर सकता है, पर प्रान्तों के पास जो साधन हैं वह बहुत ही सीमित हैं और वह ऐसे हैं कि जनता के हितों का उनसे बड़ा गहरा सम्बन्ध है। सातवीं अनुसूची की सूची 2 में जो विषय रखे गये हैं जिन पर प्रान्तों को करारोपण का अधिकार है, वह ऐसे हैं कि उन पर कर लगाने में वहां की जनता जबरदस्त विरोध करेगी उन मदों पर कर लगाने से तो प्रान्तीय शासन अप्रिय बन जायेगा और फिर उनसे आय भी बड़ी सीमित ही रहेगी। इसलिये आयकर का, जिसमें कि एक काफी बड़ी रकम इकट्ठी होगी, एक न्यूनतम प्रतिशत प्रान्तों के लिये निर्धारित कर दिया जाना चाहिये ताकि उसके हिसाब से वह अपना बजट बना सकें। मेरा इतना ही कहना है।

(भाग 2 के नं. 2859 से 2878 के संशोधन तथा पूरक सूची संशोधन नं. 75 नहीं पेश किये गये।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (2) में 'revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें"

(संशोधन नं. 75, 76 और 77 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 244।

***प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

'कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2875 की जगह निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:-

"अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) की उपकण्डिका (1) और (2) में 'by the President by order' शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by law' शब्द रखे जायें।'"

इस उपखण्ड (ख) (1) में यह कहा गया है कि:

" 'Prescribed' means—until a Finance Commission has been constituted, prescribed by the President by Order,"

(विनिहित का अर्थ यह है-

जब तक कि आयोग का संघटन न हो चुके तब तक राष्ट्रपति से आदेश द्वारा।) उपखण्ड (ख) (2) में यह कहा गया है:

"after a Finance Commission has been constituted, prescribed by the President by order after considering the recommendations of the Finance Commission."

(वित्तायोग के संघटित हो चुकने के पश्चात वित्तायोग के अभिस्तावों पर विचार करके राष्ट्रपति से आदेश द्वारा विनिहित।)

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इस अनुच्छेद में, श्रीमान्, विभिन्न प्रान्तों में केन्द्रीय शासन द्वारा संग्रहीत आयकर के वितरण के सम्बन्ध में व्यवस्था दी हुई है। उसमें यह कहा गया है कि "किसी आर्थिक वर्ष में के ऐसे किसी कर के शुद्ध आय का वह प्रतिशत भाग इत्यादि इत्यादि....उन राज्यों को उस रीति से विभाजित किया जायेगा जो कि विनिहित किया जाये"। यहां विनिहित का अर्थ बताया गया है कि जब तक कि वित्तायोग का संघटन न हो चुके तब तक तो राष्ट्रपति से आदेश द्वारा विनिहित और वित्तायोग के संघटित हो जाने के बाद भी विनिहित का अर्थ यही होगा कि राष्ट्रपति से आदेश द्वारा विनिहित। मेरा संशोधन यह है कि वित्तायोग के संघटित हो जाने के बाद 'विनिहित' का मतलब होना चाहिये कि संसद् विधि द्वारा जो विनिहित करे। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है, श्रीमान् और इसके अनुसार आयकर को विभिन्न प्रान्तों में वितरित किया जायेगा। अभी अभी श्री बर्मन ने यह संशोधन उपस्थित किया है कि इसका 60 प्रतिशत प्रान्तों को दिया जाये और इसे किस हिसाब से वितरित किया जाये इसका भी आपने सुझाव दिया है। उन्होंने तीन सुझाव दिये हैं। उनका कहना है कि इसका कुछ प्रतिशत तो आबादी के हिसाब से और कुछ प्रतिशत संग्रह के हिसाब से और शेष एक अन्य रीति से वितरित किया जाये। इस तरह हम यह देखते हैं कि यह विषय बड़ा विवादग्रस्त है। संघ-संविधान के वित्तीय प्रावधानों पर विचार करने के लिए जिस विशेषज्ञ समिति को आपने नियुक्त किया था, श्रीमान्, उसने अपनी रिपोर्ट में इस कर का इतिहास बताया है और यह कहा है:–

> "आयकर के वितरण के सम्बन्ध में प्रान्तों में बड़ा मतभेद है। बम्बई और पश्चिमी बंगाल का मत है कि संग्रह या आवास के हिसाब से वितरित किया जाये। संयुक्तप्रान्त का कहना है कि आबादी के हिसाब से बांटा जाये, बिहार का मत है कि आबादी और वसूली दोनों के सम्मिलित आधार पर वह बांटा जाये। उड़ीसा उड़ीसा और आसाम यह चाहते हैं कि चूंकि वह पिछड़े हुये हैं उनके साथ वितरण में खास रियायत की जानी चाहिये। पूर्वी पंजाब ने इसके लिये किसी आधार पर सुझाव नहीं रखा है पर वह यह चाहता है कि उसकी तीन करोड़ की कमी इससे किसी तरह पूरी हो जाये।"

इस तरह हम यह देखते हैं, श्रीमान्, कि आयकर के वितरण के बारे में प्रान्तों की भिन्न-भिन्न रायें हैं। हम सभी जानते हैं कि आयकर केन्द्रीय राजस्व का एक प्रमुख साधन है। इस अनुच्छेद में केवल इस सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है कि आयकर को केन्द्र तथा प्रान्तों में किसी तरह वितरित किया जायेगा और यह कहा गया है कि उस आय का एक ऐसा प्रतिशत अंश जो कि विनिहित किया जाये राष्ट्रपति के आदेश अनुसार बांट दिया जायेगा, मेरा ख्याल यह है कि आयकर विभाजन का प्रश्न एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसे सिर्फ राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ना ठीक न होगा। अवश्य ही राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार उसके वितरण का अर्थ भी यह होगा कि कार्यपालिका उसका वितरण करेगी। किन्तु मैं चाहता यह हूं कि उसके वितरण की व्यवस्था संसद् विधि द्वारा करे। वित्तायोग की रिपोर्ट आने के पहले शासन को इस सम्बन्ध में एक विधेयक उपस्थित करना चाहिये, जिसमें यह दिया हो कि आयकर की आमदनी को शासन किस तरह वितरित करना चाहता है और संसद् यदि पसन्द करेगी, तो उसे स्वीकार करेगी। इसी तरह

वितायोग के संघटित हो जाने पर भी शासन एक विधेयक उपस्थित करके यह बतलावे कि वित्तायोग की किन सिफारिशों को स्वीकार करती है और किस हिसाब से वह आयकर का वितरण करना चाहता है। विधेयक के उपस्थित किये जाने पर संसद् वह निर्णय कर सकेगी कि किस हिसाब से वितरण किया जाये। मैं नहीं समझता कि सैकड़ों करोड़ रुपयों के वितरण की महत्वपूर्ण शक्ति राष्ट्रपति में निहित की जानी चाहिये। यह शक्ति तो संसद् को ही प्राप्त रहनी चाहिये। आयकर को केन्द्र तथा प्रान्तों में वितरण की शक्ति संसद् को रहनी चाहिये और इस शक्ति से हमें वंचित न रखना चाहिये। यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और मुझे आश्चर्य है कि मसौदा-समिति के ध्यान में यह बात कैसे न आ सकी। मैं नहीं समझ पाता कि सभी शक्तियां वह राष्ट्रपति में ही क्यों केन्द्रित कर देना चाहती है। कम से कम इस मसले में तो देश की सर्वक्षमता प्राप्त संसद् की राय ही को मान्यता मिलनी चाहिये। अगर यह प्रश्न संसद् के समक्ष आयेगा तो देश को मालूम हो सकेगा कि प्रान्तों की क्या आवश्यकतायें हैं और हम यह समझ सकेंगे कि किस हिसाब से वितरण करना ठीक रहेगा। मेरे संशोधन बिल्कुल सरल हैं और मैं नहीं समझता कि मसौदा-समिति उनको अस्वीकार करेगी।

पर मैं यह कहूंगा कि इन संशोधनों में लोकतंत्र का सार निहित है। अगर सैकड़ों करोड़ रुपये राष्ट्रपति ही आदेश द्वारा वितरित कर दे तो फिर संसद् किस काम के लिए रहेगी? अगर आयकर का वितरण संसद् नहीं करती है तो फिर उसके और प्रकार्य ही क्या होंगे? यह तो एक बड़ी ही असाधारण सी बात होगी। वित्तायोग उन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जिनके आधार पर कि आयकर का वितरण किया जाना चाहिये, एक रिपोर्ट पेश करेगा और संसद् उन पर विचार करके एक विधेयक उपस्थित करेगी, जिसमें यह बात दी हुई होगी कि वित्तायोग की सिफारिशों को वह किस तरह कार्यान्वित करना चाहती है। संसद् को यह शक्ति अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये, ताकि भिन्न-भिन्न प्रान्तों को वह समुचित अंश मिल सके। यह एक गम्भीर प्रश्न है और मैं नहीं समझता कि ऐसे प्रावधान को जिसमें राष्ट्रपति को आदेश द्वारा एक असीम राशि वितरित करने की शक्ति दी गई हो, संविधान में रखना ठीक होगा।

अनुच्छेद के दूसरे हिस्सों में वस्तुत: यह बात कही गई है कि आयकर के मद में किन-किन रकमों को शामिल किया जायेगा। यहां यह कहा गया है कि संघ-परिलाभ इसमें शामिल न किये जाने चाहियें। पर कुछ लोगों का विचार यह है कि यह भी शामिल करना चाहिये। विशेषज्ञ-समिति की भी यही राय है कि संघ-परिलाभ इसमें ही शामिल किये जाने चाहियें। इस सम्बन्ध में मैं कुछ आपत्ति न करूंगा पर वितरण सम्बन्धी व्यवस्था के बारे में मुझे अवश्य आपत्ति है। वितरण होना चाहिये संसद्-निर्मित विधि के अधीन, न कि राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): एक संशोधन मुझे रस्मी तौर पर उपस्थित करना है, श्रीमान्। सभा ने अनुच्छेद में सर्वत्र 'Revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखना तय किया है। पर यहां खण्ड (4) के उपखण्ड (ग) में 'Revenues of India' शब्द ही आ गये हैं। इसलिये आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:-

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ग) में 'Revenues of India' शब्द की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

*श्री विश्वनाथ दास (उड़ीसा : जनरल): इन अनुच्छेद पर विचार करने में हमें आप द्वारा नियुक्त सरकार-कमेटी की सिफारिशों पर विचार करना होगा जिसे आपने केन्द्र एवं प्रान्तों के आर्थिक सम्बन्ध के बारे में रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया था। कतिपय कठिनाइयों के कारण उस समिति की रिपोर्ट पर यहां सभा में विचार न किया जा सका था। इसलिये यह आवश्यक है कि इस अनुच्छेद पर विचार करते समय उस रिपोर्ट पर भी पूरी तरह खुलकर यहां विचार करने की आप अनुमति दें।

मैं तो यह उम्मीद करता था कि सरकार-कमेटी को जिन बातों पर विचार करने के लिए कहा जायेगा वह काफी व्यापक होंगी और उनके अधीन वह उनसे कहीं अधिक प्रश्नों पर विचार करेगी जिन पर कि उसने विचार किया है। मैं आपसे, श्रीमान्, तथा इस सभा से यह निवेदन करूंगा कि अब समय आ गया है कि केन्द्र एवं प्रान्तों में आय के सम्बन्ध में एक समुचित प्रणाली को कार्यान्वित करने का उपाय हम ढूंढ निकालें। इस बात की कभी चिन्ता ही नहीं की गई कि शासन की आय या आगमों को एक समुचित ढंग पर किसी सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर विकसित किया जाये। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसी सुव्यवस्थित योजना के अभाव में आगम के सम्बन्ध में जो भी पद्धति खुद चल पड़ी, वही जारी रह गई और उसी के आधार पर जो आय होती रही सो होने दी गई और ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न के बारे में कभी वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाने का कभी विचार ही नहीं किया गया। सरकार कमेटी की रिपोर्ट में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधार पर इस समस्या का समाधान किया जाये। उस समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस सभा से सिर्फ इस सभा से सिर्फ इस बात की सिफारिश मात्र कर दी है कि राजस्व सम्बन्धी कई रकमों का प्रान्तों एवं केन्द्र में तथा परस्पर प्रान्तों में रीति से विभाजन किया जाये। समिति की सिफारिशों की परिधि बड़ी सीमित है, सुतरां मुझे भी यहां अपनी बात को इन सिफारिशों तक ही सीमित रखना पड़ेगा। इस अनुच्छेद पर विचार करते समय आयकर की आमदनी के वितरण के अलावा मैं अन्य किसी बात पर यहां विचार नहीं कर सकता। सरकारी कमेटी का कहना यह है कि आयकर का 60 प्रतिशत अंश प्रान्तों को दे दिया जाये और शेष 40 प्रतिशत केन्द्र के पास रहे। मैं यह आशा करता था कि समिति इस बात पर पर्याप्त प्रकाश डालेगी कि केन्द्र को 40 प्रतिशत देने की सिफारिश क्यों की जा रही है। इस सम्बन्ध में प्रो. अदारकर एवं श्री नेहरू की रिपोर्ट का मैं यहां उल्लेख करूंगा। इस रिपोर्ट में यह बताया गया है कि आस्ट्रेलिया में केन्द्रीय सरकार आयकर का केवल 25 प्रतिशत अंश अपने पास रखती है और शेष विभिन्न इकाइयों को सौंप देती है। यहां केन्द्रीय सरकार उससे 15 प्रतिशत अधिक क्यों ले? यह ऐसा विषय है जिस पर सरकार-समिति को कुछ न कुछ प्रकाश जरूर डालना चाहिये था। यह सच है कि आज की स्थिति में केन्द्र को अधिक रकम की आवश्यकता है। पर आज की कठिन स्थिति को आप स्थायी क्यों बना रहे हैं? जो लोग यह कहते हैं कि प्रथम तीन, या पांच या दस साल तक केन्द्र को अधिक खर्च करना होगा उनसे मुझे कोई शिकायत नहीं है। पर आयकर का 40 प्रतिशत भाग सदा के लिए केन्द्र को मिलता रहे, यह व्यवस्था अवश्य ही मुझे औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होती है।

अब तक तो मैंने केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच आयकर का वितरण कैसे हो, इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। अब मैं इस बात को लेता हूं कि प्रान्तों

में उसका विभाजन किस हिसाब से होना चाहिये। इस प्रश्न पर भी सरकार-कमेटी की सिफारिशों से मेरा मतैक्य नहीं है। सन् 1935 तक आयकर प्रान्तीय विषय न था। भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अधीन आयकर केन्द्रीय विषय था। इस कर का आरोपण, इसमें वृद्धि करना और वितरण करना केन्द्र के हाथ में था, पर 1935 के अधिनियम में यह व्यवस्था जरूर कर दी गई थी कि इसका 50 प्रतिशत अंश केन्द्र प्रान्तों को बांट देगा। 15 अगस्त सन् 1947 तक सर ओटो नेमर का निर्णय लागू रहा। आयकर का वितरण जिन सिद्धान्तों के आधार पर होता है वह बहुत अनुचित है और इनके कारण छोटे-छोटे प्रान्तों को तो विकास ही अवरूद्ध हो गया है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि ब्रिटिश अमलदारी में प्रान्तों का विकास एक विचित्र ढंग से हुआ था। किसी सुव्यवस्थित योजना के आधार पर भारत वर्ष का विकास करने के निमित तो अंग्रेजों ने यहां प्रान्तों की रचना की नहीं थी। अपनी सुविधा के लिये और ब्रिटिश व्यवसाय को मदद देने की गरज से उन्होंने प्रशासन तथा व्यापार केन्द्रों की स्थापना की थी। इसी का परिणाम था जो उन्होंने यहां प्रेसिडेंसियां स्थापित की थीं ओर इनको कुछ अधिक प्रतिष्ठा और सुविधा दे रखी थीं। यह प्रतिष्ठा और सुविधा इन प्रेसिडेन्सियों को केवल इसीलिये दी गई थी कि ब्रिटिश शासन को प्रतिष्ठा प्राप्त रहे और ब्रिटिश व्यवसाय को सुविधा मिले। यही कारण था जो सभी व्यवसाय-प्रतिष्ठान इन्हीं प्रेसिडेन्सी नगरों में ही स्थापित किये गये। अन्य कई व्यावसायिक प्रतिष्ठान और किसी प्रान्त में स्थापित किये गये, तो केवल संयुक्त प्रान्त जैसे चन्द भाग्यशाली प्रान्तों में ही। यही कारण था जो सर ओटो नेमर ने आयकर की रकम को दुर्भाग्य से संग्रह के आधार पर वितरित किये जाने की व्यवस्था चालू रहने दी। संग्रह के आधार पर इसका वितरण करना एक अन्यायपूर्ण एवं अस्वाभाविक सिद्धांत होगा, क्योंकि आयकर की रकम वस्तुओं की खपत और उपयोग के कारण संग्रहीत हो पाती है और इनका उपयोग और खपत आम जनता ही करती है। इसलिये व्यापार–देशी या विदेशी–किसी तरह से क्यों न चलाया जाये और कुछ खास स्थापित केन्द्रों से ही क्यों न समूचे कारबार का संचालन किया जाये, पर यह कहना अन्याय होगा कि जिन प्रान्तों में ये व्यवसाय-प्रतिष्ठान अवस्थित है या जिन प्रान्तों में इनकी हेड एजेंसियां या निर्माण केन्द्र हों उन्हीं को कारोबार की आय का अंश मिलना चाहिये। यही बात है, जैसे वर्तमान वितरण-व्यवस्था को मैं अवैज्ञानिक एवं अनुचित बता रहा हूं।

जैसाकि मैं पहले ही कह चुका हूं, अंग्रेजों ने कभी इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया कि यहां शासन की आय को किसी सुव्यवस्थित राष्ट्रीय योजना के आधार पर विकसित किया जाये। अपनी व्यावसायिक प्रवृत्ति एवं व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर उन्होंने संग्रह के आधार पर ही इस मसले पर विचार किया, क्योंकि उनके देश में विभिन्न स्थानीय प्रदेशों का विकास एक समान रूप से हुआ है। वहां अगर किसी प्रदेश ने किसी व्यावसायिक क्षेत्र में समुन्नति की है तो दूसरे प्रदेश ने कृषि-क्षेत्र में समुन्नति की है। इसलिये दोनों ही प्रदेशों को वहां यथासमय समान अनुपात से लाभ मिल जाता है। परन्तु दुर्भाग्य से यहां अपने देश में ऐसी स्थिति नहीं है। इसलिये सर ओटो नेमर के दृष्टिकोण को हम औचित्यपूर्ण नहीं कह सकते हैं। एक दूसरी समिति की रिपोर्ट से भी इसी बात का समर्थन होता है। यहां मेरा संकेत है फेडरल फाइनान्स कमेटी की रिपोर्ट की ओर जो गोलमेज सभा के निश्चय के फलस्वरूप नियुक्त की गई थी और जिसने

[श्री विश्वनाथ दास]

1933 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। उसमें आप देखेंगे कि कमेटी का निर्णय यही था कि आबादी के आधार पर आयकर का वितरण हो।

इस सम्बन्ध में मैं पुनः प्रो. अदारकर तथा श्री नेहरू की सिफारिशों का हवाला दूंगा। उन्होंने इस सम्बन्ध में तीन मुख्य आधार निर्धारित किये हैं। पहला तो यह कि आबादी के आधार पर उसका वितरण किया जाये। दूसरा क्षेत्र के आधार पर और तीसरा यह कि संग्रह के आधार पर। संग्रह को उन्होंने अंतिम स्थान दिया है और ऐसा करना ठीक ही है क्योंकि संग्रह के आधार पर आयकर का वितरण करना एक कृत्रिम पद्धति होगी। यह सच है कि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे केन्द्रों की ओर हमें अधिक ध्यान देना होगा। उन्हें औरों से कुछ ज्यादा दीजिये, पर यह सर्वथा अनुचित है कि आयकर के एक बड़े अंश की यही केन्द्र मांग करें। इन तीन प्रेसीडेन्सियों से आये हुये मित्र यदि यह अनुभव करते हो कि मैं उनके प्रति कठोर हूं, तो वे मुझे क्षमा करेंगे। ऐसी कोई बात नहीं हैं। मैं चाहता यह हूं कि सबको एक समान रूप से विकास का मौका मिले। मैं यह नहीं चाहता हूं कि कोई भी प्रान्त असुविधा में पड़े। मैं यह अनुभव करता हूं कि मैं एक भारतीय हूं और मुख्यतः एक भारतीय के दृष्टिकोण से ही यहां बोलता हूं। इन तीन समुन्नत प्रान्तों की भलाई का मुझे सदा ख्याल है पर मैं यह चाहता हूं कि उन्हें भी इस बात का ख्याल होना चाहिये कि अन्य प्रान्तों में रहने वाले उनके भाई और बहनों को उनकी तरह समुन्नत बनने का मौका मिले और यह भी खुशहाल हों। अन्य प्रान्त समुन्नति में उनसे पीछे ही रहें, पर समुन्नति की दशा में उन्हें उन्नत प्रान्तों का अनुगमन तो करने दीजिये। यदि ऐसा नहीं होता है तो यह बिचारे पिछड़े ही रह जायेंगे। इसलिये मैं इस सिद्धांत मैं सहमत नहीं हूं कि आयकर का वितरण संग्रह के आधार पर किया जाये।

सरकार-कमेटी ने भी आयकर के वितरण के सम्बन्ध में वही भूल की जो, सर ओटो नेमर ने की। हां, सरकार-कमेटी ने इतना जरूर किया है कि आयकर का 60 प्रतिशत भाग प्रान्तों में बांटने का और शेष 40 प्रतिशत केन्द्र में रखने का सुझाव दिया है। मेरा कहना यह है कि प्रान्तों को उन्हें और ज्यादा देना चाहिये था क्योंकि देश की राष्ट्रनिर्माण सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने का भार मुख्यतः प्रान्तों पर ही रहेगा।

रिपोर्ट की एक दूसरी बात को लेकर भी उसकी तीव्र निन्दा की गई है। उसकी उस सिफारिश की कठोर आलोचना की गई है कि आयकर की आमदनी का 60 प्रतिशत अंश जो प्रान्तों को दिया जाये, उसमें से 35 प्रतिशत संग्रह के आधार पर दिया जाये। इसका मतलब यह हुआ कि प्रायः कुल आमदनी का 60 प्रतिशत अंश संग्रह के आधार पर बांटा जायेगा। मुझे यह बहुत ही अनुचित प्रतीत होता है। मैं पहले भी कह चुका हूं और फिर उसी बात को दुहराता हूं। आयकर की अवाप्ति होती है जनता की आय से और वह आंका जाता है उत्पादन और खपत के हिसाब से। कृषि-प्रधान प्रान्त कच्चे माल का उत्पादन करते हैं और उद्योग-प्रधान प्रान्त उन कच्चे मालों को लेकर अपने कारखानों के जरिये पक्का माल तैयार करते हैं। कारखानों में तैयार किया हुआ पक्का माल खपत के लिए फिर उन्हीं प्रान्तों को पहुंचता है। पर पक्के माल के जरिये आय जो होती है वह उन्हीं

भाग्यशाली उद्योग-प्रधान प्रान्तों में ही वितरित कर दी जाती है जिसका नतीजा यह होता है कि इन तीन प्रान्तों में ही सारे व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की स्थापना हो पाती है और बेचारे कृषि-प्रधान प्रान्त आयकर के लाभ से वंचित रखे जाते हैं; यद्यपि उस पर इनका भी अधिकार है और वह उन्हें मिलना चाहिये। ऐसी दशा में मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि 60 प्रतिशत अंश में 35 प्रतिशत को संग्रह के आधार पर वितरित किया जाये। ऐसा करना छोटे-छोटे प्रान्तों के साथ अन्याय होगा।

माननीय सदस्यों से मैं इस बात के लिये और भी अनुरोध करूंगा कि एक रक्षित निधि (Reserve Fund) की स्थापना की उपयोगिता पर विचार करे। इस रक्षित निधि की चर्चा करते समय मेरे दिमाग में कई पूर्ववर्ती उदाहरण मौजूद हैं। आपके सामने 'Petrol Cess Fund' की, जिसे साधारणत: लोग 'Road Cess Fund' के नाम से पुकारते हैं, मिसाल मौजूद है। इसका वितरण एक खास हिसाब से किया जाता है। इसका 15 प्रतिशत अंश केन्द्र अपने पास रख लेता है और इसलिये कि अनुन्नत प्रदेशों को उन्नत बनाने में इसका उपयोग किया जा सके। इसलिये मेरा कहना यह है कि केन्द्र कुछ अंश अपने पास रख ले और समस्त देश के हित का ख्याल रखते हुये उसका वितरण समुचित रूप में एक समान आधार पर करे। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं सभा से यह अनुरोध करूंगा कि वह उन बातों पर, जिनका जिक्र मैंने अपनी वक्तृता में किया है, समुचित रूप से विचार करे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन ने अपने संशोधन के द्वारा जो प्रश्न यहां उठाया, वह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और सभा को इस पर खूब सावधानी के साथ विचार करना चाहिये। इस संशोधन का प्रभाव क्या पड़ेगा उसे समझने के लिए हमें अतीत की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा और आयकर की आमदनी के वितरण के सम्बन्ध में भारत सरकार तथा प्रान्तों का जो वर्तमान सम्बन्ध है, इस पर विचार करना होगा। भारत-शासन-अधिनियम के अधीन 1936 में सपरिषद् सम्राट का एक आदेश निकाला गया था, जिसमें आयकर की आमदनी का 50 प्रतिशत प्रान्तों का अंश निर्धारित किया गया था। इसमें चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों को दी जाने वाली रकम तथा संधानीय परिलाभों का कर शामिल नहीं है।

युद्ध छिड़ने तक या कहिये कि युद्ध छिड़ जाने के तीन या चार साल बाद तक भी भारत सरकार प्रान्तों को उनका वह अधिकतम अंश नहीं दे पाती थी, जो सपरिषद् सम्राट के आदेश द्वारा निर्धारित किया गया था। इस आदेश में यह कहा गया था कि आदेश में उल्लिखित दो कालावधियों में से प्रथम में भारत सरकार आयकर के प्रान्तीय अंश में उतनी रकम अपने पास रख सकती है, जिसको उस रकम के साथ अगर जोड़ा जाये तो रेलवे सम्बन्धी अंशदान के रूप में प्रान्त को केन्द्रीय राजस्व में देना जरूरी होता हो, तो कुल जोड़ 13 करोड़ होता है। युद्ध के दिनों में जब रेलवे की बचत की रकम काफी बढ़ गई थी, उस समय भारत सरकार के लिये यह जरूरी नहीं था कि प्रान्तों के अंश में वह कोई रकम रखे, ताकि कुल जोड़ 13 करोड़ का हो जिसका कि मैंने अभी-अभी उल्लेख किया हैं मैं ठीक-ठीक यह नहीं जानता कि वर्तमान समय में प्रान्तों का अंश क्या है, पर मुझे विश्वास है कि आयकर की कुल आमदनी में से 50 प्रतिशत अंश इस तरह से हिसाब लगाकर जिसका मैंने अभी-अभी उल्लेख किया है, प्रान्तों को जरूर दिया जाता है। हमें देखना यह है कि युद्ध की समाप्ति के बाद से भारत सरकार

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

की आर्थिक अवस्था इतनी समुन्नति हो गई क्या कि वह आयकर में से कोई बड़ा अंश प्रान्तों को दे सके। जो भी भारत सरकार के 1947–48 और 1948–49 के बजट से अच्छी तरह परिचित है, वह इस बात को जानता होगा कि भारत सरकार की आर्थिक अवस्था कितनी भयावह है। गत बजट पर जब यहां बहस हो रही थी तो हममें से कइयों ने केन्द्र को असन्तोषप्रद आर्थिक अवस्था की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करने का साहस किया था। पर अर्थ मंत्री ने यह सोचा कि हम लोगों ने जो तर्क पेश किये थे वह बच्चों के से थे। पर मुझे विश्वास है कि अर्थ मंत्री महोदय भी आज इसे अच्छी तरह समझ गये हैं कि हमारी आर्थिक स्थिति उससे कहीं ज्यादा खराब है जितनी कि तीन या चार माह पहले हममें से गम्भीर निराशावादी भी समझते थे। आज ऐसी स्थिति में, जबकि हमारे बजट में जबरदस्त घाटा है, जब हमारी साख इतनी गिर गई है कि कर्ज लेने में हम हिचकते हैं, श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन द्वारा प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करने को भला कौन व्यक्ति वांछनीय कह सकता है? उन्होंने अपना यह संशोधन रखा है विशेषज्ञ-समिति की सिफारिशों के आधार पर, जो श्री एन.आर. सरकार के सभापतित्व में बैठी थी। आयकर में से प्रान्तों के लिए अंश की मांग करने में आप अवश्य ही उतनी दूर नहीं गये जितनी कि विशेषज्ञ समिति पर, जहां तक कि आयकर की कुल आमदनी के उस अंश का सम्बन्ध है, जो कि प्रान्तों को सौंपा जायेगा, वह विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के साथ है। विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह कहा है कि अगर उसकी सिफारिशें मंजूर की जाती हैं, तो अनुमानत: केन्द्रीय राजस्व में सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार शुल्क की कुल आमदनी का 40 प्रतिशत कम 30 करोड़ की कमी हो जायेगी। यह मंजूर करते हुये भी कि श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन का संशोधन विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों से ज्यादा नरम है, यह स्पष्ट है कि सभा को एक ऐसी समिति के सिद्धान्तों को न स्वीकार करना चाहिये, जिसका यह ख्याल हो कि केन्द्र बिना किसी कठिनाई के 30 करोड़ प्रान्तों को दे सकता है। हमारी आर्थिक अवस्था आज इतनी गम्भीर है जितनी कि हो सकती है। इसलिये मैं नहीं समझता कि श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन की बात को स्वीकार करना समस्त भारत के हित को देखते हुये उपयुक्त होगा। इससे प्रान्तों को लाभ हो सकता है, पर प्रान्तों का आर्थिक तथा प्रशासन सम्बन्धी स्थैर्य बहुत कुछ निर्भर करता है केन्द्र की स्थिति पर। प्रान्तों की अदूरदर्शिता होगी, अगर वह इस बात की परवाह किये बिना कि उनकी मांग से केन्द्रीय सरकार की स्थिति पर क्या असर पड़ेगा, वह केन्द्र से आयकर से और बड़ा अंश पाने की मांग करते हैं। अत: मैं फिर से इस बात को कहता हूं कि मेरी राय में आज जो हमारी आर्थिक अवस्था है वह ऐसी नहीं है कि हम ऐसे किसी प्रस्ताव को, जैसा कि श्री बर्मन ने यहां पेश किया है, स्वीकार कर सकें।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मुझे खेद है कि माननीय मित्र की वक्तृता में मैं हस्तक्षेप कर रहा हूं, पर मैं उनसे एक बात पूछना चाहता हूं। माननीय मित्र के पास इस सम्बन्ध में क्या आंकड़े हैं? सरकार-कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ पर पैरा 59 में यह कहा गया है 30 करोड़ की रकम प्रान्तों को देना केन्द्र की क्षमता के बाहर की बात नहीं है। इसलिये मैं पूछता हूं कि सिवाय इस कथन के कि केन्द्र की आर्थिक स्थिति गिर गई है और उनके यहां क्या आंकड़े हैं, जिनके आधार पर सरकार-कमेटी के निर्णय का आप खण्डन कर रहे हैं?

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** केन्द्र की आर्थिक स्थिति का गिर जाना बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका हमें ख्याल रखना ही होगा। विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 1947 में प्रस्तुत की थी। मैं यह पूछता हूं कि आज स्थिति क्या वही है जो उस समय थी या वह इतनी खराब हो गई है कि वह चिन्ताजनक हो गई है? बजट पर जो बहस हुई थी, उसमें माननीय मित्र ने भी भाग लिया था और.....

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** पर यह स्थिति अल्पकालिक है, सदा तो नहीं बनी रहेगी।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** हमारे यह माननीय मित्र भी भारत सरकार की आर्थिक स्थिति में उतने ही निराश थे जितना कि यहां के अन्य सदस्य। पर आज आप यह दलील पेश कर रहे हैं कि भारत सरकार की आर्थिक स्थिति सदा ही वैसी असन्तोषजनक नहीं बनी रहेगी, जैसी कि आज है।

अगर स्थिति में सुधार होता है तो हम प्रान्तों और केन्द्र के आर्थिक सम्बन्ध पर फिर से विचार कर सकते हैं। वित्तायोग की नियुक्ति को सिफारिश करने में भारत सरकार का भी एक उद्देश्य है। मुझे विश्वास है कि माननीय मित्र ने संविधान के मसौदे को ध्यान से पढ़ा है और वह इस बात को जानते हैं कि वित्तायोग की नियुक्ति का जो प्रावधान किया गया है वह इसीलिये कि सामाजिक कल्याण के कामों के लिए जितने धन की प्रान्तों को आवश्यकता हो उससे वह वंचित न रह जाये। पर वह या और कोई सदस्य अगर यह कहते है कि केन्द्र की आर्थिक अवस्था में सुधार हो चुका है तो मैं इसमें साथ नहीं दे सकता। अगर माननीय मित्र का कहना यह नहीं है तो मैं नहीं समझ सकता कि मेरे सम्मुख प्रश्न रखने में उनका और क्या मतलब था। उनके प्रश्न रखने के पहले मैं यही कह रहा था कि माना कि सामाजिक एवं अन्य सेवाओं को, जिन पर कि जनता का कल्याण निर्भर करता है, समुन्नत करने की जिम्मेदारी प्रधानतः प्रान्तों पर है, पर इस समय हमें यह मानना होगा कि केन्द्र उस स्थिति में नहीं है कि वह प्रान्तों को, 30 करोड़ अथवा 20 या 15 करोड़ भी दे सके।

श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन के संशोधन में केवल इतना ही नहीं कहा गया है कि आयकर की आमदनी में से जो अंश आज प्रान्तों को मिलता है उससे बड़ा अंश उन्हें दिया जाये। आयकर का प्रान्तीय अंश किस हिसाब से प्रान्तों में वितरित किया जाये उसके लिये एक प्रणाली भी उनके संशोधन में सुझाई गई है। विशेषज्ञ समिति ने इस सम्बन्ध में जिस पद्धति की सिफारिश की है उसी पद्धति को अपनाने की बात संशोधन में कही गई है। श्री बर्मन का कहना है कि आयकर का वितरण प्रान्तों में होना चाहिये आबादी के आधार पर, वसूली के आधार पर तथा अन्य कई बातों के आधार पर। विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के आधार पर आपका कहना है कि आयकर के प्रान्तीय अंश में से $58^1/_3$ प्रतिशत भाग वसूली के आधार पर वितरित किया जाना चाहिये। विशेषज्ञ समिति के प्रति सम्मान भाव रखते हुये भी मैं यह कहूंगा कि वसूली के आधार पर प्रान्तों के अंश का हिसाब लगाना किसी भी हालत में एक ठोस पद्धति नही कही जा सकती है। भारत सरकार ने एक कमेटी आस्ट्रेलिया भेजी थी इस बात की खोज करने के लिये कि वहां के केन्द्रीय शासन ने विभिन्न राज्यों के शासनों को उनकी आर्थिक स्थिति ठीक बनाये रखने में तथा उनकी सामाजिक कल्याण के कार्यों को समुन्नत करने में किस तरह

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

सहायता दी थी। इस कमेटी में श्री बी.के. नेहरू और श्री अदारकर भी शामिल थे। अपनी सिफारिशों में इस समिति ने साफ तौर पर विशेषज्ञ समिति द्वारा अभिस्वतित तथा श्री बर्मन द्वारा स्वीकृत आधार को अस्वीकार कर दिया है। इस कमेटी ने यह कहा है कि इसका वितरण आबादी, क्षेत्रफल तथा फी आदमी की आमदनी के आधार पर होना चाहिये। उसने वितरण के लिए फी आदमी की आमदनी का जो आधार सुझाया है, उसके हिसाब से अधिक सम्पन्न प्रान्तों को उसकी सम्पत्ति के अनुपात से केन्द्र को कम सहायता मिलेगी और गरीब प्रान्त को जो मुश्किल से गुजारा कर पाता है अधिक सहायता मिलेगी। आस्ट्रेलिया के कामनवेल्थ ग्रान्ट्स कमीशन ने अपने अनुभव के आधार पर इन्हीं तीन बातों को राज्यों की सहायता प्रदान करने के लिये सर्वोत्तम आधार माना है। इन तीन बातों के ही आधार पर क्यों सहायता प्रदान की जाये, इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। जो प्रान्त औद्योगिक समुन्नति में जितना ही आगे बढ़ चुका होगा उतना ही अधिक आयकर उस प्रान्त से वसूल होगा। पर उस प्रान्त द्वारा निर्मित वस्तुओं की सारी खपत उसी प्रान्त में नहीं होती है। उस प्रान्त के उद्योग-धन्धे उसी हालत में तरक्की कर सकते हैं जबकि देश के अन्य प्रान्तों के लोग उसकी वस्तुओं की खपत कर सकते हों। इसलिये कोई कारण नहीं है कि आयकर के प्रान्तीय अंश का वितरण संग्रह के आधार पर किया जाये। यह बहुत ही असन्तोषजनक पद्धति है।

इसके अतिरिक्त संघ-राज्य बनाने का यदि कोई प्रयोजन है, तो यही है कि सम्पन्न प्रान्तों की कुछ सम्पत्ति निर्धन प्रान्तों के पास पहुंचे। जिस तरह कि सामाजिक-कल्याण की कल्पना में यह सिद्धांत निहित है कि सम्पन्न लोगों की सम्पत्ति का कुछ अंश निर्धनों के पास जाना चाहिये, उसी तरह संघ-राज्य की कल्पना में अथवा राष्ट्रीय ऐक्य की कल्पना में यही सिद्धान्त निहित है कि सम्पन्न प्रान्त अपनी सम्पत्ति में से एक अंश, जो कि सिद्धान्त की दृष्टि से उनका है, निर्धन प्रान्तों के कल्याण के लिये दे दें। अगर ऐसा नहीं होता है तो अनुन्नत प्रान्तों को भाग्यशाली उन्नत प्रान्तों के स्तर पर लाना असम्भव होगा। उस हालत में तो इस बात की प्रत्याभूति देना भी सम्भव न हो सकेगा कि कम उन्नत प्रान्तों में सामाजिक सेवाओं का स्तर उतना ऊंचा जरूर होगा जितना कि कम से कम अपेक्षित है।

इसलिये उन कारणों से जिनका मैंने यहां जिक्र किया है, मैं यह समझता हूं कि श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन के प्रस्तावों को स्वीकार करना उन सिद्धान्तों के ही सर्वथा विपरीत है, जो संघ राज्य की स्थापना में सन्निहित है। यह सच है कि विशेषज्ञ समिति ने ऐसी सिफारिश जरूर की थी। पर उससे भी पहले जबकि भारत सरकार ने इस समिति के प्रस्तावों को अस्वीकार किया था मेरा इन प्रस्तावों से सर्वथा मत-विरोध था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि एक विशेषज्ञ समिति आयकर के प्रान्तीय अंश के वितरण के लिए ऐसे आधार का सुझाव दे रही है। वस्तुत: यह सन्तोष की बात है कि भारत सरकार ने इस समिति की सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इनको स्वीकार करने से वह बड़ी भयावह स्थिति में पड़ जाती।

अब चन्द शब्द मैं उन बातों के सम्बन्ध में कहूंगा, जो माननीय मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना के श्रीमुख से यहां निकले हैं। उन्होंने यह सुझाव दिया

है आय के साधनों का विभाजन प्रान्तों एवं केन्द्र के बीच संसद निर्मित विधि के अधीन होना चाहिये। मैं नहीं समझता कि उनका यह सुझाव कोई अच्छा सुझाव है। आस्ट्रेलिया में कामनवेल्थ-ग्रान्ट्स-कमीशन की स्थापना किसी संसदीय विधि के अधीन नहीं हुई है। वहां की केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्यों के बीच हुये एक समझौते के फलस्वरूप यह कमीशन अस्तित्व में आया है। इसकी सिफारिशें तभी संसद् के समक्ष रखी जाती हैं जब केन्द्र और विभिन्न राज्य उनको मंजूर कर लेते हैं। यदि हम आय के साधनों का प्रान्तों और केन्द्र के बीच विभाजन करते हैं किसी संसदीय विधि के आधार पर, तो उससे केन्द्र एवं प्रान्तीय शासनों के आर्थिक सम्बन्ध में लचीलापन न रह जायेगा और एक अवांछनीय कठोरता आ जायेगी। मैं समझता हूं कि माननीय मित्र सक्सेना का यह कहना है कि वित्तायोग की जो भी सिफारिश हों उनको संसद विधि द्वारा ही अमल में लाये। मैं नहीं समझ पाता कि ऐसा करना भला क्यों जरूरी है। अगर वित्तायोग इस तरह से प्रकार्य करता है कि जनता में उसके प्रति विश्वास भाव उत्पन्न हो जाता है, अगर प्रान्त तथा केन्द्र यह महसूस करते हैं कि इस आयोग के सदस्य किसी भी अधिकारी व्यक्ति की राय से प्रभावित नहीं होते, बल्कि उन्हें जो समुचित जंचता है उसी को राय देते हैं, तो मुझे इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है कि यहां अपने देश में यह रूढ़ि चल पड़ेगी, जैसा कि आस्ट्रेलिया में है, कि वित्तायोग की सिफारिशों को अधिकांश रूप में केन्द्रीय सरकार मंजूर कर लेगी। मैं 'अधिकांश रूप में' शब्दों का प्रयोग यहां इसलिये कर रहा हूं कि हो सकता है कठिन समयों में केन्द्रीय सरकार के लिए यह सम्भव न हो कि वह वित्तायोग के दृष्टिकोण को मंजूर करे। पर मेरा ख्याल है कि आगे चलकर यथा समय यही होगा कि आपात की स्थिति को छोड़कर, साधारण अवस्था में केन्द्र एवं प्रान्त दोनों ही वित्तायोग पर विश्वास करने लग जायेंगे और उसके निर्णयों को मंजूर करने लगेंगे। आय साधनों को प्रान्त एवं केन्द्र में वितरित करने के लिए जो पद्धति मसौदे में सुझाई गई है वह मुझे अधिक लचीली, एक अच्छे सिद्धान्त पर आधृत और हर तरह से मान्य प्रतीत होती है; उस पद्धति की तुलना में जिसका सुझाव श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन ने अपने संशोधन के द्वारा उपस्थित किया है। व्यक्तिगत रूप से मेरा यही ख्याल है कि वित्तायोग को जो शक्तियां प्रदान की गई हैं वह आवश्यकता से अधिक व्यापक हैं। इतनी व्यापक शक्तियां उसे न दी जानी चाहियें। पर यह एक भिन्न ही मसला है और इस समय इस पर मैं विचार करना नहीं चाहता।

बहस-मुबाहिसे में भाग लेने में मेरा इतना ही उद्देश्य था कि सभा को यह स्पष्ट हो जाये कि श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन के संशोधन को स्वीकार करना बड़ा ही अवांछनीय होगा न केवल केन्द्र के हित में बल्कि अनुन्नत और असम्पन्न प्रान्तों के हित में भी। इस संशोधन के स्वीकृत होने से तो यह होगा कि आसाम, उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त जैसे अनुन्नत प्रान्त जो धनाभाव से ही दीन दशा में पड़े हुये हैं, जिनकी अवस्था इतनी दयनीय है कि सभी समझदार आदमियों को उनके प्रति सहानुभूति होती है, हमेशा इसी पिछड़ी हुई हालत में पड़े रह जायेंगे; जिसमें उनको हम आज देख रहे हैं। अपना विकास करने के लिए और अपनी सामाजिक सेवाओं के स्तर को और ऊंचा उठाने के लिए इन प्रान्तों को और अधिक रकम मिल सकती है, तो वह उसी सूरत में मिल सकती है जबकि आयकर के वितरण के लिये संग्रह को आधार न बनाया जाये। इसलिये आशा है कि, श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन के संशोधन को सभा बिना किसी हिचकिचाहट के अस्वीकार कर लेगी।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): अब इस अनुच्छेद पर वोट ले लेना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ पर इस सम्बन्ध में अब तक केवल एक ही सदस्य बोले हैं।

*__श्री बी. दास:__ अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू का मैं बहुत ही कृतज्ञ हूं कि उड़ीसा और आसान की मुसीबतों पर आपने यहां इतना जोर दिया है। आयकर की जो रकम संग्रहीत की जाती है वह सब वित्त विभाग की मनमानी के कारण व्यर्थ के खर्च में ही नष्ट कर दी जाती है। विशेषज्ञ-समिति की यह सिफारिश है कि आयकर का—इसमें आयकर के सभी साधन जैसे अतिरिक्त कर, निगमकर शामिल हैं—60 प्रतिशत अंश प्रान्तों को मिलना चाहिये। संयुक्तप्रान्त के मुख्य मंत्री ने अपने स्मृत्तिपत्र में, जो उन्होंने विशेषज्ञ-समिति के समक्ष रखा था, इस बात पर जोर दिया था कि न केवल वैयक्तिक आयकर बल्कि सभी तरह के आयकर की आमदनी प्रान्तों में बंटनी चाहिये। विभिन्न प्रान्तों के मुख्य मंत्रियों ने यह उचित मांग पेश की है कि आयकर का 60 प्रतिशत अंश–कुछ लोगों ने 50 प्रतिशत की मांग की है पर मैं 60 प्रतिशत की ही मांग करता हूं जैसाकि विशेषज्ञ-समिति ने सिफारिश की है—प्रांतों को मिलना चाहिये। सवाल यह उठता है कि इसका वितरण किस आधार पर किया जाये। इसका वितरण संग्रह के आधार पर किया जाये या आबादी के आधार पर अथवा और किसी आधार पर। बम्बई से आयकर के रूप में सबसे बड़ी रकम संग्रहीत होती है क्योंकि अधिकांश कम्पनियों के हैड आफिस वहीं हैं। माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने अभी यह कहा है कि बम्बई खपत करने वाला प्रान्त नहीं है। फिर भी बम्बई की यही इच्छा है कि संग्रह के आधार पर उसे कुछ प्रतिशत अंश मिल जाये ताकि मुफ्त में ही कुछ रकम वह पा जाये। श्री एन.आर. सरकार ने, जो संयोगवशात् आज पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री के पद पर हैं, यही समझकर के कि कितनी ही कम्पनियों के हेड आफिस कलकत्ता में अवस्थित हैं, यह सिफारिश की है कि आयकर का 30 प्रतिशत अंश संग्रह के आधार पर वितरित किया जाना चाहिये और 20 प्रतिशत अंश आबादी के आधार पर। वितरण की यह एक बहुत ही गलत पद्धति है और हम इसका विरोध करते हैं मुझे खुशी है कि माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने इस विरोध का समर्थन किया है। उड़ीसा खासकर के आसाम, तथा बिहार जैसे अनुन्नत प्रान्तों के प्रतिनिधि यहां इस बात को कभी नहीं स्वीकार कर सकते हैं कि आयकर का कुछ भाग कई प्रान्तों को मुफ्त में मिल जाये, केवल इसलिये कि विदेशी शासकों ने अपने व्यवसाय एवं वाणिज्य सम्बंधी कार्रवाइयों का केन्द्र सिर्फ कलकत्ता और बम्बई को ही बना रखा था, वितरण की उस पद्धति को हम नहीं मानते हैं। मैं यह मांग करता हूं कि आयकर का 60 प्रतिशत, न कि वैयक्तिक आयकर का जैसा कि आजकल किया जाता है, प्रान्तों को मिलना चाहिये। दस प्रतिशत अंश भले ही केन्द्रीय सरकार अपने हाथ में रख ले इसलिये कि राज्य की किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। पर शेष 50 प्रतिशत अंश आबादी के आधार पर प्रान्तों में बंटना ही चाहिये। मैं यह बताऊं, श्रीमान् जो कतिपय रियासतें अभी हमारे प्रान्त में मिलाई गई हैं, उनके मिलाये जाने के पहले मेरे प्रान्त की जनसंख्या थी 90 लाख, पर आज इन रियासतों के मिल जाने पर उसकी जनसंख्या हो गई है 1 करोड़ 40 लाख। इन रियासतों

की प्रशासन-व्यवस्था पुराने जमाने की है, इनके करों के साधन भी वही पुराने जमाने के हैं। इनको अब उड़ीसा में मिला दिया गया है, सुतरां इनका शासन स्तर भी वही होना चाहिये जो प्रान्त का है। और फिर उड़ीसा की सरकार ने इस बात की गारण्टी दी है कि इन रियासतों में शासन का स्तर वहीं होगा जो प्रान्त में है। पर इन राज्यों से होने वाली आय बिल्कुल ही नगण्य सी है। आयकर के वितरण के सम्बन्ध में सर ओटो नेमर ने जो निर्णय दिया था, जिसके सम्बन्ध में आज अभी कुछ देर पहले मैं बोल चुका हूं, वह बिल्कुल मनमाना है। इस निर्णय के अधीन उड़ीसा को केवल 2 प्रतिशत मिलता था, पर बाद में चलकर भारत सरकार ने—मौजूदा भारत सरकार ने नहीं—इसे तीन प्रतिशत कर दिया और आयकर का यही तीन प्रतिशत उड़ीसा को मिलता है।

मुझे आश्चर्य है कि इस अनुच्छेद 251 की रचना में भारत सरकार का भी हाथ है। आज की परिवर्तित परिस्थितियों में इस सर्वसत्ताधारी सभा ने कितनी ही रियासतों की स्थिति बदल दी है। भारत सरकार के सदस्य, जो कि इस सभा के भी सदस्य हैं, क्यों नहीं मसौदा-समिति को राय देते हैं कि आयकर के वितरण की वर्तमान प्रणाली को वह बदल दे ताकि उड़ीसा जैसे प्रान्तों को, जिसे राज्यों के विलयन से दुहरी असुविधा हो गई है, आयकर से एक बराबर अंश मिल सके। बराबर-बराबर अंश प्रान्तों को तभी मिल सकता है जब आयकर का वितरण आबादी के आधार पर किया जाये।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू तथा माननीय मित्र श्री विश्वनाथ का मैं कृतज्ञ हूं कि इन्होंने सन् 1947 की अदारकर-नेहरू रिपोर्ट का यहां जिक्र किया। यह रिपोर्ट छप तो गई थी काफी पहले, पर जनता के प्रकाश में आई सन् 1949 के मार्च में। इसे सरसरी निगाह से देख पाने का ही मुझे मौका मिल पाया है—आखिर सरकार ऐसी वजनी रायों और महत्वपूर्ण विचारों में क्यों मीनमेख निकालती है और उन्हें क्यों टालती है? क्यों नहीं वह इस पर देश को राय जाहिर करने का मौका देती है या इस सभा में ही उस पर बहस का मौका क्यों नहीं देती है? मेरा ख्याल है कि जब तक भारत सरकार को इस मसले पर जानकारी हासिल नहीं होती है और वह लूट-खसोट की नीति बरतती है, इस दिशा में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। प्रान्तों के विकास की जो समस्या है उसका समाधान हमें अदारकर-नेहरू रिपोर्ट में मिलता है। वह प्रान्त जो अनुन्नत हैं, पिछड़े हुये हैं, उनको विशेष अनुदानों के द्वारा जैसा कि आस्ट्रेलिया में किया जाता है, अधिक साहाय्य मिलना चाहिये। फी व्यक्ति की आमदनी के आधार पर अनुन्नत प्रान्तों को आर्थिक अनुमान प्राप्त होने चाहिये। क्या भारत सरकार के प्रतिनिधियों का यहां यह कर्त्तव्य नहीं है कि सभा पर विश्वास रखें और उसे यह बतायें कि उनके मन में क्या बात है? क्या उनका दिमाग ही बिल्कुल शून्य है या यह बात है इन दो वर्षों से वह इस मसले पर विचार करते आ रहे हैं पर अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाये हैं?

सरकार समिति के समक्ष जो स्मृतिपत्र भारत सरकार ने उपस्थित किया था उसे मैंने पढ़ा है, श्रीमान् यह एक सर्वथा हृदयहीन और निष्प्राण स्मृतिपत्र है इसमें अपनी ही कठिनाइयों का केन्द्र ने रोना रोया है। इसमें यह सोचा ही नहीं गया है कि केन्द्रीय सरकार के अर्थ विभाग पर समस्त भारत एवं उसके सभी प्रान्तों

[श्री बी. दास]

की आर्थिक व्यवस्था की गम्भीर राजकीय जिम्मेदारी है। इन लम्बे स्मृतिपत्र में इस बात का कहीं भी और कोई भी उल्लेख नहीं है कि प्रान्तों की समुन्नति होनी चाहिये, उन्हें आय के और साधन प्राप्त होने चाहियें और आयकर से उन्हें और बड़ा अंश मिलना चाहिये, ताकि वे अपना विकास कर सकें। अगस्त सन् 1947 के पूर्व जो विदेशी अंग्रेज शासक यहां शासन करते थे उन्होंने भी कभी ऐसा निर्दय लेख (document) नहीं तैयार किया था। सन् 1936-37 का स्मृतिपत्र मैंने देखा है। सन् 1924 और 1925 में यहां नौकरशाही के शासकों ने अर्थ-विभाग के स्वेच्छाचारी अधिकारियों ने जो नोट पेश किये थे उन्हें भी मैंने देखा है। पर सरकार समिति के समक्ष जो स्मृतिपत्र भारत सरकार ने उपस्थित किया था वह इन सब से हृदयहीन एवं निर्दयी है। अवश्य ही 1924 और 1925 में भारत सरकार के अर्थ-विभाग ने जो कुछ लिखा था, वह भी एक बड़ा ही हृदयहीन लेख था और यह नपी तुली राय है अपने स्वतन्त्र भारत के अर्थ-विभाग की, जो आज प्रान्तों के आय-साधनों को बर्बाद कर रहा है और प्रान्तीय अर्थ-मंत्रियों को प्रभाव से दबा रखा है, इस शासन को मैं एक निर्लज्ज शासन कहता हूं। मैं फिर कहता हूं कि यह एक निर्लज्ज शासन है ओर आज हमारे गरीब प्रान्तों को, प्रान्तों के बेचारे मुख्य मंत्रियों को अपने मामले के लिये तर्क-वितर्क करना पड़ता है, अपनी गरीबी और पिछड़ी हुई हालत को प्रमाणित करने को बहस करनी पड़ती है। अवश्य ही बम्बई को यह सब दिक्कत नहीं उठानी पड़ती है। बम्बई इस जिल्लत में क्यों पड़ेगा जब वहां फी आदमी की आय है 25 रुपये? मद्रास क्यों आर्थिक साहाय्य पाने के लिए तर्क-वितर्क करेगा, जब वहां की आदमी की आमदनी है 19 रुपये। यही बात संयुक्तप्रान्त के साथ है, जिसकी आमदनी फी व्यक्ति 21 रुपये है। पर हमारा उड़ीसा प्रान्त गरीब है, वहां फी आदमी चार या पांच रुपये की आमदनी कर पाता है, इसलिये हमें तो अधिक साहाय्य मांगना ही पड़ेगा ताकि हम किसी तरह औरों के स्तर के समीप तो पहुंच सकें। आसाम विभाजन के बाद आज बहुत ही कम व्यय करता है। क्या इस सर्वसत्ताधारी सभा का यह कर्तव्य नहीं है कि वह इस बात को सुनिश्चित बनाये कि इन प्रान्तों को अपनी समुन्नति के लिए पर्याप्त रकम प्राप्त होगी, इनको इतना जरूर मिलेगा जो इनकी आवश्यकताओं के लिये कम से कम जरूरी होगा? यह तभी हो सकता है जब कि आयकर का 60 प्रतिशत अंश प्रान्तों में आबादी के आधार पर वितरित किया जाये न कि अन्य किसी आधार पर।

***अध्यक्ष:** पेश्तर इसके कि डॉ. अम्बडेकर इस अनुच्छेद पर बोलें, एक बात मेरे ध्यान में आई है, जिस पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कुछ स्पष्टीकरण अपेक्षित है। मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस पर विचार करें। अनुच्छेद 251 के खण्ड (2) में यह कहा गया है:–

"Such percentage, may be prescribed, of the net proceeds in any financial year of any such tax, except in so far as these proceeds represent proceeds attributable to States for the time being specified in Part II of the First Schedule or the tax payable in respect of Union emoluments,

shall not form part of the revenues of India, but shall be assigned to the States within which that tax is leviable in that year, and shall be distributed among those States in such manner and from such time as may be prescribed."

[किसी वित्तीय वर्ष में किसी ऐसे कर के शुद्ध आगम का, जहां तक वह आगम प्रथम अनुसूची के भाग (2) में उल्लिखित राज्यों में से अथवा संघ उपलब्धियों के सम्बन्ध में देय करों से मिला हुआ आगम माना जाये, वहां तक के सिवाय ऐसा प्रतिशत भाग, जैसा विहित किया जाये, भारत के राजस्व का भाग न होगा, किन्तु उन राज्यों को सौंपा जायेगा जिनके भीतर वह कर उस वर्ष उद्ग्रही होना है, तथा वह उन राज्यों को उस रीति से और उस समय से, जो विहित किया जाये, वितरित होगा।]

यहां यह जो पद-संहति रखी गई है: "States within which that tax is leviable in that year" इसका क्या मतलब है यह मेरी समझ में नहीं आ पाया। क्या इससे अभिप्रेत है वह राज्य जहां करदाता रहते हैं या इसका मतलब उन राज्यों से है जहां वह आमदनी हुई है जिस पर आयकर लगाया है या कुछ और ही मतलब है?

***श्री बी. दास:** जब यहां इन वित्त सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हो रहा हो उस समय यहां सभा-भवन में अर्थ-मंत्री का उपस्थित रहना नितान्त आवश्यक है क्योंकि वह इस सभा के भी सदस्य हैं। यहां हम कोई सैद्धान्तिक वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं कि अर्थ मंत्री का उपस्थित रहना जरूरी नहीं है।

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्य की इस इच्छा को अर्थ मंत्री तक अवश्य कोई सज्जन पहुंचा देंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह बताना चाहता हूं, श्रीमान्, कि प्रस्तुत अनुच्छेद के ये शब्द भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 188 से करीब ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं। इस समय मैं इतना ही कह सकता हूं कि कर के उस भाग के लिये ही यह व्यवस्था है, जो भाग 3 के उन राज्यों में संग्रहीत किया जायेगा, जिन्होंने संघ-शासन के साथ इस बारे में विशेष प्रबन्ध कर लिया है।

***श्री विश्वनाथ दास:** मैं आपसे यह अनुरोध करूंगा, श्रीमान्, कि अर्थ मंत्री को जो कि इस सभा के भी सदस्य हैं यह संवाद मिल जाना चाहिये कि वह अर्थ मंत्री की हैसियत से नहीं बल्कि सभा के एक सदस्य के नाते यहां उपस्थित रहें, ताकि उनके बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श और सलाह से हम सब लाभान्वित हो सकें।

***अध्यक्ष:** इसलिये तो मैंने अभी यह कहा है कि माननीय सदस्य की इच्छायें उन तक सम्भवत: पहुंचा दी जायेंगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अब मैं उस बात को यहां समझा सकता हूं, किन्तु वैसा करने से पहले मैं संशोधन को लूंगा।

इन अनुच्छेद पर एक संशोधन तो श्री बर्मन का है और दूसरा संशोधन है प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का। मुझे खेद है, मैं इन दोनों में से किसी को भी नहीं स्वीकार कर सकता।

यह प्रश्न कि आयकर के रूप में संग्रहीत आगम के किसी प्रतिशत अंश को, 60 प्रतिशत को या अन्य किसी प्रतिशत अंश को, संविधान द्वारा ही विहित कर दिया जाये या उसे राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाये, एक ऐसा विषय है जिस पर उस सम्मेलन में, जो कि इस मसले पर विचार करने के लिये अभी हाल में हुआ था, केन्द्र की तथा प्रान्तों की सरकारों ने, दोनों ने ही, काफी विचार किया था। वहां यह तय पाया गया था कि सर्वोत्तम यह होगा कि इस प्रश्न को राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाये और संविधान द्वारा एतदर्थ कोई अनुपात न विहित किया जाये।

दूसरा सवाल जो प्रो. शिब्बनलाल ने उठाया है कि 'Prescribed' शब्द की जगह 'Prescribed by Parliament' शब्द रखे जायें, इसके सम्बन्ध में भी मुझे यह खेद है कि मैं इसे नहीं स्वीकार कर सकता। हमारी योजना ही यह है कि पहले तो राष्ट्रपति ही स्वयं इस अनुपात को विहित करे और बाद में आगे चलकर वित्तायोग की सिफारिशों पर विचार करते हुये वह इस अनुपात को विहित करे। हम इस मसले में संसद् को लाना ही नही चाहते हैं। क्योंकि संसद् के निर्णयाधीन अगर यह मसला रखा जाता है तो भिन्न-भिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों में बहुत झगड़ा होगा और सम्भव है कोई बहुत अन्यायपूर्ण निर्णय संसद् में हो जाये क्योंकि वहां कुछ प्रान्तों को प्रबल बहुमत प्राप्त रहेगा और कुछ प्रान्तों के बहुत ही कम प्रतिनिधि होंगे। इसलिये इस प्रश्न को संसद् पर छोड़ने का व्यवहारिक रूप से यही अर्थ होगा कि उस प्रश्न को हम उन प्रान्तों की मरजी पर छोड़ रहे हैं जिनको केन्द्रीय विधान-मण्डल में समधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त है। हम सब यह चाहते हैं कि सभी प्रान्तों के साथ न्याय हो, पर ऐसी व्यवस्था से तो न्याय की जड़ पर ही कुठाराघात हो जायेगा।

अब मैं उस कठिनाई की ओर आता हूं जिसका जिक्र आपने उठाया है: "States within which that tax is leviable in that year" शब्दों का यहां होना आवश्यक है। ये शब्द भारत शासन-अधिनियम 1935 में आये हैं। ये शब्द वहां क्यों रखे गये थे, इसका कारण यह था कि आयकर को उन रियासतों में लगाना नहीं था, जो भारतीय संघ में आने वाली थीं। आयकर के बदले रियासतों को अंशदान के रूप में कुछ देना जरूरी रखा गया था। इसलिये अगर किसी राज्य में आयकर नहीं आरोपित किया जाता है, तो उस राज्य को आयकर की आमदनी का अंश पाने का अधिकार नहीं रहता है। पता नहीं वर्तमान संविधान के अधीन इस सम्बन्ध में क्या पद्धति बरती जायेगी। इस मसले पर एक समिति छानबीन कर रही है, जो भारतीय रियासतों के आर्थिक साधनों का पता लगाने के लिए नियुक्त की गई है। अगर यह समिति यह सिफारिश करती है कि सभी राज्यों में आयकर लगाना चाहिये, चाहे वे राज्य पहले प्रान्त के रूप में या चाहे रियासत के रूप में हों, तो स्वाभाविक है कि इन शब्दों को हमें बदल देना होगा। इस अनुच्छेद को प्रस्तावित करता हूं, पर मसौदा-समिति को यह अधिकार जरूर रहेगा कि उक्त समिति की

रिपोर्ट आ जाने पर वह इस सम्बन्ध में कोई संशोधन रख सकती है। यही कारण है जिसके लिये यह शब्द यहां रखे गये हैं।

***अध्यक्षः** इस सम्बन्ध में केवल एक बात और पूछनी है। तो क्या मैं यह समझ लूं कि ब्रिटिश भारत के नाम से ज्ञात प्रदेशों पर इस व्यवस्था को लागू करने के अभिप्राय से ही यह पदसंहति रखी गई है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, नहीं भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के लिये।

***श्री बी. दासः** डॉ. अम्बेडकर ने अभी इस सम्मेलन में होने वाले वाद-विवाद का उल्लेख किया है, जिसमें प्रान्तों के मुख्य-मंत्री तथा मसौदा-समिति के सदस्यों ने भाग लिया था। सभा को यह ज्ञात नहीं है कि मुख्य-मंत्रियों और मसौदा समिति के बीच क्या बातें हुई और कि निर्णय पर वह पहुंचे। जब तक कि सभा में यहां सदस्यों की मेज पर सम्मेलन की कार्रवाई का विवरण नोट के रूप में या अन्य किसी शकल में नहीं रखा जाता है, मसौदा-समिति के कार्यों के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** मैं यह मानता हूं कि अगर किसी भी मुख्य मंत्री ने कोई आपत्ति सम्मेलन में उठायी होती तो वह यहां भी अपनी आपत्ति अवश्य पेश करता, अगर मसौदे से वह असहमत होता। इसलिये मैं यही समझता हूं कि जो मसौदा सभा के समक्ष उपस्थित है उस पर सभी मुख्य मंत्री सहमत हैं।

***श्री बी. दासः** मुख्य मंत्रियों ने तथा अर्थ-मंत्रियों ने इस सभा से बाहर आपस में क्या फैसला किया उसे मानने के लिए यह सभा बाध्य नहीं है। अगर उन लोगों ने कोई फैसला किया ही था, तो सभा के सदस्यों के सामने उस फैसले की प्रतियां अवश्य पेश होनी चाहियें। सभा को इसका विशेषाधिकार प्राप्त है।

***अध्यक्षः** मसौदा-समिति और मुख्य-मंत्रियों ने जो भी फैसला किया हो, उसे मानने के लिए यह सभा बाध्य नहीं है। सदस्यों को इस बात की स्वतन्त्रता है कि जिधर चाहें अपना मत दें।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मैं एक बात के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर से स्पष्टीकरण चाहता हूं। वह बात यह है। अनुच्छेद में यह कहा गया है कि आगम का वितरण राज्यों में उस समय से और उस रीति से किया जायेगा जैसा कि विहित किया जाये। 'विहित' शब्द का अर्थ इस अनुच्छेद के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में यह किया गया है कि "जब तक वित्त-आयोग गठित न हो जाये, तब तक राष्ट्रपति के आदेश द्वारा विहित और वित्त आयोग के गठित हो जाने के पश्चात्, वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात्, राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित"। वित्त-आयोग अस्तित्व में आयेगा आगे चलकर। जैसाकि अब तक निश्चित हुआ है, प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) (2) में उल्लिखित वित्त-आयोग की नियुक्ति होगी संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के बाद। संविधान के प्रवर्तन में आने पर, इस दो वर्ष की अवधि तक किस

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

आधार पर आप आयकर का वितरण करेंगे? माननीय प्रधान मंत्री ने अभी हाल में यह बताया था कि वित्त-आयोग के अतिरिक्त एक अन्य आयोग-चाहे इसे आयोग कहा जाये या समिति कहा जाये या जो भी नाम दिया जाये–नियुक्त किया जायेगा जो तदर्थ-समिति (Ad hoc Committee) के रूप में होगा। फिर इसका यहां कैसे मेल खायेगा? उपखण्ड (ख) में प्रयुक्त 'विहित' का अर्थ यह तो नहीं होगा कि राष्ट्रपति इस समिति की सिफारिशों के आधार पर एतदर्थ आदेश देगा। तब क्या इस अन्तर्वर्ती काल में आयकर का वितरण फाइनांस कमेटी की सिफारिशें के आधार पर किया जायेगा? यह साफ नहीं हो पाया है कि संविधान के प्रारम्भण के बाद जब तक वित्त-आयोग गठित नहीं हो जाता है, उस मध्यकालीन अवधि में वितरण के लिए क्या व्यवस्था बरती जायेगी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह तो एक सीधी सी बात है। अगर हम यही चाहते होते कि राष्ट्रपति वितरण के लिए आदेश दे उसके पहले इस सम्बन्ध में कोई छानबीन न होनी चाहिये तो हम केवल इतना ही यह लिख देते कि संविधान के प्रारम्भण के पूर्व जिस रूप में उसका वितरण किया जाता था उसी रूप में संविधान के प्रारम्भण के बाद उस अवधि तक इसका वितरण किया जायेगा जब तक कि वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति एतदर्थ कोई आदेश न दे दे। पर हमने जानबूझकर यह बात यहां नहीं रखी है क्योंकि हम चाहते हैं कि इस सम्बन्ध में पहिले छानबीन कर ली जाये और तब उस छानबीन के आधार पर राष्ट्रपति जो आदेश दे उसके हिसाब से आयकर की रकम वितरित की जाये।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः__ तो मतलब यह है कि मध्यवर्ती अवधि में किस हिसाब से इसका वितरण किया जाये इसकी छानबीन के लिये एक आयोग अभी से गठित कर दिया जायेगा और उसकी सिफारिशों पर विचार करके राष्ट्रपति आदेश द्वारा जैसा विहित करे उसी तरह वितरण किया जायेगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ हां, यही मतलब है। अन्यथा हम यही कह देते कि जब तक राष्ट्रपति नया आदेश न निकाले तब तक वितरण की वर्तमान व्यवस्था चालू रहेगी।

*__अध्यक्षः__ अब मैं विभिन्न संशोधनों पर सभा का मत लेता हूं। पहले मैं संशोधन नं. 2858 पर राय लूंगा जिसे श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन ने पेश किया है।

*__श्री उपेन्द्र नाथ बर्मनः__ डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के वक्तव्य को ध्यान में रखते हुये मैं अपने संशोधन को वापस ले लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

*__अध्यक्षः__ अब मैं, डॉ. अम्बडेकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 75 पर मत लेता हूं। यह केवल शाब्दिक संशोधन है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (2) में 'revenues of India' शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का संशोधन लिया जाता है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ग) में 'revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर राय ली जायेगी।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2875 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:–

"कि अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) (2) में 'by the President by order' शब्दों की जगह 'by Parliament by law' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधित अनुच्छेद 251 पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:–

"कि अनुच्छेद 251, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 251 अपने संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 252

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 252 को लेते हैं। पर दो नये अनुच्छेदों को–251क और 251ख—रखने का प्रस्ताव आया है। क्या आप इन दोनों अनुच्छेदों को यहां अभी उपस्थित करना चाहते हैं मिस्टर कृष्णमाचारी?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं।

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 252 को लेते हैं। इस पर एक संशोधन आया है श्री सन्तानम् के नाम में जिसका नं. है 2881।

(संशोधन नं. 2881 और 2882 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** तो अब लिया जाता है संशोधन नं. 79 जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह भी मेरे ही नाम में है श्रीमान्। कृपया, इसे उपस्थित करने की मुझे अनुमति दे। मेरा संशोधन यह है:–

"कि अनुच्छेद 252 में 'revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** कोई सदस्य इस संशोधन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं? *(कोई सदस्य नहीं खड़ा हुआ)* तो मैं संशोधन नं. 79 पर सभा की राय लेता हूं।

संशोधन यह है:–

"कि अनुच्छेद 252 में 'revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधित अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:–

कि अनुच्छेद 252, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 252, अपने संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 253

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 253 को लेते हैं।

(संशोधन नं. 2883 और 2884 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 2885 का क्या होगा? क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं डॉ. अम्बेडकर?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बडेकरः** इसे मैं नहीं पेश करूंगा, बल्कि श्री त्यागी इसे पेश करेंगे।

(नं. 2886 से 2896 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** श्री बारदोलोई, आप अपने संशोधन नं. 2897 को पेश कर रहे हैं क्या?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** (आसाम : जनरल): मैं इस संशोधन को तो नहीं पेश करना चाहता हूं पर इस अनुच्छेद पर जरूर बोलना चाहता हूं।

(नं. 2898 से 2902 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैंने भी एक संशोधन भेज रखा था, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** सभी संशोधन खत्म नहीं हुये हैं। मैं उनको क्रम से ले रहा हूं। आपका संशोधन तो आगे चलकर आयेगा। संशोधन नं. 81।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् कि:–

"अनुच्छेद 253 के खण्ड (2) में 'revenues of India' शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 214 जो श्री महावीर त्यागी के नाम में है।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह संशोधन प्रस्तावित करता हूं श्रीमान:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2886 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 253 के खण्ड (1) को हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 253 के खण्ड (1) में यह कहा गया है श्रीमान्:

"नमक पर संघ कोई कर न लगायेगा।"

नमक सत्याग्रह के महान् आन्दोलन में मैंने भी भाग लिया था श्रीमान् और इस दलील को तब भी मैं ठीक समझता था और आज भी ठीक समझता हूं कि नमक कर का असर गरीब आदमियों की आय पर पड़ता है सुतरां यह कर न लगना चाहिये। इस सम्बन्ध में आज भी मेरी वही राय है जो आन्दोलन के समय थी। मैं उसे भी स्वीकार करता हूं कि इसी अनुभूति से प्रेरित होकर ही अधिकांश सदस्यों ने नमक कर न लगाने का यह खण्ड संविधान में रखना पसन्द किया है। किन्तु बात यह है कि श्रीमान्, कि नमक पर कर लगाना या न लगाना संसद् का काम है। हम यहां समवेत हुये हैं संविधान सभा के रूप में। इस खण्ड को रखने पर मैं यहां आपत्ति करता हूं। इसलिय नहीं कि मैं यह चाहता हूं कि नमक पर कर लगाया जाये बल्कि इसलिये कि मैं यह नहीं चाहता हूं कि संविधान में इस खण्ड को स्थान देकर हम भावी पीढ़ियों का हाथ सदा के लिये बांध दें। अगर हम इस खण्ड को संविधान में रख लेते हैं तो फिर शताब्दियों तक नमक पर कर न लगाया जा सकेगा। जब तक दूसरी संविधान सभा नहीं बनती सरकार का हाथ बंधा रह जायेगा। चाहने पर भी और ऐसी स्थिति आने पर भी जिसमें नमक पर कर लगाना आवश्यक हो जाये, सरकार नमक पर कर न लगा सकेगी। यह एक ऐसी बात है जिससे हमें बचना चाहिये। यही कारण है जो मैं अपने संशोधन को स्वीकार करने की सभा में सिफारिश करता हूं।

देश विभाजन के बाद, अब वर्तमान समय में हमारा अधिकांश नमक विदेशों से ही आता है। सन् 1948-49 में हमने पाकिस्तान से करीब 40 हजार टन, मिश्र से करीब 25 हजार टन और अन्य देशों से लगभग 34 हजार टन नमक मंगाया है। आयात-निर्यात के बारे में देशों में समझौते हुआ करते हैं हो सकता है कि किसी समय पाकिस्तान सम्बन्धी अपनी आयात-निर्यात समस्या पर विचार

करते समय अपनी किसी भावी सरकार को यह महसूस हो कि पाकिस्तान से आने वाले नमक पर कर लगाना आवश्यक है। यह भी सम्भव है कि देश के नमक उद्योग को विदेश की प्रतिद्वंद्विता से रक्षण देने के लिए, विदेश से आने वाले नमक पर कर लगाना जरूरी हो जाये। इस कर में और भी कई लाभ हैं। यह एक सीधा सा प्रश्न है श्रीमान्, और मैं नहीं चाहता हूं कि इस पर ज्यादा बोलूं और इस प्रश्न पर जोर देकर सभा का समय बर्बाद करूं। मैं सिर्फ यही चाहता हूं भावी पीढ़ियों का, भावी संसदों का हाथ बंधा न रहे, उनको इसकी स्वतन्त्रता रहे कि जैसा चाहें करें। अगर आज हमारी संसद् इस बात पर विचार करती है कि नमक कर लगाया जाय या नहीं तो अन्य मित्रों की तरह मैं भी वहां नमक पर कर लगाने का जबरदस्त विरोध करूंगा। हमने अभी हाल ही में इस आय का परित्याग किया है और जानबूझकर ऐसा किया है। इस मद में 9 या 10 करोड़ से कम आय नहीं होती थी। सिद्धान्त के लिए 9 करोड़ का त्याग हम कर चुके हैं। पर अगर आगे चलकर कभी सरकार यह महसूस करे कि अन्य किसी प्रत्यक्ष कर लगाने के बजाय नमक पर कर लगाना ही ज्यादा अच्छा है, तो मैं कहूंगा कि उसको इस बात की स्वतन्त्रता रहनी चाहिये कि इस मद से वह आय उठा सके। इन शब्दों के साथ मैं संशोधन की सिफारिश करता हूं और यह आशा करता हूं कि सभा मेरी बातों का गलत अर्थ न लगायेगी। यद्यपि यह संशोधन स्पष्ट है कि बड़ा अप्रिय ही प्रतीत होता है पर मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस संशोधन से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं यह चाहता हूं कि सरकार नमक पर कर लगाये। यहां कर लगाने या न लगाने की बात नहीं है। बात केवल यही है कि भावी सरकारों के लिये अपने विवेक के प्रयोग का रास्ता न बन्द हो जाये। बात केवल इतनी ही है। आशा करता हूं कि सभा यहां भावुकता से ऊपर उठेगी और अपनी स्वतन्त्र राय देगी। जिस तरह इस सम्बन्ध में आज हम स्वतन्त्र हैं उसी तरह भावी सरकारों को भी यह स्वतन्त्रता प्राप्त रहनी चाहिये।

*__अध्यक्षः__ अब आता है संशोधन नं. 215। आप इसे पेश कर रहे हैं श्री बारदोलोई?

*__माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः__ मैं इस संशोधन को नहीं पेश करना चाहता हूं श्रीमान्, पर जैसाकि मैंने अभी कहा है, इस अनुच्छेद पर मैं जरूर बोलना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ ठीक है, पर पहले सब संशोधन तो पेश हो जायें। संशोधन नं. 216 को पेश करना है या नहीं?

*__माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय__ (आसाम : जनरल): इसे नहीं पेश करना चाहता हूं, पर अनुच्छेद पर बोलने की इच्छा जरूर है।

*__अध्यक्षः__ संशोधन नं. 217।

*__माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः__ यह तो उसी का एक अंश है।

*__अध्यक्षः__ बस इतने ही संशोधन हैं। अब श्री बारदोलोई बोल सकते हैं।

*__माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:__ अध्यक्ष महोदय, मसौदे के अनुच्छेद 253 के सम्बन्ध में चन्द बातें कहने के लिए मैं खड़ा तो हो रहा हूं पर मन में बड़ी आनाकानी चल रही है। अस्तु, सर्वप्रथम इस अवसर पर मैं मसौदा-समिति के सभापति तथा उसके सदस्यों को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस प्रश्न पर तथा अन्य प्रश्नों पर परस्पर विचार करने का मुख्य मंत्रियों को मौका दिया और व्यक्तिगत रूप से मुझे इस बात का मौका, मैं उनसे साक्षात्कार कर आसाम प्रान्त की खास-खास कठिनाइयों को समझा सकूं। जो कुछ उन्होंने संविधान में इस सम्बन्ध में रखा है उससे मैं यद्यपि सन्तुष्ट नहीं हूं पर उन्होंने जो सौजन्य प्रदर्शित किया है उसके लिये अवश्य ही मैं उनका आभारी हूं। इस सम्बन्ध में, मैं इस बात का भी उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता श्रीमान्, कि अर्थ सम्बन्धी प्रबन्धों के बारे में जो कतिपय प्रश्न मैंने उठाये थे उनका उत्तर देने में माननीय अर्थ मन्त्री महोदय ने बड़ी ही शिष्टता का व्यवहार किया था और इसके लिये मैं उनका परम आभारी हूं।

अब, मैं समझता हूं कि अगर यहां इस सभा के समक्ष मैं अपने प्रान्त की वास्तविक आर्थिक कठिनाइयों को नहीं रखता हूं, उसने सदस्यों को नहीं परिचित कराता हूं तो मेरा अपने प्रति जो कर्तव्य है, जनता के प्रति जो कर्त्तव्य है, उसके पालन में मैं चूक करूंगा। संक्षेप में आसाम की आर्थिक स्थिति यह है कि उसके सामने गम्भीर अर्थ संकट है और जब तक कि इसे कठिनाई के दलदल से निकालने के लिए भारत सरकार कोई अल्पकालिक व्यवस्था नहीं करती है और संविधान द्वारा कोई एक दीर्घकालीन व्यवस्था नहीं की जाती है उसका भविष्य सर्वथा अन्धकारमय है। मैं इस मसले पर विशेष रूप से जोर इसलिये दे रहा हूं कि इस प्रान्त की अपनी खास कठिनाइयां हैं, आज यह भारत का सीमावर्ती प्रान्त है, आज यह भारत के पूर्वी द्वार पर एक संरक्षक के रूप में अवस्थित है।

जिन आर्थिक प्रबन्धों को लेकर प्रान्त को इतनी कठिनाइयां भुगतनी पड़ रही हैं, उनके इतिहास की चर्चा करने में मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। सन् 1919 से ही प्रान्त की यह मुसीबत चली आ रही है कि आर्थिक प्रबन्ध की व्यवस्था करने में उसके साथ और अन्याय किया गया। सन् 1919 में, यद्यपि प्रान्त में सामाजिक सेवाओं की कोई भी व्यवस्था न थी, यहां तक कि स्कूल जाने वाले विद्यार्थियों के दस प्रतिशत अंश को भी आरम्भिक विद्यालयों में पढ़ने का मौका नहीं मिल पाता था। उस समय भी मेस्टन निर्णय के अधीन यह प्रान्त केन्द्र को 15 लाख की रकम देने के लिए बाध्य था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्त की आर्थिक व्यवस्था टूट-फूट गई और सात या आठ साल के अन्दर ही समूची व्यवस्था को बदलना पड़ा। मेरा ख्याल है कि सन् 1927 में या 28 में सर अलेक्जैण्डर मुडीमैन ने उस व्यवस्था में परिवर्तन किया और आसाम को जो प्रति वर्ष 15 लाख केन्द्र को देना पड़ता था उससे प्रान्त को बरी कर दिया। शीघ्र उसके बाद ही आर्थिक व्यवस्था में पुन: परिवर्तन करने का विचार किया गया था पर वही पहिले वाली व्यवस्था ही चलती रही और इस तरह वह समय आ गया जब भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन बनने वाले नये संविधान की रूप रेखा क्या हो इसकी चर्चा देश में सर्वत्र चलने लगी। उस समय परसी कमेटी ने यह सोचा कि चालू प्रबन्ध को, जिसके अधीन कि आसाम को बड़ी

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

ही कठिनाइयां उठानी पड़ती थीं, बदल देना चाहिये और इस प्रान्त के साथ न्याय होना चाहिये। सर ओटीनमर के निर्णय तक पहुंचने में क्या-क्या बातें हुईं और किन स्थितियों से हम गुजरे इसकी चर्चा कर मैं आपका समय नहीं बर्बाद करना चाहता। सर ओटोनमर के निर्णय से बस इतना ही हुआ कि आसाम को 30 लाख की सहायता मिल गई। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रान्त की जो स्थिति सन् 1919 में थी वही अब भी बनी रही। जो आय उपलब्ध होती थी उससे किसी तरह की भी सामाजिक सेवा का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता था और न कोई ऐसी शिक्षण संस्था की ही स्थापना की जा सकती थी जिसको शिक्षण संस्था कहना सार्थक होता। और मेरा ख्याल है कि तत्कालीन सरकार को इन बातों के लिए कोई फिक्र भी नहीं थी। उस समय चाय की खेती करने वाले गोरों का वहां राज था। विदेशी शासन का यह उद्देश्य ही नहीं हो सकता था कि जनता को शिक्षित बनाये। जबकि बिना शिक्षा के और बिना किसी सामाजिक सेवा की व्यवस्था के ही, जिस पर कि खर्च उठाना पड़ता, सारी बातें ठीक-ठीक शान्ति-पूर्वक चल जाती थीं तो उन्होंने यही सोचा कि इसी तरह व्यवस्था आगे भी चलती रहेगी।

देश विभाजन के पूर्व आसाम की यही स्थिति थी। वहां के बजट में हमेशा घाटा ही चलता रहा, सिवा उन युद्ध के दो सालों के जबकि पेट्रोल वगैरह पर बिक्री कर लग जाने से कुछ आमदनी हो गई थी जिससे हर साल करीब एक करोड़ से कुछ ज्यादा रकम मिल गई थी किन्तु फिर भी इन तमाम वर्षों में प्रान्त के बजट में घाटा ही रहा है यद्यपि, जैसा मैं अभी कह चुका हूं, वहां सामाजिक सेवायें बिल्कुल ही नहीं थीं और न कोई शिक्षण संस्थायें ही थीं जहां हमारे बच्चों को शिक्षा मिल पाती, और समुन्नति के सभी काम रुके हुये थे। यह स्थिति थी प्रान्त की देश विभाजन के पहले। विभाजन से तो हम पर एक जबरदस्त जिम्मेदारी आ गई है जिसे, आशा है, यहां सभी महसूस करते हैं। हमारा प्रान्त देश से अलग पड़ गया है। यह सच है कि आवागमन के लिये कितने ही मार्गों को निर्माण केन्द्रीय अनुदान के खर्च से हो रहा है पर प्रान्त को बहुत कुछ खर्च उठाना पड़ रहा है ताकि इन मार्गों से प्रान्त के भीतरी भागों का सम्पर्क स्थापित हो सके। पर इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है। प्रान्त का चार सौ मील का सारा सीमावर्ती क्षेत्र मिला हुआ है। पाकिस्तान, चीन और बर्मा के प्रदेशों से और हमारा सारा क्षेत्र जो पाकिस्तानी सीमा के पास पड़ता है उसमें पहाड़ियां ही पहाड़ियां हैं। इन पहाड़ी इलाकों को आर्थिक स्थिति विभाजन से अस्त-व्यस्त हो गई है। सीमावर्ती प्रदेशों के और खास करके पहाड़ी प्रदेशों की गरीब वाशिन्दों को अब आसाम प्रान्त पर अपनी सारी चीजों की सप्लाई के लिये निर्भर करना पड़ता है जबकि पहिले ये लोग पास के सिलहट और मैमनसिंह से अपनी सभी चीजें पा जाते थे। इसलिये सड़कों के जरिये इन प्रदेशों से सम्पर्क स्थापित करना हमारे लिये जरूरी हो गया जिससे प्रान्तीय सरकार को यह काम हाथ में लेना पड़ा। युद्धोत्तर अनुदान में कुछ रकम इस काम के लिये प्रावहित की गयी थी किन्तु खेद है कि युद्धोत्तर बजट में कमी कर देने के कारण, दुर्भाग्य से हमें इन कामों में भी काट-छांट कर देनी पड़ा।

और फिर सीमा स्थापित हो जाने के कारण और कम्युनिस्टों द्वारा पैदा की हुई कठिनाईयों के कारण हमें प्रांतीय पुलिस बल की संख्या में इतनी वृद्धि करनी

पड़ी है कि खर्च आय के अनुपात से कहीं अधिक बढ़ गया है। पुलिस बल पर हमारा खर्च 120 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गया है। इन सीमावर्ती क्षेत्रों में भी, जिसकी देख-रेख पहले आसाम राइफल पलटन के जरिये केन्द्र किया करता था, अब हमें पुलिस बल रखना पड़ा है। इसका नतीजा यह हुआ है कि करीब पांच जिलों में हमें तुरन्त पुलिस बल रखना पड़ा जिसके लिये पहले हमें कुछ भी खर्च नहीं उठाना पड़ता था।

मैं खास तौर पर यहां उस बात पर जोर देना चाहता हूं श्रीमान्, जिससे आज प्रान्त को मुसीबत उठानी पड़ रही है और शायद आगे भी अभी उठानी पड़े। मेरा मतलब है कम्युनिस्टों की हरकतों से जो देश के इस हिस्से में आज हो रही हैं। सभा को मालूम है कि कम्युनिस्ट पार्टी इस बात का प्रयास कर रही है कि वह बर्मा और चीन के अपने स्वजातीय लोगों से सम्बन्ध स्थापित कर लें। इनकी हिंसात्मक कार्रवाइयों का दौर फिर शुरू हो चुका है। अगर आप समाचार पत्रों में आये समाचारों को पढ़ा जायें तो आपको पता चलेगा कि डिब्रूगढ़ में इन्होंने वही कौशल अपनाया था जो ये लोग कलकत्ता में अपनाये थे। यानी हिंसात्मक उपायों से—मसलन एसिड फेंक कर, बम फेंक कर, दस्ती बम फेंक कर, पिस्तौल चलाकर, सरकारी इमारतों पर ये कब्जा करने की कोशिश करते हैं। इनकी कई हरकतों को रोकने के लिए हम पुलिस बल से काम ले सकते हैं पर मेरा अपना दृष्टिकोण यह है—और आशा है सभी इस दृष्टिकोण से सहमत हैं—कि अगर हम यह चाहते हैं कि कम्युनिज्म रूपी रोग के जड़ को विनष्ट कर दिया जाये तो यह काम केवल पुलिस बल की मदद से नहीं पूरा किया जा सकता है। इसके लिए हमें ऐसे उपायों का अवलम्बन करना पड़ेगा जिससे जनता की हालत में सुधार हो और उसका जीवन स्तर ऊंचा हो। इसके लिए हमें जनता को स्वशासन की शिक्षा देनी पड़ेगी, जिसका उपदेश जनता को सम्भवत: कम्युनिस्ट लोग भी दे रहे हैं और यह सब तभी किये जो सकते हैं जबकि जनता पर खर्च करने के लिए उससे कहीं अधिक रकम प्रान्तीय सरकार के पास हो जो आज वह अपनी आय के बल पर खर्च कर सकती है।

मेरे कहने का मतलब यह है श्रीमान्, कि इन सब परिस्थितियों के कारण प्रान्त की आर्थिक स्थिति बड़ी गम्भीर हो गई है। देश विभाजन के पहिले इसकी आय थी साढ़े तीन करोड़ रुपये की। इसकी आय आज भी करीब यही है। भारत सरकार से जो अनुदान मिलता है उसको मिलाकर आज हमारी आय पांच करोड़ से कुछ ऊपर है। निश्चय ही इस आय से वहां का प्रबन्ध ठीक-ठीक नहीं चलाया जा सकता है। प्रान्तीय बजट में पहिले से ही 70 लाख की कमी है। जहां तक मैं समझता हूं कि आगामी अधिवेशन में 30 लाख की रकम प्रान्त को पूरक मांग के रूप में और मिल जायेगी। इसलिये प्रान्त की शासन व्यवस्था को अगर आपको स्वाभाविक स्तर पर भी चलाना है जैसा कि युद्ध पूर्व में था, तो उसके लिए कम से कम डेढ़ करोड़ की वृद्धि प्रान्तीय आगम में और होनी चाहिये। इस बीच में भारत सरकार के अर्थ विभाग ने कृपा करके अन्य प्रान्तों की तरह हमको भी विकास अनुदान के रूप में कुछ रकम दी है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि इस विकास अनुदान के कारण करीब ढाई करोड़ साल के आवर्तक व्यय का भार प्रान्त के राजस्व पर और पड़ जायेगा। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि प्रान्त की तात्कालिक आवश्यकता के लिये हमें चार करोड़ की जरूरत है—डेढ़ करोड़ तो अभी मिलना चाहिये और बाकी ढाई करोड़ चार या पांच वर्षों के अन्दर।

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

इसलिये सवाल यह उठता है कि अपनी इस जरूरत के लिये रकम कहां से आ सकती है। संविधान के मसौदे में जो उपयोगी प्रावधान रखे गये हैं जिनमें अनुच्छेद 251 भी जिसे आपने अभी-अभी स्वीकार किया है, उनकी मैंने अच्छी तरह छानबीन की है। आयकर के वितरण के लिये जो आधार निर्धारित किया गया है उसके हिसाब से आसाम को आयकर का 3 प्रतिशत अंश मिलेगा जो डेढ़ करोड़ से ज्यादा न होगा। अवश्य ही हमें 30 लाख की आर्थिक सहायता केन्द्र से और मिलेगी। भविष्य में, वित्त आयोग क्या सिफारिश करेगा इसे मैं नहीं जानता। पटसन कर में से भी 40 लाख हमें दिया जायेगा। पर जब मैं यहां अपने प्रान्तीय बजट में कमी का जिक्र करता हूं तो प्राप्त होने वाली इन सब रकमों को शामिल करके ही कहता हूं कि बजट में कमी रहेगी। इसलिये प्रश्न यही आता है कि रकम हमें कैसे मिल सकती है? मैं यह जान लेने के लिए भी तैयार हूं कि वित्त आयोग प्रान्तों के प्रति बड़ा ही उदार भाव रखेगा और उनको और रकम देने के लिए कोई न कोई उपाय जरूर निकालेगा पर क्या उससे हमारी कम से कम जो आवश्यकता है उसकी भी पूर्ति हो सकेगी? यही कारण है जो मैं यह समझता हूं कि उत्पादन शुल्क का, खास करके प्रान्तों में पैदा होने वाली चीजों पर जो शुल्क हो उसका कुछ अंश प्रान्त को मिलना चाहिये और यही कारण था जिसके लिये मैंने दो संशोधन प्रस्तावित किये थे। संविधान में इस बारे में जो प्रस्तुत प्रावधान रखा गया है वह इस आशय का है कि अगर संसद विधि द्वारा ऐसा प्रावधान करे तभी उत्पादन शुल्क का कोई अंश प्रान्त को मिल सकता है। मैं यह चाहता था कि इस खण्ड के स्थान पर कोई ऐसा आदेश मूलक प्रावधान रखा जाता जिससे उत्पादन शुल्क का वितरण आवश्यक हो जाता और उसके लिये यह अपेक्षित न रह जाता कि संसद द्वारा इसके लिये एक विधि स्वीकृत होने पर ही वह वितरित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि गत बारह साल से संविधान में इसी तरह का प्रावधान वर्तमान है पर किसी भी प्रान्त को इससे कोई लाभ नहीं पहुंचा है क्योंकि इस बीच में संसद ने इस सम्बन्ध में कोई विधि ही नहीं स्वीकृत की। इसलिये मैं चाहता यह हूं, ताकि इस प्रान्त का थोड़ा लाभ पहुंच सके, कि चाय, पेट्रोल और किरोसिन तेल पर जो उत्पादन शुल्क की आय हो—चाय आसाम में पैदा होती है और भारत की कुल उपज की दो तिहाई आसाम से ही मिलती है और पेट्रोल यहां केवल आसाम में ही निकलता है—वह इस प्रावधान के स्वीकृत होते ही तुरन्त प्रान्त को वितरित कर दी जाये।

उत्पादन शुल्क का 50 प्रतिशत, मैं यह चाहता हूं कि प्रान्त को दिया जाये। इस सम्बन्ध में मैं यह बताना चाहता हूं कि आसाम से निकलने वाले पेट्रोल और किरोसिन तेल से भारत सरकार को उत्पादन शुल्क के रूप में प्राय: दो करोड़ की आय होती है। मैं चाहता हूं कि आप इस पर भी तो विचार करें कि आसाम की खनिज सम्पत्ति प्रतिदिन कम होती जा रही है क्योंकि पेट्रोल बराबर ही निकाला जाता है और जब यह सम्पत्ति सर्वथा समाप्त हो जायेगी तो प्रान्त के राजस्व में बड़ी कमी हो जायेगी। कच्चे पेट्रोल पर और जमीन की लगान पर भी आय में बड़ी कमी हो जायेगी। इसलिये अगर उत्पादन शुल्क का एक समुचित अंश प्रान्त को दिया जाता है तो वह न केवल हमारे लिये सहायक ही होगा बल्कि इस

वितरण को भी लोग न्याय संगत ही कहेंगे। जहां तक चाय का सम्बंध है, भारत की कुल उपज का दो तिहाई अंश केवल आसाम से आता है। आसाम की सरकार ने चाय की खेती करने वालों को जमीन के लगान के सम्बन्ध में तथा और कई बातों के बारे में खास रियायतें दी थीं ताकि यह उद्योग यहां अच्छी तरह चालू हो जाये। इस क्षेत्र को अब चूंकि केन्द्र ने अपने हाथ में ले लिया है और इससे प्रान्त को बहुत बड़ा घाटा पहुंचा है, प्रान्त को क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ न कुछ पाने का अधिकार है। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि सभा के समक्ष इन सत्यों को उपस्थित करके मैं ठीक ही कर रहा हूं और प्रान्त को साहाय्य देने की जो मांग कर रहा हूं वह भी समुचित ही है। जब केन्द्र को इन चीजों पर उत्पादन शुल्क के रूप में आठ करोड़ की आमदनी होती है तो कोई वजह नहीं है कि इसकी 50 प्रतिशत अंश प्रान्त को क्यों न दिया जाये ताकि जिन कठिनाईयों में यह आज फंसा हुआ है उनसे वह मुक्ति पा सके। सम्भव है कि इस तर्क के विरुद्ध यह कहा जाये कि केन्द्र की आवश्यकतायें सर्वोपरि हैं। सुतरां इनको तुलना में प्रान्तीय आवश्यकता को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है। केन्द्र की आवश्यकता को मैं भी सर्वोपरि मानता हूं। मेरा प्रान्त एक सीमा प्रान्त है इसलिये मुझे तो इस बात का और किसी भी व्यक्ति से ज्यादा ख्याल है। पर आखिर आसाम तो भारत का ही एक अंग है और सीमा पर स्थित होने के कारण आज इस अंग का और भी अधिक महत्व है इसलिये अगर आप यह चाहते हैं कि यह प्रदेश एक प्रान्त के रूप में सुचारू रूप से अपने प्रकार्य सम्पादित करे तो जरूरी है कि यहां का शासन स्तर ऐसा हो और इस तरह से काम करे कि आप यहां के निवासियों को सन्तुष्ट रख सकें, इसकी थोड़ी समुन्नति कर सकें और उन बुरी ताकतों को जो आज समाज को ही बर्बाद करने पर तुली हुई हैं, उनको कुचलने में सक्षम हो सकें। इसलिय मैं असाधारण मांग नहीं कर रहा हूं। मैं फिर कहता हूं कि मैं कोई असाधारण मांग नहीं कर रहा हूं बल्कि मैं सिर्फ न्याय की मांग कर रहा हूं।

फिर श्रीमान्, आप उस खर्च पर भी विचार करें जो आप प्रान्त अपनी आमदनी के बल पर, अपनी जनसंख्या पर फी आदमी के हिसाब से उठा सकता है। इस सम्बन्ध में अगर मैं अपने प्रान्त की तुलना बम्बई से करता हूं तो मेरे अभिप्राय के सम्बन्ध में सदस्यों में कोई गलतफहमी न होनी चाहिये। मैं दूसरे सभी प्रान्तों की भलाई चाहता हूं। इस तुलना में हमें लाभ ही पहुंचेगा। गरीब आसाम अब तक अपनी सामाजिक सेवा के कार्यों पर फी व्यक्ति तीन रुपया खर्च कर पाता था और इसी में शासन का खर्च भी शामिल है। आज आसाम पांच रुपया फी आदमी खर्च कर पाता है पर बम्बई, मेरा ख्याल है, फी आदमी के हिसाब खर्च कर पाता है बाइस रुपये और इस बाइस में, मुझे पक्का मालूम है, खास सम्बन्धी जो रियायत कम खाद्य वाले प्रान्तों को भारत सरकार देती है वह शामिल नहीं है। इसको भी अगर शामिल करते हैं तो बम्बई, मुझे पक्का विश्वास है कि फी आदमी के हिसाब से तीस रुपये खर्च करता होगा। मैं किसी भी व्यक्ति पर कोई आरोप नहीं करना चाहता हूं। जब हमने यहां लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया था तो भारत के भविष्य के सम्बन्ध में हमने बड़ी ऊंची-ऊंची आशायें बांध रखी थीं। मूल-अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को स्वीकार करते समय हमने यह सोचा था कि अब भारत से दारिद्रय, कष्ट, रोग व्याधि तथा अज्ञान सदा के लिये दूर हो जायेंगे। मैं आपसे पूछता हूं कि कैसे आप इस उद्देश्य की प्राप्ति करने जा रहे

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

हैं? मैं यह नहीं कहता कि मेरे संशोधन परम पुनीत हैं और इनका पास होना जरूरी ही है। मेरा कुल कहना यह है कि जब तक कि आप इस दृष्टिकोण से नहीं देखते हैं तब तक भारत वह भारत नहीं बन सकता है जिसकी कल्पना लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव में की गई है। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि बम्बई कपड़े के निर्यात पर एक तरह का कर लगाता है जिसकी सारी रकम बम्बई को ही जाती है। इसके मुकाबिले में आसाम का ख्याल कीजिये जहां पांच रुपया फी व्यक्ति के हिसाब से सरकार खर्च कर पाती है। पेट्रोल और चाय ही इसके आय के साधन हैं और वह प्रतिदिन हर तरह से कम होते जा रहे हैं और प्रान्त अपने निवासियों के लिये जो सर्वथा गरीब हैं आवश्यक सामाजिक सेवाओं की भी व्यवस्था नहीं कर पाता है। यह तो वही बात हुई जो बाइबिल में कही गई है:–

"To him that hath, more shall be given, and
From him that hath not, even the little that he hath shall be taken away,"

अर्थात् जिसके पास है उसे तो और दिया जायेगा पर अकिंचन से, जो भी थोड़ा उसके पास है वह भी छीन लिया जायेगा।

मुझे विश्वास है कि सभा इस तरह की अवस्था न जारी रहने देगी और अगर वह मेरे संशोधन को नहीं स्वीकार करती है तो कम से कम आसाम और उड़ीसा जैसे गरीब प्रान्तों को पर्याप्त अनुदान देने के प्रश्न पर सहानुभूति पूर्वक विचार करेगी।

***श्री बी. दास:** आसाम के मुख्य मंत्री की हृदय विदारक वक्तृता से पता चलता है कि केन्द्रीय रकम किस तरह वितरित की जाती हे या उसे किस तरह वितरित करने का ख्याल किया जा रहा है। उत्पादन शुल्क के मद में जो केन्द्रीय आय होती है वह प्रान्तों की होनी चाहिये। सरकार कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में पृष्ठ 18 पर कहा है:–

"युद्ध के दिनों में बंगाल और आसाम को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तों के बजट में बचत रही है।"

अभी आसाम के मुख्य मन्त्री ने हमें बतलाया है कि इस समय आसाम किस दु:खद स्थिति में है और यह कि पूर्व एवं पश्चिम दोनों ही दिशाओं से—बर्मा और पूर्वी बंगाल—कम्युनिस्टों के आ जाने के कारण प्रान्त की मुसीबत और भी बढ़ गई है। बर्मा और पूर्वी बंगाल दोनों ही विदेश हैं। इसलिये आसाम की आवश्यकताओं पर इस सर्वसत्ताधारी सभा को खूब सावधानी से विचार करना चाहिये। अगर भारत सरकार इस मामले में लापरवाह रहती है, अगर प्रान्तीय इकाइयों को साहाय्य देने का उसका विचार नहीं है या अगर वह राज्य के जो मूल कर्तव्य होते हैं उनका पालन वह नहीं करती है, अगर भारत सरकार का अर्थ विभाग अपनी टेक पर अड़ा रहता है और नौकरशाही करता है तो इस सभा को चाहिये कि वह भारत सरकार को इसके लिये बाध्य करे कि वह एक लोकतंत्रीय शासन के रूप में अपने प्रकार्यों को सम्पादित करे। अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ 9 पर पैरा 49 में सरकार कमेटी में केन्द्रीय उत्पादन शुल्क पर विचार किया है और इस निर्णय पर पहुंची है कि केन्द्र द्वारा संगृहीत उत्पादन शुल्क की आय का कम

से कम 50 प्रतिशत अंश प्रान्तों को मिलना चाहिये। माननीय मित्र श्री बारदोलोई ने कहा है कि पेट्रोल और किरोसिन तेल पर उत्पादन शुल्क की जो आय होती है उसका 75 प्रतिशत भाग आसाम को मिलना चाहिये। मेरा ख्याल है कि इसके लिये आपने जो कारण पेश किये हैं उनको देखते हुये उनकी 75 प्रतिशत की मांग सर्वथा उचित है।

मैं श्री बारदोलोई का कृतज्ञ हूं कि उन्होंने इस सम्बन्ध में उड़ीसा का जिक्र किया। तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क के रूप में जो आय होती है उसका एक हिस्सा उड़ीसा प्रान्त को मिलना चाहिये। आज भारत सरकार इस सम्बन्ध में इस बात पर अड़ी हुई है कि उत्पादन शुल्क की आय का कोई अंश वह प्रान्तों को न देगी। यह सरकार कमेटी की सिफारिश को मानने पर तैयार नहीं हैं। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में पृष्ठ 10 पर कहा है:–

> "तदनुसार हमारी यह सिफारिश है कि तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क के रूप में जो कुल आय हो उसका 50 प्रतिशत अंश संघ राजस्व का भाग न हो बल्कि वह प्रान्तों में वितरित कर दिया जाये।"

भारत सरकार को श्रेष्ठता प्राप्त है श्रीमान्। वह ऐसा नहीं समझती है कि उस पर यह जिम्मेदारी आयात है कि इस सर्वसत्ताधारी सभा के समक्ष वित्त वितरण सम्बन्धी अपने आचरण पर वह प्रकाश डाले। अभी कुछ देर पहले डॉ. अम्बडेकर को हमने यह कहते सुना है कि एक विशेष प्राधिकारी या समिति इस बात के लिये नियुक्त की जाने वाली है जो इस बात की छानबीन करेगी कि आय-साधनों का पुन: प्रान्तों में किस तरह वितरण किया जाये। जवाब के सिलसिले में यह बात संयोगवशात् प्रकट हो गई। आखिर भारत सरकार की ओर से यहां बोलने वाले प्रतिनिधि ने क्यों नहीं यह महसूस किया कि यह उनका कर्त्तव्य है कि सभा को वह सारी बात बता दें? भारत सरकार के अर्थ विभाग के आचरण की मैं फिर इसलिये निन्दा करता हूं कि वह लोकतन्त्रीय सिद्धांतों का पालन नहीं कर रही है। उत्पादन शुल्क की आय प्रान्तों के नागरिकों की मेहनत और उनके पसीने के फलस्वरूप जमा हो पाती है। माननीय मित्र श्री बारदोलोई ने इस बात का यहां उल्लेख किया है कि आसाम में कम्युनिस्टों का खतरा पैदा हो गया है। मैं यह कहता हूं कि उत्पादन शुल्क की आमदनी कम्युनिस्टों के खतरे को दूर करने में खर्च की जानी चाहिये क्योंकि उत्पादन शुल्क के संग्रह से ही कम्युनिस्टों को प्रान्तों में प्रश्रय मिलता है। इस शुल्क का संग्रह सभी प्रान्तों में—यू.पी., मद्रास, उड़ीसा इत्यादि इत्यादि, में किया जाता है और इसके लिये बड़ी अलोकतन्त्रीय पद्धति बरती जाती है और कम्युनिस्टों ने इसी को अपने प्रचार का साधन बना लिया है। हम सभी जानते हैं कि उत्तरी मद्रास के नालगोण्डा और चित्तूर के जिलों में क्या हो रहा है। वहां कम्युनिस्ट किसानों में अपना जो आन्दोलन चला रहे हैं उसमें वह यह भी कहते हैं: "तम्बाकू पैदा करते हो तुम और भारत सरकार आकर तुमसे उस पर कर वसूल करती है"। भारत सरकार भी इतनी बुद्धि शून्य है कि वह इसी प्रणाली पर चिपटी हुई है। उत्पादन शुल्क का संग्रह वह प्रान्तीय प्राधिकारियों के द्वारा नहीं कराती है इसके लिये इसने अपने कर्मचारी रखे हैं जो ग्रामवासियों से तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क वसूल करते हैं। इस महकमे के प्राधिकारी कौन हैं? ये सभी शहरों के रहने वाले हैं। मेरे अपने प्रान्त में तो इस महकमे के अधिकांश कर्मचारी कलकत्ता से आये हैं जो कलकत्ते की बोली बोलते हैं और वहां के देहातियों के विचारों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ भाई

[श्री बी. दास]

की तरह बात करना तो ये प्राधिकारी जानते ही नहीं हैं। तम्बाकू से भारत सरकार बहुत बड़ी रकम उत्पादन शुल्क के रूप में प्राप्त करती है और इसे पैदा करने वाले गरीब किसानों को ये प्राधिकारी तंग करते हैं करारोपण की उचित प्रणाली क्या है तथा करों की आमदनी का वितरण किस तरह किया जाये इस पर इस सभा को विचार करने का कभी मौका नहीं मिला श्रीमान्। अगर इस पर विचार करने का अवसर दिया गया होता तो हम भारत सरकार को यह राय देते कि ब्रिटिश हुकूमत से जो पद्धति इसने विरासत में अपनाई है उसे अब वह छोड़ दे। प्रान्तीय अधिकारी इन लोगों के सदा सम्पर्क में रहते हैं। ये उनको अच्छी तरह जानते हैं और उनकी आवश्यकताओं से अच्छी तरह परिचित होते हैं। ये लोग कर वसूली का काम मानवोचित सहानुभूति के साथ कर सकते हैं। इन प्रान्तीय अधिकारियों को ही तम्बाकू पर जो उत्पादन शुल्क हो उसे वसूल करने का काम सौंपिये। प्रसंगावशात् मैं यह भी कहूंगा कि भारत सरकार के अर्थ विभाग को अब अपना आचरण बदल देना होगा।

माननीय मित्र श्री बारदोलोई ने जो यह मांग की है कि आसाम की महती आवश्यकताओं को देखते हुये और उसके आय साधनों के अभाव का ख्याल करते हुये यह जरूरी है कि पेट्रोल और चाय के उत्पादन-शुल्क की आमदनी का 75 प्रतिशत या इससे कोई अधिक अंश आसाम को मिलना चाहिये मैं इसका सिद्धान्ततः समर्थन करता हूं। सरकार कमेटी की इस सिफारिश का भी मैं हार्दिक समर्थन करता हूं कि उत्पादन शुल्क के रूप में केन्द्र को जो आमदनी हो उसका 50 प्रतिशत अंश प्रान्तों को मिलना चाहिये।

मैं यह भी आशा करता हूं कि मेरा यह जो सुझाव है कि उत्पादन शुल्क का संग्रह प्रान्तीय प्राधिकारियों द्वारा ही होना चाहिये न कि केन्द्रीय प्राधिकारियों द्वारा जिनको उत्पादन करने वाले ग्रामीणों से कोई सहानुभूति नहीं रहती है, उसको शीघ्र कार्यान्वित किया जायेगा।

अब मैं अनुच्छेद 253(1) को लेता हूं जिसमें कहा गया है:—"नमक पर संघ कोई कर न लगायेगा"। यह एक भावुकतापूर्ण प्रावधान है। माननीय मित्र श्री थीरूमल राव यहां अन्य एक प्रसंग में कह चुके हैं कि नमक पर पुनः कर लग जाना चाहिये। नमक कर के उठ जाने से किसी को कोई फायदा नहीं पहुंचा है। इससे यही हुआ है, चोर बाजारी करने वालों ने और नमक तैयार करने वालों ने इसकी कीमत बढ़ा दी है। जब नमक कर था उस समय हम एक आना सेर के भाव से नमक खरीदते थे और आज हमें पांच या 6 आने सेर की कीमत देनी पड़ती है। इसलिये मेरा कहना है कि अनुच्छेद 253(1) का जो प्रावधान है वह सर्वथा भावुकतापूर्ण प्रावधान है। इस सम्बन्ध में मुझे और कुछ नहीं कहना है।

जहां तक कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (2) का सम्बन्ध है, हो सकता है मसौदे के रचयिता मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के, इस प्रावधान पर गर्व करते हों कि ऐसा सुन्दर प्रावधान उन्होंने संविधान में रखा है। पर इस संविधान का मूल्य ही क्या रह जाता है जबकि इसके प्रावधानों से जनता को कोई फायदा नहीं पहुंच पाता है। इसलिये, यद्यपि मैंने इस खण्ड पर अपना संशोधन पेश नहीं किया है, मैं यह कहूंगा कि इस संशोधन से मेरा अभिप्राय यही था कि भारत सरकार को इसके लिए बाध्य किया जाये कि संविधान की प्रारम्भण तिथि से छह महीने

के अन्दर संसद के समक्ष एक विधेयक उपस्थित करे जिसमें उत्पादन शुल्क के वितरण की व्यवस्था हो। इस खण्ड में यह कहा गया है कि उत्पादन शुल्क का वह अंश वितरित किया जायेगा जो संसद् विधि द्वारा निर्धारित करे। पर सवाल यह है कि संसद् को ऐसी विधि पास करने पर बाध्य कौन कर सकता है? संविधान के मसौदे की जो भाषा है उसके अनुसार भारत सरकार के अर्थ विभाग के लिए यह लाजिमी नहीं है कि वह ऐसा कोई विधेयक प्रस्तावित करे या आय के जिन साधनों पर उसका एकाधिकार हो गया है उसको वह छोड़ दे। शनैःशनैः हम सारे अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे रहे हैं और जो भी थोड़ी बहुत आजादी या थोड़ा बहुत अधिकार प्रान्तों को प्राप्त है उसे भी धीरे-धीरे छीन ले रहे है। केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के बारे में, जिसका संग्रह संघ करेगा, आखिर ऐसी साधु भाषा यहां क्यों रखी गई है कि "ऐसे शुल्क जो संघ सूची में वर्णित हैं"। संघ सूची में क्या-क्या मद रखे जायेंगे इसे हमने अभी तय नहीं किया है। भारत सरकार का अर्थ विभाग अगर चाहेगा तो मसौदा-समिति को यह आदेश दे देगा कि प्रान्तीय सूची में अमुक मद रखे जायें या उसमें अमुक मद न रखे जायें। यही कारण है कि जो इस खण्ड में यह कहा गया है:-"यदि संसद् विधि द्वारा यह प्रावहित करे तो......विधि द्वारा निर्मित विभाजन सिद्धान्तों के अनुसार विभाजित की जायेगी।" मेरा ख्याल है कि यह बात हमारे सिद्धान्तों के खिलाफ जाती है। इस गौरवशालिनी सभा को भारत सरकार के प्रवक्ता से यहां यह पूछने का अधिकार है कि आखिर विभाजन सम्बन्धी वह सिद्धान्त क्या होंगे जो विधि द्वारा निर्मित किये जायेगें? ऊपरी सहानुभूति हमें यहा सर्वत्र दिखाई दे रही है। पर भारत सरकार का कोई भी प्रतिनिधि यहां सभा भवन में उपस्थित नहीं रहता है। मसौदा-समिति की ओर से जो भी बात कही जाती है वह यहां स्वीकार कर ली जाती है। इसी तरह से तो यहां की कार्रवाई चल रही है। इससे जनता को क्या फायदा पहुंचेगा? ऐसे संविधान को पास करनें से लाभ ही क्या है अगर उसको शीघ्र ही अमली रूप न दिया जा सका और भारत सरकार को इसके लिये बाध्य न किया जा सका कि वह आयकर के साधनों पर वह जो कब्जा जमाये है उसे अब छोड़ दे? यह एक ऐसी बात है जिस पर मैं यहां बहुत शोर मचा रहा हूं। मैं सादर आपसे आग्रह करता हूं, श्रीमान् कि आप खुद इसकी छानबीन करें कि वित्त वितरण के सम्बन्ध में ये जो प्रावधान यहां रखे गये हैं वह क्या समुचित हैं और उनके द्वारा क्या जनता के साथ न्याय हो पाता है? क्या ये प्रावधान ऐसे हैं कि संविधान के प्रवर्तन में आते ही उन आगमों को जिन्हें कि प्रान्तों से छीनकर ब्रिटिश शासन ने सन् 1924 से ही केन्द्रीय अधिकार में कर लिया था उनकी प्रान्तों में वितरित किया जाने लगेगा? अवश्य ही मैं यह आशा करता हूं कि यथा समय आप मसौदा समिति को यह आदेश जरूर देंगे कि जो बातें आपकी निगाह में यहां लाई गई हैं उन पर वह गौर करे।

*__मि. तज़म्मुल हुसैन__ (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैंने इस आशय का एक संशोधन भेजा था कि अनुच्छेद 253 का खण्ड (1) हटा दिया जाये। इस अनुच्छेद पर सभा में विचार शुरू किया गया था जो उस समय मैं मौजूद नहीं था। इसलिये किसी दूसरे सदस्य ने मेरा वह संशोधन पेश किया था। मैं नहीं समझता कि संविधान में इस आशय का प्रावधान रखना ठीक होगा कि संघ नमक पर कोई कर न लगायेगा। मेरे ख्याल से यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसे संसद पर ही छोड़ देना चाहिये। इस सम्बन्ध में जैसा कि कानून वह बनाना

[श्री तजम्मुल हुसैन]

चाहे उसे इसकी स्वतन्त्रता प्राप्त रहनी चाहिये। कर लगाना या न लगाना संसद् का काम है और नमक पर कर लगाने का काम अब तक संसद् ही करती आई है। फिर संसद् को इस सम्बन्ध में विधि बनाने से आप क्यों रोकते हैं? आखिर संसद् में जनता के ही प्रतिनिधि रहेंगे और किसी समय यदि वह यह महसूस करे कि नमक पर कर लगाना चाहिये तो उसे इसकी स्वतन्त्रता प्राप्त रहनी चाहिये। यदि प्रस्तुत प्रावधान संविधान में रहता है तो संसद् और जनता दोनों का ही इस सम्बन्ध में हाथ बंध जायेगा। अगर जनता के प्रतिनिधि यह महसूस करें कि देश के हित में नमक कर लगाना जरूरी है तो उन्हें इसकी स्वतन्त्रता प्राप्त रहनी चाहिये। इस प्रश्न को हमें संसद पर ही छोड़ देना चाहिये। अब सवाल यह है श्रीमान्, कि अगर नमक पर कर नहीं लगाया जाता है तो उससे फायदा किसको पहुंचेगा? फायदा किसी को भी नहीं पहुंचेगा। अगर विदेश से बिना कर नमक का आयात होता है तो इसमें किसे नुकसान पहुंचेगा। अवश्य ही जनता को नुकसान पहुंचेगा। इसमें शक नहीं कि हमें महात्मा गांधी की इच्छाओं का आदर करना चाहिये। उनकी राय यह जरूर थी कि नमक पर कर न लगाना चाहिये पर अब समय बदल गया है। उन दिनों हम एक पराधीन राष्ट्र थे और हमारे बहुत से कार्य इसलिये होते थे कि यहां से अंग्रेजों को निकाला जा सके। पर अब यहां अंग्रेज नहीं रह गये हैं। अब हम पूर्णत: स्वतन्त्र हैं और अब हमारा यह कर्तव्य है कि देश को बिना नुकसान पहुंचाये जिस तरह हो इसकी आय में वृद्धि करें। आशा करता हूं माननीय कानून सचिव इस स्थिति पर विचार करेंगे और प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं अपनी बातें अनुच्छेद 253 के खण्ड (1) को हटाने तक ही सीमित रखूंगा, जिसमें यह कहा गया है कि संघ नमक पर कोई कर न लगायेगा। श्री महावीर त्यागी का यह संशोधन है कि इस खण्ड को हटा दिया जाये और मैं उनके इस संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं। सभा को मैं यह बता दूं—और संशोधन—सूची से उन्हें स्वत: यह बात मालूम हो गई होगी—कि माननीय मित्र सरदार हुकुमसिंह, मि. तजम्मुल हुसैन, मैंने तथा अन्य कई सदस्यों ने इसी संशोधन की सूचना यहां अरसा पहिले भेजी थी। हम लोगों ने अपने संशोधनों को इसीलिये यहां पेश नहीं किया कि माननीय श्री महावीर त्यागी को, जिन्होंने गत असहयोग आन्दोलन में, विशेषकर के नमक आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत बड़ा हिस्सा लिया था और कष्ट उठाये थे, इसे उपस्थित करने का गौरव प्राप्त हो सके।

इस संशोधन पर मैं केवल आंकड़ों के आधार पर ही विचार करूंगा। विभाजन पूर्व के आंकड़ों के देखने से पता चलता है कि नमक कर से केन्द्रीय सरकार को 9 करोड़ की वार्षिक आमदनी होती थी। विभाजन पूर्व की आबादी के हिसाब से फी आदमी तीन आना साल यानी 1 पैसा महीना नमक कर बैठता था। दैनिक हिसाब यह बैठेगा कि फी आदमी 1/10 पाई रोज देता था। फी आदमी को नमक कर में जो रकम देनी पड़ती है वह इतनी नगण्य है कि उसकी अगर छूट भी मिल जाती है तो उससे गरीब जनता को बचत नहीं महसूस हो पाती है। गरीब जनता की भलाई के ख्याल से ही नमक कर उठाया गया था पर इससे उसको कोई फायदा नहीं पहुंचा। नमक कर की छूट से सारा फायदा उठाया है नमक व्यापारियों ने वस्तुत: नमक कर की छूट कई बड़े-बड़े नमक व्यापारियों के लिये

वरदान ही सिद्ध हुई और जिस साधु उद्देश्य से नमक कर उठाया गया था वह सर्वथा असफल रहा। वस्तुतः जिस साधु उद्देश्य से हमने नमक कर उठाया था उसकी पूर्ति के लिए उपाय ही क्या है? इसलिये मेरा सुझाव यह है कि नमक कर को उठाने के लिए संविधान में कोई प्रावधान लिपिबद्ध न किया जाये। इसे हमें विधान-मण्डल पर छोड़ देना चाहिये और गरीबों के लाभ के लिये जो भी उसे ठीक जंचे वैसा कानून इस सम्बन्ध में वह बनाये। इस सम्बन्ध में मैं यह सुझाव दूंगा कि नमक कर लगाना चाहिये पर उसकी जो आय हो वह गरीबों के फायदे के लिए संरक्षित रखी जानी चाहिये जिनके लिए गांधी जी को सतत चिन्ता रहती थी। प्रस्तुत खण्ड (1) को संविधान में स्थान देने में कोई लाभ नहीं है। महात्मा गांधी के पवित्र सिद्धान्तों का हमने संविधान में कई स्थलों पर उल्लंघन किया है। इसलिये इस खण्ड को हटाने का विरोध हम इस आधार पर नहीं कर सकते हैं, कि गांधी जी नमक कर नहीं चाहते थे। गांधी जी के सिद्धान्तों में तो एक यह सिद्धान्त भी था विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई जानी चाहिये और केन्द्र से अधिकार लेकर उसे प्रान्तों और राज्यों को सौंप देना चाहिये। यहां हम यह देखते हैं कि जब तक गांधीजी जीवित थे तब तक तो लोग उनके इस विचार से साहनुभूति रखते थे पर उनकी मृत्यु के बाद तो विकेन्द्रीकरण के विचार का लोगों ने सर्वथा परित्याग कर दिया है और केन्द्र में अधिकाधिक शक्ति सन्निहित रखना ही हमारा आज उद्देश्य हो गया है। मेरा ख्याल है श्री महावीर त्यागी के संशोधन को सभा को स्वीकार करना चाहिये।

***श्री राजबहादुरः** (मत्स्य राज्य संघ): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि माननीय मित्र श्री महाबीर त्यागी ने जो संशोधन रखा है उससे मैं सहमत नहीं हो सकता हूं। संशोधन के समर्थन में अपने तीन या चार बातें ही कही हैं। उनका कहना है कि इस बारे में हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों का हाथ न बांध देना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा है कि नमक की एक बहुत बड़ी राशि, सैकड़ों हजार टन हर साल मिश्र, पाकिस्तान और अन्य देशों से मंगाया जाता है। आखिरी बात आपने यह कही है कि नमक कर के उठा देने से भारत के राजस्व में 9 करोड़ की कमी हुई है। उनकी मुख्य दलीलें यही रही है जो मैंने अभी कही है।

मेरा ख्याल है श्रीमान्, कि अगर उनके तर्कों पर गौर से विचार किया जाये तो पता चलेगा कि ये सही नहीं है। यह कहावत ठीक ही है कि आदमियों की याददाश्त कमजोर होती है। अपने माननीय मित्र को मैं इस बात की याद दिलाऊंगा कि राष्ट्रपिता के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह का जो महत्वपूर्ण आन्दोलन चला था वह हमारे जातीय इतिहास में स्वर्णभरों में लिखा जाना चाहिये और अपने इतिहास के इस महिमामण्डित अध्याय को कभी भूलाया नहीं जा सकता है और न उसकी उपेक्षा की जा सकती है। केवल इस आधार पर कि नमक कर उठाने का प्रावधान संविधान में रखने से हमारी आगामी पीढ़ियों का हाथ बंध जायेगा, नमक आन्दोलन सम्बन्धी अपने इतिहास की हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। बल्कि होना तो यह चाहिये कि अपने इस वीरतापूर्ण संग्राम की स्मृति को सदा बनाये रखने के लिए हमें संविधान में ही प्रस्तुत प्रावधान रखना चाहिये ताकि हमारी सन्ततियों को उससे सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहे। यह कथन कि नमक कर के उठा देने से भारतीय राजस्व में कमी हो गई है कोई स्थायी वजन नहीं रखता है। कई मित्रों ने यह आपत्ति भी की है कि नमक कर का उठ आना चोर बाजारी करने वालों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। मैं कहता हूं कि चोर बाजारी आज केवल नमक के

[श्री राजबहादुर]

व्यापार में ही नहीं चल रही है। सभी रोजगारों में आज चोर बाजारी चल रही है। इसका इलाज यह नहीं है कि आप सिद्धान्तों को ही अस्वीकार करें और स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में हमने जो वीरता पूर्ण युद्ध किये हैं उनको न स्वीकार करें। इलाज यह है कि आप चोर बाजारी को समाप्त कर दीजिये। न केवल नमक-व्यवसाय में बल्कि किसी भी व्यवसाय में, ऐसा कीजिये, कि चोर बाजारी रह ही न जाये। यह स्पष्ट है कि खाद्य पदार्थ और कपड़े के बाद, हमारी आवश्यकताओं में नमक का ही स्थान आता है। इसलिये नमक कर के लगाये जाने या उठाने का प्रभाव तमाम जनता पर पड़ेगा। मैं इस खण्ड को रखने के पक्ष में हूं और न केवल भावुकता के आधार पर नहीं पर मैं यह जरूर कहूंगा कि भावुकता सम्बन्धी कारण कम महत्व नहीं रखते हैं। राष्ट्रीय भावना या भावुकता के लिए हर सदस्य को सदा अभिलाषी रहना चाहिये। राष्ट्रीय भावनाओं के लिए तो हमें अपना जीवन बलिदान कर देना चाहिये। इसलिये, राष्ट्रपिता के नेतृत्व में जो महत्वपूर्ण नमक सत्याग्रह का आन्दोलन चलाया गया था उसकी स्मृति में, इस प्रावधान को संविधान में हमें एक समादृत स्थान देना ही चाहिये। दाण्डी अभियान की प्रसिद्ध घटना को हम भला कैसे भुला सकते हैं? अगर और किसी उद्देश्य से नहीं तो कम से कम इसी उद्देश्य से हमें यह प्रावधान यहां रखना चाहिये कि इसके जरिये हम राष्ट्र के प्रति, देश के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित कर सकें, राष्ट्रपिता की स्मृति के प्रति, उस गौरवपूर्ण संग्राम की स्मृति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित कर सकें। हमें संविधान में ऐसी कोई चीज जरूर रखनी चाहिये जो हमारे गौरवशाली संग्राम की उच्च भावना पर प्रकाश डालती हो, विदेशी प्रभुता के विरुद्ध हमने जो महान् संग्राम चलाया था उसकी हमें सतत् स्वाभिमानपूर्वक याद दिलाती रहे। जैसाकि मैंने अभी कहा है इसमें केवल राष्ट्रपति भावना का ही प्रश्न नहीं निहित है। राष्ट्र की अर्थ नीति के आधार पर भी मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं। जैसाकि मैंने कहा है, अगर नमक कर का उठ जाना चोर बाजारी करने वालों के लिये वरदान सिद्ध हुआ है तो होना यह चाहिये कि चोर बाजारी की समस्या का समाधान निकाला जाये और यह कार्य यहां नहीं, अन्यत्र किया जा सकता है। पर इस नमक कर के प्रश्न के सिलसिले में अनिवार्य रूप से एक दूसरा प्रश्न जो हमारे सामने आ जाता है वह यह है कि ब्रिटिश शासकों ने हमारे नमक उद्योग को किस तरह दबाया और किस तरह फिर इस उद्योग को हम पुनर्जीवित कर सकते हैं। मैं एक ऐसी रियासत से आया हूं जिसे नमक उद्योग के कुचले जाने के कारण बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ा है। इसलिये, इस सम्बन्ध में मेरी कुछ विशेष अनुभूतियां हैं। मेरे अपने प्रदेश राजस्थान में, और अपनी रियासत भरतपुर में, एक खूब समुन्नत गृह उद्योग के द्वारा लाखों मन नमक हर साल तैयार किया जाता था। किन्तु सन् 1979 ई. में अंग्रेजों ने अपने स्वार्थों के लिए इस उद्योग को कुचल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की आबादी कम हो गई, बहुत से लोग दूसरे स्थानों को चले गये। हजारों आदमी बेकार हो गये। क्या इस उद्योग को हमें पुनर्जीवित नहीं करना है? नमक कर के उठा देने से भारतीय संघ के राजस्व में करोड़ों की कमी जरूर हो जायेगी पर अगर हम इस उद्योग को पुनर्जीवित करते हैं तो इससे हजारों आदमियों को रोजी का सिलसिला हो जायेगा। और साथ ही यह भी होगा कि नमक के मामले में हम स्वावलम्बी हो जायेंगे। यह एक लज्जा की ही बात है कि आज स्वाधीन होने पर भी हमें लाखों टन नमक विदेशों से मंगाना

पड़ता है। अगर हम ऐसी कोई कार्रवाई करते हैं जिससे हमारा नमक उद्योग पुनर्जीवित हो जाता है और खूब चलने लगता है तो हमारा नमक का आयात बिल्कुल रुक जायेगा। इस बीच में हम इस आयात पर और अधिक कर बैठा सकते हैं। हम ऐसे उपायों को खोज कर सकते हैं जिनसे हमारा नमक उद्योग पुन: प्रतिष्ठित हो सके। वैसा होने पर नमक कर के रूप में जो हमारा घाटा हुआ है वह अन्य कई तरह से पूरा हो जायेगा।

इस खण्ड को हटाने के विरुद्ध तीसरी बात यह की जा सकती है कि उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अच्छा नहीं पड़ेगा। यह तीसरी बात भी उतना ही महत्व रखती है जितना कि पहिले कही दो बातें। अगर इस खण्ड को हटा दिया जाता है तो इसका जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा? सही या गलत जनता हममें से कइयों पर अभी भी यह दोषारोपण करती है कि मौखिक रूप से तो हम गला फाड़ कर उन सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हैं जिन पर महात्मा गांधी सदा अटल रहे, जिनकी उन्होंने देश को सीख दी, न केवल सीख दी बल्कि उन पर अमल किया—पर क्रियात्मक रूप से हमने उन्हें सर्वथा अस्वीकार कर दिया है। अगर हम इस खण्ड को अनुच्छेद से निकाल देते हैं तो हम पर यह दोषारोप किया जायेगा कि अभी महात्मा जी को गुजरे दो ही साल हुये हैं पर हम उनके महान् सुकृत्यों को अब याद भी रखना नहीं चाहते हैं। हम पर यह दोषारोप किया जायेगा कि हमने संविधान में एक ऐसे खण्ड को रखना अस्वीकार कर दिया जो उस आदर्श को अमर बना देता जिसके लिये राष्ट्रपिता ने महान् त्याग किये और जिसके आधार पर उन्होंने देश के असंख्य नर नारियों में चेतना की लहर दौड़ा दी। इसलिये मैं यह कहूंगा कि अगर हम इस खण्ड को हटा देते हैं तो इसका जनता पर बड़ा ही बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा और देश में हमारी सर्वत्र निन्दा की जायेगी। इसलिये राष्ट्रीय इतिहास के इस मौके पर उचित यह होगा कि हम इस बात का हमेशा ख्याल रखें कि हमसे कोई भी ऐसा काम न हो जिसके कारण जनता में हमारे विरुद्ध दुर्भाव उत्पन्न हो। नमक एक ऐसी चीज है जिसकी हर आदमी को रोज जरूरत होती है और खास करके हमारे किसान भाइयों को तो अपने पशुओं के लिए भी नमक की जरूरत होती है। यह सच हो सकता है कि फी आदमी को जो रकम नमक कर के रूप में देनी पड़ेगी वह बहुत ही नगण्य होगी पर नमक कर का जनता पर जो प्रभाव पड़ेगा वह बड़ा अवांछनीय होगा। इसलिये यह आवश्यक है कि इस खण्ड को रहने दिया जाये।

इस खण्ड को रखने की राय देते हुये मैं यह जरूर कहूंगा कि इसमें थोड़ा संशोधन करने की जरूरत है। यहां केवल 'नमक' शब्द का प्रयोग हम नहीं कर सकते हैं क्योंकि नमक में तो कैलसियम क्लोराइड से लेकर प्लैटिनम क्लोराइड तक हजारों चीजें आ सकती हैं। इसलिये अच्छा यह होगा कि हम यहां 'साधारण नमक' शब्दों को रखें। इसी तरह यह भी अच्छा होगा कि 'Salt' (नमक) शब्द के आगे 'Produced in India' (भारत में पैदा किये गये) शब्दों को जोड़ दें। अगर इन संशोधनों को शामिल कर दिया जाता है, तो मेरे ख्याल में इस खण्ड में कोई त्रुटि न रह जायेगी। इन शब्दों के साथ, मेरा यह निवेदन है श्रीमान्, कि इस खण्ड को संविधान में अवश्य रखा जाये।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम में जो संशोधन है उसे यद्यपि मैंने उपस्थित नहीं किया है पर मैं यह जरूर महसूस

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

करता हूं कि उत्पादन शुल्क की आय के सम्बन्ध में राज्यों और केन्द्र के बीच कुछ ऐसा प्रबन्ध जरूर होना चाहिये जिससे राज्यों को अपना शासन प्रबन्ध सुचारू रूप से चलाने के लिये पर्याप्त रकम मिल सके। मैं यह जानता हूं कि एक विचारधारा यहां यह भी है कि उत्पादन शुल्क की आय सर्वथा केन्द्र की चीज है और वह ऐसी आय नहीं है जिसकी पाने का दावा राज्य अधिकार के नाते कर सकते हों। पर हमें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि जो राज्य उन पदार्थों को पैदा करते हैं जिन पर उत्पादन शुल्क वसूल किया जाता है, वह यह महसूस करते हैं कि उत्पादन शुल्क पर उनका भी इसलिये हक है कि ये पदार्थ उनके इलाकों में उत्पन्न किये जाते हैं। उदाहरण के लिए मैं आप को बताऊं कि पेट्रोल आसाम से निकलता है, जैसा कि अभी आसाम के माननीय मुख्य मन्त्री ने कहा है, और केन्द्र पेट्रोल तथा किरोसिन तेल पर उत्पादन शुल्क के रूप में करीब दो करोड़ रुपये वसूल करता है जो केन्द्रीय राजस्व में जाता है। इसके अलावा, सभा को भी यह मालूम है और सारा देश जानता है कि भारत में चाय की कुल उपज का दो तिहाई भाग आसाम में ही पैदा होता है जिस पर केन्द्रीय सरकार को उत्पादन शुल्क और आयात कर के मद करीब 6 करोड़ की आमदनी होती है। अस्तु, इस विषय पर मुझे आगे चलकर बोलने का मौका मिलेगा। पर इस आमदनी में से आसाम को कुछ भी नहीं मिलता है। अवश्य ही हम यह महसूस करते हैं कि इसमें से कुछ हिस्सा हमें भी पाने का हक है। कम से कम इस आय का कुछ प्रतिशत—और हमारा दावा तो यह है कि 50 प्रतिशत अंश—आसाम को अवश्य मिलना चाहिये। आसाम में लोगों का इस समय यही ख्याल है और एक अरसा से, जब से पेट्रोल वहां निकलने लगा तभी से लोगों का यही ख्याल है। अब देश स्वतन्त्र हो गया है और अपनी हुकूमत स्थापित हो गई है। हम यह अनुभव करते हैं कि अपने केन्द्रीय शासन के विचारों के विरुद्ध लड़ना सर्वथा बेकार है क्योंकि उसे सभी प्रान्तों के प्रति सहानुभूति है और पिछड़े हुये सीमावर्ती प्रान्त आसाम के लिए तो उसे खास तौर पर सहानुभूति है। हम यह उम्मीद करते हैं कि कुछ न कुछ नया प्रबन्ध जरूर किया जायेगा और राज्यों को सहायता जरूर दी जायेगी ताकि वह अपना शासन प्रबन्ध ठीक तरह से चला सके।

इस प्रश्न को लेकर हम क्यों इतना बेचैन हैं इसका कारण यह है। जैसा कि आसाम के माननीय मुख्य मंत्री ने बताया है, हमारे प्रान्त की शासन की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब है। हमारी आमदनी साढ़े तीन करोड़ की है। केन्द्रीय सरकार से आय कर के मद में हमें एक करोड़ बीस लाख रुपये सालाना और मिल जाते हैं। पटसन-शुल्क की आय से करीब 40 लाख और हमें केन्द्रीय सरकार देती है और करीब 30 लाख सहायता के रूप में मिल जाते हैं। इन सबके बावजूद भी हमें कमी पड़ती है और करीब एक करोड़ की कमी पड़ती है। और फिर जो संस्थायें हमने अभी-अभी स्थापित की हैं उनके संधारण में प्रान्तीय सरकार का खर्च बढ़ जायेगा और इससे उसके बजट में और भी कमी आ जायेगी। हमने हिसाब लगाकर देखा है कि कभी ढाई करोड़ की रहेगी और हो सकता है यह राशि तीन करोड़ तक भी पहुंच जाये। यह है स्थिति हमारे आसाम प्रान्त की जो सीमावर्ती प्रान्त है और जो अच्छी तरह समुन्नत नहीं हो पाया है जैसा कि हमारे मुख्य मंत्री महोदय ने बताया है, हमें चार करोड़ की तत्काल आवश्यकता है ताकि बजट को बराबर कर सकें और उन संस्थाओं को चला सकें जिनको हमने

अभी-अभी संस्थापित किया है। हम आशा करते हैं कि वित्त आयोग शीघ्र ही संगठित कर दिया जायेगा और राष्ट्रपति, कम से कम चार करोड़ की तत्कालिक सहायता प्रदान करेंगे। अगर चार करोड़ हमें मिलते है तो हमें उतनी रकम मिल जाती है जितने कि हम मांग करते हैं यानी उत्पादन एवं आयात शुल्क की आय का 50 प्रतिशत अंश हमें मिल जाता है। इसलिये हमारा यह विश्वास है कि शीघ्र ही वित्त-आयोग का गठित किया जाना परमावश्यक है और यह आयोग, हमें विश्वास है कि आसाम, उड़ीसा तथा अन्य उन प्रान्तों को जिनके बजट में कमी है, अवश्य सहायता देगा।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं श्रीमान्, और वह है अनुच्छेद 253 के खण्ड (1) के बारे में। मेरा खुद अपना हमेशा यही ख्याल रहा है कि पूर्ववर्ती शासन के विरुद्ध जो हमने संग्राम चलाया था उसे नमक आन्दोलन से बड़ा ही बल मिला था और जनता को तत्कालीन शासन का प्रबल विरोधी बनाने में इस आन्दोलन में बड़ी सहायता पहुंचाई थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसी कारण से नमक कर उठाया गया है और यही कारण है कि नमक कर के खिलाफ भारतीय जनता की इतनी प्रबल भावना है। पर इस खण्ड को संविधान में रखकर आगामी पीढ़ियों का हाथ क्यों बांध दिया जाये, यह मेरी समझ में नहीं आता है। यहां 'Duties' शब्द के होने से इसमें आयात कर भी शामिल रहेगा। संसद अगर चाहे कि नमक पर कर न लगाया जाये तो वह खुद ऐसा कानून बना सकती है। पर यदि हम संविधान में इस खण्ड को स्थान दे देते हैं तो फिर हमेशा के लिये यह प्रावधान रह जायेगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि इस सम्बन्ध में संसद की विधि निर्माण की शक्ति बनी रहने दीजिये और उसका हाथ न बांधिये। राजस्थान जैसे प्रदेश को, जैसा कि माननीय मित्र श्री राज बहादुर ने यहां जिक्र किया है, संसद् आसानी से, इस उद्योग को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए मदद दे सकती है और वहां के निवासियों को प्रोत्साहन दे सकती है। मैं चाहता हूं कि संसद् ऐसी कोई कार्रवाई जरूर करें ताकि यह उद्योग वहां पुनः प्रतिष्ठित हो सके। इसलिये मैं यह समझता हूं कि संविधान में इस खण्ड को रखना बुद्धिमता की बात न होगी। महात्मा गांधी के प्रति हम लोगों को महती श्रद्धा, महान आदर है और सम्भवतः यही कारण है जो इस खण्ड के लिए लोगों में इतनी भावना है। पर अब स्थिति बदल गई है, विदेशी शासक यहां से चले गये हैं और शासन की बागडोर हमने सम्भाल ली है। अब हममें यह भावना होनी चाहिये कि गरीबों को मदद दें, यथाशक्ति धन संग्रह करें ताकि उससे गरीब जनता का जीवन स्तर ऊंचा कर सकें। हमें सरकार के हाथों को, संसद् के हाथों को बांध न देना चाहिये कि जरूरत होने पर भी वह नमक पर कर न लगा सकें। मुझे विश्वास है कि संसद् के सदस्य, इसका समुचित निर्णय कर लेंगे कि परिस्थिति के अनुसार कर लगाया जाये या न लगाया जाये। इसलिये श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि अनुच्छेद 253 के खण्ड (1) को बिलकुल हटा ही देना चाहिये।

अन्त में सभा से मैं यह भी अनुरोध करूंगा कि वह कमी वाले राज्यों की स्थिति का ख्याल करे और यथा सम्भव उनको साहाय्य दे और सरकार के हाथों को भी मजबूत बनाने में मदद दे ताकि वह आसाम, उड़ीसा जैसे राज्यों को, जिनको कि बजट में कमी है, मदद दे सके। इन शब्दों के साथ अब मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

*__सरदार हुकम सिंह__ (पूर्वी पंजाब : सिख): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र त्यागी द्वारा उपस्थित किये संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। यह संशोधन रखने के लिये मैं उनको बधाई देता हूं क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं कि उनके जैसे प्रबल कांग्रेस भक्त महात्मा गांधी के अनुयायी को परिस्थिति के सम्बन्ध में, व्यावहारिक एवं यथार्थ दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिये। माननीय मित्र श्री राज बहादुर की वक्तृता सुन लेने के बाद भी, इस खण्ड की उपयोगिता मेरी समझ में नहीं आई ओर सिवाय भावुकता के, मुझे इस खण्ड को रखने का और कोई कारण नहीं दिखाई देता है। मैंने खुद इस संशोधन की सूचना भेज रखी थी और आपकी अनुमति हो तो मैं कहूंगा कि प्रस्तुत संशोधन उसकी पुनरावृत्ति मात्र है। अब चूंकि यह पेश हो चुका है मैं इसका हार्दिक समर्थन करता हूं।

जैसाकि मैं कह रहा था, सिवाय इसके कि भावुकता के आधार पर इसका समर्थन किया जाये, मैं और कोई वास्तविक कारण नहीं देखता जिसके आधार पर इसका कोई भी समर्थन कर सकता हो। यहां यह कहा गया है कि अगर इस खण्ड को हम संविधान में रखते हैं तो पूज्य महात्मा गांधी के लिये यह एक समुचित स्मारक का काम देगा। इस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि संविधान में अन्य कई स्थलों पर और अन्य कई बातों के सम्बन्ध में अपने दिवंगत महान नेता की कई इच्छाओं की आपने सर्वथा अवहेलना की है। अगर वस्तुत: हमारी अच्छा यही है कि महात्मा जी के स्मारक स्वरूप संविधान में कुछ अवश्य रखा जाये तो मैं कहूंगा कि इसके लिए हमें पर्याप्त अन्य कई मौके हैं। माननीय मित्रों को मैं यह याद दिला दूं कि अनुच्छेद 1 पर कई संशोधनों की सूचनायें दी गई हैं और कई मित्र यह प्रस्ताव करना चाहते हैं कि खुद संविधान में अपने इस महान नेता का नाम रखा जाये। इस बात से मैं सहमत हूं कि उस अनुच्छेद में उनके महान नाम का उल्लेख आना ही वस्तुत: हमारे लिये एक समुचित स्मारक होगा।

जहां तक मैं समझ पाता हूं, संविधान में ऐसा कोई प्रावधान रखना जिससे भावी संसदों पर यह प्रतिबन्ध लग जाता हो कि वह किसी वस्तु विशेष पर कर लगा ही नहीं सकती हैं, बड़ा अशोभनीय सा प्रतीत होता है। भावी संसदों पर संविधान द्वारा इस तरह का प्रतिबन्ध लगाना किसी तरह भी औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता है। एक मित्र ने यह कहा है कि इस खण्ड के न रखने से जनता पर एक बड़ा अवांछनीय मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा। मैं नहीं समझ सकता कि क्या अवांछनीय प्रभाव पड़ेगा। इस समय नमक पर कोई कर नहीं लगाया जाता है, पर इसका जनता पर क्या मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा है। बल्कि इससे यही हुआ है कि हमारे राजस्व में बहुत बड़ी कमी आ गई है। वर्तमान परिस्थिति में जब राज्य की आय इतनी कम हो गई है और हम एक जटिल स्थिति में पड़ गये हैं, राजस्व में इस तरह जबरदस्त कमी आने देना किसी तरह भी उचित नहीं है। घाटे के प्रश्न को जाने दीजिये। इस कर को हमने उठाया था गरीबों को साहाय्य पहुंचाने के अभिप्राय से पर इससे गरीबों को ही क्या साहाय्य मिल पाता है? माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने प्रश्न के इस पहलू पर विचार किया है और बताया है कि नमक कर के मद में 9 करोड़ की आय होती थी और इस 9 करोड़ को अगर अपनी विभाजन पूर्व आबादी पर बांटते हैं तो—यद्यपि मैं यह नहीं समझता हूं कि उन्होंने ठीक-ठीक हिसाब लगाया है—फी आदमी चार आना प्रति माह यह कर बैठता है जिसका अर्थ उनके हिसाब से यह हुआ कि फी आदमी को लगभग

दो पाई प्रतिदिन देना पड़ता है। नमक कर के उठ जाने से जनता को जो दो पाई प्रतिदिन की बचत हुई है इसका कोई मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस पर पड़ा हो ऐसा नहीं दिखाई देता है। हां इसका यह असर जरूर हुआ है देश के राजस्व में एक जबरदस्त कमी आ गई है। और फिर नमक की कीमत भी बहुत ऊंची चढ़ गई है इस तरह कुल मिलाकर इसका उससे सर्वथा विपरीत ही प्रभाव पड़ा है जो कि हम चाहते थे। फिर एक तीसरी बात भी है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं। आज शरणार्थियों की समस्या अपनी सरकार के लिए जबरदस्त चिन्ता का, सर दर्द का कारण बन गई है और अब तक इसका कोई हल नहीं निकल पाया है। इससे पहिले जो बैठक बुलाई गई थी जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी सभी प्रतिनिधि समवेत हुए थे, उसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि शरणार्थियों को फिलहाल बान्ड या ऋणपत्र दे दिये जायें और किश्तों में उनको उसकी रकम धीरे-धीरें दे दी जाये या इतना ही किया जाये कि उस पर उनको सूद दे दिया जाया करे जिससे शायद उनका काम चल जाये। इस समस्या का समाधान अब इस नमक कर में मिल जाता है। अगर हम नमक कर लगा देते हैं और इसकी आय शरणार्थियों के पुनर्निवास के प्रयोजन के लिए जमा कर देते हैं तो शरणार्थी भाइयों को ऋणपत्र देने की जरूरत न रह जायेगी और राज्य पर भी कोई अतिरिक्त भार न पड़ेगा। इसलिये मेरी राय में तो इस खण्ड को रखने में कोई भी औचित्य नहीं है। माननीय मित्र त्यागी ने जो संशोधन रखा उसका मैं हार्दिक समर्थन करता हूं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ अध्यक्ष महोदय, संविधान के मसौदे में यह भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण खण्ड है जिस पर हम अभी विचार कर रहे हैं। इसका पहला अंश नमक कर के सम्बन्ध में है। माननीय मित्र श्री त्यागी ने इस खण्ड को हटाने का एक संशोधन रखा है। मैं सविनय उनके संशोधन का विरोध करता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस खण्ड को मसौदे में पहले रखा क्यों गया और अब इसे हटाया क्यों जा रहा है? क्या यह बात है कि महात्मा जी जब मौजूद थे तो हमने उनके लिये यह खण्ड रख दिया था पर अब हमारे बीच नहीं रह गये हैं इसलिये इसे हटा देते हैं? वस्तुतः में यह देख रहा हूं कि मसौदा-समिति ने इस संशोधन को खुद अपने आप न पेश करके श्री त्यागी के द्वारा इसे उपस्थित कराया है। त्यागी जी ने तथा अन्य मित्रों ने यहां यह कहा है कि इस खण्ड को हटाने का मतलब यह नहीं है कि हम नमक पर कर लगाना चाहते हैं। इनका कहना यह है कि इस खण्ड को वह केवल इसलिये हटाना चाहते है कि भावी संसदों का हाथ न बंधा रहे। इनका कहना है कि इस संशोधन का विरोध केवल भावुकता के आधार पर किया जा रहा है। मेरी अपनी अनुभूति यह है कि राष्ट्र के जीवन में भावुकता का भी बड़ा महत्व है। हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में नमक को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अपने स्वातन्त्र्य संग्राम में नमक आन्दोलन का जो महत्वपूर्ण कृतित्व है उसके स्मारक के रूप में यदि हम इस खण्ड को संविधान में स्थान देते हैं तो मेरे ख्याल से ऐसा करने से कोई क्षति नहीं है। इसलिये इस खण्ड को हटाने के मैं जबरदस्त खिलाफ हूं। यह कहना कि अगर यह खण्ड संविधान में रहता है तो इससे भावी संसदों का हाथ बंध जायेगा, सर्वथा निरर्थक है। अगर आगे चलकर ऐसा ही मौका आता है जबकि नमक पर कर लगाना जरूरी हो जाये तो संसद् संविधान में भी परिवर्तन कर सकती है। पर आप यह चाहते हैं कि पहले तो इस खण्ड को हटा दिया जाये और फिर संसद में यह कहा जाये, 'हमें आय की आवश्यकता

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है इसलिये नमक पर कर लगना ही चाहिये'। आखिर यह द्रविड़ प्राणायाम क्यों? केवल भावुकता सम्बन्धी कारणों से ही मैं इस खण्ड को हटाने पर आपत्ति नहीं कर रहा हूं। बल्कि प्रधानतः आर्थिक कारणों से इसे हटाने का विरोध कर रहा हूं। गरीब से गरीब आदमी को भी नमक कर देना पड़ता है और यही कारण था जो महात्मा जी यह चाहते थे कि गरीब व्यक्ति के नमक पर कर न लगना चाहिये। इसी सिद्धान्त पर नमक सत्याग्रह का महान् आन्दोलन चलाया गया था। मेरा ख्याल है कि इस खण्ड को हटाने का मतलब यह होता है कि हम उन सभी तर्कों को जिनको कि नमक सत्याग्रह के दिनों में पेश किया करते थे, और जिनके लिए हमने इतनी कुर्बानियां की, अब हम नहीं मानते हैं। इसलिये मैं इस अनुच्छेद से इस खण्ड को हटाने के जबरदस्त खिलाफ हूं। इस खण्ड को हटाना, राष्ट्रीय भावनाओं पर अत्याचार करना होगा, अपने स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास के साथ अन्याय करना होगा।

जहां तक कि अनुच्छेद के दूसरे भाग का सम्बन्ध है जो उत्पादन शुल्क के बारे में है, मेरा ख्याल है कि माननीय मित्र श्री बारदोलोई तथा रेवरेण्ड निकल्स राय ने अपने पक्ष के प्रतिपादन में प्रबल तर्क उपस्थित किये हैं। आप लोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अर्थ वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है वह सर्वथा एक असन्तुलित व्यवस्था है। वस्तुतः यहां यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है कि आसाम प्रान्त से चाय पर उत्पादन शुल्क के रूप में 6 करोड़ और आयात कर के रूप में चार करोड़ की आमदनी केन्द्र को होती है। इसी तरह आसाम से 2 करोड़ की आय उसे पेट्रोल पर उत्पादन शुल्क के जरिये होती है। इस तरह केवल इन दो वस्तुओं से केन्द्र को आसाम प्रान्त से 12 करोड़ की आमदनी हो जाती है और सहायता के रूप में प्रान्त को वह देता है सिर्फ तीस लाख रुपये। मेरा ख्याल है कि एक सीमावर्ती प्रान्त के साथ, जिसकी आवश्यकताओं पर हमें सर्वोपरि ध्यान देना चाहिये। ऐसा व्यवहार न होना चाहिये। अर्थ वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है उसमें जरूर संशोधन होना चाहिये और आसाम को, उस बृहत राजस्व से जो कि हम आसाम जनित वस्तुओं के द्वारा प्राप्त करते हैं, कुछ न कुछ अंश हमें जरूर उस प्रान्त को देना चाहिये। श्री बारदोलोई ने डेढ़ करोड़ की मांग बजट की कमी को पूरा करने के लिए की है और ढाई करोड़ मांगा है विकास विषयक योजनाओं के लिए। उनकी मांग का मैं समर्थन करता हूं और मेरा यह ख्याल है। आसाम को आर्थिक मदद हमें अवश्य देनी चाहिये ताकि वह हमारा सीमाप्रान्त बनने के लिए सर्वथा सक्षम रहे।

इस सम्बन्ध में अब मैं एक दूसरा सैद्धांतिक प्रश्न यहां उठाना चाहता हूं। वह प्रश्न यह है कि उत्पादन शुल्क के वितरण का जो सवाल है वह केवल आसाम से ही सम्बन्ध नहीं रखता है। चीनी पर उत्पादन शुल्क के रूप में संयुक्त प्रान्त 6 करोड़ देता है। इस सम्बन्ध में एक ऐसी प्रणाली बरती जानी चाहिये जिसके अनुसार सभी प्रान्तों को अपने-अपने अंशदान से कुछ न कुछ हिस्सा जरूर मिल सके। मैं यह महसूस करता हूं। कि इन करों के द्वारा प्राप्त आय के वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है वह उचित नहीं है।

आगे का खण्ड पटसन के निर्यात शुल्क के बारे में है पटसन पर निर्यात शुल्क के जरिये जो आय केन्द्र को होती है उसमें से कई करोड़ की रकम हमें

कुछ प्रान्तों को हिस्से के रूप में दे देनी पड़ती है। इसलिए मैं समझता हूं कि हमें इन सभी खंडों पर पुनर्विचार करना चाहिये। अर्थ वितरण के लिए हमें कोई न कोई एक तर्क संगत प्रणाली अपनानी चाहिये। मेरा यह सुझाव है कि आय कर, उत्पादन शुल्क वगैरह से जो आमदनी हो उसकी एक राशि बना लेनी चाहिये और उसमें से केन्द्र की आवश्यकता के अनुसार रकम निकालने पर जो शेष बचे वह सभी प्रान्तों को, प्रथमत: तो उनकी आवश्यकता फिर उनकी पिछड़ी हुई अवस्था, आबादी आय संग्रह आदि बातों का ख्याल रखते हुये समान अनुपात से वितरित कर देना चाहिये। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये वह रकम प्रान्तों में बंटनी चाहिये ताकि अनुपातत: सबको समान अंश मिल सके।

ऐसा होने पर ही प्रान्तों की शासन व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकती है। सर ओटो नेमर के निर्णय की हर व्यक्ति ने निन्दा की है फिर भी इसी निर्णय के अनुसार आज अर्थ का वितरण हो रहा है और आगे भी होता रहेगा। हां आगे चलकर प्रस्तावित वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर वर्तमान व्यवस्था में संशोधन जरूर किया जायेगा पर अभी दो तीन साल तक—और ये दो तीन साल राष्ट्र के लिये बड़े ही संकट के होंगे—हमें वर्तमान व्यवस्था के अधीन ही चलना होगा। मैं महसूस करता हूं कि यह प्रश्न बड़ा ही महत्व का है, और इसमें विलम्ब न होना चाहिये। केन्द्र भी आर्थिक दृष्टि से खूब सुदृढ़ होना चाहिये केन्द्र के भार के सम्बन्ध में पण्डित कुंजरू ने जो बातें कही हैं उन्हें भी हमने ध्यान से सुना है। इन सभी बातों का हमें ख्याल करना होगा और संविधान के लागू होते ही हमें अर्थ-वितरण की एक समुचित व्यवस्था चालू कर देनी चाहिये। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि वित्त-आयोग की रिपोर्ट आने पर, तदनुसार इस सम्बन्ध में हम परिवर्तन कर देंगे। संविधान के इस भाग पर हमें विचार करना ही होगा और प्रान्त तथा केन्द्र के बीच अर्थ वितरण के लिये एक समुचित प्रणाली हमें अपनानी ही होगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अब इस मसले पर राय ले ली जानी चाहिये।

***श्री आर.के सिधवा:** पर श्री त्यागी ने जो संशोधन पेश किया है उस पर तो अभी विचार ही नहीं हो पाया है।

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर यहां विचार किया गया है। करीब चार या पांच सदस्य इस खण्ड पर बोल चुके हैं

प्रस्ताव यह है:–

"कि इस मसले पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री त्यागी के संशोधन को स्वीकार करने पर मैं राजी हूं। मेरा ख्याल है कि मेरे लिए यह आवश्यक है कि मसौदा-समिति की ओर से मैं यह बता दूं क्यों इस संशोधन को वह स्वीकार करना चाहती है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बजाय इसके कि आरम्भ में ही मैं उन प्रमुख बातों का यहां उल्लेख करूं जिनके आधार पर इसके संशोधन को मंजूर करना सर्वथा समुचित है, माननीय मित्र प्रो. सक्सेना ने मसौदा-समिति के विरुद्ध जो बातें कही हैं पहले मैं उनका ही जवाब दे देना चाहता हूं।

प्रो. सक्सेना का कहना है कि मसौदा-समिति ने पहले तो इस खण्ड (1) को संविधान में स्थान दे दिया और अब वह श्री त्यागी के संशोधन को मानने पर तैयार हो गई है। उसके लिये, ऐसा करना उचित नहीं है। मैं यह बताना चाहता हूं कि जिस खण्ड (1) को मसौदा-समिति ने रखा है उसकी उत्पत्ति मसौदा-समिति की बैठकों में नहीं हुई है। अगर मेरी याद ठीक है तो इस खण्ड का सुझाव संघ-शक्ति समिति (Union Powers Committee) ने अपनी रिपोर्ट में दिया था; इस कमेटी में यह तय हुआ था कि नमक पर कोई कर न लगना चाहिये। चूंकि मसौदा-समिति यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट में दिये हुये आदेशों और सिद्धान्तों के अनुसार चलने के लिए बाध्य थी, उसके पास सिवाय इसके और कोई रास्ता नहीं था कि वह इस कमेटी के नमक कर सम्बन्धी सुझाव को इस अनुच्छेद में स्थान देती। इसलिये वस्तुत: बात यह नहीं है कि मसौदा-समिति अपने विचारों में अव्यवस्थित रही है।

अब मैं उन व्यावहारिक कठिनाइयों को लेता हूं जो इस खण्ड के रहने से उत्पन्न हो सकती है। सभा को याद होगा कि सूची 1 में दो प्रविष्टियां हैं, एक तो प्रविष्टि नं. 86 जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार उत्पादन शुल्क का आरोपण कर सकती है, दूसरी प्रविष्ट है नं. 85 की जिसके अनुसार केन्द्रीय शासन बहिशुल्क का आरोपण कर सकता है। अब अगर यह खण्ड (1) संविधान में रहता है तो यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय शासन को यह अधिकार न रहेगा कि नमक पर उत्पादन शुल्क और बहिशुल्क आरोपित करने के लिए वह इन प्रविष्टियों का प्रयोग कर सके। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि इस खण्ड से नमक पर शुल्क आरोपित करने के लिए विधि निर्माण की शक्ति छिन जाती है और इस खण्ड के न रहने पर नमक पर शुल्क इन प्रविष्टियों के अधीन लगाया जा सकता है। सोचा यह गया कि प्रविष्टि 86 के द्वारा नमक पर उत्पादन शुल्क की जो शक्ति प्राप्त है उसका अगर प्रयोग न भी किया जा सका तो देश को इससे कुछ अधिक कठिनाई न होगी। पर प्रविष्टि 85 के अधीन बहिशुल्क लगाने का जो अधिकार प्राप्त है उस पर अगर कोई प्रतिबन्ध लगता है तो देश को बड़ी कठिनाई होगी क्योंकि इससे यह होगा विदेश से नमक मंगाने की स्वतन्त्रता हो जायेगी और सरकार नमक की जबरदस्त आमद को रोकने के लिये कोई कानून न बना सकेगी। इसका परिणाम यह हो सकता है कि देश का नमक उद्योग बिल्कुल मर जाये। इसलिये महसूस यह किया गया कि अच्छा होगा कि इस प्रतिबन्ध को हटा दिया जाये और इस प्रश्न को भावी संसदों पर छोड़ दिया जाये ताकि वह तत्कालीन स्थिति के अनुसार जैसा ठीक समझा करें। यही कारण है जो मसौदा-समिति श्री त्यागी के संशोधन को स्वीकार करने पर राजी है।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं जान सकता हूं कि निदेशक सिद्धान्तों में फिर मद्य निषेध की बात क्यों रखी गई? अगर इस खण्ड (1) को हटाना है तो मैं

पूछता हूं कि शासन के निदेशक सिद्धान्तों में मद्य निषेध को क्यों रखा गया और मूल-अधिकारों में कृपया धारण करने का अधिकार क्यों समाविष्ट किया गया है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ कृपाण धारण के अधिकार की बात इससे बिल्कुल भिन्न है।

*__अध्यक्ष:__ संशोधनों पर मत लेने से पूर्व चन्द शब्द मैं श्री त्यागी के संशोधन के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। इस संशोधन के सम्बन्ध में मसौदा-समिति का जो रुख है उससे मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ है। देश की गरीब जनता को तो कितने कर देने पड़ते थे पर जब महात्मा जी ने सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया तो उन्होंने आन्दोलन के लिए नमक कर सम्बन्धी प्रश्न को ही लिया और उनका ऐसा करना अकारण नहीं था। उन्होंने नमक कर को इसलिये लिया था कि वह यह महसूस करते थे कि गरीब से गरीब भिखारी को भी, जिसे कि एक ही शाम खाने को मिल पाता है, नमक कर का अपना अंश चुकाना पड़ता है और यही कारण था कि जब उन्होंने नमक कर के विरुद्ध सत्याग्रह की अपील की तो प्राय: सारे देश को उनकी अपील जच गई। उस समय कुछ ऐसे भी लोग थे जो यह महसूस करते थे कि उनका सत्याग्रह सफल न होगा क्योंकि आन्दोलन के लिये उन्होंने ऐसे कर को चुना है जिसमें नाम मात्र भी रकम लोगों को देनी पड़ती है। पर उनके आन्दोलन का नतीजा क्या हुआ इसे हम सभी जानते हैं। तीन सप्ताह के अन्दर ही देश इस छोर से उस छोर तक सर्वत्र वह आन्दोलन चल पड़ा और कोई ही ऐसा ग्राम या स्थान रहा हो जहां नमक कानून की अवज्ञा न की गई हो।

मैं कहता हूं कि आज भी अगर आप नमक पर कर लगाते हैं तो उसी तरह के आन्दोलन का आपको सामना करना पड़ जायेगा जिसने कि सारे देश को हिला दिया था। इसलिये मैं सभा को यह सुझाव दूंगा कि वह इस बात पर विचार करे कि अपने स्वातन्त्र्य संग्राम के स्मारक के रूप में इस खण्ड को हमें संविधान में स्थान देना चाहिये या नहीं। मैं सभा को यह राय दूंगा– और खूब सोच विचार कर यह राय दे रहा हूं—कि उसे श्री त्यागी के संशोधन को अस्वीकार करना चाहिये। पर सदस्यों को हक है जैसा चाहें इसका फैसला करें।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार : जनरल): रस्मी तौर पर मैं यह संशोधन रखता हूं कि इस संशोधन पर विचार स्थगित रखा जाये।

*__अध्यक्ष:__ मेरा ख्याल है कि अच्छा यह होगा कि मैं इस संशोधन पर राय ले लूं।

*__श्री महावीर त्यागी:__ आपकी अनुमति हो श्रीमान्, तो मैं सवाल करूं। *(माननीय सदस्य बीच में बोल उठे कि कोई सवाल नहीं किया जा सकता है)* क्या आपका यह ख्याल है कि इस खण्ड (1) के हटने से नमक पर पुन: कर लगा दिया जायेगा?

*__अध्यक्ष:__ इस खण्ड के हट जाने पर नमक कर के लिए दरवाजा खुल जाता है। और हमारी जो वर्तमान आर्थिक कठिनाइयां हैं उनमें, मुझे इसका यकीन नहीं है कि इसका लाभ उठाकर नमक पर कर लगाया ही न जायेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): इस खण्ड में न केवल उत्पादन शुल्क के आरोपण का निषेध है बल्कि इसके अनुसार बाहर से आये नमक पर आयात शुल्क भी नहीं लगाया जा सकता है। यही कारण है जो हम लोग इसे हटाना चाहते हैं। अगर यह खण्ड रहता है तो भारत सरकार नमक पर किसी तरह का कोई कर लगा ही नहीं सकती है।

***कई सदस्य:** अब कोई भाषण न होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब कोई सदस्य वक्तृता न दें। अगर सदस्यों की इच्छा हो तो मैं इस अनुच्छेद पर राय न लूं ताकि इस पर और विचार किया जा सके।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इस अनुच्छेद को अभी स्थगित रखा जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस अनुच्छेद को अभी स्थगित रखा जा सकता है।

***श्री महावीर त्यागी:** हां, इस अनुच्छेद को अभी हम स्थगित रख सकते हैं।

***अध्यक्ष:** तो यह अनुच्छेद अभी स्थगित रखा जाता है। अब सभा सोमवार के मध्याह्न 3 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा सोमवार 8 अगस्त सन् 1949 ई.
के मध्याह्न 3 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.7-49
320

अंक 9
संख्या 7

सोमवार
8 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—(जारी)

[अनुच्छेद 253, 254, 254-क और 255 पर विचार] 367–412

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 8 अगस्त सन् 1949

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में मध्याह्नतर के तीन बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 253—*(जारी)*

*__अध्यक्ष__: पहले हम अनुच्छेद 254 पर विचार आरम्भ करेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 254 पर वाद-विवाद आरम्भ करने से पहले, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि अनुच्छेद 253 पर श्री त्यागी के संशोधन पर विचार करने की अनुमति दी जाये, क्योंकि इस पर प्रधान मंत्री बोलना चाहते हैं। यद्यपि वाद-विवाद समाप्त हो गया है, पर मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप संशोधन पर मत लेने से पूर्व प्रधान मंत्री को वक्तृता देने की अनुमति दे दें।

*__अध्यक्ष__: हां, माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू।

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू__ (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं आपकी कृपा के लिये कृतार्थ हूं कि आपने मुझे इस विषय में कुछ शब्द कहने की अनुमति दी है। इस सदन में मुश्किल से ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इस नमक के प्रश्न पर कुछ उत्तेजना अनुभव न करता हो। इस मामले में जो आर्थिक मामले अंतर्ग्रस्त हैं, उनके अतिरिक्त एक बार हमारे राष्ट्रीय इतिहास में, हमारे स्वतंत्रता के संघर्ष में, नमक एक शक्ति का शब्द बन गया था और उससे बहुत से मानव समूह में हलचल मच गई थी और जिससे कुछ ही मासों के अन्दर देश में विचित्र क्रांति हो गई थी। अत: जब भी यह प्रश्न उठता है, तब स्वभावत: हम केवल परिस्थितियों की आवश्यकता पर ही विचार नहीं करते, वरन् हम पर उसके विगत इतिहास का भी प्रभाव पड़ता है। अत: मेरे विचार में इसी कारण किसी समय मसौदा समिति अथवा किसी समिति ने यह अनुच्छेद हमारे संविधान में रखा था। जैसा कि मैंने कहा है, हमें सबको अवश्यमेव उनके इस दृष्टिकोण से सहानुभूति होनी चाहिये। फिर भी, जब हमने इस मामले पर विचार किया, ध्यान से विचार किया—क्योंकि हम भविष्य के लिये किसी चीज का निर्माण कर रहे हैं और कोई ऐसी बात करना गलत होगा, जो भविष्य में राष्ट्रीय हित के मार्ग में आये–तब हमने अनुभव किया कि यदि हम इस खंड को इस रूप में रखेंगे, तो वह अवश्य हमारे मार्ग में रोड़ा बन जायेगा उदाहरण के लिये यह स्पष्ट है

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

कि वर्तमान रूप में यह खंड हमें विदेशी नमक पर शुल्क आरोपित करने से रोक देगा, जो कि भारत में सस्ते भाव पर भेजा जा सकता है।

अब यह सुझाव भी दिया जा सकता है कि हम विदेशी नमक को छोड़ सकते हैं और देशी नमक के विषय में उपबन्ध बना सकते हैं। तब भी, जब तक आप इस मामले पर ध्यान से विचार न करें और सब प्रकार की संभावित असंगतियों के लिए उपबन्ध न रखें, तब तक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी बातें विधान द्वारा निश्चित हो सकती हैं, जिसमें आप विस्तार की बातों पर विचार कर सकते हैं और सब मामलों को स्पष्ट कर सकते हैं। पर उसको संविधान में रखना, तथा असंगत स्थिति को स्पष्ट करना, जिसमें कई संदिग्ध मामले अंतर्ग्रस्त हो सकते हैं, बहुत कठिन है। अत: हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि इस अनुच्छेद को, उसके मौलिक रूप में, संविधान में रखना अभीष्ट नहीं है। अत: मैं श्री त्यागी के संशोधन का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं, जो इस अनुच्छेद को हटाने के विषय में है।

क्या इस संबंध में मैं दो बातें कह सकता हूं? एक बात यह है: इस सदन के किसी सदस्य को और सदन के बाहर जनता के किसी व्यक्ति को यह जरा भी कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यह सरकार और, मेरे ख्याल में कोई अनुवर्ती सरकार, नमक पर करारोपण करने का विचार करेगी। यह बात स्पष्ट है। दूसरी बात यह है, यदि यह सदन ऐसा चाहे, तो हम इस प्रश्न पर पृथक विधि बना सकते हैं, जिस पर संसद् विस्तार से विचार कर सकती है और सब संभावित आकस्मिकताओं का उपबन्ध कर सकती है। इसे संविधान में रखने से हमारे हाथ बंध जायेंगे और भविष्य में कठिनाइयां उत्पन्न होंगी। अत:, मुझे विश्वास है कि सदन श्री त्यागी के संशोधन को स्वीकार कर लेगा।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2886 के निर्देश से अनुच्छेद 253 के खंड (1) को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 253 के खंड (2) में 'Revenues of India' इन शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 253 संविधान का भाग हो।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 253 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 254

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 254 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:–

पटसन या पटसन से बनी वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के स्थान में अनुदान

'254. (1) पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के प्रत्येक वर्ष के शुद्ध आगम के किसी भाग को आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, और बिहार राज्यों को सौंपने के स्थान में उन राज्यों के राजस्व में सहायक अनुदान के रूप में प्रत्येक वर्ष में भारत की संचित निधि पर ऐसी राशियां भारित की जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति द्वारा विहित की जायें।

(2) पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर जब तक भारत सरकार कोई निर्यात शुल्क उद्गृहीत करती रहे अथवा इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति तक, इन दोनों में से जो भी पहले हो उसके होने तक, इस प्रकार विहित राशियां भारत की संचित निधि पर भारित बनी रहेंगी।

(3) इस अनुच्छेद में 'विहित' पद का वही अर्थ है, जो इस संविधान के अनुच्छेद 251 में है।' "

श्रीमान्, पटसन और पटसन की बनी हुई चीजों के निर्यात शुल्क को बांटने के विद्यमान तरीके में इस संशोधन से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। भारत शासन अधिनियम के अंतर्गत यह उपबंधित है कि कुछ प्रांतों को, जिनका इस अनुच्छेद में उल्लेख है पटसन और पटसन के बने हुए सामान के निर्यात शुल्क में से कुछ अंश प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये, क्योंकि इस अनुच्छेद में उल्लिखित प्रांतों की अर्थ-व्यवस्था में पटसन का अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है। संशोधित अनुच्छेद में यह सुझाव है कि कुछ प्रांतों के इस दावे को समाप्त कर दिया जाये कि उन्हें पटसन या पटसन के सामान के निर्यात शुल्क में से अंश प्राप्त करने का अधिकार है। मैं कह सकता हूं कि इसका कारण बहुत सीधा है। साधारणत: सारे निर्यात और आयात शुल्क केन्द्र के लिये होते हैं और किसी प्रांत को किसी वस्तु विशेष पर आरोपित निर्यात-शुल्क में अंश मांगने का अधिकार नहीं है, चाहे वह वस्तु जैसा कि मैंने कहाई, उस प्रांत की अर्थ व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण वस्तु हो। किन्तु यह देखते हुए कि विशेषत: बंगाल की वित्तीय स्थिति निर्यात शुल्क में भाग मिले बिना संतुलित नहीं हो सकती। भारत शासन अधिनियम, 1935 में एक अपवाद रखा गया था, जिससे कि बंगाल सरकार और अन्य सरकारों को मानो निर्यात शुल्क का अंश प्राप्त करने का निहित अधिकार दे दिया गया था, जो कि जैसा मैंने कहा है, इस व्यापक सिद्धान्त के विरुद्ध है कि निर्यात और आयात शुल्क केन्द्रीय सरकार के लिये ही होते हैं। अब यह अनुभव किया जाता है कि भारत शासन अधिनियम 1935 में ये जो अपवाद रखा गया था, उसे आगे जारी नहीं रहने देना चाहिये। इस सिद्धांत को अभी से समाप्त करने का ख्याल इसलिये होता है कि यह कल्पना करना सर्वथा संभव है कि अन्य प्रांत भी कई वस्तुओं के निर्यात शुल्क में भाग मांग सकते हैं, जो कि उनके क्षेत्र में उत्पन्न

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

होती हों और निर्यात होती हों और भारत सरकार उन पर निर्यात-कर वसूल करती हो। यदि ये भावना बढ़ती जायेगी तो भारत सरकार के लिये यह अत्यन्त कठिन बात हो जायेगी। परिणामत: यह विनिश्चय किया गया है कि इस सिद्धांत का अब निश्चय से निराकरण करना चाहिये। पर यह भी इतना ही स्पष्ट है कि यदि निर्यात शुल्क के विभाजन के इस सिद्धांत को अकस्मात वापस ले लिया गया, तो इससे उन कई प्रांतों के आय व्ययक के संतुलन में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है, जो कि अब तक निर्यात कर के अंश पर निर्भर थे। अत: यह उपबन्ध बनाया गया है कि निर्यात कर में स्पष्टत: अंश देने के स्थान पर एक बराबर की राशि या ऐसी राशि, जो राष्ट्रपति निश्चित करे, उन प्रांतों को उस कालावधि के लिये दे दी जाये जब तक कि निर्यात शुल्क आरोपित रहे, अथवा दस वर्ष की समाप्ति तक, जो भी पहले हो। यह इसलिये रखा गया है कि इन प्रांतों को पर्याप्त समय मिल जाये, जिसमें कि वे अपने साधनों का विकास कर सकें, जिससे कि अनुच्छेद में उल्लिखित कालावधि के पश्चात् वे अपने आयव्ययक को संतुलित कर सकें।

मुझे आशा है, श्रीमान्, कि इस संशोधित अनुच्छेद 254 में जो ठीक सिद्धांत निहित है, वह सदन को स्वीकार्य होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:–

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 254 के खंड (1) में 'by the President' इन शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by law' ये शब्द रख दिये जायें।"

मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा बताये गये इस सिद्धांत से सहमत हूं कि निर्यात शुल्क को एक साथ एकत्र करना चाहिये और फिर, यदि आवश्यक हो तो, प्रांतों की आवश्यकताओं के अनुसार बांट देना चाहिये। किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि यह वितरण केवल संसद ही विधि द्वारा करे। में मसौदा-समिति द्वारा स्वीकृत इस सिद्धांत के विरुद्ध हूं कि राष्ट्रपति को निधि के वितरण का अधिकार दिया जाये। यह वितरण आयव्ययक को पेश करते समय वित्त विधेयक में दिखाया जाना चाहिये और संसद् में उस पर समुचित विचार होना चाहिये। यह शक्ति राष्ट्रपति को देना तो मेरे ख्याल में अलोकतंत्रात्मक है और मुझे इसके लिए कोई औचित्य दिखाई नहीं देता; अन्यथा राष्ट्रपति कोई ऐसा काम कर सकता है, जिसे संसद् पसन्द न करे और फिर भी संसद् हस्तक्षेप नहीं कर सकती। यह शक्ति संसद् को देने से हमारा संविधान अधिक लोकतंत्रात्मक बन जायेगा। संसद्, जिस पर समस्त देश के वित्तों का वितरण का भार है, निस्संदेह ऐसा आयोजन करेगी कि विधि का ठीक प्रकार से वितरण हो। अत: मेरे विचार में मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये।

(कोई और संशोधन पेश नहीं हुआ।)

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी—पर मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

संशोधन इस प्रकार है:

"कि भारत सरकार द्वारा पटसन अथवा पटसन के सामान तथा चाय पर आरोपित निर्यात-कर में से न्यूनतम पचास प्रतिशत अथवा कोई उच्चतर प्रतिशत राशि, जो कि निर्धारित किया जाये, प्रति वर्ष भारत की संचित निधि पर भारित होगी; जो कि उन राज्यों को सहायक अनुदानों के रूप में दी जायेगी, जो कि उन वस्तुओं के उत्पादन एकक हैं।"

मैं देखता हूं कि मसौदा-समिति ने अपने मौखिक मस्विदे को बदल दिया है और आज मध्याह्नतर में डॉ. अम्बेडकर ने नया मस्विदा पेश किया है। इस नये संशोधन में पटसन तथा पटसन के सामान पर निर्यात शुल्क का अंश राज्यों को देने के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया है। "ऐसी राशियां जो कि राष्ट्रपति निर्धारित करे" उन राज्यों को दी जायेंगी, जिनका कि संशोधन में उल्लेख है, पर इस नये संशोधन में कोई प्रतिशत भाग का उल्लेख नहीं है। मस्विदा-समिति ने यह भी संकेत किया है कि बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा के राज्यों को, जो कि पटसन और पटसन के सामान के उत्पादक-एकक हैं, दस वर्ष के लिये या तब तक सहायक अनुदान दिये जायेंगे, जब तक की पटसन या पटसन के सामान पर निर्यात-कर जारी रहे, जोकि पहले हो। पर इस बात का कोई निश्चय नहीं है कि प्रत्येक उत्पादक एकक को कितना मिलेगा। मसौदा-समिति द्वारा संशोधित अनुच्छेद में केवल पटसन और पटसन के सामान के निर्यात-शुल्क का ही उल्लेख है। उसमें किसी और निर्यात-शुल्क का उल्लेख नहीं है। हम आसाम वाले अनुभव करते हैं कि इसमें चाय के निर्यात-शुल्क का भी उल्लेख होना चाहिये था। भारत में पैदा होने वाली कम से कम दो-तिहाई चाय आसाम में पैदा होती है। आसाम में लगभग 3,950 लाख पौंड चाय होती है। भारत सरकार ने गत 5 वर्षो में लगभग 19 (उन्नीस) करोड़, 90 लाख रुपये इससे प्राप्त किये हैं। अब 1947-48 से, भारत सरकार प्रतिवर्ष लगभग 6 करोड़ रुपये आसाम की चाय के निर्यात-शुल्क से वसूल कर रही है। हम अनुभव करते हैं कि आसाम को इस निर्यात शुल्क में से अंश मिलना चाहिये और केन्द्रीय सरकार ने हमें इस निर्यात-शुल्क में से कुछ नहीं दिया है। आसाम को केवल तीस लाख रुपये सहायता मिली है। केन्द्र चाय के निर्यात कर से जो कुछ प्राप्त कर रहा है, उसकी तुलना में यह राशि कुछ भी नहीं है।

श्रीमान्, जब हम आसाम में पैदा होने वाले पटसन और चाय का हिसाब लगाते हैं, तो हम देखते हैं कि आसाम के उत्पादनों पर शुल्कों से केन्द्र को प्रतिवर्ष लगभग 8 करोड़ रुपये प्राप्त होते हैं। आखिर हम देखते हैं कि आसाम में पैदा होने वाली चाय और पटसन पर उत्पादन-शुल्क और निर्यात-शुल्क तथा आसाम से वसूल होने वाले आय-कर से केन्द्रीय सरकार की थैली में अगभग 10 करोड़ रुपये आते हैं, वे हमें आय-कर के रूप में 120 लाख और पटसन शुल्क के रूप में 40 लाख तथा 40 लाख सहायता के, कुल मिलाकर 190 लाख देते हैं।

[माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय]

अब निस्संदेह हम अनुभव करते हैं कि अब तक केन्द्र ने आसाम प्रांत के साथ न्याययुक्त व्यवहार नहीं किया है। पर हमें आशा है कि किसी प्रकार विद्यमान सरकार, जो कि हमारी अपनी सरकार है, इन सब बातों पर विचार करेगी और आसाम को कम से कम अच्छी सहायता देगी, चाय-शुल्क में से अंश न सही। क्योंकि केन्द्र आयकर के रूप में तथा निर्यात-शुल्क और उत्पादन-शुल्क के रूप में लगभग 10 करोड़ ले रहा है, अत: हम न्याय के नाते उनसे इसका आधा भाग लेने के हक्कदार हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस सदन का तथा भारत सरकार का यह दृष्टिकोण है कि पटसन-शुल्क के सिवाय किसी निर्यात-शुल्क में से किसी प्रांत को कोई अंश नहीं मिलना चाहिये। मेरी समझ में यह नहीं आता कि यह अपवाद क्यों रखा गया है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि जब यह दिया गया था, तब बंगाल अत्यधिक वित्तीय कठिनाई में था और उस समय सरकार ने प्रांतों को निर्यात-शुल्क या अन्य कोई शुल्क न देने के सिद्धांत में डील कर दी। किन्तु, श्रीमान्, वह सिद्धांत थोड़ा सा और विस्तृत करके आसाम की सहायता की जा सकती है, जो कि वास्तव में दिवालियापन की स्थिति में है। हम पहले ही कह चुके हैं कि आसाम को एक करोड़ रुपया का घाटा रहता है। आसाम और अन्य प्रांतों द्वारा भारत सरकार को जो सरकारी रिपोर्ट आती है, और संघीय संविधान के वित्तीय उपबन्धों पर विशेषज्ञ-समिति को पेश की जाती है, और जो पुस्तक रूप में छप चुकी है, उससे यह पता लगेगा कि जब सारी योजनायें और संस्थायें, जिन पर अब भारत सरकार के युद्धोपरांत अनुदान के अंतर्गत कार्य आरम्भ हुआ है, पूरी हो जायेगी और यदि आसाम अल्कोहल मद्य प्रतिषेध के कार्य को भी हाथ में ले लेगा, जो कि भारत के कांग्रेस दल की नीति है, तो आसाम को भावी वर्षों में लगभग 10 करोड़ का घाटा रहा करेगा।

इसलिये, श्रीमान्, मैं प्रार्थना करना चाहता हूं कि इस मामले पर विचार किया जाये तथा आसाम के प्रांत के लिए कुछ न कुछ किया जाये। यदि चाय के शुल्क द्वारा ऐसा नहीं हो सकता, तो सहायता द्वारा होना चाहिये। किन्तु जब मैं केन्द्र तथा राज्य के मध्य वित्तीय संबंधी विषयक अनुच्छेदों को देखता हूं, तो उसकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। अनुच्छेद 253 को देखिये। इसके कारण भारत सरकार किसी प्रांत को कोई सहायता दे ही नहीं सकती, जब तक कि संसद् ही ऐसा न करे। अनुच्छेद 255 से भी भारत सरकार को कोई शक्ति नहीं मिलती, जब तक कि संसद् ही ऐसा न करे कि वह ऐसे प्रांतों को सहायता दे सके, जो कि घाटे में हों।

प्राय: छोटे प्रांत के लिये यह कठिन होता है कि वह संसद् द्वारा अपनी बात पूरी करवा सके। जिन प्रांतों के संसद् में बहुत से सदस्य होते हैं, वे प्रभाव डालने में समर्थ हो जाते हैं और जो चाहे ले लेते हैं। प्राय: छोटे प्रांतों की कोई चिंता नहीं करता। मुझे आशा है कि इन मामलों में ऐसा नहीं होगा। किंतु यदि सदन इन बातों पर विचार करेगा, मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति निर्देशित उपबन्धों पर पुनर्विचार करेगी और चाय-शुल्क के विषय में आसाम के मामले को विशेष मामला समझेगी, जैसे कि पूर्ववर्ती सरकार ने पटसन-शुल्क के विषय में बंगाल के मामले में किया था।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं अपने संशोधन पर सदन में जोर नहीं दे सकता, जिसके कारण माननीय सदस्यों को पता ही है। किंतु मैं प्रार्थना करता हूं कि इस मामले पर यह सदन ध्यान से विचार करे, जिसके कि सदस्य संसद् के सदस्य भी हैं और विद्यमान भारत-सरकार के सदस्य भी हैं। इन शब्दों के साथ मैं आशा करता हूं कि विद्यमान सरकार आसाम की इन स्थितियों पर विचार करेगी और जब विभिन्न प्रांतों को सहायता के अनुदान देने का प्रश्न उठे, तब आसाम के मामले पर ध्यानपूर्वक विचार किया जायेगा तथा ऐसी सहायता दी जायेगी, जिससे कि वह अपना प्रशासन चला सके और अपने प्रशासन स्तर को भारत केन्द्रिय भागों के स्तर पर ला सके।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं भारत-संघ के एक महत्वपूर्ण पटसन उत्पादक एकक की ओर से सदस्य हूं, अत: मैं इस संबंध में कुछ बातें करना अपना कर्तव्य समझता हूं।

मैं इस बात से सामान्यत: सहमत हूं, जो कि राजनैतिक तथा आर्थिक सिद्धांत के रूप में कही गई है, कि सारे शुल्क, आयात या निर्यात या अन्य राज्य के लिए होते हैं और इसलिये वे भारत सरकार के लिये हैं। सिद्धांत के रूप में यह बिल्कुल ठीक है, किन्तु मुझे भय है कि मस्विदा-समिति अंत में उलटे मार्ग पर चल पड़ी तथा उसने ऐसा प्रस्ताव रखा है, जो देखने में हानिहीन है पर पश्चिमी बंगाल के कहलाने वाले प्रांत की समस्त करारोपण प्रणाली के लिए गंभीर खतरा है। इससे किसी हद तक बिहार, आसाम और उड़ीसा जैसे अन्य पटसन-उत्पादक एककों के वित्तों पर भी प्रभाव पड़ेगा, पर बंगाल के मामले में तो यह एक गंभीर खतरा है। सदन को एकदम बता देना चाहता हूं कि जब मैं इस शुल्क विशेष की बात करता हूं तब मस्विदा-समिति के समक्ष करबद्ध नहीं खड़ा हूं। मेरे पास इससे बहुत सबल कारण हैं। सर्वप्रथम सदन को मैं यह बताना चाहता हूं कि इस पटसन-शुल्क का बहुत लम्बा इतिहास है। यह बात इतनी साधारण नहीं है जितनी कि डॉ. अम्बेडकर ने इसे बनाकर दिखाना चाहा था। पटसन-शुल्क सबसे पहले 1916 में युद्धोपाय के रूप में लगाया गया था, और उस वर्ष से 1936 तक इस शुल्क से प्रति वर्ष चार करोड़ रुपये प्राप्त होते रहे। जब यह कर पहले लगाया गया, तब यह सामान्यत: धारणा थी कि यह प्रथम विश्व युद्ध के प्रभावी संचालन के लिए धन एकत्र करने के लिए लगाया गया था किन्तु युद्धावसान पर यह शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर दिया जायेगा। श्रीमान्, जैसा कि सबको पता है, सरकार एक विशेष प्रकार की संस्था है जो एक बार कर लगाने के पश्चात् उसे आसानी से छोड़नी नहीं। इस पटसन शुल्क पर तीसरे गोलमेज सम्मेलन में विचार हुआ और वहां यह बहुत स्पष्ट हो गया था कि यह साधारण प्रकार की कर नहीं है। करारोपण पड़ताल समिति के अनुसार निर्यात कर तभी लगाया जा सकता है जबकि वह वस्तु, जिस पर कर लगाने का प्रस्ताव हो, पहले तो एकाधिकार की वस्तु हो और दूसरी बात आरोपण थोड़ा सा ही हो। करारोपण पड़ताल समिति ने यही कसौटी रखी थी। अब 1936 तक पटसन बंगाल प्रांत का लगभग एकाधिकार ही था। अत: करारोपण पड़ताल समिति के प्रतिवेदन के अनुसार भारत सरकार के लिए बंगाल में पटसन पर कर लगाने का औचित्य था। किन्तु तीसरी गोलमेज परिषद् में यह कहा गया था, और इस बात पर काफी लम्बी बहस हुई थी कि पटसन पर निर्यात कर उचित है अथवा नहीं। श्रीमान्, मैं अधिक विस्तार की बातों में

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

जाना नहीं चाहता, पर मैं एक-दो प्रश्नों का उल्लेख करना चाहता हूं जो कि गोलमेज सम्मेलन में उठाये गये थे। यह प्रश्न माननीय सर नृपेन्द्र नाथ सरकार ने उठाया था, जो कि भारत-सरकार के भूतपूर्व विधि-मंत्री थे और जिन्होंने कलकत्ता के व्यापार मंडल के सभापति सर एडवर्ड वेन्थल से प्रश्नोत्तर किये थे। सर एडवर्ड वेन्थल 1946 में केन्द्रीय विधान-मंडल में सदन के नेता भी थे। इस प्रश्नोत्तर में यह संदेह से परे सिद्ध हो गया था कि यह एक विभेदात्मक कर है—मैं सदन से कहता हूं कि यह एक विभेदात्मक कर है, जो एक प्रांत विशेष की कृषि के उत्पादन पर लगाया गया था, और जैसा कि आप जानते हैं कृषि प्रांतीय विषय है, और इसलिये पटसन कर एक विभेदात्मक कर है, केवल इसी दृष्टिकोण से नहीं कि इससे एक कृषिजन्य पदार्थ पर कर लगता है, एक प्रांत विशेष के कृषिजन्य पदार्थ पर कर लगता है, वरन् इसलिये भी कि इससे कुछ प्रातों पर कर लगता है, दूसरों पर नहीं। श्रीमान्, मैं एक दो कंडिकाएं पढ़ देता हूं। तीसरे गोलमेज सम्मेलन में स्वर्गीय सर एन.एन. सरकार ने प्रश्न संख्या 6257 पूछा था:–

"इस कर का प्रभाव भूमि के लगान पर तथा रैयत पर क्या पड़ता है?"

सर एडवर्ड वेन्थल ने उत्तर दिया:–

"यह कृषि उत्पादन पर प्रत्यक्ष कर है, अत: इसका वहीं प्रभाव है जो भूमि-लगान का है। निस्संदेह यह उत्पादक पर जाकर पड़ता है।"

"जब यह सर्वप्रथम 1916 में आरोपित हुआ था, तब यह युद्धोपाय के रूप में था और उस उमय ऊंचे मूल्य होने से शायद यह उपभोक्ता पर जाकर पड़ता था, किन्तु आज वह निस्संदेह उत्पादक पर पड़ता है, और मुख्यत: बंगाल की रैय्यत पर पड़ता है, और यह प्रभाव वास्तव में 18 प्रतिशत के लगभग है।"

तत्पश्चात् एक अन्य प्रश्न (संख्या 6259) के उत्तर में जो सर जोसफ नुल ने दिया था, यह मामला और भी स्पष्ट हो गया। सर अब्दुर रहीम द्वारा उठाये गये प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था:–

"यह कृषि-आय पर कर है और यह कुछ ही प्रांतों पर लगाया हुआ विभेदात्मक कर है।"

श्रीमान्, इस पटसन-शुल्क पर बहुत से प्रश्न पूछे गये थे, पर मैं उन सब विस्तार की बातों से सदन को कष्ट देना नहीं चाहता, पर यह बात संदेह से परे सिद्ध हो गई थी कि यह एक विचित्र कर था क्योंकि इससे उन दिनों भी सीमित सुधारों के सांविधानिक उपबन्धों का उल्लंघन होता था। अत: मेरा आपसे निवेदन है कि डॉ. अम्बेडकर के लिये यह अनुभव करना ठीक नहीं है कि केन्द्र संबद्ध प्रांतों को इस कर का अंश दे देता है वह उसकी दानवीरता है। यह तो तीसरे गोलमेज सम्मेलन में इन वाद-विवादों का फल है तथा बंगाल प्रांत की ओर से सर एडवर्ड वेन्थल ने जो अकाट्य प्रमाण दिये थे उनका परिणाम है कि ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 142 में यह उपबन्ध रखा था कि पटसन-शुल्क में से 50 प्रतिशत उस प्रांत को मिलना चाहिये। तत्पश्चात सर ओटो नीमियर ने, जो प्रांतों और केन्द्र के मध्य राजस्व का वितरण करने

के लिए नियुक्त किये गये थे, समस्त प्रश्न पर विचार किया और बंगाल के लिए इस पटसन-शुल्क का अंश बढ़ाकर $62^1/_2$ प्रतिशत कर दिया। यह बात सर ओटो नीमियर के पंचाट के पृष्ठ 10 पर लिखी है:

"अत: मैं सिफारिश करता हूं कि अधिनियम की धारा 140 (2) के अधीन यह प्रतिशत भाग बढ़ाकर $62^1/_2$ प्रतिशत कर देना चाहिये।"

यह पटसन-कर ऐसा है कि ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार ने प्रमुख पटसन उत्पादक प्रांत बंगाल के दावे को 50 प्रतिशत तक अधिनियम में कानूनी रूप से स्वीकार किया है, पर सर ओटो नीमियर तो अपने पंचाट में और भी आगे बढ़ गये और $62^1/_2$ प्रतिशत दे दिया। अब जबकि संविधान-सभा आरम्भ में बैठ रही थी, तब माननीय अध्यक्ष महोदय ने एक समिति नियुक्त की जो 'संघीय संविधान के वित्तीय उपबन्धों की विशेषज्ञ समिति' कहलाती थी। इस विशेषज्ञ समिति ने, जिसका निर्देश कई सदस्यों ने सरकार समिति के नाम से दिया है, इस विषय में कुछ सिफारिशें की थीं। गत दो तीन दिनों में मैंने देखा है कि सदन में विशेषज्ञ समिति के प्रतिवेदन पर भिन्न-भिन्न मत हैं। मैंने देखा है कि कुछ सदस्य इसे वेद-वाक्य मानते हैं और वे सदन से जो बात मनवाना चाहते हैं, उसके लिए वे सचाई से उसकी सिफारिशों का उद्धरण देते हैं। मैंने यह भी देखा है कि ऐसे सदस्यों ने बिल्कुल बुरा बताया है जिनके विवेक का हम आदर करते है। मैं माननीय सदस्यों से यह पूछना चाहता हूं कि वे अपने अभिप्रायों को दिन प्रतिदिन अपने विचारों को क्यों बदलते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान-सभा हेरकलीतस की दार्शनिकता-अनन्त धारा प्रवाह की नीति के चक्कर में फंस गई है; मैं देखता हूं कि मस्विदा-समिति के ही विचारों में नहीं, वरन् इस सदन के सदस्यों की सम्मति में भी लगातार परिवर्तन होता रहता है। इस समिति के प्रतिवेदन की स्याही भी नहीं सूखी है, हम देखते हैं इसे रद्द कर दिया जाता है। पर मैं इस प्रतिवेदन का एक अंश उद्धृत करना चाहता हूं जो इस प्रश्न के विषय में है:

"पर यह आवश्यक है कि सम्बद्ध प्रांतों को उनके राजस्व की हानि के लिए प्रतिकर दिया जाये, और हम सिफारिश करते हैं कि दस वर्ष की कालावधि के लिये या जब तक पटसन या पटसन के सामान पर निर्यात-शुल्क हटा न दिया जाये तब तक के लिए जो भी पहले हो, इन सरकारों को निम्नलिखित नियत राशियां प्रतिवर्ष प्रतिकर के रूप में दे दी जायें:

प्रांत	राशि (रुपये)
पश्चिम बंगाल	100 लाख
आसाम	15 लाख
बिहार	17 लाख
उड़ीसा	3 लाख"

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

मैं यह नहीं समझता कि मस्विदा-समिति को पिछली स्थिति से क्यों हटाना पड़ा और उन्होंने इस विषय पर मूल मस्विदे में ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन क्यों किया। मूल अनुच्छेद 254 इस प्रकार है:

"इस संविधान के अनुच्छेद 253 में किसी बात के होते हुए भी, सन अथवा सन की बनी हुई वस्तुओं के किसी निर्यात-शुल्क के प्रतिवर्ष के शुद्ध उदय का उतना अनुपात, जो संसद विधि द्वारा निश्चित करे, भारत के राजस्व का भाग नहीं बनेगा, किंतु सन के उत्पादन करने वाले राज्यों को विधि द्वारा निर्मित विभाजन-सिद्धांतों के अनुसार नियोजित किया जायेगा।"

अकस्मात आज नये मस्विदे से हम आश्चर्य में पड़ गये हैं। मैं जानना चाहता हूं कि मस्विदा-समिति ने यह मूल परिवर्तन क्यों किया है जिससे कि पुराने प्रस्ताव का बिल्कुल निराकरण हो गया है। यह बहुत गंभीर मामला है। आज पश्चिमी बंगाल के प्रांत को बंगाल के अविभाजित प्रांत का सारा ऋण ढोना पड़ता है। आजकल तो यह नियम सा हो गया है कि बंगाल के प्रांत को 'समस्या प्रांत' कहते हैं। क्या आपने कभी यह सोचने के लिए समय निकाला है कि उस समस्या का कितना अंश आपका बनाया हुआ है? क्या आपने कभी सोचा है कि आप इस समस्या प्रांत की समस्याओं को कैसे हल कर सकते हैं? क्या आपने कभी उस प्रश्न पर अपना दिमाग लगाया है? मैं पूछता हूं कि दस वर्ष के अंत में या यदि सारा पटसन-शुल्क पहले ही हटा दिया जाये तब क्या होगा? बंगाल के विक्तों की क्या स्थिति होगी? आयकर की विभाज्य निधि में से बंगाल को 20 प्रतिशत मिलता था, पर प्राधिकारयुक्त व्यक्तियों ने उसे कम करके 12 प्रतिशत कर दिया है, इस आधार पर कि दो तिहाई बंगाल तो चला गया है। उन्हें असली स्थिति का पता नहीं है। यह ठीक है कि दो तिहाई बंगाल पाकिस्तान में चला गया है, पर कुल आयकर राजस्व का 79/80 भाग पश्चिमी बंगाल से ही प्राप्त होता है। क्या प्राधिकारियों को इसका पता नहीं है? पटसन का उत्पादन करने वाला दो तिहाई प्रदेश पूर्वी पाकिस्तान में चला गया है, पर क्या वे यह नहीं जानते कि रत्ती रत्ती पटसन, जो कि उगाया जाता है, उसकी सफाई, कताई, बुनाई आदि पश्चिमी बंगाल में ही होती है? इस बात को अच्छी तरह नहीं समझा गया है। आपको इस आर्थिक स्थितियों पर यथार्थवाद के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। अध्यक्ष महोदय, मैं बलपूर्वक कहता हूं कि सरकार ने मेरे प्रांत को कोष का भाग देते समय इस तथ्य पर समुचित विचार नहीं किया। मैं सदन को बताना चाहता हूं कि आज पश्चिमी बंगाल भारत के पटसन उद्योग का घर है। क्या आप जानते हैं कि वह आपके लिये प्रतिवर्ष कितने डालर कमा रहा है? 1948-49 में इसने 76 करोड़-इतनी बड़ी राशि डालरों के रूप में कमाई थी। क्या आप भारत अधिराज्य के निर्यात की कोई अन्य मद बता सकते हैं जिससे आप विदेशी विनिमय में इतनी बड़ी राशि कमाते हैं? अब प्रांतों में पटसन की खेती की वास्तविक स्थिति क्या है? बंगाल की पटसन मिलों को प्रतिवर्ष 71,00,000 पटसन की गांठों की आवश्यकता होती है। विभाजन के सद्य पश्चात् अर्थात् 1947-48 में भारत संघ 17 लाख गांठें उगाता था। अगले वर्ष आसाम, बिहार और उड़ीसा ने भी अपनी उपज बढ़ा दी और कुल उपज बढ़कर इस वर्ष 21 लाख गांठे हुईं और इस वर्ष लगभग 30 लाख गांठे होंगी। यदि केन्द्र समुचित प्रोत्साहन दे तो और भी

उपज बढ़ जायेगी। इस समय सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका विदेशी विनिमय पर प्रभाव पड़ता है। अब मैं बिल्कुल गंभीरता से पूछता हूं कि जब यह माल भारत सरकार के लिए अत्यावश्यक विदेशी विनिमय और डालर ऐसे भारी परिमाण में कमाता है, तो क्या वे प्रांत, जो पटसन उगाते हैं और उसका माल तैयार करते हैं, कानूनी रूप में उसका बदला पाने के हकदार नहीं हैं। आज डॉ. अम्बेडकर आगे आकर कहते हैं, "ना, ना; यह बहुत संकीर्ण सिद्धांत है, मैं इसे राष्ट्रपति पर छोड़ना चाहता हूं"। किसी प्रांत के भाग से लूट लेना, क्या यह अच्छी बात है? मुझे खेद है कि मुझे जरा तीक्ष्णता से बोलना पड़ता है। जब मैं यह अनुभव करता हूं कि सारा सदन ऐसे सिद्धांत से गलत रास्ते पर चलाया जा रहा है, जो देखने में तो सीधा सादा है, पर जिसका प्रभाव इन प्रांतों पर बहुत गंभीर, बहुत बुरा पड़ता है, तो मुझे इसके विरुद्ध अपनी विरोध भावना का प्रदर्शन करना ही पड़ता है। मैं चाहता हूं, मेरे माननीय मित्र इसे पेश ही नहीं करते, या इस अनुच्छेद को हटा ही देते। उन्होंने इसे जिस रूप में पेश किया है वह तो अधिक भयानक है। यदि वे नमक के विषय में और इस चीज पटसन पर भी बिल्कुल चुप रहते तो शायद इतनी जोखम नहीं थी। पर एक बार मस्विदे में पटसन-शुल्क की आय को भारत के राजस्व में से हटा देने के पश्चात् अकस्मात डेढ़ मास के पश्चात् वे उपबन्ध करते हैं कि इन प्रांतों के लिए कुछ सहायक-अनुदान भारत की संचित निधि पर भारित होंगे, जो कि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित होंगे। मैं देखता हूं कि 'निर्धारित' शब्द का अर्थ यहां यह है कि 'वित्त आयोग द्वारा निर्धारित' और जब तक 'वित्त आयोग' न बने तब तक 'राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा निर्धारित' और वित्त आयोग बनाने के पश्चात् इसका अर्थ है 'राष्ट्रपति द्वारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् आदेश द्वारा निर्धारित'। उस दिन मैंने माननीय सदस्य से एक प्रश्न पूछा था कि संविधान के आरम्भ के सद्यः पश्चात् इन प्रांतों बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा को पटसन-शुल्क देने के विषय में क्या स्थिति होगी।

श्रीमान्, माननीय प्रधान मंत्री ने, जो अभी उठ कर गये हैं, हमें बताया था कि वे शीघ्र ही एक समिति नियुक्त करेंगे। मुझे पता नहीं है कि कितने आयोग नियुक्त होंगे। अनुच्छेद 251 में वित्त आयोग का पहले ही उपबन्ध है। कदाचित वह तदर्थ समिति के रूप में होगा। मैं उनका यही अर्थ समझता हूं और यही अर्थ डॉ. अम्बेडकर ने हमें समझाया है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि यदि किसी कारण से यह तदर्थ समिति कोई विनिश्चय न कर सके या विनिश्चय करने में देर कर दे, तो क्या हम अनुच्छेद 251 के खंड (3) वाले आयोग की प्रतीक्षा करेंगे अथवा कोई निश्चय होने तक राष्ट्रपति स्वयं सहायक अनुदान दे देगा, जैसा कि मैं देखता हूं कि अनुच्छेद के खंड के उप-खंड (ख) (2) में उपबन्ध है? इनमें से कोई भी व्यवस्था संतोषजनक अथवा उचित नहीं है। यदि आप कुछ भी नहीं कर सकते तो यथापूर्व स्थिति रहने देनी चाहिये। कर को समाप्त किया जाये या नहीं यह तो हमें निश्चय करना है, संसद को निश्चय करना है। किन्तु यह कल्पना करने का प्रयत्न करिये कि संविधान के आरम्भ में ही क्या होने वाला है। साफ कह दूं कि मुझे आशंका है, क्योंकि मैं जानता हूं कि जब मोटेग-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना लागू की गई थी, तब यह योजना वित्त-पर्वत से टकरा कर गिर गई। इसका कारण मैस्टन पंचाट था। ओटो नीमियर पंचाट भी पिछली सरकार की अशुद्धियों को सुधार नहीं सका। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर को यह जानकर दिलचस्पी होगी

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

कि बंगाल में उद्‌गृहीत कुल राजस्व का 70 प्रतिशत केन्द्र को चला जाता है। इस बात का बहुत लोगों को ज्ञान नहीं है। सर बाल्टर लेटीन ने साइमन आयोग को जो प्रतिवेदन दिया था, उसमें आप इन सब बातों को देखेंगे। अत: जब हम केन्द्र से पटसन-शुल्क की आय का सारवान भाग मांगते है तो वह दया की प्रार्थना नहीं है। विगत में वित्तों के इस अन्यायपूर्ण और अनुचित वितरण के कारण ही मेरे प्रांत को कष्ट झेलने पड़े हैं और इसके परिणामस्वरूप आपके लिए एक समस्या उठ खड़ी हुई है। यदि आप इस समस्या को राजनीतिज्ञता की भावना से नहीं सुलझायेंगे तो यह समस्या बढ़ जायेगी और ये समस्याएं आपको, आप सबको अंतत: हड़प कर जायेंगी।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् मैं संशोधन का विरोध करने के लिए खड़ा हुआ हूं।

प्रस्ताव को पेश करते समय, माननीय विधि मंत्री.......

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू__ (संयुक्तप्रांत: जनरल): माननीय सदस्य किस संशोधन का विरोध कर रहे हैं?

*__श्री विश्वनाथ दास:__ मैं उनके पटसन-शुल्क संबंधी संशोधन का निर्देश कर रहा हूं।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ वे डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का निर्देश कर रहे हैं या प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का?

*__श्री विश्वनाथ दास:__ मैंने माननीय विधि-मंत्री कहा था; प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का मतलब नहीं निकल सकता।

माननीय विधि-मंत्री ने मस्विदा-समिति के सभापति के नाते इस वितरण प्रणाली को संकुचित बताया था मैं उनसे सहमत हूं कि यह संकुचित प्रणाली है क्योंकि विषय होना चाहिये और है। कल्पना की कोई भी उड़ान से यह प्रांतों के क्षेत्र में नहीं आ सकता और न आना ही चाहिये। इस कारण यह प्रणाली संकुचित है। ऐसे विश्वास के कारण तो मेरे मित्र को और जिस सरकार के वे प्रतिनिधि हैं उसे चाहिये था कि वे एक पूर्ण वित्तीय पड़ताल करें, करारोपण की पड़ताल करें और पता लगाये कि विविध प्रांतों की कर देने की औकात कितनी है और उनसे कितना कर लगाकर उद्‌गृहीत किया जाता है, और फिर उन्हें सदन को स्वीकार्य सुझाव लेकर आना चाहिये था।

श्रीमान्, करारोपण का ब्रिटिश तरीका, जो अब भी जारी रखा गया है, निस्संदेह संकुचित है। उसका उद्देश्य करारोपण की वैज्ञानिक प्रणाली का निर्माण करना नहीं था। अंग्रेजों ने जैसे उन्हें सुविधा दिखाई दी कर लगा दिया, तात्कालिक स्थिति का ही ख्याल किया। कुछ समय तक यह प्रणाली रही और जिसने सबसे अधिक शोर मचाया उसे सबसे अधिक मिल गया। 1919 से उन्होंने प्रणाली को बदलने

का दम भरा और हमें मैस्टन पंचाट मिला। वह ठीक सिद्ध नहीं हुआ और इसके परिणामस्वरूप जांच पड़ताल हुई, वित्तीय पड़ताल हुई जो गोलमेज सम्मेलन ने कराई। उन्हें अत्यंत आश्चर्य हुआ कि बंगाल, आसाम, बिहार और उड़ीसा बहुत कठिनाई में थे। उन्होंने सरकार को यह मंत्रणा भी दी, यदि वह स्वीकृत हो जाती तो भारत एक कदम आगे बढ़ जाता, कि प्रातों को आबादी के आधार पर आयकर का एक भाग दिया जाये। दुर्भाग्यवश, जैसा कि मैं कह चुका हूं, अंग्रेजों की स्थिति को संभालने की और विनिश्चय करने की विचित्र प्रणाली थी। इसके परिणामस्वरूप हमें नीमियर पंचाट मिला।

अत: भारत पर पंचाट ही पंचाट थोपे गये और इसका परिणाम यह हुआ कि आज आपके यहां कोई वास्तविक वित्तीय व्यवस्था नहीं है जिसे आप राष्ट्रीय अथवा वांछनीय अथवा आवश्यक कह सकें। अत: मैं इसे स्वीकार करता हूं और अपने माननीय मित्र के साथ सहमत हूं कि पटसन-शुल्क का अंश प्रांतों में वितरित करने की विद्यमान व्यवस्था इस दृष्टिकोण से देखने पर निस्संदेह संकुचित है; किन्तु उनके विरुद्ध मेरी केवल यही शिकायत है कि उन्होंने इस गड़बड़ को मिटाने के लिए कुछ नहीं किया है, कुछ कदम नहीं उठाये हैं। श्रीमान्, आपने कृपा करके पड़ताल आयोग नियुक्त किया था, किन्तु मुझे स्पष्ट कहना पड़ेगा कि, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, कि उस पड़ताल का क्षेत्र इतना सीमित था कि कठिनाई-ग्रस्त प्रांत यथेष्ट न्याय प्राप्त नहीं कर सकते। मेरा दावा है कि करारोपण, वितरण और अन्य बातों की व्यवस्था की भविष्य में पूरी-पूरी छानबीन होनी चाहिये, जिससे कि इस देश के लिये एक वैज्ञानिक और राष्ट्रीय वित्त-व्यवस्था बनाई जा सके, जो कि सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं के अनुकूल हो। तब तक ये असंगतियां अवश्य जारी रहेंगी।

मेरे मित्र श्री सक्सेना अपने संशोधन लेकर आते हैं। मुझे वे क्षमा करें, पर उनका संशोधन तो ऐसे व्यक्तियों की ओर से है जिन्हें मनचाही वस्तु प्राप्त है। आप इस व्यवस्था को संकुचित कह कर बुरा बताते हैं, उसकी निन्दा करते हैं और उन कष्टों को दूर करने के लिए कुछ नहीं करते जो कि एक विदेशी शासन के पुराने पापों के कारण उत्पन्न हुए हैं। अतएव यह अन्याय होगा कि आप यह दावा करें और इस व्यवस्था को जारी रख कर लाभ उठाते जायें और दोनों ओर से आप ही फायदे में रहें। आप दोनों ओर से लाभ नहीं उठा सकते। श्रीमान्, इस पटसन-शुल्क से आरोपण और प्रांतों में इसके वितरण का अपना इतिहास है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि संघीय वित्त की पड़ताल समिति ने पता लगाया कि बंगला, बिहार, उड़ीसा और आसाम बहुत कठिन स्थिति में है और उनको कष्ट मुक्त करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गई। सर ओटो नीमियर अपनी जांच पड़ताल के लिए भारत आ रहा था, उससे जरा पहले बंगाल के प्रांतीय राज्यपाल ने सेन्ट अन्ड्रूज दिवस भोज में अपने प्रसिद्ध भाषण में कहा था कि वे यह बात अपनी ओर से तथा अपने मंत्रि-मंडल की ओर से कह रहे थे और उन्होंने दावा किया कि उन्हें दो करोड़ रुपये नहीं मिलेंगे तो वे बंगाल का प्रांतीय प्रशासन नहीं चला सकते। यह अदभुत बात है कि ऐसे उच्च लार्ड ने यह कहकर ब्रिटिश साम्राज्य की आलोचना कर डाली कि केन्द्र ने जो भूल चूक के पाप किये हैं, अर्थात् बंगाल के लिये जो जमींदारी प्रथा स्थापित की है, उनके लिए बंगाल प्रांत को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने कहा कि 'स्थायी प्रबंध' ने बंगाल को चार-पांच करोड़ रुपये से वंचित कर दिया है। ऐसा करने के पश्चात् यह ब्रिटिश

[श्री विश्वनाथ दास]

सरकार का काम है कि बंगाल के घाटे को पूरा करे। अत: अन्य बातों के अतिरिक्त उन्होंने अपने प्रांत के लिये न्यूनतम दो करोड़ रुपये की मांग की। अन्य प्रांतों ने भी अपनी मांगें पेश कीं। परिणाम यह हुआ, जैसा कि मैं कह चुका हूं, कि अन्य प्रांतों को भी बंगाल के साथ-साथ पटसन-शुल्क का अच्छा भाग मिल गया।

आप इसे दस वर्ष तक सीमित करने जा रहे हैं। कई प्रांतों ने इस राजस्व की प्राप्ति के आधार पर ही दूरवर्ती वार्षिक कार्यक्रम बना लिया है। वे अब क्या करेंगे? क्या आपका यह विचार है कि उन्हें राष्ट्रीय कार्यवाही के अध्याय को, राष्ट्र-निर्माण के रचनात्मक कार्यों को बन्द कर देना चाहिये और इस राजस्व से हाथ धो बैठना चाहिये? यदि ऐसा है तो उस स्रोत की, जिससे यह संशोधन आया है, अथवा यदि इस सदन के माननीय सदस्य इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें तो उनकी, मैं अधिक प्रशंसा नहीं कर सकता। श्रीमान्, बंगाल जैसें प्रांतों का ख्याल कीजिये। यदि उन्हें प्रति वर्ष एक करोड़ से वंचित कर दिया जायेगा तो वे अपने अनुदान कैसे पूरे करेंगे? क्या आप बंगाल और आसाम के शैक्षणिक तथा स्वास्थ्य संबंधी कामों को बन्द कर देंगे? उड़ीसा जैसा प्रांत चाहे चिंता न करे, यदि उसको तीन लाख रुपये से वंचित कर दिया जाये; तीन लाख रुपये प्रतिवर्ष कोई छोटी रकम नहीं है जो छोड़ दी जाये। इन परिस्थितियों में मैं उनसे सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि यह दस वर्ष तक ही रहना चाहिये। यदि मेरे माननीय मित्र यह कहते कि इन दस वर्षों में वे इस देश के ढांचे और करारोपण व्यवस्था की पूरी-पूरी छानबीन करेंगे और कोई तरीका निकालेंगे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होती। श्रीमान्, भारत सरकार ने 1946 में आस्ट्रेलिया की वैत्तिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिये दो अधिकारी भेजे थे-मेरे ख्याल में प्रो. अदारकर तथा श्री नेहरू को भेजा था। उनके प्रतिवेदन से संविधान-सभा को तथा मस्विदा-समिति को लाभ उठाना चाहिये था। उन्होंने केवल आस्ट्रेलिया की अर्थ व्यवस्था पर ही प्रतिवेदन नहीं दिया है, वरन यह भी सुझाव दिया है कि आस्ट्रेलिया की व्यवस्था भारत में कैसे लागू की जा सकती है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि अनुदानों का वितरण किस प्रकार जनसंख्या तथा क्षेत्रफल के आधार पर किया जाता है और स्थायी आयोग को, जो कि उन्होंने स्थापित किया है, किस प्रकार प्राधिकार दिया जाता है कि वह कमी वाले प्रांतों से आवेदन-पत्र प्राप्त करें। वह आयोग प्रांतीय आय-व्ययकों को देखता है और कमी वाले प्रांतों को अनुदान किये जाते हैं। यदि वह स्थिति होती तो कोई आपत्ति नहीं होती। इस संविधान में पारित किसी उपबन्ध में अथवा सरकार द्वारा संसद् में अथवा संविधान—सभा में किये गये किसी ऐलान में ऐसी कोई बात नहीं है। इन परिस्थितियों में मुझे साफ कहना होगा कि मेरे माननीय मित्र विधि-मंत्री द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव इन प्रांतों की राष्ट्रीय कार्यवाहियों की प्रगति में अधिक सहायक नहीं होगा।

श्रीमान्, एक शब्द और कहकर मैं समाप्त कर दूंगा। आपने द्वारों को बन्द करके कुन्डी लगा दी है। आपने यह बात भी रख दी है कि विद्यमान प्रांतों के अतिरिक्त किसी प्रांत को पटसन-शुल्क नहीं मिलेगा, चाहे वे अपने प्रांत में पटसन-कृषि का विस्तार करें। यदि पत्रों में प्रकाशित समाचार ठीक है तो त्रावनकोर ने लगभग एक लाख एकड़ भूमि पर पटसन उगाने का उत्तरदायित्व लिया है। आप उन्हें क्या प्रलोभन देंगे? कोई प्रलोभन नहीं है। मद्रास के प्रति अथवा कोचीन

और त्रावनकोर के संयुक्त राज्य में वे जो भी कष्ट उठायें, उसके लिये आप उन्हें कुछ नहीं देते।

श्रीमान्, आप किसकी सहायता कर रहे हैं? आप अपनी सहायता कर रहे हैं या पाकिस्तान की सहायता कर रहे हैं। दुःख के साथ यह मानना पड़ेगा कि पाकिस्तान के हाथ में कुंजी है। उसके पास कच्चा पटसन है और आपके पास उसका सामान बनाने की कलें हैं। इसलिये पाकिस्तान अपनी शर्तें लिखवाता है और आप उसकी बात मानना चाहते हैं, क्योंकि आप डालर प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। इन परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार का यह कर्तव्य है कि भारत में पटसन की खेती बढ़ाने में कोई कसर न रखे। मेरे मित्र द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव से कोई आशा पैदा नहीं होती, क्योंकि वह केवल उन्हीं प्रान्तों तक सीमित है, जो कि इस समय पटसन-शुल्क से लाभ उठा रहे हैं और इसके अतिरिक्त यह दस वर्ष तक के ही लिये सीमित है।

मैं नहीं जानता कि यह राशि किस आधार पर वितरित होगी। यदि यह वितरण विगत वितरण-आधार पर हो तो प्रांतों के लिए इस समय कृषि के विकास के लिए कोई प्रलोभन नहीं है। श्रीमान्, अपने प्रांत की बात कहते हुये मुझे स्पष्ट कहना होगा कि यह मेरे लिये बहुत बड़ी निराशा की बात है, क्योंकि उड़ीसा पटसन की खेती का विस्तृत कार्यक्रम आरम्भ कर रहा है। इसके साथ-साथ उड़ीसा में विलय राज्यों में भी पटसन की काफी खेती होती है। क्या आप उन्हें इसके अंश का लाभ नहीं देना चाहते? मैं नहीं जानता कि इन उपबन्धों से भारत सरकार को लाभ होगा या पाकिस्तान सरकार को। मैं यह बात माननीय सदस्यों पर छोड़ देता हूं कि वे इस पर स्वयं विचार करें। मेरे माननीय मित्र कहते हैं कि यह बहुत कलुषित सिद्धांत है और मैं उनसे सहमत हूं। यदि कोई यह समझता हो कि यह अवाछनीय कार्य है तो अनुच्छेद 249 को रखा ही क्यों जाये? यह अनुच्छेद कुछ माल, जैसे कि शृंगार तथा औषधीय सामान के उत्पादन कर के विषय में है और इन साधनों से प्राप्त शुल्कों को उन्हीं प्रांतों को दे दिया जायेगा जिनसे वे संगृहीत होते हैं। यदि यह ऐसा कलुषित सिद्धांत है, तो इसे संविधान में फिर क्यों रखते हैं? श्रीमान्, 'विचार-दृढ़ता तुच्छ विचार वालों के लिए हव्वा है'।

अब समय आ गया है कि आपको युक्तियुक्त और राष्ट्रीय वित्त व्यवस्था बनानी चाहिये अथवा आप प्रांतों को अपनी कर-व्यवस्था निर्धारित करने की कुछ स्वतंत्रता दे दीजिये। इस प्रश्न पर विचार करते समय मैं माननीय सदस्यों को सिंध द्वारा 1942 में की गई कुछ कार्यवाहियों का निर्देश करता हूं। 1942-1943 और 44 में सिंध सरकार ने उस प्रांत से निर्यात होने वाले चावल पर कर लगा दिया और इसके फलस्वरूप उन्हें एक बड़ी राशि प्राप्त हो गई, जो उनके बांध संबंधी ऋण को चुकाने के लिये काफी थी। हम भी उड़ीसा में यही बात कर सकते थे। पर हमने अपने मित्रों के हाथ की कठपुतली बनने से इंकार कर दिया और ऐसा लाभ उठाना नहीं चाहा जबकि हमारे भाई अन्य प्रांत कष्ट में थे। पर क्या यही कारण है कि अब प्रस्तावित विभेद को स्थायी बनाया जा रहा है? जैसाकि मैं पहले ही कह चुका हूं, मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि जब पूरी-पूरी पड़ताल होनी चाहिये। 1924-25 की भारत की करारोपण पड़ताल अब पुरानी हो चुकी है। इसी प्रकार उस समय की आर्थिक पड़ताल है। मैं अनुरोध करता हूं कि अब समय आ गया है, जबकि ऐसी पड़ताल आवश्यक है और होनी चाहिये।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं कि क्या श्री विश्वनाथ बाबू का यह ख्याल है कि इस अनुच्छेद की विद्यमान भाषा से मद्रास अथवा त्रावनकोर को पटसन-शुल्क में भाग नहीं मिल सकेगा, यदि वे भविष्य में पटसन उगायेंगे?

***श्री विश्वनाथ दास:** मुझे खेद है कि मैं अपने साथ संशोधन को नहीं लाया। किन्तु मेरा तो यही ख्याल है और मुझे प्रसन्नता होनी चाहिये यदि ऐसा न हो। मुझे खुशी होगी यदि ऐसा न हो, पर मुझे विश्वास है कि ऐसा ही है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा प्यारा संशोधन, जिसे छोड़ने के लिए परिस्थितियों ने मुझे बाध्य कर दिया है, निम्न प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 254 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'254. Notwithstanding anything in article 253 of this Constitution—

(a) sixty-two and a half per cent, or such higher percentage as may be prescribed of the net proceeds in each year of any export duty on jute or jute-products, and

(b) seventy-five per cent, or such higher percentage as may be prescribed of the net proceeds in each year of any export duty on tea, shall not form part of the revenues of India but shall be assigned to the States in which jute or tea, as the case may be, is grown in proportion to the respective amounts of jute or tea grown therein.' "

[254. इस संविधान के अनुच्छेद 253 में किसी बात के होते हुए भी–

(क) प्रति वर्ष पटसन या पटसन से बने हुए सामान के निर्यात-कर का साढ़े बासठ प्रतिशत अथवा ऐसा अधिक प्रतिशत भाग जो निर्धारित किया जाये, तथा

(ख) प्रति वर्ष चाय के निर्यात-कर का 75 प्रतिशत अथवा ऐसा प्रतिशत भाग जो निर्धारित किया जाये,

भारत के राजस्व का भाग नहीं बनेगा, वरन् उन राज्यों को, जिनमें पटसन या चाय, जैसी भी स्थिति हो, उगाई जाती हो उस अनुपात से दे दिया जायेगा जिससे कि पटसन या चाय उसमें उगाई जाती हो।]

श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन संख्या 72 प्रस्तावित किया है जो पटसन के विषय में है। जहां तक पटसन का संबंध है, मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है, सिवाय इसके कि आसाम सरकार को आजकल जो अनुदान दिया जाता है वह कम नहीं करना चाहिये। मैं यह इसलिये कहता हूं कि नये प्रस्ताव में, परिस्थितियों के दबाव से अथवा अधिक महत्वपूर्ण प्रांतों से अधिक जोरदार मांग होने पर, यह सर्वथा संभव होगा कि आसाम प्रांत की अवहेलना कर दी

जाये और उसे यथेष्ट भाग न मिले; अर्थात पटसन-शुल्क के परिवर्धित भाग को और भी कम कर दिया जाये। मेरी तो यही इच्छा है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उसका प्रभाव यह नहीं हो कि प्रांत को अब जो पटसन-शुल्क मिल रहा है वह कम कर दिया जाये।

मैं इस सदन का ध्यान इस मामले की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि सारे प्रांतों को जो चाय का उत्पादन करते हैं, जिनमें आसाम भी सम्मिलित है, चाय के निर्यात-शुल्क का एक भाग मिलना चाहिये, जो कि इस समय सारा ही भारत सरकार अपने काम में ले लेती है।

मेरे माननीय मित्र गोपीनाथ बारदोलोई ने उस दिन अपने बलपूर्ण तथा प्रकाशयुक्त वक्तृता में आसाम प्रांत का जो दु:खद चित्र खींचा था उसके आगे मुझे कुछ खास नहीं कहना है। श्री निकलस राय ने भी उनका अनुसरण करते हुए सदन के समक्ष यह सिद्ध करके दिखा दिया कि यदि आसाम प्रांत के वित्तों को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया गया, तो किसी वक्त वह ढांचा टूट सकता है। मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि ध्यान से देखा जाये तो घाटे की राशि उससे अधिक होगी जितनी कि हमें प्रत्याशा है। मुझे आशा है कि इस सदन के मेरे माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि आसाम भारत का एक प्रांत है जिसका क्षेत्रफल लगभग 50 हजार वर्गमील है और जन-संख्या 74-75 लाख है। प्रांत का राजस्व केवल 3½ करोड़ है और उन्हें इस समय भारत सरकार से जो सहायता मिलती है उसे मिलाकर कुल आय 5 करोड़ रुपये है। मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से कहता हूं कि वे इस बात पर विचार करें कि विद्यमान परिस्थितियों में, जबकि सब चीजों के मूल्य बढ़ रहे हैं, क्या इतने से कोष से इतने बड़े क्षेत्र का प्रशासन चलाना संभव है जिसमें कि सब प्रकार की मिश्रित जनसंख्या हो? क्या ऐसी थोड़ी सी आय से, जो कि हमें प्रांत से प्राप्त होती है, प्रशासन चलाना तथा उसमें सुधार करना संभव है? मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से कहता हूं, जो कि मैंने अपने लोगों से भी कहा है कि एक क्षण यह विचार करें कि क्या इस प्रांत को भारत सरकार के एक भाग के रूप में चलाना लाभदायक होगा? मैं अन्य प्रांतों के लोगों से यह विचार करने के लिए कहता हूं कि क्या उन्हें भारत के इस गले सड़े अंग को रखना है या—यदि उन्हें प्रांत से कोई सहानुभूति हो तो—वे अपनी आय का कुछ भाग छोड़ देंगे तथा भारत सरकार जो आय प्राप्त करती है उसका बड़ा अंश उस प्रांत को दे देंगे तथा उस गले सड़े अंग की मरम्मत कर देंगें? यदि वे ऐसा करने के अनिच्छुक है तो यह अधिक अच्छा है कि उस अंग को काट दिया जाये जिससे कि उस अंग का प्रभाव भारत के अन्य प्रांतों पर तो न पड़े। इस सदन को इस पर विचार करना है।

यह पहले ही इतने प्रभावी तरीके से कहा जा चुका है कि जितना कि मैं कह भी नहीं सकता-और मैं उसे दोहराना नहीं चाहता—कि आपको इसका विनिश्चय करना है। आप आसाम को अपने साथ रखना चाहते हैं या नहीं? यदि आप आसाम को अपने साथ रखना चाहते हैं तो क्या आप अपने राजस्व से कुछ खर्च करने के लिए तैयार हैं? क्या आप ऐसा करने के लिए तैयार हैं और आसाम को ऐसा प्रांत बनाना चाहते हैं जैसा कि वह होना चाहिये—एक संपन्न प्रांत, एक अग्रसर प्रांत, ऐसा प्रांत जिसमें शक्तिशाली लोग हों, जिसमें शिक्षित लोग हों, जिसमें ऐसे लोग हों जो साम्यवाद को रोक सकें, क्योंकि वही स्थान है जहां से साम्यवाद शेष भारत

में फैल रहा है? आसाम वह मार्ग है जहां से साम्यवाद फैल रहा है। क्या आप इस प्रांत को ऐसे असामाजिक तत्वों और आंदोलनों पर पनपने देंगे? अथवा आप इस प्रांत को ऐसी स्थिति में रखने जा रहे हैं कि वह ठीक मार्ग पर विकसित हो सके, वह अपनी जनता को संतुष्ट रख सके, वे उन्हें शेष भारत के सामान शिक्षित बना सके और शेष भारत के सामान प्रगतिशील बना सके, जिससे कि वे लोग स्वयं साम्यवाद के विरुद्ध उठ खड़े हों तथा भारत के उस सीमान्त की रक्षा करने में भाग ले सकें? इस प्रश्न पर इस सदन के माननीय सदस्यों को विचार करना है। यदि वे उन्हें शुल्क का भाग देना नहीं चाहते, वरन् भारत का केन्द्र ही उसे व्यय करेगा, और उन्हें चिंता नहीं है कि आसाम में क्या होगा, तो वे मामले को वैसे ही छोड़ सकते हैं और परिस्थितियां ऐसी हो जायेंगी कि आसाम को रखना कठिन हो जायेगा। या तो वह पाकिस्तान प्रांत का भाग बन जायेगा या उसे एशिया की कोई और साम्यवादी शक्ति हड़प कर लेगी। मैं देख सकता हूं कि भविष्य में यही होगा। मुझे यही आश्चर्य है कि भारत के अधिक चतुर लोग इस बात को क्यों नहीं सोच सकते। ऐसी हालत होती जा रही है कि यदि शेष भारत कुछ त्याग करके उस प्रांत की सहायता नहीं करेगा तो वह प्रांत अवश्य भारत में से निकल जायेगा। इसका कोई इलाज नहीं है।

मैं समझता हूं कि आसाम के लोग कभी-कभी प्रांत के बाहर से आने वाले लोगों के विरुद्ध बहुत सी भावना प्रदर्शित करते हैं। किसी हद तक मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि प्रांत के कुछ लोग इस हद तक चले गये हैं कि वे उन लोगों के प्रति सहानुभूति का अभाव प्रदर्शित करते हैं जो कि प्रति के बाहर से वहां शरण लेने आते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग अनुभव करते हैं कि शेष भारतवासी तथा भारत सरकार उस प्रांत का यथेष्ट ध्यान नहीं रखते, अत: उन्हें शेष भारत के प्रति कुछ असहानुभूति दिखाकर बदला लेना चाहिये। कुछ लोगों की यह भावना है। मैं उसका औचित्य सिद्ध नहीं कर रहा। साथ ही मैं उस प्रांत के संबंध में शेष भारत के व्यवहार को भी उचित नहीं कह सकता। मुझे यही कहना है।

यदि आप आसाम को अपने साथ रखना चाहते हैं, यदि आप शांतिपूर्ण भारत चाहते हैं, यदि आप भारत के सीमान्त की रक्षा करना चाहते हैं, तो आपको उस प्रांत पर अधिक ध्यान देना चाहिये, उसका अधिक ख्याल करना चाहिये और उस प्रांत को सुधारना चाहिये। आखिर, उस प्रांत की जनता का बहुत बड़ा भाग आदिमजातिय लोग हैं जिन्हें अब तक अंग्रेजी शासन के आधीन अपने भाई बन्धुओं से मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था; उन्हें मैदानों के देशी लोगों से मिलने नहीं दिया जाता था। अत: उन लोगों को शेष भारत से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती थी, क्योंकि वे शेष भारत से मिलने ही नहीं पाते थे। सब प्रकार के निर्बन्धन लगाये जाते थे और कुछ अब तक हैं। अब आपको आदिमजातीय लोगों को बदलना है और उन्हें भारत की नवीन राष्ट्रीयता की शिक्षा देनी है। वे भारत में हैं किंतु वे ऐसा अनुभव नहीं कर सके कि वे भारतीय हैं और वे यह अनुभव नहीं कर सके कि हमारा पर्वतों के उन भागों से कोई संबंध है जिनमें कि वे रहते हैं, और उनका उस भारत से कोई संबंध नहीं है जो हम दिल्ली, बम्बई, मद्रास तथा अन्य केन्द्रों में देखते हैं। फिर आप उन्हें यह अनुभव कराने के लिए क्या कदम उठाने जा रहे हैं? यदि आप कोई कदम उठाने जा रहे हैं तो आपको अधिक धन देना चाहिये। अधिक धन देने का क्या उपाय है? प्रांत अपने आप पर अधिक

कर नहीं लगा सकता। वे सीमा तक पहुंच चुके हैं। किसी प्रांत में कृषि कर लगने से बहुत पहले उस प्रांत में यह कर था। वास्तव में निर्धारित मार्ग पर चलने के लिए सब प्रकार के कर लगाये जा चुके हैं। उन्होंने यथासंभव सब विलास सामग्रियों पर कर लगा दिया है। उन्होंने भूमि पर अधिकतम कर लगा दिया है। अधिक संभव नहीं है। उस प्रांत में इससे अधिक धन संग्रह नहीं किया जा सकता। भारत को पेट्रोल तथा अन्य उत्पादन करों की लूट का अंश देना चाहिये। आसाम में रहने वाले अंग्रेजों ने भी उसे लूट ही समझा था। मिट्टी के तेल के शुल्क को भी लूट बताया गया है—प्रांत के लोगों ने ही नहीं, उस प्रांत में रहने वाले अंग्रेजों ने भी ऐसा कहा। उस प्रकार के भाषण दिये गये थे पर गत सरकार पर आलोचना का असर नहीं होता था, किन्तु आज वर्तमान सरकार के अंतर्गत हमें ऐसी व्यवस्था करनी है कि कमी वालों की सहायता की जाने और धनिकों की नहीं तथा अधिक शिक्षित लोगों की नहीं, ऐसे लोगों की नहीं जो कि अपनी चिंता आप ही कर सकते हैं। सहायता उनकी करनी है जो अपने साधनों को समाप्त कर चुके हैं। उन्हें भारत सरकार की ओर से कुछ समुचित सहायता मिलनी चाहिये। चाय के निर्यात कर में से जो कि इस समय सारा भारत सरकार ले लेती है, कुछ अंश की आशा करना उचित ही है। आसाम को चाय-शुल्क का भाग क्यों नहीं मिल सकता? चाय उस प्रांत में उत्पन्न होती है। जब भी आप चाय पीना चाहते है, तब आप अपने होटल वाले से या रसोई वाले से पूछते हैं कि यह आसाम चाय है या कोई और चाय और आप उसे चखते हैं और यदि वह आसाम की चाय हो तो आप अपने होठ चाटते हैं और कहते हैं "यह असली चाय का प्याला है जो जीवन का आनन्द है"। आप सब कुछ कहते हैं फिर भी उसके बाद आप सारा उत्पादन शुल्क ले लेते हैं। क्या आप क्षण भर के लिए सोचते हैं कि आसाम को इस चाय-उत्पादन के लिये कितनी बड़ी रकम देनी पड़ती है?

आसाम में बहुत एकड़ भूमि यूरोपीय बाग वालों के एकाधिकार में है। जहां कुछ सौ एकड़ भूमि पर चाय उगती है, वहां लगभग हजार एकड़ भविष्य में जोतने के लिये रखी हुई है। यह स्थायी प्रबन्ध है जो तत्कालीन सरकार ने किया था। दुर्भाग्यवश उस बेकार पड़ी भूमि को दूसरे लोग भी काम में नहीं ले सकते।

इन बगानों के अधिकांश श्रमिक बहुत कम मजदूरी पर आसाम प्रांत के बाहर से आते हैं, क्योंकि स्थानीय लोग उस मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार नहीं हैं। भारत के अन्य भागों से लोगों को इन बगानों पर काम करने के लिए बुलाया जाता है। इसका अर्थ यह है कि इन बगानों पर मजदूरी के रूप में श्रमिकों को जो बड़ी राशि बांटी जाती है उसमें आसाम के लोगों को कोई भाग नहीं मिलता।

और इन बगानों से आसाम सरकार को भी कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। मौलिक करार के अंतर्गत यूरोपीय बाग वालों को बहुत सी जमीन नाममात्र के किराये पर दे दी गई है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** क्या उसे अब बढ़ाया नहीं जा सकता?

श्री रोहिणी कुमार चौधरीः वह तो एक संविदे का भाग है। उसे बदलने के लिए कोई विधान अधियनियमित करना पड़ेगा।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मेरा कहना यह है। मेरी भूमि पर दूसरों का कब्जा है; मेरे मजदूरों को इन बगानों पर काम करने का अवसर नहीं मिलता। मैं जो चाय पीता हूं उसके लिये भी मुझे वही दाम देना होता है। मुझे पता लगा है कि भारत के बाहर चाय यहां से भी सस्ती बिकती है। यदि आपको हमसे इतना रुपया मिल रहा है, जिसके लिये आप मुझसे इतना त्याग करवाते हैं, जिसके लिये मुझे आप भूमि का प्रयोग नहीं करने देते जिसका अन्यथा अधिक अच्छे प्रयोजनों के लिए प्रयोग हो सकता था, यह सब कुछ करके भी आप मुझे लाभ में अंश क्यों नहीं देना चाहते? मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि मेरे पड़ौसी प्रांतों को भी इसका अंश मिल जाये। दुर्भाग्यवश डॉ. अम्बेडकर ने सदन में जो नया संशोधन पेश किया है, उसमें इस चाय के प्रश्न का कोई ख्याल नहीं रखा गया है। मेरी तो यही शिकायत है। इसलिये मेरा सुझाव है कि चाय के विषय में पटसन के समान ही उपबन्ध कर देने चाहिये और आप हमें निर्यात-शुल्कों का भाग दें। भारत सरकार अब लालची सरकार सिद्ध हुई है और प्रांत के सारे निर्यात-शुल्क को उसने ले लिया है। मुझे आशा है अब भी मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से यह कह सकता हूं कि वे देखें कि आसाम प्रांत के साथ न्याय किया जाये। यदि पटसन-उत्पादन का लाभ बिहार, बंगाल, आसाम और उड़ीसा को मिल सकता है तो चाय-उत्पादन का लाभ आसाम को प्राप्त क्यों न हो? मैं आसाम का समर्थन करके इन सब प्रांतों का भी समर्थन कर रहा हूं।

इन शब्दों के साथ मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि यदि वे आसाम प्रांत को भारत अधिराज्य में रखना चाहते हैं तो उस प्रांत में अधिक दिलचस्पी लें। आखिर, आप हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप हमसे अधिक प्रगतिशील हैं—दुनियां तो यही कहती है, यद्यपि मैं इसे पूरी तरह स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं। कुछ भी हो, सरकार के प्रशासन में आपकी आवाज बड़ी है। अपने स्वार्थ के लिये ही, अपनी रक्षा के लिये ही, आपको हमारा ख्याल करना चाहिये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अध्यक्ष महोदय, डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन से दो प्रश्न होते हैं, पटसन-शुल्क के निर्यात की आय को भारत सरकार और प्रांतों में बांटने का औचित्य तथा कमी वाले प्रान्तों को पर्याप्त अनुदान देने का प्रश्न। मैं नहीं जानता कि श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने इस पर क्या कहा, पर मुझे विश्वास है कि अन्य सब वक्ता इस विषय में विशेषज्ञ समिति से सहमत थे। उन्होंने मान लिया कि निर्यात-शुल्क की आय पर किसी प्रान्त को अधिकार नहीं है। कुछ सदस्यों ने यह भी मांग की है कि पटसन के निर्यात-शुल्क के समान केन्द्र चाय के निर्यात शुल्क का भी भाग कुछ प्रान्तों को दे। किन्तु यदि उस सिद्धांत को उचित स्वीकार कर लिया जाये कि निर्यात-शुल्क की आय केन्द्र के पास ही रहनी चाहिये, तो उस मांग का कोई आधार नहीं रह जाता। मैं डॉ. अम्बेडकर से सहमत हूं कि सीमान्त-शुल्कों के समान निर्यात-शुल्क भी शुद्धत: केन्द्रीय विषय है और सारी आय केन्द्र के पास ही रहनी चाहिये। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कमी वाले प्रान्तों को सहायता नहीं मिलनी चाहिये। मेरे माननीय मित्र पंडित लक्ष्मीकांत मैत्र ने बंगाल के लिए बहुत पैरवी की है और बताया है कि बंगाल के लिये, केन्द्र से सहायता प्राप्त किये बिना अपना खर्च चलाना असम्भव है। उन्होंने विशेषज्ञ समिति के प्रतिवेदन से उद्धरण दिये हैं, किन्तु वे एक वाक्य पढ़ना भूल गये जो बंगाल, बिहार, आसाम तथा उड़ीसा जैसे प्रान्तों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है;

यह वह वाक्य यह है:

"दस वर्षों के अंत में भी, जिनमें हम समझते हैं कि प्रान्त अपने साधनों का पर्याप्त विकास कर सकते हैं, प्रान्तों को राजस्व की यह हानि पूरी करने के लिए सहायता की अपेक्षा होगी।"

अर्थात्, केन्द्र द्वारा समस्त निर्यात-शुल्क को रखने के कारण जो हानि होगी उसे पूरा करने के लिए—

"हां, उनके लिये यह रास्ता है कि वे केन्द्र से सहायता-अनुदान मांगें, जिन पर कि यथा समय वित्त आयोग द्वारा उनके गुणावगुण को देखकर विचार किया जायेगा।"

मैंने यह वाक्य बंगाल तथा आसाम जैसे प्रान्तों के प्रतिनिधियों को संतुष्ट करने के लिए कहा है जिन्होंने उन प्रान्तों के साथ उदार व्यवहार करने का अनुरोध किया है। इसमें संदेह नहीं है कि इन प्रांतों को केन्द्र से सहायता की आवश्यकता है; किन्तु यह सहायता पाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे पटसन के निर्यात-शुल्क में से अथवा किसी और निर्यात-शुल्क में से भाग मांगे। केन्द्र इन शुल्कों को रख सकता है और फिर भी नैतिक रूप में उन प्रान्तों की सहायता करने के लिए बाध्य हो सकता है जो कि सारवान केन्द्रीय अनुदानों के बिना अपने आयव्ययक का संतुलन नहीं कर सकते। निस्संदेह ये प्रान्त केन्द्रीय सरकार के समक्ष तथा जब वित्त आयोग हो जाये तब उसके समक्ष अपनी मांगें पेश कर सकते हैं। मेरे विचार में, वित्त आयोग प्रान्तीय आय-व्ययकों पर गौर करेगा तथा यह देखेगा कि प्रान्तों ने किस हद तक अपनी सहायता आप करने का प्रयत्न किया है। वह यह भी निश्चय करना चाहेगा कि प्रान्त अपने राजस्व को बढ़ाने के लिए अपने साधनों का पूर्ण उपयोग करने का उचित प्रयत्न कर रहे हैं; और यदि इन बातों का परीक्षण करने के पश्चात् उसे यह विश्वास हो जायेगा कि केन्द्रीय अनुदान मांगने वाले किसी प्रान्त को केन्द्र से सहायता प्राप्त होनी चाहिये, तो वह निस्संदेह वैसी ही सिफारिश कर देगा: अत: ऐसी आशंका नहीं होनी चाहिये कि यदि निर्यात शुल्क पूर्णत: केन्द्रीय विषय बन जायेंगे तो इस समय निर्यात-शुल्क का अंश पाने वाले प्रान्तों को कुछ नहीं मिलेगा। मैं नहीं समझता कि ऐसा हो सकता है। मेरे माननीय मित्र पंडित लक्ष्मीकांत मैत्र ने डॉ. अम्बेडकर से पूछा है कि यदि वित्त आयोग तुरन्त नियुक्त नहीं होगा तो क्या होगा। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में लिखा है कि अनुच्छेद 254 में 'विहित' शब्द का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 251 में है। पंडित लक्ष्मीकांत मैत्र ने इस सम्बन्ध में यह भी पूछा कि यदि वित्त आयोग तत्काल ही नियुक्त नहीं हुआ तो क्या बंगाल और तीन अन्य प्रान्त जो अब पटसन-निर्यात-शुल्क का अंश पा रहे हैं, अपने साधनों पर ही रह जायेंगे। यदि वे या कोई अन्य सदस्य जिसे इस प्रश्न में रुचि हो अनुच्छेद 251 में 'विहित' की परिभाषा देखेगा तो उसे पता लग जायगा कि इसका अर्थ है कि:

"जब तक वित्त आयोग गठित न हो जाये तब तक राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित; तथा वित्त-आयोग के गठित हो जाने के पश्चात् वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित।"

अत: यह स्पष्ट है कि चाहे वित्त-आयोग नियुक्त हो या न हो, चारों सम्बद्ध प्रान्तों को पटसन के निर्यात-शुल्क की आय में से सुनिश्चित राशियां मिल जायेंगी,

या अधिक ठीक कहा जाये तो उन्हें भारत की संचित निधि में से ऐसी राशियां मिल जायेंगी जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित करे; वित्त-आयोग की नियुक्ति पर कुछ भी निर्भर नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** राष्ट्रपति किस सिद्धांत पर अंश नियम करेगा?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** भारत सरकार वित्त-आयोग को आज्ञा नहीं दे सकती कि वह क्या करे। मेरा अनुमान है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने यह सुझाव कि 'विहित' शब्द का वही अर्थ होना चाहिये जो अनुच्छेद 251 में है, इसलिये दिया है कि जिससे भारत सरकार पर यह दोष न लगाया जा सके कि उसने अपने पक्ष में एकपक्षीय विनिश्चय कर लिया है। यह मामला पूर्णत: वित्त-आयोग के विनिश्चय के लिये छोड़ दिया गया है। भारत सरकार वित्त-आयोग के लिए यह विनिश्चय नहीं कर सकती कि वह किन सिद्धान्तों पर चले। यदि भारत सरकार ऐसा करे तो सम्बद्ध प्रान्त उसे निस्संदेह महान अन्याय की दोषी बतायेंगे।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** मैंने यह बात नहीं कही। मैंने कहा, वित्त-आयोग के प्रतिवेदन की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति किन सिद्धान्तों के अनुसार प्रान्तों का भाग निश्चिय करेगा?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु स्पष्ट है कि राष्ट्रपति को सम्बद्ध प्रान्तों की आवश्यकताओं पर विचार करना पड़ेगा। मैं अत्यन्त बलपूर्वक तथा अत्यन्त स्पष्ट रूप से कह देता हूं कि, मेरे विचार में, चाहे किसी प्रान्त को निर्यात-शुल्क का भाग मिले या न मिले, यदि वह केन्द्र से सहायता पाये बिना अपने आय-व्ययक को संतुलित न कर सके तो केन्द्र उसे सहायता देने के लिए नैतिक रूप में बाध्य होगा।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** यदि सरकार ऐसा आश्वासन दे देती है, तो बस बिल्कुल ठीक है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** सरकार ऐसा आश्वासन दे या न दे, किन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि केन्द्रीय विधान-मंडल केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों की आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करने देगा। मेरे माननीय मित्र केन्द्रीय विधान-मंडल के सदस्य हैं। यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा मनमाना विनिश्चय कर दे जो कि उनके प्रान्त के प्रति स्पष्टत: और बिल्कुल अन्यायपूर्ण हो तो क्या वे चुप रहेंगे? और, यदि केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय बिल्कुल अन्यायपूर्ण होगा तो मुझे विश्वास है कि बंगाल का समर्थन करने वाले केवल वे ही एक सदस्य नहीं होंगे; सदन का प्रत्येक न्यायप्रिय सदस्य उसका समर्थन करेगा और उसके लिये अपेक्षित वित्तीय सहायक दिलवायेगा।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** बहुत-बहुत धन्यवाद।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के खंड (3) को, जिससे यह भ्रांति उत्पन्न हुई है, छोड़ दिया जाये। यदि इस अनुच्छेद में 'विहित' शब्द को उसी प्रकार परिभाषित नहीं किया

जाता जैसे कि वह अनुच्छेद 251 में परिभाषित है, तो कोई हानि नहीं होती। मैं तो अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर को अब भी सुझाव देता हूं कि वे अपने प्रस्तावित संशोधन के खंड (3) को हटा दें। किन्तु केवल यही कारण नहीं है कि मैं यह सुझाव दे रहा हूं। एक और भी कारण है कि मैं उनसे कह रहा हूं कि उन्होंने जो संशोधन रखा है उसमें से वे 'विहित' शब्द की परिभाषा को हटा दें। यह ठीक है कि वित्त-आयोग को, जब यह नियुक्त हो, प्रान्तों की आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिये। उसे यह विचार करना चाहिये कि उन्हें अपने साधारण व्यय को पूरा करने के लिए कितने सहायक-अनुदानों की आवश्यकता है। यह भी ठीक है कि उसे यह भी विचार करना चाहिये कि उन्हें राष्ट्रनिर्माण के कार्यों के लिए, उदाहरणार्थ, शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य तथा कृषि के विकास के लिये, कितना धन व्यय करना चाहिये। यह भी समान रूप से ठीक है कि उसे उनके द्वारा तैयार की हुई उद्योग-विकास की योजनाओं पर विचार करना चाहिये, और इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात् केन्द्र को सिफारिश करनी चाहिये कि प्रत्येक कार्य के लिए कितना धन देना चाहिये और यह भी निश्चय करना चाहिये कि केन्द्र या प्रान्त या दोनों द्वारा उधार लेकर कितना धन प्राप्त करना चाहिये। पर मैं इसे वांछित नहीं समझता कि आयोग केन्द्र को यह कह सके कि वह राजस्व के किसी साधन विशेष को छोड़ दे या प्रान्तों को उसमें से अंश दे दे। उसे यह अधिकार है कि वह प्रान्तों की आवश्यकताओं पर विचार करे तथा इस विषय पर ऐसी सिफारिशें करे जैसी कि वह ठीक समझे। केन्द्रीय सरकार उन सिफारिशों पर विचार करेगी और, जैसा मैंने उस दिन कहा था, मुझे आशा है कि एक परिपाटी बन जायेगी कि सरकार को साधारणतया, अर्थात् आपातस्थिति के अतिरिक्त, आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लेना चाहिये। किन्तु यदि आयोग को किसी राजस्व को प्रान्तों तथा केन्द्र के मध्य बांटने के विषय में सिफारिशें करने की अनुमति दे दी जायेगी तो कठिनाई पैदा हो सकती है। भारत सरकार के लिये आयोग की ऐसी सिफारिशें स्वीकार करना शायद संभव न हो और ऐसी हालत में ऐसी परिपाटी की स्थापना, जो मैं चाहता हूं, होने में कठिनाई हो जाये। इसके अतिरिक्त कोई भी आयोग भारत सरकार के उत्तरदायित्व का पूरा मूल्य नहीं आंक सकता। भारत सरकार का उत्तरदायित्व बहुत विषयों में है, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भारत की सुरक्षा है। अतः यह विनिश्चय करना उसी के हाथ में होना चाहिये कि राजस्व का कोई आगम उसके और प्रान्तों के बीच बंटे या नहीं। यदि प्रान्तों को दिये जाने वाले अनुदान काफी हैं, और उन्हें प्रति वर्ष अनुदान मिलते जायें, यदि दूसरे शब्दों में प्रान्तों को बड़े आवर्तक व्ययों में केन्द्र से सहायता मिलती रहे तो, शायद यह वांछनीय दिखाई दे कि केन्द्रीय सरकार, बड़े-बड़े अनुदान देने के स्थान पर प्रान्तों को राजस्व का कोई अंश दे दे। किन्तु, अन्यथा, मैं नहीं समझता कि भारत सरकार के लिए ऐसा करना अभीष्ट होगा। श्रीमान्, इन कारणों से मेरा यह मत है कि अनुच्छेद 254 में डाक्टर अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का खंड (2) हटा दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** मेरे ख्याल में आपका मतलब खंड (3) से है?

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** हां, श्रीमान्, खंड (3) ही है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा अनुच्छेद 254 पर प्रस्तावित संशोधन का खंड (3) ही हटाया जाना चाहिये। उससे

कोई हानि नहीं होगी। यदि राष्ट्रपति किसी समय आयोग की सहायता लेना चाहे तो वह उस मामले को अनुच्छेद 260 के खंड (3) के उप-खंड (ख) के अधीन उसके पास भेज सकता है। उस अनुच्छेद के अंतर्गत, यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 254 का खंड (3) हटा भी दिया जाये तो भी राष्ट्रपति को आयोग से यह पूछने की शक्ति होगी कि राजस्व का कोई विशेष अंग प्रान्तों और केन्द्र के बीच बंटना चाहिये या नहीं, किन्तु मेरे विचार में यह सब प्रकार से अभीष्ट है कि पूर्णत: केन्द्रीय राजस्व के तत्काल या सन्निकट भविष्य में बांटने के प्रश्न पर आयोग को विचार नहीं करना चाहिये, जब तक कि राष्ट्रपति उनसे इस विषय पर उसके विचार न पूछे। यह मामला तो केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच निबट जाना चाहिये। श्रीमान्, इन कारणों से मैं प्रस्ताव करता हूं कि खंड (3) हटा देना चाहिये। यदि आप मुझे उसकी अनुमति देंगे तो मैं इस आशय का प्रस्ताव भी पेश कर दूंगा। किन्तु यदि अब संशोधन रखने का समय ही नहीं रहा है, चाहे वह कितना ही औपचारिक हो तो मैं श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का समर्थन करूंगा जिसमें कहा गया है कि यह मामला संसद् द्वारा निर्धारित होना चाहिये। यदि वह स्वीकृत हो जायेगा तो खंड (3) स्वत: ही हट जायेगा।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मामला है और अभी इस पर वाद-विवाद समाप्त नहीं होना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ मैं पूर्णत: सदन की इच्छा पर चलूंगा। प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न पर मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न उठाना था?

अध्यक्ष: औचित्य प्रश्न इस समय?

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: मैं बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहा था।

*__अध्यक्ष:__ आपको अपना औचित्य प्रश्न पहले उठाना चाहिये था। अब तो औचित्य प्रश्न उठाने का समय जाता रहा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, वाद-विवाद का उत्तर देते हुए, मेरा यह विचार नहीं है कि विविध प्रान्तों के उन सदस्यों द्वारा इस सदन में अलापे गये दु:खद रागों का उत्तर दूं, जो यह अनुभव करते हैं कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अन्तर्गत आदेशित राजस्व-वितरण में उनके साथ बुरा व्यवहार हुआ है। मेरा तो यही विचार है कि कुछ अधिक ठोस बातों का ही उत्तर दूं।

सर्वप्रथम मैं अपने मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन के विषय में एक शब्द कहना चाहता हूं। वे चाहते हैं कि अनुदान, राष्ट्रपति द्वारा नियत न होकर संसद् द्वारा नियत हों। अब, पिछली बार, अन्य वित्तीय अनुच्छेदों पर बहस के समय मैंने कहा था कि वितरण के मामले में संसद् को घसीटने का हमारा विचार नहीं है, क्योंकि हम यह नहीं चाहते कि राजस्व-वितरण विविध प्रान्तों के बीच रस्सा-कसी का मामला बन जाये या विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों के बीच विवाद का विषय बन जाये। हम चाहते हैं कि इस मामले को राष्ट्रपति या वित्त-आयोग की मंत्रणा पर राष्ट्रपति, विनिश्चित कर दे। यही कारण है कि मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं।

फिर मैं अपने मित्र, श्री मैत्र द्वारा उठाये गये विषय को लेता हूं। उनकी पहली युक्ति यह थी कि उन्हें कोई ऐसा कारण दिखाई नहीं देता कि इस समय मस्विदा समिति एक संशोधन लाकर मूल अनुच्छेद को क्यों बदलना चाहती है। मुझे विश्वास है कि वे वित्त सम्बन्धी विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों का निर्देश करना भूल गये। यदि वे उन्हें देखें, तो, मेरे विचार में, वे मुझसे सहमत होंगे कि विशेषज्ञ समिति ने ही यह सिफारिश की थी कि पटसन-शुल्क अथवा पटसन के सामान के शुल्क को वितरित करने की पद्धति को बदल देना चाहिये। अत: यह मस्विदा समिति की इच्छा का प्रश्न नहीं था कि मूल अनुच्छेद में परिवर्तन किया जाये।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** उन्होंने प्रतिकर का भी निर्देश किया है।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं उस पर भी आता हूं। मस्विदा समिति ने केवल यही स्वीकार नहीं किया कि वित्त सम्बन्धी विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाई गई राशियां ही उन प्रान्तों को दी जायें जो कि पटसन के निर्यात-शुल्क में अपना भाग खो बैठेंगे। मस्विदा समिति ने यह अनुभव किया कि शायद विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाये गये आंकड़ों पर और विचार करने की आवश्यकता है। विशेषज्ञ समिति को बहुत कम समय मिला था, यह बात ध्यान में रखते हुए मस्विदा समिति यह निश्चय नहीं कर सकी कि विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाये गये आंकड़ों को वह और गौर किये बिना स्वीकार कर सकती है। इसी आशंका के कारण मस्विदा समिति ने, विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाये गये आंकड़ों को स्वीकार करने के स्थान पर, अपने ही सूत्र को स्वीकार कर जो अब नये अनुच्छेद में दिया गया है, कि पटसन-शुल्क की हानि के प्रतिकार के स्थान पर सहायक अनुदानों को राष्ट्रपति विहित करेगा। अत: मस्विदा समिति की यह इच्छा कदापि नहीं थी कि इस अनुच्छेद विशेष में उल्लिखित चार प्रान्तों से राजस्व का कोई उचित साधन छीन लिया जाये, जिसमें यह कहा जा सकता है कि उनका निहित अधिकार है, और न मस्विदा समिति ने उन आंकड़ों में कोई मुलभूत परिवर्तन ही करने का प्रयत्न किया है, जो कि विशेषज्ञ समिति द्वारा सुझाये गये थे। उन्होंने तो केवल इतना ही किया है कि यह मामला राष्ट्रपति पर छोड़ दिया है।

अब, मेरे मित्र, पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने कहा है कि सदन के समक्ष पेश अनुच्छेद में 'विहित' शब्द की परिभाषा प्रविष्ट करके मस्विदा समिति ने गलती की है। उन्होंने आगे चलकर यह भी कहा कि पिछले एक अनुच्छेद 260 में

भी, जो कि हमने पारित किया है 'विहित' शब्द नहीं होना चाहिये। अब चाहे उनके सुझाव का मूल्य कुछ भी हो पर मुझे 'विहित' शब्द की परिभाषा के बिना काम चलाना कुछ कठिन प्रतीत होता है। हमने अनुच्छेद 254 के मुख्य भाग में कहा है कि सहायक-अनुदान ऐसे होंगे जो कि विहित किये जायेंगे। अब, कोई भी वकील यह जानना चाहेगा कि 'विहित' शब्द का क्या अर्थ है। या तो हमें 'विहित' शब्द की विशेष परिभाषा रखनी होगी तो कि अनुच्छेद 254 के उपबन्धों तक सीमित हो या हमें अनुच्छेद 260 के उन उपबन्धों को बदलना होगा जिनमें 'विहित' शब्द परिभाषित है।

***अध्यक्ष:** शायद आप 251 का निर्देश कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे खेद है। मैं अशुद्ध बोल गया, 251 ही है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मस्विदा समिति ने 'विहित' शब्द की दो परिभाषायें रखने का सुझाव दिया है। 'विहित' की एक परिभाषा का यह अर्थ है कि राष्ट्रपति द्वारा विहित जबकि उसके समक्ष वित्त आयोग का प्रतिवेदन न हो, और 'विहित' शब्द ही दूसरी परिभाषा तब 'विहित' की गई है जबकि राष्ट्रपति के समक्ष वित्त आयोग की सिफारिशें हों। मस्विदा समिति को 'विहित' शब्द की दो भिन्न-भिन्न परिभाषायें देनी पड़ी हैं उसका कारण यह है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रान्त यह चाहते हैं कि पटसन-शुल्क का ही नहीं पर राजस्व के अन्य साधनों का भी जो वितरण संविधान के अन्य अनुच्छेदों के अन्तर्गत उपबन्धित किया गया है वही नहीं रहना चाहिये, क्योंकि उनकी यह शिकायत है कि उन्हें जो अंश दिया जा रहा है वह न पर्याप्त है और न न्यायपूर्ण ही है और उनका पुनरीक्षण अपेक्षित है। स्पष्टत:, यदि वितरण तत्काल नहीं हो सकता जिससे कि वह वितरण संविधान के प्रारम्भ पर ही आरम्भ हो सके, तो स्पष्ट है कि वह वितरण वित्त आयोग की सिफारिशों के बिना राष्ट्रपति द्वारा ही किया जा सकता है, क्योंकि चाहे केन्द्रीय सरकार कितनी ही शीघ्रता क्यों न करे पर संविधान के आरम्भ तक आयोग नियुक्त होकर उसका प्रतिवेदन प्राप्त नहीं हो सकता। परिणामत: हमें 'विहित' शब्द की दोहरी परिभाषा रखनी पड़ी है। सर्वप्रथम राष्ट्रपति वित्त आयोग की सिफारिश के बिना विहित करेगा। हां, इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति मनमानी करेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति अपने मंत्रि-मंडल की मंत्रणा पर ही कार्यवाही करेगा जो कि प्रान्तों के मुकाबले में केन्द्र की स्थिति को सुरक्षित और मजबूत बनाना चाहते हैं। मेरे ख्याल में केन्द्रीय सरकार का यह विचार है और मैं इस मामले को सुस्पष्ट कर देना चाहता हूं कि केन्द्रीय सरकार का एक समिति सी नियुक्त करने का विचार है, जो एक विशेषज्ञ समिति अथवा विशेषज्ञ अधिकारी होगा, हां, वह संविधान के प्रयोजन के लिये आयोग नहीं होगा, जो इस पर विचार करेगा तथा मालूम करेगा कि क्या विद्यमान वितरण, केवल पटसन और पटसन के सामान के शुल्क के वितरण का ही नहीं, वरन् राजस्व के अन्य साधनों की आय के वितरण का भी पुनरीक्षण करने की आवश्यकता है जिससे कि प्रान्त और प्रान्त के बीच तथा केन्द्र और प्रान्तों के बीच न्याय हो सके। परिणामत: जब राष्ट्रपति का पहला आदेश निकलेगा तब, जैसेकि मैंने कहा है, राष्ट्रपति मनमाने

ढंग से अथवा केन्द्र की कार्यपालिका की मन्त्रणा पर ही नहीं चलेगा, वरन् वह किसी स्वतन्त्र व्यक्ति के किसी विशेषज्ञ के अभिप्राय के आधार पर कार्य करेगा। उसके बाद जब आदेश का पुनरीक्षण करने का प्रश्न उठेगा। तब यह प्रश्न उठेगा कि क्या राष्ट्रपति को संसद् की मंत्रणा पर कार्यवाही करनी चाहिये अथवा अपनी ही मंत्रणा पर कार्यवाही करनी चाहिये अथवा उसे वित्त-आयोग की मंत्रणा तथा सिफारिश पर कार्य करना चाहिये जो कि संविधान के अंतर्गत नियुक्त होना है। जैसाकि मैंने कहा है ये तीन भिन्न-भिन्न विकल्प हैं जो हम स्वीकार कर सकते हैं। मैं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र, पंडित कुंजरू ने बिल्कुल सद्भाव से यह सुझाव दिया है कि राष्ट्रपति को स्वतंत्र होकर कार्यवाही करनी चाहिये और वित्त-आयोग की सिफारिशों के अनुसार ही नहीं चलना चाहिये। एक और मत है, जिसके प्रतिनिधि मेरे माननीय मित्र, प्रोफेसर सक्सेना हैं, कि राष्ट्रपति को वित्त-आयोग की सिफारिश पर भी कोई वितरण नहीं करना चाहिये जब तक कि संसद उसकी स्वीकृति न दे दे। जैसाकि मैं कह चुका हूं इन दोनों तरीकों में त्रुटियां है। मैं नहीं समझता कि वितरण के विषय में सिफारिश करने के लिए एक आयोग नियुक्त करने के पश्चात्, राष्ट्रपति के लिये यह उचित होगा कि उस आयोग की सिफारिशों की सर्वथा अवहेलना कर दे, अपनी ही इच्छानुसार चले तथा वितरण कर दे। मेरे विचार में ऐसा करना तो आयोग के प्रति अनादर प्रदर्शित करना होगा। जैसाकि मैं कह चुका हूं, संसद पर इस मामले को छोड़ देने का तीसरा विकल्प मुझे जोखम से भरा हुआ दीखता है, जिसमें प्रान्तीय विवाद, तथा प्रान्तीय ईर्ष्यायें अन्तर्ग्रस्त होंगी। अत: मैं यह कह सकता हूं कि मस्विदा समिति ने मध्यवर्ती मार्ग चुना है, कि यद्यपि इस मामले पर संसद् में वाद-विवाद हो सकता है, पर राष्ट्रपति जो कार्यवाही करे उसमें वह वित्त आयोग की सिफारिशों पर चले और मनमाने ढंग पर नहीं चले। मुझे आशा है कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा। यही तीनों तरीकों का युक्तियुक्त मध्य-मार्ग है और यही इस मामले को निबटाने का सर्वोत्तम उपाय है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि उपर्युक्त संशोधन संख्या 72 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 254 के खंड (1) में 'by the President' इन शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by law' शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 254 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'254. (1) पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के प्रत्येक वर्ष के शुद्ध आगम के किसी भाग को आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और राज्यों को सौंपने के स्थान मे उन राज्यों के राजस्व में सहायक अनुदान के रूप में प्रत्येक वर्ष में भारत की संचित निधि पर ऐसी राशियां भारित की जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति द्वारा विहित की जायें।

पटसन या पटसन से बनी वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के स्थान में अनुदान

(2) पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर जब तक भारत सरकार कोई निर्यात शुल्क उद्गृहीत करती रहे अथवा इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति तक, इन दोनों में से जो भी पहिले हो उसके होने तक, इस प्रकार विहित राशियां भारत की संचित निधि पर भारित बनी रहेंगी।

(3) इस अनुच्छेद में 'विहित' पद या वही अर्थ है जो इस संविधान के अनुच्छेद 251 में है।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 254 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 254 संविधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 254-क

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 254-क को लेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है। श्रीमान्, औचित्य प्रश्न यह है कि संशोधन संख्या 82, जो एक नये अनुच्छेद 254-क को रखने के विषय में है, बिल्कुल नई चीज़ है। हम सदन में पहले विनिश्चय कर चुके है कि संविधान में संशोधन एक निश्चित तारीख तक ही पेश किये जाने चाहिये। हम अपने संशोधन पेश कर चुके हैं। नियमों के अनुसार संविधान में और संशोधन पेश नहीं किये जा सकते। अब केवल वे ही संशोधन पेश हो सकते हैं जो मूल संशोधनों पर संशोधन हों या नियमित संशोधनों पर संशोधन हों। मेरा निवेदन है कि विद्यमान संशोधन किसी संशोधन से संबद्ध नहीं है। मैंने संशोधन-सूची को अच्छी तरह देख लिया है, मूल मुद्रित सूची को भी और दूसरी सूचियों को भी, और इसका किसी संशोधन से भी सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त संशोधन की भाषा ऐसी है कि यह किसी संशोधन से सम्बद्ध नहीं है वरन् एक स्वतंत्र प्रस्ताव है। इसमें लिखा है कि "अनुच्छेद 254 के पश्चात् निम्न रख दिया जाये"। इसमें किसी संशोधन का कोई निर्देश, सम्बन्ध या विषय नहीं दिया गया है, न ऐसा करने की कोशिश ही की गई है। मेरा निवेदन है कि, श्रीमान् यह संशोधन इस प्रकार प्रविष्ट नहीं किया जा सकता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** निस्संदेह मेने माननीय मित्र द्वारा उठाया गया प्रश्न वैध है, पर मेरा निवेदन है कि इस मामले में आपको असीम स्वविवेकाधिकार है कि किसी संशोधन की अनुमति दे दें यदि वह संशोधन महत्वपूर्ण हो।

***अध्यक्ष:** मेरे ख्याल में पिछले मौकों पर भी हमने नये संशोधनों को प्रविष्ट करने की अनुमति दी है और यह नया अनुच्छेद है जिसे अनुच्छेद 254 के पश्चात् प्रविष्ट करना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जब आपने मस्विदा समिति को काम करने की अनुमति दी है तो उसका कर्तव्य है कि लगातार संविधान के मस्विदे पर गौर करती रहे और यदि वे देखें कि कोई कमी रह गई है, तो, समिति का अस्तित्व है, इसी कारण उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि उस कमी को पूरा करने के लिए कदम उठाये। विद्यमान संशोधन उसी आवश्यकता के कारण पेश किया गया है।

***अध्यक्ष:** पिछले मौकों पर मैंने नये अनुच्छेदों को पेश करने की अनुमति दी है, और यह एक नया अनुच्छेद है जो अनुच्छेद 254 के पश्चात् रखा जाना है, और मैं इसकी अनुमति देता हूं। डॉ. अम्बेडकर, आप संशोधन को पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 254 के पश्चात्, निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

'254-क. (1) कोई विधेयक या संशोधन, जो, जिस कर या शुल्क में राज्यों का हित सम्बद्ध है, उसको आरोपित या परिवर्तित करता है, अथवा जो भारत आयकर से सम्बद्ध अधिनियमितियों के प्रयोजनों के लिये परिभाषित 'कृषि आय' पदावलि के अर्थ को परिवर्तित करता है, अथवा जो उन सिद्धान्तों का प्रभावित करता जिनसे कि इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबन्धों में से किसी के अधीन राज्यों को धन वितरणीय हैं या हो सकेंगे, अथवा जो संघ के प्रयोजन के लिये ऐसा कोई अधिभार आरोपित करता है जैसा कि इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबन्धों में वर्णित है, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद् के किसी सदन में न तो पुर:स्थापित और न प्रस्तावित किया जायेगा।

राज्यों के हितों से सम्बद्ध करों पर प्रभाव डालने वाले विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश की अपेक्षा

(2) इन अनुच्छेदों में 'जिस कर या शुल्क में राज्यों का हित सम्बद्ध है' पदावलि से अभिप्रेत है:

(क) कोई कर या शुल्क जिसका शुद्ध आगम पूर्णत: या अंशत: किसी राज्य को सौंप दिया जाता है, अथवा

(ख) कोई कर या शुल्क जिसके शुद्ध आगम के निर्देश से भारत संचित निधि में से तत्समय किसी राज्य को राशियां दी जानी हैं।' "

श्रीमान्, मैं एक या दो कारणों का उल्लेख कर देना चाहता हूं, जिनसे कि हमने अंत समय में यह अनुभव किया कि यह नवीन अनुच्छेद संविधान में प्रविष्ट कर देना चाहिये। ऐसा ही एक उपबन्ध भारत शासन अधिनियम में है। मस्विदा समिति ने इस मामले पर विचार किया। उन्होंने इस अनुच्छेद को नये संविधान में रखना या स्थानान्तरित करना आवश्यक नहीं समझा। पर जब मुख्य मंत्रियों का

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

सम्मेलन हुआ था तब यह सुझाव दिया गया था कि ऐसा अनुच्छेद लाभदायक रहेगा और शायद आवश्यक ही है, क्योंकि एक बार संसद् प्रान्तों और राज्यों में धन-वितरण कर दे तो फिर किसी गैर-सरकारी सदस्य को यह अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह एक विधेयक पेश करके ऐसे मामलों में गड़बड़ या परिवर्तन कर दे जिनमें कि प्रान्त का हित सम्बद्ध हो। इसी कारण मस्विदा समिति ने अब यह संशोधन रखा है जिससे कि प्रान्तों को यह आश्वासन दे दिया जाये कि वितरण के विषय में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा जब तक कि ऐसे विधेयक की राष्ट्रपति सिफारिश न कर दे।

*__अध्यक्षः__ इस अनुच्छेद पर कोई संशोधन नहीं है। यदि कोई सदस्य बोलना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ अध्यक्ष महोदय, मैंने जो पारिभाषिक आपत्ति उठाई थी, उसके अतिरिक्त मेरी एक और आपत्ति है, कि यह भी प्रांतीय क्षेत्र को छीनने की कोशिश का एक और उदाहरण है। मैं इस अनुच्छेद का केवल एक और उदाहरण देना चाहता हूं यह अनुच्छेद संसद् को अप्रत्यक्ष रूप से यह शक्ति देता है कि वह 'कृषि आय' पदावलि की परिभाषा भी बदल सकती है। मेरे ख्याल में यह सुविख्यात है कि कृषि और कृषि-आय प्रान्तीय विषय हैं। यह बहुत समय से, 1935 के अधिनियम से, यह प्रान्तीय विषय है। यह तो विद्यमान संविधान के मस्विदे की योजना भी है कि कृषि आय और कृषि विषय प्रान्तीय विषय है। फिर, अनुच्छेद 303 खंड (1), उपखंड (क) को लेते हैं तो "कृषि-आय का अर्थ है भारतीय आय-कर से सम्बद्ध अधिनियमितियों के प्रयोजनों के लिये परिभाषित कृषि-आय"। यही परिभाषा भारत शासन अधिनियम 1935 में भी स्वीकृत हुई थी। आय-कर अधिनियम में दी हुई कृषि-आय की परिभाषा को आधार माना गया था। उससे केन्द्र और प्रान्तों की सीमा का पता लगता था। भारत शासन अधिनियम में वास्तव में भारतीय आय-कर अधिनियम की इस परिभाषा को ले लिया गया है और इसे सदा के लिये स्पष्ट कर दिया है जहां तक कि संविधान का सम्बन्ध है कि आय-कर का क्या आशय है। यदि हम अब आय-कर का मतलब बदलना चाहें तो परिणाम यह होगा कि कृषि-आय जो प्रान्तीय मामला है और प्रान्तीय विषय है वह बहुत कम हो जायेगा। संसद् परिभाषा को आसानी से बदल सकती है और आसानी से कह सकती है "कृषि आय वह आय है जो कृषि से नहीं होती"। संसद् को ऐसा करने से कोई रोक नहीं सकता है। संविधान के मस्विदे के विद्यमान उपबन्धों से संसद् ऐसा नहीं कर सकती थी। यह नया अनुच्छेद इसे सुधार कर परिवर्तन करना चाहता है। अब कृषि आय का अर्थ कुछ भी हो सकता है और शायद कुछ भी न हो। इसका अर्थ वही होगा जो कि संसद् चाहे। यह एक और तरीका है, एक और उदाहरण है कि हम प्रान्तों के अधिकारों को कैसे कम कर रहे हैं। मैं इस प्रयत्न के हानिकारक परिणामों की पहले ही चर्चा कर चुका हूं। हम पिछले अनुच्छेद में यह रुख देख ही चुके हैं और हम पटसन-कर तथा अन्य करों को कम कर ही चुके हैं। वास्तव में अनुच्छेद के मूल मस्विदे के अधीन पटसन-शुल्क सब प्रान्तों को, जिनमें कि पटसन उगती है, अनुपात से दिया जाता। पर अब सारी बात ही बदल गई है; यह दूसरा

परिवर्तन है। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि यदि हम विद्यमान अनुच्छेद को पारित कर दें, जिसमें संसद् का यह अधिकार भी निहित हो कि वह 'कृषि-आय' इस पदावली का अर्थ बदल सकती है और उसका रूपभेद कर सकती है, तो हम कृषि-आय की परिभाषा बदलने के लिए आपकी अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य हो जायेंगे। यदि आप संसद् के हाथ में सब शक्ति एकत्र करने का काम अवैज्ञानिक ढंग से, आक्रमणात्मक ढंग से आरम्भ करेंगे, तो इस प्रयत्न का कोई अन्त नहीं होगा। मैं इन सब अनुच्छेदों में सब स्थानों पर यही प्रयत्न देखता हूं।

मैं जानता हूं कि मेरी सारी युक्तियों का परिणाम बिल्कुल कुछ नहीं होगा; अत: मैं केवल अपना सविनय विरोध प्रदर्शित कर देता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद का यह भावार्थ है कि जिन करों के विषय में राज्यों का हित सम्बद्ध है उन्हें संसद् में पेश करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्वसम्मति अपेक्षित है।

मैं इस उपबन्ध का उस आधार पर विरोध नहीं करना चाहता जिस आधार पर मेरे पूर्व वक्ता माननीय सदस्य ने इसका विरोध किया है। किन्तु मैं उस सिद्धान्त को चुनौती देना चाहता हूं जिस पर यह आधारित है। वास्तव में अनुच्छेद 97 में, जो कि हमने पारित किया है, संसद के सदस्यों की शक्ति धन विधेयकों या उनके संशोधनों के विषय में निर्बन्धित कर दी गई है। मेरे समझ में नहीं आता कि इस अनुच्छेद द्वारा संसद् में सदस्यों की ऐसे विधेयक पेश करने की शक्ति को निर्बन्धित क्यों किया जाये जो कि ऐसे करारोपण के सम्बन्ध में है जिसमें कि राज्यों का हित सम्बद्ध है।

संसद् के सदस्यों को ऐसे विधेयक स्वयं ही पेश करने की, जिनसे ऐसे करों पर प्रभाव पड़ता हो जिनमें राज्यों का हित सम्बद्ध हो, जो अनुमति नहीं दी जा रही है, वह संसद् सदस्यों के जन्माधिकार का उल्लंघन है। उन्हें ऐसे विधेयक पेश करने की अनुमति क्यों न दी जाये, जिनमें उनके राज्यों का हित सम्बद्ध है? यदि संसद् का बहुमत उसके विरुद्ध होगा तो वह विधेयक गिर जायेगा, पर सदस्यों को ऐसा विधेयक पेश करने से निर्बन्धित क्यों किया जाये? किन्तु यदि कोई सदस्य यह अनुभव करे कि एक विशेष कर-पद्धति से उसके प्रान्त पर प्रभाव पड़ता है अथवा वह उचित या न्यायपूर्ण नहीं है, तो उसे पूरा अधिकार होना चाहिये कि वह उस दृष्टिकोण को संसद् के समक्ष पेश कर सके। हो सकता है कि वह ऐसे दल का सदस्य हो जो कि विरोधी पक्ष हो और सरकार वह विधेयक पेश न करे? अत: मैं समझता हूं कि यह अनुच्छेद संसद् के सदस्यों के जन्माधिकार का उल्लंघन है और मैं इसे रखने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यदि यह पारित हो जाये तो इसका यह अर्थ होगा कि कोई सदस्य अपने प्रान्त के लाभार्थ कोई विधान विधेयक के रूप में पेश नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करे जो उसके प्रान्त पर बुरा प्रभाव डालता हो तो वह उसका निरसन नहीं करवा सकता। उसे वह राष्ट्रपति के समक्ष पेश करना होगा तथा उसका यह अर्थ होगा कि कार्यपालिका की इच्छा है कि उसे पेश करने दे या न करने दे। यह संसद्

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

के सदस्यों के अधिकारों पर बड़ी भारी सीमा है और इसे स्वीकार नहीं करना चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या आप बोलना चाहते हैं, डॉ. अम्बेडकर?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे ख्याल में कोई उत्तर आवश्यक नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि नया अनुच्छेद 254-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 254-क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 255

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 255 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 83 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 255 में, 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर जहां भी वे हों, 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 255 के प्रथम उपबन्ध में, 'for the time being specified in Part I of the First Schedule' ये शब्द हटा दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 255 के दूसरे उपबन्ध के खंड (क) में, 'three years' इन शब्दों के स्थान पर 'two years' ये शब्द रख दिये जायें।"

पहले दो संशोधन बिल्कुल औपचारिक हैं......

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है। संख्या 86 बिल्कुल नया है और किसी से सम्बद्ध नहीं है। यह औपचारिक बात नहीं है। यह एक गम्भीर मामला है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यही तो मैं समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यह किसी संशोधन का संशोधन नहीं है। यह तो संविधान में ही संशोधन है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने इसे सभापति की अनुमति से पेश किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं चाहता था कि डॉ. अम्बेडकर इसे पेश करने के लिये सभापति की अनुमति लेने के लिए बाध्य हों।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैंने उनकी अनुमति ले ली है। इसे पेश करने से पहले या बाद में कभी भी अध्यक्ष इसकी अनुमति दे सकते हैं।

यह मामला अनुदानों के विषय में है और मूल अनुच्छेद में भी यही उपबन्ध है कि आसाम को तीन वर्ष की औसत राशि दी जाये। हमें यह बताया गया कि यदि तीन वर्ष की औसत ली गई तो आसाम सरकार को बहुत कम मिलेगा क्योंकि पहले वर्ष में उन्होंने कुछ भी व्यय नहीं किया, पर यदि दो वर्षों की औसत ली जाये तो उन्हें अधिक मिलेगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिये ही मस्विदा-समिति ने 'तीन वर्ष' के स्थान में 'दो वर्ष' ये शब्द रख दिये हैं।

(संशोधन संख्या 87 पेश नहीं किया गया।)

***सैयद मुहम्मद सादुल्ला** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जहां तक वित्तीय उपबन्धों का सम्बन्ध है, संविधान के मस्विदे के पिछले अनुच्छेदों के पारित होने से प्रान्तों की सब आशाओं और आकांक्षाओं पर पानी फिर गया है, केवल निर्धन प्रान्तों की ही नहीं, वरन् धनी प्रान्तों की भी आशाओं पर। मैं यह बात उस ज्ञापनों को पढ़ने के पश्चात् कह रहा हूं जो वित्तीय विशेषज्ञ समिति को पेश किये गये थे जिसके अध्यक्ष श्री एन.आर. सरकार थे, जो आजकल बंगाल के कार्यवाहक मुख्यमंत्री हैं। यदि कोई उस ग्रन्थ को देखने की चिन्ता करता, जो कि सभा कार्यालय ने दिया था, तो वे देखते कि प्रत्येक प्रान्त, चाहे उसकी आय तीन करोड़ हो, चाहे 50 करोड़ हो, आय-कर के विभाजनीय कोष का पुनरीक्षण चाहता था। वे चाहते थे कि निगम-कर को आय-कर के विभाजनीय कोष में समाविष्ट कर लिया जाये। उन्होंने सिफारिश की है कि किसी प्रान्त विशेष में उत्पन्न सब वस्तुओं पर उत्पादन कर तथा सब निर्यात-शुल्क भी विभाजनीय कोष में मिला देने चाहियें। आसाम के प्रतिनिधि सदन के समक्ष जो दु:ख कथा—डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में—पेश करते रहे हैं वह कोई नई बात नहीं है, जैसाकि मैं उन ज्ञापनों से निर्देश देकर बताऊंगा। भारत अधिराज्य का सबसे धनी प्रान्त भी—मेरा मतलब मद्रास से है—ये सब बातें चाहता था जो आसाम के प्रतिनिधि केन्द्र से मांगते थे।

श्रीमान्, मैं मस्विदा-समिति के सदस्य के रूप में नहीं बोल रहा हूं, वरन् आसाम के अत्यन्त दु:खी प्रान्त के प्रतिनिधि के रूप में बोल रहा हूं। मैं उन माननीय सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं, जो कि गत शुक्रवार को बोले थे, अर्थात पंडित हृदयनाथ कुंजरू, श्री बी. दास. तथा प्रोफेसर सक्सेना के प्रति जिन्होंने कि केन्द्र से आसाम को न्यायपूर्ण भाग दिलाने के दावे का समर्थन करने की कृपा की थी। यदि मेरे माननीय मित्र मेरी बात को सुनेंगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि वे हमारे लिये वैसी ही सहानुभूति तथा समर्थन प्रदर्शित करेंगे—और जो कुछ मैं कहूंगा मैं संविधान सभा द्वारा दिये गये लेख्यों से उद्धरण देकर कहूंगा। यह एक सुखद संयोग है कि संविधान-सभा ने कल प्रत्येक सदस्य को दो पुस्तिकायें दी हैं पर जो राष्ट्र विभाग की ओर से निकली हैं और जिनमें आसाम के अपवर्जित

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

तथा अंशत: अपवर्जित भागों तथा उत्तर-पूर्वी सीमावर्ती आदिमजातीय तथा अपवर्जित क्षेत्रों का विशद वर्णन है। क्योंकि समय इतना कम है, मैं नहीं समझता कि माननीय सदस्यों को इन पुस्तिकाओं को पढ़ने का समय मिला होगा, या क्या मैं कह सकता हूं, इच्छा हुई होगी। अत: मैं आपको आसाम की स्थिति का शब्द चित्र दूंगा, केवल उसकी धरातल-रचना तथा भौगोलिक स्थिति का ही नहीं वरन् उसकी आर्थिक, राजनैतिक तथा वित्तीय स्थिति का भी।

आसाम की धरातल-रचना को मैं सदा निर्धन की कुटिया के समान बताया करता हूं यह चोटी पर पहाड़ी के समान है जिसके दोनों और दो ढलान वाली छतें हैं। हमारी पश्चिमी सीमा से, अर्थात् पूर्वी पाकिस्तान में मैमनसिंह जिले से, आसाम में पूर्व की ओर एक ऊंची पहाडियों की शृंखला ठीक उस स्थान तक जाती है जहां तिब्बत, चीन और बर्मा की शृंखलायें मिलती हैं। यह पर्वत शृंखला प्रान्त को दो घाटियों में विभाजित करती है जिनके नाम इस पुस्तिका में ये लिखे हैं—उत्तर की ओर ब्रह्मपुत्र घाटी तथा दक्षिण की ओर सूरमा घाटी। सिलहट जिले के विभाजन के समय से, जिसके कुछ अंश पूर्वी पाकिस्तान में चले गये है, उस घाटी को बरक घाटी कहना चाहिये क्योंकि जो नदी इस क्षेत्र के दो भाग करती है उसे बरक कहते हैं। अब एक ओर महान् ब्रह्मपुत्र द्वारा तथा दूसरी ओर छोटी सी बरक नदी द्वारा इस घाटी के विभाजन से आसाम प्रान्त के लिये समस्यायें पैदा हो गई हैं तथा उसके बढ़े हुए खर्च तथा कष्टों को उसने और भी बढ़ा दिया है। यदि हमें ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर कोई लाभदायक कार्य करना हो, जैसे बड़ी सड़क बनानी हो तो दक्षिणी तट पर भी एक बड़ी सड़क होनी चाहिये जिससे दक्षिणी तट के निवासियों को सुविधा हो। ऐसी ही हालत दूसरी घाटी में है। इसके अतिरिक्त, आपके मिलये तथा आसाम के मेरे मित्र लोगों के लिये भी यह नई बात होगी, जो आसाम के प्रतिनिधि हैं और जिन्होंने यह कहा था कि विभाजन के पश्चात् आसाम का क्षेत्रफल केवल 50,000 वर्ग मील है, उन लोगों के लिए भी यह नई बात होगी, पर मैं कहता हूं कि परराष्ट्र विभाग द्वारा निकाली गई इस पुस्तिका का पहला ही वाक्य इस प्रकार है–"आसाम और उससे सम्बद्ध क्षेत्रों का क्षेत्रफल लगभग 1,00,000 वर्ग मील है"। जब आप इस विस्तृत क्षेत्र का विचार करें, जिसकी जनसंख्या केवल 73 लाख है, तो आपको पता लगेगा कि गहन जनसंख्या वाले प्रान्तों की अपेक्षा प्रत्येक प्रशासनीय प्रयोजन के लिये, दंडाधीश के न्यायालय से लेकर थाने तक के विषय में, हमारा प्रशासन अधिक खर्चीला होगा ही। मैं आपके समक्ष एक तथ्य, आसाम के वित्त मंत्री के प्राधिकार से पेश कर सकता हूं, जिन्होंने गत मार्च में आसाम में विधान-सभा में अपने आय-व्ययक की प्राक्कलनें पेश करते समय कहा था कि हमारे कुछ राजस्व का 72 प्रतिशत वेतनों के भुगतान में चला जाता है। यदि प्रान्तीय राजस्व का इतना बड़ा भाग लगभग तीन-चौथाई सार्वजनिक सेवकों के वेतनों पर खर्च हो जाता है, तो क्या आश्चर्य है कि विकास के लिये या किसी अन्य सामाजिक सेवा के लिए बहुत कम बचता है। कोई आश्चर्य नहीं है, श्रीमान् कि आसाम उन सब सुविधाओं की व्यवस्था करने में इतना पिछड़ा हुआ है जो कि कुशल और पूर्णत: स्वायत सरकार में होती है। इस समय आसाम भारत अधिराज्य का निर्धनतम प्रान्त

है, साधनों में निर्धन नहीं, संख्या में निर्धन है, वित्तीय स्थिति में निर्धन है और अपनी जनता की आर्थिक हालत के विषय में निर्धन है। पर यह निर्धनता मनुष्य-निर्मित विधियों के कारण तथा केन्द्रीय सरकार के अन्याय के कारण उस पर थोपी गई है। 1911 के मिन्टो-मोरले सुधारों के कार्यकाल में भारत की वित्तीय स्थिति ऐसी थी कि केन्द्रीय सरकार एकात्मक सरकार के रूप में कृत्य करती थी और भारत के सब राजस्वों का खर्च करती थी। प्रान्तों को जो कुछ आवश्यकता थी वह केन्द्र से मिल जाता था। वह कुछ सहनीय था, यद्यपि निर्बल आसाम तत्कालीन सरकार पर कभी यह प्रभाव नहीं डाल सका था कि उसकी सामाजिक सुविधाओं और सेवाओं को बढ़ाने के लिये कुछ और मिलना चाहिये। तब मौनटेग-चेम्सफोर्ड सुधारों के कार्यकाल में आसाम के निर्धन प्रान्त के साथ सर्वाधिक अन्याय किया गया। प्रत्येक को स्मरण होगा कि उस सुधार-योजना में, वित्तीय व्यवस्था यह थी कि राजस्व के कुछ शीर्षक प्रान्तों को दे दिये जाते थे और शेष अन्य केन्द्र को; और लार्ड मेस्टन ने, विचित्र गणित द्वारा, या तो आसाम की हालत को ठीक न समझने के कारण या आसाम के प्रतिनिधियों द्वारा उनके समक्ष आसाम का मामला पेश करने में लापरवाही करने के कारण यह हिसाब लगाया कि आसाम कमी वाला प्रान्त तो था ही नहीं वरन् ऐसा लाभ वाला प्रान्त था कि वह केन्द्र को प्रति वर्ष पन्द्रह लाख दे सकता था। किन्तु पता लगा कि ये सब बिल्कुल गलत था और तथ्यों से असम्बद्ध था। आसाम को 25 लाख रुपये प्रति वर्ष तक का घाटा रहता था, पर फिर भी आसाम को 16 लाख रुपये देने पड़ते थे, जिससे उनका घाटा प्रति वर्ष बढ़ता जाता था, आखिर 1927 में आसाम परिषद् के आन्दोलन के परिणामस्वरूप आसाम का यह भार हटा दिया गया था।

अब मैं साइमन सुधार योजना पर आता हूं जबकि आसाम ने अपना ज्ञापन तैयार करके आयोग के समक्ष पेश किया था—उसे मैंने ही तैयार किया था क्योंकि मैं उस समय आसाम सरकार का वित्त सदस्य था। हम अकाटय आंकड़ों द्वारा यह सिद्ध करने के लिए तैयार थे कि आसाम की वह स्थिति नहीं हो सकती कि वह बड़े प्रान्तों की तरह चलाया जा सके—उन संस्थाओं को बढ़ाने की तो बात ही छोड़िये जो प्रत्येक स्वशासित प्रान्त में होनी चाहिये। साइमन आयोग के साथ जो संघीय वित्त-समिति लार्ड यूस्टेस परसी के सभापतित्व में बैठी थी उसे अपने प्रतिवेदन में यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा था कि आसाम को उसका आयव्ययक संतुलित करने के लिए 67 लाख रुपये की सहायता मिलनी चाहिये। इस लेख्य पर संयुक्त संसदीय समिति तथा गोलमेज सम्मेलन के समय इंगलिस्तान में एक और समिति ने विचार किया, जिसके अध्यक्ष लार्ड पील थे। उस समिति को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि कुछ प्रान्त—और उन्होंने ये शब्द प्रयोग किये "विशेषत: आसाम तथा उड़ीसा" बड़े प्रान्तों के रूप में काम नहीं चला सकते जब तक कि उन्हें कुछ समय के लिए सारवान सहायता न दी जाये। इन असंदिग्ध क्षेत्रों की सिफारिशों के रहते हुए, मैं नहीं कह सकता कि किस गणित कला के द्वारा, सर ओटो नीमियर इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि आसाम को 30 लाख रुपये की सहायता पाकर पूर्णत: संतुष्ट हो जाना चाहिये। यह सबसे निर्दयतापूर्ण मजाक है जो आसाम जैसे निर्धन प्रान्त के साथ किया जा सकता था,

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

क्योंकि आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आसाम केन्द्र के कोष में प्रति वर्ष 10 करोड़ रुपये देता है और हमें वार्षिक सहायता के रूप में 30 लाख रुपये की छोटी सी रकम मिलती है।

मैं अभी आकड़े देता हूं। यदि आसाम के सदस्यों को दु:खालाप अलापना पड़ा है तो उसका यह कारण है कि इन मनुष्य-निर्मित कार्यो से ही आसाम निर्धनतम स्थिति में है, उसमें स्वशासन की कम से कम संस्थायें हैं। किन्तु आसाम में प्राकृतिक साधनों की कमी नहीं है। यदि आसाम को अपने रास्ते पर चलने दिया जाये तो वह भारत के सब प्रान्तों में सबसे आगे होता। धन की कमी होने पर भी आसाम भारत भर में साक्षरता के मामले में चौथा है। इससे पता चलता है कि हम अपेक्षाकृत धनी प्रान्तों के अनुपात से अधिक शिक्षा पर व्यय करते रहे हैं। इसी प्रकार हम सड़क संचार के विषय में तीसरे हैं। कोई भी वर्ष के किसी भाग में आसाम के एक कोने से दूसरे तक मोटर द्वारा जा सकता है, यद्यपि वहां वर्षा अत्यधिक होती है। यह बात बहुत कम प्रान्तों में है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): क्या सीमांत प्रदेश में संचार का विकास हो गया है?

सैयद मुहम्मद सादुल्ला: हां, वहां पक्की सड़कें नहीं हैं पर सीमान्त के भीतरी भाग तक भी शीतकालीन मार्ग हैं। मैं स्वयं सदियों से, जो हमारा पूर्वी सीमान्त है, मोटर द्वारा निजामघाट तक पचीस मील गया हूं, जो कि बिल्कुल भीतरी भाग है, और दूसरी ओर पासीघाट नामक एक उपविभाग पचास मील पर है जहां आप मोटर द्वारा जा सकते हैं।

यदि हम अपने साधनों का प्रयोग कर सकते तो हम आसाम को भारत के प्रान्तों में सबसे आगे लाकर खड़ा कर देते। कौन से साधन? पेट्रोलियम और मिट्टी के तेल को लीजिये। आसाम ही एक प्रान्त है जो भारत अधिराज्य में उस मूल्यवान वस्तु को पैदा करता है। धरती माता के गर्भ में से जो करोड़ों रुपये का कच्चा तेल निकलता है उससे हमें केवल 5 लाख प्राप्त होते हैं, जबकि केन्द्रीय सरकार निर्मित वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क के रूप में लगभग 2 करोड़ रुपये प्रति वर्ष 20 वर्ष से या अधिक समय से प्राप्त कर रही है। हमने इसका भाग प्राप्त करने का यथाशक्य अधिकतम प्रयत्न किया। केन्द्रीय सरकार हठ करती रही और उस उत्पादन-शुल्क में से हमें एक पैसा भी नहीं मिला, यद्यपि यदि मुझे ठीक याद है तो—मैंने इस विषय पर 1929 में विचार किया है और पूरे बीस वर्ष हो गये—आस्ट्रेलिया अधिराज्य की ओर से प्रिवी परिषद में एक मामला था जिसमें यही प्रश्न उठा था और प्रिवी परिषद् ने विनिश्चय किया कि ऐसे उत्पादन शुल्क की आय राज्य को जानी चाहिये और इसका समुचित कारण है। आप कच्चे तेल से जितना पेट्रोल बनाते हैं उतना ही आप प्रान्त के प्राकृतिक साधनों और प्राकृतिक वैभव का ह्रास कर रहे हैं। यह उत्पादन कर पूंजी पर कर के समान है।

दूसरी बात, यह उद्योग बहुत लम्बे समय से साम्यवादी आंदोलन का लक्ष्य रहा है। कुछ माननीय सदस्यों को शायद अब भी स्मरण हो कि आसाम सरकार

को 1938 में बल-प्रयोग करना पड़ा था और डिगबोई में गोली चलानी पड़ी थी, जहां पेट्रोल उद्योग का केन्द्र है, जब कुछ लोग मारे गये थे। उस घटना के विषय में ऐसा आंदोलन हुआ कि तत्कालीन सरकार को—जो कांग्रेस सरकार थी, मेरी सरकार नहीं थी—बंगाल उच्च न्यायालय के निवत मुख्य न्यायाधिपति स्वर्गीय सर मन्मथनाथ मुखर्जी जैसे महान व्यक्ति की सेवाओं को प्राप्त करना पड़ा जिससे कि वे साक्ष्य लेकर पता लगायें कि गोलीकांड उचित था या नहीं। पेट्रोल के उत्पादन की रक्षा तो हर हालत में करनी ही है, जो कि इस सभ्यता के काल में ऐसी आवश्यक वस्तु है और जिससे केन्द्रीय कोष में एक बड़ी रकम राजस्व के रूप में आती है। और कोई आश्चर्य नहीं है कि आपने गत शुक्रवार को आसाम के माननीय मुख्य मंत्री से सुना है कि वे 1946 में सत्तारूढ़ हुए तब से उन्हें आरक्षी-बल को दुगना करना पड़ा। यदि आसाम सरकार अपनी थोड़ी सी आय को खर्च करके तेल-क्षेत्र की रक्षा न करे तो केन्द्र सरकार का क्या होगा? यदि कोई और बात न हो तो भी कम से कम इसी कारण आसाम उत्पादन-कर में अंश मांग सकता है कि हम उस राजस्व-साधन की रक्षा कर रहे हैं जिसका उपभोग केन्द्र करता है।

अब मैं पटसन को लेता हूं। श्रीमान्, संयुक्त संसदीय समिति में बंगाल के प्रतिनिधियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप तत्कालीन सरकार इस सिद्धान्त को मानने के लिए बाध्य हो गई थी कि पटसन का उत्पादन करने वाले प्रान्तों को पटसन के निर्यात-शुल्क का भाग मिलना चाहिये। उस वर्ष—1934 में—यह समझा जाता था कि आसाम संसार भर के पटसन का 5 प्रतिशत उगाता है और उसी आधार पर उसे औसतन प्रति वर्ष 14 लाख रुपये मिलते थे। किन्तु स्वतंत्रता की घोषणा के समय से, जबकि बंगाल का बड़े से बड़ा पटसन-क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान के पल्ले पड़ गया, तब से संसार के पटसन के उत्पादकों में आसाम का स्थान बहुत ऊंचा हो गया। आसाम, जिसमें बहुत सी बेकार भूमि पड़ी है, प्रति वर्ष अपना पटसन-उत्पादन बढ़ा रहा है। और, यदि मुझे ठीक याद है तो अब आसाम भारत अधिराज्य के अधिकतम पटसन उत्पादक क्षेत्रों में बिहार से दूसरा है। प्रतिशत भाग का हिसाब ठीक करने से उस राशि पर आवश्यक प्रभाव पड़ा था जो आसाम को पटसन-निर्यात-शुल्क के रूप में मिली।

हमें शुक्रवार को आसाम के प्रधान मंत्री ने बताया कि हाल ही में (अर्थात् 1947-48 में) 14 लाख से बढ़कर आसाम का भाग 40 लाख हो गया था। किन्तु एक बंगाली कहावत है कि 'यदि दाता देना भी चाहे तो विधाता बीच में आकर उसे रोक देता है'। इसी प्रकार जब रोटी का ग्रास हमारे मुंह तक पहुंचा कि विद्यमान राष्ट्रीय भारत-सरकार ने उसे छीन लिया। जबकि पहले अंग्रेजी शासन में प्रान्तों को दिया हुआ प्रतिशत भाग 62½ प्रतिशत था, विद्यमान सरकार ने लेखनी के एक शब्द द्वारा उसे गत वर्ष घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया। अब बंगाल के माननीय प्रतिनिधि ने कहा है कि पटसन एक ऐसी वस्तु है जिससे भारत के लिये अत्यावश्यक डालर विनिमय प्राप्त होता है। अब प्रान्तों को क्या प्रोत्साहन होगा कि वे अपने पटसन क्षेत्र को बढ़ायें अथवा पटसन की अधिक गांठे उगायें, यदि उन्हें इससे कुछ भी न मिले? अनुच्छेद 254 जो कि हमने अभी पारित किया है केवल एक रोटी का टुकड़ा ही है। यह कहना है कि दस वर्ष के लिये या उससे भी

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

पहले यदि सरकार पटसन निर्यात-शुल्क को समाप्त कर देना ठीक समझे तो इन चार प्रान्तों को एक-एक ग्रास मिल जायेगा। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कि यदि प्रान्तों को अकेले छोड़ दिया जाता तो वे पटसन-उत्पादकों से कुछ अवश्य वसूल कर लेते। विगत में आसाम बहुत देशभक्त था और जब चाय पर निर्यात शुल्क या उत्पादन शुल्क नहीं लगाया गया था तब आसाम सरकार ने चाय उद्योग से प्रार्थना की थी कि वे स्वेच्छा से कर दिया करें और उस उद्योग ने बिना विरोध के स्वेच्छा से कृषि-कृत क्षेत्र पर प्रति एकड़ आठ आने का कर देकर एक सड़क-कोष बनाया और वह पद्धति 1927 से 1937 तक चलती रही।

अब मैं चाय को लेता हूं। जिन लोगों को चाय-उद्योग का पता नहीं है वे अनुमान नहीं लगा सकते कि आसाम ने विगत में कितना त्याग किया है, जो त्याग अब भी जारी है। आसाम का चाय उद्योग सौ वर्ष पुराना है और विदेशी पूंजी को आकृष्ट करने के लिए तथा जंगली जानवरों से भरे मलेरिया वाले जंगलों को साफ करने के लिए तत्कालीन आसाम सरकार को बस्तियां बसाने के लिये आसान शर्तें रखनी पड़ी। पहले के अनुदान करों से मुक्त थे अर्थात उन्हें आसाम सरकार को कोई लगान नहीं देना पड़ता। फिर 99 वर्ष का पट्टा दिया गया जिसमें सरकार ने लगान के रूप में प्रति एकड़ 4½ आने के लगभग की बहुत कम दर रखी, जबकि साधारण कृषक को लगभग 4 रुपये प्रति एकड़ देना होता है। अत: आसाम में चाय उद्योग को अत्यन्त स्थायी तथा दृढ़ बनाने के लिए आसाम सरकार ने लगान के रूप में असंख्य राशि का बलिदान किया। और अब जबकि केन्द्रीय सरकार बीच में आ गई है और भारत में आंतरिक प्रयोग के लिए बिकने वाली चाय पर 3 आना प्रति पाउंड उत्पादन कर तथा भारत के बाहर जाने वाली चाय पर 4 आना प्रति पाउंड निर्यात शुल्क लगाना आरम्भ कर दिया है, तब आसाम को उस राशि में से एक आना भी नहीं मिलता जो कि केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होती है। औसतन आसाम प्रति वर्ष 35 करोड़ पाउंड चाय पैदा करता है। इसमें से तीन चौथाई भाग, भारतीय चाय नियंत्रण अधिनियम के अधीन बाहर भेजा जाता है, जिससे केन्द्रीय कोष में चार आने प्रति पाउंड शुल्क आता है। शेष एक चौथाई अंश आंतरिक मंडी में बिकता है और उससे तीन आने प्रति पाउंड मिलते हैं। अब 35 करोड़ पाउंड में से, जो ब्रिटेन की वार्षिक आवश्यकताओं के सन्निकट है, लगभग 30 करोड़ पाउंड वहां आसाम से ही जाता है। इससे केन्द्रीय सरकार को अत्यावश्यक स्टर्लिंग पूंजी प्राप्त होती है। अब औसत से प्रत्येक चाय बगान में एक हजार से दो हजार तक मजदूर होते हैं। साम्यवादी एजेन्ट उन्हें उनके उचित कर्तव्य से बहका कर हटा रहे हैं और उन्हें विद्रोह करने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मान लीजिये आसाम सरकार यह सोचे की उन्हें कुछ नहीं मिल रहा है अत: उन्हें साम्यवादियों को श्रमिकों में गड़बड़ फैलाने से रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है, तो चाय-उद्योग का क्या होगा और केन्द्रीय सरकार की स्टर्लिंग पूंजी का क्या होगा? पर फिर भी मानवनिर्मित विधियों ने आसाम को चाय के निर्यात-शुल्क और उत्पादन शुल्क में से कुछ भी प्राप्त नहीं होने दिया। फिर चाय उद्योग के लिये आसाम जो त्याग कर रहा है उसका पता इसी बात से लग सकता है कि आसाम के राजस्व का अधिकांश भाग भूमि के लगान से आता है; वह लगभग 1½ करोड़ है पर इन राशि में चाय-बगानों का भाग केवल 17 लाख है। यदि उन पूर्ववर्ती वर्षों में रियायती दरें न दी गई होतीं तो शायद चाय बगानों वालों

को लगान के रूप में कम से कम 75 लाख रुपये देने पड़ते। पर चाय-उद्योग के विषय में एक और भी दुःखद तथा हृदयविदारक बात है। आयकर के कोष में से विभिन्न प्रान्तों को अंश देने के बारे में केन्द्रीय सरकार की योजना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, असमतापूर्ण तथा कलुषित है। किस हिसाब से सर ओटो नीमियर से आसाम के अंश को दो प्रतिशत निश्चित किया, यह मैं समझ नहीं पाता जबकि बंगाल और बम्बई को 20 प्रतिशत दिया गया और मद्रास तथा युक्तप्रान्त को 15 प्रतिशत मिला आदि। आसाम की लगभग एक हजार चाय जागीरों में से कोई 750 के प्रबन्धक आसाम के बाहर हैं—कोई 500 कलकत्ते में हैं और 150 लन्दन में हैं, क्योंकि वे सब विलायती समवाय हैं, और आसाम की चाय पर आय-कर या तो कलकत्ते में या लन्दन में भुगताया जाता है। कलकत्ते में जो राशि दी जाती है उसका लाभ बंगाल को मिलता है, इसी कारण उन्हें कुल वितरणीय कोष का 20 प्रतिशत प्राप्त होता है। यदि उस बात पर उचित विचार किया जाता तो कोष का वितरण दो आधारों पर होना चाहिये था, प्रथम राजस्व के स्रोत पर, और दूसरे उस क्षेत्र की आवश्यकताओं पर जो चाय उगाता है। मुझे फिर "चिकने सिर पर तेल डालने" की बंगाली कहावत का उदाहरण देना पड़ता है, इंजील में भी लिखा है "जिस के पास है उसे और मिलेगा"। गरीब आसाम और उड़ीसा अधिक सहायता पाने के लिए जोर से चिल्ला रहे हैं, पर अब भारत-विभाजन के पश्चात् इस कोष में बहुत प्रतिशत भाग दिया गया तब मद्रास को, जिसका राजस्व 50 करोड़ है 10 प्रतिशत मिला, अर्थात 3 प्रतिशत अधिक मिला, और बम्बई को 22 प्रतिशत मिला, किन्तु निर्धन आसाम और उड़ीसा को 1 प्रतिशत ही अधिक मिला। जब अवसर आया, तब भी इन गरीब प्रान्तों के साथ न्याय नहीं हुआ। यही कठिनाई बिहार के विषय में है। बिहार को दस प्रतिशत से कहीं अधिक प्रतिशत भाग मिल जाता यदि जमशेदपुर के टाटालोह कारखाने से प्राप्त आय को बिहार के प्रत्यय में लिखा जाता। किन्तु उनका मुख्य कार्यालय बम्बई में है इसलिये वे जो बड़ी रकम आयकर के रूप में देते हैं वह बिहार को न मिलकर बम्बई को मिलती है।

श्रीमान्, मैंने इन तथ्यों तथा आंकड़ों से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आसाम का दावा उस आय पर था और अब भी है जो कि चाय के निर्यात और उत्पादन शुल्कों से प्राप्त होती है और जो पटसन के निर्यात कर से या पेट्रोल के उत्पादन शुल्क से प्राप्त होती है। और जैसाकि मैंने आरम्भ में कहा है आसाम ही अकेला प्रान्त नहीं है जो इसका दावा कर रहा है। मैं विशेषज्ञ वित्त समिति के समक्ष पेश किये गये इन ज्ञापनों के पृष्ठ 9 पर देखता हूं कि मद्रास ने यह सिफारिश की है कि केन्द्र द्वारा आरोपित सभी निर्यात तथा उत्पादन शुल्कों में से प्रान्तों को भाग मिलना चाहिये। बम्बई चाहता है कि निगम-कर को भी आय-कर में शामिल करके प्रान्तों में बांट देना चाहिये। वह आय-कर के वितरणीय कोष में से 20 प्रतिशत पाकर भी संतुष्ट नहीं है और 33½ प्रतिशत मांगता है। फिर, युक्तप्रान्त—जनसंख्या में भारत का सबसे बड़ा प्रान्त—कहता है:

"पहली आवश्यक बात यह है कि केन्द्र के करों के वितरणीय कोष को बढ़ाया जाये और प्रान्तों को आय-कर के अतिरिक्त भार का कम से कम आधा

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

भाग दिया जाये; निगम-कर और सब सम्बद्ध करों को आधे आय-कर के समान वितरणीय कोष में शामिल कर देना चाहिये। इसी प्रकार केन्द्र द्वारा आरोपित सभी उत्पादन तथा आयात-शुल्कों को भी कोष में शामिल कर लेना चाहिये।"

इस ज्ञापन के पृष्ठ 18 पर मैं देखता हूं कि बंगाल ने भी ऐसा ही दावा किया था। अत: यह स्पष्ट है कि केवल आसाम जैसा गरीब प्रान्त ही उत्पादन और निर्यात शुल्क का भाग पाने के लिए शोर नहीं मचाता था, वरन् अधिक धनी प्रान्तों ने भी उसका दावा किया है।

अब आसाम की इस समस्या पर आप दूसरे दृष्टिकोण से विचार करिये। यद्यपि आसाम भारत का एक अंग है पर वह परिस्थितियों वश शेष भारत से कट गया है। हमें, जिन्हें इस सभा में आना पड़ता है, पाकिस्तान राज्यक्षेत्र में से 180 मील चलना पड़ता है, तब हम भारत अधिराज्य के सीमान्त पर 'राणाघाट' नामक स्थान पर पहुंचते हैं। अत: केन्द्रीय सरकार उत्तरी तराई में से आसाम को सीधा रेलमार्ग तथा सड़क बनाने का प्रयत्न कर रही है। मुझे पता नहीं है कि कितने करोड़ रुपये खर्च होंगे और वह कब तैयार होगा; पर उन्होंने कुछ कार्यवाही की थी जिससे कि आसाम और शेष भारत का सम्बन्ध करने के लिए बंगाल के उत्तरी भाग में से जलपैगुरी के पास जो कि भारतीय प्रदेश है, छोटा सा रास्ता निकाल लिया जाये। किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस मार्ग से हम बंगाल या कलकत्ता नहीं पहुंचते, वरन् बिहार पहुंचते हैं और यदि हम कलकत्ता जाना चाहें तो हमें 200 मील की रेलयात्रा और करनी पड़गी। उसका किराया भाड़ा कितना बैठगा, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है, सदन उसकी कल्पना कर सकता है। पर इस रेलमार्ग का प्रयोग कौन करेगा? मुझे पूरा विश्वास है कि कोई व्यापारी या यात्री स्वेच्छा से इसका प्रयोग नहीं करेगा। फिर, आसाम अब सीमान्त प्रान्त है। गत युद्ध में यह सिद्ध हो गया कि भारत पर पूर्व से आक्रमण हो सकता है। पूर्व से ही जापानी वास्तव में भारत भूमि पर आ गये थे जबकि उन्होंने आसाम में मनीपुर राज्य को घेर लिया था और नागा पर्वतों के मुख्य कार्यालय के तीन चौथाई पर कब्जा कर लिया था। आसाम भारत अधिराज्य का सीमांत प्रान्त है इस कारण वह अखिल-भारतीय विचार का प्रश्न है। क्योंकि यदि, आसाम पर उसके पड़ौसी आक्रमण कर दें और शेष भारत से वहां कुमक न भेजी जाये तो वह शीघ्र ही भारत का अंग नहीं रहेगा। क्या आप संतोष में मग्न रहकर ऐसी आकस्मिकता की कल्पना कर सकते हैं?

जैसाकि मैं आपको बता चुका हूं, नीमियर पंचाट के समय आसाम अविभक्त था और उसमें कोई उच्च न्यायालय नहीं था। यद्यपि वह बड़ा प्रान्त था पर आसाम के लोगों को कलकत्ता उच्च न्यायालय में आना पड़ता था जिसे आसाम के विषय में अपीलाधिकार थे। आसाम में कोई विश्वविद्यालय नहीं था और कोई विशेष विषयों के महाविद्यालय भी नहीं थे। फिर भी पंचाट के अधीन उसे केवल 30 लाख मिलते थे जबकि उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को अविकसित प्रान्त होने के आधार पर एक करोड़ रुपये मिलते थे। सिंध को उस पंचाट के अधीन 1 करोड़ दस लाख रुपये मिलते थे। यद्यपि भारत के बड़े प्रांतों में आसाम सबसे अधिक अविकसित था। जहां नागरिक अथवा सभ्य प्रशासन की सुविधायें नहीं थीं और

वहां लगभग सामाजिक सेवाओं का अभाव था, पर पंचाट में उसे केवल 30 लाख रुपये की तुच्छ राशि दी गई।

श्रीमान्, मैंने आरम्भ में कहा था कि केन्द्र और प्रान्तों के बीच राजस्व का वितरण बहुत अवैज्ञानिक सिद्धान्त पर किया गया है। मैं जो युक्तियां देना चाहता हूं उनमें से एक यह है इस प्रकार का वित्तीय हिसाब लगाते समय आपको केवल पिछड़े हुए प्रान्तों की आवश्यकताओं पर ही ध्यान नहीं देना चाहिये, पर न्याय के सिद्धान्तों पर भी ध्यान देना चाहिये। विद्यमान वस्तु-स्थिति में इस बात की उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिये कि आसाम संघीय राजस्व का बहुत बड़ा भाग दे रहा है। इसके अतिरिक्त सीमान्त प्रदेशों की विशेष स्थिति का भी समुचित ध्यान रखना चाहिये। यह तो सुनिश्चित रूप से अखिल भारतीय राष्ट्रीय हित का प्रश्न है। यह तो केन्द्र के हित की ही बात है कि आसाम में कार्यकुशल और अच्छा शासन सुनिश्चित रहे।

आसाम ने अपनी गरीबी के बावजूद भी यथासम्भव करारोपण करके अपनी सहायता अपने आप करनी चाही है। जैसाकि श्रीयुत रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा है, आसाम ने कृषि आय पर 1938 में ही कर लगा दिया था, जूए पर और विनोद पर कर तथा मोटर गाड़ियों, मोटर तेल और चिकनाई वाले पदार्थों पर भारी कर लगा दिया तथा कारोबार और व्यापार पर कर तथा सामान पर बिक्री कर लगा दिया। इतना होने पर भी वह अपने आय-व्ययक को संतुलित नहीं कर सका है। जैसाकि उस दिन हमारे प्रधान मंत्री ने कहा था चालू आय-व्ययक में हमारे सामने एक करोड़ का घाटा है। मैं साहस करके कह सकता हूं कि 1 करोड़ का घाटा तो कम का ही अनुमान है। क्योंकि आसाम विधान-मंडल में बजट के वाद-विवाद के समय मैंने आय-व्ययक के अनुमानों तथा ज्ञापन में से तथ्यों और आंकड़ों का उदाहरण देकर सिद्ध किया था कि घाटा 2½ करोड़ के लगभग है। वित्त मंत्री ने आय-व्ययक के व्यापक वाद-विवाद का उत्तर देते समय मेरे कथन को गलत नहीं बताया।

श्रीमान्, आसाम का राजस्व 5 करोड़ है जिसमें 30 लाख रुपये सहायता के, 14 लाख पटसन शुल्क के तथा 40 लाख आयकर में उसके भाग के भी समाविष्ट हैं। उसे दो करोड़ का तो घाटा रहेगा ही, शायद 2½ करोड़ का हो जाये। आसाम के वर्तमान प्रशासन ने, इस आशा से कि भारत सरकार लगभग दस वर्ष तक विकास-कोष में से अनुदान देते रहने का अपना वचन पूरा करेगी, कई आवश्यक निकाय बनाना आरम्भ कर दिया जैसे कि उच्च न्यायालय, चिकित्सा महाविद्यालय, वन विद्यालय और कृषि विद्यालय। इस विकास-कोष में से अनुदान बंद होने वाले हैं और आसाम के सामने अपनी कुल आय में से तीन-चार करोड़ के घाटे की कठिन सम्भावना है क्योंकि इन नये निकायों के आवर्तक व्यय का भार उस पर आ पड़ा है। मैं संविधान-सभा के माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे इस प्रार्थना का समर्थन करें—मैं 'दावे' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता—कि आसाम को नयी परिस्थितियों में न्याय मिले।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं जानना चाहता हूं कि आदिमजातीय लोगों का जीवनस्तर ऊंचा उठाने के लिए अधिक अनुदानों की मांग की जा रही है, या आसाम की

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

जनता की सुख सुविधाओं को बढ़ाने तथा विशेष विषयों के विद्यालय खोलने के लिए अधिक अनुदान मांगे जा रहे हैं।

सैयद मुहम्मद सादुल्ला: मुझे प्रसन्नता है कि मेरे मित्र ने बाधा डाली है। मैं आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में जो तर्क पेश करना चाहता था उससे विषयान्तर हो गया। वे अनुच्छेद 255 का जो निर्वचन करना चाहते हैं वह गलत है। इसमें लिखा है "ऐसी राशियां, जो संसद् विधि द्वारा उपबंधित करे, उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में प्रति वर्ष भारत को संचित निधि पर भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद् यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है, तथा भिन्न-भिन्न राज्यों के लिये भिन्न-भिन्न राशियां नियत की जा सकेंगी"। शब्द ये हैं "राज्यों को सहायक-अनुदान उपबंधित करना।"

मैंने आसाम की धरातल-रचना और भूगोल और वित्तीय स्थिति का व्यापक चित्रण कर दिया हैं। मैं समझता हूं कि भारत में कहीं भी राजनैतिक संस्थाओं अथवा राजनैतिक क्षेत्रों की इतनी विभिन्न श्रेणियां नहीं हैं जितनी कि आसाम में हैं। सर्वप्रथम हमारे यहां प्रशासित क्षेत्र हैं, जो हम 'समाविष्ट' क्षेत्र भी कह देते हैं, अर्थात वह क्षेत्र जो प्रान्त की विधान-सभा के क्षेत्राधिकार में आता है। फिर एक 'अंशत: अपवर्जित क्षेत्र' है, वे तीन पर्वतीय क्षेत्र हैं जिन्हें स्थानीय विधान-मंडल में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया है, किन्तु उस विधान-मंडल का साधारण विधान पर लागू नहीं होगा, जब तक कि राज्यपाल उसके लिए स्वीकृति न दे। फिर एक तीसरी श्रेणी है, "पूर्णत: अपवर्जित" क्षेत्र। इन अपवर्जित क्षेत्रों को स्थानीय विधान-मंडल में प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं है; किन्तु आसाम प्रान्त को इन क्षेत्रों का भार वहन करना पड़ता है, जबकि उनसे कोई आय नहीं होती। उदाहरण के लिए नागा पहाड़ियों को लीजिये, जो लगभग 4 हजार वर्ग मील का क्षेत्र है, जिसकी जनसंख्या प्रशासित क्षेत्र में लगभग दो लाख है तथा अप्रशासित क्षेत्र में लगभग डेढ़ लाख है। इस क्षेत्र में हमें लगभग दो लाख की आय है क्योंकि उस क्षेत्र में एक ब्रिटिश व्यापार संस्था के पास एक कोयले की खान है। यह कोयले की खानों की कुल आय है। वे पहाड़ी लोग कोई भू-लगान नहीं देते। वे कहते हैं "यह भूमि हमारी है"। उनके मुखिया को भी उन पर कर लगाने का अधिकार नहीं है। यदि आप लगान लगाना चाहें तो वे विद्रोह कर देंगे। यद्यपि इस क्षेत्र से केवल दो लाख की आय होती है, पर प्रान्तीय आय-व्ययक से नागा पहाड़ियों के प्रशासन पर लगभग 13 लाख रुपये व्यय करने पड़ते हैं।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: कितने?

सैयद मुहम्मद सादुल्ला: लगभग तेरह लाख।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: उनकी वन-सम्पति का क्या होता है?

श्री मुहम्मद सादुल्ला: वहां बहुत ही कम संचार साधन हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ वहां आलू भी होता है।

*__सैयद मुहम्मद सादुल्लाः__ उस क्षेत्र में आलू नहीं होता, खासी की पहाड़ियों में होता है। इससे पता लगता है कि हमें इन अपवर्जित क्षेत्रों पर कितना रुपया व्यय करना पड़ता है। फिर आसाम में एक और प्रकार का क्षेत्र है जिसे 'सीमान्त क्षेत्र' कहते थे पर अब उसे 'उत्तर पूर्वी सीमान्त अभिकरण क्षेत्र' कहते हैं। इन क्षेत्रों को राज्यपाल भारत के गवर्नर-जनरल के अभिकर्ता के रूप में प्रशासित कर रहा है।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगारः__ (मद्रास : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं कि माननीय सदस्य संशोधन का समर्थन कर रहे हैं या विरोध कर रहे हैं। हम यहां से उनके तर्कों को समझने में असमर्थ हैं।

*__सैयद मुहम्मद सादुल्लाः__ मुझे इन सब तथ्यों को सदन के समक्ष रखना है। हमारी आय केवल पांच करोड़ रुपये है जबकि हमारा क्षेत्रफल 1 लाख वर्ग मील है। इस आय से हम इस सीमान्त प्रान्त में अच्छा प्रशासन स्थापित नहीं कर सकते क्योंकि वहां हालत ही ऐसी है जो कि मैं बता चुका हूं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगारः__ उनके ठोस सुझाव क्या हैं?

*__सैयद मुहम्मद सादुल्लाः__ मैं पहले ही स्थिति को स्पष्ट कर चुका हूं। अतः हम इसी अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केन्द्र को सहायक-अनुदानों के द्वारा हमारी सहायता करनी चाहिये और इस अनुच्छेद 255 में ऐसी सहायता की चर्चा है। पर इस अनुच्छेद को पढ़कर जो जरा सी आशा किरण थी वह भी इस बात से नष्ट हो गई है कि सब कुछ विनिश्चय करना संसद् पर छोड़ दिया गया है। अब हमने इस सदन के आंगन पर मस्विदा-समिति के सभापति से दो बार सुना है कि यदि हम प्रान्तों को निर्यात-शुल्क का प्रतिशत भाग देने का प्रश्न संसद् पर छोड़ दें तो विविध प्रान्तों में ऐसा झगड़ा होगा कि यह काम राष्ट्रपति पर छोड़ देना अधिक अच्छा रहेगा। दुर्भाग्य से मेरे मित्र, रेवरेण्ड निकलस राय आसाम वालों ने आज सवेरे जो संशोधन भेजा था उसे अध्यक्ष ने पेश नहीं होने दिया है क्योंकि वह बहुत देर में आया था। अब श्री अनन्तशयनम् आयंगार जैसे मित्र कहते हैं "आप केन्द्र के पास भीख की झोली लेकर आते हैं उससे पहले आप अपनी सहायता स्वयं करिये"। मैं पहले ही सिद्ध कर चुका हूं कि आसाम के लोगों ने अपने आप पर यथासम्भव अधिकतम कर लगा लिये हैं, किन्तु फिर भी उससे प्रान्त की स्थिति नहीं संभलती। मैं पहले ही कह चुका हूं कि इस समय प्रान्त की कुल जनसंख्या 73 लाख है, जिसमें से 10 लाख चाय-बगानों के श्रमजीवी हैं, जिनका प्रान्त में कोई निहित हित या भूमि नहीं है। वे प्रान्त के राजस्व में एक धेला भी नहीं देते, सिवाय इसके कि वे कभी-कभी देशी शराब की दुकानों पर जाते हैं, किन्तु उन लोगों को अपने घर पर ही चावल की खराब खींचने की आदत है। अभी तक, दो जिलों में स्थायी रूप से जमे हुए जमींदारी क्षेत्र थे। स्थानीय विधान-सभा के पिछले सत्र में ही हमने आसाम में जमींदारी समाप्त करने का अधिनियम पारित किया था, पर मेरे प्रयोजन के लिए इतना ही कहना

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

पर्याप्त है कि इन दो जिलों में 15 लाख लोग रहते हैं। वे लोग सीधे प्रान्तीय राजस्व में कुछ भी अंशदान नहीं करते। अतः हम जो भी कर लगाते हैं वह प्रान्त के पांच छह जिलों पर ही पड़ता है और इन छह जिलों की कुल जनसंख्या 50 लाख से कम है, सचमुच उन पर बहुत भार पड़ता है।

श्रीमान्, यह कहा गया है कि एक वित्त-आयोग बनेगा जो इन सब मामलों पर विचार करेगा और हमें निराश अथवा हताश नहीं होना चाहिये कि वह प्राधिकारी न्यायपूर्ण विनिश्चय नहीं करेगा। किन्तु मेरे विगत अनुभव से मुझे बहुत संदेह होता है कि ऐसा कोई निकाय आसाम की विशेष स्थिति को समझेगा या उस पर ध्यान देगा, जब तक कि उस समिति या आयोग में ऐसा कोई व्यक्ति न हो जो आसाम की विशेष स्थिति से सम्बद्ध हो या सुपरिचित हो। मैं एक छोटा सा उदाहरण देता हूं। दो वर्ष पूर्व केन्द्रीय आयव्ययक को संतुलित करने के लिए केन्द्रीय वित्त-विभाग के किसी बुद्धिमान् अधिकारी ने सुपारी पर कर लगाने का विचार किया और वह विनिश्चय सारे भारत के लिए एक रूप था, और आसाम की हालत न जानने के कारण गरीब आसाम पर पांच लाख रुपये कर लगा दिया गया। समस्त भारत में तो सूखी सुपारी खाई जाती है और बाजार में बिकती है पर केवल आसाम में कच्ची सुपारी खाई जाती है। वह छिलके के साथ बिकती है, जो काफी मोटा होता है और छिलके के अन्दर रस वाला भारी पदार्थ होता है। कर सेरों के हिसाब से लगाया गया था और सूखी सुपारी तो सेर में 115, 120 चढ़ती हैं पर कच्ची आसामी सुपारी, जिसे 'ताम्बूल' कहते हैं, सेर में 20 ही चढ़ती है। परिणाम यह हुआ कि गरीब आसामी कृषक को, जो अपने घर के प्रयोग के लिए सुपारी के थोड़े से वृक्ष उगाता था, शेष भारत से तीन-चार गुना अधिक कर देना पड़ता था। आसाम की फिर वही हालत होगी, यदि कोई ऐसा व्यक्ति वित्त-आयोग में नहीं लिया गया जो आसाम की हालत से सुपरिचित हो या आसाम की हालत को समझता हो।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ आपने यह नहीं बताया कि आप कितने अनुदान चाहते हैं। आपके ठोस सुझाव क्या हैं?

*__सैयद मुहम्मद सादुल्ला:__ वास्तव में मस्विदा-समिति भी आपको प्रतिशत भाग नहीं बता सकती। मैं तो केवल यहीं कह सकता हूं कि मैंने आपके समक्ष आपके अत्यन्त सहानुभूति पूर्ण तथा न्यायपूर्ण विचार के लिए और केन्द्रीय सरकार को उचित सिफारिश करने के लिए लिये सब तथ्य रख दिये हैं।

*__अध्यक्ष:__ मुझे अभी श्री सादुल्ला की वक्तृता से पता लगा है कि श्री निकलस राय ने एक संशोधन की सूचना दी थी। वह ठीक उसी समय प्राप्त हुआ था जब हम कार्यारम्भ करने जा रहे थे और इसलिये सदस्यों को भेजने के लिये उसकी प्रतियां तैयार नहीं हो सकीं। यदि श्री निकलस राय अपने संशोधन को पेश करना चाहते हैं तो मैं उन्हें इस समय भी उसको पेश करने की अनुमति दे सकता हूं।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** अध्यक्ष महोदय, जब मैंने वित्तीय उपबन्धों सम्बन्धी विभिन्न अनुच्छेदों को पढ़ा तो मैंने अनुभव किया कि यह आवश्यक है कि मैं अनुच्छेद 255 पर यह संशोधन पेश करूं:

"कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2917 के निर्देश से, अनुच्छेद 255 में 'Parliament may by law provide' इन शब्दों के पश्चात् 'or until Parliament thus provides, as may be prescribed by the President' ये शब्द जोड़ दिये जायें; और अन्त में निम्नलिखित व्याख्या जोड़ दी जाये:

'व्याख्या—'विहित' शब्द का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 251 (4) (ख) में है।' "

मेरे द्वारा संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:–

"Such sums, as Parliament may by law provide or until Parliament thus provides, as may be prescribed by the President, shall be charged on the revenues of India in each year as grants-in-aid of the revenues of such States as Parliament may determine to be in need of assistance, and different sums may be fixed for different States:"

इस संशोधन को पेश करने के कारण सुस्पष्ट हैं। इस अनुच्छेद 255 के अनुसार प्रान्तों को सहायक-अनुदानों का वितरण संसद् में पारित होना आवश्यक है और जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है जब ऐसी राशियां संसद् में पेश होंगी तब इसमें बहुत समय लगेगा तथा प्रान्तों में खींचातानी होगी क्योंकि प्रत्येक प्रान्त डोरियों को यथासम्भव बलपूर्वक खींचेगा और अपने लिये यथासम्भव अधिक भाग प्राप्त करना चाहेगा। मुझे विश्वास है कि छोटे प्रान्तों को तात्कालिक सहायता देने में, जो कि उनके लिये आवश्यक है, कुछ समय लग ही जायेगा; और आसाम, बिहार तथा उड़ीसा के प्रान्तों को तात्कालिक सहायता की आवश्यकता है, और राष्ट्रपति या भारत सरकार के लिये ऐसी सहायता देना असंभव हो जायेगा, जब तक कि राष्ट्रपति को ऐसा करने की शक्ति न दी जाये। अत: मैंने निम्न शब्द प्रविष्ट किये हैं "or, until Parliament thus provides, as may be prescribed by the President (अथवा, जब तक संसद् ऐसा उपबन्ध न करे तब तक जैसे राष्ट्रपति द्वारा विहित हो)"। अत: राष्ट्रपति को शक्ति होगी कि वह आदेश द्वारा उन प्रान्तों के लिये, जिन्हें आवश्यकता हो, कुछ राशियां विहित कर दे और वित्त-आयोग की सिफारिशों पर भी कार्य करे। श्रीमान्, मेरे विचार में यह संशोधन अत्यावश्यक है। मैंने अनुभव किया कि सदन को इस पर विचार करना चाहिये और मेरे विचार में यदि यह शक्ति राष्ट्रपति को नहीं दी जायेगी तो आसाम जैसे प्रान्त अत्यन्त कठिनाई में पड़ जायेंगे, वित्तीय गड़बड़ निश्चय ही हो जायेगी, और इस प्रकार हमारा कार्य नहीं चल सकता। यह निश्चय है कि यदि आसाम में गड़बड़ होगी तो सारे भारत में प्रभाव पड़ेगा और इस पर मेरे माननीय मित्र सैयद मुहम्मद सादुल्ला ने जोर दिया है तथा मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी और शुक्रवार

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

को आसाम के प्रधान मंत्री ने भी और प्रत्येक वक्ता ने जोर दिया है। यह अत्यावश्यक है कि वित्तीय सहायता आसाम प्रान्त को तत्काल देनी चाहिये और वह अनुच्छेद 255 के अधीन नहीं हो सकता जैसाकि वह इस समय है। अत: राष्ट्रपति को शक्ति देनी चाहिये कि वह उन प्रान्तों को तत्काल सहायता दे सके जिन्हें आवश्यकता है। यह संशोधन बहुत-बहुत आवश्यक है और मैं नहीं समझता कि सदन अनुच्छेद 255 को इस सुझाव पर विचार किये बिना कैसे पारित कर सकता है। मुझे आशा है, श्रीमान्, यह सदन आसाम में गड़बड़ होने देकर आत्मघात नहीं करेगा, उससे सारे भारत पर प्रभाव पड़ेगा; और मुझे आशा है कि मैंने जो संशोधन पेश किया है उस पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखा जायेगा।

*__अध्यक्ष:__ अब सदन कल प्रात:काल के नौ बजे तक के लिए स्थगित रहेगा।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 9 अगस्त 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-8-49
320

अंक 9

संख्या 8

मंगलवार
9 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 255 से 260 पर विचार किया गया] 413–469

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 9 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 255—*(जारी)*

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स रायः** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपने संशोधन पर कल मैं कुछ बोल चुका हूं। अपने संशोधन का सही रूप मैंने अब सभा के सामने रख दिया है। इससे सारी बातें स्पष्ट हो गई होंगी। अगर आप अनुमति दें तो इस संशोधन पर मैं आगे बोलूं।

***अध्यक्षः** कल जो संशोधन अपने पेश किया था, उसकी जगह मैं इसको ले लेता हूं।

कल जिस संशोधन पर हम विचार कर रहे थे, उस पर अब हम विचार करना जारी करते हैं।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स रायः** इस संशोधन को पढ़कर अब मैं सुना दूं, श्रीमान्?

***अध्यक्षः** मत लेते समय मैं पढ़कर सुना दूंगा। श्री बी. दास!

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हम अनुच्छेद 255 पर विचार कर रहे हैं। इसमें सामान्यतः प्रांतों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है तथा अनुसूचित एवं जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिये और कुछ प्रान्तों की अनुसूचित जातियों के विकासार्थ सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है।

गरीब प्रांतों को 'गम की कहानी' सुनाने में मैं भी अपनी कमजोर आवाज का सहारा लगाऊंगा। संपन्न प्रांतों से आये हुए प्रतिनिधियों को और मानवता के महान पुजारी डॉ. अम्बेडकर को उनकी यह कष्ट-कथा कितनी भी अरूचिकर क्यों न लगती हो पर उन्हें यह सुननी ही होगी। मेरी आवाज के कमजोर होने का कारण यह है, श्रीमान्, कि डेढ़ सौ साल की ब्रिटिश अमलदारी में हमारा प्रांत सदा ही अनुन्नत रहा। अंग्रेजों ने यहां औपनिवेशिक ढंग की जो शासन-व्यवस्था स्थापित कर रखी थी वह यह चाहती थी कि सारा नियंत्रण केन्द्र के हाथ में हो और ब्रिटिश हुकूमत का प्रसार न सिर्फ भारतवर्ष तक ही सीमित रहे, बल्कि समूचे एशिया में उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाये। इसलिये ब्रिटिश अमलदारी में केन्द्रीय शासन कोई भी रकम अनुन्नत प्रांतों को उनके विकास के लिए नहीं देना चाहता था। इन अनुन्नत प्रांत की समुन्नति के संबंध में कल यहां बहुत कुछ कहा जा चुका है। मसौदा-समिति में जिस तरह काम हो रहा है वह कोई खुशी की बात नहीं

[श्री बी. दास]

है। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल यहां यह कहा कि मसौदा-समिति इसी निर्णय पर पहुंची है कि वित्त वितरण की जो पुरानी पद्धति है उसी पर चला जाये। मेरा यह ख्याल था कि मसौदा-समिति जो भी मसौदा इस संबंध में प्रस्तुत करेगी वह उन सिद्धांतों के ही अनुसार करेगी, जो इस सभा द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ-समिति ने निर्धारित कर रखे हैं या इस सभा की इच्छाओं के अनुसार मसौदा बनायेगी। अन्धकार प्रच्छन आसाम प्रांत के लिए वकालत करते हुए कल सैयद मुहम्मद सादुल्ला साहब ने यहां जो शानदार वक्तृता दी है, उसके लिए मैं उनको बधाई देता हूं। उससे प्रकट होता है कि मसौदा-समिति में इस प्रश्न पर मतैक्य नहीं था। फिर भी मसौदा-समिति का नाम लेकर हमसे यहां यह कहा जा रहा है कि सिवाय इसके कि अनुच्छेद 254 या 255 को अथवा अनुवर्ती अनुच्छेदों को जिन पर कल बहस की जायेगी, हम स्वीकाश्र करें, हमारे सामने दूसरा कोई वैकल्पिक मार्ग नहीं है। मैं यह समझता था कि डॉ. अम्बेडकर दलितों एवं असहायों के प्रति सदा सहानुभूति रखते हैं, क्योंकि वह मानवीय भावना रखने वाले प्राणी हैं। अगर केन्द्रीय शासन अपने पूर्ववर्ती विदेशी शासकों—ब्रिटिश हुकूमत—की परम्परा पर ही चलता है, यदि सभी कर-साधनों पर अपना ही एकाधिकार रखता है और मसौदा-समिति और इस सभा को ऐसे किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायक नहीं होता है, जिससे आय का समान वितरण हो सके, ताकि सभी प्रांत एक समान स्तर पर खड़े हो सकें, तो यह कहना पड़ेगा कि हमारा यह संविधान केवल कागज का टुकड़ा मात्र ही है। लार्ड मेस्टन जैसे विदेशी शासक की भी यह राय थी कि बिहार, उड़ीसा और आसाम को सहायता देना आवश्यक है। उस समय सर ओटो नेमर के निर्णय में भी यह मंजूर किया गया था कि कुछ प्रांत सर्वथा अनुन्नत हैं और उनके विकास के लिए कुछ आय-साधनों को उनके हाथ में दे देना जरूरी है, पर तत्कालीन स्थिति में इन प्रांतों को अधिक रकम की अनुदान का निर्णय नहीं किया जा सका। किन्तु आज हमारी अपनी केन्द्रीय सरकार की ओर से बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर साहब ने यह फरमाया है कि इन अभागे अनुन्नत प्रांतों के व्यय स्तर को ऊंचा उठाने के लिए भारत सरकार के पास कोई खास स्कीम या निश्चित योजना नहीं है। उन अनुन्नत प्रांतों में आज बिहार, उड़ीसा तथा आसाम के प्रांत शामिल हैं और दैव तथा मानव कृत्यों के फलस्वरूप देश का जो विभाजन हुआ है, उससे पश्चिमी बंगाल भी अब इन्हीं की श्रेणी में आ गया है।

अभी उस दिन नौकरशाही मनोवृत्ति से तैयार किये गये उस लेख (Document) का मैंने यहां जिक्र किया है, श्रीमान्, जिसे भारत सरकार के वित्त विभाग ने सरकार समिति के समक्ष रखा था। भारत सरकार को उस समय तक आजादी मिल चुकी थी गोकि उसे आजादी पाये पांच ही महीने हुए थे। पर उसके वित्त विभाग ने जो लेख विशेषज्ञ समिति के सामने रखा था, वह सर्वथा स्वेच्छाचरिता से एवं नौकरशाही मनोवृत्ति से तैयार किया गया था। वह सर्वथा हृदयहीन एवं निष्प्राण लेख था जिसमें इस बात का कोई भी आभास नहीं मिलता था कि वित्त विभाग अपने उन गम्भीर दायित्वों की अनुभूति रखता है, जो सर्वसत्ता प्राप्त एक स्वतंत्र राज्य का वित्त विभाग होने के नाते उस पर लागू होते हैं। उसने सारे राजस्व को अपने ही हाथ में रखना चाहा है और वह भी अपने प्रयास के गिरने पर नहीं, बल्कि

केवल इसलिए कि पूर्ववर्ती ब्रिटिश हुकूमत से उसे विरासत में एक ऐसी व्यवस्था प्राप्त हो गई है, जिसमें सारा आगम केन्द्र के ही हाथ में रखा गया है। स्वतंत्रता के संबंध में मेरी जो धारणा थी वह भ्रम सिद्ध हुई और अब मैं स्वतंत्रता का स्वप्न नहीं देखता। आज मैं स्वतंत्रता के वातावरण में नहीं जी रहा हूं। दैवात्, परिस्थिति वशात् आज हम राष्ट्रमंडल का एक अंग बन गये हैं। आज समाचार पत्रों को—चाहे भारतीय समाचार पत्र हों या ब्रिटिश—पढ़ने में लज्जा आती है। सभी में यही देखने को मिलता है कि भारतवर्ष राष्ट्रमंडल का एक अंग है, सुतरां उसे अपने सारे आर्थिक साधनों को उसकी इच्छा पर छोड़कर संयुक्त राज्य (United Kingdoms) के सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिये। आज हमारे सभी साधनों को ब्रिटिश आर्थिक नीति के अधीन कर दिया गया है और वित्त विभाग का कोई प्रतिनिधि यहां उपस्थित नहीं दिखाई देता है, जो हमें यह बताये कि उसके प्रकार्य क्या हैं या यह बतलाये कि भारत सरकार का रुख क्या है। अभी मैंने जिस लेख का जिक्र किया है वह स्मृति पत्र है, जिसे हमारे केन्द्रीय शासन के वित्त विभाग ने सरकार समिति के समक्ष रखा था और इसके पृष्ठ 8 पर गत दस साल के आय-व्यय का विवरण दिया हुआ है। इसमें कहा गया है कि भारत सरकार की इस अवधि में कुल आमदनी रही है 1908 करोड़ और बचाव पर खर्च पड़ा है 1887 करोड़ और गैर फौजी खर्च रहा है 1731 करोड़। हम जानते हैं कि बचाव पर जो इतना बड़ा खर्च किया गया है, वह वहां से पूरा किया गया है। यह ऋण लेकर पूरा किया गया है और इससे अनुत्पादक सरकारी कर्ज की रकम बहुत बढ़ गई है। पर स्मृतिपत्र के पृष्ठ तीन पर पैरा 8 में इन लोगों ने यानी वित्त विभाग ने—मैं अर्थ सचिवालय के नाम से इसे नहीं पुकारूंगा क्योंकि यह अर्थ सचिवालय के प्रकार्यों को न तब समझता था और न अब समझता है—यह कहा है कि इस दस साल की अवधि में वित्त विभाग ने 196.7 करोड़ की सहायता प्रांतों को दी है। इन लोगों का यह कहना है कि बावजूद इस बात के कि केन्द्र ने बड़ी-बड़ी योजनाओं को हाथ में लेने का वचन दे रखा था उसने करीब 200 करोड़ रुपये प्रांतों को इस अवधि में दिये। इससे वित्त विभाग की नौकरशाही मनोवृत्ति और भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है और इस लेख को उसने आज से करीब डेढ़ साल पहिले तैयार किया था। पर इस अवधि में उसमें कोई अन्तर नहीं आया दीखता है। आइये, हम उसके इस कथन का ही विवेचन करें। 1937-38 में केन्द्र की वार्षिक आय थी 86 करोड़। 1946-47 में उसकी आय थी 336 करोड़ और 1949-50 में उसकी आय है 325 करोड़। इस आय को आखिर भारत सरकार ने खुद को पैदा नहीं किया है। उसे यह आय प्राप्त हुई है जनता से और फिर भी उसने जो 200 करोड़ 10 वर्ष में जनता को दिये हैं, उस पर उसे जलन होती है। 1968 करोड़ रुपयों में से 200 करोड़ की रकम इसने प्रांतों को दी है, जिसका मतलब यह हुआ कि अपनी आय का केवल 10 प्रतिशत अंश उसने प्रांतों को दिया है। पर उसे इस 10 प्रतिशत के लिए भी जलन होती है।

हम यहां अनुच्छेद 255 पर विचार कर रहे हैं जिसमें सहायक अनुदान की व्यवस्था की गई है। मैं पूछता हूं कि भारतीय शासन के वित्त विभाग को किसने इस स्थिति में रखा है कि वह दानशील बनकर आसाम, उड़ीसा, बिहार और बंगाल जैसे अनुन्नत प्रांतों को जब तक खरात के रूप में कुछ दे दिया करता है? हमारी मांग न्याय और समता के सिद्धांत पर आधृत है। हमे केन्द्र से यह मांग करने का अधिकार है कि सभी प्रांतों को सामाजिक न्याय प्राप्त होना चाहिये,

[श्री बी. दास]

सभी प्रांतों की आय या राजस्व के लिये एक समान स्तर निश्चित होना चाहिये। हमारी मांग को इस बिना पर वित्त-विभाग ठुकरा देता है कि हमारे प्रांत की, आसाम प्रांत की आय फ़ी व्यक्ति सिर्फ़ पांच रुपये है। हमारे प्रान्त में फ़ी व्यक्ति पांच रुपये की आय होती है, इसमें हमारा क्या दोष है? सारा दोष है विदेशी हुकूमत की उस व्यवस्था का, जो विरासत के रूप में आज भी यहां वर्तमान है। आज भारत सरकार का प्रतिनिधि यहां खड़ा होकर तरोरी के साथ यह कहता है कि प्रांतों के लिये आय के वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है, उसमें कोई भी परिवर्तन करने के लिए केन्द्रीय शासन तैयार नहीं है। मैंने शुक्रवार को यह निवेदन किया था, श्रीमान्, कि केन्द्र और प्रांतों के बीच वित्त के पुन: वितरण से संबंध रखने वाले इन अनुच्छेदों पर जब यहां विचार हो जाये, तो कृपया आप स्वयं इन प्रावधानों पर गौर करके यह देखेंगे कि क्या केन्द्र ने अपनी शक्तियों पर इस तरह अमल किया है, अपने कर्तव्यों का उस तरह पालन किया है कि उन प्रदेशों को, जहां संविधान के लागू होते ही स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन का एक समुन्नत स्तर अस्तित्व में आ जाना जरूरी है, अपने प्रशासन स्तर को ऊंचा उठाने की और समुन्नति के निम्नतम स्तर तक पहुंचने की गुंजाइश मिलती हो? आखिर मैं यह मांग तो कर नहीं रहा हूं कि आगमों का केन्द्र इस प्रकार वितरण करें कि आसाम और उड़ीसा अपनी आमदनी से 25 रुपये फ़ी व्यक्ति के हिसाब से खर्च कर सके। मैं यह मांग नहीं कर रहा हूं। पहले इसके कि मसौदा संविधान के रूप में यहां स्वीकृत हो, इस सभा को यह अवश्य निश्चित कर देना चाहिये कि प्रांतों के पास राजस्व के रूप में कम से कम अमुक रकम अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये, ताकि सभी प्रांत समान आधार पर अपना कार्य शुरू कर सकें। अगर यह सर्वसत्ता धारिणी सभा ऐसा नहीं करती है तो मैं कहूंगा कि वह अपने को सर्वथा निरर्थक एवं महत्व शून्य सिद्ध करेगी। अनुच्छेद 255 में कहा गया है कि "ऐसी राशियां जो संसद् विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में......जिन राज्यों के विषय में संसद् यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है...।" माननीय मित्र रेवरेंड निकलस राय ने उस संबंध में एक संशोधन रखा, जिसका मुख्य अभिप्राय यह है कि प्रांतों को फिलहाल जो सहायता केन्द्र से मिलती है, वह तब तक जारी रखी जाये जब तक कि एडहाक कमेटी या वित्त आयोग की स्थापना न हो जाये। अनुन्नत प्रांतों से आये हुए मित्रों को इस बात का सर्वथा सन्देह है कि भारत सरकार का वित्त-विभाग कहीं और निरंकुश न बन जाये और वर्तमान सहायता को बन्द न कर दे। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने यहां अनुच्छेद 256 के प्रावधानों का गुणगान खूब ही लच्छेदार भाषा में किया है; आसाम प्रांत की समुन्नति में और जनजाति क्षेत्रों के विकास में कितने सहायक ये प्रावधान हो सकते हैं, इस पर आपने बड़ी बातें कहीं हैं। इस प्रसंग में आपने अनुच्छेद 255 के परन्तुक-क का उद्धरण दिया है जिसमें कहा गया है कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहिले के तीन वर्षों में अपने राजस्वों से जो औसतन अधिक व्यय इन प्रांतों को उठाना पड़ा हो, वह राशि इन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में दी जायेगी। इस संबंध में मुझे यह कहना पड़ेगा, श्रीमान्, कि परम मानव डॉ. अम्बेडकर का यह हिसाब बड़ा गलत है। आसाम और उड़ीसा जैसे अनुन्नत प्रांतों के पास तो कोई साधन ही नहीं था, जिससे वह इन जन-जाति-क्षेत्रों की समुन्नति पर खर्च करते। भारत शासन-अधिनियम 1935 का

वहां उद्धरण देने का डॉ. अम्बेडकर को इतना शौक है, मानों वह अधिनियम कोई बहुत बड़ा स्वतंत्रता पत्र है, जिसके आधार पर सभी देशों के लिए संविधान बनाये जा सकते हों। उनके इस अधिनियम में यह प्रावधान जरूर रखा गया है कि भारत सरकार का यह कर्तव्य होगा कि इन जनजाति-क्षेत्रों की समुन्नति के लिये वह सहायता दे। किन्तु यह प्रावधान सदा कोरा कागजी प्रावधान ही रहा और कभी अमल में नहीं लाया गया। इस अधिनियम 1935 को केन्द्र के लिए हमने कभी स्वीकार ही नहीं किया। अब मैं यह समझ रहा हूं, उसे न स्वीकार करना हम लोगों की बड़ी गलती रही। हमें इस अधिनियम को यानी संघात्मक संविधान को केन्द्र के लिए स्वीकार करना चाहिये था। अगर हमने उसे मान लिया होता तो आज हम कहीं अच्छे रहते। हमने केन्द्र के लिए इस अधिनियम को नहीं स्वीकार किया, इससे नतीजा क्या निकला? केन्द्रीय शासन ने इन अनुन्नत प्रांतों के जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिए सहायता दी? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि उसने सहायता नहीं दी। कभी-कभी भिक्षा के रूप में केन्द्रीय शासन ने कुछ दान जरूर दे दिये हैं, पर जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिए वस्तुत: केन्द्रीय शासन ने कोई मदद नहीं दी है। नागा, खासी तथा आसाम में बसने वाली जो अन्य बन जातियां है, वह आज भी उसी हालत में है जिसमें कि पहिले थीं। इसने जो कुछ भी किया वह केवल ब्रिटिश हुकूमत की रक्षा के लिए वहां किया और हमें मालूम ही है कि गत युद्ध में शत्रु हमारी किस सीमा में प्रविष्ट हुए थे। कोहिमा के युद्ध-क्षेत्र में सीमावर्ती पहाड़ियों से होकर शत्रु आये थे। इसलिये यहां जो कहा जा रहा है और सदम्भ कहा जा रहा है कि संविधान के प्रारम्भ के पूर्व के तीन वर्षों में जो वहां औसतन व्यय किया गया होगा, उतनी रकम इन अनुन्नत प्रांतों को विकासार्थ सहायता के रूप में अवश्य दी जायेगी। इससे यही प्रकट होता है कि भारत सरकार के वित्त-विभाग में समस्या के निराकरण की क्षमता नहीं है। वह स्थिति का सामना करने के लिए तैयार नहीं है। मैं भी सिद्धांत पसन्द व्यक्ति हूं, श्रीमान् और माननीय मित्र पंडित कुंजरू और डॉ. अम्बेडकर के इस कथन से मतैक्य रखता हूं कि केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतों का आर्थिक संबंध कतिपय वैत्तिक सिद्धांतों पर आधृत होना चाहिये। पर सवाल तो यही है कि वह सिद्धांत क्या होंगे, जिनके अनुसार इस आर्थिक संबंध की व्यवस्था की जायेगी? माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर बम्बई से आये हैं, जाहं फ़ी व्यक्ति की आय औसतन 25 रुपये सालाना है और आप यह नहीं चाहते हैं कि आयात शुल्क का वितरण कुछ प्रांतों को असमान रूप में किया जाये। इस संबंध में आपने विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट का उद्धरण दिया हैं मुझे यह देखकर एक हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ है कि भारत सरकार तथा डॉ. अम्बेडकर ने उस समिति की सिफारिशों के कम से कम कुछ अंशों को स्वीकार तो किया। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस संबंध में विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के एक स्थल का हवाला दिया है, पर अनुवर्ती पंक्तियों की, जो पटसन-शुल्क के वितरण के संबंध में हैं, आपने कोई यहां चर्चा ही नहीं की और उनका हवाला देना भूल गये। मैं जानता हूं, श्रीमान्, कि हम यहां पटसन-शुल्क के अंश के संबंध में नहीं विचार कर रहे हैं। हम सहायक अनुदान के संबंध में विचार कर रहे हैं और इस प्रसंग में पटसन शुल्क का जिक्र आना स्वाभाविक है। उक्त रिपोर्ट के पृष्ट 9 पर पैरा 36 में जहां सरकार समिति ने दस साल तक रकम देने की बात कही है, वहां उसने यह भी कहा है कि ....."अगर दस साल की समाप्ति पर, जो अवधि कि हमारे ख्याल में अपने साधनों के विकासार्थ प्रांतों के लिये पर्याप्त होनी चाहिये, अगर प्रांतों को फिर भी

[श्री बी. दास]

सहायता की आवश्यकता हो ताकि वह अपने राजस्व की कमी को पूरा कर सकें, तो अवश्य ही उन्हें केन्द्र से सहायक अनुदान मांगने का अधिकार रहेगा। और उनकी मांग पर यथासमय वित्त-आयोग विचार करेगा।" पर जो अनुच्छेद 254 कल यहां स्वीकार किया गया है, उसमें डॉ. अम्बेडकर ने समिति की इस सिफारिश को कि सहायक अनुदान प्रांतों को तब तक दिये जायेंगे जब तक कि उनके आय साधन समुचित स्तर तक न पहुंच जायें, स्थान नहीं दिया है। हमारे अनुन्नत प्रांतों को केन्द्र व्यय के लिये उतनी भी रकम नहीं दे रहा है, जो व्यय के निम्नतम स्तर के हिसाब से अपेक्षित होती है। और फिर अनुच्छेद 254 के द्वारा तो हमें केन्द्र अब भी एक अनिश्चित अवस्था में रख रहा है। उड़ीसा को केवल तीन लाख रुपये दिये जाते हैं। मैं यहां उड़ीसा के लिए नहीं वकालत कर रहा हूं। मैं यहां इसलिए इतनी वकालत कर रहा हूं कि सभी प्रांतों के साथ न्याय हो, उनके साथ समान व्यवहार किया जाये। इस संविधान में एक ऐसा प्रावधान कहीं आना ही चाहिये, जिससे उस भूल का अपने आप सुधार हो जाये, जो केन्द्र ने मनमाने ढंग से संविधान के अनुच्छेद 254 द्वारा किया है। यही कारण है जो मैं आपके सामने इतनी वकालत कर रहा हूं, श्रीमान्, और इस सर्वसत्ताधारिणी संविधान-सभा का संरक्षक समय कर ही मैं आपसे इतना आग्रह कर रहा हूं। आप कृपया इस बात का ख्याल रखें कि संविधान में एक ऐसा प्रावधान जरूर ही रहे, जिससे भारत सरकार अपनी इस निरंकुश और नौकरशाही मनोवृत्ति को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाये और अपने आगमों को प्रांतों में समुचित रीति से वितरित करें, ताकि वे अपना विकास कर सकें और वित्त आयोग या अर्थमंत्री की दया पर ही उनको न निर्भर रहना पड़े। यह वित्त आयोग या अर्थमंत्री तो सदा नौकरशाही मनोवृत्ति रखने वाले उन प्राधिकारियों से पथ प्रदर्शित होते रहेंगे, जो आज करीब सन् 1924 से ही अपनी इन जगहों पर विराजमान हैं और जिनको अपने उन नवीन दायित्वों की किंचित्मात्र भी अनुभूति नहीं हो पाई है, जो स्वतंत्रता के फलस्वरूप आज उन पर आरोपित हो गये हैं।

नलिनी सरकार कमेटी की सभी सिफारिशों को हमें स्वीकार करना चाहिये न कि उनके किसी एक अंश को, क्योंकि वित्त आयोग को शीघ्र स्थापित करने का सुझाव इसी का दिया हुआ है। हम जानते हैं कि इस आयोग की स्थापना स्थगित रखी गई है। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है, उसमें वित्त आयोग की स्थापना का जिक्र जरूर है। पर इसका मतलब तो यह हुआ कि इन दस वर्षों में बंगाल करीब 100 करोड़ की आमदनी से वंचित रह जायेगा और आज से चार साल तक उसकी सम्भाव्य कमी पर विचार ही न किया जायेगा। मैं पूछता हूं, क्या यह न्याय है? क्या यह उचित हो रहा है? हम यहां हमेशा ही न्याय अधिकारों का जिक्र करते हैं। पर इन न्याय अधिकारों की सार्थकता ही क्या है, जब देश के करोड़ों निवासियों को प्रशासन की ऐसी व्यवस्था से भी वंचित रखा जाता है, जो प्रशासन के निम्नतम स्तर के हिसाब से उनके लिए अपेक्षित है और वह अपना विकास ही नहीं कर पाते हैं? मद्रास, बम्बई और संयुक्त-प्रांत जैसे समधिक सम्पन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि अगर उस संबंध में आज यहां मौन रह जाते हैं, अगर वह यह समझते हैं कि कर्तव्य के नाते उनके लिये यह देखना जरूरी नहीं है कि अनुन्नत प्रान्तों के अर्थ के संबंध में न्याय हो, तो मैं कहूंगा कि वह बहुत बड़े भ्रम में हैं। अगर वह यह समझते हैं कि उनकी समृद्धि से ही भारत की समृद्धि

में वृद्धि हो जायेगी, तो वह सर्वथा भ्रम में हैं। यदि भारत के पूर्वी भाग के इतने प्रांत भूखें मरते हैं, यदि उनका दारिद्रय बना रहता है और वहां निवासियों का जीवन स्तर समुन्नत नहीं हो पाता है, तो भला भारत कैसे सम्पन्न हो सकेगा? इस अवस्था में, हमारी इस मांग पर कि हमारे प्रशासन-स्तर को समन्नत बनाने के लिए हमें इतने आय-साधन अवश्य दिये जायें जिनमें इतनी आमदनी हमें जरूर हो सके जो आगम के निम्नतम स्तर के हिसाब से अपेक्षित है, मद्रास के भाई क्योंकर हंस सकते हैं? भारत सरकार ने इस समस्या का न तो सामना किया है और न कर रही है क्योंकि वह एक दिवालिया सरकार हो गई है। पर इस सर्वसत्ताधारिणी सभा को उसके दिवालियापन से कोई सरोकार नहीं है। वित्त विभाग के प्रतिनिधि को यहां आकर हमें यह बतलाना चाहिये कि आगमों के पुनर्वितरण के संबंध में वह किस योजना पर चलना चाहता है। उनके मन में क्या है इसे वह हमें नहीं बता रहे हैं और अरसा तक हमें उसी दु:खद स्थिति में रखे रहना चाहते हैं, जिसमें कि हम विदेशी शासन के दिनों में थे।

इस महती सभा के समक्ष मैं यह कहूंगा कि संविधान के मसौदे में ये जो वित्त विषयक प्रावधान रखे गये हैं वह सिर्फ ढकोसला है। उनसे प्रांतों में कोई लोकतंत्रीय भावना नहीं पैदा हो पाती है, इनसे प्रातों को इस बात में सहायता नहीं मिल पाती है कि संविधान के अधीन वह आशान्वित रह सकें और आशा के साथ जीवन का पुनर्निर्माण कर सकें। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल यहां अपनी वक्तृता में नलिनी सरकार कमेटी की रिपोर्ट की विद्यमानता को स्वीकार किया और यह बतलाया कि उसके आधे अंश को मानने के लिए वह तैयार है। यह तो आपके वश की बात है, श्रीमान्, कि आप सरकार कमेटी की रिपोर्ट की छानबीन के लिए इस सभा के सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर दें, ताकि इस समिति की उन उपयोगी सिफारिशों को, जो अनुन्नत प्रांतों के विकासार्थ सुझाई गई हों, हम संविधान में स्थान दे सकें। आज केन्द्रीय सरकार खुद तंगिश में है, इसलिए आगमों को प्रांतों को सौंपने में उसे अपना नुकसान दिखाई दे रहा है। इस संबंध में कानून बनाने का काम संसद् पर छोड़ा जा रहा है, पर हो सकता है संसद् कोई कानून न बनावे। गत दो वर्षों से संसद् में वित्त विभाग का आखिर क्या रुख रहा है? इसके लिए अकेले डॉ. मथाई को ही मैं नहीं दोषी बताता हूं। डॉ. मथाई और उनके पूर्ववर्ती अर्थ मंत्री श्री सम्मुखम चेट्टी स्वतंत्र भारत के दोनों ही अर्थ मंत्री दोषी हैं। वित्त विभाग जिस नीति को यहां चला रहा है मैं उसकी तीव्र निन्दा करता हूं। डॉ. मथाई यह सोच सकते हैं कि कानून आज उनके पक्ष में है और यत्र तत्र थोड़ी बहुत सहायता देकर ही वह यह दिखा सकते हैं कि वित्त विभाग ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, पर न्याय की मांग तो यह है कि आगमों का और अच्छा और सम्यक् वितरण प्रांतों में किया जाये। फिस्कल कमीशन की नियुक्ति की खबर हम भी सुन चुके हैं। हम यह जाते हैं कि फिस्कल कमीशन नियुक्त हो चुका है और हमारे सुयोग्य मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी उसके सभापति हैं। भारत की अर्थ नीति निर्धारित करने में आखिर उनको कितने दिन लगेंगे? संसद में श्री सम्मुखम चेट्टी ने यह घोषित किया था कि करारोपण परिप्रश्न समिति (Taxation Inquiry Committee) कायम की जायेगी जो इस बात की जांच करेगी कि क्या क्या कर लगाये जाने चाहियें। इस समिति के मन्तव्यों के आधार पर यह सभा तथा देश इसका निर्णय करेगा कि कौन-कौन आय साधन प्रांतों को दिये जायें। पर इस घोषणा के एक साल बाद यहां सभा में डॉ. मथाई ने यह

[श्री बी. दास]

फरमाया है कि जब तक हमें यह न मालूम हो जाये कि फ़ी व्यक्ति की औसत आय क्या पड़ती है, जब तक हमें देश की आय का पता न चल जाये, तब तक टैक्सेशन इन्क्वायरी कमेटी न नियुक्त की जायेगी।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य को मैं यह बताना चाहता हूं कि यहां भारत सरकार पर नहीं विचार किया जा रहा है। हम यहां संविधान पर विचार कर रहे हैं और उन्हें अपनी बातों को संविधान तक तथा उसमें रखे गये प्रावधानों तक ही सीमित रखना चाहिये।

***श्री बी. दास:** धन्यवाद, श्रीमान्! मैं संविधान तक ही अपने को सीमित रखने की कोशिश कर रहा हूं। पर मुझे खेद है कि इस सिलसिले में भारत सरकार का नाम मुझे लाना पड़ जाता है। राजा चार्ल्स के सर की तरह मेरी वक्तृता में सारी बुराइयों की जड़ भारत सरकार ही दिखाई देती है।

***अध्यक्ष:** ऐसा ही तो मालूम होता है।

***श्री बी. दास:** हां, श्रीमान्, पर सवाल यह है कि जब तक कि आगमों के वितरण की एक आधारभूत पद्धति संविधान में ही नहीं लिपिबद्ध कर दी जाती है, तो प्रांतों को आमदनी कहां से होगी और सहायक अनुदान भी उन्हें कैसे मिल सकेगा? इसी बात को ध्यान में रखकर तो मैं यहां बोल रहा हूं। उदाहरण देकर मैं यह दिखा रहा था और अभी आगे भी दिखाना चाहता हूं कि भारत सरकार जान बूझकर उस दिन को टालती जा रही है, जबकि उसे अपनी इस फिजूल खर्ची को बन्द कर देना होगा और अपने आगम का ठीक-ठीक हिस्सा प्रान्तों को दे देना होगा। मैं यही दिखाने की कोशिश कर रहा हूं। अगर इस प्रयास में, अपनी वक्तृता में, मैं यत्र तत्र बहक जाता हूं तो इसका कारण यही है कि डॉ. अम्बेडकर की तरह एक प्रतिभाशाली वक्ता में नहीं हूं और मुझे घूम फिर कर ही अपनी बात बतानी पड़ती है।

***अध्यक्ष:** इन वित्त विषयक प्रावधानों पर विचार करते हुए सदस्यों ने जो भी वक्तृतायें दी हैं, मैंने उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया है, क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं कि सदस्यों को जो भी शिकायत हो उसे यहां उन्हें जरूर व्यक्त करना चाहिये। किन्तु बहुधा यह हुआ है कि जो विशेष अनुच्छेद विचाराधीन है उससे बहुत बाहर की बातें यहां कही गई हैं और ऐसी वस्तृताएं सर्वथा निरर्थक होती हैं, उस हालत में जबकि ऐसा संशोधन नहीं उपस्थित रहता है जिससे कि सभा को मसौदा-समिति द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव के प्रतिकूल मत देने में समर्थ हो सके। इसलिये सदस्यों से मैं यह कहूंगा कि चूंकि उन्होंने अपनी शिकायतों को व्यक्त कर दिया है, अब उन्हें अनुच्छेद तक, या अगर कोई संशोधन हो तो उन तक ही अपनी बात सीमित रखनी चाहिये। पर भारत सरकार की आय नीति पर यहां बहस करना तो कोई माने नहीं रखता। भारत सरकार पर तो हम विचार नहीं कर रहे हैं और न भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में ही यहां कोई व्यक्ति उपस्थित है। यहां बैठक हो रही है संविधान-सभा की, जिसको एक विशेष कर्तव्य सौंपा गया है और वह कर्तव्य है संविधान-निर्माण का। हमें इससे कोई सरोकार नहीं है कि भारत सरकार क्या करती है संविधान निर्माण का। हमें यहां इससे कोई सरोकार नहीं है कि भारत सरकार क्या करती आ रही है या इस समय क्या कर रही है। हमें तो यहां सिर्फ यह सोचना है कि संविधान कैसे बनाया

जाये। इसलिये यदि सदस्यों को भारत सरकार के विरुद्ध कोई शिकायत है, तो उसे वह अन्यत्र व्यक्त कर सकते हैं। यहां तो उन्हें अपनी बातों को सिर्फ अनुच्छेद तक या उन संशोधनों तक ही सीमित रखना चाहिये, जिन्हें वह पेश कर रहे हों। संशोधन पेश करने का अधिकार सदस्यों को था। पर मैं यह देखता हूं कि उन्होंने कोई संशोधन नहीं रखा है और फिर भी केवल भाषण दिये जा रहे हैं जो मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित मसौदे के खिलाफ हैं।

*__श्री बी. दासः__ मैं अपनी खामियों को समझता हूं। डॉ. अम्बेडकर ने भी कल यहां मसौदा-समिति की खामियों को मंजूर किया है। मसौदा-समिति की सिफारिशों के खिलाफ जो बातें कही गई हैं उनका कोई सन्तोषजनक उत्तर उन्होंने नहीं दिया। हम लोगों ने इस सम्बन्ध में अगर कोई संशोधन नहीं रखा है तो सिर्फ इसीलिये कि खुद मसौदा-समिति अभी द्विविधा में पड़ी हुई है और एकमत नहीं हो पाई है। मैं देख रहा हूं माननीय मित्र जनाब सैयद सादुल्ला ने अपने प्रभावोत्पादक भाषण में मसौदा-समिति से मत-विरोध व्यक्त किया है। ऐसी हालत में मैं नहीं समझ पाता हूं कि डॉ. अम्बेडकर का समर्थन करूं या न करूं। अस्तु इस अनुच्छेद पर या अनुच्छेद 260 पर मैं और कुछ नहीं कहूंगा। अगर आप द्वारा नियुक्त यहां के सदस्यों से बनी समिति की ही सिफारिशों पर कोई अमल नहीं किया जा रहा है, तो फिर प्रांतों को क्या उम्मीद हो सकती है? वित्त आयोग तो हो सकता है कि आज से पांच या छः साल बाद अस्तित्व में आवे। अंग्रेज राजनीतिज्ञ यहां से अब चले गये हैं, पर जब कभी भी वह किसी समस्या का समाधान न निकाल पाते थे, वह भी हमेशा यही किया करते थे कि एक समिति नियुक्त कर देते थे। अगर वह समिति भी उस समस्या का समाधान न निकाल पाती थी, तो फिर एक उपसमिति नियुक्त कर दी जाती थी। भारत सरकार की या इस सभा की यह परम्परा ही नहीं है कि कठिनाइयों की जड़ को निर्मूल करने का.....

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य को प्रत्येक अनुच्छेद पर, उनके हर वाक्य पर संशोधन रखने का अधिकार प्राप्त था, पर उन्होंने तो कोई संशोधन ही नहीं रखा है।

*__श्री बी. दासः__ मैं अपनी गलती महसूस कर रहा हूं। पर एक स्थल पर मैंने यह सुझाव दिया था कि संविधान के प्रवर्तन में आने से 6 महीने के अन्दर भारत सरकार को संसद् में यह घोषित कर देना चाहिये कि किस आधार पर आगमों का वितरण किया जायेगा। पर कुछ ऐसा हुआ कि वह संशोधन पेश नहीं किया जा सका, क्योंकि यहां सभा में उसके लिये कोई सहानुभूतिपूर्ण वातावरण नहीं है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूं, आप पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप अपनी विशेषज्ञ समिति को आदेश दें कि मसौदा-समिति की रिपोर्ट की तथा भारत-शासन-अधिनियम 1935 की, जिसके प्रावधान आज अब तक कभी प्रवर्तन में आये ही नहीं, वह अच्छी तरह जांच करें। प्रांतों के प्रति जो कुछ हम करने जा रहे हैं, वही अगर आर्थिक न्याय है तो वज्रपात हो मेरे भाग्य पर, इस सभा के भाग्य पर और इस राष्ट्र के भाग्य पर। इस अवस्था में तो प्रत्येक पिछड़ा प्रांत उसी अनुन्नत एवं हीन दशा में पड़ा रह जायेगा जिसमें आज वह है, क्योंकि भारत सरकार का वित्त-विभाग तो अपनी पहिले की ही गतिविधि पर स्वच्छन्द चलेगा। उसका वहीं रवैया रहेगा जो सर बैसिल ब्लेकैट, सर जेम्स ग्रिग और उनके अनुवर्तियों के जमाने में था। मेरा सारा रोना, सारी मुसीबत तो इसी बात को लेकर है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): इस अनुच्छेद 255 पर चन्द बातें कहने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं, श्रीमान्। इस अनुच्छेद में यह जो प्रावधान रखा गया है कि टोटे वाले प्रांतों को सहायक अनुदान में कितनी रकम दी जाये, इसका निश्चय संसद् करेगी, मैं इसके खिलाफ हूं। मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि अनुच्छेद 254 में जो तरीका रखा गया है, उससे भिन्न तरीका इस अनुच्छेद 255 में क्यों रखा जाये। अनुच्छेद 254 में सहायक अनुदान की रकम को विहित करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है न कि संसद् को, क्योंकि अगर संसद को इसका अधिकार रहता है तो सदस्यगण यहां अपने दावों को लेकर सभा-भवन में कलह मचायेंगे, जिसे यहां बहुत अनुचित तथा संविधान की भावना के प्रतिकूल समझा गया। यही सोच समझकर वहां राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया और संसद् को नहीं। मेरी समझ में नहीं आता है कि यहां अनुच्छेद 255 में राष्ट्रपति को अधिकार न देकर संसद् को क्यों अधिकार दिया गया है। अगर सदस्यों के कलह की बात अनुच्छेद 254 के संबंध में अनुचित समझी गई, तो फिर अनुच्छेद 255 के संबंध में भी वह बात अच्छी नहीं कही जा सकती है। इसलिये मैं इस पक्ष में हूं कि जो तरीका 254 में रखा गया है, वहीं यहां रहना चाहिये।

मैं सभी बातें यहां साफ-साफ कर देना चाहता हूं और मन में छिपाकर कुछ नहीं रखना चाहता। मैं इस अधिकार को राष्ट्रपति को देने के जो पक्ष में हूं, उसका एक और भी कारण है। वह यह है कि हमारे मन में यह आशंका है कि एक प्रांत विशेष के बहुसंख्यक सदस्य, हो सकता है, संसद् में इस प्रश्न पर मतदान करते समय टोटे वाले प्रांतों की आवश्यकताओं का, उनके हितों का बगैर कोई ख्याल किये एक ओर झुक जाये और निर्णय वहां अल्पमत प्राप्त कमी वाले प्रांतों के हितों के प्रतिकूल हो जाये। इसलिये मैं इस बात के पक्ष में हूं कि माननीय मित्र रेवरेंड निकालस राय ने जो सुझाव दिये हैं, उन्हीं के अनुसार इस अनुच्छेद में संशोधन किया जाये। यहां इस बात को लेकर बहुत तर्क-वितर्क हुआ है कि अमुक-अमुक प्रांत का शोषण किया गया है और कमजोर प्रांतों की आवश्यकताओं की उपेक्षा की गई है। मैं इस बात को लेकर किसी भी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं। मैं अपने को शुद्ध राष्ट्रीयतावादी मानता हूं और समूचे भारत को अपना घर समझता हूं। इस नाते मैं यहां किसी भी ऐसे प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता हूं, जो एक प्रांत के तो अनुकूल हो और अन्य किसी प्रांत के हितों के प्रतिकूल हो। मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि जब तक भारत सरकार की बागडोर आप जैसे महानुभाव के हाथ में हैं और राजा जी, सरदार पटेल, पंडित नेहरू और मौलाना आजाद सरीखे दिव्य-चेता व्यक्ति वहां मौजूद हैं, प्रांतों के यानी देश की समस्त जनता के हित सर्वथा सुरक्षित ही रहेंगे। इसलिये अनुच्छेद 255 में जो यह प्रावधान किया गया है कि प्रांत की आवश्यकता के अनुसार सहायक अनुदान दिया जायेगा, उससे मैं सहमत हूं। पर सहायक अनुदान की रकम निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिये, न कि संसद् को।

एक और बात है, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। यह अनुच्छेद 255 सभा के समक्ष आना चाहिये था, उस समय जबकि इस बात के बारे में हम फैसला कर लेते कि जन जाति-क्षेत्रों की सरकार किस तरह गठित की जायेगी। इस अनुच्छेद का तो मतलब यह होगा कि जन जाति-क्षेत्र प्रांतों के साथ ही बंधे

रह जायेंगे और मैं इस विचार का प्रबल विरोधी हूं। मैं इस प्रस्ताव के पक्ष में जरूर हूं कि सभी जन जाति-क्षेत्रों को मिलाकर एक केन्द्र प्रशासित इकाई के रूप में कर दिया जाये। इस संबंध में मैं आसाम सरकार की राय का हवाला दूंगा। जो पुस्तिका यहां सदस्यों को वितरित की गई है, उसके पृष्ठ 12 पर आसाम सरकार की राय दी हुई है और वह यह है:–

"पिछड़े हुए प्रदेशों को जो प्रांतों के साथ कर दिया है वह एक कृत्रिम गठबंधन है और इसे समाप्त कर देना चाहिये। इन पिछड़े हुए प्रदेशों को आसाम प्रांत से अलग करके इन्हें सपरिषद् गवर्नर जनरल के एजेंट के रूप में काम करने वाले एक सपरिषद् गवर्नर के प्रशासनाधीन रख देना चाहिये और इनका सारा खर्च केन्द्रीय राजस्व पर पड़ना चाहिये। वह समय शीघ्र आ सकता है, जबकि यह सीमावर्ती प्रदेश भारत के बचाव के लिये पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश से अगर ज्यादा नहीं तो बराबर महत्व का हो जायेगा।"

साइमन कमीशन ने इस संबंध में जो राय दी थी, वह यह है:–

"यह पिछड़ा हुआ प्रदेश सर्वथा एक टोटा वाला क्षेत्र है और किसी भी प्रांतीय विधान-मंडल को न तो कभी यह इच्छा ही हो सकती है और न उनके पास साधन ही हो सकते हैं कि इन प्रदेशों की विशेष आवश्यकताओं की ओर वह खास तौर पर ध्यान दे सकें।"

मैं इस विचार के पक्ष में हूं कि सभी जन जाति-क्षेत्रों को प्रांतों से अलग कर देना चाहिये। मैं नहीं जानता कि इन क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था के प्रश्न पर विचार करने के लिए कहां तक यह समय उपयुक्त है, पर अगर आपकी अनुमति हो तो जो सुझाव मैंने दिये हैं उनका कारण मैं सभा को बता दूं।

जन जाति-क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करने के पक्ष में जो मैं हूं, इसका पहला कारण यह है कि प्रांतों की आर्थिक अवस्था बिलकुल शोचनीय है। कोई भी रकम जन-जातियों की समुन्नति के लिए ये प्रांत नहीं खर्च कर सकते हैं। माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने अपनी मर्मस्पर्शी वक्तृता द्वारा यहां आसाम की मुसीबतों की ओर उसकी हृदय दारुण दशा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यहां की दारुण स्थिति का मुझ पर तथा अन्य सदस्यों पर, जिन्होंने सादुल्ला साहब की वक्तृता को सुना है, बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रांत के बजट में हमेशा कमी रहती है। यह अपने जन निवासियों के ही जीवन-स्तर को समुन्नत बनाने में समर्थ नहीं हो पाता है, जो जन-जाति के नहीं हैं। फिर इससे आप यह कैसे उम्मीद करते हैं कि जनजाति के लोगों की समुन्नति की ओर यह कोई ध्यान दे सकेगा?

मेरा यह कथन, श्रीमान् न केवल आसाम के जन जाति क्षेत्रों के लिए बल्कि अन्य सभी जनजाति क्षेत्रों के लिये भी समान रूप से लागू होता है। मैं यह महसूस करता हूं कि एक बड़े व्यापक पैमाने पर इनका शोषण किया गया है। हमें लज्जा से अपना सर झुका लेना चाहिये। प्रांतीय राजनीति की बिसात पर इन गरीब जनजातियों को मुहरों की तरह चलाया जा रहा है। मानवता की आज यह मांग है—मैं इस समस्या पर शुद्धत: मानवीय दृष्टिकोण से विचार कर रहा हूं—

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

कि इन जनजाति क्षेत्रों को हमें प्रांतों से अलग करके इन्हें एक कमिश्नर जनरल के अधीन रख देना चाहिये। मैं यह महसूस करता हूं कि इन प्रदेशों के लिए केन्द्र में एक स्वतंत्र तथा क्षमता प्राप्त प्राधिकारी रहना चाहिये और उसे रखना चाहिये ठक्कर बापा सरीखे व्यक्ति के अधीक्षण, नियंत्रण तथा निदेश के अधीन, जो इन जनजातियों के उत्थान के लिए समुचित ध्यान देने में सदा तत्पर रहेगा। मैं यह नहीं चाहता कि खुद केन्द्रीय शासन भी जनजाति क्षेत्रों के कार्यों के संबंध में हस्तक्षेप करे। यहां की समस्यायें बड़ी नाजुक हैं और इसके लिए हमें जरूरत है विशेषज्ञों के मानव विज्ञान वेताओं के, चिकित्सकों के तथा वैज्ञानिकों के सत्परामर्श और सहायता की। जहां तक कि इन जन जाति क्षेत्रों को समुन्नत करने का संबंध है, इसमें राजनीतिज्ञ और कानूननिर्माता कोई सहायता नहीं पहुंचा सकते हैं। मैं यह महसूस करता हूं कि इन सभी जन-जाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करके अगर इन सबको एक इकाई के रूप में सुसंबद्ध कर दिया जाता है, तो इससे इन लोगों में अपने को एक समझने की भावना पैदा होगी और इस बात की मांग भी ये लोग चिरकाल से करते आ रहे हैं। इस देश की प्राचीनतम सन्तानें यही लोग हैं। देश के स्वतंत्र होने पर अब भारत शासन में इन्हें स्थान मिलना ही चाहिये। मैं इसे खूब समझ रहा हूं और मेरे मन में इसका पक्का विश्वास हो गया है, श्रीमान्, कि मानवता के इस विशाल शोषित समुदाय की दशा को समुन्नत बनाने के लिये अगर कोई समुचित कार्रवाई नहीं की जाती है, तो देश में एक भयंकर उथल पुथल मच जायेगी। अशांति यहां पहिले से ही वर्तमान है। राजनीति में भविष्यवक्ता बनना बड़ा खतरे का काम है, पर मुझे इस बात का निश्चय है कि आगामी चुनाव में इस समस्या का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जायेगा। इस संबंध में हमें कोई ढील न देनी चाहिये। मैंने जो योजना सभा के समक्ष रखी है, श्रीमान् वह आत्मनिर्णय के सिद्धांत के सर्वथा अनुरूप है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): पर मैं यह बताना चाहता हूं, श्रीमान्, कि इस आशय का कोई प्रस्ताव तो सभा के सामने है नहीं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय से इस विषय पर बोलने की मैंने अनुमति मांगी थी और उनकी चुप्पी से मैंने यही समझा कि वह बोलने की अनुमति दे रहे हैं।

***अध्यक्ष:** बोलने की अनुमति आप को अवश्य प्राप्त है, पर सिर्फ वित्त-विषयक प्रावधानों के संबंध में ही।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** इस अनुच्छेद के साथ जो परन्तुक रखा गया है, उससे इस प्रश्न का बड़ा गहरा संबंध है। हम प्रांतीय सरकारों को शक्तियां प्रदत्त कर रहे हैं, पर जनजाति क्षेत्रों की शासन व्यवस्था कैसे चलेगी, इसके बारे में अभी तक कोई निश्चय ही न कर पाये हैं। इस अनुच्छेद को स्वीकार कर लेने के बाद तो हम यह सुझाव ही नहीं दे सकते हैं कि जनजाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग कर देना चाहिये। हम इस बात को कह चुके हैं कि जनजाति क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था के संबंध में निर्णय कर लेने के बाद ही हमें इस अनुच्छेद पर यहां विचार करना चाहिये था। पर चूंकि इस अनुच्छेद पर यहां पहले ही विचार किया जा रहा है, तो मेरे ख्याल में जनजाति क्षेत्रों के संबंध में जो मेरे विचार

हैं, उन्हें मुझे यहां व्यक्त कर देना चाहिये। मैंने जो यहां यह सुझाव रखा है, श्रीमान्, कि सभी जनजाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करके उन्हें एक इकाई का रूप दे देना चाहिये और उसे केन्द्रीय शासन के अधीनवर्ती किसी स्वतंत्र निकाय के अधीन रख देना चाहिये। वह आत्म निर्णय के सिद्धांत के सर्वथा अनुकूल है।

*__अध्यक्षः__ इस सुझाव पर उस समय विचार किया जा सकता है, जब हम अनुसूची पर विचार करने लगे।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ बहुत अच्छा, श्रीमान्।

*__एक सदस्यः__ मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि अब इस प्रश्न पर सभा का मत लिया जाये।

*__कई सदस्यः__ नहीं, नहीं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): बहस-मुबाहिसे को खत्म करने की जो असामयिक मांग की जा रही है, मैं उसका घोर विरोध करता हूं। हमारे सामने बहुत ही गंभीर समस्यायें उपस्थित हैं और हमें इनका समाधान अब यहां निकालना ही होगा। हम प्रायः इस समस्या पर विचार स्थगित करते आये हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं भी यही महसूस कर रहा हूं कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहस खत्म करने की मांग अन्यायपूर्ण है।

*__अध्यक्षः__ बहस समाप्त करने के बारे में मैंने कभी किसी अनुचित प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ जब आम तौर पर लोग यहां यही चाहते हैं कि इस प्रश्न पर बहस जारी रखी जाये, तो हमें यही समझ लेना चाहिये कि सभा इस प्रश्न पर और समय देना चाहती है। हमारे कुछ सदस्य, हो सकता है, अपने अन्य बन्धुओं से अधिक भाग्यशाली हों और मसौदा-समिति के मन की बात उन्हें मालूम हो गई हो। ऐसा मालूम पड़ता है कि मसौदा-समिति के पीछे कोई एक शक्तिशाली गिरोह है, जिसके मन्तव्यों को ही वह यहां उपस्थित करती है और उनकी ही वकालत करती है। जो भी हो, हम इतने खुशकिस्मत नहीं हैं कि मसौदा-समिति के मन की जानकारी हमें भी हो। हम यह देख रहे हैं कि यहां सभा के समक्ष प्रायः नये नये मौलिक संशोधन एकाएक मसौदा-समिति की ओर से उपस्थित कर दिये जाते हैं। हम यह महसूस करते हैं, श्रीमान्, कि आपका यह कहना सर्वथा समुचित है कि कभी-कभी यहां बे मतलब बहस होने लगती है। पर मैं यह निवेदन करूंगा, श्रीमान्, कि यहां प्रायः नये-नये विचार अकस्मात् उपस्थित कर दिये जाते हैं, जिन पर सदस्यों को विचार करने और संशोधन रखने का मौका ही नहीं मिल पाता है। संशोधनों के न होने का यह मतलब नहीं है कि सदस्यों को उन पर कोई आपत्ति नहीं है। यही कारण है कि सदस्यों को कभी-कभी मजबूर होकर वक्तृता द्वारा अपनी शिकायतों पर प्रकाश डालना पड़ता है और ऐसी अवस्था में यह अनिवार्य है कि कुछ न कुछ निरर्थक वाद-विवाद होगा ही। इसका इलाज यह है कि जो भी नये प्रस्ताव यहां रखे जायें उन पर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विचार करने के लिए और संशोधन रखने के लिए सदस्यों को पहिले काफी समय दे दिया जाये।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने जो यहां यह बात कही है कि जो अनुच्छेद परस्पर संबंधित हो, उन सबको एक साथ पेश करना चाहिये, वह एक महत्वपूर्ण बात है। ऐसा न करके किया यह जा रहा है कि मसौदा को थोड़ा-थोड़ा करके किश्तों में हमारे सामने उपस्थित किया जाता है। मसौदा-समिति तो इस रूप में चल रही है, मानो वह जादूगर हो और सदस्यगण दर्शक हों। एक करतब दिखाती है और बाकी को आस्तीन में छिपाये रहती है। पहले वह एक बात सभा के सामने रखती है और सभा उसे मान लेती है, तब अन्य संबंधित बातों को धीरे-धीरे रखती है। मसौदे पर थोड़ा-थोड़ा करके जो जो यहां रखा जा रहा है, वह एक बड़ी असुविधाजनक पद्धति है। इस रूप में तो भारत-शासन-अधिनियम पर भी विचार नहीं किया गया था, जिसे ब्रिटेन की पार्लियामेंट में बड़े-बड़े विशेषज्ञों ने पास किया था। मेरे ख्याल में अच्छा यह होगा कि मसौदा-समिति जो भी बात रखना चाहती हो, उसका पूरा खाका हमारे सामने रख दे। वैसा होने पर सदस्यगण ठीक-ठीक संशोधनों का सुझाव दे सकते हैं और बहस भी यहां ठीक रास्ते पर चल सकेगी। अन्यथा, सदस्यों के सामने कोई उपाय नहीं है और बहस में कभी-कभी मूल बात से वह बहक ही जायेंगे।

मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 255 बहुत सी बातों से संबंध रखता है, जिनमें जन-जाति क्षेत्रों का मसला भी एक है। प्रश्न के एक पहलू पर अलग से विचार करने में कोई फायदा नहीं है। समूचे प्रश्न पर हमें एक साथ विचार करना होगा। इसलिये मसौदा-समिति इस संबंध में जो कुछ प्रावधान रखना चाहती है, उसका पूर्ण चित्र सामने आ जाने पर ही हम इस पर अच्छी तरह विचार कर सकते हैं। मैं समझता हूं। मैं समझता हूं कि यह अनुच्छेद अच्छा ही है, पर मैं चाहता यह हूं कि राष्ट्रपति के हाथ में और भी शक्ति होनी चाहिये। मैं यह अपना विचार यहां व्यक्त कर चुका हूं कि केन्द्र अपने हाथ में आवश्यकता से अधिक अधिकार ले रहा है। पर अगर वह अधिकार लेता ही है, तो मैं यह चाहता हूं कि उन अधिकारों का प्रयोग राष्ट्रपति करे न कि संसद्, जो एक ऐसा निकाय होगा जहां रायें बदलती रहेंगी। मैं डॉ. अम्बेडकर के कल के इस कथन से सर्वथा सहमत हूं कि राजस्व के वितरण का काम संसद् पर छोड़ना बहुत खतरनाक होगा। संसद् में निर्णय होता है तात्कालिक मनोभाव के आधार पर और यह संभव है कि यहां कुछ प्रांत आपस में मिल जायें और संसद् ऐसा निर्णय कर दे जो उस प्रांत के हितों के लिए घातक हो, जिसको वस्तुतः कमी हो पर संसद् में उसके काफी प्रतिनिधि न हों। इसलिए रेवरेंड निकल्स राय के इस संशोधन से मैं सहमत हूं कि जब तक संसद् इस संबंध में कोई विधि न बना दे, राष्ट्रपति को इस बारे में आवश्यक आदेश निकालने का अधिकार होगा। मेरी समझ से इस अनुच्छेद 255 में एक कमी जरूर है और उसे दूर करने के अभिप्राय से ही रेवरेंड निकलस राय ने अपना संशोधन रखा है। संविधान के पास होने और संसद द्वारा विधि बनाने में अवश्य ही एक लम्बा व्यवधान पड़ जायेगा। संसद को विधेयक पर विचार करने में ही काफी समय लगेगा और फिर उस पर ऊपर वाले सदन में विचार किया जायेगा। अगर दोनों में कहीं मतभेद हुआ, तो विधेयक के पास होने में और भी देर लग जायेगी। विधि विषयक जटिल प्रश्न पर निश्चय करने

में संसद को स्वाभाविक है कि कुछ समय लगेगा ही और हो सकता है, वह इस संबंध में कोई विधि ही न स्वीकार करे। इसलिये मेरा कहना यह है कि जब तक इस संबंध में संसद विधि न बनावे, तब तक के लिए राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि वह जैसा उचित समझे व्यवस्था करे। मैं तो यह कहूंगा कि राष्ट्रपति को यह अधिकार रहना चाहिये कि वह स्वविवेक से यथोचित व्यवस्था करे। अगर संसद को उसका कार्य सन्तोषजनक मालूम होता है, तो बहुत संभव है कि एक कानून बनाने और राष्ट्रपति को ही इसकी शक्ति दे दे। इसलिये मैं यह कहूंगा कि रेवरेंड निकलस राय का संशोधन सर्वथा सामयिक है, उचित है और सभा को उसे स्वीकार करना चाहिये।

पर यहां इन समस्याओं पर कैसे विचार हो रहा है? मसौदा-समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रायः यहां अनुपस्थित रहते हैं। वह मसौदा-समिति के वकील हैं और खुद यह समिति वकालत करती है सभा के एक शक्तिशाली वर्ग की। इस समय भी डॉ. अम्बेडकर शरीरतः यहां उपस्थित नहीं हैं और जब वह शरीर से उपस्थित रहते हैं, तो मनसा अनुपस्थित हो जाते हैं। ऐसी हालत में यह विवाद......

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर की अनुपस्थिति की शिकायत करना माननीय सदस्य के लिए न्यायसंगत नहीं है। मेरा ख्याल है कि डॉ. अम्बेडकर प्रायः सदा ही यहां उपस्थित रहा करते हैं। इस समय भी, मुझे विश्वास है, वह सभा-भवन में ही कहीं हैं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः जो भी हो, श्रीमान्, वह मनसा अनुपस्थित ही हैं। उनके प्रति निरादर व्यक्त करने के लिए ऐसा नहीं कह रहा हूं। मैं उनका आदर करता हूं। मुझे उनके साथ सहानुभूति है। वह एक शक्तिसंपन्न व्यक्ति हैं। बड़ी मेहनत से काम करते हैं। पर उन पर जो कार्यभार है वह बहुत ज्यादा है। शरीर से वह यहां जरूर उपस्थित हैं, पर बातचीत में व्यस्त होने के कारण मनसा वह अनुपस्थित ही हैं। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि मैं इसका यहां जिक्र कर रहा था।

बात यह है। जब तब वह बहस का जवाब नहीं देते हैं, जैसा कि आम तौर पर वह करते हैं, हमेशा की तरह नतीजा यही होगा कि संशोधन को स्वीकार करना वह नामंजूर कर देंगे और सभा उनकी बात को स्वीकार कर लेगी और संशोधन पास न होगा। इसलिए बहस को प्रभावी बनाने के लिए, मेरी समझ से यह आवश्यक है कि डॉ. अम्बेडकर बातों को ध्यान से सुनें। अवश्य ही सभा के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वह उनको इसके लिए बाध्य कर सके। पर यहां हमारी बहस पर उनको कुछ ध्यान देना ही चाहिये।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र)**:** अध्यक्ष महोदय, इस वाद-विवाद में भाग लेने का मेरा कोई इरादा नहीं था, पर बिहार से आये हुए मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की बातों के कारण मुझे अब भाग लेना पड़ रहा है। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को शामिल कर लेने पर यह संशोधन अपने ढंग पर बहुत अच्छा है। जिन प्रांतों में विस्तृत जन-जाति और अनुसूचित-क्षेत्र हैं, उनको रकम देने के लिए इस अनुच्छेद में पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। कुछ प्रांत तो इसके लिए काफी सम्पन्न हैं कि अपने पिछड़े हुए प्रदेशों के भाइयों के जीवनस्तर को समुन्नत बनाने में सहायता दे सकें, पर कुछ ऐसे भी प्रांत हैं, जो इतने सपन्न नहीं है कि उनकी सहायता कर सके। इसलिये तो इस अनुच्छेद में आवश्यक प्रावधान रख दिया गया है कि

[श्री ए.वी. ठक्कर]

ऐसे प्रांतों को रकम मिल सके। जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है यह बहुत ही अच्छा है। इस सहायता के लिए संविधान में ही जो प्रावधान कर दिया है, इसके लिए मैं सभा तथा संविधान रचयिताओं को कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

जहां तक कि इस वर्तमान प्रश्न यानी उनकी दशा को समुन्नत करने का संबंध है, वह काम संविधान-सभा के क्षेत्राधिकार के बाहर की बात है। पर यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है, इसलिए मैं दो एक सुझाव इसके बारे में जरूर दे दूंगा। संविधान में इस संबंध में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं, उनसे लोग बहुत आशा लगाये बैठे हैं। गरीब प्रांत, जिनके पास धन नहीं है, जो धनाभाव में आज भूखों मर रहे हैं, केन्द्रीय सरकार से इस काम के लिए कुछ न कुछ पाने की जरूर उम्मीद रखते हैं। गरीब प्रांतों से मेरा मतलब यह है उड़ीसा और आसाम से। आसाम का प्रश्न कुछ पेचीदा है। कई मित्र उस पर बोल चुके हैं और आगे भी बोलेंगे। उड़ीसा के संबंध में अपने मित्र श्री बी. दास यहां बोल ही चुके हैं। इस संबंध में वस्तुत: जो विचाराणीय बात है वह यह है। इन प्रांतों में जन-जातियों की एक बड़ा आबादी है। उड़ीसा में 30 या 35 प्रतिशत आबादी इन जन-जातियों की है। खेद है आबादी बताने में मैंने भूल की है। उड़ीसा में इनकी आबादी 35 लाख और आसाम में करीब 24 लाख है। इस पिछड़ी हुई जनसंख्या की समुन्नति के लिए ये प्रांत कोई भी रकम खर्च करने में असमर्थ हैं। संविधान में इनकी दशा को सुधारने का वचन दिया गया है। पर इस वचन की पूर्ति के लिए जो कुछ भी हम कर सकते हैं, वह तीन वर्ष बाद ही कर सकते हैं। इसके पहिले नहीं। मैं यह अवधि बताने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। संविधान को पूर्णत: प्रवर्तन में आने में तीन साल तो लग ही जायेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रधान मंत्री तथा मंत्री-मंडल इस प्रश्न पर खूब गंभीरता और सावधानी के साथ विचार करके, अगर सभी जन-जाति क्षेत्रों के लिए नहीं तो कम से कम आसाम और उड़ीसा के जन जाति क्षेत्रों के लिए, शीघ्र कोई रकम दें।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यहां यह सुझाव दिया है कि भारत के सभी जन-जाति क्षेत्रों को मिलाकर उनकी एक इकाई बना देनी चाहिये। मैं नहीं कह सकता कि उनकी एक इकाई बनाकर उन्हें एक इलाके में भारत सरकार के अधीन रखना संभव हो सकेगा या नहीं। किन्तु इस सुझाव के बारे में मैं यह जरूर कहूंगा कि जन-जातियों का अहित करने के लिए ऐसे सुझाव ही सर्वोत्तम उपाय हैं। सवाल यह है कि आप उन्हें अपने में मिलना चाहते हैं या अपने से अलग करना चाहते हैं? देश की आम आबादी से उनको अलग रखना चाहते हैं या उनको अपने में मिलाकर उन्हें राष्ट्र का अंग बना लेना चाहते हैं? ऐसा सुझाव रखकर माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने ठीक नहीं किया है। हमारा यह कर्तव्य है, श्रीमान्, कि हम इन बन्धुओं को अपने में मिलाकर अपने राष्ट्रीय समाज का उन्हें एक अंग बना दें। अभी हमने उनको पृथक कर रखा है और वह आबाद हैं पहाड़ों पर घाटियों में, जो भयंकर मलेरिया वाले स्थान हैं। क्या आप उन्हें और दूर कर देना चाहते हैं? माफ कीजियेगा, ऐसे सुझाव से उनका कोई हित नहीं

हो सकता है। उनकी सेवा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनकी समुन्नति के लिए केन्द्रीय कोष से पर्याप्त रकम दीजिये और....

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ माननीय सदस्य क्षमा करेंगे, मैं उनकी वक्तृता में हस्तक्षेप कर रहा हूं। मेरा दृष्टिकोण क्या है, उसे मैं उन्हें साफ-साफ समझा देना चाहता हूं। मेरा मन्तव्य यह है कि भविष्य में उनके लिए क्या किया जाये, यह बात जन-जातीय बन्धुओं के भावी नेताओं पर छोड़ दी जाये। उनको इस बात की स्वतंत्रता रहनी चाहिये कि वह एक पृथक इकाई के रूप में रहना चाहते हैं या नहीं, इसका फैसला वह खुद करें।

*__श्री ए.वी. ठक्कर:__ इनको पृथक करने का या मिलाने का सवाल ही कहां उठता है। जन-जाति क्षेत्र आपके देश में हैं और यही रहेंगे। इसलिए भारत सरकार से मैं यह अनुरोध करूंगा इन भाइयों की समुन्नति के लिए, संविधान के प्रवर्तन में आने के पहिले वह कोष दें। संविधान में कोरा कागजी वायदा कर देने से तो काम नहीं चलेगा।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ इस अनुच्छेद पर बोलने के पहिले, जहां तक कि सदस्यों द्वारा दिये गये विभिन्न सुझावों पर विचार करने का संबंध है, मैं माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की शिकायत का समर्थन करूंगा। यह एक तथ्य है और आशा है, आप इस पर ध्यान देंगे, श्रीमान्, कि यहां प्राय: उन संशोधनों पर और सदस्यों की उन बातों पर जो मसौदा-समिति द्वारा रखे गये सुझावों और विचारों से बिल्कुल मिलते-जुलते हुए नहीं होते हैं, मुश्किल से ही कभी कोई ध्यान दिया जाता है। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की यह शिकायत कि डॉ. अम्बेडकर प्राय: सभा भवन में उपस्थित नहीं रहते हैं और उनके विचारार्थ जो सुझाव यहां रखे जाते हैं उन पर वह ध्यान नहीं देते हैं, मेरे ख्याल में बिल्कुल सही है। हमें उनकी अनुपस्थिति पर कोई आपत्ति नहीं है, पर कुछ न कुछ प्रबंध तो इस बात का.....

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ इस समय तो वह उपस्थित हैं, अनुपस्थित कहां हैं?

*__अध्यक्ष:__ डॉ. अम्बेडकर ज्यादा अर्से तक तो कभी अनुपस्थित नहीं रहे। प्राय: वह सदा यहां उपस्थित ही रहे हैं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मैं इस बात को मंजूर करता हूं, श्रीमान्, मैं यह सुझाव दे रहा था कि अगर वह नहीं उपस्थित हो सकते हैं या और किसी काम में व्यस्त रहते हैं, तो उनकी जगह सभा में कोई ऐसा व्यक्ति रहना चाहिये, जो माननीय सदस्यों की बातों पर, उनके आग्रह पर ध्यान दे सके।

मेरा ख्याल है कि मसौदा-समिति के सदस्यों पर तथा उसके सभापति पर यह खप्त सवार हो गया है कि उनके विचार बिल्कुल सही हैं और हमेशा वह यही समझते हैं कि माननीय सदस्यों के सुझावों में ऐसी कोई भी बात नहीं जो उपयोगी हो। उनके इस रुख को ठीक नहीं समझता हूं। मैं कितने ही ऐसे उदाहरण यहां उपस्थित कर सकता हूं, जबकि माननीय सदस्यों के तर्कसंगत सुझावों को, उनके समुचित संशोधनों को बिना विचार किये ही इन्होंने अमान्य ठहरा दिया है। आशा है कि इस स्थिति में सुधार किया जायगा, क्योंकि मेरी समझ से सभा में कितने

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

ही सदस्य ऐसे हैं जो इस संविधान को औरों से अधिक महत्व देते हैं और इस पर समधिक गंभीरता के साथ विचार करना चाहते हैं।

अब मैं विचाराधीन अनुच्छेद को लेता हूं। उस पर माननीय रेवरेंड निकलस राय ने जो संशोधन रखा है, उसका में समर्थन करता हूं। पर मेरे पूर्व वक्ता सदस्यों ने जिन कारणों के आधार पर इसका समर्थन किया है उनसे सर्वथा भिन्न कारणों से मैं इसका समर्थन कर रहा हूं। प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुनी जाने वाली भावी संसदों में अपने विश्वास के अभाव की बात कहकर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद अपनी बातों को और भी निस्सार बनाते जा रहे हैं। *(हंसी)* वह अपने ही सिद्धांतों की चर्चा अब ज्यादातर करने लग गये हैं। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। यह हम लोगों का सौभाग्य ही है कि हमें उन विचारों को सुनने का यहां मौका मिल रहा है, जिनको वह मानते हैं और जिन पर उनका प्रबल आग्रह है। पर मैं जो रेवरेंड निकलस राय के संशोधन का समर्थन कर रहा हूं, वह इन सब कारणों के आधार पर नहीं। वस्तुतः सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इस बाम का प्रबल विरोधी हूं, जहां तक कि राज्य के वित्तों का संबंध है, कि सारी शक्ति एक राष्ट्रपति के हाथ में दे दी जाये। प्रो. शिब्बनलाल सकसेना के इस कथन से मैं पूर्णतः सहमत हूं कि संसद के अधिकार पर किसी भी मामले में कोई अतिक्रमण न होना चाहिये। यही कारण था कि मैंने एक मूल अधिकारों को भी संविधान में स्थान देने का विरोध किया था, क्योंकि इनसे संसद की प्रभुता छिन जाती है। जब भी कोई व्यय भारतीय राजस्व पर भारित किया जाता है, तो उससे संसद के अधिकारों का अतिक्रमण होता है। अनुच्छेद 254 के मौलिक स्वरूप को बदल कर दूसरे रूप में उसे यहां पास किया गया है। इस अनुच्छेद का जो मूल मसौदा था उसको देखने पर आपको मालूम होगा कि जो शक्ति इस स्वीकृत अनुच्छेद में अब राष्ट्रपति को दी गई है, वह पहिले मूल अनुच्छेद में संसद को दी गई थी। इस अनुच्छेद का पहिले यह रूप था:-

> (इस संविधान के इस अनुच्छेद 253 में किसी बात के होते हुए भी, सन या सन की बनी हुई वस्तुओं के किसी निर्यात शुल्क की प्रत्येक साल की कुल आय का उतना अनुपात जो संसद विधि द्वारा निश्चित भारत के आगमों का भाग न बनेगा, बल्कि इत्यादि, इत्यादि।)

अब अगर डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद में परिवर्तन करके शक्ति को राष्ट्रपति के हाथ में देना ही जरूरी समझा, तो उनके लिए तर्कसंगत यही था कि सावधानी के साथ यही परिवर्तन यह अनुच्छेद 255 में कर देते। मुझे इसका पक्का विश्वास है, श्रीमान्, कि समुचित ध्यान और सावधानी के अभाव के कारण ही अनुच्छेद 255 में उपरोक्त परिवर्तन नहीं किया गया है। और फिर अनुच्छेद 254 में उक्त परिवर्तन रखने का कारण माननीय डॉ. अम्बेडकर ने क्या बताया था? मुझे उनकी बातों से बिलकुल ही संतोष नहीं हो पाया था। ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ देर के लिए उनके दिमाग में वही बात जंच गई थी जिसको व्यक्त करने में यहां माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद कभी थकते ही नहीं हैं, यानी यह बात कि भावी संसदों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। उस अनुच्छेद में परिवर्तन

करने कारण सिर्फ उन्होंने इतना ही बताया था कि उनकी समझ से वित्त विषयक प्रश्नों को संसद के निर्णय पर छोड़ना ठीक न होगा। उनके इस एकमात्र तर्क से मुझे तो बिल्कुल ही संतोष नहीं हो पाया।

****श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैंने दो कारण बताये थे। शायद माननीय मित्र ने मेरी बात समझी नहीं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की बातों का जवाब मैं उतनी दूर तक नहीं देना चाहता हूं, जितनी दूर तक वह चाहते हैं क्योंकि ऐसा करना मेरे प्रयोजन के लिए अनावश्यक है। मैं तो केवल उन्हीं बातों का जवाब दूंगा जिनका जवाब देना जरूरी है और प्रासंगिक है। जहां तक कि राज्य के राजस्व का उसके वितरण का संबंध है, अवश्य ही मैं नहीं चाहता हूं कि इनके संबंध में राष्ट्रपति को कोई शक्ति दी जाये, पर साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता हूं कि कोई मद भारतीय राजस्व पर भारित की जाये। यह प्रावधान तो एक विशेष और असाधारण प्रावधान है और संविधान में हमें इस तरह उदरता से सर्वत्र इसका सहारा न लेना चाहिये, क्योंकि किसी भी व्यय को भारतीय राजस्व पर भारित करने के संबंध में हम एक प्रावधान स्वीकृत अनुच्छेद 93 द्वारा कर चुके हैं जिसमें कहा गया है:-

> "जितनी आगणनायें (आंके) भारत शासन के आगमों पर प्रभृत व्यय से सम्बद्ध हैं, वे संसद में मतदान के न रखी जायेगी, किन्तु......

इसलिए जहां कहीं भी हम कोई ऐसा प्रावधान रखते हैं, जिसके द्वारा कोई व्यय संचित निधि पर भारित किया जाता है, तो उस मात्रा तक संसद अपने अधिकार से वंचित हो जाती है और मैं नहीं समझता कि भारत की संचित निधि पर भारित होने वाले व्ययों को ऐसे प्रावधान द्वारा बढ़ाना संसद की प्रतिष्ठा एवं गौरव के लिए हितकर होगा। किन्तु बावजूद इन सब बातों के जो मैंने ऊपर कहीं है, श्रीमान्, प्रस्तुत प्रावधान उन क्षेत्रों की भलाई के लिए तथा उनके सुशासन के लिए किया जा रहा है, जहां हमारे जन-जाति के अभागे बन्धु बसते हैं। ये प्रदेश इतने विस्तृत हैं और इनकी जनसंख्या भी इतनी विशाल है कि उचित यही है कि इनकी समुन्नति के लिए जो भी व्यय आवश्यक हो उसकी स्वीकृति की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त रहनी चाहिये। भारत-शासन-अधिनियम 1935 में भी अपवर्जित क्षेत्रों की देख-रेख तथा जन-जातियों की समुन्नति का काम गवर्नर और गवर्नर को सुपुर्द किया गया था और वही स्वविवेक से इस संबंध में व्यवस्था करते थे। अगर हम इस बात से सहमत हैं कि जन-जातियों की दशा ऐसी है, जिसमें विशेष सहायता अपेक्षित ही है, तो उचित यही होगा कि डॉ. अम्बेडकर अनुच्छेद 255 के प्रावधानों में ऐसा परिवर्तन कर दें कि वह अनुच्छेद 254 के प्रावधानों के अनुरूप हो जायें, किन्तु वह तो अभी भी उठकर यह नहीं बता रहे हैं कि आया इस संशोधन को वह स्वीकार करते हैं या नहीं। आशा है कि वह ऐसी स्थिति में होंगे कि यहां रखे गये मन्तव्य का समर्थन करें। आसाम से संबंध रखने वाले इस प्रावधान से मुझे दिलचस्पी इसलिए है कि वह हमारे देश का एक महत्वपूर्ण सीमावर्ती प्रदेश है और आज कई वर्षो से वह अर्थाभाव से पीड़ित है। इस मामले में व्यक्तिगत रूप से मैं इतनी दिलचस्पी इसलिए भी ले रहा हूं कि मेरे अपने प्रांत में—मध्य प्रांत और बरार में—भी जन-जातियों का एक विस्तृत क्षेत्र है और उनकी एक विशाल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

आबादी है। हमारे प्रांत की कुल आबादी है 1 करोड़ 96 लाख, जिसमें 44 लाख 39 हजार यानी करीब 22 प्रतिशत आबादी है जन-जातियों की। इसके अलावा मुझे देश के पिछड़े हुए दलित और सताये हुए वर्ग से सदा ही सहानुभूति रही है और इनकी समुन्नति के लिए मैंने सदा प्रयास किया हैं सुतरां इस दृष्टि से भी मैं यह हार्दिक अनुरोध करता हूं कि आसाम प्रांत को जहां तक शक्य हो सके, अधिक से अधिक सहायता दी जाये। इसलिए आशा करता हूं कि यह समुचित संशोधन, जो ऐसा मालूम पड़ता है कि डॉ. अम्बेडकर को बहुत पहिले से ही ठीक जंच गया है, वह अनुच्छेद 254 को देखते हुए उन्हें और उपयुक्त प्रतीत होगा और उसे वह स्वीकार कर लेंगे।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र रेवरेंड निकलस राय के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। अगर उनका संशोधन मान लिया जाता है, तो उससे यह अनुच्छेद कुछ अधिक लचीला हो जायेगा। अभी जो इसका स्वरूप है, उसके अनुसार तो जब तक संसद् विधि द्वारा प्रावहित न कर दे, कोई भी रकम सहायक अनुदान के रूप में इन प्रांतों को दी नहीं जा सकती है। पर अगर रेवरेंड निकलस राय का संशोधन स्वीकृत हो जाता है, तो उसका परिणाम यह होगा कि यदि संसद विधि द्वारा इसका प्रावधान नहीं करती है, तो राष्ट्रपति आदेश द्वारा सहायक अनुदान देने की व्यवस्था करा देगा और प्रांतों को उनकी आवश्यकता के अनुसार रकम मिल जायेगी। इस अध्याय के प्रावधानों को देखने से आपको मालूम होगा, श्रीमान् कि सिवाय आयकर के अन्य जो भी कर केन्द्रीय सरकार द्वारा संग्रहीत किये जायेंगे, वह सब तब तक केन्द्रीय कोष में ही जायेंगे, जब तक कि अनुच्छेद 260 के अधीन वित्त आयोग की रिपोर्ट निकलने पर राष्ट्रपति उसके वितरण की व्यवस्था न कर दे। पर इस अन्तर्वर्ती अवधि के लिए, जब तक कि वित्त आयोग का गठन नहीं हो जाता है और वह अपनी रिपोर्ट नहीं दे देता है, राष्ट्रपति को हमें यह क्षमता देनी ही चाहिये कि वह उन प्रांतों को आर्थिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था कर सके जिन्हें इसकी जरूरत है। इस अनुच्छेद में जो दूसरा प्रावधान रखा गया है, वह बहुत जरूरी और उपयोगी है और बावजूद उन सारी दिक्कतों के, जिनकी कल्पना माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने की है, मैं नहीं देख पाता हूं कि अगर जनजाति-क्षेत्रों के लिए वैसी कोई दूसरी व्यवस्था की भी जाती है, जिसका सुझाव उन्होंने दिया है, तो उसमें इस प्रावधान के कारण क्या रुकावट पैदा हो सकती है। इस अनुच्छेद के एक परन्तुक में यह कहा गया है कि अगर कोई प्रांत विकास संबंधी किसी ऐसी योजना पर, जिसको उसने भारत सरकार के परामर्श या अनुमति से शुरू किया हो, कोई रकम खर्च करता है तो वह रकम उसे भारत सरकार देगी। इसी तरह दूसरे परन्तुक में यह कहा गया है कि आसाम को भारतीय राजस्व से वैसी पूंजी तथा आवर्तक राशियां दी जायेगी, जो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व के दो वर्ष के अन्दर औसत आगम के ऊपर उसने खर्च किया है। इसलिए मैं नहीं समझ पाता हूं कि इन परन्तुकों के कारण आगे अन्य किसी प्रावधान के बनाने में क्या रुकावट पड़ सकती है। अत: मसौदा-समिति से मैं इस बात की अपील करूंगा कि माननीय रेवरेंड निकलस राय के संशोधन को वह स्वीकार करे, क्योंकि उससे समिति की योजना में कोई बाधा न पड़ेगी, बल्कि उससे लाभ यह होगा कि उनका प्रावधान अधिक लचीला बन जायेगा।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): अभी यह एक बात यहां कही गई है, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद के प्रावधानों से संसद के अधिकारों पर अतिक्रमण होता है। मैं माननीय मित्र के इस कथन से सहमत नहीं हूं। मैं नहीं देखता कि इस प्रावधानों से संसद के अधिकारों पर भला कैसे हस्तक्षेप होता है। पहिली बात तो यह है कि प्रांतों की आर्थिक स्थिति के अनुसंधान का प्रावधान खुद संविधान में किया जा रहा है। दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद 255 के अधीन विधेयक संसद के समक्ष उपस्थित किया जायेगा और संसद ही उसे स्वीकार करके उसको कानून का स्वरूप देगी। और फिर संसद-संविधान के अधीन खुद अपने ऊपर स्वेच्छा से यह एक परिग्रह-मूलक अध्यादेश लागू कर रही है कि अमुक-अमुक राज्यों को अमुक अमुक-रकम दी जायेगी। इसलिए जो रकम प्रांतों को दी जायेगी, वह संसद् की स्वीकृति से ही दी गई समझी जायेगी। तीसरी बात यह है कि यह यहां कह दिया गया है। यह व्यवस्था कुछ वर्षों तक के लिए ही है। सभी आवश्यक संरक्षणों को मसौदा-समिति ने यहां रख दिया है। इसलिए अपने माननीय मित्रों से जो यह मानते हैं कि उन प्रावधानों से संसद के अधिकार पर हस्तक्षेप होता है, मैं सादर निवेदन करूंगा कि ऐसी बात नहीं है। वस्तुत: मैं तो यह मानता हूं, संसद में निहित अधिकारों के आधार पर ही और संसद की स्वीकृति से ही सहायक अनुदान की कोई राशि प्रांतों को मिलती है। इसलिए इस अनुच्छेद का इस आधार पर विरोध करना कि इससे संसद के अधिकारों में हस्तक्षेप होता है, बिल्कुल बेमतलब है।

इस अनुच्छेद के विरुद्ध मेरी शिकायत एक दूसरी ही है, श्रीमान्, और वह है “Scheduled tribes” और “Scheduled Area” शब्दों के प्रयोग के विरुद्ध। कई विचारों को और कई कठिनाइयों को व्यक्त करने के लिए यहां नई नई पद संहतियों का आविष्कार और प्रयोग किया गया है। किन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि विचार व्यक्त करने के लिए जितनी ही पर संहतियां निकाली जायेंगी, उनसे उतनी ही कठिनाइयां भी बढ़ती जायेंगी। “Depressed Classes” (दलित वर्ग) की जगह हमने हरिजन शब्द का प्रयोग किया, पर इससे न तो हमारी ही कठिनाई दूर हुई और न उन भाइयों की ही। हमें समय के साथ चलना होगा। हमने संविधान के मसौदे में सबके समान होने की घोषणा की है, सबको समानता प्रदान की है और कई स्थलों पर अपनी इन घोषणाओं को अमली रूप देने के लिए प्रावधान रखे हैं। ऐसी दशा में मैं नहीं समझता कि “Scheduled tribes “‘Scheduled Area’ (अनुसूचित जन-जातियां, अनुसूचित क्षेत्र) और इस तरह के अन्य पदसंहतियों को संविधान में क्यों स्थायी स्थान दिया जाये। इस संबंध में मेरा यह याद दिलाना असामयिक न होगा कि साम्राज्यवादी ब्रिटेन ने सन् 1898 में किस तरह चालाकी से पृथक निर्वाचन के विचार को जन्म दिया। उसके बाद मुश्किल से 11 साल गुजरे होंगे कि मिन्टो मारले योजना में इस बात पर आग्रह किया कि पृथक निर्वाचन की व्यवस्था संविधान में की जाये और इसके बाद मुश्किल से 37 साल बीते होंगे कि देश का विभाजन हो गया। इसलिए माननीय मित्रों से यहां मैं कहूंगा कि “अनुसूचित जन-जातियां” तथा “अनुसूचित क्षेत्र” जैसी नई पद संहतियों को जारी रखना आग के साथ खेलना है। वह इससे बचें। आखिर हम क्यों इस पदसंहति को संविधान में रखें? ये सभी दलित-वर्ग के लोग हैं। हमारे देश में कई दलित-वर्ग के लोग हैं। 28 से 40 तक के अनुच्छेदों में इनकी समुन्नति और संरक्षण का खास तौर पर प्रावधान किया गया है और ये अनुच्छेद ही इस प्रयोजन के लिए

[श्री विश्वनाथ दास]

पर्याप्त हैं। ये अनुच्छेद मानों पर्याप्त ही नहीं हैं जो आप इनके लिए खास तौर पर प्रावधान रख रहे हैं। इनकी समुन्नति के लिए आप संसद को ही शक्ति क्यों नहीं दे देते हैं और क्यों संसद पर विश्वास नहीं करते हैं? यहां ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन इन भाइयों की सेवा में बिता दिया है। इस देश ने ठक्कर बापा जैसे व्यक्ति को और उन जैसे त्यागी कितने ही कर्मियों को जन्म दिया है, जिन्होंने इन दलित भाइयों की सेवा को ही अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य मान लिया हैं। देश की सद्भावना में, संविधान द्वारा प्रदत्त संरक्षणों में आप क्यों नहीं विश्वास रखते हैं? आप क्यों इन पदसंहतियों को संविधान में रखकर इनको स्थायित्व प्रदान कर रहे हैं? मेरा तो यह विश्वास है, श्रीमान्, कि जिस तरह 'पृथक निर्वाचन' की पदसंहति का हमें कटु अनुभव हुआ है, यह पदसंहतियां भी कुछ बुरा ही परिणाम हमें दिखायेंगी।

इतना तो पिछड़ी हुई जातियों और क्षेत्रों के संबंध में मैंने कहा। अब अनुच्छेद 255 के दूसरे अंश को मैं लेता हूं। मेरा मतलब है, अनुच्छेद के परन्तुक के भाग (क) से, जो यों है:–

"षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 से संलग्न सारिणी के भाग 1 में उल्लिखित जनजाति-क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में बारे में इस संविधान के प्रारम्भ से सद्य:पूर्व तीन वर्ष के आगमों से अधिक जो औसत व्यय हों।"

सद्य:पूर्व के तीन वर्षो के आगमों के ऊपर जो औसत व्यय पड़ा हो, उसके हिसाब के सहायक अनुदान की रकम दी जायेगी, श्रीमान्, पर ऐसा कैसे होगा और क्यों होगा? आसाम और उड़ीसा की अभागी सरकारों को आगम से अधिक रकम कहां से आयेगी, जिसे वह अपने अनुन्नत प्रदेशों पर खर्च करेंगे? ये सरकारें तो खुद टोटे में रहती हैं और उनकी असमर्थता और ज्ञानाभाव पर यहां ठक्कर बापा सरीखे व्यक्ति ने भी जोर दिया है, जिसने अपना सारा जीवन ही दलितों की समस्या के समाधान में बिता दिया है। जब इन प्रांतों के बजट में बचत ही नहीं हो पाती थी, तो अपने अनुन्नत प्रदेशों पर यह रकम कहां से खर्च करते? अपनी प्रशासन-व्यवस्था को ये किसी तरह चला भर लेते थे। फिर अतीत व्यय के आधार पर सहायक अनुदान देने की बात यहां क्यों रख रहे हैं? अनुच्छेद यह अंश मुझे सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है, श्रीमान्, और खास करके उस हालत में जबकि परन्तुक का उपखंड (ख) यहां रख दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि "जो रकम उक्त क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के प्रयोजनार्थ उक्त राज्य द्वारा भारत शासन के अनुमोदन से इत्यादि इत्यादि। इससे यह स्पष्ट है कि बिना केन्द्रीय शासन की पूर्व स्वीकृति के राज्य इस प्रयोजन के लिए कोई रकम व्यय ही न करेगा।

इस अनुच्छेद में इस अनुन्नन क्षेत्रों के विकासार्थ जो खास प्रावधान रखा गया है, श्रीमान्, इसके लिए मैं सभा का तथा मसौदा-समिति का कृतज्ञ हूं। पर सवाल यह है कि सहायक अनुदान का लाभ इन प्रांतों को मिलेगा कब से? वह उन्हें मिल सकेगा पांच साल बाद। इस अवधि को कम करने के लिए, मुझे मालूम हुआ है कि कुछ संशोधनों की सूचनाये आई हैं: मैं इस विचार का स्वागत करता हूं। संशोधन पास होने पर यह अवधि और कम ही जायेगी और इन प्रांतों को कुछ पहिले ही सहायक अनुदान मिलने लगेगा। पर जैसाकि यहां श्रद्धेय ठक्कर

बापा ने बताया है इन प्रांतों को रकम की जबरदस्त जरूरत है और वह मिलनी चाहिये उनके अभी। उनके पास ऐसे साधन हैं नहीं जिनसे वह रकम इकट्ठी कर सकें। मैं यह कहूंगा कि इसके लिए यहां हमें कुछ खास प्रावधान कर देना चाहिये या केन्द्र को इस बात की घोषणा कर देनी चाहिये कि वह शीघ्र ही इस संबंध में कोई व्यवस्था करेगा।

इन शब्दों के साथ मैं माननीय मित्र रेवरेण्ड निकलस राय के संशोधन का समर्थन करता हूं क्योंकि इससे स्थिति संभल जायेगी।

*__श्री पी.एस. नटराज पिल्ले__ (ट्रावनकोर राज्य): मैं बहस में इस समय केवल इसलिए दखल दे रहा हूं कि मैं प्रथम अनुसूची में भाग 3 की एक रियासत से आया हूं और विचाराधीन अनुच्छेद से कुछ ऐसी बातें होंगी जिनका ट्रावनकोर जैसे राज्यों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा जिसे मैं यहां बता देना चाहता हूं।

ऐसे अनुच्छेद जिनके द्वारा केन्द्र एवं विभिन्न इकाइयों के बीच राजस्व वितरण की व्यवस्था की जाती है, वे फेडरल संविधान में बड़े ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। संविधान के मसौदे का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें प्रथम अनुसूची में भाग 1 और भाग 3 के राज्यों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है और हमने ऐसे अनुच्छेदों को स्वीकार किया है जिनमें भाग 1 के तथा भाग 3 के राज्यों को समान स्तर पर रखा गया है। जहां तक कि केन्द्र एवं प्रांतों के बीच वित्त-वितरण के प्रश्न का संबंध है, उसमें भी हमेशा शिकायतें रही हैं और बावजूद इस बात के इसके संबंध में कई निर्णय दिये गये पर इनका परस्पर कलह और झगड़ा अभी भी बना ही हुआ है। केन्द्र के गंभीर दायित्वों को मैं समझता हूं और यह मानता हूं कि जब तक कि केन्द्र की आय में वृद्धि न की जायेगी वह अपने प्रकार्यों के पालन में समर्थ नहीं हो सकता है। किन्तु राज्यों को भी, श्रीमान्, अपने निवासियों के भौतिक एवं नैतिक कल्याण का ख्याल रखना ही होगा और इस संबंध में उनको भी अपने प्रकार्यों का पालन करना ही होगा। इसलिए जब तक कि वित्त-विभाजन के प्रश्न पर समत्व एवं न्याय की दृष्टि से विचार कर उसको सुचारू रूप से तय नहीं किया जाता है, हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि जनता शांतिपूर्वक समुन्नति कर सकेगी।

भारतीय रियासतों के विलोपीकरण के फलस्वरूप जो राज्य-संघ स्थापित हुए हैं, उनमें सभी राज्य ऐसे थे जिन्हें प्राय: एक लम्बे अरसे से केन्द्रीय आय साधनों पर जैसे, आय पर, उत्पादन तथा आयात-निर्यात पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त रहा है। इन राज्यों की आर्थिक व्यवस्था तथा शासन संबंधी ढांचा इन्हीं आय साधनों पर विकसित किया गया था। अब अगर एकाएक उनसे इन साधनों को ले लिया जाता है और केवल वही आय साधन उनके पास रहने दिये जाते हैं जो कि प्रांतों को प्राप्त हैं तो फिर इनका भविष्य अन्धकार ही समझिये। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊंगा कि ट्रावनकोर रियासत की, जहां से मैं आया हूं, करीब 40 प्रतिशत आय होती है केन्द्रीय साधनों से। इस संविधान के प्रवर्तन में आते ही केन्द्रीय साधनों से उसे जो आमदनी होती है वह जाती रहेगी। इस रियासत की प्रशासन व्यवस्था आज करीब एक सौ वर्ष से भी ज्यादा अरसे में शनै:शनै: विकसित हो पाई है और इन्हीं साधनों से प्राप्त आय के बल पर ही यहां की शासन व्यवस्था

[श्री पी.एस. नटराज पिल्ले]

का निर्माण किया गया है। अब अगर इस अन्तर्वर्ती काल के लिए कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की जाती है जिससे कि उसकी प्रशासन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो कहना होगा कि इन राज्यों का भाग्य वस्तुत: शोचनीय ही होगा।

मैं सभा के सामने कोई ऐसी बात नहीं रख रहा हूं जो बिल्कुल नई हो क्योंकि यूनियन पावर्स कमेटी ने अपनी ता. 17 अप्रैल सन् 1947 ई. की रिपोर्ट में, पैरा 2 में, यही बात कही है। पैरा 2 में यह कहा गया है:

"उपरोक्त कई करों का आनियमन उस समझौते के द्वारा होता है जो इस संबंध में भारत सरकार तथा रियासतों के बीच हुआ है। इसलिए हमारा यह ख्याल है कि समूचे संघ में एकाएक एक तरह की कर पद्धति का लागू करना शायद संभव न हो सकेगा। इसलिए इस संबंध में हमारी सिफारिश यह है कि संघ की स्थापना के बाद एक ऐसी अवधि तक जो सबकी सहमति से निश्चित की जाये और जो 15 वर्ष से अधिक की न हो, संघ में करों की एकरूपता स्थापित करने का काम स्थगित रखा जाये और उक्त करों का राज्यों द्वारा आरोपण, संग्रह तथा विभाजन, संघ-सरकार और राज्यों के बीच हुए समझौते के अधीन किया जाये। इसलिए इस सिफारिश को कार्यान्वित करने के लिए तदनुसार एक प्रावधान संविधान में होना चाहिये।"

इस सिफारिश के अनुसार एक प्रावधान मसौदे में रखा गया है। पर मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान् कि मसौदे में जो संशोधन किये गये हैं और जिन अनुच्छेदों को हम स्वीकार कर चुके हैं उनसे संभवत: अनुच्छेद 258 उस रूप में इस संशोधित मसौदे में न आ पायेगा जिस रूप में कि यह मूल मसौदे में रखा गया था। मसौदे का जो अब स्वरूप है उसमें प्रांत तथा रियासतें दोनों समान स्तर पर आ गये हैं। इसलिए जब तक कि कुछ आय साधन रियासतों के लिए अलग न कर दिये जायें या दस साल की या अन्य ऐसी किसी संक्रमणकालीन अवधि के लिए कोई विशेष व्यवस्था न कर दी जाये जिससे कि रियायतें अपने आय-साधनों से अपना व्यय पूरा करने में समर्थ हो सकें ये राज्य के रूप में अपने प्रकार्यों को पूरा ही नहीं कर सकती हैं। इनको पर्याप्त आर्थिक सहायता मिल सके, इसके लिए कुछ न कुछ प्रावधान संविधान में होना ही चाहिये। यह सहायता चाहे इनको अनुदान के रूप में दी जाये या आर्थिक साहाय्य के रूप में, पर मिलनी चाहिये। जिन करों के आरोपण और संग्रहण का अधिकार इन रियासतों को एक अरसे से प्राप्त रहा है, उससे वे उसी दिन से वंचित हो जायेंगी जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा।

इस संबंध में सभा के समक्ष मैं यह उपस्थित कर देना चाहता हूं, श्रीमान्, कि कई रियासतों में तो शासन व्यवस्था बहुत ही प्रगतिशील हो चुकी है और जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को धीरे-धीरे पूरा करने लगी है। कुछ रियासतों में, और उदाहरण के लिए ट्रावनकोर में ही जहां से मैं आया हूं शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है और मद्य निषेध की योजना कानूनन अमल में लाई जा रही है। भूमिकर प्रांतों के लिए आय का एक खास साधन है पर इन रियासतों में भूमि पर कम से कम एक कर निर्धारित कर दिया गया है और उस कर में ऐसी कोई वृद्धि नहीं की जा सकती है जिसे दिया ही न जा सके। इस अन्तरिम अवधि

के लिए अगर कोई व्यवस्था नहीं कर दी जाती है तो इन रियायतों की दशा वस्तुत: शोचनीय ही हो जायेगी। ऐसे प्रदेश में जहां जनता अच्छी तरह शिक्षित है और राजनैतिक दृष्टि से पूर्णत: जागरूक है, अगर राज्य जनता के क्रमिक विकास की व्यवस्था करने में और उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं हो पाता है तो वहां भयंकर उपद्रव खड़े होंगे और उससे भारत की समुन्नति और समृद्धि में बाधा ही पहुंचेगी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मैं महसूस करता हूं जंजीर की मजबूती निर्भर करती है उसकी कड़ियों पर। अगर कड़ियां मजबूत हैं तो जंजीर का मजबूत होना लाजिमी है। अगर देश के किसी भाग में असन्तोष और उपद्रव वर्तमान हैं तो उससे जनता के हित को नुकसान ही पहुंचेगा। मैं सभा से साग्रह निवेदन करूंगा कि वह प्रश्न के इस पहले पर गंभीरतापूर्वक विचार करे।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी__ (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय और जिम्मेदार सदस्यों को जिनको संविधान बनाने का काम सौंपा गया है, अतीत के अनुभवों को भी ध्यान में रखना चाहिये जिससे अतीत की त्रुटियों का इस संविधान में निराकरण किया जा सके। इसी उद्देश्य से मेरे प्रांत के तथा अन्य कई जगहों के सदस्य, पूर्ववर्ती संविधान में आसाम और उड़ीसा के साथ जो अन्याय किया गया था और उसके साथ असम व्यवहार किया गया था उस पर काफी प्रकाश डाल चुके हैं। अपने भाषण में मुझे उन सब बातों को दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। मैं सदस्यों से केवल यही कहना चाहता हूं कि वे इस बात को याद रखें कि अनुच्छेद 253 या 254 में संशोधन रखकर हम न्याय की आशा करते थे पर हमारी वह आशा केवल दुराशा ही सिद्ध हुई और अब इस अनुच्छेद 255 में अगर संशोधन हो जाता है तो हम कुछ उम्मीद कर सकते हैं वरना वह उम्मीद भी खत्म ही समझिये। अगर इस अनुच्छेद 255 के शब्दों में कुछ हेरफेर कर दिया जाता है तब तो आसाम और उड़ीसा जैसे प्रांतों को कुछ सहायता मिल सकती है अन्यथा उनकी कोई आशा नहीं है। अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें, जरूरत वाले किसी प्रांत को सहायता दी जाये या न दी जाये यह बात निर्भर करती है संसद पर। यह जरूर है कि इस अनुच्छेद द्वारा किसी जरूरत वाले प्रांत को पर्याप्त अनुदान देने का अधिकार संसद को प्राप्त है पर संसद के लिए यह अनिवार्य नहीं ठहराया गया है कि उसे ऐसे प्रांत को अनुदान देना ही होगा। संसद में विभिन्न प्रांतों के सदस्य होते हैं और हर सदस्य इस बात के लिए वचनबद्ध रहता है या इसका आश्वासन दिये रहता है कि अपने प्रांत की चिंता वह पहले करेगा। अब अगर विभिन्न प्रांतों में कोई संघर्ष खड़ा हो जाता है तो हो सकता है संसद किसी प्रांत विशेष को अनुदान न दे या आपात की दशा में हो सकता है वह किसी प्रांत विशेष को अनुदान न देने का निर्णय करे और केवल संपन्न प्रांतों को ही अनुदान दे। ऐसी स्थिति में, मैं पूछता हूं कि बिहार, उड़ीसा और आसाम जैसे प्रांतों की जिन्हें अनुदान की जबरदस्त आवश्यकता है, क्या गति होगी? इसलिए मैं अपने उन माननीय बन्धुओं से जिन पर संविधान की रचना का भार है, वह निवेदन करूंगा कि वे इस बात पर भी ध्यान रखें कि भला उन प्रांतों को जिन्हें सभी जानते हैं कि सहायता की आवश्यकता है, संविधान से यह उम्मीद करने का अधिकार है या नहीं कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनको कुछ न कुछ अनुदान केन्द्र से मिलेगा ही? पुराने भारत-शासन अधिनियम की धारा 142 के अनुसार केन्द्र प्रांतों को सदा ही कुछ अनुदान देता रहा है। इसलिए अगर अनुच्छेद 255 में जो शब्द रखे गये हैं वे

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

केवल रूढ़ि पालन के लिए रखे गये हैं और अनुच्छेद का अभिप्राय यही है कि आवश्यकता वाले प्रांतों को अनुदान दिया ही जायेगा, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर अगर अनुच्छेद का मतलब यह है कि जरूरत वाले प्रांत को भी अनुदान न देने का अधिकार संसद को हो तो मैं अनुच्छेद की इस भाषा का घोर विरोध करता हूं।

इस अनुच्छेद के प्रथम परन्तुक की ओर भी मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। वित्त संबंधी समूचे अध्याय में यही परन्तुक ही एक मात्र ऐसा प्रावधान है जिससे आशा की कुछ झलक मिलती है। एक राज्य विशेष के अनुसूचित क्षेत्रों के शासन स्तर को समुन्नत करने के लिए तथा उस क्षेत्र के विकास के लिए एक रकम अनुदान के रूप में केन्द्रीय शासन को इस परन्तुक के अधीन देना ही होगा। यहां तक तो यह ठीक है पर जब आप यह कहते हैं कि अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत करने के लिए सहायक अनुदान की अपेक्षित रकम दी जायेगी तो मेरी समझ से इसका मतलब यह हो जाता है कि वस्तुत: आप कुछ भी नहीं दे रहे हैं। अगर आसाम जैसे प्रांत के लिए जहां की आर्थिक स्थिति बड़ी हीन है, जहां एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है जन जातियों का, आप केवल यही चाहते हैं कि अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन का स्तर उतना ही उन्नत हो जितना कि उस प्रांत के शेष क्षेत्रों का प्रशासन स्तर है, तो इसका मतलब तो यह हुआ कि आप इस प्रांत के लिए कुछ भी नहीं करना चाहते है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि अगर इस मामले में आप कुछ नहीं करते हैं तो शीघ्र ही वह समय आ रहा है जब आसाम की समूची शासन-व्यवस्था कोष के अभाव में टूट जायगी और वहां की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जायेगी और जब तक यह अनुच्छेद प्रवर्तन में आयेगा वहां की हालत बिल्कुल ही खराब हो जायगी। अगर आपकी आकांक्षा केवल इतनी ही है अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत हो जाये तो मुझे कहना पड़ेगा कि आपकी आकांक्षा बड़ी तुच्छ है और आप कुछ करना नहीं चाहते हैं। इसलिए मेरा कहना यह है कि आपकी आकांक्षा यह होनी चाहिये कि अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन का स्तर देश के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक पहुंच जाये। इसलिए मैंने अपने संशोधन में यह कहा है कि "उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक" शब्दों की जगह "देश के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक" शब्द रखने चाहियें। यह बात सच है कि मेरा यह संशोधन पेश नहीं हुआ है पर इस दिशा में अगर हम कुछ करते हैं तो उस पर कोई रुकावट नहीं आती है। दूसरी बात जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं वह है दूसरे परन्तुक के उप खंड (क) के संबंध में। इसमें यह कहा गया है कि "इस संविधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व दो वर्ष के आगमों से जो औसतन अधिक व्यय हुआ हो.....इत्यादि, इत्यादि....मेरा कहना यह है कि औसतन शब्द यहां न रहना चाहिये। पहले यह कहा गया था कि संविधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व तीन वर्षों के आगमों से जो औसतन अधिक व्यय हुआ हो। पर अब जब तीन वर्ष की जगह आप दो वर्ष रख रहे हैं तो मेरा ख्याल है कि औसत का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहां 'औसतन' शब्द को हटाकर केवल इतना ही कहना काफी होगा कि आगम से जो अधिक व्यय हुआ होगा उतनी रकम सहायक अनुदान में प्रांत को दी जायेगी। व्यय तो हर साल बढ़ता जा रहा है इसलिए इस साल के व्यय से आगामी साल के व्यय की कोई तुलना नहीं की जा सकती है। इसलिए 'औसतन' शब्द को हटाकर इतना ही कहना

चाहिये कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर, आगम से जो भी अधिक व्यय प्रांत को उठाना पड़ा होगा उतनी रकम सहायक अनुदान में उसे अवश्य दी जायेगी। अगर ये दो संशोधन इस अनुच्छेद में कर दिये जाते हैं तो अनुसूचित क्षेत्रों की समुन्नति के लिए वस्तुतः संविधान में कुछ किया गया समझा जा सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): यह अनुच्छेद 255, वस्तुतः भारतीय एक्ट का एक प्रतीक है, श्रीमान्। गरीब प्रान्त जिनके पास इतनी आमदनी नहीं है कि अपना खर्च पूरा कर सकें और अपने प्रशासन स्तर को अन्य प्रान्तों के प्रशासन स्तर तक ला सकें उनको केन्द्र से आर्थिक साहाय्य मिलना आवश्यक है। अतीत काल में केन्द्रीय सरकार की जो भी नीति रही हो किन्तु अपने इस संविधान की नीति यही है कि पूर्वकालीन नीति को अब बदल दिया जाये और इस अनुच्छेद 255 द्वारा इस बात की पुष्टि हो जाती है कि केन्द्र से इन प्रान्तों को सहायता मिलेगी। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है:

"ऐसी राशियां, जो संसद् विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के आगमों के सहायक अनुदान के रूप में भारत के आगमों पर प्रति वर्ष भारित होंगी, जिन राज्यों के विषय में संसद यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न राज्यों के लिये भिन्न-भिन्न राशियां नियत की जा सकेंगी।"

हां, यह दुर्भाग्य की बात जरूर है कि अनुच्छेद में तीन स्थल पर 'may' शब्द आये हैं पर 'shall' शब्द आया है सिर्फ एक स्थल पर। वस्तुतः इस अनुच्छेद से अभावग्रस्त प्रान्तों को अधिकार नहीं प्राप्त होता है कि वह इस बात पर जोर दे सकें कि संसद उनकी साहाय्य देने का निर्णय करे ही। साहाय्य देना सर्वथा संसद् की मरजी पर छोड़ा गया है। अनुच्छेद की रचना ही इस तरह की गई है कि साहाय्य देना या न देना संसद की मरजी पर निर्भर करता है।

मुझे और भी प्रसन्नता होती अगर आवश्यकता वाले प्रांतों को सहायता देना संसद के लिए अनिवार्य कर दिया गया होता। इस सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब की स्थिति का जिक्र कर देना मेरे लिये लाजिमी है। इस अनुच्छेद के परन्तुक में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को समुन्नत करने की बात कही गई है। किन्तु दुर्भाग्य से कुछ ऐसे भी प्रान्त हैं—इस सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब का विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है—जिसकी आर्थिक दशा बिल्कुल बर्बाद हो गई है, जिनके आय प्रसाधन पाकिस्तान में छूट गये हैं और सुतरां उनकी आज पहिले की अपेक्षा बिल्कुल ही नगण्य हो गई है। यह स्पष्ट है, कि ऐसे प्रान्तों को जब तक केन्द्र से सहायता नहीं मिलती है उनके लिए अपनी प्रशासन व्यवस्था को चलाना बड़ा कठिन होगा क्योंकि इन प्रान्तों का प्रशासन स्तर अन्य प्रांतों के समान ही रहा है। ऐसे प्रान्तों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि वह इनको इतनी सहायता दे सके जितनी कि मंत्रि मण्डल उचित समझता हो इस उद्देश्य की तथा अन्य कई अभिप्रायों की पूर्ति के लिए रेवरेंड निकलस राय ने अपना संशोधन रखा है। मैं उनके संशोधन का समर्थन करता हूं। कोई कारण नहीं दिखाई देता कि जब तक इस सम्बन्ध में संसद द्वारा कोई कानून नहीं बनता है, तब तक अवसर के अनुसार समुचित साहाय्य प्रदान करने का अधिकार राष्ट्रपति को क्यों न दिया जाये? इसलिये इस संशोधन का मैं समर्थन करता हूं और सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो इस अनुच्छेद से सम्बन्ध रखती है। इस अनुच्छेद में उन्होंने यह रखा है कि:– "ऐसी राशियां, जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के आगमों के सहायक अनुदान के रूप में भारत के आगमों पर प्रति वर्ष भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद् यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है; भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न राशियां नियत की जा सकेंगी"। किन्तु अनुच्छेद 251 और 254 में मैंने इसी आशय का संशोधन रखा था और यह चाहा था कि आय का वितरण संसद द्वारा एक विधि के अधीन किया जाये। पर इसके विरुद्ध डॉ. अम्बेडकर ने यह दलील पेश की थी कि अगर वितरण संसद द्वारा विधि के अधीन किया जाता है तो संसद में वितरण सम्बन्धी प्रश्न पर अनावश्यक कलह उत्पन्न होगा। किन्तु इस अनुच्छेद में मैं देखता हूं उन्होंने "जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे" शब्द रखे हैं। यानी जो बात मैं अनुच्छेद 251 और 254 में रखना चाहता था वही बात आपने खुद यहा रखी है। अब मैं यह पूछता हूं कि संसद् में वही कलह क्या इस अनुच्छेद के सिलसिले में न उठेगा? या तो इन शब्दों को यहां रखना असंगत है या फिर डॉ. अम्बेडकर के मन में कुछ बात है। जिसे वह छिपाना चाहते हैं। या यह भी हो सकता है कि मेरे संशोधनों के सम्बन्ध में उन्होंने भूल की जो उसका विरोध किया। जो भी हो मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद में उन्होंने मेरे सुझाये शब्दों को रखना मंजूर किया।

रेवरेन्ड निकलस राय ने जो संशोधन रखा है उसका मैं समर्थन करता हूं। माननीय श्री मुहम्मद सादुल्ला को उनकी लम्बी और प्रकाशपूर्ण वक्तृता के लिए धन्यवाद देता हूं जिसमें उन्होंने आसाम की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। निजी तौर पर मैं भी यही महसूस करता हूं कि इस सभा ने आसाम के लिए उतनी चिन्ता नहीं व्यक्त की है जितनी कि आसाम के लिये इसे होनी चाहिये। आसाम आज हमारा सीमावर्ती प्रान्त है। गत महायुद्ध ने इसका महत्व सिद्ध कर दिया है। पर हम इसे सर्वथा दयनीय दशा में रखे हुए हैं। आसाम से प्राप्त होने वाली और चीजों को तो जाने दीजिये, चाय और पेट्रोल पर निर्यात शुल्क के जरिये केन्द्र को हर साल 12 करोड़ की आमदनी हो जाती है। इस आमदनी के केवल तीस लाख हम आसाम को देते हैं और शेष सब केन्द्र के पास रह जाता है। इतने पर भी हम यह उम्मीद करते हैं कि हमारे पूर्ववर्ती सीमा प्रान्त आसाम को हमारे बचाव के लिए एक जबरदस्त गढ़ बनना चाहिये। मेरा ख्याल है कि आसाम के बन्धुओं ने यहां अकाट्य ढंग से आसाम को साहाय्य प्रदान करने की बात का प्रतिपादन किया है और सभा को उनकी बातों पर समुचित ध्यान देना चाहिये। जो संशोधन इस सम्बन्ध में रखा गया है उसके द्वारा राष्ट्रपति को वस्तुत: इतना ही अधिकार मिलता है कि अपेक्षित साहाय्य वह सद्य: इस प्रान्त को दे सकता है। अन्यथा अगर यह शब्द यहां रहते हैं कि "जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे" तो फिर इससे यही होगा कि इस प्रान्त को साहाय्य पाने में कुछ समय लग जायेगा। हमारे आसाम के भाई यह चाहते हैं कि संविधान के स्वीकृत होते ही राष्ट्रपति आदेश द्वारा इतनी रकम दिला दे जिससे कि वह आवर्तक कमी को पूरा कर सकें और विकास सम्बन्धी कुछ योजनाओं को भी हाथ में ले सकें। रेलवे सम्बन्धी कर्मचारियों के संगठन को लेकर तथा वहां की कोयले और पेट्रोल की खानों में काम करने वाले मजदूरों के संगठन को लेकर मुझे कई बार आसाम जाने का

मौका मिला है और मैं जानता हूं कि यह प्रदेश कितना महत्वपूर्ण है। यह एक विस्तृत प्रदेश है जिसका क्षेत्रफल है करीब 50 हजार वर्ग मील और आबादी है सिर्फ 75 लाख। यहां की एक तिहाई आबादी जनजातियों की है। इस अनुच्छेद में हम इन जनजातियों की समुन्नति के लिये विशेष सहायता देने का प्रावधान कर रहे हैं। पर मैं यह महसूस करता हूं कि जनजातीय क्षेत्रों को प्रान्त के शेष क्षेत्रों के स्तर पर लाने के लिए हमें कोई पंचवर्षीय योजना अपनानी चाहिये। आज पीढ़ियों से हम इनकी अपेक्षा करते आ रहे हैं। ठक्कर बापा ने अपना समस्त जीवन ही इन लोगों की सेवा में बिता दिया है। उन्होंने इनकी दीन दशा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और इस बात पर खुशी जाहिर की है कि संविधान में इनकी समुन्नति के लिये विशेष साहाय्य देने का प्रावधान किया जा रहा है। संघ के कोष से इनको रकम मिलनी चाहिये ताकि जनजातियों की ओर उनके क्षेत्रों की समुन्नति की जा सके और अपने स्वतंत्र लोकतंत्र में इनको समुचित स्थान मिल सके जिससे कि हमारी पूर्ववर्ती सीमा के लिए ये योग्य संरक्षक बन सकें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, बिना एक क्षण भी सोच विचार किये मैं माननीय मित्र श्री निकलस राय के संशोधन को मान लेने के लिए तैयार हूं। इस अनुच्छेद के मसौदे से शायद सदस्यों को यह धारणा हो रही है कि जब तक संसद हर वर्ष यह न निश्चय कर दे कि सहायक अनुदान के रूप में कितनी रकम दी जाये, राष्ट्रपति स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। अवश्य ही मसौदा समिति का यह अभिप्राय नहीं है। मसौदा समिति तो यही चाहेगी कि राष्ट्रपति अनुदान प्रदान करने के बारे में जो शक्तियां उसे प्राप्त हैं उनका वह प्रयोग करे चाहे संसद भले ही अनुदान के सम्बन्ध में कोई निर्णय न कर पाई हो। इसलिये स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, जैसा मैंने अभी कहा है, श्री निकलस राय के संशोधन को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूं। किन्तु इस समय मैं यह बता देना चाहता हूं कि उनके संशोधन की भाषा पर अच्छी तरह विचार करने का मुझे समय नहीं मिल पाया है। इसलिये इस शर्त के साथ कि संशोधन में अनुच्छेद 255 की भाषा के अनुरूप आवश्यक शाब्दिक हेर-फेर करने का अधिकार मसौदा समिति को रहेगा, मैं इस संशोधन को स्वीकार करने पर तैयार हूं।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहला संशोधन है नं. 84, जो डॉ. अम्बेडकर का है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 में 'revenues of India' (भारतीय राजस्व) शब्द जहां भी आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Funds of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रख जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** दूसरा संशोधन है नं. 85 का जिसे डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 के प्रथम परन्तुक में 'For the time being specified in part of First Schedule' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब संशोधन नं. 86 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 के द्वितीय परन्तुक के खण्ड (क) में 'three years' (तीन वर्ष) शब्दों की जगह 'two years' (दो वर्ष) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब मैं रेवरेन्ड निकल्स राय के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 में—(क) 'Parliament may by law provide' (जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे) शब्दों के बाद 'or until Parliament thus provides as may be prescribed by the President' (या जब तक संसद इस तरह प्रावहित नहीं करती, राष्ट्रपति जैसा विहित करे वैसा) शब्द रखे जायें।

(ख) 'Parliament may determine' (संसद यह निश्चित करे) शब्दों के आगे 'or until Parliament determines as the President may determine' (या जब तक संसद नहीं निश्चित करती है, राष्ट्रपति जैसा निश्चित करे) शब्द रखे जायें; और

(ग) अनुच्छेद के अन्त में निम्नलिखित व्याख्या जोड़ दी जायेः–

व्याख्या–'विहित' शब्द का यहां वहीं अर्थ है जो अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधित अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 255 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 255, अपने संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 256

*अध्यक्षः अब हम अनुच्छेद 256 को लेते हैं। छपी हुई सूची के दूसरे अंक में दिया हुआ संशोधन नं. 2925 लिया जाता है, जो डॉ. अम्बेडकर का है।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जायेः

(1) इस संविधान के अनुच्छेद 217 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के विधान-मण्डल की, ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि जो उस राज्य या किसी नगर-पालिका, जिला मण्डली, स्थानीय मण्डली अथवा उसमें अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में लागू होती है, इस आधार पर अमान्य न होगी कि वह आय पर कर है।"

उत्तरवर्ती अनुच्छेद में यह कहा गया है कि स्थानीय प्राधिकारियों को वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों पर एक सीमा तक कुछ कर लगाने का अधिकार होगा। आशंका यह की जाती है कि राज्य द्वारा पेसा कोई कर अगर लगाया जाता है तो उस पर यह कहकर आपत्ति की जा सकती है कि यह तो आय पर कर लगाना है जिसका अधिकार केवल केन्द्र को है। उपखण्ड (1) में वर्णित प्रयोजन के लिये बनाई गई किसी विधि पर ऐसी कोई आपत्ति न की जा सके इसके लिए प्रस्तुत प्रावधान को रखना मसौदा समिति ने बहुत आवश्यक समझा है। तदनुसार, मैं इस संशोधन का प्रस्ताव करता हूं।

*__अध्यक्षः__ इस संशोधन पर एक संशोधन की सूचना श्री सिधवा ने दे रखी है।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं, श्रीमान्।

*__अध्यक्षः__ उसके बाद दो संशोधन हैं ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर के। छपी हुई सूची में इनका नम्बर है 2926 और 2927। ये संशोधन पेश नहीं किये जा रहे हैं। इसके बाद आता है संशोधन नं. 2928 जो सरदार भूपेन्द्र सिंह मान के नाम में है।

*__सरदार भूपेन्द्र सिंह मान__ (पूर्वी पंजाब : सिख): मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद आता है संशोधन नं. 203 जो श्री सिधवा के नाम में है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ मैं इसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ अब आते हैं संशोधन नं. 89 और 90 जो श्री पी.डी. हिम्मतसिंहका के नाम में हैं। वह भी इन्हें नहीं पेश कर रहे हैं। अब लिया जाता है संशोधन नं. 91 जो डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः इसे मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

*अध्यक्षः अब लिया जाता है संशोधन नं. 93, जो प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (2) में 'two hundred and fifty rupees' (ढाई सौ रुपये) शब्दों की जगह दोनों स्थलों पर जहां ये शब्द आये हैं, 'one per cent, of their annual income or one thousand rupees' (उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये) शब्द रखे जाये।"

ऐसा परिवर्तन हो जाने पर अनुच्छेद का रूप यह हो जायेगा:–

'(2) The total amount payable in respect of any one person to the State or to any one municipality, district board, local board, or other local authority in the State by way of taxes on professions, trades, callings and employments shall not exceed one per cent. of their annual income or one thousand rupees per annum:

Provided that if in the financial year immediately preceding the commencement of this Constitution there was in force any State or any such municipality, board or authority, a tax on professions, trades, callings, or employments, the rate, or the maximum rate of which exceeded one per cent of their annual income or one thousand rupees per annum, such tax may continue to be devied until provision to the contrary is made by Parliament by law, and any law so made by Parliament may be made either generally or in relation to any specified States, municipalities, boards or authorities.' "

(किसी एक व्यक्ति द्वारा व्यवसाय, व्यापार वृत्तियों तथा सेवा युक्तियों के बारे में उस राज्य को अथवा उसके अंतर्गत किसी एक नगर पालिका, जिला मण्डली या स्थानीय मण्डली अथवा अन्य स्थानीय प्राधिकारी को देय करों की समस्त राशि उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये से अधिक न होगीः

पर यदि इस संविधान के प्रारम्भ के सद्यःपूर्व के आर्थिक वर्ष में किसी राज्य में अथवा किसी नगर पालिका, मण्डली या प्राधिकारी में व्यवसाय, व्यापार वृत्तियों अथवा सेवायुक्तियों पर ऐसा कर लागू था जिसकी मात्रा अथवा जिसकी अधिकतम मात्रा उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत से अथवा एक हजार रुपये सालाना से अधिक थी, जो ऐसा कर उस समय तक आरोपणीय रहेगा

जब तक कि संसद विधि द्वारा इसके प्रतिकूल प्रावधान न करे, और संसद द्वारा इस प्रकार बनाई हुई कोई विधि या तो आमतौर पर लागू होने के लिए अथवा किन्ही उल्लिखित राज्यों, नगर पालिकाओं, मण्डलियों या प्राधिकारियों के सम्बन्ध में लागू होने के लिए बनाई जायेगी।]

मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि यहां देय करों की राशि को बढ़ाकर रखा जाये। जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है उससे स्थानीय मण्डली, जिला मण्डली या नगर पालिकाओं को अपने इलाके के बाशिन्दों की आय पर कर लगाने का अधिकार मिल जाता है। वस्तुत: मैं यह चाहता हूं कि यह खण्ड (2) संविधान में होता ही नहीं। इस सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना आई थी और वह सूचना आई थी अपने प्रान्त के मुख्य मंत्री माननीय पंडित पन्त जैसे व्यक्ति की ओर से। उनके संशोधन का अभिप्राय यह था, और मैं भी इसी बात पर जोर देता हूं चाहता हूं कि हमारे प्रान्त के स्थानीय निकायों की आर्थिक अवस्था सर्वथा शोचनीय है। वस्तुत: उनकी आगम का सर्वथा अभाव है। हमने संविधान में केन्द्रीय शासन के लिए आगमों का प्रावधान किया है; केन्द्र और प्रांतों के बीच आगम वितरण की व्यवस्था की कोशिश कर रहे हैं पर हमने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया है कि हमारी नगर पालिकाओं, जिला मण्डलियों और स्थानीय मण्डलियों के पास कोई आय साधन हैं ही नहीं। मैं जिला गोरखपुर से आया हूं। यह जिला अभी हाल ही में दो भागों में बांट दिया गया है। पर अभी भी इस जिले की आबादी 22 लाख है। यहां की जिला मण्डली की वार्षिक आमदनी कुल 11 लाख रुपये, जिसका मतलब यह हुआ कि अपनी आबादी पर फ़ी आदमी आठ आने ही जिला मण्डली खर्च कर सकती है। क्या आप इस बात की आशा करते हैं कि कोई भी जिला मण्डली जिसके पास इतनी कम आमदनी हो वह अपने विस्तृत आबादी की भलाई के लिये कुछ कर सकती है? मैं यह अच्छी तरह समझता हूं कि हमारा केन्द्र मजबूत होना चाहिये, उसकी आर्थिक दशा सुदृढ़ होनी चाहिये। मैं यह भी ठीक समझता हूं कि हमारे प्रान्त खूब मजबूत हों और उनकी आर्थिक दशा सुदृढ़ हो। पर वास्तविक राष्ट्रीय निर्माण के कार्यों का भार तो अन्ततोगत्वा इन जिला मण्डलियों को ही लेना होगा। आप यह कह सकते हैं कि रेल पथ के निर्माण का काम, सड़कों के बनाने का काम, विश्वविद्यालयों की व्यवस्था, यह सब तो केन्द्र और प्रान्तीय सरकारें ही करेंगी। किन्तु इलाके की सफाई की, स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रबन्ध की, प्रारम्भिक शिक्षण की और सड़कों की व्यवस्था तो इन जिला मण्डलियों को ही करनी पड़ेगी। क्या आप यह सोच सकते हैं कि 11 लाख की नगण्य आय से गोरखपुर की जिला मण्डली अपनी विशाल जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है? मैं समझता हूं कि अपने जिले के सम्बन्ध में मेरा जो अनुभव है वैसा ही अनुभव सभी सदस्यों को अपने-अपने जिलों के बारे में होगा। इसलिये मैं समझता हूं अगर आप देय करों की राशि को 250 रुपये तक सीमित कर देते हैं तो वस्तुत: जिला मण्डली के एक आय, साधन को ही बन्द कर देते हैं। मेरे जिले में 23 चीनी की मिलें हैं और खासा लाभांश (Dividend) देती हैं। गत वर्ष संयुक्त प्रान्त और बिहार की चीनी की मिलों को कुल 30 करोड़ का लाभ रहा है। ऐसी सूरत में अगर जिला मण्डली इनसे एक हजार रुपये की मांग करती है तो क्या यह नाजायज है? किन्तु इस खण्ड के संविधान में रहने पर जिला मण्डली चीनी की मिलों पर कोई कर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

ही न लगा सकेगी। ये मिलें जिला मण्डली की सड़कों का उपयोग करती हैं और इन पर उसे काफी खर्च करना पड़ता है। फिर भी 250 रुपये से ज्यादा हम इन पर कर नहीं लगा सकते हैं। मैंने तो केवल इतनी ही मांग की है कि उसकी आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये तक उन पर जिला मण्डली को करारोपण का अधिकार होना चाहिये। मैंने दोनों ही बातें रखी हैं और यह इसलिये कि व्यक्ति की आय को जानना तो, शायद हो सकता है, सम्भव न हो। हमको आय कर सम्बन्धी प्राधिकारियों के सारे अधिकार तो प्राप्त न रहेंगे कि हम व्यक्ति को आय का पता लगा सकें। पर चीनी की मिलें या इस तरह अन्य कारखाने या निकारा अपना सालाना तलपट छापते हैं जिससे हमें उनकी आय का पता मिल सकता है और उस पर हम एक प्रतिशत तक कर लगा सकते हैं। व्यक्तियों के सम्बन्ध में कर को हम एक हजार रुपये तक सीमित रख सकते हैं। ऐसी व्यवस्था से जिला निकायों की आय काफी बढ़ जायेगी। वस्तुत: इस समय तो यह स्थिति है कि हम सम्पन्न व्यक्तियों पर समुचित रूप से कर नहीं लगा सकते हैं और बाध्य होकर हमें गरीबों पर ही काफी कर लगाना पड़ता है। गरीब पान वाले पर भी पांच या दस रुपये का कर लग जाता है जिसे देना उसके लिये मुश्किल है। अगर जिला निकायों की चीनी की मिलों पर और अन्य कारखानों पर या मिल मालिकों पर उनकी आय के एक प्रतिशत तक कर लगाने का अधिकार मिल जाये तो मुझे पक्का विश्वास है कि ये गरीब कर भार से मुक्त हो जायेंगे जिसका वहन करना उनके लिये कठिन ही होता है। इसलिये करों को 250 रुपये तक ही सीमित रखने का जो यह प्रावधान है, वह मेरे ख्याल में संविधान में न रहना चाहिये। अगर इस सम्बन्ध में परिसीमन मूलक कोई प्रावधान रखना जरूरी ही हो तो हमें इसे संसद पर छोड़ देना चाहिये जिस पर हमने और कितनी बातें छोड़ रखी हैं। संविधान में इस तरह का प्रावधान रखना कि जिला निकाय 250 रुपये से ज्यादा कर नहीं लगा सकते हैं, ठीक न होगा। इसलिये मसौदा समिति से मैं यह अनुरोध करूंगा कि मेरे सुझाव के अनुसार वह इसमें परिवर्तन कर दे या फिर इसे बिल्कुल रखे ही नहीं ताकि जिला-मण्डलियों को उसकी स्वतंत्रता रहे कि अपने इलाके की आवश्यकता के अनुसार वह कर लगा सकें। केन्द्रीय बजट के मातहत तो हम करोड़ों का खर्च करते हैं पर ये जिला निकाय छोटी मोटी रकमों के लिए तरस जाते हैं पर उन्हें नहीं मिल पाती हैं। असल में इन निकायों को ही धन की वास्तविक आवश्यकता है ताकि अपने इलाके के निवासियों की आवश्यकताओं की ओर वह पूरा ध्यान दे सकें और उनके लिये अच्छी सड़कों का प्रबन्ध कर सकें। जनता को इन सुविधाओं की आज बड़ी जरूरत है। हमारी सारी योजनाओं का मूल मतलब आखिर यही तो है कि ग्रामीणों को खुशहाली हासिल हो सके। पर इस प्रावधान को रखकर आप स्थानीय निकायों की राजस्व प्राप्ति से वंचित कर देंगे जबकि जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी इन निकायों पर रहेगी। इससे तो जनता को नुकसान होगा। इसलिये मेरी समझ में नगर पालिकाओं या जिला मण्डलियों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशि पर अगर संविधान में प्रतिबन्ध ही रखना है तो वह उसी रूप में होना चाहिये जैसा कि मैंने सुझाया है। यह वर्तमान प्रावधान तो ऐसा है जिससे हमारी समुन्नति में ही बाधा पड़ती है। इसमें संशोधन करना जरूरी है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं और मसौदा समिति को बधाई देता हूं कि उसने स्थानीय निकायों की समुचित शिकायतों को इस संशोधन के द्वारा अब दूर कर दिया है। भारत सरकार ने इन निकायों द्वारा व्यवसाय पर लगाये जाने वाले करों की राशि को 50 रुपये तक सीमित रखा था और इससे उनकी आय साधनों का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता था। देहाती क्षेत्रों में व्यवसाय-कर से आगम की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि वहां कृषि ही लोगों का मुख्य पेशा है और मुश्किल से अन्य कोई व्यवसाय वहां ऐसा हो सकता है जिस पर कर लगाया जा सकता हो। हां, नगर पालिकायें इस कर को लगाकर कुछ आमदनी कर सकती थीं पर इस कर की राशि को अधिक से अधिक 50 रुपये तक सीमित कर देने से नगर पालिकाओं के लिये यह कर लगाना ही बेकार होगा क्योंकि उसकी लघु आय के संग्रह में उनको जो खर्च करना पड़ेगा उसको देखते हुए वह यह कर लगायेंगी ही नहीं। इसलिये 50 रुपये तक सीमित रहने से यह साधन भी उनके लिए बेकार था। इसलिये मसौदा समिति को मैं धन्यवाद देता हूं उससे अपने संशोधन के द्वारा नगर पालिकाओं की इस शिकायत को दूर कर दिया।

स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति पहले से ही खराब है। उनसे जिन सेवाओं की आशा की जाती है उनकी तुलना में उनकी आय सर्वथा नगण्य है। उनके आय साधनों पर केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने पहिले से ही अनधिकारतः हाथ डाल रखा है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में स्थानीय निकायों की कार्यकुशलता बहुत महत्व रखती है क्योंकि इन निकायों पर ही आम नागरिकों की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने का भार रहता है। इसलिये ऐसी कोई भी व्यवस्था जिससे इनकी आर्थिक स्थिति में समुन्नति होती हो और इस समुन्नति के फलस्वरूप इनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती हो, वह अवश्य ही अभिनन्दनीय है।

प्रो. शिब्बनलाल के संशोधन से हमें सहानुभूति अवश्य है पर हम इतनी दूर तक जाने के लिये तैयार नहीं हैं। केन्द्र एवं स्थानीय निकायों की आवश्यकताओं में हमें सन्तुलन रखना होगा और इस दृष्टि से कर की राशि को 50 से बढ़ाकर जो 250 रुपये कर दिया गया वह काफी है। इसे एक हजार तक बढ़ा देना बहुत ज्यादा होगा। यह बात जरूर है कि कोई भी व्यवस्था जिससे स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति में समुन्नति होती हो वह अभिनन्दनीय ही है पर इस कर की राशि को एक हजार बढ़ा देना बहुत ज्यादा होगा। इसलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं।

श्री आर.के. सिधवा: यह संशोधित अनुच्छेद मसौदा समिति के मूल अनुच्छेद से कहीं अधिक सुधरा हुआ है पर इसको मैं अनिच्छापूर्वक ही स्वीकार कर रहा हूं। अनिच्छापूर्वक इसलिये कह रहा हूं क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं अपने स्थानीय निकायों को संविधान में उतना महत्व नहीं दिया गया है जितना कि उनको मिलना चाहिये। स्थानीय निकाय राष्ट्रीय सरकार की आधारशिला होते हैं। इसी के अनुसार शासन की सारी इमारत तैयार की जाती है। किन्तु अपने संविधान में हम कर यह रहे हैं कि शासन रूपी इमारत की छत की ओर तो ध्यान दे रहे हैं। पर आधार की उपेक्षा कर रहे हैं। मैं आपको विश्वास दिला

[श्री आर.के. सिधवा]

सकता हूं कि हमारी इस प्रवृत्ति से देश की जनता को सुख समृद्धि नहीं मिल सकती है। अब तक हमारे स्थानीय निकाय प्रान्तीय सरकारों की दया पर निर्भर करते थे और यद्यपि इस अनुच्छेद में और आगे के अन्य कई अनुच्छेदों में स्थानीय निकायों की आर्थिक व्यवस्था का उल्लेख किया गया है पर उनकी व्यवस्था प्रान्तीय सरकारों पर ही छोड़ दी गई है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि स्थानीय निकायों को गम्भीर अर्थ कष्ट भुगतान पड़ रहा है जिसके फलस्वरूप ग्रामों को, नगरों को और बड़े-बड़े शहरों की स्थिति शोचनीय हो रही है। अगर जनता के लिये खुशहाली लानी है उनको सुखी और सम्पन्न बनाना है जिसकी कि हम प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो इन ग्रामों और नगरों से हमें इस काम को शुरू करना होगा। किन्तु दु:ख के साथ मुझे कहना पड़ता है कि इस संविधान में इसके लिये कोई प्रावधान नहीं रखा गया है।

अधिनियम 1935 में ब्रिटिश हुकूमत ने स्थानीय निकायों के साथ बड़ा अन्याय किया था और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि कर की राशि को 50 से बढ़ाकर अब 250 रुपये कर दिया गया है। मैं तो यह चाहता हूं कि इसको बढ़ाकर 2,500 रुपये कर दिये जायें। ऐसा होने से स्थानीय निकायों को ऐसे लोगों से जो इतनी रकम कर के रूप में निकायों को आसानी से दे सकतें है काफी रकम मिल जायेगी जो गरीब जनता पर खर्च की जा सकती है। गत वर्ष अक्तूबर के महीने में स्वास्थ्य सचिवालय (Health Ministry) ने एक सम्मेलन बुलाया था जिसमें सभी प्रान्तीय सरकारों के स्थानीय स्वशासन मंत्री सम्मिलित हुए थे। वहां सबने एक राय हो यह बात कही थी कि स्थानीय निकायों को अर्थाभाव के कारण बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारना ही होगा अगर हम चाहते हैं कि जनता की वह कुछ भलाई करें। उस सम्मेलन में स्थानीय निकाय अर्थ समिति (Local Finances Committee) नाम की एक समिति गठित की गई जिसकी बैठक गत महीने में दिल्ली में हुई थी। इस समिति ने अपनी संक्रांति कालीन सिफारिशें मसौदा समिति के पास भेज दी थीं ताकि उनकी बातों पर वह विचार कर सके। इस समिति का यह ख्याल है कि कर की राशि को 250 तक सीमित रखना बहुत कम है। उसकी राय में इसको एक हजार कर देना चाहिये। मैं नहीं जानता कि मसौदा समिति ने इस समिति की सिफारिशों पर भला कहां तक विचार किया है। प्रान्तीय सरकारों के स्थानीय स्वशासन मंत्रियों ने एक मत होकर यह सिफारिशें की थीं पर मसौदा-समिति ने इन पर तो कोई ध्यान नहीं दिया और अपना निर्णय संविधान पर लादने की चेष्टा की है जिससे फायदा किसी को न पहुंचेगा। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने भी स्थानीय निकाय-सहायक अनुदान समिति (Local Bodies Grant-in-Aid Committee) नामक एक समिति बनाई थी जिसने भी अपनी संक्रांति कालीन प्रतिवेदन मसौदा समिति के पास भेजा था जिसमें यह कहा गया है:

"खण्ड (2) में व्यापार और वृत्तियों पर विशेष कर का उल्लेख किया गया है जबकि खण्ड (3) में सामान्य कर का उल्लेख किया गया है। सामान्य कर के सम्बन्ध में नगर मण्डलियों (Municipal Boards) की शक्तियों का, प्रोफेशन टैक्स लिमिटेशन एक्ट 1951 के द्वारा और भी न्यूनन कर दिया गया है। इस एक्ट में यह प्रावधान किया गया है कि प्रवर्तमान किसी विधि के किन्हीं प्रावधानों

के होते हुए भी कोई कर जो व्यक्ति द्वारा, व्यवसाय, व्यापार, वृत्तियों और सेवायुक्तियों पर प्रान्त को या किसी स्थानीय प्राधिकारी को देय हो, वह 2 अप्रैल सन् 1942 ई. से 50 रुपये वार्षिक से अधिक न लगाये जा सकेंगे।..... इस तरह प्रोफेशन टैक्स लिमिटेशन एक्ट के नियंत्रण से उसे बरी रखने में न कोई लाभ है और न कोई व्यावसायिक उपयोगिता ही। म्युनिसिपल एक्ट की धारा 128 (1) (3) के अधीन कर की जो व्यवस्था थी वह वस्तुत: आय के लिए एक लाभप्रद साधन थी। इसलिये इसकी राशि को अधिक से अधिक 50 रुपये तक जो सीमित कर दिया गया है वह न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही आपत्तिजनक है—क्योंकि इन कर विषयक सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है जिनके अनुसार व्यक्ति पर उसकी देयता सम्बन्धी क्षमता के अनुकूल कर लगना चाहिये ताकि गरीब और अमीर पर कर का अनुपात सम बैठे—बल्कि इससे कई नगर पालिकाओं की आर्थिक स्थिति पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।"

इसलिये मेरा कहना यह है कि मसौदा समिति के प्रावधानों से स्थानीय निकायों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पायेगी। कलकत्ता कारपोरेशन कई वृत्तियों पर जिन पर भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन उसे करारोपण का अधिकार प्राप्त है, अभी पांच सौ रुपये का लाइसेंस शुल्क लगा रहा है। किन्तु इस प्रावधान के अधीन वह इस आय से वंचित हो जायेगा। कलकत्ता कारपोरेशन के प्रशासन अधिकारी का कहना है कि यहां कितनी ही ऐसी ज्वाइंट स्टाक कम्पनियां हैं जो मैनेजिंग एजेंट के रूप में सात-सात आठ-आठ औद्योगिक प्रतिष्ठानों की देखरेख करती हैं पर उन पर पांच सौ से अधिक का कर हम नहीं लगा पाते हैं और कर का बड़ा भार बिचारे कम आय वाले व्यक्तियों और व्यापारियों पर पड़ जाता है। कलकत्ता कारपोरेशन का कहना है कि इस कर की अधिक से अधिक राशि होनी चाहिये ढाई हजार रुपया और पश्चिमी बंगाल म्युनिसिपल एसोसिएशन का कहना है कि अधिक से अधिक राशि होनी चाहिये डेढ़ हजार रुपया। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि मसौदा समिति ने यहां अपने पूर्व के मसौदे पर कोई खास सुधार नहीं किया है। अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूंगा कि स्थानीय निकायों के प्रति ऐसा बर्ताव न होना चाहिये क्योंकि प्रान्तीय सरकारें तो उन्हें कोष देने में यों ही सदा कृपण रहती है और यदि इनके लिये संविधान द्वारा कोई और अच्छी व्यवस्था नहीं की जाती है तो इनकी जनता की दशा कभी सुधर नहीं सकती है। प्रान्तीय सरकारों ने, जिन्हें इन निकायों का प्रशासन चलाना पड़ता है जब यह ठीक समझा है कि कर की राशि को बढ़ा देना जरूरी है तो मेरी समझ में नहीं आता है कि मसौदा समिति क्यों इतनी कृपणता कर रही है।

अपनी उपरोक्त बातों के अधीन मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका:** प्रो. सक्सेना के संशोधन का मैं विरोध करता हूं। इस सम्बन्ध में मेरा अपना खुद का एक संशोधन था पर मैंने उसे पेश नहीं किया क्योंकि उस पर पार्टी में विचार नहीं किया गया था। यह अनुच्छेद इस सामान्य नियम का कि आय पर कर केन्द्र द्वारा ही लगाया जा सकता है, अपवाद है। यह अपवाद स्थानीय निकायों के लाभ के लिये ही किया जा रहा है। अगर आप अनुच्छेद को गौर से पढ़ें तो देखेंगे कि उसके अनुसार व्यवसाय, व्यापार, वृत्ति और सेवायुक्तियों पर राज्य या नगर पालिका, जिला मण्डली और स्थानीय

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

मण्डलियों के लाभार्थ पर लगाया जा सकता है। इसलिये इस कर को प्रान्तीय सरकार भी लगा सकती है और स्थानीय निकाय भी लगा सकते हैं। चाहे किसी व्यवसाय, व्यापार या वृत्ति से किसी व्यक्ति को कोई आमदनी हो या न हो उसे 250 रुपये राज्य को देना पड़ेगा और स्थानीय निकाय भी, जिसके अधिकार क्षेत्र में उसका व्यवसाय या व्यापार चलता है, उससे इतनी ही रकम कर के रूप में वसूल करेगा। जिस व्यक्ति को कोई आमदनी नहीं है या बहुत कम आमदनी है उस पर कोई कर न लगना चाहिये। भारत-शासन अधिनियम में इस कर की अधिक से अधिक राशि पचास रुपये तक सीमित कर दी गई थी। प्रान्तीय सरकारों ने इस आशय का कानून बना रखा है कि किसी व्यवसाय, व्यापार या वृत्ति से जिस व्यक्ति को आय होती हो उस पर तीस रुपये कर लगाया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि जिसे आयकर के रूप में तीस रुपये केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता है उसे इतनी ही रकम प्रान्तीय सरकार को भी व्यवसाय कर के रूप में देनी पड़ती है। अब इस प्रस्तुत अनुच्छेद के आधार पर ढाई सौ रुपये उससे नगर पालिका ले सकती है और ढाई सौ प्रान्तीय सरकार ले सकती है। आयकर के रूप में केन्द्रीय सरकार को जो उसे देना पड़ता वह तो उसे देना पड़ेगा ही। इस अनुच्छेद से होता यह है कि किसी व्यक्ति को उसके व्यवसाय से, व्यापार से आमदनी होती हो या नहीं, उसे व्यवसाय कर देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। मूल प्रावधान जिसमें इस कर की राशि को पचास रुपये तक सीमित कर दिया था वह बहुत अच्छा था। किन्तु इस संशोधन का कि आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये तक इस सम्बन्ध में स्थानीय निकायों को कर लगाने का अधिकार हो, किसी भी दशा में समर्थन नहीं किया जा सकता है संशोधन कर्ता इस बात को भूल जाते हैं कि महज इसलिये कि कोई व्यक्ति रोजगार करता है यह जरूरी नहीं है कि वह कर दे ही सकता है। हजार रुपया तो दूर रहा, हो सकता है कि वह तीस रुपया देने की भी क्षमता न रखता हो। इसलिये मैं तो यही चाहता था कि मसौदा समिति अपने संशोधन नं. 91 को ही यहां रखती जिसमें इस कर की राशि को एक सौ रुपये तक सीमित रखा गया है। पर जब उसने उसे पेश ही नहीं किया है तो कर की राशि को ढाई सौ रुपये तक सीमित करने की जो बात है वही उसे मान लेनी चाहिये।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, इस अनुच्छेद का समर्थन करने में मुझे झिझक है। वह इसलिये कि जो संशोधन भाई शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है, मेरी समझ में वह एक प्रिंसिपल पर बेस्ड है और यदि यह न माना गया तो सबके साथ न्याय नहीं होगा। अब आजकल ऐसा है कि आम तौर पर छोटे-छोटे आदमियों के हाथ में पेशावर कर लगाना होता है वह गरीब हरिजनों से एक तरफ तो बीस बीस और चौबीस रुपये, प्रोफेशनल टैक्स के नाम से लेते हैं, हालांकि उनकी कैपेसिटी दो या तीन रुपये की भी नहीं होती है, दूसरी तरफ वह बड़े कारखानेदार जो हरिजनों से कहीं ज्यादा रुपया दे सकते हैं, पूरा हिस्सा नहीं देते। इस अनुच्छेद द्वारा दो सौ, ढाई सौ तक ही उनकी हद बांधी जा रही है। एक और बात जो मैं एक किसान होने के नाते कहना जरूरी समझता हूं वह है कि सारे किसानों से लैन्ड रेवेन्यू के अलावा जो टैक्स

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स और लोकल बाडीज के द्वारा लिया जाता है वह पंजाब में एक रुपये पर दो पैसा है, और अब उसको और बढ़ाने की कोशिश है। तो मेरी समझ में नहीं आता कि जहां इन्कम टैक्स दो हजार रुपये की आमदनी तक बिल्कुल फ्री है वहां एक बीघा तक भी लैंड रेवेन्यू फ्री नहीं है। इससे किसान घाटे में रहते हैं। चाहे उसकी एकानमिक होल्डिंग है कि नहीं, लेकिन उससे लैन्ड रेवेन्यू जरूर लिया जाता है, और उस लैंड रेवेन्यू पर फ्री रुपया दो पैसा पेशावर कर दिया जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो बड़े-बड़े आदमी हैं उनसे भी उसी प्रिंसिपल पर क्यों और न लिया जाये। ढाई सौ रुपये की पाबन्दी से डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स और लोकल बाडीज की आमदनी में काफी घाटा पड़ेगा जिससे उन्हें गरीबों पर और ज्यादा टैक्स लगाना होगा, या गरीबों के भलाई के कामों को कम करना होगा। अगर उन्हें गरीबों की भलाई करनी है, और अस्पताल वगैरह बढ़ाना है तो जरूरी तौर पर उनको अमीरों के ऊपर ज्यादा टैक्स लगाना होगा, और वह तभी लग सकता है कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन मंजूर किया जाये और मैं समझता हूं कि यह कर का भार कोई बहुत ज्यादा भी नहीं है, इसको देखते हुए जो किसानों से लिया जाता है। लैंड रेवेन्यू का जो प्रिंसिपल है उसे देखते हुए वह बिल्कुल ज्यादा नहीं है। जबकि किसानों से एक पर्सेन्ट से भी कई पर्सेन्ट ज्यादा लिया जायेगा। इसलिये मैं इस धारा के अन्दर चाहता हूं कि शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन मंजूर कर लिया जाये।

बाबू रामनारायण सिंह (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सरकार की आलोचना में दी गई वक्तृताओं पर आप जो आपत्ति कर रहे हैं उससे अंशत: मैं भी सहमत हूं। किन्तु अनुभव को और वह भी कटु अनुभव को भूल जाना बड़ा कठिन है। हम देश का संविधान बना रहे हैं, श्रीमान्, मेरी अपनी धारणा तो यही थी कि सारी शक्तियां अब यहां की जनता में ग्राम में बसने वाले असंख्य नर-नारियों में निहित कर दी जायेगी। पर यहां हो क्या रहा है? सारे अधिकार केन्द्र में ही सन्निहित रखे जा रहे हैं और थोड़े बहुत बचे खुचे अधिकार प्रान्तों को दिये जा रहे हैं। हमें देखना यह है कि इतने कम अधिकार रहने पर प्रान्तों ने अब तक किया क्या है और आगे कर क्या सकते हैं। प्रो. सक्सेना ने कई संशोधनों की सूचनायें दे रखी हैं। मैं नहीं समझ पाता कि स्थानीय निकायों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशि को अधिक से अधिक ढाई सौ रुपये तक क्यों सीमित रखा जा रहा है? केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशियों के बारे में तो ऐसी कोई हदबन्दी नहीं की गई है। उन्हें लाखों का कर लगाने की आजादी है पर गरीब स्थानीय निकायों के लिये ऐसा क्यों किया जाये? यह तो बहुत ही आपत्तिजनक बात है।

जब मैं यह कहता हूं कि सभी अधिकार यहां की देहाती जनता में निहित रहने चाहियें तो उससे मेरा यह मतलब नहीं है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारें हों ही नहीं। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को यथा स्थान बना रहने दीजिये। उनका काम यह होना चाहिये कि वह जनता की मदद करें, उनका संगठन करें और उनको आवश्यक सलाह दें। स्थानीय निकायों के करों के सम्बन्ध में भी आप आम जनता को—ग्राम वासियों को—स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। आखिर यह क्यों? अगर आप शहर से बाहर जायें, देहातों में जायें तो आप देखेंगे कि सरकार वहां

[बाबू रामनारायण सिंह]

की जनता के लिये क्या कर रही है। आपको अच्छी सड़कें वहीं दिखाई देंगी जो केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के पीडब्ल्यूडी की सड़कें हैं। इनकी तो ठीक ठीक संभाल की जाती है। पर जो सड़कें स्थानीय निकायों द्वारा बनवाई गई हैं उनकी दशा सदा दयनीय रहती है। उनकी न ठीक से मरम्मत हो पाती है और न देखभाल। इसका कारण यह है कि सारी रकम तो रहती है केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों के हाथ में। स्थानीय निकायों के पास इतनी रकम नहीं होती है कि वह उनको ठीक रख सकें। यह सरासर गलत तरीका है। सारी रकम होनी चाहिये स्थानीय निकायों के अधिकार में। पर वर्तमान व्यवस्था में होता यह है कि स्थानीय निकायों को भीख के रूप में थोड़ी बहुत रकम प्रान्तीय सरकार से मिलती है और प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से सहायता के रूप में रकम मिलती है। मेरी समझ से यह तरीका ही गलत है। इस पद्धति को हमें पलट देना चाहिये। सारा कोष होना चाहिये जनता के, देहाती जनता के अधिकार में। प्रान्तीय सरकारों को रकम प्राप्त होनी चाहिये स्थानीय निकायों द्वारा अंशदान के रूप में और केन्द्रीय सरकार को रकम मिलनी चाहिये अंशदान के रूप में प्रान्तीय सरकारों के द्वारा। इस सम्बन्ध में मैं और अधिक कुछ नहीं कहूंगा, श्रीमान्। मुझे केवल इतना ही कहना है कि माननीय मित्र सक्सेना का संशोधन बिल्कुल वाजिब है। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का प्रबल समर्थन करता हूं और सभा से अपील करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, स्थानीय निकायों की व्यवसाय कर लगाने की शक्ति देने के सम्बन्ध में जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, उससे मुझे पूरा विश्वास है कि यहां सभी सहमत होंगे। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन से भी जिसमें यह कहा गया है कि कर की अधिकतम राशि ढाई सौ रुपये तक न सीमित होनी चाहिये बल्कि कर दाता की आय के अनुसार होनी चाहिये, हमारा ख्याल है सभी सहमत होंगे। जैसाकि आप सभी जानते हैं संयुक्त प्रान्त में अभी हाल में एक कानून पास करके हमने प्रान्त भर में करीब 22 सौ पंचायतों की स्थापना कर दी है। इन पंचायतों को ऐसे अधिकार और प्रकार्य दिये गये हैं कि अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाये तो उससे वस्तुत: जनता को स्वराज्य ही प्राप्त हो जायेगा। आप जानते ही हैं कि अपना देश एक सुविशाल देश है और यहां चिकित्सा एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का सर्वथा अभाव है। अगर ये पंचायतें या स्थानीय निकाय ठीक-ठीक अपना काम करते हैं तो इनके पास पर्याप्त कोष हो सकता है। इन पंचायतों को पर्याप्त अधिकार दिये गये हैं और आशा है ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा ये सड़कें बनवाते जायेंगे और ऐसे उद्योग धन्धों की स्थापना करते जायेंगे जिनसे वहां की जनता की सुख-समृद्धि में वृद्धि होती रहे। हमें इस बात की आशंका है कि राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी जो महान काम अब इन पंचायतों को सौंपे गये हैं वह कभी पूरे ही न हो पायेंगे अगर हमारे पास पर्याप्त कोष न होगा। इसलिये हम इस संशोधन से पूर्णत: सहमत हैं जो सभा के सामने अभी रखा गया है और जिसमें कहा गया है कि स्थानीय निकायों को अपने क्षेत्र स्थित व्यवसाय सारे व्यापारों पर कर लगाने का अधिकार होना चाहिये और कर की राशि करदाता की आय के अनुसार

ली जानी चाहिये। जैसा कि मैंने अभी कहा है, हम यही आशा करते हैं कि ये पंचायतें और स्थानीय निकाय सड़कें बनवायेंगे और अपने इलाकों में ऐसे उद्योग धन्धों के विकास की ओर पूरा ध्यान देंगे जिनसे ग्रामस्थ जनता के सुख-समृद्धि में वृद्धि हो सके। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का और प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का भी समर्थन करती हूं जिसमें कहा गया है कि कर की राशि को ढाई सौ तक न सीमित कर देनी चाहिये बल्कि वह इतनी होनी चाहिए जो करदाता की आय का एक प्रतिशत हो।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): जो मित्र यह चाहते हैं कि कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ तक न सीमित रखकर होना यह चाहिये कि आय के एक प्रतिशत तक व्यवसाय कर लगाया जा सके, उन्हें मेरा ख्याल है, केन्द्र की आवश्यकताओं के बारे में और केन्द्र द्वारा संग्रहीत आयकर का प्रान्तों में वितरण जिस पद्धति से होता है उसके बारे में बिल्कुल गलतफहमी हो गई है। पहिले हम इस बात को देखें कि केन्द्र को आयकर द्वारा क्या रकम प्राप्त होती है और उसका कितना अंश वह प्रान्तों को दे देता है। आयकर की संग्रहीत रकम में से प्रान्तों को दे देने के बाद केन्द्र के पास तो बहुत ही एक छोटा सा हिस्सा बच जाता है। केन्द्रीय सरकार की आय का दूसरा साधन है उत्पादन कर। इस कर की वसूली का अधिकार केन्द्र को दिया गया है और वह भी इसलिये कि देश में इस सम्बन्ध में एकरूपता रह सके। उत्पादन कर की जो आय होती है उसे केन्द्र सब अपने पास नहीं रखेगा। आयकर की तरह इसकी भी एक बड़ी राशि, वित्त-आयोग द्वारा निर्धारित किये जाने वाले सिद्धान्तों के अनुसार प्रान्तों में बांट दी जायेगी। केन्द्र के पास तो सिर्फ आयात निर्यात शुल्क की जो आय होगी वही रह जायेगी। इसलिये अगर राजस्व के विभिन्न साधनों को हम प्रान्तों को ही देते हैं तो केन्द्र के पास आय का कोई साधन ही न रह जायेगा और उसके पास कोई कोष ही न हो सकेगा। और ये मित्र लोग अपने संशोधनों के द्वारा यही करने की कोशिश कर रहे हैं। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेद रखा है वह एक रियायत है। आयकर केन्द्रीय राजस्व का प्रमुख साधन है और इस पर केवल केन्द्र को ही अधिकार है। व्यवसाय कर की व्यवस्था से केन्द्रीय आयकर के क्षेत्राधिकार पर अतिक्रमण होता है। वर्तमान भारत शासन अधिनियम 1935 में इस सम्बन्ध में एक प्रावधान मौजूद है, इसकी धारा 142-क में स्थानीय निकायों द्वारा लगायें जाने वाले व्यवसाय कर की अधिकतम राशि पचास रुपये तक सीमित रखी गई है। इस व्यवसाय कर की व्यवस्था से केन्द्रीय शासन पर अतिक्रमण होता है। केन्द्र आयकर के रूप में जो रकम संग्रह करता है उससे प्रान्तों को अनुदान के रूप में सहायता देता है और फिर प्रान्त नगर पालिकाओं को तथा अन्य स्थानीय निकायों को अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करते हैं। यह बात नहीं है कि ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों के पास केवल व्यवसाय कर ही एक मात्र आय का साधन है। गांवों में तो व्यवसाय कर लग नहीं सकता है क्योंकि वहां तो एक मात्र लोगों का व्यवसाय है खेती। इसलिये व्यवसाय कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ से बढ़ाकर आय के एक प्रतिशत तक रख देना ठीक न होगा और खास करके जीवन सम्बन्धी सामग्रियों की महंगाई को देखते हुए जो पहिले से तिगुनी हो गई हैं। माननीय मित्र सक्सेना का सुझाव यह है कि इस कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ तक सीमित न रखकर आय के एक प्रतिशत तक रख देना चाहिये। अगर यह राशि ढाई सौ तक भी रखी जाती

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

है तो आय के एक प्रतिशत के हिसाब से, अगर 25 हजार की आमदनी हो तभी किसी पर ढाई सौ का कर लगाया जा सकता है। पर क्या आप उम्मीद करते हैं कि साधारण गांवों में किसी को 25 हजार से ज्यादा आमदनी हो सकती है? इसलिये, जहां तक कि ग्रामों का सम्बन्ध है, उनका यह सुझाव कभी भी उपयोगी नहीं कहा जा सकता है। और जहां तक कि नगर पालिकाओं का सम्बन्ध है उन्हें तो प्रान्तीय शासन से ही रकम अधिकाधिक मिल सकती है जैसाकि प्रान्तीय शासनों को केन्द्रीय शासन से मिल सकता है। और केन्द्र आयकर की संग्रहीत राशि से ही इनको आर्थिक मदद दे सकता है। इसलिये ढाई सौ की जो हदबन्दी की गई है वह काफी है और अगर इसको बढ़ा दिया जाता है तो केन्द्र द्वारा आयकर के संग्रह में ही उससे बाधा पहुंचेगी। इसलिये मजबूर होकर माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का विरोध और प्रस्तावित अनुच्छेद का समर्थन मैं करता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं नहीं समझता कि विस्तारपूर्वक उत्तर देने की कोई आवश्यकता है, श्रीमान। स्थिति यह है कि सभी संविधानों में राज्य के कर साधन केन्द्र और विभिन्न इकाइयों में वितरित कर दिये गये हैं। विभिन्न इकाइयों और स्थानीय निकायों के बीच कर साधनों का वितरण किस तरह हो यह राज्य पर छोड़ दिया गया है और राज्य ही विधि द्वारा उसकी व्यवस्था करते हैं क्योंकि स्थानीय प्राधिकारियों का सृजन राज्यों द्वारा ही होता है। स्थानीय निकायों को कोई पूर्ण या असीम क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त रहता है। कतिपय प्रयोजनों की सिद्धि के लिये ही इनका निर्माण किया जाता है और अगर उन प्रयोजनों का वह ठीक-ठीक पालन नहीं कर पाते हैं तो राज्य उनको भंग कर सकता है। यह एक सामान्य नियम है कि संविधान में ऐसा कोई प्रावधान न रहना चाहिये जिसमें इकाइयों के अधीनवर्ती स्थानीय निकायों के आर्थिक साधनों के बारे में व्यवस्था की गई हो। मेरा यह प्रस्तावित अनुच्छेद वस्तुतः इस नियम का अपवाद ही है। किन्तु इस बात का ख्याल रखते हुए कि हमारे यहां स्थानीय निकायों का प्रशासन ऐसे करों पर निर्भर करता है जिनको अब तक वे लगाते आये हैं यद्यपि उनका कर लगाना आयकर सम्बन्धी कानून की भावना के विरुद्ध है, मसौदा समिति स्थिति को देखते हुए अभी इस वर्तमान व्यवस्था को चालू रहने देने पर तैयार है। वस्तुतः, विशेषज्ञ समिति ने जो इस कर की अधिकतम राशि ढाई सौ की निर्धारित की थी उस पर मसौदा समिति को आपत्ति थी। मसौदा समिति में यह प्रस्ताव आया था कि इस कर की अधिकतम राशि डेढ़ सौ रुपये निर्धारित होनी चाहिये। किन्तु पुनर्विचार करने पर मसौदा समिति ने यही तय किया कि ऐसा करने की जरूरत नहीं है और वर्तमान स्थिति में इस राशि को ढाई सौ तक रखना ही ठीक है। इसलिये मेरा कहना यह है कि आय नियम का अपवाद करके ही यह व्यवस्था रखी जा रही है और सैद्धान्तिक दृष्टि से तो मैं इसके भी खिलाफ हूं। सुतरां माननीय मित्र ने इस सम्बन्ध में जो भी संशोधन रखा है उसे स्वीकार करने पर मैं कतई राजी नहीं हूं।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधन नं. 91 के स्थान पर यह संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (2) में 'two hundred and fifty rupees' (ढाई सौ रुपये) शब्दों की जगह, दोनों स्थलों पर जहां ये शब्द आये हैं, 'one per cent, of their annual income or one thousand rupees' (उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये) रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:

'(1) इस संविधान के अनुच्छेद 217 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के विधान-मण्डल की, ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि जो उस राज्य या किसी नगर पालिका, जिला मण्डली, स्थानीय मण्डली अथवा उसमें अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में लागू होती हैं, इस आधार पर अमान्य न होंगी कि वह आय पर कर है।' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 256 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 256 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 257

(संशोधन 2929 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 247 के अन्त में 'by law' शब्द जोड़ दिये जायें।"

यह असावधानी से इतना छूट गया था।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन आये हैं पर डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन के बाद अब उनकी जरूरत नहीं रह जाती है।

प्रश्न यह है:–

"कि अनुच्छेद 257 के अन्त में 'by law' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 257 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 258-क

***अध्यक्षः** अभी हम 258 को यों ही रहने देते हैं और 259 पर विचार शुरू करते हैं। नया अनुच्छेद 258-क रखने का एक संशोधन आया है श्री हिम्मतसिंहका, पाटिल तथा वर्मन की ओर से। क्या यह पेश किया जा रहा है?

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहकाः नहीं, श्रीमान्।

(संशोधन नं. 2938 और 2939 पेश नहीं किये गये।)

अनुच्छेद 259

(संशोधन नं. 2940 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 259 के खण्ड (1) में 'Auditor-General' (महाकेक्षक) शब्द की जगह 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन इसलिये रख रहा हूं कि इस सभा द्वारा स्वीकृत पहिले के अनुच्छेद में इस पदाधिकारी को जो संज्ञा दी गई है वही संज्ञा इस अनुच्छेद 259 में इस पदाधिकारी की रहे।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:–

"कि अनुच्छेद 259 के खण्ड (1) में 'Auditor-General' (महाकेक्षक) शब्द की जगह 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 259, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 259 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 260

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 260 को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2943 के स्थान पर यह संशोधन रखा जाये:–

कि अनुच्छेद 260 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:–

'(1) The President shall, within two years from the commencement of this Constitution and thereafter at the expiration of every fifth year or at such

earlier time as the President considers necessary, by order, constitute a Finance Commission which shall consist of a Chairman and four other members to be appointed by the President.' "

(इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर अथवा उससे पहिले ऐसे समय पर जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, आदेश द्वारा एक वित्त आयोग गठित करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा।)

इस संशोधन को उपस्थित करने का कारण यह है श्रीमान्। इसमें शक नहीं कि मूल अनुच्छेद में यह बात कही गई है कि संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर वित्त-आयोग गठित किया जायेगा। किन्तु जरूरत यह महसूस की जा रही है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह इससे बहुत पहले भी वित्त-आयोग गठित कर सकता है। इसलिये इस संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया जा रहा है कि संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष की समाप्ति पर यह आयोग गठित किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन नं. 96 को भी इसी समय पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'revenues of India' (भारत के आगमों) शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन महज रस्मी है।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कई संशोधन हैं जो संशोधन-सूची में दिये हुए हैं।

(संशोधन नं. 2941, 2942, 2944, 2945, 2946, 2947, 2948, 204, 205, 97 और 98 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 115। इसे पंडित कुंजरू पेश करेंगे।

(पंडित कुंजरू सभा-भवन में उपस्थित नहीं थे।)

उन्होंने मुझसे कहा था कि वह इस संशोधन को पेश करना चाहते हैं।

(इसी समय पंडित कुंजरू ने सभा-भवन में प्रवेश किया।)

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल) : अध्यक्ष महोदय, मेरा यह प्रस्ताव है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 के (तृतीय सप्ताह) संशोधन नं. 95

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

के सम्बन्ध में, अुनच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'(a) the distribution between the Union and the States of the net proceeds of taxes on income which are to be divided initially between them under this Chapter;

(aa) the allocation between the States of the respective shares of the net proceeds of taxes which are to be, or may be divided between the Union and the States under this Chapter;' "

[(क) संघ तथा राज्यों के बीच आयकरों के शुद्ध आगमों के, जो इस अध्याय के अधीन आरम्भ में उनमें विभाजित किया जायेगा, वितरण के बारे में;

(कक) इस अध्याय के अधीन संघ तथा राज्यों के बीच भाजित होने वाले या हो सकने वाले करों के शुद्ध आगमों के उनके अंशो का राज्यों के बीच वितरण करने के बारे में।]

जिस उपखण्ड के सम्बन्ध में मैंने यह संशोधन रखा है वह यों है श्रीमान्–

Sir, the sub-clause to which I have moved the amendment runs as follows:

"(a) the distribution between the Union and the States of the net proceeds of taxes which are to be, or may be, divided between them under this Chapter and the allocation between the States of the respective shares of such proceeds;"

(इस अध्याय के अधीन, संघ तथा राज्यों के बीच भाजित होने वाले या हो सकने वाले, करों के शुद्ध आगमों के विभाजन के विषय में, तथा ऐसे आगमों के, राज्यों के बीच उनके भागों के वितरण के विषय में।)

अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के इस उप-खण्ड (क) के अनुसार वित्त आयोग का न केवल इतना ही कर्तव्य होगा कि वह केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच भाजित होने वाले करों के उस भाग का, जो प्रान्तों को मिलना चाहिये, प्रांतों में वितरण कर दे बल्कि उसका यह भी कर्तव्य होगा कि प्रांतों में किस सिद्धांत के आधार पर इसका वितरण किया जायेगा उसको भी वह निर्धारित कर दे। अगर मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो आयकरों के सम्बन्ध में तो स्थिति वही रहेगी जो मूल अनुच्छेद में दी हुई है पर अन्य करों के सम्बन्ध में और जो मेरे ख्याल में उत्पादन कर ही होंगे, स्थिति अवश्य कुछ बदल जायेगी। आयकरों के सम्बन्ध में मैंने स्थिति को ज्यों का त्यों रहने दिया है क्योंकि अनुच्छेद 251 में कहा गया है कि वित्त आयोग के गठित हो जाने पर, आयकरों के शुद्ध आगमों का कौन प्रतिशत भाग प्रान्तों को दिया जाये इसका विनिधान राष्ट्रपति वित्त-आयोग के परामर्श से करेगा। मैं यह स्वीकार करता हूं कि जब अनुच्छेद 251 पर यहां विचार किया जा रहा था उस समय यह बात मेरी समझ में ठीक-ठीक न आ पाई थी कि "Prescribed" (विनिहित) शब्द की जो व्याख्या रखी गई है उसका अनुच्छेद 260 पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। यह बात तो मेरे ध्यान में उस समय आई जब मैंने संविधान-सभा

के संयुक्त मंत्री एवं मसौदा बनाने वाले सज्जन की सहायता से अपने इस प्रस्तावित संशोधन का मसौदा तैयार किया। पर इस सम्बन्ध में भी मैंने एक प्रतिबन्ध रखने की कोशिश की है और वह प्रतिबन्ध यह है। शुरू में राष्ट्रपति, आयकर के आगमों का क्या प्रतिशत अंश प्रान्तों को दिया जाये और क्या केन्द्र को, इस सम्बन्ध में वित्त-आयोग से परामर्श ले सकता है पर उसके बाद वित्त आयोग को निर्धारित प्रतिशत पर स्वयं अपनी ओर से पुनरीक्षण का अधिकार न रहेगा। यदि हम अनुच्छेद 260 के इस खण्ड (3) को यों ही रहने देते हैं तो उसके अनुसार वित्त आयोग का यह कर्तव्य होगा कि केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच भाजित होने वाले करों के आगम के प्रान्तीय अंश का प्रान्तों में किस आधार पर वितरण किया जाये, इस सम्बन्ध में वह राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश दे और उसे निर्धारित प्रतिशत के सम्बन्ध में पुनर्विचार करने का अधिकार मिल जायेगा। मेरे संशोधन का अभिप्राय यह है कि वित्त-आयोग का अधिकार यही तक सीमित रहे कि प्रान्तों और केन्द्र के बीच वितरण के लिये जो प्रतिशत उसे निर्धारित करना है शुरू में एक बार कर दे पर उस पर पुनरीक्षण का उसे अधिकार न रहे। एक बार जब वह केन्द्र और प्रान्तों का अंश निर्धारित कर दे, उसके बाद फिर वित्त-आयोग को इस बारे में तब तक पुनरीक्षण का कोई अधिकार न रहेगा जब तक कि राष्ट्रपति स्वयं न इस मसले को उसके पास भेजे। यदि प्रान्तों को आगे चलकर अधिक रकम की जरूरत हो जाये, अगर उनके आवर्तक व्यय इतने बढ़ जायें कि तर्कसंगत आर्थिक कारणों के आधार पर, बड़े अनुदान की नहीं किन्तु करों की आमदनी का कोई एक निश्चित अंश केन्द्र से पाना उनके लिये जरूरी हो जाये तो उस हालत में प्रान्तों के परामर्श से उस मसले पर भारत सरकार को ही विचार करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं अधिक नहीं कहूंगा क्योंकि जिन कारणों से मैं यह सुझाव दे रहा हूं उन पर कल यहां पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूं। पर मैं इस बात को जरूर दुहराऊंगा कि डॉ. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में कल जो कुछ भी कहा है उससे मैं अपनी राय में कोई परिवर्तन नहीं कर पाता हूं।

अब मैं अपने संशोधन के दूसरे अंश को लेता हूं। अगर अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) का उपखण्ड (क) यों ही रहने दिया जाता है तो उससे यह होगा कि वित्त आयोग को इस बारे में अपनी सिफारिश देने का अधिकार होगा कि संघ के उत्पादन शुल्क की आमदनी का कितना अंश केन्द्रीय सरकार अपने पास रखे और कितना प्रान्तों को दे दे। अब जिस अनुच्छेद के द्वारा उत्पादन शुल्क के आरोपण की तथा उसकी आमदनी के, केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच वितरण की व्यवस्था की गई है वह अनुच्छेद 253। इस अनुच्छेद की इबारत में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे राष्ट्रपति के लिये यह जरूरी हो कि इस सम्बन्ध में कोई फैसला करने से पहिले वह वित्त-आयोग से परामर्श करे ही। मेरे संशोधन का दूसरा हिस्सा अगर स्वीकार कर लिया जाता है तो राष्ट्रपति को इस बारे में वित्त-आयोग से परामर्श करने का जो अधिकार है उस पर कोई असर नहीं आयेगा और वह अधिकार ज्यों का त्यों उसे प्राप्त रहेगा। इस संशोधन के स्वीकार करने से प्रान्तों

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

को तो कोई नुकसान नहीं होगा और केन्द्र को, जिले देश के महत्वपूर्ण हितों के संरक्षण का और उसकी रक्षा का दायित्व वहन करना पड़ेगा, यह लाभ होगा कि इससे वह ऐसी स्थिति में हो जायेगा कि आपात की दशा में भी वह अपने दायित्वों का सम्यक् पालन कर सकेगा। संविधान की रचना करने वालों ने इस बात को समझ करके ही कि जिस स्थिति की यहां आशंका की जा रही है वह शायद आगे चलकर जब केन्द्रीय शासन को किसी असाधारण स्थिति का सामना करना पड़ जाये, बहुत दु:खद सिद्ध हो सकती है, उन्होंने अनुच्छेद 277 को संविधान के मसौदे में स्थान दिया है जिसमें केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि आपात की अवस्था में वह अनुच्छेद 249 और 259 के किसी या सभी प्रावधानों को निलम्बित कर सकता है। अवश्य ही अनुच्छेद 277 में जो प्रावधान रखा गया है उससे केन्द्रीय शासन को बहुत ही व्यापक अधिकार मिल जाते हैं। प्रान्तों से आये प्रतिनिधि इसे आसानी से समझ सकते हैं कि यह अनुच्छेद कितना भयावह है। आपात की स्थिति में, उनको सर्वथा केन्द्रीय शासन की दया पर ही निर्भर करना पड़ेगा। इस अनुच्छेद से यह प्रकट है कि मसौदा बनाने वाले यह महसूस करते हैं कि इस अनुच्छेद के अधीन......

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ किन्तु यह अनुच्छेद अभी यहां पास कहां हुआ है?

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ इसीलिये तो मैं उसका इस समय जिक्र कर रहा हूं। उसके मंजूर हो जाने पर जिक्र करने में लाभ ही क्या है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ आखिर उसे वापस लेने का भी तो मुझे अधिकार है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ डॉ. अम्बेडकर यह फरमा रहे हैं कि उन्हें इस अनुच्छेद को वापस लेने का अधिकार है। मैं यही आशा करता हूं कि वह बुद्धिमता से काम लेंगे और इस अनुच्छेद को जरूर वापस ले लेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ कोई जरूरी नहीं है कि मैं उसे वापस ही लूं। उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ किन्तु मैं यह समझता हूं कि यह अनुच्छेद इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को उदारतापूर्वक सौंपी हुई समूची रकम को या उसके किसी अंश को अपने पास रख सके। भारत-शासन-अधिनियम 1935 में भी उस स्थिति की कल्पना की गई है जब केन्द्रीय शासन आयकरों के आगम के उस अंश को जो प्रान्तों के लिये विनिहित कर गया हो शायद उन्हें न दे सके और इसलिये प्रान्तों के अंशों को उन्हें देने में विलम्ब करने का उन्हें अधिकार प्रावहित किया गया है। किन्तु यह अनुच्छेद 277 तो इससे भी कहीं आगे चला गया है। उस सम्भावना को ही दूर करने के लिए जिसके ख्याल से इस अनुच्छेद को संविधान में रखा जा रहा है, मेरा यह सुझाव है कि कर के आगमों का क्या अंश प्रान्तों को दिया जाये क्या केन्द्रीय

शासन को इसके विनिश्चयन में वित्त-आयोग का कोई हाथ ही न होना चाहिये। यह ऐसा मसला है जिसका फैसला केन्द्रीय शासन को प्रान्तों के परामर्श से करना चाहिये। यदि ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है तो मुझे पक्का विश्वास है कि केन्द्रीय शासन अपने महत्वपूर्ण दायित्व का समुचित रूप से पालन कर सकेगा और अपने निर्णय के औचित्य का विश्वास प्रांतों के मन में बिठा सकेगा। उस दशा में ऐसी स्थिति ही न पैदा होगी जिससे बाध्य होकर केन्द्रीय शासन को वित्त विषयक इन प्रावधानों को, जिन पर हम अब तक विचार किये हैं रद्द करना पड़े।

आस्ट्रेलिया में भी एक वित्त-आयोग की व्यवस्था है श्रीमान्। वह आयोग आज करीब 16 वर्षों से काम कर रहा है पर इसका कर्तव्य इतना ही है कि वह प्रान्तों की मांगों की छानबीन करके और उनके बजट की जांच पड़ताल करके अपनी सिफारिश भर दे कि बजट की कमी को पूरा करने के लिये या और किसी प्रयोजन के लिये प्रान्तों को इतनी रकम मिलनी चाहिये। जहां तक मैं जानता हूं उसे कामनवैल्थ सरकार को यह आदेश देने का अधिकार नहीं है कि अमुक-अमुक करों के आगमों का अमुक-अमुक अंश वह इकाइयों को दे। अभी हाल में कनाडा में भी इस बात की कोशिश की गई थी ऐसी ही व्यवस्था वहां चलाने के लिए प्रान्तों को राजी किया जाये। युद्ध के दिनों में वहां की केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तों को आयकर क्षेत्र को छोड़ देने पर राजी किया और उसे पूर्णतः अपने अधिकार में कर लिया। कनाडा के संविधान के अधीन वहां प्रान्तीय प्रयोजनों के लिए आय पर करारोपण का प्रान्तों का अधिकार है। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने वहां आय पर इतना ज्यादा कर लगा रखा है कि प्रान्तों के लिये इसकी कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है कि वह इस क्षेत्र में प्रवेश करे। कनाडा की केन्द्रीय सरकार ने यह सुझाव दिया था कि प्रान्तों को एक वित्त-आयोग की नियुक्ति पर सहमत हो जाना चाहिये और वह आयोग प्रान्तों की आवश्यकताओं का ख्याल रखते हुए इस बात की सिफारिश करेगा कि उन्हें नियत कालिक अनुदान में क्या रकम मिलनी चाहिये। किन्तु इस बारे में प्रान्तों और केन्द्र के बीच जो विचार-विमर्श हुआ उसमें न तो कभी केन्द्रीय शासन की ओर से और प्रान्तों की ही ओर से यह सुझाव रखा गया कि प्रस्तावित वित्त-आयोग को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह केन्द्रीय शासन को यह आदेश दे सके कि आयकर के आगम का अमुक अंश वह प्रान्तों को दे। वहां सिर्फ इतना ही कहा गया था कि उस बात पर विचार करके कि प्रान्तों की समुचित आवश्यकतायें क्या हैं, वित्त-आयोग को केवल ऐसी सिफारिश दे देनी चाहिये जिससे प्रान्तों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। यह जरूर है कि कनाडा में इस सम्बन्ध में प्रान्तों और केन्द्र के बीच कोई समझौता न हो सका पर इससे मेरे द्वारा रखे गये तर्कों के बल पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

मैं नहीं समझता श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में मुझे और कुछ कहने की जरूरत है। अनुच्छेद 251 के अधीन आयकर के वितरण के सम्बन्ध में तो हम वित्त आयोग को निर्णय का अधिकार दे ही चुके हैं पर उत्पादन शुल्क के आगम का वितरण प्रान्तों और केन्द्र में किस तरह हो इसके निर्णय का भार वित्त-आयोग को सौंपना कदापि वांछनीय न होगा और इस अवांछनीयता को व्यक्त करने के लिए मैं बहुत कुछ कह चुका हूं। वित्त-आयोग शुरू में तो यह निर्णय दे दे कि

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

आयकर के आगमों का कितना प्रतिशत प्रान्तों को दिया जाये और कितना केन्द्र के पास रहे पर मेरी राय में यह कदापि वांछनीय नहीं है कि उस निर्धारित प्रतिशत पर आगे चलकर पुनरीक्षण का उसे अधिकार रहे। और उपायों से, और समधिक ठोस उपायों से भी प्रान्तों की आवश्यकताओं की पूर्ति हम कर सकते हैं।

*__श्री बी. दास__: माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थिति किये संशोधन को स्वीकार तो मैं करता हूं श्रीमान्, पर बड़ी अनिच्छा से। संस्कृत में एक श्लोक है:

सर्वनाशे समापन्ने अर्ध त्यजति पंडित:

मेरे संस्कृत में अगर कोई गलती हो तो माननीय मित्र कामत उसे ठीक कर दें। इसका मतलब यह है कि सर्वनाश की स्थिति में बुद्धिमान आदमी आधा बचा कर ही सन्तोष कर लेता है। सन् 1924 से लेकर अब तक के अपने प्रमादमय जीवनकाल में केन्द्रीय शासन ने अपने ही स्वार्थों का साधन करने वाली आर्थिक नीति अपनाकर प्रान्तों के विकास एवं समुन्नति का सर्वथा हनन ही किया है। अब यह कहा जाता है कि संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर वित्त-आयोग अपना प्रकार्य करने लग जायेगा। पर यहां भी सरकार कमेटी की सिफारिशों के प्रतिकूल ही काम किया गया है। सरकार कमेटी कि सिफारिश यह रही है कि वित्त आयोग की नियुक्ति फौरन हो जानी चाहिये। हां, डॉ. अम्बेडकर ने यह जरूर कहा है कि अभी एक तदर्थ समिति (Ad hoc Committee) कि नियुक्ति कर दी जायेगी जो आय के सम्बन्ध में प्रान्तों एवं केन्द्रीय शासन की स्थिति का अनुसंधान करेगी और अनुन्नत प्रान्तों की तात्कालिक समुन्नति के लिये कुछ रकम वह उन्हें अभी दे सकती है। सिवाय इसके कि सभा भवन में प्रसंगात तदर्थ समिति का जिक्र कर दिया गया है, बाकायदा इसके लिये यहां कोई घोषणा नहीं की गई है। इसलिये मैं यह आशा करता हूं कि केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच वित्त वितरण की इन व्यवस्थाओं पर विचार समाप्त करने के पूर्व ही यहां तदर्थ समिति की स्थापना के सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित घोषणा जरूर की जायेगी।

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर जो संशोधन माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने पेश किया है श्रीमान्, उसका मैं हार्दिक समर्थन करता हूं। पं. हृदयनाथ कुंजरू कितने सिद्धांत परायण व्यक्ति हैं यह आज सवेरे हमें देखने को मिला। उन्होंने एक वर्तमान त्रुटि पर प्रकाश डाला है। जिन सिद्धांतों का उन्होंने यहां जिक्र किया है उनको अमली रूप देना है। उन्होंने अपनी वक्तृता में यह साफ-साफ बता दिया है कि त्रुटि क्या है और यह भी अच्छी तरह बता दिया है कि इन सिद्धांतों को क्रियात्मक रूप किस तरह दिया जा सकता है। बिलकुल न से कुछ तो बेहतर ही है। पं. कुंजरू यह चाहते हैं कि इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) को दो भागों में विभक्त कर दिया जाये। एक हो उपखण्ड (क) और दूसरा (कक)। मैं आशा करता हूं कि सभा अनुन्नत प्रान्तों के हितों का ख्याल करते हुए जिसके बारे में यहां आज और अभी उस दिन बहुत कुछ कहा जा चुका है, उनके संशोधन को अवश्य स्वीकार करेगी।

हम सब यहां जिस बात पर जोर देते आ रहे हैं उससे प्रसंगवशात् सभा के समक्ष यह बात आ जाती है कि आगमों के अभी से वितरण की कोई व्यवस्था नहीं हुई है। हो सकता है हम अन्य सदस्यों को यह समझाने में सफल न हो सके हों कि आयकर के तथा अन्य आगमों का विभाजन, उड़ीसा, आसाम, बिहार और कुछ हद तक बंगाल जैसे अनुन्नत प्रान्तों की समुन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है। मेरा ख्याल है कि पंडित ठाकुरदास पूर्वी पंजाब को भी कम आय वाले प्रान्तों की सूची में शामिल करना चाहते हैं जिनके विकास के लिए आय-साधनों का अभी से वितरित कर देना जरूरी है। आदरणीय मित्र पं. कुंजरू से इस बात के सम्बन्ध में मैं सादर अपना मतभेद व्यक्त करूंगा कि संविधान के लागू होने के साथ ही आगमों के वितरण की बात राष्ट्रपति को, या मंत्रिमण्डल को या भारत सरकार को न सोचनी चाहिये। अन्य कई करों के सम्बन्ध में मसलन उत्पादन शुल्क तथा अन्य शुल्कों के सम्बन्ध में तो सरकार कमेटी ने ही इसकी सिफारिश कर दी है। इस कमेटी की सिफारिशों के सम्बन्ध में यदाकदा मैंने अपना मतभेद भी व्यक्त किया है और खास करके उसकी इस सिफारिश पर कि आयकर का वितरण संग्रह के आधार पर होना चाहिये। मेरी यह आपत्ति आज भी है और पंडित कुंजरू भी मेरे इस मन्तव्य का समर्थन कर चुके हैं कि आयकर का वितरण जनसंख्या के आधार पर होना चाहिये।

माननीय मित्र पं. कुंजरू ने इस सम्बन्ध में यहां आस्ट्रेलिया के ग्रांट्स कमीशन द्वारा सुझाई गई प्रणाली का जिक्र किया है। इस प्रणाली का थोड़ा बहुत आभास हमें नेहरू-अदारकर रिपोर्ट से भी मिल जाता है। बात यह है कि यद्यपि आस्ट्रेलिया एक सार्वभौम राज्य नहीं रहा है, पर वहां की शासन व्यवस्था औपनिवेशिक ढंग की थी और अपने अनुन्नत प्रदेशों के विकास के लिये वह अपने साधनों का इच्छानुसार उपयोग कर सकता था। किन्तु हमारा देश दुर्भाग्य से करीब डेढ़ सौ साल से—1947 तक एक—अधीनस्थ देश रहा है और यहां की शासन व्यवस्था ब्रिटिश औपनिवेशिक-प्रणाली पर चलाई जाती रही है जिसमें सारी आमदनी केन्द्र के हाथ में ही रहती थी और वह खर्च की जाती थी एक अंग्रेज अर्थ सदस्य की मरजी से, ब्रिटेन की भलाई के ख्याल से, न कि भारत की भलाई के ख्याल से। अब आज हम अपने हृदय को सुख सान्त्वना पहुंचाने वाली यह बात सुनना चाहते हैं कि स्वतंत्र भारत का अर्थ विभाग अब उस औपनिवेशिक पद्धति पर यहां का अर्थप्रशासन न चलायेगा जिस पर वह पहिले अंग्रेजों के दिनों में चलाया करता था। हमारी मांगों का कुल निचोड़ यही है। हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर, ग्रांट्स कमीशन या वित्त-आयोग की नियुक्ति को अभी दो ढाई बरसों तक स्थगित रखते हैं क्योंकि यदि संविधान 26 जनवरी सन् 1950 को पास हो जाता है तो दूसरे मंच पर पहुंचकर हम राष्ट्रपति को या मंत्रिमण्डल को दो साल के अन्दर वित्त-आयोग की स्थापना के लिये बाध्य कर सकते हैं। उस हालत में सरकार समिति की रिपोर्ट के चार वर्ष बाद यह आयोग स्थापित होगा।

किन्तु प्रश्न यह है श्रीमान्, कि हम उन सिद्धांतों का निर्णय किस तरह करेंगे। जिनके आधार पर आय का वितरण किया जायेगा? हम अपनी भूल को मंजूर करते हैं कि इसके लिए हमने कोई संशोधन नहीं रखा है पर इसका कारण यह है कि हमें अन्धकार में रखा गया। सभा में आय-वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तों पर कभी विचार ही नहीं किया गया और आज हम राष्ट्रपति को यह अधिकार दे

[श्री बी. दास]

रहे हैं कि आय-वितरण के सिद्धांतों को निर्धारित करने के लिए वह एक वित्त-आयोग का गठन करेगा।

माननीय पं. कुंजरू का मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने अनुच्छेद 277 का जिक्र किया है। इस बात से कि आपात की स्थिति में राष्ट्रपति को प्रान्तीय आय साधनों में हस्तक्षेप का अधिकार रहना चाहिये, यह प्रकट होता है कि भारत सरकार की वही मनोवृत्ति है जो 1937 में यहां अंग्रेजी हुकूमत की थी। यह जानकर कि युद्ध छिड़ने वाला है 1937 में उसने भारत-शासन अधिनियम की धारा 126 का लोक सभा में संशोधन कर दिया और उसके साथ एक नई धारा 126-क जोड़ दी जिसके अनुसार देश के समस्त साधन को केन्द्रीय सरकार की मरजी पर रख दिया गया। न सिर्फ हमारे नेताओ को ही जेलों में बन्द कर दिया गया बल्कि प्रान्तों का शासन धारा 93 के अधीन होने लगा और यह सब किया गया ब्रिटेन के हित के लिये साधन। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरे में भारत का सारा रक्त चूस गया। मित्र शक्तियों ने भारत से करीब चार पांच हजार करोड़ रुपये ठग कर छीन लिया और इस ठगैती में अमेरिका ने भी ब्रिटेन की तरह समान लाभ उठाया। इन्होंने सभी चीजें खरीदी कन्ट्रोल दर से युद्धपूर्व के भाव पर। आज देश में जो आर्थिक कठिनाई दिखाई दे रही है, जो गरीबी, भुखमरी, मुद्रास्फीति और बेहद महंगी दिखाई दे रही है उसका मूल कारण है यही धारा 126-क। मैं तो यह सोचता था कि अपनी राष्ट्रीय सरकार, लोकतंत्रीय सरकार कभी इस बात की कल्पना भी न करेगी कि आपात की स्थिति में उसे ऐसी आर्थिक शक्तियां प्राप्त रहनी चाहियें जैसी अनुच्छेद 277 के अधीन प्रावहित की जा रही हैं। यह अनुच्छेद उन लोगों के दिमाग की उपज है जिन्होंने देश की आजादी के लिये डटकर मोर्चा लिया है। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि राष्ट्रपति को ऐसी शक्ति देना क्यों आवश्यक है।

वित्त विषयक किसी भी अनुच्छेद पर जब मैं गौर करता हूं तो मेरी बुद्धि हैरत में पड़ जाती है। हमने अनुच्छेद 258 को अभी स्थगित रख छोड़ा है पर यह है किस अभिप्राय के लिये? इसका अभिप्राय यह है कि बिक्री-कर केन्द्र के अधीन हो ताकि उसका संग्रह सर्वत्र एक समान हिसाब से हो सके। इस कर की चर्चा आज मन्द पड़ गई है क्योंकि हमारे अर्थ मन्त्री इससे सहमत हो गये हैं कि हाल में ही जब लंदन जायेंगे तो डालर और पौंड वाले देशों से ज्यादा आयात न करेंगे ताकि हमारे डालर और पौंड कोष से अधिक खर्च न हो। पर उस हालत में मद्रास जैसे प्रान्त का काम कैसे चलेगा जो विदेशों से आये ऐशो इशरत के सामान पर बिक्री कर के रूप में जो आय होती है उसी पर जीता है? अनुच्छेद 258 पर शायद आगे चलकर फिर विचार किया जायेगा पर मैं वित्त विषयक सभी प्रावधानों के पूरे खाके पर विचार कर रहा हूं। इस रवैया से तो वित्त-आयोग के सामने उससे भी कहीं गम्भीर मसले पेश होंगे जिनकी कल्पना मसौदा-समिति ने शुरू में कर रखी थी।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 258 का बिक्री कर से कोई सम्बन्ध नहीं है?

***श्री बी. दासः** इसका बिक्री कर से सम्बन्ध है।

*__अध्यक्षः__ यह तो राज्यों के संविदा के सम्बन्ध में है।

*__श्री बी. दासः__ हां श्रीमान्। और इस सिलसिले को लेकर भारत सरकार का भी सम्बन्ध हो जाता है।

*__अध्यक्षः__ इस अनुच्छेद का बिक्री कर से कोई सम्बन्ध नहीं है।

*__श्री बी. दासः__ तो मैं सभा को यह जानकारी दे देता हूं कि भारत सरकार, प्रान्तीय अर्थ मंत्रियों तथा औरों के साथ इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार कर रही है। भारत सरकार यह चाहती है कि सर्वत्र बिक्री कर में एकरूपता रहनी चाहिये। फिर भी उन्होंने यह निश्चय किया है कि विदेशों से प्रान्तों में माल कम आये जिसका फल यह होगा कि प्रान्तों की आमदनी घट जायेगी। विदेशी वस्तुओं के व्यवहार का मैं पक्षपाती नहीं हूं। जहां तक वश चलता है विदेशी वस्तुओं का मैं व्यवहार नहीं करता हूं। पर मेरा कहना यह है कि केन्द्र प्रान्तीय आय को घटाने के लिये तो स्वेच्छाचारिता से अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है किन्तु जो मूल प्रश्न है कि आय वितरण की वर्तमान व्यवस्था का पुनरीक्षण होना चाहिये और उसमें आवश्यक परिवर्तन होना चाहिये, उसको वह तय ही नहीं करता है। बार-बार मैं यहां उन्हीं बातों को नहीं दुहराना चाहता हूं जिनको गत तीन चार दिनों के अन्दर कई मौकों पर मैं कह चुका हूं। पर केन्द्र और प्रान्तों के बीच आय वितरण के प्रश्न को लेकर यहां जो रवैया अख्तियार किया जा रहा है उससे मैं बिलकुल हैरत में पड़ गया हूं। वित्त-आयोग की स्थापना आज से तीन साल बाद की जायेगी इससे मुझे कोई खुशी नहीं है। पर आशा की एक मन्द किरण मुझे जरूर दिखाई दे रही है। पं. हृदयनाथ कुंजरू ने अपने संशोधन में जिस सिद्धांत का सुझाव रखा है अगर वह मंजूर कर लिया जाता है तो अनुन्नत प्रान्तों को कुछ उम्मीद हो जायेगी। भगवान् करें उन लोगों की, जिनके हाथ में केन्द्रीय शासन की बागडोर है, सुबुद्धि जागे और केन्द्र और प्रान्तों के बीच आय वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है उसका वह पुनरीक्षण करें। उड़ीसा, आसाम और बिहार जैसे अनुन्नत प्रान्तों को आगे चलकर जो कुछ वित्त-आयोग देगा उससे कुछ ज्यादा अगर उन्हें अभी से ही मिलने लगता है तो इस पर, मुझे पूरा विश्वास है, पं. कुंजरू को कोई आपत्ति न होगी।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ संविधान का यह अनुच्छेद एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और उसके बाद हर पांचवें साल की समाप्ति पर या यदि राष्ट्रपति आवश्यक समझे तो उससे पहिले भी, वित्त आयोग के गठन का इसमें प्रावधान किया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) (क) पर पं. कुंजरू ने दो संशोधनों की सूचनायें भेज रखी हैं। निजी तौर पर मेरा मत तो यह है कि इन संशोधनों से स्थिति और भी खराब हो जायेगी। सच तो यह है कि कुछ बातों को तथ्य मान कर वह इस सम्बन्ध में चल रहे हैं। मैं यह महसूस करता हूं कि वित्त-आयोग एक ऐसा निकाय होगा जिसे राष्ट्रपति के समक्ष सिर्फ अपनी सिफारिशें रखने का अधिकार होगा और वह कोई ऐसा निकाय नहीं होगा कि उसका निर्णय मानना ही पड़े। पं. कुंजरू यह चाहते हैं कि यह रूढ़ि चल पड़े कि वित्त-आयोग की जो भी सिफारिशें हों उन्हें राष्ट्रपति मान ही ले। वह यह मानते हैं कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह चाहे तो वित्त-आयोग की सिफारिशों को माने या

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

न माने। पर उनकी इच्छा यह है राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का प्रयोग ही न करे और स्वेच्छा से इस सम्बन्ध में अपने ऊपर एक तरह का त्यागमूलक अध्यादेश लागू कर ले। अभी हाल में विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई थी और अभी उस दिन डॉ. कुंजरू ने खुद यहां यह कहा था कि उस रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई थी और अभी उस दिन डॉ. कुंजरू ने खुद यहां यह कहा था कि उस रिपोर्ट को न स्वीकार करना ही बुद्धिमानी की बात थी। उनको यह भी समझना चाहिये कि कोई वित्त आयोग ऐसी भी सिफारिशें कर सकता है जैसी कि सरकार कमेटी ने की थीं जिन्हें भारत सरकार ने तथा मसौदा-समिति ने नामंजूर करना ही उचित समझा। इसलिये मेरा कहना यह है कि वित्त-आयोग विशेषज्ञों का एक ऐसा निकाय हो जो वित्तीय विषयों में अपने लोकतंत्र की स्थिति का अनुसंधान कर सिर्फ अपनी सिफारिशें राष्ट्रपति के सामने रख दे। अवश्य ही वह उन सब कारणों को भी बता देगा जिनके आधार पर उसने अपनी सिफारिशें की हैं। पर मैं यह नहीं समझता कि वित्त-आयोग कोई ऐसा निकाय हो सकता है जो संसद के इस सर्वसम्मत अधिकार को कि उसे ही वित्त विषयक मामलों में अन्तिम निर्णय देने की शक्ति प्राप्त है, अपने हाथ में ले ले। इसलिये मैं ऐसी किसी भी रूढ़ि को चलाने के विरुद्ध हूं जिसमें वित्त आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करना लाज़िमी हो।

पिछले अनुच्छेद में राष्ट्रपति को दी हुई आय वितरण की शक्ति का विरोध मैंने इसलिये किया था कि मेरे ख्याल में यह काम संसद को विधि द्वारा करना चाहिये। अगर डॉ. कुंजरू की यह बात मंजूर की जाती है कि ऐसी रूढ़ि चल जानी चाहिये कि वित्त-आयोग की सिफारिशें मंजूर ही की जायें तो मेरा अपना ख्याल है कि ऐसी रूढ़ि से बड़ा नुकसान पहुंचेगा। इससे संसद के आय वितरण सम्बन्धी अधिकार पर आघात पहुंचेगा। वस्तुतः वित्त-आयोग को इतना ही अधिकार दिया गया है कि करों की आमदनी के वितरण के सम्बन्ध में, विशेष अनुदान के सम्बन्ध में, या किसी संविदा वगैरह को जारी रखने या उसमें परिवर्तन करने के बारे में वह अपनी सिफारिशें दे सकता है। वस्तुतः वह किसी भी मसले पर, जो विचारार्थ उसे सौंपा जाये, अपनी सिफारिश दे सकता है। और यदि यह रूढ़ि चालू कर दी जाती है कि उसकी सिफारिशें स्वीकार करनी ही होंगी, तो इसका मतलब यह होगा कि मंत्रि मण्डल से भी अधिक शक्ति उसके हाथ में हो जायेगी। ऐसी अवस्था में तो मंत्रि-मण्डल उसकी किसी भी सिफारिश के खिलाफ कुछ कह ही नहीं सकता है। संसद की इन शक्तियों को छीनकर किसी भी आयोग को चाहे उसमें कितने भी बुद्धिमान व्यक्ति क्यों न हों, मैं देने को तैयार नहीं हूं। वित्त-आयोग की सिफारिशों पर संसद हस्तक्षेप करे इसके विरुद्ध डॉ. कुंजरू की आपत्ति यह है। मान लीजिये वित्त-आयोग किसी राज्य विशेष को समधिक अंश देने की सिफारिश करता है और राष्ट्रपति या संसद उसे कम कर देती है तो सम्बंधित राज्य केन्द्र पर यह आरोप लगायेगा कि उसने वित्त-आयोग द्वारा अभिस्तवित राशि से उसे वंचित कर दिया। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूं कि संसद समस्त राष्ट्र की संसद होगी और उसमें प्रत्येक राज्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा। यदि संसद किसी भी प्रस्ताव के सभी गुण-दोषों पर विचार करके और वित्त-आयोग की सभी दलीलों को सोच समझ लेने पर भी इसी नतीजे पर पहुंचती है कि उस राज्य को अमुक अंश ही मिलना चाहिये तो मेरे ख्याल में

संसद को ऐसा फैसला देने का अधिकार है और इसके लिये उसके खिलाफ कोई भी सदस्य कोई आरोप नहीं लगा सकता है क्योंकि उस राज्य विशेष के प्रतिनिधि भी संसद में वितरण सम्बन्धी प्रश्न पर अपनी राय देने के लिये मौजूद रहेंगे। इसलिये मेरी समझ से वित्त-आयोग जैसे किसी बाहरी निकाय को ऐसा अधिकार देना कि वह संसद को या हुकूमत को आदेश दे सकता है कि वित्त का वितरण अमुक हिसाब से ही किया जाये, एक बड़े खतरनाक सिद्धांत को अपनाना होगा। इसलिये व्यक्तिगत रूप से मैं तो यही अनुभव करता हूं कि उनकी वह मूलभूत कल्पना ही गलत है जिसके आधार पर आपने दोनों संशोधन पेश किये हैं। यह वित्त-आयोग, संविधान में दी हुई व्याख्या के अनुसार एक ऐसा निकाय होगा जिसे राष्ट्रपति के सामने सिर्फ अपनी यह सिफारिश भर रख देनी होगी कि केन्द्र और राज्यों के बीच आय का वितरण किस तरह किया जाये; बस वित्त-आयोग का काम इतना ही होगा। इसे यह शक्ति न प्राप्त रहेगी कि वित्त-वितरण के बारे में जो भी निर्णय करे वह अंतिम रूप से मान्य होगा। अपने मत की पुष्टि के लिये आपने आस्ट्रेलिया का उदाहरण दिया है, जहां, उनका कहना है ऐसी रूढ़ि प्रचलन में है। मेरा ख्याल है कि सिवाय आस्ट्रेलिया के ऐसी व्यवस्था और कही भी नहीं है। आस्ट्रेलिया के हालात की मुझे इतनी खासी जानकारी नहीं है कि मैं आपको यह बता सकूं कि वहां क्यों ऐसी व्यवस्था रखी गई है। किन्तु जहां तक कि अपने देश का सम्बन्ध है, मैं यही अनुभव करता हूं कि इस सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार संसद को ही होना चाहिये और वितरण के लिये वह जो भी सिद्धांत निर्धारित करेगी उसके लिये कोई भी संसद की आलोचना नहीं कर सकता है। क्योंकि देश के सभी प्रदेशों के प्रतिनिधि वहां मौजूदा रहते हैं। इसलिये मेरा तो यही ख्याल है कि वित्त-आयोग की सिफारिश को, इस संविधान के अनुसार और डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित इस खण्ड के अनुसार, वही बल प्राप्त रहेगा जो सिफारिशों को होता है और वह आदेश मूलक कभी नहीं हो सकती हैं। अगर मेरा मन्तव्य ठीक है तो फिर ये दोनों संशोधन अनावश्यक हैं। डॉ. कुंजरू यह चाहते हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच आय कर के आगमों का वितरण वित्त-आयोग करें। अनुच्छेद 251 में कहा गया है:

"किसी वित्तीय वर्ष में से किसी ऐसे कर के शुद्ध आगम का, जहां तक वह आगम प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में उल्लिखित राज्यों में से अथवा संघ उपलब्धियों के सम्बन्ध में देय करों से मिला हुआ आगम माना जाये वहां तक के सिवाय, ऐसा प्रतिशत भाग, जैसा विहित किया जाये, भारत की संचित निधि का भाग न होगा किन्तु उन राज्यों को सौंपा जायेगा जिनके भीतर वह कर उद्‌गृहीत होता है तथा वह उन राज्यों को उस रीति और उस समय से, जो विहित किया जाये वितरित होगा।"

इन अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि 'विहित' शब्द का अर्थ है:-

"जब तक वित्त-आयोग गठित न हो जाये तब तक राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित और वित्त-आयोग के गठित हो जाने के पश्चात् वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

डॉ. कुंजरू यह चाहते हैं कि वित्त-आयोग को अधिकार न होना चाहिये कि हर मौके पर जब भी आयकर के आगम के वितरण का मसला उसके पास भेजा जाये तो वह उस पर अपनी सिफारिश दे बल्कि उसे अपनी सिफारिश देने का सिर्फ एक बार, शुरू में जब मसला उसको भेजा जाये तभी अधिकार रहे। पर हो सकता है आज की हालात के मुताबिक हम आयकर का वितरण एक ढंग से करना तय करें पर आग चलकर केन्द्र की आर्थिक स्थिति आज से और कमजोर हो जाये और वह आयकर के आगम से कोई अंश प्रान्तों को दे न सके और प्रान्तों की स्थिति में सुधार हो जाये जिससे उन्हें केन्द्र से सहायता की जरूरत न रह जाये। इसलिये अगर यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो वित्त-आयोग वितरण व्यवस्था में कोई परिवर्तन ही नहीं कर सकता है। मेरी समझ में अच्छा यही होगा कि वित्त-आयोग वितरण व्यवस्था में कोई परिवर्तन ही नहीं कर सकता है। मेरी समझ में अच्छा यही होगा कि वित्त आयोग हर बार राष्ट्रपति को अपनी यह सिफारिश दे दे कि स्थिति के अनुसार आय का वितरण किस तरह किया जाये। अगर कोई प्रतिशत भाग हमेशा के लिए निश्चित कर दिया जाता है तो इससे उस अभिप्राय का ही हनन हो जायेगा जिसके लिये वित्त आयोग की हम स्थापना कर रहे हैं। इसलिये डॉ. कुंजरू के प्रथम संशोधन को मैं समुचित नहीं समझता। वह यह चाहते हैं कि वितरण में परिवर्तन करने का सम्बन्ध है राष्ट्रपति या केन्द्रीय शासन का अधिकार अक्षुण्ण रहना चाहिये और वित्त-आयोग द्वारा उसका अपहरण न होना चाहिये। वह यह चाहते हैं कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मान्यता मिलनी ही चाहिये किन्तु मेरी कहना यह है कि उसकी सिफारिश महज सिफारिश ही समझी जाये और उनको मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा की बात है।

उनके संशोधन के दूसरे अंश में राज्यों में उनके अंश के वितरण की बात कही गई है किन्तु अनुच्छेद 260 में संघ तथा राज्यों के बीच आगम के विभाजन की बात कही गई है। इसलिये इस संशोधन के स्वीकृत हो जाने से वित्त आयोग को यह अधिकार ही न रह जायेगा कि वह यह सिफारिश कर सके कि उत्पादन शुल्क की आय का कितना प्रतिशत अंश संघ को जाना चाहिये और कितना प्रतिशत राज्यों को। वह चाहते हैं कि केन्द्र एवं राज्यों को कितना कितना अंश दिया इसे निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिये। यानी राष्ट्रपति यह निश्चित करेगा कि अमुक प्रतिशत राज्यों को मिलना चाहिये और सब वित्त-आयोग इस बात का फैसला करेगा कि वह प्रतिशत उनमें किस तरह वितरित किया जायेगा। इसका मतलब यह होगा कि वित्त-आयोग सर्वथा एक निरर्थक निकाय होगा और उसे यह निर्धारित करने का अधिकार न होगा कि संघ को आगम का अमुक प्रतिशत मिलेगा और राज्यों को अमुक। इसलिये मेरी समझ से तो संशोधन का यह अंश प्रथमांश से भी अधिक खतरनाक है। मुझे वस्तुत: डर तो इस बात का है कि इससे सारा अधिकार संसद से छिनकर एक दूसरे ही अधिकारी—चाहे वह राष्ट्रपति हो या वित्त-आयोग—के हाथ में पहुंच जायेगा। मैं चाहता यह हूं कि इस सम्बन्ध में अंतिम अधिकार संसद को प्राप्त रहना चाहिये, इसलिये मेरी समझ से तो यह संशोधन ही अनावश्यक है। देश की आर्थिक स्थिति क्या है यह बात संसद को अवश्य मालूम होनी चाहिये। वित्त-आयोग को इस बात का पूरा अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि शुल्क के हर पहलू की जांच करे और केन्द्र तथा प्रान्तों की

आर्थिक स्थिति क्या है इसका अनुसंधान करे ताकि इसकी रिपोर्ट से संसद को प्रकाश मिल सके। दूसरा संशोधन और खतरनाक इसलिये है कि इससे वित्त-आयोग सर्वथा एक निरर्थक निकाय हो जाता है। सच तो यह है कि यहां जब अनुच्छेद 253 और 254 पर विचार किया जा रहा था तो हर प्रान्त ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि उस प्रान्त से जो भी कर संग्रहीत किये जाते हैं उनकी आय का एक अंश उनको मिलना चाहिये। इसलिये यह अधिकार राष्ट्रपति को न मिलना चाहिये बल्कि संसद को मिलना चाहिये। किन्तु डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह कहा गया है कि वितरण का अधिकार न वित्त-आयोग हो होगा और न संसद को बल्कि राष्ट्रपति को होगा और वही यह निश्चय करेगा कि आय का कितना अंश संघ को जायेगा और कितना राज्यों को। वित्त आयोग सिर्फ इस सम्बन्ध में रिपोर्ट देगा कि निर्धारित अंश का वितरण किस प्रकार किया जायेगा। मेरा ख्याल है कि ये दोनों ही संशोधन इस धारणा पर आधृत हैं कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मानना ही होगा। किन्तु मैं नहीं समझता कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मानना लाज़िमी होना चाहिये। आगामी अनुच्छेद पर मैं इस आश्य का एक संशोधन रखने जा रहा हूं कि आगम वितरण के सम्बन्ध में जो निर्णय किया जायेगा उसको संसद का समर्थन प्राप्त होना जरूरी होगा और संसद ही यह निर्णय करेगी कि राष्ट्रपति ने संघ और राज्यों के बीच आगम वितरण के लिये जो प्रतिशत निर्धारित किया है वह ठीक है या नहीं। इस सम्बन्ध में अंतिम अधिकार संसद को ही प्राप्त रहना चाहिये और देश की अवस्था के अनुसार वही इसका आखिरी निर्णय करेगी। आशा है श्रीमान्, कि मेरी बातों को सदस्यगण ध्यान में रखेंगे और उन पर समुचित विचार करेंगें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ सभा ने अवश्य ही इस बात को समझ लिया होगा कि माननीय मित्र डॉ. कुंजरू का संशोधन अनुच्छेद 260 के खण्ड (2) के सम्बन्ध में है जिसमें वित्त-आयोग के प्रकार्य बताये गये हैं। उनके द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का ठीक-ठीक महत्व क्या है इसे समझने के लिए मेरे ख्याल में उस व्यवस्था को समझ लेना जरूरी है जो हमने स्वीकृत अनुच्छेद 251 और 253 में प्रावहित की है। मसौदे में आयकर के वितरण की और केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के वितरण की अलग-अलग व्यवस्था की गई है और दोनों में विभेद किया गया है। आयकर के आगम के विभाजन एवं वितरण का काम राष्ट्रपति पर छोड़ा गया है और वही इस सम्बन्ध में निर्णय करेगा। अनुच्छेद 251 (2) को उसके खण्ड (4), (1) और (2) के साथ मिलाकर पढ़ने से यह बात आपको स्पष्ट हो जायेगी। किन्तु केन्द्रीय उत्पादन शुल्क की आमदनी के विभाजन एवं वितरण का काम सौंपा गया है संसद को और वही विधि द्वारा इस सम्बन्ध में निश्चय कर सकती है जैसा कि अनुच्छेद 253 में साफ-साफ कहा गया है।

एक बज चुका है इसलिये अपनी शेष बातें अब कल कहूंगा।

इसके पश्चात् सभा बुधवार ता. 10 अगस्त सन् 1949 ई. के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-9-49

अंक 9
संख्या 9

बुधवार
10 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

[अनुच्छेद 260 से 263, 267 से 269 तथा 5 और 6 पर विचार] 471–529

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 10 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 260—*(जारी)*

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, कल अधिवेशन समाप्त होने के पूर्व मैं अपने माननीय मित्र पण्डित कुंजरू के उन तर्कों की चर्चा कर रहा था, जिन्हें उन्होंने अपने संशोधन के समर्थन में उपस्थित किया था। मैंने आरम्भ में यह कहा था कि सभा को अनुच्छेद 251(2) और अनुच्छेद 252 के उपबन्धों का स्मरण कराने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें दृष्टि में रखकर माननीय सदस्य समझ सकें कि वास्तव में पण्डित कुंजरू के संशोधन का क्या आशय है।

कल मैंने जो कुछ कहा था, उसे मैं संक्षेप में दुहराऊंगा। स्थिति यह है कि जहां तक आयकर का सम्बन्ध है, उसके आगम के वितरण और बंटवारे के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति उन्हें निश्चित करेगा और उत्पादन-शुल्क के वितरण और बंटवारे के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई है कि वह संसद की विधि द्वारा निश्चित किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 260 के उपबन्धों को भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जिनमें वित्त आयोग का वर्णन है। अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) में यह उपबन्धित है कि वित्त-आयोग संसद की विधि के अधीन वितरित होने वाले करों के वितरण तथा बंटवारे के सम्बन्ध में ही सिफारिश नहीं करेगा, बल्कि आयकर के वितरण तथा बंटवारे के सम्बन्ध में भी सिफारिश करेगा। यदि मैं, अपने मित्र पंडित कुंजरू के आशय को ठीक समझ पाया हूं तो, मेरे विचार से, वे यह चाहते हैं कि आयकर का संग्रह, वितरण तथा बंटवारा वित्त-आयोग के अधिकार में न रहे। इतना वे अवश्य चाहते हैं कि जहां तक आयकर के प्रारम्भिक वितरण का सम्बन्ध है, राष्ट्रपति वित-आयोग से परामर्श करे और तदनुसार कार्य करे अथवा उसकी सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् कार्य करे, किन्तु आयकर के बंटवारे में बाद में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से कार्य करे और उसे वित्त-आयोग की सिफारिशों की अपेक्षा न हो। मैं समझता हूं कि मैंने उनके संशोधन के उद्देश्य का ठीक निर्वचन किया है। इसलिये वह एक

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

साधारण प्रश्न है और बहुत सरल भी है। क्या प्रान्तों और केन्द्र के बीच आयकर के वितरण के सम्बन्ध में और आयकर के आगम के प्रान्तों के बीच बंटवारे के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को वित्त-आयोग की सिफारिशों की अपेक्षा न होनी चाहिये? मैंने जिस संशोधन का मसौदा प्रस्तुत किया है, उसमें यह उपबंधित है कि आयकर के वितरण और बंटवारे में परिवर्तन करने में राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करेगा। मैं पण्डित कुंजरू के इस मत को समझता हूं कि यदि यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर इस सम्बन्ध में निर्णय करे, तो राष्ट्रपति के हाथ बंध जायेंगे और उसे वित्त-आयोग की सिफारिशों तथा प्रान्तों की चीख-पुकार के सामने झुक जाना पड़ेगा और इसका परिणाम यह होगा कि विवश होकर वह जो कदम उठायेगा, उससे केन्द्रीय वित्त की हानि होगी। उनके समान मेरी भी यही भावना है कि वित्त के सम्बन्ध में केन्द्र को अधिक से अधिक स्वतन्त्र बनाना चाहिये, क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा है कि हमें संविधान में कोई ऐसी बात न रखनी चाहिये, जिससे केन्द्रीय सरकार की राजनैतिक अथवा वित्तीय स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़े। किन्तु इस प्रश्न का एक अन्य अंग भी है। यदि सभी प्रान्त अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए चीख-पुकार करेंगे, तो क्या वे राष्ट्रपति को विवश न कर देंगे? वास्तव में वे ऐसा करेंगे ही। किन्तु यदि वित्त-आयोग के प्रतिवेदन में यह सिफारिश होगी कि आयकर से जो राजस्व प्राप्त हो, उसमें से प्रान्तों को अधिक धन न दिया जाये, तो मेरे विचार से उससे राष्ट्रपति को बल प्राप्त हो जायेगा और वह उनकी चीख-पुकार के सामने नहीं झुकेगा। भारत सरकार के अधिनियम की भाषा को प्रयोग करके मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि विचाराधीन अनुच्छेद के मसौदे में और प्रस्तावित संशोधन में यह अन्तर है कि पंडित कुंजरू के मतानुसार राष्ट्रपति को स्वविवेक से कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये, किन्तु मैंने जिस मसौदे को प्रस्तुत किया है उसमें कहा गया है कि वह स्वनिर्णय से कार्य करे, जिसका अर्थ यह है कि....

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय मुझे एक बात स्पष्ट करने के लिए आज्ञा देंगे, क्योंकि मेरे विचार से सम्भवत: वे मेरे आशय को पूरी तौर से नहीं समझ पाये हैं? क्या मैं एक-दो वाक्य कह कर अपना आशय स्पष्ट कर सकता हूं? अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के अधीन राष्ट्रपति जिस मामले पर वित्त-आयोग की सम्मति लेना चाहे, उसे उसके पास भेज सकता है। इसलिये मैं यह नहीं चाहता कि यदि राष्ट्रपति किसी मामले पर वित्त-आयोग से परामर्श करना चाहे तो उसे उसके परामर्श से वंचित रखा जाये। मुझे केवल इस पर आपत्ति है कि चाहे, राष्ट्रपति ने वित्त-आयोग के पास कोई मामला भेजा हो या न भेजा हो, किन्तु वह यह कह ही सकता है कि केन्द्र और प्रान्तों के बीच आयकर के आगम का बंटवारा उस प्रकार नहीं हुआ है, जैसे वह होना चाहिये था और इसलिये जिस प्रतिशत धन की उसने सिफारिश की है, उसे निश्चित किया जाये। कल मैंने केवल इतना ही कहा था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इससे स्थिति और भी पेचीदा हो जाती है, क्योंकि यह मेरी समझ में नहीं आता कि जब तक कोई मामला वित्त-आयोग के पास न भेजा गया हो अथवा उसके विचारणीय विषयों में सम्मिलित न हो, तब तक वह सिफारिश कैसे करेगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अधीन आयोग स्वयं सिफारिश कर सकता है। मेरे मित्र इस उपखण्ड का अर्थ समझने के लिए इसे पढ़ें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** "सुस्थित वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे हुए किसी अन्य विषय के बारे में।"

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** यह उपखण्ड (घ) है। क्या माननीय सदस्य महोदय अनुच्छेद 260 को तथा विशेषतः उस खण्ड को देखेंगे, जिसकी मैंने कल चर्चा की थी? अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में कहा गया है कि–

"आयोग का वह कर्तव्य होगा कि वह संघ तथा राज्यों के बीच में करों के शुद्ध आगम का, जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित होता है या होवे, वितरण के बारे में...... राष्ट्रपति को सिफारिश करे।"

मुझे इस पर आपत्ति है। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो खण्ड (3) के उपखण्ड (घ) के अधीन राष्ट्रपति को किसी भी मामले को वित्त-आयोग के पास उसकी सम्मति के लिये भेजने की जो शक्ति दी गई है उसमें कोई अन्तर न आयेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं कह नहीं सकता। चाहे राष्ट्रपति आयकर के आगम का स्वविवेक से बंटवारा करे अथवा आयोग की सिफारिशों के आधार पर बंटवारा करे, स्थिति स्पष्ट है। मुझे यह प्रतीत होता है कि यदि राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशों का प्रमाण देकर अपने कार्य की पुष्टि करेगा तो उसकी स्थिति सुदृढ़ रहेगी। मेरे विचार से वित्त-आयोग राष्ट्रपति तक पहुंचने में उन प्रान्तों के मार्ग में रुकावट डालेगा, जो आयकर से प्राप्त राजस्व के अधिक अंश के लिए चीख-पुकार करेंगे। इसलिये मेरे विचार से मेरे मित्र श्री कुंजरू ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उसे स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** अब मुझे संशोधनों पर मत लेना है। पहले मैं संशोधन संख्या 95 को उठाता हूं, जिसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया था। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 260 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:–

(1) The President shall, within two years from the commencement of this Consitution and thereafter at the expiration of every fifth year or at such earlier time as the President considers necessary by order, constitute a finance Commission which shall consist of a Chairman and four other members to be appointed by the President."

[(1) इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर, अथवा उससे पहले ऐसे समय

[अध्यक्ष]

पर, जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, राष्ट्रपति आदेश द्वारा एक वित्त-आयोग गठित करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची (1) (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 95 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित उपखण्ड रखा जाये:-

'(a) the distribution between the Union and the States of the net proceeds of taxes on income which are to be divided initially between them under this Chapter:

(aa) the allocation between the States of the respective shares of the net proceeds of taxes which are to be, or may be, divided between the Union and the States, under this Chapter;' "

[(क) संघ तथा राज्यों के बीच में आयकरों के शुद्ध आगम का, जो इस अध्याय के अधीन उन में आरम्भ में विभाजित होता है, वितरण के बारे में;

(कक) राज्यों के बीच में करों के शुद्ध आगम के सम्बंधित भागों का, जो इस अध्याय के अधीन संघ तथा राज्यों के बीच में विभाजित होते हों या होवें, बंटवारे के बारे में;]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'revenues of India' (भारत-राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित-निधि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 260, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 260, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 261

(संशोधन संख्या 2949 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 261 में 'Parliament' (संसद) शब्द के स्थान पर 'each House of Parliament' (संसद के प्रत्येक सदन) शब्द रखे जायें।"

[संशोधन संख्या 99 (सूची 1, तृतीय सप्ताह) उपस्थित नहीं किया गया।]

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 261 में 'together with an explanatory memorandum as to the action taken thereon' (उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित) शब्दों के स्थान पर 'together with such explanatory memorandum as he may think fit' (ऐसे व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित जिसे वह उचित समझें) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मेरे नाम से जो दूसरा संशोधन है, उसे भी मैं उपस्थित करता हूं। वह तृतीय सप्ताह की सूची 4 का संशोधन संख्या 139 है और इस प्रकार है:–

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 में प्रस्तावित 'each House of Parliament' (संसद के प्रत्येक सदन) 'शब्दों के स्थान पर 'each House of Parliament for such action thereon as Parliament may deem necessary' (संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी कार्यवाही के लिये रखवायेगा जिसे संसद आवश्यक समझे) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन संख्या 139 में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधनों की सूची का संशोधन संख्या 2950 भी समाविष्ट है। यदि सभा ने मेरे ये दो संशोधन स्वीकार कर लिये तो अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"राष्ट्रपति इस अध्याय के पूर्वोत्तर उपबन्धों के अधीन वित्त-आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को, ऐसे व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित जिसे वह उचित समझे, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी कार्यवाही के लिए रखवायेगा, जिसे संसद आवश्यक समझे।"

[श्री एच.वी. कामत]

श्रीमान्, मेरे विचार से, चूंकि यह अनुच्छेद एक महत्वपूर्ण आयोग अर्थात वित्त-आयोग के सम्बन्ध में है और अनुच्छेद 260 के पश्चात आता है, इसलिये इससे एक बड़ी असंगति उत्पन्न हो जाती है। यह अनुच्छेद हमारे संविधान के मसौदे के उन कई अनुच्छेदों में से है जिनके द्वारा राष्ट्रपति को अर्थात् कार्यपालिका को अधिकाधिक शक्ति प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमसे बार-बार यह कहा गया है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा से कार्य करेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो कार्य किया जायेगा, उसका निर्णय राष्ट्रपति और उसका मंत्रिमण्डल ही क्यों करे। अनुच्छेद 260 में, जिसे सभा स्वीकार कर चुकी है, हमने संसद को वित्त-आयोग के सम्बन्ध में कुछ शक्तियां प्रदान की हैं। अनुच्छेद 260 के खण्ड (2) और (4) के अधीन संसद को आयोग के सदस्यों की अर्हताओं को तथा उसकी शक्तियों को सुनिश्चित करने का अधिकार दिया गया है। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर और पंडित कुंजरू स्पष्ट कर चुके हैं, वित्त-आयोग राज्य का एक महत्वपूर्ण संगठन होगा। हमने वित्त-आयोग को महत्वपूर्ण शक्तियां प्रदान की है। यद्यपि विधि तथा संविधान के अनुसार वह केवल मन्त्रणा देने तथा सिफारिश करने का कार्य करेगा, किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अथवा उसका मंत्रिमण्डल अथवा संसद के निर्णयों पर उसका बहुत प्रभाव पड़ेगा। खण्ड (3) के उपखण्ड (घ) में साधारण विषयों के सम्बन्ध में शक्तियां प्रदान की गई हैं, अर्थात ऐसे विषयों के सम्बन्ध में शक्तियां प्रदान की गई हैं, जिनका सम्बन्ध साधारणत: संघीय वित्त से है। इसके अतिरिक्त इस आयोग को केन्द्र तथा उसके एककों के बीच और संघ के विभिन्न एककों के बीच राजस्व के बंटवारे के सम्बन्ध में मन्त्रणा देने की शक्तियां दी गई है। इस महत्वपूर्ण विषय के इन विभिन्न अंगों पर विचार करने के पश्चात्, मेरे विचार से, जब तक हम संविधान में यह उपबंधित न करें कि वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो कार्य किया जाये, उसके सम्बन्ध में संसद का निर्णय अंतिम हो, न कि राष्ट्रपति का, तब तक हम अपने कर्तव्य का पालन न करेंगे।

एक अन्य आयोग के बारे में भी, जिसके सम्बन्ध में हम एक अनुच्छेद अर्थात अनुच्छेद 301 को स्वीकार कर चुके हैं, अर्थात् उस आयोग के सम्बन्ध में जिसे हमने पिछड़े हुए वर्गों की स्थिति की जांच करने के लिए नियुक्त किया था, मैंने इसी के समान एक तर्क उपस्थित किया था। उस समय मैंने यह कहा था कि वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो कार्य किया जाये, उसके सम्बन्ध में संसद को शक्ति प्राप्त हो, न कि राष्ट्रपति अथवा कार्यपालिका को। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने भी मेरे ही संशोधन के समान एक संशोधन उपस्थित किया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि चूंकि यह एक महत्वपूर्ण विषय है, इसलिये सभा इस पर गम्भीरता से विचार करेगी और हम इसका ध्यान रखेंगे कि यदि किसी बात से संविधान की गरिमा अथवा संसद की सम्पूर्ण प्रभुता पर आघात होता हो, तो कार्यपालिका को उसके सम्बन्ध में कोई ऐसी शक्तियां प्रदान न की जायें, जिनकी आवश्यकता ही न हो। आयुक्तों की अर्हतायें निश्चित करने के लिये संसद विधि बनाती है और संसद ही उन्हें शक्तियां प्रदान करती

है, किन्तु उसे किसी कार्यवाही को करने की शक्ति नहीं दी गई है और आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति को ही कार्यवाही करने की शक्ति दी गई है। दुर्भाग्य से संसद के विचारार्थ उसके सामने ऐसी कार्यवाही रखी जायेगी, जो की जा चुकी होगी।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान् स्पष्टीकरण के हेतु क्या मैं श्री कामत से पूछ सकता हूं कि मसौदे में संसद की जिस स्थिति अथवा जिन शक्तियों का वर्णन है, वह क्या सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संस्था की स्थिति तथा शक्तियां हैं, अथवा उसे केवल सीमित शक्तियां ही प्राप्त हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने विघ्न डालकर यह प्रश्न उठाया है। यदि वे अनुच्छेद को ध्यानपूर्वक देखें, तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उसमें जिस ज्ञापन का उल्लेख है वह की हुई कार्यवाही के सम्बन्ध में है। उसमें यह नहीं कहा गया है, "जिस कार्यवाही को करने का प्रस्ताव हो"। सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति कार्यवाही करेगा और उसके पश्चात् उसका विवरण संसद के सामने रखा जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** आपने यह कहा है कि संसद सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संस्था है। मैं यह कहता हूं कि संसद सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संस्था नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि संसद सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संस्था नहीं है और यदि मेरे मित्र, राष्ट्रपति को संसद के सम्बन्ध में सम्पूर्ण प्रभुत्व बनाना चाहते हैं, तो मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** आप मसौदे को पढ़ें और बतायें कि संसद सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है अथवा सीमित-अधिकार-सम्पन्न।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं किसी बौद्धिक वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता। मैं केवल उस अनुच्छेद के सम्बन्ध में बोल रहा हूं, जो इस समय सभा के विचाराधीन है। इस अनुच्छेद में वित्त-आयोग की सिफारिशों के सम्बन्ध में संसद की तुलना में राष्ट्रपति की शक्तियों का वर्णन है। यदि हम अनुच्छेद 275 और कुछ अन्य अनुच्छेदों को देखें, तो उनमें कम से कम यह उपबन्ध मिलता है कि राष्ट्रपति की कार्यवाही का अनुमोदन संसद द्वारा होना चाहिये अन्यथा वह कार्यवाही अवैध हो जायेगी। किन्तु इस अनुच्छेद में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है। राष्ट्रपति संसद के सामने एक ज्ञापन रखेगा जिसमें आयोग की सिफारिशों के आधार पर की हुई कार्यवाही का विवरण होगा। यह ईश्वर ही जानता है कि वह किस उद्देश्य से संसद के सामने रखा जायेगा इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है कि यह ज्ञापन संसद के सामने उसके विचारार्थ रखा जायेगा या उसकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के लिये।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): केवल सूचनार्थ।

***श्री एच.वी. कामतः** पण्डित ठाकुरदास भार्गव कहते हैं कि वह केवल सूचनार्थ उसके सामने रखा जायेगा। यदि इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह है, तो यह एक बहुत ही निन्दनीय अनुच्छेद है। यदि इस अनुच्छेद को इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया, तो संसद का बिल्कुल भी आदर न किया जायेगा, उसका निरादर ही होगा। हमें अवश्य ही इस आशय का उपबन्ध रख देना चाहिये कि संसद

[श्री एच.वी. कामत]

को अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त होगी या नहीं अथवा वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति जो कार्यवाही करेगा, उसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति को कौन सी शक्तियां प्राप्त होंगी। यदि इस विषय के सम्बन्ध में संसद को कोई शक्तियां प्राप्त नहीं हैं और उसका निर्णय अन्तिम निर्णय नहीं समझा जायेगा, तो मैं यह कहूंगा कि हम राष्ट्रपति को उत्तरोत्तर ऐसी शक्तियां देते जा रहे हैं, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है और कम से कम इस विषय के सम्बन्ध में तो कोई आवश्यकता नहीं है। चूंकि वित्त-आयोग एक महत्वपूर्ण निकाय होगा, इसलिये समाप्त करने के पूर्व मैं एक बार फिर अनुरोध करना चाहता हूं कि उसे संसद के अधीन होना चाहिये और वह इस कारण कि संसद की स्थिति एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-मण्डल की होगी। यदि राष्ट्रपति संसद के सम्मुख पहले से की हुई कार्यवाही को रखेगा और कहेगा कि "मैंने यह कार्यवाही की है" तो इससे कुछ लाभ न होगा। मेरे विचार से यह सम्पूर्ण प्रभुत्व संसद के लिये बहुत अपमानजनक होगा और इससे उसकी प्रतिष्ठा की भी हानि होगी। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर तथा बुद्धिमान लोगों की उनकी टोली इस विषय पर ध्यानपूर्वक विचार करेगी और पहले जब अनुच्छेद 280 पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श हुआ था, उस दिन के समान डॉ. अम्बेडकर एक नया संशोधन लायेंगे, जिसके अधीन संसद को मूलाधिकारों के निलम्बन के सम्बन्ध में कुछ प्राधिकार प्राप्त हो जायेगा। इस आशय का एक संशोधन कार्यावली में उल्लिखित है। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर, मसौदा-समिति तथा यह सभा इस विषय पर ध्यानपूर्वक विचार करेगी और ऐसी व्यवस्था करेगी कि वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो कार्य किया जाये, उस पर अंतिम रूप से संसद का ही नियंत्रण हो और वह राष्ट्रपति तथा कार्यपालिका की स्वेच्छा पर ही निर्भर न हो। श्रीमान्, मैं तृतीय सप्ताह की सूची 4 के 138 तथा 139वें संशोधनों को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि उन पर गम्भीरता से विचार किया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 के सम्बन्ध में 'action taken thereon to be laid before Parliament' (उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के समक्ष रखवायेगा) शब्दों के पश्चात् निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'containing his proposals for action that should be taken thereon to be laid before each House of Parliament. The House of the People shall have the right, to amend the proposals made by the President by a resolution passed by the House of the People. The proposals of the President in their original form or in the form in which they emerge after they are amended by the House of the People shall thereafter become law.' "

(जिसमें उस पर की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में उसके प्रस्ताव हों, जो संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जायें। लोक सभा को राष्ट्रपति के प्रस्तावों को एक संकल्प द्वारा संशोधित करने का अधिकार होगा, जिसे लोक सभा पारित करेगी। उसके पश्चात् राष्ट्रपति के प्रस्ताव, मूल रूप में अथवा लोक सभा द्वारा संशोधित होने पर वे जिस रूप में हों उस रूप में, विधि का रूप धारण करेंगे।)

इस संशोधन के स्वीकार होने पर अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"राष्ट्रपति इस अध्याय के उपरोक्त उपबन्धों के अधीन वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को, उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित संसद के समक्ष रखवायेगा....विधि का रूप धारण करेंगे।"

पिछले अनुच्छेद पर विचार-विमर्श होते समय मैं यह कह चुका हूं कि मेरे विचार से इस अध्याय में वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद के अंतिम प्राधिकार को राष्ट्रपति के प्राधिकार की तुलना में गौण स्थान दिया गया है मेरे मतानुसार इससे लोकतंत्र के सिद्धान्तों का खण्डन होता है। हम एक ऐसे वित्त आयोग को स्थापित करने जा रहे हैं, जिसे संघ और विभिन्न राज्यों के बीच राजस्व के बंटवारे के सम्बन्ध में, विभिन्न राज्यों को सहायतानुदान देने के सम्बन्ध में और संघ द्वारा किये हुये किसी करार की शर्तों में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में तथा किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में भी सिफारिश करने की शक्ति होगी, जिसे राष्ट्रपति उसके सामने रखे। इस आयोग को इतनी विस्तृत शक्ति दी गई है। यह आयोग देश का दौरा करने के पश्चात् तथा पूरी वित्तीय स्थिति की जांच करने के पश्चात् राष्ट्रपति के समक्ष एक प्रतिवेदन रखेगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि इस आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अंतिम प्राधिकार संसद को प्राप्त होगा अथवा राष्ट्रपति को। मेरे विचार से यह एक महत्वपूर्ण विषय है और यदि इसके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने का अधिकार संसद को प्राप्त न हुआ तो लोकतन्त्र के मूल पर ही आघात होगा। इसलिये मैंने इस संशोधन में यह सुझाव रखा है कि आयोग का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर राष्ट्रपति विधान-मण्डल के सम्मुख इस आशय का एक ज्ञापन रखेगा कि उसकी सिफारिशों को कहां तक स्वीकार किया जाये और साथ ही उन सिफारिशों को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अंतिम प्राधिकार लोक सभा को प्राप्त होगा। श्री कामत ने यह कहा है कि इस प्रकार के विधेयक पर संसद के दोनों सदन मत दें। कोई ऐसा विधेयक जो वित्त-आयोग की सिफारिशों के सम्बन्ध में होगा, धन-विधेयक होगा और उस पर लोक सभा ही मत दे सकेगी न कि उत्तर-सदन। इसी कारण मैंने उत्तर-सदन का उल्लेख नहीं किया है। मैंने यह कहा है कि लोक सभा को राष्ट्रपति के प्रस्तावों को एक संकल्प द्वारा संशोधित करने का अधिकार होगा, जिसे लोक सभा पारित करेगी। लोक सभा ही इसका निर्णय करेगी कि राष्ट्रपति के प्रस्तावों पर वित्त-आयोग की सिफारिशों को संशोधित करना आवश्यक है या नहीं। साधारणतया संसदात्मक लोकतन्त्र में प्रधानमंत्री को लोक सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त होगा। इसलिये राष्ट्रपति, जो भी प्रस्ताव उपस्थित करेगा, प्रधान मंत्री की मन्त्रणा

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

से उपस्थित करेगा और उसका सभा में बहुमत से समर्थन होगा। इस प्रकार उनके पारित होने में कोई कठिनाई न होगी और उन पर संसद में जो बहस होगी, उसमें विपक्षी दल को उनकी परीक्षा करने का तथा उन्हें संशोधित करने का अवसर मिलेगा और यह सरकार के समक्ष एक भिन्न दृष्टिकोण को भी रख सकेगा, जिसे सम्भवत: सरकार स्वीकार कर ले। यदि हम विपक्षी दल को संशोधन उपस्थित करने तथा प्रस्तावों की आलोचना करने का अवसर न देंगे, तो मेरे विचार से हम लोकतन्त्र को उस रूप में न चलायेंगे, जिस रूप में हम उसे स्वीकार कर चुके हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि डॉ. अम्बेडकर इस अनुच्छेद को उसके वर्तमान रूप में सभा द्वारा पारित कैसे करा सकते हैं। दो-तीन प्रसंगों को छोड़कर हर प्रसंग में वे राष्ट्रपति को ही शक्ति प्रदान करते आये हैं, जिससे उनके प्रस्ताव तर्क-विरुद्ध हो जाते हैं। मैं यह कह चुका हूं कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद को सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये, क्योंकि देश की सम्पन्नता वित्त के यथोचित नियंत्रण पर ही निर्भर है। मेरे विचार से मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है और मुझे आशा है कि सभा उसे स्वीकार कर लेगी।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रांत और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मेरे दोनों मित्र श्री कामत और प्रोफेसर सक्सेना, भ्रमग्रस्त हैं। अनुच्छेद 261 के सम्बन्ध में पहली बात यह कही जा सकती है कि उससे राष्ट्रपति को कोई अतिरिक्त शक्ति नहीं प्राप्त होती है। इस अनुच्छेद में कोई खण्ड ऐसा नहीं है। जिसके द्वारा राष्ट्रपति को सभा द्वारा अनुच्छेद 254 तथा 255 द्वारा प्रदत्त शक्ति से अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। प्रोफेसर सक्सेना का यह कथन भी सही नहीं है कि वित्त-आयोग को विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं। उसकी शक्तियों की परिभाषा अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) में की गई है और यह स्पष्ट है कि उसे राष्ट्रपति से केवल सिफारिशें करने की शक्ति प्राप्त है। उसे किसी कार्यवाही को करने की अंतिम शक्ति प्राप्त नहीं है, जब तक कि वह खण्ड (4) के अधीन कार्य न करे, किन्तु इस खण्ड के अधीन उसे जो शक्तियां प्राप्त होंगी वे संसद से ही प्राप्त होंगी। चूंकि वह केवल सिफारिशें करेगा, इसलिये मेरे विचार से यह कहना सही नहीं है कि वित्त-आयोग को विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि इस अनुच्छेद से राष्ट्रपति की शक्तियों में किसी प्रकार वृद्धि होगी। संसद के प्राधिकार को जो कुछ हानि हो सकती थी, वह अनुच्छेद 254 तथा अनुच्छेद 255 में हो चुकी है और अनुच्छेद 261 में चाहे जो कोई संशोधन किया जाये, उस हानि का निराकरण, नहीं हो सकता। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि अच्छा यह होता कि 'उस पर' शब्दों के पश्चात 'उस के द्वारा' शब्द रखे जाते, ताकि यह स्पष्ट हो जाता कि सिफारिशों के आधार पर की हुई राष्ट्रपति की कार्यवाही तथा सिफारिशें भी संसद के सामने रखी जायेंगी। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद की शब्दावली संतोषजनक है, क्योंकि जब संसद के सम्मुख तत्सम्बन्धी कागज रखे जायेंगे, तो वह अपनी शक्तियों के अन्दर रहते हुए उनके सम्बन्ध में संकल्प पारित कर सकेगी, अथवा सिफारिशों को अस्वीकार कर सकेगी अथवा किसी कार्यवाही को रद्द कर सकेगी। यदि हम प्रोफेसर सक्सेना और श्री कामत के संशोधनों को स्वीकार भी कर लें, तो संसद उन शक्तियों को प्रयोग नहीं कर सकती जो उसने अनुच्छेद 254 और 255 द्वारा छीन ली गई हैं। उन

शक्तियों के सम्बन्ध में संसद किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। किन्तु उसे जो अन्य शक्तियां प्राप्त हैं, उन्हें वह प्रयोग कर ही सकती है, जब तक कि स्पष्ट शब्दों में यह उपबन्धित न किया जाये कि ये शक्तियां उससे ले ली गई हैं इसलिये जो संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं वे अनावश्यक हैं किन्तु साथ ही इस अनुच्छेद की वर्तमान शब्दावली, मेरे विचार से उतनी अच्छी नहीं है जितनी अच्छी वह होनी चाहिये। यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये था कि अनुच्छेद 254 के अधीन जो विषय आते हैं, उनके अतिरिक्त तथा उन विषयों के अतिरिक्त जिन पर संसद विचार नहीं कर सकती है, वह आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो भी कार्यवाही करना चाहे कर सकती है। इसके अतिरिक्त मेरे विचार से इस खण्ड को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

मुझे विश्वास है कि उद्देश्य यही है कि सिफारिशें तथा राष्ट्रपति की कार्यवाही का विवरण भी संसद के सामने रखा जाये, किन्तु वित्त के ऐसे वितरण के सम्बन्ध में जिसे राष्ट्रपति स्वविवेक से कर सकता है, तथा संचित-निधि पर भारित ऐसे व्ययों के सम्बन्ध में, जो अनुच्छेद 255 में उपबंधित हैं, संसद हस्तक्षेप नहीं कर सकती है इसलिये मेरे विचार से केवल यह कहना मतलब नहीं रखता है कि संसद उन शक्तियों का प्रयोग करेगी, जो उसे प्राप्त हैं और जो उससे छीनी नहीं गई हैं। इसलिये मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद को संशोधित करने की आवश्यकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, श्री कामत और श्री सक्सेना के संशोधनों में जो सिद्धांत सन्निहित है, उसका मैं समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 261 के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि संसद के समक्ष व्याख्यात्मक ज्ञापन रखा जायेगा किन्तु यदि आप कृपा करके इस अनुच्छेद की शब्दावली को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि व्याख्यात्मक ज्ञापन में वित्त-आयोग की सिफारिशें सम्मिलित न होंगी, बल्कि वह केवल उनके आधार पर की हुई कार्यवाही के सम्बन्ध में होगा। उन पर की गई कार्यवाही का केवल यह अर्थ हो सकता है कि इन सिफारिशों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ही अंतिम रूप से निर्णय करेगा और वही उन्हें स्वविवेक से स्वीकार अथवा अस्वीकार करेगा। यह बहुत असंतोषजनक व्यवस्था है। वास्तव में अनुच्छेद 261 के आधार पर ही प्रान्त कुछ आशा बांध सकते हैं। हम अनुच्छेद 255 पर कल बहस कर चुके हैं और हमें ज्ञात है कि उसके अधीन गरीब प्रान्तों की आवश्यकताओं पर संसद विचार करेगी। अनुच्छेद 254 संक्रांति कालीन अनुच्छेद है। ये सभी विषय वित्त-आयोग के समक्ष रखे जायेंगे, जो पहले दो वर्ष के अन्दर स्थापित किया जायेगा और फिर प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् स्थापित किया जायेगा। वित्त-आयोग दिन प्रतिदिन के कार्यों के सम्बन्ध में प्रस्ताव नहीं उपस्थित करेगा। वह खूब विचार करने के पश्चात् प्रस्ताव उपस्थित करेगा, क्योंकि उनसे प्रान्तों के भाग्य का निर्णय होगा। वित्त आयोग की सिफारिशों पर ही प्रान्तों की उन्नति निर्भर रहेगी। प्रान्तों को यही आशा है कि वित्त आयोग पर किसी प्रकार का संदेह न किया जा सकेगा और वह उनकी सभी आवश्यकताओं पर विचार करेगा। उसने अनुच्छेद 262 (2) में यहां तक उपबंधित किया है कि संसद ही उसके पांच सदस्यों की अर्हताओं को निश्चित करेगी। मेरा यह निवेदन है कि वित्त-आयोग का प्रतिवेदन एक ऐतिहासिक अभिलेख होगा और उसी पर ऐसे सब प्रस्ताव आधृत होंगे, जिनका प्रान्तों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। इसलिये प्रान्तों को इस विषय पर

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

संसद में अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपनी सम्मति प्रकट करने का अवसर मिलना चाहिये। यदि मंत्रिमण्डल तथा राष्ट्रपति ही वित्त-आयोग की सिफारिशों पर निर्णय करेंगे तो, मेरे विचार से, प्रान्तों का उस पर विश्वास न रह पायेगा। वित्त-आयोग स्थापित होने के पश्चात् प्रत्येक पांच या छह वर्ष में—क्योंकि एक वर्ष उसे प्रतिवेदन उपस्थित करने में लग जायेगा–जांच करेगा। यह आवश्यक है कि इतना महत्वपूर्ण विषय अवश्य ही संसद के सम्मुख रखा जाये और वही उसके सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करे।

संसद के सम्बन्ध में, मेरे विचार से प्रोफेसर सक्सेना के संशोधन में सन्निहित सिद्धान्त बहुत ही उपयुक्त सिद्धांत है। संविधान के अन्य उपबन्धों के अधीन वित्त-सम्बन्धी सभी विषयों के बारे में लोक सभा ही अन्तिम निर्णय कर सकती है। यह उचित ही है कि वित्त आयोग के प्रस्तावों पर संसद के दोनों सदन विचार करें, किन्तु वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करने का अधिकार लोक सभा को ही प्राप्त हो। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखे जायें और उन पर बहस हो और इसके उपरान्त यदि कोई प्रस्ताव रखे जायें तो उनकी सिफारिश लोक सभा करे और इस प्रकार जो विधि बने उसका वहीं प्रभाव हो जो धन-विधेयकों का होता है। अभी तक इस धन-विधेयकों के सम्बन्ध में जितने भी उपबन्ध स्वीकार कर चुके हैं, वे इन प्रस्तावों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त हों।

डॉ. देशमुख का यह विचार है कि अनुच्छेद 261 द्वारा संसद से कोई शक्ति नहीं छीनी गई है, किन्तु उनके तर्क से मैं प्रभावित नहीं हुआ। मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि अनुच्छेद 261 के अधीन राष्ट्रपति को कार्यवाही करने की शक्ति प्राप्त है तो ज्ञापन से केवल सदस्यों को सूचना देने के उद्देश्य की सिद्धि होगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संसद की शक्तियां छीनी गई हैं। मेरे मित्र की यह धारणा है कि कार्यवाही करने के पश्चात् जब उसका विवरण संसद के समक्ष रखा जायेगा, तो वह उस पर कदम उठा सकेगी। यह स्पष्ट है कि यह सही नहीं हो सकता। यदि यह सही भी है तो मेरे विचार से यदि ये प्रस्ताव पहले लोक सभा के समक्ष न रखे गये तो बहुत हानि होगी। जो सिफारिशें की जायेंगी उन्हें अस्वीकार करना अथवा निराकृत करना कठिन हो जायेगा। उचित यही है कि वित्त-आयोग के प्रतिवेदन पर तथा इस पूरे विषय पर विचार करने तथा इसके सम्बन्ध में कार्यवाही करने का अधिकार संसद को प्राप्त हो। मुझे यह आशंका है कि राष्ट्रपति की कार्यवाही के पश्चात् ज्ञापन केवल सूचनार्थ उपस्थित किया जायेगा और किसी कार्यवाही के लिये उपस्थित न किया जायेगा। मेरे विचार से इस उपबन्ध से संसद की वित्तीय विषयों पर विचार करने की शक्ति का अपहरण होता है और इसलिये मैं यह चाहता हूं कि श्री कामत और प्रोफेसर सक्सेना के संशोधन स्वीकार किये जायें।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री कामत तथा श्री सक्सेना के संशोधनों का मैं भी समर्थन करता हूं। मैं यह बताना चाहता हूं कि वित्त-आयोग की स्थापना, शक्ति तथा कार्यवाही विषयक इस पूरे अध्याय से मैं संतुष्ट नहीं हूं। वित्त-आयोग को स्थापित करके कार्यपालिका को और भी अधिक संरक्षण की शक्ति प्रदान की गई है और जहां तक वित्त-आयोग को इस अनुच्छेद

द्वारा कार्यवाही करने की शक्ति दी गई है, वहां तक वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद के अधिकारों के विरूद्ध कार्यवाही करेगा। इसे मानना सम्भव नहीं है कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद को साधारणतया जो शक्ति प्राप्त होती है, उसका इस उपबन्ध से अपहरण नहीं होता है क्योंकि अनुच्छेद 261 की शब्दावली के अनुसार ज्ञापन पर विचार करने के अधिकार तथा संसद के समक्ष ज्ञापन प्रस्तुत करने के अधिकार का केवल यह अर्थ होगा कि जो कार्यवाही सम्पन्न हो चुकेगी, उसकी बाद में जांच होगी और केवल निरर्थक बहस होगी। विरोध केवल विरोध प्रदर्शन के लिये किया जायेगा और केवल दोष निकाले जायेंगे तथा कोई भी रचनात्मक सुझाव अनियमित होगा, क्योंकि वह बहस ऐसी सम्पन्न कार्यवाही पर होगी, जिसका निराकरण नहीं हो सकेगा। इससे केवल विद्वेष को व्यक्त करने का अवसर मिलेगा।

मेरे विचार से इस प्रकार के उपबन्ध से अर्थ-व्यवस्था का हित साधन नहीं हो सकता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि इससे उस लोक प्रभुता का भी हित साधन नहीं हो सकता, जो इंग्लिस्तान के संविधान में राजकोष शक्ति के अधीन वर्णित है, जिसकी कि हम नकल कर रहे हैं। इन संशोधनों के प्रस्तावानुसार की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करने का अवसर यदि संसद को दिया गया, तो यह आशा की जा सकती है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद के अधिकार सुरक्षित रहेंगे। किन्तु यदि संसद से केवल की हुई कार्यवाही का पुनर्विलोकन करने अथवा अपने असंतोष को प्रकट करने को कहा गया तो, मेरे विचार से, इस व्यवस्था को भी रखने की आवश्यकता नहीं है। सम्भवतः आयुक्त विशेषज्ञ होंगे तथा अपने विषय से सुपरिचित होंगे। इसलिये यह माना जा सकता है कि वे जो सिफारिशें करेंगें उनका आधार सुदृढ़ होगा और राष्ट्रपति अथवा अन्य कोई अधिकारी बिना विचार किये हुये उनकी उपेक्षा न करेगा। इसलिये यह कहा जा सकता है कि इस सीमा तक आयुक्त संसद की शक्तियों का अपहरण करेंगे, केवल यह स्पष्ट करने के लिये कि अंतिम निर्णय करने का अधिकार संसद को प्राप्त हो। मैं इन संशोधनों का समर्थन करता हूं, क्योंकि इनमें भी यही स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में लोक सभा की प्रभुता के सम्बन्ध में कोई सन्देह न रखना चाहिये। इसलिये मैं इन संशोधनों का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं? मैं यह कहना नहीं चाहता था, किन्तु मुझे अब कहना ही चाहिये। मैं देखता हूं कि सभा में बहुत से सदस्य आपस में बातचीत कर रहे हैं, जिससे जो लोग भाषणों को सुनना भी चाहते हैं उन्हें भी सुनने में कठिनाई होती है। मैं यह देखता हूं कि इस सभा तरफ में भूकर्षण का यह हाल है कि आगे की जगहों से लोग खिंचे हुये पीछे की तरफ में चले जा रहे हैं क्योंकि मैं देखता हूं कि पीछे की जगहों में ऐसे विषयों पर बातचीत करने के लिए अधिक सुविधा मिलती है जिनका सभा के विचाराधीन विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता? इसलिये सदस्यों से मेरा यह अनुरोध है कि यदि सभा के विचाराधीन विषय से अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बातें करनी हों तो वे किसी दूसरी जगह की जायें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या आप कृपा करके वक्ताओं से भी कहेंगे कि वे अपनी बातें इस प्रकार कहें कि सदस्यों का ध्यान आकर्षित हो सके?

***अध्यक्षः** यह मेरी शक्ति से बाहर है।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् प्रोफेसर शाह जैसे विद्वान सज्जन ने जो आरोप लगाये हैं उनका विरोध करने के लिए ही मैं बोलना चाहता हूं। वे दुर्भाग्य से ऐसे स्थल पर भूतों का दर्शन कर रहे है जहां वे वास्तव में हैं नहीं। उन्होंने संरक्षण की शक्ति की ओर संकेत किया है। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि इस अनुच्छेद में वे कोई भी ऐसी बात दिखायें जिससे संरक्षण की शक्ति का आभास मिलता हो। एक वित्त-आयोग को स्थापित करने की आवश्यकता है। केवल भारत में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी इस आवश्यकता का अनुभव किया गया है। इसकी आवश्यकता है और अन्य देशों के संविधानों के आधार पर भारत के लिये जिस संघीय ढांचे का निर्माण किया गया है उसकी आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुये इसे स्वीकार किया गया है। संविधान द्वारा केवल इतना किया गया है कि संसद को वित्त-आयोग स्थापित करने के लिये विधि बनाने की शक्ति दी गई है। इसके अतिरिक्त उसमें वित्त-आयोग के लिये नियुक्त होने वाले लोगों की अर्हतायें तथा सेवा की शर्ते भी निर्धारित की गई हैं। इस सम्बन्ध में मैं अनुच्छेद 260 (2) की ओर संकेत करता हूं जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि "संसद विधि द्वारा वित्त-आयोग के सदस्यों की अर्हताओं आदि का निर्धारण करेगी"। मैं प्रोफेसर शाह से प्रार्थना करता हूं कि वे अकारण संदेह न करें। यदि किसी आयोग के सदस्य की नियुक्ति का अर्थ संरक्षकता की शक्ति को प्रयोग में लाना है, तो राज्य के सभी कार्यों को बन्द करना होगा। यह मक्खियों को भगाने के लिये घर में आग लगा देने के समान होगा। इसलिये मुझे आशा है कि प्रोफेसर शाह अकारण एक ऐसी बात का विरोध न करेंगे, जिसका विरोध करने की आवश्यकता ही नहीं है।

हमारे विद्वान प्रोफेसर ने जो आरोप अकारण लगाया है, उसके सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं इस बहस के महत्वपूर्ण विषय पर आता हूं। मुझे इसका खेद है कि मेरा अपने आदरणीय सहकारियों अर्थात् प्रोफेसर सक्सेना और श्री कामत से मतभेद है। मुझे विश्वास है कि दोनों ने बहुत बड़ी गलती की है। उनका यह विचार है कि संसद की शक्तियों में हस्तक्षेप किया जा रहा है और वर्तमान उपबन्धों के रहते हुये खुले दिल से बहस न की जा सकेगी। उनके ये दो आरोप हैं और इन्हीं के आधार पर उन्होंने इस अनुच्छेद का विरोध किया है।

पहले मैं प्रथम आरोप को उठाऊंगा अर्थात् इसको कि बहस नहीं हो सकेगी। वित्त-आयोग की स्थापना के लिये संसद विधि बनायेगी। वित्त-आयोग की निरपेक्षता पर संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी स्थापना की शक्ति ही संसद को दी गई है। वह विधि बनायेगी और अर्हताओं को निर्धारित करेगी। मंत्रिमण्डल लोगों को नियुक्त करेगा और सम्भवत: गवर्नर जनरल के नाम से नियुक्त करेगा। वह लोगों का प्रतिनिधि-मण्डल होगा। इस दशा में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि एक निरपेक्ष न्यायाधिकरण स्थापित किया जायेगा। इस प्रकार वित्त-आयोग संसद की ही सन्तान—उसे संसद ही अपनी विधि द्वारा स्थापित करेगी।

स्थापित होने पर आयोग बहुत छानबीन करके जांच करेगा और यदि आवश्यकता हुई तो प्रान्तों के आयव्ययों की तथा प्रशासन भी जांच करेगा और कार्यपालिका के समक्ष एक प्रतिवेदन रखेगा। वह कार्यपालिका किसकी होगी? वह संसद की

कार्यपालिका होगी। उसके पश्चात् मंत्रिमण्डल गवर्नर-जनरल के नाम से निर्णय करेगा। वह वित्त-आयोग की सिफारिशों को उसी तरह स्वीकार करेगा जैसे निर्वाचन-न्यायाधिकरण की सिफारिशों को जिसके सम्बन्ध में भी राज्यपाल अथवा गवर्नर जनरल को हस्तक्षेप करने की शक्ति प्राप्त है। किन्तु क्या कोई एक मामला भी ऐसा बताया जा सकता है जिसमें राज्यपाल अथवा गवर्नर जनरल ने हस्तक्षेप किया हो? उन्होंने कभी भी हस्तक्षेप नहीं किया। इसलिये ऐसे उदाहरण हैं जबकि विधि के अधीन निर्मित निकायों की सिफारिशों, चाहे वे न्यायिक हों अथवा अर्धन्यायिक, पूर्णतया स्वीकार की जाती रही हैं।

इसके पश्चात् ये सिफारिशें संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जायेंगी। इस अवसर पर भी बहस हो सकेगी। प्रक्रिया के नियमों के अधीन सभा का कोई भी सदस्य बहस के लिये प्रस्ताव रख सकता है। राजनैतिक दल भी संसद में बहस के लिये तथा विचार-विमर्श के लिये प्रस्ताव रख सकते हैं। इसलिये संसद का अधिवेशन आरम्भ होते ही विचार-विमर्श हो सकता है।

इसके पश्चात् अनुदान फिर धन-विधेयक के रूप में सभा के सामने रखा जायेगा। इसके अतिरिक्त संसद को प्रश्न के महत्व को समझकर उस पर विचार-विमर्श करने की शक्ति प्राप्त है। क्या यह सम्भव है कि कोई उत्तरदायी मंत्रिमण्डल संसद की इच्छा का विरोध करेगा? यह असम्भव है, जब तक कि हम संसदात्मक लोकतन्त्र को स्थापित न करना चाहें, जिसमें मंत्रिमण्डल संसद की इच्छाओं, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है।

मुझे यह और प्रश्न पर विचार करना है और वह भारित विषयों का प्रश्न है। हमारे देश में कई विषय भारित विषय हैं। वे संविधान के अंग हो गये हैं। भारित विषय अवश्य ही रहेंगे। वास्तव में विधान-सभाओं के कारण ही भारित विषय उत्पन्न होते हैं क्योंकि वे विधि बनाती हैं और अपने ही राजस्व तथा व्यय के विषयों को अपने आयव्ययकों पर भारित करने के लिये सहमत हो जाती हैं। इस प्रकार वही उनको जन्म देती हैं। केवल यह प्रश्न रह जाता है कि मंजूरी पहले ली जाये या बाद में केवल इतना ही अन्तर है। इसलिये मैं अपने माननीय मित्रों के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि कोई गम्भीर संविधानिक अथवा अन्य प्रकार का अन्याय हुआ है। श्रीमान्, यदि इस सभा में प्रान्तों और राज्यों के राजनीतिज्ञों के बीच गृह-युद्ध हुआ, तो उससे राष्ट्र का हितसाधन न होगा। प्रत्येक सदस्य को इसकी चिंता है कि उसके प्रान्त को अधिक लाभ हो। वास्तव में निर्वाचन के पश्चात् प्रत्येक सदस्य अपने प्रान्त का नहीं, बल्कि सारे भारत का प्रतिनिधित्व करता है। यह सच है किन्तु साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हम साधारण लोग हैं और हम उस ऊंचे स्तर तक नहीं पहुंच पाते जिस स्तर पर सरदार पटेल और पंडित जवाहरलाल नेहरू पहुंचे हैं। इन कमजोरियों को ध्यान में रखते हुये, मेरे विचार से, यह आवश्यक है कि प्रान्तों को सहायता देने के सम्बन्ध में वित्त-आयोग के समान एक अराजनैतिक निकाय न्यायपूर्ण ढंग से पूरी जांच करे। विधि के अधीन गवर्नर-जनरल को भी कुछ वर्षों के पश्चात् इन अनुदानों में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं तथा जो संशोधन उपस्थित किया गया है, उसका विरोध करता हूं।

***श्री बी.एन. मुनावल्ली** (बम्बई राज्य): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 261 अब जिस रूप में है उसके अधीन, मेरे विचार से, राष्ट्रपति को वित्त-आयोग की सिफारिशों के साथ उनके आधार पर की हुई कार्यवाही के विवरण को संसद के समक्ष रखने की शक्ति प्राप्त है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्यपालिका जिन विभिन्न सिफारिशों को स्वीकार करेगी, तथा उनके आधार पर जिस कार्यवाही को करेगी, उस पर संसद विचार-विमर्श न कर सकेगी। जहां तक मैं अपने मित्र श्री कामत तथा श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधनों को समझ पाया हूं, उनका आशय यह है कि किसी कार्यवाही के पूर्व वित्त आयोग की सिफारिशें संसद की सभा के समक्ष रखी जायें ताकि संसद की सभा वित्त-आयोग की कुछ सिफारिशों का अनुमोदन कर सके अथवा उन्हें स्वीकार या अस्वीकार कर सके। मेरे कुछ मित्रों ने, उदाहरणार्थ मेरे माननीय मित्र डॉ. पी.एस. देशमुख ने यह कहा है कि इस अनुच्छेद से राष्ट्रपति को अधिक शक्ति प्राप्त नहीं होती। यह सच है, किन्तु यदि राष्ट्रपति कार्यपालिका के कार्यवाही करने के पश्चात् सिफारिशों को संसद के सम्मुख रखेगा, तो उसे उन पर विचार-विमर्श करने का अथवा उनका अनुमोदन करने का अवसर नहीं मिलेगा। इस अनुच्छेद में तथा इन संशोधनों में केवल इतना अन्तर है कि संशोधनों का उद्देश्य यह है कि कार्यवाही के पूर्व सिफारिशों पर विचार-विमर्श करने का अधिकार संसद से नहीं छीना जाना चाहिये। यदि सिफारिशों के साथ कार्यपालिका की कार्यवाही का विवरण संसद के समक्ष रखा गया, तो वह केवल उसका अनुमोदन कर सकेगी और उसे अस्वीकार न कर सकेगी। इस स्थिति में मेरी यह धारणा है कि यदि इन संशोधनों को स्वीकार न किया गया, तो संसद की बहुत सी शक्ति छिन जायेगी। इसलिये मैं इन संशोधनों का समर्थन करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि ये स्वीकार कर लिये जायें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास: जनरल): श्रीमान्, श्री कामत और श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने जिन संशोधनों को प्रविष्ट करने का प्रस्ताव रखा है वे उपयुक्त संशोधन नहीं हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे इस पर विचार करें कि अनुच्छेद के शब्दों के स्थान में उनके शब्दों को प्रविष्ट करना क्यों उचित नहीं है। अनुच्छेद 261 द्वारा जो शक्ति प्रदान की गई है उसके अतिरिक्त यह शक्ति दी जा सकती है। इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है और इसे सभी स्वीकार करते हैं कि वित्त-आयोग की सिफारिशें केवल सिफारिशें ही होंगी और उन्हें स्वीकार करने के सम्बन्ध में कोई बन्धन नहीं है। किसी न किसी को, चाहे वह राष्ट्रपति हो अथवा संसद, उनके आधार पर कार्यवाही करनी होगी। कुछ विषयों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति कार्यवाही कर सकता है। अनुच्छेद 251 के अधीन, जिसे हम पारित कर चुके हैं आयकर का संग्रह केन्द्र करेगा। आयकर का कुछ प्रतिशत प्रान्तों अथवा राज्यों के बीच वितरित होगा। इस बंटवारे की सिफारिश वित्त-आयोग भी करेगा। जब तक वित्त-आयोग इस विषय पर विचार नहीं कर लेता कि कितना प्रतिशत दिया जाये और राज्यों के बीच उनकी आवश्यकताओं के अनुसार आयकर का वितरण किस प्रकार हो, राष्ट्रपति को ही प्रतिशत निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है। जहां तक आयकर का सम्बन्ध है उसमें संसद हस्तक्षेप न करेगी। "विहित" का अर्थ है कि जब तक वित्त-आयोग गठित न हो जाये तब तक "राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित" तथा वित्त-आयोग के गठित हो जाने के पश्चात् "वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित"। इस अनुच्छेद में संसद का कहीं भी उल्लेख नहीं है। वित्त आयोग के गठित होने

के पूर्व राष्ट्रपति आदेश द्वारा यह निदेश कर सकता है कि प्रान्तों और राज्यों के बीच इतने आयकर को और उसके इतने प्रतिशत को वितरित करना है। आयोग के गठित होने पर राष्ट्रपति आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् कार्यवाही कर सकता है। वह बंटवारे में तथा प्रतिशत में परिवर्तन कर सकता है। अनुच्छेद 261 इस समय जिस रूप में है उसके अधीन कार्यवाही करने के पश्चात् वह संसद को सूचित करेगा कि सिफारिशों के आधार पर उसने कौन सी कार्यवाही की है। इसलिये अनुच्छेद के शब्दों के स्थान पर अन्य शब्दों को प्रविष्ट करने के बजाय मेरा यह सुझाव है कि अनुच्छेद 261 में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

> "उस पर की गई या की जाने वाली कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के समक्ष रखवायेगा।"

मैं यह बताऊंगा कि अनुच्छेद के शब्दों के स्थान पर अन्य शब्दों को क्यों नहीं प्रविष्ट किया जा सकता और क्यों अन्य शब्दों को जोड़ा जा सकता है। प्रस्तावित संशोधनों में सन्निहित सिद्धान्त को भी स्वीकार करना है क्योंकि प्रत्येक मामले के सम्बन्ध में राष्ट्रपति कार्यवाही नहीं करेगा। कई विषयों के सम्बन्ध में संसद कार्यवाही करेगी। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 253 में वर्णित उत्पादन शुल्कों को ही लीजिये। अनुच्छेद 253 के अधीन उत्पादन-शुल्क आरम्भ में केन्द्र द्वारा उद्‌गृहीत तथा संगृहीत किये जायेंगे। इसे संसद निर्धारित करेगी कि उत्पादन-शुल्कों का कितना अंश वितरित किया जाये और किस सिद्धांतों के आधार पर वितरित किया जाये। उत्पादन-शुल्कों के सम्बन्ध में, राज्यों में विभाजित किये जाने वाले जो भी शुल्क केन्द्र द्वारा संगृहीत हों उनके सम्बन्ध में भी वित्त-आयोग अनुच्छेद 261 के अधीन बंटवारे के बारे में सिफारिश करने का क्षेत्राधिकार रखता है। अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) का उपखण्ड (क) उद्‌गृहीत करों के शुद्ध आगम के संघ और राज्यों के बीच वितरण के सम्बन्ध में है। जो कर उद्‌गृहीत होंगे वे सामान्य कर होंगे। करों में केवल आयकर ही नहीं है बल्कि केन्द्र द्वारा संगृहीत होने वाले अन्य कर भी हैं जैसे उत्पादन कर। किन्तु जहां आयकर को राष्ट्रपति स्वयं आदेश द्वारा वितरित कर सकता है वहां उत्पादन शुल्क संसद निर्मित विधि के अधीन वितरित होंगे। संसद वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् ही विधि बनायेगी और बंटवारा करेगी। इस प्रकार इस सम्बन्ध में दो तरह की कार्यवाहियां होंगी। एक कार्यवाही राष्ट्रपति करेगा और एक कार्यवाही संसद करेगी। इसलिये यदि वर्तमान अनुच्छेद 261 केवल राष्ट्रपति की कार्यवाही के सम्बन्ध में है तो उसमें संसद की कार्यवाही सम्मिलित नहीं है। इस स्थिति में मैं आदरपूर्वक यह सुझाव उपस्थित करता हूं कि इन संशोधनों को तो स्थान न दिया जाये, किन्तु इनमें सन्निहित सिद्धांतों को समाविष्ट कर लिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मेरा यह सुझाव है कि "की गई" शब्दों के बाद "की जाने वाली" शब्द रखे जायें।

श्रीमान्, मैंने कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया है। इन संशोधनों के उपस्थित होने पर तथा विचार-विमर्श के पश्चात् मैंने यह अनुभव किया कि ये संशोधन

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

अन्य शब्दों के स्थान पर प्रविष्ट न किये जाने चाहिये बल्कि इन्हें अनुच्छेद में जोड़ देना चाहिये। मैं यह देखता हूं कि कुछ कमी रह गई है और यदि आपको आपत्ति न हो और मेरे माननीय मित्र मसौदा-समिति के सभापति मुझसे सहमत हों तो मैं इस संशोधन को उपस्थित कर सकता हूं:

"उस पर की गई या की जाने वाली कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के समक्ष रखवायेगा।"

यदि सभा तथा मसौदा-समिति इस संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार हो तो मैं इस संशोधन को उपस्थित कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** इस समय मैं इस संशोधन को नहीं उठा सकता जब तक कि मसौदा-समिति इसके लिये तैयार न हो।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह दिखाना नहीं चाहता कि मैं बहुत बुद्धिमान हूं किन्तु मैं यह अवश्य कहता हूं कि मेरी यह धारणा है कि इस सभा में वित्त-आयोग के कार्य के सम्बन्ध में बहुत भ्रम रहा है। मैं यह अनुभव करता हूं कि सभा द्वारा पारित अनुच्छेद 260 पर तथा इस अनुच्छेद पर जो वादानुवाद हुआ है उसका आधार यही भ्रम रहा है।

मैं सभा के सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इस खण्ड में सन्निहित योजना की उत्पत्ति पर विचार करें। केन्द्र विधि के अधीन या अन्य प्रकार राज्यों के लिये जो धनराशि अलग रखता है, उसे वितरित करने के लिये आस्ट्रेलिया में एक विशेष प्रणाली का अनुसरण किया जाता रहा है। आस्ट्रेलिया का अनुदान आयोग आस्ट्रेलिया की संघीय संसद ने 1933 में जो अधिनियम पारित किया, उसके अधीन घटित हुआ। वह केवल एक प्रशासन संगठन है और उन्हीं तदर्थ संगठनों के समान है जिन्हें भारत सरकार समय-समय पर जैसे विभिन्न राज्यों के मुख्य मन्त्रियों के सम्मेलन में, वित्त-मंत्रियों के सम्मेलन में तथा अन्य अवसरों पर स्थापित करती आई है। यद्यपि संविधान में राज्यों को यह आश्वासन दिया गया है कि अनुदानों के वितरण के लिये एक निरपेक्ष संगठन स्थापित किया जायेगा, किन्तु वह संसद के अधिनियम के अधीन ही स्थापित किया जायेगा और इस प्रकार उसे जो महत्व प्राप्त हो सकता है उससे अधिक महत्व उसे प्राप्त नहीं होगा। मैं इस सभा के सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इसे स्मरण रखें। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसद इस सम्बन्ध में विधि बना सकती है कि इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुये केन्द्रीय वित्त का कितना अंश प्रान्तों के बीच वितरित किया जाये। मेरे माननीय मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने कल मसौदा-समिति की यह आलोचना की थी कि उसने कुछ अनुच्छेदों में तो राष्ट्रपति को बंटवारे को निश्चित करने की शक्ति प्रदान की है, किन्तु एक अनुच्छेद में उसने यह नहीं किया है और इस कारण उन्होंने यह सुझाव रखा कि मेरे माननीय मित्र श्री निकोलस राय का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। इसका कारण यह है कि यह उचित नहीं होगा कि संसद प्रशासन के ब्यौरे के समान साधारण विषय पर विस्तृत रूप से विचार करे और उसके सम्बन्ध में निर्णय करे।

उद्देश्य यह है कि वित्त-आयोग को एक सीमित आधार पर स्थापित किया जाये। मैंने एक बार एक संशोधन की सूचना दी थी, यद्यपि मैंने उसे उपस्थित नहीं किया था, जिसका आशय यह था कि पहले वित्त-आयोग एक कर-अनुसंधान-आयोग का कार्य करे। यदि वित्त-आयोग को यही कार्य करना है तो मैं अपने माननीय मित्र श्री सक्सेना के संशोधन में सन्निहित प्रस्तावों से सहमत हूं। यदि वित्त-आयोग को इस देश की कर-व्यवस्था का पुनर्विलोकन करना है और उसमें सुधार करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत करना है, तो संसद को उसके प्रतिवेदन पर अवश्य विचार करना चाहिये और इसका निर्णय करना चाहिये कि उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये केन्द्रीय सरकार को क्या कार्यवाही करनी चाहिये और इस पर भी विचार किया जाना चाहिये कि इसके सम्बन्ध में संविधान में किस प्रकार के उपबन्ध रखे जाये अथवा किस प्रकार किसी ऐसी विधि का निर्माण किया जाये जो केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों पर लागू हो। केवल एक सीमित व्यवस्था की कल्पना की गई है। राज्यों को यह आश्वासन देने के लिए कि उनके प्रति न्याय होगा, मसौदा-समिति ने संविधान में ही वित्त-आयोग के सम्बन्ध में एक उपबन्ध रखा है, यद्यपि इसे संविधान में स्थान देने की बहुत आवश्यकता न थी। यह उद्देश्य एक सीमित उद्देश्य है। सभा मुझे यह दुहराने के लिए क्षमा करेगी कि इस उद्देश्य की पूर्ति संसद के अधिनियम से भी हो सकती है। इसलिये यह अनुच्छेद संसद के अधिनियम से अधिक अधिकृत नहीं समझा जायेगा। इस दशा में संसद को इसे कार्यपालिका के लिए छोड़ देना चाहिये कि वह केन्द्र द्वारा उद्गृहीत तथा संगृहीत कुछ करों के शुद्ध आगम को उसके निश्चित किये हुये सिद्धान्तों के अनुसार विभिन्न प्रांतों में वितरित करे। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 253 के खण्ड (2) की ओर आकर्षित करता हूं, जिसमें यह कहा गया है कि संसद इसका निर्णय करेगी कि राज्यों को शुल्क की पूरी धनराशि प्रदान की जायेगी अथवा उसका एक अंश प्रदान किया जायेगा और वह धनराशि कितनी होगी और किन सिद्धान्तों के आधार पर वितरित की जायेगी। इस पर संसद को नहीं बल्कि कार्यपालिका को विचार करने की आवश्यकता है कि वितरण-सिद्धान्त किस प्रकार प्रयोग में आये। जब कार्यपालिका उसे उचित रूप से प्रयोग में न लाये तभी संसद का स्पष्टत: यह कर्तव्य हो जाता है कि वह कार्यपालिका से नियमित कार्यवाही करने को कहे। किन्तु सभा को इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि आस्ट्रेलिया का अनुदान आयोग तो एक प्रशासन-संगठन है, किन्तु हमारा वित्त-आयोग प्रशासन संगठन को केवल सहायता देगा, भले ही वह संविधान के एक अनुच्छेद के अधीन गठित हुआ हो और उसकी सिफारिशों पर कार्यपालिका राज्यों के मंत्रियों से परामर्श करके निर्णय करती हो। स्वभावत: यह आयोग एक स्थायी संगठन होगा अथवा अर्ध-स्थायी संगठन होगा। किन्तु यदि विभिन्न प्रान्तों के दावों के सम्बन्ध में निर्णय करने का कार्यभार संसद अपने ऊपर ले रही है, तो वित्त-आयोग को स्थापित करने के स्थान पर हम राज्य के वित्त-मंत्रियों तथा अन्य मंत्रियों का एक प्रकार का सम्मेलन कर सकते हैं, जो संसद के समक्ष एक प्रतिवेदन रखेगा और संसद उस पर विचार करेगी तथा कार्यवाही करेगी। किन्तु इसका परिणाम क्या होगा? मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह स्मरण रखे कि यहां कल तथा परसों क्या हुआ, जब अन्य प्रान्तों के हितों की ओर बिल्कुल भी ध्यान न देते हुए अपने-अपने प्रान्तों के अधिकारों पर जोर दिया गया और बहुत समय तक जोर दिया गया। कुछ सदस्य इस विषय पर 75 मिनट तक बोले। आखिर किस उद्देश्य से? वितरित होने वाली राजस्व

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

की कुल धनराशि अथवा वक्ता महोदयों के प्रान्तों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों से भाषणों का कोई सम्बन्ध नहीं था। ताकि संसद के सदस्य अपने-अपने प्रान्तो के दावे उपस्थित न करें और उनके कुछ समूह कुछ विशेष प्रान्तों के हितों पर ही जोर न दें, हमने यह कार्य एक प्रशासन संगठन को सौंपने का प्रस्ताव किया है जो मध्यस्थता करेगा और निर्णय करेगा। यदि उसकी सिफारिशें उपुयक्त होंगी तो कार्यपालिका उन्हें स्वीकार कर सकती है।

मेरे माननीय मित्र श्री सक्सेना ने लोक-वित्त का गहन अध्ययन किया है और मेरे विचार से वे यह अनुभव करेंगे कि संसद को इस दायित्व को सौंपने का प्रस्ताव करके वे वास्तव में उनमें फूट डाल रहे हैं। इस दायित्व को हम संसद से जितना दूर रखेंगे, उतना ही भविष्य में देश का हित साधन होगा और इसलिये हमें इसे वित्त-आयोग को सौंप देना चाहिये। मेरे विचार से संशोधन के समर्थन में सदस्य महोदयों ने जो तर्क उपस्थित किया है, उसमें कुछ सार नहीं है।

किन्तु श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उसमें एक तर्कयुक्त बात है। इस अनुच्छेद में 'उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा' शब्द प्रयुक्त हैं और उनका यह अर्थ भी है कि यदि कोई बात रह जाये, तो संसद में बहस की जा सकती है और जिन लोगों के हाथ में देश का वित्त होगा वे यह बता सकेंगे कि कौन सी कार्यवाही की गई है और कौन सी कार्यवाही नहीं की गई है। इस बहस से यद्यपि इसका निर्णय न हो सकेगा कि उस समय क्या कार्यवाही करनी थी, किन्तु उससे भविष्य में पथप्रदर्शन होगा। इसलिये मेरे विचार से सभा के लिये यही उचित है कि वह इस संशोधन को स्वीकार न करे, वह इस कारण नहीं कि वह तर्कशून्य है बल्कि इस कारण कि वह बिना यह समझे हुए उपस्थित किया गया है कि अनुच्छेद 260 और 261 का सीमित उद्देश्य है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेद उपस्थित किया है, उसका समर्थन करने के लिए मैं अपनी जगह से उठा हूं। इस अनुच्छेद के विरोधियों से मैं इस कारण सहमत नहीं हूं कि उन्होंने संसद के सम्पूर्ण प्रभुत्व के पक्ष में तर्क उपस्थित किया है, किन्तु इस अनुच्छेद में इसे स्वीकार नहीं किया गय है। इंग्लिस्तान के समान एकसत्तात्मक राज्यों में ही संसद को सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त है। संघीय संविधान में इस प्रकार का सम्पूर्ण प्रभुत्व वध नहीं समझा जाता है। राजनैतिक सम्पूर्ण प्रभुत्व लोगों को प्राप्त होता है। हमने केन्द्र और प्रान्तों के बीच शक्ति का विभाजन किया है। उन विषयों के सम्बन्ध में भी जो संघीय सरकार के लिये अलग रखे गये हैं शक्ति, राज्य के तीन अंगों के बीच अर्थात उच्चतम न्यायालय के रूप में न्यायपालिका, संसद और राष्ट्रपति के बीच विभाजित की गई है। पिछले वर्ष किसी अवसर पर अन्य स्थल पर मैंने यह प्रश्न उठाया था कि संविधान के अधीन राष्ट्रपति को सम्पूर्ण शक्तियां प्राप्त हैं और मन्त्रियों की मंत्रणा का यह अर्थ नहीं है कि वे शक्तियां सीमित हो जाती हैं। श्रीमान्, इसे ध्यान में रखते हुए कि हमारे संविधान में विषयानुसार किसी प्रभु को स्थान नहीं दिया गया है, इस सभा के सम्पूर्ण प्रभुत्व के सम्बन्ध में सभी चर्चा अप्रासंगिक हैं।

***श्री रोहणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री कामत और श्री सक्सेना ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनका घोर विरोध करने के लिए मैं यहां उपस्थित हुआ हूं। श्रीमान् मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधित अनुच्छेद 260 का वे लोग स्वागत कर रहे हैं जिनके प्रति पहले अन्याय होता रहा है क्योंकि इसके अधीन पांच वर्ष के बाद नहीं बल्कि दो ही वर्ष बाद एक वित्त-आयोग गठित होगा और उसके पश्चात् वह प्रत्येक पांच वर्ष की समाप्ति पर गठित होगा। श्रीमान्, यदि अपेक्षाकृत कुछ अभागे प्रान्तों के प्रति न्याय करना हो तो यह आयोग शीघ्र से शीघ्र गठित होना चाहिये। इसलिये अनुच्छेद 260 में वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति की कार्यवाही के सम्बन्ध में जो उपबन्ध है वह एक उपयुक्त उपबन्ध है। यदि इस सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार संसद को दिया गया तो इसका अवश्य ही यह अर्थ होगा कि उस पर संसद के दोनों सदनों को विचार करना होगा। यदि श्री सक्सेना का संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो केवल लोक सभा को ही उस पर विचार करना होगा किन्तु उसका अर्थ यह होगा कि देर होगी और प्रत्येक प्रान्त अपने भाग के लिए अथवा अपने भाग से अधिक धनराशि प्राप्त करने के लिए लड़ेगा और जिन प्रान्तों का अधिक प्रभाव है वे अपने भाग से अधिक प्राप्त कर लेंगे और अन्य प्रान्तों को उसकी अधिक आवश्यकता होने पर भी उन्हें उस धनराशि से वंचित रखेंगे। इसलिये शीघ्रातिशीघ्र न्याय होने तथा यथोचित रूप से न्याय होने के पक्ष में यही है कि राष्ट्रपति या शीघ्र निर्णय करे और उसकी सूचना विधान मण्डल को दे। मेरे मित्र श्री कामत चाहते हैं कि इस निर्णय की सूचना के साथ एक व्याख्यात्मक विवरण भी हो। यह हो या न हो किन्तु चूंकि श्री कामत यह चाहते हैं कि उन्हें आलोचना का अवसर प्रदान करने के लिए एक व्याख्यात्मक विवरण दिया जाये इसलिये वह अवश्य ही दिया जाये। उससे हमें कोई हानि न होगी। किन्तु मैं उन गरीब प्रांतों की ओर से, जो यह समझते हैं कि वित्त के सम्बन्ध में उनके प्रति अन्याय होता रहा है, यह कहना चाहता हूं कि अन्याय वर्तमान सरकार ने नहीं किया है बल्कि पिछली सरकार ने किया है। उसके निराकरण के लिए हम अनुच्छेद 261 का मूल रूप में स्वागत करते हैं।

***श्रीमती जी दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं कि अब मत लिया जाये।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार जनरल): श्रीमान्, यह बात नहीं है कि जो प्रश्न हमारे सामने है उसे हल करने में कोई कठिनाई नहीं है। यह सच है कि वित्त-आयोग विशेषज्ञों का एक संगठन होगा और उसमें कुछ ऐसे विशेषज्ञ भी होंगे जो इसका निर्णय करेंगे कि विभिन्न प्रान्तों को कितनी धनराशि दी जाये। यदि अपनी इच्छानुसार कार्य करवाने के लिये विभिन्न प्रान्त संसद को अपना अखाड़ा बनायेंगे तो केन्द्रीय सरकार बड़ी कठिनाई में पड़ जायेगी। साथ ही गरीब प्रान्तों की कठिनाई ज्यों की त्यों बनी रहेगी। आखिर वित्त आयोग एक छोटा संगठन होगा। यदि वित्त-आयोग उन प्रान्तों के प्रति न्याय न कर सकेगा जो बंटवारे से प्राप्त धनराशि से अपना काम नहीं चला सकते, तो बड़ी जटिल स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। मेरी इच्छा तो यह है कि मैं उस संशोधन का समर्थन करूं जिसका आशय यह है कि कुछ मामलों में वित्त-आयोग के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। इस समय यह अनुच्छेद जिस रूप में है उसके अधीन उसके निर्णय के विरुद्ध

[श्री जगत नारायण लाल]

अपील नहीं की जा सकती। यदि कोई इस आशय का उपबन्ध रखा जा सकता कि वित्त-आयोग की सिफारिशों का कुछ मामलों में पुनर्विलोकन होगा तो मैं उस उपबन्ध का अथवा इस आशय के संशोधन का स्वागत करता। इस प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। उस संशोधन का समर्थन न करके जिसका उद्देश्य यह है कि अवर सदन प्रत्येक मामले पर विचार करे और अपना निर्णय करे मैं यह सुझाव रखता हूं कि कोई ऐसा उपबन्ध रखा जाये जिसके अधीन कुछ मामलों में वित्त आयोग की सिफारिशों का पुनर्विलोकन हो सके और उनके सम्बन्ध में निर्णय किया जा सके। मेरे यही कुछ सुझाव हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे यह दिखाई देता है कि इन संशोधनों का आधार इस अनुच्छेद का मिथ्या बोध ही है। मेरे विचार से इसे संशोधित करने की आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 261 के आशय को ठीक-ठीक समझने के लिये पहले के उन अनुच्छेदों को देखने की आवश्यकता है जो आयकर के तथा केन्द्र द्वारा संगृहीत उत्पादन-शुल्कों के वितरण के सम्बन्ध में हैं। यह स्पष्ट है कि आयकर के वितरण के सम्बन्ध में हम जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसके अधीन राष्ट्रपति को ही पूर्ण शक्ति प्राप्त है किन्तु वह वित्त-आयोग की सिफारिश के आधार पर कार्य करेगा। इस दशा में अब एक ऐसे संशोधन को स्थान नहीं दिया जा सकता जिसका आशय यह है कि आयकर के वितरण सम्बन्धी सिफारिशों पर संसद निर्णय करे। मेरा यह निवेदन है कि इस विषय के सम्बन्ध में हमारे हाथ बंध गये हैं चूंकि हम एक ऐसा अनुच्छेद पारित कर चुके हैं जिसके अधीन राष्ट्रपति को आरम्भ में अथवा आगे की बदली हुई स्थिति में आयकर के वितरण तथा बंटवारे की शक्ति दी गई है।

अनुच्छेद 261, केन्द्र द्वारा उद्गृहीत उत्पादन शुल्कों से प्राप्त राजस्व के वितरण के सम्बन्ध में है। जिस अनुच्छेद को हम पारित कर चुके हैं उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय के सम्बन्ध में संसद-निर्मित विधि के अनुसार निर्णय किया जायेगा। राष्ट्रपति स्वयं निर्णय नहीं कर सकता। इसलिये "उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के समक्ष रखवायेगा" शब्दों का केवल यह अर्थ है कि राष्ट्रपति यह कहेगा, और उसे यह कहना ही पड़ेगा, कि उत्पादन शुल्कों के आगम को नियमित करने तथा उसकी मंजूरी के लिये और उसके बंटवारे की प्रणाली निश्चित करने के लिए संसद के सामने एक विधेयक लाया जायेगा। यदि मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना अनुच्छेद 261 को पहले पारित किये हुये अनुच्छेदों के साथ पढ़ेंगे तो वे यह अनुभव करेंगे कि जहां तक उत्पादन शुल्कों के वितरण का सम्बन्ध है इस अनुच्छेद से उनके संशोधन के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। इसलिये मेरे विचार से उनके संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 261 में 'together with an explanatory memorandum as to the action taken

thereon' (उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित) शब्दों के स्थान पर 'together with such explanatory memorandum as he may think fit' (ऐसे व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित जिसे वह उचित समझे) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 में प्रस्तावित 'each House of Parliament (संसद के प्रत्येक सदन) शब्दों के स्थान पर 'each House of Parliament for such action thereon as Parliament may deem necessary' (संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी कार्यवाही के लिए रखवायेगा जिसे संसद आवश्यक समझे) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2950 के सम्बन्ध में 'action taken thereon to be laid before Parliament' (उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के समक्ष रखवायेगा) शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जायें:–

'Containing his proposals for action that should be taken thereon to be laid before each House of Parliament. The House of the People shall have the right to amend the proposals made by the President by a resolution passed by the House of the People. The proposals of the President in their original form or in the form in which they emerge after they are amended by the House of the People shall thereafter become law.'

(जिसमें उस पर की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में उसके प्रस्ताव हों, जो संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जायें। लोक सभा को राष्ट्रपति के प्रस्तावों को एक संकल्प द्वारा संशोधित करने का अधिकार होगा, जिसे लोक सभा पारित करेगी उसके पश्चात् राष्ट्रपति के प्रस्ताव, मूल रूप में अथवा लोक सभा द्वारा संशोधित होने पर वे जिस रूप में हों उस रूप में, विधि का रूप धारण करेंगे।)' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 261 में 'Parliament' (संसद) शब्द के स्थान पर 'each House of Parliament' (संसद के प्रत्येक सदन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 261, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 261, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 262

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 141 एक शाब्दिक संशोधन है। मैं समझता हूं कि प्रत्येक बार इस प्रकार के रस्मी संशोधनों को उपस्थित करने की आवश्यकता का अनुभव न किया जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** यह संशोधन, संशोधन संख्या 2951 के सम्बन्ध में है। यदि वह संशोधन उपस्थित न किया गया तो इसकी आवश्यकता न पड़ेगी।

***अध्यक्षः** मैं यह सुझाव उपस्थित कर रहा हूं कि ऐसे शाब्दिक संशोधनों को जैसे 'भारत राजस्व' के स्थान पर 'भारत की संचित निधि' रखना, मसौदा समिति के लिये छोड़ देना चाहिये। जब कभी ऐसी पदावलियां आयेंगी मसौदा समिति उन्हें शुद्ध कर लेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या 2951 का उद्देश्य यह है कि 'भारत का राजस्व' शब्दों के स्थान पर 'भारतीय राजस्व' शब्द रखे जायें। यदि वह संशोधन उपस्थित न किया गया तो मेरे संशोधन की आवश्यकता न रहेगी।

***अध्यक्षः** उसकी सूचना उस समय दी गई थी जब हमने 'संचित निधि' पदावली को स्वीकार नहीं किया था।

क्या इस अनुच्छेद पर कोई सज्जन बोलना चाहते हैं? प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 262 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 262 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 263

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 263 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः

'263. (1) The custody of the Consolidated Fund of India, the payments of moneys into such Fund, the withdrawal of moneys therefrom and all other matters connected with or ancillary to the matters aforesaid shall be regulated by law made by Parliament, and until provision in that behalf is so made by Parliament, shall be regulated by rules made by the President.

Custody of consolidated Funds, the payment of moneys into and withdrawal of moneys from such funds

(2) The custody of the Consolidated Fund of a State, the payments of moneys into such Fund and the withdrawal of moneys therefrom, and all other matters connected with or ancillary to the matters aforesaid shall be regulated by law made by the Legislature of the State, and, until provision in that behalf is so made by the Legislature of the State, shall be regulated by rules made by the Governor of the State.' "

[263. (1) भारत की संचित-निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधि में धन का डालना, उससे धन का निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन संसद द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक उसके लिये उपबन्ध इस प्रकार संसद द्वारा न किया जाये तब तक राष्ट्रपति द्वारा निर्मित नियमों से होगा।

(2) राज्य की संचित निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधि में धन डालना, उससे धन निकालना तथा उपयुक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक उसके लिय उपबन्ध इस प्रकार राज्य के विधान मण्डल द्वारा न किया जाये तब तक राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों से होगा।]

मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"डॉ. अम्बेडकर ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया था उसमें जहां कहीं 'Consolidated Fund' (संचित निधि) शब्द आये हों उनके बाद 'and the Contingency Fund' (और आकस्मिकता निधि) शब्द प्रविष्ट किये जायें और जहां कहीं 'such Fund' (ऐसी निधि) शब्द आये हों उने स्थान पर 'such Funds' (ऐसी निधियां) शब्द रखे जायें।"

सभा आकस्मिकता निधि की स्थापना के लिये स्वीकृति दे चुकी है। इसलिये इस सम्बन्ध में उपबन्ध रखने की आवश्यकता है कि आकस्मिकता निधि में किस प्रकार धन डाला जाये और उससे किस प्रकार धन निकाला जाये। यह एक रस्मी संशोधन है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्षः** मैं यह मान लेता हूं कि डॉ. अम्बेडकर पंडित कुंजरू के संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 206 में प्रस्तावित अनुच्छेद 263 में जहां कहीं 'Consolidated Fund' (संचित निधि) शब्द आये हों उनके बाद 'and the Contingency Fund' (और आकस्मिकता निधि) शब्द प्रविष्ट किये जायें और जहां कहीं 'such Fund' (ऐसी निधि) शब्द आये हों उने स्थान पर 'such Funds' (ऐसी निधियां) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 263, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 263, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 263क

***अध्यक्षः** एक अतिरिक्त अनुच्छेद है जिसे डॉ. अम्बेडकर उपस्थित करना चाहते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या मैं सुझाव रख सकता हूं कि उसे स्थगित रखा जाये?

अध्यक्षः अच्छी बात है। तब हम अनुच्छेद 267 को उठाते हैं। अनुच्छेद 264, 265 और 266 आज की सूची में उल्लिखित नहीं हैं।

अनुच्छेद 267

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं यहे प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 267 में–

(1) 'Crown in India' (भारत में सम्राट के अधीन) शब्दों के बाद 'or after such commencement in connection with the affairs of the Union or of a State' (अथवा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् संघ के या किसी राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्द प्रविष्ट किये जायें;

(2) 'revenue of India' (भारत का राजस्व) शब्द जहां कहीं आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें;

(3) 'revenues of a State' (किसी राज्य का राजस्व) शब्द जहां कहीं आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Fund of a State' (किसी राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें;

(4) 'for the time being specified in Part I of First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें; और

(5) 'revnues of the State' (राज्य का राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' (राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन अन्य संशोधनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"उपरोक्त संशोधन संख्या 102 के भाग (1) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः

'(1) 'Crown in India' (भारत में सम्राट के अधीन) शब्दों के स्थान पर 'Government of India prior to 15th August, 1947 or after such commencement in connection with the affairs of the Union or the Government of a State' (15 अगस्त 1947 के पूर्व भारत सरकार के अधीन अथवा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् संघ के या किसी राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्द रखे जायें।' "

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

श्रीमान्, मैंने इस संशोधन को इसलिये उपस्थित किया है कि मैं यह नहीं चाहता कि हमारे संविधान में "भारत में सम्राट" शब्द रहें और भविष्य में हमें अपने दासत्व-काल का स्मरण कराते रहें। मेरे विचार से ये शब्द बहुत आवश्यक नहीं हैं। और "15 अगस्त के पूर्व भारत सरकार" शब्द रखकर उन्हें निकाला जा सकता हैं। मेरे विचार से यह एक सीधा-सादा संशोधन है जो मुझे विश्वास है कि सभा की भावना इसके पक्ष में है। संशोधन का आगे का अंश वही है जो डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का है और, मेरे विचार से, वे उसे स्वीकार कर लेंगे। मेरे विचार से "भारत में सम्राट" शब्दों के स्थान पर "15 अगस्त 1947 से पूर्व भारत सरकार" शब्द रखे जाने चाहियें।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं तृतीय सप्ताह की सूची 4 के संशोधन संख्या 142, 143, 144 और 145 को उपस्थित करता हूं। संशोधन संख्या 142 इस प्रकार है:

"संशोधनों पर संशाधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के भाग (1) में, अनुच्छेद 267 में, 'in connection with the affairs of the Union or of a State' (संघ के या किसी राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) प्रस्तावित शब्दों के स्थान पर 'under the Government of the Union or of a State' (संघ की अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

दूसरा संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 143 इस प्रकार है:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 के खण्ड (क) में 'in connection with the affairs of such a State' (राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्दों के स्थान पर 'under the Government of such a State' (राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जाये।"

संशोधन संख्या 144 इस प्रकार है:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 के खण्ड (ख) में, 'in connection with the affairs of the Union or another such State'(संघ या अन्य राज्य के कार्यों के संबंध में) शब्दों के स्थान पर 'under the Government of the Union or another' such State' (संघ या अन्य राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, मेरा अन्तिम संशोधन, अर्थात् इसी सूची का संशोधन संख्या 145 इस प्रकार है:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 में 'an arbitrator' (कोई मध्यस्थ) शब्दों के स्थान पर 'a tribunal' (कोई न्यायाधिकरण) शब्द रखे जायें।"

ये सब संशोधन सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में हैं जिसे डॉ. अम्बेडकर ने अभी सभा के सामने उपस्थित किया है। मेरे ये चार संशोधन दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। पहले तीन संशोधन एक समान हैं और अन्तिम संशोधन दूसरी श्रेणी में आता है। पहले तीन संशोधनों का उद्देश्य यह है कि इस अनुच्छेद के कुछ शब्दों के स्थान में अन्य शब्द रखे जायें। मेरे विचार से इस अनुच्छेद में अनावश्यक और बोझल शब्दावली प्रयुक्त हैं और मेरे विचार से वह इन संशोधनों से दूर हो जायेगी। मैं कह नहीं सकता कि "संघ अथवा राज्य के कार्य" पदावली प्रयुक्त करके मसौदा-समिति संघ अथवा राज्य की सरकार के अधीन किसी व्यक्ति की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी आशय को व्यक्त करना चाहती है। यह अनुच्छेद किसी ऐसे व्यक्ति को अथवा उसके बारे में देय निवृत्ति-वेतन के सम्बन्ध में है जिसने संघ के अथवा राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा की हो। स्वभावत: यदि किसी व्यक्ति ने सेवा की हो और उसे कुछ निवृत्ति वेतन देय हो तो उसे वह निवृत्ति-वेतन, मेरे विचार से संघ की अथवा राज्य की सरकार से प्राप्त होना चाहिये। इसलिये मेरी यह धारणा है कि "संघ के कार्य" शब्दों से आशय अस्पष्ट हो जायेगा। किस प्रकार के कार्य? संघ अथवा राज्य कई प्रकार के कार्य कर सकते हैं। मेरे विचार से इस अनुच्छेद से संघ के अपने कार्य अथवा संघ और एककों के आपस के कार्य अभिप्रेत नहीं हैं बल्कि केवल सरकारी कार्य अभिप्रेत हैं इस कारण इस अनुच्छेद को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। अर्थात् उसमें यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि यदि कोई व्यक्ति ऐसी सेवा करेगा जिसके लिये निवृत्ति-वेतन मिल सकता है तो उसका सम्बन्ध संघ की सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार से होगा।

किन्तु यदि इस अनुच्छेद के मसौदे का आशय वही है जिसे मैं व्यक्त कर रहा हूं तो मेरा संशोधन एक रस्मी और शाब्दिक समझा जाये क्योंकि इससे शब्दावली कम बोझल तथा अधिक स्पष्ट हो जायेगी। इसे सब जानते हैं कि अंग्रेजी भाषा एक बहुत ही बोझल भाषा है। हम में से कुछ लोग उसे और भी बोझल बना देते हैं। मुझे बर्नर्ड शा का एक व्यंगपूर्ण कथन स्मरण हो आया है। एक बार उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा अभिव्यंजना का एक बहुत ही पेचिदा साधन है और जब हम यह कहना चाहते हैं कि हम कोई बात नहीं कर सकते तो हम अंग्रेजी में कहते है "मुझे बहुत खेद है, मुझे इसका खेद है कि मैं यह काम नहीं कर सकता"। एक चीनी इसी आशय को 'नो कैन' कहकर व्यक्त कर देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं यह नहीं चाहता कि मसौदा-समिति चीनियों के समान थोड़े ही शब्द कहे जिनसे अनुच्छेद का आशय ही स्पष्ट न हो किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि "संघ के कार्यों के सम्बन्ध में" पदावली को स्पष्ट कर देना चाहिये ताकि उसका अर्थ स्पष्ट हो जाये और उससे यह व्यक्त हो कि संघ की सरकार अथवा राज्य की सरकार के अधीन की हुई सेवा ही इस अनुच्छेद से अभिप्रेत है और उनके अन्य कोई कार्य अभिप्रेत नहीं हैं। अनुच्छेद 142, 143 और 144 के सम्बन्ध में, जिन्हें मैंने अभी सभा के सम्मुख उपस्थित किया था, मुझे यही तर्क उपस्थित करना था।

[श्री एच.वी. कामत]

संशोधन संख्या 145 के सम्बन्ध में, जिसका उद्देश्य यह है कि 'मध्यस्थ' शब्द के स्थान पर 'न्यायाधिकरण' शब्द रखा जाये, मैं आरम्भ में ही इसे स्वीकार किये लेता हूं कि मैं व्यवहार-विधि तथा तत्सम्बंधी अन्य विधि से बहुत कुछ अनभिज्ञ ही हूं। संविधानिक विधि तथा व्यवहार विधि में मध्यस्थ तथा न्यायाधिकरण में भेद किया जाता है। मैं इस सम्बन्ध में अंतिम बात नहीं कह सकता। किन्तु कई क्षेत्रों में मैंने जो अनुभव प्राप्त किया और जो थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किया उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि किसी मामले के सम्बन्ध में नियुक्त किये गये मध्यस्थ से न्यायाधिकरण का अधिक संविधानिक महत्व है। यदि वह अनुच्छेद उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया जिस रूप में इसे डॉ. अम्बेडकर ने सभा के सामने रखा है, तो यह समझ में आ सकता है और इसकी सम्भावना भी है कि इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन कई ऐसे मामले उठ खड़े होंगे जिनमें सम्बंधित पक्षों का आपस में मतभेद होगा। हो सकता है कि एक दो मामले नहीं बल्कि सैकड़ों मामले उठ खड़े हों क्योंकि उनसे केवल संघ का ही सम्बन्ध न होगा बल्कि कई राज्यों का भी सम्बन्ध होगा। क्या इस अनुच्छेद को स्वीकार करने पर हम प्रत्येक मामले के लिये एक मध्यस्थ नियुक्त करेंगे? इसका अर्थ यह होगा कि कई अवसरों पर भिन्न-भिन्न मध्यस्थों को नियुक्त करेंगे। अथवा क्या हमारा आशय यह है कि जिन मामलों में मतभेद हो उन सभी मामलों को निबटाने के लिए हम कई सुयोग्य व्यक्तियों का, कई अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञों का एक निकाय बनायेंगे और जब कभी ये मामले उठेंगे, वे इनकी परीक्षा करेंगे और इनके सम्बन्ध में निर्णय करेंगे? यदि हमारा यही उद्देश्य है तो मेरे विचार से एक न्यायाधिकरण की आवश्यकता है न कि मध्यस्थ की। मेरे विचार से इस अनुच्छेद की शब्दावली भी उपयुक्त शब्दावली नहीं है। उसमें कहा गया है कि एक मध्यस्थ होगा और इसका अर्थ यह है कि एक ही होगा। मुझे विश्वास है कि हम 'एक' शब्द के अर्थ पर विवाद न करेंगे। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति को इस सम्बन्ध में शक्ति प्रदान की गई है। किन्तु यह कहना कि वह 'एक मध्यस्थ' नियुक्त करेगा और इससे अधिक या कम नियुक्त नहीं करेगा, क्योंकि कम तो हो ही नहीं सकता और वह इस कारण कि एक से कम शून्य ही होगा, यह अर्थ रखता है कि हम मुख्य न्यायाधिपति के साथ बांध दे रहे हैं। वह यह विचार कर सकता है कि कोई मामला बहुत पेचीदा है अथवा बहुत से मामले उठाये गये हैं अथवा मामले विभिन्न प्रकार के हैं और एक ही व्यक्ति उन सभी मामलों को नहीं निबटा सकता और वह यह भी विचार कर सकता है कि उन मामलों के सम्बन्ध में किसी मध्यस्थ की अपेक्षा न्यायाधिकरण अधिक योग्यता से निर्णय करेगा। मेरे विचार से मध्यस्थ के सम्बन्ध में दोनों पक्षों को पहले यह कहना होगा कि वे उसके निर्णय को मानेंगे। किन्तु यदि कोई न्यायाधिकरण नियुक्त किया गया और साथ ही हम संविधान में यह उपबंधित कर दें कि उसका निर्णय अंतिम निर्णय होगा और उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकेगी तो हम मध्यस्थ नियुक्त करने के सम्बन्ध में इस उपबन्ध की अपेक्षा कहीं अधिक उपयुक्त व्यवस्था स्वीकार करेंगे। जब संविधान प्रवर्तन में आयेगा और यह अनुच्छेद प्रयोग में आयेगा तो इस प्रकार के कई मामले उठेंगे और एक ही मध्यस्थ शीघ्रता तथा सुयोग्यता के साथ उन्हें नहीं निपटा सकेगा। मैं तो यहां तक कहता हूं कि वह

उन पर पूर्ण निरपेक्षता से भी विचार नहीं कर सकेगा और न यथोचित न्याय ही कर सकेगा। इन मामलों को निबटाने के लिये एक उच्च कोटि के न्यायाधिकरण की आवश्यकता है और इसलिये मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि इस अनुच्छेद में मध्यस्थ के सम्बन्ध में जो उपबन्ध है उसके स्थान पर इस आशय का उपबन्ध रखना चाहिये कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति को यह शक्ति दी जाती है कि जब कभी इस प्रकार के मामले उठें वह उन्हें निबटाने के लिये एक सुगठित न्यायाधिकरण को नियुक्त करे। इसलिये मैं संशोधन संख्या 142, 143, 144 और 145 को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि उन पर विचार किया जाये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, यह एक सीधा-सादा अनुच्छेद है और मेरे विचार से इसे पारित करने में सभा को अधिक समय न लगाना चाहिये। यह केवल कुछ व्ययों और निवृत्ति-वेतनों के समायोजन के सम्बन्ध में है। श्री कामत ने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया है कि 'मध्यस्थ' शब्द के स्थान पर 'न्यायाधिकरण' शब्द रखा जाये। मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि मध्यस्थ के स्थान में न्यायाधिकरण की व्यवस्था करना अनावश्यक है और साथ ही उस पर अधिक धन भी व्यय होगा। सम्भावना इसी की है कि छोटे मामले उठेंगे और यह पर्याप्त व्यवस्था होगी कि मुख्य न्यायाधिपति संघ और राज्यों के बीच व्यय के समायोजन के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए एक ही व्यक्ति को नियुक्त करे। इसकी सम्भावना नहीं है कि पेचीदे मामले उठेंगे और न इन मामलों में अंतर्ग्रस्त पक्षों में अधिक उत्तेजना होगी। किन्तु मैं डॉ. अम्बेडकर से एक प्रश्न पूछना चाहता हूं और वह यह है कि क्या ऐसे मामले नहीं उठेंगे जिनमें एक ओर संघ और दूसरी ओर एक से अधिक राज्य अंतर्ग्रस्त हों अथवा एक ओर एक राज्य और दूसरी ओर एक से अधिक राज्य अंतर्ग्रस्त हों और इनके बीच समायोजन और मध्यस्थता की आवश्यकता हो। अनुच्छेद 267 में संघ और एक राज्य के बीच ही मध्यस्थता करने के सम्बन्ध में उपबन्ध है। किसी स्थल पर भी राज्य शब्द बहुवचन में नहीं प्रयोग हुआ है और दो राज्यों के बीच जो मामले उठ खड़े हों उनके सम्बन्ध में निर्णय करने के बारे में भी कोई उपबन्ध नहीं है। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का इस प्रकार निर्वचन नहीं किया जा सकता कि इसमें प्रयुक्त एकवचन बहुवचन-अर्थक भी है। मेरे विचार से अधिक ध्यान न देने के कारण यह कमी रह गई है अथवा जानबूझकर इस प्रकार का आशय रखा गया है। मैं इस सम्बन्ध में सन्देह-मुक्त होना चाहता हूं कि क्या यह बिल्कुल असम्भव है कि दो राज्यों के बीच व्यय के वितरण के सम्बन्ध में कोई मामले उठ खड़े हों। मैं यह नहीं मानता कि इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती क्योंकि विभिन्न प्रकार के मामलों का उल्लेख है। पहली कण्डिका इस प्रकार है:

> "जहां इस संविधान के उपबन्धों के अधीन किसी न्यायालय या आयोग के व्यय, अथवा जिस व्यक्ति ने इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व भारत में सम्राट के अधीन सेवा की है उसको या उसके बारे में देय निवृत्ति-वेतन भारत के राजस्व अथवा राज्य के राजस्व पर भारित हैं, इत्यादि।"

मेरा यह कहना है कि यह एक से अधिक राज्यों के लिये भी प्रयुक्त हो सकता है और यदि आशय यही है तो क्या यह उद्देश्य नहीं है कि ऐसे मामले मध्यस्थ के सामने रखे जायें? यदि उन्हें मध्यस्थ के सामने रखना है तो इस अनुच्छेद

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

में यथोचित संशोधन करना होगा। सम्भवत: जहां कहीं 'राज्य' शब्द एकवचन में प्रयुक्त है वहां हमें उसके स्थान पर बहुवचन प्रयोग करना पड़े। इस समय मैं केवल यह चाहता हूं कि इसका स्पष्टीकरण किया जाये। यदि डॉ. अम्बेडकर का यह विश्वास हो कि विभिन्न राज्यों के बीच अथवा एक ओर संघ और दूसरी ओर दो राज्यों के बीच इस प्रकार के मामले उठ ही नहीं सकते हैं तो मैंने जो प्रश्न पूछा है वह नहीं उठता। किन्तु यदि ऐसे मामलों के उठने की सम्भावना है तो तद्विषयक एक उपबन्ध की भी आवश्यकता होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं किसी भी संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन संख्या 102 के भाग (1) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये–

'(1) 'Crown in India' (भारत में सम्राट के अधीन) शब्दों के स्थान पर 'Government of India prior to 15th August 1947 or after such commencement in connection with the affairs of the Union or the Government of a State' (15 अगस्त 1947 के पूर्व भारत सरकार के अधीन अथवा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् संघ के या किसी राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्द रखे जायें।'"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के भाग (1) में, अनुच्छेद 267 में, 'in connection with the affairs of the Union or of a State' (संघ या किसी राज्य कार्यों के सम्बन्ध में) प्रस्तावित शब्दों के स्थान पर 'Under the Government of the Union or of a State' (संघ की अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 के खण्ड (क) में 'in connection with the affairs of such a State' (राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्दों के स्थान पर

'Under the Government of such a State' (राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 के खण्ड (ख) में 'in connection with the affairs of the Union or another such State' (संघ या अन्य राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्दों के स्थान पर 'Under the Government of the Union or another such State' (संघ या अन्य राज्य की सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 102 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 267 में, 'an arbitrator' (कोई मध्यस्थ) शब्दों के स्थान पर 'a tribunal' (कोई न्यायाधिकरण) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 267 में—

(1) 'Crown in India' (भारत में सम्राट के अधीन) शब्दों के बाद 'or after such commencement in connection with the affairs of the Union or of a State' (अथवा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् संघ के या किसी राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में) शब्द प्रविष्ट किये जायें;

(2) 'revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्द जहां कहीं आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें;

(3) 'revenues of a State' (किसी राज्य का राजस्व) शब्द जहां कहीं आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Fund of a State' (किसी राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें;

(4) 'for the time being specified in part I of First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें; और

(5) 'revenues of a State' (राज्य का राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' (राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 267, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 267, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 268

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 268 को उठाते हैं। डॉ. अम्बेडकर के नाम से एक रस्मी संशोधन है। मैं यह समझता हूं कि सभा उसे स्वीकार करती है। संशोधन इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 268 में, 'revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अध्यक्ष महोदय, मैं सभा का ध्यान इस अध्याय के महत्वपूर्ण विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। यह अध्याय उधार लेने के सम्बन्ध में है। यद्यपि केन्द्र तथा प्रान्तों द्वारा उधार लेने और संघ सरकार द्वारा राज्यों को उधार देने का विषय अनुच्छेद 268 और 269 में संक्षेप में वर्णित है किन्तु यह विषय कर लगाने की शक्तियों के विषय से अधिक महत्वपूर्ण है और इन अनुच्छेदों की अधिक सावधानी से परीक्षा करने की आवश्यकता है, भले ही हमने कर लगाने और कर से प्राप्त धन-राशि के वितरण के सम्बन्ध में अर्थात संघ और राज्यों के राजस्व के सम्बन्ध में एक लम्बा अध्याय रखा है। सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिये ही मैं इस समय बोलना चाहता हूं ताकि आगे चलकर संसद इस विषय पर अधिक ध्यानपूर्वक विचार कर सके। हमने समय-समय पर यह देखा है कि किसी वर्ष का राजस्व वित्त-विधेयकों के आधार पर संगृहीत किया जाता है। जहां तक उधार लेने का सम्बन्ध है; उधार थोड़े समय के लिए लिया जा सकता है अथवा लम्बे समय के लिये, जिससे वर्तमान पीढ़ी पर ही भार नहीं पड़ता है बल्कि आने वाली पीढ़ी को भी इस भार को वहन करना पड़ता है। किन्तु जिस प्रणाली के अनुसार उधार लिया जाना चाहिये उसकी

ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जा रहा है। प्रान्तीय सरकारों ने अभी हाल में कई धन-राशियों के ऋण मांगे किन्तु अभी तक उन्हें इतना धन उधार नहीं मिला है कि उन राशियों को पूरा किया जा सके। कुछ उधारों की घोषणाओं को तो वापस लेना पड़ा। खुले बाजार में भी हम बड़े संकोच से ऋण मांगते रहे हैं। मेरा यह सुझाव है कि इसके लिए वित्त-आयोग के समान एक आयोग स्थापित किया जाये और वह हमेशा के लिये एक स्थायी आयोग हो।

किसी नये आयोग को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। रिजर्व बैंक राज्य का बैंक होगा और वह हमें इस विषय के सम्बन्ध में बता सकता है कि क्या किया जाना चाहिये और क्या नहीं किया जाना चाहिये। सामान्यत: विकास-योजनाओं को ऋण लेकर ही कार्यान्वित किया जाता है। उनका भार चालू राजस्व पर न डालना चाहिये क्योंकि इन योजनाओं से वर्तमान पीढ़ी को ही लाभ न होगा बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी होगा। देश के हाल के आय व्ययकों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उधार लेने के कार्यक्रम उतने ही विस्तृत हैं जितने विस्तृत वार्षिक राजस्व के कार्यक्रम हैं। इस कारण उधार लेने का विषय और यह प्रश्न कि कितनी धनराशि उधार की जाये संसद के समक्ष नहीं रखा जा रहा है। भारत सरकार के वर्तमान अधिनियम में इसी प्रकार का एक उपबन्ध है। उपनिवेश की संसद को इसकी स्वतन्त्रता है कि वह उधार लेने की प्रणाली और उधार ली जाने वाली धन-राशि तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में निदेश दे। किन्तु हमारे सामने ये सब बातें एक परिशिष्ट के रूप में ही रखी जाती रही हैं और आय-व्ययक के अन्त में केवल यह दिखा दिया जाता है कि कितनी धनराशि की आवश्यकता है और संक्षेप में यह बताया जाता है कि यह धनराशि किस प्रकार संगृहीत की जायेगी। संसद को उधार ली जाने वाली विभिन्न धनराशियों के लिये आज्ञा देने के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी से उपबन्ध रखने चाहियें, भले ही लोग धन उधार देने के लिए सक्षम हों। संसद अनुच्छेद 268 के अधीन इन सब बातों का तथा जिन कार्यों के लिए उधार लिया जा रहा हो उनका नियमन करेगी।

मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 268 में तथा अनुच्छेद 269 में भी यह उपबंधित है कि प्रान्तों के उधार लेने के सम्बन्ध में कुछ मामलों में केन्द्रीय सरकार की सहमति आवश्यक है। भारत सरकार के वर्तमान अधिनियम में इस आशय का एक खण्ड है कि सहमति प्रदान करने में अकारण देर न की जाये। इस अनुच्छेद में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है क्योंकि यह समझा गया है कि इस प्रकार का उपबन्ध अनावश्यक है। भारत सरकार के अधिनियम के अधीन यह उपबन्ध रखते समय यह विचार किया गया था कि देश का प्रशासन देशवासियों के हाथ में न होगा बल्कि अन्य लोगों के हाथ में होगा। किन्तु अब प्रान्तों में राष्ट्रीय सरकारें शासनारूढ़ हैं और केन्द्र में भी राष्ट्रीय सरकार के हाथ में शासन की बागडोर है। इसलिये अब यह अनुभव किया जाता है कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता नहीं रह गई है। मुझे आशा है कि जो आवश्यकतायें हैं उनकी पूर्ति अनुच्छेद 268 और अनुच्छेद 269 से हो जायेगी। उनसे पूरा फायदा उठाया जायेगा और उनसे संघ के तथा प्रान्तों के राजस्व की सावधानी से परीक्षा करने में सहायता मिलेगी। जिस रूप में ये अनुच्छेद उपस्थित किये गये हैं उसी रूप में मैं उनका समर्थन करता हूं। किन्तु मुझे आशा है कि व्यवहार में इस विषय

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

को संसद के समक्ष रखा जायेगा और कार्यपालिका भविष्य में बिना पहले संसद के समक्ष इस विषय को रखे हुए उधार लेने के पूरे उत्तरदायित्व को स्वयं स्वीकार न कर लेगी।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद द्वारा भारत के राजस्व आदि की प्रतिभूति पर कार्यपालिका को जो शक्ति प्रदान की जा रही है उसके विरुद्ध भी मैं अपनी भावना व्यक्त कर देना चाहता हूं। इसमें कोई संदेह नहीं कि संसद विधि द्वारा सीमाओं को निश्चित करेगी। किन्तु इसके अतिरिक्त संसद और कुछ नहीं करेगी। श्रीमान्, मेरे विचार से ऐसे महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में सारे राज्य की साख को गिरवी रख देना उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में संसद को भी कुछ कहने का अधिकार होना चाहिये। यह न होना चाहिये कि संसद तो केवल सीमा निश्चित करे और इसके अतिरिक्त अन्य मामलों के सम्बन्ध में कार्यपालिका को पूर्ण शक्ति प्राप्त हो। कम से कम अपना निर्णय करने के पश्चात् कार्यपालिका को संसद का विश्वास प्राप्त कर लेना चाहिये। आखिर विधान-मण्डल में मंत्रिमण्डल का बहुमत तो होगा ही और वह जो कुछ करेगा उसका सभा समर्थन करेगी ही। इस दशा में मेरी समझ में नहीं आता कि वह इन बातों को संसद के सामने रखने में संकोच क्यों कर रही है। इसलिये मेरे विचार से इस अनुच्छेद में प्रस्तावित विस्तृत शक्तियों को कार्यपालिका को न देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे यही आपत्ति करनी है और मुझे आशा है कि सभा उस पर विचार करेगी। मुझे इस का खेद है कि मैं इस सम्बन्ध में किसी संशोधन की सूचना न दे सका।

*__श्री एच.वी. कामत:__ अध्यक्ष महोदय, मुझे आशा है कि सभा इस अध्याय पर अर्थात् अध्याय 2 पर गम्भीरता से विचार करेगी। यह अध्याय संघ द्वारा ऋण लेने तथा संघ के एककों द्वारा ऋण ली हुई धनराशियों के सम्बन्ध में प्रत्याभूति देने के सम्बन्ध में है। ऋण ली हुई धनराशियों की चट्टान एक ऐसी चट्टान है जिस पर राज्य की नौका टकरा कर डांवांडोल हो सकती है। आधुनिक काल में और आधुनिक जगत में जब अर्थ-शास्त्र का महत्व बहुत बढ़ गया है और संसार का प्रत्येक राज्य और देश प्राय: ऋण लेता है और ऋण देता है, मेरे विचार से भारत के भावी संघ की कार्यपालिका को ऋण लेने के सम्बन्ध में निर्णय करने की शक्ति न दी जानी चाहिये चाहे वह संसद द्वारा निश्चित की हुई सीमा के अन्दर ही ऋण क्यों न ले सके और चाहे ऋण लेने का उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो। मेरी यह धारणा है कि इस अनुच्छेद के अधीन संसद को यह सूचित किया जायेगा कि ऋण किस उद्देश्य से लिया जा रहा है और ऋण लेने के पूर्व संसद की स्वीकृति प्राप्त की जायेगी। किन्तु इस अनुच्छेद की अर्थात अनुच्छेद 268 की शब्दावली के अनुसार संसद को केवल सीमायें निश्चित करने की शक्ति प्राप्त है। मुझे आशा है कि ये सीमायें धनराशि के सम्बन्ध में होंगी अर्थात् यह कहा जा सकेगा कि इतने करोड़ के अन्दर ऋण लिया जाये, इत्यादि। अनुच्छेद का दूसरा भाग भी इसी प्रकार के रक्षाकवचों के सम्बन्ध में है और उसमें भी संघ द्वारा ऋण लेने के लिए दी हुई प्रत्याभूति की धन सीमाओं का उल्लेख है यद्यपि मेरे विचार से ये बातें महत्वपूर्ण नहीं है। अनुच्छेद में किसी स्थल पर भी इसका उल्लेख नहीं है कि किन उद्देश्यों के लिये धन ऋण लिया जाये और प्रत्याभूति दी जाये। सभा को विदित है कि पिछले कुछ महीनों में वर्ल्ड बैंक

से अथवा अमरीका से अथवा किसी ऐसे अन्य देश से धन उधार लेने के प्रस्ताव किये गये हैं जो हमारे आर्थिक तथा औद्योगिक विकास की योजनाओं को कार्यान्वित करने के हेतु धन देने के लिये तैयार हो। सभा को यह भी स्मरण होगा कि इस सभा ने संसद के रूप में समवेत होकर पिछले आयव्ययक सत्र में और पहले के सत्रों में भी प्रधान मंत्री महोदय से और सम्भवत: वित्त मंत्री महोदय से भी यह पूछा था कि यदि सरकार इस प्रस्ताव पर विचार करे और अमरीका तथा रूस के समान अन्य देशों से ऋण लिया जाये तो उसके फलस्वरूप हमारा देश कहीं राजनैतिक, आर्थिक अथवा सैनिक बन्धनों में तो नहीं पड़ जायेगा। मुझे विश्वास है कि अन्त में संसद ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में निर्णय करेगी। भविष्य में हमारे वैदेशिक सम्बन्ध कैसे होंगे और हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति किस प्रकार की होगी इसका निर्णय कार्यपालिका अथवा राष्ट्रपति नहीं करेंगे बल्कि संसद ही करेगी। यदि कार्यपालिका का संसद से कुछ मामलों में मतभेद हो और यदि कार्यपालिका किसी ऐसी वैदेशिक नीति का अनुसरण करने के लिए तुल जाये जिस का संसद आगे चल कर अनुमोदन न करे अथवा जो संसद के तद्विषयक निर्णयों के अनुरूप न हो तो एक बहुत ही बुरी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसका भयंकर परिणाम होगा क्योंकि तत्कालीन सरकार, अर्थात् राष्ट्रपति और कार्यपालिका, विदेशों से ऋण लेने के सम्बन्ध में करार कर चुकेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह संसद की निश्चित की हुई सीमाओं का उल्लंघन न करेंगे। वह एक करोड़ अथवा दस या बीस करोड़ अथवा जो भी सीमा निश्चित की गई हो उससे अधिक ऋण न लेगी। किन्तु जिस उद्देश्य से ऋण लिया जायेगा उसे गुप्त रखा जा सकता है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है कि किस उद्देश्य से ऋण लिया जायेगा क्योंकि उसी से आगे चलकर हमें सहायता मिल सकती है अथवा हमारे मार्ग में बाधा पड़ सकती है अथवा हमारी रक्षा हो सकती है या हम विनष्ट हो सकते हैं। संसद की सीमायें निश्चित करने से मेरे विचार से यह विषय कहीं अधिक सारपूर्ण है और मुझे आशा है कि सभा इस विषय के इस अंग पर विचार करेगी। ऋण किस उद्देश्य से लिया जायेगा यह एक आधारभूत प्रश्न है। यदि राष्ट्रपति अथवा कार्यपालिका अमरीका से ऋण लेते समय कोई ऐसा गुप्त करार करे जिसमें राजनीतिक मामलों के सम्बन्ध में अथवा सेना के सम्बन्ध में भविष्य में युद्ध छिड़ने पर प्रभाव में आने वाला कोई वचन दिया गया हो तो उससे उस देश को अन्य देशों के विरुद्ध कार्यवाही करने में सहायता मिल सकती है। क्या हम ऐसी भयंकर स्थिति उत्पन्न होने देना चाहते हैं? इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद को इस प्रकार संशोधित कर देना चाहिये कि संसद केवल ऋण लेने और प्रत्याभूति देने की सीमायें ही निश्चित न कर सके बल्कि यह भी देख सके कि ऋण ठीक उद्देश्य से लिया जा रहा है और प्रत्याभूति भी ठीक उद्देश्य से दी जा रही है और स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसकी आवश्यकता है और यह कि वह संसद द्वारा स्वीकृत अन्तर्देशीय तथा विशेषत: वैदेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीति के अनुरूप है। यदि कार्यपालिका संसद द्वारा स्वीकृत अथवा आगे चलकर स्वीकृत होने वाली नीति के विरुद्ध किन्हीं शर्तों पर ऋण लेगी तो संसद और कार्यपालिका के बीच कलह हो सकता है। किन्तु कार्यपालिका बिना संसद से पूछे हुये जो वचन दे चुकेगी और उन वचनों के आधार पर जो धन उधार ले चुकेगी उसके कुप्रभाव को उस समय निराकृत न किया जा सकेगा। भविष्य में जो स्थिति उत्पन्न हो सकती है उसके सम्बन्ध में हमें सावधान रहना चाहिये। मैं सभा से यह निवेदन करता हूं कि यह कोई ऐसा साधारण विषय नहीं है जिसके सम्बन्ध में हम मोटी तौर से

[श्री एच.वी. कामत]

विचार करके निर्णय कर लें और वह केवल इस कारण कि डॉ. अम्बेडकर अथवा मसौदा-समिति इस पर विचार करने के लिए तैयार नहीं है। मैं भारत के भविष्य को ध्यान में रखते हुये और भारत की तथा संसार की शांति, स्वतन्त्रता और समुन्नति को ध्यान में रखते हुए, जिनसे हम सब को प्रेम है यह अनुरोध करता हूं कि इस सभा को इस अनुच्छेद पर तथा इस पूरे अध्याय पर, अन्य अनुच्छेदों पर साधारणतया जिस प्रकार विचार किया जाता है उसकी अपेक्षा अधिक विचार करना चाहिये। मुझे आशा है कि संसद का अनुमोदन केवल इस सम्बन्ध में प्राप्त न किया जायेगा कि किस सीमा तक धन उधार लिया जा रहा है बल्कि इस सम्बन्ध में भी प्राप्त किया जायेगा कि किस उद्देश्य से धन उधार लिया जा रहा है और संसद जिस अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीति को निर्धारित करेगी उसी के अनुरूप राष्ट्रपति कार्य करेगा।

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मुझे यह मत मान्य है कि ऋण लेने के सम्बन्ध में प्रत्येक कार्यपालिका का कार्य है। किन्तु संसद द्वारा निर्धारित की हुई सीमाओं के अन्दर ऋण लेने की शक्ति को कार्यपालिका शक्ति नहीं कहा जा सकता है। इस दृष्टि से मैं यह कहना चाहता हूं कि ऋण लेने का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है और राष्ट्रीय प्रतिभूति को प्रयोग में लाने का प्रश्न एक नाजुक प्रश्न है। वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा वर्तमान पीढ़ी के ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के हितों को भी ध्यान में रखते हुऐ इस प्रश्न पर जितनी सावधानी से विचार किया जाये उतना कम है। हम यह जानते हैं कि जिस भारत-राजस्व का इस खण्ड में उल्लेख है उसकी प्रतिभूति, कम से कम आर्थिक दृष्टिकोण से, एक साधारण प्रतिभूति है। लगभग दस वर्षों से हमारी आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रही है और हमारे आयव्ययक तथा राष्ट्रीय वित्त में जो घाटा रहा है उसमें कमी होने के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते। हम कई योजनाओं को प्रयोग में लाये हैं और उनके आधार पर हम यह आशा कर सकते हैं कि दस या पन्द्रह वर्ष के अन्दर यह कमी पूरी हो जायेगी। किन्तु चूंकि मुझे यह दिखाई देता है कि चूंकि हमारी आर्थिक स्थिति गिरी हुई है इसलिये इस समय और कुछ वर्षों तक हमें अवश्य ही ऋण लेना पड़ेगा और हम इस शक्ति को सावधानी से निगमित, सीमित अथवा निर्बन्धित न कर सकेंगे।

इस दृष्टि से, मेरे विचार से, यदि संविधान में यह शक्ति निश्चित रूप से कार्यपालिका को दे दी गई तो उससे अन्याय होगा और केवल विधान-मण्डल के लिये ही अन्याय न होगा किन्तु, जैसाकि मैं कह चुका हूं, आने वाली पीढ़ियों के हितों के प्रति भी अन्याय होगा। इस कारण संसद को ऋण लेने की सीमायें निश्चित करके और प्रतिभूति अथवा प्रत्याभूति देने की शर्तें निर्धारित करके कार्यपालिका की ऋण लेने की शक्ति का नियमन ही न करना चाहिये बल्कि उसे, मेरे विचार से, प्रत्येक वर्ष 'उपाय तथा साधन अधिनियम' द्वारा अथवा वित्त अधिनियम द्वारा यह भी व्यक्त कर देना चाहिये कि कितना धन उधार लिया जायेगा ताकि उसे समय समय पर तथा प्रत्येक वर्ष यह सूचना प्राप्त होती रहे कि कितना राष्ट्रीय ऋण है और वह उसके लिये व्यवस्था कर सके। जहां तक मैं समझ पाया हूं, यह प्रश्न इससे भी भयंकर है क्योंकि सम्भव है कि देश से ही ऋण लेने से काम न चले और बाहर से भी ऋण लेना पड़े। आज हम जैसी स्थिति समझे हुए हैं उससे वह स्थिति कहीं अधिक संकटापन्न होगी। कई ऐसे देशों का,

जो हमेशा ऋणी रहे हैं, यह कटु अनुभव रहा है कि ऋणदाता उन पर समय-समय पर प्रभाव डालता रहा है और ऐसी प्रतिभूति अथवा प्रत्याभूति की मांग करता रहा है जो उनके सामर्थ्य के बाहर थी। मैं बहुत पहले का कोई उदाहरण नहीं देना चाहता। एक ऐसा देश भी, जो किसी समय संसार का साहूकार था, अब ऐसी स्थिति में है कि उसकी साख पर सन्देह प्रकट किया जाता है। मेरा मतलब इंग्लिस्तान से है। आज संसार का मुख्य साहूकार उसके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने का आग्रह कर रहा है और इस प्रकार की प्रवृत्ति दिखा रहा है। यह कहा जाता है कि इंग्लिस्तान की वर्तमान सरकार धीरे-धीरे पूर्ण राष्ट्रीयकरण की जिस नीति का अनुसरण कर रही है उससे ऋणदाता को उस देश की सुस्थिर स्थिति अथवा प्रतिभूति पर विश्वास नहीं कर रहा है। इसी कारण कई लोगों की यह सम्मति है कि इंग्लिस्तान और अमरीका के सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं।

मैंने यह उदाहरण केवल यह स्पष्ट करने के लिए दिया है कि एक ऐसे उपबन्ध से संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसके अधीन बिना किसी शर्त के ऋण लेने की शक्ति कार्य पालिका को दे दी जाती है और यदि कोई शर्त रखी जाती है तो वह यह है कि संसद ऋण की धनराशि और समय-समय पर दी जाने वाली प्रत्याभूतियों के सम्बन्ध में सीमायें निश्चित कर सकती है। इस अनुच्छेद की शब्दावली ऐसी है कि इन सीमाओं को निर्धारित करने के सम्बन्ध में भी सन्देह प्रकट किया जा सकता है। "सीमाओं के भीतर, यदि कोई हो" शब्दों का अर्थ यह है कि सीमायें नहीं भी हो सकती हैं और कार्यपालिका बिना किसी सीमा के भीतर रहते हुए भी ऋण ले सकती है और उसे संचित निधि पर भारित कर सकती है।, जिस पर संसद प्रतिवर्ष मत नहीं दे सकेगी। वह ऋण इतना अधिक भी हो सकता है कि देश का भविष्य ही ऋणदाता को रहने के रूप में समर्पित किया जा सकता है।

इस कारण मेरा हृदय भविष्य के सम्बन्ध में आशंकित हो उठता है। मैं इसके लिये तैयार नहीं हूं कि संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध रखा जाये जिसके अधीन कार्यपालिका को जिस सीमा तक वह चाहे उस सीमा तक बिना किसी शर्त के देश में या विदेश में लेने की असीम शक्ति प्राप्त हो जाये। सभा को यह विदित ही है कि मैं पहले भी कार्यपालिका की अपेक्षा संसद को अधिक शक्ति प्रदान करने के पक्ष में तर्क उपस्थित करता रहा हूं। इस सम्बन्ध में मैं यहां तक कहने के लिये तैयार हूं कि राष्ट्रीय साख के मामले में संविधान में संसद की शक्ति को भी निर्बन्धित करने के बारे में एक उपबन्ध होना चाहिये। कार्यपालिका की शक्ति केवल निर्बन्धित ही न करनी चाहिये किन्तु उसे केवल उस अधिनियम को प्रवर्तन में लाने का कार्य सौंपना चाहिये जिसके अधीन प्रत्येक वर्ष ऋण लेने के लिए प्राधिकार प्रदान किया जाये। इससे संसद प्रत्येक वर्ष स्थिति पर विचार कर सकेगी। मैं यहां तक कहता हूं कि संसद की आश्वासन तथा प्रत्याभूति देने की शक्ति भी निर्बन्धित होनी चाहिये। उदाहरणार्थ संसद को उत्पादन के आधार भूत साधनों, जैसे खनिज पदार्थ और नदियों के सम्बन्ध में, जिन पर देश की भावी समृद्धि निर्भर है, प्रत्याभूति देने अथवा उन्हें रहने-रखने की शक्ति प्राप्त न होनी चाहिये। यदि इस सभा को इस प्रकार का उपबन्ध रखना है तो मेरा यह सुझाव है कि इसकी सूचना जनसाधारण को दी जाये क्योंकि संसद द्वारा भी देश के साधनों को रहने-रखने के पूर्व संविधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता हो सकती है।

[प्रो. के.टी. शाह]

जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, और हमेशा कहते आया हूं, सर्वोच्च शक्ति संसद को प्राप्त होनी चाहिये किन्तु देश में और विशेषत: विदेशों में ऋण लेने के सम्बन्ध में मैं संसद की शक्ति को भी सीमित करना चाहता हूं। इसलिये इस अनुच्छेद पर जितनी गम्भीरता से विचार किया जाये उतना कम हैं। मैं आशा करता हूं कि मसौदाकार यह समझते हैं कि इस अनुच्छेद के फलस्वरूप कितनी गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो सकती है और मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे इस पर विचार करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने अन्त में जो भाषण दिया और जिसमें उन्होंने कहा कि हमें एक ऐसा खण्ड समाविष्ट करना चाहिये जिससे ऋण के लिये मंजूरी देने के सम्बन्ध में संसद का प्राधिकार सीमित हो सके, मैं अनुच्छेद 268 के उपबन्धों के बारे में अन्य वक्ताओं के मतभेद को बिल्कुल नहीं समझ पाया। यह स्वीकार किया गया है कि ऋण लेने के सम्बन्ध में कार्यपालिका ही देश की साख के आधार पर वचन दे सकती है क्योंकि इस प्रश्न का एक अंग यह भी है कि ऋण लेने का काम कार्यपालिका का है किन्तु इस अनुच्छेद में यह प्रस्ताव नहीं रखा गया है कि कार्यपालिका की ऋण लेने की शक्ति किसी संसद निर्मित विधि से निर्बन्धित न होगी। इस अनुच्छेद में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि कार्यपालिका की ऋण लेने की शक्ति ऐसी सीमाओं के अन्दर होगी जिन्हें संसद विधि द्वारा नियत करे। यदि संसद कोई विधि नहीं बनायेगी तो संसद का ही दोष होगा, किन्तु मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि कोई भावी संसद इस विषय पर गम्भीरता से विचार नहीं करेगी और इसके सम्बन्ध में कोई विधि नहीं बनायेगी। मैं यह भी कहता हूं कि अनुच्छेद 268 के अधीन संसद एक वार्षिक ऋण-अधिनियम को भी बनायेगी जिससे किसी वर्ष में ऋण लेने की कार्यपालिका की शक्ति निर्धारित की जा सकेगी अथवा सीमित की जा सकेगी। इसलिये मैं यह नहीं समझ पाया कि अनुच्छेद 268 के उपबन्धों के बारे में मतभेद प्रकट करने वाले लोगों को और क्या चाहिये। यह दूसरी बात है कि हम इस पर विचार करें कि देश की साख के आधार पर संसद की वचन देने की शक्ति को सीमित करने के बारे में हमें कोई उपबन्ध रखना चाहिये क्योंकि उसे यह कहने की स्वतन्त्रता होगी, कि देश के कुछ साधनों को रहेन रख कर ऋण न लिया जा सकेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि ऋणों के सम्बन्ध में प्रत्याभूति देने की अपनी शक्ति को सीमित करने में इस अनुच्छेद से संसद के लिये क्या रुकावट है। इसलिये मेरा यह विचार है कि सभी आकस्मिकताओं का सामना करने के लिए यह अनुच्छेद, वर्तमान रूप में पर्याप्त है और जैसाकि मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर कह चुके हैं, हम यह आशा करते हैं, और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है, कि संसद इस विषय पर गम्भीरता से विचार करेगी और ऐसी विधियों को बनाती रहेगी जिनसे संघ की ऋण लेने की शक्ति सीमित होगी। मैं यह भी कहता हूं कि मैं यह आशा ही नहीं करता हूं बल्कि यह विश्वास भी रखता हूं कि इस अनुच्छेद के अधीन संसद को जिन कर्तव्यों का पालन करना है उनका वह अवश्य पालन करेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या डॉ. अम्बेडकर "यदि कोई हों" शब्दों को निकाल देने के लिये सहमत नहीं हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस पर विचार कर रहा था किन्तु मेरे विचार से इससे कोई लाभ न होगा क्योंकि "जिन्हें संसद समय-समय पर" शब्द भी प्रयुक्त हैं।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि 'भारत की संचित निधि' शब्दों को रखने के सम्बन्ध में जो संशोधन है वह स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्ताव यह है:

"अनुच्छेद 268 में, 'revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 268, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 268, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 269

***अध्यक्षः** कुछ संशोधन छपे हुए संशोधनों के अंक 2 के पृष्ठ 313 में दिये हुए हैं।

(संशोधन संख्या 2971 और 2972 उपस्थित नहीं किये गये।)

तब हम संशोधन संख्या 107 को उठाते हैं जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (1) में से 'for the time being specified in Part-I of the First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (1) में 'revenues of the State' (राज्य के राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' (राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2972 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 269 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

'(2) The Government of India may, subject to such conditions as may be laid down by or under any law made by Parliament, make loans to any State or, so long as any limits fixed under article 268 of this Constitution

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

are not exceeded, give guarantees in respect of loans raised by any State and any sums required for the purpose of making such loans shall be charged on the Consolidated Fund of India.' "

[(2) भारत सरकार ऐसी शर्तों के साथ जैसी कि संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन रखी जायें, किसी राज्य को उधार दे सकेगी, अथवा जहां तक इस संविधान के अनुच्छेद 268 के अनुसार नियत किन्हीं सीमाओं का उल्लंघन न होता हो वहां तक ऐसे किसी राज्य के द्वारा लिये गये उधारों के बारे में प्रत्याभूति दे सकेगी तथा, जो राशियां ऐसे उधार देने के प्रयोजन के लिये आवश्यक हों, वे भारत की संचित निधि पर भारित होंगी।]

मेरे संशोधन 107 द्वारा केवल यह महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है कि जहां पहले इस मामले के सम्बन्ध में भारत सरकार को पूरी स्वतन्त्रता दी गई थी वहां अब भारत सरकार कुछ ऐसी शर्तों के अधीन कार्य कर सकेगी जिन्हें संसद किसी विधि द्वारा या किसी विधि के अधीन निर्धारित करेगी।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (3) में से 'for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा भाग 3 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं संशोधन संख्या 107 को उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** संशोधन संख्या 146 मेरे विचार से एक शाब्दिक संशोधन है और मैं यह चाहता हूं कि उस पर मसौदा-समिति ही विचार करे।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 268 द्वारा संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह विधि द्वारा उन धन-राशियों को निश्चित करे जिन्हें प्रान्तीय सरकारें उधार ले सकती हैं। अनुच्छेद 269 का मसौदा पहले भिन्न था। अब डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 269 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनके फलस्वरूप संघ सरकार के वित्त-मंत्री पर और भी अधिक भार पड़ जाता है। उनके फलस्वरूप भारत सरकार के महा-लेखापरीक्षक पर भी अधिक भार पड़ जाता है क्योंकि बिना उसकी मन्त्रणा के संसद निर्णय न कर सकेगी।

इस समय संघ सरकार पर राज्यों के ऋणों का भी उत्तरदायित्व है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह भी कहा गया है कि इस प्रकार के ऋण भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर लिये जायेंगे और राज्य के राजस्व की प्रतिभूति पर लिये जायेंगे। श्रीमान्, यदि हम विभिन्न प्रान्तीय सरकारों के वित्त की परीक्षा करें तो हमें यह विदित हो जायेगा कि उस कुछ करोड़ रुपये के ऋण के अतिरिक्त, जो 1936 में कांग्रेस के प्रान्तों के प्रशासन को अपने हाथ में लेने पर लिया गया था, अन्य सभी ऋण भारत सरकार की प्रतिभूति पर लिये गये हैं और आगे चलकर इस भार को संघ सरकार को उठाना होगा। हमने हाल में यह चर्चा भी सुनी कि कुछ प्रान्तों का यह विचार है कि वे जितना धन चाहें उधार ले सकते हैं। कुछ प्रान्तों ने विद्रोहात्मक भावनायें प्रकट की और यह कहा कि वे जितना भी ऋण चाहें ले सकते हैं और किसी प्रकार की हुण्डियां अथवा प्रतिभूतियां भी दे सकते हैं चाहे वे संक्रमणीय हों अथवा असंक्रमणीय। हम में से जिन लोगों की यह धारणा है कि सभी ऋण संघ सरकार की प्रतिभूति पर लिये जायें उन्होंने उस समय यह अनुभव किया कि यदि ऋण लेने के सम्बन्ध में प्रान्तों को स्वतन्त्रता दी गई तो संघ सरकार की साख की हानि होगी। यह मेरी समझ में नहीं आता कि प्रान्तीय सरकारों के राजस्व की साख क्या है। उसे कौन निश्चित करेगा? क्या संविधान के प्रवर्तन में आने पर महालेखापरीक्षक यह निश्चित करेगा कि अमुक राज्यों तथा प्रान्तों को उधार लेने की अमुक शक्ति प्राप्त होगी?

दुर्भाग्य से मुझे अनुच्छेद 268 की शब्दावली नापसंद है। संसद विधि द्वारा संघ के लिये तथा विभिन्न प्रान्तों के लिये प्रत्येक वर्ष उधार ली जाने वाली राशियों को कैसे निश्चित करेगी? श्रीमान्, जहां तक मुझे स्मरण है, पिछले पच्चीस वर्षों में इस देश पर शासन करने वाली विदेशी सरकार ने किसी अवसर पर भी अपनी ऋण लेने की नीति के सम्बन्ध में संसद से परामर्श नहीं किया। उसे व्याख्यात्मक ज्ञापन के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से बताया जाता था। भारत सरकार ने कभी भी अपनी ऋण लेने की नीति पर वाद-विवाद करने की प्रथा को नहीं चलाया। जब आय-व्ययक पारित होता है तो उसके साथ ही ऋण लेने की नीति के लिये भी मंजूरी दे दी जाती है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 269 के अधीन राज्यों के वित्त मंत्री अपने प्रदेशों के विकास के उद्देश्य से धन-राशियों की मांग कर सकते हैं। अनुच्छेद 269 के उपबन्धों के अधीन वे जितने भी धन की मांग करना चाहे कर सकते हैं। वह धन राज्य के राजस्व पर भारित होगा। किन्तु इसका निर्णय कौन करेगा कि कोई प्रान्त ऋण चुकाने के लिए सक्षम है या नहीं? भारत सरकार प्रान्तों की सरकारों की ओर से इस समय भी बड़ी-बड़ी विकास-योजनाओं के सम्बन्ध में वचनबद्ध है। पूर्वी पंजाब में भाखड़ा बांध और उड़ीसा में हीराकुण्ड बांध बनने जा रहा है तथा बंगाल में दामोदर घाटी निगम स्थापित किया गया है और बिहार में कोसी बांध बनने जा रहा है, जिसकी मेरे बिहार के मित्रों को बहुत चिन्ता है। इसका निर्णय कौन करेगा कि इन विकास योजनाओं के लिये जो धन उधार लिया गया है उसके लिये इन प्रान्तों की साख पर्याप्त है या नहीं? मैं यह चाहता हूं कि इसका निर्णय कोई न कोई व्यक्ति करे। श्रीमान्, चाहे हम अनुच्छेद 268 और अनुच्छेद 269 में जिस प्रकार के भी उपबन्ध रखें किन्तु हम इस भार का संसद पर ही न डालें। मैं यह कह सकता हूं कि पिछले पच्चीस वर्षों से संसद ऋण के प्रश्न की ओर बहुत कम ध्यान देती रही है। जहां तक मुझे स्मरण है, पिछले पच्चीस वर्षों में ऋण लेने की नीति पर केवल छ: बार सम्भवत: वाद-विवाद हुआ होगा। क्या आने वाले कुछ ही वर्षों में संघ की तथा

[श्री बी. दास]

प्रान्तों की साख पर विचार-विमर्श करके हम अपने वित्तीय ज्ञान में वृद्धि कर लेंगे? यह निश्चित रूप से कौन कह सकेगा कि अमुक-अमुक प्रान्तों को इतने करोड़ रुपये से अधिक ऋण नहीं दिया जायेगा? दुर्भाग्य से जब इन विषयों पर विचार होते समय प्रान्तीय भावनायें प्रबल हो उठती हैं तो सदस्य अपने-अपने प्रान्तों को अधिक लाभ प्राप्त कराने के लिये लड़ने लगते हैं। मेरे विचार से अनुच्छेद 268 और अनुच्छेद 269 का आशय यह है कि महा-लेखापरीक्षक को अधिक शक्तियां प्रदान की जायेंगी। महा-लेखापरीक्षक पुनर्विलोकन करेगा और प्रत्येक वर्ष संघ सरकार को छोड़कर प्रत्येक प्रान्त की साख के सम्बन्ध में संसद के सदस्यों के सम्मुख एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। महा-लेखापरीक्षक इस समय यह कार्य नहीं करता है। मैं यह बता रहा हूं कि इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने में हमारे सामने कौन सी कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हैं। दुर्भाग्य से भारत सरकार का वित्त-विभाग अब भी पहले के ही रास्ते पर चल रहा है और महा-लेखापरीक्षक को केवल एक समवाय के लेखापरीक्षक के समान समझता है जिसमें निदेशक उससे यह कहते रहते हैं कि वह त्रुटियों और कुप्रथाओं की ओर ध्यान न दे। यदि सभा अनुच्छेद 269 को उसके वर्तमान रूप में स्वीकार करती है तो उसे उसमें कोई ऐसा उपबन्ध रख देना चाहिये जिसके अधीन महा-लेखापरीक्षक प्रान्तों की साख के सम्बन्ध में संसद के सामने अवश्य ही एक प्रतिवेदन रखे। हम में से अधिकांश लोग राजनीतिज्ञ हैं और इस विषय का ज्ञान नहीं रखते। जिस जनतंत्र के युग ने हमें जन्म दिया है वह वित्त-विशेषज्ञों को जन्म नहीं देता। भावी विधान-मण्डलों में न वाणिज्यिक होंगे और न ऐसे लोग होंगे जिन्हें श्रेष्ठि चत्वर अथवा हमारे देश की वित्तीय साख के बारे में जानकारी होगी। इस प्रकार अनुच्छेद 269 से संसद के कर्तव्य दूने हो जाते हैं। मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से यह पूछता हूं कि वे यह कैसे कहते हैं कि संसद प्रत्येक राज्य की तथा संघ की साख की बातें समझ सकेगी और संघ सरकार अथवा राज्यों द्वारा उधार लिये जाने वाले धन की राशियों को सीमित कर सकेगी। अनुच्छेद 268 के अधीन संसद को भारत की साख को बनाये रखने की शक्ति प्राप्त है और अनुच्छेद 269 के अधीन इस सम्बन्ध में और भी अधिक शक्ति प्राप्त होने जा रही है। किन्तु भारत की साख बनी कैसे रहेगी? मुझे अनुच्छेद 269 से बहुत आशंका है। यदि कोई प्रान्त केन्द्र के विरुद्ध और भारतीय राष्ट्र के एकीकरण के विरुद्ध विद्रोह करेगा तो राष्ट्र की साख बनी नहीं रहेगी। उसे बनाये रखने के लिए किसी अन्य उपाय पर विचार करने की आवश्यकता है।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रोफेसर शाह जब अनुच्छेद 268 पर बोल रहे थे तो मेरे हृदय में एक प्रश्न उठा और उसी के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। प्रोफेसर शाह ने यह सुझाव उपस्थित किया कि भारत सरकार को और संसद को भी ऋण लेने के लिये देश के आधारभूत साधनों को रेहन रखने का अधिकार न होना चाहिये। मैं उनके सुझाव से पूर्णतया सहमत हूं। किन्तु जहां तक मैं अनुच्छेद 268 और 269 के आशय को समझ पाया हूं, उनके अधीन यह प्रश्न ही नहीं उठता कि किसी ऋण को लेने के लिए भारत सरकार अथवा कोई राज्य किसी विशेष साधन को रेहन रखे। भारत सरकार को यह कहने की स्वतन्त्रता न होगी कि अमेरिका से ऋण लेने के लिये वह इस देश की रेलों को रेहन रखती है। केवल भारत की पूरी संचित

निधि की ही प्रतिभूति दी जा सकेगी। इसका अर्थ यह है कि वह भारत के लोगों की साख की एक साधारण प्रतिभूति होगी। देश के अन्दर से या बाहर से ऋण लेने के लिये किसी विशेष साधन अथवा रेलों को रेहन रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। इसलिये इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की आशंका न होनी चाहिये। मेरे विचार से अनुच्छेद 268 और अनुच्छेद 269 का सीधा-सादा अर्थ लगाने से यह स्पष्ट हो जायेगा। किन्तु मैं डॉ. अम्बेडकर के सामने यह सुझाव रखता हूं कि यदि उनकी शब्दावली से कुछ भी सन्देह प्रकट होता है तो वे उसे मसौदा-समिति से दूर करवा लें। यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि किसी विशेष साधन की प्रतिभूति न दी जायेगी बल्कि सारे भारत की साख की अथवा किसी राज्य की साख की ही प्रतिभूति दी जायेगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मेरे विचार से किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (1) में से 'for the time being specified in Part I of the First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (1) में 'revenues of the State' (राज्य के राजस्व) शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' (राज्य की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2972 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 269 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

'(2) The Government of India may, subject to such conditions as may be laid down by or under any law made by Parliament, make loans to any State or, so long as any limits fixed under article 268 of this Constitution are not exceeded, give guarantees in respect of loans raised by any State, and any sums required for the purpose of making such loans shall be charged on the Consolidated Fund of India.' "

[(2) भारत सरकार ऐसी शर्तों के साथ, जैसी कि संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन रखी जायें, किसी राज्य को उधार दे सकेगी, अथवा जहां तक इस संविधान के अनुच्छेद 268

[अध्यक्ष]

के अनुसार नियत किन्हीं सीमाओं का उल्लंघन न होता तो वहां तक ऐसे किसी राज्य के द्वारा लिये गये उधारों के बारे में प्रत्याभूति दे सकेगी तथा, जो राशियां ऐसे उधार देने के प्रयोजन के लिये आवश्यक हों, वे भारत की संचित निधि पर भारित होंगी।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 269 के खण्ड (3) में से 'for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule' (इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा भाग 3 में उल्लिखित) शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 269, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 269, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 5 और 6

***अध्यक्षः** अब हमें मूल मसौदे के 5 और 6 अनुच्छेदों को उठाना है। मैं यह देखता हूं कि संशोधनों का एक अरण्य उपस्थित है। इन दो अनुच्छेदों के सम्बन्ध में लगभग 130 या 140 संशोधनों की सूचना दी गई है। मेरे विचार से उचित यह होगा कि डॉ. अम्बेडकर इन अनुच्छेदों के अपने तैयार किये हुए अंतिम मसौदे को प्रस्तुत करें और फिर मैं इस संशोधित मसौदे के सम्बन्ध में जो संशोधन होंगे उन्हें उठाऊंगा। मेरे विचार से 5 और 6 दोनों अनुच्छेदों को एक साथ उठाया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर।

***प्रो. के.टी. शाहः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि छपी हुई सूची के संशोधनों का क्या होगा? वे सब मूल मसौदे के सम्बन्ध में हैं। संशोधनों पर विचार करने के लिए आपने जो सुझाव प्रस्तुत किया है उसे मैं नहीं समझ पाया हूं।

***अध्यक्षः** यदि कोई सारवान संशोधन हुआ और वह मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तुत संशोधित मसौदों में स्थान पा सकता हो तो मैं उसे अवश्य ही उठाऊंगा। किन्तु मैं यह चाहता हूं कि सदस्य मुझे बतायें कि वे किस संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यदि मूल मसौदा उपस्थित न किया गया तो उसके सम्बन्ध में सभी संशोधनों का निराकरण हो जाता है।

***अध्यक्षः** हम मूल-मसौदे को उपस्थित नहीं कर रहे हैं किन्तु यह मान लिया जायेगा कि वह उपस्थित हो चुका है। तभी अन्य संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं।

सदस्य देखेंगे कि डॉ. अम्बेडकर ने कुछ संशोधनों की सूचना दी है। वे सदस्यों के पास भेजे जा चुके हैं। पहला संशोधन सूची 1 का संशोधन संख्या 1 है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, क्या मैं संशोधनों की ओर संकेत कर सकता हूं? नागरिकता विषयक खण्ड के बारे में जिन संशोधनों की सूचना दी गई है वे विभिन्न सूचियों में छपे हुये हैं। आरम्भ में मैं सदस्यों का ध्यान उन सूचियों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। पहला संशोधन सूची 1 का संशोधन संख्या 1 है। इसके बाद सूची 4 के संशोधन संख्या 128, 129, 130, 131, 132 और 133 आते हैं। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मसौदा-समिति के यही विभिन्न प्रस्ताव हैं। यदि इन संशोधनों को एक-एक करके अलग-अलग उपस्थित किया गया तो मेरे विचार से सभा उन्हें स्पष्टतः और पूर्णतः नहीं समझ पायेगी। इसलिये मैं एक सम्मिलित संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं जिसमें संशोधन संख्या 1, 128, 129, 130 और 133 समाविष्ट होंगे। इसके पश्चात् मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी अन्य दो संशोधनों को अर्थात सूची 4 के संशोधन संख्या 131 और 132 को उपस्थित करेंगे। संशोधन संख्या 129 में "प्रस्तावित अनुच्छेद 5-क के" शब्दों के स्थान पर "प्रस्तावित अनुच्छेद 5 के" शब्द होने चाहियें। यह छापे की त्रुटि है। इस प्रारम्भिक व्याख्या के साथ मैं अपने संशोधन को उपस्थित करता हूं:

"अनुच्छेद 5 और 6 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखे जायें:

Citizenship at the date of commencement of this Constitution.

5. At the date of commencement of this Constitution, every person who has his domicile in the terriroty of India and–

(a) who was born in the territory of India; or

(b) either of whose parents was born in the territory of India; or

(c) who has been ordinarily resident in the terriroty of India for not less than five years immediately preceeding the date of such commencement,

shall be a citizen of India provided that he has not voluntarily acquired the citizenship of any foreign State.

Rights of citizenship of certain persons who have migrated to India from Pakistan.

5-A. Notwithstanding anything contained in article 5 of this Constitution, a person who has migrated to the territory of India from the territory now included in Pakistan shall be deemed to be a citizen of India at the date of

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

commencement of this Constitution if—

(a) he or either of his parents or any of his grand-parents was born in India as defined in the Government of India Act, 1935 (as originally enacted); and

(b) (i) in the case where such person has so migrated before the nineteenth day of July 1948, he has ordinarily resided within the territory of India since the date of his migration, and

(ii) in the case where such person has so migrated on or after the nineteenth day of July 1948, he has been registered as a citizen of India by an officer appointed in this behalf by the Government of the Dominion of India on an application made by him therefor to such officer before the date of commencement of this Constitution in the form prescribed for the purpose by that Government:

Provided that no such registration shall be made unless the person making the application has resided in the territory of India for at least six months before the date of his application.

Rights of citizenship of certain migrants of Pakistan.

5-AA. Notwithstanding anything contained in articles 5 and 5-A of this Constitution a person who has after the first day of March 1947, migrated from the territory of India to the territory now included in Pakistan shall not be deemed to be a citizen of India:

Provided that nothing in this article shall apply to a person who, after having so migrated to the territory now included in Pakistan has returned to the territory of India under a permit for resettlement or permanent return issued by or under the authority of any law and every such person shall for the purposes of clause (b) of article 5-A of this Constitution be deemed to have migrated to the territory of India after the nineteenth day of July 1948.' "

इस संविधान के प्रारंभ की तारीख पर नागरिकता

[5. इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत राज्य क्षेत्र में अधिवास है, तथा

(क) जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था; अथवा

(ख) जिसके जनकों में से कोई भारत-राज्य क्षेत्र में जन्मा था; अथवा

(ग) जो ऐसे आरम्भ की तारीख से ठीक पहिले कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है, भारत का नागरिक होगा, परन्तु उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वयं अवाप्त न की होनी चाहिये।

पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन कर आये कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार

5-क. अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र से भारत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा–

(क) यदि वह अथवा उसके जनकों में से कोई अथवा उसके महाजनकों में से कोई भारत सरकार के अधिनियम 1935 (यथामूलतः अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था; तथा

(ख) (i) जबकि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् 1948 की जुलाई के उन्नीसवें दिन से पूर्व प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह अपने प्रव्रजन की तारीख से भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है; अथवा

(ख) (ii) जबकि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् 1948 की जुलाई के उन्नीसवें दिन या उसके पश्चात् इस प्रकार प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा विहत प्रपत्र पर और रीति से नागरिकता प्राप्ति के आवेदन-पत्र के अपने द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख से पहले ऐसे पदाधिकारी को, जिसे उस सरकार ने इस प्रयोजन के लिये नियुक्त किया है, दिये जाने पर उस पदाधिकारी द्वारा भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया गया है:

परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने आवेदन पत्र की तारीख से ठीक पहले कम से कम छह महीने भारत राज्य-क्षेत्र का निवासी न रहा हो तो वह इस प्रकार पंजीबद्ध नहीं किया जायेगा।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वालों नागरिकता के अधिकार

5-कक. इस संविधान के अनुच्छेद 5 और 5 (क) में किसी बात के होते हुए भी जो व्यक्ति 1947 के मार्च के पहले दिन के पश्चात् भारत राज्य-क्षेत्र से पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा:

परन्तु इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन के पश्चात् भारत राज्य-क्षेत्र को ऐसी अनुज्ञा के अधीन लौट आया है जो पुनर्वास के लिये या स्थायी रूप से लौटने के लिये किसी विधि के द्वारा या अधीन दी गई है, तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति इस संविधान के अनुच्छेद 5 (क) के खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिये भारत राज्य-क्षेत्र को 1948 की जुलाई के 19वें दिन के पश्चात् प्रव्रजन करने वाला समझा जायेगा।]

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): आपने यह कहा था कि इसे श्री टी.टी. कृष्णमाचारी उपस्थित करेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैंने उसे सम्मिलित अनुच्छेद में समाविष्ट कर लिया है क्योंकि वे जिस संशोधन को उपस्थित करने वाले हैं उसे मैं स्वीकार करना चाहता हूं।

Right of citizenship of certain persons of Indian origin residing outside India.

"5-B. Notwithstanding anything contained in articles 5 and 5-A of this Constitution, any person who or either of whose parents or any of whose grandparents was born in India as defined in the Government of India Act, 1935 (as originally enacted) and who is ordinarily residing in any territory outside India as so defined shall be deemed to be a citizen of India if he has been registered as a citizen of India by the diplomatic or consular representative of India in the country where he is for the time being residing on an application made by him therefore to such diplomatic or consular representative, whether before or after the commencement of this Constitution, in the form prescribed for the purpose by the Government of the Dominion of India or the Government of India.

Continuance of the rights of citizenship

5-C. Every person who is a citizen of India under any of the foregoing provisions of this Part shall, subject to the provisions of any law that may be made by Parliament, continue to be such citizen.

Parliament to regulate the right of citizenship by law.

6. Nothing in the foregoing provisions of this Part shall derogate from the power of Parliament to make any provision with respect to the acquisition and termination of citizenship and all other matters relating to citizenship.

भारत के बाहर रहने वाले भारतीय उद्भव के कुछ व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकार

[5.(ख) इस संविधान के अनुच्छेद 5 और 5 (क) में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो या जिसके जनकों में से कोई अथवा महाजनकों में से कोई भारत सरकार के अधिनियम 1935 (यथा मूलत: अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था, तथा जो सामान्यतया इस प्रकार परिभाषित भारत के बाहर किसी देश में रहता है, भारत का नागरिक समझा जायेगा, यदि वह भारत डोमीनियन सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा विहित प्रपत्र पर और रीति से नागरिकता प्राप्ति के आवेदन पत्र के अपने द्वारा उस देश में, जहां वह तत्समय निवास कर रहा है, भारत के राजनीयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधियों को इस संविधान के प्रारम्भ से पहले या बाद, दिये जाने पर ऐसे राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधि द्वारा भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया गया है।

नागरिकता के अधिकारों का बना रहना।

5. (ग) प्रत्येक व्यक्ति जो इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में से किसी के अधीन भारत का नागरिक है, ऐसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, जो संसद द्वारा निर्मित की जाये, भारत का वैसा नागरिक बना रहेगा।

संसद विधि द्वारा नागरिकता अधिकार का विनियमन करेगी

6. इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में की कोई बात नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से सम्बद्ध अन्य सब विषयों के बारे में उपबन्ध बनाने की संसद की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करेगी।]

श्रीमान्, जब श्री टी.टी. कृष्णमाचारी मेरे मसौदे के सम्बन्ध में अपने संशोधनों को उपस्थित कर चुकेंगे और मसौदा पूरा हो जायेगा तभी मैं उसके सम्बन्ध में बोलूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह छपे हुए संशोधनों में सें कई संशोधनों को लेकर तथा जल्दी में उनका एकीकरण करके उपस्थित किया गया है। यद्यपि मैंने बहुत समय तक वकालत की है किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि कई संशोधनों का एकीकरण किस प्रकार किया जा सकता है और मैं कह नहीं सकता कि इससे कार्यविधि का खण्डन हुआ है या नहीं। बहुत से संशोधनों का एकीकरण करने में तथा उनका मसौदा फिर से तैयार करने में प्राय: अनजाने कार्य विधि का खण्डन हो जाता है। चाहे हमारे संशोधनों को सम्मिलित मसौदे में स्थान दिया जाये या न दिया जाये, अथवा चाहे उन्हें उसी रूप में उपस्थित किया जाये या परिवर्तित रूप से उपस्थित किया जाये किन्तु हमें स्वयं उन पर विचार करने में कठिनाई होगी।

मेरा यह निवेदन है कि सूची 1 में संशोधन संख्या 1 में और अन्य सूचियों के कुछ अन्य संशोधनों में, जिनका अब एकीकरण किया गया है, तथा संविधान के मसौदे के अनुच्छेदों में सारवान अन्तर है और जो तर्क मैं पहले एक बार उपस्थित कर चुका हूं वह इस प्रसंग में भी युक्तियुक्त हैं। जिन खण्डों को अनुच्छेद 5 और 6 के संशोधनों के रूप में उपस्थित किया जा रहा है वे वास्तव में नये खण्ड हैं जैसे कि प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 5(क), 5(ख) और (ग)। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 5(कक) के समान नवीन अनुच्छेद भी हैं और संशोधन संख्या 131 में एक नये परन्तुक को प्रविष्ट करने का प्रस्ताव है और संशोधन संख्या 130 बिल्कुल नवीन संशोधन है। संशोधन संख्या 133 में भी अनुच्छेद 6 का नवीन मसौदा प्रस्तुत किया गया है। श्रीमान् मेरा यह निवेदन है कि ये संशोधन अथवा यह सम्मिलित संशोधन संविधान के संशोधन के समान ही है अथवा यह कहा जा सकता है कि संविधान में बहुत से संशोधनों को स्थान देने का प्रस्ताव है। जैसाकि मैंने पहले एक बार कहा था, आपने नियमित रूप से संशोधनों को भेजने की एक अवधि निश्चित की थी और बाद को आपने यह निर्णय किया था कि केवल संशोधनों पर संशोधन भेजे जायें और यह निर्णय प्रयोग में भी आया था। अब यह संशोधन अथवा सम्मिलित संशोधन उपस्थित किया गया है जिसमें कई संशोधन समाविष्ट किये गये हैं और जो वास्तव में संविधान का ही संशोधन हैं और इसके कारण बहुत सी कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। हम प्रत्येक दिन संविधान के मसौदे से दूर हटते चले जा रहे हैं और आज तो उससे बहुत दूर हट गये हैं। मुझे आशा है कि मूल मसौदे से दूर हटने की भी एक सीमा होगी। श्रीमान्, मैं आपसे पूछता हूं कि क्या अब ऐसे संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा दी जा सकती है जिनके द्वारा बिल्कुल नये खण्ड प्रविष्ट होते हैं और जिनसे वास्तव में संविधान का ही संशोधन हो जाता है? यदि उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा दी जाती है तो क्या यह उचित न होगा कि हमें एक सम्मिलित तथा संशोधित मसौदा दिया जाये ताकि हम उस पर विचार कर सकें और यह देख सकें कि उसमें हमारे संशोधन स्थान पा सकते हैं या नहीं, अथवा उनमें परिवर्तन करने की या मसौदे में ही संशोधन करने की आवश्यकता है या नहीं? श्रीमान्, मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि इस प्रक्रिया को व्यवहार में लाने में जो कठिनाइयां होंगी उन पर विचार किया जाये। कुछ समय से खण्ड 5 पर सभा विचार कर रही है और अब नियमित रूप से केवल संशोधनों पर संशोधन ही उपस्थित किये जा सकते हैं किन्तु प्रत्येक दिन नये संशोधनों को तथा नये विचारों को प्रस्तुत किया जा रहा है। अनुच्छेद 5(क), 5(ख) और 5(ग) नवीन अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद

5 (कक) आज उपस्थित किया गया है और उसका परन्तुक एक भिन्न संशोधन द्वारा उपस्थित किया गया है। अनुच्छेद 5 में जो व्याख्या दी गई थी उसे आज निकाल दिया गया है। ये सब एक आशु संशोधन में सम्मिलित किये गये हैं। मैं यह चाहता हूं कि संविधान को यथासम्भव शीघ्रता से समाप्त कर देना चाहिये अन्यथा नये-नये परिवर्तनों को करने की चाह बढ़ती जायगी। श्रीमान्, मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि इस स्थिति का सामना करने के लिये किसी सुविधाजनक प्रणाली के सम्बन्ध में आप अपना निर्णय सुनायें।

**अध्यक्ष:* मुझे माननीय सदस्य महोदय की इस आपत्ति से बहुत सहानुभूति है कि इस संशोधन में नये विचारों का समावेश है किन्तु सदस्यों को स्मरण होगा कि जब जाड़े के सत्र में संविधान को वाद-विवाद के लिये उठाया गया था तो इन अनुच्छेदों के लिये स्थगित रखा गया था और मेरे विचार से यह स्वीकार किया गया था कि नये संशोधनों को उपस्थित किया जायेगा। ये सब अनुच्छेद और वे अनुच्छेद भी, जो उठाये गये थे पर जिन पर विचार नहीं हुआ था, स्थगित रखे गये थे और इस उद्देश्य से स्थगित रखे गये थे कि मसौदा-समिति मूल मसौदे पर विचार कर सके और जिस प्रसंग में भी आवश्यक हो नये मसौदों को उपस्थित कर सके।

मसौदा-समिति ने इसी दृष्टि से उस मसौदे पर विचार किया और अब नये मसौदों को प्रस्तुत किया है और अपने मसौदे के सम्बन्ध में भी कुछ संशोधन उपस्थित किये हैं। डॉ. अम्बेडकर ने केवल प्रस्तावित संशोधनों को एक साथ रख दिया है और सम्मिलित संशोधन को पढ़कर सुनाया है। किन्तु चूंकि ये संशोधन विभिन्न पृष्ठों और सूचियों में छपे हुए हैं, इसलिये मैं जानता हूं कि सदस्यों को कठिनाई हो सकती है। मैं कार्यालय से यह कहूंगा कि वह सदस्यों के पास डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित सम्मिलित संशोधन की प्रतियां भेजे। हम कल प्रात: डॉ. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुए सम्मिलित संशोधन पर विचार-विमर्श आरम्भ कर सकते हैं और तब तक सदस्य महोदय संशोधनों का सम्मिलित रूप में अध्ययन कर सकते हैं। इस बीच हमारे पास अब जो आधे घण्टे का समय है उसे मैं व्यर्थ नहीं जाने देना चाहता। यदि सदस्यों को कोई और संशोधन उपस्थित करने हैं तो वे उन्हें आज उपस्थित कर सकते हैं ताकि हम कल प्रात: संशोधनों पर और डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत मसौदे पर विचार कर सकें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या हम डॉ. अम्बेडकर के भाषण को आज सुन सकते हैं?

***अध्यक्ष:** जी हां। मैं डॉ. अम्बेडकर से कहूंगा कि वे अपने संशोधन की व्याख्या करें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हमें संशोधन संख्या 130 और 131 को आज प्रात: ही दिया गया और हमें उन पर विचार करने का अवसर नहीं मिला। यदि सम्मिलित संशोधन को आज उपस्थित किया गया तो हम संशोधनों के सुझावों को प्रस्तुत न कर सकेंगे और उन्हें समय पर सभा के सामने न ला सकेंगे।

***अध्यक्षः** यदि इस कारण कोई वास्तविक कठिनाई हुई तो मैं उस पर विचार करूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं सूची 4 का संशोधन संख्या 131 उपस्थित करता हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"उपरोक्त संशोधन संख्या 130 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 5 (कक) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जायेः–

'Provided that nothing in this article shall apply to a person who, after having so migrated to the territory now included in Pakistan has returned to the territory of India under a permit for resettlement or permanent return issued by or under the authority of any law and every such person shall for the purposes of clause (b) of article 5-A of this Constitution be deemed to have migrated to the territory of India after the nineteenth day of July 1948.' "

[परन्तु इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन के पश्चात् भारत राज्य-क्षेत्र को ऐसी अनुज्ञा के अधीन लौट आया है जो पुनर्वास के लिये या स्थायी रूप से लौटने के लिए किसी विधि के द्वारा या अधीन दी गई है, तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति इस संविधान के अनुच्छेद 5(क) के खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिये भारत राज्य-क्षेत्र को 1948 की जुलाई के 19वें दिन के पश्चात् प्रव्रजन करने वाला समझा जायेगा।]

मुझे एक और रस्मी संशोधन को उपस्थित करना है। यह संशोधन संख्या 132 है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 5 (ख) से 'and subject to the provisions of any law made by Parliament' (और संसद निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन) शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं इन संशोधनों की व्याख्या नहीं करूंगा। यदि आवश्यकता हुई तो डॉ. अम्बेडकर उनकी व्याख्या करेंगे।

***श्री जसपतराय कपूरः** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि सूची में जितने भी संशोधन हैं वे आज रस्मी तौर पर उपस्थित कर दिये जायें।

*__अध्यक्षः__ पहले डॉ. अम्बेडकर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर लें और उसके बाद अन्य संशोधन उपस्थित किये जायें।

*__श्री जसपतराय कपूरः__ मैं इस सुझाव को इसलिये उपस्थित कर रहा हूं कि यदि अन्य सभी संशोधन भी प्रस्तुत कर दिये जायेंगे तो डॉ. अम्बेडकर उन संशोधनों के सम्बन्ध में भी कुछ कह सकेंगे। अन्य संशोधन केवल उपस्थित ही किये जायें और उन पर भाषण न दिये जायें ताकि सभी संशोधन रस्मी तौर पर सभा में उपस्थित हो जायें।

*__अध्यक्षः__ यदि हम अन्य सभी संशोधनों को उठायेंगे तो उनका अन्त ही न होगा। पहले डॉ. अम्बेडकर अपने प्रस्ताव की व्याख्या कर लें और फिर अन्य संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ अध्यक्ष महोदय, संविधान के एक अनुच्छेद के अतिरिक्त अन्य किसी अनुच्छेद से मसौदा-समिति को इतना सरदर्द नहीं हुआ है जितना इस अनुच्छेद से हुआ है। कितने ही मसौदे-तैयार किये गये और इस कारण रद्द कर दिये गये कि उनके अंतर्गत वे सब मामले न आ सकते थे, जिन्हें हम उनके अधीन लाना चाहते थे। यह मेरे विचार से एक सौभाग्य की बात है कि मसौदा-समिति ने एकमत से उस मसौदे को स्वीकार कर लिया जिसे मैं उपस्थित कर चुका हूं, और मेरी यह धारणा है कि इस मसौदे से यदि सब लोग नहीं तो अधिकांश लोग संतुष्ट ही हैं।

*__एक माननीय सदस्यः__ जरा पूछ कर देखिये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, इस अनुच्छेद में नागरिकता किसी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। उससे वह नागरिकता अभिप्रेत है जो संविधान के प्रवर्तन में आने पर प्राप्त होगी। इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह नहीं है कि इस देश की नागरिकता के सम्बन्ध में एक स्थायी विधि निर्धारित की जाये। नागरिकता के सम्बन्ध में स्थायी विधि का निर्माण करने का कार्य संसद को सौंपा गया है। मैं जिस अनुच्छेद 6 को उपस्थित कर चुका हूं, उसकी शब्दावली से सदस्यगण यह समझ सकते हैं कि संसद को इसकी स्वतन्त्रता दी गई है कि वह नागरिकता के सम्बन्ध में जैसी भी विधि उचित समझे बनाये। अनुच्छेद इस प्रकार है—

> "इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में की कोई बात नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से सम्बद्ध अन्य सब विषयों के बारे में उपबन्ध बनाने की संसद की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करेगी।"

अनुच्छेद 6 का प्रभाव यह होगा कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर जो लोग नागरिक घोषित किये जायें उनसे संसद अनुच्छेद 5 के तथा आगे के उपबन्धों के अधीन नागरिकता का अधिकार छीन ही नहीं सकती है बल्कि नये सिद्धांतों के आधार पर नई विधि का भी निर्माण कर सकती है। जो लोग इन अनुच्छेदों पर होने वाले वाद-विवाद में भाग लेंगे उन्हें इसे स्मरण रखना चाहिये। उन्हें यह न समझना चाहिये कि इस संविधान के प्रवर्तन में आने पर प्रयोग में आने वाली नागरिकता के सम्बन्ध में हम जिन उपबन्धों को रख रहे हैं वे स्थायी अथवा अपरिवर्तनीय हैं। हम केवल इस समय के लिये तदर्थ विनिश्चय कर रहे हैं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

इन शब्दों के पश्चात् मैं सदस्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता हूं कि इस संविधान के प्रवर्तन में आने पर नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए मसौदा-समिति ने लोगों के पांच विभिन्न वर्गों के लिये उपबन्ध बनाये हैं और इस अनुच्छेद में उन शर्तों का भी उल्लेख किया है जिन्हें संविधान के प्रवर्तन में आने की तिथि को नागरिकता का अधिकार प्राप्त करने के लिए पूरा करना होगा। ये पांच वर्ग इस प्रकार हैं:

(1) वे लोग जिनका भारत में अधिवास है और जो भारत में जन्मे हैं, अर्थात् इस संविधान में वर्णित भारत के अधिकांश लोग।

(2) वे लोग जिनका भारत में अधिवास है किन्तु जो भारत में नहीं जन्मे हैं, यद्यपि वे भारत के निवासी हैं जैसे चन्द्रनगर और पुदुचेरी के समान भारत में फ्रांसीसी और पुर्तगाल की अस्तियों के लोग, अथवा ईरानी, जो फारस से आये हैं और, यद्यपि वे इस देश में नहीं जन्मे हैं, किन्तु उन्होंने बहुत काल से यहां निवास किया है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनकी इच्छा यही है कि वे भारत के नागरिक हो जायें।

मसौदा-समिति जिन अन्य तीन वर्गों को इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर लाना चाहती हैं वे ये हैं:

(3) वे लोग जो भारत के निवासी हैं किन्तु जो पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये हैं;

(4) वे लोग जो पाकिस्तान के निवासी हैं किन्तु भारत को प्रव्रजन कर गये हैं; और

(5) वे लोग जिनका अथवा जिनके जनकों का जन्म भारत में हुआ था किन्तु जो भारत के बाहर निवास कर रहे हैं।

इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अंतर्गत लोगों के यही पांच वर्ग आते हैं। लोगों के पहले वर्ग के बारे में अर्थात् उन लोगों के बारे में जिनका भारत राज्य-क्षेत्र में अधिकार है और जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मे थे अथवा जिनके जनक भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मे थे, अनुच्छेद 5 के खण्ड (क) और (ख) में उपबन्ध हैं। यदि वे उन उपबन्धों की शर्तें पूरा करते हैं तो वे नागरिक समझे जायेंगे।

दूसरे वर्ग के लोग जिनकी ओर मैंने संकेत किया, अर्थात् वे लोग जिन्होंने भारत में निवास किया है किन्तु जो भारत में नहीं जन्मे हैं अनुच्छेद 5 के खण्ड (ग) के अन्तर्गत आते हैं। इनका संविधान के प्रारम्भ के सद्य: पूर्व कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में निवास होना चाहिये। इन सब वर्गों के लोगों के लिये यह साधारण परिसीमा है कि इन्होंने स्वयं किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त न की होनी चाहिये।

अन्तिम वर्ग के सम्बन्ध में अर्थात् उन लोगों के सम्बन्ध में, जो भारत के बाहर निवास करते हैं किन्तु जिनका अथवा जिनके जनकों का भारत में जन्म हुआ था, अनुच्छेद 5 (ख) में उपबन्ध है। यह अनुच्छेद उन लोगों के सम्बन्ध में है जिनका अथवा जिनके जनकों का अथवा जिनके महाजनकों का जन्म भारत सरकार के 1935 के अधिनियम की परिभाषा के अनुसार भारत में हुआ था और जो साधारणतया भारत के बाहर किसी राज्य-क्षेत्र में निवास करते हैं और भारतीय कहे जाते हैं। उनके सम्बन्ध में केवल यह परिसीमा है कि यदि वे भारत के नागरिक होना चाहते हैं तो वे संविधान के प्रारम्भ के पूर्व भारत सरकार के वाणिज्यिक अधिकारी को अथवा राजनयिक प्रतिनिधि को भारत सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन-पत्र देंगे और अपने को भारत के नागरिकों के रूप में पंजीबद्ध करा लेंगे। उनके लिये दो शर्तें रखी गई हैं—एक यह है कि वे आवेदन पत्र देंगे और दूसरे यह है कि जहां वे रह रहे हों वहां के वाणिज्यिक अथवा राजनयिक प्रतिनिधि से अपने आवेदन-पत्र को पंजीबद्ध करायेंगे। जैसाकि मैं कह चुका हूं ये बहुत साधारण मामले हैं।

अब मैं उन लोगों के दो वर्गों को उठाऊंगा जो भारत के निवासी थे परन्तु पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये हैं अथवा जो पाकिस्तान के निवासी थे और भारत को प्रव्रजन कर आये हैं; जो लोग पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन कर आये हैं उनके सम्बन्ध में अनुच्छेद 5 (क) में उपबन्ध हैं। अनुच्छेद 5 (क) के उपबन्ध इस प्रकार हैं—

जो लोग पाकिस्तान से भारत चले आये हैं वे दो वर्गों में विभाजित किये गये हैं—

(क) जो लोग जुलाई 1948 के 19वें दिन से पहले चले आये हैं।

(ख) जो लोग जुलाई 1948 के 19वें दिन के बाद आये हैं।

जो लोग 19 जुलाई 1948 से पहले चले आये हैं वे स्वत: भारत के नागरिक हो जायेंगे।

इन लोगों को भी, जो 19 जुलाई, 1948 के पश्चात् आये हैं, संविधान की प्रारम्भ की तिथि पर नागरिकता का अधिकार होगा परन्तु उन्हें एक प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा अर्थात् उन्हें भारत डोमीनियन सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी को आवेदन-पत्र देने होंगे और यदि वह अधिकारी उन लोगों को पंजीबद्ध कर दे तो उन्हें नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों के सम्बन्ध में संविधान के प्रारम्भ पर उनको नागरिकता के अधिकार के बारे में निर्णय करने के लिये उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया है—एक वर्ग उन लोगों का है जो 19 जुलाई, 1948 से पूर्व चले आये हैं और दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो उस तिथि के पश्चात् आये हैं। जो लोग 19 जुलाई, 1948 से पूर्व चले आये हैं उन्हें नागरिकता का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जायेगा। उनके सम्बन्ध में न कोई शर्तें रखी गई हैं और न कोई प्रक्रिया। जो लोग उस तिथि के पश्चात् आये हैं उन्हें एक प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा और यदि वे उसकी सभी शर्तें पूरी करते हैं तो प्रस्तावित अनुच्छेद के अधीन उन्हें भी नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अब मैं उन लोगों के प्रश्न को उठाता हूं जो पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये थे किन्तु पाकिस्तान जाने के बाद भारत लौट आये हैं। यद्यपि मुझे इस प्रश्न के सम्बन्ध में उतनी जानकारी प्राप्त नहीं है जितनी कि इस विषय से सम्बंधित मंत्रियों को प्राप्त है, किन्तु हमारा यह प्रस्ताव है कि यदि कोई व्यक्ति पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गया हो और वहां जाने के बाद भारत सरकार से अनुज्ञा लेकर भारत लौट आया हो और वह अनुज्ञा भारत में प्रवेश करने के सम्बन्ध में ही न हो बल्कि स्थायी रूप से वापिस होने और पुनर्वास के सम्बन्ध में भी हो, तो उसे संविधान के प्रवर्तन में आने पर भारत का नागरिक होने का अधिकार होगा। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने की इसलिये आवश्यकता पड़ी कि भारत सरकार ने ऐसे लोगों को, जो भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे और बाद को पाकिस्तान से भारत चले आये थे, 'अनुज्ञा प्रणाली' के अधीन भारत में स्थायी रूप से बस जाने की आज्ञा दे दी थी। अनुज्ञा प्रणाली 19 जुलाई, 1948 से प्रयोग में आई। इस प्रकार अनुच्छेद 5 (ख) के उपबन्ध उन लोगों की नागरिकता के सम्बन्ध में हैं जो पाकिस्तान से चले आने के पश्चात् फिर पाकिस्तान चले गये थे और उसके पश्चात् भारत लौट आये हैं। उपबन्ध इस प्रकार है कि यदि कोई व्यक्ति पुनर्वास के लिये अथवा स्थायी रूप से लौट आने के लिए अनुज्ञा लेकर चला आया है तो केवल ऐसे ही व्यक्ति को संविधान के प्रवर्तन में आने पर नागरिकता का अधिकार प्राप्त होगा।

श्रीमान्, यह सम्भव नहीं है कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रत्येक मामला इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन आ जाये। यदि किसी वर्ग के लोग इस संशोधन में समाविष्ट उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं आते हैं तो संसद को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह उनके सम्बन्ध में उपबन्ध बनाये। मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि मैंने जिन संशोधनों को प्रस्तुत किया है वे हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिये तथा इस समय के लिये पर्याप्त हैं और मुझे आशा है कि सभा उन्हें स्वीकार कर लेगी।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): क्या अनुज्ञा प्रणाली 19 जुलाई 1948 से प्रयोग में आई थी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, 19 जुलाई, 1948 को इस आशय का एक अध्यादेश पारित किया गया था कि कोई भी व्यक्ति बिना अनुज्ञा के भारत में प्रवेश न कर सकेगा और तदनुसार 19 जुलाई 1948 को ही भारत सरकार ने कुछ नियम बनाये थे जिनमें यह कहा गया था कि पाकिस्तान से भारत आने वाले किसी भी व्यक्ति को जो अनुज्ञा दी जाये उसमें इसका स्पष्ट उल्लेख हो कि उसे भारत आने का अधिकार है। अनुज्ञायें तीन प्रकार की हैं, अस्थायी अनुज्ञा, स्थायी अनुज्ञा और पुनर्वास तथा स्थायी रूप से लौट आने की अनुज्ञा। केवल अंतिम वर्ग के लोगों को पुनर्वास की तथा स्थायी रूप से लौटने की आज्ञा दी गई है। इस अनुच्छेद में केवल यही लोग सम्मिलित किये गये हैं, अन्य लोग नहीं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से हम संशोधनों को कल उठायें। किन्तु सभा स्थगित करने के पूर्व मैं एक प्रश्न के सम्बन्ध में सभा का मत जानना चाहता हूं। अगले

सप्ताह सोमवार, 15 अगस्त, के दिन छुट्टी है और 17 तारीख बुधवार के दिन भी जन्माष्टमी की छुट्टी है। मेरे सामने यह सुझाव रखा गया है कि हम मंगलवार के दिन भी समवेत न हों ताकि सदस्यों को शनिवार से लेकर बुधवार तक लगातार चार-पांच दिन मिल जायें और मंगलवार के एवज में हम अगले शनिवार को समवेत हों। यदि सभा की यह इच्छा हो तो हम अपने कार्यक्रम को तदनुसार निश्चित कर सकते हैं।

माननीय सदस्य: जी हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** सभा के अधिक काल तक स्थगित रहने से सम्भव है हम सब कुछ भूल जायें।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से आपको फिर से अध्ययन करने का समय मिल जायेगा। अब सभा शुक्रवार तक समवेत होगी और तत्पश्चात बृहस्पतिवार के प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित हो जायेगी और अगले शनिवार को भी समवेत होगी।

अब सभा कल प्रात: नौ बजे तक के लिए स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, 11 अगस्त, 1949
के नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-10.49
320

अंक 9

संख्या 10

बृहस्पतिवार
11 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[अनुच्छेद 5 और 6 पर विचार] 531–592

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 11 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 5 से 6—*(जारी)*

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 5 और 6 पर विचार आरम्भ करेंगे। मैं उन संशोधनों को देख रहा हूं जिनकी सूचना आ गई है। अधिकांश संशोधन मूल मसौदे से सम्बन्ध रखते हैं। वर्तमान मसौदे पर भी बहुत से संशोधन हैं। मैं समझता हूं कि जिस रूप में यह प्रस्थापना अब सभा के समक्ष रखी गई है उसमें बहुत से संशोधनों के विचारों का समावेश हो जाता है जिनकी सूचना आ चुकी है। कुछ संशोधन ऐसे हैं जो विवरण से सम्बन्ध रखते हैं। माननीय सदस्यों से मैं निवेदन करूंगा कि अपना ध्यान वे केवल उन संशोधनों तक ही सीमित रखें जो सारवत हैं और बाकी संशोधनों को छोड़ दें।

मूल मसौदा सम्बन्धी संशोधनों में से कुछ ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध मसौदे से बिल्कुल बाहर के विषयों से है। उदाहरणार्थ एक संशोधन स्त्रियों की इस स्थिति से सम्बन्ध रखता है कि विवाह के पश्चात् वे नागरिक बनती हैं या नहीं। और भी हैं जो उन लोगों की स्थिति से सम्बन्ध रखते हैं जो जन्म से भारतीय नहीं हैं अथवा जिनके जनक अथवा महाजनक भारतीय नहीं थे। मैं समझता हूं वर्तमान मसौदे के अधीन इन सब विषयों को संसद के विचार के लिये छोड़ दिया जाये। अतः मैं यह सुझाव रखूंगा कि इस प्रकार के संशोधनों को भी संसद पर बाद में विचार करने के लिए छोड़ दिया जाये और जिस दिन यह संविधान प्रवर्तन में आये उस दिन के लिये नागरिकता की अर्हतायें निर्धारित करने के ही प्रश्न पर हम विचार करें।

डॉ. अम्बेडकर ने सभा का ध्यान दो महत्वपूर्ण परिसीमाओं की ओर आकर्षित किया है। पहली परिसीमा यह थी कि यह मसौदा जिस दिन संविधान प्रवृत्त होगा उस दिन के लिये नागरिकता के सीमित प्रश्न से सम्बन्ध रखता है। दूसरी बात यह थी कि वर्तमान मसौदे से सम्बंधित विषयों सहित अन्य सब विषयों को संसद पर छोड़ा जाता है और वह जैसा ठीक समझे वैसा विचार करे। इन परिसीमाओं को अपने ध्यान में रखते हुए मैं समझता हूं कि इन दोनों अनुच्छेदों पर बहुत कम वाद-विवाद रह जाता है और इस विषय को शीघ्रता के साथ समाप्त किया जा सकता है।

[अध्यक्ष]

मैं सदस्यों के सामने यह सुझाव रखूंगा कि अपने संशोधन पेश करते समय वे इन बातों को ध्यान में रखें। अब हमें उन संशोधनों को लेंगे जिनकी मेरे पास सूचना आ चुकी है और वर्तमान सत्र की सूची में जिस क्रम से संशोधन दिये हुए हैं मैं उनको उसी क्रम से लूंगा। डॉ. देशमुख।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं और संशोधनों की ओर भी निर्देश कर सकता हूं जिनकी कि मैं सूचना दे चुका हूं?

***अध्यक्ष:** जी हां, आप उनको एक साथ ले सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान्, नागरिकता के विषय पर यह अनुच्छेद समस्त संविधान में सबमें अधिक दुर्भाग्यपूर्ण अनुच्छेद है। तीसरी बार हम इस पर वाद-विवाद कर रहे हैं। श्रीमान्, प्रथम बार आपका यह विचार था जिसका सभा ने समर्थन किया था कि इसकी परिभाषा बहुत ही असंतोषजनक है। इसके बाद इसको कुछ अधिवक्ताओं के पास भेजा गया था और यह कहते हुए मुझे दु:ख होता है कि उन्होंने ऐसी परिभाषा बनाई कि जिसके अनुसार वे सब लोग भारत के नागरिक नहीं हो सकते थे जो इस समय जीवित हैं। अत: उसको फिर वापस भेजना पड़ा और अब हमारे सामने एक ऐसी परिभाषा है जिसके बारे में आरम्भ में ही मैं यह कह दूं कि वह उतनी ही असंतोषजनक है जितनी असंतोषजनक पहली परिभाषा थी जिसे हम अस्वीकार कर चुके हैं और अपने इस विचार के लिये मैं बहुत ही पुष्ट तर्क प्रस्तुत करूंगा। पर ऐसा करने के पूर्व यदि यह आवश्यक है कि मैं अपने संशोधन पेश करूं तो मैं उसके लिये तैयार हूं। मैं संशोधन संख्या 164 को पेश करना चाहूंगा जो वही है जैसा कि सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) में संशोधन संख्या 2 है। श्रीमान्, मैं पेश करता हूं:

"कि संशोधन पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'5. (i) Every person residing in India—

(a) who is born of Indian parents; or

(b) who is naturalized under the law of naturalization; and

(ii) every person who is a Hindu or a Sikh by religion and is not a citizen of any other State, wherever he resides

shall be entitled to be a citizen of India.' "

[5. (1) भारत में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को–

(क) जिसका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ है; अथवा

(ख) जिसको देशीयकरण विधि के अधीन देशी बना लिया है; और

(2) जो हिन्दू या सिख धर्म का अनुयायी है और जो किसी अन्य राज्य का नागरिक नहीं है, चाहे वह कहीं निवास करे

भारत का नागरिक होने का हक होगा।]

श्रीमान्, मेरे नाम से और भी संशोधन हैं जो इस अनुच्छेद के मसौदे से सम्बन्ध रखते हैं जो सभा के समक्ष हैं। इन संशोधनों द्वारा माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद को जो रूप प्रस्थापित किया है उसमें कुछ परिवर्तनों का मैंने सुझाव रखा है। इनमें से पहला संशोधन तृतीय सप्ताह की सूची 3 में संशोधन संख्या 116 है। वह इस प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में से 'at the date of commencement of this Constitution' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

***अध्यक्ष:** इन सबका संग्रह तृतीय सप्ताह की सूची 1 में है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** जी हां, पर मैंने उन्हें पहली सूचियों में से लिया है। मैंने 'at the date of commencement of this Constitution' शब्दों को निकालने का सुझाव रखा है।

संशोधन संख्या 117 को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं। पर तृतीय सप्ताह की सूची 3 के संशोधन संख्या 118 को मैं पेश करूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खण्ड (क) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

(क) जिसकी उत्पत्ति भारत के राज्य क्षेत्र में भारतीय जनकों द्वारा हुई हो।"
तीसरे यह कि मैं तृतीय सप्ताह की सूची 3 के संशोधन 119 को पेश करना चाहूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधन पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खण्ड (ग) में 'five' शब्द के स्थान में 'twelve' शब्द रखा जायें।' "

यह वर्षों की वह संख्या है जिसके लिये किसी व्यक्ति का निवास अपेक्षित है।

तृतीय सप्ताह की सूची 3 में संशोधन संख्या 120 को भी मैं पेश करना चाहूंगा जिसके बारे में मुझे विश्वास है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा क्योंकि एक ऐसा ही संशोधन श्री गोपालस्वामी आयंगर ने पेश किया है। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 की व्याख्या को अपमार्जित कर दिया जाये।"

इसके बाद द्वितीय सप्ताह की सूची 3 में के संशोधन संख्या 172 को मैं पेश करना चाहूंगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'territory of India' शब्दों के पश्चात 'of Indian parents' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

अन्तिम संशोधन द्वितीय सप्ताह की सूची 3 में संख्या 189 है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के पश्चात् निम्न तथा अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:-

'5-B. Every citizen shall–

(a) enjoy the protection of the Indian State in foreign countries;

(b) be bound to obey the laws of India, serve the interests of the Indian communities, defend his country and pay all taxes.' "

[5-ख. प्रत्येक नागरिक-

(क) विदेशों में भारतीय राज्य से रक्षण प्राप्त करेगा;

(ख) भारतीय विधियों को पालन करने के लिए बाध्य होगा, भारतीय सम्प्रदायों के हितों की सेवा करेगा, अपने देश की रक्षा करेगा और सब कर भरेगा।]

इतने संशोधनों को मैं पेश करना चाहूंगा। शेष संशोधनों को बिना पेश किया हुआ समझा जाये।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि पहले सब संशोधन पेश कर दिये जायें और फिर उसके बाद साधारण चर्चा हो? ऐसा करने से सदस्यों के सामने प्रस्थापनाओं का पूरा चित्र प्रस्तुत हो सकेगा।

***अध्यक्ष:** यदि सभा की यह इच्छा है तो मुझे कोई खास आपत्ति नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** चूंकि संशोधनों की संख्या बहुत बड़ी है इस कारण सदस्यों के केवल संशोधनों के पेश करने और फिर बाद में भाषण के लिये बुलाने से गड़बड़ हो जायगी।

***अध्यक्ष:** ऐसा प्रतीत होता है कि सदस्य अपने संशोधनों को पेश करते समय भाषण देना अधिक सुविधाजनक समझते हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या आप कृपया हमें यह बताने का कष्ट करेंगे कि कौन-कौन से संशोधन पेश किये जा चुके हैं?

***अध्यक्ष:** मैं आपको इस सप्ताह की सूची में संख्यायें बताऊंगा। उनकी संख्या 3, 17 और 29 हैं

इसके बाद तृतीय सप्ताह की सूची 3 के संशोधन संख्या 116, 118, 119 और 120।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** डॉ. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया है कि यह एक प्रकार की अस्थायी परिभाषा है और इसका विवरणपूर्ण विधान बनाना संसद पर छोड़ दिया जायेगा। मैं इस उद्देश्य से पूर्णतया सहमत हूं, पर मुझे इस बात का भय है कि जिस परिभाषा और अनुच्छेद का उन्होंने सुझाव रखा है वह भारतीय नागरिकता को संसार भर में सबसे अधिक सरल बना देगा। जो अनुच्छेद उन्होंने प्रस्थापित किया है उसके विश्लेषण से मैं अपना भाषण आरम्भ करना चाहूंगा। मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती है कि 'इस संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि पर' कहना क्योंकर आवश्यक है।

किसी दिन सारा का सारा संविधान प्रख्यापित होगा ही। जो कुछ भी उपबन्ध हैं वे सब उस दिन से लागू तथा प्रयुक्त होंगे। अत: जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है मैं निवेदन करता हूं कि 'इस संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि पर' शब्द बिल्कुल निरर्थक हैं। यह कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक व्यक्ति जो भारत के राज्य-क्षेत्र में कहीं भी अधिवास करता है.....उसे भारत का नागरिक कहलाने का हक होगा।

दूसरी बात यह है कि इस अनुच्छेद के ये सब उपखण्ड भारतीय नागरिकता को बहुत ही आसान बना देंगे। मुझे विश्वास है कि न तो इस सभा के सदस्य और न बाहर वाले लोग ही ऐसा होने देना चाहेंगे। इस अनुच्छेद के अनुसार पहली आवश्यकता अधिवास है। इसके बाद खण्ड (क) के अनुसार जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि उसका जन्म भारत के राज्य-क्षेत्र में हो। इसका माता-पिता से कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई दम्पत्ति वायुयान से यात्रा कर रहा हो और वह वायुयान बम्बई में उतरे और यदि देवयोग से स्त्री के सन्तानोत्पत्ति हो जाये तो माता-पिता की राष्ट्रीयता पर विचार किये बिना उस बच्चे को भारतीय नागरिक होने का हक होगा। मुझे विश्वास है कि यह एक ऐसी बात है जिसको कम से कम बहुत से लोग स्वीकार करना नहीं चाहेंगे तथा न उसके लिये उपबन्ध करना चाहेंगे। भारतीय नागरिकता को इतना सरल नहीं बनाना चाहिये।

इसके बाद खण्ड (ख) में कहा गया है "जिसके जनकों में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा है"। यह और भी अधिक आश्चर्यजनक है। यह आवश्यक नहीं है कि लड़के या लड़की का जन्म भारत भूमि में हो। यह नहीं कि दोनों माता और पिता भारत में जन्मे हों वरन केवल इतना ही पर्याप्त है कि उनमें से एक का ही जन्म भारत में ऐसे संयोग से हुआ हो जैसा कि मैं बता चुका हूं अर्थात भारत में होकर वायुयात्राव करते हुए किसी स्त्री के सन्तानोत्पत्ति होना। प्रस्थापित उपखण्ड (क) के अधीन उस सन्तान को भारतीय नागरिकता का दावा करने का हक होगा और उपखण्ड (ख) के अधीन (इस प्रकार संयोगवश उत्पन्न हुए) इस बच्चे का पुत्र भी बिना किसी निर्बन्धन तथा बिना किसी और अर्हता के इस महत्वपूर्ण विशेषाधिकार का दावा कर सकता है। और किसी बात की आवश्यकता नहीं है सिवा इसके कि वे अधिवास प्राप्त कर लें।

उपखण्ड (ग) के अनुसार कोई व्यक्ति भारतीय नागरिकता प्राप्त कर सकता है "जो कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा हो"। इसमें भी जनकों की ओर कोई निर्देश नहीं है, जिस राष्ट्र अथवा जिस देश

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

के वे हैं उसकी ओर इसमें कोई निर्देश नहीं है, इसमें उस प्रयोजन की ओर भी कोई निर्देश नहीं है जिसके लिये उन्होंने इस देश में पांच साल तक निवास करना चाहा। चाहे वह पंचमंगी हों; चाहे वह भारतीय स्वतन्त्रता को क्षति पहुंचाने के उद्देश्य से यहां आया हो; पर मसौदा समिति तो यही उपबन्ध करती है कि यदि वह पांच वर्ष तक देश में रहता है तो उसे भारत का नागरिक होने का हक़ है।

यह सारी की सारी सभा और यह समूचा देश इस बात से परिचित है कि समस्त संसार में भारतीय नागरिकों के साथ केसा बर्ताव किया जाता है। वे रंग विद्वेष के उस रूप से परिचित हैं जो इंग्लैण्ड में बर्ता जाता है, वे उन यातनाओं से परिचित हैं जो भारतीय नागरिकों को अब भी अफ्रीका में सहन करनी पड़ती हैं, मलाया और बर्मा में उनको किस प्रकार सताया जाता है, और इस तथ्य के होते हुए भी कि भारत अब एक स्वतंत्र देश है यहां कि निवासियों को किस प्रकार सब देशों में घृणित दृष्टि से देखा जाता है। सभा इस बात से परिचित है कि कुछ उंगलियों पर गिने जाने वाले लोगों को छोड़कर अमरीका में नागरिकता प्राप्त करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है यद्यपि लोग अपना सम्पूर्ण जीवन वहां बिता चुके हैं। मैं ऐसे लोगों के बारे में जानता हूं जो अमरीका में रह रहे हैं और 15, 20 तथा 25 वर्षों से विभिन्न पदों को धारण किये हुए हैं पर फिर भी नागरिकता के लिये उनके आवदेन पत्र की संख्या 10,50,000वीं है। ऐसे व्यक्ति के लिये तब तक नागरिकता प्राप्त करने की कोई आशा नहीं है जब तक कि 10,49,999वां आवेदन-पत्र मंजूर न हो जाये। अमरीका में 116 अथवा 118 भारतीय प्रति वर्ष के हिसाब से नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार से अन्य देश अपने निजी हितों का संरक्षण कर रहे हैं और अपनी नागरिकता को निर्बन्धित कर रहे हैं। यदि भारत आयरलैण्ड अथवा कनाडा के समान कोई छोटा देश होता (जिन देशों को अपने इस संविधान के लिये अनुकरण रूप में माना गया है) तब तो मैं समझ सकता था कि मनुष्यों का आचार-विचार चाहे केसा भी हो अथवा देश के हित चाहे जो कुछ हों पर हमें अधिक मनुष्यों की आवश्यकता है। पर हम तो अपनी ही इतनी बड़ी जनसंख्या से पीड़ित हैं। इन परिस्थितियों में हम भारतीय नागरिकता को इतने हास्यास्पद रूप में आसान क्यों बना रहे हैं? इसके लिये अन्य कोई उपयुक्त शब्द नहीं है।

जैसाकि मैं पहले बता चुका हूं इन उपखण्डों में से एक में यह कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जो पांच वर्ष तक भारत में निवास करना चाहे वह भारत का नागरिक होगा। मैंने माननीय वाणिज्य मंत्री (जब श्री सी.एच. भाभा इस पद को धारण किये हुए थे) से एक प्रश्न पूछा था, जब हम दूसरे सदन में बैठे हुए थे कि क्या भारत में आने वाले विदेशियों के लिये कोई रजिस्टर है या नहीं। उन्होंने उत्तर दिया "नहीं"। मैंने पूछा कि विदेश से आने वाले लोगों को इस देश में प्रवेश करने के लिये कोई नियम तथा विनियम हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि कोई नियम विनियम नहीं हैं। हमारे यहां ऐसा प्रशासन है। तो फिर क्या यह बुद्धिमतापूर्ण है कि हम अपनी नागरिकता को बिना किसी भेद-विभेद के खुली छोड़ दें? मुझे तो ऐसा करने के लिये कोई भी कारण नहीं दिखाई देता है सिवा इसके कि वही राज्य की असाम्प्रदायिकता का दिखावटी, कई बार का हराया हुआ तथा घृणित सिद्धांत। मैं समझता हूं कि इस असाम्प्रदायिकता के कार्य में हम

आवश्यकता से कहीं अधिक बढ़ रहे हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि हम अपने ही लोगों को मिटा दें, अपनी असाम्प्रदायिकता सिद्ध करने के लिये हम उनको मिटा दें, असाम्प्रदायिकता के नाम पर हिन्दू और सिखों को हम मिटा दें और भारतीयों के लिये जो कुछ भी प्रिय और पवित्र है उसे हम यह सिद्ध करने के लिए जर्जरित कर दें कि हम असाम्प्रदायिक हैं? मैं नहीं समझता हूं कि असाम्प्रदायिकता का यह अर्थ है और न 'असाम्प्रदायिक राज्य' का अर्थ जनता यह लगाना चाहती है। मुझे विश्वास है कि जो लोग इस अर्थ को मानते हैं उनकी लोकप्रियता भारत में अधिक समय तक नहीं टिकेगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि यह अनुच्छेद असन्तोषजनक है और यह उसी प्रकार रद्द करने योग्य है जिस प्रकार हमने इससे पूर्ववर्ती अनुच्छेद को रद्द किया था क्योंकि इसमें कोई भी बात ठीक नहीं है। यदि हम वास्तव में कोई अस्थायी परिभाषा रखना चाहते हैं तो हम अन्य लोगों से परिभाषा ले सकते हैं जो शायद हमसे अधिक बुद्धिमान हैं और हमारे लिये वह पर्याप्त होगी। ऐसी एक परिभाषा मैंने अपने संशोधन संख्या 164 में प्रस्थापित की है, जो इस प्रकार है:

"भारत में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को–

(क) जिसका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ है; अथवा

(ख) जिसको देशीयकरण विधि के अधीन देशी बना लिया गया है....।"

यदि भारत की नागरिकता के समुचे प्रश्न को संसद के वाद-विवाद पर छोड़ दिया जाये तो मुझे कुछ चिन्ता नहीं है। पर मेरी यह धारणा है और सभा से मेरा यही निवेदन है कि वर्तमान समय के लिये यह संक्षिप्त परिभाषा पूर्णरूपेण पर्याप्त होगी। यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि सर्वप्रथम वही व्यक्ति नागरिकता प्राप्त कर सकेगा जिसका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ है और मैं उन लोगों को भी नहीं छोड़ रहा हूं जो पहले से भारतवर्ष में रहे रहे हैं यदि अधिवास की आवश्यकता की उन्होंने पूर्ति कर ली है। यदि वे इस देश के निवासी हैं अथवा यदि उन्होंने किसी अन्य देश की नागरिकता का दावा नहीं किया है अथवा यदि उनका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ है तो उन्हें भारत की नागरिकता प्राप्त करने का हक़ होगा। जहां तक अन्य व्यक्तियों का सम्बन्ध है उनके लिये देशीयकरण की विधि होगी जिसमें विवरण पूर्ण उपबन्ध होंगे। हम उस व्यापार तथा प्रयोजनों को अथवा उस रीति को निर्धारित कर सकते हैं जिनके कारण भारतीय नागरिकता का दावा करने वाला कोई व्यक्ति भारत में रहना चाहता हैं। संसद के लिये इस प्रश्न पर वाद-विवाद करने और सिद्धान्तों के निर्धारण करने के लिये पर्याप्त समय होगा। पर यदि आप इस समय यह परिभाषा रखना चाहते हैं तो आप अपने हाथ बांध रहे हैं, बाद में हस्तक्षेप करने के लिए आप संसद को असमर्थ बना रहे हैं। उस समय क्या आपको यह साहस होगा कि आप उनको नागरिकता से वंचित कर दें—उन हजारों व्यक्तियों को जो इस संविधान के अधीन नागरिकता प्राप्त कर चुके हैं? यह असम्भव है, यह बिल्कुल असम्भावनीय है और कोई भी भारतीय संसद इतना कड़ा कदम नहीं उठा सकती है कि वह उस मूर्खता को ठीक कर सके जिसे हम आज जानबूझकर कर रहे हैं। मैं नहीं समझता हूं कि कोई भी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

संसद ऐसा कर सकेगी। अत: मैं नहीं चाहता हूं कि नागरिकता को इतना आसान तथा इतनी सरलता से प्राप्य बनाया जाये क्योंकि यदि आप एक बार उसे इस संविधान में इतना सरल बना देते हैं तो फिर उससे लौटना आपके लिये बड़ा कठिन होगा।

और फिर यह संसद के अधिनियम में कोई परिभाषा तो है ही नहीं जो सरलता से परिवर्तित हो सके। अत: यदि संविधान द्वारा इस अनुच्छेद में प्रस्थापित रीति से आप नागरिकता के इस अधिकार को दे रहे हैं तो आप उसे बाद में नहीं बदल सकते हैं और यह भारतीय राष्ट्र के हितों के विरुद्ध होगा। अत: मैंने यह प्रस्थापित किया है कि देशीयकरण की परिस्थितियों और शर्तों पर बाद में विनिश्चय किया जाये। इस समय संविधान-सभा को इस प्रश्न पर कोई विनिश्चय नहीं करना चाहिये। ऐसी प्रत्येक शर्त तथा ऐसी प्रत्येक परिस्थिति, जिसके प्रति हमें विश्वास है और सन्तोष है कि किसी व्यक्ति को नागरिकता का अधिकार देने के लिए उसको निर्धारित करना चाहिये, उस समय क्रियान्वित होनी चाहिये जबकि हम संसद में देशीयकरण के अधिनियम को पारित करें। नागरिकता का अधिकार देने के लिये हमें कुछ शर्तें यहां इस संविधान में और कुछ अन्यत्र नहीं रखनी चाहियें। यह तथ्य कि किसी व्यक्ति का जन्म भारत में हुआ है नागरिकता का अधिकार देने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होना चाहिये और न पांच वर्ष निवास करने की बात ही पर्याप्त होनी चाहिये। मैं कहता हूं कि इन सब बातों का निर्धारण करना हम संसद पर छोड़ दें। यहां हम केवल यह कहें कि भारत में निवास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जो देशीयकरण विधि के अधीन देशी बन चुका है भारत का नागरिक होगा।

दूसरे उपखण्ड में मैंने प्रस्थापित किया है कि मैं एक उपबन्ध करना चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति जो हिन्दू या सिख है और जो किसी अन्य राज्य का नागरिक नहीं है उसे भारत के नागरिक होने का हक होगा। हमने पाकिस्तान राज्य का निर्माण और उसकी स्थापना देखी है। उसकी स्थापना क्यों हुई? उसकी स्थापना इस कारण हुई कि मुसलमान यह दावा करते थे कि उनका अपना घर होना चाहिये उनका अपना देश होना चाहिये। इस देश में हमारा एक सम्पूर्ण राष्ट्र है जिसका हजारों वर्षों का इतिहास है और हम उसे मिटे दे रहे हैं, इस बात के होते हुए भी कि हिन्दू और सिख के लिये इस अपार संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां जाकर वह शरण ले सके। केवल इस तथ्य के आधार पर कि वह हिन्दू है अथवा सिख है उसे भारतीय नागरिकता प्राप्त होनी चाहिये क्योंकि यही एक ऐसी बात है जिसके कारण उससे और लोग घृणा करते हैं। पर हमारा राज्य असाम्प्रदायिक है और हम इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं कि संसार के किसी भाग के रहने वाले हिन्दू या सिख के लिये अपना निजी घर हो। यदि मुसलमान अपने लिये एक अलग स्थान चाहते हैं जिसे पाकिस्तान कहा जाता है तो हिन्दू या सिख भारत को अपना घर क्यों न मानें? औरों को यहां नागरिकता प्राप्त करने से हम रोक नहीं रहे हैं। हम केवल यह कहते हैं कि नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने के हेतु हमारे लिये अन्य कोई देश नहीं है और इस कारण हम हिन्दू और सिखों को, जब तक हम अपने-अपने धर्म का पालन करें, भारत में नागरिकता के अधिकार मिलने चाहियें और जब तक हमें किसी और देश की नागरिकता न मिले तब तक इस नागरिकता का अधिकार हमें होना चाहिये।

मैं नहीं समझता हूं कि यह दावा किसी प्रकार से भी साम्प्रदायिक है अथवा किसी विशिष्ट दल अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। यदि कोई व्यक्ति इसे ऐसा कहता है तो सिवा इसके और क्या कहा जाये कि वह भूल करता है। मैं समझता हूं कि मेरा संशोधन प्रत्येक सम्भाव्य दशा का समावेश करता है। जिस बात से हम बहुत उत्तेजित हैं वह केवल यह है कि हमारे लोग यह सोचकर कि पाकिस्तान एक सुखद देश है वहां गये और वहां से वापस हुए। संविधान में किसी भी उपबन्ध के द्वारा हम उन्हें क्यों अभिज्ञात करें? क्योंकि ऐसी कोई बात आवश्यक नहीं है। यदि वे भारत के निवासी हैं जबकि यह संविधान प्रख्यापित किया जाता है और उनका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ है तो बिना किसी नये पंजीयत अथवा साक्ष्य के उनको नागरिकता के अधिकार का हक़ होना चाहिये। मेरी परिभाषा में यही विचार प्रस्तुत है। मैं आशा करता हूं कि सभा उसे स्वीकार करेगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): आप कहते हैं कि "भारतीय जनकों द्वारा उत्पन्न"। "भारतीय जनकों" की आप किस प्रकार परिभाषा करते हैं?

डॉ. पी.एस. देशमुखः मैं समझता हूं कि उसका निर्देश उन सब व्यक्तियों से होना चाहिये जो भारत के निवासी हैं। उसकी परिभाषा करना बड़ा सरल है। यदि प्रोफेसर यह समझते हैं कि कोई परिभाषा आवश्यक है तो उसका बनाना बहुत सरल है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** तो फिर कोई परिभाषा दीजिये।

डॉ. पी.एस. देशमुखः बहुत अच्छा, मैंने सोचा था कि भारतीय व्यक्ति बहुत ही सरलता से पहचाना जा सकता है। यदि अधिवास से संयुक्त कर दिया जाये तो उसकी परिभाषा करना अधिक सरल है। पर यदि प्रोफेसर यह सोचते हैं कि भारतीय व्यक्ति को नहीं पहचाना जा सकता है और यह निर्धारण करना आवश्यक है कि भारतीय कौन है, उसका रूप रंग क्या है इत्यादि, इत्यादि, तो मैं किसी उपयुक्त परिभाषा का सुझाव उन पर ही छोडूंगा। मैं समझता हूं कि वर्तमान परिभाषा से बिना किसी कठिनाई के यह समझा जा सकता है। मैं नहीं समझता हूं कि जिस पद का हम प्रयोग करें उसकी परिभाषा आवश्यक ही है। यदि आप अन्य देशों के संविधानों का परीक्षण करें। उदाहरणार्थ पोलण्ड के संविधान में आप देखेंगे कि उन्होंने केवल यह उपबन्ध किया है कि कोई भी व्यक्ति जिसका जन्म पोलेण्ड निवासी जनकों द्वारा हुआ है वह पोलेण्ड का नागरिक है। वे जानते हैं कि पोलेण्ड का निवासी कौन है जिस प्रकार हम जानते हैं कि भारतीय कौन है। अत: मैं नहीं समझता हूं कि इस सम्बन्ध की परिभाषा आवश्यक है। यदि हम कोई अस्थायी परिभाषा चाहते हैं कोई ऐसा अनुच्छेद चाहते हैं जो अन्तर्कालीन उपबन्ध के रूप में प्रयोग किया जाये तो मेरा अनुच्छेद पर्याप्त है।

अब मैं अपने और संशोधनों पर आता हूं जिस व्याख्या और अनुच्छेद का सार मैं दे चुका हूं यदि उनको स्वीकार नहीं किया जाता है तो उस दशा में मैंने यह सुझाव रखा है कि विद्वान डॉक्टर द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद में से "इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि पर" शब्दों को निकाल दिया जाये। और खण्ड (क) में "जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था" शब्दों के पश्चात् "भारतीय जनकों से उत्पन्न" शब्द रखे जायें और खण्ड (ग) में "पांच वर्ष" के पूर्व "कम से कम" शब्द

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

प्रविष्ट किये जायें "पांच" शब्द के स्थान में मैं "बारह" शब्द रखना चाहूंगा जिससे कि किसी व्यक्ति का इतने काल तक भारत में निवास करना नागरिकता प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो जाये।

जहां तक व्याख्या का सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि स्वयं डॉक्टर को यह विश्वास हो गया है कि उसका रखना आवश्यक नहीं है और इसके पक्ष में बहुत अच्छे तर्क हैं। उसमें यह कहा गया है "इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति को भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा जो अप्रैल सन् 1947 ई. के प्रथम दिवस के पश्चात् उस राज्य-क्षेत्र में प्रव्रजन कर गया हो जो अब पाकिस्तान में है"। मैं नहीं समझता हूं कि केवल पाकिस्तान अकेले को ही क्यों रखा गया है। "प्रव्रजन" शब्द का निश्चित अर्थ है। इसका अर्थ है किसी अन्य देश में स्थायी रूप से बस जाने के उद्देश्य से अपने देश को छोड़ना और जिस देश से प्रव्रजन किया गया है उस देश में न रहना। यदि "प्रव्रजन" शब्द का अर्थ स्पष्ट है तो किसी भी व्यक्ति को, जो भारतीय समुद्र तट को छोड़कर बाहर जाता है, भारत की नागरिकता का हक़ नहीं होगा चाहे वह पाकिस्तान जाये या होनोलूलू जाये या उत्तरीय अथवा दक्षिणी धुव्र जाये। अत: यह व्याख्या निरर्थक है।

इसके साथ-साथ मैंने यह प्रस्थापित किया है कि कुछ ऐसा उत्तरदायित्व होना चाहिये जिसमें प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक होने का दावा करता है वह हाथ बंटाये और इस प्रयोजन के लिये मैंने संशोधन संख्या 29 प्रस्थापित किया है कि "प्रत्येक नागरिक विदेशों में भारतीय राज्य से रक्षण प्राप्त करेगा; और (ख) भारतीय विधियों को पालन करने के लिये बाध्य होगा, भारतीय सम्प्रदायों के हितों की सेवा करेगा, अपने देश की रक्षा करेगा और सब कर भरेगा"। इस पर मैं अधिक जोर देना नहीं चाहूंगा क्योंकि जब हम देशीयकरण के अधिनियम को पारित करेंगे उस समय इसको उसके साथ शामिल किया जा सकता है। श्रीमान् आपने भी यही सुझाव रखा है कि इन सबको संसद पर छोड़ दिया जाये। इस विचार के कारण इस संशोधन को वापस लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। यदि मेरा समूचा अनुच्छेद पारित हो जाता है तो अन्य संशोधनों को पेश करने की आवश्यकता नहीं होगी जो प्रस्थापित अनुच्छेद की शब्दावली से सम्बन्ध रखते हैं। अन्यथा यह आवश्यक होगा कि जिन शब्दों पर मैंने आपत्ति की है उनको निकाल दिया जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मुझे कुछ संशोधन पेश करने हैं। ऐसा करने के पूर्व क्या मैं आपसे यह आदेश प्राप्त करने के लिये निवेदन कर सकता हूं कि मैं अपने संशोधनों पर ही बोलूं या इस अनुच्छेद पर सामान्यतया भाषण दूं। मैं समझता हूं कि यदि सामान्यतया इस अनुच्छेद पर मुझे भाषण देना है तब तो वह असुविधाजनक होगा। यह कार्य सबसे अन्त में होना चाहिये क्योंकि मैं नहीं जानता हूं कि आगे और कौन-कौन से संशोधन पेश किये जायेंगे। हां, मैं यह और कह दूं कि बातों को बार-बार नहीं कहा जायेगा। श्रीमान्, क्या मैं आपका आदेश प्राप्त कर सकता हूं कि मैं अपने संशोधन को पेश करूं और उन्हीं पर बोलूं या सामान्यतया अनुच्छेद पर भाषण दूं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यह अधिक अच्छा होगा यदि आप केवल एक ही भाषण दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इसमें कोई सन्देह नहीं है, पर जब तक कि हमारे सामने सब संशोधन न आ जायें तब तक सामान्यतया इस अनुच्छेद पर भाषण देना असुविधाजनक होगा। कठिनाई यही है। और मैं यह भी देखता हूं कि यद्यपि आपने कृपा कर सदस्यों को यह सूचना दे दी है कि कौन-कौन से संशोधन पेश किये जायेंगे पर फिर भी कुछ सदस्यों में कुछ खलबली पड़ गई है क्योंकि उनको अब तक यह मालूम नहीं हुआ है कि कौन-कौन से संशोधन पेश हो चुके हैं। एक अन्तिम समय परिवर्तन कर देने से यह कठिनाई पैदा हुई है और इस बात के कारण भी संशोधनों की संख्या में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि कठिनाई इस कारण उत्पन्न हो गई है कि सदस्य पहले सप्ताहों की सूचियों की ओर निर्देश कर रहे हैं। कार्यालय ने जिस प्रणाली का अनुसरण किया है वह यह है कि सप्ताह के अन्त में समस्त संशोधनों का संग्रह कर उनको आगामी सप्ताह की प्रथम सूची में रख देना जिससे कि दूसरे सप्ताह के अन्त में जो संशोधन रह गये थे वे सब तीसरे सप्ताह की प्रथम सूची में संगृहीत हो जायें और तीसरे सप्ताह में आगे और जो संशोधन आये हैं वे बाद की सूची 2, 3 इत्यादि में रखे गये हैं। डॉ. देशमुख ने पहली सूचियों का निर्देश किया था पर वर्तमान सप्ताह की सूची में तत्स्थानी संख्या में बता चुका हूं। अत: यदि सदस्य चालू सप्ताह की सूची की ओर निर्देश करेंगे तब तो संख्या के अनुसार उनको संशोधन मिल जायेंगे। यदि सदस्य चाहते हैं तो मैं एक बार और संख्याओं को बता दूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं नहीं समझता हूं कि सब सदस्यों के पास अब तक सही संख्यायें पहुंच गई हैं पर जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं जानता हूं कि मुझे कौन-कौन से संशोधन पेश करने हैं। मैं पहली सूची के संशोधन संख्या 4, 18, 22 और 30 और सूची 5 के संशोधन संख्या 148, 149, 151, 153, 154, 155 और 156 पेश करूंगा। एक या दो और होंगे, मैं तो जल्दी में इन अंकों को ही लिख सका।

श्रीमान्, सूची 1 के संशोधन संख्या 4 को मैं पेश करता हूं–

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में 'At the date of commencement of this Constitution' शब्दों के स्थान में 'Every person who at the date of the commencement of this Constitution' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, मैं 'तिथि' शब्द को भी निकाल दूंगा, और मेरे संशोधन द्वारा 'इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति' शब्दों को 'इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि पर प्रत्येक व्यक्ति' शब्दों के स्थान में रखा जायेगा। मैं इस संशोधन की आवश्यकता की तुरन्त ही व्याख्या करूगा 'इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि पर' पदावली ठीक नहीं है। इस संविधान में सब जगह हमने 'इस संविधान के प्रारम्भ पर' शब्द रखे हैं। ये शब्द स्पष्ट तथा निश्चित रूप से प्रारम्भ की 'तिथि' की

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ओर निर्देश करते हैं। 'प्रारम्भ' तिथि की ही ओर निर्देश करता है। इसलिये मैंने 'तिथि' शब्द को निकाल देने का प्रयास किया है। यह अनावश्यक है और अन्य प्रसंगों में यह शब्द नहीं आता है। इस संशोधन का शेष भाग अनुच्छेद का केवल एक पुनर्प्रबन्ध है जिससे कि 'प्रत्येक व्यक्ति' का शब्दों पर अधिक जोर हो।

इसके बाद मैं सूची 1 के संशोधन संख्या 18 पर आता हूं। श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5-क में 'now included in Pakistan' शब्दों के स्थान में 'which at the commencement of this Constitution is situated within the Dominion of Pakistan' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 5-क के प्रसंग में, जिस रूप में कि डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को प्रस्थापित किया है, 'अब' शब्द बड़ा अनिश्चित है। किसी रूप में भी यह निश्चयबोधक नहीं है। यदि 'राज्य-क्षेत्र जो अब पाकिस्तान में है' पदावली का प्रयोग किया जाता है तो हम यह नहीं जानते कि किस कालावधि के लिये 'अब' शब्द निर्देशित है। क्या यह शब्द उस तिथि की ओर निर्देश करता है जिस तिथि को यह संशोधन स्वीकार किया गया है? क्या यह 11 अगस्त सन् 1949 ई. की ओर निर्देश करता है अथवा क्या यह उस तिथि की ओर निर्देश करता है जिस तिथि से यह संविधान प्रवृत्त होगा अथवा क्या यह उस समय की ओर निर्देश करता है जब कोई अधिवक्ता अथवा स्मृतिज्ञ इस अनुच्छेद को पढ़ेगा? सच तो यह है कि अब शब्द बड़ा ही अनिश्चयबोधक है। अत: 'अब' शब्द के स्थान में मैं 'इस संविधान के प्रारम्भ पर' शब्दों को रखना चाहूंगा। शेष भाग केवल शाब्दिक है। 'अब' शब्द बहुत ही आपत्तिजनक है, वह अस्पष्ट है और उसके कारण कुछ मतभेद भी हो सकता है।

इसके बाद जिस संशोधन को मैं पेश करना चाहूंगा वह प्रथम सूची में संशोधन संख्या 22 है। श्रीमान्, मैं उसे पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के खण्ड (ख) के उपखण्ड (2) में से 'date of ' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

इन शब्दों के निकालने के कारण मैं बता चुका हूं। यदि हम इन शब्दों को निकाल देते हैं तो पाठ इस प्रकार का हो जायेगा, 'इस संविधान के प्रारम्भ पर' इसका निश्चित रूप से इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि ही है।

श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में 'made by Parliament' शब्दों के स्थान में 'made in this behalf by Parliament, शब्द रखे जायें।"

यह केवल शाब्दिक संशोधन है और सुधार के रूप में मैंने इसे रखा है। इस पर मसौदा-समिति द्वारा विचार किया जा सकता है। तृतीय सप्ताह की पहली सूची समाप्त हुई। इसके बाद मैं तृतीय सप्ताह की सूची 5 पर आता हूं।

श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि संशोधन पर संशोधन की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में से 'date of' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

इस संशोधन का निर्देश उसी बात की ओर है और शायद यह संशोधन संख्या 4 का प्रतिरूप है। यदि यही बात है तो यह संशोधन अनावश्यक होगा। मैं सूची 5 में के संशोधन संख्या 149 को भी पेश करता हूं:

श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खण्ड (ग) में से 'the date of' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

इसकी आवश्यकता मैं समझा चुका हूं। इसके बाद मैं संशोधन संख्या 151 पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'a person' शब्दों के स्थान में 'any person' शब्द रखे जायें।"

प्रस्थापित अनुच्छेद 5-क का पाठ इस प्रकार है:

"इस संविधान के अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति (a person) जो भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रव्रजन कर गया है" और इसमें 'कोई व्यक्ति' (any person) शब्द अधिक उपयुक्त होंगे। प्रस्थापित अनुच्छेद 5-ख में इसी प्रसंग के अन्तर्गत 'कोई व्यक्ति।' (any person) शब्दों का प्रयोग किया गया है। A person शायद अस्पष्ट है और यद्यपि any person का अर्थ वही है पर यह अधिक उपयुक्त है और साथ ही साथ यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो इस खण्ड तथा खण्ड 5-ख का मसौदा एकसा हो जायेगा। यह मसौदा सम्बन्धी संशोधन है और मसौदा-समिति के विचारार्थ इसे छोड़ा जा सकता है।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 153 पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के खण्ड (ख) के उपखण्ड (2) में से 'date of' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

यह पद संविधान के प्रारम्भ की तिथि के सम्बन्ध में आता है। जैसाकि मैं पहले समझा चुका हूं ये शब्द अनावश्यक हैं।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 154 पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-कक में 'a person' शब्दों के स्थान में 'any person' शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन की आवश्यकता को मैं बता चुका हूं।

मैं संशोधन संख्या 155 को भी पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 और 131 के निर्देश से प्रस्थापित अनुच्छेद 5-कक में 'now included in Pakistan' शब्दों के स्थान में 'which at the commencement of this Constitution is included in the Dominion of Pakistan' शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन का मुख्य प्रयोजन यह है कि 'अब' शब्द को हटाकर उसके स्थान में इस अनुच्छेद के प्रसंग के अनुकूल एक अधिक निश्चयबोधक पद जैसे कि 'प्रारम्भ पर' रखा जाये। इस संशोधन का शेष भाग शाब्दिक है।

इसके बाद मैं अपने संशोधन संख्या 156 को भी पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 133 में प्रस्थापित अनुच्छेद 6 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:-

'6. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, Parliament may by law make further provisions with respect to the acquisition and termination of citizenship and all other matters relating to citizenship.

Provided that the making of any law by Parliament referred to in this article shall not be deemed to be an amendment of this Constitution within the meaning of article 304 of this Constitution.' "

[6. इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी नागरिकता के अर्जन और अवसान के सम्बन्ध के तथा नागरिकता सम्बन्धी अन्य विषयों के सम्बन्ध के और भी उपबन्ध संसद विधि द्वारा बना सकेगी:

पर संसद द्वारा इस अनुच्छेद में निर्देशित किसी विधि का बनाना इस संविधान के अनुच्छेद 304 के अर्थ के अंतर्गत संविधान का संशोधन नहीं समझा जायेगा।]

इस संशोधन का प्रथम भाग अर्थात प्रस्थापित अनुच्छेद 6 का मुख्य अंग न्यूनाधिक रूप से शाब्दिक है, पर परन्तुक नया है और मैंने इसका सुझाव केवल उन कठिनाइयों के निराकरण करने के लिये किया है जो इस संविधान के संशोधन के रूप में समझी जायेगी। संविधान में हम नागरिकता के कुछ नियमों का उपबन्ध कर रहे हैं। अनुच्छेद 6 के द्वारा हम संसद को और भी विधि बनाने का प्राधिकार दे रहे हैं जिससे कि बाद में यदि संसद ऐसा करे तो यह न कहा जाये कि उसका प्रभाव संविधान के संशोधन के रूप में होगा क्योंकि ऐसा सम्भव हो सकता है कि संसद ऐसी विधियां बनाये जो विचाराधीन खण्डों के रद्द कर दे अथवा कम से कम उनका रूप परिवर्तन कर दे। इस कार्य में स्वयं संविधान का संशोधन अन्तर्ग्रस्त होगा। एक इसी प्रकार के प्रसंग में हमने यह उपबन्ध करने की सावधानी की है कि संसद द्वारा ऐसे संशोधन किये जा सकते हैं जिनका रूप तंत्रवत हो और जो संविधान की जड़ तक नहीं पहुंचते हों और ऐसी दशाओं के लिये चेतावनी के रूप में हमने यह उपबन्ध किया है कि संसद द्वारा किये गये इन संशोधनों को अनुच्छेद 304 के अन्तर्गत संविधान का संशोधन नहीं समझा जायेगा। अत: यदि कोई ऐसा वाद-विवाद हो जाता है कि ये संशोधन संविधान के संशोधन हैं तो संविधान के संशोधन करने के पूरे के पूरे तंत्र के संचालित हो जोने से एक उलझन पैदा हो जायेगी जो सुलझ न सकेगी और जो बहुत ही असुविधाजनक होगी। ऐसे छोटे विषय को पूर्णतया संसद पर छोड़ देना चाहिये और इसे संविधान का संशोधन नहीं समझना चाहिये। मेरे ये संशोधन हैं।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित ये सबके सब अनुच्छेद अनावश्यक रूप से जटिल हैं और जैसाकि डॉ. देशमुख ने बताया है इनके द्वारा भारतीय नागरिकता बहुत सरल हो जायेगी। मैं तो यहां तक कहूंगा कि इससे भी अधिक कोई बात हो जायेगी। डॉ. देशमुख के उदाहरण को लेते हुए कि वायुयान द्वारा यात्रा करती हुई यदि कोई विदेशिन बम्बई में किसी सन्तान की उत्पत्ति करती है तो उस बच्चे को तुरन्त ही भारत की नागरिकता मिल जाती है। डॉ. देशमुख समझते हैं कि उस बच्चे को इस प्रकार भारतीय नागरिकता प्रदान करना एक बड़ा भद्दा आधार है। मैं निवेदन करूंगा कि इसके कारण भयानक परिणाम हो सकते हैं। इस उदाहरण में बच्चे की मां एक विदेशिन है। ऐसा हो सकता है और है भी यह सीधी सी बात कि उसके देश की विधि उस बच्चे को अपने यहां के नागरिक होने का दावा करेगी। वास्तव में नागरिकता माता-पिता की नागरिकता के अनुसार चलती है। पिता का अधिवास बच्चे का भी अधिवास होगा। अत: पिता अथवा माता के अधिवास और उस बच्चे की भारतीय नागरिकता में परस्पर स्पर्धा होगी। एक ओर भारत उस बच्चे पर अपनी नागरिकता का दावा करेगा ओर उस बच्चे की मां उस बच्चे को अपने देश का नागरिक होने का दावा करेगी। यह भी हो सकता है कि पिता किसी और राष्ट्र का हो और वह उस बच्चे को अपने राष्ट्र का होने का दावा करे। तीनों देश परस्पर स्पर्धा करेंगे और उस बच्चे को अपने-अपने राष्ट्र का होने का दावा करेंगे। इस दृष्टान्त को जरा और बढ़ाते हुए उस बच्चे के महाजनकों को लीजिये—चार महाजनकों को माता के माता-पिता और पिता के माता-पिता। फिर इसी प्रकार चार दावा करने वाले हुए जिनकी राष्ट्रीय के आधार पर उस बच्चे की नागरिकता विनिश्चित की जायेगी। चार विभिन्न देश उस बच्चे पर अपना-अपना दावा कर सकते हैं। इससे अधिक और क्या होगा कि वह बच्चा एक विशेष अनिश्चित सी स्थिति में पड़ जायेगा कि भारत की नागरिकता अथवा

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अपने माता या पिता की राष्ट्रीयता और चार महाजनकों की राष्ट्रीयता में से किसको स्वीकार करे और किसको नहीं। यह एक बड़ी गड़बड़ की सी दशा हो जायेगी। जिस रीति से इन अनुच्छेदों की उत्पत्ति हुई है और जिस प्रकार ये सभा में प्रस्तुत किये गये हैं और जिस प्रकार से रोजाना संशोधन आ रहे हैं, इन बातों के प्रति और तो क्या कहा जा सकता है सिवा इसके कि डॉ. देशमुख के कथन को उद्धृत किया जाये कि ये बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बातें हैं। मेरा विचार है कि इस कठिन तथा पेचीदे विषय को इस प्रकार नहीं निपटाना चाहिये और मैं इस बात को कहीं अच्छा समझता कि इन अनुच्छेदों पर विचार स्थगित कर दिया जाता और सदस्यों को इन सुझाये गये संशोधनों के सहित इस समूचे विषय पर विचार करने दिया जाता। मैं देखता हूं कि मैं ही एक ऐसा सदस्य इस सभा का नहीं हूं जिसे समूचे की दूसरी प्रति को समझना कठिन प्रतीत होता हो क्योंकि हमें संशोधनों पर विचार करना पड़ता है और उनको प्रसंगानुकूल रखना पड़ता है तथा उनके प्रभाव पर विचार करना पड़ता है। जैसाकि में निवेदन कर चुका हूं इस सभा में मुझ जैसे बहुत से सुस्त सदस्य हैं जिनको इन प्रस्थापित नये अनुच्छेदों की केवल पेचीदगियों को समझना ही नहीं बल्कि संशोधन प्रस्थापित करना भी मेरी तरह से कठिन प्रतीत होता है। इस स्थिति के कारण बहुत से सदस्य उदासीन हो जाते हैं और हम आपकी उस न्यायोचित टिप्पणी की प्रशंसा करते हैं जिसमें आपने कल यह कहा था कि बहुत से सदस्य संशोधन तथा विचाराधीन विषय से कोई सम्बन्ध न रखते हुए वाद-विवाद में रुचि रखते हैं। इसका वास्तविक कारण यह है कि ठीक-ठीक विचार-विमर्श के लिये सदस्यों के मन में संशोधन तथा नये विचार कुछ समय बाद उत्पन्न होते हैं। इन अनेक अनुच्छेदों के विषय से तो अनिवार्यत: अरुचि पैदा हो जायेगी क्योंकि बिना किसी त्रुटि के इनको समझना जरा कठिन है। क्योंकि ये विषय कठिन हैं और इनमें विसंगतियां भी हैं इस कारण मैं समझता हूं कि यदि आगे और विचार करने के लिये यदि हम इन अनुच्छेदों को स्थगित कर देंगे तो और भी अधिक उलझनें पैदा होंगी। अत: सर्वोत्तम मार्ग यही है कि इन अनुच्छेदों को स्वीकार किया जाये और अनुच्छेद 6 के बहाने से यदि कोई सुधार अथवा परिवर्द्धन की आवश्यकता हो तो उसके लिये उपबन्ध कर दिया जाये। इससे किसी सीमा तक कुछ उलझनों से मुक्ति मिल जायेगी जो अनजाने में और संशोधनों द्वारा पैदा हो जायेगी। इससे सदस्यों को विषय पर अधिक गम्भीर विचार करने का बहाना भी मिल जायेगा। हम अपने विचार और परिश्रम, भावी संसद को सौंप देंगे जो इन मसौदों में यदि कोई दोष होंगे तो उनको दूर कर देगी। इनका समझना बड़ा कठिन होगा और इसके कारण केवल सरल नागरिकता प्रदान करना ही नहीं बल्कि राष्ट्रीयता सम्बन्धी ऐसी गड़बड़ी हो जायेगी जिससे हम मुसीबत में पड़ जायेंगे।

*__श्री जसपतराय कपूर__ (संयुक्तप्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम का पहला संशोधन तृतीय सप्ताह की सूची 1 में संशोधन संख्या 5 है जो इस संविधान के प्रारम्भ के बाद नागरिकता की परिभाषा से सम्बन्ध रखता है। कल डॉ. अम्बेडकर ने जो व्याख्या की थी उसको ध्यान में रखते हुए जिसमें उनका उद्देश्य यह था कि नागरिकता की परिभाषा को इस संविधान की प्रारम्भ तिथि के लिये ही सीमित रखा जाये और विशेषकर आपकी मंत्रणा को ध्यान में रखते हुए कि हम अपनी बातों को केवल प्रश्न के इसी पहलू तक सीमित रखें, मैं अपना संशोधन पेश

करने का साहस नहीं करता हूं। पर, श्रीमान्, मैं देखता हूं कि जो मसौदा डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है वह केवल अस्थायी मसौदा ही नहीं है वरन् वह एक ऐसा सीमित सा मसौदा है कि इस संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि के पश्चात् यहां तक कि उस समय के लिये भी जब तक कि संसद तत्सम्बन्धी विधि बनाये नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने के लिए कोई भी उपबन्ध नहीं करता है। अत: मैं डॉक्टर से गम्भीर विचार करने के लिए निवेदन करता हूं कि क्या यह उचित नहीं होगा कि इस संशोधन में निहित सुझाव को स्वीकार किया जाये। सुझाव इस प्रकार है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 के प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में 'at the commencement of this Constitution' शब्दों के पश्चात् 'and thereafter' शब्द प्रविष्ट किये जायें; और खण्ड (क) में 'was' शब्द के पश्चात् 'or is' शब्द प्रविष्ट किये जायें; अथवा विकल्पत: संशोधन संख्या 1 के निर्देश से निम्न नया अनुच्छेद 5 (घ) के रूप में प्रविष्ट किया जाये:

'After the date of the commencement of this Constitution, every person who possesses the qualifications mentioned in article 5 of this Constitution shall, subject to the provisions of any law that may be made by Parliament, be a citizen of India; provided that he has not voluntarily acquired the citizenship of any foreign State.' "

(इस संविधान की प्रारम्भ तिथि के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति, जो इस संविधान के अनुच्छेद 5 में उल्लिखित अर्हताओं को रखता है वह संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन भारत का नागरिक होगा यदि उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त नहीं की है।)

***अध्यक्ष:** आपने 'continue to be' शब्दों को छोड़ दिया।

***श्री जसपतराय कपूर:** वे गलत छप गये हैं। यह केवल इस प्रकार पढ़ा जायेगा 'shall be a citizen of India'...... मैं आशा करता हूं कि इस सुझाव पर डॉ. अम्बेडकर गम्भीर विचार करेंगे और उसे स्वीकार्य समझेंगे।

इसके बाद का संशोधन जो मेरे नाम से है वह संख्या 13 है पर चूंकि यह संशोधन, संशोधन संख्या 130 में आ जाता है जिसको डॉ. अम्बेडकर पेश कर चुके हैं अत: मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं। संशोधन संख्या 8 या 9 में से मैं किसी को भी पेश नहीं कर रहा हूं। इसके बाद मैं संशोधन संख्या 31 पर आता हूं जिसको मैं पेश कर रहा हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में से 'deemed to be' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

[श्री जसपतराय कपूर]

एक और संशोधन संख्या 19 मेरे तथा श्री सिधवा के नाम से है, उसे मैं श्री सिधवा द्वारा पेश होने के लिये छोड़ता हूं क्योंकि इस संशोधन में वे मेरे बड़े हिस्सेदार हैं।

इसके बाद जिस संशोधन को मैं पेश करना चाहूंगा वह संशोधन संख्या 124 है, जो इस प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'who' शब्द के पश्चात् एक अर्द्धविराम और 'on account of civil disturbance or the fear of such disturbances' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

मेरे नाम से कुछ और भी संशोधन हैं, पर मैं उनमें से किसी को पेश नहीं करना चाहता हूं।

श्रीमान्, नागरिकता की परिभाषा से सम्बंधित इस अनुच्छेद 5 का बड़ा रंग बिरंगा इतिहास रहा है। मसौदा-समिति ने समय-समय पर हमारे विचार करने के लिये अनेक मसौदों को प्रस्तुत किया और प्रत्येक मसौदा अपने पूर्ववर्ती मसौदे से अच्छा समझा जाता था, पर जब-जब वह हमारे सामने परीक्षण तथा विचार के लिये प्रस्तुत हुआ उसे दोषपूर्ण समझा गया तथा पर्याप्त रूप में व्यापक नहीं समझा गया अत: उसको फिर मसौदा-समिति के पास दुबारा मसौदा बनाने और उसमें सुधार करने के लिए भेजा गया। इस सत्र में भी मसौदा-समिति से संशोधन पर संशोधन तब तक आते रहे जब तक कि हमारे सामने वह मसौदा प्रस्तुत न हुआ जिसको डॉ. अम्बेडकर ने कल पेश किया था। आइये, देखें कि क्या यह मसौदा भी संतोषदायक है या नहीं। मुझे भय है कि कहीं यह भी सन्तोषजनक तथा व्यापक न हो। सर्वप्रथम हम यह देखते हैं कि यह नागरिकता की परिभाषा केवल संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि के लिये ही करता है और उस स्थिति के बाद नागरिकता प्राप्त करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं करता है। हां, अनुच्छेद 5(ग) के अधीन इस संविधान को प्रारम्भ तिथि पर प्राप्त किया गया अधिकार उसके बाद भी नागरिकों के पास बना रहता है, पर यह सब होते हुए भी इस तिथि के पश्चात् नागरिकता का अधिकार प्राप्त करने के लिये वह कोई उपबन्ध नहीं करता है। इसको सुविधापूर्वक संसद के विचार पर छोड़ दिया गया है। अभी तक जो कार्यक्रम सोचा गया है उसके अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि 26 जनवरी सन् 1950 होगी। अत: इसका यह अर्थ हुआ कि 26 जनवरी सन् 1950 वह अंतिम काल होगा जिस काल तक नागरिकता का अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिये और 26 जनवरी 1950 की अर्द्धरात्रि के पश्चात् इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं किया गया है। इस स्थिति को मैं बहुत ही असन्तोषजनक स्थिति समझता हूं। हां इस बात को तो मैं ठीक समझ सकता हूं कि नागरिकता की एक व्यापक परिभाषा बनाना आज कोई सरल काम नहीं है। इस समय इस बात का विचार करना कदाचित सम्भव न हो सके कि नागरिकता का अधिकार प्राप्त करने के लिए किन-किन सम्भाव्य अर्हताओं की व्यवस्था की जाये और नागरिकता की एक बड़ी व्यापक परिभाषा बनाने के कार्य को संसद पर छोड़ दिया जाये;

पर मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि हम, जबकि मेरे विचारानुसार यह कार्य बहुत ही सरल है, इस बात का प्रयास क्यों न करें कि इस संविधान की प्रारम्भ तिथि और इस विषय पर संसद द्वारा किसी विधि के अधिनियमित करने की तिथि में मध्यवर्ती काल के लिये इस अधिकार के प्राप्त करने के लिये व्यवस्था बनाई जाये। क्या यह बहुत असंतोषजनक नहीं है कि उन लोगों के लिये हम कोई भी उपबन्ध न करें जिनका जन्म 26 जनवरी सन् 1950 की अर्द्धरात्रि के पश्चात् होगा ओर उन लोगों के इस अधिकार के प्राप्त करने के लिये कोई उपबन्ध न करें जो इस देश में अधिवास कर रहे हैं और जो जनवरी सन् 1950 के कुछ समय के पश्चात् पांच वर्ष की निवास अवधि को पूरा कर लेंगे? यह कमी स्पष्ट दिखाई देती है। इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से लेकर उस तिथि तक जबकि संसद नई विधि बनायेगी लाखों आदमी इस देश के नागरिक नहीं समझे जायेंगे। इस कष्ट का अनुभव इस सभा के कई सदस्यों को भी होगा जिनकी अभी-अभी शादी हुई है—इस श्रेणी में कुछ माननीय मंत्री भी आ जाते हैं—और जिनके 26 जनवरी सन् 1950 के बाद बच्चे होंगे और जो ऐसे बच्चों के पिता होने के नाते जो इस देश के नागरिक नहीं है, अपने आपको एक बड़ी दु:खदायी तथा असुविधाजनक स्थिति में पायेंगे। इस स्थिति में जो विसंगति है वह और भी अधिक हास्यास्पद हो जाती है जब हम अनुच्छेद 5-ख में यह देखते हैं—इस सम्बन्ध का भाग इस अनुच्छेद में इस प्रकार है:

> "यदि किसी व्यक्ति के नागरिकता प्राप्ति के आवेदन-पत्र के अपने द्वारा उस देश में जहां वह तत्समय निवास कर रहा है, भारत के राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधियों को इस संविधान के प्रारम्भ के पहले या बाद, दिये जाने पर ऐसे राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधि द्वारा भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया है तो वह भारत का नागरिक समझा जायेगा।"

विशेषकर मैं 'बाद' शब्द की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जिसका यह आशय है कि जबकि अनुच्छेद 5-क में नागरिकता की परिभाषा इस संविधान की प्रारम्भ तिथि के लिये ही सीमित रखी गई है, पर अनुच्छेद 5-ख के अनुसार उन लोगों के लिये जो न यहां पैदा हुए हैं अथवा न यहां रह रहे हैं बल्कि जो विदेशों में पैदा हुए हैं अथवा वहीं रह रहे हैं इस संविधान की प्रारम्भ तिथि के बाद भी यदि पंजीबद्ध करने के लिये वहां के भारतीय दूतावास को आवेदन-पत्र दिया जाता है, तो उनको नागरिक के रूप में पंजीबद्ध कर लिया जायेगा। अत: यह स्पष्ट है कि उन लोगों की अपेक्षा, जिनका जन्म विदेशों में हुआ है—यह अवश्य है कि भारतीय जनकों द्वारा—उन लोगों को हानि पहुंचाई जा रही है जिनका जन्म इस देश में हुआ है। यह कहा जा सकता है कि ऐसे लोगों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे अपने आप नागरिक बन सकें क्योंकि उनको पंजीबद्ध किया जायेगा और यह भी कहा जा सकता है कि हमारी सरकार द्वारा कुछ नियम बनाये जायेंगे जिनमें ऐसी शर्तें निर्धारित की जायेंगी जिनके अधीन उनको पंजीबद्ध किया जा सके अथवा इस विषय पर बाद में एक विधि–व्यापक विधि बनाई जायेगी जिसमें इन सब आकस्मिकताओं पर ध्यान दिया जायेगा। अनुच्छेद 5-ख के अनुसार पाकिस्तान का कोई नागरिक, जिसे हम अपनी नागरिकता की परिभाषा से बाहर रख रहे हैं, यदि वह विदेश में जाता है और हमारे दूतावास को आवेदन-पत्र देता है तो वह भारत के नागरिक के रूप में पंजीबद्ध किया जा सकता है। इस अनुच्छेद 5-ख में वह शर्त नहीं रखी गई है जो हमें अनुच्छेद 5-क में मिलती है कि

[श्री जसपतराय कपूर]

उसने किसी विदेशी नागरिकता के अधिकार अर्जित न किये हों। यह कहा जा सकता है कि ऐसी विसंगत स्थिति को हम नहीं रहने देंगे और इस विषय पर हम आवश्यक विधि बनायेंगे। यह सच है पर मैं देखता हूं कि उसी रक्षाकवच को, जो मूलतः मूल अनुच्छेद में इस प्रकार था "और संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्ध के अधीन", अपमार्जित करने की प्रस्थापना की है। मूलतः वह इस प्रकार था "इस संविधान के अनुच्छेद 5 और 5-क में किसी बात के होते हुए भी तथा संसद द्वारा किसी निर्मित विधि के उपबन्धों के अधीन इत्यादि इत्यादि"। यदि यह रक्षात्मक खण्ड हो तब तो 5-ख के उपबन्धों में जो दोष हमें दिखाई देगा उसको दूर किया जा सकता है। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कल एक संशोधन पेश किया था जिसको डॉ. अम्बेडकर ने पेश होने के पूर्व ही बड़ी उदारता तथा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। मैं नहीं समझा पाता हूं कि श्री कृष्णमाचारी ने किस उद्देश्य से इन शब्दों के अपमार्जन का सुझाव दिया है। यदि उनका विचार यह है कि वह व्यर्थ है, क्योंकि अनुच्छेद 6 के अधीन संसद को यह निर्धारित करते हुए कोई नहीं विधि बनाने का अधिकार होगा कि नागरिकता के अधिकार अर्जन करने के लिए क्या-क्या अर्हतायें होनी चाहिये, तो मैं निवेदन करता हूं...।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि यदि वे यथा संशोधित अनुच्छेद 6 को पढ़ेंगे तो उनको मेरे संशोधन की व्याख्या मिल जायेगी।

***श्री जसपतराय कपूर:** मेरी आपत्ति के उत्तर में श्री कृष्णमाचारी जिस तर्क को हमारे सामने प्रस्तुत करेंगे उसका मैंने सही अनुमान कर लिया था, परन्तु यदि यथा संशोधित अनुच्छेद 6 में यह विषय आ जाता है और इससे ये शब्द व्यर्थ हो जाते हैं तो क्या मैं उनसे यह पूछ सकता हूं कि फिर इन्हीं शब्दों को अनुच्छेद 5-ग में रखने की क्या आवश्यकता है? अनुच्छेद 5-ग में कहा गया है कि "प्रत्येक व्यक्ति जो इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में से किसी के अधीन भारत का नागरिक है, ऐसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, जो संसद द्वारा निर्मित की जाये, भारत का वैसा नागरिक बना रहेगा"। अनुच्छेद 5-ग में हमने ये शब्द रखें हैं। पर अनुच्छेद 5-ख में से इन शब्दों को, जो मूलतः उसमें थे, अब निकालने का प्रस्ताव किया गया है। यदि ये शब्द व्यर्थ हैं और अनुच्छेद 6 के नये मसौदे में आ जाते हैं तो इनको इन दोनों अनुच्छेदों में से निकाल देना चाहिये। यदि अनुच्छेद 5-ग में ये शब्द आवश्यक हैं तो अनुच्छेद 5-ख में ये और भी अधिक आवश्यक हैं।

मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 5-ख में इन शब्दों का रहने देना आवश्यक है। मैं नहीं समझता हूं कि अनुच्छेद 6 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर संसद को कोई ऐसी विधि अधिनियमित करने का अधिकार होगा जो अनुच्छेद 5-ख के उपबन्धों के विरुद्ध हो। उन लोगों की नागरिकता के लिये अर्हतायें निर्धारित करने के लिये अनुच्छेद 5-ख एक निश्चित अनुच्छेद है जिनका उसमें उल्लेख किया गया है। संविधान के अधीन नागरिकता के अधिकार देने वाले एक निश्चित अनुच्छेद को संसद द्वारा निर्मित किसी परवर्ती विधि द्वारा नहीं बदला जा सकता है। जो होगा वहीं होगा, पर किसी प्रकार की संदिग्धता की सम्भावना से बचने के लिये यह आवश्यक है कि या तो इन शब्दों को दोनों 5-ख और 5-ग अनुच्छेदों में

रखा जाये और या इनको किसी में भी न रखा जाये। केवल अनुच्छेद 5-ग में इन शब्दों के रखने से यह भावना पैदा हो सकती है कि केवल 5-ग ही इस विषय पर किसी परवर्ती विधि के अधीन है और अनुच्छेद 5-ख किसी ऐसी परवर्ती विधि के अधीन नहीं है।

जिस प्रश्न को मैंने आरम्भ में उठाया था, उसके सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि हम अनुच्छेद 5 का इस प्रकार से संशोधन करें कि उसमें वे लोग भी आ जायें, जिनका जन्म भारत में भारतीय जनकों द्वारा 26 जनवरी सन् 1950 के पश्चात हो। मेरे सुझाव के तुरन्त स्वीकार हो जाने में मुझे कोई भी कठिनाई नहीं दिखाई देती है। यदि उसको स्वीकार कर भी लिया जाये तो भी अनुच्छेद 5 नागरिकता की एक पूर्ण रूप से स्थायी परिभाषा नहीं होगी; उसको अनुच्छेद 6 के अधीन संशोधित अथवा परिवर्तित किया जा सकता है। जैसाकि अभी श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने कहा था। मैं केवल यह चाहता हूं कि जो कमी उसमें है उसे पूरा कर दिया जाये। यह न कहने दीजिये कि 26 जनवरी सन् 1950 के शुभ दिवस के बाद का समय इतना अशुभ था कि इस तिथि के बाद और नई विधि अधिनियमित होने की तिथि से पहिले जिन लोगों का जन्म हुआ, वे इतने अभागे थे कि जन्मना वे इस देश के नागरिक नहीं हुये। अत: मैं बड़ी गम्भीरता तथा सम्मानपूर्वक यह सुझाव रखता हूं कि जिस रूप का मैंने सुझाव दिया है, उस रूप में अनुच्छेद 5 को संशोधित किया जाये। यह "इस संविधान की प्रारम्भ तिथि" के पश्चात केवल "और उसके बाद" शब्द जोड़ देने से हो सकता है।

दूसरा प्रश्न जिसकी ओर मैं निर्देश करना चाहता हूं, वह अनुच्छेद 5-क के सम्बन्ध में है। यह अनुच्छेद उन लोगों के सम्बन्ध में है, जो विभाजन के बाद भारत में प्रव्रजन कर आये हैं। उनको "भारत का नागरिक समझा जायेगा"। इस अनुच्छेद में मैं विशेषकर "समझा जायेगा" शब्दों के बने रहने पर आपत्ति करता हूं। अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति, जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र से भारत राज्य-क्षेत्र की प्रव्रजन कर आया है, इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत का नागरिक समझा जायेगा।"

मैं नहीं समझता हूं कि किस विशेष उद्देश्य के कारण "समझा जायेगा" शब्दों को यहां रखा गया है।

यह अनुच्छेद उन लोगों द्वारा नागरिकता के अधिकार अर्जन से सम्बन्ध रखता है, जो भारत में प्रव्रजन कर आये हैं। मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि भारत में प्रव्रजन करने के बाद अधिकार के रूप में उनको भारत का नागरिक क्यों नहीं माना जाता है और ऐसा सुझाव क्यों दिया जाता है कि अनुकम्पा के रूप में हम उनको यह अधिकार दे रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे उन भाइयों को शायद इसके कारण बहुत अधिक दु:ख हो, जिन्होंने पाकिस्तान से अपनी इस पवित्र और प्यारी भूमि में प्रव्रजन करने के लिए अनेक कष्ट सहे, वेदनायें और यातनायें उठाई। उस देश को आते हुये मार्ग में हर समय वे अपनी इस प्यारी मातृभूमि के बारे में सोचते रहे, उसकी सीमा तक पहुंचने के लिये आशा तथा प्रार्थना करते रहे और सीमाओं पर पहुंचते ही दु:ख से छुटकारा पाने

[श्री जसपतराय कपूर]

की एक महान् भावना के साथ उन्होंने 'जय हिन्द' का नारा लगाया, वह नारा जिसने हमारे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उत्साह भर दिया। इस देश में पहुंचने के लिये, इसके प्रति अपनी निष्ठा अर्पण करने के लिये वे इतने उत्सुक थे, पर फिर भी हम उनको यह नागरिकता का अधिकार की अपेक्षा अधिकतर दया के रूप में दे रहे हैं। श्रीमान् इसके लिये मैं कोई कारण नहीं देखता हूं। इसके विपरीत इन शब्दों के निकालने के पक्ष में और अपने शरणार्थी भाइयों को सन्तोष देने के लिये मुझे एक बहुत बड़ा कारण दिखाई देता है। ऐसे विषयों में सहानुभूतिपूर्वक कार्य करना और अपने शरणार्थी भाइयों को मानसिक सन्तोष प्रदान करना सदैव सर्वोत्तम कार्य है। अत: मैं सम्मानपूर्वक सच्चे हृदय से यह सुझाव करता हूं कि इस शब्दों को अपमार्जित किया जाये, क्योंकि इन शब्दों के अपमार्जन से हानि कुछ नहीं होगी और लाभ अधिक होगा।

इसी प्रकार श्रीमान्, अनुच्छेद 5-ख में से 'समझे जायेंगे' शब्दों का अपमार्जन किया जाये, यद्यपि अनुच्छेद 5-क में से इन शब्दों का अपमार्जन करना अनुच्छेद 5-ख में से अपमार्जन करने से अधिक आवश्यक है।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 124 पर आता हूं, जिसे मैं पढ़ चुका हूं। उसमें कहा गया है कि 'who' शब्द के पश्चात् एक अर्द्ध विराम और 'on account of civil disturbances or the fear of such disturbances' शब्द प्रविष्ट किये जायें। अत: इन शब्दों के जोड़ देने के बाद अनुच्छेद 5-क इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति जो असैनिक विद्रोहों अथवा इन विद्रोहों से भयभीत होने के कारण भारत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है.....।"

श्रीमान्, मेरे इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि इस अनुच्छेद को कुछ अन्य विधानों के अनुरूप कर दिया जाये, जो प्रवर्तन में पहले से आ रहे हैं। मेरा अभिप्राय निष्कान्त सम्पत्ति सम्बन्धी विधान से है। केवल केन्द्र में ही नहीं वरन् देश के अनेक प्रान्तों में पश्चिमी बंगाल, आसाम और शायद मद्रास को छोड़कर सबमें निष्क्रान्त सम्पत्ति अध्यादेश प्रवृत्त है। इस अध्यादेश के अनुसार एक निष्क्रान्त व्यक्ति की परिभाषा यह है कि वह व्यक्ति जिसने असैनिक विद्रोहों अथवा इन विद्रोहों से भयभीत होकर राज्य-क्षेत्र को छोड़ दिया हो। श्रीमान्, यह बात मुझे बहुत ही तर्कसंगत तथा युक्तियुक्त प्रतीत होती है कि अनुच्छेद 5-क जैसे उपबन्ध में हमें यह कहना चाहिये कि वे विशेष कारण क्या हैं, जो हमें ऐसा उपबन्ध बनाने के लिए मार्ग प्रदर्शित कर रहे हैं। हमें यहां निश्चित रूप से यह प्रकट कर देना चाहिये कि हमारा उद्देश्य यह नहीं था कि उन लोगों को नागरिकता का अधिकार दें, जो हमारे देश प्रव्रजन करना चाहते थे, पर हम ऐसे लोगों को कुछ कारणों वश यह अधिकार देना चाहते हैं और एक विशेष कारण यह है कि इन लोगों ने अपने मूल निवास स्थान में ठहरना कठिन समझा। हमको यह निश्चित रूप में निर्धारित कर देना चाहिये कि वे क्या कारण हैं, जिनके कारण हम एक ऐसा उपबन्ध बना रहे हैं, जो अनुच्छेद में दिया हुआ है। अत: मैं समझता हूं कि अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिये जिन शब्दों का मैंने सुझाव दिया है, उनको रखना बहुत आवश्यक है।

इसके बाद श्रीमान्, एक और संशोधन के सम्बन्ध में, जिसकी श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है, मुझे एक बात और कहनी है, अर्थात् संशोधन संख्या 131 के सम्बन्ध में। यह संशोधन श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है। मैं नहीं जानता हूं कि वह कौन सा खास कारण था, जिसकी वजह से डॉ. अम्बेडकर स्वयं इस संशोधन से अलग हो गये, यद्यपि अपने संशोधन को समूचे रूप में पेश करते हुए उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया है। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि उन्होंने इसे क्यों मन्जूर किया, जबकि आरम्भ में उन्होंने इस संशोधन के साथ अपने आपको सम्बंधित करना पसन्द नहीं किया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): पर उन्होंने तो उसे पेश तक नहीं किया है। ओह, वह परन्तुक–हां, उसको मैंने स्वीकार कर लिया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह डॉ. अम्बेडकर के नाम से नहीं है, बल्कि श्री गोपाल स्वामी और मेरे नाम से है।

***श्री जसपतराय कपूर:** यही तो मैं कह रहा था। अत: मैं बिल्कुल सही सही कह रहा था। मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि यह बात डॉ. अम्बेडकर को एक अचम्भे की सी मालूम हुई। मैं कह चुका हूं कि यह संशोधन उन्होंने स्वीकार कर लिया है। वे इस ख्याल में थे कि उसको पेश ही नहीं किया गया है और यदि उन्होंने अनजाने भूल में उसे स्वीकार कर लिया है, तो मैं आशा करता हूं कि वे इसे तुरन्त ही ठीक कर लेंगे और हमें यह स्पष्ट बता देंगे कि इस संशोधन को स्वीकार करने का उनका इरादा नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं माननीय सदस्य के भाषण में हस्तक्षेप कर सकता हूं और उनको यह कह सकता हूं कि वे इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि यह संशोधन क्यों पेश किया गया है।

***श्री जसपतराय कपूर:** जी हां, मैं भली प्रकार जानता हूं कि यह संशोधन क्यों पेश किया गया है। मैं यह भी भली प्रकार जानता हूं कि यह संशोधन क्यों बहुत हानिकर है और इसे क्योंकर स्वीकार नहीं करना चाहिये। मैं कहता हूं कि यह इतना हानिकर है कि डॉ. अम्बेडकर ने आरम्भ में इस संशोधन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक, उचित तथा ठीक नहीं समझा।

श्रीमान्, यह क्यों है कि मैं उसे हानिकर समझता हूं? उसमें यह कहा गया है जो कि लोग भारत से पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये और यदि वे 19 जुलाई सन् 1948 ई. के पश्चात् भारत के दूतावास अथवा उच्च आयुक्त से मान्य अनुज्ञा पत्र प्राप्त कर भारत वापस चले आये, तो उनको यह अधिकार होना चाहिये कि वे इस देश के नागरिक के रूप में पंजीबद्ध हो जायें। यह सिद्धांत सम्बन्धी एक गम्भीर विषय है। एक बार यदि कोई व्यक्ति पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गया और भारत के प्रति जो निष्ठा थी, उसे पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दिया, तो उसका प्रव्रजन पूर्ण हो गया। उसने उस समय यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस देश को ठुकरा दिया जाये और उसे अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाये और यह सोच कर वह नवनिर्मित पाकिस्तान को चला गया, जहां वह उस राज्य को स्वतन्त्र, प्रगतिशील और समुन्नत बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करेगा। उनसे हमें कोई ईर्ष्या नहीं है.....।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार: जनरल): क्या मैं अपने माननीय मित्र से यह पूछ सकता हूं कि क्या यह सच है कि जो लोग पाकिस्तान गये वे, सब वहां स्थायी रूप में बसने और उस राज्य के प्रति निष्ठा रखने के उद्देश्य से गये? क्या यह सच नहीं है कि वे भयभीत होकर भागे?

__श्री जसपतराय कपूर:__ मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद आज 11 अगस्त सन् 1949 को भी इस बात में सन्देह करते हैं कि जो लोग पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये, उनका वास्तविक उद्देश्य क्या था। मैं इस दुखदायी विषय की ओर निर्देश नहीं करना चाहता हूं क्योंकि अतीत की कटु भावनाओं को हम जितना शीघ्र भूल जायें उतना ही अच्छा है, पर क्या हम यह नहीं जानते हैं कि मुस्लिम लीग वालों ने देश का विभाजन और जनसंख्या का विनिमय चाहा और मुस्लिम लीग वालों की संख्या बहुत अधिक थी? हमारे दुर्भाग्यवश एक मुट्ठी भर राष्ट्रीय मुस्लिम पाकिस्तान स्थापित करने के विचार के विरुद्ध थे। मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या और निश्चय ही वे लोग पाकिस्तान विभाजन के पश्चात् ही चले गये, उनका पाकिस्तान में स्थायी रूप से बसने का पक्का इरादा था। यह भी हो सकता है कि उसमें से कुछ अथवा उनकी एक अच्छी संख्या यहां विद्रोह होने के कारण उस समय पाकिस्तान चली गई। पर क्या मेरे माननीय मित्र को इस बात में संदेह है कि यदि विद्रोह न भी होता, तो भी उनमें से अधिकांश लगभग सभी पाकिस्तान चले जाते, क्योंकि वे स्वयं यह मांग कर रहे थे कि जनसंख्या हस्तान्तरित की जाये? .....(श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा बाधा)।*

*__अध्यक्ष:__ माननीय सदस्य को अपने विचार व्यक्त करने का हक है और सभा स्थल में किसी सदस्य से जिरह करने से कोई लाभ नहीं है। यदि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के कुछ विचार हैं, तो वे अपने विचार अपने पास रखें और श्री कपूर को अपने विचार व्यक्त करने दें।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ मैं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद सभा में जो कोई भी उपयुक्त विचार अथवा प्रस्थापना प्रस्तुत की जाती है उससे सहमत नहीं होते हैं और मेरे लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इस अवसर पर भी वे मेरे साथ सहमत नहीं हो रहे हैं। मैं यह निवेदन कर रहा था कि जो लोग पाकिस्तान गये, वे निश्चित रूप से वहां स्थायी निवास करने के उद्देश्य से गये। उन्होंने इस देश के प्रति अपनी भक्ति को तिलांजलि दी और नये देश पाकिस्तान के प्रति अपनी निष्ठा अर्पण की। अत: उनका प्रव्रजन पूर्णतया निरपेक्ष है और इस कारण नागरिकता का अधिकार, जो उन्हें पहले प्राप्त था, अब बिल्कुल न रहा। दोनों छोटे और बड़े पदों के सरकारी सेवक विशेषकर रेल के कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या ऐसी थी, जिन्होंने पाकिस्तान बनने से पहले ही अपनी स्वतन्त्र इचछा के अनुसार पाकिस्तान में जाने का विचार प्रगट किया था और उनमें से बहुत से विशेषकर रेल के कर्मचारी पाकिस्तान जाकर और यह देख कर कि वहां भली प्रकार रहने के लिये कोई गुंजाइश नहीं है, मान्य अनुज्ञापत्र प्राप्त कर भारत वापस चले आये। जैसाकि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का विचार है, क्या इनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उपद्रवों से भयभीत होकर इन्होंने राज्य-क्षेत्र छोड़ दिया था? जबकि उपद्रव का कोई चिह्न न था उस समय ही उन्होंने निश्चित रूप से कह दिया था कि वे स्थायी रूप से पाकिस्तान में बसने के लिये जाना चाहेंगे और पाकिस्तान सरकार की सेवा करेंगे। अत: हमारे किसी के मन में इस बात के प्रति कोई सन्देह नहीं रहना चाहिये कि ऐसे लोग वहां

निश्चित रूप से बसने के इरादे से गये। अब यदि वे यहां स्थायी रूप से बसने के लिये भारत वापस आना चाहते हैं, तो हम उनका उसी प्रकार स्वागत करेंगे, जिस प्रकार किसी अन्य विदेशी का स्वागत करते हैं। एक बार वे हमारे देश के लिये विदेशी हो गये तो उनसे उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये जैसाकि किसी अन्य विदेशी से किया जाता है। यदि उनको यहां आने और स्थायी रूप से बसने के लिए कोई अनुज्ञा पत्र दिया जाता है, तो इसका यही अर्थ होगा कि हम उनके साथ सहानुभूति कर रहे हैं और ये कह रहे हैं "यदि आप चाहते हैं तो फिर वापस आ सकते हैं और यहां स्थायी रूप से बस सकते हैं; पर कृपा कर यह न सोचें कि यह इस कारण है कि आपने इस देश को एक बार ठुकरा दिया था। इस आचारण के लिये न तो हम आपको कोई दण्ड देना चाहते हैं और न कोई रियायत। पर भारत की नागरिकता पुन: अर्जित करने के लिये हम आपको वही सुविधा देने के लिए तैयार हैं, जो हम किसी विदेशी को देते हैं"। इसका यह आशय है कि अनुज्ञा पत्र द्वारा उन्हें वापस आने दीजिये और पांच वर्ष तक यहां बसने दीजिये और इसके बाद उनको उसी प्रकार नागरिकता के अधिकार अर्जन करने दिया जा सकेगा, जिस प्रकार कि किसी विदेशी को संसद द्वारा निर्मित किसी परवर्ती विधि से करने दिया जायेगा। यह एक सिद्धान्त का विषय है और इस सिद्धान्त को किसी प्रकार भी बिना किसी मान्य कारण के हमें ठुकराना नहीं चाहिये।

इसमें कुछ वित्तीय उलझनें भी हैं, जिनके समझने में हमें इस समय भूल नहीं करनी चाहिये। यह प्रश्न पैदा होगा कि प्रव्रजन के समय जो सम्पत्ति इन लोगों ने छोड़ी है, यहां आने देने और बसने देने के पश्चात् नागरिकता के साथ-साथ उनको क्या उस सम्पत्ति के भी लेने का हक होगा। विभिन्न अध्यादेशों में जो प्रख्यापित किये जा चुके हैं, यह प्रयत्न किया गया है कि निष्क्रांतों की जो सम्पत्ति यहां है, उस सबके प्रबन्ध का अधिकार निष्क्रान्त सम्पत्ति के संरक्षक को दिया गया है। और ये लोग चाहे वे मान्य अनुज्ञापन्न के अधीन 19 जुलाई सन् 1949 के पश्चात् वापस चले आये हों, पर विभिन्न अध्यादेशों की परिभाषा के अधीन वे निष्क्रान्त बने रहेंगे। शायद आप इस प्रश्न पर औचित्य तथा उदारतापूर्वक विचार करेंगे और मैं भी सहमत हूं कि इस प्रश्न पर औचित्य तथा उदारतापूर्वक विचार किया जाये, क्योंकि प्रत्येक महान राष्ट्र को सदैव यही प्रवृत्ति अपनानी चाहिये। इस औचित्य और उदारता की प्रवृत्ति को लेकर तो मुझे भय है कि आपके लिये उनसे यह कहना लगभग असम्भव सा ही होगा कि यद्यपि हम आपको इस देश का नागरिक तो स्वीकार करते हैं, पर आपकी सम्पत्ति जिसे आप प्रव्रजन के समय छोड़ गये थे, उसको हम निष्क्रान्त सम्पत्ति के समान समझेंगे। यह नहीं हो सकेगा और इस कारण करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति हमारे हाथों से निकल जायेगी। इस बात की विस्तृत व्याख्या करने की मुझे आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसकी उलझनें प्रत्येक व्यक्ति को और विशेषकर उन लोगों को, जो इस संशोधन के प्रवर्तन करने के जिम्मेवार हैं, बिल्कुल स्पष्ट है।

मैं केवल एक बात और कहूंगा। यद्यपि उदार होना अच्छी बात है, पर उदारता की बहुत सी खूबियां लुप्त हो जाती हैं, जबकि वह दूसरों के मूल्य पर आश्रित होती है और यह उदारता किसी और के मूल्य पर आश्रित नहीं है, परन्तु अन्तत: शायद यह हमारे शरणार्थी भाइयों के मूल्य पर है। हम यही नहीं जानते हैं कि अन्त में यह होगा अथवा नहीं होगा, पर यदि ऐसी स्थिति हो जायेगी, तो हमें

[श्री जसपतराय कपूर]

बड़ा खेद होगा। शरणार्थियों को ही ऐसी समस्त सम्पत्ति से लाभ होगा, पर यदि उन लोगों को, जो प्रव्रजन कर गये थे पर वापस चले आये हैं, इस सम्पत्ति को मुफ्त भेंट करना चाहते हैं, तो केवल शरणार्थियों को ही हानि होगी और किसी को नहीं। अतः मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और श्री गोपालस्वामी आयंगर से निवेदन करूंगा कि वे इस संशोधन पर जोर न दें और इस अनुच्छेद 8-क को बिना परन्तुक के, जैसा कि मसौदे में है, वैसा ही रहने दें।

श्रीमान्, मैं भाषण समाप्त कर चुका हूं। मैं केवल अपने निवेदन को दुहराऊंगा, जो मैं पहले कर चुका हूं और वह यह है कि श्री कृष्णमाचारी के इस खास संशोधन को तो कम से कम स्वीकार न किया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह अब संशोधन संख्या 6 (सूची 1-तृतीय सप्ताह) पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): श्रीमान्, छपी हुई सूची अंक 1 में मेरे कुछ संशोधन हैं, जो पुनरीक्षित मसौदे में नहीं आ पाये हैं। आपकी अनुमति से मैं उनको पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** आरम्भ में जब मैंने कुछ बातें कही थीं, उस समय मेरे विचार में आपका एक ऐसा संशोधन था।

***प्रो. के.टी. शाह:** वह तो एक नया अनुच्छेद है। वह बाद में आता है। इस समय मैं संशोधन संख्या 203 और 208 के बारे में कह रहा हूं, जो पितृपक्ष के जनकों के निर्बन्धन से सम्बन्ध रखता है। उसको पेश नहीं किया गया है।

***अध्यक्ष:** आप संशोधन संख्या 203 पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं अपने सब संशोधन पेश करूंगा और फिर एक साथ सब पर भाषण दूंगा।

पहला संशोधन जिसे मैं पेश करना चाहूंगा वह यह है:

"कि अनुच्छेद 5 के खण्ड (क) में 'grand parents' शब्दों के पश्चात् 'on the paternal side' शब्द जोड़ दिये जायें।"

खण्डों की संख्या बदलनी पड़ेगी। चूंकि यही विचार संशोधन संख्या 208 में दुहराया गया है, इस कारण मैं उसको नहीं दुहरा रहा हूं। इसके बाद का मेरा संशोधन छपी हुई सूची में 227 है। चूंकि यह उस नये संशोधन में आ जाता है, जिसकी मैं सूचना दे चुका हूं, इसलिये इसे अभी नहीं पढ़ता हूं। इसके बाद

मेरा संशोधन संख्या 221 है। चूंकि यह नये अनुच्छेद के सम्बन्ध में है, इसको भी मैं पढ़ना नहीं चाहता हूं। इसके बाद मैं पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में–

(1) '5' अंक के पश्चात् कोष्ठक और संख्या '1' प्रविष्ट किये जायें।"

(2) व्याख्या के पूर्व निम्न परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'Provided further that the nationality by birth of any citizen of India shall not be affected in any other country whose Municipal Law permits the local citizenship of that country being acquired without prejudice to the nationality by birth of any of the citizens; and

Provided that where under the Municipal Law no citizen is compelled either to renounce his nationality by birth before acquiring the citizenship of that country, or where under the Municipal Law nationality by birth of any citizen does not cease automatically on the acquisition of the citizenship of that country';

[आगे यह और भी कि भारत के नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता पर किसी अन्य देश में प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिसकी राष्ट्रीय विधि उस नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता का विरोध किये बिना उसे उस देश की स्थानीय नागरिकता अर्जन करने देती है और यह भी कि जहां राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी नागरिक को उस देश की नागरिकता अर्जन करने के पूर्व अपनी जन्मजात राष्ट्रीयता को छोड़ने के लिये बाध्य नहीं किया जाता है, अथवा जहां राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता उस देश की नागरिकता अर्जन करने पर अपने आप ही समाप्त नहीं हो जाती है।]

(3) व्याख्या के बाद निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:–

'(2) Subject to this Constitution, Parliament shall regulate by law the grant or acquirement of the citizenship of India.' "

[(2) इस संविधान के अधीन, संसद विधि द्वारा भारत की नागरिकता की मंजूरी अथवा अर्जन विनियमित कर सकेगी।]

मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 6 में अनुच्छेद 5 के नये प्रस्थापित खण्ड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that Parliament shall not accord equal rights of citizenship to the nationals of any country which denies equal treatment to the nationals

[प्रो. के.टी. शाह]

of India settled there and desirous of acquiring the local citizenship.' "

[पर संसद किसी भी उस देश के नागरिक को नागरिकता के समान अधिकार नहीं देगी, जो देश अपने यहां बसे हुए भारत के नागरिकों को, जो वहां की स्थानीय नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक हैं, सम-व्यवहार से वंचित करता है।]

इसके बाद मेरे संशोधन की संख्या आज की सूची में (सूची 5 तृतीय सप्ताह) 152 है।

***अध्यक्ष:** पर क्या आप संशोधन संख्या 20 (सूची 1–तृतीय सप्ताह) को पेश नहीं कर रहे हैं?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं उसे पेश कर रहा हूं।

मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में नये प्रस्थापित अनुच्छेद 5-क और 5-ख में जहां-जहां 'Dominion' शब्द आता है, वहां 'Republic' शब्द रखा जाये।"

इसके बाद जो संशोधन मैं पेश कर रहा हूं, वह तृतीय सप्ताह की सूची 5 में संख्या 152 है। मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के खण्ड (ख) के उपखण्ड (1) के अन्त में 'and' शब्द के पहले निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that any person who has no migrated to the areas now included in Pakistan but has returned from that area to the territory of India since the nineteenth day of July, 1948, shall produce such evidence, documentary or otherwise, as may be deemed necessary to prove his intention to be domiciled in India and reside permanently there.' "

[परन्तु कोई व्यक्ति, जो उन क्षेत्रों में इस प्रकार प्रव्रजन कर गया हो, जो अब पाकिस्तान के अंतर्गत हैं और उन क्षेत्रों से 19 जुलाई सन् 1948 तक भारत के राज्य-क्षेत्र में वापस आ गया हो, तो वह ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करेगा, जो लेख्य सम्बन्धी हों अथवा अन्य प्रकार के हों और जो भारत में निवास करने और स्थायी रूप से बसने के उसके उद्देश्य को साबित करने के लिए आवश्यक समझे जाये।]

ये सब संशोधन हैं जिनको मैं इस सम्बन्ध में इस समय पेश करता हूं। इन संशोधनों को सभा के समक्ष प्रस्तुत करते हुए क्या मैं मसौदा लेखक को इस बड़े पेचीदे विषय पर जिस महान् योग्यता तथा दक्षता का परिचय उन्होंने दिया है उसके

लिये हार्दिक बधाई, दे सकता हूं तथा इस बात के लिये भी कि इन महान कठिनाइयों में निर्विवाद रूप से एक ऐसे कठिन विषय पर जहां वैमनस्य उत्पन्न हो जाया करता है, उन्होंने संतुलित विचार रखने का प्रयत्न किया है? मेरा यह स्वभाव नहीं है कि इस संविधान के विद्वान मसौदा लेखक के गले में कई पुष्पहार डालूं। अत: मैं विश्वास करता हूं कि चूंकि मैं ऐसा कार्य बहुत कम करता हूं, इसलिये एक बार मुझे इस गुलाब के पुष्पहार को अर्पण करने दीजिये, जिसके सम्बन्ध में मुझे विश्वास है कि वे इसे पसन्द करेंगे, यद्यपि इस पुष्पमाला में कुछ कांटे हैं।

श्रीमान्, इन संशोधनों को अनेक मदों के सम्बन्ध में अनेक पहलुओं पर विचार करते हुए पेश करने के लिये मैं विवश हुआ हूं, क्योंकि मेरे विचार से इसमें अनेक आवश्यक सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त हैं। क्या आप मुझे अनुमति देंगे कि अपने इन विचारों को, कि मेरे संशोधन जिस मसौदे को मैं महत्वपूर्ण समझता हूं, उसके होते हुए क्यों आवश्यक हैं और यदि इनको मसौदे में शरीक कर लिया जायेगा, तो मेरी राय के अनुसार मसौदे में बहुत कुछ सुधार हो जायेगा, मैं सामान्य रूप से सूचित करते हुए संशोधनों के समस्त क्रम को सरल बना सकूं।

श्रीमान्, संक्षेप में तथा थोड़े से शब्दों में यह विषय इस प्रकार रखा जा सकता है कि किसी राज्य की नागरिकता के अनेक प्रकार हैं, थे अथवा अनेक प्रकार से वह अर्जित की जाती है। अत: सबसे पहली प्रस्थापना यह होनी चाहिये कि कोई भी व्यक्ति, जो किसी देश में जन्म लेता है, वह अपने आप उस देश का नागरिक बन जाता है, जब तक कि अपनी ही ओर से वयस्क होने पर वह (स्त्री हो या पुरुष) इस विशेषाधिकार का परित्याग न करे। यह एक सीधीसादी सी प्रस्थापना है जिस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इसमें यह बात और आ जाती है कि वह नागरिकता को केवल जन्मजात अधिकार ही नहीं बनाता है, बल्कि उसे दाय भी बना देता है, अर्थात कोई व्यक्ति जिसके मेरे संशोधन के अनुसार माता और पिता और इस मसौदे के अनुसार, जिसके महाजनक अथवा मेरे संशोधन के अनुसार जिसके पितृपक्ष के महाजनक इस देश में पैदा हुए थे, वह अपने आप इस देश का नागरिक होने के विशेषाधिकार प्राप्त कर लेगा, जब तक कि वह व्यक्ति अपने किसी कार्य से विशिष्टतया उसका परित्याग न करे।

श्रीमान्, पूर्व वक्ताओं द्वारा यह कहा गया है और मैं भी उसका समर्थन करना चाहूंगा कि भारत की नागरिकता के विशेषाधिकार बहुत ही साधारण, आसान तथा सरल से न समझे जायें। मैं निवेदन करता हूं कि यह एक ऐसा महान विशेषाधिकार है और भविष्य में यह और भी अधिक महान विशेषाधिकार होगा, जिसका केवल हमको ही गौरव नहीं होगा, जो इस समय नागरिक हैं वरन उन लोगों को भी गौरव होगा, जो अब से बाद में भारत के नागरिक होंगे। रोमन गणराज्य के समय किसी भी रोमन नागरिक के लिये यह एक गौरवपूर्ण विशेषाधिकार था, क्योंकि इस नागरिकता के कारण वह अपने आपको किसी भी बादशाह के समान समझता था। जब वह गौरवान्वित होकर दावा करता था तो अन्तिम गौरव और महत्वपूर्ण शब्द ये होते थे "मैं रोमन नागरिक हूं"। मैं आशा करता हूं कि वह समय आ रहा है जबकि ऐसा ही गौरवपूर्ण यथार्थ कथन भारतीय द्वारा कहा जा सकेगा, जबकि भारत की नागरिकता को अपने 'जंगलीपन' के भार के रूप में नहीं समझा जायेगा—विस्मरणीय मृत अतीत में हमको 'जंगली' कहा जाता था—वरन इसको एक ऐसे रूप में समझा जायेगा, जिसकी ओर शेष संसार सम्मानपूर्वक दृष्टि डालेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, भारत का नागरिक होने के इस महान् अधिकार के सम्बन्ध में ऐसे विचार रखते हुये मैं उन लोगों से पूर्णतया सहमत हूं, जो यह विचार रखते हैं कि अपनी नागरिकता को हमें बहुत सरल तथा आसान नहीं बना देना चाहिये। न हमें इस नागरिकता के जन्म अथवा दाय के आधार पर किसी युक्तियुक्त मांग अथवा युक्तियुक्त दावे के प्रति अनुचित प्रकार से अनुदार होना चाहिये।

श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि अब नागरिकता का विषय इतना पेचीदा हो गया है कि यदि हम इस दाय अधिकार को बहुत दूर तक ले जायें, तो हम बड़ी कठिनाइयों में पड़ जायेंगे। क्योंकि यद्यपि आप इसे केवल दोनों पक्षों के महाजनकों तक ही ले जाते हैं—अर्थात यह कि नागरिकता का दावा करने वाले व्यक्ति के माता-पिता के माता और पिता से उद्‌भूत दाय तक—पर इस बात को सिद्ध करना बड़ा कठिन विषय है। श्रीमान्, यह कहा गया है कि मातृत्व सत्य है और पितृत्व धारणा। बिना किसी सन्देह के पितृत्व को सिद्ध करना कठिन हो जाता है, पर मातृत्व के समर्थन के लिये अकाट्य प्रमाण मिल जाते हैं। फिर भी यदि लाखों वर्ष से नहीं तो शताब्दियों से हम उदभव को केवल पितृपक्ष पर ही मानने के अभ्यस्त हैं। और इसी कारण मेरा यह संशोधन है। इन परिस्थितियों के अधीन और अपने देश के बहुत ही अव्यवस्थित पंजीबद्ध करने की प्रणाली पर विचार करते हुए जिसके द्वारा जन्म और मृत्यु का साक्ष्य प्राप्त करना आसान नहीं है, मुझे भय है कि दाय के आधार पर इस प्रकार से नागरिकता के विस्तार से अवश्य ही कठिनाइयां पैदा होंगी, विशेषकर इन परिस्थितियों में जिनके कारण इस देश का विभाजन हुआ है और इस विभाजन के बाद जो क्रास और प्रव्रजन हुआ है। अत: मैं अपनी ओर से हर्षपूर्वक डॉ. देशमुख के सुझाव को स्वीकार करता हूं, जो जन्मना नागरिकता के विशेषाधिकार को केवल दूसरी पीढ़ी तक ही निर्बन्धित करता है, जिसको बड़ी सरलता से सिद्ध किया जा सकता है। यदि आप और आगे जाना चाहते हैं, यदि आप अधिक उदार होना चाहते हैं तो, आप उसे तीसरी पीढ़ी तक ले जा सकते हैं। पर इससे आगे मैं नहीं जाना चाहूंगा और नागरिकता के दाय-अधिकार को केवल पितृपक्ष के लिये ही रखने का प्रयास करूंगा।

मैं यह सुझाव करने की इच्छा से नहीं कहता हूं कि जहां तक नागरिकता के अधिकारों का सम्बन्ध है, मुझमें पुरुष और स्त्री की समानता के विश्वास में किसी प्रकार की कमी है। मैं यह उन अनेक पेचीदगियों और कठिनाइयों के कारण कहता हूं, जो मातृपक्ष की ओर से दाय खोजने में अन्तर्ग्रस्त हैं और उनमें से प्रमाण की समस्या भी किसी से कम नहीं है। अत: मैं यह सुझाव रखूंगा कि या तो इस सम्बन्ध में मेरे सुझावों के अधिमान में डॉ. अम्बेडकर द्वारा सुझाई गईं परिभाषा स्वीकार की जाये और या यदि आप इस विषय में उदार होना चाहते हैं, तो जो व्यक्ति दाय के आधार पर नागरिक होने का दावा करता है, उसे पुरुष-महाजनक तक ही अधिकार दें।

श्रीमान्, दाय एक ऐसी वस्तु है जिसे प्राप्त किया जा सकता है, और उसका परित्याग भी किया जा सकता है, अत: उन लोगों के लिये जो स्वेच्छा से अथवा

जैसा कि किसी माननीय सदस्य ने कहा था, जो भयभीत होकर इस देश से बाहर चले गये हैं और जिन्होंने अपनी शक्ति के अधीन प्रत्येक कार्य द्वारा यह प्रदर्शित कर दिया है कि उनका इस देश से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे किसी और राष्ट्र के व्यक्ति हैं, उनकी जाति, भाषा, सभ्यता और धर्म भिन्न है अथवा किसी भी कारणवश वे प्रेरित हुए हों, उनके लिये यह मान लेना हमारे लिये न्यायसंगत होगा कि उन्होंने अपने जन्मना अधिकार का परित्याग कर दिया है। उनके अपने जन्मजात अधिकार का परित्याग कर देने पर हमारा यह कहना कि उन्हें दाय-अधिकार का हक नहीं होगा, न्यायसंगत है।

यदि वे वापस आना चाहते हैं और एक बार फिर भारत का नागरिक होना चाहते हैं, तो ऐसी दशा में—मैं यह भी आशा करता हूं कि यह सभा मुझसे इस बात में सहमत होगी कि हमें यह देखने का हक होगा कि हमारे यहां कोई जयचन्द न हो। अतः यही केवल उचित है कि ऐसे मनुष्यों को लेख सम्बंधी अथवा अन्य प्रकार के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करने चाहियें, केवल उद्‌भव द्वारा अपने अधिकार के लिये ही नहीं, वरन इस देश्या में स्थायी रूप से निवास करने और उसके सच्चे नागरिक होने के उद्देश्य को सिद्ध करने के हेतु भी। श्रीमान्, इस प्रयोजन के लिये मैं समझता हूं कि जो संशोधन मैंने रखे हैं, वे हमारे समक्ष मसौदा की अपेक्षा कहीं अधिक पर्याप्त, अधिक समुचित तथा अधिक आवश्यक हैं। अतः मैं इस मद को माननीय मसौदा लेखक की सेवा में प्रस्तुत करता हूं।

श्रीमान्, इसके बाद उन लोगों की स्थिति को लेते हुए जो बाहर हैं, जो व्यापार के कारण दूसरे देशों में बस गये हैं अथवा उस देश की देशीयकरण विधि के अधीन वहां की नागरिकता अर्जन करने के अधिनियम द्वारा उस देश के नागरिक बन गये हैं, उनके लिये वह उपबन्ध करना ठीक होगा कि यदि वे भारत की नागरिकता प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनके लिये सरल मार्ग बना दिया जाये। पर वह उस शर्त के अधीन हो जिसको मैं बता चुका हूं और वह यह कि इस बात का कोई पक्का प्रमाण होना चाहिये कि वे वास्तव में उस देश में वास करना चाहते हैं, चाहे उस देश का कोई भाग ही हो, उस देश की नागरिकता के कर्तव्य और आभारों में हिस्सा लेंगे और जिस देश को उन्होंने अंगीकार किया है, उसके प्रति द्रोह नहीं करेंगे।

यदि साधारण रूप से उन लोगों को नागरिकता दी जाती है, जो निवास करने के कारण, व्यापारिक सम्बन्ध के कारण, अथवा अन्यथा इस देश के नागरिक होने का दावा करते हैं और उससे जितने लाभ होते हैं, उन सबकी मांग करते हैं, तो मैं समझता हूं कि हमें युक्तियुक्त साक्ष्य मांगने चाहिये, हमें इस बात के युक्तियुक्त प्रमाण मांगने चाहियें कि वे स्थायी रूप से यहां रहना चाहते हैं और इस देश का अंग होकर उसके प्रति सच्ची निष्ठा रखते हैं, न कि केवल इस सम्बन्ध में हमारी उदारता से लाभ उठाना चाहते हैं।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं उन विदेशी पूंजीपतियों अथवा व्यापारियों के बारे में बहुत अधिक सोच रहा हूं, जो हमारे साथ रहे हैं और जिन्होंने पहले यह मांग की थी कि उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होना चाहिये। सन् 1935 का भारतीय सरकार के अधिनियम को एक पूरे के पूरे के अनुच्छेद से, जिसमें कई भेदभाव के उपबन्ध हैं, लांछन लग गया है—और ये भेदभाव सदैव भारतीयों के

[प्रो. के.टी. शाह]

विरुद्ध तथा विदेशियों के पक्ष में हैं। इस अनुभव को अपने समक्ष रखते हुए और अपनी भावी राज्य-कर सम्बन्धी नीति में इस प्रकार से अपनी संभाव्य प्रगति सहित कि व्यापार, उद्योग अथवा और किसी कार्य में भारतीय नागरिकता की विशेष रूप से रक्षा की जाये, उसको विशेष रूप से लाभ हो, हमें विदेशी पूंजीपतियों से बहुत सावधान रहना चाहिये, जो इस देश से प्रेम किये बिना हमारी राज्य-कर सम्बन्धी अथवा उद्योग सम्बन्धी नीति से केवल लाभ उठाने के लिये यहां आते हैं और बसते हैं। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि संविधान में अथवा किसी विधान में, जिसे संसद इस सम्बन्ध में बनाये, हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे नागरिक अपने स्वार्थ हित भारत को अपना स्थायी पर बनाने के उद्देश्य का पर्याप्त प्रमाण दें, न कि केवल राह के पंछी होकर, देश का विदोहन कर और किसी राज्य-कर सम्बन्धी विधान से लाभ उठाकर अथवा वित्तीय लाभ उठाकर, जब उनके इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाये, तो फिर देश छोड़कर चल दें।

श्रीमान्, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके प्रति क्या मैं सम्मानपूर्वक यह कह सकता हूं कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस पर मसौदा समिति ने पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया है और शायद कोई इस प्रकार का संशोधन, जिसका मैंने सुझाव दिया है अथवा इसी विचार का कोई और संशोधन इस स्थिति के लिये आवश्यक होगा। मैं यह स्पष्ट रूप से कहता हूं कि विदेशी पूंजी की आवश्यकता के प्रति और रुपया लगाने वाले इन विदेशियों को सब तरह की लाभदायक सुविधायें देने के बारे में सर्वोच्च क्षेत्र से जो विचार प्रकट किये गये है, उसके साथ यदि हम भारत की नागरिकता और उसके साथ जो विशेषाधिकार हैं, उनको संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध नहीं होंगे, जो संसद को भेदभाव करने का हक दे—इस शब्द का प्रयोग करने में मुझे कोई संकोच नहीं है—जिससे कि विदेशी प्रतियोगियों से स्वदेशी कुशल तथा धन लगाने वाले व्यक्तियों का पर्याप्त रूप से संरक्षण तथा परित्राण किया जा सके, यदि संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध तथा प्राधिकार नहीं है, तो संसद हमारे निजी प्रयत्नों की उन लोगों से पर्याप्त रूप में रक्षा न कर सकेगी, जिनका भारत की नागरिकता प्राप्त करने में यही प्रयोजन है कि हमारी राज्य-कर सम्बन्धी नीति से लाभ उठाया जाये अथवा अन्य प्रकार का कोई ऐसा ही लाभ उठाया जाये और जिस देश से उन्हें यह लाभ होता है, उस देश को उसका ठीक-ठीक एवज न दें। अत: श्रीमान्, मैं यह विश्वास करता हूं कि मसौदा समिति के माननीय सभापति को यदि इस संशोधन के शब्द पसन्द नहीं आयेंगे, तो कम से कम इस सम्बन्ध में मेरे तर्क तो अवश्य पसन्द आयेंगे। मैं यह विश्वास करूंगा कि उनकी योग्यता, उनकी समझ और उनकी देशभक्ति इस बात पर ध्यान रखेगी कि कोई ऐसा उपबन्ध जिसके लिये मैंने प्रार्थना की है, किसी भी ऐसे रूप में जिसे वे उचित समझें, इस संविधान में रखा जायेगा। जहां तक मसौदा बनाने के पारिभाषित कार्य का सम्बन्ध है, मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि मसौदा समिति के सभापति इतने अधिक दक्ष हैं, जितना कि मैं ख्याल भी नहीं कर सकता हूं। अत: यदि वे मेरे तर्क को, जो मैंने प्रस्तुत किये हैं, स्वीकार कर लेते हैं तो मैं जिस प्रकार का संशोधन वे उचित समझें, उसे अपने शब्दों में रखने के कार्य को पूर्णतया उन पर छोड़ सकता हूं।

इसके बाद, श्रीमान्, मैं आगे के संशोधन पर आता हूं। मेरा अभिप्राय उस संशोधन से है, जो उन देशों से सम्बन्ध रखता है, जो एशिया में हमारे पड़ौसी देश हैं, जहां भारतीय एक बड़ी संख्या में बस गये हैं और जहां स्थानीय राष्ट्रीयता के नये जोश के कारण उनके साथ कोई वांछनीय व्यवहार नहीं किया जाता है। एक ऐसी भावना है कि उदाहारणार्थ, बर्मा, लंका अथवा मलाया में हमारे नागरिकों के साथ वह सम व्यवहार तथा पारस्परिक व्यवहार उतने अच्छे प्रकार से नहीं किया जाता है, जितना हम चाहते हैं। इसी कारण संशोधन संख्या 6 में दो संशोधनों द्वारा मैं यह सुझाव रखने का प्रयास कर रहा हूं कि जहां कहीं स्थानीय विधान किसी भारतीय की जन्मजात राष्ट्रीयता का विरोध किये बिना उसे वहां की नागरिकता के समस्त अधिकार तथा लाभ प्राप्त होने देते हैं, तो हम भी ऐसा ही व्यवहार करें। भारत में जन्मे उस व्यक्ति की राष्ट्रीयता की हम भी रक्षा करें, जो ऐसे स्थानों में बस गया है और जो अन्य देश की सरकार के प्रति निष्ठा रखता है, यदि उस देश का विधान उसे ऐसा करने दे।

श्रीमान्, मुझे यह और कहने की आज्ञा दीजिये कि इस मांग के करने में यह बात नहीं है कि मैं स्वयं अपने आप अपना विरोध कर रहा हूं, क्योंकि अभी थोड़ी देर पहले मैंने यह कहा था कि जो व्यक्ति भारत में बस गया है, उससे हम संविधान द्वारा जितना सतर्क रह सकते हैं रहें, नहीं तो इस प्रकार प्राप्त की हुई नागरिकता का हमारे विरुद्ध उपयोग किया जायेगा। ऐसा कहने के बाद जिस सुझाव को मैं अब रख रहा हूं, उसके रखने में कोई रुकावट नहीं होती है। मैं फिर कहता हूं कि इसमें कोई असंगति नहीं है, क्योंकि जो सूचना मुझे मिली है, उसके अनुसार मलाया संघ राज्य में 8 लाख भारतीय हैं। मलाया संघ राज्य के नये संविधान के अधीन जो भारतीय वहां बसे हुए हैं, उनको अपनी जन्मजात भारतीय राष्ट्रीय के छोड़े बिना वहां की स्थानीय नागरिकता के पूर्ण अधिकार मिल सकते हैं। परन्तु जो सूचना मुझे प्राप्त हुई है, उसके अनुसार लंका और बर्मा में भारतीयों की स्थिति कहीं अधिक अन्यायपूर्ण है। उदाहरणार्थ, जो मनुष्य इस विषय का ज्ञान रखते हैं, उन्होंने मुझे सूचना दी है कि बर्मा में यह उपबन्ध है कि बर्मा विधान द्वारा विनिहित कुछ रीतियों के अनुसार कोई भारतीय ब्रह्मा की नागरिकता प्राप्त कर सकता है। परन्तु इसके पूर्व कि उसे देशीयकरण का प्रमाण-पत्र मिले, उसे यह आवश्यक घोषणा करनी होगी कि वह अपनी भारतीय नागरिकता का परित्याग करता है। मेरा निजी विचार यह है कि यह उचित नहीं है, पर यदि अच्छे पड़ौसियों के साथ इसे उचित व्यवहार मान भी लिया जाये तो हम उन भारतीय नागरिकों के साथ अपवाद कर सकते हैं, जिनको वहां अपना जीवन बिताना ही है और यदि वे उस देश में रहना चाहते हैं वहां उनके जीवनयापन के साधन हैं, तो वे नगरपालिका की विधि के अधीन भारतीय नागरिक नहीं रह सकते हैं। ऐसी दशा में मैं एक अपवाद रखूंगा और किसी ऐसे व्यक्ति से भारतीय राष्ट्रीयता रखने का आग्रह नहीं करूंगा जिसे उसका परित्याग करना ही है। परन्तु लंका में और ही बात है। मैं फिर उसी सूचना के आधार पर बोल रहा हूं, जो मुझे प्राप्त हुई है। नागरिकता प्राप्त करने के लंका के स्थानीय विधान में देशीयकरण के आधार पर यदि एक बार कोई व्यक्ति लंका की नागरिकता प्राप्त कर लेता है, तो जन्म के आधार पर अथवा अन्यथा प्राप्त की गई पहली नागरिकता अपने आप नष्ट हो जाती है या वह उससे वंचित हो जाता है। नागरिकता के आभार बहुत हैं—और इन आभारों को अन्य कोई व्यक्ति मुझसे अधिक नहीं जानता होगा—और ये आभार यह अपेक्षित करते हैं कि ग्रहण किये गये देश के प्रति व्यक्ति की निष्ठा हो

[प्रो. के.टी. शाह]

और इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि जन्मना राष्ट्रीयता को अपने आप ही छोड़ना पड़े। मेरे विचार से यह मांग आवश्यकता से अधिक है, परन्तु फिर भी मैं यह मानता हूं कि लंका एक स्वतन्त्र राज्य है और उसे अपनी विधि बनाने का हक है। इस कारण जो भारतीय वहां बसे हुए हैं, उनको अपनी ओर से इस बात पर बिना किसी आपत्ति के कि सिंहल की नागरिकता प्राप्त करने के बाद भी उनकी जन्मजात राष्ट्रीयता बनी रहे, हम वहां के स्थानीय नियमों का पालन करने दें। हमें इस बात पर आग्रह नहीं करना चाहिये कि वे भारत के राष्ट्रीय जन बने रहेंगे।

अब मैं जिस बात पर आता हूं, वह इनसे विपरीत है और जो इन तीन अन्य उदाहरणों से अधिक कटु भावना पैदा करती है और ये देश अंग्रेजी अधिराज्य अथवा अंग्रेजों के संरक्षण में अभी तक हैं अथवा थे। इस समय मैं आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड अथवा अफ्रीका जैसे देशों के बारे में सोचता हूं—ये अन्य अधिराज्य हैं, जहां भारतीय के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है। भारतीयों की अफ्रीका में करुण कहानी से मुझे सभा को दु:खी नहीं करना है। वे सब बातें हमारे लिये ताजी हैं। इस देश में जो विधान अब लागू किया जा रहा है, उससे हम सब अप्रसन्न हैं। हमारे इस अनुभव के आधार के कारण मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि हम अपने मूल संविधान में यह विशिष्ट शक्ति संरक्षित क्यों न रखें कि उन लोगों को संसद नागरिकता के समक्ष अधिकार अथवा समव्यवहार प्रदान नहीं करेगी, जो हमारे राष्ट्रीय जनों के साथ जो विधिपालक, शांत उद्यमी तथा समव्यवहार प्रदान नहीं करेगी, जो हमारे राष्ट्रीय जनों के साथ जो विधिपालक, शान्त उद्यमी तथा व्यवसायी हैं और उस देश को हराभरा बनाने में योग दे रहे हैं, वही व्यवहार नहीं करते हैं जो वे अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत अन्य लोगों के साथ करते हैं।

भारतीयों के प्रति अन्यायपूर्ण भेदभाव का बहुत सुस्पष्ट तथा बहुत ही मर्मभेदी उदाहरण शायद अफ्रीका का है। अत: मैं यह कहूंगा कि मेरे लिये केवल इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है, जितना इस मसौदे में कहा गया है कि नागरिकता अर्जित करने अथवा समाप्त करने को विनियमित करने का विधान पारित करने की स्वतंत्रता संसद को है और इस शक्ति के अधीन ऐसे उदाहरणों पर विचार किया जायगा। मैं एक ऐसा उपबन्ध जोड़ना चाहूंगा, जिससे संसद के लिये यह आवश्यक हो जाये कि वह उन देशों के नागरिकों को समान व्यवहार प्रदान न करे, जो उन भारतीय नागरिकों के साथ इस प्रकार का भेदभाव बर्तते हैं, जो अपने समस्त जीवन पर्यन्त वहां श्रम करते हैं और अपने श्रम, अपने उद्यम, अपने चातुर्थ द्वारा उस देश की सम्पत्ति की परिवृत्ति करते हैं और उस देश के शान्त, शुभचिन्तक तथा विधिपालक नागरिक बने रहते हैं।

श्रीमान्, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है और इसका चाहे जो कुछ भी कारण हो, पर हम अब भी तत्कथित संयुक्त राष्ट्र मण्डल के सदस्य हैं, जिसमें अंग्रेजों का प्राधान्य है, जो हमारे पहले विदोहक हैं। संयुक्त राष्ट्र मण्डल में, यद्यपि सिद्धान्त रूप में हम सब बराबर के सदस्य समझे जाते हैं, पर सच्चे भ्रातृत्व की सद्भावना की अपेक्षा जिससे कि वह संयुक्त राष्ट्र मण्डल और भी अधिक ईमानदार तथा लुभायमान बन सके, वहां कुछ राष्ट्रों ने विशिष्ट अपवर्जन द्वारा और कुछ ने अपने प्राचीन साम्राज्यशाही काल की श्रेष्ठता का निर्वाह कर समानता का परिचय दिया है। मैं स्वयं कभी राष्ट्रमण्डल का प्रशंसक नहीं हुआ हूं। न आधुनिक उच्च प्राधिकार युक्त अभिव्यंजना तथा अंतिम प्रगति के कारण मेरे विचारों में परिवर्तन हुआ है।

एक तथ्य के रूप में इसे स्वीकार करते हुए, हमें उन अधिराज्यों से, उन देशों से जो हमारे लोगों को समान अधिकार नहीं देते हैं, अपने अधिकारों का उसी प्रकार संरक्षण करना चाहिये जिस प्रकार, यदि मैं इस शब्द का प्रयोग कर सकता हूं तो, बदले में हमने अन्य विषयों में किया है। यद्यपि आस्ट्रेलिया में अफ्रीका के समान इतना स्पष्ट, इतना विशिष्ट तथा इतना अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं है, पर फिर भी वहां "श्वेत आस्ट्रेलिया" की नीति है, जिसकी उद्घोषणा छतों पर चढ़-चढ़ कर की जा रही है और जिसका उल्लेख वहां के वर्तमान प्रधान मंत्री द्वारा बड़े गौरव से किया जाता है; उसने तो यहां तक गर्वोक्ति की है, कि इस देश के सर्वोच्च प्राधिकारियों ने भी उसके आदर्श को स्वीकार कर लिया है। मैं यह नहीं जानता हूं कि यह कहां तक सच है। यह सच हो या न हो, पर "श्वेत आस्ट्रेलिया" की नीति के आग्रह के कारण मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि हम उन लोगों के प्रति अपने संविधान में भेदभाव क्यों नहीं कर सकते हैं, जो पड़ौसी की सद्भावना पर बिना विचार किये, मित्रता के उन अनेक प्रभावों पर बिना विचार किये, जिनको हम पहले दे चुके हैं और अब भी दे रहे हैं, अपनी संकीर्ण निर्बन्धित भूगोलिक राष्ट्रीयता पर अड़े हुए हैं। उस जैसे नये देश के लिए यह अनुकुल नहीं है, जिसे अभी अपने समस्त साधनों को उन्नत बनाना है और जहां कि उसकी निजी जनता उस देश की जलवायु तथा अन्य वर्तमान परिस्थितियों के लिये पर्याप्त नहीं है। ऐसे देश को यह कहना शोभा नहीं देता है कि वे स्वर्ग से उतरी हुई श्वेत जाति की उत्कृष्टता पर आग्रह करेगा, और वही जाति वहां बस सकती है और वहां की नागरिक हो सकती है, और अन्य व्यक्ति, चाहे उनकी मांग कुछ भी हों, पूर्ण नागरिक नहीं बन सकते हैं।

यह बात उस देश पर भी लागू होती है, जो समस्त सभ्य तथा उन्नत पश्चिमी राष्ट्रों का नेता होने का अब दावा करता है। मेरा अभिप्राय अमरीका से है। मानव अधिकार की समानता के प्रति अमरीका का संयुक्त राष्ट्र बड़े-बड़े उच्च विचारों से परिपूरित है। पर जब उनके देश ही में इस सिद्धान्त को प्रवृत्त करने की बात आती है, तो अमरीका ने न तो पहले कोई ऐसा पक्का सबूत दिया है और न अब दे रहा है, जिससे यह विदित हो कि उनके वचन और कर्म में पूर्ण सामंजस्य है। सच तो यह है कि इन दोनों में बहुत अन्तर है। अमरीका में अभी कुछ समय पहिले ही भारतवासी नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते थे। आज भी, जहां तक मेरी स्मरण शक्ति कार्य कर सकती है—इस विषय में मसौदा-समिति के श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा मेरी बात को ठीक किया जा सकता है—केवल 100 भारतीय प्रतिवर्ष उस देश में प्रवास कर सकते हैं और उस देश की पूर्ण नागरिकता के अधिकारी हो सकते हैं— एक ऐसा देश, जो उदार नीति पर प्रगतिशील विचार रखने का दावा करता है—एक ऐसा देश, जो मानव अधिकार की समानता का हामी है—एक ऐसा देश, जो चार प्रसिद्ध स्वतंत्रताओं का प्रवर्तक तथा उनको समुन्नत करने वाला होने का दावा करता है, पर जो प्रतिदिन स्वतन्त्रता का उल्लंघन करता है। यह सब संसार में समानता के उनके ही विचारों के ठीक अनुरूप नहीं है, और जिसके पास यदि डालर है, तो कमण्डल लेकर सिर झुका कर उसके पास जाये और शक्तिशाली डालर के स्वामी जिस शर्त को रखना चाहें, उसे मानने के लिए तैयार हों।

इस देश को उनसे बहुत अधिक भयभीत नहीं होना चाहिये, क्योंकि हमें उद्योगों में उन्नति करनी है और हमारे साधन अविकसित हैं। कुछ लोग हमसे यह कहते

[प्रो. के.टी. शाह]

हैं कि हमारे पास ऐसा करने के लिए हमारे निजी पर्याप्त मूल साधन नहीं हैं। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो इस बात में विश्वास करते हैं। हमें कोई भय नहीं होना चाहिये, हमें स्वयं अपने प्रति इतना संकोची नहीं होना चाहिये कि हम यह स्पष्ट न कह सकें कि जो हमारे साथ समानता का व्यवहार नहीं करते हैं, उनके साथ भी इस देश में समानता का व्यवहार नहीं किया जायेगा। परिणाम चाहे जो कुछ हो, मुझे डर नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता है कि यद्यपि इस देश ने केवल दो वर्ष पूर्व ही स्वतन्त्रता तथा सम्पूर्ण प्रभुता प्राप्त की है, पर फिर भी वह अपने संविधान में अपनी सत्ता तथा क्रियाकरण की मूल विधि में यह क्यों प्रकट करे कि वह कुछ लोगों से भयभीत है कि कहीं वे नाराज न हो जायें और कहीं हमको अपने से बाहर न समझने लग जायें। यदि वे ऐसा करते हैं तो इससे उनका ही विरोध होगा ओर उससे हमारी हानि नहीं होगी। जितना जल्द वह दिन आ जाये, जबकि कटु अनुभव द्वारा हम अपनी टांगों पर खड़ा होना सीख जायें और अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करने लगें, उतना ही हमारे लिये अच्छा है। जब तक हम यह चाहते हैं कि अन्य देश हमारी रक्षा करें, हमें सहारा दें और हमारी सहायता करें, तब तक हम अपनी आत्मा को अपनी आत्मा नहीं कह सकेंगे।

अत: बात यह है कि बिना किसी संदिग्धता के, बिना किसी टालमटोल के नागरिकता के सम्बन्ध में यह बात मैं संविधान में रखूंगा, चाहे कुछ भी हो, अब से बाद में संसद को यह स्वतन्त्रता नहीं होगी कि वह उन लोगों को समान अधिकार दे सके, जो हमें उस समान अधिकार से वंचित रखते हैं। हम सबके साथ पूर्ण रूप से वैसा ही व्यवहार करने के लिये तैयार हैं, चाहे यह पाकिस्तान हो, अमरीका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका या ब्रिटेन हो; यदि हमारे साथ समानता का व्यवहार किया जाता है तो हम भी समानता का व्यवहार करने के लिए तैयार हैं। हम इन महान श्वेत सज्जनों की केवल बातों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, जब तक कि उनके कर्म उनके शब्दों के अनुरूप नहीं होते हैं। उस कहावत के अनुसार जिसमें मकड़ी मक्खी से कहता है कि "मेरे भवन में आओ" हम समानता के उनके मौखिक विचारों को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। अपनी तुलना में मक्खी से नहीं करता हूं, पर मकड़ी की चाटुकारिता की नीति में आकर उसके द्वारा चूसे जाने के लिये हमें अग्रसर नहीं होना चाहिये, चाहे वह जाला न्यूयार्क में हो, लन्दन, ब्रिस्बेन अथवा केनिबरा में हो। जब तक उनके वचन उनके कर्मों के अनुरूप नहीं होते हैं, तब तक वे कहीं से कुछ भी चीखते-चिल्लाते रहें, उसका कुछ भी प्रभाव नहीं है। इस प्रवंचना से, इस छल से, इस विश्वासघात से तथा इस प्रभावपूर्ण रीति से विक्रय किये जाने से हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं और न कोई दृढ़ स्थिति ग्रहण कर सकते हैं। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि संविधान द्वारा संसद को निर्बन्धित किया जाये, जिससे कि जैसा दुर्भाग्यवश हम संयुक्त राष्ट्र मण्डल के सदस्यों को, जो हमारे साथ वैसा व्यवहार नहीं करते हैं, उन्हें समान व्यवहार प्रदान करने के लिए राजी हो गये हैं, वैसा वह न कर सकें।

अभी-अभी हमने कई अन्तर्राष्ट्रीय आभार स्वीकार किये हैं। अभी मैं केवल एक की ही ओर ध्यान आकर्षित करता हूं और वह है तत्कथित हवाना करार अथवा हवाना व्यापार सम्बन्धी करार। मैं इसके सही शब्दों को भूल रहा हूं-इन

संकेताक्षरों की बाढ़ से व्यक्ति इतना घबरा जाता है कि उसे इन संस्थाओं का मूल नाम याद ही नहीं रह सकता। मैं यह माने लेता हूं कि सभा इस बात से परिचित है कि हम इन अन्तर्राष्ट्रीय आभारों को स्वीकार करते चले जा रहे हैं। पर ये अन्तर्राष्ट्रीय आभार हमारे ही विरुद्ध क्रियान्वित न हों और मैं आशा करता हूं कि ये केवल हमारे ही विरुद्ध क्रियान्वित नहीं हो रहे हैं। उदाहरणार्थ, जब ब्रिटेन के लिये यह अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ कि वह हवाना आदेशपत्र के अनुसार चले, तो उसने बिल्कुल स्वतन्त्र होकर अर्जेन्टाइना से व्यापारिक करार कर लिये जिसके कारण, मुझे यह बताया गया है कि न्यूयार्क की मुद्रा दर को बहुत क्षति हुई है। चाहे जो कुछ हो, पर ब्रिटेन ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। यदि ऐसा कोई अवसर आये, तो हमारे पास भी इन लोगों से व्यवहार करने की शक्ति होनी चाहिये और जब कभी ऐसी परिस्थितियां पैदा हों, तो हम बिना किसी बैर या प्रीति के उनको निपटा सकें। अत: मैं कहता हूं कि जिस संशोधन को मैंने रखा है उसके द्वारा—मैं फिर कहता हूं कि मैं इस संशोधन के शब्दों पर आग्रह नहीं कर रहा हूं वरन इस सुझाव की भावना के आधार पर हम किसी ऐसी दुर्घटना से अपनी रक्षा कर सकेंगे। मैं आशा करता हूं कि कोई व्यक्ति मुझे यह संकुचित मनोवृत्ति का राष्ट्रजन नहीं समझेगा, यद्यपि इस प्रकार से कहे जाने में मुझे कोई संकोच नहीं है। पर यह उन लोगों के लिये आवश्यक है जो अपनी टांगों पर खड़ा होना चाहते हैं, जो अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करना चाहते हैं और जो इस बात की चिन्ता नहीं करते हैं कि संसार का कोई भी व्यक्ति उनके प्रति क्या विचार रखता है अथवा क्या सोचता है, बशर्ते कि यदि हमें यह विश्वास है कि हम ठीक हैं। एक प्रसिद्ध अवसर पर जबकि जन-विद्रोह के कारयर सरदार अध्यक्ष लिन्कन के पास महान युद्ध के समय आये और कहा कि "श्रीमान् हमें आशा है कि ईश्वर हमारे साथ है"। अध्यक्ष लिन्कन ने उत्तर दिया "यह कोई बड़ी बात नहीं है कि ईश्वर हमारे साथ है, पर यदि हम ईश्वर के साथ हैं, तो यह एक बड़ी बात है"। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम ईश्वर के साथ हैं और मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस संशोधन का मैंने सुझाव रखा है, यदि उसके भाव को स्वीकार कर लिया जाता है, तो ऐसी कोई बात नहीं होगी जिस पर हमें खेद करना पड़े।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खण्ड (ग) के अन्त में 'and subject to the jurisdiction thereof' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

आशय यह है कि इन शब्दों के बिना यह उपबन्ध इस अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विरोध करेगा कि यहां स्थित दूतावास के कर्मचारियों के बच्चे इस देश की विधि के अधीन नहीं हैं। उदाहरण के लिये आप सेना में उनको अनिवार्य रूप से भरती नहीं कर सकते हैं और यह एक साधारण विधि है कि कोई व्यक्ति, जब तक कि वह नागरिकता के आभार स्वीकार न करे, तब तक उसके अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता है। अत: आप एक ऐसे व्यक्ति को नागरिकता प्रदान नहीं कर सकते हैं, जिससे आप उसके आभार वहन करने की आशा नहीं कर सकते अथवा इसके लिये आप उससे कह नहीं सकते। अत: यह संशोधन अन्तर्राष्ट्रीय प्रथा के ठीक अनुरूप है और इससे यह उपबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुकूल हो जायेगा। यह आवश्यक है और मैं आशा करता हूं कि माननीय डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"(क) कि उपरोक्त संशोधन 1 में–

(1) प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में–

'has not voluntarily acquired the citizenship' शब्दों के स्थान में 'is not already the citizen' शब्द रखे जायें;

(2) व्याख्या में 'has' शब्द के स्थान में 'had' शब्द रखा जाये, 'now' शब्द को हटा दिया जाये; और अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:–

'at the commencement of this Constitution.'

(ख) प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'now included in Pakistan' शब्दों के स्थान में 'included in Pakistan at the commencement of this Constitution' शब्द रखे जायें' "

मेरा एक और संशोधन सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के साझे में है और उसका पेश करना मैं सरदार साहब पर छोड़ता हूं।

श्रीमान्, यह अनुच्छेद हमारे संविधान का एक बहुत ही कठिन अनुच्छेद है और जैसा कि अब तक जो भाषण हुए हैं, उनसे विदित हुआ है और यहां तक कि स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया है कि यद्यपि इस मसौदे को बहुत ही सावधानी के साथ विचार कर रखा गया है, पर फिर भी मित्र उसमें दोष निकालने के लिए प्रस्तुत हुए हैं। सर्वप्रथम मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने अनुच्छेद 5 के प्रथम खण्ड पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण संशोधन पेश किया है। उनकी आपत्ति यह है कि हम भारत की नागरिकता को बहुत ही आसान कर रहे हैं, जबकि अन्य देशों में नागरिकता प्राप्त करना बहुत कठिन है। मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूं और सोचता हूं कि जिस रूप में यह अनुच्छेद है, उसमें किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन होना चाहिये। आइये, हम देखें कि यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो क्या होगा। अनुच्छेद में कहा गया है:–

"इस संविधान के प्रारम्भ होने की तिथि पर प्रत्येक व्यक्ति, जिसका भारत राज्य-क्षेत्र में अधिवास है तथा जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, अथवा जिसके जनकों में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, भारत का नागरिक होगा।"

यह खण्ड कुछ ऐसे लोगों को नागरिकता प्रदान करेगा, जिसको शायद हम नागरिकता प्रदान करना न चाहें। श्री एमेरी भारत में मेरे जिले गोरखपुर में पैदा हुये थे, जहां उनके पिता वन विभाग में पदाधिकारी थे और उनके पुत्र जोन एमेरी हमारी नागरिकता प्राप्त कर लेंगे, यदि वे 26 जनवरी सन् 1950 से कुछ समय पूर्व कुछ काल के लिये यहां आ जाते हैं और हमें उनको नागरिकता प्राप्त करने से रोकने का कोई हक नहीं होगा। खण्ड (ग) के अनुसार पांच वर्ष तक का निवास किसी व्यक्ति को नागरिकता प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। मैं समझता हूं कि हम अपनी नागरिकता को बहुत ही आसान बना रहे हैं। हमने यह कहा है कि "यदि उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित नहीं

की है।" मैं समझता हूं कि "यदि वह किसी विदेशी राज्य का नागरिक न हो" होना चाहिये। इस प्रकार इस खण्ड का संशोधन होना चाहिये। डॉ. देशमुख ने यह सुझाव दिया है कि "उसका जन्म भारतीय जनकों द्वारा हुआ हो।" "भारतीय जनकों" की परिभाषा करनी पड़ेगी, क्योंकि हम इस खण्ड में 'भारतीय' की परिभाषा कर रहे हैं और मेरा सुझाव है कि भारतीय का यह अभिप्राय होना चाहिये "कि 1935 के अधिनियम के अधीन जो कोई भी व्यक्ति भारत का नागरिक कहा जा सकता है, और यदि किसी का जन्म ऐसे जनकों द्वारा हुआ हो, तो वह अवश्य ही भारत का नागरिक कहा जायगा।" डॉ. देशमुख का संशोधन बिल्कुल ठीक है, क्योंकि हिन्दू और सिखों के लिये भारत के अतिरिक्त अन्य कोई घर नहीं है और मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस श्रेणी में तब तक हम प्रत्येक व्यक्ति को किस प्रकार शामिल कर सकते हैं, जब तक हम इस प्रकार स्पष्ट न कहें। यह कहने में हमें संकोच नहीं करना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति जो धर्मणा हिंदू या सिख है और किसी अन्य राज्य का नागरिक नहीं है, उसे भारत की नागरिकता का हक होगा। इससे उन सब वर्गों का समावेश हो जायेगा, जिनको हम समावेश करना चाहते हैं और यह व्यापक हो जायेगा। जो सत्य है उसके उद्घाटन करने में 'असाम्प्रदायिक' शब्द से हमें भयभीत नहीं होना चाहिये और वास्तविकता का सामना करना चाहिये। अत: मैं समझता हूं कि डॉ. देशमुख ने एक बड़ा सुन्दर सुझाव दिया है। वर्तमान मसौदा आवश्यकता से अधिक व्यापक है और हम एक व्यक्ति को नागरिकता प्रदान करता है। नेपाल के कुछ मित्र मुझसे मिले और पूछा कि क्या इस देश में रहने वाले नेपाली भारत के नागरिक माने जायेंगे और मैं उनको कुछ भी उत्तर न दे सका। पर खण्ड (ग) में उसका उत्तर मिल जाता है। यदि वे पांच वर्ष से यहां हैं, तो वे नागरिक हो जायेंगे। डॉ. देशमुख के संशोधन द्वारा यदि वे चाहते हैं तो उनको नागरिकता मिल जायेगी। अत: इस अनुच्छेद के संशोधन की आवश्यकता है। हमें अपनी नागरिकता बहुत आसान नहीं बनानी चाहिये; पर उन लोगों के लिये जो इस राज्य के प्रति निष्ठा रखते हैं, चाहे वे कोई भी हों, उन्हें भारत की नागरिकता मिलनी चाहिये और अपने संविधान में हमें ऐसा कहना चाहिये। 'स्वेच्छा से' शब्द निकल जाने चाहियें। कोई भी व्यक्ति जिसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली है, उसे भारत की नागरिकता का हक नहीं होना चाहिये। यदि आप यह कहेंगे कि 'स्वेच्छा से अर्जित की है' तो वह यह कहेगा कि 'स्वेच्छा से अर्जित नहीं की है, वह तो बिना स्वेच्छा के ही मिल गई तथा ऐसी ही बातें और कहेगा। अत: मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद पर मेरा संशोधन स्वीकार होना चाहिये।

अनुच्छेद 5-क के सम्बन्ध में मैं श्री जसपतराय कपूर से सहमत हूं कि "समझा जायेगा" (deemed to be) शब्द वहां नहीं होने चाहिये। जो लोग पाकिस्तान से भारत में आ गये हैं। "समझे जायेंगे" फिर क्यों कहा जाये? ये शब्द इस संशोधन की कोई शोभा नहीं बढ़ाते हैं। जो मित्रगण यहां आ गये हैं उनका हमें सम्मान करना चाहिये। वे भारत के नागरिक हैं और उनका भारत का नागरिक 'समझे जाने' का कोई प्रश्न नहीं है।

इसके बाद 'पाकिस्तान के इस समय अंतर्गत' शब्द संदिग्ध हैं—विशेषकर 'इस समय' शब्द। यह संविधान एक दीर्घकालीन भविष्य के लिये बनाया जा रहा है। जब कभी इसे पढ़ा जायेगा तो 'पाकिस्तान के इस समय' शब्द ठीक-ठीक अर्थ

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

व्यक्त नहीं करेंगे, क्योंकि 'इस समय' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होंगे। उदाहरणार्थ कुछ क्षेत्र आज पाकिस्तान के अंतर्गत हैं, कल वे न रहें। अथवा कुछ क्षेत्र आज पाकिस्तान में नहीं हैं पर बाद में वे पाकिस्तान में हो सकते हैं। और फिर इसका यह भी अर्थ होगा कि उस समय प्रत्येक व्यक्ति जो पाकिस्तान का नागरिक है, यदि प्रव्रजन कर आया है तो वह भारत का नागरिक हो जायेगा। अत: मैं यह सुझाव रखता हूं कि यह कहने की अपेक्षा कि "पाकिस्तान के इस समय" हम यह कहें कि "इस संविधान के प्रारम्भ पर पाकिस्तान के"। हमें यह सीमित कर देना चाहिये कि पाकिस्तान क्या है। मैं यह कह चुका हूं कि 'इस समय' ऐसे शब्द हों जो पाकिस्तान के क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ होंगे। अत: मैं यह सुझाव रखता हूं कि 'इस समय' शब्दों को निकाल दिया जाये और इस व्याख्या के अन्त में 'इस संविधान के प्रारम्भ पर' शब्द जोड़ दिये जायें। मेरा यह संशोधन है। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस बात पर सावधानी से विचार करेंगे कि क्या "इस समय पाकिस्तान के" शब्दों का बाद में अन्य प्रकार से निर्वचन तो नहीं किया जायेगा।

सूची 6 के अपने संशोधन संख्या 163 में, जिसे मेरे मित्र श्री भूपेन्द्रसिंह मान पेश करेंगे, मैंने प्रस्थापित अनुच्छेद 5-कक में प्रस्थापित परन्तुक का अपमार्जन चाहा है। इस सम्बन्ध में मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर ने अपने विचार बड़े स्पष्ट रूप में प्रकट किये हैं। उनके तर्कों के अतिरिक्त मैं एक बात और कहूंगा। इससे कार्यपालिका को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी व्यक्ति को अनुज्ञा दे दे और वह व्यक्ति भारत का नागरिक हो जायेगा, और इस प्रकार यह एक परिवर्तनशील वस्तु के समान हो जायेगी, जिसका प्रतिकार ऐसा हो सकता है, जिसे हम न चाहें। खण्ड 5-क और 5-कक में जो कुछ हमने कहा है, उसे हमें निश्चित रूप में कहना चाहिये कि जो व्यक्ति भारत से प्रव्रजन कर गया है, उसे एक विदेशी के समान समझा जायेगा और जब वह वापस आयेगा तो उसे पांच वर्ष निवास करके नागरिकता अर्जित करनी पड़ेगी, इत्यादि इत्यादि। मैं नहीं समझता हूं कि यह परन्तुक आवश्यक है, अत: मैं समझता हूं कि इस परन्तुक के निकालने के प्रयास करने वाले संशोधन संख्या 163 को स्वीकार किया जायेगा। माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से मैं निवेदन करूंगा कि जो संशोधन उन्होंने पेश किया है उसे वापस ले लें या सभा उसे अस्वीकार कर दे। अनुच्छेद के अन्य भागों में जो कुछ दिया हुआ है, उसे परन्तुक द्वारा रद्द नहीं करना चाहिये।

खण्ड 5-ख में मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर का "किसी विधि के अधीन जो संसद द्वारा निर्मित की जायेगी" शब्दों को निकाल देने का सुझाव ठीक नहीं है और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह संकेत किया है कि अनुच्छेद 6 के होने के कारण वह आवश्यक नहीं है। मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से सहमत नहीं हूं क्योंकि वह फिर निर्वचन का प्रश्न हो जायेगा। मैं यह नहीं चाहता हूं कि वह मुकदमेबाजी का विषय हो। संसद को भारत के नागरिक के रूप में व्यक्तियों को सूचीबद्ध करने के राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधियों के अधिकारों पर परिसीमायें लगाने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये। अन्यथा किसी भी व्यक्ति के लिये भारत की नागरिकता प्राप्त करना बड़ा सरल हो जायेगा। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद

5-ख में ये शब्द रहने चाहिये। अनुच्छेद 6 वास्तव में एक ऊपर का ढांचा है पर यदि यह बात अन्य अनुच्छेदों में उल्लिखित नहीं की जाती है तो संसद की शक्ति परिसीमित हो जायेगी। अनुच्छेद 5-ख निरपेक्ष हैं, अत: इन शब्दों को निकाल कर उसे परिसीमित नहीं करना चाहिये। ये शब्द वहां व्यर्थ नहीं हैं। ये शब्द मूल मसौदे में थे, पर मैं यह नहीं जानता हूं कि इनको क्यों निकाल दिया गया है। ये शब्द वहां रहने चाहियें, जिससे कि उद्देश्य जितना स्पष्ट है, उससे अधिक स्पष्ट हो जाये।

हमारे विद्वान प्रोफेसर शाह ने अभी हमसे कहा था कि अन्य देशों में भारतीयों के साथ भेदभाव पर हमें कितना अधिक ख्याल होता है। संशोधन संख्या 7 में वे कहते हैं कि "संसद किसी भी उस देश के नागरिक को नागरिकता के समान अधिकार नहीं देगी, जो देश अपने यहां बसे हुए भारत के नागरिकों को, जो वहां की नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक हैं, सम व्यवहार से वंचित करता है"। मेरे विचार से हमारा आत्मसम्मान यह मांग करता है कि यह परन्तुक होना चाहिये। अन्यथा यह बड़ी ही निराशाजनक बात है कि जब कोई देश हमारे साथ भेदभाव बर्तता है, पर हम फिर भी उस देश के राष्ट्रजनों को जब वे यहां आते हैं तो नागरिकता के समान अधिकार देते हैं। मेरा निजी यह विचार है और जनता का भी यही विचार है कि यदि वे हमें ठुकराते हैं, तो वे भी ठुकरायें जायेंगे। यह संशोधन संख्या 7 बड़ा महत्वपूर्ण संशोधन है और यह स्वीकार हो जाना चाहिये।

विदेशी पूंजीपतियों के यहां आने और इस अनुच्छेद से लाभ उठाने का प्रयत्न करने के सम्बन्ध में भी उनका सुझाव विचारणीय है और मुझे आशा है कि विद्वान डाक्टर इसको उतना महत्व देंगे, जितने के यह योग्य है।

यहां एक और शब्द 'अधिराज्य' है। अब जबकि भारत स्वतन्त्र हो गया है और अधिराज्य नहीं रहा तो यह 'अधिराज्य' शब्द लोगों के कानों में खटकेगा। अत: मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 5-ख में 'भारत अधिराज्य' शब्दों को अन्य शब्दों में बदल दिया जाये। संविधान के एक और अनुच्छेद के सम्बन्ध में हमने अनुभव किया था कि उस दासत्व काल की याद दिलाने के लिये, जिसे हम बिता चुके हैं, यह अधिराज्य शब्द नहीं रहना चाहिये। अत: इसे भी बदल देना चाहिये और प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 20 को स्वीकार कर लेना चाहिये।

यह समूचा अनुच्छेद एक कठिन अनुच्छेद है और डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इसमें अधिक से अधिक समझौते का रूप निहित है। अभी इस अनुच्छेद में सुधार के लिये बहुत गुंजाइश है। अभी इस अनुच्छेद में ऐसी कई कमियां हैं, जिनका करोड़ों देशवासियों पर तथा भविष्य पर भी प्रभाव पड़ेगा। अत: इस अनुच्छेद पर ठीक ठीक विचार होना चाहिये और जैसी अपेक्षा हो, वैसा संशोधन होना चाहिये।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खण्ड (ग) में 'five years' शब्दों के स्थान में 'ten years' शब्द रखे जायें।"

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'Notwithstanding anything' शब्दों से लेकर 'at the date of commencement of this Constitution if' तक के शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें–

'Notwithstanding anything contained in article 5 of this Constitution a person who on account of civil disturbances or the fear of such disturbances—

(a) having the domicile of India, as defined in the Government of India Act, 1935, and being resident in India before the partition, has decided to reside permanently in India; or

(b) has migrated to the territory of India from the territory now included in Pakistan;

shall be deemed to be a citizen of India at the date of the commencement of this Constitution if.' "

[इस संविधान के अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति जो असैनिक विद्रोह के कारण अथवा ऐसे विद्रोह से भयभीत होकर—

(क) भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम में परिभाषित रीति के अनुसार भारत में अधिवास करता हुआ और विभाजन के पूर्व भारत में निवास करता हुआ है और उसने भारत में स्थायी रूप से निवास करना निश्चित कर लिया है; अथवा

(ख) पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य क्षेत्र से भारत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है;

इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा, यदि]

आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के अन्त में निम्न शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें:

'or if he has before the date of commencement of this Constitution unequivocally-declared his intention of acquiring the domicile of India by permanent residence in the territory of India or otherwise and established

such intention to the satisfaction of the authority before whom the question of his citizenship arises.' "

[अथवा यदि इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख से पूर्व उसने भारत के राज्य क्षेत्र में स्थायी निवास द्वारा अथवा अन्यथा भारत में अधिवास प्राप्त करने के उद्देश्य की असंदिग्ध रूप में घोषणा कर दी है और उस प्राधिकारी के संतोषप्रद रूप में इस उद्देश्य को सिद्ध कर दिया है जिसके समक्ष उसकी नागरिकता का प्रश्न उठता है।]

आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-कक के प्रस्थापित नये परन्तुक में–

(1) 'nothing in this article shall apply to' शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये;

(2) 'or permanent return' शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये; और

(3) 'and every such person shall' शब्दों से लेकर 'nineteenth day of July 1948' तक शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'shall be entitled to count his period of residence after the nineteenth day of July 1948, in the territory of India in the period required for qualification for naturalisation or acquisition of citizenship under any law made by Parliament.' "

[संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन देशीयकरण अथवा नागरिकता अर्जन की अहिता के लिये अपेक्षित कालावधि में जुलाई सन् 1948 के उन्नीसवें दिन के बाद के भारत राज्य क्षेत्र में अपने निवास करने के काल की गणना करने का हक होगा।]

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 के प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के प्रस्थापित परन्तुक में—

(1) 'nothing in this article shall apply to' शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये;

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(2) 'and every such person shall' शब्दों से लेकर nineteenth day of July 1948, तक शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'shall be eligible for citizenship by naturalization if he fulfils the condition laid down by law and his permit shall be liable to be cancelled on the grounds on which under the law relating to naturalization the certificate of naturalization can be cancelled.' "

[यदि वह विधि द्वारा निर्धारित शर्त को पूरी करता है तो देशीयकरण द्वारा नागरिकता का पात्र होगा और देशीयकरण सम्बन्धी विधि के अधीन जिन आधारों पर देशीयकरण का प्रमाणपत्र रद्द किया जा सकता है उन आधारों पर उसका अनुज्ञा पत्र रद्द भी किया जा सकेगा।]

श्रीमान्, आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में 'any person' शब्दों के पश्चात् 'having his domicile in the territory of India' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

श्रीमान्, आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में 'whether before or after' शब्दों के स्थान में 'before' शब्द रखा जाये।"

श्रीमान्, आगे मैं और प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में अन्त के शब्द 'or the Government of India' अपमार्जित कर दिये जायें।"

श्रीमान्, आपकी अनुज्ञा से मैं आगे और प्रस्ताव पेश करूंगा:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये।

'Provided he has not abandoned his domicile by migrating, to Pakistan after the 1st April 1947 or acquired after leaving India the citizenship of any other State.' "

[परन्तु यदि उसने 1 अप्रैल सन् 1947 ई. के पश्चात् पाकिस्तान में प्रव्रजन कर अपने अधिवास का परित्याग न किया हो अथवा भारत छोड़कर किसी अन्य राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली हो।]

***अध्यक्ष:** यदि मैं यह कहूं कि निम्न संशोधन पेश हो चुके हैं:

सूची 6 (तृतीय सप्ताह) संख्या 160, 161, 162, 164, 165, 167, 168 और 169।

सूची 1 (तृतीय सप्ताह) संख्या 32, तो क्या यह ठीक बात है?

***पं. ठाकुर दास भार्गव:** जी हां। अनुच्छेद 5-5क, 5-कक, 5ख और 5-ग के पढ़ने से यह विदित होगा कि यह मान लिया गया है कि जन्म, अधिवास, पांच वर्ष निवास, जन्म और प्रव्रजन, अथवा भारतीय सरकार द्वारा नियुक्ति पदाधिकारियों द्वारा पंजीबद्ध करने, अथवा किसी देश में दूतावास के यहां किसी प्रकार के पंजीबद्ध करने को नागरिकता के लिये अर्हता के रूप में समझ लिया गया है।

जहां तक जन्म के प्रश्न का सम्बन्ध हैं मैं नहीं समझ पाता हूं कि भारत में अथवा किसी अन्य देश में महाजननी के जन्म या महाजनक के जन्म को किसी व्यक्ति को नागरिकता के लिये अर्हता देने वाला कैसे समझा जा सकता है? यदि आप इन अनुच्छेदों पर एक-एक करके अलग अलग विचार करें तो यह विदित होगा कि जन्म को भी कुछ श्रेय नहीं दिया गया है क्योंकि अनुच्छेद 5-ग के अधीन यदि कोई विदेशी पांच वर्ष तक भारत में रहता है और यदि उसका भारत में अधिवास है तो वह भी नागरिक होने का हक रखता है।

इसी प्रकार, अधिवास के सम्बन्ध में, यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है, क्योंकि 5-ख में यदि कोई व्यक्ति भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम में परिभाषित भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा था और तब से किसी विदेश में रह रहा है तो ये दो बातें नागरिकता के अधिकार अर्जन करने के लिए पर्याप्त है यदि वह दूतावास को आवेदन पत्र भेजता है और पंजीबद्ध होने दिया जाता है। अधिवास की भी आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि इस नागरिकता में ऐसी क्या बात है जिसको नागरिक होने के पूर्व प्राप्त करना किसी व्यक्ति के लिये नितान्त आवश्यक है? श्रीमान्, मेरे विचार से अधिवास एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है और मैं सोचता हूं कि अधिकांश नागरिकता के लिये एक अनिवार्य शर्त है। अन्य कोई बात चाहे हो या न हो, पर जैसा कि संसार के समस्त सभ्य देशों की देशीयकरण विधियों से, मैं समझता हूं, देशीयकरण द्वारा कोई भी व्यक्ति नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर सकता है यदि वह उस देश की विधियों में निर्धारित शर्तो को पूरा कर देता है। पर जहां तक अधिवास का सम्बन्ध है, जब तक यह न हो तब तक, श्रीमान, मेरी तुच्छ राय से कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि उसे किसी विशिष्ट देश की नागरिकता बिना अधिवास के ही प्राप्त है। आखिरकार नागरिकता के अधिकार, नागरिकता के आभार और नागरिक होने की स्थिति कोई साधारण बात नहीं है। यह कोई तुच्छ बात नहीं है। यदि निश्चित होना चाहिये। मैं समझता हूं कि किसी राज्य का नागरिक होने पर किसी व्यक्ति

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

को कुछ अधिकार मिल जाते हैं और यदि वह उस राज्य का है अथवा उसका नागरिक है तो वह अपने ऊपर कुछ आभारों के निर्वहन करने का उत्तरदायित्व भी लेता है। मुझे यह दिखाई देता है कि अपने जाल को बहुत दूर तक बिछा देने का इच्छा के कारण हमने यह देखने की चिन्ता नहीं की है कि क्या हम उन लोगों पर किसी प्रकार के आभार भी रख सकते हैं जिनको हम अपनी नागरिकता के अधिकार दे रहे हैं और न हमने यह देखने की चिन्ता की है कि जब हम किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक बना देते हैं तो जहां तक उस व्यक्ति का सम्बन्ध है हम एक महान् उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। इस सभा में कौन व्यक्ति यह नहीं जानता है कि जब उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में जनजाति के लोगों ने मिस एलिस को बन्दी कर लिया था तो सारा ग्रेट ब्रिटेन उलट पुलट हो गया क्योंकि वह इंग्लैण्ड की नागरिक थी? श्रीमान्, क्या आज हम यह नहीं देखते हैं कि जो लोग हमारे समझे जाते हैं, चाहे वे हमारे नागरिक हों या न हों, उनके साथ विभिन्न देशों में बुरा बर्ताव किया जाता है और हम कुछ नहीं कर सकते हैं? क्या हम यह नहीं जानते कि हमारी स्त्रियां तक पाकिस्तान में हैं और हम उनको वापस नहीं पा सकते हैं? श्रीमान्, जबकि एक देश इतना निरीह तथा दुर्बल है कि वह अपने देश की स्त्रियों तथा नागरिकों तक की रक्षा नहीं कर सकता है तो मैं नहीं समझता हूं कि अपने जाल को इतना अधिक विस्तृत करने का उसे क्या अधिकार है। यदि हमारा देश साधन शून्य है और यदि हम अपने शरणार्थियों को सुविधा और सान्तावना नहीं दे सकते हैं, उनका पुनर्वास नहीं कर सकते हैं तो हमें पाकिस्तान से और लोगों को बुलाने और उन्हें अपना नागरिक बनाने का क्या अधिकार है? जबकि हमारे देश में यह देखने तक के साधन उपलब्ध नहीं हैं कि जो लोग यहां रहते हैं उन्हें पेट भर खाना मिलता है या नहीं उनके पास मकान है या नहीं तो दक्षिण अफ्रीका वालों को अपना नागरिक कहने का हमें क्या अधिकार है?

मेरा विनम्र निवेदन यह है मैं यह नहीं चाहता हूं कि हम अपनी नागरिकता को इतना सरल बना दें क्योंकि राज्य के कुछ आभार होते हैं और राज्य के इन आभारों का भार शेष नागरिकों पर पड़ता है: और यदि देश के किसी भाग में किसी नागरिक का निरादर किया जाता है तो राज्य तथा देश के नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह यह देखें कि उस अपमान का बदला चुका दिया गया और क्षतिपूर्ति हो गई। यदि आप कोई भलाई नहीं कर सकते हैं तो जो लोग नागरिक होना चाहते हैं या नहीं होना चाहते हैं उन सबको बुलाने और उनसे अपने यहां का नागरिक होने के लिये कहने से क्या लाभ?

इस सम्बन्ध में मैं सभा का अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं क्योंकि कुछ सदस्य इस विषय पर इसी रूप में बोल चुके हैं। पर वर्तमान प्रश्न सम्बन्धी विषय पर मैं आपके समक्ष अपने विचार प्रकट करना चाहूंगा। जब हम एक प्रान्तीय विधि ही बना रहे हैं तो मैं इस बात का इच्छुक हूं कि शरणार्थी के रूप में पाकिस्तान से आये हुये एक भी व्यक्ति को भारत का नागरिक होने में कुछ भी कठिनाई न हो। मैं इस बात के लिये उत्सुक हूं कि उन शरणार्थियों के मार्ग में कोई रोड़ा न अटकाया जाये जो उपद्रव के कारण पाकिस्तान से चले आये हैं और जो अपना सर्वस्व छोड़कर इस देश में आ गये हैं। मेरी दूसरी इच्छा यह है कि

जो लोग 15 अगस्त सन् 1947 को पाकिस्तान के नागरिक बनने के इच्छुक थे और जो लोग आंखें खोलकर और अपने ओठों पर इस गाने को गुनगुना कर "हंस के लिया पाकिस्तान, लड़ कर लेंगे हिन्दुस्तान" पाकिस्तान का नागरिक होने के लिये इस देश को छोड़ गये, उनको भारत का नागरिक न बनाया जाये। उन लोगों ने अब इस देश का नागरिक बनने के अधिकार को छोड़ दिया है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि जहां तक इन शरणार्थियों का सम्बन्ध है वे तो भारत के नागरिक थे। विभाजन के कारण वे भारत के नागरिक होने से वंचित नहीं हुये हैं, यदि वे यहां आ गये हैं और इस देश में स्थायी रूप से निवास करना चाहते हैं तो नागरिकता को उन्हें प्रत्येक अधिकार प्राप्त है और उनके मार्ग में किसी रोड़े को मैं अन्यायपूर्ण तथा अनुचित समझता हूं।

इस विचार से मैंने अपना संशोधन प्रस्तुत किया है। श्रीमान्, आपको अनुमति से मैं अभी यह कहने जा रहा हूं कि जिन दो उद्देश्यों की मैंने चर्चा की है इनके प्राप्त करने के लिए मैं इन अनुच्छेदों में आगे और क्या-क्या सुधार अथवा संशोधन चाहता हूं।

सर्वप्रथम मैं अनुच्छेद 5 पर आता हूं। उन शरणार्थियों के विषय को लेने के पूर्व जो पाकिस्तान से भारत में पुन: प्रवेश करना चाहते हैं मैं पहले उन शरणार्थियों के विषय की ओर निर्देश करूंगा जो अनुच्छेद 5 के अधीन आते हैं। इस अनुच्छेद के अधीन इस खण्ड की परिभाषा के अनुसार ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिन्होंने भारत को कभी देखा तक न हो। वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो भारत में जन्मा हो अथवा उसके जनकों में से कोई एक भारत में जन्मा हो अथवा अधिवास रखता हो। यह अधिवास केवल एक मानसिक प्रवृत्ति या विचार है कि यदि कोई व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहता है तो अन्तत: उसे भारत में एक स्थायी घर रखना होगा। मैं नहीं जानता हूं कि ऐसे व्यक्ति पर यह देश कोई आभार आरोपित कर सकेगा। खैर, यह तो उन लोगों के बारे में है जिनका जन्म भारत में हुआ था अथवा जिनके जनकों का जन्म भारत में हुआ था अथवा जिनका भारत में अधिवास है। विदेशियों के लिये जो नागरिकता के अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं सन् 1926 का देशीयकरण अधिनियम 7 है। आवश्यक रूपान्तरों के सहित इस अधिनियम को भारत की विधि के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये। दूसरे देशों में भी देशीयकरण सम्बन्धी ऐसी विधियां हैं और यदि कोई विदेशी किसी देश का नागरिक होना चाहता है तो विधि यह अपेक्षित करता है कि वह पांच वर्ष तक उस देश में रहा हो और इस बात पर आग्रह करता है कि वह अच्छे आचार-विचार का हो और यह भी कि वह उस देश के प्रतिनिष्ठा रखने की शपथ ग्रहण करे। श्रीमान्, आपकी अनुमति से इस सम्बन्ध में मैं आपके समक्ष सन् 1926 के देशीयकरण अधिनियम की धारा 5 की ओर निर्देश करूंगा जिसमें वह शर्त दी हुई है जिसके अधीन कोई व्यक्ति देशीयकरण के अधिकार प्राप्त करता है। अच्छे आचार-विचार रखने जैसी अन्य शर्तों के साथ-साथ जो धारा 3 में दी गई हैं, धारा 6 में एक और उपबन्ध किया गया है:

"प्रत्येक व्यक्ति जिसे देशीयकरण का प्रमाणपत्र दिया जाता है वह प्रमाणपत्र के देने की तारीख से 30 दिन के भीतर निम्न शपथ ग्रहण करेगा:

"मैं (अमुक), (अमुक स्थान) का निवासी शपथ ग्रहण करता हूं (अथवा प्रतिज्ञान करता हूं) कि मैं......के प्रति सच्चा रहूंगा और सच्ची निष्ठा रखूंगा।' "

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

उन लोगों के विषय में जो यहां इस देश में रह रहे हैं इस देश में उनके पांच वर्ष तक ठहरने का तथ्य ही पर्याप्त नहीं होना चाहिये यदि देशीयकरण द्वारा नागरिकता की अन्य शर्तें उनके पक्ष में लागू नहीं की जाती है तो। मेरा निवेदन यह है कि यदि आप देशीयकरण की विधि का अध्ययन करें तो आप इस परिणाम पर पहुंचंगे कि उस व्यक्ति पर भी कुछ शर्तें पूरी करने का उत्तरदायित्व है जो केवल देशीयकरण द्वारा नागरिकता प्राप्त करता है। उसे कुछ आभार पूरे करने होते हैं और उसे एक अच्छे आचार-विचार का व्यक्ति होना चाहिये। इन सब शर्तो को अलग किया जा रहा है और उसे इस देश का नागरिक माना जा रहा हैं अत: केवल यही उचित है कि यह प्रकट करने के लिये कि वास्तव में वह व्यक्ति भारत में रहना चाहता है हम दस वर्ष के कम से कम अधिवास की व्यवस्था करें। अन्यथा ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो बादशाह की सेवा में रहे है। और बहुत समय से यहां ठहरे हुये हैं वे अब यहां रहना पसन्द करें जिसका कारण वे ही जानते होंगे। मेरे लिये तो यह कठिनाई है कि मुझे विश्वास नहीं होता है कि जो लोग पाकिस्तान से या अन्य किसी देश से आते हैं वे केवल इस देश में प्रेम होने के कारण यहां ठहरने का विचार रखते हैं यदि वे इसी उद्देश्य से यहां रहना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है वे इस देश के नागरिक बनें पर यह मैं भली प्रकार जानता हूं कि ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जो इस देश में इस उद्देश्य से नहीं आये हैं अथवा न इस उद्देश्य से यहां रह रहे हैं। उनके लिये मैं पांच वर्ष नहीं दस वर्ष रखूंगा जो सावधान रहने के लिए आवश्यक समझा जाये।

दूसरा संशोधन जिसको मैंने पेश किया है, संख्या 161 है। इस संशोधन के सम्बन्ध में यह प्रकट हो गया होगा कि इसके द्वारा खण्ड 5-क की प्रस्तावना में कुछ परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। मैंने एक ऐसे विषय की व्यवस्था की है जिसके अंतर्गत भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में परिभाषित भारत में जन्मा या अधिवासित कोई व्यक्ति यदि वह विभाजन के तीन वर्ष पूर्व भारत में आ गया है और पांच वर्ष से यहां नहीं रह रहा है। इस अनुच्छेद में ऐसे व्यक्ति के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसे लोगों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये, जिनके बारे में मुझसे यह कहा गया है कि आसाम में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है। मैं यह चाहता हूं कि ऐसा हर एक व्यक्ति, जो विभाजन के पूर्व भारत में आ गया है और पांच वर्ष से कम काल से रह रहा है और जिसने यहां रहने का निश्चय कर लिया है—क्योंकि पूर्वी या पश्चिमी पाकिस्तान की हालत में कारण वह वहां नहीं जाना चाहता है—भारत का नागरिक होने दिया जाये। यदि आप ऐसे लोगों के लिए व्यवस्था नहीं करते हैं तो ऐसे बहुत से मनुष्य बिना नागरिकता के रह जायेंगे जो भारत के नागरिक होना चाहेंगे। यह गलत बात है। यह अनुच्छेद 5-क ऐसे लोगों के लिये व्यवस्था करता है जिनको प्रत्येक व्यक्ति भारत का योग्य नागरिक समझेगा?

एक और कठिनाई है और इस तथ्य को मैं छुपाना नहीं चाहता हूं। एक विश्वसनीय प्राधिकारी द्वारा इस सभा के किसी माननीय सदस्य द्वारा मुझे यह बताया गया है कि विभाजन के पश्चात् पूर्वी बंगाल के हिन्दू शरणार्थियों की तिगुनी संख्या में मुसलमान आसाम में प्रव्रजन कर गया है। यदि एक मुसलमान भारत में आता

है और भारत के प्रति निष्ठा रखता है और भारत को उतना ही प्रेम करता है जितना हम तो उस व्यक्ति के लिये प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई बात मेरे मन में नहीं है। पर विभाजन के बाद भी बहुत से मुसलमान आसाम में इसलिये आ गये हैं कि निर्वाचन में वहां मुस्लिम बहुमत हो जाये न कि भारत के नागरिक के रूप में आसाम में बसने के लिये। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि वे लोग यहां एक ऐसे उद्देश्य से आये हैं जो वास्तव में बहुत न्यायसंगत नहीं हैं। जो लोग पाकिस्तान के उपद्रवों के कारण अथवा वहां के उपद्रवों से भयभीत होकर यहां चले आये हैं उनको भारत में शरण मिलनी चाहिये। यदि कोई राष्ट्रीय मुसलमान जो पूर्वी पाकिस्तान या पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों से डर कर भारत में आता है तो उसका यहां अवश्य स्वागत होगा। हमारा यह कर्तव्य है कि उसकी रक्षा की जाये। हम उसको अपने भाई के समान समझेंगे और भारत का एक सच्चा राष्ट्रजन समझेंगे। उन अन्य लोगों के सम्बन्ध में जो उपद्रव के कारण यहां नहीं आये हैं यदि हम कर सकते हैं तो उनको भारत का नागरिक न बनने दें। इसीलिये मैंने यह शब्द बढ़ा दिये हैं:

> "इस संविधान के अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति जो असैनिक उपद्रवों के कारण अथवा ऐसे उपद्रवों से भयभीत होकर...।"

मैं इस बात पर कदाचित आग्रह करूंगा कि वह व्यक्ति जो भारत के किसी प्रान्त में मुस्लिम बहुमत बनाने के लिए आता है वह यहां न आये और नागरिक न बने। अत: प्रव्रजन की पहली शर्त यह होगी की वह व्यक्ति यहां उपद्रव के कारण आये। जो लोग यहां उपद्रव के कारण रहना चाहते हैं उनके लिये भारत के दरवाजे खुले हुये हैं। पर वे लोग जो बुरी भावना लेकर यहां आते हैं जो न्यायमुक्त सच्चे स्वामियों को भयभीत कर उनसे भूमि छीनने के लिये और इस देश में अपना बहुमत बनाने के लिये यहां आते हैं उनके लिये हमें यह कहना चाहिये कि यहां कोई शरण नहीं दी जायेगी। वे यहां स्थायी रूप से निवास करने के विचार से प्रव्रजन नहीं कर रहे हैं। उनका उद्देश्य केवल यहां झगड़ा पैदा करना है। पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं हर एक सदस्य से निवेदन करूंगा कि वह मुझसे इस बात में सहमत हो कि अनुच्छेद 5-क में यह उपबन्ध कर दिया जाये।

इसके बाद मैं आगे के संशोधन (162) पर विचार प्रस्तुत करता हूं। इसके सम्बन्ध में मेरे मन में यह शंका है कि जब अनुच्छेद 5-क का मसौदा बनाया गया था उस समय शायद यह नहीं सोचा गया था कि इसके अन्तर्गत बहुत से शरणार्थी न आ जायें। मेरे सुझाव को स्वीकार करने के लिये और इस शर्त को हटा देने के लिए कि नागरिकता के लिये सब शरणार्थी घोषणापत्र दाखिल करें। मैं मसौदा समिति का कृतज्ञ हूं। पर जो लोग 19 जुलाई सन् 1948 ई. के बाद आये हैं—ऐसे कुछ अयाने व्यक्ति हो सकते हैं जो इस शर्त को न जानते हों कि 26 जनवरी सन् 1950 को दरवाजें बन्द हो जायेंगे—मैं नहीं जानता हूं कि कि उनका क्या होगा। शायद कोई नई विधि उन लोगों के लिये कुछ उपबन्ध करे कि 5 वर्ष निवास करने के पश्चात् उनको नागरिक माना जा सके। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में मैं विश्वास करता हूं कि हमें एक ऐसा उपबन्ध करना होगा कि यदि वे भारत में आते हैं और स्थायी रूप में बस जाते हैं तो बिना किसी और अर्हता के इससे ही उनको नागरिकता का अधिकार मिल जाये। इसके लिये मैंने यह उपबन्ध किया है कि यदि कोई व्यक्ति संविधान के प्रारम्भ के पूर्व किसी

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

पदाधिकारी के समक्ष नहीं वरन् अपने आचरण द्वारा यह स्पष्ट घोषित कर देता है कि भारत राज्यक्षेत्र में उसका स्थायी निवासी होगा तो वह भारत का नागरिक होगा। यह प्रश्न अभी नहीं उठेगा। पर किसी व्यवहार अथवा दण्ड विषयक मामले में यह प्रश्न किसी समय उठ सकता है। अत: जब कभी यह प्रश्न उठे कि क्या कोई व्यक्ति भारत का नागरिक है या नहीं तो वह यह कह सके कि संविधान के प्रारम्भ के पूर्व वह भारत में आ गया था और स्थायी निवास द्वारा भारत के नागरिक होने की उसने स्पष्ट घोषणा कर दी। मैंने इस उपबन्ध को उन लोगों के लिये रखा है जिनको संविधान के प्रारम्भ के पूर्व पंजीबद्ध नहीं किया जायेगा। यदि यह नहीं रखा जाता है तो आप ऐसे अनेक व्यक्तियों के लिए द्वार बन्द कर देंगे जो अज्ञानता अथवा निरक्षरता के कारण नये उपबन्ध का लाभ नहीं उठा सके हैं। और फिर देश में अभी तक यह उपबन्ध प्रख्यापित नहीं किया गया है और न अभी तक कोई पदाधिकारी नियुक्त किया गया है। हम नहीं जानते हैं कि प्रत्येक शरणार्थी को पंजीबद्ध करने के लिये क्या उपक्रम किया जायेगा। जब लाखों आदमी अन्तर्गस्त हैं तो मैं समझता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को यह सूचना देना कि वह अपने आप को पंजीबद्ध करा ले कठिन होगा। अत: कोई भी व्यक्ति जो पाकिस्तान के कष्टों के कारण स्थायी निवास के लिये यहां इस देश में आता है वह यह न कह सके कि उसके लिये सरकार ने कोई उपबन्ध नहीं किया है। केवल इस आकस्मिकता का उपबन्ध करने के लिए ही मैं यह चाहता हूं कि संशोधन संख्या 162 स्वीकार किया जाये।

अनुच्छेद 5-कक और उसके परन्तुक को लीजिये। इस विषय में मुझे यह निवेदन कर देना चाहिये कि मैं इस विषय पर कुछ भावना युक्त होकर विचार प्रस्तुत करना हूं। मुझे हर्ष है कि मसौदा समिति ने मेरे इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है कि कोई व्यक्ति जो एक बार इस देश से प्रव्रजन कर गया है वह सदैव के लिये प्रव्रजन कर गया। वैध सिद्धान्त यह है कि कोई व्यक्ति जिसने अधिवास का परित्याग कर दिया है उसने सदैव के लिये उसका परित्याग कर दिया। किसी अंश में परित्याग करने का जो प्रश्न ही नहीं है। अनुच्छेद 5 की व्याख्या जो मूलत: नहीं थी और बाद में जोड़ी गई थी अब 5-कक में आ गई है। इस व्याख्या में यह कहा गया है कि वह व्यक्ति जो भारत राज्यक्षेत्र से पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गया है भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा। जहां तक इसका सम्बन्ध है वहां तक यह ठीक है। पर जहां तक उन लोगों के विषय का सम्बन्ध है, जो पाकिस्तान प्रव्रजन करने के बाद फिर इस देश में चले आये हैं, एक नये परन्तुक के प्रविष्ट करने का प्रयास किया गया है। मेरा इस परन्तुक पर कोई झगड़ा नहीं है सिवा एक विशेष बात के। यदि भारतीय सरकार ने अपनी बुद्धिमानी से यह ठीक समझा कि पूर्वी या पश्चिमी पाकिस्तान से हजारों आदमियों को वापस आने दिया जाये और पुनर्निवास के अनुज्ञा पत्र उनको दिये जायें तो स्वयं सरकार पर ही इसका उत्तरदायित्व है। शायद आपको यह पता नहीं है कि इस सम्बन्ध में शरणार्थियों के मन में सम्पत्ति और औचित्य के क्या-क्या प्रश्न खटक रहे हैं। हम सब यह जानते हैं कि जहां तक चल सम्पत्ति का प्रश्न है पाकिस्तान ने यद्यपि पहले उसकी क्षतिपूर्ति करना मान लिया था पर अब मना कर दिया है। अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में हम जानते हैं कि पाकिस्तान की प्रवृत्ति क्या है और वह इस विषय में कैसा व्यवहार कर रहा है। उन लोगों की सहमति जो पाकिस्तान में रह रहे हैं निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित कर दी गई है और उस पर अधिकार

कर लिया गया है। मैं नहीं जानता हूं कि भारत में इन हजारों मुसलमानों के लौट कर आने से यहां निष्क्रान्त सम्पत्ति के अधिकारों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। अब हमारी सरकार द्वारा एक नया अध्यादेश पारित कर दिया गया है और एक और अध्यादेश पर विचार किया जा रहा है। यदि कोई व्यक्ति पुनर्निवास करने के लिए यहां आता है और नागरिक हो जाता है और इसके बाद उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है या ले ली जाती है तो मैं नहीं जानता हूं कि क्षतिपूर्ति सम्बन्धी अनुच्छेद 24 के उपबन्धों का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वह किसी न्यायालय से यह घोषणा निकलवा सकता है कि जिस सम्पत्ति को संरक्षक ने ले लिया है उस पर उसका अधिकार है अथवा उसे वापस लेने के लिए आवेदन पत्र दे सकता है। ये प्रश्न प्रत्येक निष्क्रान्त व्यक्ति के मन में उथल पुथल मचा रहे हैं। यद्यपि अभी तक शरणर्थियों का पुनर्वास नहीं हो पाया है, देहली इत्यादि नगरों के मकान उन लोगों के लिये सुरक्षित कर दिये हैं जो पाकिस्तान से आने को हैं और बहुत से ऐसे वापस आये हुये लोगों को उनके मकान वापस मिल गये। शरणार्थियों के मन में एक बड़ी अनिश्चितता तथा गड़बड़ी सी है कि वे भारतीय सरकार की स्थिति को समझ नहीं पाते हैं। अभी एक सम्मेलन में किसी जिम्मेदार व्यक्ति ने यह कहा था कि कुछ लोग पाकिस्तान में के उच्च आयुक्त अथवा उच्च उपायुक्त से अस्थायी अनुज्ञा पत्र प्राप्त कर यहां आये और उन लोगों को प्रभावशाली मुसलमान व्यक्ति तथा मन्त्री हमारे उच्च स्थानीय मंत्रियों तथा नेताओं के पास ले गये और स्थायी अनुज्ञा पत्र के लिये सिफारिश की। यह हुआ हो अथवा न हुआ हो। पर यदि इस प्रकार का एक भी उदाहरण हुआ तो उससे शरणार्थियों के मन में उत्तेजना पैदा हो जायेगी जो स्थान स्थान से दुतकारे जाते हैं और जिनका ठीक प्रकार से पुनर्निवास नहीं किया जाता। इसलिये मैं कहता हूं कि सम्पत्ति के अधिकार के अलावा भी जो भी करोड़ों तक पहुंचेगी मैं यह नहीं समझ पाता कि विधि और समत्व के अनुसार हम इस प्रस्थापना को किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को भारत में पुनर्निवास करने के लिये अनुज्ञा पत्र मिल जाता है तो वह अपने आप ही भारत का नागरिक हो जाता है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि कराची में के उच्च आयुक्त को जिस व्यक्ति को वह चाहे उसे भारत का नागरिक बनाने की शक्ति है। यथार्थ रूप में इसका यही अर्थ होता है। ऐसा कहकर मैं उस प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ कुछ थोड़ा सा अन्याय कर रहा हूं। मुझे यह सच बात कह देनी चाहिये कि उसे यह बिल्कुल ही विदित न था कि उस व्यक्ति को जिसे अनुज्ञा पत्र दिया जाता है भारत का नागरिक बनाया जायेगा। अत: मेरा विनम्र निवेदन यह है कि यदि उसे यह विदित हो जाये कि उनके अनुज्ञा-पत्र का यह प्रभाव होगा तो अनुज्ञा-पत्र देने के पूर्व वह खूब सोच विचार कर लेगा। श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि कोई व्यक्ति इस स्थिति का ठीक अनुमान किस प्रकार लगा सकता है क्योंकि अनुज्ञा-पत्रों का देना 26 जुलाई सन्, 1950 के बाद से आरम्भ किया है। जो लोग इससे पहले आये वे कम भाग्यशाली थे क्योंकि उन्हें कोई अनुज्ञा-पत्र नहीं मिले। जो लोग 26 जुलाई सन् 1950 के बाद आयेंगे उनके लिये पंजीबद्ध होने के लिये आवेदन पत्र देने के लिये छह माह का काल पूरा नहीं हो पायेगा। अत: मैं नम्रतापूर्वक यह बताना चाहता हूं कि 19 जुलाई सन् 1948 और 26 जुलाई सन् 1950 के बीच में दिये गये अनुज्ञा पत्र ही इस नियम के उपबन्ध के अधीन होंगे। आखिर इन दो व्यक्तियों में अन्तर ही क्या है? उनके प्रति इस विभिन्न व्यवहार को कोई व्यक्ति

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

किस प्रकार न्याययुक्त ठहरा सकता है? इन सब व्यक्तियों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 6 के अधीन विचार किया जा सकता था।

और फिर, श्रीमान्, जब प्रवेश्य के लिये अनुज्ञा-पत्र दे दिया जाता है तो उसका यह अभिप्राय होता है कि वह व्यक्ति आना चाहता है और स्वयं पुनर्निवास करना चाहता है, और देशीयकरण अधिनियम के उपबन्ध जिनको मैंने पढ़कर सुनाया है यह अपेक्षित करते हैं कि यह व्यक्ति अच्छे आचरण का होना चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि पुनर्विवास के लिये जितने भी मनुष्य आना चाहते हैं वे सब कुप्रवृत्ति लेकर आ रहे हैं, पर यह सच है कि उनमें से अधिकांश कुप्रवृत्ति लेकर ही आ रहे हैं, रुपया बनाने, अपनी सम्पत्ति बेचने तथा ऐसे ही अन्य प्रवृत्तियों को लेकर आ रहे हैं। श्रीमान्, यहां ऐसे कई व्यक्ति हैं जिनके स्त्री बेटे वहां हैं तथा एक बेटा या स्त्री यहां है और वे यहां से भी लाभ उठाते हैं और वहां से भी। श्रीमान्, जो लोग खासकर पश्चिमी पाकिस्तान में हैं उनको पूर्वी पंजाब में हम से कहीं अधिक सुख तथा सुविधा प्राप्त है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे यहां आये। मेरा निवेदन यह है कि वे यहां रहने के विचार से नहीं आ रहे हैं। यह सत्य है कि उनके पास अनुज्ञा पत्र है, पर हम सब जानते हैं कि अनुज्ञा-पत्र किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं। श्रीमान्, ये लोग इस देश के प्रति निष्ठा की कोई शपथ ग्रहण नहीं करते हैं। हमें यह विश्वास नहीं कि ये व्यक्ति अच्छे आचरण के ही हों। देशीयकरण अधिनियम की धारा 6 और 8 के समस्त उपबन्ध इन पर लागू होने चाहियें। आपकी अनुमति से मैं अभी धारा 8 को पढ़कर सुनाऊंगा जिसके अधीन किसी अन्य देश के किसी व्यक्ति पर कुछ उत्तरदायित्व होंगे और ऐसी कोई बात नहीं है कि जो लोग पाकिस्तान से आते हैं और यहां आकर एक या दो साल के लिये रहना चाहते हैं और फिर वापस जाते हैं तो उनके साथ भिन्न प्रकार का व्यवहार क्यों किया जाये। धारा 8 के सुसंगत भाग में यह कहा गया है:

> "जब केन्द्रीय सरकार का समाधान हो जाये कि इस अधिनियम के अधीन अथवा सन् 1952 के भारतीय देशीयकरण के अधीन दिया हुआ देशीयकरण का प्रमाणपत्र झूठे प्रतिनिधान अथवा धोखे से अथवा सच्ची परिस्थितियों को छिपाकर प्राप्त किया गया था अथवा जिस व्यक्ति को प्रमाणपत्र दिया गया था उसने अपने वचन या कर्म से अपने आपको बादशाह के प्रति अकृतज्ञ अथवा उदासीन सिद्ध कर दिया है तो केन्द्रीय सरकार लिखित आदेश द्वारा उस प्रमाणपत्र को प्रतिसंहत करेगी।"

उस व्यक्ति के विषय में जो अनुज्ञा-पत्र प्राप्त कर इस देश में आता है तो इस बात की प्रत्याभूति कहां होती है कि वह यहां ठहरेगा? यदि हम देशीयकरण विधि के अधीन यह भी देख लें कि उसका व्यवहार कुशल है तो भी यह प्रत्याभूति कहां है कि वह अपनी सम्पत्ति को बेचकर वापस नहीं जायेगा। मेरा निवेदन यह है कि हम क्योंकर अथवा भारतीय सरकार क्योंकर उन लोगों के लिये सहृदयता रखे जो अपने प्रति हमारी सहानुभूति अथवा दौर्बल्य से लाभ उठाना चाहते हैं। मैं यह नहीं कहता कि जब हम देशीयकरण अधिनियम अनुच्छेद 6 अथवा अन्य किसी अनुच्छेद के अधीन पारित कर देंगे तो विधि के अनुसार उनको यहां आने

का अधिकार न हो। मैं केवल यह चाहता हूं कि उनको उनके उचित अधिकार दिये जायें और इस उद्देश्य के लिये मैंने अनुच्छेद संख्या 164 प्रस्थापित किया है जिसमें यह कहा गया है कि इस व्यक्तियों को–

"संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन देशीयकरण अथवा नागरिकता अर्जन की अर्हता के लिये अपेक्षित कालावधि में जुलाई सन् 1948 के उन्नीसवें दिन के बाद के भारत राज्य क्षेत्र में अपने निवास करने के काल की गणना करने का हक होगा।"

मैं उसको हमेशा के लिये अनर्ह नहीं करता हूं। मैंने केवल उसको उसका ही भाग सौंपने का प्रयत्न किया है।

"यदि वह विधि द्वारा निर्धारित शर्त को पूरी करता है तो देशीयकरण द्वारा नागरिकता का पात्र होगा ओर देशीयकरण सम्बन्धी विधि के अधीन जिन आधारों पर देशीयकरण का प्रमाणपत्र रद्द किया जा सकता है उन आधारों पर उसका अनुज्ञा-पत्र रद्द भी किया जा सकेगा।"

श्रीमान्, एक शर्त यह है कि यदि प्रथम पांच वर्ष के काल में यदि कोई व्यक्ति किसी अपराध करने पर कारागार में जाता है तो उसका प्रमाणपत्र प्रतिसंहृत किया जायेगा। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि यह शर्त उन लोगों पर लागू क्यों नहीं होती है जो अनुज्ञापत्र प्राप्त कर यहां आते हैं। श्रीमान्, अब अनुच्छेद 5-कक के सम्बन्ध में मैं सभा का और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं।

अब मैं 5-ख को लूंगा। 5-ख के सम्बन्ध में मैं पहले ही कह चुका हूं कि किसी ऐसे व्यक्ति को नागरिकता के अधिकार देने से कोई लाभ नहीं जिनके जनक अथवा महाजनक सन् 1935 के अधिनियम में परिभाषित भारत में जन्मे थे और जो व्यक्ति अब भारत से बाहर रह रहा है। उसे किसी दूतावास में आवेदन पत्र देना होगा और यह संविधान के प्रारम्भ के पूर्व तथा उसके बाद भी हो सकता है। मेरा निवेदन यह है कि 5-क, 5-कक और 5-ग में "इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व" शब्दों का प्रयोग किया गया है। केवल अनुच्छेद 5-ख में यह विचार किया गया है कि संविधान के प्रारम्भ के बाद भी कोई व्यक्ति भारत का नागरिक हो सकता है। क्या किसी ऐसे व्यक्ति का भारत से किसी प्रकार का सम्बन्ध है? उसके महाजनक भारत के किसी कोने में पैदा हुये होंगे, पर मैं नहीं समझ सकता हूं कि उसमें और भारत में कोई सम्बन्ध हो भी सकता है। मेरा निवेदन यह है कि जब तक वह यह सिद्ध न करे कि उसके मन में कभी भारत में लौटकर आने का विचार है तब तक उस व्यक्ति को भारत का नागरिक होने का कोई अधिकार नहीं है। सानुरूपता लाने के लिए मैं प्रस्थापित करता हूं कि 'चाहे पहले या बाद' शब्दों के स्थान में 'पहले' शब्द रखा जाये, क्योंकि संविधान के प्रारम्भ के बाद हम एक विधि अधिनियमित करना चाहते हैं जिसमें इन आकस्मिकताओं की व्यवस्था की जायेगी। 5-ख और 7-ग 'संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन' शब्दों का प्रयोग किया गया है और मैं इन शब्दों का स्वागत करता हूं क्योंकि आज तो हम इन उपबन्धों को जल्दबाजी में पारित कर रहे हैं जो न्याययुक्त नहीं है, संविधान के प्रारम्भ के बाद संसद को इन्हें ठीक करने का अधिकार

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

होगा। अनुच्छेद 5-ख तथा अनुच्छेद 5-ग में भी मैं इन शब्दों का स्वागत करता हूं और मैं यह चाहता हूं कि ये शब्द रखे जायें। मैं उस संशोधन का विरोध करता हूं जिसमें यह कहा गया है कि ये शब्द वहां न हों। आखिर संसद को इस शक्ति से सुसज्जित करना चाहिये कि यदि वह इन्हें ठीक न समझे तो इन्हें ठीक कर ले। मेरा निवेदन यह है कि ये शब्द 'भारत सरकार के' वहां न होने चाहिये क्योंकि संविधान के प्रारम्भ से पहले हमारी सरकार अधिराज्य सरकार है। मेरा निवेदन यह है कि इन तीनों संशोधनों को स्वीकार किया जाये।

संशोधन संख्या 32 के सम्बन्ध में मैं पहले ही कह चुका हूं कि यदि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य देश की नागरिकता अर्जित कर ली है तो वह इस देश का नागरिक नहीं हो सकता है। ये शब्द 5-ख में नहीं है। यदि वे अनुच्छेद 5 के लिये ठीक हैं तो मैं निवेदन करता हूं कि ये 5-ख के लिये भी ठीक हैं। अत: इनको 5-ख में भी रखना चाहिये।

श्रीमान्, मैंने अपने सारे संशोधन समाप्त कर दिये। आपके विचार के लिये मुझे एक शब्द और कहना है। अनुज्ञा-पत्र सम्बन्धी अधिनियम जब सभा में रखा गया था उस समय हम यह नहीं जानते थे कि उनको यह बल प्राप्त हो जायेगा। अब चूंकि हम यह देखते हैं कि जिन लोगों के पास अनुज्ञापत्र है उनको नागरिक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है तो मैं विनम्रतापूर्वक यह निवेदन करूंगा कि सम्बद्ध मन्त्रालय और अधिक अनुज्ञा-पत्र न दे। पाकिस्तान से लोगों को लेने और हम पर लादने से क्या आशय है जबकि हमारे ही लोग दु:खी हैं? मेरा निवेदन यह है कि ये अनुज्ञा-पत्र उचित नहीं होंगे और इस देश की सुदृढ़ता के लिये कल्याणकारी नहीं होंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में से 'deemed to be' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

इसके कारण बताने के पूर्व कि मैं इस मुख्य अनुच्छेद पर कुछ बातें कहना चाहूंगा। श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने ठीक कहा था कि इस अनुच्छेद के बनाने में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। संविधान के मसौदे में मूलत: यह अनुच्छेद केवल एक मुख्य खण्ड और तीन उपखण्डों में था। नये अनुच्छेद में 6 मुख्य खण्ड और 6 उपखण्ड है। पुराने अनुच्छेद में खण्ड इतने अस्पष्ट तथा परस्पर विरोधी थे कि मसौदा समिति को पूरे के पूरे प्रश्न पर नये सिरे से विचार करना पड़ा और सभा के समक्ष एक बहुत ही व्यापक अनुच्छेद रखना पड़ा जिसमें मेरी राय से सारी बातें आ जाती हैं—इस बात की मुझे बड़ी खुशी हैं। मैंने बड़ी सावधानी से उसे देखा है और 18 महीने में उन्हें जो अनुभव हुआ उससे वे ठीक परिणाम पर पहुंच गये। यहां तक कि भविष्य में होने वाली घटनाओं तक का उन्होंने समावेश कर लिया। अत: मैं मसौदा समिति को बधाई देता हूं—मैं ही नहीं बल्कि पूरी की पूरी सभा मसौदा समिति ने इस अनुच्छेद के बनाने में जो कष्ट किया है

उसके लिये बधाई देगी। यह सच है कि संशोधन बहुत से हैं, पर मैं समझता हूं कि इन संशोधनों को रखकर सदस्य मसौदा समिति के कार्य अथवा कष्ट को जो इतने व्यापक अनुच्छेद के प्रस्तुत करने में उसे हुआ है नगण्य नहीं करना चाहते हैं। वरन इन संशोधनों का यह अभिप्राय है कि यदि कुछ कमियां या कठिनाइयां है तो इन संशोधनों द्वारा मसौदा समिति को संकेत किया जाये जिससे कि वह इन पर विचार करे और जहां तक हो सके उनको स्वीकार करे।

श्रीमान्, अनुच्छेद 5-क के सम्बन्ध में श्री कपूर ने एक संशोधन का सुझाव दिया है कि "इस संविधान के प्रारम्भ पर" शब्दों के पश्चात् "तथा उसके पश्चात्" शब्द प्रविष्ट किये जायें। जिस प्रकार की अंग्रेजी है उसे पढ़ने पर यह विदित होता है कि उसमें कुछ अस्पष्टता है कि प्रारम्भ की तारीख पर केवल वे ही लोग भारत के नागरिक कहे जायेंगे, पर मैं समझता हूं कि जन्मजात अधिकार के खण्ड के अधीन कोई व्यक्ति जहां वह पैदा हुआ है वह उस देश का नागरिक समझा जायेगा। इस बात को मैं स्पष्ट नहीं समझ सका हूं, पर यदि ऐसी बात नहीं है तो मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या इस पर "प्रारम्भ की तारीख को" का यह अर्थ होगा कि प्रारम्भ की तारीख के बाद भी अर्थात् यह कि 27 जनवरी सन् 1950 के बाद यदि कोई व्यक्ति जन्म लेता है और जब वह वयस्क हो जाता है तो वह इस देश के नागरिक होने का हक रखेगा? जैसी अंग्रेजी है उससे तो मैं यह मानता हूं कि प्रारम्भ की तिथि का अर्थ यह है कि केवल उसी समय "बाद में" नहीं। जहां तक मुझे याद आता है ऐसा एक अधिनियम है जिसमें कहा गया है कि कोई व्यक्ति जो किसी देश में जन्मा है तो जन्मजात अधिकार से वह इसी तथ्य के आधार पर उस देश का नागरिक हो जाता है। अत: इस विषय पर ध्यान देना अपेक्षित है।

मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने इसी अनुच्छेद पर एक संशोधन रखा है जिसके द्वारा वे यह चाहते हैं कि सिख और हिन्दू चाहे वे कहीं पैदा हुये हों जब भी चाहें उन्हें भारत का नागरिक होने का हक होगा। श्रीमान्, जब उन्होंने सम्प्रदायों के नाम का उल्लेख कर दिया है तो, श्रीमान्, मैं आपको तथा सभा में के सदस्यों को यह बताना चाहूंगा कि ऐसे लगभग 16,000 पारसी हैं जो भारत से बाहर जरतुश्त मत के मानने वाले हैं, लगभग 12,000 ईरान में है, और जो लोग ईरान में हैं वे उसी धर्म के मानने वाले हैं जिसे पारसी यहां भारत में मान रहे हैं और मैं जानता हूं कि जिस बात को मेरे माननीय मित्र देशमुख चाहते हैं वह बात अनुच्छेद 5-ख में आ जाती है जिसमें यह निर्धारित है कि यदि महाजनक तथा महाजनकों के भी महाजनक अन्य देशों में जन्मे हैं और यदि वे भारत का नागरिक होना चाहते है हैं तो हो सकते हैं। डॉ. देशमुख का संशोधन और भी अधिक विस्तृत विशेषाधिकार तथा अधिकार पैदा करता है। यद्यपि इस संशोधन के प्रति मैं इतना उत्सुक नहीं हूं, पर यदि मसौदा समिति इस पर विचार करने के लिए तैयार है तो मैं यह चाहूंगा कि वह इस बात का ध्यान रखे कि और भी सम्प्रदाय हैं और मेरे विचार से केवल हिन्दू और सिखों का उल्लेख करना ठीक नहीं होगा। मसौदा समिति की सूचना में मैं केवल यही बात लाना चाहता था। ऐसे 12,000 पारसी हैं जो उसी मत के मानने वाले हैं जिसके हम यहां है, पर उनके महाजनक ईरान में जन्मे थे और उनमें से बहुत से बम्बई तथा देश के अन्य भाग में आते हैं, वे कभी भारत को अपना घर बनाना चाहेंगे। यह एक बहुत दूर की बात है जिसे मैं रख रहा हूं, पर यदि इस संविधान पर विचार किया जाता है, तो मेरा प्रश्न यह है कि हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि

[श्री आर.के. सिधवा]

हम 'किसी सम्प्रदाय' का उल्लेख करें। यदि हम ऐसा करेंगे तो यह प्रकट होगा कि हम अन्य सम्प्रदायों की उपेक्षा कर रहे हैं जिन पर हमारा ध्यान देना आवश्यक है। अत: यदि वह इस संशोधन पर विचार करें तो सभा के समक्ष मैं यह दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हूं।

इसके बाद, श्रीमान्, मैं अपने संशोधन पर आता हूं, जिसका अनुच्छेद 5-क से सम्बन्ध है जिसमें यह कहा गया है "अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य क्षेत्र से भारत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा"। मैं यह चाहता हूं कि 'समझा जायेगा' शब्दों को निकाल दिया जाये। श्रीमान्, हम सब बहुत प्रसन्न हैं कि मसौदा समिति ने भारत के (मूल) नागरिकों और उन नागरिकों में परस्पर कोई भेदभाव नहीं किया है जो दुर्भाग्यवश विभाजन के कारण पाकिस्तान से भारत आये हैं। यहां तक तो ठीक है, आप उन्हें अधिकार समता प्रदान कर रहे हैं। पर आप उन्हें "समझे जायेंगे" क्यों कहते हैं और उन्हें निम्नतर स्थिति क्यों प्रदान करते हैं? पहली कण्डिका में यह कहा गया है कि "वह भारत का नागरिक होगा"। मैं यह नहीं समझ सका कि शरणार्थी भारत के नागरिक क्यों "समझे जायेंगे" और उनके लिये यह निम्नतर स्थिति क्यों? शायद यह बात मसौदा समिति के ध्यान में नहीं आई और मैं इस बात को ध्यान में रखने के लिए उसके सदस्यों से निवेदन करूंगा। हम जानते हैं कि इस देश में आये हुये शरणार्थियों को जहां कहीं भी रखा जाता है वे यह कहते हैं कि वह प्रान्त, सरकार अथवा वहां के लोग उनको नहीं चाहते हैं, और वे सदैव यही शिकायत करते हैं कि कभी-कभी उनको नहीं चाहा जाता है और जहां उनको चाहा जाता है वहां उनका पुनर्निवास नहीं किया जाता है और कुछ के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है। मैं इस विचार का नहीं हूं। मैं इस विचार से असहमत हूं; मैं जानता हूं कि भुजायें पसार कर जहां कहीं भी वे गये हैं वहां उस प्रान्त के लोगों ने उनका स्वागत किया है, अपनी भरसक सामर्थ्य के अनुसार वे उनका पुनर्वास कराने का प्रयत्न करते हैं और उनको सब तरह की सुविधायें देते हैं ओर जहां हो सकता है वहां घर देते हैं। पर ऐसे भी बहुत से शरणार्थी हैं जो वैसा विचार भी रखते है जिसका मैंने उल्लेख किया था। आप संविधान में यह क्यों कहते हैं कि "आपका दर्जा दूसरा है पहला नहीं"? यह बड़ी तुच्छ बात है और संविधान में से ऐसी किसी भावना को हमें हटा देना चाहिये। आपने उन्हें अधिकार समता प्रदान कर दी है तो फिर आप यह क्यों कहते हैं कि "समझे जायेंगे"? अत: मैं मसौदा समिति से निवेदन करता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखेंगे कि "समझे जायेंगे" शब्द निकाल दिये जायें। श्री कपूर ने भी इस बात की विशद व्याख्या की थी पर भाषण के अन्त में उन्होंने कहा था "मसौदा समिति शायद इस पर विचार करे"। मैं यह कहता हूं कि "मसौदा समिति को इस बात पर विचार करना चाहिये"। श्रीमान्, वे इस बात पर "शायद विचार" क्यों करें जिसको आप स्वीकार कर चुके हैं और आप समान अधिकार देना चाहते हैं? फिर आप यह क्यों कहते हैं कि "आप शायद विचार करेंगे"? मैं उनसे निवेदन करूंगा कि "कृपया अवश्य विचार करें" और इन शब्दों को निकाल दें। मेरी इच्छा है कि वे इन शब्दों को अवश्य निकाल देंगे, और यदि वे नहीं निकालना चाहते हैं तो हम उनसे जबरदस्ती तो कर नहीं सकते। जब वे इस खण्ड से उनके साथ बराबर

का सा बर्ताव करते हैं तो मैं निवेदन करता हूं कि हमें उनको यह समझने का लेशमात्र अवसर नहीं देना चाहिये कि हम उन्हें निम्नतर स्थिति का समझते हैं। शरणार्थियों के मन में मिथ्या धारणायें उत्पन्न हो रही हैं; आप इन शब्दों को संविधान में रखकर उनको ऐसी शिकायत करने का मौका न दीजिये और यह न कहिये कि "नागरिकता के विषय में आपका दर्जा दूसरा होगा"।

इसके बाद, श्रीमान्, तत्कथित भद्दे तथा बुरे खण्ड पर आइये, मैं इस खण्ड का–दोनों मुख्य खण्ड–और परन्तुक का स्वागत करता हूं। जिन माननीय सदस्यों ने इस परन्तुक की ओर निर्देश किया है वे भी अपनी शिकायत ठीक ही करते हैं। उनके तर्कों का अपमान नहीं करना चाहता हूं। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह परन्तुक आवश्यक है। यह मुसलमानों का प्रश्न नहीं है, लाखों पारसी हैं, ईसाई हैं, जो आज पाकिस्तान में से यहां आना चाहते हैं—उनके लिये आप क्यों द्वार बन्द करें? उनका भारत में जन्म हुआ था—उनका भारत से हर प्रकार का सम्बन्ध है—किसी कारणवश वे वहां हैं। यदि किसी समय वे यहां आना चाहते हैं तो यह परन्तुक उनको अधिकार देता है। मैं नहीं चाहता हूं कि यह अधिकार छीना जाये।

पर निष्क्रान्त सम्पत्ति के बारे में एक संकट है जिसका मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर और श्री ठाकुरदास भार्गव ने ठीक उल्लेख किया है। उनकी शिकायत उचित है। उन्होंने यह कहा था। भारत सरकार ने निष्क्रान्त सम्मत्ति के प्रश्न पर अभी एक अध्यादेश प्रख्यापित किया है। यह प्रश्न अनेक वर्षों से दोनों अधिराज्यों के परस्पर सम्मेलनों का प्रश्न रहा था और इस वर्ष जनवरी में वे एक निश्चय पर पहुंचे। केवल दो वर्ष पूर्व ये सारी बातें गड़बड़ी में पड़ गईं। पाकिस्तान ने करार तोड़ दिया। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति अनिश्चित दशा में छोड़ दी गई। हमारी सरकार ने सदैव आग्रहपूर्ण प्रवृत्ति को अपनाना चाहा और उनको ठीक मार्ग पर लाने की आशा करती रही। उन्होंने सारे प्रयत्न किये पर असफल हुये। प्रश्न यह है कि इस खण्ड में बहुत सी शंकाओं के लिये स्थान है। संसद यह विधि बना सकती है कि किसी व्यक्ति के यहां आने के पूर्व अनुज्ञा-पत्र आवश्यक होगा। इस अध्यादेश के प्रख्यापन के बाद उस सम्प्रदाय में बड़ी खलबली हुई और बम्बई सरकार के सचिवालय में इस वर्ग के लोगों की भरमार हो रही है इस आधार पर कि ये सम्पत्तियां केवल अस्थायी रूप में छोड़ी गई थीं। और यह कि वे वापस आना चाहते हैं। मुझे भी ऐसे मामलों का ज्ञान है जिनमें सम्पत्ति को संरक्षक द्वारा निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित कर दिया था और कुछ प्रभाव पड़ने के बाद यहां तक कि सम्पत्ति हस्तान्तरण के अधिनियम के उपबन्धों को बिना माने जिसको संविधान सभा (विधायिनी) ने गत अप्रैल में पारित किया था उस उद्घोषणा को निष्क्रान्त सम्पत्ति के बारे में रद्द कर दिया। इसके कारण शंका तथा उत्तेजना पैदा हो गई है। मैं यह नहीं कहता हूं कि विधि में इसके लिये कोई स्थान है। विधि बिल्कुल स्पष्ट है। एक पदाधिकारी के कार्य ने लोगों के मन में शंका उत्पन्न कर दी है। इसी कारण मेरे मित्र कहते हैं कि ये लोग यदि आ जायेंगे तो तीन वर्ष तक ठहरेंगे और अपनी सम्पत्ति बेचने के बाद वे पाकिस्तान वापस चले जायेंगे। इससे सावधान रहना चाहिये। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि परन्तुक में सावधानी की गई है, अनुज्ञा-पत्रों की व्यवस्था की गई है। संसद इस बात पर ध्यान रखेगी कि इस उद्देश्य को रद्द न किया जाये।

[श्री आर.के. सिधवा]

मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव और श्री जसपतराय कपूर के मन में जो शंकायें हैं मैं उनको तुच्छ नहीं समझता हूं—उन शंकाओं में सच्चा संकट है। पर मैं इस दृष्टिकोण से इस परन्तुक को निकालना नहीं चाहता हूं। श्रीमान्, कारण मैं बता चुका हूं। भविष्य की आकस्मिकताओं के लिये इस परन्तुक को रहने देना चाहिये। यह हमारे हित के लिये होगा, यह उन लोगों के लिये होगा जो ईमानदारी के साथ भारत वापस आना चाहते हैं।

परन्तुक यह भी प्रकट करता है कि मसौदा समिति जागरूक है। अनुच्छेद 5-ख में उन लोगों के लिये उपबन्ध किये गये हैं जो अब विदेशों में हैं और जो किसी समय वापस आने का विचार कर सकते हैं। आप जानते हैं कि अभी अभी मलाया में आन्दोलन हुआ था। अतीतकाल में बहुत से भारतवासी मजदूर के रूप में अथवा अपना भविष्य उज्जवल बनाने के लिए अथवा व्यापारिक दृष्टिकोण से इन उपनिवेशों में गये थे। वहां हमारे लाखों भाई हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात्, इन देशों के कुछ आदमी यह सोचकर कि भारत स्वतन्त्र है और वहां उनकी दशा तथा स्थिति अब अच्छी हो जायेगी यदि वापस आना चाहते हैं तो हमें उनका स्वागत करना चाहिये। और मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव के इस तर्क में मैं उनका साथ नहीं दे सकता हूं कि यदि किसी का महाजनक वहां पैदा हुआ था तो उसे वहां क्यों आने दिया जाये और भारतीय नागरिकता क्यों प्राप्त करने दी जाये। आपको उन परिस्थितियों पर ध्यान देना होगा जिनके अन्तर्गत वे यहां से गये थे। वे हमारे देशवासी हैं। वे हमारे भाई हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से वे विदेश गये थे। जब भारत स्वतन्त्र है तो वह यहां आना चाहेंगे। आप उनको इस अधिकार से वंचित क्यों करना चाहते हैं? अत: मैं कहता हूं कि उनके महाजनक ही नहीं वरन महाजनक के महाजनक भी यदि भारत में जन्मे थे और यदि वे वापस आना चाहते हैं तो उनको यहां आने दीजिये। उनका स्वागत होना चाहिये। वे हमारे लिये बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे। उन देशों में अनुभव कर वे हमारे लिये बड़े लाभदायक सिद्ध होंगे, उनमें उद्योगपति होंगे, व्यापारी होंगे और अच्छे मजदूर होंगे जो हमारे देश के लिये अवश्य ही उपयोगी होंगे। मैं इस अनुच्छेद का भी स्वागत करता हूं। दक्षिणी अफ्रीका और लंका में भी भारतवासी हैं जहां की नागरिकता की नई विधियों के कारण वे यह सोचने लगे हैं कि उनके साथ भेदभाव की नीति बरती जा रही है। वे भी यदि भारत में बसना चाहते हैं तो उनको आने देना चाहिये।

श्रीमान्, जैसा कि मैंने आप से कहा था ऐसा संयोग न हो। पर यदि होता है तो हमें उपबन्ध करना चाहिये। ईरान में 10,000 पारसी हैं। मेदेजन्द शैरियर के राज्य तक वे राज्य करते रहे और तब तक वे खुश थे। बाद में मुस्लिम राज्य में उनको खदेड़ दिया गया। वे भारत आ गये। यद्यपि ऐसी स्थिति की सम्भावना नहीं है पर भविष्य में यदि ऐसा संयोग हो जाये, यदि इन लोगों को निकाला जाये तो आप उनके लिये द्वार बन्द क्यों करें? उनके महाजनक भारत में जन्में थे; पर उनके बाहर निकाले जाने के कारण शायद वे भारत आना चाहें। हम उनके लिये दरवाजा क्यों बन्द करें? इस कारण मैं सोचता हूं कि अनुच्छेद 5-ख बहुत लाभदायक है। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद का मसौदा बनाने में मसौदा समिति ने मलाया और दक्षिणी अफ्रीका के अभी हाल के आन्दोलनों पर विचार किया

है, ईरान में भारतीयों की दशा पर शायद उनका ध्यान नहीं गया है। हमारे राष्ट्रजन समस्त संसार में फैले हुये हैं। असाधारण परिस्थितियों में यदि उनके जनक तथा महाजनक विदेश चले गये और वहां नागरिक बन गये और बाद में विशेषकर जब कि भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है यदि वे इस देश में बसना चाहते हैं तो उनको यहां प्रवेश करने से वंचित नहीं करना चाहिये। मैं समझता हूं कि ऐसे सच्चे नागरिकों को आने और अपनी बेहतरी तथा देश की बेहतरी के लिए यहां बसने के अधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये।

इन शब्दों के साथ जो संशोधन मैंने पेश किया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार: जनरल): श्रीमान्, मेरे नाम से दो संशोधन हैं, संख्या 123 और 140। संशोधन संख्या 123 के सम्बन्ध में यह बात है कि एक ऐसा ही संशोधन यहां पेश हो चुका है और उस पर काफी कहा जा चुका है और उस पर मैं सभा का अधिक समय नहीं लूंगा पर उसे पढ़ने के बाद मैं केवल कुछ शब्द कहूंगा:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'notwithstanding anything' शब्दों से लेकर 'at the date of commencement of this Constitution if' शब्दों तक के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'Notwithstanding anything contained in article 5 of this Constitution, a person who on account of civil disturbances or the fear of such disturbances–

(a) having the domicile of India, as defined in the Government of India Act, 1935, and being resident in India before the partition, has decided to reside permanently in India, or

(b) has migrated to the territory of India from the territory now included in Pakistan,

shall be deemed to be a citizen of India at the date of the commencement of this Constitution if.' "

[इस संविधान के अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति असैनिक विद्रोहों के कारण अथवा ऐसे विद्रोहों से भयभीत होकर–

(क) सन् 1935 के भारतीय अधिनियम में परिभाषित भारत में अधिवास करता हुआ तथा विभाजन के पूर्व भारत में निवास करता हुआ भारत में स्थायी रूप से निवास करने का विनिश्चय करता है, अथवा

(ख) पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्यक्षेत्र से भारत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है,

तो इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा।]

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

मेरे इस संशोधन के पेश करने का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 5 नागरिकता के साधारण सिद्धान्तों का विचार प्रस्तुत करता है और पाकिस्तान से आने वाले लोगों के लिए अनुच्छेद 5-क में हमने कुछ सुविधायें दी हैं। अनुच्छेद 5 में कहा गया है:

(क) कोई व्यक्ति जो भारत राज्यक्षेत्र में जन्मा था, अथवा

(ख) जिसके जनकों में से कोई भारत राज्यक्षेत्र में जन्मा था, अथवा

(ग) जो ऐसे प्रारम्भ की तिथि से ठीक पहले कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है;

भारत का नागरिक होगा, यदि उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वयं अवाप्त न की हो।

मैं अपने संशोधन द्वारा नागरिकता अवाप्त करने के अधिकार को इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि पर केवल विस्थापित व्यक्तियों के लिये 6 महीने के निवास तक ही सीमित करना चाहता हूं और अन्य व्यक्ति जो अनुच्छेद 5-क के अंतर्गत आते हैं वे पांच वर्ष तक भारत में निवास करने के पश्चात् नागरिकता का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। मैं अनुच्छेद 5-क के उद्देश्य को वास्तव में नहीं समझ पाता हूं जबकि उसका विस्तार उन लोगों के अलावा जो शरणार्थी हैं अथवा जो विस्थापित हैं अथवा असैनिक विद्रोहों अथवा इन विद्रोहों से भयभीत होकर पाकिस्तान से आये हैं, अन्य लोगों के लिये भी किया जाता है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि इसके लिये ऐसी क्या जल्दी है। यदि केवल इन व्यक्तियों के लिये ही 6 महीने का अधिकार सीमित रखा जाता है तो कोई भी कठिनाई नहीं है क्योंकि जो लोग पाकिस्तान से आते हैं उनसे हम नागरिकता अवाप्त करने के अधिकार को छीन नहीं रहे हैं। जो लोग भारत में आ गये हैं और निवास कर रहे हैं उनका हम केवल वास्तविक उद्देश्य जानना चाहते हैं और पांच वर्ष की अवधि में हम यह भली प्रकार जान जायेंगे, मुझसे यह कहा गया है कि किसी दुर्भावना को लेकर पूर्वी पाकिस्तान से आसाम लोग धड़ाधड़ चले आ रहे हैं—अपनी जनसंख्या में वृद्धि करने के हेतु इस बात का मुझे व्यक्तिगत ज्ञान नहीं है पर जिम्मेवार विश्वसनीय व्यक्तियों ने मुझे बताया है। इसके कारण मैंने यह संशोधन पेश किया है वे आसाम इस कारण नहीं जा रहे हैं कि पाकिस्तान में उन्हें कुछ असुविधायें हैं, वरन् केवल इस कारण आसाम में रहने वे जा रहे हैं कि वहां अपनी जनसंख्या बढ़ायें। ऐसे आदमियों को अधिकार न देने के लिये मैं यह संशोधन पेश कर रहा हूं।

दूसरा संशोधन जो मैंने रखा है वह संख्या 150 है और एक ऐसा ही संशोधन मेरे मित्र प्रो. शाह ने पेश किया है और उन्होंने उस विषय पर बहुत कुछ कहा है और मैं उनके विचारों से सहमत हूं। संशोधन इस प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 6 में अनुच्छेद 5 के प्रस्थापित नये खण्ड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक प्रविष्ट किया जाये:

'Provided that Parliament shall not accord equal rights of citizenship to the nationals of any country which denies e　qual right of citizenship

to the nationals of India settled there and desirous of acquiring the local citizenship.' "

[पर संसद किसी भी उस देश के नागरिक को नागरिकता के समान अधिकार नहीं देगी जो देश अपने यहां बसे हुये भारत के नागरिकों को जो वहां की स्थानीय नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक हैं नागरिकता के समान अधिकार से वंचित करता है।]

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के खण्ड (ख) के उपखण्ड (2) में 'on an application made' शब्दों के स्थान में 'on a statement or an application made' शब्द रखे जायें।"

में यह भी पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 7-क के परन्तुक में 'the application' शब्दों के स्थान में 'the statement or application' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि आवेदनपत्र का अर्थ है कि वह लिखित होना चाहिये। हमारे देश में साक्षरता बहुत कम है अत: नागरिकता अवाप्त करने वाले लोगों में से अधिकांश पढ़े लिखे नहीं होंगे और लिखित आवेदन पत्र न दे सकेंगे। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि जो व्यक्ति आवेदनपत्र लिखकर न दे सके वह केवल कथन कर सकता है। कथन को उतना ही महत्व देना चाहिये जितना आवेदन पत्र को। मैं आशा करता हूं कि माननीय डॉ. अम्बेडकर तथा यह सभा इस प्रार्थना को स्वीकार करेगी।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान**: (पूर्वी-पंजाब : जनरल): चूंकि समय कम है मैं निवेदन करता हूं कि औपचारिक रूप में मुझे अपने संशोधन पेश करने दिये जायें और कल भाषण देने दिया जाये अथवा कल मुझे संशोधन पेश करने दिया जाये।

***अध्यक्ष**: आप संशोधन अभी पेश कर सकते हैं और भाषण कल दे सकते हैं।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-कक के प्रस्थापित परन्तुक को अपमार्जित किया जाये।"

यह परन्तुक जिसे अब डॉ. अम्बेडकर ने प्रविष्ट किया है इस प्रकार है:

"परन्तु इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन के पश्चात् भारत राज्यक्षेत्र को ऐसी

[श्री सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

अनुज्ञा के अधीन लौट आया है जो पुनर्वास के लिये या स्थायी रूप से लौटने के लिये किसी विधि के द्वारा या अधीन दी गई है, तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति इस संविधान के अनुच्छेद 5 (क) के खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिये भारत राज्यक्षेत्र को 1948 की जुलाई के 19वें दिन के पश्चात् प्रव्रजन करने वाला समझा जायेगा।"

श्रीमान, मैं समझता हूं कि यह परन्तुक (और हम सब इससे सहमत हैं) बहुत ही भद्दा और जो हिन्दू और सिख यहां आ गये हैं और पुनर्वास की प्रतीक्षा में हैं उनके प्रति यह अन्यायपूर्ण है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य अपना भाषण कल जारी रख सकते हैं।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार, 12 अगस्त सन्, 1949 ई.
के प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. IX-11.49
320

अंक 9
संख्या 11

शुक्रवार
12 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[अनुच्छेद 5 और 6 पर विचार] 593–648

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 12 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय, (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 5 से 6—*(जारी)*

*__सरदार भूपेन्द्रसिंह मान__ (पूर्वी पंजाब: सिख): श्रीमान, नागरिकता की परिभाषा में, जो कि काफी विस्तृत है, मस्विदा-समिति ने किसी हद तक हिन्दू तथा सिख शरणार्थियों के दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया है जिसके लिये मैं उसे बधाई देता हूं। किन्तु, सदा के समान, एक निर्बल प्रकार की धर्म निरपेक्षता इसमें घुस आई है और उन लोगों के प्रति अनुचित पक्षपात दिखाया गया है जो इसके योग्य नहीं हैं। मैं कह रहा था कि हिन्दू और सिख शरणार्थियों का दृष्टिकोण किसी हद तक स्वीकार कर लिया गया है पर पूरी तरह नहीं। मैं नहीं समझ पाता कि 19 जुलाई 1948 की तारीख नागरिकता के प्रयोजनार्थ क्यों विहित की गई है। ये अभागे शरणार्थी इस तिथि को कैसे जान सकते थे; अन्यथा वे पाकिस्तान के छुरे को पहले आमंत्रित कर लेने जिससे कि वे यहां जल्दी आकर नागरिकता के अधिकारों को प्राप्त कर सकते। यह बहुत अत्याचार होगा कि हम उन लोगों के लिये अपने द्वार बन्द कर दें जो कि 19 जुलाई 1948 के पश्चात् सताये गये थे। वे भी दूसरों के समान ही इस भूमि के पुत्र हैं। यह राजनैतिक दुर्घटना उनकी अपनी बनाई हुई नहीं है और अब यह अत्यन्त अत्याचार होगा कि उनके मार्ग में राजनैतिक बाधायें डाली जायें तथा उन्हें भारत माता की शरण में आने से रोका जाये। हमारी मांग यह है कि कोई व्यक्ति, जो पाकिस्तान में साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण, भारत आ गया हो और इस संविधान के आरम्भ पर यहां रहता हो वह स्वत: ही भारत का नागरिक समझा जाना चाहिये और उसे किसी पंजीकरण प्राधिकारी के पास जाकर कहना नहीं पड़ना चाहिये और नागरिकता के अधिकारों का दावा करने के लिये 6 मास के अधिवास की अर्हता सिद्ध करना आवश्यक नहीं होना चाहिये। हो सकता है कि वे अब के पश्चात् हमारे पड़ौसी राज्य में साम्प्रदायिक पागलपन के शिकार बन जायें; यह केवल संभव ही नहीं है वरन विद्यमान परिस्थितियों में यह अत्यन्त सम्भावित हैं। निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति वार्ता की असफलता से पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिखों के विरुद्ध आक्रमण हो सकता है, और हमें ऐसा खंड रखना चाहिये कि किसी हालत में इन लोगों को यहां आकर इस संघ के नागरिक बनने से नहीं रोका जायेगा।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

अनुच्छेद 5-कक के आरम्भ में लिखा है:

"अनुच्छेद 5 तथा 5-क में किसी बात के होते हुए भी जो व्यक्ति 1947 के मार्च के पहले दिन के पश्चात् भारत राज्यक्षेत्र से पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा।"

इस खंड का प्रयोजन सर्वथा अपूर्ण रह जायेगा, क्योंकि हम शरणार्थी लोगों को, इस जनसंख्या विनिमय के कारण जिसमें सम्पत्ति का विनिमय अवश्यमेव अन्तर्ग्रस्त होगा, बहुत कष्ट हो जायेगा। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि उप-उच्चायुक्त के कार्यालय से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करना वास्तव में बहुत सरल कार्य है। इसके अतिरिक्त वे अनुज्ञा-पत्र, जब वे दिये गये थे तब वे विविध अन्य प्रयोजनों के लिये दिये गये थे—वाणिज्यिक व्यापार, सैर के प्रयोजनों आदि के लिये—और कम से कम नागरिकता के लिये कभी नहीं दिये गये थे। हमें केवल इसी आधार पर किसी को नागरिकता प्रदान नहीं कर देनी चाहिये कि वह इस अनुज्ञा-पत्र को पेश कर सकता है, जो वह किसी न किसी प्रकार उप-उच्चायुक्त के कार्यालय से प्राप्त कर सकता है। मैं अनुभव करता हूं कि यदि अनुज्ञा-पत्र पद्धति का उद्देश्य नागरिकता के अधिकार प्रदान करना था, तो इस प्रयोजन के लिये एक विशेष प्राधिकारी होना चाहिये था जिसे अनुज्ञा-पत्र देते समय यह समझ लेना चाहिये था कि वह पत्र किसी व्यक्ति को व्यापार अथवा वाणिज्य के लिये भारत आने का अनुज्ञा-पत्र नहीं है वरन इससे नागरिकता के अधिकार भी उसे मिल जायेंगे। इसके अतिरिक्त, हमें यह देखना है कि इससे निष्क्रमणार्थी सम्पति पर क्या बुरा प्रभाव पड़ेगा। अभी हाल ही में भारत भर के लिये एक अध्यादेश प्रख्यापित किया गया है कि जो व्यक्ति मार्च 1947 के पश्चात् पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गया है, उसकी सम्पत्ति भारत के महा-संरक्षक को मिल जायेगी और उस हद तक वह सम्पत्ति शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये काम आयेगी। इस समय स्थिति यह है कि भारतीय सरकार के पास पहले ही सम्पत्ति कम है और वह पुनर्वास समस्या का समाधान करने में असमर्थ है। भारतीय राष्ट्रीयों ने पाकिस्तान में और मुस्लिमों ने भारत में जो सम्पत्तियां छोड़ी हैं उनका अन्तर पूरा नहीं किया जा सकता है। पाकिस्तान ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया है कि वह उस अन्तर को कैसे भुगतायेगा। स्वभावत: हमारी नीति सम्पत्ति के उस अन्तर को कम करने की होनी चाहिये। इस खंड से तो वह अन्तर, कम होने के स्थान पर, बढ़ जायेगा। अत: एक ओर तो हम शरणार्थियों की सहायता करने में असमर्थ हैं, और दूसरी ओर हम उन्हें रियायतों पर रियायतें दिये जा रहे हैं जो इसके योग्य नहीं है। मुझे बताया गया है कि ये अनुज्ञा-पत्र बहुत कम ही दिये जायेंगे। मुझे बताया गया है कि केवल 3,000 ही दिये गये हैं। अब पता नहीं है कि उन लोगों को कितनी सम्पत्ति लौटाई जायेगी जो कि इस अनुज्ञा-पत्र पद्धति के अन्तर्गत वापस आयेंगे—शायद एक करोड़ हो यह बहुत कम हो—कुछ लाख ही हो। मेरा मतलब यह है कि यह सम्पत्ति जो कि अनुज्ञा-पत्र वालों को दी जायेगी वह निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति में से निकल जायेगी और महा-संरक्षक के हाथ में नहीं रहेगी और आपने हाल ही में जो अध्यादेश प्रख्यापित किया है, उसका उद्देश्य ही पूरा नहीं हो सकेगा।

उप-उच्चायुक्त से अथवा किसी प्राधिकारी से किसी कारण अनुज्ञा-पत्र प्राप्त कर लेने से ऐसी मूल्यवान वस्तु भारत की नागरिकता—नहीं मिल जानी चाहिये और

अनुज्ञा-पत्र वालों को भारत माता के पुत्र नहीं मान लेना चाहिये। मैं एक उदाहरण देता हूं। गुड़गांव, भरतपुर और अलवर के मेवातियों ने कुछ ही समय पहले मुस्लिम लीग के बहकाने पर, मेवातिस्तान मांगा था और आजादी मिलने के समय वे हिन्दुओं के विरुद्ध-अपने पड़ौसियों के विरुद्ध बहुत महान दंगों में व्यस्त थे। 1947 में ये मेवाती लोग अपने हिन्दू पड़ौसियों के विरुद्ध महान दंगे कर रहे थे। यही मेवाती, इसी नरम अनुज्ञा-पत्र प्रणाली के अंतर्गत लौट रहे हैं और अपनी सम्पत्ति मांग रहे हैं। एक ओर तो हमारे पास सम्पत्ति की कमी है और दूसरी ओर उन्हें रियायतें दी जा रही हैं। निस्संदेह यह धर्म निरपेक्षता है, पर अत्यन्त एक-पक्षीय तथा अवांछित धर्म निरपेक्षता है जो अवश्यमेव हिन्दू और सिख शरणार्थियों के विरुद्ध है और उनके लिये हानिकारक है। मैं उन लोगों को नागरिकता के अधिकार नहीं देना चाहता जिन्होंने इतने स्पष्ट रूप में भारत की अखंडता को भग्न किया है और यह पुरानी बात भी नहीं हुई है। कल श्री सिधवा ने यह तर्क दिया था कि यह उपबन्ध केवल उन मुस्लिमों पर ही लागू नहीं होगा जो पाकिस्तान चले गये थे और बाद में लौटेंगे, वरन अन्य राष्ट्रीयों पर भी लागू होगा, जैसे कि ईसाई हैं। पर क्या मैं उन्हें बता सकता हूं कि भारत में रहने वाला ऐसा एक भी ईसाई नहीं है जो पाकिस्तान चला गया हो और बाद में लौटेगा?

केवल ऐसे ही ईसाई लौटेंगे जो धर्माश्रित राज्य में असुविधायें होने के कारण आ जायेंगे। ऐसे ईसाइयों का सवाल नहीं है जो गये हों और वापस आयेंगे, पर यह उपबन्ध उन लोगों के संबंध में है जो पहले भारत के राष्ट्रीय थे पर जो पाकिस्तान के उद्‌घाटन पर उससे प्रेम के कारण पाकिस्तान चले गये थे।

मैं निस्संदेह उन लोगों को रियायतें देने के विरुद्ध हूं जिन्होंने खुलकर भारत की अखंडता का खंडन किया तथा अपमान किया, किन्तु यदि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी, अथवा मस्विदा-समिति के सभापति, अथवा और भी अच्छा हो यदि श्री आयंगर जो पाकिस्तान के साथ प्रतिदिन लम्बी, धैर्यशील और विफल वार्ता चलाते हैं, हमसे यह वायदा करें कि वे इस जनसंख्या की वृद्धि और सम्पत्ति के बदले में हमें पाकिस्तान के राज्य-क्षेत्र का कुछ भाग दिला देंगे, तो मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं दूगा।

*__श्री महबूब अली बेग साहिब__ (मद्रासः मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम से तीन संशोधन हैं, संशोधन संख्या 120, 125 तथा 126। मेरे संशोधन संख्या 125 का उद्देश्य उन स्थानच्युत लोगों के विषय में व्यवस्था करना है जो पाकिस्तान से भारत आ गये हैं और जो अपने आवेदन-पत्र इस संविधान के आरम्भ के पश्चात् दें। हमारे समक्ष जो परिभाषा रखी गई है वह संविधान के आरम्भ के पश्चात् लोगों को नागरिकता प्रदान करने के प्रश्न के विषय में नहीं है सिवाय उन लोगों के मामले के जो कि समुद्र पार रह रहे हैं। पर डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा है कि यह बात संसद पर छोड़ दी जायेगी। जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री कपूर ने कहा है, संविधान के पारित होने और संसद द्वारा अधिनियम बनाने के बीच जो पांच दस वर्ष का समय गुजरेगा, उसमें ऐसे मामले विनिश्चय के

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

लिये उठ सकते हैं कि अमुक व्यक्ति भारत का नागरिक है या नहीं। मेरे संशोधन संख्या 125 का प्रयोजन भी ऐसा ही है। वह यह है कि लोगों को संविधान के पारित हाने के पश्चात् भी नागरिक पंजीबद्ध होने के लिये याचिका पेश करने का अवसर मिले।

संशोधन संख्या 126 निम्न प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की प्रथम सूची (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 5-ग के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'Subject to the Provisions of any law that may be passed by the Parliament in this behalf, the qualifications for citizenship mentioned in the foregoing provisions, shall apply *mutatis mutandis* to persons entitled to citizenship after the commencement of this Constitution.' "

[इस विषय में संसद जो विधि पारित करे उसके उपबन्धों के अधीन रहते हुए, पूर्ववर्ती उपबन्धों में उल्लिखित नागरिकता की अर्हतायें यथास्थिति उन लोगों पर भी लागू होंगी जो कि इस संविधान के आरम्भ के पश्चात नागरिकता के हकदार हों।]

अनुच्छेद 5-क में उस नागरिकता को जारी रखने का प्रश्न है जो इस संविधान के पारित होने की तारीख को अर्जित की जाये। मेरा निवेदन है कि 5-ग अनावश्यक है। कोई व्यक्ति जो संविधान के पारित होने की तिथि पर नागरिक घोषित हो जायेगा, वह नागरिक रहेगा, जब तक कि संसद उसे अनर्ह न बना दे। अत: मेरे ख्याल में 5-ग अनावश्यक है। दूसरी ओर, आवश्यक यह कहने की है कि इस संविधान के पारित होने के पश्चात् कौन नागरिकता के हकदार होंगे। यह अधिक महत्वपूर्ण है, यह आवश्यक है। इसी उद्देश्य से मैंने संशोधन संख्या 126 का सुझाव दिया है जिससे कि नागरिकता का पूरा चित्र सामने आ जाये, केवल इस संविधान के पारित होने के समय का ही नहीं, वरन बाद का भी, उस समय तक का जब तक कि संसद कोई विधान पारित करके उसका निराकरण न कर दे, या उसे बदल न दे या जो भी चाहे वह न करे। मेरा निवेदन है कि यह संशोधन आवश्यक है जिससे कि आप निश्चय कर सकें कि इस संविधान के पारित होने के पश्चात् कौन नागरिक होंगे।

श्रीमान, संशोधन संख्या 125 और 126 उस कमी को पूरा करने के लिये हैं जो मैं इस अनुच्छेद में देखता हूं। डॉ. अम्बेडकर ने कहा है कि हम भविष्य के लिये विधान नहीं बना रहे हैं, इसी कारण हम उन लोगों के विषय में अर्हताएं नहीं रख रहे हैं जो इस संविधान के पारित होने के पश्चात् नागरिक बनेंगे। मेरा निवेदन है कि बहुत से लोग, जो, इस परिभाषा में रखी गई अर्हताओं के अनुसार, नागरिक बन सकते हैं या नागरिकता के हकदार हो सकते हैं, वे नागरिक बनने से रह जायेंगे और शायद हम उनकी सहायता नहीं कर सकेंगे जब तक कि संसद कोई अधिनियम पारित न करे।

श्रीमान, संशोधन संख्या 120 के विषय में मैंने सुझाव दिया है कि प्रस्तावित अनुच्छेद 5 की व्याख्या को हटा दिया जाये। व्याख्या इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिये जो व्यक्ति 1947 के अप्रैल के पहले दिन के पश्चात् पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा।"

यह व्याख्या उस संशोधन में थी जिसकी सूचना 6.7.1949 को आई थी। जब बाद में डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 5 और 6 पर नया संशोधन पेश किया तब यह व्याख्या हटा दी गई, पर उसके स्थान पर अनुच्छेद 5-कक रख दिया गया, जिसमें वास्तव में वही चीज है जो कि व्याख्या में थी। अब, श्रीमान, मैं चाहता हूं कि यह व्याख्या अथवा यह 5-कक बिल्कुल हटा दिया जाये। मैं नहीं चाहता कि स्थानच्युत लोगों के विषय में हमारा तरीका प्रतिष्ठाहीन हो। यही कहना पर्याप्त है कि उन लोगों की क्या अर्हताएं हों जो कि स्थानच्युत हो गये हैं। वह 5-क में रख दी गई हैं। यह काफी है। मैं नहीं समझता कि हम भारत से पाकिस्तान गये हुए लोगों का, जो कि लौट सकते हैं, उल्लेख क्यों करें। दूसरी अर्हताएं रख दी गई हैं। इस विषय में मेरा निवेदन है कि यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जो लोग एक अधिराज्य से दूसरे अधिराज्य में गये हैं, चाहे पाकिस्तान से भारत को आये हों चाहे भारत से पाकिस्तान गये हों, वे अत्यन्त विशेष और दु:खद परिस्थितियों में गये हैं। यदि लोग पाकिस्तान से भारत आये हैं, जैसा कि कई संशोधनों में उल्लिखित है, वे गड़गड़ के कारण आये हैं अथवा गड़बड़ की आशंका से आये हैं। जो बात उन पर लागू है वही बात समानरूपेण से उन पर भी लागू हो सकती है जो भारत से पाकिस्तान गये हैं। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम उनमें विभेद क्यों करें।

श्रीमान, मैं अब एक दो बातों का निर्देश करना चाहता हूं जिन पर कल बहस हुई थी। कल दो बातों पर वाद-विवाद केन्द्रित था। एक तो यह बात उठी थी कि नागरिकता की परिभाषा बहुत सरल और सस्ती है, और डॉ. देशमुख ने तो यह कहा था कि वह विचित्र रूप से सस्ती है। दूसरे सदस्य ने कहा कि वह बाजारू, सस्ती और सरल है। कुछ माननीय सदस्यों ने ये बातें कहीं थीं। डॉ. देशमुख ने ही तो कहा था कि यदि कोई विदेशी महिला जो भारत देखने आई हो यहां, कहीं बम्बई में, बालक को जन्म दे दे, तो उसका बालक भारत की नागरिकता के लिये अर्ह हो जायेगा। ऐसा निर्वचन, जिससे कि यह उपबन्ध विचित्र दीखता है, गलत है। अधिवास की शर्त बहुत महत्वपूर्ण है। नागरिक बनाने के लिये भारत में अधिवास पहली शर्त है। दूसरी शर्ते ये हैं कि नागरिकता का दावेदार या उसके माता-पिता भारत में जन्मे हों और यहां पांच वर्ष से हों। अत: डॉ. देशमुख ने इस उपबन्ध का जो अर्थ निकाला है वह बिल्कुल ठीक नहीं है। अपने कथन के समर्थन में उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के उदाहरण दिये हैं। उन्होंने कहा, "इन देशों को देखिये। वे भारतीयों को नागरिकता के अधिकार नहीं देते, चाहे वे उन देशों में तीस पैंतीस वर्ष से रह रहे हैं"। क्या मैं उनसे यह प्रश्न पूछ सकता हूं कि क्या हमें उनके उदाहरण का अनुसरण करना चाहिये? क्या हम किसी कारण या बहाने से उन लोगों से कह सकते हैं "देखिये, आपने अपने देश में कई पीढ़ियों से रहने वाले भारतीयों को नागरिकता के अधिकार नहीं दिये हैं?" यदि हम यहां उन्हें नागरिकता के अधिकार नहीं देंगे

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

तो क्या हम उनके विरुद्ध शिकायत कर सकते हैं? बुरे उदाहरणों का अनुसरण नहीं करना चाहिये। भारत में दोहरी नागरिकता वाले लोग हैं। भारत में हमारी ही दोहरी नागरिकता है। चाहे यह सम्भव हो या न हो, क्या हम अब नागरिकता के मामले में आस्ट्रेलिया जैसे प्रतिक्रियाशील देशों का अनुसरण करेंगे और यह कह देंगे कि नागरिकता अत्यन्त कठोर शर्तों पर ही उपलब्ध हो सकेगी? यह बहुत अदभूत बात है कि डॉ. देशमुख उन्हीं लोगों को नागरिकता अधिकार देना चाहते हैं जो धर्म से हिन्दू या सिख हों। उन्होंने इस अनुच्छेद के नागरिक अधिकार प्रदान करने वाले उपबन्ध को अजीब सस्ता बताया था। दूसरी ओर मैं यह कहना चाहता हूं कि उनके विचार अजीब हैं। अत: हमें उन देशों के उदाहरण पर नहीं चलना चाहिये जिनकी हम सर्वत्र निन्दा करते हैं, केवल यही नहीं संयुक्त राष्ट्र में भी, और हम शिकायत करते हैं कि यद्यपि भारतीय उन देशों में रह रहे हैं पर उन्हें वहा नागरिकता अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं।

अब, श्रीमान, मेरा ख्याल यह है कि मुझे मस्विदा-समिति को बधाई देनी चाहिये कि उन्होंने इस अनुच्छेद को इस रूप में पेश किया है। इसके संबंध में मेरी आपत्ति यही है कि वह पूर्ण नहीं हैं। पहली बात यह है कि इसमें उन लोगों के मामलों के लिये कोई व्यवस्था नहीं है जो संविधान के पारित होने के पश्चात से उस वक्त के बीच नागरिकता का दावा करें जब तक कि संसद इस प्रश्न का विनिश्चय न करे।

इस संबंध में दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद 5-क तथा 5-कक में दो दोष हैं। अनुच्छेद 5-क कहता है कि कोई व्यक्ति जो पाकिस्तान से भारत आया है उसके पास प्रमाण-पत्र होना चाहिये। मैं पूछता हूं, क्यों? आप प्रमाण-पत्र क्यों चाहते हैं? आपने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति 1935 के अधिनियम में परिभाषित भारत में जन्मा हो तो वह भारत का नागरिक है। जब वह भारत को लौटता है तब आप उससे प्रमाण-पत्र क्यों मांगते हैं?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास: जनरल): वह पाकिस्तान क्यों गया?

***श्री महबूब अली बेग साहिब:** वह वहां नहीं गया। वह वहां था। मैं उस व्यक्ति की बात कर रहा हूं जो पाकिस्तान में था और लौट रहा है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** वह कब लौटा?

***श्री महबूब अली बेग साहिब:** वह भारत का नागरिक था जब 1935 के अधिनियम के अधीन पाकिस्तान भारत में समाविष्ट था। मैं ऐसे व्यक्ति की बात कर रहा हूं जो पाकिस्तान में रह रहा था जो भारत का भाग था और वह अब लौटना चाहता है। आप उससे प्रमाण-पत्र क्यों मांगते हैं? आप यह क्यों चाहते हैं कि वह यहां 6 मास रहे? वह भारतीय है और यहां आ जाता है, स्वेच्छा से नहीं, वरन बहुत दु:खद परिस्थितियों में। वह भारत में आ जाता है क्योंकि

वह वहां गड़बड़ के कारण अथवा गड़बड़ की आशंका से वहां नहीं रह सकता। मैं नहीं चाहता कि पाकिस्तान से भारत आने वाले व्यक्ति से प्रमाण-पत्र मांगा जाये।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): केवल उनसे प्रमाण-पत्र मांगा जायेगा जो कि 19 जुलाई 1948 के पश्चात् लौटेंगे।

*__श्री महबूब अली बेग साहिब:__ मैं यह जानता हूं। इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। जो व्यक्ति पाकिस्तान से भारत आ गया हो, उसका प्रश्न बहुत भावुकता उत्पन्न करने वाला है। लोगों को इस पर जोश आ गया है और वे भावुक तथा आक्रमणात्मक बन गये हैं। हमारे लिये यह सब अनावश्यक है। हमें इस मामले पर शांति से विचार करना चाहिये। पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों के लिये जो परिस्थितियां थीं वैसी ही पाकिस्तान जाने वालों के लिये थीं इसलिये दोनों में क्या अन्तर था? मैं उन मामलों को तो समझ सकता हूं जो उन लोगों के विषय में हैं जो पाकिस्तान में रहने के लिये वहां चले गये हैं या हिन्दुस्तान में रहने के लिये ही भारत आ गये हैं। ऐसे उदाहरण भी हो सकते हैं कि नौकरी के कारण पाकिस्तान के प्रांतों में नियोजित व्यक्ति भारत आ जाते हैं। उस प्रकार के मामले भी हैं। श्रीमान, यह ठीक है कि जब विभाजन हुआ, जब दोनों दलों ने 3 जून का समझौता स्वीकार कर लिया, तब यह आशा थी कि दोनों अधिराज्यों में अल्पसंख्यक अपने स्थानों पर रहेंगे और उन्हें रक्षण-कवच दिये जायेंगे। यही सच्ची आशा थी, यही सच्चा समझौता था, पर हुआ यह कि शक्ति हस्तान्तरण के पश्चात् गड़बड़ हो गई और ऐसी घटनायें हुई कि लोगों को स्थानान्तरित होना पड़ा। अब, श्रीमान, जब ऐसी परिस्थितियां थीं, तब क्या यह उचित है कि उन लोगों में अन्तर किया जाये—मैं तो इसे विभेद कह सकता हूं,—जो भारत आये और जो उन्हीं परिस्थितियों में पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये? हमें वे बातें भूलनी नहीं चाहिये जिनकी महात्मा गांधी अपने जीवन में हमें शिक्षा देते थे। उन्होंने क्या कहा था? उन्होंने उन लोगों को अपने घरों में लौट आने के लिए कहा था जो पाकिस्तान चले गये हैं। अत: श्रीमान, हमें इस मामले पर शांतिपूर्वक विचार करना चाहिये। मैं जानता हूं कि इस सभा में ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें दु:ख झेलने पड़े हैं, जिनके घर छिन गये हैं, जिनकी सम्पत्ति छिन गई है, जिनके कारोबार, प्रतिष्ठा सब समाप्त हो गये हैं। मैं जानता हूं उन पर सचमुच प्रभाव पड़ा है। इस मामले पर सचमुच उनकी भावनाएं उत्तेजित हो जाती हैं, पर हमें इस मामले पर ठंडे दिमाग से सोचना चाहिये। कोई यह न कह सके कि इस सभा में कुछ सदस्यों को विभाजन के कारण कष्ट झेलने पड़े थे, अत: उन्हें क्रोध था, और उस क्रोधावेश में उन्होंने अनुच्छेद 5-कक को पारित कर दिया। यहां तक तो यह सही है कि कोई व्यक्ति यहां बसना चाहता है तो उसे नागरिक बना लिया जाये; पर असली प्रश्न उन लोगों के विषय में है जो वापस आ रहे हैं—मुझे पता नहीं है कि लोग आ रहे हैं या नहीं। मुझे यह सुनकर बहुत आश्चर्य है कि जो लोग लौट रहे हैं वे देश-द्रोही हो सकते हैं। कानून का हाथ इतना लम्बा होना चाहिये कि जो भी व्यक्ति देश-द्रोही बने उसे वह पकड़ ले। आप क्या करेंगे यदि आपमें से ही कोई देशद्रोही बन जाये, साम्यवादी बनकर शासन को उलटना चाहे? अत: यह कहना बिल्कुल युक्तियुक्त नहीं है कि भारत लौटने वाले देश-द्रोही हो सकते हैं अत: उन्हें लौटने नहीं देना चाहिये। ऐसी बातों से तो आप कभी बलशाली नहीं बन सकेंगे। ऐसी मानसिक स्थिति को हटाना चाहिये, मिटा देना चाहिये। इसके अतिरिक्त आप केवल वर्तमान के लिये विधान बना रहे हैं। संसद अपने स्वविवेक से, यदि वह आवश्यक समझे तो, किसी व्यक्ति को नागरिकता से वंचित कर सकती है और उसे निकाल

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

सकती है। इस मामले में संसद सर्व शक्तिमान है। अत: मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यहां से पाकिस्तान जाने वाले और पाकिस्तान से आने वाले लोगों में विभेद क्यों किया जाये। यह शुद्ध भावुकता है और इससे उन लोगों में भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता और दूसरों में भी नहीं होता। मैं अन्त में यही कहता हूं कि हमें इस मामले पर शान्ति से विचार करना चाहिये और यदि हम समझते हैं कि महात्मा गांधी की शिक्षायें ठीक थीं, तो हमें उनके विरुद्ध नहीं चलना चाहिये और ऐसा विधान बनाकर दोनों प्रकार के लोगों में अन्तर नहीं करना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ एक दो संशोधन हैं। उनकी सूचना श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा ने कल कुछ देर में भेजी थी पर मैं श्री शर्मा को उसके पेश करने की अनुमति दे देता हूं। एक और संशोधन हैं जिसकी सूचना श्री जय सुख लाल हाथी ने दी थी। मैं नहीं समझता कि मैं इसकी अनुमति दे सकता हूं। यह बहुत देर में आया था। श्री कृष्णचन्द्र शर्मा।

*__श्री कृष्णचन्द्र शर्मा__ (युक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान, मेरा इसे पेश करने का विचार नहीं है।

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू__ (युक्तप्रांत: जनरल): श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तावों का और श्री गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं। शायद नागरिकता संबंधी इन सब अनुच्छेदों पर पिछले कुछ मासों में जितना विचार हुआ है उतना संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद पर नहीं हुआ।

अब ये कठिनाइयां दो कारणों से उत्पन्न हुई हैं। एक तो देश का विभाजन है ही। दूसरा कारण विदेशों में बहुत से भारतीयों की उपस्थिति है, और इन भारतीयों के लिये यह निश्चित करना कठिन था कि उन्हें हमारे नागरिक समझा जाये या नहीं, और अंतत: इन दोनों कठिनाइयों को दूर करने के लिए इन अनुच्छेदों की रचना की गई। वैयक्तिक रूप में मेरा ख्याल है कि जो उपबन्ध बनाये गये हैं वे बहुत संतोषजनक हैं। अनिवार्यत: कोई ऐसा उपबन्ध नहीं बनाया जा सकता है जो सब सम्भावनाओं की तथा न्यायपूर्वक सब मामलों की व्यवस्था कर दे और कोई भी त्रुटि न रहे। विदेशों में हमारे लाखों लोग रहते हैं। उनमें से कुछ को विदेशी राष्ट्रीय समझा जा सकता है, यद्यपि वे मूल वंश से भारतीय हैं। अन्य अपने आप को किसी हद तक भारतीय समझते हैं पर उनकी स्थानीय राष्ट्रीयता भी एक प्रकार से है ही, जैसेकि मलाया, सिंगापुर, फिजी और मॉरीशस में। यदि आप उन्हें स्थानीय राष्ट्रीयता से वंचित कर देंगे जो वे वहां विदेशी बन जायेंगे। अत: ये सब कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं और आप देखेंगे कि इस संकल्प में हमने इस समय के लिये उनकी व्यवस्था करने का प्रयत्न किया है, और यह उन पर छोड़ दिया है तथा वहां हमारे महावाणिज्यदूतों पर छोड़ दिया है कि उन्हें पंजीबद्ध किया जाये या नहीं। यह चीज स्वत: नहीं होगी। हमारे प्रतिनिधि, यदि वे समझे, कि आवेदन-पत्र देने वाला भारतीय नागरिकता के लिये अर्ह है तो, उनके नामों को पंजीबद्ध कर सकता है।

अब मैं देखता हूं कि अधिकांश बहस उन लोगों के विषय में हुई है जो किसी न किसी प्रकार विभाजन के शिकार हैं। मैं नहीं समझता कि कोई ऐसा मस्विदा बनाना सम्भव है, चाहे आप कितना ही परिश्रम करें, जो कि इस अत्यन्त कठिन और उलझी हुई स्थिति में ठीक बैठ सके, जो कि उत्पन्न हुई है, अर्थात विभाजन। अनिवार्यत: हमें कोई ऐसी बात करनी होती है जिसमें हमारे लोगों के लिये अधिकतम न्याय अंतर्ग्रस्त हो और जो इस समस्या का सर्वाधिक क्रियात्मक हल हो। ऐसे उपबन्ध में आप यह तो रख नहीं सकते कि आप किसे चाहते हैं और किसे नहीं चाहते; आपको कुछ सिद्धांत रखने होते हैं, किन्तु कोई सिद्धांत जो आप रखें हो सकता है वह बहुत से मामलों में ठीक न बैठे। इसका तो किसी तरह कोई इलाज हो ही नहीं सकता। अत: आप आप यह देखिये कि वह सिद्धांत अधिकांश मामलों में ठीक बैठ जाये, चाहे बहुत थोड़े से मामलों में ठीक न बैठे, और उनमें एक प्रकार की कठिनाई हो सकती है। मेरे ख्याल में इन सुझावों के रचियता बहुत हद तक ऐसा मस्विदा बना सके हैं जिसमें वास्तव में 99.9 मामलों का न्याय और क्रियात्मक तरीके से निबटारा हो सकता है, हो सकता है कुछ लोग न आ सकें। सच बात तो यह है कि देशीयकरण की कार्यवाही में भी किसी व्यक्ति के लिये ठीक-ठीक निश्चय करना बहुत कठिन हैं और हो सकता है आप सबको ले लें या न लें। किन्तु, जहां तक मैं समझ सकता हूं, मुख्य आपत्ति श्री गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन पर है जिसके अनुसार जो लोग यहां स्थायी रूप से लौट आये हैं और जो स्थायी अनुज्ञा-पत्र प्राप्त हैं वे भारत के नागरिक समझे जायेंगे। उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है और उनकी उपस्थिति पर इसलिये आपत्ति की जाती है कि यह सोचा जाता है कि वे शायद कुछ निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेंगे, जो अब तक निष्क्रमणार्थी सम्पत्ति मानी जाती है और इस प्रकार हमारे शरणार्थियों अथवा स्थानच्युत लोगों का अंश कम हो जायेगा, जिन्हें अन्यथा वह सम्पत्ति मिल जाती।

अब मेरे ख्याल में इस मामले में बहुत भ्रांति है। जैसा आप देखेंगे इन विभाजन-संबंधी परिणामों के विषय में हमारा सामान्य नियम यह है कि हम बिना पूछे उस महान जन समूह को स्वीकार करते हैं जो पाकिस्तान से भारत आया है। हम जुलाई 1948 तक तो उन्हें नागरिक मान लेते हैं। हां, यह सम्भव है कि उस काल में कई गलत लोग आ गये हों, जिन्हें हम नागरिक शायद न मानें यदि हम प्रत्येक के मामले पर गौर करें; पर ऐसे लाखों मामलों पर विचार करना असम्भव है और हम सबको स्वीकार कर लेते हैं। जुलाई 1948 के पश्चात्, अर्थात एक वर्ष पूर्व, आये हुए लोगों के विषय में हम एक प्रकार की पड़ताल करेंगे और एक दंडाधीश साक्ष्य आदि लेकर उन्हें पंजीबद्ध करेगा; अन्यथा वह और पड़ताल करेगा तथा अन्त में पंजीबद्ध नहीं करेगा यानी रद्द कर देगा। अब ये सब नियम स्वभावत: हिन्दू, मुस्लिम, सिख या ईसाई या कोई हो सब पर लागू हैं। हम केवल हिन्दुओं के लिये, या मुस्लिमों के लिये या ईसाइयों के लिये नियम नहीं बना सकते। यह बात तो देखने में ही बेहूदी है; पर कार्यरूप में हम कहते हैं कि हम प्रथम वर्ष के प्रव्रजन की अनुमति देते हैं और स्पष्ट है कि वह महान प्रव्रजन पाकिस्तान से हिन्दुओं और सिखों का प्रव्रजन था। दूसरे मुश्किल से ही कोई आये होंगे। सम्भव है कि बाद में, अनुज्ञा-पत्र प्रणाली के कारण, कुछ अहिन्दु तथा असिख आ गये हों। वे कैसे आये? कितने आये? मुझे बताया गया है कि तीन प्रकार के अनुज्ञा-पत्र हैं। एक तो बिल्कुल अस्थायी होता है जो एक दो मास के लिये होता है, और जो भी कालावधि हो, एक व्यक्ति को आकर उसी कालावधि में

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

लौटना पड़ता है। उसका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे प्रकार का एक अनुज्ञा-पत्र होता है, जो स्थायी नहीं होता, पर स्थायी के समान होता है, जिससे किसी व्यक्ति को यहां बसने का अधिकार नहीं होता पर उसे यहां बार-बार कारोबार के लिये आने का हक मिल जाता है। वह आता है, जाता है और उसका अनुज्ञा-पत्र जारी रहता है। मैं कह सकता हूं कि उसका कोई झगड़ा नहीं है। तीसरे प्रकार का अनुज्ञा-पत्र यहां आकर स्थायी रूप से ठहरने का होता है अर्थात वह व्यक्ति भारत लौटकर यहां बस सकता है।

अब, इस सब अनुज्ञा-पत्रों के मामलों में अब तक उन्हें जारी करने में बहुत सावधानी बरती गई है। जिस स्थान से वह व्यक्ति आया हो और जहां वह जाना चाहता है वहां के स्थानीय अधिकारियों को सम्बोधित किया जाता है; स्थानीय सरकार को सम्बोधित किया जाता है, और जब स्थानीय अधिकारी तथा स्थानीय सरकार काफी कारण समझती है तभी कराची या लाहौर में हमारा उच्चायुक्त, यथास्थिति, उस प्रकार का अनुज्ञा-पत्र देता है।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** (मध्य भारत): ऐसे अनुज्ञा-पत्रों की संख्या कितनी है?

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** मेरे पास आंकड़े नहीं हैं पर यहां आने से पहले, मैंने श्री गोपालस्वामी आयंगर से पूछा था; उन्हें ठीक-ठीक आंकड़े पता नहीं थे और बिल्कुल अनुमान से दो तीन हजार होंगे।

अब साधारणत: ये अनुज्ञा-पत्र दो प्रकार के लोगों को दिये जाते हैं। हां, दूसरे भी हो सकते हैं, पर सामान्यत: जिन लोगों को वे दिये जाते हैं वे दो प्रकार के हैं। एक तो ऐसे हैं जबकि कोई परिवार टूट जाये, जब परिवार का एक भाग यहां रह जाये और दूसरा चला जाये, जब पति यहां रह जाये और गड़बड़ आदि के कारण अपनी पत्नी तथा बालकों को भेज दे; उसने यहां रहना सुरक्षित समझा या किसी कारण से यहां रह गया और अब उसकी पत्नी तथा बच्चे आना चाहते हों, तो हमने उन्हें अनुमति दे दी यदि यह सिद्ध हो गया कि वे यहां सदा रहेंगे। साधारणत: यह उन परिवारों पर लागू है जो कि टूट गये और हमें यह विश्वास हो गया कि परिवार यहीं है और उसका इरादा जाने का नहीं है और हमें किन्हीं असाधारण परिस्थितियों के वश में थोड़े से व्यक्ति चले गये थे जो लौटना चाहते थे। लगभग ऐसे व्यापक सिद्धांतों पर विचार किया गया और स्थानीय सरकार तथा स्थानीय अधिकारियों ने सिफारिश की कि ऐसा किया जायें और ऐसा किया गया। यह मुख्य मामला है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोगों के मामले हैं जिन्हें आप राष्ट्रीय मुस्लिम कह सकते हैं, उन लोगों की जाने की किंचित भी इच्छा नहीं थी पर वे परिस्थितियों वश धकेल ही दिये गये, जिन्हें परिस्थितियों के कारण भागना पड़ा पर दूसरी ओर जाकर उन्होंने देखा कि वहां उनके लिए कोई स्थान नहीं है, दूसरी ओर उन्हें कोई नहीं चाहता; वे उन्हें विरोधी और शत्रु समझते हैं और उनके जीवन को कष्टमय बना दिया है और आरम्भ से ही उन्होंने वापस आने की इच्छा प्रकट की और उनमें से कुछ लौट आये। मेरा कहना यह है कि सब बातों पर विचार करते हुए इन मामलों की संख्या बहुत कम है, महत्वहीन है। प्रत्येक व्यक्ति के मामले पर अलग-अलग उस स्थान के स्थानीय अधिकारी ने

विचार किया जहां के वे निवासी थे; स्थानीय सरकार ने, विचार करने के पश्चात्, एक विनिश्चय किया और अनुज्ञा-पत्र देने की सिफारिश की। अब इससे कोई अधिक फर्क नहीं पड़ता है कि आप इसे पारित करें या न करें। सरकार ने एक विनिश्चय कर दिया है और जब कोई व्यक्ति लौट आया है, वह यहां है; और यहां आने के पश्चात्, उसे ऐसे अधिकार और विशेषाधिकार मिल जाते हैं और वे सब स्वभावत: सरकार के विनिश्चिय के फलस्वरूप होते हैं। यह तो केवल मामला स्पष्ट करना है। इससे कोई नियम नहीं बनता। फर्ज किया बहुत कम या महत्वहीन सम्पति का प्रश्न हो तो सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त होने की बात नहीं है, वरन परिवार के टूट जाने के पश्चात जब उसके कुछ सदस्य वापस आने पर वे उस सम्पत्ति को ले लेंगे जो परिवार के शेष सदस्यों के पास थी, अत: कोई नई सम्पति अंतर्ग्रस्त नहीं होगी। नई सम्पत्ति अंतर्ग्रस्त है ही नहीं और यदि हो तो अत्यन्त लघु होगी। इससे किसी को कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब कोई व्यक्ति सरकार द्वारा पूरी पड़ताल और अनुमति के पश्चात्, और अनुज्ञा-पत्र आदि लेकर आता है तो सम्पत्ति के विषय में भी कुछ परिणाम हो सकते हैं। यदि ये परिणाम होते हैं, यदि उसे किसी सम्पति का अधिकार मिलता है, तो वह इसलिये है कि वह भारत का नागरिक है और स्थानीय सरकार ने विनिश्चय कर दिया है, चाहे वह पूर्वी पंजाब सरकार हो, चाहे दिल्ली सरकार हो अथवा युक्त प्रांत की सरकार हो। इस संशोधन को स्वीकार करने या न करने से वे नहीं रूकते। हां, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सभा होने के नाते विधि बनाकर आप उन्हें रोक सकते हैं। आप ऐसा कर सकते हैं; पर इसका यह निष्कर्ष नहीं है। मैं आपसे इस बात पर विचार करने का निवेदन करता हूं कि इस प्रकार के मामले में जहां समुचित पड़ताल करने के पश्चात सरकार समझती है कि न्याय की यह मांग है, नियमों और रूढ़ियों की यह मांग है कि किसी व्यक्ति के विषय में कोई कार्यवाही होनी चाहिये—तो मैं नहीं समझ पाता कि आप न्याय और औचित्य के सिद्धांतों को उलटे बिना उससे कैसे मुकर सकते हैं। हां, आप किसी विशेष मामले को चुनौती दे सकते हैं, उसकी जांच कर सकते हैं और उस विनिश्चय को गलत सिद्ध करके उलट सकते हैं, पर आप उसे किसी प्रकार के सिद्धांत पर बुरा नहीं बता सकते।

एक शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है। मैं उस शब्द के विरुद्ध अपना कड़ा विरोध प्रदर्शन करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि सदन इस शब्द पर ध्यान से विचार करें और वह यह है कि यह सरकार खुशामद करती है, मुसलमानों की खुशामद, पाकिस्तान की खुशामद, इसकी खुशामद और उसकी खुशामद। मैं स्पष्ट जानना चाहता हूं कि उस शब्द का क्या अर्थ है। क्या माननीय सदस्य जो खुशामद की बात करते हैं समझते हैं कि इन लोगों के संबंध में कोई ऐसा नियम बनाया जाये जिसका न्याय और औचित्य से कोई संबंध न हो? मैं इसका स्पष्ट उत्तर चाहता हूं। यदि हां, तो मैं निस्संदेह खुशामद का समर्थन करूंगा। ये सरकार स्थिति को सम्भालने का जो ठीक उपाय समझती है, व्यक्ति तथा वर्ग के लिये न्याय, उससे वह एक बाल भर भी इधर या उधर नहीं चलेगी।

एक और शब्द बार-बार कहा गया है, यह असाम्प्रदायिक राज्य का मामला। क्या मैं अत्यन्त नम्रता के साथ उन सज्जनों से, जो इस शब्द का बहुधा प्रयोग करते हैं, प्रार्थना कर सकता हूं कि वे इसका प्रयोग करने से पूर्व किसी कोष को देख लिया करें? यह प्रत्येक अवसर पर और प्रत्येक सम्भव समय पर लाया

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

जाता है। मैं इसे नहीं समझता। निस्संदेह इसका बहुत महत्व है। पर इसका सब संदर्भों में प्रयोग किया जाता है। जैसे कि यह कहकर कि हम असाम्प्रदायिक राज्य हैं हमने कोई आश्चर्यजनक उदारता की है, अपनी जेब से शेष जगत को कोई चीज निकालकर दे दी है, कोई ऐसा कार्य किया है जो हमें करना नहीं चाहिये था, इत्यादि। हमने केवल वही चीज की है जो प्रत्येक देश करता है, केवल संसार के वुछ पथ भ्रष्ट और पिछड़े हुए देश नहीं करते। हमें इस शब्द का निर्देश इस अर्थ में नहीं करना चाहिये कि हमने कोई महान कार्य किया है।

मैं समझ नहीं सकता कि कोई भी सम्भवत: श्री गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन के विरुद्ध तर्क कैसे कर सकता है? उस संशोधन के विरुद्ध तर्क करना निश्चय से अन्याय का समर्थन है, विभेद का समर्थन है, ऐसी बात न करने का समर्थन करना है जो पूरी जांच के पश्चात् ठीक पाई गई है, यह ऐसी बात करने का समर्थन है जिसका संख्या या सम्पत्ति के क्रियात्मक दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं है। यह तो मन भर में कण के समान है। उस छोटी सी बात के लिये संतोष प्राप्त करने के उद्देश्य से, क्योंकि आपकी सम्पत्ति की भावना इतनी तीक्ष्ण है, क्योंकि आपका न्यस्त स्वार्थ इतना तीक्ष्ण है कि आप अपने सम्पत्ति-समूह में से एक लाखवां भाग भी बाहर नहीं जाने देना चाहते, या किसी और कारण से आप उस नियम को उलट देना चाहते हैं जिसे हमने निश्चित सिद्धांतों पर, न्याय तथा समानता की भावना पर आधारित करना चाहा है। यह अच्छी बात नहीं होगी। मैं सदन से इस बात पर विचार करने का अनुरोध करता हूं कि चाहे आप श्री गोपालस्वामी आयंगर के इस संशोधन को स्वीकार करें या न करें, वास्तविकता यह है कि सरकार की नीति तो जारी रहेगी ही और उससे पीछा छुड़ाने का कोई उपाय नहीं है जब तक कि सरकार की ओर से प्रदत्त प्रत्येक वचन को और आश्वासन को, तथा उचित पड़ताल के पश्चात् दिये गये प्रत्येक अनुज्ञा-पत्र को उलट न दिया जाये। इसके अतिरिक्त, इस मामले में कृपया स्मरण रखिये कि अनुज्ञा-पत्र की प्रणाली ही जुलाई 1948 में आरम्भ हुई थी, जबकि बड़े पैमाने का प्रव्रजन पूर्णत: बंद हो चुका था। इस संशोधन में उस कालावधि का, अर्थात जुलाई 1948 से अब तक का, एक विशेष रूप में निर्देश है, इस अर्थ में निर्देश है कि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को किसी जिला दंडाधीश या ऐसे किसी अधिकारी के पास जाना होगा और अपने आपको पंजीबद्ध करवाना होगा। वह स्वयमेव नागरिक नहीं बन जायेगा। उसे वहां जाकर कोई प्रमाण देना होगा, इस प्रकार उसे दूसरी घाटी में से गुजरना होगा। यदि वह पार हो जाता है तो ठीक है, अन्यथा वह इस समय भी अस्वीकृत हो सकता है। सदन में श्री गोपालस्वामी आयंगर ने अपने संशोधन में जो सुझाव रखे हैं वे अत्यन्त न्यायपूर्ण और ठीक हैं और उससे एक उलझी हुई स्थिति यथासम्भव व्यवहारिक रूप में सुलझ जाती है।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा इस विषय को स्पष्ट अवलोकन के पश्चात और प्रधानमंत्री द्वारा नीति तथा सिद्धांतों के स्पष्ट वक्तव्य के पश्चात्, मैं लम्बी वक्तृता देकर सदन का समय नहीं लेना चाहता। मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि मेरे विचार में इन अनुच्छेदों के, जो कि सदन के समक्ष पेश किये गये हैं, मुख्य सिद्धांत क्या हैं।

इन अनुच्छेदों का उद्देश्य सदन के समक्ष राष्ट्रीयता विधि की संहिता के समान कोई चीज पेश करना नहीं है। ऐसा तो किसी राज्य में भी संविधान बनाते समय कभी भी नहीं किया गया। निस्संदेह संयुक्त राज्य के संविधान में कुछ सिद्धांत रख दिये गये है; पर संसार में शायद ही कोई ऐसा संविधान हो जिसमें राष्ट्रीयता विधि के संबंध में सविस्तार उपबन्ध रखने का प्रयत्न किया गया हो। किन्तु क्योंकि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हमारा संविधान गणराज्यीय संविधान होगा और समस्त संविधान में उपबन्ध किये गये हैं कि संसद के सदनों में और एककों में विविध सभाओं के निर्वाचन होंगे, और नागरिक अपने अधिकारों का प्रयोग करेंगें, अत: यह आवश्यक है कि संविधान के आरम्भ में नागरिकता संबंधी कुछ उपबन्ध रखे जायें। अन्यथा विशेष पदों के धारण करने में कठिनाई होगी और गणराज्यीय संविधान के अंतर्गत देश में प्रतिनिधि संस्थायें आरम्भ करने में भी कठिनाइयां होंगी। अत: नागरिकता संबंधी अनुच्छेद भावी विधियों के अधीन रहेंगे जो राष्ट्रीयता या नागरिकता के विषय में संसद पारित करे। संसद को पूरा अधिकार है कि वह राष्ट्रीयता अथवा नागरिकता के विषय में कोई विधि बना सकती है जो हमारे देश की हालत के लिये उपयुक्त हो। यह कल्पना नहीं करनी चाहिये कि संविधान में, जिसमें कई विषय होते हैं, नागरिकता संबंधी सब उलझी हुई समस्याओं को निबटाना सम्भव है। यह प्रश्न उठाया गया है कि विवाहित स्त्री की क्या स्थिति होगी, बालकों की क्या स्थिति होगी, दोहरी नागरिकता आदि की क्या स्थिति होगी। वस्तु स्थिति ऐसी है कि इस संविधान में, जो हमने बनाया है, वे इन सब आकस्मिकताओं के लिये व्यवस्था करना असम्भव है।

फिर नागरिकता के विषय में एक बात याद रखनी होगी। नागरिकता के साथ-साथ कर्तव्य भी होते हैं। विदेशों में भारत के नागरिकों के विषय में भारत सरकार के भी कर्तव्य हैं।

इस विषय में एक और बात स्मरण रखनी होगी जो यह है। राष्ट्रीयता या नागरिकता संबंधी किसी विधि के कुछ अंतर्राष्ट्रीय परिणाम हो सकते हैं, पर दोहरी नागरिकता के विरुद्ध कुछ व्यवस्था करना सरल नहीं है। विविध अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को कोई ऐसा सिद्धांत सूत्रित करना अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ जिससे कि दोहरी नागरिकता का सिद्धांत सर्वथा हट जाये। यह कठिनाई इस कारण उत्पन्न होती है कि मुख्यत: यह प्रत्येक राष्ट्र का काम है कि वह अपनी राष्ट्रीयता विधि और नागरिकता विधि को निश्चित करे। साथ ही उसके अंतर्राष्ट्रीय परिणाम हो जाते हैं, यथा नागरिकता के विषय में यूरोप की विधि और इंग्लिस्तान की विधि भिन्न हैं और उसके कारण कुछ संघर्ष उत्पन्न हो गये हैं।

इसलिए किसी संविधान में और विशेषत: विद्यमान संविधान में, जिसमें नागरिकता संबंधी अस्थायी उपबन्ध ही रखे जा रहे हैं, दोहरी नागरिकता या दोहरी राष्ट्रीयता की समस्या को निबटाने का प्रयत्न करने से कोई लाभ नहीं है। सदन के समक्ष ये जो अनुच्छेद रखे गये हैं उनमें ये सब बातें ध्यान में रखी गई हैं। अब मैं उन सिद्धांतों का निर्देश दूंगा जो इन अनुच्छेदों में से प्रत्येक में निहित हैं।

अनुच्छेद 5 (1) के विरुद्ध कुछ वक्ताओं ने यह बात कही है कि इससे प्रत्येक व्यक्ति को जो भारत के राज्य-क्षेत्र में उत्पन्न हुआ हो नागरिकता का अधिकार मिल जाता है और यह कुछ असंगत सा सिद्धांत है। मुझे भय है कि

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

आलोचकों ने इस बात का ख्याल नहीं रखा है कि हमारा अनुच्छेद, उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य के संविधान से अधिक कड़ा है। संयुक्त राज्य के संविधान के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य में उत्पन्न हो तो वह उसका नागरिक समझा जायेगा चाहे उनका वर्ण या मूल वंश कुछ भी हो। केवल देशीयकरण विधि के विषय में कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं। हमने एक और अर्हता रखी है कि उस व्यक्ति का स्थायी निवास भारत में हो। मैं 'अधिवास' शब्द के स्थान पर सरल पद 'स्थायी निवास' का प्रयोग कर रहा हूं।

फिर अनुच्छेद 5 के खंड (ग) में इस देश की विशेष स्थिति का ध्यान रखा गया है। भारत में गोआ, फ्रांसीसी बस्तियां आदि कई बाह्य क्षेत्र हैं जहां से लोग भारत आकर इस देश में बस गये है, भारत को अपना स्थायी निवास समझते हैं, तथा उन्होंने इस देश में जीवन को ऊंचा उठाने में अंशदान किया है। उन्होंने वाणिज्य में सहायता की है और वे अपने आपको भारत का नागरिक समझते रहे हैं। इसलिये इन मामलों के लिये खंड (ग) में यह उपबन्ध रखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति पांच वर्ष के लिए लगातार निवासी रहे और उसका अनुच्छेद 5 के प्रारम्भिक भाग के अधीन अधिवास भी हो तो वह देश का नागरिक माना जायेगा। फिर अन्त में यह कहा गया है कि "उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वयं अवाप्त न की होनी चाहिये"। यदि किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उस पर नागरिकता थोप दी जाये तो वह इस देश में नागरिकता के अधिकारों से वंचित नहीं किया जायेगा, पर यदि उसने स्वेच्छा से अन्य राज्य की नागरिकता अवाप्त कर ली हो तो वह इस देश में नागरिकता के अधिकार का दावा नहीं कर सकता। अनुच्छेद 5 के उत्तर-भाग का यह उद्देश्य है।

अनुच्छेद 5-क का उद्देश्य पाकिस्तान से भारत को सामूहिक प्रव्रजन के सब मामलों की व्यवस्था करना है और उन लोगों के लिये उपबन्ध करना है जिन्होंने विद्यमान भारत को अपना घर बना लिया है। अब वे हमारे देश में हैं और इसे अपना घर बनाना चाहते हैं। उस अनुच्छेद में हम एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के बीच, एक जाति और दूसरी जाति के बीच कोई भेद नहीं करना चाहते। हमने एक सामान्य उपबन्ध बना दिया है कि यदि वे भारत को प्रव्रजन कर आये हैं और यदि पूर्ववर्ती संविधान में परिभाषित भारत में जन्मे थे तो नागरिकता के अधिकारों के हकदार होंगे। अनुच्छेद 5-क, खंड (क) का यह आशय है। खंड (ख) में प्रव्रजित लोगों के पंजीयन का उपबन्ध है। खंड (2) में कुछ रक्षण-कवच रखे गये हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि प्राधिकारी प्रव्रजित लोगों को भारत के निष्ठावान नागरिक स्वीकार करते हैं। इस खंड का यह उद्देश्य है। एक यह भी उपबन्ध है कि यदि आवेदक भारत के राज्यक्षेत्र में कम से कम 6 मास तक नहीं रह चुका है तो उसे पंजीबद्ध नहीं किया जायगा। अत: दो संरक्षण हैं, (1) पंजीयन होगा, और (2) यदि आवेदक आवेदन-पत्र की तिथि से पूर्व 6 मास तक भारत के राज्य क्षेत्र में निवास नहीं कर चुका है तो पंजीयन नहीं होगा। यदि केवल अनुच्छेद 5-क कोई तना ही रहने दिया जाता तो इसका यह अर्थ हो जाता कि यदि कोई व्यक्ति पाकिस्तान को अपना स्थायी निवास बनाने की इच्छा से पाकिस्तान गये हों, और लौट आये हों, तो वे भी 5-क से लाभ उठा सकते

हैं। उस आकस्मिकता के विरुद्ध उपबन्ध करने के लिए 5-कक रखा गया है जो इस प्रकार है:–

"इस संविधान के अनुच्छेद 5 तथा 5-क में किसी बात के होते हुए भी जो व्यक्ति 1947 के मार्च के पहले दिन के पश्चात् भारत राज्य-क्षेत्र से पाकिस्तान के इस समय अंतर्गत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा।"

इसको अस्पष्ट रखने से कोई लाभ नहीं है। यदि किसी व्यक्ति ने स्वेच्छा से तथा जानबूझकर अन्य देश का नागरिक बनना पसन्द किया है, जबकि यह प्रश्न उठ चुका था, जबकि पाकिस्तान को भारत से पृथक स्वतंत्र राज्य-क्षेत्र घोषित कर दिया गया था, तो ऐसे व्यक्ति को नागरिकता के अधिकार देने से कोई लाभ नहीं है। किन्तु इस परन्तुक में एक महत्वपूर्ण बात का ध्यान रखा गया है कि भारत सरकार ने कुछ को यहां आकर बस जाने की अनुमति दे दी जबकि उसे यह संतोष हो गया कि वे इसी देश में रहना चाहते हैं, किसी अन्य देश में नहीं, और वे इस देश को अपना समझते हैं। यह आश्वासन देने के पश्चात् अब भारत सरकार की ओर से यह कहना अत्यधिक अन्याय होगा कि उन्हें भारत की नागरिकता के अधिकारों का हक नहीं है। यह परन्तुक, यह कहकर कि ऐसे व्यक्ति को नागरिकता के अधिकारों का हक होगा, भारत सरकार की प्रतिष्ठा, सम्मान और प्रतिज्ञा की रक्षा करता है। यह 5-कक के सामान्य नियम में अपवाद है, जिस नियम के अनुसार यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से, सोच समझकर और जानबूझ कर पाकिस्तान चला गया हो तो उसे हमारे देश की नागरिकता के अधिकार का दावा करने का हक नहीं रहेगा। भारत सरकार के वचन का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। इस परन्तुक का यही उद्देश्य है।

कुछ लोगों के दिमागों में कुछ भ्रांति सी है कि सम्पत्ति के अधिकारों का नागरिकता से कोई संबंध है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में अथवा देशीय विधि में नागरिकता के अधिकारों और सम्पत्ति के अधिकारों में कोई संबंध नहीं है। किसी व्यक्ति को किसी देश का नागरिक होने से ही किसी सम्पत्ति पर कोई विशेष अधिकार नहीं मिल जाता। हमारे कई राष्ट्रीयों के पास संयुक्त राज्य में, जर्मनी में, इंग्लिस्तान में और अन्य कई देशों में सम्पत्ति है, किन्तु यह उनके उन देशों के नागरिक होने पर निर्भर नहीं है। राष्ट्रीयता या नागरिकता का सम्पत्ति की विधि से कोई संबंध नहीं है। साथ ही ऐसी स्थिति हो सकती है कि सम्पत्ति पर नियंत्रण करना पड़े। उदाहरण के लिये, युद्ध में, स्थिति ऐसी हो सकती है कि राज्य को शत्रु-सम्पत्ति पर अथवा विदेशियों की सम्पत्ति पर कुछ नियंत्रण करना पड़े। इसका यह अर्थ नहीं है कि विदेशियों की या शत्रु की सम्पत्ति जब्त हो गई। अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रों के किसी सिद्धांत में इस सिद्धांत को मान्यता नहीं दी जाती।

अनुच्छेद 5-ख में, हमने अपने उन राष्ट्रीयों के लिये उपबन्ध किये हैं जो भारत के बाहर, स्ट्रेट सेटेल्मेंट और अन्य स्थानों में रहते हैं। वे मातृ-भूमि से अपना संबंध बनाये रखने के लिये आतुर हैं। उन्होंने उन राज्यों में नागरिकता के लिये अर्ह होने के अधिकार अर्जित किये हों या न किये हों, पर उन मामलों में जबकि वे इस देश में जन्मे हों या यदि वे इस देश में उत्पन्न व्यक्ति के पुत्र या पौत्र हों तो, उन्हें नागरिकता का अधिकार दे दिया जाता है। वे इस देश

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

को बहुत समय पूर्व छोड़ गये थे और अन्य देश में चले गये थे क्योंकि हम उन्हें जीविका के आवश्यक साधन नहीं प्रदान कर सके थे—कम से कम अंग्रेजी शासन में तो यही बात थी। (हमें आशा करनी चाहिये कि हम उनसे अधिक सफल रहेंगे)। पर फिर भी वे मातृभूमि से अपने संबंध रखने के लिये आतुर हैं, उनका इस देश से आत्मीय संबंध है और वे हमारे देश के नागरिक ही रहना चाहते हैं। वे भी नागरिकता के हकदार होंगे। अनुच्छेद 5-ख का यह उद्देश्य है।

जैसाकि प्रधान मंत्री ने अनेक अवसरों पर कहा है, हमने यह विद्यमान मस्विदा बहुत से अधिवेशनों और बहुत से सम्मेलनों के पश्चात् बनाया है जिनमें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों पर विचार किया गया था। हां, सबको संतुष्ट करना सम्भव नहीं है, और ऐसा सूत्र बनाना सम्भव नहीं है जिससे सब प्रभावित व्यक्ति संतुष्ट हो जायें।

हम असाम्प्रदायिक राज्य के सिद्धांतों के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। हम उन लोगों के बीच, जिन्होंने दूसरे देश को स्वेच्छा से और जानबूझ कर अपना घर बना लिया हो, और उन लोगों के बीच, जो इस देश से अपना संबंध बनाये रखना चाहते हैं, अन्तर कर सकते हैं। किन्तु हम मूलवंशीय या धार्मिक या अन्य आधारों पर एक प्रकार के लोगों और दूसरे प्रकार के लोगों में, एक संप्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के लोगों में अंतर नहीं कर सकते क्योंकि हमें अपनी प्रतिज्ञाओं का और विभिन्न अवसरों पर अपनी नीति के सूत्रण का ध्यान रखना होगा।

इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत रूप में अनुच्छेदों का और मेरे मित्रों श्री गोपालस्वामी आयंगर तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधनों का भी समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेदों का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं; और मैं विशेषत: उस परन्तुक का समर्थन करना चाहता हूं जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने प्रस्तावित किया तथा जिसे डॉ. अम्बेडकर ने अब स्वीकार कर लिया है और जो अब डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तावित अनुच्छेद में समाविष्ट कर दिया गया है। यह अनुच्छेद और विशेषत: वह परन्तुक महात्मा जी की स्मृति में श्रद्धांजलि है जिन्होंने हिन्दुओं और मुस्लिमों में अच्छे संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया था। श्रीमान, यह परन्तुक उन सब मुस्लिमों को जो इस देश को छोड़ गये हैं वापस आकर यहां बस जाने के लिये आमंत्रित करता है, सिवाय उनके जो कि जासूस, गुप्तचर, पंचमांगी और साहसी हों। मैं चाहता हूं कि यह उपबन्ध अधिक विस्तृत होता। मैं चाहता हूं कि पाकिस्तान के सब लोगों को, यदि वे चाहें तो, इस देश में आकर रहने के लिये आमंत्रित किया जाये। और मैं ऐसा क्यों कहता हूं? मैं आदर्शवादी नहीं हूं। मैं यह बात इसलिये कहता हूं कि हम इस सिद्धांत, इस नीति, इस आदर्श के लिये दृढ़ संकल्प हैं। महात्मा गांधी राजनीति में आये उससे बहुत पहले अभिलिखित इतिहास से शतियों पूर्व, इस देश में हिन्दू और मुस्लिम एक थे। महात्मा गांधी के जीवनकाल में हम सहोदर भ्राता थे। क्या मैं जान सकता हूं कि विभाजन के पश्चात् क्या ये सहोदर भ्राता अनजान और विदेशी हो गये हैं? श्रीमान, यह एक कृत्रिम विभाजन हुआ है। मेरे विचार में विभाजन की शरारत को विभाजन के वैधानिक तथ्य के परे नहीं बढ़ने देना चाहिये। मैं चाहता हूं कि एशिया के

समस्त लोगों की सामान्य नागरिकता हो, और इसके लिये आरम्भिक उपाय के रूप में समूचे एशिया की शांति और प्रगति के लिये भारत और पाकिस्तान के बीच सामान्य नागरिकता की स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

श्रीमान, श्री जसपतराय कपूर ने इस परन्तुक की इस आधार पर आलोचना की हैं कि इससे जासूसों और गुप्तचरों को इस देश में आने का अवसर मिलेगा। किन्तु मेरे विचार में इस देश के मुस्लिम राज्य के इतने ही निष्ठावान हैं जितने कि हिन्दू हैं। दूसरी ओर मैं प्रधान मंत्री के वक्तव्य से सहमत हूं जो उन्होंने दूसरे स्थान पर दिया था कि आज भारत की सुरक्षितता को मुस्लिमों से आशंका नहीं है हिन्दुओं से है।

मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर ने जो दूसरा प्रश्न उठाया था वह यह था कि हमें इस परन्तुक के आर्थिक परिणामों की ओर ठीक ध्यान रखना चाहिये। मैं चाहता हूं कि यह तर्क पेश नहीं किया जाता। हम दुकानदारों का राष्ट्र नहीं है; हम राम को छोड़कर कुबेर की पूजा नहीं कर सकते चाहे आर्थिक परिणाम कुछ भी हो हम कुछ सिद्धांतों पर स्थिर रहना चाहते हैं। कुछ नैतिक सिद्धांतों पर दृढ़ रहकर ही राष्ट्र उन्नति करते हैं। जीवन का पर्दार्थिक विकास प्रगति और सभ्यता का प्रतीक नहीं है। मैं नहीं समझता कि यह राजनीतिज्ञता या राजनीति है कि ठीक राजनैतिक सिद्धांतों को सस्ती अर्थ व्यवस्था के अधीन कर दिया जाये। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि एक मुस्लिम को, जो इस देश का नागरिक हो, इस संविधान के प्रारम्भ पर अपनी नागरिकता से क्यों वंचित किया जाये, विशेषत: जबकि हम उन हिन्दुओं को भारत का नागरिक बनने के लिये आमंत्रित कर रहे हैं जो कि पाकिस्तान से भारत आये हैं। जो लोग कभी भारत में नहीं रहे वरन पंजाब में और सीमान्त में सदा रहते रहे हैं वे आकर नागरिक बन गये हैं; फिर सीमान्त का एक मुसलमान क्यों नहीं बन सकता जबकि हम सदा यह कहते रहे हैं कि हम एक हैं।

यह कहा गया है कि विभाजन के कारण ही इतना सामूहिक प्रव्रजन हुआ है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं। कालातीत श्री जिन्ना जनसंख्या विनियम के सिद्धांत का समर्थन करते थे। हमने नहीं माना। उस मांग को ठुकराने का अर्थ यह था कि विभाजन के कारण इस देश के मुस्लिमों की निष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। विभाजन या अविभाजन, कुछ हो, मुसलमान इस देश के प्रति निष्ठावान रहेंगे। श्री जिन्ना की मांग को ठुकराने का यह अर्थ था। और हम कैसे कह सकते हैं कि विभाजन के कारण ही यह सामूहिक प्रव्रजन हुआ है? यह बात समझ लेनी चाहिये कि सामूहिक प्रव्रजन का कारण देश के कुछ भागों में हुए दंगे और गड़बड़ थी। अब भी दोनों सरकारों के बीच संबंध स्थिर नहीं हुए हैं; और दोनों राज्यों के बीच अच्छे संबंध स्थापित होने पर ही सुरक्षितता हो सकती है और जो लोग इस देश के थे और इस देश के नागरिक थे वे इस देश में वापस आकर बस सकते हैं।

मौलाना मुहम्मद हिफ़्ज़ुर रहमान (संयुक्त प्रांत: मुस्लिम): सदर साहब आर्टिकल 5 में जो इस वक्त डॉक्टर अम्बेडकर साहब की मौजूदा अमेंडमेंट शक्ल में हमारे सामने है, उसको मैंने जहां तक देखा है और मुताला किया है मैं यह समझता हूं कि इसमें बड़ी हद तक सिटीजनशिप के बारे में उन हकूक के लिये जो एक शहरी को बहैसियत शहरी के मिलने चाहियें, काफी कोशिश की गई है और

[मौलाना मुहम्मद हिफ़ज़ुर रहमान]

दोनों ही बातों का लिहाज रखा गया है। एक तरफ इस बात की कोशिश है कि एक शहरी को अपना पूरा हक बहैसियत शहरी के मिलना चाहिये। दूसरी तरफ इस बात का भी लिहाज रखा गया है और सोचा गया है कि गलत तरीके से अगर कोई शख्स शहरी बनने की कोशिश करे तो उसके लिये जो सेफगार्ड और तहफुज हो सके उसकी जानिव भी पूरी तवज्जह की जाये। यह बात बहुत ज्यादा काबिल तारीफ और मेरे नजदीक बहुत हद तक ठीक है। इस सिलसिले में प्राईमिनिस्टर साहब ने और गोपालस्वामी साहब ने जिस पोलिसी और प्रिंसिपल का इजहार फरमाया है वह भी हमारे अन्दर बहुत ज्यादा इतमीनान पैदा करता है। लेकिन इसके बावजूद मैं इसमें दो चीजों की कमी महसूस करता हूं। और उनकी तरफ तवज्जह दिलाना जरूरी समझता हूं। इसमें शक नहीं कि पहले उन लोगों के बारे में जो परमानेंट परमिट लेकर आये हैं, कोई तकसोलात मौजूद नहीं थी। लेकिन इस मर्तबा इस बात को भी बयान कर दिया गया है कि जो लोग परमानेंट परमिट लेकर आये हैं, उनको भी एक खास तरीके से सिटीजन और शहरी सुधार किया जाये। दूसरी चीज काबिले तवज्जह यह है कि जो तारीख इसमें रखी गई है, उस तारीख में खुद गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के इस नोटिफिकेशन का ख्याल गालिबन नहीं रखा गया है जिसके जरिये मुख्तलिफ औकात में गवर्नमेंट ने पाकिस्तान से आने वालों के लिए रियायत दी थी। क्लाज 5 में अव्वल इन तीन चार दफात का जिक्र है जो एक शहरी होने की हैसियत से इन पर कोई पाबन्दी और शर्त नहीं लगातीं और उन्हें मान लिया गया है कि यह नम्बर एक दो तीन चार इस तरीके से सिटीजन और शहरी शुमार होंगे। लेकिन आगे 5 ए में जब इसका जिक्र आया है कि और कौन कौन शहरी शुमार किये जायेंगे उसमें कहा गया है कि 19 जुलाई सन् 48 तक जो लोग आ गये हैं उनको शहरी शुमार किया जायेगा। लेकिन इसके बाद के आने वालों को दरख्वास्त देकर अपने आपको रजिस्टर्ड कराना जरूरी है। इसके लिए रजिस्ट्री की शर्त जरूरी कर दी गई है। मैं यह गुजारिश करता हूं कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने जो एक नोटिफिकेशन जारी किया था उसमें जो तारीख दर्ज है, वह 10 सितम्बर की है। उसमें कहा गया है कि अगर लोकल अथार्टीज उनके परिमिटों को जायज करार दें और उन परिमिटों को तसलीम करें और उनको शहरी मान लें तो वह लोग यह हक रखते हैं कि वह यहां के शहरी तसब्बुर किये जायें।

मैं गुजारिश करूंगा कि चाहे वह लोग यहां पर परमानेंट परमिट लेकर आये हों या किसी दूसरे हैसियत से आये हों अगर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने अपनी नोटिफिकेशन के जरिये से इस बात की सहूलियत दी है कि 10 सितम्बर तक जो लोग आये हैं उनको हम यहां क शहरी तस्लीम करेंगे तो चाहिये यह था कि उसको इस अमेंडमेंट में ही बरकरार रखा जाता। पहली अमेंडमेंट जिसमें 1 अगस्त सन् 1948 रखा था उसकी जगह पर 19 जुलाई सन् 1948 नहीं दर्ज होना चाहिये बल्कि इसके लिये इन्साफ का तरीका यह था कि बजाय 19 जुलाई के 11 सितम्बर कर दिया जाता। ताकि हर एक शहरी को अपना हक शहरियत हासिल करने के लिए ज्यादा से ज्यादा मौका मिल जाता। इससे यह होता कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया का जो नोटिफिकेशन निकला है उसमें जो तारीख मुकर्रर हुई है उसके मुताबिक 10 सितम्बर तक आने वालों को भी बगैर शर्त शहरी तस्लीम कर लिया जाता।

दूसरा सवाल यह है कि परमानेंट परमिट लेकर जो आदमी यहां आये हों उनको शहरी तस्लीम करने के लिए उन पर रजिस्ट्री की शर्त लगा दी गई है। इस बारे में मैं यह गुजारिश करूंगा कि 19 जुलाई से 10 सितम्बर तक जो लोग आये हैं, कहा गया है, उनके बारे में तहकीकात होगी और उसके बाद उनको शहरी तसब्बुर किया जायेगा। इन पर इस किस्म की जो यह पाबन्दी लगाई गई है, यह किसी तरह से भी मुनासिब नहीं है और इंसाफ और जस्टिस के खिलाफ है। हम अच्छी तरह से जानते हैं और हाउस को भी अच्छी तरह से मालूम है कि जिन लोगों को परमानेंट परमिट दिये जाते हैं, उनको तभी शहरी तसब्बुर किया जाता है, जबकि इस बारे में अच्छी तरह से पहले तहकीकात कर ली जाती है कि इन परमिट वालों में से कोई ऐसा आदमी तो नहीं है, जो कि साजिशी हो या धोखेबाज हो या अपना कारोबार समेटने के लिए यहां आया हो। इन तमाम चीजों की तहकीकात लोकल हुक्काम करते हैं और इसके बाद उसको परमानेंट कर देते हैं। यानी लोकल हुक्काम को जब पूरी तरह से तसल्ली हो जाती है, तभी वह परमानेंट करते हैं। इससे पहले किसी तरह इसे परिमिट को मंसूख नहीं करते। इस पर भी अगर आप रजिस्ट्री के लिए दरख्वास्त देने और रजिस्टर्ड कराने की पाबन्दी लगाते हैं, तो यह बयीद अज इंसाफ है। इसलिए कि यहां यह चीज भी साफ नहीं की गई है कि आया उस शख्स को अपनी शहरियत का हक हासिल करने के लिए सिर्फ रजिस्ट्रेशन की दरख्वास्त देना ही काफी है, या इस बात की जरूरत है कि जब वह दरख्वास्त करे तो उसके बाद उसके बारे में लोकल हुक्काम तहकीकात करेंगे और तहकीकात के बाद अगर वह पूरी तौर मुतमियिन हो जायेंगे तब उसको बहैसियत एक शहरी के रजिस्टर्ड करेंगे, वरना उसकी दरख्वास्त नामंजूर कर देने का हक रखेंगे।

आपको मालूम है कि हिन्द यूनियन में इस वक्त तक हजारों की तादाद में लोग आ चुके हैं और ऐसे भी हजारों लोग हैं जो कि झगड़ों के बाद जल्द आ गये थे और कुछ लोग ऐसे हैं जो कि देर से आये हैं। इसलिये कि उनको परिमिट हासिल करने में दिक्कतें पेश आई और उनको वक्त पर परिमिट हासिल न होने की वजह से देर से आना पड़ा। हमें पिछले दिनों से इसका तजुरबा है कि जिन लोगों ने पाकिस्तान से वापस आकर अपने परिमिटों को मंसूख कराने और परमानेंट और हिन्द यूनियन के शहरी होने के मुतल्लिक लोकल हुक्काम को गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के नोटिफिकेशन के मुताबिक दरख्वास्तें दें कि उनको परमानेंट नहीं किया गया और परिमिटों को उनकी मियाद के अन्दर मन्सूख नहीं किया। हमारा तजुरबा है कि एडमिनिस्ट्रेशन की जानिब से अक्सर इस किस्म की मुश्किलात पैदा कर दी जाती हैं। चुनाचः इन लोगों को अपने मुतल्लिक डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों ने इस बात का मुख्तलिफ तरीकों से इतमीनान दिलाया कि उनके बारे में तहकीकात हो रही है और उनकी दरख्वास्तें पुलिस में तहकीकात के लिये भेज दी गई हैं। वहां से जवाब आने पर तुम लोगों को येस या नो का जवाब दिया जायेगा। लेकिन नतीजा यह निकला कि तीन चार महीने गुजरने के बाद भी उनको कोई जवाब नहीं मिला। और अब जब कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया का दूसरा नोटिफिकेशन निकला, तो मुख्तलिफ सूबों के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों ने उनको बगैर येस या नो का जवाब दिये ही इस ऐलान का हवाला देकर कहा कि तुम यहां से वापस चले जाओ। इस तरह से वह लोग जो एक, दो या तीन माह की मुद्दत लेकर यहां पर मुस्तकिल शहरी और परमानेंट होने के लिए आये थे, उनकी दरख्वास्तों को मंसूख कर दिया। और बजाय येस या नो के जवाब के उनको फौरन वापस

[मौलाना मुहम्मद हिफ़्ज़ुर रहमान]

जाने के लिये कहा। ऐसा करने से सैकड़ों, नहीं बल्कि हजारों लोगों को दिक्कतें पेश आईं। और इन लोगों को 10 या 15 दिन का मौका भी नहीं दिया गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत से लोग यू.पी., मशरकी पंजाब और दूसरे सूबों में लोगों को इस बिना पर कैद कर दिया गया कि वह मुद्दत के बाद मजबूरन वापस जा रहे थे। यह वाकया है कि बहुत से लोग जो यहां पर दो या तीन महीने से हक शहरियत हासिल करने के लिये आये थे, उनकी दरख्वास्तों पर इतने अर्से में कोई ऐक्शन नहीं लिया गया। यहां तक कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया का दूसरा नोटिफिकेशन निकला और उसके बाद जब उनको इसका हवाला देकर कहा गया कि तुम वापस चले जाओ, तो उन्होंने 10, 15 दिन की मोहलत मांगी, मगर उनको मोहलत भी नहीं दी गई। चुनाचः इसके बाद अगर कोई इस ख्याल से रुका रहा कि वह मजीद दरख्वास्त करे, तो उसका नतीजा यह हुआ कि वह जेल भेज दिया गया। चुनाचः कुछ लोग अब तक जेलों में सड़ रहे हैं। जो लोग यहां पर परमानेंट परिमिट लेकर आये हैं, और उनको शहरी तसब्बुर करने के लिए रजिस्ट्रशन की जरूरत है, तो अगर उनको इस रजिस्ट्री के लिये सिर्फ दरख्वास्त ही देनी होगी, जिसके बाद वह रजिस्टर्ड कर लिये जायेंगे, तो यह बात किसी हद तक ठीक है। मगर इस बात को यहां तक साफ करना चाहिये कि न उनको रजिस्ट्रेशन के लिए सिर्फ एक दरख्वास्त देने की जरूरत होगी, जिस पर वह बहैसियत शहरी के रजिस्टर्ड कर लिये जायेंगे। आप यहां जो कान्स्टीट्यूशन पास कर रहे हैं, उसके पास होने से किसी को भी दुशवारी नहीं होनी चाहिये। अगर आप इस बात को यहां पर साफ नहीं करेंगे तो इसका मतलब यह होगा कि यह एक नाइंसाफी की जा रही है। क्योंकि अगर दरख्वास्त देने के बाद दुबारा तहकीकात की जाये और तहकीकात खत्म होने पर ही उनको कहा जायेगा कि तुम्हें रजिस्टर्ड किया जायेगा या नहीं तो आप खुद अन्दाजा लगायें कि क्या यह इंसाफ की बात है। मैं तो इसको इंसाफ के खिलाफ समझता हूं और हजारों हकीकी शहरियों के लिये मुश्किलात का बायिस तसब्बुर करता हूं। जब आपने इनको परमानेंट परिमिट देकर इस बात की इजाजत दी है कि वह यहां रहने के लिए आयें, तो आप जो यहां पर यह कांस्टीट्यूशन बना रहे हैं, उसकी रूह से इन लोगों को मजबूर कर रहे हैं कि वह रजिस्ट्री के लिए दरख्वास्तें दें। फिर इनकी दरख्वास्तों पर लोकल हुक्काम तहकीकात करें और उस तहकीकात के बाद वह उनकी बतायें कि आया वह इस काबिल हैं कि बहैसियत शहरी के रजिस्टर्ड कर दिये जायें या नहीं। आपको मालूम है कि हजारों की तादाद में मेवोज, जो फसादात की वजह से अपने घरों को छोड़कर चले गये थे, वह वापस आये हैं। अगर इन लोगों के साथ ऐसा किया जाये तो यह कहां का इंसाफ होगा। इस बिना पर इस 5-एए में इसको साफ होना चाहिये और रजिस्ट्रेशन की पोजीशन यह होनी चाहिये कि लोकल हुक्काम को किसी तरीके से रद्द करने का हक न हो। जब इस क्लाज का निफाज हो, और जब यह उसूल तय हो जाये तो साफ-साफ ऐलान होना चाहिये और नोटिफिकेशन होना चाहिये कि किसी को रद्द नहीं किया जायेगा। सिर्फ जाब्ता के लिये रसम पूरी करनी होगी। चूंकि वह बाद में आये हैं इसलिये वह अपने को रजिस्टर्ड करा लें। और अगर इसमें तफतीस और इंक्वायरी का मौका है तो मैं कहूंगा कि यह हरगिज नहीं होना चाहिये। यकीनन इसमें तरमीम और नजरसानी होनी चाहिये और मौका देना चाहिये, उन लोगों को जो यहां के रहने वाले थे और गड़बड़ की वजह से चले गये थे। और फिर यहां किसी माल, मकान या जायदाद को समेटने के लिये नहीं बल्कि अपना घर बनाकर रहने के

लिये आये हैं, जो कि गरीब हैं, मेव हैं और हिन्द के मुख्तलिफ हिस्सों के रहने वाले हैं। मुसलमान भी हैं और नानमुसलमानों में क्रिश्चियन और दूसरे लोग भी होंगे, इनको मुख्तलिफ तरीकों से आसानियां बहम पहुंचाना चाहिये और अगर ऐसा नहीं किया गया तो इनको दिक्कत पेश आयेगी। लोकल हुक्काम के हाथ इनको परेशानी उठानी पड़ेगी। इसलिये मेरी ख्वाहिश है कि इसमें दो तरमीमें होनी चाहिये।

एक तरमीम 5ए में इस बात की होनी चाहिये कि जो तारीख मुकर्रर की गई, है वह गवर्नमेंट के आखिरी नोटिफिकेशन के मुताबिक 1 अगस्त और 19 जुलाई नहीं, बल्कि इसके बजाय 11 सितम्बर सन् 1948 रखना चाहिये। अगरचः इसमें महीने डेढ़ महीने का ही फर्क पड़ता है, लेकिन हजारों आदमियों को सिटीजन होने के बाद वह शहरी हक जो उनको जरूर मिलने चाहियें वह मिल सकेंगे और उनसे वह फायदा उठा सकेंगे।

दूसरी तरमीम मेरी यह है.....

अध्यक्षः मौलाना इस तरह की तरमीम तो कोई नहीं आई।

मौलाना हिफ़्ज़ुर रहमानः जी, तरमीम मैंने पहले नहीं पेश की। लेकिन मैंने ड्राफटिंग कमेटी के बाज मैम्बरान डाक्टर अम्बेडकर और श्री गोपालस्वामी आयंगर की तवज्जह दिलाई थी। पहले अमैंडमेंट के मुकाबले में उनकी जानिव से इस मौजूदा अमैंडमेंट में परमानेंट परिमिट हासिल करने वालों के मुताल्लिक यह क्लाज इसी गुफ्तगू का नतीजा है। ताहम मैं इसमें यह कमी महसूस करता हूं। इसलिए अब सिवाय इसके कोई हक नहीं है कि मैं यहां इजहार ख्याल करूं और इसे ड्राफटिंग कमेटी के सामने पेश करूं। और अगर इसमें कोई कानूनी सूरत हो सकती है, तो वह इस पर दुबारा तवज्जह करें।

बहरहाल दूसरी चीज के बारे में मैं खुसूसियत के साथ यह जरूर कहूंगा कि इन लोगों को आपने इस क्लाज में अगर शामिल किया है, तो उनको वह शहरी राईट मिलने चाहियें, क्योंकि वह यहां के सिटीजन हैं, और गड़बड़ के जमाने में चले गये हैं। लोकल गवर्नमेंट ने और लोकल हुक्काम ने अपने कायदों के मुताबिक जांच करके उनको यहां का शहरी तस्लीम कर लिया और सिटीजन मान लिया। अब इनको इन शर्तों के साथ पाबन्द नहीं करना चाहिये कि जब तक वह रजिस्ट्रेशन न करायें, शहरी नहीं होंगे। और अगर वह छह महीने के अन्दर रजिस्ट्रेशन नहीं करायेंगे तो उनके शहरियत के हक चले जायेंगे। मैं यह कहना चाहता हूं कि कितने ही ऐसे आदमी हैं, जो इन कानूनी चीजों से पूरी तरह वाकिफ नहीं हैं। यकीनन यह कोई जरूरी नहीं है कि हर शख्स को इन चीजों से वाकिफ होना ही चाहिये। ताहम इसमें इस बात का मौका नहीं दिया गया है कि वह अपने शहरी हक को बाआसानी पा सकें।

पं. ठाकुरदास भार्गवः क्या मौलाना साहब फरमावेंगे कि जिनको परमिट दिया गया था, उनको सिटीजन किस माने के अन्दर माना गया है?

मौलाना हिफ़्ज़ुर रहमानः मौजूदा कानून में।

पं. ठाकुरदास भार्गवः इसमें हरगिज नहीं माना गया है।

मौलाना हिफ़्ज़ुर रहमानः यकीनन माना गया है और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों ने कहा है कि वह यहां के वाशिन्दे हैं।

पं. ठाकुरदास भार्गवः वाशिन्दे नहीं हैं।

मौलाना हिफ़जुर रहमानः नहीं है। मेरे पास कानूनी सबूत मौजूद हैं, जिसमें तहरीर है कि ये हिन्द यूनियन के वाशिन्दे हैं और गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के नोटिफिकेशन के मुताबिक हम इसको यहां का सिटीजन शहरी मानते हैं। यह डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की जानिब से है, जो कि इन परमिटों पर लिखा गया है। इसलिये मैं चाहता हूं कि जो मुश्किलात इनके लिये हैं, इनको यहां के वाशिन्दों की हैसियत से देखना चाहिये। जहां तक यहां के रहने वालों का सवाल है, आपने कोई शर्त और पाबन्दी नहीं रखी है। अलबत्ता अगर वह यहां से चले जाने वाले हों, तो इसके लिए दूसरा कानून है, दूसरा तरीका है जिसके जरिये से इसकी सिटीजनशिप मन्सूख करने के लिये अख्तियार दिये गये हैं। लेकिन जिनको आपने इन परमिटों में शहरी मान लिया है, इनको कैंसिल और मन्सूख करने का हक लोकल हुक्काम के हाथ में हरगिज नहीं होना चाहिए। मैं इसको इंसाफ और जस्टिस के खिलाफ समझता हूं और चाहता हूं कि इन लोगों को ये दो हक जरूर मिलने चाहियें।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, नागरिकता का प्रश्न 1947 से सभा के समक्ष है। जब उस वर्ष इस प्रश्न पर बहस हुई थी, तब नागरिकता को निश्चित करने के लिये जो कसौटियां रखी गई थीं, उनकी मूलाधिकार समिति ने दो आधारों पर आलोचना की थी, कि वे बहुत संकीर्ण थीं या बहुत विस्तृत थीं। अब हमारे सामने जो मस्विदा है, वह उस मस्विदे से अधिक पूर्ण है, जो 1947 में मूलाधिकार समिति हमारे समक्ष रख सकी थी, फिर भी हम देखते हैं कि इसकी आलोचना उन्हीं पुराने आधारों पर हुई है। डॉ. अम्बेडकर ने हमारे समक्ष रखे हुए अन्तिम मस्विदे के उपबन्धों की कल स्पष्ट व्याख्या की है। जहां तक मैं अब तक के वाद-विवाद से समझ पाया हूं, अनुच्छेद 5 पर बहुत कम आलोचना हुई है। इसी प्रकार प्रोफेसर के.टी. शाह के अतिरिक्त किसी भी वक्ता ने अनुच्छेद 5-ख के उपबन्धों की आलोचना नहीं की है या शायद ही की हो। आलोचना अनुच्छेद 5-क पर केन्द्रित हुई है।

मैं पहले अनुच्छेद 5 तथा 5-ख की आलोचना को संक्षेप में निबटा करके फिर उन लोगों के विषय में बोलूंगा, जो यह समझते हैं कि अनुच्छेद 5-क से लोगों के लिये भारत के नागरिक बनना अत्यंत सरल हो जायेगा। पहली बात जो मैं इस संबंध में कहना चाहता हूं, वह यह है कि मस्विदे में यही लिखा है कि संविधान के आरम्भ में भारत के नागरिक कौन समझे जायेंगे। अनुच्छेद 5 से 5-ग तक में जो अर्हताएं रखी गई हैं, उनमें कोई वस्तु स्थायी नहीं है। अनुच्छेद 6 से यह सर्वथा स्पष्ट है कि इन अनुच्छेदों के उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी, संसद को नागरिकता के अर्जन तथा समाप्ति और सब सम्बद्ध विषयों पर कोई भी उपबन्ध बनाने का अधिकार होगा। अतः अनुभव से जो त्रुटियां पता लगें, वे आसानी से दूर की जा सकती हैं।

इस प्रस्तावना के साथ मैं संक्षेप से उन बातों का निर्देश करना चाहता हूं, जो प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खंड (क) की आलोचना में कही गई हैं। एक वक्ता ने, मुझे विश्वास है डॉ. देशमुख ने, कहा कि यदि इस अनुच्छेद को विद्यमान रूप में रखा गया तो कोई व्यक्ति, जिसके जन्म के समय उसकी माता भारत में से गुजर रही हो, भारतीय नागरिक बन जायेगा। यह तो इस अनुच्छेद का बिल्कुल

गलत अर्थ है। इस अनुच्छेद के प्रारंभिक शब्दों में पहली ही शर्त यह है कि अनुवर्ती उपबन्ध केवल उन्हीं लोगों पर लागू होंगे जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र में अधिवास हो। अत: किसी विदेशी यात्री का पुत्र, जो भारत में से गुजर रहा हो, ऐसे ही नागरिक नहीं बन सकता, भारत में उसका जन्म होने के ही नाते भारत का नागरिक नहीं बन सकता। क्या केवल यहां जन्म हो जान से ही किसी व्यक्ति को इस देश का अधिवासी माना जा सकता है?

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): यह तो किसी ने नहीं कहा।

***पं. हृदयनाथ कंजरू:** हूं, किसी वक्ता ने कहा है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैंने तो यह कभी नहीं कहा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अस्तु, यदि डॉ. देशमुख को यह बात स्पष्ट याद है, या उन्होंने इस विषय में अपना अभिप्राय बदल लिया है, तो अब उनका जो मत है उससे मैं सहर्ष सहमत हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र ने मेरी वस्तृता को ध्यान से सुना हो।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** जब माननीय सदस्य बोले थे, तब मैं सदन में था, किन्तु हो सकता है मैं उनकी बात को ठीक न समझ पाया हूं या मैंने ठीक प्रकार से न सुना हो। पर अब डॉ. देशमुख के कथन से यह प्रतीत होता है कि इस सदन में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे अनुच्छेद 5 के विरुद्ध कुछ भी कहना हो।

अब मैं अनुच्छेद 5-ग पर आता हूं। प्रोफेसर के.टी. शाह ने जब उस संशोधन की सूचना दी थी, तब शायद के मलाया के भारतीयों के विषय में सोच रहे थे कि यदि किसी देश की राष्ट्रीय विधि के अनुसार यह अपेक्षित नहीं है कि किसी व्यक्ति को उस देश की नागरिकता अर्जन करने के लिये अपने पूर्वजों के देश की नागरिकता का परित्याग करना आवश्यक है, तो कोई कारण नहीं है कि हमारी विधि उसे भारतीय नागरिकता का दावा करने से वंचित करे। जब से हमें संविधान के मस्विदे की प्रति मिली है, मैंने विदेशों में रहने वाले भारतीयों की स्थिति पर बहुत विचार किया है। उसी समय से मैंने यह प्रयत्न किया है कि विदेशों में रहने वाले भारतीयों को, कम से कम कुछ विशेष स्थानों के भारतीयों को, कठिन शर्तें पूरी किये बिना ही भारतीय नागरिक मान लिया जाये। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि अनुच्छेद 5-क की रचना इस प्रकार की गई है कि उन लोगों के अधिकारों का ध्यान रखा गया है, जो शायद उपरोक्त संशोधन भेजते समय प्रो. शाह के दिमाग में थे। स्पष्ट है कि हम उस व्यक्ति को अब भी भारतीय नागरिक नहीं मान सकते, जिसके पूर्वज दो सौ वर्ष अन्य देश में जा बसे थे। ऐसी अवधि की कोई सीमा अवश्य होनी चाहिये, जिसमें भारतीयों के वंशजों को भारतीय माना जा सके, चाहे वे भारत के बाहर रहते हैं। अनुच्छेद 5-ग में उल्लिखित है कि "कोई व्यक्ति जो या जिसके जनकों में से कोई अथवा महाजनकों में से कोई भारत सरकार के अधिनियम 1935 (यथा मूलत: अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था, तथा जो सामान्यता इस प्रकार

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

परिभाषित भारत के बाहर किसी देश में रहता है, भारत का नागरिक समझा जायेगा" यदि उसने कुछ शर्तों को पूरा कर दिया है। अब शर्त यह है कि उसे उस देश में, जहां वह तत्समय निवास कर रहा है, भारत के राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधि द्वारा पंजीबद्ध होना चाहिये। अत: मुझे यह प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 5-ग में केवल मलाया में ही रहने वाले भारतीयों के अधिकारों का ही नहीं वरन अन्य देशों में रहने वाले भारतीयों के भी अधिकारों का ध्यान रखा गया है, जहां उन भारतीयों की स्थिति के विषय में संदेह हो जो वहां बहुत समय से रह रहे हैं। यदि उनमें कोई ऐसे व्यक्ति हों जो अपने आप को अब भी भारतीय नागरिक समझते हों, तो उन्हें अनुच्छेद 5-ग के अंतर्गत भारतीय नागरिकता का दावा करने का अवसर मिलेगा। यदि कोई अनुच्छेद 5-ग के उपबन्धों से लाभ उठाकर भारतीय नागरिक के रूप में पंजीबद्ध नहीं होता, तो यह बात उस देश के प्राधिकरण की दृष्टि में जहां वह रह रहा है, क्या होना चाहिये कि वह भारतीय नागरिक नहीं है, वरन अपने प्रवास के देश का नागरिक है।

अब मैं अनुच्छेद 5-क को लेता हूं। इसी अनुच्छेद पर कल से सदस्यों का ध्यान केन्द्रित है। इसकी आलोचना इस आधार पर की गई है कि इसके उपबन्ध अवांछित रूप से विस्तृत हैं और इससे उन लोगों के लिये नागरिकता का द्वार खुल जाता है, जिन्हें भारतीय नागरिक कहलाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। मैं इस अनुच्छेद के आलोचकों से व्यक्तिगत रूप में सहमत नहीं हूं। हमें शांति से विचार करना चाहिये कि अनुच्छेद 5-क में क्या उपबन्ध है और क्या परिस्थितियां हैं, जिनसे ऐसे अनुच्छेद को संविधान में रखना आवश्यक हो गया है। अनुच्छेद 5-क और 5-कक में असाधारण उपबन्ध हैं, जो विद्यमान असाधारण परिस्थितियों से पैदा हुए हैं, भारत विभाजन द्वारा पैदा हुई असाधारण स्थिति से पैदा हुए हैं। आप ऐसे उपबन्ध किसी अन्य देश के संविधान में नहीं पायेंगे। हमें उन लोगों की स्थिति को स्पष्टत: परिभाषित करना है जिन्हें भारत-विभाजन के समय किसी न किसी कारण से पाकिस्तान छोड़ना पड़ा। यहां ऐसे व्यक्तियों की संख्या इतनी बड़ी है कि उनकी स्थिति पर विचार करना पड़ा है। इन लोगों के प्रतिनिधियों ने प्रत्येक प्रयत्न किया कि इन लोगों को आरम्भ से ही भारत के नागरिक मान लिया जाये, और उन्हें कोई शर्तें पूरी न करनी पड़ें। संविधान के मस्विदे में उपबन्ध था कि बाहर से भारत में आने वाले लोगों को अपने आप को भारतीय नागरिकों के रूप में पंजीबद्ध करवाना चाहिये और अपना अधिवास सिद्ध करने के लिए उन्हें यह दिखाना चाहिये कि वे पंजीयन से पूर्व एक मास तक भारत में निवासी थे। पर ये शर्तें शरणार्थियों के प्रतिनिधियों को स्वीकार्य नहीं थीं। वे चाहते थे कि इन लोगों को बेशर्त ही भारतीय नागरिक मान लिया जाये। अत: अनुच्छेद 5-ग में यह बात रख दी गई है कि वे सब लोग, जो पाकिस्तान में अपने घरों को 19 जुलाई, 1948 से पहले स्थायी रूप में छोड़कर भारत प्रव्रजन कर आये, वे किसी शर्त को पूरी किये बिना ही भारत के नागरिक होंगे, यदि वे प्रव्रजन के पश्चात् यहां रहते रहे हैं।

तत्पश्चात्, अनुच्छेद 5-क में जिन व्यक्तियों की चर्चा है, उनमें अगली श्रेणी उन व्यक्तियों की है, जो 19 जुलाई, 1948 से भारत को प्रव्रजन कर आये हैं। यदि हम उन लोगों की बात सुन लेते, जो यह चाहते हैं कि उन सब लोगों

को बिना पूछताछ किये और बिना किसी शर्त के भारत का नागरिक मान लिया जाये, जो अब तक पाकिस्तान से आये हैं या जो संविधान की आरम्भ तिथि तक पाकिस्तान से आयेंगे, तो मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद पर अधिक कड़ी आलोचना होती। फिर यह बात सकारण कही जा सकती थी कि इससे उन लोगों को भारतीय नागरिकता अर्जन करने का अवसर मिल जाता, जिन्हें उनका कोई हक नहीं है।

श्रीमान, यह भी कहा गया है कि हमें यह विचार करना चाहिये कि क्या, पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन के अनुसार, इस अनुच्छेद के उपबन्धों को अधिक कड़ा न बना दिया जाये, जिससे कि यह केवल उन्हीं पर लागू हो जो असैनिक उपद्रवों या ऐसे उपद्रवों की आशंका के कारण अपने घर छोड़ आये हैं। यदि ऐसी शर्त रखी गई तो यह बहुत अद्भुत बात होगी। किसी व्यक्ति के लिये यह सिद्ध करना कैसे संभव होगा कि उसने अपना घर उपरोक्त किसी कारण विशेष से छोड़ा है? और पंजीयन-अधिकारी कैसे निश्चय कर सकेंगे कि उसका दावा ठीक है या नहीं? पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन पर एक और भी गंभीर आपत्ति है। वे कहते हैं कि भारत की नागरिकता उन लोगों को ही प्राप्त नहीं होनी चाहिये जो असैनिक उपद्रवों के कारण या ऐसे उपद्रवों से आक्रांतित होकर भारत आ गये हैं, वरन उनको भी प्राप्त होनी चाहिये, जो भारत शासन अधिनियम 1935 में परिभाषित भारत में अधिवासी थे और विभाजन से पूर्व भारत में रहते हुए उन्होंने अब स्थायी रूप से भारत में रहने का निश्चय कर लिया है, या इस समय पाकिस्तान में अंतर्गत राज्य-क्षेत्र से भारत राज्य-क्षेत्र को प्रव्रजन कर आये हैं। अब उनके संशोधन में सर्वप्रथम इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिये "having the domicile of India" हम जानते हैं कि इन शब्दों से कठिनाइयां हो चुकी हैं। हम जानते हैं कि जब निर्वाचन आयोग की स्थापना संबंधी अनुच्छेद सदन में पेश किये गये थे, तब इस संबंध में क्या कहा गया था।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि अनुच्छेद 5 में भी ये शब्द हैं, "having the domicile of India" यहां भी ठीक ये ही शब्द हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** यह सच है, पर जैसे मेरे माननीय मित्र जानते हैं, इस संबंध में कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। किन्तु उनके संशोधन पर अन्य आपत्तियां भी हैं। उन लोगों को लीजिये, जिन्होंने असैनिक उपद्रवों या ऐसे उपद्रवों के भय से पाकिस्तान नहीं छोड़ा। उन लोगों को लीजिये, जो सिलहट में रहते थे।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** (क) में उल्लिखित व्यक्तियों को नागरिक पंजीबद्ध नहीं किया जायेगा, क्योंकि वे कभी भी प्रव्रजन करके नहीं आये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** 'प्रव्रजन' का अर्थ जहां तक मैं समझा हूं, यही है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती घरों को सदा के लिये छोड़ दिया है और अब भारत में रहने के लिये आ गये हैं। मान लीजिये कि रेडक्लिफ पंचाट के पश्चात् जो लोग सिलहट में रहते थे, अब वे आसाम या बंगाल चले गये हैं। यदि पंडित ठाकुरदास भार्गव का संशोधन स्वीकृत हो जाये तो उनकी स्थिति क्या होगी? फिर उन लोगों को लीजिये, जो कि 1943 के पश्चात् 1944 या 1945 में प्रांत में आ गये थे। उन्हें इस देश में देशीय बनने का समय नहीं मिला और ऐसे व्यक्तियों

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

की संख्या बहुत होगी। यदि पंडित ठाकुरदास भार्गव का संशोधन स्वीकृत हो जाये तो उनकी क्या स्थिति होगी? उन्होंने जो संशोधन प्रस्थापित किया है, उससे बहुत कठिनाइयां होंगी जिनका उन्हें ध्यान भी नहीं है। इससे शायद उन लोगों के विषय में कठिनाइयां उत्पन्न होंगी, जो पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल को प्रव्रजन कर आये हैं। उन लोगों के लिये यह सिद्ध करना बहुत कठिन होगा कि उन्होंने असैनिक उपद्रवों या ऐसे उपद्रवों के भय से पूर्वी पाकिस्तान में अपने घरों को छोड़ दिया। अब भी पूर्वी पाकिस्तान में लाखों व्यक्ति हैं। फिर वे लोग कैसे सिद्ध कर सकेंगे कि उनकी इन आशंकाओं का कोई आधार है कि असैनिक उपद्रव हो सकते हैं। इस प्रकार सदन देखेगा कि ठाकुरदास भार्गव के संशोधन से कोई कठिनाई उत्पन्न होने के स्थान पर अधिक कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। अत: मैं नहीं समझता कि यह स्वीकृत हो सकता है।

श्रीमान, हमारे समक्ष पेश किये हुए मस्विदे पर एक और आलोचना की गई है, जिस पर विचार करने की आवश्यकता है। अनुच्छेद 5-कक पर विरोधी विचारों के लोगों ने आलोचना की है। एक दो सदस्य हैं, जो यह अनुभव करते हैं कि जो लोग भारत से पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये हैं, उन्हें भारत लौटकर भारतीय नागरिकता का दावा करने का अधिकार नहीं देना चाहिये, जब तक कि वे बहुत शर्तों को पूरी न करें। कुछ और लोग हैं जिनका यह ख्याल है कि उन सब व्यक्तियों को, जो विभाजन के पश्चात् इस देश को छोड़कर गये थे, बिना पूछताछ अपने पुराने घरों को लौटने दिया जाये। पहले विचार के लोगों के मैं यह बताना चाहता हूं कि जो लोग स्थायी रूप से लौटने या भारत में बसने का अनुज्ञा पत्र लेकर आये हैं, केवल वे ही लोग अनुच्छेद 5-कक से लाभ उठा सकते हैं। ऐसे ही भारत को लौटने को लौटने वाले अनुज्ञा-पत्र धारियों को ऐसे व्यक्ति समझा जायेगा, जो 19 जुलाई, 1948 के पश्चात् भारत को प्रव्रजन कर आये हैं। इसका अर्थ यह है कि केवल वे अनुज्ञा-पत्र-धारी जो 19 जुलाई, 1949 तक भारत को लौट आयेंगे, संविधान के आरम्भ पर भारत की नागरिकता का दावा कर सकेंगे। 19 जुलाई, 1949 के पश्चात् जो अनुज्ञा-पत्र-धारी भारत लौटेंगे वे यह सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि वे लौटने के पश्चात् छह मास से भारत में रह रहे हैं। अब अनुज्ञा-पत्र-धारी अर्थात् वे लोग जो भारत में स्थायी रूप में पुरर्वास या निवास का अनुज्ञा-पत्र लेकर लौटे हैं, भारत के नागरिक समझे जाने के हकदार हैं। वे भारत में थे और हमारी सरकार ने सब बातों पर विचार करके, पंडित ठाकुर दास भार्गव और उनके विचारों के अन्य लोगों द्वारा अभिव्यक्त सब आशंकाओं पर विचार करके उन्हें वापस आने दिया है।

क्या हम न्याय के किसी सिद्धांत के अनुसार उन्हें भारतीय नागरिक मानने से इंकार कर सकते हैं? भारत सरकार को यह अधिकार था कि वह उन लोगों को लौटने नहीं देती और उन्हें इस देश में स्थायी रूप से बसने नहीं देती; पर हमारी सरकार ने उन्हें यहां लौटकर बस जाने की अनुमति दे दी है और अब मैं नहीं समझता कि हमारे लिये यह सम्माननीय है कि हम उस अनुमति को वापस ले लें और कह दें कि इन लोगों को अब विदेशी समझा जायेगा। इसके अतिरिक्त उनकी संख्या बहुत सीमित है। अत: ऐसी कोई आंशका नहीं होनी चाहिये कि उनका लौटना हमारे हितों के विपरीत होगा। जहां तक भविष्य का संबंध है, संसद

विधि द्वारा निश्चित करेगी कि कोई मनुष्य किन शर्तों के अनुसार भारतीय नागरिकता का अर्जन या परित्याग कर सकता है। इसलिये, चाहे अनुच्छेद 5-कक के संभावित परिणामों के विषय में कितनी ही आशंका क्यों न हो, पर मैं नहीं समझता कि इसे भारत की शांति तथा सुरक्षा के लिये भयानक समझा जा सकता है। मेरे विचार में मैंने जिन शर्तों की चर्चा की है, वे ऐसी हैं कि उनमें इस देश के आवश्यक हितों का पूरा ध्यान रखा गया है।

मैंने अभी जिस विचारधारा की चर्चा की है, उससे भिन्न अभिप्राय वालों का मत है कि जो लोग भारत से पाकिस्तान गये हैं, उन्हें बिना शर्त के वापस आने दिया जाये, यदि वे कुछ दिन पाकिस्तान में रहने के पश्चात् यह अनुभव करें कि वहां की हालत उनके लिये ठीक नहीं है। मैंने उन लोगों की वक्तृताओं को ध्यान से सुना है, पर मैं नहीं समझता कि उनका दावा उचित है। हम सब जानते हैं कि कुछ लोग, या स्पष्ट कहा जाये तो कुछ मुस्लिम, किन परिस्थितियों में भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे, और वे सब असैनिक उपद्रवों के कारण नहीं गये थे। उनमें से बहुत से पाकिस्तान में बसने के विचार से भारत छोड़कर चले गये, क्योंकि उन्होंने पाकिस्तान बनाने के विचार का समर्थन किया था और क्योंकि उन्होंने सोचा कि वे एक मुस्लिम देश में अच्छा जीवन बिता सकेंगे। क्या हमें औचित्य के साथ यह बात कही जा सकती है कि उन लोगों को बिना किसी शर्त के भारत लौटने दिया जाये? जब वे भारत में थे, तब वे भारत की अखंडता बनाये रखने के विरुद्ध थे और वे मौका मिलते ही भारत छोड़कर अपने इच्छित देश में जा बसे। इन परिस्थितियों में उन्हें कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वे इस देश में बिना शर्त लौटने की मांग कर सकें। किन्तु ऐसे मुस्लिम भी हैं, जो विभाजन के पश्चात् भी भारत में रहना चाहते थे, पर उन्हें बाध्य होकर यहां से जाना पड़ा। जिसे भी 1947 के सितम्बर में दिल्ली की स्थिति का स्मरण हैं, वह मुस्लिमों के मस्तिष्क की स्थिति को अच्छी तरह समझ सकता है। यदि उस समय हजारों मुस्लिम दिल्ली से पाकिस्तान चले गये, तो क्या यह उचित है कि हम उनके पूर्वेतिहास का पूरा पता लगाकर उन्हें भारत में आने देने से या नागरिकता के अधिकारों से वंचित करें? मैं नहीं समझता, श्रीमान, कि इन लोगों के मामले में, जिन्हें हमने अपने आचरण द्वारा भारत से निकाल दिया है, हम उनके नागरिकता-अधिकार के बनाये रखने पर आपत्ति कर सकते हैं, जबकि वे रक्षण-कवच साथ हों जिनकी चर्चा मैंने की है। न्याय और नैतिकता के नाते यह अपेक्षित है कि भारतीय नागरिकता के उनके अधिकार को स्वीकार किया जाये और अनुच्छेद 5-कक में इससे अधिक कुछ नहीं है। मुझे आशा है, श्रीमान, कि मैंने सिद्ध कर दिया है कि अनुच्छेद 5-क और 5-कक के विरुद्ध जो आपत्तियां हैं, वे या तो इस कारण हैं कि उनके उपबन्धों को ठीक प्रकार समझा नहीं गया है, या इस कारण हैं कि इन संशोधनों के जो परिणाम होंगे उन्हें अपूर्ण रूप से समझा गया है। यदि मेरी युक्ति ठीक है, तो इससे सिद्ध हो जाता है कि हमारे समक्ष जो मस्विदा है, उसमें मध्यमार्ग अपनाया गया है; इसमें सब लोगों के न्यायपूर्ण अधिकारों की स्वीकार कर लिया गया है और इस आवश्यक शर्त को भूला नहीं गया है कि केवल उन्हीं लोगों को भारत का नागरिक मानना चाहिये, जो अपने अंतरतम में उसके प्रति निष्ठा रखते हों।

***अध्यक्ष:** मैं सदस्यों को सूचित कर सकता हूं कि मेरा विचार इन अनुच्छेदों पर बहस को सवा बारह बजे समाप्त कर देने का है, जबकि मैं डॉ. अम्बेडकर से उत्तर देने के लिए कहूंगा और फिर संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे लिये यह दुर्भाग्य की सी बात है कि मैं ऐसे समय बोलने के लिए आया हूं, जब कि मेरे माननीय मित्रों श्री ब्रजेश्वर प्रसाद और पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने बहस को बहुत ऊंचे स्तर पर उठा दिया है। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता, भारत-पाकिस्तान एकता और ऐसी ही अन्य बातों पर बोले हैं। किन्तु मैं निर्भय होकर और किसी कृपा की आशंका के बिना कुछ खरी खरी बात कहने आया हूं। मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से कहता हूं कि वे तथ्यों को सुनकर स्वयं यह निर्णय करें कि उन्हें पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का समर्थन करना है या नहीं। यही संशोधन मेरे माननीय मित्र श्री झुनझुनवाला ने (जो इस पर कल बोले थे) भेजा था, और मैंने भेजा था जो आसामी हिन्दुओं का प्रतिनिधि समझा जाता हूं, मेरे माननीय मित्र श्री बसु मतरी ने भेजा था जो आसाम के आदिम जातीय लोगों के प्रतिनिधि हैं और मेरे मित्र श्री लस्कर ने भेजा था, जो आसाम की बंगाल अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि हैं। ये तीन प्रकार के लोग हैं, जिन्होंने पंडित भार्गव का समर्थन किया है। अतएव मैं सदन से एक बार फिर प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह वास्तविक तथ्यों पर ध्यान से विचार करें, केवल कल्पनाओं पर, केवल सिद्धांतों पर, या कैसी बात होनी चाहिये इस इच्छा पर ही ध्यान न दे, और स्वयं निश्चय करें कि इस संशोधन का समर्थन करना चाहिये या डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करना चाहिये।

इस संशोधन द्वारा मैं उन लोगों के लिये नागरिकता के अधिकार चाहता हूं—मेरा विशेषत: आसाम से मतलब है—जो पूर्वी बंगाल से आये थे, क्योंकि वहां रहना उनके लिये असम्भव था। संकुचित रूप से यह तर्क किया जा सकता है कि पूर्वी बंगाल में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति डर या उपद्रवों के कारण नहीं आया है और वह वास्तव में ऐसे स्थान पर नहीं रह रहा है, जहां उपद्रव हुए थे। क्या कोई यह कल्पना कर सकता है कि पूर्वी बंगाल के ये लोग जो पश्चिमी बंगाल या आसाम में आ गये हैं, उनके मस्तिष्क में उपद्रवों का भय नहीं है? क्या उनके मस्तिष्क में सुरक्षा की कोई भावना है? क्या वह सुरक्षा की भावना दो वर्षों की कालावधि के पश्चात् इस कारण बढ़ गई है कि पाकिस्तान एक धर्माश्रित राज्य बन गया है? पंडित कुंजरू की आलोचना के उत्तर में मैं कहना चाहता हूं कि आपको ऐसे मामलों में इस बात का जोर नहीं देना चाहिये कि वह व्यक्ति उपद्रवों से भयातुर होना चाहिये या उपद्रव हो चुके होने चाहिये। यह भय तो प्रत्येक के मस्तिष्क में है ही। ज्योंही कोई हिन्दू या अल्पसंख्यक संप्रदाय का कोई व्यक्ति वहां की गई किसी कार्यवाही के विरुद्ध आवाज उठाता है, तत्काल उपद्रव हो जायेंगे। क्या इस विषय में कोई संदेह है?

अतएव, श्रीमान, पंडित कुंजरू की आलोचना के उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूं कि पाकिस्तान से पश्चिमी बंगाल या आसाम या भारत के किसी भाग में आने वाले व्यक्ति के विषय में उपद्रवों की आशंका की शर्त पर कभी हठ नहीं करना चाहिये।

दूसरी बात......

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** आप वहां आसानी से अनुज्ञा-पत्र प्रणाली बनाकर बाहर के लोगों के आगमन को नियंत्रित कर सकते हैं।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ अभी तक ऐसा नहीं किया गया है। *(बाधा)*

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ दूसरी बात, मैं उन लोगों के लिये नागरिकता के अधिकार चाहता हूं.....

श्री राजबहादुर (मत्स्य का संयुक्त राज्य): पूर्वी बंगाल का विभाजन क्यों नहीं कर देते?

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ मैं उन लोगों के लिये नागरिकता के अधिकार चाहता हूं, जो पहले आसाम प्रांत में सिलहट के निवासी थे, पर जो विभाजन से बहुत पूर्व आसाम के नागरिकों के रूप में आसाम घाटी को आ गये थे और अब आसाम के विद्यमान प्रान्त में रह रहे हैं। मैं पूछता हूं वे नागरिक हैं या नहीं? वे आसाम प्रांत, सिलहट के थे। उन्हें किसी कारोबार वश आसाम आना पड़ा; वे सरकारी नौकरों या व्यापारियों के रूप में आये थे। उन्होंने प्रव्रजन नहीं किया था; उस समय प्रव्रजन का प्रश्न ही नहीं उठा था।

वे कारोबार से आये थे; अब वे आसाम में हैं; वे आसाम में ही रहना चाहते हैं। उन्हें नागरिकता के अधिकार प्राप्त है या नहीं? मैं उनके लिये नागरिकता के अधिकार चाहता हूं।

मैं इस बात को पूर्णत: स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैं पूर्वी बंगाल के उन लोगों के लिये नागरिकता के अधिकार चाहता हूं, जो भविष्य में उपद्रवों की आशंका से या असुरक्षितता की भावना से पश्चिमी बंगाल या आसाम चले गये थे और उन लोगों के लिये भी जो सिलहट से आये हैं, जिन्हें आने के समय तो उपद्रवों को भय या ऐसी कोई आशंका नहीं थी, पर अब जिन्होंने उपद्रवों के भय से यहां रहने का विनिश्चय कर लिया है।

साथ ही मैं इस सदन में यह भी कहने का साहस करता हूं कि मैं उन लोगों को अपवर्जित करना चाहता हूं, जो केवल तीन वर्ष पूर्व आये थे, जिन्होंने आज्ञा भंग आन्दोलन आरम्भ किया था, बलात भूमि पर अधिकार कर लिया था जो कि उनकी नहीं थी, और जिन्होंने कृपालु सरकार को प्रांत में शांति बनाये रखने के लिए सेना का आश्रय लेने के लिए बाध्य कर दिया था। उन लोगों को प्रांत में नागरिकता के अधिकार देने के लिये कहने वाला मैं तो अंतिम व्यक्ति हूंगा और मुझे आशा है कि सबने सच्चाई के साथ इसका समर्थन किया है। मैं यह भी सर्वथा स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैं उन लोगों को अपवर्जित करना चाहता हूं, जो मेरे प्रांत में चोरी छिपे प्रवेश कर गये हैं और जो अब अपने भाइयों से मिल-जुलकर नागरिकता-अधिकार चाहते हैं, इसलिये नहीं कि उनके अपने प्रांत में कोई असुरक्षितता है, पर आसाम प्रांत का अधिक शोषण करने के लिये ऐसा चाहते हैं। मैं उन लोगों को अपवर्जित करना चाहता हूं क्योंकि उन्होंने बहुत पहिले पाकिस्तान के लिये संघर्ष आरम्भ किया था, कुछ ही समय पूर्व से भारत के राजनीतिज्ञों को विभाजन के लिये सहमत हो जाने के लिये बाध्य करने में सक्रिय भाग ले रहे थे; उनकी अपनी संपत्ति है और वे उसका शांति से उपभोग कर रहे हैं; यही नहीं उन्होंने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि वे अल्पसंख्यकों की संपत्ति, जो कि आतंकित होकर भाग आये हैं, कौडियों में खरीद सके हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उनकी क्या संख्या है, कृपया बताइये?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मुझे पता नहीं है। मैं माननीय सदस्य से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरी बात को सुनें। मैं स्वयं सब बातें स्पष्ट कर रहा हूं। मेरी वक्तृता में कोई संदेह या बाधा नहीं होनी चाहिये।

मैं यह बिल्कुल स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैं नहीं चाहता कि उन लोगों को नागरिकता के अधिकार दिये जायें, जो अपनी ही सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर रहे हैं वरन अल्पसंख्यकों की संपत्ति का भी उपभोग कर रहे हैं, जिस संपत्ति के लिये उन्होंने कुछ नहीं दिया है या नाममात्र का मूल्य दिया है। मैं नहीं चाहता कि इन लोगों को जरा भी नागरिकता के अधिकार दिये जायें।

मैं नहीं जानता कि आपने इस संशोधन की रचना कैसे की है; पंडित ठाकुरदास भार्गव का संशोधन कितना त्रुटिपूर्ण है और डॉ. अम्बेडकर का संशोधन कितना सुन्दर है। मैं इसके निर्वचन में सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहता। मैं तो यही चाहता हूं कि मैंने लोगों की जिन श्रेणियों की चर्चा की है, उन्हें समाविष्ट करना चाहिये और नागरिकता-अधिकार मिलने चाहिये, और जिन्हें मैं अपवर्जित करना चाहता हूं उन्हें नागरिकता के अधिकार नहीं मिलने चाहियें। यदि आप अपने संशोधनों को उन तथ्यों के अनुकूल बना सकते हैं, जिनका मैंने उल्लेख किया है तो उन्हें देखकर मैं बता सकता हूं कि वे शर्तें पूरी होती हैं या नहीं। सब कुछ 'प्रव्रजन' शब्द की परिभाषा पर निर्भर है। अभी अभी मेरे पूर्व वक्ता मित्र ने 'प्रव्रजन' की परिभाषा की है। उन्होंने कहा 'प्रव्रजन' का अर्थ है ऐसा व्यक्ति, जो एक स्थान विशेष को छोड़ देता है, संपत्ति को बेचकर या छोड़कर जो किसी अन्य स्थान में जाकर रहने लगा है। यदि यह परिभाषा ठीक है, जैसाकि मैं समझता हूं ठीक ही है, तो आप डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को पढ़कर देख लेंगे कि मैं जो बात चाहता हूं, वह कदापि नहीं होगी और दूसरा कोई जो चाहता है वह बात होगी।

अब, यदि आप शब्द-कोष के अनुसार (Imigration) की परिभाषा करें, तो इसका अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना या पक्षियों के मामले में ऋतु के समय एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना। किन्तु मेरे ख्याल में श्री कुंजरू ने जो परिभाषा रखी है वह सर्वाधिक उचित है। यदि आप उस पर चलें तो आप देखेंगे कि सिलहट से आने वाले लोग, जबकि वह आसाम में था, और वे लोग जो सरकारी नौकरों या व्यापारियों के रूप में आसाम आये थे, वे उस अर्थ में प्रव्रजन करके नहीं आये थे जिस रूप में यह शब्द समझा जाता है। अतएव वे डॉ. अम्बेडकर की परिभाषा के अधीन नहीं आते। वे तो स्वत: ही अपवर्जित हो जायेंगे। यही कारण है कि पंडित भार्गव ने यह संशोधन भेजा है कि वे लोग, जो 1935 के भारत शासन अधिनियम के अधीन भारत में अधिवासी थे, स्वत: ही नागरिक मान लिये जायेंगे यदि वे अब भय के कारण वापस नहीं जा सकते वे लोग, जो प्रव्रजन से बहुत पहले नौकरी या कारोबार के लिये आसाम गये थे, वे प्रव्रजन करने वाले नहीं कहला सकते। अब वे उपद्रवों के भय से अपने घरों को लौटने में असमर्थ हैं। यदि वे रहते हैं तो वे डॉ. अम्बेडकर के संशोधनों के अधीन नागरिकता के अधिकारों को प्राप्त नहीं करेंगे। इस समय भी यह स्थिति है कि उनके बच्चों का महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं हो पाता, क्योंकि वे कुछ

शर्तों को यथा प्रांत के अधिवास को पूरा नहीं कर सकते। किसी प्रांत में अधिवासी बनने के लिये यह अपेक्षित है कि उन्हें वहां 10 वर्ष रहना चाहिये और वहां उनका अपना घर या भूमि होनी चाहिये। अब उनकी स्थिति क्या होगी? यदि इस परिभाषा के अधीन भी उन्हें नागरिकता नहीं मिलेगी तो उनकी हालत क्या होगी?

यदि डॉ. अम्बेडकर अपने अंग्रेजी शब्दों और अंग्रेजी की विधिरूप पदावलि के ज्ञान के प्राधिकार पर हमें यह आश्वासन नहीं दे देते है कि 'प्रव्रजन' शब्द में ऐसे व्यक्ति भी समाविष्ट होंगे, तो मेरा निवेदन है कि पंडित भार्गव के इस संशोधन को स्वीकार करना होगा। पाकिस्तान से ऐसे बहुत से लोग आ रहे हैं जिनके लिये वहां असुरक्षितता नहीं है और जिन्हें वहां कारोबार और नौकरी मिल सकती है। मैं केवल तथ्य ही बता रहा हूं। पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों की क्या हालत है? उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। अल्पसंख्यक जाति का कोई व्यक्ति वहां छोटे से पद पर भी नहीं है। आसाम जाइये और आप देखेंगे कि अल्पसंख्यक वित्त सचिव, शिक्षा सचिव आदि उच्च पदों पर आसीन हैं। पूर्वी बंगाल में व्यापार संस्थाओं और बीमा समवायों का ही मामला लीजिये। कई बीमा समवाय वहां अपनी शाखायें बंद करके भारत आ गये हैं, फिर इन अल्पसंख्यकों के लिये वहां क्या कारोबार रहा? यहां तक कि चिकित्सकों को भी रहने नहीं दिया गया। पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों को वे अनुज्ञा-पत्र भी नहीं दिये जाते, जिनसे कि अधिकांश व्यापार चलता है। फिर, क्या कारण है कि पूर्वी बंगाल से बहुसंख्यक जाति के लोग, जिन्हें वहां ये सब लाभ प्राप्त हैं आसाम आते हैं? कारण यह है कि वे शोषण करना और लाभ उठाना चाहते हैं। क्या आप इसे प्रोत्साहन देंगे? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आसाम सरकार ने भारत सरकार से प्रार्थना की है कि ऐसी प्रविष्टियों को निर्बन्धित करने के लिए अनुज्ञा-पत्र देने का प्राधिकार उन्हें दिया जाये, पर यह बात अस्वीकार कर दी गई। यदि मेरी यह सूचना गलत है, तो मैं उसे स्वीकार कर सकता हूं। माननीय मित्र पंडित कुंजरू और इस सदन के माननीय सदस्यों ने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा कि ढाका में मुस्लिम लीग के एक अधिवेशन में खेद के साथ कहा गया था—मुझे आशा है वह खेद वास्तविक था—कि लगभग तीन लाख मुस्लिम पूर्वी बंगाल के आर्थिक कठिनाई के कारण प्रव्रजन कर गये हैं। अब आप कल्पना कीजिये, जब पूर्वी बंगाल की मुस्लिम लीग 3 लाख के आंकड़े दे रही है तब उन लोगों की वास्तविक संख्या क्या होगी जो इस प्रकार घुसते आ रहे हैं। प्रत्येक प्रांत समृद्ध बनना चाहता है, पर अन्य व्यक्तियों को हानि पहुंचाकर ऐसा नहीं होना चाहिये। यदि आप किसी प्रांत पर ठीक प्रकार शासन करना चाहते हें, तो आपको सदा ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि जनसंख्या का संतुलन इतना न बिगड़े और आपको यह ध्यान रखना चाहिये कि आप उन लोगों को नागरिकता के अधिकार न दें जिनकी उस प्रांत में उपस्थिति अवांछनीय होगी और भारत अधिराज्य के हितों के विपरीत होगी। यही कसौटी मैं इन मामलों में लागू करना चाहता हूं। इस प्रकार के अनुच्छेद की रचना के लिये जो मुख्य शर्त स्वीकृत होनी चाहिये, वह बिल्कुल व्यर्थ हो जाती है, यदि आप प्रत्येक को नागरिकता का अधिकार देने जा रहे हैं, चाहे वे अच्छे नागरिक हो सकें या न हो सके।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

श्रीमान, मैंने स्पष्ट बातें कह दी हैं, और मैं जानता हूं कि कुछ माननीय सदस्य मुझसे असंतुष्ट हो जायेंगे। किन्तु मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि मेरे प्रांत में सब जातियों के लोग जिनमें आसाम के मुसलमान भी हैं, मुझसे बिल्कुल सहमत होंगे। किन्तु मैं जानता हूं कि वे लोग मेरी बातों पर कुपित होंगे जो वहां नये आये हैं जिससे कि वे उस प्रांत उचित और ठीक ठीक प्रशासन में बाधायें डाल सकें। मैं बिल्कुल समझता हूं कि मेरे विरुद्ध बहुत सी भ्रांतियां हैं। कुछ लोगों ने मेरे संशोधन का यह अर्थ निकाला है कि इसका उद्देश्य आसाम में बंगाली हिन्दुओं को आने से रोकना है। यह निर्वचन दुर्भाग्य से मेरे संशोधन का कुछ मित्रों ने किया है। मैं आपको यह भी स्मरण करा दूं कि मेरे अपने प्रांत में मेरे विरुद्ध बहुत से अविश्वास प्रस्ताव पारित किये गये हैं, क्योंकि शरणार्थियों के परामर्शदाता के रूप में मैंने पूर्वी बंगाल के हिन्दू शरणार्थियों का समर्थन किया था। और यह रोचक बात है कि जिन व्यक्तियों को मेरे में अविश्वास है, वे अधिकतया महिला संस्थाओं के हैं। हां, मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर कहेंगे कि मुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि महिलायें तो सदा महिलायें ही रहेंगी; और मैं भी इसी विचार से तसल्ली कर लेता हूं। इस देश की महिलाओं या किसी देश की महिलाओं ने मुझे कभी मान्यता नहीं दी; और इस आयु में तो मैं इसे सहन भी कर सकता हूं कि मैं इस देश के लोगों के महिला विभाग द्वारा मान्यता न पाऊं। पर महिला संस्थाओं को छोड़कर मैं चाहता हूं कि युक्तिपूर्ण पुरुष इस प्रश्न पर उचित प्रकार से विचार करें। मेरा यही प्रयोजन है। यदि युक्तिपूर्ण व्यक्ति मेरा समर्थन करेंगे तो मुझे संतोष हो जायेगा। यदि वे पंडित ठाकुरदास भार्गव का समर्थन करेंगे तो मेरे प्रांत का ही कल्याण नहीं होगा, केवल पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों के हितों की रक्षा नहीं होगी, वरन, अन्ततः इससे भारत का व्यापक रूप से कल्याण होगा। आपको ऐसा एक प्रांत मिलेगा जो पूर्णतः निष्ठावान होगा। जो प्रांत की सरकार के प्रति सत्यनिष्ठ होगा और वे एकमत से भारत अधिराज्य के प्रति निष्ठावान होगा। यदि आप पं. ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार नहीं करेंगे, और उसी प्रकार का दूसरा संशोधन नहीं लायेंगे, तो आपका सीमांत जोखम में पड़ जायेगा, वह प्रांत जोखम में पड़ जायेगा और आपके लिये वह महान जोखिम का कारण बन जायेगा। मैं कचार होकर आया हूं और मैंने उस जिले में देखा है जहां से बरक नदी पार करके आप भारत आते हैं, कि वहां गड़बड़ है; और यदि डॉ. अम्बेडकर का यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो यह कचार का जिला पूरी तरह पाकिस्तान का जिला बन जायेगा, और एक जिला पाकिस्तान को देने का कारण क्या होगा जो हमारे प्रांत में रहना चाहिये था और जिसे रखने के लिए बहुत संघर्ष हुआ था उसे पाकिस्तान में भेज दिया जायेगा। इसका कारण डॉ. अम्बेडकर का यह संशोधन होगा।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं नहीं समझता कि मैं इस नागरिकता के प्रश्न पर सारे अनुच्छेदों के विषय में वक्तृता दूंगा। उन पर विभिन्न वक्ता पहले ही पूरी तरह बोल चुके हैं। मैं केवल दो प्रश्नों पर बोलूंगा जिन पर इस बहस में काफी वाद-विवाद हुआ है।

पहली बात जो मैं लूंगा, वह उन लोगों का प्रश्न है जो भारत से पाकिस्तान गये थे और बाद में उन्होंने अपना विचार बदल लिया है और भारत को अपने पुराने घरों और भूमि को लौटने के लिए आवेदन-पत्र दिया—क्या उन लोगों के

साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा उन लोगों के साथ हो जो पाकिस्तान से भारत को केवल प्रव्रजन कर आये हैं। विभाजन के समय पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों में सामान्यत: वे लोग हैं, जिनके स्थायी घर पाकिस्तान में थे और जिन्हें पाकिस्तान से भगा दिया गया था, तब उन्हें भारत में अपने स्थायी घर बनाने पड़े। उन लोगों के निर्देश से अनुच्छेद 5-क के मस्विदे में लिखा है कि यदि उनका प्रव्रजन 19 जुलाई, 1948 से पूर्व हुआ है तथा वे प्रव्रजन के समय से लगातार भारत में रह रहे हैं, तो वे भारत के नागरिक समझे जायेंगे। पाकिस्तान से भारत को आने के लिए अनुज्ञा-पत्र देने का अध्यादेश जारी होने के पश्चात् जो लोग पाकिस्तान से भारत आये हैं, उन लोगों के विषय में हमने नागरिकता की प्राप्ति उन थोड़े से लोगों तक ही सीमित कर दी है जिन्होंने भारत सरकार के प्राधिकारियों को आवेदन-पत्र देकर अनुज्ञा-पत्र ले लिये हैं, जिससे वे भारत में स्थायी रूप से लौटकर यहां बस सकें। ऐसे लोगों को स्वत: नागरिक नहीं माना जायेगा। इन लोगों को प्राधिकारियों के समक्ष आवेदन-पत्र देने होंगे, और वे प्राधिकारी नागरिकता की मान्यता देने से पूर्व इन व्यक्तियों में प्रत्येक के पूरे इतिहास पर विचार करेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या आप हमें बता सकते हैं कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या लगभग कितनी होगी?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** कुछ समय पूर्व, लगभग दो मास पूर्व, मुझे जो संख्या बताई गई थी वह 2,000 थी। अब वह संख्या 3,000 से अधिक नहीं हो सकती, यह मेरा इस समय का अनुमान है—हो सकता है, इस सीमा से कुछ व्यक्ति कम हों या उस सीमा से अधिक हों।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): उनकी संपत्ति का क्या मूल्य होगा?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मुझे भय है, मैं इन व्यक्तियों की संपत्ति का मूल्य तो नहीं आंक सकता। इस संपत्ति के प्रश्न पर मैं स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं। जो लोग भारत से पाकिस्तान चले गये हैं, चाहे वे स्थायी रूप से पाकिस्तान में रहें, फिर वे उन संपत्तियों के हकदार हैं जो वे पीछे छोड़ गये हैं। जब बाद में उन्हें भारत में स्थायी रूप से लौटकर बस जाने का अनुज्ञा-पत्र मिल जाता है तब वे वापस आ जाते हैं; और अधिकांश मामलों में स्वामित्व के हक के अतिरिक्त, यदि उन्हें पुनर्वास की अनुमति मिल गई है, तो उन संपत्तियों पर पुन: कब्जा भी कर लेते हैं। ऐसी हालत में मेरी समझ में नहीं आता कि नागरिकता के लिये आवेदन-पत्र देने और उसे प्राप्त करने के उनके अधिकारों को मान्यता देने से हम कैसे इंकार कर सकते हैं। नागरिकता को वह अधिकारी, जिसे वह आवेदन-पत्र स्वीकार करने का अधिकार है, अन्य कारणों से अस्वीकार कर सकता है; पर जहां तक संपत्ति का संबंध है, मेरी समझ में नहीं आता कि हम उससे कैसे मुकर सकते हैं। पर हां, एक वैधानिक प्रश्न भी है जो मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने उठाया है कि नागरिकता और संपत्ति में कोई आवश्यक संबंध नहीं है। यह तो हमें निश्चित करना है कि हम उस संपत्ति का क्या करेंगे—क्या उस संपत्ति का कब्जा खो देने के पश्चात् हम उन्हें उस संपत्ति पर पुन: अधिकार करने देंगे। वास्तव में स्थायी रूप से लौट जाने तथा पुनर्वास के इन अनुज्ञा-पत्रों को देने का यह आशय है कि वे अपनी

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

संपत्ति पर ही पुन: बस सकते हैं। किन्तु ऐसे मामले भी हुए हैं जहां यह संभव नहीं हो सका है और कुछ लोगों को जो इन अनुज्ञा-पत्र से लौटे थे, अन्य संपत्ति पर बसाया गया है। ये तो विस्तार की बातें हैं, जिनका निबटारा हम नागरिकता के प्रश्न से अलग ही कर सकते हैं। अब जहां तक इस मामले का संबंध है, यह भारत सरकार द्वारा दिये गये वचन का प्रश्न है, जैसा कि अनेक वक्ताओं ने कहा है। जब हमने इन लोगों को अपने ही अधिकारियों द्वारा पड़ताल के पश्चात् तथा इस प्रयोजन के लिये विशेषत: नियुक्त प्राधिकारियों द्वारा दिये गये लेख्यों के बल पर लौटने दिया है, तो हमारी सरकार के लिए ऐसी बात कह देना ईमानदारी नहीं होगी कि "हम इन लेख्यों वाले व्यक्तियों को यथेष्ट मान्यता नहीं देंगे।"

मैं इस विषय पर अधिक नहीं बोलना चाहता, पर एक दो बातें हैं जो एक वक्ता ने उठाई हैं। पहली बात यह थी कि जो लोग इस प्रकार के अनुज्ञा-पत्र लेकर वापस आये हैं, उन्हें स्वत: ही नागरिकता मिल जानी चाहिये और यह अपेक्षित नहीं होना चाहिये कि वे किसी अधिकारी को आवेदन-पत्र दें और उसके द्वारा नागरिकता अधिकारी की मंजूरी की प्रतीक्षा करे। हमें इस बात पर विचार करना है कि क्या इन लोगों के मामले में हमारे लिये यह अधिक बुद्धिमानी की बात या आवश्यक बात है कि हम उन्हें उन लोगों से अधिक ऊंचे स्तर पर रखे जिनके पास पाकिस्तान में संपत्ति थी और जो उस संपत्ति को वहां छोड़कर 19 जुलाई, 1948 के पश्चात् यहां आ गये हैं। यद्यपि भारत में स्थायी रूप से बसने की उनकी इच्छा सुस्पष्ट है, पर फिर भी उन्हें नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने के लिये अधिकारी को आवेदन-पत्र देना पड़ता है। मैं नहीं समझता कि भारत से जानबूझ कर पाकिस्तान जाने वालों को उन लोगों से ऊंचे स्तर पर रखा जा सकता है जो पाकिस्तान में अपनी संपत्तियों से निकाल दिये गये और उन्हें यहां 19 जुलाई के पश्चात् आना पड़ा। यह एक बात है, जिस पर मैं चाहता हूं कि सदन विचार करे। वे कहते हैं कि ऐसे बहुत से लोग हैं, जो कुछ व्यक्तियों के वक्तव्यों के कारण या किसी न किसी प्राधिकारी के अधीन निकाली गई कल्पित अधिसूचनाओं के कारण इस देश को अनुज्ञा-पत्र लिये बिना ही लौट आये हैं और उन पर इसका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये कि उन्होंने अनुज्ञा-पत्र नहीं लिये थे। मेरे विचार में, श्रीमान, जहां तक भारत से पाकिस्तान जाने वालों का संबंध है, यह तो सुनिश्चित तथ्य है कि उनका पहला कार्य भारत के प्रति निष्ठा का परित्याग करना तथा एक दूसरे राज्य के प्रति निष्ठा ग्रहण करना था। उन्हें भारत में वापस लेने और उन्हें नागरिकता के अधिकार देने से पूर्व हमारे पास कोई सुनिश्चित उपाय होना चाहिये, जिससे कि उनकी भारत लौटने की इच्छा स्पष्टतया अभिव्यक्त हो। इसके अतिरिक्त हमारे पास इस बात का भी सुनिश्चित साक्ष्य होना चाहिये कि वे इस देश में इस देश की सरकार की अनुमति से ही लौटे हैं। इसी कारण इस अनुच्छेद 5-कक में हमने नागरिकता प्राप्ति की अर्हता को उन्हीं लोगों तक निर्बन्धित कर दिया है, जो उन अनुज्ञा-पत्रों के प्राधिकार से भारत आये हैं, जो हमारी बनाई गई विधि प्राधिकार से हमारे अधिकारियों ने उन्हें दिये हैं।

यदि हम इस श्रेणी के लोगों को छोड़ दें, तो हमें बहुत से ऐसे लोगों के मामलों पर विचार करना होगा, जिनका इस देश में नागरिकता का दावा बिल्कुल कच्चा है। संभव है कि कुछ लोगों ने जो भारत को लौट आये हैं, भारत को

फिर अपना स्थायी निवास बना लिया है और वे भारत के नागरिक बनना चाहते हैं और पाकिस्तान लौटना नहीं चाहते। उनके मामलों का निश्चय विधि पर छोड़ देना चाहिये, जो भविष्य में संसद बनायेगी। उनके मामले इतने स्पष्ट नहीं हैं कि हम उन्हें संविधान में ही समाविष्ट करें। अत: मैं सदन से प्रार्थना करता हूं कि वह उस स्थिति को स्वीकार कर ले जो हमने अनुच्छेद 5-कक में रखी है। इसमें सामान्य सिद्धांत यह है कि जो व्यक्ति भारत से पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा। इसमें एक परन्तुक है, जिससे ऐसा व्यक्ति पुन: भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है, यदि वह आवेदन पत्र देकर हमारे प्राधिकारियों से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त कर ले कि वह भारत में वापस आकर अपने घर में और अपने भूमि पर पुन: स्थायी रूप से बस सकता है।

दूसरी बात जिसके विषय में मैं कुछ कहना चाहता हूं, वह मेरे आसाम वाले माननीय मित्र ने उठाई है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं स्पष्टत: नहीं समझ सका हूं कि उन्होंने इस विषय में, जिस पर वे चिन्तित हैं, क्या कहा है। यह तो निस्संदेह सत्य है कि बहुत बड़ी मात्रा में मुसलमान पूर्वी बंगाल से आसाम को जाते हैं। पर विगत में पूर्वी बंगाल तथा आसाम के विषय में मैंने कुछ थोड़ा अध्ययन किया था, उससे प्रकट है कि इस प्रकार का प्रव्रजन कोई नई वस्तु नहीं है। शायद संख्या में थोड़ा सा अन्तर है; पर हमारे समक्ष तो यह प्रश्न रखा गया है कि मस्विदे के इस उपबन्ध के अधीन बहुत से मुसलमानों के लिये रास्ता खुल जायेगा, जो कि पाकिस्तान से भारत आ जायेंगे और पंजीबद्ध होने के लिये आवेदन पत्र देंगे तथा पंजीबद्ध हो जायेंगे, जिससे कि आसाम की आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। अब हमें स्थिति का विशेषण करना चाहिये। उदाहरण के लिये ऐसा कहा जाता है कि आसाम चाहता था कि पूर्वी बंगाल और आसाम के बीच एक अनुज्ञा-पत्र प्रणाली लागू की जाये। आसाम सरकार और भारत सरकार ने आपस में इस विषय पर बातचीत की है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए उन्होंने अनेक सम्मेलन किये और मैं यह कहकर कोई गुप्त बात को नहीं खोल रहा हूं कि इस विषय पर हमारा जो अन्तिम सम्मेलन हुआ था, उसमें भारत सरकार तथा आसाम सरकार के प्रतिनिधियों इन दोनों का यही मत था कि पूर्वी बंगाल और आसाम के बीच ऐसी अनुज्ञा-पत्र-पद्धति आरम्भ करना बुद्धिमानी नहीं होगी, जैसी कि पश्चिमी पाकिस्तान और भारत के बीच है। अब, यदि हम पश्चिमी पाकिस्तान और भारत के बीच की अनुज्ञा-पत्र-पद्धति को पूर्वी बंगाल और आसाम के बीच भी जारी कर दें, तो यह पाकिस्तान को नियंत्रण देना होगा कि वह भी पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के बीच ऐसी ही पद्धति जारी कर दे, और मैं यह बात उन लोगों के लिये कह रहा हूं, जो पश्चिमी बंगाल और आसाम दोनों से परिचित हैं वे यह समझ जायेंगे कि पश्चिमी बंगाल की आर्थिक स्थिति पर इसका कितना महान प्रभाव पड़ेगा। अंतिम सम्मेलन में केवल यही निर्णय हुआ कि हमें पूर्वी बंगाल के आसाम को आने वाले मुस्लिमों के प्रव्रजन को कम करने या रोकने के लिये कोई अन्य उपाय ढूंढने चाहिये या प्रयोग करने चाहिये, और इस मामले की छानबीन हो रही है, और मैं तो यह समझता हूं कि ऐसे प्रकार का कोई विधान बनाना संभव हो सकेगा, जिससे कि आसाम प्रव्रजन को काफी रोक सकेगा। मैं नहीं चाहता हूं कि हमें ऐसे उपाय काम में लेने पड़ें जो देश के पूर्वी सीमान्तों की स्थिति को और उलझा दें। मैं समझ सकता हूं कि इस समय उनका आसाम के लिये क्या अर्थ है, किन्तु हमें इस संभावना की पूर्णत: अवहेलना

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

नहीं कर देनी चाहिये कि आसाम में जैसी स्थिति है, उसमें आसाम सरकार के अत्यधिक जोशीले अधिकारी इस चीज की ऐसा प्रयोग कर सकते हैं कि वह उन बंगालियों पर विपरीत प्रभाव डाले, जो पूर्वी बंगाल से आसाम को प्रव्रजन कर गये हैं या शायद पश्चिमी बंगाल से आसाम को गये हैं। हमें इन सब बातों पर विचार करना है। अब मैं सदन से प्रार्थना करूंगा कि हमें आसाम और पूर्वी बंगाल के बीच की इस कठिनाई को बीच में लाकर, जिसके हल के लिए हम अन्य उपाय ढूंढ रहे हैं, इस नागरिकता की समस्या को और भी उलझन में नहीं डालना चाहिये।

*__सरदार हुकम सिंह:__ श्रीमान, हमें यह बताया गया है कि जो मुस्लिम यहां अपनी संपत्ति छोड़ गये थे और अब वापस आ गये हैं, वे उस संपत्ति के हकदार रहते हैं और जब वे लौट जाते हैं तब उन्हें उनकी संमत्ति लौटा देना साधारण न्याय है। सरकार और कुछ कर ही नहीं सकती। यह बहुत अच्छी बात है। मैं माननीय प्रस्तावक से यह जानना चाहता हूं कि क्या उनके तर्क के अनुसार हम भी जो कि पाकिस्तान से आये हैं और अपनी संपत्ति वहां छोड़ आये हैं, उन संपत्तियों के हकदार हैं। क्या वे हमें कोई ऐसा न्यायालय या न्यायाधिकरण बता सकते हैं, जिसके समक्ष हम जा सकते हैं, और अपने हक-पत्रों को पेश करके वैसा ही न्याय मांग सकते हैं जैसा कि इस परन्तुक के अनुसार उन लोगों को यहां दिया जा रहा है?

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:__ श्रीमान, मैंने भारत में मुस्लिमों द्वारा छोड़ी गई संपत्तियों के विषय में जो बात कही थी, उस पर माननीय सदस्य के कथन में कुछ त्रुटि है। मैंने यह कहा था कि प्रव्रजन मात्र से भारत में उनकी संपत्तियों पर उनका हक समाप्त नहीं हो गया। वह हक तब तक रहेगा जब तक कि दोनों सरकारों में कोई ऐसा निबटारा न हो जाये कि दोनों देशों में उनके हक समाप्त हो जायेंगे। तब तक प्रत्येक व्यक्ति का हक बना रहेगा। चाहे संपत्ति संरक्षक को मिल गई हो, वह उसका प्रबन्ध कर रहा हो, वह उससे किराया वसूल कर रहा हो, किन्तु जब कोई व्यक्ति विशेष वापस आ जाये और उसे अपनी भूमि पर पुनर्वास करने की अनुमति मिल जाये, तब ऐसा होना चाहिये, और मुझे विश्वास है कि उसके लिये हमारी निष्क्रांत संपत्ति विधि में उपबन्ध भी है, कि जब उसे अपनी भूमि पर पुन: अधिकार करने का हक मिल जाये और वह यहां के सब सम्बद्ध प्राधिकारियों को संतुष्ट कर दे कि वह इस देश में स्थायी रूप से बसने के लिए आया है, तब निष्क्रांत समझी जाने वाली संमत्ति उसे लौटा दी जायेगी। दूसरी ओर भी ऐसी ही विधि है। जो लोग पाकिस्तान छोड़कर भारत आ गये हैं, उनके हक वैसे ही बने हुए हैं, किन्तु यदि वे पाकिस्तान सरकार द्वारा दिये गये अनुज्ञा-पत्र से वापस जायें, तो उनके साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा कि हम भारत लौटने वाले मुसलमानों के साथ करना चाहते हैं।

अब, मैं यह नहीं चाहता कि सदन मुझसे यह भी पूछे कि क्या ऐसा सचमुच में होता है। मैं इस विषय की विधि की बात कर रहा हूं। यदि हम भी वापस जाकर यथास्थिति अपनी भूमि या संपत्ति को मांगें, तो हमें कोई नहीं रोकता। वास्तव में, लगभग तीन सहस्त्र लोगों को हमने अनुज्ञा-पत्र दिये हैं और शायद बहुत अधिक

संख्या ने उनके लिये आवेदन-पत्र दिये हैं और उन्हें वे अभी तक नहीं मिले हैं, मुझे भय है कि जो अमुस्लिम पाकिस्तान से भारत आये हों और पाकिस्तान लौटना चाहते हों, उन्हें हम अंगुलियों पर गिन सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे लोगों में, जो शरणार्थी बन कर आये हैं, वापस जाकर अपनी भूमियों पर पुनः अधिकार करने की कोई इच्छा नहीं है, कोई विशेष इच्छा नहीं है, जबकि यह सत्य है कि जो मुस्लिम दूसरी ओर चले गये हैं, उनमें से बहुत ज्यादा लोग वापस आना चाहते हैं।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः इसका क्या कारण है?

*श्री महाबीर त्यागीः हम जाने के लिए तैयार हैं, यदि हमारे साथ सेना भी हो।

*माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः हां, यह ठीक है, पर आपको यह मानना होगा कि मुसलमान बिना सेना के ही यहां वापस आ रहे हैं।

*श्री बिक्रम लाल सौंधी (पूर्वी पंजाब : जनरल): क्योंकि यह एक तरफ प्रवाह है।

*माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः खैर, मैं नहीं समझता कि दोनों देशों में कानूनी स्थिति भिन्न हो।

माननीय सदस्य ने मुझसे जो दूसरा प्रश्न पूछा है कि हम दूसरी ओर अपनी संपतियों पर कब्जा करने का अधिकार वापस पाने के लिये किस न्यायाधिकरण में जा सकते हैं, उनके विषय में मेरा यही उत्तर है कि विधि संबंधी क्षेत्राधिकार भिन्न है। ऐसा कोई भी न्यायालय नहीं है, जहां आप इस प्रश्न को ले जा सकें। आप केवल यही कर सकते हैं कि हमारी सरकार को ही परेशान करें कि वह देखे कि दूसरी ओर हमारे लोगों को वैसे ही अधिकार दिये जायें, और आप जानते ही हैं कि हमारी सरकार इस बात के लिये सदा प्रयत्नशील रहती ही है।

श्री अलगू राय शास्त्रीः मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि नागरिकता के संबंध में जो यह क्लाज हैं इनका बहुत महत्व है और जिस तरह की बहस अभी तक सुनने में आई है उससे मालूम होता है कि इसके ऊपर कुछ और भी वाद विवाद करने की आवश्यकता है। यदि हम इनको जल्दी में पास कर देंगे तो हमको पछताना पड़ेगा। हमको इनके बारे में बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्नों को तय करना है। मैं अर्ज करूंगा कि यदि इस मामले पर हम दोबारा बैठकर विचार करें तो बहुत अच्छा होगा। मेरा यह नम्र निवेदन है कि अगर इनको जल्दी में पास कर दिया गया तो उन लोगों के साथ बड़ा अन्याय होगा जो कि इस विषय में कुछ कहना चाहते हैं। इस प्रश्न से बहुत सी और बातों का संबंध है जिनका कहा जाना आवश्यक है। इसलिये मैं निवेदन करूंगा कि इस नागरिकता के महत्वपूर्ण प्रश्न को जल्दी में न पास कर दिया जाये।

अध्यक्षः 9 घंटे से ज्यादा इस पर बहस हो चुकी है।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? मेरे मित्र जो प्रश्न पूछना चाहते थे वह वास्तव में यह था कि पाकिस्तान में अमुस्लिमों के प्रवेश के संबंध में क्या स्थिति है, और मैं नहीं समझता कि उस प्रश्न का कोई संतोषप्रद

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

उत्तर दिया गया है। हम तो यह जानना चाहते हैं कि हम जिन विचारों तथा आदर्शों को मानते हैं और जिन पर हम दृढ़ हैं, और जिनका हम प्रचार करते हैं और जिन नीतियों को हम स्वीकार करते हैं उन पर किस हद तक माननीय मंत्री ने पाकिस्तान को आचरण करते पाया है?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि वास्तव में उनकी ओर से वैसा संतोषजनक आचरण नहीं हो रहा जैसा कि मैं चाहता हूं

***श्री महावीर त्यागी:** हमें अपनी सरकार की असफलताओं पर बहस नहीं करनी चाहिये। हमें संविधान पर विचार करना चाहिये।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** यह ठीक है। प्रश्न यह है कि दो सरकारें एक बात को निबटाने के लिये मिलती हैं। यदि कोई समझौता नहीं होता है तो असफलता हो जाती पर असफलता एक ओर हुई है या दूसरी ओर है, यह तो एक प्रश्न ही है।

श्री फूल सिंह (संयुक्त प्रांत: जनरल): सभापति जी, इसको आज खत्म न करने के संबंध में क्या फैसला हुआ है?

अध्यक्ष: मैं इसी को अभी पूछ रहा हूं। *[मैं समझा था कि हमने इन अनुच्छेदों पर जो 9 घंटे व्यय किये हैं उनमें हम इन पर काफी बहस कर चुके हैं, और मैं तो व्यक्तिगत रूप में अब इस पर मत लेना चाहूंगा। क्योंकि कुछ सदस्यों ने यह इच्छा प्रकट की है कि वे इस पर आगे बोलना चाहते हैं और बहस करना चाहते हैं, अत: मैं इस पर सदन का मत ले लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अब प्रश्न पर मत लिये जाये।"]

सभा में हाथ उठवाकर मत लिये गये।

हां—59 ना—35

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री अलगू राय शास्त्री:** श्रीमान्, यद्यपि समाप्ति के लिये अधिक मत आये हैं, पर यह देखते हुए कि उन लोगों की भी संख्या बहुत है जो बहस जारी रखना चाहते हैं, मैं चाहता हूं कि आप कृपया इस विषय पर और बहस होने दें।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि अधिक वक्तृताओं से कोई लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा। सब संशोधन सदस्यों के सामने हैं, उन्हें स्वतंत्रता है कि वे जिस संशोधन के पक्ष में मत देना चाहें, दें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद के मस्विदे पर आलोचना करने वालों की प्रत्येक बात को

लिख लेना मेरे लिये संभव नहीं हो सका है। मैं नहीं समझता कि प्रत्येक प्रकार की आलोचना का उत्तर देना आवश्यक है। यह काफी है यदि मैं सारवान प्रश्नों को लेकर उनका उत्तर दे दूं।

मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने कहा है कि प्रारूपित अनुच्छेदों द्वारा हमने अपनी नागरिकता को बहुत सस्ता बना दिया है। मैं समझता हूं कि यदि उन्हें नागरिकता विधि संबंधी नियमों का ज्ञान होता, तो वे समझ जाते कि कि दूसरे देशों की विधि द्वारा नागरिकता जितनी सस्ती बन जाती उतनी हमारी नागरिकता नहीं है।

मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने जो बात कही है कि इन अनुच्छेदों में निश्चित वजन होना चाहिये जिससे कि संसद का अनुच्छेद 6 के अधीन विधि बनाने का प्राधिकार सीमित होना चाहिये जिससे कि संसद उन देशों के निवासियों को नागरिकता न दे सके जो वहां भारतीय निवासियों को नागरिकता नहीं देते, मेरे विचार में यह ऐसी बात है जो संसद पर छोड़ देनी चाहिये कि वह जैसी भी स्थिति हो उसके अनुसार निश्चित करे।

मैं सबसे अधिक उन आलोचनाओं का उत्तर देना चाहता हूं जो अनुच्छेदों के उन भागों पर की गई हैं जिनका संबंध पाकिस्तान से भारत आने वाले प्रव्रजकों से तथा भारत से पाकिस्तान जाने वाले प्रव्रजकों से है। उपबन्धों के प्रथम भाग की, जो पाकिस्तान से भारत आने वाले प्रव्रजकों के विषय में है, आसाम के प्रतिनिधियों ने विशेषत: आलोचना की है, जिनकी ओर से मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी बोले हैं। यदि मैं ठीक समझा हूं तो उनका कहना यह है कि पाकिस्तान से भारत आने वाले प्रव्रजकों से सम्बद्ध इन अनुच्छेदों के कारण पूर्वी बंगाल से आसाम आने वाले बंगालियों और मुस्लिमों के लिए द्वार खुल जाता है जिससे या तो प्रांत की अर्थव्यवस्था बिगड़ जायेगी या इसके सांप्रदायिक संतुलन में गड़बड़ हो जायेगी। मेरे विचार में, श्रीमान, वे इन अनुच्छेदों के उद्देश्य को बिल्कुल गलत समझ गये हैं जो कि पाकिस्तान से भारत आने वाले प्रव्रजकों के विषय में हैं।

यदि वे उपबन्धों को फिर पढ़ेंगे तो वे देखेंगे कि केवल उन लोगों के विषय में जो 19 जुलाई 1948 से पूर्व आसाम आये थे, यह उपबन्ध है कि वे आसाम के नागरिक घोषित कर दिये गये हैं यदि वे भारत के राज्य-क्षेत्र में रह चुके हैं। किन्तु जो लोग 19 जुलाई 1948 के पश्चात् आसाम आये हैं, चाहे वे हिन्दू बंगाली हों चाहे मुस्लिम, उनके विषय में नागरिकता स्वयंमेव मिल जाने वाली वस्तु नहीं है। जो लोग 19 जुलाई 1948 के पश्चात् आसाम में प्रविष्ट हुए हैं उनके लिये तीन शर्तें रखी गई हैं। पहली शर्त यह है कि उसे नागरिकता के लिए आवेदन-पत्र देना होगा। उसे यह सिद्ध करना होगा कि वह लगभग 6 मास आसाम में रह चुका है, तीसरी बात एक बहुत कठोर शर्त है कि उसे भारत अधिराज्य की सरकार द्वारा नियुक्त किसी अधिकारी से पंजीबद्ध होना होगा। मैं स्पष्टत: कहना चाहता हूं कि यह पंजीबद्ध करने की शक्ति पूर्ण शक्ति है। केवल इसलिये कि किसी व्यक्ति ने आवेदन-पत्र दिया है, केवल इसलिये कि वह छह मास आसाम में रह चुका है, इन्हीं बातों के कारण पंजीयन अधिकारी पर कोई उत्तरदायित्व या कर्तव्य या बाध्यता नहीं आ पड़ेगी कि वह उसे पंजीबद्ध कर ले। चाहे उसने आवेदन-पत्र दिया हो, चाहे वह छह मास रह चुका हो, पर अधिकारी को फिर भी काफी स्वविवेक की शक्ति होगी कि वह उसे पंजीबद्ध करे या न करे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरे शब्दों में, अधिकारी को यह जानने का हक होगा, कि उसके समक्ष उपस्थित साक्ष्य के अनुसार, वह व्यक्ति किस उद्देश्य से आया था, क्या वह भारत का स्थायी नागरिक बनने के सच्चे उद्देश्य से आया था या किसी अन्य उद्देश्य से आया था। अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इन तीन शर्तों के रहते हुए जो कि 19 जुलाई 1958 के पश्चात् आसाम आने वाले लोगों पर लागू की गई हैं, मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी द्वारा अभिव्यक्त यह आशंका नितांत निराधार है कि आसामी लोगों पर बंगालियों या मुस्लिमों के छा जाने के लिए द्वार खुल जायेगा। यदि उन्हें उन लोगों पर आपत्ति है जो 19 जुलाई 1948 से पूर्व बंगाल में प्रविष्ट हुए हैं–इस मामले में ऐसा सिद्ध करने पर कि वह भारत में निवास कर चुका है, नागरिकता स्वत: मिल जाती है—निस्संदेह इस विषय पर संसद् अनुच्छेद 6 के अधीन विधि बना सकेगी। यदि मेरे आसामी मित्र संसद् को विश्वास दिला सकेंगे कि जो लोग 19 जुलाई, 1948 से पूर्व आसाम आये हैं उन्हें, किसी कारण से जो वे संसद के समक्ष रख सकें, अनर्ह बना देना चाहिये, तो मुझे संदेह नहीं है कि संसद उस मामले पर विचार करेगी। अत: पाकिस्तान से आसाम को प्रव्रजन करने वाले लोगों के विषय में जो अनुच्छेद हैं उनकी आलोचना पूर्णत: निराधार है।

अब मैं उस आलोचना पर आता हूं जो भारत से पाकिस्तान चले जाने वाले प्रव्रजकों संबंधी उपबन्धों पर की गई है। मेरे विचार में इन अनुच्छेदों की आलोचना करने वालों ने भी ठीक प्रकार इनके उद्देश्य को नहीं समझा है। अत: मैं पुन: बताना चाहता हूं कि इन अनुच्छेदों में क्या है। भारत से पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वाले लोगों के संबंध में उपबन्ध हैं उनके अनुसार, एक छोटे से अपवाद के अतिरिक्त उन सब लोगों को, जो मार्च 1947 के पश्चात् भारत से चले गये हैं, नागरिक नहीं माना गया है। मेरे विचार में इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। यह एक व्यापक और सामान्य सिद्धांत है जो हमने रख दिया है। इस बात को रखना अपेक्षित था, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार जन्म से अधिवास-अधिकार मिल जाता है, अत: किसी व्यक्ति को जन्म का अधिवास प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, न उसके लिए आवेदन-पत्र देना होता है और न कुछ और करना होता है। अधिवास का आरम्भ जन्म से होता है। यह विचार किया गया कि जो लोग पाकिस्तान चले गये हैं, पर भारत में उत्पन्न हुए थे, हो सकता है, वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार पर अब भी यह दावा करें कि उनका जन्मना अधिवास तो अभी पूर्णवत ही है। इसलिये, उनके पास ऐसी सफाई देने को न रहे, यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देना ही ठीक समझा गया कि जो व्यक्ति प्रथम मार्च के पश्चात् पाकिस्तान चला गया है, उसका भारत में नागरिकता-अधिकार समाप्त हो जायेगा—आप सब जानते हैं कि हमने 1 मार्च बहुत सोच समझकर रखा है, क्योंकि उसी तारीख से उपद्रव आरम्भ हुए थे और प्रव्रजन आरम्भ हो गया था और हमने सोचा कि ऐसे व्यक्ति का नागरिकता-अधिकार समाप्त कर देने में अंतर्राष्ट्रीय न्याय के किसी सिद्धांत का हनन नहीं होगा जो उपद्रवों के फलस्वरूप स्थायीरूपेण पाकिस्तान में बसने के लिये चला गया है। उन दो बातों की व्यवस्था करने के लिए हमने स्वाभाविक धारणा को विधि नियम में परिणत कर दिया है और यह बात रख दी है कि जो 1 मार्च के पश्चात् पाकिस्तान गया है उसे यह कहने का हक नहीं होगा कि भारत में उसका अब भी अधिवास है।

अनुच्छेद 5 के अनुसार जिसमें नागरिकता के लिये अधिवास अपेक्षित है, पाकिस्तान जाने वालों का अधिवास और नागरिकता समाप्त हो गई है।

अब, मैं एक अपवाद को लेता हूं। ऐसे लोग हैं जो भारत से पाकिस्तान चले जाने के पश्चात् फिर वापस भारत लौट आये हैं। वहा भी, हमारा नियम यह है कि जो भारत को लौट आयेगा उसे तब तक नागरिक नहीं माना जायेगा जब तक कि वह कुछ शर्तों को पूरा न करें। पाकिस्तान जाने और भारत लौट आने से हमारे बनाये हुए सामान्य नियम में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा कि ऐसा व्यक्ति नागरिक नहीं समझा जायेगा। अपवाद यह है: जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर ने कहा है, दोनों सरकारों के मध्य बातचीत के समय, भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार, दोनों सरकारों ने कुछ समझौता कर लिया जिससे कि भारत सरकार सहमत हो गई कि कुछ व्यक्तियों को, जो भारत से पाकिस्तान गये थे, लौटने दिया जायेगा, और उन्हें केवल अस्थायी यात्रा के लिये, या व्यापार के लिये या किसी अन्य अस्थायी कारण के लिये, रोगी संबंधी से मिलने के लिये, नहीं लौटने दिया गया है वरन् उसे स्पष्टत: भारत लौटकर यहां बस जाने तथा स्थायी रूप से रहने की अनुमति दी है। अब ऐसे व्यक्ति हमारे यहां हैं। अत: प्रश्न यह है कि हमने इस अनुच्छेद में जो नियम रखा है कि जो लोग पहली मार्च 1947 के पश्चात् भारत से पाकिस्तान गये हैं, क्या उनके विषय में कोई अपवाद रखा जाये या नहीं? यह अनुभव किया गया और अपनी ओर से मैं निवेदन करता हूं कि ठीक ही अनुभव किया गया कि जब सरकार ने किसी व्यक्ति को पुराने अधिवास में लौटने और वहां स्थायी रूप से बस जाने की अनुमति दे दी है, तब उस व्यक्ति को नागरिक बनने की अर्हता से वंचित करना ठीक नहीं होगा। जैसाकि मेरे मित्र, श्री गोपालस्वामी आयंगर ने कहा है, इस श्रेणी के लोगों की संख्या, हमारे यहां हिन्दुओं और मुस्लिमों की बड़ी संख्या देखते हुए, बहुत कम है, लगभग दो तीन हजार है। मेरे ख्याल में, बहुत बुरा लगेगा, विश्वास का उल्लंघन दिखेगा, यदि हम यह कह दें कि हम उन्हें इस विशेषाधिकार से वंचित कर दें जिन्हें, हमारी सरकार ने, चाहे ठीक है या गलत, यहां स्थायी रूप से बसने के लिए पाकिस्तान से आने दिया है। इस सदन को यह अधिकार है कि वह एक विधेयक पारित करके भारत सरकार को रोक सकते हैं कि वह अनुज्ञा-पत्र प्रणाली को आगे जारी न रखे। यह इस सदन के अधिकार और शक्ति में है, पर मैं नहीं समझता कि सदन जनता की इच्छानुसार कार्य कर रहा होगा यदि वह कह दे इन लोगों को नागरिकता के अधिकार से वंचित कर देना चाहिये, जो कि बहुत थोड़े से हैं और हमारी सरकार के ही आश्वासन पर यहां बसने के लिये आये हैं। श्रीमान, मैं नहीं समझता कि इन अनुच्छेदों पर जो आलोचना की गई है उसमें कोई सार है और मैं आशा करता हूं कि वे जैसे हैं उसी रूप में सदन उन्हें स्वीकार कर लेगा।

***अध्यक्ष:** अब, मैं विभिन्न संशोधनों पर मत लूंगा। यह निश्चय करना कुछ कठिन है कि इन संशोधनों को किस क्रम से लिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उन सबको वापस ले लिया जाये।

***अध्यक्ष:** जिस क्रम से वे संशोधन विविध वक्ताओं द्वारा पेश किये गये थे, उसी क्रम से मैं उन पर मत लूंगा और यदि कोई माननीय मित्र अपने संशोधन

[अध्यक्ष]

को वापस लेना चाहते हों तो उस आशय की अपनी इच्छा प्रकट कर सकते हैं। सर्वप्रथम मैं डॉ. देशमुख द्वारा पेश किये गये संशोधन को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 5 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'5(1) भारत में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को–

(क) जिसका जन्म भारतीय जनकों से हुआ है; अथवा

(ख) जिसको देशीयकरण विधि के अधीन देशी बना लिया गया है; और

(2) प्रत्येक व्यक्ति को जो हिन्दू या सिक्ख धर्म का अनुयायी है और जो किसी अन्य राज्य का नागरिक नहीं है, चाहे वह कहीं निवास करे भारत का नागरिक होने का हक होगा।'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मैं संशोधन संख्या 29, 116, 118 तथा 119 को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन संख्या 29, 116, 118 तथा 119 सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं संशोधन संख्या 120 को लूंगा।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास: जनरल): यदि संशोधन संख्या 130 स्वीकृत हो जाये तो इसका प्रश्न ही नहीं उठता।

*__अध्यक्ष:__ संख्या 120 निकल गया। फिर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन हैं। वे सब मौखिक हैं। संख्या 4।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया है, पर मैं इस पर जोर नहीं देता।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ फिर संशोधन संख्या 18 है। वे सब रचना संबंधी हैं और मस्विदा समिति के विचारार्थ छोड़े जा सकते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मेरे सब संशोधनों पर मस्विदा समिति विचार कर ले।

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद अपने सब संशोधनों को मस्विदा समिति के विचारार्थ छोड़ना चाहते हैं। अतः उन पर मत नहीं लेने हैं। क्या सदन उनको उस अर्थ में अपने संशोधनों को वापस लेने की अनुज्ञा देता है?

मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के सारे संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्षः** फिर हम श्री जसपतराय कपूर के संशोधनों को लेते हैं। संशोधन संख्या 5।

***श्री जसपतराय कपूरः** (संयुक्त प्रांत : जनरल): मैं अपने संशोधनों को पराजय के दुर्भाग्य से बचाना चाहता हूं: अतः मैं उन सबको वापस लेना चाहता हूं।

श्री जसपतराय कपूर के सारे संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्षः** फिर प्रोफेसर शाह का संशोधन संख्या 203 है

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 5 के खंड (क) में, 'Grand parents' शब्द के पश्चात 'on the paternal side' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 5 के खंड (ख) में, 'Grand parents' शब्द के पश्चात 'on the paternal side' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 5 में–

(1) '5' अंक के पश्चात् कोष्ठक और संख्या '(1)' प्रविष्ट किये जाये;

(2) व्याख्या के पूर्व निम्न परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'Provided further that the nationality by birth of any citizen of India shall not be affected in any other country whose Municipal Law permits the local citizenship of that country being acquired without prejudice to the nationality by birth of any of the citizens; and

Provided that where under the Municipal Law no citizen is compelled either to renounce his nationality by birth before acquiring the citizenship of that country, or where under the Municipal Law nationality by birth of any

[अध्यक्ष]

citizen does not cease automatically on the acquisition of the citizenship of that country.'

[परन्तु यह भी कि भारत के नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता पर किसी अन्य देश में प्रभाव नहीं पड़ेगा जिसकी राष्ट्रीय विधि उस नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता का विरोध किये बिना उसे उस देश की स्थानीय नागरिकता अर्जन करने देती है;

परन्तु जहां राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी नागरिक को उस देश की नागरिकता अर्जन करने के पूर्व अपनी जन्मजात राष्ट्रीयता को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है, अथवा जहां राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी नागरिक की जन्मजात राष्ट्रीयता उस देश की नागरिकता अर्जन करने पर अपने आप ही समाप्त नहीं हो जाती है।]

(3) व्याख्या के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(2) Subject to this Constitution' Parliament shall regulate by law the grant or acquirement of the citizenship of India.' "

(2) इस संविधान के अधीन, संसद विधि द्वारा भारत की नागरिकता की मंजूरी अथवा अर्जन विनियमित कर सकेगी।

संशोधन अस्वीकार हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 6 में अनुच्छेद 5 के नये प्रस्थापित खंड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that Parliament shall not accord equal rights of citizenship to the nationals of any country which denies equal treatment to the nationals of India settled there and desirous of acquiring the local citizenship.' "

[पर संसद किसी भी उस देश के नागरिक को नागरिकता के समानाधिकार नहीं देगी जो देश अपने यहां बसे हुए भारत के नागरिकों को, जो वहां की स्थानीय नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक हैं, समव्यवहार से वंचित करता है।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् हम प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 20 पर आते हैं। मेरे विचार में यह लगभग मस्विदा संबंधी है। क्या इसे मस्विदा समिति पर छोड़ा जा सकता है?

***एक माननीय सदस्य:** हां।

***अध्यक्ष:** फिर मैं इस संशोधन पर विचार करने का कार्य मस्विदा समिति पर छोड़ देता हूं।

संशोधन संख्या 152। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 5-क के खंड (ख) के उप-खंड (1) के अन्त में 'and' शब्द के पहले निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that any person who has so migrated to the areas now included in Pakistan, but has returned from that area to the territory of India since the nineteenth day of July 1948, shall produce such evidence, documentary or otherwise, as may be deemed necessary to prove his intention to be domiciled in India and reside permanently there.'"

[परन्तु कोई व्यक्ति जो उन क्षेत्रों में इस प्रकार प्रव्रजन कर गया हो जो अब पाकिस्तान के अंतर्गत हैं और उन क्षेत्रों में 19 जुलाई सन् 1948 तक भारत के राज्य क्षेत्र में वापस आ गया हो तो वह ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करेगा जो लेख्य संबंधी हों अथवा अन्य प्रकार के हों और जो भारत में निवास करने और स्थायी रूप से बसने के उसके उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए आवश्यक समझे जायें।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 5 के खंड (ग) के अन्त में, 'and subject to the jurisdiction thereof' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन संख्या 12 है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत: जनरल): मैं अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति मांगता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, लौटा लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 5 के खंड (ग) में 'पांच वर्ष' इन शब्दों के स्थान पर 'दस वर्ष' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'notwithstanding anything' शब्दों से लेकर 'at the date of commencement of this Constitution if' तक के शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'Notwithstanding ' anything contained in article 5 of this Constitution a person who on account of civil disturbances or the fear of such disturbances—

(a) having the domicile of India, as defined in the Government of India Act, 1935, and being resident in India before the partition, has decided to reside parmanently in India; or

(b) has migrated to the terriroty of India from the territory now included in Pakistan; shall be deemed to be a citizen of India at the date of the commencement of this Constitution if.' "

[इस संविधान के अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो असैनिक उपद्रव के कारण अथवा ऐसे उपद्रव से भयभीत होकर–

(क) 1935 के भारत शासन अधिनियम में परिभाषित रीति के अनुसार भारत में अधिवास करता हुआ और विभाजन के पूर्व भारत में निवास करता हुआ है और उसने भारत में स्थायी रूप से निवास करना निश्चित कर लिया है; अथवा

(ख) पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्यक्षेत्र से भारत राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है;

इस संविधान के आरंभ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा, यदि]"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के अन्त में निम्न शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें:

'Or if he has before the date of commencement of this Constitution unequivocally declared his intention of acquiring the domicile of India by permanent residence in the territory of India or otherwise and established such intention to the satisfaction of the authority before whom the question of his citizenship arises.' "

[अथवा यदि इस संविधान के आरम्भ की तारीख से पूर्व उसने भारत के राज्य-क्षेत्र में स्थायी निवास द्वारा या अन्यथा भारत में अधिवास करने के उद्देश्य की असंदिग्ध रूप से घोषणा कर दी है और उस अधिकारी के संतोषप्रद रूप में इस उद्देश्य को सिद्ध कर दिया है जिसके समक्ष उसकी नागरिकता का प्रश्न उठता है]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-कक के प्रस्थापित नये परन्तुक में–

(1) 'nothing in this article shall apply to' शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये;

(2) 'or permanent return' इन शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये; और

(3) 'and every such person shall' शब्दों से लेकर 'nineteenth day of July, 1948' तक शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रख दिये जायें:

'shall be entitled to count his period of residence after the nineteenth day of July, 1948, in the territory of India in the period required for qualification for naturalisation or acquisition of citizenship under any law made by Parliament.' "

[संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन देशीयकरण अथवा नागरिकता अर्जन करने का अर्हता के लिये अपेक्षित कालावधि में जुलाई 1948 के उन्नीसवें दिन के बाद के भारत राज्य-क्षेत्र में अपने निवास करने के काल की गणना करने का हक होगा।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के प्रस्थापित परन्तुक में:

(1) 'nothing, in this article shall apply' इन शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये;

(2) 'and every such person shall' इन शब्दों से लेकर 'nineteenth day of July 1948' शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

[अध्यक्ष]

'shall be eligible for citizenship by naturalisation if he fulfils the condition laid down by law and his permit shall be liable to be cancelled on the grounds on which under the law relating to naturalisation the certificate of naturalisation can be cancelled.' "

[यदि वह विधि द्वारा निर्धारित शर्त को पूरा करता है तो देशीयकरण द्वारा नागरिकता का पात्र होगा और देशीयकरण संबंधी विधि के अधीन जिन आधारों पर देशीयकरण का प्रमाण पत्र रद्द किया जा सकता है उन आधारों पर उसका प्रमाणपत्र रद्द भी किया जा सकेगा।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह हैः

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में 'any person' शब्दों के पश्चात् 'having his domicile in the territory of India' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह हैः

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में 'whether before or after' इन शब्दों के स्थान में 'before' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह हैः

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख में अन्त के शब्द 'or the Government of India' अपमार्जित कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह हैः

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ख के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जायेः

'Provided he has not abandoned his domicile by migrating to Pakistan after 1.4.1947 of acquired after leaving India the citizenship of any other State.' "

[परन्तु यदि उसमें 1 अप्रैल 1947 के पश्चात् पाकिस्तान में प्रव्रजन कर अपने अधिवास का परित्याग न किया हो अथवा भारत छोड़कर किसी अन्य राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली हो।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क में 'deemed to be' ये शब्द अपमार्जित कर दिये जायें''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष**: फिर संशोधन संख्या 123 है।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

***अध्यक्ष**: संशोधन संख्या 150 भी आपके नाम से है।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला**: मैं उसे भी वापस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष**: तत्पश्चात् हम श्री एस. नागप्पा के संशोधन संख्या 21 को लेते हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन को स्वीकार करने की सहमति अभिवक्त कर दी है, श्रीमान्।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर**: सारी चीज को देखकर हम इस पर विचार करेंगे, यदि भाषा ठीक है।

***अध्यक्ष**: यह रचना संबंधी ही है कुछ और नहीं। अतः यह मस्विदा समिति पर छोड़ दिया जाता है।

प्रश्न यह है–

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 4 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 131 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-कक के प्रस्थापित परन्तुक को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-क के खंड (ख) के उप खंड (2) में 'before' शब्द के पश्चात् 'or after' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 5-ग के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'इस विषय में संसद जो विधि पारित करे उसके उपबन्धों के अधीन रहते हुए, पूर्ववर्ती उपबन्धों में उल्लिखित नागरिकता की अर्हताऐं यथा स्थिति उन लोगों पर भी लागू होंगी जो कि इस संविधान के आरम्भ के पश्चात् नागरिकता के हकदार हों।' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में सब संशोधन समाप्त हो गये। मैं अब डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित मूल प्रस्थापना पर मत लूंगा। क्या इसे पढ़ना आवश्यक है?

***कई माननीय सदस्यः** नहीं, आवश्यक नहीं।

***श्री जसपतराय कपूरः** अध्यक्ष महोदय, क्या मैं निवेदन कर सकता हूं श्रीमान, कि डॉ. अम्बेडकर तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से अन्य संशोधन भी हैं और उन्हें भी संशोधनों के रूप में ही लिया जाये।

***अध्यक्षः** मैं एक ही प्रस्थापना पर मत ले रहा हूं जिसमें सारे संशोधन इकट्ठे कर दिये गये हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** उस संबंध में, मुझे एक निवेदन करना है। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन संख्या 132 के विषय में मैं श्री कृष्णमाचारी से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस समय वापस लेकर बाद में मस्विदा समिति के पास भेजने की बात पर विचार करें। अभी इसे छोड़ दिया जाये और मस्विदा समिति के पास भेज दिया जाये जो इन शब्दों के अपमार्जन करने की वांछनीयता या अन्यथा पर विचार करे।

***अध्यक्षः** यदि यह रचना संबंधी ही है तो मस्विदा समिति को सदा शक्ति है। यदि यह सारवान प्रश्न है तो इसे मस्विदा समिति पर छोड़ा नहीं जा सकता।

***श्री जसपतराय कपूरः** यदि संशोधन संख्या 132 को अभी स्वीकार कर लिया जाता है तो मस्विदा समिति के हाथ बंध जायेंगे। मैं समझता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को स्वयं इन शब्दों को रखने के औचित्य या अन्यथा के विषय में सन्देह है।

***अध्यक्षः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी बतायेंगे कि उन्हें इस संशोधन के औचित्य पर कोई संदेह है या नहीं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं स्पष्ट कर सकता हूं कि मेरा संशोधन अनुच्छेद 6 के शब्दों में संशोधन के कारण आवश्यक हो गया है। यदि अपेक्षित हुआ तो इस मामले पर निस्संदेह और विचार किया जायेगा। मैंने केवल यही कहा था कि मैं श्री जसपतराय कपूर के विचारों को मस्विदा समिति के समक्ष पेश कर दूंगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि मुझे इस विषय में कोई संदेह है। हमने इस आकस्मिकता के लिये अनुच्छेद 6 में उपबन्ध कर दिया है। अपने लिये मैं कह सकता हूं कि मैं सब अनुच्छेदों 5, 5-क, 5-कक, 5-ख, 5-ग और 6 के प्रत्येक शब्द पर स्वतंत्र रूप से विचार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर मत लेता हूं, अनुच्छेद 5 तथा 6 पर, जिनमें अनुच्छेद 5-क, 5-कक, 5ख और 5-ग समाविष्ट हैं।

प्रश्न यह है:–

"कि अनुच्छेद 5 और 6 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिये जायें:

Citizenship at the date of commencement of this Constitution.

'5. At the date of commencement of this Constitution, every person who has his domicile in the territory of India—

(a) who was born in the territory of India; or

(b) either of whose parents was born in the territory of India; or

(c) who has been ordinarily resident in the territory of India for not less than five years immediately preceding the date of such commencement, shall be a citizen of India, provided that he has not voluntarily acquired the citizenship of any foregin State.

Rights of citizenship of certain persons who have migrated to India from Pakistan.

'5-A. Notwithstanding anything contained in article 5 of this Constitution a person who has migrated to the territory of India from the territory now included in Pakistan shall be deemed to be a citizen of India at the date of commencement of this Constitution if—

[अध्यक्ष]

(a) he or either of his parents or any of his grandparents was born in India as defined in the Government of India Act, 1935 (as originally enacted); and

(b) (i) in the case where such person has so migrated before the nineteenth day of July 1948, he has ordinarily resided within the territory of India since the date of his migration, and

(ii) in the case where such person has so migrated on or after the nineteenth day of July 1948, he has been registered as a citizen of India by an officer appointed in this behalf by the Government of the Dominion of India on an application made by him therefore to such officer before the date of commencement of this Constitution in the form prescribed for the purpose by that Government:

Provided that no such registration shall be made unless the person making the application has resided in the territory of India for at least six months before the date of his application.

Rights of citizenship of certain migrants to Pakistan.

5-AA. Notwithstanding anything contained in articles 5 and 5-A of this Constitution, a person who has after the first day of March 1947, migrated from the territory of India to the territory now included in Pakistan shall not be deemed to be a citizen of India:

Provided that nothing in this article shall apply to a person who, after having so migrated to the territory now included in Pakistan has returned to the territory of India under a permit for resettlement or parmanent return issued by or under the authority of any law and every such person shall for the purposes of clause (b) of article 5-A of this Constitution be deemed to have migrated to the territory of India after the nineteenth day of July 1948.

5-B. Rights of citizenship of certain persons of Indian origin residing outside India.

Notwithstanding anything contained in articles 5 and 5-A of this Constitution, any person who or either of whose parents or any of whose grandparents was born in India as defined in the Government of India Act, 1935 (as originally enacted) and who is ordinarily residing in any territory outside India as so defined shall be deemed to be a citizen of India if he has been registered as a citizen of India by the diplomatic or consular representative of India in the country where he is for the time being residing on an application made by him therefore to such diplomatic or consular respesentative, whether before or after the commencement of this Constitution, in the from prescribed for the purpose by the Government of the Dominion of India or the Government of India.

5-C. Continuance of the rights of citizenship.

Every person who is a citizen of India under any of the foregoing provisions of this Part shall, subject to the provisions of any law that may be made by Parliament, continue to be such citizen.

6. Parliament to regulate the right of citizenship by law.

Nothing in the foregoing provisions of this Part shall derogated from the power of Parliament to make any provision with respects to the acquisition and termination of citizenship and all other matters relating to citizenship.' "

[5. इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर नागरिकता।

इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति जिस का भारत राज्य क्षेत्र में तथा अधिवास है, तथा

(क) जो भारत राज्य क्षेत्र में जन्मा था; अथवा

(ख) जिसके जनकों में से कोई भारत राज्य क्षेत्र में जन्मा था; अथवा

(ग) जो ऐसे प्रारम्भ की तारीख से ठीक पहले कम से कम पांच वर्ष तक भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है;

भारत का नागरिक होगा, परन्तु उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वयं अवाप्त न की होनी चाहिये।

[अध्यक्ष]

5-क. पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन कर आये कुछ व्यक्तियों से नागरिकता के अधिकार

अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो पाकिस्तान के इस सयम अन्तर्गत राज्य क्षेत्र से भारत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन कर आया है इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख पर भारत का नागरिक समझा जायेगा–

(क) यदि वह अथवा उसके जनकों में से कोई अथवा उसके महा जनकों में से कोई भारत सरकार के अधिनियम 1935 (यथा मूलतः अधिनियमत) में परिभाषित भारत में जन्मा था; तथा

(ख) (1) जबकि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् 1948 की जुलाई के उन्नीसवें दिन से पूर्व प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह अपने प्रव्रजन की तारीख से भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा है; अथवा

(2) जबकि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् 1948 की जुलाई की उन्नीसवें दिन या उसके पश्चात इस प्रकार प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह भारत डोमिनीयन की सरकार द्वारा विहित प्रपत्र पर और रीति से नागरिकता प्राप्ति के आवेदन पत्र के अपने द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख से पहिले ऐसे पदाधिकारी को, जिसे उस सरकार ने इस प्रयोजन के लिये नियुक्त किया है, दिये जाने पर उस पदाधिकारी द्वारा भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया गया है:

परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने आवेदन पत्र की तारीख से ठीक पहिले कम से कम छह महीने भारत राज्य क्षेत्र का निवासी न रहा हो तो वह इस प्रकार पंजीबद्ध नहीं किया जायेगा।

5-कक. पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वालों के नागरिकता के अधिकार

इस संविधान के अनुच्छेद 5 और 5-क में किसी बात के होते हुए भी जो व्यक्ति 1947 के मार्च के पहिले दिन के पश्चात् भारत राज्य क्षेत्र से पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन कर गया है, भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा:

परन्तु इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो पाकिस्तान के इस समय अन्तर्गत राज्य क्षेत्र को प्रव्रजन के पश्चात भारत राज्य क्षेत्र को ऐसी अनुज्ञा के अधीन लौट आया है जो पुनर्वास के लिये या स्थायी रूप से लौटने के लिए किसी विधि के द्वारा या अधीन दी गई है, तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति इस संविधान के अनुच्छेद 5(क) के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिये भारत राज्य क्षेत्र को 1948 की जुलाई के 19वें दिन के पश्चात प्रव्रजन करने वाला समझा जायेगा।

5-ख. भारत के बाहर रहने वाले भारतीय उद्भव के कुछ व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकार

इस संविधान के अनुच्छेद 5 और 5(क) में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो या जिसके जनकों में से कोई अथवा महाजनकों में से कोई भारत सरकार के अधिनियम, 1935 (यथा मूलतः अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था, तथा जो सामान्यतया इस प्रकार परिभाषित भारत के बाहर

किसी देश में रहता है, भारत का नागरिक समझा जायेगा, वह भारत डोमिनियन सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा विहित प्रपत्र पर और रीति से नागरिकता प्राप्ति के आवेदन पत्र के अपने द्वारा उस देश में, जहां वह तत्समय निवास कर रहा है, भारत के राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधियों को इस संविधान के प्रारम्भ से पहले या बाद, दिये जाने पर, ऐसे राजनयिक या वाणिज्यिक प्रतिनिधि द्वारा भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया गया है।

5-ग. नागरिकता के आधिकारों का बना रहना

प्रत्येक व्यक्ति जो इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में से किसी के अधीन भारत का नागरिक है, ऐसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, जो संसद द्वारा निर्मित की जाये, भारत का वैसा नागरिक बना रहेगा।

6. संसद विधि द्वारा नागरिकता के अधिकार का विनियमन करेगी

इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में की कोई बात नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से सम्बद्ध अन्य सब विषयों के बारे में उपबन्ध बनाने की संसद की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करेगी।

संशोधन स्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप से अनुच्छेद 5, 5-क, 5-कक, 5-ख, 5-ग और 6 संविधान के अंग बनें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 5, 5-क, 5-कक, 5-ख, 5-ग और 6 संविधान में जोड़ दिये गये।

*__अध्यक्षः__ अब सभा आगामी बृहस्पतिवार तक स्थगित हो रही है। नियमों के अनुसार यदि तीन दिन से अधिक स्थगन होना हो तो सदन की अनुमति आवश्यक है। यह स्थगन पांच दिन के लिये है, और मैं मान लेता हूं कि सदन अनुमति देता है।

*__माननीय सदस्यगणः__ हां।

*__अध्यक्षः__ अब सभा आगामी बृहस्पतिवार के नौ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

*__श्री श्यामानन्दन सहाय__ (बिहारः जनरल): क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं, श्रीमान, कि 18 को हम मध्याह्ननन्तर में समवेत हों क्योंकि कुछ गाड़ियां विलम्ब से आती हैं?

*__अध्यक्षः__ मुझे वैयक्तिक रूप में कोई आपत्ति नहीं है, यदि यह सदस्यों की इच्छा हो। क्या सदन की यह व्यापक इच्छा है?

*__माननीय सदस्यगण:__ हां।

*__अध्यक्ष:__ सभा आगामी बृहस्पतिवार के मध्याह्ननन्तर के 3 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, 18 अगस्त के मध्याह्ननन्तर के 3 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX-12.40
320

अंक 9
संख्या 12

बृहस्पतिवार
18 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारत-शासन-अधिनियम 1935
संशोधन-विधेयक .... 649—708

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 18 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में मध्याह्न के तीन बजे उपाध्यक्ष महोदय (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी) के सभापतित्व में समवेत हुई।

***उपाध्यक्ष** (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी): माननीय अध्यक्ष महोदय ने मुझे सभा को यह सम्वाद देने को कहा है कि उन्हें इसका बहुत ही खेद है कि आज वह सभा में न आ सकेंगे क्योंकि उनके चिकित्सक ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी है। उन्हें इस बात की आशा है कि रविवार को दिल्ली वापस आ जायेंगे और सोमवार से सभा में आने लगेंगे। उन्हें इस बात का विश्वास है कि सदस्यगण उनकी अनुपस्थिति को क्षमा करेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभी सदस्य उनके शीघ्र आरोग्यलाभ की कामना करते हैं। *(हर्ष ध्वनि)।*

अब मैं श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर से कहूंगा कि वह अपना विधेयक उपस्थित करें।

भारत-शासन-अधिनियम 1935 संशोधन-विधेयक

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान और इसमें तीन बातें है। पहली बात जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा वह है संविधान-सभा के 31 मई सन् 1949 ई. तक संशोधित प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों से सम्बन्ध रखने वाला नियम 38-क। इस नियम में कहा गया है:-

"कोई सदस्य जो भारतीय-स्वातन्त्रय अधिनियम 1947 पर या उसके अधीन बनाये गये किसी आदेश, नियम या लिखत पर अथवा इस अधिनियम के अधीन अनुकूलित भारत-शासन अधिनियम 1935 पर कोई संशोधन रखना चाहता हूं...इत्यादि इत्यादि" मैं सभा से आग्रह करूंगा कि वह इस नियम की इबारत को ध्यान से देखे। इसमें स्वातन्त्रय-अधिनियम 1947 के अधीन अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम 1935 पर संशोधन की बात कही गई है। किन्तु प्रस्तुत विधेयक जिसे सभा में उपस्थित करने के लिये अभी चन्द मिनट पहले आपने माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयगर को कहा है, वह मूल भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 8 की उपधारा (क) के सम्बन्ध में है। भारतीय स्वातन्त्रय अधिनियम 1947 के अधीन अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम 1935 की एक प्रति मैंने पुस्तकायल से प्राप्त की है। पर.....

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): किन्तु ऐसा पहले हो चुका है। अभी उस दिन डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने अपना विधेयक उपस्थित किया था जिसे सभा से स्वीकार किया।

*__श्री एच.वी. कामतः__ जब श्री बी. दास को बोलने के लिये अध्यक्ष कहें तो वह उस समय चाहे मेरे औचित्य प्रश्न का समर्थन करें या विरोध करें। मैंने तो केवल यह बतलाया है कि धारा 8 की उपधारा (1-क) में क्या.....

*__श्री एस. नागप्पा__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, एक औचित्य प्रश्न है। माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने अभी विधेयक पेश ही नहीं किया है। इसलिये जब तक कि विधेयक उपस्थित न कर दिया जाये उस पर यह औचित्य प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ आपने उन्हें विधेयक उपस्थित करने के लिए कहा इसलिये तो यह औचित्य प्रश्न मैंने उठाया।

*__उपाध्यक्षः__ माननीय सदस्य कृपया अपने स्थानों पर बैठ जायें।

*__श्री एच.वी. कामतः__ सभा में विधेयक उपस्थित किये जाने के बारे में ही तो मैं औचित्य प्रश्न उठा रहा हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): पर सभा के समक्ष अभी इसका प्रस्ताव कहां आया है?

*__उपाध्यक्षः__ श्री आयंगर प्रस्ताव पेश करें।

*__श्री एच.वी. कामतः__ किन्तु, प्रस्ताव उपस्थित किये जाने का ही तो मैं विरोध कर रहा हूं।

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर__ (मद्रासः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव एक संक्षिप्त प्रस्ताव है और मैं नहीं चाहता हूं कि माननीय मित्र कामत को उसके लिये मंच पर एक क्षण भी अनावश्यक ठहरना पड़े। मेरा प्रस्ताव यह है:–

> "सविनय मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि यथा अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और संशोधन करने के लिए विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।"

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): इस प्रस्ताव का मैं विरोध करता हूं श्रीमान।

*__उपाध्यक्षः__ श्री कामत।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मेरे द्वारा उठाये गये औचित्य प्रश्न का स्पष्टीकरण करने के लिये आपने मुझे जो अवसर प्रदान किया है श्रीमान, उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। पहली बात यह है कि भारत-शासन अधिनियम 1935 की धारा 8 की उपधारा 1-क का जो उल्लेख किया गया है वह कुछ स्पष्ट नहीं है। यथा अनुकूलित अधिनियम की एक प्रति मेरे पास है और मैं यह देखता हूं कि उसमें यह उपधारा कहीं है ही नहीं जिसका....

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** माननीय सदस्य का कथन क्या यह है कि उपधारा 1-क इस अधिनियम में है ही नहीं?

***श्री एच.वी. कामतः** हां, मेरा यही कहना है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** क्या मैं उन्हें अंतिम रूप से छपे हुये इस अधिनियम की एक प्रति दूं?

***श्री एच.वी. कामतः** अगर श्री आयंगर मुझे एक प्रति दें तो अवश्य ही उनका मैं अनुगृहीत होऊंगा। मैंने अपनी प्रति पुस्तकालय से प्राप्त की है।

***उपाध्यक्षः** स्पष्ट है कि श्री कामत के पास जो प्रति है वह अन्तिम नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): यह प्रस्ताव तो महज रस्मी तौर पर रखा जा रहा है। संसदात्मक प्रथा के अनुसार ऐसे प्रस्ताव का विरोध नहीं होता है।

श्री एच.वी. कामतः मैं इसका विरोध नहीं कर रहा हूं। मैंने तो केवल एक औचित्य प्रश्न उठाया है। आशा है सभा में एक ही सज्जन सभापति का काम करेंगे और उनके अलावा और कोई सदस्य मेरी वक्तृता में हस्तक्षेप न करेंगे और न मुझे नियमानुकूल होने का आदेश देंगे।

औचित्य सम्बन्धी प्रश्न में दूसरी बात यह है कि नियम नं. 38(क) में और उपनियम (2) में यह कहा गया है कि सभापति यदि अनुमति दे दे तो विधेयक उपस्थित करने की अनुमति का प्रस्ताव और अल्पकालिक सूचना के साथ उपस्थित किया जा सकता है अन्यथा साधारणतः ऐसे किसी भी प्रस्ताव के लिये 15 दिनों की पूर्वसूचना अवश्य होनी चाहिये। किन्तु कार्यावली में ऐसी कोई बात नहीं दी हुई है जिससे यह प्रकट होता हो कि सभापति ने उस नियम को हटाकर 15 दिनों से कम की सूचना पर ही उस प्रस्ताव को, उपस्थित करने की अनुमति दी हो। आज के कार्यावली की प्रति मेरे पास है और उसमें ऐसी कोई बात नहीं दी हुई है कि सभापति ने इस नियम को प्रस्तुत प्रस्ताव के सम्बन्ध हटा दिया है।

***उपाध्यक्षः** इस प्रस्ताव को अल्पकालिक सूचना पर पेश करने की अनुमति मैंने दे दी है।

***श्री एच.वी. कामतः** तो फिर उसका उपस्थित किया जाना ठीक है।

औचित्य प्रश्न में तीसरी बात यह है। श्री आयंगर ने जिस विधेयक को यहां उपस्थित करने की अनुमति चाही है उसमें दो सर्वथा भिन्न-भिन्न बातें रखी गई हैं। एक बात तो धारा 8(क) के सम्बन्ध में है और दूसरी बात धारा 291 (क) के यानी एक निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में है और प्रान्तीय विधान-मण्डलों से सबन्ध रखने वाली किसी बात के सम्बन्ध में हैं: मेरी समझ से इस एक विधेयक में बिल्कुल भिन्न-भिन्न दो विषयों को रखा गया है। अतः इनके लिये एक विधेयक नहीं बल्कि अलग-अलग दो विधेयक सभा में उपस्थित किये जाने चाहियें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्यों ऐसा क्यों?

***श्री एच.वी. कामत:** आप पूछ रहे हैं क्यों? जब आगे चलकर आप बोलें तो आप ही कृपया यह बता दीजियेगा कि दोनों बातें एक विधेयक द्वारा कैसे रखी जा सकती हैं। औचित्य प्रश्न में यह तीसरी बात है श्रीमान। विधेयक उपस्थित करने की अनुमति मांगने के लिये जो प्रस्ताव रखा गया है उसे सम्बन्ध में औचित्य विषयक यह तीन सवाल मैंने उठाये हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): इस औचित्य प्रश्न का उत्तर मैं देना चाहता हूं श्रीमान।

***उपाध्यक्ष:** श्री गोपालस्वामी आयंगर को इसका उत्तर देने के लिए मैं कह रहा हूं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** माननीय मित्र श्री कामत ने उस प्रस्ताव के विरुद्ध तीन आपत्तियां पेश की हैं। उनमें से दो को तो निराकरण पहले ही हो चुका है। उनको यह गलत ख्याल हो गया था कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 8 में कोई उपधारा 1-क है ही नहीं। किन्तु मेरी बात सुनकर उन्होंने खुद इस आपत्ति को गर्म आलू की तरह अलग फेंक दिया है।

उनकी दूसरी आपत्ति का निराकरण हो चुका है आपके इस कथन से कि इस प्रस्ताव को उपस्थित करने की आपने मुझे अनुमति दे रखी थी यद्यपि इसके लिये 15 दिन पहले मैंने सूचना नहीं भेज रखी थी और नियमों के मुताबिक आपको ऐसी अनुमति देने का अधिकार है। इस तरह उनकी दो आपत्तियों का तो निराकरण हो ही चुका है।

अब रही उनकी तीसरी आपति। जिन लोगों को न्यायालयों से काम पड़ता है और खास करके दण्ड-न्यायालयों से वह इस आपत्ति से भली भांति परिचित होंगे। दो अलग-अलग दोषारोपों को गलती से एक साथ रखकर जब न्यायालय में पेश किया जाता है तो उसी तरह की आपत्ति उठाई जाती है। किन्तु भाग्यवश हम किसी न्यायालय के समक्ष नहीं खड़े हैं जहां यह कहा जा सकता हो कि प्रतिवादी के विरुद्ध जो दोषारोप किया गया है वह गलत ढंग से किया गया है; दो भिन्न आरोपों को एक साथ रख दिया गया है। इस सम्बन्ध में मुझे केवल इतना ही कहना है कि....

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान। श्री गोपालस्वामी आयंगर यहां तथ्य से बहुत दूर हैं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** माननीय सदस्य की बात मैं ठीक-ठीक सुन नहीं पाया। खैर इससे कुछ आता जाता नहीं है। मैं केवल इतना ही बता देना चाहता हूं कि प्रस्तुत विधेयक एक अधिनियम में संशोधन करने के लिए रखा गया है और वह अधिनियम है भारत शासन अधिनियम। यदि इस अधिनियम की एक सौ धाराओं का मुझे संशोधन करना होता तो उसके लिए मुझे अधिकार है कि सबको मैं एक ही विधेयक में रखूं।

***उपाध्यक्ष:** श्री कामत के औचित्य प्रश्न को मैं अनियमित करार देता हूं। विधेयक उपस्थित करने की अनुमति चाहने का प्रस्ताव अब सभा के सामने है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मुझे इस प्रस्ताव का विरोध करना है श्रीमान।

***उपाध्यक्षः** किन्तु माननीय सदस्य को भाषण देने की अनुमति नहीं है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं अनुरोध करता हूं कि कृपया प्रस्तुत प्रस्ताव का विरोध करने का मुझे मौका दीजिये।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य सिर्फ इतना कहकर कि "मैं इसका विरोध करता हूं" बैठ सकते हैं। प्रस्ताव यह है:

"कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और संशोधन करने के लिये विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।"

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं इसका विरोध करता हूं कि उन्हें इसे उपस्थित करने की अनुमति....

***उपाध्यक्षः** किन्तु मैं इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रख चुका हूं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** तो क्या मुझे सिर्फ वोट देने की इजाजत है और भाषण द्वारा यह बताने की कि मैं किस लिये इसका विरोध कर रहा हूं, इजाजत नहीं दी जा रही है?

***उपाध्यक्षः** भाषण देने का मौका आपको बाद में चलकर दिया जायेगा।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं यह नहीं चाहता हूं कि प्रस्ताव पर विचार होते समय मुझे भाषण का मौका दिया जाये। मैं इसका विरोध अभी करना चाहता हूं। मैं यह नहीं चाहता हूं कि इसे उपस्थित करने की अनुमति उन्हें दी जाये। पहले इसी का फैसला हो जाना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** सभा इसका फैसला करेगी। मैं प्रस्ताव पर सभा की राय लेता हूं। प्रस्ताव यह है:–

"कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और संशोधन करने के लिये विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** सभा ने विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दे दी है। अब श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर अपना विधेयक उपस्थित करें।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैं विधेयक को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** विधेयक उपस्थित हो चुका।

मैं यह आदेश देता हूं कि नियम 38(ग) के अधीन भारतीय सूचना-पत्र में इस विधेयक का प्रकाशित किया जाना आवश्यक नहीं है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि उपस्थित किये गये विधेयक पर विचार किया जाये।

यह विधेयक बिल्कुल एक सरल विधेयक है। मुख्य तौर पर इसमें दो बातों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है। इसका पहला अंश निष्क्रान्त सम्पत्ति तथा विस्थापित लोगों के साहाय्य एवं पुनर्वास के सम्बन्ध में है। दूसरा अंश है गवर्नर-जनरल को इस बात का अधिकार देने के बारे में कि संविधान स्वीकृत होने के पूर्व ही यदि वर्तमान भारत-शासन अधिनियम के अधीन किसी प्रान्त में आम चुनाव करना जरूरी हो जाये तो निर्वाचन के आनियमन के लिए आदेश निकालने का उसे अधिकार होगा।

जहां तक कि पहले मसले का सम्बन्ध है, भारत और पाकिस्तान के बीच चलने वाली उस बातचीत को माननीय सदस्य वृन्द अवश्य ही ध्यान से देखते आ रहे होंगे जो विस्थापित व्यक्तियों की सम्पति की देखरेख, व्यवस्था तथा विक्रय के बारे में चल रही है जिसे वह लोग उस राज्य में छोड़कर जहां कि वह पहले रहते थे अब स्थायी तौर पर रहने के लिये दूसरे राज्य में चले आये हैं।

जहां तक कि निष्क्रान्त सम्पत्ति का सम्बन्ध है, वर्तमान व्यवस्था के अधीन, उसके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय विधान-मण्डलों को प्राप्त है। केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों में केन्द्रीय शासन द्वारा जारी किया गया एक अध्यादेश प्रवर्तन में है। हर प्रान्त में तथा कुछ राज्यों में इस मसले की व्यवस्था के लिये समुचित प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई न कोई अध्यादेश या विधि जरूर प्रवर्तन में है।

यह एक ऐसा विषय है जिसकी व्यवस्था के लिए देश भर में एक तरह का कानून होना चाहिये किन्तु इसके लिये कानून बनाने वाले अधिकारी हैं कई जिससे बड़ी असुविधा होती है। इस असुविधा को दूर करने के उद्देश्य से ही यह विधेयक प्रस्तुत किया गया है। अभी तक तो यह था कि वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम को लेकर इसकी व्यवस्था में अगर कोई कठिनाई आती थी तो उसे दूर करने के लिए सम्बंधित विधि निर्माता प्राधिकारी अध्यादेश निकाल देते थे या कोई कानून बना देते थे। पर अब हमने प्रान्तीय और रियायती सरकारों को लिखा है कि भारत-शासन-अधिनियम की धारा 103 के अनुसार एक प्रस्ताव पास करके वह केन्द्रीय शासन को ऐसे अधिकार दें कि वह इस मसले की व्यवस्था के लिए आवश्यक कानून बना सकें। कुछ राज्यों ने तो अपने विधान-मंडलों से प्रस्ताव पास कराकर भेज दिया है पर कइयों ने अभी तक नहीं भेजा है। निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ राज्यों ने अध्यादेश निकाल रखा है और कई राज्यों ने विधान मंडल द्वारा कानून बनवा लिया है। किन्तु देश भर में इस बारे में एक तरह का कोई कानून नहीं है। निष्क्रान्त सम्पति सभी प्रान्तों में है क्योंकि देश विभाजन के बाद सभी प्रान्तों से कुछ लोग दूसरे राज्य में बसने के इरादे से अपनी सम्पत्ति वहां छोड़कर वहां से चले गये हैं।

इस प्रश्न के एक दूसरे पहलू पर भी हमें ध्यान देना होगा। इस सम्बन्ध में दोनों सरकारों के बीच बातचीत चल रही है और इसलिये आवश्यक यह है कि

केन्द्रीय सरकार ही विधि द्वारा इस मसले की समुचित व्यवस्था करे। वस्तुतः निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में पाकिस्तान सरकार खुद कानून बनाकर व्यवस्था करती है और माननीय सदस्यों ने यह देखा ही होगा गत कई हफ्तों में वहां जल्दी-जल्दी कई अध्यादेश पाकिस्तान सरकार द्वारा निकाले गये हैं और उनके अधीन आदेश जारी किये गये हैं। वहां इस सम्बन्ध में एक के बाद एक बनाये जाने वाले कानूनों से जो स्थिति यहां पैदा होती है उसकी समुचित व्यवस्था के लिए यह जरूरी है कि केवल केन्द्रीय शासन को ही इस सम्बन्ध में सारी शक्ति प्राप्त रहे ताकि तत्परता के साथ वह इस सम्बन्ध में व्यवस्था कर सके और जो भी कानून बनाये वह समस्त देश में सद्यः अमल में लाया जा सके। यही कारण है जो हम इस शक्ति को केन्द्रीय शासन में निहित रखना चाहते हैं ताकि निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह समुचित कानून बना सके।

किन्तु यह हम जरूर मानते हैं कि निष्क्रान्त सम्पत्ति के प्रशासन की विस्तार की बातों के बारे में प्रान्तों और राज्यों को स्वविवेकानुसार विधि निर्माण की तथा आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये ताकि केन्द्रीय शासन द्वारा विधान में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके द्वारा वह दूर की जा सके। इसलिये यह निश्चय किया गया है कि निष्क्रान्त सम्पति की देखरेख, व्यवस्था तथा उसके निपटारे के सम्बन्ध में विधि-निर्माण का काम सहगामी विषयों की सूची में आना चाहिये और आप देखेंगे कि इस विधेयक के खण्ड 5 (ख) में ऐसा ही प्रावहित किया गया है। इसके द्वारा सहगामी सूची में ये दो विषय और जोड़ दिये गये हैं।

“31-ख ऐसी सम्पति की देखरेख, व्यवस्था तथा उसका निपटारा (इसमें कृषिभूमि भी शामिल है) जो विधि द्वारा निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित की जा चुकी है।

31-ग भारत एवं पाकिस्तान राज्य के निर्माण के फलस्वरूप अपने मूल आवास स्थान से विस्थापित व्यक्तियों के साहाय्य एवं पुनर्निवास की व्यवस्था।”

विधेयक के इस विशेष भाग के सम्बन्ध में एक और बात भी है जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। आप देखेंगे कि विधेयक के खण्ड (3) के द्वारा भारत-शासन-अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1-क) में दो और खण्डों को शामिल करने की कोशिश की गई है। खण्ड 5 (ख) में जो बातें रखी गई है वस्तुतः वही बातें यहां भी दुहरा दी गई है। धारा 8 की उपधारा (1-क) में ये दो बातें हमें क्यों रखनी पड़ी हैं इसका कारण यह है कि इस प्रश्न के बारे में जो भी कानून बनाने का हम निश्चय करें उसमें, हमें यह स्वतन्त्रता रहे कि इस विषयों के बारे में केन्द्रीय शासन के अधिकार प्रयोग की हम व्यवस्था कर सकें। इन विषयों को सहगामी सूची में केवल शामिल कर देने से ही केन्द्रीय शासन को इनके बारे में प्रशासनाधिकार न प्राप्त हो सकेगा। आपको यह स्मरण होगा कि खुद सभा ने ही धारा 8 में आवश्यक संशोधनों को पास किया था जिनसे अन्य विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय शासन को इस तरह के अधिकार प्राप्त हो सके थे इसलिये यह जरूरी है कि धारा 8 में यह बात शामिल की जाये ताकि प्रान्तों में भी इन विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय शासन के अधिकार प्रयोग की व्यवस्था की जा सके। सदस्यों को यह मालूम ही है कि इस सम्बन्ध में विधि

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

सम्बन्धी एक रूपता के साथ हम यह भी चाहते हैं कि विधि पर सर्वत्र अमल भी एक रूप में किया जाये। विस्थापितों के साहाय्य एवं पुनर्निवास सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने के बारे में भी प्राधिकारी को अधिशासी शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये। हमारे माननीय साथी पुनर्वास मन्त्री चाहते हैं कि प्रान्तों में भी पुनर्वास सम्बन्धी योजनायें जिनका व्यय वस्तुत: केन्द्रीय शासन वहन करेगा एक रूपता के साथ कार्यान्वित की जाये।

इतना तो हुआ निष्क्रान्त सम्पति तथा विस्थापितों के साहाय्य एवं पुनर्वास के सम्बन्ध में।

विधेयक का दूसरा अंश, भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के स्थान पर एक नई धारा रखने के सम्बन्ध में है। जैसा कि माननीय सदस्यों को मालूम है, वर्तमान धारा 291 में यह कहा गया है कि भारत-शासन-अधिनियम में अगर और कोई प्रावधान नहीं वर्तमान है या इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन और कोई प्रावधान नहीं रखा गया है तो प्रान्तीय विधान मण्डल को धारा 291 में वर्णित कई विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार होगा। अब इस विधेयक द्वारा हम जो करना चाहते हैं वह यह है। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं इसी समय यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस विधेयक की पुर:स्थापना का तथा उसमें इस खण्ड विशेष को रखने का मतलब यह नहीं है कि किसी प्रान्त में आम चुनाव करने का हम निश्चय कर चुके हैं। अपने नवीन संविधान के प्रवर्तन में आने में अभी चार या पांच महीने की देर है। पर हो सकता है कि इस बीच किसी प्रान्त में या प्रान्तों में परिस्थिति ऐसी हो जाये कि उसके समाधान के लिये वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम के अधीन ही आम चुनाव करने का आदेश निकालना आवश्यक हो जाये। हम यह चाहते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर हमें यह शक्ति प्राप्त रहे कि विधान-मण्डल की रचना, मताधिकार, निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन, तथा मतदान-पद्धति आदि में समुचित परिवर्तन करके हम आम चुनाव वहां कर सकें। हम यह चाहते हैं कि गवर्नर-जनरल द्वारा निकाले जाने वाले आदेश के जरिये हमें इन बातों के बारे में व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त हो जाये और इसीलिये हमने विधेयक में खण्ड 4 को रखा है यदि आप इस खण्ड को वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 से मिलायेंगे तो देखेंगे कि उनमें अन्तर केवल दो बातों को लेकर है। खण्ड 4 का मद (क) जो विधान-मण्डल के सदन या सदनों की रचना के सम्बन्ध में हैं और मद (ज) जो उपरोक्त किसी विषय के आनुषंगिक बातों के बारे में है—यही दो बातें—इस खण्ड में अधिक हैं अन्यथा वही सब बातें दुहराई गई हैं जो धारा 291 में रखी गई हैं।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि किसी भी प्रान्त में आम चुनाव करने के बारे में हमने अभी तक कोई आखिरी फैसला नहीं किया है। पर यह सर्वथा सम्भव है कि ऐसा निर्णय किया जाये या कहिये कि उन लोगों को जिन पर आम चुनाव की जिम्मेदारी है, बाध्य होकर इस बीच यानी 26 जनवरी सन् 1950 के पहले ही आम चुनाव करने का फैसला करना पड़े। इसलिये हम यह चाहते हैं कि हमें यह अधिकार प्राप्त रहे कि वर्तमान नियमों और विनियमों में, यहा तक कि वर्तमान

भारत-शासन-अधिनियम में भी हम परिवर्तन कर सकें ताकि स्थिति उत्पन्न हो जाने पर हम आम चुनाव कर सकें। और वह चुनाव आज की वर्तमान अवस्थाओं के सर्वथा अनुरूप हो।

उदाहरण के लिए मान लीजिये अगर हम पश्चिमी बंगाल या पूर्वी पंजाब में आम चुनाव करने का फैसला करते हैं तो पश्चिमी पाकिस्तान से पूर्वी पंजाब में आये हुये लोगों की ओर पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में आये हुये लोगों की इस मांग की कि उनका नाम मतदाता सूची में शामिल किया जाये और विधान मण्डल की सदस्यता के लिये उन्हें भी खड़ा होने का अधिकार रहे, हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा में भी परिवर्तन करना हमारे लिये जरूरी हो जायेगा। माननीय सदस्यों को मालूम ही है कि इन प्रान्तों में जो निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये हैं वह पृथक् निर्वाचन सिद्धान्त के आधार पर बनाये गये हैं और अब अगर भारत शासन-अधिनियम के अधीन भी हम आम चुनाव करते हैं तो संविधान में हमने जो निर्णय किये हैं उनको देखते हुये यह कभी भी ठीक न होगा कि हम पृथक-निर्वाचन सिद्धांत के आधार पर चुनाव करें। सुतरां यह आवश्यक होगा कि हमने निर्वाचन के सम्बन्ध में जो आम सिद्धांत निश्चित किये हैं उनके अनुसार ही निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण किया जाये और चुनाव किया जाये। माननीय सदस्यों को इस सम्बन्ध में मैं सावधान कर देना चाहता हूं कि लक्ष्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में संयुक्त निर्वाचन तथा स्थान सरंक्षण के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है वह केवल उदाहरण के रूप में समझाने के लिए कहा गया हैं ऐसा कोई फैसला अब तक नहीं किया गया है कि स्थान संरक्षण की व्यवस्था का रखकर ही संयुक्त निर्वाचन किया जायेगा। इस पर तो उस समय विचार करना होगा जब गवर्नर-जनरल संशोधन, नियम एवं विनियम जारी करने लगेगा कि किस तरह संयुक्त निर्वाचन के सिद्धान्त को कार्यान्वित किया जाये कि कोई अव्यवस्था या गोलमाल न पैदा हो। इसलिये माननीय सदस्यों को मैं यह बता देना चाहता हूं कि स्थान संरक्षण का जो विशेष उल्लेख किया गया है उसका मतलब यह नहीं है कि सरकार ने कोई फैसला कर लिया है और उससे यह भी न समझना चाहिये कि जब गवर्नर-जनरल चुनाव के बारे में संशोधन, नियम तथा विनियम जारी करेगी, तो उसमें स्थान संरक्षण की व्यवस्था रखी जायेगी। अधिकतर सम्भावना इसी बात की है कि संविधान-सभा ने संविधान में इस बारे में जो निर्णय किया है उसी को कार्यान्वित करने का हर चन्द प्रयास किया जायेगा।

मेरा ख्याल है कि इन बातों को बताकर मैंने यह अच्छी तरह समझा दिया है कि इस कानून को बनाना क्यों आवश्यक है। इस विधेयक में जिन दो बातों के लिए व्यवस्था की गई है वह ऐसी है कि उनके लिए और विलम्ब नहीं किया जा सकता है। वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम 1935 के प्रावधानों के अधीन ही हमें इनकी व्यवस्था करनी होगी। इनके लिये और विलम्ब नहीं किया जा सकता है। यही कारण है जो इस संविधान-सभा को मैं कष्ट दे रहा हूं जिसका यह खास अधिवेशन ही एक मात्र ऐसा अधिवेशन है जहां इस कानून को अमल में लाने के पहले उसमें सुधार के लिये संशोधन रखा जा सकता है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह बता देना चाहता हूं कि जहां तक कि विधेयक के खण्ड (3) के प्रावधानों का सम्बन्ध है, मैं किसी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं। भारत-शासन अधिनियम की धारा 291 में जो परिवर्तन प्रस्तावित किये गये हैं केवल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

उन्हीं के सम्बन्ध में, जो कुछ कहना है कहूंगा। श्री गोपालस्वामी आयंगर की वक्तृता को ध्यान से सुन सकूं इसी के लिये तो अपनी जगह छोड़कर मैंने दूसरे स्थान ग्रहण किया। कम से कम उनकी वक्तृता का 75 प्रतिशत अंश मैंने अवश्य सुना है। सुतरां उन्होंने जो कुछ कहा है उसका अधिकांश भाग मैंने जरूर सुन लिया है। पर अभी भी मैं यह नहीं समझ सका कि अकस्मात सभा के समक्ष ऐसा विधेयक उपस्थित कर उसे आश्चर्यचकित करना और ऐसी विस्तृत शक्तियों को जिनको पहले कभी लोगों ने सुना ही नहीं था, गवर्नर-जनरल के हाथ में देना क्यों जरूरी है?

यह संशोधन इस बात के लिये है कि वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 को हटाकर उसके स्थान एक दूसरी धारा, जो विधेयक में दी हुई है, रखी जाये। मैं नहीं जानता कि जिस सज्जन ने इस विधेयक का मसौदा तैयार किया है उन्हें इस बात की जानकारी है या नहीं कि भारत-शासन-अधिनियम में इस सम्बन्ध में एक और धारा, धारा 61 भी वर्तमान है। माननीय मित्र ने संशोधन पेश करते हुये जो वक्तृता दी उसमें उन्होंने कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि धारा 61 का क्या होगा। यह धारा प्रान्तों के विभिन्न सदनों की रचना के बारे में है। विधेयक में भी यह नहीं बताया गया है कि यह धारा 61 रहेगी या नहीं और न यही बताया गया है कि आया इस धारा में कोई परिवर्तन कर दिया जायेगा। यह धारा एक महत्वपूर्ण धारा है न केवल इसलिये कि उसमें प्रान्तीय सदनों की रचना की व्यवस्था प्रावहित की गई है बल्कि इसलिये भी कि इसमें तीन विस्तृत अनुसूचियां हैं जो इस धारा के अधीन आती हैं।

इस धारा के अधीन आने वाली पहली अनुसूची है अनुसूची 1। अनुसूची 5 पर खासतौर यही धारा लागू होगी और उसी तरह अनुसूची 6 है जो 5 से 9 तक की अनुसूचियों पर आधृत है और इन्हीं के फलस्वरूप रखी गई है। ये दोनों ही अनुसूचियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। मैं नहीं जानता कि इस विधेयक का अभिप्राय क्या यह है कि धारा 61 के सभी प्रावधानों को मय अनुसूचियों के जिनका अभी मैंने जिक्र किया है समाप्त कर दिया जाये और जहां तक कि चुनाव का सम्बन्ध है पूरा अधिकार गवर्नर-जनरल को दे दिया जाये। चुनाव को लेकर, जिसका बारम्बार माननीय आयंगर ने यहां उल्लेख किया है मुझे कोई चिन्ता नहीं है। यदि पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया जाता है तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं है और यदि उसके बारे में निर्णय भी कर लिया जाता है तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं है। मुझे चिन्ता इस बात की है और इसकी चिन्ता सभा को भी होनी चाहिये कि आखिर इन अनुसूचियों की क्या स्थिति रहेगी। क्या इनकी समाप्त ही कर दिया जायेगा। इस विधेयक के पास हो जाने के बाद गवर्नर-जनरल को किसी वर्तमान विधान-मंडल के या जहां दो सदन हैं वहां उन सदनों के आकार को बदलने का हक रहेगा या नहीं? क्या संसद के समक्ष इस मसले को बिना पेश किये ही क्या वह ऐसा कोई आदेश जारी कर सकता है जिसके द्वारा इस अनुसूची में रखी गई किसी बुनियादी बात में परिवर्तन होता हो? वस्तुतः इस विधेयक को लेकर यही प्रश्न है जो अपने माननीय मित्र से मैं पूछना चाहूंगा। मैं उन्हें यह बता देना चाहता हूं कि इससे धारा 291 का स्वरूप ही सर्वथा बदल जाता है। यह धारा अब तक अमल में थी और आज भी भारत-शासन-अधिनियम के अंग के रूप में अमल में है। मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि क्या इस विधेयक से धारा 61 के प्रावधानों का अभिशून्यन तो नहीं हो जायेगा।

इस विधेयक में जो सभा के समक्ष रखा गया है, धारा 4 का आरम्भ इस तरह होता है:–

"गवर्नर–जनरल किसी भी समय, आदेश द्वारा, परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में इस अधिनियम के, या इसके अधीन प्रान्तीय विधान–मण्डलों के सम्बन्ध में जारी किये गये किसी आदेश के, प्रावधानों में, निम्नलिखित विषयों में से किसी के बारे में भी ऐसे संशोधन कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक समझे।"

इसके बाद विषयों का उल्लेख किया गया है। धारा 291 का आरम्भ इस प्रकार होता है:

"In so far as provision with respect to the matters hereinafter mentioned is not made by this Act."

(एतत्पश्चात वर्णित विषयों के सम्बन्ध में जहां तक इस विधेयक द्वारा प्रावधान नहीं किया गया है वहां तक....)

कहने का मतलब यह है कि मूल धारा 291 में इन कमियों को पूरा करने की तथा ऐसे आदेश निकालने की, जिनसे उस विधेयक के अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हो सके, अवशिष्ट शक्ति सपरिषद् सम्राट को दी गई है। किन्तु अब इस धारा में ऐसा परिवर्तन किया जा रहा है कि उससे धारा 61 को रखने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता है और जब यह धारा ही न रह जायेगी तो लाजिमी है कि उसकी अनुसूचियां भी न रह जायेंगी। इसलिये मैं पूछता हूं कि कौन सी ऐसी आपात की स्थिति पैदा हो गई है या क्या ऐसा संकट आ गया है जिसके लिए आप गवर्नर–जनरल को प्रान्तीय विधान–मण्डलों के सदनों की रचना के सम्बन्ध में या अस्तित्व के सम्बन्ध में तथा यहां वर्णित अन्य सब विषयों के सम्बन्ध में हस्तक्षेप का अधिकार दे रहे हैं? माननीय मित्र से मैं यह इसलिये पूछ रहा हूं क्योंकि उन्होंने धारा 61 का कोई जिक्र ही नहीं किया है। उन्होंने यह नहीं बताया कि गवर्नर–जनरल को इन शक्तियों से सुसज्जित कर देना क्यों आवश्यक हो गया है। मेरा निवेदन यह है कि जनता की दृष्टि में इस सभा की जो प्रतिष्ठा थी, जो मर्यादा थी वह अब नहीं रह गई है। इसकी प्रतिष्ठा को पर्याप्त आघात पहुंच चुका है। हम मनमाने कानून बना रहे हैं, कानूनों में संशोधन पास करते जा रहे हैं या विधेयक उपस्थित कर रहे हैं जिनके सम्बन्ध में जनता का ख्याल है कि हम उतनी गम्भीरता से विचार नही कर रहे हैं जितनी गम्भीरता के साथ उन पर विचार होना चाहिये। अत: स्थिति को देखते हुये माननीय सदस्यों से मेरा सादर यह निवेदन करना सर्वथा उचित है कि वह इस बात का ख्याल रखें कि विधेयक उपस्थित करने वाले माननीय सदस्य जब तक हमें यह समझा न दें कि विधेयक के पास न होने से क्या भयंकर विपत्ति आ सकती है हम गवर्नर–जनरल को उससे अधिक अधिकार हर्गिज न दें जितना कि उसे मिलना चाहिये। जहां तक कि चुनाव का सम्बन्ध है अगर पश्चिमी बंगाल में मान लीजिये कोई संकट उत्पन्न हो जाता है, जिससे वहां चुनाव करना जरूरी ही हो जाता है तो मैं नहीं समझता कि चुनाव करने में कोई कठिनाई हो सकती है। पर मैं पूछता हूं कि एक मात्र चुनाव के प्रयोजन के लिये, क्या यह जरूरी है कि प्रान्तीय विधान मण्डलों के सदनों के अस्तित्व को संकटापन्न–बना दें और उनको गवर्नर–जनरल की सदिच्छा या कृपा हर छोड़ दें।

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

आखिर क्या ऐसा संकट आ गया है या क्या ऐसी आपात की दशा पैदा हो गई है जिसके लिये आपको ऐसा करना पड़ रहा है। मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई संकट आ गया है या ऐसी आपात की स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके लिये धारा 61 को हटा देना अनावश्यक हो गया हो, या जिसके लिये इस धारा की अनुसूचियों के स्थान पर ऐसी कोई बात रखनी आवश्यक हो गई हो जिसको कि अधिशासी मण्डल जब चाहे प्रस्तावित करे। बजाय इसके कि आप इस विधेयक को पास करें क्यों नहीं आप सारी स्थिति पर विचार करके नई अनुसूचियां बनावें और उसे सभा के समक्ष उपस्थित करें? मुझे विश्वास है कि सभा के माननीय सदस्य इस बात के अधिकारी हैं कि इस समले के बारे में अधिशासी वर्ग उन पर समधिक विश्वास करे और अपने अभिप्राय को स्पष्टता के साथ बतावे। श्री गोपालस्वामी आयंगर ने सिर्फ इतना ही कहा है कि चुनाव के सम्बन्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं किया जा सका है। उनके इस कथन से तो हमारे लिये यह पूछना और भी जरूरी हो जाता है कि इन सारे अधिकारों को गवर्नर-जनरल को सौंपने में आखिर आपका उद्देश्य क्या है। यदि आप अनुसूचियों में हस्तक्षेप करना चाहते हैं, यदि आप चुनाव सम्बन्धी वर्तमान नियमों में परिवर्तन करना चाहते हैं, तो आप यह साफ-साफ क्यों नहीं कहते हैं और क्यों नहीं सभा को तथा देश को यह बताते हैं कि आप उनमें क्या परिवर्तन करने का विचार कर रहे हैं? क्यों सभा को और देश को आप अन्धकार में रखे और हर सम्भव अधिकार को अपने हाथ में लेकर क्यों हमें आश्चर्य में डालें? प्रान्तीय विधान-मण्डलों के सदनों का गठन, उनकी रचना कोई साधारण बातें नहीं हैं। ये ऐसी बातें हैं जिन पर सोच विचार करने में सालों का समय लगा है। यह बात गोलमेज सभा की रिपोर्ट में भी लिपिबद्ध हो चुकी है कि वह इस प्रश्न को पार्लियामेंट की मरजी पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। गोलमेज सभा यह चाहती थी कि अनुसूचियों का मसौदा उसके सामने तैयार किया जाये। इसे वह सपरिषद् सम्राट के आदेश पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। गोलमेज सभा सिलेक्ट कमेटी तथा अन्य कमेटियों ने ही आपस में परामर्श करके अनुसूचियों का मसौदा तैयार किया था। किसी एक व्यक्ति ने उसे नहीं तैयार किया था। इसे तैयार करने में महीनों और सालों लग गये थे। और आप इस विधेयक द्वारा यह चाहते हैं कि आपको यह अधिकार मिल जाये कि इनमें जैसा चाहें आप परिवर्तन कर सकें। सदनों की रचना का अधिकार भी आप अपने हाथ में ले लेना चाहते हैं।

मेरी आशंकायें सर्वथा समुचित हैं, यह बताने के लिये मैं आपके सामने एक और उदाहरण रखता हूं। अपना वर्तमान शासन श्रीमान, बड़े मनमाने ढंग पर चलाया जा रहा है। कितने ही कानूनों को यहां जल्दी-जल्दी पास करा लिया गया है। यह सब इसलिये हो सका कि सभा में शासन पक्ष का प्रबल बहुमत है और बिचारे सदस्य बहुमत का मुकाबला नहीं कर सके।

और भी बहुत सी बातें हैं जो मनमाने ढंग पर की जा रही हैं। मैं गत तीन चार दिनों से यही तलाश कर रहा हूं कि क्या इस सभा के समक्ष कभी कोई ऐसा विधेयक या प्रस्ताव आया है जिसके अधीन रियासतों के दर्जनों मनोनीत व्यक्तियों को वहां के विधान-मण्डलों का सदस्य बनाया जा सकता हो। बम्बई के विधान-मण्डल में अब प्राय: 37 प्रतिशत सदस्य ऐसे लेंगे जो मनोनीतकरण द्वारा वहां रखे जायेंगे।

*उपाध्यक्षः माननीय सदस्य कृपया अपनी बातें कार्यावली के प्रस्ताव तक ही सीमित रखें।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः हां श्रीमान। किन्तु सादर मैं निवेदन करूंगा कि मैं प्रस्ताव पर ही बोल रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि इन विस्तृत शक्तियों को गवर्नर-जनरल के हाथ में देना सर्वथा अनावश्यक है। डेक्कन तथा बडौदा की रियासतों की ओर से जिनको इस सभा के लिये मनोनीत किया गया है उनका मनोनयन इस आधार पर नहीं किया गया है कि वह कितने लोकप्रिय हैं, उनका चरित्र और उनकी योग्यता क्या है तथा समाज में उनकी क्या स्थिति है। छत्तीसगढ़ आदि मध्यप्रान्त की जो रियासतें वहां प्रान्त में मिला ली गई हैं उनकी ओर से कौन-कौन लोग संविधान-सभा में प्रतिनिधित्व करें इसके लिये वहां कोई नियमित चुनाव तो नहीं किया गया था पर एतदर्थ नगरपालिकाओं तथा स्थानीय मण्डलियों और जनपदों के सदस्यों का एक निर्वाचक समुदाय अवश्य बना दिया गया था। निर्वाचक समुदाय के बना देने से कम से कम इतना तो हुआ कि इस संविधान-सभा में उन क्षेत्रों की ओर से प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के चुनाव का दिखावा किया जा सका। पर मध्यप्रान्त और बरार की ओर से यहां विधान-मण्डल के लिये प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिये तो इस पद्धति का प्रयोग भी नहीं किया गया। इसी तरह कोल्हापुर और बड़ौदा की रियासतों के प्रतिनिधि निर्वाचन में भी मनोनयन से ही काम लिया गया और इतना भी न किया जा सका कि इस निर्वाचन के प्रयोजनार्थ एक निर्वाचक-समुदाय गठित कर दिया जाता जिससे चुनाव का दिखावा तो हो जाता। किसी को नहीं मालूम है कि आखिर वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम की वह कौन सी धारा है जिसके अधीन इस तरह मनमाने ढंग से मनोनीत प्रतिनिधि रखे जा रहे हैं। समाचार-पत्रों में अभी हाल ही में इस आशय का एक समाचार निकला है कि बड़ौदा का प्रतिनिधित्व करने के लिए 27 सदस्यों को मनोनीत कर लिया जा चुका है। जब बिना किसी वैध प्रावधान के इस तरह मनोनयन द्वारा प्रतिनिधि रखे जा रहे है-मैं ऐसा इसलिये कह रहा हूं क्योंकि मैंने 1949 के संविधान-सभा अधिनियम 1 (Constituent Assembly Act 1 of 1949) को गौर से देख डाला है पर उसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अधीन ऐसा किया जा सके-तो फिर प्रान्तीय विधान-मण्डल जैसे निकायों के लिये प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार गवर्नर-जनरल या किसी प्राधिकारी को देने के लिये हम भला कैसे राजी हो सकते हैं? इसलिये मेरा निवेदन यह है कि आप जिस तरह प्रकार्य कर रहे हैं और प्राप्त और अप्राप्त शक्तियों का जिस रूप में प्रयोग कर रहे हैं उसे देखते हुये इस तरह के विधेयक को हमारा सशंक दृष्टि से देखना सर्वथा ठीक ही है। जहां तक कि निर्वाचन, मताधिकार तथा अभ्यर्थी की अर्हता आदि का सम्बन्ध है, इस विधेयक के द्वारा आप हर सम्भव अधिकार गवर्नर-जनरल को दे देना चाहते हैं। ऐसी हालत में हमारा सशंक होना स्वाभाविक है। इस विधेयक के अनुसार तो गवर्नर-जनरल सपरिषद सम्राट द्वारा प्रख्यापित आदेशों में भी, जिनको सम्राट केवल अपने व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर नहीं बल्कि ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार प्रख्यापित करता है, परिवर्तन कर सकता है और उनके स्थान जो चाहे रख सकता है। भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 291 के अधीन निकाले आदेशों पर दृष्टि डालिये। मैं कभी इस बात से सहमत नहीं हो सकता हूं कि भारत-शासन-अधिनियम द्वारा प्रदत्त सारे अधिकारों को आप एक विधेयक द्वारा छीनकर उन्हें गवर्नर-जनरल को सौंप दें।

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

मैं नहीं समझता कि देश के सामने ऐसी कोई गम्भीर स्थिति आ गई है जिसके लिये कि इस तरह के विधेयक को स्वीकार करना आवश्यक हो गया है। हमें यह नहीं बताया गया है कि इस विधेयक को शीघ्रता से पास कर लेना आखिर हमारे लिये क्यों आवश्यक हो गया है। यदि माननीय मित्र हमें यह समझा दें कि ऐसी आपात-स्थिति उपस्थित हो गई है जिसके लिये इन सब नियमों को रद्द करके सारे अधिकार गवर्नर-जनरल को सौंप देना जरूरी हो गया है, तो अवश्य ही इस विधेयक को मैं स्वीकार कर लूंगा।

इस सम्बन्ध में मैं कोई प्रस्ताव नहीं रखना चाहता हूं। किन्तु अगर माननीय सदस्यों का यह ख्याल हो कि बिना कोई प्रस्ताव रखे मुझे उस विधेयक पर यों अपना यह मत न व्यक्त करना चाहिये जो विधेयक रखने वाले माननीय सदस्य को सम्भवत: स्वीकार्य न हो, तो मैं इसके लिये अपना प्रस्ताव भी रख सकता हूं।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य अपना प्रस्ताव रख सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** तो मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि भारत-शासन-अधिनियम में और संशोधन करने हेतु रखे गये विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाये जिसमें ये व्यक्ति रहें:

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर,

माननीय श्री एन. गोपालस्वामी, आयंगर,

श्री के.एम. मुन्शी,

पण्डित हृदयनाथ कुंजरू,

पण्डित ठाकुरदास भार्गव,

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर,

श्री आर.एम. गुप्ते,

पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्रा,

श्री एच.वी. कामत,

माननीय श्री मोहनलाल सक्सेना,

श्री रोहिणी कुमार चौधरी,

श्री जगतनारायण लाल,

श्री के. हनुमन्थैया,

डॉ. बख्शी टेकचन्द,

डॉ. पी.के. सेन,

श्री बी.दास, और

प्रस्तावक।"

मैं यह भी सुझाव दे देना चाहता हूं कि इस समिति को यह आदेश भी दिया जा सकता है कि वह अपनी रिपोर्ट 22 अगस्त सन् 1949 ई. को या उससे पहले यहां उपस्थित कर दे। मुझे खुशी होगी अगर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है। इस विधेयक में कई बुनियादी बातों के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है, इसलिये इस पर और सावधानी के साथ विचार होना चाहिये।

*__उपाध्यक्ष:__ श्री बी. दास अपना प्रस्ताव उपस्थित कर सकते हैं। मैं देखता हूं कि माननीय सदस्य यहां उपस्थित नहीं है। इसलिये यह प्रस्ताव पेश नहीं हो रहा है।

दूसरा प्रस्ताव है श्री बी. पोकर के नाम से।

*__काजी सैयद करीमुद्दीन:__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मेरा एक संशोधन भी तो है श्रीमान।

*__उपाध्यक्ष:__ सैयद करीमुद्दीन का संशोधन ऐसा है जिससे और कुछ नहीं होगा, केवल सभा की कार्रवाई में देर होगी। इसलिये यह संशोधन अनियमित ठहराया जाता है।

मि. पोकर अपना संशोधन पेश कर सकते हैं। उनका मुख्य संशोधन तो अनियमित है क्योंकि संविधान-सभा के नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि विधेयक पर जनता की राय जानने के लिये उसे सबको वितरित किया जाये। इसलिये वह अपने दूसरे संशोधन को पेश कर सकते हैं।

*__श्री बी. पोकर साहिब__ (मद्रास : मुस्लिम): प्रस्ताव नियमित है या नहीं इस सम्बन्ध में आप जो कुछ भी निर्णय देंगे उसे मैं सादर शिरोधार्य करूंगा। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि.....

*__उपाध्यक्ष:__ नियम 38-घ के अनुसार आपका प्रस्ताव अनियमित है। आप अपना वैकल्पिक संशोधन पेश कर रहे हैं या नहीं?

*__श्री बी. पोकर साहिब:__ किन्तु मैं यह निवेदन कर रहा हूं श्रीमान, कि संविधान-सभा के नियम अपूर्ण हैं और इनमें विस्तारपूर्वक सभी बातें नहीं रखी गई हैं। इसलिये, इस आधार पर कि नियमों में यह नहीं प्रावहित किया गया है कि विधेयक के सम्बन्ध में जनता की राय जानने के लिये उसे सर्वत्र घुमाया जाये, इस प्रस्ताव को अनियमित नहीं ठहराया जा सकता है। किसी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में श्रीमान, आप उन बुनियादी सिद्धान्तों को यहां लागू कीजिये जिनके अनुसार संसदीय प्रक्रिया परिचालित होती है और मुझे इस प्रस्ताव को उपस्थित करने की अनुमति दीजिये। केवल इस आधार पर कि नियमों में इसके लिये कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं रखा गया है मेरे प्रस्ताव को अनियमित न ठहरा दीजिये। जैसाकि मैंने निवेदन किया है इन नियमों में विस्तारपूर्वक सभी बातों का समावेश नहीं किया गया है। और फिर आपको यह विदित ही है श्रीमान, कि संविधान-सभा का निर्माण किया गया है संविधान पास करने के लिये और उसके नियमों में विधेयक उपस्थित करने तथा अन्य ऐसी बातों के बारे में जो प्रावधान रखे गये हैं वह उतने विस्तृत नहीं हैं जितने कि संसदीय प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में होते हैं। इसलिये विस्तृत

[श्री बी. पोकर साहिब]

नियमों के अभाव में, आमतौर पर जो बुनियादी सिद्धान्त हैं वहीं ऐसे स्थलों पर लागू किये जाते है। सुतरां मैं आप से यह आग्रह करूंगा श्रीमान, कि कृपया इस प्रश्न पर आप पुनर्विचार करें और संशोधन के प्रथम अंश को भी उपस्थित करने की मुझे अनुमति दे।

***उपाध्यक्षः** किन्तु इस प्रश्न पर पुनर्विचार करना मेरे लिये सम्भव नहीं है। नियमों में कोई अस्पष्टता नहीं है, वह बिल्कुल स्पष्ट है।

***श्री बी. पोकर साहिबः** यदि ऐसी बात है तो आपके निर्णय को मैं शिरोधार्य करता हूं। पेश्तर इसके कि इस विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंपने का बाकायदा प्रस्ताव रखे मैं विधेयक के सम्बन्ध में चन्द बातें कहना चाहता हूं। वस्तुतः मुझे इस बात पर घोर आश्चर्य हो रहा है कि आखिर हुकूमत इस महती सभा के सामने ऐसा विधेयक क्यों उपस्थित कर रही है जिसके द्वारा वस्तुतः एक अस्थायी संविधान का ही प्रावधान किया जा रहा है जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने तक प्रभावी बना रहेगा। मेरे मत से तो श्रीमान, यह विधेयक सर्वथा अनावश्यक एवं निष्प्रयोजन है। यह एक ऐसी निरंकुश व्यवस्था है जिसे सभा को स्वीकार न करना चाहिये। इस तरह के विधेयक को, इतनी अल्पकालिक सूचना के साथ और देशवासियों को बिना इस बात का मौका दिये कि उन्हें यह मालूम हो सके कि इसके बारे में यहां क्या किया जाने वाला है, जो आप यहां उपस्थित कर रहे हैं इसके लिये मैं पूछता हूं आप क्या औचित्य बताते हैं?

इस विधेयक के दो अंग हैं। पहला अंश इस प्रयोजन के लिये है कि निष्क्रान्त सम्पति की व्यवस्था तथा उसके विक्रय के सम्बन्ध में देश भर में एक तरह का कानून हो। इसका दूसरा अंश और महत्वपूर्ण है जिसमें धारा 4 आती है। इस धारा के द्वारा तो वस्तुतः देश पर, संविधान के प्रवर्तन में आने तक की अवधि के लिये एक बड़ी ही निरंकुश व्यवस्था लादी जा रही है, और जनता की गैर जानकारी में बिना उसे यह बताये कि क्या किया जा रहा है, और बिना ऐसे किसी प्रावधान के जिससे कि उन पर व्यापक प्रभाव डालने वाले इस प्रश्न पर अपनी राय जाहिर करने का उन्हें मौका मिल सके, यह निरंकुश व्यवस्था उन पर लादी जा रही है। इस व्यवस्था के द्वारा, भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के स्थान पर विधेयक की धारा 4 रखी जायेगी और इस धारा 4 का प्रभाव यह होगा कि भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के अधीन जो अधिकार प्रान्तीय विधान-मण्डलों को प्राप्त थे वह सब गवर्नर-जनरल को मिल जायेंगे। सच तो यह है कि इस प्रावधान द्वारा, संविधान के प्रवर्तन में आने तक गवर्नर-जनरल को सम्पूर्ण अधिकार दे दिये जा रहे हैं और वह जार की तरह शक्ति सम्पन्न बना रहेगा। जो शक्तियां इस प्रावधान द्वारा उसमें निहित की जा रही हैं उनसे तो वह जो चाहे कर सकता है। मैं यह निवेदन करूंगा कि ऐसी कोई स्थिति नहीं उपस्थित हो गई जिसके लिये आप गवर्नर जनरल को इतने अबाध, मनमाने अधिकार दे दें और विधान-मण्डलों को उन अधिकारों से वंचित कर दें जो उन्हें भारत-शासन-अधिनियम के अधीन प्राप्त हैं। मैं पूछता यह हूं कि आखिर वह कारण क्या है जिनसे प्रेरित होकर शासन को ऐसी निरंकुश व्यवस्था का प्रस्ताव यहां रखना

पड़ रहा है। जो उद्देश्य और कारण बताये गये हैं या इनके सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया गया है वह बहुत ही संक्षिप्त है। और माननीय श्री एन. गोपालस्वामी की वक्तृता से भी-जोकि उनकी वक्तृता प्राय: बड़ी स्पष्ट होती है—ऐसे निरंकुश प्रावधान के पास करने का औचित्य क्या है यह बात समझ में न आ सकी। वह सारे अधिकार जो प्रान्तीय विधान-मण्डलों में निहित हैं, उन्हें अब गवर्नर-जनरल को क्यों सौंपा जा रहा है? उन्होंने ऐसा कोई कारण नहीं बताया है जिसके लिये ऐसे निरंकुश प्रावधान का पास करना उचित माना जा सके। सरसरी तौर पर उन्होंने बंगाल का उल्लेख अवश्य किया है। बंगाल की स्थिति से हम सभी परिचित हैं और हमें इस बात की पूरी आशा है कि शासन दृढ़ता के साथ दुष्प्रवृत्ति का दमन करेगी और और कम्युनिष्ट पार्टी द्वारा जो भयंकर कारनामें किये जो रहे हैं उनको रोकेगी। अगर शासन सुचारु रूप से इस सम्बन्ध में व्यवस्था करता है तो परिस्थिति पर वह जरूर काबू पा जायेगा और हम लोगों को पूरा विश्वास है कि पश्चिमी बंगाल में या देश के अन्य किसी भाग में जहां भी ऐसी स्थिति पैदा होगी, शासन उस पर जरूर काबू पायेगा। किन्तु फिलहाल देश के अन्य किसी भाग में ऐसी स्थिति नहीं उत्पन्न हुई है। अब सवाल यह उठता है कि इस तरह का प्रावधान क्यों पास किया जाये? मलायलम में एक कहावत है:-"एलिक्कू वेण्डी इल्लुम चडुका" इसका मतलब है "चूहों के विनाश के लिये घर में ही आग लगा देना।" चूहों के उत्पात से बचने के लिये घर में ही आग लगाकर उनका विनाश करना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। इसी तरह शासन के लिये भी ऐसे निरंकुश प्रावधान को काम में लाना न बुद्धिमता की बात है और न शोभनीय ही है। इस प्रावधान के द्वारा विधान-मण्डलों के अधिकारों में कोई संशोधन होता हो ऐसी बात नहीं है बल्कि इसके द्वारा तो विधान मण्डलों के सारे अधिकारों को ही आप गवर्नर-जनरल यानी कार्यपालिका के हाथ में दे देते हैं। जैसाकि मैं कह चुका हूं इस प्रावधान द्वारा आप देश पर एक संक्रान्तिकालीन संविधान ही लाद रहे हैं जो संविधान के प्रवर्तन में आने तक लागू रहेगा। मैं यह पूछता हूं कि ऐसे गम्भीर मसले पर जनता की क्या राय होगी इसका भी आपने विचार किया है? शासन ने ऐसी कोई व्यवस्था की है जिससे इस मसले पर जनता की राय जानी जा सके? क्या यह कोई ऐसा मसला है कि इसके सम्बन्ध में शासन की इस मनमानी कार्रवाई को उचित कहा जा सके? जैसाकि पूर्व वक्ता ने बताया है, धारा 291 में वर्णित शक्तियों को ही आप इस प्रावधान द्वारा गवर्नर हो नहीं सौप रहे हैं बल्कि विधान-मण्डलों के सदनों की रचना का सारा अधिकार—यानी विधान मण्डल एक सदन का हो या दो सदन, और सदनों की रचना कैसे हो—आप गवर्नर को दिये दे रहे हैं। सारी बातें गवर्नर-जनरल की मरजी पर छोड़ी जा रही है। ऐसी व्यवस्था को अपनाना शासन के लिये कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है और खास करके उस हालत में जब कि इस पर जनता की राय लेने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। इसी प्रयोजन के लिए मैंने संशोधन का पहला अंश रखा था। पर आपने उसे अनियमित ठहरा दिया है और आपके निर्णय को मैं शिरोधार्य करता हूं। फिर भी मैं यह जरूर कहूंगा कि जनता को बिना इस बात का मौका दिये कि वह इस पर अपनी राय जाहिर कर सके, और फिर इस

[श्री बी. पोकर साहिब]

आकस्मिक रूप में जो इस तरह के प्रावधान का शासन ने प्रस्ताव रखा है वह कभी भी उचित नहीं है।

इधर कुछ दिनों से, मैं देख रहा हूं कि शासन ने एक विशेष प्रवृत्ति अपना रखी है। शासनाधिकारी इसे भूल जाते हैं कि उन्हें देश का शासन लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार चलाना है। सारे लोकतन्त्रीय सिद्धान्तो को उन्होंने उठाकर ताक पर रख दिया है और यह समझने लगे हैं कि जो चाहे वह कर सकते हैं क्योंकि विधान-मण्डलों में बहुमत उनके साथ है। शासन की यह भूल है जो वह इस तरह की धारणा रखता है। उसे यह न भूलना चाहिये कि लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का आदर करना उसके लिये आवश्यक है। लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों की सर्वथा उपेक्षा करने उसे ऐसा आचरण न करना चाहिये। उसको चाहिये कि इस तरह का विधेयक प्रस्तावित करने से पूर्व को जनता को बतावे और विधान-मण्डल के सदस्यों के सामने रखे। इसलिये मेरा यह कहना है श्रीमान्, कि इस तरह का प्रावधान पास करना न आवश्यक ही है और न उचित ही है, क्योंकि इससे विधान मण्डलों के अधिकार गवर्नर-जनरल के हाथ में चले जाते हैं। यह प्रावधान सर्वथा अनावश्यक और स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण है।

जहां तक कि प्रस्ताव के दूसरे अंश का सम्बन्ध है, आपको मालूम ही है कि इस आशय का एक प्रस्ताव पहले ही आ चुका है। इसलिये इस सम्बन्ध में मैं और कोई नाम नहीं देना चाहता हूं। मैं उस प्रस्ताव का ही समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, यह कहने में मुझे रंचमात्र भी हिचक नहीं है कि सभा के समक्ष उपस्थित विधेयक के खण्ड 4 तथा 5(क) वीभत्स सांविधानिक कुकृत्य है। आज जो कुछ यहां हो रहा है और देश में जो कुछ हो रहा है उसे देखते मैं पुन: यही कहूंगा कि विधेयक का यह अंश एक भयंकर सांविधानिक कुकृत्य से कम नहीं है। इस सर्वसत्ताधारिणी सभा को मैं एक चेतावनी दे देना चाहता हूं, उसे सावधान कर देना चाहता हूं। मुझे घोर दु:ख के साथ ही ऐसा कहना पड़ रहा है और सभा यह कहने के लिए, यह याद दिलाने के लिए मुझे क्षमा करेगी कि अधिकारारूढ़ व्यक्तियों की ओर से इसकी उपेक्षा ही होती आई है, कभी इसका आदर नहीं किया गया है। यह सब कहने में मुझे कोई सुख नहीं मिल रहा है। गत कुछ महीनों से मैं देखता आ रहा हूं कि किस मनमाने ढंग से संविधान के मसौदे पर यहां विचार किया जा रहा है, किस तरह उसमें परिवर्तन किये जा रहे हैं और कई स्थलों पर तो ऐसे परिवर्तन किये गये हैं जो हमे पीछे की ओर ले जाने वाले हैं। यानी अधिकारारूढ़ व्यक्तियों ने जैसा चाहा वही किया। यही बात इस विधेयक के सम्बन्ध में भी देखने में आ रही है। अधिकारारूढ़ सज्जन में विधि निर्माताओं की रंचमात्र भी परवाह नहीं की है, न सिर्फ विधि निर्माताओं की बल्कि यों कहिये कि उन लोगों की जो इस राज्य के जन्मदाता और नींव डालने वाले हैं, उनकी भी उन्होंने कोई परवाह नहीं की। आज का दिन मेरे लिये घोर दु:खद एवं तीव्र वेदनादायक दिन है कि अपनी समूची शक्ति लगाकर, अपने सभी साधनों का सहारा लेकर मुझे, माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तावित विधेयक की धारा 4 तथा 5(क) का विरोध करना ही पड़ेगा।

सदस्यों को मैं इसका स्मरण दिलाऊंगा, उनके ध्यान में यह बात लाऊंगा कि यह प्रस्तुत विधेयक भारत-शासन-अधिनियम 1935 की तुलना में; उस कानून की तुलना में, जिसकी कि उस समय और बाद में भी न सिर्फ हमारे आज के नेताओं ने बल्कि देश के अन्य लोगों ने भी तीव्र निन्दा की है, किस तरह हानिकारक है और हमें पीछे की ओर ले जाने वाला है। मुझे विश्वास है कि सभा भी मेरे उक्त कथन में मेरे साथ होगी। माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने भारत-शासन-अधिनियम की धारा 61 और 291 का यहां जिक्र किया है। भारत-शासन-अधिनियम 1935 जैसे प्रतिक्रियामूलक में भी-हमारे देश के प्राय: सभी प्रगतिशील विचारकों ने, सभी प्रगतिशील नेताओं ने इस कानून को प्रतिक्रियात्मक ही माना है—इसकी धारा 291 के अधीन भी, उस धारा में वर्णित विषयों के बारे में, प्रान्तीय विधान-मण्डलों के किसी अधिकार का अपहरण नहीं हुआ है।

अब इस धारा 291 में श्री आयंगर द्वारा प्रस्तावित विधेयक के खण्ड (4) के द्वारा संशोधन करने की चेष्टा की जा रही है। धारा 291 में वर्णित विषयों के अतिरिक्त विधान-मण्डल के सदनों की रचना के सम्बन्ध में भी खण्ड (4) द्वारा गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया है। वस्तुत: सर्वाधिक महत्व की बात जिसकी ओर सदस्यों का ध्यान जाना चाहिये वह यह है कि अधिकारारूढ़ व्यक्तियों को इस सभा की प्रतिष्ठा का रंचमात्र भी ख्याल नहीं है, उसकी प्रभुता की इन्होंने सर्वथा उपेक्षा की है। उपस्थित विधेयक की इस बात पर आप जरा ध्यान दीजिये। धारा 291 में वर्णित विषयों के बारे में प्रान्तीय विधान-मण्डलों को जो अधिकार प्राप्त हैं उनका इस प्रावधान में अपहरण हो जाता है। भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में इस संविधान सभा को सारे अधिकारों से वंचित कर दिया गया हैं, इस व्यवस्था के द्वारा हम न केवल एक कदम पीछे चले जाते हैं बल्कि शायद सैकड़ों कदम पीछे चले जाते हैं पर हमारे अधिकारारूढ़ मित्र यह समझते ही नहीं हैं कि इस व्यवस्था के द्वारा हम पीछे की ओर जा रहे हैं।

मुझे खेद तो इसी बात का है। श्री आयंकर की वक्तृता सर्वथा हृदयहीन और निष्प्राण थी।

***श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य ने वक्तृता सुनी ही नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** इसका कारण यह है कि सहृदय या गर्मदिल व्यक्ति की ही आवाज मेरे कानों तक पहुंच पाती है। हृदयहीन झन्कार में इतनी शक्ति नहीं कि वह मेरे कानों तक पहुंच सके।

मैं यह बता देना चाहता हूं कि उनकी बहुत ही बहुमूल्य बातों को मैं सुन नहीं पाया हूं सुतरां अपना पक्ष प्रतिपादन करने में मुझे दिक्कत जरूर उठानी पड़ रही है। उनकी जो तानें मैंने सुनी वह तो पीटी थीं ही पर शायद जिन तानों को मैं सुन न सका वह और भी मधुर रही होंगी। जो भी हो, विधेयक उपस्थित करते हुये जो भाषण उन्होंने दिया है वह कतई ऐसा नहीं था जो जंचता। वर्तमान शासन ने आज जो कुछ करने का निर्णय किया है उसके लिये उन्होंने अपने भाषण में इतना भी नहीं किया कि सौजन्य के नाते क्षमा तो मांगते। उन्होंने इतना भी

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं किया कि सद्यस्कृस्यता अथवा समयाभव के नाम पर इस विधेयक को उपस्थित करने के लिए अपनी विवशता व्यक्त करते, इतना भी नहीं किया कि इस हानिकारक एवं पीछे ले जाने वाले विधेयक को उपस्थित करने के लिए विवशता के नाम पर ही क्षमा चाहते। श्री आयंगर का दिल जिन पर यह विधेयक उपस्थित करने का भार है, शायद इस बात को नहीं जानता है, हो सकता है दिमाग जानता हो, कि भारत-शासन-अधिनियम के विरुद्ध देश में कितना जबरदस्त आन्दोलन चला था। उनके ध्यान में भी यह बात नहीं आई कि उनके दिल में यह ख्याल न पैदा हुआ कि कम से कम सभा के समक्ष इतना कह कर ही क्षमा मांग लेते "इस तरह का विधेयक आपके समक्ष रख रहा हूं। मुझे खुद इसके लिये दु:ख है पर इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है" पर मैं उनसे इस बात की आशा भी नहीं रखता हूं क्योकि वह उन लोगों में से एक हैं जिन पर देश के स्वातन्त्रय आन्दोलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

अब आइये उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य को देखें। इसके पैरों को संख्याबद्ध करके नहीं रखा गया है, इसलिये इसके नम्बर का हवाला देकर इसका उल्लेख नहीं किया जा सकता है। शायद गलती से उसके पैरों को संख्याबद्ध करके नहीं दिखाया गया है। मैं केवल उसी पैरा का जिक्र करूंगा जिसमें प्रस्तुत विधेयक के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। इसको पढ़ने से सभा को मालूम होगा कि इसकी सारी बुनियाद ही केवल कल्पना पर आधृत है। प्रारम्भ से अन्त तक इसमें कतिपय स्थिति विशेष की कल्पना करके ही उनका प्रावधान किया गया है। इस पैरा की भाषा देखने से ही आपको पता चलेगा कि इन खण्डों का रखना सभा का अपमान करना है, सभा की प्रतिष्ठा एवं प्रभुता के लिये ये अपमान स्वरूप हैं। मैं कोई बनावटी बात नहीं कहना चाहता, जो कुछ कहना है साफ-साफ कहता हूं। उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य की भाषा भी इस सभा की प्रतिष्ठा एवं प्रभुता के सर्वथा प्रतिकूल है। "यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाये, हो सकता है, सम्भव है इत्यादि इत्यादि" यहां कहा गया है। न केवल इस देश में बल्कि बाहर भी किसी देश में जो अपने को लोकतन्त्रीय मानता है, मैंने कही भी इस तरह का विधेयक, इस तरह का महत्वपूर्ण विधेयक इस प्रकार जल्दीबाजी में पास कराते हुये नहीं देखा है। अधिकारारूढ़ लोगों द्वारा जब आज सभा के सदस्यों की इस प्रकार अवहेलना की जा रही है, तो यह दिन मेरे लिये घोर शोक का ही दिन है। आशा है अधिकारारूढ़ लोगों में सुबुद्धि उत्पन्न होगी, इन बुद्धिमानों की बुद्धि जागेगी। आशा करता हूं कि अभी भी हमारे इन तथा कथित बुद्धिमानों को प्रकाश प्राप्त हो जायेगा और वह अपना रास्ता बदल देंगे।

विधेयक की अन्य बातों के सम्बन्ध में मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि अधिकारारूढ़ व्यक्ति, जब कभी भी, अपनी सुविधा के लिये आवश्यकता होती इस सभा को विधान-मण्डल के रूप में बदल देते हैं या यों कहिये कि इसे विधान-मण्डल मान बैठते हैं। और जब उनको अपने प्रयोजनों के लिये ऐसा करना आवश्यक नहीं होता है, तो संविधान सभा के रूप में यहां अपनी सुविधानुसार चलते हैं। अभी उस दिन मुझे यहां यह कहना पड़ा था कि एक अध्यादेश को, जो 6 माह की समाप्ति कर व्यपगत होता था, आसानी से इस सभा के समक्ष

रखा जा सकता था, क्योंकि उन दिनों इसकी बैठक चल रही थी और बजाये उसे पुन:जारी करने के उसे यहां कानून के रूप में पास किया जा सकता था। मुझे घोर दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि आज से कहीं अच्छा लोकतन्त्रीय स्तर का निर्वाह तो अंग्रेजों ने कई मौकों पर किया था। मुझे यह कहते हुए दु:ख हो रहा है पर कहना ही पड़ता है। श्रीमान्, कि हम लोकतन्त्र का हिमायती होने का दावा तो बहुत करते हैं पर—मेरे हृदय को इस बात से घोर वेदना पहुंचती है—विधान-मण्डल को सर्वप्रभुता सम्पन्न निकाय तभी तक मानते हैं जब तक कि अपने प्रयोजन के लिये ऐसा करना आवश्यक है और जब ऐसा करना अपने प्रयोजन के लिये अनुकूल हो जाता है तब हम उसे कुछ नहीं समझते हैं। उक्त अध्यादेश को बिना यहां रखे ही पुन: जारी कर दिया गया। संविधान सभा का अधिवेशन उस समय चल रहा था और उसे विधान-मण्डल के रूप में बदल कर उसके सामने वह अध्यादेश रखा जा सकता था और उस पर विचार कर, सभा उसे कानून के रूप में पास कर सकती थी। यह काम एक घण्टे में हो जाता पर उस समय ऐसा नहीं किया गया। और आज चूंकि प्रयोजन आ पड़ा है इसलिये हमारे सामने यह विधेयक रखा जा रहा है। निस्संदेह यह बड़ी दु:खद बात है। मैं नहीं जानता कि अन्य सदस्य इसके सम्बन्ध में क्या अनुभव करते हैं पर मुझे तो इससे घोर दु:ख हो रहा है।

मेरा ख्याल है डॉ. देशमुख ने गवर्नर जनरल के उस अधिकार का जिक्र किया है जो इस प्रावधान द्वारा प्रान्तीय विधान मण्डलों के सदनों की रचना में हेरफर करने के बारे में उसे दिया जा रहा है। श्री गोपालस्वामी आयंगर ने विधेयक उपस्थित करते हुये—यदि मैंने ठीक-ठीक सुना है—पश्चिमी बंगाल का तथा वहां होने वाली बातों का उल्लेख किया है। किन्तु उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में न सिर्फ पश्चिमी बंगाल का हवाला दिया गया है बल्कि अन्य सभी प्रान्तों का हवाला दिया गया है। इस तरह के महत्वपूर्ण विधेयक के उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में इस तरह की अनिश्चयात्मक अगर मगर से भरी हुई भाषा का प्रयोग देखकर बड़ी झल्लाहट पैदा होती है। क्या अधिकारारूढ़ व्यक्तियों की ओर से इससे और अधिक सम्मान पाने के हम अधिकारी नहीं हैं? यदि वे सदस्यों का इससे अधिक ख्याल नहीं रखना चाहते हैं, उन्हें इससे अधिक आदर नहीं देना चाहते हैं तो मैं निजी तौर पर तो यह पसन्द करूंगा कि सभा को ही समाप्त कर दिया जाये और सारे अधिकार वही लोग जो कि अधिकारारूढ़ हैं, चाहे गवर्नर जनरल या मंत्रिमण्डल अपने हाथ में ले ले। मैं नहीं चाहता कि इस सभा को इस तरह तमाशा बनाया जाये और उसे सिर्फ दिखावे के लिये रखा जाये। अधिकारारूढ़ लोग आज इस सभा को महज तमाशा बनाये हुये हैं। यह एक ऐसी बात है जिससे मुझे बड़ी चोट पहुंचती है और क्रोध आता है। पर क्रोध करने में लाभ ही क्या है? क्रोध करके हम कर ही क्या सकते हैं? अधिकारारूढ़ लोग नृशंस हैं, हमारे विरोध और आक्रोश की उन्हें रंचमात्र चिन्ता नहीं हैं। इस दलदल से निकलने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता है। मुझे खेद है कि मैंने बड़ी तीखी भाषा का प्रयोग किया है पर मेरे हृदय को इस प्रावधान से गहरा आघात पहुंचा है और इस तीव्र भाषा का प्रयोग किये बिना मैं रह नहीं सकता। विधाान-मण्डल के सदन या सदनों की रचना के अधिकार को सर सैमुएल होर ने भी धारा 291 में शामिल नहीं किया था और उसे एक अलग धारा में रखा था। पर यहां यह किया जा

[श्री एच.वी. कामत]

रहा है कि इस अधिकार को तथा धारा 61 के अधीन और पांचवीं अनुसूची के अधीन जो अधिकार प्राप्त होते हैं उन सबको इस विधेयक के द्वारा गवर्नर जनरल को सौंपा जा रहा है। आशा करता हूं कि ऐसा करने में उनका कोई खास अभिप्राय नहीं है। आशा है कि गवर्नर जनरल या शासन का यह प्रयास इस प्रयोजन के लिये नहीं है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुविधानुसार जब चाहा प्रान्तीय विधान-मण्डल बना रहने दिया या खत्म कर दिया।

मुझे बड़ी खुशी होती इस बात से कि धारा 291 में लिखित बातों को यहां सभा के समक्ष रखा जाता और उनके बारे में सभा की स्वीकृति ली जाती। पर ऐसा कौन करता है? मताधिकार, सदस्य की अर्हता आदि सामान्य बातों से लेकर ऊंची से ऊंची बात यानी सदन की रचना, इन सबके सम्बन्ध में ही सारा अधिकार गवर्नर जनरल को दिया जा रहा है। हो सकता है सद्अभिप्राय से प्रेरित होकर ही शासन इस विधेयक को सभा के समक्ष पेश कर रहा है। श्री आयंगर की नेकनीयती पर मैं कोई शक नहीं कर रहा हूं। पर जैसा कि कहावत है नेकनियत लेकर तो हम नर्क भी पहुंच सकते हैं। इस विधेयक को उपस्थित करने में शासन का अभिप्राय बहुत उत्तम हो सकता है पर उसके अभिप्राय को अगर सद्भावना के साथ कार्यान्वित नहीं किया जाता है तो देश की क्या गति होगी इसे मैं सोच नहीं पाता हूं। धीरे-धीरे हम पतन की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं और मैं कह नहीं सकता कि अन्ततोगत्वा क्या होगा, देश का विनाश होगा या लोकतन्त्र की हत्या होगी। पर जो पथ हमने अपनाया है उससे मुझे घोर चिन्ता हो रही है। आशा करता हूं कि सभा परिस्थिति की वास्तविकता को समझेगी और समय रहते सावधान हो जायेगी। मैं श्री आयंगर से तथा अन्य लोगों से जो कि आज अधिकारारूढ़ हैं—ये लोग इस सभा में मंत्री के रूप में नहीं बल्कि सदस्य के रूप में ही उपस्थित हैं—इस बात के लिये अनुरोध करूंगा कि वह.....

***एक सदस्यः** आज जो लोक अधिकारारूढ़ हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** हां, आज यही लोग अधिकारारूढ़ हैं और इनसे मैं अनुरोध करूंगा कि इस विधेयक पर पुनर्विचार करें, उसे एक प्रवर समिति के हवाले कर दें और कम से कम इस बात की कोशिश जरूर करें कि गवर्नर जनरल को दिये गये अधिकारों का मनमाने ढंग पर प्रयोग न किया जा सके या कम से कम संरक्षण के रूप में इसकी व्यवस्था जरूर कर दें कि भारत शासन अधिनियम में परिवर्तन करने का जो भी प्रस्ताव हो वह स्वीकृति के लिये इस सभा के समक्ष अवश्य रखा जाये। इससे कम से कम इतना तो होगा कि लोकतन्त्र का दिखावा तो बना रहेगा और मेरा ख्याल है कि शासन का उद्देश्य भी यही है। लोकतन्त्र की आत्मा को, उसके प्राण को तो बाहर फेंक दे रहे हैं और सिर्फ उसके खोखले शरीर को हम रख रहे हैं। आशा है शासन अपनी इस प्रवृत्ति का परित्याग करेगा और बुद्धिमता से काम लेगा। आज यह बुद्धिमता से काम ले रहा है केवल प्रपंचना करने में, पर आशा करता हूं पूर्व इसके कि हम विपत्ति से आक्रान्त हो जायें, वह सुबुद्धि से काम लेगा और इस सभा की प्रतिष्ठा का, इसकी प्रभुता का समुचित ध्यान रखेगा और इसका आदर करेगा।

एक और बात है। इस विधेयक के अनुसार चुनाव के प्रयोजनार्थ निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के बारे में गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया है। इस बारे में गवर्नर जनरल जो भी करेगा उस पर संसद या इस सभा का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। खण्ड (4) में रखे गये इन विषयों के बारे में मुझे बड़ी चिन्ता है। हो सकता है किसी खास प्रान्त में आज कुछ उपद्रव हो और आपको कठिनाई हो रही हो किन्तु संविधान को तो सिर्फ आज की स्थिति को ही ध्यान में नहीं रखना होगा। संविधान में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति, असाधारण शक्तियों को अपने हाथ में लेने से पूर्व आपात, स्थिति की विद्यमानता की उद्घोषणा कर सकता है। किन्तु अब तो बिना ऐसी उद्घोषणा के ही गवर्नर जनरल ऐसी कई शक्तियों को अपने हाथ में ले रहा है जिनकी कल्पना भारत-शासन अधिनियम के रचयिताओं ने भी नहीं की थी। विधेयक में कहीं इस बात का आभास भी नहीं मिलता है कि इन विषयों के बारे में अगर कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे तो तद्विषयक प्रस्ताव इस सभा के समक्ष स्वीकृति के लिये जरूर रखा जायेगा। अगर ऐसा भी होता तो एक बात थी क्योंकि वह विधेयक ज्यों का त्यों पास हो जाता है तो स्व:भाविक है कि कइयों को यह सन्देह होगा कि शासन सदनों की रचना के बारे में ऐसा परिवर्तन करेगा, निर्वचन क्षेत्रों का परिसीमन इस रूप में करेगा कि उसका स्वार्थ सिद्ध हो सके। व्यक्तिगत रूप से मुझे तो इस प्रावधान से गम्भीर चिन्ता है। और अगर सभा ऐसे भयंकर कुविधेयक को पास करने में अपना विरोध व्यक्त नहीं करती है तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी और वह अपने कर्तव्य पालन में चूक करेगी। मैं केवल विधेयक के खण्ड (4) तथा (5)क के सम्बन्ध में ही यह कह रहा हूं।

बस सिर्फ एक बात और मुझे कहनी है। मैं आशा करता हूं कि सभा का मूल लक्ष्य यही है कि देश का हित हो। मैं आशा करता हूं कि हम लोग यहां इसी भावना से काम कर रहे हैं, प्रस्तावादि रख रहे हैं कि हम सब समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं और दलगत भावना से हम रंचमात्र भी प्रभावित न होंगे। मैं नहीं जानता हमारे अन्य सदस्य बन्धुओं की इस सम्बन्ध में क्या अनुभूति है किन्तु मैं यही आशा करता हूं, परमात्मा से इसी बात की प्रार्थना करता हूं कि हम सब इसी उद्दात भावना से यहां काम कर सकें कि हम राष्ट्र के लिये यहां आये हैं न कि किसी दल विशेष के लिये। आशा करता हूं कि सभा इस मामले में इस तरह काम करेगी कि दूसरे देशों के लोग, विदेशों में रहने वाले हमारे देशवासी बन्धु यह कहें कि इस संविधान सभा के सदस्यों में एक भी ऐसा नहीं था जिसने देश का सर्वोपरि ख्याल न कर अपने दल का ख्याल किया हो। इसलिये मैं सभा से यह अपील करूंगा, श्री आयंगर से यह अपील करूंगा, जो इस विधेयक को यहां उपस्थित कर रहे हैं, कि इस विधेयक पर और गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये इस सभा के प्रति और अधिक आदर का बर्ताव किया जाये और ऐसा कानून बनाया जाये कि हम लोगों को जो कि अपने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिये संविधान बना रहे हैं, झूठा न कहा जा सके, या हम अपने मन में एक चोर लेकर यहां से बाहर न जायें और हमारे देशवासी हमारी निन्दा और उपहास न कर सकें।

अन्त में मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि संविधान की प्रस्तावना में तो आपने यह साफ-साफ कहा है कि संविधान एक सर्व प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक

[श्री एच.वी. कामत]

गणराज्य के लिये होगा किन्तु यहां अभी जिस तरह से आप चल रहे हैं उससे तो मुझे यह मालूम होता है कि प्रस्तावना के प्रतिकूल चलना चाहते है। आप एक सिद्धांत पर जमे रहिये। अगर हम यह भी कहते जायेंगे कि हम भारतीय राज्य को एक लोकतन्त्रात्मक राज्य बनाना चाहते हैं और साथ ही उस दिशा में भी चलेंगे जिस दिशा में अभी हम यहां चले रहे हैं तो मेरे ख्याल में इसमें हमारा मंगल न होगा और हमारा देश वह सुख समृद्धि न प्राप्त कर सकेगा, उसे दुनिया में वह प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकेगी जिसकी कि हम सभी कामना करते हैं। सुतरां मैं अन्ततोगत्वा सभा से इस बात की अपील करता हूं कि वह उस विधेयक को इस तरह शीघ्रता से पास न करें और अगर इसे जल्दी-जल्दी पास करने का प्रयास ही किया जाता है तो कम से कम उसके खण्ड (4) और (5)(क) के प्रति वह अपना विरोध व्यक्त करे।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, इस विधेयक को यहां उपस्थित किया है श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जिनके लिये मेरे हृदय में बड़ा ही आदर है, जो अपनी नपी-तुली बात के लिये, अपनी प्रयोजन-निष्ठा के लिये तथा सच्चाई के लिये प्रख्यात हैं। किन्तु इस विधेयक में, मैं देखता हूं कि, सभी बातें अनिश्चित एवं अस्पष्ट हैं और इमें यह पता नहीं चलता है कि हम कहां जा रहे हैं और किस प्रयोजन के लिये इस विधेयक को कानून का रूप देना चाहते हैं। वस्तुत: यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस विधेयक को उपस्थित किया है एक ऐसे व्यक्ति ने जो कि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, नपी-तुली बात कहने के लिए हमेशा से ही मशहूर है। उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में यह कहा गया है कि:

> "यदि कहीं ऐसा आवश्यक हो जाये कि पश्चिमी बंगाल या अन्य किसी प्रान्त में भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अधीन आम चुनाव करने का आदेश किसी समय निकालना पड़े तो हो सकता है कि उन व्यक्तियों को जो कि पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत में स्थायी तौर पर, बस गये हैं या बसने का इरादा कर रहे हैं, मताधिकार प्रदान करने के लिये विशेष प्रावधान करना पड़े। हो सकता है कि ये चुनाव स्थान-रक्षण की व्यवस्था के साथ संयुक्त निर्वाचन-मण्डल के सिद्धान्त के आधार पर करने हों।"

विधेयक का प्रस्ताव उपस्थित करते हुये और उस पर विचार व्यक्त करते हुये जो भाषण आपने दिया है उसमें कहीं भी माननीय सदस्य ने यह नहीं बताया है कि पश्चिमी बंगाल में आम चुनाव करने का क्या प्रयोजन आ पड़ा है या यह कि स्थान रक्षण की व्यवस्था के साथ संयुक्त निर्वाचक-मण्डल के आधार पर चुनाव करने की क्यों जरूरत है जबकि यह सभा यह फैसला कर चुकी है कि अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त और किसी के लिए भी स्थान रक्षण की व्यवस्था न की जायेगी? अगर भारत सरकार यह समझती है कि स्थान रक्षण की व्यवस्था एक हानिकर व्यवस्था है, तो मैं नहीं समझ पाता कि वह इस व्यवस्था को क्यों यहां रखना चाहती है और खास करके उस हालत में जबकि संविधान-सभा यह फैसला कर चुकी है कि अनुसूचित जातियों के सिवाय और किसी भी फिरके के लिये

स्थान-रक्षण की व्यवस्था न की जायेगी। फिर यह भी कहा गया है कि पश्चिमी बंगाल में आम चुनाव करने के बारे में कोई फैसला नहीं हुआ है। मैं यह जानता हूं कि हिंसात्मक अपराध और....

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ इस विषय विशेष के सम्बन्ध में अपने भाषण में जो कुछ मैंने कहा है उसकी ओर मैं माननीय सदस्य का ध्यान आकृष्ट करता हूं। मेरा ख्याल है कि उनके लिये यह कहने का अब समय नहीं रह गया है कि स्थान रक्षण के साथ संयुक्त निर्वाचक-समूह का विचार मैंने या शासन ने यहां दिया है।

*__काजी सैयद करीमुद्दीनः__ किन्तु उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में इसका उल्लेख किया गया है। मैं इसे फिर पढ़कर सुना देता हूं।

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ इसे पढ़कर सुनाने की जरूरत नहीं है। मैंने पढ़कर सुना दिया है और यह समझा दिया है कि इसका वहां क्यों उल्लेख किया गया है।

*__काजी सैयद करीमुद्दीनः__ वहां यह कहा गया है कि "यदि कहीं ऐसा आवश्यक हो जाये कि पश्चिमी बंगाल में आम चुनाव करना पड़े...।" मैं यह जानता हूं कि हिंसात्मक अपराध और जघन्य आक्रमण की घटनायें पश्चिमी बंगाल में बहुत जोर पकड़ गई हैं। किन्तु क्या यही एकमात्र कारण है कि जिसके लिये वहां चुनाव करने की जरूरत पड़ गई है? इन अपराधों के कारण ही वहां चुनाव करना पड़ेगा। श्री गोपालस्वामी आयंगर ने हम लोगों को यह नहीं बतलाया है कि आखिर इन शक्तियों को गवर्नर जनरल को देने का प्रयोजन क्या आन पड़ा है? वहां किस प्रयोजन के लिये चुनाव किया जायेगा? यहां सभा में यह बात बता दी जानी चाहिये कि क्या वहां के शासन की धांधली के कारण चुनाव करना पड़ रहा है ताकि उसकी जगह दूसरा शासन प्रतिष्ठित किया जा सके या भारत सरकार इस बात की परख करना चाहती है कि वहां जनता कांग्रेस पार्टी के प्रति, कांग्रेस शासन के प्रति निष्ठा रखती है या और किसी दल के प्रति? यदि पहली बात सही है यानी हिंसात्मक अपराधों के कारण, वहां के शांतिप्रिय नागरिकों पर होने वाले जघन्य आक्रमणों के कारण यह व्यवस्था करनी पड़ रही है तो उसका इलाज चुनाव नहीं है बल्कि उसका इलाज यह है कि वहां उपद्रव का, कानून की अमान्यता का दमन किया जाये। और यदि जनमत को परखने के लिये कि वहां जनता वर्तमान शासन प्रणाली के प्रति निष्ठा रखती है या नहीं, वहां चुनाव की व्यवस्था की जा रही है तो फिर आपको प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर वहां चुनाव की व्यवस्था करनी चाहिये न कि...

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान। यहां बहस होनी चाहिये विधेयक के सम्बन्ध में न कि बंगाल की राजनैतिक स्थिति के प्रश्न पर। विधेयक में तो केवल इसी बात का प्रावधान किया गया है कि यदि किसी समय वहां आम चुनाव करना आवश्यक ही हो जाये तो उसके लिये गवर्नर जनरल को अधिकार रहेगा। मैंने स्थिति को साफ-साफ समझा दिया है और इस पर अभी यहां बहस करना असामयिक होगा।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में जब इसका उल्लेख आ चुका है तो यहां इस बात पर सोच विचार करना जरूरी है कि ये अधिकार गवर्नर जनरल को दिये जाये या नहीं। मेरा कहना यह है कि पश्चिम बंगाल में चुनाव करने के लिये इन अधिकारों को अभी से ले लेना सर्वथा समयपूर्व है। हां, अगर इस प्रभुत्व सम्पन्न सभा को अगर उसका कारण समझा दिया जाये तो यह अधिकार प्रदान करने में उसे कोई आपत्ति न होगी। पर अगर जनमत को परखने के लिये आप ऐसा करते हैं तो फिर इतनी जल्दी और इतने सीमित मताधिकार के आधार पर क्यों चुनाव करते हैं खास करके जबकि भारत सरकार ने हमें यह विश्वास दिला दिया है कि आम चुनाव 1950 में किया जायेगा? यदि यह बात यहां मंजूर कर ली जाती है कि बंगाल का वर्तमान शासन धांधली कर रहा है और इसे हटाना जरूरी है तब तो वहां आप बखुशी चुनाव कर सकते हैं अन्यथा वहां चुनाव करने का तो यही मतलब लगाया जायेगा कि आप जनता की मांग को दबाना चाहते हैं। और इसके सिवाय दूसरा कारण ही क्या हो सकता है जिसके लिये कि इतनी जल्दी में वहां चुनाव किया जाये?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैंने तो कभी यह नहीं कहा है कि वहां चुनाव किया जाने वाला है।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** आपने यह कहा है कि "अगर ऐसा हो....इत्यादि, इत्यादि।"

दूसरी बात यह है कि धारा 291 के अधीन गवर्नर जनरल को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं कि उनकी तुलना में राष्ट्रपति को आपने जो आपात-शक्तियां प्रदत्त कर रखी हैं वे कुछ नहीं हैं। भारत-शासन-अधिनियम के अनुसार गवर्नर जनरल केवल एक सांविधानिक प्रमुख मात्र है। अभी यहां यह कहा गया है कि कोई सद्यस्कृत्यता की स्थिति नहीं उपस्थित हो पड़ी है, कोई संकट नहीं आ गया है। जब ऐसी ही बात है तो फिर यह नहीं समझ में आ रहा है कि बजाय इसके कि धारा 93 के अधीन और आम चुनाव सम्बन्धी कानूनों के अधीन कोई कानून बनावें। आप इन सभी अधिकारों को गवर्नर जनरल को क्यों सौंपे दे रहे हैं? भारत-शासन-अधिनियम 1935 के किसी भी प्रावधान के और उसके अधीन निकाले गये किसी आदेश के निरसन की, उसमें सशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार गवर्नर जनरल को दिए जा रहा है। मैं कहता हूं इस तरह का प्रावधान घोर अलोकतंत्रीय है। इस विधेयक के अधीन तो संसद की किसी विधि में गवर्नर जनरल संशोधन कर सकता है और संसद द्वारा निकाले किसी आदेश का निरसन, उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह हुआ कि गवर्नर जनरल किसी आदेश को रद्द कर सकता है और उसमें, जो चाहे संशोधन कर सकता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि पेश्तर इसके कि खण्ड 4 यहां स्वीकार किया जाये, हमें यह मालूम हो जाना चाहिये कि ये अधिकार आखिर गवर्नर जनरल को क्यों दिये जा रहे हैं?

विधेयक के खण्ड 3 के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। पाकिस्तान से विस्थापित होकर जो लोग यहां आये हैं उन्हें भयानक कष्ट उठाने पड़े हैं। जो लोग भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये हैं उन्हें दोनों सुविधाये नहीं दी जा सकती हैं कि रहें तो वे पाकिस्तान में और जो सम्पत्ति यहां छोड़ गये हैं उससे भी लाभ उठाते रहें। किन्तु कार्यपालिका को इस सम्बन्ध में अधिकार देने में एक खराबी

है जो संयुक्त प्रान्त में अभी हाल में जारी किये गये एक अध्यादेश से जाहिर हो जाती है। वहां बारह जिलों में सभी मुसलमानों की सम्पति का हस्तान्तरण अर्जित कर दिया गया है। जिन लोगों ने भारत को अपना घर बना लिया है उनकी भी सम्पति के हस्तान्तरण पर रोक लगा दी गई है। कार्यपालिका को अत्यधिक अधिकार देने में यही खास खराबी है जिसको लेकर मुझे आपत्ति है। संसद निर्मित विधि में संशोधन करने का या उसके निरसन का अधिकार कार्यपालिका को देने का क्या परिणाम हो सकता है, यह आपको संयुक्त प्रान्त की इस बात से मालूम हो जाता है। जो लोग भारत छोड़ चुके हैं उनकी सम्पत्ति के बारे में आप चाहें जो भी कानून बनावें, जो भी आदेश निकालें और जो भी चाहें उस पर प्रतिबन्ध लगायें, मुझे उनके लिये कोई वकालत नहीं करनी है पर जिन्होंने भारत को अपना घर बना लिया उनकी सम्पति के बारे में क्यों ऐसे कानून बनाये जायेंगे जैसा कि संयुक्त प्रान्त में पास किया गया है? पाकिस्तान ने जो रवैया अख्तियार कर रखा है उसके प्रत्युत्तर स्वरूप क्या यहां के मुसलमानों को, पाकिस्तान में छोड़ी हुई विस्थापितों की सम्पत्ति के लिये बतौर बंधक के रखा जायेगा? जो अधिकार आप गवर्नर जनरल को देना चाहते हैं वह बहुत व्यापक हैं, ऐसे अधिकार कहीं भी किसी प्राधिकारी को नहीं दिये गये हैं और ये अलोकतंत्रीय हैं। ऐसे अधिकार गवर्नर जनरल को न मिलने चाहियें। मैं इस विधेयक का विरोध करता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ श्री विश्वनाथ दास।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ श्री विश्वनाथ दास के बोलने के पहले, यदि अनुमति हो तो मैं अपना दूसरा संशोधन पेश कर दूं।

*__उपाध्यक्षः__ वह संशोधन आप उस समय पेश कर सकते हैं जब इन खण्डों पर अलग अलग यहां विचार होने लगे।

*__श्री विश्वनाथ दासः__ (उड़ीसा : जनरल): इस विधेयक को लेकर जो वक्तृतायें यहां हुई हैं और जिस तरह इस पर यहां विचार हो रहा है उससे मैं आश्चर्य में पड़ गया हूं और घबरा सा गया हूं। हमसे यह कहा जा रहा है कि प्रस्तुत विधेयक बिल्कुल अस्पष्ट है। मैं नहीं समझता कि यह किस तरह अस्पष्ट है। इस विधेयक में दो बातों के बारे में प्रावधान किया गया है। एक तो निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में और दूसरे पश्चिमी बंगाल के प्रत्याशित निर्वाचन के सम्बन्ध में। इन दोनों ही बातों के बारे में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं वह बिल्कुल स्पष्ट हैं और साधारण हैं। जो भी प्रावधान रखे गये हैं और यथा अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम में जो संशोधन किये जा रहे हैं उनमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जो असाधारण कही जाये। माननीय मित्र डॉ. देशमुख से यह सुनकर तो मुझे खासतौर पर बड़ा दु:ख पहुंचा है, श्रीमान, कि हम यहां एक विरोधरहित दल के रूप में प्रकार्य कर रहे हैं। यह सच है। पर इसमें पाप क्या है? क्या यह भी कोई पाप है कि सदन में अधिकांश सदस्य एक ही दल के हैं? गणतंत्रात्मक राज्य में और लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था में तो यह एक स्वाभाविक बात है। हमी लोग शासन-व्यवस्था चला रहे हैं और हमी लोग विरोधीपक्ष का काम कर रहे हैं और केवल एक इसी बात से यह सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस उच्चतम लोकतन्त्रीय परम्पराओं का पालन कर रही है। संविधान सभा की कार्यवाही रिपोर्टों पर एक सरसरी निगाह डालनें से ही यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जायेगी कि कांग्रेस दल में संविधान-सभा में, चाहे वह संविधान-सभा के रूप में समवेत हुई हो या

[श्री विश्वनाथ दास]

विधान-मण्डल के रूप में, सदा लोकतन्त्र की विशिष्टतम परम्पराओं का पालन ही किया है। इसी बात को देखिये न कि माननीय मित्र श्री कामत और डॉ. देशमुख दोनों ही कांग्रेस दल के सदस्य हैं और यहां हमेशा विरोध में अपनी आवाज उठाते हैं पर कांग्रेस दल की ओर से उन्हें कोई बाधा नहीं दी जाती है। इस एक तथ्य से ही यह सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस या उसके अधिकारी जो शासन चला रहे हैं वह लोकतंत्र की विशिष्टतम परम्पराओं का पालन कर रहे हैं। ऐसी दशा में मैं नहीं समझ पाता कि माननीय मित्र का यह कहना कि हम एक दल का शासन चला रहे हैं क्योंकर उचित हो सकता है? इस तरह की आलोचना करके तो ये न अपने साथ न्याय कर रहे हैं और न उस दल के साथ जिसके ये सदस्य हैं।

माननीय मित्र श्री कामत, जिनके लिये मेरे हृदय में स्नेहभाव है, यह कह रहे हैं कि विधेयक के प्रावधान बिल्कुल वीभत्स हैं, राक्षसी हैं। मैं पूछता हूं इन प्रावधानों में क्या बात वीभत्स है?

***श्री एच.वी. कामतः** विधेयक का खण्ड 4 ही वीभत्स है और कोई नहीं।

***श्री विश्वनाथ दासः** इस उत्तर के लिये मैं उनको धन्यवाद देता हूं। यदि उनका विचार यह है कि लाखों लोग जो पाकिस्तान से विस्थापित होकर, अपना घरबार खोकर यहां आ गये हैं उनको मताधिकार न दिया जाये, उनको विधान-मण्डल में प्रतिनिधान न दिया जाये तो मैं कहूंगा उनका यह विचार ही सर्वथा वीभत्स है।

मुझे यह याद है कि इस बारे में पाकिस्तान में क्या किया गया है। वहां ऐसा परिवर्तन केन्द्र में भी कर दिया गया है और पश्चिमी पंजाब में भी। इसलिये प्रावधान में ऐसी कोई बात नहीं है कि इसे वीभत्स कहा जाये। आशा है कि माननीय मित्र अब आगे ऐसी बात न कहेंगे क्योंकि यह एक तथ्य है कि हमने यह घोषणा कर दी है और हमारे नेताओं ने यह घोषित कर दिया है कि वह जनमत के अनुसार ही चलेंगे और इससे इस मत की पुष्टि हो जाती है कि आज कांग्रेस ही दुनिया में विशिष्टतम लोकतन्त्रात्मक निकाय है, लोकतंत्रीय संस्था है।

पश्चिमी बंगाल के निर्वाचन के सम्बन्ध में यहां बहुत कुछ कहा गया है, श्रीमान। माननीय मित्रों के इस कथन से मैं सहमत नहीं हूं कि बंगाल के मंत्रिमण्डल को विघटित करके वहां नया चुनाव किया जायेगा। औचित्य की बात तो दूर रही, कोई छोटा मोटा कारण भी मुझे नहीं दिखाई देता है जिसके आधार पर ऐसा किया जा सके। जनता के विश्वास या अविश्वास की परख एक उपनिर्वाचन से नहीं की जा सकती है। अगर लोकतन्त्र की कसौटी यह है कि जनता का शासनारूढ़ दल में विश्वास हो तो मेरे ख्याल से यह बात अच्छी तरह प्रमाणित चुकी है कि कांग्रेस में जनता का विश्वास है। बंगाल के चुनाव के बाद ही उड़ीसा में भी चुनाव हुआ है और वहां लोगों ने दुनिया को दिखा दिया है कि वहां की जनता का, देहातों में में बसने वाले यहां के असंख्या नर-नारियों का विश्वास कांग्रेस को पूर्णतः प्राप्त है। न केवल विधान-मण्डल सम्बन्धी उपनिर्वाचन में बल्कि....

***डा. पी.एस. देशमुखः** इस बात पर तो किसी ने कोई शंका ही नहीं की है।

श्री विश्वनाथ दासः एक जिले के आम चुनाव ने तथा विभिन्न जिला बोर्डों के उपचुनावों ने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि कांग्रेस को जनता का पूर्ण विश्वास प्राप्त है और जनता उसके साथ है।

***उपाध्यक्षः** माननीय प्रस्तावकर्ता ने यह बताया है चुनाव के बारे में कोई फैसला नहीं हुआ है। उनके इस कथन को देखते हुए मैं नहीं समझता कि इन सब बातों की चर्चा यहां प्रासंगिक कही जा सकती है।

***श्री विश्वनाथ दासः** मुझे यह जानकर खुशी है कि बंगाल के उपनिर्वाचन को लेकर कोई निर्णय नहीं किया गया है। माननीय प्रधान मंत्री ने अपने कलकत्ते के दौरे के बाद जो वक्तव्य दिया है उससे तो यही प्रकट होता है कि विधान-मण्डल को भंग करके नये निर्वाचन का आदेश निकालने की बात इन लोगों के दिमाग में चक्कर जरूर काट रही है। इसीलिये इन बातों की चर्चा की यहां प्रासंगिक है। अस्तु, इस सम्बन्ध में मुझे जो कुछ भी कहना है वह मैं संक्षेप में कह देता हूं। मद्रास में अभी जो जिला बोर्डों के चुनाव हुये हैं उनसे भी यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि वहां जनता का विश्वास कांग्रेस पर बना हुआ है। ऐसी हालत में मैं अपने नेताओं से कभी इस बात में सहमत नहीं हो सकता कि कांग्रेस को जनता का विश्वास प्राप्त है या नहीं, इसे परखने की जरूरत आ पड़ी है। अस्तु, मुझे इस आश्वासन से प्रसन्नता हुई है कि इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हुआ।

यहां लोकतन्त्र के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है, श्रीमान, मैं नहीं जानता कि विधेयक में कौन सी बात है कि जिससे जनता की लोकतन्त्र कल्पना पर, अथवा कांग्रेसजनों की लोकतन्त्र के सम्बन्ध में जो कल्पना है उस पर, कोई आघात पड़ता हो। अगर लोकतन्त्र का अर्थ यदि होता है कि मतभेदों का निर्णय जनता की राय के अनुसार किया जाये और हर बात जनता की राय के अनुसार की जाये तो इस विधेयक में इन दोनों बातों को पूरा स्थान दिया गया है।

निष्क्रान्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी सरकार पाकिस्तान सरकार के साथ बातचीत करती आ रही है। पैरा 1 के उपखण्ड 1 में कहा गया है:– "वह सम्पत्ति, जिसे पाकिस्तान में छोड़कर उसका मालिक स्थायी निवासार्थ भारत चला गया हो या जिसे भारत में छोड़कर स्थायी निवासार्थ, उसका मालिक पाकिस्तान चला गया हो, निष्क्रान्त सम्पत्ति मानी जायेगी। दोनों राज्यों के बीच इसके बारे में जो समझौता होगा उसी के अनुसार निष्क्रान्त सम्पत्ति पर कब्जा, उसका प्रबन्ध और हस्तान्तरण होगा"। इस सम्बन्ध में दोनों सरकारें और आगे भी अभी बातचीत करना चाहती हैं। इसलिये निष्क्रान्त सम्पत्ति सम्बन्धी प्रावधान के बारे में तो किसी की भी ओर से कोई आपत्ति ही नहीं हो सकती है। मैं निजी तौर पर यही महसूस करता हूं कि इस सम्बन्ध में कठोर उपायों से काम लेने की जरूरत है ताकि पाकिस्तान से आये विस्थापितों के पुनर्वास की पक्की व्यवस्था हो सके। मेरी राय में तो यह विधेयक जरूरी है और इसको बिना अधिक वाद-विवाद किये ही हमें स्वीकार कर लेना चाहिये। जितना जल्द हम इसे पास करें उतना ही हम सबके लिये अच्छा होगा।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, सभा के समक्ष अनेक ऐसे प्रावधान रखे जा चुके हैं जिनसे कि उसे बड़ा धक्का पहुंचा है, पर प्रस्तुत विधेयक से सभा को जितना सदमा पहुंचा है उतना और पहिले के किसी भी प्रावधान से नहीं। इस विधेयक को लेकर यहां बहुत बड़ा विवाद चल पड़ा है जिसका कारण यह है कि इसमें दो पृथक बातों को—जिनमें एक तो बहुत ही अच्छी है पर दूसरी बिल्कुल ही बुरी है—एक साथ रख दिया गया है। जहां तक कि निष्क्रान्त सम्पत्ति सम्बन्धी खण्ड का सम्बन्ध है, उसके खिलाफ तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिये विधेयक के खण्ड 3 को तथा खण्ड 5 के दूसरे हिस्से को तो हमें स्वीकार कर ही लेना चाहिये।

अब हम लेते हैं खण्ड 4 को और खण्ड 5 के उस अंश को जो कि खण्ड 4 का आनुषंगिक है। खण्ड 4 के द्वारा गवर्नर जनरल को असाधारण अधिकार दिये जा रहे हैं जिसके समर्थन में यहां विधेयक उपस्थित करने वाले माननीय सदस्य ने जो कारण दिये हैं वह अस्वाभाविक से हैं। मेरा ख्याल है कि सद्यस्कृत्यता की स्थिति होने पर तो ऐसा अपूर्ण खण्डों को रखना जरूरी ही है। पर हमें बताया यहां यह जा रहा है कि सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति नहीं उत्पन्न हुई है और न आम चुनाव करने का ही विचार किया जा रहा है। अगर यही बात है तो खण्ड 4 को तथा खण्ड 5 के आनुषंगिक प्रावधान को अभी पास किये बिना भी हमारा काम मजे में चल सकता है और अभी हम इसे रोक सकते हैं। माननीय प्रधान मन्त्री ने अपनी बंगाल यात्रा के पश्चात् ही इस बात का ऐलान किया कि वहां शीघ्र ही आम चुनाव किया जायेगा और उनकी इस घोषणा पर देश के कुछ भागों में खुशी प्रकट की गई और कुछ भागों में असन्तोष। बंगाल के मंत्रियों ने सोचा था कि हुकूमत में रहकर उन्हें अपने पुनर्वास के प्रबन्ध का खास मौका मिल जायेगा। पर अब सुना है कि वहां इस बात की कोशिश की जा रही है कि उचित अनुचित जैसे भी हो चुनाव को स्थगित कराया जाये। मेरा निवेदन यह है कि इस विधेयक को अगर इस अपूर्ण एवं अस्पष्ट रूप में पास कर दिया जाता है तो इससे देश में अटकलबाजी का बाजार गर्म हो जायेगा और शासन के अभिप्राय के सम्बन्ध में लोगों का सन्देह होने लगेगा। यह मानी हुई बात है कि सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति नहीं पैदा हो गई है, इसलिये इस खण्ड 4 को अभी पास करने की कोई जरूरत नहीं है। जैसा कि डा. देशमुख ने बताया है, यह खण्ड जिसे भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के स्थान पर रखा जा रहा है, उक्त अधिनियम की धारा 61 के बिल्कुल खिलाफ पड़ता है जिसके अनुसार विभिन्न प्रान्तों के निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन उसी रूप में होना चाहिये जैसा कि उसकी छठी अनुसूची में बताया गया है। पर धारा 291 के स्थान पर जो नई व्यवस्था प्रस्तावित की गई है उसके अनुसार तो धारा 61 की सारी व्यवस्था में ही रद्दोबदल किया जा सकता है। मैं नहीं समझता कि लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के श्रीगणेश में ही आखिर गवर्नर जनरल को ऐसे असाधारण अधिकार देने की क्यों आवश्यकता समझी जा रही है जब सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति नहीं विद्यमान है। शासन के लिये सर्वोत्तम यह होगा कि वह इस बात का पता लगाये कि बंगाल में या अन्यत्र कहीं निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के लिये, मतदाताओं की सूची तैयार करने के लिए, प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुनाव करने के लिये किन बातों की आवश्यकता है। इन सब बातों के बारे में ठीक ठीक पता लगाकर सभा के सामने इस सम्बन्ध में ठोस प्रस्ताव रखना चाहिये।

इस विधेयक को इसी रूप में पास करने के लिये सभा से आग्रह करने का तो अर्थ यह हुआ कि आप उससे एक ब्लैंक चेक पर दस्तखत कराना चाहते हैं सिर्फ यह विश्वास देकर कि गवर्नर जनरल यथोचित ही करेगा। अगर गवर्नर जनरल का उपयोग इसी तरह करना है तो फिर विधान-मण्डल की या संविधान सभा की जरूरत ही क्या रह जाती है? मैं कहूंगा कि ऐसी निरर्थक और निकम्मी योजना को वजन देने के लिए गवर्नर जनरल के नाम को इस तरह रखना ठीक नहीं है। गवर्नर जनरल के विशिष्टतम बौद्धिक एवं नैतिक गुणों के प्रति हम श्रद्धा रखते हैं उनका आदर करते हैं। किन्तु बात यह है कि गवर्नर जनरल काम करेगा अपने मंत्रिमण्डल की राय पर और मंत्रिमण्डल की राय का मतलब हुआ सम्बंधित विभाग के सेक्रेटरी की राय। जो असीम अधिकार इस विधेयक द्वारा गवर्नर जनरल को दिये जा रहे हैं उनसे क्या गम्भीर सांविधानिक उलझन पैदा हो सकती है इसे सोचकर ही हम कांप उठते हैं। मेरा ख्याल है संक्रांतिकालीन निर्वाचनों के लिये गवर्नर जनरल को एक नया भारत-शासन-अधिनियम ही बनाना पड़ जायेगा। उसे नागरिकता की एक नई व्याख्या सोचनी पड़ेगी, शरणार्थी यहां के नागरिक हैं या नहीं, उन्हें मताधिकार दिया जाये या नहीं, इन सब बातों पर उसे विचार करना पड़ जायेगा। इन सब बातों को तब करने में उसे समय लगेगा और इस बीच शरारती लोग यह कहते फिरेंगे कि यह भी चुनाव को टालने की एक तरकीब है। प्रधान मंत्री ने तो इतने सोच विचार के बाद चुनाव का ऐलान किया पर अब उसे इस तरह टाला जा रहा है।

अगर पश्चिमी बंगाल में चुनाव करना है तो मेरी समझ से यह अविलम्ब कर देना चाहिये। वह चुनाव कोई देशव्यापी आम चुनाव नहीं होगा बल्कि संक्रान्ति कालीन अवधि के लिये ही होगा। यदि मंत्री पर जनता का विश्वास नहीं है तो उत्तम यही है कि चुनाव किया जाये और चुनाव के नतीजे के अनुसार मंत्री रहे या वहां से चलता बने। और यह चुनाव चूंकि आपात स्थिति में किया जायेगा इसलिये मतदाताओं की जो वर्तमान सूची है उसी के आधार पर पहले की तरह होगा। अगर इन बातों में कोई परिवर्तन करना आवश्यक या वांछनीय हो तो सभा को यह बता देना चाहिये कि परिवर्तन करना जरूरी है। सभा को यह भी बता देना चाहिये कि संयुक्त निर्वाचन के आधार पर निर्वाचक-सूची बनाई जायेगी या पृथक निर्वाचन के आधार पर, जो स्थान रक्षण की व्यवस्था रहेगी या नहीं। कोई नई सूची तैयार की जायेगी या नहीं। पहले इस सम्बन्ध में सभा के सामने, सभी बातों पर सोच विचार कर कोई ठोस प्रस्ताव रखिये जिससे इस मसले पर ठीक तरह विचार करके सभा किसी निर्णय पर पहुंच सके। तब तक इसे यों ही रहने दीजिये। इसमें कुछ बिगड़ेगा नहीं।

इस विधेयक के द्वारा जो अधिकार आप मांग रहे हैं वह बड़े असाधारण और भयानक परिवर्तनकारी है। इस प्रश्न को लेकर सभा का मैं और समय नहीं लेना चाहता हूं किन्तु इतना जरूर कहूंगा कि इस तरह अकारण इतने व्यापक अधिकारों को मांगने का जो यह तरीका है इससे लोगों के मन पर बड़ा बुरा असर पड़ेगा और शासन की आलोचना के लिये एक कारण मिल जायेगा। लोकतन्त्र को स्थापित करने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि जनता को गलती करने दीजिये और उनसे उन्हें सबक लेने दीजिये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ऐसी हालत में ऐसी कोई सद्यस्कृत्यता की दशा नहीं वर्तमान है कि खण्ड को पास कर दिया जाये। इस विवादास्पद खण्ड को वापस ले लेना चाहिये। सभा में कई क्षेत्रों से इसका विरोध हुआ है और मुझे विश्वास है जो सदस्य इस बहस में भाग नहीं ले रहे हैं उन्हें भी इस खण्ड से प्रसन्नता नहीं है और वे भी उसके औचित्य से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस बात को देखते हुये कि सद्यस्कृतयता की कोई स्थिति नहीं विद्यमान है, मुझे विश्वास है कि शासन कोई कार्रवाई करने की बात न सोच रहा होगा। अभी सारी बातें अनिश्चित हैं, सुतरां इस खण्ड को भी यों ही अनिश्चित अवस्था में रहने देना चाहिये। मैं कहता हूं सभा के बाहर जनता का यही जबरदस्त ख्याल है कि यहां सभा में जो कुछ हो रहा है वह ठीक नहीं हो रहा है। उनकी इस आशंका को दूर करने के लिए, भले ही उनकी आशंका निराधार ही क्यों न हो, होना यह चाहिये कि सभा को यह आजादी रहनी चाहिये कि वह यहां ठीक ढंग से सांविधानिक रूप से चले, स्वविवेकानुसार किसी विधेयक पर अपना मत व्यक्त करे।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): अब इस प्रश्न पर मत लिया जाये, श्रीमान।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान, मैं यह बताना चाहता हूं कि संशोधन तो अभी पेश नहीं हुये हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन आये हैं खण्डों के बारे में, न कि विधेयक के। अब प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** इस प्रस्ताव पर जो बहस हुई है उसमें कई सदस्यों ने विधेयक के खण्ड 4 तथा 5 के विरुद्ध ही बहुत कुछ कहा है। खण्ड 5 के सम्बन्ध में भी अधिकांश रूप में विरोध हुआ है इस खण्ड की मद (क) का। इन खण्डों के विरुद्ध खास शिकायत यह की गई है कि इस शासन ने, जो प्रकट रूप से इतना लोकतन्त्रात्मक दिखाई देता है, एक ऐसे कानून को यहां पास करने के लिये जिसके द्वारा कि वस्तुतः बड़े ही मनमाने अधिकार एक व्यक्ति को सौंपे जा रहे हैं, घोर अलोकतन्त्रीय उपायों का अवलम्बन किया है। पर इस विधेयक पर सभा को इस दृष्टिकोण से नहीं विचार करना चाहिये। इन खण्डों के द्वारा एक ऐसी स्थिति के समाधान की व्यवस्था की गई है जबकि किसी प्रान्त में वर्तमान विधानमण्डल को विघटित करके नये निर्वाचन का आदेश निकालना आवश्यक हो जाये ताकि वहां के वर्तमान विधान-मण्डल के स्थान पर एक नया विधान-मण्डल बनाया जा सके। अब प्रश्न यह उठता है कि किसी विधान-मण्डल विशेष को विघटित करने के लिये औचित्य क्या हो सकता है?

माननीय सदस्यों ने यहां अपने भाषणों में पश्चिमी बंगाल का बहुत उल्लेख किया है। मैं केवल एक स्थिति का ही उल्लेख करूंगा जिसके लिये कि वहां के विधान-मण्डल को विघटित करना सर्वथा समुचित कहा जा सकता है वह स्थिति

विशेष यह है कि वहां का विधान मण्डल सम्भवत: सच्चाई के साथ लोकतंत्रात्मक पथ पर नहीं चल रहा है। जो लोक विधान-मण्डल को विघटित करने के पक्षपाती हैं, वे केवल एक इसी तरह की बात अपने पक्ष प्रतिपादन में कह सकते हैं। बंगाल का लोकतन्त्रीय विधान मण्डल आज कई दलों में बंट गया है जो आपस में लड़ रहे हैं और प्रान्त का प्रशासन इस कारण से खतरे में पड़ गया है कि वहां शासन समुचित रूप से लोकतन्त्रीय ढंग पर नहीं प्रकार्य कर रहा है। अब मान लीजिये विधान-मण्डल को विघटित करने का आदेश निकाला जाता है। विधान-मण्डल को विघटित करने में हमारा एकमात्र उद्देश्य आखिर यही तो हो सकता है कि वर्तमान विधान-मण्डल के स्थान पर, जो उचित रूप से लोकतंत्रात्मक ढंग पर प्रकार्य नहीं कर रहा है, हम एक ऐसा विधान-मण्डल कायम करें जो वर्तमान विधान-मण्डल से कम अलोकतंत्रात्मक हो या उससे अधिक लोकतंत्रात्मक हो। अब एक ऐसे नये लोकतन्त्रीय विधान-मण्डल के निर्माण का एकमात्र उपाय आखिर यही तो है कि निर्वाचकों के मत के आधार पर इसकी व्यवस्था की जाये। अब बात यह है कि जब से यथा अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम 1935 प्रवर्तन में आया है वर्तमान निर्वाचक समूह की संख्या में बड़ा जबरदस्त परिवर्तन हो गया है। यदि हमें आम चुनाव करना है तो इसके लिये जरूरी है कि निर्वाचन से सम्बन्ध रखने वाली कई खास बातों में परिवर्तन किया जाये। इन खास बातों में विधान-मण्डल की रचना भी शामिल की जा सकती है। सभा का ध्यान मैं इस तथ्य की ओर आकृष्ट करूंगा कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 के प्रवर्तन में आने के बाद और उसके अधीन निर्वाचन होने और विधान-मण्डल गठित हो जाने के बाद भी हमने विधान-मण्डल का आकार बदला है, और उदाहरण के लिए पश्चिमी बंगाल के ही विधान का आकार बदला है। यह परिवर्तन किया गया उस अधिकार के अधीन जो तत्कालीन गवर्नर-जनरल में भारत-शासन-अधिनियम 1935 को अनुकूलित करने के लिये निहित किया गया था। उस अधिनियम की अनुसूची में रखी गयी बातों में परिवर्तन करने का पहला प्रयास तो वही था। उस परिवर्तन के द्वारा तो गवर्नर जनरल को यथा अनुकलित भारत शासन अधिनियम की भी किसी बात में संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त हो गया था।

मैं यहां इस तथ्य का भी उल्लेख करूंगा कि इस अधिनियम के समायोजित या अनुकूलित होने के पहले मूल अधिनियम में भी एक ऐसा प्रावधान वर्तमान था जिसके द्वारा सपरिषद् सम्राट में यह अधिकार निहित किया गया था कि विधान-मण्डल की रचना, मताधिकार तथा निर्वाचन करने के बारे में जो बातें अधिनियम की अनुसूची 5 में रखी गई हैं उनमें वह परिवर्तन कर सकता है। हम इस विधेयक के द्वारा आखिर क्या परिवर्तन कर रहे हैं? एक विधान-मण्डल तो वर्तमान है ही जो आगामी 26 जनवरी तक अपना प्रकार्य करेगा और आपको यह याद होगा कि संविधान के मसौदे में एक इस आशय का प्रावधान वर्तमान है कि नये संविधान के प्रारम्भण के समय प्रान्त में जो विधान-मण्डल होगा वही संविधान के प्रवर्तन में आने से लेकर नवीन संविधान के अधीन नया निर्वाचन होने तक के मध्यवर्ती काल में प्रकार्य करता रहेगा। अगर हम लोकतन्त्रीय ढंग पर प्रकार्य चाहते हैं तो आगामी वर्ष में बंगाल में भी नवीन संविधान के प्रवर्तन में आने तक एक विधान मण्डल बनाना ही होगा और यह काम सम्पन्न हो जाना चाहिये कि विधान मण्डल के विघटन के आदेश निकलने से लेकर 26 जनवरी तक।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

अगर निर्वाचन करने के लिये अनुसूची में परिवर्तन करना जरूरी है तो इस परिवर्तन का अधिकार किसी न किसी को अवश्य मिल जाना चाहिये। इस विधेयक के द्वारा यह अधिकार हम गवर्नर जनरल को दे रहे हैं। यह कोई नई बात नहीं है। भारत-शासन-अधिनियम के अधीन ही इस तरह का काम किया जा रहा है। इस अधिनियम को समायोजित करते समय जो संशोधन हमने इसमें किये उन्हीं पर तो आज हम अमल कर रहे हैं जैसा कि महीनों से करते आ रहे हैं। गवर्नर जनरल को ये अधिकार देने में आखिर नुकसान ही क्या है? उसे काम तो करना होगा मंत्रि मण्डल की राय पर ही। सभी सदस्य इस बात को जानते हैं। यदि विधान-मण्डल के विघटन के सम्बन्ध में उसे राय ही देनी है तो, उस स्थिति को देखते हुये जो कि आज बंगाल में वर्तमान है और जो हो सकता है अन्यत्र भी विद्यमान हो जाये, अच्छा यही होगा कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल गवर्नर जनरल को इस बारे में राय दे न कि प्रान्तीय मंत्रिमण्डल अपने गवर्नर को। इसलिये मेरी समझ से उचित यही है कि ये अधिकार और किसी में निहित करने के बजाय गवर्नर जनरल में ही निहित किये जायें।

माननीय मित्र श्री कामत ने यहां जिस कठोर भाषा में अपने विचार व्यक्त किये हैं उससे मैं अवाक सा रह गया हूं। उनकी भाषा की कठोरता को मैं समझ सकता हूं। किन्तु विधेयक पर वह जिस दृष्टिकोण से विचार कर रहे हैं उसका वर्तमान यथार्थ स्थिति से या उस यथार्थ स्थिति से जो अब से 26 जनवरी तक वर्तमान रह सकती है कोई सम्बन्ध नहीं है। हां, अगर इस तरह के विधेयकों का उपस्थित किया जाना संविधान-सभा का एक स्वाभाविक क्रम बन जाता है तो अवश्य ही मैं श्री कामत के साथ हूं। ऐसा करना बहुत बुरी बात होगी। किन्तु जहां तक कि वर्तमान विधेयक का सम्बन्ध है हमें इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि अगर चुनाव करना है तो फिर ये परिवर्तन करने ही होंगे। और यह बात आसान न होगी कि इन संशोधनों के लिये आप संविधान सभा को पुनः यथा समय आहूत कर लें ताकि इन संशोधनों के आधार पर निर्वाचन सूची तैयार की जा सके और चुनाव किया जा सके।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मैं यह जानना चाहता हूं, श्रीमान, कि आखिर एक ऐसा संशोधन सभा के समक्ष रखने में क्या कठिनाई है कि गवर्नर जनरल इन बातों पर विचार करे। अगर इसमें कुछ समय लगेगा तो हम उस पर विचार करने के लिए और अधिक समय तक यहां बैठ सकते हैं।

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ तो शायद माननीय सदस्य को यह नहीं मालूम है कि ये बातें किस तरह की जाती हैं। जब तक हम पश्चिमी बंगाल के जिम्मेदार व्यक्तियों से इस सम्बन्ध में परामर्श न कर लें हम कोई संशोधन सभा के सामने रख नहीं सकते हैं। ऐसी बातों के लिये लोकतन्त्रीय तरीका यही है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ तो ऐसा करने में आपको जो समय लगे वह लगने दीजिये।

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ अगर माननीय सदस्य यह चाहते हैं कि मैं खुद अपने दिमाग से सोचकर उनके सामने सभी संशोधन रख दूं तो ऐसा करना लोकतन्त्रीय सिद्धांत के विरुद्ध होगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे खेद है कि माननीय सदस्य ने मेरी बात समझने में गलती की। मेरा मतलब यह नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूं कि आगे चल कर जबकि इस सम्बन्ध में सारी बातों पर आखिरी तौर पर फैसला हो जाये तभी क्यों न यह विधेयक सभा के समक्ष रखा जाये। ऐसा करने में आखिर क्या दिक्कत है?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** इसमें एकमात्र दिक्कत यह है कि यह सभा संविधान निर्मातृ सभा के रूप में समवेत हो रही है। जो हमारा कार्यक्रम है वह सब अगर यहां पूरा हो जाता है तो आगामी पखवारे तक संविधान निर्माण का सारा काम अन्तिम रूप से समाप्त हो जायेगा और हम फिर संविधान-सभा के रूप में पुन: समवेत होंगे केवल संविधान के तृतीय पठन को स्वीकार करने के लिये। मैं कह नहीं सकता कि तृतीय पठन के लिये हम अक्तूबर में बैठेंगे या उसके बाद बैठेंगे। हो सकता है इसके लिए जनवरी में ही बैठें। हम यह जोखिम नहीं उठा सकते हैं निर्वाचन सम्बन्धी व्यवस्था के लिये संविधान सभा को आहूत ही न करें। 26 जनवरी तक विधान-मण्डल अस्तित्व में आ जाये इसके लिये हो सकता है कि राजनीतिक कारणों के आधार पर हमें यथा समय निर्वाचन करना ही पड़ जाये। यही कारण है जिसके लिये हमें यह विधेयक इस सभा में उपस्थित करना पड़ रहा है ताकि निर्वाचन के सम्बन्ध में अपेक्षित अधिकार गवर्नर जनरल को प्राप्त हो जायें। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की बातों का वास्तविक उत्तर यही है।

डॉ. देशमुख ने इस विधेयक के विरुद्ध कुछ बातें बताई हैं और इन बातों का मुझे बहुत ख्याल है। उनका मुख्य विरोध इस बात को लेकर है कि भारत शासन-अधिनियम की धारा 61 में एक बुनियादी उसूल की बात रखी गई है पर इस विधेयक के अनुसार गवर्नर जनरल को जो अधिकार दिये जा रहे हैं उनके अधीन वह उक्त धारा के प्रावधानों को रद्द कर सकता है। इस सम्बन्ध में आप को मैं यह बताऊंगा। 1935 में जब यह धारा मूलरूप में पास हुई थी तो उस अनुसूची में प्रत्येक प्रान्त के विधान-मण्डल की सदस्य संख्या निर्धारित कर दी गई थी। देश का विभाजन होने पर इस संख्या में परिवर्तन करना पड़ा था। इस परिवर्तन के लिये प्रणाली यह अपनाई गई थी कि गवर्नर जनरल ने ही उस अनुसूची को अनुकूलित कर लिया था। इस तरह अनुकूलित अनुसूची के जरिये जो मूल धारा में परिवर्तन किया गया था वह भी एक मौलिक परिवर्तन था पर यह अनुकूलित अनुसूची ही अब धारा 61 का अंग बन गई। इस प्रकार अब जो धारा 61 है वह मूल धारा 61 से काफी बदली हुई है। अब हम इस विधेयक के द्वारा क्या करने जा रहे हैं? हो सकता है कि विधान-मण्डल के सदस्यों की संख्या में अब एक बार और परिवर्तन करना जरूरी हो जाये। सुतरां हम गवर्नर जनरल को यह अधिकार प्रवाहित कर रहे हैं कि अगर गवर्नर जनरल को मंत्रिमण्डल यही परामर्श देता है कि ऐसा करना जरूरी है तो धारा 61 में तथा अनुसूची 5 में संशोधन करके विधान-मण्डल की सदस्य संख्या को बदल सकता है। इसमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधार पर कि आपका यह कहना उचित हो सके कि यह प्रावधान एक भयानक सांविधानिक कुकृत्य है। माननीय मित्र कामत ने यहां इस प्रावधान के सम्बन्ध में बार-बार यह कहा है कि यह एक भयानक सांविधानिक कुकृत्य है। इसमें क्या ऐसी बात है जिसे आप असांविधानिक कहते हैं? हमें एक परिवर्तन

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

करना है और उसके लिए हम जो रास्ता अपना रहे हैं वह सर्वोत्तम है और सर्वथा समुचित है। परिवर्तन का अधिकार अगर हम गवर्नर जनरल को दे रहे हैं तो स्थिति को देखते हुये हमारा ऐसा करना सर्वथा समुचित ही कहा जायेगा।

दूसरी बात जिसको लेकर उन्होंने इसका विरोध किया है वह यह है। "आखिर धारा 61 की अनुसूचियों का क्या होगा?" गवर्नर जनरल जब इन आदेशों को निकालेगा तो उस समय वह वर्तमान धारा 61 के तथा उसकी अनुसूचियों के प्रावधानों का भी ख्याल रखेगा और उनमें अपेक्षित परिवर्तन करेगा। धारा 61 तथा उसकी अनुसूचियों में संशोधन करके ही ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है। अगर आवश्यक परिवर्तन करने के लिए धारा या अनुसूचियों को अथवा उनके किसी अंश को निरसित करना ही जरूरी हो तो हम उन्हें निरसित कर देंगे या उनके स्थान पर दूसरे प्रावधान रख देंगे। सवाल तो अब सिर्फ इसी बात का है कि इसका मसौदा इस तरह तैयार किया जाये कि जो भी परिवर्तन आवश्यक हो वह किये जा सकें।

दूसरी बात जो उन्होंने विरोध में कही है वह यह है कि कई प्रान्तों में जहां विधान-मण्डल के आकार में परिवर्तन न किया गया है, यह भी अधिकार हथिया लिया गया है कि बजाय प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के उनको मनोनीत कर लिया जाये। मैं समझता हूं कि उन्होंने यह भी कहा है कि बम्बई के विधान-मण्डल में भी ऐसा हुआ है। हो सकता है ऐसा हुआ हो। किन्तु हमें जिस बात पर विचार करना है वह यह है। चुनाव, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन, चुनाव प्रणाली तथा मताधिकार आदि बातों के बारे में जो नियम और आनियम हैं उनमें परिवर्तन करने का अधिकार हम गवर्नर जनरल को दे रहे हैं। विधेयक में ऐसी कोई बात नहीं है जो गवर्नर जनरल को यह आदेश देती हो कि वह अमुक बातें नहीं कर सकता है। अगर आपको अपने शासन पर विश्वास है तो आप को यह देखना चाहिये कि वह ऐसी कोई प्रणाली नहीं अपनाते हैं जो आपको अमान्य हो। अगर वह ऐसी प्रणाली अपनाते हैं तो आपको ऐसे उपायों का अवलम्बन करना ही होगा जिससे कि वह वही काम करें जो उस स्थिति विशेष में आप चाहते हैं।

मनोनीत व्यक्ति रखने के विरुद्ध जो शिकायत आपने की है उसका इस विधेयक से क्या सम्बन्ध है? गवर्नर जनरल को अधिकार देने के विरुद्ध यह तो कोई तर्क नहीं हुआ। विधेयक में तो ऐसा कहा नहीं गया है कि वह विधान-मण्डल के लिये सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। वस्तुतः इस खण्ड में मनोनीतकरण का कोई जिक्र ही नहीं है। इसमें मुख्यतः चुनाव सम्बन्धी बातों का ही जिक्र है। हां, इस खण्ड के द्वारा गवर्नर जनरल को यह अधिकार अवश्य प्राप्त हो जाता है कि विधान-मण्डल का आकार क्या हो इसका वह विनिश्चयन कर सकता है।

मेरा ख्याल है कि विरोध में जो मुख्य-मुख्य बातें कही गई उन सबका मैंने उत्तर दे दिया। हां, मेरे ख्याल में यह बात जरूर है कि सदस्यों को एक बात बहुत अखर रही है और वह यह है। वह नहीं चाहते हैं कि गवर्नर जनरल केवल कार्यपालिका का परामर्श लेकर, विधान-मण्डल के समक्ष उसे उपस्थित किये बिना ही कोई काम करे। अवश्य ही मैं उनके इस विचार से सहमत हूं कि विधेयक

द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अधीन वह जो कुछ भी करना चाहता हो उसे विधान-मण्डल के समक्ष अवश्य उपस्थित किया जाये ताकि विधान-मण्डल इस बात की परख कर सके कि प्राप्त अधिकारों का वह समुचित प्रयोग तो कर रहा है। इस दृष्टिकोण से, डॉ. देशमुख के दूसरे संशोधन को किंचित परिवर्तित रूप में स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूं। यदि संशोधन को वह इस रूप में रखें तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा:

"Every Order made under sub-section (1) of this section shall as soon as may be after it is made be laid before the Dominion Legislature."

यदि डॉ. देशमुख अपने संशोधन को इस रूप में रखना पसन्द करते हों तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा। मैं समझता हूं कि वर्तमान स्थिति में सभा इस बात पर आग्रह न करेगी कि इस विधेयक को जो कि एक सामान्य विधेयक ही है, प्रवर समिति को सौंपा ही जाये। क्यों कि ऐसा करने में सभा का समय अनावश्यक बर्बाद होगा जिसका कि वह संविधान पर विचार करने में अधिक अच्छा उपयोग कर सकती है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अपने प्रस्ताव को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से प्रस्ताव वापस लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि भारत शासन अधिनियम 1935 में और संशोधन करने के हेतु उपस्थित किये गये विधेयक पर सभा सद्यः विचार प्रारम्भ करे।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब हम इस विधेयक के एक-एक खण्ड पर क्रमशः विचार करेंगे।

प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 1 विधेयक का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खण्ड 1 विधेयक में शामिल किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 2 विधेयक का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खण्ड 2 को विधेयक में शामिल किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 3 विधेयक का अंग समझा जाये।"

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): खण्ड 3 पर मैं बोलना चाहता हूं।

***एक सदस्यः** प्रस्ताव पेश हो चुका है। अब वह बोल नहीं सकते हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): उचित यही होगा कि श्री शिब्बनलाल सक्सेना को आप बोलने की अनुमति दें। प्रस्ताव के पेश होने के पहले ही वह बोलने के लिये खड़े हुये थे।

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है, मैंने उन्हें खड़ा देखा नहीं। खैर, मैं बोलने की उन्हें सहर्ष अनुमति देता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस खण्ड पर आपने मुझे बोलने का अवसर दिया इसके लिये मैं आपका परम अनुगृहीत हूं। इस खण्ड द्वारा .....

***श्री एस. नागप्पाः** जब आपने प्रस्ताव उपस्थित कर दिया है और सभा ने उसे स्वीकार कर लिया है तो फिर माननीय सदस्य अब उस पर बोल कैसे सकते हैं? अगर वह बोलना ही चाहते हैं तो तृतीय पठन के अवसर पर बोल सकते हैं।

***उपाध्यक्षः** बोलने की अनुमति उन्हें मिल चुकी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस खण्ड के द्वारा भारत-शासन-अधिनियम में एक संशोधन किया जा रहा है ताकि देश-विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न शरणार्थी समस्या का समाधान किया जा सके। हर आदमी इस बात को जानता है कि आज देश के सामने सबसे बड़ी संगीन समस्या जिससे देश में विस्फोट हो सकता है वह यह है कि शरणार्थियों के पुनर्वास की व्यवस्था की जाये और जो सम्पत्ति वह पाकिस्तान में छोड़ आये हैं जिसे वहां निष्क्रान्त सम्पति कहा जाता है, वह उन्हें वापस दिलाई जाये या उसकी क्षतिपूर्ति की जाये। मुझे खुशी है कि यह संशोधन, आखिर देर से ही सही, पर पेश तो किया गया। वस्तुतः यह संशोधन देश विभाजन के फौरन बाद ही यहां आना चाहिये था। खैर मुझे खुशी है कि यह संशोधन रखा गया। मैं यह बताना चाहता हूं, श्रीमान, कि जहां तक शरणार्थी-समस्या का सम्बन्ध है वह अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है और उसका कोई भी समाधान नहीं हो पाया है। यद्यपि इस समस्या के समाधान में करोड़ों रुपये खर्च किये जा चुके हैं और अभी भी करोड़ों खर्च किये जा रहे हैं पर अगर आप इस शहर में निकलें या देश के अन्य किसी भाग में जायें तो आप को यह देखकर घोर दुःख होगा कि समुचित रूप से इसके समाधान की व्यवस्था ही नहीं की गई है। इसके लिये किसी व्यक्ति विशेष को मैं जिम्मेदार नहीं ठहराता हूं। मेरा कहना यह है कि यह एक महती समस्या है और हम इसके समाधान में सफल नहीं हो पाये हैं। इन दो संशोधनों से वस्तुतः यह होगा कि वह विषय सहगामी सूची में आ जायेगा। गत वर्ष हम लोगों ने रिलीफ एण्ड रिहैबिलिटेशन मिनिस्ट्री को यह समझाया था कि मिनिस्ट्री अपनी योजनाओं को अपने

हिसाब से पूरा कर सके। इसके लिये जरूरत इस बात की है कि केन्द्रीय शासन को इस सम्बन्ध में सारा अधिकार प्राप्त रहे। रिहैबिलिटेशन मिनिस्ट्री ने हमेशा यह शिकायत की है कि पुनर्वास के लिये जो भी योजनायें उन्होंने बनाई उन्हें वह पूरा न कर सकी इसलिये कि प्रान्त उनके सुझावों पर चलने के लिये राजी नहीं थे। प्रान्तों की कोशिश यह रही कि शरणार्थियों की एक सीमित संख्या ही उनके राज्य में पुनर्वास के लिये भेजी जाये। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि इस भयंकर समस्या का अभी तक समाधान नहीं निकल पाया।

इसलिये मेरा ख्याल है कि अब जबकि इस सम्बन्ध में केन्द्रीय शासन के लिये अधिकार प्राप्त कर लिया गया है और इस विषय को सहगामी सूची में रख दिया गया है, तो केन्द्रीय शासन इस समस्या के हल के लिये कोई न कोई योजना जरूर बनायेगा ताकि देश के सामने यह प्रश्न ही न रह जाये। शरणार्थियों के पास न रहने का स्थान है और न कोई कारोबार या आमदनी का ही जरिया है। अस्सी लाख आदमी अपने घर-बार से उजड़ कर यहां आ पहुंचे हैं और हमारे सामने उन्होंने एक बड़ी समस्या पैदा कर दी है। इस महती समस्या के समाधान के लिये हमें इसके अनुरूप ही प्रयास करना होगा। मैं यही आशा करता हूं कि अब हम समस्या के समाधान का प्रयास इस दृढ़ निश्चय के साथ करेंगे कि इसे कम से कम अरसे के अन्दर निपटा दिया जाये। हमें यह योजना बना लेनी चाहिये जिसके अनुसार कि हम इसे छह या नौ माह के अन्दर निपटा दें। मेरा ख्याल है कि विधेयक का यह प्रावधान बहुत सुन्दर है जिसका हमें स्वागत करना चाहिये। मुझे पूरी आशा है कि कोई भी प्रान्तीय सरकार इसके समाधान में रुकावट न डालेगी और शीघ्र ही यह समस्या निपटा दी जायेगी।

अब मैं विधेयक के खण्ड 3 को लेता हूं जिसमें निष्क्रान्त सम्पत्ति के बारे में व्यवस्था की गई है। निष्क्रान्त सम्पत्ति सम्बन्धी समस्या एक बड़ी ही कठिन और बड़ी ही नाजुक समस्या है। मैं तो यह चाहता था कि हमारी हुकूमत इस बारे में और सख्ती से काम लेती। इस सम्बन्ध में शासन की कमजोरी को लेकर जो बातें समाचार पत्रों में आई हैं उनको मैं यहां दुहराना नहीं चाहता हूं। किन्तु मैं देश के असंख्य नर नारियों की इस भावना को यहां अवश्य व्यक्त कर देना चाहता हूं कि इस समस्या को सुलझाने के रूप में प्रयास किया गया है उससे वह सर्वथा असन्तुष्ट है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने वालों ने कुछ प्राय: दो सौ करोड़ की सम्पत्ति यहां छोड़ी है किन्तु पाकिस्तान से जो हमारे राष्ट्रजन यहां आये हैं वह वहां करीब चौदह सौ करोड़ की सम्पत्ति छोड़ आये हैं। हमें यह भी मालूम नहीं है कि किस तरह यह सम्पत्ति हमको वापस दिलाई जायेगी। मुझे खुशी है कि इस विषय को अब सहगामी सूची में शामिल किया जा रहा है। इस प्रावधान को मैं एक आश्वासन समझ रहा हूं कि हुकूमत कोई न कोई उपाय जरूर करेगी जिससे कि पाकिस्तान में छोड़ी हुई अपनी सम्पत्ति को वापस पाना हमारे लिये सम्भव हो सके। किन्तु इस विषय को सहगामी सूची में शामिल कर देना ही पर्याप्त नहीं होगा। आशा है कि जब संसद बैठेगी तो कोई न कोई एक ऐसा विधेयक जरूर उपस्थित किया जायेगा जिससे कि जनता की उस आशा और विश्वास की पूर्ति हो सके जो इस संशोधन के फलस्वरूप उसमें उदित हुई है। आशा है कि यह संशोधन तो प्रस्तुत समस्या के समाधान

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

का एक आरम्भ मात्र है। मेरा हमेशा से यही मत रहा है कि हम पाकिस्तान को खुश करने के लिए आवश्यकता से अधिक चेष्टा करते आ रहे हैं। अपनी इस चेष्टा में हमने अपने उन राष्ट्रजनों के हित का भी बलिदान कर दिया है जो वहां से यहां आ गये हैं और इनके लिये हमें जो करना चाहिये वह हमने अब तक नहीं किया। मैं जानता हूं कि हमारे शरणार्थी भाई इन दो वर्षों के अन्दर सर्वथा अकिंचन हो गये हैं, इनके पास जो कुछ था उसे वह खर्च कर चुके हैं। यदि हम निष्क्रान्त सम्पत्ति सम्बन्धी प्रश्न के निपटारे के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयास नहीं करते हैं तो शरणार्थियों की समस्या हमारे लिये प्राय: एक असाध्य समस्या हो जायेगी। आशा है कि संविधान में जो ये संशोधन किये हैं—अवश्य ही ये बहुत विलम्ब से आये हैं—उनसे जनता की आशायें पूरी हो सकेंगी। मैं यही उम्मीद करता हूं कि विधेयक को उपस्थित करने वाले माननीय मन्त्री, विधि विभाग के मन्त्री की सहातया से इस बात की कोशिश जरूर करेंगे कि समस्या का अब अविलम्ब समाधान हो जाये।

(श्री महावीर त्यागी बोलने के लिए खड़े हुये।)

*__प्रो. एन.जी. रंगा__ (मद्रास: जनरल): आखिर कितनी देर वक्तृता चलती रहेगी?

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्त प्रान्त: जनरल): मैं ज्यादा वक्त नहीं लूंगा। श्री रंगा को मुझसे डरने की जरूरत नहीं है। विधेयक के मुख्य-मुख्य खण्डों से मैं सहमत हूं। मैं केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि इन विषयों को अब जब केंद्राधीन किया जा रहा है और केन्द्र को इनके बारे में अधिकार दिया जा रहा है तो इस मौके पर माननीय मंत्री महोदय को कुछ प्रकाश जरूर दे देना चाहिये कि उनकी योजना क्या है। वस्तुत: मैं यहां यह बात दर्ज करा देना चाहता हूं। देशवासियों का यह ख्याल है और उनका ऐसा ख्याल करना मेरी समझ में बिल्कुल उचित है, कि जो लोग पाकिस्तान से यहां आये हैं वह अपनी मरजी से नहीं आये हैं। आजादी के फलस्वरूप, देश विभाजन के फलस्वरूप उनको यहां आना पड़ा है और तरह-तरह की मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। हमारे अपने राजनीतिज्ञों ने ही देश के विभाजन को तथा आबादी की अदला बदली को मंजूर किया था। हर आदमी इस बात को जानता है। इसलिये कानूनन और नैतिक दृष्टि से भी यह जिम्मेदारी इस देश के बाशिन्दों की है कि वे उन लोगों की क्षति को पूरा करें जिन्हें पाकिस्तान छोड़कर यहां आना पड़ा है। पुनर्वास और साहाय्य का काम अगर केन्द्र अपने हाथ में लेता है तो उससे ही क्या लाभ होगा जब तक कि आप अपनी निश्चित योजना न सामने रखें और यह न बतायें कि आप उन्हें भिखमंगों की तरह महज रोटी का टुकड़ा देना चाहते हैं, या खैरात के रूप में कुछ देना चाहते हैं, या वाजिब तौर पर आप उनकी क्षति पूर्ति करना चाहते हैं। यदि केन्द्रीय शासन पाकिस्तान में छोड़ी हुई उनकी सम्पत्ति की कीमत नहीं वसूल कर पाता है तो उसके लिये वही जिम्मेदार है न कि कोई और व्यक्ति। मैं इस सम्बन्ध में एक सुझाव देना चाहता हूं जो कि वह सुझाव भी शासन की वर्तमान आर्थिक अवस्था को देखते हुये हास्यास्पद मालूम पड़ सकता है—सच बातें प्राय: हास्यास्पद ही प्रतीत होती हैं पर वह सच तो हैं ही। मेरा सुझाव यह है कि अगर शासन शरणार्थियों को, विस्थापितों को पाकिस्तान में छोड़ी सम्पत्ति का आधा मूल्य भी दे

तो वह अपने कर्तव्य का पालन कर देगा। युद्ध होने पर प्राय: सरकारों को बड़ा जबरदस्त कर्ज चुकाना पड़ा है। फिर यह सरकार शरणार्थियों की क्षतिपूर्ति क्यों नहीं करती है जबकि नैतिक दृष्टि से, मानवता की दृष्टि से और कानूनन भी यह सरकार पर एक कर्ज ही है। उसे यह कर्ज स्वतन्त्रता की कीमत के रूप में चुकाना है। आखिर यह कीमत विस्थापित लोग चुकायेंगे या भारत चुकायेगा? अपनी सम्पत्ति से हाथ धोकर शरणार्थियों ने आजादी की गहरी कीमत चुका दी है। शुरू में हमारे नेताओं ने ही यहां सभा में यह नारा उठाया था, इन विस्थापितों से यह अपील की थी "मारधाड़ न कीजिये, दंगा न होने दीजिये, फिसाद न पैदा कीजिये। मसले का फैसला सरकारी सतह पर होने दीजिये; हम वचन देते हैं कि आपको मसले का हम निपटारा करायेंगे।" किन्तु अब शान्ति स्थापित हो जाने के बाद वे अपने वचनों को टालते दीख रहे हैं। अब तक कोई नतीजा नहीं निकला है। इसके लिये मैं केन्द्रीय शासन को दोषी नहीं कहता हूं। हो सकता है पाकिस्तान की सरकार ने अपनी बात नहीं पूरी की या हो सकता है इसके और दूसरे कारण हों जिन्हें हम नहीं जानते हैं। स्पष्ट है कि पाकिस्तान सरकार ने अपने वचनों का पालन नहीं किया और अगर इस सम्बन्ध में वे लोग और भी वायदे करते हैं तो वे उनको पूरा हर्गिज न करेंगे। ऐसा तो वह अपनी योजना और नीति के अनुसार कर रहे हैं। तो फिर हम उनकी नीति के अधीन क्यों चलें? इसलिये मैं यहां जनता की इस मांग को दर्ज कराना चाहता हूं कि जो लोग अपना घरद्वार छोड़कर, विस्थापित होकर पाकिस्तान से यहां आ पहुंचे हैं उनकी सम्पत्ति का मूल्यांकन कर लिया जाये और सरकार यह वचन दे या संविधान-सभा यह फैसला करे कि राष्ट्र उनकी क्षतिपूर्ति करेगा। उनको जो नुकसान उठाना पड़ा है उसकी अगर पूरी कीमत का नहीं तो आधी का तो भुगतान नकद देकर या ऋणपत्र के रूप में फौरन कर दिया जाये। विस्थापितों की यही मांग है और मेरी समझ से उनकी यह मांग सही है और उचित है। सरकार की आर्थिक स्थिति चाहे जैसी हो पर जब निष्क्रान्त सम्पत्ति एवं पुनर्वास के प्रश्न को केन्द्राधीन कर दिया गया है तो केन्द्र को यह आश्वासन देना चाहिये कि पाकिस्तान में छोड़ी हुई उनकी सम्पत्ति का मूल्य वह उन्हें चुकायेंगे। इस सम्पत्ति का मूल्य पाकिस्तान सरकार से वसूल करना तथा हिसाब किताब का निपटारा करना सरकार का काम है और वह इसे करती रहे। पाकिस्तान को तो पचास करोड़ की भारी रकम चुका दी ऐसे समय जबकि वह काश्मीर में हमसे जंग कर रहा था। इसी तरह इस सम्बन्ध में भी हमें अपनी देनदारी को मंजूर करना चाहिये और उसे चुका देना चाहिये। जब इस विषय को केन्द्र ने अपने हाथ में ले लिया है तो मेरी समझ से उचित यही है कि अन्तिम रूप से वह इसका फैसला कर ले कि वह इस देनदारी की जिम्मेदारी लेता है या नहीं। पाकिस्तान सरकार द्वारा किये गये वचनों पर हम नहीं भरोसा कर सकते हैं।

माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर अपनी सच्चाई के लिये, अपनी नेकनियती के लिये सर्वत्र समादृत हैं। वह कुशलतम कूटनीतिज्ञों के सरताज हैं और हम जानते हैं कि यहां सभा में इस बात को कभी भी व्यक्त नहीं करेंगे कि वह इस सम्बन्ध में क्या महसूस करते हैं या क्या कर रहे हैं। हमें पूरा विश्वास है कि वह खूब कुशलतापूर्वक ही बातचीत चलायेंगे और कभी नुकसान में न पड़ने देंगे। इन सब बातों का हमें पूरा भरोसा है। पर वह विचारे कर ही क्या सकते हैं? दूसरा पक्ष तो उनसे भी ज्यादा चालाक है। मुझे भी आयंगर की नीयत पर कतई शुबह नहीं है। सरकार यथाशक्य जो भी कर सकती थी उसने किया है पर पाकिस्तान से

[श्री महावीर त्यागी]

किराया ही नहीं आ रहा है। किन्तु हम यहां से उनकी सम्पत्ति का किराया यहां तक कि उनके प्रधान मंत्री की सम्पत्ति का किराया हर मास हर साल भेजते जा रहे हैं। हम ऐसा इसलिये कर रहे हैं कि दुनिया देख ले कि हम ईमानदार हैं और अपने वचन को पूरा करेंगे। यह ठीक है। पर यह सब होने पर भी, अपनी ईमानदारी का इतना ढोल पीटने पर, इतना अमल करने पर भी हमें दुनिया आज बेईमान समझती है क्योंकि पाकिस्तान के कोलाहलकारी प्रचार का इतना प्रभाव पड़ा है कि उनके झूठ के आगे हमारी सच्चाई दब गई है। आज स्थिति यह है।

स्थिति जो है सो है पर मैं फिर इस बात को दुहराऊंगा, इस पर जोर दूंगा कि हमारी सरकार को विस्थापितों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। वे लोग जो सम्पत्ति पाकिस्तान में छोड़ आये हैं उसकी क्षतिपूर्ति उसे नकद देकर या ऋणपत्र के रूप में अवश्य करनी चाहिये। भारत सरकार पाकिस्तान सरकार से इस सम्पत्ति का मूल्य वसूल कर ले। वह वसूली चाहे वह बातचीत के बल पर करे या तलवार अथवा गोली के बल पर करे। अगर हमारा पड़ौसी बेईमान निकल जाता है तो हक्का बक्का होकर यह कहने से काम नहीं बनेगा कि 'तुम बेईमान हो'। वह तो हमारे झण्डे को जबरदस्ती नीचे करते हैं, हर तरह की ज्यादती हमारे साथ करते हैं, विश्वासघात करते हैं पर हम उनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय सौजन्य का बर्ताव करते जा रहे हैं। हमें दुनिया की दृष्टि में सुजन नहीं बनना है। अपने घर में साधारण आदमी की तरह बने रहें यही हमारे लिये अच्छा है। इन सब बातों को देखते हुये मेरा कहना यह है कि हम इस बात को साफ कह देना चाहिये। माननीय पुनर्वास मन्त्री अगर यहां कह दें कि भारत सरकार उनकी सम्पत्ति की जिम्मेदारी लेती है और बाद में चलकर जबकि व्यापारिक लेन देन का हिसाब किताब होगा वह पाकिस्तान से मूल्य वसूल कर लेगी तो इससे स्थिति समझेगी। अगर ऐसा हो तो मैं श्री आयंगर के विधेयक का हृदय से समर्थन करूंगा।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 3 विधेयक का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खण्ड 3 विधेयक में शामिल किया गया।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 4 विधेयक का अंग समझा जाये।"

श्री के. हनुमन्थैया का संशोधन नं. 1 अनियमित ठहराया जाता है क्योंकि वह निषेधात्मक अब श्री एस.वी. कृष्णमूर्तिराव अपना संशोधन नं. 2 पेश करेंगे

(संशोधन नं. 2 पेश नहीं किया गया)

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि खण्ड 4 में प्रस्तावित धारा 291 में 'any of the following matters' शब्दों के आगे 'subject to confirmation by the President within two

months of the date of addition, modification, or repeal referred to above' शब्द रखे जायें।"

इस विधेयक पर शुरू में विचार करते समय जो दलीलें मैं दे चुका हूं उन्हें अब दुहराना नहीं चाहता। मुझे केवल इतना ही करना है कि माननीय मन्त्री जी गोपालस्वामी आयंगर ने गवर्नर जनरल को अधिकार दिये जाने के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किये हैं वह दिल में नहीं बैठते हैं। गवर्नर जनरल को ये अधिकार दे देने के बाद विधेयक में फिर क्या ऐसी बात रह जाती है जिसके आधार पर उसे विधान-मण्डल या जनता के प्रति उत्तरदायी बताया जा सके? खण्ड 4 में यह नहीं बताया गया है कि अगर गवर्नर जनरल इन अधिकारों का दुरुपयोग करता है तो इस हालत में संसद या किसी को भी उसके प्रतिकार का क्या अधिकार होगा। मेरे संशोधन द्वारा यह होगा कि इन शक्तियों का प्रयोग करने के बाद, संसद के समवेत होने पर गवर्नर जनरल को संसद का समर्थन पाने के लिए अपनी कार्यवाही को उसके समक्ष रखना होगा। इसलिये मेरा निवेदन है कि यह संशोधन स्वीकार किया जाये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं 4 को मैं नहीं पेश करना चाहता। पर संशोधन नं. 5 को मैं जरूर पेश करूंगा। जिस संशोधन की मैंने सूचना दी है वह इस प्रकार है:

"कि खण्ड 4 में प्रस्तावित धारा 291 में अन्त में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'इस धारा के अधीन गवर्नर जनरल द्वारा निकाले गये सारे आदेश भारतीय संविधान-सभा (विधि निर्माण) के समक्ष यथा समय उपस्थित किये जायेंगे।' "

मैं इसमें थोड़ा परिवर्तन की अनुमति चाहता हूं ताकि इसका रूप यों हो जाये। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है। आशा है आप कृपया इसकी अनुमति दे देंगे। संशोधन को मैं इस रूप में रखना चाहता हूं।

"कि खण्ड 4 में, प्रस्तावित धारा 291 का संख्या क्रम बदल कर उसे धारा 291 की उपधारा (1) के रूप में रखा जाये और पुन: संख्याबद्ध की गई इस उपधारा (1) के आगे यह जोड़ दिया जाये:

(2) इस धारा की उपधारा (1) के अधीन निर्मित प्रत्येक आदेश, निर्मित होने के बाद यथाशक्य शीघ्र अधिराज्य के विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित किया जायेगा।' "

मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता है कि माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने इतनी कृपा तो की कि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया। इससे कम से कम इतना तो होगा कि प्रस्तावित धारा 291 में वसिति विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल द्वारा जो भी आदेश निकाले जायेंगे उन पर विचार करने का और अपनी राय जाहिर करने का विधान-मण्डल को मौका मिल जायेगा। यहां इस खण्ड के सम्बन्ध में जो यह तीव्र आलोचना की गई है—जिसे श्री गोपालस्वामी आयंगर ने भी स्वीकार किया है—कि गवर्नर जनरल को इसके द्वारा बड़े ही असीम अधिकार दिये जा रहे हैं, वह बिल्कुल सही और समुचित है। हो सकता है इन अधिकारों का प्रयोग करने का आपका कोई इरादा न हो। पर अगर मान लीजिये गवर्नर जनरल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

महोदय किसी दिन यह आदेश निकाल ही बैठे कि प्रान्तीय विधान-मण्डलों में अब केवल मनोनीत सदस्य ही रहेंगे तो आप कर क्या सकते हैं? ऐसा आदेश निकालने का अधिकार तो है ही। आप उसे कैसे रोक सकते हैं? और अगर वह ऐसा आदेश निकाल देता है तो उसका प्रभाव यह होगा कि प्रान्तों से विधान-मण्डल ही उठ जायेंगे। वहां जो भी निर्वाचित सदस्य होंगे उनको अपना स्थान परित्याग कर देना होगा और उनकी जगह वह लोग बैठ जायेंगे जिनको गवर्नर जनरल पसन्द करे या उसके द्वारा एतदर्थ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति जिनको पसन्द करे। हो सकता है किसी जिले के डिप्टी कमिश्नर को ही यह कह दिया जाये कि विधान-मण्डल के लिये प्रतिनिधियों को मनोनीत कर दे। ये अधिकार इतने व्यापक हैं कि इसके अधीन कुछ भी किया जा सकता है। इतने असीम अधिकार देने का मतलब तो यह हुआ मानो आप यह कहना चाहते हों कि भारत-शासन-अधिनियम के अधीन जो भी शक्तियां प्राप्त हैं वह सब गवर्नर जनरल को सौंप दी जाती हैं ताकि बहस मुबाहिसा करने की जरूरत न रह जाये या विधान-मण्डल की विद्यमानता की आवश्यकता न रह जाये। अगर सभा के कुछ सदस्यों ने इस पर प्रबल आक्रोश व्यक्त किया है तो मेरी समझ से उनका आक्रोश सर्वथा स्वाभाविक है, उचित है। मैं सभा का और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं क्योंकि सारी स्थिति अब स्पष्ट हो गई है और सभा के प्रत्येक सदस्य ने उसे समझ लिया है। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और आशा करता हूं कि जब माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने ही यह आश्वासन दिया है कि वह इसका समर्थन करेंगे तो सभा भी इसे जरूर स्वीकार करेगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खुशी है कि माननीय श्री आयंगर डॉ. देशमुख के संशोधन को मंजूर करने पर राजी हो गये हैं। किन्तु मैं नहीं समझता कि इस संशोधन से उन सभी आपत्तियों का निराकरण हो जाता है जो इस खण्ड के विरुद्ध की गई हैं।

पहली बात यह है कि इस संशोधन में जो यह कहा गया है कि प्रत्येक संसद के समक्ष रखा जायेगा, इसका मतलब क्या है यह साफ नहीं हो पाया है। क्या संसद को उन पर विचार करने का या उनमें संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार रहेगा? असल बात यह है जो साफ नहीं हो पाई है। फिर दूसरी बात यह है कि अगर संसद उसे नापसन्द करती है तो उस हालत में क्या किया जायेगा?

फिर माननीय मित्र श्री कामत तथा अन्य कई सदस्यों ने जो यह आपत्ति की है कि पश्चिमी बंगाल तथा अन्य प्रान्तों के मंत्रियों से परामर्श करके आखिर कुछ अरसा बाद ही क्यों एक ऐसा विधेयक रखा जाये जिसमें केवल उतने ही संशोधन हों जो कि अपने प्रयोजन के लिये आवश्यक हों, उसके उत्तर में आपने यह कहा है कि यह सभा संविधान के मसौदे का द्वितीय पठन का काम सितम्बर तक समाप्त कर देगी और हो सकता है तृतीय पठन के लिये वह जनवरी से पहले समवेत न हो। मान लीजिये संविधान सभा जनवरी से पहले नहीं बैठ सकती है पर संसद की बैठक तो किसी न किसी समय नवम्बर में जरूर ही होगी। तो क्यों न संसद

को अधिवेशन के प्रारम्भ में या बीच में एक दिन के लिये संविधान-सभा के रूप में बदलकर उसमें भारत-शासन-अधिनियम में संशोधन कर लिया जाये? ऐसा करने में क्या रुकावट है? मैं जानता हूं शासन किसी भी विधेयक को यहां पास करा सकता है। पर इससे यह तो होगा कि शासन के विरुद्ध यह आलोचना न की जा सकेगी कि इस पर विचार करने का सभा को मौका ही नहीं दिया गया।

इस प्रावधान द्वारा जो अधिकार आप गवर्नर-जनरल को दे रहे हैं वह इतने असीम हैं कि इनको पाकर वह प्रायः डिक्टेटर बन सकता है। वह सदनों के आकार में परिवर्तन कर सकता है यानी उनकी सदस्य संख्या घटा-बढ़ा सकता है, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन कर सकता है, वह अभ्यर्थियों को अनर्ह घोषित कर सकता है, वह निर्वाचन सम्बन्धी नियमों में जैसा चाहे परिवर्तन कर सकता है। ऐसे असीन अधिकार तो सिद्धान्ततः किसी भी व्यक्ति को न देना चाहिये, भले ही ऐसा करना अभी हमारे लिये जरूरी हो गया हो। ऐसा करना एक बहुत बुरा उदाहरण रखना होगा। इसके अलावा ऐसा करके तो आप अपने को उन मूल अधिकारों से वंचित करेंगे जो जनता ने संविधान-सभा के सदस्य होने के नाते आप में निहित कर रखें हैं। मैं जानता हूं कि हो सकता है गवर्नर-जनरल की कार्रवाई से हमारा मतैक्य हो किन्तु उसे इस तरह का अधिकार देकर आप एक बहुत बुरा उदाहरण रखेंगे। मैंने कभी नहीं सुना है कि ऐसा विधेयक किसी सभा के समक्ष कहीं रखा गया है। सुतरां मेरी समझ में तो यह विधेयक ऐसा है कि इसका विरोध होना ही चाहिये। फिर भी यदि माननीय मंत्री महोदय यह कह दें कि डॉ. देशमुख के संशोधन से सभा को यह अधिकार प्राप्त रहेगा कि गवर्नर-जनरल द्वारा पास किये आदेश में वह परिवर्तन या संशोधन कर सकती है तो मेरे ख्याल में इससे भी इस विधेयक का जहर बहुत कुछ जाता रहेगा। पर अगर वह इतना भी नहीं करते हैं तो फिर मैं तो इस विधेयक का अवश्य विरोध करूंगा और यही चाहूंगा कि यह संविधान का अंग न बन पावे।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह महसूस करता हूं कि इस विधेयक के विरुद्ध अपनी आवाज उठाना मेरे लिये जरूरी है। इस विधेयक को यहां "एक भयंकर सांविधानिक कुकृत्य" बतलाया गया है जिस पर माननीय विधेयक उपस्थितकर्ता महोदय को आपत्ति है। अंग्रेजी भाषा की बारीकियों के आप प्रकाण्ड पण्डित हैं। इस पाण्डित्य के सामने मैं सर झुकाता हूं और यह स्वीकार करता हूं कि आपने जो कुछ कहा है वह आपके ज्ञानानुसार सही हो सकता है। किन्तु मैं तो यही कहूंगा कि यह खण्ड एक भयानक सांविधानिक अनर्गलता है, एक बौद्धिक बेईमानी है, एक नैतिक वैषम्य है। मैं यह इसलिये कह रहा हूं क्योंकि इस खण्ड के प्रत्येक शब्द का, इसमें रखे गये प्रत्येक विषय पर उप विषय का यही अर्थ होता है कि विधान-मण्डल के सांविधानिक अधिकारों का, शक्तियों का सर्वथा हनन कर दिया जाये और इनके स्थान पर गवर्नर-जनरल की सत्ता स्थापित कर दी जाये। और जैसा कि मैं बता चुका हूं यह गवर्नर-जनरल तो केवल दिखावे के लिये रहेगा। वह नाममात्र के लिये होगा। सारा काम तो करेंगे वे लोग जिसको उसके सलाहकार की संज्ञा प्राप्त रहेगी। प्रधान मंत्री महोदय या उनके साथी या इन विशिष्ट सज्जनों में से किसी का मन्त्री—यही लोग—उन आदेशों का मसौदा तैयार करेंगे जो गवर्नर जनरल के नाम में निकाले जायेंगे। इस

[प्रो. के.टी. शाह]

धारा के अनुसार इस अनुच्छेद् में उल्लिखित सभी विषयों के सम्बन्ध में विधान मण्डल की सारी शक्तियां गवर्नर-जनरल अपने हाथ में ले लेगा। 'किसी भी समय' वह ऐसा कोई आदेश निकाल सकता है। मैं नहीं समझता कि 'किसी भी समय' का क्या मतलब है। यदि इस पद संहति से अभिप्रेत है वह अवधि जो अब से लेकर संविधान के प्रवर्तन में आने के बीच पड़ेगी—और उदारमना होकर मैं यही मानता हूं कि शासन का ऐसा कोई अभिप्राय नहीं है कि संविधान को प्रवर्तन में आने से रोका जाये—तो मैं यह पूछता हूं कि आखिर इसका साफ-साफ उल्लेख यहां क्यों नहीं किया गया है? मैं यह जानना चाहता हूं कि 'किसी भी समय' पर संहति से वस्तुत: अभिप्रेत क्या है? यदि यह प्रावधान केवल संक्रान्तिकालीन अवधि के लिये यानी तब के लिये है जब तक कि संविधान प्रवर्तन में नहीं आता है तो आप साफ-साफ यह बात इस खण्ड में क्यों नहीं कह देते?

चूंकि आपने यहां यह बात नहीं कही है कि अमुक सीमित अवधि तक ही गवर्नर-जनरल इसके अधीन आदेश निकाल सकता है, मैं यह आवश्यक अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद् की प्रशंसा उन्हीं शब्दों में होनी चाहिये जिनमें कि मैंने की है। ऐसा मालूम होता है कि इस अनुच्छेद् के प्रवर्तन के सम्बन्ध में कुछ बातें आपने मन में छिपा रखी हैं जिन्हें आपने यहां व्यक्त नहीं किया है और आप का ऐसा करना बौद्धिक ईमानदारी की कमी जाहिर करता है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** यदि अनुमति हो तो मैं एक बात कहूं श्रीमान्। चूंकि मानीय सदस्य ने विधेयक के रचयिताओं को बौद्धिक ईमानदारी पर शंका प्रकट की है, मेरी समझ से यह जरूरी है कि व्यक्तिगत रूप से सफाई के तौर पर कुछ कह दूं। यही एक उपाय जिससे कि हस्तक्षेप करके मैं उनके संदेह का सद्य: निराकरण कर सकता हूं। 'किसी भी समय' पदसंहति रखने में आखिर क्या ऐसा अभिप्राय हो सकता है जिसे यहां छिपाया जाये? मेरी तरह प्रो. के.टी. शाह भी उस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अपने नये संविधान के द्वारा भारत-शासन-अधिनियम 1935 का निरसन हो जायेगा। यदि अपना संविधान आगामी 26 जनवरी तक प्रवर्तन में आ जाता है—हो सकता है इस तिथि से चन्द रोज पहिले या बाद में यह प्रवर्तन में आये—तो यह 'ध्रुव सत्य' है कि संविधान के प्रवर्तन में आते ही भारत-शासन-अधिनियम निरसित हो जायेगा। हां, यदि यह सभा ही उसको जारी रखे तो और बात है। किन्तु संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद इस अधिनियम को शासन नहीं जारी रख सकता है। इसलिये "किसी भी समय" पदसंहति से इस विधेयक में वही अवधि अभिप्रेत है जो अब से आगामी 26 जनवरी के या उन तिथि के बीच पड़ेगी जबकि संविधान प्रवर्तन में आये। आखिर कौन सी ऐसी बात है जिसे यहां छिपाया जा सकता है? फिर माननीय सदस्य विधेयक के रचयिताओं की बौद्धिक ईमानदारी पर क्यों सन्देह करते हैं?

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): प्रो. शाह साफ चीज को कभी देख ही नहीं पाते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** यह ठीक है कि शाह की शारीरिक दृष्टि मन्द पड़ गई है किन्तु वह उन अभिप्रायों को जरूर देख सकता है जो दूसरों को नहीं दिखाई देते।

माननीय विधेयक उपस्थितकर्ता महोदय ने अवधि के सम्बन्ध में जो सफाई दी है उसे मैं स्वीकार करता हूं। किन्तु फिर भी यह जरूर कहूंगा कि बजाये प्रयुक्त पदसंहति के यदि ऐसी कोई पदसंहति रखी जाती कि "संविधान के प्रवर्तन में आने तक" तो ज्यादा अच्छा होता और उससे सबकी समझ में यह साफ आ जाता कि यह प्रावधान केवल संक्रान्तिकालीन अवधि तक ही प्रवर्तन में रहेगा। फिर तो लोग इस प्रावधान पर इस दृष्टि से विचार करते कि यह अल्पकालिक अवधि के लिये ही है। पर चूंकि ऐसा नहीं किया गया है इसलिये मैं यह बता देना जरूरी समझता हूं कि इसमें क्या कमी रह गई है और उस कमी का रह जाना कितना अनुचित है। संविधान में कई स्थलों पर "उस तिथि को जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा" या इसी तरह की अन्य पदसंहति रखी गई है जिससे अवधि का साफ-साफ खुलासा हो जाता है। यदि ऐसी ही कोई पदसंहति यहां रखी गई होती तो यह बात साफ हो जाती कि यह प्रावधान अमुक अवधि तक ही प्रवर्तन में रहेगा।

अब मैं आगे उदाहरण देकर अपने तर्क की तथा इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो अपने विचार हैं उनकी पुष्टि करूंगा और यह बताऊंगा कि किस तरह हो सकता है कि इस अनुच्छेद का प्रयोग इस रूप में हो—सम्भवत: ऐसा जानबूझ कर नहीं किया जायेगा और असावधानी वश ही ऐसा होगा—जो इसके रचयिताओं का अभिप्राय न रहा हो।

उदाहरण के लिये, पहला ही विषय जिसके बारे में गवर्नर-जनरल को किसी प्रान्तीय विधान-मण्डल के सम्बन्ध में आदेश निकालने का अधिकार दिया जा रहा है, उससे मुझे ऐसा तो मालूम होता है कि इस संविधान द्वारा देश भर में जो सांविधानिक एकरूपता हम स्थापित करना चाहते हैं वह हमारा प्रयास ही निष्फल हो जायेगा। माना कि संक्रान्तिकालीन अवधि के लिये ही यह व्यवस्था रहेगी; फिर भी देश के सांविधानिक संगठन की एकरूपता में, उसके ऐक्ट में बाधा तो पड़ेगी ही। माना कि यह अवस्था केवल संक्रान्तिकालीन अवधि तक ही रहेगी, यह बुराई थोड़े ही दिनों तक रहेगी पर बुराई तो बुराई है।

फिर विधेयक में आगे यह भी कहा गया है कि आदेश "विधान-मण्डल के सदन या सदनों की रचना" के सम्बन्ध में हो सकता है। यहां सदन की रचना से क्या मतलब है यह मैं नहीं समझ पाता हूं। क्या यहां रचना से मतलब इस बात से है कि सदन में सदस्यों को प्रतिनिधित्व किस-किस हैसियत से दिया जायेगा?

***एक सदस्य:** यहां मतलब है, सदस्य संख्या से।

***प्रो. के.टी. शाह:** अगर इसका मतलब सदस्य संख्या से है तो मुझे तो यह आशंका है कि आदेश की परिधि इससे भी कहीं ज्यादा-व्यापक हो सकती है जो कि इस खण्ड के निर्माताओं ने सोच रखा हो। यदि 'सदन की रचना' में सदस्य संख्या भी शामिल समझ ली जाती है तो फिर इस प्रावधान से यह भी हो सकता है कि जिस प्रान्त के बारे में आदेश निकाला जाये उसकी जनसंख्या के अनुसार उसे प्रतिनिधित्व ही न दिया जाये। यदि यही अभिप्राय है तो मैं सविनय निवेदन करूंगा कि ऐसा करना सर्वथा असांविधानिक होगा, अनुचित होगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

अगर यह मान लिया जाता है कि यहां 'सदनों की रचना' से मतलब है केवल इस बात से कि जिस आधार पर अभी उनकी रचना की जाती है, विभिन्न हितों को प्रतिनिधान दिया जाता है, आबादी के विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधान दिया जाता है तो फिर सदनों की रचना के सम्बन्ध में यदि कोई आदेश निकाला जाता है तो मुझे डर है कि उससे कुछ बुनियादी बातों में परिवर्तन किया जायेगा और ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिये विधान-मण्डल के द्वारा न कि गवर्नर-जनरल के आदेश द्वारा। मुझे तो यह बात बहुत ही आपत्तिजनक प्रतीत होती है। हो सकता है कि सदनों की रचना के बारे में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाये कि सदनों में विशेष-विशेष हितों को ही प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे और आबादी के आधार पर सदनों की रचना न हो। जिस संविधान की हम रचना कर रहे हैं उसमें बुनियादी सिद्धान्त यह रखा गया है—जैसा कि मैं समझता हूं—कि यथासम्भव एक आदमी को एक ही वोट का हक रहेगा और सदनों में कम से कम नीचे वाले सदन में तो जरूर ही, आबादी के हिसाब से जनता के प्रतिनिधि लिये जायेंगे। यदि संविधान के पीछे मूलभूत सिद्धान्त यही है और गवर्नर जनरल के आदेश द्वारा इसमें ही ऐसा परिवर्तन कर दिया जाता है कि विधान-मण्डलों में केवल कुछ खास-खास हितों और वर्गों को ही प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा न कि समस्त जनता को तो फिर इस व्यवस्था से तो संविधान के बुनियादी सिद्धान्त का ही हनन हो जायेगा। माना कि यह स्थिति केवल संक्रान्तिकालीन अवधि तक ही अस्तित्व में रहेगी—यद्यपि विधेयक में यह बात साफ-साफ नहीं कहीं गई है—पर यह व्यवस्था ऐसे समय प्रवर्तन में आने ही जा रहा है। इससे तो संविधान के आधारभूत सिद्धान्त का ही अभिशून्यन हो जाता है। इसलिये सभा में इस समय इस व्यवस्था को प्रस्तावित करना मुझे सर्वथा निरर्थक प्रतीत होता है। इस समय ऐसा परिवर्तन करना सांविधानिक दृष्टि से मुझे बिल्कुल वाहियात मालूम पड़ता है।

इससे तो मतदाताओं की अभ्यर्थियों की अर्हता पर भी प्रभाव पड़ा सकता है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मताधिकार के सम्बन्ध में आखिर क्या परिवर्तन किया जायेगा? क्या शासन यह चाहता है कि अभी जो सीमित मताधिकार प्राप्त हैं उसमें भी गवर्नर-जनरल के आदेश द्वारा कुछ परिवर्तन किया जाये? क्या उसका अभिप्राय यह है कि वयस्क लोगों में से जिस 10 या 20 प्रतिशत को अभी मताधिकार प्राप्त हैं उससे भी गवर्नर जनरल के आदेश द्वारा, जिस आदेश पर न विधान मण्डल ने विचार किया है और न अपनी स्वीकृति ही दी है और जिसे न लोकमत का ही बल प्राप्त है, मताधिकार से वंचित कर दिया जायेगा? इस उपखण्ड की भाषा, मेरे मत में, बड़ी ही व्यापक है। मेरी समझ से तो इस उपखण्ड का इतना व्यापक अर्थ लगाया जा सकता है और इसका प्रभाव इतना व्यापक पड़ सकता है कि इसे ऐसा सामान्य प्रावधान समझकर मानो इसके द्वारा केवल अर्हता, आवास, या पेशा आदि जैसी छोटी मोटी बातों में ही कोई परिवर्तन किया जा सकता हो और ज्यादा कुछ नहीं, हम इसे आसानी से नहीं पास कर सकते हैं। जब तक कि इस उपखण्ड के साथ एक व्याख्या मूलक पैरा नहीं रखा जाता है, बहुत सम्भव है कि इस उपखण्ड के अधीन पूरे शरारती काम किये जायें जिससे, इसके रचयिता, मुझे विश्वास है, बचना ही चाहेंगे।

यहां यह बात कही गई है, श्रीमान, कि अपना नया संविधान जिसकी कि हम रचना कर रहे हैं, वकीलों के लिये एक वरदान सिद्ध होगा। इस बात का समर्थन इस खण्ड से भी होता है। हमें यह विश्वास दिलाया गया है कि यह प्रावधान केवल संक्रान्तिकालीन अवधि तक ही प्रयोग में रखा जायेगा। किन्तु इस अल्प अवधि के लिये जो प्रावधान आप रख रहे हैं वह ऐसा है कि वकीलों को इससे पर्याप्त काम मिल जायेगा ओर वह खासी रकम बना लेंगे। मुझे विश्वास है कि मसौदा समिति का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता है कि इस खण्ड की भाषा ऐसी रखी जाये कि उसको तोड़ मरोड़ कर उसका अर्थ बदला जा सके और ऐसा अर्थ लगाया जा सके जो खुद मसौदा समिति ने मसौदा तैयार करते समय न सोचा हो।

इस खण्ड से यह भी आभास मिलता है कि आदेश का सम्बन्ध अभ्यर्थी की अर्हता से भी हो सकता है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि अभ्यर्थी की अर्हता के सम्बन्ध में आखिर क्या परिवर्तन किया जा सकता है। इस बात का उतना व्यापक प्रभाव पड़ सकता है कि मैं इसे स्वीकार करने में द्विविधा बोध कर रहा हूं। मुझे प्रबल आशंका इस बात की है कि इस तरह का आदेश चाहे वह संक्रान्तिकालीन अवधि के लिये प्रवर्तन में रहे, बहुत सम्भव है कि उससे कहीं आगे चला जाये या मसौदा बनाने वालों का अभिप्राय हो। मैं मानता हूं कि इसके सम्बन्ध में हमें ऐसी वीभत्स कल्पना करने की जरूरत नहीं है कि गवर्नर-जनरल आदेश द्वारा अभ्यर्थी की अर्हता के सम्बन्ध में ऐसी शर्तें रख सकता है कि जिसको चाहे वह खड़ा ही न होने दे। मैं यह मान लेता हूं कि विधेयक निर्माताओं का यह अभिप्राय हर्गिज नहीं है कि इस व्यवस्था के द्वारा ऐसे आदेश निकाले जायें जो अर्हता के सम्बन्ध में ऐसे नये प्रतिबन्ध आरोपित करते हों, नई शर्तें लागू करते हों जो संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों से सर्वथा असंगत हों। मुझे यह भी विश्वास है कि विधेयक रचयिताओं का यह भी अभिप्राय नहीं है कि संक्रान्तिकालीन अवधि के लिये भी कोई ऐसे प्रावधान बनाये जायें जो संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत जाते हों। इस संविधान का आधारभूत सिद्धान्त तो यह है कि सभी नागरिकों को बराबर का अधिकार प्राप्त रहेगा और नवीन शासन सम्बन्धी ढांचे का, विभिन्न निकायों का निर्माण प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों को लेकर किया जायेगा। अगर संविधान का आधारभूत सिद्धान्त यही है तो फिर प्रकारान्तर से गवर्नर-जनरल या गवर्नर के आदेश द्वारा, संक्रांतिकालीन अवधि के लिए भी मतदाताओं की अर्हता पर अगर, कोई प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास किया जाता है तो यह सर्वथा अनुचित है। अगर आप अर्हता के सम्बन्ध में ही कोई खास प्रतिबन्ध रखना चाहते हैं, मसलन अगर आप यह चाहते हैं कि साम्प्रदायिक आधार पर होने वाली निर्वाचन पद्धति को अब उठा दिया जाये, तो आप साफ-साफ इसे क्यों नहीं बता देते हैं? क्यों नहीं यह कहते हैं कि इस खण्ड का यह मतलब नहीं है कि प्रतिनिधान के दायरे को कम किया जाये या मतदाताओं की संख्या का परिसीमन किया जाये बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि पृथक निर्वाचन की प्रणाली को, जिससे कि देश को इतना दु:ख भोगना पड़ा है और जबरदस्त क्षति उठानी पड़ी है, उठा दिया जाये और संक्रान्तिकालीन अवधि में भी आदेश द्वारा इस कुप्रथा को अमल में न रहने दिया जाये। मैं फिर यही कहूंगा कि आप यहां ऐसी पद-संहति प्रयुक्त करें जिससे आपका वास्तविक अभिप्राय साफ-साफ व्यक्त हो जाये।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस खण्ड के सम्बन्ध में यहां यह संशोधन रखे गये हैं कि आदेश, स्वीकृति के लिये छानबीन के लिये संसद के समक्ष रखा जाये। आदेश को संसद के समक्ष रखवाने का जो प्रयास किया जा रहा है उससे मुझे कुछ भी सन्तोष नहीं है। कानून पास करने का अधिकार बुनियादी तौर पर संसद को ही प्राप्त है और संसद को अपने इस अधिकार का परित्याग गवर्नर-जनरल के या किसी भी व्यक्ति के पक्ष में न करना चाहिये, उसे यह अधिकार अपने पास रखना चाहिये। मैं नहीं समझता कि इस समय जबकि एक उदार संविधान तैयार करने के लिए हम यहां समवेत हो रहे हैं, हमें इस तरह का कोई प्रावधान स्वीकार करना चाहिये क्योंकि इससे विधान-मण्डल के अधिकारों का अपहरण होता है, कार्यपालिका सर्वेसर्वा बन जाती है और उसे ऐसे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं कि वह विधान-मण्डल को ही समाप्त कर सकती है। मैं इस बात का उल्लेख खास तौर पर इसलिये कर रहा हूं—जोकि मुझे एक बड़े अधिकारी की ओर से यह आश्वासन मिला है कि यह व्यवस्था केवल संक्रान्तिकालीन अवधि तक के लिये ही होगी—कि सम्भव है कि किसी प्रान्त के नवनिर्मित विधान-मण्डल का जीवन ही इस आदेश के पास में आ जाये। कार्यपालिका को इतने असीम अधिकार देने वाले ऐसे प्रावधान को रखना देश के विधान-मण्डल के अधिकारों का अपहरण करना है। इस तरह के कानून से तो हमारी वह सारी योजना ही खतरे में पड़ जायेगी जो देश के ऐक्य एवं प्रशासन सम्बन्धी एकरूपता के लिये हमने अपना रखी है। हमारी इस आशंका को आप केवल यह दलील देकर नहीं दूर कर सकते हैं कि यह व्यवस्था अस्थायी होगी और केवल अल्पकालिक अवधि के लिये होगी। मेरी समझ से तो इस प्रावधान का विचार ही संविधान के आधारभूत आदर्शों और कल्पनाओं के लिये सर्वथा घातक है।

मैं जानता हूं मेरी ये बातें ऐसी हैं जिन्हें शायद यहां लोग पसन्द न करेंगे। मैं जानता हूं कि इन बातों को यहां कई मौके पर, कई अनुच्छेदों पर विचार करते समय मैं कह चुका हूं और इन्हें सभा का समर्थन नहीं प्राप्त हुआ है। इसलिये मैं, यह जानता हूं कि मेरा यह सब कहना यहां केवल अरण्य रुदन मात्र है। फिर भी इस विधेयक के विरुद्ध अपनी आवाज उठाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, जो भाषण मैंने जब तक सुने हैं उनसे मैं यह देखता हूं कि, इस विशेष विधेयक का और खास करके इसमें खण्ड 4 का अभिप्राय क्या है। इसको लेकर सदस्यों में बड़ी गलतफहमी है। मैं यह वांछनीय समझता हूं कि शुरू में ही सभा को यह बता दूं कि खण्ड 4 को रखने का वस्तुत: उद्देश्य क्या है।

सभा में एक अनुकूल मानसिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए—यदि बिना किसी को दु:ख पहुंचाये मेरा ऐसा कहना उचित हो तो—मैं सभा का ध्यान मूल भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के शब्दों की ओर आकृष्ट करूंगा। स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा अनुकूलित किये जाने के पूर्व मूल भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 की चन्द पंक्तियां में पढ़कर सुनाये देता हूं जो ये हैं:

"यहां आगे वर्णित विषयों के सम्बन्ध में इस अधिनियम द्वारा जहां तक कि कोई प्रावधान नहीं बनाया गया है, सपरिषद सम्राट (मैं यहां, 'सपरिषद सम्राट' शब्दों पर ही जोर देना चाहता हूं) समय-समय पर इन विषयों या इनमें से किसी के बारे में....प्रावधान बना सकता हूं।"

पहली बात जिसकी ओर कि सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करूंगा वह यह है कि इस विधेयक के खण्ड 4 में ख से ञ तक के उपखण्डों में जो विषय रखे गये हैं वह ठीक वही विषय हैं जो पुरानी धारा 291 में रखे गये हैं इसलिये शुरू में ही हैं यह समझ लेना चाहिये कि इस खण्ड 4 के द्वारा मूल भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 के प्रावधानों में कोई परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। जिन विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को इस विधेयक के प्रावधानों द्वारा अधिकार दिये जा रहे हैं वह वही विषय हैं जिनके बारे में मूल अधिनियम की धारा 291 में सपरिषद सम्राट को अधिकार दिये गये हैं (एक सदस्य बोल उठे–नहीं) आशा है सबकी समझ में यह बात अब आ गई हो और किसी को कोई सन्देह नहीं रह गया होगा। जो भी इस विधेयक के विभिन्न खण्डों का मिलान मूल धारा 291 से करेगा उसके सारे सन्देहों का निराकरण हो जायेगा।

इसलिये अब सवाल यह किया जा सकता है कि फिर गवर्नर-जनरल को यह अधिकार किसलिये दिये जा रहे हैं। वस्तुतः कठिनाई यह है। स्वतन्त्रता अधिनियम के पास होने के बाद जब भारत-शासन-अधिनियम को अनुकूलित किया गया तो किसी तरह ऐसा हुआ—अवश्य ही मेरी समझ से—कि उसमें एक त्रुटि रह गई। वह त्रुटि यह थी कि यह अधिकार जो शुरू में सपरिषद सम्राट में निहित किया गया था वह हस्तान्तरित होकर गवर्नर-जरल को प्राप्त हो जाना चाहिये था क्योंकि अधिराज्य-विधि के (Dominion Law) अनुसार सपरिषद सम्राट का स्थान गवर्नर जनरल को प्राप्त हो जाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश, जैसा कि मैं बता चुका हूं हुआ यह कि इस धारा 291 को अनुकूलित करते समय, जो अधिकार हम यहां गवर्नर-जनरल को दे रहे हैं वह स्थानीय विधान-मण्डल को दे दिया गया। अनुकूलित धारा 291 को मैं पढ़कर सुना देता हूं। उन मित्रों से जो इसको लेकर इतना तूफान मचा रहे हैं, मैं यह कहूंगा कि वह इस अनुकूलित धारा को पढ़े। वह यों है:–

"किसी प्रान्तीय विधान-मण्डल के सम्बन्ध में, इस अधिनियम में, यहां वर्णित विषयों के बारे में जहां तक तक कि कोई प्रावधान नहीं किया गया है वहां तक उन विषयों या उनमें से किसी एक के बारे में, वहां के विधान-मण्डल के अधिनियम द्वारा प्रावधान किया जा सकता है।"

इस बात का पता हमें अब चला है कि ऐसा करना गलत हुआ। वस्तुतः जबकि धारा अनुकूलित की गई थी उसी समय ये अधिकार गवर्नर-जनरल को हमने दे देने थे क्योंकि धारा 291 के प्रावधानों के अनुसार ये अधिकार सपरिषद सम्राट में निहित थे न कि किसी स्थानीय विधानमण्डल में। इस विधेयक के द्वारा हम केवल यही कर रहे हैं कि मूल धारा 291 के अनुसार जो स्थिति थी वही बनी रहे। इसलिये मैं यह कहूंगा कि सभा के जिस सदस्य ने भी यहां आलोचना

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में यह बात कही है कि इसकी तह में कोई गहरी चाल है जो राजनीतिक अभिप्रायों से प्रेरित होकर संविधान को भंग करने के लिये चली जा रही है, उसका ऐसा गम्भीर आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है। इस खण्ड को रखने में हमारा प्रयोजन इतना है जो एक त्रुटि रह गई है वह दूर कर दी जाये।

अब मैं दूसरी बात को लेता हूं जिस पर यहां बहुत आपत्ति की गई है। "विधान-मण्डल के सदन या सदनों की रचना" शब्दों पर यही बड़ी आपत्ति की गई है। मैं मंजूर करता हूं कि....

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यदि अनुमति हो तो एक प्रश्न करूं श्रीमान्। "यहां आगे वर्णित विषयों के सम्बन्ध में इस अधिनियम द्वारा जहां तक कि कोई प्रावधान नहीं बनाया गया है" इन शब्दों को बदल देने से, इनको हटा देने से क्या.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यही बात समझाने मैं जा रहा हूं। मूल धारा 291 में और इस प्रस्तावित नये खण्ड में अन्तर केवल इतना ही है कि इस प्रस्तावित खण्ड में विधानमण्डल की रचना के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को अधिकार देने की बात कही गई है। मैं यह मंजूर करता हूं कि इतना परिवर्तन जरूर किया गया है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** और इससे अनुसूची 5 और 6 के प्रावधानों में परिवर्तन हो जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, आपका कहना बिल्कुल सही है। बिना किसी अतस्तत: के मैं स्वीकार करता हूं कि इतना परिवर्तन जरूर किया जा रहा है। अब सवाल यह उठता है कि आखिर यह परिवर्तन क्यों किया जाये। विधान-मण्डल की रचना के सम्बन्ध में भी गवर्नर-जनरल को अधिकार प्राप्त रहे इसके लिये जो यहां परिवर्तन किया गया है उसका मुख्य कारण है वह स्थिति जिसमें कि आज देश पड़ गया है। मानीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि देश विभाजन के कारण आबादी का एक बड़े व्यापक पैमाने पर स्थानान्तरण हुआ है। पूर्वी पंजाब की आबादी आज स्थिर दशा में नहीं है। शरणार्थियों का आना जाना वहां लगा हुआ है। पहली अप्रैल को वहां की जनसंख्या इतनी है तो 6 महीने बाद वहां की जनसंख्या बदलकर कुछ भी हो सकती है। यही बात पश्चिमी बंगाल के साथ या अन्य कई प्रान्तों के साथ है जहां पुनर्वास योजना के अधीन भारत सरकार द्वारा शरणार्थी रखे गये हैं। बहुत से स्थानों में शरणार्थी खुद अपनी इच्छा से यहां से वहां चले गये हैं। ऐसी सूरत में यह स्पष्ट है कि विधान मण्डलों की सदस्य संख्या के सम्बन्ध में जो प्रावधान अनुसूची 5 और 6 में हैं उन्हें आप ज्यों-त्यों नहीं रहने दे सकते जबकि आपको यह मालूम है कि आज की जनसंख्या का अनुसूचियों में निर्धारित सदस्य संख्या के साथ कोई सामन्जस्य नहीं रह गया है। इसलिये गवर्नर जनरल को इन अनुसूचियों में भी, जिनमें कि विधान मण्डल की रचना की व्यवस्था की गई है, परिवर्तन करने का जो अधिकार दिया जा रहा है वह इसी अभिप्राय से कि विधान-मण्डल की रचना में स्थानान्तरित आबादी का भी ख्याल रखा जा सके।

आशा है माननीय मित्रों की समझ में यह बात आ गई होगी कि सदन या सदनों की रचना के सम्बन्ध में आदेश निकालने का जो अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया जा रहा है उसमें मूल उद्देश्य यही है कि गवर्नर-जनरल आदेश द्वारा प्रान्त की तत्कालीन जनसंख्या के अनुरूप वहां के विधान-मण्डल की सदस्य-संख्या निर्धारित कर दे। इस व्यवस्था के पीछे दुरभिसन्धि नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ इस स्थिति को ठीक करने के लिये आपको दो साल का मौका मिल चुका था।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह दूसरी बात है। मैं तो केवल यह समझा रहा हूं कि इस नये खण्ड के द्वारा इन प्रावधानों को क्यों रखा जा रहा है।

मैं यह बता ही चुका हूं कि अन्य जो प्रावधान इस विधेयक में रखे गये वह वही हैं जो कि मूलधारा 291 में हैं। यह अधिकार किसी मनमाने उद्देश्य की पूर्ति के लिये या किसी निरर्थक प्रयोजन के लिये नहीं लिया जा रहा है और न यह अधिकार इस अभिप्राय से लिया जा रहा है कि इसका प्रयोग सदउद्देश के सिवाय और किसी मतलब से किसी जाये। अत: इन सारी बातों का ख्याल करते हुये मेरा निवेदन यह है कि खण्ड 4 का रखना सर्वथा समुचित है। इसलिये कि जो अधिकार मूल अधिनियम में सपरिषद सम्राट को प्राप्त थे वह अब गवर्नर-जनरल को जोकि उसका उत्तराधिकारी है प्राप्त हो जायें और इसलिये कि गवर्नर-जनरल को यह अतिरिक्त शक्ति प्राप्त हो जाये कि वह विधान मण्डल की सदस्य संख्या में परिवर्तन कर सके क्योंकि 15 अगस्त सन् 47 के बाद से विभिन्न प्रान्तों की जनसंख्या में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है—इन दोनों ही बातों के ख्याल से—इस खण्ड का रखना सर्वथा आवश्यक है। मैं यह समझ रहा हूं कि उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में एक यह गलती जरूर हो गई है कि दुर्भाग्य से पश्चिमी बंगाल का एक विशेष उल्लेख कर दिया गया है। मैं यह बता देना चाहता हूं कि यह प्रावधान आम तौर पर सभी प्रान्तों के लिये रखा गया है। न सिर्फ खास तौर पर बंगाल के लिये बल्कि सभी प्रान्तों के लिये जहां आवश्यक होगा इन विषयों के बारे में गवर्नर-जनरल परिवर्तन कर सकता है। मेरा ख्याल हैलिप उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में जो सिर्फ पश्चिमी बंगाल का ही उल्लेख हुआ है वह गलती से ही हो गया है और उसका उल्लेख वहां न होना चाहिये था। यहां सदस्यों ने इस खण्ड विशेष के इन शब्दों को लेकर जहां कि पश्चिमी बंगाल का हवाला दिया गया है, यहां तूफान खड़ा कर दिया है और इन शब्दों के आधार पर सरकार पर वह यह लांछन लगा रहे हैं कि पश्चिमी बंगाल के विधान-मण्डल के प्रति शासन के मन में कुछ कुभाव है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, ऐसी कोई बात नहीं है। ये प्रावधान किसी प्रान्त विशेष के लिये नहीं बल्कि सारे देश के लिये रखे जा रहे हैं। यदि पश्चिमी बंगाल में ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें वहां इन पर अमल करना आवश्यक हो जाये तो पश्चिमी बंगाल में इन प्रावधानों पर अमल किया जायेगा। जरूरत होने पर मेरे अपने बम्बई प्रान्त में जहां आज तो शायद ऐसी कोई स्थिति नहीं वर्तमान है, इन प्रावधानों पर अमल किया जायेगा। इसलिये उस वक्तव्य से आपको यहा निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि इस खण्ड को रखने में कोई गहरी चाल है।

***श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): 'पश्चिमी बंगाल' शब्दों को हटाना क्या अब सम्भव नहीं है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्रों से मैं यह कहता आ रहा हूं कि उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य इस अधिनियम का अंग नहीं है और इसलिये उस वक्तव्य के किसी शब्द, वाक्य या खण्ड को हटाने का कोई संशोधन यहां नहीं रखा जा सकता है। इस विधेयक के कानून बनते ही वह वक्तव्य रद्दी की टोकरी में फेक दिया जायेगा। वक्तव्य और प्रस्तावना में बड़ा अन्तर होता है। मैं यह चाहता हूं कि सदस्यगण प्रस्तावना पर ध्यान दें जिसमें पश्चिमी बंगाल का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिये मैं यह निवेदन करूंगा कि इस खण्ड में ऐसी कोई बात नहीं है जिस पर विवाद किया जाये। इस खण्ड के द्वारा दो ही बातें की गई हैं। एक तो यह किया गया है कि अनुकूलित किये जाने के पूर्व भारत-अधिनियम में जो इस सम्बन्ध में मूल प्रावधान था वही यहां भी रख दिया गया है और दूसरा यह किया गया है कि इसके द्वारा गवर्नर-जनरल को एक अतिरिक्त अधिकार दे दिया गया है जिसका देना जरूरी हो गया है क्योंकि प्रान्तों की आबादी में अब परिवर्तन हो गया है।

***एक सदस्य:** मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि अब इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। डॉ. अम्बेडकर ने नये प्रश्न उठा दिये हैं जिन पर हम विचार करना चाहेंगे। अपने नियम नं. 33 के अधीन आप यह कह सकते हैं कि अभी इस पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया जा सका है और बहस बन्दी के प्रस्ताव को आप नामंजूर कर सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** किन्तु डॉ. अम्बेडकर तो उस विभाग के मंत्री नहीं हैं, जिससे कि उपस्थित विधेयक का सम्बन्ध है।

***उपाध्यक्ष:** हां, यह बात सही है। और फिर माननीय सदस्य श्री कामत को तो इस खण्ड पर बोलने का काफी मौका मिल चुका है। इसलिये बहस बन्दी के प्रस्ताव को मैं स्वीकार करता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मैं नहीं समझता कि इस खण्ड विशेष पर जो बहस हुई है उसका विस्तृत उत्तर देने की मेरे लिये कोई आवश्यकता रह गई है। इस खण्ड विशेष में प्रयुक्त शब्दों को, तथा अनुकूलन से पहले के भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 की पदसंहति और अनुकूलित अधिनियम की धारा 291 की पदसंहति को आमने सामने रखकर डॉ. अम्बेडकर ने यह अच्छी तरह कह दिया है कि इन शब्दों का क्या प्रयोजन है? जहां तक कि इस विशेष विषय का सम्बन्ध है, यदि आप भारत-शासन-अधिनियम को देखें तो पता चलेगा कि इसकी धारा 308 के अधीन भी सपरिषद सम्राट को इसी तरह के संशोधनों

का अधिकार था जैसाकि प्रस्तुत नवीन धारा 291 में सुझायें गये हैं। अब वाद-विवाद की इस अन्तिम स्थिति में पहुंच कर इस विशेष बात पर विस्तारपूर्वक कुछ कहना मेरे लिये अनावश्यक है। तथ्य यह है कि इस खण्ड विशेष से लोकतन्त्रीय सिद्धांतों पर जिस संकट की कल्पना की जा रही है उसके सम्बन्ध में यहां अनावश्यक रूप से इतनी व्यग्रता व्यक्त की जा रही है। मेरी समझ से तो यहां जो आशंकायें व्यक्त की गई हैं वह सर्वथा निराधार हैं और उनको व्यक्त करने में अतिशयोक्ति से काम लिया गया है।

जहां तक कि पश्चिमी बंगाल के उल्लेख का सम्बन्ध है, मैं मानता हूं, हम इस उल्लेख को छोड़ सकते थे। किन्तु उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य पश्चिमी बंगाल का हवाला केवल उदाहरण के रूप में दिया गया है। मेरा ख्याल है कि एक जगह यह कहा गया है "यदि पश्चिमी बंगाल या अन्य किसी प्रान्त के विधान-मण्डल के लिये चुनाव का आदेश निकाला जाये" और एक अन्य स्थल पर इतना कहा गया है कि "अगर उदाहरण के लिये पश्चिमी बंगाल या अन्य किसी प्रान्त के सम्बन्ध में कुछ किया जाता है"। विधेयक में जो बातें रखी गई हैं उनसे भी और उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि विधेयक खास तौर पर केवल बंगाल के लिये ही नहीं लागू होगा। विधेयक से तथा उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य से—दोनों से ही—यह स्पष्ट है कि विधेयक सारे देश के लिये है और किसी खास प्रान्त पर ही नहीं लागू होगा। किसी भी प्रान्त में अगर ऐसी स्थिति पैदा हो जाये जिसमें चुनाव का करना जरूरी हो जाये तो इन अधिकारों का वहां अविलम्ब प्रयोग किया जायेगा। ऐसी सूरत में मैं नहीं समझता कि पश्चिमी बंगाल के उल्लेख पर क्यों सन्देह किया जा रहा है और यह सोचा जा रहा है कि अन्य प्रान्तों पर नहीं बल्कि केवल पश्चिमी बंगाल पर लागू करने के अभिप्राय से यह विधेयक रखा जा रहा है।

जहां तक कि डॉ. देशमुख के इस संशोधन का सम्बन्ध है कि इस खण्ड विशेष के अधीन निर्मित प्रत्येक आदेश विधान-मण्डल के समक्ष रखा जायेगा, मैं उसे, उससे परिवर्तित रूप में जिसमें कि उन्होंने पेश किया है, पहले ही स्वीकार कर चुका हूं।

इसी संशोधन का एक दूसरा संस्करण पेश किया है माननीय मित्र काजी करीमुद्दीन ने जिसके बारे में मुझे केवल एक शब्द कह देना है। आपका यह कहना है कि इस धारा के अधीन निकाले गये हर आदेश के लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि प्रवर्तन में आने के कम से कम दो मास पूर्व उस पर विधान-मण्डल का अनुमोदन प्राप्त हो जाये। अगर हम इस संशोधन को स्वीकार करते हैं तो फिर विधेयक रखने की हमें जरूरत ही क्या रह जाती है? फिर विधेयक को पास करना निरर्थक है क्योंकि हमें इस प्रावधान की आवश्यकता ही है एक ऐसी अवधि के लिये जो पांच या छह माह से ज्यादा न जायेगी। यदि आज हम आदेश बनाते हैं और गवर्नर-जनरल उसे दो महीने बाद पास करता है और फिर दो महीना हम इसलिये रूके रहते हैं कि विधान मण्डल का अनुमोदन प्राप्त हो जाये तो फिर हमारे पास समय ही कितना रह जायेगा जो हम चुनाव की व्यवस्था करेंगे? उस हालत में चुनाव करना तो दूर आपको मतदाता-सूची तैयार करने के लिए पर्याप्त समय न रह जायेगा जो संविधान के प्रवर्तन में आने से पूर्व हम चुनाव

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

करा सकें। इसलिये माननीय मित्र से मैं यह कहूंगा कि वह अपने संशोधन के लिये जोर न दें मेरा ख्याल है कि डॉ. देशमुख के संशोधन के स्वीकृत हो जाने से भी उनका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

यहां यह भी कहा गया है कि आखिर विधान-मण्डल अपने विचारों को लोगों पर कैसे प्रकट कर सकता है और उन्हें कैसे प्रभावी बना सकता है। इसके जवाब में मुझे केवल यही कहना है कि जब इस तरह का आदेश विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित होगा तो किसी भी सदस्य को यह अधिकार रहेगा कि उस आदेश के प्रावधानों के सम्बन्ध में वह जो चाहे प्रस्ताव करे और सभा को यह स्वतन्त्रता रहेगी कि उस प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करे। वर्तमान परिस्थिति में तो यही किया जा सकता है। हम ऐसा समझ लें कि अगर गवर्नर-जनरल द्वारा आदेश सितम्बर या अक्तूबर में पास कर दिया जाता है—यदि इसकी आवश्यकता पड़ी तो–तो नवम्बर वाले अधिवेशन में वह विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित किया जायेगा और अगर वह बाद में पास किया गया तो फिर जनवरी के अधिवेशन के पहिले वह पेश किया जायेगा। मेरी समझ से इस सिद्धान्त विशेष के समाधान के लिये अधिक से अधिक इतना ही किया जा सकता है।

***श्री महावीर त्यागी:** यदि अनुमति हो तो एक सवाल करूं श्रीमान? आखिर इस विधेयक को किसी प्रान्त विशेष पर ही लागू करने का इरादा कैसे किया जा रहा है? बंगाल का नाम क्यों लिया जाता है? बंगाल ने क्या गलती की है जो इस विधेयक में उसका उल्लेख किया जा रहा है?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** विधेयक में बंगाल का कतई उल्लेख नहीं किया गया है।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:–

"कि खण्ड 4 में, प्रस्तावित धारा 291 में 'any of the following matters' शब्दों के आगे 'subject to confirmation by the Parliament within two months of the date of addition, modification or repeal refered to" शब्द रखें जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:–

"कि खण्ड 4 में, प्रस्तावित धारा 291 का संख्याक्रम बदलकर उसे धारा 291 की उपधारा (1) के रूप में रखा जाये और पुन: संख्याबद्ध की गई इस उपधारा (1) के आगे यह जोड़ दिया जाये:–

'(2) इस धारा की उपधारा (1) के अधीन निर्मित प्रत्येक आदेश, निर्मित होने के बाद यथाशक्य शीघ्र अधिराज्य के विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित किया जायेगा।' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड 4 अपने संशोधित रूप में विधेयक का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खण्ड 4 अपने संशोधित रूप में विधेयक में शामिल किया गया।

खण्ड 5 विधेयक में शामिल किया गया।

शीर्षक और प्रस्तावना को विधेयक में शामिल किया गया।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि विधेयक अपने संशोधित रूप में स्वीकार किया जाये।"

श्री एच.वी. कामतः एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। मैं आपका ध्यान तथा सभा का ध्यान संविधान-सभा के नियम नं. 38 (घ) के उपनियम (2) की ओर, जिस रूप में कि 31 मई सन् 1949 को वह संशोधित किया गया है, आकृष्ट करूंगा। इस उपनियम में यह कहा गया है कि अगर विधेयक के सम्बन्ध में कोई संशोधन किया गया है और यदि उसी दिन यह प्रस्ताव रखा जाता है कि "विधेयक स्वीकृत किया जाये" तो उस प्रस्ताव का कोई भी सदस्य विरोध कर सकता है। इस नियम के अधीन मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं। *(बाधा)* हां यदि सभाध्यक्ष खुद इसके उपस्थित किये जाने की अनुमति देता हो तो यह रखा जा सकता है।

***उपाध्यक्षः** जो संशोधन अभी स्वीकार किया गया है वह एक सामान्य औपचारिक संशोधन है। प्रस्तावक ने जो प्रस्ताव रखा है उसे सभा के समक्ष उपस्थित किये जाने की मैं अनुमति देता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** बहस के जवाब में माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो वक्तृता दी है उससे मुझे न तो अपनी बात के लिये पछतावा हो रहा है और न उनकी बातें मेरे दिल में बैठ रही हैं। जिस संशोधन को अभी सभा ने स्वीकार किया है उससे विधेयक के इसी अंश की अर्थात् धारा 4 की भयंकरता में नरमी जरूर आ जाती है पर अत्यन्त ही सूक्ष्म मात्रा में। अपने साथी श्री आयंगर के बचाव के लिये डॉ. अम्बेडकर ने वकालत की है और उनका ऐसा करना ठीक ही है क्योंकि कर्तव्य और धर्म के नाते वह ऐसा करने के लिए बाध्य हैं। हमारे मंत्रिमंडल में प्रबल ऐक्य है। मंत्रिमंडल के हर सदस्य को अपने साथी सदस्य का, सुदिन और दुर्दिन से, सुख और दु:ख में हाथ बटाना ही चाहिये और उसकी मदद करनी ही चाहिये किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने अपने साथी के बचाव जो बातें कहीं हैं, उनसे मेरे दिमाग में नये सन्देह पैदा हो गये हैं और मेरे सामने नई कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। असंशोधित धारा 291 का जिक्र करते हुये आपने यहां यह दलील दी है कि विधेयक की धारा 4 के द्वारा इतना ही किया गया है कि मूलधारा 291 के अधीन जो स्थिति थी वही जारी रहने दी गई है इसका मतलब यह हुआ कि भारत-शासन-अधिनियम के अनुकूलित किये जाने के पूर्व जहां सम्राट की सरकार को अधिकार प्राप्त थे वहां अब गवर्नर-जनरल को—अवश्य

[श्री एच.वी. कामत]

ही कार्यपालिका या मंत्रिमण्डल भी उसके साथ शामिल हैं—प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु आश्चर्य तो मुझे इस बात पर हो रहा है कि धारा 291 का एक अंश विशेष आखिर डॉ. अम्बेडकर की निगाह से कैसे चूक गया क्योंकि विस्तार की बातें उनकी निगाह से नहीं चूकती हैं और बारीक से बारीक बात भी उनकी निगाह में आ जाती है। हमें यहां यह बताया गया है कि भूल से ऐसा हो गया। अपनी-अपनी कार्यकुशलता के लिये हमारा कानून विभाग बहुत प्रसिद्ध है पर इस भूल को पकड़ने में उसे दो वर्ष लग गये। फिर यह भूल भी तभी उनकी दृष्टि में आ पाई जब कि पश्चमी बंगाल की समस्या उनके सामन आई और उन्हें यह परेशानी हुई कि इस स्थिति का निराकरण कैसे किया जाये। खैर अभी तो हमसे एक ही भूल हुई है एक ही बार हम फिसले हैं पर अभी फिर फिसलेंगे और बार-बार फिसलेंगे। मेरा यह निश्चित मत है कि हम इस समय एक फिस्सल ढाल पर खड़े हैं।

अब मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान अनुकूलित धारा 291 के शब्दों और प्रस्तुत धारा 4 के शब्दों की ओर आकृष्ट करूंगा जिसे कि आज हमने स्वीकार किया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या तृतीय पठन के समय भी किसी धारा विशेष के गुण दोष पर किसी को विचार करने का अधिकार है? और फिर माननीय सदस्य वही तर्क इस समय दुहरा रहे हैं जो द्वितीय पठन के समय वह रख चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे खेद है कि श्री आयंगर ने, द्वितीय पठन के समय मैंने जो कुछ कहा है उसे ध्यान से नहीं सुना। अन्यथा मैं, कहूंगा कि वह यह हर्गिज न कहते कि मैं अपने तर्कों की पुनरावृत्ति कर रहा हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** दूसरों के द्वारा रखे गये तर्कों को भी उन्हें दुहराना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** उस सम्बन्ध में श्री आयंगर से मैं इतना ही कहूंगा कि "वैद्यराज पहले अपने रोग की चिकित्सा करो"। डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा है कि प्रस्तुत धारा 4 में और मूल भारत-शासन-अधिनियम की धारा 291 में एक ही तरह के प्रावधान हैं। किन्तु धारा 291 में यह साफ तौर पर कहा गया है कि "जहां तक कि यहां वर्णित विषयों के सम्बन्ध में इस अनिधियम में कोई प्रावधान नहीं किया गया है, वहां तक सपरिषद सम्राट....प्रावधान कर सकता है" किन्तु इस नये खण्ड के द्वारा तो गवर्नर जनरल को अबाध अधिकार मिल जाता है। इस विधेयक के प्रावधानों के अनुसार वह किसी भी समय आदेश द्वारा ऐसा संशोधन कर सकता है जैसा कि वह आवश्यक समझे। यहां ऐसा नहीं कहा गया है कि "जहां तक कि.....प्रावधान नहीं किया गया है" मैं नहीं समझता कि आखिर इस भूल के लिये बचाव में कोई क्या कह सकता है। दूसरी चूक हुई उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य में पश्चिमी बंगाल का उल्लेख करने में। निश्चय ही सभा में रखे जाने के पहले इस विधेयक की विधि मन्त्रालय (Law Ministry) ने अच्छी तरह छानबीन कर ली होगी। आश्चर्य है कि यह काम किसने किया

था डॉ. अम्बेडकर ने किया था या किसी अण्डर सेक्रेटरी ने किया था। जो भी हो इस भूल की जिम्मेदारी विधि मंत्री पर है। धारा 291 की भूल के सम्बन्ध में तथा उद्देश्य एवं कारण सम्बन्धी वक्तव्य की गलती के सम्बन्ध में बचाव के लिये जो दलील उन्होंने पेश की हैं वह बिलकुल बेमानी हैं। यह ऐसी दलील नहीं है जो सभा को जंच सके। यह दलील तो उन्होंने केवल अपने साथी के बचाव के लिये पेश की है। ऐसा जान पड़ता है कि अपना शासन एक होकर नहीं काम कर रहा है। विधयेक का मसौदा तैयार किया है किसी दूसरे व्यक्ति ने और जब वह विधेयक यह पेश होता है—उसके पहले नहीं—तो डॉ. अम्बेडकर भूल के लिये जी जान से मसौदा बनाने वाले का बचाव करते हैं। इस तरह से मंत्रिमण्डल को अपना प्रकार्य नहीं करना चाहिये। उसे तो एक होकर काम करना चाहिये। अगर वह एक होकर काम नहीं करता है तो दुनिया को मुंह दिखाना उसके लिये मुश्किल होगा। आशा है अपना मंत्रिमण्डल भविष्य में और दक्षतापूर्वक काम करेगा ताकि दुनिया वाले उसके सम्बन्ध में और अच्छी धारणा रख सकें।

आखिरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस संशोधन को डॉ. देशमुख ने पेश किया है और जिसे सभा ने स्वीकार किया है उसमें यह कहा गया है कि गवर्नर-जनरल द्वारा निकाला जाने वाला आदेश यथाशक्य शीघ्र विधान-मण्डल के समक्ष रखा जायेगा। श्री आयंगर ने बहस के जवाब में इसके बारे में यह कहा है कठिनाई यह है कि सभा को हमेशा समवेत नहीं किया जा सकता और देर तक उसका अधिवेशन नहीं चल सकता कि गवर्नर-जनरल के आदेशों पर विचार किया जा सके। उनकी यह दलील बिलकुल थोथी दलील है। अभी उस दिन भावी व्यवस्था में सभा के आहूत किये जाने के बारे में एक अनुच्छेद विशेष पर यहां विचार किया जा रहा था तो हम लोगों की ओर से यह आपत्ति उठाई गई थी कि दो अधिवेशनों के बीच छह महीने का व्यवधान ठीक नहीं है। हम लोगों का कहना था कि छह महीने का व्यवधान बहुत लम्बा होगा। इस पर डॉ. अम्बेडकर ने यह आश्वासन दिया था कि भविष्य में सभा प्राय: समवेत हुआ करेगी? अगर उस समय ऐसा किया जा सकता था तो फिर मैं कोई कारण नहीं देखता कि द्वितीय पठन के बाद शीघ्र ही हम क्यों नहीं विधान-मण्डल के रूप में यहां समवेत हो सकते हैं। इस बीच में कानून-विभाग गवर्नर जनरल का आदेश वगैरह तैयार करने का काम कर लेगा। यदि कोई इस सम्बन्ध में हठ या वक्रता की प्रवृत्ति अपनाता है तो बात दूसरी है वरना सभा को शीघ्र समवेत किया जा सकता है।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि इस विधेयक के अधीन यथा समय आगे चल कर विधान-मण्डल के समक्ष जो भी प्रस्ताव उपस्थित किये जायेंगे उनके सम्बन्ध में मुझे आशा है कि सभा को न केवल इतना ही अधिकार रहेगा कि वह पहले से ही तय की हुई किसी बात पर सिर्फ 'हां' कह दे बल्कि उसे यह अधिकार होगा कि वह गवर्नर-जनरल के आदेशों पर स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करे, उसको स्वीकार करे या उसमें संशोधन करे या उसे न पास कर दे। यदि संसद को इस अधिकार से वंचित रखा जाता है तो व्यक्तिगत रूप से मैं तो कभी इस दुरभिसन्धि में साथ नहीं दे सकता। आशा है यह बात ध्यान में रखी जायेगी। संशोधन इस बात पर सर्वथा मौन है। इसमें सिर्फ यह कहा गया है कि संशोधन संसद के समक्ष पेश किया जायेगा। किसलिये पेश किया जायगा यह भगवान ही जाने। आशा

[श्री एच.वी. कामत]

है संसद को पूरा अधिकार रहेगा कि वह हर स्थिति में समुचे विषय पर विचार करके चाहे उसे पास करे या ना पास करे। मैं यह अनुभव करता हूं कि इस विधेयक को जल्दी-जल्दी पास करा लिया गया है और धारा 4 थोड़े से परिवर्तन के साथ पास कर ली गई है। इससे विधेयक की भयंकरता कुछ नरम जरूर हो गई है पर इससे प्रावधान की अप्रियता बिलकुल दूर नहीं हो जाती है। आशा है, महीना दो महीना के अन्दर जब यह विषय सभा के समक्ष आयेगा तो उस अधिनियम के अधीन गवर्नर-जनरल द्वारा निर्मित सभी आदेशों की छानबीन करने का, उन पर संशोधन करने या उन्हें न पास करने का सभा को पूरा अधिकार रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** श्री गोपालस्वामी आयंगर क्या कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मैं नहीं समझता कि मुझे कुछ भी कहना है।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और संशोधन करने के लिए उपस्थित किये गये विधेयक को, सभा द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

सभा द्वारा तय किये गये रूप में विधेयक पास किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात: 9 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार, 19 अगस्त सन् 1949 ई. के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. N-13-49
320

अंक 9

संख्या 13

शुक्रवार
19 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*
[अनुच्छेद 150, नवीन अनुच्छेद 214 अनुच्छेद 189, 190, 250
तथा 277 पर विचार] .... 709—765

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 19 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे उपाध्यक्ष महोदय (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 150—*(जारी)*

*__उपाध्यक्ष:__ (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी): आज हम अनुच्छेद 150 से आरम्भ करते हैं। सभा को यह स्मरण होगा कि मूल रूप में इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद हुआ था और तीन संशोधन पेश हो जाने के बाद यह अनुच्छेद फिर मसौदा-समिति के पास भेज दिया गया था। डॉ. अम्बेडकर ने अब एक नये अनुच्छेद की सूचना दी है। मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे इस अनुच्छेद को, जो सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में है, पेश करें।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): श्रीमान, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। क्या मैं उसे इसी समय पेश करूं या संशोधन पेश हो जाने के पश्चात्?

*__उपाध्यक्ष:__ आप उसे इसी समय पेश कर सकते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ उपाध्यक्ष महोदय, कुछ अरसे से मैं देख रहा हूं कि मसौदा समिति सदस्यों को अचम्भे में डालती चली जाती है। इस प्रवृत्ति के लिये मसौदा-समिति के प्रमुख सदस्यों को मैं दोष नहीं देता हूं। मैं जानता हूं कि वे विवश हैं। मसौदा-समिति का उल्लेख तो मैं बहुत सम्मान के साथ करता हूं और जब मैं उन पर टीका टिप्पणी करता हूं तो इस कारण कि संशोधनों के अच्छे और बुरे होने पर हमें मसौदा-समिति की ओर ही देखना पड़ता है। मसौदा-समिति प्रतिदिन उग्र रूप के नये संशोधन भेजती चली जा रही है। वे यकायक हवाई हमले की तरह आ जाते हैं।

*__माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर__ (बम्बई: जनरल): इसमें औचित्य प्रश्न क्या है?

*__उपाध्यक्ष:__ क्या मैं माननीय सदस्य को यह याद दिलाऊं कि सभा में सबने जो इच्छा प्रकट की थी उसके अनुसार डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-समिति ने सभा के समक्ष यह संशोधन प्रस्तुत किया है। इस कारण इस औचित्य प्रश्न को मैं नियम विरुद्ध ठहराता हूं। मैं डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे अपना संशोधन पेश करें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 150 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:—

'150. (1) The total number of members in the Legislative Council of a State having such a Council shall not exceed one-fourth of the total number of members in the Assembly of that State.

Composition of the Legislative Councils

Provided that the total number of members in the Legislative Council of a State shall in no case be less than forty.

(2) Until Parliament may by law otherwise provide, the composition of the Legislative Council of a State shall be as provided in clause (3) of this article.

(3) of the total number of members in the Legislative Council of a State—

(a) as nearly as may be, one-third shall be elected by electorates consisting of members of municipalities, district boards and such other local authorities as Parliament may by law specify;

(b) as nearly as may be, one-twelfth shall be elected by electorates consisting of persons who have been for at least three years graduates of any university in the State and persons possessing for at least three years qualifications prescribed by or under any law made by Parliament as equivalent to that of a graduate of any such university;

(c) as nearly as may be, one-twelfth shall be elected by electorates consisting of persons who have been for at least three years engaged in teaching in such educational institutions within the State, not lower in standard than that of a secondary school, as may be prescribed by or under any law made by Parliament;

(d) as nearly as may be, one-third shall be elected by the members of the Legislative Assembly of the

State from amongst persons who are not members of the Assembly;

(e) the remainder shall be nominated by the Governor in the manner provided in clause (5) of this article.

(4) The members to be elected under sub-clauses (a), (b) and (c) of clause (3) of this article shall be chosen in such territorial constituencies as may be prescribed by or under any law made by Parliament, and the elections under the said sub-clauses and under sub-clause (d) of the said clause shall be in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(5) The members to be nominated by the Governor under sub-clause (e) of clause (3) of this article shall consist of persons havign special knowledge or practical experience in respect of such matters as the following, namely:—

literature, science, art, co-operative movement and social services.' "

[150. (1) विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक चौथाई से अधिक न होगी।

विधान परिषदों की रचना।

परन्तु किसी अवस्था में भी किसी राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम न होगी।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध नहीं करे तब तक किसी राज्य की विधान परिषद् की रचना खंड (3) में उपबन्धित रीति से होगी।

(3) किसी राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या का:

(क) यथाशक्य तृतीयांश उस राज्य में की नगरपालिकाओं, जिला मंडलियों तथा अन्य ऐसे स्थानीय प्राधिकारियों के, जैसे कि संसद विधि द्वारा उल्लिखित करे, सदस्यों से मिलाकर बने निर्वाचक मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा;

(ख) यथाशक्य द्वादशांश ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने हुए निर्वाचक मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा, जो उस राज्य में के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष से स्नातक

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हैं अथवा, जो कम से कम तीन वर्ष से ऐसी अर्हताओं को धारण किये हुए हैं जो संसद निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन वैसे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक की अर्हताओं के तुल्य विहित की गई हो;

(ग) यथाशक्य द्वादशांश ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने निर्वाचक मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा जो राज्य के भीतर माध्यमिक पाठशालाओं से अनिम्न स्तर की ऐसी शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाने के काम में कम से कम तीन वर्ष से लगे हुए हैं जैसी कि संसद निर्मित विधि के द्वारा या अधीन विहित की जाये,

(घ) यथाशक्य तृतीयांश राज्य की विधान-सभा के सदस्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होगा जो सभा के सदस्य नहीं हैं,

(ङ) शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा उस रीति से नाम निर्देशित होंगे जो कि इस अनुच्छेद के खंड (5) में उपबन्धित हैं।

(4) खंड (3) के उपखंड (क), (ख) और (ग) के अधीन निर्वाचित होने वाले सदस्य ऐसे प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में चुने जायेंगे, जैसे कि संसद निर्मित किसी विधि के अधीन या द्वारा विहित किये जायें तथा उक्त उपखंडों के, और उपखंड (घ) के, अधीन होने वाले निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होंगे।

(5) खंड (3) के उपखंड (ङ) के अधीन राज्यपाल द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें निम्न प्रकार के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात्—

साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी ओन्दोलन और सामाजिक सेवा।]

श्रीमान, जैसा कि आप कह चुके हैं पिछली बार एक-दूसरे रूप में यह अनुच्छेद सभा के समक्ष आया था। उस समय यह अनुच्छेद जिस रूप में था उसमें केवल यह कहा गया था कि उत्तर सदन की रचना संसद निर्मित विधि के द्वारा विहित रूप में होगी। सभा ने सोचा कि प्रान्तीय मंडल के रचना सम्बन्धी इस महत्वपूर्ण भाग को निपटाने का वह उचित प्रकार नहीं था तथा उत्तर सदन की रचना के विषय पर कोई विशिष्ट तथा स्पष्ट योजना होनी चाहिये। संविधान सभा के अध्यक्ष ने कहा कि वे सभा के उन सदस्यों के साथ सहमत हैं जिनके ऐसे विचार हैं और यह सुझाव दिया कि मसौदा-समिति फिर इस विषय पर विचार करे और ऐसा मसौदा पेश करे जो उन सदस्यों के लये अधिक मान्य हो जिन्होंने इस प्रकार की आलोचना की है। मानीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि जो मसौदा यहां प्रस्तुत किया गया है वह दो दृष्टिकोणों के समझौते के रूप में है। यह मसौदा विभिन्न प्रान्तों में उत्तर सदन की रचना के लिये स्पष्ट योजना निश्चित करता है। एक यह बात इसमें और भी उपबन्धित की गई है कि इस नये अनुच्छेद 150 में निश्चित रचना को संसद विधि द्वारा किसी समय भी बदल सकती है। मैं आशा करता हूं कि यह समझौता सभा को मान्य होगा और सभा इस संशोधन को स्वीकार करने में समर्थ होगी।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 3 श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): मैं उसे पेश कर चुका हूं।

***उपाध्यक्षः** सूची 2 (चतुर्थ सप्ताह) का संशोधन संख्या 66।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, संशोधनों की छपी सूची अंक 1 के संशोधनों के सम्बन्ध में क्या हुआ?

***उपाध्यक्षः** इनको समाप्त करने के बाद अंक 1 के संशोधनों को लिया जायेगा।

(संशोधन संख्या 66, 67 और 68 पेश नहीं किये गये।)

***डॉ. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (ख) में जहां कहीं 'for at least three years' शब्द आये हैं वहां से उनको निकाल दिया जाये।"

श्रीमान, हमारे माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड 3 (ख) में यह सुझाव रखा गया है कि उत्तर सदन के समस्त सदस्यों के द्वादशांश सदस्यों के निर्वाचन के लिये ऐसे व्यक्तियों से मिलकर निर्वाचक मंडल बनेगा जो भारत राज्य क्षेत्र में के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष से स्नातक हैं अथवा, जो कम से कम तीन वर्ष से ऐसी अर्हताओं को धारण किये हुए हैं जो संसद निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन वैसे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक अर्हताओं के तुल्य विहित की गई हो। इस खंड के अधीन मतदाता के रूप में पंजीयित होने के लिये दो शर्तें रखी गई हैं—एक स्नातक के स्तर की शैक्षणिक अर्हता और दूसरी—यह शैक्षणिक अर्हता तीन वर्ष से धारण की हुई हो। यदि इस अनुच्छेद के प्रवर्त्तक यह चाहते हैं कि मतदाताओं की सूची में पंजीयित होने के लिये न्यूनतम स्नातक होने की शैक्षणिक अर्हता होनी चाहिये तो मुझे इस दूसरी शर्त लागू करने के लिये न्यूनतम स्नातक होने की शैक्षणिक अर्हता होनी चाहिये तो मुझे इस दूसरी शर्त लागू करने के लिये कोई कारण नहीं दीख पड़ता है कि वह कम से कम तीन वर्ष से स्नातक हो। मैं नहीं समझ पाता हूं कि एक इस स्नातक में, जिसने कल या कुछ दिनों पूर्व उपाधि ग्रहण की हो, और दूसरे उस स्नातक में जो तीन वर्ष से उपाधि धारण किये हुए हैं क्या अन्तर है। यदि इस अनुच्छेद के प्रवर्त्तक यह समझते हैं कि शैक्षणिक अर्हता के परिपक्व होने के लिये कम से कम तीन वर्ष का अनुभव होना चाहिये तो मेरी समझ से तो तीन वर्ष का अनुभव कम तथा अपर्याप्त होगा। स्नातक की अर्हता के परिपक्व होने के लिये कम से कम पांच वर्ष का अनुभव होना चाहिये। मेरे संशोधन में यह सुझाव है कि मतदाताओं की सूची में पंजीयित होने के लिये इस खंड (3) के अधीन तीन वर्ष के इस आरोपण को निकाल देना चाहिये। मैं समझता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी और यथानुसार इस खंड का पुनरीक्षण करेगी।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जिस संशोधन की मैंने सूचना दी है मैं उसे पेश करता हूं:

[श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (घ) में 'one-third' शब्द के पश्चात् 'including seats reserved for Scheduled Castes as may be prescribed' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन के पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि उत्तर सदन में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधान हो जाये। इस सभा ने सब विधान-मंडलों में अनुसूचित जातियों के लिये स्थान संरक्षित करने की कृपा की है पर माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा ऐसी योग्यतापूर्वक इस अनुच्छेद के पेश किये जाने पर भी उसमें अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधान का कोई उल्लेख मुझे नहीं दीख पड़ता है। यह सच है कि प्रथम सदन में अनुसूचित जातियों के जो सदस्य भेजे जायेंगे उन्हें उत्तर सदन में प्रतिनिधियों के भेजने के लिये मत देने का अवसर मिलेगा। पर जब तक उत्तर सदन में स्थान संरक्षित न किये जायें तब तक मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि प्रथम सदन में के अनुसूचित जातियों के सदस्यों के लिये उत्तर सदन में स्थान प्राप्त करना या पर्याप्त प्रतिनिधान प्राप्त करना किस प्रकार सम्भव होगा। साथ-साथ यह कहा गया है कि अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये विशेषकर अनुसूचित जातियों के लिये उत्तर सदन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा। श्रीमान, मेरे विचार से इसको विधि द्वारा सम्भव कर दिया जाये और जो प्रतिनिधित्व इस महान सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया है उसका इस संशोधन में उपबन्ध कर दिया जाये जिससे कि अनुसूचित जातियों को इस विषय में कोई शंका न रहे। इसी मुख्य उद्देश्य से मैंने यह संशोधन पेश किया है और मैं आशा करता हूं कि माननीय डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 71 पेश नहीं किया गया। छपी हुई सूची पर कुछ संशोधन हैं। मुझे यह नहीं विदित है कि कोई सदस्य इनमें से किसी संशोधन को पेश करना चाहेगा या नहीं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): उनको पिछली बार निपटा दिया गया था।

***उपाध्यक्षः** वे अनुच्छेद के मूल रूप में सम्बन्ध रखते हैं और यह हो सकता है कि कुछ सदस्य अपने नाम के संशोधनों को पेश करना चाहें। मेरे लिये यही सबसे अच्छा है कि मैं एक-एक करके उन्हें पढ़ूं।

(संशोधन संख्या 2265 से 2268 तक पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 2269-प्रोफेसर शाह।

***प्रो. के.टी. शाहः** (बिहार: जनरल): श्रीमान, मेरे नाम से कई संशोधन हैं जिन पर मैं आपकी सम्मति लेना चाहूंगा। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई नयी

योजना पर तो ये सबके सब संशोधन असंगत हो जायेंगे। यह योजना तो पूरी की पूरी एक भिन्न प्रकार की है और मेरे संशोधन मूल योजना के अनुसार निर्धारित किये हुए हैं।

उपाध्यक्षः वास्तव में 2274 से लेकर आगे के सब संशोधन उन तालिकाओं से सम्बन्ध रखते हैं जो मूल मसौदे में प्रस्थापित थीं और सामान्यतया नये मसौदे में वे प्रयोज्य नहीं हो सकते हैं।

प्रो. के.टी. शाहः मैं समझता हूं कि यदि कोई व्यक्ति उन पर भाषण देने लगेगा तो सभा में गड़बड़ी पैदा हो जायेगी।

उपाध्यक्षः यह बहुत अच्छा होगा कि यदि सदस्यों को तालिका पर संशोधन पेश करने हैं–अर्थात् खंड (5) में उल्लिखित श्रेणियों में से किसी श्रेणी को निकलना या खंड (5) में नयी श्रेणियों का प्रविष्ट करना है तो वे इन शीर्षकों को खंड (5) में रखने या उसमें से निकालने के संशोधन–दूसरे शब्दों में नये खंड (5) पर संशोधन पेश करें।

प्रो. के.टी. शाहः मैं निवेदन करता हूं कि मेरे पहिले संशोधन अनुपात के सम्बन्ध में थे, उदाहरणार्थ तृतीयांश के स्थान में पंचमांश। इस नये मसौदे में ये अनुपात भिन्न प्रकार के हैं। दोनों प्रयोजनों के लिये सभा का समय बचाने तथा वाद पदों के स्पष्ट कर देने के लिये यह अच्छा होगा कि इस अनुच्छेद पर साधारण वाद-विवाद के समय ये बातें रखी जायें न कि संशोधनों द्वारा, क्योंकि यदि संशोधन पेश किये जायेंगे तो गड़बड़ी हो जायेगी।

उपाध्यक्षः अवश्य। संशोधन नये अनुच्छेद पर ठीक नहीं बैठते हैं।

प्रो. के.टी. शाहः इस दशा में इन्हें पेश न करने के लिये मैं आपसे अनुमति मांगूंगा और साधारण वाद-विवाद के समय के लिये इन बातों को छोडूंगा।

उपाध्यक्षः अवश्य। यह बात छपी हुई सूची के सब संशोधनों पर लागू होती है।

प्रो. के.टी. शाहः जी हां, जहां तक मेरा सम्बन्ध है।

उपाध्यक्षः क्या कोई सदस्य छपी हुई सूची के किसी संशोधन को पेश करना चाहता हूं?

श्री एच.वी. कामतः श्रीमान, मैंने डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर संशोधन की सूचना दी है।

उपाध्यक्षः आपने जिस संशोधन को मुझे अभी दिया है उसे पेश करने की अनुज्ञा देने के लिये मैं तैयार हूं। ऐसी दशा में मैं अनुमान करता हूं कि छपी हुई सूची के संशोधनों में से आप एक भी पेश नहीं करेंगे।

श्री एच.वी. कामतः जी, नहीं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मुझे 2284 और 2287 को पेश करना है।

***उपाध्यक्षः** आप पेश कर सकते हैं। आप इस अनुच्छेद के खंड (5) में प्रविष्टि करने के लिये संशोधन पेश करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, इनको नये मसौदे के खंड (5) पर संशोधन के रूप में ले लेना चाहिये। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (क) में 'art' शब्द के पश्चात् 'medicine' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

मैं यह भी प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (ग) में 'engineering' शब्द के पूर्व 'Commerce' प्रविष्ट किया जाये।"

***उपाध्यक्षः** दुर्भाग्यवश खंड (5) में 'engineering' शब्द है ही नहीं। क्या आप यह प्रस्ताव पेश करना चाहेंगे कि 'engineering and commerce' शब्द प्रविष्ट किये जायें? इसे कृपया खंड (5) के संशोधन के रूप में पेश करिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि 'medicine, engineering and commerce' को खंड (5) में प्रविष्ट किया जाये।"

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रासः जनरल): अनुच्छेद 150 पर मैं संशोधन संख्या 66 से 68 तक पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** जब इन संशोधनों की आवाज़ लगाई गई थी उस समय आप अपनी जगह पर नहीं थे। यदि आप सभा का अधिक समय लिये बिना शीघ्र उन्हें पेश कर सकते हैं तो करिये।

***श्री एस. नागप्पाः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (1) के परन्तुक में 'forty' शब्द के स्थान में 'forty-five' शब्द रखा जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (ख) और (ग) में जहां-जहां 'one twelfth' शब्द आया है उसके स्थान में 'one-fifteenth' शब्द रखा जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (क), (ख), (ग) और (घ) में 'as nearly as may be' शब्द जहां-जहां आये हों वहां से निकाल दिये जायें।"

श्रीमान, इन संशोधनों के पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि खंड (1) में यह कहा गया है कि:—

"परन्तु किसी अवस्था में भी किसी राज्य के विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम नहीं होंगी।"

विभाजन द्वारा निर्वाचक मंडल के प्रत्येक वर्ग को किस प्रकार प्रतिनिधित्व दिया जायेगा? 40 में आप 12 का भाग नहीं दे सकते हैं—क्योंकि 4 शेष रह जायेंगे। यदि आप इस संख्या को 45 कर दें और बारह को बढ़ाकर आप पन्द्रह कर दें तब तो पैंतालीस में पन्द्रह का सरलता से भाग दिया जा सकता है। गणित के हिसाब से यह बहुत सरल हो जायेगा। पन्द्रह का तृतीयांश पांच हो जायेगा और द्वादशांश के स्थान में मैं चाहता हूं कि हम पंचदशांश रखें। यदि चालीस स्थानों का विभाजन करना है और यदि आप उसमें से केवल द्वादशांश लेना चाहते हैं तो चार फिर भी शेष रह जायेंगे। परन्तु यदि संख्या पैंतालीस हो और अनुपात पंचदशांश हो तो इसका यह अभिप्राय होगा कि तीन सदस्य चुने जायेंगे।

मुझे प्रसन्नता है कि अध्यापकों को आपने प्रतिनिधान दे दिया। हमारे देश के अध्यापक इस काल में शान्तिपूर्वक कष्ट झेलते रहे। मैं समझता हूं कि वे न्यूनतम वेतन पाने वाले लोग हैं समस्त संसार में हमारे देश के अध्यापक न्यूनतम वेतन पाने वाले हैं और मुझे इस बात की खुशी है कि आखिरकार आपने विधान-परिषद में उनके प्रतिनिधित्व का अधिकार स्वीकार कर दिया है।

जिला मंडलियों और नगरपालिकाओं जैसे स्थानीय निकायों को प्रतिनिधित्व देने की भी आपने कृपा की है। इस रूप में मैं समझता हूं कि आप उन्नति की दिशा में खूब आगे बढ़ गये हैं। पर यह उन्नति जब तक पूर्ण नहीं होगी तब तक कि आप श्रम को पर्याप्त प्रतिनिधान न दें।

श्रीमान, श्रमिक वर्ग हमारे समाज का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण अंग है और हमारी जनसंख्या का वह एक बहुत बड़ा भाग भी है। हमारे देश की उत्पादन वृद्धि और कल्याण का उत्तरदायित्व उन पर है। यदि इस सम्बन्ध में श्रमिक वर्ग के अधिकार अभिज्ञात नहीं किये जाते हैं तो मुझे भय है कि आप हमारी एक बड़ी जनसंख्या की उपेक्षा कर रहे हैं।

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (घ) के पश्चात् निम्न नया उपखंड प्रविष्ट किया जाये:—

'(dd) one-fifteenth shall be elected by Agriculture labour from amongst the labourer classes.' "

[(घघ) पंचदशांश श्रमिक वर्गों में से कृषि-कर्म करने वाले श्रमिकों द्वारा निर्वाचित होगा।]

***उपाध्यक्षः** क्या आप अपने संशोधन संख्या 71 को अभी पेश कर रहे हैं?

***श्री एस. नागप्पाः** जी हां, वे सब परस्पर सम्बन्धित हैं।

***उपाध्यक्षः** क्या आपने अपना भाषण समाप्त कर दिया?

***श्री एस. नागप्पाः** अभी नहीं। तृतीयांश स्थानीय निकायों को, तृतीयांश स्नातकों को और पंचदशांश श्रमिकों को देने की सुविधा के लिये आपको संख्या 45 रखनी चाहिये। श्रीमिक वर्गों के अधिकारों को अभिज्ञात कर लेना चाहिये। श्रमिक वर्ग के सहयोग के बिना देश में तनिक भी उन्नति नहीं हो सकती है। उत्तर सदन में प्रतिनिधित्व पाने का उनका अधिकार उचित है। उनकी उपेक्षा की गई है और इसी कारण मुझे ये संशोधन प्रस्तुत करने पड़ें और इनसे आपके स्थानों के विभाजन अथवा विभिन्न वर्गों के लिये नियत संख्या में कोई अन्तर नहीं आता है। यदि आप मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं तो विभाजन की समस्या श्रमिक वर्ग, अध्यापक, स्नातक और स्थानीय निकायों के दृष्टिकोण से अपने आप हल हो जाती है। यह आपकी इच्छा के अनुरूप भी है कि इस देश की जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधान हो जाये। मैं आशा करता हूं कि मेरे संशोधनों के स्वीकार करने में माननीय डॉ. अम्बेडकर आनाकानी नहीं करेंगे क्योंकि ये संशोधन बहुत ही युक्तियुक्त तथा उचित हैं। माननीय सदस्यों से भी मैं निवेदन करूंगा कि वे मेरे संशोधन के विषय पर ध्यान दें और अपने देश में श्रमिक वर्ग के महत्व को समझें। आपको श्रमिक वर्ग को प्रोत्साहित करना चाहिये जिससे कि वह अधिकाधिक उत्पादन करे और फलतः देश अधिकाधिक उन्नति करता चला जाये। मैं आशा करता हूं कि बिना किसी हिचकिचाहट के माननीय सदस्य इन साधारण संशोधनों को स्वीकार करेंगे। मैं आपको बहुत धन्यवाद देता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं श्री कामत को आमन्त्रित करता हूं, उन्होंने कुछ संशोधनों की सूचना दी है जिनके पेश करने की मैं अनुमति दे चुका हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं सभा से क्षमायाचना करता हूं कि मैंने आज प्रातःकाल ही संशोधनों की सूचना दी जिसके कारण माननीय सदस्यों को मेरे संशोधनों की प्रतियां न मिल सकीं। कुछ तो यह इस कारण हुआ कि मेरे पास मसौदा-समिति का अनुच्छेद 150 का मसौदा नहीं पहुंचा–यह मैं नहीं जानता हूं कि सबके साथ यही हुआ—पर मेरे पास मसौदा बुधवार की रात्रि को बड़ी अबेर तक नहीं पहुंचा। अतः आज प्रातःकाल से पहले संशोधन भेजने का समय भी नहीं था। जिन संशोधनों की मैंने सूचना दी है उनको मैं पढ़कर सुनाऊंगा।

मैंने चार संशोधनों की सूचना दी है और एक-एक करके मैं उनको पढ़ंगा।

पहला यह है:—

"कि सूची 1, चतुर्थ सप्ताह के संशोधन 1 में (अर्थात्, वह संशोधन जो अब विचाराधीन है और डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया है) प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (1) के परन्तुक को अपमार्जित किया जाये।"

अर्थात् उस परन्तुक को जिसमें कहा गया है कि—

"परन्तु किसी अवस्था में भी किसी राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम नहीं होगी।"

दूसरा संशोधन यह है:—

"कि चतुर्थ सप्ताह की सूची 1 के संशोधन संख्या 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (2) में से 'unless Parliament by law otherwise provides' शब्दों को अपमार्जित किया आये।" [अर्थात् खंड (2) के प्रथम भाग को अपमार्जित किया जाये।]

मेरा तीसरा संशोधन यह है:—

"कि सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (5) में 'co-operative movement' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"(प्रस्थापित अनुच्छेद में ये शब्द अन्तिम खंड में हैं।)

और मेरा अन्तिम संशोधन इस प्रकार है:

"कि सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन 1 में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (5) में 'literature' शब्द के पूर्व 'religion, philosophy' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

अर्थात्, वह सूची इस प्रकार पढ़ी जायेगी:—

"धर्म, वेदान्त, साहित्य, विधान, कला और सामाजिक सेवा।"

श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि सभा को मैंने स्पष्ट रूप से साफ-साफ संशोधन पढ़कर सुना दिये हैं जिससे कि उनको मेरे संशोधनों के क्षेत्र का अनुमान हो सके। अब मैं एक-एक करके इन संशोधनों को लेना चाहता हूं। श्रीमान, क्या मैं अभी भाषण दे सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** जी, हां।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं पहले संशोधन को लेता हूं अर्थात् उस संशोधन को जो प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के परन्तुक से सम्बन्ध रखता है। परन्तुक में यह दिया है कि किसी दशा में भी किसी राज्य के उत्तर सदन में सदस्यों की समस्त संख्या चालीस से कम नहीं होगी। कुछ दिनों पूर्व पिछली बार इस अनुच्छेद पर विचार करते हुए मुझे सभा को यह बताने का अवसर मिला था कि भारतीय संघ में ऐसे कई राज्य हैं जिनकी जनंसख्या शायद साठ या सत्तर लाख से अधिक नहीं है। यदि ऐसा है तो इन राज्यों के प्रथम सदन में साठ या सत्तर सदस्य होंगे और जिस राज्य के प्रथम सदन में साठ या सत्तर सदस्यों से अधिक सदस्य नहीं हों उस राज्य के उत्तर सदन में चालीस सदस्य रखना बहुत ही अवांछनीय होगा। संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 150 के मूल मसौदे में ऐसा कोई परन्तुक न था और उसमें केवल अधिकतम सीमा नियत की गई थी जो इस प्रकार थी कि वह प्रथम सदन की समस्त सदस्य संख्या के चतुर्थांश से अधिक न हो। मैं निवेदन करता

[श्री एच.वी. कामत]

हूं कि हमारी आवश्यकताओं के लिये यह पर्याप्त है। यदि किसी राज्य में प्रथम सदन केवल 40, 50 या 60 सदस्यों का है तो यदि वह राज्य चाहता है तो आप उत्तर सदन रख सकते हैं, पर मुझे पूर्ण आशा है कि ऐसे राज्य व्यवहार में उत्तर सदन के ऐश्वर्य को नहीं पसन्द करेंगे। पर यदि वे ऐसा सदन चाहते हैं तो मैं समझता हूं कि 20 या 25 अथवा इसके लगभग सदस्यों के उत्तर से उन्हें संतोष हो जायेगा। मुझे यह विदित है कि आज कोड़गू की परिषद् में 20 सदस्य हैं। मैं यह अनुभव करता हूं और सभा से भी यह आग्रह करता हूं कि एक करोड़ से कम जनसंख्या के छोटे-छोटे राज्यों में हम चालीस सदस्यों के उत्तर सदन स्थापित करने का साहस न करें। यह केवल एक ऐश्वर्य ही नहीं होगा वरन् प्रथम सदन के लिये एक अनावश्यक रोड़ा होगा और यदि हम इस अनुच्छेद में एक बार यह उपबन्ध कर देंगे कि न्यूनतम 40 होगा तो हमारे भारतीय संघ के प्रत्येक छोटे राज्य को दूसरे सदन के लिये मांग करने का साहस हो जायेगा, और यदि प्रोत्साहन शब्द का मैं प्रयोग कर सकता हूं तो उनको प्रोत्साहन मिलेगा। यदि हम निश्चित रूप से यह निर्धारित कर दें कि उत्तर सदन में प्रथम सदन में चतुर्थांश से अधिक सदस्य हम नहीं रखेंगे तो बहुत से छोटे राज्य अपने यहां दूसरे सदन का पक्ष-समर्थन नहीं करेंगे। साथ-साथ इस सभा में हम एक ऐसा अनुच्छेद पारित कर चुके हैं कि यदि किसी राज्य में दूसरा सदन नहीं है और यदि उस राज्य का विधान-मंडल उसकी मांग करता है तो उस राज्य में दूसरा सदन स्थापित करने के लिये संसद विधि द्वारा उपबन्ध करेगी; और विचाराधीन यह परन्तुक पचास या साठ लाख जनसंख्या के छोटे-छोटे राज्यों को दूसरे सदन की मांग करने के लिये प्रोत्साहित करेगा क्योंकि चालीस सदस्यों के उत्तर सदन की उन्हें प्रत्याभूति हो जायेगी। मैं समझता हूं कि ऐसी स्थिति में पैदा नहीं करनी चाहिये और इस परन्तुक को हमें निकाल देना चाहिये क्योंकि बड़े राज्यों में जिनकी जनसंख्या 150 लाख या 160 लाख से अधिक है वहां वह संख्या 40 हो ही जायेगी क्योंकि प्रथम सदन में 150 से अधिक सदस्य होंगे; पर छोटे-छोटे राज्यों को अपने यहां दूसरा सदन रखने के लिये प्रोत्साहित न किया जाये।

दूसरा संशोधन इस प्रस्थापित अनुच्छेद के खंड (2) के सम्बन्ध में है। मैं इस खंड के प्रथम भाग का अपमानर्जन कराना चाहता हूं जो राज्यों में उत्तर सदन की रचना में परिवर्तन करने की शक्ति संसद को सौंपता है। मैं समझता हूं कि जहां तक उत्तर सदन अथवा इस विषय के हेतु प्रथम सदन की रचना का सम्बन्ध है वह केवल संविधान के संशोधन द्वारा न कि संसद की विधि द्वारा न्यूनाधिक रूप से परमावश्यक तथा परिवर्तनीय होना चाहिये।

खंड (3) में उन स्थानीय प्राधिकारियों के निश्चयन सम्बन्धी कुछ विषयों में जो इस सम्बन्ध में मत देंगे और स्नातकों के लिये हमने संसद को शक्ति सौंप दी है। इन सब बातों को संसद पर छोड़ देने से मैं सन्तुष्ट हूं। पर उत्तर सदन अथवा दोनों सदनों की रचना में संविधान के संशोधन द्वारा ही परिवर्तन होना चाहिये न कि संसद के केवल बहुमत द्वारा। कल, मुझे याद है कि डॉ. देशमुख ने भारत शासन अधिनियम की धारा 61 की ओर संकेत किया था जिसमें विधान मंडल

के सदनों की रचना के विषय को मताधिकार सम्बन्धी विषय तथा अन्य इसी प्रकार के विषयों से भिन्न आधार पर रखा गया है। भारतीय शासन अधिनियम में भी, जिसकी हम प्रतिक्रियावादी समझते थे, सदनों की रचना के विषय को पृथक तथा अधिक महत्वपूर्ण और परमावश्यक स्थान दिया गया है।

अत: मैं समझता हूं कि जहां तक रचना का सम्बन्ध है हमें यह साफ-साफ निर्धारित कर देना चाहिये कि उसमें केवल संविधान के संशोधन द्वारा ही परिवर्तन किया जा सकता है कि न कि संसस द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा। खंड (3) में वर्णित अन्य विषयों विषयों को यदि विधि द्वारा संसद के निश्चयन पर छोड़ दिया जाये तो कोई हानि नहीं है पर मेरे विचार से सदनों की रचना का विषय इतना महत्वपूर्ण है कि संविधान में संशोधन किये बिना संसद को उसमें परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 3 पर आता हूं। मैं संशोधन 3 और 4 को साथ-साथ लूंगा। खंड (5) यह उपबन्ध करता है कि राज्यपाल द्वारा नामनिर्देशित किये जाने वाले व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन और सामाजिक सेवा का विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है। अपने संशोधन द्वारा मैं इन विभिन्न श्रेणियों में एक परिवर्तन करना चाहता हूं। मैं यह उपबन्ध करना चाहता हूं कि राज्यपाल द्वारा नामनिर्देशित किये जाने वाले सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें धर्म, वेदान्त, साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवाओं का विशेष ज्ञान हो। मेरी समझ से यह बाहर है कि 'सहकारी आन्दोलन' की श्रेणी को इस खंड में विशिष्ट रूप से क्यों कर रखा गया है और उसको इतना महत्व क्यों दिया गया है। मैं सर्वत्र इस सभा में तथा सभा से बाहर सहकारिता के पक्ष में हूं। बिना सहकारिता के हम कुछ भी न कर सकेंगे। सहकारिता के बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता है। परा इस खंड में सहकारी आन्दोलन का उल्लेख करना मुझे पूर्णतया अनावश्यक प्रतीत होता है–और यदि यह किसी रूप में आवश्यक हो भी— और यदि मसौदा-समिति के बुद्धिमान सदस्य यह समझते हैं कि सहकारी आन्दोलन के महान नर और नारियों के लिये उत्तर सदनों में स्थान रखे जायें–तो सामाजिक सेवा की श्रेणी उस खंड में है। मेरे विचार से 'सामाजिक सेवा' पद को यदि अधिक व्यापक रूप में समझा जाये तो सहकारी आन्दोलन अवश्यमेव उसके अन्तर्गत आ जाता है। सहकारी आन्दोलन कोई राजनैतिक या शैक्षणिक सेवा नहीं है, वह सामाजिक सेवा है: और जब सामाजिक सेवा का उपबन्ध कर दिया गया है तो मैं नहीं समझता हूं कि सहकारी आन्दोलन का हम विशिष्ट रूप से उपबन्ध क्यों करें। मैं नहीं जानता हूं कि किसने इस विशेष श्रेणी के रखने का सुझाव दिया है। यदि यह कुछ है भी तो एक उप-श्रेणी है और इसको इस खंड में स्थान नहीं मिलना चाहिये।

दो नई श्रेणियों के सुझाव के सम्बन्ध में, अर्थात् धर्म और वेदान्त के सम्बन्ध में मैं सभा के समक्ष यह तर्क प्रस्तुत करना चाहूंगा कि हमें बार-बार ये झिड़कियां मिलने पर भी कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक है और रहेगा मुझे पूर्ण विश्वास है कि धार्मिक अथवा वेदान्ती व्यक्तियों के लिये राज्य की असाम्प्रदायिकता रुकावट का रूप धारण नहीं कर सकती है। आखिर मेरे संशोधन के विरुद्ध यही तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि एक असाम्प्रदायिक राज्य के विधान मंडलों में धार्मिक अथवा वेदान्ती नर नारियों की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से

[श्री एच.वी. कामत]

यह विचार पूर्णतया भ्रमात्मक है। मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार असाम्प्रदायिक राज्य से किसी ऐसे राज्य का अर्थ बोध नहीं होता है जिसने उत्कृष्ट श्रेणी के धर्म अथवा वेदान्त का परित्याग कर दिया हो, वरन् एक ऐसे राज्य का अर्थ बोध होता है जो सर्वोच्च श्रेणी का आध्यात्मिक राज्य है और इस सर्वोच्च अध्यात्मवाद अथवा उत्कृष्ट धर्म के कारण सब धर्मों को एक मानता है और उनमें परस्पर कोई भेदभाव नहीं करता है। अपने माननीय सहयोगियों के समक्ष तर्क प्रस्तुत करते हुए मैं यह पूछता हूं कि क्या यह आवश्यक है कि जिन स्त्री पुरुषों ने इस अध्यात्मवाद–इस उच्च धर्म और वेदान्त की उन्नति के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है उनकी उपस्थिति से यह सभा गौरवान्वित हो? क्या हमने कई बार यह अनुभव नहीं किया है कि मेरे मित्र डॉ. राधाकृष्णन और रेवरेण्ड डी. सौजा जो आज यहां उपस्थित नहीं हैं उनके इस सभा में धारा-प्रवाह भाषणों से हमारे वाद-विवाद की गंभीरता में वृद्धि हुई है? मैं तो यह कदापि नहीं सोच सकता हूं कि अपने विधान-मंडलों में धार्मिक तथा वेदान्ती लोगों के प्रवेश में कोई सांवैधानिक रुकावट हो। हम भारत में सदैव किसी मूल आध्यात्मिक सिद्धान्त के पक्षपाती रहे हैं। चाहे अन्य विधान-मंडलों ने उपबन्ध न किया हो और ऐसे धार्मिक व्यक्तियों तथा अध्यात्मवादियों के लिये स्थान न दिया जो–मैं समझता हूं कि यह मैं ठीक बात नहीं कह रहा हूं क्योंकि ब्रिटिश संसद में लार्ड टेम्पोरल और लार्ड स्प्रिच्यूएल हैं: अन्य कुछ और देशों में भी ऐसी व्यवस्था है–मेरे विचार से आयरलैंड की संसद में तथा अन्य देशों में–पर यदि उनके यहां नहीं भी है तब भी मेरे लिये वह कोई उदाहरण नहीं है। अपने देश के लिये संविधान बनाते हुए हमें अपनी जाति, अपने देश और राष्ट्र की सुन्दर परम्पराओं को तिलांजलि नहीं देनी चाहिये। किसी रूप में भी संसार को हमें यह नहीं समझने देना चाहिये कि हमारे विधान-मंडलों में धार्मिक व्यक्तियों और वेदान्तियों के लिये कोई स्थान नहीं है। कुछ मास पहिले इस सभा ने मेरे एक संशोधन को स्वीकार किया था जिसमें राष्ट्रपति और राज्यपाल की शपथों में ईश्वर शब्द को रखा गया था। सर्वशक्तिमान ईश्वर को रखने के संशोधन को जिस भावना से इस सभा ने स्वीकार किया था मैं कहता हूं कि यदि हम यह उपबन्ध करें कि उत्तर सदन में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख तथा अन्य मतों के आचार्यों के लिये स्थान है—क्योंकि यह खंड केवल इसी विषय का है—तो यह भी उसी भावना के अनुरूप होगा। उत्तर सदन में प्रत्येक मत के आचार्यों का मैं स्वागत करूंगा और यह केवल सदन के गौरव के लिये कल्याणकर नहीं होगा, प्रत्युत सभा में एकता स्थापित करने के लिये भी कल्याणकर होगा।

मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन के सम्बन्ध में कि औषधि को स्थान दिया जाये मैं समझता हूं कि औषधि विज्ञान के अन्तर्गत है अत: औषधि के लिये किसी विशेष संशोधन की आवश्यकता नहीं है। मेरे इस संशोधन के विरुद्ध यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि साहित्य अथवा कला अथवा विज्ञान या ये सब मिलकर वेदान्त के अन्तर्गत हैं। ग्रीकों के अनुसार विज्ञान का अर्थ 'जानना' अर्थात् ज्ञान से है, पर विज्ञान–उच्च कोटि के विज्ञान के उच्च कोटि का ज्ञान—पराविद्या तथा अपराविद्या—आ जाता है–यद्यपि विज्ञान के आधुनिक प्रचलित अर्थ में वेदान्त और धर्म नहीं आता है। वास्तव में आज समस्त महान वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि जहां विज्ञान का अन्त होता है वहां से धर्म

प्रारम्भ होता है। यह मानता हूं कि एक दिन ऐसा होगा जबकि विज्ञान और वेदान्त के बीच की यह कच्ची दीवाल हट जायेगी और उच्च कोटि के विज्ञान और उच्च कोटि के वेदान्त एक समझे जायेंगे। पर आज ऐसा नहीं है और हम उस विशिष्ट युग के लिये विधान बना रहे हैं जिसमें विज्ञान और कला एक ओर है और धर्म और वेदान्त दूसरी ओर। अत: मैं आग्रह करता हूं कि खंड (5) में उल्लिखित श्रेणियों को बढ़ा दिया जाये जिससे कि वेदान्त और धर्म के प्रतिनिधि भी उसमें आ जायें। और मैं आशा करता हूं कि इस देश की भावी संसद के उत्तर सदन में ऐसे व्यक्ति आयेंगे जिन्होंने अपना समस्त जीवन केवल साहित्य, विज्ञान और कला के प्रति ही अर्पण न किया होगा वरन् उच्च कोटि के वेदान्त तथा उच्च कोटि के धर्म के प्रति भी अर्पण किया होगा।

श्रीमान, मैं अपने सब संशोधनों को पेश करता हूं और सभा की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सदस्यों को मैं यह स्मरण कराना चाहूंगा कि इस अनुच्छेद पर पिछली बार हम बहुत देर तक चर्चा कर चुके थे। मैं आशा करता हूं कि सदस्य केवल नई बातें ही रखेंगे और उनको संक्षेप में कहेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद 150 का विरोध करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। खंड (1) में यह कहा गया है कि विधान-परिषद् वाले राज्य की विधान-परिषद् के सदस्यों की समस्त संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की समस्त संख्या की एक चौथाई से अधिक नहीं होगी। मैं नहीं समझ पाता हूं कि सदस्य संख्या को समस्त की चौथाई तक क्यों सीमित किया गया है। इसी प्रकार खंड (2) में "जिस प्रकार संसद विधि द्वारा विहित करे" शब्द अब भी वर्तमान हैं। मुझे यह आशा थी कि पिछली बार इस अनुच्छेद पर चर्चा हो जाने के बाद विधान-परिषद् की रचना में हस्तक्षेप करने का कुत्सित कार्य संसद के पास नहीं रहेगा। मेरी यह धारणा है—मेरी बात ठीक की जा सकती है—मुझे यह भी आशा है कि मेरी शंकायें निराधार हैं—पर मेरी यह धारणा है कि मसौदा-समिति के सदस्यों ने अब अपने विचार बदल दिये हैं, वे अब इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि प्रान्तों में द्वितीय सदन रखना वांछनीय नहीं है और इसीलिये अब वे इन रीतियों को अपना रहे हैं जिससे कि प्रान्तों में द्वितीय सदन बन ही न सकें। अनुच्छेद में यह नहीं कहा गया है कि विधान-परिषद् की रचना का विनिश्चय संसद कब करे: पूरे के पूरे प्रश्न को बिना किसी विनिश्चय के छोड़ा जा सकता है। समय के अभाव का बहाना करके भारतीय सरकार सभा के समक्ष विधान-परिषदों की रचना के प्रश्न पर विनिश्चय करने के विषय को प्रस्तुत न करे। इसका फल यह होगा कि संविधान के प्रारम्भ पर प्रान्तों में विधान-परिषदें होंगी ही नहीं।

श्रीमान, प्रान्तों में द्वितीय सदनों का मैं कट्टर समर्थक हूं। मैं समझता हूं कि अंधेरे में हम एक बड़ी कुदान लगा रहे हैं। वयस्क-मताधिकार अहिंसा और अव्यवस्था की शक्तियों को जिस मात्रा तक स्वतंत्र करेगा उसका शायद अभी हमें कोई अनुमान नहीं है। अत: मैं समझता हूं कि देश में ऐसी कोई संख्या होनी चाहिये जो वयस्क-मताधिकार की उच्छृंखलताओं पर अवरोधक के रूप में कार्य कर सके। दूसरी बात यह है कि खंड (3) के सब उपखंडों में संसद आ धमकती है। यह संविधान

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

सभा के विनिश्चय करने की बात है न कि संसद की नगरपालिकाओं, और जिला मंडलियों के अतिरिक्त और कौन-कौन से स्थानीय प्राधिकार हों जो विधान परिषदों के लिये निर्वाचक मंडल बनायें। और भी उपखंड (ख) में स्नातकों के बराबर की अर्हता विहित करना संसद पर छोड़ किया गया है। इसी प्रकार खंड (ग) में निर्वाचक मंडल का विनिश्चय करना संसद पर छोड़ दिया गया है और खंड (4) में यह कहा गया है कि खंड (क) से (ग) तक के अधीन निर्वाचित होने वाले सदस्य ऐसे प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में चुने जायेंगे जैसे कि संसद निर्मित किसी विधि के अधीन या द्वारा विहित किये जायें।

अत: मेरा यह निश्चित मत है कि अनुच्छेद 150 में मूल परिवर्तन कर दिया गया है। संविधान के मसौदे में जो अनुच्छेद है वह बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का है जिसमें सदन की रचना में हस्तक्षेप करने की शक्ति संसद को नहीं दी गई है। पर किसी न किसी प्रकार से यह शक्ति लाद दी गई है और इसका कारण मसौदा-समिति के सदस्य ही भली प्रकार जानते होंगे—संभव है इस परिवर्तन का उत्तरदायित्व उन पर न हो-इस विषय में वे स्वतंत्रता से कार्य न कर सके हों। मैं नहीं समझ पाता हूं कि विधान-परिषदों की रचना के प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिये भावी संसद की स्थिति किस प्रकार अच्छी हो सकेगी। हम यहां विगत 33 महीने से बैठते चले आ रहे हैं। अब हमारी यह स्थिति नहीं है कि विधान-परिषदों की रचना के प्रश्न पर विनिश्चय कर सकें तो मैं नहीं समझता हूं कि भारत की भावी संसद क्योंकर इस प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिये हमसे अच्छी स्थिति प्राप्त कर सकेगी। कुसमय को टालने से कोई लाभ नहीं। यह अधिक अच्छा होगा कि हम यहां बैठें और विधान-परिषदों की रचना का विनिश्चय करें और या हम यह साफ कर दें कि राज्यों में विधान-परिषदों की कोई आवश्यकता नहीं है। शायद उच्च निकायों तथा प्राधिकारियों के विनिश्चय को अधिकांश सदस्य स्वीकार कर लें और मान लें।

विधान-परिषदों के प्रश्न पर अपनी स्थिति को मैं एक बार और स्पष्ट करना चाहूंगा। मैं चाहता हूं कि ये नामनिर्देशित निकाय हों। विधान-परिषद् में राज्यपाल अपने स्वविवेक से अथवा राष्ट्रपति नाम निर्देशित करे। सदस्य समस्त जीवन के लिये नाम निर्देशित होने चाहियें और सदस्यों के लिये कुछ शैक्षणिक अर्हतायें होनी चाहियें। किसी ऐसी सदस्य को भेजने से कुछ लाभ नहीं जो अपने हस्ताक्षर करना नहीं जानता हो। किसी नगरपालिका या जिला मंडल द्वारा यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित किया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है—नगरपालक को विधान परिषद में जाने दीजिये—पर वह नगरपालक स्नातक होना चाहिये। यदि कोई पाठशाला का अध्यापक विधान परिषद में जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर वह अध्यापक स्नातक हो। प्रान्तीय सभा का सदस्य यदि विधान-परिषद् में आता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर वह स्नातक होना चाहिये। यदि राज्यपाल विधान परिषद में व्यक्तियों का नामनिर्देशन करता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर मैं चाहता हूं कि वह केवल स्नातकों का ही नाम निदेशन करे। विधान-परिषदों में निरक्षरों को भेजने से कोई लाभ नहीं।

*श्रीमती **पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 150 पहले एक बार इस सभा के समक्ष वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत हुआ था और उस समय इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ था कि उत्तर सदन की रचना किसके द्वारा होगी। इसके लिये सदस्यों का निर्वाचन कौर करे—नगरपालिकायें या प्रान्तीय सभायें-इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस समय जो संशोधन पेश किया है उसमें निर्वाचक मंडल का उल्लेख कर दिया है पर उन लोगों की अर्हताओं को उल्लेख नहीं किया है जो उत्तर सदन में सदस्य होने के पात्र होंगे।

यदि हम इस बात का कारण खोजें कि उत्तर सदन क्यों बनाया जाता है तो हम सब यह समझते हैं कि उत्तर सदन की आवश्यकता इस कारण है कि वह पुनरीक्षण करने वाला सदन होगा, छोटे संशोधनों अथवा लाभदायक संशोधनों के समावेश करने का वह सभाओं को अवसर देगा और इस कारण भी कि प्रथम सदन को समाज के उन सदस्यों के विचार-विमर्श का लाभ होगा जो वयस्कमताधिकार वाले निर्वाचक मंडलों में चुनाव के लिये खड़े नहीं हो सकते हैं–किसी न किसी दशा में समाज के इन सदस्यों का सम्पर्क विधान सम्बन्धी तथा सरकारी कार्यों से होना चाहिये। अतः श्रीमान, मैं समझती हूं कि इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए इन दो श्रेणियों के लिये भी सदस्यों की कुछ न कुछ अर्हतायें निर्धारित कर देनी चाहिये थीं–अर्थात् उनके लिये जिनका निर्वाचन नगरपालिकाओं और जिला मंडलियों द्वारा होगा उनके लिये जिनका निर्वाचन प्रान्तीय सभाओं द्वारा होगा।

एक और बात है। मुझे खुशी है कि अध्यापन वृत्ति को भी ले लिया गया है। मैं केवल इस बात पर जोर दूंगी कि पाठशालाओं के अध्यापक ही नहीं वरन् स्वेच्छा से अध्यापन कार्य करने वाले व्यक्तियों को भी लिया जाये। नयी व्यवस्था में यदि शिक्षा में अधिक प्रगति करनी है तो मुझे विश्वास है कि हमें ऐसे योग्य तथा अर्ह व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता होगी जो स्वेच्छापूर्वक अध्यापन कार्य करेंगे। अतः मैं यह सुझाव रखूंगी कि अध्यापन वृत्ति में स्वेच्छा से अध्यापन कार्य करने वाले व्यक्तियों को भी रखा जाये समय समय पर हमारे मंत्री जनता से यह निवेदन करते रहे हैं कि इस महान कार्य में वह आगे आये और सहायता करे। अतः मैं समझती हूं कि उनसे सम्पर्क रखने का प्रयास करना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि जहां आपने राज्यपाल द्वारा सदस्यों के नामनिर्देशन उल्लेख किया है वहां 'सामाजिक सेवायें' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस सम्बन्ध में मैंने एक इस प्रकार के संशोधन की सूचना दी है कि 'सामाजिक सेवाओं' के अन्तर्गत 'स्वेच्छाकृत सामाजिक सेवायें' होनी चाहिये। जिस उद्देश्य से मैंने यह संशोधन भेजा था वह यह था कि जैसा हम सब जानते हैं। अथवा इस अनुच्छेद को पारित करते समय मुझे विश्वास है कि लोगों के मन में यही विचार है कि सामाजिक सेवा स्वेच्छाकृत सामाजिक सेवा है अथवा वह सामाजिक सेवा है जो हरिजन सेवक संघ, कस्तूरबा स्मारक समिति अथवा अन्य ऐसी ही उपयोगी संस्थाओं द्वारा की जाती है जहां यद्यपि कार्यकर्ताओं को वेतन दिया जाता है पर उसे वेतन नहीं कहा जा सकता बल्कि न्यूनाधिक रूप में वह सहायता के रूप में होता है और इस कार्य में कार्यकर्ता अपना अधिकांश समय देते हैं। मैं 'स्वेच्छाकृत सामाजिक सेवा' शब्दों पर इस कारण ज़ोर देती हूं कि अभी-अभी प्रान्तीय तथा अन्य सरकारों ने इस विषय में अध्ययन की आशायें खोल दी हैं और सामाजिक सेवा शिविरों का संगठन

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

किया है जिनमें उपस्थित होने पर प्रमाण-पत्र दिये जा रहे हैं। जो स्त्रियां इस प्रकार की सामाजिक सेवा करना चाहती हैं उनके लिये प्रान्तों ने ऐसे शिविर खोल कर उन्हें कोई अवसर नहीं दिया है। इस प्रकार की सामाजिक सेवाओं की संस्थायें खोलने के लिये सुविधाओं का अभाव है। अत: जब मैं यह कहती हूं कि स्वेच्छाकृत सामाजिक सेवाओं का समावेश किया जाये तो मेरा अभिप्राय यह है कि जो स्त्रियों के संगठन कार्य कर रहे हैं और जिन ऐसे संगठनों के सदस्य इन नाम निर्देशनों के पात्र हैं उनको 'सामाजिक सेवाओं' का संकीर्ण अर्थ पर छोड़ न दिया जाये।

एक और सुझाव यह है कि एक विशिष्ट प्रकार का श्रमिक वर्ग जो असंगठित है और जिसका निर्वाचन क्षेत्र नहीं बना है और चूंकि श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व प्रथम सदन में कर दिया गया है इस कारण उत्तर सदन में भी उसका प्रतिनिधान किया जाये और समाज के इन लाभदायक सदस्यों का सहयोग प्राप्त किया जाये।

***श्री वी.एस. सरवटे** (मध्य भारत): श्रीमान, प्रस्थापित अनुच्छेद 150 में यह देखा गया होगा कि खंड (3) विश्वविद्यालय के स्नातकों को प्रतिनिधान देता है। जिस रूप में इस खंड की शब्दावली है उससे कुछ कठिनाई पैदा हो जाती है। इस पद "ऐसे व्यक्तियों से मिलकर जो भारत राज्य क्षेत्र में के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष के स्नातक हैं" से यह अर्थ निकलता है कि स्नातकों को सदस्य होने के लिये दो शर्तें आवश्यक हैं: सर्वप्रथम यह कि वे तीन वर्ष के स्नातक हों और दूसरी यह कि विश्वविद्यालय भारत राज्य क्षेत्र में हो। इससे बड़ी कठिनाई होगी। उदाहरणार्थ मध्य भारत में कोई विश्वविद्यालय नहीं है। अत: मध्य भारत का कोई भी विश्वविद्यालय का स्नातक इस खंड के अधीन मत नहीं दे सकेगा। दूसरी कठिनाई यह होगी कि सन् 1904 के पूर्व विश्वविद्यालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार विहित करने वाला कोई भी विश्वविद्यालय अधिनियम नहीं था। अत: कोई भी व्यक्ति जो विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठने का इच्छुक होता था वह अपने प्रान्त से बाहर की विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में बैठ सकता था। उदाहरणार्थ बम्बई का विद्यार्थी कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठने दिया जाता था। यह भी हो सकता है कि जो व्यक्ति पहले कलकत्ता के निवासी थे और कलकत्ता से स्नातक बन चुके थे वे अब दूसरे प्रान्तों में चले गये हों और वहां के निवासी हो गये हों। ऐसे व्यक्ति इस राज्य अर्थात् प्रान्त से बाहर स्थित विश्वविद्यालय के स्नातक होने के कारण उस प्रान्त अथवा राज्य में मत नहीं दे सकेंगे। इस कठिनाई से मुक्त होने के लिये मैं दो संशोधन पेश करने की अनुमति मांगता हूं जिनसे प्रस्तावक का उद्देश्य और भी अधिक सुसंगत रूप में प्रकट हो जायेगा। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर उनको स्वीकार कर लेंगे। पहला संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हूं यह है: खंड (ख) की दूसरी पंक्ति में 'persons' शब्द के पश्चात् 'who are habitually residing in the State and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

मेरा दूसरा संशोधन यह है 'any University' शब्दों के बाद आने वाले 'in the State' शब्दों के स्थान में 'in the territory of India' शब्द रखे जायें। अत: संशोधित रूप में यह खंड इस प्रकार का हो जायेगा: "यथाशक्य द्वाशदांश उस राज्य

में निवास करने वाले ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने हुये निर्वाचक मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा जो उस राज्य में स्वभावतः निवास कर रहे हैं और भारत राज्य क्षेत्र में के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष के स्नातक हैं।" मुझे विश्वास है कि इन संशोधनों से उद्देश्य और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा और माननीय प्रस्तावक महोदय को ये संशोधन स्वीकार्य होंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय अध्यक्ष महोदय के कहने से यहां हम संविधान में प्रान्तों में दूसरे सदनों की रचना निश्चित करने की रूपरेखा रख रहे हैं और जैसा कि पहले सुझाया गया था इसे संसद पर नहीं छोड़ रहे हैं। मैं इसे रूप रेखा कहता हूं क्योंकि माननीय सदस्यों ने देखा होगा कि लगभग प्रत्येक खंड में ऐसी कोई न कोई बात है जिसका विनिश्चय संसद द्वारा ही किया जायेगा। "जिस प्रकार संसद विधि के द्वारा उल्लेख करे अथवा जिस प्रकार विधि के द्वारा विहित किया जाये" शब्द प्रत्येक खंड में हैं। इससे यह विदित होता है कि द्वितीय सदनों के सम्पूर्ण ढांचे की केवल रूपरेखा ही यहां प्रस्तुत की गई है जिसमें केवल उन संख्याओं का उल्लेख किया गया है जो इन खंडों में दिये हुये विभिन्न हितों का प्रतिनिधान करेगी।

यह होते हुये भी कि हमारे सामने यह रूपरेखा है, मैं समझता हूं कि अब भी यह कहना ठीक है कि वास्तव में द्वितीय सदन की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अभी तक हम यही निश्चित नहीं कर पाये हैं कि उन सदनों में किन किन हितों की रक्षा की जायेगी और किन किन का प्रतिनिधान किया जायेगा। इस संशोधित अनुच्छेद की शरण लेकर हम कुछ प्रान्तों के दूसरे सदनों में लोगों की उन श्रेणियों को प्रतिनिधान दे रहे हैं जो सच्चे अर्थ में उसके योग्य नहीं हैं। यदि हम इस दृष्टिकोण से इस अनुच्छेद की परीक्षा करें तो हमें यह बात माननी पड़ेगी कि द्वितीय सदनों की रचना विधान-सभाओं अर्थात् प्रथम सदनों की रचना से बहुत कुछ भिन्न नहीं होगी। उसका तृतीयांश तो स्वयं विधान-सभा के ही सदस्यों द्वारा चुना जायेगा। यह असंभव है कि वे अपने से असमान व्यक्तियों को चुने। यह बहुत कुछ संभव है कि वे अपनी जैसी अर्हता तथा सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों को ही चुनेंगे। शायद आर्थिक रूप में भी जो इस प्रकार चुने जायेंगे उनका वही आधार होगा जो वयस्कमताधिकार द्वारा प्रान्तीय सभाओं के लिये चुने जाने वाले लोगों का होगा। और यदि हम अन्य श्रेणियों की ओर देखें जैसे कि वे व्यक्ति जिनका चुनाव स्नातकों तथा अध्यापकों द्वारा किया जायेगा तो ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि समाज के सर्वोत्तम व्यक्तियों का ही चुनाव हो। वे भी संभवतः उसी प्रकार के हों जैसे कि विधान-सभा के सदस्य होंगे। इस अनुच्छेद में इस बात की भी छाप है कि इसका मसौदा जल्दी में बनाया गया है। इसमें बहुत से असंतोषजनक पद प्रयुक्त हैं और बहुत सी त्रुटियां हैं-एक तो श्री सरवटे के बताई है। जहां तक इस समूचे संविधान के निर्माण का सम्बन्ध है इसमें अवसर के लिये भी स्थान है। इस विशिष्ट अनुच्छेद से यह सिद्ध होता है। मैं नहीं समझता हूं कि माननीय सदस्य यह बता सकेंगे कि किसी भी अवसर पर किसी चर्चा में किसी माध्यमिक पाठशाला के अध्यापक को द्वितीय सदनों के सदस्यों के चुनाव में मतदाता के रूप में रखा गया हो। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन में माध्यमिक पाठशाला के अध्यापक को इस महत्वपूर्ण विशेषाधिकार का देना मैं प्रथम बार सुन रहा हूं। हमारे यहां विश्वविद्यालयों के स्नातक हैं। उनको प्रतिनिधान देने के विषय में कोई व्यक्ति समझ सकता है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि माध्यमिक पाठशाला

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

के अध्यापक को यह विशेषाधिकार क्यों दिया गया है? और यदि माध्यमिक पाठशाला के अध्यापक को यह गौरव दिया जा सकता है तो यह विशेषाधिकार प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक को क्यों नहीं दिया जाता है? मैं समझता हूं कि प्राथमिकता पाठशाला के अध्यापकों पर यह एक बड़ा भारी अन्याय है। दूसरी बात यह है कि जब हम एक स्नातक को तथा एक माध्यमिक पाठशाला के अध्यापक को द्वितीय सदन में लोगों का निर्वाचन करने के लिये अर्ह व्यक्ति समझ रहे हैं तो इन लोगों को राजनीति से दूर रखना किस प्रकार सम्भव होगा? श्रीमान, मैं नहीं समझता हूं कि मसौदा समिति ने विषय के इस पहलू पर बड़ी सावधानी से विचार किया है। सरकारी सेवाओं में लोगों की संख्या बहुत अधिक होने वाली है और ये लोग अधिकतर स्नातक होंगे चाहे मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा व्यक्त किये गये विचार सभा को मान्य न हों। जहां कहीं हम जाते हैं हमें स्नातक ही मिलते हैं—धन्यवाद है ब्रिटिश सरकार के विश्वविद्यालय की शिक्षा पर अनुपात के विरुद्ध मूल्य को और विश्वविद्यालय की उपाधियों अन्धाधुन्ध सम्मान को जिससे मैं पूर्णतया असहमत हूं—इसके कारण सरकारी सेवाओं में स्नातकों की एक बहुत बड़ी संख्या नहीं हो जायेगी। या तो आपको उन्हें दिन प्रतिदिन की राजनीति में हस्तक्षेप करने देना होगा। मैं यह चाहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर इस बात की कल्पना करें कि सेवाओं की क्या स्थिति होगी। क्या यह बुद्धिमानी होगी कि स्थायी सेवकों को राजनीति में भाग लेने दें और निर्वाचनों में जाने दें—शायद, में आशा करता हूं कि उम्मीदवारों के रूप में नहीं बल्कि मतदाता के रूप में? और देश की पूरी की पूरी राजनीति पर इस सबका क्या प्रभाव पड़ेगा। इस पर विचार करना मैं मसौदा समिति के माननीय सदस्यों पर छोड़ता हूं। इस विषय में मेरे पास एक उदाहरण है जिससे यह विदित हो जायेगा कि स्थायी सेवक क्या क्या कर सकते हैं। नागपुर विश्वविद्यालय के एक विशेष प्रकार के स्नातक नागपुर विश्वविद्यालय की समिति में कुछ प्रतिनिधियों का निर्वाचन कर सकते हैं, अर्थात् विश्वविद्यालय के प्रथम निकाय में—और हमारा यह अनुभव है कि इन लोगों में से आधे से अधिक स्थायी सरकारी सेवक होते थे क्योंकि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से मतार्थन प्रचार द्वारा प्रभाव डालने की उनके पास पर्याप्त शक्ति होती थी। कभी-कभी तो वे मतादाता की इच्छा के विरुद्ध मतदाताओं से मतदान की परचियां एकत्रित कर लेते थे और उन पर पहले से ही उनके हस्ताक्षर ले लेते थे और उन सब मतदान की परचियों को एक ही बंडल में विश्वविद्यालय को भेज देते थे जिससे कि फल की घोषणा होने से पूर्व ही आवश्यक प्रथम अधिमान को निश्चित रूप से प्राप्त करने के कारण उनको अपने निर्वाचन का विश्वस्त रूप से दृढ़ विश्वास हो जाता था। यहां भी हम उसी प्रकार की अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति रख रहे हैं। जिसकी कुछ सदस्य बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं और उनकी वह प्रिय है। मैं तो यह सोचता हूं कि जिस मताधिकार को हम उत्तर सदन के प्रतिनिधित्व के लिये प्रस्थापित कर रहे हैं उसके इस पहलू पर और भी अधिक सावधानी से यहां तक विचार किया जाना चाहिये कि क्या उन स्थायी सेवकों को जो अवश्य ही स्नातक होंगे निर्वाचनों में हस्तक्षेप करने तथा राजनीति में भाग लेने दिया जाये या नहीं?

एक और बात जिस पर मैं जोर देना चाहूंगा वह यह है कि इस संविधान का मसौदा मुझे एक अस्थिर लौटरी सा प्रतीत होता है। कम से कम, लोगों की दो ऐसी श्रेणियों का भाग्य चेतता हुआ दिखाई देता है जो उत्तर सदन के प्रतिनिधित्व का कभी स्वप्न भी नहीं देख सकते थे। मैं 'सहकारी आन्दोलन' शब्दों की प्रविष्टि की ओर निर्देश कर रहा हूं जिसको राज्यपाल के नामनिर्देशन के लिये चुना गया है। मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने इसकी ठीक आलोचना की थी। यह सुझाव अवश्य दिया गया था कि स्थानीय मंडलियों और नगरपालिका इत्यादिकों के सदस्यों के साथ साथ उन सब लोगों को भी मत दिया जाये जो प्राथमिक सहकारी संस्थानों के सदस्य हैं जिससे वे निर्वाचन में भाग ले सकें और उपखंड (1) में रखे जा सकें। मैं नहीं समझ पाता हूं कि ऐसी क्या विशिष्ट सक्षमता, ऐसा क्या विशिष्ट ज्ञान, ऐसी क्या विशेष अर्हता सरकारी आन्दोलन में समझी गई हैं कि राज्यपाल इस आन्दोलन में से किसी व्यक्ति को चुनें। यह एक पूर्णतया आश्चर्यजनक प्रस्थापना है–मैं नहीं जानता हूं कि इससे हल्के किस शब्द का प्रयोग किया जाये। मैं समझता हूं कि यह वास्तव में एक ऐसी बात है जो किसी व्यक्ति की तीव्र इच्छा के बिना ही इस अनुच्छेद में आ गई है। इस सम्बन्ध में किसी क्षेत्र की किसी मांग के बारे में मुझे तो कोई ज्ञान नहीं है। ये शब्द मेरी समझ से बिल्कुल बाहर हैं। सिवा इसके कि केवल संयोगवश ये यहां रख दिये हैं और या हमारा यह इरादा है कि उन राय साहबों और राय बहादुरों की सहायता की जाये उनको उन्नत बनाया जाये जो इसके कारण फले फूले हैं। उन्होंने कभी एक पाई तक नहीं दी न कुछ उधार लिया, उन्होंने सरकार से अथवा अन्य किसी से केवल रुपये लिये और किसानों को दे दिये। ऐसे लोगों को महान तथा आदर्श सहकारी समझा जाता है। यदि कोई ऐसी विधि बनाने का उद्देश्य है जिससे कि राज्यपाल ऐसे स्थितिहीन लोगों का नामनिर्देश कर सके, जिन्होंने दोनों सरकार और कृषक का विदोहन किया है, और द्वितीय सदन में उनके प्रतिनिधि भेज सके तब तो यह उपबन्ध समझ में आ सकता है: अन्यथा मैं तो यह बिल्कुल ही नहीं समझ सकता हूं कि सहकारी आन्दोलन को किस प्रकार उपखंड (5) में रखा जाये। मुझे वास्तव में बड़ा ही आश्चर्य हुआ है। उन लोगों का दूसरा उदाहरण जिनके प्रतिनिधि उत्तर सदन में जा सकते हैं पाठशाला के अध्यापकों का है। समष्टि रूप में हम देखते हैं कि उत्तर सदन में प्रतिनिधियों की हम जो समस्त संख्या रखना चाहते हैं वह, जहां तक प्रान्तीय सभाओं का सम्बन्ध है, जैसी हम उसकी रचना करना चाहते हैं उससे बहुत कुछ भिन्न नहीं है—और ऐसा होने से इस सदन की रचना पर हमें अपनी शक्ति खोने, इतना समय और धन खर्च करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि वह कोई बहुत ही भिन्न प्रकार का सदन नहीं होगा। मेरा मन यह भविष्यवाणी करना चाहता है कि शायद यह सदन प्रान्तीय सभाओं से भी अधिक प्रतिक्रयावादी हो। उत्तर सदन के पक्ष में केवल यही बात है कि स्थायित्व के लिये और जल्दबाजी के लिये तथा हानिकर विधान में रोक लगाने के लिये राज्य में एक सदन होना चाहिये जिसमें ऐसे व्यक्ति हों जो दिन प्रतिदिन की राजनीति में भाग न लेते हों और जो निर्वाचनों में खड़े नहीं होते हों और उनके लिये आवश्यक धन खर्च नहीं करते हों। उनका अनुभव, उनका परिपक्व ज्ञान और समाज और देश में उनकी स्थिति इस प्रकार की है कि वे साधारण निर्वाचन द्वारा जाने का कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं। पर समाज के वे गांभीर्यपूर्ण अंग हैं और यदि उनके अनुभव से लाभ नहीं उठाया जाता है या उनका अनुभव राज्य की सेवा में अर्पित नहीं होता है तो यह एक राष्ट्रीय क्षति होगी। इन्हीं प्रयोजनों के लिये द्वितीय सदनों की व्यवस्था की

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

गई है। ऐसे लोगों के द्वितीय सदन में आने के लिये राज्यपाल के नामनिर्देशन के अतिरिक्त क्या अन्य कोई साधन है? कोई नहीं है। शेष प्रत्येक व्यक्ति की वही स्थिति होगी जो प्रान्तीय सभा के सदस्य की है और इस कारण यह सारा का सारा प्रबन्ध पूर्णतया अनावश्यक तथा भारस्वरूप होगा और मसौदा समिति का जो उद्देश्य है उसकी पूर्ति नहीं होने पायेगी। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का इसी रूप में स्वीकार कर और इस प्रकार के सदन की रचना कर यह सभा एक त्रुटि करेगी क्योंकि यह सदन पूर्णतया व्यर्थ होगा और जिन उद्देश्यों की पूर्ति ऐसे सदन से समझी जाती है उनकी यह पूर्ति नहीं करेगा। अत: श्रीमान, मैं यह सुझाव देना चाहूंगा कि द्वितीय सदन के सम्पूर्ण ढांचे में परिवर्तन किया जाये या इस पूरे के पूरे विचार का परित्याग किया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** (मद्रास: जनरल): अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव पेश हो चुका है। मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं...।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैंने पहले कहा था कि साधारण वाद-विवाद के लिये मैं अपनी बातों को रख छोड़ूंगा।

***उपाध्यक्ष:** प्रो. शाह अब भाषण दे सकते हैं। इसके बाद मैं वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव रखूंगा।

प्रो. के.टी. शाह: जिस समय ये संशोधन वाद-विवाद के लिये रखा गया था अन्य जो संशोधन हमने पहले पेश किये थे वे आच्छादित हो गये थे अथवा परस्पर असंगत हो गये थे; और सभा का समय बचाने की इच्छा से तथा वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत होने वाले वाद-पदों की स्पष्टता बनाये रखने के लिये मैंने उन संशोधनों को वापस ले लिया था। मुझे खेद है कि जिस मसौदे को समझोते के रूप में मसौदा समिति के माननीय सभापति ने प्रस्तुत किया है वह सभा के उस वर्ग के लिये जो इन विषयों में रुचि रखता है केवल असंतोषजनक ही नहीं है वरन् यह तो उस मूल अनुच्छेद से भी अधिक बुरा है जिस पर यह संशोधन प्रस्तुत किया है। मैं अपनी आलोचना को डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित नये अनुच्छेद तक ही सीमित रखूंगा और यह बताना चाहूंगा कि किसी प्रकार से भी नया मसौदा पुराने मसौदे से अच्छा नहीं है।

पिछली बार जब हम इस विषय पर वाद-विवाद कर रहे थे डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं अब्बे सैयीस की उस उत्कृष्ट आलोचना की याद दिलाई थी जिसमें उसने कहा था कि यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से सहमत हो जाता है तो वह निरर्थक है और यदि असहमत होता है तो वह संकटजनक है। मुझे खेद है कि अपनी योग्यता के अनुरूप उन्होंने एक ऐसे द्वितीय सदन की रूप रेखा प्रस्तुत की है जो निरर्थक तथा संकटजनक दोनों प्रकार का होगा और जिसके आधार पर वास्तविक प्रकार्य करने के लिये एक ऐसा सदन नहीं बनेगा जो लाभदायक अथवा हानिहीन रूप में कार्य कर सके।

इस दशा में, जैसा कि बताया जा चुका है, विभिन्न राज्यों की जनसंख्या के कारण समस्त सदस्य संख्या की परिसीमा असंगत हो जायेगी और राज्य में द्वितीय सदन की वास्तविक सदस्य संख्या कदाचित इतनी हो जायेगी कि वह प्रथम सदन के साथ संगत तथा क्रियाशील न हो सकेगी।

पर इस विषय को केवल विवरण के एक विषय के समान पृथक छोड़ देने के पश्चात् मैं एक और विषय की ओर ध्यान आकर्षित करूंगा जो निर्वाचन संबन्धी सिद्धान्त और नामनिर्देशन सम्बन्धी सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है और इस मसौदे में इन दोनों को मिलाने का प्रयत्न किया गया है। जैसा कि यहां प्रस्थापित किया गया है द्वितीय सदन के कुछ सदस्यों का निर्वाचन होगा और संसद् द्वारा निर्मित विधि के अनुसार निर्वाचक क्षेत्र या निर्वाचक मंडल बनाये जायेंगे। मैं यह समझता हूं कि अभिप्राय केन्द्रीय विधान मंडल-विधि निर्माण करने वाले केन्द्रीय निकाय-से है। अर्थात् जहां तक कम से कम इन निर्वाचक मंडलों का सम्बन्ध है स्थानीय विधान-मंडल अथवा स्थानीय प्राधिकारी इस निकाय की रचना के सम्बन्ध में मूलरूप में कुछ भी नहीं कह सकेंगे।

साथ ही साथ इस अनुच्छेद के एक बाद के खंड में राज्यपाल द्वारा नामनिनिर्देशन रखा गया है जो मुख्य: अनन्य रूप से एक स्थानीय प्राधिकारी है। इन दो प्राधिकारियों को मिलाना और साथ स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्वाचन—अर्थात् स्थानीय प्रथम सदन द्वारा निर्वाचन—मैं समझता हूं कि यह उन विभिन्न हितों अथवा प्राधिकारियों की एक खिचड़ी सी बना देता है जिनको इस संशोधन के अधीन द्वितीय सदन में अपने प्रतिनिधि अथवा नामनिर्देशित व्यक्ति भेजने का हक है।

संविधान के विभिन्न भागों में जैसा कि निर्धारित किया गया है द्वितीय सदन का उद्देश्य यह होगा कि वह विधान निर्माण में सहायता करे, प्रशासन की एक प्रकार से देखभाल अथवा निरीक्षण करे यद्यपि वित्त पर उसे समान प्राधिकार नहीं है और कभी कभी तत्कथित जल्दबाजी के विधान में विलम्ब लगाये। यदि द्वितीय सदन का यही प्रयोजन अथवा प्रकार्य है, जैसा कि इस संविधान में विचारा गया है, तब तो उसकी रचना के लिये यहां बनाये गये उपबन्ध किसी प्रकार से भी इस प्रयोजन की पूर्ति नहीं करेंगे।

सर्वप्रथम उसकी समस्त सदस्य संख्या बहुत कम है—वह प्रथम सदन के चतुर्थांश से अधिक नहीं होगी—अत: प्रथम सदन के बहुमत द्वारा दी गई सम्मति पर वह सफल रूप से प्रभाव नहीं डाल सकेगी जब तक कि वह बहुमत बहुत कम न हो।

दूसरी बात यह है कि द्वितीय सदन में तृतीयांश और षटांश मिलकर अर्थात् छ: में से पांच भाग ऐसे सदस्यों का होगा जो किसी न किसी रूप में प्रथम सदन के ही नामनिर्देशित व्यक्ति होंगे। राज्यपाल सदस्यों का लगभग 2/6 नामनिर्देशित करता है। अनुमानत: वह शक्तिप्राप्त पक्ष की मंत्रणा के अनुसार नामनिर्देशन करेगा। अत: प्रथम सदन के अथवा प्रथम सदन में शक्ति प्राप्त पक्ष की मंत्रणा पर राज्यपाल के कम से कम छ: में से पांच सदस्य होंगे। इस प्रकार राज्य तंत्र को और भी अधिक लाभदायक बनाये बिना यह उस तंत्र में उलझन पैदा करेगा या वैसा ही

[प्रो. के.टी. शाह]

एक और तंत्र हो जायेगा। वाद-विवाद में संशोधन के रूप में नहीं वरन् एक टिप्पणी के रूप में एक सुझाव दिया गया था कि इस सदन में कुछ सदस्यों को अथवा इस सदन के कुछ भाग के सदस्यों को जीवन पर्यन्त सदस्य बना लिया जाये। सिद्धान्ततः स्वयं द्वितीय सदन के विरुद्ध होने के कारण कुछ सदस्यों को आजीवन सदस्य बनाने को मैं एक सुधार के रूप में नहीं देखता हूं। किसी दशा में भी चाहे नामनिर्देशन द्वारा रचना हो अथवा चाहे प्रथम सदन के निर्वाचन और राज्यपाल के नामनिर्देशन द्वारा रचना हो पर वह, मेरे विचार से, संसद द्वारा अधिनियमित केन्द्रीय विधान द्वारा निश्चित निर्वाचक मंडल के सामान्य सिद्धान्त में कुछ गड़बड़ी पैदा करेगी।

इसके बाद उन विभिन्न सदस्यों के सम्बन्ध में जिनको स्नातकों अर्थात् अध्यापकों के प्रतिनिधि के रूप में द्वितीय सदन में लाने का प्रयास किया गया है। वास्तव में मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि ऐसे किस प्रयोजन की पूर्ति के लिये वे विशेष रूप से अर्ह हैं जिसकी पूर्ति स्थानीय निकायों अथवा प्रथम सदन द्वारा निर्वाचित सदस्यों से न हो सकेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग विशेषकर स्नातक और अध्यापक, जो प्रत्येक द्वादशांश में हैं, वे यदि सहायता दे सकेंगे तो वाद पदों में गड़बड़ी पैदा करने में ही सहायता देगें जिससे कि वाद-विवाद और भी अधिक कठिन तथा दुरूह हो जाये और प्रगति में और भी अधिक बाधा पड़े अपेक्षाकृत किसी लाभदायक प्रयोजन की पूर्ति के। डॉ. देशमुख तथा अन्य वक्ताओं ने उस प्रकार का वर्णन किया था जिस प्रकार, एक उदाहरण के रूप में, अपने निजी निकटतम स्वार्थों की पूर्ति के लिये विश्वविद्यालय के निर्वाचनों में स्नातक लोग कार्य करते हैं। स्नातकों के निर्वाचक मंडल की कार्यशैली का मैं अपना निजी अनुभव उद्धृत कर सकता हूं। विश्वविद्यालय के निकायों में उनके प्रतिनिधि होने के अधिकार का चाहे मैं कितना ही कट्टर समर्थक क्यों न हूं पर राज्य के द्वितीय सदन के लिये उनका एक विशेष निर्वाचक मंडल बनाने में मुझे भय है। और तीन साल की शर्त में तो मुझे कोई भी तर्क अथवा सिद्धान्त नहीं दिखाई देता है।

द्वितीय सदन में प्रतिनिधि होने के लिये उन्हें सदस्य के रूप में प्राप्त करने में चाहे जो कुछ सुविधायें हों पर मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि राज्य के किसी अन्य वर्ग अथवा वृत्तियों को न लेकर स्नातकों और अध्यापकों को ही चुनने में क्या सिद्धान्त हो सकता था। और फिर अध्यापक तो सामाजिक सेवाओं के अंग होंगे। मैं यह मानता हूं कि सामाजिक सेवा इतना विस्तृत तथा व्यापक पद है कि उसमें अध्यापक, स्वास्थ्योन्नति के कर्मी, जेल अथवा कारखानों में लोक कल्याण हेतु जाने वाले दर्शकगण इत्यादि इत्यादि सरलता से आ जाते हैं—अतः यदि हम वास्तव में सामाजिक सेवाओं को स्वयं एक पूर्ण श्रेणी के रूप में रखना चाहते हैं तो अध्यापकों को समान किसी एक अंश को सुनना पुनः आवश्यकता से अधिक बढ़ जाना है अथवा एक प्रकार से दुबारा तंत्र की स्थापना करना है।

अन्तिम उदाहरण में राज्यपाल द्वारा कुछ सदस्यों के नामनिर्देशन के सम्बन्ध का वर्गीकरण जैसे कि विज्ञान, साहित्य, कला, सहकारी आन्दोलन और सामाजिक सेवायें—उसमें भी फिर मुझे वही दोष दिखाई देता है कि इसमें भी कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसके द्वारा इनको चुना गया है और अन्य को जो ठीक इनकी कोटि में आ सकते थे छोड़ दिया गया है।

मेरे मित्र श्री कामत ने यह उल्लेख किया था कि वे धर्म को प्रविष्ट करना चाहेंगे। यह एक ऐसा विषय है जिसमें मैं श्री कामत से कभी सहमत नहीं हो सका हूं। इस प्रकार के निकायों में धर्म का प्रतिनिधान मुझे पूर्णतया असंगत प्रतीत होता है। पर है यह भी एक श्रेणी जिसका सुझाव दिया जा सकता है—पर मैं यह ठीक ठीक कल्पना नहीं कर सकता हूं कि यह श्रेणी किस प्रकार प्रयुक्त होगी। क्या आप धार्मिक मंत्रियों को चुनेंगे? या आप उनको चुनेंगे जो इसकी प्रशंसा में चीखते हैं या उसको मानते हैं? अथवा उनको जो शान्तिपूर्वक धर्म का पालन करते हैं जिनकी संख्या अविदित है? ये ऐसी श्रेणियां हैं कि यदि इनको द्वितीय सदन में रख लिया जाता है तो मेरी समझ से राज्यपाल को अथवा उसके परामर्श दाताओं की सजावट के लिये या उन खास लोगों का सम्मान करने के लिये जो कला, साहित्य, विज्ञान, सहकारी आन्दोलन तथा सामाजिक सेवाओं के प्रतिनिधि समझे जायेंगे उनको रखने की अति अधिक शक्ति देना है। इन सबमें शायद सहकारी आन्दोलन ही एक ऐसी श्रेणी है जिसके बारे में में यह कहा जा सकता है कि उसके संगठन का रूप कुछ निश्चित सा है। यदि इन लोगों में से चुनाव किया जाता है तो यहां उसका केवल एक ही उदाहरण है जिसमें से किसी युक्तियुक्त तथा उचित सिद्धान्त के अनुसार चुनाव किया जा सकता है। शेष विज्ञान, कला, साहित्य और सामाजिक सेवाओं में महानता का निर्णय अधिकतर किसी व्यक्ति के किसी आसन या पद के ग्रहण करने पर, और प्रकाशक के रूप में कुछ ख्याति होने पर अथवा इसी प्रकार की बातों के आधार पर किया जायेगा अपेक्षाकृत इसके कि वह उस समस्त श्रेणी द्वारा प्रतिनिधान प्राप्त करे क्योंकि वह श्रेणी संगठित नहीं है। हां, यदि उन विश्वविद्यालयों से, जो कला तथा विज्ञान इत्यादि का प्रति निधान करने वाली समझ जाती हैं, कुछ व्यक्तियों के चुनने का इरादा हो तो बात दूसरी है।

इन सब बातों के कारण यह स्पष्ट है कि यह समझौते का मसौदा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा। सिवा इसके कि द्वितीय सदन को निरर्थक करे और उसके संकटजनक होने की संभावनायें हों। यह द्वितीय सदन को तंत्र का वह अंग नहीं बनायेगा जो हमारे संविधान की गरिमा की वृद्धि करे, विधान निकायों के विचार विमर्शों में गौरव की वृद्धि करे और लोकतंत्रात्मक पद्धति में ठोस कार्य की वृद्धि करे।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सभा के समक्ष वाद-विवाद बन्द करने के प्रस्ताव पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

***उपाध्यक्षः** वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***कुछ माननीय सदस्यः** विरोधियों की आवाज अधिक तीव्र थी।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं फिर से मत लूं?

प्रस्ताव यह है:

"कि अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं श्री सरवटे द्वासरा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। मेरे विचार में इस मसौदे में उन्होंने एक वास्तविक कठिनाई बताई है। मसौदे में "उस राज्य में के विश्वविद्यालय" कहा गया है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि ऐसे बहुत से राज्य हैं जिनमें विश्वविद्यालय नहीं हैं। साथ ही साथ अन्य विश्विद्यालयों के स्नातक उस राज्य में निवास कर रहे हैं। किसी राज्य में रहने वाले किसी स्नातक के द्वितीय सदन के निर्वाचनों में भाग लेने के अधिकार को छीन लेने की मंशा कदापि नहीं है केवल इसलिये कि वह उस राज्य में के विश्वविद्यालय का स्नातक नहीं है। अत: किसी विशिष्ट प्रान्त में निवास करने वाले स्नातकों के मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिये मैं समझता हूं कि यह संशोधन आवश्यक है और मैं उसे स्वीकार करना चाहता हूं। मैं केवल यही कहूंगा कि "स्वभावत:" शब्द आवश्यक नहीं है चूंकि अर्हता के रूप में निवास की अनुच्छेद 140 के उपबन्धों के अधीन परिभाषा की जायेगी जिस में हमें अर्हता और अनर्हताओं की व्याख्या करने की शक्ति है।

अन्य आलोचनाओं के सम्बन्ध में, मैं नहीं समझता हूं कि जिन लोगों ने इस विशिष्ट अनुच्छेद की निन्दा करने में बड़े पदों का प्रयोग किया है उन्होंने सभा की तथा अपनी कुछ सेवा की है। इस विषय पर कई बार वाद-विवाद हो चुका है। प्रान्तों में द्वितीय सदन हो या न हो इस विषय पर वाद-विवाद हो चुका था और यह प्रस्थापना स्वीकार कर ली गई थी कि जो प्रान्त द्वितीय सदन रखना चाहते हैं उनको रखने दिया जाये। मैं नहीं समझता हूं कि उन्हीं तर्कों के दुबारा कहने से कोई लाभ होता है जिन पर सदस्यों ने, जबकि इस विषय पर वाद-विवाद हो रहा था, आग्रह किया था।

सभा के समक्ष जो प्रस्थापना प्रस्तुत की गई है उस पर इस वाद-विवाद में भाग लेने वाले किसी सदस्य का ऐसा कोई रचनात्मक सुझाव मुझे दिखाई नहीं दिया है जिसमें इस रचना के स्थान में द्वितीय सदन की कोई अन्य रचना हो। इधर उधर से कुछ बातें ले ली गई हैं और यह बताने के लिये निन्दा की गई है कि अमुक उपबन्ध लाभदायक है अथवा हानिकर है। मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि यह एक ऐसा विषय है जिसमें दो राय हो सकती हैं और मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि मेरी राय अथवा मसौदा समिति की राय ही इस विषय में सही हो। हमें किसी प्रकार की रचना की व्यवस्था करनी है और मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि जिस रचना की व्यवस्था की गई है वह उतनी ही युक्तियुक्त तथा उतनी व्यवहार्य है जितनी कि इन वर्तमान परिस्थितियों में सोची जा सकती है।

इसके बाद दो बातें और कहीं गई थीं—उनमें से एक मेरे मित्र नागप्पा ने कही थी। उन्होंने यह चाहा है कि कृषक मजदूरों के प्रतिनिधान के लिये एक उपबन्ध बना दिया जाये। मैं नहीं समझता हूं कि उत्तर सदन में कृषक मजदूरों के प्रतिनिधान के लिये किसी ऐसे उपबन्ध की आवश्कयता है, क्योंकि प्रथम सदन में कृषक श्रमिकों को बहुत अधिक प्रतिनिधान इस कारण मिल जायेगा कि जिस मताधिकार के आधार पर प्रथम सदन का निर्वाचन होगा वह वयस्क मताधिकार होगा और मैं नहीं जानता हूं...।

***श्री एस. नागप्पा:** यदि यह बात है तो अन्य वर्गों को भी, जिनको आप दे रहे हैं, प्रथम सदन में प्रतिनिधान मिलेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उनको बिल्कुल ही भिन्न आधारों पर दिया जा रहा है, पर कृषक श्रमिकों के लिये प्रथम सदन में पर्याप्त व्यवस्था है।

मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने संशोधन द्वारा यह प्रश्न उठाया है कि उत्तर सदन में अनुसूचित जातियों के लिये विशेष प्रतिनिधान होना चाहिये। मैं उनको यह बताना चाहूंगा कि जहां तक मसौदा समिति का सम्बन्ध है वह परामर्शदात्री समिति की रिपोर्ट के अनुसार कार्य करती है जिसने इस विषय पर विचार किया था। परामर्शदात्री समिति की रिपोर्ट में जिसको सभा के समक्ष अगस्त सन् 1947 में रखा गया था निम्न उपबन्ध मिलता है:—

"(ङ) मुसलमानों की जनसंख्या के आधार पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मंडलों के प्रथम सदन में उनके लिये स्थानों का रक्षण होगा।"

"3. (क) हिन्दू सम्प्रदाय का वह भाग जिसे अनुसूचित जाति के नाम से निर्दिष्ट किया गया है और भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की अनुसूची 1 में जिसकी परिभाषा दी गई है उसको वही अधिकार तथा लाभ प्राप्त होंगे जिनकी यहां व्यवस्था की गई है इत्यादि इत्यादि।"

जिसका यह अर्थ है कि अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधान की प्रत्याभूति केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मंडलों के प्रथम सदनों के लिये ही होगी। संविधान सभा का यह विनिश्चय होने के कारण मैं नहीं समझता हूं कि मसौदा समिति के लिये किसी ऐसी प्रस्थापना का स्वीकार करना उचित होगा जो सभा के विनिश्चयों के विरुद्ध हो। यद्यपि मैं किसी व्यक्ति की भावना को ठेस लगाना नहीं चाहता हूं, पर मैं यह कहूंगा कि इस विनिश्चय के पक्ष का समर्थन यदि किसी व्यक्ति ने उच्च स्वर में किया था जो वह मेरे मित्र की मुनिस्वामी पिल्ले थे और मैं समझता हूं कि उस समय जिस बात को उन्होंने मान लिया था उससे उन्हें सन्तोष कर लेना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, आपको संशोधन संख्या 2 को औपचारिक रूप में वापस लेना है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, मुझे वापस लेना है।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया है।

***श्री एच.वी. कामत:** संशोधन संख्या 3 को वापस लेने की मैं सभा से अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***श्री एस. नागप्पा:** डॉ. अम्बेडकर की व्याख्या के कारण मैं संशोधन संख्या 66, 67, 68, 70 और 71 को वापस लेने की अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किये गये।

***डॉ. मनमोहन दासः** मैं संशोधन संख्या 69 को वापस लेने की अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** मैं अपने संशोधन को वापस लेने की सभा से अनुमति मांगता हूं और माननीय डॉ. अम्बेडकर की बातों से मैं सहमत नहीं हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:—

"कि संशोधन 1 (सूची 1, चतुर्थ सप्ताह) में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड 1 के परन्तुक का अपमार्जन किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:—

"कि संशोधन 1 (सूची 1, चतुर्थ सप्ताह) में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (2) में से 'unless Parliament by law otherwise provides' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** तीसरा संशोधन खंड (5) में से 'सहकारी आन्दोलन' शब्दों के अपमार्जन करने के लिये है।

प्रस्ताव यह है:—

"कि संशोधन 1 (सूची 1, चतुर्थ सप्ताह) में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (5) में से 'co-operative movement' शब्दों का अपमार्जन किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:—

"कि संशोधन 1 (सूची 1, चतुर्थ सप्ताह) में प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (6) में से 'literature' शब्द के पूर्व 'religion, philosophy' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सभा के समक्ष श्री सरवटे का संशोधन रखता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 150 के खंड (3) के उपखंड (ख) में 'consisting of persons' शब्दों के पश्चात् 'President in the State' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये और 'in the State' शब्दों के स्थान में 'in the territory of India' शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब में छपी सूची अंक 1 के संशोधन संख्या 2284 पर मत लेता हूं कि 'भेषज' शब्द को खंड (5) में प्रविष्ट किया जाये।

प्रस्ताव यह है:—

"कि अनुच्छेद 150 के खंड (5) में 'art' शब्द के पश्चात् 'medicine' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं छपी सूची अंक 1 के संशोधन संख्या 2287 पर मत लेता हूं जो खंड (5) में 'वास्तुविज्ञान और वाणिज्य' शब्द प्रविष्ट करने के लिये है।

"कि अनुच्छेद 150 के खंड (5) में 'engineering' शब्द के पूर्व 'commerce' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद 150 को सभा के समक्ष रखता हूं:

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 150 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 150 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

भाग 8-क

अनुच्छेद 215-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 6 (सूची 1, चतुर्थ सप्ताह), को पेश करता हूं:

"कि भाग 8 के पश्चात् निम्न नवीन भाग प्रविष्ट किया जाये:—

'PART VIII-A

THE SCHEDULE AND TRIBAL AREAS

215.A. In this Constitution—

Definition (a) the expression 'scheduled areas' means the areas specified in Parts I to VII of the Table appended to paragraph 18 of the Fifth Schedule in relation to the States to which those parts respectively relate subject to any order made under sub-paragraph (2) of that paragraph;

(b) the expression 'tribal areas' means the areas specified in Parts I and II of the Table appended to paragraph 19 of the

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Sixth Schedule subject to any order made under sub-paragraph (3) of paragraph 1 or clause (b) of sub-paragraph (1) of paragraph 17 of that Schedule.

215. (1) The provisions of the Fifth schedule shall apply to the administration and control of the scheduled areas and scheduled tribes in any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule other than the State of Assam.

Administration of Scheduled and tribal areas.

(2) The provisions of the Sixth Schedule shall apply to the administration of the tribal areas in the State of Assam.' "

भाग 8-क

अनुसूचित और आदिम जाति क्षेत्र

215. (क) इस संविधान में—

परिभाषा

(क) "अनुसूचित क्षेत्रों" पदावलि से अभिप्रेत है ऐसे जो पंचम अनुसूची की कंडिका 18 की उपकंडिका (2) के अन्तर्गत किसी आदेश के आधीन पंचम अनुसूची की कंडिका 18 के साथ संलग्न तालिका के भाग 1 से 8 तक में उन राज्यों के सम्बन्ध में उल्लिखित है जिनसे ये भाग क्रमश: ये सम्बन्धित हैं।

(ख) "आदिम जाति क्षेत्रों" पदावलि से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र जो षष्ठ अनुसूची की कंडिका 1 की उपकंडिका 3 अथवा कंडिका 17 की उपकंडिका 1 के खंड (ख) के अन्तर्गत किसी आदेश के अधीन षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 के साथ संलग्न तालिका के भाग 1 और 2 में उल्लिखित हैं।

215. (1) आसाम राज्य के अतिरिक्त प्रथम अनुसूची के भाग (1) या (3) में उल्लिखित किसी राज्य में के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित आदिमजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिये पंचम अनुसूची के उपबन्ध लागू होंगे।

अनुसूचित और आदिम जाति क्षेत्रों का प्रशासन।

(2) आसाम राज्य में के आदि क्षेत्रों के प्रशासन के लिये षष्ठ अनुसूची के उपबन्ध लागू होंगे।]

श्रीमान, मेरा संशोधन मूल अनुच्छेद 189 और 190 के स्थान में इन अनुच्छेदों को रखता है। हम केवल यह कर रहे हैं कि अनुच्छेद 189 और 190 के उपबन्धों को एक अन्य प्रथक भाग में रख रहे हैं। इस स्थान परिवर्तन के कारण इनकी फिर से क्रमसंख्या करना आवश्यक हो गया है जिससे कि नये भाग में ये आवश्यक तर्कसम्मत क्रम प्राप्त कर सकें। मेरे इन नये प्रस्थापित अनुच्छेद 215-क और 215-ख में कुछ अल्प परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य कोई सारवत् परिवर्तन नहीं है।

*__उपाध्यक्षः__ श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का मुद्रित अंक 1 पृष्ठ 253 पर एक संशोधन संख्या 2553 है। क्या वे इसे पेश करना चाहते हैं?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ उस संशोधन का समस्त आधार ही छीन लिया गया और कुछ नये संशोधन पेश कर दिये गये इससे वह सबका सब अव्यवहार्य बना दिया गया।

*__उपाध्यक्षः__ तो आप उसे पेश न करें। यही बात आपके संशोधन संख्या 2554 और 2557 पर लागू होती है। मैं समझता हूं कि संशोधन संख्या 2555 पेश नहीं किया जायेगा। क्या कोई सदस्य इस प्रस्ताव पर बोलना चाहता है?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में अनुच्छेद 215-क और 216-ख के समर्थन के लिये मैं खड़ा होता हूं। पर मैं इन शब्दों को जोड़ना चाहूंगा "जब तक संसद विधि के द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे"। आदिमजाति क्षेत्रों के प्रशासन तथा संविधान की ऐसी व्याख्या करना और उनको ऐसे निर्धारित करना, जो बिना संविधान में संशोधन किये परिवर्तित नहीं हो सकते हैं, उचित तथा सुरक्षित नहीं है। आदिमजाति क्षेत्रों में सब बातें अनिश्चित हैं। अतः मसौदा समिति की यह बुद्धिमानी होगी कि अनुच्छेद 215-क और 215-ख में ये शब्द जोड़ दिये जायें।

*__श्री युधिष्ठिर मिश्र__ (उड़ीसाः जनरल): अध्यक्ष महोदय, केबिनेट मिशन के 16 मई सन् 1946 के विवरण के खंड 20 के अधीन जो परामर्शदात्री समिति बनाई गई थी उसके लिये यह अपेक्षित था कि वह आदिमजाति और अपवर्जित क्षेत्रों के प्रशासन की योजना की रिपोर्ट विधान सभा को दे और मंत्रणा दे कि क्या उन अधिकारों को संविधान में रखा जाये या नहीं: और मैं समझता हूं कि केबिनेट मिशन की योजना के अनुसार आदिमजाति क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में और संविधान के मसौदे में उपबन्धों को रखने के बारे में रिपोर्ट करने के लिये आदिमजाति परामर्शदात्री समिति बनाई गई थी। इस परामर्शदात्री समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है और उस रिपोर्ट के अनुसार ये उपबन्ध संविधान के मसौदे में रखे जा रहे हैं। श्रीमान, आदिमजाति परामर्शदात्री समिति ने उस समय देशी रियासतों की आदिमजाति के लोगों की हालतों के सम्बन्ध में पूछताछ नहीं की थी क्योंकि वह उनके क्षेत्र के अन्तर्गत न था। इसी काल में देशी रियासतें एक बड़ी संख्या में पड़ौसी प्रान्तों में विलीन कर दी गईं और अब उन पर उन प्रान्तों के भाग के रूप में प्रशासन किया जायेगा। अतः यह न्यायसंगत तथा उचित है कि इन छोटे राज्यों की आदिमजातियों को भी इन उपबन्धों से लाभ होना चाहिये। मूल मसौदे में इन राज्यों को अनुसूचित आदिमजाति सम्बन्धी इन उपबन्धों के प्रवर्तन से पृथक रखा गया था पर डॉ. अम्बेडकर द्वारा अभी पेश किये गये संशोधन में उनको रख लिया गया है। जबकि प्रान्तों के पिछड़े हुये आदिम जाति के लोग पंचम अनुसूची के उपबन्धों का लाभ उठायेंगे तो ऐसी कोई बात नहीं है कि उसी प्रशासन के अधीन उस राज्य की आदिमजातियां क्यों अलग रखी जायें। बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त राज्यों में सरायकेला और खर्सवान में आदिमजातियों की बड़ी जनसंख्या है। उड़ीसा में उनकी जनसंख्या राज्य की जनसंख्या की तृतीयांश है। पर यह कहते हुए मुझे खेद होता है कि संविधान के मसौदे की पंचम अनुसूची की कंडिका 18 की संलग्न सारिणी के 5 से 8 तक भागों में इन राज्यों के किसी भी आदिमजाति

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

क्षेत्रों का उल्लेख अनुसूचित क्षेत्रों के रूप में नहीं किया गया है। इन आदिमजाति क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्रों की श्रेणी में न रखने का शायद कारण यह है कि आदिमजाति समिति समूचे प्रश्न को न ले सकी चूंकि वह उसके क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं था। मैं मसौदा समिति से निवेदन करूंगा कि पंचम सूची में वह राज्यों में के अनुसूचित क्षेत्रों का उल्लेख करे जबकि इस सूची पर इस सभा के विचार किया जाये। नये संविधान के अधीन भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति को पंचम अनुसूची की कंडिका 18 के उपखंड (2) के अधीन किसी राज्य में के किसी नये क्षेत्र का अनुसूचित रूप में उल्लेख करने का वास्तव में पर्याप्त प्राधिकार है। यदि इन राज्यों में के अनुसूचित क्षेत्रों का संविधान में उल्लेख करना मसौदा समिति के लिये अभी संभव नहीं है तो मैं यह निवेदन करूंगा कि जैसे ही संविधान पारित हो जाये वैसे ही भारतीय गणराज्य का राष्ट्रपति एक आयोग नियत करे जो इन राज्यों की आदिमजाति के लोगों की हालतों की पूछताछ करे और यह रिपोर्ट करे कि क्या उन क्षेत्रों में से किसी को अनुसूचित क्षेत्रों के रूप में उल्लिखित करना है या नहीं। जैसा कि प्रान्तों के लिये किया है वैसे ही आदिमजाति क्षेत्रों को पंचम अनुसूची के अन्तर्गत लाकर उड़ीसा और मध्य प्रान्त के आदिमजाति के लोगों की रक्षा के लिये मैं बहुत अधिक जोर दिये बिना नहीं रह सकता हूं।

प्रस्थापित विधान के अनुसार वर्तमान संविधान में आदिमजाति क्षेत्रों को अपवर्जित अथवा अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों के रूप में अब नहीं समझा जायेगा जैसा कि 1935 के अधिनियम में समझा जाता था। पंचम अनुसूची में उल्लिखित अनुसूचित क्षेत्रों को विधान-मंडल अथवा कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार से पृथक नहीं किया जायेगा, पर संविधान के मसौदे के उपबन्धों के अनुसार, जैसा कि पंचम अनुसूची में व्यवस्था की गई है, आदिमजाति परामर्शदात्री समिति जहां तक आदिमजाति के विषयों का सम्बन्ध है वह प्रान्तों की कार्यपालिका शक्ति की केवल एक प्रकार से देखभाल करेगी। मैं निवेदन करता हूं कि इन राज्यों की आदिमजातियों की जनता उतनी ही पिछड़ी हुई है जितनी कि प्रान्तों की। अतः डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करते हुए मैं उनसे निवेदन करता हूं कि जब यह विषय इस सभा के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत हो वे उड़ीसा और मध्यप्रान्त राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों को पंचम अनुसूची में रखने का उपक्रम करें।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, इन आदिमजाति क्षेत्रों के भावी प्रशासन के सम्बन्ध में मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा दिये गये सुझाव का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। यह बात सब लोग मानेंगे कि इन विभिन्न आदिमजाति अनुसूचित क्षेत्रों की आज जैसी हालत है उसे हम जारी रखना नहीं चाहते हैं। मुझे विश्वास है कि हम सब उस दिन की आशा लगाये बैठे हैं जब कि वे निकटवर्ती पड़ौसी प्रान्तों के स्तर पर आ जायेंगे और जो प्रान्त और राज्य उनसे मिले हुए हैं उनमें विलीन हो जायेंगे। जिस प्रकार का प्रशासन शेष भारत में हो रहा है, होने की संभावना है अथवा होगा उससे भिन्न प्रकार के स्थायी प्रशासन की कल्पना हम इन क्षेत्रों के लिये नहीं करते हैं। इन विचारों के आधार पर मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा सुझाये गये ये विचार बिल्कुल पुष्ट हैं और

मैं सुझाव करता हूं कि इस शर्त के आधीन "कि जब तक संसद् विधि के द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे" डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित रूप में अनुच्छेद को स्वीकार कर लेना चाहिये। हमने अभी एक प्रस्ताव स्वीकार किया है जिसमें हमने द्वितीय सदनों की रचना जैसे मूलभूत विषय में परिवर्तन करने की शक्ति संसद को सौंप दी है। मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती है कि इन आदिमजाति परिषदों की रचना और सामान्यतया आदिमजाति क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध के इस संविधान को साधारण बहुमत से बाद में किसी तारीख को परिवर्तन करने की शक्ति हम संसद को क्यों न सौपें।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाब: जनरल): श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जी के विचारानुसार सारी बात अनिश्चित सी हो जाती है। अत: यह अच्छा होगा कि संसद को यह शक्ति दे दी जाये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ ठीक यही वे कह रहे हैं!

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ जो आधार श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है वही इस बात के लिये एक अच्छा तर्क प्रस्तुत करता है कि संसद को क्यों यह शक्ति दी जाये और यह प्रस्थापित उपबन्ध न्यायसंगत है।

*__श्री एच.वी. कामत:__ इसके विपरीत संसद को बाद में इस अन्यथा के अतिरिक्त भी घोषणा करने की शक्ति होनी चाहिये। वह बाद में परिवर्तन कर सकती है। मैं नहीं समझता हूं कि पंडित भार्गव के मन में क्या है। मैं आशा करता हूं। कि बाद में वे उसे स्पष्ट करेंगे। पर मेरे लिये यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस रूप में यह है उसे उस रूप में संविधान के संशोधन पर नहीं छोड़ना चाहिये, यह इतना कठोर हो जायेगा कि यदि हम आदि जाति क्षेत्रों के विधान तथा प्रशासन में परिवर्तन करना चाहेंगे तो संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। परन्तु यदि हम इसमें परिवर्तन करना संसद पर छोड़ देते हैं तो वह अधिक सरल होगा अन्यथा संविधान का संशोधन इसमें अन्तर्ग्रस्त है। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि इस सम्बन्ध में कोई उचित परितर्वन करने की शक्ति संसद को सौंपी जाये और इस हेतु इस अनुच्छेद के अन्तिम मसौदे को सभा में प्रस्तुत करने के पूर्व उसमें श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा दिया गया सुझाव उचित रूप में प्रविष्ट किया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं समझता हूं कि उत्तर में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:

"कि भाग 8 के पश्चात् निम्न नया भाग प्रविष्ट किया जाये:–

'PART VIII-A

THE SCHEDULED AND TRIBAL AREAS

215. A. In this Constitution—

Definition (a) the expression 'scheduled areas' means the areas specified in Parts I to VII of the table appended to paragraph 18 of

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

the Fifth Schedule in relation to the States to which those parts respectively relate subject to any order made under sub-paragraph (2) of that paragraph;

(b) the expression 'tribal areas' means the areas specified in Parts I and II of the Table appended to paragraph 19 of the Sixth Schedule subject to any order made under sub-paragraph (3) of paragraph 1 or clause (b) of sub-paragraph (1) of paragraph 17 of that Schedule.

215.B.(1) Administration of Scheduled and tribal areas. The provisions of the Fifth Schedule shall apply to the administration and control of the scheduled areas and scheduled tribes in any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule other than the State of Assam.

(2) The provisions of the Sixth Schedule shall apply to the administration of the tribal areas in the State of Assam.' "

भाग 8-क

अनुसूचित और आदिमजाति क्षेत्र

215. (क) इस संविधान में–

परिभाषा (क) "अनुसूचित क्षेत्रों" पदावलि से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र जो पंचम परिभाषा अनुसूची की कंडिका 18 की उपकंडिका (2) के अन्तर्गत किसी आदेश के अधीन पंचम अनुसूची की कंडिका 18 के संलग्न तालिका के भाग 1 से 8 तक में उन राज्यों के सम्बन्ध में उल्लिखित हैं जिनसे ये भाग क्रमश: ये सम्बन्धित हैं;

(ख) "आदिम जाति क्षेत्रों" पदावलि से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र जो षष्ठ अनुसूची की कंडिका 1 की उपकंडिका 3 अथवा कंडिका 17 की उपकंडिका 1 के खंड (ख) के अन्तर्गत किसी आदेश के अधीन षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 के साथ संलग्न तालिका के भाग 1 और 2 में उल्लिखित हैं।

215. (ख) अनुसूचित और आदिम जाति क्षेत्रों का प्रशासन। (1) आसाम राज्य के अतिरिक्त प्रथम अनुसूची के भाग (1) या (3) में उल्लिखित किसी राज्य में के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित आदिमजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिये पंचम अनुसूची के उपबन्ध लागू होंगे।

(2) आसाम राज्य में के आदि मजाति क्षेत्रों के प्रशासन के लिये पष्ठ अनुसूची के उपबन्ध लागू होंगे।]

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

भाग 8-क और अनुच्छेद 215-क और 215-ख संविधान में प्रविष्ट किये गये।

अनुच्छेद 189

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 189 अपमार्जित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 189 संविधान में से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 190

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 190 अपमार्जित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 190 संविधान में से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 150 *(जारी)*

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 250 को लेते हैं। पिछली बार जब इस अनुच्छेद पर विचार हो रहा था श्री सिधवा सूची 1-चतुर्थ सप्ताह के संशोधन संख्या 12 पर भाषण दे रहे थे।

***श्री आर.के. सिधवाः** उपाध्यक्ष महोदय, आपने यह ठीक कहा कि पिछली बार जब मैं अपना संशोधन संख्या 12 पेश कर रहा था, माननीय डॉ. अम्बेडकर बीच में बोले और कहा कि इस अनुच्छेद को स्थगित किया जाये। छपी सूची में मेरा संशोधन (पृष्ठ 27) इस प्रकार है:—

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2859 के निर्देश सहित अनुच्छेद 250 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

Provided that the proceeds collected by the Government of India under clause (c) shall be assigned to local authorities in the jurisdiction of the States."

[परन्तु खंड (ग) के अधीन भारतीय सरकार द्वारा संगृहीत की गई आय राज्यों के क्षेत्राधिकार में के स्थानीय प्राधिकारियों को सौंप दी जायेगी।]

[श्री आर.के. सिधवा]

यदि आप इस अनुच्छेद के खंड (ग) की ओर निर्देश करेंगे तो आपको विदित होगा कि वह "रेल या वायु से बाहित वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा-कर" से सम्बन्ध रखता है। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उसका यह अभिप्राय होगा कि जब (क), ख और (घ) बने रहेंगे तो (ग) निकल जायेगा। मैं आपको इसके कारण बताऊंगा कि मैं यह क्यों चाहता हूं कि इस अनुच्छेद में से खंड (ग) अपमार्जित किया जाये।

चूंगी, सीमा-कर और पथ-कर न्यूनाधिक रूप में मिले जुले से कर हैं और साथ ही साथ स्थानीय निकायों के लिये राजस्व का ये एक बड़ा भाग बनाते हैं। भारत शासन अधिनियम 1935 से पहले सीमा-कर प्रान्तीय विषय था। 1935 के अधिनियम में सीमा-कर को केन्द्रीय विषय बना दिया गया। मसौदा समिति ने भाषा में कुछ अल्प परिवर्तन कर न्यूनाधिक रूप से भारत शासन अधिनियम की धाराओं को ले लिया है। उन्होंने यह देखने की सावधानी नहीं की कि 1935 के अधिनियम में सीमा-कर को प्रान्तीय विषय के केन्द्रीय विषय में क्यों रख दिया। यदि वे इस विषय में कुछ कष्ट उठाते तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेते।

यह चुंगी-कर, जो स्थानीय निकायों द्वारा लिया जाता है, बड़ा कष्टदायक कर है। इसके कारण बड़ी उलझनें पदा हो जाती हैं। वस्तुओं की तोल पर यह कर उगाया जाता है और बीजक के कर के विषय में रेल द्वारा बाहित वस्तुओं की तोल पर भी—जिसके कारण व्यापार में एक प्रकार का कष्ट पैदा हो गया है। केवल यहीं नहीं इसके कारण भ्रष्टाचार भी हुआ जिसका यह फल निकला कि भारतीय सरकार को इस विषय की जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त करनी पड़ी। उसने सर्वसम्मति से निश्चय किया कि चुंगी कर हटा दिया जाये और उसके स्थान में सीमा-कर रख दिया जाये।

सीमा-कर बड़ा महत्वपूर्ण कर है जो विभिन्न स्थानीय निकायों द्वारा लिया जाता है और उस समिति की सिफारिश पर अनेक स्थानीय निकायों में चुंगी कर को हटा दिया गया यद्यपि इसमें धीरे-धीरे प्रगति हुई। लगभग 80 प्रतिशत स्थानीय निकाय आज भी चुंगी कर उगाते हैं और समिति की सिफारिशों पर ध्यान दिये बिना प्रान्तीय सरकारें उन निकायों को ऐसा करने दे रही हैं।

सीमा-कर नगरपालिकाओं द्वारा तथा सफाई समिति और स्थानीय मंडलियों की समितियों द्वारा भी उगाया जाता है। भारत शासन अधिनियम 1935 में इस परिवर्तन का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है। इस सीमा-कर द्वारा केवल एक मद से ही बहुत बड़ी आय होती है। यह मद पेट्रोल है। मिट्टी का तेल और पेट्रोल कर, जिनका आयात विदेशों से हाता है, कर लिया जाता है–और यद्यपि सीमा-कर एक गैलन पर एक पैसा ही है पर यदि कराची, बम्बई, मद्रास, या कलकत्ता किसी पत्तन पर तेल लाने वाला एक जहाज आ जाता है तो उससे 1,10,000 रुपये का राजस्व मिल जाता। इसका अंग्रेजों पर प्रभाव पड़ा जिनके पास इन वस्तुओं के आयात का एकाकी अधिकार था। अत: अपने राष्ट्रजनों के हित के लिये उस समय अंग्रेजों ने सोचा कि भारत-शासन अधिनियम, 1935 के अधीन, जो प्रान्तों को स्वायत्त शासन

प्रदान करता है, यदि सीमा-कर प्रान्तों के अधिकार में बना रहने दिया जायेगा तो प्रान्त और अधिक सीमा-कर बढ़ा देंगे। अतः उन्होंने अपनी सुविधा के लिये प्रान्तीय सुचियों में से इसे निकाल दिया और केन्द्रीय सूची के साथ संलग्न कर दिया।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि इस विषय पर मैंने एक और संशोधन पेश किया था और मुझे खुशी है कि मसौदा समिति ने उसे स्वीकार कर लिया। वह संशोधन यह था कि 'रेल' शब्द के पश्चात् एक अर्द्ध विराम हो और 'समुद्र' शब्द जोड़ दिया जाये। मूल खंड में आपने देखा होगा कि 'समुद्र' शब्द नहीं था। इसकी उलझनों को समझे बिना मसौदा समिति ने भारत-शासन-अधिनियम की केवल नकल कर दी। मैंने यह ध्यान दिलाया कि 'समुद्र' शब्द को भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के निर्माताओं ने जानबूझकर नहीं रखा है। उनका उद्देश्य यह था कि समुद्र द्वारा आने वाली पेट्रोल सम्बन्धी वस्तुओं पर सीमा कर न लगाया जाये और इस प्रकार जानबूझकर उन्होंने 'समुद्र' शब्द को छोड़ दिया। मुझे यह पूर्ण विश्वास नहीं है कि मसौदा समिति ने मेरे संशोधन को स्वीकार करने के लिये वास्तव में मेरे तर्क को समझ लिया था—मैं नहीं जानता हूं कि उन्होंने यह अनुभव किया कि 'वायु' और 'रेल' यहां दी गई हैं पर 'समुद्र' छूट गया है और इसलिये, मेरे संशोधन के अर्थ को समझे बिना ही 'समुद्र' शब्द को यहां प्रविष्ट किया जाये। यदि मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता तो स्थानीय निकाय सीमा-कर के एक बड़े राजस्व से वंचित कर जाते। अतः इस दृष्टिकोण से मैं मसौदा समिति को मेरे संशोधन के स्वीकार कर लेने पर बधाई देता हूं। मैं यह आश्वासन दे सकता हूं कि यदि यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता तो उससे सीमा-कर के रूप में इन स्थानीय निकायों को एक करोड़ रुपये की हानि होती।

मैं दूसरे भाग पर आता हूं। इस अनुच्छेद के इस भाग में यह कहा गया है कि यह कर भारतीय सरकार द्वारा संगृहीत किया जायेगा पर राज्यों को दे दिया जायेगा। यहां तक तो ठीक है। भारत-शासन-अधिनियम, 1935 में एक परन्तुक है कि जब तक केन्द्रीय सरकार की अनुज्ञा न ले ली जाये तब तक कोई नया अथवा अतिरिक्त सीमा-कर आयोजित नहीं किया जायेगा। इस अधिनियम में जिसकी मसौदा-समिति ने नकल की है यह एक बहुत ही आपत्तिजनक बात है। कुछ वस्तुओं पर सीमा-कर बढ़ाकर अपने राजस्व की वृद्धि करने में आप स्थानीय निकायों को रोक रहे हैं। मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती है कि जिन मदों पर स्थानीय निकाय सीमा-कर बढ़ाना चाहते हैं के सम्बन्ध में स्थानीय निकायों की सिफारिश पर प्रान्तीय सरकारों को क्यों कर न बढ़ाने दिया जाये। कलकत्ता निगम ने रेल द्वारा आयात की गई वस्तुओं पर कर के कुछ मदों को बढ़ाना चाहा पर जब यह विषय केन्द्रीय सरकार के पास भेजा गया तो इस आधार पर कर न बढ़ाने दिया गया कि यह पथ-कर से सम्बन्धित विषय है। कानपुर नगरपालिका का भी एक ऐसा ही विषय था जिसको संयुक्त प्रान्तीय सरकार के पास भेजा गया जिसने उसे केन्द्रीय सरकार के पास भेजा और उसने अतिरिक्त मदों को स्वीकार करने की अनुज्ञा नहीं दी। स्थानीय निकायों की उन्नति के मार्ग में ये रोड़ आ जाते हैं। मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि मसौदा-समिति ने इस विषय पर बिल्कुल विचार नहीं किया है। स्वास्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में प्रान्तों के स्थानीय स्व-शासन विभाग के मंत्रियों के एक सम्मेलन में, जो गत वर्ष हुआ था, प्रान्तों और स्थानीय निकाय

[श्री आर.के. सिधवा]

के सम्बन्ध के इस वित्तीय प्रश्न पर विचार किया गया था और सर्वसम्मति से एक संकल्प पारित किया गया था जो मसौदा समिति के पास भेज दिया गया था। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि जब प्रान्तीय मंत्री सर्वसम्मति से इस प्रश्न पर सहमत थे तो मसौदा समिति ने किस प्रकार उसे अस्वीकार कर दिया। संकल्प में यह कहा गया था:—

> "समिति की राय थी कि यद्यपि सीमा-कर केन्द्रीय विधान-मंडल द्वारा नियंत्रित होगा पर यह स्पष्ट कर दिया जाये कि ये कर स्थानीय निकायों के लाभ के लिये होंगे। इस उद्देश्य को विचार में रखते हुए उसने यह सुझाव दिया कि अनुच्छेद 250 के मसौदे में "shall be assigned to the States in Clause (1) of the draft article" शब्दों के पश्चात् 'and shall be payable to local bodies' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

मैं नहीं समझ पाता हूं कि सर्वसम्मति से प्रस्तुत किये गये सुझाव को क्यों उन्होंने ठुकरा दिया। मैं आपका ध्यान माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त द्वारा प्रस्थापित संशोधन की ओर आकर्षिक करूंगा। वे एक ऐसे मंत्री हैं जो स्थानीय निकायों की भलाई में बड़ा हित रखते हैं। उन्होंने कहा है कि अनुच्छेद 250 के खंड (1) के उपखंड (ग) का अपमार्जन किया जाये और उपखंड (घ) की क्रम संख्या उपखंड (ग) कर दी जाये। मैं चाहता हूं कि आज वे यहां होते। यदि वे यहां होते तो बड़े जोर से वे मेरा समर्थन करते और मुझे विश्वास है कि यदि वे मेरा समर्थन करते तो डॉ. अम्बेडकर के पास और कोई चारा नहीं रहता सिवाय इस संशोधन को स्वीकार करने के। एक समय पिछली बार जबकि वृत्ति पर कर बढ़ाने का प्रश्न प्रस्तुत था, मेरे संशोधन में कुछ प्रतिशत सहित 250 रुपये का सुझाव था, पर मसौदा समिति ने उसे स्वीकार नहीं किया। मेरे मित्र पंडित पन्त इस विषय के प्रति बहुत उत्सुक थे और उन्होंने 250 रुपये पर जोर दिया और मसौदा समिति ने उसे स्वीकार कर लिया। यह क्या सिद्ध करता है? इससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने स्वयं इस विषय को भली प्रकार नहीं समझा है और उनकी यह प्रणाली है कि जब कोई उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्री उस विषय को प्रस्तुत करता है तो वे स्वीकार कर लेते हैं। वे हमको गैर जिम्मेवार समझते हैं। मैं इस विचार की निन्दा करता हूं। मसौदा समिति को जो विधि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त है उसका जब मैं अधिक से अधिक सम्मान करता हूं तो इसके बदले में मसौदा समिति से उन सदस्यों के प्रति, जिन्होंने अध्ययन किया है और स्थानीय निकायों के क्रियाकरण का जिन्हें बड़ा अनुभव है, इसी प्रकार के सम्मान की आशा करता हूं। मुझे खेद है कि ऐसी भावना नहीं दिखाई देती है, अन्यथा वर्तमान प्रश्न पर कोई झगड़ा न होता। प्रान्तीय सूची से हटाकर सीमा-कर को केन्द्रीय सूची में क्यों रखा जाये? 1935 में अन्य कारणों के आधार पर ऐसा किया था: अंग्रेज नहीं चाहते थे कि एक विशेष प्रकार का कर उन वस्तुओं पर आरोपित किया जाये जिनका वे आयात करते थे। उन दिनों प्रान्त स्वायत्त शासी थे और वे सीमा-कर को बढ़ा सकते थे। उपभोक्ताओं के लिये कोई अन्तर नहीं होता था, कर बहुत कम होता था पर इकट्ठा होकर वह जितना होता था वह स्थानीय निकायों के लिये लाभदायक था। इस प्रश्न पर मुझे बहुत दु:ख होता है। ये मेरे ही विचार नहीं हैं पर मैं

आपको बता रहा हूं कि अखिल भारतीय स्थानीय प्राधिकारियों के संघ की हैसियत से मेरे इस विचार का उन्होंने सर्वसम्मति से समर्थन किया था परन्तु चूंकि केन्द्रीय सरकार के वित्त मंत्री इसके विरोध में थे,—और इस विरोध के कारणों से वे स्वयं ही भली प्रकार परिचित हैं—इस कारण मसौदा-समिति ने इन सर्वसम्मत प्रस्थापनाओं को अस्वीकार कर दिया। पिछली बार जबकि डॉ. अम्बेडकर ने हस्तक्षेप करते हुए यह कहा कि इस विषय को स्थगित किया जाये, तो मैंने सोचा था कि वे इस विषय पर युक्ति-युक्त विचार करेंगे, पर यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उनकी प्रवृत्ति में कुछ भी अन्तर नहीं हुआ और उन्होंने इस अनुच्छेद को जैसा था वैसा ही रहने दिया। इसके कारण स्थानीय निकायों की वित्तीय परिस्थितियों में सुधार नहीं होगा, प्रान्तीय सरकारों पर बहुत अधिक भार पड़ेगा। यह इस सभा के विचार करने की बात है कि स्थानीय निकायों की उन्नति के लिये पर्याप्त उपबन्ध इस संविधान में किये जायें। और किस प्रकार से आप जनसाधारण की हालत सुधारेंगे और उसे सुखी बनायेंगे? जन-साधारण अधिकांश गांवों में रहते हैं, गांव पंचायत, अधिसूचित तथा सफाई समितियां और नगर पालिका समितियां ये सब अपने-अपने गांव और नगरों पर अनुशासन करती हैं। किसी न किसी रूप में मसौदा-समिति का यह विचार प्रतीत होता है कि स्थानीय निकायों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होगा—वह प्रान्तीय सरकारों का प्रकार्य है। मैं पूछता हूं कि सीमा-कर को केन्द्र के लिये छीनने का क्या आपका काम है? आप उन करों को क्यों छीनते हैं जिन पर प्रान्तों का वैध अधिकार है और जिनको स्थानीय निकाय सदैव संगृहीत करते चले आये हैं? इस कर से केन्द्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं केवल एक ही ऐसा उदाहरण सुनना चाहता हूं जिसमें किसी समय भी सीमाकर केन्द्र द्वारा संगृहीत किया गया हो। यह प्रान्तीय विषय रहा है और स्थानीय निकाय इसे सदैव उगाते रहे हैं। प्रान्तीय सरकारों ने भी इसकी एक पाई भी अपने पास नहीं रखी, प्रत्युत पूरे के पूरे कर को स्थानीय निकायों को दे दिया है। सीमाकर के बढ़ाने में यह रुकावट और इस सम्बन्ध में अनुमति प्राप्त करने के लिये केन्द्र की शरण में जाने का यह फल हुआ है कि स्थानीय निकाय की वित्तीय व्यवस्था को बहुत क्षति हुई है।

श्रीमान, इस प्रश्न पर मैंने अपने विचारों की पर्याप्त रूप से विशद व्याख्या कर दी है। पारिभाषिक विषय होने के कारण बहुत से सदस्य शायद इसे समझने का प्रयत्न नहीं करते हैं, पर मैं इस महान सभा से एक बात का ध्यान रखने के लिये निवेदन करूंगा कि यदि आप यह चाहते हैं कि स्थानीय निकाय रहें, यदि आप यह चाहते हैं कि जन-साधारण सुखी रहे, तो आप उनको पर्याप्त धन दिये बिना ऐसा नहीं कर सकते हैं। आप उन्हें केवल कुछ शक्तियां देते हैं, पर आप उन्हें वह धन नहीं देते जो उनका है। आज प्रमोद-कर, विद्युत-कर और ऐसे ही अन्य कर जो वास्तव में स्थानीय मंडल के हैं, प्रान्तों द्वारा ले लिये जाते हैं। यूरोप की काउन्टी कौंसिलों में, और मैं आपको बता सकता हूं कि अमरीका के कई राज्यों में इन करों को स्थानीय निकाय द्वारा संगृहीत किया जाता है न कि सरकार द्वारा। ट्राम, बस और टेक्सी का संचालन अन्य देशों में स्थानीय निकायों द्वारा होता है और सारा लाभ उनका होता है। स्थानीय निकाय 1935 तक सीमाकर का उपभोग करते रहे, पर उस वर्ष से उनसे यह छीन लिया गया। मुझे बहुत

[श्री आर.के. सिधवा]

दुख है कि भारत-शासन-अधिनियम का यह विशेष उपबन्ध संविधान के मसौदे में ज्यों का त्यों ले लिया गया है। मैंने आशा की थी कि सरकार स्थानीय निकायों की कठिनाइयों को ध्यान में रखेंगी। मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति कम से कम इस बात पर ध्यान रखेगी कि इस खंड को निकाल दिया जाये, विशेषकर जबकि इस प्रकार का प्रस्ताव पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त जैसे व्यक्ति द्वारा पेश किया गया है और मेरे विचार से यह स्वशासन विभाग के मंत्रियों के सम्मेलन के कहने पर किया गया है, जिसमें सर्वसम्मति से स्थानीय निकायों के अच्छे रूप में कार्य करने के लिये इस वित्तीय उपबन्ध की मांग की गई थी। केवल वित्त मंत्रालय ही इसके विरुद्ध है। वह सबको हड़प करना चाहती है। यह अनुचित है। इस दृष्टिकोण से मैं यह संशोधन पेश करता हूं और मैं आशा करता हूं कि कि इस अन्तिम दशा में भी मसौदा-समिति इस कर को स्थानीय निकायों के लाभार्थ प्रान्तों के उगाहने पर छोड़ने की आवश्यकता, प्रमुखता और महत्व पर विचार करेगी। मेरे पास यहां संयुक्त प्रान्त की सहायता अनुदान समिति का प्रतिवेदन है। मैं चाहता हूं कि मसौदा-समिति इस प्रतिवेदन को पढ़ लेती। उन्होंने सीमाकर के सम्बन्ध के विषय को बहुत दृढ़ कर दिया है और वे कहते हैं कि सीमाकर को स्थानीय निकायों द्वारा उगाहने देना चाहिये। वे यह भी कहते हैं कि इस कर के उगाहने में मदों को बढ़ाने और कर को बढ़ाने की स्वतंत्रता स्थानीय निकायों को होनी चाहिये। यदि आप इसमें रोड़ा अटकाते हैं, तो आप स्थानीय निकायों के प्रशासन के प्रति एक बड़ा अहित कर रहे हैं, जबकि प्रान्तीय सरकार पंचायत अनिधियम के निर्माण द्वारा उनके हित के लिये भरसक प्रयत्न कर रही हैं। संयुक्त प्रान्त ने यह अधिनियम पारित कर दिया है—यद्यपि अभी समय नहीं है कि यह कहा जा सके कि यह किस प्रकार कार्यान्वित होगा। मध्य प्रान्त की सरकार ने भी एक ऐसा अधिनियम बनाया है। यदि आप उनको पर्याप्त निधि और वित्त सम्बन्धी साधन नहीं देते हैं, तो स्थानीय निकाय किस प्रकार उन छोटे लोगों की कुछ भलाई कर सकेंगे, जिनके लिये आज प्रत्येक व्यक्ति मौखिक सहानुभूति दिखा रहे हैं? इन बातों को कहकर मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और आशा करता हूं कि मसौदा-समिति स्वीकार करेगी।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** उपाध्यक्ष, मैं अपने संशोधन संख्या 7 और 11 पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 8 भी पेश नहीं किया जाता है, क्योंकि पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त यहां उपस्थित नहीं हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (1) के उपखंड (ग) में 'railway' शब्द के पश्चात् एक अर्द्ध विराम और 'sea' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

श्रीमान, मैं अपना अगला संशोधन भी पेश करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (2) में 'revenues of India' शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'estate' शब्द के पश्चात् 'or succession' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

मैं निवेदन करता हूं कि यह पूर्णतया औपचारिक संशोधन है। खंड (ख) में कहा गया है "संपत्ति सम्बन्धी सम्पदा शुल्क..." इसमें मैं "अथवा उत्तराधिकार शुल्क" बढ़ाना चाहता हूं। संपदा शुल्क और उत्तराधिकार शुल्क में अन्तर है। संपदा शुल्क किसी ऐसे व्यक्ति की मृत्यु पर, जो संपदा का स्वामी है, लिया जा सकता है और उत्तराधिकार शुल्क उत्तराधिकार के दृष्टिकोण से लगाया जाता है। यदि हम, जिस संपत्ति पर कर लगाया जाता है, उसका मूल्य एक लाख रखते हैं तो उन सबको संपदा शुल्क देना होगा जो, इस सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं। पर यदि उत्तराधिकारी एक से अधिक हैं, तो हर एक का भाग एक लाख से कम होगा और उत्तराधिकार शुल्क कोई भी नहीं देता है। आजकल विधान-मंडल में संपदा शुल्क लगाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत है। यहां हम एक दीर्घकाल के लिये विधान बना रहे हैं। अतः हमें दोनों संपदा अथवा उत्तराधिकार शुल्क रखने चाहियें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उत्तराधिकार शुल्क (क) में आ जाता है, जिसमें यह कहा गया है "संपत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क"। उसको (ख) में क्यों दुहराते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** दोनों को मिलाया जा सकता था।

***उपाध्यक्षः** पिछली बैठकों में अंक 2 को छपी सूचियों में पृष्ठ 297 और 298 पर के संशोधनों को आमंत्रित किया गया था और किसी भी सदस्य ने उन्हें पेश नहीं किया। क्या कोई सदस्य उनमें से किसी संशोधन को पेश करना चाहता है? यदि कोई सदस्य उनको देश नहीं करना चाहता है, तो क्या कोई सदस्य अनुच्छेद पर बोलना चाहता है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा द्वारा पेश किये गये संशोधन के समर्थन के लिये मैं खड़ा हुआ हूं। उन्होंने अपने स्पष्ट भाषण में अपने संशोधन का आशय सभा को समझा दिया और उसका महत्व भी बता दिया। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे प्रान्त के मुख्य मंत्री जैसे व्यक्ति माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त ने एक ऐसे ही संशोधन की सूचना दी है। श्रीमान, यह दूसरी बात है कि स्थानीय निकायों का विषय इस सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। पहला अवसर वह था, जब हम अनुच्छेद 256 पर वाद-विवाद कर रहे थे और जब मैंने उस सीमा को बढ़ाने के लिये संशोधन पेश किया था, जिस सीमा तक स्थानीय निकाय अपने क्षेत्रों में लोगों पर कर लगा सकते थे, अर्थात् उनकी वार्षिक आय का एक प्रतिशत अथवा 1000 रुपये तक। इसका इस बात पर विरोध किया था कि आय कर पर प्रभाव पड़ेगा और केन्द्र द्वारा लोगों की आय पर कर लगाया जाता है। यहां फिर मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने यह सुझाव दिया है कि खंड (3) अनुच्छेद 250 में से अपमार्जित किया जाये और इस मद से राजस्व का विनियोग केन्द्रीय सरकार द्वारा न किया जाये, वरन् इस राजस्व से प्राप्त हुआ धन के विनियोग करने का हक स्थानीय

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

निकायों को दिया जाये। अत: मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है कि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा के समस्त तर्कों के प्रस्तुत करने पर भी और उनके सभा में यह कहने पर भी कि देश के समस्त प्रान्तों के समस्त स्थानीय स्वशासन विभाग के मंत्रियों ने यह सुझाव दिया है कि इस खंड को निकाल देना चाहिये और पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त जैसे व्यक्ति के यह सुझाव देने पर भी कि इस खंड को अपमार्जित किया जाये, मसौदा-समिति इस संधाोन को इसलिये स्वीकार नहीं करेगी कि वित्त मंत्री यह चाहते हैं कि यह धन उनके विभाग में पहुंचे।

श्रीमान, इस संशोधन के कारण एक बड़ा ही मूलभूत प्रश्न खड़ा होता है। कदाचित हम यह सोचते हैं कि केवल केन्द्र और प्रान्तों के लिये ही निधि की व्यवस्था होनी चाहिये। हम यह भूल जाते हैं कि स्थानीय निकायों को भी महत्वपूर्ण प्रकार्य करने हैं। मसौदा-समिति के एक सदस्य से यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये निकाय निरर्थक हैं और यदि उनको धन दिया जाये, तो वह धन व्यर्थ बरबाद होगा। इन निकायों का अनुभव रखने वाले एक व्यक्ति के नाते मेरा निजी विचार यह है कि अन्ततोगत्वा ग्रामों और नगरों में रहने वाले लोगों की आपको हिफाजत करनी होगी और इन स्थानीय निकायों द्वारा ही आपकी उन तक पहुंच हो सकती है। मैं जानता हूं कि स्वयं मेरे जिले में लगभग एक हजार प्राथमिक पाठशालायें हैं और इन पाठशालाओं की ऐसी दशा है कि किसी भी प्रकार के लिये वह लज्जा की बात होनी चाहिये और यदि कोई व्यक्ति उनमें सुधार करना चाहता है, तो लाखों करोड़ों रुपये लगेंगे, पर मेरे जिला मंडल की समस्त आय कठिनाई से 10 लाख रुपये है—वह उनमें कोई सुधार नहीं कर सकता है। यहां आप शिक्षा के लिये, विश्वविद्यालयों के लिये और ऐसी ही सब बातों के लिये करोड़ों रुपयों की योजना पारित करते हैं, पर जब स्थानीय निकायों को धन देने का प्रश्न आता है, जो वास्तव में ग्रामीण लोगों के बच्चों के लिये पाठशालाओं की वित्त व्यवस्था करते हैं, तो हम कहते हैं कि इस अनुच्छेद में से इस खंड को नहीं निकालना चाहिये और स्थानीय निकायों के लिये हमें कर लगाने की सीमा को एक हजार रुपये तक नहीं बढ़ाना चाहिये। अत: मैं कहता हूं कि स्थानीय निकायों की सहायता करने से मना करने पर अड़े रहने से आप संविधान के उसी उद्देश्य को निष्फल कर रहे हैं, जो जनता के लाभ के लिये है। मैं कहता हूं कि जनता का सर्वोत्तम हित तभी हो सकता है जबकि स्थानीय निकायों की उसके लिये सारी आवश्यकतायें पूरी की जायें। उनको राजस्व के साधन दिये जाने चाहिये, जिसमें वृद्धि होती जा रही है और सीमा-कर, जो कि तीर्थयात्रियों पर लगाया जाता है, उनको दिया जाना चाहिये, क्योंकि यात्रियों की सुविधा के लिये उन्हें बहुत खर्च करना पड़ता है और यदि आप उन्हें सीमा कर से वंचित रखते हैं, तो वे यात्रियों की ठीक-ठीक सेवा नहीं कर सकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति धन-राशि हड़पना चाहता है और स्थानीय निकायों के विदोहन के लिये राजस्व का कोई साधन शेष नहीं रहा है और जो थोड़ा-सा उन्हें मिलता भी है, उससे वे अपना गुजारा तक नहीं कर सकते हैं। अत: श्री सिधवा द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं जोरदार समर्थन करता हूं; उन्होंने यह बता दिया है कि यह उनकी ही राय नहीं है, वरन् देश के विभिन्न प्रान्तों के स्थानीय स्वशासन विभाग के मंत्रियों की सर्वसम्मति से यहीं राय है; उन्होंने यह भी कहा है कि इस कर का प्राप्त करना स्थानीय निकायों का वैधक अधिकार है, पर फिर भी मैं नहीं समझ सकता हूं कि यह संशोधन

स्वीकार क्यों नहीं कर लिया जाता है। पिछली बार इस अनुच्छेद को आगे और विचार करने हेतु स्थगित कर दिया गया था और इस कारण मैं सभा से यह निवेदन करता हूं कि वह श्री सिधवा के संशोधन का समर्थन करे और इस बात का ध्यान रखे कि यह खंड इस संविधान में न रहे।

*श्री वी.एस. सर्वटे: उपाध्यक्ष महोदय, स्थानीय निकायों के सम्बन्ध में मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने जिस मांग को प्रस्तुत किया है, मैं उससे पूर्ण सहानुभूति रखता हूं, पर इस अनुच्छेद की जिस प्रकार मैं व्याख्या करता हूं उसके अनुसार मुझे इस संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती है, जो उन्होंने प्रस्थापित किया है। इस समय जिस रूप में अनुच्छेद है, उसमें सभा ने यह देखा होगा कि सिवाय एक पद के, अर्थात् मुद्रांक शुल्क के, जिसको अनुच्छेद 249 में स्थानान्तरित कर दिया गया है, वह भारत-शासन-अधिनियम की धारा 137 की प्रतिलिपि है। अब यह स्वीकार करते हुए कि स्थानीय निकाय बड़े ही महत्वपूर्ण निकाय हैं और महत्वपूर्ण होने के कारण जैसा कि श्री सिधवा ने कहा है, उनके लिये प्रान्तीय सरकार की सहायता और प्रोत्साहन अपेक्षित है, जब तक कि यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में प्रान्तीय सरकारों को उस आय का, जिसको वे केन्द्र से प्राप्त करते हैं, बांट करने का पूर्ण स्वविवेक देता है। प्रत्येक प्रान्त में राष्ट्र-निर्माण के बहुत से कार्य हो रहे हैं। ग्राम पंचायतें हैं, स्थानीय निकाय हैं, औषधि तथा अन्य शिक्षा जैसे विषय हैं, और यह हो सकता है कि किसी प्रान्त में ग्राम पंचायतें अथवा स्थानीय निकाय महत्वपूर्ण हों और अपेक्षाकृत उनकी ओर अधिक ध्यान देना अपेक्षित हो और देश के किसी अन्य भागों में शिक्षा पर अधिक ध्यान देना आवश्यक हो और एक तीसरे प्रान्त में स्वास्थ्य और औषधि पर। अत: जब इन विभिन्न प्रान्तों की सरकारों को यह आय प्राप्त हो जाती है, तो प्रान्त की विशेष आवश्यकता के अनुसार सरकार को आय का बांट करने का पूर्ण स्वविवेक होगा। यदि हम संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, तो प्रभाव यह होगा कि प्रान्तीय सरकारों का स्वविवेक परिमित तथा निर्बन्धित हो जायेगा और इस प्रकार समस्त आय अनिवार्यत: स्थानीय निकायों को दे दी जायेगी; जबकि वर्तमान रूप में स्थानीय निकायों अथवा अन्य राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी निकायों को बांट में देने का स्वविवेक है। अत: मैं समझता हूं कि संशोधन के माननीय प्रस्तावक महोदय के मन में जो उद्देश्य है, उसकी पूर्ति यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में अधिक अच्छे रूप से करता है, अधिक स्वविवेक देता है और इसमें अधिक लचीलापन है। यदि इस प्रसंग में संयुक्त प्रान्तीय सरकार यह चाहती है कि ग्राम-पंचायतों और स्थानीय निकायों को विशेष रूप में प्रोत्साहित किया जाये, तो इस संशोधन के यहां स्वीकार किये बिना उसको ऐसा करने का पूर्ण स्वविवेक है। अत: मैं समझता हूं कि जिस रूप में यह अनुच्छेद है, उसी रूप में रहे।

*श्री आर.के. सिधवा: क्या मैं माननीय वक्ता महोदय से यह जान सकता हूं कि क्या वे यह चाहते हैं कि किसी प्रान्त के एक क्षेत्राधिकार से संगृहीत सीमा-कर को उसी प्रान्त के किसी अन्य क्षेत्राधिकार को स्थानान्तरित किया जा सकता है? क्या उनका यही अभिप्राय है?

*श्री वी.एस. सर्वटे: यह सिद्धान्त पर निर्भर है। व्यवस्था यह भी गई है कि समस्त संगृहीत राशि को समस्त प्रान्तों में बांट दिया जायेगा। जो विभाजन का

[श्री वी.एस. सरवटे]

सिद्धान्त संपत्ति उत्तराधिकार सम्बन्धी शुल्क के लिये प्रस्तुत किया जायेगा, उसे सीमा-कर के लिये भी विनिधान किया जा सकता है। जिस प्रकार मैं उसका निर्वचन करता हूं, वह यह है कि जब संसद विभाजन सिद्धान्त की विधि का विनिधान करेगी तो विभिन्न श्रेणी (क) और (ख) के लिये विभिन्न सिद्धान्तों का विनिधान किया जा सकता है और (ग) और (घ) के लिये विभिन्न सिद्धान्तों का वर्तमान रूप में यह अनुच्छेद अधिक व्यापक क्षेत्र तथा अधिक लचीलापन प्रस्तुत करता है और संशोधन से हम प्रान्तीय सरकारों के लिये कठिनाइयों पैदा कर रहे हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद के समर्थन के लिये खड़ा होता हूं; एक सीधी सी बात के कारण मैं श्री सिधवा के संशोधन का विरोधी हूं।

यह संविधान केवल दो सरकारों को अभिज्ञात करता है—केन्द्रीय और प्रान्तीय। सांविधानिक विधि के अन्तर्गत किसी तीसरी सरकार की स्थिति नहीं है।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ अनुच्छेद 250 को सावधानी से पढ़िये; आपको यह विदित हो जायेगा कि स्थानीय निकायों का वहां उल्लेख है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ वह यूं ही वहां आ गया है। यदि स्थानीय निकायों को हम यह शक्ति देते हैं, तो हमें यह भी कहना पड़ेगा कि इन स्थानीय निकायों की क्या क्या शक्ति और प्रकार्य होंगे। इन स्थानीय निकायों के लिये यहां एक संविधान बनाना पड़ेगा। यद्यपि वास्तव में वह इस संविधान के मसौदे में सच्ची सरकार है, पर केवल दो सरकारें ही दी गई हैं। यदि हम पृष्ठद्वार से एक तीसरी सरकार अभिज्ञात कर लेंगे, तो हम अगणित कठिनाइयां और उलझनें पैदा कर लेंगे।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ (मद्रास: जनरल): श्रीमान, मुझे खेद है कि श्री सिधवा द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन नहीं कर सकता हूं। अनुच्छेद 250 को अक्षरश: भारत-शासन-अधिनियम की धारा 137 से लिया गया है। केवल इसी आधार पर मैं अपना दावा नहीं कर रहा हूं। इसके विपरीत जिस सिद्धान्त के पुर:स्थापन करने का प्रयत्न श्री सिधवा के संशोधन द्वारा किया जाता है वह सिद्धान्त संकटजनक है तथा उचित भी नहीं है। वह इस कारण संकटजनक है। हम प्रान्तीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने पुस्तकों और प्रकाशनों के कुछ उद्धरण और कुछ खास प्रान्तों के कुछ मंत्रियों के विचार पढ़ कर सुनाये हैं। उनको ऐसा कहने का अधिकार है, क्योंकि केन्द्र द्वारा संगृहीत करों की आय का विभाजन जैसा वे चाहें वैसा किया जा सकता है। यदि हम केन्द्र द्वारा संगृहीत कुछ खास करों का प्रान्तों में बटवारा या उनको प्रान्तों के लिये इस सिद्धान्त पर नियत करें कि वे जिन प्रयोजनों के लिये उचित समझें उनके लिये उनका उपयोग न करें, वरन् प्रान्तीय प्रशासन के किसी विशेष विभाग के लिये उसका उपयोग करें, तो यह तो प्रान्तीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप करना होगा। मैं नहीं जानता हूं कि इन सदस्यों में से कितने इस प्रस्स्थापना के पक्ष में हैं। हमारे यहां पेट्रोल-कर लिया जाता है और यह कर सड़कों के लिये नियत किया जा रहा है; कुछ राशि शिक्षा के लिये नियत है, इत्यादि इत्यादि। अन्त में प्रान्त के लिये

क्या शेष रह जाता है? आपको यह उपबन्ध जितना लचीला हो सकता है, उतना लचीला बनाना चाहिये।

एक और भी कठिनाई है। सीमा-कर प्रत्येक सीमा पर संगृहीत नहीं किये जाते हैं और न सदैव एक ही स्थान पर संगृहीत किये जाते हैं। संशोधन में यह नहीं कहा गया है कि विशिष्ट सीमाओं पर संगृहीत की गई राशि उन स्थानीय प्रशासनों पर नियत की जाती है। और फिर स्थानीय निकाय अनेक हैं; गांवों में पंचायतें हैं, समस्त जिले के लिये जिला मंडलियां हैं; विशेष स्थानों पर क्षेत्राधिकार रखने के लिये नगर पालिकायें हैं। क्या उनका अभिप्राय यह है कि इस राशि को पंचायतों, जिला मंडलियों और नगर पालिकाओं में बांट दिया जाये? फिर भी प्रान्तीय सरकार के लिये कुछ स्वविवेक की आवश्यकता है। और फिर स्थानीय प्रशासनों पर विभिन्न विषयों का-प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, जिलोत्सारण और जलप्रदाय का आभार है। किसके लिये इस राशि का उपयोग किया जाये? यदि यह संशोधन स्वीकार कर भी लिया जाये तो भी निहित स्वविवेक में यह हस्तक्षेप नहीं करेगा। चाहे वह लचीला न हो, कठोर हो, फिर भी प्रान्तीय सरकार को उन शक्तियों के प्रयोग करने का अधिकार है, जो उसके पास है और यह कहने का अधिकार है कि इन राशियों का स्थानीय निकायों द्वारा इन इन प्रयोजनों के लिये उपयोग किया जायेगा। यह ठीक नहीं है कि स्वयं संविधान में कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिये और कुछ विशिष्ट स्थानीय प्रशासनों के लिये इन राशियों का उपविभाजन किया जाये और उनको नियत किया जाये। यह सुनकर मुझे खेद हुआ कि जब मेरे माननीय मित्र ने यह कहा कि यह संशोधन किसी अन्य मंत्री द्वारा आता, तो मसौदा-समिति उसे स्वीकार कर लेती। मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति इन विषयों के गुणावगुणों पर विचार करती है, न कि उस व्यक्ति पर जो किसी संशोधन को प्रस्तुत करता है।

***श्री आर.के. सिधवाः** यह एक बार हो चुका है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** ऐसा हो गया होगा। पर जहां तक अनुच्छेद 250 का सम्बन्ध है, जो लोग इस विषय से रुचि रखते हैं और जिन पर इस विषय का प्रभार है, वे वही लोग हैं जिन पर प्रान्तीय शासन का प्रभार है। मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा को प्रान्तीय सरकार की किसी सिफारिश पर, जिसके साथ अनुभव, मान्यता और प्राधिकार संलग्न रहते हैं, व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ध्यान देना चाहिये, चाहे वे व्यक्ति इतने उच्च कोटि के हों जैसे श्री सिधवा। वे यह नहीं कह सकते हैं कि उन्हें किसी प्रान्तीय सरकार के मुख्य मंत्री का सा पूर्ण अनुभव है। उनको सभा में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये कि मसौदा-समिति स्पष्ट भेदभाव बरतती है। मसौदा-समिति के लिये मुझे बहुत सम्मान है। वह अनेक असुविधायें और कष्ट उठा रही है। उस पर सारे संविधान के मसौदे का प्रभार है। इस अवसर पर मैं मसौदा-समिति को उसकी इस योग्यता के लिये धन्यवाद देता हूं, जिस योग्यता से वह कार्य-संचालन कर रही है। उसके आचार-व्यवहार की निन्दा करना अथवा उस पर यह दोषारोपण करना कि वह स्पष्ट रूप से भेदभाव बरतती है, बिल्कुल असंगत है।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ क्या मैं माननीय सदस्य से यह जान सकता हूं कि उनके पास इस प्रश्न का क्या उत्तर है? भारत-शासन-अधिनियम 1935 के पूर्व यह विषय प्रान्तीय विषय था और 1935 के अधिनियम द्वारा इसे केन्द्र को दे दिया गया है।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ वह इस प्रकार नहीं है कि आय को केन्द्र ले लेगा। केन्द्र केवल संग्रहकर्ता है। एकरूपता निश्चित करने के लिये ही केन्द्र संग्रह करता है। मेरे माननीय मित्र यह भी देख सकते हैं कि एक और प्रान्तीय करके सम्बन्ध में अर्थात् विक्रय कर के सम्बन्ध में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिये प्रान्तीय वित्त मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया जा रहा है। केन्द्र और भी अधिक वेग तथा कौशल के साथ कार्य कर सकेगा और विभिन्न प्रान्तों को इन करों की आय का बटवारा कर सकेगा। हमारे लिये यह कोई नई बात नहीं है; संपत्ति उत्तराधिकार सम्बन्धी शुल्क और संपदा शुल्क इसी श्रेणी में हैं।

*__उपाध्यक्ष:__ क्या श्री सिधवा का यह भी विचार है कि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में संगृहीत कर केवल उन्हीं प्रान्तों को दिया जाये या इन प्रान्तों में के स्थानीय निकायों को?

*__श्री आर.के. सिधवा:__ अभी तो इन करों का संग्रह स्थानीय निकायों द्वारा किया जाता है। भारत-शासन-अधिनियम 1935 इस विषय को केन्द्रीय विषय बना देता है।

*__उपाध्यक्ष:__ अब हमने समुद्र द्वारा बाहित वस्तुओं और यात्रियों पर सीमा-कर शामिल कर लिया है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और अन्य उन बड़े पत्तनों में संगृहीत सीमा-कर को लीजिये, जिनके अन्तर्गत बड़े-बड़े क्षेत्र आ जाते हैं। क्या उन निगम अथवा प्रान्तों को इस आय को रखने का हक दिया जाये?

*__श्री आर.के. सिधवा:__ कलकत्ता-निगम या मद्रास-निगम को लाभ होता है।

*__उपाध्यक्ष:__ मूल प्रश्न यह है कि कलकत्ता पत्तन एक प्रान्त से अधिक प्रान्तों के लिये वस्तुओं और यात्रियों को वाहित करता है। खैर, क्या डॉ. अम्बेडकर कुछ कहना चाहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ अब मैं सभा में संशोधन पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:—

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (1) के उपखंड (ग) में 'railway' शब्द के पश्चात् एक अर्द्ध विराम और 'sea' शब्द प्रविष्ट किया जाये।

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:—

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (2) में 'revenues of India' शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2851 के निर्देश सहित अनुच्छेद 250 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

'The net proceeds os such taxes recovered under sub-clause (c) and (d) be assigned by the states to the local authorities in their jurisdiction.' "

[परन्तु खंड (ग) और (घ) के अधीन भारतीय सरकार द्वारा संगृहीत की गई आय राज्यों के क्षेत्राधिकार में के स्थानीय प्राधिकारियों को सौंप दी जायेगी।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 250 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 250 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 277

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 277 पर पहुंचते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 277 की क्रम संख्या 277 के खंड (1) के रूप में कर दी जाये और इस प्रकार पुनरांकित तत्कथित अनुच्छेद में निम्न खंड जोड़ दिया जाये:—

'(2) Every order made under clause (1) of this article shall, as soon as may be after it is made, be laid before each House of Parliament.' "

[(2) इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन दिया गया प्रत्येक आदेश दिये जाने के बाद यथासंभव शीघ्र ही संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।]

यह अनुच्छेद 277 एक आनुषंगिक अनुच्छेद है। इसमें यह निर्धारित किया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा आपात उद्घोषणा कर देने पर वित्तीय परिणाम क्या होंगे। इस अनुच्छेद के खंड (1) में कहा गया है कि आपात-काल में आदेश द्वारा राष्ट्रपति प्रांतों और केन्द्र में परस्पर वित्तीय प्रबन्ध संबंधी उपबन्धों में रूपभेद कर सकता है। बाद में यह सोचा गया कि प्रांतों और राज्यों के परस्पर वित्तीय प्रबन्ध में रूपभेद करने की पूर्ण तथा अनिर्बन्धित शक्ति राष्ट्रपति को देना ठीक नहीं है और इस

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

विषय में संसद का भी हाथ होना चाहिये, अत: अब यह प्रस्थापित किया जाता है कि अनुच्छेद 277 में खंड (2) जोड़ दिया जाये जिसके द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि इस प्रबन्ध में परिवर्तन करने के लिये राष्ट्रपति द्वारा दिये गये किसी भी आदेश को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा। इसका यह अर्थ होता है कि संसद के समक्ष इस विषय को रखने के पश्चात् संसद जैसा उचित समझे वैसा करे और उसको मानना राष्ट्रपति के लिये आवश्यक होगा।

***उपाध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा संशोधन संख्या 14 पेश नहीं किया गया।

पंडित कुंजरू:–संख्या 72!

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:—

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3007 और संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 13 के निर्देश सहित अनुच्छेद 277 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:–

'277. (1) While a Proclamation of Emergency is in operation, the Union may, notwithstanding anything contained in article 251 of this Constitution, retain out of the moneys assigned by clause (1) of that article to States in the first year of a prescribed period such sum as may be prescribed and thereafter in each year of the said prescribed period a sum less than that retained in the preceding year by an amount, being the same amount in each year, so calculated that the sum to be retained in the last year of the period will be equal to the amount of each such annual deduction:

Modification of the provisions relating to distribution of taxes on income during the period Proclamation of Emergency is in operation.

Provided that the President may in any year of the said prescribed period direct that the sum to be retained by the Union in that year shall be the sum retained in the preceding year and that the said prescribed period shall be correspondingly extended, but he shall not give and such direction except after consultation with the States nor shall

he give any such direction unless he is satisfied that the maintenance of the financial stability of the Government of India requires him so to do.

(2) In this article, 'prescribed' means prescribed by the President by Order.' "

[277. (1) जब आपात-उद्घोषणा प्रवर्त्तन में है, तो इस संविधान के अनुच्छेद 251 में किसी बात के होते हुए भी इस अनुच्छेद के खंड (1) द्वारा राज्य को सौंपे गये धन में से विनिहित काल के प्रथम वर्ष में संघ उतनी रकम रोक लेगा, जो विनिहित की जायेगी और उसके पश्चात् तत्कथित विनिहित काल के प्रत्येक वर्ष गत वर्ष रोकी गई रकम से कम रकम रोकेगा। यह कमी इतनी ही मात्रा में प्रति वर्ष होती जायेगी और इस वार्षिक कमी का हिसाब इस प्रकार के लगाया जायेगा कि वह अन्तिम वर्ष में रोकी जाने वाली रकम के बराबर हो।

परन्तु तत्कथित विनिहित काल के किसी वर्ष के लिये राष्ट्रपति यह निदेश दे सकेगा कि उस वर्ष में संघ द्वारा रोकी जाने वाली रकम वही रकम होगी जो उससे गत वर्ष रोकी गई थी और यह कि तद्नुसार तत्कथित विनिहित काल बढ़ा दिया जायेगा, पर राज्यों से परामर्श किये बिना वह ऐसा कोई निदेश नहीं देगा, और न वह तब तक ऐसा कोई निदेश देगा, जब तक उसका समाधान न हो जाये कि भारतीय सरकार की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए ऐसा करना उसके लिये अपेक्षित है।

(2) इस अनुच्छेद में 'विनिहित' से अभिप्रेत है, राष्ट्रपति द्वारा निदेश से विनिहित।]

श्रीमान, इस संशोधन की भाषा जटिल है, पर यह भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम में से ली गई है, जिससे माननीय सदस्य परिचित हैं। मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर भी, जो बिना किसी बात के हंसे थे, इससे परिचित होंगे। मेरे संशोधन का अर्थ यह है। अनुच्छेद 251 के अधीन एक ऐसा प्रतिशत विनिहित करना होगा, जो आय-कर की पूरी आय के विभाजनीय भाग में से प्रांतों का भाग होगा। उस अनुच्छेद की भाषा ऐसी है कि उससे यह विदित होता है कि समस्त प्रांतीय भाग को एक दम प्रांतों को दे दिया जायेगा। स्थिति के अनुसार वित्त आयोग से परामर्श कर या बिना परामर्श के जैसे ही राष्ट्रपति द्वारा वह विनिहित कर दिया जाता है, तो तुरन्त ही उसे प्रांतों को दे देना चाहिये। मेरा संशोधन यह प्रस्थापित करता है कि अनुच्छेद 251 की भाषा के होते हुए भी केन्द्र एक बार में ही प्रांतों को उनका समस्त भाग न देगा, वरन् कुछ काल में देगा; पर यदि उस काल में आपात हो जाता है और एक ऐसा भीषण आपात कि आपात-उद्घोषणा करनी पड़े, तो राष्ट्रपति यह निदेश दे सकेगा कि प्रांतों को उस वर्ष का भाग न दिया जाये, जिस वर्ष आपात हुआ। दूसरे शब्दों में यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो अनुच्छेद 277 द्वारा राष्ट्रपति को जिस शक्ति का देना प्रस्थापित

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

किया जा रहा है, वह उसको निर्बन्धित कर देगा। और यह भी कि प्रांतों को उनका भाग देने में देर चाहे हो जाये, पर जो कुछ प्रांतों को दे दिया गया है, वह वापस नहीं लिया जा सकता।

संक्षेप में अपने संशोधन के प्रयोजन की व्याख्या करने के पश्चात् मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा अनुच्छेद 277 के परिवर्तित रूप पर विचार प्रकट करूंगा। उस दिन जब मैंने अनुच्छेद 277 का निर्देश किया था और यह कहा था कि वह राज्यों के वित्तीय अधिकारों के लिये वास्तव में घातक है, तो डॉ. अम्बेडकर ने मेरे उसकी ओर निदेश करने पर आपत्ति की थी और यह कहा था कि वह अनुच्छेद पेश नहीं किया गया है, अत: शायद उसको पेश न किया जाये अथवा उसमें रूपभेद कर दिया जाये।

अब उन्होंने एक रूपभेद प्रस्थापित किया है: पर क्या इस रूपभेद से कुछ लाभ है? मान लीजिये कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को पेश न करते, तो आपात-काल में प्रांतों और राज्यों के परस्पर वित्तीय संबंधों में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा किये गये रूपभेद पर विचार करने में क्या संसद को कोई रोक सकता था? जिस विषय को संसद चाहे उस पर विचार करने का उसे मूल अधिकार है। अत: डॉ. अम्बेडकर का संशोधन उसकी शक्ति को किसी रूप में भी नहीं बढ़ाता है। संसद को वह ऐसा कोई अधिकार नहीं देता है, जो उसके अभाव में उसके पास नहीं था अत: जिस रूप में अनुच्छेद 277 है, उसी रूप में हम उस पर विचार करें अर्थात् उस रूप में जिसमें कि वह संविधान के मसौदे में प्रस्थापित किया गया है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर हम कोई ध्यान न दें, क्योंकि व्यवहार में उसका कुछ भी अर्थ नहीं है। यह संशोधन संसद को किसी ऐसे आदेश पर, जिसे राष्ट्रपति दे, विचार करने का ऐसा कोई अतिरिक्त अवसर प्रदान नहीं करता है, जो इसके अभाव में उसको न मिल सके। अब आपात की उद्घोषणा प्रवर्त्तन में है, तो अनुच्छेद 277 राष्ट्रपति को यह निदेश देने के लिये प्राधिकृत करता है "कि उस कालावधि के लिये जो ऐसी उद्घोषणा के प्रवर्त्तन शून्य होने वाले आर्थिक वर्ष की समाप्ति से, किसी अवस्था में, परे विस्तृत न हो जो उस आदेश में उल्लिखित की जाये, इस संविधान के अनुच्छेद 249 से 259 के समस्त अथवा कोई प्रावधान ऐसे अपवादों अथवा रूपभेदों के साथ प्रभावी होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति उचित समझे"। इस अनुच्छेद में राष्ट्रपति जिस प्रकार चाहे उस प्रकार प्रांतों और राज्यों के परस्पर वित्तीय संबंधों में परिवर्तन करने के पूर्ण प्राधिकार का उपयोग करेगा। अत: आइये, हम इस बात पर विचार करें कि वह क्या वस्तु है जिसे प्रांतों को अनुच्छेद 277 में निर्दिष्ट अनुच्छेद प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत संघ संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन मुद्रांक शुल्क का और भैषजीय तथा प्रसाधन की वस्तुओं पर उस उत्पादन शुरू का उद्ग्रहण कर सकती है, जो संघ सूची में उल्लिखित है। इन शुल्कों का संग्रह और विनियोग राज्य द्वारा किया जायेगा। उनकी आयों में से केन्द्र ने भाग लेने का कभी दावा नहीं किया है। अनुच्छेद 250, जिसको हमने अभी समाप्त किया है, यह उपबन्ध करता है कि कुछ शुल्कों और करों का उद्ग्रहण और संग्रह केन्द्र द्वारा किया जायेगा, जिनमें कृष्य भूमि को छोड़कर अन्य संपत्ति के उत्तराधिकार विषयक शुल्क और कृष्य भूमि को छोड़कर अन्य संपत्ति विषयक संपत्ति पर शामिल हैं, पर ये

पूरे के पूरे प्रांतों में बांट दिये जायेंगे, यदि वे प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों में उपरोपणीय भाग न हों। यह दूसरा साधन है, जिसके द्वारा प्रांत अपनी आय प्राप्त करेंगे और यह भी पूर्णतया प्रांतीय है। इन शुल्कों की आय पर केन्द्र ने किसी प्रतिशत की कभी मांग नहीं की है। तीसरा साधन आय पर कर का होगा। आदेश द्वारा राष्ट्रपति आय-कर की समस्त आय के विभाजनीय भाग का प्रतिशत नियत करेगा जो प्रांतों को दिया जायेगा, इसको मैं ले चुका हूं। इसके बाद हम उत्पादन शुल्कों पर आते हैं—संघ-सूची में उल्लिखित भेषजीय और प्रसाधन की वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क के अतिरिक्त अन्य उत्पादन शुल्कों का उद्ग्रहण और संग्रह भारतीय सरकार द्वारा किया जायेगा। पर यदि संसद इस प्रकार का उपबन्ध करती है, तो इन शुल्कों की आय केन्द्र और प्रांतों में विभाजित हो सकती है। इन पर विचार करने की राष्ट्रपति को कोई शक्ति नहीं है। इसके बाद जूट पर शुल्क है जिसको अभी केन्द्र और प्रांतों में विभाजित नहीं किया जायेगा, पर उन प्रांतों को, जिन्हें जूट निर्यात-शुल्क की आय में से भाग लेने का हक्क है, कुछ रकम प्राप्त होगी जो इस शुल्क में से उनको भाग न मिलने की कमी को पूरी करने के लिये विनिहित की जायेगी। श्रीमान, अन्त में केन्द्र की ओर से अनदान हैं जिनमें समय समय पर परिवर्त्तन किया जा सकता है।

श्रीमान, ये विभिन्न प्रकार हैं जिनके द्वारा प्रांतों को अपनी आय होगी। और अनुच्छेद 277 आय के इन सब या कुछ साधनों को प्रांत के लिये प्राप्त होने के संबंध में राष्ट्रपति को, जैसा वह चाहे, वैसा विनिश्चित करने का अधिकार देता है। अब यदि राष्ट्रपति द्वारा ऐसी कार्यवाही की जाती है तो प्रांत क्या करेंगे? केन्द्र द्वारा प्रांतों को दी जाने वाली रकम यदि किसी विनिहित काल के अन्तर्गत दी जाती है, तो आपात में राष्ट्रपति यह कह सकेगा कि जब तक आपात वर्तमान है, प्रांतों को जितना धन दिया जा चुका है उससे अधिक नहीं दिया जा सकेगा। ऐसी कार्यवाही समझ में आने योग्य तथा युक्ति-युक्ति होगी, पर अब तो प्रस्थापित किया जा रहा है वह यह है कि प्रांतों से वित्तीय समझौता करने के बाद जबकि वे अपना खर्च बढ़ा दें और अपने दायित्व को पूरा करने के लिये केन्द्र से प्राप्त होने वाले धन पर निर्भर हो जायें तो राष्ट्रपति उनको यह कह सकेगा कि उनकी चाहे तो कुछ भी दशा हो जो वित्तीय समझौता उन्होंने किया है उसमें रूपभेद होना चाहिये। ऐसी दशा में प्रांत क्या करेंगे? जहां तक मैं समझ सकता हूं कि उनको वित्तीय निर्वाण का सुख भोगना पड़ेगा। प्रांतीय सरकारों को और जनता को बहुत हानि होगी-हो सकता है कि उन्हें लंगोटी लगाकर रहना पड़े, पर केन्द्र उनकी दशा पर कोई ध्यान नहीं देगा। मैं समझता हूं कि ऐसी कार्यवाही अनुचित तथा अव्यवहार्य है। मेरा विचार यह है, जैसा कि मैं कह चुका हूं कि यदि आप प्रांतों को कुछ धन या कुछ करों का कुछ प्रतिशत देना चाहते हैं, तो प्रांतीय भाग के संपूर्ण धन को देने में आप विलम्ब कर सकते हैं, पर एक बार उनको जो कुछ दिया जा चुका है उसको वापस नहीं लेना चाहिये। भारत-शासन-अधिनियम 1935 में ऐसी कोई उग्र बात प्रस्थापित नहीं की गई थी। उस अधिनियम के निर्माता समझते थे और इस संविधान के निर्माता भी समझते हैं कि केन्द्र किसी न किसी दिन आपात में अन्तर्ग्रस्त होगा। पर उन्होंने केवल यही उपबन्ध किया था कि आय-कर की आय के विभाजनीय भाग में से प्रांतों के हिस्से की पूरी रकम के देने में विलम्ब किया जायेगा, पर आपात के पूर्व प्रांतों को दिये गये विभाजनीय भाग उनसे वापस नहीं लिये जा सकते थे। केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों और केन्द्रीय निर्यात शुल्कों और अन्य शुल्कों की आय, जिनका मैंने निर्देश दिया है, इनमें किसी आपात में कोई भी परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता है। अन्य करों के संबंध में प्रांतों की

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

स्थिति पर आपात के होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह सोचा गया था कि केन्द्र से प्राप्त होने वाले धन पर निर्भर होकर यदि प्रांत प्राथमिक शिक्षा का विस्तार कर देते हैं या उसे अनिवार्य बना देते हैं या चिकित्सालयों और औषधालयों की संख्या बढ़ा देते हैं या ग्रामीण जनता की दशा सुधारने का कार्यक्रम हाथ में ले लेते हैं, तो यह न्याय नहीं है कि यकायक उनसे उनके बजट में परिवर्तन करने के लिये कहा जाये और जनता को यह बता देने के लिये कहा जाये कि शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य, स्वास्थ्य-साहाय्य अथवा ग्रामोद्धार के लिये जो सुविधायें प्राप्त थीं वे अब नहीं रहेंगी। यदि भविष्य में ऐसा काम किया जाये तो प्रांतों में बड़ा ही असन्तोष होगा—और यह असंतोष वास्तव में इतना भयंकर रूप धारण करेगा कि उसके कारण उस आपता से भी एक बड़ा आपात उठ खड़ा होगा, जिसको निपटाने के लिये राष्ट्रपति को अनुच्छेद 277 में मुख्य शक्ति दी जा रही है। अत: मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 277, जिसका प्रांतीय प्रशासन पर बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ेगा, इसके स्थान में इस संशोधन को रखा जाये, जिसको मैंने पेश किया है।

श्रीमान, मैं यह नहीं जानता हं कि आय-कर की समस्त आय के विभाजनीय भाग में प्रांतों द्वारा इस समय प्राप्त किया जाने वाला हिस्सा क्या है। पर मैं समझता हूं कि अधिकतम हिस्सा अभी तक वही है, जो 1936 में विनिहित था अर्थात् 50 प्रतिशत और इस बात की पूर्ण संभावना है कि विभाजनीय भाग का प्रांतों को 42 या 43 प्रतिशत मिल रहा है। मैं यह नहीं जानता हूं कि भविष्य में क्या विनिहित प्रतिशत होगा। मान लीजिये कि वह 60 प्रतिशत है। तो आप यह निर्धारित कर सकते हैं कि 42 प्रतिशत और 60 प्रतिशत का अन्तर कुछ काल के अन्दर प्रांतों को दे दिया जायेगा और यदि इस काल में आपात हो जाता है तो वह रोका जा सकता है। इस प्रकार प्रांतों को कुछ अधिक हानि नहीं होगी, पर अनुच्छेद 277 प्रांतों के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध है और यदि उस पर अमल किया जाता है, तो प्रांतों में उपद्रव खड़ा हो जायेगा।

निस्संदेह सभा को आश्चर्य हुआ होगा कि संविधान के मसौदे में इतने उग्र उपबन्ध को रखा गया है। संविधान के निर्माता युक्ति पूर्ण व्यक्ति हैं। अत: हमें यह सोचना है कि संविधान में ऐसे अनुच्छेद को रखने का उनका विचार क्यों हुआ। प्रांतों के भावी वित्तीय संबंधी कुछ अनुच्छेदों पर जब मैंने विचार प्रकट किये थे, उस समय मैंने यह कहा था कि यदि आरम्भ में समझौता बहुत उदारतापूर्वक किया जायेगा, तो बाद में आपात होने पर केन्द्र को बड़ी गंभीर स्थिति का सामना करना होगा। मैंने यह कहने का साहस किया था कि अच्छा होगा, यदि केन्द्र आरम्भ में ही कुछ सावधान रहे, जिससे कि उसे ऐसी कोई कार्यवाही नहीं करनी पड़े जो बाद में प्रांतों की वित्तीय व्यवस्था को पूर्णतया छिन्न-भिन्न कर दे। पर उस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया। संविधान के निर्माताओं के अनुसार अब जिस प्रकार से केन्द्र की भावी वित्तीय स्थिति का परित्राण किया जा सकता है, वह केवल यह है कि आपात काल में अनुच्छेद 249 से 259 तक के उपबन्धों को रद्द करने तक का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जाये। नियुक्त हो जाने के बाद वित्त-आयोग को और संविधान पारित हो जाने के बाद राष्ट्रपति को वर्त्तमान परिस्थिति

पर सावधानी से विचार करने का और प्रांतों और केन्द्रों में राजस्व के विभाजनीय भाग का इस प्रकार वितरण करने का अधिकार होगा कि जिसमें दोनों प्रांतों और केन्द्र के हितों का उचित ध्यान रखा जाये। अनुच्छेद 277 में निर्दिष्ट समस्त अनुच्छेदों के पारित कर देने पर भी राष्ट्रपति प्रान्तों और केन्द्र के हिस्सों को इस प्रकार नियत कर सकता है कि केन्द्र को कोई ऐसी कार्यवाही करने के लिये विवश न होना पड़े, जो अनुच्छेद 277 में विचारी गई हैं। इस समय प्रांतों को प्रसन्न रखने और बाद में उनको दांत निकालने और बाल नोचने देने से ऐसा कोई मार्ग अधिक अच्छा होगा।

श्रीमान, अपने संशोधन के अर्थ और प्रयोजन को जितना स्पष्ट रूप से मैं समझा सकता था मैंने समझा दिया है। मैं आशा करता हूं कि प्रांतों के प्रतिनिधि समझ गये होंगे कि अनुच्छेद 277 में उनके हितों के लिये कितना घोर संकट है। यदि कुछ विशेष परिस्थितयों में प्रांत वित्तीय स्वायतत्ता का उपभोग नहीं कर सकते हैं तो उनके लिये कोई भी स्वतंत्रता नहीं रहेगी और उनकी स्थिति नगरपालिकाओं और जिला मंडलियों के सदृश्य हो जायेगी। पर इसी मुख्य आधार पर मैंने अपना संशोधन पेश नहीं किया है। मैंने उसके लोकहित की भावना के कारण पेश किया है, जिससे कि प्रांतों के लोगों को मनमानी रीति से उन सुविधाओं से वंचित न किया जा सके, जिनके वे शिक्षा, स्वास्थ्य साहाय्य तथा अन्य जनता के कल्याण की बातों जैसे विषयों में युद्ध काल तक में अभ्यस्त रहे हैं। अत: हम यह क्यों सोचें कि भावी युद्ध में ऐसा होगा अथवा ऐसे होने की संभावना है? अनुच्छेद 277 केवल केन्द्र की विशुद्ध वित्तीय स्वेच्छाचारिता की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत: मैं आशा करता हूं कि इस अनुचित उपबन्ध के प्रति सभा का प्रत्येक सदस्य विरोध प्रदर्शन करेगा और इस बात का ध्यान रखेगा कि इसमें इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाये, जिससे प्रांतों को यह आश्वासन मिल सके कि राष्ट्रपति के आदेश से उनकी वित्तीय व्यवस्था यकायक छिन्न-भिन्न न हो सकेगी और इसके साथ-साथ केन्द्र की स्थिति ऐसी होगी कि वह अपने महान् उत्तरदायित्वों को ठीक-ठीक निर्वहन कर सके।

छपी सूची के पृष्ठ 318 पर के संशोधन संख्या 3009 और 3010 पेश नहीं किये गये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, अभी मेरे माननीय मित्र श्री कुंजरू द्वारा दिया गया भाषण सभा को इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद के पुनर्विलोकन करने के लिये अवश्य ही विचार सामग्री प्रस्तुत करेगा। मैंने बड़ी सावधानी से उनके भाषण को सुना और उनके संशोधन का भी अध्ययन किया। जब हम अनुच्छेद 275 और 276 पर वाद-विवाद कर रहे थे और जब हमने आवश्यक होने पर राष्ट्रपति को उद्घोषणा निकालने की शक्ति दी थी, हमने यह उपबन्ध किया था कि उद्घोषणा के दो मास के अन्तर्गत उसको संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना चाहिये और उसका अनुमोदन होना चाहिये। उसके बाद ही वह छ: माह की अवधि के लिये और जारी होगा।

अनुच्छेद 277 में यह उपबन्ध किया गया है कि केन्द्रीय संसद उन विषयों पर, जो राज्यों के अन्तर्गत हैं, केवल समवर्ती क्षेत्राधिकार ही नहीं रखेगा वरन् यह भी कि "उस कालावधि के लिये जो ऐसी उद्घोषणा के प्रवर्तन शून्य होने वाले आर्थिक वर्ष की समाप्ति से, किसी अवस्था में, परे विस्तृत न हो और जो उस आदेश में उल्लिखित की जाये, इस संविधान के अनुच्छेद 249 से 259 के समस्त

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

अथवा कोई उपबन्ध ऐसे अपवादों या रूपभेदों के साथ प्रभावी होंगे, जिन्हें प्रधान उचित समझे" अत: इस अनुच्छेद से अनुच्छेद 249 से 259 तक के अनुच्छेद की आपात-काल में कोई सत्ता नहीं रह जाती है। क्योंकि राष्ट्रपति को इन अनुच्छेदों के उपबन्धों के विरुद्ध आदेश पारित करने की शक्ति है। मैं अधिक प्रसन्न होता, यदि जो परिवर्तन या रूपभेद् इन अनुच्छेदों में किये जायें, उनको भी उद्घोषणा का अंग बना दिया जाये और उनको संमोदन के लिये संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। वित्तीय विषयों में प्रधान को ऐसी शक्तियों से सुसज्जित करने का मैं सदैव विरोध करता रहा हूं, जो स्वेच्छाचारिता से लगभग परिपूर्ण हों, पर खेद के साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि हमारा विरोध व्यर्थ ही रहा और प्रत्येक बार जब कोई संशोधन पेश किया जाता है, तो राष्ट्रपति को ऐसे आदेश देने की शक्ति दे दी जाती है जिससे कि इस संविधान के उपबन्धों तक में संशोधन किया जा सके। मैं समझता हूं कि डॉ. कुंजरू ने उन कठिनाइयों को बता दिया है, कि यदि यह संशोधन जैसा है वैसा ही पारित कर लिया जाता है तो पैदा होंगी। डॉ. अम्बेडकर का संशोधन इस विषय में कोई सहायता नहीं करता है। संसद् के दोनों सदनों के समक्ष "उसे रखना" कोई पर्याप्त रक्षा-कवच नहीं है। अत: मैं समझता हूं कि इस संशोधन को पेश कर तथा इस अनुच्छेद 277 में निहित संकटों को बता कर डॉ. कुंजरू ने सभा की महान सेवा की है।

यह एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। राज्य द्वारा बनाये गये बजट राष्ट्रपति के एक आदेश से उथल-पुथल हो जायेंगे और यदि किसी प्रांत के कुछ मंत्रियों से वह खुश नहीं हैं तो उस प्रांत की ऑफ आ जायेगी। अत: वर्तमान रूप में इस अनुच्छेद को पारित करना ठीक नहीं है। डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-समिति से मैं निवेदन करूंगा कि पंडित कुंजरू द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों के आधार पर वे इसका पुनर्विलोकन करें तथा इस तथ्य के आधार पर भी कि राष्ट्रपति को ऐसी शक्ति नहीं देनी चाहिये जो प्रांतों के बजट को छिन्न-भिन्न कर दे। यह सत्य है कि कोई भी राष्ट्रपति जान बूझकर इन शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा और प्रांत की समस्त योजनाओं को छिन्न-भिन्न नहीं करेगा, पर जब तक संविधान में उसके लिये रक्षा-कवच न हो तब तक इन शक्तियों को देना ठीक नहीं है। अपनी समस्त सद्भावनाओं के सहित और अति पवित्र उद्देश्य से वह उद्देश्य पारित करेगा, पर उनसे वह स्थिति पैदा हो सकती है जिसका मैंने चित्रण किया है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि संविधान में किसी ऐसे तंत्र की व्यवस्था की जाये, जिससे कि वह स्थिति पैदा न हो। मैं आशा करता हूं कि इन तर्कों के आधार पर विद्वान डॉक्टर मेरा संशोधन स्वीकार कर लेंगे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 277 और मेरे मित्र माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। इस अनुच्छेद के प्रभाव को मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। इस संशोधन के साथ इस अनुच्छेद के फलस्वरूप चिकित्सालय बन्द हो जायेंगे, प्रांत की समस्त क्रियमाण चेष्टायें रुक जायेंगी, केन्द्रीय कार्यपालिका तानाशाही का रूप ग्रहण कर लेगी और सिवाय अराजकता के और कुछ नहीं होगा।

मेरे मित्र यह भूल जाते हैं कि अनुच्छेद 277, अनुच्छेद 275 का आनुषंगिक है। हम इस आधार पर अग्रसर हो रहे हैं कि भारत की सुरक्षा संकट में है अथवा

कोई इस प्रकार का युद्ध तथा आभ्यान्तरिक अशांति है, जिसके कारण अनुच्छेद 275 के अनुसार राष्ट्रपति को आपात-उद्घोषणा करना आवश्यक हो गया है। जिस आधार को लेकर हम आरम्भ करते हैं, अर्थात् युद्ध, उसी के कारण सामान्य दशा अव्यवस्थित हो जाती है और देश की सुरक्षा के समर्थन में प्रत्येक व्यक्ति को उद्यत रहना चाहिये और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उस राज्य का नाश न होने पाये, जो वैयक्तिक स्वतंत्रता का मूल आधार है। अनुच्छेद 275 का यह आधार है।

और फिर अनुच्छेद 277 में यह नहीं कहा गया है कि समस्त वित्तीय उपबन्धों को समाप्त कर दिया जायेगा। उसमें कहा गया है कि "उन अपवादों और रूपभेदों के अधीन, जिन्हें राष्ट्रपति उचित समझे"। सामान्यतया यह आशा नहीं की जाती है कि वह समस्त वित्तीय योजना का निराकरण कर देगा। इस अनुच्छेद में यह उपबन्धित है कि संविधान के अनुच्छेद 249 से 259 तक के उपबन्ध इस काल के लिये उन अपवादों और रूपभेदों के अधीन, जिन्हें राष्ट्रपति उचित समझे, प्रभावी होंगे। अत: यह उस नियम में एक अपवाद है जो कुछ समय तक काम में आयेगा, यह उस नियम में एक रूपभेद है, जो कुछ समय तक काम में आयेगा। इससे समस्त वित्तीय ढांचे का अथवा अनुच्छेद 277 के अधीन विचारे गये प्रांतों और केन्द्र में परस्पर वित्तीय संबंध का निराकरण नहीं होता है।

सामान्य काल में भी विभाजन में हस्तक्षेप करने की शक्ति संसद को है। यह उन्हीं 249 से 259 अनुच्छेदों में दिया हुआ है। विभाजन का समूचा प्रश्न संसद पर छोड़ दिया गया है। इसमें संदेह नहीं कि विभाजन में यह अर्थ निहित है कि कम से कम कुछ न कुछ प्रतिशत प्रांतों के लिये छोड़ा जायेगा, पर जिन विभिन्न अनुच्छेदों का मेरे मित्र कुंजरू ने निदेश किया है, उनमें फैडरल संसद का हस्तक्षेप निहित है। अत: इस समय हम जो कुछ कर रहे हैं वह यह है और उन्होंने स्वयं यही संकेत किया है कि अनुच्छेद 277 के अधीन राष्ट्रपति को दी गई शक्तियों से भी इस विभाजन में हस्तक्षेप करने के लिए विधि पारित करने का संसद के मुख्य प्राधिकार पर प्रभाव न पड़े। इस संविधान के अधीन संसद के मुख्य प्राधिकार से पृथक् राष्ट्रपति की शक्ति नहीं है और न उसका संसद के प्राधिकार से अल्पीकरण होता है। अत: प्रश्न केवल यह है कि इस प्रकार के आपात में केन्द्रीय मंत्रिमंडल की मंत्रणा के अनुसार कार्यवाही करते हुये राष्ट्रपति इन विभिन्न आयों के विभाजन में रूपभेद करे या उसमें कुछ अपवाद करे।

जहां तक आय-कर के विभाजन के अधिकार का संबंध है, सामान्य काल में भी वह राष्ट्रपति के आदेश पर निर्भर है (वर्तमान संविधान के अधीन सपरिषद् सम्राट के आदेश पर)—वह संसद के प्राधिकार पर निर्भर नहीं है। निस्संदेह वह यह विचार प्रस्तुत करता है कि विधि सम्मत आयोग के प्रतिवेदन दे देने के बाद आय-कर की आय के विभाजन में कुछ स्थैर्य पुर:स्थापित कर दिया जायेगा, परन्तु जब तक वित्तीय उपबन्ध प्रवृत्त नहीं होते तब तक यह शक्ति राष्ट्रपति में निहित है, जिसका अभिप्राय है मंत्रि-मंडल में। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह उन विभिन्न प्रांतों की मांगों की उपेक्षा करेगा जिनका प्रतिनिधित्व उत्तर सदन और प्रथम सदन में है, और हमें इस आधार पर अग्रसर नहीं होना है कि प्रतिनिधि अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के प्रति अपने प्रकार्यों और कर्त्तव्यों का निर्वहन उचित रूप से नहीं करेंगे।

अत: श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 277 में कोई उग्रता नहीं है। आप युद्ध का संचालन उस सिद्धांत के अन्तर्गत नहीं कर सकते हैं, जो सामान्य

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

काल में प्रचलित रहता है। केन्द्र को आपात शक्ति देनी चाहिये और यह आपात शक्ति किसी प्रकार से भी इतनी उग्र, इतनी अधिक तथा इतनी व्यापक शक्ति नहीं है जितनी उसकी कल्पना की जा सकती है। उसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि "उन अपवादों और रूपभेदों के अधीन, जिन्हें मंत्रि-मंडल उचित समझे"। अपवाद नियम नहीं हो सकता है। रूपभेद मूल नियम का निराकरण नहीं कर सकता है। रूपभेद रूप-भेद ही हो सकता है और एक अपवाद अपवाद की रह सकता है। अत: आपात में राष्ट्रपति को तथा मंत्रि-मंडल को प्रांतों और केन्द्र में परस्पर वित्तीय संबंधों के समायोजन के संबंध में क्या किसी इस प्रकार की स्वविवेक शक्ति से सुसज्जित किया जाये। जो संसद की मुख्य शक्ति के अधीन हो और जिसमें संसद द्वारा हस्तक्षेप किया जा सके, यदि मंत्रि-मंडल की कार्यवाही में कोई त्रुटि हो जाये, जो कि प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी है और जिससे दोनों सदन आपात उपबन्धों के प्रवृत करने पर पूछताछ कर सकते हैं? उन परिस्थितियों के अधीन, मैं निवेदन करता हूं कि यह अनिवार्य है कि आप इस प्रकार के विवरण का एक उपबन्ध रखे। जब हम इन बातों की ओर निर्देश करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हम एक ऐसे मंत्रि-मंडल के संबंध में सोच रहे हैं, जो जनता के प्रति उत्तरदायी है। उस सरकार को, जो संसद तथा जनता के प्रति उत्तरदायी है, निस्संदेह अधिक शक्तियों का प्रयोग करना चाहिये, जिनका सपरिषद् सम्राट के जो ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था न कि इस देश की संसद के प्रति। यह कहना कि आज उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार को उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करना चाहिये, जिनका सपरिषद् सम्राट अथवा कोई विदेशी सरकार युद्ध परिस्थिति में प्रयोग कर सकती थी। उस समय और लोग भारत के पोषण के प्रति उत्तरदायी थे और यह देखने के लिये उत्तरदायी थे कि कहीं आभ्यन्तरिक अशांति तो नहीं थी। भारत की सुरक्षा और राज्य की क्षेम का उत्तरदायित्व अब हमारे ऊपर है। लोक-कल्याण के लिये इस उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु कोई भी मूल्य भारी नहीं है। अनुच्छेद 277 में यह सिद्धांत निहित है। यह उसे अनुच्छेद 275 का अनिवार्यत: परिणामस्वरूप है, जिसमें किसी युद्ध की स्थिति अथवा युद्ध के बराबर किसी आभ्यन्तरिक परिस्थिति का विचार निहित है। अनुच्छेद 277 में निहित सिद्धांत का तथा सभा में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन का कोई अपवाद नहीं हो सकता है।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन व्यक्तियों में से हूं जो यह विश्वास करते हैं कि इस देश के आधुनिक वातावरण में और इस तथ्य के कारण राष्ट्र-निर्माण-कार्यों के विषय में हमें इतनी कमी पूरी करनी है कि हमें एक बहुत शक्तिशाली फैडरल केन्द्र बनाना चाहिये। यह आवश्यक है कि केन्द्र की ऐसी स्थिति होनी चाहिये कि वह यह देख सके कि प्रांत प्रगति के निम्नतम स्तर के नीचे न रह जाये। परन्तु फिर भी मुझे यह कहना चाहिये कि जो तर्क पंडित कुंजरू ने प्रस्तुत किये हैं उनमें बहुत सार है। प्रांत के लिये यह संभव नहीं है कि वह अपने उत्तरदायित्वों को उचित रूप से पालन कर सके, यदि उसकी वित्तीय स्थिति अस्थिर अथवा अनिश्चित है। मैं यह समझती हूं कि केवल आपात-दशा में ही अनुच्छेद 277 के अधीन यह शक्ति राष्ट्रपति को—जिसका अर्थ है मंत्रिमंडल को दी जा रही है। पर मैं यह भी अनुभव करती हूं कि यह बहुत उग्र रूप का साधन है। प्रांत दो जरियों से वित्त प्राप्त करते हैं एक अपनी

साधारण सेवाओं को बनाये रखने के लिये आभारणीय बंटवारे का जरिया है। दूसरा विकास प्रयोजनों के लिये दिया हुआ अनुदान है। मैं यह समझ सकती थी कि आभारणीय करों के विषयों का, जिनमें प्रांत अपना सामान्य कार्य चलाते हैं, विभाजन कर दिया जाये और प्रांतों की वित्त-व्यवस्था ज्यों की त्यों छोड़ दी जाये। यह भी नहीं किया गया। मैं उन सब बातों को दुहराना नहीं चाहती हूं जिनको पंडित कुंजरू ने बड़े उचित ढंग से बताया है। डां, मैं यह अवश्य समझती हूं कि यह महत्वपूर्ण विषय है। एक अनुच्छेद 276-ख है, जिसके अधीनआपातकाल में समस्त व्यर्थ के खर्चों को रोका जा सकता है। युद्ध जैसे आपातकाल में प्रांतों से अपने विकास कार्यक्रमों को छोड़ने के लिये निवेदन किया जा सकता है। पर केन्द्र अथवा राष्ट्रपति को प्रांतों के सामान्य कार्य-संचालन को रोकने की शक्ति वास्तव में नहीं होनी चाहिये। प्रांतों के द्वारा ही देश के लोगों के जीवन और क्रियाओं की व्यवस्था होती है। मैं यह बताना चाहूंगी कि केन्द्र बालू की दीवार खड़ी नहीं करता है। उसे प्रांतों के द्वारा कार्य करना है और यह उपबन्ध जैसा है उसी रूप में रखने के लिये मेरी समझ में कोई बात नहीं आती है। मैं यह समझती हूं कि पंडित कुजरू ने एक बड़े महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान आकर्षित किया है। अत: डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-समिति से मैं यह निवेदन करूंगी कि वे इस अनुच्छेद को स्थापित करें और जो बातें कही गई हैं, उनके आधार पर इसका फिर से मसौदा बनायें।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास: जनरल): तब तक स्थगित रखें, जब तक कि आपात समाप्त न हो जाये।

***श्रीमती रेणुका रे:** मेरा अभिप्राय यह नहीं है। प्रो. रंगा ने ताना कसने का प्रयास किया है। मैं उनको यह कहूंगी कि आपात में भी प्रांतों का सामान्य कार्य-संचालन जारी रहना चाहिये। प्रांतों की विकास योजनाओं को रोकना मैं समझ सकती हूं, पर आपात में भी प्रांतों का सामान्य कार्य-संचालन किस प्रकार बन्द किया जा सकता है? युद्ध काल में भी लोग खाते रहेंगे, शिक्षा पाते रहेंगे और दुष्टों से रक्षित रखने पड़ेंगे। डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-समिति से मैं निवेदन करूंगी कि वे इस अनुच्छेद पर विचार करें, जो कि एक महत्वपूर्ण है। पंडित कुंजरू द्वारा प्रस्थापित परिवर्तनों का मैं समर्थन करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब भी विश्वनाथ दास बोल सकते हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** लगभग एक बज चुका है।

***उपाध्यक्ष:** अब हम स्थगित करते हैं और कल फिर प्रात: नौ बजे समवेत होंगे।

इसके पश्चात् सभा शनिवार ता. 20 अगस्त, 1949 के प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.14.49
320

अंक 9
संख्या 14

शनिवार,
20 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—जारी
[अनुच्छेद 277, 279-क तथा 280 पर विचार] 767-827

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 20 अगस्त, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रात: 9 बजे उपाध्यक्ष महोदय (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 277—*(जारी)*

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा: जनरल): मैं अनुच्छेद 277 का विरोध करने खड़ा हुआ हूं, जो संविधान में व्यर्थ है। श्रीमान, इस संविधान में जो आपात शक्तियां रखी गई हैं, वे लगभग वे ही हैं जो भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 93 में हैं, कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं। इस खंड के विश्लेषण से पता लगता है कि इसके तीन भाग किये गये हैं, प्रथम युद्ध आपातों सम्बन्धी उपबन्ध, द्वितीय घरेलू हिंसा सम्बन्धी उपबन्ध, तृतीय ऐसी हिंसा या हिंसा-कार्यों के लिये उपबन्ध जो कि राष्ट्रपति सद्य संभावित और भयानक समझे। किसी संविधान के अधीन कार्य करने वाली सरकार को सदा अधिकार होता है कि वह बाह्य आक्रमण अथवा युद्ध आपातों में स्थिति को संभालने के लिये सब आवश्यक शक्तियां ग्रहण कर सकती है। उस हद तक साधारण नागरिकों के अधिकारों और शक्तियों पर संविधान के अधीन कोई निर्बन्धन लगाया जा सकता है। मुझे विश्वास नहीं है कि प्रश्न के इस पहलू पर इस सदन को कोई माननीय सदस्य आपत्ति करता है। यदि कोई दल या प्रान्तीय सरकार अपने ही मार्ग पर चलकर ऐसा कार्य कर सकती है, जो संघ के सर्वोपरि हितों या उसकी सुरक्षितता के विरुद्ध हो या विपरीत हो, तो उसे लोकतंत्र कहना अद्भुत होगा। इन परिस्थितियों में युद्धकाल या युद्ध आपात में केन्द्र के लिये जो शक्ति रक्षित की गई है वह ठीक ही है।

श्रीमान, अब हम घरेलू हिंसा के प्रश्न पर और ऐसी हिंसा के कार्यों पर आते हैं, जिन्हें राष्ट्रपति सद्यसंभावित और भयानक समझे। ये भिन्न-भिन्न प्रश्न हैं और उन पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना होगा। जैसा कि मैं कई अवसरों पर कह चुका हूं, मैं फिर कहता हूं कि हम लोकतंत्र पद्धति में दलीय सरकार की कल्पना कर रहे हैं। दलीय सरकार का अवश्य यह आशय है कि विभिन्न दल होंगे। ऐसे संघ में जहां एक केन्द्र होगा और एकक होंगे, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न एककों में या केन्द्र में विभिन्न राजनैतिक दल प्रशासन के कार्य-साधक हो सकते हैं। इन परिस्थितियों में इन शक्तियों के दुरुपयोग की संभावना है। व्यक्तिगत रूप से मुझे इस दुरुपयोग का अनुभव है। मद्रास के न्याय दल के गत अनुभव को स्मरण करता हूं, तो मैं वहां देख चुका हूं कि

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री विश्वनाथ दास]

जिला मंडलों और नगरपालिकाओं को कैसे निर्दयता से दबा दिया गया था, क्योंकि शायद सरकार के पास इन नगरपालिकाओं को दमन करने की शक्ति शेष थी। मद्रास में एक दल विशेष ने जिला मंडलों और नगरपालिकाओं के विषय में जो कुछ किया था, वही केन्द्र भी दोहरा सकता है। अतः मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि ऐसी किसी स्थिति को निबटाने की कोई शक्ति केन्द्र में या राज्यपालों में, जो कि केन्द्र के अभिकर्ता ही हैं, नहीं छोड़नी चाहिये।

आप युद्ध आपात के लिये जो भी शक्ति अपने आप में रक्षित रखें, वह बिल्कुल ठीक है। हम उसका विरोध नहीं करते। मैं इस तथ्य को स्वीकार करता हूं कि अनुच्छेद 275 से 277 तक तथा शेष अनुच्छेदों में जो उपबन्ध हैं, वे इतने कठोर नहीं हैं जितने भारत-शासन-अधिनियम की छोटी-सी धारा 93 के उपबन्ध हैं। मैं यह तो समझता हूं कि आपने राज्यपाल को वे सब कार्यपालिका सम्बन्धी तथा विधायिनी शक्तियां नहीं दी हैं, जो कि धारा 93 में हैं। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि आप यथेच्छा उच्च न्यायालय की शक्तियों को समाप्त नहीं करते। यह सब मैं मानता हूं। आप 277 जैसे अनुच्छेद को क्यों रखते हैं जो धारा 93 में भी नहीं है? भूत के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि युद्धकाल में (द्वितीय विश्व युद्ध में) प्रान्त केन्द्र से अपना वित्तीय अंश प्राप्त करते रहे थे, वे प्रान्त भी जहां कि धारा 93 के अधीन शासन चल रहा था। मै यह भी अनुभव करता हूं कि केन्द्र में कृत्य करने वाली उत्तरदायी सरकार उन अनुदानों को समाप्त नहीं कर सकती, जो कि राष्ट्रनिर्माण के कार्यों के लिये प्रान्तों को दिये जाते हैं, जब तक कि वह अपनी चिता की न बनाना चाहे। यह भी सम्भव है कि केन्द्र में कोई अलोकतंत्रीय दल सत्तारूढ़ हो जाये। इन परिस्थितियों में मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि ऐसे मामलों में आवश्यक कार्यवाही ही करने की अधिक शक्ति संविधान के अधीन केन्द्र में क्यों रक्षित की जाये। यह तो प्रान्तों को आधे मन से स्वायत्तता देना है। अतः मैं इस सदन के माननीय सदस्यों तथा मस्विदा समिति से अनुरोध करता हूं कि इस अनुच्छेद पर पुनर्विचार किया जाये।

फिर मुझे कहना है कि केन्द्रीय समिति तथा प्रान्तीय समिति इन दोनों में से किसी के भी प्रतिवेदन में ऐसी शक्तियों की सिफारिश नहीं की गई है, जो अनुच्छेद 277 के अधीन प्रान्तों को दी जा रही है। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि मस्विदा समिति ने यह बात क्यों रखी है, जबकि उसे इस सदन ने भी कोई प्राधिकार नहीं किया था और प्रान्तीय या केन्द्रीय संविधान समितियों ने भी ऐसी कोई बात अपने प्रतिवेदनों में नहीं रखी थी। अनुच्छेद 275 के अधीन आपात की उद्घोषणा होने पर प्रान्तों की स्वायत्तता को समाप्त किया जा रहा है और जो शक्तियां प्रान्तीय कार्यपालिका में निहित हैं, वे लगभग केन्द्र को मिल जाती हैं क्योंकि प्रान्त पर राष्ट्रपति के निदेशों के अनुसार शासन होगा। ऐसी स्थिति में आप अनुदानों को भी क्यों बंद करते हैं, निलंबित करते हैं या कम करते हैं, उन अनुदानों को, जो राष्ट्रपति या विधान-मंडल निश्चित नहीं करता, वरन् आप द्वारा निर्मित एक अराजनैतिक निकाय निश्चित करता है?

एक क्षण के लिये यह मान लिया जाये कि वे अनुदान निलम्बित कर दिये जाते हैं, तो उनसे सम्बद्ध कार्य, राष्ट्र-निर्माण अथवा प्रशासनीय कार्य उस हद तक निलम्बित हो जाते हैं। आप उस धन का क्या करेंगे? सारा धन-वितरण एक सुनिश्चित नियमित आधार पर हुआ है, प्रत्येक प्रान्त को उसका भाग मिलता है, उधर वह धन पड़ा रहता है और उचित प्रयोजन के लिये प्रयुक्त नहीं होता। आप प्रान्तों के बीच यह विभेद क्यों उत्पन्न करते हैं? यदि घरेलू हिंसा के कारण या ऐसे हिंसा-कार्यों के कारण जो राष्ट्रपति प्रान्त या प्रान्तों में सद्यसंभावित और भयानक समझे, तो आप प्रान्त के लोगों को क्यों दंड देते हैं, जो सरकार से भिन्न हैं, सरकार इन विधि-विरुद्ध तथा हिंसात्मक कार्यवाहियों का कुप्रबन्ध करने या उनको प्रोत्साहित करने की उत्तरदायी हो सकती थी? यह पर्याप्त है कि प्रान्तीय कार्यपालिका को निलम्बित कर दिया जाये या प्रान्तीय विधान-मंडल को निलम्बित कर दिया जाये। पर जनता को ऐसे कार्य का दंड क्यों दिया जाये जिसके लिये वह जरा भी उत्तरदायी नहीं है? इन परिस्थितियें में मैं समझता हूं कि जनता के समक्ष स्वीकृति के लिये जो अनुच्छेद प्रस्तावित है, उसका न कोई आधार है और न उनमें न्याय ही है। मेरे पास इसका विरोध करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल) उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपनी पूर्ण शक्ति से इस अनुच्छेद का समर्थन करने खड़ा हुआ हूं। मेरे मित्र श्री विश्वनाथ दास ने लोकतंत्र का प्रश्न उठा दिया है। इस सम्भावना पर किस इस देश में महान आपात की स्थिति में लोकतंत्र समाप्त हो जायेगा, वे आंसू बहा रहे हैं। मेरा यह सुनिश्चित मत है कि यहां लोकतंत्र का प्रश्न अंतर्ग्रस्त नहीं है, वरन् देश की सुरक्षितता का प्रश्न है और मैं अनुभव करता हूं कि यह अनुच्छेद, अनुच्छेद 275 का आवश्यक परिणाम है। केन्द्र में कहीं न कहीं शक्ति का राजनैतिक एकत्रण होना चाहिये, जिससे कि वह ऐसी परिस्थिति को संभाल सके जबकि देश में गम्भीर आपात हो। यह समस्त विचार ही असमर्थनीय है कि केन्द्र की कोई सरकार प्रान्तों को भूखा मारेगी तथा चिकित्सा सम्बन्धी, शैक्षणिक या अन्य राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी विभाग समाप्त हो जायेंगे। श्री विश्वनाथ दास का यह ख्याल है कि केन्द्र में अलोकतंत्रीय दल आ जाने के पश्चात भी इस देश में प्रान्तीय स्वायत्तता या लोकतंत्र जीवित रह सकेगा। यदि केन्द्र में अलोकतंत्रीय सरकार बन जायेगी तो प्रान्तीय स्वायत्तता शेष नहीं रहेगी। मेरा यह मत है कि हम प्रान्तों को पहले ही अत्यधिक शक्ति दे चुके हैं और जिस समय आपात हो, तब समूचा संविधान एकात्मक बन जाना चाहिये। जब इस देश में एकात्मक राज्य हो तभी प्रगति हो सकती है। मुख्य प्रश्न लोकतंत्र नहीं है, वरन् देश की सुरक्षा है और भारत के लोगों का कल्याण है। हम देश में प्रगति चाहते हैं। अत: मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम: जनरल): श्रीमान, मैं इसे बहुत कठोर उपबन्ध समझता हूं। इसका प्रभाव प्रान्त को पूर्णत: अव्यवस्थित करना होगा। वास्तव में मेरा ख्याल है कि प्रथम शिकार आसाम ही होगा। यदि आपको संविधान निलम्बित करने की शक्ति होगी, तो प्रान्त कैसे कृत्य करेंगे? इस उपबन्ध के मिस कदाचित आप सब वित्त केन्द्र के लिये ले लेंगे और प्रान्त के पास कुछ नहीं बचेगा। इस उपबन्ध के अधीन क्या होगा? किसी दिन बर्मा के साम्यवादी पूर्वी सीमान्त में घुस सकते

[श्री कुलधर चालिहा]

हैं। फिर उसी मिस आपात की घोषणा हो जायेगी और आप सब शक्तियों को ले लेंगे। यदि समस्त राज्य की केन्द्र के विरुद्ध विद्रोह कर दे; हां, तब आपात की घोषणा हो सकती है; पर यदि आपात की परिभाषा न की जाये और यह न बताया जाये कि ये उपबन्ध किन परिस्थितियों में लागू हो सकते हैं, तो इनसे अप्रत्याशित परिणाम हो सकते हैं। मेरा निवेदन है कि यह उपबन्ध ऐसे प्रकार रखा गया है कि सारे परिणाम प्रकट नहीं होते; यदि इसका प्रयोग किया गया तो बहुत कठिनाई हो जायेगी। हां, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद तो बहुत सीधे और संतुलित व्यक्ति हैं और वे सदा देश की स्थिरता का ही ख्याल करते हैं और वे सोचते हैं कि यदि प्रान्तों में शक्ति रहने दी गई, तो संविधान संकट में पड़ सकता है और वे आगे यह भी सोचते हैं कि सब सद्‌गुण केन्द्र में ही हैं और प्रान्त सब सद्‌गुणों से वंचित हैं। वे सब शक्ति राष्ट्रपति में एकत्रित करना चाहते हैं। यदि हम ऐसे चलेंगे तो प्रान्तों के पास कुछ भी नहीं बचेगा। आप तो पुरानी द्वैध शासन पद्धति को पुन: लागू कर रहे हैं और सब शक्ति केन्द्र में ही होगी और प्रान्त गौण होंगे। यदि आप इस उपबन्ध को रखना चाहते हैं, तो आपको यह परिभाषित करना होगा कि आपात क्या है और वे किन परिस्थितियों में लागू किये जा सकते हैं; अन्यथा यह 'आपात' शब्द इतना अस्पष्ट है कि यदि छोटी सी नागा जाति भी आसाम पर आक्रमण कर देगी, तो आप आपात घोषित कर देंगे या डिब्रूगढ़ में साम्यवादी उपद्रव हो जायेगा तो आप आपात घोषित कर सकते हैं। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि यह वे परिभाषित कर दें कि आपात शब्द का क्या अर्थ है और किन परिस्थितियों में यह निलम्बन या करों का केन्द्र द्वारा ग्रहण हो सकता है। हां, प्रान्त सब केन्द्र के हाथ में कठपुतलियां ही होंगे और मुझे आशा है कि संविधान के मस्विदा-लेखक महोदय इस मामले पर विचार करेंगे और यह परिभाषित करने का प्रयत्न करेंगे कि आपात क्या है और वह कि परिस्थितियों में लागू किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष:** (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी): मेरे विचार में श्रीमती दुर्गाबाई ने समाप्ति का प्रस्ताव किया है। मुझे विश्वास है कि सदन उससे सहमत होगा।

***माननीय सदस्यगण:** नहीं, नहीं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 277 से राष्ट्रपति को यह शक्ति होगी कि वह एककों और केन्द्र के बीच राजस्व के वितरण सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था में यथा-आवश्यक परिवर्तन कर सकता है। यह शक्ति राष्ट्रपति को केवल आपात की कालावधि के लिये ही दी गई है और मेरे मतानुसार यह अनुच्छेद 275 का आवश्यक परिणाम है, जिस पर यह सदन पहले ही सहमत हो चुका है। यह सदन पहले ही स्वीकार कर चुका है कि आपात की अवधि में राष्ट्रपति को सर्वोपरि शक्ति होनी चाहिये कि वह देश के हित और शान्ति की रक्षा कर सके। इन विशेष शक्तियों से क्या लाभ है, क्या मैं पूछ सकती हूं, यदि राष्ट्रपति को इतना भी प्राधिकार न हो कि वह एककों से यह अनुरोध कर सके कि एकक और केन्द्र के बीच वित्तों के वितरण को ठीक ठाक कर दिया जाये?

जब युद्ध हो या देश के संविधान को ही खतरा हो, तब गम्भीर आपात उत्पन्न हो जाता है और यह आपात की स्थिति को सफलतापूर्वक पार करने के लिये अधिकतम त्याग आवश्यक है। एक माननीय सदस्य ने इस अनुच्छेद 277 का कड़ा विरोध किया है। उन्होंने स्वीकार किया कि राष्ट्रपति एककों से कह सकता है कि वे अपनी विकास-योजनाओं पर व्यय को बंद कर दें, पर उसी सांस में उन्होंने कहा कि केन्द्र को यह शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह वित्तों के वितरण में परिवर्तन कर सके अथवा एककों तथा केन्द्र के बीच विद्यमान वित्तों के विषय में आवश्यक सुधार कर सके। यह भूलना नहीं चाहिये कि सर्वप्रथम तो राष्ट्रपति का अर्थ है, अपने मंत्रि-मंडल की मंत्रणा पर चलता हुआ राष्ट्रपति, दूसरी बात हमने यह शक्ति राष्ट्रपति को केवल आपात की अवधि के लिये दी है। यह शक्ति किसी अवस्था में वित्तीय वर्ष से अधिक नहीं होगी और अन्ततः इसमें किसी समय संसद हस्तक्षेप कर सकती है, यदि कोई गड़गड़ हो जाये।

अतः मैं नहीं समझती कि कुछ माननीय सदस्य इन शक्तियों के देने पर क्यों आपत्ति करते हैं, जबकि डॉ. अम्बेडकर ने तथा अन्य सदस्यों ने भी जो कि इसका समर्थन करते हैं, परिस्थितियों को स्पष्ट कर दिया है। इन परिस्थितियों में यह समझना असाधारण रूप से अन्याय है कि इस अनुच्छेद में केन्द्र की वित्तीय निरंकुशता का उपबन्ध है। निस्संदेह ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि हमने ये शक्तियां एक विशेष काल के लिये दी हैं, जिसे हम आपात काल कहते हैं, और हमने हर हालत में इसकी कालावधि को एक वित्तीय वर्ष तक सीमित रखा है, और हमने संसद को भी शक्ति दे दी है कि कुछ गड़बड़ होने पर वह कभी भी हस्तक्षेप कर सकती है। अतः, श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा संशोधित अनुच्छेद 277 का समर्थन करती हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्त्ति राव** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 277 का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। पंडित कुंजरू का आदर करते हुए मैं उनके संशोधन का विरोध करता हूं। वास्तव में मेरा विचार है कि श्री चलिहा ने अनुच्छेद 275 को अच्छी तरह पढ़ा नहीं है। आपात तभी होता है, जबकि युद्ध हो, अथवा आंतरिक गड़बड़ या बाह्य आक्रमण हो। ऐसी परिस्थितियों में केन्द्र को असाधारण शक्तियां देनी होंगी। मुझे विश्वास है कि संदेह इस कारण पैदा हुआ है कि लोग समझते हैं कि केन्द्र प्रान्तों से भिन्न है। वास्तव में आपात अवधि केवल दो मास रहती है, और वह तभी जारी रहती है जबकि संसद के अधिवेशन आरम्भ होने के एक मास के भीतर की संसद उसका अनुसमर्थन कर दे; यदि अनुसमर्थन नहीं होता तो आपात स्थिति समाप्त हो जाती है। और जिस कालावधि के लिये अनुच्छेद 277 के अधीन वित्तीय शक्तियां दी जाती हैं, वह भी एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि आयव्यक तो प्रति वर्ष बनना ही चाहिये। आपात की कालावधि में समस्त देश की सुरक्षितता और हिफाजत केन्द्र का ही उत्तरदायित्व होना चाहिये, और केन्द्र को असाधारण शक्तियां होनी चाहियें। अन्यथा गम्भीर आपात के समय यदि प्रान्तों और केन्द्र के बीच वित्तीय अंशों को ठीक करने के विषय में झगड़े होने दिये गये, तो भारत की सुरक्षा जोखम में पड़ जाएगी; और यदि भारत बच जाता है, तो प्रत्येक प्रान्त बच जाता है और प्रत्येक नागरिक बच जाता है—अन्यथा नहीं। देश की सुरक्षा ही सर्वोपरि बात होनी चाहिये और अनुच्छेद 277 के अधीन जो शक्तियां दी गई हैं, वे नितान्त आवश्यक हैं और इसलिये मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार: जनरल): प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***उपाध्यक्ष:** मैंने श्री सरवटे को वचन दिया है कि मैं उन्हें बोलने दूंगा। मैं प्रश्न पर बाद में मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): कई अन्य वक्ता भी हैं; आप उन्हें प्रत्येक को थोड़ा सा समय, यों कहिये, कम से कम दो मिनट ही केवल दे सकते हैं।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे अपने विचार प्रकट करने का यह अवसर दिया है। किन्तु मैं लम्बा नहीं बोलूंगा। मेरे विचार में धारा 276, 277 और 227 को साथ पढ़ना चाहिये। जब कोई आपात होगा, तब केन्द्र की सरकार को दो विभागों के रूप में कार्य करना होगा, कार्यपालिका और विधायिका के रूप में। अनुच्छेद 227 द्वारा केन्द्र को शक्तियां दी गई हैं कि वह ऐसे विषयों पर विधि बना सकता है, जो राज्य-विधान-मंडल के क्षेत्र में आते हैं। अनुच्छेद 276 (ख) द्वारा द्वारा केन्द्र को शक्ति दी गई है कि वह ऐसे मामलों के विषय में कार्यपालिका कृत्यों को अपने हाथ में ले सकता है। अब जबकि केन्द्रीय सरकार कुछ कर्तव्यों को अपने हाथ में लेती है जो अन्यथा प्रान्तों या राज्यों द्वारा किये जाने हैं, तो यह स्वाभाविक और आवश्यक है ही के उसे अपेक्षित धन भी मिलना चाहिये। अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुच्छेद 277 तो वित्तीय क्षेत्र में उन शक्तियों का प्रभाव ही है, जो अनुच्छेद 227 और 276 में दी गई हैं, जिनके लिये सदन पहले ही सहमत हो चुका है। उदाहरण के लिये, यदि केन्द्र आरक्षी के कृत्य अपने हाथ में ले लेता है, जब राज्य में आपात हो, तो उसे अधिक धन की आवश्यकता होगी। अनुच्छेद 227 में इसका उपबन्ध किया गया है। यदि यह उपबन्ध नहीं किया जाये तो यह ऐसी बात होगी कि कार दे दी जाये और उसे चलाने के लिये पैट्रोल नहीं दिया जाये। अत: मैं कहता हूं कि ये तीनों अनुच्छेद एक दूसरे से बहुत सम्बद्ध है और आप वित्तीय उपबन्धों को शेष उपबन्धों से अलग नहीं कर सकते। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** श्रीमान, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रांत तथा बरार: जनरल): श्रीमान, श्री बी. दास कल से प्रयत्न कर रहे हैं कि आपकी दृष्टि उन पर पड़ जाये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, प्रश्न पर मत लेने की प्रार्थना अत्यन्त समयपूर्व है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे इसका पता नहीं है, मैंने श्री बी. दास से बोलने के लिये कहा है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान, संविधान के मस्विदे के भाग 11 में आपात उपबन्ध हैं। यदि आप पृष्ठ 129 से 131 को देखें, तो आपको पता लगेगा कि अनुच्छेद 275 और 276 में संघ समिति और संघ संविधान समिति की, जिनके सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे, मूल इच्छायें निहित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मस्विदा समिति को कुछ प्रेरणा प्राप्त हुई और यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि उसे यह प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई कि अनुच्छेद 227 के वित्तीय उपबन्धों को रखा जाये ओर बाद के अनुच्छेद 278 को रखा जाये—उन्होंने ये दो

नये अनुच्छेद रखे हैं। श्रीमान, यह कहा जाता है कि भारत विश्व-शांति का समर्थन करता है और राष्ट्रपिता के मार्ग का अनुसरण कर रहा है। किन्तु जो कोई अनुच्छेद 277 को पढ़ेगा वह स्वयं समझ लेगा, और यदि यह पारित हो जायेगा तो इससे सिद्ध हो जायेगा कि भारत राष्ट्रों के विरुद्ध आक्रमणात्मक युद्ध करने के लिये सब प्रान्तों को भूखा मारने की तैयारी कर रहा है। अनुच्छेद 277 में क्या है? इससे राष्ट्रपति को सब शक्ति मिल जायेगी, सब वित्तीय शक्तियां मिल जायेगी और वह प्रान्तों को भूखा भी मार सकेगा–यह एक नया फेन्केन्स्टीन है, जो संविधान द्वारा बनाया गया है, क्योंकि भारत का राष्ट्रपति लोकतंत्रात्मक राष्ट्रपति नहीं होगा, वह दक्षिणी अमरीका के राष्ट्रपतियों के समान होगा, जो सब आपात शक्तियों का प्रयोग करेगा। आसाम, उड़ीसा, बिहार और बंगाल के प्रान्तों की ओर से अनुच्छेद 249 से 259 पर नग्न आलोचना हुई है, वे प्रान्त भूखे मारे जा रहे हैं, यद्यपि उनका कोई अपराध नहीं है, और यदि अनुच्छेद 277 को सदन में पारित कर दिया जाता है, तो इन प्रान्तों पर विपत्ति आ जायेगी।

श्रीमान, यदि मैं मस्विदा समिति के लेखकों और पूर्ववर्ती सरकार–ब्रिटिश शासकों के दृष्टिकोणों की तुलना करूं, तो मैं देखता हूं कि उस सरकार ने गत महायुद्ध में प्रान्तों के साधनों को छीना नहीं था। यह सत्य है कि वे कर लगाते गये, वे अतिरिक्त आय-कर, निगम-कर, अतिरिक्त लाभ कर तथा कई अन्य कर लगाकर अपनी करारोपण क्षमता को बढ़ाते गये। उन्होंने निर्यात-कर आदि बढ़ा दिये। हां, यह भी प्रान्तों के लोगों पर ही कर लगाना हुआ; पर कभी भी केन्द्र ने प्रान्तों के साधनों को नहीं छीना। आज हमसे कहा जाता है कि प्रान्तीय राजस्वों को हड़पने की यह शक्ति राष्ट्रपति को दे दी जाये। हमें यह बताया जाता है कि निर्वाचित मंत्रिमंडल होगा ही और वह मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को मंत्रणा देगा। विद्यमान सरकार में एक निर्वाचित वित्त-मंत्री है, जो इस सदन का सदस्य है। क्या कारण है कि वह अपने रुख की सफाई पेश नहीं करते कि उन्होंने या उनके मंत्रिमंडल ने मस्विदा समिति को यह मंत्रणा क्यों दी कि वह आपात के समय प्रान्तों के साधनों को कम करे या खर्च करे या हड़प करे? श्रीमान, यह भावी संसद की लोकतंत्रात्मक भावना को चुनौती है। क्या मस्विदा समिति के सदस्य यह समझते हैं कि आपात होने पर संसद राष्ट्रपति को या मंत्रिमंडल को ऐसी निरंकुश शक्ति देने के लिये तैयार नहीं होगी? दूसरे देशों में उसने ऐसा ही किया। भारत की संसद इससे भिन्न आचरण क्यों करेगी। मैं कह सकता हूं कि भावी संसद भी ऐसे ही अच्छे, बुरे या उदासीन होंगे, जैसे कि हम सब इस समय हैं।

मैं अपने माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू का अनुगृहीत हूं कि उन्होंने प्रान्तों के वित्तीय साधनों को हड़प करने की राष्ट्रपति की शक्ति के महत्वपूर्ण विषय पर बहस आरम्भ की है। यह हो पूंजी-कर के समान है। यह तो दूसरों की सम्पत्ति का बलात हरण करना है। गत महायुद्ध में नास्सियों ने लोगों के घरों से लोहा और धातुयें ले ली थीं—अपने ही देश में नहीं वरन् पराजित देशों में भी। भारत सरकार, नात्सियों के समान आपात में राज्यों को प्रदत्त राजस्वों को क्यों छीनना चाहती है? मैं यह बिल्कुल नहीं समझ सकता। क्या केन्द्र प्रान्तों को यह दान

[श्री बी. दास]

दे रहा है कि वह आपात में राजस्व के उस भाग को छीन सकता है? मैं देखता हूं कि प्रान्तों को आय-कर तथा केन्द्रीय करों में से सारवान भाग मिलता है:

उड़ीसा	24 प्रतिशत
आसाम	22 प्रतिशत
बिहार	20 प्रतिशत
बंगाल	19 प्रतिशत
युक्त प्रान्त	18 प्रतिशत
बम्बई	19 प्रतिशत

और मद्रास को, जिसका राजस्व सबसे अधिक 55.94 करोड़ है, आय-कर में से 15 प्रतिशत मिलता है। निस्संदेह हमने कोई यह नया वितरण नहीं किया है। विद्यमान सरकार ने यह राशियां निश्चित नहीं की हैं, 1947 में केवल कुछ रूपभेद किये हैं जिससे पाकिस्तान बनने के पश्चात् बंगाल को, जो पहले आयकर का 20 प्रतिशत पाता था, अब 15 प्रतिशत से ही संतोष करना होगा।

श्रीमान, मेरे विचार में ऐसी आपातिक शक्ति आवश्यक नहीं है। ऐसा अपहार तो किसी लोकतंत्र में नहीं हो सकता, भारत की क्या बात। मैंने अपने माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी आयर की वक्तृता को बहुत ध्यान से सुना और मैंने अनुभव किया कि उनका तर्क विधिरूप था और उसमें कोई सार नहीं है, जिससे कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल को ऐसी शक्ति प्रदान करना उचित सिद्ध हो सके। प्रत्येक जानता है कि अब भारत सरकार प्रान्तों की ओर से सब विक्रय-कर को एकत्र करके वितरित करने का विचार कर रही है। यदि वित्त-मंत्री तथा उनके मंत्रालय के दिमाग में अनुच्छेद 277 होगा, तो वे सब साधनों को ग्रहण करना चाहेंगे, जिससे प्रान्तों के पास कुछ नहीं बचेगा और आपात के समय केन्द्र 277 का प्रयोग करेगा और केन्द्र द्वारा एकत्रित सब प्रान्तीय साधनों को छीन लेगा। कौन कहता है कि आपात के समय का मंत्रिमंडल आज के मंत्रिमंडल से अधिक लोकतंत्रीय होगा? इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सदन के आंगन पर संघीय वित्तों के सम्बन्ध में वाद-विवाद के समय वित्त-मंत्री तथा वित्त मंत्रालय ने जो सहानुभूति प्रदर्शित की है, उससे सिद्ध होता है कि आपात के समय प्रान्तों को बहुत कम न्याय मिलेगा, सद्व्यवहार की तो बात की क्या है। मान लीजिये, हमारे यहां ऐसा मंत्री हो जो ज़रा ज़रा सी घटनाओं पर घबरा जाये, जो बहुत महत्वाकांक्षी हो जाये। द्वितीय विश्व विश्व युद्ध में भारत सरकार अपनी कार्यपालिका परिषदों के द्वारा अत्यधिक महत्वाकांक्षी बन गई थी और उसने अध्यादेशों द्वारा हमारे सब साधनों को ले लिया था। इस प्रकार कौन संदेह कर सकता है कि केन्द्रीय सरकार को अंग्रेज़ी सरकार के समान ही महत्वकांक्षा से अथवा अज्ञानवश अध्यादेश पारित करने का अधिकार है? उन्होंने 'नियंत्रण' मूल्य निश्चित किये और अपने लिये तथा अपने साथी देशों के लिये यथेष्ट सामान ले लिया और उसका परिणाम यह है कि भारत में मुद्रास्फीति का ज़ोर है, और अब मूल्य युद्धपूर्व के स्तर के 365 प्रतिशत है,

जबकि अमरीका में 200 प्रतिशत है और ब्रिटेन में लगभग 100 प्रतिशत है। 'नियन्त्रण' मूल्यों का और नियंत्रित क्रमों का यह परिणाम है।

हमें आशा करनी चाहिये कि युद्ध नहीं होगा, आपात नहीं होगा। मैं चाहता हूं भारत में शांति रहे, विश्व में शांति रहे। किन्तु मान लीजिये, दुर्भाग्यवश आपात उत्पन्न हो जाये, तो कौन कष्ट सहन करता है? जनता। जनता को ही कष्ट सहन करना पड़ता है और नियंत्रित मूल्यों पर माल देना पड़ता है जैसा कि उन्होंने 1939 से 1947 के बीच किया था। मुद्रा स्फीति का क्या अर्थ है? इसका यह अर्थ है कि प्रान्तीय सरकारें और जनता अपना गुजारा नहीं कर सकतीं, और यदि वित्त-मंत्री अत्यधिक महत्वाकांक्षी हो तो वह राष्ट्रपति से अनुच्छेद 277 का प्रयोग करवा कर प्रान्तों के सब साधनों को छीनना आरम्भ कर देगा। वह राशि कितनी है–आयकर का लगभग 60 प्रतिशत; उत्पादन शुल्कों को 40 प्रतिशत और कुछ प्रान्तों में पटसन-शुल्क का 40 प्रतिशत; अब यह राशि लगभग 60 करोड़ रुपये बैठती है।

यदि यह सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न सदन सरकार-समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार कर लेता, तो प्रान्तों को आय-कर के समस्त साधनों का 60 प्रतिशत मिल जाता (जो लगभग 150 करोड़ रुपये होता है) और उत्पादन शुल्कों के अंश का लगभग 60 प्रतिशत मिल जाता, जो बहुत बड़ी राशियां हो जातीं। यदि आप कृपया अनुमति दें, तो मैं उड़ीसा के निर्देश द्वारा अपनी बात का उदाहरण देता हूं। उड़ीसा की कुल आय 6.82 करोड़ है, जिसमें से लगभग 3 करोड़ रुपये असाधारण अनुदानों के रूप में केन्द्र से मिलता है। इसका अर्थ यह है कि उड़ीसा की नकद आय केवल 3.82 करोड़ ही है। उड़ीसा में लोगों का जीवनस्तर बहुत ही, बहुत ही निम्न है।

***उपाध्यक्षः** क्या ये सब विस्तार की बातें आवश्यक हैं? क्या माननीय सदस्य कृपया अपनी वक्तृता समाप्त करेंगे?

***श्री बी. दासः** मैं तो बहुत चाहता हूं कि कर दूं। किन्तु मैं तो उन प्रान्तों के हृदय की भावना ही व्यक्त कर रहा हूं, जो उस थोड़े से अंश से भी वंचित हो जायेंगे, जो अब तक उन्हें केन्द्रीय करों के भाग के रूप में केन्द्र से मिलता है। मैं, हमारे प्रशासनों के स्तरों के उदाहरण देने के लिये कुछ आंकड़े देता हूं।

शिक्षा पर बम्बई 5 आने एक पाई खर्च करता है; संयुक्त प्रान्त 6.5 आने व्यय करता है; बिहार 3.11 आने व्यय करता है; आसाम 6.2 आने व्यय करता है, जबकि उड़ीसा 4.1 आने व्यय करता है। यदि आप लोक-स्वास्थ्य तथा औषधि को लें–जिनके विषय में हम सदा चर्चा करते हैं–तो आंकड़े और भी निरुत्साहप्रद हैं। मध्य प्रदेश 2.1 आने प्रति व्यक्ति व्यय करता है; आसाम 3.1 आने व्यय करता है। उड़ीसा बहुत कम व्यय करता है।

प्रान्तों की यह हालत है और आज हमें कहा जाता है कि अनुच्छेद 277 को पारित कर दें जिससे प्रांतों का निम्न जीवनस्तर और भी अधिक नीचा हो जायेगा। मैं बहुत चिन्तित हूं, मुझे बहुत क्षोभ है। मेरे विचार में लोकतंत्र से एकतंत्र नहीं

[श्री बी. दास]

बनेगा जिससे फेन्केन्स्टीन और दक्षिणी अमरीका के राष्ट्रपति बने जो सब कुछ कर सकते हैं। मैंने इस संविधान का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। मैं देखता हूं कि राष्ट्रपति किसी समय निरंकुश बन सकता है; वह अपने मंत्रिमंडल को पदच्युत कर सकता है और विधानमंडल को विघटटित कर सकता है। ऐसा आदर्श संविधान बनाने से कोई लाभ नहीं है, जिसे कोई भी राष्ट्रपति उलट सकता है; और किसे पता है कि गांधीवादी ही भारत पर सदा शासन करेंगे।

मुझे हृदय में बहुत दु:ख है—मैं अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू के कथन का पूरा समर्थन करता हूं और मुझे बंगाल की महिला सदस्या श्रीमती रेणुका राय से पूरी सहानुभूति है, जिन्होंने अपने प्रान्त की ओर से अनुरोध किया है। आसाम भी बोल चुका है और उड़ीसा दो बार बोल चुका है। अत: मेरा ख्याल है कि डॉ. अम्बेडकर अनुच्छेद 277 को वापस ले लेंगे या उसकी पुनर्रचना करके उन प्रान्तों की इच्छा पूरी करेंगे।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न पर मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन पर यथासंभव अधिक ध्यान दिया है, और मुझे खेद है कि मैं उनसे सहमत नहीं हूं, क्योंकि मुझे ऐसा अनुभव होता है कि उनका संशोधन मुख्यत: अनावश्यक ही है।

आरम्भ में हमें यह जान लेना चाहिये कि केन्द्र और प्रान्तों में साधारणत: क्या वित्तीय सम्बन्ध होंगे। मेरे विचार में अब तक पारित अनुच्छेदों से यह स्पष्ट है कि साधारणत: प्रान्तों को केन्द्र से निम्न राशियां मिलेगी:

(1) अनुच्छेद 251 के अन्तर्गत आय-कर की राशि;

(2) अनुच्छेद 253 के अन्तर्गत केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों का अंश; और

(3) अनुच्छेद 255 के अन्तर्गत कुछ अनुदान और सहायतायें।

मैं पटसन शुल्क को नहीं ले रहा हूं, क्योंकि उसका आधार भिन्न है और वह विधिरूप में प्रत्याभूत कर दी गई है।

हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि मेरे द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद में क्या सुझाव है। उसमें यह प्रस्थापना है कि जब आपात की उद्घोषणा हो जाये, तब राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि वह आय-कर, उत्पादन-कर तथा उन अनुदानों की राशि को पुन: वितरित करने की शक्ति ले सके, जो केन्द्र अनुच्छेद 255

के उपबन्धों के अधीन देगा। मेरे द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद से राष्ट्रपति को स्वविवेक की शक्ति मिलती है कि वह इन शीर्षकों के अधीन विवरण को बदल सके। मस्विदा समिति ने सदन को अनुच्छेद का जो मस्विदा पेश किया है, उसकी यही स्थिति है।

अब मेरे मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में क्या बात है? यदि उनको ठीक समझा हूं। तो वे मस्विदा समिति की इस बात से असहमत नहीं हैं कि मेरे द्वारा निर्देशित तीन मदों में से दो को बदलने का पूरा अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिये, अर्थात् वे राष्ट्रपति को इस बात का पूरा अधिकार देने के लिये तैयार हैं कि वह उस वितरण को बदल सके, जो केन्द्र उत्पादन शुल्क में से प्रान्तों को देता है और उन अनुदानों को बदल सके जो केन्द्र अनुच्छेद 255 के अन्तर्गत देता है। यदि मैं उनको ठीक समझा हूं, तो उन्हें इस बात में कोई कठिनाई नहीं होगी, यदि राष्ट्रपति आदेश द्वारा उस अंश को पूर्णतः समाप्त कर दे, जो साधारणतः केन्द्र उत्पादन करों और अनुदारों में से प्रान्तों को देने के लिये बाध्य होगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** (युक्त प्रान्तः जनरल): मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आपके संशोधन में केवल आय-कर की ही चर्चा है। मैं यही बताने का प्रयत्न कर रहा हूं। आपके संशोधन में यह सुझाव नहीं है कि उत्पादन शुल्कों या अनुच्छेद 255 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा दिये गये अनुदानों के विषय में कोई भिन्न प्रणाली होनी चाहिये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैंने अपना संशोधन उस रूप में बनाया था, उसका कारण यह है। जहां तक करों की आय का वितरण संसद द्वारा पारित विधि पर निर्भर है, उस हद तक वह शक्ति संसद से नहीं ली जा सकती, पर वह शक्ति राष्ट्रपति में नहीं है। पर जहां तक आय-कर का सम्बन्ध है, भारत-शासन-अधिनियम 1935 में ऐसी व्यवस्था थी कि प्रान्तों का पूरा भाग उन्हें एक खास अवधि में ही मिल जायेगा और गवर्नर जनरल को यह अनुमति थी कि, यदि आपात हो तो, प्रान्तों को वह राशि हस्तान्तरण करने में देर की जा सकती थी और इस प्रकार वह कालावधि बढ़ाई जा सकती थी जिसमें कि प्रान्तों को पूर्ण भाग मिलेगा। केवल यही कारण था; मेरे माननीय मित्र ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह नितान्त अनुचित है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** संशोधन का सर्वाधिक स्वाभाविक निष्कर्ष निकालने का मुझे हक है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** माननीय सदस्य मेरी बात को बिल्कुल गलत समझ रहे हैं। मेरे संशोधन के अन्तर्गत राष्ट्रपति को संघीय उत्पादन शुल्कों के वितरण को बदलने की कोई शक्ति नहीं होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है कि माननीय सदस्य ने अपने संशोधन में मामले को स्पष्ट नहीं किया है। और यदि वे अब नया अर्थ निकालना चाहते हैं और कोई मूल परिवर्तन करना चाहते हैं, तो संशोधन ऐसा होना चाहिये

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

था, जिससे मुझे पूर्ण सूचना मिल जाती कि उनकी क्या इच्छा थी। संशोधन में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह पता लग सके कि माननीय सदस्य अनुच्छेद 253 तथा 255 के उपबन्धों को बदलना चाहते हैं। यह अनुविचार हो सकता है, किन्तु मैं अनुविचारों पर विचार नहीं कर सकता; मैं तो संशोधन पर उसी रूप में विचार करूंगा जिस रूप में वह भेजा गया है। अत: जब मैंने उस संशोधन को पढ़ा, तो मेरा अर्थ स्वाभाविक ही है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** माननीय सदस्य की बात बिल्कुल अनुचित है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह तो माननीय सदस्य का मत है। मेरा यह ख्याल है कि कुछ नई चीज़ पेश की जा रही है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** माननीय सदस्य मेरी बात का गलत अर्थ बता रहे हैं और वे जानबूझकर ऐसा कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय सदस्य अपने ही विचारों का गलत अर्थ बता रहे हैं। अत: मैं तो यह समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र के इस सुझाव में यह प्रश्न ही नहीं है कि उत्पादन शुल्क और अनुदान की प्रणाली में परिवर्तन किया जाये। उन्होंने तो आपात में आय-कर के वितरण में परिवर्तन करने का ही प्रश्न उठाया था। फिर भी मैं क्या देखता हूं? यदि मैं उनके संशोधन को शुद्ध रूप में पढ़ूं तो वे उस स्वविवेक को बिल्कुल समाप्त नहीं कर रहे हैं, जो आय कर के वितरण को बदलने के विषय में राष्ट्रपति के पास शेष रह गया है। वे तो केवल इतना ही कर रहे हैं कि यदि राष्ट्रपति पिछले आदेश में उल्लिखित आय कर के वितरण में रूपभेद करे, तो राष्ट्रपति को एक विशेष पद्धति पर चलना होगा, जो उन्होंने संशोधन में लिखी है। दूसरे शब्दों में मेरे द्वारा प्रस्थापित खंड के मस्विदे में और मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में केवल यही अन्तर है कि जहां तक राष्ट्रपति के स्वविवेक का सम्बन्ध है, उसे अविनियमित नहीं छोड़ना चाहिये, उसका विनियमन उनके सुझाये हुए तरीके से होना चाहिये।

उस पर मेरा उत्तर यह है: ऐसा विश्वास करने का कारण कहां है कि आय कर के वितरण सम्बन्धी उपबन्धों को बदलने में या उस शक्ति के प्रयोग में वह ऐसी मनमानी करेगा कि आयकर की सारी ही आमदनी को ले लेगा? यह विश्वास करने का भी कारण कहां है कि राष्ट्रपति उस सुझाव को भी नहीं मानेगा, जो मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने अपने संशोधन में दिया है? ऐसा समझने का या मनमाना सुझाव देने का कोई कारण नहीं है कि राष्ट्रपति उन भागों का बिल्कुल समाप्त कर देगा, जो प्रान्तों को वितरण में पाने का हक है। आखिर राष्ट्रपति एक युक्तिपूर्ण व्यक्ति होगा; उसे पता होगा कि बहुत हद तक आय-कर का अंश प्रान्तों के राजस्व का भाग होता है; और उसे यह भी पता होगा कि, चाहे आपात हो, फिर भी केन्द्र की सहायता करना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक यह भी है कि प्रान्तों का काम चलता रहे।

अतएव मेरे विवेकानुसार राष्ट्रपति के हाथ एक विशेष प्रणाली से कार्य करने के लिये बांध देने की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसे कि मेरे मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में सुझाव दिया गया है। हो सकता है कि राष्ट्रपति प्रान्तों से परामर्श करके या वित्त आयोग से बात करके या किसी अन्य विशेषज्ञ प्राधिकारी से परामर्श करके आपात में आयकर को निबटाने का कोई अन्य उपाय निकाल ले, और उस वक्त उसे जो सुझाव मिले वह उससे कहीं अच्छा हो, जो कि मेरे मित्र पंडित कुंजरू रख रहे हैं। अतः मेरे विचर में यह बहुत गलत बात होगी कि राष्ट्रपति के हाथ बांध दिये जायें कि वह एक विशेष तरीके से काम करे और उसे स्वतंत्रता या स्वविवेक की शक्ति न दी जाये कि अन्य उपायों से कार्य करे जो कि उसे सुझाये जायें। मेरा सुझाव है कि मस्विदे को ऐसा ही लचकीला छोड़ दिया जाये, जैसा कि मस्विदा समिति की प्रस्थापना में है; मेरे मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन को स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं होगा।

जैसा, कि मैंने कहा है, मैंने मूल मस्विदे में, जिससे कि यह मामला पूर्णतः और बिल्कुल राष्ट्रपति के स्वविवेक पर ही छोड़ किया गया था और संसद को इसमें बोलने का कोई हक नहीं था, एक और संशोधन कर दिया है। मैंने जो नया संशोधन प्रस्थापित किया है, उससे संसद के लिये किसी ऐसे आदेश पर विचार करना संभव है, जो राजस्व के वितरण के विषय में राष्ट्रपति द्वारा निकाला जाये; और इसलिये यदि राष्ट्रपति कोई ऐसी बात कर रहा है, जो प्रान्तों के हितों के लिये बहुत हानिकर हो सकती है, तो संसद में निस्संदेह बहुत से प्रतिनिधि मामले को ठीक कर सकेंगे जो कि प्रान्तों से आयेंगे और निस्संदेह प्रान्तों के हितों को नहीं भूलेंगे। अतः मेरे विचार में मूल योजना को रहने देना चाहिये क्योंकि मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू के सुझाव से अधिक लचकीली है।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 277 को अनुच्छेद 277 का खंड (1) बना दिया जाये और इस प्रकार बने कथिक अनुच्छेद में निम्न खंड जोड़ दिया जाये:—

'(2) Every order made under clause (1) of this article shall, as soon as soon as may be after it is made, be laid before each House of Parliament."

[(2) इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन दिया प्रत्येक आदेश, उसके दिये जाने के पश्चात् यथासम्भव शीघ्र, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3007 तथा संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 13 के निदेश से, अनुच्छेद 277 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:–

'277. (1) While a proclamation of Emergency is in operation, the Union may, notwithstandinganything contained in Article

[उपाध्यक्ष]

Modification of the Provisions relating to distribution of taxes on income during the period a Proclamation of Emergency is in operation.

251 of this Constitution, retain out of the moneys assigned by clause (1) of that article to States in the first year of a prescribed period such sum as may be prescribed and thereafter in each year of the said prescribed period a sum less than retained in the preceding year by an amount, being the same amount in each year, so calculated that the sum to be retained in the last year of the period will be equal to the amount of each such annual deduction:

Provided that the President may in any year of the said prescribed period direct that the sum to be retained by the Union in that year shall be the sum retained in the preceding year and that the said prescribed period shall be correspondingly extended, but he shall not give any such direction except after consultation with the States nor shall he given any such direction unless he is satisfied that the maintenance of the financial stability of the Government of India requires him so to do.

(2) In his article, 'prescribed' means prescribed by the President by Order.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 277 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 277 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 279-क

***उपाध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव अपना संशोधन संख्या 73 पेश कर सकते हैं, जो नया अनुच्छेद 279-क जोड़ने के लिये है। उनका एक संशोधन अनुच्छेद 280 पर भी है, जो बिल्कुल वैसी ही भाषा में है जैसा कि संशोधन संख्या 73 है। मैं उनसे जानना चाहता हूं कि वे इसे नये अनुच्छेद के रूप में पेश

करता चाहते है, या इसे अनुच्छेद 280 के संशोधन के रूप में प्रस्थापित करना चाहते हैं।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाबः जनरल): श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 के निर्देश से अनुच्छेद 179 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:—

"279. A. Any law made or any executive action taken under article 279 in derogation......"

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ एक औचित्य प्रश्न है, उपाध्यक्ष महोदय। यह तो अनुच्छेद 280 के संशोधन के रूप में पेश होना चाहिये।

*__उपाध्यक्षः__ किन्तु वे इसे अनुच्छेद 279 के पश्चात् नये अनुच्छेद के रूप में अभी ही पेश करना चाहते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ फिर अनुच्छेद 280 भी पेश कर दिया जाये और सब बात पर इकट्ठा ही विचार हो जाये।

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ मुझे ऐसा करने पर कोई आपत्ति नहीं है।

*__उपाध्यक्षः__ मेरे विचार में अनुच्छेद 280 के पेश होने के पश्चात् पंडित भार्गव अपने संशोधन 74 को पेश कर सकते हैं। संशोधन संख्या 73 के पेश करने के स्थान पर वे संशोधन संख्या 74 को पेश कर सकते हैं, जब डॉ. अम्बेडकर अनुच्छेद 280 को पेश कर चुके।

अनुच्छेद 280

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'280. (1) Where a Proclamation of Emergency is in operation, the President may by order declare that the right to move any court for the enforcement of such of the rights conferred by Part III of this Constitution as may be mentioned in the order and all proceedings pending in any court for the enforcement of the

Suspension of the rights guaranteed by article 25 of the Constitution during emergencies.

rights so mentioned shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in force or for such shorter period as may be specified in the Order.

(2) An order made as aforesaid may extend to the whole or any part of the territory of India.

(3) Every order made under clause (1) of this article shall as soon as may be after it is made be laid before each House of Parliament."

आपात में संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों का निलम्बन।

[280. (1) जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान के भाग 3 द्वारा दिये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिये, जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा इस प्रकार वर्णित अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये किसी न्यायालय में लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिये, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।

(2) उपरोक्त प्रकार दिया हुआ आदेश, भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग पर विस्तृत हो सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद् के खंड (1) के अधीन दिया प्रत्येक आदेश उसके दिये जाने के पश्चात् यथासंभव शीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।]

श्रीमान, सदन यह समझ लेगा कि खंड (2) और (3) पुराने अनुच्छेद में जोड़े गये हैं। पुराने अनुच्छेद में एक उपबन्ध था कि जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तब राष्ट्रपति भाग 3 के अधिकारों के उपबन्धों को भारत भर में निलम्बित कर सकता है। अब यह निर्णय हुआ है कि चाहे आपात हो, फिर भी यह सर्वथा संभव है कि भाग 3 के अधिकारों को कुछ क्षेत्रों में यथापूर्व रहने दिया जाये, और केवल उद्घोषणा मात्र से वे भारत भर में पूर्णत: निलम्बित नहीं हों, इसके फलस्वरूप अनुच्छेद के मस्विदे में खंड (2) प्रविष्ट कर दिया गया है, जिससे कि यह उपबन्ध हो जाये।

तीसरी बात, मूल अनुच्छेद में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं था, जिससे कि खंड (1) के अधीन निकाले गये आदेश के मामले में संसद को कुछ कहने का हक्क हो जाये। सदन की यह इच्छा थी कि निलम्बन का आदेश पूर्णत: राष्ट्रपति के हाथ में ही न रहे, इसलिये अब यह उपबन्ध कर दिया गया है कि ऐसा आदेश संसद के समक्ष पेश किया जायेगा, निस्संदेह यह आनुषंगिक उपबन्ध है ही कि संसद को इच्छानुसार कार्यवाही करने का अधिकार होगा ही।

***उपाध्यक्ष:** अब पंडित ठाकुरदास भार्गव संशोधन संख्या 74 पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** तृतीय सप्ताह की सूची 1 में अन्य संशोधन हैं।

***उपाध्यक्षः** मैं उन सबको लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** सूची 1 को पहले ले लिया जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** आपकी अनुमति से मैं चाहता हूं कि नये अनुच्छेद 279-क के लिये संशोधन संख्या 73 और अनुच्छेद 280 पर संशोधन संख्या 74 को पेश करूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** प्रस्तावित नया अनुच्छेद आज की कार्यावलि में नहीं है।

***उपाध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव को संशोधन संख्या 74 पेश करना है। यही तय हुआ था।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** बात यह है कि यदि नया अनुच्छेद 279-क स्वीकृत हो जाता है, मुझे अनुच्छेद 280 के संशोधन को छोड़ देने में कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** आप कुछ समय पूर्व सहमत हो गये थे कि आप नये अनुच्छेद 279-क सम्बन्धी संशोधन को अनुच्छेद 280 के संशोधन के रूप में पेश करेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मेरा निवेदन है कि मैंने दो संशोधनों संख्या 73 और 74 की सूचना भेजी थी। दोनों का सार एक ही है। किन्तु एक में अनुच्छेद 280 के स्थान पर दूसरा अनुच्छेद रखने का सुझाव है, दूसरे में नया अनुच्छेद 279-क रखने का सुझाव है। साथ ही, दोनों संशोधनों का उद्देश्य बिल्कुल भिन्न है। अतः आप मुझे दोनों को पेश करने की अनुमति दीजिये।

***उपाध्यक्षः** बहुत अच्छा, आप बोल सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 के निर्देश से अनुच्छेद 279 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'अनुच्छेद 179 के अधीन बनाई गई कोई विधि या की गई कोई कार्यवाही, जो संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 13 के उपबन्धों का अल्पीकरण करती हो, केवल उसी कालावधि तक रहेगी जो कि उस भाग में परिभाषित राज्य द्वारा आवश्यक समझी जाये और किसी भी अवस्था में उस कालावधि से अधिक समय तक न रहेगी, जिस कालावधि में आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में रहे।' "

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:—

'280. Any law made or executive action taken under article 279 shall ensure for such period only as is considered necessary by the

State as defined in Part III of the Constitution and in no case for a period longer than the period during which a Proclamation of Emergency remains in force."

(280. अनुच्छेद 279 के अधीन बनाई गई कोई विधि या की गई कोई कार्यपालिका कार्यवाही केवल उसी कालावधि तक रहेगी जो भाग 3 में परिभाषित राज्य आवश्यक समझे और किसी भी अवस्था में उस कालावधि से अधिक समय तक न रहेगी, जिसे कालावधि में आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में रहे।)

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्तापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में 'a Proclamation of Emergency' इन शब्दों के पश्चात् 'under article 275 (1) of the Constitution' ये शब्द, अंक तथा कोष्टक प्रविष्ट कर दिये जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (2) में अंत में निम्न जोड़ दिया जाये:

'for a period during which the Proclamation is in force or for such shorter period as may be specified.'

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:—

'(2A) Any such order may be revoked or varied by a subsequent order.' "

[(2क) ऐसे किसी आदेश को बाद के आदेश द्वारा समाप्त किया या बदला जा सकता है।]"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (3) में अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:–

'and shall cease to operate at the expiration of one month unless before the expiration of that peirod it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

Provided that if any such order is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of one month referred to in clause (3) of this article and the order has not

been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, this order shall cease to operate at the expiration of fifteen days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the order have been passed by both Houses of Parliament.' "

श्रीमान, मैं सदन से प्रार्थना करता हूं कि वह अनुच्छेद 279 पर, जो हमने अभी पारित किया है और अनुच्छेद 280 पर एक साथ विचार करे और हमने अनुच्छेद 279 के अधीन जो कुछ पारित किया है, उसे ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 280 के प्रभाव पर अनुच्छेद 279 के साथ विचार करे।

जहां तक अनुच्छेद 279 का सम्बन्ध है, अब तक हमने यह स्वीकार किया है:—

"जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तब अनुच्छेद 13 की किसी बात से राज्य की कोई ऐसी विधि बनाने की अथवा कोई कार्यपालिका कार्यवाही करने की भाग 3 में परिभाषित शक्ति, जिसे वह राज्य उस भाग में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अभाव में बनाने अथवा करने के लिये सक्षम होता, निर्बन्धित नहीं होगी।"

जब हमने यह अनुच्छेद 279 पारित कर दिया है, तो इसका यह परिणाम निकलता है कि वास्तव में हमने कार्यपालिका को बहुत विस्तृत शक्तियां दे दी हैं, क्योंकि मूलाधिकारों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 13 के परन्तुकों द्वारा आरोपित निर्बन्धन वास्तव में हटा दिये गये हैं। जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, तब कार्यपालिका किसी विधि को बदल सकती है और कोई विधि बना सकती है, जो मूलाधिकारों, वाक्स्वातन्त्र्य आदि के विषय में हो, और कानून द्वारा धारा 13 के अधीन जो निर्बन्धन लगाये गये हैं वे प्रभावी नहीं होंगे, जिसका अर्थ यह है कि आपात की कालावधि में कार्यपालिका निरंकुश शक्तियों से लैस होगी।

अब यदि आप कृपया 280 को देखें, तो वह अनुच्छेद 279 से आधा भी कठोर नहीं है। अनुच्छेद 280 जिस रूप में अब मस्विदा में से निकलकर आया है, इसमें से कांटा निकल गया है। यदि आप कृपा करके मूल धारा 280 को देखेंगे, तो सदन इस परिणाम पर पहुंचेगा कि अनुच्छेद का मूल मस्विदा विद्यमान मस्विदे से कहीं अधिक कठोर था। संविधान के मस्विदे में पुराना अनुच्छेद 280 इस प्रकार था:—

"Where a Proclamation of Emergency is in operation, the President may be order declare that *the rights* guaranteed by article 25 of this Constitution shall *remain suspended* for such period not extending *beyond a period of six month* after the proclamation has ceased to be in operation as may be specified in such order."

[जहां आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार ऐसे

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस घोषणा के प्रवर्तन-शून्य होने के पश्चात् छ: मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।]

अर्थात् अनुच्छेद 280 के अनुसार अनुच्छेद 25 में उल्लिखित सब अधिकार निलम्बित रहते। इन अधिकारों को क्रियान्वित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार तथा उस अधिकार की प्रत्याभूति ही नहीं, वरन् वे अधिकार ही छिन जाते। अब उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने की प्रत्याभूति छीनने में और भाग 3 में प्रत्याभूति अधिकारों को ही छीनने में बहुत अन्तर है। यदि अधिकारों को नहीं छीना जाता है, तो स्थिति बहुत सुरक्षित है और उच्चतम न्यायालय तथा अन्य नागरिक देश की घोषित विधि के विरुद्ध नहीं जा सकते, केवल समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार ही छिनता है। विधियां पहले के समान ही रहेंगी, पर यदि विधि को बदलने की शक्ति छीन ली जाती है, जैसा कि अनुच्छेद 279 में किया गया है, तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें कार्यपालिका अत्यधिक निरंकुश बन जाती है। वे जो चाहें कर सकते हैं; वे कुछ भी विधि पारित कर सकते हैं, यदि वे संसद से उसे अधिनियमित करवा सकें, अत: अनुच्छेद 279 प्रभाव में अनुच्छेद 280 से कहीं अधिक कठोर है। यदि आप कृपया अनुच्छेद 279 को देखें, तो पता लगेगा कि आपात के काल में आप कार्यपालिका को प्राधिकार देते हैं कि वह अनुच्छेद 279 के उपबन्धों की चिन्ता न करते हुए कोई कार्यवाही कर सकती है, और इसी प्रकार आप विधानमंडल को, जैसा कि अनुच्छेद 7 में परिभाषित है, प्राधिकृत करते हैं कि वह कोई विधि पारित कर सकता है और वे रक्षणकवच तथा निर्बन्धन लागू नहीं होंगे, जो कि संविधान में सोच समझकर अनुच्छेद 13 के सम्बन्ध में रखे गये हैं, और इसका परिणाम यह होगा कि यदि उस कालावधि में कोई कार्यवाही की जायेगी या विधि पारित की जायेगी तो वह कार्यवाही और विधि सदा के लिये ठीक होगी। अनुच्छेद 279 में यह नहीं लिखा है कि जो कार्यवाही की जायेगी या विधि पारित की जायेगी, वह केवल आपात की कालावधि के लिये या तत्पश्चात् छ: मासों तक के लिये ही लागू होगी और उस विषय पर अनुच्छेद 279 बिल्कुल चुप है। अत: इस कालावधि में अधिनियमित कोई विधि चलती रहेगी, जब तक कि उसका निरसन या समाप्ति न की जाये। मेरे संशोधन में इस कालावधि को निर्बन्धित करने का उपबन्ध है और मैं चाहता हूं कि इस कालावधि में पारित कोई विधि या इस काल में की गई कोई कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यवाही, जो अनुच्छेद 279 के उपबन्धों के अधीन हो, केवल आपात के समय में ही प्रभावी रहे या उस न्यूनतर समय के लिये प्रभावी रहे, जो कि उस विधि को अधिनियमित करने वाला राज्य या उस कार्यवाही को करने वाली कार्यपालिका आवश्यक समझे।

अत: चाहे हम अनुच्छेद 280 के विषय में कुछ भी करें, यह बिल्कुल आवश्यक है कि आप अनुच्छेद 279-क को अधिनियमित करने के लिये सहमत हो जायें। अन्यथा प्रभाव यह होगा कि आपात में ली गई शक्तियां और उस काल में की कई कार्यवाही और बनाई गई विधि सदा के लिये प्रभावी रहेगी, जब तक कि उसका निरसन या समाप्ति न की जाये। यदि आप इस संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, तो ज्योंही आपात समाप्त होगा और सामान्य स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, त्यों

ही उस कार्यवाही या विधि का प्रभाव स्वत: समाप्त हो जायेगा और वह कार्यवाही तथा विधि स्वत: ही निरसित हो जायेगी और समाप्त हो जायेगी। अनुच्छेद 280 के सम्बन्ध में मैं सदन से प्रार्थना करता हूं कि वह इस पर विचार करने से पूर्व इसके सब आशय को समझ ले। "आपात" शब्द की कहीं परिभाषा नहीं की गई है और मेरे एक मित्र ने डॉ. अम्बेडकर को सुझाव दिया था कि वे "आपात" शब्द की परिभाषा कर दें और मैंने डॉ. अम्बेडकर से कहा था कि यदि वे "आपात" शब्द की परिभाषा करने में सफल हो गये, तो वह निस्संदेह उनका अलौकिक कार्य होगा, क्योंकि "आयात" शब्द ऐसा है कि आप संभवत: इसकी परिभाषा नहीं कर सकते। यदि तो कार्यपालिका विशेष पर ही निर्भर है कि वह कहे कि आपात उत्पन्न हो गया है और एक साधारण से आपात से किसी राज्य की कार्यपालिका व्याकुल हो सकती है। एक बुलबुला भी किसी समय पहाड़ बन सकता है और सत्य का महानतम पर्वत दिखाई देने वाला भी बालू की भीत के समान ढह सकता है। कोई भी पहले से देख नहीं सकता और कह नहीं सकता कि असल में गड़बड़ कैसी बढ़ जायेगी। अत: एक घबराने वाला मंत्रिमंडल शीघ्र ही आपात की घोषणा कर देगा, जबकि शक्तिशाली और साहसी मंत्रिमंडल ऐसी स्थिति में यह घोषणा नहीं करेगा कि आपात उत्पन्न हो गया है। यह तो मंत्रिमंडल की नाड़ी पर तथा रीढ़ पर निर्भर है कि वे इस प्रश्न को कैसे निबटाते हैं। अत: मेरे विचार में हमें यह नहीं समझना चाहिये कि विद्यमान मंत्रिमंडल सदा ही रहेगा या कि भविष्य में ऐसे मंत्रिमंडल नहीं होंगे जो शायद वैसा विचार न करें जैसी कि हमारे विद्यमान मंत्रिमंडल से आशा की जाती है। अत: हमें सावधान होना चाहिये और यह देखना चाहिये कि हम कार्यपालिका को ऐसी ही शक्तियों से लैस करें कि जो आवश्यक हैं, जिससे कि किसी घबराने वाले मंत्रिमंडल के कारण जनता की स्वतंत्रतायें जोखम में न पड़ें। अत: हमें यह देखना है कि हम ऐसे ही उपबन्ध बनायें जिससे कि कार्यपालिका अत्यधिक शक्ति से लैस न हो जाये।

यह सब कुछ कहने करने के पश्चात् संसद वैकल्पिक प्राधिकारी है। यदि हम अनुच्छेद 280 की कुछ शक्तियां संसद को दे दें तो ठीक रहेगा। इसी दृष्टिकोण से मैंने इस अनुच्छेद पर दूसरे संधोधन रखे हैं।

इस विषय में मैं सर्वप्रथम सदन का ध्यान संशोधन संख्या 75 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है, मेरे विचार में यह केवल स्पष्टीकरण ही है। मैं कह चुका हूं कि आपात की उद्घोषणा केवल अनुच्छेद 275 (1) के अधीन ही की जा सकती है। अनुच्छेद 278 के अन्तर्गत आपात की उद्घोषणा करने का कोई विचार नहीं है। मैं इस बात को बिल्कुल स्पष्ट करना चाहता हूं कि केवल इसी अनुच्छेद के अधीन ही शक्तियां ली जा सकती हैं।

संशोधन संख्या 76 के विषय में मैं निवेदन करना चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को पढ़कर मैं समझता हूं कि उद्घोषणा या आदेश समस्त भारत में लागू हो सकता है जहां तक समय का सम्बन्ध है, यदि आप अनुच्छेद को ऐसे

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

ही रहने देते हैं और संशोधन संख्या 76 को नहीं स्वीकार करते हैं, तो इसका अर्थ यह होगा कि प्रत्येक आदेश भारत भर में या भारत के भाग में अपनी पूरी अवधि तक लागू रहेगा। यदि आप इन शब्दों को जोड़ देते हैं, तो यह संभव है कि कुछ भागों में वह आदेश थोड़े समय तक लागू रहे और शेष भारत में पूरे समय तक लागू रहे। यदि आप इसको नहीं जोड़ेंगे तो डॉ. अम्बेडकर जो चाहते हैं, वह उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

संशोधन 77 और 78 के विषय में मैं सदन का अधिक समय लेना नहीं चाहता, क्योंकि वास्तव में ये दोनों संशोधन मूल खंड में से लिये गये हैं, जो हमने आपात की उद्घोषणा के विषय में पारित कर दिये हैं। यदि आप कृपया अनुच्छेद 275 को देखें तो आपको पता लगेगा कि ये दोनों वहां पहले ही हैं। मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 275 में आपात की उद्घोषणा के सम्बन्ध में ये जो दो रक्षण कवच रखे गये हैं, इन्हें इस आदेश के सम्बन्ध में भी रखा जाये। आखिर आपात की उद्घोषणा का प्रथम और सबसे बड़ा प्रभाव नागरिकों पर यही होता है कि उनके मूलाधिकार समाप्त हो जाते हैं। उन पर अत्यन्त महान प्रभाव पड़ता है। जब मैं यह देखता हूं कि आपात रबड़ के समान लचकीला हो सकता है, तो मेरी कठिनाई और भी बढ़ जाती है। जब तक संसद उस आदेश विशेष का अनुसमर्थन न कर दे, जिससे कि मूलाधिकारों की प्रत्याभूति समाप्त की गई थी, तब तक हम इस देश में सुरक्षित नहीं होंगे और किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रहेगी, जब तक कि यह उपबन्ध अधिनियमित न कर दिया जाये।

यदि आप अनुच्छेद 279 और 280 के सम्बन्ध में विद्यमान स्थिति को देखें, तो आप वास्तव में देखेंगे कि अनुच्छेद 280 का यह उपबन्ध ऐसा आवश्यक नहीं है, जितना कि वह दिखाई देता है। मेरा एक यह भी संशोधन है कि अनुच्छेद 280 के स्थान पर हम अनुच्छेद 279-क रख सकते हैं। मैं चाहता हूं कि सदन भी मेरे समान इस निष्कर्ष पर पहुंच जाये कि अनुच्छेद 280 इतना आवश्यक नहीं है जितना कि वह दिखाई देता है। जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, अनुच्छेद 13 ही मुख्य अनुच्छेद है। आप यदि अनुच्छेद 13 को हटा दें, तो मूलाधिकारों में कुछ नहीं बचता, जिस पर कोई व्यक्ति फूले या चिंतित हो। अनुच्छेद 13 जब अनुच्छेद 279 द्वारा समाप्त हो जाता है, तो कोई मूलाधिकारों की चिन्ता किसलिये करेगा? प्रजा की वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा उसके अधिकारों के रक्षण के विषय में तो अनुच्छेद 15 है ही। सदन मुझे क्षमा करेगा, यदि मैं इस उपबन्ध पर थोड़ा विषयान्तर कर दूं।

अब श्रीमान, आज हमारे मूलाधिकारों में अनुच्छेद 15 हमारे संविधान पर महानतम धब्बा है। हमने अनुच्छेद 13 में जो कुछ दिया है, वह अनुच्छेद 15 द्वारा छीन लिया गया है। यदि अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत दी गई शक्तियों के दुरुपयोग के लिये 'restriction' शब्द के पहले 'reasonable' शब्द का प्रयोग किया गया है तो वे सब संरक्षण अनुच्छेद 15 द्वारा समाप्त हो गये हैं, क्योंकि प्रक्रिया के विषय में हमने विधान-मंडल की शक्तियों पर कोई भी निर्बन्धन नहीं रखे हैं। अनुच्छेद 15 के अधीन विधान-मंडल को पूरी स्वतंत्रता है कि वह जो चाहे विधि पारित कर सकता है। वह आज के सारे रक्षण-कवच समाप्त कर सकता है। अनुच्छेद

15 के अधीन किसी विधान-मंडल को यह अधिनियम बनाने का अधिकार है कि किसी अभियुक्त की ओर से वकील खड़ा नहीं किया जा सकता। आज अनुच्छेद 15 के अधीन किसी विधान-मंडल को यह अधिनियम बनाने की क्षमता है कि वास्तव में वह बन्दीकरण सम्बन्धी, जामिन सम्बन्धी, सफाई और अपील सम्बन्धी उपबन्धों आदि का निराकरण कर सके। अनुच्छेद 15 के अधीन विशेष न्यायालय बनाये जा सकते हैं, जिनकी विशेष शक्तियां और प्रक्रिया हो और जनता की स्वतंत्रता को शून्य के समान बनाया जा सकता है। विद्यमान स्थिति यह है। जब तक आप अनुच्छेद को ठीक नहीं करते, तब तक आपके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे अनुच्छेद 280 द्वारा छीना जा सके। यदि आप अनुच्छेद 13 के अधीन सब शक्तियों ले लेते हैं, तो क्या बचता है जिसके छिनने पर किसी को दुख हो? यदि आप कृपया मूलाधिकारों को देखें तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि ऐसा कोई भी मूलाधिकार नहीं है, जिसे संभवत: यह अनुच्छेद 280 बनाकर छीना जा सके। सर्वप्रथम, यदि आप इन अनुच्छेदों को एक एक करके देखेंगे, तो आप इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि अनुच्छेद 280 इनमें से बहुतों को नहीं छूता। अनुच्छेद 9 को लीजिये, मैं नहीं समझता कि कोई व्यक्ति यह विवाद करेगा कि अनुच्छेद 280 कुओं, सड़कों, भोजनालयों आदि के प्रयोग सम्बन्धी किसी अधिकार को छूता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 10 है, जो नियोजन के विषय में है, और अनुच्छेद 11 अस्पृश्यता के विषय में है और अनुच्छेद 12 जो खिताओं के विषय में है, और अनुच्छेद 13 का तो प्रभाव पहले ही मिटा दिया गया है। अनुच्छेद 14 के विषय में समझता हूं कि कुछ और भी बुराई की जा सकती है, यदि अनुच्छेद 280 बना दिया जाये। जो व्यक्ति दो मास पूर्व कोई अपराध कर चुका हो, उस पर बाद में बनाये गये कानून द्वारा मुकदमा चलाकर उसे अधिक दंड दिया जा सकता है। इसी प्रकार एक ही अपराध के लिये दो बार दंड दिया जा सकता है और तात्कालिक उपचार के लिये उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार छीना जा सकता है। अनुच्छेद 15 के विषय में मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं। यदि अनुच्छेद 15 विद्यमान रूप में रहता है तो मैं भविष्यवाणी कर सकता हूं कि जब यह सब संविधान बन चुकेगा और विवाद समाप्त हो चुकेगा और डॉ. अम्बेडकर अपने बंगले में बैठेंगे तो उस दिन के लिये पश्चाताप करेंगे, जिस दिन उन्होंने अनुच्छेद 15 को बिना रक्षण-कवचों के पारित किया था। मैं उनसे और सदन से अपील करता हूं कि यदि वे वास्तव में देश के लोगों का भला चाहते हैं, तो उन्हें अनुच्छेद 15 को संशोधित कर देना चाहिये। यदि अनुच्छेद 15 का संशोधन नहीं किया जाता है, तो इस संविधान और मूलाधिकारों को रखने से कोई लाभ नहीं है। अत: मेरा निवेदन है कि जहां तक अनुच्छेद 15 का सम्बन्ध है, विधि में यह उपबन्ध है ही कि प्रक्रिया के विषय में संसद कोई विधि बना सकती है और इसलिये प्रक्रिया के विषय में कोई मूलाधिकार है ही नहीं। अतएव कोई और मुख्य मूलाधिकार नहीं है, जिस पर इस अनुच्छेद का प्रभाव पड़ता है।

अनुच्छेद 16 के विषय में जो व्यापार स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में है, संसद को विधियां बनाने की शक्ति पहले ही प्राप्त है। अनुच्छेद 17 मानव-पण्य के वर्जन के विषय में है, और अनुच्छेद 18 बच्चों के नियोजन के विषय में है। मैं नहीं समझता कि कोई सरकार अनुच्छेद 17 के अधीन एक ही वर्ग से अनिवार्य कार्य लेना चाहेगी। इस अनुच्छेद द्वारा राज्य को शक्ति दी गई कि वह बिना विभेद किये

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अनिवार्य कार्य ले सकता है। इस प्रकार यह तो शक्ति प्रदान करने वाला खंड है, शक्ति छीनने वाला नहीं। यदि अनुच्छेद 280 को पारित नहीं किया जाता है, तो कोई और मूलाधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ता, अनुच्छेद 19, 20, 21, 22, 23 धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों के विषय में हैं और अनुच्छेद 24 प्रतिकर के विषय में है।

अतएव मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि मेरा निर्वचन ठीक है, तो अनुच्छेद 280 से केवल उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने का लोगों का अधिकार छिनता है। अधिकार नहीं छिनते; विधि समाप्त नहीं होती; विधियां पूर्ववत् ही रहेंगी। केवल मैं समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय को प्रचालित नहीं कर सकता। अनुच्छेद 13 के अतिरिक्त और कोई विधियां समाप्त नहीं होगी। यदि राष्ट्रपति इस अनुच्छेद 280 के अधीन शक्ति ले लेता है, तो विधियां वैसी ही रहेगी जैसी हैं; केवल समुचित कार्यवाहियों द्वारा तात्कालिक उपचार ही समाप्त हो जायेगा। अतएव मेरा निवेदन है कि जब तक आप अनुच्छेद 15 को नहीं बदलते, मुझे कोई चिन्ता नहीं है कि आप अनुच्छेद 280 को अधिनियमित करें या न करें। यदि अनुच्छेद 15 को संशोधित कर दिया जाये या अन्य अनुच्छेद बनाकर अधिक रक्षण-कवच रख दिये जायें, जैसा कि मेरे विचार में संविधान में होना चाहिये, तो अनुच्छेद 280 सार्थक हो जायेगा। तब अनुच्छेद 280 आवश्यक होगा, क्योंकि उसका यह अर्थ होगा कि यदि आपात होगा तो संशोधित अनुच्छेद 15 में प्रदत्त महत्वपूर्ण अधिकार ले लिये जायेंगे, और हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि कार्यपालिका को ऐसी शक्ति न दी जाये कि वह नागरिकों के सब प्रिय तथा महत्वपूर्ण अधिकारों को ले सके। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह आपात गंभीर भी हो सकता है और नहीं भीं। मान लीजिये, कश्मीर में या देश के किसी सीमावर्ती भाग में युद्ध हो, तो मैं नहीं समझ सकता कि त्रावनकोर और मैसूर में क्या होगा और वहां के लोगों के अधिकारों को क्यों छीना जाये। यह तो उस आपात विशेष पर निर्भर होगा। घबराने वाला मंत्रिमण्डल बिना उपयुक्त कारण के ही सब अधिकारों को छीन सकता है।

अत: मेरा नम्र निवेदन है कि हमारा अंतिम सहारा संसद है, इसलिये ये सब शक्तियां संसद को दी जानी चाहिये और इस मामले में उसकी ही बात अन्तिम होनी चाहिये और ज्योंही कोई अध्यादेश पारित किया जाये, वह संसद के निषेधाधिकार के अधीन होना चाहिये और संसद एक मास में ही कह सके कि वह उसे स्वीकार करती है या नहीं। यदि कोई ऐसा प्रस्ताव हो कि वह आदेश स्वीकृत नहीं है, तो उसे रद्द कर देना चाहिये। अतएव यदि आप जनता से अधिकारों का संरक्षण करना चाहते हैं तो आपको यह अनुच्छेद 280 उस रूप में पारित नहीं करना चाहिये जिस रूप में डॉ. अम्बेडकर अपने संशोधन द्वारा इसे पारित करवाना चाहते हैं।

***श्री बी.एन. मुनावल्ली:** (बम्बई राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (3) में अन्त के पूर्ण विराम के

स्थान पर अर्ध विराम रख दिया जाये और तत्पश्चात् 'when it meets for the first time, after such an Order' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, अनुच्छेद 280 ऐसा अनुच्छेद है जो राष्ट्रपति को कठोर शक्तियां प्रदान करता है। यदि हम अन्य राष्ट्रों के अन्य संविधानों को देखेंगे तो हमें पता लगेगा कि किसी राष्ट्रपति को ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। फ्रांसीसी संविधान में राष्ट्रपति मुकुटहीन राजा का रूप ही होता है। उसे तो केवल निषेधाधिकार प्राप्त है जिसका प्रयोग वह करता ही नहीं। गत पचास वर्षों में इस शक्ति को प्रयोग करने का कोई अवसर ही नहीं आया। इसी प्रकार स्विस संघ में राष्ट्रपति को ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं; किन्तु आश्चर्य है कि हमारे संविधान में राष्ट्रपति मुकुटहीन राजा होने के स्थान पर मुकुट तथा राजदंड सहित राजा है। हां, उसे आपात के समय ही ये शक्तियां प्राप्त होंगी, किन्तु इस संविधान के अधीन प्रत्येक नागरिक को जो मूलाधिकार प्राप्त हैं, वे इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति के आदेश द्वारा छीने जा सकते हैं। वह विधि का भी आश्रय नहीं लेता; पर इसमें भी एक बात है, अर्थात् खंड (3) है जिसमें लिखा है कि राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश को यथासंभव शीघ्र संसद के समक्ष रखा जाता है। इस खंड पर मेरा संशोधन यह है कि राष्ट्रपति द्वारा आदेश पारित करने के पश्चात् ज्यों ही संसद प्रथम बार समवेत हो, त्योंही उसके समक्ष वह पेश किया जाये और उस मामले को स्थगित न किया जाये। मेरे मित्र पंडित भार्गव ने कुछ संशोधन पेश किये हैं और वे बिल्कुल नियमित तथा उचित हैं, क्योंकि विद्यमान रूप में इस अनुच्छेद से नागरिकों को सब मूल अधिकारों से वंचित कर दिया जायेगा और यदि उनके संशोधन स्वीकार कर लिये जायेंगे तो उन्हें कुछ सुविधायें मिल जायेंगी। अत: मैं पंडित भार्गव के संशोधनों का समर्थन करता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280 के खंड (1) में 'भाग 3' इस शब्द और अंक के स्थान पर 'अनुच्छेद 13 और 16' ये शब्द और अंक रख दिये जायें।"

श्रीमान, यह प्रस्थापित नया अनुच्छेद 280 भी उतना ही कठोर है। यह अन्य कठोर खंडों के समान ही है जो इससे सम्बद्ध हैं। नये रूप में अनुच्छेद 280 का क्या प्रभाव है? यह स्मरण रखना चाहिये कि पहले एक अवसर पर डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को कुछ नरम रूप में पेश किया था। उस पर सदन में गम्भीर आपत्तियां की गई थीं। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि इस पर विचार स्थगित कर दिया जाये और फिर उन्होंने ऐसी चीज पेश की है जो अधिक कठोर है, अधिक आपित्तजनक है और इसलिये जो आपत्तियां उठाई गई थीं उन पर विचार ही नहीं किया गया है, वरन् यह अनुच्छेद अधिक आपत्तिजनक रूप में सदन के समक्ष पुन: पेश किया गया है। विद्यमान रूप में इसका प्रहार लम्बित मामलों पर भी होता है। अच्छेद 280 का क्या उद्देश्य है? यह है कि आपात के समय राष्ट्रपति आदेश द्वारा किसी व्यक्ति के इस अधिकार को समाप्त कर सकता है कि वह संविधान के भाग 3 में उल्लिखित अपने अधिकारों को पूरा करवाने के लिये उच्चतम न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में जो इस विषय में संसद द्वारा प्राधिकृत हो, जा सकता है। संविधान के भाग 3 में कौन से अधिकारों का उल्लेख है?

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वे तथाकथित मूल अधिकार हैं। यह कहा जाता है कि वे अधिकार रहेंगे तो, पर यदि उनका उल्लंघन हो तो कोई उपचारार्थ न्यायालय में नहीं जा सकता। पंडित भार्गव ने एक भेद किया है जो बिल्कुल लागू नहीं होता। वे कहते हैं कि अधिकार समाप्त नहीं होंगे, पर उनके पूरा करवाने के लिये न्यायालय जाने की मनाही होगी। अधिकार तो रहेंगे; उनके अस्तित्व से इन्कार नहीं है; पर लोगों को केवल न्यायालय में नहीं जाने दिया जायेगा। यह गलत बात है। किसी को कोई अधिकार देने से कोई लाभ नहीं है, यदि उसे उस अधिकार का उल्लंघन होने पर न्यायालय नहीं जाने दिया जाता। यदि आप कहते हैं–"आपको हम यह सम्पत्ति पूरी तरह दे रहे हैं, पर यदि मैं इसे छीन लूं तो आप न्यायालय में नहीं जा सकते"। यह तो अधिकार को न देने के बराबर ही है। मेरा निवेदन है कि इन दोनों का यह अर्थ है कि अधिकार भी निलम्बित हो जाते हैं। वे कौन से अधिकार हैं जो निलम्बित हो जाते हैं? वे संविधान में वर्णित-मूलाधिकार है। किन्तु वे ऐसे अधिकार हैं जिन पर आपात के कारण जरा भी प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। राष्ट्रपति को आपात में कार्यवाही करने की शक्ति तो देनी ही चाहिये। सदन वह शक्ति देता। अब यह प्रश्न है कि व्यर्थ शक्ति, मूलाधिकारों में हस्तक्षेप करने की अनावश्यक शक्ति नहीं दी जानी चाहिये। अब जो शक्ति मांगी जा रही है वह बिल्कुल अनावश्यक है और आपात का हल यह नहीं कि लोगों को वे अधिकार न दिये जायें जो कि मूलभूत हैं। अब संविधान में कौन से मूलाधिकार दिये गये हैं, जिनको न्यायालय द्वारा पूरा करवाने का वर्जन है। मैं इन अधिकारों को संक्षेप में बताऊंगा। वे अनुच्छेद 9 से 23-क तक में दिये हुए हैं।

अनुच्छेद 9 (1) में लिखा है कि किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा।

क्या इस अनुच्छेद का यह अर्थ है कि विभेद के विरुद्ध रक्षण का यह मूल अधिकार आपात की उद्घोषणा के समय निलम्बित रहेगा? क्या कोई माननीय सदस्य ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकता है, जबकि इस विषय के अधिकारों को समाप्त करना संभव होगा कि धर्म, लिंग आदि के आधार पर कोई विभेद नहीं होगा? क्या इसका यह अर्थ है कि आपात में राज्य धर्म या मूलवंश या जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर विभेद कर सकता है? अनुच्छेद 7 के अधीन 'राज्य' शब्द के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों की सरकारें और "स्थानीय तथा अन्य निकाय" भी हैं। मेरे विचार में इन अधिकारों के दमन का स्पष्ट अर्थ यह है कि इससे सरकार या जिला मंडल अथवा नगरपालिका अथवा संघ-मंडल इन आधारों पर किसी व्यक्ति के विरुद्ध विभेद कर सकेंगे। मेरे विचार में इससे अधिक बेहूदी कोई बात नहीं है।

तत्पश्चात् हम अनुच्छेद 9 के खंड (1-क) पर आते हैं। उसमें यह लिखा है कि धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग आदि आदि के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों में प्रवेश के और कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के लिये निर्योग्यता नहीं होनी चाहिये। क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या आपात में लोगों के किसी वर्ग की दुकानों, अथवा

सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों में नहीं जाने दिया जायेगा; कुओं, तालाबों आदि का प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा? मेरा निवेदन है कि वे अधिकार आपात में भी निलम्बित नहीं रह सकते।

तत्पश्चात् हम अनुच्छेद 10 पर आते हैं जिसमें लिखा है कि नियोजनों अथवा नियुक्तियों के मामले में अवसर की समता होगी। यदि आप इन अधिकारों को आपात में निलम्बित कर दें तो इसका यह अर्थ होगा कि आपात में अवसर की समता नहीं होगी। क्या मैं पूछ सकता हूं कि इस निलम्बन से क्या लाभ है?

फिर हम अनुच्छेद 11 पर आते हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है। अनुच्छेद 11 द्वारा अस्पृश्यता का अन्त किया गया है। यदि कोई अस्पृश्यता पर आचरण करता है, यदि अस्पृश्यता के आधार पर कोई विभेद होता है, तो वह दंडनीय बना दिया गया है। क्या आप राष्ट्रपति से लेकर क्षुद्रतम ग्रामसंघ मंडल को वह अधिकार देना चाहते हैं कि वह स्पृश्यता पुनः आरम्भ कर दे? मेरे विचार में इससे कोई आपात नहीं मिटेगा, वरन् बढ़ जायेगा।

फिर अनुच्छेद 12 में खिताबों को प्रदान करने का वर्जन है, बल्कि इसमें लिखा है कि खिताब राज्य द्वारा मान्य नहीं होंगे। क्या इसके निलम्बन का यह अर्थ होगा कि हमारी सरकार से यह विदेशी सरकारों से खिताब बरसने लगेंगे और राज्य उन्हें मान्यता देगा? मैं समझ नहीं पाता कि इससे आपात का समाधान कैसे होगा।

तत्पश्चात् हम अनुच्छेद 13 पर आते हैं, जिसमें वाक्-स्वातन्त्र्य, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन, संस्था बनाने और एक स्थान से दूसरे स्थान को अवाध रूप से जाने आदि की प्रत्याभूति है। किन्तु इनमें में भी शर्तें हैं कि भाषण देने में हमें अपमान-लेख, अपमान-वचन या मानहानि नहीं करनी चाहिये; कि शिष्टाचार या सदाचार का उल्लंघन नहीं होना चाहिये, कि उसके भाषण-स्वातन्त्र्य में राज्य की सुरक्षा पर प्रभाव डालने या राज्य को उलटने का प्रयत्न नहीं होना चाहिये। इस वाक्-स्वातन्त्र्य पर इतनी शर्तें लगा दी गई हैं कि वह आपात के समय भी हानिकर नहीं होगा। फिर वे ही शर्तें सम्मेलन पर लागू हैं। लोकव्यवस्था के विरुद्ध कोई बात जैसे कि विधि-विरुद्ध सम्मेलन तथा अन्य ऐसी ही चीजों के लिये संरक्षण रखे गये हैं। इसलिये मेरे विचार में, श्रीमान, शांतिपूर्वक सम्मेलन के अधिकार का काफी संरक्षण कर दिया गया है और ऐसी शर्तें लगा दी गई हैं जिनसे वह हानिहीन हो जाये। और फिर संस्था बनाने और अन्य बातों के अधिकार पर भी ऐसी ही शर्तें रखी गई हैं। वे अधिकार लोगों को इस प्रकार दिये गये हैं कि वे समाज की सुरक्षा या लोक-सदाचार या लोकशांति को हानि पहुंचाने के लिये प्रयुक्त नहीं हो सके।

फिर अनुच्छेद 14 (1) में लिखा है कि विधि की समुचित प्रक्रिया के बिना कोई व्यक्ति सिद्ध-दोष नहीं ठहराया जायेगा। यदि आप इस अधिकार को निलम्बित कर देते हैं, तो इसका यह अर्थ होगा कि बिना किसी विधि के सिद्ध-दोष हो सकता है, आप सरकार के विरुद्ध बोलने वाले किसी व्यक्ति को पकड़ सकते हैं, या सरकार के विरुद्ध लेख लिखने वाले किसी पत्र को पकड़ सकते हैं, और विधि के प्राधिकार के बिना ही उन्हें कारागार में भेज सकते हैं। अनुच्छेद 14 (2) में हमने यह भी लिखा है कि एक ही अपराध के लिय दो बार अभियोजित

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

या दंडित न किया जायेगा। यदि आप इस अधिकार को निलम्बित कर देंगे तो इससे यह प्राधिकार मिल जायेगा कि किसी को एक ही अपराध के लिये दो बार दंडित किया जा सकेगा तथा कानून के प्राधिकार के बिना भी दंडित किया जा सकेगा। और इस अनुच्छेद के अधीन कोई भी अभियुक्त अपने विरुद्ध साक्षी देने के लिये बाध्य न किया जायेगा। यदि यह अधिकार निलम्बित कर दिया जाये तो कोई दंड-न्यायालय किसी अभियुक्त को अपने ही विरुद्ध साक्षी होने के लिये बाध्य कर सकेगा।

अनुच्छेद 16 में व्यापार तथा वाणिज्य की चर्चा है कि व्यापार और वाणिज्य स्वतंत्र होना चाहिये।

श्रीमान, सामान्यत: ये ही कुछ महत्वपूर्ण मूल अधिकार हैं, जिन्हें संविधान में स्पष्ट शब्दों मैं प्रत्याभूत किया गया है। अन्य भी हैं, पर उनकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है। क्या में पूछ सकता हूं कि इन अधिकारों को निलंबित करने से क्या अभिप्राय सिद्ध होगा? अधिकांश मामलों में इन अधिकारों के निलम्बन से, जैसा कि मैं बता चुका हूं, बेहूदगियां हो जायेंगी और कुछ मामलों में गम्भीर अन्याय हो जायेगा, और किसी प्रकार राज्य को आपात में से निकलने में सहायता नहीं मिलेगी। इन परिस्थितियों में, मेरा निवेदन है कि इन अधिकारों का निलम्बन केवल अनावश्यक ही नहीं है, वरन् कठिनाइयों और अन्याय का कारण बन जायेगा और कई मामलों में तो अत्यन्त बेहूदगी होगी। किन्तु मेरे संशोधन में अनुच्छेद 13 और 16 के विषय में कुछ अपवाद रखा गया है। अनुच्छेद 13 वाक्-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य आदि के सम्बन्ध में है। हो सकता है कि आपात में इन अधिकारों को राज्य के ही हित में कम करना पड़ जाये। इसी प्रकार अनुच्छेद में प्रत्याभूत व्यापार-स्वातंत्र्य को सार्वजनिक कारणों से कम करना पड़े। आपात में उपभोज्य माल कुछ लोगों के पास इकट्ठा हो जाये और वे चोर बाजारी के प्रयोजन के लिये उनका उपयोग करें। अत: आपात में राज्य के लिये इन अधिकारों में से हस्तक्षेप करना आवश्यक हो सकता है। अत: मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध रखा है कि अनुच्छेद 13 और 16 में प्रत्याभूत अधिकारों को आपात में निलम्बित किया जा सकता है।

मेरे संशोधन के साथ अनुच्छेद 280 में लिखा है कि आपात में राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि किसी व्यक्ति को अनुच्छेद 13 तथा 16 के अधीन के अधिकारों में हस्तक्षेप होने पर न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार नहीं होगा। मैंने निलम्बन के अधिकार को इस हद तक स्वीकार कर लिया है, यद्यपि मैं समझ नहीं सकता कि आपात में भी इनको निलम्बित करना किस हद तक युक्तियुक्त या उपयोगी होगा। कुछ भी हो, मैं इन अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अधिकार राष्ट्रपति को देने के लिए तैयार हूं।

श्रीमान, जैसा कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, इन महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को निलम्बित करने के लिए आपात कोई आधार नहीं है। मूल अधिकार मूल ही नहीं रहेंगे, यदि वे साधारण और अनावश्यक आधारों पर समाप्त किये जा सकते हैं। इन अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये, जबकि ऐसे हस्तक्षेप से राज्य को जरा भी लाभ न हो। दोनों महान विश्व युद्धों में भी–जो मानवता के लिये महानतम आपात थे—न्यायालयों को बंद नहीं किया गया। वास्तव में भारतीय तथा

अंग्रेजी न्यायालयों ने अपने द्वार खुले रखे। किसी ने उनकी शक्तियों को कम करने का विचार नहीं किया। ये अधिकार तो न्याय होने चाहियें। अन्यथा यह कहना असंभव है कि अधिकार हैं। अधिकार के उल्लंघन पर न्यायालय में जाने के अधिकार से ही डर कर राज्याधिकारी मनमानी नहीं करेंगे। इन अनुच्छेदों में राष्ट्रपति के पवित्र नाम का प्रयोग किया गया है—मेरा निवेदन है कि उसका दुरुपयोग किया गया है। जैसा कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, राष्ट्रपति स्वयं कुछ कार्यवाही नहीं करेगा। उससे व्यक्तिगत स्वविवेक से कार्य करने की आशा नहीं की जाती। उसे सदा मत्रिमंडल की मंत्रणा पर कार्य करना होगा और यह कल्पना की जा सकती है कि कोई मंत्रि-मंडल किसी सचिव या उप-सचिव के कहने पर ऐसा कदम उठा सकता है और ऐसे मूल्यवान अधिकार, जो कि स्वतंत्रता का निचोड़ है, राष्ट्रपति के पवित्र नाम से निम्नलिखित हो जायेंगे।

यह जो थोड़ा सा उपबन्ध रखा गया है कि उन आदेशों को विधान-मंडल की अगली बैठक में रखा जाना चाहिये, वह तो साधारण सा संतोष है क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश पर सदन में कोई जवाब नहीं मांग सकता, आलोचना नहीं कर सकता और वाद-विवाद भी नहीं कर सकता। अतः उन का सदन के समक्ष केवल रखा जाना, जबकि उन पर वाद-विवाद का अवसर न हो, उन लोगों के लिये कोई संतोष की बात नहीं है, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अन्य वस्तुओं से अधिक मूल्यवान समझते हैं।

मेरे विचार में इन शक्तियों को यथासंभव अधिकतम घटाना चाहिये, यद्यपि सब मानेंगे कि राष्ट्रपति को कुछ शक्तियां मिलनी चाहिये, जो कि आपात में आवश्यक हों। किन्तु राष्ट्रपति के लिये जो शक्तियां मांगी गई हैं, उनसे लोगों की स्वतंत्रता का दमन होगा। युद्धकाल में अंग्रेज़ी न्यायालय खुले रहे थे और भारतीय न्यायालय भी खुले रहे थे और महानतम विधिवेत्ता—लार्ड एटकिन के समक्ष जब यह युक्ति पेश की गई कि युद्ध में, न्याय का ऐसा रूपभेद होना चाहिये और वैयक्तिक अधिकार ऐसे कम कर देने चाहियें कि प्रयत्न में सहायता मिले, तो उन्होंने एक सुप्रसिद्ध घोषणा की थी। उन्होंने कहा था: "युद्ध हो या न हो, न्याय तो होगा ही। बादशाह महोदय का न्याय युद्ध के कारण कम नहीं किया जा सकता और उस पर युद्ध का जरा भी प्रभाव नहीं पड़ सकता"। युद्ध सबसे बड़ा आपात है, जिसकी कल्पना की जा सकती है, फिर भी वैयक्तिक अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिये न्यायालय खुले रहे। हमने आपात की परिभाषा नहीं की है। आपात का अर्थ कुछ भी हो सकता है या शायद कुछ भी न हो। एक साधारण सी बात को आपात कहा जा सकता है और उनका प्रयोग जनता के मूलाधिकारों और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने के लिये किया जा सकता है, चाहे आपात का उनसे कोई सम्बन्ध न हो। वे अधिकार आपात से चाहे बिल्कुल असम्बद्ध हों, फिर भी वे निलम्बित रहेंगे और न्यायालय इस विषय में बिल्कुल असहाय हो जायेंगे। मेरा निवेदन है कि ये शक्तियां नहीं दी जा सकतीं। कम से कम यह शक्ति अनुच्छेद 13 तथा 16 तक ही सीमित रहनी चाहिये, जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं। मेरे विचार में यह मामला इतना गम्भीर है कि इसे पर्याप्त वाद-विवाद के बिना समाप्ति प्रस्ताव द्वारा पारित नहीं करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप संख्या 17 पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान।

(संशोधन संख्या 16 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, इस समय सदन के समक्ष प्रस्थापित अनुच्छेद 280 का जो मसौदा है, वह उसी अनुच्छेद के पुराने मसौदे की नकल है। सदन को याद होगा कि गत अवसर पर इस अनुच्छेद पर बहस को स्थगित रखा गया था और मस्विदा समिति के बुद्धिमान व्यक्तियों ने अनुच्छेद को अधिक अच्छा रूप देने के लिये समय मांगा था। हम में से जिन लोगों ने इस विषय में दिलचस्पी ली है, उन्हें आशा थी कि यह अनुच्छेद अधिक अच्छे रूप में सदन के समक्ष आयेगा। हमारी आशायें पूरी नहीं हुई। संस्कृत में एक पुरानी किम्बदन्ती है कि किसी व्यक्ति ने कुछ सिद्ध करना चाहा पर उसे उससे बुरी चीज प्राप्त हुई:—

"विनायक प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्"

किसी व्यक्ति ने विनायक–गणेश–की प्रतिमा बनाना चाहा, पर वानर की प्रतिमा बन गई। मसौदा-समिति के परिश्रम का भी यही परिणाम हुआ। मसौदा समिति को आशा थी—या कम से कम हमें आशा थी—कि समिति संसद में दिये गये विविध सुझाओं पर विचार करेगी और उन्हें नये मसौदे में रख देगी। पर ऐसा नहीं हुआ। संविधान का आधार-कम से कम हम संविधान-निर्माताओं ने प्रयत्न किया है कि इसका आधार–मूल अधिकारों की 'महान सम्पुष्टि' पर रखा जाये। हमने जनतंत्र की चट्टान पर भवन बनाने का प्रयत्न किया है, पर मैं देखता हूं कि उस चट्टान से भी ऊंची 'महान निराकरण' की चट्टान है। सर्वप्रथम वह 'महान सम्पुष्टि' है, फिर वह लोकतंत्र की चट्टान है और उससे ऊपर है भाग 11 का महान निराकरण, भाग 11 का बदनाम निराकरण; और मेरे विचार में अनुच्छेद 180 इस निरंकुश प्रतिक्रिया रूपी चट्टान की आधारशिला है।

अब सदन के समक्ष जो मसौदा है, उस पर मेरे मित्रों, पंडित ठाकुरदास भार्गव, श्री मुनावाली और मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने संशोधन रखे हैं। मैंने इस प्रस्थापित अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन भेजे हैं, जिन्हें मैं आपकी अनुमति से सदन के समक्ष अब पेश करूंगा। मेरे संशोधनों में दो अलग-अलग योजनायें हैं। एक योजना यह है कि मूल अधिकारों के निलम्बन की यह मूल शक्ति पूर्णत: संसद में निहित कर दी जाये। यह एक योजना है। यदि वह योजना सदन को स्वीकार्य न हो, तो मैं दूसरी योजना प्रस्थापित करता हूं जिससे कि राष्ट्रपति की कार्यवाही पर हर समय संसद विचार कर सकेगी और उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी। अनुच्छेद संख्या 18 में ये दो योजनायें हैं और वे सूची में जिस व्यवस्था से रखे गये हैं, उसी के अनुसार मैं उसे सदन के समक्ष पेश करूंगा।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

"(1) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 14 में प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में 'the President may be order declare' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law provide' ये शब्द रख दिये जायें।

(2) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में, 'mentioned in the order' इन शब्दों के स्थान पर 'specified in the Act' ये शब्द रख दिये जायें।

(3) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में, 'the rights so mentioned' इन शब्दों के स्थान पर 'any of such rights so mentioned' ये शब्द रख दिये जायें।

(4) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में, खंड के अन्त के शब्दों 'in the Order' के स्थान पर 'in the Act' ये शब्द रख दिये जायें।"

(5) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (2) और (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:–

'(2) An Act made under clause (1) this article may be renewed, repealed or varied by a subsequent Act of Parliament."

जैसा कि मैं कह चुका हूं, इनसे, व्यक्ति को संविधान के भाग 3 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों को छीन लेने की शक्ति, संसद को मिलती है, राष्ट्रपति को नहीं।

संशोधनों के दूसरे समूह में यह उपबन्ध है कि मूल अधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति अस्थायी रूप से राट्रपति को मिल जायेगी, पर उसका तत्काल संसद अनुसमर्थन करेगी या अस्वीकार कर देगी। श्रीमान, वह संशोधन-समूह वैकल्पिक समूह है जो, आपकी अनुमति से मैं अब उसे पेश करूंगा।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"(1) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में, 'mentioned' शब्द के स्थान पर, जहां वह पहले आया है, 'specified' शब्द रख दिया जाये।

(2) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में 'प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (1) में, 'the rights so mentioned' इन शब्दों के स्थान पर 'any of such rights so mentioned' ये शब्द रख दिये जायें।

मैं संख्या (3) को पेश नहीं कर रहा हूं।

(3) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (3) में, निम्न रख दिया जाये:—

'An order made under clause (1) of this article shall, before the expiration of fifteen days after it has been made, be laid before each House of Parliament, and shall cease to operate at the expiration of seven days from the time when it is so laid,

[श्री एच.वी. कामत]

unless it has been approved earlier by resolutions of both Houses of Parliament.'

(4) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (3) के पश्चात् निम्न नये खंड जोड़ दिये जायें:–

'(4) An order made under clause (1) of this article may be revoked by a subsequent order.

(5) An order made under clause (1) of this article may be renewed or varied by a subsequent order, subject to the provisions of clause (3) of this article.'

(5) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के अंत में, निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:–

"Notwithstanding anything contained in this article, the right to move the Supreme Court or a High Court by appropriate proceedings for a writ of *habeas corpus,* and all such proceedings pending in any court shall not be suspended except by an Act of Parliament.' "

अब, आज विचाराधीन मामला बहुत गम्भीर है और सदन से अनुरोध करता हूं कि वह इसे हल्के से न निबटाये, वरन इस पर बहुत सोच विचार कर निर्णय करे। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, मेरे विचार में तो यह अनुच्छेद एक महान निराकरण है; और मुझे विश्वास है कि जब आंधी आयेगी—ईश्वर करे ऐसा न हो,—तब इस निराकरण का बोझ इतना होगा कि मुझे भय है कि समस्त ढांचा गिर पड़ेगा। इसी कारण, श्रीमान, मैंने इन संशोधनों को पेश किया है और मैं सदन से फिर अनुरोध करता हूं कि वह इन पर सच्चे हृदय से और गम्भीरता से विचार करे।

प्राय: यह तर्क पेश किया गया है कि हमें एक प्रबल केन्द्र बनाना चाहिये। मैं प्रबल केन्द्र के बिल्कुल पक्ष में हूं—विशेषत: आपात के समय जबकि राज्य की सुरक्षा और स्थिरता बाजी पर लगी हो। पर आप केन्द्र का क्या अर्थ समझते हैं? मैं सदन को याद दिला देता हूं कि केन्द्र केवल कार्यपालिका ही नहीं है। केन्द्र संसद, अर्थात् विधान-मंडल तथा कार्यपालिका तथा न्याय पालिका से बनता है। प्रबल केन्द्र की चर्चा करते समय हम इस बात को भूल सकते हैं। हम यह समझ सकते हैं कि प्रबल केन्द्र का अर्थ प्रबल कार्यपालिका है। यह गलत विचार धारा है—ऐसी विचारधारा है जिसे यथासम्भव शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये। अत: केन्द्र में संसद् (विधान-मंडल), कार्यपालिका तथा न्यायपालिका हैं। तीनों को प्रबल बनाइये—मैं मानता हूं।—किन्तु एक को प्रबल बनाने के लिये शेष दो तो निर्बल मत बनाइये, न्यायपालिका तथा विधान-मंडल को हानि पहुंचाकर कार्यपालिका को प्रबल मत बनाइये।

उस दिन, प्रधान मंत्री ने, एक सार्वजनिक बैठक में भाषण देते हुए, व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा राज्य की सुरक्षा के बीच प्राय: होने वाले संघर्ष की चर्चा की है। हां, मैं मानता हूं राज्य सुरक्षित रहना चाहिये जिससे को जीवन, स्वतंत्रता तथा सुख प्राप्त हो। पर व्यक्ति की स्वतंत्रता ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है जिसे कार्यपालिका मनमाने तौर पर समाप्त कर सके। महान अमरीकी विचारक थोरियों ने ही तो कहा था कि "ऐसे समय, जबकि नर नारियों को अन्यायपूर्वक बंदी बनाया जाता है, सच्चे नर नारी के लिये कारागार में ही स्थान है"। यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में यह अनुच्छेद आज पारित कर दिया जाये तो क्या हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इस देश में नर नारियों की स्वतंत्रता का मूल्य कुछ भी होगा और उन्हें सहसा पद-दलित न कर दिया जायेगा? श्रीमान मैं सदन को भयभीत नहीं करना चाहता पर मुझे भय है कि यह अनुच्छेद पारित हो गया तो ऐसी ही स्थिति होगी। स्वतंत्रता का निरंकुश निराकरण करने में तो यह अनुच्छेद संसार के सब संविधानों से बाजी मार ले गया है। अनुच्छेद 279 में जो हम पहले ही पारित कर चुके हैं, यह उपबन्ध है कि जब तक आपात उपबन्ध लागू रहे तब तक अनुच्छेद 13 में रखी गई व्यक्तिगत स्वतंत्रता संघ में स्वत: ही निलम्बित रहेगी; और अब अनुच्छेद 280 से नागरिक को यह भी अधिकार नहीं रहता कि वह न्यायालय को जाकर शिकायत कर सके कि वैयक्तिक स्वतंत्रता का उल्लंघन किया गया है और आपात के समय वह सब मूलाधिकारों के उल्लंघन पर भी शिकायत नहीं कर सकता। वैयक्तिक स्वतंत्रता को निर्बन्धित करने का सामान्य प्राधिकार कहीं और जगह देखने में नहीं आता।

मस्विदा-समिति ने नया मस्विदा तैयार करने में समय लगाया है और उसने अनुच्छेद को दोहराने का प्रयत्न किया है। मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद की भाषा आपात शक्ति अधिनियम से भी खराब है जो कि इंग्लिस्तान में 1920 में पारित हुआ था: प्रस्थापित मस्विदे के खंड (3) में उस अधिनियम के एक खंड के प्रथम भाग को दोहराया गया है। पर उस खंड के द्वितीय तथा मुख्य भाग को अपनी सुविधानुसार तथा बेईमानी से हटा दिया गया है। मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों किया गया है। उस आपात शक्ति अधिनियम का सम्बद्ध खंड इस प्रकार है:—

> "यदि संसद का ऐसा स्थगन या अवसान हो जो पांच दिन से अधिक है, तो 5 दिन में ही संसद की बैठक की उद्‌घोषणा की जायेगी, और संसद तदनुसार ऐसे दिन समवेत होगी और बैठेगी जो कि उद्‌घोषणा में नियत हो और वैसे ही समवेत होकर कार्य करती रहेगी जैसे कि वह उस दिन स्थगित थी या अवसन्न थी।"

और आगे यह रक्षण-कवच है:—

> "अधिनियम के अंतर्गत इस प्रकार बनाया गया कोई विनियम इस प्रकार पेश होने के पश्चात् सात दिन से अधिक लागू नहीं रहेगा, जब तक कि दोनों सदन उसे लागू रखने के लिये संकल्प पारित न कर दें।"

इंग्लिस्तान के आपात शाक्ति अधिनियम का महत्वपूर्ण भाग हमारे अनुच्छेद के मसौदे में अनुपस्थित है।

[श्री एच.वी. कामत]

अब मैं वीयर संविधान पर आता हूं जिसके उपबन्ध इस खंड से बहुत मिलते हैं पर फिर भी वह इससे कुछ नरम है। वीयमर संविधान के खंड 48 में यह उपबन्ध है:—

"(2) यदि जर्मन रीच में लोक सुरक्षा और व्यवस्था गड़बड़ या जोखम में पड़ जाए तो राष्ट्रपति लोक सुरक्षा तथा व्यवस्था को पुन: स्थापित करने के लिये आवश्यक कार्यवाही कर सकता है और यदि आवश्यक हो तो, शस्त्र शक्ति से हस्तक्षेप कर सकता है। इस उद्देश्य से वह अनुच्छेद 114 (वैयक्तिक स्वतंत्रता), 115 (निवास स्थान की अखंडता), 117 (डाक, तार और दूर भाष्य संचार की गोपनीयता), 113 (वाक्-स्वतंत्रता तथा लेखन-स्वतंत्रता), 123 (शांति-पूर्वक सम्मेलन का अधिकार), 124 (संस्था की स्वतंत्रता), तथा 153 (संपत्ति अधिकारों की प्रत्याभूति) के मूलाधिकारों को, पूर्णत: अथवा अंशत:, अस्थायी रूप से निलम्बित कर सकता है।"

पर इस पर भी रक्षण-कवच हैं। अगले खंड में यह बात थी कि इस अनुच्छेद के प्राधिकार से राष्ट्रपति जो कार्यवाही करे उसकी सूचना वह तत्काल रीक्सटेग को देगा और रीक्सटेग की मांग पर वह कार्यवाही समाप्त कर दी जायेगी। जर्मन संविधान में यह रक्षण-कवच था।

अमरीकी संविधान में यह उपबन्ध है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख का अधिकार निलम्बित नहीं किया जायेगा जब तक कि विद्रोह की स्थिति में लोक सुरक्षा के लिये ऐसा करना अपेक्षित न हो पर यहां भी निलम्बन का प्राधिकार कांग्रेस ही दे सकती है जिसके विनिश्चय पर उच्चतम न्यायालय विचार कर सकता है कि क्या ऐसी स्थिति उपस्थित है या नहीं जिसमें यह निलम्बन उचित हो। अमरीकी संविधान में यह बात है। इसी प्रकार इतालवी संविधान में भी ऐसे ही रक्षण-कवच हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश हम, जो कि भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने का दम भरते हैं, ऐसे रक्षण-कवचों को आवश्यक नहीं समझते। हम कार्यपालिका पर विश्वास करते हैं। ईश्वर करे हमारा विश्वास सत्य हो। परन्तु, यदि हमारी कार्यपालिका हमसे विश्वास की मांग करती है, तो वह न्यायपालिका पर विश्वास क्यों नहीं करती, वह संसद पर भरोसा क्यों नहीं करती? क्या हमारी न्यायपालिका में कोई बुद्धि, ईमानदारी और सच्चाई है ही नहीं कि कार्य पालिका उनकी परवाह नहीं करती? यह तो अत्यन्त अपमानजनक बात है। मैं नहीं समझता कि हम ऐसे आधार पर लोकतंत्रात्मक राज्य कैसे बना सकते हैं।

यह सुझाव रखा गया है कि आपात के समय राज्य की रक्षा करना आवश्यक है। हां, राज्य की अवश्य रक्षा कीजिये; पर व्यक्ति की स्वतंत्रता का अन्यायपूर्वक बलिदान करके नहीं। कुछ मामलों में और कुछ अवसरों पर स्वतंत्रता का अपहरण जीवनहानि से भी बुरा होता है। मैं तो यह दावा करता हूं कि स्वतंत्रता जीवन से भी अधिक मूल्यवान है, और अत्यन्त गम्भीर आपात से भी राज्य को यह शक्ति नहीं मिलनी चाहिये कि वह व्यक्ति की स्वतंत्रता को अनुचित रूप से छीन सकें। यह महान सिद्धांत है और यह हमारे संविधान का ध्रुवतारा होना चाहिये। बंदी-प्रत्यक्षीकरण लेख का अधिकार एक पवित्र अधिकार है जिसमें व्यक्ति की

स्वतंत्रता प्रतिष्ठित है: इससे उसे उच्चतम न्यायालय से अपील करने का अधिकार मिलता है। हमारे समक्ष का यह अनुच्छेद व्यक्ति के इस अधिकार को समाप्त करता है।

हम शांति और व्यवस्था चाहते हैं जिससे कि राज्य आपात में सुरक्षित रहे। पर इस प्रकार आपको कौन-सी शांति होगी? आप किस प्रकार की सुरक्षा या स्थिरता चाहते हैं? राज्य रक्षित रहेगा। पर हो सकता है कि आप इस प्रकार जो शांति चाहते हैं वह श्मशान की शांति हो, मरुस्थल की शांति हो। यदि मसौदा-समिति के बुद्धिमान व्यक्तियों के मस्तिष्क में ऐसी शांति है तो ऐसी शांति पूर्ण स्थिति में रहने से तो मैं मर जाना अच्छा समझता हूं।

केन्द्र को प्रबल बनाने के आवेश में, हम इसका यह गलत अर्थ लगा रहे हैं कि कार्यपालिका प्रबल हो। यदि हम शक्तिशाली कार्यपालिका चाहते हैं तो हमें शक्तिशाली विधान-मंडल तथा शक्तिशाली न्यायपालिका भी रखनी चाहिये। मैंने कहा है कि केवल कार्यपालिका से ही राज्य नहीं बनता। हमारे यहां संसद होगी और न्यायपालिका भी होगी, उन दोनों और कार्यपालिका सबसे मिलकर राज्य बनता है। मेरी बातों से किसी के कान पर जूं भी नहीं रेंगी है। मैं कई बार सोचता हूं, "अहा विवेक, तुम नृशंस पशुओं में पलायित हो, और मनुष्य ने अपने विवेक को खो दिया है"। क्या हम उस अवस्था को पहुंच चुके हैं? मुझे आशा है ऐसा नहीं है। मुझे आशा है कि भारत की भलाई के लिये, अपने साथी नर नारियों की भलाई के लिये जो कि दासता के अंधकार से अभी स्वतंत्रता के प्रकाश में आये हैं, हम उनके सुख के लिये कुछ करेंगे, और केवल एक वर्ग के एक छोटे से शक्ति-आरूढ़ गुट के हाथों को मजबूत करके ही संतुष्ट नहीं हो जायेंगे। राष्ट्रपिता की यह भावना नहीं थी। सदन को पता है कि वे विकेन्द्रीकरण चाहते थे और केन्द्र को प्रबल बनाना नहीं चाहते थे। वे विकेन्द्रित राज्य बनाना और स्वशासित अंगों को शक्ति देना चाहते थे।

हम आपात के उपबन्धों पर विचार कर रहे हैं। अत: मैं मानता हूं कि केन्द्र को कुछ शक्तियां होनी चाहियें। मेरा तो यही कहना है कि काफी रक्षण-कवच होने चाहिये, न्यायिक रक्षण-कवच और संसदीय रक्षण-कवच। इस अनुच्छेद के मस्विदे में इनमें से कोई रक्षण-कवच नहीं है। पर यह अनुच्छेद सदन के समक्ष पुन: विचार और अनुमोदन के लिये आया हुआ है। मुझे विश्वास है कि यह स्वीकृत हो ही जायगा। मैंने यूनाइटेड किंगडम के आपात शक्ति अधिनियम, 1920 में आपात शक्तियों सम्बन्धी उपबन्धों को ध्यान से पढ़ा है। उसमें लिखा है कि संसद को पांच दिन में ही आहूत किया जाना चाहिये। दूसरी बात, वह आज्ञप्ति सात दिन में ही समाप्त हो जायेगी जब तक कि संसद उसका पहले ही अनुमोदन न कर दे। उसी प्रकार मैंने अपने संशोधन संख्या 4 में यह उपबन्ध रखा है कि इस अनुच्छेद के खंड (1) के अंतर्गत निकाला गया कोई आदेश 15 दिन में ही संसद के समक्ष पेश हो जाना चाहिये—भारत इंग्लिस्तान की तुलना में बड़ा देश है अत: मैंने सात दिनों के स्थान पर पंद्रह दिन रखे हैं। यदि आप व्यक्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं, केवल राज्य की सुरक्षा तथा शक्ति आरूढ़ लोग की सुरक्षा ही नहीं, तो संघ द्बुलाने के लिये पंद्रह दिन पर्याप्त होने चाहिए। मैंने इंग्लिस्तान के आपात शक्ति अधिनियम के समान यह भी बात रखी है कि मूल अधिकारों को निलम्बित करने का आदेश एक सप्ताह के अन्त में समाप्त

[श्री एच.वी. कामत]

हो जायेगा, यदि उसे संसद के संकल्पों द्वारा पहले ही अनुमोदित न कर दिया जाये। यह एक बुद्धिमतापूर्ण रक्षण-कवच है जिस पर मुझे आशा है सदन सच्चे दिल से विचार करेगा।

मेरा अंतिम संशोधन द्वितीय सप्ताह का संख्या 6 है—मैं शेष संशोधनों पर बोलना नहीं चाहता। मुझे वहां राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करने में कोई आपत्ति नहीं है यदि वह संसदीय विनियमन तथा नियंत्रण के अधीन हो। अत: मेरे अंतिम संशोधन का यह आशय है कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख के लिये समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार संसद के अधिनियम के अतिरिक्त किसी प्रकार निलम्बित न किया जाये।

गत विश्व युद्ध में, यहां ब्रिटिश सरकार अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिये गम्भीरतम दमन कर रही थी। श्री चर्चिल ने तो यहां तक कहा था "मैं इसलिये प्रधान मंत्री नहीं बना हूं कि ब्रिटिश साम्राज्य के अवसान का अधिष्ठाता बनूं" जिससे यह पता लगता है कि श्री चर्चिल को भी किसी समय यह आशंका थी कि साम्राज्य जोखम में था और शायद वह समाप्त हो जाता। यद्यपि वे जीवन-मरण संग्राम में संलग्न थे, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख के लिये न्यायालयों को प्रचालित करने का अधिकार निलम्बित किया था। बंबई के टालपेड का सुविख्यात वाद इस विषय पर ही है। यह मामला संघीय न्यायालय में आया था और मुख्य न्यायाधिपति मौरिस गायर ने भारत सुरक्षा अधिनियम की धारा 26 को अधिकार चेष्टा बता दिया था। उसके फलस्वरूप इस धारा को बाद में संशोधित किया गया था। यह बात यहां मेरे साथियों को याद होगी ही। अतएव में उस विषय पर अधिक नहीं बोलना चाहता। जैसाकि मैं कह रहा था ब्रिटिश सरकार ने भी इस महत्वपूर्ण अधिकार को निलम्बित नहीं किया था। पर हम, जो लोकतंत्रात्मक संविधान बना रहे हैं, इस अधिकार को भी आपात में निलम्बित करना चाहते हैं।

आखिर हमारे अधिकांश नेता हमें बता रहे हैं कि आज हम संकट में से गुजर रहे हैं। संकट से उनका आशय है एक प्रकार का आपात: हमारे यहां हैदराबाद, काश्मीर, पश्चिमी बंगाल तथा भारत के अन्य भागों में गड़बड़ हो चुकी है। किन्तु केन्द्रीय सरकार स्थिर है ओर आपात की घोषणा किये बिना भी ठीक चल रही है। कोई मूल अधिकार या बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार निलम्बित नहीं किया गया है। यहां भी, 15 अगस्त 1947 में, जबकि पुराने भारत सरकार अधिनियम को भारत स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन अनुकूल बनाया गया था, तब गवर्नर-जनरल तथा राज्यपालों में निहित आपात शक्तियां अनुकूलित अधिनियम में नहीं थीं। वे अनुकूलित भारत शासन-अधिनियम में नहीं थीं और अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम में आपात शक्तियां राज्यपालों या गवर्नर-जनरल को प्रदान नहीं की गई थीं। हम दो कठिनाई के वर्षो, संकट के वर्षो, गड़बड़ के वर्षो में से गुजर चुके हैं, यद्यपि राज्यपाल या गवर्नर जनरल में कोई शक्तियां निहित नहीं हैं और कोई आपात के उपबन्ध नहीं हैं। सरदार पटेल ने हमें कुछ मास पूर्व बताया था कि यह देश स्थिर होता जा रहा है। एक सांस में आप यह कहते हैं कि स्थिति अधिक अच्छी और अधिक स्थिर होती जा रही है और अगले सांस में आप संविधान में ऐसा खंड रखना चाहते हैं जिसका उद्देश्य आपात में सब नागरिकों को मूलाधिकारों से वंचित

करना है। डॉ. अम्बेडकर उठकर उत्तर दे सकते हैं: "ओह! यह तो संविधान में लिख दिया है; पर यह मृतक वाक्य ही रखेगा। मुझे आशा है कि हमें इसका प्रयोग करने की या उस कार्यवाही करने की अपेक्षा न होगी"। मुझे आशा है कि हम इसका कभी प्रयोग नहीं करेंगे। उन्होंने पिछली बार यह कहा था मैं मानता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ऐसा कह सकते हैं, प्रधान मंत्री ऐसा कह सकते हैं और अन्य मंत्री ऐसा कह सकते हैं। मैं एकदम मानता हूं कि वे सब माननीय व्यक्ति हैं, वे सब बुद्धिमान तथा सच्चे व्यक्ति हैं, पर संविधान डॉ. अम्बेडकर या पंडित नेहरू या सरदार पटल के लिये नहीं होता; संविधान केवल इसी पीढ़ी के लिये नहीं है; हम तो इसे आने वाली अन्य पीढ़ियों के लिये बना रहे हैं, और केवल डॉ. अम्बेडकर या विद्यमान सरकार के लिये ही नहीं बना रहे। मुझे आशा है कि यह संविधान कई पीढ़ियों तक रहेगा। किन्तु कभी–कभी मेरे दिमाग में आशंकायें उत्पन्न होती हैं; जैसा संविधान आज बन रहा है उससे मुझे आशंका होती है कि यह संविधान शायद बहुत लम्बे समय तक न रहे। ईश्वर न करे कि मेरी आशंकायें गलत हो जायें। किन्तु मुझे कभी–कभी भय होता है कि यह समस्त संविधान शायद उतने वर्षों से अधिक न रहे सके जो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। मैं तो यही अनुभव करता हूं; मुझे आशा है कि मैं गलती पर हूं और मुझे आशा है कि मैं अत्यन्त निराशामय चित्र खींच रहा हूं; किन्तु, श्रीमान, मैं सदन से अनुरोध करना चाहता हूं कि यदि आप राज्य को बचाना चाहते हैं तो अवश्य बचाइये, पर व्यक्ति को उसके अधिकारों से, उसकी स्वतंत्रताओं से, उसकी मूल स्वाधीनताओं से वंचित न करें, जोकि संविधान के प्रारम्भिक ध्यान में उसके प्रत्याभूत की गई हैं। संविधान के अन्त में हम एक हाथ से वह चीज़ छीन रहे हैं। जो हमने दूसरे हाथ से दी थी। क्या हम इसी प्रकार की ही स्वतंत्रता के लिये लड़े हैं? क्या इसी प्रकार की स्वतंत्रता के लिए ही हम प्रत्यन करते रहे हैं? क्या इसी प्रकार का लोकतंत्र हम बना रहे हैं...।

*__उपाध्यक्षः__ क्या माननीय सदस्य कृपया अपनी वक्तृता को समाप्त करेंगे? वे 45 मिनट से बोल रहे हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ यदि आप समझते हैं कि मैं पुनरावृत्ति कर रहा हूं, तो मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करूंगा, पर मैं पुनरावृत्ति नहीं कर रहा...

*__उपाध्यक्षः__ मुझे यह कहते हुए खेद है कि सदस्य महोदय युक्तियों को दोहरा रहे हैं और मुझे बहुत खुशी होगी यदि वे कृपया अपनी वक्तृता को समाप्त कर दें।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मैं केवल दो मिनट और लूंगा, श्रीमान। श्रीमान, मैं उपाध्यक्ष महोदय के निर्णय को शिरोधार्य करता हूं और मैं समाप्त कर दूंगा। मैं बहुत कुछ और कहना चाहता था किन्तु मैं उसे अगले अवसर के लिये छोड़ता हूं। मुझे भय है कि यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित रूप में यह अनुच्छेद सदन में स्वीकृत हो जायेगा, तो उससे व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रताओं को, जो संविधान के अधीन प्रत्याभूत हैं, खतरा पैदा हो जायेगा। मुझे आशंका है कि इस अकेले अध्याय द्वारा–अध्याय 11 द्वारा–हम एक निरंकुश राज्य, एक पुलिस राज्य की नींव डाल रहे हैं, ऐसे राज्य की नींव डाल रहे हैं। जो उन सब आदर्शों और सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत होगा जिनका हम गत कुछ युगों से समर्थन कर रहे

[श्री एच.वी. कामत]

हैं, जिस राज्य में करोड़ों निर्दोष नर नारियों के अधिकार और स्वतंत्रतायें लगातार जोखम में होंगी, जहां यदि शांति होगी तो वह श्मशान की शांति होगी, मरुस्थल की शांति होगी। मैं ईश्वर से केवल यही प्रार्थना करता हूं कि वह हमें बुद्धि दे, ऐसी विपत्ति को हटाने की बुद्धि दे, साहस और हिम्मत दे। मैं महात्मा गांधी की प्रार्थना के साथ समाप्त करता हूं कि "सबको सम्मति दे भगवान।"

***प्रो. के.टी. शाहः** (बिहारः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 18 के भाग (6) में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के नये खंड के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:—

'Notwithstanding anything contained in this article, the right to move the Supreme Court, as guaranteed by article 25 of this Constitution, by appropriate proceedings, shall not be suspended, nor shall any proceedings in respect of such right pending at the date of the Proclamation of Emergency in any court be suspended:

Provided that in the event of any cause of action arising in respect of any violation of any of the Fundamental Rights declared or conferred by Part III of this Constitution, against any person or authority, Parliament may, by a special Indemnity Act passed in that behalf, indemnify any such person or authority against the consequence of any such act done *Bona fide* during the period while the Proclamation of Emergency was in force.' "

[इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत, समुचित कार्यवाही द्वारा उच्चतम न्यायालय को प्रचालित करने का अधिकार, निलम्बित नहीं होगा, और न ऐसे अधिकार के विषय में कोई कार्यवाही, जो आपात की उद्घोषणा के दिन किसी न्यायालय में लम्बित हो, निलम्बित होगी:

परन्तु जब, किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के विरुद्ध, इस संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त या घोषित किसी मूलाधिकार के किसी उल्लंघन के कारण कोई वाद-मूल उठ खड़ा हो, तो संसद, उस विषय में एक विशेष अधिनियम पारित करके किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को ऐसे कार्य के परिणामों से बचा सकती है जो उसने आपात के समय अच्छी नियत से किये हों।]

श्रीमान, मुझे इस विषय पर अन्य वक्ताओं के समान ही प्रबल आपत्ति है कि राष्ट्रपति को ऐसी असाधारण शक्तियां दे दी जायें कि वह उस एकाकी अधिकार को भी निलम्बित कर सके जो संविधान में स्पष्टत: प्रत्याभूत है, कि कुछ लेखों के लिये उच्चतम न्यायालय में जाकर नागरिकों के लिये घोषित या प्रदत्त अधिकारों के उल्लंघन का उपचार किया जा सकता है। यही एक अधिकार शायद अन्य किसी अधिकार से अधिक मूल्यवान है क्योंकि इसके कारण ही अन्य अधिकार क्रियात्मक, वास्तविक, ठोस तथा सचमुच में प्रयोगनीय होते हैं; क्योंकि यदि कोई व्यक्ति भाग 3 में उल्लिखित किसी मूलाधिकार के वर्जन से त्रस्त हो तो वह न्यायालय में जा सकता है जो उसे समुचित सहायता प्रदान कर सकता है।

प्रस्थापित अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को कार्यपालिका आदेश द्वारा यह अधिकार भी निलम्बित करने का अधिकार होगा। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह सुझाव है कि आदेश देने के पश्चात् वह उसे यथा सम्भव शीघ्र संसद् के समक्ष रखेगा। मुझे कहना होगा कि मुझे यह मूल मसौदे पर सुधार दिखाई नहीं देता, क्योंकि, यदि आप आदेश को निकालने के पश्चात् संसद के समक्ष रखते हैं तो या तो उसकी आलोचना मात्र हो सकती है, जो शायद व्यर्थ ही हो या जिससे कार्यपालिका और विधान-मंडल के संबंध बिगड़ जायें। यह बात मेरे समझ में आ सकती है यदि आप कहते कि आदेश निकालने से पहले संसद से परामर्श लिया जायेगा, या आप यही सुझाव देते कि संसद की बात को पूरी करने के लिये उस आदेश का रूप भेद कर दिया जायेगा।

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई:__ औचित्य प्रश्न के नाते क्या मैं जान सकती हूं कि माननीय वक्ता मूल प्रस्ताव पर बोल रहे हैं या अपना संशोधन पेश कर रहे हैं?

*__प्रो. के.टी. शाह:__ मैं संशोधन पेश कर चुका हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ उन्होंने संशोधन पेश कर दिया है।

*__प्रो. के.टी. शाह:__ ऐसी अवस्था में, मैं अनुच्छेद तथा अपने मित्र श्री कामत द्वारा प्रस्थापित संशोधन में यह संशोधन पेश कर रहा हूं कि यह मूल अधिकार, जो कि संविधान द्वारा प्रत्याभूत एकमात्र अधिकार है, किसी भी अवस्था में निलम्बित नहीं होगा, चाहे पिछले अनुच्छेदों में कुछ भी लिखा हो। चाहे कोई आपात हो, यह अधिकार तो निलम्बित नहीं होना चाहिये जैसा कि माननीय वक्ता ने कहा है, चाहे युद्ध ही हो, फिर भी लोगों का न्याय, देश का न्याद बन्द या निलम्बित नहीं होगा।

पर मैं समझता हूं कि आपात में सरकार के अधिकारी, सैनिक तथा असैनिक, कार्यवाही करने से पूर्व शायद प्रतीक्षा न कर सकें। पर उन्हें यह सीखना है कि यदि हमें स्वतंत्र लोकतंत्रात्मक संविधान के अंतर्गत रहना है तो, जो भी विधि विरुद्ध कार्य करेगा उसे उसका फल भोगना पड़ेगा। विधि विरुद्ध कार्य के उत्तर में वह यह नहीं कह सकेगा कि उसने समझा था यह देश के हित में आवश्यक है। पर उन अधिकारियों पर जो कि समुदाय के हितार्थ नेकनीयती से कार्य करें और आपात संबंधी आदेशों के अनुसार कार्य करें, अनुचित आपत्ति न आये, इसके लिये, यदि कोई मूल अधिकार का,—मान लीजिये सम्मेलन की या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

[प्रो. के.टी. शाह]

का उल्लंघन हो जाये तो वह उल्लंघन स्वत: ही उद्घोषणा के अंतर्गत नहीं आयेगा, किन्तु बाद में संसद क्षमता का अधिनियम पारित कर सकती है जिसमें वे सब मामले गिना दिये जायें जिनसे ऐसे मुकदमे या दावे चल सकते हों या अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही हो सकती हो, और सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-मंडल होने के नाते संसद उन अधिकारों की रक्षा कर सकती है।

यह प्रक्रिया ब्रिटिश संविधान में सुविख्यात है, जिसकी नकल हम यहां हूबहू कर रहे हैं और उस संविधान में यह एक ऐसी बात है जिससे कि हम कुछ सीख सकते हैं, और राष्ट्रपति को खुली छुट्टी देने की बजाय, या आपात की उद्घोषणा के ही आधार पर कोई कार्य करवाने के बजाय, हमें यह बात रख देनी चाहिये कि, चाहे अधिकारी इस आदेश के अधीन कार्य करने में मुख्यत: अपनी जोखम पर ही कार्य करेगा, पर उचित कारण बताने पर, संसद उसे क्षमा करने की अभीष्टता पर विचार कर सकती है।

इसका यह परिणाम होगा कि लोक-सेवक या राज्याधिकारी स्वत: रुक जायेंगे किसी प्रकार शक्ति-प्रयोग करने में या अपने प्राधिकार को विस्तृत करने में वे बार-बार सोचेंगे कि कोई ऐसी कार्यवाही न की जाये जिसके लिये क्षमा अधिनियम न बन सके। या संसद ऐसा अधिनियम पारित ही न करे। यह एक बाधाकारी बात होगी, जिससे, मेरे विचार में प्रशासन भी ठीक चलेगा तथा नागरिक की स्वतंत्रता भी बनी रहेगी।

यदि आप इस बात को स्वीकार कर लें, जैसा कि मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद के समर्थक स्वीकार करेंगे, तो इस प्रकार के उपबन्ध से, जैसे चाहे शब्द रखें, इससे सब कुछ ठीक हो जायेगा मेरे विचार में पूर्ववक्ताओं ने जो कठिनाई बताई है, कार्यपालिका प्राधिकार के अनावश्यक विस्तार के संबंध में हम जो आशंकाएं करते हैं, वे इस प्रकार मिट सकती हैं।

इस संविधान में कहीं भी ऐसा उपबन्ध, अर्थात् क्षमा अधिनियम नहीं है, जिसकी मैं यहां चर्चा कर रहा हूं। प्राधिकारी लोगों ने, जो संविधान का मस्विदा बनाने के लिये उत्तरदायी हैं उन्होंने, इस सदन में आलोचना को विनाशात्मक या अनुपयोगी बताया है। मैं यह रचनात्मक प्रस्थापना पेश करता हूं जो ब्रिटिश संसद में है और ब्रिटिश इतिहास का उसे समर्थन प्राप्त है। यह अब कसौटी है कि क्या प्रस्तावकों को नागरिक की स्वतंत्रता का पर्याप्त ध्यान है कि वे ऐसे सुझाव को मान सकें। मैं इसे उनकी सद्भावना पर छोड़ देता हूं।

(संशोधन संख्या 20, 21 तथा 22 पेश नहीं किये गये।)

***श्री बी.एम. गुप्त** (बम्बई: जनरल): मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 78 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड (3) के अन्त में जिन शब्दों को जोड़ने की प्रस्थापना है उनमें, 'एक मास' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'दो मास' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, यह मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव द्वारा पेश किये गये संशोधन पर संशोधन है। मेरे तथा उनके संशोधन में यही अन्तर है कि मैं उस आदेश को संसद में रखने के लिये दो मास देना चाहता हूं जबकि उन्होंने एक ही मास रखा है। दो मास रखना अधिक ठीक है क्योंकि वह कालावधि मुख्य अनुच्छेद 275 में उल्लिखित है। निस्संदेह डॉ. अम्बेडकर ने बहुत हद तक उन भावनाओं का आदर किया है जो कि इस मामले पर पिछली बहस के समय सदन में प्रकट की गई थी। पर वे काफी दूर नहीं गये हैं और कोई निश्चित अवधि का उल्लेख नहीं किया है जिसमें कि इस अनुच्छेद के अधीन कोई आदेश संसद में पेश किया जायेगा। अनुच्छेद 275 के अधीन, आपात की मुख्य उद्घोषणा दो मास के अन्दर ही संसद द्वारा अनुमोदित कर दी जायेगी। मैं नहीं समझता कि इस मामले में भी, जो कि उस उद्घोषणा का अत्यन्त स्वाभाविक परिणाम होगा, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-मंडल को वैसा ही प्रभावी नियंत्रण क्यों न करने दिया जाये। मूल अधिकारों के उपचार का निलम्बन बहुत ही आधारभूत मामला है और कार्यपालिका के लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि वह थोड़ी सी निर्धारित कालावधि में, कहिये दो मासों में, उसका अनुसमर्थन करवाये। मैं नहीं समझता कि इस मामले में कोई कठिनाई होनी चाहिये। सम्भवत: वह आदेश भी उद्घोषणा करने के तुरन्त बाद ही निकाला जायेगा, या सम्भवत: वह उद्घोषणा करने के बाद और संसद में साथ ही पेश करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि यह मान लिया भी जाये कि संसद का विसर्जन होने के पश्चात् ही आदेश निकालना पड़े तो क्या होगा? संसद को इसी प्रयोजन के लिये बुलाना पड़ेगा। मैं कहता हूं, इस पर कोई आपत्ति नहीं है। इस पर केवल यही आपत्ति होगी कि खर्च का प्रश्न उठेगा। मेरा निवेदन है कि महत्वपूर्ण मामलों में, खर्च का कोई महत्व नहीं है। हम लोकतंत्रात्मक शासन जान बूझकर बना रहे हैं, और इसके बाद हमें उस खर्च की चिन्ता नहीं करनी चाहिये जो उस लोकतंत्र को प्रभावी बनाने के लिये अपेक्षित हो। हां, मेरा यह अर्थ नहीं है कि व्यर्थ खर्च किया जाये। जो लोग आज शासन चलाने के लिए उत्तरदायी हैं या जो बाद में शासन चलाने के लिये उत्तरदायी होंगे उन्हें अपनी कार्य व्यवस्था ऐसी बनानी चाहिये कि सार्वजनिक कोष पर अनावश्यक खर्च न पड़े।

पर साथ ही, महत्वपूर्ण मामलों में, जहां महत्वपूर्ण सिद्धांत अंतर्ग्रस्त होते हैं, वहां खर्च का विचार बिल्कुल नहीं किया जाता। निस्संदेह यह निर्णयात्मक नहीं हो सकता। मूल अधिकारों का निलम्बन केवल अतीव महत्वपूर्ण मामला ही नहीं है वरन् एक मूल मामला और इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे पंडित भार्गव के संशोधन को, मेरे द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर लें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खंड 3 के अन्त में, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:—

'and if the House of the People, by a resolution passed by it, amends, varies or rescinds the order, the resolution shall be given effect to immediately.' "

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

यदि यह संशोधन मान लिया जाये, तो डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का खंड (3) निम्न प्रकार बन जायेगा:—

"Every order made under clause (1) of this article shall as soon as may be after it is made by laid before each House of Parliament and if the House of the People, by a resolution passed by it, amends, varies or rescinds the order, the resolution shall be given effect to immediately."

पिछले अवसर पर, इस अनुच्छेद पर बहस के वक्त, मैंने एक संशोधन रखा था कि 'President may by order' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament by law' ये शब्द रख दिये जायें। मैंने यह आशा की थी, मसौदा-समिति अपनी त्रुटि को मान गई थी और वे समुचित संशोधन कर देंगे। मैं देखता हूं कि पूर्ववर्ती मसौदे में एक सुधार कर दिया गया है, और संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त समस्त अधिकार स्वत: निराकृत नहीं होंगें, वरन् केवल वे ही अधिकार होंगे जिन्हें राष्ट्रपति निराकृत घोषित कर दे। मेरे विचार में यदि यह अनुच्छेद संविधान का भाग हो तो फिर भी यह उन स्वतंत्राओं का प्रतिषेध होगा जो हम मूलाधिकार में दे रहे हैं। अत: मेरे विचार में या तो वह संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये जो मैंने उस दिन पेश किया था और जिसे अब श्री कामत ने इसी अनुच्छेद 280 पर पेश किया है, या कम से कम डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के खंड (3) पर मेरा यह संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये। इसका कम से कम यह प्रभाव पड़ेगा कि यदि संसद की बैठक न हो रही हो और राष्ट्रपति यह समझे कि आपात में यह आवश्यक है कि उसे ऐसी शक्ति का प्रयोग करना चाहिये तो इस संशोधन से उसे यह अधिकार मिल जाता है; पर ज्यों ही संसद समवेत होगी, वह उस आदेश को सदन की मेज़ पर रखवायेगा तथा लोक सभा को उसमें परिवर्तन करने, रूप भेद करने या उसे हटा देने का हक होगा। इस पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये। डॉक्टर अम्बेडकर यही तो चाहते हैं कि आपात में राष्ट्रपति की शक्तियां कम नहीं होनी चाहिए। मैं उन्हें कम नहीं कर रहा हूं। वास्तव में वही आपात उद्घोषणा दो मास के भीतर ही लोक सभा में पेश होगी और पुन: स्वीकृत की जायेगी। अत: संसद अन्तिम प्राधिकारी है। फिर क्या हानि है यदि मूल अधिकारों का निराकरण भी—यदि वह आपात में किया जाये तो-संसद के समवेत होते ही उसके समक्ष पेश किया जायेगा और संसद को, विशेषत: लोक सभा को, उसमें परिवर्तन करने या उसे समाप्त करने का अधिकार होना चाहिये। अन्यथा के सर्वोपरि मूलाधिकार समाप्त कर दिये जायेंगे। मैं अनुच्छेद 25 में प्रत्याभूत अधिकारों का बहुत मूल्य समझता हूं—बंदीप्रत्यक्षीकरण आदि अधिकारों का। जैसा कि मैंने पिछली बार कहा था, जब हम 1942 में जेल में थे, तब भी युद्धकाल में विदेशी सरकार ने हमें बंदीप्रत्यक्षीकरण के अधिकार से वंचित करना ठीक नहीं समझा था। अत: यदि इस अधिकार का निराकरण करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी जाती है तो यह संविधान पर कलंक होगा और इसे इसमें समाविष्ट नहीं करने देना चाहिये।

इसलिये मेरे विचार में यदि डॉ. अम्बेडकर श्री कामत के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं तो उन्हें मेरे वाला संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये

जिससे उनकी यह बात भी पूरी हो जायेगी, कि राष्ट्रपति को आपात में इन अधिकारों को भी निलम्बित करने का अधिकार होगा, किन्तु ज्योंही संसद समवेत होगी, यह राष्ट्रपति के आदेश को रद्द कर सकेगी। यह बहुत नरम संशोधन है और यदि मसौदा-समिति उस पर विचार करेगी, तो मुझे आशा है, वे इसे स्वीकार कर लेंगे। इस अनुच्छेद के विषय में उस दिन हमारे विद्वान मित्र कुंजरू ने विरोध प्रकट किया था और उन्होंने कहा था कि यह बहुत भयानक अनुच्छेद है और इसे इस पुस्तक में स्थान नहीं मिलना चाहिये था, पर यदि इसे रखा जाता है तो इसका ऐसा रूप भेद कर देना चाहिये कि इस विषय में संसद की अन्तिम सत्ता पर संदेह न हो सके। यदि संसद इस आदेश को बदल नहीं सकती तो संसद का एक मूल अधिकार समाप्त हो जाता है। आप कह सकते हैं कि सदन को कार्य पालिका की निन्दा करने का सदा अधिकार है, पर कोई भी राष्ट्रपति के आदेश में परिवर्तन करने मात्र के लिये यह उग्र उपाय नहीं अपनायेगा। अतः मेरे विचार में मेरे संशोधन का किसी सदस्य को जो कि प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रपति के आदेश में सुधार करना चाहे ऐसा करने का अधिकार मिल जायेगा। यह बहुत नरम संशोधन है और मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर इसे स्वीकार कर लेंगे।

***उपाध्यक्षः** एक संशोधन संख्या 3031 माननीय जी.एस. गुप्त का है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** एक संशोधन श्री कामत का भी है।

***उपाध्यक्षः** यह तो पहले ही पेश हो चुका है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत तथा बरारः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस खंड का संबंध आपात शक्तियों से है जबकि देश में गम्भीर आपात हो या राष्ट्रीय जोखम हो। अब, आपात क्या होता है? मेरे मित्र पंडित भार्गव ने कहा है कि आपात का कई प्रकार से निर्वचन किया जा सकता है। वे ठीक हैं। यह बहुत लचकीला शब्द है किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि आपात आपात ही है। आक्सफोर्ड कोष के अनुसार आपात का अर्थ है एक अकस्मात घटना जिस पर तात्कालिक कार्यवाही आवश्यक हो। कोई इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि सरकार को एक विशेष कार्यवाही करनी पड़ती है। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या एक लोकतंत्रीय सरकार, एक जनता की सरकार ऐसी कार्यवाही करेगी जो जनता की इच्छाओं के विपरीत हो? क्या वे कोई ऐसी कार्यवाही कर सकते हैं जिससे साधारणतः यह कहा जा सके कि वे संविधान को निलम्बित करना चाहते हैं क्योंकि थोड़ा सा उपद्रव हो गया? वह सरकार एक दिन के लिये भी नहीं टिक सकती यदि वह लोकतंत्रात्मक सरकार हो। अतः वह आशंका एक क्षण के लिये भी नहीं टिक सकती।

मैं जानना चाहता हूं, आपात की स्थिति में जब कोई विपत्ति हो और देश की स्वाधीनता को खतरा हो, मैं अपने उन मित्रों से जो इस अनुच्छेद का विरोध करते हैं, यह जानना चाहता हूं, कि क्या वे यह चाहते हैं कि ऐसी स्थिति में हमारे

[श्री आर.के. सिधवा]

मंत्री लोग रेडियो या गाने सुनते रहें जबकि देश के किसी दूरस्थल कोने में ऐसी बातें हो रही हों जिनसे हमारी स्वतंत्रता को ही खतरा है, क्या वे नीरो के समान बन जायें जो रोम के जलने पर बंसी बजा रहा था? यदि इस अनुच्छेद का विरोध करने वालों का यह दृष्टिकोण हो तो मैं नहीं समझता कि वे वास्तव में इस अनुच्छेद का अर्थ समझते हैं। इस अनुच्छेद का प्रयोग तो तभी होगा जब राष्ट्रीय संकट हो और जब हमारी स्वतंत्रता को ही खतरा हो। मेरे मित्र श्री कामत ने कहा कि हमारी स्वाधीनता की रक्षा होनी चाहिये, और यह पूछा कि इन अधिकारों को क्यों छीना जा रहा है, क्या आप लोगों को फिर दास बनाना चाहते हैं? मैं कहता हूं कि हमारी स्वाधीनता की ही रक्षा के लिये, आपात में हमारी आजादी की ही रक्षा करने के लिये, मैं मंत्रियों को पर्याप्त शक्ति देना चाहता हूं कि वे देखें कि हमारी स्वाधीनता पर कोई संकट न आये और हम फिर गुलाम न बन जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे उस पर आपत्ति नहीं है, पर केवल आवश्यक रक्षण-कवच रख दीजिये।

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरे मित्र ने विदेशी संविधानों से उद्धरण दिये हैं। कनाडा और आस्ट्रेलिया के संविधानों में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है। पर वहां एक परिपाटि है कि आपात के समय, केन्द्र प्रांतों से सब आवश्यक शक्तियां ले सकता है। परिपाटि द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया है कि केन्द्र को आपात में ऐसा करने की अंतर्विष्ट शक्ति है। प्रत्येक सरकार को यह अंतर्विष्ट शक्ति होती है, यह अंतर्विष्ट अधिकार होता है कि वह स्वतंत्रता की रक्षार्थ कोई कार्यवाही कर सके। यदि हम इस प्रकार अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं करते तो मैं आपको विश्वास दिला देता हूं कि हमारी स्वतंत्रता संकट में पड़ जायेगी। मैं तो आगे बढ़कर यह भी कहूंगा। कि जैसी बातें हो रही हैं उन्हें देखते हुए तो मैं चाहता हूं कि हमारी सरकार को सब शक्तियां दे दी जायें जिससे कि हम यह देख सकें कि हमारी स्वतंत्रता खोई न जाये। क्या मेरे मित्र यह चाहते हैं कि हमारी स्वतंत्रता और हमारी सुरक्षा हमारे विरोधियों और हमारे शत्रुओं के हाथ में चली जाये?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या संसद आपकी शत्रु है?

***श्री आर.के. सिधवाः** नहीं, मैं अपने मित्र पंडित भार्गव से सर्वथा सहमत हूं। मैं उन्हें देश का शत्रु नहीं समझता। किन्तु बाहर ऐसे व्यक्ति है जो इस देश के शत्रु हैं, देश में भी और देश के बाहर भी हैं, शरारती लोग है जो शरारत पर तुले हुए हैं। मैं उनसे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहता हूं, और उस प्रयोजन के लिये मैं अपनी स्वतंत्रता का भी थोड़ा सा अंश बलिदान करने के लिये तैयार हूं, जिससे कि देश की स्वतंत्रता बनी रहे। मैं नहीं चाहता कि कोई हमारी स्वतंत्रता को संकट में डाले जो कि हमने महान संघर्ष के पश्चात् प्राप्त की है।

श्रीमान, मैं अपने मित्र श्री कामत को बता सकता हूं कि अमरीका में भी, संयुक्त राज्य के संविधान में भी, इस आशय का एक उपबन्ध है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या आपने उस संविधान को पढ़ा है?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैंने पढ़ा है आप भी पढ़ सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने उसमें से उद्धरण दिया है।

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, अमरीकी संविधान में, उसी आपात के सिद्धांत पर, अनुच्छेद 1, घारा 8, खंड 18, में इस शक्ति को मान्यता दी गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह मूल लेख है या टिप्पणी?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैंने श्री कामत को धारा बता दी है। अब वे यह तर्क नहीं कर सकते हैं कि...

***श्री एच.वी. कामतः** यह तो अशुद्ध उद्धरण है।

***उपाध्यक्षः** मुझे प्रसन्नता होगी यदि सदस्य माननीय सदस्य की वक्तृता में बाधा न डालें।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्रीमान, मैं इस अनुच्छेद का प्रबल समर्थन करता हूं। किन्तु साथ ही, मैं अनुभव करता हूं कि मेरे कुछ मित्रों द्वारा उठाई गई कुछ आपत्तियां किसी हद तक उचित हैं, कि समूचे भाग 3 को निलम्बित नहीं करना चाहिये। भाग 3 में कुछ खंड है जिन्हें आपात में भी अछूता ही रहने दिया जा सकता है। उदाहरण के लिये, मूल अधिकारों में अनुच्छेद 11 का संबंध अस्पृश्यता से है। क्या में जान सकता हूं कि क्या आप आपात में अस्पृश्यता का पुनः प्रचलन करना चाहते है? उपाधि-संबंधी अनुच्छेद भी है। क्या आप चाहते हैं कि आपात में उपाधियां प्रदान की जायें? बेगार के संबंध में एक खंड है। क्या आप चाहते हैं कि आपात में बेगार ली जाये? अनुच्छेद 18 में लिखा है कि 14 वर्ष से कम का कोई बालक खानों में नियोजित न किया जाये। यदि आपात हो, तो क्या आप यह चाहते हैं कि 14 वर्ष का बालक खान में जाकर काम करे? फिर धर्म, शिक्षा आदि संबंधी अधिकारों के विषय में अनुच्छेद 19 है। जहां तक इन अधिकारों का संबंध है उस हद तक मैं अपने मित्रों की युक्तियों को समझ सकता हूं, और मैं यह युक्ति भी स्वीकार कर सकता हूं कि मसौदा-समिति को यह सुझाव नहीं रखना चाहिये था कि सूचना भाग 3 ही आपात में निलम्बित रहे। निस्संदेह बहुत से ऐसे अधिकार हैं, जैसे कि भाषण की स्वतंत्रता, स्वतंत्र सम्मेलन आदि, जो आपात में नहीं रह सकते। यह तो आपात के सिद्धांत के ही विरुद्ध है। किन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि मसौदा-समिति के लिये भाग 3 के पूर्ण निलम्बन का सुझाव रखना आवश्यक नहीं था, जहां अस्पृश्यता उपाधियों और ऐसी ही बातों की भी चर्चा है। आपात का यह अर्थ नहीं है कि सरकार दिन प्रतिदिन के कार्य को भी नहीं करेगी, किन्तु हमारी स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिये, ऐसी विधियों, अधिकारों और विशेषधिकारों को निलम्बित किया जा सकता था और किया जाना चाहिये, जिससे देश के अस्तित्व पर ही प्रभाव पड़े। किन्तु विधि की असाधारण शक्तियों को निलम्बित किया जा सकता है। इन शब्दों के साथ, मैं इस अनुच्छेद का जोरदार समर्थन करता हूं। मैं जानता हूं कि इसका अर्थ यह होगा, कि व्यक्ति के वैयक्तिक अधिकार समाप्त हो जायेंगे, पर मुझे उसकी चिंता नहीं, क्योंकि मैं चाहता हूं और मैं यह देखने के लिये आतुर हूं कि हमारे देश की स्वतंत्रता को बनाये रखा जाये, और मुझे विश्वास है कि जिन मित्रों ने इस अनुच्छेद का विरोध किया है वे भी हमारी आजादी को बनाये रखने के लिये उतने ही आतुर हैं, यह तो केवल दृष्टिकोण में थोड़ा सा अन्तर है। कामत जैसे मेरे कुछ मित्र कह सकते हैं कि कोई अन्य

[श्री आर.के. सिधवा]

सरकार शक्ति आरूढ़ हो सकती है और आपात के आधार पर समस्त संविधान को उलट सकती है। पर लोकतंत्र में सरकार का परिवर्तन सदा सम्भव है। भावी सरकार और भी बुरे कानून बना सकती है, हम नहीं कह सकते कि वह किस प्रकार की सरकार होगी। किन्तु प्रारम्भिक काल में, जबकि हमने अपनी स्वतंत्रता को बहुत संघर्ष पश्चात् प्राप्त किया है और जब हम जानते हैं कि संकट विद्यमान है, तो हमें अपनी स्वतंत्रता को बनाये जाने के लिये थोड़ा सा अपना अधिकार छोड़ने के लिये तैयार रहना चाहिये—यद्यपि मैं कह सकता हूं कि मुझे अपने अधिकारों से उतना ही प्रेम है जितना किसी और को होगा। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का सबल समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करते हुए, मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। सबसे पहली बात यह है कि अनुच्छेद 280 के प्रथम भाग में, जैसा कि वह अब पेश किया गया है, समिति की वह बात पूरी हो जाती है जो कि पहले एक अवसर पर उसने पेश की थी, कि युद्ध के अस्तित्व मात्र से समस्त मूलाधिकार निलम्बित नहीं हो जायेंगे। अनुच्छेद में यह लिखा है, कि:—

> "जहां कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान में भाग 3 द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिये जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा इस प्रकार वर्णित अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये किसी न्यायालय में लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिये जिसमें कि उद्घोषणा लागू करती है अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।"

यह मंशा नहीं है कि राष्ट्रपति मूलाधिकारों के अध्याय में उल्लिखित सब अधिकारों को निलम्बित कर देगा जिनका निर्देश मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने किया है। उनका यह कहना ठीक है कि ऐसे अधिकार भी हैं जिन्हें युद्ध के समय निलम्बित करना आवश्यक नहीं है। ऐसे अधिकार निलम्बित नहीं होंगे और नहीं हो सकते। पर खंड विशेषों का अलग-अलग उल्लेख करने की बजाय यह राष्ट्रपति पर छोड़ दिया गया है, और मुझे संदेह नहीं है कि राष्ट्रपति युक्ति-युक्त और समुचित तरीके से कार्यवाही कहेंगे, और संविधान में नागरिकों के लिये प्रत्याभूत मूल अधिकारों को समाप्त करने की ही भावना से काम नहीं करेंगे।

अनुच्छेद के दूसरे भाग में लिखा है:—

> "उपरोक्त प्रकार दिया हुआ आदेश भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग पर विस्तृत हो सकेगा।"

यह बात किसी सम्भव आपत्ति को हटाने के लिये रखी गई है कि गड़बड़, युद्ध या आंतरिक उपद्रव शायद समस्त भारत में विस्तृत न हों और किसी भाग विशेष तक ही सीमित हों, और इसलिये राज्य-क्षेत्र के प्रत्येक भाग में मूल अधिकार को निलम्बित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अंत में राष्ट्रपति या मंत्रिमंडल के लिये यह आवश्यक बना दिया गया है कि वह उस आदेश को यथासम्भव शीघ्र संसद के समक्ष पेश करे। संसद जो चाहे वह कार्यवाही कर सकती है, उसे कोई रोक नहीं सकता। राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, पर फिर भी संसद कह सकती है कि इस अधिकार या उस अधिकार को निलम्बित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बार-बार, सदन के समक्ष यह उल्लेख किया गया है कि राष्ट्रपति के नाम से काम करने वाला मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी होगा। संसद को उस पर कोई भी कार्यवाही करने वाला मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी होगा। संसद को उस पर कोई भी कार्यवाही करने का अधिकार है। इन परिस्थितियों में, इस अनुच्छेद पर सम्भवत: कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

इस संबंध में, मैं सदन को एक प्रसिद्ध लोकोक्ति का स्मरण कराऊंगा कि "मेगना कार्टा के सिद्धांतों पर कोई युद्ध नहीं लड़ा जा सकता"। कथन की स्वतंत्रता, सम्मेलन के अधिकार और अन्य अधिकारों को शांति-काल में सुरक्षित करना होता है किन्तु केवल उस समय जबकि राज्य का अस्तित्व रहे तथा राज्य की सुरक्षा प्रत्याभूत हो। अन्यथा ये सब अधिकार रह ही नहीं सकते। हम ऐसी स्थिति की कल्पना कर रहे हैं जबकि युद्ध हो, जहां करोड़ों व्यक्ति हैं, जिनकी निष्ठायं सम्भवत: विभाजित हों, यद्यपि वे सब भारत के ही नागरिक होंगे। हमें भरोसा है कि ऐसा समय आयेगा जबकि भारत के नागरिक दूरस्थ देशों की ओर नहीं देखेंगे पर हम भारत के सब नागरिकों के विषय में इस आधार पर अपनी धारणा नहीं बना सकते कि उनकी निष्टा पर विश्वास किया जा सकता है। वाक्-स्वतंत्रता का प्रयोग राज्य को संकट में डालने के लिये किया जा सकता है और उससे देश के सब साधनों को कुचला जा सकता है। यदि हम यह समझ जायें कि देश रहना चाहिये, राष्ट्र रहना चाहिये, राज्य रहना चाहिये यदि स्वतंत्रता और अन्य वस्तुओं की प्रत्याभूति होनी है, तो इस अनुच्छेद पर कोई सम्भावित आपत्ति नहीं हो सकती।

इस वाद-विवाद के मध्य अमरीकी संविधान का निर्देश दिया गया है। पता नहीं इस सदन के सदस्यों ने राष्ट्रपति की शक्तियों के विषय में प्रोफेसर कारविन की अर्वाचीन पुस्तक पढ़ी है या नहीं, वे सांविधानिक विधि के बहुत बड़े प्राधिकारी हैं। गृह युद्ध में राष्ट्रपति लिंकन ने बन्दी-प्रत्यक्षीकरण लेख को निलम्बित कर दिया था। अमरीकी संविधान में, बन्दीप्रत्यक्षीकरण को निलम्बित करने की शक्ति दी हुई है, पर यह नहीं लिखा कि निलम्बित करने का प्राधिकार संसद का है अथवा राष्ट्रपति का। किन्तु वास्तव में गृह युद्ध में राष्ट्रपति ने बन्दीप्रत्यक्षीकरण के लेख को निलम्बित कर दिया था और अमरीकी लोगों ने बुद्धिमानी करके राष्ट्रपति की शक्ति पर आपत्ति नहीं की।

राष्ट्रपति की शक्तियों के विषय में मैं एक और उद्धरण देना चाहता हूं। संयुक्त राज्य में राष्ट्रपति को जितनी तानाशाही शक्तियां हैं उतनी किसी अन्य देश में नहीं हैं। प्रोफेसर कारविन इसी बात को अपनी अर्वाचीन पुस्तक के पृष्ठ 317 पर इन शब्दों में लिखता है:—

> "संयुक्त राज्य की युद्ध-शक्ति का तीन प्रकार से विकास हुआ है। सर्वप्रथम, इसका सांविधानिक आधार प्रदत्त शक्तियों के सिद्धान्त से हटकर अंतर्विष्ट शक्तियों

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

का सिद्धांत बन गया है, इस प्रकार यह प्रत्याभूति हो गई है कि राष्ट्र की पूर्ण वास्तविक शक्ति सांविधानिक रूप में उपलब्ध है। दूसरी बात यह है, प्रधान सेनापति के रूप में राष्ट्रपति की शक्ति सैनिक कमान की सामान्य शक्ति ही न रहकर आपात के समय की अनिश्चित शक्तियों का महान समूह बन गयी है जिसे महाधिवक्ता श्री विडल ने 'शक्तियों का समूह' बताया है। तीसरी बात यह है, कि प्रथम उल्लिखित विकास के परिणामस्वरूप युद्धकाल में कांग्रेस को जो अपार विधायिनी शक्तियां मिल जाती हैं, उन्हें आज कांगेस किसी हद तक भी राष्ट्रपति को दे सकती है, अर्थात, प्रधान सेनापति की अपार शक्तियों में किसी हद तक विलीन की जा सकती है।"

आज अमरीका में, जो सबसे अधिक लोकतंत्रात्मक देश है, यह स्थिति है। यहां हमारे यहां संसदीय प्रभुता का सिद्धात है। अत: मंत्रिमंडल को संसद के निकट सहयोग से कार्य करना होगा। जब वे संसद की इच्छाओं के विपरीत चलेंगे, तभी उनकी शक्ति का अन्त हो जायेगा। जहां तक संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की शक्तियों का संबंध है, वे निरंकुश हैं। उससे उत्तर नहीं मांगा जा सकता। अत: मंत्रिमंडल की शक्तियों पर क्यों झगड़ते हो,—मैं मंत्रिमंडल शब्द का प्रयोग जान बूझकर कर रहा हूं क्योंकि कई बार स्मरण कराने पर भी सदन के सदस्य यह भूल जाते प्रतीत होते हैं कि संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद में 'राष्ट्रपति' शब्द का अर्थ समझना चाहिये—जनता के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल। लिंकन की जीवनी को पढ़कर जितना लाभ हो सकता है उतना किसी और चीज से नहीं।

अब मैं विविध आपत्तियों के विषय में कुछ कहूंगा जो इस वाद-विवाद के बीच में उठाई गई हैं। मेरे माननीय मित्र श्री भार्गव की बात का तो उत्तर मैं अपनी वक्तृता के पूर्व भाग में दे चुका हूं, कि संसद को इस मामले में अन्तिम शक्ति है। संसद राष्ट्रपति की किसी कार्यवाही को गलत कर सकती है। यदि वह चाहे तो मंत्रिमंडल को हटा सकती है क्योंकि मंत्रिमंडल युद्ध काल में भी, शांति काल के समान ही, लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

उसका जीवन संसदीय बहुमत पर निर्भर होता है। मंत्रिमंडल और संसद में लगातार संबंध होता है, अत: हर बार संसदीय प्रभुता का यह आडम्बर खड़ा करना व्यर्थ है। संसद को अधिकार न देने का प्रश्न तो है ही नहीं। केवल यही प्रश्न है कि संसद कैसे शासन करेगी। शांति काल में वह प्रतिदिन कार्यपालिका के कार्य में हस्तक्षेप कर के राज्य कर सकती है, दूसरे समय वह राष्ट्रपति अर्थात मंत्रिमंडल को, जिसमें उसे विश्वास है, अपनी शक्ति न्यस्त करके शासन कर सकती है। अत: संसद के कार्य करने का तरीका काल और परिस्थितियों पर निर्भर होता है और उसकी शक्ति पर कोई विवाद नहीं करता।

फिर एक असाधारण सुझाव दिया गया है कि हमें एक क्षमा अधिनियम पारित करना चाहिये। क्षमा अधिनियम का क्या अर्थ है? जिन देशों में संसदीय प्रभुता है वहां क्षमा अधिनियम प्राय: युद्ध के पश्चात् पारित किया जाता है। सारे अधिनियमों

तथा अध्यादेशों के होते हुए भी यह सम्भव है कि कुछ अधिकारियों ने विधि की सीमा का उल्लंघन कर दिया हो। विधि के उल्लंघन से उनकी रक्षा करने के लिये तथा उन्हें मुआवजे के दावों या आपराधिक मुकदमों से बचाने के लिये ही प्राय: क्षमा के अधिनियम पारित किये जाते हैं। इस संबंध में मैं प्रोफेसर डायसी की 'संविधान की विधि' नामक पुस्तक का निर्देश करना चाहता हूं जिसमें उसने क्षमा अधिनियम के विस्तार तथा सिद्धांत को समझाया है। यदि प्रोफेसर शाह का यह अर्थ है कि युद्ध के समाप्त होने से पूर्व भी आप क्षमा अधिनियम पारित कर सकते हैं तो यह मूल अधिकारों के विलंबन से भी बुरी बात होगी, क्योंकि यह तो कार्यपालिका को खुली छुट्टी देना है। उसके द्वारा आप कार्यपालिका को यह प्रत्याभूति देते हैं कि उन्हें सारी विधि विपरीत कार्यवाहियों से बचा दिया जायेगा। निस्संदेह ऐसी बात प्रोफेसर शाह नहीं चाहते। अत: मेरा निवेदन है कि सदन के समक्ष जो प्रस्थापना पेश की गई है वह स्वीकार नहीं की जा सकती।

तीसरा एक विधि-संबंधी प्रश्न है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव ने उठाया है, वह है अनुच्छेद 279 के संबंध में "जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तब इस अधिनियम की किसी बात से राज्य की कोई विधि बनाने की अथवा कोई कार्यवाही करने की शक्ति निर्बन्धित नहीं होगी"। पर स्थिति यह है कि यदि आपात-उद्घोषणा की कालावधि में कोई विधि पारित होती है, तो वह आपात की समाप्ति पर स्वत: ही समाप्त हो जायेगी, अनुच्छेद 279 का यही अर्थ है। जो लोग राष्ट्रपति की शक्ति को सीमित करने के पक्ष में हैं वे इस उपबन्ध पर आपत्ति नहीं कर सकते, क्योंकि जहां कालावधि सीमित है, विधि स्वत: ही समाप्त हो जायेगी, जब तक कि संविधान में या उस अधिनियम विशेष में ऐसा कोई उपबन्ध न हो जिससे कि आपात की समाप्ति के पश्चात् भी वह जारी रह सके। अत: मेरे माननीय मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव के संशोधन द्वारा तो उसकी और अनुच्छेद 279 के अधीन पारित नियम की अवधि बढ़ जायेगी और कम नहीं होगी।

अतएव, इन परिस्थितियों में, मेरा निवेदन है कि क्योंकि राज्य की सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण है, और क्योंकि व्यक्ति की स्वतंत्रता राज्य की सुरक्षा पर ही निर्भर रहती है और क्योंकि मेगना कार्टा के सिद्धांतों पर या वैयक्तिक स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर युद्ध नहीं चलया जा सकता, विशेषत: ऐसे देश में जहां विविध प्रकार के लोग हैं, जिनकी निष्ठा भी भिन्न-भिन्न होना सम्भव है, अतएव यह उपबन्ध बहुत आवश्यक है। यह इस संविधान का प्राण होगा। लोकतंत्रात्मक संविधान का वध करना तो दूर रहा—जैसा कि एक वक्ता ने कहा है—यह लोकतंत्र को सदैव संकटों से और समाप्ति से बचायेगा।

इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं।

*__श्री कृष्णचन्द्र शर्मा__ (संयुक्तप्रांत: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने अपने माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर की वस्तृता को यथेष्ट ध्यान से सुना है। किन्तु मैं यह नहीं समझ सका, कि अनुच्छेद 13 में कुछ अधिकार दिये गये हैं। उसी अनुच्छेद में एक उपबन्ध है कि वह अधिकार निर्बन्धित किया जा सकता है। अनुच्छेद 15 में कुछ और अधिकार भी दिये गये हैं; उसी अनुच्छेद में एक उपबन्ध है कि उनको निर्बन्धित करने के लिये विधि बनाई जा सकती है। फिर अनुच्छेद 279 भी है जिसके अधीन अनुच्छेद 13 में दिये गये अधिकारों को आपात

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

घोषणा के अंतर्गत हटाया जा सकता है। अब मेरा विनयपूर्वक यह निवेदन है कि जब कोई अधिकार नहीं होते हैं तो कोई उपचार भी नहीं होता, और अनुच्छेद 280 की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु जब अधिकार शेष होते हैं तो उसके लिये उपचार भी होता है। अत: मैं अनुच्छेद 280 के बनाने की कोई आवश्यकता नहीं समझता जिससे कि उन अधिकारों का भी उपचार छिन जाता है जो आपात विधान के अधीन कम या समाप्त नहीं किये गये हैं।

हमने आपात के विषय में बहुत कुछ सुना है श्रीमान, जब दो विश्व युद्ध लड़े गये हैं, तब कुछ मूल अधिकारों के लिये इस देश के उच्च न्यायालयों के पास जाने का अधिकार कभी नहीं छीना गया था, चाहे हम पर विदेशी शक्ति का शासन था, जो अपनी सुरक्षितता के लिये और सभ्यता की तथा संसार की सुरक्षितता के लिये लड़ रहे थे और हम अपनी स्वतंत्रता के लिये उस शक्ति के विरुद्ध लड़ रहे थे। मुझे ऐसी कोई आशंका नहीं है कि इस देश में कभी भी ऐसा आपात उत्पन्न होगा; और ऐसे अधिकारों को छीनने की कोई आवश्यकता नहीं है जिन्हें ब्रिटिश लोगों ने भी नहीं छीना था। आखिर, स्वाधीनता संसार में सबसे मधुर वस्तु है और आप उसे इतनी आसानी से नहीं छीन सकते। सब शासन का उद्देश्य जनता की समृद्धि और कल्याण होता है। हम पुलिस राज्य से थक गये हैं। यदि किसी सरकार या संविधान के अधीन आपात इतनी बार उत्पन्न हो जाता है, तो उस शासन या सरकार को समाप्त कर देना चाहिये। यदि राज्य शक्तिशाली है तथा जनता समृद्ध है तो ऐसा आपात उत्पन्न हो ही नहीं सकता। आप जनता के अधिकारों को कम करके शासन नहीं कर सकते; आप संविधान को तभी स्थिर रख सकते हैं, जब तक लोग समृद्ध हैं और विधि पालक हैं। पुलिस का आश्रय लेकर कोई राज्य नहीं टिक सकता। अत: मेरा निवेदन है कि इस प्रस्थापित अनुच्छेद 280 से कोई लाभ नहीं होगा और किसी संविधान में उसका कोई उदाहरण नहीं है। यदि कोई उदाहरण हों भी तो आपको काल और परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिसमें ये संविधान बनाये गये हैं। इन उपबन्धों को अधिनियम करके आप उन लोगों को भी एक उपकरण दे रहे हैं जो गड़बड़ और अराजकता फैलाना चाहते हैं। श्रीमान, आप स्वाधीनता का दमन नहीं कर सकते, और न्यायालय के प्राधिकार को समाप्त नहीं कर सकते। मेरा निवेदन है कि इससे कोई उपयोगी अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा और इसे पारित नहीं करना चाहिये।

एक माननीय सदस्य: अब प्रश्न पर मत लिये जाने चाहिये।

उपाध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: श्रीमान, इस बहस में भाग लेने वाले कुछ वक्ताओं ने मेरे पेश किये गये खंड के उपबन्धों के विरुद्ध जो प्रबल भावनायें प्रकट की उन पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अनुच्छेद में मूल अधिकारों का वर्णन है और लोगों के अधिकारों सम्बन्धी मामलों का उल्लेख है और इसलिये यह उचित

है कि हमें इस प्रकार के विषय पर जरा सावधानी से—वरन् मैं कह सकता हूं कि जरा आवेश से–विचार करना चाहिये। हम कुछ मूलाधिकारों को पारित कर चुके हैं और जब हम उन्हें कम करना या निलम्बित करना चाहते हैं तो हमें बहुत सावधान रहना चाहिये कि हम उन्हें कम करने या निलम्बित करने में क्या उपाय काम में लेते हैं।

अत: आशा है मेरे जो मित्र इस अनुच्छेद के विरुद्ध बोले हैं वे समझ जायेंगे कि मैं किसी प्रकार भी उनके कथन का विरोधी नहीं हूं। फिर भी मुझे यह कहते हुए खेद है कि मैं न उनके किसी संशोधन को और न उनके किसी सुझाव को ही स्वीकार कर सकता हूं। यदि मैं कह दूं तो मुझ पर उनकी किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ा है। साथ ही मैं कह सकता हूं कि उन्हें मूल अधिकारों से जितना प्रेम है उतना ही मुझे भी है।

मैं अपने उत्तर में कुछ सामान्य प्रश्नों पर प्रकाश डालूंगा। हां, यह तो मेरे लिये सम्भव ही नहीं है, कि मैं उन सब विस्तार की बातों का उत्तर दूं जिन पर विविध वक्ताओं ने जोर डाला है। पहला प्रश्न यह है कि क्या आपात में मूल अधिकारों का निलम्बन होना चाहिये या निलम्बन होना ही नहीं चाहिये; दूसरे शब्दों में क्या हमारे मूलाधिकार अखंड होने चाहियें, जिन्हें कभी बदला नहीं जा सके, निलम्बित या निराकृत नहीं किया जा सके; या हमारे मूलाधिकार कुछ आपात के अधीन रहने चाहियें। मेरे विचार में मेरा यह कहना ठीक है कि सदन में अत्यधिक बहुमत आपात में इन अधिकारों को निलम्बित करने की आवश्यकता को समझता है; केवल यही प्रश्न है कि यह काम कैसे किया जाये।

अब यदि यह मान लिया जाये कि आपात में इन अधिकारों को निलम्बित करना आवश्यक है, तो अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या इन मूलाधिकारों को निलम्बित करने का अधिकार पूर्णत: राष्ट्रपति को दे दिया जाये या उनका निर्णय करना संसद पर छोड़ देना चाहिये। पर अन्य देशों में जो कुछ किया जा रहा है उसे देखते हुए स्थिति यह है—और मुझे यह विश्वास है कि इस सदन में सब सहमत होंगे कि हमें अन्य देशों के संविधानों के उपबन्धों और अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। जहां तक बन्दीप्रत्यक्षीकरण के अधिकार को निलम्बित करने का प्रश्न है, अंग्रेजी विधि के अधीन इस मामले का निर्णय विधि के अनुसार होना चाहिये। ग्रेट ब्रिटेन में यह स्थिति है। संयुक्त राज्य की स्थिति को लेते हैं तो हम देखते हैं कि कांग्रेस को सांविधानिक प्रत्याभूतियों के विषय में शक्तियां प्राप्त हैं जिनमें बन्दीप्रत्यक्षीकरण लेख का निलम्बन भी समाविष्ट है, राष्ट्रपति को ही इस मामले में कुछ करने की शक्ति नहीं है। मैं इस मामले के विस्तृत इतिहास को लेना नहीं चाहता। किन्तु मेरे विचार में यह कहना ही ठीक है, कि शक्ति तो कांग्रेस के हाथ में है, पर राष्ट्रपति को भी लेख के निलम्बन की अस्थायी रूप में शक्ति प्राप्त है। मेरे मित्र अपने सिर हिला रहे हैं। किन्तु मेरे विचार में यदि वे सुमान्य लेखक कारविन की पुस्तक 'दी प्रेसीडेंट' को पढ़ेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि यही स्थिति है।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू: क्या आप मुझे उनके बीच में बोलने देंगे, श्रीमान? मुझे विश्वास है कि वे आगे की पुस्तक 'अमरीका का शासन' से परिचित हैं। शायद वे उसे सुमान्य पुस्तक समझेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, वही एक पुस्तक नहीं है। अमरीकी संविधान पर सौ पुस्तकें हैं। उनमें से कोई 50 से तो मैं भी परिचित हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** उसमें यह लिखा है कि सर्वोत्तम विधि-सम्बन्धी अभिप्राय यह है कि बन्दीप्रत्यक्षीकरण लेख के विशेषाधिकार को निलम्बित करने का अधिकार कांग्रेस में निहित है और राष्ट्रपति उसका प्रयोग तभी कर सकता है जबकि सशस्त्र बलों का प्रधान सेनापति होने के नाते वह सैनिक कार्यवाही की सुरक्षा के लिये उसे आवश्यक समझता हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, मेरा निवेदन है कि संयुक्त राज्य में शक्ति तो कांग्रेस के हाथ में है, पर राष्ट्रपति को भी राज्य का कार्यपालिका-प्रधान होने के नाते, उसे निलम्बित करने का अस्थायी काल के लिये अधिकार है।

अब अपना संविधान बनाते समय हमने लगभग अमरीकी उदाहरण का अनुसरण किया है। अब मैंने जो संशोधन किया है उससे संसद को इस मामले में शक्ति मिल गई है। हम राष्ट्रपति को भी अस्थायी काल के लिये शक्ति देना चाहते हैं कि वह सांविधानकि प्रत्याभूति के विषय में यथावश्यक कार्यवाही कर सकता है।

अत: इस अनुच्छेद के मसौदे को और संयुक्त राज्य में की स्थिति की तुलना करें तो इन दोनों में कोई बड़ा अन्तर है ही नहीं। यहां भी राष्ट्रपति वैयक्तिक रूप में कोई कार्यवाही नहीं करता। हमारे यहां एक और रक्षण-कवच है जो अमरीकी संविधान में नहीं है, कि हमारा राष्ट्रपति कार्यपालिका की मंत्रणा पर चलेगा, और हमारी कार्यपालिका संसद के प्राधिकार के अधीन होगी। अत: जहां तक इस प्रत्याभूति को निलम्बित करने की सारी शक्ति देने का प्रश्न उठता है, मेरा निवेदन है कि हमारी प्रस्थापना बिल्कुल नई नहीं है जो किसी उदाहरण के बिना ही बना दी गई हो या मनमानें ढंग से बना दी गई हो और मूलाधिकारों की चिन्ता ही न की गई हो।

अब इस प्रश्न को निबटा कर मैं श्री भार्गव के संशोधन संख्या 74 को लेता हूं। मेरे विचार में वह एक महत्वपूर्ण मामला है और इसलिये मुझे यह बताना चाहिये कि कि उपबन्ध वास्तव में क्या है। उनका संशोधन वास्तव में अनुच्छेद 279 के सम्बन्ध में है। यद्यपि उन्होंने इसे अनुच्छेद 280 पर संशोधन के रूप में पेश किया है। वे यही चाहते हैं कि मूलाधिकारों को निलम्बित करने के आपात उपबन्धों द्वारा प्रदत्त प्राधिकार राज्य जो कार्यवाही करे वह उद्घोषणा की समाप्ति पर समाप्त हो जाये। मेरे विचार में जहां तक संशोधन संख्या 74 का सम्बन्ध है वे यही बात चाहते हैं। मेरा निवेदन है कि यदि अनुच्छेद को ठीक प्रकार पढ़ा जाये तो इसका यही तो अर्थ है। मैं उनका ध्यान अनुच्छेद 279 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। वे देखेंगे कि इस अनुच्छेद में आपात के समय दी गई शक्तियों के अधीन बनायी गई किसी विधि के अन्तर्गत की गई किसी कार्यवाही का अपवाद नहीं है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये मैं उनका ध्यान अनुच्छेद 227 की ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूं। यदि वे दोनों की तुलना करेंगे तो वे देखेंगे कि

दोनों अनुच्छेदों में एक मूल अन्तर है। अनुच्छेद 227 ऐसा अनुच्छेद है जिससे केन्द्र को शक्ति मिलेगी कि वह आपात में कुछ ऐसी विधियां भी बना सकते हैं जिनका प्रभाव राज्य सूची पर भी पड़ सकता है। मैं उनका ध्यान अनुच्छेद 227 के खण्ड (2) की ओर दिलाना चाहता हूं। वे देखेंगे कि उसके अन्त में लिखा है: "वे सब कार्यवाहियां, उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् 6 मास की कालावधि की समाप्ति पर उन सब बातों के अतिरिक्त प्रवर्तनहीन होंगी जो उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई है।"। यह खण्ड अनुच्छेद 279 में नहीं है। अत: अनुच्छेद 279 के उपबन्धों के अधीन बनाई गई विधियां ही नहीं समाप्त हो जायेंगी वरन् कोई कार्यवाही, जो कर दी गई हो, वह भी समाप्त हो जायेगी। अत: जो व्यक्ति अनुच्छेद 279 के अधीन बनाई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन पकड़ा गया हो वह भी उस विधि द्वारा शासित नहीं होगा जो प्रवर्तनहीन हो गई है, केवल इसलिये कि वह विधि उस अनुच्छेद के अन्तर्गत बनाई गई थी। इस अनुच्छेद 279 के अधीन केवल विधि की समाप्त नहीं हो जोयगी, वरन् जो कार्यवाही की जा चुकी है वह भी समाप्त हो जायेगी।

फिर मैं अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। वह भी एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है जो अनुच्छेद 279 के साथ पढ़ा जाना चाहिये। अनुच्छेद 8 इस संविधान के सामान्य उपबन्धों का अपवाद है कि विद्यमान विधि प्रवर्तन में रहेगी। अनुच्छेद 8 में लिखा है कि मूलाधिकारों से असंगत कोई प्रवृत्त विधि शून्य हो जायेगी। अनुच्छेद 8 खण्ड (1) विद्यमान विधि के सम्बन्ध में है तथा खण्ड (2) भावी विधियों के सम्बन्ध में है। अत: 'अनुच्छेद 279 के अधीन बनाई गई कोई विधि, भावी होगी। जब आपात समाप्त हो जायेगा तो अनुच्छेद 279 के अधीन बनाई गई विधि अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) के अधीन आ जायेगी, जिससे कि यदि वह मूल अधिकारों से असंगत होगी तो वह स्वत: ही समाप्त हो जायेगी।

इसलिये मेरा निवेदन है कि जहां तक संशोधन 74 का सम्बन्ध है, इस विषय में अभिव्यक्त आशंकायें निराधार हैं। विद्यमान विधि में पर्याप्त उपबन्ध है जिसमें वे सब मामले आ जाते हैं जो मेरे माननीय मित्र पण्डित ठाकुरदास भार्गव के दिमाग में हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** अनुच्छेद 227 (2) में संसद द्वारा निर्मित विधि का निर्देश है। इसमें कार्यपालिका द्वारा की गई किसी कार्यवाही का निर्देश नहीं है। दूसरी बात, इसमें संसद द्वारा निर्मित विधि की चर्चा है, जबकि अनुच्छेद 13 में ऐसी विधि का निर्देश है जो उसमें परिभाषित किसी राज्य द्वारा निर्मित हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वहां राज्य का अर्थ दोनों हैं क्योंकि अनुच्छेद 279 में प्रयुक्त 'राज्य' शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें कि वह भाग 3 में प्रयुक्त हुआ है जहां उसका अर्थ है केन्द्र, प्रान्त तथा नगर पालिकायें आदि।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** पर 227 (1) में केवल संसद का ही निदेश है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं भी तो यही कहता हूं। 279 भी 8 के अधीन रहेगी। अत: मूल अधिकारों से असंगत कोई विधि प्रवर्तन में नहीं रहेगी।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अब मैं पंडित भार्गव के संशोधन संख्या 78 को लेता हूं। उस संशोधन में उन्होंने कहा है कि इन मूल अधिकारों के उपबन्धों को निलम्बित करने वाले राष्ट्रपति द्वारा निकाले गये आदेश का अनुसमर्थन स्पष्ट रूप से होना चाहिये। वे कहते हैं कि राष्ट्रपति द्वारा निकाले गये आदेश का संसद स्पष्ट अनुसमर्थन करे। मस्विदा समिति द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद में लिखा है कि अनुसमर्थन को वैसे ही समझ जाये जब तक कि संसद स्पष्टत: राष्ट्रपति के आदेश का निराकरण न कर दे। इस संशोधन में और मेरे अनुच्छेद में यही असली अन्तर है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ किन्तु यह बहुत मूल अन्तर है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह बहुत मूल बात है। एक प्रकार से यह बात मूलभूत है और एक प्रकार से यह मूल नहीं भी है क्योंकि हमने यह बात रखी है कि उद्घोषणा संसद के समक्ष रखी जायेगी। वह बात मैंने अब आवश्यक बना दी है। स्पष्टत: यदि संसद को बुलाया जायेगा और उसके समक्ष उद्घोषणा रखी जायेगी, तो यह मूर्खता की बात होगी। यदि संसद में आने वाले लोग स्पष्ट कार्यवाही नहीं करते और ऐसी संसद अनावश्यक वस्तु होगी और उसकी आवश्यकता नहीं है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ क्या यह कहना आवश्यक नहीं है कि विधि आपात की कालावधि के लिये ही लागू होगी और कम समय के लिये नहीं तथा उद्घोषणा के पश्चात् 6 मास के लिये भी नहीं होगी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं उस पर आ रहा हूं, किन्तु जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, यह तो केवल विस्तार की ही बात है कि क्या संसद स्पष्टत: प्रस्ताव द्वारा यह कहे कि हम चाहते हैं कि राष्ट्रपति इसे वापस ले, या राष्ट्रपति इसे जारी रखे या राष्ट्रपति रूपभेद के साथ इसे जारी रखे। एक बार संसद को बुलाकर उसे मामला सौंप किया जाये तब क्या यह उचित नहीं है कि संसद पर यह मामला छोड़ दिया जाये तथा यदि वह अन्यथा विनिश्चय न करे तो संसद की अनुमति समझ ली जाये? इसमें क्या कठिनाई है? संशोधन के सम्बन्ध में मुझे कोई बात दिखाई नहीं देती।

*__एक माननीय सदस्य:__ अब एक बज गया है।

*__उपाध्यक्ष:__ हम इस अनुच्छेद को समाप्त कर देते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्री गुप्ते ने एक संशोधन पेश किया है जो पंडित भार्गव के संशोधन संख्या 78 पर संशोधन है। वे चाहते हैं कि सुनिश्चित कालावधि का उल्लेख है कि उद्घोषणा दो मास में ही संसद के समक्ष रखी जानी चाहिये। पंडित भार्गव के संशोधन में एक मास है, और मेरी मूल प्रस्थापना में 'यथासम्भव शीघ्र' था। खैर, मैं नहीं जानता कि क्या कोई इसे अपनी आत्मा सम्बन्धी मामला समझ लेगा और यदि इसकी प्रत्याभूति न दी गई तो हम आमरण अनशन करने लगेंगे। मेरे विचार में 'यथासम्भव शीघ्र' का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है

कि मामले को संसद के समक्ष एक मास में ही रख दिया जाये, दो मास में ही या एक पखवारे में ही रख दिया जाये। यह बहुत लचकीली पदावलि है और इसलिये मेरा निवेदन है कि मसौदे में समाविष्ट उपबन्ध इन परिस्थितियों में सर्वोत्तम है और मुझे आशा है कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों को सदन के समक्ष रखता हूं।

संशोधन संख्या 3028–ग्रन्थ 2 मुद्रित सूची।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उसे वापस लेता हूं, श्रीमान।

(संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 3030।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उस संशोधन को वापस लेता हूं।

(संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** अब मैं सदन के समक्ष पण्डित कुंजरू का संशोधन संख्या 211 रखता हूं जो मुद्रित एकत्रित सूची में है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैं उस संशोधन को वापस लेता हूं।

(संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** मैं सदन के समक्ष सूची संख्या 1 के संशोधनों को पेश करता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 14 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में, 'भाग 3' इस शब्द तथा अंक के स्थान पर 'अनुच्छेद 13 तथा 16' ये शब्द तथा अंक रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

(1) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में, 'the President may by order declare' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law provide' ये शब्द रख दिये जायें।

(2) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में, 'mentioned in the order' इन शब्दों के स्थान पर 'specified in the Act' ये शब्द रख दिये जायें।

[उपाध्यक्ष]

(3) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में, 'the rights so mentioned' इन शब्दों के स्थान पर 'any of such rights to mentioned' ये शब्द रख दिये जायें।

(4) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में, 'in the order' इन शब्दों के स्थान पर खण्ड के अन्त में, 'in the Act' ये शब्द रख दिये जायें।

(5) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (2) और (3) के स्थान में निम्न खण्ड रख दिया जाये:—

'(2) An Act made under clause (1) of this article may be renewed, repealed or varied by a subsequent Act of Parliament.'

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:—

"(1) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 में, 'mentioned' शब्द के स्थान पर, जहां वह प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है, 'specified' यह शब्द रख दिया जाये।

(2) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 में, 'the rights so mentioned' इन शब्दों के स्थान पर, 'any of such rights so mentioned' ये शब्द रख दिये जायें।

(3) कि उपरोक्त संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (3) के स्थान पर, निम्नलिखित रख दिया जाये:—

'An order made under clause (1) of this article, shall, before the expiration of fifteen days after it has been made, be laid before each House of Parliament, and shall cease to operate at the expiration of seven days from the time when it is so laid, unless it has been approved earlier by resolutions of both Houses of Parliament.'

(4) कि उपरोक्त संशोधन संख्या में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (3) के पश्चात्, निम्न नये खण्ड जोड़ दिये जायें:

(4) An order made under clause (1) of this article may be revoked by a subsequent order.

(5) 'An order made under clause (1) of this article may be renewed on varied by a subsequent order, subject to the provisions of clause (3) of this article.'

(5) कि संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के अन्त में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:—

'Notwithstanding anything contained in this article, the right to move the Supreme Court or a High Court by appropriate proceedings for a writ of *habeas corpus,* and all such proceedings pending in any court shall not be suspended except by an Act of Parliament.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 19 गिर जाता है क्योंकि वह संशोधन संख्या 18 पर आधारित है।

संशोधन संख्या 23, 24, 25 और 26 सब गिर जाते हैं क्योंकि संशोधन संख्या 3025 को वापस ले लिया गया।

फिर मैं सूची संख्या 2 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:—

"कि संशोधनों पर संशोधनों की प्रथम सूची (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 के निर्देश से, अनुच्छेद 179 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'279. A. Any law made or any executive action taken under article 279 in derogation of the provisions of article 13 of Part III of the Constitution shall ensure for such period only as is considered necessary by the State as defined in that Part and in no case for period longer than the peiod during which a Proclamation of Emergency is in force.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'280. Any law made or executive action taken under article 279 shall ensure for such period only as is considered

[उपाध्यक्ष]

necessary by the State as defined in Part III of the Constitution and in no case for a period longer than the period during which a Proclamation of Emergency remains in force.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (1) में 'a Proclamation of Emergency' इन शब्दों के पश्चात् 'under article 275 (1) of the Constitution' ये शब्द, अंक तथा कोष्ठक प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (2) में, अन्त में, निम्न जोड़ दिये जायें:

'for a period during which the Proclamation is in force or for such shorter period as may be specified.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2-A) Any such order may be revoked or varied by a subsequent order.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (2) में, अन्त में, निम्न जोड़ दिया जाये:

'and shall cease to operate at the expiration of one month unless before the expiration of that period it has been

approved by resolution of both Houses of Parliament:

Provided that if any such order is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of one month referred to in clause (3) of this article and the order has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, this order shall cease to operate at the expiration of fifteen days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the order have been passed by both Houses of Parliament.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (3) में, अन्त के पूर्ण विराम के स्थान पर अर्ध-विराम रख दिया जाये और तत्पश्चात् 'when it meets for the first time, after such an order' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 86 का प्रश्न नहीं उठता।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 15 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 280 के खण्ड (3) के अन्त में, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:—

'and if the House of the People, by a resolution passed by it, amends, varies or rescinds the order, the resolution shall be given effect to immediately.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 280 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

280. (1) Where a Proclamation of Emergency is in operation, the President may by order declare that the right to move any court for the enforcement of such of the rights conferred by Part III of this Constitution as may be mentioned in the order and all proceedings pending in any court for the enforcement of the rights so mentioned shall remain suspended for the period during which the Proclamation is in force or for such shorter period as may be specified in the Order.

Suspension of the rights guaranteed by article 25 of the Constitution during emergencies.

(2) An order made as aforesaid may extend to the whole or any part of the territory of India.

"(3) Every order made under clause (1) of this article shall as soon as may be after it is made be laid before each House of Parliament."

[280. (1) जहां आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है वहां राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि इस संविधान में भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से ऐसों को प्रवर्तित कराने के लिये जैसे कि इस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा इस प्रकार वर्णित अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये किसी न्यायालय में लम्बित सब कार्यवाहियां उस कालावधि के लिये जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहती है अथवा उससे छोटी ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिखित की जाये, निलम्बित रहेगी।

आपात में संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों का निलम्बन

(2) उपरोक्त प्रकार दिया हुआ आदेश, भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग पर विस्तृत हो सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन दिया प्रत्येक आदेश उसके दिये जाने के पश्चात् यथा सम्भव शीध्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 280, संविधान का अंग बने।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 280 संविधान में जोड़ दिया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** यह एक दु:ख तथा शर्म का दिन है। भगवान भारतीयों की सहायता करे।

***उपाध्यक्षः** अब सदन सोमवार को प्रात:काल 9 बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सभा सोमवार, 22 अगस्त 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.15.49
320

अंक 9

संख्या 15

सोमवार
22 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*
[अनुच्छेद 284, 285, 285क, 285ख
और 285ग पर विचार] .... 829-890 से 902

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 22 अगस्त, 1949

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 284

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं आज हमें अनुच्छेद 284 से आरम्भ करना है। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 284 संविधान का अंग बने।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 284 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'284. (1) Subject to the provisions of this article, there shall be a Public Service Commission for the Union and a Public Service Commission for each State.

(2) Two or more States may agree that there shall be one Public Service Commission for that group of States, and if a resolution to the effect, is passed by the House or, where there are two Houses, by each House of the Legislature of each of those States, Parliament may be law provide for the appointment of a Joint Public Service Commission (referred to in this Chapter as Joint Commssion) to serve the needs of those States.

(2a) Any such law as aforesaid may contain sucy incidental and consequential provisions as may appear necessary or desirable for giving effect to the purposes of clause (2) of this article.

(3) The Public Service Commission for the Union, if requested so to do by the Governor or Ruler of a State, may, with the approval of the President agree to serve all or any of the needs of the State.

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(4) References in this Constitution to the Union Public Service Commission or a State Public Service Commission shall, unless the context otherwise requires, be construed as references to the Commission serving the needs of the Union or, as the case may be, the State as respects the particular matter in question.'

'284. (1) इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग और प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा।

(2) दो या अधिक राज्य यह करार कर सकेंगे कि राज्यों के उस समूह के लिए एक ही लोक सेवा आयोग होगा तथा, यदि उस उद्देश्य का संकल्प उन राज्यों में से प्रत्येक के विधान-मंडल के सदन द्वारा अथवा जहां दो सदन हैं, वहां प्रत्येक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है तो, संसद उन राज्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये विधि द्वारा संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग (जो इस अध्याय में "संयुक्त आयोग" के नाम से निर्दिष्ट है) की नियुक्ति का उपबन्ध कर सकेगी।

(2क) उपरोक्त विधि में ऐसे प्रासंगिक तथा आनुषंगिक उपबन्ध भी अंतर्विष्ट हो सकेंगे जैसे कि इस अनुच्छेद के खंड 2 के प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिये आवश्यक या वांछनीय हों।

(3) यदि किसी राज्य का राज्यपाल या शासक, संघ के लोक सेवा आयोग से ऐसा करने की प्रार्थना करे तो, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, वह उस राज्य की सब या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।

(4) यदि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो, तो इस संविधान में संघ के लोक सेवा आयोग अथवा किसी राज्य के लोक सेवा आयोग के निर्देशों को ऐसे आयोग के प्रति निर्देश समझा जायेगा जो प्रश्नास्पद किसी विशेष विषय के बारे में यथास्थिति संघ की अथवा राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो।"

यह अनुच्छेद स्वत: स्पष्ट है और मेरे विचार से इस अनुच्छेद में किसी मुद्दे को स्पष्ट करने के लिये किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। अत: जब इस अनुच्छेद की सम्भावित आलोचना का उत्तर देने का अवसर आयेगा तभी मैं अपने विचार व्यक्त करूंगा।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा: जनरल): महोदय, क्या मैं पूछ सकता हूं कि संसद द्वारा कोई विधि बनाये जाने का उपबन्ध रखे जाने की आवश्यकता है और इन उपबन्धों में शासक (रुलर) शब्द का क्यों उल्लेख किया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मैं अपने मित्र श्री साहू की बात से समझ सका हूं तो वह यहां यह जानना चाहते हैं कि हमने संसद द्वारा विधि

बनाये जाने का उपबन्ध क्यों रखा है। वह इस बात को समझते होंगे कि मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक राज्य का अपना-अपना लोक सेवा आयोग होना चाहिए। परन्तु यदि प्रशासनिक अथवा वित्तीय कारणों से प्रत्येक राज्य के लिये अपना-अपना आयोग गठित करना सम्भव न हो तो दो राज्य एक संकल्प पारित करके केन्द्र को यह शक्ति प्रदान कर सकते हैं कि ऐसे दोनों राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये वह एक संयुक्त क्षेत्रीय आयोग गठित करने की व्यवस्था करे जो कि, जैसा कि मैंने पहले कहा है, प्रशासनिक अथवा वित्तीय कारणों से अपने लिये पृथक स्वतन्त्र आयोग गठित करने की स्थिति में नहीं है। स्पष्ट है कि जब इस आशय की शक्ति केन्द्र को दी जाती है तो यह अनिवार्य हो जाता है कि वह संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा विनियमित की जानी चाहिए और राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह केवल कार्यकारी आदेश जारी करके ही दो राज्यों के लिये संयुक्त आयोग गठित कर सके। इसी प्रयोजन से किसी आयोग के, जिसे दो राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है, गठन को विनियमित करने के लिये संसद को शक्ति दी गयी है।

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू:__ दूसरी बात यह थी कि शासक शब्द का उल्लेख क्यों किया गया?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ क्योंकि यह सम्भव है कि भाग 3 का कोई राज्य अपने लिये एक पृथक लोक सेवा आयोग गठित करना अनावश्यक समझे। ऐसी स्थिति में भाग 3 के किसी राज्य के लिये, यदि वह राज्य भाग 1 के किसी राज्य के साथ सहमत है, राष्ट्रपति से इस आशय का अनुरोध किये जाने का मार्ग बन्द नहीं होना चाहिए कि उनके लिये एक संयुक्त आयोग गठित किया जाये। इसी कारण से इस अनुच्छेद के उपबन्धों में शासक शब्द रखा गया है।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मैं एक स्पष्टीकरण चाहता हूं। खंड 3 में यह कहा गया है कि "राष्ट्रपति के अनुमोदन से वह उस राज्य की सब या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा"। क्या मैं जान सकता हूं कि यदि कोई स्थानीय निकाय लोक सेवा आयोग की सेवा का लाभ उठाना चाहे तो क्या इसको अनुमति दी जायेगी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ जी हां। इसके लिये एक पृथक अनुच्छेद है जिसमें इस आशय का उपबन्ध किया गया है कि यदि कोई स्थानीय प्राधिकरण यह चाहे कि लोक सेवा आयोग उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे, तो संसद लोक सेवा आयोग को यह अधिकार प्रदान कर सकती है कि वह ऐसे स्थानीय प्राधिकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

(संशोधन संख्या 2 प्रस्तुत नहीं किया गया।)

*__अध्यक्ष:__ मैं मान लेता हूं कि मूल अनुच्छेद से सम्बन्धित अन्य संशोधनों का अब प्रश्न नहीं उठता। क्या कोई माननीय सदस्य कोई अन्य संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिम बंगाल: मुस्लिम): मुझे इस खंड के सम्बन्ध में तीन संशोधन प्रस्तुत करने हैं। पहले संशोधन के संबंध में मैं समझता हूं कि यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो प्रारूप में कुछ विसंगति पैदा हो जायेगी। इसलिये मैं इसको भिन्न रूप में प्रस्तुत करने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूं। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि मेरा संशोधन चाहे वह कितना ही युक्तिसंगत क्यों न हो सभा द्वारा कदापि स्वीकार नहीं किया जायेगा। इसलिए मैं इसको अधिक

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

उपयुक्त रूप में प्रस्तुत करने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूं। यद्यपि सभा द्वारा इसे स्वीकार किये जाने की मुझे कोई आशा नहीं है। अतः यदि आप मुझे इसको थोड़ा सा परिवर्तित रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति दें तो मेरे विचार में इसकी रचना बेहतर हो जायेगी। मैं इसमें समय पर सुधार नहीं कर सका क्योंकि अनेक संशोधन एक साथ आये थे जैसे अचानक कोई हवाई हमला होता है, और उनको समय पर तैयार कर सकना असम्भव था।

***अध्यक्षः** वे तो एक सप्ताह पूर्व परिचालित किये गये थे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यद्यपि ये संशोधन गत सप्ताह परिचालित किये गये थे, तो भी सभा के समक्ष बड़ी संख्या में असमंजसकारी अनेक विषय आ रहे हैं और उनके साथ तीव्र गति से चल सकना बहुत कठिन है। जब प्रारूप समिति निर्णय करने में दो महीनों का समय ले लेती है तब हमसे इतनी बड़ी संख्या में नये संशोधनों के साथ तत्काल निपटने की आशा कैसे की जा सकती है; मैं कुछ विलम्ब करने का दोषी अवश्य हूं। इसलिये मैं आपकी विशेष अनुमति चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अच्छा ठीक है आप उन्हें प्रस्तुत कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 284 में, खंड (2) के स्थान पर यह खंड रखा जाये:—

(2) Two or more States may by Resolution in their Legislative Assemblies or where there are two Houses, in both the Houses, agree that there shall be one Public Service Commission for that group of States."

'(2) दो अथवा अधिक राज्य अपनी विधान सभाओं में अथवा जहां दो सदन हैं वहां दोनों सदनों में, संकल्प पारित करके करार कर सकेंगे कि राज्यों के उस समूह के लिये एक ही लोक सेवा आयोग होगा।'

मैं चाहता था कि इस खंड के बाद का भाग का लोप कर दिया जाये परन्तु ऐसा करने से प्रारूप की रचना भद्दी हो जाती इसलिये मैंने संशोधन को इस रूप में प्रस्तुत किया है। सार रूप में पहले प्रस्तुत और अब प्रस्तुत किये गये संशोधन के बीच कोई अंतर नहीं है।

महोदय, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 284 के खंड 2(क) में, 'law (विधि)' शब्द के स्थान पर 'agreement (करार)' शब्द रखा जाये।"

---

* इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची संख्या 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 284 के खंड (3) में, 'or Ruler' (अथवा शासक)' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

मेरे पहले संशोधन का प्रयोजन यह है कि प्रारूप संविधान में रखे गये मूल अनुच्छेद में, इस खंड का सार यह था कि दो या दो से अधिक राज्य परस्पर करार करके एक साझा लोक सेवा आयोग गठित करने का निर्णय कर सकेंगे। अब करार के आधार को समाप्त कर दिया गया है। वास्तव में दो या दो से अधिक राज्यों के लिये, उनके विधानमंडलों द्वारा संकल्प पारित करके व्यक्त की गयी सहमति के आधार पर संयुक्त लोक सेवा आयोग गठित करने की शक्ति संसद को दी जा रही है। यह प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने का एक अन्य उदाहरण है। यह नितान्त अनावश्यक है। मेरे संशोधन से कुछ थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ वही स्थिति रहेगी जो मूल प्रारूप अनुच्छेद में थी, उसमें एक परन्तुक यह होगा कि राज्यों का करार उनके विधानमंडलों में पारित संकल्पों पर आधारित होगा। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि जहां तक संयुक्त लोक सेवा आयोग की नियुक्ति का संबंध है, भाग-1 के राज्यों को अपने मामले तय करने के लिये सक्षम बनाया जाना चाहिये। यह केवल दो राज्यों के बीच का मामला होगा और संबंधित पक्षों के बीच करार का मामला होगा। इस मामले में संसद का हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं है। हमें प्रान्तों को अपने आप काम करने देना चाहिये; वे परस्पर लाभ अथवा हानि पर विचार करें और फिर संयुक्त लोक सेवा आयोग की नियुक्ति पर सहमत हों। उन्हें खंड 2(क) के अधीन आनुषंगिक मामलों, जैसे वेतन, छुट्टी तथा विभिन्न अनेक छोटे-छोटे मामलों पर सहमत होने की शक्ति प्राप्त होगी। मेरे विचार में प्रारूप संविधान में प्रान्तों को दी गयी उचित शक्तियों को जानबूझकर समाप्त करने का अथवा उनसे वंचित करने का यह एक प्रयास है। मैं सभा का ध्यान एक अन्य नये अनुच्छेद 287 की ओर दिलाना चाहूंगा। यह अनुच्छेद मुद्रित सूची के पृष्ठ 9 पर दिया है। इस नये अनुच्छेद में मूल अनुच्छेद में सम्मिलित परन्तुक को पूरी तरह से निकाल दिया गया है। परन्तुक इस प्रकार था:

"परन्तु जहां किसी के विधानमंडल द्वारा कोई अधिनियम पारित किया गया है, अधिनियम की एक शर्त यह होगी कि इससे सम्बन्धित कृत्य राष्ट्रपति की सहमति के बिना किसी ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रयोज्य नहीं होगा जो राज्य की किसी सेवा का सदस्य नहीं होगा।"

महोदय, मूल अनुच्छेद 287 के इस परन्तुक से राज्य विधान मंडलों को लोक सेवा आयोगों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होती थी। प्रस्तावित नये अनुच्छेद 287 में यह शक्ति समाप्त कर दी गयी है।

फिर इस नीति का अनुसरण करते हुए, विचाराधीन नये अनुच्छेद, अर्थात अनुच्छेद 284 में राज्यों को कानून बनाने की वैवेकिक शक्ति का अधिलंघन करने की शक्ति संसद को दी गयी है। वर्तमान अनुच्छेद के खंड (2) में संसद द्वारा विधि बनाये जाने के उपबन्ध से और पहले के अनुच्छेद 287 के परन्तुक के हटाये जाने से यह पता चलता है कि राज्यों के मामले में यथासम्भव अधिक से अधिक हस्तक्षेप

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

करने की एक सुनियोजित नीति का अनुसरण किया जा रहा है। प्रत्येक चरण पर हस्तक्षेप किये जाने का प्रभाव यह होगा कि प्रान्त शक्तिहीन रह जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ प्रान्तों में बड़े पैमाने पर जो अक्षमता, भ्रष्टाचार और असन्तोष व्याप्त है, उसमें कोई कमी नहीं आयेगी बल्कि मैं कहूंगा कि इनमें वृद्धि ही होगी। संसद को यह शक्ति देने का अर्थ होगा प्रान्तों को कोई शक्ति दिये बिना उन पर जिम्मेदारी डालना। प्रान्तों में अच्छे प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तों पर होगा, परन्तु वित्तीय, विधिक, विधायी तथा अन्य शक्तियां केन्द्र को दी जा रही हैं। वित्तीय शक्तियों के संबंध में जो स्थिति है वह हम जानते ही हैं। इन सब बातों का प्रभाव यह होगा कि प्रान्तों में असन्तोष उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायेगा और गैर-जिम्मेदारी की भावना को बल मिलेगा और अकार्यकुशलता बढ़ेगी। मैं इस विषय पर अब इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता सिवाय इसके कि मैं यह व्यवस्था किये जाने के विरुद्ध विनम्र भाव से अपना रोष व्यक्त करता हूं।

जहां तक मेरे संशोधन संख्या 65 का सम्बन्ध है, उसमें कहा गया है कि प्रस्तावित अनुच्छेद 284 के खंड (2क) में "विधि" शब्द के स्थान पर "करार" शब्द रखा जाये। यह मेरे पहले संशोधन का ही परिणाम है। मैं पहले रखे गये अनुच्छेद की मूल व्यवस्था से सहमत हूं कि समूचे मामले का समाधान करार के माध्यम से होना चाहिये, संसदीय विधि द्वारा नहीं, चाहे समाधान प्रान्तीय विधि बनाकर हो। इसलिये खंड (2क) में "विधि" शब्द जिसका स्पष्ट तात्पर्य संसदीय विधि से है, के स्थान पर "करार" शब्द रखा जाना चाहिये। यह मेरे पहले संशोधन के परिणामस्वरूप है और मूल अनुच्छेद में की गयी व्यवस्था के अनुरूप है।

अब मैं अपने संशोधन संख्या 66 पर आता हूं। इसमें सिद्धांत संबंधी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न और प्रारुपण संबंधी कुछ गम्भीर प्रश्न उठाये गये हैं। इस संशोधन में कहा गया है कि प्रस्तावित अनुच्छेद 284 के खंड (3) से "अथवा शासक" शब्द निकाल दिये जायें। ये दो शब्द "अथवा शासक" प्रस्तावित नये अनुच्छेद 284 में सम्मिलित किये गये हैं। यह कहा गया है कि यदि किसी राज्य का राज्यपाल अथवा शासक संघ लोक सेवा आयोग से ऐसा करने का अनुरोध करता है तो वह उस राज्य की सभी या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा। महोदय, मेरा निवेदन यह है कि महत्वहीन दिखाई देने वाले ये दो शब्द "अथवा शासक" समूची स्थिति को ही बदल देंगे। इन दो शब्दों के जोड़े जाने से देशी राज्य भी इसकी परिधि में आ आयेंगे, अथवा यह कहिये कि यह इसी दिशा में किया जा रहा प्रयास है। परन्तु मेरे विचार से इससे भ्रम ही पैदा होगा और अनावश्यक पेचीदगियां पैदा होंगी। यह अनुच्छेद प्रारूप संविधान के भाग 12 में है। अनुच्छेद 281 में "राज्य" की परिभाषा दी गयी है। और कहा गया है कि इस भाग में जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" शब्द का अर्थ फिलहाल एक ऐसा राज्य है जिसका उल्लेख प्रथम अनुसूची के भाग-1 में किया गया है, जिसका अर्थ है प्रान्त। मेरा निवेदन यह है कि भाग 12 पर ध्यानपूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जायेगा कि इस भाग में केवल प्रान्तों के प्रयोजन के लिए ही व्यवस्था की गयी है। इस भाग में शासक शब्द सम्मिलित किये जाने का विचार अनुच्छेद के सन्दर्भ से बिल्कुल मेल नहीं खाता। मेरा निवेदन यह है कि यदि हम "अथवा शासक" शब्दों को इसमें जोड़ते हैं तो इससे भ्रम पैदा होगा। "राज्य" शब्द का अर्थ प्रान्त ही है न कि देशी राज्य। व्यावृत्ति खंड

"....... जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो" जोड़ने से भी स्थिति में सुधार नहीं होगा। ये तो सावधानी के साधारण शब्द हैं। वे अनुच्छेद में निहित भाव को अभिव्यक्त नहीं करते। यदि हमने "शासक" शब्द का प्रयोग करना भी है तो अनुच्छेद की पूरी रचना को परिवर्तित करना होगा। इममें की गयी व्यवस्था में नयी-नयी बातें जोड़कर प्रतिदिन सुधार करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यदि हम देशी राज्य की संकल्पना इसमें जोड़ते तो इस बात का पता लगाना अत्यन्त कठिन हो जायेगा कि क्या इस भाग में अन्य स्थानों पर आये "राज्य" शब्द का प्रयोग देशी राज्यों की संकल्पना को ध्यान में रखकर किया गया है। बड़े-बड़े प्रशिक्षित वकीलों तथा अनुभवी न्यायाधीशों के लिए भी यह कहना कठिन होगा कि क्या प्रत्येक मामले में "राज्य" शब्द में अनुसूची में भाग-3 में उल्लिखित राज्य का का भाव भी निहित है। "अथवा शासक" शब्द केवल कुछ ही अनुच्छेदों में यत्र-तत्र रखे गये हैं। प्रश्न यह है कि क्या समूचे भाग 12 में "राज्य" शब्द में देशी राज्यों का भाव भी निहित है? इस कठिनाई का समाधान इस प्रकार नहीं हो सकता, और जैसा कि मैंने पहले कहा है, इससे और भी अधिक भ्रान्ति पैदा होगी। यदि देशी राज्यों को इस व्यवस्था में सम्मिलित करना है तो इस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये समूचे अध्याय का प्रारूप फिर से तैयार करना होगा। यह काम केवल कुछ अनुच्छेदों में "अथवा शासक" शब्दों को यत्र-तत्र अन्तर्विष्ट कर देने से नहीं हो सकता।

तकनीकी कठिनाई और भ्रांति पैदा होने के खतरे के अतिरिक्त इस व्यवस्था में देशी राज्यों को सम्मिलित करने पर एक अन्य आपत्ति भी है। मैं समझता हूं कि देशी राज्य स्वयं अपने संविधान की रचना करने जा रहे हैं और यह पहले से ज्ञात है कि वे संविधान सभा को उनके लिये संविधान का प्रारूप तैयार करते हुए प्रेरित करने का प्रयास कर रहे हैं। यदि ऐसा है तो इसी सभा द्वारा पर्याप्त विधान के माध्यम से राज्यों के समूचे विषय पर पूर्ण रूप से विचार किये जाने की संभावना है। अत: यदि देशी राज्यों को इस व्यवस्था में सम्मिलित करना आवश्यक है तो उसकी व्यवस्था उनके ही प्रारूप संविधान में करना उचित होगा; यत्र-तत्र, अधमने ढंग से और जल्दबाजी में यहां वहां शब्दों को जोड़ने से बात नहीं बन सकती। इस प्रयास मात्र से ही विचार में कुछ परिवर्तन व भ्रान्ति का आभास मिलता है। शब्दों को यहां-तहां जोड़ दिया गया है जिससे निश्चय ही बहुत कठिनाई पैदा होगी। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि हमें या तो राज्यों के विषय को छेड़ना नहीं चाहिये या सभी उपबन्धों का प्रारूप फिर से तैयार करना चाहिये। हमें इस विषय को राज्यों पर अथवा उनकी ओर से कार्य करने वाली संविधान सभा पर, जब वह इन राज्यों के लिये संविधान बनायेगी, छोड़ देना चाहिये। इन परिस्थितियों में "अथवा शासक" शब्दों को निकाल देना बेहतर होगा जिससे स्थिति स्पष्ट हो जायेगी और संविधान सभा गुण-दोषों के आधार पर इस विषय से निपट सकेगी। तथापि, मेरा यह आशय नहीं है कि शासकों को अधिशासित करने के लिये कोई कानून नहीं होना चाहिये अथवा किसी देशी राज्य और किसी प्रान्त के बीच संयुक्त लोक सेवा आयोग नियुक्त करने के लिये कोई व्यवस्था नहीं होनी चाहिये। परन्तु मेरा विचार यह है कि स्थिति में सुधार करने हेतु "अथवा शासक" शब्दों को जोड़कर दिये जाने वाले अधमने प्रयास से अनुच्छेदों की व्यवस्था बिगड़ ही जायेगी और उसमें और अनेक मामलों में पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। यदि देशी राज्यों के संविधान पर विचार करते समय यह आवश्यक समझा जाये कि इस प्रकार का अनुच्छेद अत्यावश्यक है तो उपयुक्त अवसर पर संविधान सभा उसे जोड़ सकती

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है जबकि देशी राज्यों के संविधान का समूचा चित्र हमारे सामने होगा। मेरे विचार में इन शब्दों को इस समय निकाल देना चाहिये और इस प्रश्न के बारे में कोई पूर्वधारणा नहीं बनायी जानी चाहिये कि देशी राज्य भी इस मामले से सम्बन्धित हैं। मैं समझता हूं कि इन खंडों में निरन्तर किये जाने वाले परिवर्तनों से इस सभा में आये दिन भारी कठिनाई पैदा होती है। केवल मैं ही इस कठिनाई को अनुभव नहीं कर रहा हूं वरन् ऐसे बहुत से माननीय सदस्य हैं, जो गम्भीर प्रवृत्ति से कार्य करते हैं, जो इन संशोधनों अथवा परिवर्तनों या उनके आशयों को समझ नहीं पाते।

मेरा निवेदन यह है कि इस सभा के प्रति वर्ममान ढंग की अपेक्षा और अधिक सम्मान दिखाया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** आज प्रात: लगभग 9.15 पर मुझे दो संशोधनों की सूचना मिली है। मैं कह नहीं सकता कि वे मान्य हैं या नहीं। निश्चय ही वे निर्धारित समय के बाद प्राप्त हुये हैं। परन्तु वे चूंकि कुछ खंडों का—डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के खंड (2) व खंड (2क) का—लोप चाहते हैं, अत: वे वास्तव में संशोधन नहीं कहे जा सकते। यदि माननीय सदस्य चाहें तो मैं उन दो अनुच्छेदों को अलग से मतदान के लिये रख सकता हूं और यदि वे चाहें तो उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध मत दे सकते हैं। क्या कोई माननीय सदस्य मुद्रित संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं?

***श्री जी.एस. गुहा** (त्रिपुरा, मणिपुर और खासी राज्य): मेरा एक संशोधन संख्या 3052 था।

***अध्यक्ष:** क्या आप उसे प्रस्तुत करना चाहते हैं?

***श्री बृजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): मैं अनुच्छेद 284 का आम तौर पर समर्थन करता हूं। इसके साथ ही मैं सभा का ध्यान कुछ ऐसी बातों की ओर आकर्षित करना चाहूंगा जिनसे मैं सहमत नहीं हूं।

खंड (1) में कहा गया है कि एक लोक सेवा आयोग के लिये होगा और एक लोक सेवा आयोग प्रत्येक राज्य के लिए होगा। मैं इस खंड के दूसरे भाग में सहमत नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि देश में प्रशासनिक एकरूपता हो। मैं प्राचीन सिविल सेवा बनाने के पक्ष में नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि सेवाओं के सभी अधिकारी भारत सरकार के कर्मचारी हों, केवल भारत सरकार के ही ताकि प्रान्तीय स्वायत्ता की बात बहुत हद तक सीमित रहे। महोदय, हमारा यह अनुभव रहा है कि प्रान्तीय लोक सेवा आयोग के सदस्य प्रान्तीय सरकारों में भ्रष्टाचार, अकुशलता और भाई-भतीजावाद रोकने में असमर्थ रहे हैं। इसलिये मैं खंड (1) के दूसरे भाग का जोरदार विरोध करता हूं, जिसमें प्रत्येक राज्य के लिये लोक सेवा आयोग गठित करने की व्यवस्था की गयी है मैं राज्य आयोगों के विरुद्ध हूं।

खंड (2) में संयुक्त आयोग गठित करने के लिये अपनाई जाने वाली प्रक्रिया

से भी मैं सहमत नहीं हूं। मुझे इस बात का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता कि प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा संकल्प पारित किया जाना क्यों आवश्यक हो और संसद से कानून बनाने के लिये या संयुक्त आयोग गठित करने के लिये कहने की क्या आवश्यकता है? खंड (2) में निर्धारित प्रक्रिया खंड (3) में निर्धारित प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न है। यदि एक ऐसा लोक सेवा आयोग स्थापित करने के लिये जो सभी राज्यों के लिये काम करेगा। प्रान्तीय विधानमंडलों का अनुमोदन मांगा जाना आवश्यक नहीं समझा गया है, यदि राज्य आयोगों के परिसमापन के लिए संसद का अनुमोदन मांगा जाना आवश्यक नहीं समझा गया है, तो मुझे इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि संयुक्त आयोग स्थापित करने के लिए भिन्न प्रक्रिया अपनाये जाने की क्या आवश्यकता है। संयुक्त आयोग स्थापित करने का मामला इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि समूचे देश के लिये एक लोक सेवा आयोग स्थापित करने का है। यदि कोई राज्यपाल और राष्ट्रपति अथवा यदि सभी राज्यपाल और राष्ट्रपति संयुक्त रूप से कार्यवाही करके सभी राज्य आयोगों का परिसमापन कर सकते हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि संयुक्त आयोग स्थापित करने के मामले में प्रान्तीय विधानमंडलों और संसद को हस्तक्षेप करने के लिये कहने की क्या आवश्यकता है। यदि आप प्रान्तीय विधानमंडल से अपनी राय व्यक्त करने के लिये कहेंगे तो वे इसमें संकोच करेंगे क्योंकि वे सोचेंगे कि संयुक्त आयोग स्थापित किये जाने से उनकी कुछ शक्तियां छीन ली जायेंगी। हर कोई शक्ति को अपने हाथ में रखना चाहता है। कोई भी किसी दूसरे को शक्ति का अंतरण पसन्द नहीं करता।

जहां तक खंड (3) का सम्बन्ध है, यदि शक्ति राज्यपाल में उसके विवेकाधीन और शासक में उसके विवेकाधीन निहित की जाती तो बहुत अच्छा होता, क्योंकि प्रान्तीय मंत्री राज्य आयोगों के परिसमापन पर कभी सहमत नहीं होंगे। परन्तु यदि इस मामले को राज्यपाल पर उसके विवेकाधीन और शासक पर उसके विवेकाधीन छोड़ दिया जाये तो वे संभवत: समय की आवश्यकताओं के अनुरूप परिस्थितियों पर व्यापक रूप से विचार करेंगे और देश में संयुक्त लोक सेवा आयोग स्थापित करना उचित समझेंगे।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): आज हम लोक सेवा आयोग से सम्बन्धित अनुच्छेदों का अनुमोदन करने के लिये चर्चा कर रहे हैं। महोदय, इन आयोगों की स्थापना एक आधुनिक राज्य के लिये आवश्यक समझी जाती है। इन आयोगों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह है कि नियुक्तियों को दिन प्रतिदिन की राजनीति, दलगत वरीयताओं और प्रभावों से दूर रखा जाये और इस प्रकार के आयोग स्थापित करके इस बात का प्रयास किया जाता है कि नियुक्तियां यथासंभव योग्यता के आधार पर हों और राज्यों के कार्यकारी अधिकारियों द्वारा उनके चयन के मामले में कोई हस्तक्षेप न किया जाये। महोदय, मैं कुछ मिलाकर कह सकता हूं कि भारत में आयोगों का कार्य अधिक खराब नहीं रहा है, परन्तु ऐसे तरीके हैं जिनको अपनाकर प्राय: अपनी इच्छानुसार सिफारिशें प्राप्त कर ली जाती हैं अथवा उनको निष्फल बना दिया जाता है। जहां तक हमारे लोक सेवा आयोगों के कार्यकरण का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में शिकायतें मिलती रहती हैं। ऐसा नहीं है कि उनके द्वारा पक्षपात किया गया हो अथवा इस प्रकार का कोई अन्य आरोप उनके विरुद्ध लगाया गया हो, परन्तु प्रक्रिया में ही इस प्रकार से जोड़-तोड़ किया जाता है अथवा कोई संक्षिप्त तरीका निकाल लिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप पहले से की गयी नियुक्तियों के सम्बन्ध में लोक सेवा आयोगों का लगभग स्वत: अनुमोदन प्राप्त

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

हो जाता है। यह एक शिकायत है और इसका कारण अपनाये जाने वाला तरीका है। प्राय: मंत्री और विभागाध्यक्ष अस्थायी रिक्त स्थानों पर नियुक्तियां कर देते हैं और चूंकि एक नियम यह है कि जिस विभाग में स्थान रिक्त होता है उसका विभागाध्यक्ष भी एक सदस्य के रूप में आयोग में बैठता है और चूंकि उस पद पर पहले से नियुक्त उम्मीदवार की अर्हताओं अथवा क्षमता के सम्बन्ध में किसी अन्य सदस्य को कोई जानकारी नहीं होती अत: विभागाध्यक्ष की राय को अधिक महत्व दिया जाना स्वाभाविक ही होता है और आयोग के सदस्य नियम के अनुसार उसको महत्व देते हैं। अधिकांश मामलों में उसी की सिफारिश को स्वत: स्वीकार कर लिया जाता है। यह बुराई इतनी अधिक बढ़ गयी है कि कुछ लोगों का यह विचार बन गया है कि यद्यपि लोक सेवा आयोगों के उपबन्धों का पालन किया जाता है, परन्तु व्यक्तियों के लिये रिक्त स्थान बनाये जाते हैं, रिक्त स्थानों के लिये व्यक्ति तलाश नहीं किये जाते।

फिर भी, मैं एक भिन्न विचार करना चाहता हूं। आयोगों की इस पूरी व्यवस्था में और हमारे इस प्रयास में कि हम अत्यन्त न्यायसंगत व निष्फल रहे हैं और केवल योग्यता को ही महत्व दें, मैं कहना चाहूंगा कि भारत के ग्रामीण समाज को भारी हानि उठानी पड़ी है, इनको कहीं कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। उन्नत वर्ग ही आगे बढ़ रहा है और अपने निजी हित की रक्षा कर रहा है और इन समुदायों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ थोड़े लोग हैं जो अपने आपको संगठित कर लेते हैं, प्रचार तथा अन्य तरीकों से सरकार का कार्य करना असम्भव बना देते हैं क्योंकि वे अपनी मांगों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं और सरकार से मनवा सकते हैं, परन्तु जहां तक बड़ी संख्या में लोगों का, लाखों और करोड़ों की जनसंख्या का सम्बन्ध है जिनमें शिक्षा की प्रतिशतता बहुत ही कम है और कुछ मामलों में तो अनुसूचित जातियों से भी कम है, वे पिछड़ गये हैं। इस तथ्य के बावजूद कि स्वतन्त्र भारत की सरकार सत्ता में है, इन समुदायों को सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व देने के लिये किसी प्रकार का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। यदि हमने समय रहते इस पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो मुझे विश्वास है कि यह भारत में क्रान्ति का एक प्रमुख कारण बनेगा। यह सुस्पष्ट तथ्य है जो प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर दिखाई देता है देर-सवेर भारत में क्रान्ति अवश्य होगी। यह खूनी क्रान्ति होगी या नहीं, यह बात हमारे वर्तमान शासन पर निर्भर करती है। यदि हमने ग्रामीण समुदायों के उत्पीड़न और उनके शोषण का अन्त करने के सम्बन्ध में अवहेलना की, यदि हम उनकी मांगों पर ध्यान देने के लिये तैयार नहीं हुये और जब भी कभी वे अपनी मांगों के समर्थन में आन्दोलन करें तब उसको दबाने के लिये यदि सरकार ने लोक सुरक्षा अधिनियमों और बन्दूक की गोली का उत्तरोत्तर अधिक सहारा लिया तो खूनी क्रांति को रोका नहीं जा सकता। हमें उनकी मांगों पर समय रहते ध्यान देना होगा, चूंकि ये शिक्षा से वंचित हैं, उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है और फिर भी उनका मुकाबला उन लोगों से कराया जाता है, जिनके पास ही उच्च विद्यालय और महाविद्यालय हैं तथा जिन्हें हर प्रकार की सुख-सुविधायें उपलब्ध हैं। आयोग सम्बन्धी इन उपबन्धों को पास करते हुये, सभा इस तथ्य पर भी कुछ ध्यान दे और देश के लिये इतने अधिक कठोर खंड न बनाये जिनमें प्रान्तीय सरकारों अथवा विधानमंडलों या भावी संसद को भी कोई आमूल परन्तु वांछनीय परिवर्तन करने में बहुत अधिक कठिनाई हो तो मैं उसके लिये सभा का आभारी रहूंगा। एक उपबन्ध

के अनुसार, आयोग का सदस्य छः वर्ष के लिये अपने पद पर बना रहेगा। इन व्यक्तियों का चयन वे व्यक्ति करेंगे जो अब पदारूढ़ हैं और उनके उत्तराधिकारी लम्बे समय तक इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं कर सकेंगे। जहां तक इस पहलू का संबंध है, मैं यहां तक कह सकता हूं कि इन बड़े समुदायों, जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहते है, जिनके उच्चतर शिक्षा प्राप्त होने के अवसर बहुत कम हैं, वे दावों के प्रति सरकार द्वारा निष्पक्ष और न्याय संगत रवैया अपनाये जाने के बारे में जनता को विश्वास नहीं है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इन उपबन्धों को बनाते समय हमें भावी सांसदों के हाथ नहीं बांधने चाहिये। जब वयस्क मताधिकार का प्रयोग किया जायेगा तब नियुक्तियों की पूर्ण व्यवस्था एकदम भिन्न होगी। आज लाखों लोगों के दावे नहीं माने जाते, परन्तु इसके बाद उनको रोक पाना शायद संभव नहीं होगा। आज आप उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आप सोचते हैं कि केवल प्रथम श्रेणी में बी.ए. पास, आनर्स पास अथवा एम.ए. पास व्यक्ति ही सक्षम व्यक्ति हैं, जिनकी नियुक्ति के बारे में विचार किया जाना चाहिये। योग्यता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को अवसर देते हुए आपको ऐसे लोगों के दावों पर भी विचार करना होगा जो पिछड़ गये हैं परन्तु इसमें उनका अपना कोई दोष नहीं था और आगे बढ़ने के लिये उनको अवसर उपलब्ध ही नहीं थे। यह एक महत्वपूर्ण मामला है। लोग सोचेंगे कि ये भौतिक लाभ की बातें हैं। परन्तु मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। यह बात भौतिक लाभ के लिये नहीं है, यह बात देश के प्रशासन की है, अंग्रेजों के अधीन नहीं बल्कि अपने ही लोगों के अधीन। इसमें संकोच की क्या बात है यदि प्रशासन की बागडोर आपके अपने ही लोगों में से "ए" या "बी" के स्थान पर "एक्स" या "वाई" के हाथ में हो जो इस देश का नागरिक है, जिसे कुछ बाधाओं के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जबकि अन्य समुदायों को उन कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा? यदि आप इस बात की ओर ध्यान देने के लिये तैयार नहीं हैं तो मेरे विचार में आपको शीघ्र ही पछताना पड़ेगा।

मेरा निवेदन यह है कि जहां तक आयोग से सम्बन्धित उपबन्धों की बात है, वे अधिक कठोर नहीं होने चाहिये। यदि भावी संसद चाहे, यदि वह समझे कि वे उपबन्ध न्यायोचित नहीं हैं और भारत के विभिन्न समुदायों व जनता की मांगों को पूरा नहीं कर सकते, उनकी आकांक्षाओं पर पूरे नहीं उतरने, तो वह सम्बन्धित उपबन्धों को हटा सकने में सक्षम होनी चाहिये। मैं अपने माननीय मित्र से अपेक्षा करता हूं कि वह इन उपबन्धों को पास कराते समय इस पक्ष की ओर भी ध्यान देंगे और प्रान्तीय विधानमंडलों के हाथ नहीं बांधेंगे। मैं तो प्रान्तीय विधानमंडल समाप्त किये जाने के पक्ष में हूं परन्तु जब तक वे अस्तित्व में हैं, आपको उन पर कोई ऐसी रोक नहीं लगानी चाहिए कि ये संविधान के चीथड़े कर डालें। इसीलिए यह मामला भावी जनता पर छोड़ देना चाहिये।

मेरे कुछ मित्र जब भावी संसद के स्वरूप के बारे में विचार करते हैं, तो उनके मन में शंकायें उठती हैं। मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद को पहले से ही घबराहट हो रही है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा संविधान दीर्घकाल तक अस्तित्व में रहे और उसमें कोई ठोस परिवर्तन न किये जायें तो भावी संसदों द्वारा इसमें संशोधन किये जाने के मार्ग में हम यथासंभव कम से कम बाधायें रखें। यदि आप इसको अधिक कठोर बना देंगे तो इसके खराब भागों के साथ-साथ अच्छे भाग भी समाप्त हो जायेंगे। चाहे आप अपने हितों की रक्षा करने के लिए राष्ट्रपति

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

को या शासन करने वाले वर्गों को असाधारण शक्तियां भी देने का प्रयत्न करें या दे दें तब भी आप वह नहीं कर पायेंगे, क्योंकि इन खंडों के कारण पूरे संविधान के चीथड़े पर दिये जायेंगे जहां तक लोक सेवा आयोगों के विषय का संबंध है, मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: अध्यक्ष महोदय, मैं नये अनुच्छेद का जो प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 284 का स्थान लेगा समर्थन करता हूं। परन्तु इसका समर्थन करने के साथ-साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किये गये उम्मीदवार को अस्वीकार करने की शक्ति सरकार को प्राप्त नहीं होनी चाहिये। इन दिनों देखा गया है कि सरकार कभी-कभी लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किये गये उम्मीदवार को अस्वीकार कर देती है। मैं चाहता हूं कि इस उपबन्ध को इतना कठोर बनाया जाये कि सरकार के पास आयोग के निर्णयों व उसके द्वारा चयन किये गये उम्मीदवार को अस्वीकार करने की शक्ति न रहे।

मैं दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि लोक सेवा आयोग के सदस्य, जब तक कि वे अपनी सेवावधि के बारे में निश्चिन्त नहीं हो जाते, सदा सरकार का मुंह ताकते रहेंगे। इसलिये मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि उनकी सेवावधि जो इस समय 6 वर्ष रखी गयी है, बढ़ा दी जानी चाहिये। उनकी सेवावधि के बारे में सुनिश्चितता होनी चाहिये ताकि वे स्वतन्त्र रहें और उचित तरीके से चयन पर सकें। यदि लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवावधि के बारे में सुनिश्चितता नहीं होगी तो वे सदा सरकार की आज्ञा का पालन करेंगे। इसलिये मैं कहना चाहता हूं कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवावधि बढ़ा दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त मैं यह भी चाहता हूं कि अधीनस्थ सेवाओं के लिये भी लोक सेवा आयोग ही चयन करे। यदि अधीनस्थ सेवाओं के लिए चयन लोक सेवा आयोग के माध्यम से किया जाता है तो किसी को भाई-भतीजावाद बरते जाने की कोई शिकायत नहीं होगी। परन्तु यदि अधीनस्थ सेवाओं के लिए की जाने वाली नियुक्तियों को लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा जाता है तो किसी न किसी मन्त्री के विरुद्ध हमेशा यह शिकायत होती रहेगी कि उनके द्वारा की गयी नियुक्तियों में भाई-भतीजावाद बरता गया है। इस प्रकार की आलोचनाओं से बचने के लिये मैं चाहता हूं कि अधीनस्थ सेवाओं के लिये भी लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किया जाये।

मैं डॉ. देशमुख द्वारा अभी-अभी, व्यक्त इस विचार से सहमत नहीं हूं कि लोक सेवा आयोग सम्बन्धी उपबन्धों को इतना कठोर नहीं बनाया जाना चाहिये कि भविष्य में उनमें कोई परिवर्तन ही न किया जा सके। बल्कि मैं तो यह चाहता हूं कि अभी से जबकि हम संविधान सभा के सदन की बैठकों में भाग ले रहे हैं, हमें लोक सेवा आयोग का गठन इस प्रकार करना चाहिये कि भविष्य में भी वह सुचारू रूप से कार्य करता रहे। प्रस्तुत अनुच्छेद में यह व्यवस्था है कि आयोग के सदस्यों को हटाया जा सकेगा। परन्तु जांच करने के बाद ही ऐसा किया जा सकेगा और इसलिये किसी के मन में इस बारे में कोई आशंका नहीं रहनी चाहिये।

इस अनुच्छेद में उल्लिखित "शासक" शब्द के बारे में मैं कुछ कहना चाहूंगा। हैदराबाद का मामला अभी तक अनिर्णित पड़ा है। इस बारे में विचार किया जाना

चाहिये कि उस राज्य का भावी स्वरूप क्या होगा। कुछ शासकों को राजप्रमुख मनोनीत कर दिया गया है, परन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूं। भविष्य में जब राज्यों में पूर्ण लोकतन्त्र स्थापित हो जायेगा, तब क्या मनोनीत राजप्रमुख अपने पदों पर रह पायेंगे या अन्य लोग उनके स्थान पर आ जायेंगे, यह एक विचारणीय बात है। हमें इस मामले पर विचार करना चाहिये। जब राज्यों में वास्तव में लोकतन्त्र स्थापित हो जायेगा तब राजप्रमुखों के पदों पर, जिन पर इस समय भूतपूर्व शासक बैठे हैं जनता द्वारा चुने गये व्यक्ति आसीन होंगे। इसलिए मैं चाहूंगा कि प्रारूप समिति इस विषय पर विचार करे और यदि संभव हो तो मैंने जो कहा है उसे ध्यान में रखते हुए अनुच्छेदों में कुछ परिवर्तन करे।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): अध्यक्ष महोदय, यह तो स्पष्ट है एक आदर्श तरीके से केवल योग्यता के आधार पर भर्ती किये जाने की बहुत दुहाई दी जा रही है और पक्षपात अथवा भाई-भतीजावाद से बचने का एकमात्र उपाय स्वतन्त्र और निष्पक्ष आयोग का गठन ही है। परन्तु तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत एक विशाल देश है और शिक्षा की दृष्टि से इसके सभी प्रदेशों का समान रूप से विकास नहीं हुआ है। फिर इस राष्ट्र में कुछ ऐसे वर्ग हैं जो अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक पिछड़े हुए हैं। इसमें उनका कोई दोष नहीं है कि जहां तक इस बारे में विकास का संबंध है उनको समान अवसर नहीं मिले हैं।

मैं सभा का ध्यान विशेषकर, पंजाब की ओर दिलाना चाहता हूं। इस प्रान्त ने अन्य प्रान्तों की अपेक्षा 70 वर्ष बाद शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया। कलकत्ता में पहली निजी शिक्षण संस्था हिन्दू कॉलेज, 1817 में स्थापित हुई जबकि बम्बई में पहली शिक्षण संस्था 1827 में खुली थी। परन्तु जहां तक पंजाब का संबंध है हमारे यहां सबसे पहली निजी शिक्षण संस्था 1887 में खुली। यही स्थिति विश्वविद्यालयों के बारे में थी। इन परिस्थितियों में पंजाब स्वाभाविक रूप से इस दौड़ में पीछे रह गया और यदि प्रान्तीय पहलू पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो पंजाब के लोग अन्य प्रान्तों के लोगों से मुकाबला नहीं कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त मैं इस सभा का ध्यान एक अन्य असाधारण स्थिति अथवा विपत्ति की ओर दिलाना चाहता हूं। हाल ही में देश के विभाजन के कारण प्रगति अवरुद्ध हुई है। आर्थिक दृष्टि से पूर्वी पंजाब बहुत पिछड़ा हुआ है। वहां एक साधारण काश्तकार के पास एक एकड़ या उससे भी कम भूमि है। यह जोत लाभप्रद नहीं है और काश्तकार अपने बच्चों को उच्चतर शिक्षा दिलाने में असमर्थ हैं। संयुक्त पंजाब में लगभग 70 प्रतिशत छात्र पश्चिमी पंजाब से आते थे जो अब पाकिस्तान में शामिल हो चुका है। इस विभाजन के कारण वे स्कूल और कॉलेज हमारे हाथ से निकल गये हैं। माता-पिता और अभिभावक साधनहीन हो गये हैं और अब वे अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने में असमर्थ हैं। आपने देखा होगा कि स्कूल जाने वाली आयु के बच्चे बाज़ारों और गलियों में अपने सिरों पर भुने हुये चने अथवा सिगरेट रखकर बेच रहे हैं। उनकी शिक्षा रुक गयी है और अच्छी नियत होने के बावजूद उनके पुनर्वास के लिये कुछ नहीं किया गया है। युवक और वृद्ध सभी अपने जीवन यापन के लिये संघर्ष कर रहे हैं। इन बाधाओं के रहते हुये क्या यह संभव है कि ये पंजाबी छात्र उन प्रान्तों के जो अधिक उन्नत हैं और जहां शिक्षा की व्यवस्था बहुत पहले से है, उम्मीदवारों के साथ किसी खुली

[सरदार हुकम सिंह]

प्रतियोगिता में मुकाबला कर सकें? फिर इसका परिणाम क्या होगा? केन्द्रीय सचिवालय में पहले ही मेनन, स्वामी और आयंगर भरे पड़े हैं। और कुछ ही वर्षों में हम देखेंगे कि प्रान्तों में बड़ी संख्या में ऐसे महत्वाकांक्षी युवक आ जायेंगे जो स्थानीय रीति-रिवाओं से परिचित नहीं होंगे। स्थानीय समस्याओं को कोई नहीं समझेगा। स्थानीय युवक सेवाओं में जाने से वंचित रह जायेंगे और नये पूर्वाग्रह जन्म लेंगे जिससे पंजाब जैसे पिछड़े क्षेत्रों में प्रगति और विकास रुक जायेगा। देश के प्रत्येक अंग की प्रगति समान रूप से नहीं होगी।

मैं एक अन्य बात भी कहना चाहूंगा। विभाजन से पूर्व केन्द्र में पंजाब का प्रतिनिधित्व अधिकांशत: मुसलमानों का था। विभाजन हो जाने से वे लोग पाकिस्तान चले गये हैं। अब पंजाब का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम रह गया है और यदि समूचे देश के लिये खुली प्रतियोगिता होती है तो उस प्रतिनिधित्व में सुधार होने की कोई सम्भावना नहीं है। यदि प्रादेशिक भर्ती के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं किया गया तो शिक्षा व आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुये क्षेत्र शिक्षा की दृष्टि से देश के उन्नत क्षेत्रों के उपनिवेश बनकर रहे जायेंगे। इसलिये मैं सभा से अपील करता हूं कि वह इस मामले पर शान्त भाव से विचार करे और कम से कम पंजाब के मामले में विशेष उपबन्ध करे, क्योंकि इस शरणार्थी समस्या की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। मैं इस बात पर पुन: जोर देना चाहता हूं कि इन विस्थापित लोगों के लिए, जिन हालात में वे जीवनयापन कर रहे हैं, अपने बच्चों को उपयुक्त शिक्षा देना संभव है जो उनको प्रतियोगिता के लिए तैयार कर सके और जिसकी आप केवल योग्यता के आधार पर भर्ती के लिये अपेक्षा करते हैं। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि प्रादेशिक भर्ती के लिये कुछ रियायत अवश्य दी जानी चाहिये, जिससे पिछड़े क्षेत्रों को ऐसे समय तक विकास करने के अवसर मिल सकें जब तक कि उनके युवक अन्य प्रान्तों के युवकों के साथ मुकाबला करने के लिये तैयार नहीं हो जाते।

चौधरी रणबीर सिंह (पूर्वी पंजाब: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के समर्थन में डॉ. पंजाबराव देशमुख द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से मैं पूरी सहमत हूं। मैं खूब समझता हूं कि इन परिस्थितियों में खुली प्रतियोगिता का क्या अर्थ हो सकता है। शहर में पैदा हुआ बच्चा अपने बचपन से ही रेडियो सुनता है, उसको घर में दैनिक समाचार पत्र प्राप्त होता है और अनेक सुविधायें उपलब्ध होती हैं, स्कूल भी उसके निवास स्थान से कुछ गज की दूरी पर ही होता है। जब वह बच्चा तीन या चार वर्ष का होता है, वह स्कूल एवं बाजार में अनेक बातें सीख सकता है। जो गांव कोई आठवीं कक्षा पास लड़का भी नहीं सीख सकता। जब लोक सेवा आयोग द्वारा कोई प्रतियोगिता आयोजित की जाती है, तब एक ही प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं और निर्णय करने की कसौटी वही होती है कि क्या वह पूछे गये उन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है या नहीं; हमारा देश गांवों का देश है और ग्रामीण जनता अधिक है, परन्तु तथ्यों के आधार पर इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि शहर के लोगों का विकास अपेक्षाकृत तीव्र गति से हुआ है और वे ग्रामीण जनता की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नत हैं औन इन परिस्थितियों में यदि ग्रामीण क्षेत्र के किसी व्यक्ति का शहरी क्षेत्र के किसी व्यक्ति के साथ मुकाबला कराया जाता है और उनसे एक ही प्रकार के प्रश्न पूछे जाते

हैं तो इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ग्रामीण व्यक्ति शहरी व्यक्ति के साथ सफलतापूर्वक अथवा समानता के आधार पर मुकाबला नहीं कर सकेगा।

इस स्थिति के समाधान के दो तरीके हैं। एक तरीका यह है कि ग्रामवासी उम्मीदवारों के लिये सरकारी सेवाओं में कुछ अनुपात आरक्षित कर दिया जाये और सेवाओं में उन्हें आरक्षित संख्या के पद आबंटित किये जायें और उन पदों के लिये केवल ग्रामीण जनता के उम्मीदवारों को ही मुकाबला करने की अनुमति दी जाये।

दूसरा तरीका यह है कि लोक सेवा आयोग के सदस्य नियुक्त करते समय इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाये कि उनमें 60-70 प्रतिशत सदस्य ऐसे होने चाहियें जो ग्रामवासियों की कठिनाइयों को समझते हों और उनके साथ सहानुभूति रखें। मैं आपको एक सामान्य दृष्टान्त देना चाहता हूं। हमारी सेना में भर्ती के लिये एक नियम लागू किया गया है कि प्रारम्भिक प्रतियोगिता लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जायेगी। आप इस बात को समझ सकते हैं कि एक लड़का पढ़ाई में बहुत अच्छा हो सकता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह लड़ाई के दाव-पेंच में भी पारंगत हो, क्योंकि लड़ाई में केवल ऐसा व्यक्ति ही सफल हो सकता है किसका शरीर गठा हुआ हो और दिल मज़बूत हो। लोक सेवा आयोग के माध्यम से आप ऐसे लोगों का चयन कर सकते हैं जो अच्छी अंग्रेजी जानते हैं, परन्तु यदि ऐसे लोग सेना में भेजे जाते हैं तो इस बात को आप निश्चित समझें कि सेना को अपने कार्य में कभी सफलता नहीं मिलेगी। सेना का कार्य बिल्कुल भिन्न प्रकार का है। सेना के एक अधिकारी के सम्बन्ध में हमें यह देखना होता है कि उसमें बलिदान की भावना कितनी है, उसमें कितना साहस है और वह कितना शारीरिक कष्ट झेल सकता है। परन्तु यदि सेना के लिये भर्ती प्रारम्भिक प्रतियोगिता के आधार पर की गयी तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सेना के लिए भर्ती के क्षेत्र में भी ग्रामीण लोग पीछे रहे जायेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि पहले जिन लोगों को युद्धप्रिय जातियां कहा जाता था, वे ग्रामीण क्षेत्रों में ही होती थीं, वे लोग अब भी सेना में सिपाही के रूप में भर्ती होते हैं। परन्तु सैनिक अधिकारी अधिकांशत: शहरी लोग होते हैं। समय की मांग यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़े लोगों को आगे बढ़ने में मदद की जाये और इस समय उनकी जनसंख्या के आधार पर उन्हें सैनिक अधिकारी के रूप में उचित स्थान दिया जाये।

आजकल ऐसे बहुत से गांव हैं जहां प्राथमिक विद्यालय तक नहीं हैं। सर्वप्रथम तो एक ग्रामीण की खर्च करने की क्षमता इतनी कम होती है कि वह अपने बच्चों को शहर में माध्यमिक अथवा उच्चतर विद्यालयों में भेज ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त आप विचार कर सकते हैं कि कितने गांवों में प्राथमिक शिक्षा के लिये सुविधायें उपलब्ध करायी गयी हैं।

इन परिस्थितियों में यदि आप एक यन्त्र की तरह काम करना चाहते हैं तो मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि डॉ. देशमुख द्वारा व्यक्त की गयी शंकाएं सही प्रमाणित होंगी। यदि देश को अहिंसा के आधार पर प्रगति करनी है तो हमें परिस्थितियों के अनुरूप इस पहलू पर विचार करना होगा। जैसा कि हमने पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों के लिए कुछ स्थान आरक्षित किये हैं, हम संभवत: वही तरीका ग्रामीण जनता के संबंध में भी अपना सकते हैं। यह तरीका तो लोक सेवा आयोग के संबंध में या सरकारी सेवाओं के संबंध में अपनाया जा सकता है। यदि कुछ पद आरक्षित कर दिये जायें और उन पदों के लिये प्रतियोगिता में केवल ग्रामीण युवकों को ही अनुमति दी जाये तो बेहतर होगा।

[चौ. रणबीर सिंह]

एक बात और है। हममें से बहुत से लोग हैं जिनका जन्म शहरों में हुआ है और जिन्होंने शहरों में शिक्षा प्राप्त की है और जो अच्छी अंग्रेजी बोल सकते हैं। उन्हीं का लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगिता में चयन किया जाता है, परन्तु उनमें से अधिकांश को ग्रामीण जीवन की जानकारी नहीं होती और वे ग्रामीण जीवन में होने वाली कठिनाइयों को सहन नहीं कर सकते। वहां पर न तो सड़कें हैं और न शहरों में उपलब्ध होने वाली सुविधायें हैं। इसलिये वहां पर जाकर काम करना इतना आसान नहीं है। इसलिए वे अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों में जाने से जी चुराते हैं और सब काम अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर छोड़ देते हैं। इस प्रकार ग्रामीण लोगों को उचित न्याय नहीं मिल पाता। इसलिए मेरे विचार में लोक सेवा आयोग गठित करते समय डॉ. देशमुख द्वारा दिये गये सुझावों को ध्यान में रखा जाना चाहिये।

मैं श्री साहू की इस बात से सहमत नहीं हूं कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवावधि बढ़ा दी जानी चाहिये। राष्ट्रीय कांग्रेस के हमारे भूतपूर्व प्रधान आचार्य कृपलानी ने घोषणा की है कि सरकार सफल नहीं हुई है। इसका एक कारण यह है कि सरकार लोक सेवा आयोग के साथ सहयोग नहीं कर रही है और इसका एक मुख्य कारण यह है कि लोक सेवा आयोग का गठन पुरानी व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार किया गया था और पिछली सरकार ने उसके सदस्यों को अपने विचारों के अनुसार नियुक्त किया था।

इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार बदल जाने के साथ-साथ सेवाओं में भी बदलाव आये। सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार होना चाहिये जिससे, जब वह आवश्यक समझे, आयोग के किसी सदस्य को सेवा से हटा सके। इसलिये मैं डॉ. देशमुख के विचार का पूरी तरह से समर्थन करता हूं।

जहां तक भाई-भतीजावाद का संबंध है, यह तो भविष्य में भी चलता रहेगा, इसको रोकना इतना सरल नहीं है जितना कि आप सोचते हैं। लोक सेवा आयोग के सदस्यों के सामने कई बातें विचार किये जाने के लिये होती हैं। मेरे इस विचार में इस बुराई से हमें अधिक भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। भाई-भतीजावाद को तभी रोका जा सकता है जब उनका अन्तःकरण निर्मल व मजबूत हो जाये और उनके विचारों में परिवर्तन आ जाये। जब तक लोक सेवा आयोग के सदस्यों के वर्तमान विचारों और मन में परिवर्तन नहीं आता, आप लोक सेवा आयोग के सदस्यों की सेवावधि बढ़ाकर उसको रोक नहीं सकते।

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्यों को स्मरण कराना चाहूंगा कि इन अनुच्छेदों के संबंध में अब तक जो भाषण दिये गये हैं उनका स्वयं अनुच्छेदों के साथ कम संबंध है। वे सरकारी सेवाओं के स्वरूप, भर्ती के तरीके, किन लोगों को भर्ती किया जाना चाहिये आदि से अधिक सम्बन्धित रहे हैं। अब मैं अप्रासंगिक बातों के उल्लेख की अनुमति नहीं दूंगा। मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि वे विचाराधीन अनुच्छेदों पर अपने विचार व्यक्त करें।

***श्री बी.एन. मुनावल्लीः** (बम्बई राज्य): अध्यक्ष महोदय इस समय बहुत ही

महत्वपूर्ण विषय अर्थात् सिविल सेवाओं पर चर्चा कर रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन की सरकार वस्तुत: मंत्रिमंडल या अलग-अलग मंत्रियों द्वारा नहीं चलायी जाती बल्कि उसे सिविल सेवा के अधिकारी चलाते हैं। इसलिये सिविल सेवओं के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसलिये हमारे संविधान में लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गयी है। इन अनुच्छेदों के अनुसार उम्मीदवारों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जायेगी। अन्य देशों में भी आजकल वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि केवल योग्यता के आधार पर ही चयन की प्रणाली सफल सिद्ध हो सकती है। इससे पूर्व ग्रेट ब्रिटेन में संरक्षण प्रणाली का प्रयोग किया गया था। मन्त्रियों के संबंधियों, मित्रों और समर्थकों को सरकारी पद मिलते थे और अमेरिका में भी सफलता-प्राप्त दल के मित्रों व समर्थकों को सार्वजनिक पद प्रदान करने की पद्धति प्रचलित थी और कहा जाता है कि इस पद्धति के जन्मदाता एन्ड्रयू जैक्सन थे। यह पद्धति 1828 से जबएन्ड्रयू जैक्सन अमेरिका के राष्ट्रपति बने थे, लगभग 50 वर्ष तक चलती रही, परन्तु उसके बाद उन्होंने पाया कि इस पद्धति को जारी रखा जाना बहुत कठिन है। इसलिये उन्होंने तीन सदस्यों का एक आयोग नियुक्त किया जिसका कार्य रिक्त स्थानों को भरने के लिये परीक्षायें आयोजित करना था। ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका में प्रचलित परीक्षा प्रणालियों में पर्याप्त भिन्नता है। अमरीका में व्यवहारिक पक्ष को अधिक महत्व दिया जाता है, परन्तु ग्रेट ब्रिटेन में सामान्य शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता है अमरीका में विभिन्न विभागों में भिन्न-भिन्न पदों के अनुसार 1700 प्रकार की परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इंग्लैंड में एक कानून बनाकर वर्ष 1835 से योग्यता के आधार पर चयन करने की प्रणाली अस्तित्व में आयी थी। जापान में भी यह प्रणाली वर्ष 1888 में अस्तित्व में आयी थी।

अत: यदि हम विभिन्न देशों के संविधानों पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि परीक्षाओं के माध्यम से ही योग्यता के आधार पर सिविल सेवाएं बनायी जाती हैं। भारत में भी इसी प्रणाली को लागू करने का प्रस्ताव है और इसी विचार से अनुच्छेद 284 रखा गया है जिसमें संघ एवं राज्यों दोनों में लोक सेवा आयोग गठित किये जाने की व्यवस्था की गयी है। परन्तु भारत में परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न हैं। हमें अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। यदि हमने केवल योग्यता के आधार पर ही भर्ती की तो, जैसा कि हमारे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने ठीक ही कहा है, सरकारी सेवाओं में बहुसंख्यक समुदायों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं रह जायेगा; परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं जो शिकायतों को दूर करने में काफी हद तक सहायक होंगी। सरकारी सेवा में रिक्त स्थानों को भरने के लिये पहले तीन वर्ग होते थे, अर्थात उन्नत वर्ग, मध्यम वर्ग और पिछड़े वर्ग, ताकि पदों का उचित और समान वितरण हो सके। यदि प्रत्येक वर्ग के लिये पृथक परीक्षायें आयोजित की जायें और प्रत्येक वर्ग से योग्यता के आधार पर उम्मीदवारों का चयन किया जाये तो मेरे विचार में लोगों के मन में अधिक ईर्ष्या नहीं होगी। परन्तु, अब जब से कांग्रेस सत्ता में आयी है विभिन्न प्रान्तों में हम देखते हैं कि कुछ गिनती के समुदाय जो बहुत उन्नत हैं, सरकारी सेवा में अधिकांश पदों पर आसीन हो रहे हैं और इसलिये देश में व्यापक रूप से असन्तोष व्याप्त है, यहां तक कि यदि समय रहते इस स्थिति का समाधान करने के लिये कोई उपाय नहीं किये गये तो रक्तरंजित अथवा रक्तहीन क्रान्ति भड़क उठने की पूरी आशंका है।

इसलिये मेरे विचार में इसके बाद जो लोक सेवा आयोग नियुक्त किया जायेगा वह यह सुनिश्चित करने के लिये विभिन्न बातों का ध्यान रखेगा कि केवल उन्नत

[श्री बी.एन. मुनावल्ली]

वर्गों को ही उचित प्रतिनिधित्व न मिले, बल्कि मध्य और पिछड़े वर्गों को भी उनकी अपनी योग्यता और स्तर के अनुसार प्रतिनिधित्व मिले।

***श्री कुलधर चालिहा** (असम: जनरल): मैं यथासंभव संक्षेप में बोलूंगा; हमें अध्यक्ष के निदेशों का पालन करना चाहिये जो यह चाहते हैं कि हम अपनी बात संक्षेप में कहें। मैं इस समनुषंगी अनुच्छेद का सामान्य रूप से समर्थन करता हूं और मेरे विचार में वर्तमान परिस्थितियों में इसकी रचना सर्वोत्तम है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इसमें बहुत अच्छे-अच्छे व्यक्ति हैं जो न केवल जनता के अधिक उन्नत वर्ग के साथ न्याय करेंगे बल्कि पददलित और उत्पीड़ित वर्गों के साथ भी न्याय करेंगे; इस बारे में जो सन्देह व्यक्त किया गया है कि उनको भुला दिया जायेगा वह एक आरोप है और उसका खंडन किया जाना चाहिये। हमारा भी कुछ चरित्र है और उपयोग करने के लिये हमारे पास बुद्धि है। वास्तव में बात यह है कि हम इस प्रकार सभी लोगों पर सन्देह करते रहे हैं, जिसके कारण हम विश्वास करने लगे हैं कि हम ऐसे लोग हैं जो अन्य लोगों के साथ, अपने पड़ोसियों के साथ, अपने भाइयों के साथ न्याय नहीं करेंगे। इस प्रकार के आरोप का इसी सदन में खंडन दिया जाना चाहिये। मेरे विचार में अनेक अनुच्छेदों में से यह अनुच्छेद सर्वोत्तम है जो अनेक सुझावों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा है कि हमें दो आयोग—एक संघ व दूसरा राज्य के लिये–गठित नहीं करने चाहियें, बल्कि एक ही अखिल भारतीय आयोग रखना चाहिये। इस अनुच्छेद का उद्देश्य बहुत ही उत्तम है और सबसे पहले हमें यह सुनिश्चित करना चाहिये कि यह व्यवस्था उस उद्देश्य को पूरा करे। उन्होंने स्वयं ही आरोप लगाया है कि सभी प्रान्तीय आयोगों में भ्रष्टाचार आदि व्याप्त हैं और इस संबंध में इस सभा में और भी बहुत कुछ कहा गया है। इस प्रकार के निराधार आरोप लगाकर प्रान्तीय सरकारों को अविश्वसनीय बना दिया गया है और इसका परिणाम बहुत ही खराब हुआ है। मैं इस बात को मानकर चलता हूं कि हमें किसी प्रान्तीय मंत्रिमंडल अथवा प्रधान मंत्री के विरुद्ध इस सदन में आरोप नहीं लगाने चाहिये; यह बहुत ही खराब बात है और प्रान्तों में अन्य स्थानों पर और जनता में इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। मेरे विचार में बिना उचित जांच पड़ताल के ऐसे आरोप नहीं लगाये जाने चाहिये और आशा है कि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जैसे उत्तरदायी, संतुलित व ईमानदार व्यक्ति ऐसा नहीं करेंगे और मेरा विश्वास है कि वह अन्य व्यक्तियों में भी उतनी ही ईमानदारी देखेंगे जितनी कि वह स्वयं में समझते हैं।

महोदय, मैं महसूस करता हूं कि सरदार हुकुम सिंह को कुछ ऐसा सन्देह हुआ है कि देश के प्रशासन पर मेनन और आयंगर छाये हुये हैं। निस्संदेह बुद्धिमत्ता का लाभ तो होता ही है, परन्तु मैंने यह भी पाया है कि जब मैं सेना मुख्यालय में जाता हूं तो देखता हूं कि वहां पर रोबदार दाढ़ी वाले सिख अथवा स्पष्टवादी मोटे-ताजे पंजाबी बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। साहस और उपयुक्तता का सर्वदा महत्व होता है और क्योंकि वे इन सेवाओं के लिये उपयुक्त हैं, वे उन पदों पर टिके हुये हैं। इस सबके बावजूद मेरे विचार में अखिल भारतीय लोक सेवा आयोग प्रान्तों में रहने वाले सभी वर्गों के साथ न्याय करेगा।

महोदय, मैं इस अनुच्छेद में इस बात को पसन्द नहीं करता और इस संबंध में मैं श्री नज़ीरुद्दीन से पूर्णतया सहमत हूं कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधनों के अन्दर कोई ऐसी विचारधारा निहित प्रतीत होती है जिसका प्रयोजन प्रान्तों से अधिक से अधिक शक्ति लेकर संघ में शक्ति केन्द्रित करना है। प्रारूप संविधान में हमने ऐसा कोई विषय नहीं छोड़ा जिसके संबंध में कोई प्रान्त पहल कर सके। अब मैंने यह पाया है कि जो थोड़ा बहुत रह गया था इसे भी छीन लिया गया है। यदि दो या दो से अधिक राज्य एक संयुक्त लोक सेवा आयोग गठित करना चाहते हैं और यदि संसद द्वारा इस संबंध में संकल्प का अनुमोदन कर दिया जाता है और विधि बना दी जाती है तो यह सब कुछ परस्पर सहमत से ही किया जाना है, और अब उस शक्ति को भी छीन लिया गया है। हमने प्रान्तों के लिए पहल करने हेतु कुछ नहीं छोड़ा। यदि कुछ राज्य किसी विषय पर सहमत हो भी जाते हैं और मिलजुलकर संयुक्त रूप से कुछ करते हैं तो इस अधिकार को भी विधान में से निकाल लिया गया है। यह निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण है और हम किसी न किसी प्रकार से अपने प्रान्तों को कठपुतली मात्र बनाते जा रहे हैं। हमने ऐसी कोई बात नहीं छोड़ी जिसमें प्रान्त नेतृत्व कर सकें अथवा पहल कर सकें। डॉ. अम्बेडकर के संशोधनों से स्पष्ट झलकता है कि केन्द्र को अधिक से अधिक शक्ति दी जानी चाहिए। इसलिये मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का समर्थन करना चाहता हूं जिन्होंने दो संशोधन प्रस्तुत किये हैं और यदि उनको स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे प्रान्तों को अधिक शक्ति मिलेगी और उनके प्रान्त संयुक्त लोक सेवा आयोग बना सकेंगे और परस्पर सहमति से नियम बना सकेंगे। नये समनुषंगी अनुच्छेद में इन साधारण शक्तियों को भी छीन लिये जाने की व्यवस्था है।

मैं सामान्य रूप से महसूस करता हूं कि अनुच्छेद का प्रारूप अच्छी नियत से बनाया गया है और जैसा कि अध्यक्ष महोदय ने कहा है हमें अप्रासंगिक बातें नहीं कहनी चाहियें। अत: मैं इन शब्दों के साथ नये समनुषंगी अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य मत्स्य): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद पर सभा में आज दिये गये कुछ भाषणों से यह समझ पाया हूं कि जिस आधार और सिद्धान्तों पर लोग सेवा आयोग गठित किए जाने का प्रस्ताव है उन्हीं की आलोचना की गयी है। मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख व श्री रणबीर सिंह ने सुझाव दिया है कि सरकारी सेवाओं में भर्ती के मामले में शहरी लोगों और ग्रामीण लोगों के बीच वर्ग भेद अथवा अन्तर किया जाना चाहिये। यद्यपि मैं शहरी अथवा ग्रामीण लोगों की वकालत करने के लिये खड़ा नहीं हुआ हूं, परन्तु मैं भारत की जनता के बीच सभी प्रकार के भेद-भावों अथवा वर्ग-भेद का तीव्र विरोध करता हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैंने वर्ग-भेद का न तो कोई सुझाव दिया है और न मैं उसको मानता हूं; मैंने केवल यह कहा है कि उपबन्ध अधिक कठोर नहीं बनाये जाने चाहियें।

***श्री राजबहादुर:** यदि आपने ऐसा नहीं कहा है तो मुझे प्रसन्नता है। मेरे विचार में आपने ग्रामीण समुदायों को कुछ वरीयता देने का सुझाव दिया है, क्योंकि वे शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुये हैं और कहा है कि इसलिये योग्यता के आधार पर चयन के सिद्धान्त में उस हद तक संशोधन किया जाना चाहिये। हमारे संविधान में इस प्रकार का कोई विभेद या अन्तर किये जाने की अनुमति नहीं दी गई है।

[श्री राजबहादुर]

यह बात मूलभूत अधिकारों से सम्बन्धित कुछ अनुच्छेदों के भी विरुद्ध है जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं। हमें पता है कि अनुच्छेद 9 में इस बात का विशेष रूप से उल्लेख है कि "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा"। इसी प्रकार जहां तक नियोजन का संबंध है, अनुच्छेद 10 में, "जिसे हमने पहले ही स्वीकार कर लिया है, यह उपबन्ध है कि "राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी"। महोदय, मैं इसलिये इस बात पर बल देता हूं कि यदि हम उन आधारभूत बातों व सिद्धांतों, जिन पर लोक सेवा आयोग बनाये जाने हैं, की बारीकी से छानबीन करें तो हमें पता चलेगा कि इन आयोगों को गठित करने की आवश्यकता मुख्य रूप से तीन कारणों से अनुभव की गयी थी। पहला कारण यह था कि जब ये आयोग अस्तित्व में नहीं थे तब पक्षपात और भाई-भतीजावाद का बोलबाला था और व्यक्तिगत पसन्द या नापसंद और सनक तथा भावनाओं के आधार पर भर्ती की जाती थी; दूसरे योग्यता को मान्यता नहीं दी गयी थी, तथा सरकारी नौकरी के लिये चयन हेतु योग्यता के स्थान पर जन्म, वंश अथवा इसी प्रकार की अन्य बातों को मान्यता दी जाती थी और अन्त में यह कि नौकरी पाने के लिये पहुंच निर्बाध रूप से निकाली जाती थी। इन सभी दोषों को दूर करने के लिये, राज्य में सभी पदों के लिये सर्वोत्तम तथा अत्यंत पात्र व्यक्तियों की नियुक्ति सुनिश्चित करने के लिये हमने लोक सेवा आयोगों की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की और इस प्रकार वे अस्तित्व में आये। महोदय, मेरा विचार है कि राज्य के अन्तर्गत सभी नियुक्तियों के लिये चयन हेतु केवल योग्यता ही एकमात्र आधार होना चाहिये। यदि हम योग्यता के सिद्धान्त की बलि चढ़ा देते हैं और इसमें संशोधन करने का प्रयास करते हैं तो यह एक खतरनाक उदाहरण तथा बहुत ही खतरनाक सिद्धांत होगा। जहां तक इस देश में ग्रामीण जनसंख्या के पिछड़ेपन तथा उसकी अक्षमताओं का संबंध है, मैं अपने मित्र डॉ. देशमुख के विचारों से हार्दिक सहानुभूति रखता हूं तथा उनके दृष्टिकोण को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं यह बताना चाहता हूं कि माननीय सदस्य इस अनुच्छेद की सीमा से बाहर जा रहे हैं। हम किसी विशेष वर्ग अथवा ग्रुप के लिये नियुक्तियों पर चर्चा नहीं कर रहे हैं; हम केवल लोक सेवा आयोगों पर चर्चा कर रहे हैं।

***श्री राजबहादुर:** महोदय, मुझे आपका निर्णय स्वीकार है। मैं केवल यह कह रहा था कि इस अनुच्छेद पर चर्चा करते हुए लोक सेवा आयोगों के सृजन की आवश्यकता तथा आधार पर ही प्रहार कर दिया गया। मैं उस आधार की रक्षा करना चाहता हूं, मेरे विचार में अनुच्छेद 284 आवश्यक है। जिस प्रकार कि डॉ. देशमुख ने अपने विचार व्यक्त किये, उससे लगता है कि वह लोक सेवा आयोग के सृजन के विरोधी हैं। अत: मेरे द्वारा इस संबंध में कुछ टिप्पणियां किया जाना उचित ही है। जो कुछ भी मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि सेवाओं के लिये व्यक्तियों का चयन करने के लिये हमें योग्यता के सिद्धांत को अवश्य ही मान्यता देनी होगी और हमें लोक सेवा आयोगों के सृजन की आवश्यकता को भी मान्यता देनी चाहिये।

मैं इस बात को पूरी तरह स्वीकार करता हूं कि हाल ही के वर्षों के दौरान जिस प्रकार लोक सेवा आयोगों ने काम किया है, उसके संबंध में गंभीर शिकायतें

हैं। यह आम शिकायत है कि स्थान पहले ही भर लिये जाते हैं तथा चयन और साक्षात्कार केवल औपचारिक कार्यवाही है ताकि दिखावा बनाये रखा जाए। मैं नहीं जानता कि यह शिकायत कितनी सही है, परंतु शिकायत तो है ही। इस सीमा तक डॉ. देशमुख की टिप्पणियां सही हैं। मैं जिस बात का सुझाव देना चाहता हूं वह यह है कि वर्गों के भेद-भाव पर बल नहीं दिया जाना चाहिये। डॉ. देशमुख द्वारा व्यक्ति किये गये विचारों पर यह मेरी मुख्य आपत्ति है और सदन के कीमती समय से जो मैंने कुछ मिनट लिये हैं उसका यही औचित्य है।

मैं अपने उन माननीय मित्रों को जिन्होंने कि लोक सेवाओं में ग्रामीण लोगों की अल्प प्रतिशतता के बार में अपनी वाकपटुता का प्रयोग किया है, याद दिलाना चाहता हूं कि सेवाओं में ग्रामीण लोगों की इस अल्प-प्रतिशतता तथा शहरी लोगों के बाहुल्य का कारण कुछ मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां तथा कुछ परंपरायें भी हैं हमारे देश में एक कहावत बनी रही है:

उत्तम खेती, मध्यम बान,
निखद्द चाकरी, भीख निधान।

हम अपनी जीविकाओं के चयन में सदैव ही ये सिद्धांत या दृष्टिकोण अपनाते रहे हैं और यही उन कारणों में एक है जिसकी वजह से सेवाओं में ग्रामीण लोग अधिक नहीं होते। सरकार के अधीन सेवाओं तथा नौकरियों की जो शान इस समय बनी है उसकी शुरूआत केवल हाल ही में हुई है। यही कारण है कि हमारे राष्ट्रपिता ने सदैव ही इस स्वस्थ सिद्धांत के अपनाये जाने की आवश्यकता तथा वांछनीयता पर बदल दिया कि "गांवों को लौट चलो"। वास्तव में वह सदैव इस बात के पक्षधर रहे कि सरकारी नौकरी के प्रति जो मोह उत्पन्न हो चुका है, उसे निश्चय ही समाप्त किया जाना चाहिये तथा शहरी जीवन के प्रति हम जो आकर्षण अनुभव करते हैं उसे रोकना होगा। गुरुत्वाकर्षण केंद्र अब शहरी क्षेत्र नहीं अपितु ग्रामीण क्षेत्र होना चाहिये। यही एक तरीका है जिससे कि हम अपनी समस्या का समाधान कर सकते हैं। यदि इसके बदले हम लोगों के कुछ वर्गों को प्राथमिकता देते हैं, तो हम केवल वही खेल खेल रहे होंगे जो कि विदेशी शासक अपनी खातिर तथा अपने प्रयोजनों को सिद्ध करने की खातिर हमारे द्वारा खेले जाने की अपेक्षा रखते थे। अत: मेरा विनम्र निवेदन है कि केवल एक सिद्धांत जिससे कि लोक सेवा आयोग का मार्गदर्शन होना चाहिये और जो कि लोक सेवा आयोग के सृजन का आधार है, वह केवल मात्र योग्यता का सिद्धांत ही होना चाहिये।

मैं यहां कुछ शब्द श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन के बारे में कहना चाहता हूं। उन्होंने इस अनुच्छेद के उप-खंड (3) में प्रयुक्त "शासक" पर आपत्ति उठाई है और अपनी टिप्पणियों को उचित ठहराने के लिये उन्होंने अनुच्छेद 281 की ओर निर्देश किया है जिसमें कि "राज्य" शब्द की परिभाषा दी गयी है। उनका कहना है कि इस परिभाषा में केवल वे ही राज्य शामिल हैं। जो कि प्रथम अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट हैं। निवेदन है कि हमने अभी अनुच्छेद 281 तथा 282 पर विचार नहीं किया है। अत: यह अत्यंत स्वाभाविक तथा आवश्यक है कि जब हम इन अनुच्छेदों पर विचार करना आरंभ करेंगे, तो भाग 3 में उल्लिखित राज्य भी शामिल किये जा सकेंगे। और इस प्रकार उन्होंने अपने संशोधन के बारे में जो टिप्पणियां की हैं, वे मान्य नहीं हैं।

महोदय, इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

*__श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्लै:__ (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं।

इस बात से सभी सहमत हैं कि संघ तथा राज्यों दोनों में लोक सेवा आयोग होना चाहिये। परंतु मेरा विचार है कि इस महान सदन का यह कर्तव्य अवश्य ही है कि यह स्पष्ट शब्दों में यह बताये कि क्या लोक सेवा आयोग उसी रूप में जारी रहेंगे जिस रूप में यह विगत समय में रहे हैं अथवा क्या उनका स्वरूप भविष्य में बेहतर होना चाहिये। जहां तक प्रतिनिधित्वविहीन समुदायों तथा अल्पसंख्यकों का संबंध है हमारी अब तक की जानकारी के अनुसार लोक सेवा आयोगों के कृत्य इतने संतोषप्रद नहीं रहे हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा में हाल में हुई भर्ती हमारे समक्ष इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इन अभागे समुदायों के प्रति न्याय नहीं किया गया है। यद्यपि प्रांतों में कहीं-कहीं मंत्री तो हैं परंतु वे सेवाओं के संबंध में निस्सहाय हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि सेवा प्रशासन की आत्मा है। हम सब इस बात से सहमत हैं कि सर्वोत्तम व्यक्ति उपलब्ध होने चाहियें; परंतु लोक सेवा आयोग के कार्यकरण में जो होता है वह यह है कि चाहे अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति ने सभी अपेक्षित परीक्षाएं पास कर ली हों, परन्तु यह बता बात आती है कि लोक सेवा आयोग कहता है कि वह उस पद के लिये उपयुक्त नहीं है। सरकार के समुदाय संबंधी आदेश के अनुसार, उस व्यक्ति विशेष को छोड़ दिया जाता है तथा अगले समुदाय के व्यक्ति को वह पद ग्रहण करने के लिये बुला लिया जाता है यह सब कुछ न केवल उस प्रांत में हो रहा है जहां कि मैं रहता हूं, बल्कि संघ लोक सेवा आयोग में भी हो रहा है। वास्तव में मैं जानता हूं कि हरिजन समुदाय के व्यक्ति हालांकि अच्छे अंक प्राप्त किये हुये होते हैं तथा उनकी अपेक्षित शैक्षिक योग्यता भी होती है, परंतु किसी न किसी बहाने उन्हें अवसर नहीं दिया जाता। मेरी यह विनम्र राय है कि इस आयोग का भावी दृष्टिकोण और अधिक बेहतर होना चाहिये। इस देश में सामुदायिक भेद-भावों के कारण इन समुदायों में से कुछ समुदायों को हालांकि वे पद धारण करने के लिए प्रबुद्ध तथा योग्य हो सकते हैं, वह अवसर नहीं दिया गया जो उन्हें देय था। सरकार के अनेक विभागों के लिये, उम्मीदवारों की सूचियां तैयार की जाती हैं जिनमें से किस अंततोगत्वा चयन किया जाता है। हालांकि आयोग व्यक्तियों का चयन कर सकता है, पर वे उस व्यक्ति की उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता के बारे में कुछ कह देते हैं और इस प्रकार सर्वोत्तम व्यक्ति को देश में आने से वंचित रखते हैं। इस तरह की बात से इन अभागे समुदायों के युवा व्यक्तियों को घोर निराशा हुई है। मुझे मालूम है कि डॉ. अम्बेडकर विभिन्न सेवाओं में अनुसूचित जातियों के लिये कुछ प्रतिशतता निर्धारित करा पाये थे। परंतु, यदि हम वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करे तो यह पायेंगे कि केंद्र तथा राज्यों दोनों में अनुसूचित जातियों के पदस्थ व्यक्तियों की संख्या नगण्य है। भावी लोक सेवा आयोगों के स्वरूप को बेहतर बनाने के लिए मैं इस सदन से अनुरोध करता हूं कि उचित निर्देश अवश्य ही जारी किये जाएं।

*__अध्यक्ष:__ डॉ. अम्बेडकर।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं इस विषय पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझता।

*__अध्यक्ष:__ मैं संशोधन मतदान के लिये रखता हूं। प्रथम संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन

अहमद द्वारा प्रस्तुत किया गया संशोधन संख्या 64 है। वह इसके स्थान पर एक अन्य संशोधन लाये हैं जो कि मैं अब आपको पढ़कर सुनाता हूं।

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 284 में, खंड 2 के स्थान पर वह खंड रखा जाये:—

(2) Two or more States may by resolution in their Legislative Assemblies or where there are two Houses, in both the Houses, agree that there shall be one Public Service Commission for that group of States."

['(2) दो अथवा अधिक राज्य अपनी विधान सभाओं में अथवा जहां दो सदन हैं वहां दोनों सदनों में संकल्प पारित करके करार कर सकेंगे कि राज्यों के उस समूह के लिए एक ही लोक सेवा आयोग होगा।']

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब संशोधन संख्या 65।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह इस बात को देखते हुए अब उत्पन्न नहीं होता।

***अध्यक्ष:** तब मैं संशोधन संख्या 65 मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है कि:

"कि संशोधनों के लिये संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 284 के खंड 3 में 'Or ruler अथवा शासक)' शब्दों को निकाल दिया जाए।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस प्रस्ताव को मतदान के लिए रखता हूं जो कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किया गया है। क्या सर्वश्री चालिहा तथा लक्ष्मीनारायण साहू यह चाहेंगे कि मैं उन दोनों पैराग्राफों को मतदान के लिए अलग-अलग रखूं?

***श्री कुलधर चालिहा:** नहीं, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 284 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाए:—

'284 (1) Subject to the Provisions of this article, there shall be a Public Service Commission for the Union and a Public Service Commission for each State.

(2) Two or more States may agree that there shall be one Public Service Commission for that Group of States, and if a resolution to the effect is passed by the House or, where there are two Houses, by each House of the Legislature of

[अध्यक्ष]

each of those States, Parliament may by law provide for the appointment of a Joint Public Service Commission (referred to in this Chapter as Joint Commission) to service the needs of those States.

(2a) Any such law as aforesaid may contain such incidental and consequential provisions as may appear necessary or desirable for giving effect to the purposes of clause (2) of this article.

(3) The Public Service Commission for the Union, if requested so to do by the Governor or Ruler of a State, may, with the approval of the President agree to serve all or any of the needs of the State.

(4) References in this Constitution to the Union Public Service Commission or a State Public Service Commission shall, unless the context otherwise requires, be construed as references to the Commission serving the needs of the Union or, as the case may be, the State as respects the particular matter in question."

['284 (1) इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुये, संघ के लिये लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा।

(2) दो या अधिक राज्य यह करार कर सकेंगे कि राज्यों के उस समूह के लिये एक ही लोक सेवा आयोग होगा तथा यदि उस उद्देश्य का संकल्प उन राज्यों में से प्रत्येक के विधानमंडल के सदन द्वारा अथवा जहां दो सदन हैं, वहां प्रत्येक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है, तो संसद उन राज्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए विधि द्वारा संयुक्त लोक सेवा आयोग (जो इस अध्याय में "संयुक्त आयोग" के नाम से निर्दिष्ट है) की नियुक्ति का उपबंध कर सकेगी।

(2क) उपरोक्त विधि में ऐसे प्रासंगिक तथा आनुषंगिक उपबंध भी अंतर्विष्ट हो सकेंगे जैसे कि इस अनुच्छेद के खंड (2) के प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिये आवश्यक या वांछनीय हों।

(3) यदि किसी राज्य का राज्यपाल या शासक, संघ के लोक सेवा आयोग से ऐसा करने की प्रार्थना करे तो राष्ट्रपति के अनुमोदन से वह उस राज्य की सब या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।

(4) यदि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो, तो इस संविधान में संघ के लोक सेवा आयोग अथवा किसी राज्य के लोक सेवा आयोग के निर्देशों को ऐसे आयोग के प्रति निर्देश समझा जायेगा जो प्रश्नास्पद किसी विशेष विषय के बारे में यथास्थिति संघ की अथवा राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो।']

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 284, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 285

*अध्यक्षः अनुच्छेद 285–डॉ. अम्बेडकर।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः महोदय, मेरा एक व्यवस्था का प्रश्न है। अध्यक्ष महोदय, आप कृपया यह देखेंगे कि यह स्वयं संविधान के लिये ही संशोधन है, किसी संशोधन के लिये संशोधन नहीं है, और इसलिये नियमों के अंतर्गत इसको अनुमति नहीं दी जानी चाहिये। विशेष मामले में हमने अवश्य ही कुछ अपवाद किये हैं, परंतु यह देखा जा रहा है कि ये अपवाद अब नियम ही बनते जा रहे हैं। इसलिये मेरा निवेदन है कि इस संशोधन को तकनीकी आधार पर ही नियम विरुद्ध घोषित किया जाना चाहिये। और फिर सुविधा का प्रश्न भी है। मेरे विचार में अपने स्वरूप में यह संशोधन अत्यंत आपत्तिजनक है। यहां प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 285 के खंडों में कुछ प्रकार के परिवर्धन तथा परिवर्तन करके उसे केवल दोहराया गया है। ये संशोधन मूल अनुच्छेद के लिये संशोधनों के रूप में आने चाहिए थे। इसके बदले नये विचारों को सम्मिलित करके अथवा अंत:स्थापित करके पूरा अनुच्छेद लिख दिया गया है तथा पुराने खंडों तथा संशोधनों को नए अनुच्छेद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पता चलाने के लिये बहुत अधिक समय लगता है कि कौन-कौन से परिवर्तन किए गये हैं।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः जैसे कि हिंदू कोड बिल में हुआ।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः जैसा कि डॉ. देशमुख ने ठीक ही कहा–हिन्दू कोड बिल की तरह। पुराने खंडों तथा नये विचारों को आपस में मिला दिया गया है तथा जहां-तहां आवश्यक अंत: स्थापन करके उन्हें नए खंडों के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है। यह पता चला पाना अत्यंत कठिन है कि वास्तव में कौन-कौन से परिवर्तन किये गये हैं। खंड (2) में कई स्थानों पर परिवर्तन किये गये हैं। और फिर अनुच्छेद 285(क) है जो कि बिल्कुल ही नया है। और फिर अनुच्छेद 285(ख) पुराने अनुच्छेद 285 के भागों से बनाया गया है तथा इस अनुच्छेद का परंतुक बिल्कुल ही नया है। इसे देखकर यह पता चलता है कि यह अनुच्छेद 285(3) का प्रतिरूप है, परंतु अब इसे नया अनुच्छेद बना दिया गया है जिसका स्वरूप बिल्कुल ही नया है। इस अनुच्छेद का खंड (घ) बिल्कुल ही नया है। मेरे विचार में इन परिवर्तनों को समझने का प्रयास सभी के लिये कठिन है। अत: मैं इन पर केवल इसी कारण आपत्ति नहीं कर रहा कि ये संशोधन नियमों की अवहेलना करते हैं, बल्कि इस कारण भी आपत्ति कर रहा हूं कि इनका स्वरूप ऐसा है जो कि आसानी से समझ में नहीं आता तथा उन्हें स्वयं संविधान में ही संशोधन के रूप में व्यक्त किया जाना चाहिये था। उससे माननीय सदस्यों को इन परिवर्तनों को समझने में आसानी रहती।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः यह पहली बार नहीं है जबकि मेरे मित्र ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया है। प्रारूप समिति को प्रक्रिया नियमों की तकनीकी

बातों से परे रहने के संबंध में आपकी सहर्ष अनुमति रही है तथा इसलिए मेरा निवेदन है कि इस मामले में भी आप हमें आगे कार्यवाही करने की अनुमति देने की कृपा करेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर के इस रवैये का विरोध करता हूं। महोदय आपने उन्हें कुछ विशेषाधिकार दिया है और वह उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। वह यह बता सकते हैं तथा उन्हें अवश्य ही बताना भी चाहिये कि वह मूल प्रारूप अनुच्छेदों में किस प्रकार का ठोस और विशिष्ट परिवर्तन करना चाहते हैं। और उन्हें उस प्रकार कार्यवाही नहीं करनी चाहिये जिस तरीके से कि उन्होंने हिंदू कोड बिल के संबंध में की थी तथा उन्हें यह विशिष्ट रूप से बताये बिना कोई भी परिवर्तन नहीं करना चाहिये कि मूल प्रारूप की तुलना में कहां-कहां कितना परिवर्तन किया गया है।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर** (मद्रास: जनरल): मेरे जिन मित्रों ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया है, उन्हें मालूम होना चाहिये कि लोक सेवा आयोग की पूरी योजना में ही परिवर्तन पर दिया गया है तथा ये परिवर्तन पारिणामिक हैं। अत: यदि अन्यों में परिवर्तन नहीं किया गया होता, तो संभवतया इसके लिये किसी परिवर्तन की आवश्यकता न रहती। इन परिस्थितियों में ये आपत्तियां मान्य नहीं हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मेरा निवेदन है कि प्रत्येक संशोधन मूल प्रारूप से संबंधित होना चाहिये जो कि परिचालित किया गया है।

***अध्यक्ष:** जहां तक प्रारूप समिति का संबंध है, मैंने कुछ छूट दी है क्योंकि अनेक कठिन अनुच्छेद, जिनके बारे में कि मतभेद की संभावना हो सकती थी अथवा जिन पर विचार किये जाने की आवश्यकता थी उन्हें पुनर्विचार के लिये छोड़ दिया गया था और यदि पुनर्विचार के परिणामस्वरूप, प्रारूप समिति नए अनुच्छेद प्रस्तुत करना चाहती है, तो मैं नहीं समझता कि मैं नये अनुच्छेदों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किये जाने के मार्ग में किन्हीं तकनीकी बातों के कारण बाधक बनूं। अत: मैं इन अनुच्छेदों को प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अनेक अनुच्छेद हैं तथा इन अनुच्छेदों को अलग-अलग रखा जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** यह एक बिल्कुल अलग बात है तथा हम उन पर अलग-अलग चर्चा कर सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर स्पष्ट कर सकते हैं कि अलग-अलग अनुच्छेद क्यों बनाये गये। आप उन्हें एक साथ प्रस्तुत करें तथा मतदान के समय हम उन्हें अलग-अलग ले सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, उन्हें अलग-अलग रखा जा सकता है।

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 285 के स्थान पर ये अनुच्छेद रखे जाएं:—

'285. (1) The Chairman and other members of a Public Service Commission shall be appointed in the case of the Union Commission or a Joint Commission by the

Appointment and term of office of members.

President, and in the case of a State Commission, by the Governor or Ruler of the State:

Provided that at least one-half of the members of every Public Service Commission shall be persons who at the dates of their respective appointments have held office for at least ten years either under the Government of India or under the Government of a State, and in computing the said period of ten years any period before the commencement of this Constitution during which a person has held office under the Crown shall be included.

(2) A member of a Public Service Commission shall hold office for a term of six years from the date on which he enters upon his office or until he attains, in the case of the Union Commission, the age of sixty-five years, and in the case of a State Commission or a Joint Commission, the age of sixty years, whichever is earlier:

Provided that—

(a) a member of a Public Sevice Commission may be writing under his hand addressed, in the case of the Union Commission or a Joint Commission, to the President and in the case of a State Commission, to the Governor or Ruler of the State, resign his office.

(b) a member of a Public Service Commission may be removed from his office in the manner provided in clause (1) or clause (3) or article 285-A of this Constitution.

(3) A person who holds office as a member of a Public Service Commission shall, on the expiration of his term of office, be ineligible for re-appintment of that office.

285A (1) Subject to the provisions of clause (3) of this article, the Chairman or any other member of Public Service Commission shall only be removed from office by order of the President on the ground of misbehaviour after the Supreme Court on a reference being made to it by the President has, on inquiry held in accordance with the procedure prescribed in that behalf under article 121 of this Constitution, reported that the Chairman or such other member, as the case may be, ought on any such ground be removed.

Removal and suspension of a member of a Public Service Commission.

(2) The President in the case of the Union Commission or a Joint Commission and the Governor or Ruler in the case of a State Commission may suspend from office the Chairman

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

or any other member of the Commission in respect of whom of reference has been made to the Supreme Court under clause (1) of this article until the President has passed orders on receipt of the report of the Supreme Court on such reference.

(3) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, the President may, be order, remove from office the Chairman or any other member of a Public Service Commission if the Chairman or, such other member, as the case may be,

(a) is adjudged an insolvent; or

(b) engager during his term of office in any paid employment outside the duties of his office."

'285. सदस्यों की नियुक्ति तथा पदावधि

(1) लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति, यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है तो, राष्ट्रपति द्वारा तथा यदि वह राज्य आयोग है, तो राज्य के राज्यपाल या शासक द्वारा की जायेगी:

परंतु प्रत्येक लोक सेवा आयोग के सदस्यों में से कम से कम आधे ऐसे लोग होंगे जो अपनी-अपनी नियुक्तियों की तारीख पर भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद धारण कर चुके हैं, तथा उक्त दस वर्ष की कालावधि की संगणना में ऐसी कालावधि भी शामिल होगी जिसमें संविधान के प्रारंभ से पूर्व किसी व्यक्ति ने सम्राट के अधीन पद धारण किया है।

(2) लोक सेवा आयोग का सदस्य अपने पद-ग्रहण की तारीख से छः वर्ष की अवधि तक अथवा यदि यह संघ आयोग है तो, पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक तथा यदि वह राज्य आयोग या संयुक्त आयोग है तो साठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक जो भी इनमें से पहले हो अपना पद धारण करेगा:

परंतु–

(क) लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है तो राष्ट्रपति को तथा यदि वह राज्य-आयोग है तो राज्य के राज्यपाल या शासक को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद को त्याग सकेगा;

(ख) लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य अपने पद से अनुच्छेद 285-क के खंड (1) या खंड (3) में उपबंधित रीति से हटाया जा सकेगा।

(3) कोई व्यक्ति जो लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में पद धारण करता है, अपनी पदावधि की समाप्ति पर पुनर्नियुक्ति के लिए अपात्र होगा।

लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटाया जाना या निलम्बित किया जाना

285क (1) इस अनुच्छेद के खंड (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, लोक सेवा आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य पद से केवल राष्ट्रपति द्वारा कदाचार के आधार पर दिए गये उस आदेश पर ही हटाया जायेगा, जोकि उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति द्वारा पृच्छा किये जाने पर उस न्यायालय द्वारा इस संविधान के अनुच्छेद 121 के अधीन उस विहित प्रक्रिया के अनुसार की गयी जांच पर उस न्यायालय द्वारा किये गए इस प्रतिवेदन के पश्चात् कि यथास्थिति, सभापति या ऐसे किसी सदस्य को, ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाये, दिया गया है।

(2) आयोग के सभापति अन्य किसी सदस्य को जिसके संबंध में इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय से पृच्छा की गयी है और राष्ट्रपति, यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है, तथा राज्यपाल या शासक, यदि वह राज्य आयोग है, उसको पद से तब तक के लिए निलम्बित कर सकेगा जब तक कि ऐसी पृच्छा की गयी बात पर उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति अपना आदेश न दे।

(3) इस अनुच्छेद के खंड (1) में अंतर्विष्ट बात के होते हुये भी यदि यथा-स्थिति लोक सेवा आयोग का सभापति या कोई दूसरा सदस्य—

(क) दिवालिया, न्यानिर्णीत हो जाता है; अथवा

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों से बाहर कोई वैतनिक नौकरी करता है, अथवा, और यहां मैं (ग) के रूप में तीसरी बात जोड़ना चाहता हूं:–

(c) is in the opinion of the President unfit to continue in office by reason of infirmity of mind or body.

(4) For the purpose of clause (1) of this article, the Chairman or any other member of a Public Service Commission may be deemed to the guilty of misbehaviour if he is or becomes in any way concerned or interested in any contract or agreement made by or on behalf of the Government of India or the Government of a State or participates in any way in the profit thereof or in any benefit from emoluments arising therefrom otherwise than as a member and in common with the other members of any incorporated company.

Power to make regulations as to conditions of service of members and staff of the Commission.

285.B. In the case of the Union Commission or a Joint Commission, the President and in the case of a State Commission, the Governor or Ruler of the State, may by

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

regulation—

(a) determine the number of members of the Commission, and their conditions of service: and

(b) make provision with respect to the number of members of the staff of the Commission and their conditions of service:

Provided that the conditions of service of a members of a Public Service Commission shall not be altered to his disadvantage after his appointment.

285. C. On ceasing to hold office—

Bar to the holding of office by members of Commissions on ceasing to be such members.

(a) the Chairman of the Union Public Service Commission shall be ineligible for further employment either under the Government of India or under the Government of a State;

(b) the Chairman of a State Public Service Commission shall be eligible for appointment as the Chairman or any other member of the Union Public Service Commission or as the Chairman of any other State Public Service Commission but not for any other emplyment either under the Government of India or under the Government of a State:

(c) a member other than the Chairman of the Union Public Service Commission shall be eligible for appointment as the Chairman of the Union Public Service Commission or as the Chairman of a State Public Service Commission but not for any other employment either under the Government of India or under the Government of a State:

(d) a member other than the Chairman of the Union Public Service Commission shall be eligible for appointment as the Chairman or any other member of the Union Public Service Commission or as the Chairman of that or any other State Public Service Commission, but not for any other employment either under the Government of India or under the Government of a State:

['(ग) राष्ट्रपति की राय में मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य के कारण अपने पद पर रह आने के लिये अयोग्य है,

तो सभापति या ऐसे अन्य सदस्य को राष्ट्रपति आदेश द्वारा अपने पद से हटा सकेगा।

(4) इस अनुच्छेद के खंड (1) के प्रयोजनों के लिए लोक-सेवा आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य कदाचार का अपराधी समझा जा सकता है यदि यह भारत सरकार के या राज्य की सरकार के द्वारा, या ओर से की गई किसी संविदा या करार में निगमित समवाय के सदस्य के नाते तथा उसके अन्य सदस्यों के साथ-साथ के सिवाय, किसी प्रकार से भी संपृक्त या हितसम्बद्ध है या हो जाता है अथवा किसी प्रकार के उसके लाभ में अथवा तदुत्पन्न किसी फायदे या उपलब्धि में भाग लेता है।

आयोग के सदस्यों और कर्मचारीवृन्द को सेवाओं की शर्तों के बारे में विनियम बनाने की शक्ति

285.-ख. संघ आयोग या संयुक्त आयोग के बारे में राष्ट्रपति तथा राज्य आयोग के बारे में उस राज्य का राज्यपाल या शासक विनिमयों द्वारा

(क) आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवाओं की शर्तों का निर्धारण कर सकेगा, तथा

(ख) आयोग के कर्मचारीवृन्द के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा की शर्तों के संबंध में उपबन्ध कर सकेगा:

परंतु लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

285.-ग. पद पर न रहने पर—

आयोग के सदस्यों द्वारा ऐसे सदस्य न रहने पर पद के धारण करने पर रोक

(क) संघ लोक सेवा आयोग का सभापति भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी भी और नौकरी के लिये अपात्र होगा;

(ख) राज्य के लोक-सेवा आयोग का सभापति संघ लोक सेवा आयोग के सभापति या अन्य सदस्य के रूप में अथवा किसी अन्य राज्य के लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए पात्र न होगा;

(ग) संघ लोक सेवा आयोग के सभापति के अतिरिक्त कोई अन्य सदस्य संघ लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में अथवा राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी का पात्र न होगा;

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(घ) किसी राज्य के लोक सेवा आयोग के सभापति के अतिरिक्त अन्य कोई सदस्य संघ लोक सेवा आयोग के सभापति कि किसी अन्य सदस्य के रूप में अथवा उसी या किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने का पात्र होगा, किन्तु भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए पात्र न होगा।']

महोदय, ये ऐसे खंड हैं जिनका संबंध लोक सेवा आयोगों, उनके सदस्यों की पदावधि एवं अर्हताओं तथा निरर्हताओं तथा उनके हटाये जाने और निलम्बित किये जाने से हैं। मैं इन अनुच्छेदों में समाविष्ट मुख्य बातें सभा के समक्ष संक्षिप्त रूप में रखना चाहता हूं।

पहली बात लोक सेवा आयोग की पदावधि के बारे में है इसका प्रावधान अनुच्छेद 285 में किया गया है। इस अनुच्छेद में समाविष्ट प्रावधानों के अनुसार लोक-सेवा आयोग के सदस्य की पदावधि छः वर्ष निर्धारित की गयी है अथवा संघ-आयोग के मामले में 65 वर्ष की आयु को प्राप्त हो जाने तक और राज्य-आयोग के मामले में 60 वर्ष की आयु को प्राप्त हो जाने तक निर्धारित की गयी है। यह पदावधि के बारे में है।

अब मैं लोक-सेवा आयोग के सदस्यों के हटाए जाने के विषय पर आता हूं। इसका प्रावधान अनुच्छेद 285-क में किया गया है। इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अंतर्गत लोक-सेवा आयोग का सदस्य कदाचार सिद्ध होने पर राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकेगा। वह स्वतः—अनर्हता के आधार पर भी हटाया जा सकेगा। यह स्वतः- अनर्हता तीन कारणों से हो सकती है। एक कारण है दिवालियापन। दूसरा कारण है किसी अन्य नौकरी में लगना तथा तीसरा है मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य। कदाचार के संबंध में उपबंध कुछ-कुछ अनूठे है। माननीय सदन को याद होगा कि उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाये जाने के मामले में हमारे द्वारा पहले पास किये जा चुके अनुच्छेदों में यह प्रावधान है कि वे सदाचार के दौरान अपने पदों पर बने रहेंगे तथा जब तक कि सभा के दोनों सदनों तथा इस हेतु एक संकल्प पास नहीं किया जाता तब तक वे हटाये नहीं जा सकेंगे। ऐसा महसूस किया गया है कि संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों को हटाये जाने के लिये इतने कठोर तथा बड़े प्रावधान का उपबंध करना अनावश्यक है। परिणामस्वरूप इस अनुच्छेद में यह प्रावधान किया गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाये जाने के लिये भारत शासन अधिनियम में समाविष्ट उपबंध लोक-सेवा आयोग के सदस्यों को उतनी ही सुरक्षा, उतना ही संरक्षण देने के लिए पर्याप्त होंगे। मेरे विचार में सभा को याद होगा कि भारत शासन अधिनियम में समाविष्ट उपबंधों में फैडरल न्यायालय के न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाये जाने के लिये जिस बात की आवश्यकता है वह है उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में फैडरल न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा की गयी जांच अथवा फैडरल न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा की गई जांच और यह रिपोर्ट किये जाने पर कि कदाचार का मामला हुआ है, गवर्नर जनरल फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश

को हटा सकेगा। हमने लोक-सेवा आयोग के सदस्य को जहां कहीं कदाचार का मामला हो, हटाये जाने के सम्बन्ध में वही उपबंध रखा है।

जहां तक स्वत:-अनर्हताओं का संबंध है, मेरे विचार में विवाद का कोई भी कारण नहीं होना चाहिये क्योंकि यह स्पष्ट है कि यदि लोक-सेवा आयोग का कोई सदस्य दिवालिया हो जाता है, तो उसकी ईमानदारी पर तनिक भी भरोसा नहीं किया जा सकता और इसलिए यह स्वत: अनर्हता मानी जानी चाहिये। इसी प्रकार यदि लोक-सेवा आयोग का कोई सदस्य, जोकि निस्संदेह राज्य का पूर्णकालिक अधिकारी है, अपने अर्तव्य का यथासंभव पूर्णरूपेण निर्वहन करने तथा अपना सारा समय लगाने के बजाय अपने किसी अन्य नियोजन में अपना कुछ समय लगाता है, तो वह भी स्वत:-अनहर्ता का आधार होगा। इसी प्रकार तीसरी अनहर्ता, अर्थात् कि यह मानसिक तथा शारीरिक रूप से दुर्बल हो चुका है, भी किसी प्रकार के विवाद के बिना स्वत:—अनर्हता का पक्का मामला माना जा सकता है। सदन के सदस्यों को यह भी याद होगा कि अनुच्छेद 285-क के पाठ में एक प्रावधान है कि उच्च न्यायालय द्वारा की जा रही जांच के दौरान लोक-सेवा आयोग का सदस्य निलम्बित रहेगा। मेरे विचार में यह प्रावधान आवश्यक है। यदि राष्ट्रपति का यह विचार हो कि कोई सदस्य कदाचार का दोषी है, तो यह वांछनीय नहीं होगा कि वह सदस्य लोक-सेवा आयोग के सदस्य के रूप में काम करता रहे, जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में रिपोर्ट देकर उसके आचरण को दोषमुक्त नहीं किया जाता।

अब मैं अन्य महत्वपूर्ण बात पर आता हूं। जिसका संबंध कि लोक-सेवा आयोग-संघ तथा राज्य सेवा आयोग दोनों-के सदस्यों को नौकरी अथवा नौकरी के लिए पात्रता से है। सदस्य यह देखेंगे कि अनुच्छेद 285 के खंड (3) के अनुसार हमने संघ लोक-सेवा आयोग के सभापति तथा सदस्यों को एवं राज्य लोक-सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों दोनों को उन्हीं पदों पर पुर्नियुक्ति के लिए अपात्र ठहराया है; जिसका अर्थ यह हुआ कि सभापति अथवा सदस्य की पदावधि एक बार समाप्त हो जाने पर, चाहे वह लोक सेवा आयोग का सभापति हो अथवा राज्य आयोग का सभापति हो, हमने यह कहा है कि यह पुन: नियुक्त नहीं होगा। मेरे विचार में यह अत्यन्त स्वस्थ प्रावधान है क्योंकि पुनर्नियुक्ति अथवा उसी नियुक्ति में बने रहने के लिए यदि कोई आशा रखी जाती है तो वह एक प्रकार के प्रलोभन का काम कर सकती है कि जिसके कारण कि सदस्य उसी निष्पक्षता से कार्य न करने के लिए प्रेरित हो सकता है जिसकी कि उसके कर्तव्य के निर्वहन में उससे आशा की जाती है। अत: यह एक बुनियादी निषेध है जिसका कि प्रारूप अनुच्छेद में प्रावधान किया गया है।

और फिर दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद 285-ग के अनुसार यह प्रावधान भी है कि उनमें से कोई किन्हीं अन्य पदों पर नियुक्ति का पात्र नहीं होगा। अत: दोहरी अनहर्ता। अपने पदों पर जारी रहने के लिये कोई अनुमति नहीं है और न ही तो किन्हीं अन्य पदों पर नियुक्त का प्रावधान है। अब केवल अपवाद के कुछ मामले, जिनमें उनकी नियुक्ति की जा सकती है, इस प्रकार है—

> राज्य लोक-सेवा आयोग के सभापति को संघ आयोग का सभापति अथवा सदस्य अथवा किसी अन्य राज्य आयोग का सभापति बनने की अनुमति है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरे, संघ आयोग का सदस्य संघ आयोग अथवा किसी अन्य राज्य आयोग का सभापति बन सकता है।

तीसरी, राज्य आयोग के सदस्य संघ आयोग के सभापति अथवा सदस्य या राज्य आयोग के सभापति बन सकते हैं।

दूसरे शब्दों में अपवाद इस प्रकार हैं, अर्थात् कि कोई व्यक्ति जो कि संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य है वह राज्य सेवा आयेग का सदस्य बन सकता है, अथवा राज्य लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष बन सकता है अथवा संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य बन सकता है। इस बारे में ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि राज्य आयोग का न सभापति तथा न ही सदस्य उसी राज्य के अंतर्गत नौकरी नहीं ले सकता। किसी अन्य राज्य द्वारा उसे सभापति नियुक्त किया जा सकता है अथवा उसे केंद्रीय सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग का सभापति अथवा संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया जा सकता है। इसका उद्देश्य यह है कि राज्य के उसी पद पर निरंतर नौकरी देने अथवा किसी अन्य पद पर नौकरी देने के लिए किसी प्रकार का संरक्षण प्रदान करने की अनुमति न रहे ताकि यह आशा की जा सके कि इन प्रावधानों से आयोग के सदस्य इतने स्वाधीन रहें जितनी कि उनसे आशा की जा जाती है।

मेरे विचार में ऐसी कोई अन्य बात नहीं है जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** संयुक्त आयोग के सदस्यों के बारे में क्या है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** संयुक्त आयोग एक राज्य आयोग है। इसकी परिभाषा अनुच्छेद 284 के खंड (4) में की गई है।

***डॉ. मनमोहन दास:** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 285-क की कुछ बातों पर और प्रकाश डाला जाए। यदि राष्ट्रपति द्वारा निर्देश दिये जाने पर उच्चतम न्यायालय यह प्रतिवेदन करता है कि लोक सेवा आयोग के सभापति अथवा इसके किसी अन्य सदस्य को हटाया जाना चाहिये तो उसे हटाना राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी होगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** निश्चय ही।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, आपने माननीय सदस्य से कहा है कि वह नये प्रारूप तथा मूल प्रारूप में अंतर के बारे में सभा को बतायें। उससे वास्तव में किए गये परिवर्तनों को उचित प्रकार से समझने में सहायता मिलती।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि वाद विवाद के दौरान कोई प्रश्न उठाया जाता है, तो उसका स्पष्टीकरण मैं अपने उत्तर के समय दूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं नहीं जानता कि मैं इसका विरोध करूं अथवा नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** आपने दोनों प्रारूप अवश्य ही पढ़े होंगे। आपने केवल अल्प-विराम तथा अर्धविराम नहीं पढ़े होंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को लूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रांत: जनरल): महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285 के खंड (1) के परंतुक में 'one-half' (आधे) शब्द के स्थान पर 'one-third' (एक-तिहाई)' शब्द रखा जाये।"

लोक सेवा आयोग के गठन तथा कर्मचारीवृन्द का प्रश्न भारी महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में उसके महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर कहना संभव ही नहीं है। केंद्रीय तथा राज्य सरकारों के अंतर्गत विभिन्न पदों को भरने के लिये उम्मीदवारों का चयन करने की जिम्मेदारी संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोगों को सौंपी जा रही है और इस दृष्टि से ये आयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण बन जाते हैं। इन आयोगों के उचित गठन तथा इनके सदस्यों के सही चयन पर उन व्यक्तियों का उचित चयन निर्भर करता है जिन पर कि सरकार के विभिन्न विभागों में महत्वपूर्ण कर्तव्यों के निर्वहन करने की भारी जिम्मेदारी जायेगी। इस स्थिति में मेरे विचार में यह लाभकर होगा कि हम इस विषय से सम्बन्धित विभिन्न अनुच्छेदों पर विस्तार से तथा अत्यन्त सावधानीपूर्वक विचार करें।

जिस परंतुक के लिये मैंने अभी अपना संशोधन प्रस्तुत किया है, उसमें कहा गया है कि प्रत्येक लोक सेवा आयोग के आधे सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जो अपनी-अपनी नियुक्ति की तारीख पर भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद धारण कर चुके हों, आदि। महोदय, इसका अर्थ यह हुआ कि वास्तविक व्यवहार में लोक सेवा आयोगों में सरकारी सदस्य लगभग सदैव ही बहुसंख्या में रहेंगे। सामान्यतया किसी लोक सभा के सदस्यों की संख्या या तो तीन है या पांच है, इसलिए यदि तीन सदस्य हुए तो उनमें से कम से कम आधे-जिसका मतलब है कि दो सदस्य-सरकारी कर्मचारी होंगे।

केवल एक ही स्थान शेष रह जाता है जो कि ऐसे व्यक्ति द्वारा भरा जाता है जो दस वर्षों तक सरकारी कर्मचारी नहीं रहा है। इसी प्रकार यदि पांच सदस्यों का आयोग हुआ तो कम से कम तीन सदैव ही सरकारी कर्मचारी होंगे तथा इस क्षेत्र के बाहर से केवल दो ही सदस्य नियुक्त किये जा सकते हैं। मैं समझता हूं कि इस तरह से लोक सेवा आयोग में सरकारी कर्मचारियों को अनुचित प्रतिनिधित्व दिया जा रहा है। लोक सेवा आयोगों में सरकारी कर्मचारियों के दृष्टिकोण को इतना अधिक प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाना चाहिये। यद्यपि यह आवश्यक है कि हमें दस वर्ष की सेवा वाले सरकारी कर्मचारियों के अनुभव का लाभ उठाना चाहिये, परंतु साथ ही मेरा यह भी विचार है कि सभी उम्मीदवारों के चयन में केवल उनके ही दृष्टिकोण पर निर्णय नहीं होना चाहिये और यह कि गैर-सरकारी व्यक्तियों तथा अन्य हितों के प्रतिनिधियों का भी आयोगों में उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए। परंतु

[श्री जसपतराय कपूर]

यदि एक सांविधिक प्रावधान द्वारा सभी आयोगों के अधिकांश सदस्य ऐसे होंगे जो सरकारी सेवा में दस वर्ष रह चुके हों, तो उपरोक्त उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

जितनी अधिक अवधि तक कोई व्यक्ति सरकारी सेवा में रहता है उतना ही अधिक वह रूढ़िवादी बन जाता है तथा उसमें उस वर्ग का सनकीपन, स्वेच्छाचारिता और यहां तक कि स्वभावगत विलक्षणतायें विकसित हो जाती हैं। लोकमत तथा समाज की परिवर्तनशील आवश्यकताओं से उनका सम्पर्क टूट जाता है। अतः मेरा विचार है कि संघ तथा राज्य आयोगों दोनों में सरकारी कर्मचारियों को स्थायी बहुमत प्रदान करना सुरक्षित तथा लोक हित में नहीं होगा। उम्मीदवारों के चयन में गैर-सरकारी सदस्यों के ताजे दृष्टिकोण का भी काफी मात्रा में लाभ अवश्य उठाया जाना चाहिये।

मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर यहां नहीं हैं।

एक माननीय सदस्यः वह यहां हैं।

श्री जसपतराय कपूरः यदि वह यहां पर हैं तो उन्हें उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुच्छेदों के बारे में कुछ सुनने की परवाह नहीं है, क्योंकि यह अपने आपको इस बारे में सुरक्षित समझते हैं कि उनके किसी भी प्रस्ताव के विरुद्ध इस सभा का बहुमत प्राप्त करना संभव नहीं है। तथापि मैं आशा करता हूं कि यह सभा इस अवसर पर इस बात पर गंभीरता से विचार करेगी और वह डॉ. अम्बेडकर को मेरे कुछ संशोधनों को स्वीकार करने पर बाध्य करेगी जिन्हें मैं प्रस्तुत करूंगा। मैं एक संशोधन पहले ही प्रस्तुत कर चुका हूं और अन्य मैं इसके पश्चात् प्रस्तुत करूंगा। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर में सरकारी कर्मचारियों के प्रति काफी सम्मान तथा स्नेह विकसित हो गया है। शायद इसका कारण यह है कि वह इतनी देर तक सरकार तथा मंत्रिमंडल से संबद्ध रहे हैं। सरकारी कर्मचारियों ने डॉ. अम्बेडकर से जो सम्मान अर्जित किया है मुझे उससे ईर्ष्या नहीं है। परंतु मैं यह अवश्य ही सोचता हूं कि जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है, डॉ. अम्बेडकर ने निश्चय ही स्वयं को सरकारी कर्मचारियों से अनुचित रूप में प्रभावित होने दिया है, क्यों हम देखते हैं कि उन्होंने वर्तमान संघ (फेडरल) लोक सेवा आयोग के सभापति के विचारों तथा राय की संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के सर्वसम्मत विचारों की तथा विभिन्न प्रांतीय लोक सेवा आयोग के सभापतियों के विचारों की उपेक्षा की है।

आयें हम यह देखें कि इस विषय पर उनके विचार क्या हैं। गत वर्ष नयी दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ, अर्थात् संघ (फेडरल) लोक सेवा आयोग के सभापति तथा सदस्यों एवं विभिन्न प्रांतीय लोक सेवा आयोग के सभापतियों का सम्मेलन। उन्होंने इस विषय पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये। मैं उस पुस्तिका से पढ़ रहा हूं जोकि संविधान सभा के कार्यालय द्वारा हमें भेजी गयी है और जिसमें कि इन प्रारूप प्रावधानों पर विभिन्न निकायों की टिप्पणियां समाविष्ट हैं।

> "संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 285(1) के परंतुक में उपलब्ध है कि प्रत्येक लोक सेवा आयोग के सदस्यों में से आधे ऐसे व्यक्ति होंगे जो अपनी-अपनी नियुक्ति की तारीख पर भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद धारण कर चुके हैं। सम्मेलन की यह राय है कि सभी समाविष्ट हितों को प्रतिनिधित्व उपलब्ध कराने हेतु यह परंतुक अब संशोधित

किया जाना चाहिये और परंतुक की प्रथम पंक्ति में आये शब्द "आधे" के स्थान पर "एक तिहाई" शब्द रखा जाना चाहिये।"

संघ लोक सेवा आयोग के सभापति जैसे जिम्मेदार व्यक्ति की लंबे अनुभव पर आधारित सलाह की, जिसका कि सम्मेलन के अन्य सदस्यों ने सर्वसम्मति से समर्थन किया है, पूर्णत: उपेक्षा कर दी गई है, तथा गृह मंत्रालय के स्थायी कर्मचारियों के विचारों को अभिभावी होने दिया गया है। यदि हम गृह मंत्रालय के कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत किए गए ज्ञापन पत्र में दिए गए सुझाव को देखें, तो पता चलेगा कि उनके विचार कितने रूढ़िवादी हैं:

"हम आगे जो केवल मात्र टिप्पणियां करना चाहेंगे, वे लोक सेवा आयोगों के सभापतियों के सम्मेलन द्वारा की गई सिफारिशों से संबंधित हैं, जिन्हें कि संघ लोक सेवा आयोग ने अपने पत्र संख्या..................... दिनांक...................... के साथ संलग्न करके संविधान सभा को भेजा है।

उस पत्र के पैराग्राफ चार में यह सुझाव दिया गया है कि अनुच्छेद 285(1) में सेवा कर्मचारियों की संख्या "आधे" से बदलकर 'एक-तिहाई' कर दी जाए। इस मंत्रालय का दृष्टिकोण यह है कि लोक सेवा की दृष्टि से (कुल मिलाकर देश की दृष्टि से नहीं परंतु, निस्संदेह, वर्तमान सरकारी सेवकों की दृष्टि से) सेवाओं का प्रतिनिधित्व आयोग में और भी अधिक होना चाहिए।"

इसलिए, यदि उन्हें उनकी ही इच्छा के अनुसार काम करने दिया जाए तो वे लोक सेवा आयोग को शायद सरकारी सेवकों का नितांत एकाधिकार तथा अपने लिए एक सुरक्षित स्थान बना डालेंगे। अब तो हम देखते हैं, वह यह है कि डॉ. अम्बेडकर के सभापतित्व में प्रारूप समिति ने गृह मंत्रालय में सरकारी सदस्यों की सिफारिशें सहज ही स्वीकार कर ली हैं और संघ लोक सेवा आयोग तथा अन्य प्रांतीय लोक सेवा आयोगों के सभापतियों की संतुलित सिफारिशों की नितांत उपेक्षा की है। मेरे विचार में यह अत्यंत असंतोषप्रद बात है।

केवल इतनी ही बात नहीं है। मैं इस अनुच्छेद के बारे में एक और बात की ओर भी आपका ध्यान आकर्षित करूंगा। इस परंतुक में जिस बात की अपेक्षा है वह केवल यही नहीं है कि ऐसे आयोगों के आधे सदस्यों को सरकारी सेवा का दस वर्ष का अनुभव प्राप्त हो, परंतु उनके मामले में यह भी आवश्यक है कि उनकी नियुक्ति के समय वे सरकारी सेवक अवश्य ही होने चाहिए, जिसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई व्यक्ति सरकारी सेवा से किसी विशेष तारीख से केवल कुछ महीने पूर्व ही सेवानिवृत्त हुआ हो तो वह लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं है, अर्थात् उसे सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् एक महीने के लिए भी स्वयं को स्वतंत्र रूप से रहने का अवसर नहीं मिलना चाहिए। हम उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश का उदाहरण लें जो साठ वर्ष की आयु प्राप्त हो जाने पर सेवानिवृत्त होता है। उस सेवानिवृत्ति के पश्चात् उसकी सेवानिवृत्ति के साथ ही उसे संघ लोक सेवा आयोग में नियुक्त किया जा सकता है, परंतु दुर्भाग्य से यदि वह एक या दो महीनों तक के लिए भी पद पर न रहा हो तो वह ऐसी नियुक्ति का पात्र नहीं होगा। मेरा निवेदन

[श्री जसपतराय कपूर]

है कि इसमें कोई समझदारी की बात नहीं है, इसके पीछे कोई तर्क नहीं है। अत: मैं निवेदन करूंगा कि लोक सेवा आयोग में सरकारी कर्मचारियों से भिन्न हितों के उचित प्रतिनिधित्व के लिए परंतुक में "आधे" के स्थान पर "एक-तिहाई" शब्द रखा जाना चाहिए।

इससे पहले वाले अनुच्छेद पर चर्चा करते हुए मेरे माननीय मित्र चौधरी रणबीर सिंह लोक सेवा आयोग में ग्रामीण विचारों वाले व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए पुरजोर वकालत कर रहे थे। यदि हम "आधे" शब्द को कायम रखते हैं तो न तो ग्रामीण विचारों वाले सदस्य अथवा न ही नगरीय विचारों वाले सदस्य को नियुक्ति के लिए उचित अवसर उपलब्ध होगा। मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य इस बात से सहमत होंगे कि लोक सेवा आयोग में यदि संभव हो तो, हमें सदैव ही अच्छा शिक्षाविद्, अच्छा लोक सेवक, आदि रखना चाहिये। परंतु यदि हम "आधे" शब्द को यहां बनाये रखते हैं तो हमारे किये न ही केंद्र में अथवा न ही प्रांतों में उचित रूप से गठित लोक सेवा आयोग रखना संभव होगा।

मेरे नाम में जो अगला संशोधन है वह इस प्रकार है जो कि मैं प्रस्तुत कर रहा हूं:

"That in clause (2) of the proposed article 285, the words 'in the case of the Union Commission the age of sixty-five years and in the case of a State Commission or a Joint Commission' be deleted."

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285 के खंड (2) में 'यदि वह संघ आयोग है तो पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक तथा यदि यह राज्य आयोग या संयुक्त आयोग है तो', शब्दों का लोप किया जाये।"

इस प्रकार, इन शब्दों का लोप किये जाने के पश्चात् इस खंड का पाठ यह होगा:

"लोक सेवा आयोग का सदस्य, अपने पद ग्रहण की तारीख से छ: वर्ष की अवधि तक अथवा साठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक इसमें से जो भी पहिले हो, अपना पद धारण करेगा।"

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि सेवानिवृत्ति की आयु संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्य लोक सेवा आयोगों दोनों के मामले में एक समान हो। मुझे इसका कोई कारण नजर नहीं आता कि इन दोनों मामलों में सेवानिवृत्ति की आयु भिन्न-भिन्न क्यों हो। यदि कोई व्यक्ति राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में साठ वर्ष की आयु प्राप्त होने पर काम करते रहने के अयोग्य हो जाता है, तो निश्चय ही वह संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य के अधिक दूभर तथा अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिये कैसे अधिक योग्य हो सकता है। यदि वह एक स्थान पर साठ वर्ष की आयु प्राप्त होने पर काम करने के लिये अयोग्य है तो निश्चय ही वह एक अपेक्षाकृत उच्च निकाय में काम करने के लिये भी अयोग्य है। अत: मेरा विचार है कि यदि किसी अन्य कारण से

नहीं तो कम से कम एक समानता के लिए तो वह आवश्यक है कि दोनों मामलों में सेवानिवृति की आयु साठ वर्ष होनी चाहिए।

मेरा तीसरा संशोधन है:

"That Clause (3) of the proposed article 285 be deleted."

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285 का खंड (3) निकाल दिया जाये।"

खंड (3) का पाठ इस प्रकार है:

"कोई व्यक्ति जो लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में पद धारण करता है, अपनी पदावधि की समाप्ति पर इस पद पर पुनर्नियुक्ति के लिये अपात्र होगा।"

मैं इसका निकाला जाना इसलिये नहीं चाहता कि मैं खंड की विषय-वस्तु के विरुद्ध हूं, परंतु इसलिये चाहता हूं कि वह अनुच्छेद 285-ग, जिसे कि डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किया है और जो कि अनुच्छेद 285 का भाग है, की दृष्टि से बिल्कुल फालतू तथा अनावश्यक है। अनुच्छेद 285-ग के अंतर्गत यह विशिष्टता उपबंधित है कि किसी लोक सेवा आयोग के सेवानिवृत्त होने वाले सदस्य कौन-कौन सी नौकरी ग्रहण कर सकते हैं। इसके विभिन्न खडों के अंतर्गत-जिन्हें मुझे यहां पढ़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये अत्यंत स्पष्ट हैं—लोक सेवा आयोग के सेवानिवृत्त होने वाले सदस्य के लिए उसी पद पर पुनर्नियुक्ति संभव नहीं है। निसंदेह, वह भिन्न-भिन्न लोक सेवा आयोगों के अन्य पदों पर नियुक्त हो सकता है, परंतु वह उसी पद पर पुनर्नियुक्त नहीं हो सकता है जोकि उसने रिक्त किया है। अत: इस अनुच्छेद का खंड (3) बिल्कुल अनावश्यक है तथा इस अनावश्यक खंड को बनाये रखकर संविधान पर बोझ नहीं डालना चाहिये।

मेरे नाम में अगला संशोधन है, संशोधन संख्या 10 (सूची 1, पंचम सप्ताह)।

***अध्यक्ष:** संशोधन 8 के बारे में क्या है?

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं संशोधन संख्या 8 प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसका संबंध मूल अनुच्छेद से है जैसा कि वह प्रस्तुत किया गया है, परंतु अब उसे त्याग दिया गया है और इसलिए अब इस संशोधन का कोई स्थान नहीं रह गया है।

मैं अब संशोधन संख्या 10 प्रस्तुत करता हूं और वह इस प्रकार है:

"That in clause (b) of the proposed new article 285-B, the following words be inserted at the beginning:—

'in consultation with the Chairman of the Public Service Commission concerned.' "

[श्री जसपतराय कपूर]

"कि प्रस्तावित नए अनुच्छेद 285-ख क उप-खंड (ख) में आरंभ में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'सम्बन्धित लोक सेवा आयोग के सभापति के परामर्श से'।"

इस प्रकार अनुच्छेद 285-ख के खंड (ख) का पाठ यह होगा:

"संघ-आयोग या संयुक्त आयोग के बारे में राष्ट्रपति तथा राज्य आयोग के बारे में उस राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख विनियमों द्वारा—

(ख) सम्बन्धित लोक सेवा आयोग के सभापति के परामर्श से आयोग के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों की संख्या से तथा उनकी सेवा की शर्तों के संबंध में उपबंध कर सकेगा।"

मेरे विचार में मेरा यह संशोधन आसानी से स्वीकार कर लिया जाना चाहिये क्योंकि इसके द्वारा केवल यह उपबंध करने का प्रयास किया गया है कि आयोग के कर्मचारिवृन्द की नियुक्ति करते समय तथा उनके वेतन तथा सेवा की शर्तों आदि निर्धारित करते समय, यदि किसी अन्य कारण से नहीं तो शिष्टाचार के नाते, यथास्थिति, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा शासक द्वारा सम्बन्धित लोक सेवा आयोग के सभापति से परामर्श किया जाना चाहिये। यह केवल शिष्टाचार के नाते ही नहीं किया जाना चाहिये, बल्कि मेरे विचार में इससे अत्यन्त लाभदायक प्रयोजन सिद्ध होगा। इन आयोगों के सभापति ही वे सर्वोत्तम व्यक्ति हैं जो यह जानते हैं कि आयोगों की आवश्यकता क्या है और वे अपने कर्मचारिवृन्द में किए प्रकार के व्यक्ति चाहते हैं तथा कर्मचारियों की संख्या, वेतन और सेवा की शर्तें क्या होनी चाहिए। उच्च न्यायालय के कर्मचारिवृन्द, नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कर्मचारिवृन्द तथा अन्य मामलों में यह प्रावधान किया गया है कि जबकि नियुक्ति तो राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा की जानी है परंतु कार्यालय के प्रमुख से परामर्श किया जाना चाहिये। यह एक आवश्यक तथा लाभप्रद प्रावधान है और मेरे विचार में हमें यह प्रावधान यहां अनुच्छेद 285-ख में भी अवश्य रखना चाहिए।

महोदय, मेरा अगला संशोधन है, संशोधन संख्या 11 और इसका पाठ इस प्रकार है:

"That in the proposed new article 285-C.

(i) for the word employment wherever it occurs the words 'office of profit' be substituted; and

(ii) in clause (d) after the words 'State Public Service Commission' where they occur for the second time, the words or as a member of any other State 'Public Service Commission' be inserted."

(i) ["कि प्रस्तावित नए अनुच्छेद 285-ग (i)—में नौकरी शब्द जहां-जहां भी आया है, के स्थान पर 'लाभ का पद' शब्द रखे जाएं; और

(ii) खंड (घ) में 'अथवा उसी या किसी अन्य राज्य लोक सेवा के सभापति के रूप में' शब्दों के पश्चात् 'अथवा किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में' शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।"]

मैं इन दोनों संशोधनों को एक-एक करके लूंगा। अनुच्छेद 285 में हमने सभी स्भानों पर "नौकरी" शब्द रखा है। इसका आशय यह है कि सेवानिवृत्त होने के पश्चात् आयोग का कोई सदस्य केंद्रीय अथवा प्रांतीय आयोगों द्वारा उस हैसियत के सिवाय जोकि स्वयं इस अनुच्छेद में उल्लिखित है, किसी भी प्रकार की अन्य हैसियत में नौकरी पर नहीं रखा जायेगा। यह एक अन्यन्त स्वस्थ प्रावधान है और मैं इसका पूरा समर्थन करता हूं। मैं चाहता हूं कि इसके क्षेत्र को उस सीमा तक बढ़ा दिया जाये जिसका उल्लेख मैं बाद में उस समय करूंगा जबकि मैं एक और संशोधन प्रस्तुत करूंगा। परंतु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों को यह छूट क्यों न रहे कि वे लोक सेवा आयोगों के सेवानिवृत्त होने वाले सदस्यों की सेवाओं का उपयोग अवैतनिक हैसियत में कर सकें। मैं यह मानकर चलता हूं कि "नौकरी" शब्द में सभी नौकरियां आ जाती हैं, चाहे वे वैतनिक हों अथवा अवैतनिक। यदि सामान्यतया भी नौकरी शब्द से यह समझा जाता है कि इसके लिये कुछ वेतन रखा गया है तो भी मेरा विचार है कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए यह ठीक रहेगा कि इसके स्थान पर "लाभ का पद" शब्द रखे जायें। इस विषय में मेरी दृढ़ राय है कि ऐसे लोगों से, जो कि लंबी अवधि तक काफी ऊंचे वेतनों पर सरकारी सेवा में रहे हों और अब अच्छी-खासी पेंशन पाते हों, यह आशा भी की जानी चाहिये कि वे राज्य तथा समाज को अपनी अवैतनिक सेवा भी प्रदान करें। अत:, मेरा विचार है कि मेरे इस संशोधन को स्वीकार करना आवश्यक है।

मैंने जो अगला संशोधन प्रस्तुत किया है वह यह है:

"कि खंड (घ) में 'अथवा इसी या किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में' शब्दों के पश्चात् 'अथवा किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में' शब्द अन्त:स्थापित किये जायें।"

तत्पश्चात् इस खंड का पाठ इस प्रकार होगा: "किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के अतिरिक्त अन्य कोई सदस्य संघ लोक सेवा आयोग के सभापति या किसी अन्य सदस्य के रूप में अथवा उसी या किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में अथवा किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में................।" इस संशोधन का आशय यह है कि किसी राज्य लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य उस आयोग के सदस्य के रूप में अपने पद से हटने के पश्चात् किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिये पात्र हो सके। खंड (घ) में हम देखते हैं कि किसी राज्य लोक सेवा आयोग का सभापति किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वह एक समानान्तर

[श्री जसपतराय कपूर]

पद पर नियुक्ति के लिए पात्र होगा। इसी के सादृश्य के आधार पर मेरे विचार से किसी राज्य लोक सेवा आयोग से सेवानिवृत्त होने वाला कोई सदस्य किसी अन्य राज्य लोक सेवा आयोग में किसी अन्य समानांतर पद पर नियुक्ति के लिये पात्र होना चाहिए। आयोग में किसी अन्य समानांतर पद पर नियुक्ति के लिये पात्र होना चाहिए। किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति तथा उसके किसी सदस्य के बीच भेदभाव करने का मुझे कोई कारण नज़र नहीं आता।

अध्यक्ष महोदय, अब मेरा अंतिम संशोधन इस प्रकार है। माननीय सदस्यों के पास इसकी प्रतियां नहीं होंगी क्योंकि यह संशोधन मैंने आज प्रात: सत्र आरंभ होने से पूर्व दिया था। संशोधन का पाठ इस प्रकार है:

'कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 285-ग के अंत में यह परंतुक जोड़ा जाये:—

'Provided that a member's total period of employment in the different Public Service Commissions shall not exceed twelve years.' "

["परंतु यह कि भिन्न-भिन्न लोक सेवा आयोगों में किसी सदस्य की नौकरी की कुल अवधि 12 वर्ष से अधिक नहीं होगी।"]

यह संशोधन मेरे अन्य संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है। मेरे इस दृष्टिकोण की पुष्टि उस समय हुई जब मैंने डॉ. अम्बेडकर को आज प्रात: सुना, जब वह अपना संशोधन प्रस्तुत कर रहे थे। अनुच्छेद 285 के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि कोई सदस्य किसी लोक सेवा आयोग के सदस्य का पद छ: वर्ष से अधिक धारण नहीं करेगा। निसंदेह इसका प्रावधान अनुच्छेद 285 के खंड (3) में अंशत: किया गया है। परंतु उस खंड में केवल उसी पद के लिए पुनर्नियुक्ति का उल्लेख है। जहां तक अन्य पदों का संबंध है वह खंड लागू नहीं होता। अत: अनुच्छेद 285-ग के अनुसार लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य किसी एक या दूसरे लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में कितने ही वर्षों तक रह सकता है। मैं 'कितने ही वर्षों तक' इसलिए कह रहा हूं क्योंकि कोई व्यक्ति छ: वर्षों तक राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य हो सकता है। इसके पश्चात् वह अन्य छ: वर्षों तक किसी राज्य लोक सेवा आयोग का सभापति बन सकता है कुल मिलाकर बारह वर्ष हो जाते हैं। इसके पश्चात् वह फिर छ: वर्षों की तीसरी पदावधि के लिए किसी अन्य लोक सेवा आयोग का सभापति बन सकता है और इस प्रकार उसका सेवाकाल कुल मिलाकर उठारह वर्ष हो सकता है। इसके पश्चात् वह छ: वर्षों तक संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य बन सकता है और उसकी कुल सेवा 24 वर्षों की हो जाती है। फिर यदि भाग्य ने उसका साथ दिया तो वह अगले छ: वर्षों के लिए संघ लोक सेवा आयोग का सभापति बन सकता है। इस प्रकार वह तीस वर्षों तक अथवा 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक सेवा में बना रह सकता है। मेरा निवेदन है कि यह कोई संतोषप्रद स्थिति नहीं है। मैं आशा करता हूं कि प्रारूप समिति का भी यह आशय नहीं है, तथा डॉ. अम्बेडकर का तो तनिक भी नहीं कि सरकार के लिए यह छूट रहे कि वह लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को, जोकि सरकार की इच्छाओं तथा अभिरूचियों के अनुसार काम करता रहे, अनुग्रहीत करती रहें।

निसंदेह यह अनुच्छेद लोक सेवा आयोग के सेवानिवृत्त होने वाले सदस्यों की नौकरी पर रोक लगाने का दिखावा करता है। परंतु जब हम सावधानीपूर्वक इसका विश्लेषण करते हैं, तो हमें पता चलता है कि जहां तक इसके सार का संबंध है, मात्र दिखा ही दिया गया है। हम देखते हैं कि सरकार किसी व्यक्ति को लोक सेवा आयोग में, निसंदेह, भिन्न-भिन्न लोक सेवा आयोगों में कितनी भी अवधि तक बनाए रख सकती है। मैं इस अनुच्छेद को जैसा कि इस समय इसका रूप है इससे भी अधिक घिनावना समझता हूं कि यदि ऐसा प्रवाधान होता कि लोक सेवा आयोग के सदस्य स्थायी सरकारी कर्मचारी होंगे जब तक कि वह पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त नहीं हो जाते।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: जब तक कि उनका देहावसान नहीं हो जाता।

*श्री जसपतराय कपूर: यदि वे स्थायी होंगे, तो वे अपनी भावी नौकरी के लिए राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल की ओर नहीं ताकेंगे और जहां तक राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल का संबंध है, वे केवल अपने मंत्रिमंडलों के परामर्श पर कार्य करेंगे। यदि लोक सेवा आयोग के सदस्य स्थायी होंगे, तो उन्हें अपने भविष्य के लिए सरकार की कृपा की आशा नहीं करनी होगी और वे बिल्कुल स्वाधीन रहकर कार्य करेंगे। वे न तो सरकार की मुस्कराहटों के पीछे भागेंगे और न ही सरकार की अप्रसन्नता से भयभीत होंगे। परंतु जैसी कि व्यवस्था इस समय है, जब छः वर्षों की अवधि समाप्त होने को होगी, तो वे तत्कालीन सरकार की ओर देखेंगे कि उन्हें किसी अन्य लोक सेवा आयोग में पुनर्नियुक्त किया जाए और इसलिए उनसे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे पूर्णतः स्वाधीन तथा निष्पक्ष रूप में कार्य करेंगे, जिस रूप में कि मैं आशा करता हूं, निश्चय ही डॉ. अम्बेडकर उनके द्वारा काम लिया जाना पसंद करेंगे। अतः यह आवश्यक है कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों के समक्ष प्रत्येक छः वर्षों की अवधि के पश्चात् पुनर्नियुक्ति का यह प्रलोभन न रखा जाए। यदि डॉ. अम्बेडकर का वास्तव में यह आशय है कि सेवा की अवधि छः वर्षों से अधिक न हो तो मैं बिल्कुल यही चाहूंगा कि मैं अपने संशोधन में "बारह वर्ष" के स्थान पर "छः वर्ष" रखूं, परंतु यदि आशा यह नहीं है तो मेरे विचार में यह आवश्यक है कि मैंने जो संशोधन प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार कि उनकी सेवा को बारह वर्षों तक तथा इससे अधिक नहीं, सीमित रखा है, उसे स्वीकार किया जाए।

महोदय, ये विभिन्न संशोधन हैं जो मैंने प्रस्तुत किए हैं और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर उन पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे तथा उन्हें स्वीकार करेंगे, यदि सभी को नहीं तो कम से कम ऐसे संशोधनों को जोकि इनमें अधिक महत्वपूर्ण हैं।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्त प्रांतः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित नए अनुच्छेद 285-ख के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

Conditions of Service of members and staff of the Commission.

285.-B. (1) In the case of the Union Commission or a Joint Commission, the President and, in the case of a State Commission, the Governor or Ruler of the State may, by

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

regulations, determine the number of members of the Commission and their conditions of service and the number of members of the staff of the Commission:

Provided that conditions of service of a member of a Public Service Commission shall not be altered to his disadvantage after his appointment.

(2) Appointments of the members of the staff of a Public Service Commission shall be made, and the Conditions of service of those members shall be such as may be prescribed, by the Chairman of the Commission of such other member of the Commission as the Chairmn may direct:

Provided that the conditions of service prescribed under this clause shall, so far as they related to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval, in the case of the Union Commission or a Joint Commission of the President and in the case of a State Commission, of the Governor or Ruler of the State."

['285.ख आयोग के सदस्यों और कर्मचारिवृन्द की सेवा की शर्तें

(1) संघ आयोग या संयुक्त आयोग के बारे में राष्ट्रपति तथा राज्य आयोग के बारे में उस राज्य का राज्यपाल या शासक विनियमों द्वारा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा की शर्तों का और आयोग के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों की संख्या का निर्धारण कर सकेगा:

परन्तु लोक सेवा आयोग के सदस्य की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी परिवर्तन न किया जायेगा।

(2) लोक सेवा आयोग के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों को नियुक्ति आयोग के सभापति अथवा आयोग के किसी ऐसे सदस्य द्वारा, जिसे कि सभापति निदेश दे, की जायेगी तथा ऐसे सदस्यों को सेवा की शर्तें इनके द्वारा विहित की जायेंगी:

परन्तु इस खण्ड के अन्तर्गत विहित सेवा की शर्तों के लिए, जहां तक कि उनका सम्बन्ध वेतनों, भत्तों, अवकाश अथवा पेंशनों से है, संघ आयोग अथवा संयुक्त आयोग के बारे में राष्ट्रपति का तथा राज्य आयोग के बारे में राज्यपाल या शासक का अनुमोदन अपेक्षित होगा।"]

महोदय, मेरे संशोधन का प्रयोजन बिल्कुल साधारण है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद 285-ग में यह नहीं कहा गया है कि लोक सेवा आयोग के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों की नियुक्ति किस प्रकार है। मेरा संशोधन उस कमी को दूर करता है। इसमें निर्धारित किया गया है कि लोक सेवा आयोग के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों की नियुक्ति या तो आयोग के सभापति द्वारा अथवा आयोग के किसी ऐसे अन्य सदस्य द्वारा की जायेगी जिसे कि वह इसके लिए प्राधिकृत करे। सदन को याद होगा कि उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को अपने कर्मचारिवृन्द के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। उच्चतम न्यायालय के मामले में उनकी

नियुक्ति या तो मुख्य न्यायाधीश द्वारा की जायेगी अथवा किसी ऐसे अन्य न्यायाधीश द्वारा की जायेगी जिसे कि वह इस सम्बन्ध में प्राधिकृत करे। ऐसा ही उपबन्ध उच्च न्यायालयों के कर्मचारिवृन्द के सदस्यों के नियुक्ति के सम्बन्ध में किया गया है। लोक सेवा आयोग चूंकि बहुत महत्वपूर्ण निकाय होंगे अत: यह वांछनीय है कि अपने कर्मचारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में उन्हें वैसी ही स्वतन्त्रता प्रदान की जाये जैसी कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को अपने कर्मचारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्राप्त होगी।

लोक सेवा आयोगों की महत्ता स्पष्ट है। वे राज्य के अधीन पदों के लिये भर्ती विषयक कार्य करेंगे। परिणामत: राज्य के प्रशासन की कुशलता इस बात पर निर्भर करेगी कि उसकी सेवाओं के लिये भर्ती किस रीति से की जाती है। अत: यह बात अन्यन्त महत्वपूर्ण है कि भर्ती करने वाले निकाय को, कतिपय सीमाओं में रहते हुये, यथासम्भव अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। अत: मैं प्रस्ताव करता हूं कि किसी लोक सेवा आयोग के कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति उस आयोग के सभापति द्वारा की जाये अथवा नियुक्तियां करने के लिये उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य अन्य सदस्य द्वारा की जाये।

दूसरी बात जिस पर मेरे संशोधन और डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद 285-ख में अन्तर है वह लोक सेवा आयोग के कर्मचारीवृन्द की सेवा की शर्तों के निर्धारण की है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद में इस सम्बन्ध में सब शक्तियां संघ और संयुक्त आयोगों के मामले में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी हैं और राज्य लोक सेवा आयोग के मामले में राज्यों के राज्यपालों और शासकों को प्रदान की गयी है। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को सेवा की शर्तों का निर्धारण क्रमश: राष्ट्रपति के और सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल के अनुमोदन से करने की शक्ति प्रदान की गयी है। ऐसी ही प्रक्रिया का यहां भी पालन नहीं किये जाने का कोई कारण नहीं है। यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, जो भी इस विषय के सम्बन्ध में कार्य करेगा, यदि वह न्यायप्रिय है और चाहता है कि लोक सेवा आयोग के कर्मचारी कार्यक्षम एवं संतुष्ट हों तो वह सम्बन्धित लोक सेवा आयोग से परामर्श करेगा। यही तर्क उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के सम्बंध में भी दिया जा सकता था, परन्तु इन निकायों को राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा शासक, जैसी भी स्थिति हो, के अनुमोदन से अपने कर्मचारियों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने की शक्ति प्रदान की गयी है। लोक सेवा आयोग और इन निकायों के बीच इस संबंध में भेद करने का कोई कारण नहीं है। अत: मेरा प्रस्ताव है कि लोक सेवा आयोग को अपने कर्मचारियों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए परन्तु जहां तक उनकी सेवा की शर्तों का सम्बन्ध उनके वेतन, भत्तों, अवकाश अथवा पेंशन से हो उस बारे में उसे राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा शासक का अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए मेरे माननीय मित्र श्री जसपत राय कपूर ने भी इस विषय पर एक संशोधन पेश किया है। उनके संशोधन का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति तथा राज्यों के राज्यपाल तथा शासक इन मामलों में निर्णय लेने से पूर्व अपने-अपने लोक सेवा आयोगों से परामर्श करें। मैं एक कदम और आगे बढ़कर कहता हूं कि प्रारम्भ में ही शक्ति सेवा आयोगों को प्राप्त होनी चाहिये, परन्तु उनके लिये यह अपेक्षित होना चाहिये कि वे वेतन, भत्ते और अवकाश एवं पेंशन का निर्धारण राष्ट्रपति, राज्यपाल या शासक, जैसी भी स्थिति हो, के अनुमोदन से करें। मैं समझता हूं कि किसी अन्य कारण से नहीं, तो कम से कम समरूपता लाने के लिये और

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

यह दर्शाने के लिये कि संविधान सभा यह नहीं चाहती कि लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय के दर्जे में कोई अन्तर हो, मेरा संशोधन स्वीकार करना वांछनीय है जो श्री जसपत राय कपूर के संशोधन से बेहतर है। अत: मैं आशा करता हूं कि सदन मेरा संशोधन स्वीकार करेगा।

महोदय अब मैं उन दो उपबन्धों के विषय में कुछ शब्द कहना चाहूंगा जो डॉ. अम्बेडकर ने सदन में पेश किये हैं। उनके द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद के अनुसार यह अपेक्षित है कि किसी लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य रहने के पश्चात उस आयोग में पद धारण नहीं करेगा। उन्होंने प्रस्ताव किया है कि लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य अपनी पदावधि पूरी कर लेने पर उस पद पर अग्रेतर नियोजन के लिये अपात्र होगा। इस उपबन्ध की आलोचना की गयी है। तथापि, मैं पूर्णतया इसके पक्ष में हूं। लोक सेवा आयोग स्वतन्त्र निकाय होना चाहिये। इसके सदस्य इस स्थिति में नहीं होने चाहिए कि कोई काम कराने के लिए कार्यपालिका की ओर देखें। यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित उपबन्ध रखा जाता है तो ऐसी आशंका नहीं रहेगी कि लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य कार्यपालिका की इच्छाओं पर निर्भर करे चूंकि वह अपनी पदावधि बढ़वा नहीं सकेगा अत: उससे यह आशा की जा सकती है कि वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन स्वतन्त्रतापूर्वक एवं निर्भीक भाव से करेगा। परन्तु, यदि आयोग के सदस्यों की पदावधि बढ़ाये जाने का उपबन्ध किया जाता है अथवा यदि उसकी पुनर्नियुक्त के लिये उपबन्ध किया जाता है तो इस बात की पूरी आशंका रहेगी कि लोक सेवा आयोगों के सदस्य अपनी पुनर्नियुक्ति कराने के लिये कार्यपालिका की चापलूसी करने का प्रयास करेंगे। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित उपबन्धों में कोई परिवर्तन किये जाने के पक्ष में नहीं हूं।

इसके पश्चात् मैं लोक सेवा आयोगों के सभापति और सदस्यों की राज्य के अधीन पुनर्नियुक्ति के लिये पात्रता का उल्लेख करना चाहूंगा अनुच्छेद 285 (ग) के उपबन्धों की दो प्रकार से आलोचना की गयी है, अर्थात् यह कि वे अनावश्यक रूप से व्यापक हैं या कि कुछ मामलों में ये अनावश्यक रूप में संकीर्ण हैं। मेरे माननीय मित्र श्री जसपत राय कपूर ने सुझाव दिया है कि लोक सेवा आयोग के सदस्य या सभापति को अवैतनिक आधार पर राज्य की सेवा करने से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। मैं मानता हूं कि मैंने इस विषय पर पहले कभी विचार नहीं किया था, परन्तु जब उनके बोलते समय मैंने इस पर विचार किया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक तर्कसंगत सुझाव दे रहे हैं। संयुक्त प्रान्त में एक अथवा दो मामलों में यह इच्छा व्यक्त की गयी कि लोक सेवा आयोग के सभापति को उसकी सेवानिवृति पर अवैतनिक आधार पर उपयोगी ढंग से पुनर्नियुक्त किया जा सकता है। वह व्यक्ति योग्य था और यह सोचा गया कि लोगों को उसकी सेवाओं से पूर्ण रूप से वंचित नहीं किया जाना चाहिये। अत: मैं इस विषय पर श्री कपूर द्वारा व्यक्त किये गये विचार से सहमत हूं।

तथापि, अनुच्छेद 285 (ग) में अन्य संशोधनों का जो सुझाव उन्होंने दिया है उससे मैं सहमत नहीं हूं। मैं समझता हूं कि प्रारूप संविधान में अन्तर्विष्ट तत्स्थानी अनुच्छेद से इस अनुच्छेद में सुधार हुआ है। इसमें एक आयोग के सदस्य को किसी अन्य आयोग के अध्यक्ष पद को स्वीकार करने की अनुमति दी गयी है चाहे वह किसी राज्य का आयोग हो अथवा संघ आयोग। यह आशंका व्यक्त की गयी थी कि यदि ऐसा अनुबन्ध किया गया तो लोक सेवा आयोगों के सदस्य

कार्यपालिका के चहेते बनकर एक के बाद दूसरे लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने का प्रयास करते रह सकते हैं। इस विषय में ध्यान देने वाली बात यह है कि लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष पद ऐसा पद है जिसके लिये बड़े अनुभव और योग्यता की आवश्यकता है यदि ऐसा समझा जाता है कि किसी व्यक्ति ने किसी आयोग के सदस्य के रूप में अथवा अध्यक्ष के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन इतनी अच्छी तरह से किया है कि उसे किसी अन्य आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त करना न्यायोचित होगा तो मेरी समझ में नहीं आता है कि इस पर कोई आपत्ति क्यों होनी चाहिये। यह तो देश के लिये उपयोगी है कि आयोग के सदस्य की स्वतन्त्रता कम किए बिना उसकी सेवा में निपुण सिद्ध क्षमता का उपयोग किया जाये। यह उपबन्ध करने का प्रस्ताव कि किसी आयोग का सदस्य उसी आयोग का दो पदावधियों के लिए सदस्य रह सकता है, एक भिन्न प्रकार का प्रस्ताव है चूंकि इस उपबन्ध में सदस्य की स्वतंत्रता में अवश्य बाधा पड़ेगी। परन्तु यदि किसी राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को किसी अन्य राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है तो ऐसी कोई आशंका नहीं हो सकती कि उसकी पुनर्नियुक्ति उसके राज्य के प्रीमियर अथवा राज्यपाल की सिफारिश से हुई है। अत: मैं नहीं समझता कि जिस उपबन्ध की आलोचना की गयी है उसमें कोई संशोधन करना आवश्यक है।

मैं समझता हूं कि सदन को वर्तमान अनुच्छेदों को इसी रूप में स्वीकृत करना चाहिये, सिवाय उस संशोधन के जिसका सुझाव श्री कपूर ने दिया है। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर श्री कपूर द्वारा किये गये इस सुझाव को स्वीकार करने का उपाय ढूंढ निकालेंगे कि लोक सेवा आयोग के सेवानिवृत सदस्यों को अवैतनिक आधार पर देश की सेवा करने से वंचित नहीं किया जाना चाहिये।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ क्या मैं जान सकता हूं कि नौकरी की अवधि बारह वर्षों तक सीमित करने विषयक मेरे सुझाव के बारे में माननीय सदस्य पंडित कुंजरू का क्या विचार है?

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ उस विषय में मैं अपने विचार व्यक्त कर चुका हूं कि किसी लोक सेवा आयोग के सदस्य को निरन्तर एक के बाद दूसरे आयोग का अध्यक्ष नियुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये तो वह 18 वर्षों तक नौकरी में रह सकता है। यदि आयोगों के सभापति पद पर नियुक्ति करना केन्द्रीय सरकार के अधिकार में होता तो तब मेरे माननीय मित्र, श्री कपूर की आपत्ति मान्य हो सकती थी। परन्तु राज्यों के आयोगों के सभापति पद के सम्बन्ध में नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी एक ही नहीं होगा। प्रत्येक आयोग के लिये नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी अलग-अलग होगा। परिणामतया यह आशंका नहीं होनी चाहिए कि किसी लोक सेवा आयोग के सभापति की पदावधि पूरी हो जाने के पश्चात् किसी अन्य आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने के लिए उस पर कार्यपालिका कोई अनुचित प्रभाव डाल सकेगी अथवा वह पूरी स्वतन्त्रता से अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करेगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ अध्यक्ष महोदय, मेरे पास बहुत से ऐसे संशोधन हैं परन्तु मैं एक ही संशोधन पेश करना चाहता हूं। मेरी इच्छा है कि उसे अब पेश कर दूं और अन्त में सामान्य चर्चा में भाग लूं। इससे बड़ी सुविधा होगी। वास्तव में अनेक प्रकार की धारायें है और अनेक प्रकार के संशोधन हैं जिसमें से अधिकांश

संभवतया पेश भी न किये जायें। यदि आप मुझे इसकी अनुमति दें तो बड़ी सुविधा होगी।

*__अध्यक्ष:__ आप कौन सा संशोधन पेश करना चाहते हैं?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मैं केवल संशोधन संख्या 69 पेश करूंगा। यह लगभग प्रारूपण सम्बन्धी संशोधन है। परन्तु मैं इसे महत्वपूर्ण समझता हूं। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची-1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 285-क के खंड 1 में 'shall only be removed from office by order of the President on the ground of misbehaviour' (केवल राष्ट्रपति द्वारा कदाचार के आधार दिये गये उस आदेश पर ही हटाया जायेगा)' शब्दों के स्थान पर 'may be removed from office by order of the President only on the ground of misbehaviour (राष्ट्रपति द्वारा केवल कदाचार के आधार पर दिये गये उस आदेश पर हटाया जा सकेगा)' शब्द रखे जायें।"

क्या आप मुझे अनुमति देंगे कि मैं सभी संशोधन पेश किये जाने के पश्चात् अपने संशोधन के विषय में कुछ कहूं?

*__अध्यक्ष:__ ठीक है।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज सदन हमारे संविधान के एक महत्वपूर्ण अध्याय पर विचार कर रहा है। जब से हम देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के साथ दो वर्ष पूर्व स्वतन्त्र हुये हैं, हमने देखा है कि अधिकांश लोक सेवाओं में काफी ह्रास हुआ है और सेवाओं की स्वच्छता और उनकी प्रशासनिक कुशलता का प्रश्न पहली बार इतने विशिष्ट रूप से हमारे सामने आया है। अत: मैं समझता हूं कि इस अध्याय पर जितने ध्यान से हम विचार करेंगे उतना ही हमारे देश के भविष्य के लिये हितकर होगा।

मैंने चार संशोधनों की सूची दी है जो मैं अब आपकी अनुमति से, सदन में पेश करूंगा। मैं आपसे और सदन से क्षमा चाहूंगा कि मैंने आज प्रात: ही संशोधनों की सोचना दी है, जिस कारण मेरे साथियों को मेरे संशोधनों की प्रतियां उपलब्ध नहीं करायी जा सकीं। इसका सारा दोष मेरा ही है। मैं अपने माननीय मित्रों से अपील करूंगा कि जैसे-जैसे मैं अपने संशोधनों का पाठ सदन में पढ़ूं, वैसे-वैसे वे इन्हें समझें।

मेरा प्रथम संशोधन इस प्रकार है:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खण्ड 1 के, परन्तुक 'at least one half (कम से कम आधे)' शब्दों के स्थान पर 'not more than one half (आधे से अनधिक)' शब्द रखे जायें।"

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खण्ड 1 में 'misbehaviour or of infirmity of mind or body'

(कदाचार के या मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य के)' शब्दों के स्थान पर 'misdemeanour or incapacity (उपापराध या असमर्थता)' शब्द रखे जायें।"

मेरे तीसरे संशोधन के दो विकल्प हैं यदि सदन को स्वीकार्य न हो तो मैं आग्रह करूंगा कि दूसरे विकल्प को स्वीकार किया जाये। पहला इस प्रकार है:

"That in amendment No. 3 of List 1 (Fifth Week), sub-clause (b) of clause (3) of the proposed article 285-A be deleted."

["कि सूची 1, (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खण्ड 3 के उपखण्ड (ख) को निकाल दिया जाये।"]

या यदि यह सदन को स्वीकार्य न हो तो इसका विकल्प यह है:—

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के उसी खण्ड 3 (ख) में 'engages during his term of office in any body's employment (अपनी पदावधि में......... किसी की नौकरी करता है)' शब्दों के स्थान पर 'takes up during his term of office any other employment (अपनी पदावधि में........... कोई अन्य नौकरी करता है)' शब्द रखे जाएं।"

मेरा चौथा संशोधन इस प्रकार है:

"कि संशोधन संख्या 3 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 285-ख में 'the President' (राष्ट्रपति)' शब्द के स्थान पर 'the Parliament' (संसद)' शब्द रखा जाये तथा 'the Governor or Ruler' (राज्यपाल या शासक)' शब्दों के स्थान 'State Legislature' (राज्य विधान मण्डल)' शब्द रखे जायें।

यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 285-ख का पाठ इस प्रकार होगा:

संघ आयोग अथवा किसी संयुक्त आयोग के मामले में संसद तथा किसी राज्य आयोग के मामले में विधान मण्डल विनियमों द्वारा, इत्यादि।"

डॉ. अम्बेडकर द्वारा सदन में पेश किये गये अनुच्छेद में मेरे यही चार संशोधन हैं।

सभी पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि स्थायी सेवायें किसी देश के प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारे देश के स्वाधीन हो जाने पर सेवाओं के

[श्री एच.वी. कामत]

उत्तरदायित्व अधिक दुर्वह हो गये हैं। सेवायें प्रशासनतन्त्र की कुशलता बढ़ा सकती हैं या उसे समाप्त कर सकती हैं। इस तन्त्र की चाहे हम वैसी ही व्याख्या करें परन्तु यह देश की शान्ति एवं समृद्धि के लिये बहुत महत्व रखता है। देश के शीर्ष पदों पर आसीन लोगों के उत्साह के बावजूद असैनिक सेवाओं की कार्यकुशलता के बिना देश प्रगति नहीं कर सकता। अनुभव यह बताता है कि जहां कहीं भी लोकतान्त्रिक संस्थायें विद्यमान हैं वहां यह आवश्यक है कि लोक सेवाओं को, जहां तक सम्भव हो, राजनीतिक या वैयक्तिक प्रभाव से मुक्त रखा जाये और इनके लिये स्थायित्व एवं सुरक्षा की उस स्थिति की व्यवस्था की जाये जो निष्पक्ष एवं कुशल माध्यम के रूप में इसके सफलतापूर्वक कार्यकरण के लिये अत्यावश्यक है ताकि सरकार-चाहे उसका राजनीतिक स्वरूप कुछ भी हो—अपनी नीतियों को कार्यरूप दे सके। यह नितान्त आवश्यक है कि चाहे जो भी सरकार सत्ता में आये, उस समय पदारूढ़ सरकार द्वारा निर्धारित की जाने वाली नीति को स्थायी सेवायें कार्यरूप दें। जिन देशों में इस सिद्धांत की उपेक्षा की गयी है। और जहां व्यवस्था बिगड़ गयी है वहां निश्चित रूप से सेवा अकुशल एवं असंगठित हुई है और भ्रष्टाचार व्याप्त हुआ है और तत्सम्बन्धी अन्य दुष्परिणाम सामने आये हैं। अत: यह बात महत्वपूर्ण है कि जिन लोक सेवा आयोगों की हम इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत परिकल्पना कर रहे हैं वे केन्द्र में अथवा राज्यों में सरकार से पूर्णतया स्वतन्त्र हों। अन्यथा मुझे भय है कि असैनिक सेवाओं के अनुकूल रुख अपनाने से ही उन्हें पदोन्नतियां मिलेंगी, न कि योग्यता या कार्यकुशलता के आधार पर। मैंने प्राय: यह देखा है कि यदि किसी मन्त्री को सचिव ऐसी राय देता है जो उस मन्त्री के लिये रुचिकर नहीं होती तो मन्त्री उसका नाम काली सूची में रख देता है और भावी पदोन्नतियों के लिये उसके बारे में अनुकूल ढंग से विचार नहीं किया जाता। निसन्देह जब एक नीति निर्धारित की जाती है तो सरकारी कर्मचारियों को उसे कार्यरूप देना ही होता है। परन्तु मैं ऐसे उदाहरण जानता हूं कि जिनमें राय मांगी जाने पर जब सचिवों ने मन्त्रियों की नीतियों की आलोचना की तो उन्हें पसन्द नहीं किया गया। यह बहुत ही अवांछनीय है और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि ऐसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिये। अत: मैं समझता हूं कि यदि असैनिक कर्मचारियों को ऐसी आशंका हो जाये कि मंत्रियों के दबाव में काम करने से ही उनकी पदोन्नति हो सकती है और कि योग्यता तथा कार्यकुशलता का स्थान गौण है, यदि सिविल कर्मचारियों में ऐसी मनोवृत्ति पनप जाये तो सेवाओं में सभी स्तरों के अधिकारियों का मनोबल गिर सकता है।

मैंने अपना प्रथम संशोधन इसी दृष्टि से पेश किया है। प्रारूप में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक आयोग के कम से कम आधे सदस्य ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो या तो भारत सरकार की सेवा में या किसी राज्य सरकार की सेवा में रहे हों। श्री कपूर ने इस संख्या को कम करके न्यूनतम एक-तिहाई रखने के लिये एक संशोधन प्रस्तुत किया है। मेरे संशोधन का उद्देश्य इस संख्या को अधिकतम रखना है। सर्वदा ऐसा होता है कि संख्या बढ़ती चली जाती है और बढ़ते-बढ़ते पूर्ण संख्या का रूप ले लेती है और यदि यह अनुच्छेद पारित कर दिया है तो आयोग के सभी सदस्य ऐसे व्यक्ति नियुक्त होने में कोई बाधा नहीं होगी जो भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन पद धारण कर चुके होंगे। अत: मैं चाहता हूं कि यह न्यूनतम संख्या अधिकतम होनी चाहिये और किसी भी मामले

में अधिकतम से आगे नहीं बढ़ना चाहिये। यह हम से कम ऐसे लोगों द्वारा इन सेवा आयोगों को दिये जाने वाले महत्व के विरुद्ध एक रक्षोपाय होगा जो सरकारी सेवा में रहे हों और जो इस सरकारी प्रभाव की—मैं सम्पूर्ण छाया तो नहीं कहूंगा परन्तु खण्डछाया से आये हों, जो एक विशिष्ट दुष्चक्र में आ गये हों और जो सत्तारूढ़ सरकार के प्रति विशिष्ट मानसिक दृष्टिकोण द्वारा प्रभावित हो सकते हों। अत: लोक सेवा आयोगों की निष्पक्षता एवं स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिये मैंने यह संशोधन पेश किया है। जिसका परिणाम यह होगा कि न्यूनतम आधे कर्मचारियों की संख्या अधिकतम संख्या हो जायेगी और जहां तक सरकार के अधीन पदधारण कर चुके कर्मचारियों का सम्बन्ध है उनकी लोक सेवा आयोगों में संख्या आधे से अधिक किसी मामले में नहीं होगी।

जहां तक मेरे मित्र, श्री कपूर द्वारा कही गयी इस बात का संबंध है कि संघ आयोग और राज्य के आयोगों, दोनों के लिये 65 वर्ष की आयु घटाकर 60 वर्ष कर दी जानी चाहिये, मैं इससे भिन्न राय रखता हूं। मैं समझता हूं कि संघ आयोग और राज्यों के आयोगों दोनों के लिये 65 वर्ष की आयु निर्धारित कर दी जानी चाहिये। हम सब जानते हैं कि अंग्रेजों द्वारा सेवानिवृत्ति की आयु 55 वर्ष निर्धारित की गई थी जो वेतन आयोग की सिफारिश के अनुसार अब बढ़ाकर 58 वर्ष कर दी गयी है; और भारत में, सम्भवतया विश्व के अन्य देशों में भी, सामान्य प्रवृत्ति जीवन-काल बढ़ने की है और युवावस्था अधिक समय तक रहने की है अर्थात बीसवीं शताब्दी के प्रवृत्ति युवावस्था अधिक अवधि तक रहने की है। यद्यपि मैं इस विषय में यह कहने का साहस नहीं करूंगा कि क्या हम बर्नार्ड शॉ के "बैक टु मैथ्यु सोलाह" की ओर जा रहे हैं परन्तु औषध-विज्ञान एवं आहार-विज्ञान की आधुनिक पद्धतियों के कारण संसार भर में आयु दीर्घ हो रही है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** आहार-विज्ञान परन्तु आहार नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** जी हां। महोदय, यह कौन कह सकता है कि आज जो हमारे नेता हैं—महोदय, जिनमें आप भी शामिल हैं जो साठ वर्ष से अधिक आयु के हैं, वे श्रेय एवं गरिमा के साथ देश के उच्चतम पद को सुशोभित नहीं कर सकते? यदि ऐसा है तो कोई कारण नहीं कि लोक सेवा आयोगों के सभापति पद अथवा सदस्य पद के लिए आयु सीमा 60 वर्ष रखी जाये और सभापति अथवा सदस्यों से कहा जाए कि वे 60 वर्ष की कम आयु में सेवानिवृत्त हो जायें। मैं तो यह चाहूंगा कि दोनों आयोगों के लिये आयु सीमा समान हो और इसे बढ़ाकर 65 वर्ष किया जाये।

मेरा दूसरा संशोधन लगभग शाब्दिक है चूंकि इसका उद्देश्य "कदाचार" या मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य शब्दों के स्थान पर 'उपापराध या असमर्थता' शब्द रखने का है। संशोधन के बाद वाले भाग की पहले चर्चा करते हुए मैं सदन का ध्यान भारत के उपराष्ट्रपति को हटाये जाने के विषय में पारित किये गये अनुच्छेद की ओर आमन्त्रित करूंगा। वहां पर "असमर्थता" शब्द का प्रयोग किया गया है और इसका अभिप्राय मन और शरीर से है। "दौर्बल्य" शब्द मैं समझता हूं चिकित्सीय अथवा वैज्ञानिक शब्द है, न कि संवैधानिक शब्द। असमर्थता अधिक उपयुक्त शब्द रहेगा।

[श्री एच.वी. कामत]

जहां तक "कदाचार" शब्द का सम्बन्ध है, यह एक प्रकार से सामान्य बोल-चाल का शब्द है। परन्तु सदन विधि में तथा संवैधानिक विधि में अधिकारियों अथवा, अति विशिष्ट व्यक्तियों के "गम्भीर उपापराध" अभिव्यक्ति से परिचित है। अत: मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद में यहां जो विचार हम व्यक्त करना चाहते हैं वह कदाचार शब्द की अपेक्षा 'उपापराध' शब्द से कहीं अधिक अच्छी तरह व्यक्त होगा। परन्तु यह बात मैं संविधान का प्रारूप तैयार करने में व्यस्त कहीं अधिक बुद्धिमान लोगों पर छोड़ूंगा और मैं तो केवल उनसे अनुरोध करूंगा कि वे इस विषय में उतनी गम्भीरता से विचार करें जितनी गम्भीरता से इस पर विचार किया जाना वांछनीय है।

मेरा तीसरा संशोधन अनुच्छेद 285-क के उप-खण्ड (3) (ख) के सम्बन्ध में है। प्रथमत: यह उपखण्ड हटाये जाने के बारे में है चूंकि मेरा विनम्र विचार है कि यह बात "उपापराध" शब्द में आ जायेगी। कोई व्यक्ति यदि लोक सेवा आयोग का सभापति अथवा सदस्य का पद धारण करते हुए किसी अन्य स्थान पर नियुक्ति लेता है तो निश्चय ही उस पर उपापराध का आरोप लगाया जा सकता है। यदि यह विचार प्रारूप समिति के विशेषज्ञों को स्वीकार्य न हो तो मैं उनसे विनम्र निवेदन करूंगा, और मुझे विश्वास है कि वे महसूस करेंगे, कि ये शब्द 'any body' (किसी की)" कितने अस्पष्ट, बेढंगे और भद्दे हैं। मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि डॉ. अम्बेडकर अंग्रेजी भाषा का गहन ज्ञान रखते हुये भी इतने अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग कैसे कर गए। मुझे किसी भी संवैधानिक पुस्तक में "any body's employment (किसी की नौकरी)" जैसे भद्दे शब्द नहीं मिले। मैं समझता हूं कि "any other employment (कोई अन्य नौकरी)" शब्दों से यह विचार कहीं अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त होगा। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी भाषा के अपने अल्प ज्ञान के अनुसार मैं कह सकता हूं कि "engaging in an employment अभिव्यक्ति पूरी तरह सही नहीं है। आप नौकरी कर सकते हैं—यद्यपि मैं इस विषय में अपने संशोधन से भी पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हूं—परन्तु सामान्यतया आप कोई कार्य या सेवा करते हैं, परन्तु यह "engaging in an employment" कहना न तो शुद्ध अंग्रेजी भाषा है और न ही संवैधानिक भाषा। मुझे आशा है कि प्रारूप समिति के बुद्धिमान सदस्यों का ध्यान इस ओर भी जाएगा और जब वह अनुच्छेद अंतिम रूप में सदन के समक्ष जायेगा तो उसमें उन्होंने अपने विचार उपयुक्त भाषा में व्यक्त किये हुए होंगे।

मेरा अन्तिम संशोधन संख्या 4 सारगर्भित संशोधन है। इसका परिणाम यह होगा कि आयोगों के सदस्यों एवं कर्मचारियों की सेवा की शर्तों के विनियमन की शक्ति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा शासक के पास रहने की बजाए संसद और राज्य विधानमण्डलों में निहित होगी। मैं सदन से निवेदन करूंगा कि वह एक क्षण के लिए प्रारूप संविधान की अवस्था में अनुच्छेद 285 के मूल प्रारूप को देखें। सदन मूल अनुच्छेद 285 के खंड (2) को देखें। इसमें उपबन्ध है कि न केवल आयोग के सदस्यों की संख्या को प्रभावित करने वाले मामलों सम्बन्धी शक्तियां अपितु उनकी पदावधि, उनकी सेवा की शर्तों और आयोग के कर्मचारियों की संख्या के निर्धारण सम्बन्धी शक्तियां भी राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल में निहित होंगी। सदन देखेगा कि जिस रूप में यह प्रारूप हमारे समक्ष आज आया है और जिस रूप में यह मूल रूप में था उसमें कितना अंतर है। पदावधि निर्धारण सम्बन्धी शक्ति राष्ट्रपति

और राज्यपाल के अधिकार क्षेत्र से निकाल दी गयी है। अनुच्छेद 285 में हमने तीन आयोगों–संघ आयोग, राज्यों के आयोगों अथवा संयुक्त आयोगों—के सदस्यों की पदावधि के लिए उपबन्ध किया है। अनुच्छेद 285 का खण्ड (2) इसी विषय में है। इसका अर्थ यह है कि प्रारूप समिति ने इस विषय को, अर्थात् पदावधि के विषय को संविधान सभा के समक्ष पाने की आश्यकता महसूस की है। मैं चाहता हूं कि आयोगों के सदस्यों की संख्या से सम्बन्धित विषय और उनकी सेवाओं की शर्तें इन विषयों से सम्बन्धित विनियम आवश्यक रूप से या तो संसद पर या राज्य विधान-मण्डलों पर छोड़ दी जानी चाहिये। मैं इस प्रस्ताव पर एक क्षण के लिये भी आपत्ति नहीं करता कि नियुक्तियां राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति द्वारा यदि आवश्यक हो तो, विभिन्न लोक सेवा आयोगों के अध्यक्षों के परामर्श से की जानी चाहिये। परन्तु जहां तक इन मामलों का सम्बन्ध है, अर्थात कि आयोग के कितने सदस्य हों, उनकी और उनके कर्मचारियों की सेवा की शर्तें क्या हों—निस्सन्देह संसद इन व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं कर सकती—इन मामलों पर विचार करना और निर्णय करना निश्चय ही संसद अथवा विधान मंडलों पर छोड़ दिया जाना चाहिये। संसद द्वारा इस बारे में नियम बनाये जाने के पश्चात्, तद्नुसार नियुक्तियां करने के लिये राज्यपालों अथवा राष्ट्रपति से कहा जाना चाहिये। मैं समझता हूं कि जब तक इन आयोगों के सदस्यों को पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि उनकी पूरी पदावधि के दौरान उनकी सेवा की शर्तें सुरक्षित रहेंगी और कार्यपालिका के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त रहेंगी तब तक वे जी-जान से कम नहीं करेंगे और दिन-प्रतिदिन अपने सामने आने वाली समस्याओं में वे उतनी गहन रुचि नहीं लेंगे जो उनके सार्वजनिक कृत्यों के कुशल निर्वहन के लिये नितान्त आवश्यक है।

मूझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि अनुच्छेद 285-ग के मूल प्रारूप में सुधार करके इसे पेश किया गया है। मूल प्रारूप में यह अनुच्छेद 285 का खण्ड (3) था। जहां तक पद-धारण समाप्त होने पर आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति पर रोक का सम्बन्ध है उसमें राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों द्वारा कुछ छूटों का उपबन्ध था। यह बहुत हितकर ही नहीं अपितु नितान्त आवश्यक भी है कि इन आयोगों के सदस्य भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन किसी भी पद के लिए पात्र नहीं होने चाहिये। पुराने भारत शासन अधिनियम में यह उपबन्ध था कि गवर्नर-जनरल, जहां वह आवश्यक अथवा उपयुक्त समझे, इस विषय में छूट दे सकता है। परन्तु मैं समझता हूं कि ऐसे मामलों में, जहां इसकी कदापि कोई आवश्यकता नहीं थी गवर्नर-जनरल के माध्यम से इस शक्ति का प्रयोग न करना बहुत ही बुद्धिमत्ता की बात थी। एक मास पूर्व, हम में से कुछ लोग तो यह जानकर उत्तेजित हो गये थे कि बम्बई लोक सेवा आयोग के एक सदस्य को राजदूत के पद पर नियुक्त किया गया है। मैं उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं करना चाहता। उस व्यक्ति का अपना पदत्याग करने से पूर्व ही राजदूत के पद पर नियुक्त कर दिया गया था और जब वह नियुक्त हो गया तो स्वाभाविक है कि उसने अपने पहले पद का त्याग किया। परन्तु यदि आप सेवाओं को सुदृढ़ एवं कुशल बनाना चाहते हैं तो इस प्रकार की अनियमितता का समर्थन कदापि नहीं किया जाना चाहिये जिससे भाई-भतीजावाद की तथा वैयक्तिक पक्षपात की गन्ध आती हो। यदि लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य की यह धारणा को कि वह सत्तारूढ़ लोगों का दास बनकर और उनके तलवे चाटकर भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद प्राप्त कर सकता है, तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि ऐसा व्यक्ति निष्पक्षता अथवा सत्यनिष्ठा से अपने कृत्यों का

[श्री एच.वी. कामत]

निर्वहन नहीं कर सकेगा। यह नियुक्ति जो हाल ही में की गयी है, सिद्धांत रूप से गलत थी और मुझे विश्वास है कि यद्यपि गवर्नर-जनरल ने इसके लिये अपनी स्वीकृति अवश्य प्रदान की होगी तथापि यही एक कारण नहीं है कि उस व्यक्ति विशेष को ही इतना आवश्यक क्यों माना गया कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति पर रोक विषयक हितकर नियम की ही उपेक्षा कर दी गयी। तथापि, मुझे प्रसन्नता है कि अनुच्छेद के वर्तमान प्रारूप में इस प्रकार की छूटों की व्यवस्था नहीं की गयी है और लोक सेवा आयोग के सदस्य अथवा सभापति पदासीन नहीं रहने के पश्चात् भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी नियुक्ति के लिये पात्र नहीं होंगे।

अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि संसार के अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों ने लोक सेवा आयोग स्थापित किये हैं ताकि भर्ती के मामलों को भाई-भतीजावाद अथवा पक्षपात और राजनीतिक संरक्षण से मुक्त रखा जा सके और मन्त्रियों को इस आरोप से बचाया जा सके—यह आरोप निराधार अथवा गलत भी हो सकता है—कि वे अपने परिवार अथवा ग्रुप के हितों को बढ़ावा देने के लिए अपनी स्थिति से लाभ उठाते हैं। यहां के लोगों को कभी-कभी यह महसूस कराया गया है कि राष्ट्रीय हितों की कीमत पर परिवार अथवा ग्रुप के हितों को बढ़ावा दिया है और ऐसे आरोप से मंत्रियों को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि लोक सेवा आयोगों को कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतन्त्र रखा जाये और इसके अतिरिक्त यह भी कि भर्ती के विषय में इन आयोगों द्वारा की गयी सिफारिशें साधारणतया कार्यान्वित अवश्य की जायें और ऐसे प्रत्येक मामले में जहां सरकार अथवा कोई मन्त्री लोक सेवा आयोगों की सिफारिशों के प्रतिकूल कोई नियुक्ति करे तो उसे अनिवार्यत: लिखित रूप में इस बात के पर्याप्त कारण बताने चाहिये कि उसने आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा क्यों की।

पिछले दो वर्षों में ऐसी घटनायें हुई हैं और मन्त्रियों से विधानमंडल में प्रश्न किये गये हैं कि फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के प्रतिकूल कतिपय व्यक्तियों की नियुक्तियां क्यों की गयीं। मेरे विचार में उनके उत्तर असन्तोषजनक थे और अनेक ईमानदार लोगों के मन में गम्भीर सन्देह उत्पन्न हुए कि मंत्री फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशों की ओर ध्यान न देते हुए नियुक्तियां करने के लिये अपनी सीमा से बाहर क्यों गये। मुझे आशा है कि हमारे देश में जो नयी व्यवस्था स्थापित हो रही है उसमें ऐसी बात नहीं होगी, जो कि हमारे यहां बेहतर और स्वच्छ प्रबंध होगा और यह कि केन्द्र एवं राज्य, दोनों में लोक सेवा आयोग इस ढंग से कार्य करेंगे कि प्रथमत: इन आयोगों के सदस्य अपने समय की सरकारों के प्रभाव से पूर्णतया मूक रहकर निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा एवं बुद्धिमता से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे और दूसरे, सेवाओं में ऐसे व्यक्ति नियुक्त किये जायेंगे जो कार्यकुशलता एवं राज्य की प्रशासनिक स्वच्छता की कीमत पर मंत्रियों के दबाव में नहीं आ सकेंगे अथवा मंत्रियों के संरक्षण का सहारा नहीं लेंगे।

(श्री कुलाधर चालिहा ने अपना संशोधन पेश नहीं किया)

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में,

प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खंड (ख) में, "body's" शब्द निकाल दिया जाये।"

मेरा संशोधन मेरे मित्र, श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधनों से कुछ मिलता-जुलता है। उन्होंने ठीक ही कहा कि इसकी शब्दावली बहुत त्रुटिपूर्ण है और यदि इसमें ऐसा सुधार करना है जो डॉ. अम्बेडकर को स्वीकार्य हो तो मैं समझता हूं कि "body's" शब्द को निकाल दिये जाने से इसमें काफी सुधार हो जायेगा। परंतु यदि डॉ. अम्बेडकर सहमत हों तो मुझे अपने मित्र, श्री कामत का संशोधन स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

जहां एक समूचे अनुच्छेद का संबंध है, मैं श्री जसपत राय कपूर द्वारा पेश किये गये संशोधन का जोरदार समर्थन करना चाहूंगा, विशेषकर पहले संशोधन का जो आयोगों में सरकारी कर्मचारियों की संख्या के बजाय आधे के एक-तिहाई तक सीमित करने के विषय में है। मैं चाहता कि यदि संभव होता तो आप मुझे समूचे उपबंध को हटाने के लिये संशोधन पेश करने की अनुमति देते। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि किसी ने यह नहीं सोचा कि इस परंतुक के अर्थ क्या हैं। मुझे आशा नहीं है कि महोदय, आप इनमें से किसी आयोग का यहां तक कि संघ आयोग का भी सभापति पद धारण करने के लिए तैयार होंगें। परंतु यदि संयोग से आप तैयार हो जाएं तो महोदय, आप जैसा व्यक्ति भी जिसने देश के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया है, जहां तक कि इस उपबंध के आधे भाग का संबंध है, आयोग में नियुक्ति का पात्र नहीं होगा।

आयोगों में वही व्यक्ति नियुक्त हो सकेगा जो दस वर्ष तक सरकारी सेवा कर चुके हों। इसका अर्थ यह है कि केवल पुराने कर्मचारियों को ही नियुक्त किया जा सकेगा और उन सब व्यक्तियों को जो वर्तमान स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा नियुक्त किये गये हैं 1957 तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और उसके पश्चात् ही वे इन परिरक्षित आये पदों पर नियुक्ति के लिये पात्र होंगे। यदि हम आयोग की आधी सदस्य संख्या पुराने लोगों के लिये इस प्रकार परिरक्षित करने जा रहे हैं इससे उन लोगों को ही निश्चित लाभ होगा जिन्होंने देश के हितों के विरुद्ध ब्रिटेन की सरकार की सेवा की और ब्रिटेन के हित में देश को दासता की जंजीरों में डाला। यह एक आपत्तिजनक उपबंध है और मैं नहीं समझता कि कोई कांग्रेसी इसे इसी रूप में रहने देना चाहेगा जिससे कि देशभक्त उस निकाय के आधे पदों के लिए पात्र नहीं हो। ये लोग भी जिन्होंने केवल देशभक्ति की भावना को लेकर सरकारी सेवाओं में प्रवेश करने से इंकार कर दिया था, आयोग के आधे पदों में प्रवेश पाने से वंचित रह जायेंगे। अब इस स्थिति के निवारण के लिय यही संभव उपाय है कि श्री कपूर के संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये, यद्यपि मैं समझता हूं कि सदन मुझसे इस बात पर सहमत होगा कि यह समूचा परंतुक ही हटा दिया जाना चाहिये।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत के वर्तमान शासक स्थायी सेवाओं से इतना अधिक स्नेह रखते हैं। राजदूतों के पदों पर तो वास्तव में उन गैर-सरकारी कार्यकताओं और नेताओं को नियुक्त किया जाना चाहिये जिन्होंने देश के हित में अपने हितों का त्याग किया है परन्तु उनमें से किसी को भी योग्य नहीं समझा गया। प्रशासन के विषय में हमारे अलग-अलग विचार और आदर्श हो सकते हैं, परन्तु यह बात बिल्कुल गलत है कि ऐसे अधिक से अधिक पदों पर ऐसे व्यक्तियों

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

को नियुक्त किया जाये जिनके हृदय में जब समय आया तो देश का हित नहीं रहा और मैं समझता हूं कि कोई कारण नहीं है कि इस बात पर आग्रह न किया जाये कि इस नीति में और हमारे वर्तमान शासकों को प्रेरित करने वाले आदर्शों में परिवर्तन किया जाना चाहिये। सदन को बिना पर्याप्त विचार के अनुच्छेद पारित करते हुये अधिक सावधान रहना चाहिये। यह उपबंध हमारी विगतकालीन दासता की परछायी है जिसे इस अनुच्छेद से हटा दिया जाना चाहिये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): महोदय, प्रारूप संविधान में तीन साधनों का उपबंध किया गया है जिनके द्वारा हमारे प्रशासन की सत्यनिष्ठा बनाये रखी जायेगी। पहला है उच्चतम न्यायालय तथा भारत का मुख्य न्यायाधीश, दूसरा और महालेखापरीक्षक जो हमारी वित्तीय व्यवस्थाओं, व्यय तथा कर-संग्रह व्यवस्था को बनाये रखेगा और तीसरा है फेडरल लोक सेवा ओयाग जो हमारी सेवाओं के स्वच्छ एवं सत्यनिष्ठ स्वरूप को बनाये रखेगा। अन्य सदस्य पहले ही यह विचार व्यक्त कर चुके हैं कि विगत काल में अपनी वफादारी के कारण लोग लोक सेवा आयोगों के सदस्य बने हैं। वे योग्यता के आधार पर नहीं वरन् विगत काल में देश के शासकों के प्रति वफादारी के आधार पर इन पदों पर आसीन हुये हैं। अनुच्छेद 285 के उपबंधों और अनुच्छेद 286 में निर्धारित कर्तव्यों के परिणामस्वरूप गृह मंत्रालय तथा गृह मंत्री के लिये भी पक्षपात करना संभव नहीं है।

इसमें एक उपबंध ऐसा है जो मैं ठीक नहीं समझता। जिस व्यक्ति ने दस वर्षों तक सरकारी सेवा कर ली हो, वही फेडरल लोक सेवा आयोग का सदस्य बन सकता है। इसका अर्थ यह है कि यदि उसने 25 वर्ष की आयु में सरकारी सेवा में प्रवेश किया हो तो वह तीस वर्षों तक रहेगा। उस अवधि में वह व्यक्ति निष्क्रिय या असमर्थ भी हो सकता है और ऐसी स्थिति में उसकी अनुपयोगिता संसद सदस्यों को सिद्ध करनी होगी और फेडरल लोक सेवा आयोग के उस सदस्य को बर्खास्त करने के लिये सदन में संकल्प पेश करना होगा। मैंने यह देखा है कि प्रारूप संविधान में 35 वर्ष की आयु जो विशेष महत्व दिया गया है। चाहे राज्यपाल हो या गवर्नर-जनरल या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या फेडरल लोक सेवा आयोग के सदस्य हों, आयु 35 वर्ष की होनी चाहिये।

जहां तक मेरा संबंध है, मैं अपने माननीय मित्र की जसपत राय कपूर के विचार का समर्थन करूंगा कि फेडरल लोक सेवा आयोग के केवल एक-तिहाई सदस्य सरकारी अधिकारी होने चाहिये। नियम तो यह है कि 50 प्रतिशत सदस्य सरकारी होने चाहिये, परंतु जहां तक मैं जानता हूं इस समय फेडरल लोक सेवा आयोग के अधिकांश सदस्य सरकारी अधिकारी हैं। मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने कहा कि वे आगामी छ: वर्षों तक कार्यरत रहेंगे। मुझे आशा है कि इस संविधान के प्रख्यापन के समय इस हेतु कदम उठाये जायेंगे कि फेडरल लोक सेवा आयोग के सदस्यों के केवल 33 अथवा 50 प्रतिशत पदों पर ही सरकारी अधिकारी नियुक्त किये जाएं और शेष पदों पर अन्य व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये। साथ ही किसी न्यायालय का न्यायाधीश या कोई अत्यन्त उच्च अधिकारी, या चाहे राष्ट्रपति या गवर्नर-जनरल ही इस बात की जांच करे कि वे लोग फेडरल लोक सेवा आयोग

में किस आधार पर नियुक्त किये गये हैं, कि क्या वे पक्षपात द्वारा नियुक्त किये गये हैं अथवा क्या वे प्रारूप संविधान के अनुसार उच्च अधिकारियों की नियुक्ति संबंधी नियमों एवं शर्तों पर ठीक उतरते हैं और आगामी पांच या छ: वर्षों के लिये फेडरल लोक सेवा आयोग के सदस्य बने रहने के योग्य हैं।

एक बुरी परंपरा तो है ही और वह है भाई-भतीजावाद की परम्परा। गृह विभाग ने विगत काल में फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशों की अवहेलना की है। जहां तक मुझे ज्ञात है, गृह मंत्रालय ने भर्ती के नये नियम बनाये हैं जिनके अनुसार फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशों को अनिवार्यत: स्वीकार करना होगा। यह बात गवर्नर-जनरल और राष्ट्रपति को सुनिश्चित करनी होगी कि फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशें वैसे की वैसी ही स्वीकार की जायें। हम जानते हैं कि इस समय भारत सरकार के अधीन जो काम करते हैं किसी की पत्नी के भाई हैं या साली के चचेरे या मौसेरे भाई हैं या इस प्रकार के संबंधी हैं। इस प्रकार का भाई-भतीजावाद समाप्त होना चाहिये और प्रशासन में ईमानदारी और देश सुरक्षा बनाये रखने के लिये केवल वही लोग भर्ती किये जाने चाहिये जिनकी फेडरल लोक सेवा आयोग द्वारा सिफारिश की जाये—यह आयोग नहीं जो आज है, अपितु वह आयोग जो 26 जनवरी, 1950 के पश्चात् पुनर्गठित किया जायेगा।

मुझे आशा है कि अनुच्छेद 285 अथवा 286 के वावजूद हमारे लिये कुछ वृद्ध सेवानिवृत्त लोगों को सेवा में बनाये रखने के प्रश्न पर विचार करना संभव होगा जो योग्यता के आधार पर नहीं वरन् जीवन के अन्य क्षेत्रों में वफादारी के आधार पर साम्प्रदायिक अथवा किसी अन्य आधार पर फेडरल लोक सेवा आयोग के सदस्य नियुक्त हुये हैं। उन्हें हटा दिया जाना चाहिये ऐसा किये बिना यह संविधान असफल ही सिद्ध होगा।

*श्री **नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं बोलना चाहता हूं। आपने कहा था कि आप मुझे बोलने की अनुमति देंगे।

***अध्यक्ष:** मैं इस पर आज चर्चा समाप्त करना चाहता हूं। एक बजने में केवल पांच मिनट शेष हैं, अत: अब समय ही नहीं है। लोक सेवा आयोग के विषय में कुछ अन्य अनुच्छेद हैं और आपको अगले अनुच्छेद पर चर्चा के दौरान बोलने का अवसर मिलेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, सदन में जो अनुच्छेद मैंने पेश किये हैं उनकी आलोचना के उत्तर में केवल कुछ प्रश्नों पर मैं एक या दो शब्द कहना चाहूंगा।

सर्वप्रथम, आलोचना लोक सेवा आयोग की रचना के संबंध में की गई है। यह जो आरक्षण किया गया है कि लोक सेवा आयोग के कम से कम आधे सदस्य ऐसे होंगे तो भारत के सम्राट के कर्मचारी रहे हों। इस पर इस आधार पर आपत्ति की गयी है कि यह वास्तव में भारतीय सिविल सेवा के अधिकारियों के लिये एक स्वर्ग बनाया गया है। मुझे खेद है कि जिन सदस्यों ने यह आलोचना की है, ऐसा लगता है कि वे लोक सेवा आयोग के उद्देश्य, इसकी सार्थकता तथा इसके कृत्यों को समझ ही नहीं पाये हैं। लोक सेवा आयोग का कृत्य ऐसे लोगों का चयन करना है जो सार्वजनिक सेवा के लिये योग्य हों। योग्यता के प्रश्न पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए जो समझ-बूझ चाहिये। उसके लिये यह आवश्यक है कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जिस व्यक्ति जो ऐसा निर्णय करने के लिये कहा जाता है उसे कुछ अनुभव हो। यह स्पष्ट है कि इस मामले में उस व्यक्ति से बेहतर निर्णय करने वाला कोई नहीं हो सकता जो पहले से भारत के सम्राट की सेवा में रह चुका है। अत: सेवा में रह चुके व्यक्तियों के लिये कुछ अनुपात में पद आरक्षित करने का यह कारण नहीं है कि जो व्यक्ति पहले से भारत के सम्राट की सेवा में है उन्हें खुश किया जाये, अपितु उद्देश्य यह है कि आवश्यक अनुभव प्राप्त व्यक्ति लिये जायें जो यथासंभव अच्छे से अच्छे ढंग से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें। तथापि, यदि मेरे मित्र, श्री कपूर तैयार हों तो मैं एक संशोधन करने के लिये तैयार हूं। मैं "परंतु यह कि कम से कम आधे" शब्दों के स्थान पर "परंतु यह कि निकटतम आधे" शब्दों का प्रयोग करने के लिये तैयार हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** यह उपबंध क्यों नहीं हैं कि "आधे से अनधिक?"

***माननीय श्री बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं, जो मैं कर सकता था वह मैंने कर दिया।

जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है कि जो व्यक्ति लोक सेवा आयोग की सेवा में रह चुके हों, उन्हें राज्य के अधीन अवैतनिक पद स्वीकार करने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिये, व्यक्तिगत रूप से अब मैं इस सुझाव को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं। हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रखा जाये। कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रखने का एक तरीका यह है कि उन्हें ऐसे पद से वंचित रखा जाये जिसका लालच देकर कार्यपालिका उन्हें अपने कर्तव्य से विमुख होने के लिये प्रेरित कर सकती है। यह पूर्णतया सही है कि जो पद लाभ का पद नहीं है वरन् अवैतनिक पद है उसमें वेतन का प्रश्न नहीं होता परंतु जैसा कि सब जानते हैं कि किसी पद पर नियुक्त होने से किसी व्यक्ति को उसके पद के कारण केवल वेतन ही प्राप्त नहीं होता। वेतन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के लाभ भी होते हैं। परन्तु यदि अन्य लाभ न भी हों तो भी किसी पद पर आसीन होने से प्रभाव का उपयोग तो हो ही सकता है। और मैं समझता हूं कि यह वांछनीय है कि किसी व्यक्ति की किसी ऐसे पद पर नियुक्ति की संभावना भी न रहे जहां उसे वेतन भले ही न मिले परंतु प्रभाव डालने का अधिकार मिल सकता हो।

अब मैं अपने मित्र, श्री कुंजरू के संशोधन पर आता हूं। मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूं कि लोक सेवा आयोग के अधीन नियोजित होने वाली सेवाओं तथा उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय और महालेखा परीक्षक के अधीन नियोजित होने वाली सेवाओं के बीच स्पष्टतया भेद किया जाता है। मैं बताना चाहूंगा कि हमने यह भेद क्यों किया है। जहां तक उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के कर्मचारीवृन्द का संबंध है, जो अधिकारी उच्चतम पदों पर आसीन हैं कम से कम उन्हें कुछ न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है। परिणामत: हमने महसूस किया कि न केवल उनके वेतन तथा पेंशन मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति के अनुमोदन से निर्धारित किये जाने चाहिये अपितु उनकी सेवा की शर्तें भी मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्धारित की जानी चाहिये। लोक सेवा आयोग के मामले में अधिकांश कर्मचारीवृन्द का संबंध केवल "मंत्रालयी कर्तव्यों" से होगा जहां कोई प्राधिकार नहीं होता और न ही विवेकाधिकार ही होता है। यही कारण है कि हमने इनमें भेद किया है। परंतु मैं अच्छी प्रकार समझता हूं कि मेरा तर्क संभवतया इतना ठोस

नहीं है जितना कि दिखाई पड़ता है फिर भी मैं अपने माननीय मित्र, पंडित कुंजरू को सुझाव दूंगा कि वह इस अनुच्छेद को मेरे इस वचन पर पारित होने दें कि यदि बाद में मैंने महसूस किया कि इसमें परिवर्तन करना आवश्यक है तो मैं आवश्यक संशोधन लेकर सदन के समक्ष आऊंगा।

महोदय, मेरा ध्यान अनुच्छेद 285-क में मेरे संशोधन की साइक्लोस्टाइल की गई प्रति में इस तथ्य की ओर दिलाया गया है कि उप-खंड (3) ख में "in any paid employment" शब्द होने चाहिये थे। वे गलती से "in any body's employment" टाइप हो गये हैं। मुझे आशा है कि यह शुद्धि करा दी जायेगी।

जैसा कि मैंने पंडित कुंजरू से कहा, प्रारूप समिति इस मामले पर विचार करेगी और यदि उसका विचार बना कि कोई परिवर्तन करने के लिये कारण है तो वह सदन की अनुमति से संशोधन पेश करेगी ताकि स्थिति सही हो जाये।

***अध्यक्षः** अब पहले मैं संशोधनों को मतदान के लिये रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285 के खंड (1) के परंतुक में 'one half (आधे)' शब्द के स्थान पर 'one third (एक तिहाई)' शब्द रखे जायें।"

***श्री जसपतराय कपूरः** इस संशोधन के स्थान में मैं "निकटतम आधे" शब्द रखने के डॉ. अम्बेडकर के सुझाव को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** तब मैं उसे मतदान के लिये रखूंगा। प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285 के खंड (1) के परंतुक में 'at least one half (कम से कम आधे)' शब्द के स्थान पर 'as nearly as may be one half (यथाशक्य निकटतम आधे)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं सदन से अपना संशोधन संख्या 5 वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं सदन से अपना संशोधन संख्या 6 वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैंने अपने संशोधन संख्या 10 और 11 तथा वह संशोधन भी जिसकी सूचना मैंने आज प्रातः दी थी, वापस लेने की अनुमति ली है।

***अध्यक्ष:** वे अनुच्छेद 285-ख के संबंध में हैं जिस पर अभी हम आये नहीं हैं। श्री कामत का संशोधन संख्या 1 निरर्थक हो जाता है चूंकि "यथाशक्य निकटतम आधे" शब्द जोड़ने का संशोधन स्वीकार कर लिया गया है।

***श्री एच.वी. कामत:** यदि आप इसे निरर्थक हुआ मानते हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 285 में अन्य कोई संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285, संशोधित रूप में संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 285, संशोधित रूप में संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 285-क पर आते हैं। पहला संशोधन संख्या 69 श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों में संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 285-क के खंड (1) में, 'shall only be removed from office by order of the President on ground of misbehaviour (केवल राष्ट्रपति द्वारा कदाचार के आधार पर दिये गये उस आदेश पर ही हटाया जायेगा)" शब्दों के स्थान पर 'may be removed from office by order of the President only on ground of misbehaviour (राष्ट्रपति द्वारा केवल कदाचार के आधार पर दिये गये उस आदेश पर हटाया जा सकेगा)" शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** श्री कामत का संशोधन संख्या 2 प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खंड (1) में, 'misbehaviour or infirmity of mind or body (कदाचार के या मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य के)' शब्दों के स्थान पर 'misdemeanour or incapacity (उपापराध या असमर्थता)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** श्री कामत का संशोधन संख्या 3 प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के खंड 3 के उप-खंड (ख) को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** श्री कामत का अगला संशोधन। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 3 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क के उप-खंड 3(ख) में, 'engages during his term of office in anybody's employment (अपनी पदावधि में....... किसी की नौकरी करता है)' शब्दों के स्थान पर 'takes up during his term of office any other employment (अपनी पदावधि में....... कोई अन्य नौकरी करता है)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अगला संशोधन डॉ. देशमुख का है। यह अब निरर्थक हो गया है, चूंकि वे शब्द ही वहां नहीं हैं।

अब मैं अनुच्छेद 285-क मतदान के लिये रखूंगा। सदस्यों को स्मरण रहे कि उप-खंड 3 (b) में 'in any paid employment (कोई वैतनिक नौकरी करता है)' के स्थान पर 'in anybody's employment (किसी की नौकरी करता है)' शब्द गलत छप गये हैं।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 285-क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 285-ख पर आते हैं। मैं संशोधन संख्या 9 मतदान के लिये रखूंगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिये गये आश्वासन को देखते हुये मैं नहीं चाहता कि मेरा संशोधन मतदान के लिये रखा जाये।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

***श्री जसपतराय कपूरः** महोदय, मैं अपना संशोधन संख्या 10 वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

***अध्यक्ष**: अब मैं श्री कामत का संशोधन संख्या 4 सभा के मतदान के लिये रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 285-ख में 'the President (राष्ट्रपति)' शब्द के स्थान पर 'the Parliament (संसद)' शब्द रखा जाये तथा 'the Governor or Ruler (राज्यपाल या शासक)' शब्दों के स्थान पर 'State Legislatures (राज्य विधान मंडल)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285-ख संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 285-ख संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष**: अब हम अनुच्छेद 285-ग को लेते हैं।

संशोधन संख्या 11

***श्री जसपतराय कपूर**: मैं इसे वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

***अध्यक्ष**: श्री जसपत राय कपूर का एक अन्य संशोधन भी है।

***श्री जसपतराय कपूर**: मैं उस संशोधन को भी वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 285-ग संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 285-ग संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष**: अब सदन कल प्रात: 8 बजे तक के लिये स्थगित होगा।

उसके पश्चात् सभा मंगलवार, 23 अगस्त, 1949 को नौ बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 4. IX.16.49
320

अंक 9
संख्या 16

मंगलवार
23 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 286 से 288-क तथा 292 पर विचार] 903-961

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 23 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — *(जारी)*

अनुच्छेद 286 से 288-क — *(जारी)*

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 286 और उसके बाद के संशोधनों पर विचार आरम्भ करेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बईः जनरल): श्रीमान, आपकी अनुमति से क्या मैं संशोधन 12, 16, 17, और 19 को एक साथ पेश कर सकता हूं? वे सब एक ही विषय से सम्बन्ध रखते हैं। सब पर मिलकर वाद-विवाद हो जायेगा और फिर आप प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले सकेंगे।

***अध्यक्षः** हां, मैं सहमत हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि अनुच्छेद 286 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जायेः

286. (1) It shall be the duty of the Union and the State Public Service Commissions to conduct examinations for appointments to the services of the Union and the services of the State respectively.

Functions of Public Service Commissions.

(2) It shall also be the duty of the Union Public Service Commission, if requested by any two or more States so to do, to assist those States in framing and operating schemes of joint recruitment for any services for which candidates possessing special qualifications are required.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(3) The Union Public Service Commission or the State Public Service Commission, as the case may be, shall be consulted—

(a) on all matters relating to methods of recruitment to civil services and for civil posts;

(b) on the principles to be followed in making appointments to civil services and posts and in making promotions and transfers from one service to another and on the suitability of candidates for such appointment, promotions or transfers;

(c) on all disciplinary matters affecting a person serving under the Government of India or the Government of a State in a civil capacity, including memorials or petitions relating to such matters;

(d) on any claim by or in respect of a person who is serving or has served under the Government of India or the Government of a State or under the Crown, in a civil capacity, that any costs incurred by him in defending legal proceedings instituted against him in respect of acts done or purporting to be done in the execution of his duty should be paid out of the Consolidated Fund of India or, as the case may be, of the State;

(e) on any claim for the award of a pension in respect of injuries sustained by a person while serving under the Government of India or the Government of a State or under the Crown in a civil capacity, and any question as to the amount of any such award, and it shall be the duty of a Public Service Commission to advise on any matter so referred to them and on any other matter which the President or, as the case may be, the Governor or Ruler of the State may refer to them:

Provided that the President as respects the All India Services and also as respects other services and posts

in connection with the affairs of the Union, and the Governor or Ruler, as the case may be, as respects other services and posts in connection with the affairs of a State, may make regulations specifying the matters in which either generally, or in any particular class of case or in any particular circumstances, it shall not be necessary for a Public Service Commission to be consulted.

(4) Nothing in clause (3) of this article shall require a Public Service Commission to be consulted as respects the manner in which appointments and posts are to be reserved in favour of any backward class citizens in the Union or a State.

(5) All regulations made under the proviso to clause (3) of this article by the President or the Governor or ruler of a State shall be laid for not less than fourteen days before each House of Parliament or the Houses or each House of the Legislature of the State, as the case may be, as soon as possible after they are made, and shall be subject to such modifications, whether by way of repeal or amendment, as both Houses of Parliament or the House or both Houses of the Legislature of the State may make during the session in which they are so laid."

286. (1) संघ तथा राज्य के लोक-सेवा आयोगों का कर्तव्य होगा कि क्रमश: संघ की सेवाओं और राज्य की सेवाओं में नियुक्तियों के लिये परीक्षाओं का संचालन करें।

लोक-सेवा आयोगों के कृत्य

(2) यदि संघ लोक-सेवा आयोग से कोई दो या अधिक राज्य ऐसा करने की प्रार्थना करें तो उसका यह भी कर्तव्य होगा कि ऐसी किन्हीं सेवाओं के लिये, जिनके लिये विशेष अर्हता वाले अभ्यर्थी अपेक्षित हैं, मिली जुली भर्ती की योजनाओं के बनाने तथा प्रवर्तन में लाने के लिये उन राज्यों की सहायता करें।

(3) यथास्थिति संघ लोक-सेवा आयोग या राज्य लोक-सेवा आयोग से–

(क) असैनिक सेवाओं में और असैनिक पदों के लिये भर्ती की रीतियों से सम्बद्ध समस्त विषयों पर,

(ख) असैनिक सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने के, तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नति और बदली करने के, तथा अभ्यर्थियों की ऐसी नियुक्ति, पदोन्नति अथवा बदली की उपयुक्तता के बारे में अनुसरण किये जाने वाले सिद्धान्तों पर,

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ग) ऐसे व्यक्ति पर, जो भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार की असैनिक हैसियत से सेवा कर रहा है, प्रभाव डालने वाले अनुशासन विषयों से जो अभ्यावेदन या याचिकाएं सम्बद्ध हैं उनके सहित समस्त ऐसे अनुशासन विषयों पर,

(घ) ऐसे व्यक्ति द्वारा कृत, जो भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन या भारत सम्राट् के अधीन या देशी राज्य की सरकार के अधीन असैनिक हैंसियत से सेवा कर रहा है या कर चुका है, अथवा वैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में कृत, जो कोई दावा है कि अपने कर्तव्य पालन में किये गये, या कर्तुमभिप्रेत, कार्यों के सम्बन्ध में उसके विरुद्ध चलाई गई किन्हीं विधि कार्यवाहियों में जो खर्चा उसे अपनी प्रतिरक्षा में करना पड़ा है वह यथास्थिति भारत की संचित निधि में से या राज्य की संचित निधि में से दिया जाना चाहिये, उस दावे पर,

(ङ) भारत सरकार या किसी राज्य किसी सरकार या सम्राट के अधीन अथवा किसी देशी राज्य की सरकार के अधीन असैनिक हैसियत से सेवा करते समय किसी व्यक्ति को हुई क्षति के बारे में निवृत्ति वेतन दिये जाने के लिये किसी दावे पर तथा ऐसी दी जाने वाली राशि क्या हो, इस प्रश्न पर, परामर्श किया जायेगा, तथा इस प्रकार उनसे पृच्छा किये हुए किसी विषय पर तथा किसी अन्य विषय पर, जिस पर यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा उस राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख उनसे पृष्छा करे, परामर्श देने का लोक-सेवा आयोग का कर्तव्य होगा:

परन्तु अखिल भारतीय सेवाओं के बारे में तथा संघ कार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में भी राष्ट्रपति तथा राज्य के कार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में यथास्थिति राज्यपाल या शासक, उन विषयों का उल्लेख करने वाले विनियम बना सकेगा, जिनमें साधारण तथा अथवा किसी विशेष वर्ग के मामले में, अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में, लोक-सेवा आयोग से परामर्श किया जाना आवश्यक न होगा।

(4) खण्ड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोक-सेवा आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे कि संघ अथवा राज्य के किसी पिछड़े वर्ग के नागरिकों की नियुक्ति की जाती है या उनके लिये पद रक्षित किये जाते हैं।

(5) खण्ड (3) के परन्तुक के अधीन राष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल या शासक द्वारा बनाये गए सब विनियम उनके बनाये जाने के पश्चात् यथासम्भव शीघ्र यथास्थिति संसद के प्रत्येक सदन,

अथवा राज्य के विधान मण्डल के सदन या प्रत्येक समक्ष चौदह दिन से अन्यून समय के लिये रखे जायेंगे, तथा निरसन या संशोधन द्वारा किये गये ऐसे रूपभेदों के अधीन होंगे जैसे कि संसद के दोनों सदन अथवा उस राज्य के विधानमण्डल का सदन या दोनों सदन उस सत्र में करें जिसमें कि वे इस प्रकार रखे गये हों।

"कि अनुच्छेद 287 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

Power to extend functions of Public Service Commissions.

287. An Act made by Parliament or, as the case may be, the Legislature of a State may provide or the exercise of additional functions by the Union Public Service Commission or the State Public Service Commission as respects the services of the Union or the State and also as respects the services of any local authority or other body corporate constituted by law or public institution."

लोक सेवा आयोगों के कृत्यों के विस्तार की शक्ति।

287. यथास्थिति संसद द्वारा निर्मित अथवा राज्य के विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कोई अधिनियम संघ लोक-सेवा आयोग या राज्य लोक-सेवा आयोग द्वारा संघ की या राज्य की सेवाओं के बारे में, तथा किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा विधि द्वारा गठित अन्य निगम निकाय अथवा किसी सार्वजनिक संस्था की सेवाओं के बारे में भी अतिरिक्त कृत्यों के प्रयोग के लिये उपबन्ध कर सकेगा।

"कि अनुच्छेद 288 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

Expenses of Public Service Commissions.

288. The expenses of the Union or a State Public Service Commission, including any salaries, allowances and pensions, payable to or in respect of the members or staff of the Commission, shall be charged on the Consolidated Fund of India or, as the case may be, the State."

लोक-सेवा आयोगों के व्यय।

288. संघ के या राज्य के, लोक-सेवा आयोग के व्यय, जिनके अन्तर्गत आयोग के सदस्यों या कर्मचारीवृन्द को, या के विषय में, दिये जाने वाले कोई वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन भी यथास्थिति भारत के संचित निधि या राज्य की संचित निधि पर भारित होंगे।

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3075 के स्थान पर यह संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 288 के बाद यह नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

288-A. (1) It shall be the duty of the Union Commission to present annually to the President a report as to the work done by the Commission and on the receipt of such report the President shall cause a copy thereof together with a memorandum explaining, as respects the cases, if any, where the advice of the Commission was not accepted, the reasons for such non-acceptance to be laid before each House of Parliament.

Reports of the Public Service Commission.

(2) It shall be the duty of a State Commission to present annually to the Governor or Ruler of the State a report as to the work done by the Commission, and it shall be the duty of a Joint Commission to present annually to the Governor or Ruler or each of the States the needs of which are served by the Joint Commission a report as to the work done by the Commission in relation to that state, and in either case the Governor or Ruler, as the case may be, shall, on receipt of such report, cause a copy thereof together with a memorandum explaining as respects the cases, if any, where the advice of the Commission was not accepted, the reasons for such non-acceptance to be laid before the Legislature of the State."

288-क. (1) संघ आयोग का कर्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को आयोग द्वारा किये गये काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे, तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति उन मामलों मे बारे में, यदि कोई हों, जिनमें कि आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया, ऐसी अस्वीकृति के लिये कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन से सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

लोक-सेवा आयोगों के प्रतिवेदन

(2) राज्य आयोग का कर्तव्य होगा कि राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को आयोग द्वारा किये गये काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा संयुक्त आयोग का कर्तव्य होगा कि ऐसे राज्यों में से प्रत्येक के, जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संयुक्त आयोग द्वारा की जाती है, राज्यपाल या राजप्रमुख को उस राज्य के संबंध में आयोग द्वारा किये गये काम के बारे में प्रति वर्ष प्रति-वेदन दे तथा इन में से प्रत्येक अवस्था में ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख उन मामलों के बारे में, यदि कोई हों, जिनमें कि आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया है, ऐसी अस्वीकृति के लिये कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

ये अनुच्छेद स्वयं व्याख्यात्मक है और मैं नहीं समझता हूं कि इस समय मेरे लिये किसी भी बात को स्पष्ट करने के लिये कोई व्याख्या करना आवश्यक है क्योंकि सभी बातें बहुत स्पष्ट हैं। अत: अन्त में मैं कुछ कहूंगा जबकि वाद-विवाद के पश्चात् शायद मेरे लिये उठाये गये प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों की व्याख्या करना आवश्यक हो जाये।

श्रीमान, मैं इन प्रस्तावों को पेश करता हूं।

*__श्री जसपतराय कपूर__ (संयुक्तप्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> "कि उपरोक्त संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) को अपमार्जित किया जाये और अनुवर्ती खण्डों को तदनुसार फिर से क्रमांकित किया जाये।

अनुच्छेद 286 का खण्ड (2) इस प्रकार है:

(2) यदि संघ लोक-सेवा आयोग से कोई दो या अधिक राज्य ऐसा करने की प्रार्थना करें तो उसका यह भी कर्तव्य होगा कि ऐसी किन्हीं सेवाओं के लिये, जिनके लिये विशेष अर्हता वाले अभ्यर्थी अपेक्षित हैं, मिली-जुली भर्ती की योजनाओं के बनाने तथा प्रवर्तन में लाने के लिये उन राज्यों की सहायता करें।

मैं इस कारण इसे अपमार्जित करना चाहता हूं कि जिस बात का यहां उपबन्ध किया गया है वह अनुच्छेद 284 के खण्ड (3) में आ जाती है जिसे हम कल पारित कर चुके हैं। अनुच्छेद 284 का खण्ड (3) इस प्रकार है:

> "यदि किसी राज्य का राज्यपाल या शासक, संघ के लोक-सेवा आयोग से ऐसा करने की प्रार्थना करे तो, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, वह उस राज्य की सब या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।"

श्रीमान, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) में जिस बात का उपबन्ध किया गया है वह अनुच्छेद 284 के खण्ड (3) में उपबन्धित है। प्रकट रूप में अनुच्छेद 284 के खण्ड (3) का अर्थ अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) से कहीं अधिक व्यापक है। अत: यह स्पष्ट है कि यह खण्ड (2) अनावश्यक तथा व्यर्थ है। अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) का अपमार्जन इस अनुच्छेद के असाधारण दीर्घाकार पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं डालेगा क्योंकि उसके अपमार्जन के बाद भी अनुच्छेद काफी बड़ा बना रहेगा और मसौदा-समिति को ऐसी कोई शंका नहीं करनी चाहिये कि उसकी यह जो टेब पड़ गई है कि अनुच्छेदों के लम्बे-लम्बे मसौदे बनाये और संविधान में प्रत्येक छोटे से छोटे विवरण को रखे-इस टेब पर कोई विशेष प्रभाव पड़ेगा। हां, हम यह जानते हैं कि मसौदा, समिति के पास शब्दों और पदों का असीम भण्डार है, पर प्रत्येक छोटे विवरण के लिये उपबन्ध करते हुये तथा उसको जटिल बनाते हुए इस संविधान में उस समस्त भण्डार को खाली कर देना आवश्यक नहीं है। अत: मैं समझता हूं कि एक अनावश्यक और व्यर्थ बात को हटाने के हेतु यह आवश्यक है कि

[श्री जसपतराय कपूर]

खण्ड (2) अपमार्जित किया जाये। इस सम्बन्ध में मुझे यही निवेदन करना है। अनुच्छेद 288 के सम्बन्ध के संशोधन संख्या 18 को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 14, 15, 74, और 75 पेश नहीं किये गये।)

***सरदार हुकम सिंह:** (पूर्वी पंजाब: सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के परन्तुक को अपमार्जित किया जाये।"

मेरी तुच्छ सम्मति के अनुसार इस परन्तुक में के विचार अन्य अनुच्छेदों के विचारों के अनुसार नहीं हैं। हम एक बहुत बड़ा क्षेत्र विनिहित कर रहे हैं जिसमें लोक-सेवा आयोग से परामर्श करना होगा और उसमें हमने स्थानान्तरण, पदवृद्धि तथा अन्य बातें भी रख ली हैं। यह एक बहुत अच्छा आदर्श है। जबकि हम यह उपबन्ध कर रहे हैं कि इन विषयों तक के लिये लोक-सेवा आयोग से परामर्श करना चाहिये तो हमें इस कमी को न रहने देना चाहिये जिसके कारण बहुमत प्राप्त दल को राष्ट्रपति या राज्यपाल से विनियम प्राप्त करना सरल हो जाये कि लोक-सेवा आयोग से परामर्श करना उसके लिये आवश्यक नहीं है। मेरी राय में यद्यपि यहां एक उपबन्ध कर दिया गया है कि राज्यपाल तथा राष्ट्रपति को विनियम बनाने की शक्ति होगी, पर वे अपने मंत्रियों की मन्त्रणा का अनुसरण करेंगे और मंत्री बहुमत प्राप्त दल का प्रतिनिधित्व करेंगे। इन विनियमों में समय-समय पर परिवर्तन होता रहेगा और इस बात की गुंजाइश है कि पक्षपात और कुलपोषण को विस्तृत करने के उद्देश्य से वे ऐसे विनियम बना दें जो उनकी सुविधा के अनुकूल हों। मेरी आपत्ति यह है कि चूंकि यह केवल परामर्श देने वाला निकाय है, यह आवश्यक नहीं है कि लोक-सेवा आयोग मन्त्रणा को माना जाये। अनुच्छेद 288-क में एक यह उपबन्ध है कि लोक-सेवा आयोग प्रतिवर्ष राष्ट्रपति की सेवा में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और राष्ट्रपति उसकी एक प्रति ज्ञाप सहित उन कुछ उदाहरणों को स्पष्ट करते हुए जिनमें आयोग की मन्त्रणा स्वीकार नहीं की गई है और इस प्रकार की अस्वीकृतियों का कारण बताते हुए संसद के समक्ष प्रस्तुत करायेगा। कारण बताने पड़ेंगे। अत: इसके कारण एक अच्छे अवरोध की व्यवस्था हो गई और यदि यह उपबन्ध वहां न रहे तो इस अनुच्छेद के कार्यान्वित हो जाने पर कल्याणकारी प्रभाव पड़ेगा। मेरी राय से इस परन्तुक का अपमार्जन हो जाना चाहिये।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान, मैं थोड़ा सा परिवर्तन करना चाहता हूं क्योंकि इसमें शब्दावली ठीक प्रकार से नहीं रखी गई है। 'having a scale with a maximum of 250 or more' शब्दों के स्थान में मैं 'carrying a maximum of Rs. 250' शब्द रखना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जी हां, रखिये।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: सभापति जी, मेरा संशोधन इस तरह से है:

"That in Amendment No. 12 of List I (Fifth Week) of Amendments to amendments, for clause (3) of the Proposed article 286, the following be substituted:—

"(3) The Union Public Service Commission as respects the All-India Services and also as respects other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission as respects the State Services and also as respects other services and posts in connection with the affairs or the State, shall be responsible for all appointments, having a scale with a maximum of Rs. 250 or more."

यह संशोधन देने का मेरा मतलब यह है कि जब हम पूरे तौर से और पूरे जोर से गणतन्त्र चलाना चाहते हैं तो हम पब्लिक सर्विस कमीशन बनाते हैं। नहीं तो पब्लिक सर्विस कमीशन बनाने की जरूरत भी नहीं है। सब काम हम कर सकते हैं। पब्लिक सर्विस कमीशन की क्या जरूरत है। हम पब्लिक सर्विस कमीशन इसलिये चाहते हैं कि जो डिमोक्रेटिक फार्म ऑफ गवर्नमेण्ट आती है उसमें पोलीटिकल पार्टीज़ रहती हैं और वह नौकरी में बहुत गड़बड़ करती हैं, वह इस तरह की गड़बड़ न कर सकें। इसीलिये ऐसी एक संस्था बनानी चाहिये जिसमें कि कोई यह न कह सके कि यह पोलीटिकल पार्टी के प्रभाव में काम करती है। इसीलिये हम देखते हैं कि पब्लिक सर्विस कमीशन की जरूरत है और जब पब्लिक सर्विस कमीशन की जरूरत है तो एक कांस्टीट्यूशन इस तरह का बनाना चाहिये कि जितनी सर्विसेज़ हैं उन पर उसका पूरा काबू रहे। तब तो ठीक हो सकता है। कोई कोई कहते हैं कि जब हम गणतन्त्र करते हैं तो हमें गवर्नमेण्ट पर विश्वास करना चाहिये और यह कहा जाता है कि अगर हम गणतन्त्र चलाते हैं और गवर्नमेण्ट पर विश्वास नहीं करते हैं तो गणतन्त्र कैसे चल सकेगा। लेकिन मैं सुनता हूं कि इंग्लैण्ड में और डोमीनियन्स में जहां पर कि गणतन्त्र चलता है वहां पर भी पब्लिक सर्विस कमीशन का सर्विसेज़ पर बहुत ज़्यादा काबू है। इसीलिये मैं समझता हूं कि यह संशोधन जरूर ग्रहण करना चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधनों पर संशोधनों की सूची 3, पंचम सप्ताह, के संशोधन संख्या 82 को पेश करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। "कि प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) में 'shall' शब्द के स्थान में 'may' शब्द रखा जाये।" कल इन अनुच्छेदों पर जब हम वाद-विवाद आरम्भ करने वाले थे, मैंने इस सभा में इस बात पर जोर दिया था कि आयोगों के सम्बन्ध के उपबन्धों को इतना कठोर नहीं बनाना चाहिये जितने वे बनाये जा रहे हैं और मेरा यह संशोधन इसी प्रकार पर है। मैं चाहता हूं। कि इस प्रस्थापित अनुच्छेद 286 में, जिसमें कि बहुत सी बातें आभारणीय तथा

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

अनिवार्य बनाई जा रही हैं, विधान-मण्डलों तथा संसद की मर्जी पर भी यह छोड़ना चाहिये कि क्या लोक-सेवा आयोग से अनिवार्यतः परामर्श करना चाहिये या इन विषयों को पूर्णतया उस पर छोड़ देना चाहिये या नहीं।

खण्ड (3) में उल्लिखित विभिन्न विषय बहुत महत्वपूर्ण है और यदि इन सभी को अनिवार्य बना दिया जाता है तो विभिन्न प्रान्तों की सरकारों और संसद तक को भी लोक-सेवाओं में भर्ती की शर्तों और निबन्धनों में परिवर्तन करने अथवा नवीन परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक रूप में उन्हें बदलने की बहुत कम गुजाइश रह जायेगी। प्रथम खण्ड में कहा गया है:

"संघ लोक-सेवा आयोग या राज्य-सेवा आयोग से (क) असैनिक सेवाओं में और असैनिक पदों के लिये भर्ती की रीतियों से सम्बद्ध समस्त विषयों पर परामर्श किया जायेगा।"

इसका यह अभिप्राय होगा कि यदि लोक-सेवा आयोग यह कहता है कि योग्यता का अन्तिम प्रमाण केवल विश्वविद्यालय की परीक्षा या अन्य परीक्षा को पारित कर लेना ही है तो चाहे राज्य के विधान-मण्डल या संसद इसके विपरीत कुछ भी समझें पर यह बात लागू होगी ही। मेरा सदैव यह विचार रहा है कि ब्रिटिश सरकार ने इन विश्वविद्यालय की योग्यताओं का व्यर्थ ढोल पीट रखा है क्योंकि वे भारत राष्ट्र को बाबूपन के निम्न स्तर पर ले जाना चाहते थे। हमारी वर्तमान सरकार भी अभी तक कोई अन्य प्रमाण नहीं सोच पाई है। यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है। लोगों की योग्यता का अनुमान केवल परीक्षायें पारित करने या अधिकतम अंक प्राप्त करने से नहीं लगाया जा सकता है। पर वे सम्प्रदाय, जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं और चूंकि औरों की अपेक्षा वे अधिक चापलूस हैं, यह समझते हैं कि वह उनकी ही बपौती है और जब कोई व्यक्ति उन करोड़ों का पक्ष लेकर बोलने लगता है जिन्हें शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं मिला, तो वे अन्य सम्प्रदायों की ओर से इसे अपने एकाधिकार के प्रति धमकी के रूप में समझते हैं और उन लोगों के समर्थकों पर सम्प्रदाय वादी होने का दोषारोपण करते हैं। इसमें साम्प्रदायिकता की कोई बात नहीं है। न मैं और न कोई अन्य व्यक्ति जो उनका पक्ष लेता है वह किसी विशेष सम्प्रदाय का प्रभुत्व स्थापन करना चाहता है, बल्कि जो लोग इस बात का विरोध करते हैं उन्हें केवल कुछ खास सम्प्रदायों में रूचि है। हम पर साम्प्रदायिकता का दोषारोपण कर वे साम्प्रदायिकता को बनाये रखना चाहते हैं क्योंकि उन्हें शिक्षा का श्रेय प्राप्त है और भय है कि यह कहीं छिन न जाये। वे ये यह समझते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि योग्यता की परीक्षा केवल परीक्षाओं द्वारा ही हो सकती है। पर जहां तक देश की जनता का प्रश्न है हमारी असंख्य जनसंख्या जिसे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने तक का अवसर नहीं मिला है, जब तक कि वर्तमान पद्धति प्रचलित है जहां तक लोक-सेवाओं का सम्बन्ध है उनमें उसके लिये कोई स्थान नहीं है।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्तः जनरल): अशिक्षितों के लिये कोई स्थान नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ हमें इस तथ्य को मानना ही पड़ेगा कि भारत में विभिन्न सम्प्रदायों की उन्नति में बहुत अन्तर रहा है। अनुसूचित जातियों के लिये हमने रक्षण क्यों रखा है? इसलिये कि हमें यह पूर्ण विश्वास है कि उनकी उन्नति में दुर्गम रुकावटें रही हैं। जन जाति के लोगों के लिये हमने रक्षण क्यों रखा है? यह भी उसी कारण के आधार पर है। हमारे देश में अनुसूचित और जन जातियों के लोगों के समान और भी अन्य लाखों लोग हैं जिनमें कमियां और जिनके लिये रुकावटें किसी प्रकार से भी अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों से भिन्न प्रकार की नहीं हैं, और मैं चाहता हूं कि इन लोगों के आने के लिये स्थान छोड़ा जाये और इस वर्तमान पद्धति के कारण जो असमानतायें हुई हैं उनका निराकरण हो जाये।

यह मैं इसलिये कहता हूं कि इस देश के इतिहास में अब के पश्चात् जनता के सच्चे प्रतिनिधि देश पर शासन करेंगे और इस कारण उनके हाथ बंधे नहीं रहने चाहियें। यह हो सकता है कि इस सभा द्वारा नियत अपने बहुत ही सीमित मताधिकार के आधार पर निर्वाचित राज्य के विधान-मण्डल तथा निर्वाचित संसद को सेवाओं में भर्ती की शर्तों में परिवर्तन करने की शक्ति दे दी जाये, क्योंकि यहां भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है जो उन सब बातों का प्रतिनिधित्व करते हों जिन्हें भारत की जनता सोचती है और जिनका वह अनुभव करती है। अंग्रेज़ों के आदर्श का अनुकरण करने और उनकी पदावलियों की नकल करने से कुछ लाभ नहीं। भारत में ये बातें हमारे लिए अनुकूल नहीं होंगी। भारत इंग्लैण्ड नहीं है और इंग्लैण्ड की नकल करने से कोई लाभ नहीं। वहां सब लोगों ने एक ही प्रकार से साथ-साथ उन्नति की है, पर भारत में ऐसा नहीं हुआ है। आज भी भारत के 85 प्रतिशत व्यक्तियों के लिये शिक्षा की कोई सुविधा नहीं है क्योंकि वे गांवों में रहते हैं और हम इन लोगों से यह कह रहे हैं कि वे उन लोगों से मुकाबला करें जिनको ये सुविधायें प्राप्त हैं। यह बिल्कुल असम्भव है। यह उन दो आदमियों में एक मील की दौड़ कराने के समान है जिनमें से एक आधा मील आगे पहुंच चुका है और दूसरा अभी दौड़ने की तैयारी कर रहा है। यह बिल्कुल असमान, अनुचित तथा अन्यायपूर्ण है, और यह इस अन्याय और अनौचित्य पर अड़े रहेंगे तो मुझे विश्वास है कि यह हमारे लिये लाभदायक नहीं होगा।

ये सब महत्वपूर्ण विषय हैं जिनका अनुच्छेद 286 में उपबन्ध किया गया है। प्रथम-भर्ती की रीति से; द्वितीय-नियुक्ति करने के तथा पदोन्नति और स्थानान्तरण तक के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों का पालन किया जायेगा उनसे; तृतीय-किसी व्यक्ति पर प्रभाव डालने वाले समस्त अनुशासनीय विषयों से जिनमें ज्ञापन और याचिकायें भी शामिल है; चतुर्थ-किसी व्यक्ति द्वारा अथवा उसके सम्बन्ध में किसी मांग से जो सरकार या राज्य की सरकार या सम्राट् के अधीन किसी असैनिक रूप में सेवा कर रहा है या कर चुका है और अन्तिम-निवृत्ति वेतन इत्यादि की किसी मांग से उनका सम्बन्ध है। यह स्पष्ट है कि भर्ती तथा सम्बन्धित विषय की समस्त बातों का निश्चयन लोक सेवा आयोग के द्वारा किया जायेगा यहां तक कि यदि संसद या राज्य के विधान-मण्डल किसी उपरोक्त शर्त में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहते हैं तो वह भी नहीं माना जा सकता है। मैं यह नहीं कहता हूं कि इसे पूर्णतया अस्पष्ट रूप में छोड़ देना चाहिये, मैं तो केवल यह कहता हूं कि विधान-मण्डल या संसद ऐसी स्थिति में रहने चाहियें कि जब और जहां वे चाहें इन विभिन्न बातों में परिवर्तन कर सकें।

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

श्रीमान, यह प्रत्यक्ष है कि राष्ट्रपति को हम प्रत्येक सम्भाव्य व्यक्ति से सुसज्जित करना चाहते हैं। यहां इस परन्तुक में भी हम यह देखते हैं कि राष्ट्रपति को हिंदी विषयों को रोक रखने की शक्ति दी गई है। जिनके बारे में वह अपने स्वविवेक द्वारा यह सोचता है कि वे आयोग के पास न भेजे जायें। मैं यह चाहता हूं कि हम इस शक्ति को संसद तथा राज्य के विधान-मण्डलों को दें न कि किसी व्यक्ति को।

श्रीमान, एक संशोधन और भी है जिसको आपकी अनुज्ञा से मैं पेश करना चाहता हूं। वास्तव में वह संशोधन न्यूनाधिक रूप में इसी प्रकार है तथा इसी उद्देश्य की पुष्टि के लिये है जिसको मैंने अभी इस संशोधन में पेश किया है। परन्तु अनुच्छेद 286 में एक खास तथा विशिष्ट उपबन्ध रखना उसमें प्रस्थापित किया गया है।

***अध्यक्ष:** संख्या 861।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** जी हां, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) के अन्त में पूर्ण-विराम के स्थान में अर्द्ध-विराम कर दिया जाये और उसके पश्चात् यह जोड़ दिया जाये:

'Or for the purpose of bringing about a just and fair representation of all classes in Public Services of the Union or a State.' "

(अथवा संघ की या किसी राज्य की लोक-सेवाओं में सब वर्गों का ठीक तथा उचित प्रतिनिधित्व कराने के प्रयोजन से।)

इसके विकल्प में एक और भी संशोधन है अर्थात् संशोधन संख्या 88, और उसको भी मैं पेश करना चाहूंगा:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) के पश्चात् यह खण्ड (5) प्रविष्ट किया जाये और वर्तमान खण्ड (5) की क्रमसंख्या खण्ड (6) के रूप में कर दी जाये:

'[(5) Nothing in clause (3) of this article shall require a Public Service Commission to be consulted as respects the manner in which appointments are made and posts reserved for purposes of giving representation to various classes according to their numbers in the Union or a State.' "

[(5) इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में दी हुई कोई बात लोक-सेवा आयोग से उस रीति के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये अपेक्षित नहीं होगी

जिसके अनुसार संघ अथवा किसी राज्य में विभिन्न वर्गों को संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व देने के प्रयोजन से नियुक्तियां की जाती हैं तथा पद रक्षित रखे जाते हैं।]

जैसा कि मैं कह चुका हूं संशोधन संख्या 86 और 88 एक दूसरे के विकल्प हैं और यदि एक स्वीकार कर लिया जाता है तो मैं दूसरे पर जोर नहीं दूंगा, यद्यपि मैं अपनी ओर से इस बात पर जोर दूंगा कि संशोधन संख्या 86 अधिक मान्य है चूंकि वह अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है।

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि संघ तथा राज्यों की लोक-सेवाओं में सब वर्गों को ठीक तथा उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और इस विषय को केवल प्रतियोगिता पर न छोड़ा जाये और लोक-सेवा आयोग की इच्छा पर निर्भर न किया जाये। यदि हम लोक-सेवाओं में भर्ती की प्रणालियों की जांच करें तो हमें विदित होगा कि वास्तव में कुछ प्रान्तों के लोगों ने, जो अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग थे, यह आन्दोलन किया कि अपने प्रान्तों के प्रशासन में हमें कोई भाग नहीं मिल रहा है, और उनके आन्दोलन के फलस्वरूप उन प्रान्तों की सरकारों को उनकी बात माननी पड़ी। यह विशेषकर उस विकासोन्मुख तथा उन्नत मद्रास प्रान्त में हुआ जहां विभिन्न सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न यूथों में संगठित हो गये और प्रत्येक यूथ को उसकी जनसंख्या के आधार पर सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व किया गया। इसका लाभदायक रूप में प्रयोग हुआ और परिणाम यह निकला कि समस्त भारत में मद्रास अग्रगण्य प्रान्तों में आ गया। यही कारण है, हम देखते हैं कि दिल्ली मद्रासियों से भरी पड़ी है क्योंकि उनका शिक्षा का स्तर इस तथ्य के कारण उच्च हो गया कि सब सम्प्रदायों ने मिलकर समान रूप में उन्नति की न कि विषमानुपात में जैसा कि अन्यत्र हुआ है। वहां आपको उस विषमानुपात में उन्नति दिखाई नहीं देगी जैसी कि अन्य प्रान्तों में है जहां कि दलित सम्प्रदाय सदैव अपने भाग्य पर संतोष करते रहे हैं, जहां कि सरकार में और अधिक स्थान प्राप्त करने के लिये उन्होंने आन्दोलन नहीं किये और जहां कि उन्नत सम्प्रदायों ने उनकी मांगों पर विचार करने और उन्हें किसी रूप में सहायता करने की उदारता नहीं दिखाई। यह विशेषकर मध्य प्रान्त और बरार में हुआ जहां हमें आज भी यह देखने को मिलता है कि समस्त शिक्षा विभाग में एक खास सम्प्रदाय के लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय का एक भी व्यक्ति नहीं है। ऐसे कई विभाग हैं जहां 90 प्रतिशत तथा इससे भी अधिक पदधारी एक ही विशिष्ट सम्प्रदाय के होते हैं।

श्रीमान, यदि यह साम्प्रदायिकता नहीं है तो फिर साम्प्रदायिकता क्या है? और ये लोग जो उस विभाग में प्रत्येक स्थान पर अब आसन जमाये हुए हैं इस बात का ध्यान रखते हैं कि यदि कोई अन्य व्यक्ति उस विभाग में आना चाहे तो उसे न आने दिया जाये। क्या यह साम्प्रदायिक नहीं है? एक सम्प्रदाय जो समस्त जनसंख्या का 3 से लेकर 5 तक प्रतिशत है, क्या जहां तक प्रत्येक विभाग का सम्बन्ध है वही उस समस्त प्रान्त पर शासन करना भाग्य में लिखा लाया है? क्या यह उदारता नहीं होगी कि जिन लोगों को कभी कोई ऐसे स्थान नहीं दिये गये हैं और जो इसकी मांग करते चले आ रहे हैं उनको कम से कम कुछ स्थान दे दिये जायें? इस सभा के उन सदस्यों से जो दक्षता तथा योग्यता के गुणगान द्वारा ले

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

लिये गये हैं मैं यह कह सकता हूं कि दक्षता में न मद्रास को और न बम्बई को इस सीमा तक क्षति हुई है कि वह देश के लिये अहितकर हो। सम्भव है स्तर कुछ नीचे गिर गया हो, पर इतना तो हमने सदैव बरदाश्त किया है। जब हम अंग्रेजों से मुकाबला न कर सके तो अंग्रेजों से हमने भारतीयों के लिये स्थानों की मांग की। हम आई.सी.एस. की भरती में वृद्धि करना चाहते थे। हमने उसके लिये संघर्ष किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सत्र तक में हमने इस विषय के संकल्प पारित किये। पर जब यही बात और लोग चाहते हैं तो हम उसे साम्प्रदायिकता कहते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि सबके साथ न्याय करने के लिये काफी गुजाइश है। मद्रास और बम्बई में जहां कि इस प्रथा का पालन किया जा रहा है वहां इसके कारण दक्षता का संहार नहीं हुआ है और न प्रशासन में कोई बड़ी हानि हुई तथा न कोई संकट पैदा हुआ है। जब हमारा यह अनुभव है तो किसी संकट के पूर्व ही अन्य प्रान्त बुद्धिमानी से काम क्यों नहीं लेते हैं और जनसंख्या के अन्य भागों के साथ सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का क्यों प्रयत्न नहीं करते हैं। यह विचार 85 प्रतिशत से भी अधिक जनता की ओर से है और इस कारण इसे साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता है। यदि आप सम्प्रदायों अथवा जातियों का नाम लेना नहीं चाहते हैं तो अन्य ऐसी रीतियां हैं जिनके द्वारा आप ऐसा कर सकते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि इस मांग पर अधिक सहानुभूतिपूर्वक विचार होना चाहिये और चूंकि प्रतिनिधित्व के लिये हमने जनसंख्या का आधार स्वीकार कर लिया है इसलिये जहां तक भर्ती का सम्बन्ध है उसमें भी हमें जनसंख्या के आधार को मानना चाहिये।

मैं जिस बात पर जोर देना चाहता था उस पर किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का उल्लेख किये बिना, किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का विरोध किये बिना मैं जोर दे चुका हूं। जो कुछ मैं चाहता हूं वह यह है कि संसद तथा विधान-मण्डल इस बात को देखने के लिये स्वतन्त्र होने चाहिये। भारत के समस्त वर्गों और समस्त सम्प्रदायों के लिये ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व हो। मैंने यह विशेष रूप से नहीं कहा है कि किसी एक सम्प्रदाय को अधिमान या प्राथमिकता दी जाये—मैं तो यह चाहता हूं कि उचित विभाजन हो जिससे कि भारत की एकता और स्वतन्त्रता सच्ची तथा अकृत्रिम हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भारत का विकास एक देशीय हुआ है। जहां तक सांस्कृतिक विषयों का सम्बन्ध है, जहां तक जीवन के सुसभ्यता युक्त उपकरणों का सम्बन्ध है 80 प्रतिशत जनता उसमें भाग ही नहीं लेती है। जहां तक इनका सम्बन्ध है वे अविदित से हैं; उनके और लोगों के बीच में एक बड़ा मोटा परदा पड़ा हुआ है और जब तक कि प्रत्येक सम्प्रदाय—विशेषकर वे सम्प्रदाय जो अपेक्षाकृत बड़े तथा अधिक लोकप्रिय हैं—समान रूप में, उन्नति नहीं करेंगे और उन्नत सम्प्रदाय निम्न सम्प्रदायों को उन्नति करने का अवसर नहीं देंगे तब तक भारत की उन्नति असम्भव है। जो कुछ मैं चाहता हूं वह यह है कि उन करोड़ों लोगों के साथ न्याय तथा उचित व्यवहार किया जाये जिनकी स्थिति ऐसी नहीं है कि वे आगे बढ़कर आप से मुकाबला करें और ऐसा कह कर मैं किसी साम्प्रदायिकता का पुर:स्थापन नहीं कर रहा हूं, किसी भेदभाव का पुर:स्थापन नहीं कर रहा हूं। इन बातों का प्रत्यत्न किया जा चुका है और उनमें सफलता मिली है तो फिर ऐसी कोई बात नहीं है कि और अधिक सफलता क्यों नहीं मिलेगी।

कल जब मेरे मित्र श्री लक्ष्मीनारायण खड़े हुए तो विद्युत द्वीपों के बुझ जाने के रूप में अपशकुन हुआ। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद के पारित होने के विरोध में ईश्वर हमें चेतावनी देना चाहता है। जब डॉ. अम्बेडकर बोलने के लिए बड़े हुए तब भी ऐसा ही हुआ। अच्छा होता यदि इन अनुच्छेदों के अन्तिम मसौदे पर कुछ और अधिक सावधानी की जाती और कुछ और अधिक बुद्धिमानी का प्रयोग किया जाता—और मैं आशा करता हूं कि यदि मेरे 86 या 88 संशोधनों में से एक स्वीकार कर दिया जायेगा तो मसौदा-समिति द्वारा विचारे गये लोक सेवा आयोग के ढांचे में कोई कमी नहीं होगी। आखिर खण्ड (4) में उन्हें यह कहना पड़ा:

"(4) खण्ड (3) की किसी बात यह अपेक्षा न होगी कि लोक-सेवा आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे संघ अथवा राज्य के किसी पिछड़े वर्ग के नागरिकों की नियुक्ति की जाती है या उनके लिये पद रक्षित रखे जाते हैं।"

जो कुछ मैं बढ़ाना चाहता हूं वह यह है कि चूंकि "पिछड़े वर्गों" की शायद बड़े संकुचित तथा संकीर्ण रूप में परिभाषा की जायेगी अत: केवल अनुसूचित जातियों का ही यह दावा नहीं है कि वे पिछड़े हुए हैं—केवल जनजाति के लोग ही ऐसे नहीं हैं कि उनको पिछड़ा हुआ समझा जाये, वरन् ऐसे करोड़ों अन्य लोग हैं जो इनसे भी ज़्यादा पिछड़े हुए हैं और उनके वर्गों की उन्नति के लिये न कोई नियम है और न कोई गुंजाइश। उन सम्प्रदायों में शिक्षा बहुत ही कम है। समस्त भारत में 15 प्रतिशत साक्षरता है। यदि आप इसका विश्लेषण करें तो आपको विदित हो जायेगा कि लगभग आधे दर्जन सम्प्रदायों में 90 प्रतिशत तक साक्षरता है और अन्य सम्प्रदाय 98 प्रतिशत तक निरक्षर हैं। ऐसे सम्प्रदाय हैं जिनकी जनसंख्या चाहे करोड़ों तक हो पर उनमें साक्षरता 5 प्रतिशत से अधिक नहीं है।

इंग्लैण्ड या अमरीका की ओर दृष्टि डालने से कोई लाभ नहीं। मुझे आश्चर्य हुआ है कि किसानों की उन्नति के बड़े हिमायती मेरे माननीय मित्र श्री लक्ष्मीनारायण साहू कुछ और ही विचार लेकर प्रस्तुत हुए और इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। (एक माननीय सदस्य—अच्छा हो यदि निरक्षरों को शिक्षा देने का आप प्रयत्न करें।) निरक्षरों को शिक्षा देने का कार्य तो ईश्वर ही करेगा। हम जानते हैं कि इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं हो रहा है। और आप एक दिन में उसे कर भी नहीं सकते। किसी भी रीति द्वारा यह नहीं हो सकता है। यही आप अनुसूचित जातियों से भी कह देते कि धीरे-धीरे उनको शिक्षा दी जायेगी और धीरे-धीरे उन्नत वर्ग होश में आ जायेगा और अस्पृश्यता अपने आप मिट जायेगी। इसलिये क्यों आन्दोलन करते हो क्यों मांग रखते हो। यह सब अपने आप तुम को मिल जायेगा चाहे सौ वर्ष बाद ही मिले। "आपको रक्षण के लिये मांग करने की कोई आवश्यकता नहीं है"। मुझे शक है कि इस मंत्रणा से किसी का भी समाधान नहीं होगा। हम को यह समझ लेना चाहिये कि चाहे हम चाहें या न चाहें पर यही मांग रही है और यही मांग रहेगी और जितना आप उसे रोकेंगे या दबायेंगे उतनी ही अधिक उग्र और अदमनीय वह होती चली जायेगी।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 83 को पेश नहीं कर रहा हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के परन्तुक के पश्चात् यह नया परन्तुक जोड़ दिया जाये।"

'Provided further that the Public Service Commission of the Union shall always be consulted where the service carries a maximum pay of Rs. 500 per month and the State Public Service Commission shall always be consulted where the service carries a maximum pay of Rs. 250.' "

(पर यह और भी कि संघ के लोक-सेवा आयोग से सदैव परामर्श किया जायेगा यदि किसी सेवा के लिये अधिकतम वेतन 500 रुपये है और राज्य के लोक सेवा आयोग से सदैव परामर्श किया जायेगा यदि किसी सेवा के लिये अधिकतम वेतन 250 रुपय है।)

इसके बाद के संशोधन संख्या 85 को भी मैं पेश करता हूं:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) को अपमार्जित किया जाये।"

प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) में एक नया परन्तुक जोड़ने के हेतु मेरे पहले संशोधन के सम्बन्ध में यह बात है कि खण्ड (3) के पहले परन्तुक में यह उपबन्ध किया गया है कि यथास्थिति राष्ट्रपति, राज्यपाल या शासक यह निदेश दे सकेगा कि सेवाओं के कुछ वर्ग सम्बन्धी विषयों के लिये "यह आवश्यक नहीं होगा कि लोक-सेवा आयोग से परामर्श किया जाये"। यह राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा शासक को यह विनिश्चय करने का स्वविवेक देता है कि लोक-सेवा आयोग के समक्ष विशिष्ट प्रकार की सेवा सम्बन्धी किन-किन विषयों को या किन-किन सेवाओं को रखा जाये और किन-किन विषयों को लोक-सेवा आयोग के समक्ष रखना इन प्राधिकारियों की इच्छा पर निर्भर है।

मेरा संशोधन एक परिसीमा की व्यवस्था करता है। राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा शासक के स्वविवेक पर नहीं वरन् उस समय शक्ति प्राप्त मन्त्रिमण्डल के स्वविवेक पर प्रथम परन्तुक द्वारा अनिर्बन्धित शक्ति का अनुदान संकटजनक होगा। लोक-सेवा आयोग का मुख्य उद्देश्य यह है कि परीक्षाओं तथा अन्य प्रकारों के द्वारा बिना किसी पक्षपात तथा भय के योग्य अभ्यर्थियों को चुनकर देश के लिये एक सक्षम तथा विश्वस्त तंत्र की व्यवस्था करे। लोक-सेवा आयोग की स्वतन्त्रता राजनीति से उदासीनता और समुन्नति स्थिति ही उसकी उपादेयता है। सभा को इस बात पर विचार करना चाहिये कि विशिष्ट सेवा सम्बन्धी विषयों को लोक-सेवा

आयोग के समक्ष न रखने का अधिकार कहां तक राष्ट्रपति, राज्यपाल या शासक को दिया जाये।

मैं निवेदन करता हूं कि कुछ परिसीमा होनी चाहिये। यदि वह राष्ट्रपति, राज्यपाल या शासक के वैयक्तिक उत्तरदायित्व का प्रश्न होता तो बात दूसरी थी। पर वैयक्तिक रूप में तो राष्ट्रपति, राज्यपाल या शासक की कोई सत्ता नहीं है और उस दशा में इन बातों को उसके स्वविवेक पर छोड़ा जा सकता है। पर इस परन्तुक द्वारा इन प्राधिकारियों को वह शक्ति सौंपने का प्रयास किया जा रहा है जिसमें उनका कोई स्वविवेक नहीं रहता है अपितु मन्त्रिमण्डल को अपने वैयक्तिक प्रयोजन सिद्ध करने के लिये अपने पवित्र नाम का उपयोग कर प्रकार्य करते रहने का अवसर मिलता है। यह तो हम जानते ही हैं और यह खुले आम कहा जाता है कि उच्चतम क्षेत्र से लेकर निम्नतम क्षेत्र तक नियुक्तियां करने में पक्षपात किया जाता है। कभी-कभी प्रत्याशित नियुक्तियां—अस्थायी नियुक्तियां कर लोक-सेवा आयोग की उपेक्षा की जाती है और फिर इस मान्य तथ्य को लेकर सेवा आयोग के समक्ष जाने का प्रयत्न किया जाता है कि यह अभ्यर्थी बिचारा बड़ी दु:खद स्थिति में है और इसने कुछ काल तक आम किया है और अनुभव प्राप्त कर लिया है इत्यादि इत्यादि और इस कारण इनका विशेष ध्यान रखा जाये। दोनों केन्द्र और प्रान्त के मन्त्रियों की यह प्रवृत्ति है और बहुत ही स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि यहां तक कि वे वर्तमान नियमों की उपेक्षा करते हैं और यदि हम इस परन्तुक को यह जैसा है वैसा ही रहने देते हैं तो इसका आशय यह होगा कि कोई भी मन्त्रालय सेवा के किसी विशिष्ट प्रकार के वर्ग को लोक-सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार से पृथक रखना आवश्यक समझेगा। मैं निवेदन करता हूं कि यह कारण किसी प्रकार की परिसीमा पुर:स्थापन करने के लिये पर्याप्त रूप से न्यायसंगत है। नये परन्तुक के द्वारा जिस अर्हता को मैं पुर:स्थापन करना चाहता हूं वह यह है कि संघ सेवाओं के लिये जिस सेवा का अधिकतम वेतन 500 रुपये हो और राज्य सेवाओं के लिये जिस सेवा का वेतन 250 रुपये हो तो उनको लोक-सेवा आयोग में भेजना केन्द्रीय या राज्य के प्राधिकारियों के लिये अनिवार्य होगा।

सिद्धान्त के रूप में मैं इस सीमा का प्रश्न उठाना चाहता हूं और 500 रुपये अथवा 250 रुपये की जो सीमा मैंने रखी है वह वाद-विवाद के लिये केवल आधार स्वरूप है। मेरी उत्कण्ठा तो मुख्यतया सिद्धान्त के प्रति है, और वास्तविकता परिसीमा सभा चाहे जो कुछ स्वीकार करे उसके प्रति मैं विशेष उत्सुक नहीं हूं। उसका सुझाव तो मैंने केवल वाद-विवाद का सूत्रपात करने के लिये किया है। मैं निवेदन करता हूं कि सिद्धान्त रूप में राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल या शासक में लोक-सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार से कुछ सेवा के वर्गों को पृथक् कर देने की शक्ति स्वीकार कर लेनी चाहिये। चपरासियों या छोटे-मोटे बाबुओं के पद अथवा छोटे-छोटे पदों के लिये स्पष्टतया कोई अपेक्षा नहीं है कि उनको लोक-सेवा आयोग के समक्ष रखा जाये।

अत: मैंने दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को रखा है कि कुछ सेवायें तो ऐसी होनी चाहियें जिनमें इन प्राधिकारियों को कुछ स्वविवेक होना चाहिये और कुछ सेवायें ऐसी होनी चाहिये जिन्हें लोक-सेवा आयोग में भेजने से रोकने का अधिकार इन प्राधिकारियों को न हो। इस नये परन्तुक के द्वारा जिस सिद्धान्त की मैं स्थापना

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

करना चाहता हूं वह यह है कि कुछ उच्च सेवाओं के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाये कि ये प्राधिकारी उनको लोक-सेवा आयोग के समक्ष अवश्य रखें। मैं चाहता हूं कि पहले इस सिद्धान्त पर वाद-विवाद हो और फिर जो वास्तविक वेतन अथवा अन्य सीमा निर्धारित की जाये उनको लिया जाये जो कि यदि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है तो केवल समायोजन के विषय हो जायेंगे।

नियुक्तियों के विषय में हमें बहुत प्रवाद सुनाई देते हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि इस विषय में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है और मन्त्रियों को इस बात की स्वतन्त्रता देने की आवश्यकता नहीं है कि वे संघ या राज्य के लोक सेवा आयोग के क्षेत्र को संकुचित करें। सदैव यह प्रवृत्ति रही है कि लोक सेवा आयोग की उपेक्षा की जाये और यदि इस मूल परन्तुक को इसी रूप में रहने दिया जाता है तो लोक सेवा आयोग की उपेक्षा करने का संकट और भी अधिक हो जायेगा।

इसके बाद जो संशोधन मैंने पेश किया है वह अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) के सम्बन्ध में है। यह खण्ड पिछड़े वर्गों के लिये नियुक्तियां रक्षित रखने के सम्बन्ध का है जिसके सम्बन्ध में इस खण्ड में यह कहा गया है कि लोक-सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। इसमें फिर सिद्धान्त का एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है। खण्ड (4) के ठीक-ठीक अर्थ में सन्देह है। संविधान को हम इतनी जल्दी में पारित कर रहे हैं कि उस पर विवरण पूर्वक उचित ध्यान देना असम्भव है। पर मैं समझता हूं और ऐसा ही अन्य माननीय सदस्य भी समझते होंगे कि पिछड़े वर्गों की नियुक्तियों के विषय को खण्ड (4) लोक-सेवा आयोग के क्षेत्र से पृथक् रखने का प्रयास करता है। मैं यह मानता हूं कि पिछड़े वर्गों के लिये विशिष्ट व्यवहार आवश्यक है। इस पर किसी को ईर्ष्या नहीं है। यही तथ्य कि वे पिछड़े हुए हैं इस बात के लिये पर्याप्त है कि उनके साथ कुछ सहानुभूति तथा नीतिपूर्वक व्यवहार किया जाये। यह सच है कि पिछड़े वर्ग शिक्षा, नैतिकता, वित्तीय और अन्य विषयों में पिछड़े हुए हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** उनकी नैतिकता तो अच्छी है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, यह बात ठीक है। डॉ. देशमुख का सुझाव कि उनकी नैतिकता अपेक्षाकृत अच्छी है बिल्कुल ठीक है। अनजाने में मुझसे यह त्रुटि हो गई कि मैंने ऐसा कह दिया; अतः इस त्रुटि सुधार के लिये मैं कृतज्ञ हूं। शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में वे पिछड़े हुए हैं। इस सम्बन्ध में उनके साथ विशिष्ट व्यवहार करना आवश्यक है। जिस विशिष्ट व्यवहार का मैं सुझाव दूंगा वह यह है कि इन वर्गों के लिए किसी पद के सम्बन्ध में निम्नतम शिक्षा स्तर निर्धारित किया जाये क्योंकि लोक-सेवा की दक्षता को हम गिरा नहीं सकते हैं। मान लीजिये पिछड़े वर्ग का कोई अभ्यर्थी है जो उस पद के लिये आवश्यक निम्नतम अर्हता रखता है और एक दूसरे वर्ग का अभ्यर्थी है जिसकी अर्हता पहिले के अभ्यर्थी से उच्च है तो पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थी को लिया जाये क्योंकि उसको रक्षित रखना है और वह निम्नतम अर्हता रखता है। इस प्रकार पिछड़े वर्गों को कुछ रक्षण मिल जायेगा।

पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि उनको लोक-सेवा आयोग के क्षेत्र से पृथक् क्यों रखा जाये पिछड़े वर्ग के उन अभ्यर्थियों को, जो निम्नतम अर्हता रखते हैं, अन्य वर्गों के उच्च अर्हता प्राप्त अभ्यर्थियों के स्थान में लेना आयोग पर छोड़ा जाये। इस प्रकार हम पिछड़े वर्गों की सेवा कर सकेंगे और आयोग को अभ्यर्थियों की समुचित योग्यता का सुनिश्चयन हो जायेगा। अत: मैं सुझाव देता हूं कि उनके विषय को आयोग को सिफारिश के लिये भेजा जाये, पर प्रसंगवर्ती सेवा के लिये पर्याप्त अर्हताओं का निदेश होना चाहिये। अत: आयोग के क्षेत्र से इन वर्गों के पृथक् करने में मैं कोई न्यायसंगत बात नहीं देखता हूं।

श्रीमान्, 'shall' के स्थान में 'may' रखने का मेरे मानीय मित्र डॉ. देशमुख के संशोधन का अनुच्छेद 286 (3) के प्रवर्त्तन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। प्रसंग में 'shall' शब्द कहीं अधिक उपयुक्त है। उदाहरणीय खण्ड (क) भर्ती की रीति के सम्बन्ध में है। इसमें सिद्धान्त का प्रश्न उठता है और यह अच्छा है कि भर्ती की रीति विनिश्चय करने के लिये कार्यपालिका आयोग से परामर्श करे यद्यपि यह आवश्यक नहीं है। कि कार्यपालिका आयोग के विचारों को स्वीकार करे। इस सम्बन्ध में मेरे विचार से 'shall' अधिक अच्छा शब्द है।

इसके पश्चात् खण्ड (ख) उस सिद्धान्त की ओर निर्देश करता है जिसका पालन नियुक्तियां करने में किया जायेगा। यह भी एक सिद्धान्त का प्रश्न है जिस पर आयोग से परामर्श होना चाहिये। खण्ड (ग) अनुशासी कार्यावाही की ओर निर्देश करता है। किसी भी कार्यवाही करने से पूर्व इन विषयों को अनिवार्यत: आयोग के सामने रखना चाहिये। कभी-कभी बाबू और पदाधिकारियों को अपने उच्च पदाधिकारियों की अप्रसन्नता शिकार बनना पड़ता है और उनको अलग कर दिया जाता है। हानिपूर्ति के लिये तथा दुबारा नियुक्त होने के लिए इन लोगों को न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है। पर यह अच्छा है कि इन विषयों को अनिर्वायत: आयोग के सामने रखा जाये जिससे कि अन्याय का निराकरण हो सके और ऐसा करने से न्यायालयों में मुकदमों की संख्या भी कम हो जायेगी।

उपखण्ड (घ) उस विषय से सम्बन्ध रखता है जिसमें कोई पदाधिकारी अपने पदाधिकार के आधार पर कोई कार्यवाही करता है या विचार करता है, तो इस सम्बन्ध में उसे किसी पर मुकदमा चलाना होता है या अन्य व्यक्ति द्वारा चलाये गये मुकदमे की पैरवी करनी पड़ती है और उसमें व्यय की आवश्यकता होती है। इन विषयों में भी लोक-सेवा आयोग से अनिवार्यत: परामर्श करना चाहिये। और निवृत्ति वेतन तथा अन्य मांगों के विषयों को भी अनिवार्यत: आयोग के समक्ष रखना चाहिये। अत: मैं निवेदन करता हूं कि हमें 'may' के बजाय 'shall' शब्द ही रखना चाहिये क्योंकि इस शब्द से सब विषयों में न्याय का सुनिश्चियन हो जाता है।

विभिन्न वर्गों के लिये उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का डॉ. देशमुख का संशोधन मानने योग्य है। यह सत्य है कि वर्गों तथा सम्प्रदायों में परस्पर भेदविभेद करना मिटा दिया है, पर इधर उधर ऐसे कुछ भाग हो सकते हैं और विभिन्न वर्गों के लिये उचित प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में आयोग के विनिश्चय का स्वागत होगा और यह विषय आलोचना के परे होगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार किया जाये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

संविधान में अन्य जल्दबाजी के क्षेपकों से असमान रूप का यह अनुच्छेद 286-क एक बड़ा अच्छा अनुच्छेद है। इसमें लोक-सेवा आयोग द्वारा राष्ट्रपति को अथवा राज्य पालक को अथवा शासक को उन विषयों के बारे में एक प्रतिवेदन की व्यवस्था की गई है जिनमें लोक-सेवा आयोग द्वारा दी सिफारिश नहीं मानी गई है या उसकी उपेक्षा की गई है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिनमें उसकी सिफारिश की उपेक्षा की जाती है या उसको निर्देश दिये बिना नियुक्तियां कर ली जाती हैं। संसद को यह पता ही नहीं है कि किस प्रकार से ऐसे काम किये जाते हैं और क्या रंग ढ़ंग हैं और यदि प्रश्न रखे भी जाते हैं तो उनको इस आधार पर नहीं रखने दिया जाता है कि वे अनावश्यक रूप से प्रशासन सम्बन्धी विवरण के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। सरकार द्वारा कार्यवाही करने पर और लोक-सेवा आयोग के बिना परामर्श के नियुक्तियां करने पर या उसकी सिफारिश की उपेक्षा करने पर अनुच्छेद 286-क एक स्वाभाविक अवरोध की व्यवस्था करता है। यह प्रतिवेदन आवश्यक कार्यवाही के लिये संसद के समक्ष रखा जायेगा। मैं समझता हूं कि यह कल्याणकारी उपक्रम है। संसद के सदस्य और यहां तक कि जनता को भी यह विचार करना चाहिये कि किन-किन मामलों में आयोग की सिफारिश की न्यायोचित रूप में उपेक्षा की गई है और किन-किन मामलों में अन्यायपूर्ण तथा मनमाने ढ़ंग से उपेक्षा की गई है। अत: इस नये खण्ड का मैं समर्थन करता हूं। अन्य अनुच्छेदों को तो हमें स्वीकार करना ही है क्योंकि जितनी तीव्र गति से मसौदा-समिति अग्रसर हो रही है उतनी तीव्र गति से अग्रसर होने के लिये न तो हमारे पास समय है और न अवसर।

अब थोड़े से शब्दों के सहित मैं सुझाव रखता हूं कि मेरे संशोधन पर उचित रूप से विचार किया जाये न कि सभापति मसौदा समिति की इस आलोचना पर कि इसका उत्तर देना वे आवश्यक नहीं समझते हैं उसको अलग फेंक दिया जाये। कभी-कभी आरम्भ में सभापति यह कह देते हैं कि अनुच्छेद स्वयं व्याख्यात्मक हैं और अन्त में वे यह कह देते हैं कि वे नहीं समझते हैं कि कोई उत्तर आवश्यक है। इन टिप्पणियों से हम यह नहीं समझ पाते हैं कि हम किस स्थिति में हैं। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि गुणावगुण के आधार पर संशोधनों पर विचार किया जाये और पूर्व विचार-विमर्श के पश्चात् जो अनुचित हों और ठीक न हों उनको अस्वीकार किया जाये।

आपकी अनुमति से मैं संशोधन संख्या 91 को भी पेश करूंगा, जो इस प्रकार है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 16 में प्रस्थापित अनुच्छेद 287 में 'or other body corporate' शब्दों के स्थान में 'or other body corporate not being a Company within the meaning of the Indian Companies Act 1913 or banking companies within the meaning of the Banking Companies Act 1949' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

अनुच्छेद 287 इस प्रकार है:

"यथास्थिति संसद द्वारा निमित अथवा राज्य के विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कोई अधिनियम संघ लोक-सेवा आयोग या राज्य लोक-सेवा आयोग द्वारा संघ की या राज्य की सेवाओं के बारे में, तथा किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा विधि द्वारा गठित अन्य निगम निकाय अथवा किसी सार्वजनिक संस्था की सेवाओं के बारे में भी अतिरिक्त कृत्यों के प्रयोग के लिये उपबन्ध कर सकेगा।"

मैं निवेदन करता हूं कि यह अनुच्छेद यह प्राधिकृत करता है कि स्थानीय प्राधिकारी सम्बन्धी सेवाओं के विषय को लोक-सेवा आयोग के पास भेजा जाये। यह बहुत आवश्यक उपबन्ध है। बल अथवा स्वीय स्वार्थों के कारण स्थानीय प्राधिकारी बहुदा उन व्यक्तियों को नियुक्त कर लेते हैं जिनकी अर्हतायें कम होती हैं। इन नियुक्तियों के विषयों को लोक-सेवा आयोग के पास सम्मति के लिये भेजना बहुत ही समुचित होगा।

पर मैं "अन्य निगम निकाय" शब्दों की प्रविष्टि के विरोध में हूं। निगम निकाय दामोदर घाटी निगम अथवा औद्योगिक वित्त निगम के समान होता है। वे अंश सरकारी प्राधिकार होते हैं जिनकी स्थापना विशिष्ट अधिनियम के प्राधिकार के अधीन की जाती है। इनके लिये भी लोक-सेवा आयोग को निर्देश करना वांछनीय होगा। परन्तु अन्य प्रकार के भी निगम निकाय भी होते हैं जैसे कि लोक अथवा लिमिटेड कम्पनी। गैर सरकारी निकाय होते हैं यद्यपि हैं "निगम निकाय" और उनके विषयों का सम्बन्ध अंशवाहकों से रहता है। पर अंशवाहकों और जनता के हितों की रक्षा के लिये कुछ सरकारी नियंत्रण रखा जाता है। अपना काम चलाने के लिये ये निकाय जो नियुक्तियां करते हैं उसके सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि लोक-सेवा आयोग को निर्देश करने की प्रणाली का पुरःस्थापन करना अनुचित होगा। व्यापार में दक्षता ही एक मात्र कसौटी है। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति अधिक शिक्षित न हो पर उसे वृत्ति विषयक उच्च्व अनुभव हो सकता है। मैं ऐसे विशेषज्ञों से परिचित हूं जो कोयले की खानों या फोलाद या लोहे के कारखानों अथवा ऐसे ही अन्य कारखानों में काम करते हैं और जो केवल देखकर ही कोयले की कोटि अथवा कच्चे लोहे के नमूने में लोहा या फौलाद का प्रतिशत अंश बता देते हैं। वे अपने काम के विशेषज्ञ होते हैं और उनको ऊंचे-ऊंचे वेतन दिये जाते हैं यद्यपि आवश्यक शैक्षणिक अर्हतायें उनमें बहुत नहीं होती हैं। यदि उनके विषय को लोक सेवा आयोग के समक्ष रखा जाता है तो वे कहीं के न रहेंगे। वे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक नहीं है और जितने भी स्वीकृत स्तर हो सकते हैं उनमें वे कहीं भी नहीं आते हैं। वास्तव में प्रबन्धक और प्रबन्धकारी अभिकर्त्ता या विशेषज्ञ की व्यापारिक केन्द्रों का काम देखने वालो के लिये नियुक्ति के सम्बन्ध में कोई अर्हता अपेक्षित नहीं है सिवाय अनुभव और दक्षता के। उनके सेवाययोजक उन्हें जानते हैं। पर उनके बारे में लोक सेवा आयोग कोई निश्चय तथा अनुमान नहीं कर सकता है। इन विषयों को लोक सेवा आयोग को भेजने से कठिनाइयां और रुकावटें पैदा हो जायेंगी और अदक्षता उत्पन्न हो जायेगी और सम्बद्ध कम्पनी के व्यापार संचालन में देर होगी। अतः मेरा विचार है कि कम्पनी अधिनियम के

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अर्थान्तर्गत 'कम्पनियां' ही निगम निकाय हैं, पर मेरा विश्वास है कि उनके ऊपर नियंत्रण करने का विचार नहीं है। मैं समझता हूं उनको रखने का उद्देश्य नहीं है। पर अनुच्छेद में 'अथवा अन्य निगम निकाय' शब्दों का तर्कसम्मत अर्थ यही होगा। लोक कम्पनी तथा बैंक कम्पनी भी अवश्य ही निगम निकाय होंगी। पर यह स्पष्ट है कि लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रखने के योग्य से विषय नहीं हैं। अत: आयोग पर यह परिसीमा वांछनीय होगी। यदि हम अनावश्यक रूप के व्यापक शब्द रखेंगे और उनके प्रयोग को सीमित नहीं करेंगे तो फल यह होगा कि गैर सरकारी व्यापारिक निकायों अथवा इसी प्रकार के केन्द्रों में राज्य का हस्तक्षेप असह्य होगा और इसके कारण अदक्षता पैदा हो जायेगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस अपवाद का उपबन्ध इस संविधान में स्पष्ट रखा जाये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के अन्त में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(6) The Commission shall submit to the Legislature every year a report setting out all cases, the Governments' reasons in each case, and the Commission's views thereon, where there is difference of opinion.'"

[(6) आयोग प्रति वर्ष विधान-मण्डल को एक प्रतिवेदन भेजेगा जिसमें वे सब मामले जिन पर मतभेद है, उन मामलों पर सरकार के कारण और आयोग के विचार होंगे।)]

श्रीमान, मेरा संशोधन बड़ा सरल है। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक नहीं है कि सब विषयों में लोक-सेवा आयोग से परामश करे। कुछ विषयों में उसे परमाधिकार है कि वह जो कुछ चाहे करे और यह हो सकता है कि उसके विचार लोक-सेवा आयोग के विचारों के विरोध में हों।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा, क्या अनुच्छेद 288-क में आपकी बात नहीं आ जाती है?

***श्री आर.के. सिधवा:** 288-क में केवल यह कहा गया है:

"संघ आयोग का कर्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को आयोग द्वारा किये गये काम के बारे में प्रति वर्ष प्रतिवेदन दे तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति उन मामलों के बारे में, यदि कोई हों, जिनमें कि आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया, ऐसी अस्वीकृति के लिये कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन से सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।"

इसमें केवल यह कहा गया है कि जिन मामलों में सरकार लोक-सेवा आयोग की सिफारिश स्वीकार नहीं करती है उनको संसद के समक्ष रखा जाये। मेरा संशोधन यह है कि यदि आयोग सरकार के विचार को स्वीकार न करे तो उसे भी संसद के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये जिससे कि संसद् को दोनों लोक-सेवा आयोग और सरकार के दृष्टिकोण से परिचय हो जाये। ऐसा सम्भव हो सकता है कि सरकार यह अनुभव करे कि उसके विचार ठीक है और लोक-सेवा आयोग उन्हें न स्वीकार करे। अन्य मामलों में आयोग यह समझे कि सरकार के विचार ठीक नहीं हैं। और इस प्रकार संघर्ष हो सकता है। मैं यह चाहता हूं कि संसद के सदनों को दोनों पक्ष के विचारों का ज्ञान हो जिससे कि वे यह निर्णय कर सकें कि सरकार ठीक है या आयोग।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य संयुक्त राज्य): श्रीमान, माननीय सदस्य की बात स्पष्ट समझ में नहीं आती है क्योंकि वे वास्तव में अध्यक्ष की ओर मुख किये हुए हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं यह कह रहा था कि कुछ मामलों में सरकार यह समझे कि वह सही मार्ग पर है और आयोग यह समझे कि वह सही मार्ग पर है अत: यह उचित है कि संसद दोनों पक्ष के विचारों से अवगत हो जिससे कि वह यह जान सके कि आयोग ठीक था या सरकार। अत: जो संशोधन मैंने पेश किया है। वह मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन पर सुधार के रूप में है। हम सब निश्चित रूप से यह चाहते हैं कि नियुक्तियों के विषय में आयोग को स्वतन्त्र अधिकार हो और जो कुछ अनुच्छेद में दिया हुआ है मैं तो उससे भी आगे बढ़ना चाहूंगा। अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के परन्तुक में यह कहा गया है:

> "परन्तु अखिल भारतीय सेवाओं के बारे में तथा संघकार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में भी राष्ट्रपति तथा राज्य के कार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में यथास्थिति राज्यपाल या शासक, उन विषयों का उल्लेख करने वाले विनियम बना सकेगा, जिनमें साधारणतया अथवा किसी विशेष वर्ग के मामले में, अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में, लोक-सेवा आयोग से परामर्श किया जाना आवश्यक न होगा।"

अत: इस खण्ड के अधीन राष्ट्रपति अथवा शासक राज्यपाल लोक-सेवा आयोग से किसी विषय में परामर्श न करें और ऐसे नियम बनायें जो लोक-सेवा आयोग के कृत्यों के विरुद्ध हों।

यद्यपि इसके लिये उपबन्ध करने वाला एक अनुच्छेद है, पर यह बहुत आवश्यक है कि संसद इस बात से परिचित हो जाये कि लोक-सेवा आयोग किस प्रकार प्रकार्य कर रहा है, सरकार द्वारा कोई हस्तक्षेप तो नहीं हुआ है। आज कल हम सुनते हैं कि लोक-सेवा आयोग के कामों में कार्यपालिका जहां यह चाहती है कि उसके आदमी नियुक्त किये जायें वहां हस्तक्षेप करती है। हम जानते हैं कि आज कल सम्बद्ध मन्त्रालय का एक सदस्य आयोग में बैठता है और कुछ उन उम्मीदवारों के साथ, जो कि वास्तव में सेवा में हैं और अपनी अपनी जगहों पर कार्य कर रहे हैं, और आदमी भी भेजे जाते हैं जो लोक विज्ञापन द्वारा आवेदन पत्र भेजते हैं और जिनको नहीं लिया जाता है। मैं यह नहीं कहता कि यदि वे उन लोगों से अधिक सक्षम तथा अच्छे हैं जिन्होंने लोक विज्ञापन के आधार पर लोक-सेवा आयोग में आवेदन पत्र भेजे हैं। तो भी उनको अधिमान न किया जाये। ये ऐसे

[श्री आर.के. सिधवा]

विषय हैं जिनका हम आज अनुभव कर रहे हैं और यद्यपि मैं इन नये अनुच्छेदों द्वारा वर्तमान प्रणाली में जो सुधार हुआ है उसकी प्रशंसा करता हूं, पर फिर भी मैं यह समझता हूं कि किसी प्रकार की भी प्रशासन सम्बन्धी नियोग्यता से आयोग को शृंखलाबद्ध न किया जाये। आयोग को इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह जो कुछ उचित समझे उसे विनिश्चय करे। पर संसद की ऐसी स्थिति होनी चाहिये कि वह इस बात का निर्णय कर सके कि आया लोक-सेवा आयोग ने विषयों का विनिश्चय स्वतन्त्र, न्याययुक्त तथा निष्पक्ष होकर किया है, और इस दृष्टिकोण से राष्ट्रपति, शासक अथवा राज्यपाल द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये जिसका अर्थ है कार्यपालिका द्वारा हस्तक्षेप क्योंकि उनको मन्त्रियों द्वारा दी गई मन्त्रणा के अनुसार कार्य करना पड़ता है। अनुभव यह सिद्ध करता है कि नियुक्तियों के इस महत्वपूर्ण विषय में कई मामलों में पक्षपात हुआ है। यह कोई नई बात मैं नहीं कह रहा हूं। हमको यह देखना चाहिये कि यह पक्षपात जारी न रहे और इस प्रयोजन के लिये हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि आयोग को किसी प्रकार के पक्षपात में पड़ने का कम से कम अवसर दिया जाये। इसी कारण मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद में सुधार किया है, पर मैं यह समझता हूं कि अब भी इस विषय में कुछ कमी है। अतः मेरे संशोधन द्वारा यह प्रयास किया गया है कि जिन मामलों में सरकार और आयोग के विचारों में अन्तर है उनके सम्बन्ध में दोनों पक्षों को सुना जाये।

जो बातें मैंने कहीं हैं उनको विचार में रखते हुए मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति और विशेषकर डॉ. अम्बेडकर संसद के दोनों पक्षों की बातें जान लेने के हित के कारण मेरे संशोधन पर विचार करेंगे। मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति मेरे संशोधन पर विचार करेगी।

***सरदार हुकम सिंहः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) के पश्चात् निम्न व्याख्या प्रविष्ट की जाये:

'Explanation.—Backward classes of citizens would mean and include class or classes of citizens backward economically and educationally.

(व्याख्या–पिछड़े वर्ग के नागरिकों का आर्थिक तथा शैक्षिक रूप में पिछड़े हुए वर्ग या वर्गों से अभिप्रेत होगा और ऐसे ही वर्ग उसके अन्तर्गत आयेंगे।)

ये शब्द 'पिछड़े वर्ग' हमारे संविधान के मसौदे में कई उन अनुच्छेदों में आये हैं जिन्हें हम पारित कर चुके हैं। इस अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) में यह कहा गया है कि—

"खण्ड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोक-सेवा आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे कि संघ अथवा राज्य के पिछड़े वर्ग के नागरिकों की नियुक्ति की जाती है या उनके लिये पद रक्षित किये जाते हैं।"

मैं इस खण्ड का हृदय से समर्थन करता हूं। यह बड़ा ही कल्याणकारी उपबन्ध है, पर मेरी कठिनाई यह है कि समस्त संविधान में "पिछड़े वर्ग" पर की परिभाषा कहीं भी नहीं की गई है इस पद का कुछ स्थानों में प्रयोग तो किया गया है, पर मेरी तुच्छ सम्मति के अनुसार इससे कोई निश्चित अर्थ प्रकट नहीं होता है। यह इतना शिक्षित तथा अस्पष्ट है कि विभिन्न सरकारें तथा विभिन्न प्राधिकारी इसका भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकते हैं।

अनुच्छेद 10 (3) में यह दिया हुआ है:

"इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य के पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।"

दूसरा पद अनुच्छेद 37 में मिलता है और वहां जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे और ही हैं। वह इस प्रकार है:

"राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेष तथा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

अनुच्छेद 303 के अधीन निर्वचन सम्बन्धी खण्डों में अनुसूचित जातियों और आदिमजातियों की परिभाषा की गई है, पर इन पिछड़े वर्गों की कोई परिभाषा नहीं है। यहां "दुर्बलतर विभागों" शब्द का प्रयोग किया गया है। मुझे कुछ कठिनाई प्रतीत होती है कि क्या इन दुर्बलतर विभागों का वही अर्थ है जो पिछड़े वर्गों का है, या जहां तक अनुच्छेद 37 का सम्बन्ध है इनका कुछ और ही अर्थ होगा।

इसके बाद मैं यह बात सभा के ध्यान में लाना चाहता हूं:

"राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा।"

इसके बाद हमने एक और अनुच्छेद 301 पारित किया है। उसमें यह उपबन्ध किया गया है:

"भारत राज्य-क्षेत्र में सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं के तथा जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अनुसंधान के लिये राष्ट्रपति, आदेश द्वारा, ऐसे व्यक्तियों को मिलाकर, जैसे वह उचित समझे आयोग बना सकेगा...।"

यहां भी जिस आयोग को नियुक्त किया जायेगा वह सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं का अनुसंधान करेगा। यहां "आर्थिक दृष्टि से" शब्द नहीं हैं। यह उपबन्ध नहीं किया गया है कि यह कौन विनिश्चय करेगा कि पिछड़े हुए वर्ग कौन हैं। मैं अपने माननीय मित्र श्री देशमुख की बातों को पुष्ट करता हूं कि इस विशाल देश में ऐसे क्षेत्र हैं और जनता के ऐसे वर्ग हैं जो कि उतने ही पिछड़े हुए हैं जितने अनुसूचित वर्ग पिछड़े हुए हैं और यदि हम उनके हितों की उन्नति के लिये उपबन्ध नहीं करते हैं और अन्य वर्गों के

[सरदार हुकम सिंह]

समाज उन्हें उन्नत नहीं बनाते हैं, जिससे कि वे अन्य सम्प्रदायों से मुकाबला कर सके, तो वे पिछड़े हुये ही बने रहेंगे और देश में समान रूप से उन्नति नहीं होगी। इसीलिये मैंने कल यह निवेदन किया था कि यह बहुत ही आवश्यक है कि हम यहां यह पारिभाषित कर दें कि पिछड़े हुए वर्ग कौन होंगे। कहीं न कहीं इसकी परिभाषा होनी चाहिये। हम यह उपबन्ध कर सकते हैं कि राष्ट्रपति को एक आयोग नियुक्त करने का प्राधिकार होगा जो एक वैसी अनुसूची तैयार करेगा जैसी कि अन्य अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों की सूची है, अथवा एक विशेष न्यायाधिकरण नियुक्त किया जाये या कोई पदाधिकारी नियुक्त किया जाये जो इन नागरिकों की दशाओं का अनुसंधान करे और फिर विनिश्चय करे। और यदि यह नहीं किया जायेगा तो कुछ कठिनाई होगी और किसी प्रदेश में कुछ लोगों को कुछ कठिनाइयां होंगी, सम्भव है कि पिछड़े हुए वर्गों के रूप में उनकी देखभाल न हो सके जबकि किसी अन्य क्षेत्र में उन्हीं परिस्थितियों में से लोगों को लाभ हो और उनकी प्रगति की देखभाल हो। इस व्याख्या द्वारा मैंने कुछ परिभाषा देने की कोशिश की है। यह परिभाषा न तो पूर्ण है और न व्यापक है; इसमें यह नहीं कहा गया है कि पिछड़े हुए वर्ग कौन हैं पर इसमें केवल यही संकेत किया गया है कि पिछड़े हुए वर्गों में उन वर्गों को भी शामिल कर लिया जाये जो आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए हैं।

मैंने जानबूझ कर "सामाजिक रूप में" शब्दों को प्रविष्ट नहीं किया है क्योंकि मैंने सोचा कि बहुत से वर्ग जो सामाजिक रूप में पिछड़े हुए हैं उनको अनुसूचित जातियों और आदिमजातियों में शामिल कर लिया जायेगा और यदि कुछ को छोड़ भी दिया जायेगा तो उस अनुसूची में संशोधन कर इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। अत: मेरा उद्देश्य यह है कि यहां यह स्पष्ट कर दिया जाये कि पिछड़े हुए वर्गों का आशय उन सब लोगों से है, उन सब वर्गों से है जो पीछे छोड़ दिये गये हैं और सम्प्रदाय के अन्य विभागों के समक्ष नहीं है क्योंकि इस विषय में वे आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप में पिछड़े हुए हैं। मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे मेरी इस कठिनाई को दूर करें कि क्या इस संविधान में कहीं पर इस बात की परिभाषा दी जाये कि "पिछड़े हुए वर्ग" कौन हैं क्योंकि इस पद का कई स्थानों में प्रयोग किया गया है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा: जनरल): सभापति जी, मेरा संशोधन यह है:

"That in amendment No. 14 of List I (Fifth Week) of Amendments to Amendments for the proposed clause (3) of article 286, the following be substituted:

"(3) The Union Public Service Commission with regard to All India Services and also in regard to other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission in regard to the State Services and also in regard to the services and

posts in connection with affairs and the State shall be consulted in respect of all appointments, transfers and disciplinary matter relating to these Services.”

यह संशोधन देने का मेरा मतलब यह है कि जब तक पब्लिक सर्विस कमीशन को खुद मजबूत न किया जाये तब तक हम लोगों का प्रान्त का शासन या राष्ट्र का शासन ठीक तौर से नहीं हो सकता। मैं जानता हूं कि एक डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के कोई इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल के ट्रान्सफर के मामले में मिनिस्टरी और प्राइम मिनिस्टर नाराज़ हो गये और फिर उन्होंने डी.पी.आई. को जोर देकर कहा कि उन लोगों को वापिस लौटाया जाये। इस बारे में ऐसा हुआ कि डी.पी.आई. को खुल्लमखुल्ला बुलाया था, इस बात में आप लोगों का कुछ हाथ न होना चाहिये और आखिर में वह डी.पी.आई. रिज़ाइन करके चले गये।

और एक बात में मैंने देखा कि एक सिविल सर्विस का आदमी जो प्रान्त में ठीक तरह से काम करता था, उस समय उस को हटाने के लिये कोशिश की गई। उस समय उस प्रान्त के आदमियों ने कोशिश की और गवर्नर साहिब को टेलीग्राम किया कि यह बात बुरी होगी कि उसका ट्रान्सफर किया जाये, तो दो महीने के लिये उसका ट्रान्सफर बन्द कर दिया गया, फिर उसके बाद उसको हरा दिया गया, तो ऐसी हालत में मैं कैसे कहूं कि पब्लिक सर्विस कमीशन को खूब मजबूत करना है और ऐसा मजबूत करना है जिसमें ऐसी गड़बड़ी न हो सके। डॉक्टर देशमुख इसमें थोड़ा नाखुश हो गये वह चाहते हैं कि उन लोगों के लिये ऐसा प्रबन्ध कर देंगे कि जिसमें पब्लिक सर्विस कमीशन का हाथ इतना जोरदार न हो। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है। मैं तो यह चाहता हूं कि यह सब कान्स्टीट्यूशन बनाते हैं, उसमें यह शामिल न होना चाहिये। यह तो रूल्स के फायदे हो गये। इसलिये जो असली अमेण्डमेण्ट हैं, उसे पेश किया जाये उनको छोटा करके यहां रख दिया है। इसके बारे में मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि जब तक पब्लिक सर्विस कमीशन खूब मजबूत न होगा तब तक सेलेक्शन ऑफ कैण्डीडेट के लिये बराबर खराबी आती रहेगी। हम लोग देखते हैं कि रेलवे में कैसा सेलेक्टशन होता है, उसमें सब जगह दिक्कतें रहती हैं, और सब आदमी उसको नापसन्द करते हैं। मैं इसके बारे में ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं। मैं इतना कहकर यह अमेण्डमेण्ट पेश करता हूं।

(संशोधन 18 और 73 पेश नहीं किये गये)

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि संशोधन इतने ही हैं। अब अनुच्छेद और संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के मूल मसौदे में जो परिवर्तन किये गये हैं उन पर मैंने ध्यान दिया और मुझे सन्तोष हुआ है मैं विशेषकर अनुच्छेद 286 के खण्ड (5) में किये गये परिवर्तन तथा अनुच्छेद 288-क में किये गये परिवर्तन की ओर विशेषकर संकेत करना चाहता हूं।

फिर भी यह जो परिवर्तन किये गये हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ विचार मेरे मन में उठते हैं—मैं सभा का ध्यान मूल अनुच्छेद के खण्ड (4) की ओर आकर्षित

[श्री एच.वी. कामत]

करता हूं—"इस अनुच्छेद की कोई बात इसके लिये अपेक्षा न करेगी कि, संघ अथवा किसी राज्य के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में नियुक्तियों और पदों का विभाजन किस रीति के अनुसार किया जाये, इसके बारे में लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जायें"। इसमें उचित तथा बुद्धिमत्ता पूर्ण रूपभेद कर दिया गया है और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख नहीं है केवल पिछड़े हुए वर्गों का ही है। मुझे खेद है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने जिस प्रस्थापना को प्रतिपादित किया है मैं उससे सहमत नहीं हो सकता हूं। यद्यपि जिस साधारण विचार शैली को उन्होंने व्यक्त किया है उसे सहानुभूति न रखना तो कठिन है पर मैं समझता हूं कि संविधानिक रूप से जहां तक उस प्रस्थापना को इस अनुच्छेद में रखने का विषय है उसमें कठिनाई है। सभा को स्मरण होगा और मुझे विश्वास है कि डॉ. देशमुख को यह भली भांति विदित है कि मूल अधिकारों के अध्याय में इस सभा ने बहुत पहले ही अनुच्छेद 10 स्वीकार कर लिया है जिसमें यह व्यवस्था की कई है कि सर्वप्रथम राज्य के अधीन नियुक्तियों के विषय में समस्त नागरिकों के लिये अवसर समता होगी और फिर कोई भी नागरिक धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी पद के लिये कुपात्र नहीं होगा। इस उपबन्ध के प्रति केवल यही अपवाद है जिसे हम अभी पारित कर चुके हैं। "इस अनुच्छेद की किसी बात के राज्य को.... बाधा न होगी।"

****डॉ. पी.एस. देशमुखः*** जिस बात का मैंने सुझाव दिया है वह इन मूलाधिकारों की पूर्ति के लिये ठीक होगी। वह किसी रूप में भी विरोधात्मक नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि डॉ. देशमुख ने, जो कुछ मैं कहना चाहता था उसको पूरा नहीं सुना और इस विषय पर मेरी बात समाप्त होने के पूर्व ही उन्होंने हस्तक्षेप करना पसन्द किया। मैं अनुच्छेद 10 के खण्ड (3) की ओर संकेत कर रहा था जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि इस अनुच्छेद की किसी बात से पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, न कि किसी सम्प्रदाय के पक्ष में, नियुक्तियां तथा पदों के आरक्षण के लिये प्रावधान करने में राज्य को कोई बाधा न होगी। अनुच्छेद 10 के इस खण्ड (3) में जिस वर्ग का स्पष्ट उल्लेख किया है, और जो कि प्रतिपादित सामान्य नियम का अपवाद है, वह नागरिकों का कोई भी पिछड़ा हुआ वर्ग है। अब यदि डॉ. देशमुख केवल इन्हीं पिछड़े हुए नागरिक वर्गों को ही शामिल करने के प्रयत्न के विरोध में हैं—मैं तो उनमें से हूं जो इस "पिछड़े हुए वर्ग" पद से घृणा करते हैं, यह एक कलंक का अर्थ प्रतिपादित करता है और आशा करता हूं कि शीघ्र से शीघ्र हम देश में इससे मुक्त हो जायेंगे; मैं आशा करता हूं कि वह समय दूर नहीं है जबकि हमारे देश में कोई भी वर्ग पिछड़ा हुआ वर्ग नहीं कहा जायेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यह केवल कथन ही कथन है।

श्री एच.वी. कामतः मुझे पूर्ण आशा है कि समस्त नागरिक या तो समान रूप से पिछड़े हुए होंगे या समान रूप से उन्नत होंगे और नागरिकों का ऐसा कोई विशेष वर्ग नहीं होगा जिसे पिछड़ा हुआ कहा जा सके।

चौधरी रणबीर सिंहः इस समय तो ऐसा नहीं है।

श्री एच.वी. कामतः मैं भविष्य के लिये कह रहा हूं। मैं आशा करूंगा कि चौधरी रनबीर सिंह धैर्यपूर्वक मेरी बात सुन लें और जब समय हो तब वे अपनी बात कहें। बाधाओं की मैं परवाह नहीं करता हूं, पर मैं आशा करता हूं कि पहले वे मेरी बात सुन लें और फिर किसी प्रकार की बाधा डालें।

अब डॉ. देशमुख यह सुझाव देते हैं कि इस अनुच्छेद 286 में उनके संशोधन संख्या 86 का समावेश करें और यह बढ़ायें "संघ अथवा राज्य की सेवाओं में सब वर्गों का उचित और ठीक प्रतिनिधित्व करने के प्रयोजन से" और उनके संशोधन संख्या 88 का समावेश करें और यह बढ़ायें "इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में दी हुई कोई बात लोक-सेवा आयोग से उस रीति के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये अपेक्षित नहीं होगी जिसके अनुसार संघ अथवा किसी राज्य में विभिन्न वर्गों का संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व देने के प्रयोजन से नियुक्तियां की जाती हैं तथा पद रक्षित रखे जाते हैं"। दुर्भाग्य से सभा यदि इस उपबन्ध को स्वीकार कर लेती है, तो यह सभा ने अनुच्छेद 10 में केवल पिछड़े हुए वर्ग के आरक्षण के लिये जो उपबन्ध किया है, उसके विरुद्ध होगा। मेरी इच्छा था कि अनुच्छेद 10 एक भिन्न रूप में स्वीकार किया जाता, पर जिस रूप में अनुच्छेद 10 है उस रूप में उसे स्वीकार कर लेने पर तो इस बात के लिये अब बहुत विलम्ब हो गया जब तक उसका पुनरीक्षण इस प्रकार का उपबन्ध करते हुए नहीं किया जाता कि सर्वप्रथम सब वर्गों को प्रतिनिधित्व दिया जाये तब तक वह अनुच्छेद 10 (1), (2) और (3) के विरोध में होगा जिनको हम स्वीकार कर चुके हैं। मैं तो इन लोगों को जो वास्तव में पिछड़े हुए हैं इस सक्रान्ति काल में पासंग देने तक का विरोध नहीं करूंगा, पर इस अनुच्छेद में इस प्रकार को कोई संविधानिक उपबन्ध उस अनुच्छेद के विरुद्ध होगा जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। उसे सुरक्षापूर्वक संसद के विनियमन पर छोड़ा जा सकता है। मुझे विश्वास है कि इस देश की भावी संसद सब सम्प्रदायों के साथ उचित तथा ठीक व्यवहार करेगी और इस सम्बन्ध में इस विषय के उपबन्ध बनाने का कार्य भावी संसद पर छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

मैं यह कहना चाहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर ने इन अनुच्छेदों के जिस मसौदे को सभा में प्रस्तुत किया है वह मेरे विचार से किसी विधि ग्रन्थ के वृहदाकार अध्याय के समान वृहदाकार है। संविधान सम्बन्धी प्रलेख में इतने बड़े-बड़े अनुच्छेद नहीं होते हैं, आज प्रातःकाल मुझे कोई संविधान की एक प्रति मिली जो कि पश्चिमी जर्मनी का 1940 में स्वीकार किया गया अन्तिम संविधान है और यह एक छोटी सी पुस्तिका है जिसमें 52 पृष्ठ हैं और 146 अनुच्छेद। इसकी तुलना में हमारा संविधान तिगुना है और शायद चोगुना हो—और ऐसे शब्दाडम्बर से भरा पड़ा है कि जिसका अधिकांश आसानी से छोड़ा जा सकता था। उदाहरणार्थ इस 288 अनुच्छेद में शब्दाडम्बर की इतनी अधिक भरमार है कि यह केवल ईश्वर की जानता है कि वह क्योंकर है। क्या हम यह नहीं कह सकते थे कि "लोक-सेवा आयोग द्वारा की गई समस्त सिफारिशों या प्रस्थापनाओं को अमल में आया जायेगा सिवाय राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा दिये गये कारणों के? हमारे प्रयोजन के लिये केवल यह एक वाक्य पर्याप्त था।

[श्री एच.वी. कामत]

ये सब शब्दाडम्बर न्यायवादियों का बुद्धिवाद प्रकट करते हैं जिनका अधिकांश जीवन तर्क करने और न्यायालयों में परस्पर एक दूसरे के प्रति शब्दों का आदान प्रदान करने में बीता है और यह उस जनता की भावना को, उस जनता की संघर्षयुक्त भावना को प्रकट नहीं करते हैं जो स्वतन्त्रता संघर्ष के दहकते हुए अंगारों पर चली है और जो जीवन प्रकाश से अपने संविधान को अनुप्राणित करने के लिये के लिये यहां एकत्रित हुई है। दुर्भाग्यवश मसौदा-समिति में उन व्यक्तियों का प्रधान्य है जिनका जीवन सुरक्षित रहा है, जिन्हें अमर आर्दश की प्रकाशमय ज्योति ने स्पर्श तक नहीं किया है और जिन्होंने अपना अधिकांश जीवन सरकारी सेवा में बिताया है। उनके लिये कदाचित एक ऐसे प्रलेख की रचना करना कठिन है जो मेरे विचार के अनुसार कोई विधि ग्रन्थ न हो, वरन् एक समाज सम्बन्धी राजनैतिक प्रलेख हो—जो एक स्पन्दनशील, रोमांचकारी तथा उत्साहवर्द्धक प्रलेख हो। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसा नहीं हुआ और हम पर शब्दों ही शब्दों का अपार भार लाद दिया गया है जिसको सरलता से हल्का किया जा सकता था।

एक और बात है और वह यह है कि खण्ड (3) में यह अपेक्षित है—वह ठीक भी है कि खण्ड (3) के अधीन राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा निर्मित सब विनियमों को संसद् के समक्ष रखा जायेगा। इस सम्बन्ध में मैं सभा को उस बात की याद दिलाऊंगा, जिसको एक और सम्बन्ध में मसौदा समिति लागू करने में असमर्थ रही। यह अनुच्छेद 280 के सम्बन्ध में हुआ, जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा निर्मित विनियम, और आज्ञप्ति संसद के समक्ष रखे आयेंगे, पर यह जो अनुच्छेद पारित किया गया था, उसमें इस खण्ड (3) के इस मुख्य भाग को नहीं रखा गया कि वे उन रूपभेदों के अधीन, जो जैसे संसद उचित समझे वैसे चाहे निसन के रूप में हों, चाहे संशोधन के रूप में होंगे। इस खण्ड की तुलना में वह अधिक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह निश्चय है कि उससे इस देश के लाखों नर नारियों के स्वातन्त्र्य और जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। इसका सम्बन्ध तो सेवा में के कुछ हजार व्यक्तियों से ही है। यह मसौदा समिति की उस विचारधारा का दिग्दर्शन कराती है कि कुछ सहस्र सेवकों के अधिकारों की तुलना में लाखों नरनारियों का जीवन और स्वास्थ्य तुच्छ है। लाखों व्यक्तियों के मूलाधिकार सम्बन्धी विनियम निरसन अथवा परिवर्तन के लिये संसद समक्ष नहीं आते हैं, पर लोक सेवाओं सम्बन्धी नियम उसके समक्ष आते हैं। इस वस्तुस्थिति पर मुझे खेद है।

और मैं यह भी समझता हूं कि इस अनुच्छेद के खण्ड (4) के विषय के सम्बन्ध में पिछड़े हुए नागरिकों के लिये नियुक्तियों और पद आरक्षित करने के लिये लोक-सेवा आयोग से परामर्श किया जाये। यद्यपि मुझे यह ठीक विदित नहीं है कि इन वर्गों के लिये सेवाओं में कोई प्रासंग होगा या नहीं और यदि है तो अच्छी बात है, पर यदि किसी आधार पर, चाहे वह जनसंख्या का आधार हो या अन्य कोई आधार, किसी विशिष्ट वर्ग के लिये पद आरक्षित किये जाते हैं, तो पहिले संख्या नियत कर ली जाती है—कि इतना इस वर्ग के लिये और इतना उस वर्ग के लिये इत्यादि इत्यादि।

अब श्रीमान, मान लीजिये कि राष्ट्रपति के मन में यह बात हो कि इतने पद नाम निर्देश द्वारा भरे जायें। नाम निर्देश के लिये कोई अनुपात होना चाहिये, जैसा

कि पहले आई.सी.एस. के विषय में हुआ करता था कि इतने पदों को नामनिर्देश द्वारा पूर्त्त किया जायेगा और इतने पदों को खुली प्रतियोगिता द्वारा। यहां भी राष्ट्रपति को यह विनिश्चय करना पड़ेगा कि किस अनुपात में नामनिर्देशन द्वारा भर्ती की जायेगी और किस अनुपात में खुली प्रतियोगिता द्वारा जब तक यह संख्या निश्चित नहीं की जाती है, तब तक राष्ट्रपति के लिये नामनिर्देशन और प्रतियोगिता की संख्याओं को अन्तिम रूप में नियत करना कठिन होगा। अत: इस सम्बन्ध में उसे लोक-सेवा आयोग से परामर्श करना होगा और यदि जो पद आरक्षित रखे जाते हैं, उनकी संख्या के सम्बन्ध में राष्ट्रपति आयोग से परमर्श करता है, तो उसकी प्रतिष्ठा के लिये यह कोई अपमानजनक बात नहीं है। अपने संविधान में इस आयोग को जो महत्व हमने दिया है, उस पर विचार करते हुए यह अच्छा होता कि अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) में उल्लिखित विषयों के साथ साथ इस विषय के बारे में भी आयोग से परामर्श किया जाता।

इसके बाद अन्त में 288-क में प्रस्तुत किये गये प्रश्नों पर मैं कुछ शब्द कहूंगा। श्रीमान, यद्यपि संविधान अभी प्रवर्तन में नहीं आया है—और मैं यह नहीं जानता हूं कि कब यह प्रवर्तन में आयेगा—पर हमारे समक्ष प्रस्तुत यह अनुच्छेद यदि आज सभा द्वारा पारित कर लिया जाता है, तो भविष्य में इस संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व ही, इस संविधान के आगामी जनवरी या फरवरी में लागू होने से पूर्व ही, यहां तक कि संक्रान्ति काल में ही मैं आशा करता हूं कि इसके अनुसार नियुक्तियां की जायेंगी, यहां लोक सेवा आयोग की ओर अन्यत्र अन्य आयोगों की सिफारिशों को सरकार द्वारा इतना महत्व दिया जायेगा और उन पर इतना विचार किया जायेगा, जितने के वे योग्य हैं और पर्याप्त कारण बताये बिना उनको रद्द नहीं किया जायेगा, उनकी उपेक्षा नहीं की जायेगी या उनका निरादर नहीं किया जायेगा। मेरे विचार से मेरे मित्र श्री सिधवा या शायद श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने यह बताया है कि कई बार फेडरल लोक सेवा आयोग की सिफारिशों और प्रस्थापनाओं की उपेक्षा तथा निरादर किया गया है। मैं भी यह मानता हूं और यहां तक कि उच्च पदाधिकारियों ने मुझसे कहा है, भारतीय सरकार के पदाधिकारियों तक ने मुझसे कहा है कि इन सिफारिशों के प्रति अपेक्षा के कारण, आयोगों द्वारा की गई सिफारिशों के प्रति सरकार की ओर से इस प्रकार के क्रूर व्यवहार के कारण ये आयोग ही निन्दनीय होते जाते हैं। यह किसी गैर सरकारी या किसी साधारण व्यक्ति द्वारा दिया प्रमाण नहीं है, बल्कि यह मैंने भारतीय सरकार के अधीन कुछ उच्च अधिकारियों से सुना है। आयोग सिफारिश करते हैं, मन्त्री उन सिफारिशों पर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं और स्वयं नियुक्त कर लेते हैं। इसी कारण मैं सभा को यह चेतावनी देता हूं कि इन आयोगों का जितना सम्मान होना चाहिये उतना नहीं है। और दूसरी बात यह है कि इसके कारण मन्त्रालयों में कुलपोषणता और पक्षपात हो रहा है। कुछ मन्त्री उच्च कोटि के कुलपोषक बन गये हैं। इस प्रकार की बातों का अन्त करना चाहिये। अन्यथा इसके कारण सेवाओं, में भ्रष्टाचारण उत्पन्न होगा, क्योंकि सेवा में के लोग समझने लगेंगे कि "हमारी योग्यता, हमारी सच्चाई और हमारी दक्षता किसी काम की नहीं, उनका कुछ भी मूल्य नहीं, जब तक कि हम महान व्यक्ति न हों, जब तक कि मन्त्री पर हमारा आवश्यक प्रभाव न हो, जब तक कि हम मंत्री के कृपापात्र न हों"। यदि ये विचार होंगे तो इस देश का दुर्भाग्य ही है जबकि सेवा में के व्यक्तियों की इस प्रकार की विचार धारा है और जब वे इस प्रकार की विचारधारा से प्रभावित हैं।

[श्री एच.वी. कामत]

अन्त में जैसा कि मैं कह चुका हूं, मसौदा समिति की दृष्टि पर परदा पड़ा हुआ है और उनका निर्णय केवल विधि सम्बन्धी विचारधारा के चक्कर में फंसा हुआ है, पर फिर भी उसने एक ऐसा अनुच्छेद प्रस्तुत किया, जिसमें यद्यपि शब्द बाहुल्य अधिक है, पर मैं समझता हूं कि वह है पुष्ट। मैं आशा करता हूं कि हमारी सरकार और हमारे राज्य का अनुच्छेद के शब्दों का ही नहीं, वरन् उसके भाव का भी सम्मान करेंगे, जिसका आज बड़ा ही दु:खद अभाव है।

***श्री फूल सिंह** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. देशमुख द्वारा पेश किये गये दोनों संशोधनों का हृदय से समर्थन करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। दूसरा दृष्टिकोण जो सभा में व्यक्त किया गया है, वह लोक सेवा आयोग को और भी अधिक शक्तियां देने के लिये है और विरोधियों का यह विचार है कि भरती की कसौटियां दक्षता और योग्यता ही होनी चाहिये। यह उन लोगों के लिये, जिनको अन्तत: इन पदों पर नियुक्त किया जायेगा, कुछ रोटी के टुकड़ों की लड़ाई नहीं है। स्वशासन का अर्थ है लोक-राज्य, और यदि विधानमण्डलों में अच्छी विधि बनाने के लिये श्रमिक वर्ग के व्यक्ति होंगे, तो इन अच्छी विधियों को समुचित रूप में क्रियान्वित करना सेवा में के व्यक्तियों पर निर्भर है और इस कारण उनका महत्व है। इस विषय में योग्यता को बहुत बढ़ा चढ़ा दिया है: पर समान योग्यता में समान अवसर का भाव पहले से ही निहित है, और मेरे विचार से यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रमिक वर्ग को ऐसे समस्त अवसरों से वंचित रखा जाता है, जिसका उपभोग चन्द पढ़े लिखे शहरों में रहने वाले व्यक्ति करते हैं। ग्राम निवासियों से नगरनिवासियों का मुकाबला करने को कहना उसी प्रकार का है, जिस प्रकार कि साइकिल वाले से मोटर साइकिल वाले का मुकाबला करने के लिये कहना, जो कि स्वयं ही मूर्खतापूर्ण है। श्री त्यागी ने यह कहकर डॉ. देशमुख के भाषण में हस्तक्षेप किया था कि यह निरक्षरों के लिये लड़ाई है। मैं समझता हूं कि वह बात चाहे कितनी ही उपालम्भयुक्त हो, पर कदाचित उन्होंने ठीक ही कहा था।

स्वशासन का अर्थ है लोक-राज्य और यदि लोक निरक्षर है, तो चन्द नेताओं को अपने लिये समस्त शक्तियों को हड़प लेने का कोई अधिकार नहीं है। यह नारा–योग्यता और औचित्य की यह पुकार उन लोगों द्वारा की जाती है, जो लाभदायक स्थिति में हैं और यदि अन्य लोग आ जायें तो उनकी हानि होती है।

श्रीमान, मैं ऐसे अनेक दुष्टान्त उद्धृत कर सकता हूं, जिनमें उन लोगों द्वारा गड़बड़ी की गई है, जो दक्ष होने का पूरा दावा करते हैं। एक उदाहरण यह है। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने यह विधि निर्मित की कि छोटे-छोटे ज़मींदार बिना न्यायालय की अनुमति के अपनी भूमि औरों के नाम न करें। अब यह बात न्यायालय पर निर्भर करती थी। यदि दण्डाधिकारी किसी गरीब परिवार से आया हुआ है, तो वह सच्चाई से कार्य करेगा और परिवर्तन न करने देगा। पर उन लोगों के मामलों में जो स्वयं या तो साहूकार हैं या बड़े-बड़े पूंजीवादी हैं या जिनका जनता से कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके लिये केवल कुछ और रुपयों के खर्च की बात थी, जो पेशकार को दे दिये जाते हैं। मैं एक और उदाहरण दे सकता हूं। संयुक्त प्रान्त में अभी अभी पिछले वर्ष एक बहुत बड़े सरकारी पदाधिकारी ने उस समय

नहर रुकवा दी, जबकि फसल पकने पर आ रही थी। इसके कारण लाखों मन अच्छे चावल की कमी हुई। यह होता है कि जबकि आप उन लोगों को नियुक्त करते हैं, जो प्रतियोगिता में सफल हो जाते हैं, पर जो अपने काम में कोई रुचि नहीं रखते हैं और जो काम उनको सौंपा जाता है, उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं। श्रीमान, मैं यह कहता हूं कि दक्षता का सम्बन्ध उस कार्य से भी होना चाहिये, जिसके निर्वहन के लिये वह मनुष्य रखा जाता है।

कुछ वर्ष पहले मैंने यह शिकायत की थी कि पैदा करने वाले को जितनी सामग्रियां बेचनी पड़ती हैं उन सब पर नियंत्रण किया जा रहा है और अनाज के उत्पादन में उनको कोई भी सुविधा नहीं दी जाती है। मैंने ईख के कोल्हुओ का उदाहरण दिया था। युद्ध से पहले यह कोल्हू 20 रुपये में आ जाता था। युद्ध काल में उसका किराया 250 रुपये तक हो गया, जबकि अन्य सब वस्तुओं पर नियंत्रण था। मेरी शिकायत सरकार तक गई और फिर मंत्रालय में आई। इस समय अक्तूबर मास था और इस सभा में उपस्थिति प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि ईख पेरने का मौसम नवम्बर से पूर्व आरम्भ नहीं होता है। मंत्रालय ने बताया कि ईख के सब कोल्हू दिये जा चुके हैं। जब कोई कोल्हू किराये पर दिये जाने के लिये शेष नहीं है। जब आप ऐसे लोगों को सेवा में रखेंगे, जो अपने काम से परिचित नहीं हैं, सदैव ऐसा ही होगा।

यह प्रतियोगिता का प्रश्न नहीं है। यदि आप देश का संचालन ठीक रूप से करना चाहते हैं, यदि प्रशासन इतने कुशल रूप में हो जितना मेरे मित्र चाहते हैं, तो आपको उस काम पर ऐसे आदमी रखने चाहियें तो काम से परिचित हों और जो जनता में से हों। अन्यथा प्राशासन का सम्पर्क जनता से नहीं हेगा। इसी कारण संसार के लगभग सब देशों में लगातार सेवाओं में नये व्यक्तियों की भरती की जाती है और न्यायाधीश का लड़का अनिवार्यत: न्यायाधीश नहीं होता और यह आवश्यक नहीं है कि डिप्टी कलक्टर का लड़का डिप्टी कलक्टर हो। यह प्रथा होनी चाहिये कि जो लोग बहुत दिनों से सेवाओं में रहे हैं, उनसे गांवों में जाने और वहां बसने के लिये कहना चाहिये और गांवों की जनता को प्रशासन संचालन के लिये आमन्त्रित करना चाहिये, क्योंकि जनता की कठिनाइयों को केवल वे ही समझते हैं। वे ही जनता के दुख-दर्द को समझ सकते हैं और वे ही उनकी भावनाओं का निर्वचन कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रेषित खण्डों की ओर निर्देश करने की यदि मुझे अनुमति है, तो मैं यह कहूंगा कि समस्त शक्तियां लोक सेवा आयोग को देते हैं और इस विषय में वे सरकार को व्यर्थ कर देते हैं। मैं नहीं जानता हूं कि उन चन्द लोगों की तुलना में, जिनका समस्त देश द्वारा चुनाव होता है और जिनका इतिहास सेवा से भरा पड़ा है, उन लोगों में क्या अन्तर है जिनकी नियुक्ति सरकार के सर्वोच्च पदाधिकारी द्वारा की जाती है। यदि प्रधान मन्त्री गलती कर सकते हैं, तो मैं समझता हूं कि लोक सेवा-आयोग उससे भी बड़ी गलती कर सकता है। मैं ऐसे अनेक दृष्टान्त दे सकता हूं, जिसमें लोक सेवा-आयोग ने गलती की है और उसकी सच्चाई पर शंका हो सकती है। यदि समस्त देश पर विश्वास नहीं किया जा सकता, यदि किसी व्यक्ति की सेवा का समूचा इतिहास नियुक्तियां करने के लिये उसे प्राधिकृत करने हेतु पर्याप्त नहीं है, तो मुझे विश्वास है कि लोक सेवा आयोग के कुछ व्यक्तियों द्वारा की गई नियुक्तियां भी इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेंगी। इन शब्दों

[श्री फूल सिंह]

के साथ डॉ. देशमुख द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

श्री काका भगवन्त राय (पटियाला, ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन): सदर साहब, मैं अपने दोस्त साहू साहब की तरमीम की ताईद करने के लिये आया हूं। जब कि यूनियन और स्टेट्स में पब्लिक सर्विस कमीशन बन जायेंगे, तो यह मेरी समझ में नहीं आता कि बहुत सी आसामियां जो पुर करने वाली होंगी वह उनके हाथों में नहीं रखी जायेंगी। अक्सर यह देखने में आया है कि जो आसामियां नामीनेशन के जरिये पुर की जाने वाली हैं, वह काबलियत की बिना पर नहीं होती है। मुझे तो हिन्दुस्तान रियासतों का तजुरबा है, वहां पर जो आसामियां पुर की जाती हैं, वह या तो रिश्तेदारों को या दोस्तों को या उनको जो कि हुकूमत की खुशामद करते हों, दी जाती हैं। इसलिये मुझे डर है कि कहीं यहां पर भी ऐसा ही ना हो जाये। अभी अभी सुना है और यह दो तीन महीने की बात है कि आई.ए.एस. में कुछ आसामियां पुर करनी थीं, उसके लिये एक बोर्ड बनाया गया, मगर बहुत सी ऐसी भी आसामियां भरती कर दी गई, जो बोर्ड के दायरे से बाहर थीं। और ऐसा करने के लिये यह वजह बताई कई कि ऐसा करना जरूरी था क्योंकि यह आसामियां पुर करने में जल्दी थी। लेकिन बाद में मालूम हुआ कि वह अफसरों के या तो दोस्त थे या उनके रिश्तेदार थे। इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि आप जो इस किस्म के कमीशन मुकर्रर कर रहे हैं, उनको इतनी ताकत दे रहे हैं, तो ऐसी बातें नहीं होनी चाहिये। जो कुछ आजकल हो रहा है उसी वजह से कांग्रेस और हमारी हुकूमत बदनाम हो रही है। इस वक्त हमारे बहुत से बड़े-बड़े अफसर और बहुत से जिम्मेदार आदमी उन आदमियों की भरती कर रहे हैं जो कि काबिल नहीं हैं। और जो कि मुरतहक नहीं हैं। नतीजा यह हुआ है कि कांग्रेस का इक्तेदार हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तान के बाहर बहुत कम हो रहा है। मैं यह कहूंगा कि आप अगर पब्लिक सर्विस कमीशन को काबिल आदमियों को भरती करने का अख्तियार दे रहे हैं, यह ठीक है, मगर आप अगर उन कमीशनों के अलावा किसी और को भी ऐसी ताकत देंगे, तो वह आपके लिये बहुत खतरनाक होगा। काबिल आदमियों की भरती के लिये यह बेहतर है, लेकिन अगर आप यह ताकत किसी ओर को भी देना चाहें तो दे दें, मगर मैं यह कहूंगा कि यह तरीका बेहतर न होगा। यह जो साहू साहब ने कहा है कि ढाई सौ या पांच सौ की तादाद रखी जाये, इसके लिये मैं कहूंगा कि आप इस उसूल को मान लें और अगर आप इसमें कुछ कमी या ज्यादा करना चाहें तो करें। ऐसा करने से आप उनके हाथ बांध लेंगे और वह मनमानी कार्रवाई नहीं कर सकते हैं।

जहां तक 287 में मिस्टर नज़ीरुद्दीन साहब की तरमीम का सवाल है, मैं उसकी ताईद करता हूं कि अगर पब्लिक सर्विस कमीशन प्राइवेट फर्म्स और कम्पनियों में मदाखलत करेंगे, तो कारवार चलना बन्द हो जायेगा। मेरा ख्याल यह है कि पब्लिक सर्विस कमीशन शायद कारबार की मुश्कलात को नहीं समझ सकेगा और यह नहीं समझ सकते हैं कि किसके क्या रोजाना के काम हैं। उनके दखल देने से कारबार में गड़बड़ हो जायेगा और कारबार में दिक्कत हो जायेगी। इसलिये मैं यह अर्ज करूंगा कि इस तरमीम को मंजूर किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): श्रीमान, मसौदा समिति के अध्यक्ष द्वारा पेश किये गये सब अनुच्छेदों के समर्थन के लिये मैं खड़ा होता हूं। समर्थन करते हुए जो उपबन्ध समाविष्ट किये जा रहे हैं, उनके कुछ उन पहलुओं की ओर मैं संकेत करना चाहूंगा, जिनमें मैं पूर्णतया सहमत नहीं हूं।

लोक सेवा आयोगों की शक्तियों का रूप मंत्रणादायक होगा। वे ऐसे निकाय होंगे, जो सम्बद्ध मन्त्रालयों को भारतीय सरकार के और प्रान्तीय सरकार के मन्त्रालयों से सिफारिश करेगा। उनकी सिफारिशें स्वीकार की जायें या न की जायें। मैं यह चाहता हूं कि लोक सेवा आयोगों की शक्तियों का परमादेशत्मक रूप होना चाहिये। नियुक्तियां, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण सम्बन्धी समस्त विषयों को पूर्णतया केवल लोक सेवा-आयोगों को सौंप देना चाहिये। इन विषयों से मन्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। यहां मैं केवल प्रान्तीय मन्त्रियों की ही ओर नहीं वरन् केन्द्रीय मन्त्रियों की ओर भी निर्देश कर रहा हूं। इंग्लैण्ड में बिटले परिषदों को ये शक्तियां दी गई हैं। इस सभा के माननीय सदस्यों को मैं यह बताना चाहूंगा कि बिटले आयोग के आधे सदस्यों की नियुक्ति स्वयं सेवकों में से की जाती है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में तथा समस्त अधिराज्यों में नियुक्तियां, पदोन्नति और स्थानान्तरण पूर्णतया लोक सेवा आयोगों के हाथ में रहते हैं। मैं चाहता हूं कि इसी कार्यप्रणाली को अपने संविधान में रखा जाये।

मैं इस तर्क को नहीं दुहराऊंगा कि नियुक्तियों, पदोन्नतियों और स्थानान्तरणों के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों में भ्रष्टाचार, अदक्षता और कुलपोषणता करते चले आये हैं। एक और कारण है कि मैं इसके बारे में इतना उत्सुक क्यों हूं। मैं यह चाहता हूं कि हमारी असैनिक सेवा की नींव किसी दृढ़ आधार पर रखी जाये। प्रश्न केवल यही नहीं है कि जिससे कुछ मुट्ठी भर व्यक्तियों के जीवन पर प्रभाव पड़ता हो, जैसा कि श्री कामत ने कहा था। वह तो प्रशासन का रीढ़ स्तम्भ है। यदि आपके असैनिक सेवक दक्ष नहीं हैं, यदि वे स्वतन्त्र नहीं हैं, तो सारा का सारा ढांचा बैठ जायेगा। मेरा यह मत है कि भारत का भविष्य संसदीय राजनीतिज्ञों के हाथ में नहीं है, वरन् असैनिक सेवकों के हाथ में है। मेरा यह मत है कि लोक सेवा-आयोग की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि किसी राजनीतिक पक्ष के व्यक्ति को लोक सेवाओं में भरती नहीं किया जायेगा। मैं तो एक कदम और आगे बढ़ाना चाहता था और यह सुझाव देना चाहता था कि किसी भी राजनैतिक पक्ष के व्यक्ति को लोक सेवा आयोग का सदस्य न बनने दिया जाये। पर अब तो वे अनच्छेद पारित हो चुके। अत: अब मेरे लिये केवल यह सुझाव देने का ही मार्ग रह गया है कि किसी भी राजनैतिक पक्ष के व्यक्ति को सेवाओं में भरती न होने दिया जाये।

आज स्थिति यह है कि नियुक्ति के पश्चात् सेवाओं पर लोक सेवा-आयोग का कोई नियंत्रण नहीं रहता है। सेवाओं की राजनैतिक अथवा अन्य प्रभावों से रक्षा करने के लिये वे स्वतन्त्र अथवा सक्षम नहीं हैं। मैं यह चाहता हूं कि भारत के भावी लोक सेवा आयोगों की ऐसी स्थिति हो कि वे असैनिक सेवकों की केवल मंत्रियों के प्रभाव से ही नहीं वरन् सब तरह के राजनैतिक प्रभाव से रक्षा कर सकें। एक प्रसिद्ध लेखक ने भारतीय असैनिक सेवा की तुलना प्लेटो के वेदान्ती

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

राजाओं से की है। मैं भी चाहता हूं कि हमारे असैनिक सेवक उच्च तथा समझदार व्यक्ति हों। मैं समझता हूं कि केवल नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तरण के विषय की ही नहीं वरन् अनुशासन सम्बन्धी समस्त विषयों की शक्ति लोक सेवा-आयोग के हाथ में रहे। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि जिस पद्धति से अधिराज्यों में और इंग्लैण्ड में कोई संघर्ष अथवा प्राधिकार सम्बन्धी अव्यवस्था उत्पन्न नहीं हुई है, उसे हमारे संविधान में क्यों न रखा जाये। जबकि आदर्श सरलता से करतलगत है, तो मैं समझता हूं कि उससे द्वितीय स्थान के आदर्श को पसन्द करना उचित तथा ठीक नहीं है। इस विषय पर मसौदा समिति ने जो मार्ग ठीक समझा था, उसे उसको सभा के समक्ष रखना चाहिये था। यह सभा का कार्य था कि वह समझौता करती। इन खण्डों के मसौदा बनाने में राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहिये था।

इन पर्यवेक्षणों के साथ मैं इन अनुच्छेदों का समर्थन करता हूं।

प्रो. यशवन्त राय (ईस्ट पंजाब: जनरल): पूज्य प्रधान जी, मैं डॉक्टर देशमुख जी ने जो संशोधन पेश किये हैं, उनका समर्थन करने के लिये आया हूं।

दो हजार वर्ष के बाद इस देश के हरिजन महसूस करने लगे थे कि हमें बराबर के अधिकार मिलेंगे। लेकिन बावजूद इस बात के कि सर्विसेज में हमारे लिये 12 फीसदी और 17 फीसदी रिजर्व रखी हैं, फिर भी बेइन्साफी होती है।

डॉ. अम्बेडकर साहब ने बड़ी कोशिशों के साथ कुछ विद्यार्थियों को विलायत भेजा और उन विद्यार्थियों पर सेण्ट्रल गवर्नमेन्ट का काफी से ज्यादा रुपये खर्च हुआ। मेरे पास ऐसी मिसालें हैं जो कि बेइन्साफी को साबित करती हैं। उनमें से एक हरिजन नौजवान जो कि एम.ए.एम.ई.डी. पास करके आये हैं, वह विलायत जाने से पहले 180 रुपये तनख्वाह लेते थे। लेकिन दुख की बात है कि विलायत से लौटने के बाद किसी पब्लिक सर्विस कमीशन ने उनको कोई सर्विस नहीं दी और इस वक्त वह सिर्फ 220 रुपये ले रहे हैं। हालांकि उस अकेले विद्यार्थी पर सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट ने चालीस हजार रुपये खर्च किया। ऐसी हालत में मैं यह महसूस किये बगैर नहीं रह सकता कि फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन या दूसरे कमीशन हरिजनों के साथ अन्याय नहीं करेंगे। मैं समझता हूं कि उनके साथ अन्याय अवश्य होगा। हम देखते हैं कि जितनी सबोर्डिनेट सर्विसेज़ हैं, उनके अन्दर यह असूल काम करता है कि चैरिटी बिगिन्स एट होम। जिसका कोई रिश्तेदार होता है, उसकी सिफारिश पहुंच जाती है। यहां तक मैंने देखा है कि मिनिस्टर लोग तक टेलीफोन उठाकर मेम्बरों से कह देते हैं और जिनके लिये वह चाहते हैं, इण्टरव्यूज सीक्योर कर ली जाती हैं। ऐसी दशा में मैं समझता हूं कि यह जो बैकवर्ड कम्युनिटज़ हैं या जो हरिजन हैं, उनके साथ बेइन्साफी होती ही रहेगी। जब तक कि इस क्लाज़ के अन्दर कोई न कोई स्पेशल प्रावीज़न न रखा जायेगा। और मैं तो यह कहता हूं कि जो भी फैडरल पब्लिक सर्विस कमीशन बने या स्टेट्स में और प्राविन्सेज में कमीशन बने, उनमें कोई न कोई हरिजनों का नुमाइन्दा होना चाहिये, ताकि वह उन कैण्डीडेट्स की जो कि एप्लाई करते हैं, देखभाल कर सकें और उनके साथ बेइन्साफी न होने पावे।

हजारों साल के बाद महात्मा गांधी की लीडरशिप के अन्दर और ऋषि दयानन्द की कृपा से इस देश के हरिजनों के अन्दर उत्साह पैदा हुआ था कि वह एजूकेशन में बढ़ें और उनको आशा हुई थी कि सोसायटी के अन्दर जो उनके साथ छूआछूत है, वह हटेगी और उन्हें समान अधिकार मिलेंगे। अगर हम इन चीजों को पूरा करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि ऐसी सोसायटी हो, जिसमें सबको दरजा एक सा हो, तो हमें कांस्टीट्यूशन में ऐसा प्रावीजन रखना पड़ेगा। कामथ साहब ने कहा कि फण्डामेण्टल राइट्स में 10 ए में यह बयान दिया गया है कि ईक्वेल आपारचुलिटीज़ सबको दी जायेंगी, इर्रस्पेक्टिव ऑफ कास्ट क्रीड एण्ड कलर। हम देखते हैं कि अनटचेबिलीटीज़ क्लाज भी पास हो गया है कि छुआछूत दूर की जाये, लेकिन देहातों में इससे कोई फर्क नहीं पड़ा है। अगर आप देखें तो आपको पता चलेग कि देहातों के अन्दर जो इस कान्स्टीट्यूशन को मानने वाले हैं, 85 फीसदी लोग अनपढ़ हैं वह इन बातों को नहीं मानते हैं। इसलिये अगर आप चाहते हैं कि यह जो पिछड़ी हुई कौमें हैं, या जो दबी हुई जातियां हैं, जिनके साथ आप हजारों बरसों से बेइन्साफी करते आये हैं, उनको अगर आप बराबर लाना चाहते हैं और हिन्दुस्तान के अन्दर एकता करना चाहते हैं, ताकि देश ज्यादा तरक्की करे, उन्नति हो और दूसरी पार्टियां जो देश के अन्दर हैं वह गरीबों को मिसलीड न कर सकें, तो मैं यह कहूंगा कि इस कांस्टीट्यूशन में ऐसा प्रावीजन होना चाहिये कि कम से कम जितने पढ़े लिखे हरिजन लोग हैं, उनको तो नौकरी मिलनी चाहिये। मेरे पास ऐसी मिसालें हैं कि जहां पर एक मैट्रिक हाईकास्ट लगा हुआ है, वहां पर एक हरिजन एम.ए. काम कर रहा है। ऐसी दशा में यदि मैं यहां पर उनके मुताल्लिक यह चीज आपसे मांगता हूं कि इन पब्लिक सर्विस कमीशन्स के अन्दर उनके नुमाइन्दे होने चाहिये और उनके लिये स्पेशल प्रावीजन होना चाहिये, तो यह अनुचित न होगा।

इसलिये मैं फिर डॉक्टर देशमुख जी ने जो संशोधन पेश किये हैं, उनका समर्थन करता हूं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 286 का समर्थन करता हूं। समर्थन करते हुये मैं सभा को कुछ उन बातों से सूचित करना चाहता हूं, जो बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोक सेवा आयोग के कृत्यों के सम्बन्ध में से एक खण्ड में "परीक्षायें संचालन करना" भी है। जब मैं इन परीक्षाओं के बारे में विचार करता हूं तो मुझे आश्चर्य होता है। इनका सदैव बड़ा बेतुका परिणाम निकलता है। दृष्टान्त के रूप में यदि कोई प्रथम श्रेणी का एम.ए. सेवा आयोग के समक्ष प्रस्तुत होता है, तो वह प्रथम श्रेणी तृतीय श्रेणी हो जाती है और तृतीय श्रेणी का व्यक्ति प्रथम श्रेणी का हो जाता है। कभी कभी तो जिस प्रकार से परीक्षा ली जाती है, उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाये वह अधिक नहीं है। प्रश्न इतने मूर्खतापूर्ण होते हैं कि कभी-कभी तो स्वयं प्रश्नकर्ता यह नहीं जानता कि उनके उत्तर क्या होंगे। उदाहरणार्थ वे पूछेंगे-"सूर्य और चन्द्र में कितना अन्तर है?" "आकाश में तारों की संख्या कितनी है?" "दूध सफेद क्यों है?" और ऐसे ही अन्य प्रश्न। और एक बात और है। शारीरिक अनर्हता। "तुम्हारी नाक बहुत सीधाी दिखाई देती है।" "तुम्हारी उंगलियां जितनी होनी चाहिये, उससे अधिक लम्बी है।" इन आधारों पर लोगों को अनर्ह कर दिया जाता है। "आह, आप यह भी नहीं जानते कि टाई किस प्रकार बांधी जाती है या कालर किस प्रकार पहना जाता है। आप बूट पहनना नहीं जानते।" इन बातों की परीक्षा ली जाती है। इन लोगों के लिये कोई पाठ्यक्रम विनिहित करना और पाठ्य पस्तकें निर्धारित करना मैं अधिक

[श्री एस. नागप्पा]

अच्छा समझूंगा। केवल मौखिक परीक्षा ही न हो वरन् किसी प्रकार की लिखित परीक्षा भी हो।

अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में तो मैं उन दु:खों का वर्णन ही नहीं कर सकता हूं, जो उन्हें इन परीक्षाओं में झेलने पड़ते हैं। और इन सब दुख और कष्टों के पश्चात् भी क्या उनको ले लिया जाता है? कदापि नहीं, क्योंकि उद्देश्य यह रहता है कि उनकी उपेक्षा की जाये और अनुसूचित जाति के लोगों के लिये आरक्षित स्थान उन सम्प्रदायों के उम्मीदवारों को दिये जायें, जिनका सूची में उनके बाद स्थान है। अपने लोगों का पक्ष करने के लिये उनकी अपनी निराली रीतियां हैं, स्पष्ट अथवा अस्पष्ट। सेवायें प्रशासन तन्त्र का आवश्यक अंग हैं। इसी कारण देश के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में सेवायें झगड़े की जड़ है। अत: सब मनुष्यों को समान अवसर मिलना चाहिये। संविधान में किसी अनुच्छेद की परिभाषा कर देने या उसऐ स्वीकार कर लेने से कोई लाभ नहीं। हमें यह देखना है कि जिस सद्भावना से मसौदा बनाया जाता है, उसी सद्भावना से उसके प्रत्येक शब्द और अक्षर को कार्यरूप में परिणित किया जाये। केवल तभी जो कुछ हम यहां करते हैं, वह न्याययुक्त तथा उचित होगा।

इन गरीब पद्दलित लोगों के साथ इस प्रकार जो लगातार अन्याय होता रहा है, वह इस कारण नहीं कि और लोगों को उनके साथ सहानुभूति नहीं, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि वह कोरी मौखिक सहानुभूति है जिसको वे यथाशक्य पूर्णतया प्रकट करते हैं। यथार्थता को वह छू तक नहीं पाती है। अत: श्रीमान, यह सब अन्याय होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि किसी भी प्रान्तीय लोक सेवा आयोग में या फेडरल लोक सेवा आयोग में अनुसूचित वर्गों का एक भी सदस्य नहीं है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि यह अन्याय क्यों किया जाता है? मैं आपको दर्जनों ऐसे व्यक्ति दे सकता हूं जिनकी अर्हतायें और स्थिति इन आयोगों के वर्तमान सदस्यों से अधिक उच्च हैं। वर्तमान सदस्यों का क्या आचार विचार है, क्या व्यवहार है? सीता का चरित्र शंका से परे होना चाहिये, पर मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि वर्तमान आयोग शंका से परे नहीं है। उनके अपने चोर दरवाजे हैं। उनके अपने प्रकार हैं। श्रीमान, मन्त्री पद धारण करने वाले लोग इन आयोगों के सदस्यों को फोन तक करते हैं और यह निश्चय कर लेते हैं कि किसी विशिष्ट पद के लिये कौन कौन उम्मीदवार हैं और इस बात का प्रयत्न करते हैं कि उनके उम्मीदवारों को अधिमान मिले, चाहे उस पद के लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति कोई हरिजन हो या गैर हरिजन। इस प्रकार से काम किया जा रहा है। हमारे विदेशी स्वामियों के समय में ये बातें होती थीं। पर अब सबको अनुभूति होनी चाहिये कि वह अब एक स्वतन्त्र देश में हैं, और स्वतन्त्रता में सबका हिस्सा है चाहे वह हरिजन हो या गैर हरिजन, चाहे वह अमीर हो या गरीब। केवल तभी हम इस स्वतन्त्रता के योग्य होंगे....।

*__अध्यक्ष:__ अनेक सदस्यों से मैं यह शिकायत सुन चुका हूं।

*__श्री एस. नागप्पा:__ श्रीमान, अब मैं अन्य प्रश्न को लूंगा।

*__अध्यक्ष:__ मैंने अनेक सदस्यों को उन मन्त्रियों, लोक-सेवा-आयोग के सदस्यों और अन्य प्राधिकारियों के विरुद्ध शिकायत करते हुए सुना है, जो अपनी रक्षा करने

के लिये सभा में उपस्थित नहीं हैं। मैं केवल यही कहूंगा कि जिन व्यक्तियों पर सरकारी कर्तव्य का भार रखा गया है, उन पर मनमाने आरोप लगाना ठीक नहीं है। मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य इस बात का ध्यान रखेंगे। ऐसे कथनों को जनता भिन्न-भिन्न सदस्यों द्वारा किये गये एक पक्ष के कथनों के रूप में स्वीकार करेगी।

***श्री एस. नागप्पा:** आपको अनेकानेक धन्यवाद। मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं। उनको मैं अंगुली तक से नहीं छूऊंगा।

अब मैं उन गुप्त रीतियों का वर्णन करूंगा, जो प्रयोग में लाई जाती हैं। यदि कार्यपालिका 30 या 40 नियुक्तियां करना चाहती है, तो वह यह कहती है कि आपात के कारण वह इतना नहीं ठहर सकती कि लोक सेवा आयोग द्वारा चुनाव हो और फिर नियुक्तियां हों। एक या दो वर्ष के बाद वह सेवा आयोग से कहती है कि उन पदों के लिये विज्ञापन निकाला जाये। कॉलेज के नये स्नातकों के साथ ये लोग भी आवेदन पत्र भेजते हैं, जिनको कार्यालय में एक वर्ष का अनुभव हो जाता है और यह स्वाभाविक ही है कि वे चुन लिये जाते हैं। प्रत्येक प्रान्त में इस प्रकार की गुप्त रीतियां प्रयोग में लाई जा रही हैं। अन्य प्रातों के लिये मैं नहीं कह सकता हूं, पर मेरे मद्रास प्रान्त में तो यही हो रहा है। सैकड़ों नियुक्तियां इस प्रकार से की जाती हैं।

***अध्यक्ष:** ठीक इसी बात पर मैंने आपत्ति की थी। माननीय सदस्य से मैं यह निवेदन करूंगा कि उचित स्थान में इस विषय के सम्बन्ध में वे अपने उद्‌गार प्रकट करें। यहां तो उन्हें विचारान्तर्गत अनुच्छेद पर ही अपने विचार सीमित रखते हैं, जो लोक सेवा आयोग सम्बन्धी हैं न कि नियुक्तियों के विषय पर जो कि किसी मंत्रालय ने कर ली है या किसी मंत्रालय द्वारा किये जाने की सम्भावना है।

***श्री एस. नागप्पा:** उसके कृत्यों के सम्बन्ध में मैं सभा से निवेदन करूंगा कि सेवा आयोग और अधिक दक्ष बनाया जाये। वह आज अभ्यर्थियों से मुलाकात करता है और महीनों बाद उसका परिणाम निकालता है। वह और अधिक दक्ष होना चाहिये। उसे शीघ्रता से कार्य करना चाहिये। यदि उसको आवश्यकता है तो वह अधिक कर्मचारी रख सकता है।

इस विशिष्ट उपबन्ध के रखने के प्रति मैं डॉ. अम्बेडकर और मसौदा समिति का बड़ा कृतज्ञ हूं। वह उपबन्ध यह है "संघ अथवा राज्य में पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों के लिये नियुक्तियां और पद रक्षित रखे जायेंगे"। पर जैसा कि मेरे मित्र श्री कामत ने कहा था कि इस आरक्षण का आधार क्या है? चाहे वह आधार जनसंख्या हो अथवा कोई अन्य आधार हो, उसका विनिधान होना चाहिये। ठीक और साम्यरूपता के कारण मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि जनसंख्या के आधार पर आरक्षण हो।

दूसरी बात यह है कि "पिछड़े हुए वर्ग" में बहुत अधिक वर्गों का समावेश होता है। मैं डॉ. अम्बेडकर से यह निवेदन करूंगा कि इस श्रेणी में कौन-कौन आते हैं। मैं समझता हूं कि उनके विचार में अनुसूचित वर्ग, अनुसूचित आदिम जाति तथा अन्य पिछड़े हुए वर्ग हैं। यदि अन्य कोई हों तो मैं निवेदन करूंगा कि वे इस समय उन्हें बता दें।

[श्री एस. नागप्पा]

इस खण्ड से यह प्रतीत होता है कि पदों की कुछ श्रेणियां अलग कर दी गई हैं। यद्यपि प्रशासन के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि उनको अलग रखा जाये, पर कार्यपालिका को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इस खण्ड में पिछड़े हुए वर्ग के लिये आरक्षण है और कार्यपालिका द्वारा इस खण्ड को क्रियात्मक रूप दिया जाना चाहिये और इन पदों में से कुछ पद पिछड़े हुए वर्गों को भी मिलने चाहिये।

मुझे खुशी है कि एक और उपबन्ध है, जिसके द्वारा इन बातों को जांच के लिये संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। पर उससे लाभ क्या? ये बातें संसद के समक्ष उस समय आयेंगी, जब उन पर कार्यवाही की जा चुकेगी। यह कोई रोकथाम की नीति नहीं है। संसद को केवल जो कुछ हो चुका है, उसकी जांच करने का ही अवसर मिलेगा। मैं इस सभा के सदस्यों से निवेदन करूंगा कि इस खण्ड को जिस रूप में वह है, उस रूप में उसका समर्थन करे और मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि वे कृपा कर यह बता दें कि "पिछड़े हुए वर्ग" से क्या आशर्य है, कौन-कौन लोग इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। मैं उनसे निवेदन करूंगा कि कृपा वे इस बात को स्पष्ट कर दें।

***श्री राजबहादुर:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद ने कुछ सिद्धान्त सम्बन्धी प्रमुख प्रश्नों तथा राष्ट्रीय नीति के कुछ प्रमुख प्रश्नों को भी हम लोगों के सामने प्रस्तुत किया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 286 का खण्ड (4) हमें केवल उस विषैले फोड़े की याद दिलाता है, जिससे हमारी राज्य-संस्था इतने दीर्घकाल से पीड़ित है—मेरा आशय जाति पद्धति के अभिशाप से है। मेरे मित्र डॉ. देशमुख और सरदार हुकम सिंह ने जो संशोधन संख्या 86 और 87 पेश किये हैं, वे भी इसी ओर संकेत करते हैं इस बात को बिना किसी संकोच के स्वीकार करना पड़ेगा कि देश की भिन्न-भिन्न जातियों और वर्गों में सेवाओं और पदों के बंटवारे में अन्याय और असमानता रही है। जैसा कि मैंने उस दिन कहा था कि जिन लोगों के हाथ में शक्ति है उनकी और से कुछ पक्षपात तथा कुलपोषणता हुई है। पर इसके अतिरिक्त कुछ उन मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों और परम्पराओं पर भी इस कथित अन्याय का उत्तरदायित्व है, जो हमारे समस्त इतिहास में व्यापक रही है।

फिर भी, श्रीमान, मैं यह निवेदन करूंगा कि हमें बुराई की जड़ पकड़नी चाहिये। बुराई का निराकरण इस बात में नहीं है कि राज्य की सेवाओं के कुछ पद हम उन लोगों को दे दें, जो देहातों में रहते हैं या उन लोगों को दे दें जो नगरों में रहते हैं। इसका उपचार तो कदाचित कहीं अन्यत्र ही है। इन अन्यायों और असमानता का कारण हम जाति व्यवस्था के दुर्गुणों में पा सकते हैं—वह दुर्गुण जो हमारे दीर्घकालीन दासत्व के प्रति उत्तरदायी था—वह दुर्गण जिसके फलस्वरूप हमारा नैतिक तथा राजनैतिक पतन हुआ है—वह दुर्गुण जिसने अस्पृश्यता इत्यादि अनेक अन्य दुर्गुणों को जन्म दिया है। यह तो उस दुर्गण का केवल एक लक्षण है कि सेवाओं में सब सम्प्रदायों को समान या ठीक रूप से प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। सेवाओं में वर्ग या जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व की मांग करना तो उस रोग से नाममात्र का छुटकारा पाना है। पर हमें तो आमूल इस रोग का इलाज करना है।

श्रीमान, मैं निवेदन करूंगा कि यदि हम अपने देश में उत्तम शासन व्यवस्था चाहते हैं, तो हमें सेवाओं में सर्वोत्तम व्यक्तियों को रखना चाहिये–जो सर्वोत्तम व्यक्ति मिल सकें, बहुत योग्य और ईमानदार व्यक्ति जिनको हम प्राप्त कर सकें। हम अपनी स्वतन्त्रता से जूआ नहीं खेल सकते हैं। देहाती तथा नगरों के कुछ वर्गों के कुछ व्यक्तियों के लिये पदों की व्यवस्था के प्रयत्न के द्वारा हम राष्ट्र की शान्ति, उन्नति और क्षेत्र से जूआ नहीं खेल सकते हैं।

डॉ. देशमुख द्वारा प्रस्थापित संशोधन पर मेरी आपत्ति अन्याय के प्रति सहानुभूति के किसी अभाव के कारण नहीं है—मैं यह मानता हूं कि इस अन्याय के कारण कुछ वर्ग कष्ट पा रहे हैं। मेरी आपत्ति इस आधार पर आश्रित है कि प्रस्थापित संशोधन स्पष्टतया उस दुर्गुण को जारी रखने का प्रयत्न करते हैं, जिनके कारण हम दुख पाते रहे हैं और जिनको हम निकालना चाहते हैं। संशोधनों में स्पष्टतया राज्य की सेवाओं में जाति और वर्गों के आधार पर प्रतिनिधित्व को माना गया है। यह वह समय है जबकि हमें यह मान लेना चाहिये कि हमारी रक्षा, हमारी स्वतंत्रता की रक्षा हमारे एकत्व में, हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र को समत्व रूप देने में है। मैं यह निवेदन करूंगा कि तर्क के लिये यदि हम इस सिद्धान्त को मान लें कि जाति और वर्ग के आधार पर नियुक्तियां करनी चाहिये, तो आइये हम यह विचार करें कि इसका क्या परिणाम होगा। यह स्पष्ट है कि उस दशा में हमें अपनी राज्यभक्ति और निष्ठा के केन्द्र को बदलना होगा। एक समूच राष्ट्र के प्रति भक्ति और निष्ठा होने के स्थान में किसी यूथ या किसी वर्ग या जाति के हितों के प्रति भक्ति और निष्ठा होगी। राष्ट्र के प्रति निष्ठा को केवल द्वितीय स्थान प्राप्त होगा। हमारी मुख्य निष्ठा वर्ग या जाति के प्रति होगी। यह एक ऐसा दुर्गण है जिससे हम इतने काल तक पीड़ित रहे हैं—यह वह दुर्गुण है जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। इसके कारण उन्नति के प्रति समस्त उत्साह लुप्त हो जायेगा। जब आप यह कहते हैं कि जाति या वर्ग के आधार पर सेवाओं में प्रतिनिधित्व होना चाहिये, तो आप आत्मोन्नति का सारा उत्साह भंग कर देते हैं। दक्षता के प्रति समस्त उत्साह ठंडा पड़ जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मैंने यह नहीं कहा था कि जाति अथवा वर्ग के आधार पर प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

***श्री राजबहादुरः** आपके संशोधन में यही कहा गया है:

"अथवा संघ की या किसी राज्य की लोक सेवाओं में सब वर्गों का ठीक तथा उचित प्रतिनिधित्व कराने के प्रयोजन से।"

यहां आप वर्ग के आधार पर सेवाओं में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को मानते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो उन्नति करने का समस्त उत्साह दक्षता के लिये सारा उत्साह लुप्त हो जायेगा। जब उन्नति और दक्षता के लिये उत्साह लुप्त हो जाता है, तो समस्त राष्ट्र का पतन हो जाता है। ऐसी दशा में हम भी पार्थक्यवाद के दुर्गुण, यूथ या वर्ग ईर्ष्या के दुर्गुण से दूषित बने रहेंगे।

श्रीमान, मैं यह निवेदन करूंगा कि यह दुर्गुण इससे भी और अधिक बढ़ जायेगा और हमारे राष्ट्रीय जीवन के सब पहलुओं में समा जायेगा। और फिर राष्ट्र के

[श्री राजबहादुर]

प्रति भक्ति या सेवा के आधार पर, राष्ट्र के हेतु बलिदान करने की सद्भावना और क्षमता के आधार पर निर्वाचन नहीं लड़े जायेंगे वरन् वर्ग के प्रति भक्ति के आधार पर लड़े जायेंगे। क्या हम ऐसा होने देंगे? मैं आदरपूर्वक निवेदन करता हूं कि ऐसा हम नहीं होने देंगे। ऐसा बहुत कुछ हो चुका और अब वह समय है कि हमें इन सब वर्ग या जाति सम्बन्धी भेद विभेदों को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिये। डॉ. देशमुख के संशोधन का समर्थन करते हुए मेरे माननीय मित्र श्री फूल सिंह ने ऐसे उदाहरण दिये थे, जिनमें लोग ऐसे पदों पर पहुंच गये जिनके वे योग्य नहीं थे। मैं निवेदन करता हूं कि उन उदाहरणों को देते हुए वे स्वयं अपने दृष्टिकोण से विमुख हो गये हैं। उससे केवल यह सिद्ध होता है कि योग्यता के अतिरिक्त अन्य विचारों के आधार पर उन लोगों को नियुक्त किया गया है। यह कहना कि देहाती क्षेत्रों के लोग ही अच्छे हैं या नगर-निवासी ही अच्छे हैं, सही नहीं है। अच्छे बुरे आदमी हमें सब जगह मिलने हैं। योग्य और अयोग्य व्यक्ति हमें सब वर्गों में और जीवन के प्रत्येक अंग में मिलते हैं। किसी एक व्यक्ति पर पूर्णतया अच्छे होने की मुहर लगाना और किसी अन्य व्यक्ति पर पूर्णतया बुरे होने की मुहर लगाना बुद्धिमानी नहीं है। बल्कि मेरी सम्मति से तो यह केवल मूर्खता ही है। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया अच्छा अथवा पूर्णतया बुरा नहीं है। हमारे एक प्रसिद्ध कवि ने कहा है:

'जिस व्यक्ति की, कुटिल समझ कर, लोगों ने निन्दा की है उसमें मुझे इतनी अच्छाइयां मिलती हैं और जिस व्यक्ति को लोग देवता तुल्य समझते हैं, उसमें मुझे इतने दोष और कलंक दिखाई देते हैं कि अच्छे और बुरों को पृथक् बताने में मुझे संकोच होता है और ईश्वर ने भी ऐसा नहीं किया है।'

हम सब गुण और दोषों के मिश्रण हैं। हम सबमें योग्यता तथा अयोग्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता का मेल है। केवल ईश्वर की पूर्ण है। अत: यह अच्छा है कि हम सब प्रकार की वर्ग ईर्ष्या और जाति भक्ति को दूर कर दें। इसी प्रकार से हम राष्ट्र को शक्तिशाली बना सकते हैं।

हम पर केवल वर्तमान पीढ़ी का ही उत्तरदायित्व नहीं है, वरन् आगे आने वाली सन्तति का भी उत्तरदायित्व है। यदि हम वर्ग भेद विभेद के दोष को, जिससे हम इतने काल के पीड़ित हैं, जारी रखने का प्रयत्न करते हैं तो हम अपनी आगे आने वाली संतति के साथ सच्चाई का व्यवहार नहीं करते हैं। अत: मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख द्वारा पेश किये संशोधनों के सिद्धान्तों से में पूर्णतया असहमत हूं।

श्रीमान, उन टिप्पणियों के बारे में मैं एक बात और कहना चाहता हूं, जो उन भेद विभेद तथा कमियों के सम्बन्ध में की गई हैं, जिनका अनुभव देहाती सम्प्रदायों और अनुसूचित जातियों को हुआ है। मैं यह निवेदन कर चुका हूं कि हमें यह मानना पड़ेगा कि ये असमानता वर्तमान है, पर मैं यह निवेदन करता हूं कि ये केवल रोग के लक्षण मात्र हैं और यदि हम इन असमानताओं या अन्यायों का निराकरण करना चाहते हैं, तो हमें रोग के लक्षणों के इलाज करने के लिये प्रयत्नशील नहीं होना चाहिये, वरन् हमें दोष की जड़ तक पहुंचना चाहिये और स्वयं दोष को मिटाना चाहिये, अपेक्षाकृत इसके कि हम इधर-उधर नाममात्र के उपचारों में

भटकते रहें। मैं निवेदन करूंगा कि ये पद, सेवायें, और विधानमण्डलों के स्थान हमारे राष्ट्र के लिये सदैव फूट की जड़ के रूप में रहे हैं। इस फूट की जड़ से हमें सावधान रहना चाहिये। इस देश को हमें एक संयुक्त दृढ़ राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें यह प्रयत्न करना चाहिये कि उन सब घाट तक प्रवृत्तियों और कारणों का नाश हो जो हमारी फूट के प्रति उत्तरदायी हैं। अत: मैं डाक्टर देशमुख और सरदार हुकम सिंह से यह निवेदन करूंगा कि वे अपने संशोधनों को वापस ले लें।

श्रीमान, जहां तक सरदार हुकम सिंह के संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह संशोधन जिस प्रयोजन के लिये पेश किया गया है, उसी का वह विरोध करता है। उनका संशोधन इस प्रकार है—"पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों का आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप में पिछड़े हुए वर्ग या वर्गों से अभिप्रेत होगा और ऐसी ही वर्ग उसके अन्तर्गत आयेंगे"। "पिछड़े हुए वर्गों" का कुछ भी अर्थ हो सकता है—शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा अन्य रूप में पिछड़े हुए। उसके अर्थ को यहां विशिष्ट करने अथवा निर्बन्धित करने का प्रयत्न क्यों करते हैं? मैं समझता हूं कि वर्त्तमान रूप में यह पद बहुत अधिक व्यापक है और इसको ज्यों का त्यों छोड़ देना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि अब वह समय है कि हमें इस प्रकार के सब वर्गान्तरों और वर्ग-ईर्ष्या को छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये। मेरे विचार में तो इसका ठीक उपचार यह है कि हमें इसकी जड़ अर्थात् जाति व्यवस्था के आधार पर कुठाराघात करना चाहिये। किसी प्रभावी विधान द्वारा जितना शीघ्र हो सके, हमें इसे मिटाने, का प्रत्यन करना चाहिये, जिससे कि आगे चलकर वर्गों में परस्पर किसी प्रकार के भेद विभेद अन्तर या जाति या सम्प्रदायों को न माना जाये और आगे चलकर यह अनिवार्य कर दिया जाये कि तत्कथित किसी एक जाति मैं पैदा हुआ व्यक्ति अपना, अपने पुत्रों अथवा पुत्रियों का विवाह उसी जाति में न करेगा। अपनी ही जाति में विवाह करना दण्डनीय बना दिया जाये। वर्त्तमान काल में मुझे केवल यही उपचार दिखाई देता है। केवल विधान अधिनियमन द्वारा ही जाति व्यवस्था के इस दोष से हम मुक्त हो सकते हैं। कृत्रिम उपायों से हम इस दोष को नहीं मिटा सकते हैं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास: जनरल): श्रीमान, एक कल्याणकारी, योग्य और ईमानदार लोक-सेवा सरकार या उसके प्रशासन का रीढ़ स्तम्भ है। इस आधार पर यदि हम खण्ड की कुछ सावधानी से जांच करें तो उससे हमें अच्छा लाभ होगा।

मुझे विश्वास है कि यहां इस सेवा सम्बन्धी और लोक सेवा आयोग द्वारा किये गये प्रकार्यों की रीति सम्बन्धी जो कुछ भी शिकायत हमारे सामने की गई हैं, उन सब कमियों को भारतीय सरकार के अधिनियम की वर्तमान धारा 266 में दिये गये इन विभिन्न संशोधनों द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि मैं श्री नागप्पा से सहमत नहीं हूं, पर उन्होंने कहा था कि चाहे प्रान्तीय हो अथवा केन्द्रीय वर्तमान लोक सेवा आयोग इतने बुरे हैं, जितने कि उन्होंने बताये थे। एक या दो उम्मीदवारों के साथ कोई भी लोक सेवा आयोग या राज्य आयोग पर्याप्त या पूर्ण न्याय नहीं कर सकता है। जिसका आवेदन पत्र स्वीकार नहीं किया जाता है, वही लोक सेवा आयोग को दोष देने लगता है। और यह भूल जाता है कि उस जैसे बहुत हैं और यह कहता है कि वह आयोग द्वारा निर्धारित परीक्षा में सफल हो सकता था। कठिनाई भी हुई होंगी, कुछ ऐसे उदाहरण हो सकते हैं, जहां वास्तव

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

में कठिनाई हुई हों और जिस व्यक्ति को कठिनाई हुई हो वह उसका पात्र न हो। अतः व्यक्तियों के प्रश्न को लेकर झगड़ना अच्छा नहीं है। यह सत्य है कि इन लोक-सेवाओं के लिये भी ठीक-ठीक व्यक्ति चुने जाने चाहिये, कर्मचारीवृन्द तथा अन्य विषय सम्बन्धी उपबन्ध बनाये जा चुके हैं। अब हम इस स्थिति में हैं कि प्रकार्य निर्धारित करें और यह देखें कि उन प्रकार्यों का उचित रूप में निर्वहन हो रहा है।

नियुक्तियों की रीति और अर्हताओं के सम्बन्ध का विषय एक विशेष दशा में राष्ट्रपति पर तथा अन्य राज्य के राज्यपाल या शासक पर छोड़ दिया गया है, पर उन सब दशाओं में वे अपने मन्त्रियों की मन्त्रण के अनुसार कार्य करेंगे। लोक प्रिय सरकारें होंगी ही, पर एक बार जब वे नियुक्त कर देंगे, जो फिर उन्हें लोक सेवा आयोगों के सदस्यों के कार्य संचालन और विनियमों से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। वे पूर्णतया स्वतन्त्र और उनकी स्वतन्त्रता में समय-समय पर कार्यपालिका द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। यह प्रत्याभूति है। यहां तक कि उनको हटाने के लिये भी हमारे यहां एक और ही पद्धति है और मनमाने रूप में उनके कार्य में हस्तेक्षप नहीं किया जा सकता है। पहिले हम जो अनुच्छेद पारित कर चुके हैं, उनमें राष्ट्रपति या संसद द्वारा यह अवश्य विनिहित किया जायेगा और यह उपक्रम किया जा चुका है कि इस बात का सुनिश्चयन हो कि इन लोक सेवा आयोगों के प्रशासन के विषय में बड़ी सच्चाई और ईमानदारी रहे।

उनके प्रकार्य क्या हैं? श्री नागप्पा द्वारा की गई शिकायतों में से कुछ शिकायतें भारत शासन अधिनियम की धारा 266 के कुछ उपबन्धों के कारण है। ऐसा नहीं होता है कि वर्तमान भारतीय सरकार के अधीन लोक सेवाओं के लिये की गई प्रत्येक नियुक्ति लोक सेवा आयोग द्वारा की जाये। उसमें कुछ अपवाद होते हैं। वर्तमान अधिनियम में गवर्नर जनरल नियुक्तियों के कुछ खण्डों को लोक सेवा आयोग के क्षेत्र से हटाने के नियम और विनियम निर्धारित कर सकता है। उनको भी माना जाता है और एक ऐसा उपबन्ध उस अनुच्छेद के मसौदे में पाया जाता है। पर यहां एक रक्षाकवच रख दिया गया है, जिसका भारतीय सरकार के वर्तमान अधिनियम में अभाव है। पहले खण्ड में के उपबन्ध से असमान रूप में रक्षाकवच यह है कि जब किसी विशिष्ट नियुक्ति को क्षेत्र को बाहर कर दिया जाता है, तो उस नियुक्ति के सम्बन्ध में लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं। अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) में कहा गया है कि "यथा स्थिति संघ लोक सेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जायेगा, इत्यादि इत्यादि" और इसके बाद "परन्तु अखिल भारतीय सेवाओं के बारे में तथा संघ कार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में भी राष्ट्रपति तथा राज्य के कार्यों से संसक्त अन्य सेवाओं और पदों के बारे में यथास्थिति राज्यपाल या शासक उन विषयों का उल्लेख करने वाले विनियम बना सकेगा, जिनमें साधारणतया अथवा किसी विशेष वर्ग के मामले में लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जाना आवश्यक न होगा"। एक इसी प्रकार का उपबन्ध भारत शासन अधिनियम में आज भी है और हो सकता है कि उसके कारण बहुत से दुरुपयोग मंत्रालय द्वारा बिना लोक सेवा आयोग के परामर्श के चुनाव करने के विषय में हुए हों। खण्ड 5 के उपबन्धों में इसके निराकरण

करने का प्रयास किया गया है, जिसमें कहा गया है "इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के परन्तुक के अधीन राष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल या शासक द्वारा बनाये गये सब विनियम संसद या राज्य के अपने-अपने विधान-मण्डलों में रखे जायेंगे"। यह रक्षा कवच है। वे विधानमण्डल में जांच के लिये प्रस्तुत होंगे और समय-समय पर उनमें संशोधन होंगे।

श्री नागप्पा ने जो दूसरी आपत्ति की थी, वह यह थी कि नियुक्तियां एक वर्ष पूर्व कर ली जाती हैं और बाद में उन नियुक्तियों के लिये लोक सेवा आयोग द्वारा विज्ञापन निकाला जाता है और विभागों ने जिन लोगों को नियुक्त कर लिया है, उनको इस आधार पर कि वे अनुभवी हैं, आगे बढ़ाने का विभागों द्वारा प्रयत्न किया जाता है। ऐसी बातें होती हैं। यह केवल सम्बद्ध मन्त्री का ही दोष नहीं है। माननीय श्री सन्तानम को मैंने यह कहते हुए सुना है कि वे किसी नियुक्ति के लिये लोक सेवा आयोग द्वारा चुनाव चाहते थे, पर आयोग को चुनाव करने का समय ही नहीं मिला और सात आठ महीने तक मामला वहां पड़ा रहा और इस प्रयोजन के हेतु उन्हें वह नियुक्ति रोकनी पड़ी। कुछ ऐसी अवस्थायें हो जाती हैं जिनमें बहुत से आवेदन पत्र आ जाने पर और कर्मचारियों की कमी के कारण लोक सेवा आयोग का सयम नहीं मिल पाता। ऐसी स्थितियां अपवादस्वरूप हैं और वास्तविक स्थिति ऐसी है कि उनको अपवादस्वरूप होना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि आगे आने वाले वर्षों में श्री नागप्पा ने जैसी शिकायत की है, उसके लिये कोई आधार नहीं रहेगा और खण्ड (5) के अधीन जो नियम हम अब बना रहे हैं, उनसे हम इन असुविधाओं से बच जायेंगे और सद्‌भावना पूर्वक मुझे यह विश्वास है कि भविष्य में ऐसी बातें नहीं होंगी।

इसके बाद जिस रीति से इन लोक सेवा आयोगों को कार्य करना है, उसके सम्बन्ध में सबसे पहली आवश्यकता यह है कि केवल योग्यता के आधार पर सब नियुक्तियां लोक प्रशासन के हित में की जायेंगी। पर अपने देश की दशा पर विचार करते हुए उन लोगों के लिये कुछ उपबन्ध होने चाहियें, जिनकी आर्थिक तथा सामाजिक रूप में भी उन्नति नहीं हुई है और इस कारण जो उस स्तर पर आने में असमर्थ हैं। पर इसमें कुछ परिसीमा अवश्य होनी चाहिये। जिन नियुक्तियों के लिये बहुत चातुर्य और कार्यक्षमता अपेक्षित है, उनके लिये इन नियमों में कोई गुंजाइश नहीं रखी जा सकती है, क्योंकि लोक हित की मांग उसके विपरीत है। उदाहरणार्थ एक कुशल शल्य चिकित्सक को लीजिये, केवल इस आधार पर कि वह किसी विशिष्ट जाति का है, उसे उस पद के लिये नहीं लेना चाहिये। पदों की अन्य श्रेणियां हैं, जिनके लिये इतने अधिक औद्योगिक चातुर्य और कार्यक्षमता की आवश्यकता न हो और उनका बंटवारा किया जा सकता है। संविधान में कोई कड़ा निश्चित नियम नहीं रखा जा सकता है। इस कारण पिछड़े हुए वर्गों के लिये कुछ उपबन्ध बनाये गये हैं। कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो व्यापार करते हैं—उदाहरण के रूप में मार बड़ी सम्प्रदाय को ले लीजिये। वे धनी हैं और व्यापार करते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में क्या उनको यह अधिकार है कि वे ये कहें कि सेवाओं में उनको उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला? सच तो यह है कि लोक सेवाओं में उनके लिये कोई आकर्षण नहीं है। एक कुटुम्ब के दो या तीन व्यक्ति व्यापार में लग जाते हैं और लखपति बन जाते हैं। यह सच है कि उनमे से एक भी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

लोक सेवा में नहीं है। धनिक वर्गों को प्रतिनिधित्व देने से बचने के लिऐ "सम्प्रदाय" शब्द के स्थान में "पिछड़े हुए वर्ग" पद रखा गया है। यद्यपि "पिछड़े हुए वर्ग" पद की परिभाषा नहीं की गई है, पर मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयोग यह विनिश्चित कर देगा कि पिछड़े हुए वर्गों में कौन-कौन हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय में पिछड़े हुए वर्ग हैं। अत: इन पिछड़े हुए वर्गों पर अधिक ध्यान देना पड़ेगा। व्यक्तियों का कोई वर्ग पिछड़ा हुआ है या नहीं यह बात जाति या सम्प्रदाय पर निर्भर नहीं करती है। एक वर्ग धनी है और दूसरा निर्धन। कुछ वर्गों को आर्थिक लाभ है और कुछ को नहीं। पिछड़े हुए वर्ग पर पर्याप्त रूप से व्यापक है। यह मालूम करने के लिये कि पिछड़े हुए लोग कौन हैं, अनुच्छेद 301 के अधीन इस विषय के लिये एक आयोग नियुक्त किया जायेगा और मुझे विश्वास है कि जिनको ऐसा समझा जायेगा वे इस खण्ड के अधीन आ जायेंगे, जिनके लिये इसमें विशेष आरक्षण का प्रयास किया गया है। मूलाधिकारों के अनुच्छेद 10 के अधीन यह कहा गया है कि कोई विभेद नहीं किया जायेगा, पर पिछड़े हुए वर्गों के उन लोगों को विशेष सहायता प्रदान करने के लिये विभेद किया जायेगा जिनको अब से बाद में पिछड़ा हुआ समझा जायेगा या जिनके नाम आयोग द्वारा अनुसंधान किये जाने पर इस वर्ग में घोषित किये जायेंगे। मुझे विश्वास है कि डॉ. देशमुख को पर्याप्त संतोष हो गया होगा। जब यह विषय आयोग के समक्ष प्रस्तुत होगा, तो उसके सामने इन भिन्न-भिन्न उप-जातियों और अन्य वर्गों के मामले रखने के लिये पर्याप्त समय मिलेगा, जिससे कि उन सबके लिए साथ, जिनको विशेष सहायता की आवश्यकता है, न्याय किया जा सके।

भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 266 के अधीन वर्तमान वस्तुस्थिति में इस अनुच्छेद द्वारा एक और सुधार किया गया है। लोक सेवा आयोग के परामर्श के लिये रखे जाने वाले विषयों में यदि कोई विषय बढ़ाया जाता है, तो विधेयक के पुर:स्थापन करने के पूर्व संसदीय अधिनियम के लिये राष्ट्रपति या गवर्नर जनरल की मंजूरी लेनी होगी। नये अनुच्छेद के अधीन लोक सेवा आयोग को, चाहे केन्द्र का हो या प्रान्त का, अतिरिक्त शक्तियों या विषयों को देने वाले विधेयक के पुर:स्थापन के लिये राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक नहीं है। सरकारी या गैर-सरकारी सदस्य को यह अधिकार है कि वह जब आवश्यक हो, तभी विधेयक का पुर:स्थापन कर दे और संविधान के क्रियाकरण का कुछ अनुभव प्राप्त कर लेने के पश्चात् सीधे सभा का मत संग्रह करे और उस विधेयक को पारित कराये। यह एक दूसरा सुधार है। भारतीय शासन अधिनियम 1935 के क्रियाकरण का अनुभव प्राप्त कर लेने के पश्चात् व्यवहार में जितने दोष दिखाई पड़े उन सबको, पिछड़े हुए वर्गों के लिए विशेष उपबन्ध बना कर, यह देखकर कि कुछ बातों को लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखने के लिये नियमों और विनियमों को समय-समय पर संसद के समक्ष जांच के लिये रखना और उस उपबन्ध का अपमार्जन कर, जिसके द्वारा लोक सेवा आयोग को अधिक शक्तियां सौंपने के विधेयक का पुर:स्थापन करने के लिये राष्ट्रपति की मंजूरी अपेक्षित थी, दूर कर दिया है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि इन अनुच्छेदों में इन बातों का सुधार किया है। मैं आशा करता हूं कि भगवान की कृपा से ये उपबन्ध कल्याणकारी होंगे। यदि दैवात् संविधान के क्रियाकरण के पश्चात् यदि हमें और अधिक दोष दिखाई देते हैं, तो अनुच्छेद 286 में एक ऐसा उपबन्ध है, जिसके द्वारा हम इन उपबन्धों में संशोधन कर सकते

हैं। आखिरकार किसी संस्था की सफलता, जो नियम तथा विनियम निर्मित किये जाते हैं, उन पर इतनी निर्भर करती है, जितनी कि उस संस्था के चलाने वाले व्यक्तियों की सच्चाई, कार्यदक्षता और ईमानदारी पर निर्भर नहीं करती है; यद्यपि यह सच है कि नियम तथा विनियम आवश्यक अवश्य हैं। हम यह आशा करें कि व्यवहार में इन सब दोषों का निराकरण हो जायेगा, लोक सेवा आयोग के प्रशासन का प्रभार ईमानदार, खरे और लोक हितैषी व्यक्तियों के हाथ में होगा और कुलपोषणता या पक्षपात का जो दुर्गुण रहा है, वह पूर्णतया मिट जायेगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि जो अनुच्छेद हमारे सामने हैं, उसमें भारत अधिनियम 1935 या संविधान के मसौदे में लोक सेवा आयोग सम्बन्धी उपबन्धों की अपेक्षा बहुत सुधार कर दिये गये हैं। मेरे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने एक या दो विषयों को बताया है, जिसके सम्बन्ध में यह नया मसौदा भारत शासन अधिनियम 1935 या संविधान के मसौदे में दिये हुए उपबन्धों से अच्छा है। मैं इस विचाराधीन अनुच्छेद की अन्य और भी अधिक महत्वपूर्ण बातें बताऊंगा, जिनका प्रत्येक वह व्यक्ति स्वागत करेगा, जो लोक सेवा आयोगों को नियुक्त करने के अभिप्राय को समझता है।

जैसा कि अनेक सदस्यों ने कहा है, उसका उद्देश्य राज्य के लिये उन कार्यकुशल लोक सेवकों को प्राप्त करना है, जो सब लोगों की समान रूप में सेवा करें और जो सदैव सब सम्प्रदायों और राज्य के हितों पर ध्यान देते रहें। जो उपबन्ध आजकल प्रवर्त्तन में हैं, उनमें कार्यपालिका के हस्तक्षेप के लिये बहुत गुंजाइश है। भारत शासन अधिनियम 1935 गवर्नर जनरल को किसी भी विषय को, जिसके सम्बन्ध में फैडरल लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं है, विनियम द्वारा उल्लेख करने की शक्ति देता है। ये विनियम अनावश्यक रूप में व्यापक हो सकते हैं या उनको समय समय पर इस प्रकार से बदला जा सकता है कि कार्यपालिका पर्याप्त मात्रा में अवांछनीय प्रभाव डाल सके। अब जिस प्रकार से अनुच्छेद 286 का मसौदा बनाया गया है, उसमें कुछ रोक की व्यवस्था है और कार्यपालिका की मनमानी इच्छा के विरुद्ध एक अच्छा प्रतिरोध है। राष्ट्रपति या राज्यपाल को उन विषयों का उल्लेख करने की शक्ति होगी, जिनके सम्बन्ध में लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक न हो, पर इसके साथ-साथ यह उसका कर्तव्य होगा कि अपने बनाये हुए विनियमों को संसद के समक्ष रखे और संसद को केवल उन विनियमों की आलोचना करने की शक्ति नहीं होगी वरन वह जैसा चाहे वैसा संशोधन उनमें कर सकेगी। अत: हम यह विश्वास कर सकते हैं कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा कोई ऐसा विनियम नहीं बनाया जायेगा, जिसके लिये लोकमत प्राप्त करना सम्भव न हो। यदि उसे सही पथ से विचलित होने का प्रलोभन होता है, तो उस प्रलोभन के वशीभूत होने में वह संकोच करेगा, क्योंकि उसे यह ध्यान रहेगा कि उसके विनियम संसद के समक्ष रखे जायेंगे।

जो अनुच्छेद हमारे सामने रखे गये हैं, उनमें एक और बात स्वागत करने के योग्य यह है कि लोक सेवा आयोग के लिये यह आवश्यक है कि अपने कार्य

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

का वार्षिक प्रतिवेदन कार्यपालिका के सामने रखे और कार्यपालिका का ध्यान उन उदाहरणों की ओर आकर्षित करे, जिनमें कार्यपालिका ने उसके परामर्श को नहीं माना है। और इसके आगे यह और कि कार्यपालिका के लिये यह आवश्यक है कि वह लोक सेवा आयोगों को समुचित विधानमण्डलों के समक्ष प्रस्तुत करे। यह बहुत मूल्यवान उपबन्ध है। इसके महत्व की प्रशंसा नहीं की जा सकती है। समय-समय पर हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें हमें यह आभास होता है कि तत्सम्बन्धी सरकार अनियमितता की दोषी है, पर संविधान में ऐसी कोई रीति नहीं दी गई है, जिसके द्वारा हम यह निश्चित रूप में जान सकें कि किन-किन मामलों में अनियमितता हुई है और कहां तक हुई है। इस विषय पर ठीक सूचना प्राप्त करने की सुविधा के अभाव में विधान-मण्डल के सदस्य भरती सम्बन्धी प्रश्न पूछते हैं, जिनसे मन्त्रियों का या लोक सेवा आयोग का बड़ा अहित होता है। अनुच्छेद 288 (क) इस संकट का निवारण करेगा और यदि कार्यपालिका अनुचित रूप से लोक सेवा आयोग के परामर्श का निरादर करेगी, तो जनता के प्रतिनिधियों को कार्यपालिका के कार्य की आलोचना करने और भविष्य में आयोगों के ठीक परामर्श का निरादर करने से रोकने का अवसर मिलेगा।

श्रीमान, जो दृष्टिकोण मैंने सभा के समक्ष रखा है, वह केवल सिद्धान्त वाद पर आश्रित नहीं है। कम से कम एक मामले में तो जो प्रतिरोध इन अनुच्छेदों में रखे गये हैं, वे व्यवहार रूप में आवश्यक समझे गये हैं। कुछ समय पूर्व कलकत्ता की उच्च न्यायालय ने स्थानीय सरकार द्वारा लोक सेवा आयोग से परामर्श किये बिना की गई नियुक्ति की मान्यता पर आपत्ति उठाने वाले आवेदन पत्र पर विचार किया था। उच्च न्यायालय ने यह मत प्रकट किया कि भारत शासन अधिनियम 1935 के अनुच्छेद 266 में इन विषयों के सम्बन्ध में, जिनके लिये लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक होगा, दिये हुए उपबन्ध परम आदेशात्मक नहीं है, क्योंकि यह नहीं कहा गया है कि उन उपबन्धों की अवज्ञा करने का परिणाम क्या होगा। अत: उनको केवल निदेशात्मक ही माना गया। दूसरे शब्दों में लोक दृष्टिकोण से कार्यपालिका पर डाले गये आभार मूल अधिकार नहीं थे, वरन केवल निदेशात्मक सिद्धान्त थे। यदि भविष्य में ऐसा कोई मामला उठता है, तो सम्बद्ध लोक सेवा आयोग उसे प्रतिवेदन में उल्लिखित कर सकेगी, जिसे संसद के समक्ष रखना पड़ेगा। अत: यह एक युक्तियुक्त निश्चित बात है कि कार्यपालिका को सावधानी से कार्य करना पड़ेगा, न कि वह मनमाने रूप में शक्तियों का प्रयोग करे और इस प्रकार की कार्यवाही करे कि मानों लोक सेवा आयोग हैं ही नहीं।

श्रीमान, एक और उपबन्ध जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, वह है अनुच्छेद 287। पहिले मसौदा जिस रूप में था, उसके अनुसार सामान्यतया संघ अथवा राज्य की सेवाओं के लिये ही आयोगों से परामर्श करना होता था, वरन अब निगमों अथवा विधि द्वारा सृजित संस्थाओं के सम्बन्ध की नियुक्तियां भी आयोग द्वारा की जायेंगी। यह एक और महत्वपूर्ण रक्षाकवच है। यह बिल्कुल असम्भव तो है ही नहीं कि निकट भविष्य में महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध के कुछ निगमों का सृजन हो। उनमें अनेक पद होंगे और उनमें से बहुत से पदों के वेतन ऊंचे होंगे। मूल रूप में जिस प्रकार का मसौदा था, उसके अनुसार लोक

सेवा आयोग को इन पदों के लिये भरती करने का अधिकार न था; पर संशोधित मसौदा जो कि हमारे समक्ष रखा गया है, उसके अनुसार यह आवश्यक है कि किसी निगम या विधि द्वारा सृजित संस्थाओं के अधीन पदों के साथ वही व्यवहार किया जायेगा, जो संघ या किसी राज्य के पदों के साथ होता है।

इन सब बातों को एक साथ लेते हुए यह स्पष्ट है कि जो अनुच्छेद हमारे समक्ष रखे गये हैं, वे स्वागत करने के योग्य हैं। यदि लोक सेवा आयोग के ठीक-ठीक सदस्य चुने जाते हैं और वे बिना किसी पक्ष अथवा भय के कार्य करते हैं, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोक सेवाओं में भरती केवल दोष रहित ही नहीं होगी वरन् उसके प्रति कोई शंका तक नहीं की जा सकेगी। और यदि किसी प्रकार से आयोग के सदस्य अच्छे नहीं होंगे और या वे अपने कार्य का ठीक निर्वहन न करेंगे, तो इसका कोई इलाज ही नहीं। संविधान न तो सुदक्ष व्यक्तियों को पैदा कर सकता है और न कार्यपालिका को ऐसे पदाधिकारियों का चुनाव करने के लिये बाध्य कर सकता है, जो सावधानी से और बिना किसी पक्षपात के महत्वपूर्ण प्रकार्यों का निर्वहन कर सके।

श्रीमान, जिन अनुच्छेदों पर हम विचार कर रहे हैं, उन पर कुछ आलोचना हुई है। माननीय मित्र डॉ. देशमुख यह अनुभव करते हैं कि ये अनुच्छेद जनसंख्या के समस्त वर्गों के अधिकारों की रक्षा नहीं करते हैं। वे अनुच्छेद 286 के उस उपबन्ध से सन्तुष्ट नहीं हैं, जो लोक सेवा आयोग से परामर्श किये बिना किसी पिछड़े हुए वर्ग के नागरिकों के लिये आरक्षण के सम्बन्ध में है। वे चाहते हैं कि इस सिद्धान्त को और अधिक विस्तृत किया जाये और वह सब वर्गों के लिये लागू हो। वे तो वास्तव में इससे भी आगे बढ़ते हैं और वह चाहते हैं कि लोक सेवा आयोग से परामर्श किये बिना राज्य यह निर्धारण करे कि संघ में अथवा राज्य में विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधान लोक सेवाओं में उनकी संख्या के अनुसार होगा। कई वक्ताओं ने इस संशोधन पर इतने पूर्ण रूप से विचार प्रकट किये हैं कि मैं नहीं समझता हूं कि इस पर और अधिक विचार प्रकट करना मेरे लिये आवश्यक है। पर जिन वक्ताओं ने इस संशोधन का विरोध किया है, उनके विरोध में मैं भी अपना स्वर मिलाना चाहूंगा। हम सब इस बात के इच्छुक हैं, कि लोक सेवाओं में इस रीति से भरती की जाये कि समूची जनता को संतोष हो, पर...।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यही मैं चाहता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** यह जानकर मुझे खुशी हुई है कि मेरे मित्र डॉ. देशमुख यही चाहते हैं। पर इस संशोधन का मसौदा इस प्रकार बनाया गया है कि इससे घोर संकट उत्पन्न हो सकता है। मेरा आशय यह है कि यदि इसको क्रियान्वित किया जायेगा, तो लोक हित को बड़ी भारी क्षति होगी। इस बात का उपक्रम किया जा सकता है कि किसी भी सम्प्रदाय के हितों की उपेक्षा न हो; पर कार्यपालिका के लिये यह अपेक्षित करना बहुत ही अवांछनीय होगा कि वह यह निर्धारित करे कि प्रत्येक वर्ग का लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व उनकी संख्या के अनुसार होगा। हम सब जानते हैं कि इस देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार नहीं हुआ है। अत: अधिकांश व्यक्ति अशिक्षित हैं। गम्भीरतापूर्वक क्या हम इस वस्तुस्थिति में यह कर सकते हैं कि सब वर्गों को उनकी संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिले? यदि

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

विधानमण्डल में प्रतिनिधित्व का प्रश्न होता, तब तो यह तर्क प्रबल होता। पर जहां तक दिन प्रति दिन राज्य की महत्वपूर्ण कार्यवाही के संचालन का सम्बन्ध है, जिसके लिये ज्ञान और निर्णय शक्ति आवश्यक है, वहां हमें योग्यता के आधार पर ही व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये। केवल इस आधार पर हम नियुक्ति नहीं कर सकते हैं कि उनकी नियुक्ति से किसी वर्ग को संतोष होगा; क्योंकि यदि ऐसा किया जायेगा, तो वे ही वर्ग जो लोक सेवाओं में उचित भाग चाहते हैं, सब से पहले हानि उठायेंगे क्योंकि अधिक उन्नत वर्गों के सदस्यों की अपेक्षा दक्ष शासन और निष्पक्ष पदाधिकारियों से उनको ही अधिक लाभ होगा। अतः डॉ. देशमुख के संशोधन का विरोध करने के लिये मैं विवश हूं। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि सभा उसे स्वीकार नहीं करेगी।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रासः जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर और श्री कुंजरू के भाषणों के बाद जो भिन्न-भिन्न प्रश्न उठाये गये हैं, उनके सम्बन्ध में मेरे कहने के लिये बहुत कम रह जाता है। श्री जसपतराय कपूर ने कहा था कि खण्ड (2) अनावश्यक है। मैं उनसे सहमत नहीं हूं, क्योंकि खण्ड (2) उस विषय से सम्बन्ध रखता है, जो मूल अनुच्छेद 284 के विषय से सर्वथा भिन्न है। अतः मैं समझता हूं कि दोनों खण्डों को रखना आवश्यक है।

मुझे जिस बात पर कुछ कहना है, वह अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के बारे में उठाये गये प्रश्नों के सम्बन्ध में है। मैं समझता हूं कि मैं यह कह सकता हूं कि दोनों अनुच्छेद 296 में जिस पर हम बाद में विचार करेंगे और अनुच्छेद 10 में तत्कथित अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों और पिछड़े हुए वर्गों के हितों की रक्षा के लिये पर्याप्त उपबन्ध कर दिये गये हैं। मैं नहीं समझता हूं कि एक ऐसा उपबन्ध बनाकर, जिसके द्वारा राष्ट्रपति के लिये तत्कथित अनुसूचित जाति या अनुसूचित आदिमजाति या पिछड़े हुए वर्गों के सदस्य को नियुक्त करना अनिवार्य हो जाये, किसी प्रयोजन की सिद्धि होगी।

*__श्री ए.वी. ठक्कर__ (सौराष्ट्र): अन्य पिछड़े हुए वर्ग!

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ लोक सेवा आयोग के सदस्य का प्रकार्य एक सामान्य रूप का है। वह वहां किसी विशिष्ट वर्ग के हितों की रक्षा के लिये नहीं है। उसे किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करने में अपना ध्यान लगाना होगा, जो

नियुक्ति के लिये सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हो। वास्तविक रक्षण, रक्षण की वास्तविक रीति तो वह है जो ग्रहण की जा चुकी है अर्थात् इन वर्गों में से कुछ नियम संख्या लेने का निर्धारण विधान-मण्डल करे। मुझ से यह भी कहा गया है कि पिछड़े हुए वर्ग क्या हैं, इसकी मैं परिभाषा करूं। मैं समझता हूं कि "पिछड़े हुए वर्ग" शब्द, जहां तक इस देश से सम्बन्ध है, बहुत साधारण सा शब्द है। मैं नहीं समझता हूं कि "पिछड़े हुए वर्गों" शब्दों से अधिक साधारण शब्द में प्रयोग कर सकता हूं। प्रान्त में प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि पिछड़े हुए वर्ग कौन हैं और इस कारण मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि जैसा संविधान में किया गया है, इस विषय को आयोग पर छोड़ दिया जाये, जिसकी नियुक्ति की जायेगी और जो समाज की परिस्थितियों का अनुसंधान करेगी और यह निश्चय करेगी कि इस देश में किन वर्गों को पिछड़े हुए वर्गों में रखा जाये।

***श्री ए.वी. ठक्करः** क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या इस काम को पूरा करने में कई वर्ष नहीं लगेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, पर अन्तर्वर्ती काल में किसी प्रान्तीय सरकार के लिये तत्कथित पिछड़े हुए वर्गों के लिये उपबन्ध बनाने में कोई रुकावट नहीं है। अनुच्छेद 10 के आधार पर वे इस कार्य में पूर्णतया स्वतन्त्र है। इस कारण मेरा निवेदन यह है कि ऐसी कोई आशंका नहीं है कि पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों के हितों की सेवाओं में भरती करने के विषय में उपेक्षा की जायेगी। जैसा कि मेरे मित्र पण्डित कुंजरू ने कहा था, जो अनुच्छेद मैंने सभा में प्रस्तुत किये हैं वे वास्तव में उन अनुच्छेदों से बहुत अच्छे हैं, जो संविधान के मसौदे में पहले थे। यदि मैं स्वयं अपने लिये कुछ कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि हमने कनाडा की विधि तथा आस्ट्रेलिया की विधि के उपबन्धों का बहुत अध्ययन किया और मैं यह कहूंगा कि हम एक ऐसा बीच का मार्ग खोज निकालने में सफल हुए हैं, जिसे स्वीकार करने में मैं आशा करता हूं कि सभा को कोई कठिनाई नहीं होगी।

***अध्यक्षः** अब मैं इन सब संशोधनों पर मत लूंगा। श्री जसपतराय कपूर द्वारा पेश किया गया अनुच्छेद 286 पर पहला संशोधन संख्या 13 है। प्रश्न यह है:

> "कि उपरोक्त संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) को अपमार्जित किया जाये और अनुवर्ती खण्डों को तदनुसार फिर से क्रमांकित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> "कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के परन्तुक को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये।"

'(3) The Union Public Service Commission as respects the All India Services and also as respects other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission as respects the State services also as respects other services and posts in connection with the affairs of the State, shall be responsible for all appointments, carrying a maximum of Rs. 250/- (Two hundred and fifty rupees)'."

[अखिल भारतीय सेवाओं तथा संघ के विषयों से सम्बन्धित अन्य सेवाओं और पदों के सम्बन्ध में संघ लोक सेवा आयोग और राज्य सेवाओं तथा राज्य के विषयों से सम्बन्धित अन्य सेवाओं और पदों के सम्बन्ध में राज्य लोक सेवा आयोग उन सब नियुक्तियों के प्रति उत्तरदायी होगा, जिनका अधिकतम वेतन 250 रुपये (ढाई सौ रुपये) होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अपने पेश किये गये संशोधन संख्या 82 को वापस करने की मैं अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया गया अगला संशोधन संख्या 84 है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के परन्तुक के पश्चात् यह नया परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided further that the Public Service Commission of the Union shall always be consulted where the service carries a maximum pay of Rs. 500/- per month and the State Public Service Commission shall always be consulted where the service carries a maximum pay of Rs. 250/-'."

[पर यह और भी कि संघ लोक सेवा आयोग से सदैव परामर्श किया जायेगा, यदि किसी सेवा के लिये अधिकतम वेतन 500 रुपये है और राज्य के लोक

सेवा आयोग से सदैव परामर्श किया जायेगा, यदि किसी सेवा के लिये अधिकतम वेतन 250 रुपये है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अपने पेश किये गये संशोधन संख्या 86 को वापस लेने की मैं अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद संशोधन संख्या 87। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (4) को पश्चात् निम्न व्याख्या स्पष्ट की जाये:

Explanation—Backward class of citizens would mean and include class or classes of citizens backward economically and educationally."

व्याख्या—पिछड़े वर्ग के नागरिकों का आर्थिक तथा शैक्षिक रूप में पिछड़े हुऐ वर्ग या वर्गों से अभिप्रेत होगा और ऐसे ही वर्ग उसके अन्तर्गत आयेंगे।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अपने संशोधन संख्या 88 को वापस लेने की मैं अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्षः** श्री आर.के. सिधवा का संशोधन संख्या 89। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के अन्त में यह नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(6) The Commission shall submit to the legislature every year a report setting out all cases, the Government's reasons in each case, and the Commission's views thereon where there is difference of opinion'."

[अध्यक्ष]

[(6) आयोग प्रति वर्ष विधान-मण्डल को एक प्रतिवेदन भेजेगा, जिसमें वे सब मामले, जिन पर मतभेद है, उन मामलों पर सरकार के कारण होंगे और उन पर आयोग के विचार होंगे।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में प्रस्थापित अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(3) The Union Public Service Commission with regard to All India Services and also in regard to other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission in regard to the State Services and also in regard to the services and posts in connection with affairs of the State shall be consulted in respect of all appointments, transfers and disciplinary matters relating to these Services'."

[अखिल भारतीय सेवाओं तथा संघ के विषयों से सम्बन्धित अन्य सेवाओं और पदों के सम्बन्ध में संघ लोक सेवा आयोग और राज्य सेवाओं तथा राज्य के विषयों से सम्बन्धित अन्य सेवाओं और पदों के सम्बन्ध में राज्य लोक सेवा आयोग से इन सेवाओं से सम्बन्धित समस्त नियुक्तियों, बदली और अनुशासनीय विषयों में परामर्श होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद 286 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 286 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 286 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित रूप में मैं अब अनुच्छेद 287 को लूंगा। उस पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 16 में प्रस्थापित अनुच्छेद 287 में 'or other body corporate शब्दों के स्थान

में 'or other body corporate not being a company within the meaning of the Indian Companies Act 1913 or Banking Companies within the meaning of the Banking Companies Act 1949' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 287 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 287 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 288 पर कोई संशोधन नहीं है, अतः मैं उस पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 288 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 288 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि नया अनुच्छेद 288-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 288-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 292

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 292 को लेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** (पूर्वी पंजाब: जनरल): पर मैंने एक नये अनुच्छेद 291 की स्थापना की है और उस अनुच्छेद को अब ले लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वह एक दूसरे अनुच्छेद के अन्तर्गत आ जाता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** पर मेरा अनुच्छेद उससे अधिक व्यापक है।

***अध्यक्ष:** आप उसे अनुच्छेद 294-क पर संशोधन के रूप में पेश कर सकते हैं। क्या वह अनुच्छेद 295-क के अन्तर्गत नहीं आता है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** आता तो है, पर अनुच्छेद 295-क, अनुच्छेद 293 और 295 से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है और मेरे संशोधन के अन्तर्गत ये दोनों संशोधन आ जाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** माननीय सदस्य का संशोधन प्रस्थापित अनुच्छेद 295-क से निकट सम्बन्ध रखता है। अनुच्छेद 295-क का क्षेत्र संकुचित है। अनुच्छेद 291-क पर माननीय सदस्य का संशोधन इन अनुच्छेदों के क्षेत्र को विस्तृत करता है। अतः माननीय सदस्य के लिये यह उचित होगा कि वह अपने संशोधन को अनुच्छेद 295-क पर अनुच्छेद के रूप में पेश करें। मैं समझता हूं कि अध्यक्ष द्वारा दिया गया सुझाव ठीक है। माननीय सदस्य उसे अनुच्देद 295-क पर संशोधन के रूप में पेश करें।

***अध्यक्षः** यही सुझाव मैं दे रहा था।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जैसी आपकी इच्छा है, वही ठीक है, श्रीमान।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि अनुच्छेद 292 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जायेः

"292 (1) Seats shall be reserved in the House of the people for—

Reservation of seats for Scheduled Castes and Scheduled Tribes in the House of the people.

(a) the Scheduled Castes;

(b) the Scheduled Tribes except the scheduled tribes in the tribal areas of Assam;

(c) the scheduled tribes in the autonomous districts of Assam.

[292 (1) लोक सभा में–

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये लोक सभा में स्थानों का रक्षण।

(क) अनुसूचित जातियों के लिये,

(ख) आसाम के आदिम क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिमजातियों को छोड़ कर आदिमजातियों के लिये,

(ग) आसाम के स्वायतशासी जिलों में की अनुसूचित आदिमजातियों के लिये स्थान रक्षित रहेंगे।

(2) खण्ड (1) के अधीन अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों के लिये किसी राज्य में रक्षित रखे गये स्थानों की संख्या का अनुपात लोक सभा में उस राज्य को बांट में दिये गये स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वही होगा, जो यथास्थिति उस राज्य में अनुसूचित जातियों की, अथवा उस राज्य में की या उस राज्य के भाग में भी अनुसूचित आदिमजातियों की, जिनके सम्बन्ध में स्थान पर इस प्रकार रक्षित है, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।

यह अनुच्छेद 292 इस विषय पर परामर्शदात्री समिति के विनिश्चयों की ज्यों की त्यों प्रतिलिपि है और मैं नहीं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में किसी व्याख्या की आवश्यकता है।

***अध्यक्ष:** यह उस विनिश्चय का रूप है, जिसको इस सभा के एक और सत्र में किया गया था जब कि परामर्शदात्री समिति के प्रतिवेदन पर विचार कर रहे थे। उस समय किये गये विनिश्चय को इस रूप में रखा गया है। इस पर कई संशोधन हैं। मैं अब उनको लूंगा।

***प्रो. निवारन चन्द्र लस्कर** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 24 पेश करूंगा। संशोधन संख्या 23 मैं पेश नहीं करूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 22 में प्रस्थापित अनुच्छेद 292 के खण्ड (2) में 'under clause (1) of this article shall' शब्द, कोष्ठक और अंक के पश्चात् 'save in the case of the Scheduled Castes in Assam' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो अनुच्छेद 292 का खण्ड (2) इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"आसाम में की अनुसूचित जातियों को छोड़कर खण्ड (1) के अधीन अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों के लिये किसी राज्य में रक्षित रखे गये स्थानों की संख्या का अनुपात लोक सभा में उस राज्य को बांट में दिये गये स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वही होगा, जो यथास्थिति उस राज्य में की अनुसूचित जातियों की, अथवा उस राज्य में की या उस राज्य के भाग में की अनुसूचित आदिमजातियों की, जिनके सम्बन्ध में स्थान इस प्रकार रक्षित हैं, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।"

मेरे संशोधन में दिये हुए एक बहुत ही छोटे से रूपभेद के साथ डॉ. अम्बेडकर के इस प्रस्थापित संशोधन का मैं सम्पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं। संविधान सभा के गत अधिवेशन में सिवाय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के अन्य सब अल्पसंख्यक वर्गों के लिये स्थान रक्षण मिटाने का ऐतिहासिक विनिश्चय किया गया था। मैं संविधान सभा के उन सदस्यों को अपना हार्दिक धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने अल्पसंख्यक वर्गों के लिये बनाई गई उपसमिति के प्रतिवेदन का समर्थन किया और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों को ये विशेषाधिकार दिये। मैं अपने कर्तव्य का पालन नहीं करूंगा यदि मैं यह न कहूं कि देश में की अनुसूचित जातियां और आदिमजातियां माननीय प्रधानमंत्री, माननीय उप प्रधान मंत्री और अल्पसंख्यक वर्गों के लिए बनाई गई उपसमिति के सभापति के प्रति चिर कृतज्ञ रहेंगी, जिनको उनके लिये एक भारी विरोध का सामना करना पड़ा। उनकी कृपा से ही अनुसूचित जातियों और आदिमजातियों को ये राजनैतिक अधिकार मिल रहे हैं।

[प्रो. निवारन चन्द्र लस्कर]

मेरा मत है कि किसी प्रकार का भी रक्षण लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा, पर ये परिस्थितियां जैसे कि अनुसूचित जातियों में राजनीतिक जागृति का अभाव, उनका शिक्षा में पिछड़े हुए रहना और उनकी बड़ी शोचनीय आर्थिक स्थिति उनको विवश करती है कि वे इन विशेषाधिकारों की मांग करें। यदि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा, तो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों को स्थान रक्षण मिल जायेगा। परन्तु संविधान के मूल विचार के रूप में यह कहा गया है कि लोक सभा में 5 लाख जनसंख्या पर एक स्थान के आधार पर प्रतिनिधित्व होगा और निर्वाचन से सद्यपूर्ण की गई जनगणना के अनुसार यह कार्य होगा। इस कारण मेरे मन में इस बात के प्रति बड़ी-बड़ी आशंकायें हैं कि क्या आसाम में की अनुसूचित जातियों को इस विशेषाधिकार से लाभ होगा। दुर्भाग्यवश सिलहट का जिला, जो आसाम का भाग था, लोकमत के आधार पर पाकिस्तान में मिला दिया गया है और इसके कारण अनुसूचित जातियों के लगभग तीन लाख व्यक्ति पाकिस्तान को चले गये और अनुसूचित जातियों की जनसंख्या जो विभाजन के पूर्व 6,76,566 थी, 1941 की जनसंख्या के अनुसार वह विभाजन के पश्चात् 3,77,025 रह गई, यद्यपि 1941 की जनसंख्या के आंकड़ों की प्रामाणिकता में मैं सन्देह करता हूं। मैं उसको सिद्ध करने का प्रयत्न करूंगा। 1941 की जनगणना में दिये हुए आंकड़ों के अनुसार अनुसूचित जातियां लोक सभा में एक भी स्थान के अधिकार की मांग नहीं कर सकती है। अत: अपने संशोधन के द्वारा मैं इन अनुसूचित जातियों के लिये निर्वाचन आयोग अथवा किसी भी अन्य प्राधिकारी के समक्ष अपनी उचित मांगों के रखने के लिये एक अपवाद रखना चाहता हूं। सर्वप्रथम, मैं सभा को यह बताऊंगा कि 1941 की जनगणना के आंकड़े असत्य, मिथ्या तथा भ्रमात्मक हैं। समस्त आसाम की कुल जनसंख्या केवल एक करोड़ है। मैं केवल बड़े-बड़े सम्प्रदायों को ही लूंगा। 1941 की जनगणना के प्रतिवेदन के अंक 9 में 1931 से 41 तक सम्प्रदायों की जनसंख्या के अन्तर के बारे में ये आंकड़े दिये हुए हैं: हिन्दुओं में 12 प्रतिशत की कमी है और मुसलमानों में 24 प्रतिशत की वृद्धि। आदिमजातियों में 184 प्रतिशत वृद्धि हुई है। ब्रह्मपुत्रा की घाटी में आदिमजातियों की 477 प्रतिशत वृद्धि हुई है और सूरमा की घाटी में 2266 प्रतिशत की वृद्धि। इन आंकड़ों से सभा 1941 की जनसंख्या के आंकड़ों की असत्यता जान सकती है। जबकि आसाम प्रान्त में सामान्य वृद्धि 18 प्रतिशत है, तो आदिमजातियों में 184 प्रतिशत की वृद्धि है और हिन्दुओं में 12 प्रतिशत की कमी है।

अल्पसंख्यक वर्ग सम्बन्धी उपसमिति के प्रतिवेदन में बागों में काम करने वाले लगभग 9 लाख मजदूरों को, जिनको सन् 1931 की जनगणना में आदिम जातियों में रखा गया था, साधारण जनगणना में रख दिया गया है। यदि जनगणना के आंकड़े सही हैं, तो बागों के 9 लाख मजदूरों को आदिमजातियों में से निकाल कर सामान्य कोटि में रखना किसी प्रकार से भी न्यायपूर्ण नहीं है। ऐसा करने से अनुसूचित जातियों की संख्या कम हो गई। 1911 से 1931 तक शनै: शनै: अनुसूचित जातियों की संख्या में जो कमी हुई है, उसे अलग रखते हुए यदि हम बागों के 9 लाख मजदूरों को, जिनको कि सामान्य जनगणना में रख दिया गया है, शामिल कर लें तो हम अनुसूचित जातियों की संख्या सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। अब प्रश्न

यह है कि बागों के मजदूर किस सम्प्रदाय के हैं? अभिलेखों से मैं यह सिद्ध कर सकता हूं कि उनमें से 80 प्रतिशत हिन्दू हैं और इन हिन्दुओं में 80 प्रतिशत अनुसूचित जातियों के हैं।

***श्री ए.बी. ठक्करः** वक्ता की बातें हमारी समझ में नहीं आती हैं।

***प्रो. निवारन चन्द्र लस्करः** 1911 के बाद से अनुसूचित जातियों में अपने सम्प्रदायों के बदलने की प्रवृत्ति रही है, क्योंकि उनको यह बड़ा भारी भय रहता था कि उनकी जाति के नाम से उनको सरकारी नौकरियां नहीं मिलेंगी। इस कारण धीरे-धीरे ये सम्प्रदाय कम होते गये। 1911 में अनुसूचित जातियों की संख्या 13 लाख थी, 1921 में 14 लाख थी और 1931 में वह 6 लाख रह गई और 1941 में 4 लाख। उदाहरणार्थ पाटनी नामक अनुसूचित जाति की संख्या 1911 में 1,11,000 थी, परन्तु 1921 में वह 45,000 रह गई। इस जाति के सम्बन्ध में जनगणना के अधीक्षक ने अपनी 1921 के प्रतिवेदन के अंक 3 के पृष्ठ 154 में यह कहा है "स्वयं एक नेता ने जो कि ब्राह्मण था, यह सुझाव दिया था कि कोई जाति, जिसका निरादर किया जाता है, वह बिना किसी अच्छे नाम के अपनी स्थिति में सुधार करने की आशा नहीं कर सकती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुसूचित जातियों की संख्या उन लोगों ने कम कराई, जो अनुसूचित जातियों के नहीं थे।

***अध्यक्षः** क्या आप अधिक समय लेंगे?

***प्रो. निवारन चन्द्र लस्करः** मुझे कुछ अधिक समय लगेगा।

***अध्यक्षः** तो फिर इस विषय को हम कल लेंगे। सभा बुधवार के नौ बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा बुधवार ता. 24 अगस्त, 1949 के नौ बजे तक स्थगित हुई।

Con. 3. IX.17.49
320

अंक 9
संख्या 17

सत्यमेव जयते

बुधवार
24 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*
[अनुच्छेद 292 से 295 तक और 295-क पर विचार किया गया] 963-1027

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 24 अगस्त, सन् 1949

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—(जारी)

अनुच्छेद 292—(जारी)

***अध्यक्षः** प्रोफेसर लस्कर अपना भाषण जारी रखेंगे।

***प्रो. एन.सी. लस्कर** (आसामः जनरल): अध्यक्ष महोदय, कल मैं इसकी चर्चा कर रहा था कि 1921 से अनुसूचित जातियों की संख्या धीरे-धीरे गिरती जा रही है। आज मैं सभा का ध्यान 1921 की जनगणना-प्रतिवेदन के अंक 3 के भाग 1 की ओर आकृष्ट करता हूं। उस प्रतिवेदन के पृष्ठ 154 पर एक तालिका दी हुई है, जिसमें दिखाया है कि 1991 से जातियों, आदिमजातियों आदि की जनसंख्या में क्या परिवर्तन हुए हैं। इस तालिका से मैं कुछ ऐसे उदाहरण दूंगा, जिनसे, यह स्पष्ट हो जायेगा कि अनुसूचित जातियों की जनसंख्या धीरे-धीरे गिरती जा रही है।

पटनी जाति की जनसंख्या 1911 में 1,11,000 थी पटनी जाति की जनसंख्या 1921 में 45,000 थी। नंदियाल जाति की जनसंख्या 1911 में 68,000 थी। नंदियाल जाति की जनसंख्या 1921 में 18,000 थी। राजबंसी जाति की जनसंख्या (यह जाति बंगाल में अनुसूचित जाति समझी जाती है) 1911 में 1,33,000 थी। राजबंसी जाति की जनसंख्या (यह जाति बंगाल में अनुसूचित जाति समझी जाती है) 1921 में 92,000 थी।

अब मैं सभा का ध्यान 1931 के जनगणना-प्रतिवेदन के अंक 3 के भाग 1 के पृष्ठ 219 की ओर आकृष्ट करता हूं, जिसमें कहा गया है कि:

"बाहरी जातियों की, अर्थात् सिलहट की अनुसूचित जातियों की कुछ जनसंख्या इस प्रकार कम से कम 3,92,000 है और कछार में यह जनसंख्या 80,000 है और पूरी सूरमा घाटी में यह जनसंख्या कम से कम 4,72,000 है। आसाम और सूरमा घाटी में यह जनसंख्या कुल मिलाकर 6,55,000 है, जबकि सारे प्रान्त में यह जनसंख्या 6,57,000 है।"

[प्रो. एन.सी. लस्कर]

इस प्रतिवेदन के इस पृष्ठ पर जनगणना के अधीक्षक ने पटनी समुदाय के सम्बन्ध में कुछ लिखा भी है। वे कहते हैं: 'कछार जिले की जनसंख्या केवल 9,000 दिखाई गई है, किन्तु ठीक जनसंख्या कम से कम 40,000 हैं। सिलहट के पटनी समुदाय के लोगों की जनसंख्या केवल 43,000 दिखाई गई है जबकि उनकी जनसंख्या कम से कम 70,000 है। सारे प्रान्त की अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या 6,57,000 है।"

1921 में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 12 लाख थी। इसके पश्चात् 1931 में बहुत अन्तर पड़ गया। यह अन्तर इसलिये पड़ गया कि 1921 में बंगाल मजदूर अनुसूचित जातियों के वर्ग में रखे गये थे किन्तु 1931 में वे इस वर्ग से अलग कर दिये गये और एक अलग जाति में, अर्थात् बगान कुली जाति में, रखे गये। इसी कारण 1931 की जनगणना में अनुसूचित जातियों की जनंसख्या बारह लाख से साढ़े छः लाख हो गई, प्रतिवेदन के अनुच्छेद 155 में, जिसमें जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध से कठिनाइयों का वर्णन है। जनगणना के अधीक्षक ने कहा है: "मैं इसे स्वीकार करता हूं कि कायस्थ, महिसभा और पटनी जातियों के सम्बन्ध में जो आंकड़ें हैं, वे बेकार हैं और उन्हें संग्रह करना निरर्थक है"। उसी पृष्ठ पर वे यह भी कहते हैं: "सूरमा घाटी की पटनी जैसी जातियों के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि प्रत्येक जनगणना में उनकी जनसंख्या बड़े अद्‌भुत ढंग से कम होती जा रही है"। इससे स्पष्ट हो जाता है। कि 1931 की जनगणना में अनुसूचित जातियों के लोगों के सही आंकड़े नहीं दिये जा सके और उससे यही भी स्पष्ट हो जाता है कि अनुसूचित जातियों की जनसंख्या धीरे-धीरे कम हो रही हैं।

श्रीमान, आखिर उनकी जनसंख्या घटने के क्या कारण रहे हैं? उसके दो कारण रहे हैं। पहला कारण यह है कि 1911 से 1931 तक अनुसूचित जातियों के लोग ब्रिटिश सरकार की फूट डालकर शासन करने की नीति को, साइमन आयोग के पंचाट को तथा 1935 के भारत-शासन अधिनियम के उपबन्धों को नहीं समझ सके। इसलिये उनमें जातियों को मिटाकर अपने सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने की प्रवृत्ति रही। दूसरा कारण यह रहा कि उनमें अपनी जातियों के नाम बदलकर अपना सामाजिक स्तर ऊंचा उठाने की प्रवृत्ति रही। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनुसूचित जातियों ने अपने समुदाय से भिन्न समुदायों के नेताओं तथा पुराणों अथवा शास्त्रों का सहारा लिया। इन नेताओं ने इन लोगों को केवल नाम मात्र के लिये ही सवर्ण हिन्दू बनाया। वे उन्हें अस्पृश्यता से मुक्त नहीं कर सके। इन्हीं कारणों से अनुसूचित जातियों की जनसंख्या घटती गई है।

इसके अतिरिक्त मैं सभा का ध्यान बगान मजदूरों की स्थिति की ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूं। 1911 की जनगणना के आंकड़ों से पता लगता है कि उस समय बगान मजदूरों की संख्या 5,07,058 थी। उनमें से अधिकांश अनुसूचित जातियों के ही लोग थे। मैं 1921 के जनगणना-प्रतिवेदन के अंक 3 के भाग 1 के पृष्ठ 73 पर दिये हुए अनुच्छेद 73 की ओर निर्देश करता हूं, जिसमें यह कहा गया है कि बगान मजदूरों की कुल संख्या 9,22,000 है, जिन में से 7,92,000 से

अधिक अथवा 95 प्रतिशत हिन्दू हैं। (देखिये 1921 का जनगणना-प्रतिवेदन, अंक 3, भाग 1, पृष्ठ 222)। "ये बगान मजदूर बगान कुली जातियों के लोग माने गये और प्रतिवेदन में उनकी जनसंख्या 14 लाख दिखाई गई, जिनमें से 13,16,000 हिन्दू थे"। 1941 की जनगणना के समय इन बगान कुली वर्गों के स्तर में परिवर्तन हो गया था और ये बगान आदिम जातियों के नाम से कहे जाने लगे थे। वे अनुसूचित आदिजातियों में सम्मिलित किये गये और इस कारण अनुसूचित आदिमजातियों की जनसंख्या 16 लाख से बढ़कर 28 लाख हो गई। इस प्रकार बगान मजदूरों का स्तर धीरे-धीरे बदलता रहा। 1921 तक वे अनुसूचित जातियों में सम्मिलित रहे और 1931 में उन्हें बगान कुली वर्ग में सम्मिलित करके उनका स्तर ऊंचा उठा दिया गया और 1941 में वे बगान आदि जातियों के लोग कहे जाने लगे।

सौभाग्य से अब उनमें से नौ लाख लोग सामान्य लोग, अर्थात् सवर्ण हिन्दू कहे जायेंगे। यदि हम इस पर विचार करें कि बगान मजदूरों की 11,34,000 की संख्या में से (देखिये 1941 का जनगणना-प्रतिवेदन) 80 प्रतिशत हिन्दू समुदाय में सम्मिलित कर लिये जायेंगे, तो उनमें से हिन्दुओं की कुल संख्या 10 लाख होगी। मेरी यह प्रबल धारणा है कि इन हिन्दू बगान-कुलियों में से 80 प्रतिशत अनुसूचित जातियों के हैं। इस प्रकार अनुसूचित जातियों की जनसंख्या, बगान मजदूरों को मिलाकर, आठ लाख बढ़ जाती है। यदि हम इस संख्या को 1941 की जनगणना के अनुसूचित जातियों के आंकड़ों में जोड़ दें, तो मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि 1941 की जनगणना के अनुसार भी अनुसूचित जातियों की जनसंख्या लगभग 11 लाख होगी। इसलिये यदि निर्वाचन के पूर्व सच्ची जनगणना की गई, तो मैं सभा को यह विश्वास दिलाता हूं कि आसाम की अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 11 से 12 लाख तक निकलेगी।

देश के विभाजन के पूर्व आसाम की अनुसूचित जातियों को संविधान-सभा में एक स्थान दिया गया था। विभाजन के पश्चात् भी आसाम की विधान-सभा ने इस समुदाय के प्रति असाधारण उदारता दिखाई और उसे संविधान-सभा में एक स्थान दिया गया।

***अध्यक्षः** क्या आपका तर्क यह है कि चूंकि उनकी जनसंख्या 11 लाख है, इसलिये स्थान सुरक्षित नहीं रखने चाहिये?

***प्रो. एन.सी. लस्करः** वे सुरक्षित रखे जाने चाहिये, किन्तु मुझे कुछ बातों के सम्बन्ध में सन्देह है और मैं उनका स्पष्टीकरण चाहता हूं।

***अध्यक्षः** आप क्या कहना चाहते हैं? क्या उनके लिये इस कारण स्थान सुरक्षित न रखे जायें कि उनकी जनसंख्या प्रान्त में ग्यारह या बारह लाख है?

***प्रो. एन.सी. लस्करः** मैं यह कहना चाहता हूं कि 1941 की जनगणना के अनुसार उनकी जनसंख्या लगभग 4 लाख है। मुझे इस सम्बन्ध में बहुत संदेह है कि इनको लोक सभा में कोई स्थान मिल सकता है या नहीं। इसलिये अपने संशोधन द्वारा मैंने यह प्रस्ताव किया है कि आसाम की अनुसूचित जातियों के लिये अपवाद रखा जाये, ताकि उन्हें लोक सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके।

***अध्यक्ष:** उनकी जनसंख्या के अनुपात से ही उनके लिये स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे।

***प्रो. एन.सी. लस्कर:** मैं सभा के सम्मुख यह सिद्ध कर चुका हूं कि 1941 की जनगणना के आंकड़े सही नहीं हैं। मैं यह मांग करता हूं कि निर्वाचन के पूर्व नियमित रूप से एक जनगणना हो और यदि वह न हो सके, तो इस समुदाय के लिये कुछ अपवाद किये जाये। देश का विभाजन होने पर भी संविधान सभा में एक स्थान देने के लिये मैं आसाम के माननीय प्रधान मंत्री और आसाम की विधान सभा की कांग्रेस पार्लियामेंटरी पार्टी का आभारी हूं। मेरी यह धारणा है कि उन्होंने यह अनुभव किया कि आसाम में अनुसूचित जातियों की वास्तविक जनसंख्या क्या है और इसलिये उन्हें संविधान सभा में एक स्थान प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में कहा गया है कि:

"अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों के लिये किसी राज्य में रक्षित रखे गये स्थानों की संख्या का अनुपात उस राज्य को बांट में दिये गये स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वही होगा जो... उस राज्य की अनुसूचित जातियों की अथवा अनुसूचित आदिमजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।"

"यथाशक्य" शब्द को प्रविष्ट करने से मेरा सन्देह दूर नहीं होता। "यथाशक्य" शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। निर्वाचन आयोग इस प्रकार का एक साधारण सूत्र निश्चित कर सकता है कि "जिस समुदाय की जनसंख्या 4,50,000 से कम हो, उसे बांट में कोई स्थान न दिया जाये।" इस प्रकार हमें लोक सभा में कोई भी स्थान नहीं मिलगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इन अनुच्छेद के उपबन्धों में किसी प्रकार का अपवाद होना चाहिये।

मैंने अपने संशोधन में जो भाषा प्रयोग की है, वह मेरी अपनी भाषा नहीं है। वह मसौदा समिति की भाषा है। केवल मैंने ही अपवाद की मांग नहीं की है। अन्य समुदायों के लिये अपवाद किये जा चुके हैं। अनुच्छेद 293 द्वारा आग्ल-भारतीय समुदाय के लिये कुछ अपवाद किये जा रहे हैं और अनुच्छेद 149 के द्वारा आसाम के शिलौंग निर्वाचन-क्षेत्रों के आदिम-जाति क्षेत्रों के लोगों के लिये भी कुछ अपवाद किये जा रहे हैं। अनुच्छेद 149 के खंड (3) में कहा गया है:

"किसी राज्य की विधान सभा में प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व उस निर्वाचन क्षेत्र की अन्तिम पूर्ववत जनगणना में, जिसके तत्सम्बन्धी आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं, निश्चित की गई जनसंख्या के आधार पर होगा, तथा आसाम के स्वायत्त जिलों को तथा शिलौंग के नगर-क्षेत्र व कटक से मिलकर बने निर्वाचन क्षेत्र को मोड़कर यह प्रतिनिधित्व जनसंख्या के प्रत्येक पचहत्तर हजार के लिये एक से अधिक प्रतिनिधि के अनुपात से होगा।"

शिलौंग के निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या लगभग 12,000 है। इस संविधान के उपबन्धों के अधीन इस शिलौंग निर्वाचन-क्षेत्र के सम्बन्ध में भी अपवाद किया जा रहा और इसलिये मैं समझता हूं कि अपने संशोधन द्वारा मैंने जो मांग की है, वह कोई अनुचित मांग नहीं है।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आसाम के कछार जिले की वर्तमान स्थिति का वर्णन करूं। इस जिले में आसाम की अनुसूचित जातियों के लोगों में से एक-तिहाई लोग बसते हैं। यह क्षेत्र रैडक्लिफ के निर्णय के अधीन पाकिस्तान के अधिकार में चले जाने से बच ही गया। मैं भी इसी क्षेत्र का निवासी हूं। देश के विभाजन के पश्चात् इस जिले की कुल जजसंख्या 10,24,581 रह गई। इसमें से अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 1,17,205 है, हिन्दुओं की जनसंख्या 2,82,646 और मुसलमानों की जनसंख्या 4,34,205 है। इनके अतिरिक्त शरणार्थी भी हैं, जो पूर्वी पाकिस्तान से आसाम चले आये हैं। उनकी कुल जनसंख्या लगभग 55,000 होगी। इस जिले में मुसलमान भी चले आये हैं, उनकी जनसंख्या भी इससे कम नहीं है।

अब मैं कछार जिले के बड़े-बड़े समुदायों की वर्तमान स्थिति का वर्णन करूंगा। पहले मैं हिन्दुओं की स्थिति का वर्णन करूंगा। वहां के स्वर्ण हिन्दुओं में से लगभग 50 प्रतिशत अछूत हैं। वे मुख्यत: मनीपुरी और नाथ समुदायों के हैं। मेरे जिले में कुछ साम्यवादी भी हैं। विधान सभा के पिछले निर्वाचन में इस जिले के साम्यवादी उम्मीदवार ने सारे भारत के साम्यवादी उम्मीदवारों से अधिक मत पाये। इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि मेरे जिले में साम्यवादी आन्दोलन समाप्त हो गया है। मेरे जिले के मुस्लिम समुदाय के कुछ प्रतिक्रियावादी लोगों ने भी कुछ दंगा-फिसाद किया है। महात्मा जी की हत्या के बारहवें दिन छोटे-छोटे बच्चों ने शान्तिपूर्वक एक जलूस निकाला। उस पर कुछ मुसलमानों ने लाठियां चलाईं। इन लोगों को न्यायालय में दोषसिद्ध करार दिया गया। मेरे जिले में देश-विभाजन के पश्चात् एक अन्य घटना भी हुई। काली के मन्दिर के सामने हिन्दुओं की भूमि पर एक गाय का वध किया गया। अपराधियों को पकड़ लिया गया और न्यायालय में मुकदमा चला तथा वे लोग दोषसिद्ध करार दिये गये। इससे, श्रीमान, यह समझ में आ सकता है कि मेरे जिले में कुछ मुसलमान विध्वंसकारी भी हैं। अनुसूचित जातियों में कुछ लोग श्री जे.एन. मंडल के भी अनुयायी हैं। देश विभाजन के पश्चात् आसाम अनुसूचित-जाति संघ का अध्यक्ष सीमा-आयोग के सम्मुख एक ज्ञापन लेकर उपस्थित हुआ था, जिसमें कछार को पाकिस्तान में सम्मिलित करने की मांग की गई थी। जनमत-संग्रह के पूर्व, सिलहट जिले के श्री जे.एन. मंडल, जो अब पाकिस्तान सरकार के एक माननीय मंत्री हैं, अनुसूचित-जाति संघ द्वारा आमंत्रित किये गये थे और एक सभा में उन्होंने प्रार्थना की थी कि अनुसूचित जातियों के लोगों को पाकिस्तापन के पक्ष में मत देना चाहिये।

किन्तु पिछले निर्वाचन में आसाम की कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों के सभी स्थान प्राप्त कर लिये। प्रत्येक स्थान के लिये अनुसूचित जाति संघ ने चुनाव लड़ा था, परन्तु वह कांग्रेस द्वारा बुरी तरह हरा दिया गया। मैं कह नहीं सकता कि

[प्रो. एन.सी. लस्कर]

कहीं डॉ. अम्बेडकर को आसाम की अनुसूचित जातियों के प्रति कोई द्वेष तो नहीं है। यदि वह किसी प्रकार का द्वेष रखते हैं, तो मुझे आशा है कि वे उसे दूर कर देंगे, क्योंकि मुझे विश्वास है कि उन्हें अनुसूचित जातियों से मुझसे से मुझसे अधिक प्रेम है। उन्होंने अनुसूचित जातियों के लिये बहुत काम किया है और मुझे आशा है कि वे उनके लिये और भी अधिक काम करेंगे। इसलिये मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे संशोधन को स्वीकार कर लें। यदि आसाम की अनुसूचित जातियों के लोगों को कुछ विशेषाधिकार नहीं दिये गये, तो लोग कुछ प्रतिक्रियावादी समूहों के हाथ में पड़ जायेंगे। इसलिये आसाम की भोगोलिक और राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा सैनिक दृष्टि से भी, मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं।

*__श्री जसपतराय कपूर__ (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 22 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के अन्त में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided that the constituencies for the seats reserved for the Scheduled Castes or Scheduled Tribes shall comprise so far as possible, such contiguous areas where they are comparatively more numerous than in other areas.

(परन्तु अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम जातियों के लिये रक्षित स्थानों के निर्वाचलन क्षेत्रों में यथाशक्य ऐसे मिले-जुले क्षेत्र होंगे, जिनमें उनकी जनसंख्या अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होगी।)' "

यदि सभा को यह स्वीकार्य प्रतीत न हो, तो मेरा यह प्रस्ताव है कि विकल्पत: निम्नलिखित परन्तुक स्वीकार किया जाये:—

"Provided that reserved seats shall be allotted to such constituencies as contain comparatively larger number of Scheduled Castes or Scheduled Tribes members than in other constituencies.

(परन्तु रक्षित स्थान बांट में ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को दिये जायेंगे, जिनमें अन्य निर्वाचन क्षेत्रों की अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम जातियों की जनसंख्या अधिक हो।)"

श्रीमान, मुझे विश्वास है कि आज माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उस पर इस सभा का प्रत्येक सदस्य बहुत प्रसन्न है। अपने

संशोधन द्वारा वह अनुछेद 292 के 14 पुराने मसौदे के स्थान पर नया मसौदा रख रहे हैं। यह संशोधन उन थोड़े से संशोधनों में से है, जिनसे देश का बहुत हितसाधन होगा। इस देश के बहुसंख्यक समुदाय और विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के बीच अल्पसंख्यक समिति में जो करार हुआ है उसी के आधार पर इस संशोधन का मसौदा तैयार किया गया है। उस करार के अधीन हमारे मुसलमान तथा ईसाई मित्र तथा सिख भाई इसके लिये तैयार हो गये कि विभिन्न विधान-मंडलों में उनके लिये स्थान रक्षित न रखे जायें। देश के हितों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह बुद्धिमत्तापूर्ण और साहसपूर्ण निर्णय किया और इस अवसर पर मैं उन सबको बधाई देता हूं। मैं विशेषत: मुसलमान भाइयों को बधाई देता हूं, क्योंकि कई वर्षो से उन्हें पृथक निर्वाचन-मंडल और पृथक प्रतिनिधित्व प्राप्त रहा है और वे यह सोचने लगे थे कि उनका हितसाधन इसी प्रकार हो सकता है और बिना पृथक निर्वाचन-मंडलों और पृथक प्रतिनिधित्व के वे अपने हितों की रक्षा नहीं कर सकते। हम यह जानते थे कि वे गलती कर रहे हैं, किन्तु ब्रिटिश सरकार की चालों से यह बात उनके मस्तिष्क में घर कर गई थी और पृथक प्रतिनिधित्व के औचित्य के सम्बन्ध में उन्हें पूर्ण विश्वास था। यह हमारे लिये तथा देश के लिये एक सौभाग्य की बात है कि वे अब यह समझ गये हैं कि इस प्रकार की प्रणाली से उनका हितसाधन नहीं हो सकता। इस बुद्धिमत्तापूर्ण तथा साहसपूर्ण निर्णय के लिये मैं उन्हें एक बार और बधाई देता हूं। अब उन्होंने अपने हितों की रक्षा करने का भार बहुसंख्यक समुदायों के कंधों में डाल दिया है और अब बहुसंख्यक समुदाय को ही अपने कार्यो तथा अपने चलन से तथा मुसलमान भाइयों के प्रति अपने व्यवहार से यह दिखाना है और उन्हें यह विश्वास दिलाना है कि पहले वे गलत रास्ते पर थे और अब सही रास्ते पर हैं और अपने को पृथक समुदाय के लोग न समझकर ही उनके हित सुरक्षित रह सकते हैं और उनके हित वहीं हैं, जो बहुसंख्यक समुदाय के और अन्य समुदायों के हैं और वास्तव में प्रत्येक नागरिक का हितसाधन सारे देश के हितसाधन से हो सकता है।

बहुसंख्यक समुदाय अब यह समझने लगा है कि उसका अब कितना अधिक उत्तरदायित्व हो गया है। मैं ऐसे कई स्थानों के उदाहरण दे सकता हूं जहां बहुसंख्यक समुदाय के लोग अब अपने उत्तरायित्व को समझने लगे हैं। मैं यह चाहता हूं कि अब बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदाय की चर्चा न की जाये। मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद के संविधान में स्थान पाने तथा संविधान के प्रवर्त्तन में आने के पश्चात् हम बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक समुदायों को भूल जायेंगे। हम इनकी जितनी अधिक चर्चा करेंगे उतना ही अधिक हम लोगों को यह स्मरण करायेंगे कि हमारे देश में एक राष्ट्र नहीं है बल्कि विभिन्न हितों वाले विभिन्न समुदाय हैं। मैंने यह प्राय: देखा है कि जब हम सभाओं में भाषण देते हैं तो हम कहते हैं 'हिन्दू और मुसलमान भाइयों और जब हम उनसे यह अनुरोध करते हैं कि हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों को एक हो जाना चाहिये तो हम उन्हें यह स्मरण कराते हैं कि वे विभिन्न समुदायों के लोग हैं और उनके एक होने की आवश्यकता है। अच्छा यह होगा कि हम अपनी सभाओं में तथा अपने प्रकाशनों में हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के रूप में लोगों की चर्चा न करें। बहुसंख्यक

[श्री जसपतराय कपूर]

समुदाय के लोग यह समझने लगे हैं कि मुसलमान भाइयों ने उनका उत्तरदायित्व बहुत बढ़ा दिया है। मैं यह कहूंगा कि उन्होंने अब अपने को हमारी दया पर छोड़ दिया है और इसलिये अब हमारा मुसलमान भाइयों के प्रति तथा उनसे अधिक अपने प्रति यह कर्त्तव्य है कि हम अपने आचरण से तथा कार्यों से यह सिद्ध करें कि हम विश्वासघात न करेंगे और उन्होंने जो निश्चय किया है वह गलत निश्चय नहीं है और उससे उनको लाभ ही होगा। बहुसंख्यक समुदाय इसके लिये विशेष प्रयास करने जा रहा है कि नगर-क्षेत्रों तथा अन्य स्थानों में थोड़े समय के पश्चात जो निर्वाचन होने जा रहे हैं उनमें से कुछ में मुसलमान अपनी जनसंख्या के अनुपात से ही नहीं बल्कि यदि सम्भव हो तो कुछ अधिक संख्या में निर्वाचित हों।

इसमें सन्देह नहीं कि यह कोई सरल कार्य नहीं है। देश विभाजन के पूर्व इसे सरलता से सम्पन्न किया जा सकता था। देश के विभाजन के फलस्वरूप यह कार्य कठिन हो गया है क्योंकि पृथक निर्वाचन-मंडलों और पृथक प्रतिनिधित्व के कारण ही देश का विभाजन हुआ। हमारे राजनैतिक जीवन में इस धुन के लगने से देश का जिस प्रकार विभाजन हुआ और उसके पश्चात् जो दु:खद घटनाएं घटित हुई उनकी कटु स्मृतियां लोगों के मास्तिष्क में बनी हुई हैं और उन्हें मिटाने में कुछ समय अवश्य लगेगा। किन्तु बहुसंख्यक समुदाय के सभी उत्तरदायी लोग अब इसे अच्छी प्रकार समझते हैं कि उन्हें किस उत्तरदायित्व का निर्वहन करना है और वे इसके लिये कार्यशील हैं कि आगामी निर्वाचनों में मुसलमान भाइयों के हितों की रक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था हो।

मैं अपने ईसाई मित्रों को भी बधाई देना चाहता हूं जिन्होंने भी स्थान रक्षित रखने अथवा पृथक प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की। पहले भी ईसाइयों ने शायद ही कभी पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की हो। वे हमेशा राष्ट्रीयता के गहरे रंग में रंगे में रंगे रहे किन्तु जब संविधान का मसौदा तैयार किया जाने लगा, उनमें से कुछ ने यह विचार किया कि चूंकि मुसलमान, अनुसूचित जातियां और सिख भी तथा सम्भवत: पारसी भी कुछ पृथक स्थान रक्षित करवाने की बात सोच रहे हैं तो वे भी इस अवसर से लाभ क्यों न उठायें और विधान-मंडलों में कुछ स्थानों की मांग क्यों न करें। यह प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने यह निश्चय छोड़ दिया यद्यपि मैं यह जानता हूं कि उन्होंने कभी भी गम्भीरता से अपनी यह मांग उपस्थित नहीं की। इसका बहुत कुछ श्रेय मेरे माननीय तथा आदरणीय मित्र डॉ. एच.सी. मुकर्जी को है, जिन्होंने, श्रीमान, आपकी अनुपस्थिति में अध्यक्ष पद सुशोभित किया था। यह जानकर मेरे हृदय में डॉ. एच.सी. मुकर्जी के प्रति बहुत प्रेम और श्रद्धा उमड़ आई। मैं यह जानता हूं कि अपने समुदाय को इसके लिये राजी करने में तथा अन्य समुदायों को जगहें रक्षित रखने की मांग त्यागने के लिये राजी करने में उन्होंने बहुत परिश्रम किया और यदि वे अनुसूचित जातियों के लोगों को इसके लिये राजी करने में सफल नहीं हुए हैं तो दोष उनका नहीं है।

डॉ. मुकर्जी की चर्चा करते हुये मैं अपने मित्र श्री सिधवा का विस्मरण नहीं कर सकता। वे सम्भवतः यह सोच रहे हों कि मैंने उनको कैसे भुला दिया परन्तु वास्तव में मैं उनको नहीं भूला हूं। मैं यह सोच रहा था कि मैं उन्हें अन्त में बधाई दूंगा और केवल उन्हीं को नहीं बल्कि उनके महान पारसी समुदाय को भी बधाई दूंगा। स्थान रक्षित रखने की मांग की बात तो दूर रही उस समुदाय ने उसके विषय में कभी सोचा भी नहीं। उस समुदाय ने देश के सामने एक उदाहरण रखा है। पारसी समुदाय न तो बहुसंख्यक समुदाय है और न अल्पसंख्यक समुदाय है। मैं यह कहूंगा कि वह समुदाय शैशवावस्था में है और यद्यपि कोई शिशु विशेष व्यवहार और विशेष लालन-पालन की मांग कर सकता है किन्तु इस शिशु-समुदाय ने कभी विशेष रक्षण की बात सोची तक नहीं। इसका परिणाम क्या हुआ है? हम देखते हैं कि पारसियों का प्रतिनिधित्व होता है और केवल प्रतिनिधित्व ही नहीं होता बल्कि इस देश में उनकी थोड़ी सी संख्या को देखते हुए उनका बहुत अधिक प्रतिनिधित्व होता है और वह केवल विधान-मंडलों में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक हो अथवा औद्योगिक, और चाहे वह वाणिज्यिक हो अथवा बैंक विषयक। वे हमेशा देशभक्त रहे हैं और उन्होंने देश के सामने एक उदाहरण रखा है। इस अवसर पर मैं स्वर्गीय श्री दादाभाई नारौजी, स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहता, स्वर्गीय श्री दिनशा वाचा आदि की पवित्र नामावली नहीं भुला सकता। इनके नामों का उल्लेख देश के इतिहास में आधुनिक भारत के निर्माताओं तथा स्वातंत्र्य के अग्रदूतों के रूप में रहेगा। मैं आदरपूर्वक नतमस्तक होकर उनके पुनीत नामों का स्मरण करता हूं। इस देश में इस शिशु-समुदाय ने हमेशा जिस देशभक्ति का परिचय दिया है उसकी मैं हृदय से सराहना करता हूं तथा इस समुदाय को बधाई देता हूं।

श्रीमान, अन्त में मैं अपने सिख भाइयों के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं। अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के समान ही निश्चय करने के लिये उन्हें भी बधाई देने की आवश्यकता है। वास्तव में सिख भाइयों को यह सोचना भी न चाहिये था कि वे अल्पसंख्यक समुदाय के लोग हैं, वे हमेशा से हिन्दू समुदाय के ही अंग रहे हैं। वे कुछ सरकारी पदों और विधान-मंडलों में कुछ स्थानों के ही प्रलोभन में आ गये और पृथक प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे। मेरा कोई सिख मित्र चाहे इसके विरोध में कुछ भी कहे, किन्तु मेरा यह कहना है कि वे हमेशा हिन्दू समुदाय के ही अंग रहे। हिन्दुओं और सिखों में हमेशा खान-पान ब्याह-शाही होती रही है यद्यपि जब से सिख भाई यह कहने लगे हैं कि वे हिन्दुओं से पृथक हैं, ये ब्याह शादियां कुछ कम हो गई हैं। मुझे आशा है कि वे अपने दृष्टिकोण को बदलेंगे और एक दिन वह आयेगा जब हम उन्हें इसके लिये बधाई देंगे। हमारे सिख भाई हिन्दू समुदाय के हमेशा अंग ही नहीं रहे बल्कि हिन्दुओं तथा देश की रक्षा के लिये हमेशा तलवार खींचे रहे। अब हम हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि नामों को भुलाने जा रहे हैं, किन्तु हमें विश्वास है कि सिख देश की रक्षा के लिये अब भी तलवार खींचे रहेंगे। देश की रक्षा के लिये तथा हमारी सीमाओं से शत्रु को दूर रखने के लिये हमें भरोसा है कि वे कटिबद्ध रहेंगे।

[श्री जसपतराय कपूर]

श्रीमान, मैं यह चाहता था कि मैं अनुसूचित जातियां के मित्रों को भी इसी तरह बधाई दे सकता किन्तु दुर्भाग्य से अभी इसका अवसर नहीं आया है। उनका अब भी यह विचार है कि अभी वे उस मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते जिसे देश के अन्य अल्पसंख्यक समुदायों ने अपनाया है। सिखों के समान अनुसूचित जातियों के लोग भी किसी अल्पसंख्यक समुदाय के लोग नहीं हैं और न वे हिन्दुओं से पृथक ही हैं। वे उन्हें के अंग हैं। वे यह क्यों सोचते हैं कि वे अवशिष्ट हिन्दू समुदाय से पृथक हैं? हम उन पर अपने निर्णय तथा अपने विचारों को नहीं थोपना चाहते। कुछ समय के पश्चात् वे स्वयं ही समझ जायेंगे कि स्थान सुरक्षित रखने की मांग करके उन्होंने ठीक कदम नहीं उठाया है। साथ ही देश के अन्य समुदायों को अपने आचरण से थोड़े समय में ही अनुसूचित जातियों के लोगों को यह विश्वास दिला देना चाहिये कि उनके हित भारत के अन्य लोगों के हाथों में उसी प्रकार सुरक्षित हैं जैसे कि वे उनके अपने हाथों में सुरक्षित हैं। इसलिये भारत के अवशिष्ट लोगों को अनुसूचित जातियों के लोगों के मस्तिष्क से इस भय को दूर करने के लिये ठोस प्रयत्न करने चाहिये ताकि दस वर्ष के पूर्व ही वे लोग स्वयं यह कहें कि उनके लिये स्थान रक्षित रखने की आवश्यकता नहीं है। मेरे संशोधन का लक्ष्य भी यही है। अभी चूंकि उन्होंने स्थान रक्षित रखने की मांग की है इसलिये हमें उनके लिये उन्हें रक्षित रखना ही चाहिये। हमें उनके लिये स्थान रक्षित ही न रखने चाहिये किन्तु ऐसे उपबन्धों को भी रख देना चाहिये जिनके फलस्वरूप उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाये और उन्हें संतोष हो जाये। मैंने अपने संशोधन द्वारा यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों के लिये जो निर्वाचन क्षेत्र सुरक्षित रखे जायें वे इस प्रकार के हों कि उनमें अनुसूचित जातियों के मतदाताओं की संख्या अन्य निर्वाचन क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक हो, ताकि वे विधान-मंडलों में ऐसे लोगों को भेज सकें जो उनके विश्वास भाजन हों। यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लोग अधिक हुये तो वे अपनी पसंद के सदस्य को निर्वाचित कर सकेंगे। उम्मीदवारों के चुनाव में उनका मत निर्णायक यदि न भी हो तो कम से कम उनकी आवाज सशक्त अवश्य होनी चाहिये। मैंने इसी उद्देश्य से इस संशोधन को उपस्थित किया है।

इसके अतिरिक्त मैं यह कहूंगा कि इसका निर्णय अनुसूचित जातियों के लोग स्वयं करें कि मेरे संशोधन से उन्हें लाभ होगा या नहीं। मेरा उद्देश्य केवल यही है कि मैं उनके सामने यह सुझाव रखूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये क्योंकि, मेरे विचार से, इससे उनका हितसाधन होगा। उनका जिसे हिसाधन होता है उसी से देश के अन्य समुदायों का भी हितसाधन होता है। यदि वे यह समझते हैं कि इस संशोधन से उन्हें कुछ लाभ न होगा और कुछ हानि होने की सम्भावना है तो मैं उसे तुरन्त वापिस ले लूंगा क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने किसी ऐसे संशोधन पर मत लेने के लिये जोर दूं, जो भले ही उनके हितों की रक्षा

के उद्देश्य से उपस्थित किया गया हो किन्तु उन्हें नापसन्द हो। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं इस संशोधन को सभा के विचारार्थ उपस्थित करता हूं अथवा यूं कहना चाहिये कि विशेषत: अनुसूचित जातियों के अपने मित्रों के विचारार्थ करता हूं, परन्तु यदि यह उन्हें नासपन्द है तो इस पर मत न लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों से यह कहना चाहता हूं कि इस समय हम जिन अनुच्छेदों पर विचार कर रहे हैं उनमें दो दिन की बहस के फलस्वरूप हमने जो निर्णय किये हैं वे सन्निहित हैं और इसलिये उसी बहस को फिर छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। सदस्य महोदय अपनी चर्चा को संशोधनों तक ही समिति रखें। यदि उनका भिन्न मत हो तो वे उसे वक्त कर सकते हैं किन्तु दो दिन की बहस में हम जिन तर्कों को उपस्थित कर चुके हैं उन्हें अब न दुहरायें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): मैं यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि रेवरेंड निकोल्स राय के नाम से जो संशोधन है उसका उस निर्वाचन-विषयक खंड से अधिक सम्बन्ध है जिसमें अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों की परिभाषा की जायेगी। यदि मेरे मित्र उस संशोधन को उपस्थित करना ही चाहते हैं तो वह उस समय तक स्थगित रखा जाये जब तक हम संविधान के तत्सम्बन्धी भाग को, अर्थात् अनुच्छेद 303 को, न उठायें।

***अध्यक्ष:** क्या आप डॉ. अम्बेडकर का आशय समझ गये हैं?

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय:** (आसाम: जनरल): जी हां, मैं समझ गया हूं। मेरा संशोधन उस संशोधन पर अर्थात् संशोधन संख्या 3108 पर आधृत है जिसे श्री ठक्कर उपस्थित करने वाले हैं। किन्तु मैं यह देखता हूं कि वे जिस संशोधन (अर्थात् जिस संशोधन संख्या 28) को उपस्थित करने जा रहे हैं उसका स्वरूप ही भिन्न है। यदि श्री ठक्कर इस संशोधन को उपस्थित नहीं कर रहे हैं तो मैं भी अपने संशोधन को अभी उपस्थित नहीं करूंगा किन्तु अनुच्छेद 303 के अधीन जिस समय इस विषय की चर्चा होगी उस समय मैं अपने संशोधन को उपस्थित करूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा भी यही सुझाव है कि जो संशोधन श्री ठक्कर के नाम से है वे स्थगित रखे जायें और उन पर उसी समय विचार किया जाये जब हम अनुच्छेद 303 को उठायें।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय:** यदि श्री ठक्कर इसके लिये सहमत हैं तो मैं भी सहमत हो जाऊंगा।

***श्री ए.बी. ठक्कर:** (सौराष्ट्र): मैं पूर्णतया सहमत हूं।

***अध्यक्ष:** तब दोनों संशोधन स्थगित रखे जाते हैं।

***सरदार हुकम सिंह:** (पूर्वी पंजाब: सिख): श्रीमान, मैं संशोधन संख्या 29 से 31 तक उपस्थित नहीं कर रहा हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 22 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के अन्त में निम्नलिखित व्याख्या जोड़ दी जाये:

'*Explanation.*—The member of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes mentioned in sub-clauses (a), (b) and (c) of clause (1) above shall have the right to contest unreserved seats as well.

(व्याख्या.—उपरोक्त खण्ड (1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) में उल्लिखित अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लोगों को आरक्षित स्थानों के लिये भी खड़े होने का अधिकार होगा।)' "

आरम्भ में ही मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस संशोधन में प्रस्थापित व्याख्या में कोई नवीन विचार सन्निहित नहीं है। यह अल्पसंख्यक मंत्रणा समिति की भी एक सिफारिश थी और वह सिफारिश इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सभा के सम्मुख प्रस्तुत की गई थी और उस पर इस सभा ने 27 और 28 अगस्त 1947 को विचार करके स्वीकार भी कर लिया था। मेरे विचार से वह एक उपयुक्त उपबन्ध था। मैं कह नहीं सकता कि उसे इस मसौदे से क्यों निकाल दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब मूल मसौदे को संविधान सभा के सम्मुख उपस्थित किया गया था तो स्थिति भिन्न थी और धर्म पर आधृत सभी अल्पसंख्यक समुदायों को.........

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मेरे मित्र जिस संशोधन को उपस्थित कर रहे हैं उसकी आवश्यकता नहीं है। संविधान में ही यह उपबन्धित है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के लोग केवल अनुसूचित जातियों के लिये रक्षित स्थानों के लिये ही नहीं खड़े हो सकते बल्कि सामान्य स्थानों के लिये भी खड़े हो सकते हैं। इसलिये मेरे मित्र का संशोधन अनावश्यक है। मैं अपने माननीय मित्र से प्रार्थना करता हूं कि चूंकि इस सम्बन्ध में संविधान में उपबन्ध है इसलिये...........

***अध्यक्ष:** यह कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। जब वे संशोधन को उपस्थित कर चुकें तो आप उनसे उसे वापस ले लेने को कह सकते हैं।

***श्री एस. नागप्पा:** मैं अपने मित्र से सिफारिश करता हूं कि वे इस संशोधन को उपस्थित न करें क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं है।

***सरदार हुकम सिंहः** मेरे मित्र ने जो परामर्श दिया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। यदि मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि उसकी वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं है तो मैं उसे बाद में बिना किसी संकोच के वापस ले लूंगा। किन्तु मेरे विचार से, जैसा कि मूल मसौदे में किया गया था, इस स्थान पर यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के लोग सामान्य स्थानों के लिये भी खड़े हो सकते हैं।

श्रीमान, मैं यह निवेदन कर रहा था कि सभा के सम्मुख जो पहला मसौदा उपस्थित किया गया था उसमें धर्म पर आधृत सभी अल्पसंख्यक समुदायों के लिये स्थान रक्षित किये गये। अब वे स्वयं इसके लिये तैयार हो गये हैं। कि वे उन्हें न लेंगे। धर्म पर आधृत उन समुदायों में से मेरा भी समुदाय है। इस निर्णय के लिये सिखों को कोई खेद नहीं है। उनका यह विचार है कि यह एक ठीक निर्णय है और इससे अल्पसंख्यकों का हितसाधन होगा।

किन्तु श्री कपूर ने कुछ एक दो प्रश्न ऐसे उठाये हैं जिनका मैं आपकी अनुमति से उत्तर देना चाहता हूं। उन्होंने कहा है—और यह उनका बहुत अच्छा परामर्श है—कि अल्पसंख्यकों को अब अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदायों की बात न सोचनी चाहिये और हम सबको अपना एक ही समुदाय समझना चाहिये। मैं उनके इस विचार से सहमत हूं और मैं अपने माननीय मित्र को यह आश्वासन देता हूं कि सिख एक ही समुदाय के होना चाहते हैं और इसके लिये प्रयास करेंगे। मैंने इस सभा में तथा बाहर भी कई बार यह नारा सुना है कि अब अल्पसंख्यक समुदाय नहीं रह गये हैं। अच्छा यही होता कि यह बात होती। किन्तु जब तक यह प्रश्न रहेगा अल्पसंख्यक भी बने रहेंगे। केवल बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श देने से अथवा नारे लगाने से वे समाप्त न हो जायेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति कुछ अन्य बातों से, कुछ अन्य अच्छी बातों से हो सकती है। इस सम्बन्ध में सबसे उपयुक्त यही होगा कि मैं अपने विद्वान मित्र डॉ. अम्बेडकर के उस भाषण से एक उद्धरण दूं, जो उन्होंने संविधान के मसौदे को उपस्थित करते समय दिया था। उन्होंने बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों को बहुत ही उपयुक्त मंत्रणा दी थी और मेरे विचार से उनके उन शब्दों का बहुत महत्व है और आज भी इस प्रश्न का वही हल है जो उन्होंने बताया था।

उन्होंने उस समय कहा था कि अल्पसंख्यक समुदायों ने बहुसंख्यक समुदाय का शासन भक्तिपूर्वक स्वीकार किया है यद्यपि यह बहुसंख्यक समुदाय मूलतः साम्प्रदायिक बहुसंख्यक समुदाय है और राजनैतिक बहुसंख्यक समुदाय नहीं है। बहुसंख्यक समुदाय को समझना चाहिये कि अल्पसंख्यकों के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है और उनके प्रति विभेद न बरतना चाहिये। यह बहुसंख्यक समुदाय के रुख पर ही निर्भर है कि अल्पसंख्यक बने रहें या मिट जायें। जब बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के प्रति विभेद बरतना छोड़ देंगे तो अल्पसंख्यकों का अस्तित्व न रह जायेगा। ये समुदाय समाप्त हो जायेंगे, किन्तु यह सब अल्पसंख्यक समुदाय के रुख पर ही निर्भर है।

[सरदार हुकम सिंह]

मैं इससे अधिक उपयुक्त ढंग से अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकता। श्री कपूर से मेरा केवल यह निवेदन है कि इस समस्या का यही हल है और यदि बहुसंख्यक समुदाय ऐसा व्यवहार करे कि अल्पसंख्यक अपनी हित-रक्षा के सम्बन्ध में निश्‍चित हो जायें तो कुछ समय बाद वे लुप्त हो जायेंगे। मैं अन्य लोगों की ओर से तो नहीं बोल सकता है किन्तु जहां तक सिखों का सम्बन्ध है यह स्वाभाविक है कि उन्हें कुछ भय है और इस प्रकार के नारों से तथा बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श से उनका भय बढ़ेगा ही। उनकी यह धारणा है कि यह भविष्य में ही सिद्ध होगा कि उनके भय का कोई आधार है या नहीं।

अब मैं यह बताऊंगा कि मेरा संशोधन कहां तक सार्थक है। मेरे विचार से आरम्भ में, चूंकि हम पृथक निर्वाचन-मंडलों को समाप्त करके विशुद्ध संयुक्त निर्वाचन-मंडल स्थापित करने जा रहे थे, अल्पसंख्यक समिति ने यह सिफारिश की कि अल्पसंख्यकों के लिये कुछ स्थान और कम से कम स्थान रक्षित किये जायें और उन्हें इस सम्बन्ध में आश्‍वासन दिया जाये ताकि एकाएक परिवर्तन होने से वे किसी प्रकार के भय से पीड़ित न हों! अल्पसंख्यक समिति का यह उद्देश्य हो ही नहीं सकता था कि अधिक से अधिक संख्या को सीमित किया जाये। यदि यह अतिरिक्त अधिकार नहीं दिया जाता है तो इसका प्रभाव यह होगा कि अधिक से अधिक संख्या सीमित हो जायेगी और यह न होगा कि कम से कम संख्या अवश्य प्राप्त हो जायेगी।

दूसरी बात यह है कि पार्थक्य की भावना का अन्त हो जाना चाहिये। इस समय हम केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये ही स्थान रक्षित रख रहे हैं और केवल थोड़े काल के लिये ही इस अनिवार्य दोष को स्वीकार कर रहे हैं। मेरा इस समस्या से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है किन्तु मेरी यह धारणा है कि यदि हम यह चाहते हैं कि पार्थक्य की यह भावना मिट जाये तो जहां एक ओर हम स्थानों को रक्षित रखें वहां दूसरी ओर ये वर्ग भी इस भावना से प्रेरित हों कि वे एक ही समुदाय के अंग हैं और वे अन्य स्थानों के लिये भी अन्य व्यक्तियों के समान खड़े हो सकते हैं। यदि दस वर्ष पश्चात् हमें एकाएक दूसरी ओर चले जाना है तो सम्भव है इस निर्णय को सद्‌भावना से नहीं बल्कि दुर्भावना से स्वीकार किया जाये।

तीसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि इस अतिरिक्त अधिकार को प्रदान करने से बहुसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधियों की संख्या में कोई विशेष अन्तर न आयेगा। जहां तक मैं समझता हूं, उन्हें प्रसन्न करने के लिये इस बुद्धिवाद का सहारा लिया गया है। अन्यथा इसकी बहुत कम सम्भावना है कि जिन अल्पसंख्यकों के लिये यह स्थान सुरक्षित रखे गये हैं वे अतिरिक्त स्थानों को प्राप्त कर सकेंगे परन्तु वे यह क्यों सोचते हैं कि बहुसंख्यक समुदाय ने अपने लिये कई स्थान सुरक्षित रखे हैं। और ये स्थान भी उन्हीं के लाभ के लिये रक्षित रखे जा रहे हैं?

मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि जिस अतिरिक्त अधिकार की आरम्भ में कल्पना की गई थी वह भी उन्हें प्रदान कर दिया जाता है और उन्हें उन स्थानों के लिये भी खड़ा होने की आज्ञा दे दी जाती है, जो उनके लिये रक्षित नहीं किये गये हैं तो कोई हानि न होगी।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने जिन दो संशोधनों की सूचना दी है उन्हें उपस्थित करने के लिये मैं उठा हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 22 में प्रस्तावित अनुच्छेद संख्या 292 के खण्ड (2) में 'as the population (जनसंख्या)' शब्दों के पश्चात् 'actually exists or known by a fresh census' (जैसी कि वह हो अथवा नवीन जनगणना के फलस्वरूप ज्ञात हो)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता, क्योंकि मंत्रणा-समितियों के प्रतिवेदनों पर सभा में पूर्ण रूप से विचार हो चुका है किन्तु मैं मसौदा-समिति के ध्यान में कुछ ऐसी बातें लाना चाहता हूं जिनसे अनुसूचित जातियों के लोगों को रक्षणाली के अधीन उन्हें बांट में मिलने वाले स्थानों के सम्बन्ध में आश्वासन मिल जायेगा। मैंने यह सुझाव रखा है कि उस जनसंख्या को स्वीकार किया जाये जो आज है अथवा जो नवीन जनगणना के आधार पर निश्चित की जाये। मैंने यह सुझाव इस कारण रखा है कि 1931 की जनगणना के आधार पर यह हिसाब लगाया गया था कि अनुसूचित जातियों की अनसंख्या 5 करोड़ है, 1944 की जनगणना के आधार पर यह कहा गया कि उनकी जनसंख्या 4 करोड़ 40 लाख है। मैं कह नहीं सकता है कि अनुसूचित जातियों का समुदाय दस ही वर्षों में इतना कैसे घट गया। अगस्त 1947 में, जब इस आदरणीय सभा में अल्पसंख्यक समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया गया था, मेरे माननीय मित्र श्री खांडेकर ने, जो भारत की डिप्रेस्ड क्लासेज लीग के अध्यक्ष हैं, यह अनुरोध किया था कि स्थान के बंटवारे के पूर्व जनगणना होनी चाहिये अथवा अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 1931 की जनगणना के आधार पर निश्चित की जानी चाहिये। 1931 की जनगणना के आधार पर अथवा 1951 में होने वाली नवीन जनगणना के आधार पर प्रतिनिधियों की जो संख्या निश्चित की जायेगी उसे हम स्वीकार करने को तैयार हैं। जहां तक अनुसूचित जातियों की जनसंख्या का सम्बन्ध है, 1941 की जनगणना के आंकड़े बिल्कुल गलत हैं। उनके आधार पर जो प्रतिनिधित्व निश्चित किया जायेगा वह हमारे लिए बहुत अन्यायपूर्ण होगा।

दूसरी बात यह है कि देश के विभाजन के कारण हरिजन बहुत बड़ी संख्या में पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल और पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब चले आये हैं।

[श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

यह सभी को विदित है कि देश विभाजन के कारण तथा अन्य कारणों से भी मेरे समुदाय के लाखों लोगों को भारत को प्रव्रजन करना पड़ा। मसौदा समिति को इसे ध्यान में रखना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि 1935 के अधिनियम तथा उसके अधीन जारी किये हुए आदेशों से प्रान्तीय सरकारों को ऐसे समुदायों को अनुसूचित जातियों की सूची में प्रविष्ट करने की शक्ति प्राप्त हो गई है जो पिछड़े हुए समझे जाते हैं। 1941 के पश्चात् कई समुदाय अनुसूचित जातियों की सूची में प्रविष्ट किये गये हैं और मेरे मित्र श्री ठक्कर बापा ने भी कुछ समुदायों की सूचना दी है जिन्हें इस सूची में प्रविष्ट करना चाहिये। इन बातों को ध्यान में रखते हुए मेरी यह धारणा है कि अनुसूचित जातियों की इस समय की जनसंख्या 1941 की उनकी जनसंख्या से कहीं अधिक होगी। इसलिये स्थानों की संख्या निश्चित करने के लिए और इस प्रकार अनुसूचित जातियों के लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिये कि उन्हें अपने राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं, यह आवश्यक है कि जनगणना जितनी जल्दी हो सके की जाये।

इस आदरणीय सभा से मेरा एक निवेदन और है और वह जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जातियों के लिए स्थान निश्चित करने के सम्बन्ध में है। यह सभा लोगों को वयस्क मताधिकार प्रदान कर चुकी है। जो लोग 1941 में अल्पवयस्क थे वे दस वर्षों में वयस्क हो गये होंगे। इसलिये जब तक ठीक-ठीक जनगणना न की जाये तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि अनुसूचित जातियों की जनसंख्या ठीक निश्चित की गई है। यह एक महत्वपूर्ण बात है क्योंकि अनुच्छेद में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है:

"अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिम जातियों के लिए किसी राज्य में रक्षित रखे स्थानों की संख्या का अनुपात लोक सभा में उस राज्य को बांट में दिये गये स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वहीं होगा जो यथास्थिति उस राज्य में की अनुसूचित आदिम जातियों की, अथवा उस राज्य में की या उस राज्य के भाग में की अनुसूचित आदिम जातियों की, जिनके सम्बन्ध में स्थान इस प्रकार रक्षित हैं, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।"

वे सब लोग जो 1941 में अल्पवयस्क थे अब वयस्क हो गये होंगे और इसलिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या की सूची में उनकी भी गणना की जाये। इसलिए इस प्रयोजन के लिए एक नवीन जनगणना की आवश्यकता है।

पहले एक दिन मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि उत्तर-सदन में स्थान रक्षित नहीं रखे गये हैं। प्रतिवेदन को पढ़ने के पश्चात् मैं यह निर्णय

नहीं कर सका। मेरी यह प्रबल धारणा है कि यदि उत्तर-सदन में स्थान रक्षित नहीं रखे जा रहे हैं तो अनुसूचित जातियों के लोगों को अवर सदन में बहुत से स्थान दिये जाने चाहियें ताकि उनकी स्थिति सुदृढ़ हो सके।

मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद में स्थान रक्षित रहने की जो व्यवस्था की गई है उसका यह अर्थ न समझना चाहिए कि इस समुदाय को हमेशा के लिए पृथक किया जा रहा है। मैं यह कह सकता हूं कि इस अनुच्छेद में वास्तविक गांधीवाद की भावना व्यक्त है। इसके द्वारा अन्य समुदायों को अपने कर्त्तव्य पालन का अवसर दिया गया है। चाहे ये स्थान दस ही वर्ष के लिए रक्षित रखे जा रहे हैं किन्तु इस बीच अन्य समुदायों को अनुसूचित जातियों के समुदाय के प्रति भ्रातृभाव दिखाना चाहिये ताकि इस अवधि के पश्चात् वह स्वयं आगे बढ़कर यह कहे कि उसे स्थानों के रक्षण की आवश्यकता नहीं है।

मैं अपने दूसरे संशोधन को भी उपस्थित करता हूं, जो इस सम्बन्ध में है कि "ऐसे स्थानों में निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित किये जायें जहां प्रत्येक जिले में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या सबसे अधिक हो"। मेरे माननीय मित्र श्री जसपत राय कपूर ने बहुत से कारण देकर यह सिद्ध किया है कि अनुसूचित जातियों के लिए ऐसे मिले-जुले क्षेत्रों में स्थान अथवा निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित करने की आवश्यकता है, जहां वे अधिक संख्या में निवास करते हैं। इसका कारण यह है कि कई वर्षों से ऐसे क्षेत्रों में स्थान बांट में दिये जाते रहे हैं जहां सवर्ण हिन्दुओं और अन्य समुदायों का बहुमत है और हरिजनों को अपने मत को स्वतंत्र रूप से प्रयोग में लाने का अवसर नहीं मिलता और न वे अपने समुदाय के श्रेष्ठ लोगों को निर्वाचित ही कर सकते हैं। मैंने भी इस संशोधन की इसी कारण सूचना दी है। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति या तो मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी या श्री कपूर के संशोधन को।

इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

(संशोधन संख्या 96 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** श्री सहाय के संशोधन को भी स्थगित रखना होगा। पंडित ठाकुरदास भार्गव ने यह इच्छा प्रकट की है कि वे अपने कुछ संशोधन उपस्थित करेंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि वे किन संशोधनों को उपस्थित करना चाहते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): श्रीमान, 10 जुलाई 1949 तक की जो सम्मिलित सूची है। उसके संशोधन संख्या 237, 236 और 234 को मैं उपस्थित करना चाहता हूं।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मैं इन प्रस्तावों को उपस्थित करता हूं कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के अन्त में निम्नलिखित नवीन परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that the members of the Scheduled Tribes in Assam will not have the right to contest general seats.

(परन्तु आसाम की अनुसूचित आदिम जातियों के लोगों को सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार नहीं होगा।)' "

"उपरोक्त संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के खण्ड (2) के पश्चात् निर्मलिखित नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये।

'(3) The reservation of seats shall, as far as possible, be secured by single member territorial constituencies.

[(3) स्थानों का रक्षण, यथासम्भव, एक सदस्य वाले प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के आधार पर होगा।]' "

"उपरोक्त संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित अनुचछेद 292 के खण्ड (2) में व्याख्या के पूर्व निम्नलिखित परन्तुक प्रविष्ट किया जाये:

'Provided that for the calculation of the balance of the proportion is more than half of what it requires to obtain one seat, one seat shall be allotted and if it is less than half it shall be ignored.

(परन्तु गणना के लिये यदि अनुपात का शेष उस संख्या से अधिक हो, जो एक स्थान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है, तो बांट में एक स्थान दिया जायेगा किन्तु यदि वह आधे से कम हो तो उसकी अपेक्षा की जायेगी।)' "

हम जिन सामान्य अनुच्छेदों को पारित कर चुके हैं उनका मेरे मित्र श्री नागप्पा ने जो निर्वचन किया है उसे मैं स्वीकार करता हूं। इस विषय के सम्बन्ध में सभा जिस अनुच्छेद को पारित कर चुकी है उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सामान्य स्थानों के लिये खड़ा होने का अधिकार है जिसका अर्थ यह है कि जब तक इसके विरुद्ध कोई उपबन्ध न हो, जिन लोगों के लिये स्थान रक्षित किये जा रहे हैं उन्हें भी सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार होगा।

यह सच है कि लोकतंत्र का अर्थ यह है कि एक व्यक्ति को एक मत प्राप्त हो। सभा ने कुछ वर्गों के लिये स्थान रक्षित करके उनके साथ रिआयत की है

और वर्तमान स्थिति में उनके साथ यह रिआयत करनी ही थी। इस समस्या का यही उपयुक्त हल है। मैं कह नहीं सकता कि अनुसूचित जातियों का कोई व्यक्ति स्थानों का रक्षण चाहता है या नहीं। अनुसूचित जातियों के लोग केवल यह चाहते हैं कि वे इस देश के अन्य समुदायों के स्तर पर आ जायें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अन्य साधन भी हैं। चूंकि इन वर्गों का और कुछ अन्य वर्गों का भी यह विचार है कि वे सामान्य निर्वाचन-क्षेत्रों से अपने लोगों को निर्वाचित नहीं करा सकते हैं इसलिये यह अच्छा ही है कि हमने उनके स्थान-रक्षण की व्यवस्था की है। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि हम उन्हें सामान्य स्थानों के लिये भी खड़ा होने देते हैं तो हम गलती करेंगे। हम एक सिद्धान्त का परित्याग करेंगे किन्तु साथ ही मेरा यह भी विचार है कि यदि हम अनुसूचित जातियों को यह अधिकार दे रहे हैं तो इससे कोई हानि न होगी। यदि वे इससे प्रसन्न हैं तो प्रसन्न रहें। मेरे विचार से सारे भारत में किसी भी सामान्य स्थान के लिये खड़ा होने पर अनुसूचित जातियों का काई व्यक्ति निर्वाचित नहीं हो सकता।

यदि उनमें से कई लोग निर्वाचित हो गये तो मुझे प्रसन्नता होगी। मैं यह चाहता हूं कि अन्य वर्गों के लोग अनुसूचित जातियों के लोगों का विश्वास करें। यदि अन्य उम्मीदवारों को हराकर उनमें से कई निर्वाचित हो गये तो मुझे प्रसन्नता होगी। उन्हें यह अधिकार प्रदान किया जाये, मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। मुझे विश्वास है कि दस वर्ष बीतने पर उनमें से कई लोग कहेंगे, "हमने यह देखने का प्रयास किया कि अन्य वर्गों के लोग हमारा समर्थन करते हैं कि नहीं। उन्होंने हमारा समर्थन नहीं किया। इसलिये आवश्यकता इसी की है कि स्थान-रक्षण व्यवस्था को जारी रखा जाये"। उस समय उनके इस तर्क में कुछ बल न रहेगा क्योंकि उन्होंने आंखें खोलकर दस वर्ष की अन्तिम सीमा स्वीकार की है।

आसाम की अनुसूचित जातियों का मामला बिल्कुल भिन्न है। मुझे यह बताया गया है कि आसाम में 20 प्रतिशत मुसलमान हैं, 22 प्रतिशत अनुसूचित आदिम जातियों के लोग हैं और 48 प्रतिशत वे लोग हैं जिनके लिये स्थान रक्षित नहीं हैं। यदि वे लोग, जिनके लिये स्थान रक्षित नहीं हैं, बड़ी संख्या में हैं तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि जिन लोगों के लिये स्थान रक्षित किये गये हैं उन्हें सामान्य स्थानों के लिये भी खड़ा होने दिया जाये। किन्तु यदि यह अधिकार उन लोगों को दिया गया, जिनकी संख्या आधे से कम है, तो अवश्य आपत्ति की जा सकती है।

***काजी सैय्यद करीमुद्दीन** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मुसलमान और अन्य लोग, जिनके लिये स्थान रक्षित नहीं दिये गये हैं 60 प्रतिशत से अधिक स्थानों को पा जायेंगे।

पं. ठाकुरदास भार्गव: मेरे मित्र ने 60 प्रतिशत की जो चर्चा की है उससे मेरा तर्क और भी अधिक पुष्ट हो जाता है। मेरा यह निवेदन है कि स्थान-रक्षण

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

की व्यवस्था कोई उचित व्यवस्था नहीं है क्योंकि इससे पार्थक्य की भावना प्रबल हो जाती है और वर्गों का मिलकर एक हो जाना कठिन हो जाता हैं। इस दृष्टि से भी इन वर्गों को अन्य स्थानों के लिए खड़ा होने का लोकतंत्र-विरूद्ध अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे उन लोगों के प्रतिनिधियों की संख्या और भी कम हो जायेगी जिनके लिये स्थान रक्षित नहीं किये गये हैं। श्रीमान, प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार प्राप्त है कि उसका प्रतिनिधित्व उसकी पसंद का ही कोई व्यक्ति करे। कुछ वर्गों के लिए स्थान रक्षित करके यह सभा लोगों की अपनी पसंद के व्यक्तियों द्वारा अपना प्रतिनिधित्व कराने के अधिकार से वंचित कर रही है। यह तर्क मेरी समझ में आता है कि अन्य लोगों के अधिकारों का भी अपहरण हो रहा है। अनुसूचित जातियों के लोग यह चाहेंगे कि विधान-मंडलों में उनकी पसंद के लोग उनका प्रतिनिधित्व करें। यह हो सकता है कि जिन लोगों के लिए स्थान रक्षित नहीं किये गये हैं उनमें से कुछ उम्मीदवारों पर उनका अधिक विश्वास हो। इस प्रकार स्थान-रक्षण से सभी लोग अपनी पसंद के प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के अधिकार से वंचित हो जाते हैं। इसलिये हमें इसका प्रयास करना चाहिए कि स्थान-रक्षण के दोषों से अन्य लोगों के हितों की और वैध अधिकारों की हानि न हो। इसलिये मेरा यह कहना है कि आसाम में जहां आरक्षित स्थानों वाले लोग 50 प्रतिशत से कम हैं, उनके अधिकारों में रक्षित स्थानों वाले लोगों को हस्तक्षेप न करने देना चाहिये।

अब मैं अपने संशोधन संख्या 226 को उठाता हूं।

"उपरोक्त संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्नलिखित नवीन खंड जोड़ दिया जाये:

(3) स्थानों का रक्षण, यथासम्भव, एक सदस्य वाले प्रादेशिक निर्वाचित क्षेत्रों के आधार पर होगा।' "

मेरा नम्र निवेदन है कि यदि बहुत सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की गई तो यथोचित रूप से प्रतिनिधित्व न हो सकेगा। बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से खड़े होने वाले लोग अपने समर्थकों का उतने प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे जितने प्रभाव पूर्ण ढंग से एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से खड़े होने वाले लोग अपने समर्थकों का प्रतिनिधित्व करेंगे। अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व जो लोग करेंगे उन्हें उनके पड़ौसियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानेगा। बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों में उनके पक्ष में जो लोग मत देंगे वे उन्हें बिल्कुल भी न जानेंगे। आरक्षित जगहों वाले लोगों के प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में भी यही होगा क्योंकि पास-पड़ौस के अतिरिक्त बाहर के लोग बहुत कम लोगों को जानते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति अपने जिले में लोकप्रिय हो उसे अन्य जिले से खड़ा होने का कोई अधिकार नहीं है। सम्भव है उसे वहां कोई भी न जानता हो। इसलिये बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से प्रतिनिधि निर्वाचित करने की व्यवस्था उपयुक्त व्यवस्था नहीं है।

इसके अतिरिक्त यदि आप इस ओर ध्यान दें कि उम्मीदवार को एक बहुत बड़े क्षेत्र में जहां तहां बसे हुए 7,50,000 लोगों में प्रचार करना होगा तो आप समझ जायेंगे कि उसे किस कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और क्या कष्ट झेलने होंगे। मेरा यह भी निवेदन है कि यदि एक सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से भी केवल विशेष आदिमजाति के लोगों को ही खड़ा होने दिया गया तो उससे भी लोग अपना प्रतिनिधि चुनने के अधिकार से वंचित हो जायेंगे। यदि बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र स्थापित किये गये तो कठिनाई बढ़ जायेगी। इन सब बातों की ओर ध्यान देते हुए बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से न उन वर्गों के लोगों का हितसाधन हो सकता है जिनके लिए जगहें रक्षित रखी गई हैं और न अन्य लोगों का। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह मेरे सुझाव को स्वीकार कर ले और जहां तक सम्भव हो इसे संविधान का अंग बना ले कि अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से न हो बल्कि एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से हो।

अब मैं अपना तीसरा संशोधन उठाता हूं जो इस प्रकार है:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के खंड (2) में व्याख्या के पूर्व निम्नलिखित परन्तुक प्रविष्ट किया जाये:

'परन्तु गणना के लिए यदि अनुपात का शेष उस संख्या से अधिक हो जो एक स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है तो बांट में एक स्थान दिया जायेगा किन्तु यदि वह आधे से कम हो तो उसकी उपेक्षा की जायेगी।' "

यह गणित का एक नियम है और वास्तव में एक समुचित नियम है। मैं इसके सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। यदि एक प्रस्ताव मात्र है।

***अध्यक्षः** पंडित भार्गव ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं वे 10 जुलाई 1949 की सूची के संशोधन संख्या 234, 236 और 237 हैं।

***श्री कुलधर चालिहाः** (आसामः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं पहले अपने मित्र प्रोफेसर लस्कर के प्रस्ताव के सम्बन्ध में ही बोलूंगा। उन्होंने जो हालत बताई है उससे मुझे सहानुभूति है किनतु साथ ही हमारे सामने कठिनाइयां भी हैं। आसाम की जनसंख्या के आंकड़ों की परीक्षा करने पर उनका तर्क नहीं टिकता। हम देखते हैं कि वहां आदिमजातियों के लोगों की जनसंख्या 34 लाख है और मुसलमानों की जनसंख्या 17 लाख है। इनके अतिरिक्त जो सामान्य लोग हैं वे बहुत कुछ एक अल्पसंख्यक वर्ग के लोग हैं। 1941 की जनगणना के अनुसार (विभाजित) आसाम की जनसंख्या लगभग 74 लाख है। इसके आधार पर केवल 3। लाख अनुसूचित जातियों के लोगों को लोक-सभा में प्रतिनिधित्व प्रदान करना बहुत कठिन है। आसाम में अन्य समुदाय भी हैं जैसे अहोम। उनकी जनसंख्या लगभग 3 लाख है। अहोम लोग शासक रहे हैं और इसलिये वे एक स्थान के लिये मांग करेंगे।

[श्री कुलधर चालिहा]

इसके अतिरिक्त मटक और मौरान भी हैं जिनकी जनसंख्या 3½ लाख है। चुटियाओं की जनसंख्या ½ लाख है। सामान्य समुदाय के स्थानों में से उनके लिये भी कोई स्थान अलग रखना होगा, यद्यपि जैसाकि मैं कह चुका हूं वह एक अल्पसंख्यक समुदाय है। मेरे विचार से हमें भी लस्कर के समुदाय के प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिये और मुझे आशा है कि श्री लस्कर को सदन में एक स्थान प्राप्त हो जायेगा। किन्तु इस समय हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम उनके तर्क को स्वीकार कर सकें। देश के जिस भाग में मैं रहता हूं वहां यह प्रथा प्रचलित हो गई है कि जहां तक सम्भव होता है सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व होता है। बहुत समय से कांग्रेस समिति इसी प्रथा का अनुसरण करती आ रही है और चाहे श्री लस्कर के समुदाय की जनसंख्या बहुत कम है किन्तु वह इसका निश्चित रूप से प्रबन्ध कर देगी कि अगले पांच वर्षों में वे लोक सभा के लिये निर्वाचित हो जायेंगे।

श्री लस्कर ने जनगणना के आंकड़ों की भी त्रुटियां बताई हैं। 1941 में कांग्रेस पदारूढ़ नहीं थी। यह सच है कि आदिम-जातियों की जनसंख्या बढ़ गई है। यह कहा जाता है कि अनुसूचित जातियों के कुछ लोगों ने आदिम-जातियों का धर्म अंगीकार कर लिया है और वह इसलिये कि वे शराब पीने के आदी थे। यह भी कहा जाता है कि उनमें से बहुत से लोगों ने हिन्दू धर्म को अंगीकार कर लिया है और वह इसलिये कि वे शराब पीने के आदी थे। यह भी कहा जाता है कि उनमें से बहुत से लोगों ने हिन्दू धर्म को अंगीकार कर लिया है और हिन्दुओं की जनसंख्या को 184 प्रतिशत बढ़ा दिया है। किन्तु इसमें कांग्रेस का कोई दोष नहीं है। यदि आदिम-जातियों की जनसख्या बढ़ गई है तो उसके लिये ईश्वर ही दोषी है अन्य कोई व्यक्ति नहीं। मुझे आशा है कि अगली जनगणना में इस प्रकार की बातें न होने पायेंगी और सभी बातें न्यायपूर्ण ढंग से होंगी।

जहां तक, श्रीमान, पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का सम्बन्ध है, मैं उससे सहमत हूं। आसाम के सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों के निवासी अल्पसंख्यक हैं। जो लोग स्थानों के रक्षण की मांग करते हैं उन्हें जनसाधारण के निर्वाचन क्षेत्रों में कदम न रखना चाहिये और न उन्हें उन क्षेत्रों में कोई स्थान प्राप्त करने का अधिकार ही होना चाहिये। सौभाग्य से आसाम में सूचारु व्यवस्था है और कभी-कभी समायोजन कर लिया जाता है। मुझे विश्वास है कि अल्पसंख्यकों से हमें जिस सहिष्णुता की आशा है उसे वे दिखायेंगे और हम भी उनके प्रति सहिष्णुता से व्यवहार करेंगे।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं श्री लस्कर के संशोधन का विरोध करता हूं और पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का कुछ शर्तो के साथ समर्थन करता हूं। मैं रेवरेंड निकोल्स राय के इस विचार से भी सहमत हूं कि आदिम-जातियों को किसी कारण भी उनके लिये रक्षित जगहों से वंचित न किया जाना चाहिये और जैसाकि एक संशोधन में प्रस्ताव है, उन्हें विभाजित भी न किया जाना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ श्री जयपाल सिंह।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास: जनरल): अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

*__अध्यक्ष:__ मैं उन्हें बुला चुका हूं।

*__श्री जयपाल सिंह__ (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह एक बहुत दुर्भाग्य की बात है कि इस सभा को दो आदिम-जाति समितियों की सिपारिशों पर विचार विमर्श करने का अवसर ही नहीं मिला। मुझे ज्ञात है कि अल्पसंख्यक समिति के प्रतिवेदन पर विचार होते समय इस विषय पर दो दिन तक बहस होती रही कि अनुसूचित जातियों और मुसलमानों के लिये स्थान रक्षित रखने चाहिये या नहीं। उस समय केवल मुलसमानों के प्रश्न पर ही बहस होती रही। जब मैंने प्रतिवेदनों का प्रश्न उठाया था तो आपने कृपा करके कहा था कि सभा उन प्रतिवेदनों पर भविष्य में विचार करेगी। किन्तु यदि सभा की यह इच्छा हो कि अनुसूचित आदिम-जातियों के सम्बन्ध में बहस न हो तो मुझे इसके अतिरिक्त और कोई आपत्ति नहीं है कि इन दो उप समितियों के सभापतियों को यह स्पष्ट करने का अवसर नहीं मिलेगा कि उन्होंने विशेष प्रकार की सिफारिशें क्यों की हैं और यह बहुत दुर्भाग्य की बात होगी।

उदाहरणार्थ उस उपसमिति की सिफारिशों को लीजिये जिसका मैं भी एक सदस्य था और जिसके सभापति समाज सुधारक श्रद्धेय श्री ठाकुर थे। समय आने पर हम उन उपबन्धों पर विचार करेंगे जिनकी इस उपसमिति ने सिफारिश की है। इन सिफारिशों की व्यवस्था अन्य कोई व्यक्ति क्यों करे? मेरे विचार से अच्छा यही होगा कि इन पर विचार विमर्श होता ताकि जो परीक्षा की गई है उसकी सदस्यों को जानकारी हो जाती और वे यह समझ जाते कि इस उपसमिति ने कुछ विशेष निर्णय क्यों किये और मैंने अल्पसंख्यकों की ओर से मतभेद का एक लेख क्यों प्रस्तुत किया और मेरे मित्र श्री देवेन्द्र नाथ सामन्त मेरे मतभेद के लेख से क्यों सहमत हुए इत्यादि। इस वाद-विवाद में इन सभी विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार विमर्श हो जाता और बहस में भाग लेने के पूर्व और सिफारिशों के पक्ष में अथवा विपक्ष में मत देने के पूर्व सदस्य समझ सकते कि इस उपसमिति को आदिम जातियों के सम्बन्ध में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

इतना कहने के पश्चात्, मैं डॉ. अम्बेडकर को उनके उस नवीन संशोधन के लिये बधाई देता हूं, जिसे उन्होंने आज उपस्थित किया है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यदि किन्हीं लोगों को भारत में राज करने का अधिकार है तो आदिवासियों को ही है। वे प्रथम श्रेणी के भारतीय हैं और अन्य लोग दूसरी, तीसरी चौथी अथवा किसी अन्य श्रेणी के भारतीय हैं। मेरे विचार से जब हम स्थानों के रक्षण जैसे प्रश्नों को उठायें तो हमें इस स्थिति को समझना चाहिये। श्रीमान, हम किसी प्रकार की भीख नहीं मांग रहे हैं। मैं यहां भीख मांगने नहीं आया हूं। बहुसंख्या

[श्री जयपाल सिंह]

समुदाय ने पिछले छह हजार वर्षों में जो पाप किये हैं उनके लिये उसे प्रायश्चित करना चाहिये। इसका निर्णय वे करें कि भूतपूर्व शासकों ने इस देश के आदिवासियों के साथ न्याय किया है या नहीं। भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। जो बीत गया है उसे बीता हुआ ही समझना चाहिये। हमें यह समझना चाहिये कि हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा और भविष्य में लोगों के प्रति न्याय होगा तथा उन्हें अवसर समता प्राप्त होगी।

एक माननीय सदस्य महोदय ने कहा कि उन्हें इसकी प्रसन्नता है कि मुसलमानों और ईसाइयों त्याग किया है और उन्होंने स्थानों के रक्षण का परित्याग किया है। श्रीमान, आदिवासी किसी वस्तु का त्याग नहीं कर रहे हैं क्योंकि उन्हें कभी कोई वस्तु प्राप्त ही नहीं रही। यह एक आश्चर्य की बात है कि ऐसे लोग लोकतंत्र की चर्चा करें जिनका पहले हमेशा लोकतंत्र विरोधी आचरण रहा हो। सामान्य समुदाय ने इन पिछड़े हुए लोगों के लिये पहले क्या किया है? क्या कभी कोई ऐसी विधि प्रवर्त्तन में रही है, जिसके उपबन्धों के अधीन के जनसंख्या के आधार पर निश्चित किये हुए स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों के लिये आदिवासियों को खड़ा नहीं कर सकते थे? बिहार का ही उदाहरण लीजिये। बिहार में 41 लाख आदिवासी हैं किन्तु वहां की विधान सभा में केवल 7 आदिवासी सदस्य हैं। क्या किसी समान्य स्थान लिये कांग्रेस के लोगों ने एक आदिवासी को भी खड़ा किया? जी नहीं। मध्यप्रान्त और बरार का उदाहरण लीजिये, वहां राज्यों के समाविष्ट होने के पूर्व 29 लाख आदिवासी थे किन्तु उनके लिये कवेल एक स्थान रखा गया था। समाविष्टि के पश्चात् वहां की जनसंख्या में 28 लाख की वृद्धि हो जायेगी, जिनमें से अधिकांश लोग आदिवासी होंगे। मैं प्रत्येक प्रान्त के सम्बन्ध में यही सब कह सकता हूं। बम्बई जैसे प्रान्त में भी आदिवासियों के लिये एक ही स्थान रक्षित है यद्यपि राज्यों के समाविष्ट होने के पूर्व वहां आदिवासियों की जनसंख्या 16 लाख थी और अब समाविष्टि के कारण वहां की जनसंख्या 44 लाख बढ़ जाने से यह संख्या दूनी हो जायेगी। यह उस प्रान्त की बात है जहां के प्रधान मंत्री आदिवासियों के हितसाधन के लिये उनके बीच कई वर्षों तक कार्य करते रहे हैं। वे वहां के आदिवासी सेवा मंडल के अध्यक्ष रहे हैं और प्रधान मंत्री होने के पूर्व उन्होंने जो कार्य किया था उसे देखने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है। प्रधान मंत्री होने के पश्चात् उन्हें उस काम के लिये उतना समय नहीं मिला जितना पहले मिलता था।

ऐसे प्रान्त में भी जहां बहुसंख्यक दल का इतनी सहानुभूति रखने वाला नेता है, किसी प्रकार की उदारता नहीं दिखाई है। लोग लोकतंत्र की चर्चा करते हैं। उन्हें अपने दिलों को टटोल कर देखना चाहिये। कौन-सी ऐसी बात है जिसके कारण ये लोग इन आदिवासियों को जंगलों के कारागारों से मुक्त करके विधान-मंडलों में स्थान नहीं दे सकते? इन लोगों को विधान-मंडलों में तथा सार्वजनिक जीवन की अन्य संस्थाओं में स्थान न देकर ये लोग अपनी संकुचित दृष्टि, उदासीनता तथा विरोधी भावनाओं के लिये क्या सफाई देते हैं? यह अत्यंत आवश्यक है कि

इन लोगों को अपने जंगल के कारागारों से निकल आने के लिए बाध्य किया जाये। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थानों के रक्षण की आवश्यकता है। यदि आप देश में एकता चाहते हैं तो हम सभी को मिल-जुलकर रहना चाहिये।

श्रीमान, इस सम्बन्ध में मैं आपके उन शब्दों को उद्धृत करना चाहता हूं जो आपने नौ वर्ष पूर्व उस अवसर पर कहे थे अब आप रामगढ़ की कांग्रेस की स्वागत-समिति के सभापति थे। मैं संदर्भ की उपेक्षा करके किसी उद्धरण को नहीं देना चाहता। मेरे विचार से आपने उस अवसर पर जो कुछ कहा था उससे मैं जो कुछ व्यक्त करना चाहता हूं वह सिद्ध हो जाता है। आपने कहा था:

"बिहार के उस भाग की, जहां आज यह महान सभा हो रही है अपनी कुछ विशेषताएं हैं। इसका सौन्दर्य अद्वितीय है। इसका इतिहास भी अद्भूत है। इस भाग के निवासी अधिकतर वे लोग हैं जो भारत के आदिवासी कहे जाते हैं। उनकी सभ्यता अन्य लोगों की सभ्यता से बहुत भिन्न है। प्राचीन वस्तुओं की खोज से यह प्रमाणित हुआ है कि यह सभ्यता बहुत प्राचीन है। आदिवासियों का वंश (आस्ट्रिक) आर्यवंश से भिन्न है और इस वंश के लोग भारत के दक्षिण-पूर्व में बहुत दूर-दूर तक कई द्वीपों में बसे हुए हैं। इस भाग में उनकी संस्कृति अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है। यह बात नहीं है कि आर्यों और आदिवासियों का कभी रक्त-सम्बन्ध हुआ ही न हो। वास्तव में उनके बीच बहुत रक्त-सम्बन्ध और आदान-प्रदान हुए। आर्यो ने उनसे बहुत सी बातें ग्रहण की और उन्होंने आर्यो से बहुत सी बातें ग्रहण कीं। किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी वे अलग ही रहे। विशेषज्ञों की यह सम्मति है कि बिहारियों का रंगरूप, उनकी खोपड़ियों की बनावट और उनकी भाषा भी यह प्रमाणित करते हैं कि उन पर आदिवासियों का प्रभाव पड़ा है। आदिवासियों ने बिहारियों पर अपना प्रभाव डाला और उन्होंने उनकी संस्कृति और भाषा को बहुत अंश में स्वीकार कर लिया।"

उनकी यह विशेषता है। भारत के कुछ भागों में बहुत रक्त-संबंध हुए हैं और इसका यह परिणाम हुआ है कि उनमें से बहुत से लोग हिन्दू सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये हैं। किन्तु कुछ भागों में ऐसा नहीं भी हुआ है। किन्तु प्राचीन लोगों और नवागन्तुकों में संघर्ष भी रहा है। जब आर्यो के गिरोह के गिरोह इस देश में आये तो स्वाभावत: उनका स्वागत नहीं किया गया और वह इस कारण कि वे आक्रान्त थे। किन्तु उनकी एक अटूट धारा प्रवाहित हुई और उन्होंने आदिवासियों को दूर के स्थानों में भगा दिया। आर्य लोग गंगा के उपजाऊ मैदानों में बस गये और उन्होंने आदिवासियों को निकाल बाहर किया। चूंकि इन लोगों ने आर्यो का स्वागत नहीं किया इसलिये इन्हें जंगलों में जाकर रहना पड़ा। चूंकि पहाड़ी प्रदेशों में आर्य आसानी से नहीं जा सकते थे और बस भी नहीं सकते थे इसलिये आदिवासी वहां रहने लगे और आज भी वहीं रहते हैं।

किन्तु अब स्थिति बदल गई है। अब कोई प्रदेश पृथक् प्रदेश नहीं रह गया है। अब हम जहां भी चाहें जा सकते हैं और भविष्य में बहुत से लोग इधर-उधर आने जाने लगेंगे। डिकुओं के विरुद्ध, 'डिकू' शब्द का अर्थ है नवागन्तुक और आदिवासी नवागन्तुकों को डिकू ही कहते हैं, कटु भावना होने का एक कारण यह

[श्री जयपाल सिंह]

भी है कि नवागन्तुकों ने सीधे-सादे अनजान आदिवासियों का सदैव शोषण किया। उन्होंने उनकी भूमि लूट ली, उनके अधिकार छीन लिये और उनके स्वच्छंद जीवन यापन करने के स्वायंत्र्य का अपहरण कर लिया। यह स्वाभाविक ही है कि आदिवासियों को ये सब बातें नापसंद हैं। हजारों वर्षों से वे जिस कटुता का पोषण करते आये हैं उसका अन्त होना चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि नवीन संविधान में पृथक् निर्वाचित-क्षेत्रों के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। मैं इसका स्वागत करता हूं कि जब आदिवासी संयुक्त सामान्य निर्वाचित-क्षेत्रों से निर्वाचित होंगे। मैं इसका भी स्वागत करता हूं कि सभा इस सुझाव के सम्बन्ध में एक मत है कि आदिवासियों को केन्द्र तथा प्रान्तों की सरकारों में पद स्वीकार करने के लिये बाध्य किया जाये। अनुच्छेद 292 का यह प्रभाव होगा कि जहां पहले बिहार की विधान-सभा में सात सदस्य होते थे वहां अब लगभग 41 सदस्य होंगे। 41 सदस्य अवश्य ही होंगे क्योंकि उनके लिये 41 स्थान रक्षित किये गये हैं। यदि राजनैतिक दल उदारता दिखाकर आदिवासियों की जनसंख्या के आधार पर निश्चित किये हुए स्थानों से अधिक स्थान देने का निश्चय करे तो उनके अधिक प्रतिनिधि भी आ सकते हैं। मध्य प्रान्त में, जहां इस समय एक ही आदिवासी विधान-सभा का सदस्य है, तीस आदिवासी सदस्य हो सकते हैं। आसाम में, आदिवासियों की जनसंख्या 24 लाख है और उनके लिये केवल नौ स्थान रक्षित किये गये हैं। मुझे स्वयं जनगणना के आंकड़ों से कभी प्रेम नहीं रहा। जब से महासभा राजनैतिक दल का रूप धारण करके संघर्ष करने लगी तबसे जगणना के आंकड़े कभी भी बच्चे अथवा विश्वसनीय नहीं रहे हैं। अभी भी हमें सच्चाई से वैज्ञानिक तथ्यों को प्राप्त करने की लगन नहीं है। मैं मध्यप्रान्त का उदाहरण देता हूं। वहां की आदिवासियों की जनसंख्या के 1941 के आंकड़ों की अन्य आंकड़ों से तुलना करने से और 1921, 1931 तथा 1941 के आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि 1911 में जितनी जन संख्या थी उससे 1941 में 18 लाख कम हो गई है। मैं यह भली भांति जानता हूं कि आदिवासियों की जाति विनष्ट नहीं हो रही है। किन्तु बात यह है कि किसी समय गौड़ों को हिन्दुओं की श्रेणी में रखा जाता है और किसी समय आदिवासियों की श्रेणी में। प्रत्येक जनगणना में आंकड़े इस प्रकार बनाये जाते हैं। यदि शीघ्र ही इस देश में आंकड़े सच्चाई से और बिना किसी धार्मिक विद्वेष के प्राप्त किये जायेंगे तो उससे उसका हितसाधन होगा। भारतीय विधान-कांग्रेस के अन्तिम अधिवेशन में वैज्ञानिकों ने कहा कि कई लोग जो किसी प्रकार का धार्मिक अथवा राजनैतिक विद्वेष नहीं रखते यह जानना चाहते हैं कि इस देश में तीन करोड़ आदिवासी थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 1941 की जनगणना में वह संख्या कवेल 2 करोड़ 48 लाख रह गई। आप उनकी संख्या इससे पंचगुना मानें या न मानें किन्तु यह एक तथ्य है कि हमारे समाज के किसी भी ऐसे वर्ग को, जो आर्थिक अथवा राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है रक्षणों तथा ऐसे उपबन्धों की आवश्यकता है जिनके फलस्वरूप वह सामान्य स्तर पर आने में समर्थ हो सके।

अध्यक्ष महोदय, मैं केवल इसी कारण अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षित रखने के पक्ष में हूं। मुझे यह आशा नहीं है कि

दस वर्ष की अवधि में, जिसमें केवल दो सामान्य निर्वाचन हो सकेंगे, आदिवासी भारत के अन्य लोगों के स्तर पर आ जायेंगे और इस अवधि के पश्चात स्थानों के रक्षण की आवश्यकता न रह जायेगी। इस प्रकार के किसी चमत्कार में मेरा विश्वास नहीं है। सम्भव है हम जितनी प्रगति चाहते हैं उतनी प्रगति न हो सके। मेरी यह इच्छा थी कि दस वर्ष के पश्चात् इस विषय पर फिर विचार किया जाता और यह देखा जाता कि इस काल में जो दो निर्वाचन हुये हैं उनमें आदिवासियों और अनुसूचित जातियों का यथोचित प्रतिनिधित्व हुआ है या नहीं और वे सभी सभाओं में अपने दृष्टिकोण को अन्य लोगों के सामने रख सके हैं या नहीं तथा देश के राष्ट्रीय जीवन में अपना योग दे सके हैं या नहीं। इन प्रश्नों पर विचार करने के पश्चात् संसद इस सम्बन्ध में निर्णय कर सकती कि इन रक्षणों को समाप्त किया जाये अथवा दस, पन्द्रह या पच्चीस वर्ष आगे तक जारी रखा जाये। मेरी यही इच्छा थी किन्तु यदि अनुसूचित जातियों और आदिवासियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह है तो मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता। उदारता तो इसी प्रकार दिखाई जा सकती है कि प्रान्तों और केन्द्र की सभी सभाओं में प्रवेश करने का उन्हें अवसर दिया जाये और उनके लिये केवल दो निर्वाचनों की सीमा न रखी जाये।

कुछ लोग यही दुहराते रहते हैं कि स्थानों के रक्षण की व्यवस्था में पृथकरण की भावना सन्निहित है। कुछ लोगों की यही टेक है और जब कभी किसी प्रकार का मतभेद होता है तो वे यह कहते हैं कि उसका आधार पृथकरण की भावना है। इस देश में प्रत्येक विद्रोही को साम्यवादी कहने की भी प्रथा चल पड़ी। इसी प्रकार हममें से वे लोग जो यह कहते हैं कि हमारे समाज के पिछड़े हुये वर्गों को सीधे रास्ते पर आगे बढ़ने के लिये बाध्य किया जाना चाहिये न कि टेढ़े रास्ते पर और सीधा रास्ता स्थानों के रक्षण का ही रास्ता है, पृथकरणवादी कहे जाते हैं। अब तीन करोड़ आदिवासियों को शताब्दियों से राजनैतिक अछूत समझा गया है तो किसी को पृथकरण की चर्चा करने का मुंह नहीं है। किसी को आदिवासियों से यह कहने का मुंह नहीं है कि लोक-तन्त्र क्या है। आदिवासी समाज सबसे अधिक लोकतन्त्रात्मक है। क्या भारत के अन्य समाज भी यही कह सकते हैं? क्या वे लोग जो शताब्दियों से वर्णव्यवस्था के अधीन रहे हैं, ईमानदारी से कह सकते हैं कि उनका दृष्टिकोण लोकतन्त्रात्मक है? इस प्रकार के दृष्टिकोण के विकसित होने में समय लगता है। आदिवासी समाज में सब समान हैं, चाहे वे धनी हों या निर्धन। सबसे समान अवसर प्राप्त है और किसी को यह न समझना चाहिये कि इस संविधान का निर्माण करके तथा इसे प्रवर्तन में लाकर आदिवासी समाज को कोई नई विचारधारा प्रदान की जा रही है। अध्यक्ष महोदय, जैसा कि आपने कहा था, वास्तव में हम यह कर रहे हैं कि हम कुछ बातें सीख रहे हैं। आदिवासियों के अतिरिक्त अन्य समाजों ने बहुत कुछ सीखा है और उन्हें बहुत कुछ सीखने की भी आवश्यकता है। आदिवासी सबसे अधिक लोकतन्त्र प्रेमी हैं और वे भारत की प्रतिष्ठा अथवा शक्ति को किसी प्रकार कम न होने देंगे। देश के विभाजन के लिये वे लोग उत्तरदायी नहीं हैं। आदिवासियों का सारे भारत पर

[श्री जयपाल सिंह]

अधिकार है। इसलिये मैं चाहता हूं कि इस प्रश्न पर सदस्यों को इस उदारतापूर्ण दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये और यह न समझना चाहिये कि वे रिआयत करने के उद्देश्य से सहमत हो रहे हैं। आपने ही उन्हें उनकी भूमि से निकाल बाहर किया है और ऐसी विधियां बनाई हैं जिनसे उनके अधिकार छिन गये हैं। आज स्थिति क्या है? आज आसाम में छत्तीसगढ़, उड़ीसा और बिहार से निकाले हुये लगभग दस लाख लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते क्यों फिर रहे हैं और वे अपनी रक्षा के सम्बन्ध में इतने चिंतित क्यों हैं? इसका कारण यह है कि जो लोग आदिवासी नहीं हैं उन्होंने उनकी भूमि उनसे ठग कर ले ली है और अब भी वे उन्हें ठग रहे हैं।

इस देश के हित को तथा उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत का प्रत्येक वर्ग, चाहे वह पिछड़ा हुआ हो या समुन्नत हो, अन्य वर्गों के साथ सहयोग करे और उनके साथ परिश्रम करे। इसके लिये यह आवश्यक है कि पिछड़े हुये वर्ग समुन्नत हों। पिछड़े हुये लोगों के लिये स्थानों का रक्षण बहुत आवश्यक है चाहे वे आदिवासी हों या अनुसूचित जातियों के लोग, चाहे वे जैन हों या मुसलमान। यदि आप यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें ऊंचा उठाने के लिये कुछ यत्न करने की तथा पलड़े को एक ओर झुकाने की आवश्यकता है तो पृथकरण का प्रश्न नहीं उठता। इसलिये आदिवासियों का प्रतिनिधि होने के नाते मुझे रक्षण के सिद्धान्त को स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव नहीं होता। मुझे खेद है कि रक्षण की व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिये की गई है क्योंकि मुझे विश्वास है कि इस अवधि के पश्चात् भारत स्वर्ग नहीं हो जायेगा और दस वर्ष में न तो प्रत्येक व्यक्ति स्नातक हो जायेगा और न प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक शिक्षा ही प्राप्त हो जायेगी। आवश्यकता इसकी है कि इस देश के पिछड़े हुये वर्गों को अपने पैरों खड़ा होने दिया जाये ताकि वे राष्ट्रीय जीवन में समुचित भाग ले सकें। इस संविधान का यह उद्देश्य नहीं है और मेरी भी यह इच्छा नहीं है कि समुन्नत समुदाय अतीत काल तक आदिवासियों का लालन-पालन करता रहे। हम केवल यह चाहते हैं कि जिस प्रकार अनुच्छेद 292 द्वारा साधन प्रदान किये गये हैं उसी प्रकार हमें कुछ अन्य साधन भी प्रदान किये गये हैं उसी प्रकार हमें कुछ अन्य साधन भी प्रदान किये जायें ताकि हम अपने पैरों पर खड़े होकर स्वस्थ चित्र हो सकें और भारत के लिये उपयोगी नागरिक सिद्ध हो सकें।

मुझे कई अन्य बातें भी कहनी हैं किन्तु मैं देखता हूं कि कुछ संशोधन अन्य अवसर के लिये स्थगित किये गये हैं और इसलिये मैं इस अवसर पर अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। किन्तु मुझे इसका विश्वास है और मैं गैर-आदिवासियों को यह आश्वासन देता हूं कि यदि आपके उद्देश्य सच्चे होंगे और आप उन्हें अपने अधिकारों को प्रयोग में लाने का अवसर देंगे तो वे ऐसे कार्य कर दिखायेंगे जिनकी आपको आशा भी नहीं है।

***श्री आर.बी. धुलेकर:** वक्ता महोदय वास्तव में चाहते क्या हैं?

***श्री जयपाल सिंह:** मैं यह चाहता हूं कि श्री धुलेकर वैसे ही व्यवहार करें जैसे वे उस समय करते थे जब वे सेंट कोलम्बिया कॉलेज, हजारीबाग में पढ़ते थे और आदिवासियों से स्वतन्त्रता से मिलते जुलते रहते थे और कहते थे कि वे भारत के उत्कृष्ट नागरिक हैं। किन्तु इस समय आदिवासियों को बिल्कुल पृथक कर दिया गया है। मैं जानता हूं कि कुछ लोग यह कहेंगे कि अंग्रेज उन्हें अजायबघरों में रखते थे। अब हमारी राष्ट्रीय सरकार शासन कर रही है। क्या इस समय भी उनके लिये अजायबघर नहीं है? पिछले बारह वर्षों से लोकप्रिय मंत्रिमंडल पदारूढ़ हैं। इस कलंक को मिटाने के लिये उन्होंने क्या किया है? क्या उन्होंने कुछ किया है? जब उप-समिति के सदस्यों ने दौरा किया था तो जहां कहीं वे गये उनके सामने प्रान्तीय सरकारों ने इस सम्बन्ध में अपने प्रतिवेदन उपस्थित किये कि वे आदिवासियों के लिये स्वर्ग खड़ा करने जा रहे हैं और उनकी गरीबी और बुरी-बुरी बीमारियों को दूर करने का प्रयास करने जा रहे हैं। एक प्रांत के प्रधान मंत्री ने मुझ से कहा कि किसी एक जिले के आदिवासियों की हालत अच्छी करने के लिये उन्होंने 20 लाख रुपये की राशि अलग रखी है। मैंने उनसे पूछा कि पिछले आठ महीनों में आपने कितना खर्च किया है। उन्होंने कहा "अभी हमने योजनाएं ही बनाई हैं किन्तु हमें आशा है कि कागजी कार्यवाही पूरी हो गई होगी"। वास्तव में केवल कागजी कार्यवाही ही होती है। हम चाहते हैं कि इन लोगों के लिये ठोस काम किया जाये। कुछ लोगों का यह विचार है कि कुछ शिक्षालय खोल देने से और कुछ छात्रवृत्तियां दे देने से वे आदिवासियों को बहुत समुन्नत बना देंगे। पिछड़े हुए लोगों की वास्तव में आर्थिक स्थिति सुधारने की आवश्यकता है। यदि उनकी आर्थिक स्थिति सुधर जाये तो वे अपनी शिक्षा का प्रबन्ध स्वयं कर सकेंगे।

श्रीमान, आपकी अनुमति से मैं इस सभा में उपस्थित उन प्रान्तों के प्रधानमंत्रियों से, जहां आदिवासियों की संख्या अधिक है, यह कहना चाहता हूं कि आदिवासियों और अन्य पिछड़े हुए लोगों की स्थिति सुधारने के लिये वे लाखों रुपये की जिस धन-राशि को अलग रखना चाहते हैं उससे तब तक कुछ लाभ न होगा जब तक कार्यकर्ता वास्तविक हितसाधन की दृष्टि से कार्य न करें। मुझे विदित है कि मेरे प्रान्त में, अर्थात् बिहार में, सुधार का सब काम राजनैतिक उद्देश्यों से किया जाता है। दुर्भाग्य से बिहार में तीन समुदाय हैं जिनका आपस में संघर्ष रहता है। एक का खिंचाव पूर्व में बंगाल की ओर है तो दूसरे का दक्षिण में झारखंड की ओर और तीसरे का उत्तर में हिमालय की ओर। पूर्वी और दक्षिणी समूहों को समाप्त करने के लिये लाखों रुपये खर्च किया जा रहा है और वह पिछड़े हुए वर्गों की स्थिति सुधारने के नाम से। अध्यक्ष महोदय, इसका प्रमाण है कि मनभूम, पालामाऊ, रांची, हजारी बाग और अन्य जिलों में अग्रगण्य कांग्रेसियों ने........

***श्री विश्वनाथ दासः** (उड़ीसाः जनरल): क्या इन बातों का विचाराधीन विषय से कोई सम्बन्ध है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): इस सम्बन्ध में प्रत्येक सच्ची बात प्रासंगिक है।

***श्री जयपाल सिंहः** लोगों के हितसाधन के लिये नहीं बल्कि सुधारकों की सेनाएं खड़ी करने में लाखों रुपये व्यय किया जा रहा है। यह धन वेतनों, मोटरों और प्रचार-गाड़ियों में व्यय हो जाता है। आदिवासियों को स्वयं कोई लाभ नहीं होता। यह आन्दोलन अधिक अन्न उपजाओं के आन्दोलन के समान ही है। इस आन्दोलन में हम जितना धन व्यय कर रहे हैं उससे अनाज का एक दाना भी अधिक पैदा होता तो इसे एक सफल आन्दोलन कहा जा सकता था। किन्तु बात दूसरी ही है।

सदस्यों ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के प्रति उदारता दिखाकर उनके लिये इसलिये स्थान रक्षित रखे कि, जैसा कि आपने रामगढ़ में कहा था, ये लोग किसी कारण अलग रहे हैं। अब ये देश के मुख्य भाग में प्रवेश करने के लिये बाध्य हो जायेंगे और इसका परिणाम यह होगा कि वे भी इस देश को समुन्नत बनाने में अपना योग दे सकेंगे मुझे यह विदित है कि कुछ प्रदेशों में संकट की आशंका है। आसाम में संकट की आशंका थी और पश्चिमी बंगाल में भी इस प्रकार की आशंका थी। जब श्री खेतान ने अपना संशोधन उपस्थित किया था या यों कहिये कि एक संशोधन की सूचना दी थी, तो उस समय, क्योंकि वे अब हमारे बीच में नहीं रह गये हैं, मैंने उनसे इस विषय पर बातचीत की थी कि वे पश्चिमी बंगाल में अनुसूचित जातियों के लिये किस कारण स्थानों का रक्षण नहीं चाहते। उनकी यह सच्ची भावना थी कि उनके लिये रक्षण न होना चाहिये। उन्होंने यह कहा कि यदि अनुसूचित जातियों के लोग किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों के साथ मिल जायेंगे तो उच्च वर्ग के लोग कहीं के न रह जायेंगे। आसाम के एक सदस्य महोदय ने इस प्रकार का भय प्रकट किया है। मैं इसे अच्छी प्रकार जानता हूं कि प्रश्न यह नहीं है कि चूंकि हम आदिवासियों के लिये स्थान रक्षित कर चुके हैं इसलिये उन्हें सामान्य स्थानों के लिये खड़ा करने की आवश्यकता नहीं। यह प्रश्न नहीं है। हमें सच्चाई से विचार करना चाहिये। आसाम के उच्च वर्गों को यह भय है कि यदि अनुसूचित जातियों के लोग आदिवासियों से मिल गये और ये लोग सामान्य स्थानों के लिये भी खड़े हुए तो उच्च वर्गों के लोग पदारूढ़ न रह जायेंगे।

मेरे विचार से वास्तविक बात यही है। किन्तु मेरा सभी लोगों से यह अनुरोध है कि वे किसी प्रकार के भय से प्रेरित होकर इस प्रश्न पर विचार न करें। हमें अपने साथियों से भय न करना चाहिये क्योंकि यदि हम उनका विश्वास न

करेंगे। तो हम उनसे इसकी आशा नहीं कर सकते कि वे हमारा विश्वास करेंगे। पहले हमारी परिस्थिति भिन्न थी। अब हम अपने देश के भाग्य विधाता हैं। पहले जो कुछ बीता है वह बीत चुका है। हो सकता है कि उसके लिये हम दोषी हों अथवा विदेशी शासकों ने हमारे साथ शरारत की हो। अब सब कुछ हमारे हाथ में है। अब हम स्वयं प्रभु हैं। किन्तु यदि हम अब भी भय करते हैं और कुछ पीछे हटकर अन्य लोगों को आगे नहीं बढ़ने देना चाहते हैं तो हम गलत रास्ते पर हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 292 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं बड़े हर्ष से समर्थन करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ बहस समाप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है।

(इस अवसर पर कई माननीय सदस्य बोलने के लिये उठे।)

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से श्री जयपाल सिंह ने जो कुछ कहा है उस पर वाद विवाद करने की आवश्यकता नहीं है।

*__माननीय श्री कृष्ण वल्लभ सहाय__ (बिहार: जनरल) उन्होंने कई ऐसी बातें कहीं है जिनका मैं विरोध करना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ आपको किसी अन्य अवसर पर इसके लिये समय मिल जायेगा।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार: जनरल): मैं इस ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि स्टेट्समैन समाचार पत्र में इस आशय की सम्पादकीय टिप्पणियां की गई हैं कि कुछ सारवान अनुच्छेदों को जल्दी में स्वीकार किया जा रहा है और बहस समाप्त करने के प्रस्तावों को उपस्थित किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद और केवल दो तीन वक्ताओं ने सामान्य वाद-विवाद में भाग लिया हैं। अन्य वक्ताओं को भी बोलने की आज्ञा मिलनी चाहिये। आप बहस समाप्त करने के लिए प्रस्ताव को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने में समर्थ हैं।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से यह आलोचना निराधार है कि हम किसी अनुच्छेद को जल्दी में स्वीकार कर रहे हैं। अपनी ओर से मैंने सभी सदस्यों को पूर्ण अवसर तथा पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की है। वास्तव में इस सम्बन्ध में मैंने आवश्कता से अधिक उदारता दिखाई है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ किसी भी वर्ग की ओर से इस प्रकार सुझाव नहीं रखा गया है। यह बात अवश्य है कि लोग अधिक बोलना चाहते हैं।

*__अध्यक्ष:__ जहां तक इस अनुच्छेद विशेष का सम्बन्ध है, हम इस पर दो दिन तक विचार कर चुके हैं और इस विषय में अन्य सामान्य बातों की चर्चा करना पहले कही हुई बातों की पुनरुक्ति ही होगी। इसलिये इस अनुच्छेद पर अधिक विचार विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है।

यदि कुछ सदस्यों को वक्ताओं की कुछ बातों के सम्बन्ध में कुछ कहना है, अथवा उनका विरोध करना है, तो सम्भवत: किसी अन्य अनुच्छेद पर विचार करते

[अध्यक्ष]

समय उन्हें इसके लिये अवसर मिल जायेगा और वे उस अवसर से लाभ उठा सकते हैं।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय:** आदिम जातियों के लोगों के सम्बन्ध में इस सभा को कुछ गलत सूचना दी गई है। इस समय उसे ठीक सूचना दे दी जानी चाहिये।

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न केवल किसी ऐसी सूचना की त्रुटि को दूर करने का है जो गलती से दी गई हो। मैं केवल इस त्रुटि को दूर करने के लिये समय दे सकता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): बहस समाप्त करने के प्रस्ताव के स्वीकार होने पर भी अध्यक्ष महोदय एक दो भाषणों के लिये समय दे सकते हैं। मेरे विचार से यह उचित नहीं है कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उसका खण्डन किसी अन्य अनुच्छेद पर विचार-विमर्श होते समय किया जाये। इसलिये श्रीमान, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस विषय पर इसके पूर्व बोलने वाले वक्ता महोदय के विचारों पर मत प्रकट करने के लिये केवल एक और वक्ता को अवसर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से जो बातें कहीं गई हैं उनका खण्डन करने मात्र से कुछ लाभ न होगा।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय:** श्रीमान, आसाम में आदिम-जातियों के तीन वर्ग हैं और इन सबकी जनसंख्या 23 से 24 लाख तक होगी। आठ लाख मैदानों में बसते हैं, आठ लाख पहाड़ी क्षेत्रों में बसते हैं और शेष आठ लाख चाय बगानों में बसते हैं। चाय बगानों में बसने वाले आदिम-जातियों के लोग सामान्य जनता में भी सम्मिलित किये गये हैं। इसका यह परिणाम होगा कि जो स्थान रक्षित किये गये हैं वे मैदानों में बसने वाले आठ लाख और पहाड़ी क्षेत्रों में बसने वाले आठ लाख लोगों को ही प्राप्त होंगे। जहां तक मैदानों में बसने वाले अदिम-जातियों के आठ लाख लोगों का सम्बन्ध है आसाम की प्रान्तीय कांग्रेस समिति की कार्यकारिणी इसके लिये सहमत हो गई है कि वे सामान्य निर्वाचन-क्षेत्रों से खड़े हों। मेरे माननीय मित्र आसाम के प्रधान मंत्री महोदय ने स्वयं कहा है कि वे यह नहीं चाहते हैं कि सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने के लिये मैदानों में बसने वाले आदिम-जातियों के लोगों के लिये कोई प्रतिबन्ध रखा जाये।

इसलिये, श्रीमान, पंडित भार्गव ने आसाम की आदिम-जातियों के लोगों को सामान्य निर्वाचन-क्षेत्रों से खड़े होने से रोकने के उद्देश्य से जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं विरोध करता हूं।

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान** (पूर्वी पंजाबः सिख): चूंकि कई संशोधन उपस्थित किये गये हैं, इसलिये मेरे विचार से इन संशोधनों का विरोध करने के लिये कुछ समय दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस प्रश्न पर सभा ने दो दिन तक विचार किया है और सभा के प्रत्येक वर्ग को सामान्य सिद्धान्तों पर मत प्रकट करने का अवसर मिल चुका है। डॉ. अम्बेडकर ने सभा के सम्मुख जो संकल्प रखा है उसमें इन्हीं सिद्धान्तों का सन्निवेश किया गया है। मेरे विचार से अधिक वाद-विवाद से सदस्यों को कोई लाभ न होगा। इसलिए मैं डॉ. अम्बेडकर से बोलने के लिए कहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं और वाद-विवाद में जो प्रश्न उठाये गये हैं वे मेरे विचार से बिल्कुल अप्रासंगिक हैं। वे उस समय उठाये जा सकते हैं जब हम निर्वाचन-सम्बन्धी विधियों पर और निर्वाचन-क्षेत्रों को निश्चित करने के सम्बन्ध में विचार करेंगे। इसलिए मैं उन्हें इस समय नहीं उठाने जा रहा हूं।

केवल तीन प्रश्न ऐसे हैं जिनका मेरे विचार से उत्तर देना आवश्यक है। एक प्रश्न श्री लस्कर ने अपने संशोधन द्वारा उठाया है। उनके संशोधन का आशय यह है कि "आसाम की अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त" शब्द प्रविष्ट किये जाये। मैं बिल्कुल नहीं समझ पाया कि वे किस उद्देश्य से इन शब्दों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं। यदि इन शब्दों को प्रविष्ट किया गया तो इसका अर्थ यह होगा कि केन्द्रीय संसद के अवर सदन में आसाम की अनुसूचित जातियों को इस अनुच्छेद द्वारा जो प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा रहा है वह उन्हें प्राप्त न हो सकेगा। यदि "आसाम की अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त" शब्दों को बिना किसी परन्तुक के प्रविष्ट किया गया तो मैं कह नहीं सकता कि इसका आसाम की अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व के अधिकार से वंचित करने के अतिरिक्त अन्य क्या प्रभाव होगा। यदि मैं प्रस्तावक महोदय के आशय को ठीक समझ पाया हूं तो मेरे विचार से जो प्रश्न उन्होंने उठाया है उसका वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 67 (ख) से सम्बन्ध है, जो पारित हो चुका है। उस अनुच्छेद में यह उपबन्धित है कि विधान-मंडल में जिस अनुपात से प्रतिनिधित्व होगा उसका जनसंख्या से स्पष्टतः कुछ सम्बन्ध होना चाहिये। यह निर्धारित किया गया है कि केन्द्र के अवर सदन में प्रति 7,50,000 जनसंख्या के लिए कम से कम एक प्रतिनिधि होगा और प्रति 5,00,000 जनसंख्या के लिए एक से अधिक सदस्य न होगा। मुझे यह कह देना चाहिए कि वे जो कुछ कह रहे थे उसे मैं बिल्कुल नहीं सुन सका किन्तु किसी प्रकार उनके आशय को मैंने समझ ही लिया और मुझे यह प्रतीत होता है कि उनकी धारणा यह है कि सिलहट के जिले के विभाजित होने से आसाम में अनुसूचित

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जातियों की जनसंख्या बहुत कम हो गई है और 7,50,000 की अथवा 5,00,000 की हमने जो संख्या निश्चित की है उतनी संख्या उन लोगों की होगी ही नहीं और उनके मतानुसार इसका यह परिणाम होगा कि आसाम की अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व ही न होगा। किन्तु मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 67 (5) (ख) के उपबन्ध अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में प्रयुक्त नहीं होते। यह अनुच्छेद निर्वाचन-क्षेत्रों के सम्बन्ध में है। उसका अर्थ यह है कि यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में 7,50,000 लोग हैं तो उस निर्वाचन क्षेत्र को एक स्थान प्राप्त होगा। यह हो सकता है कि उस क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या बहुत कम हो किन्तु इससे सीमांकन समिति अथवा संसद के लिए उस क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिये एक स्थान बांट में देने में कोई बाधा न होगी। इसलिए, मेरे विचार से उनका भय निराधार है।

अब मैं उस संशोधन को उठाता हूं जिसे सरदार हुक्म सिंह ने उपस्थित किया है और जिसमें यह सुझाव रखा गया है कि इस उद्देश्य से उपबन्ध रखने चाहिए कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग उन स्थानों के लिए भी खड़े हो सकें जो सामान्यत: उनके लिए रक्षित न रखे गये हों। उन्होंने यह कहा कि मसौदा-समिति ने जानबूझकर इसकी उपेक्षा की है। मेरे विचार से यह सच नहीं है। यह स्वीकार किया गया है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग उन स्थानों के लिए भी खड़े हो सकेंगे जो रक्षित स्थान नहीं हैं और अरक्षित हैं। यह मंत्रणा-समिति के प्रतिवेदन में उल्लिखित है और इसे सभा स्वीकार कर चुकी है। अनुच्छेद 292 में इस प्रकार का उपबन्ध इस लिए नहीं रखा गया है कि वह इस स्थल पर अप्रासंगिक होगा। इस आशय का उपबन्ध निर्वाचन-सम्बन्धी विधि में स्थान पायेगा, जिसे यह सभा, अथवा यों कहिये कि विधान सभा के रूप में वह सभा, निर्मित करगी। इसलिए उन्हें इस कारण किसी प्रकार का भय होने की आवश्यकता नहीं है।

श्री पिल्ले ने यह कहा है कि एक नवीन जनगणना के आधार पर स्थान रक्षित किये जाने चाहिये। यह प्रश्न इस सभा में कई अवसरों पर उठाया गया था और उन अवसरों पर मैंने यह कहा था कि सरकार नवीन जनगणना के सम्बन्ध में वचन नहीं दे सकती किन्तु इस बारे में सरकार का हमेशा ही उदार दृष्टिकोण रहा है। यदि सम्भव होगा तो सरकार यह जानने के लिये कि अनुच्छेद 292 के उपबन्धों के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों का कुल प्रतिनिधित्व क्या होगा एक नवीन जनगणना करेगी। सरकार ने यह भी सुझाव रखा है कि यदि कहीं नवीन जनगणना करना सम्भव न होगा तो वह समुदायों की जनसंख्या का अनुमान मतदाताओं की संख्या के आधार पर लगायेगी। इस प्रकार लगायेगी। इस प्रकार मोटी तौर पर जनसंख्या का अनुमान लगाया जा सकेगा। मेरी समझ से मैं इससे आगे नहीं बढ़ सकता।

अन्य सभी संशोधनों का मैं विरोध करता हूं।

***प्रो. एन.सी. लस्कर:** श्रीमान, मैं अपना संशोधन संख्या 24 वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन संख्या 22 में प्रस्तावित अनुच्छेद 292 के अन्त में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that the constituencies for the seats reserved for the Scheduled Castes or Scheduled Tribes shall comprise so far as possible, such contiguous areas where they are comparatively more numerous than in other areas. '

(परन्तु अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये रक्षित स्थानों के निर्वाचन-क्षेत्रों ने यथाशक्य ऐसे मिले-जुले क्षेत्र होंगे जिनमें उनकी जनसंख्या अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होगी।)' "

संशोधन गिर गया।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान, मैंने अपने संशोधन संख्या 77 में जो सुझाव रखा है वह यदि अन्यत्र उपबन्धित कर दिया गया है तो मैं उस पर मत लेने के लिये जोर नहीं देता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** श्रीमान, माननीय डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट व्याख्या को दृष्टि में रखते हुए मैं संशोधन संख्या 94 को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 95 का आशय भी उसी संशोधन के आशय के समान है जिसे सभा अस्वीकार कर चुकी है। प्रस्ताव यह है कि:

'Provided that for the calculation the balance of the proportion is more than half of what it requires to obtain one seat, one seat shall be allotted and if it is less than half it shall be ignored.

(परन्तु गणना के लिये यदि अनुपात का शेष उस संख्या से अधिक हो जो एक स्थान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है तो बांट में एक स्थान दिया जायेगा किन्तु यदि वह आधे से कम हो तो उसकी उपेक्षा की जायेगी।)' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन संख्या 225 में खण्ड (2) के पश्चात् निम्नलिखित नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(3) the reservation of seats shall, as far as possible, be seemed by single member territorial constituences.

[(3) स्थानों की रक्षता, यथा सम्भव, एक सदस्य वाले प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के आधार पर होगा।]' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन संख्या 225 में अन्त में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये।

'provided that the members of the Scheduled Tribes in Assam will not have the right to contest general seats.

(परन्तु आसाम की अनुसूचित आदिम जातियों के लोगों को सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार नहीं होगा।)' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 292 संविधान का अंग बना दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 292 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 293

(संशोधन संख्या 3118 से लेकर 3121 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार: मुस्लिम): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि..........

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। इस संशोधन का वास्तव में विचाराधीन अनुच्छेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका अनुच्छेद 293 के विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** अनुच्छेद 292 स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में है। अनुच्छेद 293 इस प्रकार है:

"इस संविधान के अनुच्छेद 67 में किसी बात के होते हुए भी यदि राष्ट्रपति की राय हो कि लोक-सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में समुदाय के दो से अनधिक सदस्य नाम-निर्देशित कर सकेगा।"

इन अनुच्छेदों के अधीन प्रतिनिधित्व निश्चित किया गया है और विभिन्न समुदायों को रक्षण प्रदान किया गया है। इसी प्रसंग में मैं यह कहना चाहता हूं कि जिन अल्पसंख्यक समुदायों के लिये स्थान रक्षित किये गये हैं उन लोगों के सामान्य निर्वाचन-क्षेत्रों से भी निर्वाचित होने का अधिकार होना चाहिये। यह संशोधन तर्कसंगत है और इस विषय की चर्चा इसी स्थल पर हो सकती है। इसके फलस्वरूप अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से भी खड़े होने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यह प्रश्न अनुच्छेद 293 के प्रसंग में नहीं उठता क्योंकि वह केवल आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से आप इस प्रसंग में उन अन्य समुदाय के लोगों के सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से खड़े होने के अधिकार की चर्चा नहीं कर सकते जिनके लिये स्थान रक्षित किये गये हैं। संशोधन नियमानुकूल नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान, मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3119 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 293 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'293. Notwithstanding anything contained in article 67 of this Constitution the President may, if he is of opinion that any minority community is not adequately represented in the House of People, nominate an adequate number of members of that community of the House of the People.

(इस संविधान के अनुच्छेद 67 में किसी बात के होते हुए भी यदि राष्ट्रपति की राय हो कि लोक सभा में किसी अल्पसंख्यक समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के पर्याप्त सदस्य नाम निर्देशित कर सकेगा।)' "

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि जिस अल्पसंख्यक समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हुआ हो इसके प्रतिनिधियों को राष्ट्रपति नाम निर्देशित कर सकता

[श्री आर.के. सिधवा]

है। श्रीमान, अल्पसंख्यकों के निर्वाचन के सम्बन्ध में यह सभा निर्णय कर चुकी है। हमने यह निर्णय किया है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम-जातियों और आंग्ल-भारतीयों के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदायों का प्रतिनिधित्व न हो। यह निर्णय अनुच्छेद 67 में सन्निविष्ट है अनुच्छेद 67 में जो निर्णय सन्निविष्ट है उसे उल्टा नहीं जा सकता। यदि आप उस अनुच्छेद पर फिर विचार करेंगे तो बहुत सी पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। यदि राष्ट्रपति की यह धारणा हो कि किसी समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है तो उसे स्वेच्छा से निर्णय करना चाहिये। आप यह नहीं कह सकते कि किसी विशेष अल्पसंख्यक समुदाय के लोग राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किये जायेंगे। इससे इस सभा के निर्णय का खण्डन होगा। अनुच्छेद 67 को स्वीकार करने के पश्चात् यदि आप इस संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा देंगे तो यह एक खतरनाक उदाहरण सिद्ध होगा। उसे स्वीकार करने के पश्चात् परोक्ष में अन्य किसी प्रकार की कार्यवाही करने की आज्ञा न दी जानी चाहिये। मैं इस कारण भी इसका विरोध करता हूं कि जब सभा अल्पसंख्यकों के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय कर चुकी है तो उसे फिर न उठाया जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** सरदार हुक्म सिंह, क्या आप इस औचित्य प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं?

***सरदार हुकम सिंहः** मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है उसमें कुछ सार नहीं है। अनुच्छेद 293 के अधीन हम राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान कर रहे हैं कि यदि आंग्ल-भारतीय समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हुआ तो वह उसके दो प्रतिनिधियों को नाम-निर्देशित करे। मेरे संशोधन का आशय यह है कि यह शक्ति आंग्ल-भारतीय समुदाय तक ही सीमित न रहे। यदि निर्वाचनों में उस समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो जाये और अन्य किसी समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हुआ तो राष्ट्रपति को उस समुदाय को प्रतिनिधित्व प्रदान करने की वैसी ही शक्ति प्राप्त होनी चाहिये जैसी कि उसे आंग्ल ये भारतीय समुदाय के सम्बन्ध में है। मैं नहीं चाहता कि जो उपबन्ध पारित किये जा चुके हैं उन्हें उलटा जाये। किन्तु इस अनुच्छेद में हम यह उपबन्धित कर रहे हैं कि राष्ट्रपति को नाम-निर्देशन की इस प्रकार की शक्ति प्राप्त हो। मेरे विचार से सभी निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमाएं निश्चित कर दी गई हैं। इन निर्वाचन-क्षेत्रों की जो संख्या निश्चित कर दी गई है उसे हम बढ़ा नहीं सकते। किन्तु अनुच्छेद 293 में इस आशय का उपबन्ध रखा जा रहा है कि राष्ट्रपति को दो स्थानों के लिये लोगों को नाम निर्देशित करने की शक्ति प्राप्त होगी। जब कभी वह यह देखेगा कि आंग्ल-भारतीय समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है, वह उस समुदाय के दो लोगों को नाम-निर्देशित कर सकेगा। मेरा उद्देश्य यह है कि यह न कहा जाये कि केवल आंग्ल-भारतीय समुदाय को विशेष प्रकार से रक्षता प्रदान किया जाता है बल्कि यह कहा जाये कि यदि कोई अन्य समुदाय भी इसी स्थिति में हो तो उसके भी दो तीन अथवा

चार प्रतिनिधि नाम-निर्देशित किये जायेंगे। यदि यह देखा जाये कि आंग्ल-भारतीय समुदाय का यथोचित प्रतिनिधित्व हुआ है और किसी अन्य समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है तो क्या न्याय की दृष्टि से राष्ट्रपति को उस समुदाय को प्रतिनिधित्व प्रदान न करना चाहिये?

***अध्यक्ष:** मैं सरकार हुक्म सिंह के इस कथन से सहमत हूं कि इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि पर्याप्त प्रतिनिधित्व न होने पर हित-रक्षा के लिये अनुच्छेद 293 के अधीन नाम-निर्देशन का जो विशेषाधिकार प्रदान किया गया है वह अन्य समुदायों को भी प्रदान किया जाये। मेरे विचार से यह संशोधन नियमानुकूल है।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान, मैं आरम्भ में ही यह कह देना चाहता हूं कि आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिये जो रिआयत की जा रही है उस पर मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। मैं यह समझता हूं कि उस समुदाय की जनसंख्या बहुत कम है। मैं यह भी जानता हूं कि उस समुदाय के लोग देश के विभिन्न भागों में बिखरे हुए हैं। मैं यह समझता हूं कि उनके निर्वाचित होने की सम्भावना बहुत कम है और मैं इस प्रस्ताव से सहमत हूं कि उनके साथ सबसे पहले रिआयत की जानी चाहिये। यदि उनके मामलों पर सबसे पहले विचार करने के बारे में राष्ट्रपति को निदेश दिये जायें तो मैं इसका भी विरोध नहीं करता हूं। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि उनके हितों के रक्षण के पश्चात् यह भी सम्भव है कि उन्हें अपनी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाये। जब हमने अपने सम्मुख असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना का लक्ष्य रखा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति निर्वाचन में खड़ा हो सकेगा और मत दे सकेगा तो सम्भावना इसकी भी है कि इस छोटे से समुदाय को यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाये और किसी अन्य समुदाय का यथोचित प्रतिनिधित्व न हो। मेरे विचार ये यह तर्कसंगत है कि राष्ट्रपति को इस प्रकार के समुदाय को कुछ प्रतिनिधित्व प्रदान करने की व्यक्ति प्राप्त होनी चाहिये। सब कुछ मतदाताओं की सनक पर निर्भर रहेगा। कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति यह समझ सकता है कि मतदाता इसकी चिंता नहीं करते कि किसी समुदाय के साथ न्याय हो रहा है या नहीं। इस विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए मेरा यह निवेदन है कि राष्ट्रपति को इस शक्ति को स्वेच्छा से प्रयोग करने का अधिकार दिया जाये यद्यपि वह आंग्ल-भारतीय समुदाय की ओर सबसे पहले ध्यान दे। उनके साथ यह रिआयत करने के सम्बन्ध में मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। किन्तु यह शक्ति एक सामान्य शक्ति होनी चाहिये ताकि यदि किसी समुदाय का यथोचित प्रतिनिधित्व न हुआ हो तो राष्ट्रपति उसे कुछ प्रतिनिधित्व प्रदान कर सके।

***अध्यक्ष:** श्री शाह ने एक संशोधन की अर्थात् संशोधन संख्या 104 की सूचना दी है जिसका आशय यह है कि वह अनुच्छेद निकाल दिया जाये। यह संशोधन नहीं उपस्थित किया जा सकता। माननीय सदस्य महोदय इस अनुच्छेद के विरुद्ध

[अध्यक्ष]

मत दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त 10 जुलाई, 1941 की छपी हुई सूची में दो संशोधन दिये हुए है। मैं समझता हूं कि वे नहीं उपस्थित किये जा रहे हैं। यदि कोई सदस्य बोलना चाहते हैं तो वे अब बोल सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद केवल आंग्ल-भारतीय समुदाय के सम्बन्ध में है। इसमें कहा गया है कि अनुच्छेद 67 में किसी बात के होते हुए भी यदि राष्ट्रपति की राय हो कि लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दो से अधिक सदस्य नाम-निर्देशित कर सकेगा। यह अनुच्छेद एक समुदाय के सम्बन्ध में है और इसमें प्रतिनिधियों की संख्या का भी उल्लेख है। राष्ट्रपति दो से अधिक प्रतिनिधि नाम-निर्देशित नहीं कर सकता है। अन्य समुदायों के सम्बन्ध में मेरे मित्र कहते हैं कि यदि किसी समुदाय का यथोचित प्रतिनिधित्व ने हुआ हो तो राष्ट्रपति को उस समुदाय के प्रतिनिधियों को नाम-निर्देशित करने का अधिकार होगा। श्रीमान, इससे इस सभा ने पहले जो निर्णय किया था उसाका खण्डन हो जायेगा। हमने यह निर्णय किया है कि अल्पसंख्यकों ने स्वेच्छा से विशेष प्रतिनिधित्व के अधिकारों को त्याग दिया है। अब यह कहना कि राष्ट्रपति इन अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों को नामनिर्देशित करे और यह संविधान में ही उपबन्धित कर दिया जाये, इस निर्णय का खण्डन करना है। मेरी यह प्रबल धारणा है कि यदि हम इस अनुच्छेद को संविधान में प्रविष्ट करते हैं अर्थात इस संशोधन को स्वीकार करते हैं तो इसका अर्थ यह होगा यद्यपि विभिन्न समुदायों ने विशेष प्रतिनिधित्व के अधिकार को त्याग दिया है और यह कि इस सभा की यह इच्छा है कि राष्ट्रपति इन समुदायों के लोगों को नाम-निर्देशित करे। किन्तु सभा की यह इच्छा नहीं है। इस सभा ने नाम-निर्देशन तथा स्थानों के रक्षण की प्रणाली को अस्वीकार कर दिया है। उसने आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिये नाम-निर्देशन की व्यवस्था विशेष रूप से की है। इस निर्णय के पश्चात् यदि हम अब इस संशोधन को स्वीकार करेंगे तो हम अपने निर्णय का खण्डन करेंगे। मुझे आशा है कि सभा इसे बिना कुछ आगा पीछा किये हुए अस्वीकार कर देगी।

कुछ अन्य संशोधन भी उपस्थित किये जाने वाले हैं। मेरे मित्र श्री नागप्पा भी यदि अल्पसंख्यक समुदायों को यथोचित प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया तो उनके प्रश्न को उठाने वाले हैं। अल्पसंख्यक समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया और उसने तथा इस सभा ने एकमत से यह निर्णय किया कि अल्पसंख्यक समुदायों के लिये नाम-निर्देशन की तथा स्थानों के रक्षण की व्यवस्था न रखी जाये। हमें उस निर्णय की भावना के विपरीत कोई कार्यवाही न करनी चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन बिना किसी संकोच के अस्वीकार कर देना चाहिये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, यदि हम सरदार हुकम सिंह का संशोधन स्वीकार करेंगे तो सारी लोक सभा में नाम निर्देशित सदस्यों का ही बाहुल्य हो जायेगा। इस अनुच्छेद में केवल एक अपवाद किया गया है। आंग्ल भारतीय समुदाय के लोगों का लोक सभा के लिये नाम निर्देशन एक अपवाद है। मेरे विचार से उद्देश्य यह नहीं है कि इस अपवाद को चिरस्थाई किया जाये अथवा इसे अधिक विस्तृत करके इसे अन्य समुदायों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त किया जाये। अनुच्छेद इस प्रकार है:

"इस संविधान के अनुच्छेद 67 में किसी बात के होते हुए भी यदि राष्ट्रपति की राय हो कि लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दो से अधिक सदस्य नाम-निर्देशित कर सकेगा।"

अन्य समुदायों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में पांच लाख लोग हों तो उस निर्वाचन-क्षेत्र से लोक सभा के लिये एक प्रतिनिधि निर्वाचित हो सकता है। अन्य समुदाय अर्थात् मुसलमानों का समुदाय, भारतीय ईसाइयों का समुदाय अथवा सिक्खों का समुदाय इतना छोटा नहीं है कि उसका इस आधार पर प्रतिनिधित्व ही न हो सके। आंग्ल-भारतीय समुदाय के सम्बन्ध में यह बात नहीं कहीं जा सकती है। सारे भारत में उनकी जनसंख्या पांच लाख भी न होगी। आप कोई भी ऐसा निर्वाचन-क्षेत्र नहीं बना सकते जहां उनका बहुमत है। चूंकि निर्वाचन द्वारा उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता, इसलिये इस अपवाद को स्थान देना पड़ा। मूल रूप में अनुच्छेद 292 में यह उपबन्धित था कि मुसलमानों के भारतीय ईसाइयों के तथा अन्य लोगों के समुदायों के लिये भी स्थान रक्षित किये जायेंगे। किन्तु उन्होंने स्वेच्छा से इसका परित्याग कर दिया और अब केवल अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षित किये जायेंगे। सम्भव है कि इन जातियों के लोग निर्वाचनों में साधारणतया निर्वाचित न हों। इसी कारण उनके लिये कुछ स्थान रक्षित किये गये हैं। मेरा यह निवेदन है कि आंग्ल भारतीय समुदाय एक विशेष स्थिति में है। यह समुदाय बहुत समुन्नत है किन्तु इसकी जनसंख्या अधिक नहीं है। वे कुछ काल तक इस देश के शासन में हिस्सेदार रहे हैं और इसलिये कुछ काल तक उनके साथ कुछ पक्षपात बरतना चाहिये। कुछ हितों के लिये उत्तर सदन में नाम-निर्देशन की व्यवस्था रखी गई है किन्तु उत्तर सदन की विषहीन बनाया गया है। जहां तक अपर सदन का सम्बन्ध है उसमें नामनिर्देशन की व्यवस्था न होनी चाहिये। आंग्ल-भारतीय समुदाय का मामला एक अपवाद है और उनके लिये जो व्यवस्था रखी गई है उसे किसी कारण से विस्तृत करके अन्य समुदायों के सम्बन्ध में प्रयुक्त न करना चाहिये। इसका भी कोई कारण नहीं है कि इन समुदायों ने जिन बातों का स्वेच्छा से परित्याग किया है उन्हें वे नाम-निर्देशन की व्यवस्था द्वारा प्राप्त करना चाहें। अपर-सदन में दो से अनधिक की संख्या एक नगण्य संख्या है। मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे विचार से इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि मैं कुछ कहूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3119 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 293 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'293. Notwithstanding anything contained in article 67 of this Constitution the President may, if he is of opinion that any minority community is not adequately represented in the House of the People, nominate an adequate number of members of that community to the House of the People.

[इस संविधान के अनुच्छेद 67 में किसी बात के होते हुए भी यदि राष्ट्रपति की राय हो कि लोक सभा में किसी अल्प-संख्यक समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के पर्याप्त सदस्य नाम-निर्देशित कर सकेगा।]' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 293 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 292 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 224

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 294 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'294 (1) Seats shall be reserved for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes, except the Scheduled Tribes in the tribal areas of Assam in the Legislative Assembly of every State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule.

Reservation of seats for minorities in the Legislative Assemblies of the states

(2) Seats shall be reserved also for the autonomous districts in the Legislative Assembly of the State of Assam.

(3) The number of seats reserved for the Scheduled Castes or the Scheduled Tribes in the Legislative Assembly of any State under clause (1) of this article shall bear, as nearly as may be, the same proportion to the total number of seats in the Assembly as the population of the Scheduled Castes in the State or of the Scheduled Tribes in the State or part of the State, as the case may be, in respect of which seats are so reserved bears to the total population of the State.

(4) The number of seats reserved for an autonomous district in the Legislative Assembly of the State of Assam shall bear to the total number of seats in that Assembly a proportion not less than the population of the district bears to the total population of the State.

(5) The constituencies for the seats reserved for any autonomous district of the State of Assam shall not comprise any area outside that district except in the case of the constituency comprising the cantonment and the municipality of Shillong.

(6) No person who is not a member of a scheduled tribe of any autonomous district of the State of Assam shall be eligible for election to the Legislative Assembly of the State from any constituency of that district except from the constituency comprising the cantonment and municipality of Shillong.

राज्यों की विधान-सभाओं में अल्प अल्पसंख्यकों के लिए स्थान का रक्षण

[(1) इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में उल्लिखित प्रत्येक राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जातियों के लिये तथा आसाम के आदिम जाति-क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिमजातियों को छोड़कर अन्य आदिमजातियों के लिये स्थान रक्षित रहेंगे।

(2) आसाम राज्य की विधान सभा में स्वायत्तशासी जिलों के लिये भी स्थान रक्षित रहेंगे।

(3) खंड (1) के अधीन किसी राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों के लिये रक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात उस सभा में के स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वही होगा जो यथास्थिति उस राज्य में की अनुसूचित

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जातियों की अथवा उस राज्य में की या उस राज्य के भाग में की अनुसूचित आदिमजातियों की, जिनके सम्बन्ध में स्थान इस प्रकार रक्षित हैं, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।

(4) आसाम राज्य की विधान सभा में किसी स्वायत्तशासी जिले के लिये रक्षित स्थानों की संख्या का उस सभा में स्थानों की समस्त संख्या से अनुपात उस अनुपात से कम न होगा जो कि उस जिले की जनसंख्या का उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।

(5) शिलौंग के कटक और नगर क्षेत्र से मिलकर बने हुए निर्वाचन क्षेत्र को छोड़कर आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले के लिये रक्षित स्थानों के निर्वाचन क्षेत्रों में उस जिले से बाहर का कोई क्षेत्र समाविष्ट न होगा।

(6) कोई व्यक्ति जो आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले में की अनुसूचित आदिम-जाति का सदस्य नहीं है, उस राज्य की विधान सभा के लिये शिलौंग के कटक और नगर क्षेत्र से मिलकर बने हुए निर्वाचन क्षेत्र को छोड़कर उस जिले के किसी निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचित होने का पात्र न होगा।]' "

यह अनुच्छेद बिल्कुल मूल अनुच्छेद के समान है और उसी रूप में है जिस रूप में वह संविधान के मसौदे में रखा गया था। केवल इतना संशोधन किया गया है कि अनुच्छेद 294 के खण्ड (1) से मुसलमानों और ईसाइयों के लिये स्थानों के रक्षण की व्यवस्था को निकाल दिया गया है। इस सभा ने इस विषय के सम्बन्ध में जो निर्णय किया था उसके अधीन ही ऐसा किया गया है।

(संशोधन संख्या 34, 35, 36 और 79 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद का अंशत: समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं। श्रीमान मुझे इसका विश्वास है कि इस देश में अनुसूचित जातियों का वर्ग अल्पसंख्यक वर्ग नहीं है। इस वर्ग के लोग देश के अन्य लोगों से भिन्न अथवा पृथक नहीं हैं। जनसंख्या की दृष्टि से भी इन लोगों की बहुत बड़ी संख्या है। इसके अतिरिक्त मुझे इसका विश्वास है कि अनुसूचित जातियों की समस्याएं राजनैतिक समस्याएं नहीं हैं। उनकी समस्याएं मुख्यत: शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हैं। ये समस्याएं सांस्कृतिक समस्याएं हैं। हम इन पद दलित लोगों के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाना चाहते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि विधान-मण्डलों में उनके प्रतिनिधित्व से उनका भौतिक तथा नैतिक स्तर ऊंचा कैसे उठाया जा सकेगा। अच्छा तो यह होगा कि संविधान में यह उपबन्धित कर दिया जाये कि केन्द्रीय और प्रांतीय आयव्ययकों में एक निश्चित धनराशि उनके उद्धार के लिए अलग रखी जाये। मुझे इन पीड़ित लोगों से प्रेम है और मैं यह चाहता हूं कि उन्हें अंधकार से बाहर निकालने के लिये प्रयत्न किया जाये। मैं नहीं चाहता

कि परोक्ष रूप से उन्हें अपने न्यायोचित अधिकारों से वंचित किया जाये अथवा इन अधिकारों को कुचला जाये। यदि आप उन्हें प्रतिनिधित्व प्रदान करना चाहते हैं तो अवश्य प्रदान कीजिये। मैं उनके प्रतिनिधित्व का विरोध नहीं करता हूं किन्तु मेरे विचार से केवल इतना ही प्रदान करना पर्याप्त न होगा। इससे उनकी समस्याएं हल न होंगी। मैं यह चाहता हूं कि आदिमजातियों के लिए तथा अनुसूचित जातियों के लिये संविधान में ही उपबन्ध रखे जायें और ये उपबन्ध निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में न रखे जायें। यह स्पष्ट शब्दों में निर्धारित कर देना चाहिये कि राज्य उन्हें शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करेगा औन उनके लिये अनिवार्य शिक्षा तथा नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा। संसार में केवल एक ही देश ऐसा है जहां विश्वविद्यालय तक की शिक्षा नि:शुल्क प्रदान की जाती है। वह देश सिंहलद्वीप है। मुझे आशा है कि भविष्य में जब हमारे आर्थिक साधन विकसित हो जायेंगे हम इन सुविधाओं को अपने सभी नागरिकों को प्रदान कर सकेंगे। मैं यह भी चाहता हूं कि आदिमजातियों के लोगों तथा हरिजनों के लिए संविधान में इस आशय के उपबन्ध रखे जायें कि उन्हें कृषि के लिए बिना मूल्य भूमि दी जायेगी। यदि हम इन सुविधाओं को प्रदान नहीं करते हैं और केवल यत्र तत्र एक दो स्थान ही उन्हें प्रदान करते हैं तो मेरे विचार से हम उनके शिक्षा सम्बन्धी स्तर को तथा आर्थिक स्तर को ऊंचा न उठा सकेंगे।

मेरे एक मित्र ने जो इस सभा के एक माननीय सदस्य हैं यह कहा है कि कुछ लोग स्थानों के रक्षण के विरुद्ध इसलिए हैं कि उससे विघटनशील प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा। मैं इन माननीय सज्जन महोदय का बहुत आदर करता हूं। मुझे ज्ञात है कि वे आदिमजातियों के लोगों के प्रतिनिधि हैं। मेरे विचार से वे यह अवश्य ही अनुभव करेंगे कि इससे विघटनशील प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता ही है जिससे राज्य की नींव कमजोर हो जाती है। मैं इन लोगों का एक बड़ा मित्र हूं। मैं इनकी सहायता करना चाहता हूं। जिन लोगों से मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है यदि वे इस प्रश्न के सम्बन्ध में मेरे विचारों से रुष्ट हो जायें तो मुझे इसकी चिंता नहीं है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि एक ऐसे विधान-मंडल में जहां 200 से लेकर 300 सदस्य आदिमजातियों के लोग न हों, क्या केवल 50 लोग आदिमजातियों के लोगों के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं? वे चीखपुकार अवश्य कर सकते हैं किन्तु कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकते। आदिमजातियों के लोगों के आर्थिक तथा नैतिक उत्थान के लिए हम जो कुछ आवश्यक समझते हैं उसके सम्बन्ध में हम इस सभा में इसी समय निर्णय करें और अपने निर्णयों को संविधान में स्थान दें।

मैं इस स्थल पर उसी बात को दुहराना चाहता हूं जो मैंने कुछ दिन पूर्व कही थी। हमने आदिम-जातियों के लिये कोई संविधान निश्चित नहीं किया है। इस समय यह कहना कि आदिमजातियों के लोगों के लिये विधान-मंडलों में स्थान रक्षित किये

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

जायेंगे, पहले ही से निश्चय कर लेना है। जब हम आदिम-जातियों के क्षेत्र-सम्बन्धी अनुसूचियों पर विचार करेंगे तो सम्भव है कि हम प्रस्तावित संविधान से बिल्कुल ही भिन्न संविधान का निर्माण करें।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं आदिम-जातियों के क्षेत्रों में निर्वाचन करने के सिद्धान्त को संविधान में स्थान देने के विरुद्ध हूं। इससे आदिम-जातियों के लोगों का जीवन विघटित हो जायेगा। यह एक विघटनशील प्रवृत्ति है। उनके समाज का गठन हमारे समाज के गठन से बिल्कुल भिन्न है। वह बहुत कुछ एक सहकारी समाज है और उस समाज में सामूहिकता पर जोर दिया जाता है। निर्वाचन के सिद्धान्त में व्यक्तिवाद और प्रतियोगिता पर जोर है। आदिम-जातियों के लोग पिछड़े हुए, पददलित तथा अशिक्षित हैं और इसलिये निर्वाचन के समय कुछ शक्तिशाली गुट उनका शोषण करेंगे मेरी यह धारणा है कि निर्वाचन का सिद्धान्त इन लोगों के लिये हितकर सिद्ध न होगा। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं चाहता था कि मैं इस वाद-विवाद में भाग लूं किन्तु मैंने यह विचार किया कि मुझसे पूर्व बोलने वाले मेरे माननीय मित्र की कुछ बातों का उत्तर देना आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** आप उनकी बातों की चिन्ता न कीजिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, आपका बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय मुझे शिरोधार्य है।

***अध्यक्ष:** आप अपनी बातों को अनुच्छेद तक ही सीमित रखें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वास्तव में यदि माननीय सदस्य महोदय का भाषण तर्कसंगत होता तो उसका उत्तर भी तर्कसंगत होता किन्तु यदि आपका यह विचार है कि वह बिल्कुल तर्कशून्य है तो मुझे इसके आगे कुछ नहीं कहना है। मैं केवल यह निवेदन करना चाहता था कि इस सभा में जो भावनाएं व्यक्त की गई हैं उनमें से कुछ पर आपत्ति की जा सकती है। मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिये। मैं एक अल्पसंख्यक समुदाय का सदस्य था। अब मैंने अल्पसंख्यक वर्ग का सदस्य होने की भावना का परित्याग कर दिया है और मैं स्वतंत्र रूप से बिना किसी उद्देश्य को सामने रखकर बोल रहा हूं। मेरी यह धारणा है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को कभी-कभी रक्षण की आवश्यकता होती है। मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा कि विधान-सभाओं में उनके कुछ लोगों के निर्वाचित होने से उनकी स्थिति में सुधार न होगा। मैं इस कथन का विरोध करता हूं। अपने जीवन में उन लोगों को विपत्ति और शोषण का ही सामना करना पड़ता है। वे लोग अशिक्षित हैं और पिछड़े हुए हैं। इसी कारण उनका शोषण होता है। यदि वे कुछ सदस्यों को निर्वाचित कर सकेंगे तो वे लोगों के सामने अपनी शिकायतों को रख सकेंगे और उनकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट कर सकेंगे। इससे उनकी शिकायतें और कठिनाइयां दूर हो सकेंगी। यदि अनुसूचित जातियों के लिये कुछ स्थान रक्षित करने से उनकी स्थिति में सुधार नहीं होगा तो मैं पूछता हूं कि

बहुत से ऐसे सदस्य जो अनुसूचित जातियों के न होंगे उनकी क्या सहायता करेंगे? उनके तर्क में कुछ सार नहीं दिखाई देता। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार का प्रतिनिधित्व कमजोर लोगों का प्रतिनिधित्व है। यह उनके रक्षण के लिये है। मेरे माननीय मित्र ने यह भी कहा है कि लोकतंत्र से जो लाभ होंगे वे अनुसूचित जातियों को प्रदान नहीं किये जा सकते। मेरे विचार से इस कथन का भी विरोध करने की आवश्यकता है। लोकतंत्र एक ईश्वरीय देन हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के इन अभागे लोगों को अपनी दयनीय दशा से लोकतंत्र से ही छुटकारा मिल सकता है।

मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। मैं इस अनुच्छेद का पूर्णतया समर्थन करता हूं। मुझसे पहले बोलने वाले मेरे माननीय मित्र ने अनुच्छेद का समर्थन करते हुए कुछ ऐसे तर्क उपस्थित किये जिनसे वास्तव में उसका खण्डन होता है।

*__श्री कृष्णमोहन त्रिपाठी__ (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर से कुछ स्पष्टीकरण करवाने के लिये यहां उपस्थित हुआ हूं।

प्रस्तावित अनुच्छेद के खण्ड (1) में कहा गया है कि:

"प्रथम अनुसुची के भाग 1 या भाग 3 में उल्लिखित प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जातियों के लिये तथा आसाम के आदिम-जाति क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिम-जातियों को छोड़कर अन्य आदिम-जातियों के लिये स्थान रक्षित रहेंगे।"

प्रथम अनुसूची के भाग 3 के विभाग (ख) में ये शब्द मिलते हैं, सभी अन्य देशी राज्य जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन में थे। इनमें से अधिकांश राज्यों ने अब या तो संघ बना लिये हैं अथवा वे प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं। जो राज्य प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं उनमें से कुछ का प्रतिनिधित्व इस सभा में मैं करता हूं। ये राज्य छत्तीसगढ़ राज्य कहे जाते हैं और इनमें आदिम-जातियों के लोगों की जनसंख्या कुछ मिलाकर 50 प्रतिशत है। अर्थात् लगभग 30 लाख की जनसंख्या में उनकी जनसंख्या लगभग 14 लाख है। मैं डॉ. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि मध्यप्रान्त में समाविष्ट होने वाले इन राज्यों पर स्थानों के रक्षण का क्या प्रभाव पड़ेगा। मैं बस्तर के राज्य का उदाहरण देता हूं। वहां की जनसंख्या 6,33,888 है और इसमें से आदिम-जातियों की जनसंख्या 478,970 है। उदयपुर के राज्य में जो रायगढ़ के नवनिर्मित जिले का एक भाग है, आदिम-जातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या की 72 प्रतिशत है। जशपुर के राज्य में आदिम-जातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या की 73 प्रतिशत है। इन राज्यों में आदिम-जातियों के लोग ऐसे क्षेत्रों में बसते हैं जहां अन्य लोग भी बसते हैं। इनमें से प्रत्येक राज्य स्थानों के रक्षण की मांग कर सकता है। इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से जानना चाहता हूं कि स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में तथा इस संविधान के अधीन आदिम-जातियों को जो लाभ होंगे उनके सम्बन्ध में इन राज्यों की क्या स्थिति होगी।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स राय:** अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत इस अनुच्छेद का समर्थन करने के लिये मैं अपने स्थान से उठा हूं। मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी किन्तु वह संशोधन डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये हुए इस संशोधन में समाविष्ट कर दिया गया है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि वह इस संशोधन में समाविष्ट कर लिया गया है।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने आदिम-जातियों के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया है उसके सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। आदिम-जातियों के लोग विभिन्न प्रकार के हैं। आसाम में आदिम-जातियों के ऐसे लोग हैं। जो बहुत लोकतंत्र प्रिय हैं। इस संविधान में हमने जिन लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की व्यवस्था की है उन्हें वे बहुत पसन्द करेंगे। इस प्रकार की लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का उन्हें अनुभव है। किन्तु आदिम-जातियों के कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिन्हें लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का अनुभव न हो। मैं कह नहीं सकता कि वे किन क्षेत्रों में बसते हैं। जिन क्षेत्रों से मैं परिचित हूं वहां आदिम-जातियों के लोग बहुत ही लोकतंत्र प्रिय हैं। भारत के कुछ भागों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो पददलित हों और जिनकी ओर ध्यान ही न दिया गया हो। हो सकता है कि वे लोग लोकतंत्रात्मक संस्थाओं को पसन्द न करें। जहां तक आदिम-जातियों के लोगों का सम्बन्ध है वे, जैसा कि श्री जयपाल सिंह कह चुके हैं, बहुत लोकतंत्रप्रिय हैं। आसाम में ये लोग इसी प्रकार के हैं। इस कारण मेरा यह विश्वास है कि हमारे भारत में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं में भाग लेने का उन्हें जो यह अधिकार अथवा विशेषाधिकार दिया गया है वह सर्वथा उपयुक्त है।

श्री एच.जे. खांडेकर (सी.पी.: जनरल): माानीय सभापति महोदय, आर्टिकिल 294, जो कि डॉक्टर अम्बेडकर साहब ने इस सभा के सामने पेश किया है मैं उसका समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं। इस आर्टिकल से शिड्यूल्ड कास्ट्स और शिड्यूल्ड ट्राइब्स के लोगों को सुरक्षित जगहें दी जाती हैं।

मैं शिड्यूल्ड कास्ट्स की हैसियत से यह कहना चाहता हूं कि जो यह रिजर्वेशन हम लोगों को दिया जा रहा है यह हमारे ऊपर कोई बड़ा भारी उपकार नहीं किया जा रहा है। शिड्यूल्ड कास्ट्स के लोगों ने आज हजारों बरस से हमारे दूसरे भाइयों की तरफ से जुल्म और अत्याचार सहन किया है। मेरा तो यह ख्याल है कि अगर उस जुल्म और अत्याचार के बदले में यह जगहें मिलती हैं तो आप हमारे ऊपर कोई बड़ा उपकार कर रहे हैं ऐसी कोई बात नहीं है। यह जगह देने का जो पहला, ओरिजिनल आर्टिकल है, उसमें मुसलमान भाइयों को भी उनकी संख्या के अनुसार जगहें रिजर्व की गई थीं परन्तु किसी कारणवश उनकी वह जगह निकाल दी गई। मेरा जहां तक ख्याल है मुसलमानों को रिजर्वेशन ऑफ सीट्स देना बहुत जरूरी था। हालांकि मैं उस जाति का नहीं हूं मगर राजनीतिक दृष्टि से........

अध्यक्ष: मैं समझता हूं कि आप इस सवाल को न लें क्योंकि इस पर बहस हो चुकी है।

श्री एच.जे. खांडेकर: एक सेंटेंस कह देना चाहता हूं।

अध्यक्ष: एक सेंटेंस कह देने से ही तो सवाल खुल जाता है।

श्री एच.जे. खांडेकर: मुसलमानों को सुरक्षित जगहें न देने में मेरा ख्याल यह है कि राजनीतिक दृष्टि से कुछ गलती हो गई है। पर मैं उस जाति का न होने के कारण उस सवाल को टच नहीं करता।

यह जो हरिजनों का रिजर्वेशन है यह सिर्फ दस साल के लिए है और जहां तक मेरा इस जाति का और इस देश की दूसरी जातियों का अनुभव है उनसे मेरा यह विश्वास है कि दस साल के अन्दर हरिजनों की या शिड्यूल्ड कास्ट्स की हालत अचछी नहीं हो सकती। महात्मा गांधी ने 1927 से लेकर अपने देहान्त होने तक हरिजनों की उन्नति करने के प्रयत्न तन, मन और धन से किये परन्तु इस 20 या 22 वर्ष के समय में भी हरिजनों का उद्धार जितना होना चाहिए था उतना नहीं हुआ और मैं इस ख्याल का नहीं हूं कि आपने जो हरिजनों के लिए दस साल का रिजर्वेशन दिया है इसमें उनका सर्वांगीण सुधार हो जायेगा। इस लिए इस रिजर्वेशन के साथ ही साथ आप दूसरे भी रिजर्वेशन देते, जैसे कि लोकल बाडीज में, म्युनिसिपल बोर्ड्स में और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में, तो अधिक लाभ हो सकता था। पर इसका यहां कोई भी उल्लेख नहीं किया गया है। अगर आप हिन्दुस्तान के हर प्रान्त की तरफ देखें तो आपको मालूम होगा कि हरिजनों की हालत आज भी राजनीतिक दृष्टि से बहुत बुरी है। इन लोकल बाडीज के अन्दर आप देखें कि कोई भी हरिजन अगर वह किसी लोकल बाड़ी की जगह के लिए खड़ा होता है और वहां अगर वह कास्ट हिन्दूज की वोट लेना चाहता है तो मैंने अपनी आंखें देखा है कि उसे वह वोट नहीं मिलते और वह चुनकर नहीं आ पाता। और आगे के लिए भी मेरा यह विश्वास हो गया है कि कोई भी शिड्यूल्ड कास्ट्स या शिड्यूल्ड ट्राइब्स का आदमी उस जगह पर कभी भी चुनकर नहीं आ सकता। आज हिन्दुस्तान की यह परिस्थिति है और इसी को मद्देनजर रखते हुए आप लोगों ने हमारी रिजर्वेशन की मांग को स्वीकार किया है। मैं समझता हूं कि अगर आप लोकल बाडीज में भी यह रिजर्वेशन दें तो हरिजनों को लाभ हो सकता था। मगर दें क्यों? आपके दिल हमारे दिल साफ हों तब न।

दूसरी बात यह कि अगर कोई यह समझ ले कि इस रिजर्वेशन से हमारी जाति का सर्वांगीण सुधार हो सकता है तो यह उसकी गलती होगी। हरिजनों का सुधार करने के लिये बहुत सारे क्षेत्र हैं। दूसरी जातियों के लेविल में आने के लिये उनको बहुत कुछ तरक्की की और मदद की जरूरत है। सिर्फ रिजर्वेशन ऑफ मीट्स से क्या होगा? आज भी, इससे पहले भी, और आगे भी, इस कांस्टीट्यूशन के पास हो जाने के बाद भी, हम लोगों को दूसरी जाति के लोग एक्सप्लाइट करेंगे। हमारे में पार्टीबन्दी बनाई जायेगी। अगर किसी कांस्टीट्यूएंसी में कास्ट हिन्दूज के वोट ज्यादा हैं और हरिजनों के कम हैं और उस कांस्टीट्यूएंसी में हमारी किसी

[श्री एच.जे. खांडेकर]

एक जाति की, उदाहरण के लिये मान लीजिये चमार मेजारिटी है तो हमारे कास्ट हिन्दू भाई उन चमारों को नहीं अपनायेंगे, बल्कि जो हरिजनों में माइनारिटी कम्युनिटी होगी उसको अपना वोट देकर मेजारिटी कम्यूनिटी को दबायेंगे। यही इस रिजर्वेशन का नतीजा होगा। इसका यही मतलब होने वाला है, इसलिए कि ज्यादा वोट हरिजनों के किसी कांस्टीट्यूएंसी में नहीं हैं तो मेरे कहने का मतलब यह है कि यह रिजर्वेशन जब हो जायेगा उस वक्त जहां हरिजनों की संख्या ज्यादा है, ऐसी ही जगह अगर उनकी कांस्टीट्यूएंसी रिजर्व की जाती है तो हरिजनों के लिए कुछ लाभ हो सकता है और उनके सच्चे प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं नहीं तो हरिजनों के नाम पर हरिजनों में जो डम्मीज हैं उनको ऐसी असेम्बली में आप, यानी सवर्ण हिन्दू, भेजेंगे जैसी कि आज की असेम्बली है या प्रान्तों में जो असेम्बली है उनमें भी भेजे गये हैं। इस तरह हरिजनों की भलाई करने के एवज में आप हरिजनों का नुकसान करने वाले हैं और इस रिजर्वेशन से हरिजनों के बदले में अपना खुद का लाभ करने वाले हैं।

इसी प्रकार मैं आपको और एक बात बता देना चाहता हूं और वह यह कि जिस प्रकार का आप रिजर्वेशन प्रान्तों के लेजस्लेचर में देते हैं उसी प्रकार का केबीनेट में भी दें, जिससे हरिजन अपनी तरक्की कर सकें। मगर दु:ख की बात है कि मैंने देखा है और आपने भी देखा होगा, कि जहां किसी कास्ट हिन्दू के इंटरेस्ट से किसी शिड्यूल्ड कास्ट के आदमी का इंटरनेस्ट टकराता है जो शिड्यूल्ड कास्ट के आदमी की वहां हार हो जाती है। यह परिस्थिति है इस देश की और इससे आप, या कोई भी अच्छा आदमी, न ही नहीं कर सकता। मैं उदाहरण के तौर पर आपको बताऊं कि जिस प्रान्त में हरिजनों की संख्या 24 और 25 परसेंट है अगर आप उस प्रान्त की कैबीनेट की तरफ देखें तो आपको पता लगेगा कि एक हरिजन के सिवा उसमें दूसरा हरिजन मिनिस्टर नहीं है। मगर दु:ख की बात है कि जिस प्रान्त में कास्ट हिन्दूज की संख्या कम है, उदाहरण के लिए अगर ब्राह्मणों की संख्या कम है, अगर उस प्राप्त में ब्राह्मणों की संख्या 2 परसेंट भी नहीं है, परन्तु उस प्रान्त में अगर 12 मिनिस्टर हैं तो दस मिनिस्टर ब्राह्मण हैं। क्या आप इसको अन्याय नहीं समझेंगे? हरिजन मिनिस्टर लेने में तो आप एक से अधिक संख्या नहीं बढ़ाते फिर ब्राह्मण इतने ज्यादा क्यों हैं? ब्राह्मण जैसे छोटी सी जाति के हाथ में इस देश की सारी बागडोर रखना इसी का नाम डिमाक्रेसी है क्या? और यह किसान मजदूरों का राज है, जिसकी पुकार कांग्रेस बार-बार कर रही थी। यह ब्राह्मण राज आप कब तक चलाना चाहते हैं? अब लोग इससे तंग हैं।

***श्री बालकृष्ण शर्मा:** ब्राह्मणों का नाश हो।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** [यह आप कह सकते हैं। यह अब्राह्मण कह सकते हैं। यदि सब अब्राह्मण एक हो जायें तो उनका नाश होगा ही और वह दिन अब दूर नहीं है।]

मेरे कहने का मतलब यह है कि अगर आप हरिजनों को रिजर्वेशन कैबीनेट में देते तो यह जो हरिजनों के ऊपर और शिड्यूल्ड ट्राइब्स के ऊपर अन्याय हो रहा है इसको आप बचा सकते थे। बड़े दु:ख की बात यह है कि अब तो वह आर्टिकिल चला गया। कुछ लोगों ने यह भी कहा है कि जो रिजर्वेशन ऑफ सीट्स हरिजनों को दिया गया है उसके अलावा उन्हें जनरल सीट्स के लिए नहीं लड़ने देना चाहिए। मगर मैं यह कह देना चाहता हूं कि अगर आप हरिजनों को जनरल सीट्स के लिए नहीं लड़ने देंगे तो जो खाई हरिजनों और कास्ट हिन्दूज के बीच पड़ी हुई है वह कभी नहीं मिट सकती।

अध्यक्ष: आप चूंकि गैर हाजिर थे इसलिए इसके पहले जो बहस हुई उसे आपने सुना नहीं। अगर आपने सुना होता तो शायद आप ऐसी बातें नहीं कहते।

श्री एच.जे. खांडेकर: मैं इस हाउस में बराबर हाजिर था और अगर कोई हम लोगों की हाजरी लेता हो तो आप उसका रजिस्टर देखिये आपको दीखेगा कि तारीख 4 को छोड़कर मैं हर रोज बराबर हाजिर था। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि यह जो खाई हम में और कास्ट हिन्दूज में है, अगर इसको हमें लेविल करना है और दोनों जातियों को मिलाना है तो जिस तरह का बरताव हम आप लोगों से चाहते हैं उसी तरह का बरताव हमारे साथ होना चाहिए। मगर आप हम देखते हैं कि उनका बरताव स्वार्थान्ध बरताव है और स्वार्थ के उदाहरण यदि मैं आपके सामने रखूं तो आज का दिन चला जायेगा और कल का भी दिन चला जायेगा। मैं किसी को धमकाना नहीं चाहता हूं मगर मैं इस असेम्बली के और इसके बाहर के कास्ट हिन्दूज को बतलाना चाहता हूं कि उनको एक बात याद रखनी चाहिए। वह यह बात है कि हरिजनों के ऊपर आज तक आपने जितने अत्याचार और जुल्म किये हैं, अगर आपको उन पापों का प्रायश्चित करना है तो हरिजन जो चाहते हैं उनको वह देकर उन्हें आपको अपने लेविल में लाना चाहिये। अगर आपने यह नहीं किया तो जिस प्रकार आज हरिजनों में आन्दोलन हो रहे हैं, जिनसे वह अपनी तरक्की करना चाहते हैं, जिसको कि आप नहीं चाहते, वह उसको बढायेंगे और किसी भी देश को इतने बड़े तबके का गुलाम जैसे रखने में उस देश का आगे जाकर मैं नहीं कह सकता कि इस देश का क्या होगा। यह मैं आपको कोई धमकी नहीं दे रहा हूं। मगर आज दूसरी एक्सप्लाइट करने वाली पार्टियों के लोग हिन्दुस्तान के हरिजनों में जो जाकर प्रचार करते हैं और ऐसा प्रचार करते हैं जो शायद इस देश के खिलाफ हो। और इस वार्निंग को मैं आपके सामने रखना चाहता हूं कि कास्ट हिन्दूज को हरिजनों को अपने बराबर लाने के लिए जितनी सहूलियतें वह चाहते हैं देनी चाहिएं। मैं आपके सामने एक और उदाहरण रखना चाहता हूं। यही आपकी जो इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस और इंडियन

[श्री एच.जे. खांडेकर]

पुलिस सर्विस है इसमें सैकड़ों हरिजनों ने ऐप्लीकेशन्स दी और उनकी इन्टरव्यू हुई मगर दुख की बात है कि उनमें से एक भी इन पोस्टों पर नहीं रखा गया और कारण यह बताया जाता है कि इनमें कोई काबिल नहीं है। हमको तो आपेन ही काबिल नहीं होने दिया। हजारों साल से हमको दबाकर रखा गया है। हम काबिल किस प्रकार हो सकते हैं? आपने अपने स्वार्थ के लिए अपनी सेवा हम से ली और हमको इतना दबा दिया गया कि न तो हमारी बुद्धि चल सकती है, न हमारे शरीर चल सकते हैं, न हमारा मन चल सकता है और न हम खुद चल सकते हैं। यह परिस्थिति है। यह हालत आपने हमारी कर दी है और फिर कहते हैं कि काबिल नहीं है जो मार्क्स की लिमिट है उस तक आप नहीं पहुंचते। हम कैसे उस लिमिट तक आ सकते हैं। जबकि आपने हमें कुत्ते और बिल्लियों से भी निम्नतम बना रखा है।

आप हमारी इस परिस्थिति की तरफ देखें। आज हमारे जो ग्रामीण लड़के हैं उनकी हालात बहुत खराब है। उनको इस प्रकार की सुविधा नहीं मिलती जिस प्रकार आप जैसे बड़े आदमियों के लड़कों को सहूलियत मिलती है। तो फिर आप किस तरह से यह बात हमारे लड़कों से चाहते हैं कि वह उनका जिनको कि हर प्रकार की सुविधा मिलती है, मुकाबला करें? आपको मालूम नहीं किस तरह से हमारे विद्यार्थी अपनी शिक्षा स्कूलों में प्राप्त करते हैं। उनका सरकार किसी तरह भी ख्याल नहीं करती है। यहां दिल्ली में सी. पी. का रहने वाला एक हरिजन लड़का है, जिसको कि मैं जानता हूं। वह यहां पूसा इंस्टि्टयूट में पढ़ता है। वह एक गरीब लड़का है और उसके घर में मां-बाप गरीब हैं। वह लड़का ऐसी परिस्थिति में है कि आज एक महीने से उसके पास फीस देने को पैसा नहीं है। उसके महीने का खर्चा 105 रुपये है जबकि उसको 75 रुपये महावीर वजीफा मिलता है। एक हफ्ता हुआ उसको नोटिस मिला है कि वह अपनी सब फीस जमा कर दे जिससे कि वह आगे पढ़ सके। वह गरीब बिचारा जिसके पास खाने, पहनने और इम्तहान तक की फीस देने को पैसा नहीं है, उसके लिए सिर्फ एक ही चारा है कि वह या तो भीख मांगे या किसी की चोरी करे। इसके सिवा उसके पास कोई चारा नहीं है। नहीं तो उसको स्कूल छोड़ना पड़ेगा और उसका जीवन नष्ट हो जायेगा। मगर अभी तक किसी गवर्नमेंट के आदमी के दिमाग में यह बात नहीं आई कि उस लड़के की फीस माफ कर दी जाये या उसको किसी प्रकार की इमदाद की जाये। उस लड़के ने कई एपलीकेशनें सरकार को दी। मगर उसका अभी तक किसी ने जवाब भी नहीं दिया तो इस प्रकार से कष्ट और दुखों को सहन करते हुए लड़का किस तरह से आपके उन लड़कों का मुकाबला कर सकता है जिसको हर प्रकार की सहूलियतें मिलती हैं। आपने हमको 10 साल की सहूलियत दे दी और आप बाद में कहेंगे कि हमने तो आप लोगों की हर प्रकार की मदद की। तो मैं आपसे पूछूंगा कि आपने वह सब क्या किया। क्या 10 साल में उन

हरिजनों की भलाई के लिए कोई स्कीम आप तैयार करेंगे? क्या आपने आज तक हरिजनों के एजुकेशन के लिए कोई स्कीम तैयार की है? क्या प्रान्तों की सरकारों ने हरिजनों की भलाई के लिए कोई पैसा मुकर्रर किया है? हिन्द सरकार ने या प्रान्तीय सरकारों ने हरिजनों के लिए कोई एकानामिक स्कीम तैयार की है?

अध्यक्ष: 10 साल का सवाल है और बातें एक-दूसरे आर्टिकल में आती हैं। उस समय आप यह बात कह सकते हैं। मैं इस समय इस बात की इजाजत नहीं दूंगा।

श्री एच.जे. खांडेकर: मेरे कहने का मतलब यह था कि जो सहूलियत और लोगों को मिलती हैं वह हमारे विद्यार्थियों को नहीं मिलती, जिससे वह और लोगों के मुकाबले में नहीं आ सकता। हमारे भलाई करने की बात सरकार ने कभी नहीं सोची। हम लोगों ने कई बार कहा कि हमारे भलाई के लिए कम से कम हर प्रान्त में एक ऐसा हरिजन मिनिस्टर बनाइये। इसी तरह से सेंटर गवर्नमेंट में भी हरिजन मिनिस्टर होना चाहिये जो कि हरिजनों के अपलिफ्ट का काम करे। अगर इस प्रकार के मिनिस्टर हर प्रान्तों में और सेंट्रल गवर्नमेंट में बना दिये जाते जो कि हरिजनों की कठिनाइयों के बारे में ख्याल करते तो बहुत सुधार इस समय तक हो गया होता। मगर बहुत दु:ख की बात है कि इस तरह के प्रस्ताव हर प्रान्तों से आये और सब जगहों से हरिजनों ने सरकार के पास भेजे कि इस तरह की कार्रवाई की जाये मगर बहुत दु:ख की बात है कि अभी तक उन लोगों के पास यह तक लिखकर नहीं आया कि तुम्हारे प्रस्ताव या रिजोल्यूशन हमारे पास आये हैं। यह हरिजनों की भलाई की कीमत है, यह हरिजनों की भलाई का आपका दिल है। इस बात से पता चलता है कि आप मीठी मीठी बात कहकर उन लोगों को खुश करना चाहते हो। हिन्दुस्तान में मीठी-मीठी बात कहने वाले बहुत हैं और इससे हरिजन बहुत जल्दी आकर्षित हो जाते हैं। वह अपना स्वार्थ पूरा कर लेते हैं। सिवाय महात्मा गांधी या 10, 20 ऐसे लोग हैं जिनके दिल में अस्ल मानों में हरिजनों के लिए भलाई का ख्याल है। दूसरे कास्ट हिन्दू भाई स्वार्थी हैं और अपनी भलाई के लिये हम से मीठी बातें करते हैं।

अध्यक्ष: आप प्रान्तों की बात कह रहे हैं।

श्री एच.जे. खांडेकर: मैं कई प्रान्तों की बात कह रहा हूं। मैं जो भी बात कह रहा हूं वह अपने अनुभवों से कह रहा हूं। मुझे 20,25 साल का अनुभव है। आज तक मैं देखता आया हूं कि हरिजनों के साथ कुछ भी भलाई नहीं की गई है। आपने प्रान्तों में, केन्द्र में, हमारे हरिजनों को मंत्री बनाया है। अगर उनमें से बहुत से आपके बगल बच्चे हैं और बुद्धू हैं। इन्हीं के हाथ आप हरिजनों का उद्धार करना चाहते हो? यह सब बुद्धू हैं और स्वार्थी हैं। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिये हरिजनों को आपको बेच दिया

[श्री एच.जे. खांडेकर]

है। इन बुद्धुओं का कहना सारे हरिजनों का कहना नहीं है। इनके साथ देश के चार हरिजन भी नहीं हैं। आपने रिजर्वेशन का जो आर्टिकल रखा है इससे हमारे हरिजनों की भलाई नहीं होने वाली है। इस तरह से हरिजनों के सारे प्रश्न हल नहीं हो जायेंगे। कुछ कन्स्ट्रक्टिव काम करो और हरिजनों को इन्सान बनाओ।

अध्यक्षः मालूम पड़ता है कि आप बराबर गैर-हाजिर रहे हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** मैं एक दिन के लिये भी इस सभा से गैर-हाजिर नहीं था। भले ही किसी ने मेरी गैर-हाजरी लिखी हो किन्तु मैं हमेशा हाजिर था। मैं हमेशा यहां अपनी जगह पर बैठा था।

अध्यक्षः मगर मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यहां पर जो सवाल दरपेश हैं उस पर आप कह सकते हैं न कि सारे हरिजनों के मामले पर आप बहस करें। इससे कोई फायदा नहीं होगा। इसके लिए तो अगर आप किसी प्रान्तीय असेम्बली के मेम्बर हैं तो वहां पर बोल सकते हैं। दूसरे मार्ग, जिन्हें यहां पर बोलने का मौका मिले, वह भी इसी आर्टिकल के मुतल्लिक कहें। दूसरी बातों को यहां पर लाने से कोई फायदा नहीं है।

श्री एच.जे. खांडेकरः सभापति जी, स्वराज के बाद भी आप लोगों का अन्याय देखकर मेरे जैसे आदमी का दिल जलता है आप लोगों को इस अपने स्वार्थी व्यवहार और राजनीति को बदलना चाहिये और हमारे साथ मनुष्यत्व का बरताव करना चाहिये। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह जो रिजर्वेशन बनाया गया है इतने से हमारे हरिजन भाइयों की भलाई हो जायेगी, मैं यह बात नहीं मानता हूं। मैं यह बात कह रहा हूं कि इस रिजर्वेशन से हरिजनों की भलाई नहीं हो सकती है। दुःख की बात यह है कि जो लोग हरिजनों की भलाई चाहते हैं और यह भी जानते हैं कि उनको कई प्रकार के कष्ट हैं, फिर मैं यह समझता हूं कि यह जो रिजर्वेशन का आर्टिकल है उससे हरिजनों की भलाई के लिए कोई स्कोप नहीं है, तो उन्हें इससे भी कोई अच्छा आर्टिकल इस सभागृह के सामने लाना था। मगर आप तो हमारी जाति जाति में झगड़े लगाने लगे हुए हैं। हरिजनों के सब-कास्ट में हर प्रकार के झगड़े लाने की इसमें गुंजाइश है। इसमें जिस प्रान्त में हरिजनों की मेजौरटी है उसको बाहर करने की गुंजाइश है क्योंकि चुनाव तो आपके हाथ में रहेगा। जिस प्रकार पिछले चुनावों में सवर्ण हिन्दुओं ने खेल खेला है वैसा ही खेल खेलने की इस आर्टिकल में उन्हें गुंजाइश है। हरिजनों में से जो बहुसंख्यक जाति है उसे दबाने के लिये कास्ट हिन्दू भाई हरिजनों के मायनारिटी जाति को चुनाव में मदद करेंगे और उनमें से किसी अनपढ़ को चुनकर लायेंगे जो कास्ट हिन्दुओं की हां में हां मिलाता रहेगा। पिछले चुनाव में कास्ट हिन्दुओं ने बम्बई प्रान्त के चुनाव में यही किया है। उस प्रान्त में हरिजनों में जो जाति बहुसंख्यक है उसके तो 19 सीटों में दो प्रतिनिधि चुन दिये हैं और

जो जाति हरिजनों में दो परसेंट भी नहीं उसके 14 प्रतिनिधि बम्बई असेम्बली में भेजे हैं। ठीक यही बात हरिजन मिनिस्टर लेने में हुई है। मैं तो यह कहता हूं कि जब इस चीज को अमल में लाया जायेगा तो हरिजन इससे और भी पीछे रह जायेंगे। मैं आपसे कह देता हूं कि इससे न तो देश का भला होगा न कांग्रेस गवर्नमेंट का भला होगा और न हरिजनों का ही भला होगा।

यह मेरे कहने का मतलब था और यह कहने के बाद मैं इस आर्टिकल को सपोर्ट करता हूं और अपना भाषण समाप्त करता हूं।

श्री महावीर त्यागी (यू.पी. जनरल): श्रीमान जी, मैं इस आर्टिकल की ताईद करता हूं और यह कहना चाहता हूं कि यह जो शिड्यूल्ड कास्ट के रिजर्वेशन का सवाल अंग्रेजों के जमाने में उठा था उस वक्त उनकी नीति ऐसी ही थी जैसी कि मुसलमानों के रिजर्वेशन का सवाल उठाकर उन्होंने हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमानों को आपस में दो कौमें बनाकर खड़ा किया और उसका आखिरी नतीजा पाकिस्तान हुआ। उन दिनों में अंग्रेजों की नीति हिन्दुस्तान में फूट डालकर अपनी हुकूमत को चलाने की थी। उसी नीति के अनुसार राउंड टेबुल कानफरेंस के समय पहली मर्तबा अंग्रेजों ने शिड्यूल्ड कास्ट्स को दूसरी कास्ट्स से अलग करके उनका चुनाव अलग कराने के प्रयत्न का आरम्भ किया था। महात्मा गांधी ने उस समय यह ऐलान किया था कि यदि इस तरह से हिन्दुस्तान में और एक दूसरी पार्टी शिडयूल्ड कास्ट्स की बनाई गई तो वह आमरण अनशन करेंगे। उसी का नतीजा यह हुआ कि वह मुसलमानों की तरह ऐसे अलग तो नहीं हो सके कि उनका चुनाव तमाम हिन्दुओं से अलग हो जाये परन्तु फिर भी ऐसा कर दिया कि उनके वास्ते आबादी के मुताबिक कुछ जगहें मुकर्रर कर दीं। महात्मा गांधी ने जब डॉ. अम्बेडकर के साथ फैसला किया तो राउंड टेबुल कानफरेंस में जितनी नशिस्त, जितनी जगहें, उन्हें दी गयी थीं उनसे भी ज्यादा महात्मा गांधी के फैसले में दी गयीं। समझा गया कि शिड्यूल्ड कास्ट्स के साथ न्याय होना चाहिये और चूंकि इससे पहले, यह वाकया है कि उनके आदमी चुनाव में नहीं आते थे, ऐसा मेरे भाई खांडेकर जी का कहना ठीक है, तो महात्मा गांधी ने और डॉ. अम्बेडकर ने मिलकर फैसला किया उस फैसले के अनुसार शिड्यूल्ड कास्ट्स का चुनाव रहा तो मुश्तरका, पर उनकी जगहें उनकी सीट्स, गिन दी गयीं और जितनी जगहें राउंड टेबुल कानफरेंस में दी जा रही थीं उनसे ज्यादा सीटें देकर उनके साथ फैसला हुआ। वह फैसला चलता रहा।

अब जब चौदह बरस के बाद फिर से उनकी जगहें मुकर्रर करते हैं और तय करते हैं कि उनकी सीटें रिजर्व रहेंगी तो ऐसे वक्त में हमको पुराना तजुर्बा नहीं भूलना चाहिये। मैं इस हाउस की तवज्जह पुराने तजुर्बे पर लाना चाहता हूं। यह अलग सीटें देने से एक तो फायदा यह हुआ कि शिड्यूल्ड कास्ट्स के अन्दर जिन्दगी पैदा हुई। उनके अन्दर खुद तरकी करने की भावना पैदा हुई और दूसरे

[श्री महावीर त्यागी]

लोगों ने भी समझा कि आखिर यह बराबर के शहरी हैं, इसलिए इनको पूरे अधिकार मिलने चाहियें। लोगों को आदत भी पड़ी कि साथ-साथ बैठकर अपने मुल्क की तकदीर का फैसला करें और मुल्क की अहम और गम्भीर समस्याओं पर साथ-साथ बैठकर विचार करें। इस तरह काम में बहुत मदद मिली। परन्तु देखना यह है कि इस किस्म के रिजर्वेशन का फायदा वाकई कहां पहुंचता है। अभी हमारे भाई खांडेकर जी ने यह एतराज किया कि मैजारिटी काम्युनिटी के लोग माइनारिटी वालों को नहीं आने देते। यह बात सही है। मैं देखता हूं कि इस सिलसिले में मैं एक भी ऐन माइनारिटी का आदमी हूं। मेरी बिरादरी की तादाद मेरे जिले में, मैं मेरी तीन लड़कियां और एक पुलिसमैन हैं। मेरे जिले भर मेरी बिरादरी के कुल पांच आदमी हैं। फिर भी जब हमारे जिले में चुनाव होते हैं तो मैं चला आता हूं। पर ऐसा आम तरीका नहीं है। जो लोग देश की सेवा की शक्ति पर नहीं आ सकते तो वह बिरादरी की शक्ति पर आते हैं। जिसकी बिरादरी ज्यादा होती है वह कामयाब होता है। मेरठ के जिले में जहां जाट बिरादरी की बहुतायत है तो वहां से अधिकतर जाट उम्मीदवार ही कामयाब होता है। यहां ब्राह्मण नहीं हो पाता। तो यह बात शिड्यूल्ड कास्ट्स या दूसरी कास्ट्स की नहीं, बल्कि अलग-अलग सैक्ट्स जो है उनमें भी यही है। यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है।

शिड्यूल्ड कास्ट्स का भी हाल देखिये। हमारे सूबे में बीस सीट असेम्बली में शिड्यूल्ड कास्ट्स को मिली थीं, पंजाब में शायद आठ थीं। अब तमाम सीटें जो इन सूबों में मिली हुई हैं उन पर गौर कीजिये। मैं अपने भाई खांडेकर जी से यह प्रार्थना करूंगा कि वह तमाम सूबों की असेम्बलियों का नक्शा निकाल कर देखें तो उन्हे मालूम होगा कि सिवाय दो या तीन महार साहब के, जिनमें खांडेकर जी भाई और अम्बेडकर भाई भी शामिल हैं, ज्यादातर सीटें चमार भाइयों को गई हैं, क्योंकि शिड्यूल्ड कास्ट्स में उनकी तादाद ज्यादा हैं अगर आप मिनिस्टरों पर भी गौर करें तो हिन्दुस्तान के अन्दर डॉक्टर साहब को छोड़कर आपको चमार भाइयों के सिवाय और कोई दूसरा शिड्यूल्ड कास्टस का मिनिस्टर नहीं मिलेगा।

कई माननीय सदस्यः बिहार में हैं।

श्री महावीर त्यागीः हां, आपके बिहार के अलावा बाकी सब जगहें ऐसी हैं जहां वही मिनिस्टर हैं। तो मैं आपसे पूछूंगा कि क्या शिड्यूल्ड कास्ट्स की सीटों का फायदा यह 400 कौमें उठा रही हैं? इन 400 कौमों में सिर्फ दो या तीन कौमें ऐसी हैं जो शिड्यूल्ड कास्ट्स को मिली हुई सीटों का फायदा उठा रही थीं। बम्बई में मुश्तरका चुनाव होने के नाते महार भाइयों की तादाद ज्यादा होने से भी कोई दूसरी बिरादरी के भाई चले गये तो खांडेकर जी को एतराज है। मैं इस जहनियत की मुखालिफत करता हूं। जबकि शिड्यूल्ड कास्ट्स में चार सौ पांच

सौ कौमें मिलकर शिड्यूल्ड कास्टस बनाई तो फिर उन शिड्यूल्ड कास्ट्स के बीच में यदि कसरत राय वाले सेक्ट और कम राय वाले सेक्ट चलाये जायें तो इसके मायने यह हुए कि शिड्यूल्ड कास्ट्स के नाम से जो सीटें मिलीं वह उसी को मिली जिस ग्रूप या सेक्ट की उस शिड्यूल्ड कास्ट्स में कसरत राय हो। अगर हम यह कह दें कि चमार भाइयों को हिन्दुसतान में इतनी सीट मिलेंगी तब भी वही नतीजा होगा जो शिड्यूल्ड कास्ट्स के नाम पर हमने कर दिया क्योंकि हमारे सूबे में चमार चाइयों की तादाद ज्यादा है और उन्हीं को वोट ज्यादा मिलते हैं। पार्टी भी जो उम्मीदवार खड़ा करती है वह भी यह विचार करती है कि जिसकी बिरादरी ज्यादा हो उसी को खड़ा किया जाये तो ज्यादा आसानी होगी। तो यह रिजर्वेशन की जो बात है उसका लाभ तो सारे शिड्यूल्ड कास्ट्स वालों को नहीं पहुंचता है। शिड्यूल्ड कास्ट्स की तादाद पांच सौ छः सौ है, उनके नाम भी हमें नहीं मालूम और उनका असेम्बली में आना तो हमेशा के लिये असम्भव है।

तो इसके मानी यह हुए कि जो बिरादरी तातादा में ज्यादा है उसको फायदा पहुंचाने के लिए हम शिड्यूल्ड कास्ट्स की सीट का इन्तजाम करते हैं। इसलिए मुश्तरका चुनाव होने में, जिस पर कि खांडेकर भी भाई को एतराज है, यह लाभ होगा कि दूसरे लोग जो उस शिड्यूल्ड कास्ट की बिरादरी में कम राय वाले हैं उनके साथ सवर्ण हिन्दू न्याय कर सकेंगे। वह यह देख सकेंगे कि हमारे जिले में इतने चमार भाई हैं और उनकी कसरत राय है परन्तु कम राय वालों को कोई गुजांइश नहीं हालांकि उनमें कई उम्मीदवार ऐसे हैं जो कि लेजिस्लेटिव असेम्बली में जाने के योग्य हैं, तो दूसरे लोग उनकी सहायता करके रायों की कमी को पूरा कर सकेंगे। इसलिए मेरा कहना यह है कि शिड्यूल्ड कास्ट्स की सीट्स के चुनाव में दूसरे कास्ट वालों का शरीक होना इसलिए लाभकारी है कि उसमें कसरत राय वालों के अलावा वह लोग भी, जिनकी तादाद शिड्यूल्ड कास्ट्स में कम है, चुनाव में जा सकेंगे और उनसे लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इसलिए मैं इस एतराज का तो यों जवाब देता हूं।

सारी शिड्यूल्ड कास्टस, जितनी भी शिड्यूल्ड कास्ट्स गिनाई गई हैं सबका लाभ ध्यान में रखना चाहिये, सिर्फ कसरत राय वालों का नहीं। एक बात मैं और कहना चाहता हूं। वह यह है कि यह रिजर्वेशन जो आज तक हमने दिया है उसका एक असर यह भी पड़ता जाता है और शिड्यूल्ड कास्टस वाले अपना एक अलग सा ग्रूप बनाते जा रहे हैं और अगर यह थोड़े दिनों और जारी रहा तो शिड्यूल्ड कास्ट के लीडर वही करेंगे कि जो मुस्लिम लीग ने किया था। उनकी मिनिस्ट्री मिलना, असेम्बली की सदस्यता मिलना तभी तक मुमकिन है जब तक उनका सेपरेट रिजर्वैशन सीट्स का जारी है। ऐसी दशा में देश से यह सेपरेटिस्ट टेडेंसी दूर नहीं हो सकती है। मैं तो समझता हूं कि किसी भी प्रकार का रिजर्वेशन नहीं होना चाहिये।

[श्री महावीर त्यागी]

हमारे यू.पी. के अन्दर अभी पंचायतों के सिलसिले में चुनाव हुआ। हाउस को यह सुनकर ताज्जुब होगा कि इन पंचायतों के सरपंचों का चुनाव मुश्तरका था। हमारे पूर्वी जिलों में आधी से ज्यादा ऐसी पंचायतें हैं जहां पर कि शिड्यूल्ड कास्ट्स का आदमी सरपंच चुनाव गया। यह तो गांव की पंचायतों का गवर्नमेंट की मार्फत चुनाव हुआ और शिड्यूल्ड कास्ट्स वाले सरपंच चुने गये। यह ख्याल गलत है कि पालिटिक्स के अन्दर माइनोरिटी वाले कोई फायदा नहीं उठाते। अगर मैं किसी माइनोरिटी का लीडर होता तो मैं आपको यह प्रत्यक्ष दिखा सकता था कि सौ आदमियों के हाउस में मेरी पार्टी के बीस को छोड़कर बाकी 80 आदमियों में भी तो दो या तीन पार्टी होंगी, मैं उनमें से एक पार्टी को 20 वोट देकर उसे जिता देता और स्वयं प्रधान मंत्री बन जाता। मिनिस्ट्री बनाने के लिए, पावर में आने के लिए, माइनोरिटी अपना बारगेन करती है और दुनिया में इसी तरह से माइनोरिटी चलती है। मैजोरिटी में अलग अलग ग्रूप होते हैं, और उनमें माइनोरिटी इधर उधार से जाकर हमेशा लाभ उठाती है। तो इसलिए यह कहना कि माइनोरिटी वाला ग्रूप लाभ नहीं उठाता, यह गलत है। इसी तरह से आम चुनावों में भी माइनोरिटी वाले इसमें पूरा हिस्सा नहीं ले सकते। मेरा तो अपना ख्याल यह था कि कोई रिजर्वेशन नहीं रखना चाहिए था। बल्कि इस रिजर्वेशन के रखने के बाद मुझे यह ख्याल आता है कि बेचारे सिखों के साथ थोड़ी सी ज्यादती हुई। वह लोग भी बहुत दिनों से अलग रहते आये हैं, तो उनके इस अधिकार को खत्म कर दिया और इसी तरह ईसाईयों का भी यह अधिकार खत्म कर दिया और इसी तरह ईसाईयों का भी यह अधिकार खत्म कर दिया। और जितनी भी दूसरी माइनोरिटीज हैं वे बड़ी उदारता के साथ इस बात के लिए तैयार हो गई कि कि वह अपना यह अधिकार खत्म हो जाने दें। फिर यह थोड़ा-सा रिजर्वेशन क्यों रहने दिया? मेरा तो अपना विश्वास है कि रिजर्वेशन रखने के बिना भी शिड्यूल्ड कास्ट्स के लोग अपने बराबर की तादाद में आ सकते हैं। और दस वर्ष बाद आप देख लीजियेगा कि इससे भी ज्यादा तादाद में वह लोग आयेंगे। मैं यह फिर से दुहरा देना चाहता हूं कि चुनावों में कास्ट में वह लोग आयेंगे। मैं यह फिर से दुहरा देना चाहता हूं कि चुनावों में कास्ट का विचार न करके उम्मीदवार के व्यक्तित्व का विचार करना चाहिये, किसने देश की ज्यादा सेवा की है और कौन ज्यादा नुमायन्दगी अच्छी कर सकता है। बदकिस्मती से आज भी देश में अंग्रेजी पढ़े हुए आदमी कामयाब होते हैं, रुपये वाले कामयाब होते हैं। बदकिस्मती तो यह है कि ब्राह्मणों में जो बेचारे शेड्यूल्ड कास्ट्स से भी ज्यादा गरीब हैं, उनकी तरफ कोई सोचता नहीं हैं। इसी तरह क्षत्री, राजपूत और सभी कौमों में कुछ लोग और परिवार ऐसे हैं जिनको गांव में रहने की जगह से पढ़ने लिखने और रुपये कमाने का अवसर नहीं मिला। उनके लिए इस विधान में कोई गुंजायश नहीं है। वह गरीब और अनपढ़

है। न उसको नुमावन्दगी मिल सकती है और न मिनिस्ट्री मिल सकती है। बदकिस्मती से हाल कुछ ऐसा है। कि जो अंग्रेजी पढ़े लिखे हैं और अंग्रेजीपन अपनाये हुए हैं वही हिन्दुस्तान के नुमायन्दा हैं। वही हिन्दुतसन की नुमायन्दगी में आगे आ सकते हैं। मुझे इसका बड़ा दु:ख है कि इल्लिट्रेट के लिए देश में कोई गुंजाइश नहीं है। मेरा कहना यह है कि जब तक देश के इन्तजाम की बागडोर अंग्रेजी न जानने वाले बेपढ़ों के हाथ में न आवेगी और सरकारी मुलाजिमों में ज्यादा तादाद बेपढ़े आदमियों की नहीं आयेगी हिन्दुस्तान असली स्वराज्य का आनन्द नहीं ले सकेगा। यह पढ़े लिखे आदमी डिमौरेलाइज्ड होते हैं और आज के दौर-दौरे में हिन्दुस्तान का इन्तजाम ऐसे लोगों के हाथ में है और जो अंग्रेजी तालीम और सभ्यता में रंगे हुए हैं और डिमौरेलाइज्ड हो गये हैं। जैसे दूसरी जातियों के लोग, इसी तरह शेड्यूल्ड कास्ट्स के जो असली मौरल रिप्रेजेंटेटिव्स हैं उनके लिए अंग्रेजी राज के हट जाने पर भी गुंजाइश नहीं है। शेड्यूल्ड कास्ट्स में से डॉक्टर अम्बेडकर जैसे लोग आयेंगे कि जो हर तरह से काबिल हो गये हैं और सारी अंग्रेजी बातों को जानते हैं। डॉक्टर अम्बेडकर कहां के शेड्यूल्ड कास्ट हैं? जो पंडितों के पंडित हैं वह तो शेड्यूल्ड कास्टस का फायदा उठाते हैं और डॉ. अम्बेडकर तो देश के किसी कोने से अपनी निजी ताकत से आ सकते हैं। इसलिये जैसा मैंने कहा, मुझे रिजर्वेशन से कोई लाभ नहीं दीखता और उससे भी असली नुमायन्दे नहीं आ पाते। वह तो तभी हो जायेगा जब हम अपनी जहनियत को बदल दें और पुराने हिन्दुस्तानी तरीके पर लोगों का चुनाव करें, ईमानदारी, काबलियत, जहनियत, जनसेवा और अक्ल के आधार पर चुनाव करें। हम तो अंग्रेजी के चक्कर में इतना फंस गये हैं कि जिसने अंग्रेजी के चार अखर पढ़ लिए, वही देश की नुमायन्दगी का हकदार हो जाता है। इतना कहने के बाद में समझता हूं कि यह अच्छा है। दस वर्ष तक उनको और अवसर मिलेगा, उसके बाद यह चला जायेगा और दस वर्ष बाद चुनाव कतई मुश्तरका रहेगा।

***अध्यक्ष:** यह उन अनुच्छेदों में से एक अनुच्छेद है जिनमें पिछले सत्र में किये गये निर्णय सन्निहित हैं। मेरे विचार से इस पर अधिक वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैंने बोलने के इच्छुक सदस्यों को कभी रोका नहीं है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 294 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाय:

'294 (1) Seats shall be reserved for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes, except the Scheduled Tribes in the tribal areas of Assam, in the Legislative Assebly of every State for time being specified in Part I or Part III of the first Schedule.

Reservation of seats for minorities in the Legislative Assemblies of the States.

[अध्यक्ष]

(2) Seats shall be reserved also for the autonomous districts in the Legislative Assembly of the State of Assam.

(3) The number of seats reserved for the Scheduled Castes or Scheduled Tribes in the Legislative Assembly of any State under clause (1) of this article shall bear, as nearly as may be, the same proportion to the total number of seats in the Assembly as the population of the Scheduled Castes in the State or of the Scheduled Tribes in the State or part of the State, as the case may be, in respect of which seats are so reserved bears to the total population of the State.

(4) The number of seats reserved for an autonomous district in the Legislative Assembly of the State of Assam shall bear to the total number of seats in that Assembly a proportion not less than the population of the district bears to the total population of the State.

(5) The constituencies for the seats reserved for any autonomous district of the State of Assam shall not comprise any area outside that district except in the case of the constituency comprising the cantonment and the municipality of Shillong.

(6) No person who is not a member of scheduled tribe of any autonomous district of the State of Assam shall be eligible for election to the Legislative Assembly of the State from any constituency of that district except from the constituency comprising the cantonment and municipality of Shillong.

राज्यों की विधान सभाओं में अल्पसंख्यकों के लिये स्थानों का रक्षण।

[(1) इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में उल्लिखित, प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जातियों के लिये तथा आसाम के आदिमजाति क्षेत्रों में की अनुसूचित आदिम-जातियों को छोड़कर अन्य आदिमजातियों के लिये स्थान रक्षित रहेंगे।

(2) आसाम राज्य की विधान सभा में स्वायत्तशासी जिलों के लिये भी स्थान रक्षित रहेंगे।

(3) खंड (1) के अधीन किसी राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों के लिये रक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात उस सभा में के स्थानों की समस्त संख्या से यथाशक्य वही होगी जो यथास्थिति उस राज्य में की अनुसूचित जातियों की, अथवा उस राज्य में की या उस राज्य के भाग में की अनुसूचित आदिमजातियों की, जिनके समबन्ध में स्थान इस प्रकार रक्षित हैं, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।

(4) आसाम राज्य की विधान सभा में किसी स्वायत्तशासी जिले के लिये रक्षित स्थानों की संख्या का उस सभा में स्थानों की समस्त संख्या से अनुपात उस अनुपात से कम न होगा जो कि उस जिले की जनसंख्या का उस राज्य की समस्त जनसंख्या से है।

(5) शिलौंग के कटक और नगर क्षेत्र से मिलकर बने हुए निर्वाचन क्षेत्र को छोड़कर आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले के लिये रक्षित स्थानों के निर्वाचन क्षेत्रों में उस जिले से बाहर का कोई क्षेत्र समाविष्ट न होगा।

(6) कोई व्यक्ति जो आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले में की अनुसूचित आदिमजाति का सदस्य नहीं है, उस राज्य की विधान सभा के लिये शिलौंग के कटक और नगर-क्षेत्र से मिलकर बने हुए निर्वाचन क्षेत्र को छोड़कर उस जिले के किसी निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होने का पात्र न होगा।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 294, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 295

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 295 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 295 संविधान का अंग बना लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 295-(क)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 295 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाय:—

'295-A. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, the Provisions of this Constitution relating to the reservation of seats for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes either in the House of the people or in the Legislative Assembly of a State shall cease to have effect on the expiration of a period of ten years from the commencement of this Constitution.

Reservation of seats for Scheduled Castes and Scheduled Tribes to cease to be in force after the expiration of ten years from the commencement of this Constitution.

[295-(क) इस भाग के पूर्ववर्त्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी लोक सभा में और राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थानों के रक्षण सम्बन्धी इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर प्रभावी न रहेंगे।]' "

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थानों का रक्षण इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष के पश्चात् न रहेगा।

यह अनुच्छेद भी इस सभा के निर्णय के अनुसार ही उपस्थित किया जा रहा है। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में मुछ संशोधन हैं। तीन सदस्यों ने संशोधन संख्या 39 की सूचना दी है।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"उपरोक्त संशोधन 38 में प्रस्तावित अनुच्छेद 295-(क) में से 'and the Scheduled Tribes (अनुसूचित आदिम-जातियों)' शब्द निकाल दिये जायें।"

मेरे संशोधन का प्रभाव यह होगा कि केन्द्र में और प्रान्तों में अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थान रक्षण सम्बन्धी उपबन्ध इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात् भी अप्रभावी न होंगे। इस नवीन अनुच्छेद 295-(क) का उद्देश्य यह है कि इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात् अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षित न रखे जायें। अपने संशोधन द्वारा मैंने यह उपबन्धित करने का प्रयास किया है कि आदिम जातियों के लिये स्थानों के रक्षण की कालावधि केवल दस वर्ष न रखी जाये।

संविधान सभा के पिछले सत्र में माननीय सरदार पटेल के एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय किया गया था कि अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यकों के लिये विधान मंडलों में रक्षित स्थान केवल दस वर्ष के लिये रखे जायें। इस प्रस्ताव में मुसलमानों, सिक्खों, अनुसूचित जातियों और भारतीय ईसाइसों के समुदायों का उल्लेख है। उस समय यह निश्चय किया गया था कि स्वतंत्र भारत में तथा वर्तमान स्थिति को भी देखते हुए धार्मिक समुदायों के लिये स्थान रक्षित न किये जाने चाहिये। इस कारण अनुसूचित आदिम जातियों के लिये जो स्थान रक्षित किये गये थे उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। श्रीमान, सरदार पटेल ने 11 मई 1949 को इस सभा के सामने राजनैतिक रक्षा कवचों के सम्बन्ध में मंत्रणा-समिति का जो प्रतिवेदन उपस्थित किया था उसमें स्पष्टत: यह उल्लिखित है कि अल्पसंख्यक-मंत्रणा-समिति द्वारा पारित प्रस्ताव में की किसी बात का प्रभाव उत्तर-पूर्वी सीमावर्ती (आसाम) आदिम-जाति तथा अपवर्जित क्षेत्र उपसमिति और अपवर्जित तथा अंशत: अपवर्जित क्षेत्र (आसाम के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र) उपसमिति की विधान-मंडलों में आदिम-जातियों के सम्बन्ध में की हुई सिफारिशों पर नहीं पड़ेगा। उसमें यह भी निर्धारित किया गया था कि विधान-मंडलों में आंग्ल-भारतीयों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध रखा गया है उस पर इस प्रस्ताव का कोई प्रभाव न पड़ेगा।

श्रीमान, आदिम-जाति और अपवर्जित क्षेत्रों की मंत्रणा समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि आदिम-जातियों के लिये किसी प्रकार की रक्षा की व्यवस्था की जाये किन्तु जहां तक मुझे स्मरण है कि इस व्यवस्था की अवधि के सम्बन्ध में कोई सीमा निश्चित नहीं की गई थी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मसौदा समिति ने अपने हाल के संशोधन में अथवा अपने नवीन अनुच्छेद 295-(क) में एक काल सीमा निश्चित की है। हम एक नवीन अनुच्छेद 215-(ख) को पारित कर चुके हैं जिसमें संविधान में मसौदे की अनुसूची 5 और अनुसूची 6 के उपबन्धों के अधीन किसी राज्य के आदिम-जाति क्षेत्रों के प्रशासन और नियंत्रण के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 215 (ख) का यह उपबन्ध संविधान का स्थाई अंग है और वह दस वर्ष के पश्चात् भी अप्रभावी न होगा।

इसके अतिरिक्त संविधान के मसौदे की पांचवीं और छठी अनुसूचियों में एक आदिम-जाति मंत्रणा समिति के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं जो राज्यों की सरकारों को सभी राज्यों की आदिम-जातियों के लोगों को समुन्नत बनाने तथा उनके प्रशासन के सम्बन्ध में परामर्श देगी। इस आदिम-जाति मंत्रणा समिति के तीन-चौथाई सदस्य राज्यों के विधान मंडलों में आदिम-जातियों के निर्वाचित प्रतिनिधियों में से होंगें। यदि आदिम जातियों के लिए स्थान रक्षित न किये गये तो आप इस संविधान के उपबन्धों को, कम से कम उन उपबन्धों को जो संविधान के मसौदे की अनुसूची 5 में दिये हुए हैं किस प्रकार प्रयोग में लायेंगे? यदि स्थान रक्षित न किये गये तो मुझे विश्वास है कि आदिम-जातियों का सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा राजनैतिक स्तर गिरा हुआ होने के कारण उनमें से बहुत कम लोग विधान सभा के लिये निर्वाचित हो सकेंगे।

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

मेरी यह धारणा है कि दस वर्ष के पश्चात् भी हम आदिम जातियों को ऊंचा न उठा सकेंगे। मेरे विचार से अधिकांश आदिम-जातियों का शिक्षा का तथा सुखसमृद्धि का स्तर अधिकांश अनुसूचित जातियों से भी गिरा हुआ है। यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि इस सभा में आदिम-जातियों को कितना प्रतिनिधित्व है और अनुसूचित जातियों का कितना प्रतिनिधित्व है। कुछ लोगों ने तो यह भी आपत्ति की है कि जहां तक आदिम-जातियों का सम्बन्ध है यह सभा उनकी प्रतिनिधि सभा नहीं है। हाल में मेरे पास उड़ीसा राज्यों की आदिम जातियों के लोगों के इस आशय के पत्र आये कि इस सभा में उनके प्रतिनिधियों को उनके लिये किसी प्रकार का संविधान बनाने का अधिकार नहीं है और यदि उन्होंने कोई संविधान बनाया तो वह उनको मान्य न होगा। उन्हें यह भय है कि उनके प्रति न्याय नहीं होगा और इसी कारण वे यह कहते हैं। जब तक हम उनके बीच में जाकर स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में उनकी भावनाओं को न समझें तब तक हम इस भय को दूर नहीं कर सकते। इसलिये दस वर्ष के पश्चात् आदिम-जातियों के लोगों को स्थानों के रक्षण को समाप्त करने के पूर्व हमें पर्याप्त विचार कर लेना चाहिये। मेरी यह धारणा है कि दस वर्ष में आदिमजातियों के लोग उस सामाजिक स्तर को प्राप्त न कर सकेंगे जो अन्य लोगों को प्राप्त है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यह काल-सीमा न रखी जाये। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति इस संशोधन पर यथोचित विचार करेगी।

***अध्यक्ष:** अन्य संशोधनों पर हम कल विचार करेंगे।

आज सभा स्थगित होने के पूर्व मैं उसके सम्मुख एक विषय की चर्चा करना चाहता हूं, यद्यपि साधारणतया इस सभा में इस प्रथा का अनुसरण नहीं किया जाता। अभी अभी मुझे डॉ. एस. राधाकृष्णन् से त्यागपत्र प्राप्त हुआ है। वे हमारे राजदूत होकर मास्को जा रहे हैं। मुझे विश्वास है कि इस सभा में उन्होंने जो कुछ कार्य किया है उसकी सभा सराहना करेगी। भविष्य में उनकी अनुपस्थिति हमें खलेगी। यद्यपि हमें हानि होने जा रही है किन्तु उनकी अन्यत्र नियुक्ति से देश को लाभ होगा। वे एक ख्यातनामा दार्शनिक हैं और उन्होंने एक लेखक के नाते भी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। मुझे आशा है और विश्वास भी है कि एक ऐसे देश में उनकी नियुक्ति होने से जिससे हम बहुत अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं हमारे उद्देश्य की पूर्ति होगी और उनसे देश को बहुत सहायता मिलेगी।

अपनी ओर से सभा की ओर से मैं डॉ. राधाकृष्णन के प्रति सद्भावना प्रकट करता हूं और यह चाहता हूं कि वे अपने कार्य में सफल हों।

***प्रो. एस. राधाकृष्णन्** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय तथा सहकारी सदस्यगण, आपने अभी जो सद्भावना प्रकट की है उसके लिये मैं आप को बहुत धन्यवाद देता हूं। मुझे इसका खेद है कि मैं इस सभा की कई बैठकों में उपस्थित नहीं हो सका और उसके विचार-विमर्श में यथोचित भाग नहीं ले सका।

इसका कारण यह है कि मैं ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ था जिस पर मेरा कुछ भी नियंत्रण न था। मुझे आशा है कि यह सभा की समझ में आ गया होगा।

हमने इसका निश्चय कर लिया है कि हमारा लक्ष्य क्या है। यदि हम एकनिष्ठ होकर उसे शीघ्रता से प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करेंगे तो यह निश्चित है कि राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से हमारा भविष्य उज्जवल होगा। सब कुछ इस पर निर्भर है कि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति किस प्रकार करते हैं। किसी स्थिति विशेष के परिणामस्वरूप ही राजनीति उत्पन्न होती है और राजनीति के कारण कोई स्थिति उत्पन्न नहीं होती। संसार में असंतोषजनक आर्थिक स्थिति के कारण ही राजनैतिक उथलपुथल होते हैं। जहां कहीं लोगों को यथोचित जीवन-स्तर प्राप्त होता है वहां राजनैतिक स्थिरता भी दिखाई देता है। यदि आर्थिक अस्थिरता रहती है तो उथलपुथल होते हैं। मुझे आशा है कि हमारे विश्वासपात्र नेता जिनके हाथों में इस समय शासन की बागडोर है हमारे संविधान के मसौदे में निर्धारित दायित्वों को पूरा करेंगे और यह कहने का अवसर न देंगे कि सामाजिक न्याय करने में विलम्ब करके उन्होंने लोगों को उससे वंचित कर दिया। अभी हमने हरिजनों, उनके अधिकारों आदि के सम्बन्ध में एक भावनापूर्ण वक्तव्य सुना। हमारा लक्ष्य सामाजिक लोकतंत्र है। जिसमें जाति पाति के तथा गरीब अमीर के भेद के लिये स्थान ही नहीं है। अपने संविधान में हमने जो घोषणाएं की हैं उन्हें हम जिस प्रकार कार्यान्वित करेंगे उसी से संसार के लोग हमारे सम्बन्ध में अपनी धारणा निश्चित करेंगे।

श्रीमान, आपने मास्को में मेरी नियुक्ति की चर्चा की है। हम महात्मा गांधी के महान् नेतृत्व में कार्य कर रहे हैं। राजनैतिक संघर्ष को समाप्त करने के दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि ऐसा प्रहार किया जाये कि विपक्षी पराजित हो जाये, नष्ट हो जाये और आप का प्रभुत्व स्थापित हो जाये। यह शक्तिप्रयोग का उपाय है। एक उपाय और भी है। वह यह है कि यह समझा जाये कि विपक्षी अपने विश्वास पर क्यों अटल है और उसके क्या विचार हैं और इसके पश्चात् समझौते के लिये मार्ग निकालने के लिये प्रयास किया जाये। यह ज्ञान का उपाय कहा जाता है। इस देश में हम लोगों ने ज्ञान का उपाय अपनाने का संकल्प किया है। सोवियत रूस में मैं उस देश की नीति को समझने तथा उसका निर्वाचन करने और उन्हें अपनी नीति को समझाने तथा उसका निर्वाचन करने का प्रयास करूंगा। समझौते का मार्ग प्रशस्त करने में मेरा यही कार्य होगा। अध्यक्ष महोदय, आप की तथा इस सभा के अन्य सदस्यों की सद्भावना से मुझे अपने कार्य में अग्रसर होने के लिये बहुत शक्ति प्राप्त हुई है।

***अध्यक्ष:** सभा कल प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार तारीख 25 अगस्त, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.18.49
320

अंक 9
संख्या 18

बृहस्पतिवार
25 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[नये अनुच्छेद 295-क पर विचार] 1029-1061

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 25 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

नया अनुच्छेद 295क—*(जारी)*

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 295-क पर संशोधनों को लेंगे।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय निवेदन करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided the people for whom seats in the Legislatures have been reserved are brought to the level of other advanced classes of people educationally, socially and economically.' "

[पर जिन लोगों के लिये विधान-मंडल में स्थान रक्षित किये गये हैं, उन्हें शैक्षणिक, सामाजिक तथा आर्थिक रूप में अन्य उन्नत जनवर्गों के स्तर पर लाया जायेगा।]

इस संशोधन को पेश करने में मेरी मंशा रक्षण की कालावधि को बढ़ाने का नहीं है, पर मेरी यह मंशा है कि सरकार वास्तव में इस बात का ध्यान रखे कि 10 वर्ष की अवधि में वे लोग, जिनके लिये स्थान रक्षित किये गये हैं, अन्य उन्नत वर्गों के स्तर पर ले आये जायें। इस समय यह स्थिति है कि विविध प्रान्तों में हरिजन उद्धार के भार-साधक मंत्री हैं, पर केन्द्र में ऐसा कोई मंत्रालय नहीं है, और मैं सरकार से प्रार्थना करूंगा कि वह उस प्रकार का एक मंत्रालय बना दे और यह देखे कि उस मंत्रालय का भार-साधक एक हरिजन हो और दस वर्ष

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेज़ी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एस. नागप्पा]

के लिये एक योजना बनाई जाये, जिससे कि इन लोगों को शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक रूप में अन्य उन्नत लोगों के स्तर पर ले आया जाये। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये, मैं केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना करूंगा कि वह अपने राजस्व का पांच प्रतिशत प्रांतीय सरकारों को अनुदान देने के लिये अलग रखे दे, जैसा कि वह ग्राम जल-योजना के मामले में अथवा ग्राम्य क्षेत्रों को चिकित्सा-सहायता के मामले में कर रही है। और भी, इन लोगों को अन्य लोगों के स्तर पर लाने के लिये हमारे पास कुछ सुनिश्चित योजनायें होनी चाहियें। जब तक ऐसी योजनायें बनकर क्रियान्वित नहीं होतीं, तब तक मैं नहीं समझता कि इन पददलित लोगों को दस वर्ष की छोटी सी कालावधि में अन्य उन्नत जातियों के स्तर पर लाना सम्भव हो सकेगा।

हरिजन आन्दोलन 1932 में हमारे सम्मान्य नेता महात्मा जी के आशीर्वाद तथा सक्रिय सहयोग से चला था इतने दिन तक हमने इसे चलाया और इसे हम जनता के सहयोग से और अनवरत प्रचार द्वारा चलाते रहे हैं, जिससे कि हरिजनों के साथ भी दूसरों के समान ही व्यवहार हो। निस्संदेह, श्रीमान, इससे उन लोगों के मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हो गया है, जो आधुनिक हैं, जो सभ्य हैं, जो शिक्षित हैं, जो बात को समझ सकते हैं, जो समय के साथ चल सकते हैं, पर इससे उन लोगों में कोई परिवर्तन नहीं हो सका है, जो शिक्षित नहीं हैं, जो अब भी रूढ़िवादी हैं, जो पुरानी बातों में विश्वास करते हैं, विशेषत: ग्रामों में रहने वाले लोगों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मैं केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के प्रति अवश्य कृतज्ञ हूं कि उन्होंने इस संविधान में एक अनुच्छेद रख दिया है तथा विविधि प्रांतों में समुचित विधान भी बनाये गये हैं जिससे कि अस्पृश्यता एक अपराध बन जाये, जिस पर पुलिस भी कार्यवाही कर सके, पर फिर भी मुझे पता लगा है कि इस पर उसी भावना से अमल नहीं होता, जिस भावना से कि यह बनाया गया है। श्रीमान, हलवे का आनन्द तो खाने में ही है। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि हम जो कुछ अधिनियम बनायें, इसका प्रत्येक शब्द, इसका प्रत्येक अक्षर, इसकी भावना सहित कार्य रूप में परिणित हो, शहरों में ही नहीं, नगरों में ही नहीं, वरन् गावों में भी। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये केन्द्रीय राजस्व का कम से कम 5 प्रतिशत अलग रख दिया जाये; केन्द्र में इन लोगों का ध्यान रखने के लिये एक मंत्रालय हो, जो उस कार्य का विनियमन करे, जो प्रांतों और राज्यों में हो रहा है।

एक और चीज, जिससे बहुत हद तक ये लोग उन्नत वर्गों के स्तर तक लाये जा सकते हैं, शिक्षा है। इस समय हमारे देश में सबसे अधिक निरक्षरता है। आखिर साक्षर जनता 12 से 15 प्रतिशत तक हो सकती है। यदि आप केवल हरिजनों को लें, तो मेरे विचार में साक्षर जनता एक या दो प्रतिशत होगी। प्रतिवर्ष हमें यह देखना चाहिये कि कितने प्रतिशत लोग साक्षर बनाये गये और हमें शिक्षा प्रचार आंदोलन को बहुत प्रोत्साहन देना चाहिये। शिक्षा सर्वतोमुखी उन्नति की चाबी है।

जब तक वे शिक्षित नहीं होंगे, तब तक आप उन्हें अन्य उन्नत लोगों के स्तर पर शायद न ला सकें। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इन लोगों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनविार्य कर दें। मैं जानता हूं कि इस देश में बंजर भूमि बहुत पड़ी है, पर दुर्भाग्य से इन लोगों को उसके बोने की अनुमति नहीं मिलती। मैं सरकार से, विशेषत: कृषि तथा खाद्यान्न मंत्रालय से, प्रार्थना करता हूं कि वे एक सुनिश्चित योजना बनायें। उन्हें चाहिये कि वे इन लोगों को ये भूमियां बांटते जायें, जिससे कि अधिक अन्न उपजे और जिससे कि इन लोगों की आर्थिक स्थिति ऊंची हो।

इन लोगों का आर्थिक उत्थान करने के लिये समस्त देश में बहुधंधी सहकारी समितियों का संगठन करना चाहिये और आपको यह देखना चाहिये कि प्रत्येक समिति की एक सुनिश्चित योजना हो और वह देखे कि एक विशेष काल में एक विशेष कार्य हो जाये। हम देखते हैं कि श्रमिकों में हड़ताल करने की मनोवृत्ति फैल रही है। पूंजीपतियों में लाभाकांक्षा बढ़ती जाती है। श्रमिकों की हड़ताल करने की मनोवृत्ति तथा पूंजीपतियों में लाभाकांक्षा के परिणामस्वरूप देश को दु:ख भोगना पड़ रहा है, क्योंकि उत्पादन कम हो रहा है। मैं इसके लिये एक हल सुझाना चाहता हूं; कि श्रमिक को निर्मातृ का स्वामी बना दीजिये। आप पूछ सकते हैं, उसे स्वामी कैसे बनाया जाये? यह तो बहुत सरल बात है। उदाहरण के लिए आप यह मान लीजिये कि एक श्रमिक दो रुपये प्रति दिन कमाता है। मान लीजिये एक मिल में 40 लाख रुपये लगा हुआ है, उसमें 4,000 व्यक्ति काम कर रहे हैं। यदि आप प्रत्येक श्रमिक की कमाई में से दो आना प्रति रुपया काटना आरंभ कर दें, तो आप प्रतिदिन एक श्रमिक के नाम से चार आने बचायेंगे और 4,000 लोगों के लिये 1000 रुपये हो जायेंगे, कुछ समय में आप कारखाने में लगी हुई पूंजी एकत्र कर लेंगे। आप वह रुपया पूंजीपति को दे दीजिये और फिर श्रमिकों को कहिये, "लीजिये, आज से यह आपकी हुई; जाओ और जो मर्जी हो वही बनाओ।" पूंजीपति को उसका रुपये मिल जायेगा और वह उसे किसी और उद्योग में लगा सकता है। देश का औद्योगिक विकास हो जायेगा। मैं माननीय श्रम मंत्री से प्रार्थना करता हूं कि इसे ध्यान से सुनें और और देखें कि यह काम शीघ्र हो जाये। यदि माननीय श्रम मंत्री के दिमाग में यह बात समा जाये तो वे ऐसा कर सकते हैं और उत्पादन अब से कई गुना हो सकता है। यदि वे चाहें तो देश में कमी नहीं रहेगी। इस लाभांश वितरण योजना आदि से कोई लाभ नहीं है। आपको श्रमिक के दिल में यह भावना पैदा करनी होगी कि यह उसी का कारखाना है। यदि आप वह भावना उत्पन्न कर देंगे तो वह मन लगाकर काम करेगा। इतनी सी बात कहने से आपको 50 प्रतिशत लाभ होगा, बाकी व्यर्थ है।

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि आप अच्छा सुझाव दे रहे हैं, जिस पर यथोचित विचार किया जायेगा। पर जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, ये सुझाव अप्रासंगिक हैं।

श्री एस. नागप्पा: निस्संदेह, मेरे विचार में यही सर्वोत्तम उपाय है, जिससे कि हम इन लोगों की आर्थिक स्थिति को अन्य लोगों के स्तर पर ला सकते हैं।

[श्री एस. नागप्पा]

मेरा संशोधन है कि यह रक्षण दस वर्ष के लिये रहना चाहिये, यदि सरकार इस पर वास्तव में तुल जाये और देखे कि ये लोग उन्नत वर्गों के स्तर पर लाये जायें। मैं केवल शोर ही नहीं कर रहा हूं; मैं रचनात्मक सुझाव देना चाहता हूं और सुझाव देने के लिये ही मुझे ये बातें विस्तार से कहनी पड़ रही है। आपके पास एक सुनिश्चित योजना होनी चाहिये। आपको इस जाति से कम से कम 100 नवयुवक ले लेने चाहिये और उन्हें विशेषज्ञ प्रौद्योगिक बनाने के लिये विदेशों में भेजना चाहिये, जैसा कि वेविन योजना अथवा अन्य किसी योजना के अधीन किया गया था। आपको उन्हें विदेशों में भेजकर प्रौद्योगिक विशेषज्ञ बनाना चाहिये। प्रत्येक वर्ष के लिये एक सुनिश्चित संख्या या सुनिश्चित योजना होनी चाहिये। यह कहना कि सब कुछ हो जायेगा और सब बातों को अनिश्चित छोड़ देना व्यर्थ है। आपको एक सुनिश्चित योजना बनाकर कार्य आरंभ करना चाहिये। मुझे पता लगा है कि एक छात्रवृत्ति मंडल है; पर मुझे आश्चर्य हुआ कि उसे जो राशि दी गई है, वह बहुत सीमित है, यदि छात्रवृत्ति के लिये आवेदन-पत्रों की संख्या पर विचार किया जाता है। लगभग साठ-सत्तर प्रतिशत आवेदन-पत्रों को अस्वीकार करना पड़ा, क्योंकि उसके पास पर्याप्त कोष नहीं है। मैं सरकार से प्रार्थना करता हूं कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि इस छात्रवृत्ति मंडल को जो भी आवेदन-पत्र भेजा आये, वह स्वीकृत हो जाये और जो विद्यार्थी सरकारी सहायता मांगे, उसे वह मिल जाये तथा वह भी समय पर और उसे सरकार की सद्भावना से अपनी योग्यतानुसार सर्वोत्तम लाभ उठाने का अवसर मिलना चाहिये।

जब वे सब आवश्यक अर्हताओं से सम्पन्न हैं, तब भी उनके लिये उत्तरदायी स्थानों में नियुक्त होना एक समस्या है, क्योंकि उन्हें बहुत सी कठिनाइयों को पार करना होता है। लोक सेवा आयोग भी इन लोगों के मार्ग में रोड़ा ही है। इन लोगों के हितों का संरक्षण करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तीय सेवा आयोग में कम से कम एक सदस्य इन लोगों का होना चाहिये। केन्द्रीय आयोग में भी एक व्यक्ति होना चाहिये। केवल तभी ये लोग आगे बढ़ सकेंगे।

दूसरी बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि ये लोग सैनिक कार्य के लिये बहुत दक्ष हाते हैं। वे बहुत साहसी होते हैं; वे कितना ही शारीरिक परिश्रम कर सकते हैं। इन लोगों को सेना में बहुत बड़ी संख्या में भरती किया जाना चाहिये—केवल सिपाहियों के रूप में ही नहीं, वरन् उत्तरदायी पदों पर भी नियुक्त करना चाहिये। पांच वर्षों के अन्त में आपको एक आयोग नियुक्त करना चाहिये जो देश में भ्रमण करे तथा विचार करना चाहिये कि इन लोगों ने पांच वर्षों में क्या उन्नति की है और क्या वह उन्नति हमारी योजना के अनुरूप है और यदि प्रगति पर्याप्त नहीं हुई है, तो आगे बढ़ने के लिये और क्या सुझाव दिये जा सकते हैं।

दूसरी अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है। संविधान में हमने यह उपबन्ध किया है कि सबको जाति, विचार तथा रंग धर्म अथवा मलवंश, को ध्यान में न रखते

हुए समान अवसर दिया जाना चाहिये। यह बहुत अच्छा दिखाई देता है, जहां तक पढ़ने का सम्बन्ध है। पर हमें देखना चाहिये कि इसे कार्य रूप में परिणत किया जाये। राज्यपालों, राजदूतों, उच्चायुक्तों, वाणिज्य आयुक्तों आदि कुछ पदों पर नियुक्तियां करते समय आपको इन लोगों के दावों का ध्यान रखना चाहिये। हम दो वर्षों से स्वतंत्र देश हैं, पर मुझे यह देखकर आश्यर्च है कि इन लोगों में से एक भी राज्यपाल नहीं है, एक भी राजदूत नहीं है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाबः सिख): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान। अब रंग पर क्यों जोर दिया जाता है? क्योंकि सारे भारतीय एक ही रंग के हैं।

***श्री एस. नागप्पाः** जहां तक मेरे उत्तर के माननीय मित्रों का सम्बन्ध है, उनका एक रंग हो सकता है, किन्तु हमारा दाक्षिणात्यों का, जो कि भूमध्यदेखा के निकट हैं, अलग रंग है। चाहे उनका रंग काला हो चाहे भूरा। चाहे कोई भी रंग हो, हम भारतीय हैं। आपने यह अच्छा विधान बनाया है कि हम सबको समान अवसर देंगे। इस पर उसी भावना से कार्य करना चाहिये। क्या आप बता सकते हैं कि इस देश में कोई भी परिगणित जाति का व्यक्ति राज्यपाल है? आप तो कटे पर नमक छिड़क रहे हैं। आपने इन लोगों को क्या अवसर दिये हैं? क्या आप कह सकते हैं कि आपने जिन्हें मंत्रिमंडल से सदस्य या अन्य अधिकारी चुना है, वे असफल रहे हैं? वे दूसरों से अधिक कार्य कर रहे हैं। आप उन्हें अकुशल क्यों बताते हैं? आप किसी न किसी प्रकार हमारे दावों को ठुकराना चाहते हैं। आगे से यह बात मत कहिये। कम से कम समय में ग्राम्य जनता को उच्च आर्थिक स्तर पर लाने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि आप उन्हें भूमि दीजिये ओर नियन्त्रित वस्तुओं के अनुज्ञापत्र दीजिये और उन्हें ऐसे देशों में भेजिये, जो वाणिज्य में प्रगतिशील हैं।

दूसरी बात यह है कि आप देश भर में जमीदारी प्रथा को समाप्त कर रहे हैं। यह प्रगति का अच्छा प्रतीक है, पर होगा क्या? यदि जमीदारों को हटा दिया गया, तो छोटे जमीदार पैदा हो जायेंगे अर्थात् वे लोग जिन्हें कृषक समझा जाता है। वे भी भूमि को नहीं जोतते, और जोतता है मजदूर ही। आप उन्हें भूमि का स्वामी बना दीजिये, इन लोगों को भूमि दे दीजिये या सहकारी समितियों को दे दीजिये और उन्हें सरकारी ऋण दीजिये और भूमि बोने के लिये आधुनिक कलें कीजिये.........

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रासः जनरल): यह प्रासंगिक है?

***श्री एस. नागप्पाः** यह हरिजनों के उद्धार के लिये प्रसंगानुकूल है। अतः मैं सरकार से प्रार्थना करूंगा कि वे ध्यान रखें कि हम रक्षण के लिये सहमत हुए हैं.........

***एक माननीय सदस्यः** सरकार तो कोई नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा:** मैं भावी सरकारों को सुझाव दे रहा हूं कि वे अपना काम कैसे चलायें। हम अपनी भावी सरकार के लिये संविधान बना रहे हैं। इसमें यही आशय निहित है। अतः मैं यह प्रार्थना करता हूं कि माननीय सदस्य कृपया मेरे संशोधन को स्वीकार कर लें। आपको अब यह समझ लेना चाहिये कि अब आपके कंधों पर अधिक उत्तरदायित्व है। आपको हमें ऐसे स्तर पर लाना है कि हम यह कह सकें कि हमें रक्षणों की आवश्यकता नहीं है। हम दया की भिक्षा नहीं मांग सकते। इस समय स्थिति यह है कि हम सरकार से प्रतिज्ञा करवा रहे हैं कि वह इस देश तथा इस जाति का भविष्य में उत्थान करेगी। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार कर लें। मैं विशेषत: डॉ. अम्बेडकर से, जो कि इसी जाति के हैं, इसे स्वीकार करने की प्रार्थना करता हूं। श्रीमान, मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं।

(संशोधन संख्या 98 पेश नहीं किया गया।)

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> "संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क में 'ten years' इन शब्दों के पश्चात् 'or longer period if the Parliament so decides at a later date' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

मेरे मित्र श्री नागप्पा ने अपना संशोधन पेश करते हुए सदन को यह बताया कि अनुसूचित जातियों को आज किन कठिनाइयों के अधीन काम करना पड़ रहा है। अब मेरा ख्याल यह है, अपितु सदन से मेरी प्रार्थना यह है कि परामर्श-समिति के प्रतिवेदन के आधार पर दस वर्ष की जो कालावधि रखी है वह कम है। अनुच्छेद 299 से स्पष्ट है कि मस्विदा समिति ने एक अनुच्छेद रखा है, जिसमें साफ लिखा है कि:

> "अल्पसंख्यकों के लिये इस संविधान के अधीन उपबन्धित परित्राणों से सम्बद्ध सब विषयों का अनुसन्धान करना तथा उन परित्राणों पर कार्य होने के सम्बन्ध में ऐसी अन्तराविधियों में, जैसी कि राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा तथा राष्ट्रपति ऐसे सब प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।"

इस खंड के अंतर्गत मैं अनुभव करता हूं कि यह अच्छा होगा, यदि सदन दस वर्ष की अवधि को बढ़ा दे, जब तक कि विशेष पदाधिकारी अल्पसंख्यकों सम्बन्धी मामलों का अनुसंधान न कर ले और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन न दे ले। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को यह मामला संसद के समक्ष रखना होगा। मैं यही चाहता हूं कि दस वर्ष के पश्चात् विशेष पदाधिकारियों का प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष पेश हो और वह उसे संसद के समक्ष पेश करे। संसद सब मामले

पर विचार करके देख लेगी कि क्या अनुसूचित जातियां इतनी उन्नति कर चुकी हैं कि रक्षण हटा दिया जाये। मेरे विचार में यह सदन दस वर्ष की अवधि स्वीकार कर लेगा तो यह उल्टी गंगा बहाना होगा। हमें पता नहीं है कि इस दस वर्ष की अवधि के पश्चात् अनुसूचित जातियों की क्या स्थिति होगी। यदि वे असली उन्नति कर जायें, यदि वे सब प्रकार से प्रगति कर लें, तो हमें आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, उस अवधि के अंत में रक्षण समाप्त हो सकता है। किन्तु यदि उनकी स्थिति अब के समान ही रहे, या और भी बिगड़ जाये, या वे हमारी आशा से कम प्रगति कर सकें, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस अवधि को ओर भी लम्बा किया जाये।

श्रीमान, मैं और भी कई कारणों द्वारा यह दिखा सकता हूं कि इस अवधि को क्यों बढ़ाना चाहिये। हमें स्मरण है कि 1947 में, जबकि परामर्शदात्री समिति का प्रतिवेदन इस सदन में विचार तथा विनिश्चय के लिये आया, तब उसमें कई सिफारिशें की गई थीं। मेरे ख्याल में केन्द्र की भारत सरकार ने या प्रांतीय सरकारों ने उस वाद-विवाद से कुछ नहीं सीखा है, जो यहां उन सिफारिशों पर हुआ था और उन्होंने अनुसूचित जातियों की स्थिति सुधारने के लिये अधिक कुछ नहीं किया है। संविधान सभा (विधायिनी) में भी एक संकल्प पारित हुआ था और अनुसूचित जातियों के प्रति सहानुभूति रखने वाले सब सदस्यों ने उस संकल्प सम्बन्धी वाद-विवाद में भाग लिया था और अंत में आश्वासन दिया गया था कि अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिये सब कुछ किया जायेगा। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या कदम उठाये गये हैं? मैं जानता हूं, सच तो यह है कि केवल यू.पी. में ही, और उससे कुछ कम मद्रास में अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिये कुछ कार्यवाही की गई है। मद्रास ने एक समिति नियुक्त की और दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात्, और विधान-मंडल में इस विषय पर बहस के पश्चात् अभी ही, सरकार ने एक हरिजन उत्थान विभाग आरम्भ किया है और उस विभाग ने इसी वर्ष, थोड़े से रुपये से कार्यारम्भ किया है।

मेरी तो यह प्रार्थना है कि यदि यह सरकार या यह सदन केवल दस ही वर्ष के लिये यह रक्षण रखना चाहता है कि उन्हें हरिजन उद्धार के लिये एक क्रियात्मक योजना बनानी चाहिये, और इस सम्बन्ध में मेरे विचार में यह कुछ अनुचित नहीं होगा, यदि मैं भारत सरकार को यह सुझाव दूं कि उन्हें हरिजन उद्धार के लिये एक पृथक मंत्री और पृथक विभाग बनाना चाहिये, जैसा कि मद्रास प्रान्त में किया गया है। यदि यही नहीं किया जाता और यदि सरकार दिलचस्पी लेकर हरिजनों को यह नहीं दिखाती कि अगले दस वर्षो में उनकी स्थिति निश्चय से सुधर जायेगी, तो इस दस वर्ष की अवधि को स्वीकार करने से अभी कोई लाभ नहीं है। इस सदन में समस्त स्थिति पर विचार करना तथा पहले स्वीकार की कई बातों को बदलना संभव हो सका है, अतः यह गलत बात नहीं होगी यदि, यह सदन हमारी बात सुनकर यह निश्चय कर दे कि इस दस वर्ष की अवधि को बढ़ा दिया जायेगा

[श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

जैसा कि मेरे संशोधन में लिखा है। इन थोड़े से शब्दों के साथ में माननीय डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** डॉक्टर मनमोहन दास।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): एक संशोधन संख्या 105 है।

***अध्यक्ष:** हां, पर हम अभी संख्या 100 पर हैं। हम उसके बाद 105 पर आयेंगे।

***डॉ. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क के अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:–

'unless Parliament by law otherwise provides'."

यदि मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये, तो नया प्रस्थापित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:—

"Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this part, the provisions of this constitution relating to the reservation of seats for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes either in the House of the People or in the Legislative Assembly of a State shall cease to have effect on the expiration of a period of ten years from the commencement of this constitution, unless Parliament by law otherwise provides."

[इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी लोक सभा में और राज्यों की विधान-सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थानों के रक्षण सम्बन्धी इस संविधान के उपबन्ध, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर प्रभावी न रहेंगे, जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे।]

डॉ. अम्बेडकर के प्रस्थापित नये अनुच्छेद में लिखा है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को जो परित्राण दिये गये हैं, वे दस वर्षों की समाप्ति

पर समाप्त हो जायेंगे। किन्तु मेरे संशोधन में यह प्रस्थापना है कि ये सब परित्राण दस वर्ष के अन्त में समाप्त हो जायेंगे। किन्तु यदि संसद, उस समय अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की स्थिति पर विचार करके यह समझे कि स्थान-रक्षण के ये उपबन्ध कुछ और समय के लिये रहने चाहियें, तो ये स्थानरक्षण, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को दिये गये ये राजनैतिक विशेषाधिकार, जारी रहेंगे और समाप्त नहीं होंगे।

किसी व्यक्ति के लिये यह सुखद बात नहीं है कि वह अपने साथियों तथा मित्रों के समक्ष खड़ा होकर अपने तथा अपनी जाति के लिये रियायतों की भीख मांगे, विशेषत: जबकि वह जानता हो कि सदन में बहुमत ऐसी रियायतें देने के पक्ष में नहीं है, विशेषत: जब वह जानता हो कि पद-दलित जाति के लिये रियायतें पाने के उसके प्रयत्नों पर निश्चय ही अकृपापूर्ण, अमैत्रीपूर्ण और असहानुभूतिपूर्ण आलोचनाएं होंगी। पर इतना सब कुछ होते हुए भी जब मैं इस अनुच्छेद की महानता और महत्व पर विचार करता हूं, जब मैं यह विचार करता हूं कि इस अनुच्छेद का अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जातियों के करोड़ों लोगों के भावी राजनैतिक जीवन पर कितना प्रभाव पड़ेगा, तो मैं सोचता हूं कि यदि मैं उन लोगों की शिकायतें आपके समक्ष पेश न करूं, जिनके प्रतिनिधित्व करने का मैं दावा करता हूं, तो मैं उन लोगों के प्रति अपने कर्तव्य में असफल हूंगा।

श्रीमान, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों की समस्या कोई नई नहीं है। अंग्रेज शासकों ने अपने शासन के उत्तर भाग में इस समस्या को मान्यता दी थी और इसके लिये कुछ उपबन्ध किये थे। यह सत्य है कि उन्होंने वे उपबन्ध इसलिये नहीं बनाये कि उन्हें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों से कोई सच्चा प्रेम था, या उन वर्गों का कल्याण चाहते थे, वरन् उन्होंने ये उपबन्ध इसलिये बनाये कि उन्हें उनसे स्वयं कुछ लाभों की आशा थी। भारतीय राष्ट्र सभा ने गांधी जी के कहने पर इस समस्या को पहचाना। महात्मा जी ने देखा कि इस देश में करोड़ों व्यक्ति हजारों वर्षों से अमानुषिक उत्पीड़न के शिकार हैं। यह मनुष्य और मनुष्य के बीच का भेद, यह श्रेणी विभेद महात्मा गांधी के ध्यान से बच नहीं सका। मानवता को दास बनाने की बृहद् व्यवस्था महात्मा जी की आंख से न बच सकी, और उन्होंने भारत के लोगों को कह दिया कि इस देश का विदेशी जूए से निर्वाण इस देश की करोड़ों पद-दलित अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये केवल हास्यास्पद होगा, यदि हम मानवता को दास बनाने वाली इस वृहद् व्यवस्था को समाप्त नहीं कर पाते।

श्रीमान, जब तक महात्मा जी जीवित थे, हम लोगों, हम इस देश के पीड़ित और पद दलित लोगों के लिये वे ऐसे न्यायालय थे जहां हमारी सुनवाई हो जाती थी, केवल हमारी ही नहीं, जो भी पीड़ित या पद-दलित होता था, उसकी उनके पास सुनवाई हो सकती थी। अब भी हम समझते थे कि हमारे साथ कोई अन्याय

[डॉ. मनमोहन दास]

हुआ है, तो हम जानते थे कि यदि हम उनके पास पहुंच सकते, तो हमें न्याय ही नहीं न्याय से अधिक कुछ प्राप्त हो सकता था। हम जानते थे कि यदि हम उन्हें अपने मामले के औचित्य का विश्वास दिला सकते थे, तो हम केवल अपना हक्क ही नहीं, अपितु उससे अधिक भी कुछ पा जायेंगे। श्रीमान्, अब वह सुनवाई का न्यायालय हमारे पास नहीं रहा, और हमारा दुर्भाग्य है कि आज हम देखते हैं कि इनके जाने के पश्चात् इस देश में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के प्रति लोगों का रुख शनैः शनैः कठोर होता जा रहा है। जब तक वे हमारे बीच में थे, तब तक हमें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के साथ कुछ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होता था, किन्तु उनके स्वर्गवास के बाद, हम देखते हैं कि हम प्रतिद्वन्द्वी, राजनैतिक विरोधी, भागीदार, हिस्सा बटाने वाले समझे जाते हैं।

अल्पसंख्यकों सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति ने अपने 8 अगस्त, 1947 के प्रतिवेदन में स्पष्ट कहा था कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये दस वर्ष के लिये स्थान रक्षण होगा। दस वर्ष के पश्चात् इस अवस्था पर पुनः विचार किया जायेगा। इस सूत्र को संविधान सभा ने अगस्त, 1947 के सत्र में स्वीकार कर लिया था। पर अपनी बाद की एक बैठक में 11 मई, 1949 को अल्पसंख्यकों सम्बन्धी परमर्शदात्री समिति ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यकों का स्थान रक्षण समाप्त कर दिया। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थान-रक्षण मौलिक विनिश्चय के अनुसार दस वर्ष के लिये रखा गया है, किन्तु दस वर्षों के अंत में समस्या पर पुनर्विचार के विषय में कुछ नहीं कहा गया। मैं इन शब्दों पर बल देना चाहता हूं कि दस वर्षों के अंत में इस समस्या के पुनर्विचार के प्रश्न के विषय में कुछ नहीं कहा गया। इस समस्या पर पुनर्विचार के विषय में अल्पसंख्यक परामर्श-समिति की मौनता का अर्थ यह लगाया गया है कि परामर्श-समिति दस वर्ष के अंत में पुनर्विचार के विरुद्ध है। अल्पसंख्यक समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि उन्होंने अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों को यह राजनैतिक रियायत इसलिये दी है कि "अनुसूचित जातियों की शिक्षा और लौकिक कल्याण का स्तर भारतीय मापदंड से भी बहुत निम्न है और इसके अतिरिक्त वे (अनुसूचित जातियां) गंभीर समाजिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं"। अतः अल्पसंख्यक समिति के प्रतिवेदन से यह स्पष्ट है कि उनकी अत्यन्त निम्न शैक्षणिक तथा आर्थिक दशा और गम्भीर सामाजिक निर्योग्यताओं के कारण ही अनुसूचित जातियों को स्थान-रक्षण का राजनैतिक परित्राण प्रदान किया गया है।

अब मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से पूछता हूं, क्या उन्हें विश्वास है कि आगामी दस वर्षों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की

आर्थिक और शैक्षणिक दशा इतनी सुधर जायेगी कि उन जातियों के लिये इन राजनैतिक परित्राणों की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी; मैं अपने माननीय मित्रों से पूछता हूं, क्या उन्हें वास्तव में यह विश्वास है कि जिन गम्भीर सामाजिक निर्योग्यताओं से ये जनवर्ग हजारों वर्षो से पीड़ित हैं, वे आगामी दस वर्षो में समाप्त हो जायेंगी? मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से पूछता हूं, क्या वे हमें इस बात की प्रत्याभूति देने के लिये तैयार हैं?

हमारे सम्मानित मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कल के अधिवेशन में एक बहुत उचित प्रश्न उठाया था। मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की करुणाजनक अवस्था पर बहुत अश्रुपात किया है। किन्तु वे यह नहीं समझ सके कि इस स्थान रक्षण से इन वर्गों की अवस्था के सुधार में क्या उन्नति होगी। उन्होंने कहा कि इससे इन वर्गों का शोषण होगा और इससे उनमें फूट फैलेगी। यदि 'शोषण' से उनका आशय आर्थिक शोषण है, तो मैं समझ नहीं पाता कि केन्द्रीय विधान-मंडल में या प्रान्तीय विधान-मंडल में कुछ स्थानों से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों का शोषण कैसे होगा। यदि शोषण से उनका आशय है, राजनैतिक शोषण, तो मैं उन्हें स्मरण कराना चाहता हूं कि जो भी नेता हमारी भावनाओं तथा तर्क को उभारने की अधिक क्षमता रखता है, वह हमारा अधिक शोषण कर सकता है। इस सदन के सदस्यों को यह अच्छी तरह विदित है कि डॉक्टर अम्बेडकर या प्रधान मंत्री की विश्वासजनक युक्तियों से हमें अपने विनिश्चय बदलने के लिये बाध्य होना पड़ा है। अत: यदि 'शोषण' से उनका अर्थ है कि राजनैतिक नेता इन अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को अपने प्रभाव में ले आयेंगे, तो मैं उनसे कहता हूं कि ऐसा तो प्रत्येक स्थान पर होता है।

फूट फैलने की संभावना पर हम सब जानते हैं कि सौ निरक्षर लोग किसी विनिश्चय पर सौ शिक्षित, सुसंस्कृत मनुष्यों से अधिक शीघ्र पहुंच सकते हैं। यह तो विद्यमान समय में सुविदित है कि पिता, माता तथा दो पुत्रों के किसी परिवार में पिता कांग्रेसी है, माता हिन्दू महासभाई है, ज्येष्ठ पुत्र समाजवादी है और कनिष्ठ पुत्र है साम्यवादी, अत: शिक्षित तथा सुसंस्कृत वर्गों में इन लोगों से अधिक फूट की मनोवृत्ति होती है।

अब मैं इस प्रश्न पर आता हूं कि स्थान-रक्षण हमारी कठिनाइयों को दूर करने में कितना लाभदायक सिद्ध होगा? प्राचीन स्वर्ण-काल में जब सभ्यता इतनी उन्नत नहीं थी, जितनी अब है। तब शारीरिक शक्ति ही जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा और अत्याचार तथा अन्याय की रक्षा का एकमात्र प्रभावी शस्त्र था। सभ्यता की प्रगति तथा आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों तथा शस्त्रों की प्रगति से हम देखते हैं कि शारीरिक शक्ति से ये काम सिद्ध नहीं होते। राजनैतिक शक्ति, राजनैतिक बल, देश के प्रशासन में भाग, अपने राज्य के प्रशासन में आपका प्रभाव, आपकी आवाज,

[डॉ. मनमोहन दास]

ये वस्तुएं हैं जिनसे आप अपने जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा कर सकते हैं तथा अत्याचार और अन्याय से अपनी रक्षा कर सकते हैं। अत: मेरे विचार में मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा अभिव्यक्ति विचार सत्य के सर्वथा विपरीत है।

मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं, आप अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये केन्द्रीय अथवा प्रांतीय विधान मंडल में कुछ स्थान देने पर क्यों आपत्ति करते हैं? इस तीन सौ सदस्यों के सदन में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के अधिकाधिक तीस चालीस सदस्य हो सकते हैं। उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है—आपके लिये क्या कठिनाई पैदा की है? वे केवल यहां आते हैं और सदन की कार्यवाही को देखते रहते हैं, कार्यवाही में लगभग कोई भाग नहीं लेते, जब तक कि इस सदन के विनिश्चयों द्वारा उनके अपने हितों का हनन न हो। में आपसे अनुरोध करता हूं कि इन सदस्यों पर विश्वास कीजिये फिर आप देखेंगे कि वे आपके हाथों को सुदृढ़ बनायेंगे, निर्बल नहीं। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि उन्हें अपना छोटा भाई समझिये और आप देखेंगे कि वे आपके साथ हैं और आपके विरुद्ध नहीं हैं।

मेरे संशोधन में यह प्रस्थापना है कि इस स्थिति पर दस वर्ष के पश्चात् पुनर्विचार यिका जाये। यदि दस वर्ष के अंत में यह पता लगता है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की दशा इतनी बदल गई है कि कोई परित्राण अपेक्षित नहीं है, तो संसद उन्हें हटा सकती है। मैं समझ नहीं पाता कि इतनी जल्दी क्या है, इतनी अशिष्ट शीघ्रता क्या है कि दस वर्ष के अंत में समस्या के पुनर्विचार कर द्वार भी बंद कर दिया जाये। भविष्य को अपना मार्ग स्वयं बनाने दीजिये। आखिर बहुसंख्यक जाति के लिये डरने की क्या बात है? आज आपका अत्यधिक बहुमत है, वह कल भी रहेगा और परसों भी रहेगा और सदा रहेगा। चाहे शासन का कोई रूप हो, चाहे कोई राजनैतिक दल सत्तारूढ़ हो जाये, बहुसंख्यक तो बहुसंख्यक ही रहेंगे और अल्पसंख्यक सदा उनके पैरों तले रहेंगे, उसकी दया पर निर्भर रहेंगे। अत: अनुसूचित जातियों से डरने की क्या बात है?

परामर्शदात्री समिति ने प्रतिवेदन में यह लिखा है कि "समिति सदा यही चाहती रही है कि अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को विचार करने के लिये पर्याप्त समय मिलना चाहिये, जिससे कि जो भी परिवर्तन किया जाये, वह स्वयं अल्पसंख्यकों की इच्छा से ही हो और उन पर बहुसंख्यक सम्प्रदाय की ओर से थोपा न जाये। यदि यह आत है, यदि अल्पसंख्यक परामर्शदात्री समिति का यह दृष्टिकोण है, तो यह विचार करने का उपबन्ध अनुसूचित-जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के प्रतिनिधियों की इच्छा के बिना क्यों हटाया जाता है? मुझे विश्वास है कि इस सदन में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिम-जातियों का कोई भी सदस्य नहीं है, जो इस उपबन्ध को हटाने की प्रस्थापना पर अनुमति दे दे कि उनके प्रश्न पर दस वर्ष उपरान्त पुनर्विचार किया जायेगा।

श्रीमान, मेरा ख्याल है कि इस मामले में न्याय नहीं हुआ है और बहुसंख्यकों की इच्छा हम—अल्पसंख्यकों पर—हमारी इच्छा के विरुद्ध थोपी जा रही है। अत: मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि सदन को मेरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, जिसका उद्देश्य यह है कि दस वर्ष के अन्त में समूचे प्रश्न पर पुनर्विचार किया जाये, जो कि किसी भी प्रकार परामर्शदात्री समिति के विनिश्चय के विरुद्ध नहीं है।

*__अध्यक्ष:__ संख्या 105, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद!

*__श्री नजीरुद्दीन अहमद:__ अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय निवेदन करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क के अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:–

'and a general election shall be held thereafter.' "

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद में कुछ अस्पष्टता है। अनुच्छेद में लिखा है कि केन्द्र में लोक सभा में तथा राज्यों में प्रथम सदनों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थान-रक्षण इस संविधान में आरम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगा। मेरे विचार में इस पदावलि में कुछ अस्पष्टता बाकी है, यद्यपि विचार सर्वथा स्पष्ट है। मैं एक प्रश्न पेश करता हूं, जिस पर विचार करना चाहिये। अगले निर्वाचन में मेरा विश्वास है.........

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यदि इससे मेरे मित्र की वक्तृता को कम करने में सहायता मिले, तो क्या मैं यह कह सकता हूं कि मस्विदा समिति का एक संशोधन है, जो कि उस आकस्मिकता में ठीक बैठ जायेगा, जिसकी उन्होंने कल्पना की है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ वह संशोधन कहां है?

*__अध्यक्ष:__ मैं संशोधन संख्या 114 की ओर संकेत कर रहा था, जिसमें माननीय सदस्य द्वारा उठाया गया प्रश्न आ जाता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ यह बात मेरे संशोधन से ली गई होगी या चुराई गई होगी। मैं इसके लिये अनुगृहीत हूं—यह मेरी महान स्तुति है।

मेरा कहना यह है कि इस संविधान के आरंभ में दस वर्ष की समाप्ति तथा लोक सभा या राज्यों की सभाओं की समाप्ति शायद एक साथ न हो। हो सकता है कि विविध कारणों से दूसरा निर्वाचन संविधान के पारित होने के नौवें वर्ष में हो। तत्पश्चात् दस वर्षों के पूरा होने में एक ही वर्ष बच जायेगा, पर विधान मंडल का समाप्ति में चार वर्ष शेष रहेंगे। अस्पष्टता यह है कि दस वर्षों की समाप्ति पर सभाओं की अवधि शायद समाप्त न हुई हो। प्रश्न यह है कि क्या दस वर्ष

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

की समाप्ति पर निर्वाचित विधान-मंडल बिल्कुल कृत्य बंद कर देगा और नया चुनाव हो जायेगा या और चुनाव न होकर वही निर्वाचित निकाय अपने जीवन के शेष समय तक रहेगा। इसी अस्पष्टता को मिटाने के लिये मैंने यह संशोधन भेजा था। पर मुझे प्रसन्नता है कि इस गलती पर ध्यान दिया गया है। मस्विदा समिति के साथ यह कठिनाई है कि यद्यपि कुछ मामलों में वे अच्छे विचारों को स्वीकार करने के लिये तैयार रहते हैं, पर वे अपनी त्रुटि को स्वीकार करना नहीं चाहते; इसी कारण कई अच्छे संशोधनों को स्वीकार नहीं किया गया है। पर हमें तृतीय वाचन से आशा है, जो मेरे विचार में दूसरा विस्तृत द्वितीय वाचन होगा, क्योंकि हमने बहुत सी गलतियां छोड़ दी हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क में 'Constitution' शब्द के पश्चात् '(a)' ये अक्षर तथा कोष्ट प्रविष्ट कर दिये जायें और 'State' शब्द के पश्चात् निम्न प्रविष्ट कर दिये जायें:—

'(b) relating to the representation of the Anglo-Indian community either in the House of the people or in the Legislative Assemblies of the States through nomination.' "

इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं सदन से प्रार्थना करता हूं कि वह इस बात पर विचार करे कि अनुच्छेद 295-क में निहित विद्यमान प्रस्थापना में केवल अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों का ही उल्लेख है। इसमें अनुच्छेद 293 और 295 का उल्लेख नहीं है। जब अनुच्छेद 293 और 295 स्वीकार किये गये थे और अल्पसंख्यक समिति के विविध सदस्यों में विनिश्चय हुआ था, तब आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को स्थान-रक्षण के स्थान पर यह मनोनयन दिया गया था। पहली प्रस्थापना यह थी कि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के समान स्थान-रक्षण दिया जायेगा, पर उसमें पासंग का प्रश्न उठता था अत: अंत में उसका रूप मनोनयन का हो गया। आरंभ में यह स्पष्ट था कि आंग्ल-भारतीय जाति को मनोनयन के द्वारा यह रक्षण केवल दस वर्षों के ही लिये मिलेगा। यह बात कभी स्वीकार नहीं की गई कि उन्हें यह सदा के लिये मिलेगा; और जब हमने अनुच्छेद 293 तथा 295 पर अपने संशोधन पेश नहीं किये थे, तब हमें यही विश्वास था कि वास्तव में इस जाति को भी यह रक्षण दस वर्षों के लिये ही मनोनयन द्वारा मिलेगा। अत: यदि हम समझौते

को क्रियान्वित किया जाना है, तो इस मनोनयन के लिये दस ही वर्ष का समय नियत होना चाहिये। यदि कोई ऐसा समझौता न हो, तो मैं सदन के समक्ष अन्य कारण पेश करूंगा। मैं भी अल्पसंख्यक समिति का सदस्य था और मुझे स्मरण है कि जब विनिश्चय हुआ था तब यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया गया था कि यह केवल दस वर्ष के ही लिये होगा। मैंने कुछ मुख्य सदस्यों से ही परामर्श किया है, जिन्होंने इस विनिश्चय पर पहुंचने में भाग लिया था और मुझे पक्के तौर पर पता लगा है कि जब समझौता हुआ था तब यही मंशा थी। क्योंकि हम अपने नेताओं के समझौते में गड़बड़ डालना नहीं चाहते थे। अत: हमने संशोधन पेश नहीं किये, अत: यह उचित ही है कि यह रक्षण दस वर्षों के ही लिये रखा जाये। यदि हम उन कारणों को भी देखें, जिनसे कि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को रक्षण किया गया है, तो समझौते के अतिरिक्त अन्य आधारों पर भी मनोनयन संबंधी ये उपबन्ध दस वर्ष से अधिक समय के लिये नहीं रहने चाहिये।

आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रगतिशील सम्प्रदायों में से एक है, जो अन्य सम्प्रदायों की तुलना में अपने स्वत्व की रक्षा कर सकता है। मैं जानता हूं कि उनकी संख्या कम है, किन्तु कई अन्य सम्प्रदाय भी हैं जो ऐसे ही छोटे हैं। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे नेताओं ने इस सम्प्रदाय के दावों पर विचार किया और उनके साथ उदारता का व्यवहार किया जैसा कि श्री एन्थनी ने स्वयं स्वीकार किया है। किन्तु साथ ही मेरा विश्वास है कि लोक सभा के विषय में यही एक सम्प्रदाय है, जिसे मनोनयन के द्वारा स्थान मिलेगा। किसी और जाति के लिये मनोनयन का उपबन्ध नहीं है और हम नहीं चाहते कि इस प्रकार के उपबन्ध द्वारा हमारा संविधान भद्दा बने। आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय की बहुत हद तक अनुच्छेद 297 और 298 के उपबन्धों द्वारा रक्षा हो गई है। इन उपबन्धों के सम्बन्ध में भी उन्हें दस वर्ष के स्थान पर बारह या उससे अधिक मिल रहे हैं। किसी जाति के लिये उचित तथा न्यायपूर्ण आधारों पर यदि कोई उपबन्ध किया जाता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है किन्तु साथ ही, जबकि अन्य सम्प्रदाय आगे आते हैं, जबकि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों पर हमें विचार करना होता है, तो उनके दावे सर्वथा भिन्न आधार पर होते हैं; यदि वे अत्यन्त अधिक प्रतिनिधित्व मांगते हैं तो मैं उनकी स्थिति को समझ सकता हूं और वे जो चाहते हैं, वह उन्हें देने में हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये। किन्तु जहां तक किसी उन्नत जाति का सम्बन्ध है, कोई कारण नहीं है कि इस जाति का इतना अनुचित पक्षपात क्यों किया जाये कि ये उपबन्ध सदा के लिये रहें। आप कह सकते हैं कि यह केवल स्वविवेकाश्रित उपबन्ध है, पर जब कोई स्वविवेक का अधिकार दिया जाता है, तो विशेष परिस्थितियों में वह कर्तव्य ही बन जाता है।

अत: मेरा निवेदन है कि कोई कारण नहीं है कि हम इन उपबन्धों को दस वर्षों से अधिक अवधि के लिये स्वीकार करें, और मुझे इस मामले में कोई संदेह नहीं है कि यदि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय ठीक तरह से रहे—और मुझे अपने अनुभव से पता है कि वे रहेंगे—हम अपने मित्र श्री एन्थानी को जानते हैं; वे

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

सदन के अधिकांश मित्रों को प्रिय हैं—और कोई कारण नहीं है कि यदि वे दस वर्ष पश्चात् साधारण निर्वाचनों में खड़े हों, तो सफल न हों। उस समय तक भारत का सारा रूप ही बदल जायेगा। अन्यथा मैं नहीं समझता कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के सदस्यों द्वारा पेश किये गये संशोधनों में अधिक बल क्यों नहीं है। दस वर्ष पश्चात् हमारा समाज ऐसा बन जायेगा कि जिसमें विद्यमान विभेद समाप्त हो जायेंगे और उनका आज के समान महत्व नहीं रह जायेगा। यदि हमें इस बात की आशा न हो, यदि हम इस आधार पर चलें कि वे विभेद रहेंगे, तो मेरा विनम्र निवेदन है कि कोई कारण नहीं है कि हमें अन्य जातियों के मामले में इस दस वर्ष की कालावधि को बढ़ाना क्यों न पड़े।

अनुसूचित जातियों के मेरे कुछ मित्रों द्वारा पेश किये गये संशोधनों पर मुझे कुछ आश्चर्य है। जिस दिन सदन में अल्पसंख्यकों सम्बन्धी प्रतिवेदन पर बहस हुई थी, उस दिन मैंने एक संशोधन पेश किया था कि वे रक्षण तथा मनोनयन केवल दस वर्षों के लिये ही होने चाहियें और उस संशोधन को स्वीकार कर लिया गया था। उसके साथ ही श्री नागप्पा का भी एक संशोधन था, जो उसी भाषा में था। अब वे सामने आकर दूसरी प्रस्थापना पेश करते हैं। मेरे विचार में उन्हें ऐसा करने का अधिकार नहीं है। अब वे ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि स्वयं वे तथा अन्य सदस्य सहमत हो गये थे कि स्थान-रक्षण दस वर्ष के लिये रहेगा जैसा कि मैंने कल निवेदन किया था—मैं आज भी उन्हीं युक्तियों को दोहराना नहीं चाहता—इस रक्षण के कारण सामान्य जनता द्वारा पूर्णत: निर्वाचन अधिकारों के उपयोग में बाधा पड़ती है। यह सामान्य समुदाय और अनुसूचित जातियों के लिये भी हानिकर है।

अत: मेरा नम्र निवेदन है कि जब हम अपने आपको पूर्ण निर्वाचनाधिकारों के प्रयोग से वंचित करने के लिये तैयार हैं तो हम यही चाहते हैं कि अपने मित्रों को खुश करें और साथ ही उनके साथ यथेष्ट न्याय करें। उन्हें इस स्तर पर लाने में भी दोष हमारा ही है। अब हमें ही यह देखना है कि वे पीछे न रह जायें और वे अन्य जातियों के साथ आगे बढ़ें। यह दस वर्ष का समय अनुसूचित जातियों के लिये एक चुनौती है कि वे अन्य लोगों के स्तर पर आ जायें, पर इससे सारे देश पर और भारत के समस्त सम्प्रदायों पर भी उत्तरदायित्व आ पड़ता है, क्योंकि केवल हिन्दू ही नहीं, वरन् मुस्लिम और सिक्ख और अन्य जातियां भी अब सामान्य सूची में ही हैं। अब यह हमारा सच्चा कर्त्तव्य हो जाता है कि दस वर्षों में ही हम ऐसा व्यवहार करें कि ये अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग हमारे स्तर पर आ जायें। यदि यह जाति उस स्तर तक नहीं पहुंचती, जहां तक पहुंचने की उससे आशा की जाती है, तो अनुच्छेद 301, 296, 299 तथा 10 से लाभ ही क्या है? भविष्य में हमारा कर्तव्य यह देखना होगा कि केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के हमारे भाइयों के प्रति अपना कर्तव्य निबाहें।

श्री नागप्पा ने कुछ उपायों का संकेत किया है, जिनसे कि यह होना चाहिये। यह अवसर नहीं है और मैं यह बताने में बदन का समय नहीं लूंगा कि हमें

किन तरीकों से काम करना चाहिये, पर साथ ही मुझे यह कहना होगा कि सरकारों के अतिरिक्त हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है, जिन्होंने यह बचन दिये हैं और जो इस संविधान का समर्थन करते हैं तथा इसकी दुहाई देते हैं कि हम यह देखें कि आगामी दस वर्षों के भीतर ही हम इन वर्गों को अपने स्तर पर ले जायें। यदि हम ऐसा नहीं करते, यदि हम अपने कर्तव्य नहीं करते, तो मैं नहीं जानता कि हम किस मुंह से अगले दस वर्षों के लिये उन्हें यही अधिकार देने से इनकार कर सकते हैं; और वह बहुत गम्भीर बात होगी, क्योंकि इससे अनुसूचित जातियों और हम सब पूर्ण निर्वाचनाधिकारों के प्रयोग के सामान्य अधिकारों से वंचित हो जायेंगे। अत: मेरा निवेदन है कि आज से हमें इसे पारित करके यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि जब हम दस वर्ष रखते हैं, तो हमारी यही मंशा है कि यह दस वर्ष ही रहे, किन्तु साथ ही हमारा कर्तव्य और भी बढ़ जाता है और इसलिये आज से ही हमें ठीक प्रकार से अपना कर्तव्य करना आरंभ कर देना चाहिये। यह कर्तव्य इधर एक प्रस्ताव पारित करने से या उधर दूसरा प्रस्ताव पारित करने से पूरा नहीं होगा। जब तक आर्थिक स्थिति ठीक न हो जाये, जब तक हम उन्हें मनुष्यों के समान अनुभव न करा दें, जो वे आज नहीं करते, तो हमारा कर्तव्य पूरा नहीं होगा।

इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है इन सब सरकारों को एक विधि पारित कर देनी चाहिए जिससे उन्हें गांवों में अपने मकानों पर पूरे स्वामित्व के अधिकार प्राप्त हो जायें, जो उन्हें आज प्राप्त नहीं हैं। सबके समान उन्हें मूलाधिकार प्राप्त हैं, पर मुझे पता है कि कई गांवों में अनुसूचित जातियों के लोग मूलाधिकारों का उपयोग नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 301 के अनुसार संविधान के आरंभ होते ही एक आयोग नियुक्त हो जाना चाहिये और जब आयोग अपना प्रतिवेदन दे दे, तब हमें यह देखना चाहिये कि उस पर अमल हो। अत: सदन से मेरा नम्र निवेदन है कि जब हम इस खंड को पारित करते हैं, तो यह देखना हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम यह देखें कि खंड विशेष के समर्थन के लिये हम अपने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के भाइयों के प्रति अपना कर्तव्य करने में दृढ़ प्रतिज्ञ रहें तथा अपनी पूरी शक्ति लगा दें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 284-क के संशोधन संख्या 38 (प्रथम सूची) में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided that nothing in this article shall affect the representation in the House of the Poeple or in the Legislative Assembly of a State until the dissolution of the then existing House or Assembly, as the case may be'."

[परन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात से लोक सभा के या राज्य की विधान सभा के किसी प्रतिनिधित्व पर तब तक कोई प्रभाव न होगा जब तक कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

यथास्थिति उस समय विद्यमान लोक सभा या विधान सभा का विघटन न हो जाये।]

श्रीमान, यह संशोधन तो स्वयं स्पष्ट है और इसे पेश करते समय मैं एकदम यह कह देना चाहता हूं कि मस्विदा समिति इसके लिये कोई मौलिकता या प्रतिलिप्याधिकार का दावा नहीं करती। यदि इस संशोधन के लिये प्रेरणा श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन से मिली है, तो हम उन्हें पूर्ण श्रेय देने के लिये तैयार हैं, किन्तु फिर भी मस्विदा समिति ने यह अनुभव किया कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने जैसी भूल बताई है, वैसी ही एक कमी है क्योंकि, यदि ऐसा हो जाये कि दस वर्ष की समाप्ति ऐसे समय पर हो, जबकि सदन का जीवन आरंभ ही हुआ हो या वह अपनी अवधि के बीच में हो, तो उस सदन के प्रतिनिधित्व पर—उस सदन की सदस्यता पर—डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 295-क का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। निस्संदेह सदन यह समझ जायेगा कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन से यह कहीं ज्यादा ठीक बैठता है।

मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के भाषण के सम्बन्ध में एक शब्द और कहना चाहता हूं। उन्होंने तर्कसंगत बनने का प्रयत्न किया है। जब वे बोल रहे थे, तो मैंने अनुभव किया कि वे एक छोटे से मच्छर पर भारी मशीनगन का प्रहार करने का प्रयत्न कर रहे थे। यदि राष्ट्रपति मनोनयन करना अपेक्षित समझे, तो लोक सभा में दो नाम निर्देशित स्थानों का उपबन्ध तथा, यदि राज्यपाल उचित समझें तो, राज्य के प्रथम सदन में कुछ स्थानों का उपबन्ध केवल अनुमति-मूलक उपबन्ध है। यह आवश्यक या आदेश-मूलक उपबंध नहीं है। यदि आंग्ल-भारतीय जाति को ये स्थान मनोनयन द्वारा न दिये जायेंगे, तो वे इस आधार पर न्यायालय में नहीं जा सकते कि संविधान में नामनिर्देशन का उपबन्ध है और प्राधिकारियों ने उसकी उपेक्षा कर दी है। राष्ट्रपति या सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल को पूरा स्वविवेकाधिकार दे दिया गया है कि वह नामनिर्देशन करे या न करे। फिर एक शुद्धत: अनुमति-मूलक उपबन्ध पर ये सब युक्तियां तथा यह सब तक क्यों रखा जाता है?

जहां तक आंग्ल-भारतीय का सम्बन्ध है, निस्संदेह यह सत्य है कि वे संख्या में बहुत अधिक नहीं हैं। यह भी सच है, जैसा पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कहा है कि इस सम्प्रदाय के लिये सेवाओं और शैक्षणिक सुविधाओं के विषय में क्रमश: अनुच्छेद 297 तथा 298 में विशेष उपबन्ध रख दिया गया है। वे पूछते हें कि ऐसा होते हुए इस राजनैतिक विशेषाधिकार को जारी रखने का उपबन्ध क्यों किया जाये। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि वे इस प्रकार के छोटे से मामले पर चिन्ता न करें, जो कि केन्द्र तथा प्रांत दोनों में कार्यपालिका पर छोड़ दिया गया है। मैं उनसे यह भी कहना चाहता हूं कि वे एक बात पर विचार करें कि अनुसूचित

जातियां तो हिन्दू जाति का भाग हैं और हमारा अंग हैं, और केवल उनके जीवन का आर्थिक स्तर ही नहीं दूसरों के साथ समानता की स्थिति प्राप्त करने से रोकता है—पर आंग्ल-भारतीय एक अलग ही सम्प्रदाय है। क्योंकि यह समझा जाता है कि हम भविष्य में यूरोपीय सभ्यता से, जिसके अधीन हम अपने दासता के युग में रहे हैं, अधिकाधिक दूर चले जायेंगे। आंग्ल-भारतीय जाति तथा हमारे देश की अन्य जातियों की जीवन-प्रणाली में जो अन्तर है, वह आगे से और भी अधिक हो जायेगा और आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय की हमारे समाज में खपने की संभावना और भी कठिन हो जायेगी। यह सब इस बात पर निर्भर है कि हमारा जीवन-स्तर पाश्चात्य ढंग का होगा या हम अब फिर इसे छोड़कर पीछे हट जायेंगे। इन सब समस्याओं के विषय में हम नहीं जानते कि उनका अंतिम रूप क्या होगा। इन लोगों से यह कहना अन्याय होगा कि वे इस देश के समाज में विलीन हो जायें, यदि भविष्य में हमारा जीवन स्तर अब से भी गिर जाये।

अल्पसंख्यक समिति ने अपने प्रतिवेदन के परिशिष्ट के पृष्ठ 35 पर यह रियायत देते हुए कहा है:

> "आंग्ल-भारतीयों के लिये स्थान-रक्षण नहीं होना चाहिये। किन्तु संघ के राष्ट्रपति तथा प्रांतों के राज्यपालों को अधिकार होगा कि वे केन्द्र तथा प्रांतों में क्रमश: प्रतिनिधि नियुक्त कर सकेंगे, यदि साधारण निर्वाचन के फलस्वरूप उन्हें विधान-मंडल में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो।"

वास्तव में ऐसा होगा कि यदि श्री एन्थनी केन्द्रीय विधान-मंडल में आ जायेंगे तो शायद किसी और को अवसर नहीं मिलेगा। राष्ट्रपति को नामनिर्देशन के सम्बन्ध में अपने स्वविवेकाधिकार के प्रयोग का कोई अवसर नहीं है और उसे मंत्रिमंडल के विचारों पर चलना होगा। इसी प्रकार प्रान्तों में केवल अनुमति मात्र दी गई है कि यदि बहुसंख्यक जाति आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय की अवहेलना कर दे, तो उस भूल को सुधारा जा सकता है। मेरे विचार में यह रियायत दस वर्ष तक सीमित नहीं होनी चाहिये। यह आदेशमूलक उपबन्ध नहीं है, जैसे कि अन्य सम्प्रदायों के लिये उपबन्धित रक्षण हैं।

अत: मेरा सुझाव है कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव अपने संशोधन पर जोर न दें। यह बहुत छोटी सी चीज है। भारत की आंग्ल-भारतीय जाति को यह संदेहास्पद विशेषाधिकार, जो समय-समय कार्यपालिका उन्हें कृपा के रूप में प्रदान करेगी, आवश्यकता होने पर दस वर्ष से अधिक समय के लिये भी दे दिया जाये, तो क्या बुराई है? मुझे आशा है कि वे अपने संशोधन पर जोर नहीं देंगे।

***श्री चन्द्रिका राम** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा संशोधित रूप में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने

[श्री चन्द्रिका राम]

के लिये यहां आया हूं। इस सदन के तथा बाहर के अनुसूचित जातीय सदस्यों के लिये केवल यही विचारणीय प्रश्न है कि यह दस वर्ष की अवधि बहुत कम है। यह एक तथ्य है कि शायद इस छोटी सी कालावधि में अनुसूचित जातियां अन्य जातियों के स्तर पर नहीं आ सकेंगी। इसका आधार यह है कि प्रांतीय सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार यथेष्ट प्रयास नहीं कर रही हैं। हम विगत दस से 15 वर्षों के व्यक्तिगत अनुभव से यह जानते हैं कि जब कांग्रेस मंत्रिमंडल सर्वप्रथम सत्तारूढ़ हुए, तब दलित वर्गों के उत्थान के लिये कुछ भी क्रियात्मक या सारवान कार्य नहीं किया गया, यद्यपि वे वर्ग आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप में पिछड़े हुए हैं। यह तो विश्वास का प्रश्न है। हम दस वर्ष भी नहीं चाहते, यदि केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारें चाहें तो वे आगामी पांच वर्षों में भी बहुत कुछ कर सकते हैं। पर यहां तो सुविश्वास का प्रश्न ही नहीं है। अनुसूचित जातियों के सदस्यों को यही तो आशंका है, जिससे कि उन्होंने इस कालावधि को बढ़ाकर पंद्रह वर्ष अथवा अधिक करने के लिये इतने संशोधन पेश किये हैं।

हमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा किये गये कार्य का पता है और हम सब उस महान व्यक्ति के अनुयायी हैं। किन्तु जब हम प्रांतों तथा केन्द्र के वास्तविक कार्य को देखते हैं, तो हमें पता लगता है कि कुछ नहीं किया गया है। यह कहना बहुत अच्छा है, कि पिछड़े हुए वर्गों के लिये एक पृथक विभाग होना चाहिये और पिछड़े हुए वर्गों में से एक मंत्री और संसदीय सचिव होना चाहिये। मैं यह अनुभव करता हूं कि यदि आप कुछ मंत्री नियुक्त कर दें और कुछ पद निश्चित कर दें और अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों को कुछ विभाग दे दें, तो आप उन लोगों की स्थिति को सुधार सकते हैं। मुझे पता है कि प्रांतों में भूतपूर्व मंत्रिमंडलों ने कैसा काम किया था। बंबई प्रांत में अनुसुचित जातियों के कोई मंत्री या संसदीय सचिव नहीं थे, पर वहां जो कल्याण कार्य हुआ था, वह देश के किसी प्रांत से अधिक अच्छा हुआ। अत: विशेष संसदीय सचिवों या मंत्रियों अथवा विशेष पदाधिकारियों को रखे बिना भी अनुसूचित जातियों के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। हम जानते हैं कि केन्द्र में डॉ. अम्बेडकर तथा श्री जगजीवन राम जैसे दो अतीव महत्वपूर्ण मंत्री हैं। पर हम यह भी जानते हैं कि अनुसूचित जाति मंडली में 3,000 आवेदन-पत्र हैं, पर केवल 625 छात्रवृत्तियां हैं। मंत्रियों और संसदीय सचिवों को रखने से क्या लाभ है, यदि धन न हो? सारा प्रश्न यह है कि आपके पास धन होना चाहिये। यदि प्रांतीय मंत्रियों तथा केन्द्रीय मंत्रियों को, जो कि सब महात्मा गांधी के अनुयायी हैं, पर्याप्त धन मिला हुआ हो, तो कोई पद या विभाग बनाये बिना ही वे अनुसूचित जातियों के लिये काफी काम कर सकते हैं और उन्हें समाज के सामान्य स्तर पर ला सकते हैं।

अत: यह विश्वास का प्रश्न है, भरोसे का प्रश्न है तथा सद्भावना का प्रश्न है। मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि यह कार्य इस कालावधि में पूरा नहीं होगा,

तो अनुसूचित जातियां हिन्दू जाति के और व्यापक समुदाय के विरुद्ध चल पड़ेंगी। अत: हो सकता है ऐसा व्यापक सुधार न हो, जिसकी दस वर्ष में होने की हम आशा करते हैं। मैं कालावधि की अधिक चिन्ता नहीं करता; मुझे तो कार्य की चिन्ता है। मैं जानता हूं कि गत 25,30 वर्षों में भी महात्मा गांधी तथा इसके लिये कार्य करने वाले अन्य लोग अस्पृश्यता को दूर करने के विषय में अधिक प्रगति नहीं कर सके। आप जानते हैं कि आज भी वैसा ही बुरी हालत है, जैसी पहले थी और मैं जानता हूं कि नगरों में शिक्षित लोगों में और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों में कुछ परिवर्तन हुआ है और यही बात है जिससे हमें प्रोत्साहन मिला है। और हम जानते हैं कि इस निर्योग्यता को हटाने के लिये प्रान्तीय सरकारें कुछ प्रयास कर रही हैं। हमारे लिये, देश के लिये तथा इस महान सभा के लिये यह अच्छी बात है कि हमने अस्पृश्यता को सदा के लिये हटाने वाला अनुच्छेद 11 पारित कर दिया है। पर इस प्रयोजन के लिये केवल विधान पारित कर देने, या मंत्री नियुक्त कर देने या कुछ विभाग दे देने से कुछ नहीं होगा। यदि समस्त कार्य पूरा करना है तो इसके लिये धन मिलना आवश्यक है और केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों से मेरा यही अनुरोध है कि वे इस कार्य के लिये पर्याप्त कोष प्रदान करें, जिससे कि उनका शैक्षणिक उत्थान हो सके और आर्थिक रूप में उनकी स्थिति सुधर सके। उनकी सामाजिक स्थिति के विषय में हम जानते हैं कि सामाजिक मामलों में हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। सामाजिक मामलों में तो हृदय परिवर्तन का प्रश्न है। मैं जानता हूं कि जो लोग देश के लिये फांसी पर चढ़ने के लिये तैयार हैं, वे भी अपने घर में से या अपने परिवार के सदस्यों में से अस्पृश्यता को हटाना नहीं चाहते, क्योंकि यह सामाजिक रूढ़ि है। यह बहुत प्राचीन काल से चली आती हुई सामाजिक प्रथा है; यह तो इन सवर्ण हिन्दुओं और समूची हिन्दू जाति की नस नस में समा गई है, क्योंकि यह कई शास्त्रों, वेदों आदि में लिखी है।

अत: सामाजिक मामलों में हमें प्रतीक्षा करनी है और दोनों पक्षों को प्रतीक्षा करनी होगी। सामाजिक क्रांति तो तत्काल हो नहीं सकती क्योंकि भारत एक बृहद् देश है जिसमें बहुत लोग हैं, जिनके भिन्न-भिन्न विचार हैं और भिन्न-भिन्न विश्वास हैं। हम जातने हैं ऐसे मत हैं, जिनमें अस्पृश्यता अपराध है, जैसे सिक्ख मत, बौद्धमत तथा मुस्लिमों में भी हैं। अत: सामाजिक मामले में हमें प्रतीक्षा करनी होगी; हमें काम करना है और हमें धीरे-धीरे चलना है। उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में हमें कुछ और भी करना है। अभी तक उन्होंने कुछ नहीं किया है। वास्तव में हमारे समक्ष कोई कार्यक्रम नहीं है कि पहले क्या करना चाहिये। काम करने में हमें प्राथमिकता का ख्याल होना चाहिये। हरिजनों के लिये हमारे पास कोई योजना नहीं है और कोई कार्यक्रम नहीं है और कार्य करने के लिये कोई वास्तविक नीति नहीं है। अत: मेरा सुझाव यह था कि भारत सरकार को तत्काल एक आयोग या समिति नियुक्त करनी चाहिये, और उस आयोग या समिति को हरिजनों के सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक क्षेत्रों के सब मामलों पर विचार करना चाहिये और ऐसे

[श्री चन्द्रिका राम]

उपाय तथा तरीके सुझाने चाहिये और सिफारिशें करनी चाहिये, जिससे कि प्रांतों की या केन्द्र की सरकारें चुनाव के बाद ही आयोग के प्रतिवेदन में सुझाये गये तरीकों से कार्य आरम्भ कर सकें। मेरा यह सुझाव था। मेरे लिये कालावधि का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, सरकार के पास जितना धन उपलब्ध हो, उसका प्रश्न और विश्वास तथा सद्‌भावना तथा सदेच्छाओं का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। अन्यथा हम, अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि सदस्य, हम चाहते हैं कि दस वर्ष के लिये यह रियायत भी नहीं रहनी चाहये, यदि उसी अवधि में हमारी हालत बहुत सुधर जाये। हमें इस जाति-पाति को हटाने में प्रसन्नता होगी कि अनुसूचित जातियां, हरिजन, अछूत आदि को हटा दिया जाये, यदि हमारी सामाजिक हालत इस कालावधि में सुधर जाये। हमें अपने नेताओं पर विश्वास है, हमें भविष्य पर विश्वास है और यदि हम कालावधि में हमारी हालत न सुधरे, तो हमें आशा है और विश्वास है कि दस वर्षों के पश्चात् हमारे सम्प्रदाय के सदस्य, सभा तथा परिषद् के सदस्य, सरकार के सदस्य, प्रांत तथा केन्द्र इस विषय पर सोचेंगे और इन प्रश्नों पर विचार करेंगे और यदि अधिक काल की आवश्यकता है तो वे दे देंगे। अत: हम कालावधि के लिये इतने आतुर नहीं हैं, पर इस बात के लिये आतुर हैं कि हमें पर्याप्त धन मिले और हम बहुसंख्यक सम्प्रदाय, स्वर्ण हिन्दू समाज के लोगों की सद्‌भावना प्राप्त करने के लिये आतुर हैं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, स्थान-रक्षण का सिद्धान्त सामान्यत: ऐसा है जिससे हमारे देश को बहुत हानि पहुंची है। मैं इस पर अधिक समय नहीं लेना चाहता, और यदि हममें अनुसूचित जातियों और आदिवासियों के लिये स्थान-रक्षण का यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका यही कारण है कि उनका पक्ष बहुत प्रबल है। यदि कोई पक्ष प्रबल है, तो हमारे देश में इन दो वर्गों का ही हैं। यह प्रस्थापना तो सचमुच अभीष्ट है कि यह कालावधि दस वर्ष में ही समाप्त हो जाये और उसके पश्चात् कोई स्थान-रक्षण न रहे। किन्तु साथ ही मैं पूर्ववक्ता की बातों का विनम्रता के साथ समर्थन करता हूं और उन्होंने सदन में जो भाव प्रकट किये हैं, उनसे मैं हृदय से सहमत हूं। यदि हम वास्तव में अनुसूचित जातियों को उस स्तर पर ले आना चाहते हैं, जिस पर इस देश की अन्य जातियां अब हैं, तो हमें इस मामले में बहुत सच्चे मन से कार्य करना होगा। यदि प्रांतीय सरकारें या केन्द्रीय सरकार इस बात से संतुष्ट हो जायें कि उन्होंने कुछ पदाधिकारी नियुक्त कर दिये हैं और कुछ धन अलग रख दिया है और इस प्रकार उनका कर्त्तव्य पूरा हो गया है, तो यह उचित नहीं होगा। हमने देखा है कि यहां अनुसूचित जातियों के सदस्य एक के बाद एक उठते रहे हैं, वे वक्ता हमारी राष्ट्रीय भावनाओं में भागी हैं, जो उतने ही देशभक्त हैं, किन्तु उन्हें अपने भाइयों का ख्याल है और उन विपत्तियों तथा

कष्टों का ख्याल है, जो उन्हें विशषत: देश के आंतरिक भागों में सहने पड़ते हैं। अत: मेरा सुझाव है कि यदि केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारें वास्तव में चाहती हैं कि यह दस वर्ष का समय बढ़ना नहीं चाहिये और दस वर्ष में ही हमें अपने देश के दोनों वर्गों के प्रति अपने कर्त्तव्य को सच्चे मन से पूरा करना चाहिये, जो कि अब तक पीछे रह गये हैं, तो हमें इस मामले में सचमुच बहुत सच्चे मन से कार्य करना चाहिये और मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि सरकार को चाहिये कि वह प्रांतीय सरकारों को प्रोत्साहन दे और संभव हो तो एक-दो वर्ष के अंत में देखती रहे कि इस मामले में क्या प्रगति हुई है। यदि, श्रीमान, इन दस वर्षों में सरकारों, उच्च वर्गों तथा अनुसूचित जातियों के संगठित प्रयत्नों द्वारा भी हम उन्हें उस स्तर तक नहीं उठा सके, जिस तक हम इस देश के सब सम्प्रदायों तथा जनवर्गों को उठाना चाहते हैं, तो उस रक्षण-अवधि को समाप्त करने का कोई आधार नहीं होगा। और इसलिये एक ओर तो मैं इस प्रस्थापना का समर्थन करता हूं कि इस दस वर्ष की कालावधि के लिये ही स्थान रक्षण हो तथा उसके बाद इस देश में कोई स्थान रक्षण न रहे, पर मैं पूर्ववक्ता श्री चन्द्रिका राम तथा अन्य वक्ताओं के इस अनुरोध का प्रबल समर्थन करता हूं कि सरकार, जनता, तथा देश की विधि संस्थाओं को इस बात का प्रत्येक संभव प्रयत्न करना चाहिये कि अनुसूचित जातियों तथा आदिवासी लोगों को उस स्तर पर उठाकर ले आया जाये, जिस पर इस देश की अन्य जातियां अब तक पहुंच चुकी हैं।

जहां तक आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, मैं भी पंडित ठाकुरदास भार्गव के समान यह अनुभव करता हूं कि यह बहुत उन्नत सम्प्रदाय है। यदि उन्हें कोई रक्षण दिया जाता है, तो वह केवल इसलिये कि वे बहुत अल्पसंख्या में हैं। इस आधार पर हमें इस देश में बहुत सी जातियां मिल सकती हैं, जो अल्पसंख्या में हैं। किसी जाति को, चाहे वह इस देश में कितनी ही छोटी हो, विधान-मंडल में या कहीं भी अल्पसंख्यक होने के आधार पर कभी भी प्रतिनिधित्व मांगने का या पाने का ख्याल नहीं करना चाहिये। केवल सेवा और क्षमता ही एक कसौटी है। मैं अनुभव करता हूं कि यदि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय में, जो कि प्रगतिशील है, सचमुच ऐसे सदस्य हैं, जो इस देश तथा जनता के प्रति सेवा की भावना से उतने ही प्रेरित हैं, तो उन्हें प्रतिनिधित्व प्राप्त होता रहेगा तथा यह देश उन्हें उस प्रतिनिधित्व से वंचित नहीं करेगा। मैं उनकी सेवा, क्षमता तथा योग्यता पर ही अधिक निर्भर करना चाहता हूं, और संविधान द्वारा उन्हें विधान-मंडल में या यहां-वहां रक्षण देने तथा प्रतिनिधित्व देने पर नहीं। मैं इस अनुच्छेद पर ये थोड़े से शब्द ही कहना चाहता हूं।

*श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस सदन में अनुसूचित जातीय सदस्यों ने अलग-अलग संशोधन पेश किये हैं। उन संशोधनों से सदन को यह सर्वथा स्पष्ट है कि इस समय भी अनुसूचित जातियों को अपने भविष्य की बहुत आशंका है कि इस संविधान के लागू होने के दस वर्ष के पश्चात् भी उनकी क्या स्थिति होगी। मैं उनकी प्रस्थापना पर कुछ भी टिप्पणी नहीं

[श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन]

करना चाहता, पर मैं इस महान् सदन से केवल यही निवेदन करता हूं कि अनुसूचित जातियों के मन में सच्ची आशंका है, और इसलिये मैं सदन से अनुरोध करता हूं कि वह सारी स्थिति पर विचार कर ले।

इस मामले में मेरे भी भिन्न विचार हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि यदि सच्ची सहानुभूति नहीं है, यदि केवल मौखिक सहानुभूति ही हो, तो दस वर्ष ही क्या बीस वर्ष से भी कोई लाभ नहीं है। जब तक इस देश की उन्नत जाति इस बात को न समझेगी कि उन्होंने अपने भाइयों के प्रति कुछ बुराई की है, और अब उनका कर्तव्य सहायता करना है, तब तक हमें वह चीज़ प्राप्त नहीं हो सकती, जो हम चाहते हैं और जिसकी देश को आवश्यकता है। मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे बिल्कुल अलग प्रकार से सोचें। अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित आदिमजातियां कौन हैं? क्या वे भारत की जनता के 85 या 90 प्रतिशत नहीं हैं? मेरे बहुत से मित्रों ने असंख्य बार ग्राम्य जनता के लिये चिन्ता प्रकट की है। मेरे विचार में ग्राम्य जनता कुल मिलाकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों तथा पिछड़े हुए वर्गों को ही कहते हैं। आप 85 या 90 प्रतिशत जनता को पिछड़ी हुई स्थिति में छोड़ रहे हैं। जब तक आप इस 85 प्रतिशत जनता को उच्च स्तर पर नहीं ले आते, तब तक क्या भारत के लिये एक भी कदम आगे बढ़ना संभव है, जैसा कि स्वतंत्र भारत से आशा की जाती है? मेरे विचार में यह संभव नहीं है। यह मेरा व्यक्तिगत विचार नहीं है। मैं भारत के एक महान व्यक्ति महारे स्वर्गीय मान्य कवि रविन्द्र नाथ ठाकुर की उद्धरण दे सकता हूं। एक बार उन्होंने 'मेरा अभागा देश' नामक कविता लिखी थी; वास्तव में उस कविता का सारा विषय यह है कि 'अब तक आप अपनी जनता के इस 90 प्रतिशत अंश को ऊंचा नहीं उठाते, तब तक आप कभी उठ नहीं सकते क्योंकि जो पीछे रह गये हैं, वे आपको पीछे खींच रहे हैं," उन्होंने यह लिखा है। यदि आप उस दृष्टिकोण से यह समझ जायें कि जब तक आप 80, 90 प्रतिशत जनता को न उठा लें तब तक आप स्वयं नहीं उठ सकते; आप यथेष्ट प्रगति नहीं कर सकते। मेरे विचार में इस अभागे देश की दशा सच्ची कार्यवाही से ही सुधर सकती है।

यह इस मामले का एक पहलू है, जो मैं अपने समुन्नत माननीय मित्रों के समक्ष रखना चाहता हूं। मेरा अपने अनुसूचित जातीय भाइयों से भी एक अनुरोध है, वह यह है। हम देखते है कि 1932 से इन अनुसूचित जातियों को पृथक सम्प्रदाय के रूप में स्वीकार किया गया था। और उन्हें तत्कालीन सरकार ने कुछ रियायतें दी हुई थीं। तत्पश्चात् 1935 का अधिनियम बना, उन्हें एक भिन्न अंग मान लिया गया और उस अधिनियम में ही हमारे उत्थान के लिये कई उपबन्ध हैं। किन्तु 1935 या 1937 से अब तक, एक युग से अधिक बीत गया है और मैं पूछता हूं, हमने वास्तव में कितनी उन्नति की है? हमारी जाति के एक भाग

के अतिरिक्त जिसे शिक्षा प्राप्त करने का कुछ अवसर मिल गया है, हमारे शेष भाई उसी स्थिति में हैं। इस प्रकार हमारी विद्यमान सरकार ने हमें कुछ ढील दी, छात्रवृत्ति आदि देकर यत्र तत्र कोई मंत्री या संसदीय सचिव नियुक्त करके कई रियायतें दी हैं। किन्तु में नहीं समझता कि सब अनुसुचित जातियों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ हो। मेरे विचार में हमारे उन्नत भाइयों के ह्रदय में हमारे लिये सहानुभूति है, क्योंकि वे हमें अधिक समझते हैं, जितना हम स्वयं अपने आप को नहीं समझते हैं। और अब यह हमारा काम है कि उस सरोवर का जल खूब पीयें और अपने उचित दावों को सरकार के समक्ष रखें, जनता के तथा इस महान संस्था के समक्ष रखें। यदि उसके बाद भी हमारे उचित दावों को और मांगों को पूरा न किया गया, तो हमारा कर्तव्य होगा कि हम अपने पैरों पर खड़े हो जायें तथा अपने उचित भाग को प्राप्त करने का यथासम्भव प्रयत्न करेंगे।

आखिर मैं भारत में हमारी स्थिति पर इस प्रकार विचार करना चाहता हूं कि हम चार भाइयों का परिवार हैं। ज्येष्ठ भ्राता ने किसी प्रकार शिक्षा, सार्वजनिक जीवन तथा अन्य प्रकार के अनुभव प्राप्त कर लिये हैं और वह बहुत उन्नत है। शेष तीनों भाई अंधकार में रह गये और वे पीछे पड़े हैं। जब तक तीनों भाई ज्येष्ठ भ्राता के समान अपने अपने समानाधिकारों को नहीं समझेंगे तब तक मैं नहीं समझता कि ज्येष्ठ भ्राता सचमुच यह समझेगा कि अपने अन्य भाइयों के प्रति न्याय करना उसका कर्तव्य है, क्योंकि मनुष्य मूलत: स्वार्थी है और मनुष्य के विषय में जो बात है, वही वर्ग के विषय में भी है। जब तक इस देश में वर्ग-विभेद है तब तक इसका कोई हल नहीं है और एक बार वर्ग-विभेद समाप्त हो जायेगा तो सब झगड़ा समाप्त हो जायेगा। मुझे पता नहीं वह कब समाप्त होगा। स्वतंत्रता के दो वर्ष पश्चात् भी मैं नहीं देखता कि सरकार ने या कांग्रेस संस्था ने इस कलंक को मिटाने के लिये कोई सक्रिय या प्रबल कार्यवाही की हो, यद्यपि हम प्रति दिन इसे कलंक स्वीकार करते हैं। अत: अब इस आशा को छोड़ देना चाहिये। हमें अपने अधिकारों को प्राप्त करना है। आखिर हम एक ही भूमि के बालक हैं और यदि हमारा ज्येष्ठतम भ्राता कुछ कार्य कर रहा है, तो हम कुछ और कार्य कर रहे हैं और देश की विधि के अनुसार हमें उस सब पूंजी पर समान अधिकार है, जो हमारी मातृभूमि ने हमें प्रदान की है। अत: यदि हम अपने अधिकार पर अड़ जायें तो हम देखेंगे कि वह अधिकार स्वीकृत हो और यदि वह स्वीकृत नहीं होगा, तो हम अपने पैरों पर खड़े हो सकते है। विद्रोह करिये—मैं जान बूझ कर विद्रोह शब्द का प्रयोग कर रहा हूं—यदि न्याय न हो, विद्रोह द्वारा ही न्याय किया जा सकता है और एक बार हम अपने अधिकारों पर अड़े जायें और उसे पाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो जायें, तो मैं जानता हूं कि उस न्याय को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि आखिर भारत के संविधान में, जो कि संविधान सभा द्वारा बनाया जा रहा है, एक मूल अधिकार रखा गया है—वह प्रौढ़ मताधिकार का अधिकार है। यदि हम देखें कि इस देश के बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा हमारे हितों का रक्षण नहीं हो रहा है, तो हमें यही करना है कि हम अपने लोगों को चुनें और वयस्क मताधिकार के आधार पर, मुझे संदेह नहीं है, हम किसी सभा या परिषद् में बहुमत प्राप्त कर लेंगे। अतएव हम शासन को अपने हाथों में ले सकते हैं और दूसरों के साथ तथा अपने साथ न्याय कर सकते हैं।

[श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन]

अत: हमें केवल दया तथा न्याय की पुकार नहीं करनी चाहिये, हमें केवल न्याय की मांग ही नहीं करनी चाहिये, वरन् अपनी हालत को ऊंचा उठाने का भी प्रयत्न करना चाहिये। उस प्रयोजन के लिये यदि हम देखें कि कुछ जातियां सहयोग नहीं कर रही हैं, तो हमारा अगला कर्तव्य यह होगा कि सरकार को अपने हाथ में ले लें। किन्तु वह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होगी। मेरा आशय यह है कि हमें अपना कर्तव्य करना चाहिये और फिर उन लोगों को गाली देनी चाहिये, जो सत्तारूढ़ हैं कि वे हमारे साथ न्याय नहीं करते। उस विषय में मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह दस वर्ष की सीमा ठीक है। जब तक हम यह समझते रहेंगे कि उन्नत जाति हमारे लिये सब कुछ कर देगी तब तक मेरे विचार में हमारे मन में एक आलस रहेगा जिसके कारण हम वह चीज प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करेंगे जिसका हमें न्यायोचित अधिकार है। पर यदि एक बार निश्चित हो जाये कि दस वर्ष की सीमा है तो कल से हमें सोचना पड़ेगा कि हमें क्या करना चाहिये। हमें वयस्क मताधिकार प्राप्त होगा तथा शासन में अपने आदमी भेजने का अधिकार होगा। मेरे विचार में हमारे मार्ग में कोई कठिनाई नहीं होगी। किन्तु यदि हम अनिश्चित रूप से कोई कालावधि निश्चित कर दें, तो इस अभिप्राय के लिये जो शक्ति आवश्यक है वह नहीं लगाई जायेगी। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित तथा संशोधित अनुच्छेद का समर्थन करना चाहता हूं और अपने अनुसूचित जातीय भाइयों से अनुरोध करना चाहता हूं कि वे उन्नत सम्प्रदाय से सहयोग करें और जिस दिशा में हमें न्याय की आवश्यकता है उनसे प्राप्त करें, किन्तु ऐसा न होने पर मैं उनसे कहता हूं कि वे एक हो जायें और हमारे लिये जो न्याय उचित है वह प्राप्त करें।

***श्री जदुबंश सहाय** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं श्री युधिष्ठर मिश्र के संशोधन का, जहां तक अनुसूचित आदिमजातियों का सम्बन्ध है, विश्लेषण करना चाहता हूं। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, काफी कहा जा चुका है और इस विषय में अधिक कुछ कहकर मैं सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहता। श्री युधिष्ठिर मिश्र के संशोधन का प्रभाव यही होगा कि 10 वर्ष पश्चात् भी अनुसूचित आदिमजातियों के लिये स्थान-रक्षण जारी रहेगा। मैं सादर निवेदन करता हूं कि आदिमजातियों के दृष्टिकोण से यह तरीका गलत है। इस समस्या पर हमें आदिमजातियों के पिछड़ेपन पर ध्यान रखकर विचार करना चाहिये। हम जानते हैं कि आदिमजातियां पिछड़ी हुईं हैं और हमें पता है कि शताब्दियों से उनका शोषण होता रहा है। हम यह भी जानते हैं कि आर्थिक तथा राजनैतिक रूप में वे पिछड़े हुए हैं; किन्तु हमें यह नहीं सोचना है कि आदिमजातियां अपने लिये क्या करेंगी, वरन यह सोचना है कि हमें उनके लिये क्या करना चाहिये। मुझे अपने आप पर और जिस संस्था का मैं हूं, उस पर विश्वास है और मुझे विद्यमान सरकार की लोकतंत्रीय व्यवस्था पर विश्वास है और मैं कह सकता हूं

कि दस वर्ष के भीतर ही यदि आप आदिमजातियों की स्थिति न सुधार सके तथा उनका उद्धार न कर सके, तो हमारे लिये यह दुःख की बात है, आदिमजातियों के लिये नहीं। एक बार डॉ. कुंजरू ने कहा था कि इस संविधान से और इस संविधान की पुस्तक में लिखे हुए अक्षरों से कोई लाभ नहीं होगा, यदि इन्हें क्रियान्वित करने वाले लोग ईमानदार नहीं होंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): श्रीमान, क्या मैं कह सकता हूं कि श्री सहाय को ध्वनियंत्र में बोलना चाहिये। उनकी बात सुनाई नहीं दे रही है।

***श्री जदुबंश सहाय:** मैं कह रहा था कि संविधान में जो कुछ लिखा है, केवल उसी से कुछ लाभ नहीं होगा। अक्षरों से, मुद्रित निर्जीव अक्षरों से आदिमजातियों को या इस देश के पद-दलित नागरिकों के किसी भाग को कोई लाभ नहीं होगा। इसके लिये कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है; ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिनमें महात्मा गांधी की शक्ति, भावना, संदेश तथा उनके जैसे विचार हों। मैं मानता हूं कि हम बहुत दूर चले गये हैं और महात्मा गांधी के उपदेश का अनुसरण नहीं कर सके हैं। किन्तु अब भी हम में एक चिनगारी शेष है और मुझे संदेह नहीं है कि हम दस वर्षों में ही आदिमजातियों के लिये वह सब कुछ कर सकेंगे, जो हम समझते हैं हमें करना चाहिये। यह आदिमजातियों की परीक्षा नहीं है, यह हमारी परीक्षा है—यह दस वर्ष का समय—और इसलिये मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि इस समस्या पर आदिमजातियों के दृष्टिकोण से विचार न करें।

कल यह कहा गया था—कल जो कुछ आलोचना की गई थी उसका विश्लेषण करके मैं सदन का समय नष्ट नहीं करूंगा—मैं उस विषय पर नहीं बोलूंगा, क्योंकि मेरे पास समय कम है, पर मुझे यह तो कहना पड़ेगा कि कल के अनुत्तरदायी वक्तव्यों से तथा निराधार कथनों से आदिवासियों को लाभ नहीं होगा। मैं स्वीकार करता हूं, हम जानते हैं कि आठ दशाब्दियों से अब तक हमारे ऊपर दोष लगाये गये हैं। हम अपना दोष स्वीकार करते हैं और हम, जो कुछ हो सकता है, करने के लिये तैयार हैं, पर केवल हमें दोष देने से आप किसकी सहायता कर पायेंगे। इससे उनके दिल भी ठंडे पड़ जायेंगे, जो वहां आदिमजातियों के लिये कार्य कर रहे हैं।

मुझसे पूछा गया था, बिहार सरकार ने या दूसरी सरकारों ने उनके लिये क्या किया है? मैं उन्हें समझाने का प्रयत्न नहीं करूंगा जो समझना ही नहीं चाहते; पर समय मिला तो मैं आपको कुछ आंकड़ें दूंगा। तीन वर्षों में, आपको आश्चर्य होगा कि, छोटा नागपुर के पांच जिलों में सिंचाई के बांध बनाने पर एक करोड़ रुपये खर्च किये गये हैं। क्या वह राजनीति है? बांध इसलिये बनाये गये थे, जिससे कि आदिवासी अपने खेतों की सिंचाई कर सकें और जहां एक क्यारी उगती थी

[श्री जदुबंश सहाय]

वहां दो उग सकें। पर कल श्री सिंह ने कहा कि यह सब राजनीति है। यदि यह राजनीति है, तो श्री सिंह चाहे कुछ भी कहें हम उसी राजनीति पर अड़े रहेंगे, अधिक बंद बनाने की राजनीति पर। जैसा कि हमारे मुख्य मंत्री ने कुछ ही दिन पहले कहा था, आदिवासियों के प्रत्येक गांव में एक बांध होना चाहिये, जिससे वह अपने खेतों की सिंचाई कर सकें, क्योंकि आदिवासियों की समस्या उनकी आर्थिक दीनता है। उनके यहां उद्योग तथा कलें एकदम नहीं लग सकतीं। पर यदि उनके लिये बांध बना दिये गये तो उनके पास खेती के लिये काफी पानी मिल सकता है। यदि हम ऐसा करेंगे तो आप देखेंगे कि दस वर्ष में ही इनकी हालत आज से बिल्कुल भिन्न हो जायेगी। हम यह दावा नहीं करते कि हमने उनके लिये बहुत कुछ कर दिया है, किन्तु हम प्रांत में जो कुछ करते हैं, उसके विषय में हमारा दावा है कि हम इस समस्या का हल धीरे-धीरे कर रहे हैं।

हमने केवल बांध ही नहीं बनाये हैं, हमने आदिवासियों के बीच में से साहूकारों को निकालने के उपाय किये हैं। हमने आदिवासी बालकों के लिये छात्रावास खोले हैं—तीन वर्षो में 52 छात्रावास। सिंचाई के बांधों के लिये हमने एक करोड़ खर्चा किया है, यद्यपि शेष बिहार के लिये 50 लाख या कम ही खर्चे होंगे। असल में वहां लोग शिकायत सी करते हैं, यद्यपि उनका यह मतलब नहीं होता, पर वे मजाक में कहते हैं कि सब कुछ आदिवासियों के ही लिये है, जब आदिवासियों का प्रश्न होता है तो वित्त मंत्री भी अपनी मुट्ठी ढीली कर देता है, राजस्व मंत्री को आदिवासियों के उत्थान की चिन्ता अन्य समस्याओं से अधिक है। हम आपसे यही प्रार्थना कर सकते हैं कि हमें कुछ समय दीजिये, और हमने यह दस वर्ष का समय रखा है जिससे कि इस कालावधि में हम शीघ्रता से कार्य कर सकें और अपनी प्रगति में ढील न करें, अन्यथा हम यह सोच सकते हैं कि आदिवासी रक्षण प्राप्त कर लेंगे और इसलिये हमें उन्हें ऊंचा उठाने के कार्य में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं है। कल यह कहा गया था कि पौराणिक युग से, जब से आर्य इस देश में आये, तब से हमने आदिवासियों की उपेक्षा ही की है और उनके लिये कुछ नहीं किया है। मैं केवल यही कह सकता हूं कि गत पचास वर्षो में, ब्रिटिश शासनकाल में, उन्होंने इतना कार्य नहीं किया था, जितना हमारा दावा है कि हमने तीन वर्ष में किया है। श्रीमान, मेरे वे मित्र महोदय, जो कल हमारी आलोचना में इतने वाचाल थे, क्या कर रहे थे। वे ब्रिटिश शासन में क्या कर रहे थे? सैनिक भर्ती कर हरे थे, जबकि हम आदिवासियों के लिये लड़ रहे थे। अब भी यदि मैं...

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य से कहना चाहता हूं कि वे इस विषय में अधिक विषयान्तर न करें।

***श्री जदुबंश सहायः** शिरोधार्य है, श्रीमान! अब भी किसी को दोष न देते हुए मैं केवल यही कहूंगा कि यदि सरकार केवल शीघ्रता से आगे बढ़े, तो तीन

वर्ष में ही हम आदिवासियों के लिये आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। केवल दिल चाहिये और धन चाहिये। बिहार एक निर्धन प्रान्त है; किन्तु अपनी गरीबी के बावजूद भी, बिहार भारत का निर्धनतम प्रान्त होते हुए भी, हम यह दावा कर सकते हैं कि ब्रिटिश शासन में, वरन् हमारे 1937 के शासन-काल में जितनी उन्नति हुई थी, उससे अधिक उन्नति हमने अब की है। अत: मैं अपने मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि हमें ये दस वर्ष दे दीजिये। दस वर्ष का समय हमारे लिये परीक्षा काल होगा। यह आदिवासियों की परीक्षा नहीं है, छोटा नागपुर के लोगों की या भारत के किसी अन्य भाग के दलित वर्ग की परीक्षा नहीं है, यह दूसरे लोगों की परीक्षा है। यह हमारे लिये चुनौती है। यह भारत के सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये चुनौती है और हम उस चुनौती को स्वीकार करते हैं। हम आपसे यही प्रार्थना करते हैं कि हमें यह दस वर्ष का समय दीजिये।

***श्री बी.एल. सौंधी** (पूर्वी पंजाब: जनरल): प्रश्न पर मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** समाप्ति प्रस्ताव पेश हो चुका है। प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न पर मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** डॉक्टर अम्बेडकर।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): श्रीमान, मैं चार ही संशोधनों के विषय में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं पहले अपने मित्र श्री भार्गव के संशोधन को लेता हूं और मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं, क्योंकि मैं देखता हूं कि यद्यपि इस सदन में जो प्रतिवेदन पेश किया गया था, उसमें आंग्ल भारतीयों को मनोनयन द्वारा प्रतिनिधित्व देने के विषय में कोई कालावधि नहीं रखी गई थी, पर मैं देखता हूं कि उस प्रतिवेदन पर बाद में जो वाद-विवाद हुआ, उसमें मेरे मित्र पंडित भार्गव ने एक संशोधन पेश किया था जो लगभग वैसा ही था जैसा कि उन्होंने अभी पेश किया है और मैं देखता हूं कि उनका वह संशोधन सदन द्वारा स्वीकृत हो गया था। इसलिये मैं उनके इस संशोधन को भी स्वीकार करने के लिए बाध्य हूं।

आगे श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा उठाये गये प्रश्न के विषय में मेरा ख्याल है कि उसके एक भाग की मंशा तो मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी के संशोधन द्वारा, जिसे मैं सरकार करता हूं, पूरा हो गया है। इस समय मैं स्वयं अच्छी तरह नहीं समझता कि क्या इस खंड का यह अर्थ है कि यह कालावधि इस संविधान के आरम्भ से आरम्भ होगी या नई संसद के प्रथम निर्वाचन की तारीख से आरम्भ होगी। किन्तु इस समय तो मैं यही कह सकता हूं कि इस मामले पर मस्विदा समिति विचार करेगी और यदि आवश्यक होगा, तो वे इस प्रकार का एक संशोधन पेश करेंगे कि यह कालावधि प्रथम संसद के प्रथम अधिवेशन से आरम्भ होगी।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मेरे मित्रों, श्री मुनिस्वामी पिल्ले और श्री मनमोहन दास ने जो युक्तियां पेश की हैं, उनके विषय में मुझे खेद है कि उस संशोधन को स्वीकार करना मेरे लिए संभव नहीं है। उनकी प्रस्थापना यह है कि वे इस खंड को विद्यमान रूप में छोड़ने के लिए तो तैयार हैं, पर वे संसद को यह शक्ति देना चाहते हैं कि वह दस वर्ष की कालावधि को बढ़ाकर इस खंड को बदल सकती है। अब हमने यह मामला सर्वप्रथम इस संविधान में रखा है और मैं नहीं समझता कि हमें इस विषय में किसी परिवर्तन की अनुमति देनी चाहिये, जब तक कि संविधान ही संशोधित न कर दिया जाये।

मैं अनूसूचित जातियों के सदस्यों द्वारा कही गई बातों के विषय में एक दो शब्द कहना चाहता हूं, जो कुछ आवेशपूर्ण और जोरदार शब्दों में इस अनुच्छेद द्वारा निश्चित सीमा के विषय में बोले हैं। मुझे कहना होगा कि उनके लिये शिकायत का कारण नहीं है, क्योंकि दस वर्ष की सीमा रखने का विनिश्चय उन्हीं की सहमति से किया गया है। मैं स्वयं अधिक समय के लिए जोर डालना चाहता था, क्योंकि मैं समझता हूं कि जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, उनके साथ अन्य अल्पसंख्यकों के समान व्यवहार नहीं होता। उदाहरण के लिए जहां तक मुझे पता है, मुसलमानों के लिए विशेष रक्षण 1892 में आरम्भ हुआ था; कहना चाहिये कि उस समय श्री गणेश हो गया था। अत: मुसलमान लगभग 60 साल तक न विशेषाधिकारों का उपयोग करते रहे हैं। ईसाइयों को यह विशेषाधिकार 1920 के संविधान में मिला था और उन्होंने 28 वर्ष तक उस का उपभोग किया है। अनुसूचित जातियों को यह विशेष रक्षण केवल 1935 के संविधान में मिला है। इस विशेष रक्षण का आरंभ कार्यरूप में 1937 में हुआ, जबकि वह संविधान लागू हुआ। उनके लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि वे इससे लाभ केवल दो वर्ष तक उठा सके, क्योंकि वास्तव में 1939 से अब तक या 1946 तक संविधान विलम्बित रहा और अनुसूचित जातियां उन विशेषाधिकारों से लाभ नहीं उठा सकीं, जो उन्हें 1935 के अधिनियम में मिले थे, और मेरे विचार में सदन के लिए यह बिल्कुल उचित होता और उदार होता कि वह अनुसूचित जातियों को इन रक्षणों के विषय में अधिक समय दे देता। किन्तु जैसा कि मैंने कहा, यह सब सदन ने स्वीकार किया। श्री नागप्पा और श्री मुनिस्वामी पिल्ले तथा दूसरे सदस्यों ने यह सब कुछ स्वीकार कर लिया, और यदि मैं कह दूं—मैं कोई शिकायत नहीं कर रहा हूं—तो वे दूसरी ओर बोल रहे थे, और मेरे विचार में अब उपबन्धों को बदलना ठीक नहीं है। यदि दस वर्ष के अन्त में अनुसूचित जातियां यह देखें कि उनकी स्थिति सुधरी नहीं है या वे इस कालावधि को और बढ़ाना चाहते हैं, तो इसी संरक्षण को प्राप्त करने के लिये उपाय ढूंढना उनकी शक्ति या बुद्धि से परे की वस्तु नहीं होगी।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): अनुसूचित आदिमजातियों का क्या कहना, जो कि उनसे भी गिरी हुई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुसूचित आदिमजातियों के लिये मैं और भी लम्बा समय देने के लिए तैयार हूं। किन्तु जो लोग अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिमजातियों के रक्षणों के विषय में बोले हैं, उन्होंने ऐसी बाल की खाल निकाली है कि यह चीज दस के पश्चात् समाप्त हो ही जानी चाहिए। मैं तो उन्हें एडमंड वर्क के शब्दों में यही कहना चाहता हूं कि "महान साम्राज्य तथा छोटे दिमाग एक दूसरे से मेल नहीं खाते।"

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को एक-एक करके लेता हूं, संशोधन संख्या 39 (सूची 1–पंचम सप्ताह)।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान, मैं अपने संधोधन को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 40 (सूची 1-पंचम सप्ताह)।

***श्री एस. नागप्पा:** डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देना चाहता।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 99 (सूची 3–पंचम सप्ताह)।

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** मैं 25 मई को सदन में नहीं था, जबकि अल्पसंख्यक समिति के द्वितीय प्रतिवेदन पर विचार किया गया था। किन्तु डॉक्टर अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है, उसे ध्यान में रखते हुए मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 100 (सूची 3–पंचम सप्ताह)।

***डॉ. मनमोहन दास:** मेरा संशोधन न्यायपूर्ण और उचित है। मैं उसे वापस नहीं लेना चाहता। बहुसंख्यकों की इच्छा को अल्पसंख्यकों पर थोपने दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित अनुच्छेद 295-क के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:–

'Unless Parliament by Law otherwise provides'."

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 105 (सूची 4–पंचम सप्ताह)।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरे संशोधन के सिद्धान्त को श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन में स्वीकार कर लिया गया है। अतः मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** अगला संशोधन संख्या 119 पंडित ठाकुर दास भार्गव का है। इसे डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 295-क में 'Constitution' शब्द के पश्चात् '(a)' ये कोष्ठक तथा अक्षर प्रविष्ट कर दिये जायें और 'State' शब्द के पश्चात् निम्न प्रविष्ट कर दिया जायेः—

'(b) relating to the representation of the Anglo-Indian community either in the House of the People or in the Legislative Assemblies of the States through nomination.' "

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अगला संशोधन मस्विदा समिति का संशोधन संख्या 114 है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में प्रस्थापित अनुच्छेद 295-क में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जायेः

'Provided that nothing in this article shall affect the representation in the House of the People or in the Legislative Assembly of a State until the dissolution of the then existing House or the Assembly, as the case may be.' "

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है किः

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 295-क संविधान का अंग बने।"

अनुच्छेद 295-क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** मुझे यह सुझाव दिया गया है कि मस्विदा समिति को कुछ समय मिलना चाहिये, जिससे कि वे शेष अनुच्छेदों पर विचार कर सके और यह अच्छा

होगा, यदि हम एक-दो दिन के लिये अपनी बैठकों को छोटा कर दें। अतः मेरा सुझाव है कि हम अब उठ जायें और सदन कल 9 बजे प्रातः पुनः समवेत हो।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मस्विदा समिति को काफी समय मिलना चाहिये, जिससे कि वे हमें शेष अनुच्छेदों का पूरा नक्शा दे सकें। अन्यथा हमारे लिये समझना कठिन है। यदि वे पूरा नक्शा दे सकें, तो वह सुविधा की बात होगी और सराहनीय बात होगी।

***अध्यक्षः** केवल मस्विदा समिति के साथ ही कठिनाई नहीं है। कुछ मामलों पर और विचार करने की आवश्यकता है, जिनके विषय में सर्व सम्बद्ध लोगों ने अभी कोई विनिश्चय नहीं किया है। अतः मस्विदा समिति को जितना समय चाहिये, उससे अधिक समय देने से क्या लाभ है।

तत्पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 26 अगस्त, 1949 के प्रातः के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.19.49
320

अंक 9
संख्या 19

शुक्रवार
26 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[अनुच्छेद 296, 299 तृतीय अनुसूची पर विचार] 1063-1089

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 26 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रात: 9 बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 296

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 296।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मसौदा-समिति के माननीय सभापति महोदय जिस संशोधन संख्या 106 को उपस्थित करने जा रहे हैं, वह एक नवीन संशोधन है। वह कई अन्य संशोधनों के समान संविधान के ही सम्बन्ध में है और किसी संशोधन के सम्बन्ध में नहीं है। इस संशोधन क सूचना पहले पहल 23 अगस्त को दी गई थी और वह 24 अगस्त को प्राप्त हुई थी। साधारणत: इस पर उसी दिन विचार हो जाना चाहिये था किन्तु समय के अभाव के कारण इस पर विचार नहीं किया जा सका।

एक माननीय सदस्य महोदय ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि इस संशोधन के फलस्वरूप कई गम्भीर परिवर्तन होंगे। इस संशोधन का उद्देश्य है कि कुछ सेवा-सम्बन्धी नियम केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हों। संविधान के मसौदे के मूल अनुच्छेद में उपबन्धित था कि वे सभी अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होंगे। मैं जानना चाहता हूं कि यह परिवर्तन किया गया है और यह परिवर्तन परोक्ष रूप से क्यों किया गया है। कोई भी सदस्य सीधे-सीधे इस प्रकार के संशोधन की सूचना दे सकता था कि मूल अनुच्छेद में "सभी समुदायों" शब्दों के स्थान पर "अनुसूचित जातियों के तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग" शब्द रखे जायें। किन्तु यह न करके सारे खण्ड का दूसरा मसौदा तैयार किया गया है। यह अकस्मात मेरे ध्यान में आ गया। इसलिये मेरा औचित्य प्रश्न इस प्रकार है कि यह संशोधन संविधान के ही सम्बन्ध में है और इसके अतिरिक्त यह कोई ऐसा विषय नहीं है जो कभी सभा के विचारार्थ उसके समक्ष रखा गया हो। इसके अतिरिक्त इसमें स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा गया है कि इसके फलस्वरूप मूल अनुच्छेद में क्या परिवर्तन होंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि सभा के सामने आखिरी वक्त में ऐसे अनुच्छेदों को रखने की प्रथा का कब तक अनुसरण किया जायेगा जिनमें सारवान परिवर्तन किये गये हों और

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वे परिवर्तन भी ऐसे कि उन्हें पहचानना ही कठिन हो। हाल में एक दिन मैंने डॉ. अम्बेडकर को स्मरण कराया था कि उन्होंने आपकी इस प्रार्थना को पूरा नहीं किया है कि मूल अनुच्छेद में और प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद में जो अन्तर हो उसकी व्याख्या की जाये और उन्होंने केवल यह कहा कि मैंने विरामों को छोड़कर मूल अनुच्छेद को तथा नवीन अनुच्छेद को पढ़ ही लिया होगा। वे इस प्रकार का भद्दा हास्य करने के अतिरिक्त और कुछ न कह सके। क्या हम प्रतिदिन अपने नियमों को भंग करके नवीन अनुच्छेद जोड़ते चले जायेंगे? जब हम अपने ही नियमों को बराबर भंग करते चले जायेंगे तो हम लोगों से कैसे यह आशा कर सकते हैं कि वे संविधान का अनुसरण करेंगे? मेरा निवेदन है कि इसकी कोई सीमा होनी चाहिये। कुछ सर्वमान्य नियम तथा सर्वमान्य अपवाद होने चाहिये। कुछ विशेष मामलों के सम्बन्ध में मैंने आपके उन निर्णयों पर आपत्ति नहीं की जिनमें आपने कहा था कि परिवर्तन नियमानुकूल हैं। किन्तु इस प्रसंग में मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं कि बिना सदस्यों को सूचित किये हुये कि क्या परिवर्तन किया जा रहा है जैसा कि साधारणतया किया जाना चाहिये, एक नवीन अनुच्छेद को प्रविष्ट करने की चेष्टा की जा रही है। यदि आप इस संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा देते हैं तो मुझे इसकी सार्थकता के सम्बन्ध में भी कई आपत्तियां करनी हैं। किन्तु उन्हें मैं इस समय प्रस्तुत नहीं करना चाहता। हमें कम से कम कुछ सूचना दे दी जानी चाहिये थी। अल्पसंख्यकों से भी इस सम्बन्ध में परामर्श करना चाहिये था जैसा कि सरदार पटेल ने इसी के समान एक प्रसंग में दिया था। यह बहुत ही अनुचित है।

***अध्यक्ष:** यदि इसे किसी अन्य तिथि के लिये स्थगित किया जाये तो क्या आपकी आपत्ति दूर हो जायेगी?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, मैं कह नहीं सकता कि किसी अन्य तिथि को इस पर विचार करने के लिये सभा में यथेष्ट वातावरण होगा या नहीं किन्तु मैं इसका निर्णय आप पर छोड़ता हूं। वास्तव में मेरे विचार से उस समय भी स्थिति में अधिक सुधार न होगा। जिस ढंग से यह खण्ड उपस्थित किया जा रहा है उसपर मुझे आपत्ति है। मैं यह कहना चाहता हूं कि नियमों की दृष्टि से तथा विषय की दृष्टि से भी इस संशोधन को अस्वीकार कर देना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र का औचित्य-प्रश्न बिल्कुल अनुचित है क्योंकि इस अनुच्छेद के निर्णय को सभा स्वीकार कर चुकी है। माननीय सदस्य महोदय को इस संशोधन की सूचना दो दिन पूर्व मिल चुकी थी। यदि दो दिन में वे इस संशोधन के आशय को नहीं समझ पाये हैं। तो वे उसे दो महीने में भी नहीं समझ पायेंगे।

***अध्यक्ष:** क्या इसका अर्थ यह है कि जब पिछली बार स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाया गया था तो इस विषय पर भी विचार किया गया था और इसके सम्बन्ध में भी निर्णय किया गया था?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरा यह सुझाव है कि चूंकि मुसलमान और भारतीय इसाई अब अल्पसंख्यक नहीं समझे जायेंगे इसलिये यह प्रश्न नहीं उठता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी नहीं। मेरा निवेदन है कि केवल विधान-मंडलों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार किया गया था। किन्तु यह नवीन अनुच्छेद एक भिन्न विषय के सम्बन्ध में है, अर्थात् यह अल्पसंख्यकों के सचिवालयों, जिलों आदि में छोटे पद प्राप्त करने के सिलसिले में परित्राणों के सम्बन्ध में हैं। विधान-मंडलों में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में सरदार पटेल ने कृपा करके हमसे परामर्श किया था और हम इसके लिये सहमत हो गये थे विधान मंडलों में स्थान रक्षित न रखे जायें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बईः जनरल): श्रीमान, स्थिति इस प्रकार है। अल्पसंख्यक समिति के प्रतिवेदन में यह उपबन्धित था कि सभी अल्पसंख्यक दो लाभों का अथवा विशेषाधिकारों का उपभोग करेंगे, अर्थात् विधान-मंडलों में और सेवाओं में उनके लिये स्थान रक्षित रखे जायेंगे। इस सभा ने जिस प्रतिवेदन को स्वीकार किया था उसके पैरा 9 में कहा गया था किः

"अखिल भारतीय और प्रान्तीय सेवाओं के लिए नियुक्तियां करते समय प्रशासन की सुयोग्यता को ध्यान में रखते हुए सभी अल्पसंख्यकों के हितों को दृष्ठि में रखा जायेगा।"

मूल उपबन्ध यही था और इसी को सभा ने पारित किया था। इसके पश्चात् मन्त्रणा समिति ने दो अल्पसंख्यक वर्गों की, अर्थात् मुसलमानों की और भारतीय ईसाइयों की सहमति प्राप्त करके यह निर्णय किया कि ये समुदाय अल्पसंख्यक समुदाय नहीं समझे जायेंगे। जब सभा यह स्वीकार कर चुकी है कि इस प्रकार की व्यवस्था केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के अल्पसंख्यक समुदायों के लिये की जाये तो मसौदा-समिति को भी इस अनुच्छेद को सभा के निर्णय के अनुरूप बनाना पड़ा।

***अध्यक्षः** औचित्य प्रश्न इस प्रकार है कि अल्पसंख्यक-सम्बन्धी अनुच्छेदों पर पुनर्विचार करते समय केवल स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में निर्णय किया गया था और सेवाओं के प्रश्न पर न तो विचार किया गया था और न कोई निर्णय किया गया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जहां तक मैं समझता हूं निर्णय यह था कि वे अल्पसंख्यक नहीं हैं। इसलिये उन्हें दो विशेषाधिकारों में से कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाबः सिख): श्रीमान, मेरे पास अल्पसंख्यक मंत्रणा समिति और उपसमिति के प्रतिवेदन हैं। उनमें किसी स्थल पर भी यह नहीं कहा गया है कि सभी प्रकार के परित्राण समाप्त कर दिये जायेंगे अथवा यह कि वे अल्पसंख्यक समुदाय नहीं गिने जायेंगे। केवल इस निर्णय के लिये सभी सहमत हुए थे किः "विधान मंडलों में अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिए परित्राण व्यवस्था समाप्त की जाये।"

[सरदार हुकम सिंह]

अल्पसंख्यक समुदाय इसी निर्णय के लिये सहमत हुये। किंतु केवल यही परित्राण नहीं था। डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ पढ़कर सुनाया है वह विधान-मण्डलों में स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में है। संघीय लोक सेवा आयोग जो नियुक्तियां करेगा उनके अतिरिक्त छोटे पदों के लिये नियुक्तियां करते समय अनुच्छेद 296 के अधीन सभी अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखना होगा। इसलिये मेरे विचार से अल्पसंख्यक समुदायों के लोग यह समझेंगे कि उनके साथ विश्वासघात किया गया है और सज्जनता के नाते जो समझौता उन्होंने किया था उसे भंग किया गया है। यदि सरदार पटेल यहां होते तो मेरे विचार से वे इसके लिये सहमत न होते क्योंकि हमने केवल विधान-मण्डलों में स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में समझौता किया है। इसलिये मेरे विचार से यह प्रस्ताव वापस ले लिया जाना चाहिये। इससे तो मूल मसौदा ही कहीं अच्छा था। अब अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये केवल दो अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 266 और 299 रह गये हैं और उनमें भी केवल सदिच्छा ही प्रकट की गई है। वे आधारभूत अनुच्छेद नहीं हैं। वे निदेशक सिद्धान्त तक नहीं हैं और न वे न्याय ही हैं। अल्पसंख्यक समुदाय केवल इससे संतोष कर सकते हैं कि कुछ मामलों में उनके हितों की रक्षा की जायेगी। यदि इस व्यवस्था को भी समाप्त किया गया तो इसका अर्थ यह होगा कि सज्जनता के नाते जो समझौता किया गया था उसे भंग किया गया है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अल्पसंख्यक समुदायों के कुछ सदस्यों ने जो विचार व्यक्त किये हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न को स्थगित करना आवश्यक हो गया है। जब इस पर विचार किया जायेगा तो सभी दृष्टिकोणों पर विचार किया जायेगा।

***एक माननीय सदस्यः** हम उनसे विचार-विनिमय करके इस प्रश्न का निर्णय इसी समय कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** अल्पसंख्यकों के मामलों के सम्बन्ध में हम हमेशा उनकी सहमति से निर्णय करते रहे हैं। जब इस प्रश्न के सम्बन्ध में मतभेद है तो अच्छा यह होगा कि आपस में विचार विमर्श करके उसे मिटाया जाये। इसी कारण मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि इसे स्थगित किया जाये। अब हम अगले अनुच्छेद को उठायेंगे।

अनुच्छेद 299

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 299 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जायेः—

'299 (1) There shall be a Special Officer for minorities to be appointed by the President.

Special Officer for minorities

(2) It shall be the duty of the Special Officer to investigate all matters relating relating to the safeguards provided for minorities under this Constitution and to report to the President upon the working of the safeguards at such intervals as the President may direct, and the President shall cause all such reports to be laid before each House of Parliament.

[299 (1) अल्पसंख्यकों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

अल्पसंख्यकों के लिये एक विशेष पदाधिकारी।

(2) अल्पसंख्यकों के लिये इस संविधान के अधीन उपबन्धित परित्राणों से सम्बद्ध सब विषयों का अनुसंधान करना तथा उन परित्राणों पर कार्य होने के सम्बन्ध में ऐसी अन्तरावधियों में, जैसी कि राष्ट्रपति निदिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा तथा राष्ट्रपति ऐसे सब प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।]' "

मूल अनुच्छेद में यह उपबन्धित था कि केन्द्र में तथा प्रत्येक प्रान्त में एक एक अल्पसंख्यक पदाधिकारी होगा। अब यह समझा जाता है कि चूंकि अल्पसंख्यक समुदायों की संख्या बहुत कम हो गई है, इसलिये प्रत्येक प्रान्त में एक पदाधिकारी रखने के सम्बन्ध में संविधान में एक बोझल उपबन्ध रखने की आवश्यकता नहीं है। यदि केन्द्र एक पदाधिकारी को नियुक्त करेगा और उसे राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देने के लिये निदेश देगा तो मूल अनुच्छेद का उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

***डॉ. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। अभी इस सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया गया है कि ये अल्पसंख्यक समुदाय कौन होंगे। परित्राण-सम्बन्धी उपबन्धों के लिये दो मामलों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों के समूह बनाये गये हैं–एक विधान-मण्डलों में स्थानों के रक्षण के परित्राण के सम्बन्ध में और एक सेवाओं में पदों के रक्षण के परित्राण के सम्बन्ध में। अभी इसका निर्णय नहीं किया गया है कि ये अल्पसंख्यक कौन होंगे।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस अनुच्छेद का इन विषयों से कोई सम्बन्ध न होगा। चाहे अल्पसंख्यक समुदाय जो भी होंगे, विशेष पदाधिकारी उन सबके लिये कार्य करेगा। चाहे अल्पसंख्यक समुदाय दो हों या दो से अधिक, जो पदाधिकारी नियुक्त किया जायेगा वह सबके लिये कार्य करेगा।

***सरदार हुकम सिंह:** यदि अनुच्छेद 296 उसी रूप में रहने दिया गया जिस रूप में वह मसौदे में है, तो अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिये कोई परित्राण न रह जायेगा। इस दशा में हम कुछ रुक क्यों न जायें और इस अनुच्छेद को उस अनुच्छेद के साथ क्यों न उठायें जो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम-जातियों आदि के सम्बन्ध में है?

*__अध्यक्षः__ इसमें किन्हीं विशेष अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख नहीं है। इसमें केवल "अल्पसंख्यक" शब्द ही प्रयुक्त है। इसमें इसी अल्पसंख्यक समुदाय आ जायेंगे।

*__सरदार हुकम सिंहः__ किन्तु यदि अनुच्छेद 296 अपने वर्त्तमान रूप में रहा और किन्हीं अन्य अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों को अल्पसंख्यक समुदायों के वर्ग में सम्मिलित करने का निश्चय किया गया तो उनके लिये अन्य कोई परित्राण न रह जायेगा। यहां अनुच्छेद 299 में "अल्पसंख्यक" शब्द का प्रयोग ही क्यों किया जाये? यह भ्रामक है और इससे यह अर्थ निकलता है कि अन्य कोई परित्राण नहीं है।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ कई अल्पसंख्यक जातियां, आदिम-जातियां आदि हैं। इसमें सभी अल्पसंख्यक आ जाते हैं।

*__अध्यक्षः__ जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है इसमें सभी अल्पसंख्यक आ जाते हैं, चाहे उनका उल्लेख अनुच्छेद 296 में हो या न हो। इसलिये इसे उठाने में कोई कठिनाई नहीं है। इस अनुच्छेद में किन्हीं विशेष अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ यदि नवीन अनुच्छेद 296, पारित हो जाता है तो यह अनुच्छेद निरर्थक हो जायेगा।

*__अध्यक्षः__ वह निरर्थक नहीं होगा क्योंकि उसके अधीन दो से अधिक अल्पसंख्यक समुदाय आ जाते हैं। आंग्ल-भारतीयों के लिये भी वही उपबन्ध है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ किन्तु जो परित्राण उपबन्धित किये गये हैं उन्हें इस अनुच्छेद में स्थान नहीं दिया गया है।

*__अध्यक्षः__ अल्पसंख्यकों के लिये जो भी परित्राण उपबन्धित किये गये हैं और चाहे जो कोई समुदाय अल्पसंख्यक समुदाय होंगे, उन सभी के सम्बन्ध में यह विशेष पदाधिकारी कार्य करेगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ किन्तु अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिये कोई परित्राण न होंगे। इसलिये यह अनुच्छेद उनके सम्बन्ध में प्रयुक्त न होगा।

*__अध्यक्षः__ मैं अनुच्छेद 296 को पुनर्विचार के लिये स्थगित कर रहा हूं। आप यह मान कर आगे बढ़ सकते हैं कि इसका सम्बन्ध केवल दो अल्पसंख्यक समुदायों से है। हमने अभी इस सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया है कि यह प्रस्तावित रूप में रहने दिया जाये या नहीं।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रासः जनरल): इसे भी स्थगित रखने की अनुमति क्यों न दी जाये?

*__अध्यक्षः__ जी नहीं। यदि यह पारित हो जाता है तो इससे कुछ अन्तर न पड़ेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** "अल्पसंख्यक" शब्द इतना व्यापक है कि वह भाषा सम्बन्धी अल्पसंख्यकों और धर्म, जाति आदि पर आधृत अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त हो सकता है। जब हम यह जानते हैं कि विशेष पदाधिकारी दो या तीन अल्पसंख्यक समुदायों ही के सम्बन्ध में नियुक्त किया जाने वाला है तो हम आंग्ल-भारतीयों, अनुसूचित जातियों आदि का उल्लेख ही क्यों न कर दें? संविधान के मसौदे में कहीं भी "अल्पसंख्यक" शब्द की परिभाषा नहीं की गई है। इसलिये इस स्थल पर हमें अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख कर देना चाहिये। मसौदा-समिति के सामने मैं यह सुझाव रखता हूं। हम यह कह सकते हैं कि इस स्थल पर आंग्ल-भारतीयों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के तीन अल्पसंख्यक वर्गों के लिये उपबन्ध रखे जा रहे हैं। अन्य अल्पसंख्यक समदुाय भी हैं। हमें इसका निर्वचन न्यायालयों के लिये न छोड़ देना चाहिये। हमें इसी स्थल पर निश्चित कर देना चाहिये कि कौन से अल्पसंख्यक समुदाय अभिप्रेत हैं। अन्यथा कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय आगे बढ़कर एक न एक अधिकार की मांग कर सकता है।

***अध्यक्षः** परित्राणों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है और जिन अल्संख्यक समुदायों को भी ये प्राप्त होंगे उनकी रक्षा यह विशेष पदाधिकारी करेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** किसी स्थल पर भी यह नहीं कहा गया था। किसी भी समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय के वर्ग में नहीं रखा गया है। "अल्पसंख्यक समुदाय" की कोई परिभाषा नहीं की गई है। यदि एक अल्पसंख्यक समुदाय हो तो हम कह सकते हैं कि यह अनुच्छेद अमुक अल्पसंख्यक समुदाय के सम्बन्ध में प्रयुक्त होगा। हमने "अल्पसंख्यक" शब्द का तो प्रयोग किया है किन्तु यह नहीं कहा है कि उससे कौन सा अल्पसंख्यक समुदाय अभिप्रेत है। हो सकता है कि हमारा विचार यह हो कि सामान्यतः सभी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए यह पदाधिकारी होगा किन्तु यह संविधान भविष्य के लिए बनाया जा रहा है। इसलिये हमें इस मामले को स्पष्ट कर देना चाहिये और केवल उन्हीं अल्पसंख्यक समुदायों को सम्मिलित करना चाहिये जिनके लिए हम उपबन्ध रखना चाहते हैं।

***अध्यक्षः** मेरा अपना यह विचार था कि इसे स्थगित करना आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि सदस्यों का यह विचार है कि अनुच्छेद 296 और 299 साथ उठाये जायें, ताकि उनमें अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख हो सके, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** आप जो भी निर्णय करना चाहें करें किन्तु मेरे विचार से आपने आरम्भ में जो निर्णय किया था वह ठीक था।

***अध्यक्षः** किन्तु यदि सभा इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श करना स्थगित चाहती है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैंने यह विचार किया था कि अनुच्छेद 296 के सम्बन्ध में हम जो निर्णय करेंगे उस पर बिना कोई प्रभाव डाले हुए हम इस अनुच्छेद को पारित कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुझे आशा है कि सभा इसी मार्ग को अपनायेगी। यही उपयुक्त मार्ग है अन्यथा हमारे सामने बहुत कम कार्य रह जायेगा।

***अध्यक्ष:** श्री अनन्तशयनम् आयंगर का भिन्न विचार है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस दशा में इमें इस अनुच्छेद पर विचार करना चाहिए।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि हम अनुच्छेद 299 को उठायें। उससे कोई कठिनाई नहीं पैदा होती। यदि आगे चलकर हम यह निर्णय करें कि अनुच्छेद 296 में जिन अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख है उनके अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदाय भी है, तो वे अनुच्छेद 299 के अन्तर्गत आ जायेंगे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): मैं आपके आशय को इस प्रकार समझा कि हम अनुच्छेद 299 पर विचार करें, क्योंकि उसके सम्बन्ध में हम जो निर्णय करेंगे उसका उस निर्णय पर कोई प्रभाव न पड़ेगा जो हम अनुच्छेद 296 के सम्बन्ध में करेंगे। किन्तु अनुच्छेद 296 के सम्बन्ध में हम जो निर्णय करेंगे उसका अनुच्छेद 299 सम्बन्धी निर्णय पर प्रभाव पड़ेगा। ये दो अनुच्छेद परस्पर सम्बन्धित हैं। मेरी समझ में नही आता कि उन दो अनुच्छेदों को अलग अलग उठाकर इन पर कैसे विचार किया जा सकता है। इन दोनों अनुच्छेदों में "अल्पसंख्यक समुदाय" शब्द प्रयुक्त हैं। यदि तर्क यह है कि सेवाओं के सम्बन्ध में आंग्ल-भारतीय समुदाय को दस वर्ष तक अल्पसंख्यक समुदाय समझा जा रहा है और इसलिए अनुच्देद 299 में "अल्पसंख्यक समुदाय" शब्दों को प्रयोग में लाना उपयुक्त ही है तो यही तर्क अनुच्छेद 296 के सम्बन्ध में भी उपस्थित किया जा सकता है। इसलिए यह और भी आवश्यक है कि यह अनुच्छेद स्थगित रखा जाये। चूंकि आपने यह निर्णय किया है कि अनुच्छेद 296 पर विचार-विमर्श स्थगित रखा जाये इसलिए तर्क संगत यही होगा कि अनुच्छेद 299 पर भी विचार विमर्श स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्ष:** पंडित कुंजरू, क्या मैं यह बता सकता हूं कि अनुच्छेद 296 में दो विशेष अल्पसंख्यक समुदायों का उल्लेख है। इसलिए वह अनुच्छेद केवल उन दो अल्पसंख्यक समुदायों के सम्बन्ध में है, किन्तु अनुच्छेद 299 में किसी विशेष अल्पसंख्यक समुदाय का उल्लेख नहीं है। उसमें "अल्पसंख्यक" शब्द सामान्य अर्थ में प्रयुक्त है और चाहे जो भी अल्पसंख्यक होंगे वे अनुच्छेद 299 के अन्तर्गत आ जायेंगे। केवल यह प्रश्न रह जाता है कि कौन से समुदाय अल्पसंख्यक समुदाय समझे जायेंगे। इसका अनुच्छेद 296 में उल्लेख है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या यह मान लिया गया है कि अनुच्छेद 296 के सम्बन्ध में हम जो निर्णय करेंगे उसके प्रकाश में यदि हम अनुच्छेद 299 विषयक किसी निर्णय को बदलना चाहें तो अनुच्छेद 299 पर पुनविचार करने की आशा की जायेगी?

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इसकी कोई भी सम्भावना नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी कहते हैं कि इसकी कोई सम्भावना नहीं है। इसका अर्थ यह है कि इस अनुच्छेद पर इस समय विचार होने की सम्भावना है।

***अध्यक्षः** यदि उस पर पुनर्विचार करना ही है तो उस पर आज बिल्कुल विचार न किया जाये। उस पर दो बार विचार करने से एक ही बार विचार करना अच्छा होगा। अनुच्छेद 299 स्थगित किया जाता है। अब हम अगले अनुच्छेद को अर्थात् अनुच्छेद 302 को उठाते हैं। उसके सम्बन्ध में कुछ संशोधनों की सूचना दी गई है। ये छपे हुए संशोधनों के दूसरे अंक में दिए हुए हैं।

मुझे यह बताया गया है कि अनुच्छेद 302 के सम्बन्ध में भी कुछ कठिनाई है। डॉ. अम्बेडकर ने मुझे अभी बताया है कि इस अनुच्छेद के एक उपबन्ध पर विचार करना है। वह चाहते हैं कि यह अनुच्छेद स्थगित रखा जाय। इस दशा में केवल अनुसूची 3 रह जाती है। क्या अनुसूची 3 के सम्बन्ध में भी कोई आपत्ति है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी नहीं श्रीमान, कोई आपत्ति नहीं है।

तृतीय अनुसूची

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में 'Solemnly affirm (or swear)' [सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं (अथवा शपथ लेता हूं)]' शब्दों और कोष्ठकों के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः–

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 2 में 'Solemnly affirm (or swear) [सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं (अथवा शपथ लेता हूं,) शब्दों और कोष्ठकों के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः–

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 3 में—

(क) 'declaration (घोषणा)' शब्द के स्थान पर 'affirmation or oath' (प्रतिज्ञान अथवा शपथ)' शब्द रखे जायें।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ख) 'solemnly and sincerely promise and declare' (सत्य निष्ठा और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा और घोषणा करता हूं)' शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख जायें:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 4 में—

(क) 'declaration (घोषणा)' शब्द के स्थान पर 'affirmation or oath' (प्रतिज्ञान अथवा शपथ)' शब्द रखे जायें।

(ख) 'solemnly and sincerely promise and declare' (सत्य निष्ठा और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा और घोषणा करता हूं)' शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख जायें:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में—

(क) 'for the time being specified in Part I of the First Schedule (प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित)' शब्दों और अंक को निकाल दिया जाये।

(ख) 'solemnly affirm (or swear)' [सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं (अथवा शपथ लेता हूं)]' शब्दों और कोष्ठकों के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 6 में,—

(क) 'for the time being specified in Part I of the First Schedule (प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित)' शब्दों और अंक को निकाल दिया जाये।

(ख) 'solemnly affirm (or swear)' [सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं (अथवा शपथ लेता हूं)]' शब्दों और कोष्ठकों के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 7 में,—

(क) 'declaration (घोषणा)' शब्द के स्थान पर 'affirmation or oath' (प्रतिज्ञान अथवा शपथ)' शब्द रखे जायें

(ख) 'for the time being specified in Part I of the First Schedule (प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित)' शब्दों और अंक को निकाल दिया जाये।

(ग) 'solemnly and sincerely promise and declare' (सत्यनिष्ठा और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा और घोषणा करता हूं)' शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 8 में,—

(क) 'declaration (घोषणा)' शब्द के स्थान पर 'affirmation or oath' (प्रतिज्ञान अथवा शपथ)' शब्द रखे जायें।

(ख) 'solemnly and sincerely promise and declare' (सत्यनिष्ठा और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा और घोषणा करता हूं)' शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)

'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' "

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"तृतीय अनुसूची में 'Forms of declarations (घोषणाओं के प्रपत्र)' शीर्षक स्थान पर 'Forms of affirmations or oaths (प्रतिज्ञानों अथवा शपथों के प्रपत्र)' शीर्षक रखा जाये।"

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि शीर्षक को बदलने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कोई आपत्ति नहीं है, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** तब शीर्षक बदल दिया जाता है।

अब हम प्रथम भाग को उठाते हैं। उसके सम्बन्ध में कई संशोधन हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने अभी अभी सभा के समक्ष संविधान की तृतीय अनुसूची में निर्धारित

[श्री एच.वी. कामत]

प्रतिज्ञान अथवा शपथ का परिवर्तित प्रपत्र रखा है। मैं यह देखता हूं कि उनके विभिन्न संशोधनों में यह निर्धारित किया गया है कि........

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, क्या हम प्रपत्र 1 पर विचार कर रहे हैं अथवा शीर्षक पर विचार कर रहे हैं?

***अध्यक्ष:** शीर्षक को हम पारित कर चुके हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** प्रपत्र 1 के सम्बन्ध में मैंने कुछ संशोधन उपस्थित करने हैं।

***अध्यक्ष:** श्री कामत जब समाप्त कर चुकेंगे तब आप उन्हें उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने इस नवीन अनुसूची में जिस शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्र को रखने का प्रस्ताव किया है वह उस प्रपत्र से भिन्न है जिसे यह सभा राष्ट्रपति और राज्यपालों के सम्बन्ध में पारित कर चुकी है। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 49 की ओर तथा तत्स्थानी अनुच्छेद 136 की ओर आकृष्ट करता हूं, जिनमें राज्यों के राज्यपालों के लिये शपथ अथवा प्रतिज्ञान निर्धारित किया गया है। मैं उन अनुच्छेदों की प्रतिलिपि की ओर ध्यान दिलाता हूं जिन्हें सभा स्वीकार कर चुकी थी। यह प्रतिलिपि सभा के सभी सदस्यों को दी गई थी। अनुच्छेद 49 को देखने से मेरे माननीय सहकारी यह पता लगा सकते हैं कि सभा ने शपथ और प्रतिज्ञान को जिस रूप में स्वीकार किया था उसे डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में उलट दिया है। अनुच्छेद 49 में वह इस रूप में हैं:

$$\text{“मैं, अमुक, }\frac{\text{ईश्वर की शपथ लेता हूं}}{\text{सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं”}}$$

मुझे स्मरण है—और मुझे आशा है कि मेरी स्मरणशक्ति क्षीण नहीं हो गई है—कि जब श्री महावीर त्यागी ने कुछ मास पूर्व मेरे मूल संशोधन के सम्बन्ध में इस आशय का संशोधन उपस्थित किया था तो उन्होंने यह तर्क उपस्थित किया था कि जहां तक शपथ का सम्बन्ध है उसे रेखा के ऊपर होना चाहिये क्योंकि उसका महत्व अधिक है और प्रतिज्ञान का उल्लेख रेखा के नीचे होना चाहिये। सभा ने उनके इस संशोधन को स्वीकार कर लिया था। प्रतिज्ञान अथवा शपथ का यह अन्तिम प्रपत्र हमें दी हुई पुस्तिका में उल्लखित अनुच्छेद 49 में दिया हुआ है। मुझे विश्वास है कि जब श्री त्यागी इस सभा में आज भाषण देंगे तो वे मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे। मुझे यह देखकर भी प्रसन्नता हुई है कि श्री जसपतराय कपूर ने भी मेरे ही संशोधन के समान एक संशोधन की सूचना दी है, अर्थात् उनके संशोधन का भी आशय यह है कि सभा ने शपथ को जिस रूप में स्वीकार किया था उसी रूप में उसे रखा जाये। डॉ. अम्बेडकर ने उसे उलट दिया है किन्तु मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि शपथ और प्रतिज्ञान उसी रूप में रखा जाये जिस रूप

में उसे सभा ने स्वीकार किया था। डॉ. अम्बेडकर यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि कठिनाई यह है कि आज उन्होंने जो पहला संशोधन उपस्थित किया है उसकी भाषा इस प्रकार है:

"प्रतिज्ञान अथवा शपथों के प्रपत्र" अर्थात् प्रतिज्ञान शब्द पहले आया है और शपथ शब्द बाद को आया है। इसलिये इस शब्दावली के अनुसार प्रतिज्ञान का उल्लेख रेखा के ऊपर होना चाहिये और शपथ रेखा के नीचे लिखी जानी चाहिये। मैं कह नहीं सकता कि डॉ. अम्बेडकर इस तर्क को उपस्थित करेंगे या नहीं किन्तु यदि वे इस तर्क को उपस्थित करें तो कम से कम मैं यह कहूंगा कि शीर्षक इस प्रकार रखा जा सकता है: "शपथों अथवा प्रतिज्ञानों के प्रपत्र।" इससे शपथ उसी रूप में रखी जा सकेगी जिस रूप में सभा ने उसे स्वीकार किया है, अर्थात् शपथ रेखा के ऊपर रखी जा सकेगी और प्रतिज्ञान रेखा के नीचे रखा जा सकेगा। मुझे विशेष प्रपत्रों का ही हठ नहीं है किन्तु मेरे विचार से जहां तक सभा का सम्बन्ध है उसे उस प्रपत्र में परिवर्तन न करना चाहिये जिसे वह बहुत पहले अर्थात् पिछले दिसम्बर के मास में स्वीकार कर चुकी है। मेरे विचार से सभा शपथ के जिस प्रपत्र को स्वीकार कर चुकी है उसे हमें बिना किसी कारण न तो बदलना चाहिये और न उलटना चाहिये। श्रीमान मैं पांचवें सप्ताह की सूची 2 के अपने संशोधन संख्या 103 को उपस्थित करता हूं और सभा से यह सिफारिश करता हूं कि उस गम्भीरता से विचार किया जाये। वह इस प्रकार है:

> "संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 से 63 तक में तृतीय अनुसूची में शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्र में,—
>
> 'Solemnly affirm' (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)
>
> ---
>
> 'Swear in the name of God' (ईश्वर की शपथ लेता हूं),
>
> (प्रस्तावित) शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जायें:—
>
> Swear in the name of God (ईश्वर की शपथ लेता हूं)
>
> ---
>
> Solemnly affirm (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)' "

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 110, जो श्री जसपत राय कपूर के नाम से है, श्री कामत के संशोधन के समान ही है इसलिये उसका प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): जी हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 112 भी श्री जसपत राय कपूर के नाम से है।

***श्री जसपतराय कपूर:** यदि श्री कामत का संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान** (पूर्वी पंजाब: सिख): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

'संशोधनों पर संशोधनों की सूची (1) (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 से 63 तक में, तृतीय अनुसूची में शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्र में से (प्रस्तावित शब्दों में से) 'Swear in the name of God (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' शब्द निकाल दिये जायें।

इस संशोधन को उपस्थित करने में मेरा उद्देश्य यह है कि शपथ लेने में ईश्वर का नाम नहीं लिया जाना चाहिये। सभा के समक्ष ईश्वर का नाम हटा देने का प्रस्ताव रखकर मैं ईश्वरत्व का विरोध नहीं कर रहा हूं। धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से तथा संविधान के महत्व को दृष्टि में रखकर भी मैं शपथ से ईश्वर का नाम हटा देने के लिये सभा से अनुरोध कर रहा हूं। जब हम स्कूल में पढ़ते थे तो हम प्राय: यह शपथ लेते थे "ईश्वर की शपथ, यह सच है", "ईश्वर की शपथ, मैं यह करूंगा", "ईश्वर की शपथ, मैं यह नहीं करूंगा", "ईश्वर की शपथ, यह गलत है" इत्यादि, और हमारे अध्यापक तथा बड़े बूढ़े हमसे हमेशा कहते थे कि शपथ लेने की आदत अच्छी आदत नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि उस समय जो आदतें बुरी आदतें समझी जाती थीं वे अब हमारे बड़े होने पर अच्छी आदतें कैसे समझी जाने लगी हैं। अन्य प्रकार की शपथ लेना अच्छा नहीं है। यदि किसी व्यक्ति से उसके घोषणा करने, अथवा सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करने पर भी ईश्वर की शपथ लेने को कहा जाये तो वह कहेगा "मैं सच कहूंगा। आपको मेरा विश्वास करना चाहिये। इसकी आवश्यकता नहीं कि मैं ईश्वर की शपथ लूं।" मेरे विचार से किसी व्यक्ति से ईश्वर की शपथ लेने को कहना उसका अपमान करना है। श्रीमान, मेरा यह भी विचार है कि शपथ में ईश्वर का नाम लेकर ईश्वर का निरादर करना है। इसके अतिरिक्त मैं यह कह सकता हूं कि किसी व्यक्ति से ईश्वर की शपथ लेने को कहना उसका अविश्वास करना है।

मैं कह नहीं सकता कि ऐसे महत्वपूर्ण विपत्र के सम्बन्ध में मसौदा-समिति तथा उसके सभापति ने ईश्वर की इच्छा जानने का प्रयास किया है या नहीं। मुझे इस सभा की सर्वसत्ता पर कोई सन्देह नहीं है किन्तु श्रीमान, आपकी सर्वसत्ता की सीमा इतनी विस्तृत नहीं है कि वह ईश्वर के लिये भी बन्धक हो। सम्भव है वह इसके लिये सहमत न हो। बिना उसकी इच्छा को जाने हुए हम कई स्थानों पर ईश्वर के नाम को रख रहे हैं। श्री कामत के संशोधन के अधीन संविधान के खण्डों में कुछ स्थलों पर हम ईश्वर का नाम रख चुके हैं। हम शपथ के लिये भी ईश्वर के नाम को रख रहे हैं। कल आप उसके नाम को प्रस्तावना में भी स्थान देने जा रहे हैं। मुझे सन्देह है कि ईश्वर उसे पसंद करेगा या नहीं। आपके लिये यह उत्कृष्ट संविधान हो सकता है किन्तु सम्भव है कि ईश्वर इसे पसंद न करे। सम्भव है वह इस संविधान में अपना नाम रखवाना ही न चाहे। सम्भव है कि वह साम्यवादी ईश्वर हो अथवा प्रबल समाजवादी प्रवृत्ति का हो। मैं सदस्यों से तथा डॉ. अम्बेडकर से कहता हूं कि यदि बिना उसकी इच्छा जाने

हुए आप उसका नाम रख देते हैं और कल वह यह विचार करता है कि वह इस संविधान से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखेगा तो इस संविधान का क्या होगा? मैं यह प्रार्थना करता हूं कि उसके नाम का संविधान में विभिन्न प्रकार से उल्लेख करने तथा उसका संविधान से नाता जोड़ने के पूर्व आप यह जान लें कि उसकी क्या इच्छा है। यदि डॉ. अम्बेडकर की ईश्वर तक पहुंच न हो तो, श्रीमान, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप कृपा करके उसकी इच्छा का पता लगायें और सभा को यह सूचित करें कि वह इसके लिये सहमत है। आखिर शपथ का सम्बन्ध दो पक्षों से होता है—एक वह जो शपथ लेता है और दूसरा वह जिसकी शपथ ली जाती है। वास्तव में मेरा यह निवेदन है कि यह एक औचित्य प्रश्न है कि किसी ऐसे व्यक्ति के नाम का उल्लेख संविधान में होना चाहिये या नहीं, जो सभा का सदस्य न हो और जिसकी सहमति भी प्राप्त न की गई हो। इस का बहुत संविधानिक महत्व है। कल यदि वह सहमत न हो और आपके संविधान से नाता तोड़ दे तो सारा परिश्रम निष्फल चला जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में, 'Solemnly (सत्य निष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में, 'all manner of people (सब प्रकार के लोगों)' के स्थान में 'all people (सब लोगों)' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में, 'favour (पक्षपात)' शब्द के पश्चात् अर्धविराम तथा 'affection (अनुराग)' शब्द निकाल दिया जाये।"

मेरे पहले संशोधन के फलस्वरूप एक बहुत महत्वपूर्ण संविधानिक प्रश्न उठता है और वह यह है कि क्या मंत्रियों को सदस्यों की हैसियत से नहीं बल्कि मंत्रियों की हैसियत से, एच्चे हृदय से काम करना चाहिये या नहीं। सभा कृपा करके यह देखें कि घोषणाओं के आठ प्रपत्र हैं। संघ के मंत्रियों के सम्बन्ध में दो पत्र हैं। प्रपत्र 1 और प्रपत्र 2। पहली शपथ पद-शपथ है और दूसरी शपथ गोपनीयता शपथ है। इसके अतिरिक्त राज्यों के मंत्रियों के सम्बन्ध में भी दो प्रपत्र हैं, अर्थात् प्रपत्र 5 और प्रपत्र 6, जिनमें से एक पद-शपथ के सम्बन्ध में और दूसरा

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

गोपनीयता-शपथ के सम्बन्ध में है। इन सभी दशाओं में मंत्रियों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये "सत्यनिष्ठा" से शपथ लेनी है अथवा प्रतिज्ञान करना है और यह आवश्यक नहीं है कि वह यह बच्चे हृदय से कर। यह विचार किया जा सकता है कि "सच्चे हृदय से" शब्दों को निकाल देने से वर्तमान प्रथा में कोई अन्तर नहीं आयेगा। माननीय सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि संसद के सदस्यों तथा न्यायाधीशों के लिये जो शपथों के प्रपत्र रखे गये हैं। उन पर विचार किया जाये। संसद के सदस्यों को जो घोषणा करनी होगी वह प्रपत्र 3 में दी गई है। उन्हें "सत्यनिष्ठा से तथा सच्चे हृदय से" घोषणा करनी है। न्यायाधीशों ने जो प्रतिज्ञान करना है वह प्रपत्र 4 उल्लिखित है। उन्होंने भी यह घोषणा करनी कि वे अपने कर्तव्य का पालन "सत्यनिष्ठा तथा सच्चे हृदय से" करेंगे। इसके अतिरिक्त उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों को प्रपत्र 8 के अधीन यह घोषणा करनी है कि वे अपने कर्तव्यों का पालन "सत्यनिष्ठा और सच्चे हृदय से" करेंगे। शब्दावलियों को बहुत समझ बुझ कर चुना गया है। एक शब्दावली संसद के सदस्यों तथा राज्यों के विधान मंडलों के सदस्यों और संघ न्यायालय तथा उच्च-न्यायालय के सदस्यों के लिये है, जिन्हें अपने कर्तव्यों का पालन "सत्यनिष्ठा और सच्चे हृदय" से करना है किन्तु संघ के तथा राज्य के मंत्रियों पर यह शब्दावली लागू नहीं होती। मैं यह जानना चाहता हूं कि मंत्रियों के सम्बन्ध में ये शब्द जान बूझ कर नहीं रहने दिये गये हैं। अथवा अनजाने। संसद के तथा राज्यों के विधान मंडलों के सदस्यों और न्यायाधीशों के सम्बन्ध में जिस सावधानी से "सच्चे हृदय से" शब्दों को रखा गया है उससे ज्ञात होता है कि अन्य स्थलों से ये शब्द जान बूझकर निकाल दिये गये हैं। मैं इस सभा के सदस्यों से जानना चाहता हूं कि क्या उनका विचार यह है कि जब तक वे विधान-मंडल के सदस्य बने रहेंगे तब तक वे अपने कर्तव्यों का पालन सत्यनिष्ठा से तथा "सच्चे सदस्य से" करेंगे किन्तु जैसे ही वे मंत्रिमंडल की गद्दियों पर आरूढ़ होंगे, उनको "सच्चे हृदय से" काम करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। क्या विचार यही है? यदि बात यही है तो यह आधुनिक विचार-धारा के अनुरूप ही है। वास्तव में मंत्रियों को सच्चे हृदय से काम करने की आवश्यकता है। उन्हें तो कपटी होने की आवश्यकता है। मैं कह सकता हूं कि कुछ व्यक्तियों का कपट भी सद्गुण समझा जाता है। राधा ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा था:

"निपट कपट तुम श्याम"

श्याम तुम कपटी हो। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। क्या हम भी अपने मंत्रियों को 'निपट कपट तुम श्याम' कह कर संबोधित करेंगे और यह कहेंगे "आप हमारे प्रभु हैं किन्तु निपट कपटी हैं?" यह शपथ इसी प्रकार की है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या "सच्चे हृदय से काम करना" शब्दावली स्वतन्त्र भारत के किसी मंत्री के सम्बन्ध में प्रयोग में नहीं आ सकती? मैं जानता हूं कि मंत्रियों को राजनयिक होना चाहिये, चतुर होना चाहिए, किन्तु मैं यह नहीं जानता था कि चूंकि उन्हें

राजनयिक होना चाहिये इसलिये उन्हें सच्चे हृदय से काम करने की आवश्यकता नहीं। संशोधन संख्या 119 के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है।

दूसरा संशोधन केवल मसौदे के सम्बन्ध में है। प्रपत्र 1 में कहा गया है, "मैं सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूंगा"। मेरे विचार से 'आल मैनर ऑफ पीपुल' अच्छी अंग्रेज़ी नहीं है। 'आल पीपुल' पदावली उपयुक्त पदावली है। मेरी समझ में नहीं आता कि 'आल मैनर ऑफ पीपुल' पदावली का क्या अर्थ है। इसलिये यह संशोधन मसौदे के सम्बन्ध में है। मेरे विचार से इसे स्वीकार करने में सभा को कोई आपत्ति न होनी चाहिये।

मेरा तीसरा संशोधन 'अनुराग अथवा द्वेष' शब्दों के सम्बन्ध में है, जो प्रपत्र के अन्त में प्रयुक्त है। उसमें कहा गया है कि संघ के मंत्री को लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन "बिना भय या पक्षपात" के करना चाहिये। यह उपयुक्त शब्द है। "बिना भय या पक्षपात" पदावली उपयुक्त पदावली है क्योंकि किसी भी मंत्री को लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वहन बिना भय या पक्षपात के करना चाहिये। किन्तु क्या उसे अपने कर्त्तव्य का पालन बिना लोगों के प्रति "अनुराग" रखे हुए करना चाहिये? क्या उसे लोगों के प्रति प्रेम अथवा अनुराग न होना चाहिये? किन्तु प्रतिज्ञान की शब्दावली इस प्रकार है कि किसी भी मंत्री को बिना लोगों के प्रति अनुराग अथवा द्वेष रखे हुए कार्य करना चाहिये। "बिना अनुराग के" शब्द दोषपूर्ण है। उसे लोगों के प्रति कुछ प्रेम और अनुराग होना चाहिये। हम देखते हैं कि आजकल मंत्री लोगों से दूर हटते जा रहे हैं। उन्हें लोगों के प्रति स्वाभाविक प्रेम होना चाहिये किन्तु बात यह नहीं है। वे ऐसे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं जिसमें उन्हें लोगों के प्रति द्वेष रखना होता है। प्रातों में और केन्द्र में हमें यह दिखाई देता है कि लोगों के प्रति द्वेष रखा जाता है। यदि मंत्री यह शपथ लेंगे कि मैं "आपके प्रति बिना अनुराग के व्यवहार करूंगा" तो लोग भी यह कहेंगे कि "हम भी आपके प्रति बिना अनुराग के व्यवहार करेंगे"। इस प्रकार पारस्परिक द्वेष तथा अनुराग शून्यता का ही परिचय मिलेगा। मेरा निवेदन है कि "सच्चे हृदय से" और "अनुराग से" शब्दों को रखने के सम्बन्ध में जो मेरा प्रथम संशोधन है वह स्वीकार कर लिया जाये। यदि विभिन्न पदावलियों में जानबूझ कर विभेद नहीं किया गया है और उनके अर्थ में जानबूझ कर अन्तर नहीं रखा गया है तो मेरे विचार से "और सच्चे हृदय से" शब्दों को प्रविष्ट करना चाहिये और "बिना अनुराग" शब्दों को निकाल देना चाहिये।

अध्यक्ष: ये संशोधन सभी प्रपत्रों के सम्बन्ध में हैं। कुछ संशोधन कुछ विशेष प्रपत्रों के सम्बन्ध में है। मैं उन्हें बाद को उठाऊंगा। डॉ. अम्बेडकर, छपी हुई सूची में अन्य प्रपत्रों के सम्बन्ध में कुछ संशोधन आपके नाम से हैं। क्या कोई सदस्य महोदय किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं? अन्य प्रपत्रों के सम्बन्ध में, यह मेरे ध्यान में है कि दो संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 123 और 128 हैं। किन्तु उनका स्वरूप भिन्न है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरे विचार से हम अपने भाषणों को प्रस्तुत प्रपत्र तक ही सीमित रखें। इस प्रकार अधिक संशोधन उपस्थित नहीं किये जा सकेंगे। इस अवसर पर मैं संशोधन संख्या 123 और संशोधन संख्या 128 को उपस्थित नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** यदि डॉ. अम्बेडकर संशोधन संख्यचा 3401 उपस्थित करें तो यह अनावश्यक हो जायेंगे। आप इस पर विचार करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्रों के प्रपत्र 6 में से 'or as may be specially permitted by the Governor in the case of any matter pertaining to the functions to be exerised by him in his discretion.'

(अथवा राज्यपाल स्वविवेक से प्रयोक्तव्य कृत्यों से सम्बद्ध किसी बात के बारे में ऐसा करने की विशेष अनुमति दे)' शब्द निकाल दिये जायें।"

ये शब्द अनावश्यक हैं क्योंकि हम राज्यपालों को स्वविवेक से कृत्य करने के लिये सक्षम नहीं बनाना चाहते।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं. डॉ. अम्बेडकर को यह स्मरण करा सकता हूं कि अभी अनुच्देद 143 को संशोधित नहीं किया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, मुझे स्मरण है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"संशोधनों पर संशेधनों की सूची (1) (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 57 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 2 के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जायेः

'or as may be specially permitted by the President in the case of any matter pertaining to the functions to be exercised by him in his discretion.

(अथवा राष्ट्रपति स्वविवेक से प्रयोक्तव्य कृत्यों से सम्बद्ध किसी बात के बारे में ऐसा करने की विशेष अनुमति दे)' "

***अध्यक्षः** हमने सभी प्रकार के स्वविवेक को समाप्त कर दिया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** प्रपत्र के अन्त में जो शब्दावली प्रयुक्त है उसी से कठिनाई उत्पन्न होती है।

***अध्यक्षः** इसी कारण डॉ. अम्बेडकर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि ये शब्द निकाल दिये जायें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस दशा में इस संशोधन की आवश्यकता न होगी। मेरा संशोधन संख्या 129 भी इसी के समान है और इसलिये मैं इसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रश्न 5 में 'solemnly (सत्यनिष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में 'all manner of people (सब प्रकार के लोगों)' शब्दों के स्थान पर 'all people (सब लोगों)' शब्द रखे जायें।"

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में 'favour (पक्षपात)' शब्दों के पश्चात् अर्धविराम तथा 'affection (अनुराग)' शब्द निकाल दिया जाये।"

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 61 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 6 में, 'solemnly (सत्यनिष्ठा से) शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, सरकार भूपेन्द्र सिंह मान ने अपने भाषण में जिन भावनाओं को व्यक्त किया है उनका समर्थन करने के लिये मैं अपनी जगह से उठा हूं। मैं तृतीय अनुसूची में बलात् ईश्वर का नाम रखने के विरोध में हूं। मैं इसका विरोध इसलिये कर रहा हूं कि वे लोग भी जो ईश्वर की शपथ लेते हैं संसार में सब कार्य ईश्वर के नाम से नहीं करते। किसी व्यक्ति से, चाहे वह कितना ही धर्मनिष्ठ क्यों न हो, यह कहने की क्या आवश्यकता है कि उसे अमुक कार्य अथवा अमुक कार्य का आरम्भ ईश्वर का नाम लेकर करना चाहिये। हो सकता है कि मैं एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हूं किन्तु क्या मैं प्रत्येक कार्य ईश्वर का नाम लेकर करता हूं? जब मैं प्रातःकाल अपना मुंह धोता हूं तो क्या मैं ईश्वर का नाम लेकर मुंह धोता हूं? हम इस सभा में एक ऐहिक कार्य कर रहे हैं। राज्यपाल को, मंत्री को, अथवा राष्ट्रपति को कुछ कृत्यों तथा कर्त्तव्यों का निर्वहन करते समय संविधान के उपबन्धों को ध्यान में रखना होगा। अपनी नियुक्ति के समय उनसे ईश्वर की शपथ लेने को कहना निरर्थक है।

इसके अतिरिक्त मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी भ्रम नहीं है कि सब धर्मों का लोप ही ऐहिकता है। चाहे राजनीतिज्ञ समय को देखते हुए कुछ भी कहें किन्तु इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी भ्रम नहीं है कि धर्म का विचार और ऐहिकता का विचार परस्पर विरोधी विचार है। किसी स्थल पर भी इन विचारों का समन्वय नहीं होता।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

साथ ही मैं इस स्थल पर ईश्वर के नाम के उल्लेख का इसलिये विरोध कर रहा हूं कि मेरे विचार से किसी व्यक्ति को, यदि वह चाहे तो, ईश्वरीय मार्ग का अनुसरण करने से नहीं रोका जा सकता, भले ही वह नियुक्त होते समय ईश्वर की शपथ ले या न ले।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध इसलिये हूं कि राजनीतिक क्षेत्र में ऐसे कार्यों को करने की भी आवश्यकता पड़ जाती है जो अधार्मिक होते हैं। हम सभी को विदित है कि राजनीतिज्ञों को युद्ध छेड़ने पड़ते हैं। राजनीतिज्ञों को ऐसे उपाय अपनाने पड़ते हैं जिनसे हिंसा का रक्तपात होता है। यह एक अनर्गल सी बात होगी कि वे ईश्वर की तो शपथ लें और अवसर आने पर ऐसे कार्य करें। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैं यह बिल्कुल चाहता कि तृतीय अनुसूची में ईश्वर के नाम का उल्लेख हो।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान, मेरे मित्र श्री कामत ने जो छोटा सा संशोधन उपस्थित किया है उसके समर्थन के लिये बहुत से भाषणों की अथवा बहुत से शब्दों की आवश्यकता नहीं है। सभा शपथ के प्रश्न पर विचार-विमर्श कर चुकी है और उसने यह निर्णय किया है कि ईश्वर की शपथ ली जाये। इस सभा में मेरे कुछ मित्रों ने ईश्वर की शपथ लेने का विरोध किया था क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि अकारण ईश्वर के नाम का उल्लेख न किया जाये। किन्तु उन के आपत्ति करने पर भी संविधान सभा ने यह निर्णय किया कि उन लोगों को, जिनका ईश्वर में विश्वास है, उसी रूप में शपथ लेनी चाहिये जिस रूप में वे अपने प्रतिदिन के जीवन में लेते हैं और इसलिये एक संशोधन द्वारा "ईश्वर की शपथ लेता हूं" शब्द रखे गये। मूल मसौदे में "ईश्वर की शपथ लेता हूं" शब्द नहीं थे। ये शब्द सभा के निर्णय के फलस्वरूप रखे गये। उस समय शपथ का रूप यह था कि "ईश्वर की शपथ लेता हूं" शब्द रेखा के ऊपर थे और "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" शब्द रेखा के नीचे थे।

मुझे इसका खेद है डॉ. अम्बेडकर ने एक छोटी सी चाल चली है। मुझे वह क्षमा करें किन्तु मैं यह कहूंगा कि वह एक स्कूल के लड़के की चाल है। उन्होंने "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" शब्दों को रेखा के ऊपर रख दिया है और ईश्वर को रेखा के नीचे रख दिया है। यदि यह केवल चाल ही है तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि स्वराज प्राप्त करने के पश्चात् लोग यह न समझने लगें कि ईश्वर नीचे चला गया है। मैं यह कहता हूं कि संविधान सभा ने एक बार शपथ के सम्बन्ध में यह निर्णय किया था कि "ईश्वर के नाम से शपथ लेता हूं" शब्द रेखा कि ऊपर हों और अन्य शब्द रेखा के नीचे हों। उसके लिये यह निर्णय करना स्वाभाविक ही था। "मैं स्वाभाविक ही था" शब्दों का योग इसलिये कर रहा हूं कि भारत में कुछ अनीश्वरवादियों के होते हुए भी इस समय जनसाधारण में से अधिकांश लोगों का

ईश्वर में विश्वास है। संविधान बनाने के लिये जनसाधारण में हमें इसकी स्वतंत्रता नहीं दी है कि हम जो चाहें करें। हमें जनप्रतिनिधि होने के नाते एक ऐसे संविधान का निर्माण करना है जो लोकप्रिय हो। श्रीमान, मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि डॉ. अम्बेडकर हमेशा सच्चाई से कार्य करते हैं, किन्तु मैं यह कहूंगा कि कभी कभी वे बड़ी चतुराई का परिचय देते हैं। वे बड़े सच्चे और स्पष्टभाषी रहे हैं। उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि चूंकि वे जनप्रतिनिधि हैं इसलिये वे कोई ऐसा कार्य न करें जो जनसाधारण को नापसंद हो। वे अपने नगण्य द्वेष के कारण ईश्वर को रेखा के नीचे क्यों रखते हैं? ईश्वर का रेखा के नीचे उल्लेख करने का अर्थ क्या हैं? ईश्वर आखिर क्यों है? श्रीमान, ईश्वर सत्य है। इसलिये ईश्वर की शपथ लेने का अर्थ यह हुआ कि सत्य की शपथ ली गई। "ईश्वर" की तुलना में "प्रतिज्ञान" एक प्रकार कार्य साधन का उत्कृष्ट नाम ही है। इसलिये स्थिति यह है कि जहां एक ओर "सत्य" है तो दूसरी ओर कार्यसाधन का उत्कृष्ट नाम। शपथ लेने की आवश्यकता ही क्या है? कहा जाता है कि जब कोई सज्जन कोई प्रतिज्ञान करता है तो यह माना जाता है कि वह सच्चाई से प्रतिज्ञान कर रहा है और उसके अनुसार कार्य करेगा? किन्तु यह भी कहा जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति किसी पद के लिये स्वत: निर्वाचित हो जाता है तो उसे प्रतिज्ञान करने की भी क्या आवश्यकता है? उससे प्रतिज्ञान करने के लिये कहा ही क्यों जाये? यह मान लेना चाहिये कि वह सज्जन ही बना रहेगा और सदा सच्चाई से कार्य करेगा? इसलिये प्रतिज्ञान करने अथवा शपथ लेने की रस्म को पूरा करने की आवश्यकता ही क्या है? किन्तु जब हम शपथ लेने की रस्म को स्थान दे ही रहे हैं तो मैं यह चाहता हूं कि शपथ और प्रतिज्ञान में अन्तर किया जाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, ईश्वर सत्य है और प्रतिज्ञान कार्यसाधन का उत्कृष्ट नाम है। मैं यह चाहता हूं कि कार्यसाधन का उल्लेख रेखा के नीचे हो और सत्य का उल्लेख रेखा के ऊपर हो। मैं समझता हूं कि कुछ माननीय सदस्य इस प्रश्न को अधिक महत्व न देंगे और वास्तव में मैं भी यह स्वीकार करता हूं कि इस प्रश्न का अधिक महत्व नहीं है। किन्तु डॉ. अम्बेडकर हमारे साथ मजाक कर रहे हैं। जब सभा पहले इस प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय कर चुकी है तो डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन क्यों उपस्थित किया है? डॉ. अम्बेडकर अपने संशोधन द्वारा सारी सभा को इसके लिये वचनबद्ध कर देना चाहते हैं कि ईश्वर का रेखा के नीचे उल्लेख किया जाये। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि भारत ने ही संसार के सामने ईश्वर की कल्पना रखी। मैंने इस सभा के नेताओं को यह कहते हुए सुना है कि हिन्दी अंकों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को अपनाना चाहिये क्योंकि भारत ने ही उन्हें संसार को प्रदान किया है। मेरा यह भी निवेदन है कि जब संसार में अराजकता फैली हुई थी तो हमने उसके सामने सत्य और ईश्वर का विचार रखा। भारत ने ही इस विचार को संसार के सामने रखा है। विशेषत: जब ईश्वर ने हमें स्वतंत्र किया है तो उसे रसातल को क्यों पहुंचाया जाये? ईश्वर मुख्यत: भारत का ही है। यह ईश्वर की भूमि है। इसलिए ईश्वर को ऊपर रहना चाहिए और प्रतिज्ञान को नीचे रहना चाहिए। हमें मूल मसौदे को ही स्वीकार करना चाहिए।

[श्री महाबीर त्यागी]

इसलिए मुझे आशा है कि सभा डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार नहीं करेगी। इस सम्बन्ध में दल के अनुशासन का कोई प्रश्न नहीं है। सदस्यों को प्रतोदआज्ञाओं का भय न करना चाहिय। मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार न करें। हमें अनीश्वरवादियों के कथनों से भ्रम न होना चाहिए। मुझे खेद है कि मुझे यह शब्द प्रयोग करना पड़ रहा है किन्तु.........

*__अध्यक्ष:__ क्या आप यह चाहते हैं कि सभा श्री कामत के संशोधन को स्वीकार करे?

*__श्री महावीर त्यागी:__ मैं यह चाहता हूं कि सभा डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करे और आरम्भ में हमने राष्ट्रपति की शपथ के सम्बन्ध में जिस मूल मसौदे को स्वीकार किया था उसी को अपनाये।

*__श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका__ (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान, मैं यह देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस प्रपत्र का सुझाव रखा है उसके सम्बन्ध में अकारण एक तूफान खड़ा किया गया है। वास्तव में यह प्रपत्र दो प्रपत्रों के स्थान में रखा गया है। एक प्रपत्र में दो प्रपत्रों के विकल्प रखे गए हैं। कुछ लोग ईश्वर की शपथ लेते हैं और कुछ लोग सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करते हैं। दो अलग अलग प्रपत्र न रखकर एक ही प्रपत्र रखा गया है। यदि मूल-मसौदे में नीचे रेखा नहीं खीची जाती और "ईश्वर की शपथ लेता हूं" और "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" के बीच में एक छोटी सी रेखा खींच दी जाती तो उससे भी हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती। इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि चूंकि डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में अथवा प्रस्तावित प्रपत्र में "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" शब्द रेखा के ऊपर रखे हैं और "ईश्वर की शपथ लेता हूं" शब्द रेखा के नीचे रखे हैं इसलिए इनमें से एक शब्दावली का दूसरी शब्दावली से अधिक महत्व हो जाता है। ईसाई धर्म के मानने वालों के लिए जो शपथ लेते हैं और हिन्दुओं के लिए तथा अन्य लोगों के लिए जो सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करते हैं, अलग-अलग प्रपत्रों को रखना पड़ा था। इसलिए इसकी आवश्यकता नहीं है कि नियमित रूप से कोई संशोधन प्रस्तुत किया जाये। वास्तव में डॉ. अम्बेडकर ने जिस प्रपत्र का प्रस्ताव रखा है और श्री कामत ने जिस प्रपत्र का प्रस्ताव रखा है वे एक समान हैं। इनमें से चाहे जो भी स्वीकार किया जाये उससे कोई अन्तर न पड़ेगा।

*__श्री जगत नारायण लाल__ (बिहार: जनरल): श्रीमान, यदि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार कर लें तो विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। एक को दूसरे के ऊपर रखने का कोई अर्थ नहीं है। यह भावना का प्रश्न है। दोनों एक समान ही हैं। वे "ईश्वर की शपथ लेता हूं" शब्दों को रेखा के ऊपर

रख सकते है और "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" शब्दों को रेखा के नीचे रख सकते हैं ताकि इस प्रपत्र को दोनों प्रकार की भावनाओं के लोग पसंद कर सकें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस संशोधन को प्रस्तुत करने में मेरी यह इच्छा कभी न थी कि मैं उन सदस्यों का दिल दुखाऊं जिन्होंने मसौदे की इस कारण अलोचना की है कि ईश्वर का उल्लेख रेखा के नीचे किया गया है। श्रीमान, मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस सम्बन्ध में हमने किसी एक नीति का अनुसरण नहीं किया है। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 49 में, जिसे हम पारित कर चुके हैं, मेरे विचार से ईश्वर का उल्लेख रेखा के ऊपर किया गया है और प्रतिज्ञान का उल्लेख रेखा के नीचे किया गया है। अनुच्छेद 81 में हमने प्रतिज्ञान को पहले रखा है और शपथ को बाद को रखा है। इस अनुच्छेद में, जिसके सम्बन्ध में हमने संशोधन उपस्थित किए हैं। हमने केवल मुख्य खंड के शब्दों का अनुसरण किया है, जिसमें "प्रतिज्ञान करता हूं अथवा शपथ लेता हूं" कहा गया है। इस खण्ड की भाषा इस प्रकार की होने के कारण यह तर्कसंगत ही था कि प्रतिज्ञान को रेखा के ऊपर रखा जाता और शपथ को रेखा के नीचे रखा जाता। यह बिल्कुल तर्कसंगत है। हमने प्रतिज्ञान को पहले और शपथ को बाद को इस कारण रखा कि इस देश में जब कम से कम किसी हिन्दू से न्यायालय में गवाही देने को कहा जाता है तो वह साधारणत: प्रतिज्ञान करता है। केवल ईसाई, आंग्ल-भारतीय और मुसलमान शपथ लेते हैं। हिन्दू ईश्वर का नाम लेना पसंद नहीं करते। इसलिये मैंने यह विचार किया कि इस प्रकार के प्रश्न के सम्बन्ध में हमें बहुसंख्यक समुदाय की भावनाओं तथा प्रथाओं का आदर करना चाहिए और इसी कारण हमने प्रतिज्ञान और शपथ को इस क्रम से रखा। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस सम्बन्ध में मेरा कोई निश्चित विचार नहीं है। मैं सभा की इच्छाओं को पूरा करने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। यदि सभा का यह विचार हो कि श्री कामत का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये, यद्यपि मेरा यह निवेदन है कि यह देश में प्रचलति प्रथा के कम से कम हिन्दुओं की प्रथा के विरुद्ध होगा तो मेरा यह सुझाव है कि इस समय मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये और मसौदा-समिति को यह स्वतंत्रता दी जाये कि वह संविधान के अन्य सभी अनुच्छेदों पर भी विचार करे ताकि इस दृष्टि से एकरूपता आ जाये। यह उचित न होगा कि इस स्थल पर तो संशोधन कर दिया जाये और अन्य अनुच्छेदों को उसी प्रकार छोड़ दिया जाये।

***श्री महावीर त्यागी:** व्याकरण के कारण ईश्वर के मार्ग में रुकावट न पड़नी चाहिए।

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 81 के सम्बन्ध में सभा के सामने कोई अनुच्छेद नहीं रखा गया था। यह कहा गया था कि संसद के प्रत्येक सदन में प्रत्येक सदस्य

को तृतीय अनुसूची में उल्लिखित प्रतिज्ञान करना होगा अथवा शपथ लेनी होगी। किन्तु सभा राष्ट्रपति और राज्यपालों के लिए शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्रों को स्वीकार कर चुकी है और ये प्रपत्र उन्हीं प्रपत्रों के समान हैं जिन्हें मैंने आज अपने संशोधन द्वारा प्रस्तुत किया है।

***अध्यक्षः** इस विषय पर वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा यह होगा कि आप इस पर मत दें। यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिस पर अधिक वाद-विवाद को सकता है। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर कह चुके हैं, वे इस सम्बन्ध में कोई विशेष भावना नहीं रखते। सभा चाहे जो भी निर्णय करे, वे केवल इसकी स्वतंत्रता चाहेंगे कि सभी अनुच्छेद उसी रूप में रखे जायें। इसलिए मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** डॉ. अम्बेडकर ने मेरे संशोधनों की कोई चर्चा नहीं की।

***अध्यक्षः** यह दूसरी बात है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या "सच्चे हृदय से" शब्दों के सम्बन्ध में?

"सच्चे हृदय से" शब्दों के पश्चात् मैं कुछ और जोड़ना चाहूंगा। केवल ये शब्द ही पर्याप्त नहीं होंगे।

***अध्यक्षः** वे चाहते हैं कि "अनुराग" शब्द निकाल दिया जाये।

(कुछ रुकने के पश्चात्)

अच्छा मैं उस संशोधन को उठाऊंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 से 63 तक में तृतीय अनुसूची में शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्र में:

'solemnly affirm (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)'
——————————————— (प्रस्तावित) शब्दों
swear in the name of God (ईश्वर की शपथ लेता हूं)'

के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जायें:-

'swear in the name of God (ईश्वर की शपथ लेता हूं)'
———————————————
'solemnly affirm (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं)'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** मैं यह मान लेता हूं कि सभा डॉ. अम्बेडकर को इसकी स्वतंत्रता देती है कि अन्य अनुच्छेदों में जहां कहीं ये शब्द आयें उन्हें वे इसी क्रम से रख दें।

***माननीय सदस्यः** जी हां।

***श्री जसपतराय कपूरः** क्या मैं यह सुझाव प्रस्तुत कर सकता हूं कि-जहां कहीं "प्रतिज्ञान अथवा शपथ शब्द लाये हैं वहां "शपथ" शब्द पहले रखा जाये। और "प्रतिज्ञान" शब्द उसके बाद रखा जाये।

यह क्रम खण्ड में भी रखा जाये।

***अध्यक्ष:** यही होगा। जहां कहीं यह पदावली प्रयुक्त हो वह एक ही क्रम से रखी जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची (1) (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 से 63 तक में, तृतीय अनुसूची में शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रपत्र में से (प्रस्तावित शब्दों में से) 'swear in the name of God (ईश्वर की शपथ लेता हूं)' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में 'solemnly (सत्यनिष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में 'all manner of people (सब प्रकार के लोगों)' के स्थान में, 'all people (सब लोगों)' शब्द रखे जायें।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस मसौदा-समिति के विचारार्थ अलग रख दिया जाये।

***अध्यक्ष:** इस पर मत लेने के लिये जोर नहीं दिया जाता। इसलिये मैं यह समझता हूं कि इसे छोड़ दिया गया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 1 में 'favour (पक्षपात)' शब्दों के पश्चात् अर्ध विराम तथा 'affection (अनुराग)' शब्द निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्रों के प्रपत्र 6 में से 'or as may be specially permitted by the Governor in the case of any matter pertaining to the functions to be exercised by him in his

discretion (अथवा राज्यपाल स्वविवेक से प्रयोक्तव्य कृत्यों से सम्बद्ध किसी बात के बारे में ऐसा करने की विशेष अनुमति दे)' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अन्य संशोधनों पर मत लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन पर उसी प्रकार मत दिये जायेंगे जैसे अन्य संशोधनों के सम्बन्ध में दिये गये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उन्हें रस्मी तौर पर सभा के सामने रखा जाये और वे उन्हें अस्वीकार कर दे।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 57 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 2 में 'solemnly (सत्यनिष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में 'solemnly (सत्यनिष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में 'all manner of people (सब प्रकार के लोगों)' शब्दों के स्थान पर 'all people (सब लोगों)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 60 के सम्बन्ध में, तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 5 में 'favour (पक्षपात)' शब्द के पश्चात् अर्ध विराम तथा 'affection (अनुराग)' शब्द निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 61 के सम्बन्ध में तृतीय अनुसूची में घोषणाओं के प्रपत्र 6 में, 'solemnly (सत्यनिष्ठा से)' शब्दों के पश्चात् 'and sincerely (और सच्चे हृदय से)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं इन सभी प्रपत्रों के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित प्रस्ताव पर मत लेता हूं, जैसा कि वह श्री कामत के संशोधन 50 के फलस्वरूप तथा डॉ. अम्बेडकर के अपने संशोधन के फलस्वरूप संशोधित हुआ है। मेरे विचार से उन्हें अलग-अलग पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"तृतीय अनुसूची, संशोधित रूप में, संविधान का अंश बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

तृत्तीय अनुसूची, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम सभा को सोमवार के प्रातः नौ बजे तक के लिये स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, 29 अगस्त, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.20.49
320

अंक 9
संख्या 20

सोमवार
29 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
संविधान का मसौदा—*(जारी)*	
[सप्तम् अनुसूची: संघ सूची की प्रविष्टि 1 से 7 पर विचार]	1091-1917

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 29 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

सप्तम अनुसूची

***अध्यक्षः** आज हम सप्तम अनुसूची को लेंगे। एक प्रश्न है, जिस पर मैंने कुछ विचार किया है और वह उस प्रणाली के सम्बन्ध में है, जिसका इस अनुच्छेद पर विचार करने में अनुसरण किया जायेगा। हमारे पास प्रविष्टियों की संख्या बहुत है और कुछ प्रविष्टियों पर संशोधनों की सूचनायें हैं। मैं यह मान लेता हूं कि जिन प्रविष्टियों पर संशोधन नहीं है, उन पर भाषण नहीं होंगे। उन पर सभा का मत मैं अवश्य लूंगा। जिन मदों पर संशोधनों की सूचनायें प्राप्त हुई हैं, उनको पेश किया जायेगा, पर मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि प्रत्येक मद पर वे अपने विचार लगभग 5 मिनट तक ही व्यक्त करें। हमारे पास मदों की एक बड़ी संख्या है और यदि भाषणों में इससे अधिक समय दिया गया, तो सूचियों पर हमें बहुत अधिक दिन लगाने होंगे। मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्यों के लिये यह बात अनुकूल होगी। यदि कोई ऐसा विशिष्ट मद है, जिसके सम्बन्ध में मुझे यह प्रतीत हो कि इस पर अधिक परामर्श करना आवश्यक है, तो उस पर मैं अधिक समय तक परामर्श होने दूंगा, पर सामान्यतया मैं प्रत्येक मद के लिये पांच मिनट रखूंगा।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रांतः जनरल): ऐसे मदों के बारे में भी, जिन पर कोई संशोधन नहीं है, क्या आप कृपा कर सदस्यों को प्रश्न करने और उत्तर प्राप्त करने का अवसर देंगे, जिससे कि वे अपने संदेह मिटा सकें?

***अध्यक्षः** यदि कोई संदेह होंगे, तो उनका अवश्य निराकरण किया जायेगा।

***श्री बी. दास** (उड़ीसाः जनरल): श्रीमान, केवल सूची 1 में 91 मद हैं। कुछ ऐसे माननीय सदस्य हैं, जिन्होंने कुछ खास मदों पर संशोधनों की सूचना दी है। परन्तु यदि संघ, समवर्ती तथा राज्य सूचियों में अन्तर्ग्रस्त सिद्धान्तों के सम्बन्ध में साधारण चर्चा होगी, तो उससे स्थिति बहुत अधिक स्पष्ट हो जायेगी और हम सूचियों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। श्रीमान, यही मेरा निवेदन है।

*****अध्यक्ष:** मुझे भय है कि इससे वाद-विवाद और दुगना बढ़ जायेगा। इसके कारण वाद-विवाद में कोई कमी नहीं होती है। अत: किसी विशिष्ट मद के सम्बन्ध में उठाये गये किसी प्रश्न पर जरूर विचार किया जायेगा। पर मैं यह नहीं समझता हूं कि इन तीनों सूचियों के विषयों के विभाजन पर सामान्य वाद-विवाद करने से किसी लाभदायक प्रयोजन की सिद्धी होगी। संविधान में इस विषय सम्बन्धी अनुच्छेदों पर जब हम विचार कर रहे थे, उस समय हम इस विषय पर वाद-विवाद कर चुके थे।

*****सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): हम आपके इस निश्चय को शिरोधार्य करते हैं कि उन मदों को, जिन पर संशोधन नहीं हैं, बिना भाषणों के स्वीकार कर लिया जाये। इस आदेश के प्रति जो भावना है, उसे हम समझते हैं। वास्तविक कठिनाई यह है कि इन मदों को अभी नये रूप में रखा गया है और सूचना इतनी अल्पकालीन थी कि हम उनका अध्ययन न कर सकें। अपने लिये तो मैं यह कहूंगा कि या तो मैं बहुत सावधान नहीं था, या जो मद अब रखे गये हैं, उनका अध्ययन करने के लिये मेरे पास समय नहीं था। अत: सबसे अच्छी बात यह होगी कि कार्यावलि पर अनेक मदों को पारित कर दिया जाये। जैसा कि मैंने कहा था, बहुत से मदों को बदल दिया गया है और वे नये हैं और इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उन पर संशोधन नहीं हैं और इसलिये यह मान लिया जाये कि सदस्यों ने उन्हें स्वीकार कर लिया है। इसके विपरीत बात यह है कि उनको समझने में हमें कठिनाई हो रही है।

*****अध्यक्ष:** यदि कोई सदस्य किसी कठिनाई की ओर संकेत करेगा, तो मैं उस पर विचार करूंगा।

*****श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): श्रीमान, मुझे एक बात निवेदन करनी है। अध्यक्ष महोदय, बार-बार मंच पर आकर औचित्य प्रश्न उठाने में मुझे कोई प्रसन्नता नहीं होती है। यह मेरी प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है और यही बात कई माननीय सदस्यों के साथ भी है। पर आज तो हमारे सामने एक अनोखी परिस्थिति आ गई है। जहां तक इन संशोधनों का सम्बन्ध है, डॉ. अम्बेडकर अपने पुराने कारनामों से भी आगे बढ़ गये हैं।

श्रीमान, आपने यह देखा होगा कि जो संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें से बहुत से संविधान के मसौदे में के मदों से पूर्णतया भिन्न हैं। विचारशील होकर बड़ी सावधानी से मैं यह कहता हूं कि उनमें बहुत सी बातें मुझे बाद में जोड़ी हुई मालूम होती हैं। जैसा कि हिन्दू कोड विधेयक में किया गया था, यहां भी उसी प्रकार कई बातें बाद में जोड़ दी गई हैं। पर बाद में जोड़ी हुई इन बातों को छिपाने का प्रयत्न किया गया है और इसी कारण आज के संशोधनों के मसौदे

में उनको नये मसौदे के रूप में रखा गया है। इसमें संदेह नहीं कि डॉक्टर अम्बेडकर यही कहेंगे कि परिवर्तन मसौदा सम्बन्धी है, जैसा कि उन्होंने हिन्दू कोड विधेयक के संशोधनों के बारे में कहा था। पर मैं निवेदन करता हूं कि यहां भी बड़ी बड़ी गम्भीर बातें बाद में जोड़ दी गई हैं। मुझे ये संशोधन कल प्रातःकाल मिले थे और दैवयोग से सरदार हुकम सिंह मिल गये और हमने इन संशोधनों के मूल पाठ पर सावधानी से विचार किया। उस समय हमें गम्भीर परिवर्तन मिले और बाद में जोड़ी हुई बातें मिलीं, परन्तु संशोधन भेजने के लिये समय केवल कल सायंकाल के पांच बजे तक का ही था। संशोधनों पर विचार करने के लिये हमें केवल कुछ घंटे की मिले। सरदार हुकम सिंह की तरह मैं भी स्वीकार करता हूं कि इन संशोधनों के सम्बन्ध में, जैसा कि हमारे निर्वाचन-क्षेत्र चाहते हैं, उस प्रकार का कर्तव्य पालन हम नहीं कर सके।

मैं निवेदन करता हूं कि उन मदों पर विचार करना हम स्थगित रखें, जिनका मसौदा पूर्णतया नया और भिन्न रूप का है। हम उन पर सावधानीपूर्वक विचार नहीं कर सके हैं। मैं सरदार हुकम सिंह के इस सुझाव का समर्थन करता हूं कि यद्यपि कुछ मदों पर संशोधन नहीं किये गये हैं, पर यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उन पर कोई आपत्ति नहीं है। मैं देखता हूं कि केवल कुछ सदस्यों ने ही दो सूचियों पर संशोधन भेजे हैं और अन्य सदस्यों ने संशोधन नहीं भेजे हैं। मेरा विश्वास है कि उन्हें नये मसौदों को देखने का समय नहीं मिला। मैंने पंडित कुंजरू से पूछा, उन्होंने कहा कि गत रात्रि को उन्हें सूची मिली और उनके पास इन पर विचार करने का समय नहीं था। इस गम्भीर परिस्थिति में हमें सदैव के लिये अपनी पद्धति पर विनिश्चय कर लेना चाहिये। पांच मिनट के भाषण की परिसीमा के आपके आदेश को मैं स्वीकार करता हूं। कुछ समस्यों को पूरे पांच मिनट भी नहीं लगेंगे। पर मैं निवेदन करता हूं कि इन संशोधनों पर हमें विचार करने का समय दिया जाये, जिनमें नये विचार हैं। उनके लिये हमें इस समय हमेशा के लिये कार्य पद्धति निश्चित कर लेनी चाहिये।

*अध्यक्षः क्या मैं एक सुझाव दे सकता हूं? यदि सदस्य यह वचन दें कि कल अनुसूचियों को समाप्त कर देंगे, तो हम अब स्थगित कर सकते हैं और आज दो घंटे और कल दो घंटे की अपेक्षा कल चार घंटे तक बैठ सकते हैं।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्त प्रान्तः जनरल): ऐसा वचन कोई नहीं दे सकता है और यदि हम दे भी सकते होते, तो भी सिद्धान्त के अनुसार हमें ऐसा वचन नहीं देना चाहिये। श्रीमान, मेरा विचार यह है।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः बहुत से सदस्य इस विषय में समझौता नहीं कर सकेंगे। मैं स्वयं ऐसा कोई समझौता नहीं कर सकता हूं। कठिनाई यह है कि हम संशोधनों पर पूर्णतया विचार नहीं कर सके हैं। बहुत से सदस्यों की स्थिति तो ऐसी है कि उन्होंने संशोधन पढ़े तक नहीं हैं और उनके महत्व पर कोई ध्यान नहीं दिया है। मैं ऐसी स्थिति में तो नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता हूं कि सदस्य के पास इस विचार के समर्थन में कोई प्रमाण है कि अन्य सदस्य संशोधनों का अध्ययन नहीं करते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कुछ बड़े गम्भीर सदस्यों ने मुझे यह विश्वास दिलाया है कि उन्होंने संशोधन नहीं पढ़े हैं। अत: संशोधनों की गम्भीरता पर विचार करते हुए मैं यह कहता हूं कि उन पर विचार करने के लिये सभा को समय मिलना चाहिये। यदि यह कहा जाये कि कुछ सदस्य, जो अपने कर्तव्य का इस रूप में पालन करने का प्रयत्न करते हैं, जो सभा के लिये एक सामान्य रूप नहीं हैं, उन्होंने इन संशोधनों पर विचार कर लिया है और इन संशोधनों पर और अधिक वाद-विवाद या विचार करने से कोई लाभ नहीं होगा, तब तो हम इस विषय को डॉक्टर अम्बेडकर और समवाय पर छोड़ सकते हैं और वे जैसा चाहें, वैसा करें।

***अध्यक्ष:** यदि किसी खास संशोधन या मद पर कोई प्रश्न उठता है और यदि सदस्य चाहेंगे, तो हम उस समय उस पर विचार करेंगे। आइये, अब हम एक एक मद को लेकर कार्यारम्भ करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): मैं यह कहना चाहूंगा कि इन संशोधनों को परसों शनिवार को घुमा दिया गया था।

***अध्यक्ष:** क्या उनको शनिवार को घुमा दिया गया था?

***कुछ माननीय सदस्य:** जी हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** शनिवार सायंकाल को। मेरा ऐसा ख्याल है। जहां तक श्री नज़ीरुद्दीन का सम्बन्ध है, उनके नाम से तो लगभग चालीस संशोधन आ गये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** केवल बीस ही तो पहुंचे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वे समूची सूची 1 पर हैं। अत: मेरा निवेदन यह है कि उनकी इस शिकायत को कि उनको समय नहीं मिला, पूर्णतया निराधार समझना चाहिये।

संघ सूची

प्रविष्टि 1

***अध्यक्ष:** अब हम मदों को लेंगे। मद संख्या 1। इस मद पर किसी संशोधन की सूचना मुझे नहीं दिखाई देती है। डॉ. देशमुख द्वारा भेजे गये कुछ संशोधन मुझे अभी दिये गये हैं। मुझे ये अभी आज ही मिले हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): मद संख्या 1 पर कोई संशोधन नहीं है।

***अध्यक्षः** उस सूची में प्रविष्टि 1 पर एक संशोधन है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): जल्दी में मैं यह ही कर सका।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा, आप अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कम से कम हमारे पास इस संशोधन की एक प्रति तो होनी चाहिये।

***अध्यक्षः** स्वयं मेरे पास प्रति नहीं है। केवल एक प्रति थी, उसे मैंने सदस्यों को दे दिया है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं, जो इस प्रकार है:

"प्रविष्टि 1 के स्थान में यह प्रविष्ट किया जाये:—

'defence of India and of every part thereof and generally for all purposes of defence including all such acts as may be necessary in times of war including training, conscription, demobilisation, etc.' "

[भारत और भारत के प्रत्येक भाग को प्रतिरक्षा और सामान्यतया प्रतिरक्षा के समस्त प्रयोजनों के लिये उन सब कार्यवाहियों के सहित जिनको प्रशिक्षण, सेना में अनिवार्यतः भरती करना, सैन्य वियोजन इत्यादि के समेत युद्धकाल में आवश्यक समझा जाये।]

श्रीमान, इस तथ्य के अतिरिक्त कि मेरा संशोधन इस प्रविष्टि के प्रयोजन को अधिक अच्छे प्रकार से व्यक्त करता है, एक या दो बातें ऐसी हैं, जिनका स्पष्टतया समावेश करना मैं आवश्यक समझता हूं। उदाहरणार्थ, सैन्य विघटन और प्रशिक्षण। जिस रूप में प्रविष्टि है, उसमें सैन्य वियोजन को तो स्थान दिया गया है, पर युद्ध काल में प्रशिक्षण का कोई जिक्र नहीं है, जो कि युद्ध प्रयोजनों के लिये बहुत ही आवश्यक है। अनिवार्यतः सेना में भरती का भी कोई जिक्र नहीं है। आजकल हम अधिकाधिक सर्वव्यापी युद्ध लड़ते हैं और संघ सरकार के लिये घोषणा करना और अनिवार्यतः सेना में भरती करना किसी समय भी आवश्यक हो सकता है। यह एक ऐसा विषय नहीं है, जिसे देश के प्रति रक्षा प्रबन्ध का भाग कहा जा सके। यह एक विशिष्ट मद है, जिसके लिये खास अधिनियम अपेक्षित है और अध्यादेश आवश्यक होंगे और इस दृष्टि से यह अच्छा होगा कि संघ सरकार के लिये एक ऐसा खास उपबन्ध रखा जाये कि वह जब आवश्यकता पड़े, अनिवार्यतः सेना में भरती कर सके।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): क्या "सारे ऐसे कार्य, जो युद्ध काल में युद्ध को सफलता पूर्वक चलाने में सहायक हों" में अनिवार्यत: सेना में भरती नहीं आती है?

डॉ. पी.एस. देशमुख: श्रीमान, मैं ऐसा नहीं समझता हूं। यदि सैन्य वियोजन का जिक्र करना आवश्यक है, जो कि युद्ध की समाप्ति का परिणाम सूचक अंग है तो मैं समझता हूं कि सैन्य वियोजन को भी विशिष्ट रूप में रखा जाये। हां, यह केवल सुझाव है। मेरे मित्र श्री कामत ने कुछ और ही बात समझी है। यदि बात ऐसी है तो उनके लिये ऐसा समझ लेना ठीक है। पर मैं तो यही कहूंगा कि जिस प्रकार से प्रविष्टि की शब्दावली है, वह उतनी व्यापक नहीं है, जितनी कि होनी चाहिये। प्रतिरक्षा सम्बन्धी प्रबन्धों में मेरे विचार से सेना में अनिवार्यत: भरती का उल्लेख आवश्यक है। जिस रूप में प्रविष्टि है, उसमें जहां तक प्रतिरक्षा अथवा युद्ध की तैयारियों का सम्बन्ध है, उनके लिये समस्त प्रयोजनों का उल्लेख नहीं है, अत: सभा की स्वीकृति के लिये मैं इस नये मसौदे की सिफारिश करूंगा।

***अध्यक्ष:** आपने आरम्भ में इस संशोधन की सूचना नहीं दी। और न आपने अपने भाषण के आरम्भ में ही सूचना दी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह संशोधन पर संशोधन नहीं है।

***अध्यक्ष:** यह तो बिल्कुल ही नया संशोधन है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** जहां तक अनुच्छेद का सम्बन्ध है, मैं इस संशोधन को उसी सिद्धांत के अनुसार पेश कर रहा हूं, जिसके अनुसार डॉ. अम्बेडकर अपने संशोधन पेश करते चले आये हैं।

***अध्यक्ष:** पहले प्रविष्टि 1 पर संशोधन की सूचना न थी। प्रथम बार इस प्रविष्टि पर हमारे सामने एक संशोधन आया है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** यह सत्य है, श्रीमान, यदि डॉ. अम्बेडकर यह समझते हैं कि इस प्रविशिष्ट का फिर से मसौदा बनाना आवश्यक है, तो शायद वे इसे स्वीकार कर लेंगे, अन्यथा मैं उसे वापस लेने को तैयार हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह केवल प्रविष्टि 1 का अन्वय है। आपने यह आपने यह आदेश दिया था कि एक प्रविष्टि पर हम पांच मिनट से अधिक समय न लगायें और पांच मिनट से अधिक समय लग चुका है।

***अध्यक्ष:** जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने बताया है कि यह केवल प्रविष्टि 1 का पद विन्यास है, तो इसे हम उन पर ही छोड़ते हैं, वे इस पर विचार करें। मैं नहीं समझता हूं कि इन विषयों पर हम अधिक वाद-विवाद करें, विशेषकर जबकि उनमें कोई नया विचार नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल)**:** श्रीमान, हमें अपने विचार प्रकट करने दिये जायें।

***अध्यक्षः** मूल प्रविष्टि के सम्बन्ध में या संशोधन के?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** दोनों पर।

***अध्यक्षः** क्या मूल प्रविष्टि पर कुछ कहना आवश्यक है, जबकि विरोध नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं प्रविष्टि पर कुछ कहना चाहता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि इन तीन सूचियों के सम्बन्ध में खास आपत्ति केवल यह हो सकती है कि कोई विशिष्ट मद सूची 1 में न रखा जाये, वरन् सूची 2 या सूची 3 में रखा जाये। तर्क इसी आधार पर होना चाहिये। जहां तक इस विशिष्ट प्रविष्ट का सम्बन्ध है, यह तो इस विवाद से सर्वथा परे है। इसको तो केन्द्रीय सूची में रखना ही चाहिये। डॉ.देशमुख का संशोधन जिस रूप में यह प्रविष्टि है, उसका केवल रूपान्तर ही हैं। मैं समझता हूं कि किसी ऐसे विषय पर, जिस पर सब लोग एकमत हैं कि यह उत्तरदायित्व संघ का है, कोई वाद विवाद नहीं होना चाहिये।

***अध्यक्षः** इस संशोधन में यह नहीं सुझाया गया है कि इस मद को किसी अन्य सूची में रखा जाये। बात केवल यह है कि इसमें संशोधन किया जाये, जिससे कि उसी विचार को एक दूसरे रूप में व्यक्त किया जा सके। क्या इस पर अधिक वाद-विवाद आवश्यक है। यदि प्रस्थापना यह होती कि इस मद को किसी एक सूची में निकालकर किसी अन्य सूची में जाये, तब वह सारवत् प्रश्न होता।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** हमें शब्दावली में सुधार करने का भी हक है।

***अध्यक्षः** ऐसा करने के आपके अधिकार पर मैं आपत्ति नहीं करता हूं। मैं तो केवल यह सुझाव रख रहा हूं कि इस विषय में क्या यह सब आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिये आपने किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** पर एक अन्य माननीय सदस्य ने संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्षः** पर उन्होंने तो डॉ. अम्बेडकर पर छोड़ दिया है कि यदि वे उचित समझें, तो शब्दावली में सुधार कर लें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** जिन सदस्यों ने संशोधन नहीं भेजे हैं, क्या वे इस प्रविष्टि पर नहीं बोल सकते हैं?

***अध्यक्षः** सदस्य के किसी भी विषय पर बोलने के अधिकार पर मैं आपत्ति नहीं करता हूं, पर मैं तो यह सुझाव रख रहा हूं कि जब वास्तव में कोई मतभेद नहीं है, तो क्या सब आवश्यक है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यदि मैं आवश्यक नहीं समझता, तो भाषण देने खड़ा नहीं होता।

***अध्यक्षः** जैसे कि यह कोई सारवत् प्रश्न है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं समझता हूं कि यह सारवत् प्रश्न है।

***अध्यक्षः** यदि मैं एक विषय में ऐसा करने दूं, तो फिर मुझे हर एक विषय में ऐसा करने देना होगा और हर बार वाद-विवाद होगा और जब एक बार वाद-विवाद आरम्भ हो जाता है, तो मैं जब किसी सदस्य को बोलने देता हूं, तो दूसरे को नहीं रोक सकता हूं और इसका मतलब है कि एक ऐसा लम्बा वाद-विवाद छिड़ जायेगा, जो इन सूचियों पर सप्ताहों तक चलेगा।

***श्री महावीर त्यागीः** यदि आप प्रो. सक्सेना को एक बार आज्ञा दे देंगे, तो वे स्वयं पूरे दिन तक बोलते रहेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** कम से कम कुछ प्रविष्टियां ऐसी हैं, जो महत्वपूर्ण हैं और मैं आशा करता हूं कि उन पर आप सामान्य वाद-विवाद बन्द न करने की कृपा करेंगे।

***अध्यक्षः** यदि मुझे यह मालूम हो जायेगा कि कोई सारवत् प्रश्न उठा दिया गया है, तो मैं उस पर अवश्य वाद-विवाद होने दूंगा, पर यदि वह केवल जिस रूप में प्रविष्टि है, उसे उसी रूप में समर्थन करने के लिये है या वह भाषा पर किसी सुझाव के रूप में है, तो मैं समझता हूं कि उसे मसौदा-समिति पर छोड़ देना चाहिये। चूंकि श्री सक्सेना इस मद की प्रविष्टि के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहते हैं और डॉ. देशमुख के उस संशोधन का केवल समर्थन करना चाहते हैं, जिसे डॉ. देशमुख ने स्वयं मसौदा-समिति के सुपुर्द कर दिया है। मैं यह नहीं देख पाता हूं कि इस विषय में भाषण देने की बात ही कहां उठती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया है।

***अध्यक्षः** स्वीकार करने का प्रश्न नहीं है। वह तो भाषा सुधारने का प्रश्न है और वे कहते हैं कि वे उसे मसौदा-समिति पर छोड़ देंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैंने सोचा था कि कि कम से कम "सेना में अनिवार्यतः भरती" शब्द उसमें होने चाहिये।

***अध्यक्षः** यदि यह एक नया विचार है, तो उस दशा में अन्य विचार प्रस्तुत हो जाते हैं, पर मैंने सोचा कि वह कोई नया विचार नहीं है और इसीलिए मैंने उनसे वे बातें कही थीं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सामान्यतया प्रतिरक्षा की समस्त तैयारियां अर्थात् उन शब्दों में सब बातें आ जातीं हैं—केवल 'सेना में अनिवार्यतः भरती' ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ मैं उसे स्पष्ट कराना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ वह आवश्यक नहीं है। प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 1 संघ सूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 1 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 2

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 2 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये—

'2—Central Bureau of Intelligence & Investigation.

(2–केन्द्रीय गुप्त वार्त्ता और अनुसंधान विभाग।)' "

केवल 'और अनुसंधान' शब्द जोड़े गये हैं। अन्य यथा प्रविष्टि वही है, जो मसौदे में है।

*__श्री महावीर त्यागी:__ इन नये शब्दों का क्या महत्व है? क्या आप इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि आपने इन शब्दों को क्यों जोड़ा है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ विचार यह है कि संघ कार्यालय में एक प्रकार का विभाग होना चाहिये, जो भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में लोगों द्वारा किये गये किसी प्रकार के अपराध के संबंध की समस्त सूचना प्राप्त करे और साथ ही साथ यह अनुसंधान करे कि उन्हें जो सूचनायें मिली हैं, वे सही हैं या नहीं और इसके द्वारा प्रान्तीय सरकारों को यह सूचना दे सके कि भारत के भिन्न-भिन्न भागों में क्या-क्या हो रहा है, जिससे कि ऐसी सूचना के अभाव में वे जिस प्रकार से आरक्षक शक्तियों का प्रयोग करते, उससे अच्छी रीति में उनका प्रयोग कर सकें।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (पष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 2 में 'and Investigation' (और अनुसंधान) शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

इसके बाद मैं इससे आगे का संशोधन पेश करता हूं, जो कि पहले संशोधन के विकल्प में है।

"कि सूची 1 (पष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 2 में 'Investigation' (अनुसंधान) शब्द के स्थान में 'Central

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

Bureau of Investigation' (केन्द्रीय अनुसंधान विभाग) शब्द रखे जायें।"

मूल प्रविष्टि "केन्द्रीय गुप्त वार्त्ता विभाग" था। नई प्रविष्टि में "केन्द्रीय गुप्त वार्त्ता और अनुसंधाान विभाग" है। "और अनुसंधान" शब्दों का मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि असंदिग्ध सा प्रभाव होगा। मैं यह मानता हूं कि संघ सरकार का यह कर्तव्य होगा कि केन्दीय गुप्त वार्त्ता विभाग रखे। यह ठीक है। पर इसके बाद शब्द आते हैं ''और अनुसंधान'' और हम नहीं जानते कि इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है। क्या इन "और अनुसंधान" शब्दों का यह अर्थ है कि अनुसंधान विभाग केवल अनुसंधान करेगा? इनका अर्थ बिल्कुल ही भिन्न होगा। यदि केन्द्रीय गुप्त वार्त्ता विभाग के तथा अनुसंधान विभाग के क्षेत्र को बढ़ाने का अर्थ है, तब तो बात ही दूसरी है, पर श्री महावीर त्यागी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि संभव है, केन्द्रीय सरकार अनुसंधान करना आवश्यक समझे। श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि यदि इसका यही निर्वचन किया जायेगा, तो इस संशोधन के प्रभाव को स्वीकार करना कठिन हो जायेगा। हम जानते हैं कि अपराध का अनुसंधान प्रान्तीय विषय है और इसे हम स्वीकार कर चुके हैं। अब यदि हम केन्द्रीय सरकार को भी अनुसंधान करने दें तो कल यह होगा कि एक ही अपराध के लिये बराबर दो अनुसंधान किये जायेंगे, एक संघ सरकार द्वारा और दूसरा राज्य सरकार द्वारा। परिणाम यह निकलेगा कि आपस में मुठभेड़ होगी और कोई भी यह न जान सकेगा कि किसका अपराध पत्र अथवा अन्तिम प्रतिवेदन स्वीकार्य होगा। संघ सरकार अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी और प्रान्तीय सरकार अपराध-पत्र और इन दोनों समवर्ती प्राधिकारों में परस्पर बहुत विरोध हो सकता है। यदि यह मद अनुसंधान करने के लिये है, तब तो उसको स्वीकार करना सरल नहीं है। इसी संदेह के कारण मैं इस संशोधन को प्रस्तुत करने के लिये प्रेरित हुआ हूं। यद्यपि मुझे इसके स्वीकार किये जाने की कोई आशा नहीं है, पर कम से कम सभा के समक्ष अपने संदेहों को तो प्रस्तुत कर ही दूं और इन संदेहों की वास्तव में डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं पुष्टि की है। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या इस अर्थ को तुरन्त स्वीकार कर लेना संभव है कि अपराधों के अनुसंधान करने की शक्ति संघ को दी जाये। मेरा पहला संशोधन 'और अनुसंधान' शब्दों के हटाने के उद्देश्य का है। यदि आप इस प्रविष्टि में अनुसंधान को रखना ही चाहते है, तो वह केन्द्रीय गुप्त वार्त्ता विभाग तथा अनुसंधान विभाग होना चाहिये। यदि दो विभाग होंगे, तो कोई कठिनाई नहीं हो सकती है और न कोई मुठभेड़ होगी और जितने विभाग आप चाहते हैं, उनको हम रखें, पर यदि आप अनुसंधान विभाग चाहते हैं, तो इसका आशय होगा कि आप विरोध को निमंत्रण दे रहे हैं। शायद यह प्रान्तीय क्षेत्र के अधिकारों को हथियाने का एक और प्रयत्न है। मैं देखता हूं कि अपने लिये अधिकाधिक शक्तियां लेने की केन्द्रीय सरकार की क्षुधा की कोई सीमा नहीं रही है और जितना अधिक वह प्राप्त करती

चली जाती है, उतनी ही अधिक शक्तियां प्राप्त करने की उसकी क्षुधा बढ़ती ही चली जाती है। मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करता हूं। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह जल्दी में उत्तेजनावश कोई कार्य न करें, इस मद को स्वीकार करना जितना सरल है, उतना ही सरल अस्वीकार करना है और यह प्रविष्टि जिस प्रकार की दिखाई देती है, वैसी नहीं है।

*__सरदार हुकम सिंहः__ मैं कोई संशोधन पेश करना नहीं चाहता हूं, क्योंकि वह और संशोधनों में पहले से ही आ गया।

*__अध्यक्षः__ और कोई संशोधन नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार: जनरल): इस मद पर मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

*__अध्यक्षः__ यदि मुझसे हो सका, तो मैं किसी को भी अनुमति देना नहीं चाहता हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ यह बात तो पूर्णतया आपके हाथ में है।

*__अध्यक्षः__ हमारे सामने पहले ही श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की अपने दृष्टिकोण के अनुसार व्याख्या आ ही चुकी है। डॉ. अम्बेडकर अपने दृष्टिकोण को प्रकट करेंगे और हम इस प्रविष्टि पर मत लेंगे।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मुझे एक बहुत ही महत्वपूर्ण और सारवत् बात पर जोर देना है। मैं संक्षेप में भाषण दूंगा।

*__अध्यक्षः__ यदि मैं आपको बोलने दूंगा, तो औरों को नहीं रोक सकूंगा।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ श्रीमान, सदस्यों के भाषण देने के अधिकार को आप छीन रहे हैं। हम बहुत संक्षिप्त भाषण देंगे। हमको रोका नहीं जाना चाहिये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ कुछ कारणोंवश यदि हमको संशोधन पेश किये बिना मदों पर बोलने दिया जाये, तो यह अच्छा होगा।

*__अध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर मद पर बोल चुके हैं और संशोधन पेश करने वाले भी अपना भाषण दे चुके हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ यदि वाद-विवाद नहीं होने दिया जाता है, तो फल यह होगा कि अधिकांश सदस्य अपने विचार व्यक्त करने से रोक दिये जायेंगे। यह संभाव्य है कि संशोधन बिल्कुल ही पेश न किये जायें।

*__अध्यक्षः__ मैं केवल मदों की संख्या पर विचार कर रहा हूं। यदि मैं दस मिनट में लिये भी वाद-विवाद होने दूं, तो एक सप्ताह लग जायेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मसौदा समिति को मैं एक सुझाव देना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** जहां तक इस प्रविष्टि का संबंध है, मैं नहीं समझता हूं कि वाद-विवाद के लिये कोई अधिक गुंजाइश है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यदि मुझे केवल दो पंक्तियां ही बोलने दिया जायेगा, तो उससे मुझे संतोष हो जायेगा।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** संशोधन संख्या 146 में "और अनुसंधान" शब्दों को निकालने का प्रयास किया गया है। 'अनुसंधान' शब्द निकालने का जो आधार मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने बताया है, वह यह है कि केन्द्र और प्रान्तों के क्षेत्राधिकार में परस्पर संघर्ष होगा। यदि वे उसे मद को, जिसको मैंने पेश किया है, इसी रूप में समझे हैं, तब तो मैं यह न समझ सका कि उन्होंने जो दो संशोधन संख्या 147 और 148 पेश किये हैं, उनमें वे 'अनुसंधान' शब्द को रहने देने से क्यों सहमत हैं।

***अध्यक्षः** केवल 147।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उनके नाम से एक और है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 148 पेश नहीं किया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** बात यह है कि "अनुसंधान" शब्द के अन्तर्गत अपराध का अनुसंधान न तो आता है और न आयेगा, क्योंकि दंड विधि संहिता के अधीन इस विषय को पूर्णतया आरक्षी पदाधिकारी पर छोड़ा गया है। आरक्षक पूर्णतया राज्य का विषय है, संघ सूची में उसके लिये कोई स्थान नहीं है। अतः अनुसंधान' शब्द यहां इस उद्देश्य से रखा गया है, कि उसके अन्तर्गत जो कुछ हो रहा है, उसको मालूम करने के प्रयोजन के लिये सामान्य जांच आ जाये। यह अनुसंधान वह अनुसंधान नहीं है, जो अपराधी के विरुद्ध दोष निश्चित करने के लिये किया जाता है, जिसको दंड विधि संहिता के अधीन एक आरक्षक पदाधिकारी ही कर सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** तो फिर जांच शब्द का प्रयोग नहीं किया गया? 'अनुसंधान' शब्द का एक निश्चित अर्थ हो गया है। ऐसा शब्द क्यों प्रयोग में लाया जाये, जिसका कुछ और ही अर्थ निश्चित हो चुका है।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 2 में 'and Investigation' (और अनुसंधान) शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 2 में 'investigation' (अनुसंधान) शब्द के स्थान में 'Central Bureau of Investigation' (केन्द्रीय अनुसंधान विभाग) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 2 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'2—Central Bureau of Intelligence and Investigation.

(2–केन्द्रीय गुप्त वार्ता और अनुसंधान विभाग।)' "

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 2 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 3

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 3 संघ सूची का अंग बने।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेदकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 3 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये—

'3—Preventive detention in the territory of India for reasons connected with defence, foreign affairs, or the security of India; persons subjected to such detention.

(3–भारत की प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति।)' "

इस प्रविष्टि की संविधान के मसौदे में की मूल प्रविष्टि से तुलना करने पर यह विदित होगा कि दो परिवर्तन किये गये हैं। 'External affairs शब्दों के स्थान में अब हमने 'foreign affairs' शब्दों का प्रयोग किया है। 'इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति शब्द बड़ा दिये गये हैं। पहले जिस रूप में मद 3 था, उसमें ये शब्द नहीं थे। पर सभा ने भारत-शासन-अधिनियम के संशोधन में इसे पारित कर ही लिया है। अत: जिस संशोधन को मैं प्रस्थापित कर रहा हूं, उसमें सारवत् रूप से तो कोई परिवर्तन नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, अपने अगले संशोधन को पेश करते हुये मैं और भी अधिक मतिमन्दता प्रकट करने का भारी संकट अपने ऊपर लेता हूं। पर डॉ. अम्बेडकर के प्रति बहुत सम्मान प्रकट करते हुय मैं यह कहूंगा कि मैं मतिमन्द चाहे हूं पर मेरी आत्मा दूषित नहीं है। अपनी ओर से व्याख्या देते हुये जिन पदों को प्रयोग के लिये डॉ. अम्बेडकर ने चुना वे इस सभा के गौरव से बहुत निम्नस्तर के पद हैं। खैर, मैं उनके उदाहरण का अनुसरण तो नहीं करूंगा और मैं केवल कुछ कठिनाइयों को ही रखूंगा जिनको सभा के समक्ष रखने का मुझे अधिकार है न कि डॉ. अम्बेडकर के समक्ष जिनकी अक्ल पर ताला पड़ा है, जिनकी आत्मा दूषित है और जिनकी बुद्धि पूर्वकल्पित विचारों के कारण ईर्ष्यामय हो चुकी है। मैं अपने शेष संशोधनों को पेश नहीं करना चाहता हूं। उनको पेश करना व्यर्थ ही है। जबकि कोई माननीय सदस्य किसी अन्य सदस्य को मतिमन्द कहने की असाधारण शैली ग्रहण करता है तो उस समय मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि मेरी बांई ओर के कुछ सदस्य.........

***अध्यक्षः** मैंने स्वयं डॉ. अम्बेडकर से कटु भाषा का प्रयोग न करने के लिये कहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मुझे यह देखकर दुख हुआ कि उसके कारण सभा के एक भाग की ओर से कुछ असभ्य सा प्रत्युत्तर दिया गया। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है। 'external affairs' के स्थान में 'foreign affairs' शब्द रख दिये गये हैं। हम 'external affairs' शब्दों के प्रयोग में अभ्यस्त हो गये हैं। 'external affairs' में क्या त्रुटि है? क्या इनमें कोई अन्तर है? यदि कोई अन्तर है तो उसे स्पष्ट बताया जाये। मैं यहां केवल इस बात को स्पष्ट कराने के विचार से खड़ा हुआ हूं। जैसा कि श्री महावीर त्यागी ने कहा था कि वे स्पष्टीकरण चाहते थे उसी प्रकार में भी अपने संशोधन 149 के द्वारा स्पष्टीकरण चाहता हूं जो इस प्रकार है:

> "कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में सूची 1 को प्रस्थापित प्रविष्टि 3 में 'foreign' शब्द के स्थान में 'external' शब्द रखा जाये।"

संशोधन संख्या 150 के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि "इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति" शब्द पूर्णतया अनावश्यक होंगे। "निवारक निरोध" शब्दों में "इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति" का भाव आ जाता है। मूल प्रविष्टि में ये शब्द बिना किसी प्रयोजन के बढ़ा दिये गये हैं। चाहे मैं मतिमन्दता प्रकट करूं, पर मैं यह चाहूंगा कि इस मतिमन्दता को आशिष्ट पदों के द्वारा नहीं बल्कि तर्क द्वारा स्पष्ट किया जाये। कटु पदों की अपेक्षा तर्क की अधिक प्रशंसा होगी।

***अध्यक्षः** आपका इसके बाद का संशोधन संख्या 150?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं संशोधन संख्या 150 को पेश नहीं करता हूं। वह व्यर्थ है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मैं अपने संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं, पर मैं भाषण देना चाहूंगा।

*__श्री एच.वी. कामतः__ यह बहुत महत्वपूर्ण मद् है। मैं मसौदा-समिति से केवल दो प्रश्न पूछूंगा। इस मद में कुछ कमियां हैं, और इस विषय सम्बन्धी एक दो बातों को अछूता छोड़ दिया गया है। मैं भाषण नहीं दूंगा।

*__अध्यक्षः__ वहीं से प्रश्न पूछिये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं भी एक प्रश्न पूछना चाहूंगा।

*__श्री एच.वी. कामतः__ पहला प्रश्न जो मेरे मन में उठता है वह यह है हमने इस प्रविष्टि में निवारक विरोध के लिये व्यवस्था की है, पर क्या कोई ऐसी स्थिति नहीं हो सकती है जबकि सरकार प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा के सम्बन्ध में व्यक्तियों को भारत के राज्यक्षेत्र से निर्वासित करना आवश्यक समझे? भारत राज्यक्षेत्र से व्यक्यिों के ऐसे निर्वासन के लिये आप क्या व्यवस्था करेंगे?

दूसरा प्रश्न यह है: संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 275 को मूल मसौदे में वह जिस प्रकार से था उससे कुछ ही भिन्न रूप में हम स्वीकार कर चुके हैं। मूल रूप में अनुच्छेद 275 जिस रूप में था उसमें राष्ट्रपति को, जबकि देश की सुरक्षा संकट में हो, आपात उद्घोषणा करने देने की व्यवस्था की गई थी, पर बाद में सभा ने उसमें परिवर्तन कर दिया।

नये अनुच्छेद में यह कहा गया है कि "जब भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में हो।" यहां यह प्रविष्टि तभी निरोध के लिये व्यवस्था करती है जबकि भारत की सुरक्षा संकट में हो। क्या हमको यह कहकर कि "जब भारत या उसके किसी राज्यक्षेत्र के किसी भाग की प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा से सम्बन्धित कारणों के लिये" उसे स्पष्ट नहीं कर देना चाहिये जैसा कि अनुच्छेद 275 में है जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं?

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा उठाये गये प्रश्न का मैं समर्थन करता हूं क्योंकि Ministry of Foreign Affairs को अब भी Ministry of External Affairs कहा जाता है न कि Ministry of Foreign Affairs अतः इस शब्द को बदलने के पक्ष में मुझे तो कोई तर्क दिखाई नहीं देता है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ श्रीमान, पुनः विचार करने पर, मैं अपना संशोधन पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, अपने निश्चय को पलटने के लिये आपकी अनुमति प्राप्त कर लेने के प्रति मैं आपको धन्यवाद देता हूं, पर जो संशोधन मैंने रखा है वह बहुत महत्वपूर्ण है। मैं उसे पेश करता हूं:

"कि इस मद के द्वारा बनाये गये मसौदे में 'reasons' शब्द के पश्चात् 'of state' शब्द जोड़ दिये जायें।"

इस संशोधन के पक्ष में मेरा पहला तर्क यह है कि भारत शासन अधिनियम में जहां कहीं भी आपको ऐसी शक्तियां मिलती हैं वहां कारणों का सदैव राज्य के कारणों के रूप में उल्लेख किया गया है। यदि मेरे मित्र प्रत्युत्तर में यह कहें कि प्रतिरक्षा और विदेशीय कार्य से सम्बन्धित कारण स्वयं ही पर्याप्त हैं तो मैं यह निवेदन करूंगा कि यह बात नहीं है। समस्त कारण जिनके बल पर हम इस निवारक निरोध की शक्ति को दे रहे हैं उन सबका निर्देश राज्य के हित की ओर होना चाहिये और इस कारण मैं आशा करता हूं कि विद्वान डॉक्टर इस संशोधन को स्वीकार करेंगे। यह एक छोटा-सा संशोधन है पर है बहुत महत्वपूर्ण। भारत शासन अधिनियम में भी 'राज्य के कारणों' शब्द हैं। अन्यथा कोई भी कारण जिसका विदेशीय कार्य से बहुत ही सुदूरवर्ती सम्बन्ध हो वह भी निवारक निरोध के लिये एक कारण हो जायेगा जो वास्तव में सिद्धान्त रूप से एक बहुत ही बुरी बात होगी। जिस शक्ति को भारत शासन अधिनियम द्वारा अंग्रेज सरकार अपने हाथ में लेना नहीं चाहती थी उसको हम संघ को दे रहे हैं जो कि यदि संकटजनक नहीं होगी तो पूर्णतया अनावश्यक अवश्य है। निवारक निरोध का इतना अधिक प्रयोग किया जा रहा है कि मैं समझता हूं कि हमें सावधान होना चाहिये और "राज्य के" शब्दों को नहीं छोड़ना चाहिये जो कि बहुत ही महत्वपूर्ण है जहां तक कि इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है। यह सारवत संशोधन है और मैं आशा करता हूं कि यह स्वीकार किया जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं केवल एक बात स्पष्ट कराने का प्रयास करना चाहूंगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि "प्रतिरक्षा सम्बन्धी कारणों" शब्दों में "लोक कल्याण और हित" आ जाता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। इस सूची में यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रविष्टि है मेरी हमेशा से यह धारणा रही है और मैंने कार्य पालिका की बिना मुकदमा चलाये निरोध की शक्ति का विरोध किया है और मैंने उन उपबन्धों का विरोध किया था जो राष्ट्रपति को अध्यादेश पारित करने का हक देते हैं और अपने विचारों के प्रबन्ध निर्वाह के कारण मैं यहां इस प्रविष्टि का भी विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार वैयक्तिक स्वातन्त्र्य से वंचित कर हम अपने संविधान को कुरूप बनायें। यदि हमें किसी व्यक्ति पर संदेह है तो उचित रूप से मुकदमा

चलाकर उसे संदेह निवारण करने का अवसर देना चाहिये। अतः मैं समझता हूं कि यह प्रविष्टि उसी प्रणाली को बनाये रखती हैं जिसको अंग्रेजों ने लोगों से नागरिक स्वातन्त्र्य छीनने के लिये ग्रहण किया था। मैं यह जानता हूं कि ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जिनमें कुछ लोगों का निरोध आवश्यक हो और शायद यह भी हो कि ऐसा करना राज्य के हित में हो, पर मुझे तो इस बात का भय है कि देश के हित में इस शक्ति का इतना उपयोग नहीं होगा जितना कि दुरुपयोग।

तुलनात्मक रूप में मैं समझता हूं कि इस उपबन्ध द्वारा वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का शृंखलाबद्ध करने की अपेक्षा उसको पूर्ण रूप में देने के कष्टों को झेलना अधिक अच्छा है। जब हम स्वतंत्र भारत के लिये संविधान बना रहे हैं तो हमें इस प्रविष्टि से उसे कुरूप नहीं कर देना चाहिये। अब तक यह था कि यदि किसी व्यक्ति को आसाम में नजरबन्द किया जाता है तो उसके सम्बन्धी वहां जाकर उससे मिल सकते थे, पर जब यह शक्ति केन्द्र के अधीन हो जायेगी तो उस व्यक्ति को बम्बई या कोड़गू भी भेजा जा सकेगा और फिर उसके सम्बन्धी उससे मिल ही न सकेंगे। अतः मूल प्रविष्टि पर डॉ. अम्बेडकर का संशोधन उसे और भी अधिक बुरा बना देता है क्योंकि फिर तो यह संभव हो सकेगा कि जिन व्यक्तियों को निरुद्ध किया जाता है। उनको अपने सामान्य निवास स्थान से उन स्थानों को भेजा जा सकेगा जहां उनके सम्बन्धियों या मित्रों का पहुंचना बहुत ही कठिन होगा। इस कारण मैं सोचता हूं कि इस बात के जोड़ देने से तो यह अनुच्छेद और भी अधिक बुरा हो जाता है। मैं इस प्रविष्टि के सर्वथा विरुद्ध हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे मित्र श्री कामत द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में मैं उनको यह बताना चाहूंगा कि किसी नागरिक के निर्वासन के सम्बन्ध का कोई उपबन्ध नहीं हो सकता है। निरोध को सकता है न कि निर्वासन। निर्वासन विधि केवल अन्य देशियों पर लागू हो सकती है। और अन्य देशीय इत्यादिकों के सम्बन्ध की हमारी सूची में एक प्रविष्टि है। यदि राज्य किसी अन्य देशीय को निर्वाचित करना चाहता है तो उसके अनुसार कार्यवाही कर सकेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** सूची में वह प्रविष्टि कहां है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रविष्टि संख्या 19। मेरे मित्र डॉ. देशमुख द्वारा पूछे गये प्रश्न के सम्बन्ध में जिसमें वे यह चाहते हैं कि "राज्य सम्बन्धी कारणों" शब्दों को जोड़ दिया जाये, मेरे विचार से तो ऐसा करने से प्रविष्टि परिसीमित हो जायेगी और हमारी प्रविष्टि उससे अधिक अच्छी है क्योंकि वह उस विषय का उल्लेख करती है जिससे सम्बन्ध में निवारक निरोध का आदेश दिया जा सकेगा।

इसके बाद श्री ब्रजेश्वर प्रसाद चाहते हैं कि लोक कल्याण का पुरःस्थापन किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैंने यह नहीं चाहा था। मैंने केवल यह जानना चाहा था कि "प्रतिरक्षा इत्यादि सम्बन्धी कारणों" पद में 'लोक कल्याण और हित' आ जाता है या नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, 'भारत की सुरक्षा' बहुत ही व्यापक पद है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं 'भारत की सुरक्षा' का उल्लेख नहीं कर रहा हूं। वरन् 'लोक कल्याण और हित' का उल्लेख कर रहा हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अब श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के प्रश्न के सम्बन्ध में जिसमें वे यह चाहते हैं कि "इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति" शब्दों को अपमार्जित किया जाये।

***अध्यक्षः** नहीं, उन्होंने यह संशोधन पेश नहीं किया है। वे 'foreign' शब्द के स्थान में 'external' शब्द रखना चाहते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अब तक हम 'foreign' शब्द का ही प्रयोग करते चले आये हैं और मैं समझता हूं कि यदि हम इसी शब्द को रखें तो अधिक अच्छा होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या भारत की सुरक्षा और उसके किसी भाग की सुरक्षा एक ही बात है? और क्या यह वर्तमान प्रविष्टि अनुच्छेद 275 के अनुरूप है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, बिना किसी संदेह के।

***अध्यक्षः** मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन संख्या 149 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 3 में 'foreign' शब्द के स्थान में 'external' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अध्यक्षः इसके बाद मैं डॉ. देशमुख के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि इस मद के दुबारा बनाये गये मसौदे में 'reasons' शब्द के पश्चात् 'of state' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में इस प्रविष्टि पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 3 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'3—Preventive detention in the territory of India for reasons connected with defence, foreign affairs, or the security of India; persons subjected to such detention.' "

(3–भारत की प्रतिरक्षा, विदेशी कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति।)

संधोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 3 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 4

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम प्रविष्टि 4 पर आते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 4 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'4—Naval, military and air forces; any other armed forces of the Union.' "

(4–नौ, स्थल और विमान बल; संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल।)

माननीय सदस्यों को विदित होगा कि यह प्रविष्टि बहुत ही बड़ी प्रविष्टि थी और इसके दो भाग थे। इस प्रविष्टि का भाग 1 संघ द्वारा बल संग्रहण करने के सम्बन्ध का था। भाग 2 भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के बल के सम्बन्ध का था। इस तथ्य के कारण कि यह विनिश्चय कर लिया गया है कि भाग 3 में के राज्यों को उसी स्तर पर रखा जाये जिस पर भाग 1 के राज्य हैं, इस प्रविष्टि के द्वितीय भाग का अपमार्जन करना वांछनीय है। इस समय राज्यों में जो बल हैं उनकी व्यवस्था इस संविधान के संक्रान्तिकालीन उपबन्धों के भाग में के एक उपबन्ध द्वारा कर दी जायेगी।

प्रविष्टि के प्रथम भाग के सम्बन्ध में यह सोचा गया कि वह एक लम्बा भाग है और उसमें बहुत से शब्द ऐसे हैं जो आवश्यक नहीं हैं और जो छोटी पदावली–नौ, स्थल और विमान बल–अब प्रस्थापित की गई है वह संघ को वे सब शक्तियां देने के लिये पर्याप्त होगी जो स्थल, नौ और. विमान बल संधारण करने के लिये आवश्यक हैं।

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन का इस पर एक संशोधन है जो संख्या 41 पर है। हां, सरदार हुकम सिंह, आप उसे पेश कर सकते हैं।

***सरदार हुकम सिंह:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 4 में 'any other armed forces of the Union (संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल) शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

जहां तक मैं समझ सकता हूं सशस्त्र बल केवल तीन ही हैं—नौ, स्थल और विमान बल—और उनका यहां स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है, और मैं समझता हूं उनमें आज तक के सब सशस्त्र बल आ जाते हैं। अभी हमने डॉ. अम्बेडकर को यह कहते हुए सुना था कि ये सब बल उनमें आ जाते हैं और मैं समझता हूं अन्य कोई बल ऐसा नहीं है जो इनमें न आता हो।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** सशस्त्र आरक्षक उनके अन्तर्गत नहीं आता है।

***सरदार हुकम सिंह:** सशस्त्र आरक्षक संघ का बल नहीं है, अत: मेरे मित्र विषय से परे हैं।

यदि हम मूल मसौदे को देखें तो हमें "नौ, स्थल और विमान बलों का संग्रहण, प्रशिक्षण, संधारण और नियंत्रण" शब्द मिलेंगे। वहां अन्य किसी बल का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रविष्टि 6 में भी "नौ, स्थल और विमान बल की कर्मशालायें" हैं। मसौदा-समिति इस कार्य में एक वर्ष या इससे भी अधिक समय से लगी हुई है, और यदि मसौदा-समिति दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बुद्धिमती होती जा रही है और उसकी बुद्धि अधिकाधिक निर्मल होती जा रही है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ सदस्यों की बुद्धि मन्द होती चली जा रही हो। पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अन्य कोई बल नहीं होता है और जिस परिवृद्धि को अब सुझाया गया है वह इस मद में व्यर्थ परिवृद्धि है।

***अध्यक्ष:** क्या आप इसके विकल्प को पेश नहीं कर रहे हैं?

***सरदार हुकम सिंह:** जी नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से यह पूछ सकता हूं कि क्या अर्द्ध सशस्त्र बल जैसे कि प्रान्त द्वारा संगृहीत प्रान्तीय रक्षा दल या होम गार्ड संघ सरकार के अधिकार क्षेत्र में अधीन लाये जायेंगे?

***अध्यक्ष:** डॉ. देशमुख का एक संशोधन है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** "संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल" शब्दों का रहने देना आवश्यक है क्योंकि नियमित बलों के साथ साथ अन्य ऐसे बल

हैं जो सशस्त्र बलों के अधीन आते हैं और जिनका केन्द्र द्वारा संधारण होता है। उदाहरणार्थ सीमा की रक्षा करने के लिये "आसाम राइफिल्स" नाम का संगठन है। कुछ भारतीय राज्यों से संबंधित केन्द्र द्वारा संधृत कुछ सशस्त्र आरक्षक बल हैं। अत: उनको वैध आधार प्रदान करने के लिये उनका प्रविष्टि 4 में रखा जाना वांछनीय है। मैं यह भी उल्लेख कर दूं कि भारत शासन अधिनियम 1935 की प्रविष्टि 1 में भी इनको नौ, स्थल और विमान बल से भिन्न रूप में अभिज्ञात किया गया है।

***अध्यक्ष:** मैं सभा के समक्ष सरदार हुकम सिंह का संशोधन रखूंगा। प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 4 में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 4 में 'any other armed forces of Union' (संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल) शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई प्रविष्टि पर मैं मत लेता हूं। प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 4 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'4—Naval, military and air forces, any other armed forces of the Union.' "

(4—नौ, स्थल और विमान बल; संघ के अन्य कोई सशस्त्र बल।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 4 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 5

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम प्रविष्टि 5 को लेते हैं। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का एक संशोधन है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** फिर तो प्रविष्टि 5 पर कोई संशोधन नहीं है। मैं उस पर अभी मत लूंगा। क्या कोई व्यक्ति इसके बारे में बोलना चाहता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। क्योंकि मैं समझता हूं कि यह प्रविष्टि बहुत अधिक व्यापक है।

***अध्यक्ष:** तो फिर क्या आप इसका विरोध करते हैं? या तो आप इसका विरोध कर सकते हैं या समर्थन। कोई संशोधन तो है नहीं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ संशोधन भेजने के लिये हमारे पास समय नहीं था।

*__श्री महावीर त्यागी:__ वे यह जानना चाहते हैं कि क्या डी.टी.एस. भी इस में शामिल कर ली गई है।

*__अध्यक्ष:__ मैं समझता हूं कि प्रविष्टि बिल्कुल स्पष्ट है, पर यदि आप इसका विरोध करना चाहते हैं तो कर सकते हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ अध्यक्ष महोदय, मेरी राय में यह मद बहुत अधिक व्यापक है और इसके कारण संसद् विधि द्वारा वास्तव में प्रत्येक उद्योग को केन्द्र के क्षेत्र के अधीन ला सकती है। वह यह कह सकती है कि प्रत्येक उद्योग का प्रतिरक्षा के प्रयोजन अथवा युद्ध चालन से दूर का सम्बन्ध है। ऐसा कोई भी उद्योग नहीं है जिसे युद्ध चालन के लिये आवश्यक न कहा जा सके। अत: यदि संसद को यह अधिकार दिया जाता है तो यह सहज संभव हो सकता है कि प्रान्तों को समस्त उद्योगों पर के सब अधिकारों से वंचित किया जाये। इसी कारण मैंने कहा था कि यह प्रविष्टि बहुत अधिक व्यापक है। कुछ न कुछ परिसीमा होनी चाहिये। यदि केन्द्र प्रान्तों से कुछ उद्योगों को लेता है तो यह कार्य सांवैधानिक संशोधन द्वारा दो-तिहाई के बहुमत से होना चाहिये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ अध्यक्ष महोदय, इस प्रविष्टि का अर्थ यह है कि लोकहित या प्रतिरक्षा के प्रयोजनार्थ या बुद्धचालन के लिये संसद द्वारा आवश्यक अथवा समयोचित घोषित किये गये उद्योगों के सम्बन्ध में संसद को विधि बनाने का अधिकार होगा; इसका यह अर्थ नहीं है कि इन उद्योगों को भारत सरकार द्वारा ले लिया जायेगा।

दूसरी बात यह है कि मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि संसद से इस प्रकार की घोषणा करने के लिए कहा जाये। यह शक्ति स्वयं राष्ट्रपति को मिलनी चाहिए। यदि राष्ट्रपति इन उद्योगों को आवश्यक समझता है तो उसके बाद आवश्यक विधि बनाने की संसद की शक्ति प्रवर्तन में आनी चाहिए।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान, प्रविष्टि संख्या 5 को प्रविष्टि संख्या 64 के साथ पढ़ना चाहिये। प्रविष्टि 64 उन उद्योगों के नियंत्रण के सम्बन्ध में है जिनको संसद लोक हित के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है। यह प्रविष्टि 5 प्रतिरक्षा प्रयोजनार्थ या युद्धचालन के लिए उद्योगों को ले लेने से सम्बन्ध रखता है। इस महत्वपूर्ण अन्तर के कारण मैं समझता हूं कि यदि इस प्रविष्टि 5 को प्रविष्टि 64 के समान बना दिया जाता तो उससे युद्ध प्रयत्नों में बहुत रुकावटें होतीं। दोनों बातों में संसद की घोषणा आवश्यक होगी। पर प्रविष्टि 5 क्षेत्र प्रविष्टि 64 के क्षेत्र से बहुत अधिक व्यापक है। भिन्न-भिन्न प्रयोजनों और उद्देश्यों पर विचार करते हुए हुए प्रविष्टि 5 को प्रविष्टि 64 से भिन्न रूप दिया गया है।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 5 संघ सूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 5 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 6

प्रविष्टि 6 संघ सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 7

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 7 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'7—Delimitation of cantonment areas, local self-Government in such areas, the constitution and powers within such areas of cantonment authorities and the regulation of House accommodation (including the control of rents) in such areas.'

[7—कटक-क्षेत्रों का परिसीमन, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्त शासन, ऐसे क्षेत्रों के अन्दर कटक-प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां, तथा ऐसे क्षेत्रों में गृहवासन का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है।)]

इस प्रविष्टि पर मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का एक संशोधन है जिसका प्रभाव केवल 'स्थानीय स्वायत्त शासन' पदावली में से 'स्वायत्त' शब्द को निकालना है जिससे कि उसे 'स्थानीय शासन' पढ़ा जाये।

*__श्री महावीर त्यागी:__ अध्यक्ष महोदय, चूंकि यह प्रविष्टि कदाचित विवादास्पद है और इसका सम्बन्ध गृह के किराये कि नियंत्रण और उनके बांट से भी है, मैं यह सुझाव दूंगा कि आप कृपया इसको स्थापित करने और इस पर आज विनिश्चय न करने से सहमत हों, क्योंकि हम कोई संशोधन नहीं रख सके हैं। मैं यह भी निवेदन करता हूं कि यह अनुसूची ही मूलभूत उपबन्ध है जिसके द्वारा केंद्र और राज्य में हम शक्तियों का विभाजन कर रहे हैं। इस दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है। पर समय के अभाव के कारण संशोधन नहीं रखे जा सके। मैं प्रत्येक मद पर आपत्ति नहीं करना चाहता हूं, पर इस विषय में मेरा यह निवेदन है कि आप कृपा कर इसको स्थगित करें जिससे कि इस प्रश्न का निर्णय किया जा सके

कि कटक मण्डलियां गृह के किराये, बांट इत्यादि का विनिश्चयन और नियन्त्रण करेंगी या स्थानीय सरकारें उन पर नियंत्रण रखेंगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं इस बात की ओर संकेत करूं कि श्री सिधवा ने (सं. 3515 और 3516) संशोधन प्रस्तुत किया है और मसौदा-समिति का संशोधन ठीक उन्हीं आधारों पर है जिनकी ओर श्री सिधवा के संशोधन में संकेत किया गया है, क्योंकि हमने सोचा कि उनके संशोधन में कुछ ऐसी बातें थीं जिनको इस प्रविष्टि में रखा जा सकता था।

***श्री महावीर त्यागी:** मेरे मित्र मेरा नाम भूल गये। मेरा नाम श्री सिधवा नहीं है। मैं महावीर त्यागी हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार जनरल): श्रीमान, यदि आप कृपा कर छपी हुई सूची को देखेंगे तो उसमें मैंने संशोधन संख्या 3515 को पेश किया है। मैं मसौदा—समिति का बड़ा कृतज्ञ हूं कि उसने मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया। मेरे मित्र श्री त्यागी यह भूल रहे हैं कि जिस संशोधन को इस समय प्रस्थापित किया गया है उसके अन्तर्गत किराया और अन्य वे बातें आती हैं जो इसके बाद रखी जायेंगी। मुख्य बात यह है कि उन कटक क्षेत्रों में जहां सेनायें हैं केंद्र द्वारा प्रशासन करने दिया गया है। अब हमने नागरिक क्षेत्रों का परिसीमन करने की आज्ञा दे दी है—अर्थात् जहां कि नागरिक रहते हैं, और मैं कृतज्ञ हूं कि मसौदा-समिति ने मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया।

महत्वपूर्ण अन्तर केवल यही है कि अपने संशोधन द्वारा अभी-अभी श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने 'स्वायत्त' शब्द निकालना चाहा है जिससे कि 'स्थानीय स्वायत्त शासन' के स्थान में 'स्थानीय शासन' रह जाये। उद्देश्य यह था कि स्थानीय निकायों को रहने दिया जाये न कि स्थानीय सरकार को जिसका अर्थ प्रान्तीय सरकार है। मुझे यह नहीं मालूम है कि इस परिवर्तन को क्यों किया गया है। अन्यथा वह बड़ा पुष्ट और युक्तियुक्त संशोधन था जिसको मसौदा-समिति ने स्वीकार किया है। मैं डॉ. अम्बेडकर से केवल यही निवेदन करूंगा कि वे 'स्थानीय स्वायत्त शासन' शब्दों को ही रहने दें और उनके स्थान में 'स्थानीय शासन' शब्द न रखें।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते हैं तो आप मुझे कृपा कर यह संशोधन पेश करने दीजिये:

"कि 'and the regulation of House accommodation (including the control of rents) in such areas' [तथा ऐसे क्षेत्रों में गृहवासन का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है)] इन शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

मैं चाहता हूं कि मैं अन्य मित्रों से भी परामर्श करूं। यह बड़ा महत्वपूर्ण विषय है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वे इस पर भाषण दे सकते हैं।

***अध्यक्ष:** वास्तव में वही उद्देश्य श्री सिधवा के संशोधन में है। आप श्री सिधवा के संशोधन पर संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि इन शब्दों को निकाल दिया जाता है तो इस मद का सारा ढांचा ही बिगड़ जायेगा। जो संशोधन स्वीकार किया जा चुका है यह उसका निराकरण कर देगा।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह समझना चाहूंगा कि श्री सिधवा के संशोधन का क्या अर्थ होगा। क्या उसके द्वारा राज्य को शक्तियां दे दी जायेंगी? दूसरे शब्दों में किराये के विनियमन और नियंत्रण में राज्य-विधि लागू होगी या केन्द्र-विधि?

***अध्यक्ष:** 'गृहवासन के विनियमन और मालिक और किरायेदार में परस्पर सम्बन्ध' के अन्तर्गत मैं समझता हूं कि किराया भी आ जाता है।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): अब चूंकि प्रान्तीय सरकारें 'राज्य' बन गई हैं अत: 'स्थानीय सरकार' ही पर्याप्त है; 'स्थानीय स्वायत्त शासन' आवश्यक नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है यह न्यूनाधिक रूप में अन्वयमात्र है क्योंकि ऐसी बातों का वर्णन कर वे प्रसन्न होते हैं, अथवा वह मद मूलरूप मे जिस प्रकार मसौदे में था उसके शब्दों को उलट फेर कर रख दिया गया है। मेरे संशोधन भी कुछ कुछ अन्वय रूप ही हैं, पर उसके अन्तर्गत वह दृष्टिकोण भी आ जाता है जिस पर श्री त्यागी ने जोर दिया है। जिस संशोधन को मैं पेश करना चाहता हूं और इस मद के स्थान में जो शब्द मैं प्रस्थापित करना चाहता हूं वे इस प्रकार हैं:

> 'Delimitation of and local self-government in cantonment areas, constitution and powers of cantonment authorities within such areas and regulation and requisition of accommodation in such areas.'
>
> (कटक क्षेत्रों का परिसीमन और स्थानीय स्वायत्त शासन, ऐसे क्षेत्रों के अन्दर कटक प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां तथा ऐसे क्षेत्रों में निवास स्थान का विनियमन और अधिग्रहण।)

मैं समझता हूं कि जो शब्दावली मैंने प्रस्थापित की है वह समूचे मद को केवल एक अच्छी पदावली के रूप में ही प्रस्तुत नहीं करती है वरन् उसमें किराये की

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

और निर्देश करने की आवश्यकता भी नहीं रहती है। क्योंकि किराया निवास स्थान के विनियमन और अधिग्रहण का अंग है, और इस बात का विशिष्ट उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि किसी खास क्षेत्र में संघ सरकार को किराया नियंत्रण करने की शक्ति होगी।

दूसरी बात यह है कि मैं समझता हूं कि मेरे मित्र श्री सिधवा ने यह बात बिल्कुल ठीक कही थी कि 'स्वायत्त शासन' शब्द को रखा जाये और 'सरकार' शब्द का पुरः स्थापन न किया जाये। "स्थानीय स्वायत्त शासन" शब्द सरलता से समझ में आ जाते हैं, और यद्यपि कुछ मित्रों ने यह विचार प्रकट किया है कि चूंकि अब से बाद में कोई स्थानीय सरकार नहीं होगी अतः कोई गड़बड़ी नहीं होगी। मुझे विश्वास है कि यदि हम 'स्थानीय शासन' शब्द रहने देंगे तो जब तक कि हम संविधान में इस शब्द की कहीं परिभाषा नहीं करेंगे तब तक इससे बड़ी गड़बड़ी होगी। अतः यह अच्छा है कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का संशोधन स्वीकार न किया जाये, 'स्वायत्त शासन' शब्द को रखा जाये और जिन शब्दों को मैंने प्रस्थापित किया है उनको अस्वीकार किया जाये।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान, क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि इस प्रविष्टि को स्थगित किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्यों, मैं नहीं समझ पाता हूं। यदि आपको कुछ टीका टिप्पणी करनी है तो उसे सुनने के लिये हम तैयार हैं और आपको उत्तर देंगे।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं समझता हूं कि या तो हमें अपने संशोधन प्रस्तुत करने और सभा के समक्ष अपना मामला रखने के लिये पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिये या कृपा कर उन अनुच्छेदों को स्थगित करने के आदेश दिये जायें तो विवादास्पद हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री सिधवा के नाम का यह संशोधन 26 जनवरी से है। मेरे मित्र इस परिस्थिति के प्रति अब जागरूक हुये हैं। संशोधन भेजने के लिये उनके पास बहुत समय था और मैं अब भी यह कहने के लिये तैयार हूं कि वे जैसा परिवर्तन चाहते हैं उसके पक्ष में अपनी बात कह सकते हैं और उनका समाधान करने में लिये मैं तैयार हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान, हमने डॉ. अम्बेडकर की गति मान ली है—वे बहुत तेज़ी से अग्रसर हो रहे हैं—हमने इस पर कोई आपत्ति नहीं की है। पर ऐसे मदों के सम्बन्ध में वे इस बात से सहमत होंगे.......।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आप जो कुछ कहना चाहते हैं उसे कहते क्यों नहीं?

***श्री महावीर त्यागीः** मेरा निवेदन यह है कि ऐसे मद जो कि विवादास्पद हैं, या जिसके सम्बन्ध में माननीय सदस्य यह सोचते हैं या कहते हैं कि वे उन

पर महत्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं तो ऐसे मदों को स्थगित किया जाये। उससे कार्य सरल जो जायेगा और जल्दी होगा।

***अध्यक्ष:** तो फिर सभा कल प्रात:काल नौ बजे तक के लिये स्थगित होगी। जितने संशोधन आयेंगे उनको हम कल ले लेंगे, पर मैं और अधिक समय नहीं दूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है मैं पूरी तरह से आपके हाथों में हूं। यदि मुझे यह मालूम हो जाये कि श्री त्यागी की क्या आपत्तियां हैं तो उनको समझाने के लिये मैं इसी समय सभा में तैयार हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, यदि आप मुझे कुछ समय दे दें........।

***अध्यक्ष:** जी नहीं, हम कल नौ बजे तक के लिये स्थगित होंगे। संशोधनों के लिये मैं और अधिक समय नहीं दूंगा। सब संशोधन आज 5 बजे तक आ जाने चाहियें और प्रविष्टियों को हम कल प्रात:काल लेंगे।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 30 अगस्त 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.21.49
320

अंक 9

संख्या 21

सत्यमेव जयते

मंगलवार
30 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[सातवीं अनुसूची: प्रविष्टि 7 से 12, 9-क, 13 से 15, 15-क, 16 से 26,
26-क 27 से 40, 40-क तथा ख तथा 41 से 42 पर विचार] 1119-1198

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 30 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — *(जारी)*

सातवीं अनुसूची — *(जारी)*

प्रविष्टि 7 — *जारी*

***अध्यक्षः** अब हम प्रविष्टि 7 पर बहस जारी करते हैं। मैं देखता हूं कि कई सदस्यों ने इस पर संशोधन की सूचनायें भेज रखी हैं। संशोधन नं. 172 को डॉ. देशमुख उपस्थित करेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मैं इसे उपस्थित कर चुका हूं श्रीमान।

***अध्यक्षः** तो अब संशोधन नं. 173 पेश किया जायेगा। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी इसे उपस्थित करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रासः जनरल): मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमानः—

> "सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 के सम्बन्ध में, सातवीं अनुसूची की सूची 1 के प्रविष्टि 7 में, 'local self government" (स्थानीय स्वशासन) शब्दों के स्थान पर 'local government" (स्थानीय शासन) शब्द रखे जायें:"

कल डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन पर प्रकाश डाल चुके हैं जो कुछ वह कह चुके हैं उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि छोटी सी बात के लिये कल आपने सभा की बैठक स्थगित कर दी। अगर सभा समवेत रह जाती तो कल ही इसका निपटारा हो जाता। मेरा कहना यह है कि कटक, कटक मण्डली (Cantonments and Cantonment Boards) तथा ऐसे क्षेत्रों में आवास गृहों का आनियमन और किराया नियन्त्रण, उन सभी विषयों को अगर केन्द्राधीन कर दिया जाता है तो इससे लोगों को बड़ी असुविधा होगी। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूं कि विभिन्न राज्यों में जो कटक क्षेत्र हैं वह

[श्री महावीर त्यागी]

केन्द्र की ज़मीनें नहीं हैं सभी प्रयोजनों के लिये वहां की समूची असैनिक आबादी राज्य द्वारा नियंत्रित रहती है। इन कटक क्षेत्रों का निर्माण ही इस प्रयोजन के लिये किया गया था कि ये स्थान सैनिक आबादी के पड़ोस के लिये उपयुक्त बने रहें और वहां के स्थानीय शासन सम्बन्धी काम सैनिक अधिकारियों के हाथ में रहें या कम से कम सैनिक अधिकारियों के प्रभाव में रहें ताकि सैनिक क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं सफाई की दृष्टि के कोई असुविधा न होने पाये।

शुरू-शुरू में जबकि इस कटक क्षेत्रों का निर्माण किया गया था उस समय इन क्षेत्रों में प्राय: कर के सैनिकों के बैरक, सैनिक अधिकारियों के मेस तथा सैनिक बंगले ही थे। किन्तु अब वहां की स्थिति बदल गई है। उदाहरण के लिये मेरठ का जो कटक क्षेत्र है उसमें तीन चौथाई आबादी है असैनिक नागरिकों की। यहां के सदर बाजार में प्राय: वकील और अन्य असैनिक लोगों का ही आवास है। यह सदर बाजार कटक क्षेत्र के अन्दर है जिस पर कटक मण्डली का क्षेत्राधिकार है। इस क्षेत्र निवासियों पर संयुक्तप्रान्त के सारे कानून लागू होते है, मसलन जैसा कि प्रान्त के अन्य स्थानों में हैं यहां भी विक्रय कर सम्बन्धी कानून लागू हैं। विधि एवं व्यवस्था सम्बन्धी सभी प्रयोजनों के लिये देश के सभी कटक क्षेत्र प्रान्तों के असैनिक अधिकारियों के नियंत्रण में ही हैं। केवल स्थानीय शासन का काम ही कटक मण्डलियों के हवाले किया गया है और बाकी सभी बातों में राज्य के कानून इन कटक क्षेत्रों के नागरिकों पर भी उसी तरह लागू होते हैं जैसे कि यहां के अन्य असैनिक नागरिकों पर।

अब स्थिति यह है श्रीमान, कि अधिकांश जगहों के कटक क्षेत्र शहर से बिल्कुल लगे हुए हैं। अगर, मकानों के किराये के नियंत्रण का तथा इसी तरह के अन्य अधिकार केन्द्र के अधीन कर दिये जाते हैं और कटक के पड़ोस वाले क्षेत्र पर भी इन सब बातों के केन्द्र का अधिकार हो जाता है तो इससे एक विषम स्थिति पैदा हो जायेगी। कटक क्षेत्र की सीमा के अन्दर की दुकान पर एक कानून लागू होगा और उसी के बगल में, पर कटक सीमा के बाहर जो दुकान है उस पर दूसरा कानून लागू होगा। कई साल से संयुक्तप्रान्त में मकानों के किराये का नियन्त्रण तथा मकानों का वितरण एक कानून के अधीन किया जाता था जो कटक क्षेत्रों पर भी समान रूप से लागू होता था। दो तीन वर्षो तक इस कानून के अधीन व्यवस्था पूर्वक काम चलता रहा पर इधर करीब एक साल से जब से कि हमारे प्रान्त के किराया कानून में संशोधन हुआ है कटक क्षेत्रों को किराया कानून की परिधि से बाहर कर दिया गया है और शायद केन्द्रीय शासन की इच्छा पर ही ऐसा किया गया है। इन क्षेत्रों पर गृह कानून अब लागू नहीं होता है। मेरे प्रान्त के विभिन्न कटक क्षेत्रों के अनेक निवासियों ने पत्र द्वारा मुझे अपनी यह शिकायत व्यक्त की है कि इस व्यवस्था से किराये को लेकर उनको बड़ी असुविधायें भुगतनी पड़ रही हैं। "कैंटोनमेंट टैक्स-पेयर्स एसोसियेशन" के सेक्रेटरी के पत्र से चन्द

पंक्तियां पढ़कर सुनाता हूं। "मेरठ के कटक क्षेत्र के मकानों और दुकानों से किरायेदारों को हटाने के लिए व्यवहार न्यायालयों में करीब एक हजार से अधिक मुकदमें दायर हो चुके हैं और कई मामलों में तो किरायेदारों का हटाने का फैसला भी सुना दिया गया है"। यह मामले उन मकानों के सम्बन्ध में नहीं हैं जिन पर शासन यानी सरकार का स्वामित्व हो बल्कि असैनिक क्षेत्रों के मकानों और दुकानों के सम्बन्ध में हैं जिन पर नागरिकों का स्वामित्व है। उक्त एसोसियेशन के मंत्री आगे लिखते हैं कि "अकेले मेरठ के कटक क्षेत्र की ही असैनिक आबादी एक लाख से ऊपर हैं"। अब प्रान्त की इस एक लाख की आबादी पर प्राय: सभी प्रयोजनों के लिये प्रान्त का कानून लागू न होगा बल्कि एक दूसरा ही कानून लागू होगा जिसे केन्द्र बतायेगा जैसा कि दिल्ली के सम्बन्ध में होता है। प्रान्त अगर कोई कानून बनाता है तो वह कानून कटक क्षेत्रों की असैनिक आबादी पर लागू नहीं होता है। प्रान्त की असैनिक आबादी पर वह कानून तभी लागू हो सकता है जब केन्द्र इसकी अनुमति दे। अगर अपने भावी संविधान के अधीन यही व्यवस्था रहेगी तो मैं इसका अवश्य विरोध करूंगा क्योंकि कटक क्षेत्रों में बसने वाले असैनिक नागरिक भी राज्य के उसी तरह नागरिक हैं जैसे कि वहां की सैनिक आबादी। वहां की सैनिक तथा असैनिक आबादी में कोई भेदभाव बरतना अन्याय होगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि स्थानीय शासन के अतिरिक्त यहां लिखी अन्य सभी बातों के बारे में कटक क्षेत्रों की असैनिक आबादी को वही सुविधायें मिलनी चाहियें जो कि उनके पड़ोसवर्त्ती सैनिक आबादी को प्राप्त है।

इसलिये मैं यह संशोधन रखता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रविष्टि 7 में 'and the regulation of House accommodation (including the control of rents) in such areas" शब्दों को हटा दिया जाये।"

देश भर में किराया नियंत्रण का काम राज्यों के अधीन है फिर कटक क्षेत्रों के असैनिक इलाकों को ही इस सम्बन्ध में क्यों केन्द्राधीन कर रहे हैं;

इस सम्बन्ध में एक दूसरा वैकल्पिक संशोधन भी अभी मैं उपस्थित करने जा रहा हूं पर उसे पास करने का सवाल तभी खड़ा होगा जबकि यह उपस्थित संशोधन सभा को स्वीकार्य न हो। मेरा दूसरा संशोधन यों है:

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "(including the control of rents)" के स्थान पर "(excluding the control of rents)" रखा जाये।"

मेरा मतलब यह है कि किराया नियन्त्रण का काम हमें केन्द्र के हाथ में न देना चाहिये। झांसी से मुझे एक पत्र मिला है जिसमें यह कहा गया है कि कटक

[श्री महावीर त्यागी]

क्षेत्रों का किराया नियन्त्रण संयुक्तप्रान्त के शासन के हाथ में न रहने से वहां लोगों को बड़ी दिक्कतें भुगतनी पड़ रही हैं। इसलिये मैं कहूंगा कि अगर मेरा पहला संशोधन स्वीकार्य न हो तो सभा को मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिए। या अगर यह भी मंजूर नहीं है तो डॉ. अम्बेडकर ही कृपा कर कोई युक्ति निकालें जिससे मेरे अभिप्राय की पूर्ति हो सके।

(संशोधन नं. 175-177 पेश नहीं किये गये।)

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री त्यागी के संशोधन पर मैं बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है, पर तीन मिनट से ज्यादा समय न लीजियेगा। मैं घड़ी देखता रहूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस संशोधन पर बोलते हुए कल मैंने स्थिति को स्पष्ट कर दिया था और कह दिया था कि मसौदा-समिति संशोधन को स्वीकार कर लेगी। किन्तु श्री त्यागी चाहते यह हैं कि कटक क्षेत्रों का परिसीमन केन्द्रीय सूची मैं रहे। यह किराया नियन्त्रण की बात यहां से हटाना चाहते हैं। पर इसको हटाने से यह होगा कि परिसीमन का काम भी प्रान्तीय सूची में आ जायेगा। जब तक आप इस सूची से परिसीमन की बात को भी बिल्कुल ही नहीं हटा देते हैं केन्द्रीय सूची में मकान के किराये की आनियमन की बात नहीं रख सकते हैं। संयुक्तप्रान्त में किराया नियंत्रण सम्बन्धी जिस कठिनाई का उन्होंने जिक्र किया है उसे मैं जानता हूं। मेरे पास भी शिकायतें आई हैं कि प्रान्त का किराया कानून कटक क्षेत्रों पर लागू नहीं होता है। यह तो एक ऐसा विषय है जिस पर प्रान्तीय सरकारें अपना अलग-अलग मत रख सकती हैं और तद्नुसार कार्रवाई कर सकती हैं। बम्बई प्रान्त में स्थिति भिन्न है। पूना के कटक क्षेत्र पर, किराया कानून को बम्बई सरकार ने लागू कर रखा है। फिर इसके अलावा मैं नहीं समझता कि यह बात श्री त्यागी के संशोधन के प्रयोजन के लिये अनुकूल है क्योंकि इससे परिसीमन का सारा अधिकार जो अभी केन्द्र के हाथ में है वह उसके हाथ से निकल जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** माननीय मित्र की जानकारी के लिये मैं यह बताना चाहता हूं कि मैंने एक संशोधन की सूचना दे रखी है जिसमें इस विषय को प्रान्तीय सूची में रखने का सुझाव दिया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** उस पर तो हम तब विचार करेंगे जबकि वह यहां उपस्थित किया जायेगा। किन्तु जहां तक आपके वर्तमान संशोधन का सम्बन्ध है, किराया नियन्त्रण तथा परिसीमन दोनों बातों को आप अलग नहीं कर सकते हैं। मैं इस संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता। मेरा ख्याल है कि मसौदा-समिति का जो संशोधन है उससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई: जनरल): संशोधनों में केवल माननीय मित्र श्री त्यागी के ही संशोधन ऐसे हैं जिनके लिए उत्तर में कुछ कहना मेरे लिए जरूरी है। श्री त्यागी ने विकल्पश: दो संशोधन रखे हैं। पहले संशोधन द्वारा आप यह चाहते हैं कि वह सारा अंश यहां से हटा दिया जाये जिसमें किराया नियन्त्रण के साथ गृह व्यवस्था की बात कही गई है। आपने जो दूसरा वैकल्पिक संशोधन रखा है उससे आप यहां तक तो तैयार हैं कि गृह-व्यवस्था के नियंत्रण तथा आनियमन की बात यहां रखी जाये पर 'किराया नियंत्रण' को आप यहां से हटा देना चाहते हैं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इस सम्बन्ध में वह समझौता कर लेना चाहते हैं। यदि माननीय मित्र को "गृह व्यवस्था का आनियमन" को यहां रखने पर वस्तुत: कोई आपत्ति नहीं है, जैसा कि उनके वैकल्पिक संशोधन से स्पष्ट है, तो मैं कहूंगा कि "गृह व्यवस्था का आनियमन" के फलस्वरूप 'किराया नियंत्रण' का रखना भी यहां नितान्त आवश्यक है क्योंकि दोनों बातें परस्पर सम्बद्ध हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। गृह-व्यवस्था का आनियमन सर्वथा असम्भव है अगर प्राधिकारी को गृह व्यवस्था के आनियमन की शक्ति के साथ किराये के नियंत्रण की शक्ति नहीं दी जाती है। इसलिये मेरा कहना यह है कि गृह व्यवस्था के आनियमन के साथ हमें किराया नियंत्रण की बात यहां रखनी ही होगी क्योंकि दोनों बातें परस्पर सम्बद्ध हैं। अगर माननीय मित्र श्री त्यागी को गृह व्यवस्था के आनियमन की शक्ति देने पर कोई आपत्ति नहीं है तो उन्हें किराया-नियंत्रण की शक्ति देने पर भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। पहला संशोधन है डॉ. देशमुख का।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ यदि मसौदा-समिति कृपा कर इस बात के लिए राजी हो जाये कि अन्तिम रूप से मसौदे पर विचार करते समय वह मेरी बात पर विचार करेगी तो अभी इतने से ही मैं संतोष कर लूंगा।

*__अध्यक्ष:__ जहां तक मैं देखता हूं, इस प्रश्न का सम्बन्ध मसौदे की रचना से ही है। इसलिए इसको हम मसौदे-समिति पर छोड़ सकते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 के सम्बन्ध में, सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "local self-government" (स्थानीय स्वशासन शब्दों के स्थान पर "local government" (स्थानीय शासन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

*__अध्यक्ष:__ अब प्रश्न यह है:–

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "and the regulation of House accommodation

[अध्यक्ष]

including the control of rents) in such areas" शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में '(including the control of rents)' के स्थान पर' (excluding the control of rents)' रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सारे संशोधनों पर तो राय ले ली गई। अब रह गया मूल संशोधन जो यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 7 के स्थान पर यह रखा जाये:

"कटक क्षेत्रों का परिसीमन, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन, ऐसे क्षेत्रों के अन्दर कटक प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां, तथा ऐसे क्षेत्रों में गृहवासन का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है।)' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 7 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंग मानी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 7 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 8

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 8, 9, 10 पर तथा मूल प्रविष्टि 11 पर कोई संशोधन नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): प्रविष्टि 8 पर एक संशोधन है जिसका नं. है 178।

***अध्यक्ष:** यह तो नया संशोधन है। मैं जिक्र कर रहा था उन संशोधनों का जो प्रविष्टि 8, 9 और 10 पर आये हैं और संशोधनों की मूल सूची में छप चुके हैं। नये संशोधनों की सूचना जरूर आई है किन्तु मूल प्रविष्टि पर आये हुए इन नये संशोधनों को उपस्थित करने की अनुमति मैं नहीं दूंगा। इसलिये संशोधन नं. 178, 179 और 181 को मैं अनियमित ठहराता हूं।

अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 8 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रविष्टि 8 संघ सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 9

प्रविष्टि 9 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 10

प्रविष्टि 10 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 11

प्रविष्टि 11 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 12

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से एक संशोधन इस आशय का है कि प्रविष्टि 12 संघ-सूची से हटा दी जाये। संशोधन इस प्रविष्टि को रखने का विरोध करता है। यदि संशोधनकर्त्ता महोदय बोलना चाहते हों तो बोल सकते हैं। मैं यह भी देख रहा हूं कि एक संशोधन श्री कामत का भी है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान, "कि सूची 1 की प्रविष्टि 12 में, अन्त में "or any international body" (या कोई अन्तर्राष्ट्रीय निकाय) शब्द रख दिये जायें।"

मेरा मतलब यह है कि इस प्रविष्टि में ऐसा सुधार कर दिया जाये कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अलावा कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकाय भी इसमें शामिल समझा जा सके। इस संशोधन को रखते हुये मैं यह निवेदन करूंगा श्रीमान, कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ ही दुनिया में एकमात्र निकाय नहीं होगा। ऐसे और भी निकाय बन सकते हैं। माननीय मित्रों को खूब मालूम है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद 'राष्ट्र संघ' नाम का एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय गठित किया गया था पर स्थापना के कुछ दिनों बाद ही इसका असामयिक अन्त हो गया: अब द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप सृष्टि हुई है 'संयुक्त राष्ट्र संघ' की: 'कोई भी व्यक्ति जो यह भविष्योक्ति करने का दावा करता है कि यह निकाय बहुत दिनों तक जीवित रहेगा मैं कहूंगा कि वह एक विवेक शून्य भविष्यवक्ता है इस निकाय में मतभेद पैदा हो चुका है और.........

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 13 से क्या आपके उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती?

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं श्रीमान, इस प्रविष्टि की चर्चा मैं अभी जरा ही देर बाद करने ही जा रहा हूं। हाँ मैं यह कह रहा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में मतभेद पैदा हो चुका है, इसमें दरारें पड़ चुकी हैं और कोई नहीं कह सकता

[श्री एच.वी. कामत]

कि यह निकाय भी 'राष्ट्र संघ' की तरह कब समाप्त हो जायेगा। अपने संविधान के सम्बन्ध में तो मुझे इसकी पूरी उम्मीद है कि वह एक इस लम्बे अरसे तक चालू रहेगा। किन्तु 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' के सम्बन्ध में तो मैं कहूंगा कि, अभी से ही कितने लोग संशय करने लगे हैं, निराशा व्यक्त करने लगे हैं और यह भविष्यवाणी करने लगे हैं कि इस निकाय का शीघ्र ही अन्त होने वाला है। ईश्वर न करे इसका अन्त इस तरह हो जाये, पर कोई नहीं कह सकता यह निकाय जीवित रहेगा या इसका स्थान कोई दूसरा निकाय ले लेगा। इसके अलावा यह भी संभव है कि भविष्य में तमाम दुनिया में ऐसे प्रादेशिक निकाय भी स्थापित हो जायें। हम सभी को मालूम है कि सन् 1947 ई. के अप्रैल महीने में "ऐशियन रिलेशन्स कान्फरेंस" नाम से एक सम्मेलन समवेत हुआ था और उसके निर्णय के फलस्वरूप "ऐशियन रिलेशन्स ऑरगैनाइजेशन" नामक एक निकाय की स्थापना की जा चुकी है। हो सकता है आगे चलकर भारत सरकार और राज्यों की सरकारों के साथ इस निकाय का सदस्य बन जाना पसन्द करे। हो सकता है यह निकाय संयुक्त-राष्ट्र संघ से भी अधिक स्थायी सिद्ध हो।

आपने, श्रीमान, कृपा कर मेरा ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया है कि प्रविष्टि 13 में जो कुछ रखा गया है यानी अन्तर्राष्ट्रीय संघ या अन्य ऐसे निकाय का जो उल्लेख है उसके अन्तर्गत मेरा यह प्रस्ताव सम्भवत: आ सकता है। यदि ऐसी बात है तो मैं यह पूछता हूं कि फिर प्रविष्टि 12 को ही रखने की क्या आवश्यकता है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र-संघ भी तो आखिर एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय या संघ ही है मैं समझता हूं कि प्रविष्टि 13 से मतलब है ऐसे सम्मेलनों और निकायों में समय समय पर सम्मिलित होने से। किन्तु प्रविष्टि 12 का मतलब है इस निकाय की सदस्यता से जिसमें कि सदस्य राष्ट्र की जिम्मेदारियां उनके कर्तव्य और आभार सभी आ जायेंगे। मेरी समझ से श्रीमान, प्रविष्टि 12 और 13 में यही अन्तर है। प्रविष्टि 13 का मतलब ऐसे सम्मेलनों में सम्मिलित होने से है किन्तु प्रविष्टि 12 उससे अधिक व्यापक है और इसके अन्तर वह सभी आभार और दायित्व आ जाते हैं जो किसी विशेष अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता स्वीकार करने से लागू होते हैं। इसलिये मेरा कहना यह है कि श्रीमान, कि इस बात का ख्याल रखते हुए कि 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' एक स्थायी निकाय नहीं है तथा इस बात का ख्याल रखते हुए कि हम लोगों को भरोसा इस बात का है कि अपना संविधान किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय से अधिक चिरजीवी होगा। हमें सूची में न केवल संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के आभार एवं दायित्वों का ही प्रावधान करना चाहिए बल्कि अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का भी जो कि आगे चल कर कभी स्थापित हो, हमें यहां प्रावधान कर देना चाहिए। इसलिए अपना संशोधन नं. 3517 मैं यहां पेश कर रहा हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस पर विचार करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं श्रीमान, कि प्रविष्टि 12 को हटा दिया जाये। इसको हटाने की मांग के कारण

यह हैं। सभा का ध्यान मैं यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट की ओर आकृष्ट करूंगा। इस रिपोर्ट के पैरा 2 में कहा गया है:

'विदेशिक मामले' से बोध्य है वह सभी विषय जिनके कारण संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध स्थापित होता है और विशेष करके इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विषय आते हैं:—

(1) कूट नैतिक, वैदेशिक राजदूत सम्बन्धी तथा व्यापार सम्बन्धी प्रतिनिधित्व।

(2) संयुक्त राष्ट्र-संघ।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संघों तथा ऐसे अन्य निकायों में शामिल होना और उनके निर्णयों को कार्यान्वित करना इत्यादि।

वस्तुत: वहां 17 विषयों का उल्लेख किया गया है और यहां इस सूची में उन सबको ज्यों का त्यों उठाकर रख दिया गया है हमने प्रविष्टि 10 में कहा है:—

"विदेशीय कार्य वे सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है। इसलिए यह प्रविष्ट इतनी व्यापक है कि इसके आगे की बहुत सी प्रविष्टियां कम से कम 17 उसके अन्तर्गत आ जाती हैं। इनको पुनरावृत्त करने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं और जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है। हम अपने देश के लिए संविधान तैयार कर रहे हैं। इसमें संयुक्त राष्ट्र-संघ के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि रखकर इस निकाय को अपने संविधान का एक स्थायी अंग बनाने की हमें भला क्या आवश्यकता है? इस निकाय की स्थापना अभी करीब चार वर्ष से ही हुई। आज भी यह निकाय ऐसा नहीं बन पाया है कि दुनियां के सभी राष्ट्रों का इस पर पूरा विश्वास हो। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इस निकाय के रहते हुए भी बहुत से राष्ट्र युद्ध की तैयारी कर रहे हैं और उन्हें इस बात का विश्वास नहीं है कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ युद्ध को रोक सकता है। यदि इस सूची में एक प्रविष्टि के रूप में हम संयुक्त-राष्ट्र-संघ को रखते हैं तो इसका मतलब तो यह होगा कि हम इसको इतना महत्व दे रहे हैं जो वास्तविकता के आधार पर औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ का अस्तित्व कल की समाप्त हो जाये। हो सकता है भारत इसकी सदस्यता त्याग देना चाहे। फिर संघ-सूची में इस प्रविष्टि को रखने से क्या लाभ? निजी तौर पर मैं तो यही महसूस करता हूं कि प्रविष्टि 10 काफी व्यापक है और फिर यह प्रश्न कि हम संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्य बने रहें या इसको त्याग दें हमारी वैदेशिक नीति से सम्बन्ध रखता है। इसलिए मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम इस प्रविष्टि को यहां क्यों रखें। व्यक्तिगत रूप से मैं यह भी महसूस करता हूं कि इस निकाय की सदस्यता का जो अनुभव हमें मिला है वह कोई सुखद नहीं है और इसका सदस्य रहने में जो व्यय हमें

[प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना]

उठाना पड़ा है वह तुलना में उस लाभ से कहीं अधिक है जो कि इसकी सदस्यता से हमें प्राप्त हुए हैं। हमें यह भी मालूम ही है कि काश्मीर के झगड़े का हम इस निकाय से कोई निपटारा न करा सके सच तो यह है कि काश्मीर का प्रश्न वहां पहुंचकर और भी जटिल बन गया है। हमने तो आशा इस बात की की थी कि वहां हमें न्याय प्राप्त होगा पर हुआ यह कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने इस मामले को और भी खराब कर दिया और हम इसमें फंस गये हैं।

दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में भी इस निकाय में ऐसा ही हुआ। हम अच्छी तरह जानते हैं कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ में भारत की कोई आवाज नहीं है। इसकी सुरक्षा परिषद् में पांच स्थायी स्थान है। और ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस और चीन को एक एक स्थायी स्थान वहां मिला हुआ है। भारत की जनसंख्या इन पांचों में से किसी से भी कहीं ज्यादा है पर उसे वहां कोई स्थान नहीं प्राप्त है। इसलिए मैं तो यह समझता हूं कि ऐसी स्थिति में वहां रहना भारत के लिए कोई सम्मान की बात नहीं है।

सम्भव है कल ही संसद यह निश्चय कर बैठे कि हमारा देश इस निकाय का सदस्य न रहेगा और इस सूरत में संविधान में इस प्रविष्टि का रहना हमारे लिए एक तरह की रुकावट हो जायेगी। संयुक्त-राष्ट्र-संघ का उल्लेख यहां एक स्थायी निकाय के रूप में किया गया है इसलिए मेरी समझ से संघ-सूची में इस प्रविष्टि को रखना सर्वथा अनावश्यक है और हानिप्रद है। इसको रखने से वस्तुत: संसद बंध जाती है। इसलिए निजी तौर पर मैं तो यही महसूस करता हूं कि इस प्रविष्टि को हमें यहां न स्थान देना चाहिए। न तो भारतवर्ष ही इसके लिए वचनबद्ध हो चुका है कि वह सदा इस निकाय का सदस्य ही बना रहेगा और न सभा को ही इसकी कोई आकांक्षा है। और फिर जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि इस निकाय के सम्बन्ध में दुनियां की प्रतिक्रिया क्या है तो यह देखते हैं कि हमेशा यही आलोचना की जाती है कि यह निकाय वास्तविक अर्थ में तभी एक विश्व-संगठन बन सकता है जबकि सभी राष्ट्र अपनी सार्वभौम सत्ता का थोड़ा अंश इस निकाय को सौंपने पर तैयार हों। अमेरिका और रूस को निषेधाधिकार दिया गया है और ये दोनों देश अपनी सत्ता का कोई अंश इस निकाय को सौंपने पर राजी नहीं हैं। इस निषेधाधिकार के द्वारा वे चाहें जिस प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकते हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसी दशा में यह निकाय कुछ अधिक दिनों तक चालू रह सकता है।

इसलिए मेरी समझ से तो यह निकाय ऐसा नहीं है कि संविधान की इस सूची में हम इसे लिपिबद्ध रखें। मेरी समझ से प्रविष्टि नं. 10 पर्याप्त रूप से व्यापक है और उसके अन्तर्गत संयुक्त-राष्ट्र-संघ भी आ जाता है इसलिए मैं तो यही महसूस करता हूं कि प्रविष्टि 12 को अवश्य हटा देना चाहिए।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ इस संशोधन पर विचार करने में हमें बहुत सी बातों का ख्याल रखना होगा। माननीय मित्र श्री कामत यह देखेंगे कि विदेशों के सम्बन्ध में सिर्फ यही एक प्रविष्टि संविधान में नहीं हैं बल्कि और भी कई प्रविष्टियां हैं। एक प्रविष्टि तो रखी गई है विदेशीय कार्य के नाम से जो इतनी व्यापक है कि अगर हम किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का सदस्य होना चाहें तो उस प्रविष्टि के अधीन ऐसा कर सकते हैं। जिस प्रविष्टि पर हम अभी विचार कर रहे हैं उसके बाद ही एक और प्रविष्टि भी है जिसके अधीन किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन या निकाय में सम्मिलित होने के बारे में कानून बनाया जा सकता है। इसको देखते हुए मैं तो यह समझता हूं कि जिस तरह का संशोधन श्री कामत ने यहां रखा है उसकी वस्तुत: कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरे हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि यह प्रविष्टियां तो केवल इतना ही व्यक्त करने के लिए रखी जा रही हैं कि इन विषयों के सम्बन्ध में संघीय संसद को काननू बनाने का अधिकार होगा। यदि संविधान में कोई ऐसा अनुच्छेद रखा जाता जिससे इन प्रविष्टियों द्वारा दिये गये विधि निर्माण सम्बन्धी संघीय अधिकार का परिसीमन होता तो इस सूरत में तो माननीय मित्र श्री कामत का यह प्रश्न उठाना प्रासंगिक होता, किन्तु संविधान में ऐसा कोई अनुच्छेद रखा नहीं गया है जिससे, इस प्रविष्टि द्वारा संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सदस्यता के सम्बन्ध में कानून बनाने का जो अधिकार दिया गया है उसका परिसीमन होता हो। इसलिए राज्य इसमें से किसी भी प्रविष्टि के अधीन अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का भी सदस्य बन सकता है। किन्तु अगर सभा को इस संशोधन के लिए कोई विशेष आग्रह ही हो तो इसको मान लेने में भी कोई क्षति नहीं है। अस्तु मैं इसे सभा पर ही छोड़ता हूं।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 प्रविष्टि 12 में, अन्त में, 'any other international body' (कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकाय) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन नामंजूर हुआ।

*__अध्यक्ष:__ अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 12 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 12 संघ-सूची में शामिल की गई।

नई प्रविष्टि 9-क

***अध्यक्षः** एक संशोधन की सूचना आई है। संशोधन है प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का जिसमें कहा गया है प्रविष्टि 9 के आगे यह नई प्रविष्टि और जोड़ दी जाये: "कोस्मिक शक्ति, एवं वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान तथा उसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन" प्रविष्टि 9 के बाद ही मुझे उसको लेना चाहिए था पर उसको लेना भूल गया।

आप क्या उसे पेश करना चाहते हैं मि. शिब्बनलाल सक्सेना?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उनका मतलब क्या है यह मैं नहीं समझ सका।

***अध्यक्षः** सूची में हमने अणुशक्ति को रखा है। वह यह चाहते हैं कि कोस्मिक शक्ति (cosmic energy) को भी सूची में रखा जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमानः

"कि सूची 1 प्रविष्टि 9 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जायेः

'9-क. कोस्मिक शक्ति एवं वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान तथा इसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन।' "

प्रविष्टि 9 में हमने अणुशक्ति तथा उसके उत्पादन के अन्य आवश्यक खनिज साधनों को स्थान दिया है। हम सभी इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि अणुशक्ति ने रक्षा सम्बन्धी हमारी विचारधारा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन पैदा कर दिया है। वस्तुतः संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सामने आज सबसे बड़ी समस्या है अणुशक्ति का नियंत्रण। आप सब को मालूम है कि इसी तरह की एक अन्य शक्ति–कोस्मिक शक्ति–के बारे में अनुसंधान कार्य चल रहा है। रूस इसके बारे में अनुसंधान कर रहा है। अक्सर यह बात सुनने में आई है कि "पामीर के पठार" पर प्रयोगशालायें स्थापित की गई है जहां रूस इस शक्ति के सम्बन्ध में अनुसंधान कर रहा है और इस बात की छानबीन कर रहा है कि युद्ध के प्रयोजनों के लिए इसका किस तरह उपयोग किया जा सकता है। विज्ञान ने जो इस दिशा में प्रगति की हैं उससे हम अपने को अनभिज्ञ नहीं रख सकते हैं। मेरा ख्याल है कि रूस आदि देशों की तरह अपने राज्य को भी उस दिशा में अनुसंधान का काम शुरू करना चाहिए इसलिए मैं समझता हूं कि इस नवीन प्रविष्टि 9-क को, जिसमें इस तरह के अनुसंधान का प्रावधान किया गया है हमें सूची में अवश्य रखना चाहिए। अणु-शक्ति के सम्बन्ध में हमने अभी हाल ही में एक विधेयक भी पास किया है और इसके बारे में हमारे यहां कुछ किया भी जा रहा है। मेरा ख्याल है कि

कोस्मिक शक्ति और कोस्मिक किरणों के सम्बन्ध में भी हमने बहुत कुछ सुन रखा है। संविधान में इस शक्ति के सम्बन्ध में भी अनुसंधान का प्रावधान रहना चाहिए आशा है डॉ. अम्बेडकर इस कमी को हटाने की कोशिश करेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मुझे इतना ही कहना है कि प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन अगर जरूरी ही है तो मेरी समझ से कि इस सूची की प्रविष्टि 91 के अधीन हमें इसके लिए पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं कि हम इस विषय की व्यवस्था कर सकें। प्रविष्टि 91 में कहा गया है:–

"सूची 2 अथवा सूची 3 में अनंकित कोई अन्य विषय, और कोई कर जिसका उल्लेख इन दोनों सूचियों में न किया गया हो"। इस प्रविष्टि के अन्तर्गत यह विषय भी शामिल किया जा सकता है।

*__श्री एच.वी. कामत:__ इस प्रविष्टि के अन्तर्गत तो सूची की अन्य कई प्रविष्टियां भी आ जा सकती हैं।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 9 के बाद यह नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:–

"9-क. कोस्मिक शक्ति, एवं वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अनुसंधान तथा इसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन।' "

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 13

*__अध्यक्ष:__ इस पर एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री मुहम्मद इस्माइल, श्री पोकर तथा श्री अहमद इब्राहिम ने दी है। उनमें से कोई भी यहां उपस्थित नहीं दिखाई देते हैं। इसलिये यह पेश नहीं किया जा सकता है। उस प्रविष्टि पर और कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 13 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 14

*__अध्यक्ष:__ इस पर कोई संशोधन नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ इस पर मैं बोलना चाहता हूं श्रीमान।

*__अध्यक्ष:__ युद्ध और शान्ति पर आप बोलना चाहते हैं? क्यों? युद्ध और शान्ति क्या हैं उसे हम सभी समझते हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं चन्द बातें ही कहना चाहता हूं श्रीमान।

*__अध्यक्ष:__ आप इसका विरोध करना चाहते हैं या समर्थन?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं इस पर और अधिक स्पष्टिकरण चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ अच्छी बात है, बोलिए।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ प्रविष्टि 14 का विषय है 'युद्ध और शान्ति'। प्रविष्टि 5 पर विचार करते समय मैंने सुझाव दिया था कि वहां 'संसद' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रखा जाये। यानी "ऐसे उद्योग जो कतिपय प्रयोजनों के लिए संसद द्वारा आवश्यक घोषित कर दिया गया हो" यहां 'संसद' के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये। यहां यह नहीं बताया गया है कि युद्ध या शान्ति की घोषणा का प्रश्न राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार में है या संसद के। जैसा कि अमेरिकन संविधान में है, मैं यह चाहता हूं कि इस प्रश्न का यहां संविधान में स्पष्टीकरण कर दिया जाये यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है श्रीमान। युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार संसद को दिया गया है। पर मैं यह चाहता हूं कि यह अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में रहना चाहिये न कि संसद के हाथ में इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।

*__अध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर, आप जवाब में कुछ कहना चाहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ उसके सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह हैः—

"कि प्रविष्टि 14 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 14 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 15

*__अध्यक्षः__ इस पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 15 संघ सूची में शामिल की गई।

नई प्रविष्टि 15-क

*__अध्यक्षः__ श्री कामत का यह सुझाव है कि एक दूसरी प्रविष्टि 15-क यहां रखी जाये। श्री कामत आप अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः

"कि प्रविष्टि 15 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जायेः—

'15-क. किसी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय संगठन निकाय की सदस्यता प्राप्त करना उस सदस्यता को जारी रखना या समाप्त करना।' "

मुझे खेद है कि भूल से 'sapra-national organisation" छप गया है होना चाहिये था "super-national organisation"

मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान, इस बात को देखते हुए कि मेरा पूर्ववर्ती संशोधन अस्वीकृत कर दिया है, जो सौभाग्य से डॉ. अम्बेडकर को काफी पसन्द था.......।

***अध्यक्षः** पर सभा को यह पंसद नहीं था।

***श्री एच.वी. कामतः** हां सभा को वह पसंद नहीं था पर यह दुर्भाग्य की ही बात थी कि सभा को वह पसन्द नहीं आया। मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान, कि मेरे इस संशोधन को मान लेना चाहिए क्योंकि इसको रखने का समुचित कारण है। यदि मेरा पहिले वाला संशोधन, यानि वह संशोधन जिसमें संयुक्त-राष्ट्र-संघ या अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का प्रावधान था, मान लिया गया होता तो इस संशोधन की जरूरत न रह जाती। सभा ने एक या दो मौकों पर जहां तक कि मैं स्मरण कर पाता हूं, डॉ. अम्बेडकर की बात अमान्य की है। मेरा ख्याल है कि इस मौके पर भी डॉ. अम्बेडकर की बात को अमान्य कर सभा को मेरा यह सुझाव सूची में रख लेना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर ने प्रविष्टि 10 की ओर संकेत करते हुए मुझे यह बताया है कि यह प्रविष्टि बहुत व्यापक है और इसके अन्तर्गत बहुत सी बातें आ सकती हैं जिनका यहां स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं हुआ है। हो सकता है "विदेशीय कार्य" पदावली के अन्तर्गत लोग और सभी बातों को शामिल समझ लें। किन्तु इस तरह के मामले में अर्थात् संघीय सूची में हमें जहां तक शक हो सभ बातों का स्पष्ट उल्लेख रखना चाहिय। "विदेशीय कार्य" पदावली रख देना ही काफी नहीं है। इस पदावली के अन्दर तो सभी बातें शामिल समझी जा सकती हैं या कोई भी बात शामिल नहीं समझी जा सकती है। इसके अलावा प्रविष्ट 10 के दूसरे अंश में "वे सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है" ऐसा कहा गया है। वहां किसी संगठन संघ या अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का नामोल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु प्रविष्टि 12 में जिसको कि हमने अभी स्वीकार किया है केवल संयुक्त-राष्ट्र-संघ का उल्लेख किया गया है। इसलिए इस सूची में मेरी समझ से यह कमी जरूर रह गई है कि इसमें संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सिवाय अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय या यों कहिए कि किसी उत्तर राष्ट्रीय (supra national) निकाय की सदस्यता की बात नहीं कहीं गई है। मैंने 'अन्तर्राष्ट्रीय' तथा 'उत्तर राष्ट्रीय' (International and Supranational) शब्दों में मैंने विभेद रखा है। राजनीतिक बोल चाल में 'सुपर नैशनल' (उत्तर राष्ट्रीय) से जो अर्थ बोध होता है वह अन्तर्राष्ट्रीय से कुछ अधिक व्यापक है। प्रथम विश्व

[श्री एच.वी. कामत]

युद्ध की समाप्ति के बाद राजनीति में गहरी दिलचस्पी लेने वाले लोगों ने एक "सुपर-स्टेट" की चर्चा शुरू की थी। राजनीति सम्बन्धी आधुनिक मतवाद के अनुसार 'सुपर-स्टेट' एक ऐसी राज्य को कहते हैं। जो राज्यों का एक संघ हो और जिसके अंगभूत सभी राज्य अपनी सार्वभौम सत्ता का एक अंश स्वेच्छा से उसे सौंप दें। किन्तु यहां जिक्र हो रहा है एक ऐसे संगठन का जिसके पास बाध्य करने वाली कोई शक्ति नहीं है जो 'विश्व-शासन' यादि वर्ल्ड गवर्नमेन्ट में होनी चाहिए जिसका कि आज बहुत से लोग स्वप्न देख रहे हैं। यहां हम अपने को केवल एक ऐसे निकाय तक ही सीमित रख रहे हैं जिसमें विभिन्न राज्य सम्मिलित होकर, अपने ऊपर असर डालने वाले विभिन्न प्रश्नों पर विचार करेंगे और जिस निर्णय पर वह पहुंचेंगे उस पर सम्बन्धित सभी राज्य या यों कहिए कि उस निकाय के सभी सदस्य राज्य अमल करेंगें सुतरां यहां विचारणीय बात यह सामने आती है कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न माना जाना चाहिये जिस पर सदस्य बनने के पूर्व हमें विस्तार के साथ विचार कर लेना जरूरी है। आज किसी भी निकाय का सदस्य बन जाने का मतलब है कि हम पर कई दायित्व आरोपित हो जायेंगे और हम कई तरह की बातों के लिए वचनबद्ध हो जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि आप यहां किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का ही प्रावधान न रखें बल्कि साथ ही सदस्यता जारी रखने या उसको छोड़ने का भी प्रावधान रख दें। केवल सदस्यता का उल्लेख करना ही पर्याप्त न होगा क्योंकि मेरी समझ में, इतने से सभी बातों का खुलासा नहीं हो पाता। इसलिए हमें इन सभी बातों का यहां साफ तौर पर उल्लेख कर देना चाहिए। मैंने अपने संशोधन में 'संयुक्त-राष्ट्र-संघ' का उल्लेख इसलिए नहीं किया है कि यही निकाय आखिर एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय निकाय तो हो नहीं सकता है। मानव बुद्धि असीम है। वह आगे चलकर और भी कोई दूसरे निकाय की रचना कर सकती है। इसलिए चूंकि मेरा पहले वाला संशोधन नामंजूर कर दिया गया है और चूंकि सूची की अन्य प्रविष्टियों में इस बात का कहीं उल्लेख यहीं किया गया है, मेरी समझ से, यह एक ऐसा महत्पूर्ण प्रश्न है जिस पर न केवल डॉ. अम्बेडकर ही बल्कि सभा भी सम्भवत: गम्भीरतापूर्वक विचार करना पसन्द करेगी। मैं सभा से इस बात की सिफारिश करूंगा कि वह इस संशोधन पर अवश्य विचार करें।

***श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता प्राप्त करना, उसका सदस्य बना रहना या त्याग देना, उन निकायों में नियमों या उप नियमों के अधीन ही किया जा सकता है और फिर प्रविष्टि 13 में जिसको कि हम पास कर चुके हैं इन सब बातों की यानी किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन संघ या अन्य निकायों में सम्मिलित होने तथा

उनके निर्णयों को कार्यान्वित करने की व्यवस्था कर दी गई है। इसलिये मेरा ख्याल है कि प्रविष्टि 13 के अन्दर यह सब बातें आ जाती हैं और यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक है। मैं इसका विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 में प्रविष्टि 15 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'15-क. किसी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता प्राप्त करना, उस सदस्यता को जारी रखना या समाप्त कर देना।' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 16

***अध्यक्षः** अब हम प्रविष्टि 16 पर आते हैं। इस पर कोई संशोधन नहीं है। मैं इस पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 16 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 17

प्रविष्टि 17 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 18

प्रविष्टि 18 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 19

प्रविष्टि 19 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 20

प्रविष्टि 20 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 21

प्रविष्टि 21 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 22

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं श्रीमानः—

'कि सूची 1 की प्रविष्टि 22 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'22. Piracies and crimes committed on the high seas or in the air, offences against the law of nations committed on land or the high seas or in the air.' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(22. महासमुद्र या वायु में की मई जलदस्युता और अरराध; स्थल या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध।)

इस प्रविष्टि का जो यह दूसरा अंश है "स्थल या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध" वह नया है; मूल मसौदे में यह नहीं था। उसके प्रथम अंश में "घोरापराध तथा अपराध" शब्दों की जगह अब 'अपराध' शब्द रख दिया गया है क्योंकि भारत में सर्वत्र यही शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। "घोरापराध तथा अपराध" (Felonies and offences) अंग्रेजी भाषा की पदसंहति है और वहां भी अधिकतर प्रयुक्त होती है। दूसरे परिवर्तन यहां यह किया गया है कि प्रथम अंश से "राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध" शब्द हटा दिये गये हैं। ऐसा इसलिये किया गया है कि जलदस्युता तथा अपराध का आनियम तो हर राज्य स्वयं अपने क्षेत्राधिकार और शक्ति के अधीन विधि द्वारा कर सकता है।

इन अपराधों से राष्ट्रों की विधि का कोई वास्ता नहीं है।

***अध्यक्षः** इस पर दो संशोधन आये हैं। एक की सूचना श्री दिवाकर ने दी है और दूसरे की श्री ब्रजेश्वर प्रसाद थे। पर डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के पेश हो जाने पर अब इन संशोधनों का सवाल ही नहीं उठता है। हां एक संशोधन प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का भी है। आपका संशोधन क्या इससे कुछ भिन्न है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** नहीं श्रीमान, वह भी इस संशोधन के अन्दर आ जाता है।

***अध्यक्षः** अब इस पर एक संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगालः मुसलिम): मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमानः

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में—

(1) "Piracies" (जलदस्युता) के स्थान पर केवल "Piracy" रखा जाये और उसके आगे एक सेमीकोलन का चिन्ह रखा जाये;

(2) "Piracies" शब्द के आगे का 'and' शब्द हटा दिया जाये; और

(3) 'committed on land or the high seas or in the air' (स्थल या महासमुद्र या वायु में की गई) शब्द हटा दिये जायें।"

जहाँ तक संशोधन के पहले अंश का सम्बन्ध है जिसमें 'Piracy' शब्द को एक वचन में रखने की बात कही गई है उसके बारे में मैं इस बात पर जोर

नहीं दूंगा कि उस पर मत लिया ही जाये। मसौदा-समिति से केवल इस बात का अनुरोध करूंगा कि वह इस पर विचार करे। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति का ध्यान उन प्रविष्टियों की ओर आकृष्ट करूंगा जो इससे पहले रखी गई हैं। उन सबमें एकवचन का ही प्रयोग किया गया है। मेरा कहना यह है कि 'Piracy' शब्दों को एकवचन में रखने से हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। उस शब्द को यहां बहुवचन में रखने की कोई जरुरत नहीं है। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊं कि प्रविष्टि 11 में "Diplomatic, consular and trade representation" रखा गया है। यहां 'representations' को बहुवचन में नहीं रखा है। इसी तरह प्रविष्टि 14 में "War and Peace" शब्द रखे गये हैं न कि 'Wars and Peaces' प्रविष्टि 16 में 'Foreign jurisdictions' रखा गया है न कि 'Foreign jurisdictions' प्रविष्टि 17 में "Trade and Commerce" रखा गया है न कि "Trades and Commerces" प्रविष्टि 20 में 'Extradition' रखा गया है न कि 'Extraditions' इतनी प्रविष्टियों का उदाहरण दे देना यहां इसके लिये काफी है कि इस प्रविष्टि में भी एकवचन का प्रयोग प्रर्याप्त है। किन्तु जैसा कि मैंने कहा है, मैं इस मसले को मसौदा-समिति पर छोड़ता हूं और वह जो भी रखेगी मुझे मान्य है।

अपने संशोधन में मैंने यह कहा है कि 'Piracies' या 'Piracy' जो भी आप रखना पसन्द करें–के बाद आया हुआ 'and' शब्द हटा दिया जाये। 'Piracies' या 'Piracy' के आगे एक सेमीकोलन का चिन्ह आना चाहिये ताकि आगे आने वाले शब्दों से यह शब्द सर्वथा पृथक् रहे क्योंकि आगे के शब्दों द्वारा सर्वथा भिन्न बात कहीं गई है। ऐसे स्थलों के लिये सेमीकोलन का प्रयोग सर्वोत्तम उपाय माना गया है। यह अंश भी केवल मसौदे की रचना से सम्बन्ध रखती है।

इसके बाद प्रविष्ट में "crimes committed on the high seas or in the air" पद संहति आई है। मैं इसको यों ही रहने देता किन्तु आगे चलकर 'offences against the law of nations' के आगे अनावश्यक व्याख्या के रूप में 'committed on land or the high sea or in the air' पद संहति रख दी गई है। इन शब्दों को यहां जोड़ा जाना मेरी समझ के बिल्कुल अनावश्यक है। अगर हम केवल इतना ही कहते हैं "offences against the law of nations" तो उसके अन्तर्गत सभी अपराध आ जाते हैं चाहे वह अपराध कहीं भी किये गये हैं। जैसाकि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अभी एक दूसरी प्रविष्ट के सम्बन्ध में बोलते हुए यह कहा है कि संविधान के अनुच्छेद में जो बात रखी जाये उसका तो हमें विस्तार के साथ अनुच्छेद में खुलाया कर देना चाहिये पर विधायिनी सूची में यदि किसी विषय को रखना है तो वहां उस विषय का उल्लेख कर देना ही काफी है। विधान-मंडल उस विषय के बारे में किस तरह से कानून बनायेगा। यह विधान-मंडल के विचारने की बात है। हमें इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ यह बताने की आवश्यकता नहीं

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है कि उसका क्षेत्राधिकार क्या होगा। मैं यह निवेदन करूंगा कि 'committed on land or the high seas or in the air' शब्दों को रखने का प्रभाव यह होगा अगर इसका कोई प्रभाव हो सकता हैं–कि संघीय विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार में कमी आ जायेगी और व्यर्थ की कमी आ जायेगी और क्या कमी आ जायेगी इसका शायद हमें आभास नहीं मिल सकता है मेरा कहना यह है कि "offences against the law of nation" सिर्फ इतना ही रखते हैं तो इससे सभी अपराध अभिप्रेत हो जायेंगे चाहे वह कहीं भी किये गये हों। विस्तार के यहां इतना रखना कि 'offences committed on land, the high seas or in the air" बिल्कुल अनावश्यक है और फिर 'high seas' आदि रखने को प्रभाव यह होगा कि जो अपराध महासमुद्र में न किया जाकर किसी लघु समुद्र में या राज्य क्षेत्रीय समुद्र जल में किया होगा उसके बारे में संघीय विधान-मंडल की विधि निर्माण का अधिकार ही न रहेगा। राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध कोई अपराध अगर स्थल, महासमुद्र या नभ के सिवा अन्वतर कहीं किया गया है तो इस प्रविष्टि के अनुसार तो संघीय विधान-मंडल उसके सम्बन्ध में विधि बना ही नहीं सकता है। इसलिए मेरा कहना यह है कि "committed on land, or the high seas or in the air' शब्दों को हटा देना ही अच्छा होगा।

एक पूर्ववर्ती प्रविष्टि पर विचार करते हुए माननीय सदस्य ने प्रविष्टि 91 का हवाला दिया है। उस प्रविष्टि में तो अवशिष्ट विषयों को जो सूची 2 और 3 में नहीं उल्लिखित है संघ-सूची में शामिल किया गया है। इस प्रविष्टि में यह कहा गया है कि "सूची 2 या 3 में अंकित कोई अन्य विषय और कोई कर जिसका उल्लेख इन दोनों सूचियों में न किया गया हो"। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि प्रविष्टि 91 के उपयोग मूलक गुणों पर भरोसा करना खतरे से खाली न होगा। मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि इस प्रविष्टि का उद्देश्य यह नहीं है कि सूची के किसी खास भाग में किसी खास विषय का उल्लेख छूट गया हो तो उसको इसमें शामिल किया जा सके। विवेचन के सम्बन्ध में यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि जहां किसी विषय का खास तौर पर उल्लेख किया जाता है और किसी खास विषय का खास तौर पर उल्लेख किया जाता है और किसी खास विषय का उल्लेख छोड़ दिया जाता है वहां अगर आय किसी भाग में उस छोड़े हुए विषय को शामिल करने के हेतु यह सामान्य पदसंहति "अनंकित कोई अन्य विषय" प्रयुक्त भी की जाती है तो इसके अधीन उस छोड़े हुए विषय को शामिल नहीं किया जा सकता है। और पदसंहति के आधार पर उस त्रुटि का उपचार नहीं किया जा सकता है। और फिर माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा जो प्रविष्टियां यहां उपस्थित की गई हैं, वह मेरी समझ से तो खूब सोच विचार कर ही उपस्थित की गई होंगी। सुतरां राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये उन अपराधों के सम्बन्ध में जो स्थल महा-समुद्र जलवायु में किये जा कर अन्यतर कहीं किये गये होंगे

कहा यही जायेगा कि वह संघीय विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से बाहर का विषय है। इस लिए अच्छा यह होगा कि व्याख्यात्मक इस अंश को हम बिल्कुल ही हटा दें। मेरी तुच्छ राय में यह अंश सर्वथा अनावश्यक है और इसके कारण दोनों ही पक्ष अपने भाषा के लिए खींचातानी कर सकतें हैं इस बात को लेकर जो कई प्रसिद्ध मुकदमे चल चुके हैं उनको देखते मेरी यह आशंका निराधार नहीं कही जा सकती कई प्रमाणिक निर्णयों में यह कहा गया है कि सूची के अन्त में ऐसी सामान्य पद-संहति रखने से सूची की पूर्ववर्ती प्रविष्टियों द्वारा दिये गये अधिकारों में वृद्धि नहीं आ जायेगी या जिस विषय का उल्लेख सूची में खास तौर पर छोड़ दिया गया है उसको सूची में शामिल नहीं किया जा सकता है। निर्वाचन के सम्बन्ध में यह एक विदित सिद्धान्त है। पर मेरा यही ख्याल है कि ये तर्क मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर के समाने रख तो रहा हूं पर इससे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि उन्होंने मेरी बात सुनी ही नहीं है जब मैं अपनी बातें यहां रख रहा था उस समय वह बातचीत में व्यस्त थे।

***अध्यक्षः** इसके बाद आता है श्री कामत का संशोधन नं. 184।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः—

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'crimes' (अपराध) शब्द हटा दिया जायें"।

मैं खुद ही इस बारे में कोई निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि सभी तरह के अपराध एकमात्र संघ शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन रखे जायें या साथ ही उनको राज्य-सूची में भी रच दिया जाये। जहां तक महसमुद्र में होने वाले अपराधों का सम्बन्ध है, उसके बारे में कोई दुविधा नहीं हो सकती है क्योंकि नौ-परिवहन, नौ-तरण (shipping & navigation) तथा इस तरह के अन्य विषय संघ-आसन के क्षेत्राधिकार के अधीन आते हैं।

सभा को यह अच्छी तरह मालूम है कि कई राज्यों और प्रान्तों ने नागरिक उड्डयन में पर्याप्त प्रगति कर ली है। अधिकांश प्रान्तों में फ्लाइंग क्लब स्थापित हो चुके हैं और कुछ प्रान्तीय शासनों के पास तो मंत्रियों के आने जाने के लिए अपने हवाई जहाज हैं। हाल में समाचारपत्रों में जो समाचार आये हैं उससे पता चलता है कि हमारे देश में तो नहीं बल्कि यूरोप और अमेरिका में उड़ते हुए हवाई जहाजों में तरह तरह के अपराध किये जाते हैं। यहां ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं कि उड़ते हुए हवाई जहाजों में मार पीट हो गई है। रुपयों के लिये शराब के लिए हाथापाई हो गई है। मान लीजिये कि किसी राज्य के हवाई जहाज में अथवा किसी फ्लाइंग क्लब के हवाई जहाज में जबकि वह नभ में हो उस तरह का अपराध हो जाता है या उदाहरण के लिए यही मान लीजिए कि कोई जहाज चालक नशे में आकर जहाज से छतरी के सहारे या बिना छतरी उतर पड़ने की कोशिश करता है। अवश्य ही उसका ऐसा करना आत्महत्या का और मुसाफिरों की जान को खतरे में डालने का अपराध माना जायेगा। ऐसी हालत में क्या इस

[श्री एच.वी. कामत]

तरह के अपराध को एकमात्र संघ-शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन छोड़ना ठीक होगा? क्या यह उचित न होगा कि इस तरह के अपराधों के सम्बन्ध में विधि निर्माण इस अधिकार संघ-शासन को तथा विभिन्न राज्यों को–दोनों को ही दिया जाये?

मैं यह महसूस करता हूं कि इस मसले पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इधर कुछ दिनों से नागरिक उड्डयन में सभी जगह काफी प्रगति हो गई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की बातों को सुनकर शायद फिर मैं यही कहना चाहूंगा कि उनकी समझ में यह बात ठीक-ठीक नहीं आ पाई कि प्रविष्टि 22 का प्रयोजन क्या है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मुश्किल तो यह है श्रीमान, कि डॉ. अम्बेडकर ने मेरी बातें सुनी ही नहीं क्योंकि यह बातचीत में फंसे थे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसमें शक नहीं कि मैं बातें कर रहा था पर माननीय मित्र जो कुछ कह रहे थे उसे मैं ध्यान से सुन रहा था।

माननीय मित्र ने पहले यह सवाल उठाया कि यहां 'Piracy' और 'crime' शब्द बहुवचन में क्यों रखे जायें। अगर इनको बहुवचन में नहीं रखते हैं तो फिर दूसरा उपाय यह है कि इनको हम समुच्चयात्मक अर्थ में प्रयुक्त करें। पर मेरी समझ में ऐसे स्थलों पर जहां अपराध विषयक विधियों के निर्माण का प्रावधान रखा जा रहा हो, समुच्चयात्मक अर्थ में शब्द का प्रयोग न करना ही श्रेयस्कर है। मित्र ने अपने पक्ष समर्थन में कई उदाहरण भी रखे हैं। पर वह इस बात को भूल जाते हैं कि कई जगहों पर शब्दों का एकवचन में सामान्य रूप से प्रयोग कर देना पर्याप्त हो सकता है पर अन्य कई स्थलों पर ऐसे प्रयोग से काम नहीं चलता है। इसलिए मसौदा-समिति ने जानबूझ कर यहां इन शब्दों को बहुवचन में प्रयुक्त किया है क्योंकि जिस प्रसंग में इनका यहां प्रयोग किया है उसमें इनको बहुवचन में रखना ही ठीक होगा।

इस प्रविष्टि के विरुद्ध दूसरी बात आपने यह कही है कि 'Piracies' शब्द के आगे सेमीकोलन का चिह्न होना चाहिये। मेरा ख्याल यह है कि ऐसा करने से प्रविष्टि का अर्थ विकृत हो जायेगा। अगर Piracies के आगे सेमीकोलन रख दिया जाता है तो उसका असर यह होगा कि प्रविष्टि 22 में रखे गये अन्य विषयों से 'Piracy' पृथक् हो जायेगा। अगर इस प्रविष्टि में रखी गई अन्य बातों से 'Piracies' पृथक् हो जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि केन्द्रीय विधान-मंडल को सभी तरह की डकैतियों के अपराध के बारे में कानून बनाने का अधिकार

रहेगा "committed on high seas or in the air" (महासमुद्र या नभ में की गई) पद-संहित का सम्बन्ध न केवल 'crime' (अपराध) शब्द से ही है बल्कि इसका सम्बन्ध 'Piracy' से भी है।

माननीय मित्र ने तीसरी बात यह कही है कि "on land, on high seas or in the air" (स्थल पर, महासमुद्र या नभ में) शब्दों को जो "offences against the law of nations" (राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध) के आगे प्रयुक्त हुए उन्हें हटा देना चाहिये। ऐसा करने से यह बात स्पष्ट नहीं हो जायेगी कि प्रविष्टि का दूसरा अंश पहले अंश से सर्वथा स्वतंत्र है और उसके अनुसार केन्द्रीय विधान-मण्डल को राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध न केवल महासमुद्र या नभ में ही किये अपराधों के बारे में बल्कि स्थल पर किये गये अपराधों के बारे में भी विधि बनाने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि इस अंश को हटाने से यह होगा कि राज्यों को दूसरे अंश के सम्बन्ध में विधि बनाने का अधिकार न रहेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि जिस रूप में यह प्रविष्टि रखी गई है उससे मसौदा बनाने वालों का अभिप्राय समझ में आ जाता है और इसमें किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** माननीय सदस्य ने जो कुछ मैंने कहा उसे सुना नहीं है। उन अपराधों के लिए आप क्या करेंगे जो न महासमुद्र में, न नभ में और न स्थल पर बल्कि कम जल वाले समुद्र में किये जायेंगे?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः वह तो कोरी कल्पना है। जो भी अपराध होंगे वह इन्हीं तीन स्थानों पर होंगे।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाबः सिख): अगर 'Piracies' (डकैतियां) शब्द को शेष बातों से पृथक् नहीं करते हैं तो उस सूरत में क्या 'in the air' (नभ में) शब्द 'Piraces' शब्द के लिये भी लागू होंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** ऐसी भी डकैतियों के अपराध हो सकते हैं जो नभ में की जायें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** 'Piracy' (डकैती) केवल सामुद्रिक डकैती को ही कहते हैं सुतरां ऐसी डकैती केवल समुद्र में ही की जा सकती है। स्थल पर या नभ में की गई डकैती 'piracy' नहीं कही जा सकती है।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं चाहता हूं कि मेरे अन्तिम संशोधन पर ही मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'committed on the land, or the high seas or in the air' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'and crimes' शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 22 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'22. Piracies and crimes committed on the high seas or in the air, offences against the law of nations committed on land or the high seas or in the air.

[22. महासमुद्र या वायु में की गई जल दस्युता और अपराध, स्पष्ट या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों के विरुद्ध किये गये अपराध।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 22 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 23

प्रविष्टि 23 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 24

प्रविष्टि 24 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 25

प्रविष्टि 25 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 26

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'26. Import or export across customs frontiers; definition on customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्तों को पार करने वाले आयात या निर्यात; शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।]"

वस्तुत: उस संशोधन के द्वारा कोई नई बात नहीं रखी जा रही है बल्कि मूल प्रविष्टि के क्रम में परिवर्तन किया जा रहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह संशोधन रखता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 9 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जायें:—

'26. Customs frontiers; import and export across customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्त, शुल्क सीमाओं को पार करने वाले आयात और निर्यात।]"

मैं यह मानता हूं कि संशोधन के द्वारा कोई नया सुझाव नहीं दिया जा रहा है बल्कि केवल मसौदे की रचना में परिवर्तन किया जा रहा है। जिन कारणों से प्रेरित होकर मैंने यह संशोधन रखा है उन्हें मैं बताये देता हूं और संशोधन को मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि में कहा गया है "import or export across custom frontiers" (शुल्क सीमान्त को पार करने वाले आयात या निर्यात)। मैं नहीं समझ पाता हूं कि आखिर यहां 'or' (या) शब्द रखने का क्या मतलब है। क्या आयात और निर्यात इन दोनों विषयों को विकल्पश: रखा जा रहा है? प्रश्न यह है कि इन शब्दों को किस तरह रखना ठीक होगा। "import or export" रखना चाहिये या "import and export"? जिस रूप में अभी प्रविष्टि रखी गई है उससे यह मतलब निकलता है कि "या तो आयात या निर्यात।" किन्तु हमने जो पदसंहति प्रस्तावित की है उससे यह आभास मिलता है कि आयात और निर्यात दोनों ही बातें राज्य में होंगी। मैं नहीं समझता कि जानबूझकर 'or' शब्द यहां किसी प्रयोजन विशेष के लिए रखा गया है। मेरी समझ से भूल से ही ऐसा हुआ है और इसे ठीक कर देना चाहिये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में कहा है "definition of customs frontier" (शुल्क सीमान्तों की परिभाषा)। मैं समझता हूं कि "custom frontier" पद-संहति के अन्तर्गत शुल्क सीमान्त सम्बन्धी सारी बातें आ जाती हैं और इसको ही रखने से परिभाषा का अधिकार केन्द्रीय विधान-मण्डल को प्राप्त हो जाता है। शुल्क सीमान्त के बारे में कानून बनाने का अधिकार आपको कैसे रहेगा जब तक की उसकी परिभाषा देने का अधिकार आपको नहीं? जब शुल्क सीमान्त के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को प्राप्त है तो इससे यह स्पष्ट है कि उसकी परिभाषा देने का अधिकार भी उसे प्राप्त है। यहां परिभाषा का उल्लेख बिल्कुल अनावश्यक है। 'or' के स्थान पर 'and' रखने का जो सुझाव मैंने दिया है वह तो बहुत ही आवश्यक है। जैसा कि मैंने कहा है मेरे इस संशोधन में केवल मसौदे की रचना में अदल-बदल करने की बात कही गई है और कोई नई बात नहीं रखी है। मैं इसे मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं। इस पर सभा की राय लेने की कोई जरूरत नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मसौदा स्पष्ट हो इतने से ही मैं सन्तुष्ट हो जाता हूं। ऊंची शब्दावली रखने का मुझे शौक नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:

'26. Imports or export across customs frontiers; definition of customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्तों को पार करने वाले आयात या निर्यात, शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 26 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शमिल की गई।

नई प्रविष्टि 26-क

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य (श्री शिब्बनलाल सक्सेना) के संशोधन की बात अनुच्छेद 271-क के अन्तर्गत आ जाती है। जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। उस अध्याय का हम पहले ही पास कर चुके हैं जिसमें सम्पत्ति के स्वामित्व के सम्बन्ध में प्रावधान रखे गये हैं। इन प्रावधानों के अधीन सम्पत्ति सम्बन्धी स्वामित्व के बारे में विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह चाहता हूं कि इस विषय के बारे में विधि निर्माण का अधिकार केवल संघीय विधान-मंडल को प्राप्त रहे, राज्यों के विधान-मण्डलों को नहीं।

***अध्यक्ष:** आगे की प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत यह बात आ जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या उस प्रविष्टि के अनुसार राज्यों को उस सम्बन्ध में विधि-निर्माण का अधिकार न रहेगा?

***अध्यक्ष:** बिल्कुल नहीं। प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत संघ की सभी सम्पत्ति आ जाती है। मैं नहीं समझता कि आपके संशोधन की कोई भी जरूरत है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** इस प्रश्न को लेकर अमेरीका की सर्वोच्च अदालत में कई मामले चल चुके हैं। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह बात यहां स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी जाये। मैं अपना संशोधन रखना चाहता हूं, श्रीमान।

मेरा प्रस्ताव है:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'26.A. Ownership of and dominion over the lands, minerals, and other things of value underlying the ocean seaward of the ordinary low watermark on the coast exceeding three nautical miles.'

[26.क. समुद्र तट में अंकित निचली सतह के चिह्न से समुद्र की ओर तीन सामुद्रिक मील तक समुद्र के नीचे की सब भूमि खनिजों तथा अन्य मूल्यवान पदार्थों पर स्वामित्व तथा आधिपत्य।]"

मैं जानता हूं संविधान में इन सबके लिये प्रावधान रखा जा रहा है पर मैं चाहता यह हूं कि इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया जाये। इस सम्बन्ध में मैं एक महत्वपूर्ण मामले का हवाला दूंगा जिसका फैसला अभी 23 जून 1947 को अमेरीका की सर्वोच्च अदालत ने किया है। मामला चला था संयुक्त राज्य अमेरिका और वहां की रियासत कैलिफोर्निया के बीच। मामला यों था कि कैलिफोर्निया के नजदीक जमीन के नीचे एक बहुत बड़ी राशि तेल और गैस की मिली। उसके स्वामित्व के प्रश्न पर झगड़ा चला। मामला वहां के सर्वोच्च न्यायालय के पास पहुंचा। न्यायालय का बहुमत इसी पक्ष में था कि उस पर स्वामित्व है संयुक्त-राज्य अमेरिका का पर दो न्यायाधीश श्री रीड तथा श्री फ्रैंक फर्टर इसके विरुद्ध थे। मेरी समझ से यह बहुत ही आवश्यक है कि संविधान में यह स्पष्ट कर दिया जाये कि इन पर संघ का स्वामित्व है ताकि इसके सम्बन्ध में किसी

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

संदेह की गुंजाइश न रह जाये। उक्त मामले में जो फैसला हुआ था उसका एक पैरा मैं यहां उद्धृत करता हूं:—

"यही तेल जिसके स्वामित्व के प्रश्न को लेकर राष्ट्र और रियासत में विवाद चल रहा है वह अन्तराष्ट्रीय विवाद और समझौते का विषय बन सकता है। महासागर और इसके तटवर्ती तीन मील का कक्ष, राष्ट्र की इस इच्छा की पूर्ति के लिए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य करे तथा दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध शान्तिमय बना रहे बहुत महत्वपूर्ण होता है। और अगर शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना कहीं असम्भव हो गया तो उस हालत में राष्ट्र के लिये इनका महत्व और गम्भीर हो जाता है। चूंकि वाणिज्य तथा शान्ति दोनों की जिम्मेदारी राष्ट्र पर होती है न कि रियासत पर, इसलिए यदि युद्ध चल पड़ता है तो लड़ना पड़ेगा राष्ट्र को। रियासत जिस आधिपत्य की मांग कर रही है उसके सहगामी दायित्वों को पूर्ति की शक्ति या सुविधायें, अपनी संवैधानिक प्रणाली में रियासत को नहीं प्राप्त हैं। यह सच है कि रियासतों को अपनी सीमा के अन्दर इस तटवर्ती कक्षा पर स्थानीय पुलिस के प्रकार्य को निष्पादित करने का अधिकार प्राप्त है पर इससे संघ-सरकार के उस पूर्णाधिकार में कोई कमी नहीं आती जो उसे इस क्षेत्र पर प्राप्त है। इसलिए सागर गर्भवर्ती उस कक्ष के बारे में जहां रियासत की नदियां गिरती हैं, रियासत को स्वामित्व देने वाले पोलार्ड नियम को लागू करने पर हम तैयार नहीं हैं। उस पर तो राष्ट्र को ही स्वामित्व प्राप्त है।"

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का यह एक पैदा मैंने यहां सुनाया है। उपरोक्त मामले में न्यायालय का फैसला यह रहा है कि सागर की गर्भवर्ती सम्पत्ति पर राष्ट्र का स्वामित्व है न कि रियासत का। यदि संघ-सूची में इन विषयों का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया जाता है तो तटवर्ती भू-भाग के अन्दर निकलने वाले किसी खनिज या अन्य सम्पत्ति के स्वामित्व पर किसी विवाद की गुंजाइश न रह जायेगी। इसलिये मेरा सुझाव है कि यह नई प्रविष्टि संघ-सूची में शामिल कर ली जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा निवेदन यह है कि यह बात अनुच्छेद 272-क के अन्तर्गत आ जाती है। मेरी कठिनाई यह है। माननीय मित्र सक्सेना के संशोधन में स्वामित्व की चर्चा की गई है पर इस विधायिनी सूची में केवल विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्ति का प्रावधान किया है। स्वामित्व किसका हो इसके निर्णयन का अधिकार इसके द्वारा नहीं दिया जा रहा है। स्वामित्व सम्बन्धी प्रश्न का विनिश्चयन तो किसी अन्य विधि द्वारा होगा न कि इस सूची की प्रविष्टि के द्वारा। इसलिये मैं इस संशोधन को नहीं स्वीकार कर सकता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना ने यहां हवाला दिया है अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का। पर मेरा ख्याल यह है कि फैसले की जरूरत ही वहां इस लिये पड़ी थी कि वहां संविधान में अपने अनुच्छेद 272-क जैसा कोई अनुच्छेद नहीं रखा गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम लोगों ने यह देखा कि संविधान में इसके लिये कोई प्रविष्टि नहीं रखी गई है जिससे यह विषय संदेहास्पद रह जाता है। इस संदेह को दूर करने के लिये ही हमने अनुच्छेद 271-क को रखा। यह अनुच्छेद वस्तुत: श्री सक्सेना के संशोधन से अक्षरश: मिलता हुआ है।

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना के संशोधन पर मैं मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के आगे यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'26.A. Ownership of and dominion over the lands, minerals and other things of value underlying the ocean seaward of the ordinary low watermark on the coast exceeding three nautical miles.'

[26.क. समुद्र तट में अंकित निचली सतह के चिह्न से समुद्र की ओर तीन सामुद्रिक मील तक समुद्र के नीचे की सब भूमि, खनिजों तथा अन्य मूल्यवान पदार्थों पर स्वामित्व तथा आधिपत्य।]"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 27

प्रविष्टि 27 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 28

***अध्यक्ष:** अब हम प्रविष्टि 28 पर आते हैं। इस पर एक संशोधन है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 28 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 29

***अध्यक्ष:** अब ली जाती है प्रविष्टि 29, इस पर एक संशोधन है, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 29 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 30

***अध्यक्षः** इस प्रविष्टि पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 30 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 31

***अध्यक्षः** इस प्रविष्ट पर, मैं देखता हूं कि कुछ संशोधन आये हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान।

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 31 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये।

'31. Highways declared to be national highways by or under law made by Parliament.'

[31. राजमार्ग जो संसद निर्मित विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित कर दिये गये हों।]"

संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है। मूल प्रविष्टि के शब्दों को यहां स्थानान्तरित मात्र कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** मूल प्रविष्टि पर एक संशोधन है मि. करीमद्दीन का, पर यह पेश नहीं किया जायेगा और कोई दूसरा संशोधन इस पर नहीं है। इसलिये डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह हैः

"कि प्रविष्टि 31 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

प्रविष्टि 31 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 33 और 32

***अध्यक्षः** यहां पर एक संशोधन है पर वह है इसे हटाने के लिए?

प्रविष्टि 32 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 33 और 34

प्रविष्टि 33 और 34 संघ-सूची में शामिल की गईं।

प्रविष्टि 35

*__अध्यक्ष:__ इस प्रविष्टि पर एक संशोधन है श्री संथानम् का।

*__माननीय श्री के. संथानम__ (मद्रास: जनरल): इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 35 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 36

प्रविष्टि 36 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 37

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान:

> "कि सूची 1 के संशोधन नं. 12 में प्रविष्टि 37 में 'by air or by sea' (वायु अथवा समुद्र) शब्दों के स्थान पर 'by railway, by sea or by air' (रेल पथ, समुद्र या वायु से) शब्द रखे जायें।"

मूल प्रविष्टि में एक शब्द रखना छूट गया था जिसे रखने के लिये ही यह संशोधन पेश करना पड़ा है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान:

> "कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 12 में प्रविष्टि 37 में 'by railway, by sea or by air' (रेल पथ, समुद्र या वायु से) शब्दों के स्थान पर 'by land, sea or air' (स्थल मार्ग, समुद्र या वायु से) शब्द रखे जायें।"

संशोधन क्यों रखा जा रहा है इसका कारण बिल्कुल सरल है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन के द्वारा केवल 'by railway' शब्दों को बढ़ाने का सुझाव दिया है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि परिवर्तन इतना सीमित क्यों रखा जा रहा है। यदि सामान और यात्रियों का रेल पथ द्वारा वहन संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखना है। तो यहां 'by railway' की जगह 'by land' क्यों न रखा जाये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो सामान तथा यात्रियों का राजमार्ग द्वारा यातायात संघ-शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन न रह जायेगा। यदि कोई खास कारण है जिसके लिये राजमार्ग पर आने जाने वाले सामान या यात्रियों के बारे में आप इस प्रविष्टि को लागू नहीं करना चाहते हैं तो उस सूरत में अपने संशोधन के लिये मैं आग्रह नहीं करूंगा। पर मैं नहीं समझता कि ऐसी बात है क्योंकि राजमार्ग द्वारा यातायात सर्वथा

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

राज्यों के क्षेत्राधिकार में जरूरत है किन्तु अन्तर्प्रादेशिक यातायात तो संघ शासन के ही क्षेत्राधिकार में रहेगा। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां केवल रेल पथ द्वारा होने वाले यातायात को ही क्यों संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है? आखिर राजमार्ग द्वारा होने वाले यातायात को भी क्यों नहीं संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जाये?

***श्री आर.के. सिधवा:** प्रान्तीय सरकारों द्वारा चलाई जाने वाली बसों के द्वारा जो यातायात होगा वह जिसके क्षेत्राधिकार में रहेगा?

***अध्यक्ष:** आपके संशोधन के अन्तर्गत ये सभी बाते आ जायेंगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** राज्यों में चलने वाली बसों द्वारा होने वाला यातायात संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में न रहेगा। मेरे संशोधन के अनुसार संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में केवल अन्तप्रादेशिक यातायात रहेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** प्रान्तीय सरकार की बसों द्वारा होने वाली यातायात पर भी तो यह संशोधन लागू हो सकता है।

***अध्यक्ष:** यह लागू हो हो सकता है केवल वायु, समुद्र या रेल पथ द्वारा यात्रियों के ले जाये जाने के बारे में।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** रेल पथ द्वारा ले जाये जाने वाले सामान और यात्रियों को संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है। मैं चाहता यह हूं कि राजमार्ग द्वारा होने वाले सामान और यात्रियों के यातायात को भी संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जाये पर केवल उसी यातायात को जो अन्तर्प्रादेशिक हो। अपने प्रदेश के अन्दर राजमार्ग द्वारा होने वाले यातायात पर पूर्णत: राज्यों का ही अधिकार रहेगा।

***अध्यक्ष:** यह प्रविष्टि केवल अन्तप्रादेशिक यातायात पर ही नहीं लागू होती है प्रादेशिक यातायात पर भी यह प्रविष्टि लागू होगी, अगर यातायात रेलपथ द्वारा होता है। यदि 'by land' शब्द यहां रख आते हैं तो, इक्का, टांगा, बैलगाड़ी, इन सभी तरह के यातायात संघीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मेरा मतलब यह है कि स्थल मार्ग द्वारा होने वाले केवल अन्तर्प्रादेशिक यातायात संघीय क्षेत्राधिकार में रहें। इसीलिए मैंने यह संशोधन रखा है।

***अध्यक्ष:** किन्तु आपके संशोधन से ऐसा नहीं होगा। यह स्थलमार्ग द्वारा होने वाले सभी यातायात पर लागू होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मेरा अभिप्राय: इतना ही था कि स्थलमार्ग द्वारा होने वाले केवल अन्तर्प्रादेशिक यातायात को संघीय क्षेत्राधिकार में रखा जाये। किन्तु अगर

मेरे संशोधन के अन्तर्गत स्थलमार्ग द्वारा होने वाला प्रादेशिक यातायात भी आ जाता है तो फिर यह बेकार है।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है श्री कामत का जिसमें 'railway' शब्द के स्थान पर 'rail' शब्द रखने का सुझाव दिया गया है। क्या इस संशोधन को पेश करने में आपको भाषण देने की जरूरत है?

***श्री एच.वी. कामत:** नहीं, मैं इसे मसौदा-समिति के सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता पर छोड़ता हूं। अंग्रेजी भाषा का मुझे थोड़ा ही ज्ञान है पर उस भाषा का यत्किंचित ज्ञान मुझे है उसके आधार पर मैं यह कहूंगा कि कि "carriage by railway" यह पदसंहति कुछ शुद्ध नहीं है। आमतौर पर अंग्रेजी में 'carriage by rail' पदसंहति प्रयुक्त की जाती है न कि 'carriage by railway'। इसलिए अपने संशोधन का प्रस्ताव रस्मीतौर पर मैं यहां पेश किये देता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 12 में, सूची 1 की प्रविष्टि 37 में 'railway' शब्द के स्थान पर 'rail' शब्द रखा जाये।"

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, माननीय श्री देशमुख के संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं क्योंकि अगर हम उनके संशोधन को मान लेते हैं तो फिर स्थलमार्ग के सभी यातायात केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** किन्तु स्थलमार्ग द्वारा दो प्रदेशों के बीच जो यातायात होगा उसको किसके क्षेत्राधिकार में रखा जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अन्तर्प्रादेशिक यातायात होगा जो संघीय अधिकार में रहेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** तो मैं अपने संधोधन को वापस ले लेता हूं

संशोधन सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

(श्री कामत ने अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं किया।)

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 37 में 'by air or by sea' (वायु या समुद्र द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'by railway, sea or by air' (रेलपथ समुद्र का वायु द्वारा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 37 संघ-सूची में शामिल की गई।

————————

प्रविष्टि 38

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 38 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'38. Railways.' "

यह परिवर्तन क्यों किया जा रहा है इसके सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना यहां आवश्यक है। माननीय सदस्य वृन्द यदि मसौदे की मूल प्रविष्टि पर दृष्टिपात करेंगे तो देखेंगे कि वहां संघ की रेलों और अन्य छोटी रेलों में अन्तर रखा गया है। यह अन्तर रखना जरूरी था क्योंकि संघ की रेलों के बारे में, क्षेत्र अधिकतम और अल्पतम दर तथा भाड़े के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार केन्द्रीय शासन को प्राप्त है। किन्तु छोटी रेलों के बारे में वास्तविक प्रशासन की एक सीमित जिम्मेदारी केन्द्र पर है। कहने का मतलब यह है कि जहां तक छोटी रेलों का सम्बन्ध है, अधिकतम और अल्पतम दर, भाड़ा, स्टेशन और सेवा सीमा-व्यय आदि बातें केन्द्रीय विधान-मण्डल के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दी गई हैं अब वांछनीय यह समझा जा रहा है कि चूंकि भारत में रेलवे की व्यवस्था एक तरह की होगी इसलिए इनके सम्बन्ध में कानून बनाने का काम भी एक ही निकाय के हाथ में होना चाहिए ताकि सभी बातों के बारे में सभी रेलों के लिए एक से कानून बनाये जा सकें। इसलिए अब इस प्रविष्टि को व्यापक बना दिया जा रहा है ताकि इसमें छोटी रेलें भी शामिल की जा सकें। और जब सभी बातों के लिए सभी रेलों के सम्बन्ध में एक सा कानून का बनाना आवश्यक है तो मूल प्रविष्टि के दूसरे भाग को रखना अनावश्यक है जिसमें संघीय रेलों और छोटी रेलों में अन्तर किया गया है।

मैं यह भी बता दूं कि यह प्रविष्टि शुद्धतः एक विधायिनी प्रविष्टि है। इसके द्वारा स्वामित्व का प्रावधान नहीं किया गया है। कहने का मतलब यह है कि अधिकतम और अल्पतम दर, भाड़ा तथा सीमा व्यय आदि के आनियमन का अधिकार केन्द्र को होगा पर हर राज्य को चाहे भाग 1 वाला राज्य हो या भाग 3 वाला, जिसके पास अपनी छोटी रेलें हैं, केन्द्र द्वारा निश्चित दर और भाड़े के अनुसार जो आय होगी उसे रखने का पूर्ण अधिकर होगा। इस व्यवस्था से उसके स्वामित्व विषयक अधिकार पर कोई आंच नहीं आयेगी। रेलों पर उसका स्वामित्व बना रहेगा। यदि भाग 3 या भाग 1 वाले किसी राज्य के किसी छोटे रेलपथ को केन्द्र अपने अधिकराधीन करना चाहता है तो व्यवस्था के अनुसार ही वह ऐसा कर सकता है। सुतरां यह जो प्रविष्टि है वह शुद्धतः एक विधायिनी प्रविष्टि है। मेरे संशोधन का अभिप्राय यही है कि रेलवे सम्बन्धी सभी बातों के बारे में देश भर के लिए एक सा कानून हो। इस संशोधन से स्वामित्व सम्बन्धी प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

ट्राम-पथ को रेलपथ में हम शामिल नहीं कर रहे हैं, उसको रेलपथ से अलग रखा जा रहा है। निर्वाचन विषयक खण्ड में हम रेलवे की परिभाषा इस रूप में देना चाहते हैं कि रेल में ट्राम को न शामिल किया जा सके ताकि भाग 1 या 3 वाले राज्यों को ट्रामों के सम्बन्ध में सभी बातों के आनियमन का अधिकार रहे।

***श्री आर.के. सिधवा:** माइनर रेलवे ऐक्ट नामक एक कानून है जिस पर सभी प्रान्तीय सरकारें अमल करती हैं। क्या इस संशोधन का अभिप्राय यह है कि वह ऐक्ट अब निरसित कर दिया जायेगा और सारी व्यवस्था संघ के अधिकार में आ जायेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, इस संशोधन से संघ को इस ऐक्ट को निरसित करने का अधिकार अवश्य प्राप्त हो जाता है। वह यदि चाहे तो इसे रख सकता है या इसके स्थान पर दूसरा कोई कानून बना सकता है। इसे प्रविष्टि के द्वारा केन्द्र को छोटी-बड़ी सभी रेलों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह चाहे तो छोटी रेलों और बड़ी रेलों के लिए भिन्न-भिन्न कानून बनावे या दोनों के लिए एकसा कानून बनावे। इसका पूरा अधिकार केन्द्र को है।

***श्री आर.के. सिधवा:** तो क्या छोटे रेलपथों की व्यवस्था माइनर रेलवे ऐक्ट के अनुसार चलेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह वर्तमान कानून तब तक चालू रहेगा जब तक संसद इसमें कोई परिवर्तन न कर दे। इस संशोधन से संसद को परिवर्तन करने का अधिकार मिल जाता है।

***अध्यक्ष:** अब प्रविष्टि 38 पर मैं मत लेता हूं। मुझे अभी मालूम हुआ है कि इस पर एक और संशोधन आया है पर यह आया है कि आज सवेरे 9 बजे। मैं इसे स्वीकार करने में असमर्थ हूं। अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 38 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये–

'38. Railways.' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 38 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 39

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 39 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'39. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the National Library, the Indian Museum, the

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Imperial War Museum, the Victoria Memorial, the Indian War Memorial, and any other institution financed by the Government of India wholly or in part and declared by Parliament by law to be an instituion of national importance.' "

(39. इस संविधान की प्रारम्भ तिथि पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्धस्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।)

यहां मूल प्रविष्टि में कोई सारवान परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। केवल चन्द शाब्दिक परिवर्तन मात्र किये जा रहे हैं क्योंकि 15 अगस्त 1947 से इन संस्थाओं के नाम में परिवर्तन हो गया है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): संविधान के प्रभावी होने पर क्या "Imperial War Museum" (साम्राज्य युद्ध-संग्रहालय) का नाम बदलकर "National War Museum" (राष्ट्रीय युद्ध-संग्रहालय) कर दिया जायेगा जैसा कि इम्पीरियल लाइब्रेरी को बदलकर 'नैशनल लाइब्रेरी' कर दिया गया है?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मैं समझता हूं कि 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' का नाम बदलकर 'नैशनल लाइब्रेरी' कर दिया गया है कि 'इम्पीरियल वार म्युजीयम' का नाम नहीं बदला गया है। ये नाम तो सिर्फ उन संस्थाओं का परिचय देने के लिए है ताकि संसद जब उनके बारे में कोई कानून बनावे तो उनका नामोल्लेख करके यह बताया जा सके कि कानून अमुक संस्था के लिए लागू है।

***श्री बी. दास:** मैं जानना यह चाहता हूं कि संविधान के प्रभावी होने पर और भारत शासन अधिनियम में अनुकूलन हो जाने पर 'इम्पीरियल' शब्द उठ जायेगा या यों ही बना रहेगा। मेरा कहना यह है कि "हिज मैजेस्टीज़ गवर्नमेन्ट", दि क्राउन' जैसे शब्द संविधान के प्रभावी होने पर उठ जायेंगे या बने रहेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुकूलन किया जायेगा। कानूनों के सम्बन्ध में न कि नाम के सम्बन्ध में।

***अध्यक्ष:** इस प्रविष्टि के द्वारा केन्द्रीय विधान-मण्डल को नाम में परिवर्तन करने का अधिकार मिल जाता है।

इस प्रविष्टि पर एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद का आया है जिसका नं. है 160 ।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन नं. 14 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 39 में—

(1) 'on the date of commencement' शब्दों के स्थान पर 'on the commencement' शब्द रखे जायें।

(2) 'other institution' शब्दों के स्थान पर 'other similar institution' शब्द रखे जायें।

(3) 'by Parliament' शब्दों के स्थान पर 'by or under any law made by Parliament' शब्द रखे जायें।

जहां तक कि मेरे संशोधन के पहले अंश का प्रश्न है, उसमें केवल एक सामान्य-सा परिवर्तन का सुझाव दिया गया है जिससे प्रविष्टि के सार में कोई अन्तर नहीं आता है। प्रविष्टि में 'the date of commencement of the Constitution' (संविधान की प्रारम्भ तिथि पर) शब्द रखे गये हैं। मेरा कहना यह है कि "संविधान के प्रारम्भ पर" इतना कहने से उस तिथि का ही बोध होता है जिस दिन संविधान का प्रारम्भ होता है। हमने संविधान के मसौदे में अन्य कितने ही स्थलों पर "संविधान के प्रारम्भ पर" यही पदसंहति प्रयुक्त की है। कई अनुच्छेदों में जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं यही पदसंहति प्रयुक्त हुई हैं। 'on Commencement of the Constitution' (संविधान के प्रारम्भ) पद-संहति को हमने सर्वत्र संविधान के प्रारम्भ की तिथि के ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। सुतरां यहां 'date of' शब्दों का रखना न केवल अनावश्यक है बल्कि अन्य कतिपय स्वीकृत अनुच्छेदों में रखी गई पद-संहति को देखते हुए इन शब्दों का यहां रखा जाना असंगत दिखाई देता है। मेरा कहना यह है कि संविधान में एकरूपता रहनी चाहिए। इसलिए "on the date of commencement" न रखकर केवल 'on commencement' रखना ही ठीक होगा। संविधान का प्रारम्भ होगा ही किसी तारीख पर और वह तारीख शुरू होगी मध्य रात्रि के बाद से। इस संशोधन का सम्बन्ध केवल मसौदे की रचना से है और इसमें कोई सारवान परिवर्तन की बात नहीं कही गई है। मसौदा-समिति का ध्यान मैं इसकी ओर इसलिए आकृष्ट कर रहा हूं कि शायद एकरूपता के ख्याल से वह यहां आवश्यक परिवर्तन करना पसन्द करे।

मेरे संशोधन का दूसरा अंश महत्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर ने जो प्रविष्टि प्रस्तावित की है, वह यों है:

"......राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्ध-स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा....... वित्तपोषित........ ऐसी कोई अन्य संस्था।"

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

मैं चाहता यह हूं कि प्रविष्टि का अन्तिम अंश यों हो "ऐसी कोई अन्य तद्‌रूप संस्था"। हम इस प्रविष्टि के द्वारा प्रावधान कर रहे हैं एक खास तरह की संस्थाओं के बार में। राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक तथा भारतीय युद्ध-स्मारक में सभी एक तरह की संस्थाएं हैं। अगर हम प्रविष्टि के अन्तिम अंश में यह नहीं कहते कि 'ऐसी अन्य तद्‌रूप संस्था' तो इसका नतीजा यह होगा कि बिल्कुल भिन्न तरह की अन्य कतिपय संस्थाओं को भी अनजाने इसमें हम शामिल कर लेंगे। इससे यह होगा कि इस प्रविष्टि के अधीन संसद् को अन्य संस्थाओं के सम्बन्ध में भी जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित होंगी, चाहे उन संस्थाओं का स्वरूप इनसे बिल्कुल हो और उनके प्रकार्य भी इनसे सर्वथा भिन्न हों विधि बनाने का अधिकार हो जायेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि इस प्रविष्टि के प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए तथा यहां वर्णित संस्थाओं जैसी संस्थाओं तक ही इसे सीमित रखने के लिए यह आवश्यक है कि "any other similar institution" (ऐसी अन्य तद्‌रूप संस्था) कह कर मतलब को बिल्कुल साफ कर दें। निर्वाचन विषयक सिद्धान्त का अभी अभी हवाला दे चुका हूं। निर्वाचन का यह भी एक सिद्धान्त है कि अगर किसी विधि में कुछ विषयों का स्पष्ट उल्लेख है और अन्य में यह कह दिया जाता है कि 'तथा अन्य विषय' तो यहां अन्य विषयों में साधारणत: सभी विषय मान लिये जायेंगे। न्यायालय यही कहेगा कि "अन्य संस्था" शब्दों के रहने से प्रविष्टि की परिधि बहुत व्यापक हो जाती है और प्रविष्टि में वर्णित संस्थाओं से भिन्न संस्थाएं भी इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। गैर कानूनदां व्यक्ति भले ही इस सिद्धान्त को न जानता हो पर हर कानूनदां इससे अच्छी तरह परिचित हैं। इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि प्रयुक्त पद-संहति से अपना मतलब भले ही स्पष्ट हो जाता हो पर अच्छा यही होगा कि यहां इसका और खुलासा हम कर दें ताकि आगे किसी विवाद की गुंजायश न रह जाए। और फिर मेरे सुझाये गये शब्दों को रखने से प्रविष्ट की पूर्णतया भी बनी रहेगी और उसकी व्यापकता भी इतनी बढ़ जायेगी कि उसके अन्तर्गत हम तद्‌रूप अन्य संस्थाओं को शामिल कर सकते हैं। पर अगर "अन्य संस्था" शब्दों को आप इसलिये रख रहे हैं कि इसके अधीन दूसरी तरह की अन्य संस्थाओं को भी शामिल किया जा सके तो मैं यह कहूंगा कि इस रूप में रखने से यह प्रविष्टि बड़ी अस्पष्ट हो जायेगी। तब अच्छा यह होगा कि अन्य संस्थाओं के लिए एक पृथक् प्रविष्टि ही रख दी जाये। इसलिए मैंने जो संशोधन रखा है उसमें सिद्धान्त का प्रश्न निहित है। इस पर विचार कर लेना चाहिए।

संशोधन में तीसरा सुझाव मैंने यह किया है कि "by Parliament" शब्दों के स्थान पर "by or under any law made by Parliament" शब्द रखे जायें। इस

सम्बन्ध में सभा का ध्यान मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 10 की ओर आकृष्ट करूंगा जिसके द्वारा मूल प्रविष्टि 31 के स्थान पर दूसरी प्रविष्टि रखी गई है जो यों है:—"Highways declared to be national highways by or under the law made by Parliament" (राजपथ जिन्हें संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय राज्य-पथ घोषित किया गया है।) यहां संसद द्वारा घोषित तथा संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन घोषित में अन्तर किया गया है। संसद द्वारा घोषित का मतलब यह है कि संसद् सभा में घोषणा कर देगी जबकि संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन घोषित का मतलब यह है कि संसद् दूसरों को ऐसी घोषणा करने का अधिकार प्रदान करेगी और वह घोषणा विधि के अधीन मानी जायेगी। मैंने यह सुझाव इसीलिए दिया है कि संशोधित प्रविष्टि 31 में प्रयुक्त पदसंहति यहां भी रखी जाये। इस पदसंहति को रखने से प्रविष्टि की परिधि और व्यापक हो जायेगी और संसद को स्वयं घोषणा करने की जरूरत न रहेगी बल्कि दूसरे किसी प्राधिकारी को ऐसी घोषणा करने का वह अधिकार दे देगी। और अन्य कई प्रविष्टियों में भी मैंने "by or under law made by Parliament" यही पदसंहति प्रयुक्त देखी है। इसलिए एकरूपता लाने के ख्याल से और इसलिए कि प्रविष्टि की परिधि और व्यापक हो जाये, मैंने यह सुझाव रखा है। अवश्य ही इस सुझाव में कोई परिवर्तन की बात नहीं कही गई है बल्कि केवल मसौदे की रचना में शाब्दिक हेर-फेर करने की बात कही गई है। मैं इसे मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं वह चाहे जैसा करे। किन्तु मेरा जो दूसरा सुझाव है यानी-अन्य तद्रप संस्था रखने का जो सुझाव है, वह महत्वपूर्ण है और सभा से मैं अनुरोध करूंगा कि वह उस पर विचार करे।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: इस प्रविष्टि में श्रीमान, हमने कतिपय संस्थाओं का नामोल्लेख किया है और यह कहा है कि ये संस्थायें संघ-सूची में रहेगी। यहां इम्पीरियल वार म्युजियम विक्टोरिया स्मारक जैसी संस्थाओं का नामोल्लेख किया गया है और प्रविष्टि के अन्त में इतना और भी रख दिया गया है:—"तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था"। यदि इस तरह की एक संस्था का प्रश्न होता तो कोई आपत्ति की बात नहीं थी। मेरा ख्याल यह है कि अगर संविधान में इम्पीरियल वार म्युजियम शब्दों को रखा जाता है तो वह स्वतंत्र भारत के लिए शोभा की बात न होगी। संविधान में हम ऐसी बातों का क्यों स्थायी उल्लेख रखें जो हमें उस साम्राज्यवादी शक्ति का स्मरण दिलाती रहेगी। जिसने हमें इतने दिनों तक दासता के पाश में बांध रखा था। मेरा ख्याल यह है श्रीमान, कि संविधान में हमें ऐसी कोई बात रखनी ही नहीं चाहिए जो इस साम्राज्यवादी शक्ति का स्मरण दिलाती हो। इसलिए मेरी समझ से हमें यहां केवल इतना ही रख देना चाहिए कि कुछ संस्थायें भी संघ-सूची में रहेंगी वह संस्थायें कौन होंगी इसको स्पष्ट करने का भारत संसद पर छोड़ दिया जाये। और फिर अगर इन संस्थाओं का नामोल्लेख संविधान में कर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

दिया जाता है तो बाद में चलकर इसमें परिवर्तन करना हमारे लिए बड़ा कठिन हो जायेगा। इसलिए मेरी समझ से बेहतर यह होगा कि संविधान में इनका नामोल्लेख करने के बजाय उन्हें संसद पर छोड़ दिया जाये और वही जैसा चाहे, निर्णय करे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन को मैं क्यों नहीं स्वीकार कर सकता इसे समझाने के लिए अधिक कुछ कहने की जरूरत नहीं है। इस प्रविष्टि के दो अंश हैं। पहले अंश में कपितय खास खास संस्थाओं का जिक्र किया गया है और दूसरे अंश में उन संस्थाओं का जिक्र है जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित है। यहां 'similar' (तद्रप) शब्द का रखना सम्भव नहीं है क्योंकि इससे, प्रविष्टि का यह जो उद्देश्य है कि केन्द्रीय शासन किसी संस्था को, जो केन्द्र द्वारा वित्तपोषित है या जिसका वित्तपोषण केंद्र और प्रान्त दोनों मिलकर करते हैं उसे अपने अधीन कर सकता है, वह सीमाबृद्ध हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन नं. 14 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 39 में—

(1) 'on the date of commencement' शब्दों के स्थान पर 'at the commencement' शब्द रखे जायें।

(प्रस्तावकर्त्ता ने इस पर मत देने के लिए आग्रह नहीं किया)

(2) 'other institution, शब्दों के स्थान पर 'similar other institution', शब्द रखे जायें।

यह संशोधन अस्वीकृत हुआ।

(3) 'by Parliament' शब्दों के स्थान पर 'by or under law made by Parliament' शब्द रखे जायें।

(प्रस्तावकर्त्ता ने इस पर मत देने के लिए आग्रह नहीं किया)

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 39 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'39. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the National Library, the Indian Museum, the Imperial War Museum, the Victoria Memorial, the Indian War Memorial and any other institution financed by the Government of India wholly or in part and declared by law to be an institution of national importance.' "

[39. इस संविधान की प्रारम्भ-तिथि पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्य युद्ध-संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्ध-स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य अन्य संस्था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 39 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 40

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:

'40. The institution known on the date of commencement of this Constitution as this Benares Hindu University, the Aligarh Muslim University, and the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance.'

[40. इस संविधान की प्रारम्भ-तिथि पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।]"

मैं यह निवेदन करूंगा कि 'university' (विश्वविद्यालय) शब्द यहां गलत है, होना चाहिए 'institution' (संस्था) शब्द। आशा है, इसे बदलने की आप अनुमति देंगे।

कोई बुनियादी परिवर्तन यहां नहीं किया गया है। हां, इतना जरूर है कि इस नई प्रविष्टि के अन्तिम अंश के द्वारा संसद को अन्य किसी संस्था को भी अपने क्षेत्राधिकार में रखने का अधिकार मिल जाता है, जिसे वह राष्ट्रीय महत्व का समझती हो। मूल प्रविष्टि में यह बता नहीं थी।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं यह सुझाव देना चाहूंगा कि प्रविष्टि 40-क को भी इसी के साथ पेश कर दिया जाये। दोनों ही प्रविष्टियां एक बात से सम्बन्ध रखती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के बाद यह नई प्रविष्टि 40-क रख दी जाये:

'40A. Institutions for scientific or technical education financed by the Government of India wholly or in part and

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

declared by Parliament by law to be institutions of national importance.'

[40क. भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त-पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पक शिक्षा-संस्थायें।]

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 40 पर कुछ संशोधन आये हैं। संशोधन नं. 162 है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का और उसमें पहली बात यह सुझाई गई है कि "on the date of commencement" शब्दों के स्थान पर "at the commencement" शब्द रखे जायें। इस अंश को यहां रखने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में—

'the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में जो परिवर्तन यहां सुझाया है, उसे देखते हुए मैंने अपने संशोधन में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। मैं यह कहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से केन्द्र के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जायेगा और बहुत-सी संस्थाएं, जो अन्यथा प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में होंगी, वह उनके संशोधन के इन शब्दों के कारण, जिन्हें मैं हटाना चाहता हूं, केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तो अपने जन्म काल से ही राष्ट्रीय महत्व की संस्थायें माने गये हैं, इसलिए उनको केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखना सर्वथा उचित है। किन्तु "संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" इन शब्दों को रखने से, श्रीमान, केन्द्र के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जायेगा। इस शब्दों के कारण संघ-शासन को इस बात का अधिकार मिल जायेगा कि वह इस तरह की जिस संस्था को चाहे अपने क्षेत्राधिकार में कर लेगा। विश्वविद्यालय, कालिज, या स्कूल से लेकर ग्राम पाठशाला तक को केन्द्र अपने क्षेत्राधिकार में कर सकता है। बुरी-भली हर किसी की चीज़ को अपने क्षेत्राधिकार में रखने की जो सर्वभक्षी प्रवृत्ति केन्द्र की है, वह स्तुत्य भले ही हो, किन्तु मेरी समझ से इससे केन्द्र का बोझ बहुत बढ़ जायेगा, क्योंकि उसके क्षेत्राधिकार

में अनेक विषय आ जायेंगे। इसका प्रभाव यह होगा कि प्रान्त या रियासतों की जिम्मेदारी धीरे-धीरे कम हो जायेगी। उनकी आमदनी कम होती जायेगी और उनकी जिम्मेदारियां भी धीरे-धीरे कम हो जायेंगी। गैर-जिम्मेदारी की मनोवृत्ति उनमें पैदा हो जायेगी और केन्द्र के विरुद्ध शिकायत की भावना उत्पन्न हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्त हर बात की जिम्मेदारी केन्द्र पर थोप देगा।

केन्द्र प्रान्तों के बारे में यह समझता है कि राजनीतिक दृष्टि से वह अभी प्रौढ़ नहीं हो पाये हैं, सुतरां उसकी यह इच्छा कि वह प्रान्तों का अभिभावक रहे, बिल्कुल स्वाभाविक है। किन्तु इससे होगा कि केन्द्र अनावश्यक दायित्व अपने ऊपर ले लेगा, जिससे वह बहुत बोझिल हो जायेगा और उसकी शासन-व्यवस्था बड़ी जटिल हो जायेगी तथा प्रशासन सम्बन्धी विस्तार की बातों में वह दखल देने लगेगा, जो प्रान्तों के देखने की चीज हैं। आखिर प्रान्तों को यह अधिकार तो होना ही चाहिए कि वह अपने कामों की देखभाल करें और इस सिलसिले में अगर भूल करते हैं, तो अनुभव से शिक्षा ग्रहण करें। लोकतंत्रीय अवस्था का विकास इसी तरह होता है। लोकतंत्र की शिक्षा तो अनुभव से हम ही ग्रहण कर सकते हैं, उनको लोकतंत्र की शिक्षा देने का तरीका यह नहीं है कि अभिभावक बनकर केन्द्र उन विषयों को भी अपने क्षेत्राधिकार में कर ले जिन पर प्रान्तों को क्षेत्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। सच तो यह है कि इस सम्बन्ध में अपना यह संविधान, जिसका कि हम यहां निर्माण कर रहे हैं, अंग्रेज़ी हुकूमत से भी आगे बढ़ जाता है और सभी बातों को केन्द्राधीन कर देना चाहता है।

इन शब्दों को रखने से जो खतरे आ सकते हैं, उनको में यहां बता देना चाहता हूं। जहां तक कि दिल्ली विश्वविद्यालय का सम्बन्ध है, हमें यह मान लेना चाहिए कि इस पर केन्द्र को कुछ न कुछ क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिए। पर इस पर तो केन्द्र को पहले से ही क्षेत्राधिकार प्राप्त है। यह विश्वविद्यालय ऐसे क्षेत्र में अवस्थित है, जो केन्द्र प्रशासित क्षेत्र है। इसलिए यह क्षेत्र जब केन्द्र के प्रशासनाधीन है, तो दिली विश्वविद्यालय अवश्य ही केन्द्र के क्षेत्राधिकार में बना रहेगा। पर हम तो उस दिन के आने की अभिलाषा कर रहे हैं, जब दिल्ली विश्वविद्यालय या दिल्ली का सारा प्रदेश ही किसी निगम या प्राधिकारी को सौंप दिया जायेगा। अगर दिल्ली का एक अलग प्रान्त बनाना है, तो दिल्ली विश्वविद्यालय का भार इस नवनिर्मित प्रान्त पर रहेगा, न कि केन्द्र पर।

फिर संशोधन में यह कहा गया है कि-"संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" 'अन्य कोई संस्था' से तो ऐसी भी कोई संस्था अभिप्रेत मानी जा सकती जो शिक्षा-संस्था न हो। अगर हम यह भी मान लेते हैं। कि इस पदसंहति से केवल शिक्षा-सस्थाएं ही अभिप्रेत हैं, तो भी इससे संघ के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जाता है और प्रान्तों के क्षेत्राधिकार का न्यूनन हो जाता है। अवश्य ही इस प्रवृत्ति को रोकना होगा। आखिर संविधान का मसौदा तैयार रहने के पहिले सभा ने इस मसले पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके ही मूल प्रविष्टि रखने का फैसला किया था। अलग-अलग विषयों के सम्बन्ध में अलग-अलग प्रस्ताव

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

रखे गये थे, जिन पर खूब सावधानी के साथ विचार करने के बाद ही उन प्रस्तावों के अनुसार मसौदा तैयार किया गया था। इन प्रस्तावों के सम्बन्ध में हमने जो निर्णय किया था, उसका हमें सम्मान करना चाहिए। पर यहां हो यह रहा है कि उन निर्णयों की अकारण सर्वथा अवहेलना की जा रही है या उनको धोखा दिया जा रहा है। सभा को यह भी नहीं बताया जा रहा कि पूर्व स्वीकृत प्रस्तावों का, अमुक मात्रा तक और अमुक बात के सम्बन्ध में, उल्लंघन किया जा रहा है। एक मसले के बारे में हमने देखा है कि सरदार पटेल का यह ख्याल था और उनका यह ख्याल बिल्कुल ठीक था कि पूर्वस्वीकृत एक निर्णय को हमें बदलना होगा। सरदार पटेल एक दृढ़ एवं शक्तिशाली व्यक्ति हैं, सुतरां सभा के सामने इस बात को रख देना आपने जरूरी समझा। आपने अपनी सारी बातें सभा के सामने खोलकर रख दीं और पूर्वनिर्णय में नियमानुसार परिवर्तन करा लिया। सभा ने खुशी से उनकी बात मान ली। पर जहां तक इन संशोधनों का सम्बन्ध हैं, इनके द्वारा तो सभा के पूर्वनिर्णयों में आमूल परिवर्तन कर दिया जा रहा है, जिनको सभा ने खूब सोच विचार के बाद ही स्वीकार किया था। इन पूर्व-निर्णयों पर सभा ने जो विचार किया था, उसका पूरा विवरण कार्यवाही की रिपोर्ट में दर्ज हो चुका है। बिना पर्याप्त कारण बताये और सभा को विचार का पूरा मौका दिये बिना ही अब इन निर्णयों में परिवर्तन किया जा रहा है। यह प्रवृति बहुत बुरी है और मैं इसका विरोध करता हूं। मैं पहले भी इसकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट कर चुका हूं। इस प्रवृत्ति का क्या प्रभाव होगा इस पर आशा है, सभा सावधानी के साथ विचार करेगी। आशा है वह इस पर भी विचार करेगी कि इस संशोधन से केन्द्र के दायित्वों का भार कितना बढ़ जाता है। मेरा यह विश्वास है कि केन्द्रीय शासन का शत्रु ही उस पर अपयश लाने के लिये ऐसी व्यवस्था का सुझाव देगा, जिसका सुझाव यहां दिया जा रहा है। किसी भी भावी केन्द्रीय शासन को भारान्वित करने और उसे अप्रिय बनाने के लिये यही सर्वोत्तम और प्रभावकारी उपाय है, जिसका यहां अवलम्बन किया जा रहा है। मेरा ख्याल तो यह है कि हम ऐसा काम कर रहे हैं, जिसे हमारे शत्रु ही करना चाहेंगे। इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। मसौदा समिति या उसके पिट्ठू उतना ही अधिक सर्वभक्षी बनते जायेंगे जितना कि आप उनको देते जायेंगे।

***सरदार हुकम सिंहः** मैं अपना संशोधन नहीं पेश करूंगा, क्योंकि उसकी बात इस प्रस्तावित संशोधन में आ जाती है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमानः—

"कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 3529 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40 शिक्षा।' "

मैं अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर दूं, श्रीमान?

***अध्यक्षः** पेश कीजिए।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमानः—

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 3529 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जायेः—

'40. All the Universities, advanced scientific research institutes and public and private educational and cultural organisations in the Indian Union shall be subject to the supervision, superintendence, direction and control of the Union Government.' "

[भारतीय संघ के सभी विश्वविद्यालय, समुन्नत वैज्ञानिक-अनुसंधान संस्थाएं तथा सरकारी और गैर-सरकारी शैक्षणिक और सांस्कृतिक संगठन, संघ-शासन के निरीक्षण, अधीक्षण, निर्देशन, और आयंत्रण के अधीन होंगे।]

इस विषय को मैं गम्भीर राष्ट्रीय महत्व का विषय मानता हूं। एक मात्र उपाय, जिससे भारतवर्ष शीघ्र समुन्नति कर सकता है और राष्ट्रसभा में समाहत स्थान प्राप्त कर सकता है, वह यह है कि वह अपने अशिक्षित नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था कर दे। किसी भी शासन व्यवस्था की नींव तब तक सुरक्षित नहीं समझी जा सकती है, जब तक कि राष्ट्रजन शिक्षित न हों। संसदात्मक शासन व्यवस्था के लिए तो यह विशेष रूप से आवश्यक है कि जनता शिक्षित हो। जब तक जनता शिक्षित न होगी, संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था चल ही नहीं सकती है। यहां जो यह खतरा बताया जा रहा है कि केन्द्रीय शासन के हाथ में अधिक अधिकार रहने से प्रशासन की सारी व्यवस्था टूट जायेगी, वह एक दिखावटी खतरा है। अभी हाल तक भारत का शासन एकात्मक व्यवस्था के अधीन केन्द्र द्वारा ही होता रहा है और अंग्रेजों ने बड़े ही वैज्ञानिक ढंग पर खूब सुदक्षता के साथ यहां शासन चलाया है। कोई कारण नहीं है कि एकात्मक शासन व्यवस्था के स्थान पर अब संघात्मक शासन व्यवस्था चालू की जाये। अस्तु, इस समय मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता। संशोधन रखने में मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है—शिक्षा का विषय केन्द्रीय सूची में रखा जाये। प्रान्तों के आर्थिक एवं वैत्तिक साधनों के अनुपात से ही उनको अधिकार मिलने चाहिये। जो अधिकार आप प्रान्तीय शासनों को दे रहे हैं, उन पर अमल करने के लिये उन्हें कितना व्यय वहन करना पड़ेगा, इसका आपने अनुमान नहीं लगाया है। मैं तो यह अच्छी तरह समझ रहा हूं कि जो अधिकार उनको दिये जा रहे हैं, उसके दशमांश को कार्यान्वित करने के लिये भी वह सक्षम नहीं हैं। उनके पास इतना अर्थ नहीं है कि वह उनको कार्यान्वित कर सकें।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

इस विषय पर मैं लम्बी वस्तृता नहीं देना चाहता हूं, श्रीमान। पर अपनी बात खत्म करने से पहले मैं एक बात के लिए अवश्य आग्रह करूंगा। विभिन्न प्रान्तों में एक ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग है, जो भाषा की दृष्टि से वहां अल्पसंख्यक है। उसकी भाषा प्रान्त की भाषा से भिन्न है। प्रान्तों के पास तो इतना पैसा भी नहीं है कि वह अपने उन नागरिकों को, जो वहां चिरकाल से वास करते आये हैं, शिक्षा दे सके। फिर अन्य प्रदेशों से आकर जो भिन्न भाषाभाषी समुदाय वहां बस गया है, उसको उसकी मातृभाषा में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था भला प्रान्त कैसे कर सकते हैं? उनको यह काम सौंपना, उन पर एक ऐसा भार लादना है, जिसका वहन करना उनके लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए मेरा यह दृढ़ मत है कि एकरूपता के ख्याल से तथा उस ख्याल से भी कि शिक्षा का यहां यथाशीघ्र प्रसार हो सके, ठीक यही होगा कि यह विषय केन्द्र के अधीन रखा जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, आपने डॉ. अम्बेडकर को 'university' शब्द के स्थान पर 'institution' शब्द रखने की अनुमति देने की कृपा की है। क्या मैं यह आशा करूं कि ऐसी की कृपा आगे से मुझे भी मिल जायेगी?

***अध्यक्षः** अवश्य।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नम्बर 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में, 'any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

मैं अपना संशोधन नं. 191 को भी इसी समय पेश कर देना चाहता हूं, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने दिया है। उन्होंने प्रविष्टि 40-क को 40 के साथ उपस्थित किया है।

***अध्यक्षः** हां, उसे भी आप अभी पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा यह प्रस्ताव हैः—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 191 में, सूची 1 की प्रस्तावित नई प्रविष्टि 40-क में 'education' शब्द के आगे 'research' शब्द जोड़ दिया जाये।"

पहले मैं अपने प्रथम संशोधन को लेता हूं। संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित संस्थाओं के बारे में—दिल्ली विश्वविद्यालय का मैं जिक्र नहीं कर रहा

हूं, केवल उनके संशोधन के दूसरे अंश की चर्चा कर रहा हूं—जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है, उसको स्वीकार करना, मैं यह महसूस करता हूं कि बड़ा घातक होगा। आशा करता हूं कि सभा इस पर सावधानी के साथ विचार करेगी कि किसी भी संस्था को, जिसे संसद विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे, केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में लाने के लिए क्या एक ऐसे व्यापक प्रावधान का पास करना जरूरी ही है, सभा को मालूम होना चाहिए कि अभी अभी हमने 39 नं. की जो प्रविष्टि पास की है, उसके द्वारा केन्द्र को किसी भी ऐसी संस्था के बारे में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है, जो पूर्णत: या अंशत: भारत सरकार द्वारा वित्तपोषित है और जिसे संसद ने विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया है। किन्तु यह प्रविष्टि तो इससे भी आगे बढ़ जाती है और संघ को ऐसी भी किसी संस्था के सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार दे देती है, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त पोषित हो या चाहे सर्वथा वित्तपोषित ही न हों। देश की ऐसी कई संस्थायें मुझे याद आ रही हैं जो बिना किसी सरकारी साहाय्य के सर्वथा जनता द्वारा सुचारू रूप से संचालित हो रही हैं और स्तुत्य काम कर रही हैं। डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन से तो यही व्यक्त होता है कि मसौदा समिति की सर्वग्राही मनोवृत्ति उग्र से उग्रतर होती जा रही है। यदि सभा उसके इस प्रावधान को स्वीकार कर लेती है, इस संशोधन को मान लेती है, तो मुझे विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं हैं, जब संघ-शासन की यह सर्वग्रासी मनोवृत्ति विकराल रूप धारण कर लेगी और संघ ऐसे क्षेत्रों में भी प्रवेश करने का प्रयास करने लगेगा, जहां शायद देव लोग भी पांव रखने में हिचकेंगे। जिस स्थिति के आने की मैं यहां आशंका प्रकट कर रहा हूं, उसका आना न केवल सम्भव ही है, बल्कि बहुत सम्भव है और मैं नहीं चाहता कि देश में ऐसी स्थिति आये।

इस प्रविष्टि में जिन दो विश्वविद्यालयों का उल्लेख किया गया है—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय—इनमें दोनों ही चूंकि राष्ट्रीय महत्व के हैं इसलिए, या इसलिए कि इनके नामों में साम्प्रदायिकता की छाप लगी है, केन्द्र इन्हें अपने अधिकार क्षेत्र में रख सकता है, ताकि लोगों को यह मालूम हो कि भारत सरकार सर्वथा पक्षपात शून्य है और साम्प्रदायिकता से ऊपर है। जहां तक दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रश्न है, चूंकि यह अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है कि दिल्ली की सांविधानिक स्थिति क्या होगी, शायद उसे भी केन्द्राधीन रखना वांछनीय होगा, पर यहां अनिश्चयात्मक रूप में यह कह देना कि अन्य किसी संस्था को भी संघ-शासन अपने क्षेत्राधिकार में कर सकता है, मेरी समझ से तो ठीक नहीं होगा। इस सम्बन्ध में व्याह्यत्तिमूलक यह प्रावधान जरूर रखा गया है कि केन्द्रीय शासन केवल उन्हीं संस्थाओं को अपने अधिकाराधीन कर सकता है, जिनको संसद विधि द्वारा यह राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे।

[श्री एच.वी. कामत]

किन्तु बात यह है, श्रीमान, आधुनिक युग की संसदें कार्यपालिका के हाथ की कठपुतली बन गई है और कार्यपालिका उनसे जो भी चाहती हैं, पास करवा लेती हैं। यदि शासन के दिमाग में ऐसा आ गया कि अमुक संस्था को अपने प्रशासनाधीन कर लेना चाहिए, तो वह, वह संस्था चाहे शासन द्वारा सर्वथा वित्तपोषित न हो, वह संसद को संकेत दे सकती है और फिर कार्यपालिका के आदेशानुसार संसद उसे राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। फिर उस संस्था को अपने अधिकाराधीन कर केन्द्रीय शासन जैसे चाहे उसका प्रशासन कर सकता है। मेरे मस्तिष्क में ऐसी कुछ योग सम्बन्धी संस्थाएं हैं। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊंगा कि बम्बई में 'कैवल्यधाम' नाम की प्रसिद्ध योगिक संस्था है। हो सकता है, भविष्य में आने वाले किसी शासन को इस संस्था में ही खराबी दिखाई देने लगे और वह इसे अपने अधिकाराधीन कर ले। आज का शासन तो इस संस्था के प्रति पर्याप्त सद्भाव रखता है, पर इस बात का तो कोई भरोसा नहीं है, कि वर्तमान शासन चिरकाल तक बना रहेगा। मान लीजिए, कल एक ऐसा शासन अधिकारारूढ़ हो जाता है, जो प्राचीन संस्कृति का, विशेषत: योग तथा अध्यातम सम्बन्धी बातों के विरुद्ध है। हो सकता है, संसद उसे आज्ञानुवर्तिनी मिल जाये, जिससे इस संस्था को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कराकर शासन इसे अपने अधिकाराधीन कर ले और अन्ततोगत्वा इसे कुचल दे। सभा को मालूम होगा कि हिटलर ने जर्मनी का प्रधान बनते ही प्राकृतिक संस्कृति की शिक्षा देने वाली कई संस्थाओं को बन्द करवा दिया था, क्योंकि...

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** हिटलर ने किसी विधायिनी सूची पर अमल करके ऐसा नहीं किया गया था।

***श्री एच.वी. कामत:** हमारे यहां तो लोकतंत्र का आवरण मात्र है, जो और भी बुरी बात है। हिटलर को सम्भवत: अपने खुफिया विभाग द्वारा इस बात की जानकारी हुई थी कि प्राकृतिक संस्कृति की शिक्षा देने वाली संस्थाओं में ऐसे लोग समवेत हुआ करते थे, जो राज्य के लिए अवांछनीय थे और उन संस्थाओं में समवेत होकर वे लोग राज्य के विरुद्ध षडयंत्र की योजना तैयार किया करते थे। सुतरां हिटलर ने इन संस्थाओं को बन्द कर दिया। यही काम हम यहां एक दूसरे तरीके से कर रहे हैं, जो हिटलर के तरीके से भी बुरा है। हिटलर के तरीके के पक्ष में यह तो कहा जा सकता है कि वह एक सीधा तरीका था, जिससे किसी को धोखा नहीं हो सकता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप यह तरीका अपना रहे हैं, पर वैधानिकता और औचित्य का जामा पहना रहे हैं।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि इस मसले पर और अधिक वाद-विवाद की आवश्यकता है।

***श्री एच.वी. कामत:** अपनी बात मैं एक मिनट में कह दूंगा। आपके निर्णय को मैं शिरोधार्य करता हूं। केवल दो मिनट की अनुमति आपसे चाहता हूं। पर अगर आप ऐसा नहीं चाहते हैं, तो आपकी मरजी पर हूं, आपका आदेश शिरोधार्य करूंगा।

जैसा कि मैंने कहा है, इस प्रविष्टि को रखने से एक तो यह संस्थाएं, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हैं, केन्द्राधीन कर ली जा सकती है और दूसरे वह संस्थाएं भी केन्द्राधीन कर ली जा सकती हैं, जिनके अस्तित्व को शासन अपने हित के प्रतिकूल समझता हो। मेरा ख्याल यह है कि प्रविष्टि 39 से, जिसे कि हम पास कर चुके हैं, हमारा यह मतलब पूरा हो जाता है और उसके अधीन किसी भी संस्था को, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हो, केन्द्राधीन किया जा सकता है। अन्य संस्थाओं को, जो भारत सरकार द्वारा किसी भी मात्रा में वित्तपोषित नहीं है, उन्हें आप केन्द्राधीन न कीजिए और स्वतन्त्रता दीजिये कि वह इस रूप में अपना काम करती रहें, जो राष्ट्रहित के प्रतिकूल न हो।

मुझे एक ही और बात कहनी है, श्रीमान, जो विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में है। अनुसूची की सूची 2 में जो 18वीं प्रविष्टि रखी गई है, उसमें यह कहा गया है:—"शिक्षा, जिसमें सूची 1 की प्रविष्टि 40 में उल्लिखित विश्वविद्यालयों को छोड़कर अन्य विश्वविद्यालय सम्मिलित हैं"। अब जो नया मसौदा सभा के समक्ष रखा जायेगा, उसमें इस प्रविष्टि में परिवर्तन जरूर हुआ करेगा, फिर भी मैं यह महसूस करता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में संघ ने अपने हाथ में इतनी शक्ति ले रखी है, जो आवश्यकता से अधिक है और वांछनीय मात्रा से अधिक है। निजी तौर पर मेरा मत यह है कि वही विश्वविद्यालय सर्वोत्तम विश्वविद्यालय है, जिसमें शासन का कम से कम हस्तक्षेप हो, किन्तु आधुनिक युग में शिक्षा का विषय—इसमें उच्च शिक्षा भी शामिल है—शासनाधीन होता है, इसलिए शासन का हस्तक्षेप इसमें होता ही है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का विनियमन शासन द्वारा हो, इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु विश्वविद्यालय तो वस्तुत: ऐसी संस्थायें हैं, जो विद्या प्रदान करने का एक केन्द्र है। विश्वविद्यालय शासन के हस्तक्षेप से अगर सर्वथा मुक्त नहीं रह सकते हैं, तो इतना जरूर होना चाहिये कि शासन का कम से कम हस्तक्षेप उनके कामों में हो। आजकल न केवल प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों को ही शासन के नियमों से सर्वथा बंधकर चलना पड़ता है, बल्कि उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं यानी विश्वविद्यालयों पर भी शासन का अंकुश बना रहता है। पर इन संस्थाओं की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना और इन्हें शासनाधीन रखना ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में रोड़े अटकाना है, ज्ञान पर ही अंकुश लगाना है। गीता में ज्ञान की महिमा इन शब्दों में व्यक्त की गई है—"न यह

[श्री एच.वी. कामत]

ज्ञानने सद्यशय पवित्रमिह विद्यते"। यानी ज्ञान के समान पवित्र वस्तु दुनिया में और कोई नहीं है।

पर शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को हर बात के लिये शासनाधीन रखकर ज्ञान की पवित्रता को दूषित करने का, उसकी मर्यादा को नष्ट करने का वहां प्रयास किया जा रहा है। मैं तो यही आशा करता हूं, श्रीमान, कि जहां तक विश्वविद्यालयों का सम्बन्ध है, इन तीन विश्वविद्यालयों के सिवाय, जिनका वहां उल्लेख किया गया है, अन्य सभी विश्वविद्यालयों के विनियमन का काम भी प्रादेशिक सरकारों के हाथ में ज्यादा न दिया जायेगा। पर प्रस्तुत प्रविष्टि में जो प्रावधान रखा जा रहा है, वह बड़ा ही व्यापक प्रावधान है, क्योंकि इसके अनुसार तो अन्य कोई भी संस्था केन्द्राधीन की जा सकती है। इस प्रावधान को मैं बड़ा घात्मक समझता हूं और आशा करता हूं कि सभा इसे न स्वीकार करेगी। आशा है, सभा प्रविष्टि के केवल इस अंश को ही स्वीकार करेगी, जिसमें काशी, अलीगढ़ तथा दिल्ली के विश्वविद्यालयों का उल्लेख है ओर शेष भाग को अस्वीकार कर देगी। मुझे इस बात की भी आशा है कि अनति दूर भविष्य में ही काशी तथा अलीगढ़ के विश्वविद्यालयों के नाम के साथ जो साम्प्रदायिक पुछल्ला लगा हुआ है, वह जाता रहेगा।

जहां तक कि मेरे दूसरे संशोधन का यानी संशोधन नं. 191 का सम्बन्ध है, मुझे मालूम नहीं है कि सूची में कहीं इस तरह के अनुसंधान के लिए प्रावधान रखा गया है या नहीं। अनुसंधान के लिए प्रावधान जरूर रखा गया है, पर वैज्ञानिक तथा टैकनिकल अनुसंधान के लिए प्रावधान रखा गया है या नहीं। यह मैं निश्चित रूप से नहीं जानता। यदि इसके लिये प्रावधान है, तो अपना संशोधन मैं वापिस ले लूंगा। पर अगर इसके लिये कोई प्रावधान नहीं रखा गया है, तो मैं यह जरूर चाहूंगा कि प्रविष्टि 40-क में यह प्रावधान भी सम्मिलित कर दिया जाये।

इन शब्दों के साथ मैं अपने 188 और 191 नं. के संशोधनों को पेश करता हूं और सभा से उनको स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. देशमुख, आप अपना संशोधन उपस्थित करना चाहते हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** हां, श्रीमान।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:—

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40-क में, 'any other University' (अन्य कोई विश्वविद्यालय)

शब्दों के आगे 'academy or institution' (विद्यापीठ या संस्था) शब्द रखे जायें।"

और इस संशोधन के परिणामस्वरूप अपना संशोधन नं. 190 भी पेश करना चाहूंगा, जो यों है:—

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 19 को हटा दिया।"

इन संशोधनों को मैं क्यों पेश कर रहा हूं, इसका कारण बिलकुल सरल सा है। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर की निजी राय यही थी कि 'University' शब्द के स्थान पर यहां 'institution' शब्द रखा जाना चाहिए। पर जिस संशोधन को मैंने प्रस्तावित किया है, उसमें 'university' शब्द को रखने की और उसके आगे 'academy or institution' शब्दों को जोड़ने की बात की गई है। अगर ये दोनों शब्द यहां जोड़ दिये जाते हैं, तो फिर प्रविष्टि में यह बताने की जरूरत नहीं रह जायेगी कि किस तरह की संस्थाएं संघ के क्षेत्राधिकार में आयेंगी और उस सूरत में आप इस लम्बी तथा अनावश्यक प्रविष्टि 40-क को भी हटा सकते हैं। संस्था (institution) शब्द के अन्दर वैज्ञानिक संस्थाएं, टेकनिकल संस्थायें तथा अनुसंधान सम्बन्धी संस्थायें ये सभी शामिल की जा सकती हैं। उस सूरत में संस्थाओं का विशेष रूप से वर्णन करने की और विस्तार की बातों को रखने की जरूरत न रह जायेगी और न यही कहने की आवश्यकता रह जायेगी कि संस्थायें भारत सराकर द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हों। मेरे सुझाये गये शब्दों को रखने से प्रविष्टि सम्यक रूप से व्यापक बन जायेगी और हमारा जो भी उद्देश्य है, वह उससे पूरा हो जायेगा। 'यूनिवर्सिटी' शब्द का रहना भी यहां आवश्यक है। आपने ख्याल किया होगा, श्रीमान, कि आज ही सबेरे डॉ. जयकर ने यह सुझाव रखा था कि विश्वविद्यालयों की शिक्षण-व्यवस्था को केन्द्र को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। हमें इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। यदि राष्ट्रीय महत्व के विश्वविद्यालय या विद्यापीठ हैं, तो उनके लिए यह व्यवस्था होनी चाहिए कि संघीय-शासन उनको अपने हाथ में ले सके।

माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद तथा श्री कामत इस प्रविष्टि के अभिप्राय से बहुत आगे चले गये हैं और इन्होंने इसके निर्माताओं की नीयत पर ऐसे संदेह किये हैं, जो सर्वथा निराधार हैं। श्री कामत को इसमें एक दुरभिसन्धि की गन्ध मिल रही है, जबकि तथ्य यह है कि यहां ऐसी कोई बात नहीं है। इस प्रविष्टि से कार्यपालिका को कोई शक्ति नहीं मिलती है। मुझे तो बड़ा आश्चर्य यह हुआ है इस बात का कि इन लोगों को भावी संसद पर भी विश्वास नहीं है। हमें इस प्रविष्टि को लेकर कोई आशंका नहीं करनी चाहिए। इस अनुसूची में सभी प्रविष्टियां इसी उद्देश्य से रखी गई हैं कि उनमें वर्णित विषयों के सम्बन्ध में सारा अधिकार संसद को प्राप्त रहे और इस आशंका का कोई कारण नहीं है, कोई औचित्य नहीं है कि कार्यपालिका संस्थाओं को अपने हाथ में कर लेगी। केन्द्रीय शासन को

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

तो इस बात की फिक्र न होगी कि वह इन संस्थाओं को अपने अधीन कर ले। बल्कि खुद संस्थायें ही इसके लिए फिक्रमन्द रहेंगी कि केन्द्र उनको अपने हाथ में ले। यह सारी आशंकायें, जो मित्रों ने यहां व्यक्त की हैं, यह सर्वथा निराधार हैं और उनकी चर्चा करना सर्वथा अप्रासंगिक है।

मेरे संशोधन से स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और अगर माननीय डॉ. अम्बेडकर कृपया मेरी बातों पर जरा ध्यान दें, तो मुझे विश्वास है कि वह इस बात से सहमत हो जायेंगे कि मेरे संशोधन को मान लेने से अन्य और प्रविष्टि रखने की जरूरत न रह जायेगी और न भिन्न-भिन्न तरह की संस्थाओं के उल्लेख की जरूरत रह जायेगी। इसके प्रतिकूल अगर प्रविष्टि 40-क की सभी संस्थाओं को आप यहां रखते भी हैं, तो उसके अन्तर्गत कला सम्बन्धी संस्थाएं नहीं शामिल की जा सकती हैं। यहां आप वैज्ञानिक तथा टेकनिकल संस्थाओं का उल्लेख कर रहे हैं, पर कला सम्बन्धी संस्थायें इनसे बिल्कुल भिन्न हैं और वह संस्थायें इसके अन्दर नहीं आ सकती हैं। इसलिये अगर आप मेरे सुझाये इन तीन शब्दों को रख लेते हैं, तो इससे प्रविष्टि पर्याप्त रूप से व्यापक हो जायेगी और आपका सम्पूर्ण प्रयोजन और अच्छी तरह सिद्ध हो जायेगा। आशा है, माननीय डॉ. अम्बेडकर कम से कम एक बार तो तर्क संगत प्रवृत्ति अपनायेंगे और इस संशोधन को स्वीकार करेंगे।

*__अध्यक्षः__ श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के दो संशोधन हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं उनको नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

*__अध्यक्षः__ तो अब और कोई संशोधन नहीं रह गया।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ मैं बोलना चाहता हूं। मुझे इसका विरोध करना है।

*__अध्यक्षः__ अच्छी बात है। पर तीन मिनट से ज्यादा समय न लीजियेगा।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ प्रविष्टि जिस रूप में रखी गई है, उसका प्रयोजन ही यह है कि इन विश्वविद्यालयों पर, जिनका यहां उल्लेख है, केन्द्रीय नियंत्रण रहे किन्तु मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान, कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का जो विषय है, वह केन्द्रीय सूची में रहना चाहिये। इस महत्वपूर्ण विषय पर देश भर में पर्याप्त रूप से वाद-विवाद और विचार किया जा चुका है। देश के इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड नामक निकाय भी इस पर अच्छी तरह विचार किया है और वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा को केन्द्रीय सूची में रखना चाहिए। इसलिए मैं यह समझता हूं कि हमें यहां केवल इन्हीं तीन विश्वविद्यालयों का उल्लेख नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इस मन्तव्य का कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का विषय संघ-सूची में रहना चाहिए, समर्थन देश के बहुसंख्यक लोग कर रहे हैं। तथ्य तो यह है कि विश्वविद्यालयों से आये बहुसंख्यक प्रतिनिधि भी इसी मन्तव्य के पक्ष में हैं।

वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों को प्रान्तीय सूची में रखा गया है और उन पर प्रान्तीय शासकों का नियंत्रण है। अगर विश्वविद्यालयों के बीच एकसूत्रता स्थापित हो जाये और अलग-अलग विद्यालय अलग-अलग विषयों की शिक्षा में विशेषता प्राप्त कर लें, तो इससे शिक्षा तथा अनुसंधान के काम में बहुत प्रगति हो जायेगी। और खर्च में भी बड़ी किफायत हो जायेगी। मैं जानता हूं कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में, यह है कि खास-खास कालेज खास-खास विषयों की ही विशेष शिक्षा देते हैं। इसलिये अगर यहां भी सही विश्वविद्यालय केन्द्राधीन पर दिये जायें, तो समुचे देश में एक सुव्यवस्थित योजना के आधार पर शिक्षा का काम होने लगेगा। आजकल विश्वविद्यालयों में शिक्षा के काम में बड़ा दोहरा काम हो रहा है, जिससे राष्ट्र के धन और समय की बर्बादी हो रही है। इस विषय को केन्द्राधीन कर देने से यह फायदा होगा कि विश्वविद्यालयों के बीच एकसूत्रता स्थापित हो जायेगी और उनका नियंत्रण और अच्छी तरह होने लगेगा, जिससे राष्ट्र के एकीकरण को बड़ी सहायता मिल सकेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह देखता हूं कि माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद तथा डॉ. देशमुख यहां परस्पर विरोधी सुझाव रख रहे हैं। एक साहब यह चाहते है कि 'academy' शब्द को जोड़कर इस प्रविष्टि की परिधि को और व्यापक बना दिया जाये। दूसरे साहब यह चाहते हैं कि "दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" शब्दों को हटाकर प्रविष्टि की परिधि को सीमित कर दिया जाये।

जहां तक कि डॉ. देशमुख के संशोधन का संबंध है, 'academy' शब्द को जोड़ना मुझे सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि यहां जो 'institution' (संस्था) शब्द रखा गया है, वह इतना व्यापक है कि उसके अन्दर विश्वविद्यालय और 'academy' (विद्यापीठ) दोनों ही आ जाते हैं। इसलिए उस शब्द को यहां जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि "दिल्ली विश्वविद्यालय" शब्दों को यहां रखने से वर्तमान स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता है। जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, दिल्ली विश्वविद्यालय तो पहिले से ही केन्द्रीय विधान-मण्डल के अधिकार-क्षेत्र में है क्योंकि यह विश्वविद्यालय दिल्ली के प्रान्त में अवस्थित है, जो एक कमिश्नर के अधीन है और जिसके बारे में विधिनिर्माण का अधिकार है केन्द्रीय विधान-मण्डल को। इसलिए "दिल्ली विश्वविद्यालय" शब्दों को रखने से वर्तमान व्यवस्था से कोई अन्य नहीं आता है। "संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" शब्दों को रखना मेरी समझ से वांछनीय है, क्योंकि और बहुत ऐसी संस्थाएं भी हो सकती हैं, जो संस्कृति तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से सार्वदेशिक महत्व रखती हों, पर उनकी आर्थिक स्थिति और संस्थाओं की तरह सुदृढ़ न हो और उनके लिए केन्द्रीय सहायता पाना अपेक्षित हो। इस स्थिति को देखते हुए मेरी समझ से प्रविष्टि के दूसरे अंश का

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रखना भी आवश्यक है। इसलिए मैं उनके संशोधन को मानने के लिए तैयार नहीं हूं।

अब मैं माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को लेता हूं, जिसमें उन्होंने "research institution" (अनुसंधान संस्था) शब्दों के जोड़ने का सुझाव दिया है। अनुसंधान संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली प्रविष्टि 57-क पर जो संशोधन मैंने भेजा है, उसे वह भूल गये हैं या शायद उसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जा पाया है। अवश्य ही उस प्रविष्टि में केवल एकसूत्रता तथा मान निर्धारण की ही बात कही गई है। शायद श्री कामत का मतलब यहां उन अभिकरणों से है, जो प्रान्तीय शासनों द्वारा स्थापित किये गये हैं और आप उनके सम्बन्ध में यह वांछनीय समझ रहे हैं कि उनको केन्द्राधीन कर दिया जाये। पर मेरा ख्याल है कि हर तरह की संस्थाओं को केन्द्राधीन करके केन्द्र को बोझिल बनाने की जरूरत नहीं है। जैसाकि मैंने कहा है, अगर प्रविष्टि 57-क को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारे सारे प्रयोजन सिद्ध हो जायेंगे क्योंकि उससे केन्द्र को इस बात का अधिकार मिल जायेगा कि विधि द्वारा वह वैज्ञानिक तथा टैकनिकल संस्थाओं में एकसूत्रता स्थापित कर सकें और उनमें दी जाने वाली उच्च शिक्षाओं का मान निर्धारण कर सके। मेरी समझ से फिलहाल इससे हमारा काम अच्छी तरह चल जायेगा।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहले लिये जाते हैं संशोधन नं. 16 और 17, जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इन दोनों संशोधनों को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से दोनों संशोधन वापस लिये गये।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन नं. 162 को लेता हूं। प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में—

'and the Delhi University and any other University declared by Parliament by law to be an institution of national importance'

(दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई सस्था) शब्द हटा दिये जायें।' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में 'and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में 'any other university' शब्दों के बाद 'academy or institution' शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the Benares Hindu University, the Aligarh Muslim University, and the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance.' "

[40. इस संविधान की प्रारम्भ तिथि पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 40 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

***अध्यक्षः** अब प्रविष्टि 40-क पर मत लिया जायेगा। इस पर श्री कामत का एक संशोधन है-संशोधन नं. 191।

प्रश्न यह है:-

"संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 19 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40-क में 'education' शब्द के आगे 'and research' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रविष्टि 40-क पर मत लिया जाता है।

प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40.A. Institutions for scientific or technical education financed by the Government of India wholly or in part and declared by Parliament by law to be institutions of national importance.' "

[40. भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पक शिक्षा संस्थाएं।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 40-क संघ-सूची में शामिल की गई।

(प्रविष्टि 40-क तथा 40-ख से सम्बन्ध रखने वाला संशोधन नं. 18 तथा संशोधन नं. 3530, 3531 और 3532 पेश नहीं किये गये।)

नई प्रविष्टि 40-ख

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): इस विषय के बारे में मैं अपने मित्रों से परामर्श करना चाहता हूं। इसलिए मैं चाहता यह हूं कि इसे अभी स्थगित रखा जाये।

प्रविष्टि स्थगित रखी गई।

प्रविष्टि 41

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान:—

"कि सूची एक की प्रविष्टि 41 में 'and Zoological' (तथा प्राणिकीय) शब्दों के स्थान पर 'Zoological and Anthropological' (प्राणिकीय तथा नरतत्वीय) शब्द रखे जायें।"

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि संशोधित सूची 1 (षष्ठम सताह के संशोधन नं. 20 के सम्बन्ध में सूची 1 की प्रविष्टि 41 में 'Zoological ' शब्द के स्थान पर 'Zoological Anthropological and Ethnological' शब्द रखे जायें।"

मुझे खुशी है, यह देखकर कि इस प्रविष्टि में सम्पूर्ण नक्षत्र लोक के समस्त जीवधारियों का उल्लेख आ गया है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है

कि अचेतक बोलकर दुनिया में कोई चीज नहीं है। हर चीज में जीव है। चाहे प्रत्यक्ष हो, छिपा हुआ हो, पर जीव सबमें विद्यमान है।

***एक सदस्यः** आधुनिक विज्ञान ने यह बात नहीं बतलाई है, बल्कि यह तो एक प्राचीन तथ्य है।

***श्री एच.वी. कामतः** हमारे दर्शन शास्त्र का यह मत है:—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेहनान्यास्ति किंचन।"

आधुनिक विज्ञान का भी यही मत है कि विश्व के पदार्थों में प्राण विद्यमान है। पर कहीं हमें वह दिखाई देता है, कहीं नहीं। "Geological" (भूतत्वीय) से अभिप्रेत है वह पदार्थ, जिन्हें हम साधारण बोलचाल की भाषा में अचेतन पदार्थ कहते हैं। पर इन पदार्थों में भी प्राण वर्तमान हैं पर हम उसे देख नहीं पाते हैं। इसके बाद आते हैं वानस्पतिक पदार्थ यानी पौधे वगैरह, जिनमें जीवन का कुछ-कुछ प्रत्यक्ष आभास मिलने लगता है। इससे कुछ ऊंचा स्तर है प्राणकीय पशुओं का, जिनमें जीवन है और जिनमें अन्तर्जात प्रवृत्ति के सहारे मस्तिष्क या बुद्धि का प्रारम्भिक विकास हो गया है। डॉ. अम्बेडकर 'Zoological' (प्राणकीय तत्व) पद संहति के अन्दर मनुष्य को शायद इसलिए शामिल नहीं करना चाहते हैं कि ऐसा करना माननीय प्रतिष्ठा के लिए अशोभनीय होगा। 'Zoology' यानी जन्तु शास्त्र के अन्दर सारा पशु सम्प्रदाय आ जाता है और मनुष्य को भी एक सामाजिक राजनैतिक और दार्शनिक पशु ही कहा गया है, पर यह जरूर है कि पशु से उसका स्तर बहुत ऊंचा माना गया है। शायद डॉ. अम्बेडकर यह समझते हैं कि मनुष्य को एक अलग श्रेणी में यहां रखना चाहिये। मैं नहीं जानता कि 'anthropology' (नरतत्वीय) के अन्दर 'ethnology' यानी नृवंश विद्या भी शामिल है या नहीं। कई सदस्यों को यह मालूम है कि कई साल पहले अंग्रेजी अमलदारी में इस देश में इस बात की छानबीन की गई थी कि यहां प्रजाति और मूलवंश के हिसाब से कहां कितनी आबादी है। उक्त मापजोख के फलस्वरूप जो आंकड़े उपलब्ध हुए हैं, वह इतिहास विषयक कई पुस्तकों में दिये हुए हैं। मैं नहीं कह सकता कि नरतत्वीय विज्ञान (anthropology) में नृवंशविज्ञान (ethnology) भी आ जाता है या नहीं। मसौदा समिति के विज्ञ सदस्य अगर मुझे इसका विश्वास दिला दें कि नरतत्वीय विज्ञान में नृवंश विज्ञान शामिल है, तो मैं अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं करूंगा। पर नृवंश विद्या भी मानव की एक महत्वपूर्ण शाखा है और अगर इस प्रश्न के बारे में जरा भी संदेह है, तो मैं अपने संशोधन को रखने के लिए जरूर आग्रह करूंगा और उसे स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** 'anthropology' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है और उसके अन्दर 'ethnology' भी शामिल है।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 41 में 'geological' शब्द को हटा दिया जाये और सूची 3 में एक नई प्रविष्टि के रूप में 'the geological surveys' शब्द रखे जायें।"

'Geological' शब्द को मैं संघ-सूची से इसलिए हटाना चाहता हूं कि केन्द्र ने अतीत में हमेशा इस महत्वपूर्ण विषय की उपेक्षा की है। देश में अगाध खनिज सम्पत्ति भरी पड़ी है और बहुमूल्य खनिज पदार्थ भूगर्भ में यहां छिपे पड़े हैं, किन्तु भारत सरकार ने उनका पता लगाने की कभी कोई तकलीफ नहीं की। यदि भारत सरकार ने अतीत में पर्याप्त संख्या में भूगर्भ वेत्ताओं को नियुक्त करके देश के सभी भागों में भूगर्भ में पड़ी सम्पत्ति की छानबीन कराई होती, तो हमें इतनी खनिज सम्पत्ति मिलती कि वह हमारी खपत के लिए भी काफी होती और बहुत कुछ हम दूसरे देशों को भी भेज सकते थे। हमारा देश और सम्पन्न हो गया होता।

भारत सरकार की यह एक प्रथा बन गई थी कि हर पांचवे साल कुछ भूगर्भवेत्ता विभिन्न प्रान्तों में भेज दिये जाते थे, जो तीन महीने तक वहां छिपे खनिज के सम्बन्ध में छानबीन करते थे और तीन महीने के बाद वापस लौट आते थे। पांच साल के बीतने पर फिर इस रस्म का पालन कर दिया गया था। अगर भूगर्भवेत्ताओं को अपने अनुसंधान के सिलसिले में किसी खनिज पदार्थ का पता भी लग जाता था, तो उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि व्यावसायिक दृष्टि से वह खनिज उपयोगी हो सकता है या नहीं। शायद भारत सरकार के पास पर्याप्त संख्या में भूगर्भवेत्ता नहीं थे या शायद यह विभाग दक्षतापूर्वक काम नहीं करता था, जिससे इस काम में उपेक्षा होती रही है। कई प्रान्तीय सरकारों ने इस बात की शिकायत भी की है और अगर यह विषय प्रान्तीय सूची में रख दिया जाये, तो इस काम के लिए वह अपने भूगर्भवेत्ता नियुक्त करने को तैयार है। मैं मसौदा समिति से अनुरोध करूंगा कि वह इस मसले पर विचार करे। ऐसा करना देशहित के लिए अच्छा होगा और जब भारत सरकार देश के मूल्यवान खनिज पदार्थों को निकालने नहीं जा रही है, तो अच्छा यह होगा कि इस विषय को प्रान्तों के हवाले कर दिया जाये, जो इसके लिए उत्सुक हैं। मैं यह भी बता दूंगा कि जहां भी छानबीन के लिए भूगर्भवेत्ताओं का दल गया, वहां ही उन्हें मूल्यवान खनिज पदार्थ जमीन में छिपे मिले, पर व्यावसायिक प्रयोजनों के लिए उनको विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया। इसलिए मैं इस बात का प्रबल आग्रह करूंगा कि इस विषय को संघ-सूची से हटाकर प्रान्तीय सूची में रख दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र सिधवा ने अपनी वक्तृता में बहुत शिकायत तो इस बात की है कि अतीत में केन्द्रीय शासन ने खनिज पदार्थों के पता लगाने के काम में बड़ी उदासीनता दिखाई है और हमेशा उसकी उपेक्षा की है। मैं यह मानता हूं कि केन्द्रीय शासन इस मसले की अब तक उपेक्षा

ही करता रहा है किन्तु इसका मतलब यह नहीं हुआ कि प्रान्तीय सरकारें इस मसले में केन्द्रीय शासन से कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेंगी ही।

पहली बात तो यह है कि यह काम बहुत बड़ा है, जिसमें एक अपार राशि खर्च हो जायेगी और मैं नहीं समझता कि प्रान्त अपने इलाके में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों के विकास के लिये जो व्यय अपेक्षित होगा, उसे वह जुटा सकेंगे। इस दृष्टिकोण से, इस विषय को समनुवर्ती सूची में देने से, ताकि प्रान्तों को इनके बारे में विधि निर्माण का अवसर मिल सके, मुझे तो कोई लाभ नहीं दिखाई देता।

फिर इस संशोधन को स्वीकार करने में मुझे दूसरी कठिनाई यह दिखाई देती है कि संघ-सूची में एक प्रविष्टि इस आशय की रखी जा चुकी है कि देश के खनिज साधनों के विकास का काम केन्द्र के हाथ में होगा। यदि यह विषय समनुवर्ती सूची में रखा जाता है और प्रान्तों को भी इसके बारे में कानून बनाने का अधिकार रहता है, तो फिर संसद जो कानून खनिज विकास के सम्बन्ध में बनायेगी, उनको कार्यान्वित करने में केन्द्र को बड़ी दिक्कत होगी। इसलिये सिधवा साहब से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह इस प्रविष्टि को यहां यों ही रहने दें।

***अध्यक्षः** तो अब मैं संशोधनों पर मत लिए लेता हूं। पहिला संशोधन जिस पर मत लिया जाता है वह है, श्री कामत का संशोधन।

***श्री एच.वी. कामतः** चूंकि डॉ. अम्बेडकर साहब मुझे यह विश्वास दिला रहे हैं कि 'anthropological' शब्द के अन्दर 'ethnology' भी शामिल है, मैं उनके संशोधन को मान लेता हूं और अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं करूंगा।

सभा की अनुमति से उन्होंने अपना संशोधन वापस लिया।

***अध्यक्षः** अब आता है श्री सिधवा का संशोधन।

***श्री आर.के. सिधवाः** डॉ. अम्बेडकर ने जो आश्वासन यहां इस सम्बन्ध में दिया, उसे देखते हुए मैं अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:–

"कि प्रविष्टि 41 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंश मानी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 41 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 42

***अध्यक्षः** प्रविष्ट 42 पर मैं कोई संशोधन नहीं देख रहा हूं।

प्रविष्टि 42 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 43

***अध्यक्षः** अब हम प्रविष्टि 43 को लेते हैं। डॉ. अम्बेडकर इस पर एक संशोधन पेश कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 43 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

43. Acquisition or requisitioning of property for the purposes of the Union.'

[43. संघ के प्रयोजनों के लिये सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।]"

सदस्यगण यह देखेंगे कि मूल प्रविष्टि में इनके साथ और भी कई शब्द 'the principles of compensation' इत्यादि रखे गये थे। अब सोचा यह गया है कि इन शब्दों को एक नई प्रविष्टि के रूप में समनुवर्ती सूची में रख दिया जाये। इसलिए इन शब्दों को यहां रखना अब आवश्यक है। समनुवर्ती सूची में प्रविष्टि 35 में यह बातें रखी जायेंगी।

***श्री श्यामनन्दन सहाय** (बिहारः जनरल): मैं एक सुझाव रखना चाहता हूं श्रीमान।

***अध्यक्षः** जरा रुक जाइये। इस पर एक संशोधन पेश किया जाने को है।

***श्री श्यामनन्दन सहायः** संशोधन के पेश किये जाने के पहले ही मैं अपना सुझाव रख देना चाहता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस प्रविष्टि का बड़ा गहरा सम्बन्ध होगा अनुच्छेद 24 की इबारत से। इनलिये मेरा सुझाव यह है कि इस प्रविष्टि पर तब तक विचार न किया जाये, जब तक कि अनुच्छेद 24 को हम न पास कर लें। यह दलील पेश की जा सकती है कि संघ द्वारा सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण होगा ही, सुतरां इस बात को हमें किसी न किसी प्रविष्टि में कहीं रखना ही होगा। मैं यह मानता हूं कि यह एक जरूरी बात है और इसे हमें एक न एक प्रविष्टि में रखना ही होगा। पर मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 24 को पास कर लेने पर हम ऐसी स्थिति में होंगे कि प्रविष्टि की इबारत को और अच्छी तरह सोच समझकर तैयार कर सकेंगे, क्योंकि हो सकता है कि अनुच्छेद 24 के अनुसार राज्यों में भी सम्पत्ति अधिग्रहण करने के लिए केन्द्र को अधिकार देना आवश्यक हो जाये। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि अभी इस प्रविष्टि पर

विचार तब तक के लिए रोक दिया जाये, जब तक कि अनुच्छेद 24 को यहां न पास कर लिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह कहता हूं कि ऐसा करना अनावश्यक है क्योंकि इसके लिए सिद्धान्त निर्धारित करने का अधिकार तो हर सूरत में विधान-मण्डल को ही देना होगा। सवाल यह है कि क्या सिद्धान्त निर्धारण के बारे में एक पृथक् प्रविष्टि केन्द्रीय सूची में रखी जाये और एक पृथक् प्रविष्टि प्रान्तीय सूची में रख्शी जाये? सोचा यह गया है कि केन्द्र तथा प्रान्त दोनों के लिए एक प्रविष्टि होनी चाहिए और वह रहनी चाहिए समनुवर्ती सूची में। इसलिए अनुच्छेद 24 के बारे में चाहे जो भी निर्णय हो, सिद्धान्त निर्णय के बारे में इस प्रविष्टि को कहीं ना कहीं तो रखना ही होगा। यदि माननीय मित्र को इस प्रविष्टि को समनुवर्ती सूची में रखने पर आपत्ति है, तो बात दूसरी है अन्यथा इस प्रविष्टि पर विचार स्थगित रखने का कोई मतलब नहीं है।

***श्री श्यामनन्दन सहाय:** मैं सोच रहा था ऐसी परिस्थिति के बारे में, जब कि राज्य द्वारा सम्पत्ति अधिग्रहण के लिए भी सिद्धान्त का विनिश्चयन केन्द्रीय संसद को ही करना हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** ठीक यही बात है। माननीय मित्र यह देखेंगे कि समनुवर्ती सूची में इसे रखने से यह होगा कि केन्द्र को भी इसके बारे में सिद्धान्त विनिश्चियन का अधिकार रहेगा।

***श्री श्यामनन्दन सहाय:** मैं समझ रहा हूं। पर आप कह रहे हैं कि ऐसा करने से 'केन्द्र को भी अधिकार रहेगा'। मेरा कहना यह है कि.........

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा कहना यह है कि 'Principles' इत्यादि शब्दों को यहां से हटाकर समनुवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 में हम रख देना चाहते हैं। यदि माननीय मित्र संघ-सूची की प्रविष्टि 43 और राज्य-सूची की प्रविष्टि 9 को मिलाकर पढ़ें, तो उन्हें पता चलेगा कि दोनों की इबारत एक है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि दोनों के द्वारा न केवल सम्पत्ति अधिग्रहण का अधिकार मिलता है, बल्कि उसके लिए सिद्धान्त निर्धारित करने का भी अधिकार प्राप्त हो जाता है। बजाय इसके लिए सिद्धान्त निर्धारण का अधिकार देने के लिए संघ-सूची और राज्य-सूची में दो प्रविष्टियां अलग-अलग रखी जायें, सोचा यह जा रहा है कि 'Principles' इत्यादि शब्दों को यहां से हटाकर उन्हें समनुवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 में रख दिया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अनुच्छेद 24 को पास करने तक यदि इस प्रविष्टि पर विचार स्थगित ही रखा जाये, तो उसमें आखिर हर्ज क्या है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस पर विचार स्थगित रखने में कोई लाभ नहीं है। मैं इस पर विचार स्थगित रखने के पक्ष में नहीं हूं। इस मसले पर विचार करने में बहुत समय लिया जा चुका है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 21 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 43 में 'of Property' शब्दों के आगे 'according to law of the Union' शब्द रखे जायें।"

जो बहस मुबाहिसा यहां हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि जहां तक कि मुआविजे या सम्पत्ति के अधिग्रहण के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, यह मानी हुई बात है कि उसके बारे में केन्द्रीय विधान-मंडल की विधि बनायेगा। इस संशोधन का प्रस्ताव मैं इस उद्देश्य से रख रहा हूं, यह बात साफ हो जाये और इसके बारे में शक की कोई भी गुंजाइश न रह जाये। मुआविजा क्या हो या मुआविजा दिया जाये या नहीं, इस तरह का कोई सवाल इसमें नहीं उठाया गया है। संसद को इसका अधिकार रहना चाहिए कि समयानुसार वह इन सब बातों का निश्चय करे। पर संसद के अधिकारों को या संघ की विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्ति का यहां उल्लेख किये बिना प्रविष्टि को इस रूप में रखना ठीक नहीं होगा। मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन से प्रविष्टि का मतलब बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा और आगे चलकर इसके कोई दो अर्थ नहीं लगाये जा सकेंगे, जिससे कि कठिन स्थिति पैदा हो सके। इसलिए आशा है कि मेरा संशोधन, जिसमें यह साफ तौर पर कह दिया गया है कि "सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण संसद निर्मित विधि के अधीन ही होगा, न कि मनमाने ढंग पर" सभा द्वारा अवश्य स्वीकार किया जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसको कोई जरूरत नहीं है। इस प्रविष्टि में विधायिनी शक्ति का ही तो प्रावधान किया गया है। फिर 'according to the law of the union (संघ की विधि के अनुसार)' शब्दों को रखने से फायदा क्या? प्रविष्टि के अनुसार संघ को विधि बनाने की शक्ति प्राप्त रहेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** फिर मैं अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 43 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'43. Acquisition or requisitioning of property for the purposes of the Union.'

[संघ के प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 43 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 44 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 45 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 46 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 47

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 47 पर एक संशोधन है, जो श्री सन्थानम के नाम से है। पर चूंकि श्री सन्थानम उसे पेश नहीं कर रहे हैं, इस प्रविष्टि पर मैं अब सभा का मत लिये लेता हूं।

प्रविष्टि 47 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 48

प्रविष्टि 48 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 49

***अध्यक्षः** प्रविष्ट 49 पर एक संशोधन हैं। ठाकुर छेदीलाल अपना संशोधन पेश कर सकते हैं, जो छपी हुई संशोधन सूची में 3537 नं. का संशोधन है।

चूंकि सदस्य महोदय सभा में उपस्थित नहीं हैं, इसलिए यह संशोधन नहीं हो रहा है। संशोधन नं. 3538 और 3539 भी पेश नहीं किये। अब मैं प्रविष्टि 49 पर राय लेता हूं।

प्रविष्टि 49 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 50

***अध्यक्षः** अब ली जाती है प्रविष्टि 50। इस प्रविष्टि पर एक संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है।

(संशोधन नं. 22 पेश नहीं किया गया।)

*अध्यक्षः श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 50 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जायें:

'50. The incorporation, regulation and winding up of trading corporations, including banking, insurance and financial corporations but not including co-operative societies.

50A. The incorporation, regulation and winding up of corporations, whether or not, with objects not confined to one State but not including universities.' "

[50. व्यापारिक निगमों का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं।, किन्तु सहकारी संस्थाएं नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन्न।

50.क. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं है, निगमन, विनियमन और समापन्न।]"

इस संशोधन को रखने का कारण यह है, श्रीमान, कि वर्तमान प्रविष्टि 50 के सम्बन्ध में जो एक व्यापक प्रविष्टि है, कई सदस्यों का ख्याल यह है कि यह बड़ी अस्पष्ट है। उन्होंने मसौदा समिति से यह कहा है कि इस प्रविष्टि की इबारत कुछ जटिल या अस्पष्ट है। सुतरां इसे इस रूप में रखना चाहिए कि इसका अभिप्राय अच्छी तरह समझ में आ सके। मसलन इस प्रविष्टि से यही शक बना रहता है कि एक से अधिक राज्यों में व्यावसायिक काम करने वाली सहकारी समितियां इसमें शामिल समझी जायेंगी या नहीं। इसलिये वांछनीय यह समझा गया कि इस प्रविष्टि को दो हिस्सों में विभक्त कर दिया जाये। एक हिस्से में व्यावसायिक निगमों का, जिसके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी है, उल्लेख किया जाये और दूसरे हिस्से में विश्वविद्यालयों को छोड़कर अन्य ऐसे निगमों का, चाहे वह व्यवसायिक हों या नहीं, जो एक से अधिक राज्यों में अपना काम करते हों, उल्लेख किया जाये। यह संशोधन सिर्फ स्पष्टता लाने के विचार से रखा जा रहा है और मैं नहीं समझता कि इस पर अधिक कुछ कहना आवश्यक है। कई सदस्यों ने मसौदा समिति से अपना यह मत व्यक्त किया है कि मूल प्रविष्टि की इबारत से उसका अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता है और उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए यह नई प्रविष्टि रखी जा रही है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि श्री एल. कृष्णस्वामी भारती तथा श्री के. सन्थानम् अपने संशोधनों को नहीं पेश कर रहे हैं, जो छपी सूची में उनके नाम से दिये हुए हैं।

*__श्री जगत नारायण लाल__ (बिहार: जनरल): यदि अनुमति हो तो मैं यह सुझाव दूंगा, श्रीमान, कि अगर मूल प्रविष्टि से 'corporations, that is to say' (निगम अर्थात्) शब्द हटा दिये जायें, तो प्रविष्टि को दो भागों में विभक्त करने की जरूरत न रह जायेगी। इन शब्दों को हटाने पर प्रविष्टि का रूप यह हो जायेगा—

"वाणिज्य निगमों का...
निगमन, आनियमन तथा समापन।"

इससे प्रविष्टि का सतलब स्पष्ट हो जायेगा और फिर इसके अर्थ में द्वित्व न रह जायेगा। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से मैं कहूंगा कि वह इस सुझाव पर ध्यान दें। मेरे इस सुझाव को मान लेने से मसौदा समिति के उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं इस पर विचार करूंगा। पर इस समय जो प्रविष्टि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने प्रस्तावित की है, उसे पास हो जाने दीजिए।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 50 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जायें:—

50. The incorporation, regulation and winding up of trading corporations, including banking insurance and financial corporations but not including co-operative societies.

50A. The incorporation, regulation and winding up of corporations, whether trading or not, with objects not confined to one State but not including universities.' "

[50. व्यापारिक निगमों का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं किन्तु सहकारी संस्थाएं नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।]

50.क. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का, चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 50 और 50-क संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 51

प्रविष्टि 51 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 52

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 में प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'52. Constitution and organisation of the Supreme Court and High Courts; jurisdiction and powers of the Supreme Court and fees taken therein; persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.' "

[52. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय का संघटन; उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियां तथा उसमें लिये जाने वाले शुल्क; उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति।]

इसमें जो अंतिम अंश है, वही ज्यादा है बाकी मूल प्रविष्टि के शब्द ज्यों के त्यों है। अंतिम अंश को रखना इसलिये आवश्यक समझा गया है, क्योंकि अब समय आ गया है, जबकि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों के सामने विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के विधि व्यवसाय करने के अधिकार का विनियमन कर दिया जाये।

*__अध्यक्ष:__ इस प्रविष्टि पर कतिपय संशोधन आये हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं अपना संशोधन नं. 24 नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

*__अध्यक्ष:__ श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने इस पर एक संशोधन की सूचना भेज रखी है, पर वह अपने स्थान पर उपस्थित नहीं हैं।

*__सरदार हुकम सिंह:__ मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 25 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 में—

(1) 'and the High Courts' (और उच्च न्यायालय) शब्द हटा दिये जायें; और

(2) 'or any High Court' (या किसी उच्च न्यायालय) शब्द हटा दिये जायें।"

डॉ. अम्बेडकर ने अभी जो कुछ कहा है, उसे हमने सुना है। आपको कहना है कि उनकी प्रस्तावित प्रविष्टि का जो अन्तिम अंश है, वही नया है और शेष बातें यहां वही हैं, जो मूल प्रविष्टि में रखी गई हैं। मूल प्रविष्टि 52 यों है:

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन क्षेत्राधिकारी तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क"

मूल प्रविष्टि में तो उच्च न्यायालय का कहीं उल्लेख ही नहीं आया है। यहां यह बिल्कुल ही नई बात रखी गई है। जब हमने संविधान निर्माण का काम शुरू किया था, उस समय संघात्मक संविधान बनाने का ही ख्याल हमारे दिमाग में था और तब डॉ. अम्बेडकर ने जिन्होंने कि यह संशोधन अब पेश किया है, कहा था—और संविधान के लचीला होने का श्रेय भी स्वयं लिया था—कि इसकी रचना इस तरह की गई है कि साधारण स्थिति में यह संविधान संघात्मक संविधान का काम करेगा और युद्ध की स्थिति में एकात्मक संविधान का काम देगा। पर अब हम क्या देख रहे हैं? ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, हम अधिकाधिक एकात्मक शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं, और हमारा संविधान ऐसा बनता जा रहा है कि न केवल युद्ध काल में, जैसाकि पहले हमने सोचा था, एकात्मक संविधान के रूप में काम करेगा, बल्कि शान्ति काल में भी एकात्मक संविधान का ही काम करेगा। हर बात में आप देख रहे हैं कि सारी शक्ति केन्द्र को देने का और प्रान्तों को सर्वथा शक्तिशून्य बना देने का प्रयास किया जा रहा है। प्रान्तीय स्वराज्य तो ढकोसला मात्र रह गया है। प्रान्तों के हाथ में कोई सरकार ही देने का और प्रान्तों को सर्वथा शक्तिशून्य बना देने का प्रयास किया जा रहा है। प्रान्तीय स्वराज्य तो ढकोसला मात्र रह गया है। प्रान्तों के हाथ में कोई अधिकार ही नहीं दिया गया है। वे केवल नगरपालिका निकाय के रूप में रह गये हैं। इन सब बातों का कारण यह बताया जाता है कि स्थिति बदल गई है; सीमा पर खतरा पैदा हो गया है, जिसके लिए हमें व्यवस्था करनी होगी और केन्द्र को मजबूत बनाना होगा। मैं इन सभी बातों से सहमत हूं। केन्द्र को यथासम्भव शक्तिशाली बनाने के प्रयास में मैं किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। पर मेरा मतभेद है उस तरीके से, जिससे कि केन्द्र को आप मजबूत बनाना चाहते हैं। मूल प्रश्न यह है कि क्या विभिन्न प्रादेशिक राज्यों को स्वतंत्र रखा जाये, उन पर पूरा भरोसा किया जाये, उनके हाथ में प्रेरणात्मक अधिकार दिये जायें, ताकि वह स्वेच्छा से केन्द्र को सदा अपना समर्थन प्रदान करते रहें या एक तानाशाही संविधान बनाया जाये और अपनी इच्छा जबरदस्ती उनपर लादी जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं बहस में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता, पर यह बता देना चाहता हूं कि हम अनुच्छेद 192-क, 193, 197, 201 तथा 207 को पास कर चुके हैं, जिनमें उच्च न्यायालयों की रचना के बारे में प्रावधान रखे गये हैं। इन अनुच्छेदों के अनुसार सभी उच्च न्यायालय आर्थिक क्षेत्राधिकार को छोड़कर, जहां तक कि उनकी रचना उनके संघटन तथा प्रादेशिक क्षेत्राधिकार का समबन्ध है, केन्द्र के अधीन रखे गये हैं, इसलिए मेरी समझ से यह संशोधन अनियमित है।

***सरदार हुकम सिंह:** मुझे केवल यही कहना है कि माननीय डॉक्टर से मैं यहां सहमत नहीं हूं। मैं कह यह रहा था कि मैं इससे सहमत नहीं हूं कि ऊपर से दबाव डालकर केन्द्र को आप मजबूत बना सकते हैं और विभिन्न इकाइयों को इसके लिए राजी कर सकते है कि वह संघ के अंग बने रहें और केन्द्र

[सरदार हुकम सिंह]

को अपना समर्थन देते रहें। मेरी तुच्छ राय तो यह है कि हमें इस बात की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि हर अधिकार प्रान्त से लेकर केन्द्र को दिया जाये। जहां तक कि उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उनके अधिकारों के विनियमन का काम आप प्रान्तों पर छोड़ सकते हैं और इसमें आपको कोई खतरा नहीं हो सकता है। बहुत से प्रावधान यहां ऐसे रखे जा रहे हैं, श्रीमान, जो केन्द्र को मजबूत बनाने के अभिप्राय से नहीं रखे जा रहे हैं, बल्कि केवल एकमात्र इस इच्छा से कि जहां तक हो सके केन्द्र को हर अधिकार प्राप्त रहे। इसलिए मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि प्रविष्टि से 'and the High Courts' तथा 'or any High Court' शब्द हटा दिये जायें।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'52. Constitution, jurisdiction and powers of all courts including the Supreme Court; enlargement of the appellate jurisdiction of the Supreme Court and conferring of supplemental powers thereon, regulation of fees chargeable by the Supreme Court and licensing and regulation of persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.' "

[52. सभी न्यायालयों की, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी हैं, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का वर्द्धन और उसे पूरक शक्तियों का प्रदान; उच्चतम न्यायालय द्वारा लिये जाने वाले शुल्क का विनियमन तथा उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों को लाइसेंस देना और उनका विनियमन।]

संविधान के मसौदे में मूल प्रविष्टि 52 का रूप यह था—

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क।"

कहने का मतलब यह है कि मूल प्रविष्टि में केवल उच्चतम न्यायालय की रचना आदि को ही इसमें रखा गया था और उच्च न्यायालय का कोई उल्लेख नहीं था। किन्तु वर्तमान संशोधन में सभी न्यायालय इस प्रविष्टि में शामिल कर लिये गये हैं और न केवल न्यायालयों की रचना या संघटन के प्रयोजनों के लिये,

बल्कि उनके सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन आदि प्रयोजनों के लिये भी। इस तरह हम देख रहे हैं कि प्रस्तावित प्रविष्टि की परिधि मूल प्रविष्टि से कहीं अधिक व्यापक रखी गई है। अपने संशोधन के द्वारा मैं इसकी परिधि को और अधिक व्यापक बना देना चाहता हूं, ताकि भारत शासन-अधिनियम, 1935 की प्रविष्टि 53 के समान यह हो जाये। इस प्रविष्टि 53 में यह कहा गया है:—

> "Jurisdiction and powers of all courts, except the Federal Court, with respect to any of the matter in this list and, to such extent as is expressly authorised by Part IX of this Act, the enlargement of the appellate jurisdiction of the Federal Court, and the conferring thereon of supplemental powers."
>
> [इस सूची की किसी बात के सम्बन्ध में, फेडरल न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और उनकी शक्तियां, तथा फेडरल न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का उस सीमा तक वर्द्धन जहां तक कि इस अधिनियम के भाग 9 द्वारा ऐसा करने का स्पष्ट अधिकार दिया गया है, तथा उसको पूरक शक्ति देना।]

सो अगर उच्च न्यायालय को यहां शामिल ही करना है, तो क्यों न हम इस सम्बन्ध में अधिनियम, 1935 के प्रावधानों को ही यहां रखें और सभी न्यायालयों की, जिसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी है, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों का प्रावधान यह कर दें।

दूसरी बात जिस पर मैं जोर देना चहता हूं, वह यह है कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ाने के लिये तथा उसको पूरक शक्तियां देने के लिये यहां प्रावधान कर देना जरूरी है, जैसा कि अधिनियम, 1935 में फेडरल न्यायालय के लिये किया गया है। मेरे संशोधन का अन्तिम अंश इसलिए है कि विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के लाइसेंस तथा विभिन्न न्यायालय द्वारा दिये जाने वो शुल्क आदि का प्रावधान करके इस प्रविष्टि को और अच्छा बनाया जा सके। मुझे खुशी होगी, अगर सभा इसको स्वीकार कर ले।

फिर भी अगर डॉ. अम्बेडकर ऐसी कोई सन्तोषजनक बात कहते हैं। जिससे यह समझ आ जाये कि सभी न्यायालयों की शक्तियों का उल्लेख करना यहां आवश्यक नहीं है या यह कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बढाने का प्रावधान करना यहां आवश्यक नहीं है, तो मैं अपने संशोधन के लिए जोर नहीं दूंगा। अन्यथा मेरा तो ख्याल यही है कि संघ को इस बात का अधिकार प्राप्त रहना चाहिए कि वह उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ा सके और उसको पूरक शक्तियां दे सके।

***अध्यक्ष:** जो संशोधन सरदार हुकम सिंह ने पेश किया है, उसमें संशोधन नं. 197 की बातें आ जाती हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** ठीक है, श्रीमान।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रासः जनरल): जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, उसके सम्बन्ध में मैं चन्द बातें कहना चाहता हूं। उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में हम पहले ही एक व्यवस्था तय कर चुके हैं। यानी न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जा चुका है। जहां तक कि उनके संघटन तथा क्षेत्राधिकार का संबंध है, ख्याल ये है कि देश वे सभी उच्च न्यायालयों के संघटन में एकरूपता रहनी चाहिये; हां, यह जरूरी है कि संविधान के प्रावधानों के अधीन रहते हुए यह एकरूपता रखी जायेगी। इसलिए एकरूपता सम्बन्धी सिद्धांत पर जोर देने के लिए और इस बात के लिये कि देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के संघटनादि में एकरूपता रहे, यह अधिकार केन्द्रीय विधान-मण्डल को दिया गया है। हमें यह मालूम होना चाहिये कि हमारे देश में अनेक उच्च न्यायालय हैं कुछ उच्च न्यायालय तो ऐसे हैं, जो आज अनेकानेक वर्षों से, करीब शताब्दि से यहां काम कर रहे हैं। कुछ उच्च न्यायालय ऐसे हैं, जो अभी हाल में स्थापित हुए हैं। देश के इन सभी उच्च न्यायालयों को संसद के क्षेत्राधिकार में रखने के लिये और इस बात के लिए कि इन विभिन्न उच्च न्यायालयों के संघटन और रचना में एकरूपता रहे, प्रस्तुत प्रावधान यहां रखा गया है। इन सबके सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार एकमात्र संसद को ही होना चाहिये। इसीलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में इस बात का प्रावधान किया गया है।

दूसरे इस संशोधन के द्वारा उच्चतम न्यायालय तथा देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के अधिकार के सम्बन्ध में आवश्यक उपबन्ध रखे गये हैं। वर्तमान कानून के अनुसार हर उच्च न्यायालय-अधिवक्ता यानी ऐडवाकेटों को अधिवक्ता सूची में रखने के बारे में तथा उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने के उनके अधिकार के बारे में अपना अलग नियम बना सकता है। जहां तक कि उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध है, उसे उच्चतम न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय को इस सम्बन्ध में जो अधिकार प्राप्त है, वह संसद के अधिकाराधीन है। इसी तरह उच्च न्यायालय की शक्ति भी समुचित विधान-मंडल के अधिकाराधीन है।

चालू व्यवस्था में कुछ असंगतियां हैं, जिन्हें दूर कर देना आवश्यक है। एक असंगति तो पैदा हुई सर एस. बरदाचारी के कारण, जब फेडरल न्यायालय से वह सेवानिवृत्त हुए। आज कोई भी विधि-व्यवसायी, जिसे फेडरल न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक है, वह उस न्यायालय के सामने तो वकालत कर सकता है, पर अगर मान लीजिये, मामला उस न्यायालय से हटाकर बम्बई के उच्च न्यायालय में भेज दिया जाता है, तो वह उस मामले की वकालत वहां नहीं कर सकता है, यदि उस हाईकोर्ट का वह ऐडवोकेट न हो। यह एक असंगत बात है।

फेडरल न्यायालय के सामने मामले की बहुत कुछ वकालत आपने की, उसके सारे तथ्यों से कानूनी स्थिति से, फेडरल न्यायालय में उसकी वकालत करते समय आप अच्छी तरह परिचित हो गये, पर अगर मामला उठकर अन्य किसी उच्च न्यायालय के सामने चला गया, तो आप वहां उसके लिए वकील के रूप में नहीं उपस्थित हो सकते हैं। फेडरल न्यायालय के समक्ष तो विधि व्यवसायी को उपस्थिति होने की अनुपति रहे, पर उसी मामले के लिए उच्च न्यायालय के सामने उपस्थित होने की उसे अनुमति न रहे। यह बात न तो तर्कसंगत है और न सिद्धान्त संगत है। प्रस्तावित संशोधन से सीधे यह अधिकार नहीं मिल जाता है कि कोई वकील जो उच्चतम न्यायालय के सामने किसी मामले की वकालत कर रहा हो, वह उस मामले की वकालत किसी उच्च न्यायालय के सामने भी कर सकता है। उसके द्वारा संसद को यह अधिकार मिल जाता है कि वहां से असामंजस्य को दूर कर दें और देश भर में एक तरह की न्याय-व्यवस्था लागू करें। इस सम्बन्ध में उदाहरण के लिए मैं एक घटना का उल्लेख करूंगा। माननीय सर तेज बहादुर सप्रू ने बम्बई हाई कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने की अनुमति पाने के लिए एक आवेदन किया था। पर उस हाई कोर्ट के नियमों के कारण उस उच्च न्यायालय के समक्ष मूल पक्ष की ओर से उपस्थित होने की अनुमति उन्हें नहीं मिल सकी। यही बात और भी कई ख्यातनामा वकील और बैरिस्टरों के साथ हुई है। इसलिये इस संशोधन के द्वारा संसद को इस बात का अधिकार दिया जा रहा है कि वह ऐसी असंगतियों को दूर कर सके तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ही जगह विधिव्यवसायियों को उपस्थित होकर मामले की वकालत करने के बारे में जो अधिकार उन्हें मिलने चाहिए, उनका वह विनियमन कर सकें। जब तक कि संसद एक खास तरह से अपने इस मुख्य अधिकार का प्रयोग नहीं करती है, तब तक उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालय के जो वर्तमान नियम हैं, वह चालू रहेंगे। संसद में सभी वर्गों के प्रतिनिधि हैं और वे लोग, मुझे विश्वास है, ऐसी बुद्धिमत्ता की कार्यवाही करेंगे, जिससे देश के न्यायप्रशासन मे सुधार हो सकेगा। और सभी न्यायालयों में नियमादि के बारे में एकरूपता स्थापित हो सकेगी। मैं नहीं समझता कि डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन पर किसी को कोई आपत्ति हो सकती है। यह एक बिल्कुल सही संशोधन है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ अध्यक्ष महोदय, इस मसले के सम्बन्ध में मेरी क्या राय है, उसे मैं बता भी देना चाहता हूं। प्रस्तावित प्रविष्टि के अन्त में रखे गये "or any High Court" शब्दों को मैं हटा देना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन भेजा है, वह 197 नं. का संशोधन है जो छठे सप्ताह को संशोधन सूची 3 में दिया हुआ है। न तो डॉ. अम्बेडकर ने और न मेरे न्याय विशारद मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने इस बात के लिए यहां कोई ठोस कारण बताये हैं कि उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन करने का अधिकार राज्यों के विधान-मंडलों को क्यों न प्राप्त रहे। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने यही कहा है कि वर्तमान समय में

[श्री एच.वी. कामत]

उच्च न्यायालयों को ही इस सम्बन्ध में निगमादि बनाने का अधिकार प्राप्त है, पर यह समझाने की चेष्टा आपने नहीं की कि आखिर यह अधिकार प्रादेशिक विधान-मण्डलों को क्यों न दिया जाये। प्रादेशिक विधान-मण्डलों पर आप इस बात का भरोसा कर सकते हैं कि वे ऐसे कानून बनायेंगे जो संसद निर्मित कानून के प्रतिकूल न होंगे। मैं आपका ध्यान तथा सभा का ध्यान अनुच्छेद 208 की ओर आकृष्ट करूंगा। डॉ. अम्बेडकर ने अभी इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 207 का हवाला दिया है। इस अनुच्छेद 207 के उपबन्ध को देखते हुए उच्च न्यायालयों की रचना और उनके संघटन के सम्बन्ध में विनियमन का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को देना सर्वथा वांछनीय प्रतीत होता है और मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु उच्च न्यायालयों के समक्ष विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को देना एक दूसरी बात है। अनुच्छेद 208 के द्वारा, जिसे कि सभा पास कर चुकी है, कतिपय स्थितियों के लिए, कतिपय उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के बारे में कुछ अधिकार प्रादेशिक विधान-मण्डलों को दिये गये हैं। अगर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को यह अधिकार दिया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में कानून बनाने का जो सामान्य अधिकार हैं, वह क्यों न प्रादेशिक विधान-मण्डलों को दिया जाये। इसलिये इस विषय को सूची 2 में यानी राज्य सूची में रखना चाहिए। अन्यथा अगर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में अधिकार दिया जाता है, जैसा कि अनुच्छेद 208 के द्वारा किया गया है, पर उनके सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विनियमन की शक्ति प्रादेशिक विधान-मण्डलों को नहीं दी जाती है, तो मेरी समझ से तो यह एक बेतुकी बात— मुहरों की लूट और कोयलों पर छाप वाली बात होगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय, मैं अभी जब ध्वनि यंत्र के सामने बोलने आ रहा था, तो माननीय मित्र श्री त्यागी को यह कहते सुना कि यह मसला महज वकीलों से सम्बन्ध रखता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि इस प्रश्न का सम्बन्ध न केवल वकीलों से ही है, बल्कि भारत की सारी आबादी से इसका सम्बन्ध है। वस्तुतः उच्च न्यायालयों का स्वातंत्र्य तथा न्यायपालिका की शुद्धता–यह ऐसा विषय है, जिसके लिए सारे देश को चिन्ता होनी चाहिए।

मैं सभा का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करूंगा कि आखिर यहां 'or any High Court' शब्द इस संशोधित प्रविष्टि में आये कैसे। कल मैंने यहां यह कहा था कि अब जो प्रविष्टियां प्रस्तावित की जा रही हैं, उनमें बहुत सी नई बातें भी जोड़ दी गई हैं। प्रस्तुत संशोधन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। मूल प्रविष्टियां थीः

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क"। शुल्क की बात यहां नहीं रखी गई है और मुझे इस पर कोई

आपत्ति नहीं है। मूल प्रविष्टि में केवल उच्चतम न्यायालय का उल्लेख था, पर प्रस्तावित प्रविष्टि में यह कहा गया है कि: "उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की रचना और संघटन"। इसके अलावा इसमें इतना और भी जोड़ दिया गया है–"उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति"।

मेरी पहली आपत्ति तो इस बात को लेकर है कि नई महत्व की बातें इन संशोधित प्रविष्टियों में चुपके से रखी जा रही हैं। मसौदा समिति की यह बात तो मैं समझ सकता था कि..........

(बाधा)

***श्री महावीर त्यागी:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान, "चुपके से" शब्द का प्रयोग यहां क्या सभा में उचित माना जा सकता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यहां यह कहना, श्रीमान, कि मसौदा समिति ने चुपके से नई बातों को यहां घुसा देने की कोशिश की है, क्या उचित है? माननीय मित्र को इस बात का अधिकार है कि वह मुझसे यह पूछें कि क्यों मैंने प्रविष्टि में परिवर्तन किया है। चुपके से या छिपाकर कोई बात यहां नहीं रखी गई है। प्रविष्टि में रखी गई हर बात के औचित्य को यहां बताने के लिये मैं तैयार हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं आपसे निर्णय की मांग करता हूं, श्रीमान। 'चुपके से' शब्दों का प्रयोग क्या यहां सभा में जायज है।

***अध्यक्ष:** मैं यह मंजूर करता हूं कि संसदीय पद्धति से मैं इतना परिचित नहीं हूं कि यह कह सकूं कि 'चुपके से' शब्दों का प्रयोग यहां उचित है या नहीं। माननीय सदस्य से मैं यह कहूंगा कि वह यहां कोई ऐसी पदसंहति प्रयुक्त न करें, जिससे सदस्यों को दुःख पहुंचे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं, श्रीमान्। मेरा कहना यह है कि ज्यादा अच्छा और साफ तरीका यह होता है कि हमें यह बता दिया जाता कि 'High Courts' शब्दों को यहां जोड़ देना आवश्यक है। 'चुपके से' कहने में मेरा मतलब यह था कि बजाय इस बात के कि साफ-साफ यह कहा जाता कि 'High Courts' शब्दों को रखकर अमुक-अमुक नये परिवर्तन यहां किये जा रहे हैं किया यह गया है कि सारी प्रविष्टि ही बदल कर रख दी गई हैं ऐसा इसलिये किया गया है कि यह स्पष्ट न होने पाये कि 'High Courts' शब्द यहां नये हैं। संशोधित प्रविष्टि और मूल प्रविष्टि में क्या अन्तर है, इसे जानने के लिए दोनों का बड़े ध्यान से धीरज के साथ आपको मुकाबला करना होगा और काफी वक्त लगाना होगा और तभी आप समझ पायेंगे कि संशोधित प्रविष्टि में

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

क्या नई बातें रखी गई हैं। मैंने तथा सरदार हुकमसिंह ने घंटों वक्त लगाकर ध्यान और धीरज के साथ जब दोनों प्रविष्टियों को मिलाया, तब कहीं यहां रखी गई नई बातों का हमें पता चल पाया। मैं नहीं समझ पाता कि आखिर ये नई बातें यहां मूल प्रविष्टि पर संशोधन के रूप में क्यों न रखी जायें। इस बात को मैं बहुत ही आपत्तिजनक और साथ ही असुविधाजनक मानता हूं।

*__अध्यक्षः__ हर संशोधन पर विचार करने में मूल प्रविष्टि को ध्यान से पढ़ना होगा। माननीय सदस्य को अगर ध्यान देकर मूल प्रविष्टि और प्रस्तावित प्रविष्टि को पढ़ना पड़ा है, तो इसमें असाधारण बात क्या है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं केवल यह निवेदन कर रहा था, श्रीमान, कि उपयुक्त संशोधन द्वारा यह बता देना चाहिये था कि यहां क्या परिवर्तन किया जा रहा है। मसलन अगर एक ऐसा संशोधन रखा गया होता कि यहां अमुक स्थान पर 'High Courts' शब्द रखे जायें, तो हमें फौरन इस परिवर्तन का पता चल जाता। हमारी आपत्ति इस बात को लेकर है कि समूची प्रविष्टि को बदलने से हमें ध्यान से काफी वक्त लगाकर प्रस्तावित प्रविष्टि और मूल प्रविष्टि को पढ़कर मिलाना पड़ता है और तब कहीं हम समझ पाते हैं कि क्या नई बातें यहां रखी गई हैं। इस व्यवस्था से सिवाय इसके लिए सदस्यों की मेहनत और बढ़ जाती है और कोई लाभ नहीं होता है। इसी तरह और कितने ही मौकों पर यह किया गया है कि आपत्तिजनक शब्दों को संशोधन द्वारा बताकर रखने के बजाय किया गया है कि मूल अनुच्छेद या प्रविष्टि के स्थान पर नया अनुच्छेद या प्रविष्टि रखने का प्रस्ताव रखकर ऐसा किया गया है। मैं यह स्वीकार करता हूं, श्रीमान, कि आपका यह कहना सर्वथा उचित है कि हर सदस्य को मूल मसौदे को और प्रस्तावित मसौदे को ध्यान से मिलाकर पढ़ना चाहिए और अच्छी तरह तैयार होकर यहां आना चाहिये। मैं निवेदन यह कर रहा था कि हमारे काम को और आसान बनाया जा सकता था। कितनी ही नई-नई बातें इन नई प्रविष्टियों में जोड़ दी गई हैं और हमारे पास समय इतना कम है कि हम इन पर विचार नहीं कर पाते। समय की कमी देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि मसौदा-समिति की इस अनावश्यक व्यवस्था से सदस्यों की दिक्कत और बढ़ जाती है।

जहां तक कि उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, कलकत्ता के उच्च न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तीय क्षेत्राधिकार के अधीन थे। ऐतिहासिक कारणों से कलकत्ता के उच्च न्यायालय को एक विशेष स्थिति प्राप्त थी। भौगोलिक दृष्टि से वह एक ऐसे स्थान पर अवस्थित था, जहां सन् 1911 के पहले भारत सरकार की राजधानी थी। सुतरां किसी न किसी प्रकार ऐसा हुआ कि इस उच्च न्यायालय पर भारत सरकार तथा इम्पीरियल कौंसिल का क्षेत्राधिकार कायम हो गया और वह इन्हीं के अधीन बना रहा। भारत-शासन अधिनियम, 1935 के पास होने पर यह

उच्च न्यायालय प्रान्तीय शासन और वहां के विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार में आ गया। इसको लेकर बड़ा विवाद चला था। प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में इसे रखने का एक कारण यह भी बताया गया था कि प्रान्तों के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। चूंकि केन्द्र अपना फेडरल न्यायालय अब स्थापित कर रहा है, इसलिये वह फेडरल न्यायालय की व्यवस्था करेगा, न उच्च न्यायालयों की। इस तरह कलकत्ता का उच्च न्यायालय जो कि अरसा तक केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में था, सन् 1935 के बाद से प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में आया। उसके बाद सभी उच्च न्यायालय प्रान्तीय शासन के क्षेत्राधिकार में कर दिये गये। केन्द्र पर अपने ही काम का इतना भार है कि वही इसके लिये बहुत है। मेरा कहना यह है कि केन्द्र को उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रश्नों को ही अपने हाथ में लेना चाहिये और अन्य न्यायालयों के सम्बन्ध में व्यवस्थादि का सारा अधिकार प्रान्तीय शासन तथा वहां के विधान-मण्डलों को देना चाहिए। किन्तु मैं यह देख रहा हूं कि वित्तीय, राजनैतिक, वैज्ञानिक हर विषय को ही एक-एक करके धीरे-धीरे प्रान्तों से छीनकर यहां केन्द्र के सुपुर्द किया जा रहा है। मैं कहूंगा कि उच्च न्यायालयों को एक बड़े महत्व की स्थिति प्राप्त है। मैं नहीं समझ पाता कि इस तरह सरकारी तौर पर क्यों आखिर उच्च न्यायालयों पर केन्द्र को क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं एक और संवैधानिक प्रश्न उठाऊंगा। जहां तक कि उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, सबकी सम्मति से हमने इनको पहले प्रान्तीय सूची में रखने का फैसला किया था। हमने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर यहां सभा में खूब विचार कर लिया था और जो निर्णय इस सम्बन्ध में यहां हुआ, उसके अनुसार मसौदा तैयार करने को मसौदा समिति से कहा गया था। मैं यह कहूंगा कि हमें उन निर्णयों की उपेक्षा न करनी चाहिये। अगर हम अपने पूर्व स्वीकृत निर्णयों की उपेक्षा करते हैं, तो इससे अनेक बातों में उलटफेर हो जायेगा। मैं आपसे यह आग्रह करूंगा, श्रीमान कि आप अपना निर्णय दीजिये पूर्व के निर्णयों को इस तरह अगम्भीरतापूर्वक उलट देना क्या हमारे लिये ठीक होगा। उच्च न्यायालयों को पहले हमने प्रान्तीय शासन के क्षेत्राधिकार में रखा गया। बिना इस पर सम्यक रूप से विचार किये और बिना सभा के सामने इस बात को रखे कि हम पूर्व निर्णयों में अमुक-अमुक परिवर्तन करना चाहते हैं, क्या अपने पहले के निर्णयों को बिल्कुल बदल देना ठीक होगा? सभा को इस पर विचार करना चाहिये।

अभी मैंने इस प्रसंग में सरदार पटेल की कार्य प्रणाली का हवाला दिया था। एक बहुत ही महत्वपूर्ण मौके पर सरदार ने एक पूर्ण निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए सभा से कहा और उस पर अच्छी तरह विचार कर सभा ने संविधान में उपयुक्त संशोधन कर दिया। उच्च न्यायालयों को प्रान्तीय क्षेत्राधिकार से हटाकर, जो अब केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है, यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण संविधानिक परिवर्तन है और बजाय इसके कि इसे नई प्रविष्टि के रूप में यहां रखा जाता, इसे सभा के सामने साफ खोलकर रखना चाहिये था। इस परिवर्तन से लोगों को बड़ा ही असंतोष होगा।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

उच्च न्यायालयों को प्रान्तीय क्षेत्राधिकार से हटाकर केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में इस तरह रखना एक बड़ी अनुचित बात है। इन पर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को ही क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिये। प्रान्तों को अधिकार देना तो दूर रहा, यहां उन्हें प्राप्त अधिकारों से भी एक-एक करके वंचित किया जा रहा है। इससे अच्छा तो यह था कि प्रांतों को बिल्कुल उठा दिया जाता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 207 की ओर सभा का ध्यान डॉ. अम्बेडकर पहिले ही आकृष्ट कर चुके हैं। इसलिये मैं यह कहूंगा कि माननीय सदस्य को इस बात के लिये इतना बोलने की जरूरत नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उनकी बातों का जवाब दे सकता हूं। इसके लिए मुझे केवल दस मिनट की जरूरत है। वह क्या कहना चाहते हैं, इसे मैं समझ गया हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जवाब देने का आप वचन दे रहे हैं, पर वस्तुत: अगर मुझे उनसे मेरी बातों का जवाब मिला, तो मेरे लिये यह एक असाधारण और सौभाग्य की बात होगी। अब तक तो आपने कभी यहां उठाई गई बातों का जवाब दिया नहीं है। मैं यह कहूंगा कि उच्च न्यायालयों को किसके क्षेत्राधिकार में रखा जाये, इस बात को इस प्रविष्टि में तभी रखना चाहिये था, जब कि इस मसले पर यहां सभा में अच्छी तरह विचार हो जाता, पर ऐसा न करके एक नई प्रविष्टि का प्रस्ताव करके आप इस बात को उसमें रख रहे हैं। यह तरीका ठीक नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर यहां अच्छी तरह से विचार होना चाहिए था। इसको इस तरह सरसरी तौर पर रखना ठीक नहीं है। हां, अगर सभा यह मान लेती है कि मसौदा समिति को इसका अधिकार है कि वह जो भी चाहे करे, तो फिर मेरा यहां यह सब कहना सर्वथा अनावश्यक है। मैं यह महसूस करता हूं कि इस मसले में मेरी हार निश्चित है; मेरी बात न मानी जायेगी, चाहे वह तर्कसंगत भले ही हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे दु:ख के साथ शुरू में ही यह कहना पड़ता है कि मैंने कई मौकों पर यह देखा है कि माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की यह आदत हो गई है कि वह मसौदा समिति की चर्चा बड़े उपहास के साथ करते हैं उनकी बातों का जवाब देने में मैं कभी उनके स्तर तक नहीं उतरा हूं। पर मैं उनको सावधान कर देना चाहता हूं कि अगर उनका दुराग्रह बना रहा, तो मैं भी तुर्कीवतुर्की जवाब देने में न चूकूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या सदस्यों को इस तरह धमकाया जायेगा? जो भी हो, मुझ पर इसका कोई असर नहीं पड़ेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह धमकी नहीं है, चेतावनी है।

अब मैं माननीय मित्र श्री पंजाबराव देशमुख की बातों को लेता हूं। मुझे खेद है, मैं उनके सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। वह इस प्रविष्टि 52 की परिधि को इतना व्यापक बना देना चाहते हैं कि वह देश के सभी न्यायालयों पर लागू हो सके। यह सर्वथा असम्भव बात है और मैं इसे नहीं स्वीकार कर सकता हूं।

अब मैं माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन के तर्कों को लेता हूं। पहली बात तो उन्होंने यह कहीं है कि इस प्रविष्टि में हम उच्च न्यायालयों को चुपके से घुसा देना चाहते हैं, क्योंकि मूल प्रविष्टि में उच्चन्यायालयों का उल्लेख नहीं है। सभा को याद होगा कि मसौदा समिति समय-समय पर न केवल प्रविष्टियों की ही, बल्कि अनुच्छेदों की भी पुनरावृत्ति करती रही है, उनका पुनरावलोकन करती रही है। मैं यहां इस बात का दावा नहीं करता हूं कि मसौदा समिति की निगाह से कोई बात छूट ही नहीं सकती। अगर मसौदा समिति एक बार में सारी बातों को नहीं देख पाई है, तो इसके लिए उसे मैं दोषी नहीं ठहराऊंगा और न अन्य किसी को ही ऐसा करने दूंगा कि वह उसके कामों पर फैसला करे और उसकी निन्दा करे। संविधान निर्माण का काम एक बड़ा भारी काम है और हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम शनैः शनैः इसमें आगे बढ़ें।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या यह सभा भी मसौदा समिति के कार्यों के गुण-दोष पर विचार नहीं कर सकती?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अवश्य, सभा विचार कर सकती है, पर सभा को यह मानना होगा कि मसौदा समिति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह सभा के सामने कोई ऐसा पूर्ण प्रस्ताव रख दे जिस पर पुनर्विचार करने की कोई जरूरत ही न रह जाये। माननीय मित्र ने शिकायत की है कि यहां उच्च न्यायालयों का उल्लेख बिल्कुल नया है, मूल प्रविष्टि में इनको नहीं रखा गया था। मैं खुद कह रहा हूं कि हमने जानबूझकर उच्च न्यायालयों को यहां रखा है, क्योंकि कतिपय स्वीकृत अनुच्छेदों को देखते हुए हमने इनको यहां रखना जरूरी समझा। माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, स्पष्ट है कि अनुच्छेद 192-क, 193, 197, 201 और 207 को भूल जाते हैं, जिनमें उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं। अगर वह धैर्य के साथ ध्यान देकर इन अनुच्छेदों को पढ़ें, तो वह देखेंगे कि उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान-मण्डलों के साथ केवल इतना ही रखा गया है कि अर्थ के बारे में या मामलों के सम्बन्ध में उनके क्षेत्राधिकार को वह निर्धारित कर सकते हैं। उच्च न्यायालय की अन्य सम्बन्धी बातें केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखी गई हैं। इसलिए संघ-सूची की प्रविष्टियों पर विचार करते समय, जिनको कि केन्द्र को पूर्ण अधिकार देने के अभिप्राय से यहां रखा गया है, हमारे लिए इस त्रुटि को पूरा कर देना जरूरी था और इसलिए उच्च न्यायालयों का यहां उल्लेख करना पड़ा है जो, जैसा मैं कह चुका हूं, इन अनुच्छेदों के कारण दो बातों के सिवाय अन्य सभी बातों के बारे में पूर्णतः संसद के अधीन रखे गये हैं। इसमें छिपाकर रखने की क्या बात है? अनुच्छेद और प्रविष्टियों की

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रचना साथ-साथ नहीं की गई थी, जिससे मूल प्रविष्टि में कुछ भूल रह गई थी और उस भूल को सुधारने के लिए यहां उच्च न्यायालयों का उल्लेख कर दिया गया है।

अब मैं इस आपत्ति को लेता हूं कि यहां "उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के बारे में" शब्द यहां क्यों बढ़ा दिये गये हैं। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी ने इस पर अच्छी तरह प्रकाश डाल दिया है। फिर भी संक्षेप में मैं उन्हीं बातों को पुनः समझाये देता हूं। इन शब्दों को यहां रखकर कोई असाधारण बात नहीं कही गई है, क्योंकि सदस्यों को मालूम है कि अनुच्छेद 121 में उच्चतम न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विधि निर्माण का संसद को अधिकार दिया गया है। इसलिए इस प्रविष्टि में अगर इसका उल्लेख कर दिया गया है, तो इसमें कोई नई बात है क्योंकि उच्चतम न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विधि-निर्माण का अधिकार संसद् को पहले ही दिया जा चुका है।

उच्च न्यायालयों के उल्लेख के सम्बन्ध में वस्तुतः स्थिति यह है। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 17 में जो अधिकार केन्द्र को दिया गया है, वह व्यवसायों के सम्बन्ध में है और कानून का पेशा भी एक व्यवसाय ही है। इसलिए समवर्ती सूची की प्रविष्टि 17 के अधीन उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के व्यवसाय के आनियमन के लिए संसद को विधि बनाने का अधिकार है। पर दिक्कत यह है कि चूंकि यह विषय समवर्ती सूची में है, इसलिए संसद तथा प्रादेशिक विधान-मण्डल दोनों ही इस सम्बन्ध में विधि बना सकते हैं और हो सकता है, इन दोनों ही विधियों में सामंजस्य न हो। इसलिए सोचा यह गया कि प्रविष्टि 17 को समवर्ती सूची में ज्यों का त्यों रहने दिया जाये, ताकि सभी व्यवसाय उसके अन्तर्गत आ सकें और विधि सम्बन्धी व्यवसाय के एक अंश को उठाकर यहां रख दिया जाये, ताकि उच्च न्यायालय के मामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के व्यवसाय के बारे में विधि निर्माण का अधिकार केवल संसद के हाथ में रहे। ऐसा हमने क्यों किया, इसका कारण वह कठिनाई है, जिसका उल्लेख श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने अभी यहां किया है। शायद उनकी बात को आपने न सुना हो, इसलिए मैं पुनः उसको दुहराये देता हूं। मान लीजिये, किसी मामले की पैरवी उच्चतम न्यायालय में एक मद्रास का बैरिस्टर कर रहा है। उच्चतम न्यायालय मामले का निर्णय न करके उसे विचारार्थ बम्बई के उच्च न्यायालय के पास भेज देता है। अब प्रविष्टि 17 के अधीन बनाई किसी विधि के अनुसार हो सकता है, बम्बई सरकार से मद्रास के बैरिस्टर को बम्बई के उच्च न्यायालय के समक्ष उस मामले के लिए वकालत करने की अनुमति न मिले। मद्रास के बैरिस्टर ने तो उच्चतम न्यायालय के सामने उस मामले के सम्बन्ध में वकालत की, सारे मुकदमे को चलाया, पर यही मामला अगर विचारार्थ बम्बई के उच्च न्यायालय के पास भेज दिया जाता

है, तो हो सकता है, वह न्यायालय प्रान्तीय विधि के अनुसार उसे उस मामले की वकालत के लिए अपने सामने उपस्थित होने की अनुमति ही न दे। मैं समझता हूं कि सभी यही स्वीकार करेंगे कि विधि व्यावसायियों के लिये यह बड़ी कठिनाई की बात होगी। इसलिये व्यवसाय के सम्बन्ध में उपबन्ध करने वाली प्रविष्टि 17 से एक अंश उठाकर यहां रख दिया गया है, ताकि विभिन्न उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों की स्थिति एक सी रहे और उनके व्यवसाय के विनियमन के लिए सर्वत्र एक सा कानून हो। इसलिये मसौदा समिति ने जिस नई प्रविष्टि 52 को प्रस्तावित किया है, उसमें न कोई भ्रांतिकर बात है और न ऐसी ही बात रखी गई है, जिसको हमें वहां छिपाकर रखने की जरूरत हो।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहला संशोधन है, सरदार हुकम सिंह का। यह दो हिस्सों में बंटा हुआ है और दोनों पर अलग-अलग मत लिया जायेगा।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्ट 52 में:—

(1) 'and the High Courts' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब दूसरा हिस्सा लिया जाता है। अब प्रश्न है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 में—

(2) 'or any High Courts' शब्द हटा दिया जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब लिया जाता है संशोधन नं. 196, जिसे डॉ. देशमुख ने रखा है।

प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'52. Constitution, Jurisdiction and powers of all courts including the Supreme Court, enlargement of the appellate jurisdiction of the Supreme Court and conferring of supplemental powers thereon; regulation of fees

chargeable by the Supreme Court and licensing and regulation of persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.'

[52. सभी न्यायालयों की, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी है, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां; उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का वर्द्धन और उसे पूरक शक्तियों का प्रदान; उच्चतम न्यायालय द्वारा लिये जाने वाले शुल्क का विनियमन तथा उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों को लाइसेंस देना और उनका विनियमन।]"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि पर मत लिया जायेगा। प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये–

'52. Constitution and organisation of the Supreme Court and the High Court; Jurisdiction and powers of the Supreme Court and fees taken therein; persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.'

[52. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय का संगठन; उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियां तथा उसमें लिये जाने वाले शुल्क; उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 52 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

***अध्यक्ष:** आज का काम समाप्त हुआ। अब बैठक कल प्रात:काल 9 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 31 अगस्त सन् 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.21.49
320

अंक 9
संख्या 21

मंगलवार
30 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[सातवीं अनुसूची: प्रविष्टि 7 से 12, 9-क, 13 से 15, 15-क, 16 से 26,
26-क 27 से 40, 40-क तथा ख तथा 41 से 42 पर विचार] 1119-1198

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 30 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — *(जारी)*

सातवीं अनुसूची — *(जारी)*

प्रविष्टि 7 — *जारी*

***अध्यक्षः** अब हम प्रविष्टि 7 पर बहस जारी करते हैं। मैं देखता हूं कि कई सदस्यों ने इस पर संशोधन की सूचनायें भेज रखी हैं। संशोधन नं. 172 को डॉ. देशमुख उपस्थित करेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मैं इसे उपस्थित कर चुका हूं श्रीमान।

***अध्यक्षः** तो अब संशोधन नं. 173 पेश किया जायेगा। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी इसे उपस्थित करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रासः जनरल): मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमानः—

> "सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 के सम्बन्ध में, सातवीं अनुसूची की सूची 1 के प्रविष्टि 7 में, 'local self government" (स्थानीय स्वशासन) शब्दों के स्थान पर 'local government" (स्थानीय शासन) शब्द रखे जायें:"

कल डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन पर प्रकाश डाल चुके हैं जो कुछ वह कह चुके हैं उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि छोटी सी बात के लिये कल आपने सभा की बैठक स्थगित कर दी। अगर सभा समवेत रह जाती तो कल ही इसका निपटारा हो जाता। मेरा कहना यह है कि कटक, कटक मण्डली (Cantonments and Cantonment Boards) तथा ऐसे क्षेत्रों में आवास गृहों का आनियमन और किराया नियन्त्रण, उन सभी विषयों को अगर केन्द्राधीन कर दिया जाता है तो इससे लोगों को बड़ी असुविधा होगी। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूं कि विभिन्न राज्यों में जो कटक क्षेत्र हैं वह

[श्री महावीर त्यागी]

केन्द्र की ज़मीनें नहीं हैं सभी प्रयोजनों के लिये वहां की समूची असैनिक आबादी राज्य द्वारा नियंत्रित रहती है। इन कटक क्षेत्रों का निर्माण ही इस प्रयोजन के लिये किया गया था कि ये स्थान सैनिक आबादी के पड़ोस के लिये उपयुक्त बने रहें और वहां के स्थानीय शासन सम्बन्धी काम सैनिक अधिकारियों के हाथ में रहें या कम से कम सैनिक अधिकारियों के प्रभाव में रहें ताकि सैनिक क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं सफाई की दृष्टि के कोई असुविधा न होने पाये।

शुरू-शुरू में जबकि इस कटक क्षेत्रों का निर्माण किया गया था उस समय इन क्षेत्रों में प्राय: कर के सैनिकों के बैरक, सैनिक अधिकारियों के मेस तथा सैनिक बंगले ही थे। किन्तु अब वहां की स्थिति बदल गई है। उदाहरण के लिये मेरठ का जो कटक क्षेत्र है उसमें तीन चौथाई आबादी है असैनिक नागरिकों की। यहां के सदर बाजार में प्राय: वकील और अन्य असैनिक लोगों का ही आवास है। यह सदर बाजार कटक क्षेत्र के अन्दर है जिस पर कटक मण्डली का क्षेत्राधिकार है। इस क्षेत्र निवासियों पर संयुक्तप्रान्त के सारे कानून लागू होते है, मसलन जैसा कि प्रान्त के अन्य स्थानों में हैं यहां भी विक्रय कर सम्बन्धी कानून लागू हैं। विधि एवं व्यवस्था सम्बन्धी सभी प्रयोजनों के लिये देश के सभी कटक क्षेत्र प्रान्तों के असैनिक अधिकारियों के नियंत्रण में ही हैं। केवल स्थानीय शासन का काम ही कटक मण्डलियों के हवाले किया गया है और बाकी सभी बातों में राज्य के कानून इन कटक क्षेत्रों के नागरिकों पर भी उसी तरह लागू होते हैं जैसे कि यहां के अन्य असैनिक नागरिकों पर।

अब स्थिति यह है श्रीमान, कि अधिकांश जगहों के कटक क्षेत्र शहर से बिल्कुल लगे हुए हैं। अगर, मकानों के किराये के नियंत्रण का तथा इसी तरह के अन्य अधिकार केन्द्र के अधीन कर दिये जाते हैं और कटक के पड़ोस वाले क्षेत्र पर भी इन सब बातों के केन्द्र का अधिकार हो जाता है तो इससे एक विषम स्थिति पैदा हो जायेगी। कटक क्षेत्र की सीमा के अन्दर की दुकान पर एक कानून लागू होगा और उसी के बगल में, पर कटक सीमा के बाहर जो दुकान है उस पर दूसरा कानून लागू होगा। कई साल से संयुक्तप्रान्त में मकानों के किराये का नियन्त्रण तथा मकानों का वितरण एक कानून के अधीन किया जाता था जो कटक क्षेत्रों पर भी समान रूप से लागू होता था। दो तीन वर्षो तक इस कानून के अधीन व्यवस्था पूर्वक काम चलता रहा पर इधर करीब एक साल से जब से कि हमारे प्रान्त के किराया कानून में संशोधन हुआ है कटक क्षेत्रों को किराया कानून की परिधि से बाहर कर दिया गया है और शायद केन्द्रीय शासन की इच्छा पर ही ऐसा किया गया है। इन क्षेत्रों पर गृह कानून अब लागू नहीं होता है। मेरे प्रान्त के विभिन्न कटक क्षेत्रों के अनेक निवासियों ने पत्र द्वारा मुझे अपनी यह शिकायत व्यक्त की है कि इस व्यवस्था से किराये को लेकर उनको बड़ी असुविधायें भुगतनी पड़ रही हैं। "कैंटोनमेंट टैक्स-पेयर्स एसोसियेशन" के सेक्रेटरी के पत्र से चन्द

पंक्तियां पढ़कर सुनाता हूं। "मेरठ के कटक क्षेत्र के मकानों और दुकानों से किरायेदारों को हटाने के लिए व्यवहार न्यायालयों में करीब एक हजार से अधिक मुकदमें दायर हो चुके हैं और कई मामलों में तो किरायेदारों का हटाने का फैसला भी सुना दिया गया है"। यह मामले उन मकानों के सम्बन्ध में नहीं हैं जिन पर शासन यानी सरकार का स्वामित्व हो बल्कि असैनिक क्षेत्रों के मकानों और दुकानों के सम्बन्ध में हैं जिन पर नागरिकों का स्वामित्व है। उक्त एसोसियेशन के मंत्री आगे लिखते हैं कि "अकेले मेरठ के कटक क्षेत्र की ही असैनिक आबादी एक लाख से ऊपर हैं"। अब प्रान्त की इस एक लाख की आबादी पर प्राय: सभी प्रयोजनों के लिये प्रान्त का कानून लागू न होगा बल्कि एक दूसरा ही कानून लागू होगा जिसे केन्द्र बतायेगा जैसा कि दिल्ली के सम्बन्ध में होता है। प्रान्त अगर कोई कानून बनाता है तो वह कानून कटक क्षेत्रों की असैनिक आबादी पर लागू नहीं होता है। प्रान्त की असैनिक आबादी पर वह कानून तभी लागू हो सकता है जब केन्द्र इसकी अनुमति दे। अगर अपने भावी संविधान के अधीन यही व्यवस्था रहेगी तो मैं इसका अवश्य विरोध करूंगा क्योंकि कटक क्षेत्रों में बसने वाले असैनिक नागरिक भी राज्य के उसी तरह नागरिक हैं जैसे कि वहां की सैनिक आबादी। वहां की सैनिक तथा असैनिक आबादी में कोई भेदभाव बरतना अन्याय होगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि स्थानीय शासन के अतिरिक्त यहां लिखी अन्य सभी बातों के बारे में कटक क्षेत्रों की असैनिक आबादी को वही सुविधायें मिलनी चाहियें जो कि उनके पड़ोसवर्त्ती सैनिक आबादी को प्राप्त है।

इसलिये मैं यह संशोधन रखता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रविष्टि 7 में 'and the regulation of House accommodation (including the control of rents) in such areas" शब्दों को हटा दिया जाये।"

देश भर में किराया नियंत्रण का काम राज्यों के अधीन है फिर कटक क्षेत्रों के असैनिक इलाकों को ही इस सम्बन्ध में क्यों केन्द्राधीन कर रहे हैं;

इस सम्बन्ध में एक दूसरा वैकल्पिक संशोधन भी अभी मैं उपस्थित करने जा रहा हूं पर उसे पास करने का सवाल तभी खड़ा होगा जबकि यह उपस्थित संशोधन सभा को स्वीकार्य न हो। मेरा दूसरा संशोधन यों है:

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "(including the control of rents)" के स्थान पर "(excluding the control of rents)" रखा जाये।"

मेरा मतलब यह है कि किराया नियन्त्रण का काम हमें केन्द्र के हाथ में न देना चाहिये। झांसी से मुझे एक पत्र मिला है जिसमें यह कहा गया है कि कटक

[श्री महावीर त्यागी]

क्षेत्रों का किराया नियन्त्रण संयुक्तप्रान्त के शासन के हाथ में न रहने से वहां लोगों को बड़ी दिक्कतें भुगतनी पड़ रही हैं। इसलिये मैं कहूंगा कि अगर मेरा पहला संशोधन स्वीकार्य न हो तो सभा को मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिए। या अगर यह भी मंजूर नहीं है तो डॉ. अम्बेडकर ही कृपा कर कोई युक्ति निकालें जिससे मेरे अभिप्राय की पूर्ति हो सके।

(संशोधन नं. 175-177 पेश नहीं किये गये।)

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री त्यागी के संशोधन पर मैं बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है, पर तीन मिनट से ज्यादा समय न लीजियेगा। मैं घड़ी देखता रहूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस संशोधन पर बोलते हुए कल मैंने स्थिति को स्पष्ट कर दिया था और कह दिया था कि मसौदा-समिति संशोधन को स्वीकार कर लेगी। किन्तु श्री त्यागी चाहते यह हैं कि कटक क्षेत्रों का परिसीमन केन्द्रीय सूची में रहे। यह किराया नियन्त्रण की बात यहां से हटाना चाहते हैं। पर इसको हटाने से यह होगा कि परिसीमन का काम भी प्रान्तीय सूची में आ जायेगा। जब तक आप इस सूची से परिसीमन की बात को भी बिल्कुल ही नहीं हटा देते हैं केन्द्रीय सूची में मकान के किराये की आनियमन की बात नहीं रख सकते हैं। संयुक्तप्रान्त में किराया नियंत्रण सम्बन्धी जिस कठिनाई का उन्होंने जिक्र किया है उसे मैं जानता हूं। मेरे पास भी शिकायतें आई हैं कि प्रान्त का किराया कानून कटक क्षेत्रों पर लागू नहीं होता है। यह तो एक ऐसा विषय है जिस पर प्रान्तीय सरकारें अपना अलग-अलग मत रख सकती हैं और तदनुसार कार्रवाई कर सकती हैं। बम्बई प्रान्त में स्थिति भिन्न है। पूना के कटक क्षेत्र पर, किराया कानून को बम्बई सरकार ने लागू कर रखा है। फिर इसके अलावा मैं नहीं समझता कि यह बात श्री त्यागी के संशोधन के प्रयोजन के लिये अनुकूल है क्योंकि इससे परिसीमन का सारा अधिकार जो अभी केन्द्र के हाथ में है वह उसके हाथ से निकल जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** माननीय मित्र की जानकारी के लिये मैं यह बताना चाहता हूं कि मैंने एक संशोधन की सूचना दे रखी है जिसमें इस विषय को प्रान्तीय सूची में रखने का सुझाव दिया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** उस पर तो हम तब विचार करेंगे जबकि वह यहां उपस्थित किया जायेगा। किन्तु जहां तक आपके वर्तमान संशोधन का सम्बन्ध है, किराया नियन्त्रण तथा परिसीमन दोनों बातों को आप अलग नहीं कर सकते हैं। मैं इस संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता। मेरा ख्याल है कि मसौदा-समिति का जो संशोधन है उससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): संशोधनों में केवल माननीय मित्र श्री त्यागी के ही संशोधन ऐसे हैं जिनके लिए उत्तर में कुछ कहना मेरे लिए जरूरी है। श्री त्यागी ने विकल्पशः दो संशोधन रखे हैं। पहले संशोधन द्वारा आप यह चाहते हैं कि वह सारा अंश यहां से हटा दिया जाये जिसमें किराया नियन्त्रण के साथ गृह व्यवस्था की बात कही गई है। आपने जो दूसरा वैकल्पिक संशोधन रखा है उससे आप यहां तक तो तैयार हैं कि गृह-व्यवस्था के नियंत्रण तथा आनियमन की बात यहां रखी जाये पर 'किराया नियंत्रण' को आप यहां से हटा देना चाहते हैं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इस सम्बन्ध में वह समझौता कर लेना चाहते हैं। यदि माननीय मित्र को "गृह व्यवस्था का आनियमन" को यहां रखने पर वस्तुतः कोई आपत्ति नहीं है, जैसा कि उनके वैकल्पिक संशोधन से स्पष्ट है, तो मैं कहूंगा कि "गृह व्यवस्था का आनियमन" के फलस्वरूप 'किराया नियंत्रण' का रखना भी यहां नितान्त आवश्यक है क्योंकि दोनों बातें परस्पर सम्बद्ध हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। गृह-व्यवस्था का आनियमन सर्वथा असम्भव है अगर प्राधिकारी को गृह व्यवस्था के आनियमन की शक्ति के साथ किराये के नियंत्रण की शक्ति नहीं दी जाती है। इसलिये मेरा कहना यह है कि गृह व्यवस्था के आनियमन के साथ हमें किराया नियंत्रण की बात यहां रखनी ही होगी क्योंकि दोनों बातें परस्पर सम्बद्ध हैं। अगर माननीय मित्र श्री त्यागी को गृह व्यवस्था के आनियमन की शक्ति देने पर कोई आपत्ति नहीं है तो उन्हें किराया-नियंत्रण की शक्ति देने पर भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। पहला संशोधन है डॉ. देशमुख का।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यदि मसौदा-समिति कृपा कर इस बात के लिए राजी हो जाये कि अन्तिम रूप से मसौदे पर विचार करते समय वह मेरी बात पर विचार करेगी तो अभी इतने से ही मैं संतोष कर लूंगा।

***अध्यक्षः** जहां तक मैं देखता हूं, इस प्रश्न का सम्बन्ध मसौदे की रचना से ही है। इसलिए इसको हम मसौदे-समिति पर छोड़ सकते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 के सम्बन्ध में, सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "local self-government" (स्थानीय स्वशासन शब्दों के स्थान पर "local government" (स्थानीय शासन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:–

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में "and the regulation of House accommodation

[अध्यक्ष]

including the control of rents) in such areas" शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 6 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 7 में '(including the control of rents)' के स्थान पर' (excluding the control of rents)' रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सारे संशोधनों पर तो राय ले ली गई। अब रह गया मूल संशोधन जो यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 7 के स्थान पर यह रखा जाये:

"कटक क्षेत्रों का परिसीमन, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन, ऐसे क्षेत्रों के अन्दर कटक प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां, तथा ऐसे क्षेत्रों में गृहवासन का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है।)' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 7 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंग मानी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 7 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 8

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 8, 9, 10 पर तथा मूल प्रविष्टि 11 पर कोई संशोधन नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): प्रविष्टि 8 पर एक संशोधन है जिसका नं. है 178।

***अध्यक्ष:** यह तो नया संशोधन है। मैं जिक्र कर रहा था उन संशोधनों का जो प्रविष्टि 8, 9 और 10 पर आये हैं और संशोधनों की मूल सूची में छप चुके हैं। नये संशोधनों की सूचना जरूर आई है किन्तु मूल प्रविष्टि पर आये हुए इन नये संशोधनों को उपस्थित करने की अनुमति मैं नहीं दूंगा। इसलिये संशोधन नं. 178, 179 और 181 को मैं अनियमित ठहराता हूं।

अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 8 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रविष्टि 8 संघ सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 9

प्रविष्टि 9 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 10

प्रविष्टि 10 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 11

प्रविष्टि 11 संघ-सूची में जोड़ी गई।

प्रविष्टि 12

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से एक संशोधन इस आशय का है कि प्रविष्टि 12 संघ-सूची से हटा दी जाये। संशोधन इस प्रविष्टि को रखने का विरोध करता है। यदि संशोधनकर्त्ता महोदय बोलना चाहते हों तो बोल सकते हैं। मैं यह भी देख रहा हूं कि एक संशोधन श्री कामत का भी है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान, "कि सूची 1 की प्रविष्टि 12 में, अन्त में "or any international body" (या कोई अन्तर्राष्ट्रीय निकाय) शब्द रख दिये जायें।"

मेरा मतलब यह है कि इस प्रविष्टि में ऐसा सुधार कर दिया जाये कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अलावा कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकाय भी इसमें शामिल समझा जा सके। इस संशोधन को रखते हुये मैं यह निवेदन करूंगा श्रीमान, कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ ही दुनिया में एकमात्र निकाय नहीं होगा। ऐसे और भी निकाय बन सकते हैं। माननीय मित्रों को खूब मालूम है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद 'राष्ट्र संघ' नाम का एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय गठित किया गया था पर स्थापना के कुछ दिनों बाद ही इसका असामयिक अन्त हो गया: अब द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप सृष्टि हुई है 'संयुक्त राष्ट्र संघ' की: 'कोई भी व्यक्ति जो यह भविष्योक्ति करने का दावा करता है कि यह निकाय बहुत दिनों तक जीवित रहेगा मैं कहूंगा कि वह एक विवेक शून्य भविष्यवक्ता है इस निकाय में मतभेद पैदा हो चुका है और.........

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 13 से क्या आपके उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती?

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं श्रीमान, इस प्रविष्टि की चर्चा मैं अभी जरा ही देर बाद करने ही जा रहा हूं। हाँ मैं यह कह रहा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में मतभेद पैदा हो चुका है, इसमें दरारें पड़ चुकी हैं और कोई नहीं कह सकता

[श्री एच.वी. कामत]

कि यह निकाय भी 'राष्ट्र संघ' की तरह कब समाप्त हो जायेगा। अपने संविधान के सम्बन्ध में तो मुझे इसकी पूरी उम्मीद है कि वह एक इस लम्बे अरसे तक चालू रहेगा। किन्तु 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' के सम्बन्ध में तो मैं कहूंगा कि, अभी से ही कितने लोग संशय करने लगे हैं, निराशा व्यक्त करने लगे हैं और यह भविष्यवाणी करने लगे हैं कि इस निकाय का शीघ्र ही अन्त होने वाला है। ईश्वर न करे इसका अन्त इस तरह हो जाये, पर कोई नहीं कह सकता यह निकाय जीवित रहेगा या इसका स्थान कोई दूसरा निकाय ले लेगा। इसके अलावा यह भी संभव है कि भविष्य में तमाम दुनिया में ऐसे प्रादेशिक निकाय भी स्थापित हो जायें। हम सभी को मालूम है कि सन् 1947 ई. के अप्रैल महीने में "ऐशियन रिलेशन्स कान्फरेंस" नाम से एक सम्मेलन समवेत हुआ था और उसके निर्णय के फलस्वरूप "ऐशियन रिलेशन्स ऑरगैनाइजेशन" नामक एक निकाय की स्थापना की जा चुकी है। हो सकता है आगे चलकर भारत सरकार और राज्यों की सरकारों के साथ इस निकाय का सदस्य बन जाना पसन्द करे। हो सकता है यह निकाय संयुक्त-राष्ट्र संघ से भी अधिक स्थायी सिद्ध हो।

आपने, श्रीमान, कृपा कर मेरा ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया है कि प्रविष्टि 13 में जो कुछ रखा गया है यानी अन्तर्राष्ट्रीय संघ या अन्य ऐसे निकाय का जो उल्लेख है उसके अन्तर्गत मेरा यह प्रस्ताव सम्भवत: आ सकता है। यदि ऐसी बात है तो मैं यह पूछता हूं कि फिर प्रविष्टि 12 को ही रखने की क्या आवश्यकता है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र-संघ भी तो आखिर एक अन्तर्राष्ट्रीय निकाय या संघ ही है मैं समझता हूं कि प्रविष्टि 13 से मतलब है ऐसे सम्मेलनों और निकायों में समय समय पर सम्मिलित होने से। किन्तु प्रविष्टि 12 का मतलब है इस निकाय की सदस्यता से जिसमें कि सदस्य राष्ट्र की जिम्मेदारियां उनके कर्तव्य और आभार सभी आ जायेंगे। मेरी समझ से श्रीमान, प्रविष्टि 12 और 13 में यही अन्तर है। प्रविष्टि 13 का मतलब ऐसे सम्मेलनों में सम्मिलित होने से है किन्तु प्रविष्टि 12 उससे अधिक व्यापक है और इसके अन्तर वह सभी आभार और दायित्व आ जाते हैं जो किसी विशेष अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता स्वीकार करने से लागू होते हैं। इसलिये मेरा कहना यह है कि श्रीमान, कि इस बात का ख्याल रखते हुए कि 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' एक स्थायी निकाय नहीं है तथा इस बात का ख्याल रखते हुए कि हम लोगों को भरोसा इस बात का है कि अपना संविधान किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय से अधिक चिरजीवी होगा। हमें सूची में न केवल संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के आभार एवं दायित्वों का ही प्रावधान करना चाहिए बल्कि अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का भी जो कि आगे चल कर कभी स्थापित हो, हमें यहां प्रावधान कर देना चाहिए। इसलिए अपना संशोधन नं. 3517 मैं यहां पेश कर रहा हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस पर विचार करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं श्रीमान, कि प्रविष्टि 12 को हटा दिया जाये। इसको हटाने की मांग के कारण

यह हैं। सभा का ध्यान मैं यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट की ओर आकृष्ट करूंगा। इस रिपोर्ट के पैरा 2 में कहा गया है:

'विदेशिक मामले' से बोध्य है वह सभी विषय जिनके कारण संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध स्थापित होता है और विशेष करके इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विषय आते हैं:—

(1) कूट नैतिक, वैदेशिक राजदूत सम्बन्धी तथा व्यापार सम्बन्धी प्रतिनिधित्व।

(2) संयुक्त राष्ट्र-संघ।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संघों तथा ऐसे अन्य निकायों में शामिल होना और उनके निर्णयों को कार्यान्वित करना इत्यादि।

वस्तुत: वहां 17 विषयों का उल्लेख किया गया है और यहां इस सूची में उन सबको ज्यों का त्यों उठाकर रख दिया गया है हमने प्रविष्टि 10 में कहा है:—

"विदेशीय कार्य वे सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है। इसलिए यह प्रविष्ट इतनी व्यापक है कि इसके आगे की बहुत सी प्रविष्टियां कम से कम 17 उसके अन्तर्गत आ जाती हैं। इनको पुनरावृत्त करने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं और जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है। हम अपने देश के लिए संविधान तैयार कर रहे हैं। इसमें संयुक्त राष्ट्र-संघ के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि रखकर इस निकाय को अपने संविधान का एक स्थायी अंग बनाने की हमें भला क्या आवश्यकता है? इस निकाय की स्थापना अभी करीब चार वर्ष से ही हुई। आज भी यह निकाय ऐसा नहीं बन पाया है कि दुनियां के सभी राष्ट्रों का इस पर पूरा विश्वास हो। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इस निकाय के रहते हुए भी बहुत से राष्ट्र युद्ध की तैयारी कर रहे हैं और उन्हें इस बात का विश्वास नहीं है कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ युद्ध को रोक सकता है। यदि इस सूची में एक प्रविष्टि के रूप में हम संयुक्त-राष्ट्र-संघ को रखते हैं तो इसका मतलब तो यह होगा कि हम इसको इतना महत्व दे रहे हैं जो वास्तविकता के आधार पर औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ का अस्तित्व कल की समाप्त हो जाये। हो सकता है भारत इसकी सदस्यता त्याग देना चाहे। फिर संघ-सूची में इस प्रविष्टि को रखने से क्या लाभ? निजी तौर पर मैं तो यही महसूस करता हूं कि प्रविष्टि 10 काफी व्यापक है और फिर यह प्रश्न कि हम संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्य बने रहें या इसको त्याग दें हमारी वैदेशिक नीति से सम्बन्ध रखता है। इसलिए मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम इस प्रविष्टि को यहां क्यों रखें। व्यक्तिगत रूप से मैं यह भी महसूस करता हूं कि इस निकाय की सदस्यता का जो अनुभव हमें मिला है वह कोई सुखद नहीं है और इसका सदस्य रहने में जो व्यय हमें

[प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना]

उठाना पड़ा है वह तुलना में उस लाभ से कहीं अधिक है जो कि इसकी सदस्यता से हमें प्राप्त हुए हैं। हमें यह भी मालूम ही है कि काश्मीर के झगड़े का हम इस निकाय से कोई निपटारा न करा सके सच तो यह है कि काश्मीर का प्रश्न वहां पहुंचकर और भी जटिल बन गया है। हमने तो आशा इस बात की की थी कि वहां हमें न्याय प्राप्त होगा पर हुआ यह कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने इस मामले को और भी खराब कर दिया और हम इसमें फंस गये हैं।

दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में भी इस निकाय में ऐसा ही हुआ। हम अच्छी तरह जानते हैं कि संयुक्त-राष्ट्र-संघ में भारत की कोई आवाज नहीं है। इसकी सुरक्षा परिषद् में पांच स्थायी स्थान है। और ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस और चीन को एक एक स्थायी स्थान वहां मिला हुआ है। भारत की जनसंख्या इन पांचों में से किसी से भी कहीं ज्यादा है पर उसे वहां कोई स्थान नहीं प्राप्त है। इसलिए मैं तो यह समझता हूं कि ऐसी स्थिति में वहां रहना भारत के लिए कोई सम्मान की बात नहीं है।

सम्भव है कल ही संसद यह निश्चय कर बैठे कि हमारा देश इस निकाय का सदस्य न रहेगा और इस सूरत में संविधान में इस प्रविष्टि का रहना हमारे लिए एक तरह की रुकावट हो जायेगी। संयुक्त-राष्ट्र-संघ का उल्लेख यहां एक स्थायी निकाय के रूप में किया गया है इसलिए मेरी समझ से संघ-सूची में इस प्रविष्टि को रखना सर्वथा अनावश्यक है और हानिप्रद है। इसको रखने से वस्तुत: संसद बंध जाती है। इसलिए निजी तौर पर मैं तो यही महसूस करता हूं कि इस प्रविष्टि को हमें यहां न स्थान देना चाहिए। न तो भारतवर्ष ही इसके लिए वचनबद्ध हो चुका है कि वह सदा इस निकाय का सदस्य ही बना रहेगा और न सभा को ही इसकी कोई आकांक्षा है। और फिर जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि इस निकाय के सम्बन्ध में दुनियां की प्रतिक्रिया क्या है तो यह देखते हैं कि हमेशा यही आलोचना की जाती है कि यह निकाय वास्तविक अर्थ में तभी एक विश्व-संगठन बन सकता है जबकि सभी राष्ट्र अपनी सार्वभौम सत्ता का थोड़ा अंश इस निकाय को सौंपने पर तैयार हों। अमेरिका और रूस को निषेधाधिकार दिया गया है और ये दोनों देश अपनी सत्ता का कोई अंश इस निकाय को सौंपने पर राजी नहीं हैं। इस निषेधाधिकार के द्वारा वे चाहें जिस प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकते हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसी दशा में यह निकाय कुछ अधिक दिनों तक चालू रह सकता है।

इसलिए मेरी समझ से तो यह निकाय ऐसा नहीं है कि संविधान की इस सूची में हम इसे लिपिबद्ध रखें। मेरी समझ से प्रविष्टि नं. 10 पर्याप्त रूप से व्यापक है और उसके अन्तर्गत संयुक्त-राष्ट्र-संघ भी आ जाता है इसलिए मैं तो यही महसूस करता हूं कि प्रविष्टि 12 को अवश्य हटा देना चाहिए।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: इस संशोधन पर विचार करने में हमें बहुत सी बातों का ख्याल रखना होगा। माननीय मित्र श्री कामत यह देखेंगे कि विदेशों के सम्बन्ध में सिर्फ यही एक प्रविष्टि संविधान में नहीं हैं बल्कि और भी कई प्रविष्टियां हैं। एक प्रविष्टि तो रखी गई है विदेशीय कार्य के नाम से जो इतनी व्यापक है कि अगर हम किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का सदस्य होना चाहें तो उस प्रविष्टि के अधीन ऐसा कर सकते हैं। जिस प्रविष्टि पर हम अभी विचार कर रहे हैं उसके बाद ही एक और प्रविष्टि भी है जिसके अधीन किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन या निकाय में सम्मिलित होने के बारे में कानून बनाया जा सकता है। इसको देखते हुए मैं तो यह समझता हूं कि जिस तरह का संशोधन श्री कामत ने यहां रखा है उसकी वस्तुत: कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरे हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि यह प्रविष्टियां तो केवल इतना ही व्यक्त करने के लिए रखी जा रही हैं कि इन विषयों के सम्बन्ध में संघीय संसद को काननू बनाने का अधिकार होगा। यदि संविधान में कोई ऐसा अनुच्छेद रखा जाता जिससे इन प्रविष्टियों द्वारा दिये गये विधि निर्माण सम्बन्धी संघीय अधिकार का परिसीमन होता तो इस सूरत में तो माननीय मित्र श्री कामत का यह प्रश्न उठाना प्रासंगिक होता, किन्तु संविधान में ऐसा कोई अनुच्छेद रखा नहीं गया है जिससे, इस प्रविष्टि द्वारा संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सदस्यता के सम्बन्ध में कानून बनाने का जो अधिकार दिया गया है उसका परिसीमन होता हो। इसलिए राज्य इसमें से किसी भी प्रविष्टि के अधीन अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का भी सदस्य बन सकता है। किन्तु अगर सभा को इस संशोधन के लिए कोई विशेष आग्रह ही हो तो इसको मान लेने में भी कोई क्षति नहीं है। अस्तु मैं इसे सभा पर ही छोड़ता हूं।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 प्रविष्टि 12 में, अन्त में, 'any other international body' (कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकाय) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन नामंजूर हुआ।

अध्यक्ष: अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 12 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 12 संघ-सूची में शामिल की गई।

नई प्रविष्टि 9-क

***अध्यक्षः** एक संशोधन की सूचना आई है। संशोधन है प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का जिसमें कहा गया है प्रविष्टि 9 के आगे यह नई प्रविष्टि और जोड़ दी जायेः "कोस्मिक शक्ति, एवं वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान तथा उसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन" प्रविष्टि 9 के बाद ही मुझे उसको लेना चाहिए था पर उसको लेना भूल गया।

आप क्या उसे पेश करना चाहते हैं मि. शिब्बनलाल सक्सेना?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उनका मतलब क्या है यह मैं नहीं समझ सका।

***अध्यक्षः** सूची में हमने अणुशक्ति को रखा है। वह यह चाहते हैं कि कोस्मिक शक्ति (cosmic energy) को भी सूची में रखा जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमानः

"कि सूची 1 प्रविष्टि 9 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जायेः

'9-क. कोस्मिक शक्ति एवं वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान तथा इसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन।' "

प्रविष्टि 9 में हमने अणुशक्ति तथा उसके उत्पादन के अन्य आवश्यक खनिज साधनों को स्थान दिया है। हम सभी इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि अणुशक्ति ने रक्षा सम्बन्धी हमारी विचारधारा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन पैदा कर दिया है। वस्तुतः संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सामने आज सबसे बड़ी समस्या है अणुशक्ति का नियंत्रण। आप सब को मालूम है कि इसी तरह की एक अन्य शक्ति–कोस्मिक शक्ति–के बारे में अनुसंधान कार्य चल रहा है। रूस इसके बारे में अनुसंधान कर रहा है। अक्सर यह बात सुनने में आई है कि "पामीर के पठार" पर प्रयोगशालायें स्थापित की गई है जहां रूस इस शक्ति के सम्बन्ध में अनुसंधान कर रहा है और इस बात की छानबीन कर रहा है कि युद्ध के प्रयोजनों के लिए इसका किस तरह उपयोग किया जा सकता है। विज्ञान ने जो इस दिशा में प्रगति की हैं उससे हम अपने को अनभिज्ञ नहीं रख सकते हैं। मेरा ख्याल है कि रूस आदि देशों की तरह अपने राज्य को भी उस दिशा में अनुसंधान का काम शुरू करना चाहिए इसलिए मैं समझता हूं कि इस नवीन प्रविष्टि 9-क को, जिसमें इस तरह के अनुसंधान का प्रावधान किया गया है हमें सूची में अवश्य रखना चाहिए। अणु-शक्ति के सम्बन्ध में हमने अभी हाल ही में एक विधेयक भी पास किया है और इसके बारे में हमारे यहां कुछ किया भी जा रहा है। मेरा ख्याल है कि

कोस्मिक शक्ति और कोस्मिक किरणों के सम्बन्ध में भी हमने बहुत कुछ सुन रखा है। संविधान में इस शक्ति के सम्बन्ध में भी अनुसंधान का प्रावधान रहना चाहिए आशा है डॉ. अम्बेडकर इस कमी को हटाने की कोशिश करेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मुझे इतना ही कहना है कि प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन अगर जरूरी ही है तो मेरी समझ से कि इस सूची की प्रविष्टि 91 के अधीन हमें इसके लिए पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं कि हम इस विषय की व्यवस्था कर सकें। प्रविष्टि 91 में कहा गया है:–

> "सूची 2 अथवा सूची 3 में अनंकित कोई अन्य विषय, और कोई कर जिसका उल्लेख इन दोनों सूचियों में न किया गया हो"। इस प्रविष्टि के अन्तर्गत यह विषय भी शामिल किया जा सकता है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ इस प्रविष्टि के अन्तर्गत तो सूची की अन्य कई प्रविष्टियां भी आ जा सकती हैं।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है:—

> "कि सूची 1 की प्रविष्टि 9 के बाद यह नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:–
>
> "9-क. कोस्मिक शक्ति, एवं वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अनुसंधान तथा इसके उत्पादन के अन्य आवश्यक साधन।' "

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 13

*__अध्यक्षः__ इस पर एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री मुहम्मद इस्माइल, श्री पोकर तथा श्री अहमद इब्राहिम ने दी है। उनमें से कोई भी यहां उपस्थित नहीं दिखाई देते हैं। इसलिये यह पेश नहीं किया जा सकता है। उस प्रविष्टि पर और कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 13 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 14

*__अध्यक्षः__ इस पर कोई संशोधन नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ इस पर मैं बोलना चाहता हूं श्रीमान।

*__अध्यक्षः__ युद्ध और शान्ति पर आप बोलना चाहते हैं? क्यों? युद्ध और शान्ति क्या हैं उसे हम सभी समझते हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं चन्द बातें ही कहना चाहता हूं श्रीमान।

*__अध्यक्षः__ आप इसका विरोध करना चाहते हैं या समर्थन?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इस पर और अधिक स्पष्टिकरण चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है, बोलिए।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** प्रविष्टि 14 का विषय है 'युद्ध और शान्ति'। प्रविष्टि 5 पर विचार करते समय मैंने सुझाव दिया था कि वहां 'संसद' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रखा जाये। यानी "ऐसे उद्योग जो कतिपय प्रयोजनों के लिए संसद द्वारा आवश्यक घोषित कर दिया गया हो" यहां 'संसद' के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये। यहां यह नहीं बताया गया है कि युद्ध या शान्ति की घोषणा का प्रश्न राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार में है या संसद के। जैसा कि अमेरिकन संविधान में है, मैं यह चाहता हूं कि इस प्रश्न का यहां संविधान में स्पष्टीकरण कर दिया जाये यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है श्रीमान। युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार संसद को दिया गया है। पर मैं यह चाहता हूं कि यह अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में रहना चाहिये न कि संसद के हाथ में इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर, आप जवाब में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उसके सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:—

"कि प्रविष्टि 14 सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 14 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 15

***अध्यक्षः** इस पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 15 संघ सूची में शामिल की गई।

नई प्रविष्टि 15-क

***अध्यक्षः** श्री कामत का यह सुझाव है कि एक दूसरी प्रविष्टि 15-क यहां रखी जाये। श्री कामत आप अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः

"कि प्रविष्टि 15 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जायेः—

'15-क. किसी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय संगठन निकाय की सदस्यता प्राप्त करना उस सदस्यता को जारी रखना या समाप्त करना।' "

मुझे खेद है कि भूल से 'sapra-national organisation" छप गया है होना चाहिये था "super-national organisation"

मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान, इस बात को देखते हुए कि मेरा पूर्ववर्ती संशोधन अस्वीकृत कर दिया है, जो सौभाग्य से डॉ. अम्बेडकर को काफी पसन्द था.......।

***अध्यक्षः** पर सभा को यह पंसद नहीं था।

***श्री एच.वी. कामतः** हां सभा को वह पसंद नहीं था पर यह दुर्भाग्य की ही बात थी कि सभा को वह पसन्द नहीं आया। मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान, कि मेरे इस संशोधन को मान लेना चाहिए क्योंकि इसको रखने का समुचित कारण है। यदि मेरा पहिले वाला संशोधन, यानि वह संशोधन जिसमें संयुक्त-राष्ट्र-संघ या अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का प्रावधान था, मान लिया गया होता तो इस संशोधन की जरूरत न रह जाती। सभा ने एक या दो मौकों पर जहां तक कि मैं स्मरण कर पाता हूं, डॉ. अम्बेडकर की बात अमान्य की है। मेरा ख्याल है कि इस मौके पर भी डॉ. अम्बेडकर की बात को अमान्य कर सभा को मेरा यह सुझाव सूची में रख लेना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर ने प्रविष्टि 10 की ओर संकेत करते हुए मुझे यह बताया है कि यह प्रविष्टि बहुत व्यापक है और इसके अन्तर्गत बहुत सी बातें आ सकती हैं जिनका यहां स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं हुआ है। हो सकता है "विदेशीय कार्य" पदावली के अन्तर्गत लोग और सभी बातों को शामिल समझ लें। किन्तु इस तरह के मामले में अर्थात् संघीय सूची में हमें जहां तक शक हो सभ बातों का स्पष्ट उल्लेख रखना चाहिय। "विदेशीय कार्य" पदावली रख देना ही काफी नहीं है। इस पदावली के अन्दर तो सभी बातें शामिल समझी जा सकती हैं या कोई भी बात शामिल नहीं समझी जा सकती है। इसके अलावा प्रविष्ट 10 के दूसरे अंश में "वे सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है" ऐसा कहा गया है। वहां किसी संगठन संघ या अन्तर्राष्ट्रीय निकाय का नामोल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु प्रविष्टि 12 में जिसको कि हमने अभी स्वीकार किया है केवल संयुक्त-राष्ट्र-संघ का उल्लेख किया गया है। इसलिए इस सूची में मेरी समझ से यह कमी जरूर रह गई है कि इसमें संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सिवाय अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय या यों कहिए कि किसी उत्तर राष्ट्रीय (supra national) निकाय की सदस्यता की बात नहीं कहीं गई है। मैंने 'अन्तर्राष्ट्रीय' तथा 'उत्तर राष्ट्रीय' (International and Supranational) शब्दों में मैंने विभेद रखा है। राजनीतिक बोल चाल में 'सुपर नैशनल' (उत्तर राष्ट्रीय) से जो अर्थ बोध होता है वह अन्तर्राष्ट्रीय से कुछ अधिक व्यापक है। प्रथम विश्व

[श्री एच.वी. कामत]

युद्ध की समाप्ति के बाद राजनीति में गहरी दिलचस्पी लेने वाले लोगों ने एक "सुपर-स्टेट" की चर्चा शुरू की थी। राजनीति सम्बन्धी आधुनिक मतवाद के अनुसार 'सुपर-स्टेट' एक ऐसी राज्य को कहते हैं। जो राज्यों का एक संघ हो और जिसके अंगभूत सभी राज्य अपनी सार्वभौम सत्ता का एक अंश स्वेच्छा से उसे सौंप दें। किन्तु यहां जिक्र हो रहा है एक ऐसे संगठन का जिसके पास बाध्य करने वाली कोई शक्ति नहीं है जो 'विश्व-शासन' यादि वर्ल्ड गवर्नमेन्ट में होनी चाहिए जिसका कि आज बहुत से लोग स्वप्न देख रहे हैं। यहां हम अपने को केवल एक ऐसे निकाय तक ही सीमित रख रहे हैं जिसमें विभिन्न राज्य सम्मिलित होकर, अपने ऊपर असर डालने वाले विभिन्न प्रश्नों पर विचार करेंगे और जिस निर्णय पर वह पहुंचेंगे उस पर सम्बन्धित सभी राज्य या यों कहिए कि उस निकाय के सभी सदस्य राज्य अमल करेंगें सुतरां यहां विचारणीय बात यह सामने आती है कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न माना जाना चाहिये जिस पर सदस्य बनने के पूर्व हमें विस्तार के साथ विचार कर लेना जरूरी है। आज किसी भी निकाय का सदस्य बन जाने का मतलब है कि हम पर कई दायित्व आरोपित हो जायेंगे और हम कई तरह की बातों के लिए वचनबद्ध हो जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि आप यहां किसी अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता का ही प्रावधान न रखें बल्कि साथ ही सदस्यता जारी रखने या उसको छोड़ने का भी प्रावधान रख दें। केवल सदस्यता का उल्लेख करना ही पर्याप्त न होगा क्योंकि मेरी समझ में, इतने से सभी बातों का खुलासा नहीं हो पाता। इसलिए हमें इन सभी बातों का यहां साफ तौर पर उल्लेख कर देना चाहिए। मैंने अपने संशोधन में 'संयुक्त-राष्ट्र-संघ' का उल्लेख इसलिए नहीं किया है कि यही निकाय आखिर एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय निकाय तो हो नहीं सकता है। मानव बुद्धि असीम है। वह आगे चलकर और भी कोई दूसरे निकाय की रचना कर सकती है। इसलिए चूंकि मेरा पहले वाला संशोधन नामंजूर कर दिया गया है और चूंकि सूची की अन्य प्रविष्टियों में इस बात का कहीं उल्लेख यहीं किया गया है, मेरी समझ से, यह एक ऐसा महत्पूर्ण प्रश्न है जिस पर न केवल डॉ. अम्बेडकर ही बल्कि सभा भी सम्भवतः गम्भीरतापूर्वक विचार करना पसन्द करेगी। मैं सभा से इस बात की सिफारिश करूंगा कि वह इस संशोधन पर अवश्य विचार करें।

***श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता प्राप्त करना, उसका सदस्य बना रहना या त्याग देना, उन निकायों में नियमों या उप नियमों के अधीन ही किया जा सकता है और फिर प्रविष्टि 13 में जिसको कि हम पास कर चुके हैं इन सब बातों की यानी किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन संघ या अन्य निकायों में सम्मिलित होने तथा

उनके निर्णयों को कार्यान्वित करने की व्यवस्था कर दी गई है। इसलिये मेरा ख्याल है कि प्रविष्टि 13 के अन्दर यह सब बातें आ जाती हैं और यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक है। मैं इसका विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 में प्रविष्टि 15 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'15-क. किसी अन्तर्राष्ट्रीय या उत्तर राष्ट्रीय निकाय की सदस्यता प्राप्त करना, उस सदस्यता को जारी रखना या समाप्त कर देना।' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 16

***अध्यक्षः** अब हम प्रविष्टि 16 पर आते हैं। इस पर कोई संशोधन नहीं है। मैं इस पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 16 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 17

प्रविष्टि 17 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 18

प्रविष्टि 18 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 19

प्रविष्टि 19 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 20

प्रविष्टि 20 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 21

प्रविष्टि 21 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 22

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं श्रीमान:—

'कि सूची 1 की प्रविष्टि 22 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'22. Piracies and crimes committed on the high seas or in the air, offences against the law of nations committed on land or the high seas or in the air.' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(22. महासमुद्र या वायु में की मई जलदस्युता और अरराध; स्थल या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध।)

इस प्रविष्टि का जो यह दूसरा अंश है "स्थल या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध" वह नया है; मूल मसौदे में यह नहीं था। उसके प्रथम अंश में "घोरापराध तथा अपराध" शब्दों की जगह अब 'अपराध' शब्द रख दिया गया है क्योंकि भारत में सर्वत्र यही शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। "घोरापराध तथा अपराध" (Felonies and offences) अंग्रेजी भाषा की पदसंहति है और वहां भी अधिकतर प्रयुक्त होती है। दूसरे परिवर्तन यहां यह किया गया है कि प्रथम अंश से "राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध" शब्द हटा दिये गये हैं। ऐसा इसलिये किया गया है कि जलदस्युता तथा अपराध का आनियम तो हर राज्य स्वयं अपने क्षेत्राधिकार और शक्ति के अधीन विधि द्वारा कर सकता है।

इन अपराधों से राष्ट्रों की विधि का कोई वास्ता नहीं है।

***अध्यक्ष:** इस पर दो संशोधन आये हैं। एक की सूचना श्री दिवाकर ने दी है और दूसरे की श्री ब्रजेश्वर प्रसाद थे। पर डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के पेश हो जाने पर अब इन संशोधनों का सवाल ही नहीं उठता है। हां एक संशोधन प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का भी है। आपका संशोधन क्या इससे कुछ भिन्न है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नहीं श्रीमान, वह भी इस संशोधन के अन्दर आ जाता है।

***अध्यक्ष:** अब इस पर एक संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुसलिम): मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में—

(1) "Piracies" (जलदस्युता) के स्थान पर केवल "Piracy" रखा जाये और उसके आगे एक सेमीकोलन का चिन्ह रखा जाये;

(2) "Piracies" शब्द के आगे का 'and' शब्द हटा दिया जाये; और

(3) 'committed on land or the high seas or in the air' (स्थल या महासमुद्र या वायु में की गई) शब्द हटा दिये जायें।"

जहाँ तक संशोधन के पहले अंश का सम्बन्ध है जिसमें 'Piracy' शब्द को एक वचन में रखने की बात कही गई है उसके बारे में मैं इस बात पर जोर

नहीं दूंगा कि उस पर मत लिया ही जाये। मसौदा-समिति से केवल इस बात का अनुरोध करूंगा कि वह इस पर विचार करे। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति का ध्यान उन प्रविष्टियों की ओर आकृष्ट करूंगा जो इससे पहले रखी गई हैं। उन सबमें एकवचन का ही प्रयोग किया गया है। मेरा कहना यह है कि 'Piracy' शब्दों को एकवचन में रखने से हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। उस शब्द को यहां बहुवचन में रखने की कोई जरुरत नहीं है। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊं कि प्रविष्टि 11 में "Diplomatic, consular and trade representation" रखा गया है। यहां 'representations' को बहुवचन में नहीं रखा है। इसी तरह प्रविष्टि 14 में "War and Peace" शब्द रखे गये हैं न कि 'Wars and Peaces' प्रविष्टि 16 में 'Foreign jurisdictions' रखा गया है न कि 'Foreign jurisdictions' प्रविष्टि 17 में "Trade and Commerce" रखा गया है न कि "Trades and Commerces" प्रविष्टि 20 में 'Extradition' रखा गया है न कि 'Extraditions' इतनी प्रविष्टियों का उदाहरण दे देना यहां इसके लिये काफी है कि इस प्रविष्टि में भी एकवचन का प्रयोग प्रर्याप्त है। किन्तु जैसा कि मैंने कहा है, मैं इस मसले को मसौदा-समिति पर छोड़ता हूं और वह जो भी रखेगी मुझे मान्य है।

अपने संशोधन में मैंने यह कहा है कि 'Piracies' या 'Piracy' जो भी आप रखना पसन्द करें–के बाद आया हुआ 'and' शब्द हटा दिया जाये। 'Piracies' या 'Piracy' के आगे एक सेमीकोलन का चिन्ह आना चाहिये ताकि आगे आने वाले शब्दों से यह शब्द सर्वथा पृथक् रहे क्योंकि आगे के शब्दों द्वारा सर्वथा भिन्न बात कहीं गई है। ऐसे स्थलों के लिये सेमीकोलन का प्रयोग सर्वोत्तम उपाय माना गया है। यह अंश भी केवल मसौदे की रचना से सम्बन्ध रखती है।

इसके बाद प्रविष्ट में "crimes committed on the high seas or in the air" पद संहति आई है। मैं इसको यों ही रहने देता किन्तु आगे चलकर 'offences against the law of nations' के आगे अनावश्यक व्याख्या के रूप में 'committed on land or the high sea or in the air' पद संहति रख दी गई है। इन शब्दों को यहां जोड़ा जाना मेरी समझ के बिल्कुल अनावश्यक है। अगर हम केवल इतना ही कहते हैं "offences against the law of nations" तो उसके अन्तर्गत सभी अपराध आ जाते हैं चाहे वह अपराध कहीं भी किये गये हैं। जैसाकि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अभी एक दूसरी प्रविष्ट के सम्बन्ध में बोलते हुए यह कहा है कि संविधान के अनुच्छेद में जो बात रखी जाये उसका तो हमें विस्तार के साथ अनुच्छेद में खुलाया कर देना चाहिये पर विधायिनी सूची में यदि किसी विषय को रखना है तो वहां उस विषय का उल्लेख कर देना ही काफी है। विधान-मंडल उस विषय के बारे में किस तरह से कानून बनायेगा। यह विधान-मंडल के विचारने की बात है। हमें इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ यह बताने की आवश्यकता नहीं

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है कि उसका क्षेत्राधिकार क्या होगा। मैं यह निवेदन करूंगा कि 'committed on land or the high seas or in the air' शब्दों को रखने का प्रभाव यह होगा अगर इसका कोई प्रभाव हो सकता हैं–कि संघीय विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार में कमी आ जायेगी और व्यर्थ की कमी आ जायेगी और क्या कमी आ जायेगी इसका शायद हमें आभास नहीं मिल सकता है मेरा कहना यह है कि "offences against the law of nation" सिर्फ इतना ही रखते हैं तो इससे सभी अपराध अभिप्रेत हो जायेंगे चाहे वह कहीं भी किये गये हों। विस्तार के यहां इतना रखना कि 'offences committed on land, the high seas or in the air" बिल्कुल अनावश्यक है और फिर 'high seas' आदि रखने को प्रभाव यह होगा कि जो अपराध महासमुद्र में न किया जाकर किसी लघु समुद्र में या राज्य क्षेत्रीय समुद्र जल में किया होगा उसके बारे में संघीय विधान-मंडल की विधि निर्माण का अधिकार ही न रहेगा। राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध कोई अपराध अगर स्थल, महासमुद्र या नभ के सिवा अन्वतर कहीं किया गया है तो इस प्रविष्टि के अनुसार तो संघीय विधान-मंडल उसके सम्बन्ध में विधि बना ही नहीं सकता है। इसलिए मेरा कहना यह है कि "committed on land, or the high seas or in the air' शब्दों को हटा देना ही अच्छा होगा।

एक पूर्ववर्ती प्रविष्टि पर विचार करते हुए माननीय सदस्य ने प्रविष्टि 91 का हवाला दिया है। उस प्रविष्टि में तो अवशिष्ट विषयों को जो सूची 2 और 3 में नहीं उल्लिखित है संघ-सूची में शामिल किया गया है। इस प्रविष्टि में यह कहा गया है कि "सूची 2 या 3 में अंकित कोई अन्य विषय और कोई कर जिसका उल्लेख इन दोनों सूचियों में न किया गया हो"। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि प्रविष्टि 91 के उपयोग मूलक गुणों पर भरोसा करना खतरे से खाली न होगा। मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि इस प्रविष्टि का उद्देश्य यह नहीं है कि सूची के किसी खास भाग में किसी खास विषय का उल्लेख छूट गया हो तो उसको इसमें शामिल किया जा सके। विवेचन के सम्बन्ध में यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि जहां किसी विषय का खास तौर पर उल्लेख किया जाता है और किसी खास विषय का खास तौर पर उल्लेख किया जाता है और किसी खास विषय का उल्लेख छोड़ दिया जाता है वहां अगर आय किसी भाग में उस छोड़े हुए विषय को शामिल करने के हेतु यह सामान्य पदसंहति "अनंकित कोई अन्य विषय" प्रयुक्त भी की जाती है तो इसके अधीन उस छोड़े हुए विषय को शामिल नहीं किया जा सकता है। और पदसंहति के आधार पर उस त्रुटि का उपचार नहीं किया जा सकता है। और फिर माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा जो प्रविष्टियां यहां उपस्थित की गई हैं, वह मेरी समझ से तो खूब सोच विचार कर ही उपस्थित की गई होंगी। सुतरां राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये उन अपराधों के सम्बन्ध में जो स्थल महा-समुद्र जलवायु में किये जा कर अन्यतर कहीं किये गये होंगे

कहा यही जायेगा कि वह संघीय विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से बाहर का विषय है। इस लिए अच्छा यह होगा कि व्याख्यात्मक इस अंश को हम बिल्कुल ही हटा दें। मेरी तुच्छ राय में यह अंश सर्वथा अनावश्यक है और इसके कारण दोनों ही पक्ष अपने भाषा के लिए खींचातानी कर सकतें हैं इस बात को लेकर जो कई प्रसिद्ध मुकदमे चल चुके हैं उनको देखते मेरी यह आशंका निराधार नहीं कही जा सकती कई प्रमाणिक निर्णयों में यह कहा गया है कि सूची के अन्त में ऐसी सामान्य पद-संहति रखने से सूची की पूर्ववर्ती प्रविष्टियों द्वारा दिये गये अधिकारों में वृद्धि नहीं आ जायेगी या जिस विषय का उल्लेख सूची में खास तौर पर छोड़ दिया गया है उसको सूची में शामिल नहीं किया जा सकता है। निर्वाचन के सम्बन्ध में यह एक विदित सिद्धान्त है। पर मेरा यही ख्याल है कि ये तर्क मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर के समाने रख तो रहा हूं पर इससे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि उन्होंने मेरी बात सुनी ही नहीं है जब मैं अपनी बातें यहां रख रहा था उस समय वह बातचीत में व्यस्त थे।

***अध्यक्षः** इसके बाद आता है श्री कामत का संशोधन नं. 184।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः—

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'crimes' (अपराध) शब्द हटा दिया जायें"।

मैं खुद ही इस बारे में कोई निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि सभी तरह के अपराध एकमात्र संघ शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन रखे जायें या साथ ही उनको राज्य-सूची में भी रच दिया जाये। जहां तक महसमुद्र में होने वाले अपराधों का सम्बन्ध है, उसके बारे में कोई दुविधा नहीं हो सकती है क्योंकि नौ-परिवहन, नौ-तरण (shipping & navigation) तथा इस तरह के अन्य विषय संघ-आसन के क्षेत्राधिकार के अधीन आते हैं।

सभा को यह अच्छी तरह मालूम है कि कई राज्यों और प्रान्तों ने नागरिक उड्डयन में पर्याप्त प्रगति कर ली है। अधिकांश प्रान्तों में फ्लाइंग क्लब स्थापित हो चुके हैं और कुछ प्रान्तीय शासनों के पास तो मंत्रियों के आने जाने के लिए अपने हवाई जहाज हैं। हाल में समाचारपत्रों में जो समाचार आये हैं उससे पता चलता है कि हमारे देश में तो नहीं बल्कि यूरोप और अमेरिका में उड़ते हुए हवाई जहाजों में तरह तरह के अपराध किये जाते हैं। यहां ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं कि उड़ते हुए हवाई जहाजों में मार पीट हो गई है। रुपयों के लिये शराब के लिए हाथापाई हो गई है। मान लीजिये कि किसी राज्य के हवाई जहाज में अथवा किसी फ्लाइंग क्लब के हवाई जहाज में जबकि वह नभ में हो उस तरह का अपराध हो जाता है या उदाहरण के लिए यही मान लीजिए कि कोई जहाज चालक नशे में आकर जहाज से छतरी के सहारे या बिना छतरी उतर पड़ने की कोशिश करता है। अवश्य ही उसका ऐसा करना आत्महत्या का और मुसाफिरों की जान को खतरे में डालने का अपराध माना जायेगा। ऐसी हालत में क्या इस

[श्री एच.वी. कामत]

तरह के अपराध को एकमात्र संघ-शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन छोड़ना ठीक होगा? क्या यह उचित न होगा कि इस तरह के अपराधों के सम्बन्ध में विधि निर्माण इस अधिकार संघ-शासन को तथा विभिन्न राज्यों को-दोनों को ही दिया जाये?

मैं यह महसूस करता हूं कि इस मसले पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इधर कुछ दिनों से नागरिक उड्डयन में सभी जगह काफी प्रगति हो गई है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की बातों को सुनकर शायद फिर मैं यही कहना चाहूंगा कि उनकी समझ में यह बात ठीक-ठीक नहीं आ पाई कि प्रविष्टि 22 का प्रयोजन क्या है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मुश्किल तो यह है श्रीमान, कि डॉ. अम्बेडकर ने मेरी बातें सुनी ही नहीं क्योंकि यह बातचीत में फंसे थे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ इसमें शक नहीं कि मैं बातें कर रहा था पर माननीय मित्र जो कुछ कह रहे थे उसे मैं ध्यान से सुन रहा था।

माननीय मित्र ने पहले यह सवाल उठाया कि यहां 'Piracy' और 'crime' शब्द बहुवचन में क्यों रखे जायें। अगर इनको बहुवचन में नहीं रखते हैं तो फिर दूसरा उपाय यह है कि इनको हम समुच्चयात्मक अर्थ में प्रयुक्त करें। पर मेरी समझ में ऐसे स्थलों पर जहां अपराध विषयक विधियों के निर्माण का प्रावधान रखा जा रहा हो, समुच्चयात्मक अर्थ में शब्द का प्रयोग न करना ही श्रेयस्कर है। मित्र ने अपने पक्ष समर्थन में कई उदाहरण भी रखे हैं। पर वह इस बात को भूल जाते हैं कि कई जगहों पर शब्दों का एकवचन में सामान्य रूप से प्रयोग कर देना पर्याप्त हो सकता है पर अन्य कई स्थलों पर ऐसे प्रयोग से काम नहीं चलता है। इसलिए मसौदा-समिति ने जानबूझ कर यहां इन शब्दों को बहुवचन में प्रयुक्त किया है क्योंकि जिस प्रसंग में इनका यहां प्रयोग किया है उसमें इनको बहुवचन में रखना ही ठीक होगा।

इस प्रविष्टि के विरुद्ध दूसरी बात आपने यह कही है कि 'Piracies' शब्द के आगे सेमीकोलन का चिह्न होना चाहिये। मेरा ख्याल यह है कि ऐसा करने से प्रविष्टि का अर्थ विकृत हो जायेगा। अगर Piracies के आगे सेमीकोलन रख दिया जाता है तो उसका असर यह होगा कि प्रविष्टि 22 में रखे गये अन्य विषयों से 'Piracy' पृथक् हो जायेगा। अगर इस प्रविष्टि में रखी गई अन्य बातों से 'Piracies' पृथक् हो जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि केन्द्रीय विधान-मंडल को सभी तरह की डकैतियों के अपराध के बारे में कानून बनाने का अधिकार

रहेगा "committed on high seas or in the air" (महासमुद्र या नभ में की गई) पद-संहित का सम्बन्ध न केवल 'crime' (अपराध) शब्द से ही है बल्कि इसका सम्बन्ध 'Piracy' से भी है।

माननीय मित्र ने तीसरी बात यह कही है कि "on land, on high seas or in the air" (स्थल पर, महासमुद्र या नभ में) शब्दों को जो "offences against the law of nations" (राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध) के आगे प्रयुक्त हुए उन्हें हटा देना चाहिये। ऐसा करने से यह बात स्पष्ट नहीं हो जायेगी कि प्रविष्टि का दूसरा अंश पहले अंश से सर्वथा स्वतंत्र है और उसके अनुसार केन्द्रीय विधान-मण्डल को राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध न केवल महासमुद्र या नभ में ही किये अपराधों के बारे में बल्कि स्थल पर किये गये अपराधों के बारे में भी विधि बनाने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि इस अंश को हटाने से यह होगा कि राज्यों को दूसरे अंश के सम्बन्ध में विधि बनाने का अधिकार न रहेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि जिस रूप में यह प्रविष्टि रखी गई है उससे मसौदा बनाने वालों का अभिप्राय समझ में आ जाता है और इसमें किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** माननीय सदस्य ने जो कुछ मैंने कहा उसे सुना नहीं है। उन अपराधों के लिए आप क्या करेंगे जो न महासमुद्र में, न नभ में और न स्थल पर बल्कि कम जल वाले समुद्र में किये जायेंगे?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: वह तो कोरी कल्पना है। जो भी अपराध होंगे वह इन्हीं तीन स्थानों पर होंगे।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): अगर 'Piracies' (डकैतियां) शब्द को शेष बातों से पृथक् नहीं करते हैं तो उस सूरत में क्या 'in the air' (नभ में) शब्द 'Piraces' शब्द के लिये भी लागू होंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** ऐसी भी डकैतियों के अपराध हो सकते हैं जो नभ में की जायें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** 'Piracy' (डकैती) केवल सामुद्रिक डकैती को ही कहते हैं सुतरां ऐसी डकैती केवल समुद्र में ही की जा सकती है। स्थल पर या नभ में की गई डकैती 'piracy' नहीं कही जा सकती है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं चाहता हूं कि मेरे अन्तिम संशोधन पर ही मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'committed on the land, or the high seas or in the air' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 8 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 22 में 'and crimes' शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 22 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'22. Piracies and crimes committed on the high seas or in the air, offences against the law of nations committed on land or the high seas or in the air.

[22. महासमुद्र या वायु में की गई जल दस्युता और अपराध, स्पष्ट या महासमुद्र या वायु में राष्ट्रों के विरुद्ध किये गये अपराध।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 22 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 23

प्रविष्टि 23 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 24

प्रविष्टि 24 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 25

प्रविष्टि 25 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 26

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'26. Import or export across customs frontiers; definition on customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्तों को पार करने वाले आयात या निर्यात; शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।]"

वस्तुत: उस संशोधन के द्वारा कोई नई बात नहीं रखी जा रही है बल्कि मूल प्रविष्टि के क्रम में परिवर्तन किया जा रहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह संशोधन रखता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 9 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जायें:—

'26. Customs frontiers; import and export across customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्त, शुल्क सीमाओं को पार करने वाले आयात और निर्यात।]"

मैं यह मानता हूं कि संशोधन के द्वारा कोई नया सुझाव नहीं दिया जा रहा है बल्कि केवल मसौदे की रचना में परिवर्तन किया जा रहा है। जिन कारणों से प्रेरित होकर मैंने यह संशोधन रखा है उन्हें मैं बताये देता हूं और संशोधन को मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि में कहा गया है "import or export across custom frontiers" (शुल्क सीमान्त को पार करने वाले आयात या निर्यात)। मैं नहीं समझ पाता हूं कि आखिर यहां 'or' (या) शब्द रखने का क्या मतलब है। क्या आयात और निर्यात इन दोनों विषयों को विकल्पश: रखा जा रहा है? प्रश्न यह है कि इन शब्दों को किस तरह रखना ठीक होगा। "import or export" रखना चाहिये या "import and export"? जिस रूप में अभी प्रविष्टि रखी गई है उससे यह मतलब निकलता है कि "या तो आयात या निर्यात।" किन्तु हमने जो पदसंहति प्रस्तावित की है उससे यह आभास मिलता है कि आयात और निर्यात दोनों ही बातें राज्य में होंगी। मैं नहीं समझता कि जानबूझकर 'or' शब्द यहां किसी प्रयोजन विशेष के लिए रखा गया है। मेरी समझ से भूल से ही ऐसा हुआ है और इसे ठीक कर देना चाहिये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में कहा है "definition of customs frontier" (शुल्क सीमान्तों की परिभाषा)। मैं समझता हूं कि "custom frontier" पद-संहति के अन्तर्गत शुल्क सीमान्त सम्बन्धी सारी बातें आ जाती हैं और इसको ही रखने से परिभाषा का अधिकार केन्द्रीय विधान-मण्डल को प्राप्त हो जाता है। शुल्क सीमान्त के बारे में कानून बनाने का अधिकार आपको कैसे रहेगा जब तक की उसकी परिभाषा देने का अधिकार आपको नहीं? जब शुल्क सीमान्त के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को प्राप्त है तो इससे यह स्पष्ट है कि उसकी परिभाषा देने का अधिकार भी उसे प्राप्त है। यहां परिभाषा का उल्लेख बिल्कुल अनावश्यक है। 'or' के स्थान पर 'and' रखने का जो सुझाव मैंने दिया है वह तो बहुत ही आवश्यक है। जैसा कि मैंने कहा है मेरे इस संशोधन में केवल मसौदे की रचना में अदल-बदल करने की बात कही गई है और कोई नई बात नहीं रखी है। मैं इसे मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं। इस पर सभा की राय लेने की कोई जरूरत नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मसौदा स्पष्ट हो इतने से ही मैं सन्तुष्ट हो जाता हूं। ऊंची शब्दावली रखने का मुझे शौक नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:

'26. Imports or export across customs frontiers; definition of customs frontiers.'

[26. शुल्क सीमान्तों को पार करने वाले आयात या निर्यात, शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 26 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शमिल की गई।

नई प्रविष्टि 26-क

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य (श्री शिब्बनलाल सक्सेना) के संशोधन की बात अनुच्छेद 271-क के अन्तर्गत आ जाती है। जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। उस अध्याय का हम पहले ही पास कर चुके हैं जिसमें सम्पत्ति के स्वामित्व के सम्बन्ध में प्रावधान रखे गये हैं। इन प्रावधानों के अधीन सम्पत्ति सम्बन्धी स्वामित्व के बारे में विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं यह चाहता हूं कि इस विषय के बारे में विधि निर्माण का अधिकार केवल संघीय विधान-मंडल को प्राप्त रहे, राज्यों के विधान-मण्डलों को नहीं।

***अध्यक्षः** आगे की प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत यह बात आ जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** क्या उस प्रविष्टि के अनुसार राज्यों को उस सम्बन्ध में विधि-निर्माण का अधिकार न रहेगा?

***अध्यक्षः** बिल्कुल नहीं। प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत संघ की सभी सम्पत्ति आ जाती है। मैं नहीं समझता कि आपके संशोधन की कोई भी जरूरत है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस प्रश्न को लेकर अमेरीका की सर्वोच्च अदालत में कई मामले चल चुके हैं। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह बात यहां स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी जाये। मैं अपना संशोधन रखना चाहता हूं, श्रीमान।

मेरा प्रस्ताव है:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के बाद यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'26.A. Ownership of and dominion over the lands, minerals, and other things of value underlying the ocean seaward of the ordinary low watermark on the coast exceeding three nautical miles.'

[26.क. समुद्र तट में अंकित निचली सतह के चिह्न से समुद्र की ओर तीन सामुद्रिक मील तक समुद्र के नीचे की सब भूमि खनिजों तथा अन्य मूल्यवान पदार्थों पर स्वामित्व तथा आधिपत्य।]"

मैं जानता हूं संविधान में इन सबके लिये प्रावधान रखा जा रहा है पर मैं चाहता यह हूं कि इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया जाये। इस सम्बन्ध में मैं एक महत्वपूर्ण मामले का हवाला दूंगा जिसका फैसला अभी 23 जून 1947 को अमेरीका की सर्वोच्च अदालत ने किया है। मामला चला था संयुक्त राज्य अमेरिका और वहां की रियासत कैलिफोर्निया के बीच। मामला यों था कि कैलिफोर्निया के नजदीक जमीन के नीचे एक बहुत बड़ी राशि तेल और गैस की मिली। उसके स्वामित्व के प्रश्न पर झगड़ा चला। मामला वहां के सर्वोच्च न्यायालय के पास पहुंचा। न्यायालय का बहुमत इसी पक्ष में था कि उस पर स्वामित्व है संयुक्त-राज्य अमेरिका का पर दो न्यायाधीश श्री रीड तथा श्री फ्रैंक फर्टर इसके विरुद्ध थे। मेरी समझ से यह बहुत ही आवश्यक है कि संविधान में यह स्पष्ट कर दिया जाये कि इन पर संघ का स्वामित्व है ताकि इसके सम्बन्ध में किसी

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

संदेह की गुंजाइश न रह जाये। उक्त मामले में जो फैसला हुआ था उसका एक पैरा मैं यहां उद्धृत करता हूं:—

"यही तेल जिसके स्वामित्व के प्रश्न को लेकर राष्ट्र और रियासत में विवाद चल रहा है वह अन्तराष्ट्रीय विवाद और समझौते का विषय बन सकता है। महासागर और इसके तटवर्ती तीन मील का कक्ष, राष्ट्र की इस इच्छा की पूर्ति के लिए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य करे तथा दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध शान्तिमय बना रहे बहुत महत्वपूर्ण होता है। और अगर शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना कहीं असम्भव हो गया तो उस हालत में राष्ट्र के लिये इनका महत्व और गम्भीर हो जाता है। चूंकि वाणिज्य तथा शान्ति दोनों की जिम्मेदारी राष्ट्र पर होती है न कि रियासत पर, इसलिए यदि युद्ध चल पड़ता है तो लड़ना पड़ेगा राष्ट्र को। रियासत जिस आधिपत्य की मांग कर रही है उसके सहगामी दायित्वों को पूर्ति की शक्ति या सुविधायें, अपनी संवैधानिक प्रणाली में रियासत को नहीं प्राप्त हैं। यह सच है कि रियासतों को अपनी सीमा के अन्दर इस तटवर्ती कक्षा पर स्थानीय पुलिस के प्रकार्य को निष्पादित करने का अधिकार प्राप्त है पर इससे संघ-सरकार के उस पूर्णाधिकार में कोई कमी नहीं आती जो उसे इस क्षेत्र पर प्राप्त है। इसलिए सागर गर्भवर्ती उस कक्ष के बारे में जहां रियासत की नदियां गिरती हैं, रियासत को स्वामित्व देने वाले पोलार्ड नियम को लागू करने पर हम तैयार नहीं हैं। उस पर तो राष्ट्र को ही स्वामित्व प्राप्त है।"

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का यह एक पैदा मैंने यहां सुनाया है। उपरोक्त मामले में न्यायालय का फैसला यह रहा है कि सागर की गर्भवर्ती सम्पत्ति पर राष्ट्र का स्वामित्व है न कि रियासत का। यदि संघ-सूची में इन विषयों का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया जाता है तो तटवर्ती भू-भाग के अन्दर निकलने वाले किसी खनिज या अन्य सम्पत्ति के स्वामित्व पर किसी विवाद की गुंजाइश न रह जायेगी। इसलिये मेरा सुझाव है कि यह नई प्रविष्टि संघ-सूची में शामिल कर ली जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा निवेदन यह है कि यह बात अनुच्छेद 272-क के अन्तर्गत आ जाती है। मेरी कठिनाई यह है। माननीय मित्र सक्सेना के संशोधन में स्वामित्व की चर्चा की गई है पर इस विधायिनी सूची में केवल विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्ति का प्रावधान किया है। स्वामित्व किसका हो इसके निर्णयन का अधिकार इसके द्वारा नहीं दिया जा रहा है। स्वामित्व सम्बन्धी प्रश्न का विनिश्चयन तो किसी अन्य विधि द्वारा होगा न कि इस सूची की प्रविष्टि के द्वारा। इसलिये मैं इस संशोधन को नहीं स्वीकार कर सकता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना ने यहां हवाला दिया है अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का। पर मेरा ख्याल यह है कि फैसले की जरूरत ही वहां इस लिये पड़ी थी कि वहां संविधान में अपने अनुच्छेद 272-क जैसा कोई अनुच्छेद नहीं रखा गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम लोगों ने यह देखा कि संविधान में इसके लिये कोई प्रविष्टि नहीं रखी गई है जिससे यह विषय संदेहास्पद रह जाता है। इस संदेह को दूर करने के लिये ही हमने अनुच्छेद 271-क को रखा। यह अनुच्छेद वस्तुत: श्री सक्सेना के संशोधन से अक्षरश: मिलता हुआ है।

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना के संशोधन पर मैं मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 26 के आगे यह नई प्रविष्टि रखी जाये:—

'26.A. Ownership of and dominion over the lands, minerals and other things of value underlying the ocean seaward of the ordinary low watermark on the coast exceeding three nautical miles.'

[26.क. समुद्र तट में अंकित निचली सतह के चिह्न से समुद्र की ओर तीन सामुद्रिक मील तक समुद्र के नीचे की सब भूमि, खनिजों तथा अन्य मूल्यवान पदार्थों पर स्वामित्व तथा आधिपत्य।]"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 27

प्रविष्टि 27 संघ सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 28

***अध्यक्ष:** अब हम प्रविष्टि 28 पर आते हैं। इस पर एक संशोधन है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 28 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 29

***अध्यक्ष:** अब ली जाती है प्रविष्टि 29, इस पर एक संशोधन है, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 29 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 30

***अध्यक्षः** इस प्रविष्टि पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 30 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 31

***अध्यक्षः** इस प्रविष्ट पर, मैं देखता हूं कि कुछ संशोधन आये हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान।

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 31 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये।

'31. Highways declared to be national highways by or under law made by Parliament.'

[31. राजमार्ग जो संसद निर्मित विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित कर दिये गये हों।]"

संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है। मूल प्रविष्टि के शब्दों को यहां स्थानान्तरित मात्र कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** मूल प्रविष्टि पर एक संशोधन है मि. करीमद्दीन का, पर यह पेश नहीं किया जायेगा और कोई दूसरा संशोधन इस पर नहीं है। इसलिये डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि प्रविष्टि 31 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

प्रविष्टि 31 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 33 और 32

***अध्यक्षः** यहां पर एक संशोधन है पर वह है इसे हटाने के लिए?

प्रविष्टि 32 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 33 और 34

प्रविष्टि 33 और 34 संघ-सूची में शामिल की गईं।

प्रविष्टि 35

***अध्यक्ष**: इस प्रविष्टि पर एक संशोधन है श्री संथानम् का।

***माननीय श्री के. संथानम** (मद्रास: जनरल): इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान।

प्रविष्टि 35 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 36

प्रविष्टि 36 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 37

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर**: मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान:

"कि सूची 1 के संशोधन नं. 12 में प्रविष्टि 37 में 'by air or by sea' (वायु अथवा समुद्र) शब्दों के स्थान पर 'by railway, by sea or by air' (रेल पथ, समुद्र या वायु से) शब्द रखे जायें।"

मूल प्रविष्टि में एक शब्द रखना छूट गया था जिसे रखने के लिये ही यह संशोधन पेश करना पड़ा है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख**: मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 12 में प्रविष्टि 37 में 'by railway, by sea or by air' (रेल पथ, समुद्र या वायु से) शब्दों के स्थान पर 'by land, sea or air' (स्थल मार्ग, समुद्र या वायु से) शब्द रखे जायें।"

संशोधन क्यों रखा जा रहा है इसका कारण बिल्कुल सरल है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन के द्वारा केवल 'by railway' शब्दों को बढ़ाने का सुझाव दिया है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि परिवर्तन इतना सीमित क्यों रखा जा रहा है। यदि सामान और यात्रियों का रेल पथ द्वारा वहन संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखना है। तो यहां 'by railway' की जगह 'by land' क्यों न रखा जाये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो सामान तथा यात्रियों का राजमार्ग द्वारा यातायात संघ-शासन के क्षेत्राधिकार के अधीन न रह जायेगा। यदि कोई खास कारण है जिसके लिये राजमार्ग पर आने जाने वाले सामान या यात्रियों के बारे में आप इस प्रविष्टि को लागू नहीं करना चाहते हैं तो उस सूरत में अपने संशोधन के लिये मैं आग्रह नहीं करूंगा। पर मैं नहीं समझता कि ऐसी बात है क्योंकि राजमार्ग द्वारा यातायात सर्वथा

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

राज्यों के क्षेत्राधिकार में जरूरत है किन्तु अन्तर्प्रादेशिक यातायात तो संघ शासन के ही क्षेत्राधिकार में रहेगा। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां केवल रेल पथ द्वारा होने वाले यातायात को ही क्यों संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है? आखिर राजमार्ग द्वारा होने वाले यातायात को भी क्यों नहीं संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जाये?

*__श्री आर.के. सिधवाः__ प्रान्तीय सरकारों द्वारा चलाई जाने वाली बसों के द्वारा जो यातायात होगा वह जिसके क्षेत्राधिकार में रहेगा?

*__अध्यक्षः__ आपके संशोधन के अन्तर्गत ये सभी बाते आ जायेंगी।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ राज्यों में चलने वाली बसों द्वारा होने वाला यातायात संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में न रहेगा। मेरे संशोधन के अनुसार संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में केवल अन्तप्रादेशिक यातायात रहेगा।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ प्रान्तीय सरकार की बसों द्वारा होने वाली यातायात पर भी तो यह संशोधन लागू हो सकता है।

*__अध्यक्षः__ यह लागू हो हो सकता है केवल वायु, समुद्र या रेल पथ द्वारा यात्रियों के ले जाये जाने के बारे में।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ रेल पथ द्वारा ले जाये जाने वाले सामान और यात्रियों को संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है। मैं चाहता यह हूं कि राजमार्ग द्वारा होने वाले सामान और यात्रियों के यातायात को भी संघ-शासन के क्षेत्राधिकार में रखा जाये पर केवल उसी यातायात को जो अन्तर्प्रादेशिक हो। अपने प्रदेश के अन्दर राजमार्ग द्वारा होने वाले यातायात पर पूर्णतः राज्यों का ही अधिकार रहेगा।

*__अध्यक्षः__ यह प्रविष्टि केवल अन्तप्रादेशिक यातायात पर ही नहीं लागू होती है प्रादेशिक यातायात पर भी यह प्रविष्टि लागू होगी, अगर यातायात रेलपथ द्वारा होता है। यदि 'by land' शब्द यहां रख आते हैं तो, इक्का, टांगा, बैलगाड़ी, इन सभी तरह के यातायात संघीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगे।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मेरा मतलब यह है कि स्थल मार्ग द्वारा होने वाले केवल अन्तर्प्रादेशिक यातायात संघीय क्षेत्राधिकार में रहें। इसीलिए मैंने यह संशोधन रखा है।

*__अध्यक्षः__ किन्तु आपके संशोधन से ऐसा नहीं होगा। यह स्थलमार्ग द्वारा होने वाले सभी यातायात पर लागू होगा।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मेरा अभिप्रायः इतना ही था कि स्थलमार्ग द्वारा होने वाले केवल अन्तर्प्रादेशिक यातायात को संघीय क्षेत्राधिकार में रखा जाये। किन्तु अगर

मेरे संशोधन के अन्तर्गत स्थलमार्ग द्वारा होने वाला प्रादेशिक यातायात भी आ जाता है तो फिर यह बेकार है।

***अध्यक्षः** दूसरा संशोधन है श्री कामत का जिसमें 'railway' शब्द के स्थान पर 'rail' शब्द रखने का सुझाव दिया गया है। क्या इस संशोधन को पेश करने में आपको भाषण देने की जरूरत है?

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, मैं इसे मसौदा-समिति के सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता पर छोड़ता हूं। अंग्रेजी भाषा का मुझे थोड़ा ही ज्ञान है पर उस भाषा का यत्किंचित ज्ञान मुझे है उसके आधार पर मैं यह कहूंगा कि कि "carriage by railway" यह पदसंहति कुछ शुद्ध नहीं है। आमतौर पर अंग्रेजी में 'carriage by rail' पदसंहति प्रयुक्त की जाती है न कि 'carriage by railway'। इसलिए अपने संशोधन का प्रस्ताव रस्मीतौर पर मैं यहां पेश किये देता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 12 में, सूची 1 की प्रविष्टि 37 में 'railway' शब्द के स्थान पर 'rail' शब्द रखा जाये।"

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, माननीय श्री देशमुख के संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं क्योंकि अगर हम उनके संशोधन को मान लेते हैं तो फिर स्थलमार्ग के सभी यातायात केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** किन्तु स्थलमार्ग द्वारा दो प्रदेशों के बीच जो यातायात होगा उसको किसके क्षेत्राधिकार में रखा जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह अन्तर्प्रादेशिक यातायात होगा जो संघीय अधिकार में रहेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** तो मैं अपने संधोधन को वापस ले लेता हूं

संशोधन सभा की अनुमति से वापस लिया गया।

(श्री कामत ने अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं किया।)

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 37 में 'by air or by sea' (वायु या समुद्र द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'by railway, sea or by air' (रेलपथ समुद्र का वायु द्वारा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 37 संघ-सूची में शामिल की गई।

————————

प्रविष्टि 38

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 38 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'38. Railways.' "

यह परिवर्तन क्यों किया जा रहा है इसके सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना यहां आवश्यक है। माननीय सदस्य वृन्द यदि मसौदे की मूल प्रविष्टि पर दृष्टिपात करेंगे तो देखेंगे कि वहां संघ की रेलों और अन्य छोटी रेलों में अन्तर रखा गया है। यह अन्तर रखना जरूरी था क्योंकि संघ की रेलों के बारे में, क्षेत्र अधिकतम और अल्पतम दर तथा भाड़े के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार केन्द्रीय शासन को प्राप्त है। किन्तु छोटी रेलों के बारे में वास्तविक प्रशासन की एक सीमित जिम्मेदारी केन्द्र पर है। कहने का मतलब यह है कि जहां तक छोटी रेलों का सम्बन्ध है, अधिकतम और अल्पतम दर, भाड़ा, स्टेशन और सेवा सीमा-व्यय आदि बातें केन्द्रीय विधान-मण्डल के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दी गई हैं अब वांछनीय यह समझा जा रहा है कि चूंकि भारत में रेलवे की व्यवस्था एक तरह की होगी इसलिए इनके सम्बन्ध में कानून बनाने का काम भी एक ही निकाय के हाथ में होना चाहिए ताकि सभी बातों के बारे में सभी रेलों के लिए एक से कानून बनाये जा सकें। इसलिए अब इस प्रविष्टि को व्यापक बना दिया जा रहा है ताकि इसमें छोटी रेलें भी शामिल की जा सकें। और जब सभी बातों के लिए सभी रेलों के सम्बन्ध में एक सा कानून का बनाना आवश्यक है तो मूल प्रविष्टि के दूसरे भाग को रखना अनावश्यक है जिसमें संघीय रेलों और छोटी रेलों में अन्तर किया गया है।

मैं यह भी बता दूं कि यह प्रविष्टि शुद्धत: एक विधायिनी प्रविष्टि है। इसके द्वारा स्वामित्व का प्रावधान नहीं किया गया है। कहने का मतलब यह है कि अधिकतम और अल्पतम दर, भाड़ा तथा सीमा व्यय आदि के आनियमन का अधिकार केन्द्र को होगा पर हर राज्य को चाहे भाग 1 वाला राज्य हो या भाग 3 वाला, जिसके पास अपनी छोटी रेलें हैं, केन्द्र द्वारा निश्चित दर और भाड़े के अनुसार जो आय होगी उसे रखने का पूर्ण अधिकर होगा। इस व्यवस्था से उसके स्वामित्व विषयक अधिकार पर कोई आंच नहीं आयेगी। रेलों पर उसका स्वामित्व बना रहेगा। यदि भाग 3 या भाग 1 वाले किसी राज्य के किसी छोटे रेलपथ को केन्द्र अपने अधिकराधीन करना चाहता है तो व्यवस्था के अनुसार ही वह ऐसा कर सकता है। सुतरां यह जो प्रविष्टि है वह शुद्धत: एक विधायिनी प्रविष्टि है। मेरे संशोधन का अभिप्राय यही है कि रेलवे सम्बन्धी सभी बातों के बारे में देश भर के लिए एक सा कानून हो। इस संशोधन से स्वामित्व सम्बन्धी प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

ट्राम-पथ को रेलपथ में हम शामिल नहीं कर रहे हैं, उसको रेलपथ से अलग रखा जा रहा है। निर्वाचन विषयक खण्ड में हम रेलवे की परिभाषा इस रूप में देना चाहते हैं कि रेल में ट्राम को न शामिल किया जा सके ताकि भाग 1 या 3 वाले राज्यों को ट्रामों के सम्बन्ध में सभी बातों के आनियमन का अधिकार रहे।

***श्री आर.के. सिधवा:** माइनर रेलवे ऐक्ट नामक एक कानून है जिस पर सभी प्रान्तीय सरकारें अमल करती हैं। क्या इस संशोधन का अभिप्राय यह है कि वह ऐक्ट अब निरसित कर दिया जायेगा और सारी व्यवस्था संघ के अधिकार में आ जायेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, इस संशोधन से संघ को इस ऐक्ट को निरसित करने का अधिकार अवश्य प्राप्त हो जाता है। वह यदि चाहे तो इसे रख सकता है या इसके स्थान पर दूसरा कोई कानून बना सकता है। इसे प्रविष्टि के द्वारा केन्द्र को छोटी-बड़ी सभी रेलों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह चाहे तो छोटी रेलों और बड़ी रेलों के लिए भिन्न-भिन्न कानून बनावे या दोनों के लिए एकसा कानून बनावे। इसका पूरा अधिकार केन्द्र को है।

***श्री आर.के. सिधवा:** तो क्या छोटे रेलपथों की व्यवस्था माइनर रेलवे ऐक्ट के अनुसार चलेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह वर्तमान कानून तब तक चालू रहेगा जब तक संसद इसमें कोई परिवर्तन न कर दे। इस संशोधन से संसद को परिवर्तन करने का अधिकार मिल जाता है।

***अध्यक्ष:** अब प्रविष्टि 38 पर मैं मत लेता हूं। मुझे अभी मालूम हुआ है कि इस पर एक और संशोधन आया है पर यह आया है कि आज सवेरे 9 बजे। मैं इसे स्वीकार करने में असमर्थ हूं। अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 38 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये–

'38. Railways.' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 38 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 39

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 39 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'39. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the National Library, the Indian Museum, the

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Imperial War Museum, the Victoria Memorial, the Indian War Memorial, and any other institution financed by the Government of India wholly or in part and declared by Parliament by law to be an instituion of national importance.' "

(39. इस संविधान की प्रारम्भ तिथि पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्धस्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।)

यहां मूल प्रविष्टि में कोई सारवान परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। केवल चन्द शाब्दिक परिवर्तन मात्र किये जा रहे हैं क्योंकि 15 अगस्त 1947 से इन संस्थाओं के नाम में परिवर्तन हो गया है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): संविधान के प्रभावी होने पर क्या "Imperial War Museum" (साम्राज्य युद्ध-संग्रहालय) का नाम बदलकर "National War Museum" (राष्ट्रीय युद्ध-संग्रहालय) कर दिया जायेगा जैसा कि इम्पीरियल लाइब्रेरी को बदलकर 'नैशनल लाइब्रेरी' कर दिया गया है?

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मैं समझता हूं कि 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' का नाम बदलकर 'नैशनल लाइब्रेरी' कर दिया गया है कि 'इम्पीरियल वार म्युजीयम' का नाम नहीं बदला गया है। ये नाम तो सिर्फ उन संस्थाओं का परिचय देने के लिए है ताकि संसद जब उनके बारे में कोई कानून बनावे तो उनका नामोल्लेख करके यह बताया जा सके कि कानून अमुक संस्था के लिए लागू है।

***श्री बी. दास:** मैं जानना यह चाहता हूं कि संविधान के प्रभावी होने पर और भारत शासन अधिनियम में अनुकूलन हो जाने पर 'इम्पीरियल' शब्द उठ जायेगा या यों ही बना रहेगा। मेरा कहना यह है कि "हिज मैजेस्टीज़ गवर्नमेन्ट", दि क्राउन' जैसे शब्द संविधान के प्रभावी होने पर उठ जायेंगे या बने रहेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुकूलन किया जायेगा। कानूनों के सम्बन्ध में न कि नाम के सम्बन्ध में।

***अध्यक्ष:** इस प्रविष्टि के द्वारा केन्द्रीय विधान-मण्डल को नाम में परिवर्तन करने का अधिकार मिल जाता है।

इस प्रविष्टि पर एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद का आया है जिसका नं. है 160 ।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन नं. 14 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 39 में—

(1) 'on the date of commencement' शब्दों के स्थान पर 'on the commencement' शब्द रखे जायें।

(2) 'other institution' शब्दों के स्थान पर 'other similar institution' शब्द रखे जायें।

(3) 'by Parliament' शब्दों के स्थान पर 'by or under any law made by Parliament' शब्द रखे जायें।

जहां तक कि मेरे संशोधन के पहले अंश का प्रश्न है, उसमें केवल एक सामान्य-सा परिवर्तन का सुझाव दिया गया है जिससे प्रविष्टि के सार में कोई अन्तर नहीं आता है। प्रविष्टि में 'the date of commencement of the Constitution' (संविधान की प्रारम्भ तिथि पर) शब्द रखे गये हैं। मेरा कहना यह है कि "संविधान के प्रारम्भ पर" इतना कहने से उस तिथि का ही बोध होता है जिस दिन संविधान का प्रारम्भ होता है। हमने संविधान के मसौदे में अन्य कितने ही स्थलों पर "संविधान के प्रारम्भ पर" यही पदसंहति प्रयुक्त की है। कई अनुच्छेदों में जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं यही पदसंहति प्रयुक्त हुई हैं। 'on Commencement of the Constitution' (संविधान के प्रारम्भ) पद-संहति को हमने सर्वत्र संविधान के प्रारम्भ की तिथि के ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। सुतरां यहां 'date of' शब्दों का रखना न केवल अनावश्यक है बल्कि अन्य कतिपय स्वीकृत अनुच्छेदों में रखी गई पद-संहति को देखते हुए इन शब्दों का यहां रखा जाना असंगत दिखाई देता है। मेरा कहना यह है कि संविधान में एकरूपता रहनी चाहिए। इसलिए "on the date of commencement" न रखकर केवल 'on commencement' रखना ही ठीक होगा। संविधान का प्रारम्भ होगा ही किसी तारीख पर और वह तारीख शुरू होगी मध्य रात्रि के बाद से। इस संशोधन का सम्बन्ध केवल मसौदे की रचना से है और इसमें कोई सारवान परिवर्तन की बात नहीं कही गई है। मसौदा-समिति का ध्यान मैं इसकी ओर इसलिए आकृष्ट कर रहा हूं कि शायद एकरूपता के ख्याल से वह यहां आवश्यक परिवर्तन करना पसन्द करे।

मेरे संशोधन का दूसरा अंश महत्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर ने जो प्रविष्टि प्रस्तावित की है, वह यों है:

"......राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्ध-स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा....... वित्तपोषित........ ऐसी कोई अन्य संस्था।"

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

मैं चाहता यह हूं कि प्रविष्टि का अन्तिम अंश यों हो "ऐसी कोई अन्य तद्‌रूप संस्था"। हम इस प्रविष्टि के द्वारा प्रावधान कर रहे हैं एक खास तरह की संस्थाओं के बार में। राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक तथा भारतीय युद्ध-स्मारक में सभी एक तरह की संस्थाएं हैं। अगर हम प्रविष्टि के अन्तिम अंश में यह नहीं कहते कि 'ऐसी अन्य तद्‌रूप संस्था' तो इसका नतीजा यह होगा कि बिल्कुल भिन्न तरह की अन्य कतिपय संस्थाओं को भी अनजाने इसमें हम शामिल कर लेंगे। इससे यह होगा कि इस प्रविष्टि के अधीन संसद को अन्य संस्थाओं के सम्बन्ध में भी जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित होंगी, चाहे उन संस्थाओं का स्वरूप इनसे बिल्कुल हो और उनके प्रकार्य भी इनसे सर्वथा भिन्न हों विधि बनाने का अधिकार हो जायेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि इस प्रविष्टि के प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए तथा यहां वर्णित संस्थाओं जैसी संस्थाओं तक ही इसे सीमित रखने के लिए यह आवश्यक है कि "any other similar institution" (ऐसी अन्य तद्‌रूप संस्था) कह कर मतलब को बिल्कुल साफ कर दें। निर्वाचन विषयक सिद्धान्त का अभी अभी हवाला दे चुका हूं। निर्वाचन का यह भी एक सिद्धान्त है कि अगर किसी विधि में कुछ विषयों का स्पष्ट उल्लेख है और अन्य में यह कह दिया जाता है कि 'तथा अन्य विषय' तो यहां अन्य विषयों में साधारणत: सभी विषय मान लिये जायेंगे। न्यायालय यही कहेगा कि "अन्य संस्था" शब्दों के रहने से प्रविष्टि की परिधि बहुत व्यापक हो जाती है और प्रविष्टि में वर्णित संस्थाओं से भिन्न संस्थाएं भी इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। गैर कानूनदां व्यक्ति भले ही इस सिद्धान्त को न जानता हो पर हर कानूनदां इससे अच्छी तरह परिचित हैं। इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि प्रयुक्त पद-संहति से अपना मतलब भले ही स्पष्ट हो जाता हो पर अच्छा यही होगा कि यहां इसका और खुलासा हम कर दें ताकि आगे किसी विवाद की गुंजायश न रह जाए। और फिर मेरे सुझाये गये शब्दों को रखने से प्रविष्ट की पूर्णतया भी बनी रहेगी और उसकी व्यापकता भी इतनी बढ़ जायेगी कि उसके अन्तर्गत हम तद्‌रूप अन्य संस्थाओं को शामिल कर सकते हैं। पर अगर "अन्य संस्था" शब्दों को आप इसलिये रख रहे हैं कि इसके अधीन दूसरी तरह की अन्य संस्थाओं को भी शामिल किया जा सके तो मैं यह कहूंगा कि इस रूप में रखने से यह प्रविष्टि बड़ी अस्पष्ट हो जायेगी। तब अच्छा यह होगा कि अन्य संस्थाओं के लिए एक पृथक् प्रविष्टि ही रख दी जाये। इसलिए मैंने जो संशोधन रखा है उसमें सिद्धान्त का प्रश्न निहित है। इस पर विचार कर लेना चाहिए।

संशोधन में तीसरा सुझाव मैंने यह किया है कि "by Parliament" शब्दों के स्थान पर "by or under any law made by Parliament" शब्द रखे जायें। इस

सम्बन्ध में सभा का ध्यान मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 10 की ओर आकृष्ट करूंगा जिसके द्वारा मूल प्रविष्टि 31 के स्थान पर दूसरी प्रविष्टि रखी गई है जो यों है:—"Highways declared to be national highways by or under the law made by Parliament" (राजपथ जिन्हें संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय राज्य-पथ घोषित किया गया है।) यहां संसद द्वारा घोषित तथा संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन घोषित में अन्तर किया गया है। संसद द्वारा घोषित का मतलब यह है कि संसद् सभा में घोषणा कर देगी जबकि संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन घोषित का मतलब यह है कि संसद् दूसरों को ऐसी घोषणा करने का अधिकार प्रदान करेगी और वह घोषणा विधि के अधीन मानी जायेगी। मैंने यह सुझाव इसीलिए दिया है कि संशोधित प्रविष्टि 31 में प्रयुक्त पदसंहति यहां भी रखी जाये। इस पदसंहति को रखने से प्रविष्टि की परिधि और व्यापक हो जायेगी और संसद को स्वयं घोषणा करने की जरूरत न रहेगी बल्कि दूसरे किसी प्राधिकारी को ऐसी घोषणा करने का वह अधिकार दे देगी। और अन्य कई प्रविष्टियों में भी मैंने "by or under law made by Parliament" यही पदसंहति प्रयुक्त देखी है। इसलिए एकरूपता लाने के ख्याल से और इसलिए कि प्रविष्टि की परिधि और व्यापक हो जाये, मैंने यह सुझाव रखा है। अवश्य ही इस सुझाव में कोई परिवर्तन की बात नहीं कही गई है बल्कि केवल मसौदे की रचना में शाब्दिक हेर-फेर करने की बात कही गई है। मैं इसे मसौदा-समिति की मरजी पर छोड़ता हूं वह चाहे जैसा करे। किन्तु मेरा जो दूसरा सुझाव है यानी-अन्य तद्रप संस्था रखने का जो सुझाव है, वह महत्वपूर्ण है और सभा से मैं अनुरोध करूंगा कि वह उस पर विचार करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** इस प्रविष्टि में श्रीमान, हमने कतिपय संस्थाओं का नामोल्लेख किया है और यह कहा है कि ये संस्थायें संघ-सूची में रहेगी। यहां इम्पीरियल वार म्युजियम विक्टोरिया स्मारक जैसी संस्थाओं का नामोल्लेख किया गया है और प्रविष्टि के अन्त में इतना और भी रख दिया गया है:—"तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था"। यदि इस तरह की एक संस्था का प्रश्न होता तो कोई आपत्ति की बात नहीं थी। मेरा ख्याल यह है कि अगर संविधान में इम्पीरियल वार म्युजियम शब्दों को रखा जाता है तो वह स्वतंत्र भारत के लिए शोभा की बात न होगी। संविधान में हम ऐसी बातों का क्यों स्थायी उल्लेख रखें जो हमें उस साम्राज्यवादी शक्ति का स्मरण दिलाती रहेगी। जिसने हमें इतने दिनों तक दासता के पाश में बांध रखा था। मेरा ख्याल यह है श्रीमान, कि संविधान में हमें ऐसी कोई बात रखनी ही नहीं चाहिए जो इस साम्राज्यवादी शक्ति का स्मरण दिलाती हो। इसलिए मेरी समझ से हमें यहां केवल इतना ही रख देना चाहिए कि कुछ संस्थायें भी संघ-सूची में रहेंगी वह संस्थायें कौन होंगी इसको स्पष्ट करने का भारत संसद पर छोड़ दिया जाये। और फिर अगर इन संस्थाओं का नामोल्लेख संविधान में कर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

दिया जाता है तो बाद में चलकर इसमें परिवर्तन करना हमारे लिए बड़ा कठिन हो जायेगा। इसलिए मेरी समझ से बेहतर यह होगा कि संविधान में इनका नामोल्लेख करने के बजाय उन्हें संसद पर छोड़ दिया जाये और वही जैसा चाहे, निर्णय करे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन को मैं क्यों नहीं स्वीकार कर सकता इसे समझाने के लिए अधिक कुछ कहने की जरूरत नहीं है। इस प्रविष्टि के दो अंश हैं। पहले अंश में कपितय खास खास संस्थाओं का जिक्र किया गया है और दूसरे अंश में उन संस्थाओं का जिक्र है जो भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित है। यहां 'similar' (तद्रप) शब्द का रखना सम्भव नहीं है क्योंकि इससे, प्रविष्टि का यह जो उद्देश्य है कि केन्द्रीय शासन किसी संस्था को, जो केन्द्र द्वारा वित्तपोषित है या जिसका वित्तपोषण केंद्र और प्रान्त दोनों मिलकर करते हैं उसे अपने अधीन कर सकता है, वह सीमाबृद्ध हो जायेगा।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन नं. 14 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 39 में—

(1) 'on the date of commencement' शब्दों के स्थान पर 'at the commencement' शब्द रखे जायें।

(प्रस्तावकर्त्ता ने इस पर मत देने के लिए आग्रह नहीं किया)

(2) 'other institution, शब्दों के स्थान पर 'similar other institution', शब्द रखे जायें।

यह संशोधन अस्वीकृत हुआ।

(3) 'by Parliament' शब्दों के स्थान पर 'by or under law made by Parliament' शब्द रखे जायें।

(प्रस्तावकर्त्ता ने इस पर मत देने के लिए आग्रह नहीं किया)

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 39 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'39. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the National Library, the Indian Museum, the Imperial War Museum, the Victoria Memorial, the Indian War Memorial and any other institution financed by the Government of India wholly or in part and declared by law to be an institution of national importance.' "

[39. इस संविधान की प्रारम्भ-तिथि पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्य युद्ध-संग्रहालय, विक्टोरिया-स्मारक, भारतीय युद्ध-स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य अन्य संस्था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 39 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 40

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:

'40. The institution known on the date of commencement of this Constitution as this Benares Hindu University, the Aligarh Muslim University, and the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance.'

[40. इस संविधान की प्रारम्भ-तिथि पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।]"

मैं यह निवेदन करूंगा कि 'university' (विश्वविद्यालय) शब्द यहां गलत है, होना चाहिए 'institution' (संस्था) शब्द। आशा है, इसे बदलने की आप अनुमति देंगे।

कोई बुनियादी परिवर्तन यहां नहीं किया गया है। हां, इतना जरूर है कि इस नई प्रविष्टि के अन्तिम अंश के द्वारा संसद को अन्य किसी संस्था को भी अपने क्षेत्राधिकार में रखने का अधिकार मिल जाता है, जिसे वह राष्ट्रीय महत्व का समझती हो। मूल प्रविष्टि में यह बता नहीं थी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं यह सुझाव देना चाहूंगा कि प्रविष्टि 40-क को भी इसी के साथ पेश कर दिया जाये। दोनों ही प्रविष्टियां एक बात से सम्बन्ध रखती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के बाद यह नई प्रविष्टि 40-क रख दी जाये:

'40A. Institutions for scientific or technical education financed by the Government of India wholly or in part and

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

declared by Parliament by law to be institutions of national importance.'

[40क. भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त-पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पक शिक्षा-संस्थायें।]

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 40 पर कुछ संशोधन आये हैं। संशोधन नं. 162 है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का और उसमें पहली बात यह सुझाई गई है कि "on the date of commencement" शब्दों के स्थान पर "at the commencement" शब्द रखे जायें। इस अंश को यहां रखने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में—

'the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में जो परिवर्तन यहां सुझाया है, उसे देखते हुए मैंने अपने संशोधन में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। मैं यह कहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से केन्द्र के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जायेगा और बहुत-सी संस्थाएं, जो अन्यथा प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में होंगी, वह उनके संशोधन के इन शब्दों के कारण, जिन्हें मैं हटाना चाहता हूं, केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में आ जायेंगी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तो अपने जन्म काल से ही राष्ट्रीय महत्व की संस्थायें माने गये हैं, इसलिए उनको केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखना सर्वथा उचित है। किन्तु "संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" इन शब्दों को रखने से, श्रीमान, केन्द्र के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जायेगा। इस शब्दों के कारण संघ-शासन को इस बात का अधिकार मिल जायेगा कि वह इस तरह की जिस संस्था को चाहे अपने क्षेत्राधिकार में कर लेगा। विश्वविद्यालय, कालिज, या स्कूल से लेकर ग्राम पाठशाला तक को केन्द्र अपने क्षेत्राधिकार में कर सकता है। बुरी-भली हर किसी की चीज़ को अपने क्षेत्राधिकार में रखने की जो सर्वभक्षी प्रवृत्ति केन्द्र की है, वह स्तुत्य भले ही हो, किन्तु मेरी समझ से इससे केन्द्र का बोझ बहुत बढ़ जायेगा, क्योंकि उसके क्षेत्राधिकार

में अनेक विषय आ जायेंगे। इसका प्रभाव यह होगा कि प्रान्त या रियासतों की जिम्मेदारी धीरे-धीरे कम हो जायेगी। उनकी आमदनी कम होती जायेगी और उनकी जिम्मेदारियां भी धीरे-धीरे कम हो जायेंगी। गैर-जिम्मेदारी की मनोवृत्ति उनमें पैदा हो जायेगी और केन्द्र के विरुद्ध शिकायत की भावना उत्पन्न हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्त हर बात की जिम्मेदारी केन्द्र पर थोप देगा।

केन्द्र प्रान्तों के बारे में यह समझता है कि राजनीतिक दृष्टि से वह अभी प्रौढ़ नहीं हो पाये हैं, सुतरां उसकी यह इच्छा कि वह प्रान्तों का अभिभावक रहे, बिल्कुल स्वाभाविक है। किन्तु इससे होगा कि केन्द्र अनावश्यक दायित्व अपने ऊपर ले लेगा, जिससे वह बहुत बोझिल हो जायेगा और उसकी शासन-व्यवस्था बड़ी जटिल हो जायेगी तथा प्रशासन सम्बन्धी विस्तार की बातों में वह दखल देने लगेगा, जो प्रान्तों के देखने की चीज हैं। आखिर प्रान्तों को यह अधिकार तो होना ही चाहिए कि वह अपने कामों की देखभाल करें और इस सिलसिले में अगर भूल करते हैं, तो अनुभव से शिक्षा ग्रहण करें। लोकतंत्रीय अवस्था का विकास इसी तरह होता है। लोकतंत्र की शिक्षा तो अनुभव से हम ही ग्रहण कर सकते हैं, उनको लोकतंत्र की शिक्षा देने का तरीका यह नहीं है कि अभिभावक बनकर केन्द्र उन विषयों को भी अपने क्षेत्राधिकार में कर ले जिन पर प्रान्तों को क्षेत्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। सच तो यह है कि इस सम्बन्ध में अपना यह संविधान, जिसका कि हम यहां निर्माण कर रहे हैं, अंग्रेज़ी हुकूमत से भी आगे बढ़ जाता है और सभी बातों को केन्द्राधीन कर देना चाहता है।

इन शब्दों को रखने से जो खतरे आ सकते हैं, उनको में यहां बता देना चाहता हूं। जहां तक कि दिल्ली विश्वविद्यालय का सम्बन्ध है, हमें यह मान लेना चाहिए कि इस पर केन्द्र को कुछ न कुछ क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिए। पर इस पर तो केन्द्र को पहले से ही क्षेत्राधिकार प्राप्त है। यह विश्वविद्यालय ऐसे क्षेत्र में अवस्थित है, जो केन्द्र प्रशासित क्षेत्र है। इसलिए यह क्षेत्र जब केन्द्र के प्रशासनाधीन है, तो दिली विश्वविद्यालय अवश्य ही केन्द्र के क्षेत्राधिकार में बना रहेगा। पर हम तो उस दिन के आने की अभिलाषा कर रहे हैं, जब दिल्ली विश्वविद्यालय या दिल्ली का सारा प्रदेश ही किसी निगम या प्राधिकारी को सौंप दिया जायेगा। अगर दिल्ली का एक अलग प्रान्त बनाना है, तो दिल्ली विश्वविद्यालय का भार इस नवनिर्मित प्रान्त पर रहेगा, न कि केन्द्र पर।

फिर संशोधन में यह कहा गया है कि–"संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" 'अन्य कोई संस्था' से तो ऐसी भी कोई संस्था अभिप्रेत मानी जा सकती जो शिक्षा-संस्था न हो। अगर हम यह भी मान लेते हैं। कि इस पदसंहति से केवल शिक्षा-सस्थाएं ही अभिप्रेत हैं, तो भी इससे संघ के क्षेत्राधिकार में अनावश्यक विस्तार हो जाता है और प्रान्तों के क्षेत्राधिकार का न्यूनन हो जाता है। अवश्य ही इस प्रवृत्ति को रोकना होगा। आखिर संविधान का मसौदा तैयार रहने के पहिले सभा ने इस मसले पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके ही मूल प्रविष्टि रखने का फैसला किया था। अलग-अलग विषयों के सम्बन्ध में अलग-अलग प्रस्ताव

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

रखे गये थे, जिन पर खूब सावधानी के साथ विचार करने के बाद ही उन प्रस्तावों के अनुसार मसौदा तैयार किया गया था। इन प्रस्तावों के सम्बन्ध में हमने जो निर्णय किया था, उसका हमें सम्मान करना चाहिए। पर यहां हो यह रहा है कि उन निर्णयों की अकारण सर्वथा अवहेलना की जा रही है या उनको धोखा दिया जा रहा है। सभा को यह भी नहीं बताया जा रहा कि पूर्व स्वीकृत प्रस्तावों का, अमुक मात्रा तक और अमुक बात के सम्बन्ध में, उल्लंघन किया जा रहा है। एक मसले के बारे में हमने देखा है कि सरदार पटेल का यह ख्याल था और उनका यह ख्याल बिल्कुल ठीक था कि पूर्वस्वीकृत एक निर्णय को हमें बदलना होगा। सरदार पटेल एक दृढ़ एवं शक्तिशाली व्यक्ति हैं, सुतरां सभा के सामने इस बात को रख देना आपने जरूरी समझा। आपने अपनी सारी बातें सभा के सामने खोलकर रख दीं और पूर्वनिर्णय में नियमानुसार परिवर्तन करा लिया। सभा ने खुशी से उनकी बात मान ली। पर जहां तक इन संशोधनों का सम्बन्ध हैं, इनके द्वारा तो सभा के पूर्वनिर्णयों में आमूल परिवर्तन कर दिया जा रहा है, जिनको सभा ने खूब सोच विचार के बाद ही स्वीकार किया था। इन पूर्व-निर्णयों पर सभा ने जो विचार किया था, उसका पूरा विवरण कार्यवाही की रिपोर्ट में दर्ज हो चुका है। बिना पर्याप्त कारण बताये और सभा को विचार का पूरा मौका दिये बिना ही अब इन निर्णयों में परिवर्तन किया जा रहा है। यह प्रवृति बहुत बुरी है और मैं इसका विरोध करता हूं। मैं पहले भी इसकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट कर चुका हूं। इस प्रवृत्ति का क्या प्रभाव होगा इस पर आशा है, सभा सावधानी के साथ विचार करेगी। आशा है वह इस पर भी विचार करेगी कि इस संशोधन से केन्द्र के दायित्वों का भार कितना बढ़ जाता है। मेरा यह विश्वास है कि केन्द्रीय शासन का शत्रु ही उस पर अपयश लाने के लिये ऐसी व्यवस्था का सुझाव देगा, जिसका सुझाव यहां दिया जा रहा है। किसी भी भावी केन्द्रीय शासन को भारान्वित करने और उसे अप्रिय बनाने के लिये यही सर्वोत्तम और प्रभावकारी उपाय है, जिसका यहां अवलम्बन किया जा रहा है। मेरा ख्याल तो यह है कि हम ऐसा काम कर रहे हैं, जिसे हमारे शत्रु ही करना चाहेंगे। इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। मसौदा समिति या उसके पिट्ठू उतना ही अधिक सर्वभक्षी बनते जायेंगे जितना कि आप उनको देते जायेंगे।

*__सरदार हुकम सिंह:__ मैं अपना संशोधन नहीं पेश करूंगा, क्योंकि उसकी बात इस प्रस्तावित संशोधन में आ जाती है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान:—

"कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 3529 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40 शिक्षा।' "

मैं अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर दूं, श्रीमान?

***अध्यक्षः** पेश कीजिए।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमानः—

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 3529 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जायेः—

'40. All the Universities, advanced scientific research institutes and public and private educational and cultural organisations in the Indian Union shall be subject to the supervision, superintendence, direction and control of the Union Government.' "

[भारतीय संघ के सभी विश्वविद्यालय, समुन्नत वैज्ञानिक-अनुसंधान संस्थाएं तथा सरकारी और गैर-सरकारी शैक्षणिक और सांस्कृतिक संगठन, संघ-शासन के निरीक्षण, अधीक्षण, निर्देशन, और आयंत्रण के अधीन होंगे।]

इस विषय को मैं गम्भीर राष्ट्रीय महत्व का विषय मानता हूं। एक मात्र उपाय, जिससे भारतवर्ष शीघ्र समुन्नति कर सकता है और राष्ट्रसभा में समाहत स्थान प्राप्त कर सकता है, वह यह है कि वह अपने अशिक्षित नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था कर दे। किसी भी शासन व्यवस्था की नींव तब तक सुरक्षित नहीं समझी जा सकती है, जब तक कि राष्ट्रजन शिक्षित न हों। संसदात्मक शासन व्यवस्था के लिए तो यह विशेष रूप से आवश्यक है कि जनता शिक्षित हो। जब तक जनता शिक्षित न होगी, संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था चल ही नहीं सकती है। यहां जो यह खतरा बताया जा रहा है कि केन्द्रीय शासन के हाथ में अधिक अधिकार रहने से प्रशासन की सारी व्यवस्था टूट जायेगी, वह एक दिखावटी खतरा है। अभी हाल तक भारत का शासन एकात्मक व्यवस्था के अधीन केन्द्र द्वारा ही होता रहा है और अंग्रेजों ने बड़े ही वैज्ञानिक ढंग पर खूब सुदक्षता के साथ यहां शासन चलाया है। कोई कारण नहीं है कि एकात्मक शासन व्यवस्था के स्थान पर अब संघात्मक शासन व्यवस्था चालू की जाये। अस्तु, इस समय मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता। संशोधन रखने में मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है—शिक्षा का विषय केन्द्रीय सूची में रखा जाये। प्रान्तों के आर्थिक एवं वैत्तिक साधनों के अनुपात से ही उनको अधिकार मिलने चाहिये। जो अधिकार आप प्रान्तीय शासनों को दे रहे हैं, उन पर अमल करने के लिये उन्हें कितना व्यय वहन करना पड़ेगा, इसका आपने अनुमान नहीं लगाया है। मैं तो यह अच्छी तरह समझ रहा हूं कि जो अधिकार उनको दिये जा रहे हैं, उसके दशमांश को कार्यान्वित करने के लिये भी वह सक्षम नहीं हैं। उनके पास इतना अर्थ नहीं है कि वह उनको कार्यान्वित कर सकें।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

इस विषय पर मैं लम्बी वस्तृता नहीं देना चाहता हूं, श्रीमान। पर अपनी बात खत्म करने से पहले मैं एक बात के लिए अवश्य आग्रह करूंगा। विभिन्न प्रान्तों में एक ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग है, जो भाषा की दृष्टि से वहां अल्पसंख्यक है। उसकी भाषा प्रान्त की भाषा से भिन्न है। प्रान्तों के पास तो इतना पैसा भी नहीं है कि वह अपने उन नागरिकों को, जो वहां चिरकाल से वास करते आये हैं, शिक्षा दे सके। फिर अन्य प्रदेशों से आकर जो भिन्न भाषाभाषी समुदाय वहां बस गया है, उसको उसकी मातृभाषा में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था भला प्रान्त कैसे कर सकते हैं? उनको यह काम सौंपना, उन पर एक ऐसा भार लादना है, जिसका वहन करना उनके लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए मेरा यह दृढ़ मत है कि एकरूपता के ख्याल से तथा उस ख्याल से भी कि शिक्षा का यहां यथाशीघ्र प्रसार हो सके, ठीक यही होगा कि यह विषय केन्द्र के अधीन रखा जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, आपने डॉ. अम्बेडकर को 'university' शब्द के स्थान पर 'institution' शब्द रखने की अनुमति देने की कृपा की है। क्या मैं यह आशा करूं कि ऐसी की कृपा आगे से मुझे भी मिल जायेगी?

***अध्यक्षः** अवश्य।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नम्बर 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में, 'any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

मैं अपना संशोधन नं. 191 को भी इसी समय पेश कर देना चाहता हूं, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने दिया है। उन्होंने प्रविष्टि 40-क को 40 के साथ उपस्थित किया है।

***अध्यक्षः** हां, उसे भी आप अभी पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा यह प्रस्ताव हैः—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 191 में, सूची 1 की प्रस्तावित नई प्रविष्टि 40-क में 'education' शब्द के आगे 'research' शब्द जोड़ दिया जाये।"

पहले मैं अपने प्रथम संशोधन को लेता हूं। संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित संस्थाओं के बारे में—दिल्ली विश्वविद्यालय का मैं जिक्र नहीं कर रहा

हूं, केवल उनके संशोधन के दूसरे अंश की चर्चा कर रहा हूं—जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है, उसको स्वीकार करना, मैं यह महसूस करता हूं कि बड़ा घातक होगा। आशा करता हूं कि सभा इस पर सावधानी के साथ विचार करेगी कि किसी भी संस्था को, जिसे संसद विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे, केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में लाने के लिए क्या एक ऐसे व्यापक प्रावधान का पास करना जरूरी ही है, सभा को मालूम होना चाहिए कि अभी अभी हमने 39 नं. की जो प्रविष्टि पास की है, उसके द्वारा केन्द्र को किसी भी ऐसी संस्था के बारे में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है, जो पूर्णत: या अंशत: भारत सरकार द्वारा वित्तपोषित है और जिसे संसद ने विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया है। किन्तु यह प्रविष्टि तो इससे भी आगे बढ़ जाती है और संघ को ऐसी भी किसी संस्था के सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार दे देती है, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त पोषित हो या चाहे सर्वथा वित्तपोषित ही न हों। देश की ऐसी कई संस्थायें मुझे याद आ रही हैं जो बिना किसी सरकारी साहाय्य के सर्वथा जनता द्वारा सुचारू रूप से संचालित हो रही हैं और स्तुत्य काम कर रही हैं। डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन से तो यही व्यक्त होता है कि मसौदा समिति की सर्वग्राही मनोवृत्ति उग्र से उग्रतर होती जा रही है। यदि सभा उसके इस प्रावधान को स्वीकार कर लेती है, इस संशोधन को मान लेती है, तो मुझे विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं हैं, जब संघ-शासन की यह सर्वग्रासी मनोवृत्ति विकराल रूप धारण कर लेगी और संघ ऐसे क्षेत्रों में भी प्रवेश करने का प्रयास करने लगेगा, जहां शायद देव लोग भी पांव रखने में हिचकेंगे। जिस स्थिति के आने की मैं यहां आशंका प्रकट कर रहा हूं, उसका आना न केवल सम्भव ही है, बल्कि बहुत सम्भव है और मैं नहीं चाहता कि देश में ऐसी स्थिति आये।

इस प्रविष्टि में जिन दो विश्वविद्यालयों का उल्लेख किया गया है—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय—इनमें दोनों ही चूंकि राष्ट्रीय महत्व के हैं इसलिए, या इसलिए कि इनके नामों में साम्प्रदायिकता की छाप लगी है, केन्द्र इन्हें अपने अधिकार क्षेत्र में रख सकता है, ताकि लोगों को यह मालूम हो कि भारत सरकार सर्वथा पक्षपात शून्य है और साम्प्रदायिकता से ऊपर है। जहां तक दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रश्न है, चूंकि यह अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है कि दिल्ली की सांविधानिक स्थिति क्या होगी, शायद उसे भी केन्द्राधीन रखना वांछनीय होगा, पर यहां अनिश्चयात्मक रूप में यह कह देना कि अन्य किसी संस्था को भी संघ-शासन अपने क्षेत्राधिकार में कर सकता है, मेरी समझ से तो ठीक नहीं होगा। इस सम्बन्ध में व्याह्यत्तिमूलक यह प्रावधान जरूर रखा गया है कि केन्द्रीय शासन केवल उन्हीं संस्थाओं को अपने अधिकाराधीन कर सकता है, जिनको संसद विधि द्वारा यह राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे।

[श्री एच.वी. कामत]

किन्तु बात यह है, श्रीमान, आधुनिक युग की संसदें कार्यपालिका के हाथ की कठपुतली बन गई है और कार्यपालिका उनसे जो भी चाहती हैं, पास करवा लेती हैं। यदि शासन के दिमाग में ऐसा आ गया कि अमुक संस्था को अपने प्रशासनाधीन कर लेना चाहिए, तो वह, वह संस्था चाहे शासन द्वारा सर्वथा वित्तपोषित न हो, वह संसद को संकेत दे सकती है और फिर कार्यपालिका के आदेशानुसार संसद उसे राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। फिर उस संस्था को अपने अधिकाराधीन कर केन्द्रीय शासन जैसे चाहे उसका प्रशासन कर सकता है। मेरे मस्तिष्क में ऐसी कुछ योग सम्बन्धी संस्थाएं हैं। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊंगा कि बम्बई में 'कैवल्यधाम' नाम की प्रसिद्ध योगिक संस्था है। हो सकता है, भविष्य में आने वाले किसी शासन को इस संस्था में ही खराबी दिखाई देने लगे और वह इसे अपने अधिकाराधीन कर ले। आज का शासन तो इस संस्था के प्रति पर्याप्त सद्भाव रखता है, पर इस बात का तो कोई भरोसा नहीं है, कि वर्तमान शासन चिरकाल तक बना रहेगा। मान लीजिए, कल एक ऐसा शासन अधिकारारूढ़ हो जाता है, जो प्राचीन संस्कृति का, विशेषत: योग तथा अध्यातम सम्बन्धी बातों के विरुद्ध है। हो सकता है, संसद उसे आज्ञानुवर्तिनी मिल जाये, जिससे इस संस्था को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कराकर शासन इसे अपने अधिकाराधीन कर ले और अन्ततोगत्वा इसे कुचल दे। सभा को मालूम होगा कि हिटलर ने जर्मनी का प्रधान बनते ही प्राकृतिक संस्कृति की शिक्षा देने वाली कई संस्थाओं को बन्द करवा दिया था, क्योंकि...

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ हिटलर ने किसी विधायिनी सूची पर अमल करके ऐसा नहीं किया गया था।

*__श्री एच.वी. कामत:__ हमारे यहां तो लोकतंत्र का आवरण मात्र है, जो और भी बुरी बात है। हिटलर को सम्भवत: अपने खुफिया विभाग द्वारा इस बात की जानकारी हुई थी कि प्राकृतिक संस्कृति की शिक्षा देने वाली संस्थाओं में ऐसे लोग समवेत हुआ करते थे, जो राज्य के लिए अवांछनीय थे और उन संस्थाओं में समवेत होकर वे लोग राज्य के विरुद्ध षडयंत्र की योजना तैयार किया करते थे। सुतरां हिटलर ने इन संस्थाओं को बन्द कर दिया। यही काम हम यहां एक दूसरे तरीके से कर रहे हैं, जो हिटलर के तरीके से भी बुरा है। हिटलर के तरीके के पक्ष में यह तो कहा जा सकता है कि वह एक सीधा तरीका था, जिससे किसी को धोखा नहीं हो सकता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप यह तरीका अपना रहे हैं, पर वैधानिकता और औचित्य का जामा पहना रहे हैं।

*__अध्यक्ष:__ मैं नहीं समझता कि इस मसले पर और अधिक वाद-विवाद की आवश्यकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** अपनी बात मैं एक मिनट में कह दूंगा। आपके निर्णय को मैं शिरोधार्य करता हूं। केवल दो मिनट की अनुमति आपसे चाहता हूं। पर अगर आप ऐसा नहीं चाहते हैं, तो आपकी मरजी पर हूं, आपका आदेश शिरोधार्य करूंगा।

जैसा कि मैंने कहा है, इस प्रविष्टि को रखने से एक तो यह संस्थाएं, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हैं, केन्द्राधीन कर ली जा सकती है और दूसरे वह संस्थाएं भी केन्द्राधीन कर ली जा सकती हैं, जिनके अस्तित्व को शासन अपने हित के प्रतिकूल समझता हो। मेरा ख्याल यह है कि प्रविष्टि 39 से, जिसे कि हम पास कर चुके हैं, हमारा यह मतलब पूरा हो जाता है और उसके अधीन किसी भी संस्था को, जो भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हो, केन्द्राधीन किया जा सकता है। अन्य संस्थाओं को, जो भारत सरकार द्वारा किसी भी मात्रा में वित्तपोषित नहीं है, उन्हें आप केन्द्राधीन न कीजिए और स्वतन्त्रता दीजिये कि वह इस रूप में अपना काम करती रहें, जो राष्ट्रहित के प्रतिकूल न हो।

मुझे एक ही और बात कहनी है, श्रीमान, जो विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में है। अनुसूची की सूची 2 में जो 18वीं प्रविष्टि रखी गई है, उसमें यह कहा गया है:—"शिक्षा, जिसमें सूची 1 की प्रविष्टि 40 में उल्लिखित विश्वविद्यालयों को छोड़कर अन्य विश्वविद्यालय सम्मिलित हैं"। अब जो नया मसौदा सभा के समक्ष रखा जायेगा, उसमें इस प्रविष्टि में परिवर्तन जरूर हुआ करेगा, फिर भी मैं यह महसूस करता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में संघ ने अपने हाथ में इतनी शक्ति ले रखी है, जो आवश्यकता से अधिक है और वांछनीय मात्रा से अधिक है। निजी तौर पर मेरा मत यह है कि वही विश्वविद्यालय सर्वोत्तम विश्वविद्यालय है, जिसमें शासन का कम से कम हस्तक्षेप हो, किन्तु आधुनिक युग में शिक्षा का विषय—इसमें उच्च शिक्षा भी शामिल है—शासनाधीन होता है, इसलिए शासन का हस्तक्षेप इसमें होता ही है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का विनियमन शासन द्वारा हो, इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु विश्वविद्यालय तो वस्तुत: ऐसी संस्थायें हैं, जो विद्या प्रदान करने का एक केन्द्र है। विश्वविद्यालय शासन के हस्तक्षेप से अगर सर्वथा मुक्त नहीं रह सकते हैं, तो इतना जरूर होना चाहिये कि शासन का कम से कम हस्तक्षेप उनके कामों में हो। आजकल न केवल प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों को ही शासन के नियमों से सर्वथा बंधकर चलना पड़ता है, बल्कि उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं यानी विश्वविद्यालयों पर भी शासन का अंकुश बना रहता है। पर इन संस्थाओं की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना और इन्हें शासनाधीन रखना ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में रोड़े अटकाना है, ज्ञान पर ही अंकुश लगाना है। गीता में ज्ञान की महिमा इन शब्दों में व्यक्त की गई है—"न यह

[श्री एच.वी. कामत]

ज्ञानने सद्यशय पवित्रमिह विद्यते"। यानी ज्ञान के समान पवित्र वस्तु दुनिया में और कोई नहीं है।

पर शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को हर बात के लिये शासनाधीन रखकर ज्ञान की पवित्रता को दूषित करने का, उसकी मर्यादा को नष्ट करने का वहां प्रयास किया जा रहा है। मैं तो यही आशा करता हूं, श्रीमान, कि जहां तक विश्वविद्यालयों का सम्बन्ध है, इन तीन विश्वविद्यालयों के सिवाय, जिनका वहां उल्लेख किया गया है, अन्य सभी विश्वविद्यालयों के विनियमन का काम भी प्रादेशिक सरकारों के हाथ में ज्यादा न दिया जायेगा। पर प्रस्तुत प्रविष्टि में जो प्रावधान रखा जा रहा है, वह बड़ा ही व्यापक प्रावधान है, क्योंकि इसके अनुसार तो अन्य कोई भी संस्था केन्द्राधीन की जा सकती है। इस प्रावधान को मैं बड़ा घात्मक समझता हूं और आशा करता हूं कि सभा इसे न स्वीकार करेगी। आशा है, सभा प्रविष्टि के केवल इस अंश को ही स्वीकार करेगी, जिसमें काशी, अलीगढ़ तथा दिल्ली के विश्वविद्यालयों का उल्लेख है ओर शेष भाग को अस्वीकार कर देगी। मुझे इस बात की भी आशा है कि अनति दूर भविष्य में ही काशी तथा अलीगढ़ के विश्वविद्यालयों के नाम के साथ जो साम्प्रदायिक पुछल्ला लगा हुआ है, वह जाता रहेगा।

जहां तक कि मेरे दूसरे संशोधन का यानी संशोधन नं. 191 का सम्बन्ध है, मुझे मालूम नहीं है कि सूची में कहीं इस तरह के अनुसंधान के लिए प्रावधान रखा गया है या नहीं। अनुसंधान के लिए प्रावधान जरूर रखा गया है, पर वैज्ञानिक तथा टैकनिकल अनुसंधान के लिए प्रावधान रखा गया है या नहीं। यह मैं निश्चित रूप से नहीं जानता। यदि इसके लिये प्रावधान है, तो अपना संशोधन मैं वापिस ले लूंगा। पर अगर इसके लिये कोई प्रावधान नहीं रखा गया है, तो मैं यह जरूर चाहूंगा कि प्रविष्टि 40-क में यह प्रावधान भी सम्मिलित कर दिया जाये।

इन शब्दों के साथ मैं अपने 188 और 191 नं. के संशोधनों को पेश करता हूं और सभा से उनको स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. देशमुख, आप अपना संशोधन उपस्थित करना चाहते हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** हां, श्रीमान।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूंः—

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40-क में, 'any other University' (अन्य कोई विश्वविद्यालय)

शब्दों के आगे 'academy or institution' (विद्यापीठ या संस्था) शब्द रखे जायें।"

और इस संशोधन के परिणामस्वरूप अपना संशोधन नं. 190 भी पेश करना चाहूंगा, जो यों है:—

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 19 को हटा दिया।"

इन संशोधनों को मैं क्यों पेश कर रहा हूं, इसका कारण बिलकुल सरल सा है। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर की निजी राय यही थी कि 'University' शब्द के स्थान पर यहां 'institution' शब्द रखा जाना चाहिए। पर जिस संशोधन को मैंने प्रस्तावित किया है, उसमें 'university' शब्द को रखने की और उसके आगे 'academy or institution' शब्दों को जोड़ने की बात की गई है। अगर ये दोनों शब्द यहां जोड़ दिये जाते हैं, तो फिर प्रविष्टि में यह बताने की जरूरत नहीं रह जायेगी कि किस तरह की संस्थाएं संघ के क्षेत्राधिकार में आयेंगी और उस सूरत में आप इस लम्बी तथा अनावश्यक प्रविष्टि 40-क को भी हटा सकते हैं। संस्था (institution) शब्द के अन्दर वैज्ञानिक संस्थाएं, टेकनिकल संस्थायें तथा अनुसंधान सम्बन्धी संस्थायें ये सभी शामिल की जा सकती हैं। उस सूरत में संस्थाओं का विशेष रूप से वर्णन करने की और विस्तार की बातों को रखने की जरूरत न रह जायेगी और न यही कहने की आवश्यकता रह जायेगी कि संस्थायें भारत सराकर द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित हों। मेरे सुझाये गये शब्दों को रखने से प्रविष्टि सम्यक रूप से व्यापक बन जायेगी और हमारा जो भी उद्देश्य है, वह उससे पूरा हो जायेगा। 'यूनिवर्सिटी' शब्द का रहना भी यहां आवश्यक है। आपने ख्याल किया होगा, श्रीमान, कि आज ही सबेरे डॉ. जयकर ने यह सुझाव रखा था कि विश्वविद्यालयों की शिक्षण-व्यवस्था को केन्द्र को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। हमें इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। यदि राष्ट्रीय महत्व के विश्वविद्यालय या विद्यापीठ हैं, तो उनके लिए यह व्यवस्था होनी चाहिए कि संघीय-शासन उनको अपने हाथ में ले सके।

माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद तथा श्री कामत इस प्रविष्टि के अभिप्राय से बहुत आगे चले गये हैं और इन्होंने इसके निर्माताओं की नीयत पर ऐसे संदेह किये हैं, जो सर्वथा निराधार हैं। श्री कामत को इसमें एक दुरभिसन्धि की गन्ध मिल रही है, जबकि तथ्य यह है कि यहां ऐसी कोई बात नहीं है। इस प्रविष्टि से कार्यपालिका को कोई शक्ति नहीं मिलती है। मुझे तो बड़ा आश्चर्य यह हुआ है इस बात का कि इन लोगों को भावी संसद पर भी विश्वास नहीं है। हमें इस प्रविष्टि को लेकर कोई आशंका नहीं करनी चाहिए। इस अनुसूची में सभी प्रविष्टियां इसी उद्देश्य से रखी गई हैं कि उनमें वर्णित विषयों के सम्बन्ध में सारा अधिकार संसद को प्राप्त रहे और इस आशंका का कोई कारण नहीं है, कोई औचित्य नहीं है कि कार्यपालिका संस्थाओं को अपने हाथ में कर लेगी। केन्द्रीय शासन को

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

तो इस बात की फिक्र न होगी कि वह इन संस्थाओं को अपने अधीन कर ले। बल्कि खुद संस्थायें ही इसके लिए फिक्रमन्द रहेंगी कि केन्द्र उनको अपने हाथ में ले। यह सारी आशंकायें, जो मित्रों ने यहां व्यक्त की हैं, यह सर्वथा निराधार हैं और उनकी चर्चा करना सर्वथा अप्रासंगिक है।

मेरे संशोधन से स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और अगर माननीय डॉ. अम्बेडकर कृपया मेरी बातों पर जरा ध्यान दें, तो मुझे विश्वास है कि वह इस बात से सहमत हो जायेंगे कि मेरे संशोधन को मान लेने से अन्य और प्रविष्टि रखने की जरूरत न रह जायेगी और न भिन्न-भिन्न तरह की संस्थाओं के उल्लेख की जरूरत रह जायेगी। इसके प्रतिकूल अगर प्रविष्टि 40-क की सभी संस्थाओं को आप यहां रखते भी हैं, तो उसके अन्तर्गत कला सम्बन्धी संस्थाएं नहीं शामिल की जा सकती हैं। यहां आप वैज्ञानिक तथा टेकनिकल संस्थाओं का उल्लेख कर रहे हैं, पर कला सम्बन्धी संस्थायें इनसे बिल्कुल भिन्न हैं और वह संस्थायें इसके अन्दर नहीं आ सकती हैं। इसलिये अगर आप मेरे सुझाये इन तीन शब्दों को रख लेते हैं, तो इससे प्रविष्टि पर्याप्त रूप से व्यापक हो जायेगी और आपका सम्पूर्ण प्रयोजन और अच्छी तरह सिद्ध हो जायेगा। आशा है, माननीय डॉ. अम्बेडकर कम से कम एक बार तो तर्क संगत प्रवृत्ति अपनायेंगे और इस संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के दो संशोधन हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं उनको नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

***अध्यक्षः** तो अब और कोई संशोधन नहीं रह गया।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं बोलना चाहता हूं। मुझे इसका विरोध करना है।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है। पर तीन मिनट से ज्यादा समय न लीजियेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** प्रविष्टि जिस रूप में रखी गई है, उसका प्रयोजन ही यह है कि इन विश्वविद्यालयों पर, जिनका यहां उल्लेख है, केन्द्रीय नियंत्रण रहे किन्तु मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान, कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का जो विषय है, वह केन्द्रीय सूची में रहना चाहिये। इस महत्वपूर्ण विषय पर देश भर में पर्याप्त रूप से वाद-विवाद और विचार किया जा चुका है। देश के इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड नामक निकाय भी इस पर अच्छी तरह विचार किया है और वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा को केन्द्रीय सूची में रखना चाहिए। इसलिए मैं यह समझता हूं कि हमें यहां केवल इन्हीं तीन विश्वविद्यालयों का उल्लेख नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इस मन्तव्य का कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का विषय संघ-सूची में रहना चाहिए, समर्थन देश के बहुसंख्यक लोग कर रहे हैं। तथ्य तो यह है कि विश्वविद्यालयों से आये बहुसंख्यक प्रतिनिधि भी इसी मन्तव्य के पक्ष में हैं।

वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों को प्रान्तीय सूची में रखा गया है और उन पर प्रान्तीय शासकों का नियंत्रण है। अगर विश्वविद्यालयों के बीच एकसूत्रता स्थापित हो जाये और अलग-अलग विद्यालय अलग-अलग विषयों की शिक्षा में विशेषता प्राप्त कर लें, तो इससे शिक्षा तथा अनुसंधान के काम में बहुत प्रगति हो जायेगी। और खर्च में भी बड़ी किफायत हो जायेगी। मैं जानता हूं कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में, यह है कि खास-खास कालेज खास-खास विषयों की ही विशेष शिक्षा देते हैं। इसलिये अगर यहां भी सही विश्वविद्यालय केन्द्राधीन पर दिये जायें, तो समुचे देश में एक सुव्यवस्थित योजना के आधार पर शिक्षा का काम होने लगेगा। आजकल विश्वविद्यालयों में शिक्षा के काम में बड़ा दोहरा काम हो रहा है, जिससे राष्ट्र के धन और समय की बर्बादी हो रही है। इस विषय को केन्द्राधीन कर देने से यह फायदा होगा कि विश्वविद्यालयों के बीच एकसूत्रता स्थापित हो जायेगी और उनका नियंत्रण और अच्छी तरह होने लगेगा, जिससे राष्ट्र के एकीकरण को बड़ी सहायता मिल सकेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह देखता हूं कि माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद तथा डॉ. देशमुख यहां परस्पर विरोधी सुझाव रख रहे हैं। एक साहब यह चाहते है कि 'academy' शब्द को जोड़कर इस प्रविष्टि की परिधि को और व्यापक बना दिया जाये। दूसरे साहब यह चाहते हैं कि "दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" शब्दों को हटाकर प्रविष्टि की परिधि को सीमित कर दिया जाये।

जहां तक कि डॉ. देशमुख के संशोधन का संबंध है, 'academy' शब्द को जोड़ना मुझे सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि यहां जो 'institution' (संस्था) शब्द रखा गया है, वह इतना व्यापक है कि उसके अन्दर विश्वविद्यालय और 'academy' (विद्यापीठ) दोनों ही आ जाते हैं। इसलिए उस शब्द को यहां जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि "दिल्ली विश्वविद्यालय" शब्दों को यहां रखने से वर्तमान स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता है। जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, दिल्ली विश्वविद्यालय तो पहिले से ही केन्द्रीय विधान-मण्डल के अधिकार-क्षेत्र में है क्योंकि यह विश्वविद्यालय दिल्ली के प्रान्त में अवस्थित है, जो एक कमिश्नर के अधीन है और जिसके बारे में विधिनिर्माण का अधिकार है केन्द्रीय विधान-मण्डल को। इसलिए "दिल्ली विश्वविद्यालय" शब्दों को रखने से वर्तमान व्यवस्था से कोई अन्य नहीं आता है। "संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था" शब्दों को रखना मेरी समझ से वांछनीय है, क्योंकि और बहुत ऐसी संस्थाएं भी हो सकती हैं, जो संस्कृति तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से सार्वदेशिक महत्व रखती हों, पर उनकी आर्थिक स्थिति और संस्थाओं की तरह सुदृढ़ न हो और उनके लिए केन्द्रीय सहायता पाना अपेक्षित हो। इस स्थिति को देखते हुए मेरी समझ से प्रविष्टि के दूसरे अंश का

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रखना भी आवश्यक है। इसलिए मैं उनके संशोधन को मानने के लिए तैयार नहीं हूं।

अब मैं माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को लेता हूं, जिसमें उन्होंने "research institution" (अनुसंधान संस्था) शब्दों के जोड़ने का सुझाव दिया है। अनुसंधान संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली प्रविष्टि 57-क पर जो संशोधन मैंने भेजा है, उसे वह भूल गये हैं या शायद उसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जा पाया है। अवश्य ही उस प्रविष्टि में केवल एकसूत्रता तथा मान निर्धारण की ही बात कही गई है। शायद श्री कामत का मतलब यहां उन अभिकरणों से है, जो प्रान्तीय शासनों द्वारा स्थापित किये गये हैं और आप उनके सम्बन्ध में यह वांछनीय समझ रहे हैं कि उनको केन्द्राधीन कर दिया जाये। पर मेरा ख्याल है कि हर तरह की संस्थाओं को केन्द्राधीन करके केन्द्र को बोझिल बनाने की जरूरत नहीं है। जैसाकि मैंने कहा है, अगर प्रविष्टि 57-क को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारे सारे प्रयोजन सिद्ध हो जायेंगे क्योंकि उससे केन्द्र को इस बात का अधिकार मिल जायेगा कि विधि द्वारा वह वैज्ञानिक तथा टैकनिकल संस्थाओं में एकसूत्रता स्थापित कर सकें और उनमें दी जाने वाली उच्च शिक्षाओं का मान निर्धारण कर सके। मेरी समझ से फिलहाल इससे हमारा काम अच्छी तरह चल जायेगा।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहले लिये जाते हैं संशोधन नं. 16 और 17, जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इन दोनों संशोधनों को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से दोनों संशोधन वापस लिये गये।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन नं. 162 को लेता हूं। प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में—

'and the Delhi University and any other University declared by Parliament by law to be an institution of national importance'

(दिल्ली विश्वविद्यालय तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई सस्था) शब्द हटा दिये जायें।' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में 'and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance' (तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित अन्य कोई संस्था) शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40 में 'any other university' शब्दों के बाद 'academy or institution' शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40. The institutions known on the date of commencement of this Constitution as the Benares Hindu University, the Aligarh Muslim University, and the Delhi University and any other institution declared by Parliament by law to be an institution of national importance.' "

[40. इस संविधान की प्रारम्भ तिथि पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 40 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

***अध्यक्षः** अब प्रविष्टि 40-क पर मत लिया जायेगा। इस पर श्री कामत का एक संशोधन है-संशोधन नं. 191।

प्रश्न यह है:-

"संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 19 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 40-क में 'education' शब्द के आगे 'and research' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रविष्टि 40-क पर मत लिया जाता है।

प्रस्ताव यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 40 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'40.A. Institutions for scientific or technical education financed by the Government of India wholly or in part and declared by Parliament by law to be institutions of national importance.' "

[40. भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पक शिक्षा संस्थाएं।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 40-क संघ-सूची में शामिल की गई।

(प्रविष्टि 40-क तथा 40-ख से सम्बन्ध रखने वाला संशोधन नं. 18 तथा संशोधन नं. 3530, 3531 और 3532 पेश नहीं किये गये।)

नई प्रविष्टि 40-ख

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): इस विषय के बारे में मैं अपने मित्रों से परामर्श करना चाहता हूं। इसलिए मैं चाहता यह हूं कि इसे अभी स्थगित रखा जाये।

प्रविष्टि स्थगित रखी गई।

प्रविष्टि 41

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमानः—

"कि सूची एक की प्रविष्टि 41 में 'and Zoological' (तथा प्राणिकीय) शब्दों के स्थान पर 'Zoological and Anthropological' (प्राणिकीय तथा नरतत्वीय) शब्द रखे जायें।"

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि संशोधित सूची 1 (षष्ठम सताह के संशोधन नं. 20 के सम्बन्ध में सूची 1 की प्रविष्टि 41 में 'Zoological ' शब्द के स्थान पर 'Zoological Anthropological and Ethnological' शब्द रखे जायें।"

मुझे खुशी है, यह देखकर कि इस प्रविष्टि में सम्पूर्ण नक्षत्र लोक के समस्त जीवधारियों का उल्लेख आ गया है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है

कि अचेतक बोलकर दुनिया में कोई चीज नहीं है। हर चीज में जीव है। चाहे प्रत्यक्ष हो, छिपा हुआ हो, पर जीव सबमें विद्यमान है।

***एक सदस्यः** आधुनिक विज्ञान ने यह बात नहीं बतलाई है, बल्कि यह तो एक प्राचीन तथ्य है।

***श्री एच.वी. कामतः** हमारे दर्शन शास्त्र का यह मत है:—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेहनान्यास्ति किंचन।"

आधुनिक विज्ञान का भी यही मत है कि विश्व के पदार्थों में प्राण विद्यमान है। पर कहीं हमें वह दिखाई देता है, कहीं नहीं। "Geological" (भूतत्वीय) से अभिप्रेत है वह पदार्थ, जिन्हें हम साधारण बोलचाल की भाषा में अचेतन पदार्थ कहते हैं। पर इन पदार्थों में भी प्राण वर्तमान हैं पर हम उसे देख नहीं पाते हैं। इसके बाद आते हैं वानस्पतिक पदार्थ यानी पौधे वगैरह, जिनमें जीवन का कुछ-कुछ प्रत्यक्ष आभास मिलने लगता है। इससे कुछ ऊंचा स्तर है प्राणकीय पशुओं का, जिनमें जीवन है और जिनमें अन्तर्जात प्रवृत्ति के सहारे मस्तिष्क या बुद्धि का प्रारम्भिक विकास हो गया है। डॉ. अम्बेडकर 'Zoological' (प्राणकीय तत्व) पद संहति के अन्दर मनुष्य को शायद इसलिए शामिल नहीं करना चाहते हैं कि ऐसा करना माननीय प्रतिष्ठा के लिए अशोभनीय होगा। 'Zoology' यानी जन्तु शास्त्र के अन्दर सारा पशु सम्प्रदाय आ जाता है और मनुष्य को भी एक सामाजिक राजनैतिक और दार्शनिक पशु ही कहा गया है, पर यह जरूर है कि पशु से उसका स्तर बहुत ऊंचा माना गया है। शायद डॉ. अम्बेडकर यह समझते हैं कि मनुष्य को एक अलग श्रेणी में यहां रखना चाहिये। मैं नहीं जानता कि 'anthropology' (नरतत्वीय) के अन्दर 'ethnology' यानी नृवंश विद्या भी शामिल है या नहीं। कई सदस्यों को यह मालूम है कि कई साल पहले अंग्रेजी अमलदारी में इस देश में इस बात की छानबीन की गई थी कि यहां प्रजाति और मूलवंश के हिसाब से कहां कितनी आबादी है। उक्त मापजोख के फलस्वरूप जो आंकड़े उपलब्ध हुए हैं, वह इतिहास विषयक कई पुस्तकों में दिये हुए हैं। मैं नहीं कह सकता कि नरतत्वीय विज्ञान (anthropology) में नृवंशविज्ञान (ethnology) भी आ जाता है या नहीं। मसौदा समिति के विज्ञ सदस्य अगर मुझे इसका विश्वास दिला दें कि नरतत्वीय विज्ञान में नृवंश विज्ञान शामिल है, तो मैं अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं करूंगा। पर नृवंश विद्या भी मानव की एक महत्वपूर्ण शाखा है और अगर इस प्रश्न के बारे में जरा भी संदेह है, तो मैं अपने संशोधन को रखने के लिए जरूर आग्रह करूंगा और उसे स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** 'anthropology' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है और उसके अन्दर 'ethnology' भी शामिल है।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 41 में 'geological' शब्द को हटा दिया जाये और सूची 3 में एक नई प्रविष्टि के रूप में 'the geological surveys' शब्द रखे जायें।"

'Geological' शब्द को मैं संघ-सूची से इसलिए हटाना चाहता हूं कि केन्द्र ने अतीत में हमेशा इस महत्वपूर्ण विषय की उपेक्षा की है। देश में अगाध खनिज सम्पत्ति भरी पड़ी है और बहुमूल्य खनिज पदार्थ भूगर्भ में यहां छिपे पड़े हैं, किन्तु भारत सरकार ने उनका पता लगाने की कभी कोई तकलीफ नहीं की। यदि भारत सरकार ने अतीत में पर्याप्त संख्या में भूगर्भ वेत्ताओं को नियुक्त करके देश के सभी भागों में भूगर्भ में पड़ी सम्पत्ति की छानबीन कराई होती, तो हमें इतनी खनिज सम्पत्ति मिलती कि वह हमारी खपत के लिए भी काफी होती और बहुत कुछ हम दूसरे देशों को भी भेज सकते थे। हमारा देश और सम्पन्न हो गया होता।

भारत सरकार की यह एक प्रथा बन गई थी कि हर पांचवे साल कुछ भूगर्भवेत्ता विभिन्न प्रान्तों में भेज दिये जाते थे, जो तीन महीने तक वहां छिपे खनिज के सम्बन्ध में छानबीन करते थे और तीन महीने के बाद वापस लौट आते थे। पांच साल के बीतने पर फिर इस रस्म का पालन कर दिया गया था। अगर भूगर्भवेत्ताओं को अपने अनुसंधान के सिलसिले में किसी खनिज पदार्थ का पता भी लग जाता था, तो उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि व्यावसायिक दृष्टि से वह खनिज उपयोगी हो सकता है या नहीं। शायद भारत सरकार के पास पर्याप्त संख्या में भूगर्भवेत्ता नहीं थे या शायद यह विभाग दक्षतापूर्वक काम नहीं करता था, जिससे इस काम में उपेक्षा होती रही है। कई प्रान्तीय सरकारों ने इस बात की शिकायत भी की है और अगर यह विषय प्रान्तीय सूची में रख दिया जाये, तो इस काम के लिए वह अपने भूगर्भवेत्ता नियुक्त करने को तैयार है। मैं मसौदा समिति से अनुरोध करूंगा कि वह इस मसले पर विचार करे। ऐसा करना देशहित के लिए अच्छा होगा और जब भारत सरकार देश के मूल्यवान खनिज पदार्थों को निकालने नहीं जा रही है, तो अच्छा यह होगा कि इस विषय को प्रान्तों के हवाले कर दिया जाये, जो इसके लिए उत्सुक हैं। मैं यह भी बता दूंगा कि जहां भी छानबीन के लिए भूगर्भवेत्ताओं का दल गया, वहां ही उन्हें मूल्यवान खनिज पदार्थ जमीन में छिपे मिले, पर व्यावसायिक प्रयोजनों के लिए उनको विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया। इसलिए मैं इस बात का प्रबल आग्रह करूंगा कि इस विषय को संघ-सूची से हटाकर प्रान्तीय सूची में रख दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र सिधवा ने अपनी वक्तृता में बहुत शिकायत तो इस बात की है कि अतीत में केन्द्रीय शासन ने खनिज पदार्थों के पता लगाने के काम में बड़ी उदासीनता दिखाई है और हमेशा उसकी उपेक्षा की है। मैं यह मानता हूं कि केन्द्रीय शासन इस मसले की अब तक उपेक्षा

ही करता रहा है किन्तु इसका मतलब यह नहीं हुआ कि प्रान्तीय सरकारें इस मसले में केन्द्रीय शासन से कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेंगी ही।

पहली बात तो यह है कि यह काम बहुत बड़ा है, जिसमें एक अपार राशि खर्च हो जायेगी और मैं नहीं समझता कि प्रान्त अपने इलाके में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों के विकास के लिये जो व्यय अपेक्षित होगा, उसे वह जुटा सकेंगे। इस दृष्टिकोण से, इस विषय को समनुवर्ती सूची में देने से, ताकि प्रान्तों को इनके बारे में विधि निर्माण का अवसर मिल सके, मुझे तो कोई लाभ नहीं दिखाई देता।

फिर इस संशोधन को स्वीकार करने में मुझे दूसरी कठिनाई यह दिखाई देती है कि संघ-सूची में एक प्रविष्टि इस आशय की रखी जा चुकी है कि देश के खनिज साधनों के विकास का काम केन्द्र के हाथ में होगा। यदि यह विषय समनुवर्ती सूची में रखा जाता है और प्रान्तों को भी इसके बारे में कानून बनाने का अधिकार रहता है, तो फिर संसद जो कानून खनिज विकास के सम्बन्ध में बनायेगी, उनको कार्यान्वित करने में केन्द्र को बड़ी दिक्कत होगी। इसलिये सिधवा साहब से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह इस प्रविष्टि को यहां यों ही रहने दें।

***अध्यक्षः** तो अब मैं संशोधनों पर मत लिए लेता हूं। पहिला संशोधन जिस पर मत लिया जाता है वह है, श्री कामत का संशोधन।

***श्री एच.वी. कामतः** चूंकि डॉ. अम्बेडकर साहब मुझे यह विश्वास दिला रहे हैं कि 'anthropological' शब्द के अन्दर 'ethnology' भी शामिल है, मैं उनके संशोधन को मान लेता हूं और अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं करूंगा।

सभा की अनुमति से उन्होंने अपना संशोधन वापस लिया।

***अध्यक्षः** अब आता है श्री सिधवा का संशोधन।

***श्री आर.के. सिधवाः** डॉ. अम्बेडकर ने जो आश्वासन यहां इस सम्बन्ध में दिया, उसे देखते हुए मैं अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:–

"कि प्रविष्टि 41 यथा संशोधित रूप में सूची 1 का अंश मानी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 41 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 42

*__अध्यक्षः__ प्रविष्ट 42 पर मैं कोई संशोधन नहीं देख रहा हूं।

प्रविष्टि 42 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 43

*__अध्यक्षः__ अब हम प्रविष्टि 43 को लेते हैं। डॉ. अम्बेडकर इस पर एक संशोधन पेश कर रहे हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 43 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

43. Acquisition or requisitioning of property for the purposes of the Union.'

[43. संघ के प्रयोजनों के लिये सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।]"

सदस्यगण यह देखेंगे कि मूल प्रविष्टि में इनके साथ और भी कई शब्द 'the principles of compensation' इत्यादि रखे गये थे। अब सोचा यह गया है कि इन शब्दों को एक नई प्रविष्टि के रूप में समनुवर्ती सूची में रख दिया जाये। इसलिए इन शब्दों को यहां रखना अब आवश्यक है। समनुवर्ती सूची में प्रविष्टि 35 में यह बातें रखी जायेंगी।

*__श्री श्यामनन्दन सहाय__ (बिहारः जनरल): मैं एक सुझाव रखना चाहता हूं श्रीमान।

*__अध्यक्षः__ जरा रुक जाइये। इस पर एक संशोधन पेश किया जाने को है।

*__श्री श्यामनन्दन सहायः__ संशोधन के पेश किये जाने के पहले ही मैं अपना सुझाव रख देना चाहता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस प्रविष्टि का बड़ा गहरा सम्बन्ध होगा अनुच्छेद 24 की इबारत से। इनलिये मेरा सुझाव यह है कि इस प्रविष्टि पर तब तक विचार न किया जाये, जब तक कि अनुच्छेद 24 को हम न पास कर लें। यह दलील पेश की जा सकती है कि संघ द्वारा सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण होगा ही, सुतरां इस बात को हमें किसी न किसी प्रविष्टि में कहीं रखना ही होगा। मैं यह मानता हूं कि यह एक जरूरी बात है और इसे हमें एक न एक प्रविष्टि में रखना ही होगा। पर मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 24 को पास कर लेने पर हम ऐसी स्थिति में होंगे कि प्रविष्टि की इबारत को और अच्छी तरह सोच समझकर तैयार कर सकेंगे, क्योंकि हो सकता है कि अनुच्छेद 24 के अनुसार राज्यों में भी सम्पत्ति अधिग्रहण करने के लिए केन्द्र को अधिकार देना आवश्यक हो जाये। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि अभी इस प्रविष्टि पर

विचार तब तक के लिए रोक दिया जाये, जब तक कि अनुच्छेद 24 को यहां न पास कर लिया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं यह कहता हूं कि ऐसा करना अनावश्यक है क्योंकि इसके लिए सिद्धान्त निर्धारित करने का अधिकार तो हर सूरत में विधान-मण्डल को ही देना होगा। सवाल यह है कि क्या सिद्धान्त निर्धारण के बारे में एक पृथक् प्रविष्टि केन्द्रीय सूची में रखी जाये और एक पृथक् प्रविष्टि प्रान्तीय सूची में रख्शी जाये? सोचा यह गया है कि केन्द्र तथा प्रान्त दोनों के लिए एक प्रविष्टि होनी चाहिए और वह रहनी चाहिए समनुवर्ती सूची में। इसलिए अनुच्छेद 24 के बारे में चाहे जो भी निर्णय हो, सिद्धान्त निर्णय के बारे में इस प्रविष्टि को कहीं ना कहीं तो रखना ही होगा। यदि माननीय मित्र को इस प्रविष्टि को समनुवर्ती सूची में रखने पर आपत्ति है, तो बात दूसरी है अन्यथा इस प्रविष्टि पर विचार स्थगित रखने का कोई मतलब नहीं है।

*__श्री श्यामनन्दन सहायः__ मैं सोच रहा था ऐसी परिस्थिति के बारे में, जब कि राज्य द्वारा सम्पत्ति अधिग्रहण के लिए भी सिद्धान्त का विनिश्चयन केन्द्रीय संसद को ही करना हो।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ ठीक यही बात है। माननीय मित्र यह देखेंगे कि समनुवर्ती सूची में इसे रखने से यह होगा कि केन्द्र को भी इसके बारे में सिद्धान्त विनिश्चियन का अधिकार रहेगा।

*__श्री श्यामनन्दन सहायः__ मैं समझ रहा हूं। पर आप कह रहे हैं कि ऐसा करने से 'केन्द्र को भी अधिकार रहेगा'। मेरा कहना यह है कि.........

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मेरा कहना यह है कि 'Principles' इत्यादि शब्दों को यहां से हटाकर समनुवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 में हम रख देना चाहते हैं। यदि माननीय मित्र संघ-सूची की प्रविष्टि 43 और राज्य-सूची की प्रविष्टि 9 को मिलाकर पढ़ें, तो उन्हें पता चलेगा कि दोनों की इबारत एक है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि दोनों के द्वारा न केवल सम्पत्ति अधिग्रहण का अधिकार मिलता है, बल्कि उसके लिए सिद्धान्त निर्धारित करने का भी अधिकार प्राप्त हो जाता है। बजाय इसके लिए सिद्धान्त निर्धारण का अधिकार देने के लिए संघ-सूची और राज्य-सूची में दो प्रविष्टियां अलग-अलग रखी जायें, सोचा यह जा रहा है कि 'Principles' इत्यादि शब्दों को यहां से हटाकर उन्हें समनुवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 में रख दिया जाये।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ अनुच्छेद 24 को पास करने तक यदि इस प्रविष्टि पर विचार स्थगित ही रखा जाये, तो उसमें आखिर हर्ज क्या है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ इस पर विचार स्थगित रखने में कोई लाभ नहीं है। मैं इस पर विचार स्थगित रखने के पक्ष में नहीं हूं। इस मसले पर विचार करने में बहुत समय लिया जा चुका है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 21 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 43 में 'of Property' शब्दों के आगे 'according to law of the Union' शब्द रखे जायें।"

जो बहस मुबाहिसा यहां हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि जहां तक कि मुआविजे या सम्पत्ति के अधिग्रहण के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, यह मानी हुई बात है कि उसके बारे में केन्द्रीय विधान-मंडल की विधि बनायेगा। इस संशोधन का प्रस्ताव मैं इस उद्देश्य से रख रहा हूं, यह बात साफ हो जाये और इसके बारे में शक की कोई भी गुंजाइश न रह जाये। मुआविजा क्या हो या मुआविजा दिया जाये या नहीं, इस तरह का कोई सवाल इसमें नहीं उठाया गया है। संसद को इसका अधिकार रहना चाहिए कि समयानुसार वह इन सब बातों का निश्चय करे। पर संसद के अधिकारों को या संघ की विधि-निर्माण सम्बन्धी शक्ति का यहां उल्लेख किये बिना प्रविष्टि को इस रूप में रखना ठीक नहीं होगा। मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन से प्रविष्टि का मतलब बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा और आगे चलकर इसके कोई दो अर्थ नहीं लगाये जा सकेंगे, जिससे कि कठिन स्थिति पैदा हो सके। इसलिए आशा है कि मेरा संशोधन, जिसमें यह साफ तौर पर कह दिया गया है कि "सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण संसद निर्मित विधि के अधीन ही होगा, न कि मनमाने ढंग पर" सभा द्वारा अवश्य स्वीकार किया जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसको कोई जरूरत नहीं है। इस प्रविष्टि में विधायिनी शक्ति का ही तो प्रावधान किया गया है। फिर 'according to the law of the union (संघ की विधि के अनुसार)' शब्दों को रखने से फायदा क्या? प्रविष्टि के अनुसार संघ को विधि बनाने की शक्ति प्राप्त रहेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** फिर मैं अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 43 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'43. Acquisition or requisitioning of property for the purposes of the Union.'

[संघ के प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 43 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 44 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 45 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 46 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 47

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 47 पर एक संशोधन है, जो श्री सन्थानम के नाम से है। पर चूंकि श्री सन्थानम उसे पेश नहीं कर रहे हैं, इस प्रविष्टि पर मैं अब सभा का मत लिये लेता हूं।

प्रविष्टि 47 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 48

प्रविष्टि 48 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 49

***अध्यक्षः** प्रविष्ट 49 पर एक संशोधन हैं। ठाकुर छेदीलाल अपना संशोधन पेश कर सकते हैं, जो छपी हुई संशोधन सूची में 3537 नं. का संशोधन है।

चूंकि सदस्य महोदय सभा में उपस्थित नहीं हैं, इसलिए यह संशोधन नहीं हो रहा है। संशोधन नं. 3538 और 3539 भी पेश नहीं किये। अब मैं प्रविष्टि 49 पर राय लेता हूं।

प्रविष्टि 49 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 50

***अध्यक्षः** अब ली जाती है प्रविष्टि 50। इस प्रविष्टि पर एक संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है।

(संशोधन नं. 22 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमानः

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 50 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जायें:

'50. The incorporation, regulation and winding up of trading corporations, including banking, insurance and financial corporations but not including co-operative societies.

50A. The incorporation, regulation and winding up of corporations, whether or not, with objects not confined to one State but not including universities.' "

[50. व्यापारिक निगमों का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं।, किन्तु सहकारी संस्थाएं नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन्न।

50.क. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं है, निगमन, विनियमन और समापन्न।]"

इस संशोधन को रखने का कारण यह है, श्रीमान, कि वर्तमान प्रविष्टि 50 के सम्बन्ध में जो एक व्यापक प्रविष्टि है, कई सदस्यों का ख्याल यह है कि यह बड़ी अस्पष्ट है। उन्होंने मसौदा समिति से यह कहा है कि इस प्रविष्टि की इबारत कुछ जटिल या अस्पष्ट है। सुतरां इसे इस रूप में रखना चाहिए कि इसका अभिप्राय अच्छी तरह समझ में आ सके। मसलन इस प्रविष्टि से यही शक बना रहता है कि एक से अधिक राज्यों में व्यावसायिक काम करने वाली सहकारी समितियां इसमें शामिल समझी जायेंगी या नहीं। इसलिये वांछनीय यह समझा गया कि इस प्रविष्टि को दो हिस्सों में विभक्त कर दिया जाये। एक हिस्से में व्यावसायिक निगमों का, जिसके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी है, उल्लेख किया जाये और दूसरे हिस्से में विश्वविद्यालयों को छोड़कर अन्य ऐसे निगमों का, चाहे वह व्यवसायिक हों या नहीं, जो एक से अधिक राज्यों में अपना काम करते हों, उल्लेख किया जाये। यह संशोधन सिर्फ स्पष्टता लाने के विचार से रखा जा रहा है और मैं नहीं समझता कि इस पर अधिक कुछ कहना आवश्यक है। कई सदस्यों ने मसौदा समिति से अपना यह मत व्यक्त किया है कि मूल प्रविष्टि की इबारत से उसका अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता है और उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए यह नई प्रविष्टि रखी जा रही है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि श्री एल. कृष्णस्वामी भारती तथा श्री के. सन्थानम् अपने संशोधनों को नहीं पेश कर रहे हैं, जो छपी सूची में उनके नाम से दिये हुए हैं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): यदि अनुमति हो तो मैं यह सुझाव दूंगा, श्रीमान, कि अगर मूल प्रविष्टि से 'corporations, that is to say' (निगम अर्थात्) शब्द हटा दिये जायें, तो प्रविष्टि को दो भागों में विभक्त करने की जरूरत न रह जायेगी। इन शब्दों को हटाने पर प्रविष्टि का रूप यह हो जायेगा—

"वाणिज्य निगमों का...
निगमन, आनियमन तथा समापन।"

इससे प्रविष्टि का सतलब स्पष्ट हो जायेगा और फिर इसके अर्थ में द्वित्व न रह जायेगा। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से मैं कहूंगा कि वह इस सुझाव पर ध्यान दें। मेरे इस सुझाव को मान लेने से मसौदा समिति के उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस पर विचार करूंगा। पर इस समय जो प्रविष्टि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने प्रस्तावित की है, उसे पास हो जाने दीजिए।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 50 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जायें:—

50. The incorporation, regulation and winding up of trading corporations, including banking insurance and financial corporations but not including co-operative societies.

50A. The incorporation, regulation and winding up of corporations, whether trading or not, with objects not confined to one State but not including universities.' "

[50. व्यापारिक निगमों का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं किन्तु सहकारी संस्थाएं नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।]

50.क. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का, चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 50 और 50-क संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 51

प्रविष्टि 51 संघ-सूची में शामिल की गई।

प्रविष्टि 52

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि सूची 1 में प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'52. Constitution and organisation of the Supreme Court and High Courts; jurisdiction and powers of the Supreme Court and fees taken therein; persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.' "

[52. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय का संघटन; उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियां तथा उसमें लिये जाने वाले शुल्क; उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति।]

इसमें जो अंतिम अंश है, वही ज्यादा है बाकी मूल प्रविष्टि के शब्द ज्यों के त्यों है। अंतिम अंश को रखना इसलिये आवश्यक समझा गया है, क्योंकि अब समय आ गया है, जबकि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों के सामने विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के विधि व्यवसाय करने के अधिकार का विनियमन कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** इस प्रविष्टि पर कतिपय संशोधन आये हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अपना संशोधन नं. 24 नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने इस पर एक संशोधन की सूचना भेज रखी है, पर वह अपने स्थान पर उपस्थित नहीं हैं।

***सरदार हुकम सिंह:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 25 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 में—

(1) 'and the High Courts' (और उच्च न्यायालय) शब्द हटा दिये जायें; और

(2) 'or any High Court' (या किसी उच्च न्यायालय) शब्द हटा दिये जायें।"

डॉ. अम्बेडकर ने अभी जो कुछ कहा है, उसे हमने सुना है। आपको कहना है कि उनकी प्रस्तावित प्रविष्टि का जो अन्तिम अंश है, वही नया है और शेष बातें यहां वही हैं, जो मूल प्रविष्टि में रखी गई हैं। मूल प्रविष्टि 52 यों है:

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन क्षेत्राधिकारी तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क"

मूल प्रविष्टि में तो उच्च न्यायालय का कहीं उल्लेख ही नहीं आया है। यहां यह बिल्कुल ही नई बात रखी गई है। जब हमने संविधान निर्माण का काम शुरू किया था, उस समय संघात्मक संविधान बनाने का ही ख्याल हमारे दिमाग में था और तब डॉ. अम्बेडकर ने जिन्होंने कि यह संशोधन अब पेश किया है, कहा था—और संविधान के लचीला होने का श्रेय भी स्वयं लिया था—कि इसकी रचना इस तरह की गई है कि साधारण स्थिति में यह संविधान संघात्मक संविधान का काम करेगा और युद्ध की स्थिति में एकात्मक संविधान का काम देगा। पर अब हम क्या देख रहे हैं? ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, हम अधिकाधिक एकात्मक शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं, और हमारा संविधान ऐसा बनता जा रहा है कि न केवल युद्ध काल में, जैसाकि पहले हमने सोचा था, एकात्मक संविधान के रूप में काम करेगा, बल्कि शान्ति काल में भी एकात्मक संविधान का ही काम करेगा। हर बात में आप देख रहे हैं कि सारी शक्ति केन्द्र को देने का और प्रान्तों को सर्वथा शक्तिशून्य बना देने का प्रयास किया जा रहा है। प्रान्तीय स्वराज्य तो ढकोसला मात्र रह गया है। प्रान्तों के हाथ में कोई सरकार ही देने का और प्रान्तों को सर्वथा शक्तिशून्य बना देने का प्रयास किया जा रहा है। प्रान्तीय स्वराज्य तो ढकोसला मात्र रह गया है। प्रान्तों के हाथ में कोई अधिकार ही नहीं दिया गया है। वे केवल नगरपालिका निकाय के रूप में रह गये हैं। इन सब बातों का कारण यह बताया जाता है कि स्थिति बदल गई है; सीमा पर खतरा पैदा हो गया है, जिसके लिए हमें व्यवस्था करनी होगी और केन्द्र को मजबूत बनाना होगा। मैं इन सभी बातों से सहमत हूं। केन्द्र को यथासम्भव शक्तिशाली बनाने के प्रयास में मैं किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। पर मेरा मतभेद है उस तरीके से, जिससे कि केन्द्र को आप मजबूत बनाना चाहते हैं। मूल प्रश्न यह है कि क्या विभिन्न प्रादेशिक राज्यों को स्वतंत्र रखा जाये, उन पर पूरा भरोसा किया जाये, उनके हाथ में प्रेरणात्मक अधिकार दिये जायें, ताकि वह स्वेच्छा से केन्द्र को सदा अपना समर्थन प्रदान करते रहें या एक तानाशाही संविधान बनाया जाये और अपनी इच्छा जबरदस्ती उनपर लादी जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं बहस में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता, पर यह बता देना चाहता हूं कि हम अनुच्छेद 192-क, 193, 197, 201 तथा 207 को पास कर चुके हैं, जिनमें उच्च न्यायालयों की रचना के बारे में प्रावधान रखे गये हैं। इन अनुच्छेदों के अनुसार सभी उच्च न्यायालय आर्थिक क्षेत्राधिकार को छोड़कर, जहां तक कि उनकी रचना उनके संघटन तथा प्रादेशिक क्षेत्राधिकार का समबन्ध है, केन्द्र के अधीन रखे गये हैं, इसलिए मेरी समझ से यह संशोधन अनियमित है।

***सरदार हुकम सिंह:** मुझे केवल यही कहना है कि माननीय डॉक्टर से मैं यहां सहमत नहीं हूं। मैं कह यह रहा था कि मैं इससे सहमत नहीं हूं कि ऊपर से दबाव डालकर केन्द्र को आप मजबूत बना सकते हैं और विभिन्न इकाइयों को इसके लिए राजी कर सकते है कि वह संघ के अंग बने रहें और केन्द्र

[सरदार हुकम सिंह]

को अपना समर्थन देते रहें। मेरी तुच्छ राय तो यह है कि हमें इस बात की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि हर अधिकार प्रान्त से लेकर केन्द्र को दिया जाये। जहां तक कि उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उनके अधिकारों के विनियमन का काम आप प्रान्तों पर छोड़ सकते हैं और इसमें आपको कोई खतरा नहीं हो सकता है। बहुत से प्रावधान यहां ऐसे रखे जा रहे हैं, श्रीमान, जो केन्द्र को मजबूत बनाने के अभिप्राय से नहीं रखे जा रहे हैं, बल्कि केवल एकमात्र इस इच्छा से कि जहां तक हो सके केन्द्र को हर अधिकार प्राप्त रहे। इसलिए मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि प्रविष्टि से 'and the High Courts' तथा 'or any High Court' शब्द हटा दिये जायें।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि संशोधन-सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये—

'52. Constitution, jurisdiction and powers of all courts including the Supreme Court; enlargement of the appellate jurisdiction of the Supreme Court and conferring of supplemental powers thereon, regulation of fees chargeable by the Supreme Court and licensing and regulation of persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.' "

[52. सभी न्यायालयों की, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी हैं, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का वर्द्धन और उसे पूरक शक्तियों का प्रदान; उच्चतम न्यायालय द्वारा लिये जाने वाले शुल्क का विनियमन तथा उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों को लाइसेंस देना और उनका विनियमन।]

संविधान के मसौदे में मूल प्रविष्टि 52 का रूप यह था—

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क।"

कहने का मतलब यह है कि मूल प्रविष्टि में केवल उच्चतम न्यायालय की रचना आदि को ही इसमें रखा गया था और उच्च न्यायालय का कोई उल्लेख नहीं था। किन्तु वर्तमान संशोधन में सभी न्यायालय इस प्रविष्टि में शामिल कर लिये गये हैं और न केवल न्यायालयों की रचना या संघटन के प्रयोजनों के लिये,

बल्कि उनके सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन आदि प्रयोजनों के लिये भी। इस तरह हम देख रहे हैं कि प्रस्तावित प्रविष्टि की परिधि मूल प्रविष्टि से कहीं अधिक व्यापक रखी गई है। अपने संशोधन के द्वारा मैं इसकी परिधि को और अधिक व्यापक बना देना चाहता हूं, ताकि भारत शासन-अधिनियम, 1935 की प्रविष्टि 53 के समान यह हो जाये। इस प्रविष्टि 53 में यह कहा गया है:—

"Jurisdiction and powers of all courts, except the Federal Court, with respect to any of the matter in this list and, to such extent as is expressly authorised by Part IX of this Act, the enlargement of the appellate jurisdiction of the Federal Court, and the conferring thereon of supplemental powers."

[इस सूची की किसी बात के सम्बन्ध में, फेडरल न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और उनकी शक्तियां, तथा फेडरल न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का उस सीमा तक वर्द्धन जहां तक कि इस अधिनियम के भाग 9 द्वारा ऐसा करने का स्पष्ट अधिकार दिया गया है, तथा उसको पूरक शक्ति देना।]

सो अगर उच्च न्यायालय को यहां शामिल ही करना है, तो क्यों न हम इस सम्बन्ध में अधिनियम, 1935 के प्रावधानों को ही यहां रखें और सभी न्यायालयों की, जिसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी है, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों का प्रावधान यह कर दें।

दूसरी बात जिस पर मैं जोर देना चहता हूं, वह यह है कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ाने के लिये तथा उसको पूरक शक्तियां देने के लिये यहां प्रावधान कर देना जरूरी है, जैसा कि अधिनियम, 1935 में फेडरल न्यायालय के लिये किया गया है। मेरे संशोधन का अन्तिम अंश इसलिए है कि विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के लाइसेंस तथा विभिन्न न्यायालय द्वारा दिये जाने वो शुल्क आदि का प्रावधान करके इस प्रविष्टि को और अच्छा बनाया जा सके। मुझे खुशी होगी, अगर सभा इसको स्वीकार कर ले।

फिर भी अगर डॉ. अम्बेडकर ऐसी कोई सन्तोषजनक बात कहते हैं। जिससे यह समझ आ जाये कि सभी न्यायालयों की शक्तियों का उल्लेख करना यहां आवश्यक नहीं है या यह कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बढाने का प्रावधान करना यहां आवश्यक नहीं है, तो मैं अपने संशोधन के लिए जोर नहीं दूंगा। अन्यथा मेरा तो ख्याल यही है कि संघ को इस बात का अधिकार प्राप्त रहना चाहिए कि वह उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ा सके और उसको पूरक शक्तियां दे सके।

***अध्यक्ष:** जो संशोधन सरदार हुकम सिंह ने पेश किया है, उसमें संशोधन नं. 197 की बातें आ जाती हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ ठीक है, श्रीमान।

*__श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर__ (मद्रासः जनरल): जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, उसके सम्बन्ध में मैं चन्द बातें कहना चाहता हूं। उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में हम पहले ही एक व्यवस्था तय कर चुके हैं। यानी न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जा चुका है। जहां तक कि उनके संघटन तथा क्षेत्राधिकार का संबंध है, ख्याल ये है कि देश वे सभी उच्च न्यायालयों के संघटन में एकरूपता रहनी चाहिये; हां, यह जरूरी है कि संविधान के प्रावधानों के अधीन रहते हुए यह एकरूपता रखी जायेगी। इसलिए एकरूपता सम्बन्धी सिद्धांत पर जोर देने के लिए और इस बात के लिये कि देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के संघटनादि में एकरूपता रहे, यह अधिकार केन्द्रीय विधान-मण्डल को दिया गया है। हमें यह मालूम होना चाहिये कि हमारे देश में अनेक उच्च न्यायालय हैं कुछ उच्च न्यायालय तो ऐसे हैं, जो आज अनेकानेक वर्षों से, करीब शताब्दि से यहां काम कर रहे हैं। कुछ उच्च न्यायालय ऐसे हैं, जो अभी हाल में स्थापित हुए हैं। देश के इन सभी उच्च न्यायालयों को संसद के क्षेत्राधिकार में रखने के लिये और इस बात के लिए कि इन विभिन्न उच्च न्यायालयों के संघटन और रचना में एकरूपता रहे, प्रस्तुत प्रावधान यहां रखा गया है। इन सबके सम्बन्ध में विधि निर्माण का अधिकार एकमात्र संसद को ही होना चाहिये। इसीलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में इस बात का प्रावधान किया गया है।

दूसरे इस संशोधन के द्वारा उच्चतम न्यायालय तथा देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के अधिकार के सम्बन्ध में आवश्यक उपबन्ध रखे गये हैं। वर्तमान कानून के अनुसार हर उच्च न्यायालय-अधिवक्ता यानी ऐडवाकेटों को अधिवक्ता सूची में रखने के बारे में तथा उच्च न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने के उनके अधिकार के बारे में अपना अलग नियम बना सकता है। जहां तक कि उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध है, उसे उच्चतम न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय को इस सम्बन्ध में जो अधिकार प्राप्त है, वह संसद के अधिकाराधीन है। इसी तरह उच्च न्यायालय की शक्ति भी समुचित विधान-मंडल के अधिकाराधीन है।

चालू व्यवस्था में कुछ असंगतियां हैं, जिन्हें दूर कर देना आवश्यक है। एक असंगति तो पैदा हुई सर एस. बरदाचारी के कारण, जब फेडरल न्यायालय से वह सेवानिवृत्त हुए। आज कोई भी विधि-व्यवसायी, जिसे फेडरल न्यायालय के सामने विधि व्यवसाय करने का हक है, वह उस न्यायालय के सामने तो वकालत कर सकता है, पर अगर मान लीजिये, मामला उस न्यायालय से हटाकर बम्बई के उच्च न्यायालय में भेज दिया जाता है, तो वह उस मामले की वकालत वहां नहीं कर सकता है, यदि उस हाईकोर्ट का वह ऐडवोकेट न हो। यह एक असंगत बात है।

फेडरल न्यायालय के सामने मामले की बहुत कुछ वकालत आपने की, उसके सारे तथ्यों से कानूनी स्थिति से, फेडरल न्यायालय में उसकी वकालत करते समय आप अच्छी तरह परिचित हो गये, पर अगर मामला उठकर अन्य किसी उच्च न्यायालय के सामने चला गया, तो आप वहां उसके लिए वकील के रूप में नहीं उपस्थित हो सकते हैं। फेडरल न्यायालय के समक्ष तो विधि व्यवसायी को उपस्थिति होने की अनुपति रहे, पर उसी मामले के लिए उच्च न्यायालय के सामने उपस्थित होने की उसे अनुमति न रहे। यह बात न तो तर्कसंगत है और न सिद्धान्त संगत है। प्रस्तावित संशोधन से सीधे यह अधिकार नहीं मिल जाता है कि कोई वकील जो उच्चतम न्यायालय के सामने किसी मामले की वकालत कर रहा हो, वह उस मामले की वकालत किसी उच्च न्यायालय के सामने भी कर सकता है। उसके द्वारा संसद को यह अधिकार मिल जाता है कि वहां से असामंजस्य को दूर कर दें और देश भर में एक तरह की न्याय-व्यवस्था लागू करें। इस सम्बन्ध में उदाहरण के लिए मैं एक घटना का उल्लेख करूंगा। माननीय सर तेज बहादुर सप्रू ने बम्बई हाई कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने की अनुमति पाने के लिए एक आवेदन किया था। पर उस हाई कोर्ट के नियमों के कारण उस उच्च न्यायालय के समक्ष मूल पक्ष की ओर से उपस्थित होने की अनुमति उन्हें नहीं मिल सकी। यही बात और भी कई ख्यातनामा वकील और बैरिस्टरों के साथ हुई है। इसलिये इस संशोधन के द्वारा संसद को इस बात का अधिकार दिया जा रहा है कि वह ऐसी असंगतियों को दूर कर सके तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ही जगह विधिव्यवसायियों को उपस्थित होकर मामले की वकालत करने के बारे में जो अधिकार उन्हें मिलने चाहिए, उनका वह विनियमन कर सकें। जब तक कि संसद एक खास तरह से अपने इस मुख्य अधिकार का प्रयोग नहीं करती है, तब तक उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालय के जो वर्तमान नियम हैं, वह चालू रहेंगे। संसद में सभी वर्गों के प्रतिनिधि हैं और वे लोग, मुझे विश्वास है, ऐसी बुद्धिमत्ता की कार्यवाही करेंगे, जिससे देश के न्यायप्रशासन मे सुधार हो सकेगा। और सभी न्यायालयों में नियमादि के बारे में एकरूपता स्थापित हो सकेगी। मैं नहीं समझता कि डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन पर किसी को कोई आपत्ति हो सकती है। यह एक बिल्कुल सही संशोधन है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ अध्यक्ष महोदय, इस मसले के सम्बन्ध में मेरी क्या राय है, उसे मैं बता भी देना चाहता हूं। प्रस्तावित प्रविष्टि के अन्त में रखे गये “or any High Court” शब्दों को मैं हटा देना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन भेजा है, वह 197 नं. का संशोधन है जो छठे सप्ताह को संशोधन सूची 3 में दिया हुआ है। न तो डॉ. अम्बेडकर ने और न मेरे न्याय विशारद मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने इस बात के लिए यहां कोई ठोस कारण बताये हैं कि उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन करने का अधिकार राज्यों के विधान-मंडलों को क्यों न प्राप्त रहे। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने यही कहा है कि वर्तमान समय में

[श्री एच.वी. कामत]

उच्च न्यायालयों को ही इस सम्बन्ध में निगमादि बनाने का अधिकार प्राप्त है, पर यह समझाने की चेष्टा आपने नहीं की कि आखिर यह अधिकार प्रादेशिक विधान-मण्डलों को क्यों न दिया जाये। प्रादेशिक विधान-मण्डलों पर आप इस बात का भरोसा कर सकते हैं कि वे ऐसे कानून बनायेंगे जो संसद निर्मित कानून के प्रतिकूल न होंगे। मैं आपका ध्यान तथा सभा का ध्यान अनुच्छेद 208 की ओर आकृष्ट करूंगा। डॉ. अम्बेडकर ने अभी इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 207 का हवाला दिया है। इस अनुच्छेद 207 के उपबन्ध को देखते हुए उच्च न्यायालयों की रचना और उनके संघटन के सम्बन्ध में विनियमन का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को देना सर्वथा वांछनीय प्रतीत होता है और मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु उच्च न्यायालयों के समक्ष विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में विनियमन का अधिकार संघीय विधान-मण्डल को देना एक दूसरी बात है। अनुच्छेद 208 के द्वारा, जिसे कि सभा पास कर चुकी है, कतिपय स्थितियों के लिए, कतिपय उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के बारे में कुछ अधिकार प्रादेशिक विधान-मण्डलों को दिये गये हैं। अगर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को यह अधिकार दिया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में कानून बनाने का जो सामान्य अधिकार हैं, वह क्यों न प्रादेशिक विधान-मण्डलों को दिया जाये। इसलिये इस विषय को सूची 2 में यानी राज्य सूची में रखना चाहिए। अन्यथा अगर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में अधिकार दिया जाता है, जैसा कि अनुच्छेद 208 के द्वारा किया गया है, पर उनके सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विनियमन की शक्ति प्रादेशिक विधान-मण्डलों को नहीं दी जाती है, तो मेरी समझ से तो यह एक बेतुकी बात— मुहरों की लूट और कोयलों पर छाप वाली बात होगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं अभी जब ध्वनि यंत्र के सामने बोलने आ रहा था, तो माननीय मित्र श्री त्यागी को यह कहते सुना कि यह मसला महज वकीलों से सम्बन्ध रखता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि इस प्रश्न का सम्बन्ध न केवल वकीलों से ही है, बल्कि भारत की सारी आबादी से इसका सम्बन्ध है। वस्तुत: उच्च न्यायालयों का स्वातंत्र्य तथा न्यायपालिका की शुद्धता–यह ऐसा विषय है, जिसके लिए सारे देश को चिन्ता होनी चाहिए।

मैं सभा का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करूंगा कि आखिर यहां 'or any High Court' शब्द इस संशोधित प्रविष्टि में आये कैसे। कल मैंने यहां यह कहा था कि अब जो प्रविष्टियां प्रस्तावित की जा रही हैं, उनमें बहुत सी नई बातें भी जोड़ दी गई हैं। प्रस्तुत संशोधन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। मूल प्रविष्टियां थी:

"सर्वोच्च न्यायालय की रचना, संघटन, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां और लिये जाने वाले शुल्क"। शुल्क की बात यहां नहीं रखी गई है और मुझे इस पर कोई

आपत्ति नहीं है। मूल प्रविष्टि में केवल उच्चतम न्यायालय का उल्लेख था, पर प्रस्तावित प्रविष्टि में यह कहा गया है कि: "उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की रचना और संघटन"। इसके अलावा इसमें इतना और भी जोड़ दिया गया है–"उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति"।

मेरी पहली आपत्ति तो इस बात को लेकर है कि नई महत्व की बातें इन संशोधित प्रविष्टियों में चुपके से रखी जा रही हैं। मसौदा समिति की यह बात तो मैं समझ सकता था कि..........

(बाधा)

***श्री महावीर त्यागी:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान, "चुपके से" शब्द का प्रयोग यहां क्या सभा में उचित माना जा सकता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यहां यह कहना, श्रीमान, कि मसौदा समिति ने चुपके से नई बातों को यहां घुसा देने की कोशिश की है, क्या उचित है? माननीय मित्र को इस बात का अधिकार है कि वह मुझसे यह पूछें कि क्यों मैंने प्रविष्टि में परिवर्तन किया है। चुपके से या छिपाकर कोई बात यहां नहीं रखी गई है। प्रविष्टि में रखी गई हर बात के औचित्य को यहां बताने के लिये मैं तैयार हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं आपसे निर्णय की मांग करता हूं, श्रीमान। 'चुपके से' शब्दों का प्रयोग क्या यहां सभा में जायज है।

***अध्यक्ष:** मैं यह मंजूर करता हूं कि संसदीय पद्धति से मैं इतना परिचित नहीं हूं कि यह कह सकूं कि 'चुपके से' शब्दों का प्रयोग यहां उचित है या नहीं। माननीय सदस्य से मैं यह कहूंगा कि वह यहां कोई ऐसी पदसंहति प्रयुक्त न करें, जिससे सदस्यों को दु:ख पहुंचे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं, श्रीमान्। मेरा कहना यह है कि ज्यादा अच्छा और साफ तरीका यह होता है कि हमें यह बता दिया जाता कि 'High Courts' शब्दों को यहां जोड़ देना आवश्यक है। 'चुपके से' कहने में मेरा मतलब यह था कि बजाय इस बात के कि साफ-साफ यह कहा जाता कि 'High Courts' शब्दों को रखकर अमुक-अमुक नये परिवर्तन यहां किये जा रहे हैं किया यह गया है कि सारी प्रविष्टि ही बदल कर रख दी गई हैं ऐसा इसलिये किया गया है कि यह स्पष्ट न होने पाये कि 'High Courts' शब्द यहां नये हैं। संशोधित प्रविष्टि और मूल प्रविष्टि में क्या अन्तर है, इसे जानने के लिए दोनों का बड़े ध्यान से धीरज के साथ आपको मुकाबला करना होगा और काफी वक्त लगाना होगा और तभी आप समझ पायेंगे कि संशोधित प्रविष्टि में

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

क्या नई बातें रखी गई हैं। मैंने तथा सरदार हुकमसिंह ने घंटों वक्त लगाकर ध्यान और धीरज के साथ जब दोनों प्रविष्टियों को मिलाया, तब कहीं यहां रखी गई नई बातों का हमें पता चल पाया। मैं नहीं समझ पाता कि आखिर ये नई बातें यहां मूल प्रविष्टि पर संशोधन के रूप में क्यों न रखी जायें। इस बात को मैं बहुत ही आपत्तिजनक और साथ ही असुविधाजनक मानता हूं।

*__अध्यक्ष:__ हर संशोधन पर विचार करने में मूल प्रविष्टि को ध्यान से पढ़ना होगा। माननीय सदस्य को अगर ध्यान देकर मूल प्रविष्टि और प्रस्तावित प्रविष्टि को पढ़ना पड़ा है, तो इसमें असाधारण बात क्या है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मैं केवल यह निवेदन कर रहा था, श्रीमान, कि उपयुक्त संशोधन द्वारा यह बता देना चाहिये था कि यहां क्या परिवर्तन किया जा रहा है। मसलन अगर एक ऐसा संशोधन रखा गया होता कि यहां अमुक स्थान पर 'High Courts' शब्द रखे जायें, तो हमें फौरन इस परिवर्तन का पता चल जाता। हमारी आपत्ति इस बात को लेकर है कि समूची प्रविष्टि को बदलने से हमें ध्यान से काफी वक्त लगाकर प्रस्तावित प्रविष्टि और मूल प्रविष्टि को पढ़कर मिलाना पड़ता है और तब कहीं हम समझ पाते हैं कि क्या नई बातें यहां रखी गई हैं। इस व्यवस्था से सिवाय इसके लिए सदस्यों की मेहनत और बढ़ जाती है और कोई लाभ नहीं होता है। इसी तरह और कितने ही मौकों पर यह किया गया है कि आपत्तिजनक शब्दों को संशोधन द्वारा बताकर रखने के बजाय किया गया है कि मूल अनुच्छेद या प्रविष्टि के स्थान पर नया अनुच्छेद या प्रविष्टि रखने का प्रस्ताव रखकर ऐसा किया गया है। मैं यह स्वीकार करता हूं, श्रीमान, कि आपका यह कहना सर्वथा उचित है कि हर सदस्य को मूल मसौदे को और प्रस्तावित मसौदे को ध्यान से मिलाकर पढ़ना चाहिए और अच्छी तरह तैयार होकर यहां आना चाहिये। मैं निवेदन यह कर रहा था कि हमारे काम को और आसान बनाया जा सकता था। कितनी ही नई-नई बातें इन नई प्रविष्टियों में जोड़ दी गई हैं और हमारे पास समय इतना कम है कि हम इन पर विचार नहीं कर पाते। समय की कमी देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि मसौदा-समिति की इस अनावश्यक व्यवस्था से सदस्यों की दिक्कत और बढ़ जाती है।

जहां तक कि उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, कलकत्ता के उच्च न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तीय क्षेत्राधिकार के अधीन थे। ऐतिहासिक कारणों से कलकत्ता के उच्च न्यायालय को एक विशेष स्थिति प्राप्त थी। भौगोलिक दृष्टि से वह एक ऐसे स्थान पर अवस्थित था, जहां सन् 1911 के पहले भारत सरकार की राजधानी थी। सुतरां किसी न किसी प्रकार ऐसा हुआ कि इस उच्च न्यायालय पर भारत सरकार तथा इम्पीरियल कौंसिल का क्षेत्राधिकार कायम हो गया और वह इन्हीं के अधीन बना रहा। भारत-शासन अधिनियम, 1935 के पास होने पर यह

उच्च न्यायालय प्रान्तीय शासन और वहां के विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार में आ गया। इसको लेकर बड़ा विवाद चला था। प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में इसे रखने का एक कारण यह भी बताया गया था कि प्रान्तों के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। चूंकि केन्द्र अपना फेडरल न्यायालय अब स्थापित कर रहा है, इसलिये वह फेडरल न्यायालय की व्यवस्था करेगा, न उच्च न्यायालयों की। इस तरह कलकत्ता का उच्च न्यायालय जो कि अरसा तक केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में था, सन् 1935 के बाद से प्रान्तीय क्षेत्राधिकार में आया। उसके बाद सभी उच्च न्यायालय प्रान्तीय शासन के क्षेत्राधिकार में कर दिये गये। केन्द्र पर अपने ही काम का इतना भार है कि वही इसके लिये बहुत है। मेरा कहना यह है कि केन्द्र को उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रश्नों को ही अपने हाथ में लेना चाहिये और अन्य न्यायालयों के सम्बन्ध में व्यवस्थादि का सारा अधिकार प्रान्तीय शासन तथा वहां के विधान-मण्डलों को देना चाहिए। किन्तु मैं यह देख रहा हूं कि वित्तीय, राजनैतिक, वैज्ञानिक हर विषय को ही एक-एक करके धीरे-धीरे प्रान्तों से छीनकर यहां केन्द्र के सुपुर्द किया जा रहा है। मैं कहूंगा कि उच्च न्यायालयों को एक बड़े महत्व की स्थिति प्राप्त है। मैं नहीं समझ पाता कि इस तरह सरकारी तौर पर क्यों आखिर उच्च न्यायालयों पर केन्द्र को क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं एक और संवैधानिक प्रश्न उठाऊंगा। जहां तक कि उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, सबकी सम्मति से हमने इनको पहले प्रान्तीय सूची में रखने का फैसला किया था। हमने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर यहां सभा में खूब विचार कर लिया था और जो निर्णय इस सम्बन्ध में यहां हुआ, उसके अनुसार मसौदा तैयार करने को मसौदा समिति से कहा गया था। मैं यह कहूंगा कि हमें उन निर्णयों की उपेक्षा न करनी चाहिये। अगर हम अपने पूर्व स्वीकृत निर्णयों की उपेक्षा करते हैं, तो इससे अनेक बातों में उलटफेर हो जायेगा। मैं आपसे यह आग्रह करूंगा, श्रीमान कि आप अपना निर्णय दीजिये पूर्व के निर्णयों को इस तरह अगम्भीरतापूर्वक उलट देना क्या हमारे लिये ठीक होगा। उच्च न्यायालयों को पहले हमने प्रान्तीय शासन के क्षेत्राधिकार में रखा गया। बिना इस पर सम्यक रूप से विचार किये और बिना सभा के सामने इस बात को रखे कि हम पूर्व निर्णयों में अमुक-अमुक परिवर्तन करना चाहते हैं, क्या अपने पहले के निर्णयों को बिल्कुल बदल देना ठीक होगा? सभा को इस पर विचार करना चाहिये।

अभी मैंने इस प्रसंग में सरदार पटेल की कार्य प्रणाली का हवाला दिया था। एक बहुत ही महत्वपूर्ण मौके पर सरदार ने एक पूर्ण निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए सभा से कहा और उस पर अच्छी तरह विचार कर सभा ने संविधान में उपयुक्त संशोधन कर दिया। उच्च न्यायालयों को प्रान्तीय क्षेत्राधिकार से हटाकर, जो अब केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखा जा रहा है, यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण संविधानिक परिवर्तन है और बजाय इसके कि इसे नई प्रविष्टि के रूप में यहां रखा जाता, इसे सभा के सामने साफ खोलकर रखना चाहिये था। इस परिवर्तन से लोगों को बड़ा ही असंतोष होगा।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

उच्च न्यायालयों को प्रान्तीय क्षेत्राधिकार से हटाकर केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में इस तरह रखना एक बड़ी अनुचित बात है। इन पर प्रादेशिक विधान-मण्डलों को ही क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिये। प्रान्तों को अधिकार देना तो दूर रहा, यहां उन्हें प्राप्त अधिकारों से भी एक-एक करके वंचित किया जा रहा है। इससे अच्छा तो यह था कि प्रांतों को बिल्कुल उठा दिया जाता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 207 की ओर सभा का ध्यान डॉ. अम्बेडकर पहिले ही आकृष्ट कर चुके हैं। इसलिये मैं यह कहूंगा कि माननीय सदस्य को इस बात के लिये इतना बोलने की जरूरत नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उनकी बातों का जवाब दे सकता हूं। इसके लिए मुझे केवल दस मिनट की जरूरत है। वह क्या कहना चाहते हैं, इसे मैं समझ गया हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जवाब देने का आप वचन दे रहे हैं, पर वस्तुत: अगर मुझे उनसे मेरी बातों का जवाब मिला, तो मेरे लिये यह एक असाधारण और सौभाग्य की बात होगी। अब तक तो आपने कभी यहां उठाई गई बातों का जवाब दिया नहीं है। मैं यह कहूंगा कि उच्च न्यायालयों को किसके क्षेत्राधिकार में रखा जाये, इस बात को इस प्रविष्टि में तभी रखना चाहिये था, जब कि इस मसले पर यहां सभा में अच्छी तरह विचार हो जाता, पर ऐसा न करके एक नई प्रविष्टि का प्रस्ताव करके आप इस बात को उसमें रख रहे हैं। यह तरीका ठीक नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर यहां अच्छी तरह से विचार होना चाहिए था। इसको इस तरह सरसरी तौर पर रखना ठीक नहीं है। हां, अगर सभा यह मान लेती है कि मसौदा समिति को इसका अधिकार है कि वह जो भी चाहे करे, तो फिर मेरा यहां यह सब कहना सर्वथा अनावश्यक है। मैं यह महसूस करता हूं कि इस मसले में मेरी हार निश्चित है; मेरी बात न मानी जायेगी, चाहे वह तर्कसंगत भले ही हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे दु:ख के साथ शुरू में ही यह कहना पड़ता है कि मैंने कई मौकों पर यह देखा है कि माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की यह आदत हो गई है कि वह मसौदा समिति की चर्चा बड़े उपहास के साथ करते हैं उनकी बातों का जवाब देने में मैं कभी उनके स्तर तक नहीं उतरा हूं। पर मैं उनको सावधान कर देना चाहता हूं कि अगर उनका दुराग्रह बना रहा, तो मैं भी तुर्कीवतुर्की जवाब देने में न चूकूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या सदस्यों को इस तरह धमकाया जायेगा? जो भी हो, मुझ पर इसका कोई असर नहीं पड़ेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह धमकी नहीं है, चेतावनी है।

अब मैं माननीय मित्र श्री पंजाबराव देशमुख की बातों को लेता हूं। मुझे खेद है, मैं उनके सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। वह इस प्रविष्टि 52 की परिधि को इतना व्यापक बना देना चाहते हैं कि वह देश के सभी न्यायालयों पर लागू हो सके। यह सर्वथा असम्भव बात है और मैं इसे नहीं स्वीकार कर सकता हूं।

अब मैं माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन के तर्कों को लेता हूं। पहली बात तो उन्होंने यह कहीं है कि इस प्रविष्टि में हम उच्च न्यायालयों को चुपके से घुसा देना चाहते हैं, क्योंकि मूल प्रविष्टि में उच्चन्यायालयों का उल्लेख नहीं है। सभा को याद होगा कि मसौदा समिति समय-समय पर न केवल प्रविष्टियों की ही, बल्कि अनुच्छेदों की भी पुनरावृत्ति करती रही है, उनका पुनरावलोकन करती रही है। मैं यहां इस बात का दावा नहीं करता हूं कि मसौदा समिति की निगाह से कोई बात छूट ही नहीं सकती। अगर मसौदा समिति एक बार में सारी बातों को नहीं देख पाई है, तो इसके लिए उसे मैं दोषी नहीं ठहराऊंगा और न अन्य किसी को ही ऐसा करने दूंगा कि वह उसके कामों पर फैसला करे और उसकी निन्दा करे। संविधान निर्माण का काम एक बड़ा भारी काम है और हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम शनैः शनैः इसमें आगे बढ़ें।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या यह सभा भी मसौदा समिति के कार्यों के गुण-दोष पर विचार नहीं कर सकती?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अवश्य, सभा विचार कर सकती है, पर सभा को यह मानना होगा कि मसौदा समिति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह सभा के सामने कोई ऐसा पूर्ण प्रस्ताव रख दे जिस पर पुनर्विचार करने की कोई जरूरत ही न रह जाये। माननीय मित्र ने शिकायत की है कि यहां उच्च न्यायालयों का उल्लेख बिल्कुल नया है, मूल प्रविष्टि में इनको नहीं रखा गया था। मैं खुद कह रहा हूं कि हमने जानबूझकर उच्च न्यायालयों को यहां रखा है, क्योंकि कतिपय स्वीकृत अनुच्छेदों को देखते हुए हमने इनको यहां रखना जरूरी समझा। माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, स्पष्ट है कि अनुच्छेद 192-क, 193, 197, 201 और 207 को भूल जाते हैं, जिनमें उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं। अगर वह धैर्य के साथ ध्यान देकर इन अनुच्छेदों को पढ़ें, तो वह देखेंगे कि उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान-मण्डलों के साथ केवल इतना ही रखा गया है कि अर्थ के बारे में या मामलों के सम्बन्ध में उनके क्षेत्राधिकार को वह निर्धारित कर सकते हैं। उच्च न्यायालय की अन्य सम्बन्धी बातें केन्द्रीय क्षेत्राधिकार में रखी गई हैं। इसलिए संघ-सूची की प्रविष्टियों पर विचार करते समय, जिनको कि केन्द्र को पूर्ण अधिकार देने के अभिप्राय से यहां रखा गया है, हमारे लिए इस त्रुटि को पूरा कर देना जरूरी था और इसलिए उच्च न्यायालयों का यहां उल्लेख करना पड़ा है जो, जैसा मैं कह चुका हूं, इन अनुच्छेदों के कारण दो बातों के सिवाय अन्य सभी बातों के बारे में पूर्णतः संसद के अधीन रखे गये हैं। इसमें छिपाकर रखने की क्या बात है? अनुच्छेद और प्रविष्टियों की

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रचना साथ-साथ नहीं की गई थी, जिससे मूल प्रविष्टि में कुछ भूल रह गई थी और उस भूल को सुधारने के लिए यहां उच्च न्यायालयों का उल्लेख कर दिया गया है।

अब मैं इस आपत्ति को लेता हूं कि यहां "उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों के बारे में" शब्द यहां क्यों बढ़ा दिये गये हैं। श्री अल्लादी कृष्णस्वामी ने इस पर अच्छी तरह प्रकाश डाल दिया है। फिर भी संक्षेप में मैं उन्हीं बातों को पुन: समझाये देता हूं। इन शब्दों को यहां रखकर कोई असाधारण बात नहीं कही गई है, क्योंकि सदस्यों को मालूम है कि अनुच्छेद 121 में उच्चतम न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विधि निर्माण का संसद को अधिकार दिया गया है। इसलिए इस प्रविष्टि में अगर इसका उल्लेख कर दिया गया है, तो इसमें कोई नई बात है क्योंकि उच्चतम न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में विधि-निर्माण का अधिकार संसद् को पहले ही दिया जा चुका है।

उच्च न्यायालयों के उल्लेख के सम्बन्ध में वस्तुत: स्थिति यह है। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 17 में जो अधिकार केन्द्र को दिया गया है, वह व्यवसायों के सम्बन्ध में है और कानून का पेशा भी एक व्यवसाय ही है। इसलिए समवर्ती सूची की प्रविष्टि 17 के अधीन उच्च न्यायालयों के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के व्यवसाय के आनियमन के लिए संसद को विधि बनाने का अधिकार है। पर दिक्कत यह है कि चूंकि यह विषय समवर्ती सूची में है, इसलिए संसद तथा प्रादेशिक विधान-मण्डल दोनों ही इस सम्बन्ध में विधि बना सकते हैं और हो सकता है, इन दोनों ही विधियों में सामंजस्य न हो। इसलिए सोचा यह गया कि प्रविष्टि 17 को समवर्ती सूची में ज्यों का त्यों रहने दिया जाये, ताकि सभी व्यवसाय उसके अन्तर्गत आ सकें और विधि सम्बन्धी व्यवसाय के एक अंश को उठाकर यहां रख दिया जाये, ताकि उच्च न्यायालय के मामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के व्यवसाय के बारे में विधि निर्माण का अधिकार केवल संसद के हाथ में रहे। ऐसा हमने क्यों किया, इसका कारण वह कठिनाई है, जिसका उल्लेख श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने अभी यहां किया है। शायद उनकी बात को आपने न सुना हो, इसलिए मैं पुन: उसको दुहराये देता हूं। मान लीजिये, किसी मामले की पैरवी उच्चतम न्यायालय में एक मद्रास का बैरिस्टर कर रहा है। उच्चतम न्यायालय मामले का निर्णय न करके उसे विचारार्थ बम्बई के उच्च न्यायालय के पास भेज देता है। अब प्रविष्टि 17 के अधीन बनाई किसी विधि के अनुसार हो सकता है, बम्बई सरकार से मद्रास के बैरिस्टर को बम्बई के उच्च न्यायालय के समक्ष उस मामले के लिए वकालत करने की अनुमति न मिले। मद्रास के बैरिस्टर ने तो उच्चतम न्यायालय के सामने उस मामले के सम्बन्ध में वकालत की, सारे मुकदमे को चलाया, पर यही मामला अगर विचारार्थ बम्बई के उच्च न्यायालय के पास भेज दिया जाता

है, तो हो सकता है, वह न्यायालय प्रान्तीय विधि के अनुसार उसे उस मामले की वकालत के लिए अपने सामने उपस्थित होने की अनुमति ही न दे। मैं समझता हूं कि सभी यही स्वीकार करेंगे कि विधि व्यावसायियों के लिये यह बड़ी कठिनाई की बात होगी। इसलिये व्यवसाय के सम्बन्ध में उपबन्ध करने वाली प्रविष्टि 17 से एक अंश उठाकर यहां रख दिया गया है, ताकि विभिन्न उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने वाले व्यक्तियों की स्थिति एक सी रहे और उनके व्यवसाय के विनियमन के लिए सर्वत्र एक सा कानून हो। इसलिये मसौदा समिति ने जिस नई प्रविष्टि 52 को प्रस्तावित किया है, उसमें न कोई भ्रांतिकर बात है और न ऐसी ही बात रखी गई है, जिसको हमें वहां छिपाकर रखने की जरूरत हो।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहला संशोधन है, सरदार हुकम सिंह का। यह दो हिस्सों में बंटा हुआ है और दोनों पर अलग-अलग मत लिया जायेगा।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्ट 52 में:—

(1) 'and the High Courts' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब दूसरा हिस्सा लिया जाता है। अब प्रश्न है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 में—

(2) 'or any High Courts' शब्द हटा दिया जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब लिया जाता है संशोधन नं. 196, जिसे डॉ. देशमुख ने रखा है।

प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये:—

'52. Constitution, Jurisdiction and powers of all courts including the Supreme Court, enlargement of the appellate jurisdiction of the Supreme Court and conferring of supplemental powers thereon; regulation of fees

chargeable by the Supreme Court and licensing and regulation of persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.'

[52. सभी न्यायालयों की, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय भी है, रचना, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां; उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का वर्द्धन और उसे पूरक शक्तियों का प्रदान; उच्चतम न्यायालय द्वारा लिये जाने वाले शुल्क का विनियमन तथा उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्तियों को लाइसेंस देना और उनका विनियमन।]"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि पर मत लिया जायेगा।

प्रश्न यह है:—

"कि सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 52 के स्थान पर यह प्रविष्टि रखी जाये–

'52. Constitution and organisation of the Supreme Court and the High Court; Jurisdiction and powers of the Supreme Court and fees taken therein; persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court.'

[52. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय का संगठन; उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियां तथा उसमें लिये जाने वाले शुल्क; उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सामने विधिव्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 52 यथा संशोधित रूप में संघ-सूची में शामिल की गई।

***अध्यक्ष:** आज का काम समाप्त हुआ। अब बैठक कल प्रात:काल 9 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 31 अगस्त सन् 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.22.49
320

अंक 9
संख्या 22

बुधवार
31 अगस्त
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–*(जारी)*
सप्तम अनुसूची–*(जारी)*

[सूची 1 प्रविष्टि 53 से 57, 57-क, 58, 58-क, 59 से 61, 61-क, 62 से 64, नवीन प्रविष्टि 64-क, 65 से 70, 70-क, 71 से 73 तथा 73-क पर विचार] 1199-1266

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 31 अगस्त, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — *(जारी)*

सप्तम अनुसूची — *(जारी)*

सूची 1 : प्रविष्टि 53

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 53 में, 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule', ये शब्द तथा अंक हटा दिये जायें।"

यह इसलिये कि हम भाग 1 तथा भाग 3 के राज्यों में कोई अन्तर नहीं रखना चाहते।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रांत तथा बरार: जनरल): मेरा एक छोटा-सा संशोधन संख्या 198 है। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 25 के निर्देश से, सूची 1 की प्रविष्टि 53 में, 'and exclusion of the jurisdiction of any such High Court from', इन शब्दों के स्थान पर, 'and exclusion from the jurisdiction of any such High Court of' ये शब्द रख दिये जायें।"

मैं जानता हूं कि यह केवल शब्दों का हेर फेर है पर इससे अर्थ में थोड़ा-सा परिवर्तन हो जाता है, और इससे प्रविष्टि का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। मेरा विश्वास है कि इस प्रविष्टि में 'कुछ क्षेत्रों का किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से अपवर्जन' का निर्देश है। अत: 'exclusion of jurisdiction of any such High Court' ऐसे कहना ठीक नहीं है। आप क्षेत्राधिकार से किसी चीज का अपवर्जन करते हैं: आप क्षेत्राधिकार का अपवर्जन नहीं कर सकते। आप कह सकते हैं कि आप किसी और क्षेत्र में क्षेत्राधिकार को विस्तृत नहीं करते।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एच.वी. कामत]

किन्तु यह कहना कि 'you exclude the jurisdiction of a Court from something' सही अंग्रेजी नहीं है। मंशा तो यह है कि आप कुछ क्षेत्रों को किसी न्यायालय विशेष के क्षेत्राधिकार से मुक्त करते हैं, और विद्यमान रूप में इस प्रविष्टि से वह आशय नहीं निकलता जो हमारी मंशा है। मुझे विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर सहमत होंगे कि इस प्रविष्टि का उद्देश्य कुछ क्षेत्रों को उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से मुक्त करना है। यदि यह बात है तो ये शब्द होने चाहियें "exclude from the jurisdiction of a Court certain areas"। मैं कह सकता हूं कि यह बिल्कुल उचित है, मैं अपने इस छोटे संशोधन को सदन के विचारार्थ पेश करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, श्री कामत का संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है, क्योंकि मेरे संशोधन का उद्देश्य प्रविष्टि 53 के उस भाग को बिल्कुल हटा देना है जो 'except' से आरम्भ होकर अन्त तक जाता है। यदि प्रविष्टि के किसी भाग को रखना होता, तब तो यह प्रश्न उठ सकता था कि प्रविष्टि में प्रयुक्त शब्दावली अधिक अच्छी है या श्री कामत द्वारा सुझाई गई भाषा अधिक अच्छी है।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन में प्रविष्टि का ही निर्देश है संशोधन का नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार में यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता क्योंकि मैं सबको ही हटा रहा हूं। दूसरी बात यह है कि प्रविष्टि 53 में प्रयुक्त भाषा वैसी ही होनी चाहिये जैसी कि अनुच्छेद 207 में प्रयुक्त हुई है।

***श्री एच.वी. कामत:** यदि यह स्वीकार कर लिया जाये तो तृतीय वाचन के अन्त में दूसरे अनुच्छेद की, जो पहले ही पारित हो चुका है, भाषा बदलनी पड़ेगी।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में इस प्रविष्टि के एक भाग का ही निर्देश है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अन्तिम भाग को हटा रहा हूं जो यह है "except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule"। संशोधित रूप में प्रविष्टि ऐसी बन जायेगी:

"Extension of the jurisdiction of a High Court having its principal seat in any State within the territory of India to, and exclusion of the jurisdiction of any such High Court from any area outside that State."

इस प्रविष्टि में क्षेत्राधिकार के विस्तार या अपवर्जन का ही उपबन्ध है।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन में दूसरे भाग का निर्देश है "exclusion of the jurisdiction of any such High Court from any area outside that State."

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं आपके शब्द-जाल को स्वीकार नहीं करता।

***श्री एच.वी. कामतः** यह शब्दजाल नहीं है। यह तो यही अंग्रेजी भाषा का प्रश्न है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि यह केवल अंग्रेजी का ही प्रश्न है तो हम इसे बाद में ले सकते हैं।

***अध्यक्षः** फिर मैं भी कामत के संशोधन पर मत ले लेता हूं:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 25 के निर्देश से सूची 1 की प्रविष्टि 53 में, 'and exclusion of the jurisdiction of any such High Court from' इन शब्दों के स्थान पर, 'and exclusion from the jurisdiction of any such High Court of' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं।

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 53 में 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule' ये शब्द तथा अंक हटा दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन रूप में प्रविष्टि 53 को स्वीकार कर लिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 53 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 54

प्रविष्टि 54 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 55

प्रविष्टि 55 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 56

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 56 के स्थान पर निम्न सूची रख दी जाये।

'56. Inquiries, surveys and statistics for the purpose of any of the matters in this List.' "

इसमें कोई खास अन्तर नहीं है। हमने केवल यही जोड़ दिया है "for the purpose of and of the matters in this list."

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): यद्यपि मेरे संशोधन संख्या 163 से भाषा सुधर जायेगी, पर मैं उसे पेश नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 254 पेश नहीं किया गया)

***श्री फूल सिंह** (संयुक्त प्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित संशोधन से इस प्रविष्टि का क्षेत्र सीमित हो जायेगा। मौलिक प्रविष्टि के अन्तर्गत सरकार को किसी विषय के आंकड़े एकत्र करने की स्वतन्त्रता है, किन्तु यदि प्रस्थापित अनुच्छेद स्वीकार कर लिया जायेगा तो उसका क्षेत्र उस सूची में प्रविष्ट विषयों तक ही सीमित हो जायेगा। उदाहरण के लिये चीनी के मूल्य निर्धारण का ही प्रश्न है। चीनी का मूल्य निश्चित करने के लिये भारत सरकार को चीनी का उत्पादन-मूल्य मालूम करना है। वह इस सूची में नहीं है। जब तक संघ सरकार इस विषय पर विधान बनाने के लिये क्षमता न रखती हो, तब तक कारखाने सूचना देने से इन्कार कर सकते हैं। अत: मेरा सुझाव है कि संशोधन को स्वीकार न किया जाये और मूल प्रविष्टि 'Inquiries, surveys, and statistics for the purposes of the Union' यही रहने दी जाये। क्योंकि उससे सरकार इस सूची में वर्णित विषयों के अतिरिक्त मामलों में भी पड़ताल कर सकेगी तथा आंकड़े एकत्र कर सकेगी। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर से इस पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मेरे विचार में मेरे मित्र द्वारा अभिव्यक्त आशंका कुछ निराधार है और इसलिये उत्पन्न हुई है कि उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि राज्यों सम्बन्धी सब जांच पड़ताल आदि अब समवर्ती सूची में समाविष्ट हैं। अत: वे जो बात चाहते हैं वह पूरी हो जाती है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 56 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:

'56. Inquiries, surveys and statistics for the purpose of any of the matters in this List.' "

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 56 संघ सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 57

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव रख दी जाये:

57. Union agencies and Union institutes for the following purposes, that is to say, research, for professional, vocational

or technical training, for scientific or technical assistance in the investigation or detection of crime, for the training of police officers, or for the promotion of special studies.' "

[निम्नांकित अभिप्रायों के लिये संघ-अभिकरण और संघीय संस्थायें, अर्थात् वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पि-प्रशिक्षण के लिये, अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पी सहायता के लिये, आरक्षी पदाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिये, या विशेष अध्ययनों की उन्नति के लिये।]

'व्यावसायिक प्रशिक्षण' तथा 'अपराध के अनुसंधान या पता लगाने, आरक्षी पदाधिकारियों के प्रशिक्षण' इन शब्दों को जोड़ देने से यह प्रविष्टि कुछ बड़ी हो गई है।

***अध्यक्षः** अब हम संशोधन को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 168 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं छटे सप्ताह की सूची 3 के संशोधन संख्या 199 तथा 200 को पेश करता हूं। संशोधन संख्या 199 इस प्रकार है:

"कि प्रथम सूची (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 27 में, तथा डॉ. अम्बेडकर द्वारा अभी-अभी प्रस्तावित संशोधन में,-

'.......सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 57 में 'research' शब्द के स्थान पर 'historical, scientific and spiritual research' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन संख्या 200 इस प्रकार है......

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, कल मेरे ख्याल में, माननीय सदस्य ने ऐसे मामले में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया था।

***अध्यक्षः** उन्हें असंगत बातें कहने का अधिकार है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है, श्रीमान, श्री सन्तानम ने समझने का प्रयत्न नहीं किया है। मेरे विचार में, वे अपने रेल तथा यातायात विभाग में बहुत व्यस्त हैं तथा यहां की कार्यावाही को नहीं समझते-कम से कम उसे नहीं समझे, जो कि कल मैंने सदन में कहा था। जब मैं यहां अपनी बात स्पष्ट करूंगा, तो मुझे विश्वास है कि वे भी अपने विचार को बदल लेंगे। संशोधन संख्या 200 इस प्रकार है:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 27 में, सूची 1 प्रस्थापित प्रविष्टि 57 में, 'police' शब्द के स्थान पर 'administrative and police' ये शब्द रख दिये जायें।"

[श्री एच.वी. कामत]

पहले संशोधन को पहले लेते हुए, मैं अपने विनम्र तरीके से अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् की आपत्ति का निराकरण करने का प्रयत्न करता हूं। उन्होंने कहा कि कल मैंने सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध कहा है........

*__एक माननीय सदस्य:__ केन्द्र द्वारा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ खैर, योग सम्बन्धी मामलों में केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप या सरकारी हस्तक्षेप। मेरा अनुमान है कि उन्होंने उस बात का निर्देश किया था जो मैंने भारत की योग संस्थाओं के विषय में कहीं थीं। कल तो मैंने यह कहा था—मुझे खेद है कि मेरे मित्र ने इसे समझा नहीं—कि आज देश में बहुत सी अशासकीय संस्थायें हैं जो योग तथा यौगिक अनुसंधान का अच्छा कार्य कर रही हैं। उनमें तब तक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये जब तक वे सफलता से कार्य कर रहे हैं और सर्वसाधारण को लाभ पहुंचाते हैं। किन्तु आज मैं जो बात कह रहा हूं, वह संघीय संस्थाओं के विषय में है—इस प्रविष्टि में संघीय अभिकरणों तथा संघीय संस्थाओं की चर्चा है। वे अशासकीय लोगों द्वारा संचालित अशासकीय संस्थाओं से भिन्न हैं और मुझे आशा है। कि मेरे मित्र श्री सन्थानम् समझ जायेंगे कि इस प्रविष्टि में तथा मेरी कल की बातों में क्या अन्तर है।

मेरे संशोधन संख्या 199 में यह बात है कि यहां research' (अनुसंधान) शब्द को स्पष्ट कर देना चाहिये। कल डॉ. अम्बेडकर ने भारत में परिमापों सम्बन्धी संशोधन पेश करते हुये 'प्राणकीय' शब्द के साथ 'नरतत्वीय' शब्द भी जोड़ दिया था। उनका उद्देश्य बहुत अच्छा था। वह था—अर्थ का बिल्कुल स्पष्ट तथा संदेहहीन बनाना। इसी प्रकार यहां, उन्हीं का अनुसरण करके मैं 'अनुसंधान' शब्द को बिल्कुल स्पष्ट तथा संशयहीन बनाना चाहता हूं। कई प्रकार के अनुसंधान होते हैं। कई संस्थाओं में ऐतिहासिक अनुसंधान होता है; पूना की एक सुविख्यात संस्था भंडाकार संस्था कई वर्षों से इस विषय में अच्छा कार्य कर रही है। फिर कई वैज्ञानिक संस्थायें हैं। किन्तु तीसरी प्रकार की संस्थाएं, जो आध्यात्मिक अनुसंधान करती हैं, वे बहुत कम हैं। यौगिक आश्रम तो हैं, पर वे उन संस्थाओं से भिन्न हैं जो आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसंधान करती हैं। जहां तक मुझे पता है केवल एक ही संस्था जो वैज्ञानिक प्रणाली से अध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसंधान कर रही है, लोनावला की कैवल्यधााम संस्था है; और सरकार ने गत आयव्ययक सत्र में या तत्पश्चात शीघ्र, इस संस्था को मान्यता प्रदान की है और योग की उन्नति या उसमें वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रगति देने के लिये बीस हजार रुपये का अनुदान स्वीकार किया है। मैं बहुत विश्वस्त सूचना के आधार पर बोल रहा हूं। संस्था के प्रधान ने योग का वैज्ञानिक अनुसंधान करने के लिये अनुदान की प्रार्थना की थी और सरकार ने बीस हजार रुपये संस्था के लिये स्वीकार किये हैं, जिससे कि योग सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान का नाम या काम आगे बढ़ाया जा सके।

स्वतन्त्रता के आगमन के पश्चात् तथा भारतीय पुनर्जागरण के प्रभात में, मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि हमारी आध्यात्मिक संस्कृति, हमारी प्राचीन संस्कृति का केवल एक ही दिशा में ही नहीं वरन् सब सम्भव दिशाओं में पुनरुद्धार होना चाहिये। आध्यात्मिक संस्कृति पर,–विशेषत: यौगिक संस्कृति पर–एक आपत्ति यह की जाती है कि वह अवैज्ञानिक है। आज योग के वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रारंभिक

कार्यकर्त्ता, स्वामी कुवलयानन्द लोनावला वाले इस क्षेत्र में आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि ज्यों-ज्यों हम बड़े होते जायेंगे ज्यों-ज्यों भारत की स्वतन्त्रता का विकास होता जायेगा, त्यों-त्यों इस प्रकार की संस्थायें बढ़ती जायेंगी जो कि आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसंधान के कार्य को प्रगति देंगी। यह अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि अभी हाल ही में महायोगी अरविन्द ने कहा था, पश्चिम कुछ प्रकाश तथा पथ प्रदर्शन के लिये पूर्व की ओर झुक रहा है, और यदि पूर्व पश्चिम को निराश कर देगा तो संसार का उद्धार असंभव है। उन्होंने हमें यह कहा कि भारत को पश्चिम के भौतिकवादी बुदबुदों के पीछे नहीं भागना चाहिये। जीवन स्तर को ऊंचा उठाना तो ठीक है पर केवल भौतिकवादी बन जाना ही जीवन नहीं है। संसार कुछ और चाहता है और वह भारत की ओर देख रहा है। अब समय है कि हम इस दिशा में कुछ करें तथा प्रत्याशापूर्ण संसार को प्रकाश दिखायें।

मुझे आशा है कि केन्द्र अपनी ओर से केवल ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक अनुसंधान को ही नहीं, वरन् योग तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सच्चे वैज्ञानिक ढंग से अनुसंधान को प्रगति देगा,—विज्ञान का अर्थ अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है, केवल एक छोटी-सी प्रयोगशाला, नलियों, सुराहियों, आदि की संकुचित भावना ही विज्ञान नहीं है, वरन् प्रयोग करने का वास्तविक वैज्ञानिक दृष्टिकोण ज्ञान प्राप्त करने की लिप्सा का नाम विज्ञान है, 'विज्ञान' शब्द ही 'ज्ञान' अर्थात् 'जानना' से बना है।

मेरे दूसरे संशोधन के विषय में, मेरा ख्याल है कि भूल से इस नई प्रस्थापित प्रविष्टि 57 में 'प्रशासनीय' शब्द रह गया है। पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण का निर्देश है। जहां तक मुझे पता है पिछले दिनों आई.पी.एस. तथा आई.सी.एस. को पहले इंगलिस्तान में प्रशिक्षण लेना पड़ता था और बाद में यहां आकर उस प्रशिक्षण को अपने विभाग में पूरा करना पड़ता था। द्वितीय विश्व युद्ध में, इंगलिस्तान की गड़-बड़ की स्थिति के कारण आई.सी.एस. के सदस्यों का प्रशिक्षण यहां देहरादून में होता था। यह प्रशिक्षण आई.सी.एस. को दिये जाने वाले अनुदेशों का भाग था। जब तक वे इस प्रशिक्षण तथा अन्य विभागीय परीक्षाओं में उत्तीर्ण, नहीं हो जाने थे उन्हें कच्चा समझा जाता था और पक्का नहीं किया जाता था तथा तरक्की नहीं मिलती थी।

मुझे पता लगा है, कि अगस्त 1947 के पश्चात् प्रशासनीय पदाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिये एक शिक्षालय पुरानी दिल्ली के मेटकाफ हाऊस में आरंभ किया गया है, जिसमें पुराने सचिवालय अथवा दिल्ली विश्वविद्यालय का एक भाग था। इस शिक्षालय का प्रधान पुराने आई.सी.एस. का एक सदस्य है। वहां नये आई.ए.एस. के सदस्यों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है जो कि पुराने आई.सी.एस. के स्थान पर बना है। यदि यह आवश्यक समझा जाता है कि आरक्षी अधिकारियों को यह प्रशिक्षण मिलना चाहिये तो यह अधिक महत्वपूर्ण है कि नये आई.ए.एस. के सदस्यों को भी यह प्रशिक्षण मिले। वे पुराने आई.सी.एस. का स्थान ले रहे हैं और इसलिये उन्हें वैसा ही प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि आरक्षी अधिकारियों के प्रशिक्षण के साथ आई.ए.एस. के सदस्यों के प्रशिक्षण को क्यों न शामिल किया जाये, जब तक कि डॉ. अम्बेडकर अपने गम्भीर विवेक के आश्रय से इसके विपरीत कोई कारण न बता सकें। मेरा सुझाव है कि 'आरक्षी पदाधिकारियों का प्रशिक्षण' यह मद हटा दी जाये। पर यदि ऐसा न किया

[श्री एच.वी. कामत]

जा सके तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि आई.ए.एस. के सदस्यों को क्यों न सम्मिलित किया जाये। मैं अपने संशोधनों 199 तथा 200 को सदन के विचारार्थ पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** इस प्रविष्टि 57 पर एक संशोधन (संख्या 3544) श्री करीमुद्दीन के नाम में है। क्योंकि यह पेश नहीं किया जा रहा है, अतः डॉ. अम्बेडकर उत्तर दे सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने जो संशोधन पेश किये हैं। मैंने उनकी उस प्रविष्टि से तुलना की है जो मैंने प्रस्थापित की है। मेरे विचार में, एक बात के अतिरिक्त, मेरे माननीय मित्र श्री कामत के दिमाग में जो प्रयोजन हैं उन्हें केन्द्रीय सरकार पूरा कर सकेगी। केन्द्रीय सरकार प्रविष्टि 57 के अंतर्गत केवल एक ही कार्य नहीं कर सकेगी–वह है आध्यात्मिक अनुसंधान। मैं नहीं समझता। कि यह सदन, जो अच्छी प्रकार जानता है कि आज कल केन्द्रीय सरकार के समक्ष कितनी समस्यायें रहती हैं, उस पर आध्यात्मिक अनुसंधान जैसी चीज का भार डालना चाहेगा। उस संशोधन के षेश सब उद्देश्य प्रविष्टि 57 द्वारा पूरे हो जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** आप यह कैसे कहते हैं कि प्रशासनीय सेवा पदाधिकारी प्रस्थापित प्रविष्टि में आ जाते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा ख्याल है आ जाते हैं, क्योंकि प्रशिक्षण केवल पुलिस पदाधिकारियों का ही नहीं है। प्रयुक्त भाषा यह है "वृतिक, व्यावसायिक या शिल्पि प्रशिक्षण के लिये अनुसंधान"। उपरोक्त के अन्तर्गत कोई भी वस्तु लाई जा सकती है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम सूची (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 27 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 57 में 'research' शब्द के स्थान पर 'historical, scientific and spiritual research' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (छठे 'सप्ताह') के संशोधन संख्या 27 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 57 में 'Police' शब्द के स्थान पर 'administrative and police' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रविष्टि पर संशोधित रूप में, मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 57 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये।

'57. Union agencies and Union institutes for the following purposes, that is to say, for research, for professional, vocational or technical training, for scientific or technical assistance in the investigation or detection of crime, for the training of police officers, or for the promotion of special studies.' "

[57. निम्नांकित प्रयोजनों के लिये संघ-अभिकरण और संघ संस्थायें, अर्थात् वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पि-प्रशिक्षण के लिये, अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पी सहायता के लिये, आरक्षी पदाधिकारियों, के प्रशिक्षण के लिये या विशेष अध्ययनों की उन्नति के लिये।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 57 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

नवीन प्रविष्टि 57-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 57 के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जाये:

'57A. Co-ordination and maintenance of standards in institutions for higher education, scientific and technical institutions and institutions for research.' "

[57क. उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में वैज्ञानिक और शिल्पिक संस्थाओं में तथा गवेषणा की संस्थाओं में एक सूत्रता लाना और मानो का बनाये रखना]

यह प्रविष्टि तो पिछली प्रविष्टि संख्या 57 की पूरक मात्र है। प्रान्तों द्वारा चालित संस्थाओं के संबंध में प्रविष्टि 57क द्वारा केन्द्र को सीमित रूप में यह शक्ति देने की प्रस्थापना है कि वह गवेषणा संस्थाओं में एक सूत्रता ला सकता है और उनमें मानों को बनाये रख सकता है जिससे वे गिर न जायें।

श्रीमान, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि में, 'maintenance' शब्द के स्थान पर 'determination' शब्द रख दिया जाये"।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 201 तथा 255 केवल शब्दों को हटाने के विषय में है। यदि डॉ. देशमुख और श्री सरवटे चाहें तो उन पर बोल सकते हैं, पर उन संशोधनों को पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): मेरे पास एक वैकल्पिक संशोधन भी है। मैं इसे आपकी अनुमति से पेश करूंगा।

श्रीमान, मेरा वैकल्पिक संशोधन इस प्रकार है:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, सूची 1 प्रस्थापित प्रविष्टि 57 में, 'Co-ordination and maintenance' इन शब्दों के स्थान पर 'Promotion by financial assistance or otherwise' शब्द रख दिये जायें।"

संशोधित प्रविष्टि इस प्रकार बन जायेगी:

"Promotion by financial assistance or otherwise of standards in institutions for higher education, scientific and technical institutions and institutions for research."

इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित प्रविष्टि रहेगी तो यह शिक्षा के प्रांतीय क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप होगा।

कल भाषणों में दो प्रस्थापनायें पेश की गई थीं। एक यह थी कि शिक्षा केन्द्रीय विषय होना चाहिये। दूसरी बात एक सुविख्यात शिक्षा विद्वान ने यूं ही कह दी थी कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा केन्द्र को सौंप देनी चाहिये। उन्होंने यह कारण बताया था कि प्रान्तों के पास पर्याप्त धन नहीं है। मुझे ये दोनों कारण न उचित दिखाई पड़े और न पर्याप्त ही। यदि प्रान्तों के पास शिक्षा की उन्नति के लिये पर्याप्त साधन नहीं हैं तो यह विकल्प नहीं है कि शिक्षा को केन्द्र में स्थानान्तरित कर दें, वरन् यह तरीका है कि प्रान्तों को पर्याप्त साधन उपलब्ध कराये जायें जिससे कि वे शिक्षा देने का कार्य कर सकें।

हमारा सौभाग्य है कि नये संविधान में समुचित उपबन्ध रख दिये गये हैं। वित्त आयोग को तत्काल ही प्रांतों को सहायक-अनुदान देने के विषय में सिफारिशें करनी हैं। और भी, इन सहायक अनुदानों की सिफारिशें करते समय, वित्त आयोग से यह आशा की जाती है कि वह देखे कि प्रान्तों को शिक्षा के लिये और सामाजिक सेवाओं के लिये कौन-सा आवश्यक व्यय करना है।

दूसरी बात यह कही गई थी कि शिक्षा राष्ट्रीय महत्व की वस्तु है, अत: इसे केन्द्र को हस्तांतरित कर देना चाहिये। इस तर्क का तो यह परिणाम होगा कि लगभग प्रत्येक कार्य क्षेत्र जो इस समय प्रांतों के हवाले हैं, केन्द्र को हस्तान्तरित करना पड़ेगा। चिकित्सा राष्ट्रीय महत्व की वस्तु है, स्वच्छता राष्ट्रीय महत्व की वस्तु है, और इन प्रांतों के क्षेत्राधिकार में जो भी सामाजिक सेवायें हैं वे सब केन्द्र को सौंप देनी होंगी। अब, मेरे विचार में, प्रांतों तथा केन्द्र के कृत्यों को निश्चित करने

की यह कसौटी नहीं है। मेरे विचार में तो कसौटी यह होनी चाहिये कि यह विषय राष्ट्रीय महत्व का होने के अतिरिक्त उसके विषय में इन तीन बातों में से एक बात पूरी होनी चाहिये। वे तीन बातें मैं अभी बताता हूं। पहली बात उसका सीधा संबंध प्रतिरक्षा से होना चाहिये। दूसरी बात वह ऐसा विषय होना चाहिये जिसका केवल केन्द्र ही सर्वोत्तम प्रबन्ध कर सके। तीसरी बात वह ऐसा विषय होना चाहिये जिसमें एक सूत्रता राष्ट्र के हित में अपेक्षित हो। उदाहरण के लिये सारे देश के भूतत्वीय परिमाप को सर्वोत्तम प्रकार से केन्द्र ही कर सकता है। तीसरी बात, वह ऐसा विषय होना चाहिये कि एकसूत्रता ही मुख्य बात हो और राष्ट्रहित में आवश्यक हो। उदाहरण के लिये तोल और माप के मानों को केन्द्र द्वारा ही नियत किया जाना चाहिये क्योंकि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में है। यदि किसी क्षेत्र में सूत्रता आवश्यक नहीं है, वरन् विविधता तथा विभिन्नता अपेक्षित है, तो वह शिक्षा का क्षेत्र है।

शिक्षा की आजकल यह धारा है कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के अनुकूल होनी चाहिये जिससे कि प्रत्येक का व्यक्तित्व पूर्णत: विकसित हो सके, हां अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व से उसका सामंजस्य रहे। यदि शिक्षा में यही बात आवश्यक है तो विविधता के लिये पूरी गुंजाइश होनी चाहिये। शिक्षा में एक सूत्रता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उससे व्यक्ति का विकास रुक जायेगा। कोई यह नहीं कह सकता कि मनुष्यों के लिये बौद्धिक तोल और माप का मान होना चाहिये। अत: मेरे विचार में शिक्षा को पूर्णत: प्रान्तों के लिये ही छोड़ देना चाहिये।

मैं अनुभव करता हूं कि इस समय जो प्रविष्टि है, शिक्षा के क्षेत्र में "एकसूत्रता लाना तथा मानों को बनाये रखना" यह शिक्षा के क्षेत्र में, गवेषणा के क्षेत्र में प्रयोगों में बाधा बन जायेगी। यदि शिक्षा को देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना है, यदि व्यक्ति की योग्यता का पूर्णत: विकास करना है, तो विविधता होनी चाहिये और प्रयोग की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। अत: मेरा यह कहना है कि इसे पूर्णतया प्रान्तों पर छोड़ देना चाहिये। अब, केन्द्र के पास पहले ही काफी अधिकार हैं जिसका प्रयोग करके वह प्रान्तों की संस्थाओं को, जहां तक गवेषणाा का सम्बन्ध है, उपयुक्त स्तर पर ला सकता है। मद संख्या 57 में पहले ही एक उपबन्ध है कि केन्द्र गवेषणा के लिये संघ-अभिकरणों पर नियन्त्रण कर सकता है और इन संघ-अभिकरणों के द्वारा केन्द्र मान निश्चित कर सकता है। जिनका अनुसरण करना प्रांतों का कर्तव्य होगा। अत: गवेषणा के सम्बन्ध में माननिर्धारण की शक्ति केन्द्र को देना अनावश्यक है।

जहां तक उच्चतर शिक्षा का सम्बन्ध है, सब संघानीय देशों में यही नीति अपनाई गई है कि केन्द्र मान निर्धारण की शक्ति नहीं लेता। वे इस क्षेत्र में प्रांतों को पूरी-पूरी शक्ति देते हैं। किन्तु वे ऐसा करते हैं कि केन्द्र यह घोषणा करता है कि यदि अमुक अमुक प्रयोग पूरा किया जायेगा, अमुक अनुदान दिया जायेगा। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने और संयुक्त राज्य के अन्य राष्ट्रपतियों ने भी यही किया था और आस्ट्रेलिया तथा कनाडा यही कर रहे हैं। यहां भी केन्द्र को यही करना चाहिये। यदि केन्द्र चाहता है कि कोई विशेष स्तर होना चाहिये तो उन्हें अपना नियंत्रणाधीन विश्वविद्यालयों में या गवेषणा सम्बन्धी अपनी संघीय अभिकरणों में वह स्तर रखना चाहिये, या वे ऐसा उपबन्ध कर सकते हैं कि जो विश्वविद्यालय उनकी इच्छानुसार स्तर रखेंगे उन्हें अनुदान दिये जायेंगे। इस पर नियंत्रण करने का एक और तरीका भी है। आज की परिस्थितियों में अधिकांश स्नातक विश्वविद्यालयों से पढ़कर सेवावृति

[श्री वी.एस. सरवटे]

करते हैं, और सरकार नियम बना सकती है जिससे कि केवल वे ही लोग सेवाओं में प्रवेश कर सकते हैं जो विशेष स्तर पर पहुंचे हों। ऐसे अप्रत्यक्ष रूप से वे विश्वविद्यालयों से उन मानों को स्वीकार करवा सकते हैं जो केन्द्र चाहता है। केन्द्र को प्रत्यक्ष रूप से कोई मान निर्धारण नहीं करना चाहिये।

शिक्षा पर पहले ही राज्य का अत्यधिक नियन्त्रण है। जिसे शिक्षा से प्रेम है वह खेद के साथ देखेगा कि शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त गैर-सरकारी प्रत्यत्न नहीं होते। राज्य को गैर-सरकारी प्रयत्नों का प्रोत्साहन देना चाहिये तथा गैर-सरकारी विद्यालयों की उन्नति करानी चाहिये जो कि नये प्रयोग कर सकते हैं और शिक्षा के नये उपाय, नई प्रणाली ढूंढ सकते हैं। इसमें इस चीज की आवश्यकता है एकसूत्रता की नहीं। विविधता तथा विभिन्नता शिक्षा का उद्देश्य है, अत: केन्द्र द्वारा मान निर्धारण करने का प्रत्यक्ष प्रयत्न नहीं होना चाहिये। मैंने अपने संशोधन में वही मार्ग अपनाया है जिस पर संघानीय देश चल रहे हैं। अत: मैंने कहा–"उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं की, वैज्ञानिक और शिल्पिक संस्थाओं की तथा गवेषणा की संस्थाओं की वित्तीय सहायता द्वारा या अन्यथा उन्नति कराना"।

(इस समय अध्यक्ष महोदय सभापति के आसन के उठ गये, तथा उसे उपाध्यक्ष महोदय श्री टी. कृष्णमाचारी ने ग्रहण किया।)

श्रीमान, एक बात और है। मेरे विचार में संसद के लिये या केन्द्रीय सरकार के लिये, उच्चतर शिक्षा के उदाहरणार्थ चिकित्सा-शिक्षा का मान निर्धारित करना कठिन होगा। क्या संसद के लिये यह पता लगाना संभव होगा कि चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा के मान क्या हैं:

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): वे परामर्श के लिये विशेषज्ञ समिति नियुक्त कर सकते हैं।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** समिति क्यों नियुक्त की जाये जबकि विश्वविद्यालय इसी प्रयोजन के लिये विशेषज्ञ समितियां ही तो हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्र पर जितना अधिक प्रशासन-भार होगा, वह उतना ही कम कुशल बन जायेगा। मैं देखता हूं कि केन्द्र के लिये अधिकाधिक कृत्य रखने का प्रयत्न हो रहा है और मुझे भय है कि इसका यह परिणाम होगा कि केन्द्र के पास इतने कृत्य हो जायेंगे कि उसका अपना कुशलता-मान गिर जायेगा। इसी को दूर करने के लिये मैंने अपना संशोधन रखा है।

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रांत तथा बरार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में माननीय डॉ. अम्बेडकर को यह स्मरण कराना आवश्यक है कि हम ऐसे विषयों की सूची पर विचार तथा विनिश्चय कर रहे हैं जिन पर विधान बनाने की अनन्य शक्ति संघ को ही प्राप्त होगी और यदि हम इस प्रविष्टि पर उस दृष्टिकोण से विचार करें, तो मैं पूछना चाहता हूं कि क्या संसद विधि द्वारा विभिन्न

संस्थाओं के मानों का निर्धारण करेगी, चाहे वे कैसी ही संस्थायें हों किसी प्रकार की संस्थायें हों, जहां तक कि उच्चतर शिक्षा, विज्ञान तथा शिल्प की संस्थाओं का सम्बन्ध है। मेरे विचार में कई सदस्य, जिनमें कुछ मस्विद-लेखन समिति के सदस्य भी हैं, बार-बार इसी गलती में पड़ जाते हैं कि इस अनुसूची का उद्देश्य संघ की शक्तियों को निर्धारित करना तथा परिभाषित करना है। इसी सूची का यह उद्देश्य नहीं है और मेरे विचार में यह अच्छा होगा यदि मस्विदा-लेखन समिति के सदस्य इस प्रविष्टि पर उस अत्यन्त महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से विचार करें। मेरा निवेदन है कि अभी मेरे माननीय मित्र श्री सरवटे ने जो भाषण दिया है वह बहुत विद्वतापूर्ण था, पर शायद वह कई सदस्यों को सुनाई नहीं दिया, हां, यहां थोड़े से ही सदस्य हैं जो अपनी वक्तृता के अतिरिक्त किसी की वक्तृता को सुनने की परवाह करते हों, और ऐसे सदस्य और भी कम हैं जिन्होंने अपनी बुद्धि को मस्विदा-लेखन समिति और डॉ. अम्बेडकर के पास रहने न रख दिया हो। यही कारण है, श्रीमान, कि देश में यह भावना बढ़ती जा रही है कि इस सदन की बहुत कम सदस्य परवाह करते हैं और देश भी शनैः शनैः यह सीखता जा रहा है कि वह इस सदन की यथेष्ट चिन्ता न करे। मैं नहीं समझता कि हमारे लिये या देश के लिये यह अच्छी बात है। इस बात का पता लगाने के लिये मैं श्रेय नहीं लेना चाहता। यह तो दीवार पर स्पष्ट लिखा है जिसे कोई भी पढ़ सकता है।

इस समय मैं डॉ. अम्बेडकर से कहना चाहता हूं कि जहां तक इस प्रविष्टि का सम्बन्ध है इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

श्री राजबहादुर (मत्स्य का संयुक्त राज्य): क्या मैं माननीय सदस्य से कह सकता हूं कि उन्होंने जो बातें कहीं हैं वे शायद इस सदन के अधिकांश सदस्यों के विषय में नहीं हैं। मेरा सुझाव है कि उन्हें इस प्रकार की बातों को व्यापक रूप में नहीं कहना चाहिये।

डॉ. पी.एस. देशमुखः मुझे प्रसन्नता है कि कम से कम एक माननीय सदस्य हैं जो इस बात का विरोध करने के लिये तैयार हैं और शायद उनका विरोध, जहां तक उनका वैयक्तिक रूप में सम्बन्ध है, ठीक है। कई सदस्य अनुभव करते हैं, श्रीमान, कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा को शायद केन्द्र को सौंप देना चाहिये। हमने इसे लेने का विनिश्चय नहीं किया है, और अब भी विश्वविद्यालयों की शिक्षा प्रान्तों के हाथ में ही है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या डॉ. अम्बेडकर सुन रहे हैं, श्रीमान या वे अपनी निजी बातचीत में व्यस्त हैं? डॉ. देशमुख द्वारा अपनी वक्तृता जारी रखने से कोई लाभ नहीं है जब वे सुन ही नहीं रहे हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं उस व्यवहार का अभ्यस्त हो गया हूं। मेरे माननीय मित्र को अभी वह गुण अर्जन करना है और मुझे आशा है कि भविष्य में वे उस गुण को प्राप्त कर सकेंगे। चाहे दूसरे कुछ समझें और डॉ. अम्बेडकर ध्यान दें या न दें हम अपना कर्तव्य करते हैं और जो कुछ अनुभव करते हैं वह सदन के समक्ष पेश कर देते हैं, या सदन के उस भाग के समक्ष पेश कर देते हैं जो सुनने के लिये तैयार हो, और राष्ट्र के समक्ष उस हद तक हमारी बात पहुंच जाती है जिस हद तक समाचार पत्र हमारी बातों को प्रकाशित करें। मैंने तो आरंभ से ही.......

***उपाध्यक्ष:** (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी): डॉ. देशमुख अपना भाषण ही जारी रखें।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अच्छा, श्रीमान, जैसा मैंने कहा था कई सदस्य यह अनुभव करते थे कि उच्चतर शिक्षा, विशेषत: विश्वविद्यालयों की शिक्षा, संघ का कर्तव्य होना चाहिये। हमने उस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है तथा उस पर कार्यवाही भी नहीं कर रहे हैं। हमने वह कदम नहीं उठाया है। ऐसी हालत में हम मानों को निर्धारण कैसे कर सकते हैं तथा एक सुत्रता कैसे ला सकते हैं? क्या हम विश्वविद्यालयों के मानों में हस्तक्षेप करने के लिये विविध प्रांतों द्वारा पारित विश्वविद्यालय अधिनियमों को बदल देंगे? मैं ऐसा नहीं समझता। यदि हम यहां इस शक्ति को ले लें तब भी उन स्वायत्तता की शक्तियों में हस्तक्षेप करना किसी प्रकार संभव नहीं हो सकेगा जो हमने यहां प्रान्तों को दी हैं जब तक कि हम विश्वविद्यालय-शिक्षा को केन्द्रीय विधान-विषय न बना दें। एक और भी आपत्तिजनक बात है, वह यह है कि यह वांछनीय नहीं है, कि हम यहां विश्वविद्यालय निकायों तथा अन्य विद्वान संस्थाओं के विषय में निर्णय करें और उन्हें कहां से आदेश दें कि उचित मान क्या हैं और क्या नहीं हैं। इसका आधार कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये जो केन्द्र देने के लिये तैयार हो। यदि किन्हीं भी विश्वविद्यालयों या संस्थाओं को कोई दान या वित्तीय सहायता नहीं दी जाती है, तो केन्द्र को उनकी स्वायत्तता में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, और यदि केन्द्र उच्चतर शिक्षा की सहायता कर सकता है और संसद उस पर अधिकाधिक व्यय करने के लिये तैयार है यदि यह एकमुष्ठ अनुदान या नियमित अनुदान दे सकता है तो उस प्रयोजन के लिये विधान-निर्माण आवश्यक नहीं होगा। यही पर्याप्त होगा कि केन्द्र मंत्रणा दे दे, संघीय विशेषज्ञ शेष विश्वविद्यालयों और विद्वान संस्थाओं को मंत्रणा दे दें और मुझे विश्वास है कि वे सदा अपने मानों के बदलने के लिये तैयार रहेंगे।

अत: विधान-शक्ति प्राप्त करना बिल्कुल आवश्यक नहीं है, उसका अर्थ तो उन विविध निकायों को संसदीय विधानों द्वारा मजबूर करना होगा कि वे कुछ बातें स्वीकार करें या कुछ मानों को स्वीकार करें। यदि आप कोई आर्थिक सहायता नहीं देते तो यह विधान-शक्ति केन्द्र की ओर से अनुचित हस्तक्षेप ही होगी। यदि आप वित्तीय सहायता देंगे तो मुझे विश्वास है कि अपने ही हित के लिये कोई संस्था इतनी मूर्ख नहीं होगी या साहसी या बेपरवाह नहीं होगी कि वह केन्द्र की राय न माने, क्योंकि उसे केन्द्र से वित्तीय सहायता मिलेगी।

अत: इन सब दृष्टिकोणों से यह मद बिल्कुल कुकल्पित है और मुझे आशा है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर मेरे अन्तिम शब्दों को अवश्य सुनेंगे, चाहे उन्होंने अब तक कुछ नहीं सुना है, कि यह व्यर्थ का दिमागी ज्वर है जो मस्विदा लेखन समिति को शायद अधिक कार्य में व्यस्त होने के कारण हो गया है। मेरे विचार में यह भूल उनसे अधिक भार के कारण, घबराहट तथा थकावट के कारण हो गई है और मुझे आशा है कि इसे समय रहते ठीक कर लिया जायेगा। इस प्रविष्टि का कोई औचित्य नहीं है, और इससे किसी को कोई लाभ नहीं होगा, यदि हम विश्वविद्यालयों के मानों का निर्धारण करने के लिये विधान निर्माण की शरण लेंगे तो इससे विश्वविद्यालय निकाय चिढ़ जायेंगे। इन बातों को ध्यान में रखते हुये तथा मेरे मित्र श्री सरवटे ने जो कुछ कहा है उसे ध्यान में रखते ये मुझे आशा है कि इस प्रविष्टि को वापस ले लिया जायेगा और इस पर जोर नहीं दिया जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे थोड़े से विचार प्रकट करने हैं। मेरा निवेदन है कि श्री सरवटे के संशोधन से केन्द्रीय हस्तक्षेप सहनीय तथा वांछनीय बन जायेगा। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह बात है कि केन्द्र को शैक्षणिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार दे दिया जाये, पर यदि वह धन की सहायता के रूप में न हो, तो शिक्षा के मामलों में ऐसा हस्तक्षेप 'मुफ्त की राय' के समान बन जायेगा जो 'एकसूत्रता लाना तथा मानों का बनाये रखना' इस बड़े नाम से पुकारा जायेगा। प्रस्थापित प्रविष्टि अत्यन्त स्पष्ट है। मेरा निवेदन है कि श्री सरवटे के संशोधन में उपहास की भावना निहित है। वे कहते हैं कि केन्द्र को शिक्षा की उन्नति में केवल वित्तीय सहायता से ही हस्तक्षेप करना चाहिये। वित्त इस मामले में प्रधान है। वास्तव में यदि केन्द्र शिक्षा में जो कि मुख्यत: प्रांतीय विषय है, हस्तक्षेप करे तो, वह वित्तीय सहायता से होना चाहिये, केवल मुफ्त की मंत्रणा या आलोचना या टिप्पणी द्वारा नहीं। मेरे विचार में डाक्टर अम्बेडकर को इस व्यंग को स्वीकार करके इस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये जिससे हस्तक्षेप प्रांतों को केवल आर्थिक सहायता देने के रूप में ही रह जायेगा जो सचमुच वांछनीय हस्तक्षेप होगा।

***श्री बसंत कुमार दास** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): मेरा एक संशोधन है–संख्या 29।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता था कि वे नये अनुच्छेद हैं। डॉ. अम्बेडकर, क्या आप चाहते हैं कि आपके बोलने से पहले उन्हें पेश किया जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां।

***उपाध्यक्ष:** श्री दास, आप संख्या 29 को पेश कर सकते हैं।

***श्री बसंत कुमार दास:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3544 तथा 3545 के निर्देश से, सूची 1 की प्रविष्टि 57 में निम्न नई प्रविष्टियां जोड़ दी जायें:—

'5.A. Promotion of scientific researches and of higher technical and technological education.

57.B Co-ordination of educational activities of the States for the purpose of maintaining a uniform national educational policy.

57.C. Provision of adequate financial assistance to the States for proper development of education and maintenance of uniform standard of educational throughout the Union.' "

[57.क. वैज्ञानिक गवेषणा की तथा उच्चतर शिल्पिक और शिल्पकला विवरण सम्बन्धी शिक्षा की उन्नति।

57.ख. एक सी राष्ट्रीय शैक्षणिक नीति बनाये रखने के उद्देश्य से राज्यों की शिक्षा संबंधी कार्यवाहियों में एक सूत्रता लाना।

[श्री बसंत कुमार दास]

57.ग. शिक्षा के समुचित विकास के लिये और संघ भर में शिक्षा का एक सा मान बनाये रखने के लिये उचित वित्तीय सहायता का उपबंध।]

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में लिखा है कि केवल एक सीमित क्षेत्र में अर्थात् उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में ही एकसूत्रता लाना आवश्यक है, पर मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि शिक्षा को इकट्ठा ही लेना चाहिये और उस पर खंडश: विचार नहीं करना चाहिये। अत: मैं चाहता हूं कि राज्यों की कार्यवाहियों में एकसूत्रता होनी चाहिये जिससे कि एक सी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी रह सके। इस सदन ने अनुच्छेद 36 को स्वीकार कर लिया है जिसमें लिखा है:—

"राज्य इस संविधान के आरंभ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बालकों को चौदह वर्ष की अवस्था-समाप्ति तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिये प्रबन्ध करने का प्रयास करेगा।"

तत्पश्चात् 31 (6) में कहा गया है:—

"शैशव और किशोर अवस्था का शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।"

इन उपबन्धों को पूरा करने के लिये मेरे विचार में शिक्षा की एक सी राष्ट्रीय नीति होनी चाहिये और उस नीति को केन्द्र द्वारा एकसूत्रता लाकर क्रियान्वित किया जायेगा। यदि कोई उपयुक्त वित्तीय उपबन्ध नहीं होगा, तो राज्य संघ भर में शिक्षा का एक सा मान बनाये नहीं रख सकेंगे। शिक्षा ऐसा विषय है जिसे अन्न के पश्चात् ही प्राथमिकता देनी चाहिये। हमें यह देखना चाहिये कि सब राज्य सीमित समय में एक मान विशेष पर पहुंच जायें, अन्यथा सदन द्वारा स्वीकृत उपबन्धों को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक राज्य में अपने ही मार्ग पर जाने की प्रवृत्ति है। मैं नहीं कहता कि उन्हें इसका अधिकार नहीं है। शिक्षा प्रांतीय विषय है, अत: प्रान्तों की विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार उसमें विभिन्नता होनी चाहिये, पर फिर भी एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिये और उस राष्ट्रीय नीति को केन्द्र की सहायता से क्रियान्वित करना चाहिये। मेरी पहली बात कुछ हद तक प्रविष्टि 57 द्वारा पूरी हो जाती है, पर 57ख और ग में मैं यह चाहता हूं कि केन्द्र को शिक्षा की एक सी नीति बरतने की पर्याप्त शक्ति होनी चाहिये और राज्यों को वित्तीय सहायता देने की भी शक्ति होनी चाहिये जिससे कि निश्चित कालावधि में एक सा मान कायम किया जा सके।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं श्री बसंत कुमार दास के संशोधन का समर्थन करना चाहती हूं। यह बहुत सुन्दर संशोधन है। जैसा कि बताया जा चुका है, उनके संशोधन का प्रथम भाग पहले ही स्वीकृत हो चुका है किन्तु 57ख और ग भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। शिक्षा-नीति में एक सूत्रता लाना तथा विशेषत: देश में शिक्षा का एक सा राष्ट्रीय न्यूनतम मान बनाये रखना आवश्यक है। शिक्षा ही हमारी प्रगति और उन्नति का आधार है; और जब तक केन्द्र शिक्षा में एक सूत्रता न ला सके और यह न देख सके कि देश का कोई

भाग शिक्षा के न्यूनतम मान से नीचे न रहे, तब तक हमारे लिये उन्नति करना वास्तव में असंभव है। कोई राज्य या इस देश का कोई क्षेत्र जो न्यूनतम मान से पीछे रह जाये वह शेष भाग के लिये भार होगा। अत: मैं अनुभव करती हूं कि यह बहुत आवश्यक है। साथ ही, राज्यों या प्रान्तों के लिये शिक्षा न्यूनतम मान बनाये रखना तब तक संभव नहीं है जब तक कि उनके पास ऐसा करने के लिये पर्याप्त धन न हो।

इस समय शायद संक्रमण काल की कठिनाइयों के कारण और, हो सकता है अन्य कारणों से, हम इन अत्यावश्यक राष्ट्र-निर्माण कार्यों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सके हैं। जिन सेवाओं की पुराने शासन के अधीन अपेक्षा की गई थी तथा जिनके साथ विमाता व्यवहार किया गया था, उन्हें अभी आवश्यक सहायता मिलनी है जिससे कि देश प्रगति कर सके। मैं कहना चाहती हूं कि हमारी राष्ट्रीय आय का कम से कम पच्चीस तीस प्रतिशत भाग तत्काल राष्ट्र-निर्माण के कार्यों के लिये अलग रख देना चाहिये। मेरा यह दावा है कि प्रत्येक प्रान्त में राष्ट्रीय आय का कम से कम 15 प्रतिशत, नहीं तो 20 प्रतिशत, शिक्षा पर व्यय होना चाहिये। मैं जानती हूं कि हमारे देश में स्थिति खराब है और जब तक हम अधिक उत्पादन नहीं कर सकते, हम अपनी राष्ट्रीय आय को बढ़ा नहीं सकते। यह कहा गया है कि जब तक हम अपनी राष्ट्रीय आय को नहीं बढ़ा सकते तब तक इन आवश्यक कार्यों के लिये धन प्राप्त करना कैसे संभव है? हमें वह संकुचित घेरा कहीं न कहीं तोड़ना होगा। हमारे देश के लिये प्रगति करना या अधिक उत्पादन करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि श्रमिक की कार्यकुशलता न बढ़े। इसका यह अर्थ है कि शिक्षा और स्वास्थ्य का न्यूनतम मान होना चाहिये। जब तक पुरुषों और स्त्रियों की जो समाज के निर्माता हैं, शिक्षा तथा स्वास्थ्य का न्यूनतम मान नहीं होगा, तब तक हमारे लिये कार्य-कुशलता को बढ़ाना संभव नहीं होगा और जब तक कुशलता नहीं बढ़ेगी तब तक अधिक उत्पादन की बात करने से कोई लाभ नहीं है। मेरे विचार में हमें इस समस्या को इस आधार पर सुलझाना चाहिये।

यदि हमें ऐसा करना है तो इसमें श्री दास का यह संशोधन सहायक होगा। उन्होंने जो दो बातें उठाई हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि केन्द्र को एकसूत्रता लाने की शक्ति होनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि कोई राज्य न्यूनतम मान से पीछे न रहे, और राज्यों को शिक्षा का विकास करने के लिये काफी आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये। मैं यह नहीं कहती कि केन्द्र को यह शक्ति होनी चाहिये कि वह किसी राज्य के न्यूनतम मान से आगे बढ़ने में हस्तक्षेप करे। यह शक्ति इस संकल्प में निहित नहीं है। इसमें यह ही शक्ति निहित है कि कोई राज्य न्यूनतम मान से पीछे न रहे और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-लेखन समिति इस पर विचार करेगी तथा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू__ (उड़ीसा: जनरल): माननीय सभापति जी यह जो नया संशोधन का प्रस्ताव हम लोगों के सामने उपस्थित किया गया है इसके साथ मैं सहमत नहीं हूं, इसलिये कि शिक्षा एक प्रादेशिक विषय है। और शिक्षा एक प्रादेशिक विषय होने से अभी इसमें सेंटर का इतना अधिकार कर देना समुचित

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

नहीं है। कम से कम इसको तो कानकरेंट लिस्ट में रखना चाहिये। फिर दूसरे आर्टिकल में यह भी कहा गया है कि:

"Parliament has exclusive powers to make laws in respect of the matters enumerated in list I of the Seventh Schedule."

यह होते हुये भी हम लोग फिर पावर छीन लेते हैं यह उचित नहीं है। मेरा मतलब यह है कि जब एक शिक्षा प्रादेशिक विषय मान लिया गया है तो यूनिवर्सिटी के हाथ में हर एक जगह पावर रहनी चाहिये इसके लिये सेंटर की पावर नहीं रहनी चाहिये। जब तक यूनिवर्सिटी स्वतन्त्र नहीं रहेगी तब तक इस देश में जो शिक्षा हम लोग पाते हैं वह शिक्षा ठीक तरह से नहीं चल सकती। मैं आपको यह बताता हूं कि हिन्दुस्तान में जितनी यूनिवर्सिटी हैं उनमें कलकत्ता यूनिवर्सिटी को जो स्वातन्त्रय बहुत ज्यादा है और हम देखते हैं कि यह स्वातन्त्रय रहने से यूनिवर्सिटी से जो आदमी निकलते हैं उनसे ज्यादा फायदा होता है। मैं इसका प्रतिरोध इसलिये करता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर का इस अमेंडमेड से यूनिवर्सिटी की जो पावर है उसको हम कम कर देना चाहते हैं।

यहां एक बात मैं और कहना चाहता हूं कि हायर एज्युकेशन क्या है यह बताना चाहिये। हम लोगों की समझ में कुछ नहीं आता है कि हायर एज्युकेशन युनिवर्सिटी एज्युकेशन है या सेकेण्डरी एज्युकेशन है। इसको साफ कर देना चाहिये कि हायर एज्युकेशन का क्या मतलब है। अगर हायर एज्युकेशन का मतलब कॉलेज एज्युकेशन है तब तो युनिवर्सिटी को जितनी मदद सैंटर दे सकता है देना चाहिये। लेकिन हायर एज्युकेशन का मतलब सेकेण्डरी एज्युकेशन है तो बहुत खराब है। मैं तो चाहता हूं कि हर एक प्रान्त में सेकेण्डरी ऐज्युकेशन में सेंटर की कोई क्षमता नहीं रहनी चाहिये। आज तक क्या हुआ है कि ब्रिटिश इस देश में थे और वे केन्द्रीभूत पावर सेंटर में लेकर शिक्षा चलाते थे जिससे कोई आदमी जो यह ख्याल करता था कि नये तरीके से एज्युकेशन चलना चाहिये तो वह ख्याल नहीं चला सकता था। अभी भी इस देश में बहुत आदमी हैं जो ख्याल करते हैं कि शिक्षा एक तरीके से होगी और कुछ आदमी यह ख्याल करते हैं कि शिक्षा दूसरे तरीके से होगी। तो जब तक यह स्वातन्त्रय नहीं मिलेगा, और सब लोगों को स्टिंगरोल किया जायेगा तो उससे सबको भेड़ें ही बनाना है। इसलिये मैं चाहता हूं कि हर एक यूनिवर्सिटी को पूरी क्षमता देनी चाहिये और सेंटर जितना आर्थिक सहयोग दे सकता है उतना आर्थिक सहयोग उसे देना चाहिये। इसीलिये मैं इस संशोधन का प्रतिरोध करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत: जनरल): श्रीमान, क्या मैं अपना संशोधन 256 पेश कर सकता हूं?

(इस समय अध्यक्ष महोदय पुन: पीठासीन हुए।)

***अध्यक्ष:** यह तो नई प्रविष्टि जोड़ना है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, अभी आपने 259 की अनुमति दी थी।

***अध्यक्ष:** क्या आप इसे इसके संशोधन के रूप में पेश करना चाहते हैं?

***प्रो शिब्बन लाल सक्सेना:** वे एक दूसरे से सम्बद्ध विषय हैं।

***अध्यक्ष:** यह तो नई प्रविष्टि है जो आप पेश करना चाहते हैं। श्री फूल सिंह।

***श्री फूल सिंह:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन 57 ख का समर्थन करने खड़ा हुआ हूं पर मुझे भय है कि मेरे लिये संशोधन 57 ग का समर्थन करना संभव नहीं है। एकसी राष्ट्रीय शैक्षणिक नीति आवश्यक है। क्योंकि कुछ विश्वविद्यालयों ने अपनी उपाधियों को इतना सस्ता कर दिया है कि इन विश्वविद्यालयों से जो उत्तीर्ण होते हैं उन्हें नियुक्त करने वाले प्राधिकारी नीची निगाह से देखते हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में अपनी उपाधियों को इतना सस्ता बना दिया है कि जो लड़के वैसे उत्तीर्ण नहीं हो सकते थे वे उन विश्वविद्यालयों से सहज ही उत्तीर्ण हो जाते हैं। इससे बहुत गड़-बड़ हो गई है अत: एकसी राष्ट्रीय नीति आवश्यक है। मैं इससे सहमत हूं, पर मुझे भय है कि केन्द्र से यह कहना कि वह राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता दे, केन्द्र पर बहुत भार डालना होगा, किन्तु जब तक हम केन्द्र की आय न बढ़ायें, तब तक केन्द्र के लिये इन सब कार्यों के लिये वित्त देना शायद संभव न हो सके। अतएव मैं 57ख का समर्थन करता हूं और 57ग का विरोध करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बडेकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्रों ने जो इस प्रविष्टि 57क पर बोले हैं, कुछ मामलों को मिला दिया है। जहां तक मैं समझ सका हूं उनका यह कहना है कि यह प्रविष्टि 57क तभी स्वीकृत होनी चाहिये जब केन्द्रीय सरकार प्रांतों को कुछ अनुदान दे। इन दोनों मामलों को मिलाना मुझे बिल्कुल अनावश्यक प्रतीत होता है। केन्द्र से प्रांतों को अनुदान देने के प्रश्न पर दो भिन्न अनुच्छेदों-255 तथा 262-में उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 255 में उपबन्ध है कि केन्द्र द्वारा प्रान्तों को सहायता के लिये अनुदान दिये जायेंगे—

> "ऐसी राशियां, जो संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में प्रतिवर्ष भारत की संचित निधि पर भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है,......"

अत: वित्तीय सहायता द्वारा राज्यों को प्रोत्साहन देने का उपबन्ध तो 255 में पहले ही है। मैं सदन के सदस्यों का ध्यान एक और महत्वपूर्ण अनुच्छेद की ओर दिलाना चाहता हूं जिसका क्षेत्र अधिक विस्तृत है वह है अनुच्छेद 262, उसमें लिखा है:—

> "संघ या राज्य किसी सार्वजनिक प्रयोजन के हेतु कोई अनुदान दे सकेगा, चाहे फिर वह प्रयोजन ऐसा न हो कि जिसके विषय में यथास्थिति संसद या उस राज्य का विधान मंडल, विधि बना सकता है।"

जैसा कि सदन देखेगा इसका क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। इसमें लिखा है कि चाहे वह विषय सूची 1 में न हो, फिर भी, संसद अनुदान दे सकती है। अत: इस प्रश्न के लिये अलग उपबन्ध होने के बाद मेरे विचार में उसे प्रविष्टि 57क में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रविष्टि 57क में केवल कुछ संस्थाओं में खास मानों को बनाये रखने का विषय है, जो संस्थायें उच्चतर शिक्षा देती हैं, या वैज्ञानिक और शिल्पी संस्थाएं हैं, गवेषणा की संस्थायें हैं, आदि। आप कह सकते हैं "यह प्रविष्टि क्यों रखी जाये?" मैं बताऊंगा कि उसकी क्या आवश्यकता है। उदाहरण के लिये बी.ए. की परीक्षा को ही लीजिये, जो भारत के विविध विश्वविद्यालयों की ओर से ली जाती है। अब, अधिकांश प्रांत और केन्द्र अभ्यर्थियों के लिये विज्ञापन करते समय केवल यही कहते हैं कि अभ्यर्थी विश्वविद्यालय का स्नातक होना चाहिये। अब, मान लीजिये, मद्रास विश्वविद्यालय कहे कि बी.ए. में उत्तीर्ण होने के लिये 15 प्रतिशत अंक प्राप्त करना पर्याप्त है; और मान लीजिये कि बिहार विश्वविद्यालय कहे कि बी.ए. उपाधि प्राप्त करने के लिये 20 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है; और कोई अन्य विश्वविद्यालय कोई अन्य मान निश्चित कर दे, तो बिल्कुल गड़बड़ हो जायेगी और सामान्यत: प्रयुक्त होने वाली पदावलि का, कि अभ्यर्थी स्नातक होना चाहिये, कोई अर्थ नहीं रहेगा। इसी प्रकार कई गवेषणा संस्थायें हैं जिनके परिणामों पर केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों की कई कार्यवाहियां निर्भर हैं। स्पष्ट है कि आप इन शिल्पी और वैज्ञानिक संस्थाओं के परिणामों को सामान्य स्तर से गिरने नहीं दे सकते और यदि ऐसा हो जाये तो उन्हें केन्द्र के प्रयोजनों, अखिल भारतीय प्रयोजनों या राज्य के प्रयोजनों के लिये मान्यता प्रदान नहीं कर सकते।

अत: आर्थिक सहायता के प्रश्न के अलावा, यह सर्वथा आवश्यक है, केन्द्र के हितार्थ भी तथा प्रांतों के हितार्थ भी, कि अखिल भारतीय आधार पर ही मानों को बनाये रखा जाये। इस प्रविष्टि का यही उद्देश्य है, और मेरे विचार में तो यह बहुत महत्वपूर्ण और अच्छा उपबन्ध है क्योंकि कई प्रान्त ऐसे हैं जो गवेषणा संस्थायें स्थापित करने या विश्वविद्यालय स्थापित करने की जल्दी में हैं या अपने मानों को यूं ही नीचा करना चाहते हैं जिससे कि बाह्य जगत में यह प्रभाव उत्पन्न कर सकें कि वे पहले से कहीं अच्छे परिणाम निकाल रहे हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** क्या सरकार की यह इच्छा है कि उत्तीर्ण होने के लिये अंक तथा प्रतिशत भाग निश्चित करे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वे ऐसा कर सकते हैं। यह तो सरकार का काम है कि वह जैसा भी उचित समझे उसी प्रकार मान को बनाये रखें। मैं तो कुछ नहीं कह सकता कि कोई सरकार क्या करेगी।

***अध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। सबसे पहले श्री बसन्त कुमार दास द्वारा प्रस्थापित तीन प्रविष्टियां 57क, 57 ख और 57 ग हैं।

***श्री बसन्त कुमार दास:** मैं उन्हें वापस लेने के लिये सदन की अनुमति मांगता हूं।

संशोधन, सदन की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 57क, में 'Coordination and maintenance' इन शब्दों के स्थान पर 'Promotion by financial assistance or otherwise' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 57क के पश्चात् निम्न नई प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जायेः—

"57क. उच्चतर शिक्षाओं की संस्थाओं में वैज्ञानिक तथा शिल्पिक संस्थाओं में और गवेषणा की संस्थाओं में एकसूत्रता लाना और मानों का निर्धारण।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रविष्टि 57-क संघ-सूची में जोड़ दी गई।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने संशोधन संख्या 256 में एक नई प्रविष्टि की प्रस्थापना की है। विश्वविद्यालयों की शिक्षा तथा शिक्षा के सम्बन्ध में प्रांतों की शक्ति के विषय में इतना वाद-विवाद होने के बाद भी क्या माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश करने से कुछ लाभ समझते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यदि आपका सुझाव हो तो मैं पेश नहीं करूंगा।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा। हम इसे छोड़ देते हैं।

प्रविष्टि 58

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि के स्थान पर निम्न नई प्रविष्टि रख दी जायेः—

'58. Union Public Services, All India Services: Union Public Service Commission.' "

[संघ-लोक सेवाएं, अखिल भारतीय सेवाएं, संघ-लोक सेवा-आयोग।]

(संशोधन संख्या 169 पेश नहीं किया गया।)

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन संख्या 30 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 58 में, 'All India Services (अखिल भारतीय सेवायें)' इन शब्दों को हटा दिया जाये।"

अब जो प्रविष्टि प्रस्थापित हुई है उसके शब्द ये होंगे:—

"Union Public Services, All India Services, Union Public Service Commission."

मैं समझ नहीं पाता कि 'All India Services (अखिल भारतीय सेवाएं)' इन शब्दों की क्या आवश्यकता है। मेरे विचार में संघ-लोक सेवा' में 'अखिल भारतीय सेवायें' भी समाविष्ट हैं क्योंकि संघ में समस्त भारत आ जाता है और वही 'अखिल भारत' है, और मैं नहीं समझता कि "लोक" शब्द से कोई अन्तर पड़ेगा। अत: मेरे विचार में 'अखिल भारतीय सेवाएं' इन शब्दों का जोड़ना व्यर्थ है। किन्तु यदि उनसे कोई विशिष्ट प्रयोजन सिद्ध होता है तो मैं इस संशोधन पर जोर नहीं दूंगा। यदि 'संघ-लोक सेवा' इन शब्दों का सीमित आशय है और उसमें अखिल भारतीय सेवाएं भी आ जायें, क्योंकि सेवाओं को संघ-लोक-सेवाएं कहा जाता है, यदि अखिल भारतीय सेवायें उस आयोग को नहीं भेजी जा सकेंगी, कम से कम साधारणत: ऐसा ही होगा, क्योंकि सेवा आयोग को संघ-लोक सेवा-आयोग कहां गया है। अत: जहां तक आयोग का संबंध है, उसमें अखिल भारतीय सेवाओं को कोई स्थान नहीं होगा। ये अनावश्यक शब्द जोड़े गये हैं। किन्तु मैं तो केवल सूचना चाहता हूं।

*__श्री एच.वी. कामत:__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 30 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 58 में, अंत में, 'and Joint Commission' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

फिर प्रविष्टि इस प्रकार बन जायेगी:

"Entry 58. Union Public Services, All-India Services, Union Public Services Commission and Joint Commission."

(प्रविष्टि 58. संघ-लोक सेवाएं, अखिल भारतीय सेवाएं, संघ-लोक सेवा-आयोग और संयुक्त आयोग।)

सदन को स्मरण होगा कि कुछ दिनों पूर्व हमने अनुच्छेद 284, 285, 285क, 285ख, 285ग, 286, 287 आदि आदि को स्वीकार किया था, जिनमें लोक-सेवा आयोगों की सृष्टि की गई थी जो तीन विभिन्न श्रेणी के थे: प्रथमत: संघ आयोग: दूसरा राज्य आयोग: और तीसरा संयुक्त आयोग जो उन दो या अधिक राज्यों के

लिये होगा जो उन राज्यों के लिये ऐसा आयोग बनाने के लिये तैयार हो गये हों। दुर्भाग्य से इस संयुक्त आयोग के मामले को मस्विदा-लेखन समिति भूल गई, क्योंकि सदन देखेगा कि अनुच्छेद 284 से संसद को यह शक्ति मिल जाती है कि वह विधि द्वारा संयुक्त लोक-सेवा आयोग की नियुक्ति का उपबन्ध बना सकती है जो उन दो या अधिक राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करेगा जो कि अपने लिये संयुक्त आयोग बनाने के लिये सहमत हो गये हों। अनुच्छेद 284 से भी राष्ट्रपति को यह शक्ति मिलती है कि वह संयुक्त आयोग के सभापति तथा अन्य सदस्यों को नियुक्त करे, और इस अनुच्छेद तथा अनुवर्ती अनुच्छेद से राष्ट्रपति या संसद को संयुक्त आयोग के संविधान तथा संगठन के विषय में भी शक्ति मिलती है। खैर, मैं देखता हूं कि इस संयुक्त आयोग के मामले का अन्य सूचियों–सूची 2 और 3 में उपबन्ध नहीं है, और यदि है भी तो भी मैं नहीं समझता कि यह इन दोनों सूचीयों में से किसी में क्षेत्र में आता है। संयुक्त आयोग का उचित स्थान सूची 1 में है, वह संघीय प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार में होना चाहिये। तदनुसार मेरा सुझाव है कि मेरा संशोधन स्वीकार करके यह चीज जोड़ दी जाये, अर्थात् इस प्रस्थापित प्रविष्टि 5 में संयुक्त आयोग भी समाविष्ट कर दिया जाये। मैं संशोधन संख्या 204 को पेश करता हूं और सदन से अनुरोध करता हूं कि वह इस पर विचार करे तथा इसे स्वीकार कर ले।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र डॉ. पंजाब राव देशमुख ने 'अखिल भारतीय सेवाएं' इन शब्दों को निकालने का जो संशोधन पेश किया था उसे स्वीकार करना संभव नहीं है। कारण यह है कि अब तक अखिल-भारतीय सेवाएं तथा उनका विनियमन भारत-शासन-अधिनियम में नहीं था; क्योंकि यह मामला अन्य रूप से भारत-मंत्री के हाथ में था। अब भारत-मंत्री तो रहा नहीं है, अत: संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं के विनियमन के लिये किसी अभिकरण का उपबन्ध करना आवश्य है और उसके लिये सबसे उचित अभिकरण केन्द्र ही है। सूची 1 में उन मामलों का उल्लेख है जो केन्द्र के क्षेत्र में हैं। अत: अखिल भारतीय सेवाओं का स्वाभाविक स्थान सूची 1 में है। एक युक्ति तो यह है।

दूसरी युक्ति यह है कि इस समय दो प्रकार की अखिल भारतीय सेवाएं विद्यमान हैं। एक तो पुराने आई.सी.एस. के अवशिष्ट हैं जो अब भी भारत-सरकार की सेवाएं कर रहे हैं। दूसरे, गत दो वर्षों में नई सेवाएं स्थापित की गई हैं, जो अखिल भारतीय प्रशासनीय सेवा तथा अखिल भारतीय आरक्षी सेवा कहलाती हैं। क्या केन्द्र इन दोनों सेवाओं के आधार पर असैनिक सेवकों की भरती जारी रखेगा? इसका निर्धारण तो एक अनुवर्ती अनुच्छेद द्वारा किया जायेगा। पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये सेवाएं प्रांतों की सहमति से बनाई गई हैं। दूसरी बात, वे सेवाएं हैं तो उनके विनियमन के लिये उपबन्ध करना आवश्यक है और मेरा निवेदन है कि संघ सूची ही उचित सूची है जिसमें यह उपबन्ध किया जा सकता है।

मेरे मित्र श्री कामत ने जो सुझाव दिया है कि संयुक्त आयोग का भी उल्लेख इस प्रविष्टि में होना चाहिये, उसके विषय में मेरा निवेदन है कि गम्भीर विचार करने पर पता लगेगा कि उससे उलझन हो जायेगी। संयुक्त आयोग, जहां तक उसके गठन, उसके सदस्यों की नियुक्ति और उनके हटाने का प्रश्न है—और केवल इन तीन बातों में—अखिल भारतीय विषय है, और इन तीनों के लिये अनुच्छेद 284

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में उपबन्ध किया जा चुका है। अन्य सब मामलों में यह वास्तव में राज्य लोक सेवा आयोग है: उदाहरण के लिये, हम कह सकते हैं कि कुछ सेवाओं का अपवर्जित करने या कुछ मामलों में उनसे परामर्श करने के विषय में वह अब भी राज्य लोक सेवा आयोग ही रहेगा। और यदि संयुक्त आयोग की प्रविष्टि 58 में समाविष्ट कर दिया जायेगा तो इन मामलों में राज्यों का क्षेत्राधिकार नहीं रहेगा, ऐसा करना अवांछित है। इसी कारण मुझे भी कामत की प्रस्थापना पर आपत्ति है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या यह समवर्ती सूची में जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** यह कहां जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कुछ खास मामलों में यह केन्द्रीय मामला हो सकता है; उदाहरण के लिये यदि राज्य मिलकर यह कहें कि एक संयुक्त लोक सेवा आयोग बनना चाहिये, तो उस संकल्प के फलस्वरूप केन्द्र को क्षेत्राधिकार प्राप्त हो जाता है, अन्यथा नहीं। सब मामलों में, वह राज्य लोक सेवा आयोग है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से, वापस ले लिया जायेगा।

***अध्यक्षः** मैं श्री कामत के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 30 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 58 में, 'and Joint Commission' ये शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 58 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

"58. Union Public Services, All-India Services, Union Public Service Commission."

(58. संघ लोक सेवाएं, अखिल भारतीय सेवाएं, संघ लोक सेवा आयोग।)

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 58 संघ सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 58क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 58, के बाद निम्न प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जाये:—

"58A. Union pensions, that is to say, pensions payable by the Government of India or out of the Consolidated Fund of India."

(58क. संघ निवृत्ति वेतन, अर्थात् भारत सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतन।)

यह प्रविष्टि मस्विदे में नहीं थी। हमने सावधानी के लिये ऐसी प्रविष्टि रखना आवश्यक समझा।

(संशोधन संख्या 170 पेश नहीं किया गया।)

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 31 में, सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 58-क के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

"58A. Pensions payable out of the Consolidated Fund of India or otherwise by the Government of India."

(58क. निवृत्ति वेतन जो भारत की संचित निधि में से या अन्यथा भारत सरकार द्वारा दिये जाने हैं।)

मेरे संशोधन में संघ शब्द को हटाने का प्रस्ताव है और उसका यह महत्वपूर्ण कारण है कि जब तक वे भारत की संचित निधि में से दिये जाने हैं, तो मुझे विश्वास है कि जिन उत्तर वेतनों से संघ का सम्बन्ध है, उनके अतिरिक्त कोई अन्य उत्तर वेतन उनमें समाविष्ट नहीं होंगे। मैं समझ नहीं पाता हूं कि क्या कोई ऐसे निवृत्ति-वेतन हैं जो किसी ऐसी राशि में से दिये जा सकते हैं जो भारत की संचित निधि का भाग न हो। मेरा ख्याल था कि भारत के समस्त राजस्व का नाम भारत की संचित निधि रख दिया जायेगा। मैं अत: यह समझने में असमर्थ हूं कि इन निवृत्ति वेतनों को देने के लिये कोई अन्य स्रोत कहां से ढूंढ़ा जा सकता है। किन्तु मैंने इसे भी नहीं बदला है, मैंने केवल इसे अधिक उचित रूप में रख दिया है, कम से कम मेरा यह ख्याल है कि मैंने जो शब्द सुझायें हैं वे स्वीकार्य होने चाहियें अर्थात् संघ का उल्लेख नहीं होना चाहिये। जहां तक वे भारत की संचित निधि में से दिये जाने हैं, वे संघीय निवृत्ति वेतन ही होंगे, अत: यह शब्द व्यर्थ हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने जिस संशोधन का सुझाव दिया है वह मेरे संशोधन पर कोई सुधार है या उससे

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अधिक भिन्न है। यह अन्तर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि कुछ ऐसे निवृत्ति वेतन हो सकते हैं कि जो भारत की संचित निधि में से दिये जाते हों, जिसका अर्थ है करों की आय में से दिये जाने हैं। यदि नितान्त संभव है कि भारत सरकार से निवृत्ति वेतन स्थापित करे तो जमा कराये हुये कोष में से दिये जायें, तो उस अवस्था में उनका भार संचित निधि पर नहीं पड़ेगा वरन् उस व्यक्ति पर पड़ेगा जिसने पहले ही उस कोष में रुपया दिया है। यह अन्तर है इसी कारण यह प्रविष्टि ऐसी भाषा में रखी गई है जैसा कि मैंने रखी है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा भी अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 58 के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जाये:—

'58A. Union pensions, that is to say pensions payable by the Government of India or out of the Consolidated Fund of India.' "

प्रविष्ट 58क संघ सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 59

प्रविष्ट 59 संघ सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 60

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 60 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

'60. Ancient and Historical Monuments and Records declared by Parliament by law to be of national importance.' "

(संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख।)

मूल प्रविष्टि के शेष भाग अर्थात् "पुरातत्वीय स्थान तथा अवशिष्ट" को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित कर देने का विचार है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष, मैं सूची 3 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन सं. 206 को पेश करता हूं जो इस प्रकार है:—

> "कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 32 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 60 में, 'Ancient and Historical Monuments and Records' इन शब्दों के स्थान पर 'Monuments, places & objects of artistic or historic interest' ये शब्द रख दिये जायें।"

मैं आरंभ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं किसी प्रविष्टि या अनुच्छेद के शब्दों या भाषा की बहुत परवाह नहीं करता हूं, जबकि उससे अनुच्छेद का आशय स्पष्ट हो जाये। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि कोई अपने विचारों को बदल ले या पहले प्रयोग की गई भाषा को बदल दे, और न मुझे किसी की असंगति पर ही आपत्ति है, जब तक कि उस विचार-परिवर्तन या भाषा-परिवर्तन का कोई उचित कारण बताया जा सके या कम से कम वह बात ठीक दिखाई देती हो। महात्मा गांधी भी कहा करते थे कि वे भी अपने विचारों को बदलने के लिये तैयार रहते थे जबकि उस परिवर्तन की आवश्यकता का उन्हें विश्वास हो जाये, जबकि ऐसा करने के उचित कारण हों।

मैं सदन का ध्यान राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत, भाग चार, के अनुच्छेद 39 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 39, जो इस सदन ने कई मास पूर्व पारित किया था, इस प्रकार है:—

> "संसद से, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या चीज का यथास्थित लुंठन, निरूपण, विनाश, अपनयन, व्ययन अथवा निर्यात से रक्षा करना राज्य का आभार होगा।"

अब, संघ-सूची में, जहां तक मैं समझ सकता हूं, हमने अनुच्छेद 39 का विषय समाविष्ट कर दिया है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हमने अनुच्छेद 39 में जो भाषा रखी है उसे यहां क्यों बदला जाये। यहां प्रस्थापित प्रविष्टि प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारकों तथा अभिलेखों के विषय में है। अभिलेख-पता नहीं यह शब्द कैसे टपक पड़ा है। स्मारकों के अतिरिक्त यदि हम ऐतिहासिक महत्व के स्थानों तथा वस्तुओं का उल्लेख करें तो वह काफी होगा, हां, अभिलेख भी उन वस्तुओं में एक है जिन्हें आप नष्ट होने या खराब होने आदि से बचा सकते हैं। अत: स्मारकों के अतिरिक्त केवल ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएं क्यों नहीं कह देते? केवल ऐतिहासिक की क्यों, कलात्मक महत्व के स्थान भी क्यों नहीं कहते, जिसका उपबन्ध इस सदन ने, बहुत सोच विचार कर अनुच्छेद 39 में किया है जो राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में से एक है? मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 39 की भाषा को बदलने के लिये कोई उचित कारण नहीं बताया

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

है। अतः मैं संशोधन संख्या 206 पेश करता हूं और सदन से अनुरोध करता हूं कि वह इसे स्वीकार कर ले।

(संशोधन संख्या 207 तथा 208 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** क्या आप संशोधन संख्या 206 पर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, श्रीमान, इस विषय पर कुछ भी कहना सर्वथा अनावश्यक है।

***अध्यक्ष:** फिर मैं श्री कामत द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 32, में सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 60 में, 'Ancient and Historical Monuments and Records' इन शब्दों के स्थान पर 'Monuments, places and objects of artistic or historic interest' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित प्रविष्टि 60 सूची 1 का अग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 60 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, क्या मुझे अपने संशोधनों को पेश करने की अनुमति है?

***अध्यक्ष:** जब मैंने पुकारा था तब आप यहां नहीं थे। मुझे खेद है अब समय नहीं रहा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** वे अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन हैं, श्रीमान, और मेरे विचार में वे स्वतन्त्र भी हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** न्याय आपके पक्ष में नहीं है।

प्रविष्टि 61

***अध्यक्ष:** मुझे सूची समाप्त कर लेने दीजिये, फिर देख लेंगे। अब, प्रविष्टि सं. 61। मुद्रित सूची में एक संशोधन है जिसकी सूचना डॉ. अम्बेडकर ने दी है। संख्या 3548।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** फिर दो संशोधन श्री सन्तानम् के नाम में हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं उन्हें पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** फिर मैं प्रविष्टि संख्या 61 पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 61 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 61-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 61 के पश्चात् निम्न प्रविष्टि जोड़ दी जायेः—

'61.A. Establishment of standards of quality for goods to be exported across customs frontier or transported from one State to another.' "

[61.क. भारत से बाहर निर्यात की जाने वाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जाने वाली वस्तुओं के गुणों का मान-स्थापन।]

हम प्रविष्टि 61 को पहले ही पारित कर चुके हैं जिसमें तोलों और मापों का विषय है और अब यह अनुभव किया गया है कि वस्तुओं के गुणों के मान-स्थापन के लिये उपबन्ध होना चाहिये।

***अध्यक्षः** इस पर दो संशोधन हैं। संशोधन संख्या 209। डॉक्टर देशमुख।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रविष्टि 61क को जोड़ने की प्रस्थापना का स्वागत करता हूं, किन्तु मेरे विचार में वह पर्याप्त रूप से व्यापक नहीं है, और इसीलिये मैं अपने ये दो संशोधन पेश करता हूं जिससे यह पूरी तरह से व्यापक बन जाये और इस विषय की सब बातें आ जायें। मेरा संशोधन संख्या 209 इस प्रकार हैः—

["कि प्रथम सूची (पष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 33 में सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 61क के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः—

'61.A. Grading and standardization of quality of agricultural produce or goods intended to be consumed in the country or exported outside India or transported from one State to another.' "

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

मेरा अगला संशोधन संख्या 210 इस प्रकार है:—

"कि सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 61क के पश्चात् निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'61-B. Prevention of adulteration of articles of food, whether imported, proposed to be exported or otherwise, arrangements for analysis, control and regulation of all such articles.' "

श्रीमान, वास्तव में संशोधन काफी स्पष्ट है। मैं कृषिजन्य पदार्थों का श्रेणीकरण भी इसमें जोड़ना चाहता हूं। जो भी हमारे निर्यात व्यापार के महत्व से परिचित है तथा इस बात को जानता है कि श्रेणीकरण है ही नहीं, वह देखेगा कि इससे कृषकों को बहुत हानि होती है। यह ऐसी बात है जिसकी कृषि मंत्रालय को भी बहुत चिन्ता है। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि सब प्रांत सहमत होंगे कि एक केन्द्रीय विधान की और एक सुनिश्चित नीति के निर्धारण की आवश्यकता है, जिससे कि उत्पादन का स्तर ऊंचा उठ जायेगा। सब वस्तुओं का उपयुक्त श्रेणीकरण होगा तथा हमारा निर्यात व्यापार भी सुधर जायेगा। अत: यह बहुत महत्वपूर्ण बात थी जो शायद मसौदा-लेखन-समिति के किसी सदस्य के दिमाग में नहीं आई, और शायद उनमें से कोई कृषि या मंत्रालय से या कृषकों को कठिनाइयों या आवश्यकताओं से परिचित नहीं था अत: यह भूल रह गई है। अत: मेरी प्रस्थापना है कि यह भाषा रख दी जाये, क्योंकि इसमें वे सब बातें आ जाती हैं जो विद्वान डॉक्टर 61क में रखना चाहते हैं, कुछ और बातें जुड़ जाती हैं जो नितान्त आवश्यक हैं और उसका क्षेत्र निर्यात की जाने वाली या एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जाने वाली वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रहता इसमें कृषिजन्य पदार्थों का भी तथा देश में उपभोग के लिये बनाई गई वस्तुओं का भी निर्देश है। जहां तक मेरे सुझाव का संबंध है, जो 61ख को जोड़ने के संबंध में है, मैं खाद्य-सामग्री तथा अनाज में मिलावट करने के हमारे व्यापारियों के कलुषित स्वभाग का विशेषत: निर्देश करूंगा। यह मिलावट प्राय: ऐसे समय नहीं की जाती जबकि कृषक उन पदार्थों का उत्पादन या विक्रय करते हैं, वरन् उस समय की जाती है जबकि व्यापारी तथा वणिक उन्हें बेचते हैं। यह बुराई इतनी ज्यादा फैली हुई है कि मैं साहसपूर्वक कह सकता हूं कि किसी दुकानदार से कुछ भी बहुत शुद्ध रूप में प्राप्त करना बहुत कठिन है। उनको लालच इतना अधिक होता है कि वे अपने उचित लाभ से कभी संतुष्ट नहीं होते और बिल्कुल खुले तौर पर चीनी, आटे तथा तेल इत्यादि में पता नहीं क्या-क्या मिला देते हैं। कभी-कभी वे आटे में सीमेंट भी मिला देते हैं और हमारे अभागे भाई उसे खा लेते हैं। मैंने ऐसी वस्तुओं के विश्लेषण, नियंत्रण तथा विनियमन के लिये भी एक उपबन्ध रखने का सुझाव दिया है। मेरे विचार में ये दोनों संशोधन अत्यन्त आवश्यक हैं। मुझे आशा है डॉ. अम्बेडकर सहमत होंगे कि संघ के पास यह शक्ति होना आवश्यक है।

श्रीमान, यह कहा जाता है कि इस मामले को प्रांतों पर छोड़ दिया जाये। मेरे विचार में ऐसा करना उचित नहीं होगा, क्योंकि यह तो हास्यास्पद होगा कि हम मंडियों आदि के लिये मानों को बनाये रखने के लिये वस्तुओं के गुणों के विषय

में विधान बनायें तथा विनिश्चय करें, और सारे संघ में वही मान बनाये रखने के लिये आवश्यक कदम न उठायें। मुझे विश्वास है कि मेरे संशोधन स्वीकार कर लिये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 260 में प्रविष्टि 61 का निर्देश है, किन्तु वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है। अत: इसे पेश करना आवश्यक नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने जो प्रश्न उठाया है वह उस समय उठाया जा सकता है जब हम सूची 2 की प्रविष्टियों पर विचार करेंगे। हम यहां केवल सूची 1 पर विचार कर रहे हैं, जिसका उद्देश्य केन्द्र की शक्ति को सीमित करना है, जिससे कि वह राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न कर सके। इसी कारण इस प्रविष्टि की भाषा बहुत सावधानी से गढ़ी गई है। जैसे कि मेरे मित्र देखेंगे, इस प्रविष्टि में उन वस्तुओं के मानों की चर्चा है जो एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जायेंगी। इनके विषय में यह मंशा नहीं है कि केन्द्र को राज्यों के प्रशासन में हस्तक्षेप करने दिया जाये। यदि वे इस प्रश्न को उठाना चाहते हैं तो वे राज्य-सूची पर विचार के समय ऐसा कर सकते हैं।

***डॉ.पी.एस. देशमुख:** क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि इसे स्थगित कर दिया जाये तथा इस सूची को अंतिम रूप से पारित करने से पूर्व कृषि-मंत्रालय से परामर्श कर लिया जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जब हम सूची 2 पर आयेंगे तब हम इस मामले पर विचार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 33 में, सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 61क के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'61-A. Grading and standardisation of quality of agricultural produce or goods intended to be consumed in that country or exported outside India or transported from one State to another.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्ट 61क के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'61. Prevention of adulteration of articles of food, whether imported, proposed to be exported or otherwise, arrangements for analysis, control and regulation of all such articles.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं नई प्रविष्टि 61क पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 61 के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जाये:—

'61 A. Establishment of standards of quality for goods to be exported across customs frontier or transported from one State to another.' "

(61 अ. भारत से निर्यात की जाने वाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जाने वाली वस्तुओं के गुणों का मान-स्थापन।)

***श्री वी.एस. सरवटेः** मैं डॉ. अम्बेडकर से जानना चाहता हूं कि 'exported across customs frontier' इस अभिव्यक्ति का क्या आशय है?

***अध्यक्षः** मुझे भय है कि इस प्रश्न का अब समय नहीं रहा है, क्योंकि मतदान हो चुका है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि माननीय सदस्य बाद में मेरे पास आयेंगे तो मैं उन्हें समझा दूंगा।

***अध्यक्षः** प्रश्न मतदान के लिये पेश हो चुका है।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रविष्टि 61क संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 62

***अध्यक्षः** प्रविष्ट 62। क्या सरदार हुक्म सिंह इस प्रविष्टि पर अपना संशोधन पेश करते हैं?

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाबः सिख): मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

प्रविष्टि 62 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

***अध्यक्षः** मैं सदस्यों को यह बताना चाहता हूं कि आज प्रगति कुछ धीमी है। मैं तीनों सूचियों पर विचार कल समाप्त करना चाहता हूं, अतः मेरा सुझाव है कि हमें जरा जल्दी आगे बढ़ना चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** हम काफी तज चल रहे हैं, मेरा तो यह ख्याल है।

प्रविष्टि 63

***अध्यक्षः** आज नहीं। हम प्रविष्टि 63 को ले सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं मूल प्रविष्टि पर संशोधन संख्या 3551 को पेश नहीं कर रहा हूं। संशोधन 34 में, जो मैं पेश कर रहा हूं मैं पेश करते समय उसमें, संशोधन संख्या 212 भी समाविष्ट कर दूंगा। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 63 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

'63. Regulation and development of oilfields and mineral oil resources; petroleum and petrolum products other liquids and substances declared by Parliament by law to be dangerously inflammable.' "

[63. तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पत् का विनियमन और विकास; पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पाद; संसद से विधि द्वारा भयानक रूप से ज्वालाग्राही घोषित अन्य तरल और द्रव्य।]

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 34 में, सूची 1 की प्रविष्टि 63 में, आरंभ में 'Prospecting for and' ये शब्द रख दिये जायें।"

फिर श्रीमान, प्रविष्टि इस प्रकार बन जायेगी:

"Prospecting for and regulation and development of oilfields and mineral oil resources; petroleum and petroleum products; other liquids and substances declared by Parliament by law to be dangerously inflammable."

इस समय प्रविष्टि में तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पत् के विनियमन और विकास के लिये उपबन्ध हैं। तेल-क्षेत्रों और तेल-साधनों की खोज करने का उपबन्ध नहीं है। अतएव मेरे संशोधन में लिखा है "खोज करना, विनियमन और विकास आदि" इसका अर्थ है कि केन्द्रीय सरकार को इस संशोधन से तेल की खोज करने का अधिकार है। आप जानते हैं श्रीमान, कि तेल-साधनों को ढूंढ़ने के लिये चट्टानों तथा पर्वतों में खोज करनी होती है। उन स्थानों के भूतत्व परिमापों पर बहुत रुपया व्यय करना होता है, जहां तेल के होने का ख्याल हो। तेल क्षेत्रों का पता लगाने के लिये विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों से फायदा उठाया जाता है। अत: मेरे विचार में तेल क्षेत्रों के सामान्य विनियमन और विकास से ही काम नहीं चलेगा। हमें तेल-क्षेत्रों और तेल-साधनों की खोज करने की शक्ति होनी चाहिये। मेरे संशोधन से वह संशोधन केवल पूरा हो जाता है जो मसौदा लेखन समिति द्वारा पेश किया गया है। नि:संदेह वे भारत को आसाम के थोड़े से तेल-क्षेत्रों तक ही सीमित रखना नहीं चाहते। वे नि:संदेह यही चाहेंगे कि हमें भारत के अन्य भागों में भी तेल-क्षेत्र ढूंढने होंगे, और इस समय की प्रविष्टि द्वारा ऐसा करना संभव

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

नहीं होगा, क्योंकि उसमें खोजने की शक्ति नहीं मिलती। प्रांत इस कार्य को नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास धन की कमी है, और इसलिये तेल को खोजने का कृत्य केन्द्रीय सरकार का होना चाहिये। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***श्री राजबहादुर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 34 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 63 में, 'inflammable dangerously' इन शब्दों के पश्चात् 'Corrosive or explosive' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि इस प्रविष्टि के क्षेत्र में तेजाब को भी शामिल कर दिया जाये। मुझे आशा है, श्रीमान, कि मैं कह सकता हूं कि तेजाबों को रखने, एकत्र करने, एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने और बेचने के विषय में विधान बनाना बिल्कुल आवश्यक है, और मुझे आशा है कि इसमें मुझे विरोध का भय नहीं है। हम देख चुके हैं। कि साधारण से क्षुद्र झगड़ों में और विवादों में भी तेजाबों का कैसा दुरुपयोग हुआ है। हम यह भी देख चुके हैं कि राजनैतिक विवादों के क्षेत्र में भी तेजाबी-बमों का प्रयोग बढ़ रहा है। अत: यह आवश्यक है कि हमें तेजाबों को इकट्ठा करने, रखने आदि पर नियंत्रण रखना चाहिये और यह देखना चाहिये कि ऐसे तरल पदार्थों की सहायता से कोई शरारत न की जा सके। इसलिये हमें इस प्रविष्टि में तेजाबों को भी शामिल करना चाहिये। मसौदा-लेखन समिति द्वारा पेश की गई प्रविष्टि में सर्वप्रथम तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल-सम्पत् की चर्चा है। दूसरे उसमें, पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पादों की चर्चा है। और अंत में उन पदार्थों की चर्चा है जो संसद द्वारा विधि द्वारा, भयानक रूप से ज्वालाग्राही घोषित कर दिये जायें। मेरा यह निवेदन है कि अंतिम श्रेणी में हमें तेजाबों को भी शामिल कर लेना चाहिये। यह बताना उपयोगी हो सकता है कि तेजाब स्वयं ही शस्त्र के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं और हो रहे हैं और तेजाब विस्फोटकों के निर्माण में भी प्रयुक्त होता है। अत: यह आवश्यक है कि संघ को तेजाब जैसे पदार्थों का भी नियंत्रण करना चाहिये। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि इन दोनों संशोधनों में से कोई भी आवश्यक है। मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना की दृष्टि में जो उद्देश्य हैं कि प्रविष्टि 63 में केन्द्र को तेल को खोजने के विनियमन की भी शक्ति होनी चाहिये, वह तो उन शब्दों से भी पूरा हो जायेगा जो हमने प्रयोग किये हैं; अर्थात् "विनियमन और विकास।" 'corrosive' शब्द को जोड़ने के सम्बन्ध में, मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई शक्ति लेना आवश्यक नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन संख्या 34 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 63 में, प्रारंभ में, 'prospecting for and' ये प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर संशोधन संख्या 262 है।

श्री राजबहादुरः मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 63 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः—

'63. Regulation and development of oilfields and mineral oil resources; petroleum and petroleum products; other liquids and substances declared by Parliament by law to be dangerously inflammable.' "

[63. तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पत का विनियमन और विकास; पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पाद; संसद से विधि द्वारा भयानक रूप से ज्वालाग्राही घोषित अन्य तरल और द्रव्य।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 63 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 64

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूंः—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 64 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः—

'64. Industries, the control of which by the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.' "

[64. वे उद्योग जिनके लिये संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोकहित के लिये उन पर संघ का नियंत्रण इष्टकर है।]

काका भगवन्त रायः जनाब सदर, मेरी तरमीम ऐसी है किः

"That in amendment No. 35 of List 1 (Sixth week) in the proposed entry 64 of List I, for the word 'Industries, the words 'development of Industries, be substituted."

[काका भगवन्त राय]

[कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 35 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 64 में, 'industries' शब्द के स्थान पर 'development of industries' ये शब्द रख दिये जायें।]

मुहतरम डॉक्टर साहब ने Original entry (मौलिक प्रविष्टि) में जो तरमीम दी है उससे ऐसा मालूम होता है कि industries (उद्योगों) के बारे में वह तमाम ताकत मरकज को देना चाहते हैं। बहुत ठीक है मरकज को मजबूत होना चाहिये और हंगामी हालत में मरकज को ऐसे अख्तयारात दे देने चाहियें जो मुल्क की सनाती तरक्की के लिये नेहायत जरूरी है मगर मामूली हालात में जबकि मुल्क अच्छी हालत में हो मरकज को ऐसी ताकत न देना चाहिये। हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा मुल्क है इसके बहुत से प्रांत हैं और हर प्रांत की अपनी-अपनी मुश्कलात हैं और हर प्रांत अपनी मुश्कलात खुद समझता है किसी वक्त जो सेन्टर की समझ में नहीं आती है।

इंडस्ट्रीज का मामला बहुत पेचीदा मामला है और उसके लिये हर सूबे को सहूलत देनी चाहिये कि वह उस मामले को अच्छी तरह सुलझा सके और अगर आप सूबों पर जिम्मेदारी डाल देंगे और ताकत न देंगे तो मुझे डर है कि सूबे के मामलात ठीक न रह सकेंगे और मुल्क की सनाती तरक्की रुक जायेगी। मैं अमेन्डमेन्ट से जोड़ा बाहर बोल रहा हूं मगर मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि मरकज की मौजूदा सनाती पालीसी से मुल्क हो धक्का पहुंचा है।

***अध्यक्ष:** आप तरमीम के बारे में नहीं बोल रहे हैं बल्कि मुखालफत कर रहे हैं।

काका भगवन्त राय: मैं आपके रूलिंग के सामने सर झुकाता हूं। मगर मैं यह अर्ज करूंगा कि जहां तक इंडस्ट्रीज का ताल्लुक है उसमें सूबों को ताकत देना चाहिये क्योंकि वह अपनी इंडस्ट्रीज को समझ सकती हैं मैं इन अलफाज के साथ मुहतरम डॉक्टर साहब से दरखास्त करूंगा कि वह इस तरमीम से इत्तेफाक फरमायें।

श्री एच.वी. कामत: मैं तृतीय सूची (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 214 को पेश करता हूं जो इस प्रकार है:—

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 35 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 64 में, 'the control' इन शब्द के स्थान पर 'the development and control' ये शब्द रख दिये जायें।]

इस संशोधन में वह संशोधन भी आ जाता है जो मेरे माननीय मित्र काका भगवन्त राय ने अभी पेश किया है। संविधान के मसौदे में जो मौलिक प्रविष्टि थी उसमें उद्योग के विकास की चर्चा थी। मुझे आश्चर्य कि मसौदा लेखन समिति अक्समात इस प्रविष्ट के 'विकास' शब्द के विरुद्ध क्यों हो गई है। मेरा संशोधन वैसा ही है जैसा कि एक विधान विधेयक गत आवश्यक सत्र में सभा में पेश किया गया था और जो एक प्रवर समिति को सौंप दिया गया है। वह विधेयक उद्योगों में

सरकारी कार्यवाही के विषय में था, जिनका विकास और नियंत्रण केन्द्र द्वारा विनियमित होना था और उस विधेयक का शीर्षक यह था "उद्योग (विकास तथा नियंत्रण) विधेयक" अर्थात इस प्रविष्टि के विषय को केन्द्रीय सरकार ने पहले ही एक विधेयक में रख दिया है जिसके शीर्षक में केवल नियंत्रण की ही नहीं, वरन् उन उद्योगों के विकास की भी चर्चा है जो लोकहित में आवश्यक या इष्टकर समझे जायें। मैं मानता हूं कि यह बिल्कुल संभव है कि मसौदा लेखन समिति कहीं-कहीं भूल कर सकती है क्योंकि गत दो वर्षों में विशेषत: गत कुछ सप्ताहों या मासों में उन्हें जो परिश्रम करना पड़ा है उससे उन पर बहुत जोर पड़ा है, किन्तु मुझे आशा है कि मसौदा-लेखन समिति का दिमाग ऐसा बन्द नहीं हो गया है कि वह किसी भी परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर सकती। मेरे विचार में, इस प्रविष्टि का अर्थ अधिक पर्याप्त और स्पष्ट हो जायेगा यदि 'नियन्त्रण' शब्द का ऐसा संशोधन कर दिया जाये जैसा कि मैंने सुझाव दिया है, और केवल नियन्त्रण ही नहीं वरन् उद्योगों का विकास भी इस प्रविष्टि में रख दिया जाये, जिसका अर्थ है, वे उद्योग जिनके लिये संसद ने यह घोषणा की है कि लोकहित के लिये उनका संघ द्वारा विकास और नियन्त्रण होना इष्टकर है। मैं सूची 3 (षष्ठम सप्ताह) का संशोधन संख्या 214 प्रस्तापित करता हूं और सदन से अनुरोध करता हूं कि उस पर ध्यान पूर्वक विचार करे।

***अध्यक्ष:** संशोधनों की मुद्रित सूची में दो अन्य संशोधन हैं, एक तो माननीय डॉ. श्याम प्रसाद मुखर्जी के नाम से संख्या 3552 और दूसरा माननीय श्री के. सन्तानम के नाम से संख्या 3553 मैं समझ लेता हूं कि उन्हें पेश नहीं किया जाता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, यह प्रविष्टि विद्यमान रूप में ही बिल्कुल ठीक है और मसौदा लेखन समिति की जो मंशा है वह इससे पूरी हो जाती है। मेरा निवेदन है कि एक बार केन्द्र को किसी उद्योग विशेष के विषय में क्षेत्राधिकार प्राप्त हो जाता है जैसा कि इस प्रविष्टि में उपबन्धित है, तो वह उद्योग सब प्रकार से संसद के क्षेत्राधिकार में आ जाता है, केवल विकास के सम्बन्ध में ही नहीं अन्य प्रकार से भी। अतएव हमने सोचा कि सबसे पहले उद्योगों को इस प्रकार रखा जाये जिससे कि संसद को उसके विषय में सब प्रकार से, केवल विकास के ही संबंध में नहीं, सब प्रकार से क्षेत्राधिकार प्राप्त हो जाये। अत: श्री कामत इस प्रविष्टि को जितना विस्तृत बनाना चाहते हैं यह उससे कहीं अधिक विस्तृत है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 35 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 64 में, 'Industries' इन शब्द के स्थान पर 'development of industries' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (पष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 35 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 64 में, 'the control' इन शब्द के स्थान पर 'the development and control' ये शब्द रख दिये जायें।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 64 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

"64. Industries, the control of which by the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.' "

[64. वे उद्योग जिनके लिये संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोकहित के लिये उन पर संघ का नियन्त्रण इष्टर है।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधन रूप में प्रविष्टि 64 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

नई प्रविष्टि 64क

***प्रो शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 64 के पश्चात निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:–

'64A. Co-ordination of the development of agriculture including animal husbandry, forestry and fisheries and the supply and distribution of food.' "

श्रीमान, मैं मसौदा समिति और उसके सभापति को यह बताना चाहता हूं कि मैंने जो इस प्रविष्टि का सुझाव दिया है, यह भारत सरकार के कृषि मंत्रालय की सिफारिश के अनुसार है। वास्तव में माननीय श्री जयरामदास दौलत राम ने माननीय डॉ. अम्बेडकर को जनवरी 1948 में जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया था। मैं उस पत्र की अंतिम दो कंडिकायों का ही उद्धरण दूंगा। वे कहते हैं:—

"भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के पेट भरने की कठिनाइयों तथा गत युद्ध के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रहित में यह आवश्यक है कि केन्द्र को कृषि-विकास के क्षेत्र में अधिक सक्रिय भाग लेना चाहिये और जनवरी 1946 में भारत की कृषि तथा खाद्य नीति का एक वक्तव्य सरकार की ओर से निकाला गया था जिससे यह पता लगेगा कि केन्द्र ने अपने ऊपर विशिष्ट उत्तरदायित्व ले लिया है कि वह कृषि का विकास करेगा, और खाद्यान्न का पहुंचान और वितरण करेगा और कृषि विकास, भोजन उत्पादन तथा वितरण की एक अखिल भारतीय नीति में एक सूत्रता लायेगा... हमने इस विषय पर बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया और हमारा ख्याल है कि वित्त मंत्रालय की इस चुनौती का कि भोजन एक प्रांतीय विषय है कोई पर्याप्त उत्तर नहीं हो सकता जब तक कि संविधान अधिनियम में ही कोई विशिष्ट समुचित उपबन्ध न हो।

मेरा तो यह ख्याल है कि अब समय आ गया है जबकि भोजन के विषय में केन्द्र को समस्त उत्तरदायित्व संभाल लेना चाहिये। किन्तु राष्ट्र-हित में कम से कम यह तो अत्यावश्यक है ही कि समस्त देश में कृषि विकास में एक सूत्रता लाने तथा उसका पथ प्रदर्शन करने में केन्द्र का सक्रिय भाग होना चाहिये। अत: मैं आपके विचारार्थ यह सुझाव देना चाहता हूं कि, संघीय विधायनी सूचि की मद संख्या 12 के अतिरिक्त, उसी सूची में निम्न मद और जोड़ देनी चाहिये:—

"Co-ordination of the development of agriculture including animal husbandry, forestry and fisheries and the supply and distribution of food."

मैंने तो केवल मसौदा लेखन समिति की भूल ही बताई है। वास्तव में आज यह सुविख्यात है कि भोजन समस्या सबसे कठिन समस्या है जो देश को हल करनी है। हमें जो आयात करने पड़ते हैं उससे वास्तव में हमारे सारे साधन समाप्त होते जा रहे हैं और हम अपने औद्योगिक साधनों तथा अन्य वस्तुओं का विकास नहीं कर सकते।

अत: यदि हम चाहते हैं कि हम कुछ वर्षों में ही भोजन के विषय में आतमभरित हो जायें–एक दो वर्षों की प्रस्थापना की गई है–जो यह आवश्यक है कि केन्द्र की ओर से ही कार्यवाही की जाये। आज सरकार जो कुछ कर रही है। उस पर मुझे खुशी है। मेरे विचार में इस संविधान में संघ-सरकार को इतनी शक्ति नहीं दी गई है। विद्यमान नियन्त्रण और अन्य विनियम भी संभव नहीं होंगे जब तक कि ऐसी प्रविष्टि संघ-सूची में न रखी जाये। मुझे सचमुच आश्चर्य है कि क्या उन सिफारिशों को बिल्कुल भुला ही दिया गया है जो श्री जयराम दौलत राम के 5 जुलाई 1948 के पत्र में कृषि मंत्रालय ने की थीं और जो इस पुस्तिका 'भारत के संविधान के मसौदे के उपबन्धों पर टिप्पणियां' में प्रकाशित की गई थीं। वास्तव में मैं वैयक्तिक रूप से उनके सुझावों से पूर्णत: सहमत हूं कि यह देखना केन्द्र का ही उत्तरदायित्व होना चाहिये कि भारत को उचित मात्रा में भोजन मिले। इसके अतिरिक्त, वे तो इतना भी सुझाव नहीं देते,–वे केवल यही चाहते हैं 'कृषि के विकास में एक सूत्रता लाना जिसमें पशु-पालन तथा मीन व्यवसाय समाविष्ट है'। वे कहते हैं कि जो अतिरिक्त शक्तियां मांगी गई हैं वे इस विषय में है "बड़े पैमाने पर बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना जिसमें कलों तथा मशीनों का प्रयोग आवश्यक है वन विधियां और अन्तर्देशीय मीन-क्षेत्र तथा मीन क्षेत्रों की विधिया।"। मेरे विचार में यह सब आवश्यक हैं यदि भारत को भोजन के विषय में आत्मभरित बनना है।

*__श्री महावीर त्यागी__ (युक्त प्रांत: जनरल): प्रांतीय सरकारें क्या कहती हैं?

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ भोजन समस्या तभी हल हो सकती है जब हम उसे अखिल भारतीय आधार पर सुलझायें। हम बंगाल दुर्भिक्ष को देख चुके हैं और बंगाल प्रान्त उसे रोक नहीं सका। जब तक केन्द्र को यह शक्ति न हो कि वह अन्य प्रांतों में दुर्भिक्ष को रोकने के लिये अन्य प्रांतों से भोजन निर्यात करवा सके, तब तक इस समस्या को हल करना कठिन होगा। यह प्रांतों की शक्तियां छीनने का प्रश्न नहीं है वरन् आयात को मिटाने का प्रश्न है। अत: मेरे विचार में गत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

पांच-छह वर्षों के दुर्भिक्ष तथा नियन्त्रणों के इतिहास को देखते हुये यह शक्ति आवश्यक है। सरकार को आवश्यक शक्तियां अपने हाथ में लेने के लिये बाध्य होना पड़ा है, और मैं केवल यही चाहता हूं कि इन शक्तियों के लिये संविधान में उपबन्ध रख दिया जाये; अन्यथा हमारे भोजन समस्या को सुलझाने में इससे बाधा होगी। मेरा वैयक्तिक रूप में यह ख्याल है कि भूमि को कृषि योग्य बनाने का कार्य छोटे प्रांतों तथा राज्यों द्वारा नहीं किया जा सकता और उसके लिये केन्द्र की सहायता आवश्यक होगी। केन्द्र को अनन्य रूप से उस पर ध्यान देना चाहिये। यह अतीव आवश्यक है।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्यप्रांत तथा बरार के राज्य): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान मैं आपका ध्यान मुद्रित सूची के दो संशोधनों-संख्या 74क और 74 ख की ओर आकृष्ठ करना चाहता हूं जिन्हें मैं नई प्रविष्टियों के रूप में पेश करना चाहता था, पर अब मैं उन्हें पेश नहीं करना चाहता, और मैं श्री सक्सेना के संशोधन का समर्थन करने आया हूं। जैसा कि श्री सक्सेना ने कहा है, कृषि मन्त्रालय ने भी इन संशोधनों को भारत के संविधान में रखने की प्रस्थापना की है। श्री सक्सेना ने इसका पहले ही निर्देश कर दिया है। भोजन भारत में सबसे महत्वपूर्ण समस्या है और यह बहुत गम्भीर समस्या है, और भारत-सरकार इस समस्या को यथा संभव शीघ्र हल करने के लिये वचनवद्ध है। वास्तव में हमने यह निश्चय कर लिया है कि 1951 के पश्चात्, भोजन का आयात नहीं होगा, क्योंकि भोजन, आयात के कारण हमारे विनियमों का मुख्य भाग व्यय हो रहा है और आयात किये हुये भोजन को भारतीय बाजार के भावों पर बेचने में हमें प्रांतों को बहुत सहायता देनी होती है जिस पर बहुत व्यय होता है। गत दो वर्षों में हम इस प्रकार लगभग 40 करोड़ रुपये व्यय कर चुके हैं। भोजन समस्या तब तक हल नहीं हो सकती जब तक कि कृषि विकास की समस्या को अखिल-भारतीय आधार पर हाथ में न लिया जाये। और जब तक इस प्रविष्टि को संघ-सूची में न रखा जायेगा तब तक भारत सरकार के लिये कृषि-विकास की अखिल-भारतीय योजनाओं को तैयार करना और क्रियान्वित करना संभव नहीं हो सकेगा।

इस बात के अतिरिक्त, भोजन समस्या के प्रश्न का एक और पहलू भी है। भारत प्रधानत: कृषि देश है, और यदि हम अपने लोगों के जीवनस्तर को ऊंचा उठाना चाहते हैं तो हमें यह देखना चाहिये कि कृषि जीवियों का जीवनस्तर ऊंचा हो-कृषिजीवियों से मेरा अर्थ है कृषि-श्रमिकों और कृषकों से। भारतीय आर्थिक व्यवस्था तब तक सुधर नहीं सकती जब तक कि कृषि की आर्थिक व्यवस्था न सुधरे, और कृषि की आर्थिक व्यवस्था केवल अखिल भारतीय योजनाओं द्वारा ही सुधर सकती है, जिन्हें केन्द्र बनाये तथा केन्द्र और प्रांत मिलकर क्रियान्वित करें। हम देख चुके है कि भारत सरकार ने निर्माण के क्षेत्र में उत्पाद बढ़ाने के लिये विविध करों से विमुक्ति के रूप में प्रोत्साहन दिया है। इसी प्रकार कृषि उत्पाद बढ़ाने के लिये भी, भारत सरकार के लिये विधि बनाना तथा कृषि जीवियों को प्रोत्साहन देना आवश्यक होगा। अमरीका में ऐसी विधियां बनाई जा रही हैं। वहां उत्पादक को न्यूनतम उचित मूल्य देने का आश्वासन दे दिया गया है। यहां भी हमें न्यूनतम उचित मूल्य विषयक विधान बनाना होगा जिससे कि कृषि जीवियों और कृषकों को यह पता लग सके कि वे जो कुछ पैदा करेंगे उसे न्यूनतम उचित मूल्य पर बेच सकेंगे और अपने परिश्रम का उचित फल पा सकेंगे।

इन कारणों से, श्रीमान, मैं श्री सक्सेना द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करता हूं और मसौदा-लेखन समिति से अनुरोध करता हूं कि वह इसे स्वीकार कर ले।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, नई प्रविष्टि 64क को जोड़ने के संशोधन के विषय में, मैं कह सकता हूं कि इस मामले को प्रांतों के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन में पेश किया गया था और वह सम्मेलन इस प्रस्थापना से सहमत नहीं था।

भोजन के वितरण के सम्बन्ध में, हमने अनुच्छेद 306 में उपबन्ध रखा है, कि पांच वर्ष के लिये केन्द्र भोजन वितरण पर नियंत्रण रख सकता है।

दूसरे संशोधन के विषय में, जो नई प्रविष्टि 64ख को रखने के विषय में है...

***अध्यक्ष:** वह पेश नहीं हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***अध्यक्ष:** मैं संशोधन पर मत लता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 64 के पश्चात् निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'64.A. Co-ordination of the development of agriculture including animal husbandry, forestry and fisheries and the supply and distribution of food.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

नई प्रविष्टि-64ख

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 264, श्री सक्सेना।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 64क के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'64B. Regulation of trade and commerce in and of the production, supply, price and distribution—

(a) of goods which are the products of industries whose regulation under the control of the Union is declared by Parliament by law to be necessary or expedient in the public interest;

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(b) of any other goods whose regulation similarly is declared by Parliament by law to be necessary or expedient in the public interest.' "

यहां, मैं मसौदा-लेखन समिति का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि उद्योग तथा रसद मंत्रालय की सिफारिशों में भी ऐसा ही सुझाव है। उन्होंने यह सुझाव दिया है कि सप्तम अनुसूचित की संघ-सूचि में ऐसी प्रविष्टि होनी चाहिये जैसी मैंने सुझाई है। वास्तव में मैं उस पृष्ट का ही निर्देश कर देता हूं–इस पुस्तिका का–जिसमें कि संविधान के मसौदे पर विभिन्न मंत्रालयों की टिप्पणियां दी हुई हैं, 14वां पृष्ट देखिये। वहां उस मंत्रालय ने लिखा है:—

"भारत सरकार ने 6 अप्रैल 1948 को जिस औद्योगिक नीति की घोषणा की थी, संघ सरकार द्वारा उसको प्रभावी बनाने के लिये, तथा अन्य कारणों से यह आवश्यक है कि संघ-सरकार को व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में और जिन उद्योगों को केन्द्रीय विनियमन में लाना है उनके द्वारा निर्मित माल के उत्पादन, रसद, मूल्य और वितरण और पूर्ण रूपेण आयात किये हुये अथवा कृषिजन्य पदार्थों के विषय में कुछ शक्तियां दी जायें। अत: निम्न अतिरिक्त मद का सुझाव दिया जाता है:—

'Regulation of trade and commerce in and of the production, supply, price and distribution—

(a) of goods which are the products of the industries whose regulation under the control of the Union is declared by Parliament by law to be necessary or expedient in the public interest.

(b) of any other goods whose regulation similarly is declared by Parliament by law to be necessary or expedient in the public interest.' "

श्रीमान, इस बात के अतिरिक्त कि इस संशोधन को उद्योग तथा रसद विभाग का समर्थन प्राप्त है, प्रत्येक को यह स्पष्ट होगा कि गत चार-पांच वर्षों में हमने अनुभव से सीखा है कि यदि व्यापार तथा वाणिज्य तथा उत्पादन तथा वितरण को भी विनियमित करने की शक्ति न होगी तो देश में अराजकता फैल जायेगी। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न, भोजन और वस्त्र और जीवन की अन्य आवश्यकताओं का प्रश्न भी केवल प्रांतीय आधार पर सुलझाया नहीं जा सकता और उन्हें अखिल भारतीय पैमाने पर ही सुलझाना चाहिये। अत: मैं कहता हूं कि यह शक्ति यहां संघ-सूची में पर्याप्त उपबन्ध रखकर संघ को ही दे देनी चाहिये। अन्यथा केन्द्र को आवश्यक शक्ति नहीं मिलेगी। मेरे विचार में यह सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है जो केन्द्र को मिलनी चाहिये। इसके अतिरिक्त........

***अध्यक्ष:** क्या यह पर्याप्त होगा यदि मैं बता दूं कि समवर्ती सूची में एक नई प्रविष्टि–प्रविष्टि 35क की प्रस्थापना है? मेरे विचार में उसमें यह बात आ जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या ऐसा कोई संशोधन है, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** हां, संशोधन संख्या 142 है।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास: जनरल): उस संशोधन में माननीय सदस्य के संशोधन का प्रथम भाग आ जाता है।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: हां, यह समवर्ती सूची में है, पर वह इतना विस्तृत नहीं है जितना कि मेरा संशोधन है। मैं वैयक्तिक रूप से यह अधिक अच्छा समझता हूं कि यह शक्ति केन्द्र के ही हाथ में रहे।

*अध्यक्ष: बहुत अच्छा।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: इसके अतिरिक्त, मैंने जिन शब्दों का सुझाव दिया है उनसे केन्द्र को अधिक शक्ति मिलती है जितनी समवर्ती सूची वाले संशोधन से नहीं मिलती। मेरा सुझाव है कि इस चीज को केन्द्र के साथ में रखने के लिये गत चार-पांच वर्षों का अनुभव ही पर्याप्त कारण है। श्रीमान, मैं नहीं समझता कि हमें केन्द्र को भोजन तथा वस्त्र जैसी प्रधान वस्तुओं के विषय में शक्ति देते हुये डरना चाहिये। अन्यथा मैं नहीं समझता कि हम देश की आवश्यकताओं को यथेष्ट रूप में पूरा कर सकेंगे। इस समय भी केन्द्रीय सरकार को इन मामलों में एक सूचित्र नीति निश्चित करने का अधिकार है। किन्तु केन्द्र को यह भी शक्ति होनी चाहिये कि वह देश के सब भागों को केन्द्र की नीति पर चला सके। जिससे कि देश की सारी आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: संशोधन के प्रथम भाग के सम्बन्ध में मसौदा लेखन समिति की प्रस्थापना है कि इस मामले को समवर्ती सूची में रख दिया जाये, और यदि मेरे मित्र प्रो. सक्सेना समवर्ती सूची को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि समवर्ती सूची में प्रविष्टि 35क है जो वैसी ही है जैसा कि 64ख का (क) भाग है।

भाग (ख) के सम्बंध में, यह विवादास्पद विषय है और मसौदा समिति अभी इस प्रश्न पर कुछ निश्चय नहीं कर सकी है। मसौदा-समिति यह अनुभव करती है कि हमने संसद को जो शक्ति दी है कि वह कुछ उद्योगों को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है, भाग (क) पूर्णत: उसका तर्कसंगत निष्कर्ष है। यदि संसद को अधिकार है कि वह कुछ उद्योगों को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है, तो उसे यह भी शक्ति होनी चाहिये कि वह ऐसे उद्योगों के सामानों और उत्पादों का भी विनियमन कर सके। किन्तु भाग (ख) तो उन उद्योगों के सामान के विषय में है जिसे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित न किया हो। जैसा कि मैं कह चुका हूं, वह कुछ विवादास्पद विषय है, और मसौदा समिति ने कुछ निश्चय नहीं किया है। मेरा सुझाव है कि प्रो. सक्सेना इस मामले को उस समय तक स्थगित रहने दें जब तक कि हम समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 पर न पहुंच जायें।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: मुझे ठहरने पर कोई आपत्ति नहीं है।

*अध्यक्ष: फिर यह स्थगित रहेगा।

————————

प्रविष्टि 65

***अध्यक्षः** प्रो. सक्सेना का एक संशोधन संख्या 265 है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** प्रविष्टि 65 श्रम के विनियमन तथा खानों और तेल-क्षेत्रों में सुरक्षितता के विषय में हैं। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 65 में, 'Regulation' शब्द के पश्चात् 'and welfare' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

अब प्रविष्टि इस प्रकार बन जायेगी:

"Regulation and welfare of labour and safety in mines and oilfields......"

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मेरे मित्र को इससे सहायता मिलेगी यदि मैं उनका ध्यान समवर्ती सूची की प्रविष्टि 26 की ओर आकृष्ट करूं जिससे उनकी बात पूरी हो जायेगी। उसमें लिखा है "श्रमिकों का कल्याण, कार्य की शर्तें आदि आदि।"

***अध्यक्षः** वह 26 का संशोधित रूप है जिसकी सूचना डॉ. अम्बेडकर ने भेजी है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: इससे उनकी बात पूरी हो जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** किन्तु खान और तेल-क्षेत्र केन्द्रीय विषय हैं, और यदि आप चाहते हैं कि श्रमिक कल्याण समवर्ती सूची में हो तो मुझे इस पर एक आपत्ति है। मैं उस समय सदन में नहीं था, पर मैं चाहता था कि श्रम-विधान, श्रम-विधियां आदि भी केन्द्रीय विषय रहें। अपने श्रमिक कार्य के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि श्रम-विधान समूचे देश में और विविध प्रांतों में लगभग अराजकता की स्थिति में हैं। कुछ प्रांतों में कुछ श्रम-विधियां हैं, दूसरों में बिल्कुल भिन्न विधियां हैं। एक ही उद्योग में, जैसे कि बिहार, युक्त प्रांत और बम्बई के चीनी उद्योग में विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न विधियां हैं। बम्बई के वस्त्र उद्योग में भी कुछ विधियां हैं किन्तु इसी उद्योग के लिये युक्त प्रांत तथा अन्य स्थानों पर भिन्न विधियां हैं। यहां तक कि औद्योगिक विवाद अधिनियम को भी युक्त प्रांत तथा अन्य प्रांतीय सरकारों ने विधियां बनाकर बदल दिया है। इससे अराजकता की स्थिति होती है। अतः श्रम विधान केन्द्र सूची में आना चाहिये। मैं उन्हें प्रांतीय सूची में नहीं रखना चाहता। श्रम केन्द्रीय विषय होना चाहिये और केन्द्रीय सरकार को उसके विषय में शक्ति होनी चाहिये; अन्यथा भिन्न-भिन्न प्रांतों में श्रम के साथ भिन्न-भिन्न व्यवहार होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, संशोधन संख्या 215 (सूची 3-पष्ठम सप्ताह) के विषय में मेरी इच्छा थी कि वह प्रविष्टि 65 पर भी लागू हो। हो सकता है कि मैंने कार्यालय को जो प्रति भेजी थी उसमें केवल प्रविष्टि 66 का ही उल्लेख था। इच्छा यह थी कि वह प्रविष्टि 65 तथा 66 दोनों पर लागू हो।

***अध्यक्षः** आप इसे पेश करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** हां–65 के लिए भी।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छाः आप ऐसा कर सकते हैं। पर, पता नहीं वह कैसे इसमें ठीक जमता है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं (आपकी अनुमति से प्रविष्टि 65 के विषय में भी):

"कि संशोधन संख्या 37 के निर्देश से......"

***अध्यक्षः** इसका 65 से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो 66 से सम्बद्ध है। प्रविष्टि 65 पर कोई संशोधन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** आपकी कृपापूर्ण अनुमति से मैं अब इस संशोधन को प्रविष्टि 65 पर पेश कर रहा हूं। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 37 के निर्देश से, सूची 1 की प्रविष्टि 66 में और सूची 1 की प्रविष्टि 65 में, 'and oilfield' इन शब्दों के स्थान पर 'oilfields and submarine regions' ये शब्द रख दिये जायें।"

पता नहीं 'submarine regions' (जलगर्भ क्षेत्रों) को इस प्रविष्टि में से क्यों निकाल दिया गया है। उस दिन हमने एक अनुच्छेद स्वीकार किया था जिससे महासागर के गर्भ में स्थित सब भूमि तथा खनिज केन्द्र के अधीन रख दिये गये थे। मुझे विश्वस्त प्राधिकारी से पता चला है कि उदाहरण के लिये, मोती उद्योग का कच्छ प्रदेश में विकास करके बहुत लाभ उठाया जा सकता है, और मुझे विश्वास है कि हमारे महासागरीय क्षेत्रों के कई भागों में मोती उद्योग का विकास करने की भविष्य में बहुत संभावना है। जापान ने इस उद्योग का बहुत विकास किया है। और कुछ जापानी वैज्ञानिकों अथवा विशेषज्ञों ने कहा है कि भारत भी बहुत अच्छे मोती उत्पन्न कर सकता है। यह जलगर्भीय उद्योग होगा और इसमें भी उतना ही जोखिम है जितना कि खानों और तेल-क्षेत्रों में श्रम का कार्य है। अतः मैं अनुभव करता हूं कि जब आप श्रम का विनियमन कर रहे हैं और खानों तथा तेल-क्षेत्रों में उनकी सुरक्षितता का विनियमन कर रहे हैं तो लोकहित में यह भी समानरूपेण आवश्यक तथा जरूरी है कि उन उद्योगों में श्रम का तथा उसकी सुरक्षितता का विनियमन किया जाये, क्योंकि हो सकता है हम इन उद्योगों का जल गर्भ में विकास करें। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, वह भी उतना ही जोखिम वाला व्यवसाय है और सदन इस पर विचार कर सकता है कि क्या यह अभीष्ट नहीं है कि इस आशय के एक संशोधन को भी प्रविष्टि 65 में रख दिया जाये। श्रीमान, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं जिसका आशय है कि प्रविष्टि 65 में जलगर्भीय प्रदेश भी समाविष्ट पर दिये जायें और इसे सदन के विचारार्थ पेश करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री कामत के संशोधन के विषय में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह बिल्कुल अनावश्यक है क्योंकि 'तेल-क्षेत्र' शब्द का

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रयोग व्यापक रूप में हुआ है। जहां भी वह होगा, केन्द्र को उस पर क्षेत्राधिकार होगा। यदि कोई "तेल-क्षेत्र" जलगर्भ में स्थिति हो सकता है........

***अध्यक्षः** वे कहते हैं "and submarine regions".

***श्री एच.वी. कामतः** मैं कहता हूं "mines, oilfields and submarine regions."

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे मित्र का मतलब गोता खोरी से है।

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, मोती उद्योग।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं तो यही कह सकता हूं कि मैं उस मामले पर विचार करूंगा।

***अध्यक्षः** फिर मैं पहले प्रो. सक्सेना के संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 65 में 'regulation' शब्द के पश्चात् 'and welfare' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***श्री एच.वी. कामतः** डॉ. अम्बेडकर के आश्वासन पर अब मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता। पर इस मसौदा-लेखन समिति विचार कर सकती है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 65 सूची 1 का अंग बने"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रविष्टि 65 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्ट 66

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 66 में, 'and oilfields' ये शब्द हटा दिये जायें।"

वह पहले ही प्रविष्टि 63 में रख दिया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं श्रीमान,

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 37 के निदेश से, सूची 1 की प्रविष्टि 66 में, 'and oilfields' इन शब्दों के स्थान पर 'oilfields, and submarine regions' यह शब्द रख दिये जायें।"

इस संशोधन का केवल यही आशय नहीं है कि इस प्रविष्टि में 'जलगर्भीय क्षेत्रों' को समाविष्ट कर दिया जाये। वरन् यह भी है कि 'तेल-क्षेत्रों' को हटाने के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को भी न माना जाये। मेरे संशोधन में यह बात है। डॉ. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि यह 'तेल-क्षेत्रों' का मामला प्रविष्टि 63 में आ गया है। किन्तु जैसे कि सदन देखेगा अनुच्छेद 63, जो हमने कुछ क्षण पूर्व स्वीकार किया है, तेल-क्षेत्रों तथा खनिज तेल साधनों के विकास और विनियमन के सम्बन्ध में है। प्रविष्टि 65 में, जो हम पारित कर चुके हैं, श्रम के विनियमन तथा खानों और तेल-क्षेत्रों में सुरक्षितता का निर्देश है। यह मामला 63 में समाविष्ट विषय से भिन्न है। इसलिये मैं अनुभव करता हूं कि इस 66 में ऐसे विषय का निर्देश है जो 63 में समाविष्ट नहीं है, क्योंकि इसमें यह शर्त है "उस सीमा तक जिस तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद विधि द्वारा लोक हित के लिये इष्टकर घोषित करे"। मैं नहीं जानता कि क्या 'mineral development' इन शब्दों का रखना और 'oilfields' शब्द को हटाना प्रविष्टि 63 से, जो कि सदन ने स्वीकार कर ली है, मेल खायेगा। उस प्रविष्टि में 'खनिज तेल साधनों' का निदेश है। और यहां 'खनिजों का विकास' है। 'खनिजों के विकास' में व्यापक रूप से 'खनिज साधनों' का निर्देश है। यदि प्रविष्टि 66 में 'खनिजों का विकास' इन शब्दों को रखने के पर्याप्त तथा उचित कारण हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि 'तेल-क्षेत्र' शब्द को भी क्यों न रहने दिया जाये, क्योंकि वैज्ञानिक रूप से कहा जाये तो, 'तेल' यह शब्द व्यापक शब्द 'खनिजों' का ही एक भाग है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** वह 63 में है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह मैं जानता हूं। मुझे विश्वास है कि यदि मेरे मित्र मेरी बात को समझ पाते तो कुछ और ही बात कहते। मैं तो यह कह रहा था कि जब हमने 63 में 'तेल-साधनों' का उल्लेख कर दिया है और जब हमने व्यापक रूप से भी खनिजों के विकास की चर्चा कर दी है तो 'तेल-क्षेत्र' शब्द को भी रहने देने में कोई हानि नहीं है क्योंकि इससे बात सर्वथा स्पष्ट हो जायेगी। यह नितान्त आवश्यक नहीं है पर इसे रहने देने में भी कोई हानि नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहारः जनरल): श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3555 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 66 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः—

'66. Superintendence, direction, control, regulation development and preservation of mines, oilfields and mineral resources including such questions as—

(a) the regulation and safety of mining employees,

(b) propriety rights in or over lands where mines and mineral resources are found to exist,

(c) power to frame rules regarding terms and conditions for grant of prospecting licenses and mining leases,

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(d) power to modify conditons and term of existing leases,

(e) power to make rules for working of mines with-due regard to the health and welfare of workmen employed in mines,

(f) power to establish Inspectorate of Mines to enforce these rules,

(g) power to enforce improved mining methods to ensure conservation of minerals and mineral products,

(h) power to control production, supply and movement of minerals and mineral products, and

(i) any other matter connected with mines, oilfields and mineral resources which may be declared by Parliament to be necessary or expedient in the public interest.' "

इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 की आवश्यकता न रहे। मेरा यह स्पष्ट ख्याल है कि खान ऐसा ही महत्वपूर्ण विषय है जैसा कि प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले तथा संचार है। मेरा यह मत है कि यदि प्रतिरक्षा की व्यवस्था को समुचित रूप से चलाना है तो खान भी केन्द्रीय विषय ही होना चाहिये। मैं नहीं चाहता कि प्रांतों को यह भी शक्ति दी जाये कि "वे सूची के उपबन्धों के आधीन रहते हुये खानों और तेल-क्षेत्रों तथा खनिजों के विकास का विनियमन कर सकें" जैसा कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 में उपबन्धित है।

किसी अन्य प्रसंग में सदन के आंगन पर एक प्रश्न उठाया गया है कि प्रांतीय स्वायत्तता का क्या होगा। मुझे इससे कोई मतलब नहीं है। हम यहां प्रांतीय सरकारों के हितों का परित्राण करने नहीं आये हैं। हम यहां इसलिये आये हैं कि सूची 1 में उन विषयों को समाविष्ट करें जिन्हें हम आवश्यक समझते हैं—वे विषय जो आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। मेरा यह मत है कि खानों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये किन्तु इस समय मैं केवल यही कह रहा हूं कि विधान बनाने की शक्ति अनन्य रूप से केन्द्रीय सरकार में निहित होनी चाहिये।

(संशेधन संख्या 3555 पेश नहीं किया गया।)

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: सभापति जी, मैं यह संशोधन देना चाहता हूं:

"That for entry 66 in List I, the following be substituted:—

'66. Power to frame rules regarding terms and conditions for grant of prospecting licences and mining leases, power to modify conditions

and terms of existing leases, power to make rules for proper working of mines with due regard to physical safety of workmen employed in mines, their health and welfare, power to establish inspectorate of mines to enforce these rules, power to enforce improved mining methods to ensure conservation of minerals and mineral products, power to control productions, supply and movement of minerals and mineral products.' "

इस संशोधन में मैंने सब बात दे दी है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जी ने जो संशोधन अभी पेश किया है उस संशोधन में मेरी सब बातें आ जाती हैं। लेकिन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद इतनी पावर सेंटर को देना चाहते हैं मगर मैं इतनी पावर नहीं देना चाहता। इसलिये मैं स्टेट लिस्ट में आता हूं वहां मैंने दिया है:

Entry 28.

"That for entry 28 in List II the following be substituted:—

'28. Grant of prospecting liences and mining leases in accordance with the rules framed by the Union Government as provided in entry 66 of List I and collection and appropriation of all revenue therefrom.' "

इसके बारे में मैं ज़्यादा बात नहीं कहना चाहता इतना कहना चाहूंगा कि हम लोगों के हिन्दुस्तान में यह माइन्स का काम सेंटरल सबजेक्टस में होना चाहिये। इस बात में कोई संदेह नहीं है। जो प्रौसपेक्टिंग लाइसेंस हैं उसको जो खत्म होंगे वह यूनिफार्म करने के लिये सेंटर को पावर देना चाहिये क्योंकि मैं यह कह देना चाहता हूं और अच्छी तरह से कह देना चाहता हूं कि सेंटर को ऐसे नियम बनाने चाहियें जिसमें हर एक प्रांत को एक ही तरह से लागू होगा। जब तक सेंटर को यह क्षमता नहीं मिलेगी तब तक प्रौस्पैक्टिंग लाइसेंस मिलने में बहुत दिक्कतें होंगी और इसकी कन्डीशन में प्रावेन्स में भेद हो जायेगा। इसलिये मैं चाहता हूं कि जो संशोधन मेरा यहां आता है और फिर स्टेट लिस्ट 2 के अन्दर आता है उन दोनों को मिलाकर यह विषय ग्रहण करना चाहिये।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद से सहमत होना सचमुच बहुत कठिन है पर इस मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि मैं उनसे सर्वथा सहमत हूं और मेरे विचार में उनका संशोधन डॉ. अम्बेडकर द्वारा रखे गये उपबन्धों पर बहुत कुछ सुधार है—वरन्, सर्वव्यापी है और इसमें वे सब उपबन्ध आ गये प्रतीत होते हैं जो खानों तथा तेल-क्षेत्रों के समबन्ध में आवश्यक हैं।

[श्री कुलधर चालिहा]

हम जानते हैं कि देश के उस भाग में जहां हम रहते हैं, कोयला-खानों के स्वामियों ने पहले से कम कोयला निकालना आरंभ कर दिया है और हमें उसका कारण पता नहीं है। वैसे भी कोयला घटिया होने लगा है। यदि आप उनसे कोई कोयला मंगवायें तो आपको घटिया से घटिया माल मिलता है। अत: यह आवश्यक है कि वे ग्राहकों को जो कोयला देते हैं उसका कोई मान निश्चित होना चाहिये। इसी प्रकार तेल-क्षेत्रों में भी पैदावार घटती ही जा रही है। कहा जाता है कि डिगबोई में वे पूरा काम नहीं कर रहे हैं और इसमें उनका एक उद्देश्य है। कहा जाता है कि यदि हम कभी कोई लक्ष्य निश्चित नहीं करेंगे कि इतने समय में इतना माल उत्पन्न होना ही चाहिये तो शायद हमें पहले से बहुत कम माल मिलेगा। अब भी हम जानते हैं कि हमें डिगबोई से उतना माल नहीं मिलता जितना कुछ वर्षों पूर्व मिलता था, हमें वहां से हमारे भारत के कुल उत्पादन का 30 प्रतिशत भी प्राप्त नहीं हो रहा है जबकि पहले अधिक मिलता था। कहा जाता है कि अंग्रेज़ों के स्वामित्व वाले कुओं में जानबूझ कर ऐसा किया जा रहा है और वे अपनी कलों को पाकिस्तान या अन्य स्थानान्तरित करने का भी प्रयत्न कर रहे हैं।

अतएव, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के इस संशोधन से हमें पर्याप्त शक्ति मिल जायेगी कि हम उन पर नियंत्रण कर सकें और हम यह व्यवस्था कर सकें कि वे समुचित उत्पादन करें और उतना उत्पादन करें जितना हम चाहते हैं और उतना नहीं कि वे कहते हैं कि वे कर सकते हैं। इसलिये इस संविधान सभा के इतिहास में पहली बार मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद से सहमत हो सका हूं, जिनके विचार तो प्राय: बहुमत के विचारों से विपरीत होते ही हैं। श्रीमान, मैं उनके संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे आशा है, श्रीमान, कि मसौदा-लेखन समिति मेरे संशोधन के उस भाग का ध्यान रखेगी जो जलगर्भीय प्रदेशों के विषय में है।

***अध्यक्ष:** यह आशा की जाती है कि माननीय सदस्य ने जो कुछ कहा था उसे मसौदा-लेखन समिति के सदस्यों ने सुन लिया होगा।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार जनरल)**:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस विषय पर सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं तो संशोधन का विरोध करना चाहता हूं—मुझे खेद है—उस संशोधन का जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने पेश किया है। अपने संशोधन में वे एक ओर तो वे केन्द्र को बहुत विस्तृत शक्तियां देना चाहते हैं, दूसरी ओर उनका संशोधन नियमों या उपविधियों के रूप में है जो किसी अधिनियम के पारित होने के पश्चात् बनाई जा सकती हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे विस्तृत खंडों तथा उप-खंडों को संविधान में क्यों जोड़ा जाये। मैं तो डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई बात का समर्थन करता हूं क्योंकि उसमें केन्द्र तथा प्रांतों के मध्य शक्तियों का विभाजन किया गया है। केन्द्र के पास ऐसी शक्तियां हैं। जो खानों के या खनिज साधनों के कार्य को सुगमता से चलाने का विनियमन करने के लिये आवश्यक हैं या आवश्यक दिखाई दें। और प्रांतों के पास भी ऐसी शक्तियां होंगी जिनका प्रयोग उन्हें अपने राज्य-क्षेत्रों में खानों तथा खनिज साधनों के विनियमन या विकास के लिये करना चाहिये। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं तथा उस पर जो संशोधन पेश किये गये हैं उनका विरोध करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** डॉ. अम्बेडकर के संशोधन 'तेल-क्षेत्र' शब्द को हटाने का सुझाव है।

***श्री जगत नारायण लालः** 'तेल-क्षेत्र' इस शब्द को तो हटाना ही होगा क्योंकि वह पहले आ चुका है।

***अध्यक्षः** क्या आप कुछ कहना चाहते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान, मैं कोई संशोधन स्वीकार नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** हम श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन को लेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान, मैं उसे वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** फिर मुद्रित सूची का संशोधन सं. 3556 है जिसे श्री साहू ने पेश किया है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 66 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः

'66. Power to frame rules regarding terms and conditions for grant of prospecting licences and mining leases, power to modify conditions and terms of existing leases, power to make rules for proper working of mines with due regard to physical safety of workmen employed in mines, their health and welfare, power to establish inspectorate of mines to enforce these rules, power to enforce imporoved mining methods to ensure conservation of minerals and mineral products, power to control productions, supply and movement of minerals and mineral products.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर संशोधन संख्या 215 है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसे मसौदा समिति के विवेक पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा, फिर इस पर मत नहीं लिये जायेंगे। वे इसे मसौदा समिति पर छोड़ते हैं।

फिर डॉ. अम्बेडकर का संशोधन है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 66 में, 'and oilfields' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन रूप में प्रविष्टि 66 सूची 1 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 66 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 67

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 67 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

'67. Extension of the powers and jurisdiction of members of a police force belonging to any State to any area not within such State, but not so as to enable the police of one State to exercise powers and jurisdiction in any area not within that State without the consent of the Government of the State in which such area is situated; extension of the powers and jurisdiction of members of a police force belonging to any State to railway areas outside that State.' "

[67. किसी राज्य के आरक्षी बल के सदस्यों की शक्तियां और क्षेत्राधिकार का उस राज्य में न होने वाले किसी क्षेत्र पर विस्तार, किन्तु इस प्रकार नहीं कि एक राज्य की आरक्षी, उस राज्य में न होने वाले किसी क्षेत्र में बिना उस राज्य की सरकार की सम्मति के जिसमें कि ऐसा क्षेत्र स्थित है शक्तियां और क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकें, किसी राज्य की आरक्षी बल के सदस्यों की शक्तियां और क्षेत्राधिकार उस राज्य से बाहर रेल क्षेत्रों पर विस्तार।]

***अध्यक्षः** सरकार हुकम सिंह का एक संशोधन अपमार्जन के विषय में है। उसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रविष्टि पर डॉ. देशमुख का भी एक संशोधन है, मुझे पता लगा है वे उसे पेश नहीं कर रहे हैं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 67 के स्थान पर प्रविष्टि रख दी जाये:

'67. Extension of the powers and jurisdiction of members of a police force belonging to any State to any area not within such State, but not so as to enable the police of one State to exercise powers and jurisdiction in any area not within that State without the

consent of the Government of the State in which such area is situated; extension of the powers and jurisdiction of members of a police force belonging to any State to railway areas outside that State.' "

[67. किसी राज्य के आरक्षी बल के सदस्यों की शक्तियां और क्षेत्राधिकार का उस राज्य में न होने वाले किसी क्षेत्र पर विस्तार, किन्तु इस प्रकार नहीं कि एक राज्य की आरक्षी, उस राज्य में न होने वाले किसी क्षेत्र में बिना उस राज्य की सरकार की सम्मति के जिसमें कि ऐसा क्षेत्र स्थित है शक्तियां और क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकें, किसी राज्य की आरक्षी बल के सदस्यों की शक्तियां और क्षेत्राधिकार उस राज्य से बाहर रेल क्षेत्रों पर विस्तार।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 67 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 68

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 68 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:

'Elections to Parliament and to Legislatures of States and of the President and Vice-President; and Election Commission to Superintend, direct and control such elections.' "

[संसद और राज्यों के विधान-मंडलों के लिये तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन और ऐसे निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के लिये निर्वाचन आयोग।]

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन संख्या 38 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 68 में, 'Election Commission' इन शब्दों के स्थान पर 'Election Commission and Regional Commissioners' ये शब्द रख दिये जायें।"

प्रविष्टि 68 में जो परिवर्तन किया गया है उसके कारण यह संशोधन आवश्यक हो जाता है। संविधान के मसौदे में मौलिक प्रविष्टि यह थी:

'Elections to Parliament and of the President and Deputy President; and Election Commission to superintend, direct and control such elections."

नई प्रविष्टि इस प्रकार है:

'Elections to Parliament and to Legislatures of States and of the President and Vice-President; and Election Commission to Superintend..."

[श्री एच.वी. कामत]

अर्थात्, हमने राज्यों के विधान-मंडलों के निर्वाचनों को प्रस्थापित नई प्रविष्टि 68 में शामिल कर लिया है।

सदन को स्मरण होगा कि कुछ सप्ताह पूर्व हमने अनुचछेद 289, 289ख आदि को स्वीकार किया था। यदि मेरे साथ अनुच्छेद 289 को पढ़ने का कष्ट करेंगे, तो वह देखेंगे कि उसमें सबसे पहले निर्वाचन आयोग की नियुक्ति का उपबन्ध है और प्रादेशिक आयुक्तों का उल्लेख नहीं है। प्रादेशिक आयुक्त अनुच्छेद 289 के खंड 3 में उल्लिखित हैं। उस खंड में यह उपबन्ध है कि, "लोक सभा, तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पूर्व, तथा विधान-परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान-परिषद् के लिये पहले साधारण निर्वाचन तथा तत्पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पूर्व, राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्श करके उस अनुच्छेद के खंड (2) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिये गये कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिये ऐसे प्रादेशिक आयुक्त भी नियुक्त करेगा जैसे वह आवश्यक समझे"। खंड 4 में केवल निर्वाचन आयुक्तों की ही नहीं, वरन् प्रादेशिक-आयुक्तों की भी सेवा की शर्तों और पदावधि निर्धारित करने के विषय में संसद को शक्तियां दी गई हैं। प्रादेशिक आयुक्त निर्वाचन आयोग के भाग नहीं हैं। वे तभी सामने आते हैं जब राज्यों की सभाओं तथा परिषदों के निर्वाचन आरंभ होने वाले हों। अतः मैं अनुभव करता हूं कि कि इस बात को प्रविष्टि 68 के नये मसौदे में, जो पुराने का स्थान लेगा पूर्णतः स्पष्ट कर देना चाहिये। इसमें संसद के निर्वाचन समाविष्ट हैं और राज्यों के निधान-मंडलों के निर्वाचन भी समाविष्ट हैं। जिस प्रयोजन के लिये प्रादेशिक आयुक्तों को रखा गया है। अतः प्रविष्टि 68 में यह भूल रह गई है। मुझे आशा है कि सदन मेरे संशोधन को स्वीकार कर सकेगा।

***अध्यक्षः** इस पर एक संशोधन है जो श्री सन्तानम के नाम में है। मेरे विचार में हमने कुछ अन्य अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जो विनिश्चय किया है उसे देखते हुये इसका प्रश्न नहीं उठता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस संशोधन को स्वीकार करना अनावश्यक है, क्योंकि निर्वाचन आयोग में प्रादेशिक आयुक्त भी आ जाते हैं।

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 38 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 68 में, 'Election Commission' इन श्ब्दों के स्थान पर 'Election Commission and Regional Commissioners' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 68 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:

'Elections to Parliament and to Legislatures of States and of the President and Vice-President; and Election

Commission to superintend, direct and control such elections.' "

[संसद और राज्यों के विधान-मंडलों के लिये तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन; और ऐसे निर्वाचकों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के लिये निर्वाचन आयोग।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 68 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 69

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 69 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टियां रख दी जायें:

'69. The emoluments and allowances and rights in respect of leave of absence of the President and Governors; the salaries and allowances of the Ministers of the Union and of the Chairman and Deputy Chairman of the Council of States and of the Speaker and Deputry Speaker of the House of the People; the salaries and allowances of the members of Parliament; the salaries, allowances and the conditions of service of the Comptroller and Auditor-General of India.

69A. The privileges, immunities and powers of each House of Parliament and of the members and the Committees of each House.' "

[69. राष्ट्रपति और राज्यपालों की उपलब्धियां, और भत्ते और अनुपस्थिति छुट्टी के बारे में अधिकार; संघ के मंत्रियों के तथा राज्य परिषद् के सभापति और उपसभापति के और लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते; संसद के सदस्यों के वेतन और भत्ते; भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक के भत्ते तथा सेवा की शर्तें।

69क. संसद के प्रत्येक सदन की, तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।]

***अध्यक्षः** इस पर एक संशोधन संख्या 219 है जो भी कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता किन्तु मैं पूछना चाहता हूं कि अम्बेडकर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को कैसे भूल गये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उनके वेतनों आदि का उपबन्ध अनुसूची में है। हम कह चुके हैं कि उनके वेतन वे ही होंगे जो कि अनुसूची में उल्लिखित हैं।

***अध्यक्षः** फिर डॉ. देशमुख का संशोधन सं. 220 है। क्या उसे राज्य-सूची में रखना आधिक उपयुक्त नहीं होगा?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** नहीं श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 39 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 69 के पश्चात् निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जायेः—

'69A. Privileges, immunities and powers of the members of the State Legislatures and their Committees.' "

[69क. राज्यों के विधान-मंडलों तथा उनकी समितियों के विशेषाधिकार, उन्मुक्तियां तथा शक्तियां।]

श्रीमान, अनुच्छेद पर वाद-विवाद के समय मैंने जो संशोधन प्रस्थापित किया था, यह उसी के अनुरूप है। मैंने उस समय इस बात पर बल दिया था कि राज्यों के विधान-मंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा शक्तियों को विविध राज्यों के विधान मंडलों पर ही छोड़ देना उचित नहीं होगा। संसद ही उनका विनिश्चय करे तो अधिक अच्छा रहेगा जिससे कि सारे राज्यों के विधान-मंडलों के सदस्यों के लिये एक से विशेषाधिकार, उन्मुक्तियां तथा शक्तियां हो सकें। मैंने इसी बात पर बल दिया था। मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर को इस पर विचार करने के लिये पर्याप्त समय नहीं मिला और इसलिये इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अब मैं उनके विचारार्थ तथा मसौदा-लेखन समिति के विचारार्थ इस पर पुनः बल दे रहा हूं। यह बहुत ही युक्तियुक्त तथा उचित है और मुझे आशा है कि वे इसे इस प्रविष्टि में जोड़ना स्वीकार कर लेंगे तथा वे इसका उस समय भी ध्यान रखेंगे जब वे सदन द्वारा पहले स्वीकार किये हुये उपबन्धों का रूपभेद करेंगे। मेरे विचार में यह अत्यावश्यक है कि विशेषाधिकार एक से हों और राज्य, राज्य में भिन्न न हों।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** साधु, साधु।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यही उचित है कि प्रत्येक विधान-मंडल को अपने विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा शक्तियों को परिभाषित करने का प्राधिकार मिलना चाहिये, और इसी कारण हमने यह उपबन्ध किया है कि संसद को अपने सदस्यों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा शक्तियों को निश्चित करने की शक्ति होगी तथा इसी प्रकार राज्य-विधान-मंडलों को अपने सदस्यों के विषय में वैसी ही शक्ति होगी। मैं नहीं समझता कि समूची शक्ति को केन्द्र में संकेन्द्रित करना उचित होगा। मैं तो यही समझता हूं कि यदि संसद अपने सदस्यों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा शक्तियों को परिभाषित करने का कोई अधिनियम पारित करेगी, तो संभवतः राज्य-विधान-मंडल भी उसका अनुसरण करेंगे और जैसा वे अभीष्ट समझेंगे वैसे छोटे-मोटे संशोधनों के साथ उसका शब्दशः अनुकरण कर लेंगे।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम् सप्ताह) के संशोधन सं. 39 में, सूची 1 की प्रस्थापित प्रविष्टि 69 के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'69A. Privileges, immunities and powers of the members of the State Legislatures and their Committess.' "

[69क. राज्यों के विधान-मंडलो तथा उनकी समितियों के विशेषाधिकार, उन्मुक्तियां तथा शक्तियां।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 69 के स्थान पर निम्न प्रविष्टियां रख दी जायें:

'69. The emoluments and allowances and rights in respect of leave of absence of the President and Governors; the salaries and allowances of the Ministers for the Union and of the Chairman and Deputy Chairman of the Concil of States and of the Speaker and Deputy Speaker of the House of the People; the salaries, allowances and the conditions of service of the Comptroller and Auditor-General of India.

69-A. The privileges, immunities and powers of each House of Parliament and of the members and the Committees of each House.' "

[69. राष्ट्रपति और राज्यपालों की उपलब्धियां, और भत्ते और अनुपस्थिति छुट्टी के बारे में अधिकार, संघ के मंत्रियों के तथा राज्यपरिषद् के सभापति और उपसभापति के और लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते; संसद के सदस्यों के वेतन और भत्ते; भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक के भत्ते तथा सेवा की शर्तें।

69-क. संसद के प्रत्येक सदन की, तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 69 सूची 1 का अंग बने।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 69क सूची 1 का अंग बने।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रविष्टियां 69 तथा 69क संघ सूची में जोड़ दी गईं।

प्रविष्टि 70

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 70 के अन्त में, 'or Commissions appointed by Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें।

इस समय इस प्रविष्टि में केवल समितियों का निर्देश है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि इस पर कोई और संशोधन है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 70 के अंत में 'or Commissions appointed by Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है।

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 70 सूची 1 का अंग बने।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 70 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 70क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 70 के पश्चात् निम्न प्रविष्टि प्रविष्ट कर दी जाये:—

'70A. The sanctioning of cinematograph films for exhibition.' "

[70क. प्रदर्शन के लिये चलचित्रों की मंजूरी।]

यह प्रविष्टि पहले समवर्ती सूची में रखी गई थी। अब इसे सूची 1 में रखने की प्रस्थापना है।

***अध्यक्षः** इस पर कई संशोधन हैं। श्री कामत का संशोधन सं. 221 इस प्रविष्टि के अपमार्जन के लिये है। अतः वह पेश नहीं हो सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं उस पर बोल सकता हूं?

***अध्यक्षः** बाद में।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 41 में, सूची 1 की प्रस्थापित नवीन प्रविष्टि 70क के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'70A. Regulation and control of the exhibition of cinema films.' "

[70क. चलचित्रों के प्रदर्शन का विनियमन और नियंत्रण।]

मेरी प्रस्थापना केवल भाषा बदलने की है। मैं यह नहीं समझ पाता कि चलचित्रों की मंजूरी विधान-निर्माण का विषय कैसे है। यदि विधान-निर्माण होगा तो वह मंजूरी के विषय में नहीं होगा। प्रदर्शन के लिये चलचित्रों की मंजूरी सुखद अभिव्यक्ति नहीं है। हमें प्रदर्शन के लिये चलचित्रों पर भी नियंत्रण की शक्ति होनी चाहिये और उसी दृष्टिकोण से मैं इन शब्दों को रखने की सिफारिश करता हूं "चलचित्रों के प्रदर्शनों का विनियमन और नियंत्रण"। श्रीमान, मैं इसे पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** काका भगवन्तराय के एक संशोधन की सूचना मुझे आज प्रातःकाल मिली है।

***काका भगवन्त रायः** श्रीमान, मैं उसे पेश नहीं करना चाहता।

***श्री राजबहादुरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 41 में सूची 1 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 70क में, 'the sanctioning of' और 'for 'exhibition' ये शब्द हटा दिये जायें।"

इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य इस प्रविष्टि के क्षेत्र को अधिक विस्तृत बना देना है। यदि मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये तो केवल 'चलचित्र' यही शब्द रह जायेगा। यह स्पष्ट है कि चलचित्रों की केवल मंजूरी की ही शक्ति संघ-संसद के लिये पर्याप्त नहीं है। वास्तव में चलचित्रों के विषय में संघ-संसद के कृत्यों को काफी विस्तृत कर देना चाहिये। हम जानते हैं कि चलचित्र अनुदेश तथा राष्ट्रीय शिक्षा का बहुत शक्तिशाली माध्यम सिद्ध हुये हैं। हम जानते हैं कि राष्ट्रीय आचार के निर्माण और गठन में भी उनका बहुत भाग होता है। अतः यह आवश्यक है, केवल कला और कलाकारों के दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन्, राष्ट्रीय शिक्षण के दृष्टिकोण से भी, कि हमें इस मामले में संघ-संसद् की शक्ति को अधिक विस्तृत कर देना चाहिये। आधुनिक काल में चलचित्रों में नाटक तथा सांग का स्थान ले लिया है। वे हमारी जनता के विवेक का माध्यम बन गये हैं। अतः यह अत्यावश्यक है कि, कला के हितार्थ, संघ-संसद को चलचित्रों के सुधार तथा प्रगति में सक्रिय रुचि रखनी चाहिये। अतः मेरी विनम्र सम्मति यह है कि यह प्रविष्टि चलचित्रों की मंजूरी तक ही सीमित नहीं होनी चाहिये, वरन् उससे अधिक विस्तृत होनी चाहिये। अतएव मेरा निवेदन है कि मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये।

[श्री राजबहादुर]

इस प्रविष्टि को प्रविष्टि 70 के पश्चात् जो 'संसद की समितियों के समक्ष साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिये व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करने' के बारे में है, रखने के औचित्य पर भी मुझे संदेह है। इसे अन्य रखना अधिक अच्छा रहता। मेरी तुष्छ समिति में तो यह प्रविष्टि 28 के पश्चात् भी आ सकती थी जो दूरभाष, बेतार तथा प्रसारण आदि के विषय में है। इसे यहां की बजाय वहां रखना अधिक अच्छा रहता। इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन को स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास: जनरल): डॉ अम्बेडकर द्वारा पेश की गई नई प्रविष्टि 70क का समर्थन करते हुये मैं कुछ शब्द कहना चाहती हूं।

इस नई प्रविष्टि 70क का उद्देश्य केन्द्र को यह शक्ति देना है कि वह चलचित्रों के प्रदर्शन पर प्रशासन कर सके और इस शक्ति को केन्द्र में लेने का उद्देश्य यह है कि जो चलचित्र इस देश के सब भागों में तथा देश के बाहर भी दिखाये जाते हैं उनके विषय में कुछ मान निश्चित किये जायें। हां, हम सोचते हैं, क्या केन्द्र को ऐसी शक्ति देना आवश्यक है कि वह इस प्रशासन को अपने हाथ में ले। हम अनुभव करते हैं कि बहुत से चित्रों का, जो आजकल जनता को दिखाये जाते हैं, कोई शैक्षणिक मूल्य नहीं है या बहुत कम है। सिर दुखाने वाले गाने और सस्ती बातें हमारी संस्कृति के लिये बहुत हानिकारक हैं। अत:, यह अत्यावश्यक है कि इन चित्रों का मान ऊंचा किया जाये और इस प्रकार निर्माताओं को अधिक अच्छे चित्र दिखाने में सहायता दी जाये जो इस देश की सभ्यता के प्रतिबिम्ब हों। यह मुख्य उद्देश्य है और उनसे इस देश के तथा बाह्य जगत के भी नागरिकों में, अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना की वृद्धि होनी चाहिये।

श्रीमान, आज स्थिति यह है कि प्रांतीय सरकारों ने अपने सेन्सरशिप बोर्ड स्थापित किये हुये हैं और जहां तक मुझे ज्ञान है या सूचना मिली है सेन्सरशिप तभी आरम्भ होता है जबकि चित्र पूरा बन जाता है और उस पर कुछ लाख रुपये व्यय हो चुके होते हैं और केन्द्र केवल मंत्रणा देने का कार्य करता है और उसका प्रभाव केवल शव-परीक्षण के समान होता है। अत: श्रीमान इस बात को ध्यान में रखते हुये, हमें उन चित्रों के मान में एकसूत्रता लानी है जो इस देश में और देश के बाहर भी दिखाये जाते हैं जिससे शुभ सामञ्जस्य की वृद्धि हो तथा हमारी संस्कृति तथा इस देश की सभ्यता का प्रतिविम्बन हो।

श्रीमान, इस संशोधन का समर्थन करते हुये, मैं यह कहना चाहती हूं कि प्रांतीय हितों अथवा प्रांतीय सेन्सरशिप मंडलों से, जो आज इस विषय में कृत्यों का निर्वहन कर रहे हैं, परामर्श लेना चाहिये और उनके हितों पर ध्यान देना चाहिये और प्रत्येक मामले में इन चित्रों को सेन्सर करते समय उनकी मंत्रणा तथा सहयोग प्राप्त करना चाहिये। श्रीमान, इस शक्ति को केन्द्र को देने पर एक आपत्ति हो सकती है कि क्या केन्द्र इस मामले को संभाल सकेगा, क्योंकि भिन्न-भिन्न भाषाओं तथा उप-भाषाओं में चित्र दिखाये जाते हैं, क्या केन्द्र इस शक्ति को संभाल सकेगा तथा इस मामले पर प्रभावी नियंत्रण रख सकेगा। इस युक्ति में कुछ औचित्य है पर फिर भी मैं कहना चाहती हूं कि इस विषय के प्रशासन में केन्द्र को इतना सावधान होना चाहिये कि प्रांत राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय एकता में अंशदान कर

सकें, और साथ-साथ वे उस संस्कृति का भी संरक्षण कर सकें जो उनकी अपनी विशेषता है।

श्रीमान, इस मामले में हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि पहला कदम तो पहले ही उठाया जा चुका है। हमने भारत शासन अधिनियम को संशोधित करके केन्द्र को शक्ति दे दी है। हमने विधान-सत्र में भी एक विधेयक पारित करके चित्रों का श्रेणी विभाजन किया है तथा 'ए' और 'यू' श्रेणी की प्रणाली जारी की है। अतः इस सूची में यह प्रविष्टि उसी के अनुरूप है जो हमने अब तक किया है। कुछ आपत्तियां उठाई गई हैं, मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र श्री राजबहादुर ने एक आपत्ति उठाई थी कि शक्तियों को अधिक विस्तृत करना चाहिये और उन्होंने 'the sanctioning of' तथा 'for exhibition' इन शब्दों के अपमार्जन का सुझाव दिया है जिससे कि शक्ति बढ़ जायेगी। मैं यह कहना चाहती हूं कि हमें पहले ही अनुज्ञा देने का प्राधिकार है जिसके अधीन यह काम किया जा सकता है। मैं समझती हूं कि उनका उद्देश्य यह देखना है कि केन्द्र प्रांतों को ऐसे चित्र बनाने के लिये कह सकता है जिनका शैक्षणिक मूल्य हो और उन्हें अन्य चित्रों के साथ, जो आज प्रदर्शित होते हैं, दिखाने के लिये कह सकता हैं हम यह काम उस शक्ति के अंतर्गत कर सकते हैं जो इस समय हमारे पास है और प्रांत भी अपनी अनुज्ञा देने की शक्ति के अधीन इसका प्रयोग कर रहे हैं। केन्द्र ने चित्रों का श्रेणी विभाजन करने के लिये एक विधेयक पारित कर ही दिया है। अतः यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। अतएव मैं अनुभव करती हूं कि यह प्रविष्टि सदन को स्वीकार्य होगी।

***श्री राजबहादुरः** क्या इन शब्दों से सारी बात का अर्थ निर्बन्धित और सीमित नहीं हो जाता?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** नहीं, श्रीमान्, क्योंकि अन्य शक्तियों का, जो आपने मांगी हैं, पहले ही प्रांतों और केन्द्र दोनों की शक्तियों के अधीन हो रहा है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैंने जो शब्द सुझावें हैं कि, चलचित्रों के प्रदर्शन का 'विनियमन तथा नियंत्रण' उनके बारे में क्या ख्याल है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** उसका भी प्रयोग उन्हीं शक्तियों के अन्तर्गत होगा जो हमें अनुज्ञा देने के प्राधिकार के अंतर्गत प्राप्त हैं; और बच्चों की रक्षा आदि के अन्य मामले तो श्रम विभाग के लिये हैं और इससे उनका संबंध नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे संशोधन की भावना के अनुरूप, जो मैं पेश नहीं कर सका क्योंकि वह नकारात्मक संशोधन है, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची से हटाकर संघ-सूचि में ले जाने का पर्याप्त आधार नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उसे भारत शासन अधिनियम में तो पहले ही स्थानान्तरित किया जा चुका है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह दुर्भाग्य है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपना संशोधन पेश करते हुये एक नग्न वक्तव्य दे दिया और इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची से

[श्री एच.वी. कामत]

हटा कर संघ सूची में रखने का कोई उपयुक्त कारण नहीं बताया। मैं अपनी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई से सहमत हूं कि हमारे चित्रों में हमारे राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिबिम्ब होना चाहिये। इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। परन्तु कुछ बातें हैं जिन पर इस सदन को, चल-चित्रों के विषय में विचार करते समय, ध्यान देना चाहिये। आजकल जो मित्र बनते हैं वे मूक चित्र ही नहीं होते, वरन् अधिकांश में वे वाचाल-चित्र होते हैं। मूक मित्रों का अब समय नहीं रहा और वाचाल-चित्रों में केवल चलचित्र ही नहीं होते प्रत्युत बहुत सी भाषा तथा संगीत, वार्तालाप और क्या-क्या बातें होती हैं। सबको ज्ञात है कि जब भी कोई चित्र विशेष किसी प्रांत विशेष में दिखाया जाता है, तब गाने, वार्तालाप आदि का उस प्रांत की भाषा में अनुवाद किया जाता है। प्रत्येक भाषा में अर्थ-भेदों तथा सूक्ष्म अन्तरों का प्रश्न उठता हूं प्रत्येक व्यक्ति के लिये संघ की सभी भाषाओं से भिज्ञ होना संभव नहीं है और जैसे कि मैं कह चुका हूं प्रत्येक भाषा की अपनी विशेष पदावली, अर्थलालित्य तथा वाग्धाराएं होती हैं। इस समय प्रत्येक प्रांत में एक चित्र सेन्सर सम्बन्धी प्रांतीय मंडली होती है और प्रांतीय लोग उस प्रांत की भाषाओं से अधिक परिचित होते हैं जितने कि केन्द्रीय मंडली के सदस्य संभवतः नहीं हो सकते, जब तक कि केन्द्रीय मंडली में प्रत्येक प्रांत का एक सदस्य न हो अथवा भारतीय संघ की विविध भाषाओं से सुपरिचित सदस्य न हों। इसका अर्थ है कि वह बहुत बड़ी मंडली होगी।

मेरी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने एक विधेयक का निर्देश दिया है जो हमने विधान मंडल के गत आय-व्ययक सत्र में पारित किया था। उस विधेयक का उद्देश्य चित्रों को दो श्रणियों में विभाजित करना था—एक तो व्यापक रूप से प्रदर्शनार्थ, और दूसरी केवल प्रौढ़ों के लिये प्रदर्शनार्थ, जो बालकों तथा नव-युवकों के लिये ठीक न हों। किन्तु उन्होंने जो बात कहनी चाही थी वह बिल्कुल पूरी हो जायेगी। यदि इस चित्रों के के विषय को समवर्ती सूची में रख दिया जायें जिसका उद्देश्य राज्यों और केन्द्र दोनों को शक्ति देना है और संघ को ही अनन्य शक्ति देना नहीं है।

इस मामले का एक और पहलू है जो शायद सदन को स्वीकार्य हो। यद्यपि हमारी संस्कृति तथा सभ्यता एक हैं फिर भी हमारी रूढ़ियां प्रांत-प्रांत में तथा राज्य-राज्य में भिन्न-भिन्न हैं। मेरे मित्र पंडित भार्गव ने—आशा है कि मेरी स्मरणशक्ति ठीक है—विधान-सभा के गत सत्र में हिन्दू कोड विधेयक पर बोलते हुये बताया था कि संघ के विविध भागों में क्या-क्या रीतियां प्रचलन में हैं। दक्षिण में भाई तथा बहिन के बच्चों में विवाह हो सकते हैं। अर्थात् कोई व्यक्ति अपने ही मामा की पुत्री से विवाह कर सकता है। पंडित भार्गव ने कहा था "किन्तु यदि पंजाब में ऐसी बात हो जायें तो उस व्यक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायेंगे"। मान लीजिये कि किसी मित्र में मामा की पुत्री से किसी का विवाह करते हुये दिखाया जाता है तो मद्रास अथवा बम्बई जैसे प्रांतों में यह साधारण-सी बात हो सकती है, पर यदि उसे पंजाब में दिखाया जायेगा तो लोग स्तंभित हो जायेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** ऐसी बातें बहुत कम होती हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** यह संभावना की सीमा से बाहर की वस्तु नहीं है। चित्रों में विवाह के महत्वपूर्ण सामाजिक संस्कार को दिखाया जा सकता है और इसलिये मेरे विचार में यह आवश्यक है कि केवल केन्द्र को ही नहीं अपितु राज्यों

को भी इस विषय में शक्ति दे देनी चाहिये कि वे भी चल-चित्रों के विषय में निर्णय कर सकें अतएव मैं चाहता हूं कि इस प्रविष्टि को इस सूची से हटा दिया जाये और वापस समवर्ती सूची में डाल दिया जाये; मैं अनुभव करता हूं कि इस प्रविष्टि के लिये उपयुक्त स्थान है। उचित समय पर जब समवर्ती सूची सदन में विचारार्थ पेश होगी तब मैं इस संबंध में एक संशोधन पेश करूंगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अध्यक्ष महोदय, इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची से संघ-सूची में लाने के दो उद्देश्य हैं, पहला, चित्रों की मंजूरी के लिये यथासंभव एकसमान निर्धारित करना, और दूसरा किसी चित्र निर्माता को हानि से बचाना, जिसके चित्र को कोई प्रांत शायर इसलिये मंजूर न करे कि वहां कोई असाधारण मान रखे हुए हैं और वहां चित्रों की मंजूरी के लिये सामान्य मान नहीं हैं। अत: मेरे विचार में यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस मंजूरी के मामले को केन्द्र तथा प्रांतों दोनों में बाटंने की बजाय संघ-सूची में ही रखना अधिक अच्छा है, अन्यथा हो सकता है कि प्रत्येक प्रांत अपने अलग मान निश्चित किये जायेगा। और केन्द्र का यह कर्तव्य हो जायेगा कि वह प्रत्येक प्रांत को अपने मानों का परीक्षण करने के लिये मनाये और उन्हें बताये कि उनके मान अच्छे हैं या बुरे। जहां तक शेष बातों का सम्बन्ध है सूची 2 की प्रविष्टि 43 को ऐसे ही रहने देने का विचार है जिससे कि प्रांतों को नाटकों, थियेटरों और चल-चित्रों पर सब नियंत्रण बना रहेगा केवल मंजूरी का अधिकार नहीं रहेगा। मेरे विचार से मेरी इस प्रस्थापना से किसी के हित को कोई हानि नहीं पहुंचेगी। दूसरी ओर, जैसा कि मैं कह चुका हूं मंजूरी की शक्ति एक ही निकाय में, जैसे केन्द्र में केन्द्रित कर देने से स्पष्ट लाभ होंगे।

*__श्री राजबहादुर:__ केवल मंजूरी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ एक बार केन्द्र यह मंजूरी दे दे कि वह चित्र अच्छा है तथा नैतिक मानों के अनुकूल है तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि प्रदर्शन के लिये और कोई उपबन्ध क्यों हो। मामला समाप्त हो जाता है।

*__अध्यक्ष:__ मैं संशोधन संख्या 222 पर मत लेता हूं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मैं इसे वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

*__श्री राजबहादुर:__ मैं अपने संशोधन संख्या 226 को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि संख्या 70क सूची 1 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रविष्टि 70क संघ-सूची में जोड़ दी गई।

***अध्यक्ष:** कुछ नई प्रविष्टियां हैं जिन्हें डॉ. देशमुख यहां रखना चाहते हैं। हम उन्हें अन्त में ले सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** वे लगभग स्वतन्त्र हैं। उन्हें अन्त में लेने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

प्रविष्टि 71

***अध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन नहीं है। सरदार हुकम सिंह ने केवल अपमार्जन के सुझाव की सूचना दी है।

प्रविष्टि 71 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 72

***अध्यक्ष:** फिर हम प्रविष्टि 72 पर आते हैं। इस पर भी कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 72 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 73

***अध्यक्ष:** फिर प्रविष्टि 73 है। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 73 के स्थान पर निम्न प्रविष्टि रख दी जाये:—

'73. Inter-State trade and commerce.'

[73. अंतर्राज्यिक व्यापार तथा वाणिज्य।]"

प्रविष्टि 73 में इनके बाद के शब्द अनावश्यक हैं, क्योंकि सूची 2 कि प्रविष्टि 33 को हटा देने की प्रस्थापना है।

***अध्यक्ष:** इस पर एक संशोधन है, श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन सं. 226 ।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** तो फिर इस प्रविष्टि पर कोई संशोधन नहीं है। मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित रूप में इस प्रविष्टि पर सदन का मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 73 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टि रख दी जायेः—

'73. अंतर्राज्यिक व्यापार तथा वाणिज्यः' "

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 73 संघ-सूची में जोड़ दी गई।

प्रविष्टि 73क

***अध्यक्षः** फिर हम प्रविष्टि 73क, और डॉ. दिवाकर के संशोधन पर आते हैं। मैं यह समझ लेता हूं कि वह पेश नहीं हुआ। फिर श्री कामत की प्रविष्टि 73क–'अंतःनक्षत्रीय यात्रा' है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि हम अंतःनक्षत्रीय यात्रा के उपबन्ध की बात करते हैं, तो यह सदन की कार्यवाही को बेहूदगी तक पहुंचाना है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे विश्वास है कि यदि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी विज्ञान के विकास का पूरा पता रखते, तथा केवल वाणिज्य और व्यापार में ही व्यस्त न रहते, तो वे ऐसी बातें न कहते।

***अध्यक्षः** क्या हम ऐसी स्थिति पर पहुंच गये हैं जबकि अंतःनक्षत्रीय यात्रा पर नियंत्रण आवश्यक है?

***श्री एच.वी. कामतः** हां, श्रीमान, जैसा कि मैं कुछ क्षणों में ही सिद्ध करने का प्रयत्न करूंगा। मैं प्रस्ताव करता हूं......

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं एक औचित्य प्रश्न उठाता हूं। मेरे मित्र जो स्थापना रखना चाहते हैं कि वह अक्रियमाण है, और इसलिये यह पेश नहीं होनी चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** जब आप मेरी बात सुन चुकें, श्रीमान, तब आप निर्णय कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** पहले मैं उनकी बात सुनूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 42 के निर्देश से सूची 1 की प्रविष्टि 73 के पश्चात्, निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जायेः—

'73A. Inter-planetary travel.' "

[73क. अंतःनक्षत्रीय यात्रा।]

(हंसी)

[श्री एच.वी. कामत]

श्रीमान, सदन के सदस्यों की हंसी का मैं स्वागत करता हूं। किन्तु पचास वर्ष पूर्व, यदि कोई प्रसारकों और बेतार यंत्रों की बात करता तो उसका उपहास और मजाक होता, और शायद उसे पत्थर मारे जाते। किन्तु आज वे साधारण वस्तुएं हो गई हैं और प्रतिदिन की वस्तुएं हैं। मुझे विश्वास है कि श्री कृष्णमाचारी के पास भी अपना बेतार यंत्र अवश्य होगा। और आज प्रसारक यंत्र घर में होना संस्कृति का सूचक भी समझा जाता है। दूरवीक्षण को लीजिये। शायद बीस वर्ष पूर्व दूरवीक्षण को असंभव समझा जाता था। किन्तु आज अमरीका में दूरवीक्षित यंत्र इतनी साधारण चीज हो गई है कि सब महत्वपूर्ण सभाओं और भाषणों को दूरवीक्षत करके देश भर में दिखाया जाता है। इस शताब्दी को विज्ञान की त्वरित प्रगति के लिये श्रेय दिया जाता है क्योंकि मुझे विश्वास है, गत 50 वर्षों में विज्ञान के विवधि क्षेत्रों में इतनी प्रगति हुई है जितनी कि पहले के 500 वर्षों में भी नहीं हुई थी, आज हम अज्ञात रश्मियों, औषधि, जैट चालित विमानों के विषय में इतना सुनते हैं, हम निकट भविष्य में बहुत से महान परिवर्तनों की आशा कर सकते हैं। प्रगति आश्चर्यजनक है, यदि मैं ऐसा कह सकूं तो यह माया ही है। अभी उस दिन मैंने एक अमरीकी पत्र में पढ़ा था—मेरे विचार में 'न्यूयार्क टाइम्स' में ही एक समाचार था कि संयुक्त राज्य में एक समवाय स्थापित हुआ है जिसमें चन्द्र यात्रा के लिये आवेदन पत्र मांगे गये हैं। यह नितान्त सत्य है—मैं हास्य नहीं कर रहा हूं। शायद वे 'रोकेट' द्वारा यह यात्रा करने की आशा करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व. ......

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्य प्रांत तथा बरार: जनरल): क्या आप मुझे वह पत्र दिखा सकते हैं?

*__श्री एच.वी. कामत:__ हां, यदि आप कृपया मेरे सदन पर पधारें।

*__अध्यक्ष:__ मेरा ख्याल था कि लोग मृत्यु के पश्चात् चन्द्रलोक को जाते हैं।

*__श्री एच.वी. कामत:__ हां, श्रीमान, मैं भी ऐसे ही समझता था। स्वयं गीता में लिखा है.........

"तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते"

मुझे इस बात की संभावना पर आश्चर्य नहीं है कि योगी अपनी सिद्धियों की शक्ति से सशरीर चन्द्रमा पर जाकर वापस आ सकता है। पर इस बात के अतिरिक्त श्रीमान, यह तो अब संभावना के क्षेत्र में आ गई है, और कुछ वर्षों में ही, यह सर्वथा संभव है कि चन्द्र यात्राएं हुआ करें, तथा 'चन्द्र लोक का मनुष्य' इन उक्ति का कोई महत्व ही न रहे। मैं कह सकता हूं कि जब पृथ्वी पर अधिकाधिक जनसंख्या और घिच-पिच हो जायेगी, और जब विज्ञान अधिक प्रगति कर लेगा, तब शायद लोग चन्द्रमा या सौर्य मण्डल के अन्य कम जनसंख्या वाले नक्षत्रों पर उपनिवेश बसाना आरंभ कर देंगे। यदि हम विज्ञान की संभावना के विषय में अपने मस्तिष्क को खुला रखें, और विज्ञान की आश्चर्यजनक प्रगति के विषय में पूर्वधारणाओं या नासमझी के कारण अपने दिमाग को बन्द न करे, तो मुझे विश्वास है कि सदन इस मामले को ऐसे ही नहीं उड़ा देगा जैसे वह आज उड़ाना चाहता

है। मैं ज्योतिषी नहीं बनना चाहता पर मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि आगामी 25 वर्षों में शायद पूर्वतर, ऐसी बातों पर उपहास नहीं होगा, जैसे कि यहां कुछ मित्र आज करना चाहते हैं।

***श्री बी.एल. सौंधी:** (पूर्वी पंजाब: जनरल): हमारे संतान के समय शायद।

***श्री एच.वी. कामत:** नहीं, श्री सौंधी और मेरे जीवन काल में ही।

अत: मेरा सुझाव है कि इस मामले को समवर्ती सूची में या राज्य सूची में न रखा जाये अपितु यह संघ का अनन्य क्षेत्राधिकार होना चाहिये, जिससे कि समय आने पर संघ को पूर्ण नियंत्रण की शक्ति होगी। हां, डॉ अम्बेडकर कह सकते हैं कि यह पारपत्रों तथा दृष्टांकों की प्रविष्टि में आ जाता है। पर मेरे विचार में यह बात नहीं है। वे पार पत्र तथा दृष्टांक हमारी इस पृथ्वी पर ही यात्रा के लिये हैं। किन्तु निकट भविष्य में अत:नक्षत्रीय यात्रा अधिकाधिक महत्वपूर्ण हो जायेगी, और इसलिये इसे संघ-सूची में स्थान मिलना चाहिये। और इसलिये मैं इस संशोधन को सदन के समक्ष सच्चे दिल से तथा निष्पक्ष रूप में विचार करने के हेतु पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री नजीरुद्दीन का एक संशोधन भी नक्षत्रों तथा उपग्रहों की यात्रा के विषय में है। वे इस संशोधन से भी संतुष्ट नहीं हैं। क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं?

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: हां, श्रीमान्, क्योंकि यदि यह संशोधन जो अभी पेश किया गया है, स्वीकृत हो जायेगा तो यह मेरे संशोधन के बिना अपूर्ण रहेगा। मैं केवल एक मिनट लूंगा मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 3 (षष्ठम सप्ताह) में, प्रस्थातपत नई प्रविष्टि 73क पर संशोधन सं. 227 के निर्देश से अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:—

'travel between the planets and the satellites and between the satellites.' "

[नक्षत्रों और उपग्रहों के बीच और उपग्रहों के बीच।]

***अध्यक्ष:** आपने इसकी सूचना आज प्रात:काल ही दी थी।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: हां, श्रीमान, कठिनाई यह थी कि मैं इस संशोधन को कल तैयार करके अपनी जेब में लाया था पर उसे कार्यालय को देना भूल गया।

***अध्यक्ष:** मैं आपत्ति नहीं कर रहा हूं। चलते जाइये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरा निवेदन है कि, यद्यपि यह अंत:नक्षत्रीय यात्रा भविष्य का स्वप्न है, पर वह शीघ्र ही हो रही है। बहुत समय पूर्व जूल्स वरने का एक बहुत अच्छा उपन्यास 'पृथ्वी से चन्द्र को और उसके चारों ओर एक चक्कर' निकला था, और वैज्ञानिक विषयों पर बहुत से उपन्यास निकले थे। बहुत हद तक उनका स्वप्न सच निकला है और आधुनिक वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि अंत:नक्षत्रीय यात्रा एक क्रियान्मक बात है और शीघ्र ही एक वास्तविकता बन जायेगी और वाणिज्यिक पैमाने पर हो सकेगी। श्री कामत के संशोधन में एक

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कसर है और त्रुटि है। उनके संशोधन में एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र को यात्रा का उपबन्ध है और एक नक्षत्र से किसी उपग्रह को और उपग्रहों के बीच यात्रा का उपबन्ध नहीं है। अत: यदि अंत:नक्षत्रीय यात्रा को सूची में रखना है, जो कि होना ही चाहिये, तो यह संशोधन स्वीकार करना ही होगा। सबसे पहले पृथ्वी से चन्द्र को और वापस आने की यात्रा होगी। किन्तु कामत के संशोधन से यह संभव न हो सकेगा। मौलिक संशोधन को पूर्ण बनाने के लिये मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये। श्रीमान, यदि संशोधन अस्वीकृत होना है तो वह अधिक संतोषजनक ढंग से मतदान द्वारा होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि अधिक बोलने की आवश्यकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं पूर्णत: नहीं समझा कि क्या मेरे मित्र की प्रस्थापना उन बातों के विषय में है जो अज्ञातव्य हैं या उन बातों के विषय में है जो अज्ञात हैं। यदि वे अज्ञात हैं, तो हमने समय ही गंवाया है। किन्तु यदि वे बातें अज्ञात हैं, पर अज्ञातव्य नहीं हैं, तो उनके विषय में हमारे पास पर्याप्त शक्तियां हैं। किसी प्रविष्टि की चिन्ता क्यों की जाये?

***अध्यक्ष:** मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 (षष्ठम सप्ताह) में, प्रस्थापित नई प्रविष्टि 73क पर संशोधन सं. 227 के निर्देश से, अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:—

'travel between the planets and satellites and between the satellites.' "

[नक्षत्रों और उपग्रहों के बीच और उपग्रहों के बीच।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठम सप्ताह) के संशोधन सं. 42 के निर्देश से, सूची 1 की प्रविष्टि 73 के पश्चात् निम्न नई प्रविष्टि जोड़ दी जाये:—

'73क. अंत:नक्षीय यात्रा।' "

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, तारीख 1 सितम्बर, 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।